

मुद्रक तथा मन्थक
हनुमानप्रसाद पोद्दार
ब्रिचमिंस ग्नेरखपुर

स० २०१७ प्रथम संस्करण १०,०००

मूल्य दोनों भागोंका १७-५०
(सत्रह रुपया पचास नया पैसा)

गीता प्रेस, पो० गीता प्रेस (गोरखपुर)

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणकी विषय-सूची

(सुन्दरकाण्डम्)

सं.	विषय	पृष्ठ-संख्या	सं.	विषय	पृष्ठ-संख्या
१-	हनुमान्कीके द्वारा समुद्रका छहून मैनाकके द्वारा उनका त्यागत सुरक्षपर उनकी विष्म तथा सिद्धिकाका बच करके उनका समुद्रके उस पार पहुँचकर बङ्गाप्री घांमा देखना	८४७	१२-	सीताक मरणकी आशङ्कासे हनुमान्कीका विधिस होना फिर उस्ताहका आभय लेकर अन्य स्थानोंमें उनकी खोज करना और वही भी पता न लगनेसे पुनः उनका चिन्तित होना	८८९
२-	बङ्गापुरीका वर्णन उसमें प्रवेश करनेके विषयमें हनुमान्कीका विचार, उनका स्वरूपसे पुरीमें प्रवेश तथा चन्द्रोदयका वर्णन	८९१	१३-	सीताकीके नाशकी आशङ्कासे हनुमान्कीकी चिन्ता, भीरुमको सीताके न मिन्नेकी सूचना देनेसे अनपकी सम्भावना देख हनुमान्कीका न छोटनेका निश्चय करके पुन खोजकी विचार करना और अशोकवाटिकामें भूमनेके विषयमें तरह-तरहकी बातें सोचना	८९२
३-	बङ्गापुरीका अन्वेषण करके हनुमान्कीका विस्मित होना, उसमें प्रवेश करते समय निशाचरी बङ्गाका उन्हें रोचना और उनकी मारसे बिहस होकर उन्हें पुरीमें प्रवेश करनेकी अनुमति देना	८९५	१४-	हनुमान्कीका अशोकवाटिकामें प्रवेश करके उसकी घामा देखना तथा एक अशोक वृक्षपर छिपे रहकर वहीसे सीताका अनुत्पान करना	८९४
४-	हनुमान्कीका बङ्गापुरी एवं रावणके अन्तःपुर में प्रवेश	८९८	१५-	बनकी घोमा देखते हुए हनुमान्कीका एक चैत्यप्रसाद (मन्दिर) क पास सीताको दयनीय अवस्थामें देखना, पहचानना और प्रश्न होना	९०१
५-	हनुमान्कीका रावणके अन्तःपुरमें भर-भरमें सीताको हँदना और उन्हें न देखकर दुःखी होना	९०३	१६-	हनुमान्कीका मन ही-मन सीताकीके शिस और लोभके लक्षणा करते हुए उन्हें कहमें पड़ी दख स्वयं भी उनके छिपे हाक करना	९०५
६-	हनुमान्कीका रावण तथा अन्याय राक्षसोंके परोंमें सीताकीकी खोज करना	९०३	१७-	मयंकर राक्षसोंस विरी हुई सीताके दर्शनते हनुमान्कीका प्रश्न होना	९०९
७-	रावणके मवन एवं पुष्पकविमानका वर्णन	९०५	१८-	भरनी विरोंस विरे हुए रावणका अशोक वाटिकामें आगमन और हनुमान्कीका उसे देखना	९११
८-	हनुमान्कीके द्वारा पुन पुष्पकविमानका दहन	९०८	१९-	रावणका देहकर हुआ मय और विन्दममें हुई हुई सीताकी अवगतता बचन	९१३
९-	हनुमान्कीका रावणके भेद मवन पुष्पक-विष्म तथा रावणके रहनेकी सुन्दर हथेलीको देखकर उनके भीतर धेवी हुई ल-सों सुन्दरी विरोंस अवस्थाकर करना	९०९	२०-	रावणका सीताकीको प्रत्यमन	९१५
१०-	हनुमान्कीका अन्तःपुरमें लपे हुए रावण तथा गार्ह निद्रामें पड़ी हुई उसकी विरोंसो देखना तथा मन्दोदरीको सीता समझकर प्रश्न होना	९१५	२१-	सीताकीका रावणका अन्तःपुर और उसे भीरुमक समने मगय जानना	९१८
११-	११ सीता मही रे—देख निश्चय होनेपर हनुमान्कीका पुनः अन्तःपुरमें और उसकी				

- २२—राक्षसों की वीरता को दो मासकी कल्पि देना,
वीरता को उसे फलकारना फिर राक्षसों उन्हें
धमकाकर राक्षसोंके नियन्त्रणमें रखकर कियो-
सहित पुनः महलको छोड़ घना १२
- २३—राक्षसियोंकी वीरताकी समझाना १२३
- २४—वीरताकी राक्षसियोंकी बात माननेसे इनकार
कर देना तथा राक्षसियोंकी उन्हें मारने-काटनेकी
धमकी देना १२५
- २५—राक्षसियोंकी बात माननेसे इनकार करके शोक-
संतत वीरताको विभय करना १२८
- २६—वीरताको कष्ट-विभय तथा अपने प्राणोंको स्वाग
देनेका निश्चय करना १२९
- २७—विभयको स्वप्न, राक्षसोंके विनाश और
भीरुतापत्नीकी विभयकी द्रम सूचना १३३
- २८—विभय करती हुई वीरताको प्राण-स्वागके सिन्धे
उपलब्ध होना १३४
- २९—वीरताके द्रम शक्ति १३८
- ३०—वीरतासे बाल्याकार करनेके विषयमें हनुमान्की
विचार करना १३९
- ३१—हनुमान्की वीरताको सुमानेके सिन्धे भीरुम
कथाको वर्णन करना १४२
- ३२—वीरताकी एक-वितर्क १४४
- ३३—वीरताकी हनुमान्की अपना परिचय देते
हुए अपने वनगमन और अपहरणका वृत्तान्त
कथाना १४५
- ३४—वीरताकी हनुमान्की प्रति संदेह और उसका
समाधान तथा हनुमान्की हाथ भीरुमचन्द्रकी
के गुणोंका गन १४७
- ३५—वीरताके पूछनेपर हनुमान्की भीरुमके
घापीक सिद्धों और गुणोंका वर्णन करना तथा
नर-वानरकी मित्रताका प्रसङ्ग सुनाकर वीरताके
मनमें विश्वास उत्पन्न करना १४९
- ३६—हनुमान्की वीरताको सुखि देना, वीरता
भीरुम को मेष उदार करेगी यह उल्लेख
होकर पूछना तथा हनुमान्की भीरुमके
वीरता विषयक प्रेमका वर्णन करके उन्हें
बाल्यता देना १५५
- ३७—वीरताको हनुमान्की भीरुमके भीरुम
आश्रय, हनुमान्की वीरतासे अपने साथ
बचनेका अनुरोध तथा वीरताको अस्वीकार
करना १६०
- ३८—वीरताकी हनुमान्की पहचानके रूपमें
विश्रुत पक्षतपर धरित हुए एक शीशुके
प्रसङ्गको सुनाना भगवान् भीरुमको भीरुम
बचनेके सिन्धे अनुरोध करना और पूछामपि
देना १६३
- ३९—पूछामपि लेकर आते हुए हनुमान्की वीरताको
भीरुम आश्रितोंके उदाहरित करनेके सिन्धे कहना
तथा समुद्र तरणके विषयमें शक्ति हुई वीरताको
वानरोंका पराक्रम बतानेकर हनुमान्की
आश्रय देना १६८
- ४०—वीरताको भीरुमसे कहनेके सिन्धे पुनः संदेह
देना तथा हनुमान्की उन्हें आश्रय दे
उत्तर विद्याकी ओर गाना १७१
- ४१—हनुमान्की हाथ प्रमथान (अशोक-
पाटिका) का विषय १७३
- ४२—राक्षसियोंके मुखसे एक वानरके हाथ
प्रमथानके विषयका समाचार सुनकर राक्षस
किंकर नामक राक्षसोंको भयना और हनुमान्
की हाथ उन राक्षसोंका खार १७५
- ४३—हनुमान्की हाथ सैत्यप्राज्ञका विषय तथा
उसके राक्षसोंका वध १७८
- ४४—महा पुत्र हनुमान्की वध १७९
- ४५—मन्त्रीके हाथ पुत्रोंका वध १८०
- ४६—राक्षसोंके पाँच सेनापतियोंका वध १८१
- ४७—राक्षस-पुत्र अशकुमारका पराक्रम और वध १८४
- ४८—हनुमान्की और हनुमान्की मुख, उसके
विष्माकक बचनेमें बचकर हनुमान्की
राक्षसोंके दरबारमें उपस्थित होना १८८
- ४९—राक्षसोंके प्रमाथवासी स्वल्पको देखकर
हनुमान्की मनमें अनेक राक्षसोंके विचारोंका
उठना १९३
- ५०—राक्षसोंके प्रसङ्गके हाथ हनुमान्की हनुमान्की
बचनेका कारण उल्लेख और हनुमान्की अपने-
को भीरुमका वृत्त बताना १९५

५१-हनुमान्भीम भीरामके प्रभावका वर्णन करते हुए रचनको समाप्ताना	१९६	६१-बानरोंका मधुवनमें जाकर बहकें मधु एवं क्यूँका मनमाना उपभोग करना और बन रक्षकोंको पलीटना	१ ३२
५२-विभीषणका वृषके वचनको अनुचित बताकर उसे वृषको कोई दण्ड देनेके लिये कहना तथा रचनका उनका अनुरोधको स्वीकार कर लेना	१९९	६२-बानरोंद्वारा मधुवनके रक्षकों और दधिमुलका परमप तथा सेवकोंद्वारा दधिमुलका सुमीवके पास धाना	१ ३४
५३-उल्लोका हनुमान्भीमी वृँछमें आग लगाकर उन्हें नगरमें बुलाना	१ २	६३-दधिमुलसे मधुवनके विषयका समाचार सुनकर सुमीवका हनुमान् आदि बानरोंकी लच्छाके विषयमें अनुमान	१ ३७
५४-सङ्गापुरीका दहन और राक्षसोंका विध्वंस	१ ५	६४-दधिमुलसे सुमीवका संदेश सुनकर आइद हनुमान् आदि बानरोंका किष्किंधाममें पहुँचना और हनुमान्भीम भीरामको प्रणाम करके सीतादेवीके दर्शनका समाचार बताना	१ ३९
५५-सीतामीके लिये हनुमान्भीमी विन्ता और उषका निवारण	१ ९	६५-हनुमान्भीम भीरामको सीताका समाचार सुनाना	१ ४२
५६-हनुमान्भीम पुनः सीतामीसे मिलकर झौटना और समुद्रको खोजना	१ ११	६६-जूझामणिको देखकर और सीताका समाचार पाकर भीरामका उनके लिये विधाप	१ ४४
५७-हनुमान्भीम समुद्रका सोंपकर बामवान् और आइद आदि मुहदोसे मिलना	१ १४	६७-हनुमान्भीम भगवान् भीरामको सीताका संदेश सुनाना	१ ४६
५८-बामवान्के पूछनेपर हनुमान्भीम अपनी सङ्गायात्राका सारा वृत्तान्त सुनाना	१ १७	६८-हनुमान्भीम सीताके संदेश और अपने द्वारा उनको निवारणका वृत्तान्त पताना	१ ४८
५९-हनुमान्भीम सीताकी बुरबसा बताकर बानरोंको समुद्रपर आक्रमण करनेके लिये उत्तेजित करना	१ २८		
६०-मग्नदका सङ्गाका झेतकर सीताको छे आनेका उल्लाहपूर्ण विचार और बामवान्के द्वारा उषका निवारण	१ ३१		

चित्र-सूची

(तिरगा)

१-समुद्रकवन-विषयके बाद माफतीका कथन

८४७

(पकरगा)

१-हनुमान्भीमके अनङ्गीकीका प्रथम दर्शन

४

२-हनुमान्भीमी बानकीमीसे बात-चीत

१४५

३-रचनकी समाप्ति हनुमान्

१९३

४-समुद्रको सोंपकर सङ्गासे झौटते हुए माफती

१ १४

५-बानरोंका समुद्रपारत झौटते देखकर सुमीव

१ ४१

६-बानरोंका समाचार दे रह हैं

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणकी विषय-सूची

(युद्धकाण्डम्)

सर्ग	विषय	पृष्ठ-संख्या	सर्ग	विषय	पृष्ठ-संख्या
१-	इतुमान्भीकी प्रणय करके भीरामका उन्हें हृदयसे स्मालना और समुद्रको पार करनेके लिये चिन्तित होना	१ ५१		परसे ता उते फटकरना, फिर समस्त धनुष्योंके बचपन स्वयं ही मर उठाना	१ ७७
२-	सुभीषका भीरामका उखाह प्रदान करना	१ ५२	११-	महापार्वका रावणको सीतापर बलात्कारके लिये उठखाना और रावणका धापके बाग्य अपनेको देगा करनेमें अन्तमय बताना तथा अपने पराक्रमक गीत गाना	१ ८
३-	इतुमान्भीका संकल्पके दुःख, घटक सेना-विभाग और संक्रम आदिका बचन करके मन्त्रान् भीरामसे सेनाको सूच करनेकी आज्ञा देनेक लिये प्रार्थना करना	१ ५४	१४-	विभीषणका रामको अश्रेय बशाकर उनके पात सीताका लौटा देनेकी सम्मति देना	१ ८१
४-	भीराम आदिक साथ बानर-सेनाका प्रस्थान और समुद्र-तटपर उठका पड़ाव	१ ५६	१५-	इन्द्रकिन्निहारा विभीषणका उपहास तथा विभीषणका उसे फटकरकर धमामें अपनी उचित सम्मति देना	१ ८४
५-	भीरामका सीताके लिये धाँक और भ्रमण	१ ६४	१६-	रावणके द्वारा विभीषणका विरस्कार और विभीषणका भी उसे फटकरकर बल देना	१ ८९
६-	रावणका कर्तव्य-निर्णयक लिये अपने मन्त्रियोंसे समुचित समझ देनेका अनुरोध करना	१ ६६	१७-	विभीषणका भीरामकी धारणमें ठगना और भीरामका अपने मन्त्रियोंके साथ उन्हें आशय देनेके लिये विचार करना	१ ८८
७-	रावणकी रावण और इन्द्रकिन्निहारा पराक्रमका वर्णन करते हुए उसे रामपर विषय पानेका विश्वास दिखाना	१ ६७	१८-	मगवान् भीरामका धरणागतकी रक्षाका महत्त्व एवं अपना मत बलाकर विभीषणसे सिखाना	१ ९१
८-	प्रह्लाद दुर्गल बद्धर्ष निकुम्भ और बद्धहनुका उल्लास जमने शत्रु सेनाका मार-गिरानेका उल्लाह दिखाना	१ ६९	१९-	विभीषणका अश्वरसे उतरकर मन्त्रान् भीरामक चरणोंकी धारण करना उनके पूछनेपर रावणकी शक्तिका परिचय देना और भीरामका रावण-वचकी प्रतिज्ञा करके विभीषणको लडाके रावणपर अभिष्टिक कर उनकी सम्मतिसे समुद्र तटपर बरना देनेके लिये बेचना	१ ९५
९-	विभीषणका रावणसे भीरामकी अश्रेयता बताकर सीताका लौटा देनेक लिये अनुरोध करना	१ ७१	२-	शार्वृषके करनेस रावणका शुकका वृत्त बनाकर सुभीषक पाश संदिग्ध भङ्गना वहाँ वानरोंद्वारा उठकी सुरक्षा भीरामकी कृपासे उल्लास उल्लासे बूटना और सुभीषका रावणके लिये उत्तर देना	१ ९८
१०-	विभीषणका रावणके महत्त्वमें जाना उसे अपयशुनोंका मय शिखाकर सीताको लौटा देनेके लिये प्रार्थना करना और रावणका उनकी बात न मानकर उन्हें बर्होसि विद्या कर देना	१ ७२			
११-	रावण और उल्लास उल्लासदोंका समामनमें एकत्र होना	१ ७५			
१२-	नगरकी रक्षाक लिये सेनिकोंकी नियुक्ति रावणका सीताके प्रति अपनी आशक्ति बताकर उनके हरबल प्रसंग बताना और मन्त्री कर्तव्यक लिये समस्तदोंकी सम्मति माँगना कुम्भकर्णका				

- ११-भीरमका समुद्रके तटपर कुशा विकासकर
और निरंतरक धरना देनेपर भी समुद्रके दर्शन
न देनेसे कुपित हो उसे बाण मारकर विस्तारक
देना ११ १
- १२-समुद्रकी लहरके अनुसर नरके द्वारा सागरपर
सौ वाहन छत्रि पुच्छा निमात्र तथा उसके द्वारा
भीरम आनिर्हित धानरसेनाका उसपर
पहुँचकर पड़ाव दायना ११ ३
- १३-भीरमका दरमजसे उत्पातसूचक लक्ष्योंका
वर्णन और लड़ापर आक्रमण ११ ९
- १४-भीरमका दरमजसे लड़ाकी घोषणा वर्णन
करके सेनाका झूठका लक्ष्य होनेके लिये
आदेश देना भीरमकी आशसे बन्धनमुक्त
हुए सुच्छा रावणक पास चकर उनकी
सेवाकिये प्रवृत्ता बनाना तथा रावणका
अपने बलकी शोभा होना ११ १
- १५-रावणका युद्ध और कारणके गुणरूपसे
बानरसेनामें मेवना विभीषणद्वारा उनका
पढ़ा जाना, भीरमकी हृदयसे सुदृष्टपर एता
तथा भीरमका शिष्य केकर लड़ाके छोटकर
उनका रावणको समझाना ११ १३
- १६-रावणका रावणका दृष्टक-दृष्टक बानर
युधपतियोंका परिचय देना ११ १६
- १७-बानरसेनाके प्रधान युधपतियोंका परिचय ११ १९
- १८-युद्धके द्वारा सुमीषके मन्त्रियोंका मैत्र और
द्विषदका अनुमानका भीरम, लक्ष्मण,
विभीषण और सुमीषपर परिचय देकर बानर
सेनाकी सन्नाहा निकलना ११ २२
- १९-रावणका युद्ध और कारणके कारणकर अपने
करकारसे निष्कास देना उसके मेघे हुए
गुणरूपके भीरमकी दबाके बानरोंक संगुलसे
पूँचकर लड़ाने आना ११ २५
- २०-रावणका मेघे हुए गुणरूपके एवं शार्दूलका
उपने बानरसेनाका सम्यहार बनाना और
सुस्थ-सुस्थ कीरुता परिचय देना ११ २७
- २१-मायावृत्त भीरमका कथा मलक निलाकर
रावणद्वारा सीताको मोहमें आनेका प्रयत्न ११ २९
- २२-भीरमके मारे आनेका विश्वास करके सीताका
बिलाप तथा रावणका अगामे आकर मन्त्रियोंकी
सम्हाते सुकवियक उपाग करना ११ ३२
- २३-सरमाका सीताको सम्बन्ध देना, रावणकी
मायाका मेघ लोचना भीरमके आगमनका
प्रिय समाचार सुनाना और उनके विन्धी होने-
का विश्वास दिखाना ११ ३५
- २४-सीताके अनुरोधसे सरमाका लोके मन्त्रियोंसहित
रावणका निश्चित विचार बनाना ११ ३८
- २५-मास्यबानका रावणको भीरमसे छिपे करनेके
लिये समझाना ११ ४
- २६-मास्यबानकर आशेष और नगरकी रक्षाका
प्रवृत्त करके रावणका अपने अन्तःपुरमें आना ११ ४२
- २७-विभीषणका भीरमसे रावणद्वारा किये गये
लड़ाकी रक्षाके प्रवृत्तका वर्णन तथा भीरम
द्वारा लड़ाके विभिन्न कारणपर आक्रमण करनेके
लिये अपने सेनापतियोंकी नियुक्ति ११ ४४
- २८-भीरमका प्रमुख बानरोंके साथ सुवेस परकपर
चढ़कर बहो राठमें निवास करना ११ ४६
- २९-बानरोंसहित भीरमका सुवेस-शिलारसे लड़ा
पुरीकर नियुक्त करना ११ ४८
- ४ -सुमीष और रावणका मन्त्रयुद्ध ११ ५
- ४१-भीरमका सुमीषको दुःखारसे रोचना लड़ाक
कार्ये कारणपर बानरसेनाकी नियुक्ति, रामद्वारा
अज्ञरका रावणकमहदमे पराक्रम तथा बानरों-
के आक्रमणसे राक्षसोंको भय ११ ५३
- ४२-सङ्घपर बानरोंकी सदाई तथा राक्षसोंके साथ
उनका पर युद्ध ११ ५९
- ४३-द्वन्द्वयुद्धमें बानरोंद्वारा राक्षसोंकी पराजय ११ ६२
- ४४-उठमें बानरों और राक्षसोंका पर युद्ध अज्ञर
द्वारा इन्द्रविष्णुकी पराजय मायसे अज्ञरर हुए
इन्द्रविष्णुका मागम पागोंद्वारा भीरम और
लक्ष्मणको घोषणा ११ ६५

- ४५-इन्द्रकिष्कि के बाणोंसे भीरम और लक्ष्मणका भवेत्
होना और बानरोंका शोक करना ११६८
- ४६-भीरम और लक्ष्मणको मूर्च्छित देख बानरोंका
शोक, इन्द्रकिष्कि हर्षोद्धार, विभीषणका सुधीन
को सम्मानना, इन्द्रकिष्कि छद्माने बाहर फिरो
धनुषका वृत्तान्त बताना और प्रसन्न हुए
एकजके द्वारा अपने पुत्रका अभिन्नजन ११७०
- ४७-बानरोंद्वारा भीरम और लक्ष्मणकी रक्षा, एकज-
की आज्ञासे एकछियोंका छीटाका पुष्पकविमानद्वारा
एकमूर्तिमें से बाहर भीरम और लक्ष्मणका दर्शन
करना और छीटाका तुली होकर रोना ११७३
- ४८-छीटाका विस्मय और निश्चयका उन्हें समझा
बुझाकर भीरम लक्ष्मणके जीवित होनेका विश्वास
दिखाकर पुनः छद्माने ही श्रेय्य जाना ११७५
- ४९-भीरमका उचैत हाकर लक्ष्मणके सिधे विस्मय
करना और स्वयं प्राणत्यागका निश्चय करके
बानरोंको डोट जानेकी आज्ञा देना ११७७
- ५०-विभीषणका इन्द्रकिष्कि समझकर बानरोंका
पञ्चजन और सुधीनकी आज्ञासे सम्पन्नका
उन्हें खलकना देना विभीषणका निष्पत्त और
सुधीनका उन्हें समझाना गडकका आना और
भीरम-लक्ष्मणको नामपाहसे मुक्त करके
बचा जाना ११८०
- ५१-भीरमके सम्पन्नमुक्त होनेका पञ्चपाकरविश्रित
हुए एकजका भूषाका सुदके सिधे मञ्जना
और सेनापतिव भूषाका नगसे बाहर जाना ११८४
- ५२-भूषाका सुद और इतुमान्कीके द्वारा एकज
का ११८६
- ५३-बहदरूका सेनापति सुदके सिधे मञ्जना,
बानरों और एकजका सुद बहदरूद्वारा
बानरोंका तथा बहदरूद्वारा एकजका खंड ११८९
- ५४-बहदरू और अन्धका सुद तथा बहदरूके
हाथसे उध निष्कारका बच ११९१
- ५५-एकजकी आज्ञासे अकम्पन व्यक्ति एकजका
मुदमें बचना और बानरोंके उध अकज और सुद ११९४
- ५६-इतुमान्कीके द्वारा अकम्पनका बच ११९६

- ५७-महाराज रावणकी आज्ञासे विद्याका सेनापति
सुदके सिधे मञ्जना ११९७
- ५८-नीलके द्वारा प्रह्लादका बच १२०
- ५९-प्रह्लादके मारे जानेसे तुली हुए रावणका
स्वय ही सुदके सिधे पधारना, उसके धय
भाये हुए मुस्य भीरोंका परिचय, रावणकी
मारसे सुधीनका भवेत् होना, लक्ष्मणका सुदने
जाना इतुमान् और रावणमें वषाणोंकी मार,
रावणद्वारा नीलका मूर्च्छित होना लक्ष्मणका
शक्तिसे आथाउसे मूर्च्छित एवं उचैत होना
तथा भीरमसे परल होकर रावणका छद्माने
मुत जाना १२०
- ६०-अपनी पराक्रमसे तुली हुए रावणकी आज्ञासे
स्वय हुए कुम्भकर्षका बगवा जाना और उसे
बेलाकर बानरोंका मयप्रीत होना १२१
- ६१-विभीषणका भीरमसे कुम्भकर्षका परिचय
देना और भीरमकी आज्ञासे बानरोंका सुदके
सिधे छद्माके द्वारा पर बट जाना १२२
- ६२-कुम्भकर्षका रावणके मन्त्रमें प्रवेद्य तथा
रावणका रामसे मय पलायन उसे धनुसेनाके
बिनाशके सिधे प्रेरित करना १२२
- ६३-कुम्भकर्षका रावणको उसके कुङ्कुलीके सिधे
तण्डुलम देना और उसे धैर्य बंधाये हुए सुद
विषयक उस्थाइ प्रकट करना १२२
- ६४-मोदरका कुम्भकर्षके प्रति आक्षेप करके
रावणको बिना सुदके ही अमीध बलुकी
प्राप्तिका उचय बताना १२३
- ६५-कुम्भकर्षकी रक्षणा १२३
- ६६-कुम्भकर्षके मन्त्रे मागे हुए बानरोंका बहदरू
द्वारा प्रोत्साहन और आवाहन कुम्भकर्षद्वारा
बानरोंका संसृष्ट पुनः बानर-सेनाका पञ्चजन
और अंगदका उसे समझा-बुझाकर स्वीयना १२३
- ६७-कुम्भकर्षके भयंकर सुद और भीरमके हाथसे
उतका बच १२४
- ६८-कुम्भकर्षके बचका समाचार सुतकर रावणका
विजय १२४

- १९-राजपूतों और भाइयोंका युद्धके लिये जाना और न्यायका अन्तर्गत द्वारा वष १२५७
- २०-हनुमान्जीके द्वारा बेदान्तक और त्रिधिराज, नीलके द्वारा महोदरका तथा श्रृयमके द्वारा महापार्ष्णक वष १२६४
- २१-अतिकारका भयकर युद्ध और अक्षयजक द्वारा उलका वष १२६८
- २२-राजपूतोंके चिन्ता तथा उलका राजपूतोंके पुरीकी रक्षाके लिये सायबान रहनेका आदेश १२७६
- २३-इन्द्रकिष्क ब्रह्मकासे वानरसेनासहित भीराम और अक्षयजक मूर्च्छित होना १२७८
- २४-बालकान्तक आदेशसे हनुमान्जीका हिमाचलसे विष्णु श्रेयसियोंके पर्यटको खन्या और उन श्रेयसियोंकी गन्धसे भीराम, अक्षयज एवं उमसा वानरोंका पुन स्वस्थ होना १२८५
- २५-हनुमान्जीका वरन तथा राक्षसों और वानरोंका भयकर युद्ध १२९२
- २६-महाभारतके द्वारा अक्षयज और प्रबलका, द्विविधके द्वारा घोषिताक्षक, मेन्दके द्वारा मूपाक्षक और सुधीरके द्वारा कुम्भक वष १२९७
- २७-हनुमान्जीके द्वारा निकुम्भक वष १३ १
- २८-राजपूतोंका आदेशसे मकराक्षक युद्धके लिये प्रस्थान १३ ४
- २९-भीरामचन्द्रजीके द्वारा मकराक्षक वष १३ ६
- ३०-राजपूतोंका आदेशसे इन्द्रकिष्क भोर युद्ध तथा उसके वषक विषयमें भीराम और अक्षयजकी बातचीत १३ ८
- ३१-इन्द्रकिष्कके द्वारा मायामयी सीताका वष १३११
- ३२-हनुमान्जीके नेतृत्वमें वानरों और निघाण्टोंका युद्ध हनुमान्जीका भीरामक पास छोड़ना और इन्द्रकिष्क निकुम्भक-मन्दिरमें आकर घूम करना १३१४
- ३३-सीताके मारे जानेकी बात सुनकर भीरामका एकासे मूर्च्छित होना और अक्षयजक उन्हें उमसासे हुए पुत्रवधके लिये उद्यत होना १३१६
- ३४-विभीषणका भीरामको इन्द्रकिष्की मायाका एकासे बचाकर सीताके बंधित होनेका विषय
- विलना और अक्षयजका सेनासहित निकुम्भक मन्दिरमें भोजनेके लिये अनुरोध करना १३१९
- ३५-विभीषणके अनुरोधसे भीरामचन्द्रजीका अक्षयजके इन्द्रकिष्कके वषके लिये जानेकी आज्ञा देना और सेनासहित अक्षयजका निकुम्भक-मन्दिरके पास पहुँचना १३२१
- ३६-वानरों और राक्षसोंका युद्ध हनुमान्जीके द्वारा राक्षसेनाका छहार और उनका इन्द्रकिष्कके दन्तयुद्धके लिये अक्षयजका तथा अक्षयजक ठसे देलना १३२३
- ३७-इन्द्रकिष्क और विभीषणकी रोगयुक्त बातचीत १३२५
- ३८-अक्षयज और इन्द्रकिष्की परस्पर रायमयी बातचीत और भोर युद्ध १३२७
- ३९-विभीषणका राक्षसोंपर प्रहार उनका वानर युवतियोंको प्रोत्साहन देना, अक्षयजका इन्द्रकिष्कके शरपिचक और वानरोंका उनके घोड़ोंका वष १३३२
- ४०-इन्द्रकिष्क और अक्षयजक मर्मकर युद्ध तथा इन्द्रकिष्कका वष १३३६
- ४१-अक्षयज और विभीषण आदिका भीरामचन्द्रजीके पास आकर इन्द्रकिष्कके बंधक समाचार सुनाना प्रच्छन्न हुए भीरामके द्वारा अक्षयजको हृदयसे आकार उनकी प्रसंघ तथा सुषेवकाय अक्षयज आदिकी चिकित्सा १३४२
- ४२-राजपूतका शोक तथा सुपार्ष्णके उमसासे उलका सीता-वधसे निवृत्त होना १३४४
- ४३-भीरामकाय राक्षसेनाका छहार १३४८
- ४४-राक्षसियोंका विषय १३५१
- ४५-राजपूतका अपने मन्त्रियोंको बुझकर अनुभव विषयक अपना उल्हास प्रकट करना और उनके साथ रणभूमिमें आकर पराक्रम विलाना १३५३
- ४६-सुधीरकाय राक्षसेनाका छहार और विरुपाक्षक वष १३५७
- ४७-सुधीरके साथ महोदरका भोर युद्ध तथा वष १३५९
- ४८-अंगकके द्वारा महापार्ष्णक वष १३६२
- ४९-भीराम और राजपूत युद्ध १३६३

- १ -यम और रावणका युद्ध, रावणकी शक्तिसे
छत्रमणका मूर्च्छित होना तथा रावणका
युद्धसे मगना ११६६
- १ १-भीरमका विद्याप तथा हनुमान्कीकी क्षयी
हुई आर्यभिके सुपेयहाय क्रिये गये प्रयोगसे
छत्रमणका सचेत हो उठना ११७
- १ २-इन्द्रके मन्त्रे हुए रथपर बैठकर भीरमका
रावणके साथ युद्ध करना ११७४
- १ ३-भीरमका रावणको फटकारना और उनके
हाथ पापका क्रिये गये रावणको सारथिक
रणभूमिसे बाहर ले आना ११७८
- १ ४-नाबकका सारथिके फटकारना और सारथिक
अपने उत्तरसे रावणका संतुष्ट करके उसके
रथको रणभूमिमें पहुँचाना ११८१
- १ ५-अमल्ल मुनिका भीरमको विषयके लिये
'मास्त्रिपहृदय' के पाठकी सम्मति देना ११८२
- १ ६-रावणके रथको देख भीरमका मयछिके
छावधान करना, रावणकी पराजयके सूचक
उत्पत्तौ तथा रामकी विषय सूचित करनेवाले
छाम शकुन्तोच्च वर्णन ११८५
- १ ७-भीरम और रावणका पोर युद्ध ११८८
- १ ८-भीरमके द्वारा रावणका बध ११९२
- १ ९-विभीषणका विषय और भीरमका उन्हें
समझाकर रावणके मन्येदि-संस्कारके लिये
आदेश देना ११९४
- ११ -रावणकी विभोका विषय ११९६
- १११-मन्दोदरीका विषय तथा रावणके रावण
बाह-संस्कार ११९८
- ११२-विभीषणका यन्त्रामियेक और भीरजुनाकीकी
हनुमान्कीके द्वारा सीताके पाल संदेश
मेरना १४ ५
- ११३-हनुमान्कीकी सीताकीसे बातचीत करके
क्षीरमा और उनका संदेश भीरमको सुनाना १४ ७
- ११४-भीरमकी ब्रह्मसे विभीषणका सीताको उनके
समीप जाना और सीताका प्रियतमके सुख-
बन्धनका दर्शन करना १४११
- ११५-सीताके बरिबपर संदेश करके भीरमका उन्हें
प्रहस्य करनेसे इच्छा करना और अन्वय
जानेक क्षिप्य करना १४११
- ११६-सीताका भीरमको उपास्यमूर्त्त उत्तर देकर
अपने छतीत्वकी परीक्षा देनेके लिये अग्निमें
प्रवेश करना १४१५
- ११७-मगलान् भीरमके पाठ देवताओंका आगमन
तथा ब्रह्माद्वारा उनकी मन्त्रच्छात्र
प्रतिपादन एवं छापन १४१७
- ११८-मूर्त्तिमान् अग्निदेवका सीताको लेकर वितासे
प्रकट होना और भीरमको समर्पित करके
उनकी पवित्रताको प्रमाणित करना तथा
भीरमका सीताको स्वर्ग स्वीकार करना १४१९
- ११९-महादेवकीकी मगलसे भीरम और अमल्लका
विमानद्वारा आये हुए रावण दशरथको
प्रणाम करना और दशरथका दोनों पुत्रों तथा
सीताको आवाहनका संदेश दे इन्द्रछकको जाना १४२१
- १२ भीरमके अनुरोधसे इन्द्रका मरे हुए वाजपेयको
श्विदित करना देवताओंका प्रस्थान और
बानरसेनाका विग्राम १४२३
- १२१-भीरमका अयोध्या आनेके लिये उद्यत होना
और उनकी व्याघ्रसे विभीषणका पुष्पकविमान-
को मँगाना १४२५
- १२२-भीरमकी आशसे विभीषणद्वारा बानर्षका
विशेष उत्तर तथा सुमीष और विभीषण
सहित बानर्षके साथ लेकर भीरमका पुष्पक-
विमानद्वारा अयोध्याको प्रस्थान करना १४२७
- १२३-अयोध्याकी वात्रा करते समय भीरमका
सीताकीको मार्गके स्वागत बिलाना १४२९
- १२४-भीरमका मरुद्वार-आश्रमपर उतरकर महर्षिसे
सिखना और उनसे बर पाना १४३१
- १२५-हनुमान्कीका निपाहरण हुए तथा मरुद्वारकीको
भीरमके आगमनकी सूचना देना और प्रकल
हुए मरुद्वार उन्हें उपहार देनेकी योजना करना १४३४
- १२६-हनुमान्कीका मरुद्वारकी भीरम, अमल्ल और
सीताके वनवासस्थानकी चार वृत्तान्तोंको
सुनाना १४३७

१२७-असौधामें भीरामके स्वागतकी तैयारी, भस्त्रके
 साथ लक्ष्म भीरामकी अगपानीके किये
 नक्षत्रप्रथममें पहुँचना, भीरामका आगमन,
 मल आदिके साथ उनका मिश्रण तथा

पुष्पक विमानको कुबेरके पास भेजना १४४१
 १२८-मलका भीरामको राज्य छोड़ना, भीरामकी
 नगरमाथा राम्यामितेक, बानरोंकी निराह
 तथा प्रत्यक्षा माहात्म्य १४४५

चित्र सूची

(चित्रा)

- १-बन्ध-स्वरुपि मालिनि मगवान् भीरामस रथपर
 आरुढ़ होनेके क्रिये अनुराग कर
 रहे हैं १ ५१
 २-मद्योक्त-बनमें धृताकी अपनी सखी सरमासे
 कतधीत १११६
 ३-भीराम-सरमामकी गददुधीसे बात कीत ११८२

(पंकरणा)

- १-भीराम सुभीरामके सङ्कापर चढ़ाई करनेके क्रिये
 उत्सहित कर रहे हैं १ ५२
 २-आकाशमें स्थित हाकर त्रिभीराम उच्च स्वरसे
 अम्ना परिचय दे रहे हैं १ ८८
 ३-भीरामद्वारा समुद्रका शासन ११ ५

- ४-इनुमान्धीके कंधेपर अरुढ़ भीरामका राजकीके
 साथ युद्ध १२१५
 ५-राक्षसोंद्वारा साथ हुए कुम्भकर्षणके अंगनेका
 प्रयत्न १२१९
 ६-कुम्भकर्षणके
 ७-पर्वतका हाथपर किये हुए हनुमान्का
 प्रत्यागमन १२९१
 ८-मेघनाद-बध १३४
 ९-राज-बधपर बानरोंका अथ घोष १३९३
 १०-त्रिभीरामका राम्यामितेक १४ ६
 ११-विमान लेकर उपस्थित हुए त्रिभीरामसे
 भीराम बानरोंका उत्तर करनेका कह
 रहे हैं १४२७

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणकी विषय-सूची

(उत्तरकाण्डम्)

सर्ग	विषय	पृष्ठ-संख्या	सर्ग	विषय	पृष्ठ-संख्या
१-	भीरमके दरबारमें महर्षिबोका आगमन उनके साथ उनकी बातचीत तथा भीरमके प्रश्न	१४५३	१६-	नन्दीशरका रावणको शाप, मगवान् शहरद्वारा रावणको मान-मङ्गल तथा उनसे पत्रद्वारा नामक सहायकी प्राप्ति	१४९१
२-	महर्षि अनासपके द्वारा पुकस्तपके गुण और तपस्याको वर्णन तथा उनसे विभवा मुनीकी उत्पत्तिको कथन	१४५५	१७-	रावणसे शिरस्कृत महर्षिकन्या वैदवतीका उसे शाप देकर अग्निमें प्रवेश करना और दूधरे क्षममें सीताके रूपमें प्राप्ति काटना	१४९९
३-	विभवासे वैभवण (कुबेर) की उत्पत्ति, उनकी तपस्या बरमासि तथा ब्रह्ममें निवास	१४५८	१८-	रावणद्वारा मरुचक्षी पराक्रम तथा इन्द्र अग्नि देवताओंको मयूर अग्नि पक्षियोंको बरवान देना	१४९९
४-	राक्षस-बधको वर्णन—हेति, विपुलकेश और सुदृशकी उत्पत्ति	१४६	१९-	रावणके द्वारा अनारम्यका वध तथा उनके द्वारा उसे शापकी प्राप्ति	१५ १
५-	सुकेयके पुत्र मास्यवान्, सुमाती और मासीकी उत्पत्तिको वर्णन	१४६२	२-	नारदकी रावणको समझाना उनके कहनेसे रावणको मुद्रके सिधे यमलोकको जाना तथा नारदकी इस मुद्रके नियमोंमें विचार करना	१५ ३
६-	देवताओंको मगवान् शहरकी सहायसे राक्षसके वधके सिधे मगवान् विष्णुकी शरणमें जाना और उनसे अश्वत्थन पाकर छोटना, राक्षसोंको देवताओंपर आक्रमण और मगवान् विष्णुको उनकी शरणदाके सिधे भानु	१४६५	२१-	रावणका बमलोकर आक्रमण और उसके द्वारा मगराजके छेदिकोका छहार	१५ ५
७-	मगवान् विष्णुद्वारा राक्षसोंको छहार और पकवान	१४६९	२२-	समय और रावणका मुद्र, यमका रावणके वधके सिधे उठाये हुए काष्ठदण्डको जहाजीके कहनेसे छैटा सेना, विष्णुकी रावणको यमलोकसे प्रस्थान	१५ ८
८-	मास्यवान्का मुद्र और पराक्रम तथा सुमाती अग्नि सब राक्षसोंका रक्तक्षमें प्रवेश	१४७३	२३-	रावणके द्वारा निवात कवचोंसे मैत्री, काष्ठकेनीको वध तथा बधपुत्राकी पराक्रम	१५ ११
९-	रावण आदिका क्षम और उनका तपके सिधे गोडप-आमममें जाना	१४७५	२४-	रावणद्वारा अरुद्ध दुर्द देवता आदिकी कन्याओं और किमोंका विषाण एवं शाप रावणको रोटी दुर्द धारणकाको अश्वत्थन देना और उसे सारके साथ बन्धनरत्नमें देना	१५ १५
१०-	रावण अग्निकी तपस्या और बर-मासि	१४७८	२५-	पशोंद्वारा मेघनादकी सफुलता विभीषणको रावणको पर-की-दरलेके रूप बताना, कुम्भीनदी को भागवान् से मधुको साथ से रावणको देवलोकर आक्रमण करना	१५ १७
११-	रावणको संदेश सुनकर पिताकी आज्ञासे कुबेरका सहाय्य छोड़कर देवलोकर अज्ञ, ब्रह्ममें रावणको राग्नामिक तथा राक्षसोंको निवास	१४८१	२६-	रावणका रग्नापर बन्धनकार करना और नन्दूकरावणको भयंकर शाप देना	१५ २२
१२-	शर्यकका तथा रावण अग्नि तीनों भाइयोंका विवाह और मेघनादका क्षम	१४८४	२७-	सैन्यसहित रावणका इन्द्रकोपर आक्रमण, इन्द्रकी मगवान् विष्णुसे सहायताके सिधे प्राप्ति, मन्थिपमें रावण-वधकी प्रतिष्ठा करके विष्णुका इन्द्रको लोभना देवताओं और राक्षसोंका मुद्र तथा वसुके द्वारा सुमातीका वध	१५ २४
१३-	रावणद्वारा बनवास में घण्टागारमें कुम्भकर्ष का लेना रावणको अत्याचार, कुबेरका दूत भेजकर उसे समझाना तथा कुपित हुए रावण का उस दूतको मार डालना	१४८६			
१४-	मन्थिपोंसहित रावणको बधोपर आक्रमण और उनकी पराक्रम	१४८९			
१५-	सन्धिप तथा कुबेरको पराक्रम और रावणद्वारा पुष्पक विमानको अग्रहण	१४९			

- २८-मेघनाद और बभ्रुवर्षा युद्ध; पुष्पेन्द्रका बभ्रुवर्षा-
को अन्वय से खना; देवराज इन्द्रका युद्धभूमिमें
पराजय करने तथा मन्त्रगोष्ठ्याय राक्षसना-
का धार और इन्द्र तथा रावणका युद्ध १५२०
- २९-रावणका देवसेनाके बीचसे होकर निकलना;
देवताओंका उसे कैद करनेके लिये प्रयत्न;
मेघनादका मायाश्राव इन्द्रको बन्दी बनाना
तथा विन्धी हाकर सेनावहित गङ्गाको
सैटना १५३
- ३०-ब्रह्माक्षीका इन्द्रकिशोरों करान देकर इन्द्रको
उन्नीके लोभसे छुड़ाना और उनके पूर्ववृत्त
पातक्योंको याद दिखकर उनसे वैष्णव ब्रह्मका
अनुग्रह करनेके लिये कहना; उध यज्ञको पूज
करके इन्द्रका स्वर्गलोकमें जाना १५३३
- ३१-उत्पन्नका मारिच्यती पुरीमें जाना और वहाँके
राज अर्जुनको न पाकर मन्त्रिपौत्रहित उत्पन्न
विन्ध्यभिरिके समीप नर्मदामें नहाकर मगवान्
शिवकी स्मरणना करना १५३४
- ३२-अर्जुनकी युद्धभूमिमें मर्मदाके प्रवाहका अवरोध
हना रावणके पुत्रवपुहारका बह जाना; फिर
रावण आदि निघाचरोंका अर्जुनके साथ युद्ध
तथा अर्जुनका रावणको कैद करके अपने नगरमें
ले जाना १५३९
- ३३-पुस्तकवीरका रावणको अनुनकी कैदसे छुटकारा
दिखाना १५४४
- ३४-वासीके द्वारा रावणका परामर्श तथा रावणका
उन्हें अन्नाभिन्न बनाना १५५५
- ३५-रघुमान्दीकी उत्पत्ति दौघबाबन्धामें इनका
पूर्व राहु और देवराजवर आक्रमण, इन्द्रके
ब्रह्मसे इनकी मूर्त्तों बायुके रूपसे संसारके
मात्रियोंका कथ और उन्हें प्रकल्प करनेके लिये
व्याजभौंसहित ब्रह्माक्षीका उनके पास जाना १५४८
- ३६-ब्रह्मा आदि देवताओंका रघुमान्दीको कीर्तित
करके नाना प्रकारके बरदान देना और बायुका
उन्हें कैद अङ्गनाके पर जाना श्रुतियोंके रूपसे
रघुमान्दीको अपने बन्दी विष्णुदि, भीरामका
अपत्य आदि श्रुतियोंमें अपने यज्ञमें पचानेके
लिये प्रयास करके उन्हें विहा देना १५५२
- ३७-भीरामका लम्पटोंके लक्ष्य राजमाममें टटना १५५६
- ३८-भीरामके द्वारा राजा बनक मुपात्रिन्न प्रवर्द्धन
तथा अन्व नोदोंकी विचार १५५८
- ३९-राजभौंका भीरामके लिये भेंट देना और
भीरामका बह लक्ष्य लेकर अपने मित्रों; वालों;
रीठों और राक्षसोंको भेंट देना तथा बानर
आदिका बहों मुक्तपूर्वक रहना १५६०
- ४०-बानरों; रीठों और राक्षसोंकी विचार १५६३
- ४१-कुबेरके मेले हुए पुष्पक विमानका आनन्द
और भीरामसे पुष्पक एवं अनुग्रहित होकर
आह्वय हो जाना; भरतके द्वारा भीरामराज्यके
विद्यमान प्रमाका बर्णन १५६४
- ४२-अशोकनिकायमें भीराम और सीताका विहा;
गर्भिणी सीताका लोभन देखनेकी इच्छा प्रकट
करना और भीरामका इसके लिये स्वीकृति देना १५६५
- ४३-मद्रक पुरवाशियोंके मुक्तसे सीताके विषयमें
सुनी हुई अज्ञान चर्चासे भीरामका अवरगत
करना १५६७
- ४४-भीरामके दुःखानेसे धव भद्रयौंकर उनके पास आना १५६९
- ४५-भीरामका माहयोंके समस्त सर्वत्र पीठे हुए
लोकप्रवाहकी चर्चा करके सीताको वनमें छोड़
मानेके लिये लक्ष्मणको आदेश देना १५७०
- ४६-लक्ष्मणका सीताको रक्षण विठाकर उन्हें वनमें
छोड़नेके लिये से खना और गङ्गाक्षीके तटपर
पहुँचना १५७२
- ४७-लक्ष्मणका सीताक्षीको वनसे गङ्गाक्षीके तट पर
पहुँचाकर बड़े वृत्तसे उन्हें उनके ल्याये
खानेकी बात कहना १५७४
- ४८-सीताका दुःखपूर्वक वन; भीरामके लिये उनका
संदेश; लक्ष्मणका जाना और सीताका रणना १५७५
- ४९-मुनिकुमारोंसे छमाचार पाकर वास्वीकिशोर सीताके
पाठ आ सगँहें सान्त्वना देना और अज्ञानमें
सिद्धा से खना १५७७
- ५०-लक्ष्मण और मुमन्त्रकी बातचीत १५७८
- ५१-मार्गमें मुमन्त्रका दुःखालोक मुक्तसे सुनी हुई
मृगश्रुतिकी धारणी तथा करके तथा
भक्तिव्यमें होनेवाली कुछ बातें बयाकर सुनी
लक्ष्मणको शान्त करना १५८०
- ५२-अपत्याके राजमवनमें पहुँचकर लक्ष्मणका सुनी
भीरामसे मिलना और उन्हें आनन्दना देना १५८१
- ५३-भीरामका चर्चार्थी पुराणीरी उपेक्षामें राजा
पृथक्के मिलनेवाली धारणी कथा मुन्नाकर
लक्ष्मणसे देखमातक लिये आदेश देना १५८३

५४-यज्ञा यज्ञस्य एक सुन्दर गङ्गा कन्याकर अपने पुत्रको राज्य दे स्वयं उसमें प्रवेश करके शाप भोगना १५८५

५५-यज्ञ निमित्त और वशिष्ठका एक वृक्षके शापसे देहत्याग १५८६

५६-अज्ञात्रीके करनेसे वशिष्ठका बरपके बीर्यमें आघेह, बरपका उर्वशीके धर्मपर एक कुम्भमें अपने बीर्यका आधान तथा मित्रके शापसे उर्वशीका भूठकने राज्य पुत्रत्याके पाठ रखकर पुत्र उत्पन्न करना १५८७

५७-वशिष्ठका नूतन शरीर धारण और निमित्तक श्रुतियोंके मन्त्रोंमें निवास १५८९

५८-कन्यातिके द्वाकाचार्यका शाप १५९१

५९-कन्यातिके अपने पुत्र पूर्वको अपना बुढ़ापे देकर बरमेमें उलझ यौवन सेना और भोगोंसे वृत्त होकर पुनः शीर्षकाके कर उठे उलझ यौवन और होना पूर्वका अपने विवाहकी गौरीपर अभिषेक तथा बन्धुको शाप १५९२

प्रसिद्ध उर्ग १-भीरमके द्वारा कर्वाची कुचेका आगमन और भीरमका उठे बरवारमें जानेका आदेश १५९४

२-कुचके प्रति भीरमका स्वाह, उलझी हन्काके अनुहार उठे मरनेवाले ब्राह्मणको मठापीछ बना देना और कुचेका मठापीछ होनेका शोच बखान १५९६

३-भीरमके दरबारमें क्यमन आदि श्रुतियोंका द्वाभ्रगमन, भीरमके हान्य उनका उत्कार करके उनके आश्रय कर्वाची पूर्व करनेकी प्रशिक्ष तथा श्रुतियोंद्वारा उनकी प्रशंसा १५९९

४-श्रुतियोंका मनुको प्राप्त हुए बर तथा कन्या मुरके कष्ट और अत्याचारका कर्न करके उठने प्राप्त होनेवाले मयका वृत्त करनेके किये भीरुमायवीसे प्रार्थना करना १६

५-भीरमका श्रुतियोंसे कन्यामुरक आहार निहारके विषयमें पूछना और शत्रुपत्नी कथि कनकर उर्ग कथि कथके कर्वाची निमुक्त करना १६ २

६-भीरमद्वारा शत्रुपत्नीका राज्यमिनेक तथा कर्ग कन्यामुरके हन्मी बननेके उपायका प्रशिक्षण १६ ३

७४-भीरमकी आज्ञाके अनुसार शत्रुपत्नी केनको अगो मेरुकर एक माणके पश्चात् स्वयं भी प्रत्यान करना १६

७५-महर्षि वास्वीकिंकर शत्रुपत्नीके सुदसपुत्र कन्यापयदकी कथा सुनाना १६

७६-सीताके दो पुत्रोंका जन्म, वास्वीकिंद्वारा उनकी रक्षाकी व्यवस्था और इस समाचारसे प्रसन्न हुए शत्रुपत्नी बहोसे प्रत्यान करके मनुना-पटपर पहुँचना १६

७७-कन्यतन मुनिका शत्रुपत्नीके कन्यामुरके शब्दी शक्तिका परिचय देते हुए राज्य मानवालाके बचका प्रसंग सुनाना १६

७८-कन्यामुरका आहारके किये निकलना शत्रु पत्नी मधुपुरीके द्वारा बट बना और कौटे हुए कन्यामुरके साथ उनकी रोषमयी बातचीत १६१

७९-शत्रुपत्नी और कन्यामुरका पुत्र तथा कन्यका बच १६१

८०-देवदम्पति बरवान पा शत्रुपत्नी मधुपुरीके बसाकर बरबैं बर्बमें बहोसे भीरमके पास जानेका विचार करना १६१

८१-शत्रुपत्नी बोले-से शैतियोंके साथ कन्यामुरके प्रत्यान मार्गमें वास्वीकिंके आश्रममें राम-परितका वान सुनकर उम कन्यका आश्रय कथित होना १६१

८२-वास्वीकिंकेसे विवाह के शत्रुपत्नीका आश्रयमें जाकर भीरम आदिसे मिलना और छठ दिनोंतक बहो रखकर पुनः मधुपुरीके प्रत्यान करना १६१८

८३-एक ब्राह्मणका अपने मरे हुए बाळकको राज्य-द्वारा कन्या तथा राजाको ही दोषी बदाकर विहाय कन्य १६२

८४-नारदकीका भीरमसे एक तपस्वी द्वाके अर्वाचरणको ब्राह्मणबाळककी मृत्युमें कारण बताना १६२१

८५-भीरमका पुष्यक विमानद्वारा अपने राजकी लम्बी दिशाओंमें धूमकर कुम्भका फटा कन्या, किंदु उर्ग कन्य ही देलाकर दक्षिण दिशामें एक द्वा कन्यकी पाठ पहुँचना १६२१

७६-भीरमके द्वारा धाम्पुत्रक वध, देवताओंद्वारा उनकी प्रशंसा आगत्यभयपर मर्षि आगत्यके द्वारा उनका छन्द और उनके शिष्ये आभूषणदान १६२४

७७-मर्षि आगत्यका एक स्वर्गीय पुत्रपत्ने शय-मदनका प्रसंग सुनाना १६२७

७८-राज्य श्वेतका आगत्यकीको अपने शिष्ये पृथित आहारकी मासिक कारण बतात हुए मन्त्रकीके साथ हुई अन्नी बाताको उपस्थित करना और उन्हें दिव्य आभूषणका दान दे मूक-वासके कष्टसे मुक्त होना -- १६२९

७९-इत्यकुपुत्र राज्य दण्डका राज्य १६३१

८-राज्य दण्डका आगत्य-कन्याके साथ बन्धुत्व १६३२

८१-पुत्रके शापसे घरिबार राज्य दण्ड और उनके राज्यका नाश १६३३

८२-भीरमका आगत्य अश्वमेधे अयोध्यापुरीको शोचता १६३४

८३-मरुतके कृतेसे भीरमका राज्यस्य बध करने के विचारसे निवृत्त होना १६३६

८४-अश्वमेधक अभिषेक परक प्रस्ताव करते हुए इन्द्र और वृषासुरकी कथा सुनाना, वृषासुर की तपस्या और इन्द्रका मनावान् विष्णुसे उनके वधके शिष्ये अनुरोध १६३७

८५-मन्त्रात् विष्णुके तेजका इन्द्र और ब्रह्म आदिमें प्रवेश इन्द्रके बन्धे वृषासुरका वध तथा महाहरयासका इन्द्रका अभ्यकारमय प्रवेशमें जाना १६३८

८६-इन्द्रके विना अग्नमें अघान्ति तथा अभिषेक अशुभानसे इन्द्रका महाहत्यासे मुक्त होना १६४

८७-भीरमका हरमवधके राज्य इच्छा की कथा सुनाना-इसको एक-एक माच्छक झील और पुत्रपत्नी प्राप्ति १६४१

८८-इना और सुषमा एक दूतकेसे देवता तथा वृषासुर उन स्य शिष्यके किपुत्रकी माम देकर परानर हनेसे शिष्ये आदेश देना १६४२

८९-सुष और इलारा अमाग्न तथा पुत्रपत्नी प्राप्ति १६४५

९-अभयपर अशुभानम इलारा पुत्रपत्नी प्राप्ति १६४६

९१-भीरमका अशुभान अभयपर पत्नी देवरी १६४८

२-भीरमका अभयपर पत्नी दान मानरी विष्णु १६४९

९३-भीरमका पत्नी मर्षि पत्नीविना आगन्त और उनका शम्भुपत्नीके विषय सुना और राज्य भण्ड १६५१

९४-अव-कुचद्वारा रामायणकाम्यका गान तथा भीरमका उसे मरी समामे सुनना १६५२

९५-भीरमका शीतसे उनकी दृष्टता प्रमाप्ति करनेके शिष्ये शयय कृतनेका विचार १६५४

९६-मर्षि वास्वीकिशारा शीतकी दृष्टताका समर्थन १६५५

९७-शीतका शयय-ग्रहण और रक्ततलमें प्रवेश १६५७

९८-शीतके शिष्ये भीरमका सेव, महाश्रीका उन्हें समसाना और उत्तरकाग्रक शेष अंश सुननेके शिष्ये प्रेरित करना १६५८

९९-शीतके रक्ततल-प्रवेशके पश्चात् भीरमकी शीतकन्या रामपत्नीकी स्थिति तथा माताओंके परलोकागमन आदिदिश वर्णन १६६०

१-कन्यपदेशसे मर्षि गार्ग्यका मंत्र लेकर जाना और उनका संश्लेषके अनुहार भीरमकी आशयसे कुमारोंद्वारा मरुतका गर्भव्य शेषपर आक्रमण करनेके शिष्ये प्रस्ताव १६६१

१-१-मरुतका गर्भव्य और उनका शंकर करने बहो दो सुन्दर नगर बलाकर अपने पत्नी पुत्रोंको शोभता और फिर अयोध्याको शीत श्या १६६३

१-२-भीरमकी आशयसे मरुत और अश्वमेधका कुमार अह्वर और पन्त्रकेपुत्री कन्यपदेशके विभिन्न शम्भोर नियुक्ति १६६४

१-३-भीरमके यहाँ काकका आगमन और एक कठोर शर्तके साथ उनका शार्तिक शिष्ये उषत होना १६६५

१-४-कासका भीरमकाश्रीकी महाश्रीका संश्लेष सुनाना और भीरमका उसे स्वीकार करना १६६७

१-५-दुःशासके शापके मयसे सखमका नियम मद्र करके भीरमकापाठ इनके आगमनका शम्भुचार देनेके शिष्ये जाना भीरमका दुःशास मुनिका मन्त्र कृतना और उनके पथे जानेपर अश्वमेध शिष्ये चिन्तित होना १६६८

१-६-भीरमका श्याम शम्भेर सखमका शरीर शम्भु-गमन १६६९

१-७-पण्डितक कर्तेसे भीरमका पुर-निर्वाह अथन शयम म जनेका विचार तथा वृषा और श्वेत शम्भुनिर्वाह करना १६७०

१-८-भीरमकाश्रीका मर्षि मुनि आदि वनेसे तथा सेवके साथ शम्भुपत्नी कन्या शिष्ये शिष्ये निर्वाह इत्यम् शम्भु-निर्वाह शिष्ये शिष्ये १६७२

१ ९-परमपाम आनेके छिन्ने निकसे हुए भीरामक साथ लमका मनोभाषासिद्धि प्रस्तान	१६७४	उप लम भाये हुए लम छमोंको लन्खनक छेककी प्राप्ति	१६७५
१ १-माशुवोचहित भीरामक विष्णुस्वरूपमें प्रवेश		१ १-उमगवप कामक उपसंसार और इसकी महिमा	१६७८

चित्र-सूची

(तिरगा)

१-मगवान् विष्णुके द्वारा माकीका वच	१४५३
२-मानकीकी वनमें छोड़कर छोटे हुए छममकी भीरामसे भेंट	१५८२

(पकरगा)

१-तपस्वि-कन्या वेरकटीके द्वारा एलनकी मर्लना एवं अग्निप्रवेशकी तैयारी	१४९८
२-एलनद्वारा सुन्दरी कन्याओंका अग्रहरण	१५१५

३-विभिन्न विद्याओंसे अपने हुए अग्नि-मुनियोंद्वारा मगवान् भीष्मसेयुक्त अग्निस्थान	१५५३
४-मानकीकी वनमें छोड़कर छममप छोटे रहे हैं	१५७३
५-छत्र तपस्वी दाम्बूकसे भीरामकी बहालीत	१६२४
६-एलन इसका पत्रपुत्र हुएके छय छवाव	१६४५
७-निर्वाहिता भीष्मकीकी मृतकप्रवेशके छिन्ने तैयारी	१६५८
८-मगवान् भीरामकी महायात्रा	१६७५

1

वेद बड़ा किया और अपनी दोनों मुखाओं तथा सर्वोत्त
उप पर्वतको दबाया ॥ ११ ॥

स बबालाबलबालाशु मुहूर्त कपिपीडिता ।
तदुष्णां पुष्पिताप्रार्णां सर्व्यं पुष्पमशातपत् ॥ १२ ॥

कपिवर हनुमान्कीके हाथ दबाये जानेपर दुर्बल ही वह
फलत औप ठठा और हो बड़ीतक डगमगाता रहा । उसके
ऊपर जो कुछ उगे थे उनकी आँसुओंके अमभाग फूँसे
छरे हुए थे; किन्तु उस पर्वतके दिग्गजसे उनके ने छरे
फूक लड़ गये ॥ १२ ॥

तेन पादपमुक्तेन पुष्पीषेण सुगन्धिना ।
सर्वथाः सङ्घातः शैलो वभी पुष्पमद्यो यथा ॥ १३ ॥

बूझसे लड़ी हुई उस सुगन्धित पुष्पराशिके हाथ सब
ओरसे आच्छादित हुआ वह पर्वत देठा बान पड़ता था;
मानो वह फूँसे ही बना हुआ हो ॥ १३ ॥

तेन शोचमर्षीयेण पीडयमानः स पर्वतः ।
सखिख सम्प्रमुखाय मयमत्त इव क्षिप ॥ १४ ॥

महापराक्रमी हनुमान्कीके हाथ दबाया जाता हुआ
महेन्द्रपर्वत बच्के सोत बहाने लगा, मानो ओरें मरमत्त
गबाराय अपने कुम्भलाभसे मरही पारा बहा रहा हो ॥ १४ ॥

पीडयमानस्तु यस्मिन्ना महेन्द्रस्तेन पर्वतः ।
पीतीर्षिवैर्षयामास काञ्चनाञ्जनरावतीः ॥ १५ ॥

बच्चान् पवनकुमारके मारसे दबा हुआ महेन्द्रगिरि
मुनरै, बराहके और आके रंगके बच्चस्येण प्रवाहित
करने लगा ॥ १५ ॥

मुमोक्ष च शिखाः शैलो विशालाः समनाधिष्ठाः ।
मध्यमेनार्चिणा जुषो धूमरावीरिवानलः ॥ १६ ॥

इतना ही नहीं जैसे मध्यम आत्मसं पुक अग्नि
लग्नतार प्रभों छोड़ रही हो उठी प्रकार वह पर्वत मैनसि-
वहित बड़ी बड़ी शिखरें मिताने लगा ॥ १६ ॥

हरिजा पीडयमानेन पीडयमानानि सर्वतः ।
गुहाविद्यानि सस्वानि विनेतुर्विकृतैः स्वरैः ॥ १७ ॥

हनुमान्कीके उस पर्वत-पीडनसे पीडित होकर बरहके
लमका बीह गुफाओंमें सुत गये और बुरी तरहसे
विस्ताने लगे ॥ १७ ॥

स महान् सखसनात् शैलपीडानिमित्तज्ञा ।
पृथिवीं पूरयामास दिग्भ्योपयतानि च ॥ १८ ॥

इत प्रकार पर्वतको दबानेके कारण उलपड़ हुआ वह
शैल-पूराभाषा मरान् काकारस पूष्पी उपवन और
पर्वत शिखारमें भर गया ॥ १८ ॥

शितोभिः प्रभुभिर्भागा व्यक्तस्वस्तिककक्षस्यै ।
वमन्तः पावकं घोरं द्रवशुवशासैः शिख्यः ॥ १ ॥

किन्तु स्वस्तिक विह स्पष्ट दिखायी दे रहे थे;
लूक फर्से विवकी मयानक भाग उगलते हुए वे
सर्व उत पर्वतकी शिखरोंको अपने होतोंसे बैठने लगे ।
तास्तवा सविपैर्दृष्टाः कुपितैस्तेमहाशिलाः ।
अम्वलुः पायकोर्षिता विभितुब्ध सहस्रधा ॥ २ ॥

ओपसे मरे हुए उन विपैके सौंसेके आदनेपर वे
बड़ी शिखरें इत प्रकार उक ठठीं, मानो उनमें अग्न क
हो । उस समय उन लवके लखों टुकड़े हो गये ॥ २ ॥

पानि त्वीपघञ्जामानि तस्मिन्नातानि पर्वतैः ।
विपयनात्पपि नागालां लोकोक्तुः शामिनुं विपयम् ॥ २ ॥
उस फलतपर जो बहुत-सी भोजधियों लगी हुई
विपयो नह करनेबाधी होनेपर भी उन नगोंके नि
घान्त न कर लकीं ॥ २१ ॥

भिद्यतेऽयं गिरिर्जैरिति मत्वा तपस्विनाः ।
बस्ता विद्याधरासासादुत्पेतुः स्त्रीगणैः सह ॥ २ ॥

उस समय बहों रहनेवाले लपसी और विद्या
समता कि इस पर्वतका मृतभेग तोड़ रहे हैं;
ममभीत होकर वे अपनी स्त्रियोंके साथ बहते लपर उ
अन्तरिक्षमें लड़े गये ॥ २२ ॥

पानमूमिगतं हित्वा ईममासवभाजनम् ।
पाञ्चानि च महाहौजि करकाञ्च हिरण्यमान् ॥ २ ॥
लेखानुशाबच्चान् भक्षयान् मासानि विविधानि च
आपमाधि च धर्माणि चङ्गाञ्च कनकसकन् ॥ ३ ॥
कृतकण्ठगुण्याः शरीरा रक्तमाहयानुलेपयाः ।
रक्तास्ताः पुष्करस्ताञ्च गगन प्रतिपेक्षिरे ॥ ४ ॥

मधुपानके खानमें रहनेसे हुए सुकर्षमम आत्म-
बहुमूल्य वर्तन लोनेके कक्ष, मौलि मौलिके मूल्य
बन्दी, माना प्रकारके फलके गूदे, देवोंकी लाकड़ी
हुई बाँसे और सुवर्णवहित मूडनाकी लकड़ारें छोड़कर क
गात्र बारण किये आठ रंगके फूक और अनुलेपन (पल
कणामे प्रफुल्ल कमकके लच्छ सुन्दर एवं आठ देवक
मलवाले निपावरणय मवमीतसे होकर आक
लड़े गये ॥ २३-२५ ॥

हान्दुपुकेपूरपरिहायधराः स्त्रियाः ।
यिस्त्रियाः सस्त्रियास्तस्युराकाशोरमणैः सह ॥ २ ॥
उनकी स्त्रियों लममें हार वैरीमें मृदुर, सुबा
बाबुर्द और कब्रार्योंमें बंगल बारण किये आका
१ लोके कबोमें विद्ययी हैदेकनी बीक दे
सखिख करने ६ ।

अपने पतियोंके साथ मन्द-मन्द मुस्कृष्टी हुई खचित-सी लड़ी हो गयी ॥ २६ ॥

दर्शपत्तो महाविद्यां विद्याधरमहर्षयः ।
सहिवास्तस्युपकाशो वीक्षांचक्रुः पवतम् ॥ २७ ॥

विद्याधर और महर्षि अपनी महाविद्या (आकाशमें निपटार लड़े होनेकी वृत्ति) का परिचय देते हुए अन्तरिक्षमें एक साथ लड़े हो गये और उठ पर्वतकी ओर देखने लगे ॥ २७ ॥

सुधुबुध तदा दाम्भस्युपीनां भावितारमनाम् ।
चारणानां च सिद्धानां स्थितानां विमलेऽम्बरे ॥ २८ ॥

उन्होंने उठ समयनिर्मल आकाशमें लड़े हुए मन्त्रिणां (पवित्र मन्त्रःकरणवाले) महर्षियों, चारणों और ठिकोंकी वे शक्तें मुनीं—॥ २८ ॥

एष पर्वतसकलशो हनुमान् मादतारमजः ।
शिवीपति महायोगः समुद्रं वदण्यस्यम् ॥ २९ ॥

'महा । ये पर्वतके समान विद्यालक्ष्मण महान् वेगशाही पनपुत्र हनुमान्की वरुणात्म समुद्रको पार करना चाहते हैं ॥ २९ ॥

रामार्थान्तरार्थं च सिद्धीपन् कर्म बुष्करम् ।
समुद्रस्य परं पारं बुष्प्रार्थं प्राप्नुमिच्छति ॥ ३० ॥

'भार्यमन्त्रकी और दानरोंके कर्मकी शिष्टिके सिधे बुष्कर कर्म करनेकी इच्छा रखनेवाले ये पनकुम्भर समुद्रके वृद्ध तटपर पहुँचना चाहते हैं, जहाँ जाना अत्यन्त कठिन है ॥ ३० ॥

इति विद्याधरा धाद्यः भुक्त्या तेषां तपस्विनाम् ।
तममोषं दृष्ट्वा पर्वते दानरपभम् ॥ ३१ ॥

इस प्रकार विद्याधरोंने उन तपस्वी महात्माओंकी करी दूर व शक्तें बुनकर पर्वतके ऊपर अत्रुचित बक्राशाही बनानेमेंमजि हनुमान्कीको देखा ॥ ३१ ॥

उधुषे च स रोमाणि चकम्पे खानलोपमः ।
स्नाद् च महानाद् सुमहानिय तोषय् ॥ ३२ ॥

उठ समय हनुमान्की अग्निके समान खान पदते थे । उन्होंने कम्पे शरीरको हिलाया और रोएँ साँड़े तथा महान् स्नाद् समान पदें बोर-भारते गरुड की ॥ ३२ ॥

बानुपूष्या च वृत्तं तद्व्याहृत् रोमभिस्त्रितम् ।
व्यतिष्यन् विधिज्ञप पक्षिराज इषोरगम् ॥ ३३ ॥

हनुमान्की भव ऊपरको उठभना ही चाहते थे । उन्होंने क्रमशः स्नेहकार मुड़ी तथा ऐन्द्रबलियोंमें मी हुई कम्पी ईशको उधी प्रकार आकाशमें वँचा श्रेष्ठे पवित्राज गवड लको वैचते हैं ॥ ३३ ॥

तस्य काष्ठसूमाविद्यमतिपेगस्य पृष्ठता ।

वृद्धो गदधेनेव द्वियमाणो महोरगः ॥ ३४ ॥

आयन्त वेगशाही हनुमान्कीके पीछे आकाशमें पैकी दूर उनकी कुछ-कुछ मुड़ी दूर पूँठ गरुडके डाय के ष्ये बाते हुए महान् उनके समान दिलायी देती थी ॥ ३४ ॥

याद् सस्तम्भयामास महापरिचसनिधौ ।
आससाद् कपिः कटव्या चरणौ ससुकोच च ॥ ३५ ॥

उन्होंने अपनी विशाल परिपके सम्यन मुक्कओंको पर्वतपर जमाया । फिर ऊपरके लव अङ्गोंको इव तरह ठिकोंके किया कि वे कटिकी धीममें ही भा गये; साथ ही उन्होंने दोनों पैरोंको मी समेट किया ॥ ३५ ॥

सहस्य च भुजौ धीमास्तथैव च शिरोधराम् ।
तेजः सस्य तथा धीर्यमाधियेश स धीर्यवान् ॥ ३६ ॥

तपभात् शैक्ली और परकम्पी हनुमान्कीने अपनी दोनों भुजाओं और गदनको मी शिक्रेड किया । इस समय उनमें तेज बल और परकम्—तन्मिष आवेश हुआ ॥ ३६ ॥

मार्गमाळोकयन् दृष्टवृष्ट्यर्पिहितेक्षणः ।
रुदोध हृदये प्राणानाकाशमवलोकयन् ॥ ३७ ॥

उन्होंने अपन लडे मार्गपर इष्टि शीङ्गनेके सिधे नेत्रोंको ऊपर उठाया और आकाशकी ओर देखते हुए प्राणोंको हृदयमें देका ॥ ३७ ॥

पञ्चर्षा हृदमपस्थानं कृत्वा स कपिबुष्करः ।
निकुप्स्य कर्षां हनुमानुपतिष्यन् महापत्नः ॥ ३८ ॥

यामरान् दानरक्षेष्ट इव पञ्चममयीषु ।
इव प्रक्षर ऊपरको छर्छाँग मारनेकी तैवारी करते हुए क्विभेष्ट महाकम्पी हनुमान्ने अपने पैरोंको अग्री लट्ट बनाया और कानोंको शिक्रेडकर उन बानरशिष्टमें अपने बानरोंके इव प्रक्षर क्सा—॥ ३८ ॥

यथा राघवनिर्मुक्तः दारः श्वस्तमविक्रमः ॥ ३९ ॥
गच्छेत् तत्रद् गमिष्यामि लद्वां राघवपालिष्ठाम् ।

जैसे भीरुमन्त्रकीका छोटा हुआ बाग बासुबेगने बल्ल्या है उसी प्रकार मैं राघवका पाकिष्ठ लद्वापुरीमें जाऊँगा ॥ ३९ ॥

नहिं द्रक्ष्यामि यदि तां लद्वापां जनकममजाम् ॥ ४० ॥
अननैव हि यगल गमिष्यामि सुतलपम् ।

यदि लद्वामें जनकनिदनी लोत्राको नहीं देखूँ तो ही वेगमें मैं स्वतन्त्रमें बग जाऊँगा ॥ ४० ॥

यदि या त्रिदिषे सर्वतां न द्रक्ष्यामि कृत्तधमः ॥ ४१ ॥
यद्यथा राक्षसपञ्जानमामपिष्यामि राघवम् ।

इस प्रकार परिभ्रम करनेपर यदि मुक्त स्वर्गमें मी लोत्राका बर्तन नहीं देखूँ तो राघवपत्र वपनको बाँधकर जाऊँगा ॥ ४१ ॥

॥ ४१ ॥



भगवान्-विन्मरु बाण मारुतिका जयपाप

॥ श्रीवीरारामचन्द्राय नमः ॥

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणम्

सुन्दरकाण्डम्

प्रथम सर्ग

श्रीमान् नेहरूशर माई दुर्लभजी द्वारा बन
सुपूत्र ररिमकान्त के शुभ विवाह पर भेंट ।

इनुमान्जीके द्वारा समुद्रका लङ्घन, मैनाकक द्वारा उनका स्वागत, सुरसापर उनकी विजय तथा सिंहिकाका वध करके उनका समुद्रके उस पार पहुँचकर लङ्काकी शोभा देखना

उतो पवणनीठायाः सीतायाः क्षत्रकर्षणा ।

इयेय पद्मम्भेषुं चारणाञ्चरिते पथि ॥ १ ॥

उत्तरन्तर शत्रुभोंका संहार करनेवाले इनुमान्जीने पवणद्वारा ही गयी थीताके निवासस्थानका पता लगानेके लिये उक्त माकधामगच्छि जानेका विचार किया, किलपर पतरक (देवव्यतिक्रमोप) विचारा करते हैं ॥ १ ॥

सुन्दर निष्प्रतिद्वन्द्वं विकीपय् कर्म वामराः ।

समुद्रप्रशिरोग्नीषो गवा पतिरिवाचभौ ॥ २ ॥

कबिबर इनुमान्जी देला कर्म करना चाहते थे जो वृकोके लिये सुन्दर था तथा उक्त कार्यमें उन्हें किसी औरकी सहायता भी नहीं प्राप्त थी। उन्होंने मस्तक और शीशा उँची थी। उक्त समय वे इन्द्र पुत्र सोंके समान मण्डित होने लगे ॥ २ ॥

अथ वैशूयवर्णेषु शाश्वलेषु महाशलाः ।

धीराः सखिष्ठकल्पेषु विचखारा यथासुखम् ॥ ३ ॥

किर भीर स्वभाववाले वे महाबली पवनकुमार वैशूयमणि (नीलम्) और समुद्रके कच्छी मंथि ही ही पात्पर सुखपूर्वक विचरने लगे ॥ ३ ॥

द्विजान् विधासयन् धीमानुत्सा पादपात्र हरम् ।

शूर्पाङ्ग सुबहुम् निजम् प्रवृत्त इव केसरी ॥ ४ ॥

उक्त समय बुद्धिमान् इनुमान्जी पक्षियोंको प्राप्त देते इवको बधःसखके आघातने बघघापी करते तथा बहुत-से मृगो (वन वन्दुओं) को कुचकते हुए पराक्रममें बड़े-बड़े निरके समान शोभा पा रहे थे ॥ ४ ॥

भीष्टमोहितमाङ्गिष्ठपद्मवर्णैः सित्तिसितैः ।

कभाषसिद्धैर्विमलैधातुभिः समल्लङ्घितम् ॥ ५ ॥

उक्त पर्वतका अं तल्लयदेव था बर पराहोमें स्वयम्बते ही उत्पन्न होनेवाली नीली कल, मशैठ और कमलके-से रंगको देखते तथा एवाम बर्नशकी निर्मल पात्रुओंसे अच्छी तरह कर्तव्य था ॥ ५ ॥

कामरूपिभिराविष्टमभीक्ष्ण सपरिच्छदैः ।

यक्षकिंनरगन्धर्वैर्वैवकल्पे सपन्नगैः ॥ ६ ॥

उत्तर देवोपम बह किन्नर, गन्धर्व और नाग को इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले ये निरन्तर परिवारकहित निवास करते थे ॥ ६ ॥

स तस्य गिरिवर्षस्य तल्ले नागवरायुते ।

तिष्ठन् कपिवरस्तत्र द्वये नाग इयायभी ॥ ७ ॥

बड़े-बड़े नागसोंके मने हुए उक्त पक्षके समस्त प्रदेशमें लड़े हुए कबिबर इनुमान्जी वहाँ बकधायमें स्थित हुए विधासकाय हाथीके समान खन पड़ते थे ॥ ७ ॥

स सूर्याय महेश्वराय पयताय स्ययम्मुये ।

भूतेभ्यश्चाञ्जलिं कृत्वा खकार गमने मतिम् ॥ ८ ॥

उन्होंने सूर्य, इन्द्र पवन, ब्रह्मा और भूतो (देवयोनि-विक्रमो) को भी हाथ जोड़कर उक्त पार जानेका विचार किया ॥ ८ ॥

अञ्जलिं प्राङ्मुञ्च कुर्षन् पवनापारमयोन्ने ।

ततो हि वन्दुषे गन्तुं दक्षिणो वक्षिणादिशम् ॥ ९ ॥

किर पूर्वामिच्छन् शोबर अपने किञ्च पवनदेवको प्रणाम किया। तत्पश्चात् प्राङ्मुञ्च इनुमान्जी दक्षिण दिशामें जानेके लिये बड़ेने क्वा (अपने शरीरको बढ़ाने लगे) ॥ ९ ॥

सूर्याग्रवदरैरुद्यः शूयन वृत्तनिःशयः ।

पशुषु रामवृद्धवर्षे समुद्र इय पयसु ॥ १० ॥

बड़े बड़े बानरोंने देला जैसे पूर्वमान् दिन समुद्रमें बहार माने लगता है उन्ही प्रकार समुद्र-समुद्रके लिये इदुनिक्षय करनेवाले इनुमान्जी भीरामजी काप-तिद्धिके लिये बड़ेने लगे ॥ १० ॥

निष्प्रमाप्सरारीरः सैहिल्लद्विपुरजयम् ।

पादुभ्यां पीडयामास अरवाभ्यां च पयतम् ॥ ११ ॥

समुद्रको नोपनेकी इच्छाम् उन्होंने अपने शरीरको

देह बढ़ा लिंग और अपनी दोनों मुखाओं तथा चरणोंसे
उठ पर्यंतको बबला ॥ ११ ॥

स चचाळाच्छायाशु सुहृत् कपिवीरितः ।

तरुणा पुष्पितामार्णा सर्वे पुष्पमशातयत् ॥ १२ ॥

कपिबन्धुमान्शीके द्वारा दबाये जानेपर प्ररत ही वह
पर्यंत झोंप उठा और दो पक्षीतक बगमगाया रहा । उसके
ऊपर जो वृक्ष बने थे उनकी शक्तिशैले मप्रमाण फूलोंसे
भरे हुए थे । किन्तु उठ पर्यंतके दिङ्मनेसे उनके वे धारे
फूल गड़ गये ॥ १२ ॥

तेन पावपमुक्तेन पुष्पीयेण सुगन्धिमा ।

सर्वताः सङ्घता शैले बभौ पुष्पमयो यथा ॥ १३ ॥

इससे सजी हुई उस सुगन्धित पुष्पशुद्धिके द्वारा उस
भोसे व्याप्यतादित हुआ वह पर्यंत ऐसा धान पदार्थ था,
मानो वह फूलोंका ही बना हुआ हो ॥ १३ ॥

तेन शोचमधीर्येण पीडयमानः स पर्यतः ।

सच्छिळ सम्प्रसृज्याद्य मदमत्त इव शिपः ॥ १४ ॥

महापराक्रमी हुमान्शीके द्वारा दबाया जाता हुआ
महेन्द्रपर्यंत बड़के झोठ बहाने लगा, मानो कोई मदमत्त
गजाव अपने कुम्भसम्बन्धे मदकी धारा बहा रहा हो ॥ १४ ॥

पीडयमानस्तु बह्विणा महेन्द्रस्तेन पर्यतः ।

रीतीर्निर्वैर्तपामास काञ्चनाञ्जलव्यसतीः ॥ १५ ॥

बलवान् पवनकुमारके मारसे बना हुआ महेन्द्रगिरि
घुनहरे, बगले और काके रंगके कम्बोजे प्रबाहित
करने छप ॥ १५ ॥

मुमोक्ष च शिलाः शैली विद्याकाः समताधिष्ठतः ।

मप्पमेतार्थिया सुषो धूमराञ्जीरिबालकाः ॥ १६ ॥

इतना ही नहीं जैसे मध्यम लक्ष्मणत पुत्र अग्नि
काकार हुआं छोड़ रही हो उसी प्रकार वह पर्यंत नैनसिक्-
तहित बड़ी-बड़ी शिखरों गिराने लगा ॥ १६ ॥

हरिया पीडयमानेन पीडयमानसि सवताः ।

शुभावियानि सत्त्वानि विनेतुर्बिहृतैः स्वरेः ॥ १७ ॥

हुमान्शीके उठ पर्यंत-पीडनसे पीड़ित होकर बरोंके
कमल बीच गुच्छरोंमें वृक्ष गये और तुरी लज्जे
बिस्काते गये ॥ १७ ॥

स महान् खरबलनाद् शैलपीडयतिमिच्छतः ।

पृथिवीं पूरयामास दिशाभ्योपबन्तानि च ॥ १८ ॥

इस प्रकार पर्यंतको बहानेके कारण उत्पन्न हुआ वह
कीक-कण्डुभ्रंश महान् कोकरुष्प पृथ्वी उपवन और
लम्पूर दिशाभ्यासे मर गया ॥ १८ ॥

शिरोगिः पृथुभिर्नागा व्यक्तम्यस्तिकलस्यपैः ।

वमस्ता पावक धोर ददशुर्दानैः शिलाः ॥ १९ ॥

किनमें स्वस्तिक विहृ स्पष्ट शिलायी दे रहे थे, उन
एक कणोंसे गिरकी भवानक भाग उगलते हुए बड़े-बड़े
क्यों उठ पर्यंतकी शिखरोंको अपने दलोंसे हींके कने ॥ १९ ॥

तास्तावा सविपैर्वृष्टाः कुपितैस्तेर्ह्रादिशिलाः ।

अज्यष्टुः पायकोदीप्ता विभितुब्ध सहस्रधा ॥ २० ॥

जोबसे मरे हुए उन विपैके लोंपोंके फाटनेपर वे बड़ी-
बड़ी शिखरों इत प्रकार बर उठीं, मानो उनमें भाग बगली
हो । उठ समन उन उनके लखों इकडे हो गये ॥ २० ॥

यानि त्वीपघटाहानि मग्निह्वानानि पर्यते ।

विपज्जाम्पयि नागानान शोकुः शमित्तुं विपम् ॥ २१ ॥

उठ पर्यंतपर जो बहुत-सी ओपबिनों लगी हुई थीं, वे
विपको नष्ट करनेवाली होनेपर भी उन नामोंके विपको
छान्त न कर सकीं ॥ २१ ॥

भिद्यतेऽपं गिरिर्मूर्तेरिति मत्वा तपस्विनाः ।

बस्ता विद्याधरास्तघातुनेतुः स्त्रीगणैः सह ॥ २२ ॥

उठ समन वहाँ रहनेवाले तपस्वी और विद्याकर्तोंने
कमसा कि इस पर्यंतको भूतल्लेग तोड़ रहे हैं, इन्हे
मयमीत होकर वे अपनी शिखरोंके साथ बहोंसे ऊपर उठकर
अन्तर्निष्पन्ने पडे गये ॥ २२ ॥

पान्द्रूमिगतं हित्वा हैममास्तबभारुणम् ।

पात्राणि च महाहोणि करकाञ्च हिरण्यमात्र ॥ २३ ॥

छेद्धानुबाबबान् भक्ष्यान् मांसानि विविधानि च ।

व्यर्षमाणि च चर्माणि कङ्गाञ्च कमकलसकन् ॥ २४ ॥

कृतकण्ठगुणाः स्त्रीषा रक्तमास्यानुलेपनाः ।

रक्षास्ताः पुष्करास्ताश्च गगान प्रतिपेदिरे ॥ २५ ॥

मधुपानके खानमें रक्ते हुए सुवर्णमय आभय-यान,
बहुमूल्य बर्तम गोनेके ककष मीति-मीतिके मन्त्र पत्रां
कन्नी माना प्रकारके फलोंके गूरे रेशोंकी काकषी कनी
हुई काँसे और सुवर्णवदित मूठवासी लकड़ों छोड़कर कन्ठमें
मांस चारण किने काक रंगके फूल और अनुलेपन (कमन)
ज्याये प्रकुञ्च कमलके लक्ष सुन्दर एवं काक नेत्रवाले वे
मन्त्राले निषावरगम मयमीत-से होकर आन्तर्यमें
बडे गये ॥ २३-२५ ॥

हारान्पूरकेपूरपारिहार्यधराः शिपयः ।

बिस्मिताः सभितास्तस्पुराभयो रमयेः सह ॥ २६ ॥

उनकी कियों गलेमें हार पैरोंमें मूण्ड गुवाओंमें
नाखूर और कंधाहोंमें कंयन चारण किने आकाशमें

१ लौहके पत्रोंसे शिखरी बनेवाली बीच लकड़ोंके
कठिक बने हैं ।

अपने पतिव्रतोंके साथ मन्द-मन्द मुस्कुराती हुई चञ्चल-सी खड़ी हो गयी ॥ २६ ॥

दर्शयन्तो महाविद्यां विद्याधरमहर्षयः ।
सहित्वास्तस्युपवाक्यो धीक्षाचतुष्टयं पर्यतम् ॥ २७ ॥

विद्याधर और महर्षि अपनी महाविद्या (आकाशमें निरुपार खड़े होनेकी शक्ति) का परिचय देते हुए अन्तरिक्षमें एक साथ खड़े हो गये और उब पर्यतकी ओर देखने लगे ॥ २७ ॥

शुभ्रुष्टयं तवा दाम्पत्यपीणा भावितारमनाम् ।
आरणामा च सिद्धार्थानां स्थितानां विमलेऽम्बरे ॥ २८ ॥

उन्होंने उस समझ निर्मल आकाशमें खड़े हुए आस्तितामा (पवित्र अन्तःकरणवाले) महर्षियों, वार्यों और शिष्योंकी ये शरतें सुनीं— ॥ २८ ॥

एष पर्यतसकाशो हनुमान् मातृतारमजा ।
किरीटीति महावेगः ससुद्रं यदप्यास्यमम् ॥ २९ ॥

‘अहा ! ये पर्यतके समान विद्याधरजन महान् वेगवाली अनपुत्र हनुमान्की बरुणाक्य समुद्रको पार करना चाहते हैं ॥ २९ ॥

एमार्यवानार्यश्च विश्वीर्यन् कर्म दुष्करम् ।
ससुद्रस्य परं पारं दुष्प्रापं प्राप्सुमिच्छति ॥ ३० ॥

‘धीरमचन्द्रकी और बानरोंके कार्यकी तिम्रिके किये दुष्कर कर्म करनेकी इच्छा रखनेवाले ये पवनकुम्भर समुद्रके सूते तटपर पहुँचना चाहते हैं, जहाँ क्या आप्त रहिन ?’ ॥ ३ ॥

स्ति विद्याधरावाचः श्रुत्वा तोषां तपस्विनाम् ।
तमममयं वृष्टुः पर्यते धानरर्षभम् ॥ ३१ ॥

इस प्रकार विद्याधरोंने उन तपस्वी महात्म्योंकी कड़ी दूर से शरतें सुनकर पर्यतके ऊपर अनुश्रित बसवाली बानरशिरोमणि हनुमान्कीको देखा ॥ ३१ ॥

सुशुभे च स रोमाणि चकनपे धानलोपमा ।
नन्द्य च महामाद् सुमहानिव तोषद् ॥ ३२ ॥

उस समय हनुमान्की भनिके समान अन् पड़ते थे । उन्होंने अपने शरीरको हिलका और रोईं हाड़ तथा महान् मेरुके समान बड़े बोर-बोरेके गजना की ॥ ३२ ॥

मानुष्याणां च वृच तस्त्वाहलं रोमभिस्त्रितम् ।
क्षपतिष्यन् विविक्षेप पक्षिपञ्ज इयोरगम् ॥ ३३ ॥

हनुमान्की अन् ऊपरको उड्डयन ही चाहते थे । उन्होंने अमय-गेछाकार मुड़ी तथा ऐमाबन्धियाँ मरी हुई बन्नी-पूँछको उभो प्रकार आकाशमें वंचा जैसे पक्षिपञ्ज गच्छ करने लगे ॥ ३३ ॥

एष हाहूत्समाविद्यमतिवेगवत् पृष्ठतः ।

वृष्टो गच्छेनेय द्वियमाणो महोरगा ॥ ३४ ॥

अत्यन्त वेगवाली हनुमान्कीके पीछे आकाशमें पैठी दूर उनकी कुछ-कुछ मुड़ी हुई पूँछ गच्छके हाथ से अये अते हुए महान् शरतें समान खिलायी देती थी ॥ ३४ ॥

पाहू संस्तम्भयामास महापरिघसन्निभौ ।
भाससाव् कपिः कटव्यां चरौ सशुकोश्च ॥ ३५ ॥

उन्होंने अपनी विद्याधर परिपके समान मुच्योंको पर्यतपर अमया । फिर ऊपरके सब अङ्गोंको इस तरह शिकोड़ लिया कि वे कटिकी धीमामें ही आ गये। हाथ ही उन्होंने दोनों पैरोंको भी समेट लिया ॥ ३५ ॥

सहस्य च मुञ्जी धीमास्तथैव च शिरोधराम् ।
तेजः सत्त्वं तथा धीर्यमाधियेश स वीर्यवान् ॥ ३६ ॥

सयमाहू तेजस्वी और पराक्रमी हनुमान्कीने अपनी दोनों मुञ्जाओं और गदनको भी शिकोड़ लिया । इस समय उनमें तेज बल और पराक्रम—ठण्ठका यावेद्य हुआ ॥ ३६ ॥

मार्गमाछोकपन् वृषावृष्यमणिहितेक्षणम् ।
रुरोष हृदये प्रापानाकाशमपखोकपन् ॥ ३७ ॥

उन्होंने अपने शरीर मार्गपर दृष्टि रोजानेके किये नेत्रोंको ऊपर उठाया और आकाशकी ओर देखते हुए प्राणोंको हृदयमें रोका ॥ ३७ ॥

पद्भ्या इहमपस्यान् हत्या स कपिकुञ्जम् ।
निकुण्ड्य कर्णां हनुमानुत्पतिष्यन् महाबलम् ॥ ३८ ॥

वानरान् वानरघोष्ठ इव यचनमप्रधीत् ।

इस प्रकार ऊपरको छसंग मानेकी तैवारी करते हुए कपिश्रेय महाबली हनुमान्ने अपने पैरोंको अच्छी तरह बमावा और कानोंको शिकोड़कर उन वानरशिरोमनि अन्व बानरोंसे इस प्रकार कहा— ॥ ३८ ॥

पया राघवनिर्मुक्तं शरत् श्वसनविक्रमः ॥ ३९ ॥
गच्छेत् तद्वद् गमिष्यामि सद्धान् राघवपाक्षिताम् ।

जैसे भीरुमचन्द्रकीका छोड़ा हुआ बाण बाणुनेगले बज्जा है, उसी प्रकार मैं राघवहाथ पाक्षित सद्धान्कीमें जाऊँगा ॥ ३९ ॥

महिं प्रक्ष्यामि यत्रिं तां सद्धानां जनकप्रमजाम् ॥ ४० ॥
अमनैव हि यत्रोत्त गमिष्यामि सुपुत्रपम् ।

‘परि सद्धाने अकम्पितनी संतापो नहीं देखूँगा तो इसी वेगसे मैं स्वगतकमें पया जाऊँगा ॥ ४ ॥

यदि वा विदिये संतां न प्रक्ष्यामि कृतधमम् ॥ ४१ ॥
वृष्ट्या राक्षसराजानमानयिष्यामि राघवम् ।

‘इस प्रकार परिभ्रम करनेपर यदि मुझ स्वर्गमें भी हीताका दर्शन नहीं देखूँ तो राघवपुत्र पवनको बाँधकर जाऊँगा ॥ ४१ ॥

सर्षपा हृतक्यर्षोऽहमेभ्यामि सह सीतया ॥ ४२ ॥
भानयिष्यामि वा रुह्यां समुत्पाटय सरावप्याम् ।

सर्षपा हृतक्यर्षो होकर मैं सीताके साथ लौटूँगा अपना
एकपक्षीत मङ्गपुष्पों ही उखाड़कर बाँटूँगा ॥ ४२ ॥

एवमुक्त्वा तु हनुमान् बानरो बानरोचमः ॥ ४३ ॥
हृत्पपाताय वेगेन वेगवानविचारपम् ।

सुपर्णमिष चात्मानं मेने स कपिकुञ्जरः ॥ ४४ ॥
ऐस करकर वेगवासी बानरप्रथम श्रीहनुमान्कीने

विष्णु-बाषाभोकर कोई बिचार न करके बड़े वेगसे ऊपरकी
ओर छलांग मारी । उस समय उन बानरधियेमेमिने अपने

को छायात् गरुड़के समान ही समझा ॥ ४३-४४ ॥
समुत्पतति वेगात् तु वेगात् ते नगरोद्विषः ।

सहस्य विद्वपान् सर्षान् समुरेतुः समगततः ॥ ४५ ॥
बिह समय वे मूरे, उस समय उनके वेगसे म्हाइह हो

पर्वतपर ठगे हुए सब इह उखाड़ गये और अपनी सारी
डाँकियोंको उधेठकर उनके साथ ही सब म्भेरेसे वेगवर्क

उड़ चले ॥ ४५ ॥
स मत्तन्नेयप्रिभक्त्वान् पाद्पान् पुष्पशाठिना ।

उग्रहनुदवेगेन जगाम विमलेऽम्बरे ॥ ४६ ॥
वे हनुमान्की मतवाले कोयबि आदि पक्षियोंसे मुक्त

बहुसंख्यक पुष्पधोमित हृष्टोंको अपने महान् केसेसे
ऊपरकी ओर लीचते हुए निमज्ज आकाशमें अग्रसर

होने लगे ॥ ४६ ॥
ऊरुवेगोत्थिता वृक्षा मुहूर्ते कपिमन्धुग ।

प्रक्षित दीर्घमध्वान ज्वलन्पुमिष बाणधवाः ॥ ४७ ॥
उनकी बाँकोंके महान् वेगसे ऊपरकी ओर हुए इस

एक मुहूर्तक उनके पीछे-पीछे इस प्रकार गये, जैसे बुर
देहके पत्थर जानेजाने अपने मारै बन्धुको उसके बन्धु-

बाचन पहुँचाने लगे ॥ ४७ ॥
तमूहवेगोन्मथिताः साक्षाद्भ्यासे नगोत्तमाः ।

अनुजगमुर्धनमस्तं सैव्या इव महीपतिम् ॥ ४८ ॥
हनुमान्कीकी बाँकोंके केसेसे उखाड़े हुए सब तथा वृक्ष

वृक्षे भेद इह उनके पीछे-पीछे उठी प्रकार जैसे, जैसे
एकके पीछे उसके ऐनिक चलते हैं ॥ ४८ ॥

सुपुष्पिताम्रैर्वृक्षिभिः पाद्पैरन्वितः कपिः ।
हनुमान् पर्वताकारो बभूवाद्भूतवर्षानः ॥ ४९ ॥

किन्ही डाँकियोंके अग्रमाम फूलोंसे सुधोमित ये
उन बहुतेरे हृष्टोंसे संकुच हुए पर्वतप्रथम हनुमान्की अद्भुत

पंखवादी पर्वत देवराज इन्द्रके मयसे बरषासममें निम
हो गये थे ॥ ५० ॥

स नानाकुसुमैः कीणः कपिः साङ्करकोरकैः ।
सुशुभे मेघसकायाः अद्योतैरिव पर्वतः ॥ ५१ ॥

मेघके समान विशासक्य हनुमान्की अपने सब
लीचकर माये हुए हृष्टोंके अङ्कुर और कोरकहित फूलों

आच्छादित हो सुशुभमौखी जगमगाहरसे मुक्त पर्वत
समान होमा पाते थे ॥ ५१ ॥

विमुक्तास्तस्य वेगेन मुक्त्वा पुष्पाणि ते द्रुमाः ।
व्यवशीर्यस्त सखिले निवृत्ताः सुहृदो यथा ॥ ५२ ॥

वे हृष्ट सब हनुमान्कीके वेगसे मुक्त हो जाते (उन
आकर्षणसे बच जाते) । सब अपने फूल बरखते हुए इ

प्रकार सुधुद्रके बरखते हुए जाते थे, जैसे सुहृद्बर्गके छे
परदेश जानेजाने अपने किसी बन्धुको बुरतक पहुँचान

लौट जाते हैं ॥ ५२ ॥
सुशुभेनोपपन्नं तद् विशिब्रं सागरेऽपतत् ।

द्रुमाणां विविचं पुष्प कपिबायुसमीरितम् ।
तापचितमिवाकशय प्रबभौ स महार्णवः ॥ ५३ ॥

हनुमान्कीके सरीसे उठी हुई वायुसे प्रेरित हा हृष्टों
मौखि-मौखिके पुष्प अरकत इसके होनेके कारण सब लड़कें

गिरते थे सब बूबते नहीं थे । इसलिये उनकी बिकि
शोभा होती थी । उन फूलोंके कारण वह महासगर लड़कें

भरे हुए आच्छादके समान सुधोमित होख या ॥ ५३ ॥
पुष्पीयेण सुगन्धेन मानावर्षेण यानरा ।

बभौ मेघ इवोद्यत् वै विधुद्रपविभूयितः ॥ ५४ ॥
अनेक रंगकी सुगन्धित पुष्पादिसे उपच्छिन्न बनर

वीर हनुमान्की बिकसिते सुधोमित होकर उठते हुए मेघों
समान बन पड़ते थे ॥ ५४ ॥

तस्य वेगसमुद्भूतैः पुष्पैस्त्रोयमहस्यत ।
तापभिरिव रामाभिरुविताभिरिषाम्बरम् ॥ ५५ ॥

उनके वेगसे बड़े हुए फूलोंके कारण लड़कका सब
ठगे हुए रमणीय तारीसे ज्वलित आकाशके समान दिखान

देता था ॥ ५५ ॥
तस्याम्बरगतौ बाहू वृक्षपाते प्रसारितौ ।

पर्वताग्राद् विनिष्कारतौ पञ्चास्याविव पन्नगौ ॥ ५६ ॥
आकाशमें फैलानी गयी उनकी दोनों मुधुर्दे ऐल

दिखायी देती थीं, मन्थे किसी पर्वतके शिखरसे पौच बनल
रो बर्ष निष्के हुए हों ॥ ५६ ॥

दिल्ली की देते थे, मानो आकाशको भी पी जाना चाहते
 हैं ॥ ५० ॥
 तस्य विद्युत्प्रभाकारे वायुमार्गानुसारिणः ।
 नपने विप्रकाशेते पथतस्यापिबान्धौ ॥ ५८ ॥
 वायुके मार्गका अनुसरण करनेवाले हनुमान्कीके
 विश्वीकीकीकी चमक पेश करनेवाले दोनों नेत्र ऐसे
 प्रकाशित हो रहे थे मानो पर्वतपर दो स्थानोंमें लगे हुए
 शबानल रहक रहे हों ॥ ५८ ॥
 पित्रे पित्रात्प्रमुक्तस्य सुहृती परिमण्डले ।
 अमुनी सम्प्रकाशेते सम्प्रसूर्यापिब स्थितौ ॥ ५९ ॥
 पिताका नेत्रवाक बान्धुमें भेद हनुमान्कीकी दोनों गोळ
 बनी-बनी और पीले रंगकी भौलें अन्धमा और सूर्यके
 कान प्रकाशित हो रही थीं ॥ ५९ ॥
 मुख नासिकाया तस्य तावत्र तावत्रमावधौ ।
 संभ्रया समभिरुपसृष्ट पथास्यात् सूर्यमण्डलम् ॥ ६० ॥
 आस-आस नासिकाके कारण उनका धारा मुँह बांधी
 सिंहे हुए या अतः वह संभ्रायकसते संसृष्ट सूर्यमण्डलके
 समान सुशोभित होता था ॥ ६० ॥
 आह्वय च समाविष्ट प्रवमानस्य शोभते ।
 मन्त्रे वायुपुत्रस्य प्राकण्यज इवोपिप्लुतम् ॥ ६१ ॥
 आकाशमें बैठते हुए पवनपुत्र हनुमान्की ठठी हुए
 देसी हूँ इन्द्रकी कैंची जगहके समान जान पड़ती थी ॥
 आह्वयचक्रो हनुमान्पुत्रोऽभिजातजः ।
 एतौषत महाप्राज्ञः परिवेषीष आस्करः ॥ ६२ ॥
 महाविद्वान् पवनपुत्र हनुमान्कीकी बाईं ओर यी
 और हूँ गेडाभर मुझी हुए थी । इतकिये वे परिचिते
 पिरि हुए मूषमण्डलके समान जान पड़ते थे ॥ ६२ ॥
 रिक्तदशेनातिताम्रेण रराज स महाकपिः ।
 महता वारितेमेव गिरिनैरिकाधातुना ॥ ६३ ॥
 अन्धी कमरके नीचेका भाग बहुत काज था । इसके
 वे महाकपि हनुमान् फटे हुए गेरुसे मुक्त विद्याल पर्वतके
 कान शोभा पाते थे ॥ ६३ ॥
 तस्य धानर्षिहस्य मूषमानस्य सागरम् ।
 कृष्णान्तरगतो वायुमीमूढ इव गमति ॥ ६४ ॥
 ऊपर ऊपरसे समुद्रको पार करते हुए बान्धुसिद
 हनुमान्की कीलते होकर निकली हुए वायु बाहकके समान
 गमती थी ॥ ६४ ॥
 ये पथा शिपतरयुक्ता उत्तरान्ताद् विनिःसृता ।
 हरयते सानुबन्धा च तथा स कपिकुञ्जरः ॥ ६५ ॥
 जैसे ऊपरकी दिशासे प्रकट हुई पुष्कमुक्त ठसका
 आकाशमें जाती देखी जाती है उसी प्रकार अपनी पूँठक
 बाग कपिभद्र हनुमान्की की दिल्ली की देते थे ॥ ६५ ॥
 पत्तपत्तङ्गसकाशो व्यापतः शुशुभे कपि ।

मधुसू इव मातङ्गः कल्पया वक्ष्यमानया ॥ ६६ ॥
 चञ्चते हुए सूर्यके समान विद्यालकाम हनुमान्की अपनी
 पूँठके कारण ऐसी शोभा पा रहे थे, मानो कोई बड़ा गहरा
 अपनी कमरमें बैठी हुई रस्तीसे सुशोभित हो रहा हो ॥ ६६ ॥
 उपरिष्ठाच्छरीरेण पञ्चमया चावगाहया ।
 सागरे मारुताविष्टा भौरिवासीत् तदा कपिः ॥ ६७ ॥
 हनुमान्कीका शरीर समुद्रसे ऊपर ऊपर चक रहा था
 और उनकी परछाईं कबमें डूबी हुई थी दिल्ली की देती थी ।
 इस प्रकार शरीर और परछाई दोनोंसे उलकधित हुए वे
 कपिभद्र हनुमान् समुद्रके बलमें पड़ी हुई उस नौकाके समान
 प्रतीत होते थे, जिसका ऊपरी भाग (पाक) वायुसे परिपूर्ण
 हो और निम्नभाग समुद्रके बलसे खण्ड हुआ हो ॥ ६७ ॥
 य य देश समुद्रस्य जगाम स महाकपिः ।
 स तु तस्याङ्गवगेन सोम्याद् इव रुक्ष्यते ॥ ६८ ॥
 वे समुद्रके बिज-बिज भागमें जाते थे वहाँ वहाँ उनके
 भद्रके वेगसे उछाल उछालें उठने लगती थी । अतः वह
 भाग उन्मत्त (विमुग्ध)-था दिल्ली की देता था ॥ ६८ ॥
 सागरस्थोभिजातानामुरसा वीक्ष्यवर्षाम् ।
 अभिधन्स्तु महावेगः पुप्लुधे स महाकपिः ॥ ६९ ॥
 महान् वेगवाली महाकपि हनुमान् पर्वतोंके समान कैंची
 महासागरकी तरङ्गमात्राओंको अपनी छातीसे धूर-धूर करते
 हुए आगे बढ़ रहे थे ॥ ६९ ॥
 कपिवातञ्च बलवान् मेघवातञ्च निर्गतः ।
 सागर भीमनिर्द्वाद कल्पयामासतुर्भुशम् ॥ ७० ॥
 कपिभेद हनुमान्के शरीरसे ठठी हुई तथा मेघोंकी
 धरामें व्याप्त हुई प्रपञ्च वायुने भीषण गहना करनेवाले
 समुद्रमें घारी हल्लल मचा ही ॥ ७० ॥
 विकर्णन्मूर्तिशालानि सुहृत्तित्त सवप्याम्भसि ।
 पुप्लुधे कपिनाशुको विकिरन्निव रोदसी ॥ ७१ ॥
 वे कपिकेशरी अपने प्रपञ्च वेगसे समुद्रमें बहुत-ही
 कैंची-कैंची तरङ्गोंको आकर्षित करते हुए इस प्रकार उठे
 का रहे थे मानो धृषी और आकाश दोनोंको विमुग्ध कर
 रहे हैं ॥ ७१ ॥
 मेघमन्त्ररक्षशाणुप्रताम् सुमहाजये ।
 अत्यङ्गमन्महावेगस्तारङ्गान् गजयन्निव ॥ ७२ ॥
 वे महान् वेगवाली शानरीर उल म्हायुद्धमें उठी हुए
 गुनेष और मन्त्ररक्षकके समान उछाल उछालोंकी मात्रो गजना
 करते हुए आगे बढ़ रहे थे ॥ ७२ ॥
 तस्य वेगसमुद्घुष्टं जल सजसत् तदा ।
 अम्बरस्यं पिपत्राजे शरत्तन्धमिवाततम् ॥ ७३ ॥
 उल समय उनके वेगसे कैंचे उठकर मेघमण्डलके
 वायु आकाशमें स्थित हुआ समुद्रका जल शरत्तन्धके जैसे
 हुए मेघोंके समान जान पड़ता था ॥ ७३ ॥

विभिन्नकृत्वाः पूर्वा दृश्यन्ते विपृतास्तदा ।
 वक्ष्यापकर्षयेनेय शरीराणि शरीरिणाम् ॥ ७४ ॥
 अथ इदं आनेके कारणं समुद्रके मीतः खनेवाले मगरः
 नाके मछलिनो और कछुए एक-एक दिखानी देते थे ।
 वेते बल लीब छेनेर देहवारियोंके शरीर नंगे हीलने
 करते हैं ॥ ७४ ॥
 क्रममाणं सतीक्ष्णाय मुञ्जगाः सागरं समाः ।
 श्योभिर्न तं क्षपिशार्दूलं सुपर्णमिष मेसिरे ॥ ७५ ॥
 समुद्रमें निचलनेवाले छर्ष आकाशमें जाते हुए क्षपिभेद
 हनुमान्भीष्म देसकर उन्हें गच्छके ही समान समझने
 लगे ॥ ७५ ॥
 दशयोजनविस्तीर्णा विशाद्योजनमायता ।
 छाया वानरसिंहस्य जघे आहततराभवत् ॥ ७६ ॥
 क्षपिकेसरी हनुमान्भीष्म दस योजन चौड़ी और तीस
 योजन लंबी छाया वेगके कारण अस्तंत रमणीय मान
 पड़ती थी ॥ ७६ ॥
 श्लेताभ्रघनराशेय वासुपुत्रानुगामिनी ।
 तस्य सा मुमुक्षुमे छायापठिता लक्षणात्मसि ॥ ७७ ॥
 जारे पानके समुद्रमें पड़ी हुई पवनपुत्र हनुमान्
 अनुकरण करनेवाली उनकी वह छाया द्रव्य वायुके
 पंक्तिके समान शोभा पाली थी ॥ ७७ ॥
 मुमुक्षुमे स महातेजा महाक्षयो महाक्षयि ।
 वायुमार्गे मिराच्छम्भे पक्ष्वाभिव पर्यतः ॥ ७८ ॥
 वे परम श्रेष्ठकी महाक्षय म्हाक्षयि हनुमान् आक्रमण
 हीन आकाशमें पक्ष्वाभी पर्यंतके समान जात पड़ते थे ॥
 येमासी याति बलवान् वेगेन क्षपिकुक्षरः ।
 तेन मार्गेण सहस्रं प्रोणीकृत इवानंजः ॥ ७९ ॥
 वे बलवान् क्षपिभेद विष मार्गसे वेगपूर्वक निकल जाते
 थे उठ मानसि संयुक्त समुद्र तरहा कड़ोते वा क्वाहके
 समान हो जाता था (उनके वेगसे ठंडी हुई वायुके द्वारा
 बहोकर कठ इट करनेसे वह स्थान कड़ोते आदिके समान
 गर-घटा दिखानी पड़ता था) ॥ ७९ ॥
 आपाते पक्षिसङ्घानां पक्षिराज इव प्रञ्जत् ।
 हनुमान् मेघजालानि प्रकर्षन् मारुतो यथा ॥ ८० ॥
 पक्षी-समूहके उड़नेके मार्गमें पक्षितक गच्छकी मूर्ति
 जाते हुए हनुमान् वायुके समान मेघमाळाओंको अपनी ओर
 लीब छेते थे ॥ ८० ॥
 पाण्डुरादप्यर्चामि नीलमल्लिष्ठकामि च ।
 कपिताऽऽहृष्ट्यमाप्तामि महाभ्रामि कक्षशिरे ॥ ८१ ॥
 हनुमान्भीष्मके हाथ लीने जाते हुए वे श्वेत अरज
 मीक और मखीठके-से रंगवाले बड़े-बड़े मेघ बहो बड़ी शोभा
 पाते थे ॥ ८१ ॥

प्रविशन्मन्त्रमात्मनि निष्पतंश्च पुनः पुनः ।
 प्रच्छम्नश्च प्रकाशश्च चन्द्रमा इव दृश्यते ॥ ८२ ॥
 वे बार-बार बारम्बोंके समुद्रमें घुस जाते और बार-
 निकल जाते थे । इत तरह छिपते और प्रकाशित होते हुए
 चन्द्रमाके समान दृशिगोचर होते थे ॥ ८२ ॥
 मूवमानं तु तं ह्यु मूवर्गं स्वरितं तदा ।
 पशुपुस्तत्र पुष्पापि देवगन्धर्वचारजाः ॥ ८३ ॥
 उठ समन तीव्रगतिसे भागे बढ़ते हुए वानर
 हनुमान्भीष्मके देसकर देवता गन्धर्व और पारण उनके
 ऊपर फूँकी थीं कर्ना करने लगे ॥ ८३ ॥
 तताप महि त सूर्यः मूवन्तं वानरेष्वरम् ।
 सिपधे च तदा वायू रामकार्यार्धसिन्धये ॥ ८४ ॥
 वे भीरामचन्द्रभीष्म कर्ष ठिक करनेके छिने जा रहे थे,
 अत उठ समन वेगसे जाते हुए वानरराज हनुमान्भीष्म
 देवने ताप नहीं पहुँचता और वायुदेवने भी उनकी
 सेवा की ॥ ८४ ॥
 श्रुपयस्तुष्टुवृक्षैर्न श्रवमान विहायसा ।
 जगुश्च देवगन्धर्वाः प्रशासन्तो वनीकसम् ॥ ८५ ॥
 आकाशमागि अत्रा करते हुए वानरही हनुमान्भीष्म
 श्रुति-मुनि स्तुति करने लगे तथा देवता और गन्धर्व उनकी
 प्रशंसाके गीत गाने लगे ॥ ८५ ॥
 नागाश्च तुष्टुवृक्षैरा रक्षांसि विविधानि च ।
 प्रेष्य सर्वे क्षपिवरं सहसा विगतङ्गमम् ॥ ८६ ॥
 उन क्षपिभेदके विना बलबलके सहसा लगे बढ़ते
 देस जाग अथ और नाना प्रकारके रक्षक सभी उनकी
 स्तुति करने लगे ॥ ८६ ॥
 तस्मिन् मूवगशार्दूले मूवमाने हनुमति ।
 इक्ष्वाकुकुलमाचार्यो विन्वयामास सागरः ॥ ८७ ॥
 कित समन क्षपिकेसरी हनुमान्भीष्म उल्लंकार समुद्र पार
 कर रहे थे उठ समन इक्ष्वाकुकुलका सम्मान करनेकी
 इच्छासे समुद्रने विचार किया— ॥ ८७ ॥
 साहाय्यं वानरेन्द्रस्य पक्षि माहं हनुमतः ।
 करिष्यामि मक्षिष्यामि सर्वबाणयो विवक्षताम् ॥ ८८ ॥
 यदि मैं वानरराज हनुमान्भीष्मके सहायता नहीं करूँगा
 तो शोक्नेकी इच्छावासे सभी ओगोंकी इच्छिने मैं छर्षवा
 निम्नीच हो जाऊँगा ॥ ८८ ॥
 अहमिक्ष्वाकुनायेन सगरोज विवर्धितः ।
 इक्ष्वाकुसन्धिषयायं तन्नाहृष्ययसादितुम् ॥ ८९ ॥
 मुझे इक्ष्वाकुकुलके महाराज समझने बड़ा था । इत
 समन वे हनुमान्भीष्म की इक्ष्वाकुवंशी हीर मीरपुनाचभी-
 ष्मके सहायता कर रहे हैं, अतः इन्हें इत नामने किसी
 प्रकारका बल नहीं होना चाहिये ॥ ८९ ॥

तया मया विधातव्यं विभ्रमेत यथा कपिः ।
 शेषं च मयि विभ्रान्तः सुखी स्रोऽतिरिच्यति ॥१०॥
 मुझे ऐसा कोई उपाय करना चाहिये, जिससे बानरवीर
 वही कुछ विभ्रम कर ले । मेरे आभयमें विभ्रम कर देने
 पर मेरे शेष मागको ये सुगमतासे पार कर देंगे ॥ १ ॥
 इति कृत्वा मतिं साध्यां समुद्रदृष्टमममभसि ।
 हिरण्यनामं मैनाकमुवाच गिरिसत्तमम् ॥११॥
 यह द्रुम विचार करके समुद्रने अपने बळमें छिपे हुए
 सुवर्षम गिरिभेद मैनाकसे कहा— ॥ ११ ॥
 तस्मिन्नासुरसङ्घामा वेद्यराज्ञा महारथना ।
 पातालमिलिपालां हि परिच्य- सन्निवेशिताः ॥१२॥
 श्रेष्ठपत्नः । महामना देवराज इन्द्रने दुर्गमें वही पाताल
 की असुरसमूहोंके निकलनेके मार्गको रोफनेके छिपे
 रहियेके ल्यापिन किया है ॥ १२ ॥
 तस्मैवा ज्ञातयीर्षाणां पुत्रनेत्रोरपतिप्यताम् ।
 अमासस्याप्रमेयस्य ङात्माधृष्य तिष्ठसि ॥१३॥
 इन मनुष्योंका पराक्रम सब प्रसिद्ध है । वे फिर
 पताछे ऊपरको जाना चाहते हैं, अत उन्हीं रोफनेके
 छिपे द्रुम अयमेव पाताळकोके द्वारको बंद करके लड़े
 रो ॥ १३ ॥
 त्रिवैर्ष्वमपञ्चैव दक्षिंस्ते वीळ धर्षिमुम् ।
 तस्मात् सकोद्यामि स्यामुत्तिष्ठ गिरिसत्तम ॥१४॥
 चौक । ऊपर नीचे और अगल-बागलमें सब ओर बने
 वी द्रुममें दक्षिण है । गिरिभेद । इतीक्ष्य मैं दुर्गमें आका
 रोगा हैं कि द्रुम ऊपरकी ओर उठो ॥ १४ ॥
 स एव कपिशार्पूलस्थासुपैति वीर्यवाद्य ।
 इन्द्राय रामकार्याधी भीमकर्मा अमाप्युतः ॥१५॥
 येलो ये पताळमी कपिकेठवी इन्द्राय दुर्गहारे ऊपर
 रोकर था रहे हैं । ये बड़ा मयकर कर्म करनेवाले हैं । इत
 समय श्रेष्ठपताका कार्य सिद्ध करनेके छिपे इन्द्रने आश्रयमें
 लगे मारी है ॥ १५ ॥
 अथ स्याद्य मया कार्यमिच्छाकुकुलवर्तिनः ।
 मम इच्छाकथया पूजया परं पूज्यतमास्तव ॥१६॥
 ये इच्छाकुर्वशी रामके मेवक हैं अतः मुझे इनकी
 प्रार्थना करनी चाहिये । इच्छाकुर्वणके लोग मेरे पूजनीय हैं
 और दुर्गहारे छिपे तो वे परम पूजनीय हैं ॥ १६ ॥
 कुट साधिष्यमस्माकं न नः कार्यमतिक्रमेत् ।
 कर्तव्यमद्वैत कार्यं सतां मभ्युमुदीरयेत् ॥१७॥
 अत द्रुम हमारी वहायता करो । जिससे हमारे कर्तव्य
 कर्मका (इन्द्रायकी सत्कार स्वी कार्यका) अचरत चीत
 न रूप । यदि कर्तव्यका पावन नदी किया जाय तो
 पर कपुणोंके श्रेष्ठको भाग देता है ॥ १७ ॥

सम्प्लिखान्मुत्तिष्ठ तिष्ठत्येव कपिस्त्वयि ।
 अस्माकमतिथिष्वैव पूज्यस्य द्रुवता वरा ॥१८॥
 इच्छिये द्रुम पानीसे ऊपर उठो जिससे ये लडोग
 मारनेबातोंमें श्रेष्ठ कपिवर इन्द्राय दुर्गहारे ऊपर कुछ काम-
 तक उठें—विभ्रम करें । ये हमारे पूजनीय अतिथि
 मी हैं ॥ १८ ॥
 आमीकरमहानाम देवगन्धर्वसेवित ।
 इन्द्रास्त्ययि विभ्रान्तस्तता शोषं गमिष्यति ॥१९॥
 देवताओं और गन्धर्वोंद्वारा सेवित तथा सुवर्षम
 विद्याय शिखराके मैनाक । दुर्गहारे ऊपर विभ्रम करने
 के पश्चात् इन्द्राय वी शेष मागको सुखपूर्वक तप कर
 देंगे ॥ १९ ॥
 काकुत्स्थस्यानुास्यं च मैथिल्याश्च विद्यासनम् ।
 अमं च द्रुवगैर्भूम्य समीक्ष्योरयानुमर्हसि ॥२०॥
 ककुत्स्थकी श्रीरामचन्द्रकीकी दयाकृता मिथिलेश
 कुमावी वीताका परदेशमें रहनेके छिपे शिखर जाना तथा
 बानरराज इन्द्रायका परिभ्रम इच्छकर दुर्गमें अवश्य ऊपर
 उठना चाहिये ॥ २ ॥
 हिरण्यगर्भो मैनाको विशाम्यं सचप्याम्भसः ।
 तत्पपात जडात् तूर्णं महाद्रुमसतापूतः ॥२१॥
 यह सुनकर बड़े-बड़े पृथों और ध्यामोंसे आहत
 सुवर्षमय मैनाक पर्वत दुर्गत ही बार समुद्रके बळसे ऊपरको
 उठ गया ॥ २ ॥
 स सागरद्वारं भिरवा वभुषात्युत्तिष्ठस्तदा ।
 यथा जडधर भिरवा वीतपदिमर्षिधाकरः ॥२२॥
 जैसे उठीत किरणोंवाले दिवाकर (सूर्य) मेरीके
 आभयके मेदकर उचित होते हैं, उठी प्रकर उस समय
 महासागरके बडका मेदन करके वह पर्वत बहुत ऊँचा उठ
 गया ॥ २ ॥
 स महारामा मुहूर्तैव पर्वतः सत्प्लिखान्मुतः ।
 दृष्टायामास शृङ्गायि छागरेण नियोजितः ॥२३॥
 समुद्रकी आशा पाकर बळमें छिपे रहनेवाले उस शिखाय
 क्षय पर्वतने हो ही पड़ीमें इन्द्रायकी अपने शिखरोंका
 दर्शन कथया ॥ २ ॥
 पातकुम्भमयैः शृङ्गैः सन्निभमहोत्तीः ।
 आश्रितोऽप्यसंकाशैरुत्तिष्ठतिरिषाम्बन्धम् ॥२४॥
 उक्त पर्वतने ये शिखर सुवर्षमय थे । उनपर किन्नर और
 बड़े बड़े नाग निवास करते थे । सुशोभक समय तक
 पृष्ठसे विभूषित थे शिखर होने ऊँचे थे कि आश्रयमें
 रत्न-सी लीय रहे थे ॥ २ ॥
 तस्य आम्भूनयैः शृङ्गैः पयतस्य समुरिपतैः ।
 आच्छादं शालसकारामभयत् काञ्चनवभम् ॥२५॥
 उक्त पर्वतके उठे हुए सुवर्षमय शिखरोंके कारण शालके

एमान नील वपवाका आकाश सुन्दरी प्रमथे उन्मासित होने का ॥ १५ ॥

जातरूपमथैः शृङ्गेर्भोजमानैर्ह्यप्रमैः ।

आदित्यरातसकाशः सोऽभवत् गिरिसप्तमः ॥ १०६ ॥

उन परम अतिमन्द और तेजस्वी ध्रुवमंडल शिकलेंसे वह गिरिशेखर मैनाक शेरुओं स्योंके समान देखीपमान हो रहा था ॥ १५ ॥

समुत्थितमसङ्गेन हनुमानप्रतः स्थितम् ।

मथ्ये लघवणतोपस्य विष्णोऽपमिति निश्चितः ॥ १०७ ॥

बार समुद्रके बीचमें अविचलित ठहर रामने कड़े हुए मैनाकको देखकर हनुमान्जीने मन-ही-मन निश्चित किया कि यह कोई विष्णु उपस्थित हुआ है ॥ १६ ॥

स तमुच्छ्रितमथ्यर्ष्ये महाभयो महाकपिः ।

उरसा पातयामास श्रीमूतमिव मास्तः ॥ १०८ ॥

अत बायु जैसे बारकको शिम्न-भिन्न कर देती है उठी प्रकर महान् वेगधानी महाकपि हनुमान्ने बहुत ऊँचे उठे हुए मैनाक पर्यंतके उठ उठकर शिखरको अपनी छातीके पकड़ने नीचे गिरा दिया ॥ १८ ॥

स तदासादितस्तेन कपिना पशतोत्तमः ।

बुध्वा तस्य हरेयैर्गं जहर्षं च ननात् च ॥ १०९ ॥

इत प्रकार कपिवर हनुमान्जीके द्वारा नीचा देखनेपर उनके उठ मगान् वेगकर अनुभव करके परंतभेद मैनाक बड़ा प्रकट हुआ और गर्बता करने लगा ॥ १९ ॥

तमाकाशगतं वीरमाकाशे समुपस्थिताः ।

मीतो हृष्टमना वाक्यमज्जकीत् पवतः कपिम् ॥ ११० ॥

मानुष आरपन् रूपमारमनः शिखरे स्थिताः ।

तव आश्रयमें स्थित हुए उस पक्षीने आकाशगत वीर बानर हनुमान्जीसे प्रकटबिन्दु होकर कहा । वह मनुष्यरूप धारण करके अपने ही शिखरपर स्थित हो इस प्रकार बोझ— ॥ ११३ ॥

दुष्कर कृतवान् कर्म त्वमिदं वानरोत्तम ॥ १११ ॥

निपत्य मम शृङ्गेषु सुख विभ्रम्य गम्यताम् ।

'वानःप्रियमव' आपने वह दुष्कर कर्म किया है । अब ठहरकर मेरे इन शिखरोंपर सुखपूर्वक विभ्रम कर सीधे कि-अमेकी यात्रा कीविषया ॥ १११३ ॥

राषयस्य पुन्ये जामैरुद्धृति परिचर्षिताः ॥ ११२ ॥

स स्यां रामदिन युतः प्रायश्चरति सागरः ।

श्री गुणाचर-ठ पूषकोने समुद्रकी धृति की थी, इत नमर नाथ उदास दिन करनेमें लगे हैं अतः समुद्र अ पना लाने का काम दे ॥ ११२ ॥

हृत्वा च प्रातःपश्यन्मय धमा तमात्मनः ॥ ११३ ॥

साऽप्य तर्पित्वापार्श्वे त्वक्तः सम्मानमदति ।

किमाने उपचार किया हो तो परमेश्वर उपका भी उपचार

किया जान-यह सनातन धर्म है । इस दृष्टिसे प्रसुप्तक करनेकी इच्छाबाध यह खगर आपसे सम्मान पानेके योग्य है (आप इसका उत्तर ग्रहण करें, इतनेसे ही इतना सम्मान हो जायगा) ॥ ११३३ ॥

त्वस्मिन्मत्तमेमार्हं बहुमानात् प्रचोदितः ॥ ११४ ॥

योजनानां रात चापि कपिरेव जमाप्युतः ।

तव सानुषु विभ्रान्ता रोषं प्रकमतामिति ॥ ११५ ॥

आपके उत्तरके श्लेषे समुद्रने बड़े आदरसे मुझे निरुक्त किया है और कहा है— 'इन कपिवर हनुमान्ने लौकेक दूर जानेके श्लेषे आकाशमें छकों मारी है अतः कुछ देर तक हमारे शिखरोंपर ये विभ्रम कर लें, फिर रोष भगा लान करेंगे ॥ ११४ ११५ ॥

सिद्ध त्व हरिसातुल मयि विभ्रम्य गम्यताम् ।

गदिश् गन्धवत् स्वयात्तु कम्बमूलफलं यद् ॥ ११६ ॥

तदास्वाद्य हरिश्रेष्ठ विभ्रान्तोऽप्य गमिष्यसि ।

अत कपिश्रेष्ठ । आप कुछ बेरतक मेरे ऊपर विभ्रम कर कीजिये, फिर जायेगा । इस स्थानपर ये बहुत सुगन्धित और सुस्वादु कम्ब, मूक तथा फल हैं । इन शिरोमणों । इनका स्वादादन करके बोझी देखक घट कीजिये । उसके बाद आगेकी यात्रा कीविषया ॥ ११६ ॥

अस्माकमपि सम्यग्भा कपिसुख्य त्वपास्ति वै ।

प्रक्यातस्त्रिषु लोकेषु महागुणपरिग्रहः ॥ ११७ ॥

कपिवर । आपके साथ हमारा भी कुछ सम्बन्ध है आप महान् गुणोंका संग्रह करनेवाले और तीनों लोकों विस्मृत हैं ॥ ११७ ॥

वेगवन्तः ध्रुवन्तो ये ध्रुवगा मादृतात्मज ।

तेषां मुक्यतम मथ्ये त्वामहं कपिकुञ्जर ॥ ११८ ॥

कपिश्रेष्ठ पवननन्दन । जो-सो वेगवान्की और लक्ष्मी मारनेवाले बानर हैं, उन लक्ष्मी में आपहीको श्रेष्ठ मानना है ॥ ११८ ॥

अतिपिा किञ्च पूजार्हः प्राहृतोऽपि विज्ञानता ।

धर्मं जिज्ञासमानेन किंपुनर्योद्धतो भवान् ॥ ११९ ॥

धर्मकी कितना रत्ननेवाले किञ्च पुत्रपके श्लेषे ए धारापर अतिथि भी निश्चय ही पूजाके योग्य माना जा है । फिर आप-जैसे असाधारण शौर्यशाली पुरुष किञ्च लक्ष्मीके योग्य हैं इस विषयमें तो कहना क्या है ॥ ११९ ॥

एव हि देवहरिष्टम्य मान्तस्य महारमनः ।

पुत्रस्तस्यैव वीरोऽसृष्टः कपिकुञ्जर ॥ १२० ॥

'कपिश्रेष्ठ । आप देवश्रेष्ठमणिव महत्तमा बायुके पुत्र हैं और वेगमें भी ऊँचीके समान हैं ॥ १२० ॥

पूजिते स्वयि धर्मो पूजां प्राप्नोति मादृताः ।

तस्मात्स्वपूजनीयो म शत्रुः शत्रुप्यत्र कारणम् ॥ १२१ ॥

आप धर्ममें शाता हैं । आपकी पूजा होनेपर लक्षण

वापुरेवद्य पूजन हो जायगा । इच्छिते भाव व्यवस्था ही मेरे
 पूजने हैं । इतमें एक और भी कारण है उसे सुनेये ॥ १२१ ॥
 पूर्व कृतयुगे तात पथता पक्षिपोऽभवत् ।
 तेषु अमुर्विंश सर्वा गठ्ठा इव खेगिनाः ॥ १२२ ॥
 शत । पूर्वकाण्डके समययुगकी बात है । उन दिनों
 पक्षियों की पंक्त होती थे । वे भी गणकके समान वेग्याभी
 तरह समूह दिखाओंमें उड़ते फिरते थे ॥ १२१ ॥
 तस्मिन् प्रयातेषु देवसङ्घाः सहस्रिभिः ।
 मृगानि च भयं मनुस्तेषां पतनशङ्कया ॥ १२३ ॥
 उनके इस तरह वेगयुक्त उड़ने और आने-जानेपर
 देखा श्रुति और समस्त प्राणियोंके उनके गिरनेकी
 शङ्कासे बड़ा भय होने लगा ॥ १२३ ॥
 ततः कृत्वा सहस्राक्षः पर्वताना शतकृतुः ।
 पक्षाधिपतेषु यज्ञेण ततः शतसहस्राक्षः ॥ १२४ ॥
 पहले तबसे नेशोंवासे देवराज इन्द्र कुपित हो उठे
 और उन्होंने अपने बड़से सखों पर्वतोंके पल काट डाले ॥
 स मनुष्याः कुन्तो बज्रमुद्यम्य देवराट् ।
 ततोऽहं सहस्राक्षितः श्वसनेन महात्मना ॥ १२५ ॥
 इस समय कुपित हुए देवराज इन्द्र बज्र उठाये मेरी
 ओर भी भाये किन्तु महात्मा वायुने सहा मुझे इस
 तन्द्रमें गिरा दिया ॥ १२५ ॥
 पक्षिल्लवणतोये च प्रक्षिप्तं भ्रूवगोत्तम ।
 गुणपक्षं समग्रं तव पित्राभिरक्षितः ॥ १२६ ॥
 पवनभेद । इस क्षण तन्द्रमें मिराकर आपके पिताने
 मेरे पंखोंकी रक्षा कर ली और मैं अपने सम्पूर्ण अंगसे
 सुरक्षित रह गया ॥ १२६ ॥
 ततोऽहं मामशमित्वां माण्डोऽसिमम मादते ।
 त्वया ममैव सम्पन्नाः कपिसुक्य महागुणाः ॥ १२७ ॥
 पवनसहन । कपिभेद । इसीक्षिप मैं आपका आदर
 करता हूँ आप मेरे माननीय हैं । आपके साथ मेरा यह
 सम्बन्ध महान् गुणोंसे युक्त है ॥ १२७ ॥
 पक्षिभ्योऽर्चयन्ते कार्ये सागरस्य ममैव च ।
 प्राप्तिं प्राणमनाः कर्तुं स्वमहसि महामने ॥ १२८ ॥
 महामते । इस प्रकार विरक्तकके वार को पर
 स्तुतकारक काय (आपके पिताके उरकारक बरबा
 पुत्रके आदर) प्राप्त हुआ है इतमें आप प्रसन्नचित्त
 रह गये और तन्द्रकी भी प्रीति सम्पन्न करें (हमारा
 मानस्य प्राप्त करके हमें संतुष्ट करें) ॥ १२८ ॥
 मम मास्य पूजा च गृहाण हरिसत्तम ।
 मर्तिं च मम मास्यस्य प्रीतोऽसि तव दानात् ॥ १२९ ॥
 शत्रुघोषतः । मम यहाँ अपनी पक्षन उदादि
 एषी पूजा हवन कीजिये और मेरे प्रसन्न भी स्वीकार

कीजिये । मैं आज-कैसे माननीय पुरषके दर्शनते बहुत
 प्रसन्न हुआ हूँ ॥ १२९ ॥
 एवमुक्त्वाः कपिभ्योऽस्त नगोत्तममग्रवात् ।
 प्रीतोऽसि कृतमतिर्ष्वं मन्युरेवोऽपनीपताम् ॥ १३० ॥
 मैनाकके ऐसा कहनेपर कपिभेद इतमानुषीने उठ
 उत्तम पक्षके कहा—मैनाक । मुझे भी भाषते मिलकर
 बड़ी प्रशंसा हुई है । मेरा मतिष्य हा गया । अब आप
 अपने मनसे यह युक्त अपना किन्ता निष्काक कीजिये कि
 इन्होंने मेरी पूजा ग्रहण नहीं की ॥ १३ ॥
 त्वरते कार्यकालो मे भद्रकाम्यतियते ।
 प्रतिष्ठा च मया वृत्ता न स्यात्तप्यमिहागतरा ॥ १३१ ॥
 मेरे कामका समय मुझे बहुत बन्दी करनेके लिये
 प्रेरित कर रहा है । यह दिन भी बीता जा रहा है । मैंने
 बानरोंके समीप यह प्रतिष्ठा कर ली है कि मैं यहाँ बीचमें
 क्यों नहीं उतर सकता' ॥ १३१ ॥
 इत्युक्त्वा पाणिना शैलमालम्ब्य हृत्पुङ्गव ।
 जगामाकादामाविद्य वीययान् प्रहसन्निव ॥ १३२ ॥
 ऐसा कहकर महाकवी बानरधियोमणि इतमानुसे उल्ले
 हुएसे बहाँ मैनाकका अपने हाथसे स्पर्श किया और
 आकाशमें ऊपर उठकर चलने लगे ॥ १३२ ॥
 स पर्वतसमुद्राभ्या बहुमानाद्योक्षितः ।
 पूषितोऽपप्राभिरागीर्भिरभिनन्दितः ॥ १३३ ॥
 उठ समय पर्वत और समुद्र दोनोंने ही बड़े आदरसे
 उतकी ओर देखा उनका लम्बर किया और यथाचित्त
 भाषीबावोंसे उनका अभिनन्दन किया ॥ १३३ ॥
 अयोध्यां कूरमागम्य हित्वा शैलमहापथौ ।
 पितुः पश्यात्मासाद्य जगाम विमलेऽम्बरे ॥ १३४ ॥
 फिर पक्ष और समुद्रको छोड़कर उनसे दूर ऊपर
 उठकर अपने पिताके मागका आश्रय ले इतमानुषी निर्मल
 आकाशमें चलने लगे ॥ १३४ ॥
 मूयन्तोऽर्चयन्ति प्राप्य गिरिं तमपसोऽपन् ।
 वायुसुनुर्मिचालम्बो जगाम कपिकुङ्कर ॥ १३५ ॥
 तबभात् और भी उंचे उठकर उठ पर्वतके देलते
 हुए कपिभेद पवनयुक्त इतमानुषी विना किसी आकारके
 आगे बढ़ने लगे ॥ १३५ ॥
 तद् द्वितीय इतुमतो रद्वा कम सुनुष्करम् ।
 प्रदाशंसुः सुराः सर्वे सिद्धाद्य परमपरा ॥ १३६ ॥
 इतमानुषीका यह वृत्त मानते हुए परम देलकर
 समूह देवता सिद्ध और महर्षिगण उनकी प्रशंसा
 करने लगे ॥ १३६ ॥
 देवताआश्रयं हृष्टान्ब्रह्मालम्ब्य कामया ।
 काञ्चनस्य सुनाभस्य सहस्राक्षस्य वासव ॥ १३७ ॥

वर्षो आकाशमे उदरे हुए देवता तथा वहस नेत्रबाण
इन्द्र उठ मुन्दर मध्य भ्रमराद्ये सुवर्णमय मैनाक पक्षके
उप कर्षिते बहुत प्रसन्न हुए ॥ १३७ ॥

उवाच वचनं श्रीमान् परितोपात् सगणवत् ।
सुनाम पर्यंतश्रेष्ठ स्वयमेव शचीपतिः ॥ १३८ ॥
उत्त समन स्व्य बुद्धिमान् शचीपति इन्द्रे अत्यन्त
छंदश्च होकर परंतभेद सुनाम मैनाकठे गङ्गवर वाणीमे
क्या—॥ १३८ ॥

विरप्यनाम शौळेभ्यः परितुष्टोऽसि ते सूशाम् ।
अभय ते प्रयच्छामि गच्छसौम्य यथासुखम् ॥ १३९ ॥
सुवर्णमय दीव्याश्च मैनाकः । मे तुमपर बहुष प्रसन्न
हूँ । सोम्य । तुम्हें अभय दान देता हूँ । तुम सुखपूर्वक
वर्षों जाओ, जाओ ॥ १३९ ॥

साह्यं कर्तं ते सुमहद् विभाम्पत्य इन्मृतः ।
क्रमतो षोडशशत निर्मयस्य भये सति ॥ १४० ॥
'श्री शौचन सद्गुरुश्च श्रेष्ठो कमान् क्लिन्के मनसो श्रेष्ठे
मय नहीं रहा है, फिर भी क्लिन्के क्लिन्के हमारे हृदयमें यह
मय या कि पता नहीं इनका क्या होगा । उन्हें इन्मन्
श्रीको विभामका अत्यन्त देकर हमने उनकी बहुत बड़ी
परायता की है ॥ १४ ॥

रामस्यैव हितायैव याति वाशरयोः क्षयि ।
सत्किंयां कुर्वता शययातोपितोऽसि इदं त्वया ॥ १४१ ॥
'श्री शानरभे इन्मन् एशरयनन्दन श्रीरामकी वहास्यके
क्लिन्के ही कर रहे हैं । तुम्हने यथाशक्ति इन्मन् उक्तर करके
मुझे पूरा संतोष प्रदान किया है ॥ १४१ ॥

स तत् मह्यमलभद् विपुलं पर्यतोत्तमः ।
वेपथानां पतिं बभूव परितुष्टं दातकस्तुम् ॥ १४२ ॥
देवताओंके सामीप्यकष्ट इन्द्रको छंदश्च देवस्य
पर्यंतो भेद मैनाकको बड़ा हर्ष प्राप्त हुआ ॥ १४२ ॥

स वै वचनराः शौलो बभूवाशसितस्तथा ।
इन्मार्शश्च सुहृत्तैश्च ध्यतिचक्राम स्वगरम् ॥ १४३ ॥
इत्त प्रकार इन्द्रका विद्या हुआ कर पक्षक मैनाक उत्त समय
कर्मों क्लिन्के हो गया और इन्मन्की सद्गुरुके उत्त प्रवेशको
उसी सुहृत्तैश्च बोध देने ॥ १४३ ॥

ततो देवाः सगम्पवाः सिन्धुश्च परमर्षयः ।
बहुवन् सूर्यसकाशां सुरसां मागमावरम् ॥ १४४ ॥
तत्त देवता, पक्षक शिख और महर्षिजोने स्युस्तन्
तेकलिन्के माममाता सुरसाके क्या—॥ १४४ ॥

अर्षं यातामत्राः श्रीमान् भ्रुवते सागरोपरि ।
इन्मान् नाम तस्य त्व सुहृत् विप्रमाचर ॥ १४५ ॥
'श्री पवननन्दन श्रीमान् इन्मन्की सद्गुरुके छपर होकर
जा रहे हैं । तुम ही पक्षिके क्लिन्के इनके भागि विपन्
काम हो ॥ १४५ ॥

राक्षस रूपमास्थाय सुधार पर्यतोपमम् ।
वृष्टाकरालं विस्मृतं यत्र हृतया नभस्युद्यम् ॥ १४६ ॥

'तुम पयतक समान अत्यन्त भयकर राक्षसीका रूप
धारण करो । उठमें विस्मृतक दार्द्र्य, पीछे नेत्र और आङ्गुली
स्पष्ट करनेवाला विकट दृष्ट बनानाओ ॥ १४६ ॥

घलमिच्छामहे ज्ञातु भूयश्चास्य पराक्रमम् ।
त्वां विजिष्म्यासुपायेन विद्याद् या गमिष्यति ॥ १४७ ॥

हमकांग पुन हनुमन्कीके बल और पराक्रम
परीक्षा करना चाहते हैं । या ता क्लिन्के उपायसे य तुम्हें की
जो अथवा विद्यादमे पक्षकको (इच्छे इनके बलपरम्प
काम हो अथवा) ॥ १४७ ॥

एषमुक्ता तु सा देवी वैश्वतेरभिस्तहता ।
समुद्रमप्ये सुरसा विस्तीराक्षस यषुः ॥ १४८ ॥
विकृतं च विरूप च सूर्यस्य च भयावहम् ।
भवमामं हन्मन्तमावृत्त्येवमुवाच ॥ १४९ ॥

देवताओंके उक्तरपूर्वक इत्त प्रकार कन्देनर देवी
सुरसाने सद्गुरुके शीर्षमें राक्षसीका रूप धारण किया । उक्तर
वह रूप बड़ा ही विकट देवीक और उसके क्लिन्के मयात्त
या । वह सद्गुरुके पार जाते हुए इन्मन्कीको देवस्य
उन्ने इत्त प्रकार बोधी—॥ १४८ १४९ ॥

मम भक्ष्या प्रविष्टस्त्वमीश्वरैर्बानरर्षभ ।
अह त्वां भक्षयिष्यामि प्रयोर्यं ममाननम् ॥ १५० ॥

क्षिभेठ । 'देवैरारोने तुम्हें मेरा भक्ष्य, कष्टक
मुझे भक्षित कर दिया है अत मैं तुम्हें खाऊँगी । तुम मेरे
इत्त तुम्हें चले आओ ॥ १५० ॥

यत्त एष पुरा वृत्तो मम प्राप्तेति सत्वरत् ।
व्याहाय वचनं विपुलं स्वित्ता सा मादतेः पुरा ॥ १५१ ॥

'पूर्वकर्मों द्वाराश्रीने मुझे यह वर दिया था । ऐता
कष्टक यह दूरत ही अपना किष्कान् दूर शीर्षकर इन्मन्कीके
सामने खड़ी हो गयी ॥ १५१ ॥

एषमुक्तः सुरसया महद्वदन्तोऽनघीत् ।
रामो वाशरधिर्नाम प्रविष्टो वृष्णकावलम् ।
अहमप्येन सह आशा वैवृद्धा आपि भार्यया ॥ १५२ ॥

सुरसाके देवा कहनेपर इन्मन्कीने प्रथममुक्त होकर
क्या—'वैमि । एशरयनन्दन श्रीरामकक्षत्री अपने भर्ष
कामन और वचनकी शीताकीके जय हृष्यकरभनेमें
भावे थे ॥ १५२ ॥

अन्यकार्यविरक्तस्य बहवैरस्य राक्षसैः ।
तस्य सति हता भार्या रावणेन यथाशक्ती ॥ १५३ ॥

'वर्षों परित-शक्तमें जो हुए श्रीरामका राक्षसीके
जय वर वैवृद्धा । अतः एवकने उनकी वयाशक्ती भर्ष
शीताको हर किया ॥ १५३ ॥

तस्याः सक्वहा वृतोऽहं गमिष्ये रामशासनात् ।
 कर्तुमर्हसि रामस्य साह्यं विषयवासिनि ॥१५४॥
 यौ श्रीरामकी भावने उतक्य दूत बनकर वीठाकीके
 पत्र का रहा है । द्रुम मी श्रीरामने रक्षकमें निवास करती
 हो । अत दुम्ने उनकी कथापता करनी चाहिये ॥ १५४ ॥
 मयया मैथिलीं हृष्टा राम आह्वितकरिष्यम् ।
 व्यागमिष्यामि ते वक्त्र सस्य प्रतिश्रुणोमि ते ॥१५५॥
 'मयया (यदि द्रुम मुझे खाना ही चाहती हो तो)
 यौ श्रीरामकी भावने उतक्य दूत बनकर वीठाकीके
 श्रीरामकरवतीके बच मिस्र रूंगा तब दुम्हारे दुकलमें आ
 यऊँगा—यह दुमने सन्धी प्रतिज्ञा करके कहता है ॥ १५५ ॥
 एषमुक्ता हनुमता सुरसा कामरूपिणी ।
 मयशीभ्रातिवर्त्ममां कश्चिच्छब्देप भरो मम ॥१५६॥
 हनुमान्कीके देखा करनेपर इच्छामुखार रूप धारण
 करनेवासी सुरसा वासी—'मुझे यह घर मिला है कि कोई
 मी मुझे लौपकर भागे नहीं जा सकता' ॥ १५६ ॥
 तं प्रयास्यं समुद्रीक्ष्य सुरसा वाक्पयमधधीत् ।
 एष विज्ञासमाना सा नागमाता हनूमता ॥१५७॥
 फिर मी हनुमान्कीके आते देख उनके बन्धको जानेकी
 इच्छा रखनेवासी नागमाता सुरसाके उनसे कहा—॥१५७॥
 किमिदं यद्वर्तते मेऽद्य गन्तव्यं धाररोक्षम ।
 पर एष पुरा वृक्षो मम भ्रात्रेति सत्यम् ॥१५८॥
 क्यादाप विपुल वक्त्रं विष्टा सा मादतेः पुरा ।
 भानारम्य । आब मेरे दुकलमें प्रवेश करके ही दुम्हें
 ने बना चाहिये । पूर्वकलमें विधानने मुझे देखा ही
 दिया था । देखा कहकर धरणा दूरत अपना विधाक मुँह
 कर हनुमान्कीके सामने लड़ी हो गयी ॥ १५८ ॥
 मुञ्चः सुरसया हृद्यो धानरगुंगवाः ॥१५९॥
 नवीत् कुट्टं वी क्षणं येन मां विपक्षिष्यसि ।
 मुञ्चत्वा सुरसां हृद्यो वृषायोजनमापयताम् ॥१६०॥
 गयोतनविस्ताये हनुमानभवत् तथा ।
 हृद्य मेघसकाशं वृषायोजनमापयत् ।
 अथ सुरसाप्यास्य विशाद्योजनमापयत् ॥१६१॥
 दुग्धके देखा करनेपर धानरगुंगवा हनुमान्की कुपित
 1 ठठे भार बोधे— द्रुम अन्ध मुँह इतना] बड़ा बना आ
 कल उतमें मेरा भार वह लकी नौ करकर बच वे मोन
 2 तब सुरसाने अपना मुक दत वाकन विस्तृत बना
 3 4 5 6 7 8 9 10 11 12 13 14 15 16 17 18 19 20 21 22 23 24 25 26 27 28 29 30 31 32 33 34 35 36 37 38 39 40 41 42 43 44 45 46 47 48 49 50 51 52 53 54 55 56 57 58 59 60 61 62 63 64 65 66 67 68 69 70 71 72 73 74 75 76 77 78 79 80 81 82 83 84 85 86 87 88 89 90 91 92 93 94 95 96 97 98 99 100

तब हनुमान्कीने मुख होकर अपने शरीरको तीस योजन
 अधिक बढ़ा दिया । फिर तो सुरसाने मी अपने मुँहको
 प्यासीत योजन ऊँचा कर लिया ॥ १६१ ॥
 वभूव हनुमान् वीरः पञ्चापाद्य जोजनोच्छ्रितम् ।
 वक्त्र सुरसा वक्त्रं पश्चि योजनमुच्छ्रितम् ॥१६२॥
 यह देख वीर हनुमान पचास योजन ऊँचे हो गये ।
 तब सुरसाने अपना मुँह पाठ योजन ऊँचा बना लिया ॥१६२॥
 तस्यै हनुमान् वीरः सतति योजनोच्छ्रितः ।
 वक्त्र सुरसा वक्त्रं पश्चि योजनोच्छ्रितम् ॥१६३॥
 फिर तो वीर हनुमान् उठी छन वक्त्र योजन ऊँचे
 हो गये । अथ सुरसाने अस्वी योजन ऊँचा मुँह बना लिया ॥
 हनुमाननक्षत्रकयो नयति योजनोच्छ्रितः ।
 वक्त्र सुरसा वक्त्रं शतयोजनमापयत् ॥१६४॥
 तदन्तरं मन्त्रिके समान तेजसी हनुमान् नभे योजन
 ऊँचे हो गये । यह देख सुरसाने मी अपने मुँहका विस्तार
 लौ योजनका कर लिया ० ॥ १६५ ॥
 तत् वृष्टुं व्यादित स्वाद्य बासुपुत्रः स बुद्धिमान् ।
 दीर्घकिङ्क सुरसया सुभीमं नरकोपमम् ॥१६६॥
 स मन्त्रिप्यामनाः कार्यं जीमूत इव माततिः ।
 तस्मिन् मुहूर्ते हनुमान् यमूयाकुमुमापकः ॥१६७॥
 सुरसाके पैसाये हुए तब विशाक शिवाये मुक और
 नरकेके समान अन्धत्व मयकर मुँहको देखकर बुद्धिमान्
 बासुपुत्र हनुमानने मेघकी भौंसी अपने शरीरकी शुकुपित कर
 लिया । वे उठी छन अंगूठेके बगलकोटे हो गये ॥१६६ १६७॥
 सोऽभिषयाद्य तस्यक्त्रं निष्पद्य स महावसः ।
 अन्तरिक्षे स्थिताः धीमानिन् वक्त्रमप्रपीत् ॥१६८॥
 फिर वे महाबली श्रीमान् पवनकुमार सुरसाके उठ मुँहमें
 प्रवेश करके द्रुत निकल भाये और आकाशमें लड़े हाकर
 हत प्रकार बोल— ॥ १६८ ॥
 प्रविष्टोऽसि हि मे वक्त्रं दासापणि ममोऽस्तु ते ।
 गमिष्ये यम वीर्यी सत्यभ्यामीन् परस्तथ ॥१६९॥
 पक्षकुमारी । दुम्हें नमस्कार है । मैं दुम्हारे मुँहमें
 प्रवेश कर चुका । जो दुम्हारा घर मी लप हो गया । अब मैं उग
 खानको जाऊँगा वहाँ विदेहकुमारी कीता विद्यमान
 है ॥ १६९ ॥
 त वृष्टुं यन्नामुकं वक्त्रं वासुसुजादिषु ।
 मयपीत् सुरसा दधी म्येन रूपेण पातरम् ॥१७०॥
 रात्रुके मुकने दूटे हुए यन्नामानी भौंसे अपने मुकल
 ० १६९ से केकर ११५ तक के कर करके मुक तीसछातीने
 अधिक बढ़ाये दं ितु एतन्वपिगामनि नावक रीकमें इनकी
 व्याख्या करनेका बोधे है । मया वरौ मृत्ये रते ता न कत कर
 कित मय है ।

मुञ्च ह्यु हनुमान्भीष्मो देवकर मुख देवीने अपने अठ्ठी
रूपमें प्रकट होकर उन बानरवीरसे कहा—॥ १७ ॥

मर्षसिद्धयै हरिभ्रेष्ट गच्छ सौम्य यथासुखम् ।
समानय च वैदेहीं राघवेण महात्मना ॥१७१॥

‘कविप्रभ । हम भगवान् श्रीरामके कार्यकी सिद्धिके
लिये मुखपूर्वक आमा । सौम्य । विदेहसिन्धीनी सीताको
महात्मा श्रीरामसे धीम सिद्धाओ’ ॥ १७१ ॥

उद्भूतोय हनुमतो ह्यु कर्म सुदुष्करम् ।
साञ्जुसाग्धिति मृतानि प्रार्थानसुस्तथा हरिम् ॥१७२॥

कविप्रभ हनुमानकीका यह तीसरा अत्यन्त दुष्कर कर्म
देख सब प्राणी वाह-वाह करके उनकी प्रशंसा करने लगे ॥

स सागरमनाभूयमभ्येत्य यदृणाढयम् ।
जगामाकाशमाधिष्य वेगेन गरुडोपमा ॥१७३॥

वे बरबक निवासभूत अष्टरूप्य समुद्रके निकट आकर
आकाशका ही आशय के गरुडके समान वेगसे आगे बढ़ने लगे ॥

सेविते धारिधारिभिः पतगौदस्य निवेदिते ।
स्वरिते कैशिकाचार्यैर्यवतनिवेदिते ॥१७४॥

सिद्धकुञ्जरधार्मुलपतगोरगघाहरीः ।
विमानैः संप्रतङ्गिह्व विमलैः समसङ्घते ॥१७५॥

जत्राशानिसमस्पर्श पावकैरिय शोभिते ।
कृतपुण्यैर्महाभागीः शर्गाङ्गिष्ठिभिषिते ॥१७६॥

यदृता हृष्यमत्यम्नं सेविते विजभानुजा ।
प्रहृतस्रजवज्राकृतायगणविभूषित ॥१७७॥

महर्षिगणगण्यध्वजागपससमाकुण्डे ।
विबिक्तं विमले विश्वे विश्वावसुनियेचिते ॥१७८॥

स्वराज्यगजाकान्ते अन्द्रस्यययं शिषे ।
विशामे जीवशोकस्य कित्तन प्रकृतिर्मिते ॥१७९॥

बहुधा सेवितं शरीरैर्विधाधरगपैर्भूति ।
जगाम वायुमार्यं च गदरमानिच मादतिः ॥१८०॥

जो बरबकी धाराओंसे सेवित पक्षियोंसे संयुक्त गान
विषाके आशय तुम्बुक आदि गन्धर्वोंके विकल्पका स्थान
तथा वेदायतके आने-जानेका मार्ग है सिंह हाथी बाघ
पक्षी और तर्न आदि जानोंसे जुने और उड़ते हुए निर्मल
विमान बिलंबी घोमा बढ़ाते हैं किन्ना स्वर्ण बम और
अशानिके समान कुहट तथा तम अशिके समान प्रकाशमान
है तथा जो स्वगण्डेकर विजय पा जुने हैं, ऐसे महामाग
पुण्यात्मा पुत्रयोगीश्वर जो निवासस्थान है देव्यके लिये अत्रिक
मात्रामें हविष्यका भार बहन करनेकास अग्निदेव ब्रितका
तथा तबन करत हैं मह नभय अग्ना स्वर्ण और तारे
माभूषणकी मूर्ति अत्रिसे शक्यते हैं महर्षियोंके समुदाय
गन्धर्व नाग और यक्ष आदि मरे रहते हैं जो बगदका
आशय-स्थान, दक्षयत और निर्मल है, गन्धर्वराज निषावदु

जिसमें निवात करते हैं, देवराज इन्द्रका हाथी बरो बरबक-
छिद्रा है, जो चन्द्रमा और सूर्यका भी मङ्गलमय मार्ग है
इत बीच-बगलके लिये विमल विमान (बैँडोवा) है,
साधारण परजस परमात्माने ही बिलंबी सुष्टिकी है, जो
बहुसंख्याक वीरोंसे सेवित और विधाधरगणोंसे आश्रित है
उस वायुपय आकाशमें पवननन्दन हनुमान्भी गण्डके
समान वेगसे चले ॥ १७४—१८ ॥

हनुमान् मेघशालानि माकर्षन् मादतो यथा ।
कपलागुरुससर्षणानि रक्तपीतसिक्तानि च ॥१८१॥

वायुके समान हनुमान्भी अगारके समान ऋसे तथा
कमल, पीले और श्वेत बादलोंको लीचते हुए आगे बढ़ने
लगे ॥ १८१ ॥

कपिला कृष्णमाजानि महाशालि चक्राशिरै ।
प्रविशन्नक्षत्राणानि निष्पतदस पुन पुन ॥१८२॥

प्रभुपुण्डुरिषाभाति निष्पतन् प्रविशस्तथा ।
उनके द्वारा लीचि जाते हुए वे बढ़े-बढ़े वादक
अद्भुत घोमा पा रहे थे । वे बार-बार मेघ-समूहोंमें प्रवेश
करते और बाहर निकलते थे । उध अक्षयामें बादलोंमें
किण्टे तथा प्रकट होते हुए वर्षाकाके पत्रमाक्षी मूर्ति
उनकी बढ़ी घोमा हो रही थी ॥ १८२ ॥

प्रहृष्यमाना सयत्र हनुमान् माकृततमजः ॥१८३॥
नेजेऽम्बरं निरासम्बं पक्षयुक्तं श्वाश्रियत् ।

तत्रत्र शिलाभी देते हुए पवनकुमार हनुमान्भी
पक्षधारी गिरिराजके समान निराधार आकाशका आशय
सेकर आगे बढ़ रहे थे ॥ १८३ ॥

प्लवमार्गं तु तं ह्यु सिद्धिका नाम राक्षसी ॥१८४॥
मनसा चिन्तयामास प्रकृता कामरूपिणी ।

इत तरह जाते हुए हनुमान्भीके हृन्कमुखर रूप
कारण करनेवाली विशाखधरा त्रिभिन्न नामवाली राक्षसीने
देखा । देखकर वह मन-ही-मन इत प्रकार विचार करने
लगी—॥ १८४ ॥

अथ हीर्षस्य कक्षस्य भ्रुविरपाम्बुहमर्गिता ॥१८५॥
इदं मम महासत्स्यं शिरस्य बशमागतम् ।

मात्र हीर्षकाके नाद यह विशाख जीव मेरे बशमें
आया है । इसे का कैनेपर बहुत दिनोंके लिये मेरा पेट भर
जायगा ॥ १८५ ॥

इति संविन्त्य ममसा च्छयामस्य समासिपत् ॥१८६॥
छापार्यां शृङ्खलामाज्यां चिन्तयामास वानरा ।
समासितोऽस्मि सदृसा पङ्ककृतपराक्रमः ॥१८७॥
पठिछोमेन जातेन महानौरिचं सागरे ।

अन्ते हृदयमें ऐसा तोचकर उठ राक्षसीने हनुमान्भीकी
छाया पकड़ ली । छाया पकड़ी जानेपर बानरवीर हनुमान्भी

लोका—भयो। उरुषा किरने मुझे पकड़ किया; इस पकड़के
खाने मेरा पराक्रम पकड़ हो गया है। जैसे प्रतिदुष्ट उरुषा
पकड़ने पर सुदूरमें बहाकभी गति व्ययक्य हो जाती है; वैसी
ही उरुषा भाव मेरी भी हो गयी है? ॥ १८१ १८०७ ॥

विद्यगूर्ध्वमधमोद्य हीसमापस्तवा कपिः ॥ १८८ ॥
वर्द्ध स महादास्यमुत्थितं लवणाम्भसि।

यही खेकते हुए कपिबर हनुमान्ने उरु समय भगव-
नपकमें; ऊपर और नीचे दृष्टि डाली। इन्हीमें उन्हें
वदुके जकके ऊपर ठठा हुआ एक विद्याकथ्य प्राणी
रिखायी दिया ॥ १८८३ ॥

तद् दृष्ट्वा विन्तयामास मादतिर्विह्वलाननाम् ॥ १८९ ॥
कपिपत्न्या पद्याक्यात् सखमवदुत्तुतवर्धानम्।

अपामाही महावीर्यं तद्विद् नाम सखायाः ॥ १९० ॥

उरु विद्वत्सु सुखवाही राक्षसीको देखकर पवनकुमार
हनुमान्ने अपने छोटे—बानरराज सुमीने विरत महापराक्रमी
अपामाही अदुमुत्तुत वीरकी चर्चा की थी, वह निःसन्देह
कही है ॥ १८९ १९ ॥

सर्तां बुध्द्वार्यतस्येन सिद्धिकां मतिमान्कपिः।
स्पषर्षत महाकायाः प्रावृणीष पलाहकाः ॥ १९१ ॥

उन बुद्धिमत् कपिबर हनुमान्नीने यह निश्चय करके
कि बालवने यही सिद्धिदा है, वर्षाकाकके मेघकी मौलि
माने शरीरको बढ़ाना आरम्भ किया। इस प्रकार वे विद्याक-
थ्य हो गये ॥ १९१ ॥

तथा सा कापमुत्तीक्ष्य वर्षमान महाकपोः।
वर्षं प्रसारयामास पातालापरसजिभम् ॥ १९२ ॥

नपरात्रीय गर्वस्त्री बालर समभिद्रुषत्।

उन महाकपिके शरीरको बढ़ते देख सिद्धिमाने अपना
रि पलाह और आकाशके मध्यभागके समान पैदा किया
और मेघकी घटाके समान गर्जना करती हुई उन बानरवीरकी
धरे दीही ॥ १९२३ ॥

स वदत्त ततस्तस्या विह्वत सुमहामुलम् ॥ १९३ ॥
कापमार्त्तं च मेधावी मर्माणि च महाकपिः।

हनुमान्नीने उरुका अत्यन्त विद्वत्सु और बड़ा हुआ
दर देला। उन्हें अपने शरीरके बरकर ही उरुका मुँह
दिल्लीयी दिया। उरु समय बुद्धिमान् महकपि हनुमान्ने
सिद्धिके मर्मस्त्राणोको अपना कथ्य बन्द्या ॥ १९३३ ॥

स तस्या विह्वते वक्ष्ये यज्ञसंहमनः कपिः ॥ १९४ ॥
संहित्य सुहृत्पामास निपपात महाकपिः।

तदनन्तर ब्रह्मण्य शरीरका महाकपि पवनकुमार
अपने शरीरको संकुचित करके उरुके विद्वत्सु मुकमें आ
गिये ॥ १९४३ ॥

भास्ये तस्या निमग्नस्त वृहद्युःसिद्धिचारणाः ॥ १९५ ॥
प्रस्रभार्त्तं यथा चन्द्र पूर्णं पवणि राहुष्या।

उरु समय दिवों और चारणोंने हनुमान्नीको सिद्धिकाके
मुकमें इसी प्रकार निमग्न होते देला, जैसे पूर्णिमाकी रातमें
पूर्व चन्द्रमा राहुके प्रास बन गये हैं ॥ १९५३ ॥

ततस्तस्या नखैस्तीक्ष्णैर्मर्माण्युत्कृत्य पालरः ॥ १९६ ॥
लपपाताय वेगेन मनाःसम्पातसिद्धिमाः।

मुकमें प्रवेश करके उन बानरवीरने अपने तीले
नखोंसे उरु राक्षसीके मर्मस्त्राणोको विदीर्ण कर डाला।
इसके पश्चात् वे मनके समान गतिसे उरुकाकर वेगपूर्वक
भार लिफक आये ॥ १९६३ ॥

तां तु विद्वद्या च भूत्या च वाङ्मिथ्येन निपात्य स्तः ॥ १९७ ॥
कपिप्रवीरो वेगेन यक्ष्ये पुनरामघान्।

देवके अनुग्रह, स्वामाधिक धैर्य तथा क्रौर्यके उरु
राक्षसीको मारकर वे मनस्वी बानरवीर पुनः वेगसे बढ़कर
बढ़े हो गये ॥ १९७३ ॥

इतद्वत्सा हनुमता पपात विधुराम्भसि।
खयंमुषैव हनुमान् सृष्टस्तस्या निपातने ॥ १९८ ॥

हनुमान्नीने प्रानोके आभयभूत उरुके हृदयसकको
ही नष्ट कर दिया; अतः वह प्राणहृत्य होकर सृष्टिके कर्म
गिर पड़ी। निपातने ही उरुके मार गिरनेके दिने हनुमान्नीको
निमित्त बन्द्या था ॥ १९८ ॥

तां हतां वानरेणानु पतिता वीक्ष्य सिद्धिकाम्।
मृताम्बाकाश्याशरीणि तमुष्णुः ध्रुवगोचमम् ॥ १९९ ॥

उन बानरवीरके द्वारा शीघ्र ही मारी जाकर सिद्धि
कर्म गिर पड़ी। यह देख आकाशमें विचलनेवाक प्रानो
उन कपिभेदके बोधे— ॥ १९९ ॥

भीममद्य कृतं कर्म महत्सख्य स्यया इतम्।
साधपार्यमभिप्रेतमरिष्टं ध्रुवता पर ॥ २०० ॥

कपिबर। हुमने बर बड़ा ही मर्मकर कर्म किया है,
जो इत निपातकाव प्राणीको मार गिया था। अतः हुम
बिना किसी विप्ल-बाधाके अपना अभीष्ट कर्म सिद्ध
करो ॥ १ ॥

यस्य स्येताणि स्यत्यारि बानरेन्द्र पया लव।
पृतिचष्टिमसिद्धीक्ष्य स कर्मसु न सीवृति ॥ २०१ ॥

बानरेन्द्र। विरत पुत्रयमें हुमने समान धैर्य उरु बुद्धि
और कुशलता—ये चार गुण होते हैं, उरु अपने कर्ममें
कभी अलक्ष्य नहीं होती ॥ २ ॥

स तैः सम्पूजितः पूज्यः प्रतिपद्यप्रयोजनैः।
जगामाकाशमाविष्य पद्मगाशनपत् कपिः ॥ २०२ ॥

इस प्रकार अपना प्रयोजन सिद्ध हो करनेके उन आकाश-

शरी प्राविर्णे हुमान्जीका बडा छकार किया । इत्के बाद वे आकाशमें चढ़कर गरुड़के समान बेगते चलने लगे ॥ १ ॥

मातृभूविष्टपारस्तु सर्वतः परिच्छोकयन् ।
पोन्नानां घातस्याप्ये यनराजीं दूर्घां सा ॥ २०३ ॥
हो पोन्नके मन्त्रमें प्रायः समुद्रके पार पहुँचकर बर बन्होंने सब ओर दृष्टि डाली, ठब उन्हें एक ही-मती बन-मेकी दिखानी दी ॥ २ ॥

दूर्घां च पतन्वे च विविधद्रुमभूषितम् ।
द्वीप शालामृगप्रभो मलयोपयतामि च ॥ २०४ ॥

आकाशमें उड़ते हुए ही शालामृगोंमें भेड़ हुमान्जीने भौंठि-भौंठिके बुरोसे सुगोमित कड़ा नामक द्वीप देखा । उत्तर तरफ़ी भौंठि समुद्रके दक्षिण तरपर भी मलय नामक पर्वत और उसके उपवन दिखानी बिये ॥ २ ॥

सागर सागरानूपाम् श्यगपानूपजाम् हुमान् ।
सागरस्य च पक्षीनां मुञ्जाम्यपि किञ्चिद्रूपम् ॥ २०५ ॥

समुद्र, सागल्लरकी बनप्राय देव तथा बहों ठो हुए इष्ट एवं सागररानी हरिताम्योके मुनानोके भी उन्होंने देखा ॥ २ ॥

स महामेघसङ्घातं समीक्ष्यात्मानमाभवान् ।
निदन्मन्त्रमिवाकाशं चकार मतिमान् मतिम् ॥ २०६ ॥

मन्त्रके पद्यमें रत्ननेवाणे बुद्धिमान् हुमान्जीने अपने शरीरको महान् मेघोंकी घटाके समान विद्याक तथा आकाश-को ब्यस्त करवा-सा देस मन-ही मन इष्ट प्रकार विचार किया—॥ २ ॥

अथपुनरि प्रयेगं च मम हृद्वै पक्षसाः ।
मयि कौरुह्यं कुयुरिमि मेमे महामतिः ॥ २०७ ॥

‘महो ! मेरे शरीरकी विद्याकता तथा मेरा यह तीव्र वेग देखते ही पक्षियोंके मनमें मेरे प्रति बड़ा कौरुह्य होगा—वे मेरा मेरा बाननेके छिन्न ठसक हो जयेंगे । परम बुद्धिमान् हुमान्जीके मनमें यह भावना पक्षी हो गयी ॥ २ ॥

तदा शरीरं सस्त्रियं तन्मदीकरसंनिभम् ।
पुनः प्रकृष्टिमापदे वीतमोह इत्यात्मजान् ॥ २०८ ॥

मनली हुमान् अपने पर्वताकार शरीरको संकुचित करके पुनः अपने बाह्यिक स्वरूपमें स्थित हो गये । ठीक उही तरह जेधे मनको बधमें रत्ननेवाला मोहरहित पुरुष अपने मूक स्वरूपमें प्रतिष्ठित होता है ॥ २ ॥

तद्रूपमविसस्त्रियं हनुमान् प्रकृष्टी रित्वाः ।
धीन् कामानि च विदम्य बलिपीयहो इति ॥ २०९ ॥

हृत्पार्वे जीमत्ताभापने बाबभौकीये अद्विकान्ये सुन्दरकाशमें प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

जैठ बलिंके पराक्रमसम्बन्धी अभिमानको हर केनेकके भीरुतिने विपट् रूपसे तीन पदा चढ़कर तीनों कोकोच नर केनेके परमात् अपने ठठ स्वरूपको छोट किया था, उधे प्रकार हुमान्जी समुद्रको ध्वज चनेके बाद अपने ठठ विद्याक रूपको संकुचित करके अपने बाह्यिक स्वरूपमें स्थित हो गये ॥ २०९ ॥

स साधनागविधरूपधारी
पर समासाद्य समुद्रतीरम् ।
परैरदास्यं प्रतिपन्नरूपः
समीक्षितात्मा समयक्षिताधः ॥ २१० ॥

हुमान्जी बड़े ही सुन्दर और नाना प्रकारके रूप धारण कर लेते थे । उन्होंने समुद्रके दूधरे तटपर, जहाँ दूधरोंक पहुँचना सम्भव था, पहुँचकर अपने विद्याक शरीरकी ओ दृष्टिपाठ किया । फिर अपने कर्त्तव्यका विचार करके ठोटा व रूप धारण कर लिया ॥ २१ ॥

ततः स छन्दस्य गिरेः समुद्रे
विशिष्टकूटे नियपात कूटे ।
सकेतकोबूदाकनारिकेके
महाभकूटप्रतिमो महारामा ॥ २११ ॥

महान् मेघ-समूहके समान शरीरवाले महात्मा हुमान्जी केबड़, कलड़े और नारियलके बुरोसे विभूषित सम्पर्वतके विविध ऋषु शिकरोंके महान् कम्बुद्विधाकी शृङ्गपर मूक पड़े ॥ २११ ॥

ततस्तु सम्प्राप्य समुद्रतीर
समीक्ष्य कर्तुं गिरिवर्षमूर्ध्नि ।
अपिस्तु तस्मिन् निपपात पर्वते
विधूय रूपं व्यधयन्सुगञ्जिजान् ॥ २१२ ॥

तदनंतर समुद्रके तटपर पहुँचकर वहाँसे उन्होंने एक भेड़ पर्वतके शिखरपर बली हुई सङ्घाको देखा । देखकर अपने परके रूपको तिरोहित करके वे बानरबीर बहोंके पशु-पक्षियोंको ज्ञपित करते हुए उही पर्वतपर उतर पड़े ॥ २१२ ॥

स छागरें प्राणवपभ्रगायुतं
बद्धेन विदम्य महोर्मिमाद्यिनम् ।
निपयय तीरे च महोदधेस्तदा
बर्षां छद्राममरावतीमि च ॥ २१३ ॥

इत प्रकार धानकों और धोसे मरे हुए तथा बड़ी-बड़ी तट्याक तट्याकवाक्यसे बर्षकृत महासमरको बहपूर्वक कोफर के तटके तटपर उतर गये और अमरावतीके लगन सुगोमित कड़ापुयीकी शोभा देखने लगे ॥ २१३ ॥

द्वितीय सर्ग

लङ्कापुरीका वर्णन, उसमें प्रवेश करनेके विषयमें हनुमान्जीका विचार, उनका लघुरूपसे पुरीमें प्रवेश तथा चन्द्रोदयका वर्णन

स सागरमनापृष्यमतिक्रम्य महावला ।
 विह्वलस्य तट लङ्कां स्थितः स्वस्थो ददर्श ॥ १ ॥

म्याकमी हनुमान्जी अकङ्कनीय समुद्रको पार करके
 विह्वल (अन्व) नामक पर्यंतके क्षिप्रकर स्वस्थ मानते सब
 ही लङ्कापुरीकी ओम्न देखने लगे ॥ १ ॥

ततः पादपमुक्तन पुष्पबयैव वीर्यवान् ।
 बभिवृष्टस्ततस्तत्र बभौ पुष्पमयो हरिः ॥ २ ॥

उस समय उनके ऊपर बहो वृक्षोंसे सबे हुए फूलोंकी
 बरसात होने लगी । इच्छते बहो बैठे हुए पशुकी हनुमान्
 फूलके बने हुए बानरके समान प्रतीत होने लगे ॥ २ ॥

पोजनार्तां शत श्रीमांस्तीर्त्वाप्युत्तमविक्रमा ।
 मन्विष्यसन्न कपिस्ताम न प्लानिमधिपञ्चति ॥ ३ ॥

उत्तम पराक्रमी श्रीमान् बानरबीर हनुमान् छौ योग्य
 वस्तु खोजकर भी बहो खंबी खँध बहो खीच रहे थे और
 न प्लानिका ही अनुभव करते थे ॥ ३ ॥

शतस्यार्हं पोजनार्तां क्रमेयं सुवह्वस्यपि ।
 किं पुनः श्यगरत्स्यान्तं सचकार्यां शतयोजनम् ॥ ४ ॥

उच्छते वे वह खोजते थे, मैं छौ-छौ खोजनेके बहुत-से
 वस्तु खँध सफ़ा हूँ फिर इत गिने-गिनाये छौ खोजन
 समुद्रको पार करना कौन बड़ी बात है ॥ ४ ॥

स तु वीर्ययतां अष्टः सूषतामपि चोत्तमः ।
 जगाम वेगवौह्वतां कङ्कयित्वा महोदधिम् ॥ ५ ॥

बलवान्तोमै अष्ट तथा बानरोंमें उत्तम वे वेगवान् पवन-
 कुम्भर महाशरको खोजकर भी ही लङ्कामें जा पहुँचे ॥ ५ ॥

पादुक्तामि च नीळानि गन्धवन्ति यमानि च ।
 मधुमन्ति च मध्येन जगाम मगदन्ति च ॥ ६ ॥

रातेमें ही ही वृक्ष और वृक्षोंसे भरे हुए मकरन्द
 हूँ सुगन्धित बन देखते हुए वे मम्ममार्गसे जा रहे थे ॥ ६ ॥

वीक्ष्य च तदसंख्यताम् वनराजीव पुष्पिताम् ।
 अभिचक्ष्य म तेजस्यी हनुमान् सुवर्गार्थम् ॥ ७ ॥

उसकी बानरशिरोमणि हनुमान् वृक्षोंसे आच्छादित
 पत्तों और फूलोंसे मरी हुई बन-भेजियोंमें विचरने
 लगे ॥ ७ ॥

स तस्मिन्पथे तिष्ठन् यगाम्युपवनानि च ।
 स नगामे स्थित्वा लङ्कां ददर्श पवनामयम् ॥ ८ ॥

उस पर्यंतपर स्थित हो पवनपुत्र हनुमान्ने बहुत-से बन

और उपवन देखे तथा उठ पर्यंतके अग्रभागमें बड़ी हुई
 लङ्काकी भी अवलोकन किया ॥ ८ ॥

सख्ताम् कर्णिकाराद्य खर्जूंदाश्च सुपुष्पितान् ।
 मियालान् मुकुलित्वांश्च कुटमान्केतकानपि ॥ ९ ॥

मियलान् मुकुलित्वांश्च कुटमान्केतकानपि ॥ ९ ॥

मियलान् गन्धपूर्णांश्च मीपान् ससत्तल्लवांस्तथा ।
 असनान् कापिपारद्विष करवीर्यांश्च पुष्पितान् ॥ १० ॥

पुष्पभारनिषकाश्च तथा मुकुलितानपि ।
 पाषपान् विहगपकीपान् पयलाभूतमस्तकाम् ॥ ११ ॥

उन कपिभयने बहो खरक (चीर), कनेरु खिसे
 हुए खरक, मियाल (चिरींजी), सुपुष्पित (बम्बीरी नीबू),
 कुटक, केतक (केसरे), सुगन्धपूर्ण मियल (सिन्धुली),
 नीप (कदम्ब या मणोक) क्षिप्रवन, अघन काविदार
 तथा खिसे हुए करवीर भी देखे । फूलोंके भारसे छरे हुए
 तथा मुकुलित (अपविसे) बहुत-से वृक्ष उन्हें दृष्टिगन्ध
 हुए, बिनमें पची भरे हुए थे और इनके शोकैस बिनकी
 शक्तिमें लस रही थीं ॥ ९—११ ॥

हंसकारप्लवाकीर्णां वापीः पद्मोत्पलसूताः ।
 बाह्यीकान् विविधान् रम्यान् विविधांश्च सजाशयान् ॥

हँसों और कारप्लवोंसे ज्वात तथा कमल और उत्पलसे
 आच्छादित हुई बहुत-सी वापीकान्, भौति-भौतिके रमणीय
 श्रीवस्तान तथा नाना प्रकारके बजाशय उनके दृष्टिपथमें
 आये ॥ १२ ॥

सततान् विविधैर्दृशैः सद्यस्तुंफलपुरिपतैः ।
 बघानामि च रम्याणि दृश्यां कर्षयुञ्जरः ॥ १३ ॥

उन बजाशयोंके चारों ओर सभी शूद्रभागमें फल फूल
 देनेवाले अनेक प्रकारके वृक्ष देखे हुए थे । उन पत्तन
 धिरोमन्निने बहो बहुत-से रम्याय बघान भी देखे ॥ १३ ॥

समासाद्य च लक्ष्मीर्वाह्वतां रावणपारान्तराम् ।
 परिखाभिः सपथाभिः सत्पत्न्याभिरलं कृताम् ॥ १४ ॥

सीतापहरणाम् तेन रावणेन सुरक्षिताम् ।
 समन्ताद् विचरत्तद्विष राक्षसैरुग्रधन्विभिः ॥ १५ ॥

अवसुत योगेशे तम्यन् हनुमान्जी चौरचौर रावण
 पश्चि चन्द्रपुरीके पास पहुँचे । उरक चारों ओर चुनी हुई
 साहसों उठ नगरीकी छाया पड़ा रही थी । उनमें उत्पल
 और पद्म आदि कई जातियोंके कमल खिसे थे । सीताको
 हर करनेके कारण रावणने लङ्कापुरीकी रक्षापर विशेष प्रयत्न
 कर रक्खा था । उरके चारों ओर मयकर बहुत बाल्य
 करनेवाले राक्षस दूम्ने रहते थे ॥ १४ १५ ॥

काञ्चनेनाप्लुता रम्यां प्राकारेण महापुरीम् ।
पुष्टैश्च गिरिसंकाशौ शारदास्तुवसंभिः ॥ १६ ॥

यह महापुरी सोनेकी बहारहीवारीके बिनी हुई थी तथा
पर्वतके समान ऊँचे और शब्द-शुद्धके बादलोंके समान बनेत
मन्त्रोंके मरी हुई थी ॥ १६ ॥

पाण्डुराभिः प्रतोलीभिश्चाभिरभिसङ्गताम् ।
महालक्ष्मशताक्षीणां पताकाप्यजशोभिताम् ॥ १७ ॥

स्वेत रंगकी ऊँची-ऊँची लकड़के उस पुरीको सब मोरसे
भेरे हुए थी । लकड़ों महाशिकारों परों घोस पा रखी थी
तथा फहरती हुई पताका-पताकाएँ उस नगरीकी शोभा बढ़ा
रही थी ॥ १७ ॥

तारण्याः काञ्चनैर्विष्णुसंतापकृत्कविरामितैः ।
वदनां हनुमौल्लङ्घां देवो देवपुरीमिव ॥ १८ ॥

उसके बाहरी घटक सोनेके बने हुए थे और उनकी
दीवारें हवा देवोंके विश्वके सुषोभित थी । हनुमान्जीने उन
घटकमेंसे सुषोभित लकड़ोंके उठी प्रकार देखा; जैसे कोई
देवता देवपुरीका निरीक्षण कर रहा हो ॥ १८ ॥

गिरिमूर्धनि स्थितां लङ्गां पाण्डुरैर्मघनैः क्षुभैः ।
दृष्ट्वा स कपिः श्रीमाम् पुरीमाकाशशाम्भिव ॥ १९ ॥

उकली कपि हनुमान्ने सुन्दर दृष्ट करके सुषोभित
और पर्वतके शिखरपर स्थित लकड़ोंके इस तरह देखा मानो
यह आकाशमें विचरनेवाली नगरी हो ॥ १९ ॥

पाकितां राक्षसघ्नेषु निर्मितां विश्वकर्मणा ।
सुवमानामियाकाशे दृष्ट्वा हनुमान् कपिः ॥ २० ॥

कविबर हनुमान्ने विश्वकर्माद्वारा निर्मित तथा राक्षस-
राज रावणद्वारा सुसज्जित उक्त पुरीको आकाशमें देखी-
थी देखा ॥ २० ॥

चमप्राकारजघनां यिषुखाम्बुवभारवरात् ।
शतध्नीशुद्धकदास्तामहालक्ष्मयतंसवाम् ॥ २१ ॥
ममसय हृतां लङ्गां निर्मितां विश्वकर्मणा ।

विश्वकर्माकी बनायी हुई लङ्का मानो उनके मानसिक
सम्पत्तियोंके रची गयी एक सुन्दरी लकी थी । बहारहीवारी
और उठके मीठारकी देवी उठकी बचनसूत्री ज्ञान
पदवी थी समुद्रका शिखर बरुणधि और इन उठके
ब्रह्म म शतधनी और एक नामक भ्रम ही उठके कैच थे
और बड़ी-बड़ी आभिकारों उठके सिन्धे कपभूषण ही मरीत
हो रही थी ॥ २१ ॥

द्वारमुत्तरमासाद्य खिप्तयामास यामराः ॥ २२ ॥
कटासनिष्पन्नप्रथममस्त्रिगतामियाम्बरम् ।

धियमाणमियाकाशमुत्पिष्टैर्भयमोक्तमैः ॥ २३ ॥
उक्त पुरीके उत्तर द्वार पर पहुँचकर बानरबीर हनुमान्की
विश्रामे पद गये । यह द्वार केवल पर्वतपर बनी हुई

मन्त्रपुरीके बहिर्द्वारके समान ऊँचा था और आकाशमें
रेखाकी सीन्का जान पड़ता था । ऐसा जान पड़ता था
मानो अपने ऊँचे-ऊँचे प्राणोंपर आकाशको उठा
रक्ता है ॥ २२ २३ ॥

सम्पूर्णा राक्षसेश्वरैर्लौकैर्भोगवतीमिव ।
अचिन्त्यां सुकृतां स्वर्धां कुबेरायमुचितां पुत्र ॥ २४ ॥
दृष्ट्वाभिर्बहुभिः शूरेः दृष्टवद्विद्यापविभिः ।
रक्षिता राक्षसेश्वरैर्गुह्यामाप्तीविधैरिव ॥ २५ ॥

लङ्कापुरी ममानक राक्षसोंसे उठी तरह मरी थी; जैसे
पाताककी भोगवतीपुरी नगरीसे मरी रहती है । उनको
निर्माणकर्म अचिन्त्य थी । उठकी रचना सुन्दर बंगले
की गयी थी । यह हनुमान्कीको स्पष्ट दिखानी देती थी ।
पूर्वकर्मने साक्षात् कुबेर परों निराश्र करके थे । हाथों एक
और पहिच सिन्धे बड़ी-बड़ी दाकोंवाले बहूत-से धरतीर फेर
रखत लङ्कापुरीकी उठी प्रकार रक्षा करते थे; जैसे विचर
सर्व अपनी पुरीकी करते हैं ॥ २४ २५ ॥

तस्यादक्ष महतीं गुप्तिं सागरं च निरीक्ष्य सः ।
रायण च रिपु शेरं चिन्तयामास यामराः ॥ २६ ॥

उक्त नगरकी बड़ी मरी शोकी उठके शरों और
समुद्रकी सारों तथा रावण-जैसे मन्कर एतुको देखकर
हनुमान्की इस प्रकार विचारने लगे— ॥ २६ ॥

भयतस्यापीह हरयो भविष्यन्ति निरर्थकाः ।
नहि युजेन वै लङ्का शक्या जेतुं क्षुरैरपि ॥ २७ ॥

यदि बानर यहँतक भा शरों तो भी वे स्वर्ष ही निक
होंगे; क्योंकि युद्धके द्वारा देवता भी लङ्कापर विजय नहीं पा
सकते ॥ २७ ॥

इमां स्वविषमां लङ्कां युगां रावणपाठिताम् ।
प्राप्यापि सुमहाबाहुः किं करिष्यति रायणा ॥ २८ ॥

जितवे बद्धकर विषम (संकटपूर्ण) स्थान और शेरों
नहीं है; उक्त रावणपाठित इत युगम लङ्कामें आकर महाबाहु
भीरुपुत्रावकी भी क्या करेगा ? ॥ २८ ॥

अयत्नशो न साम्मस्तु राक्षसेष्वभिगम्यते ।
न दातस्य न भेदस्य नैव युद्धस्य हृदयते ॥ २९ ॥

प्राणशेषपर सामन्तिके प्रयोगके सिन्धे तो शेरों
गुंभारण ही नहीं है । इनपर दान भेद और युद्ध
(रुद्ध) नीतिक प्रयोग भी लपक होता नहीं
दिलानी देता ॥ २९ ॥

अनुजामेष दि गतिचामराणां तदसिनाम् ।
धाडिपुत्रस्य नीलस्य मम राक्षस्य धीमताः ॥ ३० ॥

परों चार ही देवाणी बानरोंकी पहुँच हो लपकी
है—शक्तिपुत्र अन्नरकी, नीलकी, मेरी और सुदामान्,
राज सुभीरकी ॥ ३ ॥

पाषाणानामि वैदेहीं यदि जीयति वा न वा ।
 तत्रैव चिन्तयिष्यामि हृष्टा ता जनकाम्भोजाम् ॥ ३१ ॥
 भ्रम्या परले यह तो पता धुआँ कि बिदेहकुमारी
 वीधा जीवित है या नहीं । जनककिशोरीका दर्शन करनेके
 पन्ना ही मैं इत विषयमें कोइ विचार करूँगा ॥ ३१ ॥
 ततः स चिन्तयामास सुहृते कपिकुञ्जरः ।
 गिरे भ्रष्टे म्बितस्तस्मिन् रामस्याभ्युद्य ततः ॥ ३२ ॥
 वनम्तर ठस फँत विसरपर कड़े हुए कपिभेद इनुमानजी
 भौपयन्त्रकीके प्रसुरवके छिपे सीताकीका पता धुआँके
 उक्तर पर वहीतक विचार करते रहे ॥ ३२ ॥
 मनेन रूपेण मया न दाक्ष्या रक्षसां पुरी ।
 प्रवेष्टुं राक्षसैर्गुहा कूरैरक्षसमण्डितैः ॥ ३३ ॥
 उन्होंने सोचा— मैं इस रूपसे राक्षसोंकी इस नगरीमें
 प्रवेश नहीं कर सकता क्योंकि बहुतसे कूर और बध्मन्
 उष्ण इन्की रखा कर रहे हैं ॥ ३३ ॥
 महादेवसो महावीर्या बलवन्तदख राक्षसाः ।
 बन्धीया मया सर्वे जानकी परिमार्गता ॥ ३४ ॥
 प्लानकीकी कोज करते समय मुझे अपनेको छिपानेके लिये
 शरीके लनी महादेवकी महापराक्रमी और बध्मन् राक्षसोंके
 भौल बन्धी होगै ॥ ३४ ॥
 पश्यालक्षणेण रूपेण राज्ञी छद्मापुरी मया ।
 प्रातःकाले प्रवेष्टुं मे कृत्य साधयितुं महत् ॥ ३५ ॥
 भ्रम्य मुझे राक्षिके समय ही नगरमें प्रवेश करना
 करिसे और सीताका बन्धेवणरूप यह महान् समयोचित
 फर्न सिद्ध करनेके लिये ऐसे रूपका भाषय देना चाहिये,
 जो भौलके देला न आ सके । केवल कार्यके वह अनुमान
 तो कि कोई भाङ्ग था ॥ ३५ ॥
 तां पुरीं नाहसीं हृष्टा तुराधर्यां सुराधुरी ।
 इत्यांश्चिन्तयामास त्रिभिःभ्यस्य सुहृसुहृः ॥ ३६ ॥
 देवताओं और अनुरोंके लिये भी दुर्बल वैधी
 कुरापुरीके देमकर इनुमानजी बारंबार लंबी लीप लीचते
 हुए तो विचार करने लगे— ॥ ३६ ॥
 कथमायेन पदपथ मैथिलीं जनकाम्भोजाम् ।
 महद्ये राक्षसैर्गुण रायणेन तुरारमसा ॥ ३७ ॥
 किस उपायसे काम लूँ जिससे तुरारमा गधतया
 एकरही इतिसे कोइक रहकर मैं मिलिसेधनरिदनी जनक
 किशोरी कीताका दर्शन प्राप्त कर लूँ ॥ ३७ ॥
 न विनश्येत् कथ कार्ये रामस्य चिद्रितारमनः ।
 पञ्चमस्कन्तु पदपथ रक्षित जनकाम्भोजाम् ॥ ३८ ॥
 भिन्नरीतिसे कार्य किया कथ जिससे कपिकुञ्जर
 भौपयन्त्रकीका काम भी न बिगड़े और मैं पञ्चमके
 मनेकी जनकीकीके मंत्र भी कर दूँ ॥ ३८ ॥

भूतादृशार्था विमद्यन्ति देशकालविरोधिताः ।
 विह्वय वृत्तमासाद्य तमः सूर्योदये यथा ॥ ३९ ॥
 कई बार कातर मयवा अविशेषपूर्ण कार्य करनेवाले
 वृत्तके हायमें पड़कर देश और कालके विपरीत व्यवहार
 होनेके कारण बने बनाये काम भी ठठी तरह बिगड़ जाते
 हैं, जैसे सूर्योदय होनेपर अन्धकार नष्ट हो जाता है ॥ ३९ ॥
 अर्धार्थार्थगते बुद्धिमिदिधत्तापि न शोभते ।
 प्रातःपन्थीह कर्त्तार्यपि वृताः पण्डितमानिनः ॥ ४० ॥
 प्रातः और मन्त्रियोंके हाथ निश्चित किया हुआ
 कर्त्तव्यकर्त्तव्यविषयक विचार भी किसी अविशेषी वृत्तका
 भाषय देनेसे शोभा (सफ़लता) नहीं पाता है । अपनेको
 पण्डित माननेवाले अविशेषी वृत्त काय काम ही चौपट
 कर देते हैं ॥ ४० ॥
 न विनश्येत् कथ कार्ये वैकल्प्य न कथ भयेत् ।
 छद्मं न स मुद्रस्य कथ तु न भयेत् घृथा ॥ ४१ ॥
 धक्का तो किस उपायका अन्धकार करनेसे स्वामीका
 कथ नहीं बिगड़ेगा मुझे धक्का या अविशेष नहीं
 होगा और मेरा यह अनुद्रका सौपना भी धर्म नहीं होने
 पायेगा ॥ ४१ ॥
 मयि दृष्टे तु रक्षोभी रामस्य चिद्रितारमनः ।
 भवेत् प्यथमिद् कार्ये रावणानयमिच्छता ॥ ४२ ॥
 यदि राक्षसोंने मुझे देला किया तो रावणका अनर्थ
 पानेवाले उन विष्णुपाठनामा भक्तान् भीयमका यह काय
 सफल न हो सकेगा ॥ ४२ ॥
 नदि शक्यं क्वचित् स्यानुमयिजातेन राक्षसैः ।
 अपि राक्षसरूपेण किमुताम्भेन केमचित् ॥ ४३ ॥
 यहाँ वृत्तके किसी रूपकी तो बाव ही क्या है राक्षसका
 रूप धारण करके भी राक्षसोंके अज्ञात रहकर श्री उदरना
 मतम्भर है ॥ ४३ ॥
 वायुरप्यत्र नाशाठदृशरेविति मतिमम ।
 नक्षत्राविविध किञ्चित् रक्षसां भीमकामणाम् ॥ ४४ ॥
 भ्रम्य तो देला विश्वास है कि राक्षसोंके छिपे रहकर
 वायुके भी इत पुरीमें विचरण नहीं कर सकते । यहाँ कई
 भी ऐसा स्थान नहीं है जो इन मयकर कम करनेवाले
 राक्षसोंको ज्ञात न हो ॥ ४४ ॥
 इहाह पदि तिष्ठामि स्थेन रूपेण सद्यः ।
 बिनाशामुपयास्यामि भर्तुरेचदख हास्यति ॥ ४५ ॥
 यदि यहाँ मैं अपने इस रूपसे छिपकर भी दृष्टा तो
 माय बाऊँगा और मेरे स्वामीक कार्यमें भी रामि
 पड़ूँगी ॥ ४५ ॥
 तद्द स्थन रूपेण रक्षसां दृश्यता गतः ।
 सद्गामपिपतिष्यामि राघवस्यापसिद्धये ॥ ४६ ॥

भ्रतः मी श्रीरघुनायकीका कार्यं स्थि करनेके लिये
उठमें अपने इली रूपसे छोटा-सा शरीर धारण करके
लङ्कामें प्रवेश करनेका ॥ ५१ ॥

राज्यस्य पुरीं राज्ञी प्रविश्य सुदुर्गासयाम् ।
प्रविश्य भवन् सर्वे प्रक्षयामि जत्रकामसाम् ॥ ५७ ॥

जबकि राजकीये इह पुरीमें जाना बहुत ही कठिन है
तथापि गतके इनके भीतर प्रवेश करके सभी बरोंमें सुखकर
मैं जान लीकीकी लोभ करनेका ॥ ५७ ॥

इति निदिधृत्य हनुमान् सूर्यस्यास्तमय कपिः ।
भासकाम्हे तदा धीरो वैदृक्षा दर्शनोत्सुकः ॥ ५८ ॥

ऐसा निश्चय करके नीर बानर हनुमान् विदेहनन्दिनीके
दर्शनके लिये उत्सुक हो उठ समय सर्वाकाशी प्रतीक्षा
करने लगे ॥ ५८ ॥

सूर्ये जास्त गते राज्ञौ वेह सक्षिप्य मायतिः ।
वृषदाकमाजोऽथ बभूवाद्भुतदर्शनः ॥ ५९ ॥

सूर्यास्त हो जानेपर गतके समय ठन पवनकुमारने
अपने शरीरको छोटा बना लिया । वे बिलीके बराबर होकर
मध्यन्त अद्भुत दिक्कामी बने लगे ॥ ५९ ॥

प्रशोपकाले हनुमांस्तुपुत्रकप्य धीयथात् ।
प्रविशया पुरीं रम्भां प्रविभक्तमहापयाम् ॥ ५० ॥

प्रशोपकालमें पराक्रमी हनुमान् तरत ही उड़कर उठ
रमकीम पुरीमें घुस गये । वह नगरी दृषक-दृषक बने हुए
पोड़े और विघाब राजमार्गोंसे सुशोभित थी ॥ ५० ॥

प्रासादमालाधितता स्तम्भैः काञ्चनसंसिम्भैः ।
शाठकुम्भनिभैर्जाडैर्गर्घयन्गरोपमाम् ॥ ५१ ॥

उठमें प्रासादोंकी संकी पकियों दूरक देखी हुई
थी । सुन्दर रंगके लम्बों और सोनेकी शालियोंसे निर्भूषित
बड़े-बड़े गन्धवनगरके समान रमणीय प्रकृत होती थी ॥

सप्तभीमाष्टभौमैश्च स दूर्ध्वं महापुरीम् ।
तठैः स्फटिकसन्दीपैः कार्त्तव्यरश्मिभूषितैः ॥ ५२ ॥

देवदूयमभिजिमेश्च मुक्ताजाडबिभूषितैः ।
तैस्तेः शुशुभ्रिरे तानि भवनाग्यत्र रक्षसाम् ॥ ५३ ॥

हनुमान्कीने उठ विशाल पुरीके अठमहले
सप्तमौ और सुवचनद्वित स्वदिक मणिकी पत्रोंसे सुशोभित
देवा । उनमें देवदूर्ध्व (नीलम) भी बने गव दे किलो
उनकी विभिन्न शोभा होती थी । शेरियोंकी शक्तिमें भी
उन महलोंकी शोभा बढ़ाती थी । उन ठबके कारण राजकीके
वे मयन बड़ी सुन्दर शोभने सम्पन्न हो रहे थे ॥ ५२ ५३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्वायमणे कश्मीरीये श्यादिकाय्ये सुन्दरकाव्ये द्वितीया सर्गाः ॥ २ ॥

इस चन्द्र श्रीरघुनायकीके आरम्भायत्र नदीकाय्यके सुन्दरकाव्यमें दूसरा सर्ग पूरा हुआ ॥ २ ॥

काञ्चनामि विधिप्राणि तोरणानि धरक्षसाम् ।
उद्गामुद्योतयामासुः सर्वता समर्षहताम् ॥ ५४ ॥

शोनेके बने हुए विभिन्न प्रकार के उब भोगसे सभी दुर्
राखोंकी उठ मद्भाको और भी उठीत कर रहे थे ॥ ५४ ॥

अधिप्यामद्भुताकारां दृष्ट्वा लङ्कां महाक्षयि ।
आसीत् विपण्यो हृष्टश्च धैरेया दशानेरसुकः ॥ ५५ ॥

ऐसी अधिन्य और अद्भुत आकारवाली लङ्काके
देखकर महाक्षयि हनुमान् विग्राहमें पड़ गये । परंतु बान्सी-
कीके दर्शनके लिये उनके मनमें बड़ी उत्कण्ठा थी, इतलिये
उनका हर्ष और उत्साह भी कम नहीं हुआ ॥ ५५ ॥

स पाण्डुरापिद्यविग्राममालिनीं
महार्द्रजाम्भुनवजाडतोरणाम् ।

यशस्विनीं रावणबाहुपालिता
क्षपाचरेभौमबद्धैः सुपान्निताम् ॥ ५६ ॥

परस्पर लटे हुए श्वेतवर्णके सतमकिले महलोंकी
पकियों लङ्कापुरीकी शोभा बढ़ा रही थी । बहुभूषण जाम्भुन
नामक सुवर्णकी शालियों और वन्दनवारोंसे बहोके पुरीकी
सजाया गया था । मयंकर बजाताये नियन्त्र उठ पुरीकी
अच्छी तरह रक्षा करते थे । राजकीके कानुनको भी वह
सुशोभित थी । उठके यथाकी स्थापित सुदूरतक फैली हुई थी ।
ऐसी लङ्कापुरीमें हनुमान्कीने प्रवेश किया ॥ ५६ ॥

चन्द्रोऽपि साधिव्यमिवास्य कुर्त्त-
स्तागराजैर्मध्यगतो विराजन् ।

म्योरस्ताधितानेन बितत्य श्लेष्वा
मुचिष्ठतेऽमकसहस्ररश्मिः ॥ ५७ ॥

उठ समय तारागणोंके साथ उनके शरीरमें विराजमान
मनेक सहस्र किरणोंवाले चन्द्रके भी हनुमान्कीकी ज्योत्सना
की करते हुए उनका आकार मन्की बौदनीका शैरो-वा-
तानकर उदित हो गये ॥ ५७ ॥

शङ्कामनं शीरमुपाल्लवर्णं
मुद्गच्छमानं स्पदभासमानम् ।

ददर्श चन्द्र स कविप्रभोरः
पोन्दूपमानं सगसीव हसम् ॥ ५८ ॥

बानरोंके प्रमुख नीर भीहनुमान्कीने शङ्ककी थी कालि
तथा हूच और मुकाके वे बचकाले चन्द्रमाके आकारमें
इत प्रकार उदित एवं प्रकटित होने देखा मानो किलो
उठकेलने कोई हंस तेर रहा हो ॥ ५८ ॥

शङ्कामनं शीरमुपाल्लवर्णं
मुद्गच्छमानं स्पदभासमानम् ।

ददर्श चन्द्र स कविप्रभोरः
पोन्दूपमानं सगसीव हसम् ॥ ५८ ॥

बानरोंके प्रमुख नीर भीहनुमान्कीने शङ्ककी थी कालि
तथा हूच और मुकाके वे बचकाले चन्द्रमाके आकारमें
इत प्रकार उदित एवं प्रकटित होने देखा मानो किलो
उठकेलने कोई हंस तेर रहा हो ॥ ५८ ॥

तृतीय सर्ग

लङ्कापुरीका भयलोकन करके हनुमान्जीका विक्षिप्त होना, उसमें प्रवेश करते समय निशाचरी लङ्काका उन्हें रोकना और उनकी मारसे विह्वल होकर उन्हें पुरीमें प्रवेश करनेकी अनुमति देना

स संवशिशारे छिपे छबतोपवर्त्सनिमे ।
 सत्त्वमास्त्रापमेधावी हनुमान् मारुतात्मजा ॥ १ ॥
 निशि लङ्कां महासत्यो विवेश कपिकुञ्जरः ।
 रम्यकाननतोयाख्यां पुरीं रावणपाछिताम् ॥ २ ॥
 जैसे शिखरबासे संव (बिकुट) पर्वतपर वो महान्
 मेनेत्री ध्यके समन बान पकठा या, हनुमान् महाशक्ति-
 क्षयी कपिनेह पवनकुमार हनुमान्ते लणगुणक्य आभय
 के पलके लम्ब रावणपाछित लङ्कापुरीमें प्रवेश किना ।
 ए नगरी सुरम्य वन और लजाधर्मोसे सुषोभित
 थी ॥ ११ ॥

धारवाम्बुधरप्रक्यैर्मघनैरुपशोभिताम् ।
 समारोपमनिर्घोषां सागरानिलछेषिताम् ॥ ३ ॥
 धारकाणके बारबेकी मौति ह्वेत क्षमिषासे सुन्दर
 एन उतभी शोभा बढ़ते थे । वहाँ समुद्रकी गर्बनाके
 मल मम्मौर शम्भ होता रहता था । तारारकी बरौके सुकर
 नेगाकी बापु इस पुरीकी सेवा करती थी ॥ ३ ॥
 पुष्पबलसम्पुष्टां यथैष विरूपाक्षतीम् ।
 आस्तोरचनिर्युवां पाण्डुरशरतोरणाम् ॥ ४ ॥

ए अक्षयपुरीके लमान शक्तिशाकिनी सेनाओंसे
 श्रित थी । उठ पुरीके सुन्दर फरतकोपर मतवाले हाथी
 गेय चले थे । उठ पुरीके अन्तर्हार और बरिहार दोनों ही
 से क्षमिषे सुषोभित थे ॥ ४ ॥
 सुवगाधरितां गुप्तां शुभां भोगवतीमिष ।
 तां सविद्युच्चानकीर्णां स्योतिर्गजनिषेधिताम् ॥ ५ ॥
 बरुमादतनिर्घोषां यथा चाप्यमरावतीम् ।

उठ नगरीकी रथाके छिमे बड़े-बड़े लज्जाका संवारण
 (अना-बाना) हाथ रहता है इतकिमे बह नगरोसे सुरक्षित
 करर मेगवती पुरीके समान बान पकठी थी । अमरावती
 पुरीके लमान वहाँ आकरयक्याके अगुणार बिबकिमोतरित
 केर डाले रहते थे । प्रहो और नक्षत्रोंके शरध विपुर्त हीयोंके
 मरुधसे बह पुरी प्रकाशित थी तथा प्रचण्ड बापुकी ध्वनि
 का कटा रही रहती थी ॥ ५ ॥
 शातकुम्भेभ्य महता प्राकारेणाभिसङ्कताम् ॥ ६ ॥
 किङ्किणीशालघोषाभिः पताकाभिरखड्कताम् ।

धनेके बने हुए विषाक परकोरेसे फिरी हुई लङ्कापुरी
 उठ बरिषाधोकी सनकारसे सुक पताकाभोंकाय अर्धशत
 थी ॥ ६ ॥

गासाध सहसा ह्यः प्राकारमभिषेधियान् ॥ ७ ॥
 विस्मयाविष्टहृदयः पुरीमाछोफय सर्वतः ।
 उठ पुरीके लमीप पहुँचकर हर्ष और उत्साहसे भरे हुए
 हनुमान्की सहसा उदङ्कर उषक परकोरेपर चढ़ गये ।
 वही धम ओरसे लङ्कापुरीका भयलोकन करके हनुमान्की
 का विष्ट आभयोंसे चकित हो उठा ॥ ७ ॥
 आम्बुलक्ष्मयैर्द्वारैर्वैद्युत्कृतभेदिकैः ॥ ८ ॥
 यज्ञस्फटिकमुक्ताभिरम्पिकुङ्किमूपितैः ।
 ततहाटकभ्रिनिर्युद्धैः राजतामलपाण्डुरैः ॥ ९ ॥
 वैद्युत्कृतसोपानैः स्फटिकभ्रतरपांसुभिः ।
 चादसजम्बमोपेतैः समिवोत्पतितैः शुभैः ॥ १० ॥

सुवर्णके बने हुए द्वारोंसे उठ नगरीकी अमूर्ध शोभा
 रही थी । उन सभी द्वारोंपर नीलके चकृतो बने हुए थे ।
 वे लव द्वार हीरों स्फटिकों और मोतियोमे बड़े गये थे ।
 मणिमयी फ्ये उनकी शोभा बढ़ा रही थी । उनफ दोनों ओर
 तनावे सुवर्णके बने हुए हाथी शोभा पाते थे । उन द्वारोंका
 ऊपर माग बाँधीसे निर्मित होनेके कारण स्वच्छ और स्पष्ट
 था । उनकी हीडियों नीलमकी बनी हुई थीं । उन द्वारोंके
 भीतर माग स्फटिक मणिके बने हुए और पूरुठ रजित थे ।
 व सभी द्वार रमणीय शम्भ भवनोंसे सुक और सुन्दर थे तथा
 इतने ऊँचे थे कि आकाशमें उठे हुए-से बाद पड़ते
 थे ॥ ८-१० ॥

कौञ्चयर्षिण्यसुष्टैः राजहसनिषेधितैः ।
 द्याभरपमिर्घोषैः सर्वत परिमादिसाम् ॥ ११ ॥
 वहाँ कौञ्च और मयूरोक ककरभ गूँडत रहते थे उन
 द्वारोंपर राजहस नामक पक्षी भी निवास करत थे । वहाँ
 भौति-भौतिके बाधों और आभुपर्णोंके मयुर ध्वनि होती रहती
 थी बिल्के लङ्कापुरी लव ओरस प्रतिम्बनित हो रही थी ॥ ११ ॥

वस्वोकसारप्रतिमा समीक्ष्य नगरीं गतः ।
 समिवोत्पतितान् लङ्कां जहर्ष हनुमान् कथिः ॥ १२ ॥
 कुंभेरीकी अक्षयपुरी समान शोभा पानेवाची लङ्का नगरी
 बिकुटके शिखरपर प्रतिष्ठित होनेके कारण आकाशमें उठी
 हुई-सी प्रतीत होती थी । उसे देखकर कथिपर हनुमान्को
 बड़ा हर्ष हुआ ॥ १२ ॥
 तां समीक्ष्य पुरीं लङ्कां रासलाभिपतः शुभाम् ।
 मनुचमामुक्तिमतीं चिन्तयामास सीर्यवान् ॥ १३ ॥

राक्षसराजकी यह सुनकर पुरी लड्डा लक्ष्मि उचम और समुद्रिशास्त्रिनी थी । उसे देखकर पराक्रमी हनुमान् इस प्रकार सोचने लगे—॥ ११ ॥

मेयमन्वेम नगरी वाक्या धर्ययितुं बकात् ।
रक्षिता राघवबलैरघटासुभपाणिभिः ॥ १४ ॥

घावणके ऐनिक हायोमै अन्न-राक्ष सिधे इत्त पुरीकी रक्षा करते हैं अतः वृत्ता कोरै बलपूर्वक इत्ते अपने कबू में नहीं कर सकता ॥ १४ ॥

कुमुदाहृदयोर्बापि सुप्रेजस्य महाकरेण ।
प्रसिद्धेय भयेव् भूमिमैव्विभिन्वोरपि ॥ १५ ॥
वियस्यतस्तनुजन्म्य हरेदद्य कुशापवर्षणः ।
श्रद्धस्य कपिमुक्त्वस्य मम वैव गतिमवेत् ॥ १६ ॥

वेवन्न कुमुद, अह्व महाकपि सुप्रेज, मैव, विभिन्न, सर्वपुत्र सुग्रीव, बानर कुशापर्वा और बानसेनाके प्रमुख वीर शुकुलाय काम्बवान्की तथा मेरी भी पहुँच इस पुरीके मीतर हो सकती है ॥ १५ १६ ॥

समीक्ष्य च महाबाहो राघवस्य पराक्रमम् ।
लक्ष्मणस्य च विफान्तमभयत् प्रीतिमान् कविः ॥ १७ ॥

किन् महाबाहु भीराम और लक्ष्मणके पराक्रमप्र विचार करके कविन्न हनुमान्को बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ १७ ॥

तां रस्यसतोपेतां गोष्ठामारायतसिधम् ।
यन्प्रागारस्तमीमृद्धां प्रमशामिष भूयिताम् ॥ १८ ॥
तां नपतिमिरां वीपैभास्वरेभ्य महाप्रदैः ।
नगरीं राजसेन्द्रस्य न दूर्ध्वा महाकपिः ॥ १९ ॥

महाकपि हनुमान्ने देखा राक्षसराज राघवकी नगरी लड्डा बलाभयप्रीते विभूषिता सुन्दरी सुखलीके समस्त धान पड़ती है । रस्यसत परकोटे ही इतकसम्पन्न हैं गोष्ठ (गोष्ठ्याय) पाया पुनरे-पुनरे भवन आभूषण हैं । परकोटोपर लगे हुए पत्थरके षो पद हैं ये हैं । मानो इस लड्डाकी सुखलीक ज्ञान हैं । वह सब प्रकारके समुद्रियात लक्ष्मण है । प्रसन्न वृत्त हीनो और मान् प्रदने परोक्षा अभ्यकार नष्ट कर दिया है ॥ १८ १९ ॥

अथ तां हृदिनाहूत् प्रयित्नां महाकपिम् ।
नगरीं स्यन् रूप्यं दृश्या पयसात्मजम् ॥ २० ॥

तदनन्तर बानरभद्र महाकपि बानरकुमार हनुमान् उन पुरीमें प्रवेश करने लगे । इननेमेरी उस नगरीकी अभिशक्ति देवी लड्डाके अनेक गाम्भाबक रूपमें प्रकट होकर उदरे देना ॥ २० ॥

एत त हरिवर लड्डा लड्डा राघवपात्रिता ।
अपयमशाश्रिता तत्र दिव्यान्मनर्धामा ॥ २१ ॥

बानरभद्र हनुमान्को देना ही राघवपात्रिता लड्डा

स्यं ही उठ लक्ष्मी हुई । उसका मुख देखनेमें बड़ा निश्चय ॥ २१ ॥

पुरस्तात् तस्य वीरस्य वायुसुहोरतिष्ठत् ।
मुक्त्वमाणा महानाम्ब्रवीत् पचनात्मजम् ॥ २२ ॥

वह उन वीर पवनकुमारके सामने लक्ष्मी हो गयी और बड़े भारसे गर्वना करती हुई उनसे इस प्रकार बोली—॥ २२ ॥
कस्त्वं केन च कर्ष्येव इह प्राप्ते घनाख्य ।
कथयस्वहे पत् तस्य पाषाण् प्राणा भरन्ति ते ॥ २३ ॥

पवनचारी बानर । तू कौन है और किस कर्ष्यते का भाया है । तुम्हारे प्राण बचतक बने हुए हैं तबतक ही मैं आनेका जो बयान रहस्य है, उसे ठीक-ठीक बता दो ॥ २३ ॥
न हाक्य स्वखिय लड्डा प्रवेष्टुं वानर त्वया ।
रक्षिता राघवबलैरभिगुता क्षमस्ततः ॥ २४ ॥

‘बानर । राघवकी सेना लक्ष्मीके इस पुरीकी रक्षा करती है अतः निश्चय ही तू इस लड्डामें प्रवेश नहीं कर सकता ॥ २४ ॥

अथ तामप्रवीत् वीरो हनुमानप्रतः स्थिताम् ।
कथयिष्यामि तत् तत्त्वं यस्मात्त्वं परिपूच्छसे ॥ २५ ॥
का त्व विरूपमयता पुरद्वारेऽप्यतिष्ठत् ।
किमर्थं चापि मां क्रोधाग्निर्मन्मयसि वारुणे ॥ २६ ॥

तब वीरवर हनुमान् अपने सामने लक्ष्मी हुई लड्डाके बोले—
‘कूर स्वामावच्छी नारी । तू सुसते को कुछ पूछ रहे है उसे मैं ठीक-ठीक बता दूँगा किन्तु पहले तो बता तू दे कौन ? तेरी कौलें बड़ी भयंकर हैं । तू इस नगरके द्वारपर लक्ष्मी है । क्या कारण है कि तू इस प्रश्न श्रेय करके मुझे डौट रही है ? ॥ २५ २६ ॥

हनुमद्रक्षम भुवा लड्डा सा वयमकपिणी ।
उवाच पचन कुन्दा पठय पयसात्मजम् ॥ २७ ॥

हनुमान्कीभी यह बात सुनकर लड्डाकुमार रूप धारण करनेवाली लड्डा कुशित हो उन पवनकुमारसे कटार वालीमें बोली—॥ २७ ॥

अह राक्षसराजस्य राघवस्य महारमनः ।
माज्ञाप्रतीक्षा दुर्षया रक्षामि नगरीमिमाम् ॥ २८ ॥

मैं महारमना राक्षसराज राघवकी आज्ञाकी प्रतीक्षा करने वाली उनकी रक्षिका हूँ । मुझपर आक्रमण करना किसीके विषय भी अल्पकठिन है । मैं इस नगरीकी रक्षा करती हूँ ॥ २८ ॥

न धान्य मामपचाय प्रवेष्टुं नगरीमिमाम् ।
अथ प्राणैः पतिपयत् स्यन्मयन निदत्ता मया ॥ २९ ॥

‘मेरी अन्नदेवना करके इस पुरीमें प्रवेश करना किसी

किं मी कम्प नही है । प्राय मेरे हाथसे मार जाकर
मायभिन हो इत पृष्णीपर धवन करेगा ॥ २९ ॥

यह हि मयरी छद्वा स्वयमेव द्रुवहम ।
उर्वता परिरक्षामि अतस्ते कथितं मया ॥ ३० ॥

बानर । मैं स्वय ही छद्वा नगरी हूँ, अतः सब भोरसे
तुम्हें रक्षा करती हूँ । यही कारण है कि मैंने तेरे प्रति
ऊँचे बापीका प्रयोग किया है ॥ ३ ॥

छद्वाया वधनं ध्रुत्वा हनुमान् प्रादुर्गतामजः ।
बलवान् स हरिभोगः स्थितः शैल इषापरः ॥ ३१ ॥

छद्वायी वह बात सुनकर पवनकुमार कविभेद्र हनुमान्
उठे खड़ेनेके किये सनधीक हो बूरे पर्वतके समान बहो
उड़े हो गये ॥ ३१ ॥

स तां स्त्रीरूपविहृतां हृद्य वानरपुङ्गवः ।
धावभायेऽथ मेधावी सखवान् द्रुवगर्भः ॥ ३२ ॥

छद्वाके किराज राक्षसीके रूपमें देखकर बुद्धिमान्
पनधियेमनि कथिशाभी कविभेद्र हनुमान्ने उछे इत
प्रकर फट—॥ ३२ ॥

इत्यामि नगरीं छद्वां साहमाकात्तोरपाम् ।
इत्यर्पमिह सभ्रातः परं कौतूहलं हि मे ॥ ३३ ॥

यौ महाशिकारो परकोठे और नगरघारोंसहित
इत छद्वा नगरीको देखूँगा । इसी प्रबोक्तसे बहो आया हूँ ।
इसे देखनेके किये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल है ॥ ३३ ॥

काम्युपवनागीह छद्वायाः कामनानि च ।
सर्वतो गृहसुख्यानि प्रपुद्गमागमन हि मे ॥ ३४ ॥

‘इस छद्वाके से कन, उपवन कानन और सुख-
सुख भवन हैं उन्हें देखनेके किये ही यहाँ भेग आगमन
हुया है’ ॥ ३४ ॥

तस्य तद् वधनं ध्रुत्वा छद्वा सा कामरूपिणी ।
मूय एय पुनर्वाक्य वभाये पक्वाक्षरम् ॥ ३५ ॥

उपवनकीका यह कथन सुनकर हण्डालुसार रूप बानर
कनेकभी छद्वा पुनः कठोर बापीमें बोली—॥ ३५ ॥

मायमिक्षिप्य दुर्वृत्तं राक्षसेश्वरपाकिताम् ।
न शक्यं ह्यथ ते द्रष्टुं पुरीर्यं बानराधम ॥ ३६ ॥

क्याही बुद्धिवाक नीय बानर । राक्षसेश्वर राक्षसके द्वारा
मेरी रक्षा हा रही है । तु मुझे पकस किये बिना आब इत
पुरीका नही देख लता ॥ ३६ ॥

तदा स हरिश्चातूलसामुपात्त निशाचरीम् ।
हृद्य पुरीमिमां भद्रे पुनर्पात्ये यथागतम् ॥ ३७ ॥

तब उन बानरधियेमनिने उठ निशाचरीके बरा—
‘यह । इस पुरीका देखकर मैं फिर जेल आया हूँ, उठी
कर लौट जाऊँगा’ ॥ ३७ ॥

ततः कृत्वा महानार्त्तं सा वै लज्जा भयकरम् ।
तलेन वामरभेष्टं ताडयामास वेगिता ॥ ३८ ॥

वह सुनकर छद्वाने बड़ी मयंकर गर्जना करके बानरभेष्ट
हनुमान्के बड़े भोरसे एक पप्पड़ मार ॥ ३८ ॥

ततः स हरिश्चातूलो लज्जया ताडितो भृशम् ।
नमाद् सुमहापार्त्तं पीर्यवान् मासतारमजः ॥ ३९ ॥

छद्वाद्वारा इत प्रकार खोरसे पीटे जानेपर उन परम
पराक्रमी पवनकुमार कविभेद्र हनुमान्ने बड़े भोरसे सिंहजय
किया ॥ ३९ ॥

ततः सद्यर्तपामास वामहस्तस्य सोऽङ्गुलीः ।
मुद्रिमाभिप्रधासैर्ना हनुमान् क्रोधमुच्छ्रितः ॥ ४० ॥

फिर उन्होंने अपने बायें हाथकी अङ्गुलियोंको मोड़कर
छद्वा बाँध की और अत्यन्त कुपित हो उठ छद्वाके एक
मुक्क कम्य दिया ॥ ४ ॥

स्त्री चेति मय्यभावेन मातिक्रोधाः स्वय कृताः ।
सा तु तेन प्रहारेण विह्वलाङ्गी निशाचरी ।

पपात सहसा भूमौ विह्वताननदर्शना ॥ ४१ ॥

उठे स्त्री समझकर हनुमान्कीने स्वय ही अधिक क्रोध
नहीं किया । किन्तु इस क्रु प्रहारसे ही उठ निशाचरीके धारे
आइ प्याकुल हो गये । वह सहसा पृष्णीपर गिर पड़ी । उठ
उगम ठकका मुख बड़ा विकराज दिखायी देता था ॥ ४१ ॥
ततस्तु हनुमान् वीरस्ता हृद्य यिनिपाठिताम् ।

हर्षांश्चकार तेजस्वी मय्यमाताः क्षिप्रं च ताम् ॥ ४२ ॥

अपने ही द्वारा गिरापी गयी उठ छद्वायी भोर
देखकर भोर उठे स्त्री समझकर तेजस्वी वीर हनुमान्को
उठपर दया भा गयी । उन्होंने उठपर बड़ी हृया की ॥

ततो वै शृगमुद्रिद्या लज्जा सा गद्गदाक्षरम् ।
उवाचागार्थितं चाफ्य हनुमन्तं द्रुवहमम् ॥ ४३ ॥

उपर अत्यन्त उछिन हुई लज्जा उन बानरवीर
हनुमान्से अभिमानरूप गद्गदाक्षरीमें इत प्रकर बोली—

प्रसीद् सुमहाबाहो चापस्य हरिसत्तम ।
समये सौम्य तिष्ठन्ति सख्यवर्तो महाबलाः ॥ ४४ ॥

महाबाहो ! प्रकन होइये । कविभेद्र । मेरी रक्षा
कीजिये । क्षेम्य । महाबन्धी तखगुणघाती वीर पुढ्य धात्रकी
मयादापर मिर रहते हैं (धात्रमें स्त्रीको अन्वय बताया
है इतकिये आप मेरे प्राण न कीजिये) ॥ ४४ ॥

यहं तु नगरी लज्जा स्वयमेव प्ययहम ।
निर्जितादं त्यया वीर विप्रमय महाबल ॥ ४५ ॥

महाबन्धी वीर बानर । मैं स्वयं लज्जापुरी ही हूँ आपन
मफने पराक्रमय मुझे परान कर दिया है ॥ ४५ ॥
इव च तर्ह्यं शृणु मे ह्यमया ये दरीश्वर ।

स्वयं स्वयम्भुवा दत्त वरदानं यथा मम ॥ ४६ ॥
 आनरेभ्यः । मै ज्ञाने एकं लब्धी वात् कर्तुं ह्ये ।
 आप इवे मुनिये । साक्षात् स्वयम्भू ब्रह्माग्नीने मुने वैद्य वरदान
 दिया था वह बता रही है ॥ ४६ ॥
 यथा त्वां वानरः कश्चिद् विक्रमात् पशामानयेत् ।
 तदा स्वया दि विद्येय रक्षसां भयमागतम् ॥ ४७ ॥
 'तन्होंने कहा था—'अब कोई वानर तुझे अपने
 परक्रमसे बधने कर के तब तुझे यह समझ देना चाहिये
 कि अब रक्षसोंपर बड़ा भय मम आ पहुँचा है ॥ ४७ ॥
 स हि मे समया सौम्य प्रातोऽथ तव वर्षानात् ।
 स्वयम्भूविहितः सरयो न तस्यास्ति व्यतिक्रमः ॥ ४८ ॥
 सौम्य । आपका दर्शन पाकर आम भेरे सामने बही
 पड़ी आ गयी है । ब्रह्माग्नीने कित्त लयका नियम कर दिया
 है उसने कोई लच्छ-केर नहीं हो सकता ॥ ४८ ॥
 सीतागिरिचर्चं राघवस्तु रायणस्य तुरारमगः ।
 रक्षसां वैष सवैषां विनाशा समुपागतः ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बाष्पिके अक्षय्ये सुन्दरकाण्डे सूत्रिका सर्गः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीमन्महाभारत अक्षय्ये सुन्दरकाण्डे तीसरा सर्ग पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चतुर्थं सर्गं

इमुमान्जीक लङ्कापुरी एवं रावणके अन्तःपुरमें प्रवेश

स तिर्जित्युपुर्णं लङ्कां भेष्टां तां कामरूपिणीम् ।
 विक्रमेण महातजा हनुमान् कपिसत्तमः ॥ १ ॥
 ब्रह्मणेण महावीर्यः प्राकारमवपुप्युवे ।
 निदिश लङ्कां महासत्त्वो विवेना कपिकुञ्जरः ॥ २ ॥
 हनुमान्गण रूप धारण करनेवाली भेष्ट राक्षसी लङ्कापुरी-
 को अपने परक्रमसे परास्त करके महातेजस्वी महावीर्य भवान्
 लक्ष्मणशाली बानरशिरोमणि कपिकुञ्जर इमुमान् विना दरवाजे
 के ही चलने पहारदीवारी कीद गये और लङ्काके भीतर
 पुत्र गये ॥ १-२ ॥

प्रविश्य नगरं लङ्का कपिराजहितकरः ।
 लङ्केऽथ पार्षं सम्पन्नं यान्तां स तु मूर्धनि ॥ ३ ॥
 कपिगण मुदीकण दित करनेवाले इमुमान्जीने इस
 तरह लङ्कापुरीमें प्रवेश करके माना घनुमोंके शिरपर
 भयना बार्शो पेर रख दिया ॥ ३ ॥

प्रविष्टः सत्त्वसम्पन्ना निशार्यां माकुटात्मजः ।
 स महापथमाख्याय मुक्तपुष्पविराजितम् ॥ ४ ॥
 ततस्तु तां पुर्णं लङ्कां रज्यामभिययौ कपिः ।

समुपगते धम्यत्र पवनपुत्र इमुमान् इत रातमें परछेरेके
 भीतर प्रवेश करके शिरो परे कुंभसे मुञ्जमित राजमार्गका
 आभय से उठ रमणीय लङ्कापुरीकी ओर चले ॥ ४ ॥

'अब सीताके कारण तुरन्त रात्र रायण तथा लक्ष्मण
 रासभेके विनाशकर सम्य आ पहुँचा है ॥ ४९ ॥

सत् प्रविश्य हरिद्वेष्ट पुर्णं रायणपाकिताम् ।
 विधत्स्व सर्वकार्याणि यानि यानीह पाञ्चसि ॥ ५० ॥
 'कुरिभेष्ट ! अतः आप इस रायणपाकित पुर्णमें प्रवे
 कीजिये और वहाँ जो-जो कार्य करना चाहते हों, उन सब
 पूर्ण कर लीजिये ॥ ५० ॥

प्रविश्य शापोपहतां हरीम्बर
 पुर्णं शुभां राक्षसमुक्यपालिताम् ।
 पदच्छया त्व जनकरमजां सर्ती
 विमार्गं सर्वत्र गतो यथासुक्तम् ॥ ५१ ॥

'वानरेभ्यः । राक्षसगण रावणके द्वारा पाकित न
 सुन्दर पुरी भविष्ठापसे मञ्जुप्रम हो चुकी है । अतः इस
 प्रवेष्ट करके आप स्वच्छानुसार शुभपूर्वक सर्वत्र लक्ष्मण
 वाष्पी जनकरम्बिनी सीताकी खोज कीजिये' ॥ ५१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बाष्पिके अक्षय्ये सुन्दरकाण्डे सूत्रिका सर्गः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीमन्महाभारत अक्षय्ये सुन्दरकाण्डे तीसरा सर्ग पूरा हुआ ॥ ३ ॥

इसितोत्कृष्टनिगमैस्सूर्यमोपपुरस्कृतिः ॥ ५ ॥
 ब्रह्माङ्कुरानिकाशौचं यज्ञमाङ्कुरिभूमितैः ।
 एहमेतैः पुत्री रम्या बभासे शौरिवात्म्युदैः ॥ ६ ॥

भेसे आकाश स्वेत बारहोंके सुशामित होता है उत
 प्रकार वह रमणीय पुत्री अपने स्वेत मेमलवण पहोसे उत्त
 शोभा पा रही थी । वे एह अद्भुतलक्षित उत्कृ
 शब्दों तथा वाचभोर्णोसे मुकुरित थे । उनमें बहों एक
 बहूशोके विभ अङ्कित थे और हीरोके बने हुए शरोके
 उनकी शोभा बढ़ाते थे ॥ ५-६ ॥

प्रसम्वालं तथा लङ्का पञ्चोपगपुष्टैः शुभैः ।
 सिताभसदशौचिधमैः पद्मसस्तिकर्कसिधैः ॥ ७ ॥
 वर्षामामपुष्टैश्चापि सर्वतः सुविभूमितैः ।

उत समय लङ्का स्वेत बारहोंके समान सुन्दर एवं
 मिथिल राक्षस-पहोसे प्रकाशित हो रही थी । उन पहोमें
 कोई ही कमरके आकारमें बने हुए थे । कोई स्वस्तिक
 के निह वा आकारसे मुक्त थे और किन्हींका निर्माण
 वर्षमौनलक्षक पहोके रूपमें हुआ था । वे लक्ष्मी एवं मोर्ले
 लजाये गये थे ॥ ७ ॥

१. राघवमिहिके हीनाये गुरोके निमित्त लक्ष्मण
 (नाहिलो) का वर्णन किया गया है । लक्ष्मी लक्ष्मणके

तां विभ्रमाह्वयाभरण्यां कथिराजहितकरः ॥ ८ ॥
रामवार्यै चरम्भीमान् ददर्श च नमस्य च ।

बनराम मुभीषका हित करनेवासे भीमान् इतुमान्
भीषुनामभीषे कार्यविक्रिके किये विविध पुष्पमय
भारणोंसे षडङ्कृत कङ्कामे विकरने कने । उन्होंने उध
दुर्गोके मन्त्री तरह देखा और देखकर प्रसन्नताका प्रमुग्ध
किन्ना ॥ ८३ ॥

भवताद् भयमं वरुञ्जन् ददर्श कथिकुञ्जरा ॥ ९ ॥
विविधाहृष्टिरूपाणि भवन्मामि ततस्ततः ।
शुभ्राद्य रक्षिरं गीतं त्रिस्त्रानखरभूयितम् ॥ १० ॥

उन अधिभोजन बहो-तहो एक परते वृष्टे परपर जाते
हुए विविध आकार प्रकारके भवन बने तथा हृष्य, कण्ठ
और मूर्धा—इन तीन स्थानोंसे निकलनेवासे मन्त्र, मन्त्रम
और उष खरते विभूयित मनोहर गीत सुने ॥ ९१० ॥

सौम्यं मन्त्रविद्याना विधिं चाप्सरसामिष ।
शुभ्राद्य कञ्चिन्नित् नूपुराणां च त्रिस्त्रानम् ॥ ११ ॥

उन्होंने स्वर्गीय अप्सराओंके समान सुन्दरी तथा काम-
वेरनासे पीडित कामिनियोंकी करवनी और पावनेनोंकी
सनकर सुनी ॥ ११ ॥

सोपानमिनवाङ्घ्रापि भवनेषु महात्मनाम् ।
वास्तोदितमिनावाङ्घ्र्यत्वेद्विताङ्घ्र्य ततस्ततः ॥ १२ ॥

इसी तरह बहो-तहो महामनसी उद्यलोंने धर्ममें
दीक्षितोंपर पदते समय किनोकी काञ्ची और मकीरकी
मशरूमि तथा पुष्योंके ताक ठोकने और गर्बनेकी मी आवाजें
क्यें सुनली दी ॥ १२ ॥

शुभ्राद्य अपता तत्र मन्त्रान् रक्षोपुष्टेषु वै ।
काम्यापनिरतादस्यैव यातुधानान् ददर्श सः ॥ १३ ॥

शुभ्राद्य बनके काम दिदे बने हैं । बहो सन्धिकसंज्ञान और
संयन्त्रसंज्ञक गृहक बनेका हुआ है । इनके उद्यमोंके लक्ष्य
अनेकाके बचनोंके बहो उद्यत किण्व काना है—

बभ्रुःशब्दं बभ्रुर्गं लक्षणेप्रसन्नचित्तम् ।
वभ्रुव्यारविर्गं कम्पानाङ्कनम् पत्र ॥
वभ्रुव्यारविर्गं बर्षामर्षं वनवस्त्रम् ।
वभ्रुव्यारविर्गं सन्धिकशब्दं पुष्यवनवस्त्रम् ॥

एक शालाओंके पुष्प गृहक विष्टके लक्ष्यके दिशामें एक
क करके कर हार हो 'लक्षणेनका' करते हैं । जिसमें तीन ही
हार ही अधिक दिशाकी कर हार न हो वनका काम कम्पानर्ष
है । जिसमें दक्षिणके दिशा कम्प तीन दिशाओंमें हार हो कहे
'वनवस्त्र' गृह करते हैं । वर वन देवताका शेष है तथा जिसमें
केन्द्र ही दिशाकी कर हार न हो वन गृहक काम सन्धिक
है । वर हुए और वन देवताका शेष है ।

उद्यलोंने परमें बहुतोंको तो उन्होंने बहो मन्त्र जपते
हुए सुना और कितने ही निशाचरोंके स्वाभ्यासमें लपर
देखा ॥ १३ ॥

राघवस्तपसलंयुक्ताम् गजैतो राक्षसानपि ।
राजमार्गं समावृत्त्य स्थित रक्षोगण महत् ॥ १४ ॥

कई उद्यलोंको उन्होंने राक्षसी स्त्रिके साथ गर्बना
करते और निशाचरोंकी एक बड़ी भीड़को राजमार्ग रोक्कर
कड़ी हुई देखा ॥ १४ ॥

ददर्श मन्त्रमे गुह्ये राक्षसस्य परान् वहुम् ।
दीक्षिताहृष्टिखान् मुष्णान् गोक्षिनाम्यत्वाससः ॥ १५ ॥
वर्ममुष्टिमहरप्यातमिनकुण्डायुधास्तथा ।
कृत्स्नमुद्रकार्पाङ्घ्र्यं दण्डायुधधराणपि ॥ १६ ॥

नगरकमन्त्रमागमें उर्ध्वे राघवके बहुत-से गुह्यकर विस्वासी
दिये । उनमें कोई योगी शीघ्र किये हुए, कोई कथा
बदासे, कोई मूढ़ मुँकाने, कोई गोधर्म या मृगधर्म भारत
किये और कोई नग बहग ये । कोई सुदीमर कुण्डोंकी ही
अन्नकमले भारत किये हुए थे । किन्हीका यन्त्रिकुण्ड ही
आयुष था । किन्हीके हाथमें कृत् या सुहर था । कोई रथको
ही हथियारकममें किये हुए थे ॥ १५ १६ ॥

एकाक्षानेकवर्णाङ्घ्र्यं लंघोदरपयोधरान् ।
कन्धालान् शुभ्रवक्त्राङ्घ्र्ययिकटान् वामनास्तथा ॥ १७ ॥

किन्हीके एक ही झोल भी तो किन्हीके रूप बहुती
थे । कितनोंके पेट और कान बहुत बड़े थे । कोई बड़े
विकटाक थे । किन्हीके हुँह टेढ़े-मेढ़े थे । कोई विकट थे
तो कोई बीने ॥ १७ ॥

अभियान् सङ्गिनदशैव शतष्ठीमुसलायुधान् ।
परिषोक्तमहस्ताङ्घ्र्यं विचित्रकयधोग्ज्वलान् ॥ १८ ॥

किन्हीके पाठ बहुत लम्बे, शतष्ठी और मूठकल्प
आयुध थे । किन्हीके हाथोंमें उद्यम परिष विद्यमान थे
और कोई विचित्र कबजोंके प्रकथित हो रहे थे ॥ १८ ॥

मातिस्यूजान् मातिकाशाम् मातिर्षीर्षातिहृष्यकान् ।
मातिगीरान् मातिहृष्णायातिपुष्पाद्ययामनाम् ॥ १९ ॥

कुछ निशाचर न तो अधिक मोटे थे न अधिक दुर्बल
न बहुत क्वे थे न अधिक छोट न बहुत गेरे थे न
अधिक कामे तथा न अधिक कुपड़ थे न गिराये बीने
ही ॥ १९ ॥

विरुपान् पदुरुपाद्य मुकुपाद्य सुवर्षसम् ।
पयसिनः पताकिनदस्य ददर्श विधिषायुधान् ॥ २० ॥

कोई बड़े कुपुष्य थे कई अनेक प्रकारके रूप धारण
कर सकते थे किन्हीका रूप सुन्दर था कोई बड़े टेकनी
थे तथा किन्हीके पल लम्बा पत्राका और अनेक प्रकारके
अन्न-वस्त्र थे ॥ २० ॥

धाकिबृह्मायुर्धर्षैव पट्टिशशनिधारिणः ।
क्षेपणीपादाहस्तांश्च दृष्ट्वा स महाक्षयि ॥ २१ ॥

कोई धाकि और बृहस्प आयुज बारण किये देखे
जते थे तथा किन्हींके पाश पट्टिश, वज्र गुलेक और
पाश थे । महाक्षयि इनुमान्ने उन सबको देखा ॥ २१ ॥

कारिवयस्त्वनुकिर्सांश्च वराभरणभूयिताम् ।
नानावेवसमायुक्तान् यथास्वैरक्षराय् बहून् ॥ २२ ॥

किन्हींके गज्जेमें फूलोंके हार थे और छत्र आदि
अह्न फरन्ते धरिंते थे । कोई श्रेष्ठ आयुजोंसे सबे हुए
थे । किन्ते ही नाना प्रकारके वैषम्यासे युक्त थे और
बहुतेरे स्वैरानुसार विचरनेवासे थान पड़ते थे ॥ २२ ॥

सीद्व्यशुक्लपार्ष्णैश्च वज्रिणश्च मद्राक्ष्णाम् ।
शतस्राहस्रमध्यप्रभारसं मध्यम क्षयि ॥ २३ ॥
रतोऽधिपतिर्निर्विघ्नं दृष्ट्वास्तापुत्राप्रता ।

किन्ते ही राक्षस सीले शुक तथा वज्र किये हुए थे ।
वे सबकेसब महात् बहसे सम्पन्न थे । इनके सिवा क्षयिक
इनुमान्ने एक छत्र राक्षस सेनाके राक्षसाब राक्षसकी
आज्ञासे शासन होकर नगरके मध्यमागकी रक्षामें सम्पन्न
देला । वे धारे तेनिक राक्षसके अन्तापुरके अग्रमध्यमें
क्षिप्त थे ॥ २३ ॥

स तथा तद् दृष्ट्वा महाहाडकतोरणम् ॥ २४ ॥
राक्षसेभ्यस्त्वन्विव्यस्रसमप्रिसृभिर्न प्रसिष्ठितम् ।
पुण्डरीकाक्षतंसाभिः पत्किणभिः समाबृणुत् ॥ २५ ॥
माकावाबृणुतमस्त्यस्त दृष्ट्वा स महाक्षयि ।
त्रिबिद्यपनिम विष्य दिव्यनावविनावितम् ॥ २६ ॥

राक्षस तेनाके किये जो विद्याक मवन बना था
उठका अक्षर बहुमुख्य सुवर्णद्वारा निर्मित हुआ था । उस
आपधामबनको देखकर महाक्षयि इनुमान्नेने राक्षसराज
राक्षसके सुप्रसिद्ध राक्षसअक्षर दक्षिणत किना, जो विकृत
फलके एक विलरपर प्रतिष्ठित था । वह सब ओरसे दबते

हृष्यायें श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे ऋतुर्षः सर्गः ॥ ४ ॥
इत प्रका श्रीवल्मीकिनिर्मितं नारदायणं अक्षिप्रयुक्तं सुन्दरकण्डे चौथे सर्गे पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पञ्चम सर्ग

इनुमान्सीका रावणके अन्तःपुरमें घर घामे सीताको ढूँढना और उन्हीं न देखकर दुखी होना

तदा स मर्यागतमनुमन्तं
ज्योत्स्नावितान मुहुःकृममत्तम् ।
दृष्ट्वा धीमान् भुवि भानुमन्तं
गोष्पं दृष्ट्वा मत्तमिव क्रमन्तम् ॥ १ ॥
तस्यभ्यां दुर्मियान् इनुमान्नेने देखा किं प्रकर
गोष्पात्मके गैर गोभीके छंभमें मठकाब ठोड़ विपत्ता है

कमलोंद्वारा अर्धकृज काइपोंसे बिरा हुआ था । उनके ज्यो
ओर बहुत ऊँचा परकोटा था, किन्ते उत राक्षमवनके
पेर रक्ता था । वह दिव्य मवन स्वर्गकेक समान मन्दिर
था और वहाँ संगीत आदिके दिव्य शब्द श्रव्य थे
ये ॥ २४-२६ ॥

वाजिद्वेषितस्युष्टं नाशित भूयजैस्तथा ।
रथेभौर्नैर्विमानैश्च तथा हयगणैः शुभैः ॥ २७ ॥
धारवैश्च सतुर्वसैः ह्येताभ्रमिषधपोपमैः ।
भूयितै रक्षिरद्वार मसैश्च मृगपक्षिभिः ॥ २८ ॥

घोड़ोंकी बिनविनाहृषी अनाज भी वहाँ सब ओर
कैसी हुई थी । आभूयजोंकी बन्धन भी कन्तेमें पड़ी
रखी थी । नाना प्रकारके रथ पाक्षी आदि उषापी
विमान, सुन्दर हाथी घोड़े, रतेत वाहनेकी फरके समान
विखापी देनेवासे चार दोंतोंसे युक्त सजेसजाने मठवासे
हाथी तथा मदनक पशु-पक्षियोंके स्वरपसे उत राक्षसअक्षर
द्वार बड़ा सुन्दर दिखायी देता था ॥ २७-२८ ॥

रक्षितं शुभहावीर्यैर्गोतुष्मभिः सहस्रशः ।
राक्षसाधिपतेर्गुप्तमाविशेश दृष्ट्वा क्षयि ॥ २९ ॥
वहस्रो महासपाक्षी निशाचर राक्षसाक्षके उत म्भक्षी
रक्ष करते थे । उस गुप्त मवनमें भी क्षयिक इनुमान्ने
वा पहुँचे ॥ २९ ॥

स हेमवाम्भुसद्वक्ष्णार्धं
महार्मुक्तामणिभूयिताग्तम् ।
परार्ध्याकाशागुरुक्ष्णवर्णार्हं
स रावणान्तःपुरमाविशेश ॥ ३० ॥

तदनन्तर बिलके चारों ओर सुवर्ण एवं काम्बूनदक्ष
परकोटा था किन्तु ऊपरी मध्य बहुमुख्य मोटी और
मथिपोंसे विभूक्षित था तथा अत्यन्त उष्ण काले अगुक्ष एवं
कन्तेसे बिलकी अर्चना की जाती थी । रावणके उत अन्तः
पुरमें इनुमान्नेने प्रवेश किना ॥ ३ ॥

उसी प्रकार दूरीके ऊपर बारंबार अपनी चौदनीध खेंदोना
छन्दे हुए कन्दरेव अशकायके मध्यमग्रमें तारिकाओंके
बीच निरन्तर कर रहे हैं ॥ १ ॥

लोकस्य पापानि विनाशायतं
महोर्वधि चापि समेधयन्तम् ।

मृतानि सर्वाणि विराजयन्त

वर्षां शीतांशुमघाभिषास्यम् ॥ २ ॥

ये शीतर्षभ चन्द्रमा कालकृ पप तापन्न नाद्य कर रहे हैं, महासमामे स्वार उठा रहे हैं, तमस्य प्राप्तिर्भोको न्नी रीति एव प्रक्याद्य दे रहे हैं और आकाशममे क्रम्य करारी ओर उठ रहे हैं ॥ २ ॥

या भावि छक्रीर्मुपि मन्वरस्था

यथा प्रक्षोपेयु च सागरस्था ।

तथैव तोपेयु च पुष्करस्था

रराज सा आठनिशाकरस्था ॥ ३ ॥

सुन्दर मन्वरघरमें संभ्राके समय महासागरमे और लम्बे शीतल कमलोंमे जो कक्री विर प्रकर सुशोभित रही हैं, वे ही उठी प्रकर मनोहर चन्द्रमामे घोभा पा रही थी ॥ ३ ॥

इतो यथा राजतपस्वरस्यः

सिंहो यथा मन्वरकन्दरस्यः ।

धीरो यथा गर्धितकुन्दरस्य

एषन्द्रोऽपि वक्राज तथाम्बरस्य ॥ ४ ॥

जैसे चींटीके पिंजरेमें हंस मन्वरचक्री कन्दरमें सिंह तथा मन्दल हाथीकी पीठपर वीर पुरुष घोभा पाते हैं, वही प्रकर आकाशममे चन्द्रदेव सुशोभित हो रहे थे ॥ ४ ॥

स्थितः ककुद्धानिय तीक्ष्णशुक्रो

महाशयः ह्येत इवोर्ध्वशुक्रः ।

इत्थीय जाम्बूनद्वयशुक्रो

विभाति चन्द्रः परिपूर्वशुक्रः ॥ ५ ॥

जैसे शीमे शीगबाजा बैल अड़ा हो जैसे ऊपरको ठठे विचारबाजा महान् पर्यंत रवेत (हिमात्म) घोभा पाता है और जैसे सुकर्णवटित दीर्घोसे मुक्त गजराज सुशोभित रहा है उसी प्रकर हरिणके शूद्ररूपी विह्वले मुक्त परिपूर्ण कन्या कवि गा रहे थे ॥ ५ ॥

विनयदरीताम्बुतुवापरपट्टो

मदाप्रमहप्रामदविलसपट्टः ।

प्रकाशकल्पवाधयनिर्मलाहो

रराज चन्द्रो भगवाक्पदादाहूः ॥ ६ ॥

विनय शीतल लस और विमलरूपी पट्टे सरसका योग नर हा यथा है अथात जो इनके लक्षणमें बहुत बुर है पुनः किलोकां प्रारण करनेके काय किन्हेने अपने अन्धकार रूपी पट्टा भी नष्ट कर दिया है तथा प्रकाशरूप सन्धी ध आशयस्थान होनेके कारण विनयी कायिमा भी निर्मल शीत होती है वे मगधन् शयनशठन चन्द्रदेव आकाशमे प्रकथित हो रहे थे ॥ ६ ॥

शिखातलं प्राप्य यथा मृगेन्द्रो

महारणं प्राप्य यथा गजोन्द्रः ।

राज्य समासाद्य यथा नरेन्द्र

स्तथा प्रकाशो विरराज चन्द्रः ॥ ७ ॥

जैसे गुण्डके बाहर शिखातलपर बैठा दुभा मृगयज (सिंह) घोभा पाता है जैसे विद्यालय बनमें पहुँचकर गजराज सुशोभित होता है तथा जैसे राज्य पाकर राज्य अधिक घोभासे सम्पन्न हो जाता है, उसी प्रकर निर्मल प्रकाशसे मुक्त होकर चन्द्रदेव सुशोभित हो रहे थे ॥ ७ ॥

प्रकाशशम्भ्रोऽप्यनपट्टोयः

प्रसूदरस्यपिथितारादोयः ।

रामाभिरामेरितचित्तदोयः

स्वर्गप्रकाशो भगवान् प्रक्षोयः ॥ ८ ॥

प्रकाशमुक्त चन्द्रमाने उदरसे चितका अन्धकाररूपी दोष दूर हो गया है, चितमें राक्षसोंके शीव-हिंसा और मांसमन्धपररूपी दोष दूर गये हैं तथा रमयिणीके रमय विषयक चित्तदोष (प्रलय-कण्ड) निवृत्त हो गये हैं, वह पूजनीय प्रक्षोपका स्वर्गलक्ष्य सुलक्ष्य प्रकाश करने लगा ॥ ८ ॥

तन्नीस्वराः कर्णसुखाः प्रसूताः

स्वपरित नार्यः पतिभिः सुसूताः ।

मल्लखरादद्यापि तथा प्रसूता

विहनुभायसुतरौद्रसूताः ॥ ९ ॥

नीजाके अन्नमसुख शब्द शकुल हो रहे थे, लक्ष्यारिणी कियो पतिबोंके साथ छो रही थी तथा अन्धकार अशुभ और मयंकर शीघ्र-लमाक्यासे निघानर निधीय क्यसमें विहार कर रहे थे ॥ ९ ॥

मत्तप्रमत्तानि ममाकुलानि

रथाभ्रभद्रासलमंजुमानि ।

वीरघ्निया व्यापि सत्माकुलानि

वर्षां धीमान् स कपिः कुञ्जानि ॥ १० ॥

कुक्षिमान् बानर इगुमान्ने वहाँ बहुतसे पर देते । किन्हीमें देवर्ष-मदसे मत्त निघानर निघान करते थे किन्हीमें मरिचकानल मत्तकाल गद्यस भरे हुए थे । किन्हे ही पर रथ पौड आदि बाहनों और मत्तकनोंध सम्पन्न थे तथा किन्हे ही वीर-जटनीम व्यात दिशाकी देते थे । वे सभी पर एक-दूसरेस निक हुए थे ॥ १० ॥

परस्पर आधिकमाक्षिपन्ति

मुजादध धीमानधिपित्तिपन्ति ।

मत्तप्रकाशानधिपित्तिपन्ति

मत्तानि आम्बोऽयमधिपित्तिपन्ति ॥ ११ ॥

राजलक्षण भावली एक-दूसरेपर अधिक आघर करते थे । अपनी मोटी-मोटी मुण्ठकोंमे भी दिखते और

चमते ये । मत्वाश्वेकी-शी बह्वी-बह्वी बर्ते करते ये और
मरिपते उम्वर होकर परस्पर बद्ध बनन बोधते ये ॥ ११ ॥

वृक्षांसि वृक्षांसि च विक्षिपन्ति
गात्राणि क्वास्तासु च विक्षिपन्ति ।
रूपाणि वित्राणि च विक्षिपन्ति
दृष्टानि चापानि च विक्षिपन्ति ॥ १२ ॥

इतना ही नहीं, वे मत्वाश्वे एकल अपनी छली भी
पीटते थे । अपने हाथ आदि बान्होंको अपनी प्यारी
पनिमोहर रख बैठे थे । सुन्दर रूपवाले नित्रोत्र निर्माण
करते थे और अपने मुख भनुषोंको अनलक बाँधा
करते थे ॥ १२ ॥

वृक्षां क्वास्ताश्च समालभन्त्य
स्तीघापरास्ताश्च पुनः क्षपन्त्याः ।
सुरूपवपत्राश्च तथा हसन्त्याः
सुखापरास्त्राणि विनिःश्वसन्त्याः ॥ १३ ॥

इनुमान्सीने यह भी देखा कि नक्षिकार्थे अपने बान्होंमें
चन्दन आदिका अनुलेपन करती हैं । वृक्षी बही होती हैं ।
तीवरी सुन्दर रूप और मनोहर मुखवाली बन्धानार्थे हैंवती
हैं तथा मन्त्र बनिवार्ये प्रवय-कलहते कुपित हो संघी लोते
बाँध रही हैं ॥ १३ ॥

महागजैश्चापि तथा मत्स्रिः
सुपुत्रितैश्चापि तथा सुसन्निः ।
रत्नमयीरैश्च विनिःश्वसन्निः
हंश सुसंनैरिय निःश्वसन्निः ॥ १४ ॥

विष्वाइते हुए मरान गजराजों अत्यन्त सम्मानित भेद
सम्पन्नते तथा संघी लोते छोड़नेवाले बीछेके कारण वह
बद्धपुत्री कुपकारते हुए लपते युद्ध लोचयोंके समान
शोभा पा रही थी ॥ १४ ॥

सुदिमधानान् दक्षिराभिधानान्
संब्रह्मधानाद्यगतः प्रधानान् ।
मानाधिधानान् रुचिराभिधानाश्च
वृक्षा लभ्यां पुरि यासुधानान् ॥ १५ ॥

इनुमान्सीने उठ पुरीमें बहुत-म उत्कृष्ट बुद्धिकासे
सुन्दर लोचनशांसे लयक धरा लनेशांसे अनेक प्रकारके
रत्न-रत्नान और मन्दार नाम कारण करनेवाले निरक-
गिम्मान लपन दे । ॥ १५ ॥

मत्स्य दृष्टास च तान् सुरूपान्
मातागुणानामगुणानुरूपान् ।
विधानामानाम् राघ तान् सुरूपान्
वृक्षां वीक्षित्वा पुमर्थिकपान् ॥ १६ ॥

वे सुन्दर रूपका नाम प्रकारके गुणोंमें लयन
अनेक गुणोंके धनुष्य स्वरूप करनेवाले और देखती थे ।

उन्हें देखकर इनुमान्सी बड़े प्रसन्न हुए । उन्होंने बहुरी
राक्षसोंको सुन्दर रूपके सम्पन्न देखा और कोई-कोई लई
बड़े सुरूप दिखायी दिये ॥ १६ ॥

ततो बराहोः सुविशुद्धभावा-
स्तेषां क्षियस्तत्र महाबुभावाः ।
प्रियेषु पातेषु च सक्तभावा
वृक्षां तारा इव सुखभावाः ॥ १७ ॥

तदनन्तर बहो उम्होंने सुन्दर बकाभूषण धारण करनेके
दोस्य सुन्दरी उद्यम-रमझिंको देखा, किन्तु मय बलवत्
विशुद्ध था । वे बड़ी प्रभावशालिनी थीं । उनका मन
प्रियतममें तथा मधुपानमें आलस्य था । वे तरिकामोंकी
भौति कालिमती और सुन्दर स्वप्नवाली थी ॥ १७ ॥

क्षियो ज्वलन्तीरूपयोपगृहा
निशीघकाले रमणोपगृहाः ।
वृक्षां क्वाचित् प्रम्वोपगृहा
यथा विहंगा विहंगोपगृहाः ॥ १८ ॥

इनुमान्सीकी दृष्टिमें कुछ देली क्षियों भी आनी, जो
अपने रूप-लौक्यसे प्रकाशित हो रही थीं । वे बड़ी लकीकी
थीं और आधी रातके समय अपने प्रियतमके आङ्गलन-
पदमें इस प्रकार बैठी हुई थीं जैसे पक्षिनी पक्षीके हाथ
माङ्गलित होती है । वे सबके-सब आनन्दमें मग्न
थीं ॥ १८ ॥

अभ्याः पुमर्हर्म्यतलोपनिषा
स्तत्र प्रियारोषु सुलोपविद्याः ।
भर्तुः परा धमपरा निविद्या
वृक्षां धीमाश्च मन्मोपविद्याः ॥ १९ ॥

वृत्ती बहुत ही क्षियों गहलेंकी छतीपर बैठी थीं । वे
पतिकी सेवामें लय-रदनेवाली धर्मपरा तथा विरादिता और
धर्मप्रसन्नते भांगित थीं । इनुमान्सीने उन सबको अपने
प्रियतमके अङ्गमें सुलपूर्वक बैठी देखा ॥ १९ ॥

ममाशुताः क्वाश्चमराजिपर्णाः
काश्चित्पराध्यास्तपनीपयणाः ।
पुनश्च काश्चिच्छत्रोसम्पयणाः
क्वस्तमदीणा रुचिराद्यपर्णाः ॥ २० ॥

छिन्नी ही कालिनियों सुख-नेत्राके समान कालिमती
दिनापी देखी थीं । उन्होंने अपनी ओदनी उगार दी थी ।
छिन्नी ही उद्यम बनिवार्ये तथाय हुए सुवर्षके समान
रगवाली थीं तथा निम्नी ही पतिविशेषिनी बलार्थे
धनुष्यक समान रेश बलकी दिनापी देती थीं । उनकी
अङ्गलान्ति बही ही सुन्दर थी ॥ २० ॥

ततः प्रियान् प्राप्य मनोऽभिरामान्
सुमीठियुक्तां सुमनोऽभिरामां ।

पृथेपु हृष्टाः परमाभिरामा
हरिप्रथोरा च ददर्श रामाः ॥ २१ ॥

तदनन्तर पानपौके प्रमुञ्च वीर हनुमान्भीने विभिन्न
पथोंमें ऐसी परम सुन्दरी रमयिणीका अवलोकन किया; जो
मनोमिरम प्रियतमका अंशग पाकर अत्यन्त प्रसन्न हो रही
थी। दृष्टिके हासे विभूषित होनेके कारण उनकी रमणीयता
और भी बढ़ गयी थी और वे सब-कुछ-सब हयसे उत्कृष्ट
रिचानी देती थी ॥ २१ ॥

बभ्रुप्रकाशाब्ज हि धक्त्रमाला
धक्त्राः सुपद्माम्ब सुनेत्रमालाः ।

विभूषणाना च ददर्श मालाः
शतह्वानामिष चारुमालाः ॥ २२ ॥

उन्होंने बभ्रुमाके समान प्रकाशमान मुक्तौषी पंक्तियों,
ऊपर पक्ष्मोंवाले तिरहे नेत्रोंकी पंक्तियों और चमचमाती
हूँ विपुलेकाओंके समान आभूषणोंकी भी मनोहर
पंक्तियों देखी ॥ २२ ॥

न त्वेय सीतां परमाभिजाता
पथि स्थिते रात्रकुले प्रजाताम् ।

सत्वा प्रफुल्लामिव सासुजातां
वृक्षा तन्वीं मनसाभिजाताम् ॥ २३ ॥

किन्तु जो परमात्माके मानसिक संकल्पसे धर्ममार्गपर
भार रहनेवाले रात्रकुलमें प्रकट हुई थी बिनका प्रादुर्भाव
सम वैश्वर्यसे प्राप्ति करनेवाला है जो परम सुन्दर रूपमें
उत्पन्न हुई प्रफुल्ल सत्वाके समान शोभा पाती थी उन
विष्णुकी सीताको उन्होंने वहाँ कहीं नहीं देखा था ॥ २३ ॥

सजातनं यत्मनि स्तनिविष्टां
रामज्ञानां तां मद्नाभिविष्टाम् ।

भर्तुर्मतः धीमन्नुपविष्टा
स्त्रीभ्या पराम्यञ्च सदा विविष्टाम् ॥ २४ ॥

सजातनं यत्मनि स्तनिविष्टां
रामज्ञानां तां मद्नाभिविष्टाम् ।
भर्तुर्मतः धीमन्नुपविष्टा
स्त्रीभ्या पराम्यञ्च सदा विविष्टाम् ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बाह्यीष्टीये आधिक्यादे सुन्दरकाण्डे षष्ठमः सर्गः ॥ ५ ॥

एत इतर शीतलनिर्मितं जन्ममायम भाग्यवत्के सुन्दरकाण्डे षष्ठो सर्गः समाप्तः ॥ ५ ॥

षष्ठ सर्ग

हनुमान्जीका रावण तथा अन्यान्य राक्षसोंक परोंमें सीताजीकी ग्राह करना

स निश्चयं विमानेषु विचरन् वामरूपपृष्ठ ।
विचकार कपिलशुी शाययन समन्वितः ॥ १ ॥

रिह इत्यनुसार रूप बालक करनेवाले कपिल हनुमान्
जो वही पृष्ठवाले काय हनुमाके समरूपसे महानेमें यथच्छ
विचरने लगे ॥ १ ॥

उप्यादिता सासुसुताक्षकण्ठी
पुरा पराहोत्तमनिष्ककण्ठीम् ।

सुजातपद्मामभिरक्तकण्ठी
धने प्रसूतामिव नीलकण्ठीम् ॥ २५ ॥

अभ्यक्षरेलामिव बभ्रुलेखा
पासुप्रदिग्धामिव हेमरेलाम् ।

शतप्रकृदामिव वर्णरेखां
धासुप्रभुग्नामिव मेघरेलाम् ॥ २६ ॥

सीतामपरपद्मनुलेखरस्य
रामस्य परनीं यदतां परस्य ।

बभ्रुव दुर्योधोपहतक्षिरस्य
पृथगमा मन्व इवाधिरस्य ॥ २७ ॥

जो सदा सजातन मार्गपर स्थित रहनेवाली, भीयम
पर ही दृष्टि रखनेवाली, भीरामनिष्पक् काम या प्रेमसे
परिपूर्ण, अपने पतिके ठेक्यो मनमें बड़ी दृढ़ तथा दृढी
रूपी निर्यसे तथा ही भेद थी। किन्तु विरहजनित ताप
सदा पीड़ा देता रहता था, बिनके नेत्रोंसे निरन्तर आँसुओंकी
झड़ी कगी रहती थी और कण्ठ उन आँसुओंसे गद्गद
रहता था पहल अंग्रेजकालमें बिनका कण्ठ भेद एवं
यदुमूल्य निष्क (पदक) से विभूषित रहा करता था,
बिनकी पकड़ बहुत ही सुन्दर थी और कण्ठस्वर आकृत
मधुर था तथा जो बनेमें उत्प करनेवाली मयूरीके समान
मनोहर लगती थी, जो मेघ आदिसे आच्छादित होनेके
कारण अम्यक्त रेखावाली चन्द्रमलाने समान दिखायी देती
थी धूम्र-सुर मुगय रेखा-की प्रतीत होती थी, बानके
आपातथ उत्पन्न हुई रेखा (विह)-की जल पक्षी थी
तथा वासुके द्वारा उड़ायी गयी दृढ़ बाइस्येकी रेखा-की
दृष्टिकेधर होती थी। बकाओंमें भेद नरेवर भीयमबभ्रुकी
की पत्नी उन टीताकीको बहुत देरतक हूँदनेपर भी बर
हनुमान्भी न देख सके तब वे उत्पन्न अत्यन्त दुःखी और
विचित्र हो गये ॥ २४-२७ ॥

असस्तां चरुर्हमीपान् राक्षसग्ननिषातम् ।
माक्षरणाकपत्तनं भाग्यरणाभिससृजत् ॥ २ ॥

अत्यन्त बल-बैरसे उत्पन्न वे परमकुमार राजकाय
राक्षसक मरुतोंमें दूँसे जो कपि औरग दूँसे उत्पन्न बम
बमाने हुए मुग्धमय परशुदेव विरा हुआ था ॥ २ ॥

रक्षित राक्षसैर्भूमिः सिंहैरिव महद् वनम् ।
समीक्षमाणो भवनं चकारो कपिकुण्डरः ॥ १ ॥

जैसे सिंह विशाल वनकी रक्षा करते हैं, उसी प्रकार
बहुतेरे मयानक राक्षस रावणके उस महस्त्री रक्षा कर रहे
थे । उस मयानक निरीक्षण करते हुए कपिकुण्डर हनुमान्
की मन-ही-मन हफ्फा अनुभव करने लगे ॥ १ ॥

रूपकोपहितैश्चित्रैस्त्रोर्यैर्ह्येवमभूयैः ।
विचित्राभिश्च कल्पभिर्द्वाैरेव रुचिरैश्चतम् ॥ ४ ॥

वह महक चोंदिते मद्दे हुए चित्रों छेने कड़े हुए
ररबायें और बड़ी भद्भुत ज्योदिसों तथा सुन्दर हाथोंसे
युक्त था ॥ ४ ॥

गमास्त्रितैर्हामाभैः शूरैश्च विगतधमैः ।
उपस्थितमसंहायैर्हृदिः स्वप्नपापिभिः ॥ ५ ॥

हाथीपर कड़े हुए महाबल तथा भयभीन छापीर वहाँ
उपस्थित थे । बिनके वेगको छोड़ें रोक नहीं सकता था,
येसे रणबाहक अभ भी वहाँ शोभा पा रहे थे ॥ ५ ॥

सिंहस्याप्रतनुजाण्यैर्दाम्बकश्चानराक्षसीः ।
घोरवद्विग्रिषिष्यैश्च सत्वा विचरित रघौ ॥ ६ ॥

सिंहों और बाघोंके जमकोंके बने हुए कबजोंसे वे रण
ढके हुए थे उनमें हाथी-दंत सुवर्ण तथा पीपीली प्रतिमाएँ
रखी हुई थीं । उन रथोंमें सधी हुई छेटी-छापी बंदिगाओंकी
मजुर श्वनि वहाँ हांठी खड़ी थीं ऐसे विचित्र रथ उस रावण-
भवनमें लदा आ-आ रहे थे ॥ ६ ॥

घट्टरमस्त्रमाकीर्णं पराप्स्योत्समभूपितम् ।
महारथसमाधाय महारथमहासनम् ॥ ७ ॥

रावणका वह मयान अनेक प्रकारके रत्नोंसे स्वात था,
बहुसूत्र आठन उसकी घोमा यदाते थे । उद्योग सब और
बड़े-बड़े रथोंके ठहरनेके स्थान बने थे और महारथी सौधेके
बिधे विशाल वाठस्थान बनाये गये थे ॥ ७ ॥

दद्वैद्य परमोदारस्त्रैस्सैश्च भृगुपत्तिभिः ।
विशिष्यैश्चसादृशैः परिपूर्णं समस्ततः ॥ ८ ॥

दार्शनिक एवं परम सुन्दर नाना प्रकारके ज्योतों पद्य
और पद्यी वही नव भय भरे हुए थे ॥ ८ ॥

विनीतैस्तपानैश्च रक्षोभिश्च सुरक्षितम् ।
मुण्डपाभिश्च यत्प्रतिभिः परिपूर्णं समस्ततः ॥ ९ ॥

नीलाशे रक्षा करनेवाले बिनमधीन राक्षस उस भवनकी
रक्षा करने थे । वर गज औरमे सुग्ग मुण्ड सुन्दरियोंके भरा
रथा था ॥ ९ ॥

सुदितममहारथं राक्षसद्रुजियज्ञमम् ।
यत्प्रभक्तनिःस्रमम् ॥ १० ॥

बाकी रावणकाय सुग्री रथनिर्वा लदा प्रभक्त रदा

करती थीं । सुन्दर आभूषणोंकी सनकरोंसे संहृत रक्षक
का वह महक तमुद्रके कडकठनादकी मूर्ति मुक्तित
रथा था ॥ १० ॥

तत् राजगुणसम्पन्नं मुक्त्यैश्च वरचम्बनेः ।
महाजनसमाकीर्णं सिंहैरिव महद् वनम् ॥ ११ ॥

वह मयान राजोक्ति सामग्रीसे पूर्ण था, भेद एवं सुन्दर
चन्दनोंसे शर्षित था तथा सिंहोंसे भरे हुए विशाल वनकी
मूर्ति प्रधान प्रधान पुक्तोंसे परिपूर्ण था ॥ ११ ॥

मेरीसुवृक्षभिरुतं शङ्खमोपबिनावितम् ।
नित्यार्षितं पर्वसुतं पूजितं राक्षसैः सदा ॥ १२ ॥

वहाँ मेरी और सुवृक्षकी श्वनि सब ओर फैली हुई थीं ।
वहाँ शङ्खकी श्वनि गूँच रही थी । उसकी नित्य पूजा एवं
तथापठ होती थी । पर्वोंके दिन वहाँ होम किया जाता था ।
राक्षसभोग सदा ही उस राजभवनकी पूजा करते थे ॥ १२ ॥

समुद्रमिव गम्भीरं समुद्रसममिःखमम् ।
महारथमो महद् देहम महारथपरिच्छदम् ॥ १३ ॥

वह समुद्रके समान गम्भीर और ठसके समान कोणक-
पूर्ण था । महमना रावणका वह विशाल भवन महान् रक्षम
अनकरोंसे अलंकृत था ॥ १३ ॥

महारथसमाकीर्णं ददर्श स महाकपिः ।
विराजमानं यपुया गजाम्बरयसंकुलम् ॥ १४ ॥

उसमें हाथी शोभे और रथ भरे हुए थे तथा वह महान्
रथोंसे स्वात होनेके कारण अपने स्वरूपसे प्रकाशित हो रहा
था । महाकपि हनुमान्ने उसे देखा ॥ १४ ॥

जड्राभरणमित्येव सोऽमम्यत महाकपिः ।
अधार हनुमांश्चात्र रावणस्य समीपतः ॥ १५ ॥

देखकर कपिवर हनुमान्ने उस मयानके शङ्ख
आभूषण ही माना । तदन्तर वे उस रावण भवनके आठ-
पाव ही बिचलते लगे ॥ १५ ॥

यदाद् दृष्टं राक्षसानामुपाजानि च सपशः ।
पीक्षमाणोऽप्यसंश्रस्ताः प्रसादात्तत्र चकार सः ॥ १६ ॥

इस प्रकार वे एक करते वृत्ते परसे अकार साधनोंके
बाधोंके लक्ष्मी स्वातोंको देखते हुए बिना किसी मयने
अशुभिकाओंपर विचरण करने लगे ॥ १६ ॥

महत्पुत्र्य महापेगाः प्रदक्षम्य निवेशयाम् ।
ततोऽप्यत्पुत्र्युय वेदम महापाद्वस्य पीययान् ॥ १७ ॥

महान् वेगधारी और पराक्रमी वीर हनुमान् वहाँ
कूचकर प्रदक्षने परसे उतर गये । फिर वहाँसे उठके और
महापादके महकमें पहुँच गये ॥ १७ ॥

अथ मघप्रतीकारां कुम्भकणनियेशयाम् ।
विभीषणस्य च तथा पुत्र्युये स महाकपिः ॥ १८ ॥

तरुन्तर वे महाकपि हनुमान् मेघके समान प्रतीत होने
कुम्भकण्ठके मकनमें और बहोते विभीषणके महम्ममें
रूखे ॥ १८ ॥

होत्रस्य च तथा विरूपाक्षस्य चैव हि ।
विपुच्छिद्यस्य भयन विपुम्भालेस्त्वायैव च ॥ १९ ॥

इसी तरह क्रमशः वे महोदर, विरूपाक्ष, विपुच्छिद्य और
विपुम्भालिके परमें गये ॥ १९ ॥

वज्रवज्रस्य च तथा पुण्ड्रुके स महाकपिः ।
पुण्ड्रस्य च महाविेगः सारणस्य च भीमता ॥ २० ॥

इसके बाद महान् यगशाही महाकपि हनुमान्ने फिर
जर्मन मारी और वे वज्रवज्र शुक्र तथा बुद्धिमान् सारणके
परमें गये ॥ २० ॥

तथा पद्मप्रतिभो वेदम जगाम हरिपूषयः ।
जम्बुमाखेः सुमालेख जगाम हरिसत्तमः ॥ २१ ॥

इसके बाद वे बानर-यूयपति कपिभेद इन्द्रकिण्ठके परमें
गये और वहाँसे जम्बुमाखि तथा सुमालिके परमें पहुँचे
ये ॥ २१ ॥

रिमिकेतोश्च भवन् सूर्यशत्रोस्तथैव च ।
वज्रघायस्य च तथा पुण्ड्रुके स महाकपि ॥ २२ ॥

वतन्तर वे महाकपि उल्लेखे-कूरते हुए रिमिकेदः,
वज्रघ्न और वज्रघायके महम्ममें गये पहुँचे ॥ २२ ॥

पृषात्तस्याप सग्रातेभयन् मारुतामजसः ।
विपुद्रुपस्य भीमस्य घनस्य विश्वस्य च ॥ २३ ॥

पृषात्तस्याप सग्रातेभयन् मारुतामजसः ।
विपुद्रुपस्य भीमस्य घनस्य विश्वस्य च ॥ २३ ॥

पुक्रामस्य चक्रस्य शठस्य कपटस्य च ।
द्वयस्यस्य वृषस्य शोमशस्य च रक्षसः ॥ २४ ॥

द्वयस्यस्य वृषस्य शोमशस्य च रक्षसः ॥ २४ ॥
पुशोमस्यस्य मत्स्यस्य चज्जतीवस्य साङ्गिनः ।
विपुच्छिद्यद्विजिह्वाना तथा हस्तिमुखस्य च ॥ २५ ॥

पुशोमस्यस्य मत्स्यस्य चज्जतीवस्य साङ्गिनः ।
विपुच्छिद्यद्विजिह्वाना तथा हस्तिमुखस्य च ॥ २५ ॥
कपटस्य पिशाकस्य शोणितस्य चैव हि ।
द्वयमाम् क्रमेणैव हनुमान् मारुतामजसः ॥ २६ ॥

कपटस्य पिशाकस्य शोणितस्य चैव हि ।
द्वयमाम् क्रमेणैव हनुमान् मारुतामजसः ॥ २६ ॥
तपु तपु महाहोषु भवनेषु महापशाः ।
तगामुद्धिमतामृश्र्य ददर्श स महाकपि ॥ २७ ॥

तपु तपु महाहोषु भवनेषु महापशाः ।
तगामुद्धिमतामृश्र्य ददर्श स महाकपि ॥ २७ ॥
फिर क्रमशः वे कपिपर पवनकुमार धूम्राय कर्णादि
विपुद्रुप भीम घन विपन शुक्रनाम चक्र शठ कपट
द्वयस्य वृष ल्यमश गुदाग्रमत् मत् चज्जतीव विपुच्छिद्य
विपुच्छिद्यद्विजिह्वाना और शोणितस्य आङ्गिके
परमें गये । इस प्रकार क्रमशः कूरते बहोते हुए महा
पशु पवनपुत्र हनुमान् उन-उन बहुमुख्य भवनीमें पधारे ।
१० उन महाशक्तिने उन समुद्रिणाही राखलोही समुद्रि
देवी ॥ २६-२७ ॥

सर्वेषां समन्तिप्रस्य भयतामि समन्ततः ।
मानसाणां सखीषाम् राक्षसाम्प्रियशयमम् ॥ २८ ॥

सर्वेषां समन्तिप्रस्य भयतामि समन्ततः ।
मानसाणां सखीषाम् राक्षसाम्प्रियशयमम् ॥ २८ ॥
तपुमात् वत् वेदपद कपटस्य हनुमान् उन एक भवनी

को औपकर पुनः राक्षसराज रावणके महलपर आ गये ॥ २८ ॥
रावणस्योपशाधिग्यो दृष्ट्वा हरिसत्तमः ।
विश्वरत्न हरिशाबुद्धो राक्षससर्विहृतेक्षणः ॥ २९ ॥

वहाँ विश्वरते हुए उन बानरशिरोमणि कपिभेदने
रावणक निकट खानेवासी (उनके पकवाही रखा करनेवासी)
राखसिबोको देखा; बिनकी भीमें बड़ी विचराख थी ॥ २९ ॥

शूलमुग्ररहस्ताश्च शक्तितोमरधारिणः ।
ददर्श विधिषाण्गुह्यस्तास्य रक्षपतशुद्धे ॥ ३० ॥

शूल मुग्ररहस्ताश्च शक्तितोमरधारिणः ।
ददर्श विधिषाण्गुह्यस्तास्य रक्षपतशुद्धे ॥ ३० ॥
छाप ही; उनोंने ठक राक्षसराजके मकनमें राखसिबोके
बहुतसे समुदाय देखे, बिनके हाथोंमें शूल, मुग्र, शक्ति
और होमर आदि अन्न राख विषमान थे ॥ ३० ॥

राक्षस्ताश्च महाकायान् स नामाग्रहणोद्यतान् ।
रक्षाभूद्वेतान् सिताम्नापि हरीम्नापि महाजघान् ॥ ३१ ॥

उनके सिवा बहो बहुतसे विद्याभूषण राक्षस भी
दिखायी दिये; खे नाना प्रकारके हथियारोंके लेठ थे । इतना
ही नहीं, वहाँ राख और शकट रागक श्रुतसे भावन्त
वेगवाली घोड़े भी बैसे हुए थे ॥ ३१ ॥

कुब्जीमान् रूपसम्पन्नान् गजान् परगजादजान् ।
शिक्षितान् गजशिक्षापामैरायतसमान् युधि ॥ ३२ ॥

कुब्जीमान् रूपसम्पन्नान् गजान् परगजादजान् ।
शिक्षितान् गजशिक्षापामैरायतसमान् युधि ॥ ३२ ॥
निहन्तान् परसैन्यानां गृहे तस्मिन् ददर्श सः ।
स्रस्तश्च यथा मेघान् श्रयतश्च यथा गिरीन् ॥ ३३ ॥

निहन्तान् परसैन्यानां गृहे तस्मिन् ददर्श सः ।
स्रस्तश्च यथा मेघान् श्रयतश्च यथा गिरीन् ॥ ३३ ॥
मेघस्तमितनिर्घोषान् दुभगान् समरे परैः ।
छाप हो अच्छी बतिके रूपवान् हाथी भी थे च शत्रु
तेनाके हाथियोंका मार मगानेवाक थे । वे सप-स-सक राख
शिक्षामें मुद्रितिक, युद्धमें ऐरायतके समान पराक्रमी तथा
शत्रुतेनाभोका शहर करनेमें समर्थ थे । वे बरकते हुए
मेघों और शयने बहते हुए पर्वतोंके समान मदकी भाषा
बहा रहे थे । उनकी गजना मग-गजनाके समान शयन पवही
थी । वे समराज्यमें शत्रुभोक सिप दुनप थे । हनुमान् बीने
रावणके मकनमें उन लपक देखा ॥ ३२ ३३ ॥

सहस्र पाद्मिनीस्तत्र जाम्बूनदपरिकृताः ॥ ३४ ॥
हेमजाहैरपिकिञ्चिन्नास्तत्रादित्यसन्निभाः ।
ददर्श राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य निपान ॥ ३५ ॥

सहस्र पाद्मिनीस्तत्र जाम्बूनदपरिकृताः ॥ ३४ ॥
हेमजाहैरपिकिञ्चिन्नास्तत्रादित्यसन्निभाः ।
ददर्श राक्षसेन्द्रस्य रावणस्य निपान ॥ ३५ ॥
राखतयम रावणक उठ मदरमें उठाने लक्ष्मी देवी
सनाई देवी का जाम्बूनद आभूषणोंमें विभूषित थी ।
उनके लारे अन्न लनेक गरजोंसे ढक हुए थे तथा वे प्रातः
कातक वृक्षी भौंठि उहोम हो रही थी ॥ ३४ ३५ ॥

निषिक्वा विधिधाकरा स परिमारात्पमजः ।
रुद्राशुदानि विनाजि त्रिप्राणाशुदानि च ॥ ३६ ॥

निषिक्वा विधिधाकरा स परिमारात्पमजः ।
रुद्राशुदानि विनाजि त्रिप्राणाशुदानि च ॥ ३६ ॥
परिप्राणाशुदानि आग्यानि प्राणपवनकामि च ।
कामस्य गृहक रथं दियाशुदकमय च ॥ ३७ ॥

परिप्राणाशुदानि आग्यानि प्राणपवनकामि च ।
कामस्य गृहक रथं दियाशुदकमय च ॥ ३७ ॥
दृष्ट्वा राक्षसाम्द्रस्य रावणस्य निपान ॥

पवनपुत्र हनुमान्जीने राक्षसराज रावणके इस मन्त्रमें
अनेक प्रकारकी पाबलियाँ, विचित्र छटा-यह विचित्रछायाएँ,
श्रीबामन रात्रमय श्रीबाणपरंत, रमणीय विद्यालय और
दिनोंमें उपयोगमें आनेवाले विद्यालयमन मी देवे ॥ १९ ॥ १७३ ॥

स मन्त्ररसमप्रक्षय मयुग्स्थानसंकुलम् ॥ ३८ ॥
एवञ्चपश्चिमिराकीर्णं ददर्श भवभोक्तमम् ।
अनन्तरअभिषय निधिजाल समस्ततः ।
धीरभिहितकर्मोह एव मृतपतेरिव ॥ ३९ ॥

उन्होंने वह महत् मन्दराक्षके समान ऊँचा, श्रीबा
मयूरीके रहनेके स्थानोंके पुत्र अत्राभोंके म्पात, अनन्तर
रत्नोक्त मण्डार और लव औरवे निधिमेंसे मरा हुआ देखा ।
उसमें भीरु प्रवृत्तोंने निभिराक्षके उपयुक्त कर्माज्ञोक्त मनुमान
किष्ण एव तथा वह अष्टाह सूर्यराज (महेभ म कुबेर)
के मन्त्रके समान अन्त पढ़ता था ॥ ३८ ३९ ॥

अर्चिर्भिष्यापि रक्षाता तेजसा रावणस्य च ।
विरराज च तद्दंष्ट्रम रश्मियागिभ रश्मिभिः ॥ ४० ॥
रत्नोंकी किरणों तथा रावणके तेजके कारण वह धर
किरणोंसे युक्त सूर्यके समान प्रमत्ता रहा था ॥ ४ ॥

आम्बुनर्मवाम्बेव शयनाभ्यासनामि च ।
इत्थार्थे श्रीमद्वाल्मीके वाल्मीकीये अर्थिकाभ्ये सुन्दरकाव्ये पद्यः सर्गः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीवल्मीकीनिर्मित अर्थरामायण अर्थिकाभ्ये सुन्दरकाव्यमें छठा सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ॥

सप्तम सर्ग

रावणक भवन एव पुष्पक विमानका वर्णन

स वेदमजानं बलवान् ददर्श
व्यासकृष्यैर्दुर्धनुषणजालम् ।
यथा महत्प्राद्युपि मेघवासं
बिद्युत्पित्तयं सविहङ्गाजलम् ॥ १ ॥
बलवान् भीरु हनुमान्जीने नीचमसे नहीं हुई होनेकी
सिद्धिकीये सुघोषित तथा पवि-समूहोंसे युक्त मयनोंका
उद्गार देना जो वहाँप्रथमै विक्रमीये युक्त महती वेपमाका-
के समान अनेक जान पड़ता था ॥ १ ॥

नियन्तादौ विधिधाञ्ज दाहता
प्रधानाङ्गायुषध्यापताला ।
मनोहराकापि पुनर्विशाम्वा
द्वन् वाम्माद्रिपु चन्द्राण्यः ॥ २ ॥

उसमें नाना प्रकारकी बत्तों गज्ज भायुष और पतुगो-
की शुकल शुकल शाण्डों तथा पर्वतोंने समान ऊँचे महलोंके
ऊपर अथवा एदं सिद्धम चत्पताण्डौ (महाभित्तौ)
देवी ॥ १ ॥

भाजनामि च शुभाणि ददर्श वरियुधपः ॥ ४ ॥
वान्भूषयन्ति हनुमान्ते वहाँके पत्न्या, कोकी ।
पात्र समी अत्यन्त उत्कृष्ट तथा जाम्बूनद सुवर्णके बने
ही देखे ॥ ४१ ॥

मम्बासवहृतकलेर्दं मणिभाजनसकुलम् ।
मनोरममसम्बाध कुबेरभयर्तं यथा ॥ ४२ ॥
नूपुराणां च प्रोपेण कञ्चीनां निरक्षनेन च ।
सुवहृतकनिर्घोषैर्घोषभङ्गिर्विनादितम् ॥ ४३ ॥

उसमें मयु और आलम्बके गिरनेसे वहाँकी मूमि दं
हा रही थी । मणिमय पात्रोंसे मरा हुआ वह सुविरसुत म
कुबेर मन्त्रके समान मनोरम जान पड़ता था । मयुने
सनकाठ करबनियोत्री सनकागाहट मूरुओं और ताकिं
मयुर स्वर्ण तथा मय्य गम्भीर श्रेय करनेवाले बादलों
मन्त्र सुचारित हो रहा था ॥ ४१ ४२ ॥

प्रासादसघातयुत श्रीरक्षरातसंकुलम् ।
सुम्बुङ्कक्यं हनुमान् प्रविशेश महागृहम् ॥ ४४ ॥
उसमें ऐकदो अहाडिकाएँ थीं ऐकदो रमणी-रत्न
वह म्पात था । उसकी अयोविर्षों बहुत बड़ी-बड़ी थीं ।
विद्याक मन्त्रने हनुमान्जीने प्रवेश किया ॥ ४४ ॥

गृहाणि नामापसुराञ्जितानि
वेवासुरैश्चापि सुसृजितानि ।
सर्वेभ्य दोषैः परिवर्जितानि
कपिर्ददर्श स्वयसाञ्जितानि ॥ ३ ॥
अपितर हनुमान्ते वहाँ जान प्रकारके रत्नोंके सुघोषों
ऐसे ऐसे धर देते किन्ही इकता और मयुर मी प्रव
करते थे । वे एव तस्यूर्ण दर्शोक्ष रहित थे तथा रावणने उ
अने पुण्यार्थसे प्राप्त किया था ॥ ३ ॥

तानि प्रयसाभिस्तमाहितानि
मेघेन भाङ्गाविष निर्मितानि ।
महीतले सर्वगुणोत्तराणि
यद्वा सद्वाविपनेगृहाणि ॥ ४ ॥

ये भवन बड़े प्रयत्नसे बनाये गये थे और ऐसे अद्भुत लग
ये, मानो साधारं सब दानमें ही उनका निर्माण किया ही
हनुमन्जीने उर्दरे देला, इत्यादि रावणके व पर इन भूत
पर लभी गुण में तदथ बद् बदकर थे ॥ ४ ॥

ततो द्युर्लोकित्कृतमेघरूप
 मनोहर काञ्चनचारुरूपम् ।
 रक्षोऽधिपस्यात्मघसानुरूप
 गृहोत्तमं ह्यप्रतिरूपरूपम् ॥ ५ ॥

फिर उन्होंने राक्षसराज रावणका उलटकी शक्तिके अनुरूप
 मन्वन् उद्यम और अनुपम मयन (पुष्पक विमान) देखा,
 जो मेघके समान उँचा, सुवर्णके समान सुन्दर वास्तुवास्य
 तथा मनोहर था ॥ ५ ॥

महीतले स्वर्गमिय प्रकीर्ण
 भ्रिया ज्वलन्त बहुरक्षकीणम् ।
 मानातरूणा कुसुमायकीर्ण
 गिरेरियात्र रजसायकीर्णम् ॥ ६ ॥

वह इत मृतस्मर फिरके हुए स्थलके समान ध्वन
 पदा था। अपनी कान्तिसे प्रज्वलित-सा हा रहा था।
 मनेकके रसोंके म्यास, मोंडि मोंडिके फुलाके फूलोंके
 मधुकरित तथा पुष्पोंके पदागते भरे हुए पकत शिखरके
 म्यान सोमा पाता था ॥ ६ ॥

मारीप्रदेकैरिय नीप्यमानं
 तकिन्दिरम्भोधरमध्यमानम् ।
 दसप्रयकैरिय धाड्यमानं
 भिया युतं के सुष्टव विमानम् ॥ ७ ॥

वह विमानरूप मयन विद्युन्मासाओंके पूकित मेघके समान
 मरी-प्रदेके देवीप्यमान हो रहा था और भेद दमोडारा
 गणधमे हाने कहे हुए विमानकी मोंडि ज्ञान पदता था।
 त रिय विमानका बहुत सुन्दर दंगते बनाया गया था।
 त बहुत सोमाते लम्पन दिखावी देता था ॥ ७ ॥

पथा मग्रायः पटुध्यान्सिध्रं
 यथा मभस्य मधधमद्रधिप्रम् ।
 वृर्षा युक्तीकृतघारमेघ
 सिध्रं विमानं बहुरक्षधिप्रम् ॥ ८ ॥

जैसे अनेक पाटुओंके बारण पततधिलर मरों और
 कन्माके बारण आकाश तथा अनेक वयोति मुक्त होनेके
 धरण मनाहर मेघ निचित्र सोमा धारण करते हैं उगी
 तर नन्द प्रकारके रकामे निर्मित होनेके कारण वह
 म्यान मी निचित्र धामासे लम्पन िखावी देता था ॥ ८ ॥

मरी हता पर्यनगजिपूना
 दाताः पूता पूक्षरितानपूमाः ।
 पूसाः हताः पुपवितानपूमाः
 पुपं हत क.मरपत्रपूणम् ॥ ९ ॥

उप विमानकी आधारभूमि (आधारियोंके लदे
)के ध्यान) होने और मगियोंके द्वारा निर्मित कृत्रिम
 विमानओंके पूर्ण बनयी गयी थी। त वका करनेकी

विसृव पंक्तिपोंसे हरे मरे रये गये थे। ये गृह फूलोंके
 पाहुस्वसे म्यास बनाये गए थे तथा ये पुष्प मी केसर
 एवं पशुदिगोंसे पूर्ण निर्मित हुए थे ॥ ९ ॥

हृतामि यदमामि च पाशुदुराणि
 तथा सुपुष्पाण्यपि पुष्कराणि ।
 पुनस्य पद्यानि सक्तमरानि
 पनानि धियाणि सरोधराणि ॥ १० ॥

उठ विमानमे श्वेतमय बनै हुए थे। सुन्दर फूलोंसे
 मुहोभित्त पोक्षरे बनाये गये थे। फलसुक्त कमल, विचित्र
 मन और भरमुत खरोगोंका मी निमाण किया गया था ॥ १० ॥

पुष्पाण्य नाम विराजमान
 रत्नप्रभाभिश्च विद्युष्यमानम् ।
 वदमोत्तमानामपि श्लोघमान
 महाकपिस्तत्र मदायिमानम् ॥ ११ ॥

महाकपि हनुमानने शिव सुन्दर विमानको यहाँ देखा
 उसका नाम पुष्पक था। यह रत्नोंकी प्रभा। प्रकाशमान
 था और इधर उधर भ्रमण करता था। देकाओंके
 एहाकार उद्यम विमानोंमें सबसे अधिक मात्र उठ मदाविमान
 पुष्पकका ही होता था ॥ ११ ॥

हृतास्य धीकृपमया विदग्धा
 कप्यप्रवालैश्च तथा विदग्धाः ।
 चित्रास्य मातायसुभिर्मुमुक्षु
 जात्यानुकरूपान्तरुपाः शुभाङ्गाः ॥ १२ ॥

उसमे नीसम चँदी और मूँगोंके आकाशपाणी पथी
 बनाने गए थे। नाना प्रकारके खोंके निचित्र पत्तके
 लयोंका निर्माण किया गया था और अच्छी आठिक पोक्षक
 समान ही सुन्दर अङ्गकालि अथ मी बनाये गये थे ॥ १२ ॥

प्रयात्तजाम्भूनन्पुष्पपक्षाः
 सतीलमायजितजिप्रपक्षाः ।
 कामस्य स्वासादिय भागित पक्षाः
 हृताविदग्धाः सुमुग्गाः सुपक्षाः ॥ १३ ॥

उत विमानतर सुन्दर मुग और मनेहर परातान
 बहुताने येम विदग्धम निर्मित हुए थे, जो मायात्त कामदेवके

वहाँ पूर्वदिशि बाहुओंके मीन बटानर कविन व ओंका
 विद्येन मयवे म्यास टिया कव वहाँ बधायनी कर्णकर
 माया गया है। इन कटुपक क्मुगार वन क्पुमै बधायनी
 कर्णका २। वहाँ मरी च विद्येन परी करंगय पूष और
 गुला विद्येन पुष्प कर्ण मममला र्णदिहे। विदग्धम
 वरुँ करिदा नामक कर्णकर नाम है; वरुँ वहाँ अचारके
 करेवकी विद्येन कर्णकी मरी हा मरी कर्णक विषय है; वहाँ
 देवी का मरी है।

वहायक जान पड़ते थे। उनकी पीछें मूंगे और सुवर्णके बने हुए फूलोंसे युक्त थीं तथा उन्होंने श्रीवापूर्वक अपने नौके वसोंका धनेट रक्खा था ॥ १३ ॥

नियुज्यमानाश्च गन्धाः सुहस्ताः
सकेधराभोत्पलपत्रहस्ताः ।
बभूव देवी च कृतासुहस्ता

छद्मीक्ष्यया पथिनि पद्यहस्ता ॥ १४ ॥

उप विमानके कमलमण्डित धरोवरमें ऐसे हाथी वन्द्ये गये थे जो छद्मीके अभियेक-धर्ममें नियुक्त थे। उनकी छड़ बड़ी सुन्दर थी। उनके अङ्गोंमें कमलोंके केसर लगे हुए थे तथा उन्होंने अपनी पृष्ठोंमें कमल-पुष्प धारण किये थे। उनके लिये ही बहों तैबस्तिनी बहती देवीकी प्रथिमा भी विराजमान थी किन्तु उन हाथियोंके द्वारा अभियेक हो रहा था। उनके हाथ बड़े सुन्दर थे। उन्होंने अपने हाथमें कमलपुष्प धारण कर रक्खा था ॥ १४ ॥

एतीय तत्पुष्टमभिराम्य शोभसि
सदिस्रयो नगमित्य वाडकम्बरम् ।

पुनश्च तत्परमसुगन्धि सुम्बन्

हिमात्म्ये नगमित्य वाडकम्बरम् ॥ १५ ॥

इत प्रथम सुन्दर कन्दराओंवाले पत्रके समान तथा बल्लभशुद्धमें सुन्दर कोटोंवाले परम सुगन्धयुक्त वृक्षके

दृष्ट्याँ श्रीमन्नामान्ने वास्मीकीके भास्विकाको सुम्बरकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

इस प्रकार श्रीमद्भक्तिनिर्मित आर्यमातङ्ग कविकृतके सुन्दरकाण्डमें सप्तर्षी सर्ग पूरा हुआ ॥ ७ ॥

अष्टम सर्ग

हनुमान्कीके द्वारा पुनः पुष्पक विमानका दर्शन

स तस्व मरणं भवतस्य सस्थितो

महद्भिमान मणिरञ्जलिजितम् ।

प्रतप्तजाम्यूनप्लावकृत्तजिर्म

दृशो धीमान् पञ्चमात्मजः कपिः ॥ १ ॥

राज्यके भवनके मध्यभागमें बड़े हुए बुद्धिमान् पवनकुम्भर कपित्तर हनुमान्कीने मणि तथा रत्नोंसे बरिष्ठ एवं लगे हुए सुवन्द्य गन्धर्वाकी रक्षनासे युक्त उठ विद्याल विमानको पुन देखा ॥ १ ॥

तद्ममेषमतिक्लृष्टजिर्म

कृतं स्वयं सारिपति विश्वकर्मणः ।

दिव तत यामुपये प्रतिष्ठित

ध्वराजतादित्यपथस्य स्वदम तत् ॥ २ ॥

उनकी रचनाको शीघ्रमें भास्विकी दृष्टिसे माया नहीं था उल्टा था। उल्लभ निर्माण अनुपम रीतिसे किया गया था। स्वयं विश्वकर्मण ही उठे बनाया था और बहुत उत्तम

समान उठ छोभावनमान मनोहर मन्त्र (विमान) में पहुँचकर हनुमान्की बड़े निश्चित हुए ॥ १५ ॥

ततः स तां कपित्तरिपरय पूजितां
चरन् पुरीं दशमुष्णवाहूपारिताम् ।

महद्व्यतां अनकसुतां सुपूजितां
सुसुजितां पतिगुण्यवेगनिर्जिताम् ॥ १६ ॥

तदनन्तर दशमुष्ण पक्षके वाहुबलसे पारित उठ प्रसंक्षित पुरीमें जाकर वहाँ और भूमेनेपर भी पठिके गुणके बेगले पराजित (विगुण्य) कल्पित बुद्धिनी और परम पूजनीश कनकसिन्धोमी सीताका न देखकर कपित्तर हनुमान्की बड़ी विन्तामें पड़ गये ॥ १६ ॥

ततस्तदा बहुविधमाभितारमनः

कृतात्मनो जमकसुतां सुचर्मनः ।

अपश्यतोऽभद्रदक्षिणुःखितं मनः

सच्चक्षुषः प्रविचरतो महात्मनः ॥ १७ ॥

महात्मा हनुमान्की अनेक प्रकारसे परमार्थ-चिन्तनमें तत्पर रहनेवाले कृतात्मा (पवित्र अन्तःकरणवाले) तन्मार्गमात्री तथा उत्तम इष्टि रहनेवाले थे। हृष-उत्तर बहुत भूमेनेपर भी जब उन महात्माको जानकीकीका फल न लगा तब उनका मन बहुत दुखी हो गया ॥ १७ ॥

इत्यार्षे श्रीमन्नामान्ने वास्मीकीके भास्विकाको सुम्बरकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

इस प्रकार श्रीमद्भक्तिनिर्मित आर्यमातङ्ग कविकृतके सुन्दरकाण्डमें सप्तर्षी सर्ग पूरा हुआ ॥ ७ ॥

करकर उचकी प्रमंशा की थी। जब वह भास्विकमें उठकर वायुमार्गमें क्षित होता था तब और मार्गके विद्वेष सुघोमित होता था ॥ २ ॥

न तत्र किञ्चिच्च कृतं प्रयत्नतो

न तत्र किञ्चिच्च महाघरत्नवत् ।

न ते विद्योपा नियताः सुरेष्वपि

न तत्र किञ्चिच्च महाविद्योपयत् ॥ ३ ॥

उद्यमें बड़ा ऐली बरतु नहीं थी जो अत्यन्त प्रयत्नसे न बनायी गयी हो तथा बहों कोरें भी ऐसा स्वान था विमानका मङ्ग नहीं था जो बहुतस्य रत्नोंसे बरिष्ठ न हो। उद्यमें जो विद्योपयत् थीं, वे देवताओंके विमानोंमें भी नहीं थीं। उद्यमें कोई ऐली भीज नहीं थी, जो बड़ी भारी विद्योपयत्से युक्त न हो ॥ ३ ॥

तथाऽसमाधानपरक्रमाजित

मनःसमाधानविचारचारिणम् ।

धरायक ज्ञान पश्यते ये । उनकी पोलें मूँये और सुवर्णके बने हुए धूम्रोंसे मुक्त थी तथा उन्होंने श्रीशारङ्गक अपने बाँके पंक्तोंके लयेक रक्खा था ॥ ११ ॥

नियुक्तयमानाश्च गजः सुहस्ता
 लकेसराभ्योत्पन्नपमहस्ताः ।
 बभूवु देवी च कृतासुहस्ता
 कक्ष्मीस्तथा पथिनि पद्यहस्ता ॥ १४ ॥

उस विमानके कमलमण्डित शरीरमें ऐसे हाथी बनाये गये थे जो कक्ष्मीके अभियेक-नाममें नियुक्त थे । उनकी लूँइ बड़ी सुन्दर थी । उनके अङ्गोंमें कमलके बेशर जो हुए थे तथा उन्होंने अपनी सूँयोंमें कमल पुष्प धारण किये थे । उनके श्वाय ही बरों वेद्विनी कक्ष्मी देवीकी प्रतिमा भी विगबम्भन भी किन्का उन हाथियोंके हाथ अभियेक हो रहा था । उनके हाथ बड़ सुन्दर थे । उन्होंने अपने हाथमें कमलपुष्प धारण कर रक्खा था ॥ १४ ॥

हतीय तद्गृहमभिगम्य शोभनं
 सविस्त्रयो नयामिव चारुफल्गुरम् ।

पुनश्च तत्परमसुगन्धिं सुम्भं
 विमात्यपे भगामिव चारुफल्गुरम् ॥ १५ ॥

इस प्रकार सुन्दर कक्ष्मीकोवासे पकवके समान तथा बलन्तशुद्धमें सुन्दर श्रोत्रोकोवासे परम सुगन्धमुक्त इन्के

हाथमें श्रीमत्प्रामाण्ये कक्ष्मीकीसे कश्चिकाम्भे सुन्दरकाण्डे सततः सर्गाः ॥ १५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्प्रसिद्धिनिमित्त भार्यामायक कश्चिकाम्भे सुन्दरकाण्डमें सठराँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १५ ॥

अष्टम सर्ग

हनुमान्श्रीके द्वारा पुनः पुष्पक विमानका दर्शन

स तस्य मध्य भवनस्य सखितो
 महद्भिमान मखिरक्षचिञ्चितम् ।

प्रतप्तशाम्भुनक्षत्राङ्कजिर्म
 दूर्वां श्रीमाम् पञ्चशरमञ्जः कथिः ॥ १ ॥

राजकके भवनके मध्यभागमें कड़ हुए सुप्रिमान् पवनकुमार कथिपर हनुमान्श्रीने मणि तथा रक्षीते बठित पर्व लगे हुए सुवजम्भ महाशोकी रचनासे मुक्त उठ विद्यमान विमानमें पुन देखा ॥ १ ॥

तद्ग्रमेपप्रतिकारकाजिर्म
 कर्त स्वयं सावित्रति विम्बकर्मणा ।

विद्य पात धानुपद्ये प्रतिष्ठितं
 श्वरोजलादिरयपद्यस्य लक्ष्म तद् ॥ २ ॥

उसकी रचनाको लेख्य भादिकी इतिसे माया नहीं था लक्ष्म था । उक्त निर्माण अनुपम रीतिसे किया गया था । स्वयं विम्बकमानि ही उठे बनाया था और बहुत उत्तम

तमान उठ शोभ्यमान मनाहर मवन (विमान) में पहुँचकर हनुमान्श्री बड़े विस्मित हुए ॥ १५ ॥

ततः स तां कथिपथिपरय पृथितां
 चरन् पुरीं दशमुखबाहुपाशिताम् ।
 महद्व्यतां जनकसुतां सुपृथितां
 सुपुथितां पतिगुण्येगमिञ्जिताम् ॥ १६ ॥

तदनन्तर दशमुख राजकके बाहुबलसे पाशित उठ प्रसंछित पुरीमें व्याकर धारों और पूम्नेपर भी पतिके गुणोंके वेगसे पशकित (विमुक्त) अत्यन्त सुखिनी और परम पूजनीया जनककिशोरी शीतलके न देखकर कथिपर हनुमान्श्री थिन्तामें पक गये ॥ १६ ॥

ततस्तदा बहुविधमपाशितामनः
 कृतामनो जनकसुतां सुधारमनः ।

अपश्यतोऽभवद्विदुःखितं मनः
 सञ्चक्षुः प्रविचरतो महात्मना ॥ १७ ॥

महात्मा हनुमान्श्री अनेक प्रकारसे परमार्थ-चिन्तनमें उत्तर रहनेवाले कृतात्मा (पवित्र अन्तःकरणवाले) अन्तर्मगामी तथा उत्तम इष्टि रहनेवाले थे । इधर-उधर बहुत पूम्नेपर भी जब उन महात्माको जानकीकीका पता न लगा तब उनका मन बहुत दुखी हो गया ॥ १७ ॥

इत्यनेन श्रीमत्प्रामाण्ये कश्चिकाम्भे सुन्दरकाण्डे सततः सर्गाः ॥ १६ ॥

इस प्रकार श्रीमत्प्रसिद्धिनिमित्त भार्यामायक कश्चिकाम्भे सुन्दरकाण्डमें सठराँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १६ ॥

कड़कर उठकी प्रसंछा की थी । जब बड़ आकाशमें उठकर बाधुनागमें कित होता था तब ठीक मार्गके बिन्दु-वा सुघोमित होता था ॥ १ ॥

न तत्र किञ्चिच्च कृत प्रयत्नतो
 न तत्र किञ्चिच्च महाशरैरञ्जत् ।
 न ते विद्येया नियताः सुरपथि
 न तत्र किञ्चिच्च महाविद्योपयत् ॥ ३ ॥

उतमें कोई ऐसी बल नहीं थी जो अत्यन्त प्रयत्नसे न बननी गयी हो तथा वहाँ कोई भी ऐसा ज्ञान या विमानक मङ्ग नहीं था जो बहुमुख्य ज्योंके बठित न हो । उतमें जो विशेषताएँ थी वे देवताओंके विमानोंमें भी नहीं थीं । उतमें कोई ऐसी शीघ्र नहीं थी जो बड़ी भारी विशेषतासे मुक्त न हो ॥ ३ ॥

तपःसमाधानपरकमार्जित
 मनःसमाधानविचारधारिणम् ।

अनेकसंस्थानविशेषनिर्मित

ततस्ततस्तुह्यविशेषनिर्मितम् ॥ ४ ॥

रावणने जो नियहार रहकर तप किया या ओर मयवानके भिन्तनमें किलको एकाम किया था, इससे मिळे हुए परक्रमके द्वारा उधने उध विमानपर अभिषर प्राप्त किया था। मनमें जहाँ भी घानेका संकल्प उठता, वही वर विमान पहुँच जाता था। अनेक प्रकारकी विधि निर्माणकामओहारा उध विमानकी रचना हुई थी तथा जहाँ-वहाँसे प्राप्त की गयी विषय विमान निर्माणोक्ति विशेषताओंसे उधका निर्माण हुआ था ॥ ४ ॥

मनः समाधाय तु शीघ्रगामिन

पुरासर्वं मारुततुह्यगामिभम् ।

महात्मनां पुण्यकृता महर्षिनां

पदासिनामप्यमुनामिषाद्यम् ॥ ५ ॥

वह स्वामीके मनका अनुसरण करते हुए वही शीघ्रतासे पानेबाधा, वृत्तोंके बन्धे बुद्धिम और वायुके समान कोणवर्क आगे बढ़नेबाध या तथा भेद आनन्द (महान् मुख) के मन्धि, बड़े-बड़े तपत्रासे, पुण्यकारी महात्माओंका ही वह अभय था ॥ ५ ॥

विशेषमाह्वय्य विशेषसंस्थित

विशेषकूर्तं बहुकृतमश्नितम् ।

मनोऽभिरामं शारविणुनिर्मल

विशेषकूर्तं शिखरं गिरेर्यथा ॥ ६ ॥

वह विमान गतिविशेषका आभय छ म्योमरूप देण

हृषीकेशो भीमव्रामापने वास्मीकीये अदिकाम्ये सुन्दरकाण्डेऽधमः सर्गः ॥ ८ ॥

इस प्रकार भीमव्रामनिर्मित अर्धव्रामम अदिकाम्यके सुन्दरकाण्डे अठारवाँ सर्ग पठ हुआ ॥ ८ ॥

नवम सर्ग

इनुमान्त्रीका रावणके भेष्ट भवन पुण्यकविमान तथा रावणके रहनेकी सुन्दर हवेलीका देखकर

उसके भीतर सायी हुई सहस्रों सुन्दरी स्त्रियोंका अवलोकन करना

वस्थापयपरिपुस्य मध्ये विमलमायतम् ।

वर्षा भयनघोषं हनुमान् मारुतात्मजा ॥ १ ॥

मर्षयोद्गमविस्तीर्णमायत योद्गम महत् ।

भयन राक्षसेन्द्रस्य बहुमासात्संकुलम् ॥ २ ॥

बहुवर्षी सर्वभेद मरुत्पक्षके मय्यभ्रगमे पवनपुत्र

इनुमान्त्रीने देखा एक उद्यम मवन घोष या रहा है। वह

बहुत ही निर्मल एवं किरणुत था। उद्यम घंटाई एक

योद्गमकी और शीघ्रता आपे योक्नकी थी। राक्षसपत्र

पत्रका वह विद्याम मवन बहुत-सी अद्भुतविद्याओंसे

भयत था ॥ १ २ ॥

विशेषमें स्थित था। आश्चर्यजनक विधि वस्तुओंका समुदाय उद्यममें एकत्र किया गया था। बहुत-सी शास्त्रोंके फल उद्यमकी वही घोष हो रही थी। वह धारद श्रुतके पत्रमके समान निर्मल और मनको आनन्द प्रदान करनेबाध था। विधि जोटे-छाटे किस्मोंसे युक्त किसी पत्रके प्रथम शिखरकी वैधी घोमा होती है, उसी प्रकार अद्भुत शिखरबासे उध पुण्य विमानकी भी घोमा हो रही थी ॥१॥

महन्ति परकुण्डलशोभितात्मना

महाशना श्योमचरानिशाश्वराः ।

विवृत्तविष्वस्तयिशाहलोचना

महाजया भूतगयाः सहस्रशः ॥ ७ ॥

वसन्तपुष्पोत्करचारवर्षाम

वसन्तमासावपि चाददर्शनम् ।

स पुण्यकं तत्र विमानमुत्तम

दर्शं तद् वानरधीरसत्तमा ॥ ८ ॥

दिनके मुख मण्डल कुण्डलोंसे सुशोभित और नेत्र पूरते या पूरते रहनेबाधे, निमेषरहित तथा बड़े-बड़े से, वे अपरिमित मोहन करनेबाधे, महान् वेगशाही, अल्पधर्म विचरनेबाधे तथा रातमें भी दिनके समान ही पानेबाधे लक्षों भूतगण विषय भार बहन करते थे, जो वसन्त-कालिक पुण्य पुत्रके समान रमणीय दिसापी देता था और वसन्त मालते भी अधिक सुहावना इक्षिमीचर होता था, उध उद्यम पुण्य विमानकी वानरशिरोमणि इनुमान्त्रीने वही देखा ॥ ७-८ ॥

मार्गमाणस्तु वैदेहीं सीतामायतलोचनाम् ।

सवतः परिचक्राम हनुमानरिसूदनः ॥ ३ ॥

विद्याभ्येयना विदेहनिन्दनी क्षीताकी स्त्रोत्र करते हुए

घनुस्तरन इनुमान्त्री उध मकनमें लव और चक्रर स्याते

किं ॥ ३ ॥

उद्यम राक्षसायासं हनुमानयलोकापम् ।

माससाहाय लक्ष्मीयान् राक्षसेन्द्रनियेशनम् ॥ ४ ॥

बहवैमवते लग्नन इनुमान् राक्षसोंके उध उद्यम

आवातत्र मन्कोकन करते हुए एक ऐसे सुन्दर घरमें था

पहुँचे, जो रावणराज रावणका निधी निवास-स्थान था ॥ ४ ॥

अधुनिपाणैर्द्विरैस्त्रियिपाणैस्तथैव च ।
परिहितमसत्रशय रक्षयमाणमुदायुधैः ॥ ५ ॥

अर यौव तथा हीन दौर्लभाके हाथी इध निस्तृत
मन्त्रज्ञा नारी भारसे वेरकर सङ्घे ये और हाथीमें हथियार
दिये बहुत-से राक्षस उरबी रखा करते थे ॥ ५ ॥

राक्षसीभिश्च पत्नीभी रायणस्य निवेशनम् ।
आहृताभिश्च विक्रम्य राज्ञकन्याभिरावृत्तम् ॥ ६ ॥

रायणका वह मरुत उरबी राक्षसपत्नीय परिणयो तथा
पदम्भसूर्यक हरकर कन्यो दुर्गे रायकन्याभौसे मय दुभा
या ॥ ६ ॥

तत्रक्रमकपाकीर्णं तिमिगिलक्षपाकुलम् ।
वायुपगसमापृत पद्मगीरिय सागरम् ॥ ७ ॥

इध प्रकर नर-नारियौसे मय दुभा यह श्रेयसहृदय
मनन नाक और मगतेके ब्याह, तिमिगिलक्षे और मस्त्योके
पूज, वायुदेवत विधुप्य तथा क्योसे भापृत महासागरक
तमान प्रयोग होया था ॥ ७ ॥

या हि वैभयमे त्वदमीयां चन्द्रे हरियाहने ।
सा रायणस्यैव रम्या नित्यमेवावपायिनी ॥ ८ ॥

जो कन्या कुपेरु, चन्द्रमा और इन्द्रके यहाँ निबास
करती हैं वे ही और भी सुरम्य रूपसे रायणक परमै नित्य
ही निबास करती थी ॥ ८ ॥

या च रायः कुपेरस्य यमस्य यदपस्य च ।
सादसी तद्विनिगया या श्रुयी रक्षोपुष्टेष्बिद ॥ ९ ॥

जो यन्दि मताय कुपेर यम और यमके यहाँ
हजिगार इक्षी है वही अथवा उरबी भी यदकर रायके
परमै रक्षो क्यो थी ॥ ९ ॥

तस्य हर्म्यस्य मरपस्यपदम चान्यत् सुनिर्मितम् ।
पदुनिगृहसमुक्तं द्दर्शनं पयस्रमज्ज ॥ १० ॥

उर (एक यानन उर और भाये यमन योइ)
मरुतक मध्यभ्रममे एक दूष्य मन्त्र (पुणक रिमन)
या शिष्य निमान बडे मुन्दर ज्योस किया गया था ।
वह मान बहुतकर मजाल हाथियेक मुक्त था ।
एकन दुभार इतुल्यन्धीन फिर उर दया ॥ १० ॥

प्रक्षाल्यै कृत दिव्यं दिवि यत् शिष्यकमया ।
विमामं पुण्यकं माम तपरातविभूरितम् ॥ ११ ॥

वह उर प्रक्षालके यमोन निरुणित पुणक यमक दिव्य
विमान सार्द्धक्ये सिराकमनि प्रक्षालके दिवि क्यो
था ॥ ११ ॥

एवम तपसा सभ यत् कुपरा निठामहात् ।
कुपरात्रसा शिवा उभ वत् पाक्षसम्भरा ॥ १२ ॥

कुपरे वही यही वराच वरके उर प्रक्षालके उर

किमा और फिर कुपेरक बहसूरक परास करके राक्षस
रायणने उसे अपने हाथमें कर लिया ॥ ११ ॥

ईहामृगसमायुक्तैः कर्तस्वरहिरण्यमयैः ।
सुहृदैरपचित स्तम्भैः प्रदीप्तमिष च शिवा ॥ १२ ॥

उरमें भेड़ियेकी मूर्तिमेंसे मुक्त साने-नौवीक कुपेर
सम्भे बनाये गये थे, किनके कायण यह मन्त्र भङ्ग
कान्तिसे उर-त-सा हो रहा था ॥ १२ ॥

मंसमन्वरसकाशैकस्त्रिकद्रिरिपाम्बरम् ।
शूद्रागारैः पुभागारैः सर्वतः समर्द्धकृतम् ॥ १३ ॥

उरमें सुमेव और मन्त्ररायणके समान उरके मनेकनेक
गुण यह और मङ्गल मन्त्र बने थे, जो अपनी कर्णसे
आकाशमें रेखा-ही कर्णसे हुए जान पड़ते थे ।
उनक हाथ यह विमान उर ओरसे सुषोमित होता था ॥ १३ ॥

ज्यञ्जनाकप्रदीकाशैः सुहृद्य विम्बकर्मणा ।
शेमसोपायमुक्तं च पादप्रपत्तेदिकम् ॥ १४ ॥

उनका प्रकाश भग्नि और सूर्यके समान था ।
विम्बकर्मने बड़ी कर्णमेंसे उरका निर्माण किया था ।
उरमें कोनेकी शीर्षिका और अस्मन् मनोहर उचम बेरियो
बनायी गयी थी ॥ १४ ॥

जसपातायमैर्मुक्त काश्चनैः स्फाटिकैरपि ।
इन्द्रनीलमहातीक्ष्णपिप्रपरदेदिकम् ॥ १५ ॥

जने और स्फटिकके शोख और शिखरियों लगायी
गयी थी । इन्द्रनील और महानील मन्त्रियोंकी श्रेयतम
बेरियो रखी गयी थी ॥ १५ ॥

पितृमेण विवित्रेण मणिभिश्च महाधनैः ।
निस्तुताभिश्च मुक्ताभिस्तानामभियत्तजितम् ॥ १६ ॥

उरकी कर्ण विवित्र मूंगे, बहुमूल्य मन्त्रियों तथा
अनुपम गोम-मूंगे मोतियोंसे बड़ी गयी थी, बिहसे उर
विमानकी बड़ी घोषा हो रही थी ॥ १६ ॥

अन्दनम च रक्तैः तपनीयनिमेण च ।
सुपुण्यगण्डिता युक्तमादित्यतरणोपमम् ॥ १७ ॥

मुक्कके समान पात रंगके मुक्कपुण्ड कन्धने
धुण्ड हन्नेके कायण यह कानसूर्यके समान धन पड़या
था ॥ १७ ॥

शूद्रागारैरपारकाशैरिषियैः समतलकृतम् ।
विमानं पुण्यकं दिव्यमाकरोह महाकविः ।
तत्रस्था सपता गन्ध पातभक्ष्यान्मसाम्भयम् ॥ १९ ॥
दिव्यं सम्पूर्णैर्द्वयं त्रिभन् रूपयन्मिवाग्निहम् ।

महाकवि इतुल्यन्धी उरका म्ब पुणक विमानरर यद गये,
जो नन्व मन्त्रक मुन्दर नृत्तये (भद्रादिगण्ये) उर अर्द्धक
था । वहाँ देवकर दे उर और ऐसी दुर्गे नन्व प्रचरके

न, मन्म और मन्मकी विषय गन्ध लेंपने लगे । वह गन्ध
 युक्तिमान् पवन-सी प्रतीत होती थी ॥ १९३ ॥

स गन्धस्त महासस्य बन्धुर्बन्धुमिवोत्तमम् ॥ २० ॥
 एत प्यतिपुष्यावेव तत्र यत्र स रावणः ।

वेधे कोई बन्धु-नाम अपने उत्तम बन्धुको अपने पास
 बुझाता है, इसी प्रकार वह सुगन्ध उन महाबन्धी हनुमान्की-
 को माना वह कहकर कि 'इधर चले आओ' क्यों राख्य था,
 वहाँ बुझ रही थी ॥ २० ॥

ततस्तं प्रस्थितः शालां वृक्षं महतीं विषाम् ॥ २१ ॥
 रावणस्य महाकान्तां कान्तामिव वरश्रियम् ।

तदन्तर हनुमान्की उस ओर प्रस्थित हुए । आगे
 बढ़नेपर उन्होंने एक बहुत बड़ी हनेकी देखी, जो बहुत
 ही सुन्दर और सुन्दर थी । वह हनेकी रावणको बहुत ही
 प्रिय थी। ठीक वेधे ही वेधे पक्षिको कान्तिमयी सुन्दरी पत्नी
 अधिक प्रिय होती है ॥ २१ ॥

मणिसोपानविभ्रतां हेमजाडबिरासिताम् ॥ २२ ॥
 स्फुरतिरैराघृततटां बन्तान्तरिकविक्रिताम् ।
 मुक्तावज्रप्रयाणैश्च रूप्यजामीकरैरपि ॥ २३ ॥

उठमें मणिकोंकी छीदियों बनी थी और सोनेकी
 शिब्रिकियों उठकी सोम बढाती थीं । उठकी फर्श स्वर्णिक
 मणिके बनायी गयी थी, बर्शों बीच-बीचमें हाथीके बालके
 द्वारा मिश्रित प्रकारकी मण्डलियों बनी हुई थीं । मोती,
 हीरे, मूंगे, चाँदी और सोनेके द्वारा भी उठमें अनेक प्रकारके
 आभर अद्वित किये गये थे ॥ २२-२३ ॥

विभूयितां मणिसाम्भैः सुवहुस्तम्भभूषिताम् ।
 समैर्भ्रजुभिररयुष्णैः समन्तात् सुविभूयितैः ॥ २४ ॥

मणिकोंके वने हुए बहुत-से लम्बे, जो समान, छीने,
 बहुत ही ऊँचे और सब ओरसे विभूयित थे, आभूषणकी
 मूर्ति उठ हनेकीकी सोम बढा रहे थे ॥ २४ ॥

स्तम्भैः पक्षैरिवायुष्णैर्द्विं सप्तप्रस्थितामिव ।
 महत्या कुपयाऽऽस्तीर्णां पृथिवीलक्षणान्मया ॥ २५ ॥

अनेक अत्यन्त ऊँचे स्तम्भरूपी पक्षोंसे मानो वह
 भगवाणध उड़ती हुई-सी बान पड़ती थी । उसके मीटर
 रूपीके बन-पत्र भादि शिहोंसे अद्वित एक बहुत बड़ा
 कथेन शिष्टा हुआ था ॥ २५ ॥

पृथिवीमिव यिस्तीर्णां सराण्णुद्दशास्त्रिणीम् ।
 मण्डितां मत्तयिह्वरीर्द्विष्यगन्धाधियासिताम् ॥ २६ ॥

एक और पर आदिके चिहोंसे मुद्राभित्त यह ठाण्ड
 रूपीके समान शिष्टीय बान पड़ती थी । बर्शों मत्तवाके
 विरंगमके कन्दर नूँजते रहते थे तथा वह दिव्य
 सुगन्ध मुद्रासिनी थी ॥ २६ ॥

पराध्यास्तरजोपेतां रक्षोऽधिपनिषेयिताम् ।
 घृत्नामगुहधुपेन यिमला हंसपाण्डुराम् ॥ २७ ॥

उठ हनेकीमें बहुतस्य शिष्टीने शिष्टे हुए थे तथा स्वयं
 राक्षस्य रावण उठमें निषाठ करता था । वह अगुह
 नामक पूरके पूरेंसे घूमिक दिखायी देती थी किंगु राक्षसमें
 हंसके समान स्वैत एवं निर्मक थी ॥ २७ ॥

पद्मपुष्पोपहारेण कस्मापीमिव सुप्रभाम् ।
 ममसो मोद्गमर्णां धर्मस्यापि प्रसाधिनीम् ॥ २८ ॥

पद्म पुष्पके उष्णरसे वह शास्त्र चितकृती-की बान
 पड़ती थी । अथवा वक्षिमुनिकी शम्भ गौकी मूर्ति
 सम्पूर्ण कामनामोंकी देनेवासी थी । उठकी कान्ति बड़ी ही
 सुन्दर थी । वह मनको आनन्द देनेवासी तथा सोमाको
 भी सुशोभित करनेवासी थी ॥ २८ ॥

ता शोकनाशिनीं विष्या भ्रियः सज्जननीमिव ।
 इन्द्रियापीन्द्रियायैस्तु पञ्च पञ्चभिरुत्तमैः ॥ २९ ॥
 तर्पयामास मातेष तदा रावणपाक्षिता ।

वह दिव्य शास्त्र शोकनाश नाश करनेवासी तथा सम्पत्ति-
 की जननी-सी बान पड़ती थी । हनुमान्कीने उसे देखा ।
 उठ रावणपाक्षित शास्त्राने उठ सम्य माताकी मूर्ति शम्भ,
 स्वयं आदि पाँच विषयोंसे हनुमान्कीकी भाष आदि पाँचों
 इन्द्रियोंको वृत्त कर दिया ॥ २९ ॥

स्वर्गोऽयं देवलोकोऽयमिन्द्रस्यापि पुरी भयत् ।
 सिद्धिर्येष परा हि स्यादित्यमन्यत मादतिः ॥ ३० ॥

उठे देवकर हनुमान्की यह उर्क-किर्क करने लगे कि
 सम्भ है, यही स्वर्णको या देवलोको हो । यह इन्द्रकी
 पुरी भी हा लफ्ठी है अथवा यह परमशिदि (ब्रह्मलोककी
 मूर्ति) है ॥ ३० ॥

प्रध्यायत ह्यापद्यत् प्रदीपास्तत्र काञ्चनान् ।
 घूर्तानिव महाभूर्तैर्वयनेन पराजितान् ॥ ३१ ॥

हनुमान्कीने उठ शास्त्रमें सुषमय हीपक्षोंको पक्षार
 कहते देखा, मानो वे ध्यानमय हो रहे हों। ठीक उठी
 तब वेधे किछी बड़ सुभारीके बुधमें हरे हुए छोटे सुभारी
 धननाथकी चिहोंके करण ध्यानमें हने हुए-से दिखायी
 देते हैं ॥ ३१ ॥

दीपानां च प्रकशेन तज्जला रायणस्य च ।
 अर्चिर्भिभूषणानां च प्रदीतिरभ्यमन्यत ॥ ३२ ॥

दीपकोंके प्रकाश, रावणके तज और आभूषणोंकी
 कान्तिसे वह छोटी हनेकी पक्षी हुई-सी बान पड़ती
 थी ॥ ३२ ॥

ततोऽपद्यत् कुपासीनानापाणमपराजितम् ।
 सहस्रं परमारीणां मानायपविभूषितम् ॥ ३३ ॥

तदन्तर हनुमान्कीने कालीनपर देता हुई तद्वत्

मुन्दरी जियो देली भो रंग-बिरंगे वस्त्र और पुष्पमाला
धारण किये बनेक प्रकरकी बेधभूषाओंये विभूषित
थीं ॥ ३३ ॥

परिवृष्टोर्धराये तु पाननिद्रावर्षागतम् ।
श्रीश्रीयापत्तं रात्री प्रसुप्तं वक्ष्यन् तवा ॥ ३४ ॥

भाभी उत शीत अनेपर वै श्रीदाते उपरत हो मपुपानके
मर और निद्राके वशीभूत हो उस समय गाड़ी नींदमें सो
गयी थीं ॥ ३४ ॥

तत् प्रसुप्त विदरुषे निःशब्दान्तरभूषितम् ।
निःशब्दसंभ्रमर पथा पद्मचनं महत् ॥ ३५ ॥

उन छेयी हुई वस्त्रों नारियोंके कटिभागमें भव
करपतीकी लनलनाहटका ध्वन्द नहीं हो रहा था । इंसोके
कमर तथा भ्रमरोंके गुञ्जारवते रहित मिथाळ कमर-बनके
समान उन झुन मुन्दरियोंका समुदाय बड़ी शोभा पा रहा
था ॥ ३५ ॥

तासां सधृतशान्तानि मीक्रीताश्रीणि मादतिः ।
अपहस्यत् पद्मगन्धीनि धन्नामि सुयोपिताम् ॥ ३६ ॥

पवनकुमार इनमान्द्रीने उन मुन्दरी सुभक्तियोंके मुख
इसके बिनत कमरोंकी थी सुगन्ध फैल रही थी । उनके वींठ
ठँके हुए थे और भौंसें डूँब गयी थीं ॥ ३६ ॥

प्रबुद्धानीच पद्मानि तासां भूया सपाक्षये ।
पुनः सधृतपत्राणि रात्राविष बभूवुस्तवा ॥ ३७ ॥

रात्रिके अन्तमें खिळे हुए कमरोंके समान उन
मुन्दरियोंके धो गुसादियर हृदय उदकसक दिखायी देते
थे वे ही फिर उत मानेपर धा बनेके कारण मुँदे हुए
दस्ताळ कमरोंके समान घोभा पा रहे थे ॥ ३७ ॥

इमानि मुखपद्मानि नियतं मत्तपटपदा ।
अभ्युज्जानीच फुल्लानि प्रार्थयन्ति पुनः पुनः ॥ ३८ ॥
इति वामन्यस भीमानुपपत्त्या महाकपिः ।
मेने हि गुण्यतस्तानि सप्तानि सखिलोद्भवैः ॥ ३९ ॥

ऊँहें देखकर भीमान् महाकपि इनमान् यह समभवना
करते लो कि मतगले भ्रमर प्रकृत कमरोंके समान इन
मुन्दरियोंकी प्राथिक द्विये तिस्र ही बारबार प्रार्थना
करते होंगे—उनपर क्या ज्ञान पानेके क्रिय तबसे होंगे
क्योंकि ये पुत्रकी दक्षिण उन मुखारविन्दोंके पानीसं
उत्पन्न होनेका कमरोंके समान ही समसते थे ॥ ३८ ३९ ॥

सा तस्य शुभुभ गाढातामि द्यभिर्यिपञ्चिता ।
दरदीप प्रसन्ता चीस्ताराभिरभिशाभिता ॥ ४० ॥

यनस्ये पर ६६सा उन क्रियेस प्रकथित होकर
बेजो हा छाया ग रहा थी देह धार-धाम्में निर्मल आकाश
तावज्येस प्रकथित एवं सुवर्धित हवा है ॥ ४ ॥

स च तामिः परिवृतः शुभुभ दारसाधिता ।

यथा शुभुपतिः श्रीमास्ताराभिरिष संवृतः ॥ ४१ ॥

उन क्षिपोते विष हुआ तबउपर रावण ताराओंसे
घिरे हुए कथितमान् नखबपति कमरमाके समान घोभा
पा रहा था ॥ ४१ ॥

यादक्यवस्तेऽन्वरात् तारा पुष्पशोपसमावृताः ।
इमास्ताः संगताः कुत्सा इति मेने हरिस्ता ॥ ४२ ॥

उस समय इनमान्द्रीको देला मात्रम हुआ कि आकाश
(तारा) से नोगावधिह पुष्पके साथ जो ताएँ नीचे
गिरती हैं वे स-श्री-स-मानो यहाँ इन मुन्दरियोंके रूपमें
एकत्र हो गयी हैं ॥ ४२ ॥

तारापामिष सुषपक महतीनां शुभाश्रिपाम् ।
प्रभावपूर्णसावाद्य विरेहस्तत्र योपिताम् ॥ ४३ ॥

क्योंकि वहाँ उन सुवर्तियोंके उभे वर्ष और प्रखर
रक्तः सुन्दर प्रभावसे महान् तारोंके समान ही सुशोभित
होते थे ॥ ४३ ॥

व्याघ्रसकलपीनलकप्रकीर्णवरभूपण्याः ।
पावण्यायामकाळेपु निद्रोपहतचेतसः ॥ ४४ ॥

मपुपानके अन्तर भ्यामम (वरप गान श्रीवा
बादि) के समय बिनके देह सुककर निखर गये थे
पुष्पमालाएँ मरित होकर छिन्न-भिन्न हो गयी थी और
मुन्दर आभूषण भी शिथिल होकर इपर-उपर खिलक गये
थे, वे सभी मुन्दरियाँ वहाँ निद्रासे अचेत-सी होकर सो
रही थीं ॥ ४४ ॥

व्याघ्रसतिसकाः काञ्चित् काञ्चित्पुद्धान्तनुपुराः ।
पादस्यै गञ्जितहाराद्य काञ्चित् परमयोपिताः ॥ ४५ ॥

किन्हीक मसककी (सिंघुर कस्यी मादिकी) कदियों
पुछ गयी थीं किन्हीके नूपर पैरोंसे निकककर तूर जा पड़े थे तथा
किन्ही मुन्दरी सुवर्तियोंके हार टूटकर उनके यगभमें ही पड़े थे ॥
मुक्ताहारधृताभ्याग्याः काञ्चित् प्रकस्तवाससः ।
व्यापियारदाम्नादामाः किञ्चोर्षे इष वाहिताः ॥ ४६ ॥

कोई मोदियोंके हार टूट जानेसे उनके बिलर रातोंसे
आहत थीं किन्हीके वस्त्र खिलक गये थे और किन्हीकी
करपतीकी छड़ टूट गयी थी । वे सुवर्तियों बोल होकर यकी
हुई अथवातिथी नवी बडेइयोंके समान जान
पकती थीं ॥ ४६ ॥

अकुण्डलधराभ्याम्या विच्छिन्नममूर्धितकजः ।
गजेश्चमूर्धिताः कुल्ला खटा इष महावन ॥ ४७ ॥

किन्हीके कानके कुण्डल फिर गये थे, किन्हीकी
पुष्पमालाएँ मसकी काकर छिन्न भिन्न हो गयी थीं । इन्से
वे महान् यनमें यक्षप्राशय इन्ही-मसी गयी पूर्यी कमाओंके
समान प्रतीत होती थीं ॥ ४७ ॥

बन्नाशुकिरजाभावा हाराः कसांशिवुद्धताः ।

इसा इव यमुः सुताः स्तनमभ्येपु योषिताम् ॥ ४८ ॥

किन्हींके फन्नाम और सुदकी किर्णोंके समान प्रकाशमान हार उनक वधुसम्पन्न परकर उभरे हुए प्रतीत होते थे । वे उन मुद्रितियोंके स्तनमण्डलपर ऐसे स्नन पड़ते थे माने वहाँ इंस छो रहे हों ॥ ४८ ॥

भयवसां च वैदूयाः कावम्बा इव पक्षिणाः ।

हेमसूत्राणि धान्यासां चक्रवाका इवाभवन् ॥ ४९ ॥

वृक्षी किन्नोंके स्तनोंपर नीळमके हार पड़े थे, जो कारम (चक्रवाक) नामक पक्षीके समान शोभा पाते थे तथा अन्य किन्नोंके उरोधर जो सोनेके हार थे, वे पक्ष्याक (पुरस्ताव) नामक पक्षियोंके समान स्नन पड़ते थे ॥ ४९ ॥

इसकरण्डवेपिताभकवाकोपशोभिताः ।

भाषया इव ता रेजुर्वायमैः पुच्छिनैरिव ॥ ५० ॥

इव प्रकार वे हथ, करण्ड (लकड़ा) तथा पक्ष्याभेदे सुषोभित नदियोंके समान शोभा पाती थीं । उनक कनमरेह उन नदियोंके तटोंके समान स्नन पड़ते थे ॥ ५० ॥

किङ्किणीमाखलसंकरास्ता हेमशिपुञ्जाम्बुजाः ।

भाषमाहा पक्षस्तीराः सुता नद्य इषावमुः ॥ ५१ ॥

वे सोयी हुई सुन्दरियों वहाँ छरिताओंके समान सुषोभित होती थीं । किङ्किणियों (कुँचुकों) के समूह उनमें मुकुटके समान प्रतीत होते थे । सोनेके निम्न अमभूषण ही वहाँ बहुसंख्याक स्वर्णमण्डोंकी शोभा धारण करते थे । मय (सुभाषणामे भी वासनावध होनेवासी यज्ञार-नेद्यार्थ) ही मानो माह वे तथा नद्य (कान्ति) ही तरहके समान स्नन पड़ते थे ॥ ५१ ॥

सुदुष्यहंपु कासाचित्तकुष्माप्रेषु च संस्थिताः ।

बभ्रुर्भूषणानीय शुभा भूषणराजयः ॥ ५२ ॥

किन्हीं सुन्दरियोंके नेत्रक अङ्गोंमें तथा कुन्नोंके मममागपर उभरी हुई आभूषणोंकी सुन्दर रेखाएँ नये गहनोंके समान ही शोभा पाती थीं ॥ ५२ ॥

संयुक्ताभ्य कासांशिमुखमारुतकमित्ताः ।

उपसुपति रक्त्राणां ध्याधूपन्ते पुनः पुनः ॥ ५३ ॥

किन्हींके मुखपर पड़े हुए उनकी सीनी छाड़ीक मयक उनमें नासिकस निकली हुई खँतसे कम्पित हा धारधार दिख रहे थे ॥ ५३ ॥

ता पत्यका इषाद्यूताः पत्नीनां रक्षिरप्रभाः ।

नालापनसुषणीनां रक्त्रमूलपु रक्षिर ॥ ५४ ॥

नाना प्रकारके सुन्दर कमर-तवासी उन रक्त्रपत्नियोंक

मुखोंपर दिखते हुए वे अदृष्ट सुन्दर कान्तिवाली करपती हुई पताकाओंके समान शोभा पा रहे थे ॥ ५४ ॥

वधुस्तुम्बात्र कासाचित्त कुष्ण्डकानि शुभार्षियाम् ।

मुखमारुतसंकम्पैर्मन्व मन्व च योषिताम् ॥ ५५ ॥

वहाँ किन्हीं-किन्हीं सुन्दर कान्तिमयी कान्तिनियोंके कानोंके कुष्ण्डक उनके नि श्वसनित कम्पते धारे धीरे दिख रहे थे ॥ ५५ ॥

शर्करासवगन्धः स प्रहृत्पा सुरभिः सुखः ।

तासां फननिःश्वासः सिपेये रावर्षे तदा ॥ ५६ ॥

उन सुन्दरियोंके मुखसे निकली हुई स्वभावसे ही सुगन्धित श्वसनित श्वासवासी मनोहर गन्धसे युक्त हो और भी सुखद बनकर उस समय रावणकी सेवा करती थी ॥ ५६ ॥

राधयाननशङ्का काश्चित् रावणयोषिताः ।

सुखानि च सपत्नीनामुपाश्रित्व पुनः पुनः ॥ ५७ ॥

रावणकी किन्ती ही तरणी पक्षियों रावणका ही मुख समझकर धार-धार अपनी छीतोंके ही मुँहोंके हँस रही थीं ॥ ५७ ॥

अत्यर्थं सक्तमनसो राधणे ता धरक्षिपयः ।

अलतन्त्रा सपत्नीनां प्रियमेवाधरस्ता ॥ ५८ ॥

उन सुन्दरियोंक मन रावणमें आप्त आसक्त था, इच्छिये वे आसक्ति तथा मरिचके मडसे परक्य हो उस समय रावणक मुखके भ्रमसे अपनी छीतोंक मुख हँसकर उनक प्रिय ही करती थी (अर्थात् वे भी उस समय अपने मुख छम्न हुए उन छीतोंके मुँहोंके रावणक ही मुख समझकर उठे हँसनेका मुख उठाती थीं) ॥ ५८ ॥

पाण्डुपतिभायान्याः पारिहाययिभूषिताम् ।

संशुक्रानि च रम्यानि प्रमदास्तत्र विधिपरे ॥ ५९ ॥

अन्य मद्मत्त पुत्रियों अपनी बह्विभूषित मुग्धकोंक ही तर्किया क्यकर तथा कोई-कोई तिरके नीच अपने मुख्य बकोंक ही रत्नकर वहाँ छो रही थीं ॥ ५९ ॥

अभ्या यक्षसि चाभ्यस्यास्तस्याः काश्चित् पुनर्भुजम् ।

अपरा रक्षमम्यस्यास्तस्याभाष्यपरा कुषी ॥ ६० ॥

एक क्वी वृक्षीकी छत्रियोंपर तिर रत्नकर सोयी थीं जो कोई वृक्षी को उठकी भी एक बौहको ही तर्किया बनाकर ले गयी थी । रही तरह एक अन्य क्वी वृक्षीकी गोदमें तिर रत्नकर सोयी थीं जो कोई वृक्षी उठकी भी कुन्नोंक ही तर्किया क्यकर ले गयी थी ॥ ६० ॥

ऊरुपादर्वकटीगुहमण्योग्यस्य समाश्रिताः ।

परस्परनिविष्टाश्च मन्सहयनानुगाः ॥ ६१ ॥

इस तरह रावणविरपक रक्ष और मरिचकनित बरक बनी-नृत हुए थे सुन्दरियों एक वृक्षीक ऊरु पावभय

कटिपदेश तथा पूषमाणा खारा के आपसमें बहते अङ्ग
मिळने वहाँ वेदुष पढ़ी थीं ॥ ६१ ॥

अभ्योन्मस्याङ्गस्यर्थात् मीपमाणाः सुमध्यमाः ॥

एकीकृतमुखाः सर्वाः सुपुपुस्तव योविताः ॥ ६२ ॥

वे सुन्दर कटिपदेशवाली समस्त पुषतियों एक-
दृशीके अङ्गस्यर्थात् मिषतमका एतां मानकर उल्लेख मन
ही-मन आनन्दका अनुभव करती हुई परस्पर बौह-से-बौह
मिळाने से रही थीं ॥ ६२ ॥

अभ्योन्मसुसद्येष्ये क्षीमाळा प्रथिता हि सा ।

माखेव प्रथिता सूजे शुशुभे मत्तपद्पदा ॥ ६३ ॥

एक-दृशीके बाहुकपी सूजमें गुंथी हुई कले-कले
केशोंवाली क्षीमाक्षी यह माख सूजमें पिरोधी हुई मत्तकाके
भ्रमरोंसे मुक्त पुष्पमाळाकी मूर्ति घाम्ब या रही थी ॥ ६३ ॥

ज्वानां माधव मासि फुल्लानां वायुसेधनात् ।

अभ्योन्मसाळाप्रथिता संसक्तकुसुमोष्णयम् ॥ ६४ ॥

प्रतिवेशितसुसक्तमभ्योन्मस्रमराफुल्लम् ।

भासीव् वनमिनोद्यत करीबन रावणस्य तट् ॥ ६५ ॥

माधवमास (पवत) में सम्मानिकक सेकनेसे बेसे
सिद्धी हुई ज्वामोक्ष बन कम्पित होता रहता है उठी
प्रकार रावणकी क्षीमाक्षी यह समुदाय निःशब्दसुन्दरे
कनेसे अक्षयोंके दिखनेके कारण कम्पित हाता छ बन
पड़ता था । बेसे ज्वारों परस्पर मिळकर माखकी मूर्ति
आवक हो जाती है, उनकी सुन्दर धारों परस्पर क्षिप्र
जती हैं और इक्षीयि उनके पुष्पमूल भी आपसमें मिळे
हुए-से प्रतीय होते हैं तथा ऊपर देते हुए भ्रमर भी
परस्पर मिळ जाते हैं उठी प्रकार वे सुन्दरियों एक-दृशीके
मिळकर माखकी मूर्ति गुंथ गयी थी । उनकी मुखों और
कने परस्पर तट हुए थे । उनकी पैरोंमें गुंथे हुए फूल भी
आपसमें मिळ गये थे तथा उन सबके केन्द्रकाय भी एक-
दृशसे जुड़ गये थे ॥ ६४-६५ ॥

उच्चित्पद्यपि सुव्यक्तं न तासा योवितां तदा ।

वियक्तः शफ्य आधातुं मूषयाद्गाम्बरस्रजाम् ॥ ६६ ॥

यद्यपि उन सुव्यक्तके बह अङ्ग, आभूषण और हार
उचित स्थानोंपर ही प्रतिष्ठित थे यह बात स्पष्ट दिखायी
दे रही थी तथापि उन सबके परस्पर गुंथ जानेके कारण
यह विवेक होना असम्भव हो गया था कि कौन बह
अभूषण अङ्ग अथवा हार किसके हैं ॥ ६६ ॥

रायम सुस्रसयिष्ट तां विद्या विविधप्रभाः ।

अवलम्बता काञ्चना दीपाः प्राम्ना निमिया इय ॥ ६७ ॥

रावणके मुद्रावक छ आनेपर वही उच्चत हुए सुवक्-

मव प्रतीप उन अनेक प्रकारकी कल्पितवाली कामिनीयोंके
गानों एकटक इक्षिते देख रहे थे ॥ ६७ ॥

राजर्षिभिर्प्रैथ्यानां गण्यर्षीणां च योविताः ।

रक्षार्त्ता चारभवन् कन्यास्तस्य कामयशगताः ॥ ६८ ॥

राजर्षियों ऋषियों, देवों गण्यर्षों तथा राधवोंकी
कन्याएँ, कामके वशीभूत होकर रावणकी पहिनों बन
गयी थीं ॥ ६८ ॥

युयुज्जमेन तां सर्वा रावणेन हृताः क्षिपाः ।

समदा मनुजेवैव मोहिताः कश्चिदगताः ॥ ६९ ॥

उन सब क्षिपयोंक रावणने युयुज्जी इच्छासे अपहरण
किया था और कुछ मरमत्त रक्षियोंक भ्रमरोंसे मोहित
होकर सब ही उधरी ठेकामें उपस्थित हो गयी थीं ॥ ६९ ॥

न ताव कश्चित् प्रमदाः प्रसङ्ग

बीर्योपपन्नेन गुणेन लब्धाः ।

न चान्यकामापि न चान्यपूर्वा

विना यथाहो अन्कारमयां तु ॥ ७० ॥

वहाँ देखी कोई क्षिपों नहीं थीं, किन्हीं बह-पराक्रमसे
लम्ब होनेपर भी रावण उनकी इच्छाके विरुद्ध बलात्कारसे
हर गया हो । वे सबकी-सब उधे अपने अशोकिक गुणसे
ही उपकम्ब हुई थीं । जो भेद्युक्तम पुषपोष्म भीयमकम्बकीके
ही बोध थीं उन बनकक्षिणी वीताके छोड़कर दूरी कोरें
देयीं ही वहाँ नहीं थीं, जो रावणके सिवा किसी दूरीकी
इच्छा रखनेवाली हो; अथवा किञ्चन परके कोरें दूरीका
पति रहा हो ॥ ७० ॥

न चाकुलीमा न च हीनकया

भयक्षिणा जानुपधारयुक्ता ।

भयारोभवत् तस्य न हीनसत्त्वा

न चापि काम्तस्य न कामनीया ॥ ७१ ॥

रावणकी कोई मायां देखी नहीं थीं था उच्चत कुम्भे
उपलभ न हुई हो अथवा जो कुरूप अनुहार का श्रेष्ठ-
रहित उच्चत बलाभूषण एवं माया भाविसे प्रथित
प्रक्षिणीन तथा श्रियतमके अभिय हो ॥ ७१ ॥

यभूव युधिस्तु हरीश्वरस्य

यदीदृशी राघवधमपनी ।

इमा महाराक्षसपञ्चभायाः

सुजातमस्यति हि सापुपुये ॥ ७२ ॥

उध समय भय बुद्धिवाले वानरायक हनुमन्त्याक
मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि न मनुज राघवताय
रावणकी धारोंके विरुद्ध ठारु अपने लक्षिके लक्ष रक्षक
मुक्षी हैं उठी पञ्चर बरि सुनायकीकी धर्मवशी वीताकी

मी इन्दीश्री भौति अपने पतिके साथ रहकर मुलका अनुभव करती अर्थात् यदि रावण शीघ्र ही उन्हें श्रीरामचन्द्रजीश्री सेवार्थे समर्पित कर देता तो वह उसके भिन्न परम महत्काम्यारी होवा ॥ ७२ ॥

पुनश्च सोऽस्मिन्तपश्चात्तरुणे
भुव विशिष्टा गुणतो हि सीता ।

इत्यर्थे श्रीमद्गाम्ग्रयणे वास्वीकीये आदिकल्पे सुन्दरकाण्डे वचनः सर्गः ॥ १ ॥
इस प्रकार श्रीमत्नीतिनिर्मित अर्तरामायण आदिकल्पके सुन्दरकाण्डमें नवौं सर्ग पूरा हुआ ॥ ४ ॥

दशम सर्गः

इनुमान्जीका अन्तःपुरमें सोये हुए रावण तथा गाढ़ निद्रामें पड़ी हुई उसकी खिपाँको देखना तथा मन्दोदरीको सीता समझकर प्रसन्न होना

तत्र दिव्योपम मुक्यं स्फाटिक रत्नमूपितम् ।
मन्मथमाजो हनुमान् ववर्षं पायनास्रमम् ॥ १ ॥

वहाँ इधर उधर दृष्टिपात करते हुए इनुमान्जीने एक दिव्य एवं भेद वेदी देखी, किस्पर पखंग विद्याया जाता था। वह वेदी स्फटिक मयिकी यनी हुई थी और उठमें अनेक प्रकारके रत्न बड़े गये थे ॥ १ ॥

शालकाञ्चनविभाजैर्वैदूर्यैश्च वरासमैः ।
महाहार्तिस्तरजोपेतैरुपपन्नं महाधमैः ॥ २ ॥

वहाँ वैदूर्यमणि (नीलम) के बने हुए भेद भावन (पखंग) बिले हुए थे जिनकी पाटी-पाये आदि मन्मथ शयी रॉल और मुबजये बटित होनेके कारण शितकरने विद्यायी देते थे। उन महामुख्यवान् पर्णगोमर बहुमुख्य बिलौने विद्याने गये थे। उन लवके कारण उस वैदीकी बड़ी शोभा छ रही थी ॥ २ ॥

तस्य लौकतम वेद्ये विध्यमालोपशोभितम् ।
ववर्षं पापञ्चरं छर्षं ताद्यधिपतिर्लज्जितम् ॥ ३ ॥

उस पखंगके एक भागमें उन्नौने पन्ध्रमाके समान एक रवेत बन्न देखा था दिव्य माङ्गाभौंसे सुशोभित था ॥ ३ ॥

आतरूपपरिक्षिप्तं विप्रभानोः समप्रभम् ।
अशोकमाळावितत ववर्षं परमासनम् ॥ ४ ॥

वह वचन पखंग मुबजये भटित होनेके कारण अस्मिके समान देदीप्यमान हो रहा था। इनुमान्जीने उसे अशोक-पुष्पोंकी माङ्गाभौंसे अञ्जित देखा ॥ ४ ॥

पद्मव्यञ्जनहस्ताभिर्वीम्यमान समन्ततः ।
गन्धैश्च विविधैर्धूपैश्च वरपूयेन घूपितम् ॥ ५ ॥

उसके चारों ओर लड़ी हुई बहुदली खियाँ हासोंमें बैस लिये उदर हवा कर रही थीं। वह पखंग अनेक प्रकारकी गन्धोंसे उचित तथा उचम धूपसे सुशोभित था ॥ ५ ॥

अधायमस्यां कृतवान् महात्मा
छन्दोभरतः कष्टमनार्थकम् ॥ ७३ ॥

किर उन्हेने घोषा निभय ही खीटा गुणोंकी दृष्टिसे इन लवकी अन्धेरा बहुत ही बढ़-बढ़कर है। इस महाबली कष्टपतिने मामामय रूप धारण करके सीताको भोला देकर इनके प्रति यह अपहरणरूप महान् कष्टप्रद नीच कर्म किया है ॥ ७३ ॥

परमास्तरणास्त्रीर्षमात्सिक्खिमसवृतम् ।
वामभिर्बरमास्यानां समन्तापुपयोभितम् ॥ ६ ॥

उधर उचमोचम बिलौने बिले हुए थे। उसमें भेदकी जास मदी हुई थी तथा वह लव ओरसे उचम फूलेकी माङ्गाभौंसे सुशोभित था ॥ ६ ॥

तसिक्खिभूतसकशरा मदीतोऽग्न्यञ्जकुण्डलम् ।
सोहितेन महाबाहु महारज्जवाससम् ॥ ७ ॥

सोहितेनानुखिताञ्च अन्वेन सुगन्धिना ।
संभ्यारक्तमिवाकाशे तोयर्दं सतबिहुष्यम् ॥ ८ ॥

वृतमाभरजैर्विन्धैः सुकूप कामरुण्यम् ।
सहस्रवज्रगुस्माकां प्रसुप्तमिथ मन्दरम् ॥ ९ ॥

श्रीबिलोपरतं राजौ वरभरणभूयितम् ।
मिर्दं राक्षसकम्पानां राक्षसानां सुजापहम् ॥ १० ॥

पतिव्याप्युपरतं चापि ववर्षं स महाकपिः ।
भाकरे शयने कीर्त्तं प्रसुतं राक्षसाधिपम् ॥ ११ ॥

उस प्रकारसमान पखंगपर महाकपि इनुमान्जीने वीर राक्षसवाच यवनक लोते देखा जो सुन्दर माभूपौंसे विरूपित इच्छानुशार रूप धारण करनेवाला दिव्य आमारजोंसे अञ्जित और सुकूपवान् था। वह राक्षसकम्पामोका मियतम तथा राक्षसोंको मुल पहुँचानेवाला था। उसके अङ्गोंमें सुगन्धित अल कन्दनका अनुकेय जग हुआ था। बिले वह आभरणमें अन्ध्याश्रकरी लकी तथा विपुम्बलासे पुल मयके समान शोभा पाता था। उसकी अन्नकान्ति मेपके समान भयान थी। उसके कर्णोंमें उज्ज्वल कुण्डल शिलमिन्न रहे थे। अङ्गों अल पी और मुबार्य बड़ी-बड़ी। उसके बज्र मुनहरे रंगके थे। वह राक्षस क्रिदोंके साथ श्रीदा करक मदिध वीकर आराम कर रहा था। उसे देलकर देता बान पड़ता था मान्द वृध यन और क्ता-गुम्बोंसे सम्यन् मन्दरापक हो रहा था ॥ ७-११ ॥

निःश्वसन्त यथा मार्गं राघव्य पानरोत्तमः ।
 भासाद्य परमोद्भिन्नः सोपासर्पत् सुभितयत् ॥ १२ ॥
 मघापोहजमसाद्य वेदिकाश्रमप्रधिताः ।
 क्षीर्षं राक्षसशावृक्षं प्रेक्षते स महाकपिः ॥ १३ ॥

उच सम्य यौत केवा हुम्य राक्य कुचकस्ये हुए
 खर्के समान भान पइता या । उठके पास पहुँकर बानर
 शिरोमणि हुनुमान् अत्यन्त उद्विग्न हो भूमिर्माँटि बरे हुएकी
 मँटि वरदा वुर इट गये और खीदियोंपर लक्ष्मण एक वृक्षी
 बेटीपर लक्ष्मण लहे हो गये । वहाँसे उन म्हाकपिने उच
 मतवाले राक्षसशावृक्षो देखना आरम्भ किया ॥ १२ १३ ॥
 शुशुभे राक्षसेन्द्रस्य स्वपता शयनं गुमम् ।
 गन्धहस्तिनि सविष्टे यथा प्रक्षयण महत् ॥ १४ ॥

राक्षसराज राक्यके सोते सम्य वह सुन्दर फर्मा ठही
 प्रक्षर घोमा पा रस था जैसे गन्धहस्तीके शयन करनेपर
 निघाळ प्रसन्नगिरी सुघोमित हो रहा ह ॥ १४ ॥

काञ्चनाङ्गदन्तद्वी ददर्श स महारामतः ।
 विक्षिती राक्षसेन्द्रस्य मुखाङ्गिन्द्रध्वजोपमौ ॥ १५ ॥

उन्नेने महाराम राक्षसराज राक्यकी कैकानी हुई दो
 मुबार्रै देखीं ओ घोनेके बाधुर्दले विभूषित हो इन्द्रध्वजके
 समान ध्वज पइती थी ॥ १५ ॥

पेटवत्तविपापामैरापीडनहृत्तमजौ ।
 तजोद्भिन्नितपीमाँटौ विष्णुचक्रपरिक्षितौ ॥ १६ ॥

पुत्रकर्मणे उन मुखाभोर पेटवत् हाथीके हँठोंके
 अग्रभागसे ओ प्रहार किने गये वे उनके आपातक पिङ्ग
 बन गया था । उन मुखाभोरके मूणमग्न था कपे बहुत सोटे
 वे और उनपर बज्रहाय किने गये आश्रयके मी पिङ्ग
 विद्यावी देते थे । महाबान् विष्णुके चक्रसे मी किसी समय
 वे मुबार्रै धत विघ्न हो चुकी थी ॥ १६ ॥

पीमौ समसुजाताँसी सङ्गती बससयुतौ ।
 सुब्रह्मण्यमवाङ्मुतौ अङ्गुलीयकवक्षितौ ॥ १७ ॥

वे मुबार्रै सब झेरते समान और सुन्दर कंधोवाही
 तथा मोठी थीं । उनकी धरियों सुदृढ थीं । वे बहिष् और
 उचम उचनवाके नहीं एव अङ्गुलीसे सुघोमित थीं । उनकी
 अङ्गुलियों और इपेन्नों बड़ी सुन्दर दिखानी देती थीं ॥ १७ ॥
 सङ्गती परिषाकारी वृत्तौ करिकरोपमौ ।
 विक्षितौ शयने शुभ्रे पञ्चशीपाधिषोरणी ॥ १८ ॥

वे सुगठित एवं पुष्ट थीं । परिषके समान गन्धकार
 तथा हाथीके छत्रदण्डकी मँटि ध्वजा-द्वारवाही एवं लंबी
 थीं । उठ उचमक फर्गपर कैसी वे बँडि लौच-लौच फन
 पाये हो धरोंके समान हकिरेपर हाँटी थीं ॥ १८ ॥
 गदाक्षतत्रकक्षयं सुशीतलं सुगन्धिना ।
 अमन्दनं परार्थ्येन सनुक्षितौ सखङ्कतौ ॥ १९ ॥

बराण्डेके लूनकी मँटि बाळ राके उचम, सुशीतल
 एवं सुगन्धित अमन्दनसे षरित हुई वे मुबार्रै अक्षरोंसे
 अक्षरित थीं ॥ १९ ॥

उचमलमीविमुषितौ गन्धोत्तमनिपेधितौ ।
 पक्षपन्नगमगन्धर्वदेवदानवराषिणौ ॥ २० ॥
 सुन्दरी मुषलियों धीरे-धीरे उन बँडोंको दखती थी ।
 उनपर उचम गन्ध-त्रयका छेप हुआ था । वे यक्ष, नाग
 गन्धर्व देवता और दानव सभीको मुदने रक्षने
 वाधी थीं ॥ २ ॥

ददर्श स कपिस्तस्य बाहू शयनसस्थितौ ।
 मन्त्रस्यान्तरे सुप्तौ महाही रुचितायिव ॥ २१ ॥

कपिकर हुनुमान्दे फर्गपर पकी हुई उन दोनों मुखाभोरोंके
 देखा । वे मन्त्रराजकी सुषर्मे छेपे हुए दो रोपमरे अक्षरों-
 के समान भान पइती थीं ॥ २१ ॥

वाम्यां स परिपूर्णान्यामुभाभ्यां राक्षसेश्वरः ।
 शुशुभेऽखलसंकाशः शृङ्गाभ्यामिव मन्त्रः ॥ २२ ॥

उन बड़ी-बड़ी और गोष्वाकार हो मुखाभोरोंसे मुक्त
 परंताकार राक्षसराज राक्य हो शिखरोंसे संयुक्त मन्त्रराजके
 समान घोमा पा रस था ॥ २२ ॥

सूतपुंनागसुपरिर्भङ्गुलोत्तमसयुतः ।
 सूयाभरससंयुक्तः पातगन्धपुरःसरः ॥ २३ ॥
 तस्य राक्षसराजस्य निष्काम महामुखात् ।
 शयानस्य विविम्बायाः पूरयन्निव तत्सूहम् ॥ २४ ॥

वहाँ छेपे हुए राक्षसराज राक्यके निघाळ मुससे आम
 और नागकेछरणी सुगन्धसे मिश्रित, मीकस्थिरीके मुखाछे
 मुखास्थि और उचम अक्षरसे संयुक्त तथा मयुपालकी राक्यसे
 मिथी हुईं ओ छेरमयुक्त लौच निकल रही थी वह उच छारे
 परको सुगन्धसे परिपूर्ण था कर देती थी ॥ २३ २४ ॥

मुक्तामभिविधिश्रेण काञ्चनन विरामिता ।
 मुकुटनापवृत्तेन कुम्भलोत्पत्तितामनम् ॥ २५ ॥

उचम कुचकसे प्रकाशमान मुक्तामित्थ अपने सानसे
 हटे हुए तथा मुक्तामभिविधे षरित होनेके करक विभिन्न
 आभावाके सुवर्जमय मुकुटसे और मी उद्रास्थि हो
 रहा था ॥ २५ ॥

रक्तचन्द्रवदिरघनं तस्य हारेण घोमिता ।
 पीनायतविद्याज्जम बससाभिविद्याजिता ॥ २६ ॥

• वहाँ रक्तचन्द्रमरे छेपे हुए उचमके पक्ष ही मुक्त और दो
 ही बँडोंक वर्धन जवा है । हलसे अक्ष बरग है कि वह
 उचमक स्थितिमें हठी दरद रहता था । पुत्र वाधिके श्रेण
 अक्षरोंपर ही वह रक्तचन्द्रक दस मुक्त और रीध उचमको
 सयुक्त होय था ।

उसकी छाती झक करनसे शक्ति, हासे सुषोमित,
उमरी हुए तथा संधी-सौधी थी। उसके द्वारा ठव राक्षसराजके
सम्पूर्ण धरणीकी बड़ी शोभा हो रही थी ॥ २६ ॥

पाशुपतापविद्धेन क्षौमेण हतजेक्षणम् ।
महाहौष सुसवीत पीतनोत्तरवाससा ॥ २७ ॥

उवशी भौले अन्न थीं। उवशी कटिके नीचअ माग
हीनबासे श्वेत रेद्यमी बससे हफा हुआ या तथा बर पीके
रगनी बहुमुख रेद्यमी चादर आदि हुए या ॥ २७ ॥

मायराशिप्रतीकार्वा निःश्वसन्त मुमुक्षुवत् ।
गाह्ये महति तोयान्ते प्रसुप्तमिव कुञ्जरम् ॥ २८ ॥

पर सपछ स्थानमें रहने हुए उड़दके डरक समान
बान पड़ता या और सर्पके समान शैले च रहा या। उध
उन्मत्त पदंगपर खेया हुआ राघव गहाकी मगाप बह-
रगिमें छोये हुए राक्षसके समान शिलाभी देता या ॥ २८ ॥

धनुर्भिः काञ्चनेर्दीपैर्विद्यमान सप्तविंशत् ।
प्रकाशीहस्तसद्योज्ज मेघ त्रिशूणैरिय ॥ २९ ॥

उवशी चोरे दिशाभौमें चार सुवर्णमय शीपक बन्न रहे
ये किनकी प्रगाथे वह देखीयमान हो रहा था और उसके
धरे अह्न प्रकाशित होकर स्पष्ट शिलाभी दे रहे थे। ठीक
उसी तरह, जैसे विदुश्रजोके मेघ प्रकाशित एवं परिबद्धित
होता है ॥ २९ ॥

पादमूलगतान्नापि वृक्षं सुमहारममः ।
पत्नीः स म्रियभार्यस्य तस्य रक्षामपतेर्षुहे ॥ ३० ॥

पलिनोक प्रभो उध महाकव्य राक्षसराजके फरमें हनुमान्
धीने उवशी परिचोरे गी देला, जो उसके चरणोंके आध-
पाध ही हो रही थीं ॥ ३ ॥

शशिप्रकाशवदना परकुण्डलमूषकाः ।
अम्बानमाख्याभरणा वृक्षं हरियूषणः ॥ ३१ ॥

बानरसूधतति हनुमान् ति देला उन राक्षसपलिनोकके
मुख कन्धमाके समान प्रकाशमान थे। ये सुन्दर कुण्डलसे
विभूषित थीं तथा ऐसे कुण्डलके हार पहने हुए थीं जो कमी
मुखात नही थे ॥ ३१ ॥

नृत्ययादिषकुलासा राक्षसप्रमुखाद्गताः ।
वराभरणधारिण्यो निषण्णा वृक्षो कविः ॥ ३२ ॥

वे नाचने और बाने बजानेमें निपुण थीं राक्षसराज
राघवकी बौहा और अङ्गुमें आन पानेवाली थीं तथा सुन्दर
आभूषण धारण दिने हुए थीं। कविपर हनुमान्ने उन
परच बहा खड़ी देला ॥ ३२ ॥

वज्रवैद्युग्गभाणि ध्वजपातपु पाणिताम् ।
ददश तापनीयानि कुण्डलाभ्यङ्गदानि च ॥ ३३ ॥
रुहाने उन सुन्दरियाक कानोंके कमीय हीर तथा
नीम्य बह हुए कानके कुण्डल और बाजूबंद रहने ॥ ३३ ॥

तासां चन्द्रोपगैर्षकैः शुभैर्लङ्घितकुण्डले ।
विरराज विमान तमभस्तारापणैरिव ॥ ३४ ॥

अङ्घ्रि कुण्डलसे सम्भूत तथा चन्द्रमाके समान
मनोहर उनके सुन्दर मुखोंसे वह विमानाकार पर्यङ्क तारिक्रमों-
से मण्डित आकाशकी मूर्ति सुशोभित हो रहा था ॥ ३४ ॥

मन्थ्यायामविद्यास्ता राक्षसेभ्यस्य योषिताः ।
तेषु तेष्वधकाशेषु प्रसुप्तास्तनुमन्थमाः ॥ ३५ ॥

श्रीण कठिप्रवेशवासी ये राक्षसराजकी स्त्रियाँ मन्थ तथा
रक्षीक्रीडाके परिभ्रमसे परकर कहीं तहाँ था शिव अवस्थामें
थीं जैसे ही हो गयी थीं ॥ ३५ ॥

महाहारेस्तपैपान्या कोमलैर्नृत्यशालिनी ।
विम्वस्तशुभसर्वाङ्गी प्रसुता परचण्णिनी ॥ ३६ ॥

विशाताने शिवके सारे अङ्गोंसे सुन्दर एवं विशेष
शोभासे सम्पन्न बनाया था; वह कोमलमातृसे अङ्गोंके उच्छन्न
(चटबाने मटकाने आदि) द्वारा नाचनेवाली शोरे अन्य
नृत्यनिपुणा सुन्दरी की गाढ़ निद्रामें सोकर भी यास्नायश
नामत् म्बस्त्रीकी ही मूर्ति वस्तुके अभिनयसे सुशोभित हो
रही थी ॥ ३६ ॥

काञ्चित् शीणां परिप्यज्य प्रसुता सप्तप्रकाशतः ।
महामयीप्रकीर्णेष नष्टिनी पोतभाभिता ॥ ३७ ॥

कोरे शीणाको छातीसे जगाकर सोनी हुई सुन्दरी देखी
थान पड़ती थी, मानो महानदीमें पड़ी हुई कोरे कमिनी
किसी नौकासे घट गयी हा ॥ ३७ ॥

अन्या क्ण्डगतमैय मङ्कुमासितक्षणा ।
प्रसुता भामिनी भासि वाळुभुधय वसन्ना ॥ ३८ ॥

वृक्षी कजगर नेत्रोंवाली भामिनी कौठमें रहे हुए
मङ्कुल (अपुयाय विदार) के लक्ष ही सां गयी थी। वह
देखी प्रवीत होती थी जैसे कोई पुत्रवत्तला बन्नी अपन
छेरे-स शिशुको गर्दने किम सो रही हो ॥ ३८ ॥

पदहं चारुशर्याङ्गी न्यस्य दोष शुभस्तनी ।
विरस्य रमण छप्पशा परिप्यज्येय वामिनी ॥ ३९ ॥

कोरे सर्वाङ्गसुन्दरी एवं रश्मि कुण्डोंवाली भामिनी
परहको अपने नोचे रखकर था रही थी मानो निरकाबके
पश्चात् प्रियतमको अपने निकट पाकर श्रेय प्रसदी उसे
हृदयसे जगाये सो रही हो ॥ ३ ॥

काञ्चित् शीणां परिप्यज्य श्रुता कमललोचना ।
पर म्रियतमं गृहा सख्यमय दि कामिनी ॥ ४० ॥

वह कमलक्षयना सुपरी यथात्र आसिन्न करके
खी हुई देखी थान पड़ती थी मानो काममातृसे मुक्त
भामिनी अपने भेट प्रियतमका मुखकोमें भरकर हो गयी
हो ॥ ४ ॥

विपत्तीं परिपुष्ट्याभ्या नियता नृत्यशास्त्रिनी ।
 विद्रावशमनुप्राप्ता सखकाम्पेव भासिनी ॥ ४१ ॥
 नियमपूर्वकं नृत्यकाम्पे सुषोभितं हनेयसी एकं अन्य
 मुक्ती विपत्ती (विशेष प्रकारकी पीणा) को अङ्कने भरकर
 प्रियतमके साथ सोमी हुई प्रेयसीकी मूर्ति निद्राके अर्थात्
 हो गयी थी ॥ ४१ ॥

अस्या कमलपत्राक्षीं मुदुपीमैर्मनोरमैः ।
 मुदुहं परिविबुष्याहोः प्रसुता मत्तलोचना ॥ ४२ ॥
 कोई मत्तबाह नयनोवासी वृषी सुन्दरी अपने मुकुट
 छटा गौड केमल, पुष्प और मनोरम अङ्गुलिते मुदुहको
 दबाकर गण्ड निद्रामें छो गयी थी ॥ ४२ ॥

भुज्जपाशान्तरस्थं कम्पेन कुशादरी ।
 पत्रकेन सहामिन्द्रा सुता मत्कृतभ्रमा ॥ ४३ ॥
 नद्येते पत्नी हुई कोई कुशादरी अनिन्य सुन्दरी रमणी
 अपने भुज्जपाशोंके बीचमें स्थित और कौसमें दबे हुए
 पत्रके छप ही हो गयी थी ॥ ४३ ॥

विचित्रं परिपुष्ट्याभ्या तपोषासकङ्किण्डमा ।
 प्रसुता तदर्थं वस्तुसमुगुह्येव भासिनी ॥ ४४ ॥
 वृषी की विचित्रको केवल उन्हीं छटा उल्लेखी हुई
 छो गयी थी न्यो कोई मामिनी अपने बाहक पुत्रको
 हृदयके अंगाने हुए नींद ले रही हो ॥ ४४ ॥

अविदाहभ्रमर मारी भुज्जसम्भोगपीडितम् ।
 कृत्वा कमलपत्राक्षी प्रसुता मद्मोहिता ॥ ४५ ॥
 मरिचके मरते मोहित हुई कोई कमलजननी नारी
 आहम्बर नामक बाहको अपनी भुज्जकोके आङ्कितने
 दबाकर प्रणय निद्रामें निमग्न हो गयी ॥ ४५ ॥

कलशमपविद्यथाभ्या प्रसुता भासि भासिनी ।
 वसन्त पुष्पशबलम मालेश परिमार्जिता ॥ ४६ ॥
 कोई वृषी युवती निद्रावश अन्धे मरी हुई सुपरीको
 हृदयकर मीठी अन्नकाममें ही वेगुण हो रही थी । उक्त
 अन्नकाममें वह वसन्त-शुद्धमें विभिन्न पत्रके पुष्पोंके बनी
 और कलके छीटेसे भीसी हुई मालके उमान प्रदीव रही
 थी ॥ ४६ ॥

पाणिभ्यां च कुक्षींश्च विस्तुपण्यच्छापापमौ ।
 उपगुहापञ्जा सुता निद्रायत्परमिता ॥ ४७ ॥
 निद्राके वश वरदित हुई कोई भवजा मुकुटमय
 कम्पके उमान प्रदीव होनेबाह अपने कुक्षोंको दोनों हाथोंसे
 दबाकर छो रही थी ॥ ४७ ॥

अस्या कमलपत्राक्षी पूर्वेणुसहशानना ।
 अस्यामाङ्कितव्य सुभोर्षा प्रसुता मत्विद्वहा ॥ ४८ ॥
 पूर्व पत्रमय उमान मनांर मुखवाली वृषी कमल-

अन्ना कामिनी सुन्दर नितम्बवाली किसी अन्य सुन्दरीका
 आङ्कित करने अन्धे विद्वह होकर छो गयी थी ॥ ४८ ॥
 अस्तोद्यानि विविचाराणि परिप्यज्य वरक्षियः ।
 निरीक्ष्य च कुक्षौः सुता कामिभ्याः कामुकाणिव ॥ ४९ ॥
 जैसे कामिनियों अपने बाहनेबाह अंगुलीको छलीते
 क्माकर होती हैं उन्हीं प्रकार किन्ती ही सुन्दरियों विविच
 विविच वाकोंका आङ्कित करने उन्हीं कुक्षोंसे दबाये छो
 गयी थी ॥ ४९ ॥

तासामेकास्तस्मिन्पस्ते दायामां दायमे शुभे ।
 वृषी रूपसम्पन्नामथ तां च कपि क्षियम् ॥ ५० ॥
 उन उन्की दायामेंसे दायक एकान्तमें विधी हुई
 सुन्दर दायामें सोधी हुई एक रूपस्ती मुक्तीको नहीं
 हनुमानजीने देखा ॥ ५० ॥

मुक्तामप्यिच्छामासुक्तेर्मुपैः सुविभूषिताम् ।
 विभूषयन्तीमिव च स्वभिया भयनोत्तमम् ॥ ५१ ॥
 वह मोती और मणिसे चके हुए आभूषणोंसे मनी
 मूर्ति विभूषित थी और अपनी शोभासे उक्त उच्चम मनको
 विभूषित-सा कर रही थी ॥ ५१ ॥

गीरी कमलकवर्णाभामिद्रामस्तापुरेभ्वरीम् ।
 कपिर्मन्वोदरीं तत्र दायामां चाहकपिनीम् ॥ ५२ ॥
 उक्त तां दृष्ट्वा महाबाहुर्मूर्षितां मास्तत्समः ।
 तर्कयामास ह्येतेति रूपयौवनसम्पदा ।

हर्षेण महता युक्तो मनस्य हरियूथपः ॥ ५३ ॥
 वह गौरे रंगकी थी । उन्की प्रह्लादप्रति मुकुटके उमान
 सम रही थी । वह राजकी प्रियतमा और उन्के अन्तः
 पुरकी कामिनी थी । उन्का नाम मन्दोदरी था । वह अपने
 मनोहर रूपसे सुप्रसिद्ध हो रही थी । वही नहीं हो रही
 थी । हनुमानजीने उन्की देखा । रूप और यौवनकी
 सम्पत्तिसे युक्त और बहामूर्षितसे विभूषित मन्दोदरीको
 देखकर महाबाहु पन्नकुमारने हनुमान किया कि वे ही
 हीवासी हैं । फिर तो वे बानरयूथपति हनुमान महान् हर्षसे
 युक्त हो मन्मन्दमन हो गये ॥ ५२-५३ ॥

भास्कोदयामाम बुभुञ्ज पुच्छं
 नमस्य सिद्धीं च गगौ जगाम ।
 स्तम्भानयोहद्विपपात मूनी
 निवृत्तान् स्त्रां प्रकृतिं कपीनाम् ॥ ५४ ॥
 वे अपनी दृष्टिके पटकने और चूमने लगे । अपनी
 बान्से-जैसी प्रकृतिका प्रदयन करते हुए मानसिक होये,
 लेखने और गाने लगे हृषर उभर माने-जाने लगे । वे
 कमी लम्पेर बन्द करते और कभी दृष्टीपर कूट पड़ते
 थे ॥ ५४ ॥

हरकारे श्रीमद्भारतमायण वाल्मीकीयके आदिप्रकरणे सुन्दरकाण्डे दशमः सर्गः ॥ १ ॥

(स २२२२ श्रीमत्संस्कृत-विश्वविद्यालय-वाराणसी-प्रकाशक-सुन्दरकाण्डे दशमः सर्गः पूरा हुआ ॥ १ ॥

एकादश सर्ग

वह सीता नहीं है—ऐसा निश्चय होनेपर हनुमान्भीष्म पुन अन्त पुरमें और उसकी पानभूमिमें सीताका पता लगाना, उनके मनमें धर्मलोपकी आशङ्का और स्वतः उसका निवारण होना

ममधूप च ता बुद्धि वभूवावस्थितस्तदा ।
 बगाम चापरा धिस्ता सीता प्रति महाकथयिः ॥ १ ॥
 छिन्त उच समय इत विचारको छोड़कर महाकथि हनुमान्भीष्म अपनी स्वाभाविक स्थितिमें स्थित हुए और वे सीताकीके विषयमें दूसरे प्रकारकी चिन्ता करने लगे ॥ १ ॥
 न रामेण वियुक्ता सा स्वप्नुमर्हति भामिनी ।
 न भोक्तु माप्यलक्ष्मणी न पानमुपसेवितुम् ॥ २ ॥
 (उन्होंने खेला—) भामिनी सीता भीष्मककन्याकीसे विवृणु गयी हैं । इस दृश्यामें वे न तो सो सकती हैं, न भोजन कर सकती हैं, न श्राद्धार एवं मसकर पारण कर सकती हैं, फिर महिरापानकर सेक्त वा किसी प्रकार भी नहीं कर सकती ॥ २ ॥
 गान्य मप्युपस्थातुं सुराणामपि केचनम् ।
 न हि एतस्यमः कश्चिद् विद्याते त्रिवहोष्वपि ॥ ३ ॥
 वे किसी वृत्ते पुरुषके पास यह देखनाओंका भी ईश्वर क्यों न हो नहीं था सकती । देवताओंमें भी कोई ऐसा नहीं है जो भीष्मककन्याकी समन्ता कर सके ॥ ३ ॥
 कस्येयमिति निश्चित्य भूपस्ताम कचार सः ।
 पानभूमौ हरिभेद्य सीतासदर्शगोस्तुका ॥ ४ ॥
 (अतः मयस्य ही यह सीता नहीं कोई दूसरी ली है । ऐसा निश्चय करके वे कपिभेद्य सीताकी दर्शनके लिये उत्सुक हो पुन वहाँकी मधुशाकमें विचरने लगे ॥ ४ ॥
 श्रीहितेनापराः ह्यास्ता गीतन च तथापराः ।
 नृत्येन चापराः ह्यास्ता पानयिप्रह्लातास्तथा ॥ ५ ॥
 वहाँ कोई कियों भीड़ा करनेसे लक्ष्य हुई थी तो कोई गीत गानेसे । वृत्ती नृत्य करके एक गयी थी और कितनी ही कियों अधिक मधुपान करके मत्तेव हो रही थी ॥ ५ ॥
 सुरभेषु सुदहेषु खेळिष्वसु च सखिताः ।
 तथाऽऽस्तापनमुक्येषु सविद्याकापरा क्रियाः ॥ ६ ॥
 बहुतसी कियों होठ मुरझ और खेळिका नामक शर्पेपर अपने अङ्गोंको टेककर सो गयी थी तथा वृत्ती मरिचके अन्धे अन्धे सिद्धोनेपर खेपी हुई थी ॥ ६ ॥
 मङ्गलानां सहस्रेण भूपतेन विभूषणैः ।
 रूपसङ्गापदीतम युक्तगीताध्यापिना ॥ ७ ॥
 दशाकाशाभियुक्तन युक्तवाक्याभिधापिना ।
 एताधिकम संयुक्तां दर्शना हरियूपय ॥ ८ ॥

वानरपृथपति हनुमान्भीष्म उच पानभूमिम् पक्षी वरुसो रमयिषेति संयुक्त देखा जो भक्ति-भक्तिके आभूषणोंसे विभूषित, रूप-रमण्यकी बचा करनेवासी, गीतके समुचित अभिप्रायको अपनी वाणीद्वारा प्रकट करनेवासी, देश और कालके समझनवासी उचित बात बोझनेवासी और रति क्रीडामें अधिक भाग देनेवासी थी ॥ ७ ८ ॥
 मान्यथापि वरुणीर्वा रूपसङ्गापशापितान् ।
 सदृशं युयतीनां तु मस्तुत स वदर्श ॥ ९ ॥
 वृत्ते स्थानपर भी उन्होंने एधं वरुसो सुन्दरी सुन्दरियों को छोटे देखा जो आपसमें रूप-सौन्दर्यकी बचा करती हुई बैठ थी थी ॥ ९ ॥
 देशकाशाभियुक्तं तु युक्तवाक्याभिधापितत् ।
 एताविरतसस्तुतं वदर्श हरियूपयः ॥ १० ॥
 शानरपृथपति पवनकुमारने देखी बहुतसी कियोंको देखा, जो देश-कालको जाननेवासी, उचित बात बतानेवासी तथा रतिक्रीडाके पश्चात् गात्र मित्रामें खेपी हुई थी ॥ १० ॥
 तासा मभ्य महावाहुः शुशुभे राक्षसेश्वरः ।
 गोष्ठं महति मुक्यानां गवा मध्ये यथा धूपः ॥ ११ ॥
 उन सबके बीचमें महाबाहु राक्षसराज खण्य विद्याक गोष्ठाक्षमें भेष गौओंके बीच खेप हुए शीङ्गी भक्ति शोभा पा रहा था ॥ ११ ॥
 स राक्षसेन्द्रः शुशुभे ताभिः परिप्लवः स्वयम् ।
 करेणुभिर्विचारण्ये परिधीर्षो महाक्षिपः ॥ १२ ॥
 ऐसे बनमें हाथियोंके फिण्ड हुआ कोई मन्त्र गान्यक हो रहा था तभी प्रथम बल भवनमें उन सुन्दरिसेठि फिण्ड हुआ स्वयं राक्षसराज खण्य सुधाभिन्न हो रहा था ॥ १२ ॥
 सद्यैकानैकपेठा च पानभूमि महात्मना ।
 वदर्श कपिद्याकुसस्तास्य रक्ष पतेर्पुह ॥ १३ ॥
 मृगाणा महिषाणा च घराहाण्यो च भागवतः ।
 तत्र न्यस्तासि मासानि पानभूमौ दर्शना सः ॥ १४ ॥
 उच महाकाय राक्षसराजके भवनमें कपिभेद्य हनुमान् वह पानभूमि देखी जो सम्पूर्ण मन्त्रोपासित भोग्येण सम्पन्न थी । उच मधुशाकमें मन्त्रा मन्त्र मूखे मूखे और सुभरोंके मात रख गय य किं हनुमान्कोन देखा ॥
 रोकमपु च विशासपु माजमप्यप्यभक्षितान् ।
 वदर्श कपिद्याकुसस्तास्य कुपकुसस्ताथा ॥ १५ ॥

पराहवाधीपसकान् दधितीवर्चंवायुतान् ।
शास्मान् मृगमयूरांश्च हनुमान्मवैश्रव ॥ १६ ॥

बानरतिह हनुमान्ने वहाँ सोनेके बड़े-बड़े पारोंमें
मोर मुंगों, सुअर, गेंडा, खड़ी, हरिज तथा मयूरीके मांस
देके, जो दही और नमक मिश्रकर रखे गये थे । वे अमी
खाये नहीं गये थे ॥ १५ १६ ॥

कृकञ्जान् धिबिर्भाङ्गमगाम्भ्रशकानर्धभक्षितान् ।
महिपानेकरास्यांश्च मेषाञ्च कृतमिष्टितान् ॥ १७ ॥
छेद्वानुवाद्यधान् पेयान् भोज्याभ्युवाचबालिष्व ॥
तथाम्लखण्डयोक्तैर्विधिषु रागजापहृद्यैः ॥ १८ ॥

कृकञ्ज नामक फली भोंति भोंतिके बन्दे करवेघ,
आये खाये हुए भैंसे एकपान्न नामक मत्स्य और मेहे—
ये ख-के-ख रोंप पकाकर रखते हुए थे । इनके साथ
अनेक प्रकारकी फटनियों भी थीं । भोंति भोंतिके फेम तथा
मत्स्य पदार्थ भी विद्यमान थे । भीमकी शिबिबटा दूर
कानेके छिये खडाई और नमकके साथ भोंति-भोंतिके रंग
और खाण्डव भी रखते गये थे ॥ १७-१८ ॥

महानुपुरकेयूरैरपविर्धैर्महाघनैः ।
फलयभाङ्गतपिष्टितैः फलेभ्यश्च विविधैरपि ॥ १९ ॥
कृतपुष्पोपहारा भूरधिक्यं पुष्पलि धियम् ।

बहुगुण्य बड़े-बड़े नूपुर और नाम्बर बहों-तहाँ पक
हुए थे । मयपानके पात्र इतर-उत्तर कृतकये हुए थे ।
भोंति-भोंतिके फल भी बिबारे पके थे । इन सबके उपकथित
होनेवासी वह पानभूमि किते फूलोंसे उजावा गमा था
अधिक शोभक्य पोषण एवं संवर्धन कर रही थी ॥ १९ ॥

तत्र तत्र च विभ्यस्तैः सुनिद्रप्रदायनासनैः ॥ २० ॥
पात्रभूमिधिना धिक् प्रकीर्तबोपकल्पते ।

यत्र-तत्र रक्सी हुई सुदृढ़ शम्पाओं और सुन्दर
सर्वमत्र विहासनोंसे सुशोभित सोनेकासी वह मनुष्याञ्च
देसी कामगा रही थी कि किना भागके ही ककरी हुई-सी
बिबायी देती थी ॥ २० ॥

बहुप्रकारैर्विभिर्धैर्यत्सस्वरत्नसकृष्टैः ॥ २१ ॥
मांसैः कुदाहसंयुक्तैः पात्रभूमिगतैः पृथक् ।
दिभ्याः प्रसक्ता विविधाः सुराः कृतसुरा अपि ॥ २२ ॥

१ अंगू और बनरके रत्नों मीनी नीर न्यु न्यु न्यु
निभनेसे जो मकर रत्न कैरक छोटा है वह फण हा वा एण
कल्पना है और गन्ना हा वाच दो 'शम्बर' जन्म बारण
करके है ।

मैसा कि क्या है—
सिगान-प्रायितपुरा हाहाहाकिमो एताः ।
निरन्तरं च इतो एतः उग्ररत्नैः शम्बरः एताः ॥

शार्करसद्यमाभीकाः पुष्पासवफञ्जस्रपा ।
यासत्पूर्वैश्च विविधैर्मृदास्तैस्तीः पृथक् पृथक् ॥ २३ ॥

अभी छौंक-बभारके वैचार किये गये नाना प्रकारके निभिय
मांस चतुर रोगहोयारा बनाये गये थे और उच पानभूमिमें
पृथक्-पृथक् खाकर रखे गये थे । उनके साथ ही लख
दिम्ब सुराएँ (जो करमन खादि हूँसे स्वतः जस्य
हुई थी) और इभिम सुराएँ (किन्हीं हाउव बनानेवाके
अथ वैचार करते हैं) भी वहाँ रक्सी गयी थी । उनमें
शर्करासर्व, मौष्कीक, पुष्पासव और पञ्जसर्व भी थे । इन
सबके नाना प्रकारके सुगन्धित फूलोंसे पृथक्-पृथक् बाँध
किना गया था ॥ २१-२३ ॥

संतता शुशुभे भूमिर्मांस्यैश्च बहुसंस्थितैः ।
शिरम्यैश्च कञ्जसौभ्रजनैः सप्रतिकैरपि ॥ २४ ॥
शाम्भूम्यमयैश्चास्यैः करकैरभिसंघृता ।

वहाँ अनेक खानोंपर रखे हुए नाना प्रकारके फूलों
सुवर्णमय ककरी स्तविकमजिके पात्रों तथा शम्भूम्यके
बने हुए अन्याय्य कमण्डलुओंसे म्यात हुई वह पानभूमि
बड़ी शोभा पा रही थी ॥ २४ ॥

राशतेषु च कुम्भेषु जाम्भूम्यमयेषु च ॥ २५ ॥
पात्रभेदां तथा भूमि कपिस्तात्र वर्ध्वा सः ।

पौठी और सोनेके बर्तनों वहाँ भेड़ फेम पदार्थ रखे
थे उच पानभूमिको कविबर हनुमन्सन्ने वहाँ अभी तरह
पुस-पुगकर देला ॥ २५ ॥

सोऽपश्यकञ्जतकुम्भाणि सीधोर्मणिमयाणि च ॥ २६ ॥
तामि तामि च पूर्वाणि भाङ्गानि महाकपिः ।

महाकपि पानकुमारने देला वहाँ भरिउठे भरे हुए
छेने और मजिनोंके मिश्र-मिश्र पात्र रखे गये हैं ॥ २६ ॥

कश्चित्पूर्वावधोपाणि कश्चित् पीताम्यरोपता ॥ २७ ॥
कश्चिन्मैथ प्रपितामि पातामि च वर्ध्वा ह ।

किसी बड़ेमें आधी मजिरा रोष बी वो किसी बड़ेकी
खड़ी-की-साथी थी भी गली थी तथा किन्हीं-किन्हीं बर्तनोंमें
रक्ते हुए मद्य सर्वथा पीये नहीं गये थे । हनुमान्कीने
उन सबके देला ॥ २७ ॥

कश्चित् भक्ष्याश्च विविधाश्च कश्चित् पानामि भागद्याः ॥ २८ ॥
कश्चित्पूर्वावधोपाणि पश्यन् यै विधवाच ह ।

कहाँ नाना प्रकारके मत्स्य पदार्थ और कहीं पीनेकी
बट्टाएँ अङ्ग-अङ्ग रक्सी गयी थी और कहीं उनमेंसे

१ कर्णउठे कैरक को हरे हुए कर्णउठल करजती है ।
२ मयुसे बवासी हुई भरिउठा । ३ मनुष्योंके फूलों तथा कल्पान
पुष्पोंके मकरजके कवापी हुई हुएको 'पुष्पासव' करते हैं । ४ शम्बर
न्यु न्यु कर्मके रत्नके कैरक को हरे हुए 'सुरा' ।

माथी माथी छात्राणी ही बची थी । उन लकड़ों देखते हुए वे वहाँ सर्वत्र निचरने लगे ॥ २८३ ॥

हायमायत्र नारीणां शून्यानि बहुधा पुनः ।
परस्पर समानिस्वप्न क्वाञ्चित् सुप्तावराहणाः ॥ २९ ॥

उस अन्तःपुरमें स्त्रियोंकी बहुतसी शून्याएँ सूनी पड़ी थीं और किन्ती ही सुन्दरियों एक ही जगह एक-दूसरीका झलकान क्रिये लो लगी थी ॥ २९ ॥

क्वाञ्चित् वल्लभमन्थस्या अपहृण्योपगुह्य च ।
वपयम्यावळा सुप्ता निद्रावलयपराञ्जिता ॥ ३० ॥

निद्राके बन्धने पराङ्कित हुईं कोई अबन्धन दृष्टी लोभन बल उदारकर उसे चारन क्रिये उसके पास ना उठीअ झलकान करके लो गयी थी ॥ ३० ॥

यासामुच्छ्वासावतलन वल्लभास्यं च गात्रजम् ।
नास्यर्षे स्वप्नते विच प्राप्य मन्वमिवासिलम् ॥ ३१ ॥

उनकी गैलकी हवासे उनके शरीरके विविध प्रभारके बल और पुष्पमाळा आदि बस्तुएँ उसी तरह बरि-बीरे हिच रही थीं जैसे बीमी बीमी बासुके बन्धनेसे हिच करती हैं ॥ ३१ ॥

वाम्बस्य च शीतस्य सीधोर्मपुरसस्य च ।
विविधस्य च मास्यस्य पुष्पस्य विविधस्य च ॥ ३२ ॥

बहुधा माकृतस्तास्य वाम्ब विविधमुद्रहम् ।
आमानां चम्बमानां च घृपानां चैव मुञ्चिञ्चता ॥ ३३ ॥
प्रबधौ सुरभिर्गाम्बो धिमाने पुष्पके तवा ।

अस ठमस्य पुष्पकमिमानमे शीतल चन्दन मयः, मधुर, विविध प्रभारकी गन्ध मँडि-भँडिके पुष्प खान धमनी चन्दन और घृपकी अनेक प्रभारकी गन्धका मार बहन करती हुई मुगन्धित बस्तु लव और प्रवाहित हो रही थी ॥

एयमावदातास्तत्राम्याः क्वाञ्चित् कृप्या वराहणाः ॥ ३४ ॥
क्वाञ्चित् काञ्चनवर्णाङ्गयाः प्रमदा राक्षसाख्ये ।

उस राक्षसराजके मबनमे कोई लँवकी कोई गेरी कोई काकी और कोई मुक्किके समान कल्पितवाणी सुन्दरी पुत्रियों लो रही थीं ॥ ३४ ॥

तासां निद्रावदास्वाद्य मवनेन विमूर्च्छितम् ॥ ३५ ॥
पथिनीनां प्रसुप्तामां रूपमासीत् यथैव हि ।

निद्राके बन्धने इनके चारन उनका अम्मोरित रूप दुरि हुए मुलबाळ कमलपुष्पोंके समान बान पड़ता था ॥

एषं सयमदापय रायजान्ताःपुरं कपिः ।
वदतां स महातेजसा न वदतां च जामकीम् ॥ ३६ ॥

इस प्रभार महातेजसी कपिबर इनुमन्ने पबलका कप मन्त पुर खान हाका ता भी वहाँ उन्हें अनकनदिनी लोकाय रचन नहीं हुआ ॥ ३६ ॥

निरीक्षमाणश्च ततस्ताः स्त्रिय स महाकपिः ।
अगाम महतीं शकुं धर्मसाध्वसशङ्कितः ॥ ३७ ॥

उन छोटी हुईं स्त्रियोंको देखते-देखते महाकपि इनुमान् धर्मके मयसे शङ्कित हो उठे । उनके हृदयमें बड़ा भयि संदेह उपस्थित हो गया ॥ ३७ ॥

परदारावधोषस्य प्रसुप्तस्य निरीक्षणम् ।
इत्वं खलु ममात्पर्यं धमलोप करिष्यसि ॥ ३८ ॥

इ लोचने लगे कि इस तरह गाद निद्रामें लोपी हुई परायी स्त्रियोंको देखना अच्छा नहीं है । यह तो मेरे धमका भास्वत बिनाश कर जायेगा ॥ ३८ ॥

न हि मे परदाराणां दृष्टिर्विपयवर्तिनी ।
अय खात्र मया दृष्टः परदारपरिग्रहः ॥ ३९ ॥

मेरी दृष्टि अनतक कभी परायी स्त्रियोंपर नहीं पड़ी थी । यहाँ आनेपर मुझे परायी स्त्रियोंका अग्रहरण करनेवाले इस पापी राक्षसका भी दर्शन हुआ है (ऐसे पापीको देखना भी धर्मका अपे करनेवाला होता है) ॥ ३९ ॥

तस्य प्रातुरभूञ्जिता पुनरम्या मनसिमाः ।
निश्चितैकान्तचित्तस्य कार्यनिश्चयवर्तिनी ॥ ४० ॥

तदन्तर मनस्वी इनुमान्कीके मनमें एक-दूसरी विचारभाव उत्पन्न हुईं । उनका चित्त अपने लक्ष्यमें सुक्षिर था अतः यह नयी विचारभाव उन्हें अपने कर्मका ही निश्चय करनेवाली थी ॥ ४० ॥

काम दृष्टा मया सर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रियः ।
न तु मे मगसा किञ्चित् वैकृत्यमुपपद्यते ॥ ४१ ॥

(वे लोचने लगे—) गर्वमें संदेह नहीं कि रावणकी स्त्रियों निराशङ्क लो रही थीं और उली अबलामें मैंने उन लकड़ों अच्छी तरह देखा है तथावि मेरे मनमें कोई विचार नहीं उत्पन्न हुआ है ॥ ४१ ॥

मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तने ।
शुभाशुभाश्लेषकाद्यु तथ मे सुस्पयस्थितम् ॥ ४२ ॥

लक्ष्मण रक्षियोंको छाम और अछाम अबलामें मैंने अपनेकी प्रेरणा देनेमें मन ही कारण है किंतु मेरा वह मन पूजता स्थिर है (उठका कहीं राग ना दय नहीं है इलामि मेरा यह परकी-दर्शन धमका लोप करनेवाला नहीं हो सकता) ॥ ४२ ॥

नाम्यथ हि मया शक्या वैद्वी परिमार्गितुम् ।
स्त्रियो हि लीपु दृश्यन्त सदा सम्यग्दिशाणे ॥ ४३ ॥

विदेहनदिनी छेतको दृष्टी जगद में दृष्ट भी लो नहीं सकता था; क्योंकि स्त्रियोंको देतेसे ठमस उन्हें स्त्रियोंके ही बीचसे देला जाता है ॥ ४३ ॥

यस्य सत्वस्य यायासिस्तस्यां तत् परिमार्गते ।
न शक्य प्रमदा नद्या मूर्गाणु परिमार्गितुम् ॥ ४४ ॥

किं वीरधी वो भयि होषी हे उलीमें उसे खावा
 भवा हे । खावी दुई मुन्नी काको हरिनियोंके बीचमें नहीं
 हूँवा अ ठकटा हे ॥ ४४ ॥

सविम् मार्गितं तावच्छुजेन मनसा मथा ।
 राषण्मातापुरं सर्वे हृदयते न ख जानकी ॥ ४५ ॥

अतः मैंने रावणके इत धारे अस्त पुरमें कुछ हृदयते
 ही अन्वेषण किया है किन्तु यहाँ जानकीभी नहीं रिलाखी
 होती है ॥ ४५ ॥

देवगण्यर्वाक्याश्च नागकन्याश्च धीपवान् ।
 अयेक्षमाप्यो हनुमान् नैवापद्यत जानकीम् ॥ ४६ ॥

अतःपुरका निरीक्षण करते हुए पशुकी हनुमान्ने

इत्पार्ये श्रीमद्रामायणे वाक्येकीये आदिवाक्ये सुन्दरकाव्ये एकवचः सर्गः ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीवल्ग्वर्कनिर्मित अर्वाभ्यन्तक आदिकाव्यके सुन्दरकाव्यमें आरम्भनीं सर्व पूरा हुय ॥ ११ ॥

द्वादश सर्ग

सीताके मरणकी भावनासे हनुमान्कीका क्षिब्ध होना, फिर उत्साहका आभय लेकर अन्य स्वानोंमें
 उनकी खोज करना और कहीं भी पता न लगनेसे पुन उनका चिन्तित होना

स तस्य मध्ये भवनस्य संस्थितो
 छातायुर्वाग्निवद्गुहान् निद्यायुवाय् ।
 जगाम सीतां प्रतिवर्शानोस्तुको
 न शैव तां पश्यति चाददर्शानाम् ॥ १ ॥

इतन्मिे निश्चय ही इस गुफाकी राक्षसघने उन्हें मार
 बाधा होख ॥ १ ॥

विक्रपकृपा विकृता विवर्षसो
 महातना दीर्घविक्रपदर्शना ।

समीक्ष्य ता राक्षसराजयोपितो
 भयाच् विलस्य जनकेन्दरारमजा ॥ ४ ॥

उत्तरतय रावणके यहाँ वो हस्तकर्म करनेवाकी
 उल्लिखी हैं उनके रूप बड़े बेरोज हैं । वे बड़ी निष्प और
 निष्प्राय हैं । उनकी कान्ति मी मर्याद है । उनके मुख
 निष्पाय और मोंकों मी बड़ी-बड़ी एवं मरान्तक हैं । उन
 एकको देखकर जनकपुत्रनन्दिनिये मयके मारे प्राण त्याग
 दिये होने ॥ ४ ॥

उत राक्षसघनेके मीतर स्थित हुए हनुमान्की सीताकीके
 दर्शनके लिये उसगुफ हो क्रमशः छाता-मध्यमेंमें विन
 शास्त्रमेंमें तथा रात्रिक्रमिक विभाम-गहोंमें गये। परंतु यहाँ
 भी उन्हें परम सुन्धी सीताका दर्शन नहीं हुआ ॥ १ ॥

स चिन्तयामास ततो महात्कपिः
 प्रियामपश्यन् रघुमन्वनस्य ताम् ।
 सुखं न सीता क्षिपतं यथा न मे
 विचिन्वतो वर्णानमसि मैथिली ॥ २ ॥

सीतामहदूय छलवाप्य पौतयं
 विहृत्य काळं सख् बानरीधिरम् ।
 न मेऽस्ति सुग्रीवसमीपगया गतिः
 सुरीक्ष्यदृष्टो वलवांश्च वामरा ॥ ५ ॥

सीताका दर्शन न होनेसे मुझे अपने पुत्रार्थका एक
 नहीं प्राप्त हो सका । इधर बानरोंके क्षय सुग्रीवकमलक
 इधर उधर भ्रमण करने मैंने क्षेत्रेकी अन्ति भी क्या ही
 है। अतः अब मेरा सुग्रीवके पास जानेका भी मार्ग बंद हो
 गया क्योंकि वह बानर बड़ा बडमान् और अत्यन्त क्रूर
 बन्ध देनेवाला है ॥ ५ ॥

रघुमन्वन श्रीरामकी प्रियतमा सीता अब यहाँ मी
 रिलाखी न थीं तब वे महाकपि हनुमान् इस प्रकार किता
 करने लगे—निश्चय ही अब मिथिलेशकुमारी सीता चोपित
 नहीं हैं। इसीलिये बहुत खोजनेपर भी वे मेरे हृदयमें नहीं
 आ रही हैं ॥ २ ॥

सा राक्षसामां प्रवरेण जानकी
 स्वशीलसुरसुण्यतत्परा सती ।
 अमल नूर्म प्रति सुलक्ष्मणा
 हता भववार्पण्य परे स्थिता ॥ ३ ॥

हृदयमतापुरं सर्वे हृद्य रावणयोपितः ।

पत्नी-शात्री सीता उतम आर्यमार्ग पर स्थित रहनेवाकी
 थीं । वे अपने शोच और उदात्तको रक्षामें ऊपर रही हैं।

न स्तिता हृदयते साध्या वृष्या ज्ञातो मम भ्रमः ॥ ६ ॥

मैंने राक्षसका साथ भन्ना:पुर जान बाध्य, एक-एक करके राक्षसकी समस्त क्षिप्तिको भी देख लिया। किंतु अभी तक साध्या कीलाभ्य दर्शन नहीं हुआ अतः मेरा समुद्रसङ्ग-न-का साथ परिभ्रम भ्रम्यं हो गया ॥ ६ ॥

किंतु मा वानराः सर्वे गत धक्ष्यन्ति संगताः ।
गत्वा तत्र त्वया धीर किं कर्तं तव् वत्सल नः ॥ ७ ॥

'हर मैं खोदकर बाँटेंगे तब वारे वानर मिच्छकर मुससे स्व करेंगे। वे पूछेंगे वीर । वहाँ भाकर हमने क्या किया है—यह मुझे बताओ ॥ ७ ॥

महाभूः किं प्रवक्ष्यामि तामह जमकात्मजाम् ।
सुखं प्रापमुपासिष्ये काञ्चस्य व्यतिवर्तने ॥ ८ ॥

'किंतु कनकनन्दिनी कीलाभ्य ने देकर मैं उन्हें क्या उतर दूँ। सुखीयके निमित्त किसे हुए समस्य उच्छङ्खन कर देनेपर अब मैं निम्न ही आगरण उपवास करूँगा ॥८॥

किं वा वक्ष्यति वृक्षस्य जाम्बवानह्वयस्य सः ।
गत पार समुद्रस्य वानराभ्य समागताः ॥ ९ ॥

'यह-यह क्याबान् और पुत्रवाच आहूय मुससे क्या करेंगे । समुद्रके पार अपनेपर अन्य वानर भी क्या मुससे मिलेंगे, तब वे क्या करेंगे ?' ॥ ९ ॥

मनिर्वेदाः क्षिप्तो मूलमनिर्वेदाः पर सुखम् ।
मूयस्तत्र विद्येभ्यामि न यत्र विद्ययाः फलः ॥ १० ॥

(इष प्रभार शोभी देवतक इहाय-से होकर वे किं छोचने लगे—) इहाय न होकर उल्लाहके कान्ने रहना ही उचितिका मूल फल है । अथाह ही परम सुखत्र देह है अतः मैं पुनः उन स्थानोंमें खीटाकी खोज करूँगा, जहाँ अतक अनुत्थान नही किया गया वा ॥ १ ॥

मनिर्वेदो हि स्वतत सर्वाद्येषु प्रवर्तकः ।
करोति सफलं जन्तोः कर्म यत्र करोति सा ॥ ११ ॥

अथाह ही प्रायियोंके लक्षणा वन प्रकाशके जनोंमें प्रहृष्ट करता है और वही उन्हें वे जो कुछ करते हैं उस जन्में तच्छता प्रदान करता है ॥ ११ ॥

तस्मादनिर्वेदकर यत्नं चेपेऽहमुद्यमम् ।
महाद्योष विद्येभ्यामि देवान् रायणपाकितान् ॥ १२ ॥

इन्निसे अब मैं ओर भी उत्तम एवं अलाहपूर्वक यत्नके शिरे चेष्टा करूँगा। राक्षसके द्वारा मुद्रित किन स्थानों-के अतक नहीं देलाया जन्में भी पता समजेंगे ॥ १२ ॥

यापान-गाभ्य विवितास्तथा पुष्पगृहाणि च ।
विप्रशालाभ्य विविता भूषा श्रीहागृहाणि च ॥ १३ ॥

निष्कृष्टान्तररण्याभ्य विपानानि च सर्वदाग ।
इति सविस्मय भूयोऽपि विद्येनुपपद्यन्त ॥ १४ ॥

'आपानघाभ्य, पुष्पगृहा, श्रीहागृहा, गृहेषानकी गक्षियों और पुष्पक आदि विमान—इन सबका ता मैंने जप्या-पया देव बाध्य (अब अन्यत्र खोज करूँगा) ।' यह खीचकर उन्होंने पुनः खोजना आरम्भ किया ॥ १३-१४ ॥
मूमीगृहांभ्येवगृहाण् गृहातिगृहकाभपि ।
उत्पत्तन्निपतन्नापि तिष्ठन् गच्छन् पुनः कश्चित् ॥ १५ ॥

वे भूमिके मीतर बने हुए परों (तहकानों) में, खोराहोपर बने हुए मण्डलोंमें तथा परोंके बाँधकर उनसे पाकी ही वूरपर बने हुए विषय भक्तोंमें खीटाकी खोज करने लगे । वे किसी परके ऊपर चढ़ जाते, किसीसे नीचे फूर पड़ते, कहीं उतर जाते और किसीको चढते-चढते ही देख लेते थे ॥ १५ ॥

मपगृहवक्ष्य श्रावणिक कपाटान्धयसङ्घट्टन ।
प्रविशान् निष्पतन्नापि प्रपतन्नुत्पत्प्रिय ॥ १६ ॥

परोंके दरवाजोंके खोल देते, वहाँ किनाई मिदक देते, किसीके मीतर पुच्छर देखते और फिर निकल भाते थे । वे गिरते-पड़ते और उछलते हुए-से तबत खोज करने लगे ॥ १६ ॥

सयमप्यवकाशां स विद्यन्तार महाकपिग ।
चतुरङ्कुलमात्रोऽपि नावकाशाः स विद्यते ।
रायणान्ताःपुटे तस्मिन् यं कपिर्न जगाम सः ॥ १७ ॥

उन महाकपिने वहाँके सभी स्थानोंमें विपरण किया । राक्षसके अन्तःपुरमें कोई वार अहूच्छा भी देख स्थान नहीं ख गया, जहाँ कपिवर इतमान्की न पहुँचे हों ॥१७॥

प्राकारान्तरधीष्यस्य चेत्त्रिकाद्यैस्संभ्रयाः ।
श्वभाभ्य पुष्करिण्यस्य सर्वे तेनावलोकिताम् ॥ १८ ॥

उन्होंने परकोटक मीतरकी गक्षियों खोदके लुकीके नीचे बनी हुई वेधियाँ वृषु और खेखरियों—उपको जान बाध्य ॥ १८ ॥

राक्षसो विविधाकाश विरूपा विहृतास्तथा ।
इषा इनुमता तद्य न तु सा जमकामया ॥ १९ ॥

इतमान्कीने काह-बगद् नाना प्रकारके भाकरवाधी, कुरूप और विष्णु उपलियों देधीः किंतु वहाँ उन्हें जन्की भीष दर्शन नहीं हुआ ॥ १९ ॥

रूपेणाप्रतिमा लोके परा विद्याधरस्त्रियाः ।
इषा इनुमता तद्य न तु राघयनन्दिनी ॥ २० ॥

छवामे किनेके रूप-भौन्दर्वकी वही दुष्पना नही थी देवी इनुसके विद्याधरियों की इतमान्कीने इन्में आधी; परंतु वहाँ उन्हें भेखुनयभीके आनन्द प्रदान करनेवाधी कीटा नहीं दिखायी दी ॥ २ ॥

नागकाया वरारोहाः पूष्यचन्द्रनिभाननाः ।

वद्य हनुमता तत्र न तु सा जनकामया ॥ २१ ॥

हनुमान्भीने सुम्बर निरम्ब और पूर्ण कद्रवाके समान मन्डर प्रकृताकी बहुत-सी नागकन्याएँ भी बहों देलीं किन्तु जनककिशोरीका उन्हें बचन नहीं हुआ ॥ २१ ॥

ममथ्य राजसेम्रेय्य नागकन्या बहदादताः ।

वद्य हनुमता तत्र न सा जनकमस्मिन्नी ॥ २२ ॥

राजसेम्रेय्यके द्वारा नागसेनाके ममथर बहस्यारसे हरकर कायी हुईं नागकन्याओंको तो पवनकुमारने बहों देला; किन्तु जनककी बहों इन्दिरोपर नहीं हुईं ॥ २२ ॥

सोऽपहर्षस्तं महाबाहुः पदार्थधाम्ना धरस्त्रियः ।

विपस्ताद् महाबाहुर्वनुमान् मास्ततमजः ॥ २३ ॥

महाबाहु पवनकुमार हनुमान्को बूझी बहुत-सी सुन्दरियों

इत्थयै श्रीमद्वाल्मीक्ये वाक्यीकीये आदिकाम्ये सुम्बरकाव्ये श्रावसः सर्गः ॥ १२ ॥

इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकिनिर्मित भारतमगन आदिकाम्यके सुम्बरकाव्यके अठहत्तौ सर्ग पूरा हुआ ॥ १२ ॥

त्रयोदश सर्ग

सीताजीके नाशकी आशङ्कासे हनुमान्जीकी चिन्ता, श्रीरामको सीताके न मिलनेकी सूचना देनेसे अनर्थ की सम्भावना देख हनुमान्जीका न लौटनेका निश्चय करके पुनः लोजनेका विचार करना और अशाक्याटिकामे ईदनेके निष्पत्तये तरह-तरहकी बातें सोचना

विमामात् नु स संक्रम्य प्राकारं हरियूथपः ।

हनुमात् संगवानासीत् यथा विष्णुत्थमाम्बरे ॥ १ ॥

वानरयूथपति हनुमान् विमानसे उतरकर महाम्बरे पर कोठेपर चढ़ आये । बहों आकर वे मेभमाकाके ठहल्ले वनफली हुईं किशकीके समान बड़े वेगसे इधर उधर भूमने लगे ॥ १ ॥

सम्परिक्रम्य हनुमान् राजपथ निवेशनात् ।

अहृद्य जानकीं सीतामश्रुधीत् वचनं कथितं ॥ २ ॥

रकवके लम्बे परोंमें एक बार पुनः चकर भगाकर वन करिवर हनुमान्भीने जनकमस्मिन्नी सीताको नहीं देखा तब वे मन-ही-मन इस प्रकार बहने लगे—॥ २ ॥

मूर्च्छित् कोष्ठिता खट्वा रामस्य चरता भियम् ।

न हि पदयामि वैदेहीं सीतां नवाङ्घ्रिसोभनाम् ॥ ३ ॥

मैंने श्रीरामपक्षकीका प्रिय करनेके लिये कई बार खट्वाको छान डाला; किन्तु खट्वाखट्वाकी विरहमस्मिन्नी सीता मुझे कहीं नहीं दिखायी देती ॥ ३ ॥

पश्यन्न्यामि तदाकानि सर्वास्त्रि सरितस्तथा ।

वक्रव्याधये विभुवधे पयससे वह आश्रित होता है कि उलमक वह वरधेय्य इन्द्रकोशमन्त्रिण्य कना हुन्य ना और चक्रर हृदयसे उचान और कां न्यके हनुमन्को निभुवधे समान कीट होते वे ।

दिखायी थीं; परन्तु सीताजी उनके देखनेमें नहीं आयीं । इतलिये वे बहुत दुःखी हो गये ॥ २१ ॥

उद्योग वातरेन्द्राणा युवर्न सागरस्य च ।

भ्यर्ष्य वीक्ष्यामिखसुतक्षिन्तां पुनरुपागतः ॥ २४ ॥

उन वानरशिरोमन्त्रि कीर्णके उद्योग और अपनेश्राव किये गये उद्योगजहानको भ्यर्ष्य हुआ देखकर पवनपुत्र हनुमान् बहों पुनः बड़ी मारी निष्पत्तये चक गये ॥ २४ ॥

अवतीथ विमामात् हनुमान् मास्ततमजः ।

क्षिन्तामुपजगामाथ शोकोपहतचेतनः ॥ २५ ॥

उस समय वायुनगरन हनुमान् विमनसे नीचे उतर आये और बड़ी निश्चय करने लगे । शोकसे उनकी चेतनापक्षि भिखिख हो गयी ॥ २५ ॥

नयोऽनूपबनास्ताब्ज तुर्गाश्च धरणीधराः ॥ ४ ॥
ओष्ठिता वल्लुभा सर्वा न च पक्ष्यामि जानकीम् ।

मैंने बहोंके छोटे ताकव, पक्षु, कण्ठ, हरिण, नदिबों पानीके आठ-पधके धाक तथा तुर्गन पहाड़—उन देख बाडे । इस नगरके आठपधकी खरी भूमि कोब जमीनी किन्तु कहीं भी मुझे जानकीकीका दर्शन नहीं हुआ ॥ ४ ॥

इह सम्यातिना सीता रावपथ्य निवेशने ।

आक्याता गृधराजेन न च सा वक्षते न किम् ॥ ५ ॥

पक्षराज सम्पदिने तो सीताजीको बहों रकवके महलमें ही कथया था । फिर भी न बन्दे कर्णों वे बहों दिखायी नहीं देती हैं ॥ ५ ॥

किं नु सीताय वैदेही मैथिली जनकामजा ।

उपतिच्छेत् विघशा राघणेन हता यस्मात् ॥ ६ ॥

क्या रकवके श्राव कषपूर्वक हरकर कायी हुई विदेह कुन्तलदनी मिन्किष्ठाकुमारी कनककुम्भी सीता कभी निगध होकर राकवकी सेवामे उपस्थित हो सकती हैं (वह अक्षम्यबै) ॥ ६ ॥

क्षिप्रमुत्पततो मय्ये सीतामावाय रक्षसः ।

विभ्यतो रामबाणानामन्तरा पतिता भवेत् ॥ ७ ॥

मैं तो उमसदा हूँ कि श्रीरामपक्षकीके बाणसे मयकीट हो वह उधर चक सीताको केकर क्षीमतापूर्वक आक्यामै

उठ्य है, उठ समय करी बीचमें ही ने झूटकर गिर पड़ी है ॥ ७ ॥

अथवा द्वियमापायाः पथि सिद्धनिषेधिते ।
मम्य पतितमापाया इव्य प्रथय सागरम् ॥ ८ ॥

‘अथवा यह भी समझ है कि जब माया सीता छिद्र केरि आश्रममागसे छे बन्नी बाली रही हों, उठ समय वपुद्रको देखकर मयक मारें उनका हृदय ही फटकर नीचे गिर पड़ा हो ॥ ८ ॥

एवमसोदयगन मुञ्जाम्नां पीडितन च ।
तया मम्य विशालाक्ष्या त्वच्छ्रीजीवितमार्यया ॥ ९ ॥

‘अथवा यह भी मान्य होता है कि रावणके प्रथक बम म्मेर उरकी मुञ्जाम्नाके हृदय बन्धनसे पीडित होकर विशालाक्ष्येभ्य भाना सीताने अपने प्राणोक्त्र परित्याग कर दिया है ॥ ९ ॥

उपयुपरि सा नून सागरं क्रमत्स्तदा ।
विचष्टमाना पतिता समुद्रे जनकारमजा ॥ १० ॥

‘ऐसा भी हा सकता है कि कित समय रावण उठने वपुद्रके ऊपर होकर आ रहा हो, उठ समय बनककुम्भी की शीला छटपटाकर समुद्रमें गिर पड़ी हो । अतस्व ऐसा ही हुआ ह्यम् ॥ १० ॥

आहो भुद्रेण धानन रक्षन्ती शीलामागनः ।
महभ्युभाक्षिता सीता रायणेन तपस्विना ॥ ११ ॥

‘अथवा राक्षसेन्द्रस्य पत्नीभिरसिद्धिभया ।
मदुष्टा दुष्टभायाभिभक्षिता सा भविष्यति ॥ १२ ॥

‘अथवा एता ही नहीं हुआ कि अपने शीलकी रक्षामें करत हुई किसी महाबल कम्पुकी महाप्रकाश धरित उपस्विनी शीलाका इव नीच रावणने ही खा लिया हा अथवा मनमें दुष्ट भावना रखनेवाली राक्षसका रावणकी परिनियोंने ही करार नेत्रोवाकी खापी शीलाको अपना आहार बना लिया हाय ॥ ११ १२ ॥

सम्पूषवन्द्रमतिम पद्मपत्रनिभक्षणम् ।
रामस्य ष्वापती यक्षत्र पञ्चयष्टपत्ना गता ॥ १३ ॥

‘हाय ! भीरमकन्द्रको पूष कन्द्रमाके समान मन्दहर तथा मन्दल कमबदकक तदा नेत्रगण मुक्तका चित्तने कभी हुई दम्पनेवा शीला इव उदारम पत्र बर्ता ॥ १३ ॥

हा राम लक्ष्मणस्यप हायोभ्य षति मधिर्या ।
रित्तय बहु पदार्थोभ्यस्वल्दहा भविष्यति ॥ १४ ॥

‘हा राम ! हा लक्ष्मण ! हा भव भ्यपुठे ! इन प्रकार पुष्पपुष्पका बहुत विचार करके मिति-मण्डुमाठे विरिन्दनी कठिन भवन पाएके रावण दिना ह्यम् ॥ १४ ॥

अथवा निहिता मम्ये रायणस्य निवेशने ।
मृष्ट लालप्यते बाळा पञ्जरस्तेष सारिका ॥ १५ ॥

‘अथवा मेरी समझमें यह आता है कि वे रावणके ही किये गुप्त रहने छिपाकर रखी गयी हैं । हाय ! वहाँ यह बाळा पीबरेमें बंद हुए मैनाकी तरह बार-बार आर्तनाद करती होगी ॥ १५ ॥

जनकस्य कुले जाता रामपत्नी सुमध्यमा ।
कथमुत्पलपत्राक्षी रावणस्य यदा प्रजेत् ॥ १६ ॥

‘जो बनकक कुलमें उत्पन्न हुए हैं और भीरमकन्द्रकी भी भर्मपत्नी हैं वे नील कमलकेसे नेत्रोवाली सुमध्यमा सीता रावणके अधीन जेसे हा बन्नी हैं ॥ १६ ॥

यित्वा वा प्रणया या सूता या जनकारमजा ।
रामस्य प्रियभार्यस्य न निषेव्यितु क्षमम् ॥ १७ ॥

‘बनककियोरी सीता चाहे गुप्त रहनें महत्त्व करके रखी गयी हो पाए समुद्रमें गिरकर प्राणोंसे हाय भो देती हो अथवा भीरमकन्द्रकीके विरुद्ध कथ न वह उठनेके कारण उठनेमें मृगुकी वारण कीरो किये भी दशामें भीरमकन्द्रकीको इव बावकी पूरना देना उचित न होगा क्योंकि वे अपनी पत्नीको बहुत प्यार करते हैं ॥ १७ ॥

निवद्यमाने क्षोयः स्यात् क्षोयः स्यात्निषेदने ।
कथ तु खलु कतर्ष्य विषमं प्रतिभाति म ॥ १८ ॥

‘इस समाचारके पठानमें भी क्षय है और न बतानेमें भी क्षोयकी सम्भ्रान्त है, ऐसी दशामें कित उपायत कम सना चारिसे ! मुझ हा बताना और न बताना—दोनों ही दुष्कर प्रतीत हाते हैं ॥ १८ ॥

अभिन्नयगत क्षयें प्रातश्चर्यं क्षमं च किम् ।
भयविति मतिं भूयो हनुमान प्रविचारयन् ॥ १९ ॥

‘एकी दशामें जब कर भी क्षय करना दुष्कर प्रतीत हाता है, तब पर क्षिपे इस समयक अनुहार क्या करना उचित हाय ! इहाँ बातोंपर हनुमानकी बार-बार विचार करने लगे ॥ १९ ॥

यदि सीतामहद्ग्राहं पानरद्रपुरीमित ।
गमिष्यामि ततः क्ष म पुरुषार्थो भविष्यति ॥ २० ॥

‘उठाने (रि लक्ष्मण—) यदि मैं शीलाकीका इव निना ही पदाय बनपत्रकी पुठे विरिन्दमात्र कीट काऊय छ मय पुष्पाय ही क्या रह अथवा ? ॥ २० ॥

ममद् लज्जुम व्यर्थं सागरस्य भविष्यति ।
प्रपञ्चस्यैव लज्जाया शशकानो च दानम् ॥ २१ ॥

‘कि ता मय पर लज्जुम लज्जुम लज्जामें प्रथय और राक्षसोंके दत्तना कर मय हा बायव ॥ २१ ॥

किं वा यक्षनि तुषीया हरयो पाणि मगताः ।
किरिष्णामनुसन्ध्यात तो वा दुराचर्यामजा ॥ २२ ॥

‘किञ्चिन्पामे पूर्वोक्तेषु मुक्तये सिद्धकर सुधीषः वृद्धे
वृद्धे शानर तथा वे शोनों वरवचयनकुमार भी क्य
करेंगे ॥ २२ ॥

गस्तर तु यदि काकुत्स्थं वक्ष्यामि पश्य वषः ।
न वप्रेति मया सीता ततस्त्यक्ष्यति जीवितम् ॥ २३ ॥

‘अदि वहाँ बाकर मैं भीरमकन्दबीधे पर कउरे वर
कर वू कि मुझे सीताका दर्शन नहीं हुआ तो वे प्राणोंका
परिधाय कर देंगे ॥ २३ ॥

पठर्षं वाक्यं तीक्ष्ण भूरमिच्छियतापनम् ।
सीतानिमिषं बुधोक्ष्य भुत्वा स न भविष्यति ॥ २४ ॥

‘सीताबीके विषयमें ऐसे कजे, कउरे, तीक्ष्ण और
इच्छियौके छेदाप देनेवाले बुधवचन सुनकर वे करापि
भीषित नहीं रहेंगे ॥ २४ ॥

तं तु कुष्णमूगत वद्म पञ्चस्वगतमानसम् ।
शुशानुरक्तमेधावी न भविष्यति सक्तमजः ॥ २५ ॥

उन्हें उक्तमें पढ़कर प्राणोंके परिधायका संकल्प करके
देख उनके प्रति अत्यन्त अनुग्रह रखनेवाक बुद्धिमान्
अमज भी भीषित नहीं रहेंगे ॥ २५ ॥

विनयी भ्रातरौ भुत्वा भरतोऽपि मरिष्यति ।
भरत च मूर्तं वद्म शत्रुप्रो न भविष्यति ॥ २६ ॥

‘अपने इन दो भाइयोंके विनाशका उग्रचार सुनकर
भरत भी प्राण त्याग देंगे और भरतकी मृत्यु देखकर शत्रुप
भी भीषित नहीं रह सकेंगे ॥ २६ ॥

पुत्रान् मृतान् समीक्ष्याथ न भविष्यति मातरः ।
कौस्तुभ्या च सुमित्रा च केकेयी च न सहायः ॥ २७ ॥

इस प्रकार चारों पुत्रोंकी मृत्यु हुई देख कौस्तुभ्या,
सुमित्रा और केकेयी—य तीनों मातरों भी निस्संदेह प्राण
दे देंगी ॥ २७ ॥

कृत्याः सत्यसधश्च सुधीषः सुवगायिषा ।
वामं तपागतं वद्म ततस्त्यक्ष्यति जीवितम् ॥ २८ ॥

कृष्ण और अत्यप्रसिद्ध बानरधन सुधीष भी क्य
श्रीधामकरका ऐसी अवस्थामें देखेंगे तो त्वय भी
प्राणविस्त्रन कर देंगे ॥ २८ ॥

दुर्मता प्यथिता दीना निरामन्दा तपस्विनी ।
पीडिता भर्तृगोक्तम दया त्यक्ष्यति जीवितम् ॥ २९ ॥

‘तत्प्रभातं पतिषोष्ठं पीडितं ह्य दुःखितचिध रीन
स्वपित और आनन्दरूप्य हुई तपस्विनी क्य भी अज दे
देगी ॥ २९ ॥

मस्मिन्न न तु युग्येन पाडिता शोकरुचिवा ।
पञ्चम्यमागता राजी तारापि न भविष्यति ॥ ३० ॥

‘अदि ता धनी ताप भी भीषित नहीं रहेंगी । वे कभीके

निरहकनित दुःखसे तो पीडित थी ही, इव मूलन छोकरे
कातर हो थीष ही मृत्युसे प्राप्त हो व्यपैयी ॥ ३ ॥

मातापिबोर्विनाशेन सुधीषभ्यसनेन च ।
कुमारोऽप्यङ्गुलाफाव विव्रिष्यति जीवितम् ॥ ३१ ॥

‘माता-पिताके विनाश और सुधीषके मरणकनित संकल्पसे
पीडित हो कुमार अङ्गुल भी अपने प्राणोंका परिधाय कर
देंगे ॥ ३१ ॥

भर्तृसेन तु युःशेन अभिमृता वनौकसाः ।
शिर्षस्यमिहनिष्यन्ति तन्नेर्मुष्मिरेव च ॥ ३२ ॥

‘साम्पन्नेनानुपवासेन मामेन च पयास्विना ।
काञ्चिताः कम्पिनायेन प्राणास्त्यक्ष्यन्ति धामराः ॥ ३३ ॥

‘तदनन्तर स्वाधीके गुच्छसे पीडित हुए छारे बनर
अपने हाथों और मुँहसे फिर पीदने लगेंगे । यहासी बनर
एकने उमलनमूर्धं वचनों और राज-मानसे किन्नर अकन-
पान्न किश या वे बनर अपने प्राणोंका परिधाय कर
देंगे ॥ ३२ ३३ ॥

न वसेषु न शीलेषु न शिरोषेषु वा पुनः ।
श्रीकामनुभविष्यन्ति समेत्य कपिकुक्षराः ॥ ३४ ॥

‘येही मयस्थामें शेष बनर बनो, पर्वतों और गुच्छमेंमें
एकन होकर फिर कभी कौदा-निहारक आनन् नहीं
हैंगे ॥ ३४ ॥

सुपुङ्खराः सामास्या भर्तृभ्यस्तपीडिताः ।
दौष्टामेभ्यः पतिष्यन्ति समेषु विषमेषु च ॥ ३५ ॥

‘अपने उष्णके छांछसे पीडित हो सब बानर अपने
पुत्र की और मन्त्रियोंकहित परतोंके शिखरोंसे नीचे
तम अथवा विषम स्थानोंमें गिरकर प्राण दे देंगे ॥ ३५ ॥

विषमुद्रन्धनं चापि प्रपश ज्यङ्गमस्य वा ।
उपपासमयो शठ्य प्रवरिष्यन्ति वाजराः ॥ ३६ ॥

‘अथवा छरे विष की छेगे वा कौली क्का छेगे वा
बछ्ठी मागमें प्रवेश कर आवेंगे । उष्णव करने लगेगी
अथवा अपने ही शरीरमें पुण भोक्त होंगे ॥ ३६ ॥

शोरमारोद्धम मभ्य गत मपि भविष्यति ।
इक्ष्वाकुकुष्ठनाशाश्च नाशयन्नेव पनीकस्याम् ॥ ३७ ॥

‘जरे वहाँ जानेपर मैं वमस्तता हूँ बहा भंभंकर मारतनर
हने लगेगा । इक्ष्वाकुकुष्ठनाश नाश और बानरोंका भी
विनाश हो आवया ॥ ३७ ॥

सोऽहं नैव गमिष्यामि किञ्चिन्धा नगरीमिता ।
नदि शक्यमन्यहं प्रष्टुं सुधीष मैथिर्वा यिना ॥ ३८ ॥

‘इतन्निवे मैं यहाँसे किञ्चिन्धापुरीको ता नहीं आऊँगा ।
मिथिअशकुमारों सीताका इले विना मैं सुधीषका भी दर्शन
नहीं कर सकूँगा ॥ ३८ ॥

मय्यागच्छति वेदस्ये धमात्मानो महारथी ।
मादाया तौ परिप्येते वानपादश्च तरखिनः ॥ ३९ ॥

परि में वही रहूँ और वहाँ न आऊँ तो मेरी
आधा आधा वे दोनों धमात्मा महारथी क्यु प्राण पारण
किने रहेंगे और वे वेगप्राप्ती पानर भी कीवित
रहेंगे ॥ ३९ ॥

हस्तादानो मुखादानो नियतो वृक्षमूखिकः ।
वानप्रस्थो भविष्यामि ह्यहप्यु जनकारमजाम् ॥ ४० ॥

दानकीकीका दर्शन न विष्णुनेपर में वहाँ वानप्रस्थी
हो आऊँगा । मेरे हाथपर अपने-आप को फल आदि काप
कन्त प्राप्त हा कायगी, उठीको काकर रहूँगा । या परेच्छति
मेरे वृद्धमे से फल आदि काप कन्त पक्ष कायगी, उठीसे
निर्वाह करूँगा तथा शौच, छत्रोव आदि निरुक्तके पाञ्च-
पूषक वृषक नीचे निवात करूँगा ॥ ४ ॥

सगरानूपजे वेदो बहुमूलककोवेदो ।
वित्ति कृष्या प्रवेक्ष्यामि समिच्छमरणीसुतम् ॥ ४१ ॥

अथवा सागरतरवती स्थानमें, वहाँ फल-मूल और
कर्म अचिकटा होती है, मैं विवा बनाकर बळी दुर्
भागमे प्रवेश कर आऊँगा ॥ ४१ ॥

उपविष्टस्य वा सम्पत्तः क्षिप्रिन् साधभिष्यता ।
शरीर भङ्गविष्यन्ति वायसाः श्वापदानि च ॥ ४२ ॥

अथवा आभरण उपबाधके किने बैठकर जिह्मशरीरपाठी
कीप्रमात्रा शरीरसे नियोग करनेके प्रयत्नमें जो हुए
मेरे शरीरको छोड़े तथा शिथक कन्त अपना आहार बना
वेंगे ॥ ४२ ॥

इदमप्युपिभिदधं नियोजमिति मे मतिः ।
सम्पत्तया प्रवेक्ष्यामि न जेतु पदयामि जानकीम् ॥ ४३ ॥

परि मुझे अन्धीकीका दर्शन नहीं हुआ तो मैं सुधी
बुधी जन्म-साधि से हूँगा । मेरे विचारसे इत तरह क-
प्रवेश करके प्रवेक्ष्यामन करना श्रुतिवैकी दृष्टिमें भी
उत्तम ही है ॥ ४३ ॥

सुजातमूखा सुभगा कीर्तिमात्रा यशस्विनी ।
प्रमदया चिररात्राय मम सीतामपश्यतः ॥ ४४ ॥

किन्तु प्रारम्भ छम है देखी सुभगा यशस्विनी और
भी कीर्तिमात्राया यह शीर्षजि भी सीताकीको देखे बिना
ही शीत पक्षी ॥ ४४ ॥

तापसो या भविष्यामि नियतो वृक्षमूखिकः ।
नतः प्रतिगमिष्यामि तामहप्रासितेक्षण्याम् ॥ ४५ ॥

अथवा अब मैं नियमपूर्वक वृषक नीचे निवात
करेगाच तस्को हा आऊँगा किन्तु उत भक्तिज्येन्ना
पैठाके देखे बिना वहाँसे कदापि नहीं छोड़ूँगा ॥ ४५ ॥

यत्त्वं तु प्रतिगच्छामि सीतामनधिगम्य ताम् ।
अङ्गुः सहितः सर्वयोनरेर्न भविष्यति ॥ ४६ ॥

परि सीताका फल सम्पत्ते बिना ही मैं छोट आऊँ तो
तमस्त वानरोवदित अङ्गुद कीवित नहीं रहेंगे ॥ ४६ ॥
बिनाशो बहवो दोषा ज्ञेयन् प्राप्नोति भद्रकम् ।
तस्मात्प्रपान् परिष्यामि ध्रुयो ज्ञेयति स्वगमा ॥ ४७ ॥

इत कीवनक नाथ कर देनेमें बहुतसे दोष हैं । जो
पुरुष कीवित रहता है, वह कमी-न-कमी अवश्य कस्याप-
क मागी होता है अतः मैं इन प्राणोको पारण किने
रहूँगा । कीवित रहनेपर भगीष्ट वस्तु अथवा सुखकी प्राप्ति
अवश्यम्प्राप्ती है ॥ ४७ ॥

पय बहुविध पुष्प मनसा पारयन् बहु ।
नाभ्यगच्छत् तथा पार शोकस्य कपिकुञ्जर ॥ ४८ ॥

इत तरह मनमें अनेक प्रकारके पुष्प पारण किने
कपिकुञ्जर इतमानुषी शोकका पार न पा सके ॥ ४८ ॥
ततो विक्रममासाद्य भैरव्यान् कपिकुञ्जर ।
रावणं वा भविष्यामि वृद्धाश्रीव महाबलम् ।
काममस्तु वृत्ता सीता प्रस्थाचीर्षो भविष्यति ॥ ४९ ॥

तदनन्तर पैयशान् कविभेद इतमानुसे पराक्रम्य उदात्त
कर तोचा—अथवा महाबली दधमुक्त यक्षका ही
बच क्यों न कर सकूँ । मछ ही सीताका अपहरण हो गया
हो इत रावणको मार डालनेसे उत बैरका भरपूर बरअ
तब कायगा ॥ ४९ ॥

अद्यैव समुत्सिष्य उपयुपरि सागरम् ।
रामायोपहरिष्यामि पनु पनुपतेरिच ॥ ५० ॥

अथवा इसे उठाकर तमुद्रके ऊपर-ऊपरसे ले आऊँ
और जैसे यष्टि (ब्रह्म या अग्नि) को यष्ट अर्पित
क्रिया काय उठी प्रकार भीरामक हाथमें इतको हीप
रूँ ॥ ५० ॥

इति चिन्तासमापन्नः सीतामनधिगम्य ताम् ।
ध्यानशोक्यरितात्मा चिन्तयामास वानरः ॥ ५१ ॥

इत प्रकार सीताकीको न पाकर वे चिन्तामें निमग्न हो
गय । उनका मन सीताके ध्यान और शोकमें डूब
गया । फिर वे वानरवीर इत प्रकार विचार करने
वेंगे— ॥ ५१ ॥

यापत्सीतां न पदयामि रामपत्नीं वशस्विनीम् ।
तापदेतां पुर्वी लङ्कां विचिनोमि पुनः पुनः ॥ ५२ ॥

कतक मैं यष्टिनी भीषम-यष्टी श्रेयाका दर्शन न
कर सकूँ, तबक इत लङ्कापुरीमें वारंवार उनकी कोष
करता रहूँगा ॥ ५२ ॥
सम्पातिष्यन्मायापि राम पदानयावहम् ।
अपदयन् रावणो भार्यां निदहत्सर्वयानयन् ॥ ५३ ॥

प्यदि स्यादिके क्वनेते भी मे श्रीरामको यशो बुद्धि के
भाषे तो अपनी पत्नीको यहाँ न देखनेपर भीरपुत्रपत्नी
समस्त शान्तियोंको बसाकर बसा कर होंगे ॥ ५३ ॥

इहैव नियताहारो वत्स्यामि नियतेन्द्रियः ।
न मरुतं बिलक्षेयुः सर्वे ते नरवाचराः ॥ ५४ ॥

‘अतः यहाँ निश्चित आहार और इन्द्रियोंके संयमपूर्वक
निवास करूँगा । मेरे कारण वे समस्त नर और वानर
नष्ट न हों ॥ ५४ ॥

अशोकवनिष्ठा चापि महतीर्यं महाशुभा ।
इमामधिगमिष्यामि नदीर्यं विचिता मया ॥ ५५ ॥

इसपर यह बहुत बड़ी अशोकवृक्षिक है इसके
झेलर बड़े-बड़े हल हैं । इसमें मैंने अमूर्तक अनुसंधान
नहीं किया है अतः अब इलीमें चक्कर डूँँगा ॥ ५५ ॥

यस्युत्तरांस्त्वयाऽऽवित्यामदिवनौ मरुतोऽपि च ।
नमस्कृत्या गमिष्यामि रक्षसा शोकवधना ॥ ५६ ॥

राजसोकके शोकको बदानेवाक्य मैं यहाँसे वसु, बह
आदित्य अग्निाकुमार और मरुतोंको नमस्कार करके
अशोकवृक्षिकमें चूँँगा ॥ ५६ ॥

अित्वा तु राक्षसान् देवोमिष्ववाकुकुब्जमग्निमीम् ।
सम्प्रदास्यामि रामाय सिद्धीमिव तपस्विनः ॥ ५७ ॥

यहाँ समस्त राजसोकके भीतरके जैसे तपस्वीको सिद्धि
प्रदान की जाती है इसी प्रकार भीरामचन्द्रकीके हाथमें
इसवाकुकुब्जके आनन्दित करनेवाली देवी श्रीताको
लौप देगा ॥ ५७ ॥

स मुहूर्तमिव ध्यात्या चिन्ताविप्रथितन्द्रियः ।
उत्तिष्ठन् महाबाहुर्हनुमान् माहतात्मजः ॥ ५८ ॥

नमोऽस्तु रामाय सख्यमनाय
दृष्ये च तस्यै जनकारमजायै ।
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिक्रेम्यो
नमोऽस्तु चन्द्राग्रिमरुद्रलोभ्यः ॥ ५९ ॥

इस प्रकार दो पक्षोंके श्लेष निश्चयकर चिन्तामें
विधिय इन्द्रियबल महाबाहु पत्नकुमार हनुमान् वरुण
उदकर बह द ग (और देवताओंके नमस्कार करते
हुए जाये—) ब्रह्मवर्षदित भीरामको नमस्कार है ।
अनन्दितनी श्रीता देवीको भी नमस्कार है । रुद्र इन्द्र
यम और वायु देवताको नमस्कार है तथा चन्द्रमा अग्नि
एवं मरुतोंको भी नमस्कार है ॥ ५८-५९ ॥

स तभ्यस्तु नमस्कृत्या सुप्रोक्षाय च माहतिः ।
दिशा सराः समाजाप्य साऽऽशाक्यनिकां प्रति ॥ ६० ॥

इस प्रकार उन वरुणों तथा सुवीरुओं भी नमस्कार
करके पत्नकुमार हनुमान्की कम्बू रिशाभकी भार

रक्षित करके अशोकवृक्षिकमें जानेको उषत हुए ॥ ६१ ॥
स गत्वा मनसा पूर्वमशोकवनिष्ठा शुभाम् ।
उत्तर चिन्तयामास धानरो माहतात्मजः ॥ ६२ ॥

उन वानरवीर पत्नकुमारने पहले मनके द्वारा ही उ
सुन्दर अशोकवृक्षिकमें चक्कर भावी कवम्बक इस प्रकार
चिन्तन किया— ॥ ६१ ॥

शुभं तु रक्षोबहुला भविष्यति घनाकुला ।
अशोकवनिष्ठा पुण्या सर्वसंस्कारसंरुता ॥ ६२ ॥

यह पुण्यभरी अशोकवृक्षिक लीकनेकोजाने आदि
सब प्रकारके संस्कारोंसे उजारी गयी है । यह वृक्षे-वृक्षे-
वृक्षे भी घिरी हुई है अतः उकसी रक्षाके लिये यहाँ
निश्चय ही बहुत-से राजत तैनात किये गये होंगे ॥ ६२ ॥

रक्षितव्यात्र विहिता नून रक्षन्ति पावपान् ।
भगवानपि विध्वात्मा नातिक्रोमं प्रघायति ॥ ६३ ॥

पावपानके नियुक्त किये हुए रक्षक अथवा ही यहाँ
वृक्षेकी रक्षा करते होंगे इसलिये भगवत्के मान्यस्वर
मानान् वायुदेव भी यहाँ अधिक बेगते नहीं करते होंगे ॥

सक्षितोऽयं मयाऽऽरमा च रामायै राक्षसस्य च ।
सिद्धिं विशन्तु मे सर्वे देवाः सयिगप्यास्तिष्ठ ॥ ६४ ॥

मैंने श्रीरामचन्द्रकीके कर्षकी छिद्रि तथा राजसोकके
महत्त्व रहनेके लिये अपने शरीरको संकुचित करके छोटा
बना लिया है । मुझे इस कर्षमें श्रुतिबोधित समस्त देवता
सिद्धि उपलब्ध प्रदान करें ॥ ६४ ॥

प्रष्ट्वा स्वयम्भूर्पुंगवान् देवाश्चैव तपस्विनः ।
सिद्धिमभिन्नं वायुञ्च पुरुहूतञ्च वज्रभृत् ॥ ६५ ॥

स्वयम्भू मन्वान् ब्रह्मा, अथ दशवज, तपोनिष्ठ
महर्षि अग्निदेव वायु तथा वज्रगरी इन्द्र भी मुझे उपलब्ध
प्रदान करें ॥ ६५ ॥

वरुणं पाशहस्तञ्च सोमाक्षित्यो तथैव च ।
अभिमौ च महात्मानो मरुतः सर्वे एव च ॥ ६६ ॥

सिद्धिं सवर्णि भूतानि भूतानां चैव यः प्रभुः ।
वास्पन्ति मम ये चाभ्येऽप्यहृष्टाः पथि गांशराः ॥ ६७ ॥

पावपारी बरुण लोम, आदित्य महात्मा अग्निनी
कुम्भर, समस्त मरुतक, कम्बू भूत और भूतोंके अधिपति
तथा और भी जो मार्गमें हीखनेवाले एवं न हीखनेवाले
रथवा हैं वे सब मुझ सिद्धि प्रदान करेंगे ॥ ६६-६७ ॥

तनुन्नस पाण्डुरवन्तममण
नुबिहित पत्रपल्लवजोषनम् ।

द्रक्ष्य तदापावर्षं क्वा ग्यहं
प्रसन्नताराधिपतुरपयसम् ॥ ६८ ॥

'त्रिभुजो नाकं कञ्ची और दौत तपेद है' बिबने चेचक
भादिक दाम नहीं है, यहाँ पवित्र मुतकानकी ठरा छापी
रहती है इसके नेत्र प्रकृत कमन्दकके समान मुपोभित
होते हैं तथा जो निष्कण्डू कम्पारके दुस्य कम्नीय कान्तिते
पुक्त है; वह भागो हीताक्य मुक्त मुक्ते क्व दिखायी देगा? ॥

सुद्रेण हीनेन नृशसमूर्तिना
सुवारुणालकृतवेपधारिणा ।

इत्यार्ये श्रीमद्रामायणे भादिकाम्ये सुन्दरकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १३ ॥

एत प्रकर श्रीरामनिर्मित भार्गवभाष्य भादिकाम्ये सुन्दरकाण्डे तैरहरा सर्गं पूरा हुय ॥ १३ ॥

चतुर्दश सर्ग

इनुमान्जीका अशोकवाटिकामें प्रवेश करके उसकी शाभा देखना तथा एक अशोकवृक्षपर
छिपे रहकर वहाँसे सीताका अनुसंधान करना

ए मुहुतमिष ध्यात्व्य मनसा साधिगम्य ताम् ।
धयप्सुतो महातेजाः प्राकार तस्य वेदमनः ॥ १ ॥

महातेजस्वी इनुमान्जी एक मुहुर्तक इही प्रकार
विचार करते रहे । उत्पन्नात् मन हो मन हीताभीध ध्यान
करके वे राजके महलसे दूर पड़े और अशोकवाटिकाकी
पटारहीकोपर चढ़ गये ॥ १ ॥

ए तु सहस्रसर्वाङ्गः प्राकारस्यो महाकविः ।
पुम्पितामानससन्तारौ दृदर्शविविधान् हुमान् ॥ २ ॥

उस चतारहीकोपर बैठे हुए महाकवि इनुमान्जीके धारे
भङ्गमें हयबन्धित रोमाञ्च हो आया । उगोंने बहुरक
भरणमें यहाँ नाना प्रकारके वृक्ष देखे किन्ही हासियोंके
अममना सुखेक भारसे बदे थे ॥ २ ॥

सायनशोकान् भय्याब्ध कम्पकाञ्च सुपुष्पितान् ।
बृक्षशक्यन्नागपृक्षादचूतान् कपिमुलानपि ॥ ३ ॥

तथाऽऽघ्रयणसम्पर्शस्तैस्तानावसमन्यितान् ।
न्यामुक्तस्य माराद्य पुष्पुय वृक्षपाटिकाम् ॥ ४ ॥

यही नाच अशोक निम्ब और अग्राक वृक्ष लूब
मिब हुए थे । बहुरा नागइतर और कन्दरक मुहुरी
भेति हाव एक देनेपाल आम भी पुष्प एव मज्जवियों
मुपोभित हो रहे थे । अमराहास मुक्त बं सही वृक्ष एत
एव लयभोन आरहत थे । इनुमान्जी प्रथमसे तूटे
एव राजक म्यान उठा और उन वृक्षोंके बाटिकायें
ब पढ़ेन ॥ ३ ॥

ए प्रविश्य विचित्रां मा विदगरभिन्यादिताम् ।
गमनं चाप्यनेक्ष्य पात्रे सयता वृताम् ॥ ५ ॥

विहगमृतसदृशं विचित्रां त्रिप्रकाननाम् ।
मैरिगान्धिसक्यानां दृश्या इनुमान् पत्नी ॥ ६ ॥

ए विचित्र बाटिकायें और शरीक म्यान बनगते

यलाभिमुता हावका तपस्विनी
कथनु मे दृष्टिपथेऽप सा भवेत् ॥ १९ ॥

'इस सुद, नीच, वृद्धकम्पारी और अत्यन्त दाब
होनेके भी अशक्यमुक्त विश्वसनीय वेग धारण करनेवाले
राजके उत तपस्विनी अरामको बलकम्पारसे अपने अचीन
कर किया है । अब किण प्रकार वह मेरे दृष्टिपथमें आ
सकती है?' ॥ १९ ॥

वृष्टेहाय सव आरसे विधी हुई थी । उसमें नाना प्रकारके
पक्षी कम्पक कर रहे थे, शिखे वह खारी वाटिका गूँब रही
थी । उसके भीतर प्रवेश करके बसवान् इनुमान्जीने उतका
निरीक्षण किया । भौति भौतिके विहंगमों और मृगमूहोंसे
उतकी विचित्र घोमा हो रही थी । यह विचित्र कान्तौष
अलंकृत थी और नबोधित स्वके समान अरुण रंगकी
दिखायी देती थी ॥ १९ ॥

वृतां नामापिपैर्बुधैः पुष्पोपगफळोपगैः ।
कोकिलैर्भुङ्गराजैश्च मत्तर्नित्यनिपेयिताम् ॥ ७ ॥

वृक्षों और पक्षोंसे खड़े हुए नाना प्रकारके वृष्टोंसे
स्पात हुई उत अटोकवाटिकाका मतवाले काटिल और
भ्रमर सेवन करते थे ॥ ७ ॥

प्रहस्यमनुजां काले मृगपक्षिमदाङ्गुलाम् ।
मत्तर्वाहिवसपुष्टां मानाद्रिजगण्यायुताम् ॥ ८ ॥

वह बाटिका ऐसी थी जहा अनेक हर मय्य छोमोंके
मनमें प्रवृत्ता होती थी । मृग और पक्षी मरमच हो उठते
थे । मराकं मोगेना कम्पार यहाँ निस्तर गूँबका
रहता था और नाना प्रकारके पक्षी यहाँ निराव
करते थे ॥ ८ ॥

मागमण्यो पराराहां राजपुत्रोमनिगिताम् ।
सुगममुत्तान् विदगान् बाधयामास यानराः ॥ ९ ॥

उत पाटिकायें अशक्य भी सुन्दरी गभकम्पारी नटाकी
राज करत हुए यानरांर इनुमान्ज के त्रैमे मुधवृक्त
आव हुए पक्षियोंका क्व दिख ॥ ९ ॥

उत्पत्त्रिजिजगपः परीयानैः समाहताः ।
भनकव्या विगिधा मुमुगुः पुष्पवृष्टयः ॥ १० ॥

उत्पत्त्रि जगपक वरिषे इत अत्यन्त बढ़ाके
वृक्ष अनेक प्रकारके मगिरण वृक्षोंका यहाँ बन गवा ॥ १० ॥

पुण्यावकीर्णः शुशुभे हनूमान् मादतामजः ।
मशोकवनिकामध्ये यथा पुण्यस्यो गिरिः ॥ ११ ॥

उत्तमपवनकुमार इनुमान्भी उन कुम्भे भाष्परित
होकर ऐसी योग्य पाने क्यो मानो उव मघोफनने कोर
कुम्भेका बना हुमा पहाड़ घोभा पा रहा हो ॥ ११ ॥

दिद्याः सवाभिभाषार्थं वृक्षचण्डगत कपिम् ।
द्वया सवाभि भूतानि यस्तन् इति मन्तिरे ॥ १२ ॥

धूम्यु दिद्याओंमें दोहते और वृक्षधूम्युमें पसते हुए
कपिवर इनुमान्भीका रक्षकर समस्त प्राणी एवं राक्षस
ऐस्य मानने क्यो कि शाखाद शत्रुयुध बस्यत ही यहाँ
बानरबेधमें विचर रहा रे ॥ १२ ॥

वृक्षेभ्यः पतितैः पुष्पैरखकीषां वृषगिष्यैः ।
एराज यस्तथा तत्र प्रमदेव विभूयिता ॥ १३ ॥

हृद्येव सङ्कर गिरे हुए भौंछि-भौंछिके फूलोंसे
भाष्परित हुई बहोंकी भूमि फूलोंक गृहकारसे निभूयित
हुए सुखी कीके समान घोभा पाने क्यो ॥ १३ ॥

तरस्विता त तरवस्तारसा बहु कपिताः ।
कुसुमानि विविधाणि ससृजुः कपिता तथा ॥ १४ ॥

उत्तमम इन वेगधाकी वनरवीरके द्वारा सगर्भक
बारबार दिख्ये हुए वे वृक्ष विविध पुष्पोंकी कर्पा कर
ये ये ॥ १४ ॥

तिर्धूतपत्रशिखराः शीर्षपुष्पफलद्रुमाः ।
निक्षिप्तवस्त्राभरण्या धूर्ता इव पराधिताः ॥ १५ ॥

इत् प्रकर शक्तिओंके पत्ते सङ्ग माने तथा फल-फूल
और पत्रशेके टूटकर बिलर जानेसे नंग-बहय दिखानी
बेनेकसे वे वृक्ष उन हारे हुए हुमारियोंके समान अन
पढ़ते ये किहोने अपने गहने और कपड़े भी हँवपर
रख दिने हों ॥ १५ ॥

हनूमता वेगवता कम्पितास्त नगोत्तमाः ।
पुत्रपत्रफलपाणु मुमुक्षुः फलशाकिनः ॥ १६ ॥

वेगधाकी इनुमान्भीके दिख्ये हुए वे फलधाकी श्रेष्ठ
वृक्ष द्वारा ही अपने फल-फूल और पत्तोंका परित्याग
कर देते ये ॥ १६ ॥

विहङ्गसहैर्गिणास्ते रुक्मधाभाश्रया द्रुमाः ।
बभूवुरपमाः सर्वे मादतेस विनिर्धुताः ॥ १७ ॥

पवनपुत्र इनुमान्द्रुम्य कम्पित किने गये वे वृक्ष
फल-फूल आदिने न होनेसे वेकङ्क शक्तिओंके आश्रय बने
हुए थे; पक्षियोंके समुदाय भी उन्हें छोड़कर पक्ष दिने
ये। उक्त भवत्सामें वे उक्तके सब प्राणियोंके किने अगम्य
(अवेगनीय) हो गये ये ॥ १७ ॥

विधूतकेदी सुकतिर्यथा मुदितवर्षका ।
विपीड्यशुभस्तोषी मञ्जुर्वैश्वी विहगा ॥ १८ ॥

तथा साङ्गहस्तैस्तु चरणाभ्यां च मर्षिता ।
तथैवाशोकपनिका प्रभन्तवनपादया ॥ १९ ॥

बिठके केद्य सुख गये हैं, अङ्गराग मित्र गये हैं, हुन्कर
दन्तबहीसे पुक्त अशर-सुखाका पान कर किया गया है
तथा बिठके कतिपय अङ्ग नलक्षत एवं दन्तचउसे उपस्रक्षित
हो रहे हैं, शिपतमके उपमेगमें आधी हुई उक्त सुखतीके
कमान ही उक्त मघोफनादिकाकी भी क्या दा रही थी।
इनुमान्भीके हाथ-पैर और पूँछसे चैरी या पुखी भी तथा
उठके मच्छे मच्छे वृक्ष टूटकर गिर गये थे; इलिये वे
भीहीन हो गयी थी ॥ १८ १९ ॥

महावताणां वामानि व्यथमत् तरसा कपिः ।
यथा प्राकृषि वनेन मेघशालानि माकतः ॥ २० ॥

जैसे वायु कर्पा शत्रुदमें अपने वेगसे मेघसमूहोंके किप्र
मिन्न कर देती है उसी प्रकार कपिवर इनुमान्ने वहाँ केकी
हुई विद्यास्र श्या-वस्रस्रिओंके बितान वेगपूर्वक ठोप
बाँसे ॥ २ ॥

स तत्र मणिभूमीश्च राजतीश्च मनोरमाः ।
तथा कम्पनभूमीश्च विचरन् वृक्षो कपिः ॥ २१ ॥

वहाँ विचरते हुए उन बानरवीरने पूषक-पूषक पेटकी
मनोरम भूमियोंका दर्शन किया किन्में मणि, चोरी एवं
कने कई गये ये ॥ २१ ॥

वापीश्च विविधाश्रयाः पूर्णाः परमवारिणा ।
महाहैर्मणिसोपानैरुपपन्नास्ततस्ततः ॥ २२ ॥

मुक्ताप्रपाठसिक्ताः स्फटिकाश्रयैरुद्विगाः ।
कम्पन्मैस्तवभिर्बिभैस्तीरजैदपनोभिदाः ॥ २३ ॥

उक्त बाटिकामें उठनेने वहाँ-वहाँ विविध आश्रयोंकी
बावर्कियों देवाँ को उत्तम कच्छे भरी हुई और मखिमव
शोपानोंसे पुक्त थी। उनक मीतर श्लेटी और मूँगेकी
बाङ्कधर्य थी। कच्छे नीचेकी धर्मा स्फटिक मखिकी कनी
हुई थी और उन बावर्कियोंके तटोरपर तर-उत्तरके विविध
मुवर्षमव वृक्ष घोभा दे रहे थे ॥ २२ २३ ॥

पुत्रपद्योत्पन्नमाश्रयान्नेपद्योभिदाः ।
मन्वृहदतर्षुष्या इक्षसारसनादिताः ॥ २४ ॥

उनमें किने हुए कमलोंके बन और पकवाओंके छोटे
शोभ्य बढ़ा रहे थे तथा पीला इक्ष और शारोंके कज्जार
पूँच रहे थे ॥ २४ ॥

दीर्घभिर्द्रुमुयुकाभिः सरिद्रिश्च समस्ततः ।
अमृतोपमतोयाभिः शिवाभिर्दपसस्कृताः ॥ २५ ॥

अनेकानेक विद्यास्र तरकीर्ण वृक्षोंसे सुशोभित
अमृतक कमान गपुर कच्छे पूर्ण तथा सुखदामिनी सरिद्रि
पद्यों भरेसे उन बावर्कियोंका क्क धंकर करती थी
(उन्हें लच्छ बच्छे परिपूर्व बनाये रखती थी) ॥ २५ ॥

सताशैरवतताः स्वतानकुसुमावृताः ।
 नानागुह्मामृतवनाः कर्वीरकृतान्तराः ॥ २६ ॥
 उनके तयोर सैकड़ों प्रकारकी छायाँ फेकी हुई थीं ।
 कित्ते हुए कस्यबूझने उम्हें नारों ओरसे भर गया था ।
 उनके बह नाना प्रकारकी झाड़ियोंके बड़े हुए ये तथा
 बीच-बीचमें कित्ते हुए क्लेशके वृक्ष गजाक्षी-सी शोभा
 पते थे ॥ २६ ॥

ततोऽम्बुपरसकश्यां प्रबुद्धशिलरं गिरिम् ।
 विविधकूटं कूटैश्च सर्वैश्च परिवारितम् ॥ २७ ॥
 विज्जम्पूहैरवततं नानाभूषणसामृताम् ।
 ददर्श कपिशार्दूलो रम्य भगति पर्वतम् ॥ २८ ॥

किर यहाँ कपिशेष्ट इतमान्ते एक मेपके समान काष्ठा
 और ऊँचे शिखरोंवाला पर्वत देखा, जिसकी चोटियों वहाँ
 विविध थीं । उनके चारों ओर दूतरे-दूतरे भी बहुत-से
 पर्वत-शिखर शोभा पाते थे । उन्में बहुत-सी पापकी
 गुफाएँ भी और उस पर्वतपर जनेकानेक वृक्ष उगे
 हुए थे । वह पर्वत संसारभरमें वड़ा रमणीय था ॥ २७-२८ ॥

दृष्ट्वा स महात् तस्मान्मूर्धो विपत्तितां कथि ।
 भद्रान्पि ससुतपत्य विपस्य पतिता प्रियाम् ॥ २९ ॥
 कपिर इतमान्ते उस पर्वतसे नीची हुई एक नदी
 देखी जो शिखरमेंके अड्डसे उद्वहकर गिरी हुई शिखरमाके
 समान बान पड़ी थी ॥ २९ ॥

अन्ते विपत्तितामैव पादपैरुपशोभिताम् ।
 पार्ययाणामिष कुन्दां प्रमत्वा प्रियप-पुभिः ॥ ३० ॥
 निनकी हाथियों नीचे छड़कर पानीमें बग गयी थी
 ऐसे लटकती हुईंसे उस नदीमें वैसी ही शोभा हा रही थी
 मानो प्रियतमसे कूटकर अम्बुज वाली हुईं पुकतीको उठकी
 प्यारी लक्षियों उठे मागे बढ़नेसे रोक रही हों ॥ ३ ॥

पुनपपुत्रतोयां च ददर्श स महाकथिः ।
 प्रसन्नामिष कान्तस्य कान्तां पुनरुपस्थिताम् ॥ ३१ ॥

किर उन महाकथिने देखा कि वृद्धकी उन हाथियोंसे
 उद्वहकर उस नदीके बसक प्रवाह पीछेकी ओर मुड़ गया
 है । मन्ने प्रसन्न हुईं प्रयत्नी पुनः प्रियतमकी सेवामें
 उपस्थित हो रही है ॥ ३१ ॥

तस्यादूरात् स पश्चिम्यो नानाद्रिभ्रगणायुताः ।
 ददर्श कपिशार्दूलो हनुमान् मास्तत्प्रमत्त ॥ ३२ ॥
 उस पर्वतसे थोड़ी ही दूरपर कपिशेष्ट पवनपुत्र इतमान्ते
 बहुत-से कस्यबूझित सरोवर ऐसे द्विनमें नाना प्रकारके
 पत्तों बरतता रहे थे ॥ ३२ ॥

द्विमा दूर्घिकं चापि पूर्वा शीतन पारिषा ।
 मयिप्रवरसायानां मुक्तासिक्कतशोभिताम् ॥ ३३ ॥

उनके किना उम्होंने एक कृत्रिम तालाब भी देखा, जो
 शीतल बरब मृग हुआ था । उन्में भद्र मयिकोंकी छीपियाँ
 बनी थीं और वह मोठियोंकी बहक्यराशिये सुशोभित
 था ॥ ३१ ॥

विचित्रैर्मृगसङ्घैश्च विचित्रां विज्जम्पूहणाम् ।
 प्रसन्नैः सुमहद्भिश्च निर्मितैर्विभ्रकर्मणा ॥ ३५ ॥
 कान्तैः द्विभिमैश्चापि सर्वैश्च समस्तकृताम् ।

उस अशोक्यादिकमें विभ्रकर्मके बनने हुए बड़े-बड़े
 महा मौर कृत्रिम कानन सब ओरसे उसकी शोभा बढ़ा
 रहे थे । नाना प्रकारके मृगसङ्घोंसे उसकी विचित्र शोभा
 हो रही थी । उस वादिकमें विचित्र वन-उपवन शोभा दे
 रहे थे ॥ ३४ ॥

ये केचित् पादपास्तत्र पुष्पोपगणखोपगाः ॥ ३५ ॥
 सच्छायाः सवितर्दीक्षाः सर्वे सौवर्ण्यवेदिक्षाः ।

वहाँ जो कोरें भी हुए थे, वे सब फल-मूख देनेवाले
 थे, छायाकी मोटि पनी छाया किय रहते थे । उन सबके
 नीचे चोंडीकी ओर उनके ऊपर सोनेकी वेदियों बनी हुईं
 थीं ॥ ३५ ॥

छताप्रणमैर्बहुभिः पर्णैश्च यजुभिर्धुताम् ॥ ३६ ॥
 कान्त्यर्मा शिशुपामेका ददर्श स महाकथि ।
 धृता हेममयीभिस्तु वेदिकाभिः समस्ततः ॥ ३७ ॥

तदनन्तर महाकथिने इतमान्ते एक सुशोभनी शिशुपा
 (अशाक) का वृक्ष देखा जो बहुत-से छायादानों और
 अर्धकठ पर्णोंसे म्नात था । वह वृक्ष भी सब ओरसे
 सुशोभनी वेदिकामेंसे बिरा था ॥ ३६ ३७ ॥

सोऽपश्यद् मूमिभागाश्च नगप्रक्षयणामि च ।
 सुवर्णधूसामपराम् ददर्श शिखिसनिभान् ॥ ३८ ॥
 इसके किना उम्होंने और भी बहुत-से सुस्येवान,
 पहाड़ी सरने और मन्तिके समान शीतमान् सुशोभन्य वृक्ष
 देखे ॥ ३८ ॥

तेषां तुमाणां प्रभया मरोरिय महाकथि ।
 भ्रमम्यथ तथा वीर्य कान्तनोऽक्रीति सर्वतः ॥ ३९ ॥
 उस समय वीर महाकथिने इतमान्थीने सुनेबके समान
 उन वृद्धोंकी प्रपाक कारण अपनेथ भी सब ओरसे
 सुशोभन्य ही समता ॥ ३ ॥

तान् कान्त्यनान् धूस्रगणान् मारुतन प्रकथितान् ।
 क्रिष्टिष्ठीदाहनियोगान् दृष्ट्वा विस्मयमागमत् ॥ ४० ॥
 सुपुण्यताम्रान् रुचिरांस्तद्व्यादुरपश्यान् ।
 ये सुशोभन्य वृक्षमूह सब बापुके मोड़ लाकर दिबने
 बगलें तब उनमें सैकड़ों सुगुणोंके बनेसे श्री मयुर ज्येने

होती थी। वह सब देखकर हनुमान्जीको बड़ा विस्मय हुआ। उन वृद्धोंकी दृष्टियोंमें सुन्दर फूल खिले हुए थे और नये-नये अक्षर तथा पत्थन निकले हुए थे, किसी से बड़े सुन्दर दिखायी देते थे ॥ ४१ ॥

तामादाद्य महायोगः शिवायां पद्मसङ्गाम् ॥ ४१ ॥
इतो द्रक्ष्यामि वैदेहीं रामवर्णनजालसाम् ।

इतश्चेतद्य बुध्वातो सम्पत्तर्षो यदृच्छया ॥ ४२ ॥

महान् योगशास्त्री हनुमान्जी पलाते ही-भी उठ शिष्टपाप यह सोचकर भय गये कि मैं यहीसे श्रीरामन्दर्शके दर्शनके लिये उद्युक्त हुईं उन विद्वान्निन्दनी सीताको देखूँग्ये सो हुआसे अक्षर से इच्छानुसार इधर उधर कसी-आती होंगी ॥ ४१ ४२ ॥

अशोकफलिका ज्येष्ठ रम्या दुरातमता ।

अम्बुनेत्रमप्यकौश्यापि बहुकौश्या विभूयिता ॥ ४३ ॥

इयं च तस्मिन्नी रम्या द्विसप्तसङ्गनिपयिता ।

इमा सा राजमहिषी नूनमेष्पति जानकी ॥ ४४ ॥

इसका राजकन्ये यह अशोकफलीका बड़ी ही रमणीय है। अम्बु नेत्र नाम्या और अम्बुद्विगीत वृष्ट इतकी घोषा बड़ा रहे हैं। इधर यह पक्षियोंके उचित कमलनिपटत लोभर भी बड़ा सुन्दर है। राजरानी जानकी इसके तटपर अशोक ही जाती होंगी ॥ ४३ ४४ ॥

सा रामा राजमहिषी राजस्य प्रिया सती ।

वनसंसारकुशाद्या भुवमेष्पति जानकी ॥ ४५ ॥

पशुनायकीके प्रियतमा राजरानी रामा कसी-ठाफी जानकी वनमें अम्बुनेत्रनेमें बहुत कुशाद्य हैं। वे अरुण इधर भावेंगे ॥ ४५ ॥

अथवा मृगशाबासी वनस्यास्य विचक्षणः ।

वनमेष्पति सायोज रामचिन्तासुकर्षिता ॥ ४६ ॥

अथवा इत वनकी विशेषताओंके ज्ञानमें निपुण मृग-शाबकनयनी सीता आज यहाँ इत वाक्यबले तटवर्ती वनमें अरुण पधारंगी न्याकि वे रामन्दर्शकी विशेषकी चिन्तासे अस्मत्त बुवसी हा गयी होगी (और इत सुन्दर ज्ञानमें आनेसे उनकी चिन्ता कुछ कम हो लगेगी) ॥ ४६ ॥

रामशोकधिततता सा देवी वामलापना ।

वतपासरता निरपमेष्पते वनधारिणी ॥ ४७ ॥

इसार्थे श्रीमद्वाल्मीके वाचमोक्षीके धारिवाग्धे सुन्दरके दे बुद्धिवा कर्माः ॥ १७ ॥

इत इकर अरुणकेविमित्त आरामायण अर्धकण्ठके सुन्दरवाग्धे जोरुद्धी सर्व पूरा हुआ ॥ १४ ॥

सुन्दर नेत्रवासी देवी सीता भगवान् श्रीरामके विरह शोकसे बहुत ही उदात्त होंगी। वनवाग्धे उनका छाया ही प्रेम रहा है, अतः वे वनमें विचरती हुई इधर अरुण भावेंगी ॥ १७ ॥

वनधारणां सतत नून स्पृहयते पुरा ।
रामस्य दयिता चायां जनकस्य सुता सती ॥ ४८ ॥

श्रीरामकी प्यारी कनी कसी-ठाफी वनकनयिनी सीता पहले निश्चय ही वनवाली अम्बुओंसे छाया प्रेम करती रही होगी । (इसलिये उनके लिये वनमें भ्रमण करना स्वाभाविक है, अतः यहाँ उनके दर्शनकी सम्भावना है ही) ॥ ४८ ॥

सध्याकाळमना इयामा भुवमेष्पति जानकी ।

नर्ती जेमां शुभज्जलां सध्यायै वरवर्षिणी ॥ ४९ ॥

यह प्रातःकालकी संस्था (उपासना) का समय है इसमें मन लगानेवासी और गदा शोकक वपसी-धी अम्बुनामें रहनेवासी अधवशेषना वनकुटुमारी सुन्दरी सीता संस्थाकालिक उपासनाके लिये इस पुष्पवर्षिण नदीके तटपर अरुण पधारंगी ॥ ४९ ॥

तस्याऽसाधनु कल्पेयमशोकफलिका शुभा ।

शुभायाः पार्थिवेन्द्रस्य कनी रामस्य सम्मता ॥ ५० ॥

जो राक्षसविराट् श्रीरामन्दर्शकी समररणीया कनी हैं उन शुभज्जला सीताके लिये यह सुन्दर अशोकफलीका मी सब प्रसन्नसे अनुकूल ही है ॥ ५० ॥

परि जीवति सा दृषी ताराभिपनिभासना ।

भागमिष्पति सावक्षयमिमा शीतज्जलां नदीम् ॥ ५१ ॥

परि चन्द्रवृक्षी सीता देवी बीवित हैं तो वे इस शीतल बध्नाकी तटिकाके तटपर अरुण पधारंग्य करंगी ॥ ५१ ॥

एष तु मत्वा हनुमान् महारामा

प्रतीक्षमाणो मनुजेन्द्रपरमीम् ।

अवेक्षमाणश्च वर्षा सर्वे

सुसुम्पिते पद्मघन निखीनः ॥ ५२ ॥

ऐसा सोचते हुए नरामा हनुमान्जी नरेन्द्रकनी सीताके शुभगमनकी प्रतीक्षामें तटपर हा सुन्दर फुल्लोंके सुशोभित तथा फने पक्षेवाके उक्त अशोकवृक्षके लिये रहकर उक्त सम्पूर्ण वनमें दृष्टिगत करते रहे ॥ ५२ ॥

पञ्चदश सर्ग

वनकी प्रीमा दसते हुए हनुमान्जीका एक चैत्यप्रासाद (मन्दिर) के पास सीताको दयनीय अवस्थामें देखना, पहचानना और प्रसन्न होना

स धीरुमायस्तप्रस्यो मार्गमायञ्च मैयिलीम् ।

भवसमायञ्च महीं सर्वां तामम्बवैस्रत ॥ १ ॥

उस अछोकरूपपर बैठे-बैठे हनुमान्जी तमूज वनको देखते और सीताको देखते हुए बर्होकी वारी भूमिपर दृष्टिगत करने लगे ॥ १ ॥

सदानकलताभिञ्च पादपैरुपशोभिताम् ।

दिव्यगन्धरसोपेतां सद्यता समलङ्कृताम् ॥ २ ॥

वह भूमि कस्तूरुचकी बटाओं तथा सुगन्धे सुगन्धित थी दिव्य गन्ध तथा दिव्य रससे परिपूज थी और सब मनसे लज्जारी गयी थी ॥ २ ॥

तं स मन्मनसंकार्यां मृगपक्षिभिराश्रुताम् ।

रम्यमासाद्सम्भार्यां कोकिलान्कुङ्किनिस्वनाम् ॥ ३ ॥

मृगों और पक्षियोंसे व्याप्त होकर वह भूमि नन्दनवनके समान प्रीमा पा रही थी, महाकिङ्किमों तथा राजमननोंसे युक्त थी तथा कोकिल-उन्होकी काकलीसे कोमलपूर्व ध्वन पड़ती थी ॥ ३ ॥

राम्यनोत्पलपद्माभिवापीभिरुपशोभिताम् ।

बहस्रसनकुपोपता बहुभूमिगुहायुताम् ॥ ४ ॥

मुक्कमय उत्पल और कमलसे मरी हुई बावड़ियों उत्पत्ती प्रीमा बड़ा रही थी । बहुत-से आसन और कम्बलिन बर्हो बिछे हुए थे । अनेकानेक भूमिपूज बर्हो प्रीमा पा रहे थे ॥ ४ ॥

सर्वर्तुकुसुमै रम्यैः फलवद्विञ्च पादपैः ।

पुष्पितानामशोभना भिया सुषोड्यप्रभाम् ॥ ५ ॥

अर्धे शृङ्गभोंमें पूज देनेवाले और फलोंसे भरे हुए रम्येय वृक्ष उस भूमिको विभूषित कर रहे थे । सिद्ध हुए अणुकोषी प्रीमासे न्योड्यप्रभकी छटा-की छिटक रही थी ॥ ५ ॥

प्रद्विजातिव तत्रस्यो मादृतिः समुवैस्रत ।

निष्पन्नशाखां विहारीः क्रियमाणामिषासकृत् ॥ ६ ॥

परनकुमार हनुमान्ने उस अछोकरूप बैठे-बैठ ही उस रमणीय दूर-की बटिबन्ध देखे । बर्होंके पत्थी उस बटिबन्ध पर बार-बार पयो और पाखाभोंसे हीन कर रहे थे ॥ ६ ॥

दिशिप्यतद्विः शतशब्धिभैः पुण्यावतसकैः ।

समूजपुष्पवर्षितैरदोकेः शोक्नताशनैः ॥ ७ ॥

पुष्पभाषितनारैश्च स्पृशद्विरिय मदिनीम् ।

ध्विष्यदरैः कुसुमिनैः किङ्कुलञ्च सुपुष्पितैः ॥ ८ ॥

स दृश प्रभया तपां प्रद्विष इष सद्यता ।

सुगन्धे सङ्घटे हुए श्रेष्ठों विविध पुष्प-गुच्छोंसे नीचसे ऊपरतक माने पूजसे बने हुए अछोकरूप अणुकोषी, फूलोंके भारी भारत सुककर पुष्पोंका स्यल-ता करते हुए सिद्धे हुए कनेरोंसे तथा सुन्दर फूलवाले पत्राणोंसे उपलब्धित वह भूभाग उनकी प्रमत्त करण सब ओरसे उद्गीत वा हो रहा था ॥ ७-८ ॥

पुनागा- सप्तपर्जाञ्च सम्पकोद्गाहकास्तथा ॥ ९ ॥

विशुद्धमूला वहवाः शोभन्ते स सुपुष्पिता ।

पुनाग (श्वेत कम्बल वा नायकेसर), डिटकन, कम्प तथा बहुवार आदि बहुत-से सुन्दर पुष्पवाले वृक्ष, बिनकी बर्हें बहुत मोटी थी बर्हों शोभ्य पा रहे थे ॥ ९ ॥

घातकुम्भनिभा केचित् कश्चिद्विद्विषामभाम् ॥ १० ॥

भीलखननिभा केचित् तत्राशोका सहस्रशः ।

वर्हों वरहों अछोकरके वृक्ष ये बिनसे कुछ लो मुक्कपके समान कान्तिमान् थे, कुछ आयकी स्त्राकके समान प्रकाशित हो रहे थे और कई-कई काठ काकली-सी कान्तिवाले थे ॥ १० ॥

मन्मन विवुषोपान विञ्च शैत्ररथ यथा ॥ ११ ॥

अतिवृत्तमिषाचिन्तय दिव्य रम्यधियायुताम् ।

वह अछोकरूप देखोपान नन्दनके समान आनन्दराशी, कुनेरके शैत्ररथ वनके समान विविध तथा उन दोनोंसे भी बक्कर मक्किय, दिव्य एवं रमणीय प्रीमासे तम्कन था ॥ ११ ॥

द्वितीयमिष चाकाश पुष्पज्योतिगजायुताम् ॥ १२ ॥

पुष्परत्नशतैश्चिञ्च पञ्चम सागर यथा ।

वह पुष्पकीये नक्षत्रों युक्त दूसरे आकाशक समान सुशोभित प्रीमा था तथा पुष्पमय श्रेष्ठों एतोंसे विविध प्रीमा पनेवाले पौषवैश्वदेवसुन्दर समान भन पड़ता था ॥ १२ ॥

सपत्नूपैर्निचिचत पादपैरुपुगामिषभिः ॥ १३ ॥

मानामिनारैरुपधान रम्य मृगगायत्रिणैः ।

अनकगन्धप्रबर्हं पुष्पगन्ध मनोहरम् ॥ १४ ॥

शैलशुभ्रमिष गन्धारुञ्च द्वितीय गन्धमावतम् ।

उस शृङ्गभोंमें पूज देनेवाले मन्दोप गन्धयुक्त वृक्षोंसे भन हुआ तथा मौंठि-मौंठिके कम्बल करनवाले मृगों और पक्षियोंसे सुशोभित वह उपान बड़ा रम्येय प्रतीत होता था । वह अनेक प्रकारकी सुगन्धक्य भार बदन करनेक करण पवित्र गन्धसे युक्त और मनोहर भन पड़ता था । दूसरे

मिरित्तव गन्धर्वजनके समान उच्चम सुगन्धवे म्यास
या ॥ ११ १४३ ॥

मशोकवनिक्षया तु तस्यां वानरपुङ्गवः ॥ १५ ॥
स वृक्षांविदूरस्थ्य चैत्यप्रासादमूर्धितम् ।
मध्ये स्तम्भसहस्रेण स्थित कैलासपाण्डुरम् ॥ १६ ॥
प्रवालकृतसोपानं ततश्चाश्चमवेदिकम् ।
मुष्णस्तमिषं चाम्बुपि द्योतमानमिव क्षिया ॥ १७ ॥
निर्मलं प्रांशुभावस्याबुद्धिल्लस्तमियाम्बरम् ।

उत्तम मशोकवनिक्षयमे वानर शिरोमणि इतुमन्ते घोड़ी
ही दूरपर एक गोबान्धर ऊँचा मन्दिर देला, जिसके मीतर
एक हजार लंबे छोटे हुए थे। वह मन्दिर कैलास पर्वतके
समान खेत बर्बाद था। उसमें मूँगेकी छीदियाँ बनी थीं
तथा तपाये हुए छोनेकी बेहियाँ बनायी गयी थीं। वह
निर्मल प्रासाद अपनी घोमासे देखीप्यमान-व्य हो रहा था।
दरकोंकी दक्षिमें चक्रार्थी-घ घेर कर देता था और
बहुत ऊँचा होनेके कारण आकाशमें देखा जाँचल-सा दान
पड़ता था ॥ १५-१७३ ॥

ततो मस्मिनसवीतां राक्षसीभिः समावृताम् ॥ १८ ॥
उपवासकृष्णां शीतानि श्लथसन्तीं पुन पुनः ।
वर्षां शुक्रपक्षादौ चन्द्ररेणामिषामकाम् ॥ १९ ॥

वह चैत्यप्रासाद (मन्दिर) देलनेके अनन्तर उनकी
दक्षि पक्षों एक मुन्दरी छीपर पड़ी थी मस्मिन बरष भारत
जिसे राक्षसियोंसे घिरी हुई बैठती थी। वह उपवास करनेके
कारण अत्यन्त दुर्बल और हीन दिखायी देती थी तथा
बारंबार सिक्क रही थी। राक्षसोंके आरम्भमें चन्द्रमाकी
कक्षा भेरी निर्मल और कृष्ण दिखायी देती है वैसी ही वह
भी दक्षिणेत्तर होती थी ॥ १ १९ ॥

मम्भकस्यायमानेन रूपेण शशिरप्रभाम् ।
पितृणां धूमशालेन शिखामिष विभावसोः ॥ २० ॥
जुबकी-सी स्मृतिके भाषणपर कुछ-कुछ पहचाने
जानेवाले अपने रूपसे वह सुन्दर प्रभा बिलर रही थी और
पूर्वसे दक्षी हुई मस्मिन्की आकाशके समान दान पड़ती
थी ॥ २ ॥

पीतेमैकन सवर्षितां क्षिष्टनोत्तमवाससा ।
सपद्मानमङ्ककारां विपद्यामिष पश्चिमीम् ॥ २१ ॥
एक ही पीते रंगके पुत्रने देवकी कक्षसे उत्तर घटिर
दक्ष हुआ था। वह मस्मिन अङ्कप्रदृश्य होनेके कारण
कमलोंसे घिरे हुए पृष्ठीकीके समान भीष्टेन दिखायी देती
थी ॥ २१ ॥

प्रीतितां बुज्जसंततां पटितीणां तपस्विनीम् ।
प्रवेष्ट्यात्तरकैलेय प्रीतितामिष रोहिणीम् ॥ २२ ॥

वह तपस्विनी भङ्कप्रदृते भद्रन्त रोहिणीके समान

शोकव पीडित, बुज्जसे संतत और सर्वया क्षीयकाय हो रही
थी ॥ २२ ॥

मभुपूर्णमुखीं शीतानि कृशामनशानेन च ।
शोकम्यानपरां शीतानि नित्यं बुज्जपरायणाम् ॥ २३ ॥
उपवास बुर्बल हुई उत्त बुद्धिया नारीके मुखपर
भौंभुभौंभी भाग बर रही थी। वह शोक और क्लिष्टमें
मग्न हो हीन रूपमें पड़ी हुई थी एवं निरन्तर बुज्जमें ही
हूयी रहती थी ॥ २३ ॥

प्रियं जनमपश्यन्तीं पश्यन्तीं राज्ञसीगणम् ।
सगणोन मुर्गीं हीतानि श्वगणेनावृतामिव ॥ २४ ॥
वह अपने प्रियजनोको तो देख नहीं पाती थी। उत्तकी
दक्षिसे सम्य दशा राक्षसोंका समूह ही बैठा रहता था।
जैसे कोई मृगी अपने प्यसे बिछुड़कर कुच्चोंके ढंढेसे घिर
गयी हो, वही दशा उत्तकी भी हो रही थी ॥ २४ ॥

मीलनागाभया घण्ट्या जघन गतयेक्या ।
नीलव्या नीरदापाये वनराज्या महामिव ॥ २५ ॥

जबकी नामिके समान कटिसे नीचेतक कटकी हुई
एकमात्र काभी कपीके हाथ उपलब्धित होनेवाली वह नारी
बादलोंके दर बानेपर नौकी वनभेगीसे घिरी हुई पृष्ठीके
समान प्रतीत होती थी ॥ २५ ॥

सुबाहो तु जसंततां प्यसनानामकोविताम् ।
तां विसोक्य विशाखासीमपिकं प्रक्षिणां कृशाम् ॥ २६ ॥
तर्क्यामास सीतेति क्यरजैवपपादिभिः ।

वह सुख योगनेके योग्य थी किंतु बुज्जसे संतत हो रही
थी। इसके पहलेके उत्ते संक्षयोंका कोई अनुभव नहीं था।
उत्त विशाख नेत्रोंवाली भस्मन्त मस्मिन और क्षीयकान
अदक्षका अवशोकन करनेकेपुष्टियुक्त अन्वेषोद्वाय इतुमावृ-
त्ते वह अनुमन किंच कि सेन-दो पड़ी थीया है ॥ २६ ॥

क्षियमापा तदा तेन रक्षसा क्षामकपिणा ॥ २७ ॥
पयाकपा दि दद्या सा तयाकपयमङ्गला ।

रक्षानुसार रूप भाव करनेवाका वह पक्षत बन
छीताकीके हरकर छं आ रहा था, उस दिन जिस रूपमें
ऊनका दर्शन हुआ था कन्वापी नारी भी वैसे ही रूपसे
मुक्त दिखायी देती है ॥ २७ ॥
पूषण्ड्राननां सुभू आरवृत्तपयोधाम् ॥ २८ ॥
कुबली प्रभया वर्षीं सर्वां वितिमिष विद्याम् ।

देवी छीताका मुख पूर्ण चन्द्रमाके समान मन्दोहर था।
उन्की मीँहें बड़ी सुन्दर थी। दोनों दान मन्दोहर और
योग्यकर थे। वे अपनी आज्ञाकटिसे सम्पूर्ण विशाखोंका
अन्वकार वृ किये देती थीं ॥ २८ ॥

तां मीलकच्छीं विम्योर्षीं सुमर्ष्यां सुपतिष्ठिताम् ॥ २९ ॥



हनुमानजीका जानकीजीका प्रथम दर्शन

उनके केश झलके-झलके और मोछ विम्बफलेके समान झलके थे। अरिभाग बहुत ही सुन्दर था। धारे अङ्ग सुखोच्च और सुगठित थे ॥ २१ ॥

सीतां पद्मपद्माशार्द्धीं मन्मथस्य रतिं पया ।
 इष्टां सवस्य अगताः पूर्णचन्द्रप्रभामिष ॥ २० ॥
 भूमौ सुसनुमासीनां नियतामिष तापसीम् ।
 निम्बासवह्वलां भीरुं मुजोगेन्द्रवधूमिष ॥ २१ ॥
 कमलनयनी सीता कमरेश्वरी प्रेषसी रतिके समन सुखी थी पूज चन्द्रमाक्षी प्रभाके समान धमझा काणके सिन्धे प्रिय थी। उनका शरीर बहुत ही सुन्दर था। वे निम्बवपुष्या तापसीके समान भूमिपर बैठी थीं। यद्यपि वे समनवसे ही गीरु और चिन्ताके कारण बारंबार खंची सोंठ खींची थीं तो भी दूठरोंके सिन्धे नासिकके समान मयकर थीं ॥ २०-२१ ॥

शाक्यजाकेन महात्वा विततेन न राक्षसीम् ।
 संसर्कां भूमजाकेन शिवामिष विभाबलोगः ॥ २२ ॥

वे विघ्नत महान् शोकजाण्डसे आच्छादित होनेके कारण विशेष शोभा नहीं पा रही थीं। पूर्णके धनुषसे मिथी हुई मन्मथिकाके समान शिकारी देती थीं ॥ २२ ॥
 तां स्मृतीमिष्य संदिग्धासूक्तिं निपतितामिष ।
 सिद्धतामिष च भद्रास्माशां प्रतिहतामिष ॥ २३ ॥
 शोषसर्गां यथा सिद्धिं बुद्धिं सख्युपामिष ।
 ममूतेनापवादेन कीर्तिं निपतितामिष ॥ २४ ॥

वे सखिण्य अर्पनाक्षी स्मृतिः, मूलम्पर गिरी हुईं ऋद्धिः, दूरी हुईं भद्राः, मथ हुईं भाषा विघ्नसुकुठिः, कष्टमित बुद्धि और मिष्या कर्त्तव्ये अथ हुईं कीर्तिके समान बन पड़ती थीं ॥ २३-२४ ॥

यमोषरोधम्पयितां रक्षोपपत्तिपीडिताम् ।
 भवला मृगपाशाक्षीं धीक्षमाणां ततस्ततः ॥ २५ ॥

भीरामन्त्रश्रीकी सेवामे उकावट पड़ बनेसे उनके मनमें बड़ी व्यथा हो रही थी। रक्षकोंसे पीडित हुईं मृग-कायकनवनी अथवा सीता अज्ञानकी मोक्षि इधर-उधर देख रही थीं ॥ २५ ॥

शाप्याम्नुपरिपूर्वेन कृष्णवक्राक्षिपकमजा ।
 वदन्तनाप्रसज्जेन मिश्र्यस्रमर्ती पुनः पुनः ॥ २६ ॥

उनका मुझ प्रकल्प नहीं था। उधर आँसुश्रीकी धारा बर रही थी और नेत्रोंकी पलकें काँधी एव देवी दिखायी देती थीं। वे बारंबार खंची सोंठ खींची थीं ॥ २६ ॥

मक्षपमुचरतां हिमा यष्यमाहात्ममण्डिताम् ।
 प्रभां नक्षत्रपञ्चस्य काकमधैरिवावृताम् ॥ २७ ॥

उनके शरीरपर मेघ धम गयी थी। वे रीनछापी मूर्ति कबो बैठी थीं तथा शृङ्गार और भुषण धारण करनेके योग्य

होनेपर भी अक्षयवत्य थीं; अतः उनके बाहजोंसे उनकी हुईं चन्द्रमाक्षी प्रभाके समान बन पड़ती थीं ॥ २७ ॥

तस्य सविविधे बुद्धिस्तथा सीतां निरीक्ष्य च ।
 भाषायातामयोगेन सिधां प्रशिथिलामिष ॥ २८ ॥

अभ्यास न करनेसे थिथि (विस्मृत) हुईं भिवाके समान थीं हुईं छीचको देखकर हनुमान्श्रीकी बुद्धि संदेहमें पड़ गयी ॥ २८ ॥

मुक्तेन मुमुषुषे सीता हनुमानवक्ष्यकृताम् ।
 संस्कारेण यथा हीमां वाचमधार्मातरं गताम् ॥ २९ ॥

अधुनक तथा खान-अनुछेपन आदि अङ्गसंस्कारसे रहित हुईं सीता व्याकरणविबन्धित संस्कारसे शून्य होनेके कारण अर्थांतरको प्राप्त हुईं वाणीके समान पहचान्नी नहीं था रही थीं। हनुमान्श्रीने बड़े क्रोधसे उन्हें पहचाना ॥ २९ ॥

तां समीक्ष्य विशाकाक्षीं राजपुत्रीमनिमित्ताम् ।
 तर्कयाम्यस सीतेति कारयैरुपपाद्यन् ॥ ३० ॥

उन विशाककोचना सती-शाम्भी राक्षकुमारीको देखकर उन्होंने करणों (मुक्तियों) द्वारा उपपादन करते हुए मनमें निश्चय किया कि यही सीता है ॥ ३० ॥

पैवेद्या यानि काङ्क्षेपु तथा रामोऽन्वकीर्तयत् ।
 तास्याभरणजाडानि यावदशोभीन्यक्षयत् ॥ ३१ ॥

उन विनों भीरामकन्दश्रीने विदेहकुमारीके अङ्गोंमें किन-किन आभूषणोंके होनेकी चर्चा की थी, वे ही आभूषण-समूह इत समन उनके अङ्गोंकी शोभा बढ़ा रहे थे। हनुमान्श्रीने इत बातकी ओर लक्ष्य किया ॥ ३१ ॥

सुकृती कर्णवेद्यौ च श्वद्वयौ च सुसस्वितौ ।
 मन्विद्यित्तुमन्विजापि हस्तेष्यभरणानि च ॥ ३२ ॥

सुन्दर बने हुए कुण्डल और कुत्तेके दाँतोंकी-सी आङ्गुलिकाके विकर्ण नामधारी कर्णकुंडल कानोंमें सुन्दर दंगसे सुमस्वित एव सुशोभित थे। हाथोंमें कान आदि आभूषण थे, किन्तों मणि और मूँगें बड़े हुए थे ॥ ३२ ॥

स्यामानि धिरयुक्तस्यात् तथा सस्यामवन्ति च ।
 ताम्येवैतानि माम्येऽर्हं पानि रामोऽन्वकीर्तयत् ॥ ३३ ॥

तत्र याम्ययहीनानि ताम्यर्हं नोपसङ्गये ।
 याम्यस्था माषहीनानि तानीमानि न संशयः ॥ ३४ ॥

यद्यपि बहुत दिनोंसे पदने गये होनेके कारण वे कुछ क्रोधे पड़ गये थे तथापि उनका आन्धर प्रकण्डर नेत्रे ही थे। (हनुमान्श्रीने सोच—) भीरामकन्दश्रीने किनकी चर्चा की थी मेरी लक्ष्मणमें वे थे ही आभूषण हैं। सीताकीने जो आभूषण शर्तों निरत दिने थे उनका मैं इनके अङ्गोंमें नहीं देख रहा हूँ। इनके जो आभूषण मार्गमें गिराये नहीं गये थे वे ही वे दिखायी देते हैं, इसमें संशय नहीं है ॥ ३३-३४ ॥

यद्यपि बहुत दिनोंसे पदने गये होनेके कारण वे कुछ क्रोधे पड़ गये थे तथापि उनका आन्धर प्रकण्डर नेत्रे ही थे। (हनुमान्श्रीने सोच—) भीरामकन्दश्रीने किनकी चर्चा की थी मेरी लक्ष्मणमें वे थे ही आभूषण हैं। सीताकीने जो आभूषण शर्तों निरत दिने थे उनका मैं इनके अङ्गोंमें नहीं देख रहा हूँ। इनके जो आभूषण मार्गमें गिराये नहीं गये थे वे ही वे दिखायी देते हैं, इसमें संशय नहीं है ॥ ३३-३४ ॥

यद्यपि बहुत दिनोंसे पदने गये होनेके कारण वे कुछ क्रोधे पड़ गये थे तथापि उनका आन्धर प्रकण्डर नेत्रे ही थे। (हनुमान्श्रीने सोच—) भीरामकन्दश्रीने किनकी चर्चा की थी मेरी लक्ष्मणमें वे थे ही आभूषण हैं। सीताकीने जो आभूषण शर्तों निरत दिने थे उनका मैं इनके अङ्गोंमें नहीं देख रहा हूँ। इनके जो आभूषण मार्गमें गिराये नहीं गये थे वे ही वे दिखायी देते हैं, इसमें संशय नहीं है ॥ ३३-३४ ॥

यद्यपि बहुत दिनोंसे पदने गये होनेके कारण वे कुछ क्रोधे पड़ गये थे तथापि उनका आन्धर प्रकण्डर नेत्रे ही थे। (हनुमान्श्रीने सोच—) भीरामकन्दश्रीने किनकी चर्चा की थी मेरी लक्ष्मणमें वे थे ही आभूषण हैं। सीताकीने जो आभूषण शर्तों निरत दिने थे उनका मैं इनके अङ्गोंमें नहीं देख रहा हूँ। इनके जो आभूषण मार्गमें गिराये नहीं गये थे वे ही वे दिखायी देते हैं, इसमें संशय नहीं है ॥ ३३-३४ ॥

यद्यपि बहुत दिनोंसे पदने गये होनेके कारण वे कुछ क्रोधे पड़ गये थे तथापि उनका आन्धर प्रकण्डर नेत्रे ही थे। (हनुमान्श्रीने सोच—) भीरामकन्दश्रीने किनकी चर्चा की थी मेरी लक्ष्मणमें वे थे ही आभूषण हैं। सीताकीने जो आभूषण शर्तों निरत दिने थे उनका मैं इनके अङ्गोंमें नहीं देख रहा हूँ। इनके जो आभूषण मार्गमें गिराये नहीं गये थे वे ही वे दिखायी देते हैं, इसमें संशय नहीं है ॥ ३३-३४ ॥

यद्यपि बहुत दिनोंसे पदने गये होनेके कारण वे कुछ क्रोधे पड़ गये थे तथापि उनका आन्धर प्रकण्डर नेत्रे ही थे। (हनुमान्श्रीने सोच—) भीरामकन्दश्रीने किनकी चर्चा की थी मेरी लक्ष्मणमें वे थे ही आभूषण हैं। सीताकीने जो आभूषण शर्तों निरत दिने थे उनका मैं इनके अङ्गोंमें नहीं देख रहा हूँ। इनके जो आभूषण मार्गमें गिराये नहीं गये थे वे ही वे दिखायी देते हैं, इसमें संशय नहीं है ॥ ३३-३४ ॥

पीठ कमलरूपद्वारं अस्तं तद्वसनं शुभम् ।
उत्तरीय वनासक्त तथा दृष्टं भ्रूवङ्गमैः ॥ ४५ ॥
भ्रूणानि च मुख्यानि दृष्टानि धरणीतले ।
अनयेवापविद्यानि कानधन्ति महास्ति च ॥ ४६ ॥

‘उत्तमम वानरोने परंतपर गिराये हुए सुवर्णपत्रके
धमान को सुन्दर पीछे वल और पृष्ठीपर पड़े हुए
उत्तमोत्तम बहुमुख्य एव वन्देबाळ आभूषण देखे ये, वे
इन्हींके गिराये हुए ये ॥ ४५, ४६ ॥

इदं शिरःपृष्ठीतत्वात् यसनं ह्युपयत्तरम् ।
तथाप्यनून तद्वर्णं तथा भीमघथेतरम् ॥ ४७ ॥

यह वल बहुत दिनोंसे पढ़ने जानेके अरज वधि
बहुत पुराना हो गया है, तथापि इधम पीछे रंग अभी तक
उत्तम नहीं है। यह भी वेवा ही कान्धमान है, जेव यह
वृक्षा वल था ॥ ४७ ॥

इयं कमलकर्णाङ्गी रामस्य महिषी प्रिया ।
प्रणष्टापि सती यस्य मनसो न प्रणश्यति ॥ ४८ ॥

ये मुखके धमान गौर अङ्गवासी भीरामचन्द्रकी
प्यारी महारानी हैं, ओ महारज हो जानेपर भी उनके मनसे
विक्रम नहीं हुई है ॥ ४८ ॥

इयं सा यत्कृते रामदृष्टानुगिरिह तप्यते ।
कारुण्येनानुसृष्टस्येन शोकम मन्मेन च ॥ ४९ ॥

ये वे ही सीता हैं, जिनके लिये भीरामचन्द्रकी इत
कारुण्ये करुणा दया शोक और प्रेम—इन चार अरजोंसे
कंठ हाते रहते हैं ॥ ४९ ॥

स्त्री प्रणष्टति कारुण्यावाधितेत्यानुसृष्टतः ।
पत्नी मष्टति शोकेन प्रियेति मन्मेन च ॥ ५० ॥

एक स्त्री को गरी यह सोचकर उनके हृदयमें करुणा
मर आती है। यह हृदये आभित भी यह सोचकर वे

हृत्पूर्वै भीमवृत्तास्मीके वाक्कीकीये वाक्शिकाम्बे सुन्दरकाण्डे वल्लरहाः सर्गः ॥ १५ ॥

इस प्रकार गौरवर्तिकादिनिर्मित भार्यमानव गरीकाम्बे सुन्दरकाण्डे फेरहो सन पूरा हुआ ॥ १५ ॥



षोडश सर्ग

इनुमान्कीका मन-ही मन सीताकीके शीळ और सौन्दर्यकी सराहना करते हुए उन्हें
कष्टमें पड़ी देख खय भी उनके लिये शोक करना

प्रशस्य तु प्रशस्तवर्णां सीतां तां हरिपुङ्गवाः ।
गुण्याभिरामं चामं च पुनश्चित्तापयोऽभवत् ॥ १ ॥

परम प्रशंस्नीया थीता और गुण्याभिराम भीरामकी
प्रशंसा करके वानरमेव इनुमान्की फिर विचार करते
क्यों ॥ १ ॥

रहाते प्रशित हो उठते हैं। मेरी पत्नी ही मुझसे विपुल गरी
इतक विचार करके वे शोकसे व्याकुल हो उठते हैं तथा
मेरी प्रियतमा मेरे पक्ष नहीं रही, ऐसी म्बना करके उनके
हृदयमें प्रेमकी बेदना होने लग्यी है ॥ ५ ॥

अस्यां दृष्ट्वा यथाकूपमङ्गप्रत्यङ्गसौष्टवम् ।
रामस्य च यथाकूपं तस्यैवमसितेक्षणा ॥ ५२ ॥

वेवा अभीक्षिक रूप भीरामचन्द्रकीका है तथा जेव
मनोहर रूप एवं अङ्ग-प्रत्यङ्गकी सुपदता इन देवी थीताने
है। इसे देखते हुए कल्पारे नेत्रोंकी सीता उन्हींके रूप
पत्नी हैं ॥ ५२ ॥

अस्यां दृष्ट्वा मनस्वसिस्तस्य चास्यां प्रतिष्ठितम् ।
तस्यैव स च धमोत्सा मुहूर्तमपि खीयति ॥ ५३ ॥

इन देवीका मन भीरुनुनायकीमें और भीरुनुनायकीका
मन इनमें क्या हुआ है इच्छिन्ने ये तथा धर्मोत्सा भीराम
कीवित हैं। इनके मुहूर्तमात्र खीवनमें भी यही कारण
है ॥ ५३ ॥

दुष्करं कृतवान् रामो हिनो यद्वयथा प्रभुः ।
धात्यत्यारामनो वेह न शोकेनावस्ति ॥ ५३ ॥

इनके विपुल जानेपर भी मयबान् भीराम को अपने
धरीरको कारण करते हैं शोकसे शिपिच नहीं हो करते हैं,
यह उन्हींके अक्षय दुष्कर कार्य किया है ॥ ५३ ॥

एवं सीतां तथा दृष्ट्वा दृष्ट्वा पवनसम्भवः ।
जगाम मनसा रामं प्रधाषाच च तं प्रभुम् ॥ ५४ ॥

इस प्रकार उध मयकामने थीताका दर्शन पकर पवनपुत्र
ह्यमन्त्री बहुत प्रकन हुए। वे मन-ही मन म्बान्
भीरामके पक्ष था पहुँचे—उनका चिपन करने कने तथा
सीता—सैवी छापीकी पत्नीरूपमें पातेउ उनके लोभ्यकी भूरि
भूरि प्रशंसा करने कने ॥ ५४ ॥

इस प्रकार गौरवर्तिकादिनिर्मित भार्यमानव गरीकाम्बे सुन्दरकाण्डे वल्लरहाः सर्गः ॥ १५ ॥

इस प्रकार गौरवर्तिकादिनिर्मित भार्यमानव गरीकाम्बे सुन्दरकाण्डे फेरहो सन पूरा हुआ ॥ १५ ॥

इस प्रकार गौरवर्तिकादिनिर्मित भार्यमानव गरीकाम्बे सुन्दरकाण्डे फेरहो सन पूरा हुआ ॥ १५ ॥

इस प्रकार गौरवर्तिकादिनिर्मित भार्यमानव गरीकाम्बे सुन्दरकाण्डे फेरहो सन पूरा हुआ ॥ १५ ॥

इस प्रकार गौरवर्तिकादिनिर्मित भार्यमानव गरीकाम्बे सुन्दरकाण्डे फेरहो सन पूरा हुआ ॥ १५ ॥

इस प्रकार गौरवर्तिकादिनिर्मित भार्यमानव गरीकाम्बे सुन्दरकाण्डे फेरहो सन पूरा हुआ ॥ १५ ॥

मास्या गुरुविनीतस्य लक्ष्मणस्य गुरुप्रिया ।
 यदि सीता हि बुधाता काळो हि पुरतिक्रमः ॥ ३ ॥
 'महो ! बिग्रीने गुरुबनोसे शिखा पायी है, उन लक्ष्मण-
 के बड़े माई भोरामकी मियतमा पत्नी छीता भी यदि इव
 प्रकार बुधबने आदुर हो रही हैं तो वह कइना पइता है कि
 काका उल्लङ्घन करना छत्रीक छिमे भाषन्त कठिन है ॥
 रामस्य प्यवसायज्ञा लक्ष्मणस्य च भीमतः ।
 तास्यर्षे ह्युच्यते देवी गङ्गेव उल्लवागमे ॥ ४ ॥
 'जैसे बर्षा-श्रुत मानेपर मी देवी गङ्गा अधिक सुख
 नती होती हैं, उसी प्रकार भीराम तथा बुद्धिमान् लक्ष्मणके
 मणोर पराक्रमन निश्चित ज्ञान रखनेवासी देवी छीता मी
 दोकसे अधिक निश्चिन्त नहीं हो रही हैं ॥ ४ ॥
 सुस्यशीलवयोवृत्तां तुस्याभिजनलक्षणात् ।
 पापवोऽहंति वैदेहीं त चयमसितेक्षणा ॥ ५ ॥
 'सीताके शील, स्वभाव, भवसा और कर्ताव भीरामके
 ही समान हैं । उनका कुल मी उन्हींके दुस्य महान् है अत
 भीरामनाथकी बिदेहकुमारी सीताके कर्षया सोम्य हैं तथा वे
 कइसे नेत्रोभाषी छीता मी उन्हींके सोम्य हैं ॥ ५ ॥
 ता दृष्ट्वा नवहेमाभां लोककाम्तामिष भियम् ।
 जगाम मनसा रामं वचनं खेचमप्रवीत् ॥ ६ ॥
 नून मुर्णके समान बीसिमती और भोळकमनीया
 लक्ष्मीके समान घोभामयी भीक्षिताको देखकर हनुमान्कीने
 घोषामकद्वीप सारण किया और मन-ही-मन इव प्रकार
 ध्या— ॥ ६ ॥
 भस्या हेतोर्विशालाक्ष्या हतो वाळी महावलः ।
 पापघप्रतिभो वीर्यं कवचध्वज निपातितः ॥ ७ ॥
 इन्ही विशालकम्पेना सीताके छिमे मगवान् भीरामने
 म्पावकी बाजीक बच किया और रावणके समान पराक्रमी
 कवचधो मी मार मियाया ॥ ७ ॥
 विराधरथ हता सख्ये राक्षसो भीमधिक्रमः ।
 यत रामेज विक्रम्य महोऽन्त्रेणैव शम्भराः ॥ ८ ॥
 इन्हीके छिमे भीरामने बलमें पराक्रम करके भवानक
 पाकचो उद्वह विराधक मी उसी प्रकार बुद्धमें मार बाब
 जैत देवराज इन्द्रने शम्भरानुश बच किया था ॥ ८ ॥
 यदुदश सहस्रापि रक्षसा भीमकमणाम् ।
 निहतामि जनस्थाने शरैरग्निशिखोवमैः ॥ ९ ॥
 धररथ निहता सख्ये विशारदाश्च निपातितः ।
 दृग्पदश्च महातडा रामेज विदितारमना ॥ १० ॥
 इन्हीके कारण भावब्रह्मनी भीरामकद्वीपके जनस्थानमें
 अपने मन्थिपिताके लरप तेबली नाचोदाय भवानक कर्म
 अपनेने पौरह इवार राधकोके काकके गलमें धेज दिया

और बुद्धमें लर, बिधिरा तथा महातेबली दृग्पदको मी मार
 मियाया ॥ ९ ॥
 पेश्वर्यं वानराणां च दुर्लभं वाळिपालितम् ।
 भस्या मिमिचे सुभीषः प्राप्तचौहो कविभुताः ॥ ११ ॥
 'वानरोंका वह दुर्लभ ऐश्वर्य, जो वालीके द्वारा सुरक्षित
 था, इन्हीके कारण विश्विष्यायत सुभीषको प्राप्त हुआ
 है ॥ ११ ॥
 सागरद्वय मयाऽऽक्रान्तः भीमान् नदसयीपतिः ।
 भस्या हेतोर्विशालाक्ष्याः पुरी खेयं निरीक्षिता ॥ १२ ॥
 'इन्ही विशालकम्पेना सीताके छिमे मैंने नदी और
 नदियोंके स्वामी भीमान् उग्रप्रका उल्लङ्घन किया और इव
 लङ्कापुरीको जन बाध्य है ॥ १२ ॥
 यदि रामः सनुद्राग्तां मेदिर्ना परिवर्तयेत् ।
 भस्याः कृते जगन्नापि युक्तमित्येव मे मतिः ॥ १३ ॥
 इनके छिमे तो यदि भगवान् भीराम उग्रप्रसन्न दृष्टी
 तथा धरे संवारको मी उल्लट बैठे तो मी वह मरे बिचारसे
 उचित ही होता ॥ १३ ॥
 राज्यं वाञ्छिषु लोकेषु सीता या जनकामया ।
 वैलोक्यराज्य सकलं सीताया नानुयात् कलाम् ॥ १४ ॥
 एक ओर तनोंकोकोकर राज्य और दूसरी ओर बनक-
 कुमारी सीताको रत्नकर दुसना की अप तो शिबोकेका लप
 राज्य सीताकी एक कलाके बराबर मी नहीं हो सकता ॥ १४ ॥
 इयं सा धर्मशीलस्य जनकस्य महात्मनः ।
 सुता मैथिलराजस्य सीता भवृद्धप्रता ॥ १५ ॥
 ये धर्मशील भियलनरेण महत्त्वा यत्र बनककी पुत्री
 सीता पतिव्रत-धर्ममें बहुत हई हैं ॥ १५ ॥
 उत्थिता मेदिर्ना भिक्षा क्षेत्रे हलमुखक्षते ।
 पद्मेणुभिः कीर्णां शुभैः केदारपांसुभिः ॥ १६ ॥
 'जब हलक मुख (फल) से लेत छोटा या रहा था,
 उव समय ये दृष्टीको कइकर कमलके परागको भौंति
 कपीकी मुन्दर धूमोंके छिपी हुई प्रकट हुई थीं ॥ १६ ॥
 विप्रव्रतस्वार्थशीलस्य ससुगोप्यनिघर्तिनः ।
 स्तुया दशरथस्यैवा ज्येष्ठा राज्ञो यशसिनी ॥ १७ ॥
 जो परम पराक्रमी भेद शील-सम्बन्धवाले और बुद्धसे
 कमी धीले न इन्देबासे थे, उन्हीं महापुत्र दशरथके ये
 पत्नियी श्रेष्ठ पुत्रवत् हैं ॥ १७ ॥
 धर्मवस्य कृतवस्य रामस्य विदितारमनः ।
 इयं सा दयिता भाया राक्षसीयशमागता ॥ १८ ॥
 जब कृतक एवं भावब्रह्मनी भगवान् भीरामकी ये
 प्यरी पत्नी छीता इव समर राधलिनोके बरमें पइ गयी
 हैं ॥ १८ ॥

एकहस्तौकपादाब्ध कारकपर्यन्तकर्मिकाः ।
गोकर्णार्हस्तिकर्णार्ह हरिकर्णस्तथापराः ॥ ११ ॥

किन्हींके एक हाथ थे तो किन्हींके एक पैर । किन्हींके
अन गहरोंके उमान थे तो किन्हींके खेड़ोंके उमान । किन्हीं
किन्हींके अन गोभों, हाथियों और दिहोंके उमान इतिवचन
होते थे ॥ ११ ॥

अतिमासाब्ध काश्चिच्च सिर्यङ्मासा अनासिक्काः ।
गजसंनिभनासाएव कलाटोक्कृत्वासासासिक्काः ॥ १२ ॥

किन्हींकी नासिकाएँ बहुत बड़ी थीं और किन्हींकी
सिरछी । किन्हीं किन्हींके नाक ही नहीं थी । कोई-कोई हाथी-
की सूँड़के उमान नाकवासी थीं और किन्हीं-किन्हींकी
नासिकाएँ अमटमें ही थीं किन्तु वे ऊँच किया करती थीं ।
इस्तिकापादा महापादा गोपादाः पाद्वृद्धिक्काः ।
अतिमात्रशिरोद्रीका अतिमात्रकुक्षोद्रीः ॥ १३ ॥

किन्हींके पैर हाथियोंके उमान थे और किन्हींके गोओंके
उमान । कोई बड़े-बड़े पैर धारण करती थीं और किन्हीं
ही ऐसी थीं किन्तु वे पैरों को छोटीके उमान के उगो हुए थे ।
बहुत-सी उच्छ्रितियाँ वेहर अने सिर और गर्दनवासी थीं और
किन्नोंके पैर तथा स्तन बहुत बड़े-बड़े थे ॥ १३ ॥

अतिमात्रास्यमेवाप्यक्ष दीर्घशिष्टमनास्तथा ।
अजामुकीर्हस्तिकुक्षीगोमुक्षीः सूक्ष्मीमुक्षीः ॥ १४ ॥
हयोद्गमरवकबाह्व्य राक्षसीधोर्दृष्टानाः ।

किन्हींके मुँह और नेत्र हीमासे अधिक बड़े थे, किन्हीं-
किन्हींके मुँहोंमें बड़ी-बड़ी बिछाएँ थीं और किन्तनी ही ऐसी
राक्षसियाँ थीं जो बकरी हाथी गम्य एमरु भोजे ऊँट
और गवहोंके उमान मुँह चारण करती थीं । इसीछिन्ने वे
रेखनेमें बड़ी मर्याद थीं ॥ १४ ॥

शुक्लमुद्ररवस्ताब्ध कोपलाः कश्चरमियाः ॥ १५ ॥
कराब्ध धूषकेशिन्यो राक्षसीर्बिड्डागतयाः ।

विचलित सततं पाण सुरामांससवाभियाः ॥ १६ ॥
किन्हींके हाथमें एक थे तो किन्हींके छहर । कोई-कोई
समाबन्धी थीं तो कोई कबूतरे प्रेम रखती थीं । घुँघरे-बेले
केट और बिहट घुलवासी किन्तनी ही विचारा उच्छ्रितियों
उदा मधयान किया करती थीं । महिला और मांस उन्हें उदा
प्रिय थे ॥ १५ १६ ॥

मांसशायित्तिग्भाहीर्मांसशोषितभोजनाः ।
ता द्दृशं क्षयिभेष्टा रोमहर्षणदृशांताः ॥ १७ ॥

किन्तनी ही अपने भण्डोंमें रक्त और मांस के उमान
रखती थीं । रक्त और मांस ही उनके भोजन थे । उन्हें देखते
ही ठोंगटे लड़े हो जाते थे । क्षयिभेष्ट इतमान्कीने उन
उदको देला ॥ १७ ॥

रुक्मयमतमुपासीता परिवार्यं यमस्पतिम् ।
तस्याप्यस्ताथ तां दृश्यां राजपुत्रीमिन्विताम् ॥ १८ ॥

अस्ययामास लक्ष्मीयान हनूमाक्षमपत्रमजाम् ।
निष्प्रभां शोकसंततां मञ्जसकुलमूर्ध्वाम् ॥ १९ ॥

वे उचम शास्त्राबाधे उत अघोबृहच्छो पारो अनेते
पेरकर उठते योड़ी दूरपर बैठी थीं और उठी छापी एक-
कुम्भारी छीटा देवी उठी दृष्टके नीचे उठकी बइते उठी हुई
बैठी थीं । उत उचम शोभावासी इतमान्कीने अनकिसीकी
बानकीकीकी अने निरोपरूपसे अम किया । उनकी अन्ति
कीकी पड़ गयी थी । वे शोकसे उठत थीं और उनके केशोंमें
रेख कम गयी थी ॥ १८ १९ ॥

शीघ्रपुष्पां च्युतां भूमौ तारां निपतितामिव ।
चारिण्यपप्येशाक्ष्यां भर्तृदशनदुर्गताम् ॥ २० ॥

बेते पुष्प छीण हा बानेपर कोई तथा स्वर्गते दृष्टकर
पृष्णीपर गिर पड़ी हो उठी तरह वे भी अन्तिहीन रिकामी
देवी थीं । वे आदर्श चरित्र (पात्रिजल) से सम्पन्न
तथा इतके छिमे सुविष्णुवत थीं । उन्हें पतिके दर्शनके छिमे
बइते पड़े थे ॥ २ ॥

भूपणैतत्तमैर्निनां भर्तृवास्तस्यभूमिविताम् ।
राक्षसाभियसक्त्यां वान्पुभिश्च विनाकृताम् ॥ २१ ॥

वे उचम भूपणोंके रहित थीं तो भी पतिके वास्तवने
सिम्पुषित थीं (पतिका लेह ही उनके छिमे स्थार वा) ।
राक्षसवा उचपने उन्हें बवनी बना रक्ता वा । वे स्वकीयोंसे
विद्वुड गयी थीं ॥ २१ ॥

सिधुपां सिहसंख्यां बन्दां गजबधूमिव ।
अन्त्रेणां पयोदान्ते शारवभैरिबाधुताम् ॥ २२ ॥

बेते कोई हथिनी अपने भूषते अन्ना हो गयी हो,
पुष्पपतिके लेहते कैंपी हो और उते किन्हीं दिहने रेख किया
हो । उचपकी केदमें पड़ी हुई वीताकी मी बैठी ही रहा
थी । वे वर्षाकाल रीत अनेपर शरत्-शुद्धके अनेत बारबसे
पिरी हुई अन्त्रेणाके उचन प्रतीय होयी थीं ॥ २२ ॥

क्षिप्ररुपाग्रसंस्पर्शांयुक्तामिव वज्रकीम् ।
स तां भर्तृदिते युक्तामयुक्तां रक्षसां वरा ॥ २३ ॥

अशोकवनिक्कामप्यं शोकसागरमाप्नुताम् ।
ताभिः परिभृतां तत्र सप्तहामिव रोहिणीम् ॥ २४ ॥

बेते बीजा मयने स्वामीकी अल्लुछिन्नोंके स्पष्टि बखित
हो बानन आरिषी क्रियासे रहित अयोम्य अयसामे मूक
पड़ी रहती है उकी प्रकर वीटा पतिके उचपके दूर होनेके
अरज महान् केशधमें पड़कर देसी अयसाको पहुँच गयी
थी जो उनके योग्य नहीं थी । पतिके दितमें उचर रहनेवासी
छीटा राक्षसोंके अचीन रहनेके योग्य नहीं थीं किन्तु भी बैठी
रहामे पड़ी थी । अघाकबाहिकामे रहकर भी वे शोकके
अगरमें डूबी हुई थीं । दूर गइते आश्रयत हुई रोहिणीकी

मौलि मे वहाँ उन यक्षिणोंसे फिर हुई थीं । इनमान्जीने उन्हें देखा । वे पुष्पहोन अन्धारी मौलि भीरीन हो रही थीं ॥

एवञ्च इनमांस्तत्र छतामकुसुमामिव ।
सा मलेन च दिग्भाङ्गी वपुषा स्थाप्यकृता ।
सुपाक्षी पङ्क्तिग्रेय विभाति च न भाति च ॥ २५ ॥

उनके बारे अङ्गुमें मूक बम गयी थीं । केवल छतर केवल ही उनका अङ्कन था । वे श्रीचङ्गसे छिपरी हुई कमलनाम्बी मौलि घोमा और अघोम्य दोनोंसे मुक्त हो रही थीं ॥ २५ ॥

मञ्जिनेन तु वक्ष्येण परिहृष्टेन भासिनीम् ।
संपृतां मृगशापाक्षीं ददर्श हनुमान् कथम् ॥ २६ ॥

मैंने और पुराने वक्षसे उन्की हुई मृगशापकनयनी मञ्जिनी छीताको कथिवर हनुमान्ने उठ अवस्थामें देखा ॥

तां देवां दीनवद्वामावधीना भर्तृव्रजसा ।
रक्षितां स्वेन शक्तिन सीतामसितलोचनाम् ॥ २७ ॥

नयापि देवी छीताके मुखपर रीनवा छा रही थी तथापि अपने पतिके तेजस्वरूप जराप ही आनेसे उनके हृदयसे बह रैन बू हो जाता था । कहरारे नेत्रोंवाली छीता अपने पीछे ही सुरक्षित थीं ॥ २७ ॥

तां हृष्टा हनुमान् सीतां मृगशापनिनेक्षयाम् ।
मृगकम्पामिव वस्तां वीक्ष्यमाणान् क्षमन्ततः ॥ २८ ॥
दृष्ट्वासीमिव त्रिःश्रासैर्वृक्षान् पङ्क्त्यधारिणः ।

हृत्पापै भीमव्रमणवै वाक्सीकीये अक्षिण्ये सुस्वस्वकाण्डे छत्रका सर्गः ॥ १० ॥
एष प्रकार भीमव्रमणिकनिर्मित अक्षरमाम्ब अक्षिकाण्डे सुन्दरकाण्डे तत्रहर्षो उर्ध्व पूष हृष्ट ॥ १० ॥

अष्टादश सर्ग

अपनी ज़िपोंसे चिर हुए रावणका अशोकवाटिकामें आगमन और हनुमान्जीका उसे देखना

तथा विप्रेक्षमाणस्य बर्तं पुष्पितपादपम् ।
विचिन्वन्तस्य वैदर्शी किञ्चिच्छय्या निशाभवत् ॥ १ ॥

इस प्रकार कुछ हुए बूझोसे सुशोभित उठ कन्धी घेन देवते और निरेदहनदिनीअ अनुसंधान करते हुए लुपन्धीकी वह लारी रात प्रायः बीस घन्टी । केवल एक पार रात बांधी रही ॥ १ ॥

पङ्क्त्यध्वितुषां क्रानुप्रवरयाजिनाम् ।
शुभाय प्रक्षयोपान् च विरात्रे यद्द्वारससाम् ॥ २ ॥

एतके उठ पिठक परमें छहो अङ्गोतहित सम्युर्ध्व वेदोंके निहन् तथा भेद यकोंद्वार पवन करनेवाक वक्ष-राजकोंके फरै वेदपाठकी खनि होने लगी किसे हनुमान्जीने सुना ॥
अथ महज्जयादिवैः शम्भैः शोभ्रमनोहरैः ।
यासोप्यत महायाहुद्वारावीवो महापञ्च ॥ ३ ॥

सधातमिष शोषणानां पुःश्वस्त्योर्मिमियोलिखिताम् ॥ २९ ॥
तां क्षमा सुविभक्ताङ्गीं विनाभरणशोभिनीम् ।
महर्षमनुष्ठुं छेमे माकतिः प्रेक्ष्य मैथिलीम् ॥ ३० ॥

उनके नेत्र मृगभेनोंके समान पञ्चक थे । वे उरी हुई मृगकन्याकी मौलि धन और लण्डु बहिले देख रही थीं । अपने उच्छ्वावोंसे पस्ववपारी बूझोके दग्ध-ली क्यती बदन पड़ती थीं । शोकोक्षी मूर्तिमती प्रतिमा-सी दिखानी देती थीं और हु-शकी उठी हुई तरंग-धी प्रतीत होती थीं । उनके लम्बी अङ्गोक्ष विभाग सुन्दर था । यद्यपि वे विरह-शोकसे दुर्बल छे गयी थीं तथापि आभूषणोंके बिना ही घोमा पाटी थीं । इस अवस्थामें मियिच्छाकुमारी छीताको देखकर पवन-पुत्र हनुमान्जी उनका पता क्या जानेके कारण अनुपम रूप प्राप्त हुआ ॥ २८-३० ॥

हर्षजालि च सोऽभूच्चि तां हृष्टा मविप्रेक्षयाम् ।
मुनोश्च हनुमास्तत्र नमस्करो च राघवम् ॥ ३१ ॥

मनोहर नेत्रवाली छीताको वहाँ देखकर हनुमान्जी हर्षके मौख बहने लगे । उन्होंने मन ही-मन भीरुपुत्रावकीको नमस्कार किया ॥ ३१ ॥

नमस्कृत्याय रामाय क्षमम्पाप्य च धीर्यवान् ।
सीतावर्द्धानसंहृष्टो हनुमान् सवृत्तोऽभवत् ॥ ३२ ॥

छीताके दर्शनसे उत्कण्ठित हो भीरुम और क्षममण्डो नमस्कार करके पराक्रमी हनुमान् वहाँ छिपे रहे ॥ ३२ ॥

तदनन्तर महज्ज काद्यो तथा भवप-मुञ्चद शय्योद्गाय
महज्जकी महानाहु इद्यमुञ्ज रावणको कण्ठा गया ॥ ३ ॥
विपुष्प्य तु महाभागो राक्षसेन्द्रः प्रतापयान् ।
अस्तामास्याम्बरधरो वैदेहीमन्वचिन्वत्सत् ॥ ४ ॥
श्यानेपर महान् मन्मथाधी एषं प्रतापी राक्षसराज
रावणने लक्ष्मणे पहले विरहहनन्दिनी छीताका चिन्तन किया ।
उठ समय नीरके कारण उसके पुष्पहार और बल अपने
कानसे लिपक गये थे ॥ ४ ॥
सुष्ठ नियुक्तस्तथा च मन्नेन मदोत्कण्डः ।
न तु तं पश्यसः कर्म शयाकारमनि गृहितुम् ॥ ५ ॥
वह मन्दमन् निगापर क्रमसे प्रति हो छीताके प्रति
आमन्त्र भावक हो गया था । अतः उठ क्रमभाक्को
अपने भीतर छिपाये रखनेमें अक्षमर्ष हो गया ॥ ५ ॥

सवान् भोगान् परित्यज्य भर्तृरनेहवत्स्रत् कृता ।
अविन्तयित्वा कदापि प्रथिष्य निर्वान वनम् ॥ १९ ॥

जो केवल प्रतिप्रेमके कारण सारे भोगोंको छठ मारकर
विरलिवीच कुछ भी विचार न करके भीरधुनावलीके साथ
निकल जनमें चली आती थी ॥ १९ ॥

संतुष्ट फलमूलेन भर्तृशुभ्रुपणापरा ।
या परां भङ्गते प्रीतिं वनेऽपि भङ्गते यथा ॥ २० ॥

प्यहाँ आकर फल-मूलेसे ही बहुत खली हुई प्रतिदेवकी
सेवामें लगी रही और वनमें भी उसी प्रकार फल प्रकन
रखती थी, जैसे राकमहर्षीमें रहा करती थी ॥ २ ॥

सेय कमकचर्णाङ्गी नित्यं सुखितभाषिणी ।
सहते यातनामेतामनर्षानामभाषिणी ॥ २१ ॥

जो ही ये सुवर्षके समय सुन्दर भङ्गनाली और सदा
सुखकर बात करनेवाली सुन्दरी थीता जो अनर्थ भोगनेके
बोग्य नहीं थी इत बातनाको छन करती है ॥ २१ ॥

इमां तु श्लिखसम्पदां प्रष्टुमिच्छति राज्ञः ।
राज्येन प्रमथितां प्रपामिव पिपासितः ॥ २२ ॥

व्यथित राजने इनमें बहुत कम दिने हैं तो भी ये
मपने श्लिख, लडाचार एक छलीके सम्म हैं । (उसके
बशीमूत नहीं हो सकी है ।) मतएन जैसे प्यासा मनुष्य
पौवबेपर चान्य प्याहा है, उसी प्रकार भीरधुनावली इन्हीं
रेखना चाहते हैं ॥ २२ ॥

अस्या नूनं पुनर्वाभात् राज्ञः प्रीतिमेव्यति ।
राज्ञा राज्यपरिभ्रष्टा पुनः प्राप्येव मेविनीम् ॥ २३ ॥

जैसे एकजैसे भ्रष्ट हुआ राजा पुनः पृथ्वीका उम्भ पाकर
बहुत प्रकन होता है, उसी प्रकार उनकी पुनः प्राप्ति होनेसे
भीरधुनावलीको निश्चय ही बड़ी प्रकनता होगी ॥ २३ ॥

कामभोगैः परित्यक्ता हीना वन्धुजननेष च ।
धारपर्यागमनो वेह ततसमागमकाङ्क्षिणी ॥ २४ ॥

ये भग्ने वन्धुजनसे विद्वुडकर विपयभोगोंके लिकाङ्क्षि
दे केवल भगवान् भीरधुनद्रवीके समागमकी आशासे ही
अपना शरीर धारण करने हुए हैं ॥ २४ ॥

मैया पश्यति राजस्यो नेमान् पुण्यकण्ठमुग्रम् ।
एकस्याह्वया नूनं राममेयानुपश्यति ॥ २ ॥

वे न तो राक्षसियोंकी ओर देखती हैं और न इन फल-दूक-
बाण्डे हुएपर ही वहि जासकी हैं, सर्वथा एकप्रवृत्त हो
मनकी भाँतिसे केवल भीरधुन ही निरन्तर दर्शन (प्यान)
करती है—इसमें संदेह नहीं है ॥ २५ ॥

भता नाम परं नायाः शाभन भूरणावपि ।
परा हि रहिता तन ताभनादा न शाभते ॥ २६ ॥

निश्चय ही पति नारीके लिये आभूषणकी अपेक्षा भी
अधिक शोभक है। ये लीता ऊर्षी प्रतिदेवसे विद्वु
गनी हैं, इवलिये शोभाके बोग्य होनेपर भी शोभा नहीं प
रही है ॥ २६ ॥

तुष्कर कुङ्कते रामो हिनो यवनया प्रभुः ।
भारयत्पात्मनो देहं न तुम्भेवावसीदति ॥ २७ ॥

‘मगवान् भीरम इनसे विद्वुष घानेपर भी जो अपने
शरीरको धारण कर रहे हैं, तुम्हसे अत्यन्त प्रियिक नहीं हो
जाते हैं, वह उनका अत्यन्त तुष्कर बन है ॥ २७ ॥

इमामसितकशास्तां शतपत्रभिरेक्षताम् ।
सुकाह्यो दुर्मिकातां कात्या मयापि व्यथितं मनः ॥ २८ ॥

कामे केव और कमच-जैसे नेत्रवाली ये लीता कावबमें
सुख भोगनेके बोग्य हैं। इन्हीं दुर्भी धनकर मेरा मन भी
व्यथित हो उठता है ॥ २८ ॥

सितिहमा पुष्करसमिसेता
या रक्षित्य राजवत्स्रप्रणाम्याम् ।

सा राजसीभिर्विकृतेक्षणाभिः
सरस्यते सम्प्रति वृतामूले ॥ २९ ॥

‘महो ! जो पृथ्वीके समान जमाधीक और प्रकृत
कमके समान नेत्रवाली हैं तथा भीरम और कमकने
बिनाही सदा रखा भी है, वे ही लीता मात्र इत वृक्षके नीचे
बैठी हैं और ये निष्कणक नेत्रवाली राक्षसियों इसकी लबाकी
करती हैं ॥ २९ ॥

विमहतमलिनीष नद्यशोभा
व्यसमपरम्परया निपीडयमाना ।

सहचररहितेष लकवाकी
जनकसुता कृपणां वधां प्रपथा ॥ ३० ॥

विमली मारी हुई कमलिनीके समान इनकी शोभा नह
हो गयी है शुक्ल-नर-दुःख उजानेके कारण अत्यन्त पीडित
हो रही हैं तथा अपने सहचरसे विद्वुषी हुई पत्नीके समान
पति-वियोगका कष्ट सहन करती हुई ये कनककिशोरी लीता
बड़ी दयनीय दशाके पहुँच गयी हैं ॥ ३ ॥

अस्या हि पुण्यावताप्रशाभा ।
शोकं बहं वै जमपन्यशोकम् ।

विमप्यपारयेष च शलितरिस
ट्मुत्थितो नैकसहस्ररदिमा ॥ ३१ ॥

पृथ्वीके मारते बिनाही शक्तिोंके मदभाग कुछ मने
हैं वे मरुकोट्टक इत सम्य लेशदेवीके लिये अत्यन्त
शोक उरन्त कर रहे हैं तथा विधिरक अन्त हो कनेते

बभ्रुवन्तश्चैव वरिष्ठे बुधे धीमते चिन्तितो वाके भन्द्रवेन भी
इतरेके क्तिमे अनेक वस्त्रे चिन्तितो प्रकाशित होनेवाले स्व
देवकी मूर्ति स्थापन करे रहे हैं ॥ ११ ॥

इत्येवमर्घ्यं कृपिरम्भवेत्य
सीतेयमित्येव तु ज्ञातबुद्धिः ।

इत्यर्घ्यं श्रीमद्भामायाये श्यामलीक्रीये श्यादिकाय्ये सुन्दरकाण्डे षोडशः सर्गः ॥ ११ ॥

एत प्रकर श्रीमद्भक्तिनिर्मित श्यामलाम्बुज श्यादिकाय्ये सुन्दरकाण्डे सप्तदशो सर्ग पूरा हुआ ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः

भयंकर राक्षसियोंसे विघ्नी हुई सीताके दर्शनसे हनुमान्जीका प्रसन्न होना

ततः कुमुदचम्पलाभो निर्मल निर्मलोद्यमः ।
प्रभयापम नभश्चन्द्रो हृत्सो नीलमियोद्यकम् ॥ १ ॥

तदन्तर वह दिन सीतानेके पश्चात् कुमुदचम्पलके समान
लेख वर्णवाले तथा निर्मलरूपसे उदित हुए चन्द्रदेव स्वच्छ
अच्छमै कुल ऊपरको बढ़ आये । तब सम्य देखा जान
पड़ा था, मानो कोई इस किन्हीं नील चम्पलिये तैर रहा हो ॥
स्यद्विष्यमिष कुर्वन् स प्रभया निर्मलप्रभः ।

चन्द्रमा रश्मिभिः शीतोः सितेये पवनारम्यजम् ॥ २ ॥

निर्मल चन्द्रितवाके चन्द्रमा अपनी प्रभासे लीलाकीके
रश्मि अर्पिते पवनकुमार हनुमान्जीकी शराम्बाही करते
हुए अपनी शीतल चिन्तितो तनकी सेवा करते छये ॥ १ ॥

स वदर्श तताः सीता पूर्णचन्द्रनिभामनाम् ।

शोकभारैरिव श्यास्ता भारैर्ममिवाम्भसि ॥ ३ ॥

उस समय उन्होंने पूर्ण चन्द्रयाके समान मनोहर मुख
वासी शीताको देखा, जो कभी अधिक बोझके कारण रही
हुई नौकाकी मूर्ति शोकके भारी भारसे मानो छक गयी थी ॥

विहसामाणो वैदेहीं हनुमान् ममस्तारमजः ।

स वदर्शाविवरम्या राक्षसीधोरवर्जिता ॥ ४ ॥

बापुपुत्र हनुमान्जीने जब विदेहकुमारी सीताको
देखनेके क्षिमे अपनी दृष्टि चौकायी तब उन्हें उनके पल ही
वैठी हुई मयानक दृष्टिवासी पशुवन्धी राक्षसियों विहायी थी ॥

पद्मसीमेककर्णां च कर्णप्रावरणां तथा ।

भङ्ग्यां शङ्कुकर्णां च मस्तकेच्छ्वासनासिकाम् ॥ ५ ॥

जन्मसे किन्हींके एक मौल थी तो दूसरीके एक जान ।
किन्हीं-किन्हींके जान इतने बढ़े थे कि वह उन्हें बादरकी मूर्ति
कोई हुए थी । किन्हींके जान ही नहीं थे और किन्हींके जान
ऐसे दिखायी देते थे मानो लूटे गये हुए हों । किन्हीं-किन्हींकी
बैठ केनेवासी नाक उठके मस्तकपर थी ॥ ५ ॥

कुम्भिकायोरुचमाङ्गीं च तनुदीपशिरोधराम् ।

श्यामकेर्दीं तपार्केर्दीं केदाकम्भधारिणीम् ॥ ६ ॥

सभित्त्य तस्मिन् निपसाद्य वृक्षे

वली हरीणामृपभक्षरणी ॥ १२ ॥

इस प्रकार विचार करते हुए बम्बान् घनरभेड वेग-
शाही हनुमान्जी यह निश्चय करके कि ये ही शीता हैं, उसी
दृष्टपर बैठे रहे ॥ १२ ॥

किन्हींका शरीर बहुत बड़ा था और किन्हींका बहुत

उत्तम । किन्हींकी गर्दन पतली और दही थी । किन्हींके केश

उड़ गये थे और किन्हीं-किन्हींके माथेपर केश उगे ही नहीं थे।

कोई-कोई राक्षसी अपने शरीरके केशोंका ही कम्बल धारण

किये हुए थी ॥ १ ॥

कम्बलकर्णकलादा च कम्बोदरपयोधराम् ।

कम्पोर्षीं विभुकोर्षीं च कम्बासां कम्बजालकाम् ॥ ७ ॥

किन्हींके जान और कम्बल बढ़े-बढ़े थे तो किन्हींके पेट
और छान छिे थे । किन्हींके मोठ बढ़े होनेके कारण कटक
रहे थे तो किन्हींके ठोड़ीमें ही सटे हुए थे । किन्हींका मुँह
बड़ा था और किन्हींके घुटने ॥ ७ ॥

इसकां दीर्घां च कुर्जां च विकला यामनां तथा ।

कपर्जां मुद्गकणां च पिङ्गासीं विकृतामनाम् ॥ ८ ॥

कोई नाटी, कोई कर्बी, कोई कुर्बी, कोर टेढ़ी-मेढ़ी,
कोई बन्नी, कोई विकला, कोई टेढ़े मुँहवाली, कोई पीकी
भौंकावासी और कोई विकट मुँहवाली थी ॥ ८ ॥

विकृतार विकलाः कर्बीः श्लोभनाः कलहप्रियाः ।

कषायासमहाशूलकूटमुद्गरधारिणीः ॥ ९ ॥

किन्हीं ही राक्षसियों विगड़े शरीरवासी, कर्बी पीकी,
श्लोभ करनेवासी और कलह पसन्द करनेवासी थी । उन
सबने कलह छोड़ेके बने हुए बढ़े-बढ़े दण्ड, कूट और मुद्गर
धारण कर रखले थे ॥ ९ ॥

वपाहमृगशार्ङ्गमहिपाञ्चशिवामुखा ।

गजोद्दयपादाश्च निष्कतदारिद्र्योऽपरा ॥ १० ॥

किन्हीं ही पक्षियोंके मुख सूर्य, मृग, विर भैरव,
बन्नी और शिवारिनोंके समान थे । किन्हींके पैर हाथियोंके
समान किन्हींके ऊँटोंके समान और किन्हींके बोंहोंके समान
थे । किन्हीं-किन्हींके शिर कम्बकी मूर्ति जगत्में प्रियत थे,
अब गड्डोंके समान दिखायी रहते थे (अथवा किन्हीं-किन्हींके
जिह्वे गड़े थे) ॥ १० ॥

एकहस्तौकपादाब्ध करकर्व्याग्यकर्णिकया ।
गोकर्णाहंस्तिकर्षाब्ध हरिकर्षास्तथापरा ॥ ११ ॥

किन्हींके एक हाथ ये तो किन्हींके एक पैर । किन्हींके
अन गहरोंके समान ये तो किन्हींके झोड़ोंके समान । किन्हीं
किन्हींके अन गौभों, हाथियों और शिष्टोंके समान हस्तिपेकर
होते ये ॥ ११ ॥

अतिमासाब्ध काश्चिद्यतिर्यञ्जनासा अनासिका ।
गजसंनिभनासाएष छसाटोच्छ्रवासानासिका ॥ १२ ॥

किन्हींकी नासिकाएँ बहुत बड़ी थीं और किन्हींकी
ठिन्नी । किन्हीं-किन्हींके नाक ही नहीं थी । कोई-कोई हाथी-
की सूँठके समान नाकवाली थीं और किन्हीं-किन्हींकी
नासिकाएँ समझमें ही थीं किन्से वे छँस लिया करती थीं।
हस्तिपादा महापादा गोपादा पादचूडिकाश्च ।
अतिमात्रशिरोप्रीवा अतिमात्रकुक्षोत्परी ॥ १३ ॥

किन्हींके पैर हाथियोंके समान ये और किन्हींके गेठोंके
समान । कोई बड़े-बड़े पैर धारण करती थीं और किन्हीं
ही देखी थीं किन्के पैरोंमें चोटीके समान केस उगो हुए थे ।
बहुत-सी राक्षसियाँ देह इन्हे छि और गर्दनबाधी थीं और
किन्हींके पैर तथा छान बहुत बड़े-बड़े थे ॥ १३ ॥

अतिमात्रास्यनेत्राएष क्षीरंजिह्वाननास्तया ।
अजामुखाहंस्तिमुखीगोमुखीः सूक्ष्मीमुखीः ॥ १४ ॥
एयोद्गच्छरयफत्राएष राक्षसीर्षौरवर्जाना ।

किन्हींके मुँह और नेत्र क्षीमाते अधिक बड़े थे, किन्हीं-
किन्हींके मुखोंमें बड़ी-बड़ी जिह्वाएँ थीं और किन्हीं ही देखी
राक्षसियों की जो बच्ची हाथी गाव सुअर, घोड़े ऊँट
और गहरोंके समान मुँह धारण करती थीं । इषीक्षिन्ने ये
रेखनमें बड़ी भयंकर थीं ॥ १४ ॥

शस्त्रमुद्ररहस्ताब्ध प्रोषणाः कलहप्रियाः ॥ १५ ॥
करासा धूषकेशिन्वो राक्षसीर्विह्वलमना ।
विबन्धित सततं पान सुरार्मानसदाप्रिया ॥ १६ ॥

किन्हींके हाथमें धुस ये तो किन्हींके मुअर । कोई क्षोधी
सभाबधी थीं तो कोई कलहमें प्रम रक्षती थीं । पुरे-केसे
केस और विकृत मुगबाधी किन्हीं ही विह्वल राक्षसियों
वरा मयगन किया करती थीं । मदिरा और मात उन्हें वरा
मिथ ॥ १५ १६ ॥

मांसशायितरिग्धाप्रीमांसशोषितभोजनाः ।
ता दूदा कपिधृष्टा रामहृणयश्रुता ॥ १७ ॥

किन्हीं ही भयने भयाने रक्ष और मांसघ सेप कमाय
ररती थीं । रक्ष और मात ही उनके भक्षण ॥ उन्हें देखते
ही समट नद हा अने ॥ कपिधृष्ट इतुपान्धीने उन
वरा ॥ १७ ॥

रुद्रवयस्यमुषानीनाः परिप्राय पनरूपतिम् ।
तस्यापस्नाथ तां वप्रीं राजपुत्रीमनिन्दिताम् ॥ १८ ॥

अस्यपामास लक्ष्मीधानं हनुमान्जनकामश्रामम् ।
निष्प्रभां शोकसंततां मल्लसकुञ्जमूर्धजात् ॥ १९ ॥

ये उत्तम शास्ताबासे उस अयोध्याके धर्मों मोरते
पेरकर उलझे बोड़ी दूरपर बैठी थी और उठी क्षापी यक-
कुमारी छीटा बेनी उठी हृष्टके नीचे उलकी बइसे लड़ी हुई
बैठी थी । उस समय घोमाशाही हनुमान्जीने जनककिशोरी
बानकी-बेबी मोर शिरोपकसे अभ्य किया । उनकी कनिष्ठ
प्रीकी पइ गमी थी । वे शोकसे सतत थीं और उनके चेहोंमें
मेक अम गयी थी ॥ १८ १९ ॥

क्षीणपुण्यां प्युतां मूमौ तारां निपतितामिथ ।
चारित्र्यपदेशाक्यां भर्तृवर्षान्मुखांताम् ॥ २ ॥

जैसे पुण्य क्षीण हो अनेपर कोई उत्त स्वर्गसे दूरकर
दृषीकर गिर पड़ी हो उठी तरह वे भी कान्तिहीन दिवायी
देती थीं । वे आदर्श चरित्र (पातिश्रय) से सम्पन्न
तथा इन्के छिन्ने सुविख्यात थीं । उन्हें पतिके दशोंके छिन्ने
अने पड़े थे ॥ २ ॥

मूपयैरुचमैर्हिनां भर्तृवास्तस्यभूयिताम् ।
राक्षसाधिपसक्यां बन्धुभिश्च विनाहताम् ॥ २१ ॥

वे उत्तम मूपबोले रहित थीं तो भी पतिके वास्तव्यसे
निभूतित थीं (पतिका स्नेह ही उनके छिन्ने श्रृंगार वा) ।
राक्षसवाच राक्षसने उन्हें बंदनी बना रक्खा वा । वे लक्ष्मणोंसे
विह्वल गयी थीं ॥ २१ ॥

शियूयां सिहसंसर्दां बर्दां गजघचूमिथ ।
अन्द्ररेखां पयोबान्ते शारवाधैरियावृताम् ॥ २२ ॥

जैसे कोई इयिनी अपने मूपसे अम्बा हो गयी हो,
मूपपतिके स्नेहसे बंधी हो और उसे किली छिन्ने टोक किया
हो । राक्षसकी कैरमें पड़ी दुर धीटाकी भी देखी ही बया
थी । वे बर्नाकास शीत अनेपर शार्द-श्रुटके श्वेत बाबोसे
किरी दुर पन्द्ररेखाके समान प्रवीव इकी थीं ॥ २२ ॥

शिष्टरूपामसंस्त्राद्युक्तामिथ पलक्षीम् ।
स तां भवहिते युक्तामयुक्तां रक्षसां वदो ॥ २३ ॥

अशोकपलिकामध्य शोकसागरमाप्नुताम् ।
ताभिः पतिवृतां तत्र सप्रहामिथ रोषिणीम् ॥ २४ ॥

जैसे बीया अपने लामोंकी अशुभियोंके स्वयंसे बन्धित
हो पावन आदिभी क्रियासे रहित अयोग्य अवस्थामें मूक
पड़ी रहती है उन्ही प्रथर छीटा पतिके लपकते दूर छिन्नेके
धरण महान् क्लेशमें पइकर देखी अक्षसाको पशुंथ गयी
थी जो उन-क वयस नहीं थी । पतिके दिहमें तपर रहनेबायी
छीटा गण्डोंके अपीन रहनेक लयस नहीं थीं । छि भी देखी
दृष्टामें पड़ी थी । अशा इमारिकामें रहकर भी वे छिन्नेके
तागामें दूरी हुई थीं । दूर प्रथर आकाश दूर पदिनीकी

मौलि वे बहौं उन यत्कस्त्रिये धिरी हुई थी । हनुमान्जीने उन्हें देखा । वे पुष्पहीन क्वाकी मौलि भीहीन हो रही थीं ॥

वृषा हनुमांस्तत्र छातमकुटुम्बामिव ।
सा मन्त्रेण च विग्धास्त्री वपुषा चाप्यलङ्कता ।
सुभास्त्री पङ्कविधेय विभाति च न भाति च ॥ २५ ॥

उनके धार अङ्गुलि नेत्र कम गयी थी । केवल शरीर श्रेयस ही उनका अलङ्कार था । वे श्रीचन्द्रसे छिपरी हुई कमलाकरी मौलि शोभा और अशोभा दोनोंसे मुक्त हो रही थीं ॥ २५ ॥

मस्त्रिण तु वक्ष्येण परिहृष्टेन भामिनीम् ।
संपूर्णां सुवशाबाह्वीं वदर्शां हनुमान् कथिम् ॥ २६ ॥

मेरे और पुराने बहने हकी हुई मृगशावकनकनी भामिनी शीताको कथिवर हनुमान्ने उठ अवसामें देखा ॥

तां वेषां धीनवदनामर्षीमां भर्तृतेजसा ।
रसितां स्व्येन शक्तिेन सीतामसितकोकनाम् ॥ २७ ॥

वधपि देवी सीताके मुखपर धीनता छा रही थी तथापि अपने पतिके तेजस कारण ही जानसे उनके हृदयसे बह रस रू हो गया था । कबूतरे नेत्रोंवाली शीता अपने शीशुसे ही सुरक्षित थीं ॥ २७ ॥

तां हृष्टां हनुमान् सीतां मृगशावलिमेक्षणाम् ।
सृगकम्प्यामिव ब्रह्मां धीसम्पाणां समस्ततः ॥ २८ ॥
वह्नीमिव मिःश्रासैर्धुंक्षान् पङ्कवधारिणः ।

हृष्टार्थे धीमप्रामाण्ये वास्नीकीषे अहिकाम्ये सुन्दरकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ १० ॥
इस प्रकार श्रीमहर्षिभिरिर्मितं आनंदप्राप्त्य च मयि कालके सुन्दरकाण्डे सप्तमो सर्ग पूरा हुआ ॥ १० ॥

अष्टादश सर्ग

अपनी स्त्रियोंसे धिर हुए रावणका अशोकवाटिकामें आगमन और हनुमान्जीका उसे दस्ना

तथा विप्रेक्षमाणस्य सप्त पुष्पितपाक्षपम् ।
विशिष्यतश्च वैदेहीं किञ्चिच्छ्रेया निशाभयत् ॥ १ ॥

इस प्रकार कुछ हुए हृष्टसे सुशोभित उठ कनकी शोभा देखते और विदेहनन्दिनीका अनुवधान करते हुए एतन्मन्त्रीकी वह शरीर उत प्रायः बीट लगी । केवल एक पर एत बाधी रही ॥ १ ॥

पङ्कवद्विधुषां कतुप्रवरयाजितान्म् ।
तुभाष प्रक्षयोरान् च विरात्रे प्रह्वरससाम् ॥ २ ॥

एतके उठ विशुद्ध पहरमें छोड़ अहोतरित हृष्टसे वैदेहीके विशान् तथा श्रेय यशोहाय यवन करनेवाक ब्रह्म-पक्षुके कर्म वेरापक्षुके जन्म होने लगी जिसे हनुमान्जीने सुना ॥

वध मङ्गलवादिभैः राक्षसैः शोचमनोहरैः ।
प्राशोष्यत महापाङ्कवशरीरौ महावज्रम् ॥ ३ ॥

सघातमिव शोकानां दुःखस्योर्मिमिवोत्थिताम् ॥ २९ ॥
तां क्षमा सुधिभक्ताङ्गीं विनाभरणघोषिनीम् ।

प्रहर्षमनुकुलं छेमे माबलिः प्रेक्ष्य मैथिलीम् ॥ ३० ॥

उनके नेत्र मृगजैनोंके समान बहल थे । वे बरी हुई मृगकनकी मौलि जब और लङ्का दृष्टिसे देख रही थीं । अपने उच्छ्वाससे परस्परपारी हृष्टोंको दग्ध-ही करती धन पकटी थीं । शोचनेकी मूर्तिमती प्रसिमा-ही रिचायी बेटी थी और वृ कनकी उठी हुई तरंग-ही प्रतीत होती थीं । उनके लम्बी बहोंका विभाग सुन्दर था । वधपि वे विष्ट-शोकसे दुर्बल हो गयी थीं तथापि आभूषणोंके विना ही शोभा पायी थीं । इस अवसामें मिथिलेशकुमारी शीताको देखकर पयन-पुत्र हनुमान्को उनका पता क्या जानेके कारण अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ ॥ २९-३० ॥

हर्षजग्नि च सोऽभूष्णि तां हृष्टां मविरेक्षयाम् ।
सुमोघं हनुमांस्तत्र नमस्करो च राघवम् ॥ ३१ ॥

मनोहर नेत्रवाली शीताको बहों देखकर हनुमान्जी हर्षके मौल्य बहने लगे । उन्होंने मन-ही-मन भीष्मनाथीको नमस्कार किया ॥ ३१ ॥

प्रमस्कुत्वाद्य रामाय कुरुमजाय च धीर्यवान् ।
सीतावर्षाबसहस्रे हनुमान् सखतोऽभवत् ॥ ३२ ॥

शीताके वर्षाबसे उच्छिष्ट हो भीयम और कसभयको नमस्कार करके पराक्रमी हनुमान् बहों छिपे रहे ॥ ३२ ॥

वदनस्तर मङ्गल बाणों तथा भयन-मुक्तद शय्योंद्वारा मङ्गलकी महाबाहु वधपुत्र रावणको बधया गया ॥ ३ ॥

विशुद्धप तु महाभागो राक्षसेन्द्रा प्रतापवान् ।
कास्तमास्याम्परधरो वैदेहीमप्यधिस्तपत् ॥ ४ ॥

आग्नेपर महान् माप्यशाभी एवं प्रतापी राक्षसराज रावणने लक्ष्मणके विदेहनन्दिनी शीताका चिन्तन किया । उस समय नीरके कारण उसके पुष्पहार और बल अपने कानसे चिठक गये थे ॥ ४ ॥

मूर्धं नियुक्तस्तथा च मदनन मशोकता ।
न तु तं राक्षसः काम राशाकारामनि गृहितुम् ॥ ५ ॥

वह मदनच निशाचर क्रमसे प्रति हो शीताके प्रति अस्मत् आवल हो गया था । अतः उठ कामन्द्यको अपने भीतर छिपाये रखनेमें अक्षय्य हो गया ॥ ५ ॥

स सर्वाभरणैर्बुधो विभ्रजिष्णुमनुत्तमाम् ।
 तां नरोर्विभिर्बुधो सर्वापुष्पफलोपहीः ॥ ३ ॥
 बुधा पुष्परिणीभिश्च धामापुष्पोपशोभिताम् ।
 सदा मत्तैश्च बिहगैर्विचित्रा परममुत्तैः ॥ ७ ॥
 ईशानुगैश्च विविधैर्बुधा दधिम्नोदरैः ।
 वीथीः सन्नेहमापञ्च मभिकाञ्चनतोरणाम् ॥ ८ ॥
 नामानुगगवाक्षीर्णां फलैः प्रपठितैर्बुधाम् ।
 भद्रोक्तवनिश्रमेण प्रविष्टाश्च सततदुःखाम् ॥ ९ ॥

इत्ने सब प्रकारके आभूषण धारण किये और परम उत्तम धाममें लम्ब हो उठ भद्रोक्तवाटिकामें ही प्रवेश किया, जो सब प्रकारके फूल और फल देनेवाले मूर्ति-मूर्तिकाके वृक्षोंसे सुशोभित थी। नाना प्रकारके पुष्प उठकी शोभा बढ़ा रहे थे। बहुत-से सन्नेहोंद्वारा वह वाटिका भिरी हुई थी। सदा मत्तवाले रहनेवाले परम आदर्युत पक्षियोंके कारण उषकी चित्रित शोभा होती थी। कितने ही नयनानिधान श्रीमानुगोंसे मरी हुई वह वाटिका मूर्ति-मूर्तिकाके मृगसम्बन्धोंसे स्थात थी। बहुत-से गिरे हुए फलोंके कारण वृक्षोंकी मृत्ति बढ़ गयी थी। पुष्पवाटिकामें मणि और सुवर्ण के चक्रक इमे थे और उठके मीरक पक्षिबद्ध वृक्ष बहुत दूरक फैले हुए थे। वृक्षोंकी पत्तियोंको देखकर बुधा राजन उठ वाटिकामें पुष्ट ॥ १-९ ॥

भङ्गनाः शतमार्गं तु तं प्रकल्पमनुत्तमम् ।
 महोद्गमिश्च पौलस्त्यं स्वगाम्भर्ययोपिताः ॥ १० ॥

बेते देवताओं और पुष्पवृक्षोंकी क्षिपों देवता दम्भके पीछे चली हैं उठी प्रकार भद्रोक्तनमें जाते हुए पुष्पवननन्दन राजनके पीछे-पीछे क्रमशः एक ही सुन्दरियों मयी ॥ १ ॥

वीथिका काञ्चनीः कश्मिस्तपुद्गुस्ताव पोषिताः ।
 याञ्चम्यजनहस्ताश्च ताञ्चवृन्तानि चापराः ॥ ११ ॥

उन सुवृक्षोंमेंसे कित्तिने सुवर्णमय हीपक छे रक्ते थे। कित्तिके हाथोंमें देकर वे तो कित्तिके हाथोंमें ताइके पत्त ॥ ११ ॥

काञ्चनकेभ्ये भुङ्गारैर्बुधः सखिञ्जमप्रतः ।
 मण्डलाप्रा वृसीदन्वैय वृष्टाम्प्याः वृष्टतो ययुः ॥ १२ ॥

कुछ सुन्दरियों छेनेकी क्षारियोंमें सब किये आये-आगे पक रही थी और कई वृष्टी क्षिपों गेष्ककार वृष्टी नामक आसन किये पीछे-पीछे जा रही थीं ॥ १२ ॥

क्यबिद् रत्नमयी पार्श्वी पूर्वा पानस्य आञ्जलीम् ।
 दक्षिणा दक्षिणैर्नैव तथा अग्राह पापिना ॥ १३ ॥

धेर चतुर-पाञ्चक सुवृष्टी दक्षिने दक्षिणैः पेशरले मरी हुए उननिर्मित पनचमयी कक्षी किये हुए थी ॥ १३ ॥
 राजहृदयमतीक्षर्य उग्रं पूर्वस्याधिप्रभम् ।

सौवर्णवृष्णमपरा वृहीत्वा वृष्टतो ययी ॥ १४ ॥

कई वृष्टी की छेनेके इच्छेसे सुष्ठ और पूष पनच तथा राजहृदके समान स्वैत छम केकर राजनके पीछे-पीछे पक रही थी ॥ १४ ॥

सिन्धामवपरीताक्ष्यो रावणस्योत्तमक्षियः ।
 अनुत्तमुः पतिं वीर धन विपुञ्जता इव ॥ १५ ॥

बेते बादकके छाव-छाप निचर्बिर्नो पकली हैं, उठी प्रकार राजनकी सुन्दरी क्षिपों अपने वीर पतिके पीछे-पीछे जा रही थीं। उठ समय नींदके नरोमें उनकी आँखें कयी चली थीं ॥ १५ ॥

व्याकिञ्जहारकेयूराः समामुदितवर्षक्याः ।
 समागच्छितकेग्यान्ताः सस्येव्वदनास्तथा ॥ १६ ॥

उनके हार और बादबंद अपने खानेसे लिपक गये थे। अज्ञातग मिट गये थे। चोचिर्नो कुञ्ज मयी थी और सुष्ठपर पथीनेकी वृद्धे जा रही थी ॥ १६ ॥

पूर्वस्यो म्वद्येपेण सिन्धया च शुभानना ।
 स्वैरुच्छिद्यङ्गकुसुमाः समास्याङ्गुलमूर्धजाः ॥ १७ ॥

वे सुष्ठकी क्षिपों अशेष मद्र और सिन्धाले क्षस्ती हुई थी पक रही थी। किम्पिन मन्त्रोंमें धारण किये गये पुष्प पथीनेसे मीग गये थे और पुष्पमाञ्जरीसे अम्कृत केच कुञ्जकुञ्ज रिक्त रहे थे ॥ १७ ॥

प्रयात्तं वैश्रुतपतिं नाप्यो मन्दिरल्लेधना ।
 बहुमानाथ कामाथ मियभायोस्तमम्बयुः ॥ १८ ॥

बिनकी आँखें मद्रमत्त बना देनेवाली थी, वे राजन-राजकी प्यारी पत्नियोंको अशोक्तनमें जाते हुए पतिके साथ बड़े भारसे और अनुत्तमपूर्वक जा रही थी ॥ १८ ॥

स च क्षमपपथीनः पतिस्ताप्ता महाबला ।
 सीतासक्तमना मन्वो मन्वाश्चित्तगतितर्भभी ॥ १९ ॥

उन राजन पति महाबली मन्वुद्वि राजन क्षमके अधीन हो रहा था। वह सीतामें म्ल क्षमसे मन्वुगठिते भाये बढ़ता हुआ अनुत्तम शोभा पा रहा था ॥ १९ ॥

ततः काञ्चीनिगार्धं च नूपुरपणाश्च निःस्तनम् ।
 शुभाव परमस्त्रीणां कपिर्माततनन्वतः ॥ २० ॥

उठ समय बाहुमन्दन कबिबर हनुमान्जीने उन परम सुन्दरी राजनपत्नियोंकी करपनीच कम्पनाद और नूपुरोंकी कन्धर सुनी ॥ २ ॥

तं चाप्रतिमकर्मोपमचिन्त्यबलपौरुषम् ।
 आरवन्दामनुमातं वर्तुं हनुमान् कविः ॥ २१ ॥

क्षय ही, अनुत्तम कर्म करनेवाले तथा अचिन्त्य बल-पौरुषसे सम्पन्न राजनकी भी कबिबर हनुमान्ने देखा जो अशोक्तवाटिकाके शरक आ पहुँचा था ॥ २१ ॥

विपिच्छभिरनेकाभिः समन्तात्पभासितम् ।
 मन्थतैल्लायसिकाभिर्ध्रियमाणाभिरप्रतः ॥ २२ ॥
 उरुके अग्न भाग मुगन्धित तन्मये भीगी द्रुह भौर
 त्रिचोद्गाय हापोंमे पारण श्री द्रुह बहुत-धी मघासं अन्न रही
 थीं, तिनके द्वारा वह सब ओलेसे प्रकाशित हो रहा था ॥
 कामप्रपमदैयुच्छ जिह्वताघ्रायतक्षणम् ।
 समक्षमित्थं कर्णमपयिच्छारारासमम् ॥ २३ ॥
 यह काम, हर्ष और मद्दसे युक्त था । उरुकी ओलेसे
 देही, जल और पक्षी-वर्षी थीं । यह पत्रुपरहित सम्भार
 कमदबद्ध तमान जान पड़ता था ॥ २३ ॥

मखिसामृतकेलाभमरज्योघ्नसुसुचमम् ।
 सुपुष्पमयकण्ठं विमुक्तं सक्तमङ्गरम् ॥ २४ ॥
 उरुका यज्ञ मय द्रुह रूपके पत्रकी मूर्ति श्वेत, निर्मल
 और उच्चम था । उरुमें मातीक होने और पूछ डेके द्रुह
 था । यह यज्ञ उरुके पार्श्वरुमें उल्लस गया था और राक्षस
 उसे शीतकर मुञ्चता रहा था ॥ २४ ॥

तं पश्यद्विषय स्तीनः पप्रपुष्पदत्तावृत्तः ।
 समीपमुपसङ्गमस्त विद्यातुमुपचक्रम ॥ २५ ॥
 भवाः दृष्टक पशों और बाकियोंमें छिपे द्रुह हनुमान्की
 धम्की पशों तथा पुष्पोंके उरु गय था । उकी भवसामें
 उन्होंने निश्चिन्त भाव द्रुह राक्षसके पदचाननेत्र प्रपत
 दिष्ट ॥ २५ ॥

मवक्षामावस्तु तदा ददर्श क्वपिबुध्दरः ।
 रूपयीपतसम्प्राया रावणस्य परस्त्रिया ॥ २६ ॥
 उरुकी आर दस्त उमय क्वपिभेद हनुमान् राक्षसकी
 गुन्दरी त्रिचोद्गा भी उरुय किना, नी रूप और योपनके
 धम्न थीं ॥ २६ ॥
 यभिः परितृता राज्ञ सुकृपाभिमहायशाः ।
 कर्णगृह्णिससपुच्छं प्रविष्टः प्रमदायनम् ॥ २७ ॥
 उन सुन्दर रूपवाली सुकृतियोगि पिरे द्रुह महापशुकी
 हाथोंमें भीमहाभावने कान्ती-श्रीये अदिकम्ब सुन्दरकाण्डे छात्रताः सर्गः ॥ १८ ॥
 एत प्रकार भी-उत्सर्गिनिर्दिष्ट भाष्यममल अदिकम्ब सुन्दरकाण्डमें अथारहो सर्गो पूरा हुआ १८ ॥

यथा रावणने उष प्रमदावनने प्रवेद्य जिवा, वहाँ अनेक
 प्रकारके पशु-वर्षी अपनी-अपनी बाधी लोक रहे थे ॥ २७ ॥
 स्त्रीयो विधिमाभरणः शङ्खुर्णो महायलः ।
 तेन विभ्रयसः पुत्रः स वृष्ट राक्षसाधिपः ॥ २८ ॥
 यह महाबाबा दिसावी देता था । उरुके आभूषण
 शिञ्जित था । उरुके कान ऐसे प्रतीत होते थे, माना वहाँ
 लेंटे गाढ़ गये हैं । इस प्रकार यह विभवाभुनिका पुत्र
 महाबली उरुसपत्र रावण हनुमान्की उरुयधमें आया २८
 वृत्तः परमतापीभिस्ताराभिरिय चन्द्रमाः ।
 तं दृश्यं महातज्जास्तज्जायमत्तं महाकृपिः ॥ २९ ॥
 रायजोऽप्य महापादुरिति सचिन्त्य पानरः ।
 सोऽप्यमय पुरा दात पुरमप्य शूरोत्तम ।
 मयप्युतो महातज्जा हनुमान् मादस्तारमजः ॥ ३० ॥
 वाराओष पिरे द्रुह चन्द्रमाकी भाति यह परम सुन्दरी
 सुकृतियोगि पिरे द्रुहा था । महातज्जली महाकृपि हनुमान्ने
 उरु ठेकली रायजो देता और देसकर यह निश्चय किना
 कि यही महापादु रावण है । पहले यही नगरमें उरुम मरुछक
 भीतर ख्या हुआ था । एका क्षणकर पयानरपीर महातज्जली
 पयनकुमार हनुमान्की जिह्व शशीपर बैठ था, परसे कुछ
 नीचे उतर भाय (नमोकि न निकटस राक्षसकी धारी पधार्य
 दखना चाहत था) ॥ २९ ३० ॥

स तथाप्युप्रतज्जाः सनिधूतस्तस्य तज्जसा ।
 पश्ये गुह्यामर सक्तो मतिमान् संश्रुतोऽभयत् ॥ ३१ ॥
 यद्यपि मतिमान् हनुमान्की भी बड़ उग्रतज्जली था,
 तथापि राक्षसके तज्जसे शिरः-उरुसे होकर उरुन पशामें पुठकर
 छिप गये ॥ ३१ ॥
 स तामसितकङ्काम्तां सुधार्थी सदत्तरतनीम् ।
 दिग्भुरसितापाद्रीमुपापठत रावणः ॥ ३२ ॥
 उपर रावण काठ पत्र, कन्धारे नेत्र, सुन्दर कटिभाग
 और परस्पर लट द्रुह जानवासी गुन्दरी धाताअ दखनके
 छिपे उनके पास गया ॥ ३२ ॥

एकोनविंश सर्ग

रावणका उरुमरु दृ म, भय और चिन्तामें डूबी द्रुह मीताकी अवस्थाका पणन

तस्मिन्मय नतः क्व उ गउपुत्री मयिर्दिता ।
 रूपवायनसम्पन्ना नृपयासमभूरितम् ॥ १ ॥
 तथा दद्रुय पदयो रावण राक्षसाधिपम् ।
 न्यारण्यं ताराहा प्रयात कर्तनी यथा ॥ २ ॥
 उरु उमय अर्धभक्त सुन्दरी धरदृवापी श्रेष्ठन नर

उरुमरुम आभूयनोगि तिनूरी तथा क-पौषनस सम्बध
 उरुमरुम रावणका जो दधा, तब था प्र-उरु दशामें
 दिग्भवासी कर्तकी उमान था-क मार पर पर धीरन
 धनी ॥ १ २ ॥
 उरुम्यासुहर्द छत्र पादुम्या य पवापरी ।

उपविष्टा विशाखासी स्वती वरवर्षिणी ॥ ३ ॥

सुन्दर कन्तिवाही विशाखकोचना जानकीने अपनी
बाँधेसे पैर और दोनों मुझभाँसे खान छिपा छिपे तथा वहाँ
बैठी-बैठी वे रोने लगीं ॥ ३ ॥

व्यामीपस्तु वैदेहीं रक्षितां राक्षसीपणैः ।

एवर्षा बीनां दुःखार्तां नाथ सखामिवावर्षे ॥ ४ ॥

असंप्रतायामासीना चरण्यां सखितामताम् ।

छिन्नां प्रपठिता भूमौ शाखामिव बलस्पतेः ॥ ५ ॥

एकछिन्नोके परेमें रहती हुई विदेहराजकुमारी थीया
अत्यन्त दीन और दुःखी हो रही थी । वे समुद्रमें क्षीर्ण-क्षीर्ण
होकर डूबी हुई नौकाके समान दुःखके सागरमें निमग्न थीं ।
उस अशक्तमें दयागुण राखने उनको और देखा । वे
किन्ना बिलोनेके सूखी जमीनपर बैठी थीं और कटकर पृथ्वीपर
गिरी हुई वृक्षकी शाखाके समान खान पड़ती थीं। उनके द्वारा
बड़े कठोर श्रुतका पाठन किया जा रहा था ॥ ४ ५ ॥

मलमण्डनविगर्हाङ्गीं मण्डनाहोममण्डनाम् ।

मृजाङ्गीं पद्मविण्णव विभासि न विभाति च ॥ ६ ॥

उनके अङ्गोंमें अङ्गप्रगल्भी षण्ण मैत्र कमी हुई थी ।

वे आभूषण धारण तथा शृङ्गार करने योग्य होनेपर भी उन
तबसे बहिष्ठ थीं और क्षीरवर्षमें तनी हुई कमलपत्रज्योती
सोमा पाती थीं तथा नहीं भी पसती थीं । (कमलपत्र
ज्येष्ठे मुकुन्दरत्नाके कारण सोमा पाती है और क्षीरवर्षमें तनी
रहनेके कारण सोमा नहीं पाती वैदेही ने अपने अङ्क
छोन्दतेसे सुशोभित थी किन्तु मन्दिताके कारण सोमा
नहीं देती थीं) ॥ ६ ॥

समीपं राजसिंहस्य रामस्य विवितात्मनः ।

सकृत्पद्मवसुपुङ्गवोन्तीमिव मनोरथैः ॥ ७ ॥

संक्षुब्धोंके पोंडोंसे जुटे हुए मनोमय रूपपर नन्दकर
आत्मकानी राजसिंह मगनात् श्रीरामके पास जाती हुई-थी
प्रतीत होती थी ॥ ७ ॥

शुष्यन्तीं सतीमर्षां प्यानशोकपरत्पणाम् ।

जुखस्यान्ठमपश्यन्तीं रामां राममनुमताम् ॥ ८ ॥

उनका शरीर सूखता था रहा था । वे अकेली बैठकर
देखी तथा श्रीरामकन्धकीके प्यान एवं उनके कियोगके शोकमें
डूबी पड़ती थीं। उन्हें अपने दुःखका अन्त नहीं दिखायी
देता था । वे श्रीरामकन्धकीने अनुपमा रखनेवाही तथा
अनकी रमणीय भयार्थ थीं ॥ ८ ॥

षोडशानामपाविष्टां पद्मोद्भवधूमिव ।

धूपमानां प्रहृष्य रोहिणीं धूमस्तुता ॥ ९ ॥

जैसे जगदाश्री बधू (नागिन) मणि-मन्त्रादिके
अभिभूत हो उठपड़ाने लगी है उसी तरह थीया भी पतिके
नियोगमें तबप रही थी तथा धूमके समान वषवास केतु

महते प्रकट हुई रोहिणीके समान धवत हो रही थीं ॥ ९ ॥

वृत्तशीले कुले ज्ञातामाचारवति धार्मिके ।

पुनः संस्कारमापन्नां ज्ञातामिव च पुष्कुले ॥ १० ॥

वपयि उदाचारी और सुशील कुलमें उत्तम कर्म हुआ
था । फिर धार्मिक तथा उत्तम आचार विचारवाले कुलमें वे
ज्याही गयी थीं—बिवाह-संस्कारसे सम्पन्न हुई थीं, तबमि
वृषित कुलमें उत्पन्न हुई नारीके समान मन्दिन दिखायी
देती थीं ॥ १० ॥

सखामिव महाकीर्तिं भद्रामिव विनाशिताम् ।

प्रक्षामिव परिक्षीणामाद्यां प्रतिहतामिव ॥ ११ ॥

आयतीमिव विष्वस्तामजां प्रतिहतामिव ।

वृत्तामिव विद्यां काळे पूजामपहतामिव ॥ १२ ॥

पौर्यमासीमिव निशां तमोप्रस्तेषुमुण्डक्यम् ।

पश्चिमीमिव विष्वस्तां हतशूर्यं जम्मूविव ॥ १३ ॥

प्रभामिव तमोष्वस्तामुपक्षीण्यामिवापगाम् ।

केरुमिव परासूर्यां घान्तामग्निप्रिच्छामिव ॥ १४ ॥

वे क्षीय हुई विशाख कीर्ति, तिरस्कृत हुई भद्रा सर्वथा
हाथके प्राप्त हुई दुःखि, दूरी हुई आशा, नष्ट हुए मन्त्रिय,
उत्सङ्गित हुई राजाका, उत्पलनकर्ममें दक्षिण ही हुई विशाख
नष्ट हुई देवपूजा, कर्मप्रवृत्तसे मन्दिन हुई पूर्णमासीकी रत
दुःखपरपठसे क्षीर्ण-क्षीर्ण हुई कमलिनी, विशाख शरीर
वेग्यपति मारा गया हो, देखी सेना, अन्धकारसे नष्ट हुई
प्रभा, सूखी हुई तरिता अपवित्र प्राणियोंके स्पर्शसे अङ्गुष्ठ
हुई बेसी और दुःखी हुई अग्निशिखाके समान प्रतीत होती
थीं ॥ ११-१४ ॥

उत्कृष्टपर्यंकमर्षां विद्यासितविहङ्गाम् ।

हरितहस्तपरपद्मप्रासाङ्गकामिव पश्चिमीम् ॥ १५ ॥

किसे हाथीने अपनी सूँघसे हुँकर बाका हो। अतएव
विशेके पसे और कम उलट गये हैं तथा कन्धकी भयसे
परां उठे से उठ मथित एवं मन्दिन हुई पुष्करिणीके समान
हीता कीर्तिन दिखायी देती थीं ॥ १५ ॥

पतिशोकातुरां शुष्कां नर्षीं विद्याकितामिव ।

परया मृजया बीनां कृष्णपल्लं निशांमिव ॥ १६ ॥

पतिके विद्या-शोकसे उनका हृदन बड़ा व्याकुल था ।
विशका बह नदीके द्वारा दूर-दूर निकाल दिया गया
हो ऐसी नदीके समान वे सूख गयी थीं तथा उत्तम उत्कृत
आदिके न ज्ञानसे कृष्णपल्लकी राधिके समान मन्दिन हो
रही थीं ॥ १६ ॥

मुकुन्दारो मुञ्जाताङ्गीं रत्नगर्भगुहोचिताम् ।

तप्यमानामिबोष्णेन मृजासीमन्त्रियेवभूताम् ॥ १७ ॥

उनके अङ्ग बड़े मुकुन्द और सुन्दर थे। वे उत्तमवित्त
राजमहलमें रहनेके योग्य थीं वस्तु गर्भिते लयी और दूरत

उपकर फेंकी हुई कमकनीक समान दयनीब दशाको पहुँच गयो थी ॥ १७ ॥

श्रीवामाश्रितां स्तम्भे पृथपेत विनाकुताम् ।
निम्बसर्त्तां सुपुम्भार्तां गजराजवधूमिव ॥ १८ ॥

सिंहे पृथपदिते भङ्गा करते पकड़कर खंभेमें बाँध दिया गया हो उध हथिनीके समान वे अत्यन्त बुद्धते आदुर होकर बंभी लोंठ बाँध रही थी ॥ १८ ॥

पक्ष्या क्षीर्षया वेप्या शोभमानामयङ्गता ।
श्रीरज्या मीरक्षपाये वनराज्या महीमिव ॥ १९ ॥

विना प्रत्यन्ते ही नैभी हुई एक ही खरी वेणीसे छीटाकी रेखी ही योग्य हो रही थी, जैसे कर्पा-शुद्ध शीत धानेपर सुदूर तक फैली हुई हरी-भरी वनमेजीसे दृष्यी सुशोभित होती है ॥ १९ ॥

उपपासेन शोकेन श्यासेन च मयेन च ।
परिक्षोणां कृशा वीकामरुपाहारां तपोधनाम् ॥ २० ॥

वे उपवास, शोक, विन्ता और मयसे अत्यन्त क्षीण, हृत्कार्ये श्रीमद्रामायणे वाक्यनीक्ये धार्मिककाण्डे सुन्दरकाण्डे पक्षीमर्षिः सर्गः ॥ १९ ॥

१४ प्रकार श्रीमत्संकिर्तिर्निर्मित कर्पणप्रदय धर्मिकाण्डे सुन्दरकाण्डे उन्नीसवीं सर्गं पृथु वृष ॥ १ ॥



विंश सर्ग

रावणका सीताजीको प्रलोभन

स तां परिप्लुतां वीमां निरालम्बां तपस्विनीम् ।
साकारैर्मधुरैर्वाक्यैर्व्यर्षाशयत रावणः ॥ १ ॥

राक्षसियोंके चिरी हुई बोन और आनन्दक्षय्य तपस्विनी छीटाको धम्भोचित करके रावण अभिप्राययुक्त मधुर वाक्यों-द्वारा अपने मनका म्बाव प्रकट करने लग्य— ॥ १ ॥

मां हृषू नागनासोढ गृहमाना स्तनोदरम् ।
अपदानमिवात्मान भयान्नेतुं त्वमिच्छसि ॥ २ ॥

हाथीकी हँडके लम्बन सुम्बर बाँवोंवाली छीटे । मुझे देखते ही तुम अपने स्तन और उदरको इस प्रकार छियाने लगी हो मान्ये डरके डरे अपनेको अटव्य कर देना चाहती हो ॥ २ ॥

कामये त्वां विशाबाक्षि बहु मन्वस्य मां श्रिये ।
सवाङ्मुष्यसम्पन्न सर्वलोकात्मनोदरे ॥ ३ ॥

किन्तु विद्याकल्लोके । मैं तो दुर्गै चाहता हूँ—तुमसे मेम करता हूँ । तपस उबरकर मन खेदनेवाली सर्वाङ्गसुन्दरी श्रिये । तुम भी मुझे विशेष आदर दो—मेरी प्रार्थना स्वीकार करो ॥ ३ ॥

नह किष्किम्भनुष्या वा राक्षसाः कामरूपिण्यः ।
व्यपसर्पन्तु ते सति भयं मत्तः समुत्थितम् ॥ ४ ॥

कृपकाय और दीन हो गयी थी । उनका आहार बहुत कम हो गया था तथा एकमात्र तप ही उनका धन था ॥ २ ॥

भायात्समानां कुम्भार्तां प्राक्षति देवतामिव ।
भावेन रघुमुन्मय्य दशम्रीवपराभवम् ॥ २१ ॥

वे बुद्धते आदुर हो अपने कुकरोक्तासे हाथ खेचकर मन-ही-मन यह प्रार्थना-धी कर रही थी कि श्रीरामकम्पनीके हाथसे दशमुख रावणकी पराभव हो ॥ २१ ॥

समीक्षमाणां रुद्रीमनिभ्रितां
सुपक्षमताप्रायतशुक्लोत्थनाम् ।

अनुप्रतां राममतीव मैथिलीं
प्रलोभयामास वधाप रावणः ॥ २२ ॥

सुम्बर शयोनियोंके मुक्त, काठ, श्वेत एवं विद्याक नेत्रोंवाली सती-साथी मियिबहाकुमारी छीटा श्रीरामकम्पनी से अत्यन्त अनुरक्त थी और इस उबर देखती हुई रो रही थी । इस अवस्थामें उन्हीं देखकर राक्षसराज रावण अपने ही बचके सिन्हे उनको लुम्भानेकी चेष्टा करने लगा ॥ २२ ॥

१५वाँ दुम्भारे खिन्ने कोई भय नहीं है । इस क्षणमें न तो मनुष्य था उकते हैं न इच्छुमुहार रूप बाल्य करनेवाले पृथरे उबल हो, केवल मैं आ उकता हूँ । परंतु छीटे । मुझसे जो दुर्गै मय हो रहा है, वह तो दूर हो ही जन्मा चाहिये ॥ ४ ॥

इसममें रक्षसा भीक सर्वदेय न सधाय ।
गममें वा परत्रीणां हरणं सम्प्रमथ्य वा ॥ ५ ॥

मृषिक । (तुम यह न समझो कि मैंने कोई अपर्न किया है) परन्ती जिनोंके पास धना अथवा बलत्कारपूर्वक उन्हीं हर जना यह राक्षसोंका शत्रु ही अपना धर्म रहा है—इसमें संदेह नहीं है ॥ ५ ॥

एव खेचमक्यामां त्वां न च स्पर्शयामि मैथिलि ।
कामं काम शर्पिते मे यथाकाम प्रवर्तताम् ॥ ६ ॥

मियिबहावनन्दिनि । देखी अवस्थामें भी बचतक तुम मुझे न चाहोगी, तबतक मैं दुम्भारा स्थान नहीं करूँगा । मुझे ही कामदेव मेरे शरीरपर इच्छानुसार अत्याचार करे ॥ ६ ॥

वेचि नह भयं कार्यं मयि विभ्रसिद्धि श्रिये ।
प्रणयस्य च तस्येन मेघ मूः शोककालसा ॥ ७ ॥

वेचि नह भयं कार्यं मयि विभ्रसिद्धि श्रिये ।
प्रणयस्य च तस्येन मेघ मूः शोककालसा ॥ ७ ॥

वेचि नह भयं कार्यं मयि विभ्रसिद्धि श्रिये ।
प्रणयस्य च तस्येन मेघ मूः शोककालसा ॥ ७ ॥

वेचि नह भयं कार्यं मयि विभ्रसिद्धि श्रिये ।
प्रणयस्य च तस्येन मेघ मूः शोककालसा ॥ ७ ॥

वेचि नह भयं कार्यं मयि विभ्रसिद्धि श्रिये ।
प्रणयस्य च तस्येन मेघ मूः शोककालसा ॥ ७ ॥

वेचि नह भयं कार्यं मयि विभ्रसिद्धि श्रिये ।
प्रणयस्य च तस्येन मेघ मूः शोककालसा ॥ ७ ॥

वेचि नह भयं कार्यं मयि विभ्रसिद्धि श्रिये ।
प्रणयस्य च तस्येन मेघ मूः शोककालसा ॥ ७ ॥

वेचि नह भयं कार्यं मयि विभ्रसिद्धि श्रिये ।
प्रणयस्य च तस्येन मेघ मूः शोककालसा ॥ ७ ॥

देवि ! इस विषयमें दुर्गम भव नहीं करना चाहिये ।
प्रिये ! मुक्तपर निरन्तर करो और यथार्थरूपसे प्रेरित हो ।
इस तरह जोकरे व्याकुल न हो पाओ ॥ ७ ॥

एकदशमी अथाशय्या ध्याम मखिनमम्बरम् ।
अस्त्रमेऽप्युपधासन्न नैताम्योपसिक्तानि ते ॥ ८ ॥

एक वेणी धारण करना, नीचे दृष्टीपर बोना किष्ठा
मन् खना, मेरे बन्न पहनना और बिना अतःके उपवास
करना—ये सब बातें तुम्हारे योग्य नहीं हैं ॥ ८ ॥

विविधाणि च मास्थानि चान्द्वान्यगुक्त्रिण्य च ।
विविधानि च वासांसि विष्णुम्याभरणानि च ॥ ९ ॥
महाहोमि च पातानि शयनाभ्यासतामि च ।
गीतं नृत्यं च वाद्यं च छम मां प्राप्य मैथिलि ॥ १० ॥

मिथिलेशकुमारी । मुझे पाकर द्रम विविध पुष्प-माद्य,
स्वरन, म्युद्र नाना प्रकारके बन्न विभ आभूषण, बहु
मूष्य पेय शय्या आसन, नाच गान और वाद्य
सुख भोगे ॥ ९ ॥

श्रीरत्नमसि मेवं भूः कुरु गात्रेषु भूयजम् ।
मां प्राप्य हि कथं वा स्यात्सवमजर्हा सुविभ्रजे ॥ ११ ॥

द्रम विभोगमें रत्न हो । इस तरह मन्दिन केधमें न रहो ।
अग्ने महोमि आभूषण धारण करो । सुन्दरि ! मुझे पाकर भी
द्रम भूषण आदिसे अतःमात्ति कैसे खोजी ? ॥ ११ ॥

इत्वं ते चाड संजात यौवनं ह्यतिवर्तते ।
यत्तीव्रं पुनर्नैति शोचः शोचस्त्रिनामिव ॥ १२ ॥

यह तुम्हारा नवोदित सुन्दर यौवन कीटा था रहा है ।
जो वीर जाता है यह नदियोंके प्रवाहकी भाँति फिर छोटकर
नही जाता ॥ १२ ॥

त्वां हृत्सोपपत्तो मय्ये रूपकर्ता स विम्बहृत् ।
नहि रूपोपमा ह्यस्या तवास्ति शुभवर्ति ॥ १३ ॥

हृत्सवर्ति । मैं तो देखा छत्रका हूँ कि रूपकी रचना
करनेवाला अनेकछात्रा विधाता दुर्गम कनाकर फिर उध कावसे
विगत हो गया। क्योंकि तुम्हारे रूपकी समता करनेवाली
दुखी कोई भी नहीं है ॥ १३ ॥

त्वां समास्ताद्य वैश्वि रूपयौवनघाङ्गिनीम् ।
का पुनर्नप्रतिवर्तते साक्षादपि पितामहा ॥ १४ ॥

वैश्विदेहनमिदि । रूप और यौवनते सुशोभित होनेवाली
द्रमको पाकर कौन देख पुत्र है, जो वैश्वि विनचित न
होमा । भजे ही यह छत्राद तथा क्यों न हो ॥ १४ ॥

यत् यत् पदयामि ते धारं शितांशुसह्यताने ।
तस्मिस्तस्मिन् प्रपुष्पोपि चसुमैम विनम्यत ॥ १५ ॥

स्त्रमाके समान गुलवाही द्रमममे । मैं तुम्हारे कि-
चित् अङ्गको देखता हूँ उली-उलीमें भरे नेत्र उलक जाते हैं ॥

भव मैथिलि भार्या म मोहमत्त विसर्जय ।
बह्वीनामुचमस्त्रीणा ममाप्रमद्विपी भव ॥ १६ ॥

मिथिलेशकुमारी । द्रम मेरी मर्वा बन जाओ ।
पात्रित्यके इस मोहको छोड़ो । मेरे यहाँ बहुतसी सुन्दरी
रामियाँ हैं । द्रम उन सबमें भेद परछनी बनो ॥ १६ ॥

स्त्रोकेभ्यो यामि रक्षामि सम्प्रमत्त्याहृतामि मे ।
तामि ते भीरु सपीणि राज्यं शैब व्रामि ते ॥ १७ ॥

भीरु । मैं अनेक छेकेंते उन्हे मयकर के-
रल काया हूँ, वे सब तुम्हारे ही होंगे और यह राज्य भी मैं
तुम्हारे समर्पित कर दूँगा ॥ १७ ॥

विजित्य पृथिवीं सर्वां नामानगरमाङ्गिनीम् ।
अनकथं प्रवाह्यामि तव हेतोर्विद्यासिन्नि ॥ १८ ॥

विद्यासिनि । तुम्हारी प्रसन्नताके दिने मैं विभिन्न
नारोंकी माङ्गलोंसे अकथित इस जरी पृथ्वीको छेककर
रखा जनकके शपथमें छीप दूँगा ॥ १८ ॥

मेह पदयामि श्लोकेऽस्यं यो मे प्रतिबद्धो मवेत् ।
पश्य मे सुमहद्वीर्यमप्रतिद्वन्द्वमावृजे ॥ १९ ॥

इस संतर्पमें मैं किसी दूखे ऐसे पुरुषको नहीं देखता,
जो मेरा समता कर सके । द्रम तुझमें मेरा वह महान्
पराक्रम देखना, किये समने कोई प्रतिद्वन्द्वी मित्र नहीं पाता ॥

असङ्कत् सपुगे भन्ता मया किमुदितभन्ता ।
महाच्छा प्रत्यनीकेषु स्मार्तुं मम सुरासुरा ॥ २० ॥

मैंने पुरुजलमें किनकी म्बाएँ तोड़ जाली थीं, वे
देखता और अद्भुत मेरे समने उदरतेमें अमर्षमें छेकके करण
कर बार पीठ दिखा चुके हैं ॥ २० ॥

इच्छ मां क्रियतामद्य प्रतिकर्मे तबोचमम् ।
सुमभाष्यवसन्नतां तवाज्ञे भूषणानि हि ॥ २१ ॥

द्रम मुझे लीकर करो । भाव द्रमभाष उचम श्रुत
क्रिया कर और तुम्हारे महोमि म्बकीसे आभूषण
पहनाने कार्य ॥ २१ ॥

साधु पदयामि ते रूपं सुयुक्तं प्रतिकर्मात् ।
प्रतिकर्माभिसंयुक्ता वाञ्छिन्मयेव वरानने ॥ २२ ॥

सुयुक्ति । आभ मैं श्रुतते सुलभित हुए तुम्हारे सुन्दर
रूपको देख रहा हूँ । द्रम उदारतावध मुक्तपर क्या करके
श्रुतते सम्पद हो जाओ ॥ २२ ॥

भुङ्क्व भोगान् यथाकामपिच भीरु रमहा च ।
यथेष्टं च प्रयच्छ त्वं पृथिवीं वा व्रामि च ॥ २३ ॥

भीरु । फिर इच्छमुक्त मीथि-मौलिके भोग भोगे, किन्

० यहाँ प्रतिबन्ध वर्तनाको यौनि वर्तन छोड़ते 'व्यतिकर'
वर्तकर उलकथ चाहिये ।

रुद्र पान करो, विद्यो तथा पृथ्वी या वनका यपेद्रुमते
रान करो ॥ २३ ॥

छछल मयि विक्रम्या भूषमाज्ञापयल च ।

मथास्त्रावाप्तुलम्प्याश्च छछटा वा भवस्तस्य ॥ २४ ॥

भूम मुसपर विस्वस करके भोग भोगकी इच्छा करो

और निर्भय होकर मुझे अपनी सेवाके लिये आशा दो ।

मुसपर कृप करके इच्छानुसार भोग भोगकी तुम्हें अपनी

प्यत्नीके माई-बन्धु भी मनमाने भोग भोग कहते हैं ॥ २४ ॥

श्रद्धि ममानुपस्य त्वं श्रिय भद्रे यथास्विति ।

किं करिष्यसि रामेय सुभगे वीरवासिना ॥ २५ ॥

भद्रे । यथास्विति । तुम मेरी श्रद्धि और वन-सम्पत्ति-

की ओर तो देखो । सुभगे । वीर-वन्न जातप करनेनाके

एकके लेकर क्या करोगे ? ॥ २५ ॥

विक्रितविक्रयो रामो गतभीरुवधगोचरः ।

मती स्वपिडहशायी च शङ्के वीरवति वान वा ॥ २६ ॥

पामने विक्रयकी आशा त्याग दी है । वे भीरीन होकर

वन-रुमें विचर रहे हैं, व्रतका पावन करते हैं और मिट्टी-

की केशीप छोटे हैं । अब तो मुझे यह भी धरहे हाने क्या

है कि वे भीरित भी हैं वा नहीं ॥ २६ ॥

वदि वैवृहि रामस्त्वां द्रुष्टुं चाप्नुपलभ्यते ।

पुरोबल्यकैरसितैर्मेदैर्योरश्यामिवावृताम् ॥ २७ ॥

'विरहेनस्विति । भिनके आना वगुणकी पक्षियों चकवी

है उन काक बादलके छिपी हुई अतिरक्तके समान तुमको

मन राम पाना तो दूर था, देख भी नहीं सकते हैं ॥ २७ ॥

न चापि मम हस्तात् त्वा प्राप्नुमईति राक्षसः ।

विरप्यकशिपुः कर्षितमिन्द्रहस्तगतामिव ॥ २८ ॥

जैसे विरप्यकशिपु इन्द्रके हाथमें लगी हुई कर्षिके न

पा सका, उसी प्रकार राम भी मेरे हाथसे तुम्हें नहीं पा सकते ॥

याचसिते चाकवृति चाकनेत्रे चिह्नास्विति ।

मनो ह्यसि म भीरु सुपनाः पक्षग यथा ॥ २९ ॥

मनाहर सुस्वप्नः, सुस्वर इन्डावति तथा रामकीय

नेत्रोत्सवी चिह्नस्विति । भीरु । जैसे गरुड लपके उठा के

कहते हैं, उसी प्रकार तुम मेरे मनको हर लेती हो ॥ २९ ॥

किपुकीरोपयसर्मा लप्यीमप्यनछ कृताम् ।

त्वा हृदा स्वपु हारेपु रति मोपलभाम्यहम् ॥ ३० ॥

'प्रस्थाप देवमी पीताम्बर नैका हो गया है । तुम बहुत

इसी-पथकी हा यपी हो और तुम्हारे अङ्गमें आभूषण भी

अतें हैं तो भी तुम्हें देखकर अपनी दृष्टी अियोंमें भोग मन

नती क्याथा ॥ ३ ॥

हृष्यर्षे श्रीमद्रामायणे वासुदेवोपनिषत्सु सुन्दरकाण्डे विद्या सर्गः ॥ १ ॥

एत इदम श्रीमत्सर्गकनिर्णय आश्रमपथ अत्रिकल्पके सुन्दरकाण्डे वीरर्षो सर्वे पूरा इत्यु ॥ २ ॥

अन्तःपुरनिवासिन्म्यः श्रियः खवगुणाग्निताः ।

यावत्पयो मम सदासार्थिभ्यश्च कुरु जानकि ॥ ३१ ॥

'कनकनन्दिनि । मेरे अन्तःपुरमें निवास करनेवाली

श्रितनी भी सर्वगुणसम्पन्न एतियाँ हैं, उन सबकी तुम

स्वामिनी बन जाओ ॥ ३१ ॥

मम द्वासितकेशागते त्रैलोक्यप्रयत्नश्रियः ।

तास्त्वां परिश्रित्यस्मिन् श्रियमप्सरसो यथा ॥ ३२ ॥

'क्याके केशोंवाली सुन्दरी । जैसे अप्सराएँ तस्नीकी

सेवा करती हैं, उसी प्रकार त्रिगुणकी भेट सुन्दरियों वहाँ

तुम्हारी परिषयां करोगी ॥ ३२ ॥

यानि वैश्रवणे सुभ्रु रक्षानि च धनानि च ।

तानि लोकाश्च सुभ्रुषि मया मुकुक्षयथासुभ्रम् ॥ ३३ ॥

सुभ्रु । सुभूमि । कुबेरक वहाँ बितने भी अन्ते राम

और वन हैं, उन सबका तथा तत्पूर्व लोकोका तुम मेरे साथ

मुकुपूर्वक उपभोग करो ॥ ३३ ॥

न रामस्तपसा देवि न बलेन च विक्रमैः ।

न धनेन मया तुष्यस्तेजसा यथासापि वा ॥ ३४ ॥

देवि । राम तो न तपसे, न बलसे न परक्रमसे न

धनसे और न तेज अपथा यथाके हाथ ही मेरी समानता कर

सकते हैं ॥ ३४ ॥

विष विहर रमल मुकुक्षय भोगान्

धननिषयं प्रविशामि मेदिर्मी च ।

मयि छल कबने यथासुखं त्व

त्यपि च सतेत्यकञ्चन्तु याम्भवास्ते ॥ ३५ ॥

तुम दिम्ब रसका पान विहार एक रमन करो तथा

अमीह भोग भोगे । मैं तुम्हें धनकी राशि और धनी पृथ्वी

भी समर्पित किये देता हूँ । सबने । तुम मेरे पाठ रहकर

मोक्षसे मनचारी बन्दूएँ प्राप्त करो और तुम्हारे निकट

आकर तुम्हारे माई बन्धु भी मुसपूर्वक इच्छानुसार मंग

आदि प्राप्त करें ॥ ३५ ॥

कुसुमितपत्राञ्जलसतत्वानि

धमरगुतानि सगुद्वीरानि ।

कनकविमलहारूपिताह्वी

विहर मया सह भीरु काननानि ॥ ३६ ॥

भीरु । तुम धनेके निर्मल हारोंके अपने कानको

विभूषित करके मर साथ सगुद-उदकती उन काननोंमें विहार

करो किन्तुमें खिचे हुए हारोंके समुदाय सब भोर देल हुए

हैं और उनपर धमर मेहरा रहें ॥ ३६ ॥

एकविंश सर्ग

सीताश्रीका रावणको समझाना और उसे श्रीरामके सामने नगण्य बताना

तद्य तद् धन्य भूत्वा सीता यौद्रस्य रक्षसा ।

मार्ता दीनलक्ष्मी दीर्घं प्रत्युषाच तता धामैः ॥ १ ॥

उस मर्मकर रक्षसकी वह बात सुनकर सीताको बड़ी पीड़ा हुई । उन्होंने दीन नामीमें बड़े दुःखके साथ धीरे धीरे उठर देना आरम्भ किया ॥ १ ॥

दुम्भार्ता बह्वी सीता वेपमना तपसिनी ।

विन्तपन्ती वरारोहा पतिमेव पतिमता ॥ २ ॥

उस समन सुन्दर अज्ञोवाकी पतिव्रता देवी तपस्विनी सीता दुःखसे आदुर होकर रोती हुई कौप रही थी और अपने पतिदेवका ही चिन्तन कर रही थी ॥ २ ॥

तपमन्तरतः कृत्वा प्रत्युषाच शुचिस्मिता ।

निवर्तय मनो मत्तः खड्गवे प्रीयतां मना ॥ ३ ॥

पवित्र दुस्कानवाकी विदेहनन्दिनीने तिनकेभी ओठ फटके रावणको इस प्रकार उठर दिया—'दुम मेरी अंगरेसे अपना मन हटाओ और अस्मीन कर्तो (अम्नी ही पतिनों) पर प्रेम करो ॥ ३ ॥

न मां प्रार्थयितुं युक्तस्तत्र सिद्धिमिह पापकृत् ।

अकार्यं न मया कार्यमिहपत्न्या विमर्हितम् ॥ ४ ॥

जैसे पापापारी पुरुष सिद्धिभी इच्छा नहीं कर सकता उसी प्रकार दुम मेरी इच्छा करनेके योग्य नहीं हो । जो पतिव्रताके सिद्धि निश्चित है वह न करनेके लिये कर्म में बराबरी नहीं कर सकती ॥ ४ ॥

कुर्वं क्षत्राक्षया पुण्यं कुर्वे महति मातया ।

एवमुक्त्वा तु वैदेही रावणं त पशसिनी ॥ ५ ॥

रावण पुष्टतः कृत्वा मूयो वचनमप्रधीत् ।

बाह्यमौपवित्री भार्या परभार्या सती तव ॥ ६ ॥

क्योंकि मैं एक महान् कुर्वे बराबरी हुई हूँ और ब्याह करने एक पवित्र कुर्वे अम्नी हूँ । रावणसे ऐसा कहकर पशसिनी विदेहराजकुमारीने उठकी ओर अपनी पीठ फेर की और इस प्रकार कहा—'पुरुष । मैं उसी ओर पत्नी की हूँ । दुम्हारी भार्या बनने योग्य नहीं हूँ ॥ ५-६ ॥

साधु धर्ममवेक्ष्य साधु साधुव्रत चर ।

यथा तव तथाम्येषां रक्षया वारा निशाचर ॥ ७ ॥

निशाचर । दुम भेद बर्माकी ओर दक्षिणत करे और लपुकोंके मतका अच्छी तरह पालन करो । जैसे दुम्हारी सिद्धी दुमसे सम्पन्न पाती है उसी प्रकार दुम्हारी सिद्धीभी ही दुम्हारे रक्ष करनी चाहिये ॥ ७ ॥

आरामानुषामां कृत्वा स्वेषु वारेषु रम्यताम् ।

अनुष्टं स्वेषु वारेषु अपतं अपतेन्द्रियम् ।

नपति निहतिप्रभं परवाराः पराम्भम् ॥ ८ ॥

'दुम अपनेको आराम बनाकर अपनी ही सिद्धीमें अनुरक्त रहे । जो अपनी सिद्धीसे संतुष्ट नहीं रहता तथा कितनी बुद्धि बिखर देने योग्य है, उस पपक इन्द्रियोंके बलक पुरुषको परानी सिद्धी परममको पहुँचा देती है—उसे कभीरतमें बाध देती है ॥ ८ ॥

इह सन्तो न वा सन्ति सतो वा मानुषतसे ।

यथा हि विपरीता ते बुद्धिराचारव्यसिता ॥ ९ ॥

जना नहीं अत्युत्तम नहीं रहते हैं अथवा रहनेपर भी दुम उनका अनुकरण नहीं करते हो । कितने दुम्हारी बुद्धि ऐसी विपरीत एवं अचानकपट्ट हो गयी है ? ॥ ९ ॥

यसो मिथ्याप्रणीतात्मा पथ्यमुक्त विषयवैः ।

राक्षसानामभावाप त्व वा न प्रतिपद्यसे ॥ १० ॥

अथवा बुद्धिमान् पुरुष जो दुम्हारे शिवकी बात करते हैं, उते निःशर मानकर राक्षसोंके विनाशपर दुम्हारे करने के कारण दुम प्रयत्न ही नहीं करते हो ॥ १० ॥

महत्वारमाममासाद्य राजाजमनये रत्नम् ।

समुद्रानि विनाशयन्ति राज्ञानि नमराणि च ॥ ११ ॥

कितना मन भयानक तथा अनुपदेशको नहीं प्रयत्न करनेवाला है, ऐसे अज्ञानी राजाके हाथमें पककर बड़े-बड़े समुद्रशास्त्री राजन और नगर नष्ट हो जाते हैं ॥ ११ ॥

तथैव त्वां समासाद्य कृत्वा रक्षीयसकृद्य ।

अपराधात् तवैकस्य नचिदात् विमशिम्यति ॥ १२ ॥

इसी प्रकार यह राजराशिसे पूर्व अज्ञापुत्री दुम्हारे हाथमें भा जानेसे अब अकेले दुम्हारे ही अपराधसे बहुत नष्ट नष्ट हो लगी ॥ १२ ॥

खड्गैर्हस्यमानस्य रावण्यार्षीर्षवर्षिणः ।

अभिकल्पन्ति मृतानि विनाशे पापकमना ॥ १३ ॥

'रावण । जब कोई अहुरक्षी पापापारी अपने कुर्वनेसे मारा जाता है उस समय उरका विनाश होनेपर उसका प्राणिके प्रकन्ता होती है ॥ १३ ॥

एव त्वां पापकर्माणं कल्पन्ति निहता जनाः ।

विपरीतवृत्त्यस्य प्राप्ते रौद्र हत्येव हर्षिता ॥ १४ ॥

इसी प्रकार दुमने बिन ओंको कष्ट पहुँचाना है, वे दुम्हारे पापी करेंगे और 'बड़ा अन्ध दुम्हारे जो इस आठवणीको यह कष्ट प्राप्त हुआ' प्रेसा कहकर हर्ष मनावेंगे ॥ १४ ॥

राक्षसा ओभयितुं माहमैश्वर्येण धनेन वा ।

अथस्या राक्षसेषाह भास्करेण यथा प्रभा ॥ १५ ॥

जैसे प्रमा ह्यंसे अन्ना नहीं होती, उसी प्रकार मैं भीरुनायकीसे अभिन्न हूँ । ऐश्वर्य या बनके द्वारा तुम मुझे द्रव्य नहीं लब्धते ॥ १५ ॥

उपपाय भुज तन्म लोकरनायस्य सत्कृतम् ।
कर्म नामोपपायस्यामि मुञ्जमस्यस्य कस्यचित् ॥ १६ ॥

क्यासीकर भीरामचन्द्रकीकी सम्मानित मुखापर विर रक्षकर बन मैं किसी वृद्धकी बौरकी तकिया कैसे क्या लब्धी हूँ । ॥ १६ ॥

महामौपयिकी भार्या तस्यैव च धरापतेः ।
मतकावस्य विधेय विप्रस्य विवितारमनाः ॥ १७ ॥

विध प्रकार बेदविद्या आत्मजानी स्नायक ब्राह्मणकी ही सम्पत्ति होती है, उसी प्रकार मैं केवल उन पूषीपति रघुनाथकीही ही भार्या होने योग्य हूँ ॥ १७ ॥

साधु राघव रामेण मां क्षमायय दुःखिताम् ।
बने वासितया सार्धं कल्पेवेष पञ्चाधिपम् ॥ १८ ॥

प्रायः । तुम्हारे किन्हे यही मन्त्रा होगा कि विध प्रकार बनमें धर्मागमकी वाचनासे मुक्त इतिनीके छोड़ गबरुसे मित्र दे, उसी प्रकार तुम मुझ दुःखिनीको भीरुनायकीसे मित्रा हो ॥ १८ ॥

मित्रमौपयिक कर्तुं रामः स्वामं परीप्सता ।
बन्धं चानिच्छता घोर त्वयासी पुत्रपरिभः ॥ १९ ॥

परि तुम्हें अपने नगरकी रक्षा और राज्य बन्धनसे बन्धकी हप्ता हो तो पुत्रकोचम मन्वान भीरामको अपना मित्र बना बना चाहिये। क्योंकि वे ही इसके योग्य हैं ॥ १९ ॥

विदितः सर्वधमज्ञः शरणागतवत्सलः ।
तत्र मैत्री भवद्गु ते पति जीवितुमिच्छसि ॥ २० ॥

मगवान् भीराम समस्त धर्मोंके ज्ञाता और सुप्रसिद्ध शरणागतवत्सल हैं । यदि तुम भीभाव करना चाहते हो तो उनके साथ तुम्हारी मित्रता ही जानी चाहिये ॥ २० ॥

प्रसाद्यन् स्व जैनं शरणागतवत्सलम् ।
मां चास्मै प्रयतो भूत्वा निर्वातयितुमर्हसि ॥ २१ ॥

तुम शरणागतवत्सल भीरामकी शरण केकर उन्हें प्रकन करो और शुद्धहृदय होकर मुझे उनके पास छोटा हो ॥ २१ ॥

एवं हि ते भवेत् स्वस्ति सम्प्रदाय पचूतमे ।
कल्पयास्यहि कुवापः परां प्राप्ससि चापदम् ॥ २२ ॥

इत प्रकार मुझे भीरुनायकीके शौच देनेपर तुम्हारा मन्त्र होगा । इसके विपरीत आचार्य करनेपर तुम बर्षी गयी विधिमैं पद आभोगे ॥ २२ ॥

पश्येत् पञ्चमुख्यं पश्येत्कृतकधरम् ।
त्वदिधं न तु संकुर्वी लोकरनायः स राघवः ॥ २३ ॥

तुम्हारे-जैसे निपाकरको कर्वाचित् हाथसे पृटा हुआ कत्र बिना मारे जोड़ सकता है और कन्न भी बहुत विनीतक तुम्हारी उपेक्षा कर सकता है; किंतु जोधमें भरे हुए क्ले-नाम रघुनाथकी कर्वाचि नहीं छोड़ेंगे ॥ २३ ॥

रामस्य धनुषा शश्वं भोष्यसि त्व महाखनम् ।
शतकस्तुषिचूटस्य मिर्घोपमशनेरिव ॥ २४ ॥

‘इन्द्रके छोड़े हुए वज्रकी गङ्गागाइके समान तुम भीरामचन्द्रकीके धनुषकी घोर टंकर सुनोगे ॥ २४ ॥

इह शीघ्र सुपर्षाणो ज्वलितस्या इषोरगाः ।
इषवो सिपतिष्यन्ति रामकक्षमण्यरुसिताः ॥ २५ ॥

प्राणों भीराम और क्लमणके नामोंसे भङ्गित और इन्द्र गौंठबाड़े बाण प्रकथित मुसबाड़े क्योंकि समान शीघ्र ही मिरेंगे ॥ २५ ॥

प्रांसि निहनिष्यन्तः पुर्यामस्यां न सशयः ।
असम्प्रात करिष्यन्ति पतन्ताः कङ्कवाससः ॥ २६ ॥

वे कङ्कपत्रबाड़े बाण इव पुरीमें राक्षसोंका शहर करेंगे, इसमें शय नहीं है । वे इव तरह बरेंगे कि प्राणों तिक रखनेकी मी कान नहीं रह स्यागी ॥ २६ ॥

राक्षसेभ्यश्चासर्षान् स रामगङ्को महाम् ।
उत्तरिष्यति वेगेन वैभतेप इषोरगान् ॥ २७ ॥

जैसे नितानन्दन गङ्क सर्षाका शहर करते हैं, उसी प्रकार भीरामकपी महान् गङ्क राक्षसराक्षसी बड़े-बड़े सर्षाके वेगपूर्वक उच्छिन्न कर जायेंगे ॥ २७ ॥

अपनेष्यति मां भर्ता त्वत्तः शशिमारिवम् ।
असुरेभ्यः श्रिय वीर्यां विष्णुशिरिभिरिव क्रमैः ॥ २८ ॥

जैसे मगवान् विष्णुने अपने तीन ही फणोंद्वारा असुरोंसे जन्की ठहीत राक्षसकी छीन जी थी, उसी प्रकार मेरे स्वामी रघुन्दन भीराम मुझे शीघ्र ही वेरे बहोसे निष्क के क्षमेंगे ॥ २८ ॥

अबस्थाने हतस्थाने निहते रक्षसां वळे ।
अशक्तेन त्वया रक्षा कृतमेतद्वसाधु वै ॥ २९ ॥

प्रायः । जब राक्षसोंकी सेवका शहर हाथनेसे बनसान का तुम्हारा भाग्य नष्ट हो गया और तुम पुत्र करनेमें असमर्थ हो गये तब तुमने छत्र और खेपेसे यह नीच कर्म किया है ॥ २९ ॥

आश्रम तत्तपो शूष्यं ग्रिह्येय नरसिंहयोः ।
गोचर गतयोश्चोरोपनीता त्वपाधम ॥ ३० ॥

नीच निष्कार । तुमने पुत्रविद भीराम और क्लमण के छे आश्रममें पुत्रकर मेरा हरण किया था । वे दोनों उठ सम्य मायागुणको मारनेके क्षिय बनने गये हुए थे (नहीं तो वही तुम्हें इतना पन्न मित्र जाता) ॥ ३० ॥

नहि गन्धमुपाप्राप रामकृष्णमण्योरत्वया ।
वाच्यं सर्वशर्मि स्वार्तुं शुना शार्तुं च योरिव ॥ ३१ ॥

श्रीराम और कृष्णकी तो गन्ध पाकर भी तुम उनके
धमने नहीं ठहर सकते । क्या कुच्च कभी दो-दो बालोंके
धमने टिक सकता है ! ॥ ३१ ॥

तस्य ते विप्रहे ताभ्यां युगप्रहृष्यमस्मिन् ।
वृषस्येयं मृगशुभ्यां बाहोरेकस्य विप्रहे ॥ ३२ ॥

बेधे इन्द्रकी दो बाँहोंके साथ युद्ध छिन्दनेपर वृषासुर
की एक बाँहके छिन्दे ध्यामके बोलने उभाङ्गना अस्मभव
हो गया, उठी प्राणर समराङ्गणमें उन दोनों मृगश्योंके साथ
युद्धका वृथा उठाये रखना या टिकना तुम्हारे छिन्दे सर्वथा
असम्भव है ॥ ३२ ॥

क्षिप्रं तप स नाथो मे रामा सौमिषिजा सह ।
तोयमल्पमिषाक्षिरया प्राणानावाक्यत शरैः ॥ ३३ ॥

हृषार्थे श्रीमद्भारमयने वाल्मीकीये अद्विचक्षण्ये सुन्दरकाव्ये एकविंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

इस प्रकार श्रीमद्भारमयने अद्विचक्षण्ये सुन्दरकाव्यके इष्टोसर्गें सर्व पूरा हुये ॥ २१ ॥

द्वाविंश सर्ग

रावणका सीताको दो मासकी अवधि देना, सीताका उसे फटकाना, फिर रावणका उन्हें
भयकाकर राक्षसियोंके नियन्त्रणमें रखकर श्लिषोत्तहित पुन महालको छोट जाना

सीताया वचनं ध्रुवा पदपं राक्षसेभ्यरा ।
प्रत्युवाच ततः सीतां विप्रिय प्रियवदोऽहम् ॥ १ ॥

सीताके ये कठोर वचन सुनकर राक्षसराज रावणने उन
प्रियवचनना सीताको यह अभिय उचर दिया— ॥ १ ॥

यथा यथा स्वास्त्वयिता वक्ष्याः क्वीर्णां तथा तथा ।
यथा यथा प्रियं वक्ता परिभूतस्तथा तथा ॥ २ ॥

ज्याकर्म पुरुष बेधे-बेधे क्षिभेधे अनुनव किनय करता
है वैधे-बेधे यह उनका प्रिय होता जाता है परंतु मैं
तुमसे स्त्री-स्त्री मीठे वचन बोलता हूँ स्त्री ही-स्त्री तुम मेरा
तिरस्कार करती आ रही हो ॥ २ ॥

संनियच्छति मे श्लेषं त्वयि क्रमः समुत्थितः ।
प्रवृत्तो मार्गमासाद्य इषाभिय सुसावधि ॥ ३ ॥

किंतु बेधे अन्ध अन्धिय कुमाननि रोकेत हुए बोझों-
को रोकेता है, बेधे ही तुम्हारे प्रति जो मेरा प्रेम व्यक्तन हो
गया है वही मेरे श्लेषको टोक रहा है ॥ ३ ॥

वामा क्रमो मनुष्याणां वसिन् किञ्च निवध्यते ।
अने तस्मिन्स्वयमुपेयाः स्नेहकश्चिन्न मापते ॥ ४ ॥

मनुष्योंमें यह क्रम (प्रेम) बड़ा देहा है । यह किसके
प्रति बंध जाता है उसीके प्रति कश्चिन्न और स्नेह व्यक्तन
हो जाता है ॥ ४ ॥

धे मेरे प्राणनाथ भीरुम सुमित्राकुमार इतकके साथ
आकर अपने बाणोंद्वारा शीघ्र तुम्हारे प्राण हर देंगे । तीक्ष्ण
उठी तरह बेधे स्वयं योकेसे अन्धको अपनी किरणोंद्वारा शीघ्र
सुखा देते हैं ॥ ३३ ॥

गिरि कुबेरका गतोऽद्ययाऽऽत्तयं
सर्मां गतो वा वक्ष्यस्य राक्षः ।

असंशय वाचरयेषिमोक्षयसे
महातुमः काञ्चहतोऽशनेरिव ॥ ३४ ॥

‘तुम कुबेरके केवलपर्यंतपर बड़े आश्रये, अपना
वक्ष्यकी तमामें आकर छिप रहो किंतु काञ्चका मार तुममें
निश्चाय हुए बेधे वक्ष्यका आघात व्यर्थ ही नष्ट हो जाता है
उसी प्रकार तुम वक्ष्यभयान्तर भीरुमके बाणसे मारे जाकर
लंकाका प्राणसे क्षय हो बैठोगे, इसमें संशय नहीं है क्योंकि
काञ्च तुम्हें पकड़ेये ही मार चुका है’ ॥ ३४ ॥

पठस्तात् कारणाच्च त्वां घातयामि वराम्ने ।
वषाहामवमगनाहो मिथ्या प्रवक्ष्ये रताम् ॥ ५ ॥

सुगृह ! यही कल्प है कि छूटे वैधान्यने उत्तर तथा
वच और तिरस्कारके योग होनेपर भी तुम्हारा मैं बच नहीं कर
खा हूँ ॥ ५ ॥

पक्ष्याणि विधाक्याणि यानि यानि श्रवणं माम् ।
तेषु तेषु वधो युक्तस्तव मैरिच्छि दास्यः ॥ ६ ॥

‘मिथिलेद्यकुमारी ! तुम मुझसे बैठी बैठी कठोर
बातें कर रही हो उनके बदले तो तुम्हें कठोर प्राणवक्ष्य
देना ही उचित है’ ॥ ६ ॥

पशुमुक्त्वा तु वैदेहीं रावणो पक्षसाधितः ।
क्रोधसंरम्भस्तपुकाः सीतामुत्तरमप्रवीत् ॥ ७ ॥

विदेहराजकुमारी सीतासे ऐसा कष्टकर श्लेषके आवेद्यमें
मेरे हुए पक्षसराज रावणने उन्हें फिर इस प्रकार उत्तर
दिया— ॥ ७ ॥

श्री मासौ रक्षितम्यौ मयोऽवधिस्ते मया कृता ।
ततः शयनमातोह मम त्वं वरपयिषि ॥ ८ ॥

‘सुन्दर ! मैंने तुम्हारे छिन्दे को अवधि नियुक्त की है,
उसके अनुसार मुझे बाँ महीने और प्रतीक्षा करनी है ।
तत्पश्चात् तुम्हें मेरी शयनपर आना होगा ॥ ८ ॥

द्वाम्यामूर्ध्वं तु मासाभ्यां भर्तारं मामनिकच्छतीम् ।
 मम त्वां प्रतपशार्थं सुदाद्रेस्तस्यसि चक्षुःशः ॥ ९ ॥
 'भवाः याव रक्षणे—यदि दो महीनेके बाद तुम मुझे
 अपना प्रति जानना स्वीकार नहीं करोगी तो रशोहये मेरे
 कब्जेके किये तुम्हारे दुकने-दुकने कर जाऊँगी ॥ ९ ॥
 तां भर्तार्यमामां सन्मोहय राक्षसेन्द्रेण जानकीम् ।
 देवगन्धर्वकन्यास्तत्र विपेदुर्घिहृतेक्षणाः ॥ १० ॥
 राक्षसराज रावणके द्वारा कनकनन्दिनी कीटाको इस
 प्रकार बमकानी जाती देखा देखाताओं और गन्धर्वोंकी कन्याओं-
 को बड़ा विचार हुआ । उनकी भौलें विह्वल हो गयीं ॥ १० ॥
 गोष्ठप्रकारैरपरा नेत्रैर्वकत्रैस्तथापराः ।
 धीतामाभ्यासयामासुस्तर्जितां तेन रक्षसा ॥ ११ ॥
 एक एकमेंसे किल्लीने ओठोंसे, किल्लीने नेत्रोंसे तथा
 किल्लीने मुँहके छंकेतसे एक राक्षसद्वारा डोंरी जाती हुई धीटा
 को चैयँ बँधला ॥ ११ ॥
 धारिण्य्यासिता सीता एवर्षं राक्षसाधिपम् ।
 उषाध्यात्महित वाक्यं वृत्तशौरीदीर्घार्थितम् ॥ १२ ॥
 उनके चैयँ बँधानपर धीताने राक्षसराज रावणसे अपने
 लज्जकार (पातिमत्य) और पतिके शौर्यके अभिमन्यसे पूर्ण
 शिवकर बचन कहा— ॥ १२ ॥
 नृवं म ते जनाः कश्चिद्विधिभिर्भवेयसि स्थितः ।
 निवारयति यो न त्वां कमनोऽस्मान् विगर्हितान् ॥ १३ ॥
 'निश्चय ही इस नगरमें क्रोध ही पुत्रय तैय मझ
 धरलेबाबा नहीं है, जो तुझे इस निश्चित करनेके उठे ॥ १३ ॥
 मां हि धर्मात्मनः पर्यां शचीमिष दक्षीपतेः ।
 त्वद्व्यस्त्रियु ङोकेषु प्रार्थयेममनसापि का ॥ १४ ॥
 जैसे शची इन्द्रकी धर्मपत्नी हैं, उसी प्रकार मैं बर्मात्मा
 ममवान् भीरामकी पत्नी हूँ । शिवाकीमें तरे सिवा वृषभ
 ङेन है जो मनसे श्री मुझे प्राप्त करनेकी इच्छा करे ॥ १४ ॥
 राक्षसाभयं रामस्य भार्याममिततेजसा ।
 उक्त्वामसि यत् पार्यं क गतस्तस्य मोक्षये ॥ १५ ॥
 'नीच राक्षस ! तूने अमित तेजस्वी भीरामकी मायासे
 जो पापकी बात कही है, उसके फलस्वरूप बरबसे तू क्यों
 पकर सुखकर पायेगा ? ॥ १५ ॥
 यथा क्षतश्च मातङ्गः शशाङ्क सहितौ घने ।
 तथा क्षिरवद्वत् रामस्त्व भीक्षु शशवत् स्तुताः ॥ १६ ॥
 'क्षिप्त प्रकार घनमें क्रोड़ मलबाब हाथी और क्रोड़ कर
 लोड हैबका एक वृक्षके हाथ मुदके किये तुझ शौर्य वेते
 ही क्षमवान् भीराम और तू है । नीच निवारण ! ममवान्
 एव तां गणपदके समान हैं और तू क्षमण्यके तुम्हरे ॥ १६ ॥
 स त्वमिच्छाकुनाथ ये क्षियशिव न जखसः ।
 चक्षुषो विपये तस्य न याद्युपगच्छसि ॥ १७ ॥

'भरे ! इस्ताकुनाथ भीरामका विरस्कार करते तुझे
 क्या नहीं आती । तू बरबसे उनकी भौलेंके समाने नहीं
 जाता, तबतक जो चारे कहें ॥ १७ ॥
 इमे ते नयने धूरे विह्वले कृष्णपिह्वले ।
 क्षितौ न पतिते कस्मान्मामनार्यं निरीक्षतः ॥ १८ ॥
 'भनार्य ! मेरी ओर इध्रि जखसे समय तेरी ये कृष्ण
 और विष्णरयुक्त कर्मी-पीवी भौलें पृष्ठीपर क्यों नहीं
 गिर पड़ीं ? ॥ १८ ॥
 तस्य धर्मात्मनः पत्नी स्तुया दशरथस्य च ।
 कथं व्याहरतो मां ते न शिक्षा पाप क्षीर्यति ॥ १९ ॥
 'मैं बर्मात्मा भीरामकी धर्मपत्नी और महाराज दशरथ-
 की पुत्रवधू हूँ । पापी ! मुझसे पापकी बातें करते समय तेरी
 क्षीम क्यों नहीं यक जाती है ? ॥ १९ ॥
 असंदेशासु रामस्य तपसश्चाजुपाकमात् ।
 न त्वा कुर्मिं दशप्रिय भक्ष भस्माहृतैश्चसा ॥ २० ॥
 'दशमुख रावण ! मेरा तेज ही तुझे मझ कर जाभनेके
 किये पर्याप्त है । केवल भीरामकी भाषा न होनेसे और
 अपनी तपस्माके सुरक्षित रखनेके विचारसे मैं तुझे मझ नहीं
 कर रही हूँ ॥ २० ॥
 मापहर्तुमर्हं शक्या तस्य रामस्य धीमतः ।
 विधिस्तव घघार्थाय विहितो नात्र सशयः ॥ २१ ॥
 'मैं अतिमान् भीरामकी माया हूँ मुझे हर के मानकी
 शक्ति तैरे अंदर नहीं थी । निःतदेह तरे वचके किये ही
 विधाताने यह विधान रच दिया है ॥ २१ ॥
 शूरेण भनद्विभ्राभा बहैः समुहितेन च ।
 अपोह्य रामं कस्माच्चिद् वारधौर्यं स्वया वृष्टम् ॥ २२ ॥
 'तू या बड़ा धरबीर बनता है, कुबेरका भाई है और
 तैरे पाठ सेनापति भी बहुत हैं, फिर भीरामको छपसे हू
 हटाकर क्यों तूने उनकी स्त्रीकी चोरी की है ? ॥ २२ ॥
 धीताया वचनं श्रुत्वा रावणो राक्षसाधिपः ।
 विधुरस्य नयने धूरे जानकीमन्वयैस्त ॥ २३ ॥
 'गीताकी ये बातें सुनकर राक्षसराज रावणने उन कनक-
 दुष्परीकी ओर भौलें तैरेकर देला । उधकी इक्षिसे कृत्वा
 रपक रही थी ॥ २३ ॥
 नीचजीमूतसकाशो महाभुजशिशोषणः ।
 सिंहसत्त्वगतिः भीमान् दीप्तजिह्वाप्रलोधनः ॥ २४ ॥
 'यह नीचमेपके समान कास्य और विशात्मकय या ।
 उतकी मुखापें और मोया बड़ी थी । यह गति और पराक्रममें
 सिंहके समान या और तेजस्वी रिखायी देता या । उतकी
 क्षीम आगकी बपटके समान बपटय रही थी तथा नेत्र बड़
 धर्मकर प्रदीत होत थे ॥ २४ ॥

शब्दाप्रमुक्तप्रमांशुश्चिन्महास्यानुलेपनः ।
 रक्तमास्याम्बरधरस्तताङ्गद्विभूषणः ॥ २५ ॥
 शोणीश्लेषेण महता मेघकेन सुसवृतः ।
 अमृतोहेपाशमे तस्यो मुजङ्गेमेव मन्वरा ॥ २६ ॥
 श्लेषके क्षरण उल्लेखे मुकुटाक्ष अग्रभाग श्लिष रक्षा याः
 क्लिष्टे वह बभूवुर्केषां चान पश्यता या । उतने तद्वत्तरङ्गे
 हार और अनुलेपन धारण कर रहते थे तथा परके खेनेके
 बने हुए बाबूबं उल्लेखी शोभा बढ़ा रहे थे । वह कण्ठ रणके
 फूलोंकी भाङ्ग और कण्ठ यज्ञ पहने हुए था । उल्लेखी कमरेके
 चारों ओर कण्ठ रंगक डंका कटिस्थल देखा हुआ था, क्लिष्टे
 वह अमृत-मन्यनके उमाय बासुक्लिष्टे विपटे हुए मन्दराजके
 समान चान पश्यता या ॥ २५ २६ ॥
 ताम्भ्यां च परिपूर्वाभ्यां भुजाभ्यां राक्षसेश्वरः ।
 शुशुभेऽब्जकसकाशाः शृङ्गाभ्यामिष मन्वरा ॥ २७ ॥

पर्वतके समान विद्याभङ्गन एषसपात्र राक्षस अफन्दी
 होने परियुक्त भुजाओंसे उठी प्रकर शोभा पा रहा था,
 मानो दो शिखरोंसे मन्वराबन्ध सुशोभित हो रहा हो ॥२७॥
 तदुपातिर्यवर्षाभ्यां कुबज्जडाम्यां विभूषितः ।
 रक्तपल्लवपुष्पाभ्यामशोकाभ्यामिवाबाहवः ॥ २८ ॥
 प्रातःकाण्डके सुदकी भौति बरक्षणीत कल्पितबाळे दो
 कुण्डक उल्लेखे कान्तोंकी शोभा बढ़ा रहे थे, मान्ये कण्ठ
 पल्लवों और फूलोंसे युक्त दो मद्योक्त वृक्ष कियी पर्वतको
 सुशोभित कर रहे हैं ॥ २८ ॥
 स कल्पवृक्षप्रतिमो घसन्त इव मूर्तिमान् ।
 ह्रमशानवैष्यप्रतिमो भूषितोऽपि भयकरः ॥ २९ ॥
 वह ममिनव शोभाके समान होकर कल्पवृक्ष एवं
 मूर्तिमान् वफ्तके समान चान पश्यता या । भाभूपणोंसे
 विभूषित होनेपर ही अशानवैष्य (मरुतने बने हुए
 देवाभ्य) की मूर्ति मनेकर प्रतीत होता था ॥ २९ ॥
 शयेश्वरमाषो वैदर्ही कोपसरकलोचनः ।
 उवाच राक्षसः सीतां भुङ्क्ते इव निम्बसम् ॥ ३० ॥
 राक्षसे श्लेषके कण्ठ शौलें करके विरेहकुमारो धीता-

की ओर देखा और कुङ्कुरते हुए धरके समान डंभी शौलें
 शीघ्रकर कहा— ॥ ३ ॥
 अनयेनाभिःसम्पत्समर्प्यहीममनुमते ।
 नाशयाम्यहमद्य त्वां सूर्यः सभ्यामिषीजसा ॥ ३१ ॥
 'अभ्यापी और निर्धन मनुष्यको मनुष्यत्व करनेवाकी
 नारी । जैसे सूर्यदेव अपने तेजसे प्रातःकालिक उभाके
 अन्धकारको नष्ट कर देते हैं, उकी प्रकार भाव में तेरा
 शिवाघ किये देता हूँ ॥ ३१ ॥
 इत्युक्त्वा मैथिलीं राजा राक्षसः शत्रुरावणः ।
 सवदर्शं ततः सर्वां राक्षसीपौरवर्शानां ॥ ३२ ॥
 मिथिलेशकुमारोंसे ऐसा कहकर शत्रुओंको समनेवाके
 राजा राक्षसे मयकर शिलायी देनेवाकी उमात्र राक्षसियोंकी
 ओर देखा ॥ ३२ ॥

एकक्षीमेककर्णां च कर्णप्रासरणां तथा ।
 गोकर्णां हस्तिकर्णां च खम्बकर्णमिहर्षिकाम् ॥ ३३ ॥
 हस्तिपद्यन्धपयो च गोपदीं पादभूषिकाम् ।
 एकक्षसीमेकपार्सीं च पृथुपावीमपायिकाम् ॥ ३४ ॥
 अतिमात्रशिरोम्रीवामसिमात्रकुचीवरीम् ।
 अतिमात्राक्षनेत्रां च दीर्घशिखानक्षामपि ॥ ३५ ॥
 म्नासिखां सिंहसुचीं गोमुचीं धरुणीमुषीम् ।
 यथा महारागा सीता क्षिप्रं भवति जानकी ॥ ३६ ॥
 तथा कुकृत राक्षसाः सर्वाः क्षिप्रं समेत्य वा ।
 प्रतिक्रामानुज्येमेव सांम्वान्ताविमेवमैः ॥ ३७ ॥
 भावार्जपत वैदर्ही दृष्टस्योद्यमनेन च ।
 उल्लेखे एकक्षी (एक ओंखवाकी), एककर्णां (एक
 कानवाकी), कर्णप्रासरणा (ध्वनि कानोंसे अपने शरीरको
 डक डेनेवाकी), गोकर्णां (गोक-से कानोंवाकी), हस्तिकर्णां
 (हाथीके समान कानोंवाकी), उंबकर्णां (ध्वनि कानवाकी),
 अर्षिक (बिना कानकी), हस्तिपरी (हाथीके-से पैरों-
 वाकी), बरक्षरी (पक्षोंके समान पैरवाकी), गोपदी
 (गायके समान पैरवाकी), पादभूषिका (केशमुकुट पैरों-
 वाकी), एकक्षी एकपारी (एक पैरवाकी) पृथुपावी
 (मोठे पैरवाकी) अपायिका (बिना पैरोंकी), अतिमात्र-
 शिरोम्रीवा (शिवाङ्क तिर और गार्दनवाकी) अतिमात्र
 कुचीवरी (बहुत बड़े-बड़े खन और पैरवाकी), अतिमन्त्रा-
 सनेत्रा (शिवाङ्क मुल और नेत्रवाकी), दीर्घशिखानक्षा
 (डंभी कीम और नखोंवाकी) अनाधिका (बिना नाक-
 की) सिंहसुची (सिंहके समान मुकवाकी), गोमुची (गोक
 समान मुकवाकी) तथा धरुणीमुची (धरुणीके समान मुक-
 वाकी)—इन सब राक्षसियोंसे कहा—निशाचरियों ! इन
 सब उमाय निककर भयवा अस्मान्-अस्मान् शीघ्र ही देखा प्रवच करो
 क्लिष्टे कनककिशोरी धीता बहुत बल्ल मरे बधमें आ जाय ।

१ प्राचीनकालमें मकराकी वनप्रान्तभूमिके एक एक कक्ष
 कर देवकन स्य बन्धु तथा च वही राक्षसी क्लिष्टे मन्वराके
 कल्पारिनेत्र कल्पप्रोके हाट वन कल्पना जाता वा । कन वही
 क्लिष्टीके माकरव इनेक कल्पतरु कल्प वन घट देवकनको कीर-
 योऽकर कुलोंकी कल्पवारीके लवाका शोण च । उष विमृशित
 शयकल्पवरीके देखते ही शोण वह लोचकर यवमीन दो बन्धे
 वे कि अथ वही क्लिष्टीके कीरकण कण होनेवाक है । इत तरह
 जैसे वह इवअननेत्र विमृशित होनेपर भी मन्वरा कल्पता च
 वही मकर एषव सुन्दर नक्षत्र करते ही क्षिप्रके यवाम्ब प्रतीत
 होता था; वहीके वह कनके धीताउमे नष्ट करवा चरया च ।

अनुकूल-प्रतिकूल उपायोसे, धाम, दान और मेघनीहिसे तथा
रथका भी मय दिखाकर विदेहकुमारी सीताको वधमे अनेकी
प्या करो' ॥ ११-१७३ ॥

इति प्रतिसमादिह्य राक्षसेन्द्रः पुनः पुनः ॥ १८ ॥
काममन्युपवीतात्मा जातकीं प्रति गर्जत ।

राखलियोंको इस प्रकार बारबार आज्ञा देकर काम और
श्रेष्ठसे ब्याकुल हुआ राक्षसराज रावण जानकीकी ओर
देखकर गर्भय करने लगा ॥ १८-३ ॥

उपगम्य ततः क्षिप्रं राक्षसी धाम्यमाश्रिणी ॥ १९ ॥
परिष्वज्य दशग्रीवमिह बचनमप्रवीह ।

उरनन्तर राखलियोंकी स्वामिनी मन्वोदरी तथा
धान्यमाश्रिणी नामवाली राक्षस-कन्या सीज रावणके पास आयी
और उलझ आश्रित करने बोली— ॥ १९-३ ॥

मया ह्रीह महाराज सीतया किं तवामया ॥ ४० ॥
विषर्षया ह्यपमया मानुष्या राक्षसेश्वर ।

'महाशय राक्षसराज ! आप मेरे साथ क्रीडा कीजिये ।
इस कान्तिहीन और हीन मानव-कन्या सीतासे आपको क्या
प्रयोजन है ? ॥ ४-३ ॥

नूनमस्या महाराज न देवा भोगसत्तमान् ॥ ४१ ॥
विश्वरथमरभोष्ठास्तव बाहुयलार्जिष्ठान् ।

'महाशय ! निम्न ही देवभेद प्रजाकीने इसके भाम्यमें
मातके बाहुयलसे उपाकृत सिन्ध एव उत्तम भोग नहीं
किये हैं ॥ ४१-३ ॥

यक्षमां कामयानस्य शरीरमुपतप्यते ॥ ४२ ॥
इच्छतीं कामयानस्य प्रीतिर्मयति शोभता ।

इत्थार्थे श्रीमत्प्राणयके कश्चिच्छेदे अदिशाम्ये सुन्दरकाण्डे शर्बिता सर्गः ॥ २१ ॥
इस प्रकार श्रीरामचन्द्रनिर्मित आर्यभट्टाज्यके सुन्दरकाण्डमे दार्दर्यती सर्ग पूरा हुआ ॥ २२ ॥

'प्राणनाप ! जो स्त्री अपनेसे प्रेम नहीं करती उसकी
कामना करनेवासे पुत्रके शरीरमें केवल ताप ही होता है और
अन्ते प्रति अनुराग रखनेवाली स्त्रीकी कामना करनेवालेको
उत्तम प्रवधता प्राप्त होती है' ॥ ४२-३ ॥

पवमुत्कस्तु राक्षस्या ससुरिक्षसत्ततो यती ।
प्रहसन् मेघसकाशो राक्षसः स न्यपर्वत ॥ ४३ ॥

जब राक्षसीने देवा कहा और उसे वृषी और बह हटा
ले गयी, तब मेघके समान काब और बसवान् राक्षस रावण
घोर-घोरसे हँसता हुआ महककी ओर झूट पड़ा ॥ ४३ ॥

प्रस्थितः स दशग्रीवः कम्पयन्मिथ मेदिनीम् ।
ज्यलद्गास्करसकाश प्रविषश मिघेशनम् ॥ ४४ ॥

अचोक्तादिशसे प्रस्थित होकर वृष्णीको कम्पित-धी
कले हुए दशग्रीवने उदीत व्यंके तदप प्रकाशित होनेवासे
अपने मनमें प्रपेय किया ॥ ४४ ॥

देवगार्ध्वकन्याश्च नागकन्याश्च तास्ततः ।
परिषायं दशग्रीव प्रविशुस्ता गृहोत्तमम् ॥ ४५ ॥

उरनन्तर देवता, गन्धर्व और नागोंकी कन्याएँ भी
रावणको सब आरसे परकर उसके साथ ही उठ उत्तम राव
मनमें लकी गयीं ॥ ४५ ॥

स मैथिलीं धर्मपदमवस्थिता
प्रवेपमानां परिभस्वर्षं रावणया ।

बिहाय सीतां मन्मेन मोहितः
स्यमेव पेटम प्रविषश रावणः ॥ ४६ ॥

इस प्रकार अपने धर्ममें उत्सर्ग, स्थिरचित्त और भयसे
झँपती हुई मिथिलेशकुमारी सीताको परमेश्वर काम्योदित
रावण अपने ही महलमें बधन गया ॥ ४६ ॥

त्रयोविंश सर्ग

राक्षसियोंका सीताजीको समझाना

रायुपत्या मैथिलीं राजा रावणः शत्रुरायणः ।
सर्विदप्य च ततः सत्वा राक्षसीर्भिजगाम ह ॥ १ ॥

रायुभोज्येभ्यः स्मरनेवासा रावण रावण सीताकीसे पूर्वोक्त
बाते कहकर तथा सब राखलियोंको कहें वधमे जानेक लिये
आदेश दे बहोसे निकल गया ॥ १ ॥

निष्पाम्य राक्षसन्द्रे तु पुनः पुनःपुरं गत ।
राक्षस्या भीमरूपास्ता सीता समभिपुत्रुषुः ॥ २ ॥

महाकृपादिशसे निकलकर सब राक्षसराज रावण
अपने पुत्रोंके पास गया तब वहाँ की भयानक रूपवाली

राखलियों की वे सब चारों आश रोड़ी हुई सीताके पास
आयीं ॥ २ ॥

ततः सीतामुपागम्य राक्षसः प्रोपधमूर्च्छिताः ।
परं पश्यया याचा पेटुहीमिदमनुपन् ॥ ३ ॥

विदेहकुमारी सीताके समीप आकर श्रेष्ठसे ब्याकुल हुई उन
राखलियोंके भयानक बहोर बापीदाप उन्म इत प्रकार कहकर
आत्म विषय— ॥ ३ ॥

पौलस्त्यस्य परिहस्य रावणस्य महारमणः ।
दशग्रीवस्य भाषाम्यं सीत न बभूव मयसे ॥ ४ ॥

धीते । इमं पुष्पस्थयीके कुडमें उत्पन्नं हुए सर्वमेव
वशाप्रैव महात्मा रावणकी मार्या बनन्य भी ओई बहुत बड़ी
भाव नहीं समझती ? ॥ ४ ॥

ततस्त्वैकश्रदा नाम राक्षसी धाक्यमग्रवीत् ।
भामन्य श्लोषताज्ञासीतीतां करतलोदरीम् ॥ ५ ॥

तत्प्रजापतीनां पत्न्यां तु चतुर्थोऽयं प्रजापतिः ।
मानसो ब्रह्मणः पुत्रः पुष्पस्थ इति विभुतः ॥ ६ ॥

प्रजापतीनां पत्न्यां तु चतुर्थोऽयं प्रजापतिः ।
मानसो ब्रह्मणः पुत्रः पुष्पस्थ इति विभुतः ॥ ६ ॥

‘निदेहकुमारी । पुष्पस्थकी कंडः प्रजापतियोंमें चौथे हैं
और ब्रह्माकीके मानस पुत्र हैं । इस रूपमें उनकी धर्म
स्मृति है ॥ ६ ॥

पुष्पस्थस्य तु तेजसी महर्षिर्मानसः सुतः ।
मात्रा स विभया नाम प्रजापतिसमप्रभः ॥ ७ ॥

पुष्पस्थकीके मानस पुत्र तेजसी महर्षि विभया हैं । वे
भी प्रजापतिके समान ही प्रकाशित होते हैं ॥ ७ ॥

तस्य पुत्रो विशाकासि रावणः शत्रुपावणः ।
तस्य त्वं राक्षसेन्द्रस्य भार्या भवितुमर्हसि ॥ ८ ॥

मयोक्तं जावसर्षोहि वाक्य किं नानुमन्यसे ।
‘विशाकाशेचने । वे चतुर्थोंके स्मरणके महाराज रावण
उन्हींके पुत्र हैं और समस्त राक्षसोंके राजा हैं । तुम्हें इनकी
मन्त्रां हो खना चाहिये । उन्हींके पुत्रों । मेरी इस कही हुई
बातपर तुम अनुमोदन क्यों नहीं करती ? ॥ ८ ॥

ततो हरिकटा नाम राक्षसी धाक्यमग्रवीत् ॥ ९ ॥
विपुस्य नयने कोपाम्माज्जरसहस्रोक्षणा ।
येन देवाभ्यर्षाश्रयाद् देवराजस्य निर्जिता ॥ १० ॥
तस्य त्वं राक्षसेन्द्रस्य भार्या भवितुमर्हसि ।

इतके बाद हिस्कीके समान भूरे आँखोंवाली हरिकटा
नामकी राक्षसीने कोचते आँसों काढ़कर कटना आरम्भ किया—
भरी । जिन्होंने उँठीसों देवताओं तथा देवराज इन्द्रको भी
पराज कर दिया है उन राक्षसराज रावणकी पत्नी तो तुम्हें
अवश्य बन खना चाहिये ॥ ९ ॥

वीर्योत्सिक्तस्य दूरस्य सभामेव्यनिवर्तितः ।
बहिना धीययुक्तस्य भायात्स्यं किं न क्षिप्यसे ॥ ११ ॥

‘उन्हें अपने परक्रमपर गर्व है । वे मुझसे पीछे न
१ मरीचि, बनि बहिरा पुष्पस्थ पुत्र और कटु—ने
२ काह व्यदित्य बारह बह, व्यक बह और हा व्यभिनी-
कुमार—वे तभी देवराज है ।

इतनेवासे धरतीर हैं । ऐसे पराक्रमरम्यच पुरुषकी मार्या
बनना तुम क्यों नहीं चाहती हो ? ॥ ११ ॥

मियां बहुतमतां भार्या त्यक्त्या राजा महापथः ।
सर्षोसां च महाभाग्या त्वाप्तुमैष्यति रावणः ॥ १२ ॥

समूर्धं स्त्रीसहस्रेण मानारक्षोपशोभितम् ।
मन्तःपुत्रं तनुस्त्वस्य त्वाप्तुमैष्यति रावणः ॥ १३ ॥

‘महागर्भी राजा रावण अपनी अधिक प्रिय और
सम्मानित मार्या मन्दोदरीको भी, जो रावणकी स्वामिनी है,
छोड़कर तुम्हारे पास पधारेंगे । तुम्हारा कितना महान्
सौभाग्य है । वे सहस्रों स्त्रियोंमें से मेरे हुए और अनेक
प्रकारके श्लोभे सुशोभित उष मन्तःपुत्रके छोड़कर तुम्हारे
पास पधारेंगे (मन्तः तुम्हें उनकी मार्यना मान छेनी
चाहिये) ॥ १२ १३ ॥

मम्या तु विकटा नाम राक्षसी धाक्यमग्रवीत् ।
असक्तु भीमशीर्षेण नागा गन्धर्वदानवाः ।
निर्जिताः समरे देव स ते पार्श्वमुपागतः ॥ १४ ॥

तस्य सर्वसमूर्धस्य रावणस्य महात्मनः ।
किमर्थं राक्षसेन्द्रस्य भार्यात्थ मेच्छसेऽधमे ॥ १५ ॥

वरनन्तर विकटा नामवाली बूढ़ी राक्षसीने कहा—
किन्तु ममानक फराकमी उखलपानने नागों, गन्धर्वों और
दानवोंको भी समस्तगणमें बारंबार पराज किया है, वे ही
तुम्हारे पास पधारेंगे । नीच नारी ! उन्हीं सम्पूर्ण ऐश्वर्य
सम्पन्न महामन्त राक्षसराज रावणकी मार्या बननेके लिये तुम्हें
क्यों इच्छा नहीं होती है ? ॥ १४ १५ ॥

ततस्तां तुर्युषी नाम राक्षसी धाक्यमग्रवीत् ।
पस्य सूर्यो न तपति भीतो पस्य स माहता ।
न वाति स्थायतापाहि किं त्वं तस्य न तिष्ठसे ॥ १६ ॥

‘किर उनके तुर्युषी नामवाली राक्षसीने कहा—
‘विशाकाशेचने । किन्तु मेरा मानकर सूर्य तपन छोड़ देता
है और वायुकी गति रुक जाती है, उनके पास तुम क्यों
नहीं रहती ? ॥ १६ ॥

पुष्पवृष्टिं च तरयो मुमुक्षुर्ष्य वै भयात् ।
धौजा मुक्षुधुः पानीयं जलदास्य पदेच्छति ॥ १७ ॥

तस्य नैर्ध्वतपात्रस्य राजपात्रस्य भामिनि ।
किं त्वं न कुक्ष्ये सुखि भार्यायै रावणस्य हि ॥ १८ ॥

‘भामिनि । त्रिनके मयसे इस पूछ बरवाने क्यते हैं
और जो धर इच्छा करते हैं उनकी पर्यंत तथा मेरा बलका
सोता बहाने क्यते हैं । उन्हीं राजाधिराज राक्षसराज रावण-
की मार्या बननेके लिये तुम्हारे मनमें क्यों नहीं विचार
होता है ? ॥ १७-१८ ॥

‘भामिनि । त्रिनके मयसे इस पूछ बरवाने क्यते हैं
और जो धर इच्छा करते हैं उनकी पर्यंत तथा मेरा बलका
सोता बहाने क्यते हैं । उन्हीं राजाधिराज राक्षसराज रावण-
की मार्या बननेके लिये तुम्हारे मनमें क्यों नहीं विचार
होता है ? ॥ १७-१८ ॥

सायु त तस्यतो वेपि कथित सायु भामिनि ।

सायु त तस्यतो वेपि कथित सायु भामिनि ।

गृहाण सुमिते वाच्यमन्यथा न भविष्यति ॥ १९ ॥
 'देवि । मैंने तुम्हें उचस, यथार्थ और शिक्तरी बात

कही है । सुन्दर मुस्कानवाही धीरे । तुम मेरी बात मान जो,
 नहीं तो तुम्हें मारोंते हाथ पेना पड़ेगा ॥ १९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बासमीकथिते आदिकण्डे सुन्दरकाण्डे चतुर्विंशः सर्गः ॥ २३ ॥

एष प्रकार श्रीमत्संस्कृतमिर्मितं मार्गरामायण आदिकण्डे सुन्दरकाण्डे तर्ह्यसौं स्तं पूरा हुय ॥ २३ ॥

चतुर्विंश सर्ग

सीताजीका राक्षसियोंकी बात माननेसे इनकार कर देना तथा राक्षसियोंका उन्हें मारने-काटनेकी धमकी देना

उतः सीतां समस्तास्तु राक्षस्यो विकृतात्मनाः ।

पश्य पश्यानहौंमृच्छुलाद्वाच्यमनयियम् ॥ १ ॥

तदनन्तर विकृतात्म मुच्छुलाकी उन समस्त राक्षसियोंके जो
 कद्रुबन्धन मुननेके पोष्य नहीं थीं, उन धीचासे अभिन्न तथा
 कठोर बचन कहना आरम्भ किया— ॥ १ ॥

किं त्वमन्तःपुरे सीते सर्षभूतमनोरमे ।

महार्हशयनोपेतै न वासमनुमन्यसे ॥ २ ॥

ध्वीते । राक्षसक अन्तःपुर समस्त प्राणियोंके भिन्ने मनोरम
 है । वहाँ बहुमूल्य शय्यार्थे विधी रहती हैं । उक्त अन्तःपुरमें
 तुम्हारा निवास हो, इसके भिन्ने तुम क्यों नहीं अनुमति
 देती ? ॥ २ ॥

मानुषी मानुषस्यैव भार्यास्य बहु मन्यसे ।

मत्पाहुर मनो रामान्नेष जातु भविष्यति ॥ ३ ॥

'तुम मानुषी हो, इसभिन्ने मनुष्यकी मन्नाका जो पद
 है, उन्हीके तुम अधिक महत्त्व देती हो किन्तु अब तुम
 रामकी भोरसे अपना मन इस ओ, अन्यथा कदापि जीवित
 नहीं रहोगी ॥ ३ ॥

वैभोक्त्ययसुभोकार रावण राक्षसेभ्वरम् ।

भर्तारमुपसंगम्य विहरस्य यथासुखम् ॥ ४ ॥

'तुम विभोकीके ऐश्वर्यको मोगनेवाके राक्षसराज रावणको
 पतिरूपमें पाकर आनन्दपूर्वक विहार करो ॥ ४ ॥

मानुषी मानुषं तं तु राममिच्छसि शोभने ।

राग्याद् ध्रष्टमसिद्धार्थं विह्वयन्ममनिभित्ते ॥ ५ ॥

अनिष्ट्य सुन्दरि । तुम मानवी हो, इसीभिन्ने मनुष्य-
 काजीन रामको ही चाहती हो परंतु राम इस समस्त राक्षसे
 का है । उनका कोई मनोरप उच्छ नहीं होता है तथा वे
 उदा व्याकुल रहते हैं ॥ ५ ॥

राक्षसीनां बन्धु भुत्वा सीता पद्मनिमेषया ।

नबाभ्यामधुपूर्णाभ्यामिव पद्मनमप्रवृत्ति ॥ ६ ॥

राक्षसियोंकी ये बातें सुनकर कमजबानी धीकने औंस
 मरे मंत्रोंते उनकी ओर देखकर इस प्रकार कहा— ॥ ६ ॥

पवित्रं लोकाधिपतिरमुदाहरत सगता ।

वैतण्मसि पाप्मं मे किञ्चिदप्रवृत्तिरिति ॥ ७ ॥

'तुम सब मिच्छर मुससे जो यह लोकाधिपति प्रस्ताव
 कर रही हो, तुम्हारा वह पापपूर्ण बचन मेरे हृदयमें एक
 लपके भिन्ने भी नहीं उतर पाता है ॥ ७ ॥

न मानुषी राक्षसस्य भार्या भविष्यति ।

काम आवृत मां सर्षो न करिष्यामि यो वचः ॥ ८ ॥

'एक मानवकन्या किसी राक्षसकी मार्या नहीं हो
 सकती । तुम सब भोग मझे ही मुझे का चाओ किन्तु
 मैं तुम्हारी बात नहीं मान सकती ॥ ८ ॥

वीनो वा राग्यहीनो वा यो मे भर्ता स मे गुरुः ।

त नित्यमनुरकासि यथा सूर्यं सुवर्चसा ॥ ९ ॥

मेरे पति हीन हों अथवा राग्यहीन—वे ही मेरे स्वामी
 हैं, वे ही मेरे गुरु हैं, मैं तथा ऊर्हमि अनुरक्त हूँ और
 रहूंगी । जैसे सुवर्चस्य सूर्यमें अनुरक्त रहती हैं ॥ ९ ॥

यथा शशी महाभागा शर्कं समुपतिष्ठति ।

मरुपन्थी वसिष्ठं च रोहिणी शशिन यथा ॥ १० ॥

लोपासुद्रा यथागस्त्यं सुकन्या ज्येष्वन यथा ।

सावित्री सत्यवन्तं च कपिष्ठं श्रीमती यथा ॥ ११ ॥

सीतासं मरुपन्थीव केशिनी सगरं यथा ।

नैषधं दम्पन्तीप मैत्री पतिमनुमता ॥ १२ ॥

तथाहमिक्वाकुपरं रामं पतिमनुमता ।

'जैसे महाभाग शशी इन्द्रकी देवाने उपसिक्त होती हैं,
 जैसे देवी मरुपन्थी महर्षि बरिष्ठमें, रोहिणी चन्द्रमामें, जोष
 मुद्रा भगवत्पमें, सुकन्या ज्येष्वनमें, सावित्री सत्यवन्तमें,
 श्रीमती कपिष्ठमें मरुपन्थी सीतासंमें, केशिनी सगरमें तथा
 श्रीमकुपारी दम्पन्ती अपने पति निरपन्तरेण नरमें अनुपग
 रहती हैं उन्ही प्रकार मैं भी अपने पतिदेव इत्थाकुबंध
 शिरोमसि भगवान् श्रीराममें अनुरक्त हूँ ॥ १-१२ ॥

सीताया धर्यनं भुत्वा राक्षस्यः क्रोधमृच्छिताः ।

भरसंपन्ति स पक्षयैर्वाप्ये रायणस्योदिताः ॥ १३ ॥

ध्वीकथी बात सुनकर राक्षसियोंके क्रोधकी सीमान पड़ी । ये
 रायणकी आज्ञाके अनुवार कठोर बचनोंद्वारा उन्हें धमकाने
 कर्मी ॥ १३ ॥

अयलीतः स नियाक्यो हनुमार्निनापाह्वम ।

सीतां संतर्जयन्तीस्ता राक्षसीरग्न्योवृक्षसिः ॥ १४ ॥

अथोक वृषभे जुषपाप छिप बैठे हुए भानर हनुमान्भी
 छीलाके पदकारती हुई राक्षसियोंकी बातें सुनते रहे ॥ १४ ॥
 ताम्रभिष्कम्प्य संरुद्धा जेपमानां समस्ततः ।

भूर्वां सखिखिजुर्वीतान् प्रलम्बान् वृषान्कच्छदान् ॥ १५ ॥

ये सब राक्षसियों कुपित हो वहाँ कौपती हुई छीलापर
 चारों भांसे दूट पड़ी और अपने कंठे एवं चमकीके ओठों-
 के बारंबार चटने लगी ॥ १५ ॥

ऊचुञ्च परमकुन्त्याः प्रगृह्याशु परम्वधात् ।

मेयमर्हति भर्तार राधण्यं राक्षसाधिपम् ॥ १६ ॥

उनका श्रेय बहुत बढ़ा हुआ था । वे छत्रकी-छत्र
 दुरंत हाथोंमें फरसे छेकर बोक उठीं—एव उधरउधर राज्य
 के पतिरूपमें जाने योग्य रहे ही नहीं ॥ १६ ॥

सा भस्वर्षमाणा भीमाभी राक्षसीभिर्वराहना ।

सा वाष्पमपमार्ज्ज्वती शिवाद्यां तामुपागमत् ॥ १७ ॥

उन ममानक राक्षसियोंके बारबार बौदने और घमकने-
 पर सर्वाङ्गदुःखी बनगयी छीला अपने मौल्य पौकरी हुई
 उठी अथाक वृषके नीच चली भायी (कियेके ऊपर हनुमन्
 की छिये बैठे थे) ॥ १७ ॥

ततस्तां शिवाद्यां छीला राक्षसीभिः समावृत्वा ।

अभिगम्य शिवालाक्षी तस्यौ शोकपरिप्लुता ॥ १८ ॥

शिवाककोचना वैदेही शोक-सागमें डूबी हुई थी ।
 इतलिये वहाँ जुषपाप बैठ गयी । किंतु उन राक्षसियोंमें
 वहाँ भी आकर उगहें चारों ओरसे घेर लिया ॥ १८ ॥

तां कृपां वीनवदनां मस्मिनाम्बरपासिनीम् ।

भार्षसांचक्रिरे भीमा राक्षस्यस्ताः समस्ततः ॥ १९ ॥

वे बहुत ही दुर्बल हो गयी थीं । उनके मुखपर रीकटा
 छा रही थी और उन्हींमें मस्मिना यज्ञ पदन रक्ता था । उठ
 सबसामे उन घनघनदिन्दीकी चारों ओर खड़ी हुई
 ममानक राक्षसियोंने फिर घमकना आरम्भ किया ॥ १९ ॥

ततस्तु विनता नाम राक्षसी भीमवृशाना ।

अग्रवीत् कुपिताश्चरा कराळा निजतोवरी ॥ २० ॥

तदनन्तर विनता नामकी राक्षसी आगे यदी । वह रेलनेमें
 बढ़ी अग्रवरी थी । उसकी दह श्रेयश्री शक्य प्रथिमा घन
 पइती थी । उठ त्रिकण्ड राक्षसके पद भीतरकी ओर भेंसे
 हुए थे । पद बोली— ॥ २ ॥

सीत पयातमतायत् भृगुः स्नहा प्रवृशितः ।

सपत्रातिहृतं भद्रं ध्यसनायापकल्पत ॥ २१ ॥

श्रीवत् । गूने अपने पतिके प्रति चित्तव स्नेह दिखाया
 दे इत्य ही बहुत रहे । भद्र । भक्ति कल्प छा तब ब्रह्म
 गुणका ही चरण हस्त दे ॥ २१ ॥

परिमुद्यसि भद्रं त मानुस्वस्तं कृता विधिः ।

ममापि तु यद्यः पथ्यं श्रुयस्याः कुरु मेधिति ॥ २२ ॥

मिथिष्ठेऽकुमारी । तुनहारा मया हो । मैं तुम्हें बहुत
 उग्र हूँ क्योंकि तुमने मानवोचित शिवाचारका अर्थ
 तब पाकन किया है । अब मैं भी तुम्हारे हितके लिये ब
 बल करती हूँ उधर भान रो—उधर भीम पक
 कये ॥ २२ ॥

राधय भद्र भर्तार भर्तार सर्वरक्षसाम् ।

विक्रमस्तमापतस्त च सुरेशमिव वासवम् ॥ २३ ॥

धमका राक्षसोंका मरण-योषण करनेवाले महाप
 राजकी तुम अपना पति लीकर कर को । वे देवरा
 इन्द्रके उमान बड़े पराक्रमी तथा रूपवान् हैं ॥ २३ ॥

वक्षिण त्पायशील च सद्यस्य प्रियवादिनम् ।

मातुषं कृपण्य रामं त्वपत्त्वा राधजमाश्रय ॥ २४ ॥

वीन-हीन मनुष्य रामका परित्याग करके समेत प्रिय
 वान बोधनेवाले, उदार और स्वाधी राजका आश्रय
 को ॥ २४ ॥

विष्ण्वाङ्गनागा वैदेहि विष्ण्वाभरणमूषिता ।

अद्यप्रभृति लोकात्तानां सर्वेषामीश्वरी भव ॥ २५ ॥

विदेहराजकुमारी । तुम आकरे उमका कोकोकी
 स्वामिनी बन जाओ और दिव्य अङ्गना तथा दिव्य आभूषण
 धारण करो ॥ २५ ॥

अग्नेः स्नाहा यथा वैवी शची वैश्वस्य शोभने ।

किं ते रामेण वैदेहि कृपणेन गतायुषा ॥ २६ ॥

शोभने । जेते अग्निकी प्रिय पत्नी स्नाहा और इन्द्रकी
 प्राणवस्त्रमा शची हैं, उठी प्रकार तुम राधकी प्रेयसी बन
 जाओ । विदेहकुमारी । भीरम तो हीन हैं । उनकी आयु
 भी अथ समाप्त हो चली है । उनसे तुम्हें क्या मिलेगा ! ॥

पठतुक्तं च म वाफय यदि त्वं न करिष्यसि ।

अस्मिन् मुहूर्ते सर्वोस्त्वां भक्षयिष्यामिहे वयम् ॥ २७ ॥

अदि तुम मेरी करी हुई इत बातको नहीं मानोगी तो
 हम सब मिलकर तुम्हें इसी मुहूर्तमें अपना अहार बना
 देंगे ॥ २७ ॥

धम्या तु विकटा नाम सम्भमानपयोधरा ।

अग्रवीत् कुपिता सीतां मुष्टिमुद्यम्य तजती ॥ २८ ॥

तदनन्तर वृती राक्षसी धमने आयी । उसके संवे-
 धान छटक रहे थे । उतका नाम विकटा था । वह कुपित हो
 मुक्ता तनकर बौटती हुई छीलात बोली— ॥ २८ ॥

पङ्कपप्रतिक्रियाणि यचनानि सुदुमत्त ।

अनुभयशाम्भुनृपाद्य साङ्गानि तप मैथिलि ॥ २९ ॥

अन्यत लोकी बुदिवाले मिथिष्ठेऽकुमारी । अतक
 हमकोगोंने अपने कामका लभ्यवचन तुमपर दया भा जानेके
 कारण दुःखारी बहुत ही अनुचित बातें कह ली हैं ॥ २९ ॥

न च नः कुठरे वाक्यं हितं क्वचिदुपस्कृतम् ।
 धार्मीकानि सुमुद्रस्य पारमार्थ्यैर्दुरासुधम् ॥ ३० ॥
 रावणान्तापुःरे प्रविष्टां चान्तिं मैथिलि ।
 रावणस्य युद्धे क्वा मस्माभिस्त्वभिरपसिता ॥ ३१ ॥
 (उत्तेपर मी तुम हमारी बात नहीं मान्ती हो । हमने तुम्हारे हितके लिये ही समर्पित किया ही था । देखो, तुम्हें सुमुद्रके इस पार के आभा गया है, यहाँ पहुँचना दूरोंके लिये अत्यन्त कठिन है । यहाँ भी रावणके म्यानक मन्त्रपुरमें तुम आकर रक्षणी गयी हो । मिथिलेचकुमारी । यह रक्षो, रावणके पत्नी केर हो और हम जैसी रक्षकियों तुम्हारी चौकसी कर रही हैं ॥ ३१ ॥

मत्नां शक्ताः परित्राणुमपि स्यात्सात् पुरवत् ।
 कुठरे हितवादिभ्यो बध्नन् मम मैथिलि ॥ ३२ ॥
 (मैथिलि । साक्षात् इन्द्र भी यहाँ तुम्हारी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हो सकते । अतः मेरा करना मन्तो, मैं तुम्हारे शिष्टी बात बता रही हूँ ॥ ३२ ॥

यजमभुनिपातेन त्यज्य शोकममर्षकम् ।
 भद्रं प्रीतिं प्रहृष्टं च त्यजन्ती तित्थवैम्यताम् ॥ ३३ ॥
 (मौल्य रहानेसे कुछ होने-शनेनाका नहीं है । यह अर्षक शोक त्याग दो । उदा ज्ञानी रहनेवाली वीनताको पूर करके अपने हृदयमें प्रकन्ता और उल्कावक्रो स्थान दो ॥

सौत राक्षसराजेन परिश्रीष्टं पद्यासुजम् ।
 शानीमिहे पद्या भीष्ट स्त्रीणां यौवनमभुजम् ॥ ३४ ॥
 (सौते । राक्षसराज रावणके साथ सुखपूर्वक श्रीबाहिरार को । भीष्ट । हम सभी स्त्रियों जानती हैं कि नारियोंका यौवन दिफनेवाला नहीं हाया ॥ ३४ ॥

पावन् ते व्यतिक्रमेत् तावत् सुखमवाप्नुहि ।
 यथाभानि च रम्याणि पर्यतोपवनानि च ॥ ३५ ॥
 सद्य राक्षसराजेन चर त्थं मर्दिरेक्षणे ।
 सिसहस्रानि तद्वि धरो स्थास्यन्ति सुन्दरि ॥ ३६ ॥
 (यद्यत्क तुम्हारा यौवन नहीं ठक थाता तबतक सुख योग को । मरमच बना देनेवाको नेत्रोंके घोमा पानेवाली कुमारी । तुम राक्षसराज रावणके साथ सुखक रमणीय उद्यानों और पक्षीय उपवनोमें बिहार करो । देखि । ऐसा करनेसे अस्त्र शिरो वद्य तुम्हारी आंखके अधीन रहए ॥ ३५ ३६ ॥

पञ्च भद्रं भर्तारं भर्तारं स्यरक्षसाम् ।
 कथादय वा ते हृदय भक्षयिष्यामि मैथिलि ॥ ३७ ॥
 यदि म भ्याह्वत वाक्यं न यथायत् करिष्यासि ।

महाराज रावण समस्त राक्षसोंका भय-प्रेरण करनेवाला थावे है । तुम उन्हें भक्षना प्रति बना था । मैथिलि । पार रक्षो मैंने आ बात कही है, यदि उतका ठीक ठीक

पावन नहीं करोगी तो मैं अभी तुम्हारा कठेना निकलकर लाऊँगी ॥ ३७ ॥
 ततश्चाप्योदरी नाम राक्षसी मूर्धन्या ॥ ३८ ॥
 आभयन्ती महच्छूळमिदं धवनमप्रधीत् ।

अथ चण्डोदरी नामवाही राक्षसीकी बारी भायी ।
 उदकी दक्षिणे ही मूला टपकती थी । उदने विद्याय विद्याय सुगाते हुए यह बात कही— ॥ ३८ ॥
 इमां हरिणशायासीं प्राञ्चोःकःपपयोधराम् ॥ ३९ ॥
 रावणोऽहतां हृदा वीर्यो मे महालयम् ।
 यच्छूळीह महत् शूर्वाहृदय च सदाभनम् ॥ ४० ॥
 गात्राप्यपि तथा शीर्षं आदेयमिति मे मतिः ।

प्याराज रावण जब इसे हरकर छ आये थे, उस समय ममके नारे यह घर-घर कौप रही थी, जिससे इसके दोनों धन हिस रहे थे । उस दिन इस मृगशावकनयनी मानव कन्याको देखकर मेरे हृदयमें यह बनी भारी इन्डा आयात् हुई—इसके भिन्न, सिस्वी, विद्याय कः-सख, हृदय, उसके आचारस्थान, अम्यान्त मङ्ग तथा शिरो में आ आये । इस समय मैं नेरा ऐसा ही विचार है ॥ ३९ ४० ॥

ततस्तु प्रपञ्चा नाम राक्षसी वाक्यमप्रधीत् ॥ ४१ ॥
 कण्ठमया नृशास्ययाः पीडयामः किमाशते ।
 निषेधतां ततो रात्रौ मानुषी सा मृतेति ह ॥ ४२ ॥
 नाम कञ्चन स्वदेहः आदेतेति स धृष्यति ।

तदनन्तर प्रपञ्चा नामक राक्षसी योक्त उठी—फिर तो हमजोग इस मूर हृदय कीटाका मस भोट हैं । अब पुपपाय देते रहनेकी क्या आनस्पन्ता है । इसे मारकर महाराजको सूचना दे ही जाय कि वह मयनवकन्या मर गयी । इसमें कोई संदेह नहीं कि इस उमापाको सुनकर महाराज यह आका दे रेंगे कि तुम सब भोग उठे ला आओ ॥ ४१ ४२ ॥

ततस्त्वजामुखी नाम राक्षसी वाक्यमप्रधीत् ॥ ४३ ॥
 विद्यास्येमां ततः सपान् समान् कुकृत पिण्डकान् ।
 विभज्याम ततः सर्वां पिशाधो मे न रोषत ॥ ४४ ॥
 पेयमामोयतां क्षिप्रं मादत्तं च पिपिथ बहु ।

तत्पश्चात् राक्षसी अजामुखीने क्वा—(तुसे तो व्यर्थकर बाह्यविचार अच्छा नहीं लगता । आओ, पहले इसे कटकर इसके बहुतसे टुकड़े कर डालें । वे सभी टुकड़े बराबर माप-टोकेके होने चाहिये । फिर उन टुकड़ोंका हमजोग मापके बोट डेगी । साथ ही नाना प्रकारके पेय-शामरी तथा दूध-मज्जा आदि भी पीम ही प्रचुर मात्रामें मँग की जाय ॥

ततः शूर्पणखा नाम राक्षसी वाक्यमप्रधीत् ॥ ४५ ॥
 अजामुख्या यनुक्तं वै तद्वच मम राषत ।
 सुरा शानीयता क्षिप्रं सपन्नोऽप्यिवाशिनी ॥ ४६ ॥
 मानुष मांसमाश्वाय नृत्पामाऽप्य निकुम्भिलाम् ।

उत्तमर राघवी शर्पणखाने कदा—(अश्वमुत्तमे चो
वात कही है; वही मुझे भी भन्धी छाती है। समस्त घोड़ोंके
नाह कर देनेवासी सुराको भी क्षीम मैंया छो। उसके साथ
मनुष्यके संशय बाल्यावन करके हम निकुम्भिक देवीके
सामने नृत्य करेंगी ॥ ४६ ४७ ॥

इत्यार्षे भीमवृत्तामात्रेण कालीश्रीने आदिकाम्ये सुन्दरकाम्ये चतुर्विंशः सर्गाः ॥ १७ ॥
इस प्रकार श्रीकालीश्रीनिर्मित शर्पणप्रत्यक्ष ऋषिकाम्येके सुन्दरकाम्येमें चौबीसवीं सर्ग पूरा हुआ ॥ २४ ॥

पञ्चविंश सर्ग

राक्षसियोंकी बात माननेसे इन्द्रकर करके शोक-सतत सीताका विलाप करना

अथ तासां वदन्तीना एतच्च दारुण वदुः ।
पक्षसीनामसौम्याणां वदोच्च जगत्कामया ॥ १ ॥

जब वे हूँ राक्षसियों इस प्रकारकी बहुत-सी फटोर
एवं झूठापूर्व बातें कह रही थीं, उस समय जनकनन्दिनी
सीता अर्थात् हो-शोक से रही थीं ॥ १ ॥

एवमुक्त्वा तु वैवेची पक्षसीभिर्नवसिन्धी ।
बबाह परमवस्ता वाच्यगद्गदया गिरा ॥ २ ॥

उन राक्षसियोंके इस प्रकार कहनेपर अत्यन्त भयभीत
हुई मनसिनी विदेहवदकुमारी सीता नेत्रोंसे आँसु बहाती
गद्गद बाधोंमें बोली— ॥ २ ॥

न मनुषी पक्षसस्य भार्या भविष्यमर्हति ।
काम यावत् मां सर्वा न करिष्यामि यो क्वचः ॥ ३ ॥

पक्षसियों। मनुष्यकी कन्या कभी राक्षसी मार्या
नहीं हो सकती। दुम्हारा भी चाहे तो तुम सब लोग मिच्छकर
मुझे ब्या ब्या; परंतु मैं दुम्हारी बात नहीं मर्गेगी ॥ ३ ॥

सा पक्षसीमध्यगता सीता सुरसुतोपमा ।
न शर्म लेभे सोकार्ता राघवेमथ भर्त्सिता ॥ ४ ॥

राक्षसियोंके शीर्षमें बैठी हुई देवकन्याके समान सुन्दरी
सीता समयके द्वारा बगदारी जानेके कारण शोकसे बातें
ही होकर चैन नहीं पा रही थीं ॥ ४ ॥

येपते क्षाधिकं सीता विशास्तीबाहूमारमनः ।
बभे सूर्यपरिभ्रष्टा मृगी कोकैरिभार्विता ॥ ५ ॥

जैसे बतनें अपने पृथक् विपुली हुई मृगी भेदियोंसे
पीड़ित होकर भयके मारे कँप रही हो ठरी प्रकार छिटा
बोर-बोरसे कँप रही थीं और इस तरह शिकुड़ी जा रही थीं
मनो अपने अहोंमें ही समा जाँवेंगी ॥ ५ ॥

सात्वशोकस्य विपुलां शाबामात्मस्य पुषित्याम् ।
विस्तयामास शोकैव भर्तारं भग्नमानसा ॥ ६ ॥

उनका मनोरथ मज्ज हो गया था। वे वृथा-सी होकर
अधोक्ष्णकी सिन्धी हुई एक विशाख शालात्र वहात के
शोकसे पीड़ित हो अपने पतिदेवका विन्तन करने लगीं ॥

एव निर्भर्त्स्यमाना सा सीता सुरसुतोपमा ।
राक्षसीभिर्विकृपाभिर्चैर्मनुष्यस्य रोदिति ॥ ७ ॥
उन विकृण्ड रूपवासी राक्षसियोंके द्वारा इस
बगदारी जानेपर देवकन्याके समान सुन्दरी सीता वैर्ष
कर झूट-झूटकर रोने लगीं ॥ ७ ॥

सा स्नापयन्ती विपुली क्षत्रौ मेघज्जलकविः ।
विस्तपन्ती न शोकस्य तद्दान्तमविगच्छति ॥ ७ ॥

आँसुओंके प्रवाहसे अपने खूब ठण्डेमें अति
करती हुई वे जिनमें लूनी थीं और उस समय शोकम
नहीं पा रही थीं ॥ ७ ॥

सा वेपमाला पतिता प्रवाते कद्दली यथा ।
पक्षसीनां भयवस्ता विषयवृत्ताभवात् ॥ ८ ॥

प्रचण्ड बासुके चढनेपर कम्पित होकर गिरे हुए के
पृथ्वी मॉशि से पक्षसियोंके भयसे बसा हो पृथ्वीपर
पड़ी। उस समय उनके मुखकी कन्ति पीकी पड़ गयी।

तस्याः सा दीर्घबहुला वेपमत्याः सीतया तथा ।
दृष्टेः करिषता देवी व्यसिद्धीव परिसर्पती ॥ ९ ॥

उस देवमें कौन्ती हुई सीताकी विशाख एवं पत्नी
देवी भी कम्पित हो रही थी, इसलिये वह रेंगती हुई सर्पि
समान दिखती होती थी ॥ ९ ॥

सा मिश्रसन्ती शोकार्ता कोपोपहतधत्ता ।
मार्ता व्यच्छब्दवृत्ति मैथिली विस्मयाप च ॥ १० ॥

वे शोकसे पीड़ित होकर लंबी लोंसे लीच रही थीं
श्रेष्ठसे बने-व-ही होकर भावमयसे आँसु बहा रही थीं।
समय सिधेच्छाकुमारी इस प्रकार विहाप करने लगीं— ॥ १० ॥

सा रामेति च तुभ्कार्ता हा पुनर्बन्धयेति च ।
हा श्वश्रुर्मम कौशलस्ये हा सुमिमेति भार्मिणी ॥ ११ ॥

हा राम। हा बन्धन। हा मेरी छद्म कौलस्ये
हा आनें सुमिने। हा बर्तार देहा कहकर हुआसे पी
हुई आनिनी सीता रोने बिबकने लगीं ॥ ११ ॥

लोकमबाहः सत्योऽयं पण्डितैः समुदाहृतः ।
गच्छते दुर्लभो मृत्युः क्षिपया वा पुण्यस्य वा ॥ १२ ॥

हाय। पण्डितोंने यह कोकोठि ठीक ही कही है।
किसी भी ली या पुण्यकी मृत्यु बिना समय अ
नहीं होती ॥ १२ ॥

पत्राहमाभिः कृपाभी राक्षसीभिरिहाविंशता ।
 श्रीवामि होना रामेण मुहूर्तमपि कुत्रिता ॥ १३ ॥
 चभी तो मैं भीरामके दर्शनते वञ्चित तथा इन शूर
 यक्षिणोहाय पीडित होनेपर भी नहीं मुहूर्तमर भी श्री
 रही हूँ ॥ १३ ॥

पपाह्यपुण्या हृपण्या धिनशिष्याम्यनाद्ययत् ।
 समुद्रमथये नौ पूर्वा वायुधेगैरिवाहता ॥ १४ ॥

जैसे पूर्वजन्ममें बहुत योग्य पुण्य किन्ने थे, इसीझिसे
 इस दिन श्यामें पकड़र मैं अनापकी भौंठि मारी थाऊँगी ।
 जैसे समुद्रके भीतर सामानसे मरी हुई नौका बालुके वेगसे
 भाएव हो डूब जाती है उसी प्रकार मैं भी नष्ट हो जाऊँगी ॥

भर्तार तमपद्मयन्ती राक्षसीयशामागता ।
 सीतामि खलु शोकेन फूल तोयहर्तं यथा ॥ १५ ॥

युद्धे पतिवैयके दर्शन नहीं हो रहे हैं । मैं इन यक्षिणों
 के संग्रहमें फँस गयी हूँ और पानीके थपेड़ोंसे आहत हो
 क्युंते हुए फूलोंके समान शोकसे क्षीण होती जा रही हूँ ॥

तं पप्रक्षपत्राक्षर सिंहादिक्कास्तगामिमम् ।
 भस्याः पद्मयन्ति मे माद्य कृतकं मियवादिमम् ॥ १६ ॥

आज बिन झोंकोंके सिंहेके समान पराक्ष्मी और सिंह
 की सी चोखानेके मेरे कमठरकभञ्जन कृतक और मियवादी
 मानवपके दर्शन हो रहे हैं, वे भय्य हैं ॥ १६ ॥

इत्यर्थे श्रीमद्गामयणे कवमीकीये आधिकार्ये सुन्दरकाण्डे पद्मविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

इस प्रकार श्रीमद्भक्तिनिर्मित भार्गवमात्मन आदिकात्मके सुन्दरकाण्डमें पद्मविंश सर्व पूरा हुआ ॥ २५ ॥

पद्मविंश सर्ग

सीताका करुण-विलाप तथा अपने प्राणोंको त्याग देनेका निश्चय करना

प्रसक्ताधुमुष्ठी त्वेष सुवती जनक्यारमजा ।
 मधोगतमुष्ठी बाळा विजन्तुमुपककम्ने ॥ १ ॥
 उममचय प्रमत्तेष भ्रान्तचित्तेश शोचती ।
 यथावृथा किशोरीय विधेपन्ती मदीतकडे ॥ २ ॥

कानकनदिनो सीताके मुखपर मौडुओंकी भास बह
 यी थी । उन्होंने भरतय मुख नीचेकी ओर हाका किया
 था । वे उपरुंके बाते कहती हुए देखी ब्रह्म पक्षी थीं मन्तो
 कर्मच हो गयीं हैं—उनपर भूल उबार हो गया हो भयवा
 नित बह जानेसे पनासोका-सा प्रक्षय कर रही हैं भयवा
 शिष्यन आदिके कारण उनका चित्त भ्रान्त हो गया हो ।
 वे यथावृथा पक्षीपर खेटी हुई बहोकीके समान पक्षी
 परो कृतयग रही थीं । उठीं भयवासे कर्महरका सीताने
 इन प्रकार बिलाप कला आरम्भ किया— ॥ १ ॥ २ ॥

रायवस्य प्रमत्तस्य रक्षसा कामकपिणा ।

सर्वथा तेन हीनाया रामेण विदितारमना ।
 तीक्ष्ण विपमिवासाद्य दुर्लेभ मम जीवमम् ॥ १७ ॥

‘इन आत्मजन्ती भगवान् भीरामसे विद्युत्कर मेरा
 नीवित रात उठी उरख सनया हुआ है, जैसे तेव विपका
 पान करके किसीका भी नीन अत्यन्त कठिन हो जाता है ॥

कीवद्य तु महापापं मया वेदान्तरे कृतम् ।
 तेनेर्वा प्राप्यते घोरं महानुखं सुषारणम् ॥ १८ ॥

‘क्या नहीं, मैंने पूर्व-जन्ममें दुसरे शरीरसे कैसा महान्
 पाप किया था, किन्ते यह अत्यन्त कठोर घोर और मशह
 दुःख मुझे प्राप्त हुआ है ॥ १८ ॥

अविहित त्यक्तुमिच्छामि शोकेन महता घृता ।
 राक्षसीभिश्च रक्षन्त्या रामो मासाद्यते मया ॥ १९ ॥

इन यक्षिणोंके संरक्षकों रहकर तो मैं अपने प्राणायम
 भीरामको कदापि नहीं पा सकती; इसझिसे महान् शोकेसे
 फिर यमी हूँ और इससे लग आकर अपने जीवनका अन्त
 कर देना चाहती हूँ ॥ १९ ॥

धिगस्तु खलु मालुप्यं धिगस्तु परत्यक्षयताम् ।
 न शक्यं यत् परित्यक्तुमारमकच्छन्नेन जीवितम् ॥ २० ॥

इस मानव-जीवन और परतन्त्रताको धिक्कार है, जहाँ
 अपनी इच्छाके अनुसार प्राणोंका परित्याग भी नहीं किया
 जा सकता ॥ २ ॥

रायणेन प्रमथ्याहमाणीता श्लोशती यखाल् ॥ ३ ॥

हाय । इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले यक्षस
 मारीचके हाय बह समुत्पथकी दूर हटा दिने गये और मेरी
 ओरसे भगवाधान हा गये उठ अवसामें यवय मुझ रोटी
 बिरकाठी हुईं भयवाको बहूर्सक उठाकर नहीं ले
 भाया ॥ ३ ॥

राक्षसीयशामापसा भरस्थमाजा च हादपम् ।
 विन्तयन्ती सुदुःखातां नार्हं अविदितुमुत्सह ॥ ४ ॥

मर मैं यक्षिणोंके बतमें पक्षी हूँ और इनकी कटार
 पदकियों दुन्ती एवं खती हूँ । ऐसी श्यामें अत्यन्त दुःखसे
 मारत एवं विनित होकर मैं काचित नहीं रह सकती ॥ ४ ॥

नहि म जीवितमायों निवार्यैर्न च भूपणैः ।
 वसन्त्या राक्षसीमथे विना राम महारथम् ॥ ५ ॥

‘महाराषी भीरामके बिना यक्षिणोंके भीष्ममें रहकर

मुझे न तो जीवनसे कोई प्रयोजन है, न पनकी आवश्यकता है और न आभूषणोंसे ही कोई काम है ॥ ५ ॥

अहमसारमिदं नूनमद्यथाप्यज्वरामरम् ।
हृदयं मम येनेवं न दुःखेन विधीयते ॥ ६ ॥

‘अहम’ ही मेरा वह हृदय अंदरेका बना हुआ है अथवा अजर-अमर है बिनाइ इत महान् दुःखमें पड़कर भी वह फटता नहीं है ॥ ६ ॥

धिष्णामवार्थामसतीं याहं तंन विद्या कृता ।
मुहूर्तमपि जीवामि जीवित पावर्जीविका ॥ ७ ॥

‘मैं’ वही ही अनार्य और अशुद्ध हूँ, मुझे विचार है, जो उनसे अन्ना शोकर मैं एक मुहूर्त भी इस पानी पीकरनेके कारण किने हूँ । अब तो यह जीवन केवल कुछ देनेके लिये ही है ॥ ७ ॥

अरण्येनापि सज्येन न स्पृशेय मिशाधरम् ।
रावणं किं पुनरहं कामयेयं विगर्हितम् ॥ ८ ॥

‘उत् अनेकनिमित्त निष्कार रावणको तो मैं कैसे देखते भी नहीं बूँ उषती, फिर उठे चाहनेको तो बात ही क्या है ॥ ८ ॥

मस्यास्थान न ज्ञानाति मह्यमान भारतना कुन्तम् ।
यो नृशंसलभावेन मां मार्थयितुमिच्छति ॥ ९ ॥

‘यह रावण अपने कूर स्वभावके कारण न तो मेरे हृत्कारपर ध्यान देता है, न अपने महत्त्वको समझता है और न अपने कुबुद्धी प्रतिष्ठाका ही निवार करता है । बारबार मुझे मास करनेकी ही इच्छा करता है ॥ ९ ॥

क्षिप्रा भिष्ठा प्रभिष्ठा वाहीता पाश्री मन्वीपिता ।
रावणं नोपतिष्ठेय किं प्रकल्पन वक्षिरम् ॥ १० ॥

‘प्राक्षिणो । दुम्हारे देखकर बक्राह करनेसे क्या काम ? तुम मुझे छोड़ो, पीछे दुकने-दुकने कर जाओ, अम्हमें सेक दो अथवा कर्षया बक्राकर मझा कर जाओ तो भी मैं रावणके पास नहीं फटक उषती ॥ १० ॥

क्यातः प्राहः कृतबद्ध धातुकोशः प्राधया ।
सर्वशुचो निरनुकोशां हाहं मझाम्यससपात् ॥ ११ ॥

भीरपुनायको विभक्तिमात् शानी कृतः, सपाचरी और परम बधाह्र है तथापि मुझे संदेह हो रहा है कि कहीं वे मेरे अम्हके नष्ट हो जानेसे मेरे प्रति निर्दय हो नहीं हो गये ॥ ११ ॥

राक्षसाणां जनस्थान सज्येनापि अनुर्धवा ।
पक्ष्णैव निरस्तामि स मां किं नाभिपद्यते ॥ १२ ॥

अन्वया किन्होंने बनलानमें अकेले ही चौदह हज़र राक्षसोंको कम्बके घरमें बांध दिया वे मेरे पास क्यों नहीं आ रहे हैं ॥ १२ ॥

निकृशा रावणेनाहमस्यधीर्येण रक्षसा ।

समर्थः बालु मे भर्ता रावणं हन्तुमाहवे ॥ १३ ॥

‘इस अस्य बन्नाके राक्षस रावणने मुझे कैद कर रक्ता है । निम्न ही मेरे परिवेक तमउत्तममें इस रावणका बंध करनेमें तमर्थ हैं ॥ १३ ॥

विप्राधो वृषककरण्ये येन राक्षसपुङ्गवा ।
रणे रामेण निहता स मां किं नाभिपद्यत ॥ १४ ॥

‘किन् श्रीगमने वृषकरण्यके भीतर उत्तलधिमेषि विप्राको पुद्गमें मार डाला था, वे मेरी रक्षा करनेके लिये नहीं क्यों नहीं आ रहे हैं ? ॥ १४ ॥

कामं मध्ये समुद्रस्य जङ्घेयं दुष्प्राधयना ।
न तु राक्षसबाणानां गतिरौषो भविष्यति ॥ १५ ॥

‘यह जङ्घा समुद्रके बीचमें कहीं है, अतः किसी वृत्तेके लिये नहीं आक्रमण करना मझे ही कठिन हो । किन् भीरपुनायकोके बाणोंकी गति यहाँ भी कुम्भित नहीं हो उषती ॥ १५ ॥

किं तु तत् करण्य येन रामो बह्वराक्रमः ।
रक्षसापहतां भार्यामिदं यो नाभिपद्यत ॥ १६ ॥

‘यह कौन-सा करण्य है बिनाइ बाधित होकर सुरङ्ग पराक्रमी भीरम उत्तलद्वारा अण्डित हुई अपनी प्राणवली लीलाके मुझनेके लिये नहीं आ रहे हैं ॥ १६ ॥

इहस्तां मां न जानीते शङ्के अक्षयपूर्वजा ।
जाबन्धि स तेकसी धर्यया मर्षयिष्यति ॥ १७ ॥

‘मुझे तो संदेह होता है कि अक्षयकीके श्रेष्ठ भ्राता भीरमकरणीको मेरे इस जङ्घामें होनेका पता ही नहीं है । मेरे यहाँ होनेकी बात यदि वे जानते होते तो उनके-बेसा तेकसी पुरुष अपनी पत्नीका वह शिरस्कार कैसे वह उषती था ॥ १७ ॥

इतेति मां योऽभिगत्य राक्षसाय निवेद्येत् ।
गुह्यराशेऽपि स रणे रावणेन निपातितः ॥ १८ ॥

‘जो भीरपुनायकीके मेरे हरे जानेकी सूचना दे उषते वे उन परमपक्ष करामुझे भी रावणने मुझमें मार गिराया था ॥ १८ ॥

कृतं कर्म महत् तेन मां तथाभ्यपद्यता ।
तिष्ठत रावणकर्म पुत्रेनापि जटायुषा ॥ १९ ॥

‘कटायु बंधपि बूँ वे तो भी गुह्यपर अनुग्रह करके रावणका बंध करनेके लिये उषत हो उन्हेने बहुत बड़ा पुरुकार्य किया था ॥ १९ ॥

पवि मसिह जमीयाह्व बर्तमानां हि राक्षसा ।
मद्य बाजेरभिहृजः कुप्राशोक्रमराससम् ॥ २० ॥

‘पवि भीरपुनायकीके मेरे नहीं रहनेका पता क्या कता तो वे मान ही कुम्भित होकर लारे संवारकी राक्षसोंसे ध्वंस कर डाले ॥ २० ॥

निर्वहेष्य पुरीं लङ्का निर्वहेष्य महोत्थिमम् ।
रावणस्य च नीचस्य कीर्तिं नाम च नाशयेत् ॥ २१ ॥

‘लङ्कापुरीको भी बन्ध देते, महाभागको भी मस कर
बाढे तथा इव नीच निघाचर रावणके नाम और बधका
भी नाश कर देते ॥ २१ ॥

ततो निहतनाथानां राक्षसीनां गृहे गृहे ।
पथाहमेव दहती तथा भूयां न संशयः ॥ २२ ॥

फिर तो निःसदेह अपने पतियोंका शंहर हो जानेसे
परन्तुने राक्षसियोंका इसी प्रकार मरन होता, जैसे आश
मैं रो रही हूँ ॥ २२ ॥

अभिक्रम्य राजसां लङ्कां कुण्डात् रामः सज्जमप्य ।
पश्चि ताम्पा रिपुर्धरो मुहूर्तमपि जीवति ॥ २३ ॥

‘श्रीराम और अक्रम्य लङ्काका प्या अग्रकर निश्चय ही
एषधोंका शंहर करेंगे। बित रात्रको उन दोनों माइयोंने
एक बार देख किया, वह जो पक्षी भी बिकित नहीं रह
सक्य ॥ २३ ॥

विताधुमाकुण्डपथा गृध्रमण्डलमपिहता ।
अशिरैर्यैव कालेन ह्यमघानसज्जशी भवेत् ॥ २४ ॥

‘अब घोड़े ही समझमें यह लङ्कापुरी ह्यमघान-भूमिके
अग्न हो जायगी। पक्षीकी उड़नेपर विताका पुष्पो पौक
रहा होगा और गीनोंकी कर्मसे इव भूमिकी घोमा बढ़ाती
होगी ॥ २४ ॥

अशिरैर्यैव कालेन प्राप्याम्येनं मनोरथम् ।
दुष्प्रसङ्गमेऽप्यभाति सर्वेषां चो विपर्यया ॥ २५ ॥

‘अब समय हीम मानेकाल है जब कि नेत्र यह मनोरथ
पूर्व ह्यम। दुम सब कोनेसे यह दुःखकार दुम्हारे किये हीम ही
निपटीत परिणाम उपस्थित करेगा, ऐसा स्पष्ट अण पक्का
है ॥ २५ ॥

पादशानि तु हृदयान्ते लङ्कायामगुभानि तु ।
अशिरैर्यैव कालेन अभिष्यति हतप्रभा ॥ २६ ॥

‘लङ्कामें जैसे-जैसे अग्रम कथन दिखायी दे रहे हैं,
अन्ते अण पक्का है कि अण हीम ही इन्की अमक-अमक
अ हो जायगी ॥ २६ ॥

नूनं लङ्का हते पापे रावणे राक्षसाभिपे ।
शोभमेष्यति दुर्धरो प्रमदा विधवा यथा ॥ २७ ॥

‘पाप्याचारी एषलराव रावणके मारे जानेपर वह दुर्धर
लङ्कापुरी को निश्चय ही विधवा युवतीकी मूर्ति एव अयागी,
अ हो जायगी ॥ २७ ॥

पुण्योत्सवसमुदा च नष्टभर्मी सराक्षसा ।
अभिष्यति पुरीं लङ्का मष्टभर्मी यथाहना ॥ २८ ॥

‘आज बित लङ्कामें पुण्यमव उत्सव होते हैं वह एषल

के शरित अपने स्वामीके नष्ट हो जानेपर विधवा स्त्रीके समान
भीहीन हो जायगी ॥ २८ ॥

नूनं राक्षसकम्पानां क्वटीनां गृहे गृहे ।
अभोप्यामि नाशिरावये दुम्हार्तामिमिह प्विमम् ॥ २९ ॥

निश्चय ही मैं बहुत हीम लङ्काके पर-परमें दुःखसे
आदर होकर रोती हूँ राक्षसकम्पाओंकी अन्त-अन्ति
शुनूँगी ॥ २९ ॥

साम्प्रकाप हतघोटा हतराक्षसपुङ्गवा ।
अभिष्यति पुरीं लङ्का निर्वग्धा रामसायकैः ॥ ३० ॥

‘श्रीरामकन्तुकीके सायकोंसे शम हो जानेके कारण
लङ्कापुरीकी प्रमा नष्ट हो जायगी। इन्में अन्धकर का
अमगा और यहाँके सभी प्रमुख राक्षस काकके गजमें कके
जास्ये ॥ ३० ॥

यदि माम स शूरो मा रामो एकात्मलोचनः ।
जानीपाद् वर्तमानां या राक्षसस्य निवेशने ॥ ३१ ॥

‘अब जब तमी सम्मन होग्य, अब कि काक नेत्रप्रान्तकके
शरीर मगवान् श्रीरामको यह पता अण अण कि मैं एषलके
अन्तःपुरमें बंसी बनाकर रखती गयी हूँ ॥ ३१ ॥

अनेन तु नृपासेन रावणेनाभमेन मे ।
समयो यस्तु निर्विघ्नस्तस्य काळोऽप्यमागतः ॥ ३२ ॥

‘इत नीच और दुर्धर रावणने मेरे किये जो समय
निश्चय किना है, उतकी पूर्ति भी निश्चय मभिष्यने ही हो
जायगी ॥ ३२ ॥

स च मे विहितो नृत्युपनिन्तु दुप्येन वर्तते ।
अकार्यं ये न जानन्ति मैत्रुताः पापकारिणाः ॥ ३३ ॥

‘उसी समय कुछ रावणने मेरे वषका निश्चय किना है ।
ये पाप्याचारी राक्षस इतना भी नहीं जानते हैं कि क्या करना
चाहिये और क्या नहीं ॥ ३३ ॥

अधर्मोत्तु महोत्पातो अभिष्यति हि साम्प्रतम् ।
मेते धर्मं विजानन्ति राक्षसाः विधिवाधानाः ॥ ३४ ॥

‘इत समय अधर्मसे ही महान् अण्यत होनेका अण है ।
ये अन्तमभी राक्षस कर्मको विस्तुअ नहीं जानते हैं ॥ ३४ ॥

धूर्व मां प्रातःपार्श्वे राक्षसाः कक्षपयिष्यति ।
साहं कर्षं करिष्यामि त विना मियवर्षानम् ॥ ३५ ॥

‘अब राक्षस अमरस ही अपने कसेबके किये मेरे शरीरके
डकड़े-डकड़े कर बाढेगा। उस समय अपने प्रियवर्षान
पतिके विना मैं अलस्य अमरका क्या करूँगी ॥ ३५ ॥

रामं एकात्मनयमपश्यन्ती सुसुखिता ।
क्षिप्रं वैवज्जत वेद्यं पदयेय पतिमा विना ॥ ३६ ॥

‘किन्ने नेत्रप्रान्त अमर कर्षके हैं उन श्रीरामकन्तुकी
का दर्शन न पाकर अलस्य दुःखमें पड़ी हुई कुछ अलस्य

अथभाको पतिश्च त्वत्स्पर्शं किमे विना ही धीम समदेकत्वञ्च
वर्धनं कृता पदेण ॥ ३६ ॥

नाजानास्त्रीवर्ता रामः स मा भरतपूर्वजाः ।
जानन्तीतु न कुर्यातां भोवर्षाहि परिमार्गजम् ॥ ३७ ॥

‘मरुते बड़े भारी मगवान् भीराम यह नहीं जानते हैं
कि मैं कीर्ति हूँ । यदि उन्हें इस बातका पता होता तो वेका
तम्मम नहीं या कि वे वृष्णीपर मेरी खोज नहीं करते ॥ ३७ ॥

नूनं ममैव शोकेन स धीरो लक्ष्मणाप्रजाः ।
देवलोकात्मितो यातस्त्वयत्वा देह महीतले ॥ ३८ ॥

‘मुझे तो यह निश्चित जान पड़ता है कि मेरे ही शोके
लक्ष्मणके बड़े भारी शीरपर भीराम मृतकपर अपने शरीरका
त्याग करके यहाँवे देवलोकाके चले गये हैं ॥ ३८ ॥

धम्या देवाः सगन्धर्षाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
मम पश्यन्ति ये धीर रामं शब्दीबलोचनम् ॥ ३९ ॥

वे देवता गन्धर्ष, सिद्ध और महर्षिगण धम्य हैं जो
मेरे पतिदेव कीर सिधेमणि कमजानन भीरामका वर्धन पा
रहे हैं ॥ ३९ ॥

अथवा महि तस्याप्यौ धर्मकामस्य भीमताः ।
मया रामस्य राजर्षेर्भार्यया परमात्मजा ॥ ४० ॥

अथवा देवका धर्मकी कामना रखनेवाले परममन-
स्वरूप बुद्धिमान् राजर्षि भीरामको मयासे कोई प्रयोजन नहीं
है (हरीकिमे वे मेरी सुप नहीं के रहे हैं) ॥ ४ ॥

इदममानं भवेत् प्रीतिः सीहृत्वं मास्तपहृत्पता ।
नाद्यपिगिह कृत्वप्तास्तु न रामो लाद्यधिप्यति ॥ ४१ ॥

‘जो सबका अपनी इच्छिके सामने होते हैं ऊन्हीपर
प्रीति बनी रहती है । जो भौंसके बोकक होते हैं, उनपर
ज्योगोका स्नेह नहीं रहता है (शावव हरीकिमे भीरुनायकी
मुझे भूख गये हैं परंतु वह भी तम्मम नहीं है क्योंकि)
कृत्वप्ता मनुष्य ही पीठ-पीठे प्रेमको उच्छा देते हैं । मगवान्
भीराम ऐसा नहीं करेगे ॥ ४१ ॥

किं वा मय्ययुषाः केचित् किं वा भाव्यस्तयो हि मे ।
या हि सीता वराहैव हीना रामेन भामिनी ॥ ४२ ॥

मयका मुझमें कोई दुर्गुण हैं या मेरा मान्य ही कुछ
गया है किन्तु इह समय मैं स्वमिनी श्रेया अपने परम
पूजनीय पति भीरामके विपुत्र गयी हूँ ॥ ४२ ॥

धेयो मे जीवितान्मर्तुं विहीताया महात्मना ।
रामाश्चिद्वारिश्वाच्छूराच्छुनिवर्षयात् ॥ ४३ ॥

हृत्पर्ये श्रीमद्गामाकने वास्नीकीये अहिकान्ने सुन्दरकाण्डे पञ्चविंशः सर्गः ॥ २६ ॥

एत इत्तर श्रीरत्ननिर्मित आर्यस्यस्य अहिकान्ने सुन्दरकाण्डे उन्नीसवां सर्ग पूरा हुआ ॥ २६ ॥

‘मेरे पति मगवान् भीरामका सदानार अनुपुण्य है । वे
शूरवीर होनेके साथ ही वपुभोका उदार करनेमें समर्थ हैं ।
मैं उनसे संशय पानेके योग्य हूँ परंतु उन महात्माके विपुत्र
गयी । ऐसी वधाने कीर्ति रहनेकी अपेक्षा मर जाना ही मेरी
किमे भयंकर है ॥ ४३ ॥

अथवा स्वस्तशस्त्री तौ वने मूलफलायामी ।
आतरो हि तरुद्येष्टौ वरमयी वनगोचरी ॥ ४४ ॥

‘अथवा वनमें फल-मूल काकर विचरनेवाले व दोनों
वनवासी वपु नरभेद भीराम और लक्ष्मण मय अहिधका
मठ सेकर अपने मय शब्दोका परित्याग कर चुके हैं ॥ ४४ ॥

अथवा राक्षसेभ्येन राघवेन सुरात्मना ।
छधना प्रावितौ शूरो आतरो रामलक्ष्मणौ ॥ ४५ ॥

‘अथवा सुरात्मा राक्षसराज राघवने उन दोनों शूरवीर
स्यु भीराम और लक्ष्मणका कृपसे मरवा जाया है ॥ ४५ ॥

साहमेयत्विचे क्वाळे मर्तुमिच्छामि सर्वातः ।
न च मे विदितो मृष्युरस्मिन् युग्येऽतिवर्तति ॥ ४६ ॥

‘अतः ऐसे समयमें मैं सब प्रकारसे अपने जीवनका
अन्त कर देनेकी इच्छा रखती हूँ परंतु मायम होता है इस
महान् दुःखमें होने हुए भी अभी मेरी मृत्यु नहीं किन्ती
है ॥ ४६ ॥

धम्याः काङ्क्षु महात्मनो मुनयः सत्यसम्मताः ।
जितारामानो महाभागायेया न स्ताः प्रियापिये ॥ ४७ ॥

लक्ष्मणरूप परमात्मनो ही मयका आत्मा मन्नेवाके
और अपने अन्त-करणको बर्षसे रखनेवाले वे महाभग
महत्मा महर्षिगण धम्य हैं, किन्तु कोई प्रिय और मयिन
नहीं हैं ॥ ४७ ॥

प्रियासु सम्भवेत् युःकामप्रियाद्दधिकं भवत् ।
ताम्यां हि तेषु विमुञ्च्यन्ते नमस्तेषां महात्मनाम् ॥ ४८ ॥

‘किन्हीं प्रियके वियोगसे दुःख नहीं होता और मयिनका
संयोग प्राप्त होनेपर उससे भी अधिक बहका अनुभव नहीं
होता—इस प्रकार जो प्रिय और मयिन दोनोंसे परे हैं
उन महात्माओंको मेरा नमस्कार है ॥ ४८ ॥

साह त्यक्त्वा प्रियेषैव रामेण विदितारमना ।
प्राप्यांस्त्वय्यासि पापस्य राघवस्य गता वधाम् ॥ ४९ ॥

मैं अपने प्रियतम मात्मजानी मगवान् भीरामके विपुत्र
गयी हूँ और पापी राघवके चंगुलोंमें आ बँसी हूँ । अतः मय
इन मायोंका परित्याग कर चुकी हूँ ॥ ४९ ॥

सप्तविंश सर्गः

त्रिजटाका स्वप्न—राक्षसोंके विनाश और श्रीरघुनाथजीकी विजयकी शुभ सूचना

एतुक्ताः सीतया मोर राक्षस्यः क्रोधमूर्च्छिताः ।
 अशिश्वमुक्षुताशक्त्यातुं राक्षणस्य तुरारामनः ॥ १ ॥
 सीताने जब ऐसी मयंकर बात करी, तब वे राक्षसियों
 श्लेथले अचेत-सी हो गयीं और उनमेंसे कुछ उठ दुराहना
 एकजने यह संवाद करनेके लिये चक रीं ॥ १ ॥
 कथाः सीतामुपागम्य राक्षस्यो भीमवशमाः ।
 पुनः परुपमेकार्घमनयाधर्मयाशुचन् ॥ २ ॥
 उपमात् मयंकर रिलाकी देनेवाली वे राक्षसियों सीताके
 पस आकर पुनः एक ही प्रयोजनसे सम्पन्न रहनेवाली कठोर
 शत्रु, जो उनके लिये ही अनर्थकरिणी थी, करने लगीं—॥ २ ॥
 अपेयानीं तयानायै सीते पापविनिश्चये ।
 राक्षस्यो भक्तयिष्यन्ति मांसमेतत् यथाशुभम् ॥ ३ ॥
 'पसपूवं विचार रखनेवाली अनार्ये सीते । आज इती
 क्य वे सब राक्षसियों मौबके साथ ठेरा यह मांठ खायेंगी' ॥
 सीतां ताभिरनार्याभिर्द्यू संतर्जितां तदा ।
 पक्षसी त्रिजटा बुद्धा प्रबुद्धा वाक्पयमप्रयित् ॥ ४ ॥
 उन बुद्ध निघात्तरियोंके द्वारा सीताको इस प्रकार बरपी
 क्वी देख बुद्धी राक्षसी त्रिजटा, जो तत्पक्ष लोकर उठी थी,
 उन कबले करने लगीं—॥ ४ ॥
 मात्मानं खात्तानार्या न सीतां भक्तयिष्यथ ।
 क्रमकस्य सुतामियां स्तुपा दधरपस्य च ॥ ५ ॥
 'परीच निघात्तरियो ! तुमकोम अपने आपको ही खा
 लोगे । राक्ष जनककी प्यारी बेटी तथा महाभाग दधरपकी
 मिय पुत्रकपू सीताको नहीं खा सकोगी ॥ ५ ॥
 स्वप्नो ह्यद्य मया ह्यद्ये वारुण्यो रोमहरणः ।
 राक्षस्यनामभाषाय भर्तुरस्या भयाय च ॥ ६ ॥
 आज मैंने वहा मयंकर और रोमात्रकपी स्वप्न देखा
 है, जो राक्षसोंके विनाश और सीतापक्षिके अम्युरपकी पुष्पा
 देनेवाला है' ॥ ६ ॥
 पवमुक्षुताश्रिजटया राक्षस्यः क्रोधमूर्च्छिताः ।
 सया वयाशुचन् भीतात्रिजटां तामिदं वचः ॥ ७ ॥
 त्रिजटाक देवा करनेपर वे सब राक्षसियों को परके
 श्लेथल मूर्च्छित हो रही थीं भयभीत हो उठीं और त्रिजटाले
 एव प्रकार बार्ज—॥ ७ ॥
 ह्ययस स्वया ह्यः सप्तोऽय क्षीरतो निदि ।
 कासा भुया तु पवनं राक्षसीनां मुचोद्गतम् ॥ ८ ॥
 उवाच पवनं वच त्रिजटा स्वप्नसंश्रितम् ।
 मी । वनाभी तो ली तुमने आज एउने पर देवा

स्वप्न देखा है ?' उन राक्षसियोंके मुखसे निकली हुई यह
 बात सुनकर त्रिजटाने उस समय यह स्वप्न-सम्बन्धी बात
 इस प्रकार कही—॥ ८ ॥
 गजवन्तमयीं दिव्यां शिविद्रमन्तरिक्षगाम् ॥ ९ ॥
 युक्तां वाजिसहस्रेण सयमास्थाय राक्षसः ।
 गुरुमाख्याप्यरघुरो लक्ष्मणेन समागतः ॥ १० ॥
 'आज स्वप्नमें मैंने देखा है कि आकाशमें चकनेवाली
 एक दिव्य शिविद्रा है । वह हाथीदंतीकी पनी हुई है ।
 उसमें एक इशार बाड़े खुले हुए हैं और श्वेत पुष्पोंकी माझ
 तथा श्वेत वज्र पारण किये स्वयं भीमपुनायकी कर्मणके साथ
 उस शिविद्रापर चढ़कर यहाँ पधारे हैं ॥ ९ ॥
 स्वप्ने चाद्य मया ह्यद्य सीता शुक्राभ्यराधुता ।
 सागरेण परिक्षितं श्वेतपर्वतमास्थिता ॥ ११ ॥
 रामेण संगता सीता भास्करेण प्रभा पया ।
 'आज स्वप्नमें मैंने यह भी देखा है कि सीता श्वेत
 वज्र पारण किये श्वेत पर्वतके शिखरपर बैठी हैं और यह
 पर्वत समुद्रसे घिर हुआ है, यहाँ बैठे श्वेतवसे उनकी प्रभ्य
 मिळी है, उली पञ्चर सीता भीरामकन्दर्पके सिखी हैं ॥
 रामपथ्य पुनर्दृष्टव्यतुष्टव महागजम् ॥ १२ ॥
 आकृष्टः शैलसकपरां चकास सहलक्ष्मणः ।
 'मैंने भीरुनाथजीको फिर देखा, वे चार दंतवाले
 शिखाक गजराजपर जो पर्वतके समान ऊँचा था, कर्मणके
 साथ बैठे हुए वही घोभा पा रहे थे ॥ १२ ॥
 ततस्तु सूर्यसकाशौ क्षीप्यमानौ स्रतेजसा ॥ १३ ॥
 गुरुमाख्याप्यरघुरौ जानकीं पयुपस्थितौ ।
 'तदनन्तर अपने तेजस सूर्यके समान प्रकथित होते
 तथा श्वेत माझा और श्वेत वज्र धारण किये वे दोनों
 भाई भीराम और कर्मण ध्वजकीधके पास आये ॥ १३ ॥
 ततस्तस्य नगस्यामे द्याकाशस्यस्य वृत्तिनाः ॥ १४ ॥
 भ्रमा पटिष्ठीतस्य जानकीं स्कन्धमाधिता ।
 फिर उस पर्वत शिखरपर आकाशमें ही खड़े हुए और
 पटिष्ठाप पड़के गय उस हाथोंके कंधपर ध्वजकीधके भी आ
 पड़ुंसी ॥ १४ ॥
 भनुत्पुत्रं समुपत्य ततः कमन्तापता ॥ १५ ॥
 चन्द्रसूर्यो मया ह्यद्य पाणिभ्यां परिमात्रता ।
 एवक बाद कमन्तपनी पीता अपने पक्षिक अह्ल
 ऊपरको उठकर चन्द्रसूर्य और सूर्यके पास पहुँच गयी ।

वहाँ मैंने देखा वे अपने दोनों हाथोंसे चन्द्रमा और सूर्यको
पोंछ रही हैं—उनपर हाथ फेर रही हैं॥ १५३ ॥

ततस्तथा कुमाराभ्यामस्थिताः स गजोत्तमः ।

सीतया विशाखाभ्यां लङ्काया उपरि स्थिताः ॥ १६ ॥

तत्पश्चात् शिवर वे दोनों राजकुमार और विशाख-
अेचना सीताको विराजमान थीं, वह महान् गजराज लङ्काके
ऊपर आकर रुका हो गया ॥ १६ ॥

पाण्डुरर्यभयुक्तेन रथेनाद्युजा स्वयम् ।

इहोपायातः काकुत्स्थः सीतया सह भार्यया ॥ १७ ॥

शुक्लमास्याम्बरधरो लक्ष्मणेन सहगतः ।

फिर मैंने देखा कि आठ ठकेर बैलोंसे जुते हुए एक
रथपर आरुढ़ हो चन्द्रकरकुम्भरूप श्रीरत्नचन्द्रकी स्नेह
पुण्योष्ठी माता और बहू बाराव किने अपनी परमस्त्री सीता
और माई अस्मयके साथ यहाँ प्यारे हैं ॥ १७ ॥

ततोऽन्यत्र मया दृष्टो रामः सत्यपराक्रमः ॥ १८ ॥

लक्ष्मणेन सह आत्मा सितया सह वीर्यवान् ।

भारुद्रा पुष्पक दिव्य विमानं सूर्यसंनिभम् ॥ १९ ॥

वृत्तरां विशामाहोष्य प्रस्थिताः पुरुषोत्तमः ।

इसके बाद वृष्टी बगह मैंने देखा सत्यपराक्रमी और
बल-विक्रमशाली पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम अपनी पत्नी
सीता और माई अस्मयके साथ सूर्यद्वय देवसी दिव्य पुष्पक
विमानपर आरुढ़ हो उत्तर दिशाको अन्व करके पहुँचे
प्रकृत हुए हैं ॥ १८ १९ ॥

एष ज्ञाने मया दृष्टो रामो विष्णुपराक्रमः ॥ २० ॥

लक्ष्मणेन सह आत्मा सितया सह भार्यया ।

एत प्रकृर मैंने ज्ञानमें मयावान् विष्णुके समान
पराक्रमी श्रीरामका उनकी पत्नी सीता और माई अस्मयके
साथ दर्शन किया ॥ २० ॥

न हि रामो महातेजाः शक्यो जेतुं सुपासुरैः ॥ २१ ॥

राक्षसैर्वापि चान्यैर्वा स्वर्गः पापममैरिव ।

श्रीरामचन्द्रकी महातेजसी हैं । उन्हें देवता असुर-
राक्षस तथा दूरे लोग भी काटानि शक्य नहीं सकते । ठीक
उसके तरह जैसे पृथ्वी मनुष्य स्वर्गलोकपर विजय नहीं पा
सकते ॥ २१ ॥

रावणस्य मया दृष्टो मुण्डस्तैलसमुक्षितः ॥ २२ ॥

० वा ली या पुत्र जन्ममें अपने दोनों हाथोंसे सूर्यचन्द्रक
बराबर चन्द्रचक्रको घूँटने के बने विशाख चन्द्रकी हाथि होती
है । कैदा कि लक्ष्मणचक्र बचन है—

अरिभयदं वारि चन्द्रनभश्चन्द्र च ।

सन्ने गृह्णी ह्यर्था उम्बं ह्यग्न्युत्थमह्व ॥

(नोकि-रावणविशिन उम्बकनभूयच)

रक्तवासाः पिबन्मद्यः करवीरकृतसज्जः ।

विमानात् पुष्पकाद्य रावणा पतितः क्षितौ ॥ २३ ॥

मैंने एकको भी अपनेमें देखा था । वह मूढ़ दुर्गम
देखते नहाकर लज्ज करके पड़े हुए था । मरिच पीकर
मत्वाभा हो रहा था तथा करवीरके फूलोंकी मास पड़े हुए
था । इसी वेरभूताने आब रावण पुष्पक विमानसे पृथ्वीपर
गिर पड़ा था ॥ २२ २३ ॥

कृष्णस्याः क्रिया मुण्डो दृष्टः कृष्णान्धराः पुताः ।

रथेन खरयुक्तेन रक्तमास्यानुलेपताः ॥ २४ ॥

पिबस्तैल इत्यन्युत्पन्नं भ्राम्तश्चित्तकुलेन्द्रियः ।

गर्वमेन ययौ शीघ्रं वृक्षिणा विशामास्थिताः ॥ २५ ॥

एक सा ठव मुण्डित-मद्यक रावणको करी खीने
किये था रही थी । ठव समय मैंने फिर देखा एकको कड़े
कपड़े पहन रखे हैं । वह गये जुते हुए रथसे बाना कर रहा
था । लज्ज फूलोंकी मास और लज्ज चन्दनसे विभूषित था ।
ठेक पीता, हँसता और नाचता था । पगलोंकी तरह उलझ
निय प्राप्त और इन्द्रियों म्याडुक्त थीं । वह गयेपर लभार
हो शीघ्रतापूर्वक वृक्षिण दिशाकी ओर था पड़ा था ॥ २४ २५ ॥
पुनरेव मया दृष्टो रावणो राक्षसेम्बरः ।

पतितोऽप्याक्षिप्य मूर्धो गर्वभाद् भयमोदितः ॥ २६ ॥

चरनन्तर मैंने फिर देखा राक्षसराज रावण गयेने नीचे
भूमिपर गिर पड़ा है । उलझ खिर नीचेकी ओर है (और
पैर ऊपरकी ओर) तथा वह मजबे मोक्षित हो रहा है ॥ २६ ॥

सहस्रोत्थाय सभ्रान्तो भयार्तो मद्विह्वलः ।

उभयचक्रयो विन्नासां सुसौकर्यं मलयम् बहु ॥ २७ ॥

दुर्गन्धं दुःसहं चोर तिमिरं नरकोपमम् ।

मलयं प्रविष्ट्याद्यु मम्मस्तत्र स रावणः ॥ २८ ॥

फिर वह महादुर हो पचयकर लड़ा ठडा और मरते
विह्वल हो पागलके समान नंग-पक्षंग बेबसी बहुत-से दुर्गन्ध
(गाबी आदि) बकड़ा हुआ आगे बढ़ गया । सामने ही
दुर्गन्धयुक्त दुःसह घेर अन्धकारपूर्ण और नरकद्वय मलय-
का पड़ या अन्ध उठीमें हुआ और वहाँ डूब गया २७-२८
प्रस्थितो वृक्षिणामाशां प्रविष्टोऽर्क्ष्वर्मं ह्वम् ।

कण्ठे बभूव्या द्वाप्रीय प्रमदा रक्तवासिनी ॥ २९ ॥

काकी कर्षमक्षिताङ्गी विशां याम्पां प्रकर्षति ।

एष तत्र मया दृष्टः कुम्भकर्मो महावज्रः ॥ ३० ॥

चरनन्तर फिर देखा रावण वृक्षिणकी ओर था पड़ा
है । ठकने एक ऐसे वाक्चरमें प्रवेश किया है जिसमें कीचड़
का नाम नहीं है । वहाँ एक कण्ठे रंगकी ली है जिसके
अङ्गोंमें कीचड़ कियेयी हुई है । वह पुरती काल बस पड़े
हुए है और अन्धका गम्भ शीघ्रकर जते वृक्षिण दिशाकी

भोर जीव रही है । वहाँ महाबली कुम्भकर्णको भी मैंने इसी मरकामे देखा है ॥ १९१ ॥

पावणस्य सुताः सार्धं मुञ्जशास्त्रैलसमुक्षिताः ।

वपुहोष वराप्रियाः शिशुमारोण चेन्द्रक्षित् ॥ १९१ ॥

रष्ट्रेण कुम्भकर्णश्च प्रयातो दक्षिणां विशाम् ।

पावणके सभी पुत्र भी मूढ़ मुञ्जसे और तेजमें नहाये दिखायी दिये हैं । यह भी देखनेमें आया कि एवज हथरत इन्द्रक्षि हँसवर और कुम्भकर्ण ऊँटवर क्वार हो क्लिप्त दिखाको गये हैं ॥ १९१ ॥

एकस्तत्र मया दृष्टः द्यैतच्छत्रो विभीषणः ॥ १९२ ॥

शुक्रमास्याम्बरघटः शुक्रगन्धाजुलेपनः ।

पालकोंमें एकमात्र विभीषण ही ऐसे हैं, किन्हें मैंने यहाँ द्यैत छत्र लगाये, कफेर माका पहने, द्यैत वस्त्र धारण किये तथा द्यैत चस्त्रन और अङ्गराग लगाये देखा है ॥ १९२ ॥

शङ्खमुमुभिमिर्षोर्षैर्नृत्तगीतेरलङ्कृतः ॥ १९३ ॥

श्ववद्य शैलसक्तया मेघकलितनिःस्वसम् ।

शतुर्भुजं गर्भं दिव्यमास्तं तत्र विभीषणः ॥ १९४ ॥

शतुर्भुजः सखिषैः सार्धं वैहायसमुपस्थितः ॥ १९५ ॥

उनके पाठ शङ्खमणि हो रही थी, नगाड़े बजाये जा रहे थे । इनके गम्भीर पोषके साथ ही नृत्य और गीत भी हो रहे थे, जो विभीषणकी शोभा बढ़ा रहे थे । विभीषण यहाँ अपने चार मन्त्रियोंके साथ पर्वतके समान विद्यामन्त्रकय मेघक समान गम्भीर शब्द करनेवाले तथा चार बाँतोंवाले दिव्य गन्धधर आरूढ़ हो आकाशमें लड़े थे ॥ १९३-१९५ ॥

समासश्च महान् ध्रुवो गीतवाविभ्रतिःस्वना ।

शियतां रक्तमान्वाता रक्षसां एकवाससाम् ॥ १९६ ॥

यह भी देखनेमें आया कि तेज पीनेवाले तथा काष्ठ पात्र और काष्ठ बस्त्र धारण करनेवाले पादलोकों वहाँ पहुँच रहा क्वाब हुस हुआ है एव गीतों और वाद्योंकी मधुर ध्वनि हो रही है ॥ १९६ ॥

सुहा कथं पुरी रम्या सत्यामिरधकुञ्जरा ।

स्यपरे पतिता दृष्टा भग्मगोपुरतोरणा ॥ १९७ ॥

यह रमणीय शहरपुरी जो है, रथ और हाथियोंसे श्रित सुभ्रमे गिरी हुए देती गयी है । इसके बाहरी और भीतरी तराशे दृष्ट गये हैं ॥ १९७ ॥

सुहा दृष्टा मया स्वप्न रायणनाभिरक्षिता ।

रथा रामस्य कृतेन यानरण तरस्विता ॥ १९८ ॥

जैसे स्वप्नमें देता है कि यानराय मुखित शहरपुरी का भीषमपन्नशेखर दूत बनकर आये हुए एक वेगवाली रथने बन्धकर भ्रम कर दिया है ॥ १९८ ॥

गोत्रा वैल प्रमत्ताश्च महत्सभ्यो महाक्षताः ।

शुश्रावां भस्त्रकरथायां सत्या राससोपवितः ॥ १९९ ॥

पावणे कृती हुई शत्रुमें सारी राक्षसमणियों तैल पीकर मतवाली हो बड़े धोर-धोरते ठहाका मारकर हँसती हैं ॥ १९९ ॥

कुम्भकर्णोवपुष्पेमे सर्वे राक्षसपुङ्गवाः ।

रक्तं निवसन गृह्य प्रविष्टा गोमपहृदम् ॥ ४० ॥

कुम्भकर्ण आदि ये समस्त राक्षसशिरोमणि वीर काष्ठ कण्ठे पहनकर गेवरके कुण्डमें पुष्ट गये हैं ॥ ४० ॥

अपगच्छत पश्यर्ष्यं स्तीतामाप्नोति राघवः ।

प्रातयेत् परमामर्षी सुप्मान् सार्धं हि राक्षसैः ॥ ४१ ॥

अतः अथ द्रुमक्षेण इत् षाभो और देखो कि कित्त तय भीरुनायकी धीताको प्राप्त कर रहे हैं । वे बड़े अमर्षधीक हैं, राक्षसोंके साथ द्रुम तबको भी मरना चाहेंगे ॥ ४१ ॥

प्रियां याह्वमतां भार्यां वनवाससमुपगताम् ।

भर्त्सितां तर्जितां चापि नानुमंस्यति राघवः ॥ ४२ ॥

किन्होंने वनवासमें भी उनका साथ दिया है, उन अपनी पतिव्रता मन्त्रां और परमादरणीया प्रियतमा धीताप्र इत् तरह धमकाया और डराया जाना भीरुनायकी कदापि सहन नहीं करे ॥ ४२ ॥

तद्वत् स्मृतवाक्यैश्च सान्त्वयेथाभिधीयताम् ।

अभियाचाम यदैहीमेतद्वि मम रोषते ॥ ४३ ॥

अतः अब इस तरह कठोर बातें सुनाना छोड़ो; क्योंकि इनसे कोई लाभ नहीं होगा । अब तो मधुर बचन-का ही प्रयोग करो । मुझे तो यही अच्छा लगता है कि हम क्षेण विदेहनन्दिनी धीतासे हृष्ट और धमकी याचना करें ॥ ४३ ॥

यस्या ह्येषविधा स्तपो दुःपितृतायाः प्रहृदयते ।

सा दुःखैर्व्यभ्रिमुक्ता मियं प्राप्स्येत्पुत्रमम् ॥ ४४ ॥

जित्त दुःखिनी नारीके विषयमें ऐसा तप्य देला जाय है, वह बहुततप्यक दुःखोंसे पुत्ररूप पाकर परम उत्तम प्रिय बन्धु प्राप्त कर लेती है ॥ ४४ ॥

भर्त्सितामपि पाषण्ड्यं राक्षस्यः किं विवक्षया ।

राघवादि भयं धोरं राक्षसतामुपस्थितम् ॥ ४५ ॥

पाषण्डियों । मैं जानती हूँ दुःखों कुष्ठ और करने वा शोकाके इच्छा है; किन्तु इतने क्या हास्य । यद्यपि हमने धीताको बहुत धमकाय है तो भी इनकी धारणमें आकर इनसे अभयकी याचना करो क्योंकि भीरुनायकीकी आशसे पशुओंके किम्य घोर भय उपस्थित हुआ है ॥ ४५ ॥

प्रविषातप्रसपा हि मेघिनी जनक्यामजा ।

अन्धमेघा परिप्राप्तुं राक्षस्यः महतो भयात् ॥ ४६ ॥

पशुधियो । जनकनी नी दिपिच्छकुम्पयो धीता केरक प्रयाम करनेकी प्रयत्न हा यदिनी । ये ही उच महान् मयसे द्रुमशरी रथा करनेमें समर्थ है ॥ ४६ ॥

अपि चास्या विशालास्या न किंचिदुपलभ्यते ।

विरूपमपि चाज्ञेषु सुसूक्ष्ममपि लक्षयाम् ॥ ४७ ॥

इमं विद्याकामेना सीताके अङ्गुलिं मुने कोर्षं वृक्षमे-
वमन् भी विपद्येत् कश्चन नही दिखानी देवा (किछे
समसा बाव कि ये सरा कश्चने ही रहैगी) ॥ ४७ ॥

अथाप्यैश्वर्यमात्रं तु शब्दे दुःखमुपलक्षितम् ।

अनुभावादीमिमां देवीं वैश्यासमुपलक्षिताम् ॥ ४८ ॥

मैं तो स्वसती हूँ कि इन्हें वो वर्तमान दुःख प्राप्त
हुमा है, यह प्रश्नके समय कन्धमापर पड़ी हुई अथाके
अगन पोड़ी ही देरक है। क्योंकि ये देवी सीता मुझे स्वप्न-
में विमानपर देठी दिखानी ही हैं, अतः ये दुःख अंगुलिंके
योग्य कथापि नहीं हैं ॥ ४८ ॥

अर्पेत्सिद्धिं तु वैदेह्याः पद्मपद्मसमुपलक्षिताम् ।

राक्षसेन्द्रविनाशं च विजयं राघवस्य च ॥ ४९ ॥

मुझे तो भव जानकीकीके अर्पण मनोरथकी सिद्धि
उपलक्षित दिखानी देती है। यक्षधराज राघवके विनाश और
रघुनाथकी विजयमें अब अधिक लिखन नहीं है ॥ ४९ ॥

निमित्तभूतमेतत् तु श्रोतुमस्या महत् प्रियम् ।

हृदयते च स्फुरन्नाक्षुः पद्मपद्मसिंघायतम् ॥ ५० ॥

अमरकण्ठके तमान इनका विशाल बाणों नेत्र कण्ठका
दिखानी देता है। यह इत वातका सुनके कि इन्हें शीत
ही अत्यन्त प्रिय संवाद सुननेको मिलेगा ॥ ५० ॥

ईपदि हृदयितो वास्या वक्षिणाया ह्यवक्षिणः ।

अकस्मात्स वैदेह्या पाङ्कुरेका प्रकम्पते ॥ ५१ ॥

हृदयार्थे श्रीमद्ब्रह्मसूत्रे अर्पणकाम्ये सुन्दरकाण्डे सप्तविंशः सर्गः ॥ २० ॥

इस प्रकार श्रीमद्ब्रह्मसूत्रसिद्धि अर्पणकाम्ये सुन्दरकाण्डके सप्तविंशतः सर्गः पूरा हुआ ॥ २० ॥

अष्टविंश सर्ग

विलाप करती हुई सीताका प्राण-त्यागक लिप उद्यत होना

सा राक्षसेन्द्रस्य पक्षो निशम्य

तत् राघवस्य प्रियमप्रियाता ।

सीता पितृशत्रुं यथा ज्ञान्ते

सिंहाभिपद्य गजराजकन्या ॥ १ ॥

पतिके विरहके दुःखके म्याकुल हुई सीता राक्षसराज
राघवके उन अग्रिम वक्तव्यको बाद कण्ठके उली उर
भवभीत हो गयी जैसे वनमें बिहके वनमें पड़ी हुई कोर्ष
गजराजको पत्नी ॥ १ ॥

सा राक्षसोत्पद्यता च भीरु

पाग्निभृशं राघवताडता च ।

अमरकण्ठस्य पित्रान् विरुद्य

बाह्वय कन्या विज्ज्वल्य सीता ॥ २ ॥

इन उदारहृदय विदेहपञ्चमारीकी एक बौधी बर्ष
कुछ रोमाञ्चित होकर खड़ा कोपने लगी है (यह भी दुःख
ही सुनके है) ॥ ५१ ॥

करेणुहस्तप्रतिमाः सम्यङ्कोदरनुत्तमाः ।

वेद्यत् करयतीयास्या यास्य पुरताः खिलसम् ॥ ५२ ॥

हाथीकी सूँड़के तमान जो इनकी परम उत्तम बर्षी
बौध है, यह भी कम्पित होकर मनो यह धुंभित कर रही है
कि मर भीखुनाथकी भीम ही दुम्हारे धामने उपलब्ध
होगे ॥ ५२ ॥

पक्षी च शाखान्तिव्यं प्रविष्टः

पुनः पुनश्चोत्तमसागत्ववादी ।

सुखागता वाचमुदीरयात्

पुनः पुनश्चोद्यतीव हृष्टः ॥ ५३ ॥

वेदा धामने यह पक्षी शाखाके ऊपर अपने बोलनेमें
बैठकर बारबार उत्तम धाननापूर्ण भीठी बोलीबोळ रहा
है। इसकी वाणीसे सुखागताकी ज्वलि निकळ रही है और
इसके हाथ यह हर्षमें मरकर मनो पुनः-पुनः महत्प्रयासि
की धुंभना दे रहा है अथवा धामनेके प्रियतमकी अगमनी
के लिये प्रेरित कर रहा है ॥ ५३ ॥

तदा सा ह्रीमती बाळा भर्तुर्विजयहर्षिता ।

अथोच्चरत् यदि तत् तर्प्यं मधेयं शरणं हि वा ॥ ५४ ॥

इत प्रकार पतिदेवकी विजयके सन्देशे हर्षमें मरी हुई
कक्षीकी सीता उन वनके बोझी—पति दुम्हारी वात ठीक
हुई तो मैं अवरन ही दुम वनकी रक्षा करूँगी ॥ ५४ ॥

हालकिमेंके बीचमें बैठकर उनके कठोर वक्तव्यके
बारबार भक्तकी ओर राघवहाथ पञ्चमरी गनी भीव
लम्बावनाकी सीता निभन एव रोहड़ वनमें मकेकी घृटी
हुई असवयस्ता बाकिकाके तमान विजय करने लगी ॥ १ ॥

सत्यं यदेवं प्रपन्नं लोक

नाच्छास्त्रमुरयुपयतीति सन्तः ।

यथाहमर्थं परिभारस्वम्भना

जीयामि यस्मात् शुभमप्युपपन्ना ॥ ३ ॥

वे बोली—अत्रान् लक्षमें यह वात ठीक ही करतें
है कि विना तमय भाव किलीकी मृत्यु नहीं होती, तभी तो
इत प्रकार धमकावो धामनेपर भी मैं पुनःहोना नाथे उद्यमर
भी क्षिप्त रह पक्षी हूँ ॥ ३ ॥

सुखाद् विहीन बहुदुःखान्मृणु
मिदं तु नूनं हृदयं स्थिरम् ।
विदूषितं यद्य सद्ब्रह्मभाष्य
यस्माद्दत्तं शृणुमिवाद्यज्यम् ॥ ४ ॥

‘मद्यद् बहु हृदयं मुलुखं रक्षितं और अनेक प्रकारके दुःखोंसे भरा दानवर भी निश्चय ही भयान्त हृदय है। इसीलिये ब्रह्म के बारे हुए पर्वतशिखरकी भीति आज इतक बढ़ी है नही हो पाये ॥ ४ ॥

मैयास्ति नूनं मम वायमम
पय्याहमस्यामिपदशामस्य ।
भाषं न चास्याहमनुमदातु
मर्कं द्विजो मन्त्रमियाद्विजाय ॥ ५ ॥

मैं इस दुष्ट वपुषक हाथ मारी दानवाभी हूँ। इसलिये वहाँ भावप्रप्त करने भी मुझ को हृदय नहीं बच सकता। कुछ भी हो, जेने हिन किसी दुष्टको वेदमन्त्र का उपदेश नहीं दता, उथी प्रकार मैं भी इस निष्पक्षके अपन हृदयका अनुशासन नहीं कर सकती ॥ ५ ॥

तस्मिन्निवागच्छसि लोकनाथे
गर्भस्यञ्जन्तारिष्य शक्यकृष्णतः ।
नूनं ममाप्राण्यचिराद्दानायः
शस्त्रैः शितं ददस्यसि राक्षसशूः ॥ ६ ॥

‘हाय! अज्ञान्य भगवान्, भीरुमके आनेसे पहले ही यह दुष्ट वपुषराय निश्चय ही भयंकर वीर्य शशील वर भयोंके शीर ही कट-कट कर काटगा। तब वेस ही, जेन प्रत्यक्षिप्रसक्त क्रिपे विजय भवत्यामे गर्भस्य शिशुके दूक दूक कर देता है (अपवा का इन्नेन दिनिक गर्भमे अन्तः शिशुके उपजातं कुरु कर काट ॥) ॥ ६ ॥

तुल्यं पदं मनु दुःखिताया
मासौ चिरायाभिगमिष्यताहौ ।
पश्यस्य पश्यस्य यथा निशान्त
रात्रावराधादियं तच्छकृत्यम् ॥ ७ ॥

मैं वही बुझिया हूँ। तु लकी बात है कि मरी भवभिरु व उ महाने भी अन्तरी हा वसात हा अवेग। पश्यके अवागारमे डेर हुए और रात्रिके अन्तमे धौलीके मद्य जानेवाये अवराधी पारकी वा दया हाती है, वही मेरी आँसे है ॥ ७ ॥

हा राम हा मङ्गल्य हा सुमिष
हा राममाताः सदं म ज्ञानन्याः ।
पया विपद्याम्यहमद्वयभाष्या
महालयं नीरिव मूढपाता ॥ ८ ॥

हा यम! हा अमन्य! हा सुमिरे! हा भीवमजननी केमन्य! और हा मरी माताभा! जिस प्रकार वपुषरामे वा ५० • १०—

पदी हुई नौअ महाभागमं पूब आती है, उथी प्रकार आज मैं मन्दभूमिनी कीता प्राणवदुष्टकी दयामे पदी हुई हूँ ॥ ८ ॥

वत्सिनां धारयता मृगस्य
सत्यं कं मनुजन्तुप्रभौ ।
नूनं यिज्जतीं मम करणाम् नौ
सिंहपभौ ठायिय वैपुलम ॥ ९ ॥

निश्चय ही उठ मृगरूपधारी कीकने मेरे कारण उन दोनों वेगशाही राजकुमारोंके भार बाध हमरा। जेन वा भेष्ट सिंह बिजलीसे मार दिसे चाये, वही दया उन दोनों मार्योंकी हुई हाणी ॥ ९ ॥

नूनं तं काका मृगरूपधारी
मामद्वयभाग्यां सुखं नवान्नीम् ।
यथायुत्रौ पिससज्ज मूढा
रामानुजं लक्ष्मणपूषजं च ॥ १० ॥

‘अभय ही उस समय ज्ञानने ही मृगरूप कप भाष्य करके मुझ मन्दभूमिनीका सुभाषा वा, जिसके प्रमाणा ही मुझ मूढ नातीने उन दोनों आयुषों—धीराम और लक्ष्मणका उठके पीछे भेज दिया वा ॥ १० ॥

हा राम सत्यमत वीर्यवाहो
हा पूषणम्रप्रतिमानवपत्र ।
हा जीवन्मकस्य हितः प्रियञ्च
धर्म्यां न मां यस्मिं हि गच्छमानाम् ॥ ११ ॥

‘हा लक्ष्यवपणी महाबाहु भीराम! हा पूषणम्रमके समान मनाहर प्रुषणम रजन्जन। हा शैवमभूफ दिवेधी और मित्रवत। भाषका पला नही है कि मैं राक्षसोंके हाथ मारी जाऊँगी हूँ ॥ ११ ॥

भनस्यद्वयमिय भया च
भूमौ च शक्या नियमद्य धर्मैः ।
पतिमताय विपत्यं ममद्
दृत्तं दृत्तपनरिवय मानुषाणाम् ॥ १२ ॥

मरी यह अन्धबलाशना, धर्म, भूमिपवन, धर्म-तन्त्रकी नियमोंका धानन और पतिव्रतपगकता—व मरक वन वृजभौक प्रति क्रिय तन मनुष्योंके उपकारकी भीति निष्कन्त हा तन ॥ १२ ॥

याथा हि धमभारिता ममायं
तपैक्यदर्शयमिदं निरपकम् ।
या स्यां नपदयामि दृशा पिज्जा
हीना त्यया मद्रमने निराज्ञा ॥ १३ ॥

प्रथ। यदि मैं अकन्त वृष और वान्तिनीन हाथ अपन बिनुहा ही रह गयी तथा भावन निष्कन्त भाषा वा देवी, तब तो मैंने निष्कन्त दानवर आनरक दिया

है, वह धर्म मेरे किये स्वयं हो गया और यह एकदलीकत भी किसी काम नहीं आया ॥ १३ ॥

वितुर्निवेश नियमेन कृत्वा
यनाभिवृत्तश्चरितप्रतपः ।

स्त्रीभिस्तु मन्ये विपुलेक्षणभिः
सख्यसे वीरभया कृतार्थः ॥ १४ ॥

मैं तो समझती हूँ भाव नियमानुसार विराही भावका पावन करके अपने प्रतप पूरा करनेके पश्चात् जब कन्धे कोटेंगे, तब निर्भय एवं सख्यमनोरथ हो विद्यालय नेत्रोंवाली बहुत-सी सुन्दरियोंके साथ विवाह करके उनके धन सम्पन्न करेंगे ॥ १४ ॥

महं तु राम त्वयि ज्ञातकामा
चिर किनाशाय निबन्धभाषा ।

मोघ चरित्वाय तपो प्रथम
त्यक्त्यामिधिर्जीवितमव्यभाम्याम् ॥ १५ ॥

फकिर भीषण । मैं तो केवल स्वयं ही मनुष्यगण रखती हूँ । मंग हृदय विरक्तप्रतप भास्ते ही रेंवा रहेगा । मैं अपने विनाशके किये ही आरसे प्रेम करती हूँ । भन्वक मैंने तप और प्रथम भादि को कुछ भी किया है, वह मेरे किये स्वयं विद्वद् हुआ है । उस अमीह फलको न देनेवाला धर्मका आचरण करके अथ मुझ अपने प्राणोंका परित्याग करना पड़ेगा । अतः मुझ मन्दभागिनीका विचार है ॥ १५ ॥

सञ्जीवितं क्षिपमहं त्यज्यं
विषयं शस्त्रेण शिथलं वापि ।

विषयं दातानं मु मंडकितं कश्चि
च्छस्त्रस्य वा बद्धमि रासस्य ॥ १६ ॥

हृत्पर्ये श्रीमत्परायने शक्यीक्ष्ये चरित्काम्य मुन्दरकावने चट्टार्लर्त्तं सनं १११ ॥ १८ ॥
एत प्रकार भीमवृषाक्ष्मीके विरहित और उमायने चरित्काम्यक मुन्दरकावने चट्टार्लर्त्तं सनं १११ ॥ १८ ॥

एकनेत्रिंश सर्ग

सीताजीक शुभ उद्गुन

तथागतं ता स्यचित्तमनिन्वितां
भ्यतोदहर्षो परिवर्तमानसाम् ।

शुभा मिमिच्छामि शुभानि मञ्जिरे
नरं धिया सुष्ठमिषोपसविनः ॥ १ ॥

एत प्रकार भयोदहर्षके नेत्रे अपनेपर बहुत-से शुभ उद्गुन प्रकट हो उन स्यचित्तहृदय धरती-साथी हृत्पर्ये परिवर्तित तथा शुभपक्षता श्रेयाका उन्नी तरह सकल करने का प्रेक्ष भोहरप्रप पुत्रपद पाठ वेग करनेवाला काम स्वयं पढ़कर गाये हैं ॥ १ ॥

मैं शीघ्र ही किसी तीले शक्य अवकाश विगठे अपने प्राण त्याग दूंगी। परंतु इत उदहर्षके नहीं मुझे और विप वा शक्य देनेवाला भी नहीं है ॥ १९ ॥

शोकाभिभूता बहुधा चिन्दिम्य
सतीतय वेणीप्रथम गृहीत्वा ।

उद्वृष्य वेण्युद्वृष्यनेन शीघ्र
महं गमिष्यामि यमस्य मूलम् ॥ १७ ॥

शोकसे उदत हुई सीताने इधी प्रकार बहुत कुछ विचार करके अपनी सोटीको पकड़कर निश्चय किया कि मैं शीघ्र ही इत चोटीसे चोटी ब्याकर यमलोकेमें पहुँच जाऊँगी ॥ १७ ॥

उपस्थिता सा सुदुसंबाग्री
घातां गृहीत्वा च तगस्य तस्य ।

तस्यास्तु रामं परिधिस्तपस्या
रामानुजं स्व च कुक्ष्युभाङ्गयाम् ॥ १८ ॥

तस्या विशोकानि तदा बहुनि
धैराजितानि प्रहरापि ङोके ।

प्रातुर्मिच्छामि तवा बहुशु
पुरापि सिद्धाम्पुपन्नसितानि ॥ १९ ॥

सीताजीके तभी अहं बड़े क्रोधक थे । वे उत भयोदहर्षके निकट उठकी घाता पकड़कर लड़ी हाँ र्ग्याँ । इत प्रकार प्राण-त्यागके किये उदत हो जब वे भीष्मक-कसल और अपने कुक्षके शिष्यमें विचार करने र्ग्याँ, उत समय शुभाङ्गी सीताके लम्ब पेसे बहुत-से शोकाभिभूत भेद उद्गुन प्रकट हुए जो शोककी निवृत्ति करनेवाले और सही उदहर्ष रेंवादिवाला थे । उन उद्गुनोंका दर्शन और उनके शुभ फलोका उद्गुनमय उन्हें पढ़के भी हो चुका था ॥ १८ १९ ॥

हृत्पर्ये श्रीमत्परायने शक्यीक्ष्ये चरित्काम्य मुन्दरकावने चट्टार्लर्त्तं सनं १११ ॥ १८ ॥

एत प्रकार भीमवृषाक्ष्मीके विरहित और उमायने चरित्काम्यक मुन्दरकावने चट्टार्लर्त्तं सनं १११ ॥ १८ ॥

तस्याः शुभं याममरालपक्षम-
राम्याशुच कृष्णविद्यालङ्कारम् ।

प्रास्पन्दैक नयनं सुकक्षया
मीनाहृतं पयमियाभिताङ्गम् ॥ २ ॥

उत समय मुन्दर केरावासी सीताका सोकी बरौनियोंके पिरा हुआ परम मनाहर फलसा र्वेल और विद्यालय शोष नभ कक्षके लय । वेत मङ्गलीके भाषणसे अल कमक रिक्तने भग्य है ॥ २ ॥

मुमुक्षु चापश्चित्तवृत्तपरिणा
पराप्यकाञ्चागुरुवचस्वनाहः ।

अनुभूतमनाध्वुरितः प्रियेण
चिरणं यामा समदयपताशु ॥ ३ ॥

अथ ही उवाच मुन्दर प्रभंभिन्न गन्धकार मेघी, बहु
सुखं च बहु और चम्पनसं चर्चित्त हाने गन्ध ताया परम
उत्तम प्रियतमहाया निरन्ध्रम् तस्मिन् बौर्षी भुञ्जते भी
तन्मन् चक्रु उवाच ॥ ३ ॥

गन्धद्रुहस्तप्रतिमन्ध र्गनि
सत्याश्रयोः सहतपस्सु जातः ।

प्रमत्तमानः पुनरुदरस्या
राम पुरस्तात् स्थितमाचक्षते ॥ ४ ॥

छिन्न उवाच परस्परं सुधीं दुर्दं रोनेन बौर्षीमेव एकं बौर्षी
बौर्षी, ध्ये गन्धराजस्ये मूत्रके समान पीन (मोटी) पी,
एवं एव चक्रुदर मानी यह चूना देन समी किं भगवान्
भीष्म सुन्दर वामन लक्ष्मी ॥ ४ ॥

पुत्रं पुनर्होमस्तमानयन्
मीमन् प्रजाप्यस्तमियासु चक्षुषाः ।

यासां स्थितायाः शिखराप्रपङ्गयाः
किञ्चिद्विपरिप्लवत धारुणाभ्याम् ॥ ५ ॥

गन्धद्रुहस्तप्रतिमन्ध र्गनि मुन्दर वीर्य मनाहर
एव और अनुभव ननवासी भीताश्च ये वहाँ चूचक नीन
मही पी, अन्धक गमान रंगताया किञ्चिद्वि मन्त्रि रेचमी
केन्द्रान् वनिन्द्र-का शिखर गया और भाषी सुभकी मूषना
देने चक्षु ॥ ५ ॥

हृत्कार्ये भीमजामायणे वाक्कीकीने अदिकाश्च सुन्दरकाण्ड एकमर्षिताः सर्गाः ॥ १९ ॥
एत एका अंतर्लक्षितनिर्दिष्ट अर्षीगण्यम् अदिकाश्च सुन्दरकाण्डमे सर्वं पूरा हुना व २ ॥

यमैर्मिमिसैरपरैश्च सुभु
सञ्चोदिता प्रागपि साधुसिद्धैः ।

यासात्पञ्चान्तमिय प्रपद्य
यवैण यीज प्रतिसज्जह्य ॥ ६ ॥

इतम तथा और भी भनक चकुनीन, त्रिनक हाग
पदक भी मनाएव विद्विभ परिषय मिय पुत्र भा, प्ररित
दुर्दं मुन्दर भीतोवासी याया उवा प्रकर इति मिय उवा,
केस हवा और भूयम गन्धर नभ दुभा बीन कर्णिके चक्षु
विचकर हवा हा गया हा ॥ ६ ॥

तस्याः पुनर्यथैयत्कामागमार्ष्टं
मक्षिधुवशात्ममदास्यपक्षम् ।

यक्षत्रं यभासं सितगुह्यरैष्ट्रं
राहोमुखाद्यद् इय प्रमुखाः ॥ ७ ॥

उनका विश्वरूपक गमान चक्षु आठों, मुन्दर नेमी,
मन्धर भीरों, इतिर चक्षु, बौर्षी परीमिनी तथा एतत
उत्तमन रीकोषे मुषीभित मूष चक्रु प्रपत्तं चक्रु दुए
चक्रुमक्षी भौनि प्रभगिात शोन भगा ॥ ७ ॥

सा यीतदोक्ष व्यपनीततद्ग्रा
शान्तग्यया ह्यपियुद्धसत्परा ।

अशोभताया पद्मनन शुपल
शीतांगुना रात्रिरिष्यद्विन ॥ ८ ॥

उनका शाक यता रहा, शरी गन्धरदूर हा गयी मनका
जाय शान्त हा गया और हृदय इति मिय उवा । उवा
गमय भाका शीत गुन्धकाधमे उरिन दुए शीतारिभ चक्रुमा
से मुषीभिन रात्रिभी भौनि अवन मनोहर शुभषे भद्रभुग
वाभा पान भगी ॥ ८ ॥

त्रिंशो सर्ग

माताश्रीसु पातालाय करनक विषयमे इनुमान्त्रीका विषार करना

इनुमानपि विद्यात्मनः स्वयं शुभाय नरवता ।
मंथिपारमिन्नरायाश्च राक्षसीनां च तत्रितम् ॥ १ ॥

याकथं इनुमान्छोने भी भो तासीका विषाय विषयकी
अनपया तथा राक्षसिकाको हॉट हफ्ट—व सब प्रसंग
पैकीक पुन मिय ॥ १ ॥

अशोभताया पद्मनन शुपल
शीतांगुना रात्रिरिष्यद्विन ॥ २ ॥

गन्धकी एसी ज्ञान पदवी पी मना नन्दननमे चर्द
रेते ठे । चरे दे ही दुए कानपीर इनुमान्त्री तार तारकी
पिन्ध करन च्च ॥ २ ॥

यां कर्षीनां सहस्राणि सुयद्भ्ययुतानि च ।
विदुः सखास्तु मार्गंस्त नयमानादिता मया ॥ ३ ॥

मिन् भीतासीके इगरो आनो कानर लमका दिशाओमे
उँद ररे हैं, भाव उरें मीन प्य अशा ॥ ३ ॥

याएण तु सुयुद्धमं दानाः गच्छिमयेक्षता ।
गूढमं चरता तावद्व्यभिक्तमिदं मया ॥ ४ ॥

राक्षसाधिपतरुम्य प्रभाया रायणम्य च ॥ ५ ॥

मै म्नामोहाग निमुद्ध पून बनकर गुन्धकयम चक्रुपी
वाकिक पत्र भगा रहा वा । इती निर्वर्णके मीन राधलोच

व्याप्तम् ॥ इत् पुरीषा तथा इत् राक्षसाश्च यक्षभे
प्रमत्तका भी निरीक्षण कर किया ॥ ४५ ॥

यथा तस्याप्रमेयस्य सर्वसत्त्ववधायातः ।
समाभ्यासयितुं भार्या पतिवर्शनकाङ्क्षिणीम् ॥ ६ ॥

भीषीताभी अश्वीम प्रमत्तघात्री तथा सब बीजोपर
रया करनेवाले भगवान् श्रीरामकी भार्या हैं । ये अपने पति-
देवका दर्शन पानेकी अभिलाषा रखती हैं अतः इन्हें
वास्तवना देना उचित है ॥ ६ ॥

अहमाभ्यासयाम्यनां पूर्ववन्मृनिभाननाम् ।
महदपनुनां युञ्जस्य न ह्यन्तमधिगच्छतीम् ॥ ७ ॥

इनका मुझ पूर्ववन्मृनाके समान मनोहर है । इन्होंने
पहले कभी ऐसा दुःख नहीं देखा था ; परन्तु इस समय
युद्धका पार नहीं पा रही हैं । अतः मैं इन्हें आश्वतन
रूँगा ॥ ७ ॥

यदि ह्यह सतीमेनां शोकोपहृतचेतमाम् ।
भनाभ्यास्य गमिष्यामि शोपवत् गमनं भयत् ॥ ८ ॥

ये शोकेके कारण अचेत ही हो रही हैं यदि मैं इन
शती-शाष्ठी सीताको वास्तवना दिये बिना ही जसा आदोष
तो मेरा वह जाना शोपमुक्त होगा ॥ ८ ॥

गत हि मयि तत्रेय राजपुत्री यशस्विनी ।
परिहाणमपश्यन्ती जानकी जीयितं त्यजेत् ॥ ९ ॥

मेरे जेठे भानेपर अपनी राजपुत्री उपास न देख-
कर वे यशस्विनी राजकुमारी जानकी अपने जीवनका अन्त
कर देंगी ॥ ९ ॥

यथा च स महाबाहुः पूर्ववन्मृनिभाननः ।
समाभ्यासयितुं न्याप्याः सीतावर्शनकाङ्क्षया ॥ १० ॥

पूर्ववन्मृनाके समान मनोहर मुलबाजे महाबाहु भी-
रामवन्मृभी भीषीताभीके दर्शनके द्विप उम्मुक्त हैं । जिस
प्रकार उन्होंने सीताका उद्वेग मुनाकर वास्तवना देना उचित
है उसी प्रकार सीताका भी उनका उद्वेग मुनाकर आश्वतन
देना उचित होगा ॥ १० ॥

निशाचरीणां प्रत्यक्षमक्षयं चाग्निभाषितम् ।
कथं नु क्वानु क्तम्यमिद् वृष्टयूगतो ह्यहम् ॥ ११ ॥

परन्तु राक्षसियोंके सामने इनसे बात करना मेरे द्विप
ठीक नहीं होगा । ऐसा भयसामने यह कथन कैसे सम्भव
करना चाहिये यही निश्चय करना मेरे द्विपे उचित नहीं
कठिनाई है ॥ ११ ॥

अनन रात्रिप्राण यदि नाभ्यास्यभ मया ।
स्यथा नास्ति सर्वदाः परियस्यति जीयितम् ॥ १२ ॥

यदि इस रात्रिके शीतल-नीतले मैं सीताको वास्तवना
नहीं दे दूँगा तब भी यक्षका अवन बीजनका परित्याग कर
देंगे अन्यथा उचित नहीं है ॥ १२ ॥

यमस्तु यदि पृच्छेन्मा किं मा सीताप्रयीष्वक्षः ।
किमह त प्रतिभ्यामसम्भाष्य मुमप्यमाम् ॥ १३ ॥

यदि भीरामवन्मृभी मुझे पूछें कि सीताने मेरे द्विपे
क्या उद्वेग मेला है तो इन मुमप्यमा सीतासे बात करने बिना
मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा ॥ १३ ॥

सीतासदेशरहितं मामितस्वरथा गतम् ।
निर्वृष्टवृषि काकुत्स्थः श्लेषतीमेण चक्षुषाम् ॥ १४ ॥

यदि मैं सीताका उद्वेग द्विपे बिना ही कहति दूरत
छेद गया तो क्वानुक्कमुपय भगवान् भीराम अपनी
श्लेषमी दुःख इदिते मुझे कक्षकर मस कर बाँधेंगे । यथा
यदि शोकोजयिष्यामि भर्तारं रामकरणात् ।
स्यर्थायामन तस्य ससैन्यस्य भविष्यति ॥ १५ ॥

यदि मैं इन्हें वास्तवना दिये बिना ही छेद करके और
भीरामवन्मृभीके कर्णको उद्विपे द्विपे अपने स्वामी करनराज
मुभीको उद्वेकित करूँ तो जानरदेनाके साथ उनका बर्षाक
जाना स्वर्ण हो जायगा (क्योंकि सीता इतके पहले ही अपने
प्राण त्याग देंगी) ॥ १५ ॥

अन्तरं त्वहमासाद्य राक्षसीनामपस्थिता ।
शारीराभ्यासयाम्यद्य सतापवन्मृनिभाननाम् ॥ १६ ॥

अन्तर्गत राक्षसियोंके रहते हुए ही अन्तर पाकर
आज मैं यही बेटे-बेटे इन्हें धीरे धीरे वास्तवना दूँगा ; क्योंकि
इनके मनमें बड़ा उद्वेग है ॥ १६ ॥

अहं ह्यतितनुञ्जैव यानरथ्य विद्योपसः ।
धावं शोदाहरिष्यामि मानुपीमिह ससकृताम् ॥ १७ ॥

एक तो मेरा शरीर अत्यन्त दुर्बल है ; दूसरे मैं जानर
हूँ । विद्योपसः यानर होकर भी मैं यहाँ मानवोचित संकृत
भाग्यमें बर्षूँगा ॥ १७ ॥

यदि वाच प्रदास्यामि द्विजाक्षिरिष्य ससकृताम् ।
राक्षस्यं मन्थमाना मां सीता भीता भविष्यति ॥ १८ ॥

परन्तु ऐसा करनेमें एक बाधा है ; यदि मैं द्विपे
भौति संकृत-नाभीका प्रयोग करूँगा तो भीता मुझे रामक
तमहकर मयभीत हो जायेंगी ॥ १८ ॥

अवद्वयप्रयं यक्षस्य मानुषं याक्यमयं यत् ।
मया साम्प्रयितुं शक्या मान्मथेयमनिमित्ता ॥ १९ ॥

देही दशामे अवदप ही मुझे उक्त कार्यक मायाका
प्रयोग करना चाहिये जिस अशेष्याक आठ-पाठकी क्षयकर
जनता वाक्यी है अन्यथा इन शती-शाष्ठी सीताको मैं उचित
आश्वतन नहीं कर सकता ॥ १९ ॥

सयमानाक्य म रूपं आमकी भाषित तथा ।
रक्षाभिन्नासिता पूर्वं भूयस्यासमुपैष्यति ॥ २० ॥

यदि मैं सामने जाऊँ तो मेरा इत जानररूपको देखकर

और मेरे मुखसे मानवोचित भाषा सुनकर वे अनकनन्दिनी
 थीं, किन्तु पहलेसे ही राक्षसोंने मन्मथीत कर रक्सा है,
 और मैं डर जायगी ॥ २ ॥

ततो ज्ञातपरित्रासा शब्दं कुर्यान्मनसिनी ।
 ज्ञानाना मां विशाद्यस्त्रीरायणं कामरूपिणम् ॥ २१ ॥

भयने भय उत्पन्न हो जानेपर वे विशाद्यस्त्रीका
 मनसिनी थीं तब मुझे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला रावण
 कामरूप और-भोरसे श्रीकने चिरकने भोगी ॥ २१ ॥

सीतया च हृते शब्दे सहसा राक्षसीगणः ।
 नागापहरणो घोरा समेपावन्तकोपमः ॥ २२ ॥

सीताक विस्मानेपर वे यमराजके समान भयानक
 राक्षसों तरह-तरहके हथियार लेकर उड़वा आ भयभोगी ॥
 ठठो मां सम्परिक्षिप्य सर्वतो विकृताननाः ।
 वधे च ग्रहणे चैव कुर्युर्यत्न महाबलमः ॥ २३ ॥

उत्पन्नतर वे विषट् मुखवाची महाबलमती राक्षसियों
 मुझे धव ओरसे धेरकर मारने वा पकड़ लेनेका प्रयत्न
 करेंगी ॥ २३ ॥

वं मां शास्त्राः प्रशास्त्राश्च रुक्मधाञ्चोत्तमशास्त्रिणाम् ।
 ह्यूप च परिधायस्त भवेयुः परिशुक्रिताः ॥ २४ ॥
 फिर मुझे बड़े-बड़े हथौंधी शास्त्रा प्रशास्त्रा और मोटी-
 मोटी बाणियोंपर दीवता देव वे सब-श्री-सब घडा हो
 उठेंगी ॥ २४ ॥

मम रूपं च सम्प्रेक्ष्य वने विचारतो महत् ।
 पक्षयो भयविभक्ता भधुयुर्विहृतस्वराः ॥ २५ ॥

भयने विचरते हुए मेरे इस विशाद्य रूपके देखकर
 पक्षियों भी मन्मथीत हो बुरी तरहसे विस्माने भोगी ॥ २५ ॥
 एतः कुर्युः समादानं राक्षस्यो रक्षसामपि ।
 पक्षसेन्द्रमियुक्ताना राक्षसेन्द्रमिषेदान ॥ २६ ॥

इसके बाद वे निष्कारियों राक्षसरावणके महर्षमें
 उनके द्वारा नियुक्त किये गये राक्षसोंको बुझा लेंगी ॥ २६ ॥
 वे शुकशरमिक्षिशविधिधातुध्यायम् ।
 आपतयुक्तिर्मयैऽस्मिन् वेगनेन्द्रेणकारणात् ॥ २७ ॥

इस इच्छाके वे राक्षस भी उद्विग्न होकर एक रावण
 तक्षार और तरह तरहके शस्त्रा लेकर बड़े वेगसे आ
 कमरों ॥ २७ ॥
 संकष्टस्तैस्तु परितो विभ्रम राक्षस बलम् ।
 पक्षुणां न तु सम्पान्त्तं पर पाटं महोदधः ॥ २८ ॥

उनके द्वारा तब ओरसे फिर जानेपर मैं राक्षसोंकी
 केन्द्रस्थार तां कर लफटा हूँ परंतु तम्ररके उत पार नहीं
 पहुँच सकता ॥ २८ ॥

मां वा गृहीयुः राघुण्य यदवाः शीघ्रकारिणः ।
 अपदिपं चागृहीतायां मम च ग्रहण भयेत् ॥ २९ ॥

यदि बहुधसे फुटीके राक्षस मुझे धेरकर पकड़ लें तो
 सीताकी मन्मथ मी पूरा नहीं होगा और मैं भी पदी बना
 किया जाऊँगा ॥ २९ ॥

विस्मिन्मिषययो विस्सुरिमां वा जनकारमसाम् ।
 विपन्नं स्यात् तवः कार्यं रामसुग्रीवयोरिवम् ॥ ३० ॥

इसके सिवा हिसामे रुधि रखनेवाले राक्षस यदि
 इन जनकसुखीको मार डालें तो श्रीसुनायकी और सुग्रीवक
 यह सीताकी प्राप्तिरूप अभीष्ट कार्य ही नष्ट हो जायगा ॥ ३० ॥
 तद्वेशे नष्टमार्गेऽस्मिन् राक्षसैः परिवारिते ।
 सागरेण्य परिवर्तिते गुप्ते वसति जानकी ॥ ३१ ॥

यह स्थान राक्षसोंसे बिरा हुआ है । यहाँ आनेका मार्ग
 दुष्प्राप्त देखा या जाना हुआ नहीं है तथा इस प्रदेशको
 छुड़ने वारों ओरसे घेर रक्सा है । देवे गुप्त स्थानमें
 बहनकी निवास करती हैं ॥ ३१ ॥

विशुष्टे वा गृहीते वा रक्षोभिर्मपि संयुगे ।
 नाश पश्यामि रामस्य सहाय कार्यंसाधने ॥ ३२ ॥

यदि राक्षसोंने मुझे संवाममें पार दिया या पकड़ किया
 तो फिर श्रीसुनायकीके कार्यको पूर्ण करनेके लिये कोई
 दूसरा सहायक भी मैं नहीं देख रहा हूँ ॥ ३२ ॥

विमृशाम्य न पश्यामि यो हते मपि वामराः ।
 शतयोजनविस्तीर्णं बह्व्येत महोदधिम् ॥ ३३ ॥

बहुत विचार करनेपर भी मुझे देखा कोई वानर नहीं
 बिकामी देता है, जो मेरे मारे जानेपर भी नोकन विस्तृत
 महासागरको छँप सके ॥ ३३ ॥

कामं हन्तु समर्थोऽस्मि सहस्राप्यपि रक्षसाम् ।
 न मु शक्याम्यहं प्राप्तुं पर पाटं महोदधः ॥ ३४ ॥

मैं इच्छानुकर तद्वत् राक्षसोंको मार डालनेमें समर्थ
 हूँ; परंतु मुझमें कौन जानेपर महासागरके उत पार नहीं जा
 सकूँगा ॥ ३४ ॥

असत्यानि च मुञ्चानि सशयो मे न रोचते ।
 कश्च नासंशयं कार्यं कुर्यात् प्राज्ञः ससशयम् ॥ ३५ ॥

मुझ अनिश्चयवाक्य होता है (उठमें किश पधरी
 विशय होगी, यह निश्चित नहीं रहवा) और मुझ संशययुक्त
 कार्य प्रिय नहीं है । मैंने देखा बुद्धिमत् होमा, जो संशयपरहित
 कार्यको लयायुक्त बनाना चाहेगा ॥ ३५ ॥
 एष दोषो महान् हि स्यान्मम सीताभिभाषणे ।
 माणत्यागश्च वैदृष्टा भयदमभिभाषणे ॥ ३६ ॥

श्रेयस्कीसे बलवीत करनेमें मुझे बड़ी महान् दोष प्रतीत
 होता है और यदि बातचीत नहीं करता हूँ तो निवेदनदिनी
 सीताका प्रायस्वाग भी निश्चित ही है ॥ ३६ ॥
 भूताभाषा विरुपक्ति वृथात्वपरिप्रेक्षिताः ।
 पित्र्यं दूतमासाद्य तमः स्वोदये पया ॥ ३७ ॥

अनिवेशी वा अस्वभावान् वृत्तेः हायमे पङ्केपर बने
 बनाने काम मी देख-कालके विशेषी होकर उठी प्रकृष्ट
 मलच्छ हो बने हैं, जैसे सूर्यप्र उदय होनेपर सब मोर फेड़े
 हुए मन्वकारका कोई बघ नहीं चलाय, वह निच्छ हो
 जाता है ॥ १७ ॥

अर्षानर्षान्तरे बुद्धिर्निश्चितापि न शोभते ।
 भालयन्ति हि कार्याणि वृताः पवित्रतमामिमाः ॥ १८ ॥

अर्षन्त मोर अर्षन्तके विषयमे स्लामीन्त्री लिखित
 बुद्धि मी अविशेषी वृत्तेके अरज्य घोमा नहीं पाती है क्योंकि
 अपनेको बड़ा बुद्धिमान् या पवित्र समझनेवाले वृत्त अपनी
 ही नाशमहीसे कार्यको नष्ट कर जायते हैं ॥ १८ ॥

न विमद्वेत् कथं कार्यं वैकल्यं न कथ मम ।
 क्लृप्तं च समुद्रस्य कथं नु न वृथा भवेत् ॥ १९ ॥
 कथं नु खलु वाक्यं मे शृणुयापोद्विजैत च ।
 इति संखित्य हनुमान्वाक्यार मतिमान् मतिम् ॥ २० ॥

किर किस प्रकार वह कम न विगड़े, किस तरह मुझसे
 कोई अलक्षणी न हो किस प्रकार मेरा समुद्र क्षेपना स्वयं
 न हो वाय और किस तरह सीताकी मरी शरी बातें सुन में,
 किंइ पक्षरहमे न पड़े—इत सब बातोंपर विचार करते
 बुद्धिमान् हनुमान्जीने यह निश्चय किया ॥ १९ ॥

राममखिलकर्मार्थं सुबन्धुमनुकीर्तयन् ।
 मैनामुद्वेसयिष्यामि तद्वन्धुमत्तचेतनाम् ॥ २१ ॥

इत्यर्थे धीराशामायणे शकमीकीये आदिशब्दो सुन्दरशब्दो विद्या सर्गः ॥ १ ॥
 इस प्रकार धीराशामायण अक्षरशब्दो सुन्दरशब्दो तैत्तिरीयं सूत्रा हुमा ॥ १ ॥

एकत्रिंश सर्ग

हनुमान्जीकी सीताको सुनानेके लिये धीराम-कथाका वर्णन करना

एष बहुविधां चिन्तां चिन्तयित्वा महामतिः ।
 संभवे मयुरं वाक्यं वैश्रवा व्याजहात् ॥ १ ॥

इत प्रकार बहुत-सी बातें सोच-विचारकर महामति
 हनुमान्जीने सीताको सुनाते हुए मयुर वाक्योमे इस तरह
 कहना आरम्भ किया— ॥ १ ॥

रात्रा दशरथो माम रघुकुलारवाग्निमान् ।
 पुण्यशीलो महाकीर्तिरिह्वाकुर्षा महावशाः ॥ २ ॥

इत्वाकुषयमे रात्र दशरथ नामसे प्रसिद्ध एक
 पुत्रतमा रात्रा हो गये हैं । वे अल्पन् कीर्तिमान् और महान्
 बधस्वी थे । उनके बरों रघु हापी और षोड़ बहुत
 अधिक थे ॥ २ ॥

राजर्षीणां गुणभद्रस्तपसा खर्षिभिः समः ।
 शक्यार्तिकुलं जातः पुरंदरसमा बल ॥ ३ ॥

किन्नाचित् अपने बीचन बन्धु धीराममें ही क्या है
 उन सीताकोके मैं उनके प्रियतम धीरामको को अनन्तप ही
 महान् कर्म करनेवाले हैं, गुण गा-ग्यकर सुनाऊँगा और उन्हें
 उक्तिन नहीं होने लूँगा ॥ १ ॥

इत्वाकुषां बरिष्ठस्य रामस्य विदितामनः ।
 शुभानि धर्मयुक्तानि वचनानि समर्पयन् ॥ ४ ॥

मैं इत्वाकुषमूल्य विदितामना मगान् धीरामके
 सुन्दर परमांतुकुल बधतोको सुनाता हुमा यही बेटा रूँगा ॥
 भावयिष्यामि सर्वाणि मयुरां प्रवृत्तन् गिरम् ।
 भ्रष्टास्यति यथा सीता तथा सर्वे समादधे ॥ ४ ॥

पीठी बानी शोकर धीरामके शारे संदेशोंको इस
 प्रकार सुनाऊँगा, जिससे सीताका उन बधनोंपर विश्वास हो ।
 बिध तरह उनके मनका संदेश दूर हो, उही तरह मैं सब
 बातोंका समाधान करूँगा ॥ ४ ॥

इति स बहुविध महाप्रभावो
 जगतिपतेः प्रमखामपेक्षमाणः ।
 मयुरमखितयं जगाद् वाक्यं
 मूमभितपास्तरमाखितो हनुमान् ॥ ५ ॥

इस प्रकार यौत्ति-भौत्तिसे विचार करते मयुर-वृष्टकी
 श्रुताओंमे खिपकर बैठे हुए म्हाप्रमावशाकी हनुमान्की
 वृत्तीयति श्रीगामचन्द्रकीकी मर्षाकी मोर देखते हुए मयुर
 एवं मर्षार्थ बल करने लगे ॥ ५ ॥

इस प्रकार धीराशामायणे शकमीकीये आदिशब्दो सुन्दरशब्दो विद्या सर्गः ॥ १ ॥
 इस प्रकार धीराशामायण अक्षरशब्दो सुन्दरशब्दो तैत्तिरीयं सूत्रा हुमा ॥ १ ॥

उन भेद्र नरेणमे राक्षसियोंके लम्बन गुण थे । तपस्वमे
 भी वे श्रुतियोंकी धमनाश करते थे । उनका कम चक्रवर्ती
 नरेणोंके कुलमें हुमा था । वे देवराज इन्द्रके समान
 बलवान् थे ॥ १ ॥

अहिंसारतिरभुद्रो पूषी सत्यपराक्रमा ।
 मुक्यस्येह्वाकुषशस्य लक्ष्मीषौद्धिमिभर्षणः ॥ ४ ॥
 पार्थिवम्यजनेयुक्तः पूषुधीः पार्थिवर्षभः ।
 पूषिष्यां शत्रुपन्ताया विभ्रुतः सुकवः सुकी ॥ ५ ॥

उनके मनमे अहिंसा-धर्मके प्रति बड़ा अनुराग था ।
 उनमें सुदृढताका नाम नहीं था । वे इत्वा लक्ष्य-पक्षकी
 और भेद्र इत्वाकुषकी गोमा बदानेवाले थे । वे लक्ष्मीशत्रु
 नरेण राक्षसित लक्षकोंसे मुक्त परिपुष्ट होमासे सम्पन्न और
 लक्ष्मीमे भेद्र थे । यको समुद्र बितकी सीमा हैं उस लक्ष्मी

भूषणकर्मैः तव भोरः उनकी बड़ी क्यासि यी । वे स्वयं तो मुन्नी बे ही । वृषदेवो मी मुञ्च देनेवाक्ये ॥ ४- ॥
 तस्य पुत्रः मियो ज्येष्ठस्ताराधिपतिभागिनः ।
 रामो नाम विशोपकाः श्रेष्ठः सर्वेषु प्रथमताम् ॥ ६ ॥

उनके श्रेष्ठ पुत्र भविय-नामसे प्रसिद्ध हैं । वे पिताके साथके, बनरामके समान मनोहर मुखवाक्ये सम्पूर्ण धनुषारिणोंमें श्रेष्ठ और शक्य-विधाके विशेषज्ञ हैं ॥ ६ ॥

रक्षिता स्वस्य वृक्षस्य स्वजनस्यापि रक्षिता ।
 रक्षिता जीवन्तोक्तस्य धर्मस्य च परतपा ॥ ७ ॥

पुत्रुर्भोज्यं उदाय देनेवाक्ये भीराम अपने उदाधारक, सबकोके, इस वीर शत्रुके तथा धर्मके भी रक्षक हैं ॥ ७ ॥

तस्य सत्याभिसंधस्य धृष्टस्य वचनान् पितुः ।
 सभायैः सह च आत्रा वीरः प्रसन्नितो वनम् ॥ ८ ॥

उनके बड़े पिता महाराज बधरथ बड़े सत्यप्रसिद्ध थे । उनकी आजासे वीर भीरधुनायकी अपनी पत्नी और भाई कर्मबड़े साथ बनमें शक्ये आये ॥ ८ ॥

तेज तत्र महारथस्य मृगयां परिभाषता ।
 पाससा निहतां शूरा वधवाः कामरूपिणः ॥ ९ ॥

वही शिवाक बनमें शिकार लेकते हुए भीरामने इच्छानुसार कव धारण करनेवाक्ये बहुतसे शूरीर राक्षसोंका वध करवाया ॥ ९ ॥

जनन्यानपथ भ्रुवा मिहरी खररूपणी ।
 ततस्तयमयापहृता जानकी रावणेन तु ॥ १० ॥

उनके द्वारा जनमानके विध्वंस और खररूपके बचक कर्मकार मुनकर राक्षसने भयवश जनकनन्दिनी कीटाक भयदण कर लिया ॥ १० ॥

वशयित्वा यन राम मृगारूपेण मायया ।
 समार्गमापन्नां शूर्पा रामः सीतामनिन्दिताम् ॥ ११ ॥
 मयसाव यन मित्र सुमीय नाम वानरम् ॥

पदसे तो उठ राक्षसने मायासे मृग यन हुए मायेचके रूप बनमें भीरामबन्धकीको चोला दिया और स्वयं धनकी कंधे पर च गया । भगवान् भीराम परम कान्शी सीतादेवीकी धारण करत हुए मत्तग-बनमें भाकर सुमीय नामक वानरसे मित्र और उनके साथ उन्होंने मैत्री स्थापित करली ॥ ११ ॥

तदा स पाठिनं हत्या रामः परपुरज्जयः ॥ १२ ॥
 धायच्छत् कपिराज्यं तु सुमीयाय महारामन ।

तदनन्तर शत्रु-नगरीपर विजय पायेवाक्ये भीरामने काकी धाय करके वानरीका राज्य महारामा सुमीयका दे दिया ॥

हृष्ययै भीमहायावज वाक्योक्तये आदिशस्य सुन्दरकाण्डे पृथ्वीकाः सर्गाः ॥ ११ ॥

११ प्रका भीरवर्त्मनिर्दिष्टं कर्त्तव्यं म अदिशस्ये सुन्दरकाण्डे पृथ्वीसर्गो लो पूग रूप ॥ ११ ॥

सुमीयेणाभिसदिष्टा हरयाः कामरूपिणः ॥ १३ ॥
 विश्वु सर्वास्तु तां देयीं विचिन्वन्तः सहस्रशः ।

तत्कालात् वानरराज सुमीयकी आकासे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाक्ये हजारों वानर सीतादेवीका पता लगानेके लिये सम्पूर्ण दिशाओंमें निकल गये ॥ १३ ॥

महां सम्पातिषत्तनाच्छस्योजनमायतम् ॥ १४ ॥
 तस्या हस्तोर्विशालाकास्या समुद्रवेगवान् प्लुताः ।

उन्होंने एक में भी हैं । मैं सम्पातिके कहनेसे विशाल-कोचना विदेहनन्दिनीकी कावके लिये ही योवन विस्तृत समुद्रको वेगपूर्वक छोड़कर यहाँ आया हूँ ॥ १४ ॥

यथाकृपा यथावर्षा यथालक्ष्मवर्षा च ताम् ॥ १५ ॥
 भभौप राघवस्थाह सेयमासाविता मया ।
 विररामैषमुपस्था स वाच धामरपुङ्गवा ॥ १६ ॥

मैंने भीरधुनायकीके मुखसे वानकीभीका सेवा रूप, सेवा रंग तथा सेवा कथन सुनेये, उनके अनुरूप ही इन्हें पाया है । इतना ही कहकर वानरधिपमिनि इतमन्त्री चुप हो गये ॥ १५, १६ ॥

जानकी खापि तच्छ्रुत्या विस्मयं परमं गता ।
 ततः सा वक्रदेशाभ्या सुकेदी केदासधृतम् ।
 उन्नम्य वदन भीराः शिवापामम्यपैस्त ॥ १७ ॥

उनकी बातें सुनकर जनकनन्दिनी श्रेताको बड़ा विस्मय हुआ । उनके केश पुँगवाक्ये और बड़े ही मुग्धर प । मीक श्रोतने केगोते बड़े हुए अपने मुँहको ऊपर उठाकर उठ अथोक इच्छकी और देखा ॥ १७ ॥

निशाम्य सीता वचनं कपदस्य
 दिशश्च सयाः प्रदिशश्च वीक्ष्य ।
 स्वयं प्रहृष्य परमं जगाम

सयारमना राममनुस्मरन्ती ॥ १८ ॥
 कपिके वचन सुनकर श्रेताको बड़ी प्रव्रणता हुई । वे सम्पूर्ण वृत्तियोंसे भगवान् भीरामका स्मरण करती हुई तमका दिशाओंमें दृष्टि रोड़ाने लगी ॥ १८ ॥

सा तियगूर्ण्य च तथा ज्ञभस्ता
 प्रीरिभ्रमाणा तमचिन्त्यबुद्धिम् ।
 वृदा विद्वाधिपतरत्मात्वं

पातामम्र सूर्यमियोव्यस्यम् ॥ १९ ॥
 उन्होंने ऊपर नीचे तथा इतर उतर दृष्टिगत करके उन अचिन्त्य बुद्धिवाक्ये पवनपुत्र द्रुमान्ध को वानरराज सुमीयके लक्ष्मी ये, उदयानकरर विद्यवमान नृपक मानन देखा ॥ १९ ॥

१९ प्रका भीरवर्त्मनिर्दिष्टं कर्त्तव्यं म अदिशस्ये सुन्दरकाण्डे पृथ्वीसर्गो लो पूग रूप ॥ ११ ॥

द्वात्रिंश सर्ग

सीताजीका सर्क-वितर्क

ततः शास्त्रान्तरे स्त्रीम हृद्यु अकलितमानसा ।
 येष्टितासुंनववर्षं तं विद्युत्संघातपिङ्गलम् ॥ १ ॥
 सा वृक्षां कपिं तत्र प्रकथितं प्रिययादिनम् ।
 पुष्पापोषोत्करभासं तस्यभाम्नीकरेष्टामम् ॥ २ ॥
 एष शास्त्राके स्वीयत छिपे ह्युए, विद्युत्पुङ्गवे उमान
 अरवत्स पिङ्गल वर्षबाणे और एतेत वक्ष्यारी इनुमान्स्वीपर
 बनकी हृष्टि पड़ी। फिर तो उनका चित्त चञ्चल हो उठा।
 उन्होंने देखा, पूछे हुए भयोकरके उमान अरुण कान्तिसे
 प्रकथित एक किनीत और प्रियवादी बनर आसिधेके
 बीचमें बैठा है। उधके नेत्र तपाने हुए सुवचनेके समान
 चमक रहे हैं ॥ १ २ ॥

साय हृद्यु हरिचोष्टं किनीतवदवस्थितम् ।
 मैथिली चिन्तयामास यिसम्यं परमं गता ॥ ३ ॥
 किनीतमावसे बैठे हुए बनरभेष्ट इनुमास्वीके देखकर
 मिथिलेष्टकुमारीके बड़ा आश्चर्य हुआ। वे मन-ही-मन
 सोचने लगीं—॥ ३ ॥

महो भीमसिंह धरवं वानरस्य पुत्रासवम् ।
 दुर्निरीक्ष्यमिदं मत्वा पुनरेव मुषोह सा ॥ ४ ॥
 'महो! बनरयोनिष्य यह बीच तो बड़ा ही भयंकर
 है। इसे पकड़ना बहुत ही कठिन है। इस्की ओर ले
 मौल ठठानकर देखनेका भी छाह नहीं होता।' ऐसा
 विचारकर वे पुनः मनसे मूर्च्छित-थी हो गयीं ॥ ४ ॥

विलक्षणप मुशं सीता कर्णं भयमोहिता ।
 रामरामेति पुञ्जातां लक्ष्मणेति च भामिनी ॥ ५ ॥
 मयसे मोहित हुई मामिनी सीता अत्यन्त फरबानक
 सरते व्हा राम! हा राम! हा लक्ष्मण! ऐक कहकर
 दुःखसे आह्वार हो अत्यन्त विषय करने लगीं ॥ ५ ॥

दरोश् सहासा सीता मन्मन्त्वधरा सती ।
 साय हृद्यु हरिकर्तं किनीतवपुपरागतम् ।
 मैथिली चिन्तयामास स्वप्नोऽयमिति भामिनी ॥ ६ ॥
 उक्त क्षय्य सीता मन्त्र सरते खज रो पड़ी। इतनेहीमें
 उन्होंने देखा वह भेष्ट बनर बड़ी विनयके साथ निकल
 आ बैठा है। तब मामिनी मिथिलेष्टकुमारीने बोला—'अह
 कोरे स्वप्न तो नहीं है ॥ ६ ॥

सा वीक्ष्यमाणा पृथुमुन्मथकर्म
 शाशासुगेन्द्रस्य पयोत्ककारम् ।
 वृक्षां पिङ्गप्रवर महाहर्षं
 वातामर्षं बुद्धिमतां करिष्टम् ॥ ७ ॥

उत्तर दक्षिणव करते हुए उन्होंने धनरुच्य सुप्रीवके
 भावायुषक विषाक और वैदे मुल्लशक परम आदरवीन

बुद्धिमानोंमें भेष्ट बनरप्रवर पवनपुत्र इनुमन्स्वीके
 देखा ॥ ७ ॥

सा त समीक्ष्यैव वृक्षां विपद्या
 गतासुकरोरेव वभूय सीता ।
 चिरेण सहा प्रतिष्ठम्य शैथ
 विधिगठयामास विशास्त्रमेवा ॥ ८ ॥
 उन्हें देखते ही सीताकी अत्यन्त व्यथित होकर ऐसी
 दशाकी पहुँच गयी, मानो उनके प्राण निकल गये हों।
 फिर बड़ी देरमें बैठे होनेपर विशास्त्रमेवना विरेह
 यककुम्बरीने इस प्रकार विचार किया—॥ ८ ॥

स्वप्नो मयायं विद्युतोऽय हृद्यु
 शास्त्रामुगाः शास्त्रगणैर्निविद्युः ।
 स्वस्त्यस्तु रामाय सख्यमप्याय
 तथा विद्युर्मे जनकस्य राजा ॥ ९ ॥
 मान मैंने यह बड़ा बुरा स्वप्न देखा है। अपनेमें
 बनरको देखना शास्त्रोंने निषिद्ध बताया है। मेरी भगवान्से
 प्रार्थना है कि भीरुम लक्ष्मण और मेरे पिता जनकका
 मन्त्र हो (उनपर इस दुःखान्ध प्रभाव न पड़े) ॥ ९ ॥

स्वप्नो हिमाय नदि मऽस्ति विद्या
 शोकम दुःखेन च पीडितायाः ।
 सुखं हि मे नास्ति यतो विहीना
 तमेऽनुपूर्वप्रतिमाननेन ॥ १० ॥
 'परहू यह स्वप्न तो हो नहीं सकता' क्योंकि खेक और
 दुःखसे पीड़ित रहनेके कारण सुप्ते कभी नींद माती ही नहीं
 है (नींद उठे माती है, किन्ते सुख हो)। सुप्ते तो उन
 पूर्वकप्रके समान सुखबाणे प्रेरपुनापथेसे विबुद्ध करनेके
 क्षय्य अब सुख सुख ही नहीं है ॥ १० ॥

रामेति रामेति सयैव बुद्धया
 विधिम्य वाचा वृकती तमेव ।
 तस्यानुकर्म च कर्षां तर्षो-
 मेवं प्रपश्यामि तथा शृणोमि ॥ ११ ॥
 मैं बुद्धिसे खर्षा राम! राम! ऐसा चिन्तन करनेके
 लयीहारा भी राम-नामकी ही उन्कारण करती रहती हूँ।
 अतः उक्त विचारके अनुरूप जैसे ही भयंकारी यह कथा
 देख और सुन रही हूँ ॥ ११ ॥

महर्षि तस्याप मनोभवेन
 क्षम्योहिता तद्गतसर्षभावा ।
 विधिन्यपन्ती सस्य तमेव
 तथैव पश्यामि तथा शृणोमि ॥ १२ ॥
 भेद्य हृद्यु खर्षा भीरुनात्मने ही क्षय्य हुआ है।



हनुमान्जीकी जानकीजीसे बात-चीत

मताः भीमम-दर्शनं च बाहवो भयन्त पीडित हो सहा
उन्नीची चिन्तन करती हुई उन्नीची देखती और उन्नीची
क्या सुनती हैं ॥ १२ ॥

मनोरथः स्वादिति चिन्तयामि
तथापि पुत्र-यापि चित्तक्यामि ।
किं कारण तस्य हि नास्ति रूपं

सुख्यकरूपश्च यदस्य माम् ॥ १३ ॥
खेनही हैं कि तम्ब दे यह मेर मन ही कोई मानना
हो तथापि बुझिसे भी तर्क-बिर्तक करती हैं कि यह को
कुछ दिखायी देता है, इसका क्या कारण है? मनोरथ या
मनकी भावनाका चेहरा स्फुट रूप नहीं होता; परन्तु इस

हावापें भीमहामायेने बाकनीकीये आदिकाये सुन्दरकाण्डे हासिष्ठाः सर्गः ॥ १२ ॥

इस प्रकार भीमहामायेने आदिकाये सुन्दरकाण्डेमें बलीमर्तो सर्वे पूरा हुआ ॥ १२ ॥

त्रयस्त्रिंशः सर्ग

सौताजीका हनुमान्जीको अपना परिचय दत्त हुए

साऽपवीप द्रुमात् तस्माद् विद्रुममतिमाननः ।

विनीतपयः कृपणाः प्राण्यपरपोषणाय च ॥ १ ॥

तामप्रथोमहावज्रा हनुमान् माठतामज्जः ।

विट्यत्रसिमापाय सीतां मधुरया गिरा ॥ २ ॥

उपर मूंगक समान बाळ मुलवान महाठबली
पवनकुमार हनुमान्जीने उठ अघोर-गृध्र नीच उतरकर
साथेपर अज्जकि बाँध ली और विनीतभावसे रीनतापूतक
निष्ठ भाकर प्रकाम करनेक अनखर सीताजीसे मधुर
कथनेसे कहा— ॥ १ ॥ ॥ २ ॥

अनु प्रपयताशास्त्रिं विद्रुमकोशययासिनि ।

द्रुमस्य शायाभासमप्य तिष्ठसि त्यमनिन्दित ॥ ३ ॥

क्रिये तय नश्राय्या यासि स्यपति शोकजम् ।

पुण्डरीकरूपतागम्यां विप्रकीणमियोक्कम् ॥ ४ ॥

यद्रुमकमदलकलमान विद्यानने पोषाधी दसि । यह

विन्दरेयमी शैलापर धारवकिये आप बोन दे । अनिन्दित ।

एव हृद्यो घास्यश्च लतासि लिये भार यहाँ क्यों लकी दे ।

कमले पत्रोत्तर सरतं हृद्ये बभूवुः प्रभुभोक्तुमान आपधी

भीतोसे य धावक आँसु किये गिर रहे हैं । ॥ ३ ॥ ॥ ४ ॥

सुजायामसुराणां च नामगन्धपरस्रसाम् ।

पक्ष्माणांश्चिराणांश्च क्व रथ भयसि गाम्भन ॥ ५ ॥

अस्यं भयसि द्रुमाणां मरुतां या परानन ।

अस्यं या परानन इयता प्रतिनासि म ॥ ६ ॥

नीने । नार दशा मधुर नाम कन्धर यज्ज

कय विपर १० मरुत भयता यदुभ त केने दे ।

उन कविनको कन्ध भयता पनी दे । सुन्दर । यगाए ।

वानका कर तो स्पष्ट दिखायी दे रहा है और यह मुगल
वातपीठ भी करता है ॥ १३ ॥

नमोऽस्तु वाश्वस्यतये सपत्निजे

स्यमभुय चैव हृताशनाय ।

अनन खोर्क यदि ममाप्रतो

यत्नोकना तथतथास्तु नाम्पथा ॥ १४ ॥

मैं बाणिके स्वामी रूद्रस्यतिथे ब्रह्मपारी इन्द्रको,
स्यम्भू नक्षत्रको तथा बाणिके अविद्या-देवता अन्निको
भी नमस्कार करती हूँ । इत वनवाली वानरने मर नामने
यह जो कुछ कहा है वह तब क्य हो उठने कुछ भी
अभ्यया न हो ॥ १४ ॥

हावापें भीमहामायेने बाकनीकीये आदिकाये सुन्दरकाण्डे हासिष्ठाः सर्गः ॥ १२ ॥
इस प्रकार भीमहामायेने आदिकाये सुन्दरकाण्डेमें बलीमर्तो सर्वे पूरा हुआ ॥ १२ ॥

अपने धनगमन और अपहरणका वृत्तान्त घताना

किं नु चन्द्रप्रसा होना पतिता विपुधासयात् ।

रोहिणी ज्योतिषा भेष्टा भेष्टा सर्वगुणाधिजा ॥ ७ ॥

क्या आप चन्द्रमासे विपुदकर देवलोके गिरी हुई
नक्षत्रोंमें भेष्ट और गुणोंमें सबसे बड़ी-पदी रोहिणी देवी हैं । ॥

कोपात् वा यदि या मोहाद् भतारमसितसृणो ।

यसिष्ठं कोपयिष्यास्य पासि कस्याप्यकृपयती ॥ ८ ॥

अथवा कस्मारे नश्रोपानी दधि । आप कप य
मरसे करने पति बसिष्ठकी कुपित करक यहाँ आपी
हुए क्वशावक तथा कठोपिठमनि अरुणपती छ नही दे ॥ ८ ॥

को नु पुनः पिडा धाता भताया त सुमध्यमे ।

अस्मात्तास्त्रदनु ताकं गतं त्यमनुजाचसि ॥ ९ ॥

मुमदरम । आपका पुत्र, पिता भ्रातृ भयता पति

कन्ध इत साकने बनकर परककवाली हो गया है, तिमक
सिध आप शाक कराता है ॥ ९ ॥

रादनाश्रितिमिभ्यास्ताद् भूमिसरपगानाद्वि ।

म स्यां र्दीमहं मय्य राजः सजायपारणात् ॥ १० ॥

प्ययुनानि हि त यानि सराणानि च सधयः ।

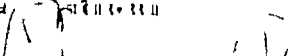
मदिपी भूमिपालय्य राजकर्मणा च म मता ॥ ११ ॥

मदन । तंरी मान गीनन तथा रूप वा शर्म क नक

अपने आपका दया नही मानता । आप क्यकार किने
साधक नम म गरी दे तथा अथक निष्ठ के मधुन
येन दि धो हो है उन कवर टिग्य बनन दती

अनुभव है न दे कि आप किने साधक महामनी तथा
किने

ना है ॥ १० ॥ ॥ ११ ॥



रावणेन जनस्थानात् बध्नात् प्रमथिता यति ।
 सीता स्वमसि भर्तुं ते लग्नमाचक्ष्व पृच्छता ॥ १२ ॥
 पञ्चम जनस्थानसे किन्तु बध्पूर्वक इर कना या,
 वे सीताभी ही यति भाय हो तो आपका कस्याप हो ।
 आप जीक-जीक मुझे बधाइये । मैं आपके विषयमें जानना
 चाहता हूँ ॥ १२ ॥
 यथा हि तव वै वैश्य रूप ज्ञाप्यतिमानुषम् ।
 तपसा ज्ञान्मिषतो यपस्त्व राममहिषी भ्रुवम् ॥ १३ ॥
 'शुभ्रके' कारण आपमें वैसी बीनता आ गयी है,
 जेता आपका अशौचिक रूप है तथा जेता तपस्विनीक-ता
 वेप है, इन सबके द्वारा निश्चय ही आप श्रीरामकन्दकी
 महारानी बन पवती हैं ॥ १३ ॥
 सा तस्य बचन श्रुत्वा रामकीर्तनहृदिता ।
 उवाच वाक्यं वैदेही हनुमन्तं तुमांभृतम् ॥ १४ ॥
 हनुमान्कीही बात सुनकर विदेहनन्दिनी सीता
 श्रीरामकन्दकीही पक्षति बहुत प्रवच थी; अतः उचका
 उवाच किन्ने कहे हुए उन पवनकुमारसे इत
 प्रकार बोली— ॥ १४ ॥
 पृथिभ्यां राजस्त्रिहाना मुष्यस्य विवितात्मनः ।
 स्तुपा दशरथस्याह शत्रुसैन्यप्रणाशिनः ॥ १५ ॥
 दुहिता जनकस्याह वैदेहस्य महारमनः ।
 सीतेस्ति माम्ना ओकार्हा भायी रामस्य धीमतः ॥ १६ ॥
 'द्विपर' को मृगहृदके श्रेष्ठ राजाओंमें प्रथम वे
 किनकी श्रेष्ठ प्रतिदि यी तथा जो शत्रुकोकी सेनाका उबार
 करनेमें समर्थ वे, उन महाराज दशरथकी मैं पुत्रबन्धु हूँ,
 विदेहराज महात्मा जनककी पुत्री हूँ और परम बुद्धिमान्
 महात्मान् श्रीरामकी बर्णनी हूँ । मेरा नाम सीता है ॥ १५ ॥ १६ ॥
 समा द्रावश तप्राहं राघवस्य निवेदाने ।
 मुञ्जाना मानुषान् भोगान् सर्वाकामससृजिनी ॥ १७ ॥
 मनोम्याने श्रीरघुनाथकीके अन्तापुरमें कारह वर्षोत्क
 मैं जब प्रकृष्टके मानवीय भोग मंगली रही और मेरी सारी
 अधिकापार्यें उदैव पूर्ण होती रहीं ॥ १७ ॥
 ततस्त्वयोदशे वर्षे राघवे सङ्घ्वाकुलमन्दनम् ।
 अभिपद्यथितु राजा सोपाभ्यायः प्रसक्तमे ॥ १८ ॥
 'तदनन्तर' देहमें बर्षमें महाराज दशरथने राजगुरु
 बध्दिकीके साथ इष्वाकुलमन्दन भगवान् श्रीरामके राघव-
 मित्रकी तैपारी आरम्भ की ॥ १८ ॥
 तस्मिन् सभिन्नयामाये तु राघवस्याभिपद्यते ।
 कैकेयी नाम भर्तारमिह वधममप्रवीत् ॥ १९ ॥
 'अब वे श्रीरघुनाथकेके अभिनेकेके किन्ने भावस्यक
 कामकीक संभव कर रहे वे उक्त समय उनकी कैकेयी नाम-
 की भवनि पतिसे इत प्रकथर कहा— ॥ १९ ॥
 न विषेयं न क्तादेयं प्रयवह मम भोजनम् ।

एय मे अधिधितस्यान्तो रामो यद्यभिविच्यते ॥ २० ॥
 'अब न तो मैं बध्पान करूंगी और न प्रतिदिन
 भोजन ही ग्रहण करूंगी । यदि श्रीरामका राघवामित्रिक हुआ
 तो यही मेरे जीवनका अन्त होगा ॥ २ ॥
 यत् तनुकुं त्वया धाययं प्रीत्या सुपतिस्त्वम ।
 तद्वेषेण दितय कार्ये वन गच्छतु राघवा ॥ २१ ॥
 'सुप्रेष्ठ' ! आपने प्रकनतापूर्वक मुझे जो वचन दिया
 है उसे यदि भक्ष्य नहीं करना है तो भीराम वनको
 पठे धार्ये ॥ २१ ॥
 स राजा सत्यधागुं देष्या परदानमनुसरन् ।
 मुमोह वचन श्रुत्वा कैकेय्याः कूरप्रियम् ॥ २२ ॥
 'महाराज' दशरथ बड़े तस्यारी वे । उन्होंने कैकेयी-
 देवीको दो बार देनके किने कहा था । उस वरदानका स्मरण
 करके कैकेयीके कूर एवं अग्रिय वचनको सुनकर वे मूर्च्छित
 हो गये ॥ २२ ॥
 ततस्तं स्वयिरो राजा सत्यधर्मे व्यथिस्त्रतः ।
 ज्येष्ठं यशस्विनं पुत्रं क्वन् राज्यमयाचत ॥ २३ ॥
 'तदनन्तर' स्वधर्ममें विषय हुए बड़े महाराजने अपने
 यशस्वी क्यष्ठ पुत्र श्रीरघुनाथकीसे भरतके किन्ने राज्य
 माँग ॥ २३ ॥
 स यितुर्धनम श्रीमान्भियेच्छात् परं प्रियम् ।
 मनसा पूर्वमासाद्य बाधा प्रतिपृहीतवान् ॥ २४ ॥
 श्रीमान् रामको विताके वचन राघवामित्रिकसे मी
 बक्कर प्रिय वे । इसलिये उन्होंने पहले उन वचनको मन्ते
 प्रण किया किन् बाकीसे मी स्वीकर कर किन्ने ॥ २४ ॥
 वृषाम्भ प्रतिपृहीयात् सत्य ज्ञ्याम्भ चादृतम् ।
 अपि उचितवेतोहिं रामाः सत्यपरात्मना ॥ २५ ॥
 'कल-स्यकमी' भगवान् श्रीराम केबल वेते हैं जेते
 नहीं । वे वदा तव बोधते हैं अपने मावोकी पक्षके किन्ने
 मी कमी हूत नहीं बोल सकते ॥ २५ ॥
 स विहायोत्तरीयाणि महाहोत्रि महाधराः ।
 विशुज्य मनसा राज्यजनस्यै मां समादिशत् ॥ २६ ॥
 'उन महाजहाली श्रीरघुनाथकीने बहुमूल्य उत्तरीय बध्द
 उबार दिने और मन्ते राज्यका त्याग करनेके मुझे अपनी
 माताके हवाके कर दिया ॥ २६ ॥
 साह तस्याप्रतस्त्वूर्जे प्रकिन्ता वनचारिणी ।
 बहि मे तन हीनाया वास्तु स्वर्गेऽपि रोषते ॥ २७ ॥
 'किन्तु मैं सुरत ही उनके भागे भागे बनकी और एक
 ही; क्योंकि उनके बिना मुझे स्वर्गमें मी रहना बचका नहीं
 जाता ॥ २७ ॥
 प्रागेय तु महाभाग सौमिधर्मिन्प्रकम्बनः ।
 पूर्वजस्यानुपाचार्ये कुशाचीरेरहं हताः ॥ २८ ॥
 मन्ने तुहदोष्य भागव देनेवाले द्विवाकुमार महा

मम कर्मण भी अपने पड़े भाईका अनुकरण करनेके लिये
उनसे भी परह कुश तमा पीर-बन्ध धारण करके वेधार
से गये ॥ २८ ॥

त वय भर्तृपदेशे वहुमान्य इदम्यताः ।

प्रिययाः सा पुराहृष्ट पन गम्भीरवर्दानम् ॥ २९ ॥

एव प्रकार हम दोनोंने अपने स्वामी महाराज दरघर
में भाइयोंके अधिक आदर देकर इदुगापूर्वक उचम प्रतका
पावन करते हुए उस धन धनमें प्रवेश किया, बिधे परह
कभी नहीं देखा या ॥ २९ ॥

पसता वण्डकारण्ये तस्याहममितौजसः ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे षष्ठीकाण्डे अष्टत्रिंशोः सर्गः ॥ ३२ ॥

स प्रकर श्रीमत्संस्कृतिके आश्रमण्य अष्टत्रिंशोः सुन्दरकाण्डे तैत्तिरीयैः सर्वे पूज ह्युच्ये ॥ ३२ ॥

चतुस्त्रिंशः सर्गः

सीताजीका हनुमान्जीक प्रति सदेह और उसका समाधान तथा हनुमान्जीक

द्वारा भीरामचन्द्रजीके गुणोंका गान

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा हनुमान् हरिपुत्रयः ।

दुःखाद् दुःखाभिमुतायाः साम्बमुत्तरमप्रयीत् ॥ १ ॥

कुम्भ-न-गुप्त ठठानके कारण पीड़ित हुए सीताका
वस्तुके बचन सुनकर बानरशिरोमणि हनुमान्जीने उन्हें
कमना देते हुए कहा— ॥ १ ॥

मह रामस्य संदेशाद् द्वयि वृत्स्तयागतः ।

पश्चि कुशली रामः स त्वां कौशलमप्रयीत् ॥ २ ॥

देवि । मैं भीयमवश्रोभा वृत्त हूँ और आपके लिये
उनका सदेश जकर आया हूँ । विदेहन-रिन्धी भीयमवश्रोभा
वस्तुके हैं और उन्होंने आपका कुशल-व्यवहार पूछ
रहे ॥ २ ॥

या प्राणमस्य पद्माक्ष येद् पेक्षयिषा परः ।

स त्वां वाशरघो रामो द्वयि कौशलमप्रयीत् ॥ ३ ॥

देवि । जिन्हें प्राण और बंदोधा भी पूर्व अन है के
वैशवाभावे भद्र दारपयन्दन भीयम स्व वस्तुके रकर
भारों को कुशल पूछ रहे हैं ॥ ३ ॥

नरुमणश्च महातश्च भनुस्तऽनुचरः प्रियः ।

उपाम्नाकासततः शिरसा तऽभियादनम् ॥ ४ ॥

आरके पक्षिक अनुचर तथा प्रिय महातम्नी कर्मण
से भी दाकत जगत दो आरक परकीने मस्तक उधार
नन कर्मणारे ॥ ४ ॥

म्य तथाः कुशलं द्वयी निशम्य नरसिंहया ।

मनिसंहरसपार्श्वे हनुमन्तमप्रापयीत् ॥ ५ ॥

पुष्पजह भीयम और कर्मणका समाचार सुनकर दरी
पक्षक कर्मण भङ्गोने इत्येव रामायण दो भाग और व
रुन्दरके ली— ॥ ५ ॥

रक्षस्वापहृता भार्या राघणेन पुरारमना ॥ ३० ॥

यहाँ बन्धकारण्यमें रहते समय उन अमितबेवसी
भगवान् भीयमभी भाया पुत्र सीताको बुझना राधत यवण
यहाँ हर जग्या है ॥ ३ ॥

द्वौ मासौ तम म कालो जयितानुग्रहः कृतः ।

ऊर्ध्वे द्वाभ्यां तु मासाभ्यां ततस्त्यक्ष्यामि जीवितम् ॥

‘उसने अनुग्रहपूर्वक मेरे जीवन प्राणक लिये दो मास-
की अवधि निश्चित कर दी है । उन दो महीनोंक बाद मुझे
अपने प्राणोंका परित्याग करना पड़ेगा ॥ ३१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे षष्ठीकाण्डे अष्टत्रिंशोः सर्गः ॥ ३२ ॥

स प्रकर श्रीमत्संस्कृतिके आश्रमण्य अष्टत्रिंशोः सुन्दरकाण्डे तैत्तिरीयैः सर्वे पूज ह्युच्ये ॥ ३२ ॥

कल्याणी यत गाथैर्वाङ्किङ्की प्रतिभाति मा ।

पति जीवन्तमानस्यो नरं वपशतादपि ॥ ६ ॥

परि मनुष्य जीवित रहे ता उत ही सर्व बाद भी
आनन्द प्राप्त होय ही है, यह भौतिक कदावत भय पुत्र
विरकुल वल्य एवं कल्याणमयी अन पड़ती है ॥ ६ ॥

सयोः समागम तस्मिन् प्रीतिरुत्पादितायुता ।

परस्परण चालाप विभ्यस्तौ ता प्रचक्रतुः ॥ ७ ॥

सीता और हनुमान्के इस मिश्राप (परस्पर दर्शन) से
दनोंका ही अद्भुत प्रकणय प्राप्त हुई । व दोनों विरवत्
हकर एक-दूसरेसे कालाप करन बने ॥ ७ ॥

तस्यास्तद् वचनं श्रुत्वा हनुमान् मारुतारमजः ।

सीतायाः तौकृतसायाः समीपमुपसक्रम ॥ ८ ॥

दाकठक सीताका वे कर्तें सुनकर पवनपुमार हनुमान्
भी उनके कुछ निश्च चक्र गये ॥ ८ ॥

पथा यथा समीपं स हनुमानुपसवति ।

तथा तथा रायण सा तं सीता परिदादुत ॥ ९ ॥

हनुमान्भी ग्यो ग्यो निश्च भात लोरी से मरक
यह पता लगी कि यह कही पवन न हा ॥ ९ ॥
महो धिगु धिक्कृतमिद् कथित हि यद्व्य म ।
रूपान्तरमुपागम्य स एषार्थं हि रायणः ॥ १० ॥

देवा विचर भात ही व मन-ही-मन पदन लगी—
महा ! विचार है वा इतक खनन देन भयन मनकी बाउ
कह ही । यह इतक रूप भायन करक भोज दुभा यह
पवन ही है ॥ १० ॥

तामयाकस्य तागां तु विमुक्त्वा दाकथयिता ।

तस्मात्पानवपार्श्वे परेषां समुपाविशत् ॥ ११ ॥

किं तो निर्दोष मद्रोवाकी खेवा उठ अथोक वृषकी
यालासो काह शोकेसे अवर हं वही धनीनपर बैठ गयी ॥

अथम्बत महाबाहुस्ततस्तां जनकामजाम् ॥

सा चेनं भयसमस्ता भूयो नैममुदैसत ॥ १५ ॥

उपभाह महाबाहु इत्यन्तुने जनकान्तरिनी वीताके
पयलोमे प्रणाम कियतः किन्तु ने मयपीठ हानेक अवर फिर
उनकी ओर देख न लगी ॥ १२ ॥

त दृष्ट्वा धन्वमान च सीता चाग्निभिधानमा ।

अग्रशीव् दीर्घमुच्छ्वस्य धानरं मधुरस्रवा ॥ १३ ॥

बानर इत्युमान्ध धारंवार बन्दना कथे देख कद्रमुली
खीता लगी धैत कीबकर उनसे मधुर बानोमे बोली— ॥ १३ ॥

माया प्रविष्टो मायावी यदि त्व रावणः स्वयम् ॥

उत्पाद्यसि म भूयो सतार्य तत्र शोभनम् ॥ १४ ॥

यदि तुम स्वयं मायावी रावण हो और मायाय घडीर
में प्रवेश करके फिर मुझ कक्ष दे रहे हो वा यह तुम्हारे लिये
अच्छी बात नहीं है ॥ १४ ॥

स्य परित्यज्य रूपं या परिग्रहककूपवान् ।

जनन्याने मया दृष्टस्यै स एव हि रावणः ॥ १५ ॥

जिसे मैंने जनकानमें देखा था तथा वह अपने यथार्थ
रूपमें छोड़कर वन्याधीन रूप धारण करके आया था,
तुम वही रावण हो ॥ १५ ॥

उपपासकृतां दीना कामरूप निहायर ।

सतापयसि मां भूयो संताप तत्र दाभनम् ॥ १६ ॥

इच्छानुसार रूप धारण करनेवाला निहायर । मैं
उरबाध करत-फले दुखी हो गयी हूँ और मन-ही-मन
हुंगी रहती हूँ । इतनेपर भी वह तुम फिर मुझ अज्ञाप दे
रह हो यह तुम्हारे लिये अच्छी बात नहीं है ॥ १६ ॥

अथया नेतृव्यं हि यमया परिशुद्धितम् ।

मनसो हि मम प्रीतिरुपचा तव वचनात् ॥ १७ ॥

अथय त्रिभुवकी मर मनमें घड्या हो रही है, वह
न भी हो, क्योंकि तुम्हें स्वनेत्र मर मनमें प्रवणता हुई है ॥
यदि रामस्य वृत्तस्त्वमागतो भद्रमस्तु त ।

वृच्छसि त्वा हरिभ्रष्ट मिया रामकया हि म ॥ १८ ॥

बानरभद्र । उपमुष ही यदि तुम भगवान् भीषमक
हूत हो वा मुद्राव कल्याण हो । मैं तुमसे उनसे कौन पूछती
हूँ बर्षिक भीषमकी उचा मुझे बहुत ही मिय है ॥ १८ ॥

शुणान् रामस्य कथय श्रियस्य मम यानर ।

चिरं हरति म सास्य मदीकृत्य यथा एवः ॥ १९ ॥

यानर । नर विपदम भीषमक गुणोका बजन करी ।
लोग । नेव बरध वन नरीक तदक देर अता है उन्ही
प्रकार तुम भगवान् के बचान मर चित्तमं पुण्य भई हो ॥
भद्रा मन्थन्य सुवता याहमव चिदाहता ।

प्रति नाम परधामि रावणय यनोकसम् ॥ २० ॥

‘अहो ! यह स्वप्न कैसा सुखद हुआ ! कितने बर्षों
विरकाससे हरकर छापी गयी मैं बाब भगवान् भीषमके
मेरे हुए वृत्त बानरको देख रही हूँ ॥ १९ ॥

स्वप्नेऽपि यद्यद् धीर रावण्य सहस्रस्रमणम् ।

पश्येय नावसीद्व्य सप्तोऽपि मम मस्सरी ॥ २१ ॥

यदि मैं बरमणवहित वीरवर औरयुनाथकीसे स्वप्नमें
यो देख बिना करूँ तो मुझे इतना कष्ट न हो; परन्तु स्वप्न
में मुझसे ब्राह्मण है ॥ २१ ॥

गार्ह स्वप्नमिमं मय्ये स्वप्ने दृष्ट्वा हि धानरम् ।

म चाक्योऽभ्युवयः प्राप्नुं प्राप्तव्याभ्युवयोमम ॥ २२ ॥

मैं इसे स्वप्न नदी समझती, क्योंकि स्वप्नमें बानरके
देख केनेपर किसीका अभ्युवय नहीं हो सकता और मैंने वही
अभ्युवय प्राप्त किया है (अभ्युवयकाममें वैधी प्रकल्प
होती है, वैधी ही प्रकल्पता मेरे मनमें छ रही है ।) ॥ २२ ॥

किन्तु स्वादिशमोहोऽयं भवेत् पातगतिस्थिमम् ।

उन्मादको विकारो या स्याद्व्यं भृगवृप्पिक्व ॥ २३ ॥

‘अथवा यह मेरे विकारों में ही नहीं है । शत-विकारों
इनेवाला भ्रम तो नहीं है । उन्मादका विकार तो नहीं उमक
आया अथवा वह भृगवृप्पिक्व वा नहीं है ॥ २३ ॥

अथया नायमुन्माहो मोहोऽन्मादवृत्तस्यः ।

सम्पुष्ये चाहमात्मानमिम चापि यनोकसम् ॥ २४ ॥

अथवा यह उन्मादवृत्त विकार नहीं है । उन्मादके
समान लक्षणवाला मोह भी नहीं है । क्योंकि मैं अपने-आपको
देख और समझ रही हूँ तथा इत बानरका भी ठीक-ठीक
दन्तों और समझती हूँ (उन्माद आदिकी अवस्थाओंमें
इस तरह ठीक-ठीक दन्त इना समझ नहीं है ।) ॥ २४ ॥

इत्यय दहृधा साता सप्रभार्य सतास्रमम् ।

एतसा कामरूपरयामन तं राक्षसाधिपम् ॥ २५ ॥

यतां पुंसि तथा कृत्वा सीता सा तनुमभ्यया ।

न प्रतिप्यामहापथ यानर जमकस्यजा ॥ २६ ॥

इस तरह सीता अनेक प्रकारसे राक्षसोंके प्रपण्य और
बानरकी निरसताका निभय करके उन्हें राक्षसका राक्षस ही
माना; क्योंकि राक्षसोंमें इच्छानुसार रूप धारण करनेकी
शक्ति होती है । एता विचारकर तुम हरिभ्रष्टवाकी जनक-
कुमारपी शैलन करिवर इत्युमान्कीसे फिर कुछ नहीं कहा ॥

सीताया निभितं पुंस्याहन्मान् माकृतात्मजाः ।

भाप्रातुपूडैपयमेस्तथा तां सप्रभययन् ॥ २७ ॥

वीताक इत निभयका समझकर पवनकुमार इत्युमान्की
उत सम्य कनोकं तुव पदुचानयक अतुह्य ययनेहाय
उनका दर्शन वदात हुए यन— ॥ २७ ॥

आदिय इय तत्रन्वी साककान्तः शशा यथा ।

राजा सपण्य साकस्य द्या पेभयया यथा ॥ २८ ॥

भगतान् भीषम एवक समान तरन्वी चद्रमके

स्मान् श्लोकमनीष तया इव कुपेरकी मौलि सम्पूर्णं जगत्के
पञ्च ॥ २८ ॥

श्रेष्ठमेणोपरमस्य यथा विष्णुर्महायज्ञात् ।

सत्यवादी मधुरवाग् द्यो वासस्पतिर्यथा ॥ २९ ॥

महायज्ञो भगवान् विष्णुकं स्मान् पराक्रमी

तथा इत्यतिशोभी भोति सत्यवादी एव मधुरभागी ॥

इत्यान् सुभगः भीमात् कर्ष्य इव मूर्तिमान् ।

स्वानश्वेष प्रहता च श्रेयो लोके महारथः ॥ ३० ॥

‘रूपवान्, श्रेष्ठग्यायासी और कान्तिमान् तो वे इतने

हैं, माना मूर्तिमान् नामदेव हैं । वे श्लोकके पात्रपर ही प्रहार

करनेमें समर्थ और सशरक भेष्ट महारथी हैं ॥ ३ ॥

बाहुकर्म्याधमपशुभो यस्य श्लोको महारथमः ।

सपकम्याधमपशुभमृगरूपेण राघवम् ॥ ३१ ॥

शून्य घनापनीलासि तस्य द्रक्ष्यसि सत्कर्मम् ।

‘सम्पूर्ण’ विश्व उन महारथामी मुखाभोक आभयमें—

उन्हींकी कर्षणामें विश्राम करता है । मृगरूपवादी निश्चाकर

इय भीरपुनायकीके आभयमें दूर इत्यकर मिलने घने

शाममें पहुँचकर आपका भयहरण किया है, उधे उध

परस्य च कर्म मिलनेवाला है उधके आप अपनी मौलों

देखेंगे ॥ ३१ ॥

शशिवात् राघव सख्ये यो सधिष्यति वीर्यवान् ॥ ३२ ॥

श्याममुर्कुरिपुभिर्न्यैकत्रिरिय पाषकैः ।

श्यामकी भीरवकर्मकी श्लोकपूर्वक छोड़े गये प्रसन्नचित्त

सन्निवृत्त समान लेकसी वायोहाय समपञ्चममें शीम ही

एकत्रिय बन करेगे ॥ ३२ ॥

तत्राह प्रेरितो वृत्तस्त्वत्सखाद्यमिहागतः ॥ ३३ ॥

तद्विषयान् दुःखात् स त्वा कौशल्यमप्रवीत् ।

‘मैं उन्हींका भेजा हुआ वृत्त होकर यहाँ आपके पास

आया हूँ । मगवान् भीरव आपक विनोद्यन्तित दुःखमें

प्रेरित हैं । उन्होंने आपके पास अपनी कुशल कहानी दे

और आपकी भी कुशल पूछी है ॥ ३३ ॥

इत्यर्थे भीमत्रामायणे वासुकीकेये अद्विक्रम्ये सुन्दरकाण्डे ऋषिः सर्गः ॥ ३४ ॥

एत तत्रर भेदार्थेनिरिर्मित्त अर्थेणमायव अद्विक्रम्ये सुन्दरकाण्डे ऋषिः सर्गः ॥ ३४ ॥

उत्कर्मण्य महावेजा सुमिश्रानन्दुषधनः ॥ ३४ ॥
अभियाद्य महापादुः स त्वा कौशल्यमप्रवीत् ।

‘सुमिश्रात् आनन्द’ श्वानेवात् महाशस्त्री महाशु

करमन्ने भी भायश्रे प्रयाग करक आपकी कुशल पूछी है ॥

रामस्य च सखा वैषि सुप्रीयो नाम वानरः ॥ ३५ ॥

एजा वानरमुखायां स त्वा कौशल्यमप्रवीत् ।

नित्यं स्मरति ते राम ससुधाश्वः सखकर्मणः ॥ ३६ ॥

‘रवि । भीरपुनायकीके सखा एक सुप्रीय नामक वानर

है, वा सुस्य सुख बानरोंके राजा है, उन्होंने भी आपके

कुशल पूछी है । सुप्रीय और सखकर्मवर्ति भीरवकर्मकी

प्रतिदिन आपका स्मरण करते हैं ॥ ३५ ॥

विष्णुया जीवसि वैदहि राक्षसैर्यशमागतः ।

नशिरात् द्रक्ष्यसे राम खकर्मण च महारथम् ॥ ३७ ॥

‘विदेहनशिरः । राक्षसोंके संग्राममें पहुँचकर भी आप

अभीतरक भीरित हैं, यह वह श्रेष्ठग्यायी बात है । अथ आप

श्रीः ही महारथी भीरव और खकर्मका दर्शन करेंगे ॥

मध्ये वानरकण्ठीनां सुप्रीय चामितीजसम् ।

मह सुप्रीयससिषो हनुमान् नाम वानरः ॥ ३८ ॥

‘श्याय ही कण्ठों बानरोंके सिरे हुए अमितवेज्ज्मी

सुप्रीयकी भी आप देखेंगे । मैं सुभाश्व मन्त्री हनुमान्

नामक वानर हूँ ॥ ३८ ॥

प्रशिष्यो नगरीं सञ्जा उज्जयित्वा महोदधिम् ।

हृत्या मूर्ध्नि पश्यासं राघवस्य दुरात्मनः ॥ ३९ ॥

‘मैंने महावातकमें लौंघकर और दुरात्मा राघवके

धिरपर वेर रक्तकर उज्जयिनीमें प्रवेश किया है ॥ ३९ ॥

त्वां द्रष्टुमुपयातोऽहं समाभिस्य पराक्रमम् ।

नाहमसि तथा देवि यथा मामयगच्छसि ।

विशङ्का त्यज्यतामेपा अशरत्स वदतो मम ॥ ४० ॥

‘मैं अपने पराक्रमका मदेश करके आपके दर्शन करने

के लिये यहाँ उपस्थित हुआ हूँ । देवि ! आप मुक्त भेदा

समस्त रही हैं, मैं शैला नहीं हूँ । आप यह विरगीत आशङ्का

श्रेय हीकिये और मरी वाचपर विश्वास कीजिय ॥ ४० ॥

पञ्चविंश सर्ग

सातात्रीक पूछनपर हनुमान्कीका भीरवक शारीरिक चिह्नों और गुणोंका वर्णन करना तथा
नर वानरकी मित्रताका प्रसङ्ग सुनाकर सीताजीक मनमें विश्वास उत्पन्न करना

य तु रामक्यां भुक्त्वा वैदही वानररभात् ।
रथाच यत्न खात्यमिदं मधुरया गिरा ॥ १ ॥

वनकर विदेहयज्ञकुली लीला शान्तिवृत्त मधुर वाश्रीमें
बानी—॥ १ ॥

वनश्रेय हनुमान्के मुख भीरवकर्मकीके चक्षु
क त रामेन ससगः कथ जानासि खकर्मणम् ।

वात्प्राणां मरणां च कथमासीत् समागमः ॥ २ ॥

कथिम् । दुःसहारा श्रीमदम्ब्रवीके वायु लम्बन्व कर्त्तुं हुमा । दुःसह कथमप्ये केते जानते हो । मनुष्यों और जानवरों यह मेख किन् प्रकार लम्बन्व हुमा ॥ २ ॥

यानि रामस्य विद्वानि छद्ममप्यस्य च वानर ।

तामि भूयः समावृण्वन्तमा शोकः समापियेतु ॥ ३ ॥

वानर । श्रीराम और कथमप्ये को विद्व हैं, उनका क्रिध बचन करो, जिससे मेरे मनमें किसी प्रकारके शोकका समावेश न हो ॥ ३ ॥

कीदृशं तस्य संख्यानं रूपं तस्य च कीदृशम् ।

कथमूरु कथं बाहू लक्ष्मणस्य च शंस मे ॥ ४ ॥

शुभे क्तामो मगवान् श्रीराम और कथमप्ये आकृति कैसी है । उनकी रूप किन् तरह है । उनकी बाँहें और गुणएँ कैसी हैं ? ॥ ४ ॥

पथमुकस्तु वैवेद्या हनूमान् मातृव्यामजा ।

ततो राम पथात्पथमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ ५ ॥

विदेहराजकुमारी सीताक इत प्रकार पूजनपर पवन कुमार हनुमान्श्रीने श्रीरामचन्द्रवीके स्वरूपका यथावत् बर्णन आरम्भ किया— ॥ ५ ॥

जानन्ती वत विष्टया मां वदेदि परिपुच्छसि ।

भर्तुः कमलपत्राक्षि सखारं लक्ष्मणस्य च ॥ ६ ॥

कमलके उमान सुन्दर नेत्रोंवाली विदेहराजकुमारी । आप अपने परिदेव श्रीरामके तथा देवर कथमप्येके शरीरके विषयमें जानती हुई भी को मुझसे पूछ रही हैं, वर मेरे किये बड़े लोभ्याप्यकी बात है ॥ ६ ॥

यानि रामस्य विद्वानि छद्ममप्यस्य च यानि वै ।

कक्षितानि विशाखाक्षि बह्वता शृणु तामि मे ॥ ७ ॥

विशाखकोबने । श्रीराम और कथमप्येके किन्-किन् बिद्वोंको मैंने कथ्य किया है, उन्हें बताता हूँ । मुझसे सुनिये ॥ ७ ॥

यमा कमलपत्राक्षः पूर्णचन्द्रनिभानमः ।

रूपदाक्षिण्यसम्पन्नः प्रसृतो जतकालमेव ॥ ८ ॥

जन्मनिधि । श्रीरामचन्द्रवीके नेत्र प्रसृतकमल-रुके उमान विशाख एव सुन्दर हैं । मुझ पूर्विकाके पत्रमाके उमान मनीहर है । वे कथमप्येके ही रूप और उदाया भादि गुणोंसे लम्ब हैं ॥ ८ ॥

तेजसाऽऽदित्यसंकाशाः क्षमया पृथिवीक्षमः ।

पृथ्व्यतिसमो बुद्ध्या यथासा वासधोपमः ॥ ९ ॥

रक्षिता जीयलाकस्य अज्जनस्य च रक्षिता ।

रक्षिता स्वस्य गृहस्य धर्मस्य च परंतपः ॥ १० ॥

वे तन्मै त्वंके उमान क्षममे पृथ्वीक दुस्व बुद्धिमें पृथ्वीक लक्ष्य और यथामे इन्द्रक उमान हैं । वे सम्युर्ण थीव शर्करे तथा लवणोंके भी रक्षक हैं । शत्रुओंको

छंताप देनेवाके भीरुम अपने उदाचार और बर्णने रक्षा करते हैं ॥ ९ ॥

रामो भामिनि लोकास्य चातुर्यैर्यस्य रक्षिता ।

मर्यादाणां खलोकस्य कर्ता कारयिता च सः ॥ ११ ॥

भामिनि । श्रीरामचन्द्रवी जगत्के चारों मर्कोंकी रक्षा करते हैं । लक्ष्मण बन्धी मर्यादाओंको बॉपकर उनका पालन करते और करनेवाके भी वे ही हैं ॥ ११ ॥

अर्धिष्मानर्धितोऽस्यैर्ष्यं ब्रह्मचर्यमते स्थितः ।

साधूनामुपकारकः प्रचारकश्च कर्मणाम् ॥ १२ ॥

श्वर्भे अत्यन्त मक्तिमावसे उनकी पूजा होती है । वे कश्चित्मान् एवं परम प्रकथारूपक हैं । ब्रह्मचर्यमतेके पाकनमें लगे रहते हैं, तापु पुत्रकोष उपकार मानते और आपरजोद्वारा उत्कर्मोंके प्रचारका वंग बनते हैं ॥ १२ ॥

राजनीत्यां विनीतश्च ब्राह्मणानामुपासकः ।

ज्ञानवाग्शीलसम्पन्नो विनीतश्च परंतपः ॥ १३ ॥

वे राजनीतिमें पूर्ण शिक्षित, ब्राह्मणोंके उपासक, ज्ञानवान् शीलवान् विनम्र तथा शत्रुओंको छंताप देनेमें समर्थ हैं ॥ १३ ॥

पञ्चवैद्विनीतश्च वेदविद्विः सुप्रज्ञितः ।

शत्रुवैदे च वेदे च वेदाङ्गेषु च निष्ठितः ॥ १४ ॥

उन्हें पञ्चवैदकी भी अच्छी शिक्षा मिली है । वेदवेद्य विद्वानोंने उनका बड़ा धम्मान किया है । वे पत्नों वेद शत्रुवैद और शत्रु वेदाङ्गोंके भी परिनिष्ठित विद्वान् हैं ॥ १४ ॥

विपुलांसो महाबाहुः कन्तुभीवाः शुभालनः ।

गृहव्ययः सुताम्रासो रामो नाम जनैः सुतः ॥ १५ ॥

उनका बड़े माटे गुणएँ बड़ी-बड़ी, गम्भ शत्रुके उमान और मुझ सुन्दर है । गकेकी हँचकी मावसे बड़ी हुई है तथा नेत्रोंमें कुञ्ज-कुञ्ज काकिमा है । वे जोग्यमें 'श्रीराम' के नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ १५ ॥

तुन्वुभिरत्यमनिर्घोषः क्षिप्रवर्षः प्रतापवान् ।

समश्च सुविभक्त्याङ्गो वर्णो ह्याम समाश्रितः ॥ १६ ॥

उनका स्वर तुन्वुमिके उमान गम्भीर और शरीरका रंग सुन्दर एवं चिकना है । उनका प्रताप बहुत बड़ा-बड़ा है । उनके सभी अङ्ग सुदृढ और बरबर हैं । उनकी कश्चित् ह्याम है ॥ १६ ॥

विस्मिररक्षिप्रकम्बश्च विसमस्त्रिषु खोजता ।

विताम्रस्त्रिषु च क्षिप्र्ये गम्भीरक्षिपु नित्येषाः ॥ १७ ॥

उनके तीन अङ्ग (कथाःसक कर्ण और मुठ्ठी) सिर (मुह) हैं । मीठे, सुगंध और वेद—ये तीन अङ्ग बने हैं । कथोंका अग्रभाग, अङ्गकोप और पुटने—ये तीन उमान-बराबर हैं । कथाःसक, नाभिके किणारेका भाग और उदर—ये तीन उमरे हुए हैं । नेत्रोंके खेने नख और हाथ-पैरके लक्ष्य—ये तीन कक्ष हैं । विष्मक

मममयः, दोनों पैरोंकी रेशाएँ और धरके बाक—ये तीन
फिन्ने हैं तथा स्वरु चाक और नामि—ये तीन
कम्पेर हैं ॥ १७ ॥

त्रिबलीमांस्वभयनतवस्तुर्ष्यहृत्प्रिशीर्षघान् ।

धनुःकवधनुर्ष्येवधनुःकिकुञ्जान् सभः ॥ १८ ॥

उनके उदर तथा गलेमें तीन रेशाएँ हैं । तलकोंके
बलभाग, पैरोंकी रेशाएँ और खनोंके अग्रभाग—ये तीन
संके हुए हैं । गल, पीठ तथा दोनों पिण्डबन्धियों—ये चार
भङ्ग छोटे हैं । मलकमें तीन मँकरें हैं । पैरोंके अँगूठेके
नीचे तथा ककामें चार चार रेशाएँ हैं । वे चार हाथ
संके हैं । उनक कपेक, मुखाएँ, कोंपें और पुदने—ये चार
भङ्ग बराबर हैं ॥ १८ ॥

धनुःशसमद्रप्रक्षत्रुर्ष्येवधनुर्गतिः ।

महोष्ठवनुनासश्च पञ्चस्निग्धोऽष्टयशवान् ॥ १९ ॥

शरीरमें जो दो-दोकी संख्यामें पीरेंद्र भङ्ग होते हैं,
वे भी उनके परस्पर सम हैं । उनकी चारों कानोंकी चारों
छदें क्षत्रीय कण्ठोंसे युक्त हैं । वे सिंह बाघ हाथी
और बाँझ—इन चारके समान चार प्रकारकी गण्डिसे
पकते हैं । उनके मोठ डोढ़ी और नासिका—सभी प्रकृत
हैं । कप नेत्र होंत लम्बा और पैरके सभ्ये—इन पाँचों
महोमें सिगन्ता मरो है । दोनों मुखाएँ, दोनों कोंपें, दोनों
निहन्धियों, हाथ और पैरोंकी अँगुलियों—ये आठ भङ्ग
उत्पन्न क्यवोसे उत्पन्न (क्ये) हैं ॥ १९ ॥

हाथप्रो दशपृष्ठरिभिमिष्यातो प्रिनुःश्वान् ।

पशुप्रतो नयतनुस्त्रिभिमिष्यातो वि राघवा ॥ २० ॥

उनके नेत्र मुप-विशु, मुख-मण्डक विहा मोठ
काष्ठ सन नल हाथ और पैर—ये दस अङ्ग कमलके
कल्प हैं । छाती मलक, सखाट गम्य भुजाएँ कंचे,
नभि परन पीठ और कान—य दस अङ्ग विघाट हैं ।
वे भी पशु और प्रताप—इन हीनोंसे ब्याप्त हैं । उनके
मनुकुन और शिुकुन दोनों मलमल युक्त हैं । पार्श्वभाग,
उदर बध मल, नासिका कचे और सखाट—ये छ अङ्ग
उपे हैं । म्प नल काम लम्बा भंगुलियोंके पीठ, पिध
पुदि और हृदि मारि नो मुहम (पतके) हैं तथा ब
कीरुनासकी पुकांड मम्पाह और मपरह—इन तीन
प्रलेहाय क्रमशः धर्म अर्थ और कामस्र अनुदान
करते हैं ॥ २० ॥

स्यधमरतः भीमान् सप्रहानुप्रह रतः ।

दशक्यासविभागया सयसाकप्रियधधुः ॥ २१ ॥

भीरमकन्द्रवी तापधमके अनुदानमें कल्प
भीरमम म्पायस्रत पनवा कहर और प्रसार अनुद

करनमें उत्पन्न, देघ और कालके विभागके समसनेवाले
तथा सब अंगोंसे प्रिय यत्न बोझनेवाले हैं ॥ २१ ॥

आता वास्य च पैमात्रः सौमित्रिरमितप्रभः ।

अनुपागेण रूपेण गुणैश्चापि तथाधिषः ॥ २२ ॥

‘उनके शीतके भाई सुमित्राकुमार कम्पण भी बड़े
तेजस्वी हैं । अनुपाग, रूप और लक्षणोंकी दृष्टिसे भी वे
भीरमकन्द्रवीके ही समान हैं ॥ २२ ॥

स सुवर्णकच्छविः भीमान् रामः द्यामो महायशः ।

तापुभौ नरशाकुलौ त्यद्वानकृतोरस्यौ ॥ २३ ॥

शिशिम्यन्तौ मर्हो हस्तमामकाभिः सह सगौ ।

‘उन दोनों भाइयोंमें अन्तर इतना ही है कि कल्पके
शरीरकी कान्ति सुवर्णके समान गौर है और महायशस्वी
भीरमकन्द्रवीके निग्रह द्याम-मुन्दर है । वे दोनों नरभेद
ब्यापके दर्शनके लिये उत्कण्ठित हो गयी पूष्णीपर भापकी
ही कोब करते हुए हमलोगोंसे मिले थे ॥ २३ ॥

त्यामेव मार्गमाधौ तौ विचरन्तौ पशुधराम् ॥ २४ ॥

दशशतुमृगपतिं पूर्वजैनायरोपितम् ।

‘मारका ही हूँवनेके लिये पूष्णीपर विचरते हुए उन
दोनों भाइयोंने जानरराज सुधीयका काशकार किया जो
अपने बड़े भाईके द्वारा उन्मत्ते उठार दिये गये थे ॥ २४ ॥
श्रुम्यमूकस्य मूले तु बहुपापपुंजुले ॥ २५ ॥
आतुर्मपातमासीन सुप्रीय प्रियदर्शनम् ।

श्रुम्यमूक पर्वतके मूकामाममें जो बहुतसे बूधोंद्वारा
विरा हुआ है, भाईके मयसे पीड़ित हो बैठे हुए निग्रहर्षन
सुधीयसे वे दोनों भाई मिले ॥ २५ ॥

पर्यं च हरिदाम् त सुप्रीय सत्यसद्गमम् ॥ २६ ॥

परिषयामिहे राज्याध् पूर्वजैनायरोपितम् ।

उन दिनों त्रिहूँ बड़े भाईने रामसे उठार दिया था,
उन क्षान्तिक जानरराज सुधीयकी सेवामें हम तप साग रहा
करते थे ॥ २६ ॥

ततस्तौ चीरवसन्तौ धनुःप्रयत्पानिनौ ॥ २७ ॥

श्रुम्यमूकस्य नैडस्य रम्य दामुगागतौ ।

स तां दश्रु नरण्यामौ धमिन्यौ पानरयभा ॥ २८ ॥

अभिप्युतो गिरच्छस्य दिग्वर भयमोदित ।

यदिपर कन्दरप्र तथा हाथसे धनुष धारण किये
वे दोनों भाई धनुषमूक पर्वतके रमणीय प्रदेशमें धार
तव धनुष पाण करेयाउ उन दोनों नरभेद शीरोधे वहाँ
उपस्थित दश शनापिनेमत्रि सुधीय भयन परवा उठे अर
उठकर उनपरउठ उपमन वि सरर वा ॥ २७-२८ ॥
तदा स निवृत्तस्मिन् पानरन्तौ स्पष्टचिन्तः ॥ २९ ॥
तयाः समीप मावय प्रयवासास नन्वदम् ।

उत्त विचारपर रैहनक वशात् पानरराज सुधीयन मुह
उत्त भागपूषक उन दोनों क्युभीक राग भया ॥ २९ ॥

१. द नपुने नेत्र क्षान् भाङ्, मल कहरना कर्ण
२. इदमे मपरम कहरके दने मल हाथ मर रैः ।

तायह पुरुषस्याप्रौ सुप्रोवधवानात् प्रम् ॥ १० ॥
रूपक्षज्ञसम्पन्नी कृताञ्जलिवस्थिता ।

सुप्रोवधी आज्ञासे उन प्रम्हवशाथी रूपवान् तथा सुप्र-
अध्वनवमन दानो पुरवसिह् कोटीकी सेवाने में हाय श्लेषकर
उपस्थित हुआ ॥ १ ३ ॥

तौ परिहातवत्सार्थी मया प्रीतिसमन्वितौ ॥ ३२ ॥
पृष्ठमारोप्य त वृषा प्रापितौ पुरुषार्थभौ ।

पुत्रसे मयार्थ वार्ते जानकर उन दोनोंको बड़ी प्रशंसा
कुर । फिर मैं अपनी पीठपर चढ़ाकर उन दोनों पुरुषोत्तम
बन्धुओंको उत म्यानपर छ गया (जहाँ जानकराज सुयोग्य थे) ॥
निष्पत्तितौ च तस्येन सुप्रोवाध महाहमने ॥ ३२ ॥
तयोरप्योम्यसम्भावात् भूषा प्रीतिरजायत ।

‘वहाँ महात्मा सुप्रोवधो मीने इन दोनों बन्धुओंका मयार्थ
परिषय दिया । तत्पश्चात् भीयम और सुप्रोवधे परस्पर वार्ते
की, इससे उन दोनोंमें बड़ा प्रेम हो गया ॥ ३२ ॥
तत्र तौ कीर्तिसम्पन्नी हरीश्वरनरेश्वरी ॥ ३३ ॥
परस्परकृताञ्जली कथया पूर्वकृतया ।

‘वहाँ उन दोनों महात्मी वानरेश्वर और नरेश्वरीने अपने
ऊपर भीती हुई परस्परकी पटनाएँ सुनायी तथा दोनोंने दानोको
आश्रयन दिया ॥ ३३ ॥

तं तताः सान्त्वयामास सुप्रोवध ऊर्ध्वमणाग्रजः ॥ ३४ ॥
स्त्रोहितोर्ध्वकिंवा आत्रा निरस्तं पुरुषतञ्जसा ।

उस समय ऊर्ध्वमनके बड़े माई भोरधुनापत्नीने श्रीके
बिधे भरने महतेबली माई पाशोदाप परसे निकले हुए
सुप्रोवधो उल्लस्य दी ॥ ३४ ॥

ततस्त्यन्नादास शोक रामस्यात्रिषष्टकर्मणः ॥ ३५ ॥
ऊर्ध्वमनो वानरेन्द्राप सुप्रोवाध स्वपेक्षयत् ।

तत्पश्चात् अन्याथा ही महान् कर्म करनेवाले भगवान्
भीरमना आपके वियोगसे जो शोक हो रहा था उसे ऊर्ध्वम-
ने वानरराज सुप्रोवध सुनाया ॥ ३५ ॥

स भुया वानरेन्द्रस्तु ऊर्ध्वमनोरित वक्षः ॥ ३६ ॥
तद्वासीम्निप्रभोऽस्यर्धं प्रहमस्त इवांशुमान् ।

ऊर्ध्वमनकीकी बड़ी हुई वह बात सुनकर वानरराज
सुयोग्य उस समय प्रहमस्त वर्धके समान आनन्द काटिदिनि
हो गये ॥ ३६ ॥

ततस्त्यत्रात्राग्नीनि रक्षसा द्वियमावया ॥ ३७ ॥
यास्याभरणजालानि पातितानि महौतल ।

तानि सशशि राघवा भानीय हरियूथयाः ॥ ३८ ॥
सहस्र वृषायामासुगलि तु न त्रिभुस्तय ।

नदम्नरा वानर युववधिवेने आपके घरीरपर गोमा
पानेवाभ उन सब आभूषणोंका स आकर बड़ी प्रशंसाके
अप भीरमन इनका रिहाया शिरे आपन उस समय
गुह्यपर विधया था त्रिभु राघव आपके हृष्टा बिधे व्य

या था । वानरोंने आभूषण तो दिखाये, किंतु उन्हें आपन
पता कुछ भी माखम नहीं था ॥ ३७-३८ ॥

ताभि रामाय वृत्तानि मयैवोपहृतानि च ॥ ३९ ॥
स्वनवन्त्यवकीर्णानि तस्मिन् विहृतलोतसि ।

ताम्पङ्के वर्धनीयानि कृत्वा बहुविध तदा ॥ ४० ॥
तेन देवप्रकाशेन वेद्येन परिवेदितम् ।

आपके हाथ गिरये जानेपर वे सब आभूषण सन-
सनी आवाजके साथ जमीनपर गिरे और बिखर गये थे ।
मैं ही उन सबको बंदोकर ले आया था । उस दिन जब वे
गहने श्रीरामचन्द्रकीके बिये गये उस समय वे उन्हें अपनी
गोदमें धरकर अन्दले-ले हो गये थे । उन वर्धनीय आभूषणों-
को छातीसे लगाकर देखनुअन आभावासे भगवान् भीरामने
बहुत विषय किया ॥ ३९ ४० ॥

पश्यतस्तानि उद्धतस्त्राम्यतश्च पुनः पुनः ॥ ४१ ॥
प्राचीपयन् वृषारथेस्तदा चोककृताशनम् ॥ ४२ ॥
शापित च चिरं तेन युःशतैर्न महाहमना ।

मयापि विविधैर्वाक्यैः कृष्णसुरार्थापतः पुनः ॥ ४३ ॥
उन आभूषणोंको बारंबार देखते, रोते और छिन्नमिअ
उठते थे । उस समय इशरधनम्वन भीरामकी छोकमनि
प्रकथित हो उठी । उस युःकाले आदुर हो वे महात्मा रघुवीर
बहुत देरतक मुह्रित अवसामें पड़े रहे । तब मैंने नाना
प्रकारके उल्लसनापूर्व वचन कहकर बड़ी कठिनार्थसे उन्हें
उठाया ॥ ४१-४३ ॥

तानि ह्युप महार्हाणि वृषाविरथा मुहुमुहुः ।
राघवः सहस्रीमिभिः सुप्रोवधे सस्येष्टायत् ॥ ४४ ॥

ऊर्ध्वमनरहित भीरधुनापत्नीने उन बहुमूल्य आभूषणोंको
बारंबार देखा और दिखाया । फिर वे सब सुप्रोवधो के बिये ॥
स तदावर्दानादायै राघवाः परितप्यतः ।
महता ज्यलता निरयमग्निनवाग्निपर्यतः ॥ ४५ ॥

‘मार्ने । आपको न दल पानेके कारण भीरधुनापत्नीको
बड़ा दुःख और कंठाप हो रहा है । जैसे ब्रह्मासुली पर्वत
बळती हुई बड़ी भारी आगये सदा तपता रहता है, उसी
प्रकार वे आपकी विरहान्तिसे जल रहे हैं ॥ ४५ ॥

स्वरकृत तमसिद्रा व शोकविग्ना च राघवम् ।
तापपरित महत्प्रामादस्ययगारमियागमयाः ॥ ४६ ॥

आपके बिधे महात्मा भीरधुनापत्नीका अग्निद्रा (निरस्तर
जगारण) शोक और किन्ता—ये तीनों उठी प्रकार कंठाप
देते हैं जैसे आहवनीय आदि त्रिविध अग्निर्वा अग्निघास्य
को तगती रहती है ॥ ४६ ॥

तथावदानांकाज राघवाः परित्याजयत ।
महता भूमिकम्पन महागिण शिंसावया ॥ ४७ ॥

‘देवि । भारहीन इत पानेका चोक भीरधुनापत्नीके

उठी प्रकर विचरति कर देता है, जैसे मापी भूकम्पसे महान् पर्वत भी टूटि जाता है ॥ ४७ ॥

कामनामि सुरम्पाणि नन्दीप्रसवणानि च ।
 वरन् न रतिमाप्नोति स्वामपश्यन् नृपात्मजे ॥ ४८ ॥
 पाञ्चकुमारि । आपको न देखनेके कारण रत्नीय
 शर्मनो, नदियो और शरनोके पास विचरनेपर भी भीरामको
 मुक्त नहीं मिलता है ॥ ४८ ॥

स त्वां मनुजशानुलाः क्षिप्र प्राप्स्यति राघव ।
 समिन्नवाधव हृत्वा राघवं जनकारमजे ॥ ४९ ॥
 'जनकान्दिनि । पुत्रवर्षिह भगवान् भीराम धन्यको
 उनके मित्र और बन्धु बन्धुबोधहित मारकर धीम ही आपसे
 मिले ॥ ४९ ॥

सहितौ रामसुग्रीवासु भायकुठतां तदा ।
 समर्थं वाञ्छितं हस्तु तव चान्वेषण प्रति ॥ ५० ॥
 उन दिनों भीराम और सुग्रीव क्षय मित्रमणबते मिले
 तब दोनों एक-दूसरेकी सहायताके लिये प्रतिज्ञा की ।
 भीष्मसे पाषीको मारनेका और सुग्रीवने आपकी शोक
 करनेका वचन दिया ॥ ५० ॥

तत्साम्यां कुमाराभ्यां धीराभ्यां स हरीश्वरः ।
 किञ्चिन्मूर्धा समुपागम्य धात्री युञ्जे निपातितः ॥ ५१ ॥
 'इत्के बाद उन दोनों की उपकुमारोंने किञ्चिन्मूर्धामें
 मार करानरकाय पाषीको मुझसे मार गिराया ॥ ५१ ॥

तस्मै निहत्य तरसा रामो वाञ्छितमाह्वये ।
 सपञ्चहरिसङ्गाना सुग्रीयमकरात् पतिम् ॥ ५२ ॥
 मुझमें बेगुनूँक पाषीको मारकर भीरामने सुग्रीवको
 कमत माप्तुओ और वानरोंका राजा बना दिया ॥ ५२ ॥

रामसुग्रीवयोरैक्यं वृष्येय समजायत ।
 हनूमत् स मां विद्धि तयोवृत्तमुपागतम् ॥ ५३ ॥
 देवि । भीराम और सुग्रीवमें इत प्रकर मित्रता हुए
 है । मैं उन दोनोंका वृत्त वनकर यहाँ आया हूँ । आप मुझ
 लुभान् कर्मसे ॥ ५३ ॥

स्य राम्य प्राप्य सुग्रीयाः स्वानामीव महाकपीन् ।
 त्वय्य प्रवयासास दिशो दश महावसान् ॥ ५४ ॥
 भगवन् राघव जानेके अन्तर सुग्रीवने अपने आश्रयमें
 एनेयके बड़े-बड़े बन्धान् वानरोंको बुधया और ऊँहें
 भावकी शोकके लिये दशो दिशाओंमें भेजा ॥ ५४ ॥

आदिश पावनेरेण सुग्रीयेण महाज्ञसा ।
 अदिशप्रमर्ताश्च दशः सयतः प्रसिक्ता महीम् ॥ ५५ ॥
 वानरधन सुग्रीवकी आज्ञा पाकर मीरियावके सम्यन
 रिपुकाय महाबली वानर गृधोर लव भार पञ्च दिये ॥
 मन्त्रन मागमाया वे सुप्रापयश्चानुता ।
 वरन्ति वसुधां शृङ्गां वयमग्ये च पानराः ॥ ५६ ॥
 'पुत्रैकी अज्ञान मन्त्रधर ही इन तथा अन्य वानर

आपकी शोक करते हुए समस्त भूगर्भमें विचर रहे हैं ॥
 अज्ञानो नाम लक्ष्मीयान् वाञ्छितसुनुमहायलः ।
 प्रसिक्तः कपिशानुसक्तिभागवत्सधृता ॥ ५७ ॥
 'पाषीके गोमायाकी पुत्र महाबली कपिभेद अंगद वानरों
 की एक तिहाई सेना साथ लेकर आपकी लोकमें निकले थे
 (इन्हींके रत्नमें मैं भी था) ॥ ५७ ॥

तथा नो विप्रजघानां विन्ध्ये पयतसज्जम ।
 भुञ्जं शोकपरीतामामहोरारजगवा गताः ॥ ५८ ॥
 'पर्वतभेद विन्ध्यमें आकर खो जानेके कारण हमन यहाँ
 बड़ा क्रम उठाया और यहाँ हमारे बहुत दिन बीत गये ॥
 त धयं कायनैराद्यया कालस्यातिक्रमेण च ।
 भयाद्य कपिराजस्य प्रार्थान्स्वयं मुपस्थिताः ॥ ५९ ॥

अब हमें कर्म-विदिकी ओर भाग्य नहीं रह गयी
 और निमित्त मन्त्रिसे भी अधिक सम्य किता देनेके कारण
 वानरराज सुग्रीवका भी भय था, इसलिये हम सब लोग अपने
 प्राय त्याग देनेके लिये उचल हो गये ॥ ५९ ॥

विचिंत्य गिरिगुणाणि नन्दीप्रसवणानि च ।
 भनासाद्य पद् देव्याः प्राथान्स्वयं क्वचस्थिताः ॥ ६० ॥
 'पर्वतके गुणमें जानोंमें, नदियोंके तटोंपर और शरनों
 के आठ-पाठकी साथी भूमि छान शब्धी तो भी जब हमें देवी
 सीता (आप) के स्वानक पता न पड्य, तब हम प्राय
 त्याग देनेको तैयार हो गये ॥ ६० ॥

तत्तत्तस्य गिरेर्मूर्ध्नि पय प्रायमुपास्रह ।
 ह्यु प्रायोपविष्टाश्च सत्यान् वानरपुङ्गवान् ॥ ६१ ॥
 भृश शोककार्णव ममः पर्यवेवपद्भन्तः ।
 म्परासात् उपवाधका निभय करके हम लव-कुश उल
 पवतके पिलरपर बैठ गये । उत समय समस्त वानर
 विरोधनिषेधके प्राय त्याग देनेके लिये बैठ बैठ कुमार
 अत्र अत्यन्त शोकके श्मुरमें डूब गए और विषय
 करने लगा ॥ ६१ ॥

तव नाशं च वैदृहि पाञ्चिमञ्च तथा यधम् ॥ ६२ ॥
 प्रायोपयशमस्माक मरण च जटासुपा ।
 विरेहनन्दिनि । मारका फल न समन, पाषीके मारे
 जाने, हमकोके मरणात् उपगत करने तथा धरापुके
 मरनेके कारण विचार करके कुमार अत्र बंधो बड़ा दुःख
 हुआ था ॥ ६२ ॥

तवां माः स्वामिर्दशदिशदिशानां मुमूरताम् ॥ ६३ ॥
 कायहत्तरितायातः शकुनिर्धोषवान् महान् ।
 गृधराजस्य सादृष्यं सम्पातिनाम् गृधराज ॥ ६४ ॥
 'स्वामीक आज्ञाकर्मसे नियत होकर हम मरना ही
 चाहत थे कि देवराज हमारा शत्रु करके कर्म एवमक
 बयपुके बड़े शत्रु मन्त्रि 'ओ स्वयं भी मीथाक पय और
 महान् बन्धान् लयी हैं, यहाँ आ पड़ुप ॥ ६३ ६४ ॥

भ्रुत्वा भ्रातृवध कोपादिद् यद्यनमग्रवीह ।
 यधीयान् केन मे भ्राता हतः क्व च निपातितः ॥ १५ ॥
 पतशक्यामुमिच्छामि भयङ्गिर्वानरोत्तमा ।

हमारे मूरुते अपने माईके बचकी बचां मुनकर के
 कुम्भित हो उठे और नोस—यवनरक्षितमथियो । बदाभो
 मेरे छोटे माई बदापुत्र वध किले किया है ! वह क्यों
 मारा गया है ! यह सब इच्छान्त मैं द्रुमभोगेसे मुनना चाहता
 हूँ ॥ १५३ ॥

महोदोऽकथयत् तस्य जनस्थाने महद्रथम् ॥ १६ ॥
 रक्षसा भीमरूपेण त्वामुद्दिश्य यथार्थतः ।

एत अंगदने जनस्थानमें आपकी रक्षाके उद्देशसे मूरुते
 समग्र बदापुत्र उठ भजनक रूपवादी राक्षसक हाथ से
 मरान् बच किया गया था, वह सब प्रसेग क्यों-क्यों कर
 सुनाया ॥ १६३ ॥

जटायोस्तु वध भ्रुत्वा पुम्भितः सोऽवप्रात्मजः ॥ १७ ॥
 त्वामाह स धरारोहे यक्षमूर्ता रावण्याख्ये ।

अप्रपुके बचका इच्छान्त मुनकर अरुणपुत्र सम्प्रतिको
 बदापुत्र हुआ । बगुठोहे ! उन्होंने ही हमें बताया कि
 आप रावणके पार्श्वे निवास कर रही हैं ॥ १७३ ॥

तस्य तद् वचन भ्रुत्वा स्वप्नातः प्रीतिवर्षणम् ॥ १८ ॥
 मङ्गप्रमुखाः सर्वे ततः प्रस्यापिता वयम् ।

विष्णवाङ्गुथाय सम्प्राप्ताः सागरस्यान्तमुत्तमम् ॥ १९ ॥
 त्यद्दर्शनं क्रुतोऽसाहृष्टाः पुष्टाः मूवङ्गमाः ।

मङ्गप्रमुखाः सर्वे यक्षोपान्तमुपागताः ॥ २० ॥
 एवमस्मिन्न वद वचन बानरोंके किये बदापुत्रवर्षक
 वा । उठे मुनकर उन्हींके भेजनेसे मङ्गल आदि हम सभी
 बानर भारतके दर्शनको आशासे अवाहित हो विष्णवर्षके
 अङ्क तमुद्रके उत्तमतर पर आये । इस प्रकार मङ्गल आदि
 सभी इष्ट-पुत्र बानर तमुद्रके किनारे आ पहुँचे ॥ १८-२० ॥

विमूर्ता जग्मुः पुनर्भीमा त्यद्दर्शनसमुद्रसुखाः ।
 अथाह हरिसौम्यस्य सागरं दृश्य सीदतः ॥ २१ ॥
 स्वदायूय भयं तीम योजनानां शतं प्लुतः ।

आपके दर्शनके किये उतमुद्र होनेपर भी सामने अना
 तमुद्रको देखकर सब बानर फिर भयानक किन्तामें पड़ गये ।
 तमुद्रको देखकर बानर-मना बहसे पड़ गयी है यह बानर
 में उन सबके तीम भयबध दूर करता हुआ वो योजन तमुद्र
 को सोपकर पहुँचा आ गया ॥ २१३ ॥

तद्वा श्यापि मया रात्रौ प्रविष्टा राक्षसाकुला ॥ २२ ॥
 रायणश्च मया दृष्टस्य च शोकनिपीडिता ।

एधमोसे भयो हुई तद्गममें मैंने एतमें ही प्रवेश किया
 है । वहाँ प्राकर रात्रबध देसा है और राक्षस पीडित हुई
 आनध भी दशन किया है ॥ २२३ ॥

एतत् न सद्यमाववाणं यथापूत्तमनिन्दित ॥ २३ ॥

मभिभापस्व मां वेधि वृतो वाशरधेरहम् ।

अधीधियंमने । यह वाप इच्छान्त मैंने ठीक-ठीक आपके
 सामने रक्ता है । वेधि ! मैं बहुरथनयन भीरुमन्त्र वृत् हूँ ।
 अत आप मूरुते बात कीजिये ॥ २३३ ॥

तस्मां रामकृतोद्योगं त्वन्मिमिच्छामिहागतम् ॥ २४ ॥
 सुधीवस्तथिद्य वेधि बुद्धयस्व पवथात्मजम् ।

मैंने भीरामकन्द्रकीके कार्यकी सिद्धिके लिये ही यह
 वाप उद्योग किया है और आपके दर्शनके निमित्त मैं यहाँ
 आया हूँ । वेधि ! आप मुझे सुधीवध मन्त्री तथा वातुरेवण-
 क्य पुत्र इतुमान् समझें ॥ २४३ ॥

कुशकी तथा काकुत्स्थः सर्वशक्तमूर्ता वरः ॥ २५ ॥
 गुणैराराधने मुक्तो जङ्गमजः शुभलक्षणः ।

तस्य वीर्यवतो वेधि भर्तुस्तय हिते रतः ॥ २६ ॥
 वेधि । आपके पतिदेव समस्त राजकारिणोंमें भेद
 ककुत्सकुकूपक भीरामपत्रकी तदुपवध है तथा बड़े मर्द
 की तेजामें संयम रहनेवाले शुभलक्षण स्वयम् भी प्रकृत
 हैं । वे आपके उन पराकामी पतिदेवके हित-वाचनमें ही
 उत्तर रहते हैं ॥ २५-२६ ॥

महमेकस्तु सम्प्रसाः सुधीवधचनाविह ।
 मयंयमसहायेन धरता क्रमरूपिणा ॥ २७ ॥
 वक्षिष्या दिगनुत्प्राप्ता त्वन्मार्गविषयैपिण्या ।

मैं सुधीवकी आशासे अकेला ही यहाँ आया हूँ ।
 इच्छानुत्तर रूप धारण करनेकी शक्ति रक्ता हूँ । आपका
 पता ज्ञानकी इच्छासे मैंने बिना किसी उदावकके अकेले ही
 पूर-निरकर हत बक्षिण दिशाक्य अनुसंधान किया
 है ॥ २७३ ॥

दिष्टयाह हरिसौम्यानां त्यन्नाशमनुशोचताम् ॥ २८ ॥
 अयनेष्यामि सतापं तथाधिगमशासनात् ।

आपके यिनाशकी सम्भावनासे जो निरन्तर शोकमें डूबे
 रहते हैं उन बानरधेनिच्छेको यह बणाकर कि आप मित्र
 गयीं मैं उनका उपाय दूर करूँगा । यह मेरे लिये बड़े
 हर्षकी बात होगी ॥ २८३ ॥

दिष्टया हि न मम स्वर्षं सागरस्येह जङ्गमम् ॥ २९ ॥
 प्राप्स्याम्यहमिदं वेधि त्यद्दर्शनकृत यथा ।

वेधि ! मेरा तमुद्रको सोपकर पहुँचकर आना स्वर्ष नहीं
 हुआ । तबसे पहले आपके दर्शनक्य यह बघ मुझे ही मित्रेय ।
 यह मेरे लिये शोभ्यवधो बात है ॥ २९३ ॥

राघयश्च महावीर्यः क्षिप्रं त्यामभियत्स्यत ॥ ३० ॥
 सपुत्रबन्धय हरया राघवं यक्षसाधिपम् ।

महापराकामी भीरामकन्द्रको एधतराज रावणक उठके
 पुत्र भीरु वपु-नाम्नसोवदित मारकर शोभ ही आपसे आ
 मिर्से ॥ ३०३ ॥

मास्यवान् नाम वैद्वि गिरिणासुत्तमो गिरिः ॥ ८१ ॥
 ततो गच्छति शोकपूर्णं पर्वतं केसरी हरिः ।
 स च देवर्षिभिर्विद्युः पिता मम महाकपिः ।
 तीर्थे नदीपतेः पुण्ये शम्भुसाधनमुदरम् ॥ ८२ ॥
 यस्याह हरिण क्षेत्रे आतो घातेन मैथिलि ।
 हनुमाभिति विषपातो लोके स्वनेय कम्पया ॥ ८३ ॥

[विदेहनन्दिनि । पर्वतोंमें मास्यवान् नामसे प्रसिद्ध एक उच्चम पर्वत है । वहाँ केसरी नामक शानर निवास करत थे । एक दिन वे वृत्ति शोकपूर्ण पर्वतपर गये । महाकपि केसरी भरे सिद्ध हैं । उन्होंने समुद्रके तटपर विद्यमान उष पवित्र शोकप हीमें देवर्षियोंको आकाशे शम्भुसाधन नामक देव का संहार किया था । मिथिलप्रकुमारी । उन्हीं कपिप्राय केसरीको शोक गर्भसे बासुदेवताके द्वारा मेरा बन्ध हुआ है । मैं शोकमें अपने ही कर्मद्वारा 'हनुमान्' नामसे विख्यात हूँ ॥ ८१-८३ ॥

विष्वाचार्यं तु वैद्वि भर्तृतका मया गुणाः ।
 मन्त्रिणात् त्वामितो वृषि राभयो मयिता सुप्रभ ॥ ८४ ॥
 [विदेहनन्दिनि । आपको विधास विधानेक शिष्ये मैंने आपके स्वामीके गुणोंका बयन किया है । देवि । भीरुनाम को योग्य ही भाषको वरुति उ चर्चोंगे—यह निमित्त बात है ॥ ८४ ॥

एवं विष्वासिता सीता हनुभिः शोककर्षिता ।
 उपपन्नेरभिजासैवूत तमचिगच्छति ॥ ८५ ॥
 इस प्रकार मुक्तियुक्त एवं विश्वतनीय करणों तथा परस्परके रूपमें बलाये गय भीराम और कस्तुरके धार्मिक बिहोहार हनुमान्कीने शोकसे दुःख हुई सीता को अपना विश्वास दिखाया । तब उन्होंने हनुमान्कीभ भीरामका वृत्त समझा ॥ ८५ ॥

हरकार्ये भीमहत्यापत्ने शकनीकीने आदिकाम्ये सुन्दरकाण्डे पद्मविंशः सर्गः ॥ १५४ ॥
 एत प्रथम भीमहत्यापत्नेरिन्द्रेण अर्पणप्रपन्न आदिकाम्ये सुन्दरकाण्डे पद्मविंशः सर्ग पूरा हुआ ॥ १५५ ॥

अनुत्तं च गता हर्षं महर्षेण तु जानकी ।
 नभाम्भ्यां धकपक्षमाभ्यां मुमोचानम्यज्जलम् ॥ ८६ ॥
 उत सम्यक् चकचनन्दिनी धीताका अनुपम हर्षं प्रसन्न
 हुआ । उत महान् हर्षके कारण वे कुटिल बरीनिवोवाक
 दोनों नेत्रोंत आनन्दक ओंक्ष बहाने लगीं ॥ ८६ ॥

शोक तद् ध्वन तस्मास्तास्य गुणकायतक्षयम् ।
 अयोभत विशाखास्या राहुमुक्त इवोदुराद् ॥ ८७ ॥
 उत अक्षरपर विशाखभोजना धीताका मनोहर मुक्त,
 अं काक, ककर और बह-बह नेत्रोंसे मुक्त था, राहुके
 प्रहवध मुक्त हुए चन्द्रमाके समान शोभा पा रहा था ॥ ८७ ॥
 हनुमत्तं कर्पिं स्पृक्तं मन्यत नाम्पद्यति सा ।
 अयोबाष हनुमांस्तासुत्तर प्रियदर्शनम् ॥ ८८ ॥

अब वे हनुमान्को वास्तविक शानर मानने लगीं । इतक
 विपरीत मायामय रूपधारी राक्षस नहीं । तदनन्तर हनुमान्
 कीने प्रियवचन धीताक फिर कहा— ॥ ८८ ॥
 एतत् त्वे सर्वमाख्यात समाभ्यसिद्धि मैथिलि ।
 किं करोमि कथं या त रोचत प्रथियाम्यहम् ॥ ८९ ॥
 [मिथिलेशकुमारी । इस प्रकार आपने जो कुछ पूछा
 था, वह सब मैंने बतल दिया । अब आप वैश्वं पारण करें ।
 क्याहय, मैं आपकी डेली और सेवा करूँ । इस समय
 आपकी रचि नया है आका ही वो अब मैं छोड जाऊँ ॥

इतऽस्युरे सयति शम्भुसाधन
 कपिप्रवीरणं महर्षिचोदनात् ।
 ततोऽस्मि वायुप्रभयाहि मैथिलि
 प्रभायतस्तरप्रतिमत्र वासराः ॥ ९० ॥
 महर्षियोंको प्रजात कपिवर केसरीद्वारा सुदमें शम्भु-
 साधन नामक अनुक मले शानपर मैंने पवनरत्नाक द्वारा
 कथ्य प्ररण किया । अतः मैथिलि । मैं उन वायुप्रभताके
 समान ही प्रभाबधामी शानर हूँ ॥ ॥

पद्मविंश सर्ग

हनुमान्कीका सीताका मुद्रिका देना, सीताका 'भीराम कष मेरा उद्धार करेंगे' यह उत्सुक हाकर पूछना
 तथा हनुमान्कीका भीरामके सीताविषयक प्रमका वर्णन करक उन्हें सान्त्वना देना
 मूय एव महातस्य हनुमान् पयनात्मजः ।
 मयवीथु प्रभितं पाक्यं सीताप्रत्ययकारणात् ॥ १ ॥
 तदनन्तर महातेजस्वी पवनकुमार हनुमान्की सीताकीको
 निश्चय दिखानेके शिष्ये पुन विनययुक्त बन्ध बोधे— ॥ १ ॥
 शम्भुसाध महाभाग वृत्तो रामस्य धीमताः ।
 पमतामाद्रित चद् पद्यं वृष्यहृषीयकम् ॥ २ ॥

[महाभाग । मैं परम बुद्धिमान् भगवान् भीरामका वृत्त
 शानर हूँ । देवि । यह भीरामनामसे अद्रित बुद्धिवा है, इस
 ककर रहितये ॥ १ ॥
 प्रत्ययार्थं तवामितं तव वृत्त महात्मना ।
 समाभ्यसिद्धि भद्रं त क्षीण्यनुत्सफञ्जा ह्यसि ॥ ३ ॥
 आपको विश्वास दिखानेक शिष्ये ही मैं इस वृत्त आया

हूँ । महात्मा श्रीपद्मचन्द्रजीने स्वयं यह भंगुली मेरे हाथमें
दी थी । आपका कल्याण हो । अब आप पैरें चारण करें ।
आपको जो दुःखरूपी फल मिल रहा था, वह अब
समाप्त हो चका है? ॥ ३ ॥

शुद्धीत्या प्रेक्षमाणा सा भर्तुः करविभूषितम् ।

भर्तारमिव सम्प्राप्तं ज्ञानकी मुषिताभयत् ॥ ४ ॥

पक्षिने हाथको सुशोभित करनेवाली उस मुद्रिकाको
देकर छोटाबी उसे ध्यानसे देखने लगी । उस धमप
बानकीभीको इतनी प्रसन्नता हुई मानो स्वयं उनके
पतिदेव ही उन्हें मिल गये हों ॥ ४ ॥

श्याम तद् यद्वत् तस्याकाञ्चशुक्लपयोत्सणम् ।

वभूय हर्षोत्सव च राहुमुक्त इवोद्भवाद ॥ ५ ॥

उनका श्याम स्वर और विशाल नेत्रोंसे मुक्त मनोहर
मुक्त हर्षसे खिल उठा, मानो चन्द्रमा राहुके ग्रहणसे मुक्त
होगया हो ॥ ५ ॥

ततः सा क्षीमती बाल्म्य भर्तुः संदंशहर्षिता ।

परिदुष्टा प्रिय कृत्वा प्रशान्त महाकपिम् ॥ ६ ॥

वे क्षीमती बिदेहनाका प्रियतमका स्वेच पाकर
बहुत प्रसन्न हुई । उनके मनको बड़ा संश्लेष हुआ । वे
महाकवि हनुमान्जीका आदर करके उनकी प्रशंसा करने
लगीं— ॥ ६ ॥

विश्राग्तस्त्वं समर्थस्त्व प्राज्ञस्त्व वानरोत्तम ।

येनर्वा राक्षसपद् त्वयैकेन प्रथपितम् ॥ ७ ॥

ध्यानभेद्य । तुम वह पराक्रमी शक्तिशाली और
बुद्धिमान् हो; क्योंकि तुमने अकेले ही इस राक्षसपुत्रीको
परबलि कर दिया है ॥ ७ ॥

शतयाज्ञतविस्तीर्णः स्यागरो मकराजयः ।

विक्रमत्रयप्रणायम क्रमता पोष्यदीकृतः ॥ ८ ॥

तुम अपने पराक्रमके कारण प्रणालाके योग्य हो
सकोगे तुमने मगर आदि जन्तुआले भरे हुए ती शेरम
विद्याशाला महाशयको जोषत समय उसे शयकी जुपीके
बराबर समझा है । इसलिये प्रणालाका पात्र हो ॥ ८ ॥

महि त्या प्राङ्मनं मय्य वानरं वानरपथ ।

यस्य त नास्ति संयासा रावणाद्विसम्भ्रमः ॥ ९ ॥

गानरविशमण । मैं तुम्हें बड़ा आश्चर्य वानर नहीं
धनवी हूँ क्योंकि तुम्हारे मनमें यद्यपि जैसे यद्यप्ये
और न छो भव जाता है और न परपट्ट ही ॥ ९ ॥

महस च कपिभद्र मया समभिभाषितुम् ।

यद्यपि प्ररितस्वगत रामण विद्वितामना ॥ १० ॥

कपिभद्र । पर तुम्हें आमजानी भगवान् भेटामने
भय है तो तुम अहमप इस काम हो कि मैं तुमसे स्तभीत
करूँ ॥ १० ॥

प्रवधिभक्ति कुपयौ रामा मद्यपरंरहितम् ।

पराक्रममविज्ञाय मत्सकपदा विशेषतः ॥ ११ ॥

कुपयौ वीर श्रीपद्मचन्द्रजी विशेषतः मेरे निष्क
किसी पुरुषको नहीं मेरेके निकले पराक्रमका उन्हें जान
हो तथा निकले शीघ्रस्वभावकी उन्होंने परीक्षा न
की हो ॥ ११ ॥

विद्यया च कुशाब्धी रामो धर्मोत्सा सत्यसंगरा ।

कर्मणश्च महातेजसा सुमित्रानन्दवर्धना ॥ १२ ॥

धर्मप्रतिष्ठा एवं धर्मोत्सा मगवान् श्रीराम सकुशल
तथा सुमित्राका अलन्द बदनेवासे महातेजसी कर्मण
स्वस एवं सुखी हैं वह बानकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ
और वह धर्म संवार मेरे लिये शोभायक स्वक है ॥ १२ ॥

कुशाब्धी यवि काकुत्स्थः किं न स्वगणमेजयाम् ।

महीं वृहति कोपन युगाप्ताभिरियोलिखितः ॥ १३ ॥

यवि ककुत्स्थकुत्स्थव श्रीराम सकुशल हैं तो वे म
काभी उठे हुए प्रथमकर अग्निके उमान कुलित हो उमरो
पिरी हुई लारी पूष्णीको रण कर्णों नहीं कर देते हैं ॥ १३ ॥
अथवा शक्तिमत्तों ली सुव्याजामपि निप्रवे ।

ममैव तु न तुःक्षामामक्ति मय्ये विपर्ययः ॥ १४ ॥

मयका वे दोनों भाई देवताओंको भी रण देने
शक्ति रखते हैं (तो भी अरवक जो जुन बैठे हैं इस
उनका नहीं मेरे ही मायका होय है) मैं समझती हूँ
अभी मेरे ही तु लोच अन्त नहीं आया है ॥ १४ ॥

कश्चिच्च स्वपत्तं रामः कश्चिच्च परितप्यत ।

उत्तराणि च कार्योपि कुरुते पुरुषोत्तमः ॥ १५ ॥

अच्छा यह तो बताओ, पुरुषोत्तम श्रीपद्मचन्द्रजी
मनमें कोई म्पया तो नहीं है । व संतत तो नहीं हन्ते । उन
अगे जो कुछ करना है उसे वे करते हैं वा महीं ॥ १५ ॥

कश्चिच्च शून्यः सम्भ्राग्तः कार्येषु च न सुष्ठति ।

कश्चित् पुरुषकथापि कुरुत नृपतः सुतः ॥ १६ ॥

उन्हें किसी प्रकारकी शून्यता या पराहट तो नई
है । वे क्रम करते-करते मोहके बशीभूत तो नहीं हो करते ।
स्वा राजकुमार श्रीराम पुरुषार्थि अथ (पुरुषार्थ) करते
हैं ॥ १६ ॥

द्विविध त्रिविधापापमुपायमपि सपत ।

विशिगोपुः सुहृत् कश्चिन्मित्रेषु च परंतपः ॥ १७ ॥

अथ वनुभोके उत्तर होनेका भीधम मित्रोंके प्रति
मित्रभाव रखकर लाभ और हानि रूप हो उनमेंसे ही
अभयमान करते हैं । तथा वनुभोके प्रति उन्हें भीतनेकी
हत्या रखकर हानि भद और रण—इन तीन प्रकारके
उपायोंकी ही आशय है ॥ १७ ॥

कश्चिन्मित्राणि सभतऽमित्रैश्चाप्यभिगम्यत ।

कश्चित् कल्याणमित्रश्च मित्रैश्चापि पुरस्कृतः ॥ १८ ॥

स्वा श्रीराम स्वयं प्रकनपूरक मित्रोंका उग्रह करत

है ! क्या उनके शत्रु भी घरबागवत होकर अपनी रखके
 किने उनके पाठ आते हैं ! क्या उन्होंने मित्रोका उपकार
 करके उन्हें अपने शिष्ये करवापकरी बना लिया है ! क्या वे
 कभी अपने मित्रोंके भी उपकृत या पुरस्कृत होते हैं ! ॥२८॥

कश्चिदाशास्त्रि वेद्यानां प्रसाद् पार्थिवामममः ।
 कश्चित् पुत्रपकार च वैव च प्रतिपद्यते ॥ २९ ॥

‘क्या रामकुमार भीराम कभी वेद्याओंका भी ज्ञान-
 प्रसर चाहते हैं—उनकी कृपाके किने प्रार्थना करते हैं ?
 क्या वे पुत्रकार्य और देव दोनोंका आश्रय लेते हैं ? ॥२९॥
 कश्चिच्च विगतस्तेहो विद्यासाम्प्रयि राघवः ।

कश्चिमाप्यसमावृष्टामोक्षयिष्यति राघवः ॥ २० ॥
 ‘दुर्मान्मन्यव मैं उनसे दूर हो गयी हूँ । इष्ट करण
 भीरुनायकी मुझपर स्नेहहीन तो नहीं हो गये हैं ! क्या
 वे मुझे कभी इस संकटसे छुड़ावेंगे ॥ २ ॥

सुखानामुचिंतो नित्यमसुखानामनूचिताः ।
 दुःखमुत्तरमासाद्य कश्चित् रामो न स्तीवति ॥ २१ ॥

ये सदा सुख भोगनेके ही मांग हैं, दुःख भोगनेके
 भय कदापि नहीं है परंतु इन दिनों दुःख-पर-दुःख
 करनेके कारण भीराम अधिक विचल और विचिन्न हो नहीं
 हो गये हैं ! ॥ २१ ॥

शैलस्यापास्तथा कश्चित् सुमित्रायास्तयोवच ।
 धर्मीक्य भूयते कश्चित् कुशल भरतस्य च ॥ २२ ॥

‘क्या उन्हें माता शैलस्या, सुमित्रा तथा भरतका
 कुशल-कमान्तर बराबर सिक्ता रहता है ! ॥ २२ ॥
 मयिमिलेन मानार्हः कश्चिच्छोकेन राघवः ।

कश्चिदाप्यममम रामः कश्चिन्मां तापयिष्यति ॥ २३ ॥
 ‘क्या सम्माननीय भीरुनायकी मेरे किने होनेवाले
 छोटेसे अंकिक स्तव हैं ! वे मेरी ओरसे अन्यमनस्क
 हो नहीं हो गये हैं ! क्या भीराम मुझे इस संकटसे
 बचरेंगे ! ॥ २३ ॥

कश्चिद्वैश्वदेवो भीमां भरतो भ्रातृवत्सखः ।
 कश्चिन्मि मन्त्रिभिर्गुत्तां प्रेषयिष्यति मरुहते ॥ २४ ॥

‘क्या मार्कण्डेय अनुग्रह रखनेवाले भरतकी मेरे उद्धारके
 किने मन्त्रिचोदराय सुपरिचित ममकर अबोधिनी सेना
 भेजेंगे ! ॥ २४ ॥

यमपधिपतिः भीमाश्च सुम्रीवा कश्चिद्व्यति ।
 मरुहते हरिभिर्षीरेवृत्तो वृत्तमव्यायुधैः ॥ २५ ॥

‘क्या भीमान् बानरराज सुमीव होत और नकोंसे
 शर करनेवाले भीर बानरोंके साथ च मुझे पुबानेके किने
 पर्यंतक मानेका कर करेंगे ! ॥ २५ ॥

कश्चिच्च उदमणा शूराः सुमित्रातम्व्यधनः ।
 यमश्चिच्छरज्जाज्जन राक्षसान् विधमिष्यति ॥ २६ ॥

‘यद्यपि मुमिषाका आनन्द बद्दनेवाले शूरोर ज्यमन्य चो

अनेक मझोंके शला हैं, अपने बापोंकी बपति राक्षोंका
 उधार करेंगे ! ॥ २६ ॥

रौद्रेण कश्चिद्व्यसेण रामेण निहतं रणे ।
 प्रक्षयाम्यश्वेन क्खलेन रायर्षं समुहच्छनम् ॥ २७ ॥

‘क्या मैं राक्षसोंके उठके कपु-नाम्बवोंकेहित बाड़े ही
 दिनोंमें भीरुनायकीके द्वारा बुझमें मयंकर मझ गजोंसे
 मारा गया देखूंगी ! ॥ २७ ॥

कश्चिच्च तत्रेमसमानवर्णं
 तस्यामर्नं पद्मसमानगम्भिः ।

मया धिना सुस्पति शोकहीन
 उज्जयये पद्ममिवातयेन ॥ २८ ॥

‘जैसे पानी दल जानेपर पूरते कमल दल जाता है,
 उसी प्रकार मेरे किना शोकसे तुली हुआ भीरामका वह
 सुबर्षके समान कान्तिमान् और कमलके लहरा सुगन्धित
 दल दल तो नहीं गया है ! ॥ २८ ॥

धर्मोपदेशात् त्यजतः स्वराज्य
 मां चाप्यरभ्यं नयतः पत्रातेः ।

मासीद् यथापस्य मभीर्न शोकः
 कश्चित् स धैर्यं हृदये करोति ॥ २९ ॥

‘धर्मशास्त्रके उदेश्यसे अपने राक्षस त्याग करते और
 मुझे पैरक ही बनते करते समय किन्हें तनिक भी मय और
 शोक नहीं हुआ, वे भीरुनायकी इस संकटके समय हृदयमें
 धैर्य तो धारण करते हैं न ! ॥ २९ ॥

न चास्य माता न पिता न चान्या
 छोहाद् विशिष्टोऽस्ति मया समो वा ।

तावद्वयह वृत् मित्रीविषय
 यावत् प्रवृत्ति शृणुया प्रियस्य ॥ ३० ॥

वृत् ! उनके माता-पिता तथा अन्य कोई सम्बन्धी भी
 ऐसे नहीं हैं किन्हें उनका स्नेह मुझसे अधिक अपना मेरे
 बराबर भी सिद्ध हो । मैं तो तभीतक भीरित रहना चाहती
 हूँ जबतक यहाँ आनेके सम्बन्धमें अपने प्रियतमकी प्रवृत्ति
 सुन ली हूँ ! ॥ ३ ॥

इतीव देवी दचन महाधर्मं
 तं धानरेन्द्र मधुपार्थमुपस्था ।

भोस्तु पुनस्तस्य यथोऽभिराम
 रामार्थयुक्त विरराम रामः ॥ ३१ ॥

देवी लीला बानरभेद इतुमान्के प्रति इत प्रकार महात्
 अर्षसे शुक्त मधुर बचन करकर भीरामकन्धरीसे सम्बन्ध
 रखनेवाली जननी मनोहर बाणी पुनः सुननेक किने बुप
 हो गयी ! ॥ ३१ ॥

सीताया वचनं श्रुत्वा मातृतिर्भामधिक्रमः ।
 शिरस्यञ्जलिमाधाय पाप्यमुत्तरमप्रपीत् ॥ ३२ ॥

‘सीताकी वचन सुनकर भवका पराश्रमी पचनकुमार

देवी लीला बानरभेद इतुमान्के प्रति इत प्रकार महात्
 अर्षसे शुक्त मधुर बचन करकर भीरामकन्धरीसे सम्बन्ध
 रखनेवाली जननी मनोहर बाणी पुनः सुननेक किने बुप
 हो गयी ! ॥ ३१ ॥

सीताया वचनं श्रुत्वा मातृतिर्भामधिक्रमः ।
 शिरस्यञ्जलिमाधाय पाप्यमुत्तरमप्रपीत् ॥ ३२ ॥

‘सीताकी वचन सुनकर भवका पराश्रमी पचनकुमार

देवी लीला बचन सुनकर भवका पराश्रमी पचनकुमार

इतमन् महाकमर अङ्गुलि देवि त्वे इष प्रकार उत्तर
देने ह्यो—॥ ३२ ॥

न त्वामिहस्थां जानीते रामः कमलज्जोषणः ।

तत्र त्वां मानयस्याद्यु शचीमिष पुरपरः ॥ ३३ ॥

देवि । कमलजन भगवान् श्रीरामको यह पता ही नहीं
है कि आप जहाँमें रह रही हैं । इसीझिमे बैठे इन्द्र दानवोंक
यहंसि शचीको उठा के गये, उस प्रकार वे भीम नहींसे
आपको नहीं छे पा रहे हैं ॥ ३३ ॥

भुवैष च वधो मह्यं क्षिप्रमेष्यति राक्षसः ।

धर्मं प्रकर्षन् महतीं ह्यसगणसयुताम् ॥ ३४ ॥

ध्वज मैं नहींसे औत्कर धरैगा, तब मेरी बात सुनवे
ही श्रीरघुनाथकी बानर और माछुओंकी विघाक देना छेकर
दुरंत नहींसे चक्र देगी ॥ ३४ ॥

विहम्भयित्वा वाभीधैरसोम्यं वरुणाद्ययम् ।

करिष्यति पूर्वीकङ्गां काकुत्स्थां शाल्यसस्यम् ॥ ३५ ॥

ककुत्स्थाकुम्भपुत्र श्रीराम अपने बाल-उमूहोंहाय
मधोम्य महासागरको भी खान्न करके उत्तर सेतु बौक
कर कङ्गापुरीमें पहुँच धारैगे और उठ राक्षसोंसे लूनी
कर देगी ॥ ३५ ॥

तत्र यद्यन्तरा मृत्युर्यसि त्वा महासुराः ।

स्थास्यन्ति पथि रामस्य स तानपि वधिष्यति ॥ ३६ ॥

उस समय श्रीरामके मार्गमें सकि मृत्यु देवता अथवा
बड़े-बड़े असुर भी बिच बनकर जाइें होंगे तो वे उन
वधव्य भी संहार कर बसैंगे ॥ ३६ ॥

तबाह्वानज्जनार्ये शोकेन परिपूरितः ।

न शर्म क्लमत् रामः सिंहाविति इय त्रिपथः ॥ ३७ ॥

आर्ये । आपको न देखनेके कारण उत्सन्न हुए शोकसे
उनका हृदय मरा रहता है। अतः श्रीराम सिंहेसे पीड़ित हुए
शचीकी भोंसि धनभरको भी शर्म नहीं पाते हैं ॥ ३७ ॥

मन्वरेण च तं देवि शपे मूकफल्लन च ।

मख्येन च विन्ध्येन मन्थया वसुरेण च ॥ ३८ ॥

यथा सुतयानं वल्यु विन्धोर्षं चाद्यकुम्भकम् ।

मुख प्रस्थसि रामस्य पूर्णचन्द्रमिषोदितम् ॥ ३९ ॥

देवि । मन्थर आदि परंत हमारे बालबान हैं और
फल-मूक भोजन । अतः म मन्थरपक, मख्य, विन्ध्य येव
तथा वसुर परंतको और अपनी श्रीबिष्णुके लखनफल-मूककी
लोगब लान्न कहता हूँ कि अथ शीम ही श्रीरामको मन्थेरित
पूर्व जन्ममाके तमान बह मनोहर मुख देखेंगी जो सुन्दर
नेत्र, विन्ध्यको तमान कल कल भोठ और सुन्दर
कुम्भकोसे अमृदुत एवं पिच्छार्थक है ॥ ३८ ३९ ॥

रिम प्रस्थसि वैद्दि रामं प्रकणजे गिरी ।

शतकृतुमिवासीर्षं नगपृष्ठस्य मूर्धनि ॥ ४० ॥

विदेहनन्दिनि । पराकथी पीठपर बैठे हुए देवराज
इन्द्रके उमान प्रसन्नग गिरिके विश्वरूप विराजमान श्रीरामको
आप शीम दर्शन करैगी ॥ ४ ॥

न मांस राघवो भुङ्क्ते न चैव मनु सेवते ।

वश्यं सुविहितं नित्यं भक्तमभाति पञ्चमम् ॥ ४१ ॥

कोई भी खुबशी न तो मांस खाता है और न मनुष्य
ही सेवन करता है। फिर मगवान् श्रीराम इन वस्तुओंको
सेवन नहीं करते । वे सदा पार समय उपवास करके पंचम
कमन शास्त्रविहित बंगमी फल-मूक और नीवार आदि भोजन
करते हैं ॥ ४१ ॥

मैत्र वृंशान् न मद्याकान् न कीटान् न सरीसृपान् ।

राघवोऽपनयेत् गात्रात् स्वधृगतेनाम्हदारम्मा ॥ ४२ ॥

श्रीरघुनाथकीका चित्त सदा आपमें लगा रहता है
अतः उन्हें अपने सरीसृप जैसे हुए बौध, मच्छु-कीड़ों और
छकोंको इतनेकी भी भुषि नहीं रहती ॥ ४२ ॥

नित्यं ध्यानपरो रामो नित्यं शोकपरायणः ।

नाश्वन्निष्ठयते किञ्चित् स तु कामवशां मत्तः ॥ ४३ ॥

श्रीराम आपके प्रेमक नवीमृत हो सदा आपका ही
ध्यान करते और निरन्तर आपके ही किहू-सोकोमें बूझे रहते
हैं । आपके छोड़कर वृत्ती कोई बात वे लोचते ही नहीं हैं ॥

अनिद्रः सतत रामः सुप्तोऽपि च नरोत्तमः ।

सतिस्ति मधुरां शार्पीं स्याद्वरन् प्रतिबुध्यते ॥ ४४ ॥

अनभेह । श्रीरामको सदा आपकी किताके कारण कभी
नींद नहीं आती है । यदि कभी भोज्न करी भी तो प्योत-
धीता इत मधुर शशीका उच्चारण करते हुए वे कसरी ही
बग ठठते हैं ॥ ४४ ॥

बहु फलं वा पुष्यं वा यथाभ्यस्तु लोमनोहरम् ।

बहुशो हा धियेत्येव श्वसंसंस्वामभिभापते ॥ ४५ ॥

किन्ती फल, फूल अथवा किसोंके मनको इतनेशशी
वृत्ती बस्तुको भी बब वे देखते हैं तब छंभी धैर्य छेकर
बारबार हा धिये । हा धिये ! कहते हुए आपके पुकारने
कमते हैं ॥ ४५ ॥

स देवि नित्यं परितप्यमान

स्त्वामेव सीतेत्यभिभाषमाणः ।

भूतमतो रामसुतो महात्मा

तवैष आभाय कृतप्रयत्नः ॥ ४६ ॥

देवि । रामकुमार महात्मा श्रीराम आपके झिमे तथा
तुसी रहते हैं। सीता-सीता करकर आपकी ही रह कमते
हैं तथा उतम वतन पावन करते हुए आपकी ही प्रासिके
मपनमे ह्यो हुए हैं ॥ ४६ ॥

सा रामसंकीर्तनवृत्तशोका

रामस्य शोकेन समानशोका ।

शरमुखेनाम्बुदशोपसम्प्रा

निशेष वैवेहसुता बभूव ॥ ७७ ॥

भीरामन्द्रभीषी शचासे शीवाका अपत्या शोक वो पूर
हो गया। किंतु भीरामके शोककी बात सुनकर वे पुनः

हृषार्थे श्रीमहात्मानमे वाक्यीकीये आदिकाण्ये सुन्दरकाण्डे बह्विंशः सर्गः ॥ ११ ॥

इस प्रकार भोजस्त्रीनिर्मिष्ट भार्यामात्रक आदिकाण्यके सुन्दरकाण्डमें छठीसर्गों सर्व पूरा हुआ ॥ ११ ॥

सप्तत्रिंशः सर्ग

सीताका हनुमान्जीसे भीरामको शीघ्र बुलानेका आग्रह, हनुमान्जीका सीतासे अपने साथ चलनेका अनुरोध तथा सीताका अस्वीकार करना

सा सीता वचन भुक्त्वा पूषबन्धुनिभानना ।
हनुमन्तमुवाचेदं धर्मार्थसहितं वचनः ॥ १ ॥
हनुमान्भीष प्रबोक्त वचन सुनकर पूर्वभद्रमाके समान
म्होर मुखवाची सीताने उनसे बर्न और अपरिष्ट मुक्त बात
की—॥ १ ॥
बभूव विपसंगपूक्त स्वया वाचर भाषितम् ।
पक्ष नाभ्यमना रामो यथा शोकपरपापम् ॥ २ ॥
प्यन्तर । तुमने जो कहा कि भीरुनाथकीका विप
रुही और नहीं ब्रता और वे शोकमें डूबे रहते हैं, तुम्हारा
वचन मुझे विपमिभित्त बभूवके समान लगा है ॥ २ ॥
पश्वर्ये वा सुविस्तीर्णो व्यसने वा सुबाहणे ।
राज्यव पुरुष बहूष्या कृताभ्याः परिकरति ॥ ३ ॥
अर्थात् बड़े भारी ऐश्वर्यमें स्थित हो अथवा अल्प
मन्त्र विपक्षमें पड़ा हो अथवा मनुष्यको इस तरह क्षीण
केव है, मानो उसे रस्वीमें बौध रक्ष्य हो ॥ ३ ॥
निधिनृसमसंभार्यः प्राणिनां पृथगोत्तम ।
सोमिभिर्मां च रामं च व्यसनेःपहप मोदितान् ॥ ४ ॥
पानरश्रोममे । देवके विधानको येकना प्राणियोंके
व्यधी बात नहीं है । अहाइरवके किये मुनिनाकुमार
कल्पको मुक्तको और भीरामको भी देव को । हमको
किंतु तब विनाम कुञ्जके मोहित हो रहे हैं ॥ ४ ॥
शोकस्यास्य कथं पारं राक्षसोऽधिगमिष्यति ।
पूषमाता परिक्रान्तो हतनीः सागरे यथा ॥ ५ ॥
अनुदमै नौकाक नव हो जानेपर अपने हाथोंसे तेरने
वाके पराक्रमी पुरावकी भँडि भीरुनाथकी केशे इत शोक
कमरसे पार होंगे । ॥ ५ ॥
राक्षसानां वर्यं कृत्वा सूर्यशिका च रावणम् ।
बहुमुम्माधितां कृत्वा कदा द्रक्ष्यति मां पतिः ॥ ६ ॥
पाककोका बप रावणका संहार और बहुपुत्रीका
निवृत्त करने में पतिदेव मुझे कब देखेंगे । ॥ ६ ॥
स पाश्या सारवरस्वेति यावदेव न पूर्वते ।
यप सपारसुरा कालस्तावदि मम जीवितम् ॥ ७ ॥

अर्थात् समान शोकमें नियमन हो गयी । उक्त समय विवेह
नन्दिनी शीता सरद श्रुद्ध भानेपर मेजोंकी पटा और सम्प्रभ—
दोनोंसे मुक्त (अन्धकार और प्रकाशपूर्ण) रात्रिके समान हर्ष
और शोकसे मुक्त प्रतीत होती थीं ॥ ७७ ॥

शुभ उनसे वाकर कहना, वे शीघ्रता करें । यह बर्न कल्प
तक पूरा नहीं हो जाता, तभीतक मेरा भीजन शेष है ॥ ७ ॥
जैसेते वशमो मासो व्री तु शोपी प्रबद्धम् ।
राक्षसेन नृशसेन समयो यः कृतो मम ॥ ८ ॥
प्यन्तर । यह दख्खों महीना बच रहा है । अब बर्न पूरा
होनेमें जो ही मास शेष हैं । निर्दयी रावणने मेरे जीवनके किये
जो अक्षयि निमित्त की है, उधमें इतना ही समय बाकी रह
गया है ॥ ८ ॥
विभीषणेन च भ्रात्रा मम निर्यातमं प्रति ।
अनुमीता प्रयत्नेन न च तत् कुरुते मतिम् ॥ ९ ॥
प्रापयके भाई विभीषणने मुझ छोटा देनेके किये उल्ले
यलपूर्वक बड़ी अनुनय-विनय की थी, किंतु वह उनकी
बात नहीं मानता है ॥ ९ ॥
मम प्रतिप्रदानं हि राक्षसस्य न रोषते ।
राक्षसं मार्गते सक्ये भूस्युः काञ्चवशागतम् ॥ १० ॥
भोग ज्येष्ठा प्यना राक्षसको भयका नहीं जाता
क्योंकि वह अकके मधीन हो रहा है और पुत्रमें मीठ उठे
हैं ही है ॥ १० ॥
ज्येष्ठा कन्या कन्या नाम विभीषणजुता कये ।
तया ममेतदाक्यातं मात्रा प्रहितया स्वयम् ॥ ११ ॥
कये । विभीषणकी ज्येष्ठ पुत्रीका नाम कन्या है । उल्ले
मातने लनं उठे मेरे पाठ मेरा था । उधने ये लकी बातें
श्रुते की हैं ॥ ११ ॥
अविश्वो नाम मेधावी विद्वान् राक्षसपुत्रक्या ।
पूतिमाग्धीजवान् ब्रूयो राक्षसस्य सुखममता ॥ १२ ॥
अविश्व नामका एक भेष्ट राक्षस है जो बड़ा ही
मुद्रिम्न विद्वान्, धीर, मुशीक, इव तथा उज्वल सम्मान
पत्र है ॥ १२ ॥
यमात् स्वयमनुप्राप्त रक्षसा प्रत्यबोधयत् ।
न च तस्य स पुत्रारता गृध्रोति वचनं हितम् ॥ १३ ॥
उल्ले राक्षसको यह बताकर कि भीरामक हाथसे
उधसेके विनाशका भयकर आ पहुँचा है, मुझे लोय देनेक

स्त्रिये प्रेरित किय्य याः किन्तु वह बुद्धत्वा उतके हितकारी
पन्नोको भी नहीं बुन्ता है ॥ ११ ॥

भावांसेय हरिभेष्ट क्षिप्र मां प्रप्ययते पतिः ।

अन्तरात्मा हि मे शुखस्तस्मिन्न्य वदहो गुण्याः ॥ १४ ॥

क्यिभेष्ट । मुझे तो यह आधा हो रही है कि मेरे पति

देव मुझसे हीम ही भा मिलेंगे क्योंकि मेरी अन्तरात्मा बुद्ध
है और भीरुपुत्रापत्नीमें बहुत-से गुण हैं ॥ १४ ॥

उत्साहाः पौठप सस्वमाग्रास्य कृतकृता ।

विक्रमश्च प्रभावश्च सन्ति वानर रात्रये ॥ १५ ॥

वानर । भीरमचन्द्रकीमें उत्साह, पुत्रपार्व, बल,
दयलुता कृतकृता, फलक्रम और प्रभाव आदि सभी गुण
विद्यमान हैं ॥ १५ ॥

चतुर्वश सहस्राणि राक्षसानां जघान यः ।

अनस्थान विना भ्रात्रा शत्रुः कस्तस्य नोद्विजेत् ॥ १६ ॥

किन्होंने बनस्थानमें अपने भ्रात्रीकी सहायता किये बिना
ही चौदह हजार राक्षसोंका संहार कर दिया, उनसे कौन शत्रु
भयभीत न होगा ॥ १६ ॥

न स शक्यस्सुलयितुं व्यसनेः पुठपर्यभाः ।

अह तस्मान्नाभावश्च शक्यस्येव पुलोमजा ॥ १७ ॥

भीरामचन्द्रकी पुत्रपौमें जेठ हैं । वे संकष्टमें लोभे या

विषमित्त किये चायें यह सर्वथा अवम्भव है । जैसे पुष्पे-
कन्या राची इन्द्रके प्रभावको जानती हैं उन्से तरह मैं भी-

रुपुनापत्नीको शक्ति-तामस्यको अन्ती तरह जानती हूँ ॥ १७ ॥

शरज्जालां गुमाश्चूराः कथं रामदियाकरः ।

शत्रुक्षोमयं तापमुपशारं नयिष्यति ॥ १८ ॥

कथिपर । शत्रुकी भगवान् भीरम सर्वके कमान हैं ।

उनके कथकम्पु ही उनकी किरणें हैं । वे उनके द्वारा शत्रुभूत

राक्षसकी बलको हीम ही संशय लेंगे ॥ १८ ॥

इति सखद्वयमानां तां वामार्थं शोककथिताम् ।

अधुसग्लणपदनामुपायं हनुमान् कथिः ॥ १९ ॥

इत्थं करते करने सीताके सुलपर औनुओंकी थाप

बह चली । वे भीरमचन्द्रकीके किये घोड़से घोड़ित हो रही

थी । उत कथय कथिपर हनुमान्कोने उनसे कहा—॥ १९ ॥

धुवीय च यथा महर्षि क्षिप्रमप्यति राधयाः ।

सर्म् प्रकृपन् महर्षी हय इगणसकुलाम् ॥ २० ॥

देवि । अथ पर्यं धारण करें । मेरा बचन बुनते ही

भीरुनापत्नी वानर और शत्रुओंकी शिवाय सेना लेकर

घोष सहके त्विं प्रस्थान कर देन ॥ २ ॥

अथया माचविष्यामि त्वामप्यैव सराहमात् ।

अस्मात् पुत्राग्रापाराह मम वृष्टमनिद्रितम् ॥ २१ ॥

अथया मैं अन्ती आपको इत राक्षसकथित कुलसे

रक्षागि त्विं गुण । उग्र तासे कथि । आप मैं पीठपर

बैठ कर रहे ॥ २१ ॥

त्वां तु पृष्ठगतां कृत्वा संतरिष्यामि सागरम् ।

शक्तिरस्ति हि मे वोढुं लङ्कामपि सरावणाम् ॥ २२ ॥

आपको पीठपर बैठाकर मैं समुद्रको सोंप जाऊँगा ।

मुझमें राक्षसकथित रात्री लङ्काको भी उठे जानेकी शक्ति

है ॥ २२ ॥

अह प्रसन्नवपस्थाय राधवायाध मैचिच्छि ।

प्रापयिष्यामि शक्याय हृष्यं वृत्तमिधानकम् ॥ २३ ॥

मिचिच्छेद्यकुमारी । रुपुनापत्नी प्रसन्नवपस्थित रहते हैं ।

मैं आप ही आपको उनके पल्ल पर्वुचा दूँगा । ठीक उन्से

कथे, जैसे अग्निदेव इवन किये गये इन्दिभ्यको इन्द्रकी सेवामें

के करते हैं ॥ २३ ॥

द्रक्ष्यस्यदीय वैदेहि राधयं सहस्रकर्मणम् ।

व्यवसायसमायुक्तं विष्णुं वैत्यवधे यथा ॥ २४ ॥

विदेहन्दिनि । वैत्योके कथके किये उल्लाह रक्षनेकोने

भगवान् मिष्णुकी भौति राधकोके संहारके किये संवेद्य बुद्ध

भीरम और कर्मण्य आप आज ही कथन करोगे ॥ २४ ॥

त्वहर्चानकृतोत्साहमाभमस्यं महाबलम् ।

पुरदरमिषासीनं मगराजस्य मूर्धनि ॥ २५ ॥

आपके कथनका उत्साह मनमें किये महाकवी भीरम

पर्वत-शिखरपर अपने आभममें उठी प्रकृर बैठे हैं जैसे

देवराज इन्द्र गजराज देवकतकी पीठपर विराजमान होते

हैं ॥ २५ ॥

पृष्ठमापोह मे क्वि मा विष्णुस्य शोभने ।

योगमन्विच्छच्छ रामेण शशाङ्केनय रोहिणी ॥ २६ ॥

देवि । आप मेरी पीठपर बैठिये । शोभने । मेरे कथन

की उपेधान न कीजिये । चन्द्रमासे मिळनेवासी रोहिणीकी

भौति आप भीरमचन्द्रकीके साथ मिळनेका निश्चय कीजिये ॥

कथयन्तीय शशिता सगमिष्यसि रोहिणी ।

मत्पृष्ठमधिरोह त्वं तपकाश महार्णवम् ॥ २७ ॥

पुत्र भगवान् भीरमसे मिळना है, इतना करते ही

आप चन्द्रमासे रोहिणीकी भौति भीरुनापत्नीके मिल जायेंगी ।

आप मेरी पीठपर आरूढ़ होइये और आश्रयमागते ही

महाकाशको पार कीजिये ॥ २७ ॥

नहि मे सप्रपातस्य त्वामित्यो नयतोऽङ्कम् ।

अनुगन्तु गति शक्याः सर्वे स्रुतियासिन्नः ॥ २८ ॥

कन्याणि । मैं आपको उल्लर उर परसे पर्वुण उत

कथय कथ्ये स्रुत-निशाको मिळकर भी मेरा पीठा नहीं कर

उन्से ॥ २८ ॥

पद्यैवाहमिदं प्रातस्तपैवाहमसशायम् ।

पाश्यामि पदय वैदेहि त्वामुद्यम्य विहायसम् ॥ २९ ॥

विदेहन्दिनि । क्वि प्रकार मैं वहाँ आया हूँ, उन्से

तक अथकी लेकर आश्रयमागते पल्ल काऊँगा इतमें उन्से

नहीं है । आप मेरा पतक्य देखिये ॥ २९ ॥

मिथिली तु हरिधोष्टाकधृत्या वचनमद्रुतम् ।
 हर्षविसिप्तसर्वाङ्गी हनुमन्तमयाप्रधीत् ॥ ३० ॥
 बानरभेष्ट हनुमान्के मुखे ये सह अद्रुत वचन मुनकर
 मिथिलेभ्यः कुमारी सीताके धरे शरीरमे हर्ष और विस्रयक
 प्रत्य रोमाञ्च हो आवा । उन्होने हनुमान्कीये कहा— ॥ ३० ॥
 हनुमन् धूम्रमेषान कथं मां नेमुमिच्छसि ।
 वक्ष्ये खलु ते मम्ये कपित्थं हरिपूष्य ॥ ३१ ॥
 बानरपूषपति हनुमान् । तुम इतने पूरके मार्गपर मुझे
 कैसे क चढना चाहते हो ? तुम्हारे इस दु शहरकमे मैं
 बानरपिच्छि वपञ्चता ही समझती हूँ ॥ ३१ ॥
 कथं वास्वशरीरस्त्व मामितो नेतुमिच्छसि ।
 सञ्चरं मानयेन्द्रस्य भर्तुर्मे पूषगर्भम् ॥ ३२ ॥
 बानरपिछेमे । तुम्हारा शरीर तो बहुत छोटा है ।
 फिर तुम मुझ मरे स्वाधी महापुत्र भीरुमके पास क जानेकी
 इच्छा कैसे करते हो ? ॥ ३२ ॥
 सीतायास्तु वचः श्रुत्वा हनुमान् मावतात्मजा ।
 भिन्वयामास लक्ष्मीधाम् नथ परिभय कृतम् ॥ ३३ ॥
 सीताभीभी यह बात मुनकर धोमशाभी पवनकुमार
 एतन्वने इते मने किये नवा विस्तरार ही माना ॥ ३३ ॥
 न मे जानाति सख्य वा प्रभाष वासितेक्षणा ।
 वक्ष्यात् पश्यतु बैद्वी दक्षु रूप मम कामतः ॥ ३४ ॥
 वे सोचने छो—कबहार नेत्रोवाभी विरेहनन्दिनी सीता
 मेरे कब और प्रभावको नहीं जानती । इसकिये भाव मरे
 उव रूपका, किये मैं इच्छनुसार बाल्य कर उवा हूँ, वे
 देखें ॥ ३४ ॥
 इति सचिन्त्य हनुमांस्तदा वृषगसत्तमः ।
 एतावमास सीतायाः स्वरूपमरिर्वदनः ॥ ३५ ॥
 एता विचार करक शमुवर्दन बानरशिरोमणि हनुमान्ने
 उव समय सीताको अपनी स्वरूप दिखाना ॥ ३५ ॥
 सतस्नात् गात्राप् चामानान्द्रुतस्य वृषगर्भम् ।
 ततो वर्षितुमारम सीताप्रणयकारणात् ॥ ३६ ॥
 वे बुद्धिमान् कतिबर उव इच्छते नीचे हृद पड़े और
 श्रेयशीको विष्ठाव दिखानेके किये बहने कने ॥ ३६ ॥
 मरुमन्त्रसञ्चयो यथौ सीतामलम्भम् ।
 मप्रता व्यक्तवत्थ च सीताया यानरर्षभः ॥ ३७ ॥
 बलश्रे-बातमें तनत्र शरीर मेवर्षवतके समान ऊँचा
 रो गया । न प्रत्यक्षि अग्निके समान सेबस्वी प्रयत्न जाने
 के । इस तरह विष्ठाव रूप बाल्य करके वे बानरभष्ट
 इन्द्रिय सीताकीके समने लड़े हो गये ॥ ३७ ॥
 हरि पवतसकाशस्ताप्रयकमो महापञ्च ।
 पञ्चदशम्या भीमो वैश्वीनिदमप्रधीत् ॥ ३८ ॥
 तस्मिन् पवतके समान विष्ठावप्रय शमक समान स्वक
 मुत्र तथा बरके समान दाद और नष्टशठ भवानक महाबभी

बानरकी हनुमान् विरेहनन्दिनीसे इस प्रकार बोले— ॥ ३० ॥
 सपर्वतषभोहोशा साहृमाकारतोरप्याम् ।
 लङ्गामिमा सनाथा या मयितु शक्तिरस्ति मे ॥ ३१ ॥
 देवि ! मुझमें पर्वत, वन, अष्टाधिक, चहारदियारी
 और नगरदातप्रदित इस लङ्गापुरीको रखनेके साथ ही उठा
 क जानेकी शक्ति है ॥ ३१ ॥
 तत्रवस्थाप्यतां पुन्दिरत्वं वैवि यिष्ठाङ्गया ।
 यिदोक कुव वैदेहि राषभ सहलक्ष्मणम् ॥ ४० ॥
 अतः आप मेरे साथ पञ्चनक्ष मिश्रय कर भीजिये ।
 भागकी भाण्डा व्यर्थ है । देवि ! विरेहनन्दिनि ! आप मरे
 साथ चढकर कल्पवर्षाहस भीरुपुनायकीया पाक पूर
 कीजिये ॥ ४० ॥
 त इन्द्रवृक्षसकाशमुयाच जनकात्मजा ।
 पञ्चपञ्चविंशत्याङ्गी मारुतस्यौरस सुतम् ॥ ४१ ॥
 बायुक औरस पुत्र हनुमान्कीको पर्वतक समान विष्ठाव
 शरीर बाल्य किये देख प्रकृतस जनकवृक्षक समान बड़े-बड़े
 नेत्रोवाभी बनकृष्णशरीने उनसे कहा— ॥ ४१ ॥
 तय सख्य वल वैव यिष्ठातामि महाकपे ।
 यापोरिय गतिव्यापि तेजश्चाग्नेरिष्ठाङ्गुसम् ॥ ४२ ॥
 अहाकपे ! मैं तुम्हारी शक्ति और पञ्चक्रमको जानती
 हूँ । बायुक समान तुम्हारी गति और अग्निक समान
 तुम्हारा अद्रुत वच है ॥ ४२ ॥
 माकृतोऽप्यः कथं धर्मां भूमिमागन्तुमर्हति ।
 उच्चरत्प्रमेयस्य पारं यानरपूष्य ॥ ४३ ॥
 बानरपूषपते ! तुम कब उपास्य बानर अपार
 महासगरके पारकी इस भूमिमें कैसे आ सकता है ? ॥ ४३ ॥
 जानामि गमन शक्तिं नयते चापि त मम ।
 भयस्य सम्प्रभायासु कार्यसिद्धिरिद्यामनः ॥ ४४ ॥
 मैं जानती हूँ तुम खुद पार करने और मुझ क जाने-
 में भी समर्थ हो, तथापि तुम्हारी तरह मुझे भी अपनी काय
 शक्ति बियमें भयस्य भाभीमोनि विचार कर उना
 चाहिये ॥ ४४ ॥
 मयुक्तं तु कपिभेष्ट मया गन्तु त्वया सह ।
 यायुषेगसम्प्रागस्य घनो मां मोहयेत् तप ॥ ४५ ॥
 कपिभेष्ट ! तुम्हारे साथ मय जाना कभी भी दाहसे
 उचित नहीं है क्योंकि तुम्हारा वेग बायुक वेगके समान तीव्र
 है । जाते समय यह वेग मुझ मूर्खत कर सकता है ॥ ४५ ॥
 अहमाकाशमासका उपयुपरि सागरम् ।
 प्रपतयं वि से पृष्ठाद्भूया घनत गच्छतः ॥ ४६ ॥
 मैं तुम्हारे ऊपर ऊपर आकाशमें पड़ुष जानपर अधिक
 वेगव पञ्च दुर दुष्टार वृषभग्न नीच मिर सकती हूँ ॥
 पतिता सागर चाह तिमिनप्रच्छागुल ।
 भयपमातु विपशा यादसामप्रमुत्तमम् ॥ ४७ ॥

‘एष तद्वत् समुद्रमै, सो विमि नामक बड़े-बड़े मस्तकों,
नाकों और मछलियोंसे भरा हुआ है, गिरकर बिखा हो मैं
शीम ही बह-बहुतोंका उचम आहार बन जाऊँगी ॥ ४० ॥

न च शाक्ये त्वया सार्धं गन्तुं शक्नुविनाशन ।
कच्छपयति सर्वैस्त्वयि स्यात्प्यसशयम् ॥ ४१ ॥

‘इसलिये शत्रुनाशन वीर ! मैं तुम्हारे साथ नहीं एक
सकूँगी । एक स्त्रीको साथ लेकर जब तुम जाने लगोगे उस
समय राक्षसोंको तुमपर संदेह होगा, इसमें संशय नहीं है ॥
द्वियमाणां तु मां बहू राज्ञस्तथा भीमशिक्रमाः ।
अनुगच्छेयुरादिषा राक्षसेन पुत्रतमना ॥ ४२ ॥

‘मुझे हरकर के धनी जाती देना तुम्हारा राक्षसोंकी
साहाय्ये मरकर पराक्रमी राक्षस तुम्हारा पीडा करने ॥ ४१ ॥
तैस्त्व परिवृता शूरेः शूलमुद्गरपाणिभिः ।
भवेस्त्व सशय प्रातो मया वीर कच्छपयान् ॥ ५० ॥

‘वीर ! उस समय मुझ-बैठी राक्षसीना अन्नकमके साथ
होनेके कारण तुम हाथोंमें शूल और मुद्गर धारण करनेवाले
उन घोरघाती राक्षसोंके विरुद्ध प्राप्तसंधयकी अवस्थामें
पहुँच जाओगे ॥ ५० ॥

सायुधा वहसो ध्योमिनि राज्ञस्तस्त्व निरायुधा ।
कथं शाक्यसि स्यातु मां वैद्य परिरक्षितुम् ॥ ५१ ॥
‘माझघमें अन्न हाथवारी बहुत-से राक्षस तुमपर
आक्रमण करेंगे और तुम्हारे हाथमें कोई भी अन्न न होगा ।
उस दृष्टामें तुम उन सबके साथ युद्ध और मेरी रक्षा दोनों
कर्म कैसे कर सकोगे ? ॥ ५१ ॥

युष्मन्मानस्य रक्षोभिस्सत्वस्तैः क्रूरकर्मभिः ।
प्रपतय हितं पृष्ठात् भयार्ता कपिसत्तम ॥ ५२ ॥
‘अभिभेद ! उन क्रूरकर्मों राक्षसोंके व्याप जब तुम युद्ध
करते जाओगे उस समय मैं भयसे पीड़ित होकर तुम्हारी
पीठसे अन्नक ही गिर जाऊँगी ॥ ५२ ॥

अथ रक्षांसि भीमानि महानि बहवन्ति च ।
कथंचित् स्वाम्यराये त्वां जयेयुः कपिसत्तम ॥ ५३ ॥
अथवा युष्मन्मानस्य पतेषं विमुक्तस्य त ।
पतितां च गृहीत्वा मां नयेयुः पापराज्ञस्ताः ॥ ५४ ॥

‘अभिभेद ! यदि कहीं वे महान् बहवन् आनक
राक्षस किसी तरह तुम्हें युद्धमें भीत में मजबूत युद्ध करते
समय मेरी रक्षाकी ओर तुम्हारा ध्यान न रहनेसे यदि
मैं गिर गयी तो वे पानी राक्षस मुझ गिरी हुई अवस्थाको फिर
पकड़ के लयेंगे ॥ ५३-५४ ॥

मा वा हरेयुस्त्वद्विष्णात् पिशसेयुरवापि वा ।
अनवस्थी हि हृद्येते युद्धे जयपराजयौ ॥ ५५ ॥
अथवा यह भी सम्भव है कि वे निष्ठाकर मुझे तुम्हारे
हाथसे छिन कर लेंगे या मेरा वध ही कर लयें- स्त्रीकि युद्ध
में निश्चय और पराजयके अनिश्चित ही देना कष्टा दे ॥ ५५ ॥

अहं वापि विपद्येय रक्षोभिरभितर्जिता ।
त्वत्प्रयत्नो हरिभेद भयेधिष्णक एव तु ॥ ५६ ॥

‘अथवा वानरधियोमने ! यदि राक्षसोंकी अधिक मैं
पकनेपर मेरे प्राण निष्कल गये तो फिर तुम्हारा यह धार
प्रयत्न निष्कल ही हो जायगा ॥ ५६ ॥

काम त्वमपि पर्षातो निहन्तु सर्वराज्ञसान् ।
राक्षसस्य पशो हीयेत् त्वया शस्तेस्तु राज्ञसैः ॥ ५७ ॥

‘अपि तुम मो सम्पूर्ण राक्षसोंका वध करनेमें समर्थ
हो तथापि तुम्हारे हाथ राक्षसोंका वध हो जानेपर भीरुपुत्रय
कीके युद्धमें क्या भायेगी (क्या बड़ी कौरे कि भीरुय
सर्वं कुछ भी न कर सके) ॥ ५७ ॥

अथवाऽऽहाय रक्षांसि म्यसेयुः संघृते हि माम् ।
पत्र ते गर्भिजानीयुर्हरयो नापि राक्षसः ॥ ५८ ॥

अथवा यह भी सम्भव है कि राक्षसोंके मुझे के अन्न
किसी देते गुप्त स्थानमें रक्ष दें, जहाँ न तो वानरोंकी मेरे
पता लगे और न भीरुपुत्रयकीके ही ॥ ५८ ॥

आरम्भस्तु मर्द्योऽप्यं ततस्तथ निरर्पक ।
त्वया हि सह रामस्य महाभागामने गुणः ॥ ५९ ॥

‘यदि ऐसा हुआ तो मेरे लिये किमा गया तुम्हारा सा
धय उद्योग मर्त्य हो बनया । यदि तुम्हारे साथ भीरुय
पत्रोंकी वहाँ पधारें तो उनके आनेसे बहुत बड़ा क्षम होवा ।
मयि अविशितमायत्त राक्षसस्यामितीजसः ।
आतृणा च महाबाहो तप राजकुम्भस्य च ॥ ६० ॥

‘महाबाहो ! अमित पराक्रमी भीरुपुत्रयकीके, उनके
माइनोंके, तुम्हारा तथा वानरराज सुग्रीवके कुम्भका अन्न
मुक्तपर ही निर्भर है ॥ ६० ॥

ती निराशो मर्द्यं च शोकेसंतापकश्चित् ।
सह सर्वार्थहरिभिस्यक्षयता प्रायसप्रहम् ॥ ६१ ॥

‘शोक और संतापसे पीड़ित हुए वे दोनों मर्त्य जब मेरे
प्राक्षिकी ओरसे निरप्य हो जायेंगे, तब तन्पूर्व रिकों की
वानरोंके साथ अपने प्राणोंका परित्याग कर देंगे ॥ ६१ ॥
भर्तुर्मर्कित् पुरस्कृत्य रामावम्यस्य वामर ।
नार्हं स्मर्त्तुं सतो गात्रमिच्छतेय वानरोत्तम ॥ ६२ ॥

‘वानरभेद ! (तुम्हारे साथ न एक लज्जेका एव
प्रधान क्षरण और भी है—) वानरवीर ! प्रतिमर्कित्
ओर दृष्टि रखकर मैं महावान् भीरुयके विना वृद्धे किर्त्त
पुत्रके वीररत्न स्वेच्छयसे स्वर्ण करना नहीं चाहती ॥ ६२ ॥

यद्गं गात्रसंस्पर्शं राक्षसस्य गता पलात् ।
अनीशा किं करिष्यामि विनाथा पिपशशा सती ॥ ६३ ॥

‘राक्षसके वीरयके जो मेरा स्पर्श हो गया है वह लज्जे
उलके पलात्कारके कारण हुआ है । उस समय मैं अतमर्क
अनाय और बेवध थी, क्या करती ॥ ६३ ॥
यदि रामो वशप्रतीयमिह हत्वा सतराज्ञसम् ।

सामितो गृह्य गच्छेत् तत् तस्य सदृशं भवेत् ॥ ६४ ॥
 यदि भीष्मनाथनी यक्षो राधसौपदित एषगुप्त सख्य
 प्र पथ करके मुक्तो परीते भे भले तो यह उनके योग्य
 भर्ष होय ॥ ६४ ॥

धुताश्व एषा हि मया पराक्रमा
 महागमसत्सख्य रणापमर्दिनः ।
 न क्षयगन्धर्वगुणहराशसा
 भयन्ति रामेण समा हि सद्युगे ॥ ६५ ॥
 यौने युद्धमें धनुर्भोज मर्दा करनेवाले महागा भीयम
 के पराक्रमा अनेक बार देते और युगे हैं । देखा, गन्धर्व,
 नग और राधए अब गिबकर भी परामर्षे उन भी उभावा
 नहीं कर सकते ॥ ६५ ॥

समीक्ष्य तं सद्यति चित्रकामुंफं
 महापञ्च पासयतुल्यविममम् ।
 सलक्ष्मणं को विरहत्त राधयं
 धुताशनं रीतिमियाजिरेरितम् ॥ ६६ ॥
 'सुखसखमें विचित्र भद्रप धारण करनेवाले इन्द्रजिह्व
 पथनी महापथी भीरवनाथनी लक्ष्मणके साथ रह पायुक्त
 आश पकर प्रकल्पित हुए भक्तिभी गोवि उशीत हो उठते

हृत्पार्थ भीमनाथनाथ पाकनीक्षीये प्रविष्टस्य सुन्दरकाण्डे सप्तविंशः सर्गः ॥ ६७ ॥
 ६६ अकार भीमनाथनिमित्त कर्त्तव्यात्क अरिहृत्स्य सुन्दरकाण्डे रीतिवर्त्तौ यमं पूग ॥ ६७ ॥

अष्टाविंश सर्ग

सीताञ्जीका हनुमान्जीको पहचानक रूपमें निग्रहूत् पवत्पर घटित हुए एक कोणके प्रसंगका गुनाना,
 भगवान् धीरामका शीघ्र बुला लानेके लिये अनुरोध करना और पूझामणि देना

ततः स कविशार्ङ्गस्तन पाक्येन तोपिताः ।
 सीतामुवाच लक्ष्मणुया पाक्यं पाक्यविशारतः ॥ १ ॥
 शीघ्र ही वह पत्नी कविभेद हनुमान्जीको बड़ी
 मन्मत्ता हुई । ये बात तीरमें सुनाय म । अहो न पूर्वोक्त
 क्ये सुनकर भीराव कहा— ॥ १ ॥
 युक्तकर्म त्वया त्वि भावितं तुमदशनः ।
 सदृशं यीश्वभायस्य साधनीनां विनयस्य च ॥ २ ॥
 हेवि । भावना करनेके लिये उक्त और युक्तिगत
 है । तुमदशन ! भावकी यह बात नारी-सम्भक्त तथा
 शीघ्रभीकी विनयशीलताके अनुभव है ॥ २ ॥
 क्षिपयाद्य त्वं समर्थासि सागरं स्वतिपतिमुम् ।
 मायधिष्ठाय तिसीर्षं शतवाज्रममायतम् ॥ ३ ॥
 हलमें यह नहीं कि आप अथवा दानिक करने गरी
 रीतय रेटकर जो योजन विरत तुमप्रक पर करने सम
 नरी ॥ ३ ॥
 वितीर्षं कार्त्तवं यद्य प्रीति विनयापित ।
 पामाभ्यस्य माहामि सरसर्ममिति जानकि ॥ ४ ॥

है । उव साथ उन्हें देखकर उनका वेग भी । यह
 यथा है । ॥ ११ ॥

सलक्ष्मण राघवमाशिमर्त्तुं
 विद्यागम सप्तमिव्यपस्थितम् ।
 सद्येत को पानरगुन्धय सद्युग
 गुमान्तस्सर्पप्रतिम धाराचिपम् ॥ ६७ ॥
 गानरशिरोमणे । धाराप्रणभे अपने बाणरूपी उभयो
 प्रक्य अभीत पूर्वके ममान प्रकथित होनेवाले और मगगले
 दिग्गन्धी भौक्षि सद्ये दुष्ट स्वमर्दा भीराम और बलमन्ध
 धारा को कर सकता है । ॥ ६७ ॥

रा म कविभेद सलक्ष्मणं प्रियं
 रागुण्यं शिप्रमिद्विगपात्त्य ।
 चिराय राम प्रति शोककरिंतां
 कुक्ष्यमां पानरयौत कर्पिताम् ॥ ६८ ॥
 इयञ्चि कविभेद । गानरी । तुम प्रयत्न करके
 गूणपक्ष सुभीत और अक्षयधर । धर प्रियतम भीयमन्धरी
 को क्षीम बहो बुझा न आभा । मैं भोगमक विन विरहभरी
 शोभकुं हो रही हूँ । तुम अपने धुताशनको बुझा ही
 प्रदान करो ॥ ६८ ॥

हृत्पार्थ भीमनाथनाथ पाकनीक्षीये प्रविष्टस्य सुन्दरकाण्डे सप्तविंशः सर्गः ॥ ६७ ॥
 ६६ अकार भीमनाथनिमित्त कर्त्तव्यात्क अरिहृत्स्य सुन्दरकाण्डे रीतिवर्त्तौ यमं पूग ॥ ६७ ॥

पतत् त त्वि सदृशं पात्त्यास्यस्य महातमना ।
 का द्यासा त्वागुम त्वि मूयात् यद्यनभीहवाम् ॥ ५ ॥
 'ननकनरिदि । आपन को तुमका धरण बताय हुए
 कहा है कि मेरे लिये भीयम सखीके विना तुमर विधी
 युद्ध सब सोच्छापूर्वक रूप करना उचित नहीं है ; यह भावके
 ही योग्य है । दनि । महागम भीयमकी पयवानीके प्रपण
 पक्षी बात निकल पक्षी है । भावको व्यङ्गकर तूथी कौन श्री
 देगा यद्यन कर सकता है ॥ ५-६ ॥
 आप्यत यैव कानुस्था सत्यं निरपशयता ।
 घटितं यत् त्वया त्वि भावितं ध ममाप्रता ॥ ६ ॥
 दनि । मेरे कामन आपन को अब पतिव पक्षी की
 और बेनी प्रीति उतम बातें करी है ; न अब पूर्वकवत
 भीगमन उभा मुक्तन सुनेग ॥ ६ ॥
 कर्त्तव्यं यदुमिर्दि राममियचिकारवा ।
 रनक्षमरक्षमममता मयेतत् सानुरीरितम् ॥ ७ ॥
 दनि । मैंने अब भावको अपने काम को करनेका आग्रह
 किया ; उतक बहुत धरण है । एह प्र में भीयम-सखीका

धीम ही प्रिय करना चाहता था । अतः स्नेहपूर्ण हृदयसे ही मैंने ऐसी बात कही है ॥ ७ ॥

ज्याया बुधमयेदन्त्याव् बुद्धारत्यामनहोवधेः ।

सामभ्यावारामनशेष मयेतत् समुधीरितम् ॥ ८ ॥

भूखा कारण यह है कि जन्ममें प्रवेश करना उनके लिये अत्यन्त कठिन है । वीर्या कारण है, महाखगरभे पार करनेकी कठिनाई । इन सब कारणोंसे तथा अपनेमें आपको स जानेकी शक्ति होनेसे मैंने ऐसा प्रस्ताव किया था ॥ इच्छामि त्वां समानस्तुमप्यै रघुनन्दिना ।

गुणस्नेहेन भक्त्या च नान्यथा तनुदाहृतम् ॥ ९ ॥

मैं आप ही आपकी भीरुपुन्यावधीसे गिअ देना चाहता था । अतः अपने परमापन्न गुण भीरुमके प्रति स्नेह और आपके प्रति भक्तिके कारण ही मैंने ऐसी बात कही थी, किशो और उदेष्ये नहीं ॥ ९ ॥

यदि मोक्षदासे प्राप्तुं मया साध्मनिस्विते ।

मभिदान प्रयच्छत्य ज्ञानीयाव् राघवो दि यत् ॥ १० ॥

किन्तु खी शक्ती देमि । यदि आपके मनमें मेरे साथ चलेका उच्छाह नहीं है तो आप अपनी कोई पहचान ही दे दीजिये, त्रिधये भीरुमचन्द्रकी यह जान लें कि मैंने आपका दर्शन किया है ॥ १ ॥

पवमुजा दनुमता सीता सुरसुतोपमा ।

उवाच तर्धनं मन्वं पाप्यप्रप्रथिताभरम् ॥ ११ ॥

इतुमानकीके ऐसा कदनेपर हेरक्याके समान वेभस्विनी सीता अमुकगत्यापीमें पीरे पीरे इष्ट प्रकार बोलीं— ॥ ११ ॥

इदं श्रेष्ठमभिदानं मयास्थ तु मम प्रियम् ।

यैस्तस्य चित्रकूटस्य पादं पूर्वोत्तरे पदे ॥ १२ ॥

तापसाध्रमपासिभ्याः प्रान्त्यमूलफलोदके ।

तस्मिन् त्रिज्याभिन्न दशो मन्दाकिम्ययिचूटतः ॥ १३ ॥

तस्योपपन्नसण्डपु नानापुष्पसुगन्धिषु ।

विहाय सल्लिच्छिन्नो ममाङ्गे समुपायिषाः ॥ १४ ॥

पानरभेद । इम मेरे पित्रमसे यह उत्तम पहचान पठाना—प्रायः त्रिचकूट पर्वतके उत्तर-पूर्वपाठ भूगण, जो मन्दाकिनी नदीके समीप है तथा कहीं फल मूल और जड़की अभिकृता है उच्च विश्वकित प्रदेशमें तापलाभमके भीतर जब मैं निवास करती थी तहाँ दिनों नाना प्रकारके फूलों की सुगन्धसे वासित उस आश्रमके उपवनमें जलविहार करके भाव भीग हुए आवे और मेरी गोदमें बैठ गये ॥ १२-१४ ॥

ततो मांससमायुक्तो पायसः पर्यन्तुण्डयत् ।

तमहं ज्ञाष्टमुचम्य पारयामि अ पायसम् ॥ १५ ॥

दारयन् स च मां काकस्तप्रेय परिष्ठीयते ।

न चाप्युपारममांसात् भक्षार्थी पस्विभाजनः ॥ १६ ॥

उदन्तर (लिये हुए समय) एक मांसकोपुत्र

श्रीमा आपन मुसपर चौच मारने लगा । मैंने देखा उठकर उठे इरानेकी चेष्टा की, परन्तु मुझे चार-चार थोच मार कर यह श्रीमा वहीं कहीं छिप जाता था । उध पक्षिभेकी कीएके जानेकी इच्छा थी, इच्छिये वह मेरा मांस जोचनेसे निवृत्त नहीं होया था ॥ १५ १६ ॥

उत्कर्षस्यार् च रथानां कुञ्जायां मयि पक्षिणे ।

पंसमानं च पसनं ततो दृष्ट्वा त्वया ह्यहम् ॥ १७ ॥

यही उध फकीपर बहुत कुपित थी । अतः अपने छईने-के दृष्टापूर्वक कलनेके लिये कटिस्थ (नारे) की पीके लगी । उध समय मेरा बज कुष्ठ नीचे खिचक गया और उधी भयलामें आपने मुझे देख लिया ॥ १७ ॥

त्यया विवक्षिता चाहं कुञ्जा सल्लिखिता तया ।

भक्षयगुणेन काफेन दारिता त्यामुपागता ॥ १८ ॥

देखकर आपने मेरी हँसी उठानी । इन्से मैं पहले छे कुपित हुई और फिर कबित हो गयी । इतनेदीमें उध मन्व-कोत्प श्रीपने फिर चौच मारकर मुझे जल-पिथक कर दिया और उधी अवस्थामें मैं आपके पास आयी ॥ १८ ॥

ततः भान्ताह्नुस्वच्छमासीनस्य तपाविशम् ।

कुप्यन्तीच प्रदुष्टेन त्ययार्हं परिसारिष्यता ॥ १९ ॥

आप वहाँ बैठे हुए थे । मैं उध कीएकी हरकसे का मा गयी थी । अतः चकर आपकी गोदमें आ बैठी । उध समय मैं कुपित ही हो रही थी और आपने प्रणम होकर मुझे खल्यना दी ॥ १९ ॥

पाप्यपूर्णमुखी मन्द चक्षुषी परिम्रजती ।

स्मरिताहं त्वया नाथ पायसम प्रकोपिता ॥ २० ॥

प्रायः । फोपने मुझे कुपित कर दिया था । मेरे सुक-पर माँसुकी पारा बह रही थी और मैं धीरे धीरे आँसु पोंठ रही थी । आपने मेरी उध भगलाभे स्मर किता ॥ परिभ्रमाद्य सुता हे राघवाङ्गेऽस्म्यहं चिरम् ।

पर्यायेण प्रसुप्तश्च ममाङ्गे भरताप्रजाः ॥ २१ ॥

इतुमान् । मैं थक जानेके कारण उध दिन बहुत देरतक भीरुपुन्यावधीकी गोदमें खेती रही । फिर उनकी बारी आयी और वे मरतके बड़े भार्य मेरी गोदमें छिर रखकर छो रहे ॥ २१ ॥

स तत्र पुनरुपाय पायसः समुपागमत् ।

ततो ह्युत्तमपुत्र्या मां राघवाद्वात् समुत्थिताम् ।

पायसः सदसागम्य पितृवार स्तमास्तरे ॥ २२ ॥

इही समय वह श्रीमा फिर वहाँ आया । मैं छोकर कानके बाद भीरुपुन्यावधीकी गोदसे उठकर बैठी ही थी कि उध श्रीपने उद्वह शपटकर मेरी छातीमें थोच मार दी ॥ २१ ॥ पुनः पुनरुपायस्य पितृवार स मां भूशम् । ततः समुत्थितो रामा मुक्तेः शोषितविरगुभिः ॥ २३ ॥

उधने बारबार उठकर मुझे मायना पावक कर दिया ।

मेरी धरतीसे रक्तकी बूँदें झरने लग्यं, इससे भीरामचन्द्रकी भी
नीच कुछ गयी और वे बागकर ठठ बैठे ॥ २३ ॥

सर्मा बहू मदाबाहुर्घितुन्ना स्तमपोस्तवा ।

भावाधिप इव कुन्दा श्वसन् वाक्यमभाषत ॥ २४ ॥

मेरी भावीमें पाव हुआ देख मदाबाहु भीराम उस
कम कुपित हो ठठे और कुन्दाकरते हुए विषमर लफके
कमान और-धरते लौठ डेते हुए बोले— ॥ २४ ॥

केन से नागमासोढ विघ्नतं वै स्तनाम्बरम् ।

कः शोडति सरोपेण पञ्चवक्त्रेण भोगिना ॥ २५ ॥

‘शायकी घुँहके कमान शौचोवाशी सुन्दरी । किन्ने
दुम्हारी कमीको कत विघ्नत किया है ? कौन रोपसे मेरे हुए
पंच वक्त्रकाम लफके साथ सेज रहा है ?’ ॥ २५ ॥

शीलमाणास्तवस्तं वै धायसं समवेक्षत ।

नखैः सखधिरैस्तीक्ष्णैर्मांमेवाभिमुखं स्थितम् ॥ २६ ॥

‘इतना ककर बच उन्होंने इधर उधर इडि डालीं, तब
उठ कौएको देखा, जो मेरी क्से ही घुँह किन्ने बैठा था ।
उसके छीसे पने कूनसे रँग गये थे ॥ २६ ॥

पुत्रः किञ्च स शक्रस्य बायसः पततां परः ।

कपन्तरं गतः शीघ्रं पवमस्य गती क्षमः ॥ २७ ॥

बह पक्षियोंमें भेड कौआ इन्द्रका पुत्र था । उलकी गति
धनुके कमान छीव वी । बह शीघ्र ही खगति उडकर दृष्यीपर
सा पहुँचा था ॥ २७ ॥

तवस्तस्मिन् महाबाहुः कोपसवर्तितेक्ष्णः ।

क्षपसे कृतवान् मूढा मतिं मतिमता परः ॥ २८ ॥

‘उठ कम बुद्धिमानोंमें भेड महाबाहु भीरामके नेत्र
क्षेपसे बुझे कने । उन्होंने उठ कौएका कठोर वक्त्र देतेका
किचर किया ॥ २८ ॥

स वर्मसंस्तवाद् दृष्ट्वा प्रमथ्योऽस्त्रेण योजयत् ।

स शीघ्र इव कालाग्निज्ज्याहमिमुखो द्विजम् ॥ २९ ॥

भीरामने कुशकी चयईसे एक कुश निकलका और
उठे ब्रह्माक्षके मगधसे अमिमन्त्रित किया । अमिमन्त्रित करते
ही वह कालाग्निके समान प्रमथित हो उठा । उलका कम
बह पक्षी ही था ॥ २९ ॥

स तं प्रक्षिप्तं विक्षेप्य वर्मं त वायस प्रति ।

तवस्तु धायसं वर्मः सोऽम्बरेऽनुजगाम ह ॥ ३० ॥

‘भीरुनापक्षीने बह प्रमथित कुश उठ कौएकी ओर
झेडा । फिर तो वह आकाशमें उलका पीडा करने
लग्य ॥ ३० ॥

अनुष्टुप्स्तवा क्वको जगाम विविधां यतिम् ।

धावक्याम इम जाक सर्वे पे विचकार ह ॥ ३१ ॥

‘बह कौआ कर प्रकरकी ठडानें कगलता अपने माथ
कन्दनेके छिने इस धम्पूयें क्मातमें भागता किच किन्नु उठ
कपने कभी भी उलका पीछन न झेडा ॥ ३१ ॥

स पिशा च परित्यक्ता सर्वैश्च परमर्षिभिः ।

शीलोकाग्रम् सम्परिक्रम्य तमेध शरण गतः ॥ ३२ ॥

‘उलके पिशा इन्द्र तथा कम्भत भेड महर्षियोंने भी
उलका परित्याग कर दिया । तीनों लोकमें भूमकर कान्तमें
बह पुनः भगवान् भीरामकी ही शरणमें आता ॥ ३२ ॥

स तं निपतित भूमौ शरण्यः शरण्यागतम् ।

वषाहर्मणि क्वकुरस्याः कृपया पर्यापाकयत् ॥ ३३ ॥

‘रघुनाथकी शरण्यागतकतछ है । उनकी शरणमें आकर
कब बह दृष्यीपर गिर पडा, तब उन्हें उलपर दवा आ गयी
मतः बचके योग्य होनेपर भी उठ कौएको उगहोंने माय
नहीं, उलका ॥ ३३ ॥

परिधनं विवर्षे च पतमान तमग्रवीत् ।

मोक्षमार्गं न शक्य तु मार्गं कर्तुं तदुच्यते ॥ ३४ ॥

‘उलकी कश्चि क्षीय हो चुकी थी और वह उदात्त होकर
शामने गिरा था । इस भवकाममें उलको कम करके मगवान्
बोले—‘ब्रह्माक्षको तो मर्ष्य किया नहीं जा सकता । मतः
बताओ, इसके प्राय दुम्हारा कौन-सा अङ्ग-मङ्ग किया
क्य’ ॥ ३४ ॥

तवस्तस्यासि क्वकस्य हिमस्ति क्षस दक्षिणम् ।

दृष्ट्वा तु दक्षिणं नेत्र प्राणेभ्यः परिरक्षितः ॥ ३५ ॥

‘फिर उलकी कम्मतिके अनुसर भीरामने उठ अकूसे
उठ कौएकी दाहिनी ओंख नड कर दी । इस प्रकार यमों
नेत्र देख बह अपने प्राण बचा सका ॥ ३५ ॥

स रामाय नमस्कृत्या रामे दशरथाय च ।

विष्टुष्टस्तेन वरिण प्रतिपेदे स्वमाक्यम् ॥ ३६ ॥

‘तदनन्तर दशरथनन्दन रामा रामको नमस्कर करके
उन वीरशिरोमणिते विडा डेकर बह अपने निवाक्यनक
पसा गया ॥ ३६ ॥

मत्कृते काकमात्रेऽपि प्रह्लादाय समुदीरितम् ।

कम्पाद् यो माह्वरत् त्यक्तः क्षमसे त महीपते ॥ ३७ ॥

‘कलिभेड । तुम मेरे लामीसे आकर करना—‘प्राण
नश । दृष्यीपते । आपने मेरे किन्ने एक लाधारय भयराध
करनेबाडे कौएपर भी ब्रह्माक्षका प्रयोग किया था । फिर जो
आत्मके पक्षसे मुझे हर से आया, उसको आप कैसे क्षमा कर
रहे हैं ? ॥ ३७ ॥

स कुदृष्य महोत्साहां कृपां मयि नरर्षभ ।

त्वया नाययती नाप हानाथा इव हृदयते ॥ ३८ ॥

‘नरभेड । मेरे कममदान् उलकाहसे पूर्ण कृपाकीविषय ।
प्राणनाथ । जो धडा आत्मके क्नाव है वह छीटा मात्र अनाथ
ही रिकामी देखे है ॥ ३८ ॥

भानुशस्य पर्ये धर्मस्त्वेष पथ मया भुतम् ।

जानामि त्वां महाधीयं महोत्साहं महायत्नम् ॥ ३९ ॥

‘रवा करना उलके बडा धर्म है, वह मैंने आनेसे ही

मुना है । मैं आपके अच्छी तरह जानती हूँ । आपका बहू,
पराम्भ और उखाह महान् है ॥ १९ ॥

अपारधारमशोभ्य गाम्भीर्यात् सागरोपमम् ।

भर्तारं ससमुद्राया भरण्या वाससोपमम् ॥ ४० ॥

“आपका कहीं आर-वार नहीं है—आप अस्वीय हैं ।
आपको कोई शुभ्य वा पराकृत नहीं कर सकता । आप
गम्भीरतामें समुद्रके समान हैं । समुद्रपर्यन्त धरती पृथ्वीके
स्वामी हैं तथा इन्द्रके समान तेजस्वी हैं । मैं आपके प्रभय
को जानती हूँ ॥ ४० ॥

एवमश्रयिष्या श्रेष्ठो बलवान् सस्थवानपि ।

किमर्थमस्म रक्षःसु न योजयसि राघव ॥ ४१ ॥

‘रघुनन्दन ! इस प्रकार अन्धवेषाभोगे भेद बलवान्
और शक्तिशाली होने हुए भी आप राघवोंपर अपने अस्त्रोंका
प्रयोग क्यों नहीं करते हैं ? ॥ ४१ ॥

न नागा नापि गण्डर्वा न सुरा न मन्त्रिणाः ।

रामस्य समरे वेग शब्दाः प्रतिसमीहितुम् ॥ ४२ ॥

‘रघुनन्दन ! नाग, गण्डर्वा, देवता और मन्त्रिण—
कोई भी सम्राज्यमें श्रीरामचन्द्रजीका बग नहीं उड़
सकते ॥ ४२ ॥

तस्य वीर्ययतः कश्चिन् यद्यस्ति मयि सम्भ्रमः ।

किमर्थं न शरैस्तीक्ष्णैः क्षयं नयति राक्षसान् ॥ ४३ ॥

उन परम पराक्रमी श्रीरामके हृदयमें यदि मेरे विषे
कुछ श्वाकुशता है तो वे अपने तीक्ष्ण शस्त्रोंसे इन राक्षसोंका
वंहार क्यों नहीं कर सकते ? ॥ ४३ ॥

भ्रातृपदंशमादाय नक्षमो वा परतपः ।

कस्य हेतोर्न मां वीर्यं परिपालि महाबलः ॥ ४४ ॥

भयवा शत्रुओंको शंका देनेवाले महाबली वीर तत्पुत्र
ही अपने बड़े भाईकी आज्ञा लेकर मेरा उद्धार क्यों नहीं
करते हैं ? ॥ ४४ ॥

यदि तौ पुरुषण्यामी धार्मिन्द्रसमेतजसौ ।

सुराणामपि दुर्धर्षी किमर्थं मामुपहतः ॥ ४५ ॥

ये दोनों पुरुषशिष्ट वामु तथा इन्द्रके समान तेजस्वी
हैं । यदि वे देवताओंके विषे भी दुर्धर्ष हैं तो फिर विषे मेरी
उपेक्षा करते हैं ? ॥ ४५ ॥

ममैव पुष्टतं किञ्चिन्महदस्ति न संशयः ।

समधावपि तौ यस्मां नापशते परतपौ ॥ ४६ ॥

निःशेदक मग ही कोई महान् पाप उदित हुआ है
जिसे वे जाना शत्रुमंताकी वीर मया उद्धार करनेमें समर्थ
होते हुए भी सुक्ष्म दुष्टादि नहीं कर रहे हैं ॥ ४६ ॥

पेदहा पचनं भुग्वा कथं साधु भागितम् ।

भयाप्रयोगमदातव्यं हनूमान् हरित्यूषणः ॥ ४७ ॥

विदेहपत्नी सीतले मौजूबतोंसे हुए जब पर ४५वा-

मुक्त बात कही; तब इते सुनकर वातरघुपति महतेजसी
हनुमान् इस प्रकार बोले— ॥ ४७ ॥

त्वच्छ्रेयैकधियुक्तो रामो वैधि सत्येन ते ह्यपे ।

रामे दुःखाभिपाने तु कश्चन्यः परित्यज्यते ॥ ४८ ॥

‘वैधि ! मैं सत्यकी शपथ साकार आपसे करता हूँ कि
श्रीरामचन्द्रजी आपके विरह शोकसे पीड़ित हो अन्य क
कार्यसे विमुख हो गये हैं—केवल आपका ही चिन्तन करते
रहते हैं । श्रीरामके दुःखी होनेसे अन्यत्र मी क्या लख
सकते हैं ? ॥ ४८ ॥

कथयित्वा भवती वद्या न कदाऽपरिशोचिषुम् ।

हम सुझते दुःखानामन्त प्रत्यक्षि शोभने ॥ ४९ ॥

‘किन्ती तरह आपका दर्शन होगा । अब शोक करनेका
अन्तर नहीं है । शोभने । इन्हीं वहीते शपथ अपने दुःखोंका
अन्त होता देखेंगी ॥ ४९ ॥

तापुमौ पुरुषण्यामौ राघवुभौ महाबलौ ।

त्वहर्शनं ह्यतोत्साहौ ज्ञेयान् भस्मीकरिष्यताम् ॥ ५० ॥

ये दोनों पुरुषशिष्ट रामकुमार बड़े बलवान् हैं तथा
आपको देखनेके विषे उनके मनमें विद्योप उच्छाह है । अतः
वे समस्त राक्षस-आत्माओंका भक्षण कर बस्ती ॥ ५० ॥

इत्या च समरहृत् राघव सहजाम्भयम् ।

राघवस्त्वं विशाखाक्षि स्वां पुरीं प्रति नेष्यति ॥ ५१ ॥

‘विशाखाश्रेयसे ! रघुनन्दनजी सम्राज्यमें नृत्वा प्रकट
करनेवाले राघवको उसके दम्प-वन्धवोंसहित मातृकर आपसे
अपनी पुरीमें ले जायेंगे ॥ ५१ ॥

यदि यद् राघवो वाच्योऽकम्पयन् महाबलः ।

सुमीवो वापि तेजसी हरयो वा समागतौ ॥ ५२ ॥

भय भगवान् श्रीराम, महाबली अस्मत्पुत्र, तेजसी
सुमीव तथा बहो एकत्र हुए जानरोंके प्रति आपके अं कुछ
करना हो वह करिदें ॥ ५२ ॥

इत्युद्यतति तस्मिन् सीता पुनरपाद्यवीत् ।

कौसल्या छोकभर्तारं सुपुत्रे यं मनस्विनी ॥ ५३ ॥

त ममायं सुखं पृच्छति शिरसा चाभियाद्य ।

हनुमान्जीके ऐसा करनेपर देवी सीतले फिर कहा—
कथिभद्र ! मनस्विनी कौसल्या बेचीने किन्हें कन्म दिया है
तथा जो सुखं अज्ञके स्वामी हैं, उन भीरुनायकोंके मेरे
भोरते मस्तक हककर प्रणाम करत और उनका सुख-
उत्सर्ग पूजना ॥ ५३ ॥

अज्ञानं सपरतनानि प्रिया यावत् पराह्वनाः ॥ ५४ ॥

एवमर्थं च विशाखायां पृथिव्यामपि दुर्लभम् ।

पितर मातर चैव सम्मत्स्यामिप्रसाद्य च ॥ ५५ ॥

अनुग्रहितो रामं सुमित्रा येन सुप्रजाः ।

भानुपूज्यन् धमारमात्यपत्या सुश्रमनुक्षमम् ॥ ५६ ॥

अनुग्रहित विष्णुस्य धातरं पादपद् यत्न ।

सिद्धकर्मो महाबाहुमनस्वी प्रियदर्शनः ॥ ५७ ॥
 विद्वद् वर्तते रामे मातृवर्त्मा समाचरत् ।
 द्वियमाणां तदा बहो न मु मां वेद् लक्ष्मणा ॥ ५८ ॥
 दूरोपसेवी लक्ष्मीयाञ्चको न बहुभाषिता ।
 रामपुत्रप्रियभ्रेष्ठः सहसा भ्रान्तुरस्य मे ॥ ५९ ॥
 मत्तः प्रियतरो नित्य आता रामस्य लक्ष्मणः ।
 नित्युक्तो धुरि यस्यां तु तामुद्धरति वीपवान् ॥ ६० ॥
 यं ह्युप रामसो नैव वृत्तमार्थमनुसरत् ।
 स ममार्याय कुशलं वक्ष्यो वचनमाम्भ ॥ ६१ ॥
 मृदुर्मित्य भुविदुःखः प्रिया रामस्य लक्ष्मणा ।
 पथा हि वानरभ्रेष्ठ दुःखस्ययकरो भवेत् ॥ ६२ ॥

मेरे उद्धारके किये प्रयत्नशील हा लखत हैं ॥ ५९ ॥
 इव द्रुपाम्भ न माय शूर राम पुनः पुनः ।
 अधित धारयिष्यामि मास दशरथात्मज ॥ ६० ॥
 ऊर्ध्वं मासान् अधियं सत्येमाह प्रथमि ते ।

शुभ मेरे स्वामी शूरवीर भगवान् भीयमसे बारबार
 करना—दशरथनन्दन । मेरे जीवनकी अत्यधिक किय जो
 मात निश्च है, उनमेंसे कितना शप है, उतने ही समयतक
 मैं जीवन धारण करूँगी । उन अत्यधिक दो महीनीके बाद मैं
 जीवित नहीं रह सकूँगी । यह मैं भारते लक्ष्मी शपय लखर
 कर रही हूँ ॥ ६० ॥

राघवो नोपकृष्टा मां निकृत्या पापकमणा ।
 भ्रातुमर्हसि धीर त्वं पातालादपि कौशिकीम् ॥ ६५ ॥

वीर ! पापघारी राघवने मुझे कैद कर रक्खा है ।
 भतः राक्षसिबोधया घटवापुर्षक मुझे बड़ी पीड़ा ही खाती
 है । बेश भगवान् विष्णुन इन्द्रकी लक्ष्मीका पातालसे उद्धार
 किया था, उसी प्रकार आप यहाँसे मेरा उद्धार करें ॥ ६५ ॥
 ततो यत्नगतं मुपस्था विष्णु ब्रह्मार्पण शुभम् ।
 प्रज्ञेयो राक्षस्येति सीता हनुमते वृषी ॥ ६६ ॥

एता करकर छीताने कपड़ेमें बँधी हुए सुन्दर दिव्य
 ब्रह्मार्पणका लोकर निष्पत्ता और इसे भीयमकदम्बीको
 द देना एता करकर हनुमान्कीके हाथपर रख दिया ॥
 प्रतिगृह्य ततो वीरो मणिररामनुत्तमम् ।
 बहुकृपा योजयामास लक्ष्यस्य प्राभवत् मुञ्जा ॥ ६७ ॥

उठ परम उठम मणिररामके छेकर वीर हनुमान्कीने
 उसे भरती बहुकीने हाल किया । उनकी बौद अत्यन्त
 द्रुम होनेपर भी उसके छेदमें न आ सकी (इससे जान
 पड़ता है कि हनुमान्कीने अपना विषाण रूप दिखानेक
 बाद फिर द्रुम रूप धारण कर लिया था) ॥ ६७ ॥
 मणिरराम कविधरः प्रतिगृह्याभिषाद्य च ।
 सीता प्रक्षिप्य कृत्या प्रपत्ता पार्श्वतः स्थिताः ॥ ६८ ॥

वह मणिरराम छेकर कविधर हनुमान्ने सीताको प्रपन्न
 किया और उनकी प्रक्षिप्या करके न विनीतकबले उनके
 पात लड़े हो गये ॥ ६८ ॥

हर्षेण महता युक्तः सीतावदानजेन सः ।
 हृदयान गतो रामं लक्ष्मणं च सलक्ष्मणम् ॥ ६९ ॥

सीताकीप्र दर्शन होनेसे उर्ध्व महान शप प्रप्त हुआ
 था । वे मन-ही-मन भगवान् भीयम और शुभ लक्ष्मणतमप्र
 करतनके पात पहुँच गये थे । उन शर्तोंप्र चिन्तन करने लगा था ॥
 मणियरमुपगृह्य सं महाहं
 जनकनुपामजया पूतप्रभायात् ।

मणिरियरपवनायपूतमुक्तः
 सुखितमताः प्रतिसंप्रमं प्रपद् ॥ ७० ॥
 यथा जनककी पुत्री छीताने अपने विदाय प्रमाणी निश्च

उत्तमभाव विषाण भूषणहर्म्ये मी त्रिभन्ना मिथना कठिन
 है ऐसे उत्तम एवम्भ, भौतिक-भौतिक हाथों, सब प्रकारक
 छत्रों तथा मन्त्रर सुन्दरी शिष्योका मी परिषाग कर किया
 मत्तको सम्मानित एव राबी करके वा भीयमकदम्बीक
 शप बनने लख भाये, जिनके शरण मुमिना इसी उत्तम
 शयनशाली करी खाती है, जिनका निच शप बर्मेमें छया रहता
 है जो सर्वोत्तम मुक्तको त्यागकर बनमें बड़ भार्य भीयमकी
 रषा करते हुए तथा उनके अनुकूल चलेते हैं, जिनके कंधे
 दिग्दे अन्त और मुबार्र बड़ी-बड़ी हैं, जो देखनेमें प्रिय लगते
 और मनको वचनें रलत हैं, जिनका भीयमके प्रति विताक
 अन्त और मेरे प्रति मत्तका समान मात तथा स्वात रहता
 है जिन वीर लक्ष्मणको उठ समय मेरे हरे जानेकी कत नहीं
 म्दय हो सकी थी, जो बड़े-बूढ़ोंकी सेवामें संकल्प छानेवाले,
 पंमणाकी शक्तिमान् तथा कम बोलनेवाले हैं
 रामकुमार भीयमक प्रिय स्वकिर्णोंमें जिनका लसे ऊँचा
 लान है, जो मेरे शशुरके सहज पराक्रमी हैं तथा भीयुनाय
 मीप्र जिन छते भार्य करमणके प्रति तथा मुहसे मी अधिक
 मय रहता है जो पराक्रमा कर अपने ऊपर हाक हुए
 शर्मणको बड़ी योग्यताके साथ धरन करते हैं तथा किन्हें
 रेश्वर भीयुनायकी अपने मेरे हुए विताकी मी भूख गये
 हैं (मया प्र विताके समान भीयमक पावनमें बचचिच
 एते हैं) । उन अत्यन्त मी शुभ मेरी अन्तरे कुण्ठ पूठना
 और यनरभ्रेष्ठ । मेरे हयननुशर उनसे एकी बातें करना,
 किन्हें मुनकर नित्य अमक, पवित्र दक्ष तथा भीयमके प्रिय
 शपु अत्यन्त मया दुःख दूर करनेको तैयार हो अर्थ ॥
 स्वमस्मिन् कायनिषाह प्रमाण हरियुवय ।
 राघवस्त्यस्यमारम्भामपि यत्नपरो भवेत् ॥ ६३ ॥

धानरपुण्यते । अधिक क्या कहूँ ! सिव तरह यह
 अब किहू हा सक बड़ी उपाय शुद्ध करना चाहिये । इस
 गिरनेमें शुद्धी प्रमाण ही—इसका साथ भार दुग्दारे
 उ ऊपर है । दुग्दारे प्रताहन देनेसे ही भीयुनायको

छिपाकर बारब कर रक्खा या; उठ बहुमूल्य मणि-रत्नको
लेकर हनुमान्जी मन-ही-मन उठ पुष्पके लम्बन झुकी एवं
प्रसन्न हुए; ओ किन्ही मेघ पकैतके ऊपरी मगसे उठी हुई

प्रसन्न वाजुके वेगसे कम्पित होकर पुनः उसके प्रभावसे डूब
हो गया हो । तदनन्तर उन्हीं वहाँसे छेद करने
तैयारी की ॥ ७ ॥

इत्थार्पे श्रीमद्दामायणे वाल्मीकीये आदिकण्डे सुन्दरकाण्डेऽष्टाधिकः सर्गः ॥ १८ ॥

इस प्रकार श्रीमत्संस्कृतनिर्मित श्रीरामायण अष्टादशके सुन्दरकाण्डमें अठ्ठीसठौं सर्ग पूरा हुआ ॥ १८ ॥

एकोनचत्वारिंश सर्ग

बृहामणि लेकर जाते हुए हनुमान्जीसे सीताका भीराम आदिको उल्लासित करनेके लिये
कहना तथा सङ्ग्रह-धरमके विषयमें शङ्कित हुई सीताको वानरोंका पराक्रम
पताकर हनुमान्जीका आश्वासन देना

मणि रक्त्वा तथा सत्या हनुमन्मन्थामयीत् ।

अभिज्ञानमभिप्रातमत्तद् रामस्य तत्त्वतः ॥ १ ॥

मणि देनेके पश्चात् सीता हनुमान्जीसे बोली—मेरी
इस निष्ठाको मगनात् भीरामचन्द्रजी मन्थीमौलि पदधान्ते हैं ॥

मणि हृष्टा तु रामो वै प्रयार्था संस्मरिष्यति ।

सीरो जनन्या मम च राज्ञो वशरथस्य च ॥ २ ॥

‘इस मणिसे देखकर भीर भीराम निम्न ही तीन
व्यक्तियोंके—मेरी माताका मेघ तथा महाशय वशरथका
एक हाथ ही शरथ करेंगे ॥ २ ॥

स भूयस्त्व सनुत्साहचोदितो हरिसत्तम ।

अस्मिन् कार्यसमुत्साहे प्रथिन्त्यय यदुत्तरम् ॥ ३ ॥

‘अभिभेद । तुम पुनः विशेष उत्साहसे प्रेरित हो इस
कार्यकी शिष्टिके लिये जो मन्थी कर्तव्य हो; उसे छोड़ो ॥ ३ ॥

त्वमस्मिन् कार्यनिर्णये प्रमाणं हरिसत्तम ।

तस्य चिन्त्यय यो पन्नो बुधस्तयकरो भवेत् ॥ ४ ॥

‘वानरशिरोमणे । इस कार्यको निम्नमें तुम्हीं प्रमाण
हो—तुमपर ही शरथ भर है । तुम इसके लिये कोई ऐश
उपाय तोथा ओ मेरे बुद्धका निवारण करनेवाला हो ॥

हनुमन् यत्नमाश्रय हुञ्जस्तयकरो भव ।

स तथेति प्रतिज्ञाय माकतिभीमविक्रमम् ॥ ५ ॥

‘शिरसाऽऽऽपम्य वैश्वीं गमनायोपकक्रमे ।

‘हनुमन् । तुम विशेष प्रयत्न करके मेरा बुद्ध हूँ
करनेमें उत्सुक बनो । तब बहुत अश्रमा’ कहकर सीताजी-
की आशाके अनुसार कार्य करनेकी प्रतिज्ञा करके वे भयंकर
पराक्रमी पवनकुमार निरिद्वन्द्विकी करजोंमें मरका हृत्का
कर बहते अनेक तैयार हुए ॥ ५ ॥

घात्या सप्रस्थित श्वो घालरं पवनतमजम् ॥ ६ ॥

‘घातपगद्गदया घाथा मैथिलीं पाक्यमग्रवीत् ।

पवनपुत्र शनरवीर हनुमान्को बहते छोटके लिये

उपत च्चन मिथिकेशकुमारोश्च गन्ध भर आया और वे अमु

गद्गद करकी बोली— ॥ ६ ॥

हनुमन् कुचालं मूयाः सतिहो रामलक्ष्मणौ ॥ ७ ॥

‘सुभीषं च सहामास्यं सर्वान् बृहदाश वाकरान् ।

मूयास्यं घालरथेष्ट कुचालं धर्मसंहितम् ॥ ८ ॥

‘हनुमन् । तुम भीराम और लक्ष्मण दोनोंके एक हाथ
ही मेरा कुचाल-वमानार क्ताना और उनका कुचाल-मङ्गल
पूजना । वानरभेद । फिर मन्त्रिणसहित सुभीष तथा अन्य
सब श्वे-श्वे वानरोंसे धर्मयुक्त कुचाल-वमानार क्ताना और
पूजना ॥ ७ ८ ॥

यथा च स महाबाहुर्मा तारयति राघवः ।

अस्माद् दुःखान्मुसरोघात् त्वं समाधातुमर्हसि ॥ ९ ॥

‘महाबाहु भीरपुनापयी जित प्रकर इत दुःखके

समुद्रसे मेरा उद्धार करे वैसा ही कल दुर्गमें करना चाहिये ॥

जीकर्णी मा यथा रामा सन्भावयति कीर्तिमान् ।

तत् त्वया हनुमन् पाच्यं घाथा धर्ममवाप्सि ॥ १० ॥

‘हनुमन् । बधली खुनापयी जित प्रकर मेरे शीते-की

यहो आकर मुझमें मित्र—मुझे उद्धारके लिये ही बातें तुम

उतने करो और ऐसा करके वाणीके हाथ धर्मकरपत्र का
ग्रहण करो ॥ १० ॥

सिन्धुमुत्साहयुक्तस्य वाचः भुत्वा मयेरिता ।

परिष्प्यते वशरथः पौरुष मयघासये ॥ ११ ॥

‘जो तो वशरथनम्बन ममकान् भीरम छत्र ही उल्लाह

से मेरे रहते हैं तथापि मेरी फरी हुई शरतें हुनकर मेरी

प्राप्तिके लिये उनका प्रकृपाय और भी बनेगा ॥ ११ ॥

मस्तवैशयुता वाचस्तयत्तः भुत्वाैष रामस्य ।

पराक्रम मतिं वीर्ये विधिषत् सधिधास्यति ॥ १२ ॥

‘तुम्हारे हृत्कसे मेरे श्वे-श्वेसे युक्त शरतें हुनकर ही भीर

खुन्दपयी परक्रम करनेमें विधिकर अपना मन बनाके ॥

सीतापारस्ताव यथाः भुत्वा हनुमान् माकतामग्रः ।

शिरसाऽऽक्रिमिधापाय पाक्यमुत्तमग्रवीत् ॥ १३ ॥

‘कभी यह शरत हुनकर पवनकुमार हनुमान्से माकत

अश्रुति बौधकर विनयपूर्वक उनकी हाथका उधर दिया— ॥ १३ ॥

क्षिप्रमप्यति काकुरस्यो ह्यस्रपरैर्वृतः ।
 यस्तु बुधि विस्मयारिणोऽकं वपनयिष्यति ॥ १४ ॥
 वृत्ति । सो युद्धमें ठारे वस्तुओंको भीतरकर धारके धक्का
 का निवारण करेगा, वे कुन्दुस्तकुम्भयुग मगवान् भीरुम
 भद्र वानरों और मातृभोंक साथ वीर हीयरो पधारंग ॥ १४ ॥
 महि पश्यामि मर्त्येषु नासुरेषु सुरेषु वा ।
 पक्षस्य वनतोऽथापान् म्यानुमुत्सहत्प्रत ॥ १५ ॥
 मैं मनुष्यों, असुरों मयका देखताभोंमें भी क्षिप्र
 एव नहीं देखता सो वानरोंकी वग करके हुए मगवान्
 भीरुमके समने उठर सक ॥ १५ ॥
 अल्पकमपि पञ्चम्यमपि वैदस्यत यमम् ।
 स हि सोढुं रथं शक्तस्तप हतोर्विशेषतः ॥ १६ ॥
 मगवान् भीरुम विद्यत भावक विषे ता युद्धमें मर्त्य,
 इन्द्र और वसुधुन यमका भी सामना कर सकत है ॥ १६ ॥
 स हि सागरययन्ता महीं साधितुमर्हति ।
 त्रिभिर्मतो हि तमस्य जपो जनकनमिद्वि ॥ १७ ॥
 वे उग्रपदन्त वा । वृष्णीका भी भीत वन शम्प है ।
 मन्मन्दिनि । भावके क्षिप्र युद्ध करत उभय भीरुमकप्रवी
 का निम्न ही विजय प्राप्त होगी ॥ १७ ॥
 तस्य तद्वेषधन भृत्या सम्यक् सत्यं सुभाषितम् ।
 जानकी यमु मने तं घञ्जत चेदमप्रवीत् ॥ १८ ॥
 इन्द्रमन्त्रीका कपन युक्तियुक्त, कल और सुन्दर वा ।
 उग्र मुनिकर जनकनन्दिनीने उनका वक्ता भादर किया और
 वे उभय छिद्र कुठ करनेके उद्यत हुए ॥ १८ ॥
 ततस्त प्रमिषत् सीता यज्ञमाया पुनः पुनः ।
 मन्सोहामिषत् वाक्य सीतावादानुमानपत् ॥ १९ ॥
 तदनन्तर कहते प्रमिषत् हुए इन्द्रमन्त्रीके और शर
 वा देखता हुए सीताने वीरवक्ता स्वामीक प्रति स्नेहसे मुक्त
 वपानपूष वात करी— ॥ १९ ॥
 यदि वा मम्यस धार घसेकाहमरिद्वम् ।
 कसिमिह संगुह वृथा विभ्रान्तः श्लो गमिष्यसि ॥ २० ॥
 वस्तुओंका वपन करनेका वीर । यदि द्रुम वीर
 कम्पता वा यहाँ एक दिन किता गुप्त स्थानमें निघस करे ।
 इस तरह एक दिन विभ्रान्त करके कल वल आता ॥ २० ॥
 मम वैद्यान्त्रभास्यायाः सान्निप्यात् तप धारत ।
 मम्य शारुष्य महतो मुहुर्त्त मास्य भयत् ॥ २१ ॥
 धारनशर । तुम्हारे निजक रक्षेत् मुझ मन्त्रमन्त्रीके
 मरान् शारुष्य भाड़ी दरके क्षिप्र निवारण हा कम्पगा ॥ २१ ॥
 तथा हि हरिशाहूळ पुनरागमनाय तु ।
 यान्नामपि संदेहा नम स्यात्प्राप्त संशयः ॥ २२ ॥
 कर्मभेद । विनामक पश्चात् यहाँ प्राप्त करनेके
 अनन्तर यदि छिद्र युक्तगात्र आनेमें संदेह या निम्न युद्ध
 का मरे प्राणोंमें भी संकट आ खपवा इतमें संशय नहीं है ॥

तथावर्शनजः शोका मूयो मा परितापयेत् ।
 तुक्काकुम्भवगामूषां धीपयधिय धारत ॥ २३ ॥
 धारनशर । मैं तु ख-पर-तु ख उठा रही हूँ । तुम्हारे
 पक्ष अपनेपर तुम्हें न देख पातेका धक्का मुझ पुन रूप
 करता हुआ-सा उद्यत देता रहेगा ॥ २३ ॥
 मयं च वीर मन्वृत्तिष्ठतीय ममाप्रत ।
 सुमहास्त्वत्सहायेषु ह्यु ह्यु हरीभ्यर ॥ २४ ॥
 कय तु खलु तुष्पारं तरिष्यन्ति महोत्थिम् ।
 तानि ह्य हस्येयानि तौ धा नरवरात्मजौ ॥ २५ ॥
 शीर वानरशर । तुम्हारे साथी रातों भर वानरोंक
 नियममें मेरे सामने अथ भी यह महान् संदेह हा विद्यमान ही
 है कि वे छिद्र भीर वानरोंकी संगठनों तथा वे दोनों गणकुमार
 भीरुम और वृक्षमव इस तुष्पार महावरात्मक करते पाए
 करेंगे ॥ २४ २५ ॥
 प्रपाणामेष भूताना सागरस्वह लङ्कन ।
 शक्तिः स्थावर्षतैरथस्य तेषां माकृतस्य वा ॥ २६ ॥
 वृक्ष सगाने उग्रद्वय वीरनभी शक्ति ता कवल वीर
 प्राणियोंमें ही देखी गयी है । तुममें गरुड़में मयका वायु-
 वधतामें ॥ २६ ॥
 तदस्मिन् कायनिर्वाण क्षीरैव तुरतिक्रम ।
 किं पश्यसे समाधान त्व हि कायविद्या धरः ॥ २७ ॥
 वीर । इस प्रकार इस उग्रद्वयहनकर्म कायको निम्न
 मयन्त कठिन हा गया है । ऐसी स्थानमें तुम्हें कार्यविद्विष्य
 कौन-ठा उपम दिखायी देता है ? यह क्याभा नरकि कर्म
 विद्विष्य उपम जाननेका कालमें तुम कथम भद्र हो ॥ २७ ॥
 काममस्य त्वमवैकः कायस्य परिसाधन ।
 पयातः परवारान यदास्वस्त फलोदय ॥ २८ ॥
 वस्तुनीयका वहा करनेका वपनयुक्त । इतमें संदेह
 नहीं कि तुम मकेक ही मेरे उदारकर्म कायको विद्व करनेमें
 पूजतः समय हा परद्र एवा करनेके जो विद्वानरूप कल
 प्राप्त हागा उद्यम यद्य कलक तुम्हेंका निनगा भगवान्
 भीरुमको नहीं ॥ २८ ॥
 यद्यैः सममैयुधि मा रापय जिय सयुग ।
 विजयी म्यपुत्र यायात् तद्यस्य सद्यत भयत् ॥ २९ ॥
 यदि वस्तुनाको साथी उद्यक कय रावकक युद्धमें
 पवकित करके विजयी हो मुझ साथ क अननी पुत्रीका पधारों
 ता वह उनके अनुष्म काय हागा ॥ २९ ॥
 यद्यैस्तु सखुता कृत्वा सद्यः परयत्नात्मनः ।
 मा तयद् यदि काकुम्भस्तत्तम्य सद्यः भयत् ॥ ३० ॥
 वस्तुनाका संतर करनेका आराम यदि भयना
 वनामोहाया सद्यःका रदन्ति करके मुझ अपने साथ क
 पनें हा रहा उनक वाप्य हागा ॥ ३० ॥
 तद्यथा तम्य विनाममनुकय महात्मनः ।

भवदाहयशूल्स्य तथा स्वमुपपाद्य ॥ ३१ ॥

मया तुम देवा उपाय करो किसे उभरकर महत्मा
श्रीरामका उनके अतुरूप पराक्रम प्रकट हो ॥ ३१ ॥

तद्योगोपहितं वाक्यं प्रथितं हेतुसहितम् ।

निशाम्य हनुमान्श्लोच वाक्यमुत्तरमप्रधीत् ॥ ३२ ॥

देवी कीटाक्षी उपसृक्तं वात अथमुक्तं श्लेषमुक्तं तथा
मुक्तिमुक्तं वी । उनके ठठ अथश्लेष वातको सुनकर हनुमान्-
श्लेने इव प्रभर उचर दिसा— ॥ ३२ ॥

देवि हर्षसास्त्रेण्यगामीश्वरः प्रवृत्ता वरः ।

सुमीवाः सत्यसम्पत्सस्तधार्थं वृत्तनिश्चयः ॥ ३३ ॥

देवि । बानर और माझ भोकी सेनाके स्वामी कपिभेद
सुग्रीव शक्यवाही हैं । वे आपके उदारके छिने इव निश्चय कर
जुके हैं ॥ ३३ ॥

स धानरसहस्राण्या कोटीभिरभिसवृताः ।

क्षिप्रमभ्यति वैवृद्धिं राक्षसानां निवर्हणः ॥ ३४ ॥

निदेहनन्दिनि । उनमें राक्षसेका संहार करनेकी शक्ति
है । वे सख्तों कादि वानरोंकी सेना साथ लेकर शीघ्र ही
छड़ाकर चढ़ाई करेंगे ॥ ३४ ॥

तस्य विक्रमसम्पन्नाः सत्त्वयन्तो महाबलाः ।

मनःसंकटवस्तम्पाता निर्वेदो हरयः स्थिताः ॥ ३५ ॥

उनके पाठ पराक्रमी वैश्याक्षी, महाबली और मानसिक
संकल्पके सम्बन्ध बहुत बूढ़क उच्छन्नकर जानेवाले बहुत-से
बानर हैं जो उनकी आकाशका पावन करनेके छिने उपा
सँवार रहते हैं ॥ ३५ ॥

येषां नोपरि ताभस्ताप त्रियंशु सज्जतं गतिः ।

न च कर्मसु सन्निहितं महास्त्रमितततजसः ॥ ३६ ॥

किन्तुकी ऊपर-नीचे तथा इधर उधर करी भी गति
नहीं रहती । वे बड़-से-बड़े क्रोधके आ पकनेपर भी कभी
विस्मृत नहीं हारते । उनमें महान् तेज है ॥ ३६ ॥

असकृत् वैमहोत्साहैः ससागरचराधराः ।

प्रदक्षिणीकृता भूमिर्पायुमार्यानुसारिभिः ॥ ३७ ॥

उन्होंने अत्यन्त अजाहते पूर्व होकर वायुपथ (आकाश)
का अनुसरण करने हुए समुद्र और पर्वतोंपरिहृत इव पृथ्वीकी
अनेक बार परिक्रमा की है ॥ ३७ ॥

मद्विशिष्टाश्च तुल्याश्च सन्ति तथ जलोत्सवाः ।

मत्तः प्रपयवराः क्विथ्यासि सुग्रीवसन्निधौ ॥ ३८ ॥

सुग्रीवकी सन्तानमें मेरे समान तथा मुझसे भी बड़कर
पराक्रमी बानर हैं । उनके पाठ आर भी ऐसा बानर नहीं है
जो बल पराक्रममें मुझसे कम हो ॥ ३८ ॥

अर्हं तापदिह प्रातः किं पुनस्तं मदाबलाः ।

महि मष्ट्याः प्रपयन्तं प्रपयन्तं हीतरं सनाः ॥ ३९ ॥

इसमें ही यहाँ आ गया उप अम्ब महाबली कीपेके
आनेमें क्या उद्देश है । जो भेद पुत्र होते हैं उन्हें संदेह-

वाहक वृत्त बनाकर नहीं मेका ब्रता । तापारण क्रोधिक छे
ही मेके बाते हैं ॥ ३९ ॥

तद्यत् परितपेम देवि शोको व्यपैतु ते ।

एकोपातनं ते छद्ममेप्स्यसि हरिचूचपाः ॥ ४० ॥

अतः देवि । आपके उताप करनेकी आवश्यकता ना
है । आपके शोक पूर हो जाना चाहिये । बानरयूथपति एव
ही छद्मगमे छद्म पहुँच सकेंगे ॥ ४० ॥

मम पूषणतो तो च बन्धुसुर्वाविबोहितो ।

त्वत्सकार्यं महासाहू नृसिंहावागमिष्यतः ॥ ४१ ॥

उत्पन्नरुके सुर् और बन्धुभाकी भ्रंति शोभा पनेबान
और महान् बानर-समुदायके साथ रहनेवाले वे दोनों पुत्र
छिद भीरम और अस्मभ मेरी पीठपर बैठकर आपके पर
आ पहुँकेंगे ॥ ४१ ॥

तौ हि वीरो नरवरो सज्जितौ रामकर्मणौ ।

भागव्य नगरीं छद्मं सायकैर्विभमिष्यतः ॥ ४२ ॥

वे हान्तो नरभेद वीर भीरम और अस्मभ एक साथ
आकर मत्से लयमें छद्मपुरीका निश्चय कर सकेंगे ॥ ४२ ॥
सगर्भं रावणं हत्वा रामस्यो रमुकम्पनः ।

त्थामावाय वरारोहे स्वपुरीं प्रति पास्यसि ॥ ४३ ॥

बरापेहे । रघुकुम्भके मानन्वित करनेवाले भीरपुनाय
की रावणको ठठके देनिर्कौवर्धित मारकर आपके साथ वे
अपनी पुरीको जाँटेंगे ॥ ४३ ॥

तदाश्वसिद्धिं भद्रं च भयं त्वं कदाकदाङ्घ्रिणी ।

मन्धिरात् द्रक्ष्यसे रामं प्रज्वलन्तमिवागलम् ॥ ४४ ॥

इसछिने आप भयं भावण करें । आपके कल्याण हो ।
आप समयकी प्रतीक्षा करें । प्रवर्धित अग्निके समान तेजस्वी
भीरपुनायकी आपके शीघ्र ही दर्शन देंगे ॥ ४४ ॥

सिद्धते राक्षसन्त्रे च सपुत्रात्सत्यपास्यसे ।

त्वं समेप्स्यसि रामेण शशाङ्गेनेष रोहिणी ॥ ४५ ॥

पुत्र मन्त्री और कन्धु-शाश्वतोंपरिहृत राक्षसराज सत्य-
के मोरे अनेपर आप भीरमबन्धुकीसे उठी प्रभर मिर्छेगी,
वेसे रोहिणी कन्धुमासे मिच्छी है ॥ ४५ ॥

क्षिप्रं त्वं क्षुधि शोकस्य पारं द्रक्ष्यसि मैथिलि ।

रावणस्यैव रामेण द्रक्ष्यसे निहतं मयात् ॥ ४६ ॥

देवि । मिथिलेशकुमारी । आप शीघ्र ही अपने शोक-
का अन्त हुआ देखेंगी । आपके वह भी इतिगोचर होय
कि भीरमबन्धुकीने रावणको पकर्षक मार सक्य है ॥ ४६ ॥
एवमाभ्यास्य वैदेहीं हनुमान् मारुतामम्रा ।

गममाय मतिं कृत्वा वैदर्ही पुनरद्यवोत् ॥ ४७ ॥

निदेहनन्दिनी कीटाक्षी इव प्रभर आधावन दे पवन-
कुमार हनुमान्कीने बहोसे छेदनेका निश्चय करक उनसे फिर
करा— ॥ ४७ ॥

तमरिचं कृतात्मानं क्षिप्रं द्रक्ष्यसि राघवम् ।

सकम्प च भनुप्यायि लङ्काद्वारमुपागतम् ॥ ४८ ॥
ध्वनि । अप धीम ही रलेंगी कि छुट हृत्पकाक धनु-
नासक धीरनुनापची तथा कम्पन हायमे वनुप किम् लङ्काक
हापर अ पहुँचे हैं ॥ ४८ ॥

नखद्ग्रायुधान् धीरान् सिंहाद्यावृक्षविक्रमान् ।
वानरान् वारमेन्द्रभान् क्षिप्रद्रुक्पासि सगतान् ॥ ४९ ॥
नख और दाद ही बिनके अन्ध उन्न हैं तथा जो सिंह
और वानर कम्पन परकमी एष गच्छकाक क्मान विद्याक-
अव हैं, एठ वानरोंके भी आप धीम ही एकत्र हुआ
रेलेंगे ॥ ४९ ॥

शैलान्मुनिकाशाना लङ्कामुपसानुपु ।
नवतां कपिसुख्यानामार्यै सूधान्यनेकश ॥ ५० ॥
आर्ये । पवत और मेचके समान विद्याककाय मुख्य
मुख्य वनठके बहुतसे छुट लङ्कापती मन्वपवतक पित्रोरपर
गन्त दिखायी देंगे ॥ ५० ॥

स तु मर्मणि घोरैव ताडितो मग्मधेयुषा ।
न राम लभत रामः सिंहादित इष क्षिपा ॥ ५१ ॥
धीराम कत्रुडीके ममस्वकमे क्ममदेवके मयकर बाणोंके
घोर पहुँची है । इतकिये व सिंह पीडित हुए गन्नाककी
धोखे चैन नहीं पाते हैं ॥ ५१ ॥

इत्थर्षे धीमतामथगे वास्मीकीये धाविकाय्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चोत्तराचरिः सर्गः ॥ ३९ ॥
इस एकम शैवर्षर्षिनिर्मित अर्चामयव नार्चिकाम्यके सुन्दरकाण्डमे उत्तराचरिं सर्वं पूजा हुआ ॥ ३९ ॥

यद् मा द्वि शोकम् मा मूर्त्त ममसो भयम् ।
शर्चीय भद्रा शक्येण सङ्गमप्यसि शोभने ॥ ५२ ॥
द्वि । आप शोकके कारण रोदन न करें । आपके
मनका मय दूर हो आप । शोभने । श्रेष्ठ धारी देवकाय इन्द्र
से मिली है उठी प्रकृर आप अपन प्रतिदेवसे
मिलेंगी ॥ ५२ ॥

रामाद्विदिशेण कोऽग्योऽस्ति कश्चित् सौमिषिष्या समा ।
मग्निमारुतकन्दया तौ भ्रातरौ तथ सङ्घर्षा ॥ ५३ ॥
मन्म, श्रीगाम्पन्त्रभीसे बदनर दूष्टा कौन है । तथा
करमनवीठ समान मी कौन हो सकता है । मग्नि और
वायुक तुम्ह तेबन्धी वे दोनों धारें आपक आत्मय हैं (आपको
कह पिन्दा नहीं करती चात्रिय) ॥ ५३ ॥

नास्मिश्चिरं घस्त्वसि वृषि दश
एतोगणैरभ्युपितऽतिरिद्रं ।
न ते शिराद्भागमम प्रियस्य
क्षमस्व मरसगमकात्मभाश्रम् ॥ ५४ ॥
ध्वनि । उल्लेखेण सेवित इव मरुत मयकर देवमे
आपका अधिक शिर्षक नहीं रहना पड़ेगा । आपके प्रियतम-
क आनेमें विरम्भ नहीं होगा । बरतक मरी उनसे भेंट न हो,
उठने समज तकके विरम्भका आप क्षमा करें ॥ ५४ ॥

चत्वारिंशः सर्गः

सीताकम भीरामसे कहनेके लिये पुनः संदेह दना तथा इनुमान्त्रीक।
उन्में भावनासन द उत्तर दिशाकी प्रार जाना

धुप्या तु यच्चनं तस्य वायुसुप्तोमहारममा ।
तनावागमहित धापय सीता सुदसुतोपमा ॥ १ ॥
बायुपुत्र महाम्मा इनुमान्त्रीक वचन पुनकर
देवक्याके समान लक्ष्मिनी कीटाने अपने शिवके विचारसे
इत प्रकर कह— ॥ १ ॥

त्वां हृद्वा प्रियवचनार सप्रहृष्यामि वानर ।
धपसमातसस्येव वृषि प्राप्य वसुंधरा ॥ २ ॥
वानरके । तुम्हने मुझ कहा ही प्रिय संवाद मुनाया
है । तुम्हें देवकर इपके मारे मरे धीरमें यमाज हो
साध दे । ठीक उनी तरह जैसे कपाक पानी पड़नेसे
धारी कभी दूर लतीवासी भूमि ही-मरी हो जाती है ॥
पया नं पुहुररथाय गात्रैः शोकान्भिकर्दिर्गैः ।
संसृष्टार्यं सन्नामाहं तथा लुठ ह्यां मयि ॥ ३ ॥
मुसल एमी दया करो बिहसे मैं शोकके कारण
इसके हुए मान भङ्गोहाय नरभेद भीरामका प्रमूर्च्छ
रथा कर लुं ॥ ३ ॥

मभिषाम च रामस्य वृथा हरिगणोत्तम ।
क्षिसामिरीकं काकस्य कोपाङ्कक्षिशातमीम् ॥ ४ ॥
वानरभेद । भीरामने कापवध अ कौएकी एक
भौलके धनुनेवासी लोकका वायु चमया या उत्र प्रतङ्गीकी
दुम पहचानक रूपमें ऊहें पाद दिखाना ॥ ४ ॥
मनशिखायास्तिसकको गण्डपादयें निषेधितः ।

स्वया प्रणये तिसक त किल क्षनुमहसि ॥ १ ॥
मेरी आरसे यह भी कहना कि प्रायनाप । परदेकी
उठ बातसे भी बाह कीत्रिय, जब कि मर कण्डके समे
हुए तिसकके भित जानेपर आम्ने अपने हायत मिसिद्धका
तिसक लगाया या ॥ ५ ॥
स वीरयान् कथ सीतां हता समनुनग्यसे ।
यसमर्ता रक्षसा मध्य महद्रुपदण्डयोगम ॥ ६ ॥
मरुद्र और वरवक समान फाकमी प्रियतम । क्या
बन्वान् हाकर भी अरहत हांकर राधकाक फरमे निबल
फनेवासी मुस सीताका शिरकार देस बदन करत है ॥ ६ ॥

एष चूडामण्डिर्विष्वा मया सुपरिरक्षितः ।
 एतद्दृष्ट्वा प्रहृष्टशामि व्यसने त्यामिदानघ ॥ ७ ॥
 निष्पाप प्राणधर । इत रियम् चूडामण्डिको मीने
 बड़े यज्ञमे सुरक्षित रक्त्वा था और संकटके समय इसे
 देखकर माना मुझे आपका ही दर्शन हो गया हो, इत
 तरह मैं हृष्य अनुभव करती थी ॥ ७ ॥
 एष निर्योतितः श्रीमान् मया ते वारिसम्भवा ।
 अत पर न शक्यामि जीवितु शोककालसा ॥ ८ ॥
 वसुधैव कुटुम्बकम् इति भाष्ये अस्तिमान् मणिरथ
 मात्र आपके बेटा रही हूँ । अब शोकसे आदर होनेके
 कारण मैं अधिक वयसतक जीवित नहीं रह सकूंगी ॥ ८ ॥
 असह्यानि च दुःखानि वाचस्य हृत्पचिच्छदा ।
 राक्षसैः सह संवासं स्वकृत मर्यायाभ्यहम् ॥ ९ ॥
 पुरुष पुरुष हृत्पक्षे उदनामी बातें और
 उच्छ्वित्तोंके साथ निवास—यह सब कुछ मैं आपके लिये
 ही सह रही हूँ ॥ ९ ॥
 पारयिष्यामि मास तु जीवितं शशुसूदन ।
 मासावृष्ये न जीविष्ये त्वया हीना नृपात्मज ॥ १० ॥
 राजकुमार ! शशुसूदन ! मैं आपकी प्रतीक्षामें किसी
 तरह एक मासक जीवन पारण करूंगी । इसके बाद
 आपके विना मैं जीवित नहीं रह सकूंगी ॥ १० ॥
 घोरो राक्षसराजाऽयं दृष्टिञ्च न सुखा मयि ।
 स्यां च भुत्वा विपन्नन्तं न जीवेयमपि क्षणम् ॥ ११ ॥
 यह उलटा राक्षस यका हूँ है । मेरे प्रति इसकी
 दृष्टि भी अच्छी नहीं है । अब यदि आपको भी विद्वन्
 करते मुन हूँगे तो मैं धनधर भी जीवित नहीं रह
 सकती ॥ ११ ॥
 वैदृष्ट्वा वजनं भुत्वा कक्ष्य साधुभाषितम् ।
 भवाप्रवीणमहातेजा दन्मान् मादृशारमजः ॥ १२ ॥
 शीतानीके यह औंष्ट्र बहाते कर हुए कक्ष्याकनक
 पवन मुनक महातेजस्वी पवनकुमार इतमान्की बोधे—॥
 म्यन्तप्रकयिमुक्तो रामो त्रेवि सस्यम त शपे ।
 राम शोकभिमूत तु जहमण परितप्यते ॥ १३ ॥
 रवि ! मैं अपनी शपथ साकर परता हूँ कि
 भोग्युत्तपक्षी आपके हाथसे ही सब कामोंमें विमुक्त हो
 रहे हैं । भोगमके हाथपुर होनेसे लम्बन भी बहुत दुखी
 रहते हैं ॥ १३ ॥
 दृष्ट्वा कथञ्चिद् भवती न क्रुद्धा परिद्वितुम् ।
 इम मुहूर्ते नृपात्मान्तं प्रह्वसि भामिनि ॥ १४ ॥
 अब किसी तरह आपका दर्शन हो गया इच्छित्ते
 होने परने का एक कामका भाव नहीं रहा । भूमिनि !
 अत इसी मुहूर्तमें भरने का नृगोक्ष भन्त हुआ
 देखो ॥ १४ ॥

तावुभी पुरुषम्याद्यो राजपुत्रावनिन्दितौ ।
 स्वहर्शनकृतोस्ताहौ लज्जा भस्मीकरिष्यताः ॥ १५ ॥
 वे दोनों भर्ते पुरुषसिंह राजकुमार भीरम और
 अस्मन अर्धन प्रकृति वीर हैं । आपके दर्शनके लिये
 उच्छ्वित्त होकर वे लज्जापुर्णको मस कर लयेंगे ॥ १५ ॥
 हत्वा तु समरे रक्षो रादप्य सहयान्धवैः ।
 रामञ्चै स्वौ विद्यात्साक्षि स्त्रौ पुरीं प्रति नेप्यतः ॥ १६ ॥
 विद्यात्साक्षिने गन्धव रक्षणे समग्रद्वयमें उठके
 पत्न्य बान्धवोपरिही मारकर वे दोनों खुशी बन्धु आपकी
 अपनी पुरीमें ले जायेंगे ॥ १६ ॥
 यसु रामो विज्ञानीयावभिज्ञानमनिग्विते ।
 प्रीतिसंज्ञमन भूयस्तस्य त्य दातुमर्हसि ॥ १७ ॥
 गती-शब्दी रेवि ! लिये भीरमचन्द्रकी जान घबरे
 और जो उनके हृदयमें प्रेम एवं प्रकृतता संघार करने-
 वाली हो, देखी कोई और भी पहचान आपके पास हो तो
 वह उनके लिये आप मुझे दें ॥ १७ ॥
 साप्रवीण्वृत्तमेवाहो मयाभिज्ञानमुत्तमम् ।
 एतदप्य हि रामस्य दृष्ट्वा यत्नेन भूषणम् ॥ १८ ॥
 अज्ञेय दनुमन् पाक्य तव वीर भविष्यति ।
 तव शीतानीके कदा—कसिभेद ! मैंने दुर्गमें उद्यमसे
 उत्तम पहचान तो दे ही की । वीर इतमन् ! इसी
 आपभूषणके यत्नपूर्वक देखनेपर भीरमके लिये दुर्गकी
 खरी बातें विद्वत्कीय हो चक्येंगी ॥ १८ ॥
 स तं मणिवर्तं गृह्य श्रीमान् द्रुपधसत्तमा ॥ १९ ॥
 प्रणम्य शिरसा देवीं गमतायोपशङ्कमे ।
 उच श्रेय मणिके छेकर पानादियेमणि भीष्मन्
 इतमन् देखी शीतानीके फिर दृष्ट्वा प्रणम करनेके पश्चात्
 बहोसे अपनेको उचत हुए ॥ १९ ॥
 तमुत्पातकृतोस्ताहमयेष्य हरियूयपम् ॥ २० ॥
 वर्धमान महायोगमुवाच जनक्याःमजा ।
 नभुपूर्वमुत्ती दीना पाप्यगह्वयया गिरा ॥ २१ ॥
 यनरूपपति महायोग्याही इतमान्की बहोसे उच्छ्वेय
 मरनेके लिये उच्छ्वित्त हो बढ़ते देख जनकनन्दिनी शीतानीके
 मुसपर औंष्ट्रऔंशी पाया बहने लगी । वे खुशी हा भयु-
 क्तगर वालीमें बानीं—॥ २१ ॥
 दन्मन् सिंहसंकाशो भ्रातरी रामसहमणी ।
 सुमीय च सहामात्य स्वान् मूया भ्रामयधम् ॥ २२ ॥
 दन्मन् ! सिंहके लयन परकम्पे रहनें याई भीष्म
 और अमनके तथा मन्त्रियकेपदित सुधीय एवं अन्य सब
 पानयेथ मेध कुपस मन्त्रक रहना ॥ २२ ॥
 यथा च स महापादुर्मा तारपति राघवा ।
 भस्माद्दुपायान्तराधात्पत्य समाधातुमर्हसि ॥ २३ ॥
 महापादु भीष्मनाथकेसे मुझ इत प्रभर दमन

बाहिने, किञ्च ये तु स्वके इयमहासागरते मेरा उद्धार करें ॥
 इष च तीव्र मम शोकयेन
 रक्षोभिरेभिः परिभर्त्सनं च ।
 म्यास्तु रामस्य गताः समीपं
 विशङ्क्य तेऽप्यास्तु हरिप्रसीर ॥ २४ ॥
 जानरोंके प्रदुःख वीर ! मेरा यह दुःख शोक-वेग
 और इन राक्षसोंकी यह बोट-बपट भी तुम भीरुओंके समीप
 जाकर बचना । बायो, तुम्हारा मार्ग मङ्गलमय हो ॥ २४ ॥

स राजपुत्रया प्रतिषेधितार्यः
 कपिः कृतायः परिहृष्येताः ।
 तदस्वरोप प्रसमीक्ष्य कार्यं
 विद्यां ह्यधीर्षी मनसा जगाम ॥ २५ ॥
 राजकुमारी सीताके उक्त अभिप्रायको जानकर कपिनर
 हनुमानने अपनेको कृतार्थ समझा और प्रसन्नचित होकर
 बोड़े-से शेष श्रे कर्मयंत्र विचार करते हुए बहोते उत्तर
 दिशाकी ओर प्रस्थान किया ॥ २५ ॥

हृष्यार्षे श्रीमत्साम्प्रथमे वाक्यीकीये अविष्काम्ये सुन्दरकाण्डे चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४ ॥

इस प्रकार श्रीमत्साम्प्रथम अविष्काम्ये सुन्दरकाण्डे चत्वारिंशो सर्ग पूरा हुआ ॥ ४ ॥

एकचत्वारिंश सर्ग

हनुमान्जीके द्वारा प्रमदावन (अशोकवाटिका) का विध्वंस

स च बाहिभिः प्रशास्ताभिर्गामिभ्यन् पृथितस्तथा ।
 तस्माद् वृशाद्याकामस्य शिस्तयामास वामरु ॥ १ ॥
 सीताकीसे उक्तम वचनोंद्वारा समादर पाकर जानकीर
 हनुमान्जी यह बहोते जाने लगे, तब उठ स्थानसे दूरी
 कर इतकर वे इस प्रकार विचार करने लगे— ॥ १ ॥
 स्वरोपमिद् कार्यं हृष्टेयमसितस्तथा ।
 वीजुयायानतिक्रम्य चतुर्थं इह हृदयते ॥ २ ॥
 मैंने कबखरने नेत्रोंवाली सीताकीका दर्शन तो कर
 लिया, अब मेरे इस कर्मका फलाना-श्रम अथ (समुप्री
 षडिक्र पठा जगाना) शेष रह गया है । इसके लिये
 फिर उद्यम है—श्रम बहन मेह और दण्ड । वहाँ श्रम
 मन्दि तीन उपायोंको अर्पणकर केवल चौथे उपाय (दण्ड)
 का प्रयोग ही उपयोगी दिखायी देता है ॥ २ ॥

युद्धमें राक्षसोंके दुष्कर्म-दुष्कर्म वीर भारे जायें तो वे जोग किसी
 तरह कुछ नरम पक्ष सन्ते हैं ॥ ४ ॥
 कार्ये कर्मभि निवृत्ते यो बहुभ्यपि साधयेत् ।
 पूर्वकायाविरोधेन स कार्यं कर्तुमर्हति ॥ ५ ॥
 जो पुरुष प्रधान कर्मके सम्मुख हो जानेपर वृद्धे
 पहले बहुत-से कार्योंको भी सिद्ध कर देता है और पक्षके
 कर्मोंमें बाधा नहीं आने देता, वही कर्मको सुचारु रूपमें
 कर सकता है ॥ ५ ॥
 न शोकः साधको हेतुः स्वल्पस्यापीह कर्मणा ।
 यो ह्यर्थं बहुधा वेद् स समयोऽर्पसाधने ॥ ६ ॥
 बोट-से-बोट कर्मकी भी विधिके लिये बोट एक ही
 साधक हेतु नहीं हुआ करता । जो पुरुष किसी कार्य का
 प्रयोक्तनको अनेक प्रकारसे सिद्ध करनेकी कष्ट जानकर हो,
 वही कार्य-साधनमें समर्थ हो सकता है ॥ ६ ॥

न साम रक्षास्तु शुण्याय कल्पते
 न वाममर्षोपचितेषु युज्यते ।
 न मेवसाध्या बन्धवर्षिता जनाः
 पराक्रमस्त्वेष ममेह तोषते ॥ ३ ॥

इहैव तावत्कृतनिष्कयो ह्यह
 प्रजेयमद्य प्रयेतोभ्वराज्यम् ।
 पराक्रमसम्मर्षविशेषतस्त्वचित्
 तता कृतं स्यान्मम भर्तृशासनम् ॥ ७ ॥

प्रासङ्गिके प्रति सामनीकिक प्रयोग करनेसे कोई श्रम
 नहीं होता । इनके पास बन् भी बहुत है अथा इन्हें बान
 रोष भी कोई उपयोग नहीं है । इसके सिवा वे बन्धके
 शर्ममानमें चूर रहते हैं अथा मेरुनीतिके द्वारा भी इन्हें
 बधमें नहीं किया जा सकता । ऐसी स्थानमें प्रसे नहीं
 पद्यक्रम दिखाना ही उचित जान पड़ता है ॥ ३ ॥

जैसे इसी भाषामें मैं इस बातको ठीक-ठीक समझ
 हूँ कि अपने और शत्रुपक्षमें युद्ध होनेपर कौन प्रबल होगा
 और कौन निर्बल, तब-तब मन्थिके कर्मका भी निश्चय
 करके मात्र युद्धीयके घात चर्खे तो मेरे द्वारा सामीकी
 आकाश पूर्णरूपसे पावन हुआ समझा जायगा ॥ ७ ॥

न चास्य कार्यस्य पराक्रमादते
 विनिश्चयाः कश्चिद्विशेषपद्यत ।
 हतप्रवीणस्य रणे तु राक्षसाः
 कथञ्चिदीयुर्विहाय मात्स्यम् ॥ ४ ॥

कथं तु स्वल्पेण भवेत्सुखागतं
 प्रसन्नं युद्धं मम पक्षतो सह ।
 तथैव पन्थात्मयसं च सारबत्
 समानयेर्मा च रणे दधानता ॥ ८ ॥

इस कर्मकी विधिके लिये पराक्रमके सिवा वहाँ और
 किसी उपायका अवसरन ठीक नहीं दे सकता । यदि

पर्व मात्र मेरा पराठक माना मुत्तर भयना घुम
 परिणामका बन्ध कैसे होगा ! राक्षसोंके साथ रहना

युद्ध करनेका अवसर मुझे देने प्राप्त होगा । तथा इद्युद्ध
राज्य समरमें अपनी सेनाको और मुझे भी दुष्कृत्यत्मक
दृष्टिसे देखकर कैसे वह तमस्र सकेगा कि कौन सफल है ।।

ततः समासाद्य रणे वशानम्
समश्रितधर्मं सख्यं सवायितम् ।।

इति स्थित तस्य मत्तं बद्धं च
सुखेण मत्वाहमितः पुनर्मते ॥ ९ ॥

‘उस युद्धमें मंत्री, सेना और छात्रकैरहित राजकर्म
धामना करके मैं इसके हार्दिक अभिप्राय तथा वैदिक-
शक्तिका अनायास ही पता लग्ये जायेगा । उसके बाद
यहोते आर्जेग ॥ ९ ॥

इत्समस्य मूर्त्तस्य नन्दतोपममुत्तमम् ।
धर्मं मेवमनाकाम्तं मानाहुमल्लतायुतम् ॥ १० ॥

‘इस निर्दयी राजकर्म वह सुन्दर उपवन नेत्रोंको
आनन्द देनेवाला और मनोरम है । नाना प्रकारके हथों
और अदाओंसे व्याप्त होनेके कारण वह नन्दनकनके समान
उत्तम प्रतीत होता है ॥ १ ॥

इत् विधस्यस्यिष्यामि शुष्कं बन्धमिष्यामः ।
अस्मिन् भगनेततः कोपं करिष्यति स राजस्य ॥ ११ ॥
इते आग तुसे धनको धना बाळती है, उसी प्रकार
मैं भी आज इस उपवनक्य विषय कर जाँचूँगा । इसके
मन हो जानेपर राजकर्म मन्त्रण मुझपर श्रेष्ठ करेगा ॥ ११ ॥

ततो महत्साध्महारव्यधिर्यं
पल्लु समावेप्यति पल्लुसाधिपः ।।

विशालकाष्ठस्यस्यपट्टिशायायुधं
ततो महद्युद्धमिव् भविष्यति ॥ १२ ॥

‘उत्समस्य वह उपवनका हाथी भोजे तथा विशाल
रूपसे युद्ध और विशाल काष्ठस्य एवं पहिया आदि
मल्ल-शस्त्रोंसे सुसज्जित बहुत बड़ी सेना लेकर आयेगा ।
फिर तो यहाँ महान् धामन छिड़ि जायगा’ ॥ १२ ॥

मत्तं सतैः संपतिं शब्दविश्रमैः
समेत्य रक्षोभिरभङ्गविक्रमः ।।

निहास्य तद् राज्यज्योतिर्त्तं बद्धं
सुखं पसिष्यामि हरीश्वरालयम् ॥ १३ ॥

‘उस युद्धमें भी गति बंध नहीं सफल। मेरा परक्रम
कुण्ठित नहीं हो सफल। मैं प्रसन्न परक्रम दिखानेवाले
उन पल्लुश्रेष्ठ मित्र आर्जेग और राजकर्म मेरी हुई उस
जारी सेनाको मोतके पाद उठाकर सुखपूर्वक सुभीके
निहासमान किञ्चिन्नायुधोंको धीरे आर्जेग ॥ १३ ॥

ततो मादतयत् हुन्दो मादतिर्भीमविक्रमः ।
ऊहवगेन महता हुमान् क्षन्तुमयारभत् ॥ १४ ॥

‘देखा लोककर मदानक पुकार्य प्रकट करनेवाले

पवनकुमार हुमान्धी काबले भर गम और वायुके समान
बड़े मापी वेगसे दृष्टिसे उलाड़ उलाड़कर आँके अगे ॥ १४ ॥

ततस्तद्बहुमान् पीरो यमश्च प्रमदावलम् ।
मत्तं शिखसमायुष्टं भागाहृप्रकृतायुतम् ॥ १५ ॥

‘तदन्तर पीर हुमान्नेले म्बवाले पक्षियोंके कर्मवाले
मुज्जित और नाना प्रकारके हथों एवं अर्थाओंसे भरे-
उस प्रमदान (अन्तःपुरके उपवन)का उलाड़ आया ॥ १५ ॥

तद्गम मयित्तुदीर्घिन्नेश्च सखिमाशयैः ।
सूचितैः पर्वताप्रीत्यं बन्धुवामियवर्दानम् ॥ १६ ॥

‘यहाँके हथोंको लम्ब-लम्ब कर दिया । अन्तःपुरमें
मम हाथ और फल-दिल्लेको गूर-गूर कर हाथा । इच्छे
वद् सुन्दर वन कुछ ही अर्थाओं परमप दिखानी देने
क्या ॥ १६ ॥

मागाशकुलविरुतोः प्रभिन्नसखिल्लाशयैः ।
ताम्रैः किंसल्यैः ह्यस्तैः पक्षात्तुमल्लतायुतैः ॥ १७ ॥

‘न बभौ तद् धर्मं तत्र दावानलस्यैतं पथा ।
व्याकुलावरणा रेणुर्विह्वला इव ता कृताः ॥ १८ ॥

‘नाना प्रकारके पक्षी यहाँ अपने मारे बँ-बँ करने अगे,
मन्त्रणोंके पाद दूद-दूद गये तानेके समान हथोंके का-
कल पस्कर मुरझा गये तथा यहाँके वृक्ष और बटाएँ भी
तँद जायी पयीं । इन सब कारणोंसे वह प्रमदान वहाँ ऐक
जाव पड़ता था, मागो दावानलके छुल्ल गया हो । यहाँ
अर्थाएँ अपने आबरवोंके नह-भ्रष्ट हो जानेसे पनरकी हुई
क्षियोंके समान प्रतीत होती थी ॥ १७-१८ ॥

कृतायुधैश्चिन्नपुष्टैश्च सादितै
स्पर्शैर्नृगीरातंरत्नैश्च पक्षिभिः ।।

शिखायुधैरुष्मपित्तैस्तथा पुष्टैः
प्रणयदप्यं तवभूममहत् वनम् ॥ १९ ॥

‘कृत्यमण्डप और विशालकाएँ उलाड़ हो पयीं । पाके
हुए शिख कण्डू, मृग तथा तर-तरके पक्षी आर्जेग करने
अगे । मत्तर्निर्मित प्राणाद तथा अन्य साधारण एव मैं
तद्व-नहस हो गये । इच्छे उस महान् प्रमदानका धर्म
रूप-क्षेत्र्वं मज्ज हो गया ॥ १९ ॥

सा विशालाशोककृताप्रतापा
बलस्यसी शोककृताप्रतापा ।।

जाता वृशास्यप्रमदावनस्य
कयेर्बंशदि प्रमदावनस्य ॥ २० ॥

‘इद्युद्ध राजकर्म क्षियोंकी रक्षा करनेवाले तथा
अन्तःपुरके श्रीशक्तिहारके क्षिये उपयोगी उस विशाल कर्म-
की मूनि यहाँ शब्द अशोक-कृत्याओंके लम्ब शोभा फले
के, क्षियर हुमान्धीके बन्धुओंसे भीही होकर शोचनीय
कृत्योंके विस्तार-प्रक हो गयी (उधकी बुरकला देख-

अ रक्षाके मनमें दुःख होता था) ॥ २ ॥
 तदा स कृत्वा जगतीपतेर्महान्
 महावृन्ध्यकीक मनसो महात्मनः ।
 युयुत्सुरेको बहुभिर्महावसैः
 भियाभ्यस्तोत्तोरणमाभिमताः कपिः ॥ २१ ॥

इत्यार्ये श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये भाविकार्ये सुन्दरकाण्डे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ २१ ॥

एष प्रथमः श्रीमत्संनिर्मितः अक्षरमात्मकः अक्षरकार्ये सुन्दरकाण्डे एकचत्वारिंशो सर्गः पूरा हुआ ॥ ४१ ॥

द्विचत्वारिंशः सर्गः

राक्षसियोंके मुखसे एक धानरके द्वारा प्रमदावनके विध्वंसका समाचार सुनकर रावणका किंकर नामक राक्षसोंको भेजना और हनुमान्कीके द्वारा उन सभका सहार

तदाः पक्षिनिभादेन वृक्षभङ्गत्वेन च ।
 समुद्रकाससम्भ्रान्ताः सर्वे कङ्कामिवाक्षिनः ॥ १ ॥
 उपर पक्षियोंके क्रोमइक और वृक्षोंके टूटनेकी भावना
 सुनकर समस्त कङ्कानिवासी मनुष्य पहरा उठे ॥ १ ॥
 विद्युत्वाद्य भयत्रस्ता यिनेषुसूयपक्षिणः ।
 राक्षसां च निमित्ताणि कृत्वापि प्रतिषेधैरे ॥ २ ॥
 पशु और पक्षी सबभीत होकर ममने तथा आर्तनाद
 करने लगे । राक्षसोंके सामने रोककर अपघटन प्रकृत होने
 लगे ॥ २ ॥

ततो वताया निद्रार्यां राक्षस्यो विच्छताननाः ।
 तत् बलं वृक्षशुर्मन्म त च वीर महाकपिम् ॥ ३ ॥
 प्रमदावनमें सोयी हुई निद्रावक मुखवाली राक्षसियोंकी
 निद्रा टूट गयी । उन्होंने उठनेपर तब वनको उधका हुआ
 देखा । छप ही वनकी दृष्टि उन वीर महाकपि हनुमान्कीपर
 ली पड़ी ॥ ३ ॥

स ता इषु महाबाहुर्महासत्यो महाबलः ।
 बभूव सुभद्वर्षं राक्षसीना भयाघहम् ॥ ४ ॥
 महाबली महान् साहसी एवं महाबाहु हनुमान्कीने
 वन उन राक्षसियोंको देखा, तब उन्हें डपनेवाला विद्याक रूप
 धारण कर किया ॥ ४ ॥

ततस्तु गिरिसंकाशमतिक्रम्य महायत्नम् ।
 राक्षस्यो धानर इषु पप्रच्छुर्जनकामज्जाम् ॥ ५ ॥
 पर्वतके लगान बड़े शरीरवाले महाबली धानरको देखाकर
 वे राक्षसियों वनकन्दरिनी सोतावे पहुँचे लगे— ॥ ५ ॥
 कोऽप कस्य कुतो पाय किनिमित्तमिहागतः ।
 कथं स्वया सहानेन सत्यायः हत इत्युत ॥ ६ ॥
 व्याकृत ना विद्यासाक्षि मा भूते सुभगे भवम् ।
 संवाचमसितापाहि स्वया कि हतधामयम् ॥ ७ ॥
 विद्याकसे बने । यह कौन है । किसका है । और कहाँ
 किसके यहाँ आया है । इतने दुश्चारे काय क्यों बातचढ़
 की है । कबसे नैऋत्यागतकी सुन्दरि । ये तब बातें हने

एष प्रकार महामना राजा रावणके मनको विशेष कर
 पहुँचानेवाला कर्म करके अनेक महाबलियोंके साथ बनेके
 ही मुख करनेका होकर केकर कपिभेद हनुमान्की प्रमदावन-
 के अक्षरकर आ गये । उस समय वे अपने अवसुत लक्ष्मे
 प्रकथित हो रहे थे ॥ २१ ॥

कताभो । मुझे करना नहीं चाहिये । इतने दुश्चारे छाप क्या
 बातें की थीं ? ॥ १ ॥
 अथाग्रवीत् तदा साध्वी सीता सर्वाङ्गशोभना ।
 राक्षसां कामरूपाणा विद्यानं च गतिर्मम ॥ ८ ॥
 तब सर्वाङ्गसुन्दरी साध्वी सीताने कहा— इच्छानुसार
 रूप धारण करनेवाले राक्षसोंको समझने या पहचाननेका मेरे
 पास क्या उपाय है ? ॥ ८ ॥

युयमंवास्य जामीत योऽप्यं यत् वा करिष्यति ।
 अहिरेव ह्यहोः पादाम् विद्यानाति न सद्यः ॥ ९ ॥
 धूम्रकी जाने यह कौन है और क्या करेगा । लौकेके पैरों
 को लौप ही पहचानता है इतने संघय नहीं है ॥ ९ ॥
 अहमप्यतिभीतास्मि नैव ज्ञासामि को ह्ययम् ।
 वेदि राक्षसमेवैनं कामरूपिणमागतम् ॥ १० ॥
 मैं भी इसे देखकर बहुत डरी हुई हूँ । इसे नहीं
 जानूँ कि यह कौन है । मैं तो इसे इच्छानुसार रूप धारण
 करके आया हुआ कोई राक्षस ही समझती हूँ ॥ १० ॥

वेदेद्या वचन श्रुत्वा राक्षस्यो विद्युता द्रुतम् ।
 स्थिताः काञ्चिद्रताः काञ्चिद् रावणाय निव विभुम् ॥ ११ ॥
 बिदेहरन्दिनी सीताकी यह बात सुनकर राक्षसियों बड़े
 बेगले भगीं । उनमेंसे कुछ तो वहीं लड़ी से गयीं और कुछ
 रावणको सूचना देनेके लिये चली गयीं ॥ ११ ॥

रावणस्य समीपे तु राक्षस्यो विच्छताननाः ।
 विक्रप धानर भीमं रावणाय स्व्येविभुः ॥ १२ ॥
 रावणके समीप बाकर उन विक्रप मुखवाली राक्षसियों
 ने रावणको यह सूचना दी कि कौनसे बिम्बरूपवासी भयंकर
 धानर प्रमदावनमें अ पहुँचा है ॥ १२ ॥

अशोकपतिश्चामप्य राजन् भीमययुः कपिः ।
 सीतया कृतसथावृत्तिष्ठारयमितथिदमा ॥ १३ ॥
 वे बोली— भ्रातृन् । अशोकपतिके एक धानर
 आया है जिसका शरीर यदा भयंकर है । उतने हीदर राक्ष-
 सीत की है । वह महापराक्रमी धानर अभी वहीं मौजूद है ॥

न च त आनकी सीता हरि हरिप्लोचना ।
 मन्साभिर्बुधा पृथा निवेद्यितुमिच्छति ॥ १४ ॥
 धमने बहुत पूषा तो भी बनकफिरोपी मृगनयनी सीता
 उस वनरके निचयमें हमें कुछ बताना नहीं चाहती है ॥ १४ ॥
 वासवस्य भयेद् वृतो वृतो वैभ्रवणस्य वा ।
 प्रेषितो चापि रामेण सीताम्येयपक्षाङ्गया ॥ १५ ॥
 भ्रमवत् है वह इन्द्र या कुबेरका वृत हो भयव्य भीरव
 ने ही उसे सीताकी ओरके किये भेजा हो ॥ १५ ॥
 तेमैवाद्भुतरूपेण पञ्चक्षय मनोहरम् ।
 नामामृगगण्णाकीर्णं प्रसृष्टं प्रमशयनम् ॥ १६ ॥
 अद्भुत रूप धारण करनेवाले उस वानरने आपके
 मनोहर प्रमशयनको जिसमें माना प्रकारके पशु-पक्षी रहा
 करते थे, उखाड़ दिया ॥ १६ ॥
 न तत्र कश्चिदुद्देशो यस्तेन न विनाशितः ।
 यत्र सा आनकी देवी स तन न विनाशितः ॥ १७ ॥
 प्रमदानन्ध कोई भी ऐसा मग नहीं है किसीको
 उधने नष्ट न कर बाध हो । केवल वह स्नान जहाँ जानकी
 देवी रहती हैं उधने नष्ट नहीं किया है ॥ १७ ॥
 आनकीरक्षयार्थं वा भ्रमात् या मोपलक्ष्यते ।
 भयवा का भ्रमस्तस्य सैव तेनाभिरक्षिता ॥ १८ ॥
 आनकीकी रक्षके किये उधने उस स्नानको बन्धा दिया
 है या परिभयसे पक्षर—यह निश्चित रूपसे नहीं जान पड़ता
 है । भयवा उसे परिभ्रम तो क्या हुआ होगा ? उधने उस
 स्नानको बचाकर सीताकी ही रक्षा की है ॥ १८ ॥
 चारुपल्लवपत्राक्षरं य सीता स्वयमास्थिता ।
 प्रचूडा गिणशपायूहाः स च तनाभिरक्षिता ॥ १९ ॥
 मनोहर पल्लवों और पत्तोंमें मग हुआ वह सिखास
 मण्डोक वृक्ष, जिसके नीचे सीताका निवास है उधने सुरक्षित
 रक्ष छोड़ा है ॥ १९ ॥
 तस्योप्ररूपस्योम स्य वृण्डमादात्तुमहसि ।
 सीता सम्पायिता यन यनं तन विनाशितम् ॥ २० ॥
 जिसने सीतासे यातायात किया और उस वनको उखाड़
 डाला उन उग्र रूपवापी वानरका आप कहें कठोर वृक्ष
 देनेकी आज्ञा प्रदान करें ॥ २० ॥
 मनःपरिवृष्टता ता तद्य रक्षोगणोभ्यतर ।
 का सीतामभिभाषेत या न स्यात् त्यक्तजवितः ॥ २१ ॥
 पापघटात्र ! किसे धारने अपने हरयमें स्नान दिया
 है उन सीता देवीके वीन काठे पर उधिया है ! जिसने अपने
 मानका मह नहीं छोड़ा है वह उनसे बातलाय केमे कर
 गच्छा है ॥ २१ ॥
 राक्षसीनां वनः भुजा रावणा राक्षसभ्यतर ।
 चिताभिरिय जग्वाल कापसंयतिनक्षयः ॥ २२ ॥
 उपनिवेशों वह वा मुनकर पशुपति गणा यवन

मन्वकित चित्वाकी भौति श्रवणे चक उठा । उलक नेत्र रोते
 पूजने को ॥ २२ ॥
 तस्य कुन्त्रस्य नेषाम्या प्रापतकभुषिम्बुधा ।
 रीताम्यामिष वीपाभ्यां साधिष्यः स्नेहविन्दवाः ॥ २३ ॥
 श्रोत्रमें मरे हुए रावणकी आँसुओंसे आँसुकी बूँदें उधने
 कर्ण मानो जकते हुए हो होयसे भावकी कपटोंके कव
 तेकभी बूँदें सर रही हों ॥ २३ ॥
 आत्मनः सहशान् वीरान् किंकरान्नाम राक्षसान् ।
 व्यादिवेश महातेजा निद्रहार्यं हनूमतः ॥ २४ ॥
 उस महातेजस्वी निशाचरने हनुमान्सीधे कैद करनेके
 किये अपने ही समान वीर किंकर नामवापी रक्षकोंको अपने
 की भाँसा ही ॥ २४ ॥
 तेषामशीतिसाहस किंकराणां तरङ्गिनाम् ।
 निर्ययुमवनात् तस्मात् कूटमुद्ररपाण्ययः ॥ २५ ॥
 यमकी आज्ञा पाकर अथि ह्यार वेगवान् किंकर हाथोंमें
 कूट और मुद्र किये उस मूढके बाहर निकले ॥ २५ ॥
 महाद्वरा महावृष्टा पौररूपा महायजाः ।
 युद्धाभिमनसः सर्वे हनूमवृष्टहोमुखाः ॥ २६ ॥
 उनकी हाथों सिखास, पेट बढ़ा और रूप महानक था ।
 वे सबके-सब महान् बलसे मुद्रके अभिमापी और हनुमान्
 कीओ ककनेके किये उग्रक थे ॥ २६ ॥
 तं कपि त समासाद्य तोरुषस्वमधस्थितम् ।
 अभिपेतुर्महावेगाः पठज्ञा ह्य पावकम् ॥ २७ ॥
 प्रमदानके पठकर लड़े हुए उन वानरवीरके पठ
 पठुंनकर वे महान् वेगवाकी निशाचर उनपर चापों ओरसे
 इत प्रकार मपटे, बेश प्रतिगे आगपर दूट पड़े हों ॥ २७ ॥
 ते गदाभिरिविध्रामि परिधीः काञ्चनाङ्गुलैः ।
 आश्रम्युर्गान् रज्जोर्धं शरैराक्षियसनिमैः ॥ २८ ॥
 वे शिथिल गदाओं सानेसे मड़ हुए पतिपों और कपके
 समान प्रस्फित पाकोंके साथ वानरभ्र हनुमान्पर लड़
 माये ॥ २८ ॥
 मुद्रैः पट्टिशैः शूलैः प्रासतोमरपाण्ययः ।
 परिवार्य हनूमस्थ सहसा तस्पुरधतः ॥ २९ ॥
 हाथमें प्रास और तोमर किये मूर्ख पट्टिश और शूलोंसे
 मुजकित हो वे धरता हनुमान्को चापों भरल परकर उनके
 धमने लड़े हा गये ॥ २९ ॥
 हनूमन्तपि तज्जखी धीमान् पयतलनिभः ।
 सितायामियन्व स्यात्तननाद च महापयनिम् ॥ ३० ॥
 तत्र पठक समान विज्ञान धरीरकास उग्रही भीम
 हनुमान् भी भस्मी दूँडका गुणापर पककर बड़े खोरे
 गवने मग ॥ ३० ॥
 स भूम्या मु महापया हनूमन् माकनामजः ।
 पुरुषमास्यप्रदयामास सगुं जघ्नन पूरयन् ॥ ३१ ॥

पवनपुत्र हनुमान् मत्स्यन्त विद्याञ्च क्षरीरं भारणं करके
 । दूँधं फटकारने और उधके धन्से उड्डाको प्रतिष्पन्नित
 को ॥ ११ ॥

।।स्फोटितशब्देन महता आनुनासिना ।
 वैहङ्गा गगनापुच्छैश्चेदमघोषयत् ॥ १२ ॥
 ऊन्नी दूँध फटकारनेका गम्भीर शोष बहुत पूरतक
 उठता था । उधके मयगीत हो पक्षी आकाशते गिर पड़ते
 उध समान हनुमान्जीने उक्त स्वरसे इव प्रकर शोषणा
 - ॥ १२ ॥

।।त्यतिवल्गे रामो लक्ष्मणाञ्च महाबलः ।
 वा जयति सुग्रीवो राक्षसेषामिषाङ्कितः ॥ १३ ॥
 सोऽहं कोसलेन्द्रस्य रामस्याकिञ्चिदप्रकर्मणः ।
 ।।माभ्यामुत्सैन्यामा जिहस्ता मादतारमजः ॥ १४ ॥
 पापसहस्रं मे युजे प्रतिबन्धं भवेत् ।
 ।।लाभिश्च प्रहरतः पातपैश्च सहस्राशः ॥ १५ ॥
 ईप्सित्वा पुत्रीं लक्ष्मामभिषाद्य च प्रीप्सिमीम् ।
 नृशार्थो गमिष्यामि सिपतां सर्वरक्षसाम् ॥ १६ ॥

।।अत्यन्त बलवान् मगवान् श्रीराम तथा महाबली मत्स्य
 ।।कम हो । श्रीपुनापक्षीके द्वारा सुरक्षित राज्ञ सुग्रीवकी
 ।।कम हो । मैं अनायास ही महाम् पराक्रम करनेवाले
 ।।कोसलेन्द्र श्रीरामचन्द्रकीका हस्त हूँ । मेरा नाम हनुमान्
 ।।मैं वायुका पुत्र तथा धनुसेनाका संहार करनेवाला हूँ ।
 ।।मैं ईच्छते दूँध और फटकारने प्रहार करने लूँगा, उध
 ।।सम धरुको शोषण सिक्कर भी मुझमें मेरे बलकी उत्पन्नप्र मयणा
 ।।मेरा नामना नहीं कर सकते । मैं लक्ष्मणीको उध-सहव कर
 ।।धर्म्य और सिधिकेशकुमारी वीर्याके प्रमत्त करनेके
 ।।मन्तर एव राक्षसोंके वल्लत-वेसते अपना कर्म सिद्ध करके
 ।।करूँगा ॥ १३-१६ ॥

तथा सभापुत्रश्च तऽभवत् भयशङ्किता ।
 ।।इत्युक्त्वा हनुमत्वं संध्यामघमिषोऽहत् ॥ १७ ॥
 हनुमान्जीकी इव गर्बनासे समस्त राक्षसोंपर मय एवं
 ।।आह्वय कर गवा । उन कबने हनुमान्जीको देखा । वे संधा-
 ।।प्रकमे उँचे मेकके समान आज एवं विद्याञ्चम दिखानी
 ।।देते थे ॥ १७ ॥

।।कामिसंश्रानिःशङ्कास्ततस्तं राक्षसाः कपिम् ।
 ।।विश्रैः प्रहरणभीमैरभिपद्युस्ततस्ततः ॥ १८ ॥
 हनुमान्जीने अपने स्वामी-नाम केकर स्वयं ही अपना
 ।।परिषय दे दिया था इत्युक्ते राक्षसोंको उन्हें पहचाननेमें

कर्म धरेह नहीं रहा । वे नाना प्रकारके मयंकर अज्ञ राक्षो-
 का प्रहार करते हुए चारों ओरसे उनपर दूट पड़े ॥ १८ ॥
 स तैः परिषुताः शूरेः सधृता स महाबला ।
 ।।आससावापस भीमं परिष तोरण्याभितम् ॥ १९ ॥
 उन शूरवीर राक्षसोंद्वारा एव ओरसे फिर जानेपर महा
 ।।बली हनुमान्ने फटकार रक्ता हुमा एक मयंकर ओरेशका
 ।।परिष उठा किया ॥ १९ ॥

स त परिषमावाप अधाम राजनीश्वरान् ।
 ।।सपन्नगमिवावाप स्फुरन्त विनतासुतः ॥ ४० ॥
 वेसे विनतानन्दन गरङ्गे छटपटाते हुए, सर्वको पंजोमें
 ।।वाच रक्ता हो; उसी प्रकार उध परिषको शायमें केकर
 ।।हनुमान्जीने उन निशाचरीका संहार आरम्भ किया ॥ ४ ॥
 ।।विचकाराम्बरे धीरः परिगुह्य च मादतः ।
 ।।सुधामास धज्जेण वैत्यानिव सहस्रहृक् ॥ ४१ ॥
 वीर पवनकुमार उध परिषको छकर आकाशमें विचरने
 ।।को । वेसे उधकनेत्रपारी इन्द्र अपने बज्रधरैतोंका वध
 ।।करते हैं उसी प्रकार उन्होंने उध परिषते खाने आने हुए
 ।।समस्त राक्षसोंको मार बाधा ॥ ४१ ॥

स हत्वा राक्षसान् धीरः किंकरान् मादतारमजः ।
 ।।युद्धाकाङ्क्षी महावीरस्तोरणं समघस्वितः ॥ ४२ ॥
 उन किंकर नामधारी राक्षसोंका वध करके महावीर
 ।।पवनपुत्र हनुमान्जी मुदकी इच्छासे पुनः उध फटकार सके
 ।।हो गये ॥ ४२ ॥

ततस्तस्माद् भयसमुक्ताः कतिचित्तम राक्षसाः ।
 ।।निहतान् किंकरान् सर्वान् रावणाय म्यवेद्यन् ॥ ४३ ॥
 तदनन्तर यहाँ उध मयसे मुक्त हुए कुछ राक्षसोंने
 ।।आकर रावणको यह समाचार निवेदन किया कि समस्त किंकर
 ।।नामक राक्षस मार डाल गये ॥ ४३ ॥

स राक्षसानां निहत महाबल
 ।।निशम्य रामा परिषुक्तसोऽसमः ।
 ।।समादिदशाप्रतिम पराक्रमे
 ।।प्रहस्तपुत्रं समरे सुपुत्रपत्न ॥ ४४ ॥
 राक्षसोंकी उध विद्याञ्च केनाके मारी गयी सुन्दर राक्षस
 ।।राज रावणकी ओरसे बड़ मयी और उधने प्रहसके पुत्रका
 ।।किलके पराक्रमकी कही प्रशंसा नहीं थी तथा मुझमें किते
 ।।परस करना निदान्त कठिन था; हनुमान्जीका नामना
 ।।करनेके किये मेरा ॥ ४४ ॥

।।इत्यर्थे श्रीमत्प्रामाद्यै वाक्येभ्यो सुन्दरकाण्डे द्विज्यारिशाः सर्गाः ॥ ४१ ॥
 ।।इव इतर औरसमीक्षितेभ्य आर्षतयावय अद्रिकम्बके सुन्दरकाण्डने न्यासीसर्गा कर्म पूरा हुमा ॥ ४२ ॥

त्रिचत्वारिंश सर्ग

हनुमान्जीके द्वारा चैत्यप्रासादका विध्वंस तथा उसका रक्षकोंका वध

ततः स किङ्करान् हत्वा हनूमान् प्यानमास्थितः।

यत्न भग्न मया चैत्यप्रासादो न विनाशितः ॥ १ ॥

इत्थं किङ्कोंका वध करके हनुमान्जी यह खेबने को कि मैंने वनको ठा उखाड़ दिया, परंतु इस चैत्यप्रासादको नष्ट नहीं किया है ॥ १ ॥

तस्मान् प्रासादमघोरमिमि विध्वंसयाम्यहम् ।

इति सचिन्त्य हनुमान् मनसा दर्शयन् बळम् ॥ २ ॥

चैत्यप्रासादमुत्सृज्य मेरुशृङ्गमिषोत्थतम् ।

भाटरोह हरिभेष्टो हनूमान् मादृतात्मजः ॥ ३ ॥

मत् आश्च इत्थं चैत्यप्रासादका मी विध्वंस किये देता हूँ । मन-ही मन देख विचारकर फनपुत्र बानरभेष्ट हनुमान् जी अपने बळप्रदर्शन करते हुए मेरुपर्वतके शिखरकी मोक्षि ऊँचे उस चैत्यप्रासादपर उठकर पद गये ॥ २ ॥

भाटरोह गिरिसिन्धुशय प्रासादं हरियूथपः ।

बभौ स सुमहातेजाः प्रतिस्वर्ण इच्छितः ॥ ४ ॥

उत्त पक्काकर प्रासादपर पदकर महातेजस्वी बानर मूषपति हनुमान् दूरतके गये हुए वृषरे स्वर्णकी मोक्षि शोभा पाने को ॥ ४ ॥

सम्प्रभूष्य तु पुर्ध्वर्ध्वचैत्यप्रासादमुन्मत्तम् ।

हनूमान् प्रमूर्च्छंस्तस्या पारियाघोपमोऽभयत् ॥ ५ ॥

उस ऊँचे प्रासादपर आक्रमण करके पुर्ध्वर्ध्व वीर हनुमान् जी अपनी सहाय शोभासे उद्मत्थित होते हुए पारियात्र पर्वतके समान प्रतीत होने को ॥ ५ ॥

स भूत्वा सुमहाकायः प्रभाषान् मादृतात्मजः ।

पृथमास्कोटयामास ऊर्ध्वं शम्भेन पूर्यन् ॥ ६ ॥

वे तेजस्वी पवनकुमार विशाल शरीर धारण करके ऊर्ध्वको प्रतिध्वनित करते हुए पृथ्व्यापूर्वक उस प्रासादको तोड़ने छोड़ने को ॥ ६ ॥

तस्मास्कोटितशम्भेन महता भोजपातिना ।

पेतुर्विहंगमास्तत्र चैत्यपास्तत्र मोक्षिताः ॥ ७ ॥

शेर-शेरत हाँसेयाका वह छोड़-छोड़कर शम्भु कान्तिसे हफ्ताकर उठते रह्य किये देता था । इत्थे मूर्च्छित हो चर्कोके पक्षी और प्रासादरक्षक भी पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ७ ॥

अस्यविजयतां रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ।

राजा जयति सुप्रियो राघवेणप्रभियाद्विताः ॥ ८ ॥

दासोऽहं कोसलमन्त्रस्य रामस्यापिद्वयकर्मणः ।

हनूमान्शत्रुसेव्यानां निहन्ता मादृतात्मजः ॥ ९ ॥

न राघवसहस्रं मे युजे प्रतिबल भयेत् ।

शिखाभिश्च प्रहरतः पाद्भ्याश्च सहस्रशः ॥ १ ॥

धर्षयित्वा पुरीं लङ्काभिषाघ च मैथिलीम् ।

सम्प्राप्तो गमिष्यामि मियथा सर्वरक्षसाम् ॥ ११ ॥

उत्त समय हनुमान्जीने पुनः यह धोरणा की—अन्त-वेद्य भयवान् भीराम तथा महाबली लक्ष्मणकी बन् हो । धीरुनायकीके द्वारा सुरक्षित राज्य सुभीबकी भी बन् हो । मैं अनायास ही महान् पराक्रम करनेवाछे कोलम्नरेण भीराम-पद्मकीका दास हूँ । मेरा नाम हनुमान् है । मैं बापुका पुत्र तथा शत्रुसेनाका वंशर करनेवाछा हूँ । जब मैं हारों वृष्टे और पत्थरोंसे प्रहार करने लगेगा, उस समय उरखों राज्य मिछकर भी युद्धमें मेरे बळकी समानता भयवा मेरा सम्मन नहीं कर सके । मैं लङ्कापुरीको तहस-नहस कर डालूँगा और मिथिलेशकुमारी लीलाको प्रणाम करनेके अनन्तर लज्जतोंके देखते-देखते अपना कार्य सिद्ध करके गर्दोगा ॥ ११ ॥

एवमुपस्था महाकायश्चैत्यस्यो हरियूथपः ।

ननात् भीमनिर्हावो रक्षसां जनयन् भयम् ॥ १२ ॥

ऐसा करकर चैत्यप्रासादपर सके हुए विशालभय वानरमूषपति हनुमान् राक्षसोंके मनमें भय उत्पन्न करते हुए भयानक आवाजमें गर्जना करने को ॥ १२ ॥

तेन नावेन महता चैत्यपास्ताः शत ययुः ।

शूरीत्वा विधिधमस्वान् प्रासान् लङ्कान् परश्वभात् ॥ १३ ॥

उत्त भीषण गर्जनासे प्रभावित हो रक्षकों प्रासादरक्षक नाना प्रकारके प्रात लड़ और करते किये बहों आने ॥ १३ ॥

विश्वाम्नो महाकाया मादृति पर्यधारयन् ।

ते गङ्गाभिधि विजाभिः परिधैः काञ्चनमङ्गुरैः ॥ १४ ॥

आशम्भुर्चानरभेष्ट बाधैश्चावित्यसंभिरैः ।

उन विशालकाय राक्षसोंने उन लक्ष्मणका प्रहार करते हुए कर्षो पवनकुमार हनुमान्जीको घेर लिया । मिथिल गन्धर्वों, लोकेक पक्ष सके हुए परिधै और सूर्यद्वय तेजस्वी बाणोंसे सुरक्षित हो वे सब-के-सब उन बानरभेष्ट हनुमान्पर पद भागे ॥ १४ ॥

आधर्त इव गङ्गापास्तोत्पस्य विपुत्रो महान् ॥ १५ ॥

परिक्षिप्य हरिभेष्टं स बभौ रक्षसा गणा ।

बानरभेष्ट हनुमान्को घातों औरसे घेरकर सदा कुम्भ उल्लोषण वह महान् सद्गुराव गङ्गाकीके लक्ष्मण उठी हुई बकी मरी मँबरक उमान जान पड़ता था ॥ १५ ॥

ततो घातात्मजा मुन्दो भीमरूप समास्थिताः ॥ १६ ॥

प्रासादस्य महांसास्य ऋग्मं ह्यपरिभृतम् ।

उत्पाठयित्वा वेगोत्त हनूमान् मादृतात्मजः ॥ १७ ॥

ततस्तं आमपामास शतधार महाबलः ।

१ कर्ममें उधरोंके कुम्भरेवकाय को आन य लक्ष्मण बन्

तत्र धाम्निः समभयत् प्रासादश्चाप्यदृष्टात् ॥ १८ ॥
 तत्र राक्षसोश्च इत् प्रकर आश्रमत्र फले देव पवन-
 नर हनुमन्ते कुपित हा बद्धा भयंकर रूप धारण किया ।
 । मन्तीने उठ प्रासादक एक मुनर्षभुणित खमंको बिलमें
 बरें थीं, बड़े वेगसे उछाड़ दिया । उछाड़कर उन
 एतन्ने बीजे उठे जुमाना आरम्भ किया । घुमनेपर उठते
 म प्रकट हो गयीं, बिलसे बह प्रधाव बन्ने लगे ॥ १९ ॥ १८।
 एतान्न ततो बद्धा प्रासाद हरियूथपाः ।
 । पञ्चसशत हत्या यजेणेन्द्र इवाहुरान् ॥ १९ ॥
 । स्तरिस्तस्थितः भीमामिव वचनमप्रवीत् ।
 । पञ्चरत्ने बन्ने देव वानरनृपपति हनुमान्ने बज्रसे
 । सुटोका संघार करनेवाके इन्द्रकी मौखि उन सेकड़ों राक्षसों-
 ने उठ खमेते ही मार डाल्य और आकाशमें जाड़े होकर
 न तेकड़ी बीजे इत् प्रकर करा— ॥ १९३ ॥
 । शरणात्ता सहस्राणि विशुद्राणि महात्मनाम् ॥ २० ॥
 । किन्ना धामरेन्द्राणां सुप्रीथयशशक्तिनाम् ।
 । पञ्चो ! सुप्रीथके धामनें खनेवाके मरे-बैते शरखों
 । वेगाश्रय बचवान् वानरभेद्य सव भोरभेभे गये ॥ २१ ॥ २॥
 । मरुति यस्तुषां कुरस्तां वयमन्ये च वानराः ॥ २१ ॥
 । इयतागच्छाः केचित् केचित् वृशगुणोत्तराः ।
 । केचिन्नागसहस्रस्य बभूवुस्तुभ्यविक्रमाः ॥ २२ ॥

इत्त तथा दूधर समो वानर क्यूनी पृथ्वीपर भूम रर
 हैं । किन्हीं दशहायिकोंका बरहै तो किन्हीं से हायिकोंका ।
 किन्ने ही वानर एक वरस हायिकोंक जनान यक-दिन्मते
 सम्पन्न हैं ॥ २१-२२ ॥
 सन्ति खीषयलाः केचित् सन्ति धायुयलोपमाः ।
 । धाममेयवलाः केचित् तत्रासन् हरियूथपाः ॥ २३ ॥
 । किन्हांका बस बरक महान् प्रवाहकी मौखि अरुध है ।
 किन्ने ही वायुके समान बन्वान् हैं और किन्तन ही वानर
 नृपपति अपने भीतर अखीम बरस धारण करत हैं ॥ २३ ॥
 । ईदृग्विधैस्तु हरिभिवृत्तो दृग्गतायुधैः ।
 । शतैः शतसहस्रैश्च फेदिभिश्चायुधैरपि ॥ २४ ॥
 । भागमिप्यति सुप्रीयाः सयैर्षा यो निपूतनः ।
 । प्यौत और नर ही किनके आयुष हैं ऐसे अनन्त कष्याधी
 । सेकड़ों, इधरों आषां और कण्डों वानरोंसे सिरे हुए वानर
 । एव सुप्रीथ यहाँ पचारंग से तुम तब निघणचरोंका संघार
 । करनेमें समर्थ हैं ॥ २४३ ॥
 । मेयमस्ति पुरी लज्जा न यूय न च राषणः ।
 । यस्य त्विद्वान्कुवीरेण बद्ध वैर महात्मना ॥ २५ ॥
 । अब न तो यह लज्जापुरी रोगी न तुमकोय खमी और
 । न यह राषण ही रह वकेया किन्ने इद्वान्कुर्वी की महात्मा
 । भीष्मके साथ वैर बाँध रखता है ॥ २५ ॥

हृत्पापै भीमव्राम्नायने वाक्यमीकीये धारिष्याम्ये सुन्दरकाण्डे त्रिस्तवारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥
 । स प्रथम भीमव्राम्निर्मितिं भर्तृप्रत्यय नृदिफाम्ये सुन्दरकाण्डे त्रिस्तवारिंशः सर्गः पूा हुय ॥ २९ ॥

चतुश्चत्वारिंश सर्ग

प्रहस्त-पुत्र जम्बुमालीका बध

सद्विद्ये राक्षसेन्द्रेण प्रहस्तस्य सुतो बली ।
 । जम्बुमाकां महार्द्धो निर्भगाम धनुर्धरा ॥ १ ॥
 । राक्षसराज राक्षसी आका पाकर प्रहस्तका बचवान् पुत्र
 । जम्बुमाकी बिलकी हाथें बहुत बड़ी थीं हाथमें धनुष क्रिये
 । यक्षमरुते बाहर निकल्य ॥ १ ॥
 । एकामस्याम्यरथः स्रग्वी उचिरकुण्डला ।
 । महान् विदुस्रमपनक्षण्डः समरतुर्जया ॥ २ ॥
 । बर अरु रंगके पूठोंकी माळा और अरु रंगके ही बर
 । अपने हुए था । उलके यक्षमें हार और जनोंमें सुन्दर कुण्डल
 । घोमा दे रहे थे । उलकी मौलें भूम रही थीं । बर विद्या-
 । क्षम क्रोधी और क्षयमें कुक्षय था ॥ २ ॥
 । धनुः शक्रधनुःप्रक्षय महव् उचिरत्सायकम् ।
 । विस्मररथाणो वेगन यज्ञाशानिसमलनम् ॥ ३ ॥
 । उलका धनुष इन्द्रधनुषके समान विद्या था । उलके
 । क्षय अर्द्ध बनेवाके राण मी बड़े सुन्दर थे । बर बर वेग-
 । से उल धनुषको बाँवला तब उलसे बर और अपनिके
 । वपन गङ्गयादर देवा होतो थीं ॥ ३ ॥

तस्य विस्मररथोवेण धनुषो महता दिशः ।
 । प्रविशन्न नभश्चैव सहसा समपूर्यत ॥ ४ ॥
 । उल धनुषकी महती टंकार धनिसे सम्पूर्ण दिशाएँ
 । बिरिशाएँ और आकाश तभी सरह्य गूँब उठे ॥ ४ ॥
 । रथेन खरयुक्तेन तमागतमुदीक्ष्य सः ।
 । हनुमान् वेगासम्पन्नो बहर्षं च तनाद् च ॥ ५ ॥
 । बर गये जुते हुए रथन वैठकर भाया था । उलके देव
 । कर वेगाश्री हनुमान्की बड़े प्रकण हुए और और-न्दरे
 । गन्ना करने लगे ॥ ५ ॥
 । तं तोरणविद्वङ्गस्य हनुमन्त महाकपिम् ।
 । जम्बुमाकी महातेजा विप्याष निदितीः शरैः ॥ ६ ॥
 । महातेकसी बभ्रुमाधीने महाक्षपि हनुमान्कीको धारक
 । के कन्धेर खडा देव उन्हें तोले बाधते बाँधना आरम्भ
 । कर दिया ॥ ६ ॥
 । यद्यद्यन्त्रेण यदने शिरस्यकम क्षयिना ।
 । पाक्षोर्विप्याष नाराधैर्दशभिस्तु क्षयीश्वरम् ॥ ७ ॥
 । उलके अक्षयन्त्रक बाधसे उनके मुखपर, धर्वाण्यक

एक बाणसे मलकर और दस नाचणोंसे उन कभीकरकी
दोनों मुखाओंपर गहरी घोट की ॥ ७ ॥

तस्य तच्छुश्रुमे तार्क्ष्यं शरैर्बाभिहतं मुखम् ।
शरदीषास्त्रुषुर्बुधं फुल्लं विश्वं भास्कररविमता ॥ ८ ॥

उसके बाणसे पापक हुआ इतुमान्भीका जब सुँह
शरत् श्रुतमें सुँहकी फिरणोंसे भिन्न हो किये हुए जब कलक-
के समान शोभा पा रहा था ॥ ८ ॥

तत्तस्य रक्तं रक्तैर्न रक्षितं शुश्रुभे मुखम् ।
पथाऽऽक्षयो महापथं सिक्तं काश्रुवपितृभुभिः ॥ ९ ॥

रक्तसे रक्षित हुआ उनका वह रक्तवर्णक मुख ऐसी
शोभा पा रहा था, मानो बाणघटने जब रंगके विद्याक
कमलको सुवर्णमय कलकी बूँदोंसे जीव दिया गया हो—उस
पर खिन्ना पानी कदा दिया गया हो ॥ ९ ॥

शुश्रुषे बाणाभिहतो राक्षसस्य महाकपिः ।
ततः पार्श्वेऽतिविपुर्बां तूर्ध्वं महतीं शिखाम् ॥ १ ॥

तरछा वा समुत्कट्य विक्षेपे जपवत् बन्धी ।
पक्ष्य बन्धुमाभीके बाणोंकी घोट काकर महाकपि
इतुमान्भी कुपित हो उठे । उन्होंने अपने पास ही फलकरकी
एक बहुत बड़ी बटान पकी बन्धी और उसे बेगसे उठाकर
उन बन्धान् पीने बड़े क्षरते उस राक्षसकी ओर
फेंका ॥ १ ॥

तां शरैर्विशभिः कुन्दास्ताडयामास राक्षसः ॥ ११ ॥

विपत्तं कर्म तत् दृष्ट्वा हनूर्बाण्यधिकमः ।
घातं विपुत्रमुत्पाठ्य भ्रामपमास वीर्यवान् ॥ १२ ॥

किन्तु श्रेयमें भरे उस राक्षसने दस बाण भारकर उस
प्रकार-सिक्कने तोड़-फोड़ बाधा । अपने उस कर्मको व्यर्थ
हुमा देव प्रचण्ड पराक्रमी और बन्धाकी इतुमान्ने एक
विद्याक साकल्य दृष्ट बसाइकर उसे कुमान्द आरम्भ
किया ॥ ११ १२ ॥

भ्रामपत्तं कपिं दृष्ट्वा घातकृष्टं महाबलम् ।
विक्षेपे सुवहून् बाणाञ्जन्मुमासी महाबलः ॥ १३ ॥

उन महान् बन्धाकी बानरपीरको घातका दृष्ट हुमाते
देव महाबली बन्धुमाभीने उनके ऊपर बहुतसे बाणोंकी
बर्षा की ॥ १३ ॥

घातं जहृर्भिक्षिच्छेद् वातरं पञ्चभिर्भुजे ।
उरद्वयेकेन बाणैश्च पश्चभिस्तु सताम्लरे ॥ १४ ॥

इत्याने श्रीमत्प्रभाषणे बन्धीकीये आदिबन्धी सुन्दरकाण्डे
दस प्रथम श्रीमत्प्रभाषणे श्रीमत्प्रभाषणे श्रीमत्प्रभाषणे सुन्दरकाण्डे
चौमासिद्धौ सर्व पूा दृष्ट ॥ ४४ ॥

इत्याने श्रीमत्प्रभाषणे बन्धीकीये आदिबन्धी सुन्दरकाण्डे
दस प्रथम श्रीमत्प्रभाषणे श्रीमत्प्रभाषणे श्रीमत्प्रभाषणे सुन्दरकाण्डे
चौमासिद्धौ सर्व पूा दृष्ट ॥ ४४ ॥

इत्याने श्रीमत्प्रभाषणे बन्धीकीये आदिबन्धी सुन्दरकाण्डे
दस प्रथम श्रीमत्प्रभाषणे श्रीमत्प्रभाषणे श्रीमत्प्रभाषणे सुन्दरकाण्डे
चौमासिद्धौ सर्व पूा दृष्ट ॥ ४४ ॥

इत्याने श्रीमत्प्रभाषणे बन्धीकीये आदिबन्धी सुन्दरकाण्डे
दस प्रथम श्रीमत्प्रभाषणे श्रीमत्प्रभाषणे श्रीमत्प्रभाषणे सुन्दरकाण्डे
चौमासिद्धौ सर्व पूा दृष्ट ॥ ४४ ॥

इत्याने श्रीमत्प्रभाषणे बन्धीकीये आदिबन्धी सुन्दरकाण्डे
दस प्रथम श्रीमत्प्रभाषणे श्रीमत्प्रभाषणे श्रीमत्प्रभाषणे सुन्दरकाण्डे
चौमासिद्धौ सर्व पूा दृष्ट ॥ ४४ ॥

इत्याने श्रीमत्प्रभाषणे बन्धीकीये आदिबन्धी सुन्दरकाण्डे
दस प्रथम श्रीमत्प्रभाषणे श्रीमत्प्रभाषणे श्रीमत्प्रभाषणे सुन्दरकाण्डे
चौमासिद्धौ सर्व पूा दृष्ट ॥ ४४ ॥

उसने चार बाणोंसे सन्धुश्रुभे काट मियया, पों-
इतुमान्भीकी मुखाओंमें, एक बाणसे उनकी छातीमें २
दस क्षणोंसे उनके दोनों सनोंके मध्यभागमें घोट पहुँचाने
स शरैः पुरिततनुः क्रोधेन महता वृत्तः ।
तमेव परिषं गृह्य भ्रामपामास वेधितः ॥ १५ ॥

बाणोंसे इतुमान्भीका छात्रा शरीर भर गया । फिर
उन्हें बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने उधी परिषको उठा
उठे बड़े बेगसे मुग्रन् आरम्भ किया ॥ १५ ॥

भतियेगोऽतियेगेन भ्रामयित्वा यच्छोक्तः ।
परिषं पातयामास जन्मुमाजेर्महोरपि ॥ १६ ॥

अत्यन्त बेगवान् और अत्यन्त बलशाली इतुमान्ने ।
बेगसे मुमाकर उस परिषको जन्मुमाभीकी विद्याक कनी
के मारा ॥ १६ ॥

तस्य वैव शिरो नास्ति न बाहू ज्ञानुनी न च ।
न धनुर्म रथो नाभ्यास्तावाद्यप्यस्त मेघवा ॥ १७ ॥

फिर तो न उसके मलकक पक्ष्य बना और न द
मुखाको तथा पुत्रोंका ही । न धनुष बन्धा न रथ, न ।
कोड़े दिसाकी दिने और न बाण ही ॥ १७ ॥

स इतस्तत्सा तेव जन्मुमासी महारथा ।
पपात निहतो भूमौ क्षुण्णितः श्व मुमा ॥ १८ ॥

उस परिषके बेतमूर्क मारा गया म्हारथी जन्मु
पूर-पूर हुए दृष्टकी मीति प्रणीकर गिर पड़ा ॥ १८ ॥

जन्मुमासिं सुमिहतं किंकराञ्च महाबलान् ।
शुक्लेषु रावणा भुक्त्वा श्रेषस्ररक्तकोचनः ॥ १९ ॥

जन्मुमासी तथा महाबली किंकरोंके मारे बानेकर उमा
मनकर रावणको बड़ा क्रोध हुआ । उसकी मीलों रोपसे रा
बर्षकी हो गर्षी ॥ १९ ॥

स रोपसंवर्तितताम्रकोचनः
प्रहस्युभे निहतो महाबले ।
भ्रामाप्युपानतिधीर्यविक्रमान्
समादिवेद्याद्गु निशाधरेण्वरा ॥ २० ॥

महाबली प्रहस्युत्र बन्धुमाभीके मारे बानेकर निशाध
राव रावणके नेत्र रोपसे काक होकर घूमने लगे । उस
दूरत ही अपने मन्त्रीके पुत्रोंको, जो बड़े बलवान् भी
पराक्रमी थे मुझके किये बानेकी आज्ञा ही ॥ २ ॥

इत्याने श्रीमत्प्रभाषणे बन्धीकीये आदिबन्धी सुन्दरकाण्डे
दस प्रथम श्रीमत्प्रभाषणे श्रीमत्प्रभाषणे श्रीमत्प्रभाषणे सुन्दरकाण्डे
चौमासिद्धौ सर्व पूा दृष्ट ॥ ४४ ॥

इत्याने श्रीमत्प्रभाषणे बन्धीकीये आदिबन्धी सुन्दरकाण्डे
दस प्रथम श्रीमत्प्रभाषणे श्रीमत्प्रभाषणे श्रीमत्प्रभाषणे सुन्दरकाण्डे
चौमासिद्धौ सर्व पूा दृष्ट ॥ ४४ ॥

इत्याने श्रीमत्प्रभाषणे बन्धीकीये आदिबन्धी सुन्दरकाण्डे
दस प्रथम श्रीमत्प्रभाषणे श्रीमत्प्रभाषणे श्रीमत्प्रभाषणे सुन्दरकाण्डे
चौमासिद्धौ सर्व पूा दृष्ट ॥ ४४ ॥

इत्याने श्रीमत्प्रभाषणे बन्धीकीये आदिबन्धी सुन्दरकाण्डे
दस प्रथम श्रीमत्प्रभाषणे श्रीमत्प्रभाषणे श्रीमत्प्रभाषणे सुन्दरकाण्डे
चौमासिद्धौ सर्व पूा दृष्ट ॥ ४४ ॥

इत्याने श्रीमत्प्रभाषणे बन्धीकीये आदिबन्धी सुन्दरकाण्डे
दस प्रथम श्रीमत्प्रभाषणे श्रीमत्प्रभाषणे श्रीमत्प्रभाषणे सुन्दरकाण्डे
चौमासिद्धौ सर्व पूा दृष्ट ॥ ४४ ॥

इत्याने श्रीमत्प्रभाषणे बन्धीकीये आदिबन्धी सुन्दरकाण्डे
दस प्रथम श्रीमत्प्रभाषणे श्रीमत्प्रभाषणे श्रीमत्प्रभाषणे सुन्दरकाण्डे
चौमासिद्धौ सर्व पूा दृष्ट ॥ ४४ ॥

इत्याने श्रीमत्प्रभाषणे बन्धीकीये आदिबन्धी सुन्दरकाण्डे
दस प्रथम श्रीमत्प्रभाषणे श्रीमत्प्रभाषणे श्रीमत्प्रभाषणे सुन्दरकाण्डे
चौमासिद्धौ सर्व पूा दृष्ट ॥ ४४ ॥

इत्याने श्रीमत्प्रभाषणे बन्धीकीये आदिबन्धी सुन्दरकाण्डे
दस प्रथम श्रीमत्प्रभाषणे श्रीमत्प्रभाषणे श्रीमत्प्रभाषणे सुन्दरकाण्डे
चौमासिद्धौ सर्व पूा दृष्ट ॥ ४४ ॥

पञ्चत्वारिंश सर्ग

मन्त्रीके साथ पुत्रोंका वध

ततस्त राक्षसेन्द्रेण चोदिता मन्त्रिणः सुताः ।
निर्ययुर्भवात् तस्मात् सत सताश्चिन्वर्षसः ॥ १ ॥

रावणोंके राजा रावणकी आज्ञा पाकर मन्त्रीके तल
रेटे जो मन्त्रिके समान तेजस्वी थे उस राक्षसक
बाहर निकले ॥ १ ॥
महदक्षपरीवादा धनुष्मन्तो महाबलान् ।

रेटे जो मन्त्रिके समान तेजस्वी थे उस राक्षसक
बाहर निकले ॥ १ ॥
महदक्षपरीवादा धनुष्मन्तो महाबलान् ।

महदक्षपरीवादा धनुष्मन्तो महाबलान् ।

कृतास्त्रास्त्रविदां भोग्याः परस्परजयैषिणाः ॥ २ ॥
 उनके साथ बहुत बड़ी सेना थी। वे अत्यन्त बखान्वा-
 न्नुर्पर, अक्रान्तेयार्जोमें भेद तथा परस्पर होइ स्थावर
 धनुष विभ्य पानेकी हथ्का रखनेवाले थे ॥ २ ॥
 हेममाल्यपरिहितैर्ष्वजघ्नैः पताकिभिः ।
 तापवृत्तनिर्घोषैवाधियुक्तैर्महारथैः ॥ ३ ॥
 तक्षश्चरिभ्रायि चापान्ममिस्तयिक्रमाः ।
 वेस्त्रारयस्ताः सङ्घरास्तविद्वन् इवाम्बुदाः ॥ ४ ॥
 उनके घोड़े हुते हुए विघात रथ सोनेकी चाकीसे
 के हुए थे। उनपर चक्र-पदाक्षर्यं फहर रही थीं
 और उनके पहिनोंके चक्रनेसे मेघोंकी गम्भीर गर्जनाके
 समान ध्वनि होती थी। ऐसे रथोंपर सवार हो वे अमित
 सङ्कामी मन्त्रिबुध्दय रूपसे हुए सोनेसे चिह्नित अपने
 कुलोंकी टङ्कार करते हुए बड़े हर्ष और असाहके साथ
 ध्ये बड़े। उक्त समय वे सब-के-सब विद्युत्प्रद मेघके
 समान घोमा पाते थे ॥ ३ ॥
 बभ्रुवस्तस्वस्तस्तेपां विदित्वा किंकरान् हतान् ।
 वभ्रुः शोकसम्भ्रान्ताः सबाह्व्यस्तुङ्खलानाः ॥ ५ ॥
 वह पहले जो किंकरनामक राक्षस मारे गये थे,
 उनकी मृत्युका समाचार पाकर इन सबकी महार्य
 मगङ्करी भाषण्हासे आई-बन्धु और मुहूर्त्तद्विषय होकर
 पत्त उठीं ॥ ५ ॥
 ते परस्परसन्घर्षात् ततश्चाश्चनभूपजाः ।
 यधिपतुर्नूमासं तोरप्यस्यमवस्थितम् ॥ ६ ॥
 तपने हुए उनके आभूषणोंसे विभूषित वे सतों
 की परस्पर होइ-ही जगत्कर अटकर लड़े हुए हनुमान्-
 पर दूट पड़े ॥ ६ ॥
 एभ्यस्तो वायुवृष्टिं ते रघवजित्निःकृताः ।
 यावद्दक्ष इवाम्बोदा विबेदमैर्श्वसाम्बुदाः ॥ ७ ॥
 जैसे वर्षाकालमें मघ वर्षा करते हुए बिचरते हैं,
 उसी प्रकार वे राक्षसकी बाधक शक्तियोंकी वर्षा करते हुए
 यों बिचरने करने लगे। रथोंकी परंपराहट ही उनकी
 बहना थी ॥ ७ ॥
 पञ्चदशैस्तस्ताभिर्हनुमाश्चारवृष्टिभिः ।
 मभवत् संवृताकारः दौडराख्य वृष्टिभिः ॥ ८ ॥
 तदन्तर पथलेश्वर की गयी उक्त बाज-वपति
 एतान्की उठी उख आच्छादित हो गये जैसे कोई
 मिरियन कालकी वर्षासे टक गया हो ॥ ८ ॥
 स गतान् वक्ष्यामास तपामानुषार कपिः ।
 रपवेगाद्य वीरजा विषरन् विम्लेऽम्बरे ॥ ९ ॥
 उक्त समय निरंक आश्रममें वीरठापूषक विचरते
 हुए कपिबन् हनुमान् उन राक्षसोंके बाणों तथा रथके
 वेगोंको स्पष्ट करते हुए अपने मापको बचाने लगे ॥ ९ ॥

स तैःकीदन् धनुष्मन्निष्पोज्जि वीरः प्रकाशते ।
 धनुष्मन्निर्घया मेघैर्मादतः प्रभुरम्बरे ॥ १० ॥
 जैसे धूममण्डलमें शक्तिशाली बाणवेर् इन्द्रधनुष
 मुक्त मेघोंके साथ लीला करते हैं, उसी प्रकार वीर पवन-
 कुमार उन धनुर्पर वीरोंके साथ लेख-वा करते हुए
 आकाशमें भव्यत शोभा पा रहे थे ॥ १ ॥
 स कृत्वा मिनद् घोरं घासयस्तां महाबभ्रुम् ।
 धकार हनुमान् वेगं तेषु रक्षन्तु वीर्यावान् ॥ ११ ॥
 पञ्चमी हनुमान्ने राक्षसोंकी उस विघात नाशनीको
 मगभीत करते हुए घोर गर्जना की और उन राक्षसोंपर
 बड़े वेगसे आक्रमण किया ॥ ११ ॥
 तलेनाभिहनुत् काञ्चित् पावैः काञ्चित् परंतपः ।
 मुष्टिभिश्चाहमत काञ्चिन्नरैः काञ्चित् व्यदारयत् ॥ १२ ॥
 शत्रुओंको संताप देनेवाले उन धान्तरवीरने किन्हींको
 गप्पड़से ही मार गिराया, किन्हींको पैरोंसे कुचक डाला,
 किन्हींका दूँड़से काम तमाम किया और किन्हींको नकोंसे
 फड़ डाला ॥ १२ ॥
 प्रममापोरस्ता काञ्चित् दग्ध्यामपराजपि ।
 केचित् तस्यैव नादेन तत्रैव पतिता भुवि ॥ १३ ॥
 कुछ लोगोंको डालीसे दपाकर उनका कचूसर निकाल
 दिया और किन्हीं-किन्हींको रोंतों बोंपोंसे दबोचकर मटक
 डाला। किन्तने ही निघाणर उनकी परंतासे ही प्राप्तहीन
 होकर वहीं पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १३ ॥
 ततस्तेष्ववपम्नेषु भूमौ निपठितेषु च ।
 तस्यैष्यमगमत् सर्वं विशो दश भयाद्वितम् ॥ १४ ॥
 इस प्रकार जब सन्धीके घारे पुत्र मारे धाकर पराश्रमी
 हो गये, वह उनकी कनी-कनी शरी सेना मगभीत होकर
 हलों दिशाओंमें भाग गयी ॥ १४ ॥
 विनेतुर्विस्तर नागा निपेतुर्भुवि वाजिनः ।
 भग्नीदृष्यसकञ्जैर्मुह्य क्रीपांभबद् रथैः ॥ १५ ॥
 उक्त समय हाथी वेदनाके मारे डुपी टपड़े निम्पाइ
 रहे थे घोड़े भरतीपर मरे पड़े थे तथा किन्के बैठक,
 प्लव और छत्र आदि चण्डित हो गये थे, ऐसे दूटे हुए
 रथोंसे क्यूथी रथभूमि पर गमी थी ॥ १५ ॥
 क्षयता रुधिरैष्याद्य क्षत्रभ्यो वृशिताः पथि ।
 विविधैश्च स्यनेर्दुःखनात् निहृत्तं तदा ॥ १६ ॥
 मागिने लूतकी नदियों बहती दिवासी ही तथा
 कङ्कपुरी राक्षसोंके विविध घमोंके क्षय मानते उक्त समय
 विह्वल करते कीलपर कर रही थी ॥ १६ ॥
 स तान्प्रवृत्तान् विनिहत्य राक्षसान्
 महाबलक्षण्डपरपक्रमः कपिः ।
 पुपुस्तुरथैः पुनरथ राक्षसै
 साद्यधीरोऽभिजगाम तोरप्यम् ॥ १७ ॥

तयोर्वैगधतोर्वैगं निहत्य स महाबलः ।
 निपपात पुनर्भूमीं सुपर्ण इव वेगिताः ॥ ३१ ॥
 उन दोनों वेगवान् वीरोंके वेगको निच्छ करके
 महाबली हनुमान्की वेगप्राप्ती गण्डके समान पुनः पृथ्वीपर
 कूट पड़े ॥ ३१ ॥

स साळवृक्षमासाद्य समुत्पाट्य च धानराः ।
 ताजुभौ राक्षसी धीरो अघान पवनारमजः ॥ ३२ ॥
 वहाँ बानरधरोमणि पवनकुमारने एक शाल-वृक्षके
 पास बाध कर उठाव किया और उधीके द्वारा उन दोनों
 राक्षसीयोंको मार शक्य ॥ ३२ ॥

ततस्तांस्त्रीन् हतास्त्रात्वा धानरेण तरस्विना ।
 अभिपेदे महावेगः प्रहस्य प्रपञ्चो बली ॥ ३३ ॥
 भासकर्मण्य साहज्यः शूलमावाप धीर्यवान् ।
 एकताः कपिचारुर्लं यशस्विनमयस्थितौ ॥ ३४ ॥
 उन वेगप्राप्ती बन्तरीरके द्वारा उन तीनों राक्षसोंको
 माघ गन्ध वेस महान् वेस्य युक्त बन्वान् वीर प्रपञ्च
 हँसा हुआ उनके पास आया । वृषी ओरसे पयकमी
 वीर मातृकर्म भी अत्यन्त शोचने मरकर एक हाथसे किये
 वहाँ आ पहुँचा । वे दोनों पक्षी कपिभेद हनुमान्कीके
 निष्ठ एक ही ओर लड़े हो गये ॥ ३३ ३४ ॥

पक्षिमो शितामेव प्रपञ्चः प्रत्यपोद्यत् ।
 भासकर्मण्य शूलेन राक्षसः कपिकुञ्जरम् ॥ ३५ ॥
 प्रपञ्चने तेव भारवाडे पक्षिणो तथा रक्ष्य मासकर्मनि
 शूले कपिकुञ्जर हनुमान्कीपर प्रहार किया ॥ ३५ ॥

स ताम्यां विस्तैर्गावैरसृग्विभ्रतनुबद्धा ।
 अभवद् वानरं हृद्यो वाळसूर्यसमप्रभः ॥ ३६ ॥
 उन दोनोंके प्रहारसे हनुमान्कीके शरीरमें कई बगह
 ऋव हो गये और उनके शरीरकी रोमाबन्धी रक्ष्य रँग
 गयी । उस समय श्रेयसे मेरे हुए बानरवीर हनुमान् प्रातः
 कर्मके सूर्यकी मूर्ति मरुज कान्तिसे प्रकथित हो रहे थे ॥
 समुत्पाट्य गिरेः शृङ्ग समुगाभ्यारुपाद्यपम् ।
 अघान हनुमान् धीरो राक्षसी कपिकुञ्जरः ।

हृत्कार्ये स्त्रीनप्रामाण्ये बाधनीयव्ये
 रस प्रकर भीमवृत्तलीलीयपरमायणे

गिरिः शृङ्गसुमिषिषी तिष्ठन्तौ बभूवुः ॥ ३७ ॥
 तत्र मृग, सर्प और वृक्षोत्थित एक फल-पिच्छरके
 उडाइकर कपिभेद वीर हनुमान्ने उन दोनों राक्षस
 से मार । फल-पिच्छरके भाषाउठे वे दोनों सित ज्ये और
 उनके शरीर तिष्ठके समान साय-साय हो गये ॥ ३७ ॥
 ततस्तेष्वयसन्नेषु सेनापतिषु पञ्चसु ।
 बल तद्ब्रह्मोप तु नाशयामास वामरा ॥ ३८ ॥
 इव प्रकर उन पाँचों सेनापतियोंके नष्ट हो जानेपर
 हनुमान्कीने उनकी बची-भुजी सेनाका भी वंश
 भारतम् किया ॥ ३८ ॥

अश्वैरम्बान् गजैर्नागान् योधैर्योधान् रघेरथात् ।
 स कपिर्नाशयामास सहस्राक्ष इवासुरान् ॥ ३९ ॥
 जैसे देवराज इन्द्र असुरोंका निन्नाश करते हैं, उसी
 प्रकार उन बानरवीरने योद्धोंसे योद्धोंका, हाथियोंसे
 हाथियोंका, मोड़ोंसे मोड़ोंका और रथोंसे रथोंका
 वंश कर शक्य ॥ ३९ ॥

हयैर्वागीस्तुरगैश्च भग्नाक्षैश्च महारथैः ।
 हतैश्च राक्षसैर्भूमी रुन्धमार्गा समन्ततः ॥ ४० ॥
 मेरे हुए हाथियों और तीव्रगामी योद्धोंसे, टूटी हुई
 धुरीणोंके निशाक रथोंसे तथा मारे गये राक्षसोंकी अग्नियोंसे
 बर्षोंकी धारी मृमि धारों ओरसे इव तरह पद गनी थी
 कि आने-जानेका रास्ता बंद हो गया था ॥ ४० ॥

ततः कपिस्वान् स्वसिन्धोपतीन् रथे
 निहत्य वीरान् सद्यजान् सवाह्वान् ।
 तपैव वीरः परिगृह्य तोरयं
 कृतशरणः काळ इव प्रयाज्ञये ॥ ४१ ॥

इव प्रकार सेना और बानरोंसहित उन पाँचों वीर
 सेनापतियोंको रक्षभूमिमें श्रेष्ठके फाट उठकर महावीर
 बानर हनुमान्की पुनः मुद्रके किये अस्तर पाकर पहरेकी
 ही मूर्ति फलकपर बाध कर बाँधे हो गये । उस समय वे
 प्रयाण वंश करनेके किये उद्यत हुए कर्मके समान बान
 पड़ते थे ॥ ४१ ॥

इस प्रकार भीमवृत्तलीलीयपरमायणे
 अष्टादशस्कन्धके अष्टादशोऽध्यायः समाप्तः ॥ ४१ ॥
 रस प्रकर भीमवृत्तलीलीयपरमायणे अष्टादशस्कन्धके अष्टादशोऽध्यायः समाप्तः ॥ ४१ ॥

सप्तचत्वारिंश सर्ग

रावणपुत्र अष्टकुमारका पराक्रम और वध

सेनापतीन् पञ्च स तु प्रमापितान्
 हनुमता साजुचपात् सबाह्वामान् ।
 निशम्य राजा समरोद्धवोऽमुर्ल
 कुमारकर्म प्रसूतैस्तदासम् ॥ १ ॥

हनुमान्कीके द्वारा अपने पाँच सेनापतियोंको उधरके और
 बानरोंसहित मारा गया घनकर राक्ष पवनने अपने सामने

बैठे हुए पुत्र अष्टकुमारकी ओर देखा जो मुद्रमें उद्यत
 और उधके किये उरकण्ठित रहनेवाला था ॥ १ ॥

स तस्य हृद्यपर्येषसम्प्रकोशिता
 प्रथापवान् कश्चनविभक्तमुकुं ।

समुत्पपाटाय सवस्तुवीरितो
 दिग्धाविमुक्ष्यैर्दिवेष पाषाणः ॥ २ ॥

शिवके दक्षिणत माणसे प्रेरितः ॥ यह प्रतापी भी सुन्दके
 शिवे उल्लाहपूर्वक ठठा । उल्लाह वनुष सुवर्णवदित होनेके
 रूप निश्चिन्त घोमा भारण करता था । जैसे श्रेष्ठ प्राणपौ-
 टाए ब्रह्मात्मके हृषिकेशी आहुति देनेपर अग्निदेव प्रत्यक्षित
 हो उठते हैं तथी प्रकृति यह भी समाने उठकर लड़ा हो
 गया ॥ २ ॥

ततो महान् वाळवियाकरप्रभं
 प्रतप्तज्वाल्म्वसद्वाळसततम् ।
 रथ समास्थाय ययौ स धीर्यवान्
 महाहरि त प्रति नैर्धुतर्षभः ॥ ३ ॥

यह महापराक्रमी राक्षसधरोमणि अथ प्रातःप्रश्नीन सूर्यके
 उगमन कश्चित्तान् तथा तपाये हुए सुवर्णके बाणसे आणकारित
 रूपर आरूढ़ हो उन महाकपि हनुमान्कीके पाठ कर
 रिया ॥ ३ ॥

ततस्तपःसंग्रहसंख्याजितं
 प्रतप्तज्वाल्म्वसद्वाळबिभितम् ।
 पताकिन रत्नविभूषितध्वजं
 मनोज्ञबाणध्वजैः सुयोजितम् ॥ ४ ॥

सुरासुराधुष्यमसङ्गचारिण
 तद्विद्यमं ध्योमन्वर् समाहितम् ।
 समुजमप्रासिन्नित्तवपुसुतं
 यथाक्रमोपेक्षितशक्तिभोमरम् ॥ ५ ॥

विराममानं प्रतिपूर्ववस्तुना
 सहोमवाग्ना शशिसूर्यवर्षसा ।
 विवाक्यभं रथमास्थितस्ततः
 स निर्जगामानरतुस्यधिक्रमः ॥ ६ ॥

यह रथ उठे नहीं मायी तपस्याओंके संग्रहसे प्राप्त
 हुआ था । उसमें तपे हुए ज्वाल्म्व (सुवर्ण) की बाणों
 कपी हुई थी । पताका ध्वज रथी थी । उल्लाह ध्वज
 उभे निभूषित था । उसमें मन्के उमान वेगवाले आठ
 ध्वजे अथवा तख कुंठे हुए थे । देवता और असुर ओर
 भी उठ रथको नष्ट नहीं कर सकते थे । उबकी गति
 कभी रुकती नहीं थी । यह विश्वकीके उगमन प्रकथित होता
 और आणकार्य भी प्रकथित था । उठ रथको एक कामप्रि-
 से सुशोभित किया गया था । उसमें तरकथ लखे गये थे ।
 अष्ट उल्लाहोंके देवे रहतेसे यह और भी सुन्दर दिखायी
 देता था । उसमें यथास्थान छक्ति और ठोमर आदि अथ-
 वा अथ लखे गये थे । अथमा और सूर्यके उमान
 पीठिमान तथा शोनेत्री रथीसे कुछ सुन्दके समस्त उल्लाहों-
 से सुशोभित उठ सूर्यतुस्य लेखनी रूपर बैठकर देवताओंके
 उगमन पराक्रमी अथकृमर राक्षसहठसे बाहर निकला ॥ ४-६ ॥

स पूरयन् खलु महीं च साधुर्द्धा
 सुरज्जातातङ्गमहारथस्वभैः ।

बळैः समेतैः सहतोरणस्थित
 समर्धमासीनमुपागमत् कपिम् ॥ ७ ॥
 पाड़े, हाथी और बड़े-बड़े रथोंकी मयकर भावायसे
 पर्यवेसहित पूर्वी तथा आकाशका गुंठाका हुआ यह बड़ी
 मायी केना छाप डेकर नाटिकके द्वारापर बैठे हुए शक्तिवाली
 भीर वानर हनुमान्कोके पाठ था पहुँचा ॥ ७ ॥

स त समासाद्य हरिं हरीसखो
 युगान्तकाङ्क्षामिमिव प्रधाक्षये ।
 मयस्थित विस्मितश्चातसम्भ्रमं
 समैस्ततास्तो बहुमानचक्षुषा ॥ ८ ॥

सिंहके उगमन भयकर नेत्रवाले अथने बहो पहुँचकर
 अथकृतारके समय प्रकथित हुई प्रकथामिके समान स्थित
 और विस्मय एव सम्भ्रममें पड़े हुए हनुमान्कीके अस्मत्
 गर्भमरी दक्षिण देखा ॥ ८ ॥

स तस्य देग च कपोर्महात्मनः
 पराक्रमं चारिषु रावणा मज्जः ।
 विद्यारयन् स्व च बळं महाबळो
 युगक्षये सूर्य इवाभिवर्षत ॥ ९ ॥

उन महात्मा कपिभेदके वेग तथा शत्रुओंके प्रति उनके
 पराक्रम और अपने बळकी भी विचार करके यह महाबली
 उल्लाहप्रकार प्रकथकाणके सूर्यकी गति बहने लगा ॥ ९ ॥

स ज्ञातमन्युः प्रसमीक्ष्य विक्रम
 स्थितः स्थिरः सपति जुर्निवारणम् ।
 समाहितात्मा हनुमत्प्रमाहपे
 मचोर्व्यामास शितैः शरैस्त्रिभिः ॥ १० ॥

हनुमान्कीके पराक्रमपर दक्षिण करके उठे श्रेष्ठ भा
 गया । अतः शिवत्वापूर्वक स्थित हो उठने एकाप्रतिषेधे तीन
 शीले बाणोंद्वारा रथबुर्धन हनुमान्कीके पुत्रके शिवे प्रेरित
 किया ॥ १ ॥

ततः कपि तं प्रसमीक्ष्य गर्षित
 जितधर्मं शत्रुपराजयोचितम् ।
 भवैस्ततास्तः समुदीर्षमानसं
 सबाणपाणिः प्रगृहीतधनुर्मुक्ता ॥ ११ ॥

तदनन्तर हाथमें धनुष और बाण शिवे अथने यह अन्-
 कर कि (ये लेद वा यथावदथे भीत कुंठे हैं, शत्रुओंको
 पराजित करनेकी कोश्या राखते हैं और सुन्दके शिवे इनके
 मनका उल्लाह बड़ा हुआ है) इतीशिवे वे गर्षिते दिखायी
 देते हैं उनकी ओर दक्षिणत किया ॥ ११ ॥

स हेमनिष्प्राङ्गुत्पातकुण्डलः
 समाससात्रापुराक्रमः कपिम् ।
 तयोर्बभूवाप्रतिमः समागमः
 सुरासुराणामपि सम्भ्रमप्रयः ॥ १२ ॥

अथमें सुवर्णके निष्क (परक), बाँहोंमें बामुर्ध और

प्रपञ्च पराङ्गी और महाबली बानरबीर हनुमान्की राक्षसोंके साथ युद्ध करनेकी इच्छासे फिर उठी अरु उत बड़े बड़े राक्षसोंको मीतक घाट उटारकर बूधरे ज्य पहुँचे ॥ १७ ॥

हृत्कार्ये श्रीमद्वाल्मीके वाल्मीकीये वादिकायमे सुन्दरकायमे पञ्चकारादिः सर्गाः ॥ ४२ ॥
इह प्रकार श्रीरामकीकर्मिणिः श्रीरामायण वादिकायमे सुन्दरकायमे पैतृकीसर्गो सर्गो वा ॥ ४२ ॥

पद्मत्वारिंश सर्ग

रावणके पाँच सेनापतियोंका वध

हवान्मन्त्रिसुतान्बुध्वावानरेण महात्मना ॥

रावणः सधृताकारश्चकार मत्सुसुतमाम् ॥ १ ॥

महात्मा हनुमान्कीके द्वारा मन्त्रीके पुत्र भी मारे गये—यह जानकर रावणने मयम्रीत होनेपर भी अपने माझरके प्रबन्धपूर्वक छिपाया और उचम बुद्धिअ आशय के आगेके कर्तव्यका निश्चय किया ॥ १ ॥

स विक्रपाक्षयूपक्षी बुधर्तं चैव राजसत्तम् ॥

प्रमत्तं भासकर्म्यं च पञ्च सेनाप्रनायकान् ॥ २ ॥

सखिवृष्टा वृष्टाभीवो वीरान् नयविशारवान् ॥

हनुमत्प्रहणेऽप्यग्रान् घायुषेणसमान् युधि ॥ ३ ॥

इसप्रकारने विरुपाक्ष यूपक्ष बुधर्त, प्रमत्त और भासकर्म्य—इन पाँच सेनापतियोंको, जो बड़े वीर नैतिक-निपुण धैर्यवान् तथा युद्धमें वायुके समान वेगवाली थे, हनुमान्कीके पकड़नेके लिये भासा ॥ १ ॥ २ ॥

यात सेनाप्रगाः सर्वे महाबलपरिग्रहाः ॥

सवाञ्जिरथमातङ्गाः स कृपिः शास्यतामिति ॥ ४ ॥

उधने कहा—सेनाके अग्रगामी वीरो ॥ तुमल्लेख पाड़े रथ और हाथियोंवहिश पक्षी मारी सेना साथ लेकर जाओ और उस कानरके बन्धपूर्वक पकड़कर उसे अच्छी तरह पिछा दो ॥ ४ ॥

पक्षैश्च खलु भाष्य स्यात्तमासाद्य वनाक्षयम् ॥

कर्म चापि समाधय वृशकावत्वितोषितम् ॥ ५ ॥

उस कनचारी कानरके पास पहुँचकर तुम सब जगहोंके लक्ष्यभान और अत्यन्त प्रबलधील हो जाना चाहिये तथा काम बही करना चाहिये जो रथ और आड़के अनुकूल हो ॥ ५ ॥

न ह्यह तं कर्षि मम्ये क्लमणा प्रति तर्कयन् ॥

सर्वथा तन्महत् भूतं महाबलपरिग्रहम् ॥ ६ ॥

यह मैं उतके अमीकिक कर्मका देखते हुए उतके स्वरूपपर विश्वास करता हूँ अब वह मुझे कानर नहीं बान पड़ता है। वह उतका कोई मरान् प्राली है, जो मरान् बन्धने तन्मत्त है ॥ ६ ॥

वाग्वत्तप्यमिति श्रान्ता महिं युद्धयति म मताः ॥

नैवाह त कृपि मम्यं यथय प्रस्तुता कथा ॥ ७ ॥

यह कानर है एका तमसकर मत्त मन उतकी ओरसे

छुट (विषय) नहीं हो रहा है। यह लेख प्रका उपलब्ध है, या बेठी बातें एक रही हैं उन्हें देखते हुए उधे कानर नहीं मानता हूँ ॥ ७ ॥

भवेद्विन्द्रेण वा सुप्रमस्मदर्थं तपोबलात् ॥

सनागयज्ञगन्धर्वैवेद्यासुरमहर्षयाः ॥ ८ ॥

युष्माभिः प्रसिद्धैः सर्वैर्मया सह विनिरिक्ताः ॥

तैरवश्यं विधातव्यं व्यलीकं किञ्चिदेव वा ॥ ९ ॥

रामायण है इन्होंने हमजोगोंका विनाश करनेके लिये

अपने तपोबलसे इतनी छद्मि की हो। मेरी आज्ञासे तुम सब जगहोंने मेरे साथ रहकर नार्येवहित यज्ञे गन्धर्वों देवताओं, मनुष्यों और महर्षियोंको भी अनेक बार पराजित किया है अतः वे अवश्य हमारा कुछ अनिष्ट करना चाहेंगे। तद्वैव तथा सबेदर प्रसन्न परिपुष्टताम् ॥

यात सेनाप्रगाः सर्वे महाबलपरिग्रहाः ॥ १० ॥

सवाञ्जिरथमातङ्गाः स कृपिः शास्यतामिति ॥

मत्तः यह अच्छी रथा हुआ प्राणी है, इधमें छोटी नहीं। तुमल्लेख उधे इतपूर्वक पकड़ के जाओ। मेरे सेनाके अग्रगामी वीरो ॥ तुम हाथी, घोड़े और रथोंकी बही मारी सेना साथ लेकर जाओ और उस कानरके अच्छी तरह पिछा दो ॥ ११ ॥

नायमम्यो भयद्विन्द्रेण कृपिर्भीरपराक्रमः ॥ ११ ॥

इष्टा हि हरयाः पूर्वे मया विपुलविक्रमाः ॥

कानर तमसकर तुम्हें उतकी अन्धेन्द्र नहीं करने चाहिये क्योंकि वह वीर और पराक्रमी है। मैंने पहले बड़े-बड़े पराक्रमी कानर और भासू देखे हैं ॥ १२ ॥

यावी च सह सुग्रीवो आर्यवाञ्छ महाबलः ॥ १२ ॥

मोक्षः सेनापतिञ्चैव ये शान्ते द्विविदाव्याः ॥

बिनके नाम इह प्रकार है—वाकी, सुग्रीव, महाबल आम्बवान् सेनापति नीक तथा द्विविद आदि मत्त कानर ॥ १२ ॥

नैव तथा गतिर्भीमा न तज्ये न पराक्रमः ॥ १३ ॥

न मतिन पञ्चोत्साहो न रूपपरिकल्पनम् ॥

किन्तु उनका वेग एका मत्तक नहीं है और न उनकी देखा तेज, पराक्रम, बुद्धि बल, उत्साह तथा रूप धार करनेकी शक्ति ही है ॥ १३ ॥

महसस्वमिदं श्रेय कपिरूप व्ययस्थितम् ॥ १४ ॥
प्रयत्नं महादास्याय क्रियतामस्य निग्रहः ।

भानरके रूपमें वह श्रेय बड़ा शक्तिवाली थीय प्रकृत हुआ है, ऐसा जानना चाहिये । अतः द्रुमश्रेण महान् प्रयत्न करते उसे कैद करो ॥ १४ ॥

कर्म लोकात्मयः सेन्द्राः ससुपासुरभ्रमनधाः ॥ १५ ॥
भवतामप्रतः स्थातुं न पर्याप्त एणाश्रिते ।

मझे ही इन्द्रवशित देवता, असुर, मनुष्य एवं वीनों लोक उतर आये, वे स्वभूमिमें द्रुमारे धामने ठहर नहीं सकते ॥ १५ ॥

तथापि तु नयनेन जयमाकाङ्क्षता रणे ॥ १६ ॥
धारमा रक्ष्यः प्रयत्नेन युद्धसिद्धिर्हि चञ्चला ।

तथापि समग्रजयमें विजयकी इच्छा रखनेवाले वीरिय युद्धको यत्पूर्वक अपनी रक्षा करनी चाहिये क्योंकि युद्धमें सफलता अनिश्चित होती है ॥ १६ ॥

वे स्वामिवचनं सर्वे प्रतिगृह्य महाजसः ॥ १७ ॥
समुत्पतुर्महाशेषा बुताशसमतेजसः ।

एतेषु मत्सैनोर्गोत्रा वासिभिश्च महात्मयैः ॥ १८ ॥
उल्लेख विधिपेस्ताकनैः सर्वैश्चोपहिता धरैः ।

स्वामीश्री भावा स्वीकार करते वे एक-के-एक भूमिके धामन लेबली, महान् वेगवाली और अत्यन्त बलवान् उल्लेख तेज चबनेवाले शेरों, मृतवाले हाथियों तथा विद्याय रथोंपर बैठकर युद्धके क्षिमे एक दिव्ये । वे सब प्रकृतके घोसे घोड़ों और धनामोंसे धम्कये ॥ १७-१८ ॥

एतस्तु दृष्टुर्वीरा धीप्यमानं महाकपिम् ॥ १९ ॥
पद्ममन्त्रमिषाघान्तं स्पतेजोऽरिश्मसाहितम् ।

तोऽप्रस्य महत्स्यैर्ष्यं महत्स्यस्य महत्स्यलम् ॥ २० ॥
महामतिं महास्वार्हं महाकार्यं महाभुञ्जम् ।

आये जानेपर उन वीरोंने देखा महाकपि द्रुमान्धी धरकर लड़े हैं और अपनी तेजोमयी किरणोंसे मण्डित हो उदरकाण्डके सर्वकी भीति डेरदीप्यमान हो रहे हैं । उनकी शक्ति, बल बय बुद्धि उल्लाह, धीर और मुझपे लक्ष्मी महान् थी ॥ १९ २ ॥

संचमोक्ष्येय त सर्वे दिष्टु सवास्ययस्थिताः ॥ २१ ॥
तेस्तेः प्रहरवैर्भूमिरेभिपतुस्ततस्ततः ।

उन्हें देखते ही वे सब राक्षस ना लक्ष्मी दिवाभोंमें गड़े व मरकर भय शरोंकी बर्षा करते हुए चारों ओर उतर दूट पड़े ॥ २१ ॥

तस्य पञ्चायसास्तीह्याः सिता पीतमुष्णाः दाराः ॥ २२ ॥
द्वारस्फुण्डपवाभा बुधरस्य निपातितः ॥ २३ ॥

निष्ठा पदुंबनेर परत दुर्भने द्रुमान्धीके मलकर करके वन हुए पाँच बाप शरी । वे लक्ष्मी बय मर्मनेली और देने धरवाह व । उनके अग्र-अपर श्लेघ पानी

दिया गया था । किससे वे पीतमुख दिक्वाणी देते थे । वे पौधों बाप उनके शिरपर प्रकृतकमलकरके धामन घोष्य था रहे थे ॥ २२ ॥

स तैः पञ्चभिराधिभ्यः शरैः शिरसि वानरः ।
उत्पपात नदन् व्योम्नि द्विशो वश विभावपन् ॥ २३ ॥

मलकरमें उन पाँच बाणोंसे गहरी श्रेष्ठ साकर वानर वीर द्रुमान्धी अपनी भीषण गर्जनसे रहों दिव्यमोंको प्रतिष्थनित करते हुए आकाशमें ऊपरकी ओर उड़कर पड़े ॥ ततस्तु बुधरो धीरा शरया सञ्चकामुर्मुकः ।
किरश्शरशरैर्नैकैरभिपेदे महाशयः ॥ २४ ॥

तब रथमें बैठे हुए महाबली वीर दुर्भने धनुष बढ़ाये कर दो बाणोंकी बर्षा करते हुए उनका पीछा किया ॥ २४ ॥

स कपिर्वीरयामास त व्योम्नि शरवर्षिष्यम् ।
दृष्टिमन्तं पयोवाम्तं पयोवमिषं मादताः ॥ २५ ॥

आकाशमें लड़े हुए उन वानरवीरने बाणोंकी बर्षा करते हुए दुर्भरको अपने हुकारमात्रसे उसी प्रधर रोक दिया, जैसे वर्षा श्रुद्धके अन्तमें दृष्टि करनेवाले वादलको बाध रोक देती है ॥ २५ ॥

मर्षमानस्ततस्तेन बुधरेणानिष्ठात्मजा ।
चकार निलम्भूयो व्यघर्षत च धीर्यवान् ॥ २६ ॥

बय दुर्भर अपने बाणोंसे अधिक पीड़ा देने लगा, तब व परम पराक्रमी पवनकुमार पुनः विकट गर्जना करने और अपने शरीरको बढ़ाने लगे ॥ २६ ॥

स हूरं सहस्रोत्पप्य बुधरस्य रथे द्रिः ।
निपपात महाशेषो विपुद्रादिर्गिराधिप ॥ २७ ॥

तत्पभात् वे महाशेषवाली वानरवीर बहुत बूढक लेंके उल्लेखकर लड़ा दुर्भरके रथपर दूट पड़े, आने लिये पर्वतपर निम्बोक्ष समूह गिर पड़ा ॥ २७ ॥

ततः स मयिताद्यादयं रथं भग्नास्रकृत्वरम् ।
विहाय न्यपतत् भूमां बुधरस्यकञ्जीयिताः ॥ २८ ॥

उनके भाव रथके आठों घोड़ोंका कृष्ण निष्ठत गया, धुरी और कूबर दूट गये तथा दुर्भर शायहीन हो उठ रथको लाँकर पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २८ ॥

ए विक्रपास्रयूपासी बभूव निपतित मुयि ।
तौ जातरोषी बुधयायापततुरिदमौ ॥ २९ ॥

दुर्भरको बरशापी हुआ देख घनुश्लेघ दमन करनेका दुर्भर और विक्रपा और दूधपथ बड़ा श्लेघ हुआ । वे दोनों आकाशमें उठके ॥ २९ ॥

सताम्या सहस्रोत्पुत्य विद्रिष्टो विमलऽधरः ।
मुद्रवमर्मा महाबाहुपक्षस्यभिहतः कपिः ॥ ३० ॥

उन दोनोंने लक्ष्मी उल्लेखकर निमक आकाशमें गड़े हुए महाबाहु कपिर द्रुमान्धीको लक्ष्मी बुद्धरथेध प्रहार किया ॥ ३ ॥

उयोर्वैगवतोर्वैर्गं विद्वत्प स महाबलः ।
 निपपात पुनर्मूमौ सुपर्यै इष वेगिता ॥ ३१ ॥
 उन दोनों वेगवान् बीरोके वेगको निच्छ करने
 महाबली हुमान्की वेगवाली गडके समान पुनः पृथ्वीपर
 कूर पड़े ॥ ३१ ॥

स छात्रवृत्तमासाद्य समुत्पात्य च वानरः ।
 तावुभी राक्षसी वीरो अघाल पवनारमजः ॥ ३२ ॥
 वहाँ बालरवीधरोमणि पवनकुमारने एक छात्र-वृत्तके
 पत्र बंधर उठे उवाच किन्ना और उठीके प्राय उन दोनों
 उच्छवबीरोको मार जाय ॥ ३२ ॥

ततस्तस्मिन् इताम्नात्वा धामरेण तरस्विना ।
 अभिपदे महावेगः प्रहस्य प्रबली बली ॥ ३३ ॥
 भासकर्येण सङ्गुहः शूलमाहाय वीर्यवान् ।
 एकतः कपिशार्दूलं यद्वास्वियमवस्थिती ॥ ३४ ॥
 उन वेगवाली बालरवीरके प्राय उन वीनों उच्छवको
 माय गया देख महान् वेगव युक्त बन्वान् वीर प्रपल
 ईशता हुआ उनके पल आया । वृषी ओरसे पपकनी
 वीर मात्कर्ण्य मी आपत्य कोबने मरकर शूल हाथमें किये
 वहाँ अ पहुँचा । वे दोनों यक्षली कपिश्रेष्ठ हुमान्कीके
 निच्छ एक ही ओर सड़े हो गये ॥ ३३-३४ ॥

पक्षिणेन शितामेण प्रघसः प्रत्यपोषयत् ।
 भासकर्येण शूलत राक्षसः कपिकुञ्जरम् ॥ ३५ ॥
 प्रपत्ने तेन धारवाके पक्षिणसे तथा राक्षस मात्कर्ण्यने
 शूलसे कपिकुञ्जर हुमान्कीपर प्रहार किय ॥ ३५ ॥

स ताभ्यां विश्वेर्गात्रैरचूम्बिन्धतनुकहः ।
 अभवद् वानरः कुञ्जो पाञ्चसूर्यसमप्रभः ॥ ३६ ॥
 उन दोनोंके प्रहारसे हुमान्कीके शरीरमें कई बगल
 पाव हो गये और उनके शरीरकी रोमासकी रक्तसे रँग
 गयी । उस समय श्रेष्ठमें मरे हुए बालरवीर हुमान् प्रायः
 काकके दर्दकी मीति अरुम अन्तिसे प्रकथित हो रहे थे ॥
 समुत्पात्य गिरेः शूङ्ग समृगम्याखपावपम् ।
 अघाल हुमान् वीरो राक्षसी कपिकुञ्जरः ।

हृत्पार्ये श्रीमद्रामायणे श्रीमद्वाल्मीकीये ध्वदिक्रम्ये सुन्दरकाण्डे पट्टण्वारिधः सर्गः ॥ ३६ ॥
 एत इकम श्रीमद्वाल्मीकीयनिर्मितं चारणमप्यत्र अधिक्रम्ये सुन्दरकाण्डे विमलदेवर्तौ सर्वे पूरा हुमा ॥ ३६ ॥

गिरिशूङ्गसुमिषियौ तिष्ठशस्त्री बभूवतुः ॥ ३७ ॥
 तत्र मृग, सर्प और वृक्षोत्थित एक फल-शिकरको
 उवाचकर कपिश्रेष्ठ वीर हुमान्पुत्रने उन दोनों राक्षस
 से माय । फल-शिकरके आघातसे वे दोनों पिस गये और
 उनके शरीर निकले समान काण्ड-काण्ड हो गये ॥ ३७ ॥

ततस्तेष्व्यसन्नेषु सेनापतिषु पञ्चसु ।
 बल तद्वशेष तु नाशयामास वानरः ॥ ३८ ॥
 इष प्रकार उन पोंको सेनापतिवोंके नष्ट हो अपनेपर
 हुमान्कीने उनकी बची-बची सेनाका भी धार
 अरुम किना ॥ ३८ ॥

अश्वीरभ्यान् गजैर्नागान् पोषैर्घोषान् रघैरघान् ।
 स कपिर्नाशयामास सहस्राक्ष इवाधुपान् ॥ ३९ ॥
 जैसे देवराज इन्द्र मनुकोका किनाश करते हैं, उठी
 प्रकार उन बालरवीरने घोड़ोंसे घोड़ोंका, हाथियोंसे
 हाथियोंका, घोड़ोंमेंसे स्त्रेयोंका और रघोंसे रघोंका
 उधार कर जाय ॥ ३९ ॥

हयैर्नागैस्तुरगैश्च भम्नाक्षैश्च महारथैः ।
 हतैश्च राक्षसैर्मूमौ बन्धुमार्गा समन्तताः ॥ ४० ॥
 मरे हुए हाथियों और तीजगानी घोड़ोंसे दूरी हुई
 पुरीयके मिशाख रथोंसे तथा मारे गये राक्षसोंकी बन्धुओंसे
 वहाँकी सारी भूमि पारों ओरसे इष तरह पद गयी थी
 कि आने-जानेका रास्ता बंद हो गया था ॥ ४० ॥

ततः कपिस्तान् पक्षिणीपतीन् रथे
 निहस्य वीर्यं सयज्जान् सयाहनान् ।
 तथैव वीराः परिशूङ्ग वोरथं
 कृतक्षयः काञ्च इव प्रजाक्षये ॥ ४१ ॥

इत प्रकार सेना और बालरवीर उत उन पोंके वीर
 सेनापतिवोंको रथभूमिमें घेतके भाट उधारकर महावीर
 बानर हुमान्की पुनः मुदक किये अन्धर पाकर परदेकी
 ही मौँति फटकर बंधर सड़े हो गये । उस समय वे
 प्रकाश उधार करनेके किये उषत हुए काकके समान बान
 पड़ते थे ॥ ४१ ॥

सप्तचत्वारिंश सर्ग

रावणपुत्र अधकुमारका पराक्रम और वध

सनापतीन् पञ्च स तु प्रमापितान्
 हनूमता सातुषधान् सयाहनान् ।
 निशम्य राजा समराज्यतोमुल्लं
 कुमारमरु प्रसमैस्तताक्षम् ॥ १ ॥
 हुमान्कीके प्राय अपने पाच उनापतिवोंको तबको और
 बालरवीर मार। गया मुनकर राजा उपपत्ने अपने धामने

बैठे हुए पुत्र अधकुमारकी ओर देखा था मुदमें उषत
 और उषके किये उत्कण्ठित रहनेवाला था ॥ १ ॥
 स तस्य हृदपर्येणसम्प्रथोदितः
 प्रतापवान् काञ्चनविषयधनुंका ।
 समुत्पपात्वाथ सवस्तुदीरिता
 द्विजातिमुष्पीर्हविषय पावका ॥ २ ॥

शिकाके दृष्टिस्त माभवे प्रेरित हो वह प्रतापी वीर युद्धके लिये उल्लाहपूर्वक उठा। उसका अनुप सुवर्णचटित होनेके कारण निविष्ट घोमा धरण करता था। वेधे जेध त्रासज्यो-द्वय बध्याज्यमें हृद्यम्बकी भापुति देनेपर अग्निरेव प्रन्वसित हो उठते हैं, उसी प्रकार वह भी समामे उठकर जाड़ा हो गया ॥ २ ॥

ततो महान् याळविद्याकरप्रमं
प्रतप्तजाम्बूनवजाळसततम् ।
रथ समास्थाय ययौ स वीर्यवान्
महाहरि तं प्रति नैश्र्वतर्पभा ॥ ३ ॥
वह महापराक्रमी राक्षसशिरोमणि अथ प्रातःकर्मिन सूर्यके समान कर्मितमन् तथा तपाये हुए सुवर्णके बाण्ये भाग्यधारित रथपर आरूढ़ हो उन महाकपि हनुमान्कीके पास चक रिषा ॥ ३ ॥

तवस्तपःसंग्रहसंघयाजितं
प्रतप्तजाम्बूनवजाळविभ्रितम् ।
पताकिन रत्नविभूषितध्वज
मनोज्ञपाद्याम्बधरैः सुयोजितम् ॥ ४ ॥
सुपसुपाभूषणसङ्गधारिण
तद्विप्रमर्गं स्योमधरं समाहितम् ।
सत्पामघासिनिबन्धवपुसुरं
पथाक्रमयेदितशक्तिगोमरम् ॥ ५ ॥
बिराजमानं प्रतिपूर्ववस्तुना
सहेमदान्ना शशिसूर्यवर्षसा ।
विद्याकराभ रथमास्थितस्ततः
स निर्जगामामरमुक्यपिक्कमा ॥ ६ ॥

वह रथ उधे बड़ी मारी धरस्याओंके संग्रहसे प्राप्त हुआ था। उधमें तपे हुए जाम्बून (सुवर्ण) की जाळी बनी हुई थी। पताका धरा रही थी। उल्लाह पूर्वक अग्निरेव विभूषित था। उधमें मनके समान वेगपाछे भाठ चढ़े अथवा तरह उठे हुए थे। देवता और असुर धरें भी उध रथको नष्ट नहीं कर सकते थे। उधभी गति कभी बहती नहीं थी। वह तिकडीके समान प्रथमित होता और भाग्यधामे भी चकता था। उध रथको उध वाममिथों से सुधुषित किया गया था। उधमें तरहक रस्के गये थे। अठ तकाधायोंके वैसे रत्नेसे वह और भी सुन्दर दिखायी देता था। उधमें पथास्थान शक्ति और धामर आदि अल-पाका क्रमसे रस्के गये थे। कर्ममा और सूर्यके समान योजितमन् तथा धीनेकी रक्षीते युद्धके समस्त उपकरणोंसे सुधुषित उध सुवर्णसे लेबली रथपर बैठकर देवताओंके दूधन पपक्रमी अथकुमार राक्षसहठसे बाहर निकला ॥४-६॥

स पूरयन् एवं च महौ च साचलां
तुरङ्गमातङ्गमहारथस्वभैः ।

बळेः समेतैः सहसोरणस्थित
समर्पमासीनमुपागमत् कपिम् ॥ ७ ॥
पौडे, हापी और बड़े-बड़े रथोंकी मनकर भाषाबसे परतोरहित पूर्णो तथा भाग्यधाम गुंथता हुआ वह बड़ी मारी सेना साथ लेकर वाटिकाके द्वारपर बैठे हुए शक्तिधामी वीर बामर हनुमान्कीके पास था पहुँचा ॥ ७ ॥

स त समासाद्य हरिं हरीक्षणो
युगास्वकाटामिमिष प्रजाक्षये ।
भयस्थित विस्मितज्ञातसङ्ग्रमं
समिसृताक्षो यन्मानचक्षुषा ॥ ८ ॥
लिहके समान मर्दकर नेत्रपाछे अथन वहाँ पहुँचकर अकेलंकारके सम्य प्रन्वसित हुई प्रथमगिनके समान स्थित और विस्मय एव सङ्ग्रममें पडे हुए हनुमान्कीके अमन्त गर्भमरी दृष्टिसे देखा ॥ ८ ॥

स तस्य वेग स कूपेमहारमतः
पराक्रम चारिषु रायण्यात्मजः ।
विचारयन् स्य च गळ महाबळो
युगाक्षये सूर्य इषाभिषर्षत ॥ ९ ॥
उन महात्मा कपिभेदक वेग तथा दानुओंके प्रति उनके परक्रमक और अपने बळका भी विचार करके वह महाबळी परक्रमकुमार प्रथमकाळके सूर्यकी मूर्ति बढते अथ ॥ ९ ॥
स ज्ञातमन्युः प्रसमीक्ष्य विक्रम
स्थितः स्थिरः सत्यति युर्निधारणम् ।
समाहितारामा हनुमन्तमाहये
प्रशोष्यामास शितैः शरैस्त्रिभिः ॥ १० ॥
हनुमान्कीके परक्रमपर दृष्टिपात करके उधे अथे अथ गया। अतः शिख्यपूर्वक स्थित हो उधने एकप्रमणिले तीन टीले बाणोंद्वारा रथगुंभं हनुमान्कीके मुडके लिये प्रेरित किया ॥ १ ॥

ततः कपिं तं प्रसमीक्ष्य गर्दित
जितधमं शत्रुपराजयोषितम् ।
भवेसृताक्षः समुदीर्यमानसं
सबाणपाणिः प्रगृहीतकामुकः ॥ ११ ॥
तदनन्तर हाथमें अनुप और बाण लिये गधने वह अन्-कर कि ये लेद या पक्षबटके धीत युद्ध हैं, दानुओंके परकित करनेकी संग्यता रखते हैं और युद्धके लिये इनके मनकर उठाए बढ़ा हुआ है। इक्षीकिय वे गर्भके दिखायी देते हैं उनकी ओर दृष्टिपात किया ॥ ११ ॥

स हेमलिप्याङ्गद्वारादकुण्डल
समाससाक्षादुपपत्तमा कपिम् ।
तयोर्पम्याप्रतिमाः समागतः
सुरासुराणामपि सङ्ग्रमप्रदः ॥ १२ ॥
मधेमें सुवर्णक निष्क (परक) बाँहोंमें बाधुंर और

कानोंमें मनोहर कुम्भ का राज सिंहे पर धीमन्वास्मी की ध्वज
 कुमार हनुमान्कीके पाठ आया । उस समय उन दोनों की
 में यह उदर दुर्ग उतकी कही दुखना नहीं थी । उनका युद्ध
 इच्छाओं और अशुभोंके मन्त्रों भी पकड़इत वैशा पर देने-
 पाया था ॥ १९ ॥

रतस भूमिर्न तथाप भातुमान्
 पपी न धामु प्रघचाळ चाचळा ।

क्याः कुमारस्व स धीयसंयुगं
 ननाद् स चौश्वधिष्य सुसुमे ॥ १३ ॥

कृषिभेद हनुमान् और अवकुमारका यह संघाम देखकर
 मृतकके घारे प्राणी पीन उठ । पूर्वम ताप कम हो गया ।
 बायुधी गति रुक गयी । पशु दिखने क्या । आकाशमें
 मयकर घट्ट हाने लगा और सुप्रमं गुप्तिन आ गया ॥ १३ ॥

स तस्य धीराः सुमुखान् पतत्रिभः
 सुशयपुञ्जान् सयिगानिघोरगान् ।

समाधिसयामयिमांशुतरवधि
 पञ्चरानघ धीन् कपिमूर्ध्वीतायस्य ॥ १४ ॥

अबकुमार निघान्ना लाकने, बाणको धनुषपर चढ़ाने
 और उठा बन्दगी और जोड़नेमें बड़ा प्रवीण था । उत कीने
 निगर शर्तके समान मयंकर, धृवपमय ५५छोड़े युद्ध, दुन्दर
 मयभगवान् तथा पमयुक्त तीन बाण हनुमान्कीके मसकने
 मार ॥ १४ ॥

न सोः शरैर्मूर्ध्नि सप्त निपातितैः
 शरैश्चन्द्रिगधयिपुचनका ।

नयादित्तादित्यनिभः शरांशुमान्
 क्यरततादित्य इपांशुमादिकः ॥ १५ ॥

उन तीनोंको पञ्च हनुमान्कीके माथमें एक साथ ही
 छड़ी, इतने हनुमो पाय गिराने छयी । ये उठ रहते नहा
 उठे और उनको ओलें मूमने छयी । उ । समय बालरूपी
 किरणोंके युद्ध हो ये दुर्लभके डगे हुए अंशुमाकी तुर्कके समान
 शोभा यने क्या ॥ १५ ॥

ततः प्रयहाधिपमन्त्रिसप्तमः
 समीक्ष्य धं राजयरात्मज्ञं रणे ।

उद्ग्रन्धिभायुधधिष्यन्धमुक्तं
 महर्षे चापूर्वत चाहयोस्मुक्ताः ॥ १६ ॥

तदन्तर बानराजके भेद मन्त्री हनुमान्की राक्षसराज
 राक्षके राजकुमार भतल भति उद्यम विविध मत्स्य एवं
 मत्स्युत बनप बाल किये देख हर् और उच्छरते भर गये
 और युद्धके किये उत्पन्नित हो अपने शरीरको बहाने क्या ॥

स मन्त्राप्रस्थ इयांशुमाकी
 यिपुद्दकारो बछपीर्षिसयुता ।

कुमारप्रभं सवा
 दवाह १ १७ ॥

हनुमान्कीका श्रेय बहुत बढ़ा हुआ था । ये सब को
 पलकमे लम्पन ये, अतः मन्त्रराक्षके विचारपर प्रयास
 होनेवाले पूर्वबिषके समान थे अपनी देशान्मिणी किल्ले
 उठ समय सेना और अकारिपेच्छित उभकुम्भ आकरो १५
 छ करने छगे ॥ १७ ॥

ततः स बाभासनशक्रकार्मुका
 शरप्रवर्षो युधि राक्षसामुदः ।

शरान् मुमोषामु हरीश्वराचले
 बलाहको वृषिमिवाचछोचमे ॥ १८ ॥

उप सेते बाहक भेद परतपर बछ बरताता है उत
 मकार युद्धसकने अपने शरतकनरूपी इन्द्र-पुत्रके युद्ध
 राक्षररूपी मेघ वाणवाणी होकर कृषिभेद हनुमान्की फल
 बढ़े बेगते बायोधी वृषि करने क्या ॥ १८ ॥

कपित्ततस्तं रणसण्डबिक्रम
 प्रयुष्टतेओवच्छयिर्षिसायकम् ।

कुमारदर्शं प्रसमीक्ष्य सयुगे
 मनाद् हर्षात् समनुत्पत्तिगस्थता ॥ १९ ॥

रामभूमिमें अबकुमारका पराक्रम बड़ा प्रचण्ड रिकारी
 देखा था । उसके तेज, बल, पराक्रम और बाण सभी बढ़े-
 ने । युद्धकमें उतकी और इच्छित करने हनुमान्की
 हर्ष और उच्छरने भरकर मेघके समान मजानक सर्व
 की ॥ १९ ॥

स बाळभावात् सुधि कीर्षवपितः
 मधुर्लमभ्युः इतजोपमेक्षणा ।

समाससाहामतिम रणे कपि
 गको महाकूपमिवाचूर्तं तुषैः ॥ २० ॥

छाराइकमें बलके धनइमें भरे हुए अबकुमारको उतकी
 गर्भना मुनकर बड़ा क्रम हुआ । उतकी ओलें रकके समान
 अज हो गयी । वह अपने बायोधित मजानके कारण भल
 पम पराक्रमी हनुमान्कीका सामना करनेके किये भाये बड़ा ।
 ठीक उठी तरह जैसे कीर्ष हाथी विनकीसे डके हुए विघ्न
 रूपी और मारकर होता है ॥ २० ॥

स तेन दार्यैः मसम निपातितै
 क्खण्डर मात् फननाव्मिःक्षना ।

समुरसहनाशु मभः समाकन्
 मुजोदविक्षेपणभेरर्षानः ॥ २१ ॥

उतके कर्षुर्क पक्षमें हुए बायोले निर दोकर
 हनुमान्कीने दुर्ल हो उच्छाहर्षक आकाशको विच्छिन्न करते
 हुए-से मेघके समान गभीर सरल मीपण गर्भना की । उत
 समय दोनों मुक्कभो और बायोध पक्षानेके कारण वे बड़
 मयंकर रिकारी देते थे ॥ २१ ॥

समुत्पतन्तं सभभिद्रयद् पत्नी
 स राक्षसार्ता प्रयरा मतापयात् ।

एषी रथभङ्गतरः किरण्डुरैः
पयाभटा दौलमिवात्प्रमृष्टिभिः ॥ २२ ॥

ऊँई आकाशमें उड़भते देख रथियोंमें भेड़ और रथपर
ऊँई हुए उड़ बच्चान्, प्रतापी एव राधस्यिरेमर्षि धीरने
एनाभी कर्ण करते हुए उनका पीडा किया । उस समय वह
ऐस खन पड़ता था मानो झेई मेघ किसी पर्वतपर ओले
और फरोंकी वर्षा कर रहा हो ॥ २२ ॥

सताम्बुरास्तस्य हरिर्षिमोक्षयं
अधार धीरः पथि वायुसेविते ।

शरान्तरे मारुतवद् विनिष्पत्तन्
मनोजयः संयति भीमयिक्रमः ॥ २३ ॥

उस युद्धसमयमें मरने उमान वेगवाळ धीर हनुमान्की
मर्कट परक्रम प्रकट करने लगे । वे अशकुमारके उन
बाणोंके स्पर्श करते हुए बाणुक पथपर निष्पठे और दो
बाणोंके बीचसे हवाकी मूर्ति निकळ जाते थे ॥ २३ ॥

तमाप्तवाप्याप्तमहाहोष्मुक्च
समास्तुष्यन्व विविधैः शरैः समैः ।

मघैस्तारुणं यजुमानस्यधुपा
जगाम चिन्तां स ख मारुतात्मजा ॥ २४ ॥

अशकुमार लक्षमें भनुप विष युद्धक क्रिये ऊन्मुक्च हो
नन्व प्रभारके उचम बाणोंवाच आकाशका आच्छादित क्रिये
देता था । पथनकुमार हनुमान्ने उधे बड़े भारती दृष्टिसे
देखा और वे मन-ही-मन कुछ खेचने लगे ॥ २४ ॥

ततः शरैर्भिन्नभुजास्तरा क्वपि
कुमारस्यैष महात्मना नवम् ।

महामुञ्जः कर्मविशेषतस्त्वयिद्
विशिष्टयामास एष पराक्रमम् ॥ २५ ॥

इत्नेहीमें महामना धीर अशकुमारने अपने बाणोंवाच
कर्मिभेद हनुमान्की दोनो मुक्चओंके मध्यभाग—ऊपरमें
मरघ आघात किया । वे महाबाहु बानरनीर समयोचित
कर्मविशेषको ठीक-ठीक जानसे थे । अतः वे रथधेजमें
उधे खेदसे उद्वर सिन्हाद करते हुए उधके पराक्रमके
विषयमें इध प्रकार विचार करते लगे— ॥ २५ ॥

मपालयद् वालाङ्गिवाकरप्रभः
करोऽययं कर्म महम्महाबलम् ।

न खास्य सयाह्वयकमशाष्टिम
प्रमाप्ये म मतिरभ जायत ॥ २६ ॥

एव महाबधी अशकुमार वाष्प्यक उमान देवकी दे
और बलक होकर भी बड़ोंके उमान महान् कर्म कर रहा
है । मुदतमग्धी तमस्य कर्मोंमें कुछच होनेक कारण
मरुदुग घोमा वादेवाळ इव बीरक्य यही मार बाळनेकी मेरी
रथ्य नही हो रही है ॥ २६ ॥

अथ महात्मा च सर्वाङ्गधीयता
समाहितश्चातिसहस्र सुयुगे ।

असद्यथ कर्मगुणोव्वाप्य
सनागयक्षैर्मुनिभिश्च पूजितः ॥ २७ ॥

एव महामनस्वी राधवकुमार बस-पराक्रमकी दृष्टिसे
महान् है । मुदमें सावधान एवं एकप्रपिच है तथा शत्रुके
वेगको उद्वन करनेमें अत्यन्त समर्थ है । अपने कर्म और
गुणोंकी उकृष्टताके कारण वह नागों, पक्षों और मुनियोंके
वाच में प्रशंसित हुआ होगा, इतमें संशय नहीं है ॥ २७ ॥

पराक्रमोस्ताहयिषून्मानसः
समीक्षते मां प्रमुखोऽगातः स्मितः ।

पराक्रमो ह्यस्य मनांसि कम्पयेत्
सुरासुराणामपि दीर्घकारिणः ॥ २८ ॥

पराक्रम और उत्साहसे इधकर मन बढ़ा हुआ है ।
वह युद्धके मुहानेपर मेरे सामने लड़ा हो मुझ ही देख
रहा है । धीमतापूर्वक युद्ध करनेवाळ इव बीरक्य पराक्रम
देवताओं और असुरोंके हृदयको भी कम्पित कर
ऊँगा है ॥ २८ ॥

न खल्वयं नाभिभयेदुपेक्षितः
पराक्रमो ह्यस्य रणे विवर्धत ।

प्रमापणं ह्यस्य ममाद्य रोचते
न पर्यमानोऽस्मिदपेक्षितुं क्षमः ॥ २९ ॥

किन्तु यदि इतकी उपेक्षा की गयी हो वह मुझे परास
क्रिये विना नहीं रहेगा; क्योंकि संग्राममें इतक्य पराक्रम
बढ़ता था रहा है । अतः अब इते मार बाळना ही मुझे
अच्छ धान पड़ता है । पदवी हुई आनाभी उपेक्षा करना
कषाय उचित नहीं है ॥ २९ ॥

इति प्रयोगे तु परस्य तर्कयन्
स्यकर्मयोगं च विधाय धीयथात् ।

यकार वेग तु महापलस्तदा
मतिं च खभेऽस्य यद्य त्वामीम् ॥ ३० ॥

इस प्रकार शत्रुके वेगका विचार कर उधके प्रतीकारके
क्रिये अपने कर्मव्यक्त निभय करके महान् बळ और पराक्रमसे
उभयन् हनुमान्कीने उध समय अपना वेग बढ़ाना और उध
शत्रुको मार बाळनेका विचार किया ॥ ३० ॥

स तस्य तानघ परान् महाह्वान्
समाहितान् भारसहान् विपतने ।

अप्याम धीरः पथि वायुसविने
तलप्रहारैः पयनामजः क्वपि ॥ ३१ ॥

तस्यभान् आकाशमें विचरते हुए धीर बानर पथनकुमारने
व्यर्षकोंको मारसे अशकुमारके उन अशों उचम और विद्याक
पणोंको, भी मार उद्वन करनेमें समर्थ और नाग प्रभारके
वैदरे बरखनेकी कथ्यसे कुतिलित था, पयनाक पशुन्ध विद्या ॥

ततस्तच्छेनाभिहतो महारथः
स तस्य पिङ्गापिपमग्निभिर्जितः ।
स भग्नश्रीः परिवृत्तकूबरात्
पपात् भूमौ हतवाजिरम्बरात् ॥ ३२ ॥

तदनन्तर बानरान् सुग्रीवके मन्त्री हनुमान्भीने अथ
कुमारके उठ विद्याल रथको भी अग्निभूत कर दिया उन्होंने
हाथसे ही पीटकर रथकी बैठक तोड़ डाली और उसके इरसे
को उल्टा दिया । सोके ल' परब ही मर चुके थे, अतः वह
महान् रथ आकाशसे पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३२ ॥

स त परित्यज्य महारथो रथ
सकार्मुक्य खड्गधरा क्षमुत्पतन् ।
ततोऽभियोगाद्दिविहप्रधीर्षवान्
विहाय वेह मदतामिवालयम् ॥ ३३ ॥

उठ शम्य मराथी अथकुमार धनुष और तस्कार छे
रथ छोड़कर अस्तविष्टमें ही उड़ने लग्य । ठीक जैसे ही, जैसे
कोई उग्रप्रकृतिसे सम्बन्ध महर्षि पोमामार्गस शरीर त्यागकर
सर्गच्छेकधी और पत्ता च रहा हो ॥ ३३ ॥

क्षपितस्तस्तं विचरन्तमग्घरे
पतन्निराजानिखसिञ्जसेविते ।
समेत्य तं मादुतथेगधिक्रमः
क्रमेण जग्राह च पादुपीर्दहम् ॥ ३४ ॥

उठ बापुके छमान वेग और पराक्रमबाजे क्षपित
हनुमान्भीने पश्चिमा गच्छ, बापु तथा शिदोथे सेवित म्योम-
मार्गमें विचरते हुए उठ राक्षसके पाठ पहुँचकर क्रमशः उसके
शेनों पैर हड़तापूर्वक पकड़ लिये ॥ ३४ ॥

स तं समापिष्य सहास्रशः क्षपि
मंहोतरां गृह्य हवाण्डजेम्बरात् ।
मुमोच वेगात् पितृदुस्वपिक्रमो
महीतले संपति बानरोत्तमाः ॥ ३५ ॥

क्षि तौ अपने पिता बापु देवताके दुस्व पराक्रमी बनर
धिरोमनि हनुमान्ने लिय प्रफर गच्छ बने-बने सर्वोको धुम्यते

हजारों श्रीमद्वाल्मीके राक्षसीकीसे आदिकायने सुन्दरकायने सप्तशतारिणाः सर्ग ॥ ३० ॥
स प्रफर श्रीवामनीनिर्मित मार्गामात्रण अधिकायने सुन्दरकायने सैतन्वीसर्ग सर्ग पूरा हुआ ॥ ४० ॥

अष्टचत्वारिंश सर्ग

इन्द्रवित् और हनुमान्श्रीका युद्ध, उसके दिव्यालयके बचनमें बँधकर
हनुमान्श्रीका राषणके दरबारमें उपस्थित होना

ततश्चु रक्षोऽधिपतिर्महारथा
हनुमतासे निहते कुमारे ।
मगः समाधाय स वषकस्य
समाविद्धोद्भ्रजितं सरोपः ॥ १ ॥

है, उसी तरह उसे हथोरों बार मुझकर बड़े बेजोरे उठ बुद्ध
भूमिमें पटक दिया ॥ ३५ ॥

स भग्नबाहुककटीपयोधरः
क्षरक्षसुक्निर्मयितास्त्रिखोचनः ।
सम्भिन्नसधिः प्रविक्षीर्णवम्भनो
हतः क्षितौ पायुसुतेन राक्षसः ॥ ३६ ॥

नीचे गिरे ही उठपी मुझा, औंघ, कमर और ककटीके
टुकड़े टुकड़े हो गये, कूतकी धारा बहने लगी, शरीरकी
हड्डियों चूर चूर हो गयीं, औंछें धारर निकल मार्गी,
अस्त्रियोंके जोड़ टूट गये और नव-नादियोंके बन्धन क्षिबिद्ध
हो गये । इत तरह वह राक्षस परनकुमार हनुमान्श्रीके हाथसे
माय गया ॥ ३६ ॥

महाक्षपिभूमितले निपीट्य त
चकार रक्षोऽधिपतेर्महद्वयम् ।
महर्षिभिश्चक्रक्षरेः समागतैः
समेत्य भूतैश्च सयस्यधरैः ।

सुरैश्च सेन्द्रैर्चुंशशास्रविषयै
हते कुमारे स क्षयिर्निपीक्षितः ॥ ३७ ॥

अथकुमारको पृथ्वीपर पटककर महाक्षपि हनुमान्श्रीने
राक्षसयान यत्नके हारयमें बहुत बड़ा मय अयथ कर दिया ।
उसके मारे जानेपर नक्षत्र-अयथमें विचरनेवाले महर्षिके,
यक्षों, नागों मृतों तथा इन्द्रसहित देवताओंने बहों एकत्र
होकर बड़े विस्मयके साथ हनुमान्श्रीका दर्शन किया ॥ ३७ ॥

मिहाय तं वदन्नुतोष्मं रणे
कुमारमस सतजोपमेक्षयम् ।

तवेव वीरोऽभिजगाम तोरय
हृतस्ययः काळ इव प्रसाक्ष्ये ॥ ३८ ॥

पुत्रने इन्द्रपुत्र कस्तके छमान पराक्रमी और अक-अक
औंछोवाके अथकुमारका काम तमाम करके वीरवर हनुमान्-
श्री प्रयाके वहातके लिये उचत हुए कायकी मौंछि पुना पुत्र
की प्रतीक्षा करते हुए नादिकाके उसी हारपर च
पहुँचे ॥ ३८ ॥

तदनन्तर हनुमान्श्रीके द्वारा अथकुमारके मारे धनेपर
एखलौका स्वामी महाअय यत्न अपने मनको फिरी तरह
सुक्षि करके रोपते ककठठा और देवताओंके दुस्व पराक्रमी
कुमार इन्द्रवित् (मेघनाद) को इत प्रफर न्याहा बी—॥

त्वमस्त्रविच्छिन्नभृतां धरिष्ठः
सुरसुराप्यामपि शोकदाता ।
सुरेषु सेन्द्रेषु च हृद्यकर्मा
पितामहाराधनसखिताम्रः ॥ २ ॥

येय । तुमने त्रयावीथी आराधना करके अनेक प्रकार के यज्ञोक्तान प्राप्त किया है । तुम अस्त्रवेद्या, धारण-परिवर्तनो मेघ तथा देवताओं और असुरोंकी भी शोक प्रदान करनेवाले हो । इन्द्रविरहित सम्पूर्ण देवताओंके समुदायमें तुम्हारा पराक्रम देखा गया है । २ ॥

त्वदस्त्रबलमासाद्य ससुराः समदहृणाः ।
न दोह्युः सारं स्यात्तुं सुरेश्वरसमाभिठा ॥ ३ ॥
तुम्हारे आक्रमणमें रहनेवाले देवता और मन्वृत्तय भी समरभूमिमें तुम्हारे अस्त्र-बलका सामना होनेपर टिक नहीं सके हैं ॥ ३ ॥

न कश्चित् त्रिषु लोकेषु संयुगेन गतधमा ।
मुद्रवीर्यपिभिर्गुतश्च तपसा चाभिरक्षितः ।
वेशकालप्रधानश्च रघवेश मतिस्त्रयमा ॥ ४ ॥

लीलें को छोड़ेंगे तुम्हारे (तथा वरुण कोई ऐसा नहीं है, जो बुद्धिसे यफ्तान न हो । तुम अपने बाहुबलसे तो सुरक्षित हो ही, तपस्साके बलसे भी पूर्णतः निरापद हो । वेश-प्रकम्प हल रखनेवालोंमें प्रधान और बुद्धिकी दृष्टिसे भी सर्वश्रेष्ठ तुम्हीं हो ॥ ४ ॥

न तेऽस्त्यशफ्य समरेषु कर्मणां
न तेऽस्त्यकार्यं मतिपूर्वमश्रजे ।
न सोऽस्ति कश्चित् त्रिषु संमर्षेषु

न येद् परतेऽस्त्रबलं बलं च ॥ ५ ॥
तुममें तुम्हारे शीरोक्षित कर्मोंके द्वारा कुछ भी अशान्त नहीं है । शास्त्रानुसृत्य तुम्हिएपूर्वक रावकार्यका विचार करते कम्प तुम्हारे शिरो कुछ भी अस्मम नहीं है । तुम्हारा कोई भी विघ्न ऐसा नहीं होता, जो कार्यका साधक न हो । त्रिलोकीमें एक ही ऐसा वीर नहीं है जो तुम्हारी धार्मिक शक्ति और अस्त्र-बलसे न जानता हो ॥ ५ ॥

ममालुर्क्यं तपसो बलं च ते
पराक्रमश्चास्त्रबलं च सयुगे ।
न त्वां समासाद्य रणावमर्से

मनः श्रम गच्छति मिथितार्थम् ॥ ६ ॥
'तुम्हारा तपोबल, बुद्धिविषयक पराक्रम और अस्त्र-बल मेरे ही समान है । युद्धक्षेत्रमें तुमको पाकर मेरा मन कभी केद या विचारको नहीं प्राप्त होता; क्योंकि इसे वह निश्चित विचार रहता है कि विजय तुम्हारे पक्षमें होगी ॥ ६ ॥
निहताः किंकराः सर्वे जम्बुमाधी च राजसः ।
भमाप्यपुत्रा यीराध पञ्च सेनाप्रगामिनः ॥ ७ ॥

रेलो, किंकर नामवाले समस्त राजस मार डाले गये ।

जम्बुमाधी नामक राजस भी क्षीणित न रह सक्य, मन्त्रीके साथी वीर पुत्र तथा मेरे पाँच सेनापति भी कम्पके गाळमें पड़े गये ॥ ७ ॥

बलानि सुससृष्टानि साश्वमागरप्यानि च ।
सहोदरस्ते धृतिः कुमारोऽक्षय्य सुदितः ।
न तु तेज्ज्वेध मे सारो यस्त्वध्वरिनिपूवृत्न ॥ ८ ॥
'उनके साथ ही हाथी, घोड़े और खोसवित मेरी बहुत-सी बल-वीर्यसे सम्पन्न सेनाएँ भी नष्ट हो गयी और तुम्हारा प्रिय कन्य कुमार अश्व भी मार जाय्य गया । शत्रु-सूरत । मुझमें जो तीनों कोशोंपर विषय पानेकी शक्ति है, वह तुम्होंमें है । परन्तु जो श्रेय मारे गये हैं, उनमें वह शक्ति नहीं थी (इसलिये तुम्हारी विजय निश्चित है) ॥ ८ ॥

इत्थं च हृद्य निहत महत् बल
कयोः प्रभार्यं च पराक्रमं च ।
त्वमात्मनश्चापि निरीक्ष्य सार
कुञ्चय वेगं स्वबलानुकरणम् ॥ ९ ॥

'इस प्रकार अपनी विद्याका सेनाका संसार और उस जानकर प्रभाव एवं पराक्रम देखकर तुम अपने बलका भी विचार कर लो फिर अपनी शक्तिके अनुसार उद्योग करो ॥ बलावमर्षस्त्वपि संनिष्ठसे यथा गते धाम्यति शान्तशशौ ।

तथा समीक्ष्यतमबलं परं च
समारभस्वास्त्रभृतां धरिष्ठ ॥ १० ॥
'धारणधारिणोंमें श्रेष्ठ वीर । तुम्हारे सब शत्रु शान्त हो चुके हैं । तुम अपने और पराये बलका विचार करके ऐसा प्रयत्न करो, जिससे बुद्धभूमिके निकट तुम्हारे पहुँचते ही मेरी सेनाका विनाश कर जाय ॥ १ ॥

न वीर सेना गणशो च्यवन्ति
न वज्रमादाय विद्यालक्षारम् ।
न माबतस्यास्ति गतिप्रमार्णं
न चाद्रिकल्पः करप्येन हन्तुम् ॥ ११ ॥

'वीरकर । तुम्हें अपने साथ सेना नहीं के धानी चाहिये क्योंकि वे सेनाएँ समूह-भी-समूह या तो माग जाती हैं या मारी जाती हैं । इसी तरह अधिक धीर्यता और कठोरतासे युक्त बल केवल भी अपनेकी ओर आकर्षणका नहीं है (क्योंकि उसके ऊपर वह भी स्वयं टिक हो चुक है) । उस शत्रुपुत्र हनुमान्की गति अथवा शक्तिका कोई भाव-लोक या हीम्य नहीं है । वह अग्नि-दुग्ध तेषली जानर किसी साधनविशेष से नहीं मारा जा सकता ॥ ११ ॥

तमेवमर्से प्रसमीक्ष्य सम्यक्
स्वकर्मसाम्प्राप्य समाहितारमा ।
सुररथ दिव्यं धनुषोऽस्य धीर्यं
प्रज्ञाहृतं कम समारभस्य ॥ १२ ॥

‘इत एव शालोका अक्षी तरह विचार करके प्रतिपक्षीमें अपने समान ही पराक्रम समझकर तुम अपने विचित्रे प्रकार कर लो—शावधान हो जाओ। अपने इस अनुपके दिव्य प्रभावसे नाद रखत हुए आगे बढ़ो और देख पराक्रम करके दिखाओ, जो साक्षी न जाय ॥ १९ ॥

न खलित्यर्षं मतिभ्रेष्ट यस्या सम्प्रेयाम्यहम् ।
इय च राजधर्माया इत्प्रथ्य च मतिर्मता ॥ १३ ॥

‘उत्तम बुद्धिवाले वीर । मैं तुम्हें आ पीते संकटमें भेज रहा हूँ; यह यद्यपि (लेहकी दृष्टिसे) उचित नहीं है; तथापि भेज यह विचार राजनीति और क्षत्रिय-धर्मके अनुकूल है ॥ १३ ॥

नानाशास्त्रेषु संग्रामे वैशारद्यपरिचय ।
अक्षयमेव शोद्धर्यं कर्म्यञ्च विज्ञयो रणे ॥ १४ ॥

‘युद्धमन ! वीर युद्धको संग्राममें नाना प्रकारके शास्त्रों की कुशलता अवलम्ब प्राप्त करनी चाहिये, साथ ही युद्धमें निश्चय पनेकी भी अभिज्ञान रखनी चाहिये ॥ १४ ॥

ततः पितृस्तवुमचर्न निशम्य
मपुंसिषं वससुतप्रभावाः ।

चक्रत् भर्तारमक्षित्वरेण
रणाय वीरा प्रतिपद्युद्धिः ॥ १५ ॥

अपने पिता राक्षसराज राक्षसके इस कत्तको सुनकर देवताओंके समान प्रभावशाली वीर येषनाहने युद्धके लिये निश्चित विचार करके बरहीसे अपने स्वामी राक्षसकी परिक्रमा की ॥ १५ ॥

तवस्तैः स्वगणैरिष्टंरिन्द्रजित् प्रतिवृजितः ।
युद्धाद्यतङ्कुरोत्साहः समाम सम्पद्यत ॥ १६ ॥

तपश्चात् तमामें बैठे हुए अपने इसके प्रिय राक्षसों-हाथ भूरि-भूरि प्रवृत्त हो इन्द्रजित् विद्वत् युद्धके लिये मनमें बलाह भरकर संग्रामभूमि की ओर जानेका उद्यत हुआ ॥ भीमान् परमविद्याशास्त्रों राजसाम्यपिठः सुतः । निजगाम मदातथाः समुद्र इय पथणि ॥ १७ ॥

उठ समय प्रकृत उमलदण्डके समान विद्याल नेत्रोशाका यष्टयव यवयव पुत्र महावेम्बली भीमन् इन्द्रजित् पथके दिन उमड़ हुए समुद्रके समान विद्येन हर्ष और उद्यते हुए ही यत्रमरुते बाहर निकला ॥ १७ ॥

स पश्चिवाजोपमनुस्यवरी
व्याघ्रांश्चतुर्भिः स तु तीक्ष्णवृष्टैः ।

रथं समायुद्धमसहयगः
रत्नादराट्स्त्रिदिरिन्द्रकृत्यः ॥ १८ ॥

विजय रथ चतुर्भेद लिये अठराय बह इन्द्रके समान पराक्रमी यवराट् रथराट् १८६८ समान तीव्र गति तथा तीव्र चतुर्भेद पद विद्यान उा हुए उत्तम रथार भाव्य हुआ ॥ १८ ॥

स रथी धर्मिणां श्रेष्ठः शस्त्रज्ञोऽस्त्रविदां वरा ।
रथेनान्धिययी क्षिप्रं हनुमान् यय सोऽभवत् ॥ १९ ॥

महान-शस्त्रोंका शत, अस्त्रवेत्ताओंमें अग्रगण्य और अनुभवीमें श्रेष्ठ वह रथी वीर रथके हाथ वीर उठ साजस ग्या; यहाँ हनुमान्की उतकी प्रतीक्षामें बैठे थे ॥ १९ ॥

स तस्य रथनिर्घोषं ज्यास्यत् क्षयुर्मुक्कस्य च ।
निशम्य हरिषीरोऽसी सम्प्रहृष्टतरोऽभवत् ॥ २० ॥

उसके रथकी परंपराहट और अनुपकी प्रवाहाका गम्भीर श्रेष्ठ सुनकर मानवीर हनुमान्की मत्प्राप्त हर्ष और उद्यते मर गये ॥ २० ॥

इन्द्रजिहापमात्राय शितशस्याञ्च सायकान् ।
हनुमस्तमभिप्रेत्य अगाम रणपण्डितः ॥ २१ ॥

इन्द्रजित् युद्धकी कलामें प्रवीण था । वह अनुप और वीरके अग्रमगताओं सायकोंको डेकर हनुमान्कीको लम्ब करके आगे बढ़ा ॥ २१ ॥

तस्मिन्नतः संघति जातहर्षे
रणाय शिगच्छति वाण्यपत्नौ ।

दिशश्च सर्वाः कलुषा यमुद्रु
सुंगाम्ब रौद्रा बहुधा विनेतुः ॥ २२ ॥

इसमें हर्ष और उत्साह तथा हाथोंमें बाण डेकर वह यहाँ ही युद्धके लिये निकला त्यों ही तत्पूर्व दिखाई मस्तिन हो गयी और भयानक पशु नाना प्रकारसे आर्तनाह करने लगे ॥ २२ ॥

समागतास्तत्र तु नागपक्षा
महर्षयश्चक्रवराज सिन्धवाः ।

नभः समावृत्य च पक्षिसह्रा
विनेतुकक्षीः परममहृष्टाः ॥ २३ ॥

उठ समय वहाँ नाग, पक्ष, महर्षि और नक्षत्र-मण्डलमें विचरनेवाले छिद्रगण भी आ गये । लय ही बहिर्घोषे वपुषाय भी भाव्यशक्ति आन्धरित करके अवलम्ब हर्षमें माकर उद्यतेसे बहचरने लगे ॥ २३ ॥

आयात स रथ इन्द्रा तुर्षमिन्द्रपुत्र कपिः ।
ननात् च महाबाहौ प्यधर्षत च येगवान् ॥ २४ ॥

इन्द्राकर विद्ववाकी जगसे मुण्डोभित रथार पैठकर शोणवर्षक आते हुए येषनाहकी देलकर वेगवाकी यान वीर हनुमान्ने पड़े आरते गर्जन की और अपने घटीरके बढ़ाया ॥ २४ ॥

इन्द्रजित् स रथं दिव्यमाधितक्षियकमुक्ता ।
पनुर्षिस्वरण्यामास तद्विद्वृजितनिःस्यमम् ॥ २५ ॥

उठ दिव्य रथार पैठकर विविधभनुष धारण करनेवाले इन्द्रजित् विष्णुकी वरगहाहक समान उद्यार करनेवाले अपने अनुपध रथीय ॥ २५ ॥

ततः समेतावतितीक्ष्णयोगी
महाभङ्गी तौ रणनिर्विशङ्गी ।
कपिश्च रणोऽधिपतेस्तनुजाः
सुपसुरेन्द्राधिप पद्मवैरी ॥ २६ ॥
त्रि तो मन्वन्त दुःख वेग भोर महान् बन्धे सम्पन्न
तो पुत्रने निर्भय होकर आगे बढ़नेवाले थे दोनों भीर कपिचर
उत्पन्न तथा राघवराजकुमार मेघनाद परस्पर वैर बंधकर
देखन इन्द्र और देखवान बहिष्की भौंति एक दूसरेसे
मिड़ गये ॥ २६ ॥

स तस्य धीरस्य महारथस्य
धनुमता संयति सम्मतस्य ।
शरप्रवेगं व्यहनत् मधुद
ब्रह्मचार मार्गं पितुरप्रमेयः ॥ २७ ॥
अप्रमेय शक्तिशाली हनुमान्भी विद्याळ शरीर धारण
करके अपने पिता बाणुकेमार्गपर विचरने और युद्धमें सम्मानित
होनेवाले उध पनुर्पर महारथी राघवधीरके बाणोंके महान्
वेगसे ध्वंस करने लगे ॥ २७ ॥

ततः शराम्नापततीक्ष्णशस्याम्
सुपधिपः काञ्चनधियपुङ्गवम् ।
मुमोक्ष धीराः परधीरहस्ता
सुसततान् वज्रसमानधैवान् ॥ २८ ॥
इत्नेहीमे शत्रुवीरोंका संहार करनेवाले इन्द्रकिन्ने वही
और तीक्ष्ण नेत्र तथा सुन्दर पर्येवाले, छेनेकी विचित्र
पंकेसे सुघोमित और वज्रके समान वेगशाली बाणोंको ब्रह्म
धर छोड़ना आरम्भ किया ॥ २८ ॥

ततः स तस्माद्गनिःस्यन स
सुदृङ्गमेरीपद्महस्यम स ।
विदुष्यमाभस्य स कर्मुफस्य
निशाम्य धीय पुंसदत्पपात ॥ २९ ॥
उध समन उठके रथकी पर्येवाइ, मूढके मेरी और
पद्म भादि बाणोंके शब्द एक बहिनो जाते हुए वनुपकी
दंभर झुनकर हनुमान्भी फिर ऊपरकी ओर उठके ॥ २९ ॥
शरपाममत्तरेष्वाणु ध्यावर्तत महाकपिः ।
हरिस्तस्याभिहक्ष्यस्य मोक्षार्थं हृक्ष्यसमग्रम् ॥ ३० ॥

ऊपर जाकर वे महाकपि बानरधीर बन्ध वेचनेमें
प्रसिद्ध मेघनादके साथे हुए निघानेको ध्वंस करते हुए
उठके छोड़े हुए बाणोंके बीजके क्षीणतापूर्वक निकम्पकर
बन्धेको बचाने लगे ॥ ३० ॥
शरपाममत्तस्तस्य पुंसः क्षमभिधर्तत ।
मस्यार्थं हस्तौ हनुमानुस्यपातामिखारामजः ॥ ३१ ॥
वे पनकुमार हनुमान् बार्दक्षर उधके बाणोंके छानने
आकर बड़े हो जाते और फिर दोनों हाथ फैलकर बात-धी-
रधने उड़ जाते थे ॥ ३१ ॥

तावुभौ वेगसम्पन्नौ रणकर्मविद्यारथौ ।
सर्वभूतमनोप्राहि ब्रह्मर्तुर्पुंससुचमम् ॥ ३२ ॥
वे दोनों भीर महान् वेगसे सम्पन्न तथा युद्ध करनेकी
कृष्णमें पटुर थे । वे सम्पूर्ण मृतोंके विचक्रे आकर्षित करने
वाला उद्यम युद्ध करने लगे ॥ ३२ ॥

हनुमतो येव न राक्षसोऽन्तरं
न माकस्तिस्तस्य महात्मनोऽन्तरम् ।
परस्परं निर्विषहौ वभूवतुः
समेत्य तौ देवसमानधिकमौ ॥ ३३ ॥
वह उद्यम हनुमान्भीपर प्रहार करनेका अबसर नहीं
पाता था और पनकुमार हनुमान्भी भी उध महात्मन्की
धीरक्रे पर इयानेका मौका नहीं पाते थे । देवताओंके समान
परकृष्ण वे दोनों भीर परस्पर मिड़कर एक दूसरेके क्निने
दुःख हो उठे थे ॥ ३३ ॥

ततस्तु ब्रह्म्ये स विहस्यमाने
शरेष्यमोघेषु स सम्पतस्तु ।
जगाम क्षिप्तां महतीं महात्मा
समाधिसंयोगसमाहितारामा ॥ ३४ ॥
ब्रह्मवेचके क्निने लड़ाये हुए मेघनादके वे अमोघ बाण
भी बन्ध ध्वंस होकर गिर पड़े, तब ब्रह्मवपुर् बाणोंका संघान
करनेमें उद्यम एकप्रविचर करनेवाले उध महात्मन्की धीरक्रे
बड़ी क्निता हुई ॥ ३४ ॥

ततो मति राक्षसराजस्तु
ब्रह्मचार तस्मिन् हरिधीरमुन्ने ।
अयध्वर्ता तस्य कपेः समीक्ष्य
कथ निगच्छेदिति निग्रहार्थम् ॥ ३५ ॥
उन कपिभेदको अबध्व्य समझकर राक्षसराजकुमार मेघ-
नाद बानरधीरोंमें प्रयुक्त हनुमान्धीके विषयमें यह विचार
करने लगा कि 'क्यों किती तब कैर कर लेन आदिने, परंतु
ये मेरी पकड़ने आ कैसे उठते हैं ?' ॥ ३५ ॥

ततः पैतामहं धीराः सोऽन्तरमखयिर्वा धराः ।
संबुधे सुमहातेजास्तं हरिपपर प्रति ॥ ३६ ॥
त्रि तो अज्ञानेताओंमें भेद उध महातेजस्वी धीरने उन
कपिभेदको बन्ध करके अपने वनुपपर ब्रह्मकी दिने हुए
अज्ञाका संघान किया ॥ ३६ ॥
अबध्व्योऽयमिति ज्ञात्वा तमक्रेणाकृतस्ववित् ।
निजप्राह महापार्थुं माकृतारमजमिन्द्रजित् ॥ ३७ ॥
अकृतारके ज्ञाता इन्द्रकिन्ने महाबाहु पनकुमारको
अबध्व्य जानकर उधे उध अज्ञते बंध किया ॥ ३७ ॥

तेन बद्धस्ततोऽन्नेयं राक्षसेन स बानरा ।
अभवत्निर्विषेयम् पपात स महीतले ॥ ३८ ॥
राघवराज उध मक्रेते बंध क्निने जानेपर बानरधीर
हनुमान्भी निरवैध होकर धूम्रपर गिर पड़े ॥ ३८ ॥

ततोऽथ युष्वा स त्वत्प्रबन्ध
प्रभोः प्रभावात् विगताह्वयः ।
पितामहानुग्रहमारमस्य
विश्रित्तयामास हरिप्रसीरः ॥ ३९ ॥

अपने जो ब्रह्मज्ञते बौधा हुआ जानकर भी उन्हें भगवान् ब्रह्माके प्रभाके हुमान्शीके बोधी-धी भी प्रकाश अनुभव नहीं हुआ । वे प्रयुक्त जानकीपर अपने ऊपर ब्रह्माकीके महान् अतुप्रदक विचार करने लगे ॥ ३९ ॥

ततः स्थापयन्मुचेर्मन्त्रैर्ब्रह्मात्मं चाभिमन्त्रितम् ।
हनूमांशिक्रित्तयामास परवानं पितामहात् ॥ ४० ॥

जिन मन्त्रोंके रेखा सम्यक् स्वनम् ब्रह्मा है, उनके अभिमन्त्रित हुए उस ब्रह्मात्मके रेखाकर हुमान्शीके पितामह ब्रह्माके अपने किये मिले हुए बरवानका स्थाप हो आया (ब्रह्माकीने ठम्ही कर दिया या कि मेरा अक्ष हुम्ही एक ही सुहृत्मी अपने बन्धनते मुक्त कर देगा) ॥ ४० ॥

न मऽस्य बन्धस्य च ह्यकिरस्ति
पिमोक्षणे लोकायुगेः प्रभावात् ।

इत्येवमेवं विश्रितोऽस्यबन्धो
मयाऽऽत्मयोनोरनुवर्तितस्यः ॥ ४१ ॥

फिर वे लेकने लगे 'भोकरुव ब्रह्माके प्रभाके सुहृत्मे इत अक्षके बन्धनते मुक्तघरा पनेकी शक्ति नहीं है—ऐसा मान-कर ही इन्द्रकिये सुहृत् इत प्रकर बौधा है तथापि सुहृत् भगवान् ब्रह्माके सम्मन्त्रार्थ इत अक्षबन्धनका अनुकरण करना चाहिये' ॥ ४१ ॥

स धीर्यमक्रस्य कपिर्बिचार्य
पितामहानुग्रहमारमस्य ।

विमोक्षार्थं परिश्रित्तयिवा
पितामहाहामनुवर्तते स ॥ ४२ ॥

कपिमेह हुमान्शीने उस अक्षकी शक्ति, अपने ऊपर पितामहकी कृपा तथा अपनेमें उसके बन्धनते मुक्त करनेकी सम्पूर्ण—इन तीनोंपर विचार करके अन्तमें ब्रह्माकीकी आज्ञाका ही अनुकरण किया ॥ ४२ ॥

अस्त्रेणापि हि बद्धस्य भयं मम न जायते ।
पितामहमहेन्द्रार्थ्यं रक्षित्तयामिच्छेन च ॥ ४३ ॥

उनके मनमें यह बात आयी कि इस अक्षके बंध जानेपर भी मुझे कोई भय नहीं है। क्योंकि ब्रह्मा इन्द्र और यमुदेवता तीनों मेरी रक्षा करते हैं ॥ ४३ ॥

प्रहमे चापि रक्षोभिर्महम्ने गुण्यवर्तितम् ।
पक्षसेन्द्रेण सवावसासात् पृथग्नु मां परे ॥ ४४ ॥
पक्षसेन्द्रेण पक्षके बन्देनें भी मुझे महान् काम ही सिखायी देता है क्योंकि इसके मुझे पक्षसेण राजके लय बतकीत करनेका अवसर मिलेगा । अतः धनु मुझे पक्ष कर के चले ॥ ४४ ॥

स निश्चितार्थः परधीरहन्ता
समीक्ष्यकारी विनिवृत्तचेष्टः ।
परैः प्रसङ्गाभिगतैर्निगूढ
नयात् तैस्तैः परिभस्व्यंममः ॥ ४५ ॥

ऐसा निश्चय करके विचारपूर्वक कार्य करनेवाले धनु धीरोंके धारक हुमान्शी निरचेष्ट हो गये । फिर उसे सभी धनु निश्च आकर उन्हे बन्धपूर्वक पकड़ने और बँट करने लगे । उस समय हुमान्शी, मानो कष्ट या खे ही। इत प्रकर बीसते और बद्धयते थे ॥ ४५ ॥

ततस्ते पक्षसा ह्य्या विनिवृत्तमरिदम्म् ।
बन्धुः शपवस्त्रैश्च हुमधीरेभ्य सहते ॥ ४६ ॥

उत्थोंने रेखा अब यह हाथ पैर नहीं दिखाए, तब वे धनुहत्या हुमान्शीके सुतरी और शूनोंके वस्त्रको बद्धक बन्दे गये रस्त्रेते बँधने लगे ॥ ४६ ॥

स रोषया गत परैश्च पथ्य
प्रसङ्ग धीरैरभिगृह्यै च ।

कौतूहलार्मा परि रक्षसंभ्रो
पृच्छुं व्यपस्येदिति निश्चितार्थः ॥ ४७ ॥

धनुधीरोंने जो उन्हें हठपूर्वक बोधा और उन्का निरस्त्रक किया, वह तब कुछ उत समय उन्हें अच्छा लगा । उनके मनमें यह निश्चित विचार हो गया या कि ऐसी अवस्थामें पक्षतया राज सम्भवतः कौतूहलपण मुझे देखनेकी शक्ता करेगा (इसीकिये वे तब कुछ धर रहे थे) ॥ ४७ ॥

स बद्धस्तेन बद्धकेमविमुक्तोऽस्त्रेण धीर्यवान् ।
अक्षवन्धः स चार्थ्यं हि न बन्धनमुवर्तते ॥ ४८ ॥

बद्धके रस्त्रेते बंध जानेपर पराक्रमी हुमान् ब्रह्माके बन्धनते मुक्त हो गये क्योंकि उस अक्षका बन्धन किये पहले बन्धनके लय नहीं रहता ॥ ४८ ॥

अथेन्द्रमित्तं तुमधीरवद्य
पिचार्य धीरः कपिपक्षत्र

विमुक्तसंश्लेष जगाम शिस्ता
मन्वेन बद्धोऽप्यनुवर्तते

अहो महत् कर्म कृत निर
न
पुमस्य भावो ॥ ४९ ॥

प्रपतते सशयिता।
धीर इन्द्रकिये अब देला कि यह

केवल हृष्टके बद्धके बंधा है दिव्या हो शुभ है तब उसे बधी शिस्ता क्या—पृथुवी बद्धमोले बंधा हुआ न बन्धनमें बंधे हुएकी धीरि बर्ताव इन उन्धोंने मेरा किया हुआ न कर दिया । इन्होंने मन्त्री शक्तिपर

—

—

100

+

.



रावणकी सभामें हनुमाद्

न भ्रम भव एक वार भ्रम्य हो जाता है तब पुन
मूषी वार इसका प्रयोग नहीं हो सकता । भव तो विद्वयी
हकर भी इन तब कंग संयमने पड़ गये ॥ ४१५ ॥

मन्त्रेण हनुमान् मुक्तो नाभ्यान्ममवबुध्यते ।
हृष्यमाणस्तु रक्षोभिस्तैश्च दम्भैर्निपीडितः ॥ ५१ ॥
हृष्यमाणस्ततः क्रूरै रक्षसैः काळमुचिभिः ।

सनीर्यं रक्षसेन्द्रस्य प्राकृत्यपत स वानरा ॥ ५२ ॥

हनुमान् ही चपनि मरुके कचनते मुक्त हो गये थे
वे भी उन्होंने ऐसा बतवा किया; मन्त्रों के इत बतको
कनते ही न हों । क्रूर रक्षक उन्हें कचनते ही देते
भैरे कडार मुकेंते मारते हुए खीवकर ले चले । इस
कहने काननर रक्षक रक्षकके पास पहुँचाये गये ॥ ५१-५२ ॥

मधेन्द्रजित् त प्रसमीक्ष्य मुक्त
मन्त्रेण पञ्च तुमबीरसुभैः ।

व्यदर्शयन् तत्र महाबलं त
हरिप्रबीरं सगणाय राज्ञे ॥ ५३ ॥

उन इन्द्रचित्ने उन महाबली बानरहीको कथाकथे
कृत तथा हृष्यके ककडोंकी रक्षिकोंके भी देकर उन्हें
सौख्यकथनेकहित राख राखकी विद्याया ॥ ५३ ॥
त मत्तमिय मातङ्ग वज्र कपिवरोत्तमम् ।

पक्षसा पक्षसम्राज्यं रावण्याय म्यबेदयम् ॥ ५४ ॥

मत्तम हाथीके कनन बने हुए उन कानपिरोमपिके
गकने राखतया राखकी देनामे कर्मकित कर दिया ॥ ५४ ॥

काऽप कस्य कुतो वापि किं कार्यं कोऽभ्युपाभयः ।
एति पक्षसपीपया ह्यु सञ्जिह्विरे कृपाः ॥ ५५ ॥

उन्हें देकर राखकी आपसमें करने क्ये—पह
कैने है ? जिहवा पुत्र ना केवक है ! कहेसि अन्धा है !
प्रां इवध क्या कान है ! तथा इसे तहाय देनेबाका
कैने है ! ॥ ५५ ॥

हृष्यता दृष्ट्वा वापि भक्ष्यतामिति चापरे ।
पक्षसास्त्रं संकृत्वाः परस्परमयाह्वयन् ॥ ५६ ॥

कुछ कृतरे राख को क्यथ क्येपते भरे थे परस्पर
एव मकर बोधे— इस बानरको मार बाको मक्य बाको
न का बाको ॥ ५६ ॥

हृष्यते भीनप्रानायने बाकमीकीये आदिकान्ते सुन्दरकाण्डेऽष्टमः सर्गः ॥ ४८ ॥

एव कान मोरन्तं किन्तिनिह कर्तव्यमप्य श्रीकाम्यके सुन्दरकाण्डेने म्बडकीसर्वां सर्वं पूत हुवा ॥ ४८ ॥

मतीत्य मार्गे सहसा महाम्ना
स तत्र रक्षोऽधिपयान्मुले ।

ददर्श राक्षः परिखारवृन्दान्
पृथ महारत्नविभूषितं च ॥ ५७ ॥

महाम्ना हनुमन् की वारा राक्षा ते करक जब सहसा
राखतया राखके पास पहुँच गये; तब उन्होंने उनके
परलोकके समीन बहुतसे बड़े-बूढ़े देवकीये और बहुतस्य
रखोंके विभूषित तम्यमकनको भी देखा ॥ ५७ ॥

स ददर्श महातेजा रावणः कपिसत्तमम् ।
रक्षोभिर्भिडताकूरैः हृष्यमाणमितस्ततः ॥ ५८ ॥

उत समय महातेजसो राखनेने निकट आकरवाक
राखलोकके द्वारा इधर-उधर कधीरे जाते हुए कपिभेद
हनुमान् कीको देखा ॥ ५८ ॥

राक्षसाधिपतिं चापि ददर्श कपिसत्तमम् ।
तेजोबलसमायुक्तं तपस्तमिव भास्करम् ॥ ५९ ॥

कपिभेद हनुमान्ने भी राखतया राखकक तपत हुए
सूर्यके समान तेज और कछते तमच देखा ॥ ५९ ॥

स रोपसर्पतिं तताम्रहृदि
वृंशाननस्तं क्षरिमम्बुबेक्ष्य ।
भयोपविष्टान् कुक्षशीलवृन्दान्
समाविशत् त प्रति मुक्ष्यमन्मनीम् ॥ ६० ॥

हनुमान् कीको देखकर राखक राखकी ओलें रोयते
बाकक और काक हो गयीं । उसने नहीं बैठे हुए कुखीन
मुषीक और मुख्य मन्त्रिकोंको उनसे परिक्रम दूधनेक सिन्धे
भाया ही ॥ ६० ॥

यथाक्रम तैः स कपिश्च पृष्टः
क्षयार्थमर्षस्य च मूलमावौ ।
निबद्धयामास हरीम्बरस्य

कृतः सक्ताशात्रहमागतोऽसि ॥ ६१ ॥

उन करने पहले कृष्ण कपिभर हनुमान्ने उनका
कार्य प्रसोकन तथा उसके नूक करणके विषयमे पूछा ।
तब उन्होंने यह बतवाया कि मैं कानराय सुमीयके पाससे
अनक कृत होकर आया हूँ ॥ ६१ ॥

एकोनपञ्चाशः सर्गः

रावणक प्रभावशाली स्वरूपको देखकर हनुमान् कीके मनमें अनेक प्रकारके चिंथाओंका उठना
कत स कनया तस्य विक्षितो भीमबिक्रमः । इन्द्रचित्तं उच नीटिभूज कर्मते विक्षितं तथा राखके
हनुमान् मधनाकाका रक्षाऽधिपमथस्तत ॥ १ ॥ शीतहृण्य आरि कनेसि कुतित हो रास काक भलें

किमे सर्वं पर कृषी हनुमान्नीने राक्षसराज रावणकी
ओर देखा ॥ १ ॥

आजमान महाहोष काञ्चनेन विराजता ।
मुक्तामालयुनेनाय मुकुटेन महायुतिम् ॥ २ ॥

वह महादेवकी राक्षसराज सेनेके बने हुए बहुमूल्य एवं
शीशमान् मुकुटके विषमें मोतियोंका अम किया हुआ या
उत्पलित हो रहा था ॥ २ ॥

वज्रसंयोगसयुक्तैर्महार्हमणिविप्रैः ।
हैमैराभरजैश्चिरीर्मनसेष प्रकल्पितैः ॥ ३ ॥

उत्के विभिन्न महामे सेनेके विभिन्न आभूषण ऐसे
मुन्दर जगते ये मानो ममसिद्ध संकल्पद्वारा बनाने गये हों ।
उनमें हीरे तथा बहुमूल्य मणिरत्न बड़े हुए थे, उन
आभूषणोंके रावणकी अमृत छोमा देखी थी ॥ ३ ॥

महार्हसौमस्यपीतं रत्नसम्पन्नकपितम् ।
स्वनुकृतं विविधाभिर्विविधाभिश्च भक्तिभिः ॥ ४ ॥

बहुमूल्य रेशमी रत्न उत्कृष्ट शरीरकी घोमा कदा रहे
थे । वह अत्यन्त अमृतसे चर्चित था और मूर्ति-मूर्तिकी
विभिन्न रचनाओंके युक्त मुन्दर अङ्गणोंके उत्कृष्ट सारा
सङ्ग सुघोमित हो रहा था ॥ ४ ॥

विशिषं दशमैश्वर्य रत्नसौमैर्महार्हिनैः ।
वृक्षतीक्ष्णमहावृष्ट प्रकम्बं दशमच्छदैः ॥ ५ ॥

उत्कृष्ट मूर्त देवकी श्रेय, अत्यन्त और मयावनी
थी। उनसे और कमकीही शैली एवं बड़ी-बड़ी बाहों तथा सबे
बने ओठोंके कारण उत्कृष्ट विभिन्न घोमा देखी थी ॥ ५ ॥
शिरोभिर्दशभिर्घोरैः आजमानं महौजसम् ।

नानाध्याकसमाकीर्णैः शिखरैरिष मम्बरम् ॥ ६ ॥

शिर हनुमान्नीने देखा, अपने दस महाशैले सुघोमित
महाशरी रावण नाना प्रकारके तपोसे भरे हुए अनेक
शिखरोंद्वारा घोम्र पानेवाले मन्दराजके समान प्रतीय
हो रहा है ॥ ६ ॥

बीजाक्षनक्षयप्रकम्पं हारेषोरसि राजता ।
पूर्वधम्प्राभवकप्रेण सबाळाकमिषाम्बुबम् ॥ ७ ॥

उत्कृष्ट शरीर कास कोपलेके डेरकी मूर्ति अक्षा या
और बधःसख अमकीके हारसे विभूषित था । वह पूर्व
धम्प्रेके समान मनोरम मुक्कद्वारा प्रातःकालके चर्चसे युक्त
मेघकी मूर्ति घोम्र था रहा था ॥ ७ ॥
बाहुभिर्दशकेयूरैश्चाम्बुनेत्रमकल्पितैः ।

आजमानाङ्गैर्भीमैः पञ्चशरीरैरिषोरनैः ॥ ८ ॥

किन्तु के पूर कैंसे य उत्तम अमृतका लेप हुआ
था और अमकीके अङ्गरे घोमा दे रह थे उन मन्कर
मुक्कमेंसे सुघोमित रावण देण अम पड़ता था, मन्दे
पौष तिरवाक अनेक तपोसे सेकित हा रहा था ॥ ८ ॥

महति सजातिके विन्ने रत्नसयोगविभिते ।
उत्तमास्तरणाक्षीर्णे सूपविष्टं वरासमे ॥ ९ ॥

वह सजातिकमणिके बने हुए विषाक एवं सुन्दर
विहावनपर से नाना प्रकारके रत्नोंके संगेसे विभित,
विभिन्न तथा सुन्दर विज्ञानोंसे आच्छादित था, वैश
हुमा था ॥ ९ ॥

अच्छटाभिरत्पर्य प्रमदाभिः समस्तता ।
बाह्यस्यजनहत्याभिरारासमुपसेकितम् ॥ १० ॥

बल और आभूषणोंके लक्ष लकी हुई बहुतसे
युवतियों हापमें चँबर किसे सब ओरसे आच्छाद लकी हो
उत्कृष्ट सेवा करती थी ॥ १ ॥

सुचरैर्य प्रहस्तेन महापाद्येन रक्षता ।
मन्त्रिभिर्मन्त्रतस्वयैर्मिहुम्मेन च मन्त्रिणा ॥ ११ ॥

उपोपविष्ट रक्षोभिश्चतुर्भिर्यक्षुर्षितम् ।
कृत्स्नं परिशुनं लोकं चतुर्भिरिय सागरैः ॥ १२ ॥

मन्त्र-तस्वको बाननेवाके दुर्बल प्रहस महापद
तथा निकुम्भ—ये चार राक्षसकीय मन्त्री उनके पद
बैठे थे । उन चारों उपरोंसे पित हुआ बलमिमन
रावण चार समुद्रोंसे घिरे हुए समस्त मूर्धकरी मूर्ति खेम
पा रहा था ॥ ११ १२ ॥

मन्त्रिभिर्मन्त्रतस्वयैरभ्यैश्च शुभदर्शिभिः ।
आभ्याष्यमानं सन्निवैः सुरैरिय सुरैश्चरम् ॥ १३ ॥

बैठे देवता देवराज इन्द्रकी कल्पना बैठे हैं उत्कृष्ट
प्रकार मन्त्रतस्वके शठा मन्त्री तथा वृत्ते-वृत्ते अमकित
रविच उते आच्छादन दे रहे थे ॥ १३ ॥

मपश्यत् राक्षसपतिं हनूमान्प्रतिदेवसम् ।
वेष्टित मेढकशिखरे सतोपमिष लोपबम् ॥ १४ ॥

इस प्रकार हनुमान्नीने मन्त्रियोंसे घिरे हुए अम
देवकी विहावनाकृष्ट राक्षसराज रावणको मेढकशिखर
विहावन सखक कपूरके समान देखा ॥ १४ ॥

स तैः सम्पीड्यमानोऽपि रक्षोभिर्भीमबिक्रमैः ।
विष्वय परमं गत्वा रक्षोऽपियमवैक्षत ॥ १५ ॥

उन अमकक पटकृषी राक्षसोंके वीक्षित होनेपर
हनुमान्नी अत्यन्त विस्मित होकर राक्षसराज रावणको
देखे देखते रहे ॥ १५ ॥

आजमान ततो हया हनुमान् राक्षसम्बरम् ।
ममसा क्षिप्तयामास तजसा तस्य मोहितः ॥ १६ ॥

उठ शीशघाथी राक्षसराजको अच्छी तरह देखक
बतके देखके मोहित हो हनुमान्नी मन-हीमन इस प्रकार
विचार करने लगे— ॥ १६ ॥

महो रूपमहो धैर्यमहो सत्यमहो युधिः ।
महो राजसरायस्य सर्वसङ्क्षणयुक्तता ॥ १७ ॥

‘महो । इह राजसरायका रूप केषा अद्भुत है । केषा मन्त्रेणः धैर्यं है । केषा भनुपम शक्ति है । और केषा मन्त्रध्वनिक वेद है । इतका सम्पूर्ण राजेनित लक्षणोंत सम्पन्न सेना किन्तु आश्चर्यकी बात है ॥ १७ ॥

यद्यप्यमो न बह्यान् स्यात्स्यं राजसेश्वरः ।
स्याप्य सुरस्यैकस्य सद्यःकस्यापि रक्षिता ॥ १८ ॥

‘यदि इसमें प्रबल अहमं न हूया तो यह राजसरायक एवम इन्द्रवदित सम्पूर्ण देवस्यैकस्य संरक्षक हो सकता था ॥

हृषीकेशी श्रीमद्भागवते वाक्यमीश्वर्ये अथिकान्ये सुन्दरकाण्डे एकोनपञ्चाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

एत प्रकर श्रीमद्भागवते अथिकान्ये सुन्दरकाण्डे अन्वयसर्गो सर्ग पूरा हुआ ॥ ४ ॥



पञ्चाश सर्ग

राषणका प्रहस्तके द्वारा हनुमान्जीसे लङ्कामें आनेका कारण पुछवाना और
हनुमान्का अपनेको श्रीरामका दूत बताना

एगुद्रीय महाबाहुः पिङ्गाक्षं पुरतः स्थितम् ।
येषाम महाऽऽविशे रावणो लोकरावणः ॥ १ ॥
‘कहत ओकेके कबानेकाम महाबाहु राजन भूरी
शेकोशके हनुमान्जीके वामने बाड़ा देव महान् रोषसे भर
पया ॥ १ ॥

राज्ञाहतात्मा दम्भी स कपीन्द्र तेजसा वृतम् ।
किमेव भगवान् नन्दी भयेत् साक्षाद्विहागताः ॥ २ ॥
‘देव हातोऽसि केशसे मया प्रहसिते पुरा ।
सोऽयं वाकरमुक्तिः स्यात्किंस्त्रिंशत्वाकोऽपि धाम्नुषः ॥ ३ ॥

‘राज ही तए-तरदकी भाषणुओंसे उलका किछ नेउ
गया । मतः यह तेरसी वानरराजके नियममें विचार करने
क्या—क्या इत वानरके कपमें शक्ति भगवान् नन्दी महो
पकरे हुए हैं, किन्तु पूर्णकर्मों केवल पूर्वतर जब कि
मैंने उनपर उपहास किया था, मुझे शाय दे दिया था ।
वे ही तो वानरक लक्ष्म धारण करके नहीं नहीं कपमें
हैं । अथवा इत करने वातामुत्तम अमान्त तो नहीं हुआ
है ? ॥ २ ॥ ॥

स राजा रोपताम्रस्यः प्रहस्त मणिसत्तमम् ।
अक्षयुक्तमुवाचर्षं यथो विपुलमययत् ॥ ४ ॥
‘इत तए लक्ष-मिर्क करते हुए राजा राजके श्रोत्रसे
क्या शोर्षं करके मन्त्रिक प्रहस्तते वक्तामुत्तम गम्भीर एवं
अर्धपुत्र बल कही—॥ ४ ॥

पुराताम पृच्छयतामप कुतः किं वास्य आरण्यम् ।
यवभङ्गं च कोऽस्याद्यौ राजसत्तानां च तर्जनं ॥ ५ ॥

अथ भूरेर्नुशासेश्च कमभिलोककुणिसतेः ।
सर्वे विभ्रति सद्यस्साह्योका सामरदानवाः ॥ १९ ॥
अयं ह्यसहते ह्युः कर्तुमिकार्णय जगत् ।
इति जिह्वा बहुविधामकरोत्प्रतिमान् कपिः ।
हृष्या राजसरायस्य प्रभायममितीजसः ॥ २० ॥

‘इसके अथकनिमित्त कृतापूर्ण निष्टुर कर्मोंके कारण
देवताओं और दानवोंद्विगत सम्पूर्ण लोक इसके मयभीत रहत
हैं । यह कुपित होनेपर समस्त जगत्को एकार्णवमें निमग्न
कर सकता है— संस्यरमें प्रथम मचा सकता है ।’ अमितीजसी
राजसरायके प्रभावके देखकर वे मुक्तिमान् वानरधीर ऐसी
अनेक प्रकारकी किन्तुआए करते रहे ॥ १९ २ ॥

‘अमाय । इस तुगाभासे पूछो तो लही, यह कहेंगे
आत्मा है । इसके आनेका क्या कारण है । प्रमदावनको
उत्साहने क्या उल्लोका मारनेमें इच्छा क्या उदरेय था । ॥
मस्तुरीमप्रभृष्यां धी गमने किं प्रयोजनम् ।
आयोधने या किंकार्यं पृच्छयतामपेय तुर्मतिः ॥ ६ ॥

‘शेरी कुर्षे पुरीमें को इतका आना हुआ है इतमें
इतका क्या प्रयोजन है । अथवा इतने को उल्लोके शाय
मुद डेक दिया है, उतमें इच्छा क्या उदरेय है । ने लारी
बाएँ इत कुर्षुदि वानरसे पूछे ॥ ६ ॥

राषणस्य यथः भुत्वा प्रहस्तो वाक्यमप्रवीत् ।
समाश्रयसिद्धि भ्रंशं त न भीः कार्यात्यया कप ॥ ७ ॥

‘राषणकी बात सुनकर प्रहस्तने हनुमान्जीसे कहा—
‘वानर । तुम पचराओ न, भैरव रक्षा । द्रव्याग मया हो ।
तुम्हें करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ७ ॥

यदि तावत् स्वमिष्टेय्य प्रेषितो राषणस्यस्यम् ।
तस्यमाक्याहि मा ते भूह् भयं वाकर मोक्षसे ॥ ८ ॥

‘यदि तुम्हें इतने महापुत्र राषणकी नगरीमें भेजा है
तो ठीक ठीक बता । वानर । करो न । छेड़ दिने
जाओगे ॥ ८ ॥

यदि धीक्षयस्य त्व यमस्य यक्षस्य च ।
आकरूपमिद् दृष्ट्या प्रविशे नः पुरीमिमाम् ॥ ९ ॥
अथवा यदि तुम कुबेर वम या वरजके दूत हो और

यह सुम्बर रूप धारण करके हमारी इस पुरीमें कुछ आये हो
तु नह भी बता हो ॥ १ ॥

विष्णुना प्रेषितो वापि कृतो विजयकर्मणिना ।

नहि ते धानर तेमो रूपमात्र तु धानरम् ॥ १० ॥

‘अथवा विजयकी अभिप्राया रखनेवाले विष्णुने तुम्हें
दूत बनाकर भेजा है ! तुम्हारा ठेक धानरोंका-सा नहीं है ।
केवल रूपमात्र धानरका है ॥ १ ॥

तत्पत्नः कथयन्नाद्य ततो धानर मोक्ष्यसे ।

धनुत वषट्कापि कुर्वन् तव जीवितम् ॥ ११ ॥

‘धानर ! इस समय सभी बात कह दो फिर तुम छेड़
दिये आभागे । यदि छूट बोझेगे तो तुम्हारा भीना अलग
हो अलग ॥ ११ ॥

अथ वा यथिमिच्छस्तं धवशो रावणालये ।

एवमुक्तो हरिवरस्तादा रक्षोगणेश्वरम् ॥ १२ ॥

अश्वीनाक्षि शक्रस्य यमस्य बह्वपस्य च ।

धनुं न म सचर्यं विष्णुना नाक्षि बोधितः ॥ १३ ॥

‘अथवा और सब बातें छोड़ो । तुम्हारा इस रावणके
नगरमें आनेका क्या उद्देश्य है ! बही बता हो ।’ प्रस्ताके इस
प्रकार पृष्ठनेपर उस समय धानरभेद इनुमान्ने रावणके
स्वामी रावणके कहा—‘मैं हनु, यम अथवा बहवपका दूत
नहीं हूँ । कुन्नेके लक्ष भी मेरी मेरी नहीं है और मगलान्
विष्णुने भी मुझे नहीं बोधित मेजा है ॥ १२ १३ ॥

जातिरेव मम स्वेषा धानरोऽहमिहागतः ।

वृत्तिं राक्षसेन्द्रस्य तदिहं कुर्वन् मया ॥ १४ ॥

वन् राक्षसराजस्य वृत्तार्थे विनाशितम् ।

इत्यर्थे धीमताम्रकले कस्मीकीये आदिकल्पे सुम्बरकाण्डे पञ्चासा सर्गः ॥ ५ ॥

इस प्रकम धीमताम्रनिर्मित अर्धरामायण आदिकल्पके सुम्बरकाण्डने पञ्चसर्गों सने परा रूप ॥ ५ ॥

एकपञ्चाश सर्ग

इनुमान्कीका धीरामक प्रभाषका वर्णन करते हुए रावणको समझाना

त समीक्ष्य महासख्यं सस्यवाम् हरिस्तत्तमः ।

वाक्यमथयदथ्यप्रस्तमुवाच वधातनम् ॥ १ ॥

महाबली दण्डुल रावणकी ओर देखत हुए छलियाली
धानरशिपेमलि इनुमान्ने धान्तमात्रके पर अर्थयुक्त वक्त
करी— ॥ १ ॥

अहं सुग्रीयसद्विदाहिह प्रातस्तवाप्तिके ।

राक्षसश हरीशस्यार्थं आत्मा कुशाब्जमप्रवीत् ॥ २ ॥

‘तुम्हारा । मैं सुग्रीवका संदेश लेकर यहाँ तुम्हारे
पान आया हूँ । कनक ४ सुग्रीव तुम्हारे भाई हैं । इसी नात
इन्होंने तुम्हारा कुशल-समाचार पूछा है ॥ १ ॥

ततस्ते राक्षसाः प्राप्ता यन्निभो युद्धकाङ्क्षिणः ॥ १५ ॥

रक्षणार्थं च वेदस्य प्रतिमुखा मया रणे ।

‘मैं बन्नेसे ही धानर हूँ और रावण रावणसे मित्रके
उद्देशसे ही मैंने उनके इस युद्धमें बन्की उद्देश्य है । उनके
बाद तुम्हारे बहवान् रावण युद्धकी इच्छासे मेरे पाद सने
और मैंने अपने छपीरकी रक्षाके लिये रवन्मिमिने उनका
सामना किया ॥ १५ १६ ॥

भक्तपाशैर्वा शक्योऽह वमु देवासुरैरपि ॥ १६ ॥

पितामहावेष धरो ममापि हि समागतः ।

‘वेरता अथवा असुर भी मुझे अन्न अथवा पाएते गीप
नहीं सकते । इसके लिये मुझे भी ब्रह्माभीसे बरदान मित्र
पुका है ॥ १६ ॥

राजानं प्रष्टुकामन मयात्मनुवर्तितम् ॥ १७ ॥

यिमुक्तोऽप्यहमस्त्रेण राक्षसैस्त्वभिषेदितः ।

‘रावणकाको देखनेकी इच्छासे ही मैंने अस्त्रसे रक्षा
लीकर किया है । पद्यपि इस समय मैं अस्त्रसे मुक्त हूँ
तथापि इन राक्षसोंने मुझे बंधा समझकर ही यहाँ आकर तुम्हें
घीपा है ॥ १७ ॥

केमबिदु रामकार्येण आगतोऽस्मि तवाप्तिकम् ॥ १८ ॥

कृतोऽहमिति विद्याय राषवस्यामितौजसः ।

शूयतामेव ब्रह्मण मम पश्यमिदु प्रभो ॥ १९ ॥

‘मगलान् धीराम्रकलेकीका कुछ कार्य है, इसके लिये
मैं तुम्हारे पास आया हूँ । प्रभो ! मैं अमित तेजस्वी भी
रघुनाथकीका दूत हूँ देखा तमत्तकर मेरे इस हितकारी बन्ने-
को अवश्य सुनो ॥ १८ १९ ॥

अतः श्रेष्ठ समावेदानं सुग्रीयस्य महारामनः ।
धर्मार्थसहितं वाक्यमिह आमुञ्च च क्षमम् ॥ ३ ॥
अब तुम अपने भाई महात्मा सुग्रीवका संदेश—बन्ने
और अर्थयुक्त बचन को इच्छेक और परब्रह्ममें भी अम्-
रावणके सुनो ॥ ३ ॥
राजा दशरथो नाम रघुकुञ्जरवाकिमान् ।
पितृप यन्पुत्रोक्तस्य सुरेश्वरस्तममुतिः ॥ ४ ॥
ममी हामने ही दशरथनामक प्रसिद्ध एक राजा हो
गय है जो विश्वकी नीति प्रबन्धके हितेकी, इन्द्रक लगन तेजस्वी
तथा रथ हाथी पौष्ट आदिस धन्यवन् ॥ ४ ॥

स्वेष्टस्तस्य महापादुः पुत्राः प्रियतराः प्रभुः ।
 विदुर्निवेशाभिष्कान्तः प्रविष्टो दण्डकायनम् ॥ ५ ॥
 छत्रपाद सह भ्रात्रा सीतया सह भार्यया ।
 रामो नाम महातेजा धर्म्ये पत्न्यात्मभिन्नाः ॥ ६ ॥
 'उनके परम प्रिय स्वेष्ट पुत्र महातेजस्वी प्रमाणाधी
 महापादु श्रीरामचन्द्रकी पिताकी आश्रिते धर्ममार्गका आत्म
 केन्द्र अपनी पत्नी सीता और भाई दण्डकायके साथ दण्ड
 कायके साथे थे ॥ ५ ॥
 तस्य भार्या जनस्थाने क्षया सीतेति विभ्रुता ।
 वैदस्य सुता राक्षो जनकस्य महात्मनः ॥ ७ ॥
 'श्रीता विदेहदेशके राक्ष महात्मा जनककी पुत्री हैं ।
 जनकानमें आनेर भीयमपत्नी सीता कहीं खो गयी हैं ॥ ७ ॥
 मार्गमाचस्तु तां पूर्वा राजपुत्राः सहाजुजाः ।
 शृण्वन्मूकजनप्राप्तः सुग्रीषं च संगताः ॥ ८ ॥
 'प्रायकुमार भीयम अपने भाईके साथ ऊर्धी सीतादेवीकी
 खबर करते हुए शृण्वन्मूक पर्वतार आये और सुग्रीवके
 सिधे ॥ ८ ॥
 तस्य तत्र प्रतिज्ञात सीतायाः परिमार्गणम् ।
 सुग्रीवस्यापि रामेण हरिराज्य निवेशितुम् ॥ ९ ॥
 'सुग्रीवने उनसे सीताको हँद निकालनेकी प्रतीक्षा की
 और भीरामने सुग्रीवको वानरोंका राज्य दिखानेका वचन
 दिया ॥ ९ ॥
 तत्रस्तत्र मूषे हत्वा राजपुत्रेण वासिनम् ।
 सुग्रीषः स्थापितो राज्यहृद्य ज्ञानार्जो गणेश्वरः ॥ १० ॥
 'प्रायकुमार राजकुमार श्रीरामचन्द्रजीने मुझमें बाकीको
 परकर सुग्रीवको किचिन्नाके राज्यपर स्थापित कर दिया ।
 एव सम्य सुग्रीव वानरी और भाइयोंके समुदायके स्वामी
 हैं ॥ १० ॥
 तस्या विज्ञातपूर्वक्य वाञ्छी वानरपुङ्गवाः ।
 स तत्र निहताः सख्य शरणकेन वानरः ॥ ११ ॥
 'वानरराज बाकीको वा मुम वहकेसे ही जलते हो । उस
 कान्तरीको बुद्धिमिमें भीरामने एक ही कण्ठसे मार गिराया
 था ॥ ११ ॥
 स सीतामार्गमे व्रज्य सुग्रीषः सत्यसगरः ।
 हरौ सप्रमरयामास विद्याः सदा हरिभ्रवाः ॥ १२ ॥
 'मम लक्ष्मणस्य सुग्रीव कलाको खोन निकालनेके सिधे
 था ही ठठे हैं । उन वानरराजने वमका दिशाओंमें वनरोंको
 भेजा है ॥ १२ ॥
 यं हरिणां सङ्घाणि ज्ञातानि त्रिपुत्रानि च ।
 विद्यु सवास्तु मार्गान्तं ह्यधोपरि चामरे ॥ १३ ॥
 '१३ वमप ठठठों हथों और आका वानर ठठठों

दिशाओं तथा आकाय और पादाभमें भी सीताकी भी खोज
 कर रहे हैं ॥ १३ ॥
 वैनतेयसमाः केचित् केचित् तत्रानिब्रवीयताः ।
 असङ्गतायाः शीमा हरिषीया महाबलाः ॥ १४ ॥
 'उन वानरवीरोंने कोई गड़बड़के वमान कहातान् हैं तो
 कोई वापुके वमान । उनकी गति वही नहीं रहती । वे कपि
 वीर शीतगमी और महान बन्धी हैं ॥ १४ ॥
 अहं तु हनुमाचाम मादतस्वीरसः सुतः ।
 सीतापास्तु हृते तूर्पे शतयोजनमायतम् ॥ १५ ॥
 समुद्रं च्छ्रयित्त्वैव त्वां दिव्यदुरिहागतः ।
 अमथा च मया हृष्टा मूढे ते जनकात्मजा ॥ १६ ॥
 'मेरा नाम हनुमान् है । मैं वापुदेवका औरत पुत्र हूँ ।
 सीताका पता लगाने और तुमसे मिचनेके सिधे वी योजन
 बिलुत् समुद्रको जाँचकर ठीक गसिसे वहाँ आया हूँ । पूयते-
 वृत्त हृष्टारे अन्त पुरमें मैंने जनकनन्दिनी सीताको देखा
 है ॥ १५ ॥
 तद् भवान् ह्यधमार्ग्यकायः कृतपरिग्रहः ।
 परकाराय महाप्राण नोपरोयु स्वमहंसि ॥ १७ ॥
 'महात्म्ये ! तुम धर्म और अर्थके लवको जानते हो ।
 तुमने बड़े भारी लयका संग्रह किया है । अतः वृद्धकी लीको
 अपने धर्ममें एक रक्षना तुमारे सिधे करासि उचित नहीं
 है ॥ १७ ॥
 गहि धर्मविरुद्धेषु वहापायेषु कर्मसु ।
 मूकपातिषु सञ्जने बुद्धिमत्तो भवद्विधाः ॥ १८ ॥
 'धर्मविरुद्ध कार्योंमें बहुतसे अनर्थ मरे रहते हैं । वे
 कर्ताका पदमूकसे माया कर बाधते हैं । अतः तुम-बेते
 बुद्धिमान् पुत्रपे ऐसे कार्योंमें नहीं ग्राह्य होते ॥ १८ ॥
 कस्य अहमपमुक्ताना रामकोपानुवर्तिनाम् ।
 शराजामप्रतः स्थातुं शक्यो देवासुरेण्यपि ॥ १९ ॥
 'देवताओं और मनुष्योंमें भी कौन एका वीर है जो
 भीरामचन्द्रकी अंध करनेके पश्चात् अमपक हाड़ हुए
 कालोंके जामने ठहर सकें ॥ १९ ॥
 न कापि त्रिषु ज्येष्ठेषु राजम् विद्येत कञ्चन ।
 राघवस्य व्यतीक यः हत्वा सुखमवाप्तुपात् ॥ २० ॥
 'वाक्य ! तीनों लक्ष्मणोंमें एक भी देवा प्राणी नहीं है
 जो भावान् भीरामका अमपक करक मुली रह सक ॥ २० ॥
 तत् निजालक्षितं वाक्यं धर्ममयातुपायि च ।
 मयस्व नरदयाय जनकी प्रतिदीयताम् ॥ २१ ॥
 'हृदयमें मेरी धर्म और अर्थके मनुष्यका वात था ठीकी
 कायोंमें दिवकर है मान जो और वनकी लीको भीरामचन्द्र
 कीके वात कौट वा ॥ २१ ॥

वृष्य ह्यय मया वृषी छद्मं यद्विह बुद्धिभम् ।
 उत्तरं कर्म यच्छ्रेयं निमित्तं तत्र यत्नवः ॥ २२ ॥
 'मैत्रे इह देवी वीताया इति न कर किये । ओ बुद्धिभ
 बन्तु वी । उते यहाँ पा किये । इसके बाद जो कर्म श्रेय
 है, उसके साधनमें भीरुपुनावकी ही निमित्त है ॥ २२ ॥
 छद्मित्येवं मया सीता तथा शोकपरायणा ।
 पुत्रे पां नाभिजातासि पञ्चास्यामिय पत्नगीम् ॥ २३ ॥
 'मैत्रे यहाँ वीतायी भक्त्याओ कस्य किया है । वे निरुत्तर
 शोकमें डूबी रहती हैं । सीता तुम्हारे परमै पौत्र पत्न्याकी
 नागिनके समान निराश करती हैं, बिहैं तुम नहीं जानते
 हा ॥ २३ ॥
 मेवं जरयितुं शक्या सासुरैः परैरपि ।
 विपत्संस्पृष्टमत्यर्थं भुक्तमन्मयिपौत्रसा ॥ २४ ॥
 'मैत्रे भक्तवत् विपत्तिभित् भक्त्या साकर कोर्द उते
 बहुरूपं नहीं पना सकता, उठी प्रकार सीताकीके अपनी
 शक्तिसे पना देना देकताओं और भद्रुओंके किये भी भक्तवत्
 है ॥ २४ ॥
 तपसंतापकम्भस्ते सोऽयं धर्मपरिग्रहः ।
 न स माशयितुं न्याय्य आत्ममात्रपरिग्रहः ॥ २५ ॥
 'तुम्हें तपस्याका कइ उठाकर धर्मके फलस्वरूप ओ
 वह ऐश्वर्यका लक्ष्य किया है तथा शरीर और प्राणोंके विर
 कायक धारण करनेकी शक्ति प्राप्त की है, उठाकर विनष्ट
 करना उचित नहीं ॥ २५ ॥
 भवन्मतां तपोभिर्यो भवान् समनुपपद्यति ।
 आत्मानः सासुरैर्बैर्बैर्तुस्तत्राप्यय महात् ॥ २६ ॥
 'तुम तपस्याका प्रभावसे देकताओं और समनुओंका ओ
 अपनी भवन्मता देल रहे हो इतमें मैं तपस्याकमित्त पर
 कर्म ही महान् करण है (भयना उह भवन्मताके होते हुए
 मैं तुम्हारे बचन प्रथम महान् करण उगमित है) ॥ २६ ॥
 सुग्रीवो न च द्वेषोऽयं न यज्ञान च राक्षसाः ।
 मानुषो राघवो राक्षसं सुग्रीवकश्च हरीश्वरः ।
 तस्मात् प्रायपरिचाराय कथं राक्षसं करिष्यसि ॥ २७ ॥
 'राक्षस । सुग्रीव और भीरुपत्न्याकी न तो देकता
 हैं न बध हैं और न राक्षस ही हैं । भीरुपुनावकी मनुष्य हैं
 और सुग्रीव मानुषोंके राक्ष । अतः उनके हाथसे तुम अपने
 प्राणोंकी रक्षा कैसे कतेगे ? ॥ २७ ॥
 न तु धर्मोपसंहारमधर्मफलसहितम् ।
 तदेव फलमन्वति धर्मव्याधमनाशामः ॥ २८ ॥
 ओ पुरुष प्रथम अधर्मके फलसे वैधा हुआ है, उते
 धर्मका फल नहीं मिलता । वह उह अधर्मकफलो ही पाता है ।
 हां यदि उह अधर्मके बाद किसी प्रथम धर्मका मनुष्य

किया गया हो तो वह पहलेके अधर्मका नाशक होता है ॥ २८ ॥
 प्रथम धर्मकफल तापद् भक्त्या नात्र सद्यथा ।
 फलमस्याप्यधमस्य क्षिपमेव प्रफलस्यसे ॥ २९ ॥
 'तुम्हें पहले ओ धर्म किया था, उतध पूर-पूर फलो
 यहाँ पा किये, अब इत वीताहरवकयी अधर्मका फल भी
 तुम्हें वीर ही मिलेगा ॥ २९ ॥
 जमस्यानवधं बुद्ध्या वाञ्छितम् वर्षं तथा ।
 रामसुग्रीवसकर्म च बुद्ध्या हितमात्मना ॥ ३० ॥
 'जन्मानके सम्पत्ति उधार, बाकीका वष और
 भीरुप तथा सुग्रीवकी मैत्री—इन वीतों कर्णोंके फलो
 तरह समझ लो । उतके बाद अपने हितका विचार करो ॥ ३० ॥
 कर्मं सत्यहृदय्येका सबाजिरयकुक्षुराम् ।
 छद्मं नाशयितुं शक्यस्तस्यैव तु न निश्चया ॥ ३१ ॥
 'अपचित् मैं अकेल ही हाथी, घोड़े और रथोंके
 समूची कडुका नाश कर सकता हूँ तथापि भीरुपुनावकीका
 देना विचार नहीं है—उन्होंने मुझे इत कर्मके किये आज
 नहीं की है ॥ ३१ ॥
 रामेण हि प्रतिज्ञातं ह्युक्ष्णगणसन्धिषी ।
 उत्साहमभिजायां सीतां येस्तु मर्यायिता ॥ ३२ ॥
 'किन ओगेने वीताका शिरस्कर किया है, उन धनुषी-
 का लक्ष्य ही उधार करनेके किये भीरुपुनावकीने बानों और
 मञ्जुओंके धामने प्रतिका की है ॥ ३२ ॥
 अपकुक्षुरं हि रामस्य सासादपि पुरदरः ।
 न सुखं मानुष्यादप्यः किं पुनस्तन्निद्रिषो जवः ॥ ३३ ॥
 'मगान् भीरुपका अपरुण करके साधत् इन्द्र भी
 सुख नहीं पा सकते फिर तुम्हारे बेटे साकारव ओगेकी तो
 बल ही करा है ॥ ३३ ॥
 पां स्त्रीतेत्यभिजातासि पेय तिष्ठसि ते पुत्रे ।
 कथरावीति तां विधि सर्वाङ्गुलिनाशिलीम् ॥ ३४ ॥
 'किनको तुम वीताके नामसे जानते हो और ओ इत
 समय तुम्हारे धर्मपुरमें मौजूद हैं, उन्हें समूच कडुका
 विनाश करनेवासी कडुकापि समझो ॥ ३४ ॥
 त्वत्सं कथकाशेन घृताविग्रहकल्पिना ।
 कर्मं सन्ध्यावसन्तोषसेममात्मनि क्षिन्व्यताम् ॥ ३५ ॥
 वीताका शरीर धारण करके तुम्हारे पाठ काककी पंटी
 या पंटी ही है इतमें स्वयं गला टँटना कीक नहीं है । अतः
 अपने कर्मकापकी क्षिन्ना करो ॥ ३५ ॥

* वैद्य किं मुक्तिवत् वचन है—'नमोऽयं धर्मपरमुरधि ।
 कश्चिद् धर्मसे मुक्त बनने परओ इत करता है । स्वर्गमें
 कदाके पने प्रादुर्भाव इच्छन्वत् आदि भी रही कतके उपर्युक्त
 है ।

सीतायास्तेजसा वर्णा रामकोपमशीपिताम् ।
 ब्रह्मनामिमा पश्य पुण्यं साहस्रतोषिकाम् ॥ ३६ ॥
 (रेणो, महाशक्तिभो और शक्तिसेसहित यह कछुपुत्री
 कैवल्यके देव और भीरुमयी कोपान्विते ककर मस होने
 लयी है (क्या लखे तो बचाओ) ॥ ३६ ॥
 लक्ष्मीमित्राणि मन्त्रीश्च हातीन् आतृम् सुतान् हितान् ।
 भोगान् वाराण्य लङ्का च भा विनाशायुपायय ॥ ३७ ॥
 (इन मित्रों, मन्त्रियों, कुटुम्बीजनों, भार्यों पुत्रों
 मित्रधरियों शिष्यों, मुञ्च-भोगके साधनों तथा लक्ष्मी कछु
 भे मेलके मुक्तमें न छोड़ो ॥ ३७ ॥
 तस्य राजसराजेन्द्र शृणुष्य यजन मम ।
 रामहासस्य दूतस्य वाजरस्य विशेषतः ॥ ३८ ॥
 (राज्यके राजाधिराज ॥ मैं भगवान् भीरामका राज हूँ;
 दूत हूँ और विशेषतः वाजर हूँ। मेरी लक्ष्मी बाल मुने—॥
 सर्वोत्थोक्तान् सुसहस्य समूतान् सखारारान् ।
 पुनरेष तथा कष्टं शक्तो रामो महाययाः ॥ ३९ ॥
 (महापशुभी भीरामकाश्री वरावर शक्तिसेसहित
 कर्तव्य कर्मके संहार करने फिर उनका तपे तिरेश निर्माण
 करने की शक्ति रखते हैं ॥ ३९ ॥
 द्वापारजरेन्द्रेषु पक्षरसोरोगेषु च ।
 विद्याधरषु नागेषु गर्भर्षेषु सूरेषु च ॥ ४० ॥
 सिद्धेषु किमरेन्द्रेषु पतत्रिषु च सर्वतः ।
 सर्वत्र सर्वभूतेषु सख्यकृतेषु नास्ति सः ॥ ४१ ॥
 यो रामं प्रति मुष्येत विष्णुमुस्यपराक्रमम् ।
 (भगवान् भीराम भीविष्णुके दुस्व पराक्रमी हैं। देवता
 भक्त, मनुष्य यक्ष राक्षस एव विद्याधर, नाग, गन्धर्व,
 मरु सिद्ध विनर कधी एव अन्य समस्त प्राणियोंमें कहीं
 किसी समग्र कोई भी देखा नहीं है जो भीरामनायकीके साथ
 लड़ा ल लके ॥ ४ ४१३ ॥
 इत्यार्षे भीमव्रामाणने वाक्यीकीने आदिशब्दे सुन्दरकाण्डे एकपञ्चाशः सर्गः ॥ ५१ ॥
 इत एकम् भीरामकीकिर्मित्त भार्यामाणभ आदिकमके सुन्दरकाण्डे इत्यनन्तरं सर्गं पूा ॥ ५१ ॥

सर्वलोकेष्वरस्येह कृत्वा विप्रियमीदृशम् ।
 रामस्य राजसिंहस्य दुर्लभं तव जीवितम् ॥ ४२ ॥
 (मध्यम स्तरके अभीभर राजसिंह भीरामका देहा महान्
 भयपत्र करके तुम्हारा जीवित रहना कठिन है ॥ ४२ ॥
 वेषाच्च दैत्याच्च निशाचरोन्द्र
 गर्भर्विद्याधरनागयक्षाः ।
 रामस्य छेकक्षयनायकस्य
 स्वातु न शक्ताः समरेषु सर्वे ॥ ४३ ॥
 (निवाचरराज ॥ भीरामकाश्री की तीनों शक्तिके स्वामी हैं।
 देवता, दैत्य, गन्धर्व विद्याधर, नाग तथा यक्ष—ये सब
 मित्रकर भी मुझमें उनके सामने नहीं टिक सकते ॥ ४३ ॥
 प्रष्ट्वा स्वयम्भूक्षुतारानो वा
 उद्रक्षिमेत्रक्षिपुरास्तको पा ।
 इन्द्रा महेश्चः सुरनायको वा
 स्वातु न शक्ता युधि राघवस्य ॥ ४४ ॥
 (चार मुर्खोंवाले स्वयम्भू प्रष्ट्वा, तीन नेत्रोंवाले त्रिपुर
 नायक उद्र मयवा देवताओंके स्वामी महान् देवर्षयाभी
 इन्द्र भी उग्रपञ्चमने भीरामनायकीके सामने नहीं ठहर
 सकते ॥ ४४ ॥
 स सौष्ठवापतमशीन्वादिनः
 कपेर्निशाम्याप्रतिमोऽप्रिय ययः ।
 दशाननः कोपयिषुचछेषनः
 समाविष्टात्तस्यवर्धं महाकपेः ॥ ४५ ॥
 (दशाननने नियमतापूर्वक माया करनेवाले महाकपि
 इनुमानकीकी बातें बड़ी सुन्दर एवं मुक्तियुक्त थीं तथापि वे
 राक्षसको भक्षित करतीं। उ हैं मुनकर अनुपम शक्तिशाली
 दशानन राक्षसने श्वेषने मौल्य तरेकर देवकाश्रमे उनके बपके
 किये आस ही ॥ ४५ ॥

द्विपञ्चाश सर्ग

विभीषणका दूतके बधको अनुचित बताकर उसे दूसरा कोई दण्ड दानके लिये
 कहना तथा रावणका उनक अनुरोधको स्वीकार कर लेना

स तस्य पञ्चन भुग्या वाजरस्य महारमणः ।
 म्हापययत् बध तस्य रावणः क्षधम्कुञ्चितः ॥ १ ॥
 (वानशिरोमणि महाका इनुमानकीका बधन मुनकर
 कपने कपतमावे हुए रावणने अपने सर्वश्रेष्ठ भावा ही—
 एव वानरका बध कर डाका ॥ १ ॥
 यय तस्य समाद्यते रावणेन दुवारमना ।

निषेधितपतो दौस्य मानुमेन विभीषणः ॥ २ ॥
 (दुवारना रावणने प्रर उनक पक्षी आका ही, तब
 निषेधन भी बही प। इहोंने उक्त आकाश अनुमोहन नहीं
 किया; क्योंकि इनुमानकी अपनेको मुक्तिव एवं भीरामका दूत
 क्या बुझे प ॥ १ ॥
 तं रक्षोऽधिपतिं कुञ्ज तथ चयमुपस्थितम् ।

विदित्वा विन्तयामास कार्यं कार्यविधौ स्थितः ॥ ३ ॥

एक भोर राक्षसगण रावण श्रेष्ठसे मरा हुआ था, वृषरी भोर वह वृत्के वषका कर्म उपस्थित था । वह सब जनकर पयोचित कालके सम्पादनमें उसे हुए विभीषणसे समयोचित कर्तव्यका निश्चय किया ॥ ३ ॥

निश्चितार्थस्ततः साक्षा पूर्यं शत्रुविद्वज्जम् ।
उवाच हितमत्पर्ये वाक्यं वाक्यविशारदः ॥ ४ ॥

निश्चय हो जानेपर वार्ताव्यपकृष्टक विभीषणसे पूर्यनीय श्रेष्ठ साक्षा शत्रुविषयी राक्षसे धान्तिपूर्वक वह हितकर वचन कहे— ॥ ४ ॥

समस्व रोपं त्यज राक्षसेन्द्र
प्रसीद् मे वाक्यमिदं शृणुष्व ॥
वध न कुर्वसित पदावरणा
वृत्स्व सखी वसुधाधिपेन्द्रा ॥ ५ ॥

पादवराज । क्षमा कीजिये, श्रेष्ठको त्याग दीजिये, प्रकृत होइये और मेरी वह वध मुनिये । ऊँच-नीचका जान रक्षनेवासे श्रेष्ठ राक्षसोंका वृत्तक वध नहीं करते हैं ॥ ५ ॥

राजन् धर्मविद्वजं च लोकवृत्तेषु गर्हितम् ।
तव वासव्यां वीर कपेरस्य प्रमापणम् ॥ ६ ॥

वीर महाशय । इत बानरको मारना धर्मके विरुद्ध और लोकान्नाशकी दृष्टिसे भी निमित्त है । आप-बैठे वीरके स्थिमे तो वह भ्रातृप उचित नहीं है ॥ ६ ॥

धर्मवद्व्य कृतकव्य राजवर्मविशारदः ।
पदावरणो मृतानां त्यजेत् परमार्थवित् ॥ ७ ॥
पृच्छन्ते यदि रोपेण त्वाङ्गशोऽपि विश्वसया ।
तदा शास्त्रविपश्चिस्वं भ्रम पय हि कथञ्चम् ॥ ८ ॥

अस धर्मके कृता उपकरणसे माननेवाक और राजधर्मके विशेषज्ञ हैं मझे पुरेका ज्ञान रक्षनेवाके और परमार्थके ज्ञाता हैं । यदि आप जैसे विद्वान् भी रोपके वशीभूत हो जायें तब तो समस्त शास्त्रोंक पश्चिम् प्रसन्न करना केवल भ्रम ही होगा ॥ ७-८ ॥

तस्मात् प्रसीद् शत्रुघ्न वाससेन्द्र पुरासद् ।
मुक्तायुक्त विनिश्चित्य वृत्तवन्दो विभीषिताम् ॥ ९ ॥

मतः शत्रुभीषण पेशर करनेवाके पुर्वस पक्षवप । आप प्रसन्न होयें और उचित-अनुचितक विचार करके वृत्के योग किसी दृष्टिकर विधान कीजिये ॥ ९ ॥

विभीषणवचनः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः ।
कोपेन महताऽऽविष्टो पाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥ १० ॥

विभीषणकी बात सुनकर पक्षवपोंक स्वामी राक्षस महान् क्रोधसे मारकर ऊपर उठर होता हुआ शब्द— ॥ १० ॥
म पायामां वधं पापं विद्यत् शत्रुसूदन ।

तस्मादिमं वधिष्यामि धामर पापकारिणम् ॥ ११ ॥

शत्रुसूदन । पापियोंका वध करनेमें पाप नहीं है । तब बानरसे घाटिकाका विन्धंश तथा राक्षसोंका वध करके जन क्रिया है । इसस्थिने मधक्य ही इतना वध करैगा? ॥ ११ ॥

अधर्ममूलं शत्रुदोषयुक्तं
मत्तार्यंशुष्टं वचन मिशाम्य ।
उवाच वाक्य परमार्थतत्त्वं
विभीषणो बुद्धिमतां वरिष्ठः ॥ १२ ॥

राक्षसक वचन मनेक दोषासे युक्त और पापक मूढ था । वह श्रेष्ठ पुर्वकोके योग नहीं था । उसे सुनकर बुद्धिमत्तामें श्रेष्ठ विभीषणसे उच्चम कर्तव्यक निश्चय करने-वासी बात करी— ॥ १२ ॥

प्रसीद् कुरुश्वर राक्षसेन्द्र
धर्मार्थतस्य वचन शृणुष्व ।
वृत्ता न धम्याः समयेषु राजन्
सर्वेषु सर्वत्र वदन्ति सन्तः ॥ १३ ॥

कुरुश्वर । प्रसन्न होइये । राक्षसगण । मेरे धर्म और धर्मतत्त्वे युक्त वचनको ज्ञान देकर सुनिये । धर्म । शत्रुसर्वोक्त कथन है कि वृत्त कहीं किसी समय भी वध करने योग्य नहीं होत ॥ १३ ॥

मसहायं शत्रुरयं प्रपूजः
कृतं ज्ञाननाप्रियमप्रमथम् ।
न वृत्तवध्यां प्रवदन्ति सखी
वृत्तक्य वधो हि दुष्कः ॥ १४ ॥

इसमें खरेह नहीं कि वह बहुत बड़ा शत्रु है क्योंकि इतने वह अपराध किया है किन्तु कहीं कहीं प्रकृत नहीं है तथापि शत्रुवध वृत्तक वध करता उचित नहीं बताते हैं । वृत्तके स्थिने मन्त्र प्रकरणके बहुतसे दण्ड देखे गये हैं ॥ १४ ॥

वैकल्पमहेषु कथाभिषातो
मौण्ड्यं तथा कस्तनसंनिपाता ।
पतान् हि वृते प्रवदन्ति दुष्काम
वपस्तु वृत्स्य न का भुतोऽस्ति ॥ १५ ॥

किसी मन्त्रको महा या विद्वत् कर देना श्रेष्ठे पित्राना तिर मुद्रका देना तथा शरीरमें कोई किञ्च दण्ड देना—ये ही दण्ड वृत्तके स्थिने उचित बताये गये हैं । उसके स्थि वषक दण्ड तो मैंने कभी नहीं सुना है ॥ १५ ॥

कथं च धर्मार्थकिनीतदुच्चिः
परवक्ष्यत्यपनिश्चितार्थः ।
भवद्विषयः कोपशय हि तिष्ठेत्
कोप न वाक्यमित हि स्वरवदन्ता ॥ १६ ॥

आपकी बुद्धि धर्म और अर्थकी शिक्षासे युक्त है। आप सैन्य-नीचम विचार करके कृतमन्त्र निम्न करनेवाले हैं। आप-जैसा नीचिष्ठ पुरुष कोपक अमीन कैसे हो सकता है! क्योंकि शक्तिशाही पुरुष श्रेय नहीं करते हैं ॥ १९ ॥

न धर्मवादे न च लोकबुधे
न शास्त्रमुद्रिप्रहणेण वापि ।
विद्येत कश्चिन्नय धीरं तुल्य
स्य ह्युत्तमः सर्वसुरासुराणाम् ॥ १७ ॥

धीर ! धर्मकी व्याख्या करने; लोकप्रचारक पावन करने अथवा शास्त्रीय सिद्धान्तको उमहनेमें आपके समान तुल्य धीर नहीं है। आप समूह देवताओं और असुरोंमें श्रेष्ठ हैं ॥ १७ ॥

पराक्रमोत्साहमनस्विना च
सुरासुराणामपि बुर्जयिन ।
त्ययाममेयेण सुरेन्द्रसभा
मिताम् युद्धेष्वसङ्गधरेन्द्राः ॥ १८ ॥

पराक्रम और उत्साहसे सम्पन्न जो मनस्वी देवता और असुर हैं, उनक क्रिये भी आपपर विषय पाना अत्यन्त कठिन है। आप अग्रमेव शक्तिशाही हैं। आपने अनेक युद्धोंमें शरणागर देवेश्वरों तथा नरेशोंको पराजित किया है ॥

इत्यविभस्यामरद्वैत्यशत्रोः
दूरस्य बीरस्य तवामितस्य ।
कुर्वन्ति वीरा ममसाप्युडीकं
प्राणैविमुक्ता न तु भोः पुरा ते ॥ १९ ॥

देवताओं और देवोंसे भी शत्रुता रखनेवाले ऐसे आप अपरजित दूरबीरका परछे कभी शत्रुपक्षी धीर मनुष्य भी पराक्रम नहीं कर सकते हैं। किन्तुने विर उठाना मे कष्टक प्राणोंसे हाथ जो डैटे ॥ १९ ॥

म चाप्यस्य कपर्धोते कंचित् पदयाम्यह गुणम् ।
तप्यय पात्यतां दुष्णो वैर्यं प्रेषिताः कपिः ॥ २० ॥

इत बानरको मारनेमें मुझे कोई काम नहीं दिलायी देय। किन्तुने इसे भवा है ऊर्ध्वीक यह प्राणरक्ष दिया जाय ॥ २० ॥

साधुया यदि वासापुः परैरप समर्पिताः ।
सुवन् परार्थं परपान न दूतो पथमहति ॥ २१ ॥

यह मन्त्र ही वा सुरा शत्रुभाने इत भवा है अतः यह ऊर्ध्वीक स्वर्ध्वीक जात करता है। दूत सद्य परपान देय है अतः वह बन्धके शोभ्य नहीं दाता है ॥ २१ ॥

यपि चास्मिन् दत्ते नान्यं राजन्पदयामिद्यबन्धम् ।
इह यः पुनरागच्छेत् परं पारं मदीयुधः ॥ २२ ॥

अप्यन् । इसके मारे जानेपर मैं दूतक किसी देवे

आश्रयकारी प्राणीको नहीं देखता, जो शत्रुके समीपसे महास्वर्गके इस पार फिर आ सके (देखी दशामे शत्रुकी गति-विक्षिप्रा आपको पता नहीं क्या सक्य) ॥ २२ ॥

तस्मान्मास्य वधे यत्नाः कायः परपुरजय ।
भवान् सेम्प्रेषु देयेषु यत्नमास्यातुमर्हति ॥ २३ ॥

अतः शत्रुनगरीपर विषय पानेवाले महायत्न । आपको इस दूतक बन्धके क्रिये कोई प्रयत्न नहीं करना चाहिये। आप तो इस योग हैं कि इन्द्रशरित सम्पूर्ण देवताओंपर चढ़ाई कर सकें ॥ २३ ॥

अस्मिन् यिनष्टे महि मृतमम्य
पदयामि पत्नी नरराजपुत्री ।
युशाय युद्धप्रियं बुर्जिनीता
युजोऽप्येत् पै भयता विरद्वी ॥ २४ ॥

शुद्धप्रेमी महायत्न । इसके नष्ट हो जानेपर मैं वृद्धे किसी प्राणीको ऐसा नहीं देखता, जो आपसे विशेष करनेवाले उन दानों स्वतन्त्र प्रकृतिके राजकुमारोंको युद्धके क्रिये तैयार कर सकें ॥ २४ ॥

पराक्रमोरसाहमनस्विना च
सुरासुराणामपि बुर्जयिन ।
त्यया ममोन्नन्दन मैश्रुतातां
युशाय निर्माशयितु न युक्तम् ॥ २५ ॥

प्राथमिक दूरको मानन्दित करनेवाले धीर ! आप देवताओं और देवोंके क्रिये भी दुर्कष्य हैं। अतः पराक्रम और उत्साहसे भरे हुए दूरप्राय इत सख्तोंके मनमें जो युद्ध करनेका हीसला बड़ा दुम्भा है, उसे नष्ट कर देना आपके क्रिये कष्टपि उचित नहीं है ॥ २५ ॥

दिताम् दूराभ्य समाहिताम्
कुसेषु जाताम् महाशुभेषु ।
मनस्विनः शयभृतां परिष्ठा
क्यापप्रशस्ताः सुभुताश्च योधाः ॥ २६ ॥

तद्दक्षेद्येन यत्स्य तापत्
कंचित् तथादेशकृतोऽद्यपान्तु ।
तो राजपुत्राशुपगृहा मूर्ध्नी
परेषु त भापयितुं प्रभायम् ॥ २७ ॥

मेरी राय ता यह है कि उन विरद दूतपक्ष विनस्मिन्त राजकुमारोंका दैद करके शत्रुओंपर आतङ्क प्रभाव डालने— दक्षका बलनेके क्रिये आतङ्क आशसे पाही भी सेनाक श्रय कुल देव यात्रा पहिले जाया करें जो दिशेगी, दूतबीर शान्धान अधिक गुणवाक मदान् कुलमें उत्तराध मन्त्री राजपरिषदमें भेद अपने देव और शत्रुक क्रिये प्रकृतित तथा अधिक उन देवर मन्त्री तद पाक-पने मय हों ॥

निशाचरपामभिपोऽनुग्रहस्य
बिभीषणस्योत्तमवाक्यमिदम् ।

अप्राह बुद्ध्या सुरलोकाशु

महावहो राक्षसराजमुख्यः ॥ २८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बाष्पीकीये अदिक्रम्ये सुन्दरकाण्डे द्विपञ्चाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

इस प्रकार श्रीरामचरितमिर्मित्त जार्जठमायव अदिक्रम्येके सुन्दरकाण्डमें बाननहीं सर्ग पूरा हुआ ॥ ५२ ॥



त्रिपञ्चाशः सर्ग

राक्षसोंका हनुमान्कीकी पूँछमें आग लगाकर उन्हें नगरमें घुमाना

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा दशमीवो महात्मनः ।

वेश्याकाङ्क्षितं वाक्यं भ्रातृवत्तरमप्रवीत् ॥ १ ॥

छोटे भाई महात्मा विभीषणकी बात देख और काण्डके
झिमे तपपुत्र एवं हितकर थी । ठकरो सुनकर दण्डनने
इस प्रकार उचर दिया—॥ १ ॥

सम्यगुक्तं हि भवता वृत्तवत्या विगर्हितं ।

भवद्वयं तु वाधायाभ्यः क्रियतामस्य निग्रहः ॥ २ ॥

विभीषण । तुम्हाय कहना ठीक है । वास्तवमें वृत्तके
वचकी बड़ी निम्ता थी गयी है। परंतु वचके मतिरिक्त
पूछर कोई दण्ड हते अन्वय देना चाहिये ॥ २ ॥

कपीनां किञ्च छाङ्गसमिष्टं भवति मूयणम् ।

तदस्य दीप्यतां शीघ्रं तेन प्रयत्नेन गच्छन्तु ॥ ३ ॥

‘बागोंको अपनी पूँछ बड़ी प्यारी होती है । वही
इनका मामूख्य है । अतः किन्ना बन्दी हो सके, इसकी
पूँछ जला दो । वही पूँछ लेकर ही यह यहाँके काम ॥ ३ ॥

ततः पश्यन्बभूवुः दीनमङ्गयैकप्यकथितम् ।

सुमिब्रजातयाः सर्वे बाणधवाः समुहज्जनाः ॥ ४ ॥

‘यहाँ इसके सिवा कुटुम्बी भाई-बन्धु तथा हितेयी
सुहृद् इसे अङ्ग-मङ्गके रूपमें पीड़ित एवं दीन
अवस्थामें देखें ॥ ४ ॥

आज्ञापयत् राक्षसेन्द्रः पुर सर्वे सखत्वरम् ।

छाङ्गजेन प्रवीतेन रक्षाभिः परिणीपिताम् ॥ ५ ॥

फिर राक्षसराज राक्षसने यह आज्ञा दी कि ‘प्राथम्यतः
इसकी पूँछमें आग लगाकर इसे तबको और पौध-होंधरित
समूचे नगरमें घुमायें ॥ ५ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा राक्षसाः कोपकर्मशाः ।

पेषन्त्ये तस्य छाङ्गजं जीर्णं कार्पासिकौ पटैः ॥ ६ ॥

स्वामीभ्य पर आदेश सुनकर क्रोधके रूपमें कठोखा
पूर्व कर्वाव करनेवाले राक्षस हनुमान्कीकी पूँछमें पुराने
घड़ी कपड़े छेदने लगे ॥ ६ ॥

अपने छोटे भाई विभीषणके इस उचय और शि

वचनको सुनकर निशाचरोंके स्वामी तथा दण्डके क

महावहो राक्षसराज राक्षसने बुद्धिसे छेच-निष्कारक

स्वीकर कर लिया ॥ २८ ॥

सर्ग ॥ ५२ ॥

इस प्रकार श्रीरामचरितमिर्मित्त जार्जठमायव अदिक्रम्येके सुन्दरकाण्डमें बाननहीं सर्ग पूरा हुआ ॥ ५२ ॥

सवेष्ट-यमामे छाङ्गजे भ्यवर्षत महाकपिः ।

शुष्कमिष्कनमासाद्य वनेष्विव वृताद्यानम् ॥ ७ ॥

जब उनकी पूँछमें जल छेदते जाने लगे, उक्त कप
बनोंमें सूखी अन्धकी पाकर ममक उठनेवाली आगकी शक्ति
उन महाकपिका शरीर बचकर बहुत बढ़ा हो गया ॥ ७ ॥

तैस्तेन परिचिख्याद्य तेऽग्निं तत्रोपपाद्यम् ।

छाङ्गजेन प्रवीतेन राक्षसाक्षयनताडयत् ॥ ८ ॥

रोषामर्षपरीतात्मा चाङ्गसूर्यसमानतः ।

राक्षसोंने जल छेदनेके पश्चात् उनकी पूँछमें तेक
किचक दिया और अग्न जला दी । तब हनुमान्कीकी
हृदय रोषसे भर गया । उनका मुख प्रातःकाण्डके दर्शनी
मूर्ति अरुण आभासे उजाडित हो उठा और वे अपनी
बन्दी हुई पूँछसे ही राक्षसोंको पीजने लगे ॥ ८ ॥

स भूयः सपतैः क्रूरे राक्षसेर्हिरिपुङ्गवाः ॥ ९ ॥

सहस्रीबाणधुवाश्च जग्मुः प्रीतिं निशाचर्याः ।

उन क्रूर राक्षसोंने मिच्छकर पुनः उन वाक्पतिप्रेमलिये
कठकर बोध दिया । यह देख किन्तों, काण्डों और हड्डों
दहित उमका निशाचर बड़े प्रसन्न हुए ॥ ९ ॥

निबद्धां वृताद्यान् पीरस्तकमङ्गसखर्षीं मतिम् ॥ १० ॥

काम लालु न मे शक्या निबद्धस्यापि राक्षसाः ।

किन्त्वा पाशान् ससुस्पत्य हस्यामहमिमाद्बभूवः ॥ ११ ॥

तब नीरवर हनुमान्कीकी बंधे-बंधे ही उक्त कपके रोष मिच्छ
करने लगे—‘यद्यपि मैं बंधा हुआ हूँ तो भी इन राक्षसोंका
मुझपर धोर नहीं चक सकता । इन बन्धनोंके टोड़कर मैं
ऊपर उठक जाऊँगा और पुन इन्हें मार लूँगा ॥ १०-११ ॥

यदि भर्तृहिताधीयं चरन्तं भर्तृशासनता ।

निबन्धन्ते तुरात्मानो न तु मे निष्कृतिः कृता ॥ १२ ॥

‘यै अपने स्वामी श्रीरामके हितके झिमे निष्कर एता हूँ
तो भी ये कुपण्या राक्षस यदि अपने राक्षके आदेशसे मुझे
बोध रहे हँ तो इन्से मैं जो कुछ कर लूँगा हूँ उक्त बरत
नहीं पूरा हो सका है ॥ १२ ॥

सर्वेषामेष पर्याप्तो राक्षसानामह युधि ।
किं तु रामस्य प्रीत्यर्थं विपश्चिप्येऽहमीदृशम् ॥ १३ ॥

यै सुदस्यकर्म भक्तेषा ही इन समस्त राक्षसोंका संहार करनेमें पूर्णतः धर्मार्थ हैं; किंतु इस समय भीरवमन्त्रकीभी प्रत्यवाक्ये किमे मैं ऐसे कल्पनको सुपचाप धरूँगा ॥

उहा चारयितव्या मे पुनरेष भयेदिति ।
रात्रौ नहि सुख्या मे दुर्गकर्मविधानतः ॥ १४ ॥

ऐसा करनेसे मुझ पुनः क्यूनी उहामें विकरने और इसके निरीक्षण करनेका अवसर मित्रगा। क्योंकि रात्रमें पूजनेके कारण मैंने दुर्गरक्षनाकी विधिपर इच्छि रखते हुए इसका मन्त्री तरह अवलोकन नहीं किया था ॥ १४ ॥

मन्त्रस्यमेव द्रष्टव्या मया कृत्वा मिश्रास्तये ।
काम वचनानु म मूया पुच्छस्योद्गीपनत च ॥ १५ ॥
पीडां कुर्वन्ति रक्षासि न मेऽस्ति ममसः भ्रमः ।

‘मत्र’ संशय हा अपनेपर मुझे अवश्य ही कृत्वा देखनी है। मझे ही ये राक्षस मुझे बारंबार बोधें और वृद्धमें आभा कष्टकर पीडा पहुँचावें। मेरे मनमें इसके कारण तनिक भी भ्रम नहीं होगा ॥ १५ ॥

तवस्त संभूताकार सत्त्ववन्त महाकपिम् ॥ १६ ॥
परिगृह्य यमुर्हण्य राक्षसाः कपिकुञ्जरम् ।

उहामेंसीनिमादीश्व घोषयन्तः स्वकर्मभिः ॥ १७ ॥
एषसाः कूरकर्मण्यभ्यारयन्ति स्म तां पुरीम् ।

तदनन्तर वे कूरकर्मा राक्षस अपने दिग्ग आकारको किये रखनेवाले सत्त्वगुणधारी महान् बानरबीर कपिकुञ्जर हनुमान्कीच पकड़कर बड़े हर्षके साथ से चले और उहएवं मेरी बन्धक उनके (रावण-द्रोह आदि) अपराधोंकी फेरना करते हुए उन्हें कृत्वापुरीमें लप और घुमाने को ॥ १६ १७ ॥

मन्वीपमानो रक्षोभिर्ययी सुखमरिचमः ॥ १८ ॥
हनुर्माभ्यारयामास राक्षसानां महापुरीम् ।

मयापपत्यथ विमानानि विधिभ्राजि महाकपि ॥ १९ ॥
पुत्रवन्त हनुमान्की पड़ी मौकसे आगे बढ़ने को ।

कमल उल्लस उनके पीछे-पीछे चकरा रहे थे। महाकपि हनुमान्की एषलोकसे उठ विद्याल पुरीमें विचरते हुए उसे देखने को । उन्हेंने वहाँ बड़े विचित्र विमान देखे ॥ १८ १९ ॥

संभूताम् भूमिभागान्ध सुयिभक्ताश्च चरवचाम् ।
एष्याथ गृहसम्वाजाः कपिः शृङ्गाकक्षणि च ॥ २० ॥

तथा रष्योपरष्याथ तथैव च गृहान्तरात् ।
सकश्चेते पिरं हुए कितने ही भूयंग शृण्णुपकू बने हुए सुन्दर बहूतरे पनीभूत पक्षिकर्मोंके पिठी हुईं तदर्थे,

चौरादे, छोटी-बड़ी गडियों और परोंके मन्त्रमन्त्र-इन सबको वे बड़े गैरसे देखने को ॥ २ ३ ॥

चत्सरेषु चतुष्केषु राजमार्गे तथैव च ॥ २१ ॥
घोषयन्ति कपि सर्वे चार इत्येव राक्षसाः ।

सब राक्षस उन्हें चौराहोंपर, चार संभेनाके मन्त्रधर्मोंमें तथा सड़कोंपर घुमाने और बाधुष कूरकर इनका परिवच देने को ॥ २१ ॥

स्त्रीयाश्चतुर्धा निर्जग्मुस्तत्र तत्र कुत्सखात् ॥ २२ ॥
तं प्रदीपितकाञ्च हनुमन्त विद्वसत् ।

मिन्न-मिन्न स्थानोंमें कस्यी वृद्धाके हनुमान्कीभी देखनेके किमे यहाँ बहुत-से बाकक, हृद और कियों कोत्सख-यद्य करते बाहर निकल आती थीं ॥ २२ ॥

दीप्यमाने ततस्तस्य काङ्क्षामे हनुमत् ॥ २३ ॥
राक्षसस्ता विकृपाक्षयः शशुर्देव्यास्तत्रप्रियम् ।

हनुमान्कीभी वृद्धमें सब आग झपकी जा रही थी, उस समय भयंकर नेत्रोलाकी राक्षसोंने भीतादेवीके पास अकर उन्हें यह अभिय उमाचार कहा— ॥ २३ ॥

यस्त्वया कृतसवावः सीते तान्मुखाः कपिः ॥ २४ ॥
ज्याह्लेभ प्रदीप्तेन स एव परिष्णीयते ।

‘सीते’ किं अथ मुँहवाके कन्दरने दुग्दारे खय बग सीत की थी, उलकी वृद्धमें आग झपकर उसे धारे नगस्ते सुन्या जा रहा है ॥ २४ ॥

भुत्वा तद् घबर्नं कूरमारमापहरण्यापमम् ॥ २५ ॥
वदही शोकसंतता हृताशनमुपागमत् ।

अपने अपहरणकी ही मौसि कुल देनेनाकी यह कूरवा-पूर्ण बग मुनकर विदेहनमिन्नी सीता शोकसे उल्ल हो उठी और मन-ही-मन अग्निदेवकी उषलना करने लगी ॥ २५ ॥

मङ्गलमभिमुक्ती तस्य सा त्वास्मीमहाकपेः ॥ २६ ॥
उपतस्थे विशास्तासौ प्रयता हृद्यवाहनम् ।

उस समय विशाक्योपना पतिगृहरया सीता महाकपि हनुमान्कीके किमे मङ्गलकामना करती हुई अग्निदेवकी उषलनामें उषम हो गयी और इस प्रकार बोली— ॥ २६ ॥

यद्यस्ति पतिशुभ्रया यद्यस्ति चरित तया ।
यदि वा त्वेकपरतस्त्रियं दीतो भव हनुमत् ॥ २७ ॥

‘अग्निदेव’ यदि मैंने पतिकी सेवा की है और यदि मुझमें कुछ भी तपस्या तथा पतिव्रत्यका बहू है तो तुम हनुमान्के किंय सीतक हो जाओ ॥ २७ ॥

यदि किञ्चित्तुकोशास्तस्य मय्यस्ति धीमत् ।
यदि वा भाग्यदाया मे दीतो भव हनुमत् ॥ २८ ॥

‘यदि’ इच्छिमान भगवान् भीषमके मनमें मेरे प्रति

चिन्तिमात्रं भी ददा है अपथा यदि मेघ लौम्भ्य रोष है तो
द्रुम हनुमान्के सिन्धे शीतल हो जाओ ॥ २८ ॥

यदि मां वृक्षसम्पर्गां तत्समागमलालसाम् ।
स विज्ञानाति धमात्मा शीतो भय हनूमतः ॥ २९ ॥

यदि भर्मात्मा भीरुपुत्रावधी मुझे अज्ञातसे सम्पर्क
और अपनेसे मित्रके सिन्धे उससुक जानते हैं तो द्रुम हनुमान्
के सिन्धे शीतल हो जाओ ॥ २९ ॥

यदि मा तारयेवार्यः सुग्रीवाः सत्यसगरः ।
भस्मात् पुण्याम्बुसंतोषाच्छांतां भय हनूमतः ॥ ३० ॥

यदि सत्यप्रतिज्ञ आय सुग्रीव इस दुःखके महाद्वारसे
मेरा उद्धार कर सकें तो द्रुम हनुमान्के सिन्धे शीतल हो
जाओ ॥ ३० ॥

ततस्तीक्ष्णाधिरेष्यप्राः प्रवक्षिष्यसिन्धोऽनलः ।
जम्ब्याल मृगशायाक्ष्याः शंसिषिष्य शुभ क्योः ॥ ३१ ॥

मृगमयी शीतल इस प्रकार प्रार्थना करनेपर तीक्ष्ण
अग्निदेव मानां उन्हें हनुमान्के महाकधी सूचना
देते हुए शान्तभावसे बहने लगे । उनकी शिखा प्रदक्षिण
भावसे उठने लगी ॥ ३१ ॥

हनूमज्जनकक्ष्येय पुष्पमलयुतोऽनिलः ।
पथी स्वास्व्यकरो वृक्ष्याः प्रालेपानिलच्छीतलः ॥ ३२ ॥

हनूमन्के पिता वायुदेवता मी उनकी वृक्षमें बनी हुई
आगसे पुष्प हो बर्बादी इसके समान शीतल और देवी
श्रीताके सिन्धे स्वास्व्यकारी (सुख) होकर बहने लगे ॥ ३२ ॥

वृद्धमान च ज्ञानूके चिन्तयामास यानरः ।
प्रक्षिप्ताऽसिरेय कक्ष्यागम मां दहति सधतः ॥ ३३ ॥

उपर वृद्धमें आग लगानी करनेपर हनुमान्की ओचने
सो— भद्र ! यह भाग सध आरसे प्रवृत्त होनेपर मी
मुझ बधाही क्यों नहीं दे ? ॥ ३३ ॥

दृश्यन् च महागवाः कनेति च न म दजम् ।
शिष्टिरस्यप सप्रयातां लाङ्गलां प्रतिष्ठिताः ॥ ३४ ॥

इतने इतनी ऊंची पाना उठती शिखायी वृत्ती दे
गवाएँ यह आग मुझ पीड़ा नहीं दे रही दे । मादूम होता दे
मरी वृद्ध प्रवृत्तमें मैं म ठर का रज दिया गया दे ॥ ३४ ॥

भय या तद्दिदृष्यथ यद्दृष्टं द्रुयता मया ।
रामप्रभायादाद्ययं पयतः सतिता यतो ॥ ३५ ॥

भयसे उठ दिन मुदको सोचने समय मैंने जागते
भीषम-र बाह प्रभाने पराङ्क मद्र होनेसे या आभय
बनके पटना देतो मी उक्त तरह भाव यह अग्नि
शान्त्य भी मद्र हुई दे ॥ ३५ ॥

यदि तापत् समुद्रस्य मेनाकस्य च धीमतः ।

रामार्थं समुद्रमस्ताद्वह्निमग्निर्न करिष्यति ॥ ३६ ॥

यदि भीरुमके उपकारके सिन्धे समुद्र और बुद्धिमान
मेनाकके मनमें वैधी आदरपूर्ण उठावकी देखी गयी तो वह
अग्निदेव उन मग्नान्के उपकारके सिन्धे शीतलता नहीं प्रक
करेगे ॥ ३६ ॥

सीतायाज्जानुशंस्येन तेजस्ता राजधस्य च ।
पितृह्य मम सख्येन न मां दहति पावकः ॥ ३७ ॥

निश्चय ही भगवती शीताकी दशा, भीरुपुत्रावधीके देव
तथा मेरे पिताकी वैधीके प्रवृत्तसे अग्निदेव मुझे बह नहीं
रहे हैं ॥ ३७ ॥

भूयः स चिन्तयामास मुहूर्तं कपिकुञ्जरः ।
कथमस्मवृषिष्येह बभूव राक्षसाभयैः ॥ ३८ ॥
प्रतिक्रियास्य युक्ता स्यात्सति महां पराक्रमः ।

तदनन्तर कपिकुञ्जर हनुमान्के पुनः एक मुहूर्त
इस प्रकार विचार किया (मेरे-बेधे पुत्रकका यहाँ इन नीप
निष्कारोंद्वारा बौधा काना देधे उचित हो सकता है ? परक्रम
राहे हुए मुझे अथवा इसका प्रतीकार करना चाहिये ? ३८
तत्तद्विस्त्या च तान् पशान् च वेगवान् ब्रह्महाकपिः ॥ ३९ ॥
उत्पपाताथ वेगेन ननात् च महाकपिः ।

यह सोचकर वे वेगवादी महाकपि हनुमान् (किन्हीं
पथोंसे पकड़ रक्षा पा) उन बचनोंको तोड़कर बड़े बड़े
ऊपरको उछल और गर्भना करने लगे (उठ समय मीउनम
शरीर रसिखोंमें बँधा हुआ ही था) ॥ ३९ ॥

पुरदारं ततः श्रीमाञ्छैलशूद्रमिषोगमतम् ॥ ४० ॥
विभक्तस्त सम्माधमाससादानिखारमजः ।

उछलकर वे भीमान् पवनकुमार पकड़-शिखरके समान
ऊँचे नगछापर वा पहुँचे बड़ी राखोंकी भीड़ नहीं
थी ॥ ४० ॥

स भूत्या शैलसकाशः क्षेम पुनरामयान् ॥ ४१ ॥
इत्यतां परमां प्राप्ते यन्भनान्यवशात्तपत् ।
यिमुक्त्याभयकक्ष्मीमान् पुनः पर्यतसतिभाः ॥ ४२ ॥

पशुताकर दोकर भी वे मनली हनुमान् पुनः धनममें
बहुत ही व्यद और पतल हो गये । इत प्रकार उन्हें
अपने तारे कपनेके निजाक वैद्य । उन कपनेके पुत्र
होते ही वेबन्धी हनुमान्की फिर पकड़के समान निजाक
हो गये ॥ ४१ ४२ ॥

पारमाण्यं दृष्ट्वा परिषं तोरणाभितम् ।
स त वृद्ध महायादुः क्षत्वायसपरिष्कृतम् ।
रक्षिष्यस्तन् पुनः सयान् सूत्रयामास मादतिः ॥ ४३ ॥

उध समय उन्होंने यह इधर-उधर दृष्टि करी तब
उन्हें परकके उद्धार रक्षा हुआ एक परिष दिधानी रिष ।

जन्मे बंधेके बने हुए उस परिपक्व केकर महाबाहु पवन
पुत्रे बहोके समस्त राजकुंभे फिर मार गिराया ॥ ४३ ॥

स तान् निहत्वा रथचक्रविक्रमः

समीक्षमाणः पुनरेव छद्दाम् ।

प्रवीक्षन्नाङ्गकृताब्जिमाळी

प्रकाशितादित्य इषाचिमाळी ॥ ४४ ॥

ह्वायें श्रीमद्रामायणे वाचमीकीये आदिकाण्डे सुन्दरकाण्डे त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

इस प्रकार श्रीमत्समीक्षितं भावैरामायण महाकाण्डे सुन्दरकाण्डे शिरपनवौ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५३ ॥

चतु पञ्चाशः सर्ग

लङ्कापुरीका दहन और राक्षसोंका विलाप

श्रीक्षमावस्तो लङ्का कपिः कृतमनोरथः ।
वधमाप्तमुत्साहः कायशोपमथिस्तपत् ॥ १ ॥

हनुमान्श्रीके सभी मनोरथ पूर्ण हो गये थे । उनका
स्वप्न बर्षा ना रहा था । अतः वे लङ्कापुरी निरीक्षण करते
हुए केम कर्मके सम्बन्धमें विचार करने लगे— ॥ १ ॥

किं तु अन्ववशिष्टं मर्कतंभ्यमिह साम्प्रतम् ।
पदेयां रक्षसां भूयः संतापजनन भवेत् ॥ २ ॥

‘अब इस समय लङ्कामें भरे किये कौन-ना ऐसा कर्म
करी रह गया है जो इन राजकुंभोंके अधिक उद्योग देनेवाला
हो ॥ २ ॥

यवं तावत्प्रमथितं प्रकृष्टां राजससा हता ।
वहैक्येहाः क्षपितः शेषं दुर्गाविनाशनम् ॥ ३ ॥

‘प्रमथनका तो मैंने पहले ही उच्छेद किया था, बड़े
बड़े राजकुंभोंके भी मोतके भाट उठार दिया और उरुपथी
सेनाके भी एक अंशका उच्छेद कर डाला । अब दुर्गाके विध्वंस
करने से रह गया ॥ ३ ॥

दुर्गे विनाशिते कर्म भवेत् सुखपरिभ्रमम् ।
वक्ष्यपत्नेन कार्येऽस्मिन् नम स्यात् साफल्यः भ्रमा ॥ ४ ॥

‘दुर्गाके विनाश हो जानेपर मेरे द्वारा सुख-वहन
आदि कर्मके किये किना गया प्रयास सुखद एवं श्रेष्ठ
होगा । मैंने क्षीताक्षीकी खोचके किये जो परिभ्रम किना है,
वह खोजे-से ही प्रयत्नद्वारा सिद्ध होनेवाले लङ्कावहनके
फलके समान ॥ ४ ॥

पो ह्ययं मम छाङ्गके दीप्यते ह्यप्यवाहनम् ।
मस्य सतर्पणं न्योय्यं कर्तुमिभिर्युहोचमैः ॥ ५ ॥

‘मेरी पूँछमें जो वे अग्निदेव देवीप्यमान हो रहे हैं,
इन्हें इन भेद यज्ञोंकी आहुति देकर रूठ करना न्यायसंगत
काम पवता है’ ॥ ५ ॥

उन राजकुंभोंके मारकर रणभूमिमें प्रबन्ध पराक्रम प्रकट
करनेवाले हनुमान्श्री पुनः लङ्कापुरीका निरीक्षण करने लगे ।
उस समय बसती हुई पूँछके जो उष्णामौकी मांस-सी
बठ रही थी बसते अलङ्कृत हुए वे वानरवीर तेज
पुङ्खते देवीप्यमान स्वदेवके समान प्रकाशित हो रहे
थे ॥ ४४ ॥

ततः प्रवीक्षन्नाङ्गः सपिपुषिषि तोयत् ।
भयनाग्नेषु लङ्कायां विषम्भार महाकपिः ॥ ६ ॥

देवा खेचकर बसती हुई पूँछके कारण विक्रमीवर्धित
मेघकी भाँति शोभा पानेवाले कशिभेठ हनुमान्श्री लङ्काके
महर्षेपर पूजने लगे ॥ ६ ॥

शुभात् शुभं राक्षसानामुद्यानानि च वानरः ।
वीक्षमाणो ह्यसंवस्ता प्रासादाश्च चचार सः ॥ ७ ॥

वे वानरवीर राजकुंभोंके एक परसे दूसरे परपर पहुँचकर
उद्यानों और राजमकनोंकी देखते हुए निर्भय होकर विपत्ने
लगे ॥ ७ ॥

मधुप्लुत्य महादेवः प्रहस्तस्य निघण्टनम् ।
अग्निं तत्र विभिक्षिष्य श्वसनेन समो बली ॥ ८ ॥

ततोऽन्यत्पुप्लुये वेक्ष्य महापादर्वस्य धीर्यवान् ।
मुमोक्ष हनुमान्निभं काञ्चानलशिखोपमम् ॥ ९ ॥

पूसते-पूसते बापुके समान बच्चान् और महान्देववाणी
हनुमान् उच्छेदकर प्रहस्तके महत्कर या पहुँचें और उसमें
आग लगाकर दूसरे परपर दूढ़ पड़े । वह महापार्वक
निवास्तान था । पशुमी हनुमान्ने उसमें भी अज्ञानिनी
कपटोंके समान प्रस्थित होनेवाली आग पैदा की ॥ ८ ॥

वज्रवृक्षस्य च तथा पुप्लुये च महाकपिः ।
शुकस्य च महातेजाः सारणस्य च धीमता ॥ १० ॥

तत्पश्चात् वे महातेजस्वी महाकपी क्रमशः वज्रवृक्ष,
शुक और बुद्धिमान् सारणके कपेपर दूढ़े और उनमें आग
लगाने आगे बढ़ गये ॥ १० ॥

तथा वेन्द्रजितो वेदम वृदाह हरियूथपः ।
अशुमाळेः सुमाखेभ्य वृदाह भवर्तं ततः ॥ ११ ॥

इतके बाद वानरपूषपति हनुमान्ने इन्द्रविक्री
मेघनदरुध पर अज्ञया । फिर अशुमाळी और सुमाळीके
पतोंको दूँक दिया ॥ ११ ॥

इतके बाद वानरपूषपति हनुमान्ने इन्द्रविक्री
मेघनदरुध पर अज्ञया । फिर अशुमाळी और सुमाळीके
पतोंको दूँक दिया ॥ ११ ॥

इतके बाद वानरपूषपति हनुमान्ने इन्द्रविक्री
मेघनदरुध पर अज्ञया । फिर अशुमाळी और सुमाळीके
पतोंको दूँक दिया ॥ ११ ॥

इतके बाद वानरपूषपति हनुमान्ने इन्द्रविक्री
मेघनदरुध पर अज्ञया । फिर अशुमाळी और सुमाळीके
पतोंको दूँक दिया ॥ ११ ॥

इतके बाद वानरपूषपति हनुमान्ने इन्द्रविक्री
मेघनदरुध पर अज्ञया । फिर अशुमाळी और सुमाळीके
पतोंको दूँक दिया ॥ ११ ॥

इतके बाद वानरपूषपति हनुमान्ने इन्द्रविक्री
मेघनदरुध पर अज्ञया । फिर अशुमाळी और सुमाळीके
पतोंको दूँक दिया ॥ ११ ॥

इतके बाद वानरपूषपति हनुमान्ने इन्द्रविक्री
मेघनदरुध पर अज्ञया । फिर अशुमाळी और सुमाळीके
पतोंको दूँक दिया ॥ ११ ॥

इतके बाद वानरपूषपति हनुमान्ने इन्द्रविक्री
मेघनदरुध पर अज्ञया । फिर अशुमाळी और सुमाळीके
पतोंको दूँक दिया ॥ ११ ॥

रश्मिकेतोश्च भवन सूर्यशोभस्तथैव च ।
 इत्यर्कस्य तदस्य रोमशस्य च रश्मिः ॥ १२ ॥
 युद्धोन्मत्तस्य मत्तस्य च्यवप्रीवस्य रश्मिः ।
 विद्युच्चिह्नस्य भोरस्य तथा इस्तिमुक्तस्य च ॥ १३ ॥
 क्रावस्य विशाखस्य शोभितास्य चैव हि ।
 कुम्भकण्ठस्य भयत मकपासस्य चैव हि ॥ १४ ॥
 मरात्पकस्य कुम्भस्य निकुम्भस्य तुरात्मना ।
 पञ्चशोभ्य भवनं यज्ञशश्रोस्तथैव च ॥ १५ ॥

तदनन्तर रश्मिकेतु, सूर्यशु, इत्यर्क, बंङ्, राक्ष
 रोमश रक्षोन्मत्त मत्त च्यवप्रीव, भयतक विपुच्छिह्न,
 इस्तिमुक्त कण्ठ, विशाख, शोभितास्य, कुम्भकण्ठ मकपास,
 नारात्पक, कुम्भ तुरात्मना निकुम्भ, पञ्चशु और यज्ञशशु
 अदि राक्षसके परोंमे चा-पाकर उन्नेने भाग अण्णयी ॥

वर्जयित्वा महातजा विभीषणगृह प्रति ।
 क्रममात्रः क्रमेणैव द्वाह हरिपुङ्गवा ॥ १६ ॥

उद्य सम्य महातेजसी कृषिमेघ हनुमान्ने केव
 विभीषणका पर डोङ्कर मन्त्र उद्य परोंमे क्रमशः परोंपकर
 उन समने भाग अण्णयी ॥ १६ ॥

तसु तेषु महाहैषु भवनेषु महायथाः ।
 गृहेष्वग्निमतासृष्टि द्वाह कपिकुञ्जरा ॥ १७ ॥

महायथसी कपिकुञ्जर पवनकुमान्ने विभिन्न वटुमुत्स
 म्भनेने का-पाकर अमुच्छिष्टानी राक्षसके परोंकी वारी उम्पति
 म्भनकर मन्त्र कर शोभी ॥ १७ ॥

सर्वेषां समतिक्रम्य राक्षसेन्द्रस्य वीर्यबाहू ।
 आसस्तावाद्य लक्ष्मीवान् रावणस्य निवेशाम् ॥ १८ ॥

सर्वके परोंको सर्वेके हुए शोभाशोभी पण्णमी हनुमान्
 राक्षसवाद्य रावणके महाभरत का परोंके ॥ १८ ॥

ततस्तस्मिन् दूरे मुक्ये नाजारत्नविभूषित ।
 मंथमन्वरसंकाशो नामामङ्गलशोभिते ॥ १९ ॥

परोंपतिमन्त्रिमुत्सृज्य ज्ञान्नामे प्रतिष्ठितम् ।
 ननाह हनुमान् वीरो युगाभ्युत्थयो यथा ॥ २० ॥

वही अङ्कके उद्य महाहैमें मेघ भैरव-भैरवेके रबोंके
 विभूषित मेरुपर्वतके अमान ऊँचा और गुना मन्त्रके
 माङ्गलिक उल्लसोंके सुशोभित था । अपनी रूँठके अमभ्यागने
 प्रतिष्ठित हुई मन्त्रकिय अमिन्का उद्य महाहैमें डोङ्कर
 शीरवर हनुमान् मन्त्रकाङ्के मेरुकी मोंति भयानक मर्मेना
 करने अण्ण ॥ १९ २ ॥

भ्यस्तमेन च संयोगावृत्तिवेगो महाबला ।
 कालान्निदिष्य जम्ब्यास प्राधर्षत हुताशनः ॥ २१ ॥

हवाका ल्याग पाकर वह मन्त्र अण्ण बड़े वेगसे
 बन्दने अण्ण और अन्नायिके अमान मन्त्रकिय हो अण्ण ॥ २१ ॥

प्रवृत्तिमग्नि पथमस्तेषु वेस्मसु चारयत् ।
 तानि काञ्चनजालानि मुक्तामभिमयानि च ॥ २२ ॥
 भवमानि व्यर्थाप्यन्त रत्नचण्डित महाशक्ति च ।
 तानि भद्रविमानानि निपेक्षुर्वसुधातल ॥ २३ ॥

शशु उद्य मन्त्रकिय अग्निमे वसी परोंमे देवके
 अण्ण । खेनेकी सिद्धिकिनेसे सुशोभित, मोती और मन्त्रिप्राण
 निर्मित तथा रबोंसे निभूषित ऊँचे-ऊँचे प्रासाद एव अण्णके
 भवन एव अण्णकर दृष्टीपर गिरने अण्ण ॥ २२ २३ ॥

भवनाबीज सिद्धानामम्बरात् पुण्यसङ्घे ।
 संबन्धे तुमुक्तः शब्दो राक्षसानां प्रधातव्यम् ॥ २४ ॥
 स्ये स्ये गृहपरिचाये भयोस्ताहोमिष्ठतभियाम् ।

वे गिरते हुए मन्त्र पुण्यका अण्ण अनेपर अण्णके
 नीचे गिरनेवाले सिद्धोंके अण्णके अमान अण्ण एवते वे ।
 उद्य सम्य एवच अपने-अपने परोंको बन्धने-अण्ण
 आग हुसनेके अण्णे हार-उत्तर दौड़ने अण्ण । उनका अण्ण
 अण्ण रहा और उनकी शो नह हो गयी थी । उन अण्ण
 द्रमुक्त आर्तव्यद चारों ओर गूँठने अण्ण ॥ २४ ॥

नृगमेषोऽग्निरायातः कपिकुञ्ज हा इति ॥ २५ ॥
 कम्बल्या सहसा पेतुः शनर्भयधराः क्षिबा ।

वे अण्णते वे—हाय । वह अण्णके समय अण्ण
 अग्नि देवता ही या परोंका है ? कितनी ही अण्णों अण्ण
 बन्धने अण्णे अण्ण अण्ण अण्णी हुई नीचे गिर पड़ी ॥ २५ ॥
 अण्णिद्विप्रेरिताङ्गयो ह्यग्नेर्यो मुक्तमूर्धजाः ॥ २६ ॥
 पतन्त्यो रेडिटेऽधोम्या सौरामस्य इवाभ्यवपत् ।

कुछ राक्षसिकोंके शारे अण्ण आगकी अण्णने आ अण्ण
 वे बाक विकरे अण्णिक्रमोंसे नीचे गिर पड़ी । अण्णने
 सम्य वे अण्णके अण्ण मण्णोंसे गिरनेवाली अण्णिक्रमोंके
 अमान मन्त्रकिय होती थी ॥ २६ ॥

वसविभुमवैवृष्यमुक्ताखतसंहतान् ॥ २७ ॥
 विच्छिन्नान् भवनाद्यात्स्यम्भामान् द्बर्षा सा ।

हनुमन्कीने देवा अण्णते हुए परोंके शीत, मूँफ,
 नीकम मोती तथा खेने खोंदी आदि विच्छिन्न-विच्छिन्न
 भद्रशोभी शशि पिन्क-पिपसकर बड़ी का रही है ॥ २७ ॥

नाद्रिस्तुप्यति व्याघ्रानां लुप्तानां च यथा तथा ॥ २८ ॥
 हनुमान् राक्षसेन्द्राणां वधे किञ्चिन्न तुप्यति ।
 न हनुमद्रिस्तासनां राक्षसानां यस्तुम्भरा ॥ २९ ॥

खेने भाग खेने काठ और अण्णिक्रमोंके अण्णनेसे अण्ण
 तुल नहीं होती अण्ण मन्त्रा हनुमान् बड़े-बड़े राक्षसोंके
 बध अण्णनेसे तनिक भी तुल नहीं होते वे और हनुमान्कीने
 अण्णे हुए राक्षसोंके अपनी गोदमें धारण करनेसे हव वटुम्भरा
 अण्ण भी थी नहीं मरता था ॥ २८ २९ ॥

हनुमता वेगवता धामरेण महात्मना ।
 ब्रह्मापुरं प्रवृध तद् उद्रेण त्रिपुरं यथा ॥ ३० ॥
 सैव भगवान् कन्दे पूर्वकाण्डे त्रिपुरको दग्ध किया
 कः उन्नी प्रकार वेगशास्त्री बानरवीर महात्मा हनुमन्त्सिने
 ब्रह्मपुरीको ब्रह्मा दिया ॥ ३ ॥

ततः स ब्रह्मापुरपर्यतामे
 समुत्थितो भीमपराक्रमोऽग्निः ।
 प्रसार्प्य ब्रूहावलय प्रवीक्षो
 हनुमता वेगवतोपसृष्टः ॥ ३१ ॥

उपमात् ब्रह्मपुरीके परंत-सिन्धवर भामा कगी, वहाँ
 भस्मिदेवक बड़ा मन्वन्त परक्रम प्रकृत हुआ । वेगशास्त्री
 हनुमन्त्सिने कपटी हुई वह भाग चले और अपने आत्म-
 गहकको देखकर बड़े बोसते प्रव्यक्ति हो उठी ॥ ३१ ॥

युगान्तकालान्कृतुस्यदपः
 समागतोऽग्निर्वृष्टे विवसृष्ट् ।
 विधूमरस्मिर्भवनेषु सखो
 रक्षाशरीराज्यसमर्पिताधिः ॥ ३२ ॥

इत्यत्र धारा पाकर वह भाग इन्दी बड़ गयी कि
 उद्वेग रूप प्रकामकासीन अग्नि के समान विसासी देने लगा ।
 उन्नी उन्नी कपटें मानो सर्गकोकका सर्पों कर रही थी ।
 ब्रह्मके मन्त्रोमें कगी हुई उध भागशी आत्ममें भूमक
 नम थी नहीं था । यखलोकें शरीररूपी शिकी आहुति
 पकर उन्नी आकारों उचोपेपर बड़ रही थी ॥ ३२ ॥

व्याधित्यकोटीसहस्रः सुतेजा
 ब्रह्मां समस्ता परिवार्यं विष्टम् ।
 शब्देरनेकैरशुनिप्रकृष्टै
 भिन्स्मिवाप्यत्र प्रभभी महाग्निः ॥ ३३ ॥

उन्नी ब्रह्मपुरीको अपनी कपटोंमें कोटरक देखी हुई
 ए प्रकण्ड भाग करोड़ों सुलोकें समान प्रव्यक्ति हो रही
 थी । मन्त्रों और परंतोंके फटने आसिते होनेवाले नाम
 त्मके बड़ाकोके शब्द विसासीकी कण्डको भी मात करते
 थे उध समक वह विद्याक अग्नि ब्रह्माण्डको कोषती हुई-नी
 प्रकथित हो रही थी ॥ ३३ ॥

तत्राम्बरवाग्निरतिप्रबुद्धो
 कक्षप्रभा किंशुकपुष्पसूडः ।
 निर्वाणधूमकाकुलराज्यम्
 नीलोत्पलाभाः प्रपकाशितेऽभाः ॥ ३४ ॥

वहाँ परतीचे आकाशतक देखी हुई अत्यन्त बड़ी-बड़ी
 मयको प्रभा बड़ी लोकी प्रतीत होती थी । उन्नी कपटें
 देखके पूडकी भौंति काक दिखायी देती थी । नीचेसे
 विनम्र लम्बक दूट गया था वे आकाशमें देखी हुई भूम-

पंक्तिमें नीक कमकके समान रंगवाले मेघोंकी भौंति
 प्रकथित हो रही थी ॥ ३४ ॥

ब्रह्मी महेश्वरस्त्रिपुरोन्मरो वा
 सप्तशतयमो वा यद्वज्रोऽग्निखो वा ।
 रौद्रोऽग्निरकर्म चन्द्रक्य सोमो
 न धानरोऽयं जयमेव काष्ठः ॥ ३५ ॥

किं प्रह्वण्यः सर्वपितामहस्य
 कोकस्य भातुभनुपानस्य ।
 इहागतो बानरकपधारी
 रक्षोपसहारकरः प्रकोपः ॥ ३६ ॥

किं वैष्णव्य वा कपिरूपमेत्य
 रक्षोविनाशाय परं सुतेजा ।
 अशित्यमभ्यकमनस्तमेकं
 समायया सान्प्रतमागत वा ॥ ३७ ॥

इत्येवमनुब्रूवंहवो विधिष्ट
 रक्षोपनास्ताव समेत्य सर्वे ।
 सप्रयित्सवर्गं सगृहा सगृहां
 वर्णां पुरीं तां सहसा समीक्ष्य ॥ ३८ ॥

प्राथिकोंके समुदाय, यह और बृहत्तहित अमदा
 ब्रह्मपुरीको कला दग्ध हुई देख बड़े-बड़े उद्वेग छंड़-के-
 छंड़ एकत्र हो गये और वे उन्नी-उध परस्पर इत प्रकार
 करने लगे—यह देवशास्त्रीका राधा ब्रह्मारी इन्द्र भयवा
 उन्मात् यमराज तो नहीं है । बरुन, बापु कद्र, अग्नि, सुर्व,
 कुनेर वा कन्त्रामोंसे तो कोरे नहीं है । यह धानर नहीं
 थावात् काक ही है । क्या उन्नीयं कागदके पितामह अष्टमूर्क
 ब्रह्माकीका प्रकण्ड कोष ही धानरका रूप धारण करके
 उन्नीको उद्वेग करनेके लिये यहाँ उपस्थित हुआ है । अथवा
 मन्वान् विष्णुका महान् देव को अशित्य, अम्यक, अनन्त
 और अशिक्षीय है, अपनी मावसे बानरका शरीर ग्रहण करके
 उन्नीको विनाशके लिये तो इध कम नहीं आया है ? ॥

ततस्तु ब्रह्मा सहसा प्रवृधा
 सत्प्राससा साम्बरया समागा ।
 सप्रसिचङ्ग सगृहा सगृहा
 रणेव रीना मुमुक्षु सशम्भम् ॥ ३९ ॥

इध प्रकण्ड पड़े, हाथी, रक पछ, पछी इध तथा
 कितने ही उन्नीकोकित ब्रह्मपुरी सहसा दग्ध हो गयी । वहाँके
 निवासी रीनमन्त्रे द्रष्टुं नाद करते हुए कूट-कूटकर
 रने लगे ॥ ३९ ॥

हा तात हा पुष्पक कायत मिथ
 हा जीपितशास्त्र हर्तं सुपुष्पम् ।
 रक्षोभिरैवं बहूधा मुबन्धि
 शम्भु कृतो धोरत्तरः सुभीमा ॥ ४० ॥

वे बोधे—दान रे वप्या । हाप बेदा । हा स्वामिन् ।
हा मित्र । हा प्रसन्नय । हमारे सब पुष्य नष्ट हो गये ।' इत
तखे भौंति-भौंतिसे विहाय करते हुए राक्षसें बड़ा मर्यकर
एवं और मारनाह किना ॥ ४ ॥

हृताशानस्यसमाहृता स्या
हृतमथीरा परिबृष्टयोषा ।

हनुमता क्रोषवृत्ताभिभूता
वभूव सापोपहृतेष लङ्का ॥ ४१ ॥

हनुमान्कीके क्रोष-वृत्ते अमिभूत हुई लङ्कापुरी
आनाकी आगले फिर गयी थी । उनके प्रमुक्त-प्रमुक्त वीर
मार हाके गये थे । समस्त योद्धा छितर बिछर और उद्विन्न
हो गये थे । इत प्रकार वह पुरी शापसे आक्रान्त हुई-सी
बन पड़ती थी ॥ ४१ ॥

सप्तममम वस्तयिष्यराक्षसां
समुज्ज्वलन्ज्वालहृताशानाह्विताम् ।

दवर्षी लङ्कां हनुमान् महामना
स्यभुरोयोपहृतामिषापनिम् ॥ ४२ ॥

महामन्त्री हनुमान्ने लङ्कापुरीको स्वयम् वृषाकीके
रोपसे नष्ट हुई वृषाकीके समान देखा । वहाँके समस्त राक्षस
वर्षी पहराहटमें पड़कर बल और विषादमय हो गये थे ।
सम्पन्न प्रवृत्ति आत्ममाद्यभोगे अर्द्धवृत्त अग्निदेवने
उत्तर अपनी जाप कर ही थी ॥ ४२ ॥

भङ्गत्वा धर्मं पादपरतसकुक्ष
हत्वा तु रक्षसि महासि सयुगे ।

दग्ध्या पुरीं तां गृह्णरत्नमाक्षिर्मी
तस्मी हनुमान् पयनात्मजा कपिः ॥ ४३ ॥

पवनकुमार वानरवीर हनुमान्की उच्येत्तम वृक्षोंसे
मरे हुए वनके उच्छाङ्कत मुदमें बड़े-बड़े राक्षसोंके मारकर
तथा सुन्दर महल्लेसे प्रशोभित लङ्कापुरीको लक्ष्यकर शाप
हो गये ॥ ४३ ॥

स राससांस्तप्य सुबहुंश्च हत्वा
यत् स भङ्गत्वा बहुपाप्यं तत् ।

विस्वज्य रक्षोभवनानु क्षामि
जगाम रामं मनसा महारमा ॥ ४४ ॥

महात्मा हनुमान् बहुउत्ते राक्षसोंके तप और बहुसंभवक
वृक्षोंसे मरे हुए प्रमदात्मक विन्धन करके निषाचरोंके
परोंमें भया लङ्का मन-ही-मन भीषमचन्द्रबीका मारन
करने लगे ॥ ४४ ॥

हृत्पर्ये श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाण्डे सुन्दरकाण्डे
इस प्रकार श्रीवल्मीकीयैर्वाल्मीकीयैः सुन्दरकाण्डे

श्रीवल्मीकीयैः सुन्दरकाण्डे चतुस्रज्याद्यैः सर्गाः ॥ ५४ ॥
इस प्रकार श्रीवल्मीकीयैर्वाल्मीकीयैः सुन्दरकाण्डे चतुस्रज्याद्यैः सर्गाः ॥ ५४ ॥

ततस्तु त यानरवीरमुर्ध्वं
महावल् माकृततुल्यबेगम् ।

महामतिं चायुस्तुतं वरिष्ठं
प्रमुष्टुतुर्वैशगणाद्यैः सर्वैः ॥ ४५ ॥

तदनन्तर सम्पूर्ण देवताभोगे वानरवीरोंमें प्रक
महान्मान् वायुके समान वेगवान् परम बुद्धिमान् म
वायुदेवताके भेद पुत्र हनुमान्कीका स्तवन किया ॥ ४५ ॥

देवाद्यैः सर्वैः मुनिपुङ्गवाद्यैः
गणधर्मविद्याधरपक्षगाद्यैः ।

भूतासि सर्वाणि महासि तत्र
जग्मुः परा मीतिमनुस्यरूपाम् ॥ ४६ ॥

उनके इत क्षणसे वही देखा, मुनिकरु गन्धर्व
विषाचरु नाग तथा सम्पूर्ण महान् प्राणी अत्यन्त प्रस
हुए । उनके उध हर्षकी क्षीं तुम्हना नहीं थी ॥ ४६ ॥
भङ्गत्वा यत् महातेजा हत्वा रक्षांसि सयुगे ।

दग्ध्या लङ्कापुरीं भीमां रराज स महाकपिः ॥ ४७ ॥

महातेजस्वी महाकपिपवनकुमार प्रमदात्मके उच्छाङ्क
युद्धमें उच्छाङ्कते मारकर और मर्यकर लङ्कापुरीको लक्ष्य
वर्षी शोभ्य पाने लगे ॥ ४७ ॥

गृह्णाम्यष्टज्ञातले विधिने
प्रतिष्ठितो धनुरराजसिंहा ।

प्रवीरस्यार्जुनकृतार्चिमाक्षी
भ्यरोक्षतामित्य इयार्चिमाक्षी ॥ ४८ ॥

भेद मन्नोंके विधि सिद्धपर जाके हुए वानरक
सिंह हनुमान अपनी पक्षी पूँछसे बटती हुई आत्म
माद्यभोगे अर्द्धवृत्त हो तेषापुत्रके देवीपमान स्वर्गके
समान प्रवृत्ति होने लगे ॥ ४८ ॥

लङ्कां समस्तासम्पीड्यसाङ्गामि महाकपिः ।
निषीपयामास तदा सन्नेद्रे हरिपुङ्गवः ॥ ४९ ॥

इत प्रकार लड़ी लङ्कापुरीको पीडा दे वानरवीरोंमें
महाकपि हनुमान्ने उध तम्य लङ्काके लक्षमें अपनी पूँछ
आग बुझायी ॥ ४९ ॥

ततो द्वावाः सगन्धर्षाः सिद्धाद्यैः परमर्षयाः ।
लङ्का लङ्कां प्रवर्ध्वा तां विस्मयं परम गताः ॥ ५० ॥

तत्पश्चात् लङ्कापुरीको रण हुई देल देखा, कर्ण
सिद्ध और महर्षी बड़े विस्मित हुए ॥ ५० ॥

तं हृष्टा यानरभेष्टे हनुमन्त महाकपिम् ।
क्षामामिरिति सन्निभ्य सर्वभूतानि तत्रसुः ॥ ५१ ॥

उध समय वानरभेष्ट महाकपि हनुमान्ने देल वे
क्षामि हैं देवा मानकर समस्त प्राणी भवते बर्तें लडे ॥ ५१ ॥

इत्यर्थे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाण्डे सुन्दरकाण्डे चतुस्रज्याद्यैः सर्गाः ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशः सर्ग

सीताजीक लिये हनुमान्जीकी चिन्ता और उसका निवारण

सर्षीप्यमाना विधस्तां प्रस्तरक्षोगमा पुरीम् ।
 मयस्व हनुमन्सिद्धां चिन्तयामास यानरः ॥ १ ॥
 धनरथीर हनुमान्जीने बह देखा कि लारी छद्मापुरी
 क्य रही है, बहोके निवादिनोपर बस छा गया है और
 एवमपन मत्स्यन्त भवभीत हो गये हैं तब उनके मनमें
 लोचके दग्ध होनेकी आशङ्कसे बड़ी चिन्ता हुई ॥ १ ॥
 तस्यामूत् सुमहात्कासः कुपसा चारमभ्यजायत ।
 उद्गां प्रवृत्ता कम चिन्सित् कृतमिव मया ॥ २ ॥
 लप ही उनपर महान् प्राव छा गया और उन्हीं अपने
 प्ये पूया-की होने लगी । वे मन ही मन कहने लगे—'हाय ।
 मीने छद्माके अन्तरे समय यह कैय कुरिषत कर्म कर
 मम ॥ २ ॥
 कस्या खलु महात्मानो ये पुवृष्या कोपमुत्थितम् ।
 मिक्रमणित महात्मानो वीतमग्निनिवाम्भसा ॥ ३ ॥
 'ओ महत्तमस्त्री महात्मा पुत्रप उडे हुए कोपके अपनी
 बुदिके हाग उधी प्रकार रोक देते हैं जैसे छापरण लोम
 कबले प्रवृत्तित अग्निको घान्त कर देते हैं, वे ही इव संश्र
 मे क्य है ॥ ३ ॥
 कुदा पापं न कुर्यात् का मुन्यो हस्यात् गुरुमपि ।
 कुदा परुषया यावा सरा साधूमधिस्तिपेत् ॥ ४ ॥
 'कोपते मर जानेपर कोन पुत्रप पाप नहीं करता । कोप
 के बड़ीभूत हुआ मनुष्य गुरुमनोंकी भी हत्या कर सकता
 है । कोपी मानव साधु पुत्र्योपर भी कटुचर्चोद्वाय आशेष
 करने क्यता है ॥ ४ ॥
 वाप्यायाच्यं प्रकुपितो न विजाताति क्वहिं चित् ।
 वाक्ष्यमसिद्ध मुन्दस्य मासाच्य विघट क्वचित् ॥ ५ ॥
 'अधिक क्रुषित हुआ मनुष्य कमी इव बातका विचार
 नहीं करता कि मुझे क्या करना चाहिये और क्या नहीं ।
 कोपीके लिये कोई ऐल्य हुए काम नहीं बिधे बह न कर
 लके और कोई देखी बुरी बात नहीं लिये यह मुँहले न निकल
 सके ॥ ५ ॥
 याः समुत्पतित क्रोध इमर्येय निरस्यति ।
 पयारगस्त्यस्य जीर्णो स धिपुक्य उच्यत ॥ ६ ॥
 'ओ हृदयमें उत्तन्न हुए क्रोधके धमाके द्वारा उधी तरह
 निघट रता है जैसे धोप अपनी पुतनी के पुत्रको उँह रता
 है वही पुत्रप करवाय है ॥ ६ ॥
 विगस्तु मां सुबुवुर्षि तिलगं पापकृतमम् ।
 मविन्तवित्ता तां सातामग्निर्त्सामिपातकम् ॥ ७ ॥
 'मेरी बुदिके बहो गयी है, मैं निर्बल और महान् पाप
 करी हूँ । मैंने सीताकी रक्षाका कार विचार न करके उद्गाने

भाग क्यता ही और इव तरह अपने स्वामीकी ही हत्या कर
 वाली । मुझे पिन्कर है ॥ ७ ॥
 यदि वृष्या दिव्यं सर्वा नूनमार्यापि जानकी ।
 वृष्या तेन मया भर्तुर्हस कार्यमजामता ॥ ८ ॥
 'अदि यह लारी छद्मा क्य गयी तो मार्या जानकी भी
 निभय ही उठमें दग्ध हो गयी होगी । ऐसा करके मैंने अन
 क्कनमें अपने स्वामीका साथ काम ही चोपट कर बाध्य ॥ ८ ॥
 यत्पर्यमयात्पन्नस्तत्कार्यमयसादितम् ।
 मया हि वृक्षता उद्गां न सीता परिरक्षिता ॥ ९ ॥
 'किस कार्यकी दिकिके लिये यह लारा उद्योग किया गया
 था, वह कार्य ही मैंने नष्ट कर दिया, क्योंकि उद्गा क्यता
 समन मैंने सीताकी रक्षा नहीं की ॥ ९ ॥
 ईपत्कार्यमिव कार्यं कृतमासौल सशायः ।
 तस्य क्रोधाभिर्मूनेन मया मूछस्तयः कृतः ॥ १० ॥
 'इसमें संदेह नहीं कि यह उद्गा-बहन एक छोटा-सा
 कार्य होप रह गया था, बिते मैंने पूर्ण किया; परंतु कोपते
 पागत होनेके कारण मैंने भीरतमकर्यकी कार्यकी तो बह
 ही कट बाधी ॥ १० ॥
 चिन्ता जानकी व्यक्तं न ह्यवृष्या प्रददयत ।
 उद्गायाः कश्चिदुद्देशः सया भङ्गीकृता पुरी ॥ ११ ॥
 'मद्गाका कोई भी भाग ऐला नहीं रिखायी देता, बहो
 भाग न क्यतो हो । लारी पुरी ही मैंने मस कर बाधी है,
 अतः क्यकी नष्ट हो गयी, यह बात सतः स्पष्ट हो क्यती
 है ॥ ११ ॥
 यदि तद्विहत कार्यं मया प्रधाविषययात् ।
 इहैय प्राप्यसन्धासो ममपि ह्यय रासत ॥ १२ ॥
 'अदि अपनी विपरीत बुदिके कारण मैंने लारा काम
 चोपट कर दिया तो यही भाव मेरे प्राणोंकी भी बितर्जन हो
 क्यता चाहिये । यही मुझ अन्धा अन्त पक्या है ॥ १२ ॥
 किमग्नौ निपताम्यय बाहोसिक् पडधामुपु ।
 शरीरमिह सत्यानां वधि सागरवासिनाम् ॥ १३ ॥
 'क्या मैं अब बन्ती भागने कूर पडूँ या बहवानक
 मुलमें । अथवा लहृदमें निघट करनबाध पक-बन्तुओंके ही
 यही अपना शरीर समर्पित करूँ ॥ १३ ॥
 कथं तु जीयता शक्या मया द्रष्टुं हरीश्वराः ।
 तो या पुत्रपशाशुकी कथसवस्यपातिना ॥ १४ ॥
 'अ मैंने लारा काम ही नष्ट कर दिया तब अब कीते-की
 कीते बनारण्य मुनीब अथवा उन दन्तेपुत्रवदि भीरतम और
 कर्मभयप एतन कर सकता हूँ या उँह अपना मुँह रिखा
 सकता हूँ ॥ १४ ॥

मया कलु तत्रेयेय रोपवापात् प्रदर्शितम् ।
 प्रथित विपु लोकेषु क्वपिप्यमनवस्थितम् ॥ १५ ॥
 मैंने रोपके रोपव चीनों कोकेमें विस्मृत इव वानर-
 वित वपव्याका ही नहीं प्रदर्शन किया है ॥ १५ ॥
 भिगस्तु राजस भावमनीशमनवस्थितम् ।
 ईश्वरेणापि यत् रागात्मया सीता न दक्षिता ॥ १६ ॥
 यह राजस भाव कार्य-वाचनमें अस्मय और अव्यवस्थित
 है, इसे भिगत है। क्योंकि इस रत्नेगुणमूक श्रेयके ही
 कल्प समर्थ होते हुए भी मैंने सीताकी पछ नहीं की ॥ १६ ॥
 विनक्षयां तु सीतायां ताडुभौ विनक्षिप्यताम् ।
 तयोर्विनाशे सुग्रीवः सबन्धुयिनश्शिष्यति ॥ १७ ॥
 श्रीलोकके नष्ट हो जानेसे वे दोनों माई श्रीराम और
 कल्पन भी नष्ट हो कर्यंगे। उन दोनोंका नाश होनेपर कन्पु
 बन्धुबोधित सुग्रीव भी बीचित नहीं रहेंगे ॥ १७ ॥
 एतद्ब वक्षः धृत्वा भरतो आदर्शसखः ।
 धर्मात्मा साहाय्युपनः कथं शक्यति जीवितुम् ॥ १८ ॥
 फिर इसी सहाकारके पुन होनेपर भ्रातृसख धर्मात्मा
 भरत और दाम्पत्य भी कैसे जीवन धारण कर सकेंगे ॥ १८ ॥
 इत्याहुवशो धर्मिष्ठे गते नाशमसशयम् ।
 भविष्यति प्रजाः सर्वाः शोकसंतापपीडिताः ॥ १९ ॥
 इस प्रकार धर्मनिष्ठ इत्याहुवशके नष्ट हो जानेपर
 छरी प्रजा भी शोक-संतापसे पीडित हो बावगी रहने संभव
 नहीं है ॥ १९ ॥
 तद्ब्रह्माम्यरहितो ह्युत्तमार्थसप्रहा ।
 रोपशोचपरीताया इवर्त्तं लोकविनाशनः ॥ २० ॥
 अर्थात् सीताकी रक्षा न करनेके कारण मैंने धर्म और
 अर्थके संग्रहसे नष्ट कर दिया अतएव मैं बड़ा मायवीन
 हूँ। मेरा हृदय रोपरोपके वशीभूत हो गया है इसलिये
 मैं अरथ ही समझ करके विनाशक हो गया हूँ—मुझे
 तन्मूर्ख बगलके विनाशके पापका भगी होना पड़ेगा ॥ २ ॥
 इति शिस्तपतस्तस्य निमित्तान्पुणेदिते ।
 पूर्वमप्युपलब्धमिति साहाय्यं पुनरपिभ्यस्तत् ॥ २१ ॥
 इस प्रकार शिस्तमें पड़े हुए इतुमान्कीके कई घुम
 घकुन रिक्तानी पड़ जिनके अन्धे फलेका वे पक्षे भी
 मत्स्य अनुभव कर चुके थे। अतः वे फिर इत प्रकार लेखने
 लगे— ॥ २१ ॥
 अथ वा चाबसबाँझी रहिता स्वैव तेजसा ।
 न नशिष्यति कस्यापि भाषिराक्षी प्रवर्तते ॥ २२ ॥
 अथवा धम्मर है कर्वाँझुपुत्री सीता अपने ही लेखे
 मुद्विष्ट हो। कस्यापि कानकमिन्तीका नाश कदापि नहीं
 होगा क्योंकि भाग भागसे नहीं जखती है ॥ २२ ॥
 नहि धमसमनस्तस्य भाषोममिततेजसा ।
 क्वचित्नाभिगुप्तं तां सप्युमर्षति पावका ॥ २३ ॥

‘सीता प्रमितलेखी धर्मात्मा भगवान् श्रीरामकी लक्ष्मी
 हैं। वे अपने धरित्रके बन्धे—पात्रित्यके प्रभावसे मुद्विष्ट
 हैं। भाग उन्हें छू भी नहीं सकती ॥ २१ ॥
 नूनं रामप्रभावेण वैदेह्यां सुकृतन स ।
 यन्मा दहनकर्माय नाहृदयस्यवाहनः ॥ २४ ॥
 ‘भवस्य भीरुगके प्रभाव तथा विदेहनिन्त्री लक्ष्मी
 पुत्रवच्छे ही यह दाहक अग्निगुसे नहीं बल लक्ष्मी देह
 धयाप्या भरतावीनां धातुप्या देयता स या ।
 रामस्य च मनःकान्ठा सा कार्यं विनशिष्यति ॥ २५ ॥
 ‘फिर जो भरत आदि चीनों माइयोकी भावणा देखी अरे
 श्रीरामकन्दकीकी हृदयसख्य है, वे आससे देखे नष्ट हो
 सकेंगी ॥ २५ ॥
 यद् वा दहनकर्मायं सर्वत्र प्रमुदभ्यया ।
 न मे दहति छाङ्गुल कथमार्यो प्रभक्ष्यति ॥ २६ ॥
 यह दाहक एवं अविनाशो अग्नि सर्वत्र अथवा प्रभव
 रक्षती है वकका बल सकती है तो भी वह जिनके प्रभक्षे
 मेरी वृद्धको नहीं बल पाछी है उन्ही छाङ्गुल माता अन्ध-
 को कैसे बल सकेगी ? ॥ २६ ॥
 पुनश्चाश्विस्तयत् तत्र इन्मान् विक्षितकल्पा ।
 विरप्यनाभस्य गिरेर्जलमध्ये प्रदर्शनम् ॥ २७ ॥
 उक्त तमप इतुमान्कीने वहाँ विक्षित होकर पुनः उक्त
 मन्थको सारज किया जब कि तमुदके बन्धे उन्ने मैत्र
 पर्वतका दर्शन हुआ था ॥ २७ ॥
 तपसा सत्यवाक्येण गन्धस्यत्वात् भरति ।
 असौ विमिर्द्धेयश्चि न तामग्निः प्रक्षयति ॥ २८ ॥
 वे धेनेके अगे—तपस्या अथवाप्यतना पतिने अन्ध
 भक्तिके कारण मार्ग सीता ही अग्निको बला सकती है।
 भाग उन्हें नहीं बल सकती ॥ २८ ॥
 स तथा शिस्तयस्तत्र देव्या धर्मपरिप्रहम् ।
 शुभाथ ह्युमांस्ताथ चारण्यानां महात्मनाम् ॥ २९ ॥
 इस प्रकार मन्थकी सीताकी धर्मपरिपक्वताक विचार
 करते हुए इतुमान्कीने वहाँ महात्मा चारणोंके मुकने निकले
 हुए वे नाठे सुनी— ॥ २९ ॥
 अहो कलु कृतं कर्म दुर्बिगाहं इन्मता ।
 मग्नि विश्रुजता तीर्त्स्य भीमं राक्षससद्यसि ॥ ३ ॥
 ‘अहो ! इतुमान्कीने पक्षोंके धर्मोंके दुःख एवं अन्ध
 भाग क्यपर बड़ा ही अज्ञुत और दुष्कर कार्य किया
 है ॥ ३ ॥
 प्रपञ्चयितरह-श्रीपाठवृत्तसमाकुला ।
 जनकोसाहस्यमाता इत्यन्तीचाद्रिकम्पुः ॥ ३१ ॥
 वृग्धयं बगरी छद्वा साहस्यकरतोरणा ।
 जालकी म च वृग्धयि विस्त्रयाऽऽहुत पत्र नः ॥ ३२ ॥
 ‘परमेष्ठे मने हुए पक्षोंके विषयो बलके और इन्होंने

भी हुई खरी लड्डा जन-कथ्यहमने परिपूज हो चोखार करती
दुर-भी बान पड़ती है । पयतकी कन्-राओं भटारियों, पर
झेय और नगरके घटकोंसहित यह लगी लड्डा नगरी दम्भ
होगयी परंतु सीतापर ओष नहीं आयी । यह हमार स्त्रिय
वही बहुत और भाक्षयकी बात है ॥ ३१ ३२ ॥

इति शुभाष हनुमान् चार्चं तामसूतोपमाम् ।
बभूव आस्य मनसो हृपस्तत्कालसम्भया ॥ ३३ ॥
हनुमान्जीने अय चारणोंके करे हुए य अमृतके समान
सुर-बचन सुने, तब उनके हृदयमें उत्कण्ठ हणोंस्वभाव हा
ग्य ॥ ३३ ॥

स निमित्तैश्च शृष्टार्थैः क्षारणैश्च महागुणैः ।
श्रुतिपापयैश्च हनुमानभयत् प्रीतमानसः ॥ ३४ ॥
हृत्पार्ये श्रीमन्नामावज बाधनीक्षिये श्रुतिकल्पे सुन्दरकाण्डे पटपञ्चाशः सर्गः ॥ ५५ ॥
इस प्रकार श्रीरामजीकेनिमित्त श्रुतिपापय श्रुतिकल्पक सुन्दरकाण्डमें पञ्चमर्तौ सर्ग पूरा हुय ॥ ५५ ॥

अनेक चारके प्रत्यक्ष अनुभव जिये हुए शुभ शकुनों,
महान् गुण-पत्रक चरणों तथा चारणोंके करे हुए पूर्वोक्त
बचनोंद्वारा सीताजीके धीवित होनेका निश्चय करके हनुमान्जी-
के मनमें बड़ी पठनगता हुई ॥ ३४ ॥

ततः कपिः प्राप्तमनोरथाय
स्वामसता राजसुतां विदित्वा ।
प्रायस्सतस्तां पुनरेव हृदा
प्रतिप्रयाणाय मतिं सञ्चार ॥ ३५ ॥
राजकुमारी सीताजीको कोई धरि नहीं पहुँची है यह बचन-
कर कपिबर हनुमान्जीने अपना समूर्ण मनोरथ तब
तमसा और पुनः उनका प्रत्यक्ष दर्शन करके झोट बनेका
विचार किया ॥ ३५ ॥

पटपञ्चाश सर्ग

हनुमान्जीका पुनः सीताजीस मिलकर लौटना और समुद्रका लौपना

कस्तु विद्यापाम्बुल जानकी पययस्थिताम् ।
महिवाघाप्रवीरु विष्टया पश्यामि त्पामिहाक्षताम् ॥ १ ॥
तबन्तर हनुमान्जी भयाकृष्टक नीचे बैठी हुई
बनभीषणके पाठ गये और उन्हें प्रणाम करके बोळ—
'माये । श्रीमन्मयी बात है कि इत समय में आपकी
वडुप देन रहा है ॥ १ ॥

तवर्षं प्रस्थित नीता यीक्षमाणा पुनः पुनः ।
भुगुः स्नहाम्बिता यापय हनुमन्तमभापठ ॥ २ ॥
क्या भयने पत्रिक स्नेहमें बूझे दुर भी । व
लुभानबाध प्रस्तान करनके स्त्रिय उचत बचन उन्हें
करवार हलसी हुई बानी— ॥ २ ॥

यदि त्य मयस तात पसेकाहमिहातप ।
क्षिप्तु सुसुबुन द्वाविभ्रान्तःश्या गमिष्यसि ॥ ३ ॥
पठ । निपार बानशोर । यदि शुभ अस्ति समस्त
का एक दिन और वही किठी गुप्त स्थानमें उरर बाधा
मात्र विभाव करके कच बच गया ॥ ३ ॥

मम वैयादयभागायाः नातिप्रायत् तप पातर ।
अकम्पायाप्रमयस्य मुहुर्त्तं म्याद्वि हयः ॥ ४ ॥
तनप्यर । तुम्हार निकर रदेन मुस म्पदभगिन्नाक
अपर एक भा यदा हरक तिय कम हा अयण ॥ ४ ॥
गनदि हरिगान्धुल पुनः सम्रातप स्थयि ।
मावपयि न विभ्यासा मम पातरपुङ्गव ॥ ५ ॥
धीधत । बनगिरिधन । अब तुम पके यभ्यग
यदि तुम्हार भावेनक मर प्रान रहेगे जानती रहधा
करे विपन नती है ॥ ५ ॥

अज्ञान च त धीर भूयो म्य दारयिष्यति ।
तुम्हात् तुम्हातरं प्रातां तुमन-शोककशिताम् ॥ ६ ॥
धीर । मुत्तर तु ल-र-तुःल पकत गय है । मैमनिक
गदके दिन-दिन बुबळ होती जा रही है । अब तुम्हाप
रघन न हना मरे हृदयभ और मी विरीष करवा रहेगा ॥
मय च वीर सवेहसिष्टतीय ममाप्रतः ।

सुमहासु सहायेषु हृषुभषु महापलः ॥ ७ ॥
कथ तु खलु दुष्पार सतरिष्यति सागरम् ।
तानि हृषुससैम्यानि तौ या मरपराममौ ॥ ८ ॥
धीर । मर कामन यह संदेह अभीतक बना ही हुआ
है कि बड़े-बड़े जानपी और गीलोक तहापक होनेर भी
महाबकी मुभीष इत बुबळप लुभरके केश पार करेगे ।
उनके मन्त्रक व कनर और भाइ तथा व शनों पबकुमार
भीतम और उरमय भी इत महाभयरक देन ओष
हरीने ? ॥ ७-८ ॥

प्रयाणामश्च भूताना सागरस्यापि लङ्गन ।
शक्तिः म्यात् वैमलयस्य तप या मादुतम्य पा ॥ ९ ॥
अन ही श्रुतिकेमें इत समुद्रके कर्षनेकी शक्ति है—
शुभमें गरइमें अयथा वापुहवर्तमं ॥ ९ ॥
तत्र च्यायनिषेध समुत्पन्न दुपासद् ।
कि पदसि ममपार्थं त्वं हि च्यायविचारद्वा ॥ १० ॥
इत कचकावकी दुष्पर प्रतिरुपक उररलत होनेर
दुहे कच कम्पान रिलाओ रहा है । क्याभा, सवेकि
शुभ च्यापुपक हा ॥ ९ ॥
काममय स्वमयेक च्यायय परिसाधन ।

उनके महान् वेगसे क्रमिष्ठ हो फूँटों करे हुए
बहुसंख्यक वृक्ष इव प्रकार पृथ्वीपर गिर पड़े; मग्नो उन्हें ब्रह्म
मार गया हो ॥ ४४ ॥

कन्दरोंदररत्नसामां पीथिष्ठानां महौजधाम् ।
सिंहारानां मिनवो भीमो नभो भिम्बन् हि सुभुवे ॥ ४५ ॥

उठ समन उठ पर्वतकी कन्दरभूमि ररकर बने हुए
महावकी सिंहोन्नत मन्धर नाद आकाशको घड़ता हुआ-सा
सुनायी दे रहा था ॥ ४५ ॥

अस्तभ्याविज्ञवसना व्याकुलीकृतमूपमाः ।
विद्याधर्यः समुत्पेतुः सद्यसा धरणीधरात् ॥ ४६ ॥

मनके धरप बिन्दके बल ढीठे पड़ गये थे और
माभूषण उच्छ्र-फूट गये थे, वे विद्याधरियों बरव्य उठ
पर्वतसे उभरकी ओर उड़ पड़ीं ॥ ४६ ॥

अतिप्रमाणा बहिनो वीतविह्वला महाविपाः ।
निपीथितशिशोभ्रीया व्ययेरुन्ता महाइयाः ॥ ४७ ॥

बड़े-बड़े आकर और पमाकीकी भीमबाते महाविदेके
बम्बान् लय आने कन उपा गयेको दवाकर कुम्बकाकर
हो गये ॥ ४७ ॥

इत्यर्थे श्रीमद्वाल्मीके वाल्मीकीके आदिवाक्ये मुन्दरकाव्ये परपञ्चाशा सर्गा ॥ ५६ ॥
एत प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीके आर्यामात्यज आदिवाक्यके मुन्दरकाव्यके छन्दसों से पूरा हुआ ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाश सर्गः

हनूमान्जीका समुद्रको लौंचकर आम्बवान् और अज्ञद आदि सुहृदोंसे मिलना

व्याप्तुस्य च महावधः पद्मवालिच पर्वतः ।
मुहुरव्यस्तागन्धर्वमकुञ्जकमकोरपञ्चम् ॥ १ ॥
स चन्द्रकुमुदं रम्यं सार्कंकारण्डवं शुभम् ।
तिभ्यश्चक्रवर्णव्यवधरीवसञ्जाद्रकम् ॥ २ ॥
पुनर्बलुमहामीर्न जोहितान्महाप्रहम् ।
पेटावतमहाद्वीपं स्थायीहसविष्ठासितम् ॥ ३ ॥
बातर्षघातजाकोर्मिचन्द्रांशुशिशिघनमुत्त ।
हनूमानपरिभ्रान्ताः पुष्पुये गगनाभैवम् ॥ ४ ॥

व्यूरुप तरङ्गों और चन्द्रमाकी किरकरुप ढीठक का
मय हुआ था ॥ १-४ ॥
प्रसम्मान इषाकाहां ताराधिपमिबोमिस्तवम् ।
हरपिय समज्ञाव गगर्न सार्कमचक्रकम् ॥ ५ ॥
भपारमपरिभ्रान्तश्चाभुक्तिं समगाहत् ।
हनूमाय मेषजाडानि विकर्षमित्थिव गच्छति ॥ ६ ॥

पद्मवादी पर्वतके समान महान् वेगवाली हनुमान्की
बिना बके-मौंके उठ मुन्दर एव रमणीय आकाशकी समुद्र
को पार करने को बिलमें नाग यक्ष और गन्धर्व बिले हुए
कमल और उरव्यके समान थे । पन्द्रमा कुमुद और सुर्
ककुमुदके समान थे । पुष्प और भवज नक्षत्र कम्बईत
तथा बादल वेवार और पावक वृक्ष थे । पुनर्बलु विद्याक
मन्त्र और मंगल बड़े भारी प्रणके लक्ष थे । पेटावत हाथी
बहो महान् द्वीप-सा प्रतीय होता था । यह आकाशकी
समद्र स्वातीकी ४ वके वि-व्ये मग्नोभिल था तथा कय

हनूमान्की आकाशको अपना प्राप्त बनाते हुए, चन्द्र
मन्त्रको नलौंचे चरोंपते हुए, नक्षत्रों तथा सुर्गमन्त्रकी
अप्यरिष्ठको समेटते हुए और बादलोंके उमड़को लींच
हुए-से अनावाव हो मन्धर महासागरके पार प्ये का गं
ये ॥ ५ ॥

पाण्डुरादणवर्णानि नीलमाश्लिष्टकानि च ।
दृष्टिाकणवर्णानि महाध्राजि चक्राशिरै ॥ ७ ॥
उठ समय भावमानमें लहर, धक नीले मंजीरके
रंगके हरे और मरुज बर्षके बड़े बड़े मेष घोम्य था
रहे ॥ ७ ॥



समुद्रको लॉषकर लहस लोट्य हुए मारुति

पर्याप्तः परधीरश्च यथाशक्तं फलोद्भयः ॥ ११ ॥
 'शुभ्रिर्वैद्यो संहार करनेवाले कविभेद । स्वमे संदेह
 नहीं कि इत कर्मको सिद्ध करनेमें तुम अकेले ही पूर्ण
 समर्थ हो परंतु दुःशारेद्वारा जो निश्चयक फलको प्राप्ति
 होगी उतसे दुःशर्य ही यथा बदेव्य, भगवान् भीरम
 का नहीं ॥ ११ ॥

यस्यैस्तु सङ्घातं कृत्वा सङ्घां परधकावृता ।
 मानयेद्यथैविकाकृत्यस्तत्तथा सङ्घर्षा भवेत् ॥ १२ ॥
 'परंतु शुभ्रिर्वैद्यको पीडा देनेवाले श्रीरामचन्द्रकी पवि
 कृष्णको अपनी सेनासे परधकित करके युद्धे बर्हाते के लिये
 तो वह उनके योग्य परक्रम होगा ॥ १२ ॥

तद् यथा तस्य विद्वान्तमनुरूप महात्मनः ।
 भक्त्याहवशूरस्य तथा त्वमुपपाद्य ॥ १३ ॥
 अतः तुम देख उपाय करो; जिससे युद्धवीर महत्त्व
 भीरमचन्द्रकीका उनके योग्य परक्रम प्रकट हो ॥ १३ ॥

तद्योपहितं वाक्यं प्रथितं हेतुसंहितम् ।
 निराम्य हनुमान् वीरो वाक्यमुत्तरमावधीत् ॥ १४ ॥
 शीताजीकी यह बात स्नेहसुक्त तथा विरोध अभिप्रायके
 मयी हुई थी । इसे सुनकर वीर हनुमान्ने इस प्रकार
 उत्तर दिया— ॥ १४ ॥

वेदि ह्युत्तम्यात्माभीम्बरः द्रवता यतः ।
 सुग्रीवः सस्यसम्पद्यस्तथायै कृतमिच्छयाः ॥ १५ ॥
 'वेदि । वातर और मध्यभ्रंकी सेनाओंके स्वामी
 कविभेद सुग्रीव बने शक्तिशाली रूपसे हैं । वे दुःशरके उद्धारके
 लिये प्रतिज्ञा कर चुके हैं ॥ १५ ॥

स धानरसहस्राणां कोटीभिरभिसंघृतः ।
 क्षिप्रमेप्सति वैदेहि सुग्रीवा द्रवताधिपः ॥ १६ ॥
 विदेहनभ्रिनि । अतः वे धानरसहस्र सुग्रीव तल्लो
 कंठि धानरसे धिरे हुए द्रवत बर्हा अर्धे ॥ १६ ॥
 ती च वीरो नरवरो सहितौ रामसङ्गमजौ ।
 मावम्य नगरीं सङ्घां सायकैर्विधमिष्यताः ॥ १७ ॥
 'सायक ही वे रथों वीर नरभेद भीरम और कल्पव भी
 एक साथ आकर अपने धन्यकोसे इत सङ्घापुरीका विध्वंस
 कर शक्ये ॥ १७ ॥

सगणं राक्षसं हत्या नभिराद्य् रघुनम्भना ।
 रामान्नाय परादाह सां पुर्वीं प्रति पाक्यति ॥ १८ ॥
 बरादे । यद्यद्यन यद्यको उतक सेमिसेतहित
 काके राक्षसे बाहकर भीरुनायकी भावको साथ से शीम
 ही मन्नी पुीसे पचा ॥ १८ ॥

सामान्यसिद्धि भद्र त भय त्व कालकात्स्न्यी ।
 क्षिप्रं द्रव्यसि रामस्य निहतं रायण त्वे ॥ १९ ॥
 इतलिन भाव नैर्धं धारण करे । भावका भय ही ।
 भाव कल्पको प्रतीका करे । धारण शीम ही रक्षभूमिसे

भीरमके हाथसे मात्र भावगा, यह आप अपनी भाव
 देखेंगी ॥ १९ ॥

निहतो राजसेन्द्रे च सपुत्रामात्मवत्प्रथम् ।
 त्वं सनेप्सति रामेण शशाङ्गेनेव रोहिणी ॥ २० ॥
 'पुत्र मन्त्री और माई-कन्यु भोतहित रायस्यत्र गणके
 मारे बनेपर आप भीरमचन्द्रकीके साथ उछी प्रक
 मिच्छे; वेध रोहिणी चन्द्रमासे मिली रे ॥ २ ॥

क्षिप्रमेप्सति काकुरस्यो ह्युत्तमपयिष्यति ।
 यस्ते शुधि विजित्यारीम्भेकं व्यपमयिष्यति ॥ २१ ॥
 धानसे और मध्यभ्रंके प्रमुख शीरक ल
 भीरमचन्द्रकी शीम ही बर्हा पचारगे और युद्धमें सपुत्रमे
 शीतकर आपका सारा शोक दूर कर देंगे ॥ २१ ॥

एवमाञ्जास्य वैदेहीं हनुमान् माकृतामङ्गा ।
 गमनाय मतिं कृत्वा वैदेहीमप्यवावयत् ॥ २२ ॥
 विदेहनभ्रिनी शीताको इस प्रकार आम्भवन रे कृते
 बानेक विचार करके पवनकुम्भर इतुम्भने जै
 मनाम किया ॥ २२ ॥

राक्षसान् प्रवयान् हत्वा नाम विद्याम्य धात्मन्ना ।
 समान्वाच स वैदेहीं दर्शयित्वा पर वक्षम् ॥ २३ ॥
 नगरीमाकुर्वां कृत्वा यञ्जयित्वा च राजवम् ।
 दर्शयित्वा बहू घोरे वैदेहीमभिवाद्य च ॥ २४ ॥
 प्रतिगन्तुं मनाङ्गके पुनर्मध्येन सागरम् ।

वे बड़े-बड़े रक्षकोंके मारकर अपने महान् बहू
 परिषय रे बर्हा स्नाति प्राप्त कर चुके थे । उन्होंने लौकिकी
 आम्भवन रे, कृष्णपुरीको म्पाकुड करके; राजवको पक्ष
 देकर उछे अपना भवानक बहू दिखा; वैदेहीके प्रथम
 करके पुनः सपुत्रके बीचसे हाकर बौध बनेक विचार किया ॥
 उताः स कविशाशुङ्कः स्वामिसंवर्धनोऽनुका ॥ २५ ॥
 आदरोह गिरिभेद्यमरिचमरिर्मर्षकाः ।

(भय बर्हा उनके लिये कोई कर्म बाकी नहीं रह गया
 था; अतः) अपने स्वामी भीरमचन्द्रकीके इच्छनेके लिये
 अशुक्त हो वे शत्रुमर्दन कविभेद इतुमान् पर्वतोंमें उच्च
 मरिच गिरिवर शय गये ॥ २५ ॥

तुष्टपद्यकृत्युपाभिर्नीमभिर्धनराजिभिः ॥ २६ ॥
 सोत्तरीयमियाम्भोदैः शृङ्गान्तरविजिम्भिभिः ।

ऊँचे-ऊँचे पर्वतों—पर्वत समान बहूबहू
 सेमित नीकी वनभेविर्षो मानी उत पर्वतप्र परिधान बह
 थी । जिलरोंपर बड़े हुए इक्षाम मेघ उतके लिये उछी
 बहू (धारर)-से प्रतीत होते थे ॥ २६ ॥

योष्यमानमिय प्रीयाया दियकरकरैः शुभैः ॥ २७ ॥
 उर्मियन्तमिष्योत्तैसोचनरिय धातुभिः ।
 तापीधनिःस्वमेमग्नेः प्राधीतमिय पर्यतम् ॥ २८ ॥
 त्वंकी कल्पामकी डिये प्रयूर्धक उछे बगाठी-की

बन पङ्गी वी । नाना प्रकारके पानु मानो उसके झुके हुए नेत्र से बिनसे वह सब कुछ देखता हुआ-स्य स्थित था । पश्चीय नदिपौत्री कन्दराधिक गम्भीर जेपसे ऐसा झगता था, मानो वह पर्वत कस्कर वेदपाठ कर रहा हो ॥२७-२८॥ प्रातिमिष विस्पष्ट नानाप्रसन्नवस्वतैः ।

देवशक्तिभक्तयुतैर्कर्षवाहुमिय स्थितम् ॥ २९ ॥ अनेकनेक सरनोंके कर्षक नदसे वह मग्नगिरि सज्जना गीत-सा गा रहा था । जैसे जैसे देवशक्तियोंके का न माने हाथ ऊपर उठाये जाता था ॥ २९ ॥

प्रपातस्रजनिर्घोषैः प्राकृष्टमिष सधतः । वयमानमिय इयामैः कम्पमानैः शरत्तनैः ॥ ३० ॥ वष और बह-प्रपातोंकी गम्भीर श्रान्तिये व्याप्त होनेके कारण शिखाया या इन्द्र मन्त्राया-सा शान पड़ता था । झले हुए सरकेंबोंके स्वप्न बनोसे वह श्रौणता-या प्रतीत शय्य था ॥ ३ ॥

वेगुभिर्मादतोवृष्टैः कूडस्तमिष क्षीकक्षैः । निम्बसस्तमिषामर्षाद् घोरैरावाविषोत्तमैः ॥ ३१ ॥ बायुके झोंके काकर झिंसे और मधुरधनि करसे पौछसे उपस्थित होनेवाला वह पर्वत मानो बाँसुरी बजा पा था । म्यानक विषमर लयोंके फुंकारसे कंबी लों लीक्या-सा शान पड़ता था ॥ ३१ ॥

वीहारकृतवाम्भीरैर्व्यापस्तमिष गह्वरैः । मेघपावनिमैः पार्वैः प्रक्यास्तमिष सख्यतः ॥ ३२ ॥ झुरेके कारण गहरी प्रतीत होनेवाली निम्ब सुसमो-हारा वह व्यान-सा कर रहा था । उठते हुए मेघोंके समान लय पावनेवाले पार्वीक्यों पर्वतोंहाय वष और विस्तार-सा प्रतीत श्रेय्य था ॥ ३२ ॥

कम्पमानमिषाकाशे शिकरैरन्नमाक्षिभिः । कुन्दैश्च पशुधा कीर्णैः घोभितं बहुकम्बुरैः ॥ ३३ ॥ मेघमन्त्राभोंसे मज्जित शिलयोंहाय वह आकाशने संयद्गार-सी से रहा था । अनेकनेक शृङ्गोंसे व्यस्त तथा बहु-सी कन्दरभोंसे सुशोभित था ॥ ३३ ॥

सास्रयालैश्च कर्णैश्च यद्येव बहुभिर्बृहत्म् । ऋताशिवामैविततैः पुष्पवद्विरस्रकृतम् ॥ ३४ ॥ लक, ताक रूप और बहुसंयुक्त शोंके वृक्ष उठे वष मोरसे परे हुए थे । कृमिक मारसे कड़े और दैक हुए क्य-नितान उठ पर्वतके अन्धकार थे ॥ ३४ ॥

नानामृगपण्यैः कीर्णैः धानुनिष्यन्वमूर्तिभः । बहुप्रसन्नव्यापत दिखार्संभवसंकृतम् ॥ ३५ ॥ नाना प्रकारके पशु यहाँ सब ओर भरे हुए थे । विविध शत्रुभोंके निपटनेसे उसकी बड़ी खाया हो रही थी । वह पशु बहुसंयुक्त सरनोंके निम्नित तथा यथि यथि निम्नभोंसे मग हुआ था ॥ ३५ ॥

महर्षिपद्मशगन्धर्वकिन्नरोरगसेवितम् । ऋतापावपसन्नाथ सिंहाभिष्ठितकम्बुरम् ॥ ३६ ॥

महर्षि यक्ष, गन्धर्व, किन्नर और नागग्य यहाँ निवास करत थे । ऋताभो और वृद्धोंहाय वह सब ओरसे आच्छादित था । उसकी कन्दराभोंसे सिंह बहाइ रहे थे ॥ व्याघ्रादिभिः समाकीर्णैः स्थायुमूळफलसुमुम् । आरुरोहानिच्छसुतः पयत प्रुषगोत्तम ॥ ३७ ॥ रामदर्शनशीघ्रण प्रहर्षेणाभिघोदितः ।

व्याघ्र आदि सिंहक जन्तु भी यहाँ सब ओर फैल हुए थे । खाशिश फलोंसे कड़े हुए वृक्ष और मधुर कन्द-मूळ आदिकी यहाँ बहुसाकत थी । ऐसे रमणीय फलतपर बानर शिरोमणि पवनकुमार इतुमानकी भीरमन्त्रकीके बर्तनकी शीमता और अत्यन्त इयंसे प्रेरित होकर चढ़ गये ॥३७॥ तेन पावतस्रक्याता रम्येषु गिरिसालुषु ॥ ३८ ॥ सघोपाः समशीर्यन्त शिखाभ्यर्षीकृतास्ततः ।

उस पर्वतके रमणीय शिलयोंपर जो शिखरें थीं, वे उनके पैरोंके आघातसे भरी आवाजके व्यप चूर-चूर होकर सिंहर जातीं थीं ॥ ३८ ॥

स तमारुहा शैलेभ्यं ध्यवर्चत महाकपिः ॥ ३९ ॥ वृक्षिणानुत्तरं पाट प्राधर्षैस्त्वषणाम्भसः ।

उस शैलान अग्निपर आरूढ़ हो महाकपि इतुमानकीने तनुके इच्छिण उरसे उतर उतर जानेकी इच्छासे अपने शरीरको बहुत बड़ा बना किया ॥ ३९ ॥ अधिवह्य ततो वीरः पर्वतं पयनारमया ॥ ४० ॥ वृषा सागर भीमं भीमोत्तानियेयितम् ।

उस फलतपर आरूढ़ होनेके पश्चात् वीरवर पवनकुमारने म्यानक लयसे सेवित उस भीमप महासागरकी आर इच्छिण किया ॥ ४ ॥

स माकठ इयाकाशं माकठस्यात्मसम्भवाः ॥ ४१ ॥ प्रोपेदे हरिशार्ङ्गो वृक्षिणानुत्तरं विशम् ।

बायुरेवजके औरस पुत्र कभिभेद इतुमान जैसे बायु आकाशमें तीजगतिसे प्रचारित होती है उसी प्रकार दक्षिणसे उतर दियाकी ओर बड़े वेगसे (उडकर) पडे ॥४१॥ स तदा पीडितस्तेन कपिना पर्वतोत्तमः ॥ ४२ ॥ ररास विविधैर्मृतैः प्राविशद् यस्तुधातसम् । कम्पमानैश्च शिकरैः पतत्रिरपि च तुमैः ॥ ४३ ॥

इतुमानकीके पैरोंका दबाव पड़नेके कारण उस ऋत पर्वतसे बड़ी भयंकर आवाज हुई और वह अपने कोंपट हुए शिखरों दृष्ट कर गिरे हुए वृद्धों तथा भौंनि भौंनिके प्राणियोंके लक्ष्यसे पर्वतोंसे पैर मना ॥ ४२ ॥ तस्योद्वेगोन्मथिता पाश्याः पुष्पदाक्षिनः । त्रिपनुभुतस भग्नाः शक्यायुपहता इव ॥ ४४ ॥

मकाराभ्यामकाराभ्याम् अन्द्रमा इष इष्यते ॥ ८ ॥

वे कमी उन मेघ-समूहोंमें प्रवेश करते और कमी बार निरुद्धते थे। बार-बार एका करते हुए इतुमान्भी किये और प्रकथित होते हुए अन्द्रमाके समान दृष्टिगोचर होते थे ॥ ८ ॥

विविधाभ्रघनावभ्रगोचरो भवच्छार्वरः ।
इष्याइष्यतनुर्वास्तथा अन्द्रायतेऽम्बरे ॥ ९ ॥

नाना प्रकारके मेघोंकी घटाओंके भीतर होकर चले हुए सबकारणकारी शीतल इतुमान्भीन्द्र शरीर कमी बीजता था और कमी अदृश्य हो जाता था अतः वे आकाशमें चर-बोधी भाङ्गमें किये और प्रकथित होते अन्द्रमाके समान बान पड़ते थे ॥ ९ ॥

वार्षापर्यायमाप्नो गगने स वभी वायुनन्दनः ।
शरपन् मेघवृन्दानि निष्यतब्ध पुषः पुनः ॥ १० ॥

बार-बारमेघ-समूहोंको विहीर्ण करने और उनमें होकर निरुद्धतेके कारण वे पवनकुमार इतुमान् आकाशमें गन्धके समान प्रकीर्ण होते थे ॥ १० ॥

बदन् नादेन महत्या मेघस्वनमहास्वनतः ।
प्रवरान् राक्षसान् हरवा नाम विभ्राव्य चारमना ॥ ११ ॥
आकुञ्जान् गगरी कृत्वा व्यथयित्वा च रावणम् ।
भर्षयित्वा महाबीरान् वैवृहीमभिधाद्य च ॥ १२ ॥
आवगाम महातडाः पुनर्मध्येन सागरम् ।

इस प्रकार महादेवकी इतुमान् अपने महान् सिंहनादसे मेघोंकी गम्भीर वननाको भी मात करते हुए आगे बढ़ रहे थे। वे प्रदुल राक्षसोंको मारकर अपना नाम प्रसिद्ध कर चुके थे। बड़े बड़े शीतलके रौंदकर उन्होंने सङ्गानगरीको आकुञ्ज तथा रावणको व्यथित कर दिया था। उसभाए विदेरनमिन्दी कीटाको नमस्कार करके वे चले और तीव्र प्रसिद्धि पुनः समुद्रके मध्यभागमें आ पहुँच ॥११ १२३॥

परिवर्त्तन् सुनाभं च समुपस्पृश्य धीपयान् ॥ १३ ॥
स्यामुक्त इव नाट्यो महावेगोऽम्बुपागमत् ।

वहाँ परवराव मुन्धम (मैनाक) का शर्ण करके वे पराङ्गी एव महान् वेगधारी बानर-वीर समुद्रसे छूटे हुए धरणी मूर्ति भाये बढ़ गये ॥ १३३ ॥

सर्किषिहापत् सम्प्राप्तः समालोक्य महागिरिम् ॥ १४ ॥
मरुन् मेघसङ्घर्षा ननाद् स महाकविः ।

उपर तटके कुछ निरुद्ध पहुँचनेपर महागिरि मरेन्द्रर एव पड़ते ही उन महाकविने मेघक समान यह खोलते गन्ना को ॥ १४३ ॥

स पूरयामास कपिर्दिशा दृष्ट समन्ततः ॥ १५ ॥
बन् नान् महता मघस्वनमहास्वनाः ।
उत्तमन मेघकी मूर्ति गम्भीर स्वरसे बड़ी भारी गर्भना

करके उन बानरवीरने सब ओरसे दखें दिशाओंको ब्रह्म-पूर्ण कर दिया ॥ १५३ ॥

स च देशमनुप्राप्तः सुहृद्दानछालसः ॥ १६ ॥
ननाद् सुमहामार्द्वाङ्गलं चाप्यकम्पयत् ।

फिर वे अपने मित्रोंको देखनेके लिये उग्रुद्ध होकर उनके विभामखानकी ओर बढ़े और दृष्ट दिग्बान एव खोल खोलसे सिंहनाद करने लगे ॥ १६३ ॥

तस्य नानघमानस्य म्रुपर्णाचरिते पयि ॥ १७ ॥
फलतीवास्य घोषेण गगनं सार्धमण्डलम् ।

यहाँ गरुड बसते हैं; उषी मार्गपर बार-बार सिंहनाद करते हुए इतुमान्भीके गम्भीर घोषसे सूर्यमण्डलसहित आकाश माने घटा बारा था ॥ १७३ ॥

ये तु तद्वोचते कूले समुद्रस्य महाबलाः ॥ १८ ॥
पूर्वं सविष्टिताः शूरा वायुपुत्रविश्वस्तवाः ।

महतो वायुनुकस्य तोषवस्त्वेष निःस्वमम् ।
शुभ्रुवस्ते तदा घोषमूढवेग हनूमताः ॥ १९ ॥

उत्तमम वायुपुत्र इतुमान्के दर्शनकी इच्छासे जो शूरीर महाबली बानर समुद्रके उत्तर तटपर पड़ेसे ही बैठे थे उन्होंने वायुसे उचरते हुए महान् मेघकी गर्भनाके समान इतुमान्भीका खोल-खोलसे सिंहनाद सुना ॥ १८ १९ ॥
ते वीममसः सर्वे शुभ्रुः क्षनमौकसः ।
यान्तेऽग्रस्य निघोर्षं पर्यन्वामिनतोपमम् ॥ २० ॥

अनिष्टकी भाषाछासे बिनक मनमें बीनता का ययी थी; उन समस्त बन्नासी बानरोंने उन बानरभेड इतुमान्भीके गर्भनाके समान सिंहनाद सुना ॥ २० ॥

निशाम्य महतो नार्द्वायानरास्ते समन्ततः ।
बभ्रुवुरसुकाः सर्वे सुहृद्दानक्यङ्गिणाः ॥ २१ ॥

गर्भते हुए पवनकुमारस बर सिंहनाद सुनकर सब ओर बैठे हुए वे समस्त बानर अपने मुहद् इतुमान्भीको देखनेकी भविष्यवे उलकियित हो गये ॥ २१ ॥

आज्यवान् स हरिभ्रेष्टः प्रीतिसहृष्टमानसः ।
उपामन्स्य हरिन् सवागिर्दं पवनमप्रधीत् ॥ २२ ॥

बानर माङ्गलोंमें भेड ब्रह्मरुद्रके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई। वे हर्यते बिक उठे और सब बानरोंको निकट बुलाकर इस प्रकार बाले— ॥ २२ ॥

सर्वथा हतक्यर्षोऽसौ हनुमान्नाम संशयः ।
न ह्यस्याहतक्यर्षस्य नार्द्वापयिधो भयत् ॥ २३ ॥

एतने वरदे नही कि इतुमान्भी सब प्रकारसे अपना कर्ष्य विरु करके भा रहे हैं। इनमें हुए बिना इनकी ऐसी गर्भना नहीं हो सकती ॥ २३ ॥

तस्य वाहुरवेग च निमाद् च महात्मनः ।
निशाम्य हरयो ह्यथा समुत्पेत्यतस्ततः ॥ २४ ॥

महात्मा हनुमान्भीमी युवामों और बाँचोंका मवान वेग
रेश तथा उनका विह्वलाव सुन सभी जानर इमने मरकर इतर
उपर उछलने कूरने क्यो ॥ २४ ॥

ते नगाप्रान्तगाप्राप्ति शिखरारिच्छिन्नराणि च ।
प्रहृष्टाः समपद्यन्त हनुमन्तं विहस्रवाः ॥ २५ ॥

हनुमान्भीको देखनेकी इच्छने से प्रसन्नतापूर्वक एक वृक्ष
पूरे हूँपर तथा एक शिखरसे वृधे शिखरोंपर चढ़ने क्यो ॥

ते प्रीत्या पादपाशेषु गृह्य शाकामवस्थिताः ।
वातांसि च प्रच्छशानि समाविध्यन्त वामरा ॥ २६ ॥

हूँकी धरते ऊँकी शाकापर चड़े होकर वे प्रीति-
युक्त जानर अपने स्थल दिबायी देनेवाले वन दिखने
क्यो ॥ २६ ॥

गिरिगङ्गरसस्त्रीभो पथा गर्भति मरुतः ।
पर्व जगर्भ बहवान् हनुमान् मावतात्मजा ॥ २७ ॥

बेते पर्वतकी गुच्छभौमै भवन्तु दुर्द बाधु चड़े बोरेते
धम् करती है, उठी मरुत बलवान् पवनकुमार हनुमान्ते
गर्भन श्री ॥ २७ ॥

वमभ्रजनसंकाशमापठत महाकपिम् ।
ह्यु ते वामराः सर्वे तस्युः प्राञ्जलयस्तीवा ॥ २८ ॥

मेधोंकी घटाके समान पाठ आते हुए महाकपि
हनुमान्को देखकर वे सब जानर उच्य वमम हाथ धोइकर
चड़े हो गये ॥ २८ ॥

ततस्तु वेगवान् धीरो गिरिगिरिनिभः कपिः ।
निपपात गिरिस्तस्य शिखरे पादपाकुण्डे ॥ २९ ॥

उच्यभात् पर्वतके समान विशाल शरीरवाले वेगवान्भी
धीरवानर हनुमान् भी मरिचि पर्वतसे उछलकर चले वे
वृक्षोंसे भरे हुए मरेन्द्र गिरिक शिखरपर कूर पड़े ॥ २९ ॥

हर्षेणापूर्वमाणोऽसौ रम्ये पर्वतनिष्ठरे ।
छिन्नपद्म हयाकाश्यात् पपत्त धरणीधरा ॥ ३० ॥

हर्षि भरे हुए हनुमान्भी पर्वतके रमणीय धरनेके
निकट पंख कटे हुए पर्वतके समान आकाशसे नीचे आ
गये ॥ ३० ॥

ततस्ते प्रीतमनसः सर्वे यानरपुङ्गवाः ।
हनुमन्त महात्मान परिवापोंपठस्थिरे ॥ ३१ ॥

उच्य वमय वे सभी भेद्य जानर प्रसन्नचित्त हो
महात्मा हनुमान्भीको धारों बोरेते पेरकर चड़े हो
गये ॥ ३१ ॥

परिपाय च त सर्वे परां प्रीतिमुपागताः ।
प्रहृष्टपद्माः सर्वे तमागतमुपागमन् ॥ ३२ ॥

उपायलाभि चापाय मूलाभि च फलाभि च ।
प्रत्यर्षयन् हरिभेदं हरयो मावतात्मजम् ॥ ३३ ॥

उन्हें पेरकर चड़े होनेसे उन सबको बड़ी प्रसन्न
हुई । वे सब जानर प्रसन्नमुख होकर दूरतके आये हुए
पवनकुमार कीभेद्य हनुमान्के पाठ प्रीति-भौतिकी मंत्र-
वामाभी तथा फल-मूख छेकर आये और उनका स्तब्ध-
उत्तर करने क्यो ॥ ३३ ॥

भिनोतुमुंविताः केचित् केचित् चिच्छिच्छिंस्तथा ।
ह्यथाः पादपाशाकाश्च भ्यानिन्तुर्बानर्यभाः ॥ ३४ ॥

कोई मानसमन् होकर गर्वने लगे, कोई चिच्छिच्छिं
भरने क्यो और चिन्ने ही भेद्य जानर हर्षित मरुत हनुमन्की
के पैठनेके चिन्ने हूँकी शाकाएँ तोड़ लये ॥ ३४ ॥

हनुमन्स्तु युक्त्वा वृक्षाक्षाम्यवत्प्रमुखांस्तथा ।
कुमारमहर्षे वैष सोऽपवन्त महाकपिः ॥ ३५ ॥

महाकपि हनुमान्भीने वामवान् मासि दृढ युक्त्वा
तथा कुमार महर्षको प्रजाम किया ॥ ३५ ॥

स ताम्यां पूषिताः पूष्यः कपिभिन्न प्रसावितः ।
ह्यथा वेपीति विच्छान्तः सक्षेपेण म्येषेवत् ॥ ३६ ॥

छिन्न वाम्यन्त और महर्षने भी भावलीन हनुमन्की
का आदर-स्तुका किया तथा वृक्षे-वृक्षे जाननेने भी उनको
उमन्न करके उनको वृष्ट किया । तत्पश्चात् उन पणकी
यानरवीरने धरोपमें निरैवन किया—'मुझे वीतादेवीका दर्शन
हो गया' ॥ ३६ ॥

निपसारत् च हस्तेन गृहीत्या वाकिनः सुतम् ।
रजनीये धनोद्देशे महेन्द्रक्य गिरिस्तावा ॥ ३७ ॥

हनुमान्ममर्षेत् पृष्टस्तथा तान् वामर्यमान् ।
मद्योक्तयनिकासंस्था ह्यथा सा जनकारमजा ॥ ३८ ॥

तदनन्तर वासिकुमार महर्षका हाथ अपने हाथमें छेकर
हनुमान्की महेन्द्रगिरिके रमणीय जनप्रान्तमें जा बैठे और
उसके पूछनेपर उन जानर(धियोगविषये) इस प्रकार बोले—
'जनकनिरन्ती वीता छद्मके अद्योक्तनमें निवात करती है ।
वहीं मैंने उनका दर्शन किया है ॥ ३७-३८ ॥

रक्ष्यमाणा सुषोराभी वसुधैविकुपिभिरभिविद्धा ।
एकवेणीभरा वासा रामवर्दानज्जबस्ता ॥ ३९ ॥

उपायसपरिधाम्ना मक्षिमा जतिष्ठा कृषा ।
मयन्त भयंकर आकारवाली शचसिंहीं उनकी रक्षवाभी
करती हैं । वासी वीता बड़ी भाभी भाभी हैं । वे एक वेणी
धरन किये वहाँ रहती हैं और भीतमन्त्रकीक दानकमें लिये
बहुत ही ठामुक हैं । उपायतके कारण बहुत भय गयी है,
दुर्बल और मखिन हो रही है तथा उनके कथ ब्याके कर्मने
परिपत हो गये हैं ॥ ३९ ॥

ततो हृद्येति वचनं महाधर्ममनूतोपमम् ॥ ४० ॥
मिशाम्य माकृतेः सर्वे मुनिता यान्ताममम् ॥

उत्त उमय 'धीताश्च दर्शनं हो मया' यह वचन बानरों-
को अमृतके समान प्रतीत हुआ । यह उनके महान् प्रयोग-
श्री सिद्धिश्च वचन था । हनुमान्जीके मुखसे यह वृत्त
संघट्ट मुनकर सब बानर बड़े प्रफुल्ल हुए ॥ ४० ॥

हृद्येऽन्यस्ये नव्यस्ये गद्यस्यस्य महाबलः ॥ ४१ ॥
बाहु किलकिङ्कामस्ये प्रतिगर्जन्ति पापरे ।

कोह हपनाह और कोह सिंहार करने लगे । वृद्ध
महाशक्ती बानर गबने लगे । कितने ही किङ्कपरियों मरने लगे
और वृद्धे बानर एककी गर्बनाके उच्छर्मे लय मी गर्बना
करने लगे ॥ ४१ ॥

केचिन्नुभ्रुत्कालकाः प्रहृष्टाः कपिकुञ्जराः ॥ ४२ ॥
भायताक्षितधीर्षाणि कञ्जञ्जानि प्रविष्यधुः ।

बहुतसे कपिकुञ्जर हरसे उन्मत्तित हो अपनी पूँठ ऊपर
उठकर नाचने लगे । कितने ही अपनी धंभी और मोटी
पूँठें बुझने या हिचकने लगे ॥ ४२ ॥

अपर तु हनूमन्तं श्रीमन्त वानरोत्तमम् ॥ ४३ ॥
भाङ्गुस्य गिरिशृङ्गेषु संस्पृशन्ति स हरिताः ।

कितने ही बानर हनूमन्तसे भरकर छल्लों भरते हुए
परशुपतिजंगल बानरधिपेमनि भीमान् हनुमान्को घूने
लगे ॥ ४३ ॥

कृत्वाकस्य हनूमन्तमङ्गुस्तु तवाग्रधीत् ॥ ४४ ॥
सभेषा हरिवीराणां मध्ये वाचमनुत्तमाम् ।

हनुमान्जीकी उर्ध्वक बाट मुनकर अङ्गुलने उठ उमय
कमल बानरवीरोंके बीचमें यह परम उत्तम बात कही—॥ ४४ ॥
सत्वे भीर्ये न ते कश्चित् समो धामर विद्यते ॥ ४५ ॥
पद्मचतुस्य विस्तीर्य सागरं पुनर्यगतः ।

अनरमेष्ट । कल और पराक्रममें तुम्हारे समान कोई
यही है । क्योंकि तुम इस विद्याक समुद्रको जीवकर फिर इस
पार कोष्ट माये ॥ ४५ ॥

वर्षितस्य प्रयाता मस्त्यमको धामरोत्तमम् ॥ ४६ ॥
त्वामसाक्षात् सप्तपथ्याः सिद्धायां राघवेषु ह ।
अभिहितमेने । एकनात्र तुम्ही हमअंगोंके श्रीबनरद्वय

हृत्पार्थे श्रीमहाभाषण बास्मीकीच आरिक्मस्य सुन्दरकाण्डे सप्तपथास्य सर्ग ॥ ५० ॥
एत प्रकार श्रीहनुमन्निर्मित आर्यजुनस्य आरिक्मस्य सुन्दरकाण्डे सप्तपथां सर्गं पूा हुआ ॥ ५० ॥

हो । तुम्हारे प्रचारते ही हम सब छोटा लकठमनोरथ होकर
भीरमचन्द्रकीसे मिलेंगे ॥ ४३ ॥

यहो स्वामिनि त भक्तिरहो धीर्यमहो धृतिः ॥ ४७ ॥
विष्टया ह्यष्ट स्वया देवी राघवपत्नी यशस्विनी ।

विष्टया स्वकथयति काकुत्स्थः शोकं स्त्रीतावियोगजम् ॥ ४८ ॥
'अपने स्वामी श्रीरघुनाथकीके प्रति तुम्हारी भक्ति

अवसुत है । तुम्हारा पराक्रम और धैर्य भी भाव्यरत्नक है ।
बड़े लोमाश्रमी बात है कि तुम भीरमचन्द्रकीकी यशस्विनी
कनी स्त्रीतावेकीच दर्शन कर भावे भव भगवान् भीरम
धीताके वियोगसे उत्सन्न हुए शोकको त्याग देंगे, यह मी
लोमाश्रम ही विषय है' ॥ ४७-४८ ॥

ततोऽङ्गु हनूमन्त जाम्बवन्त च धामराः ।
परिवार्यं प्रमुनिता मेरिरे विपुलाः शिखराः ॥ ४९ ॥

उपस्थिता गिरेस्तस्य शिखरासु विपुलासु ते ।
ओत्तुकामाः सनुद्रस्य लङ्घनं धामरोत्तमम् ॥ ५० ॥
दर्शनं चापि लङ्घयाः सीताया राघवस्य च ।
तस्युः प्राङ्गलपः सर्वे हनूमद्रव्णेनुत्तमाः ॥ ५१ ॥

ततस्मात् सभी श्रेष्ठ बानर समुद्रसङ्घन बङ्गा, राघव एवं
सीताके दर्शनअ समाचार सुननेके लिये एकत्र हुए तथा अङ्गु,
हनुमान् और जाम्बवान्को चारों ओरसे घेरकर परतकी बड़ी
बड़ी शिखाओंपर आनन्दपूर्वक बैठ गये । वे लकठ-तव हाथ
काँडे हुए ये और उन सबकी ओलें हनुमान्जीके मुखपर
करी थीं ॥ ४९-५१ ॥

तस्यो तत्राङ्गुः भीमान् बानरैश्चभुभिषुता ।
उपास्यमानो विपुधैर्वि वि पवपतिर्यथा ॥ ५२ ॥

वेते देवराज इत्र लगनें देवताओंद्वारा सेवित होकर
बैठते हैं, उठी प्रकृष्ट बङ्गुदरे बानरोंसे थिरे हुए भीमान्
मङ्गु बनों कीकमें विराजमान हुए ॥ ५२ ॥

हनूमता कीर्तिमता यशस्विना
तथाङ्गुनेमाङ्गुनयबाहुना ।

मुदा तदाभ्यासितमुगत मह
अभीहराम स्वच्छित्त भियाभयत् ॥ ५३ ॥

कीर्तिमान् एवं यशस्वी हनुमान्की तथा कौरोंमें मुकर्वर
धारण लिये अङ्गु एक प्रकन्तापुत्रक बैठनेसे वह जना एवं
महान् पकस्थितार दिव्य कन्तिठ प्रकथित हो उठा ॥ ५३ ॥

अष्टपञ्चाश सर्ग

जाम्बवान्क पूछनपर हनुमान्जीका अपनी उट्ट्याप्राका सारा वृत्तान्त सुनाना

अस्तस्य गिरः शृङ्गे महेन्द्रस्य महापथाः ।
हनुमन्मुखा प्रीतिं हरयो जम्बुकचमाम् ॥ १ ॥

तदनन्तर हनुमान् आदि महाबल बानर महेन्द्रगिरीके
विपारपर परपर मिक्कर बड़े प्रवच हुए ॥ १ ॥

प्रीतिमत्स्वपिच्छेपु धामरेपु महात्मसु ।
 तं ततः प्रसिद्धं प्रीतियुक्तं महाकपिम् ॥ २ ॥
 ज्ञानवान् कार्यवृत्तात्ममपूष्यमिच्छारमदम् ।
 कथं ह्येषा त्वया देवी कथं वा तत्र यतते ॥ ३ ॥
 तस्यां चापि कथं वृत्ताः क्रूरकर्मां वशानमः ।
 तस्यतः सर्वमेतन्मः प्रसूहि त्वं महाकपे ॥ ४ ॥

बबु छमी महामन्त्री बानर बहो प्रव्रज्यपूर्वक बैठ गये। तब इधरे मेरे हुए जाम्बवान्ते उन पवनकुमार महाकपि इनुमानसे मेमपूर्वक कर्मविशिका समाचार पूछा—
 'महाकपे ! तुमने देवी सीताको कैसे देखा ? वे बहो किस प्रकार रहती हैं ? और क्रूरकर्मां वशानन उनके प्रति कैसा कर्ताव करता है ? वे सब बातें तुम हमें ठीक-ठीक बताओ ॥ २—४ ॥

सम्मार्गिता कथं देवी किं च सा प्रत्यभाषत ।
 सुदार्थाश्रित्यपिभ्यामो भूयाः कार्यविनिश्चयम् ॥ ५ ॥
 तुमने देवी सीताको किस प्रकार हूँ निश्चय और उन्होंने तुमसे क्या कहा ? इन सब बातोंको सुनकर हम लोग आगेक कर्मकाम निश्चितरूपसे विचार करेंगे ॥ ५ ॥

यज्जार्थस्तत्र वक्ष्याम्ये गतेरस्माभिरात्मवान् ।
 यक्षितस्य च यत्तत्र तत् भवान् व्याकरोतु मा ॥ ६ ॥
 बहो किश्किनामो बबुनेपर हमलोगोंको कौन-सी बात क्वनी चाहिये और किस बातको गुप्त रक्खना चाहिये ? तुम बुझिमान् हो इच्छिये इसी इन सब बातोंपर प्रश्न बाजो ॥ ६ ॥

स नियुक्तस्ततस्तेन सम्प्राहृतनृबहः ।
 नमस्यभिहारसा इम्ये सीतायै प्रत्यभाषत ॥ ७ ॥
 जाम्बवान्के इत प्रकार पूछनेपर इनुमान्कीके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। उन्होंने सीतादेवीको मन-ही-मन मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और इत प्रकार कहा— ॥ ७ ॥

प्रत्यक्षमेव भक्ततां महोद्गामान् चामप्युतः ।
 तद्भेदेर्विशिष्यं पारं कङ्कमायाः समाहितः ॥ ८ ॥
 मैं आसनेगोंके धामने ही उतुदके दक्षिण तरफर अपनेकी इच्छसे धनधान्य हो महेन्द्रपर्वतके शिखरसे आकाशमें उड़कर था ॥ ८ ॥

गच्छताञ्च हि मे धारं विष्णुरूपमिवाभवत् ।
 काञ्चन शिखरं दिव्यं पश्यामि सुमनोहरम् ॥ ९ ॥
 शिखर फण्यावमाहात्य मेने दिव्यं च तं वगम् ।
 आगे बढ़ते ही मैंने देखा एक परम मनोहर दिव्य सुवर्णमय शिखर प्रकट हुआ है जो मेरी यह देखकर कहा है। वह मेरी पाशाके जिये भयानक विन-आ प्रतीत हुआ। मैंने उसे मुझिमान् विन ही मना ॥ ९ ॥

उपसगम्य त दिव्यं काञ्चनं नगमुत्तमम् ॥ १० ॥
 कृता मे ममसा बुद्धिर्मेच्छयोऽयं मयेति च ।

'उत्त दिव्य उत्तम सुवर्णमय पर्वतके निकट पहुँचनेत मैंने मन-ही-मन यह विचार किया कि मैं इसे किराँत कर बाँधे ॥ १० ॥
 महत्वय मया तस्य छाह्मणेन महागिरिः ॥ ११ ॥
 शिखरं सूर्यसकाशं व्यहोरीयत सहस्रधा ।

'फिर तो मैंने अपनी बुँछसे उठकर प्रहार किया। उल्टी उकर आते ही उठ महान् पर्वतके सूर्यदृश्य देखसी शिखरके खूबों टुकड़े हो गये ॥ ११ ॥
 व्यवसायं च तं बुद्ध्या स होयाच्च महागिरिः ॥ १२ ॥
 पुत्रेति मयुरां चाप्रीं मनः प्रहावयन्निव ।
 पितृभ्यं चापि मां विद्मि सचार्यं मातरिभ्यः ॥ १३ ॥

मेरे उठ निश्चयको समझकर महागिरि मैनाकने मनको आहाहित-ता करते हुए मयुर वालीमें पुत्र' ककर मुझे पुत्राय और कहा—'मुझे अपना बापा समझा। मैं तुम्हारे पिता बाबुदेवताका मित्र हूँ ॥ १२ १३ ॥

मैनाकमिति विख्यातं निबसन्तं महोद्गौ ।
 पलाकस्तः पुत्र पुत्र वमभुः पर्वतोत्तमाः ॥ १४ ॥
 'मेघ नाम मैनाक हे और मैं बहो महाधर्ममें निश्चय करता हूँ। देव ! पूर्वकाकमें छमी भेड पर्वत पङ्कपाटी तुम करते थे ॥ १४ ॥

कन्वतः पृथिवीं वेदवांभ्रमाताः समन्ततः ।
 भुक्त्वा वगामां चरितं महेन्द्रं पाकशासनः ॥ १५ ॥
 कजेन भगवान् पक्षी विश्वेदेवीं सहस्रधा ।
 सर्वं तु मोक्षितस्तस्मात् तप विना महात्मना ॥ १६ ॥

वे समस्त प्रजाको पीड़ा रते हुए अपनी इच्छके अनुहार सब ओर विचरते रहते थे। पर्वतोंका पैसा म करत सुनकर पाकशासन भगवान् इन्द्रने बज्रते इन खरुसों पर्वतों के पङ्क काट बाँधे परंतु उस समय तुम्हारे महत्त्व चिठने मुझे इनके हावसे क्या किया ॥ १५ १६ ॥

माकतेन तदा बत्स प्रक्षितो वक्ष्याम्ये ।
 पापवस्य मया साद्ये वर्तितभ्यमरिदम् ॥ १७ ॥
 रामो भर्तृमूर्ता श्रेष्ठो महेन्द्रसमविक्रमः ।

मेघ ! उस समय बाबुदेवकने मुझे छमुद्रने अफर डाक दिया था (किल्ले में पङ्क बच गये)। अता छमुद्रमन वीर ! मुझे श्रीरघुनाथकी श्री लहानाके कर्ममें भगवत् उत्तर होना चाहिये कबोकि भगवान् श्रीराम भर्तृमाकमें भेड तथा इन्द्रदृश्य व्याकमी हैं ॥ १७ ॥
 पतङ्गभूत्वा मया तस्य मैनाकस्य महात्मना ॥ १८ ॥
 कार्यमावेद्यं च निरेक्यतं वै मनो मम ।
 तेन चाहमनुजातो मैनाकेन महात्मना ॥ १९ ॥

महामना मैत्रकक्षी यह वात सुतकर मैंने अपना कर्म
उन्हें बताया और उनकी आज्ञा छुड़कर फिर मेरा मन बर्हाते
आगे जानेको उरताहित हुआ । महाशय मैत्राक्षने उठ समय
मुझे आनेकी आज्ञा दे ही ॥ १८ १९ ॥

स वाप्यन्तर्हितः शौको मानुषेय वपुष्मता ।
शरीरेण महाशौका शौकेन च यद्वोदधी ॥ २० ॥

‘यह महान् पर्वत भी अपने मन्बवधिरिते तो अन्तर्हित
ही क्या । परंतु पर्वतरूपसे महाशौकारमें ही कित रखा ॥ २ ॥

वचनं जवमास्थाय दोषमन्वानमास्थितः ।
ततोऽह सुन्दर काञ्च जवेनाम्यगमं पथि ॥ २१ ॥

फिर मैं उचम वेगका आश्रय के श्रेय मार्गपर आगे
बढ़ा और हीयकाकठक बड़े वेगसे उस पथपर चला
या ॥ २१ ॥

तदा पश्याम्यह देवीं सुरसा मातामातरम् ।
समुद्रमध्ये सा देवी वचन खेदमग्रवीत् ॥ २२ ॥

‘अपराधों की वशुद्रमें मुझे नागमाता सुरसा देवीका
दर्शन हुआ । देवी सुरसा मुझसे इतकप्रकार बोली— ॥ २२ ॥

मम भक्षया प्रविष्टस्त्वममरेहैरिसत्तम ।
तवस्त्वां भक्षयिष्यामि बिहितस्त्व हिमे सुरैः ॥ २३ ॥

‘कपिभेद । देवताओंमें तुम्हें मेरा भक्ष्य कताया है,
इच्छिपे मैं तुम्हें मछन करूँगी; क्योंकि सारे देवताओंमें
मम तुम्हें ही मेरा आहार निपन किया है’ ॥ २३ ॥

पथमुक्त्वा सुरसया प्राद्वक्षिः प्रयत्नः स्थितः ।
विबर्षयद्वनो भूत्वा याक्य खेनुमुदीरयम् ॥ २४ ॥

‘पथमुक्त्वे देवा करनेपर मैं हाथ जोड़कर नितीतप्रवसे
उठके अपने बढ़ा ही गया और उदासपुन होकर दो
बोली— ॥ २४ ॥

पामो वाशरविः धीमान् प्रविष्टो वृण्डव्यपनम् ।
ब्रह्मणेन सह भ्रात्रा सीतया च परतपः ॥ २५ ॥

‘वेदि । उषुओंको स्थाप देनेवाके दशरथनरन भीमम्
गम अपने माई ब्रह्मण और पत्नी सीताके साथ दशभारण
में माय थे ॥ २५ ॥

वस्य सीता हता भाया राघणेन तुरात्मना ।
वस्याः सद्योऽहं वृत्तोऽहं गमिष्य रामशासनम् ॥ २६ ॥

‘वहीं तुरात्मना राजने उनकी पत्नी सीताको हर किया ।
ये इत समय भीरामचन्द्रको भी आज्ञासे इत होकर उठों
गीत्यदेशके पथ न्य रहा हूँ ॥ २६ ॥

कृतमदसि रामस्य साहाय्य विषय सती ।
अथया दैविकीं दृष्ट्वा राम चाद्रिपथारिणम् ॥ २७ ॥

‘मागमिष्यामि ते यक्ष सार्यं प्रतिभ्रूयोमि त ।

‘तुम भी भीरामचन्द्रकीके ही राघवमें रहती हो इस
छिपे तुम्हें उनकीसहायता करनी चाहिये । अपना मैं मियिच्छ-
कुमारी सीता तथा अनायास ही महान् कर्म करनेवाके
भीरामचन्द्रकीका दर्शन करके तुम्हारे मुखमें आ बाउंगा; यह
तुमसे लक्षी प्रतिज्ञा करके कहता हूँ ॥ २७ ॥

पथमुक्त्वा मया सा तु सुरसा कामरूपिणी ॥ २८ ॥
अप्रधीन्नाप्रिषतेत कश्चिदप यरो मम ।

‘मेरे देवा करनेपर इच्छानुसार रूप धारण करनेवाकी
सुरसा बोली—‘मुझे यह पर मित्र हुआ है कि मेरे आहारके
कर्ममें निष्ठ आया हुआ कोई भी प्राणी मुझे दलकर आगे
नहीं आ सकता’ ॥ २८ ॥

पथमुक्त्वाः सुरसया वशयोजनमायतः ॥ २९ ॥
ततोऽर्धगुणविस्तारो बभूवार्ह क्षणेन तु ।
मत्प्रमाणाभिर्णं चैव प्यादितं तु मुक्त तथा ॥ ३० ॥

‘वह सुरसाने देखा कहा—उस समय मेरा शरीर इत
बोहन बढ़ा था, किंतु एक ही क्षणमें मैं उससे छोड़ा
बढ़ा ही गया । तब सुरसाने भी अपने मुँहको मेरे शरीरकी
अधेका अधिक देना छिया ॥ २९ ॥

तत् इष्ट्वा म्यादित त्वास्यं इत्स्व हाकरय पुनः ।
तस्मिन् मुहूर्ते च पुनर्बभूवाः सुखमिमाः ॥ ३१ ॥

‘उसके फेले हुए मुँहको देखकर मैंने फिर अपने लक्ष-
को छोटा कर दिया । उसी मुहूर्तमें मेरा शरीर अँटूकेके
बराबर हो गया ॥ ३१ ॥

अभियत्याशु तद्वचनं निर्गतोऽह ततः क्षणात् ।
अग्रवीत् सुरसा देवी स्येन रूपेण मां पुनः ॥ ३२ ॥

‘फिर तब मैं सुरसाके मुँहमें सीम ही प्रस गया और
तत्कथ बाहर निकल आया । उस समय सुरसा देवाने अपने
दिम्ब रूपमें कित हाकर मुझसे कहा— ॥ ३२ ॥

अर्धलिङ्गी हरिभेष्ट गच्छ सौम्य यथासुखम् ।
समानय च वैदर्ही राघवय महात्मना ॥ ३३ ॥

‘लोम्य । कपिभेद । अथ तुम कपतिदिके छिय मुझ
पूर्वक पात्रा कथ और निरेहनरिनी भीताको महामना खुन्यव
रुते मित्राभा ॥ ३३ ॥

सुखी भय महापाहा प्रीतासि तय पानत् ।
ततोऽह सायुसाप्यीति सवमूतेः प्रसासितः ॥ ३४ ॥

‘महाशय बनर । तुम सुखी रहो । मैं तुमपर बहुत
प्रश्न हूँ ।’ उस समय लक्षी प्राणिवीने आयु-सायु’ कहकर
मरी भूरि भूरि प्रसंथा च ॥ ३४ ॥

ततोऽन्तरिक्ष विपुलं प्युतोऽहं गच्छा यथा ।
उपाम म निष्परीता च न च पश्यामि किञ्चन ॥ ३५ ॥

उत्पन्नात्तु मै गच्छन्ती मूर्ति उर विद्याय आकाशमे
 फिर उड़ने लगी । उर समक किन्हीने मेरी परछाईं पकड़
 ली, किन्तु मैं किन्हीको देख नहीं पाता था ॥ १५ ॥

तोऽहं विगतलोपस्तु विद्यो दश बिलोकायम् ।
 न किञ्चित् तत्र पश्यामि येन मे बिहता गतिः ॥ १६ ॥

छाया पकड़ी जानेसे मेरा बेग भवकद हो गया, अरु
 मैं हलों विद्याभोक्त्री और देखने लगी परन्तु बिलने मेरी
 गति रोक ही थी ऐसा कोई प्राणी मुझे नहीं नहीं दिखायी
 दिया ॥ १६ ॥

अथ मे बुद्धितत्त्वत्वा किं नाम गमने मम ।
 ईदृशो विष्णु उत्पन्नो रूपमत्र न दृश्यते ॥ १७ ॥

तत्र मेरे मनमें वह किन्हा हुई कि मेरी जागने ऐसा
 कौन-सा विष्णु पैदा हो गया किन्हा वहाँ रूप नहीं दिखायी
 दे रहा है ॥ १७ ॥

अथोभागे तु मे इधिः शोचताः पतिता तदा ।
 तत्रात्राज्ञमहं भीमां राक्षसीं खल्लिहेशायाम् ॥ १८ ॥

धृष्टी क्षेत्रमें पड़े-पड़े मैंने जब नीचेकी ओर दृष्टि डाली,
 तब मुझे एक ममानक राक्षसी दिखायी दी, जो बरुमें निशच
 करती थी ॥ १८ ॥

प्रहस्य च महाभावमुक्तोऽहं भीमया तथा ।
 स्वस्त्युत्तमसम्भ्रातृमिद् वाच्यमशोभयम् ॥ १९ ॥

उर मीनक निष्ठाप्रतीने बड़े खोरसे अहसास करके
 निर्भय बड़े हुए मुझसे गरज-गरजकर यह सम्ब्रह्मजनक
 बात करी— ॥ १९ ॥

कस्मिन् गन्ता महाकाय धुधिताया ममेपिता ।
 भङ्गा प्रीत्यय मे वेद शिरमाहारवर्जितम् ॥ २० ॥

विद्याभूक्याय वानर । कहाँ जाओगे ? मैं धृष्टी हुई हूँ ।
 तुम मेरे क्षिमे मनोवाञ्छित मोहन हो । आओ फिरकण्ठसे
 निपहार पके हुए मेरे शरीर और प्राणोंको पूर करो ॥ २० ॥

बाह्यमित्येव तां वार्त्तां प्रत्ययुक्तामहं ततः ।
 आस्यप्रमाणादधिकं तस्याः कायमपूरयम् ॥ २१ ॥

तब मैंने बहुत आश्चर्य करकर उधड़ी बात मान ली
 और अपने शरीरको उतके मुँहके प्रमाणसे बहुत अधिक
 बढ़ा किया ॥ २१ ॥

तस्याध्यास्यं महद् भीमं पर्यति मम भक्षणे ।
 न तु मां सा जु युष्मत्प्रे मम वा बिहृतं कृतम् ॥ २२ ॥

परन्तु उरुम विद्याय और ममानक मुझ में मुझे
 भक्षण करनेके क्षिमे बढ़ने लगी । उरने मुझे वा मेरे प्रयास
 को नहीं जाना तथा मैंने जो उरु किया था वह भी उतकी
 क्षमतामें नहीं आया ॥ २२ ॥

ततोऽहं विपुत्रं रूपं सक्षिप्य निमिचातरात् ।
 तस्या हृद्यमादाय प्रपतामि बभारुष्यम् ॥ २३ ॥

फिर तो पकड़ मारते-मारते मैंने अपने कि
 रूपको भावत छोड़ कर किना और उरुम क
 निकालकर आकाशमें उड़ गया ॥ २३ ॥

सा बिष्टुष्टुजा भीमा पपात खल्लाम्भसि ।
 मया पर्यतसंक्षया निहृतहृदया सती ॥ २४ ॥

मेरे हाथ ककेबेके करु क्षिमे जानेपर पर्यतके उ
 ममानक शरीरवाली वह दुख राक्षसी अपनी दोनों
 शिपिण हो खनेके कारण क्षुद्रके बरुमें गिर पड़ी ॥ २४ ॥

शृणोमि वाचयतां च धाचः सौम्या महात्मनाम् ।
 राक्षसीं सिद्धिमा भीमा क्षिप्रं ह्यनुमता हता ॥ २५ ॥

उर समय मुझे आश्चर्यचारी उरु महात्मने
 वह सौम्य वाणी सुनानी थी—'महो ! इत सिद्धिमा नाम
 ममानक राक्षसीको हनुमावधीने धीम ही मार बाबा' ॥ २५ ॥

तां हत्वा पुनरेवाह हृत्यमास्यसिद्धं धरन् ।
 गत्वा च महाबलान् पश्यामि तगामभिहतम् ॥ २६ ॥

बक्षिणं तीरमुत्प्रेर्येह्यं पत्र गता पुरी ।

उर मारकर मैंने फिर अपने उर भावकक कर
 भान दिया, किन्ही पूर्तिमें अधिक विष्णु हो पुनः
 उर निशाक मार्गको धमास करके मैंने पर्यतमम
 मण्डित क्षुद्रमम वह बक्षिण किनाय देखा जहाँ ब्रह्म
 रती हुई है ॥ २६ ॥

अस्तं दिनकरे पाते रक्षासां निक्षय पुरीम् ॥ २७ ॥
 प्रविष्टोऽहमबिहृतो रक्षोभिर्भूमिभिक्ष्मैः ।

'दरदेवके अस्तापकको पके जानेपर मैंने उरुमें
 निशाकमानभूता ब्रह्मापुरीमें प्रवेश किया, किन्तु वे मना
 परकामी राक्षस मेरे विषयमें कुछ भी खान न लगे ॥ २७ ॥

तत्र प्रविष्टातद्यापि कस्यान्तकस्तपसा ॥ २८ ॥
 अहसास बिमुञ्चन्ती मारी कान्पुत्पिता पुरा ।

मेरे प्रवेश करते ही प्रकण्डकके मेकरी मूर्ति का
 कान्तिवाची एक ली महाहास करती हुई मेरे क्षमने का
 हो गयी ॥ २८ ॥

त्रिभांसर्गतीं ततस्तां तु स्वच्छन्मिशिरोदहाम् ॥ २९ ॥
 सप्रमुष्टिप्रहारेण पराश्रित्य सुमैरवाम् ।

प्रक्षोपककं प्रविशं भीतयाह तपोविता ॥ ३० ॥

उरके शिरक राक्ष प्रकण्डित बन्धिन क्षमान दिया
 देते थे । वह मुझे मार डालना चाहती थी । पर वे
 मैंने वामें हाथके मुककेसे महार करके उर मयं
 निशाचरीको परात कर दिया और प्रक्षोपककमें पुरी

मैत्र प्रसिद्ध हुआ। उस समय उस डी हुई निघान्त्रीने मुझे इत प्रकर कहा—॥ ४९-५ ॥

भद्र उद्वापुरी वीर निर्जिता विक्रमेण ते ।

वसात् वसात् विजेतासि सर्वदत्तास्यशेषतः ॥ ५१ ॥

वीर । मैं वसात् उद्वापुरी हूँ । तुमने अपने पराक्रमसे मुझे भीत किया है; इसलिये तुम हमसब राजसौंवर पूर्वतः निश्च प्राप्त कर लो ॥ ५१ ॥

तथाह सर्वदात्र तु विचरन्मन्त्रात्मजाम् ।

एवमन्तःपुरगतो न चापद्य सुमध्यमात् ॥ ५२ ॥

यहाँ खरी यह नगरमें पर-पर तुमने और राजसके मन्त्रपुरमें पहुँचनेपर भी मैंने सुन्दर ऋतिप्रवेशवाची मनकनदिनी कीटाको नहीं देखा ॥ ५२ ॥

उतः सीतामपह्यस्तु रावणस्य निवेशने ।

शोकसागरमास्यद्य न पारमुपलक्ष्यते ॥ ५३ ॥

रावणके महकमें सीताको न देखनेपर मैं शोक-सागरमें डूब गया। उस समय मुझे उस शोकका कहीं पार नहीं देखा भी देता था ॥ ५३ ॥

शोकता न मया ह्यन्तः प्राकारेणाभिसंयुतम् ।

अज्ञानेन विदुष्येन गृहोपवनमुत्तमम् ॥ ५४ ॥

अज्ञानमें पड़े-पड़े ही मैंने एक उत्तम गृहोपवन देखा; जो अनेक बने हुए सुन्दर परकोठेसे विद्य हुआ था ॥ ५४ ॥

समाहारमवप्लुत्य पदयामि बहुपावपम् ।

अज्ञानेन विदुष्येन गृहोपवनमुत्तमम् ॥ ५५ ॥

उस उठ परकोठेको छोड़कर मैंने उस गृहोपवनको देखा; जो बहुउपवनक वृक्षोंसे मरा हुआ था। उस अज्ञान-कर्मिणके शीतमें मुझे एक बहुत ऊँचा अज्ञानक वृक्ष दिखायी दिया ॥ ५५ ॥

तथाकदा च पश्यामि काञ्चन कञ्चसीवनम् ।

बहुवर्षिण्युत्तमपावुस्तत् पदयामि बरवर्षिणीम् ॥ ५६ ॥

उत्तर पक्षक मैंने सुवर्णमय करकीवन देखा तथा उस अज्ञानक वृक्षके पाठ ही मुझे अज्ञानसुन्दरी कीटाकीचरण हुआ ॥ ५६ ॥

एवमां कमलपत्राक्षीमुपवासस्तृणानाम् ।

वदन्वसासःसर्वीतां रजोष्यसाशितोठहाम् ॥ ५७ ॥

जैसे वसा लेखक वपुषी-सी मन्त्रसाते मुक्त दिखायी देती हैं। उनके नेत्र प्रकृत कमलपत्रके छ्यान सुन्दर हैं। वपुषी उन्माद करनेके कारण अत्यन्त बुद्धक हो गयी हैं और उनकी यह दुर्बलता उनका मुक्त देखाते ही स्थिर हो जाती है। वे एक ही वक्त्र पहने हुए हैं और उनके केश धूँके हुए हो गये हैं ॥ ५७ ॥

शोकसंवापद्विनाशं सीता भर्तृहिते स्थिताम् ।

राक्षसीभिर्विक्रपाभिः कुराभिरभिसङ्गताम् ॥ ५८ ॥
मासशोषितभक्त्याभिर्भ्यांभीभिर्हिरिर्वा यया ।

उनके धारे भद्र शोक-सतापसे दीन दिखायी देते हैं। वे अपने स्वामीके शिव-चिन्तनमें लक्ष्य हैं। रक्त-मांसप्रशोषण करनेवासी शूर एव कुक्ष्य रक्षसिर्वा उन्हें खरों औरसे वेरकर उनकी रक्षावाची करती हैं। ठीक उसी तरह जैसे वपुष-सी नाशिनं किसी हस्तीको घेरे हुए लड़ी हो ॥

सा मया राक्षसीमध्ये तर्ज्यमाना मुहुमुहुः ॥ ५९ ॥

एकमेधीघरा दीना भर्तृविमतापरायणा ।

भूमिशय्या विवर्णाङ्गी पश्चिमीव हिमागमे ॥ ६० ॥

मैंने देखा, वे रक्षसियोंके बीचमें बैठी थी और रक्षसियों उन्हें बारंबार बमका रही थी। वे खिरपर एक ही बेपी धारण किये शीनमात्रसे अपने पतिके चिन्तनमें लक्ष्मी हो रही थी। परती ही उनकी शय्या है। जैसे हेमन्त-श्रुद्ध आनेपर कमखिनी वृक्षकर भीदीन हो जाती है; उसी प्रकार उनके धारे भद्र कान्तिहीन हो गये हैं ॥ ५९-६० ॥

रावण्वापु विमिवृत्तार्था मर्तव्ये कृतमिच्छया ।

कथंस्विसृग्गशाबाक्षीं तूर्णमासादिता मया ॥ ६१ ॥

रावणकी ओरसे उनका शार्दिक भय सर्वथा वूर है। वे मनेका निश्चय कर चुकी हैं। उसी भयसामने मैं किसी तरह शीमतापूर्वक मृगलक्ष्मी कीटाके पाठ पहुँच सका ॥ ६१ ॥

तां बभूव तावर्थां नारीं रामपर्णां यशस्विनीम् ।

तत्रैव शिशुपावुसे पदयजहमनस्थिता ॥ ६२ ॥

जैसे भयसामने पकी हुई ठन बरालिनी नारी श्रीरामवकी कीटाको अज्ञानकवृक्षके नीचे बैठे देख मैं भी उस वृक्षपर स्थित हो गया और उन्हें वहींसे निहारने लगा ॥ ६२ ॥

ततो हृत्कहृदयशय्य काञ्चनीनूपुरमिभितम् ।

शृणोम्यधिकगम्भीर रावणस्य निवेशनम् ॥ ६३ ॥

इतनेहीमें राजसके महकमें करवनी और नूपुरोंकी झलझलसे मित्रा हुआ अधिक गम्भीर कम्बद्वक सुतासी पड़ा ॥ ६३ ॥

ततोऽह परमोद्दिग्ग स्वकूपं प्रपतसहस्रम् ।

भद्रं च शिशुपावुस पत्नीय गहने स्थितः ॥ ६४ ॥

फिर तो मैंने अत्यन्त उद्दिग्ग होकर अपने स्वकूपको लक्ष्य किया—छेदा बना किया और पक्षिके छ्यान उठ गहने शिशुपाव (अज्ञानक) वृक्षमें छिपा बैठा रहा ॥ ६४ ॥

ततो रावणपत्न्याय रावणञ्च महापलायः ।

त देशमनुसम्मातो पव सीताभयत् स्थिता ॥ ६५ ॥

इतनेहीमें राजसको जियों और महावकी रावण—ये

एव-के-सह उच जानपर आ पहुँचे, यहाँ सीतादेवी
विद्यमान थीं ॥ ६५ ॥

तं दृष्ट्वा बभूवोहा सीता रक्षोगणेश्वरम् ।
सुकृच्छोक स्तनौ पीनौ बाहुभ्यां परिरम्य च ॥ ६६ ॥

प्रायस्कें सामी राजकके देखते ही सुन्दर कटि
प्रदेशमाकी सीता अपनी कोंनोंके विभेदकर और उमरे
हुए दोनों स्तनोंके मुझमेंसे टकर कर बैठ गयी ॥ ६६ ॥

विजस्तां परमोद्विष्टां शीक्ष्यमायामितस्ततः ।
शाय कश्चिदपश्यन्तीं वेपमालां तपस्विनीम् ॥ ६७ ॥

तामुवाच दशम्रीषाः सीतां परमदुःखिताम् ।
महाविधाराः प्रपतितो बहुमन्यज मामिति ॥ ६८ ॥

ये अस्यत्त मयमील और उद्विग्न होकर हपर-उपर
देखने लगीं । उन्हें कोई भी अन्ता रहस नहीं विज्ञानी
देता था । मयसे कौपवी हुई अत्यन्त दुःखिनी तपस्विनी
सीताके सामने था दशमूक राजन नीचे स्तिर किये उनके
पल्लवोंमें पिर पड़ा और इत प्रकर बोझ—विदेहकुमारी ।
मैं दुःशाप लेक हूँ । तुम मुझे अधिक आह्वर हो ॥ ६७-६८ ॥

यत्रि वेक्ष्य तु मां वर्षाद्याभिनमसि गर्विते ।
द्विमासान्तरं सीते पास्यामि बधिरं तव ॥ ६९ ॥

(हजनेर भी अपने प्रति उनकी उषेखा देख कर
कुपित होकर बोझ—) पार्श्वकी सीते । तबि दू मर्महर्म
आकर मेरा अभिन्दन नहीं करेगी तो आकसे दो महीनेके
बाद मैं तेरा जून पी बढेगा ॥ ६९ ॥

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य रावणस्य दुःप्रथमः ।
उवाच परमदुःखा सीता बभनसुप्तमम् ॥ ७० ॥

'दुःप्रथम राजककी यह बात सुनकर सीताने अस्यत्त
कुपित हो यह उछम कवन कहा— ॥ ७ ॥

राक्षसाक्षम रामस्य भार्यामभिवतेजस्तः ।
इहबाहुवशानायस्य स्तुर्वा दशरथस्य च ॥ ७१ ॥
महाकर्षं बभूवो विद्वान् कर्षं न पठिता तव ।

भीष निशाचर । अभिवतेजस्वी मगवान् भीष्मकी
पत्नी और इहाकुकुच्छके सामी महाशय दशरथकी पुत्र
बभूवो यह न करने योग्य बात करत समझ ठेवी भीष कसो
नहीं गिर गयी । ॥ ७१ ॥

किञ्चिद्वीर्यं तवामार्यं यो मां भर्तुंरसमिधौ ॥ ७२ ॥
अपहृष्ट्यागतः पाप तेन्यदृष्टो महात्मना ।

दुष्ट कपो । दुष्टमें क्या परकम है ! मेरे परिवेव
अन निरुद्ध नहीं ये तव दू इन महात्माकी दक्षिने क्षियकर
कटी-कटी मुझे हर गया ॥ ७२ ॥

न तव रामस्य सद्यो हास्येऽप्यस्य न मुग्धस ॥ ७३ ॥
मज्जेया स्तपयाक द्यौः त्वापी च रावणः ।

'यू मगवान् भीरामकी समानता नहीं कर लया ।
दू तो उनका बात होने योग्य भी नहीं है । भीष्मकी
कर्मका मन्त्रेय, सत्यमापी, धारवीर और दुःशके मज्जेया
एव प्रशंसक है ॥ ७३ ॥

जामण्या पश्य वाक्यमेवमुक्तो दशमना ॥ ७४ ॥
अज्यात सहसा कोपाशितास्व इव पावकः ।

विपुष्य तपने शूरे मुष्टिमुचम्य दक्षिणम् ॥ ७५ ॥
मैथिलीं हन्तुमारण्यः श्रीभिर्हाहाकृतं तया ।

श्रीर्वा मण्यात् ससुप्तस्य तस्य भार्या दुःप्रथमः ॥ ७६ ॥
यथा मन्वोदरी नाम तथा स प्रतियेषिता ।
कच्छत्र मजुरां वार्षी तथा स मन्ववर्षितः ॥ ७७ ॥

'जनकनिनीके देखा कठोर बात कइनेर रज्जु
रावण कियमें कगी हुई अगती मीति स्वका भेषके कइ कर
और अपनी मूर मीसें पद-आइकर देखता हुआ एहि
मुझ तानकर सिपियेउकुमारीके मारनेके किं ठेकर हं
गया । वह देख उच समझ यहाँ बड़ी हुई शिर्वा डारकर
करने लगीं । इतनेहीमें उन शिर्वाके नीचेसे उच दुःप्रथम
सुन्दरी भर्वा मन्वोदरी सपटकर भागे भागी और उन्ने
रावणके देखा करनेसे रोझ । छाव ही, उच आनकीसि
निशाचरसे मजुर काशीमें कहा— ॥ ७४-७७ ॥

सीतया तव किं कार्यं महेन्द्रसमधिकम् ।
मया सह रमस्याद्य मद्रिशिष्य न जानकी ॥ ७८ ॥

प्रायस्कें उमान पाकनी राजरजक । सीतले हुने
कना कम है ! आब मेरे साथ रमन करो । जनकनिनीके
छीटा मुझसे अधिक सुन्दरी नहीं है ॥ ७८ ॥

वेकगन्धर्वक्याभिर्यसकम्पाभिरैव च ।
सार्धं प्रयो रमस्वेषि सीतया किं करिष्यसि ॥ ७९ ॥

प्रयो । देवताओं, गणकों और यक्षों के साथ
हैं इनके उच रमन करो छीटाके लेकर कना करो ॥
तवकाभिः क्षमेताभिर्मारीभिः स महाबलः ।
उत्पाप्य सहसा गीतो भवन स्व निशाचरा ॥ ८० ॥

उपरनपर वे उच शिर्वा मिष्कर उच मारकी
निशाचर रावणको तहता बहोसे उठाकर अन्ने मरने
के गयी ॥ ८० ॥

याते तस्मिन् दशम्रीषे राक्षस्यो विक्रान्ततया ।
सीतां निर्मत्सयामासुवांकीया कइः सुहावयैः ॥ ८१ ॥

दशमूक राजकके बने जानेपर विक्रान्त मुझकी
राक्षसियों अत्यन्त हावण कइयापूर्ण ककनोडाग छीटाके
इतने-कनकाने लगीं ॥ ८१ ॥

एवमव् भावितं तासां मण्ययामास जानकी ।
गर्वितं च तथा तासां सीतां माप्य निरयंकम् ॥ ८२ ॥

Handwritten signature or mark at the bottom of the page.

परं तु मनसिने उनकी शक्तोसे तिनकेके समान दुष्क
 लमया । उनका थाप यर्जन-वर्जन कीवाके पथ पहुँचकर
 मर्त्य हो गया ॥ ८२ ॥

वृषा गर्जितनिष्पेष्टा राक्षस्य पिशिताशना ।
 उषणाय शशासुस्ताः सीताप्यवसित महत् ॥ ८३ ॥

इस प्रकार यर्जन और शरी देहात्मके मर्त्य हो
 फेरर उन मालमन्त्रिनी शक्तिसे उषणके पथ काकर
 से सीताकीका महान् निम्न कर दुष्कमया ॥ ८३ ॥

तस्याः सहिताः सर्वा विहताशा निरुद्यमाः ।
 त्रिद्विष्य समस्तस्ता निद्राघरासुयागताः ॥ ८४ ॥

परिरे वे उष-की-उष उर्ध्वे अनेक प्रकारसे कर दे हाथ
 था उषणमय्य हो निद्राके बधीमृत होकर सो गयी ॥ ८४ ॥

प्रसु चैव प्रसुतासु सीता भद्रहिते प्ता ।
 वेद्यप्य कदच कीना प्रशुद्योष सुमुग्विता ॥ ८५ ॥

उन उषके से बानेपर पत्रिके हितने तस्पर रखेबाकी
 सेवकी कम्पापूर्वक विद्यापकर अत्यन्त खीन और दुखी
 हो सोक करने लगी ॥ ८५ ॥

प्रासा मण्यात् समुत्थाप विज्जटा वाक्यममधीत् ।
 म्यध्मानं खादत सिम म सीतामसितेक्ष्णाम् ॥ ८६ ॥

अवकम्पात्प्रसा साध्वी स्तुपां दशरथस्य च ।
 इन उषणिकेकी बीषके विषय नामवाकी उषकी उठी
 और मन्त्र निद्यापरिसोते इस प्रकार बोली—अरी ! तुम उष
 मन्त्रे मातका ही बसते-बसती का बायो, ककारे देवोवाकी
 कीका नहीं । वे उषा दशरथकी पुत्रवत् और कनककी
 काकी धी-साकी थीता इव सोम्य नहीं हैं ॥ ८६ ॥

अजो ह्यप मया इष्टो इक्ष्णो रोमहृत्पथः ॥ ८७ ॥
 एतसां च विनाशाय भर्तुरव्या जयाय च ।

अथ ममी मैंने बड़ा मर्त्यकर तथा रोगके जाने कर
 देनेका स्वप्न देखा है । वह उषणके विनाश तथा इन
 सेवकेकीके पत्नी विषयका स्वप्न है ॥ ८७ ॥

मन्मसान् परिजातु राक्षसात् राक्षसीगणम् ॥ ८८ ॥
 अनियाशाम वैदेहीमेतदि मम रोचते ।

ये सीता ही श्रीरघुनाथके रोपते हमारी और इन
 उन उषणिकेकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं । अतः हमका विदेह
 मन्त्रिनेसे मन्त्रे अप्साकोके किये क्षमा-याचना करें—परी
 मुझे मन्त्रा बनाता है ॥ ८८ ॥

परि ह्येषविषाः अजो दुग्धितायाः प्रहृत्पते ॥ ८९ ॥
 सा तु-वैविपिपैमुक्ता सुखमाप्तोत्यनुत्तमम् ।

परदि किये तु बिन्तीके विरयमें देता स्वप्न देखा बाता है
 देव अनेक विषय-कोसे घूटकर म म उत्तम मुक्त पायी है ८९ ॥

प्रियपतमसम्ना हि मैथिली जनकप्रमया ॥ ९० ॥

अथ ममी मैंने बड़ा मर्त्यकर तथा रोगके जाने कर
 देनेका स्वप्न देखा है । वह उषणके विनाश तथा इन
 सेवकेकीके पत्नी विषयका स्वप्न है ॥ ८७ ॥

अन्तेया परिजातुं राक्षस्यो महतो भयात् ।
 उषणिको । केवल प्रणाम करनेमात्रसे मिथिलेकुमारी
 बानकी प्रच्छन्न हो जायेगी और वे महान् मन्त्रे मेरी रक्षा
 करेंगी ॥ ९ ॥

ततः सा द्वीमती पाळा भर्तुर्विजयवर्षिता ॥ ९१ ॥
 अयोधय् यदि तत् तर्प्य भवेय शरण हि षा ।

तब सा द्वीमती पाळा भर्तुर्विजयवर्षिता ॥ ९१ ॥
 अयोधय् यदि तत् तर्प्य भवेय शरण हि षा ।

एत कजावती बाबा थीता पतिकी विषयकी सम्भाजनसे
 प्रच्छन्न हो बोली—बदि यह बात सच होगी तो मैं अन्त्य
 दुमकाकेकी रक्षा करूँगी ॥ ९१ ॥

तां बार्हतादृशीं दृष्ट्वा सीताया वृत्तार्णवशाम् ॥ ९२ ॥
 धिन्तयामास विधाप्तो न च मे निर्धुतं मना ।

तां बार्हतादृशीं दृष्ट्वा सीताया वृत्तार्णवशाम् ॥ ९२ ॥
 धिन्तयामास विधाप्तो न च मे निर्धुतं मना ।

सम्भाषणार्थे च मया ज्ञानकन्याविभित्तोपिधिः ॥ ९३ ॥
 कुञ्ज विभामके पश्चात् मैं सीताकी वेथी दृश्य दृष्टा
 देवकर बही कितामें पक्ष गया । मेरे मनको शांतित नहीं
 सिद्धी थी । फिर मैंने बानकीकीके थाप बाठाअप करनेके
 किये एक उपाय सोचा ॥ ९२ ॥

इवाकुञ्जव्यशास्तु स्तुतो मम पुरस्कृता ।
 भुत्वा तु गदितां वाचं राजर्षिगणमूपिताम् ॥ ९४ ॥

इवाकुञ्जव्यशास्तु स्तुतो मम पुरस्कृता ।
 भुत्वा तु गदितां वाचं राजर्षिगणमूपिताम् ॥ ९४ ॥

प्रत्यभापत मा देवी बाष्पैः पिहितकोचना ।
 पहले मैंने इत्ताकुञ्जकी प्रशंसा की । राजर्षिकेकी
 स्तुतिके विरूपित मेरी वह बापी मुनकर देवी सीताके नेत्रोंमें
 आँसू भर आया और वे मुझे बोली— ॥ ९४ ॥

कस्त्य केम कथ चेह प्राप्ते यानरपुङ्गव ॥ ९५ ॥
 का च रामेण ते प्रीतिसम्भे दंस्त्रितुमर्हसि ।

कस्त्य केम कथ चेह प्राप्ते यानरपुङ्गव ॥ ९५ ॥
 का च रामेण ते प्रीतिसम्भे दंस्त्रितुमर्हसि ।

कस्मिन्ने । तुम कौन हो ? कियेने दुर्गै भेजा है ? यहाँ
 कैसे आने हा ? और महात्म् श्रीरामके साथ इन्हाय कैसे
 प्रेम है ? यह उष मुझे बताओ ॥ ९५ ॥

तस्यास्तत् वचनं भुत्वा महमप्यनुर्व वषः ॥ ९६ ॥
 देवि रामस्य भनुस्त सहायो भीमयिक्मना ।

तस्यास्तत् वचनं भुत्वा महमप्यनुर्व वषः ॥ ९६ ॥
 देवि रामस्य भनुस्त सहायो भीमयिक्मना ।

सुमीको नाम विद्याप्तो यानरेष्ट्रो महाबलाः ॥ ९७ ॥
 इनका वह वचन मुनकर मैंने भी कहा—देवि ।
 दुर्गारे पतिदेव श्रीरामके उहायक एक मर्त्यकर पाककी बल-
 विक्रमसम्पन्न महाबली बानरराज हैं बिनका नाम सुमीक
 है ॥ ९६ ॥

तस्य मा विद्धि भूत्य स्व हनुमन्तमिहागतम् ।
 भर्ता सम्प्रहितस्तुभ्यं रामेणाङ्घ्रिपुङ्गव्याम् ॥ ९८ ॥

तस्य मा विद्धि भूत्य स्व हनुमन्तमिहागतम् ।
 भर्ता सम्प्रहितस्तुभ्यं रामेणाङ्घ्रिपुङ्गव्याम् ॥ ९८ ॥

उर्ध्वका मुझे देवक समझ । मया नाम हनुमान् है ।
 अन्वगत ही महान् कम करनेवाके दुर्गारे पति श्रीरामने भेजा
 है । उरुकिने मैं यहाँ आया हूँ ॥ ९८ ॥

इत्ं तु पुरुषध्यायाः धीमान् शान्तरधि म्ययम् ।
 महुष्ठीयमभिज्ञानमन्वात् मुभ्यं यदास्त्रिनि ॥ ९९ ॥

इत्ं तु पुरुषध्यायाः धीमान् शान्तरधि म्ययम् ।
 महुष्ठीयमभिज्ञानमन्वात् मुभ्यं यदास्त्रिनि ॥ ९९ ॥

इत्ं तु पुरुषध्यायाः धीमान् शान्तरधि म्ययम् ।
 महुष्ठीयमभिज्ञानमन्वात् मुभ्यं यदास्त्रिनि ॥ ९९ ॥

इत्ं तु पुरुषध्यायाः धीमान् शान्तरधि म्ययम् ।
 महुष्ठीयमभिज्ञानमन्वात् मुभ्यं यदास्त्रिनि ॥ ९९ ॥

इत्ं तु पुरुषध्यायाः धीमान् शान्तरधि म्ययम् ।
 महुष्ठीयमभिज्ञानमन्वात् मुभ्यं यदास्त्रिनि ॥ ९९ ॥

इत्ं तु पुरुषध्यायाः धीमान् शान्तरधि म्ययम् ।
 महुष्ठीयमभिज्ञानमन्वात् मुभ्यं यदास्त्रिनि ॥ ९९ ॥

इत्ं तु पुरुषध्यायाः धीमान् शान्तरधि म्ययम् ।
 महुष्ठीयमभिज्ञानमन्वात् मुभ्यं यदास्त्रिनि ॥ ९९ ॥

इत्ं तु पुरुषध्यायाः धीमान् शान्तरधि म्ययम् ।
 महुष्ठीयमभिज्ञानमन्वात् मुभ्यं यदास्त्रिनि ॥ ९९ ॥

इत्ं तु पुरुषध्यायाः धीमान् शान्तरधि म्ययम् ।
 महुष्ठीयमभिज्ञानमन्वात् मुभ्यं यदास्त्रिनि ॥ ९९ ॥

इत्ं तु पुरुषध्यायाः धीमान् शान्तरधि म्ययम् ।
 महुष्ठीयमभिज्ञानमन्वात् मुभ्यं यदास्त्रिनि ॥ ९९ ॥

इत्ं तु पुरुषध्यायाः धीमान् शान्तरधि म्ययम् ।
 महुष्ठीयमभिज्ञानमन्वात् मुभ्यं यदास्त्रिनि ॥ ९९ ॥

इत्ं तु पुरुषध्यायाः धीमान् शान्तरधि म्ययम् ।
 महुष्ठीयमभिज्ञानमन्वात् मुभ्यं यदास्त्रिनि ॥ ९९ ॥

‘व्यवस्थिति ! पुत्रपत्निश्च इधरधनम्बन् सख्यत् श्रीमान्
रामने पञ्चनके किये बह भंग्ठी दुर्गै ली है ॥ १९ ॥

तद्विच्छामि स्वयाङ्घ्रं देवि किं करवाभ्यहम् ।

रामसङ्गमजयोः पार्श्वं नयामि त्वां किमुत्तरम् ॥ १०० ॥

‘देवि ! मैं क्या हूँ कि आप मुझे आङ्घ्र हों कि मैं
आपकी क्या सेवा करूँ ? आप कहें तो मैं अभी आपके
श्रीराम और सङ्गमक पास पहुँचा हूँ । इस विषयमें आपका
क्या ठहर है ? ॥ १ ॥

पतञ्जुत्वा विधित्वा च सीता जनकजन्विनी ।

आह राजसमुत्पद्य राक्षसो मां नयस्विति ॥ १०१ ॥

‘मेरी वह बात सुनकर और खेप-समाहकर जनकजन्विनी
सीताने कहा—‘मेरी इच्छा है कि श्रीरामनाथकी राक्षसका
सेवा करके मुझे स्वर्ग ले चलें’ ॥ १ ॥

प्रथम्य दिरस्ता इवीमहमार्यामनिर्दिताम् ।

राघवस्य मनोद्वावप्रभिज्ञानमयाधिपम् ॥ १०२ ॥

‘तब मैंने उन छठी-खाष्ठी देवी आपां छीताको फिर
सङ्गकर प्रणाम किया और कोई देखी ज्ञापन मॉगी, जो
श्रीरामनाथजीके मनको अज्ञान प्रदान करनेवाली हो ॥ १ ॥

अथ मामप्रसीत् सीता वृद्धतामयमुत्तमः ।

प्रक्षिप्य महाबाहु रामस्त्वां वहु मन्पते ॥ १०३ ॥

‘मेरे मॉनेपर सीताजीने कहा—‘जो, वह उचम वृद्ध-
मति है किते पाकर महाबाहु श्रीराम वृद्धाथ विधेय आबर
करेंगे’ ॥ १ ॥

इत्युक्त्या तु वरारोहा मणिप्रवरमुत्तमम् ।

मायकच्छत् परमाद्रिगमा वाचा मास्विवेशह ॥ १०४ ॥

‘देा ककर मुन्दरी सीताने मुझे यह परम उचम वृद्धा-
मति ही और अज्ञान उद्भिन्न होकर वाणीद्वय अपना उदेष
कहा ॥ १ ॥

ततस्तस्यै प्रथम्याह रामपुण्ये समाहितः ।

प्रदक्षिण परिष्णममिहाभ्युत्प्रस्तमानसः ॥ १०५ ॥

‘तब मन-ही-मन यहाँ आनेके किये उमुक हो एकप्र
विच हाकर मैंने एककुमारी छीताको प्रणाम किया और
उनकी रक्षितार्थ परीक्षमा की ॥ १ ॥

उत्तर पुनरवाह निक्षिप्य भ्रजसा तथा ।

हनुमन् मम वृत्तान्त पठमर्हसि पश्ये ॥ १०६ ॥

यथा धुन्येव नखिरात् तापुषी धमज्जमयो ।

सुमीयसदितौ पौतयुगवाता तथा कुह ॥ १०७ ॥

‘उब तमप उद्देने मनने कुह निभव करके पुनः मुन
उतर दिया—‘इत्युत् । तुम श्रीरामनाथकी मय कता
इत्यन्त सुनाना और पद्य प्रदान करना, किञ्च सुधीउहित

वे दोनों वीरकन्धु भीरम और सङ्गम मेघ हय सुने ॥
अविश्वभ्य यहाँ आ जायें ॥ १ ॥ १ ॥

यद्वन्यया भवेवेतत् त्री मासी जीवित मम ।

य मां द्रक्ष्यसि काकुत्स्थो स्त्रिये स्याहमबाधयत् ॥ १०८ ॥

‘‘परि इतके विपरीत हुआ तो हो महीनेतक मेघ जैन
और रोम है । उनके बाद श्रीरामनाथकी मुझे नहीं देख लगे।
मैं अज्ञातकी मॉति मर जाऊँगी’ ॥ १ ॥

तच्छ्रुत्वा कश्यप वाक्य श्लोभो मामभ्यवर्तत ।

उत्तर च मया ह्यष्ट क्षयशीपमन्तरम् ॥ १०९ ॥

‘उनका वह कश्चात्मक वचन सुनकर उम्भके श्री
मेघ श्लोभ बहुत बड़ यवा । फिर मैंने रोम बदे हुए मर्ष
क्षयपर विचार किया ॥ १ ॥

ततोऽघर्षत मे क्षयस्तथा पर्वतसभिग ।

मुद्याकाङ्क्षी वन तस्य विनाशयितुमारभे ॥ ११० ॥

‘कनकर मेरा शरीर बन्दे क्या और लक्ष्मण स्वर्गके
समान हो गया । मैंने मुझकी इच्छासे राघवके उब कन्धे
उप्यङ्गना आरम्भ किया ॥ १ ॥

तत् भग्न वनसङ्घं तु भ्रमस्तत्रस्तमुद्यजिजम् ।

प्रतिबुद्धय तिररीक्षन्ते वासस्यो विच्छाततया ॥ १११ ॥

‘उद्देके पद्य और पक्षी कनयने और बरे हुए वे उब
उबके हुए वनसङ्घको यहाँ छोकर उठी हुई विच्छात उब
वाली राक्षसिमेंने देखा ॥ १११ ॥

मां च हृष्टा घने तस्मिन् समागम्य ततस्तता ।

ता समभ्यागताः स्त्रिय राघवायाचक्षसिरे ॥ ११२ ॥

‘उब वनमें मुझे देखकर वे सब इधर-उधरसे उब मरी
और हरव राघवक पास जाकर उद्देने कनिर्भवतय लय
समाचार कहा— ॥ ११२ ॥

राजन् वमसिद् दुर्गो तथ भग्न तुरारमया ।

वासरेण ह्यपिषाय लय वीर्ये महाबल ॥ ११३ ॥

‘‘महाकधी राघवराज । एक हुएक्या वानने आरके
बल पराक्रमके कुछ भी न समझकर इत दुर्गम प्रयत्नके
उप्यङ्ग दाका है ॥ ११३ ॥

सस्य तुपुद्धिता राजस्तय विप्रियक्षरिणः ।

अथमायापय स्त्रिय यथासां न पुनर्जित् ॥ ११४ ॥

‘‘महाएव । यह उधकी पुहुंदि ही है जो उबने आर
का अयवक किया । आप हीरे ही उठके कबकी भाङ्ग है
किञ्च यह फिर बचकर पद्य न काय’ ॥ ११४ ॥

तच्छ्रुत्वा राक्षससम्प्रेय विरुष्य बहुबुद्धया ।

राक्षसाः किंकरा नाम राघवस्य ममाऽनुगा ॥ ११५ ॥

'यत् पुनश्च राक्षसपक्षे अपने मनके अनुकूल बन्धने
 शके किंचि नामक राक्षसोंको मेघा, त्रिनपर विषय पना
 मन्मथ कठिन या ॥ ११५ ॥

तेषामशीतिसाहस्र शूलमुन्नत्पापिनाम् ।
 मया तस्मिन् धनोद्देशे परिषेय सिपूवितम् ॥ ११६ ॥

ये हाथमें शूल और मुहर लेकर माये थे । उनको
 कष्या मन्थी हथार थी । परतु मैंने उस क्रमान्तर्गने एक
 परिषये ही उन सबको खार कर डाला ॥ ११६ ॥

तेषां तु हतशिप्या ये ते गता अघुबिक्कमाः ।
 विहृत च मया सौम्य रावणापाञ्चशिरैः ॥ ११७ ॥

'जन्मे को मरनेसे बच गये, वे हस्ती-बन्दी परे बढ़ाते
 हुए भाग गये । उन्होंने रावणको मेरेपात्र छोटी सेनाके
 मारे कनेकर समाचार बताया ॥ ११७ ॥

तदा मे बुद्धिहृत्पम्ना चैत्सप्रासादमुत्तमम् ।
 तत्रस्थान् राक्षसान् हत्वा घात स्तमेन वै पुनः ॥ ११८ ॥
 अज्ञाममूढो अज्ञाया मया विष्वंसितो बया ।

अतश्चात् मर मनने एक नया विचार उत्पन्न हुआ और
 मैंने श्रेयपूर्वक बहोंके उत्तम सैन्यसाधको, जो अज्ञान सबसे
 कुन्दर मन या तथा कितने ही लम्बे को हुए थे, बहोंके
 एकाग्रता ईश्वर करके तोड़-टोड़ डाला ॥ ११८ ॥

तदा प्रहसस्य सुत अम्बुमाक्षिममादिवात् ॥ ११९ ॥
 राक्षसैश्चतुभिः सार्धं धोरकूपीमपालकैः ।

जब रावणने धार रूपवाक ममानक पक्षियोंके साथ
 किन्ही कष्या बहुत अधिक थी, प्रहसके बेटे कम्बुमाक्षीको
 बुद्धके शिरे मेघा ॥ ११९ ॥

तदा बहसम्पन्नं राक्षसं त्यक्त्वाविदम् ॥ १२० ॥
 परिषयातिघारेण सृष्टयामि सहाजुपम् ।

'यह राक्षस बड़ा बलवान् तथा मुदकी कक्षमें कुशक
 था तो मैंने अत्यन्त धोर परिषये मरकर सेवकोंतरित उसे
 भङ्क गारमें डाल दिया ॥ १२० ॥

तप्युत्वा राक्षसेन्द्रस्तु मस्तिपुत्रान् महाबलान् ॥ १२१ ॥
 परातिबलसम्पन्नान् श्रेययामास रावणः ।
 परिषयेय तान् सर्वान् नयामि यमसाधनम् ॥ १२२ ॥

'यह पुनश्च राक्षसपक्ष रावणने वैदक सेनाके साथ अपने
 मन्थीके पुत्रोंको मेघा अब बड़े बलवान् था किन्तु मैंने
 पतिने ही उन सबको यमकाक मंत्र दिया ॥ १२१-१२२ ॥

मस्तिपुत्रान् हताभ्युत्वा समरं सघुबिक्कमान् ।
 एव समाप्रगाम्भुतान् प्रययामास रावणः ॥ १२३ ॥

अन्नाश्रयमें शीघ्रापूर्वकपरकम प्रकट करनेवाक मस्ति
 पुत्रोंको मार गया पुनश्च रावणने पौत्र सृष्टीर बेन्
 दिकोंको मेघा ॥ १२३ ॥

तानहं सहसैस्यान् वै स्वानेषाम्बसूदयम् ।
 ततः पुनर्प्राप्तीयाः पुत्रमसं महाबलम् ॥ १२४ ॥
 बहुभी राक्षसैः सार्धं प्रययामास संयुगे ।

'उन सबको भी मैंने सेनातद्वित मीठके साथ उबार
 दिया । तब दशमुख रावणने अपने पुत्र महाबली मधकुमार
 को बहुसंयुक्त राक्षसोंके साथ युद्ध किये मेघा ॥ १२४ ॥

त तु मन्धोदरीपुत्रं कुमारं त्यपण्डितम् ॥ १२५ ॥
 सहसा च समुद्यमत् पादपोद्ब गृहीतवान् ।
 तमासीन शतगुण्य भ्रामयित्वा स्वपेययम् ॥ १२६ ॥

अन्धारीकीक बह पुत्र मुदकी कक्षमें बड़ा प्रवीण था ।
 वह आश्रयमें उड़ रहा था । उसी समय मैंने वहका उठके
 दोनों पैर पकड़ किये और छो वात मुमाकर उसे पृथ्वीपर
 पटक दिया । इस तरह बहों पड़े हुए कुमार मधको मैंने
 पीठ डाला ॥ १२५-१२६ ॥

तमस्रमागत भ्रम निशम्य स वञ्चानः ।
 ततश्चेन्द्रजित नाम द्वितीय रावणः सुतम् ॥ १२७ ॥
 व्यादिवेश सुसक्तुन्वो बलिम युवतुर्मदम् ।

'मधकुमार युवतुर्मने आया और माया गया-यह
 पुनश्च दशमुख रावणने भायन्त कुपित हो अपने दूतरे पुत्र
 इन्द्रजितको बो बड़ा ही रजतुर्मर और बलवान् था,
 मध ॥ १२७ ॥

तथाप्यहं बह सद्ये त च राक्षसपुङ्गवम् ॥ १२८ ॥
 मन्थीअस रणे कृत्वा पर ह्यमुपागतः ।

उसके साथ भापी हुए लयी सेनाको और उठ राक्षस
 शिपर्मन्थको भी युद्धमें हतनाह करके मुझे बड़ा हप
 हुआ ॥ १२८ ॥

महतापि महाबाहुः प्रत्ययन महाबलम् ॥ १२९ ॥
 प्रहितो रायजेनेय सह क्षीरमदोद्धतैः ।

रावणने इस महाबली महापातु शीरको मनेक मदयस
 कोरोंके साथ बड़ बिभाकसे मेघा था ॥ १२९ ॥

सोऽबिषयद्वा हि मां युक्त्वा ससौम्यं चायमर्हितम् ॥ १३० ॥
 अज्ञानोऽस्त्रेय स तु मा प्रबुद्ध्या भातिकेगिनः ।
 रक्तुभिर्भाषि बध्मन्ति ततो मां तत्र राक्षसाः ॥ १३१ ॥

इन्द्रकिन्ने देला, मेरी लयी सेना कुशक बाधी गयी,
 तब उन्ने समय किया कि इस शानरक्ष दामन करना
 मत्तमम दे । मत उन्ने बड़े बगत अज्ञान पक्षात्र मुझे
 बोप किये । किन्तु तो बहों राक्षसोंने मुझे रक्षितमें भी
 बोया ॥ १३०-१३१ ॥

रायणस्य समीप च गृहीत्या मामुपागतम् ।
 दृष्ट्वा सन्नापितश्चाहं रायणत नुरात्मना ॥ १३२ ॥

पृष्ठस्य लङ्गागमं राससार्तां च तं धधम् ।

तत्सर्वं च रणे तत्र वीर्यार्थमुपजन्वितम् ॥ १३३ ॥

इत तरह मुझे पकड़कर वे सब रावणके समीप ले आये । बुढ़ाया रावणने मुझे देखकर बर्ताबाप आरम्भ किया और पूछा—'युद्धमें क्यों भागा ? तया उधठोका वध देने क्यों किया ?' मैंने वहाँ उत्तर दिया, 'यह सब कुछ मैंने वीर्यार्थके लिये किया है' ॥ १३२ १३३ ॥

तस्यास्तु वीर्याकाङ्क्षी प्राप्तस्त्वद्भजन विभो ।

माकलस्यौरसः पुत्रो वाग्यो हनुमानश्चम् ॥ १३४ ॥

रामवृत्त च मां विद्वि सुमीयसन्निव कपिम् ।

सोऽह वैत्येन रामश्च त्वस्वकाङ्क्षामिहागतः ॥ १३५ ॥

पत्ने । काकलस्यनीक वर्णनीके इच्छते ही मैं दुम्हारे भक्तने आया हूँ । मैं वायुदेवताका औरस पुत्र हूँ, वासिष्ठा वानर हूँ और हनुमान् मेरा नाम है । मुझे भीयमकन्दकी वृत्त और सुमीयका मन्त्री समझो । भीयमकन्दकी वृत्त-कर्म करनेके लिये ही मैं यहाँ दुम्हारे पास आया हूँ ॥ १३४ १३५ ॥

शृणु चापि समादेशं यद्वह प्रयत्नीमि ते ।

राससेषा हरीशस्तवा नाप्यमग्रह समाहितम् ॥ १३६ ॥

शुभ मरे लानीका वृद्धि को मैं दुम्हें बता रहा हूँ, सुनो । राससेषा । वानरराज सुमीयने दुम्हसे एकप्रतापूर्वक को बात कही है उतपर ध्यान दो ॥ १३६ ॥

सुप्रियश्च महाभाग स त्वा कौशिकमप्रवीत् ।

धर्मार्थकामसहितं हितं पथ्यमुपाय ह ॥ १३७ ॥

महाभाग सुमीयने दुम्हारी कुछ कहि है और दुम्हें सुनानेके लिये यह धर्म, अर्थ एवं कामसे युक्त हितकर उपाय कामरायक बात कही है— ॥ १३७ ॥

यस्योऽप्यमृक मे पर्वते विपुसमुमे ।

राजघो रपविष्णोः मित्रात्प समुपागतः ॥ १३८ ॥

जब मैं बहुतकमक बुझते हरे भर अणुमूक पर्वतपर निवास करत था उन दिनों रजने महान् पराक्रम प्रकट करनेवाक श्युनायकीनमरे वापमित्रता स्थापित की थी ॥ १३८ ॥

तत्र मे कथितं राघव् भाया म रक्षसा हता ।

तत्र साहाय्यदेतामै समयं कनुमर्हसि ॥ १३९ ॥

राघव् । उन्होने मुझ पक्षया कि राघव रावणने मेरी सन्नेत्र हर किया है । उसके उदारक धर्मने सहायता करनेके लिये तुम मेरे कामने प्रसिद्ध करो ॥ १३९ ॥

वात्सिना हतराज्येन सुमीयण सह प्रभुः ।

षकेऽप्रिसाधिकं सस्य राघवा सहस्ररमण ॥ १४० ॥

राक्षसेन क्लिप्तं राघव धीमं क्रिया याः उन सुमीयक

वाय (महात् मेरे वाय) कर्ममणवहित मयान् श्रीयक कनिष्ठां छापी बनाकर मित्रता की है ॥ १४ ॥

तेन वाञ्छितमाहृत्य शरैर्वैकेन सयुगे ।

वानरारण्यं महाबाहोः कृतः सम्भूक्तार्तां प्रभु ॥ १४१ ॥

'भीरपुनायकीने युद्धकामने एक ही वामने कनिष्ठा मारकर सुमीयको (सुसन्नेत्रे) उच्छन्ने-कूरनेवाके वनरोंक महायज्ञ बना दिया है ॥ १४१ ॥

तस्य साहाय्यमस्माभिर्कार्यं सर्वात्मना त्विह ।

तेन प्रस्थापितस्तुभ्यं समीपमिह धर्मतः ॥ १४२ ॥

'मन्त्रः हमकोवेको सम्पूर्ण हारवते ठनकी वामन करन है । वही तोपकर सुमीयने धर्मोपकार मुझे दुम्हारे पक्ष मेला है ॥ १४२ ॥

क्षिप्रमाभीष्टतां सीता दीपतां राघवस्य च ।

वाचयन् हरयो वीरा विधमन्ति बलं तव ॥ १४३ ॥

'वनका कन्ता है कि तुम दूरत सीताको ले आने और ककटक वीर वानर दुम्हारी सेनाका खार नही करते हैं वस्येक उम्हें भीपुनायकीको सौंप दो ॥ १४३ ॥

वानरारण्यं प्रभावोऽप्यं न केन विवितः पुरा ।

देवतार्तां सकाशं च ये वाञ्छन्ति निमन्त्रिताः ॥ १४४ ॥

'अपने देवा वीर है जिसे वानरोंका यह प्रश्न पढ़ने ही कष्ट नहीं है । ये वे ही वानर हैं जो युद्धके लिये निमन्त्रित होकर देवताओंके पास भी उनकी सहायकके लिये आते हैं ॥ १४४ ॥

इति वानरराजस्तवामाहोत्पमिहितो मया ।

मामैसव ततो कष्टद्व्यमुपा प्रवृहन्ति ॥ १४५ ॥

'इस प्रकार वानरराज सुमीयने दुम्हसे संदेश करा है । मरे इतना कहते ही रावणने बह होकर मुझे इत तरह देवा मन्त्रो कपनी दृष्टिसे मुझे दण्ड कर बाजेगा ॥ १४५ ॥

तेन यथोऽहमागतो रक्षता रीप्रकर्मणा ।

मत्प्रभाषमविषयाय राघवेन पुरात्मज ॥ १४६ ॥

मयंकर कर्म करनेवाक युद्धमा उधठ रावणने मेरी प्रभावको न जानकर अपने सेवकोंको भासा दे दी कि इस कन्तका (मेला) बध कर दिया जान ॥ १४६ ॥

ततो विभीषणो नाम तस्य ज्ञाता महामतिः ।

तत्र राक्षसराजश्च याञ्छितां मम करण्णात् ॥ १४७ ॥

उन उठके परम बुद्धिमान् भाई किष्किणने मेरे लिये राक्षसराज रावणके प्रार्थना करत हुए कहा— ॥ १४७ ॥

नेव राक्षसशाशुञ्च त्यज्यतामप जिह्वया ।

राजराज्यव्यपता हि मार्गां सन्नश्यत त्वया ॥ १४८ ॥

'राघवकीउपमने । पला करन उचित नहीं है । अतः

मग्ने इष निश्चक्रो रयग रीजिमे । आपकी इषि इष मग्ने
कनीसिके विष्म म्यंगपर च यी है ॥ १४८ ॥

तवप्या न ह्यष्टा हि राजशास्त्रेषु राक्षस ।
लोष चेद्वितप्य च ययामिहितयादिना ॥ १४९ ॥

‘‘प्राणस्रवण । राजनीति-सम्बन्धी शास्त्रोंमें कहीं भी वृत्ते
काष्ठ विधान नहीं है । वृत् तो बरी कष्टा है, बेधा करनेके
बेने उठे बटाया गया होता है । उसका कर्तव्य है कि वह
मग्ने नामीके अभिप्रायका ज्ञान करे ॥ १४९ ॥

सुमहत्पराशरोऽपि वृत्स्यानुकथिकम् ।
विद्वपकरण ह्यष्ट न वधोऽस्ति हि शास्त्रतः ॥ १५० ॥

‘‘अनुष्म पराक्रमी वीर । वृत्त महान् मरुपरा होनेपर
भी शास्त्रमें उसकी वधका ह्यष्ट नहीं देखा गया है । उसके
किसी महाकोकिल्वृत्त कर देनामात्र ही बताया गया है ॥ १५० ॥

विभीषणनैवमुक्तो राक्षसाः सविदेषा ताम् ।
प्राज्ञानततदैवाद्य साङ्ख्यं दृष्ट्यामिति ॥ १५१ ॥

‘‘विभीषणके ऐसा करनेपर राक्षसों उन राक्षसोंको उधम
ही—अन्ध तो मात्र इतकी वह पूँछ ही बन्धे सो ॥ १५१ ॥

उतस्तस्य वक्त्राः भ्रुवा मम पुच्छं समन्ततः ।
वेष्टितं हास्यसकैश्च पटैः कर्पांसकैस्तथा ॥ १५२ ॥

‘‘उतकी यह भाषा सुनकर राक्षसोंने मेरी पूँछमें लज
कोरते मुतकी रसिकों तथा रेशमी और धड़ी कपड़े बन्दे
रिसे ॥ १५२ ॥

पशुसाः सिद्धसमाहासतस्ते बण्डविक्रमाः ।
तवाशीत्यन्त मे पुच्छं हनन्ताः कण्डमुष्टिभिः ॥ १५३ ॥

‘‘इत प्रकर योंक देनेके पश्चात् उन प्रकण्ड पराक्रमी
पक्षमें कण्ड डकों और मुकण्डों मारते हुए मेरी पूँछमें
मज बन्धे ही ॥ १५३ ॥

वदस्य बहुभिः पाशैर्विजितस्य च राक्षसे ।
म मे वीडाभयत् काचित् विद्वहानगर्गी विवा ॥ १५४ ॥

‘‘मैं हिनमें ब्रह्मपुत्रीके अन्धी तरह देखना चाहता था,
इसके राक्षसोंका बहुव-ही रक्षिकोंके बोंपे और कसे जानेपर
भी मुझे कोर पीडा नहीं हुई ॥ १५४ ॥

उतस्त राक्षसाः शूरा बन्ध मामग्निसप्ततम् ।
प्रथयन् राजमार्गे मगराहारमागताः ॥ १५५ ॥

‘‘उतपश्चात् नगराहारपर आकर वे शूरीर राक्षस पूँछमें
क्यों हुए आगते फिर और कसे हुए प्रकण्ड सङ्कपर
कुच्छं हुए लज ओर मेरे मरुपराकी पोष्या करने
के ॥ १५५ ॥

ततोऽहं सुमहद्वृत्तं नक्षिप्य पुनरात्मनः ।
विमोचयित्वा तं वन्ध प्रकृतिस्थाः स्थिताः पुना ॥ १५६ ॥

‘‘इतनेहीमें अपने उत विद्यालय रूपको उकुचित करके
मैंने अपने आपको उत बन्धनसे मुक्त किया और फिर
व्यायक्तिक रूपमें आकर मैं वहाँ गया हो गया ॥ १५६ ॥

आयस्त परिषद् युद्धं तानि रक्षांस्यसूत्रयम् ।
ततस्तन्मगराहारं देवान् ज्युतयानहम् ॥ १५७ ॥

‘‘फिर परतकर रत्ने हुए एक आदिके परिषदको उठाकर
मैंने उन सब राक्षसोंको मार डाला इसके बाद बड़े बेगते
कूरकर मैं उत नगराहार पर चढ़ गया ॥ १५७ ॥

पुच्छेन च प्रक्षिप्तं ता पुरीं साङ्गोपुत्राय ।
दहाम्यहमसम्भ्रान्तो युगान्ताग्निरिव प्रजाः ॥ १५८ ॥

‘‘तलाबाद् उधम प्रकण्डों हथ करनेवाली प्रकण्डानिके
समान मैं जिना किसी मगराहारके अज्ञानिक और ज्येपुरतद्विद
उत पुरीको अपनी जखती हुई पूँछकी भागसे बन्दे
कण्ड ॥ १५८ ॥

विमद्या ज्ञानकी व्यक्त न ह्यदग्धाः प्रहदयते ।
अज्ञायाः कश्चिदुदेता सर्पा मसीकृता पुरी ॥ १५९ ॥

‘‘दहता च मया खड्ग वग्धा सीता न सद्यः ।
रामस्य च महत्कार्यं मयेद् विफलकृतम् ॥ १६० ॥

‘‘फिर मैंने छोषा खड्गका कोरे भी खान देखा नहीं
दिखायी देता है जो कथा हुआ न हो । धारी नगरी बन्दकर
मज हो गयी है । अत अपस्य ही जानकीकी नी नह हो
गयी होगी । इतमें खेर नहीं कि खड्गको बजाते बजाते
मैंने धीलाधीसे भी कमा रिया और इत प्रकार मगवान्
भीरमके इत महान् कर्मको मैंने निष्फल कर
रिया ॥ १५९ १६० ॥

इति शोकसमाविष्टश्चिन्तामहसुपागतः ।
ततोऽहं पाञ्चमशीर्षं चारण्यानां शुभाक्षराम् ॥ १६१ ॥

‘‘जानकी न च दग्धेति विस्मयोदन्तभाषिण्याम् ।
इत तव शोककुण्ड होकर मैं बड़ी चिन्तामें पड़ गया ।
इतनेहीमें आभयपुत्र ह्यपान्तका बर्षन करनेवाले चारण्योकी
शुभ अद्यपते विभूषित वह नाभी मेरे कानोंमें पड़ी कि प्यनकी-
की इत आगते नहीं कबो है ॥ १६१ ॥

तदा मे बुद्धिरव्यपन्ना भुत्वा तामद्वृत्तां गिरम् ॥ १६२ ॥
अग्धभा ज्ञानकर्तव्यय विमिर्षीभ्योपलक्षितम् ।
शीप्यमान तु साङ्ख्यं न मा दहत्य पायका ॥ १६३ ॥

‘‘इदय च प्रहृष्टं म याताः सुपिमिगम्यिताः ।
उत अद्भुत नाभीको सुनकर मेरे मनमें यह विचार
उत्पन्न हुआ—‘‘शुभ शकुनोंके भी यही ज्ञान परक्य है कि
जानकीकी नहीं कबो है; क्योंकि पूँछमें आग बग जानेपर
भी अग्निदग्ध मुक्त जला नहीं रह है । मेरे हृदयमें यद्वा १५

मरा हुआ है और उक्त मृगजते पुत्र मन्त्र-मन्त्र वासु चक्र रही है ॥ ११२ ११३ ॥

तैर्मिषौष्य इष्टार्थैः करणैश्च महाशुभैः ॥ ११४ ॥
श्रुतिवाक्यैश्च इष्टार्थैरुभवं इष्टमानसा ।

किनके कर्मोत्तम श्रुते प्रत्यक्ष अनुभव हो पुत्र या उन उक्त शकुनों महान् गुणघाभी करणों तथा श्रुतियों (वारणों) की प्रत्यक्ष देखी हुई बातोंसे भी शीताबीके उक्तुएक होनेका विश्वास करके मेरा मन हर्षसे भर गया ॥ ११४ ॥

पुनर्दृष्टा च वैदेही विस्तृष्टा तथा पुनः ॥ ११५ ॥
ततः पर्वतमासाद्य तत्रारिष्टमहं पुनः ।

प्रतिद्वेषममारेमे युष्मद्दर्शनकाङ्क्षया ॥ ११६ ॥

तत्पश्चात् मैने पुनः विदेहनन्दिनीका दर्शन किया और फिर उनसे विदा लेकर मैं बरिह पर्वतपर आ गया । वहीं शिवात्मयोगके दर्शनकी इच्छासे मैने प्रतिपन्न (पुनरावृत्त) आकाशमें उड़ना) आरम्भ किया ॥ ११५ ११६ ॥

इत्यर्थे भीमवृक्षाभ्युदये काव्यीकीये काव्यिकाम्ये सुन्दरकाव्येऽष्टपञ्चसः सर्गः ॥ ५८ ॥

इस प्रकार शैवप्रतिनिर्मित कार्यप्रमाणक कविकाम्यके सुन्दरकाव्यमें अष्टमर्गों का पूरा हुआ ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितम सर्ग

इनुमान्त्रीका सीताकी दुरवस्था बताकर धानरोंको लड़ापर आक्रमण करनेके लिये उत्तेजित करना

एतद्वाक्याय तत् सर्वं हनुमान् माकतारमजः ।
भूयः समुपचक्राम बचनं वक्तुमुत्तरम् ॥ १ ॥
यह एक इत्यन्त बताकर पवनकुमार इनुमान्कीने पुनः उक्तम बातें कहनी आरम्भ कीं— ॥ १ ॥

सफलो राववोद्योगः सुग्रीवस्य च समन्वयः ।
शीकन्मासाद्य सीताया मम च प्रीणित मनः ॥ २ ॥

कविरथ । भीमवृक्षकीका उद्योग और सुग्रीवका उत्साह उत्पन्न हुआ । शीताकीका उक्तम शीक-स्वभाव (यतिभाव) देखकर मेरा मन अत्यन्त उत्साह हुआ है ॥ २ ॥

मायायाः सद्यश्च शीक सीतायाः प्रवर्गर्भाम् ।
तपसा धारयन्नाकाम मुञ्जा या निर्देहस्यि ॥ ३ ॥

पानपिपिपमिषे । किन नारीका शीक-स्वभाव भावों शीकाके समान हुआ यह अपनी तपसासे सम्पूर्ण कोशेध बाल्य कर लकरी है अथवा कुपित होनेपर लीने कोशेधे क्या लकरी है ॥ ३ ॥

सपपातिमठुष्टोऽस्तं रायणा राक्षसभयतः ।
यस्य ता सृशता गात्रं तपसा न विनाशितम् ॥ ४ ॥

पापघणन एव न तथा महान् तपेवकमे तमस्य अन पदय है । किन्तु भद्र शीकाध रूपों करत

ततः श्वक्षनसम्प्राक्तं सिद्धगम्भर्वसेवितम् ।
पन्याममहमाकम्य भक्तो हृद्यबानिह ॥ ११७ ॥

उत्पन्नात् वासुः पत्रमाः सूर्यः तिष्ठ और गन्तव्ये वेदित मार्गाभ्य आभय के नहीं पहुँचकर मैने आत्मयोग दर्शन किया है ॥ ११७ ॥

राघवस्य प्रसादेन भक्तता चैव तेजसा ।
सुग्रीवस्य च कर्पार्थे मया सर्वमनुष्ठितम् ॥ ११८ ॥

भीरामपत्रकीकी कृपा और आपयोगके प्रसंगसे मैने सुग्रीवके कर्णकी शिष्टिके लिये सब कुछ किया है ॥ ११८ ॥

पतत् सर्वं मया तत्र यथावदुपपादितम् ।
तत्र यम्य कृत शेष तत् सर्वं क्षिपयामिति ॥ ११९ ॥

मह शरा कर्ण मैने नहीं पकौल रूपसे तमस्य किया है । जो कर्म नहीं किया है अथवा जो शेष रह गया है वह सब आपयोग पूर्ण करें ॥ ११९ ॥

अम उन्की तपसासे नष्ट नहीं हो गम ॥ ५ ॥
न तवप्रिथिषा कुर्यात् संसृष्टा पाणिना सती ।
ऊनकस्य सुता कुर्यात् यत् कोधकसुपीकृता ॥ ५ ॥

श्रायते पू जानेपर भाग्यी कपट भी वह अम नहीं कर लकरी, वह कोष दिखनेपर धनधनमिनी शीका कर लकरी है ॥ ५ ॥

जाम्बवदप्रमुखात् सर्वाननुष्ठाप्य महाकपीन् ।
अस्मिन्मन्वगते कार्ये भवतां च त्रिविधे ।
न्याप्य स सद्यश्चैव्या द्रष्टुं तौ पार्थिवामत्रौ ॥ ६ ॥

एव कार्यमें मुझे बर्होत्तक उपकृता मिषी है, वह ल एत रूपमें मैने आपयोगको बता दिया । अब कामवान् मारि लभी महाकपीनोंकी सम्मति लेकर हम (शीकाके एवके कामकासे कोशकर) शीकाक लय ही भीरामपत्रकी और कामका दर्शन करें यही म्वावगत अन पदय है ॥ ६ ॥

महामेकोऽपि पयाताः सराससगणो पुरिम् ।
तां लघुं तरसा हनुं रावर्भं च महापतम् ॥ ७ ॥

किं पुनः सदिता पीरीपक्ययिः कृतामभिः ।
कृताभिः प्रपणेः शकैभयद्विर्विजयैपिभिः ॥ ८ ॥
मैं अथवा भी उद्योगकेवहित तमस्य म्हापुपीम

केपूर्वक विप्रस्य करने तथा महाबली रावणको मार जानेके
 क्रिये पर्याप्त हैं। फिर यदि कर्मोंको जाननेवाले आप-
 णेसे भी, बह्वान् बुद्ध्यात्मा, शक्तिशाली और विद्या
 भिन्नी बानर्षेकी स्थापता मित्र बन, तब तो करना
 ही क्या है ॥ ७-८ ॥

अर्हं तु रावण सुखे ससैन्य सपुराधरम् ।
 सहपुत्रं सधिष्यामि सद्योत्सुर्त युधि ॥ ९ ॥

भुवराजकी सेवा, अग्रगणी सैनिक, पुत्र और सगे
 भायोंसहित रावणका तो मैं ही बंध कर जाँवगा ॥ ९ ॥
 ब्रह्मकर्मात् वा रीतुं वा बायभ्यं वादय तथा ।
 पतिं वाकञ्चितोऽस्त्राणि तुर्निरीक्ष्यामि संयुगे ।
 वाग्वहं निहन्मिष्यामि विधिमिष्यामि राक्षसान् ॥ १० ॥

अपनि इन्द्रकिण्वके ब्राह्म मन्त्र, रोद्ध, बायम्ब तथा
 वायव्य आदि अस्त्र युद्धमें सुसंभव होते हैं—किरीकी हथिये
 नहीं आते हैं, तथापि मैं ब्रह्मादीके बरवानेके अस्त्रका निवारण
 कर दूँगा और राक्षसोंका संहार कर जाँवगा ॥ १ ॥
 भवत्सामन्वन्नुवातो विष्णो मे वणश्चि तम् ।
 मयातुका विशुष्टा हि शौकवृष्टिर्निरेन्तरा ॥ ११ ॥
 वैबल्यपि रणे हस्यात् किं पुनस्तान् मिथाञ्चयाम् ।

जबि आपणोंकेकी आवाज मित्र जाय तो मेरा पराक्रम
 एकलके कुण्ठित कर देगा। मेरेहारा बनावार बरख्ये
 अपनेके फलपत्रोंकी अनुपम वृष्टि (वन्मूर्तिमें देवताओंको भी
 रोकेके फल उतार देगी)। फिर उन निशाचरोंकी तो बात
 ही क्या है ॥ ११ ॥ ११ ॥

भक्त्यामननुवातो विष्णो मे वणश्चि माम् ॥ १२ ॥
 ध्यारोऽप्यतिपात् खेख मन्त्रः प्रथलेवपि ।
 न ब्राम्भवास्त समरे कन्त्येव्विरिबाद्विही ॥ १३ ॥

आपणोंकी आवाज न होनेके कारण ही मेरा पुत्रचार्य
 सुखे एक रहा है। सुभ्र अपनी मर्णाचार्योंके साथ आन और
 मन्त्ररायक अपने स्तान्ते हृद ब्यव, परंतु समराज्यमें
 सुमोक्षोंके उना धाम्भवान्को निश्चित कर दे, यह कमी
 कल्प नहीं है ॥ १२ १३ ॥

अथपद्मसङ्गतानां राक्षसा ये च पूर्वजाः ।
 असमकोऽपि माहाय वीरो पाञ्चिस्तुता कपिः ॥ १४ ॥

अपूर्व रक्षकों और उनके पूर्वजोंको भी बमबोक
 पूर्वजनेके क्रिये वालीके वीर पुत्र कपिमेव अङ्क मकेके
 ही कपि है ॥ १४ ॥

पुत्रपथाकयेगेन मीळस्य च महारमनः ।
 मन्त्रोऽप्ययशीर्येत किं पुनर्बुधिं राक्षसा ॥ १५ ॥

आनर्षीर महाम्य नीलके महान् वेगले मन्त्ररायक
 को विरोध हा उठवा दे; फिर युद्धमें राक्षसोंका नाश करना
 उनके क्रिये कौन बड़ी बात है ॥

सदेवाहुरयक्षेपु गन्धर्वाँरगपत्सिपु ।
 मैत्रस्य प्रतियोजारं दासत द्विविषस्य वा ॥ १६ ॥

हम सबके-सब ब्रह्मा तो छरी—देवता, असुर
 यक्ष, गन्धर्व, नग और पक्षियोंमें भी कौन एक वीर है,
 जो मैत्र मयवा द्विविदके साथ ओहा के सके ॥ १६ ॥

अत्रिपुत्री महावेगावेतौ भूषणसचमी ।
 एतयोः प्रतियोजारं न पद्म्यामि रणाश्रिरे ॥ १७ ॥

ये दोनों बानर्षीरामसि महान् वेगशाली तथा
 अत्रिपुत्राके पुत्र हैं। समपक्षमें इन दोनोंका खमना
 करनेवाला सुते कौन नहीं दिकामी देता ॥ १७ ॥

मयैव निहता लङ्का वृषा भङ्गीकृता पुरी ।
 राक्षमांगेषु सर्वेषु माम विभावित मया ॥ १८ ॥

मैंने अपनेकी ही लङ्कावाशियोंको मार लिया; नगरमें
 भाला बम्य ही और छरी पुरीको धकाकर भंग कर दिया।
 इत्या ही नहीं; बर्होंकी सब सबकोपर मैंने अपने नामका
 बंध पीन दिया ॥ १८ ॥

अत्यतिबलमे रामो मङ्गलज्ज महाबलः ।
 राजा ज्यति सुग्रीवो रामयेयानियाक्षितः ॥ १९ ॥

अर्हं कोसलराजस्य दासः पथनसम्भवः ।
 इनुमानिति सर्वत्र वाम विभावितं मया ॥ २० ॥

मस्तक कल्याणी भीरुम और महाबली कल्पकी
 बल ही। भीरुनायाकीके द्वारा सुखित राम सुग्रीवकी
 भी बल हो। मैं कोसलनेरा भीराममन्त्रकीका राव और
 वायुदेकवाप्य पुत्र हैं। इतमान् मेरा नाम है—इस प्रकार
 सर्वत्र अपने नामकी घोषणा कर ही है ॥ १९ २० ॥

अशोकवमिकांमण्ये राक्षसस्य सुरात्मनः ।
 अथस्ताञ्चिञ्चामासूके सान्धी कठणमाप्सिता ॥ २१ ॥

सुरात्मा रावणकी अशोकवाटिकके मध्यभागमें
 एक अशोक वृक्षके नीचे लम्बी सीटा बनी इपनीय मन्त्रामें
 रखी है ॥ २१ ॥

राक्षसीभिः परिधृता शोकसतापकर्शिता ।
 मेघरेजापरिवृष्टा अन्त्ररेलेव निष्प्रभा ॥ २२ ॥

अपक्षियोंके पिरी हुई होनेके कारण वे अन्ध-संतापके
 दुर्बल होती या रही हैं। बादलोंकी पक्षिष पिरी हुई
 अन्त्ररेजाकी मौति भीहीन हो गयी है ॥ २२ ॥

अचिन्तयन्ती वीवही रावण बद्धपरितम् ।
 पतिप्रता च सुधोषी अवष्टम्बा च जानकी ॥ २३ ॥

सुन्दर कटिपरोचकाकी विदरनन्दनी बान्नी पतिप्रता
 है। वे बद्धक परमंभमें मरे रहनेवाले रावणका कुछ भी

अनुरक्ता हि वैदेही रामे सर्वात्मना शुभा ।
 अमन्मबिच्छा रामेण पीलोमीय पुरन्दरे ॥ २४ ॥
 कृपायी सीता भीरुमने उन्मूढ हृदये अनुरक्तः ।
 जैसे वही देवराज इन्द्रने अमन्म प्रेम रखती है, उसी
 प्रकार सीताका चित्त अमन्मभावसे भीरुमने ही चिन्तनमें
 क्या हुआ है ॥ २४ ॥

तदेकवासाःसंमीया उजोभवस्ता तयैव च ।
 सा मया राक्षसीमन्मं तर्ज्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ २५ ॥
 राक्षसीभिरिच्छुपाभिरिच्छा हि प्रमहावने ।
 एकमेपीभरा सीता भर्तृचिन्तापरात्यया ॥ २६ ॥
 वे एक ही खाड़ी पदने भूखि-भूखरित हो रही हैं ।
 राक्षसियोंके भीरुमें रहती हैं और उन्हें बारंबार उनही उर्ध्व
 फटकार सुननी पड़ती है । इस अवस्थामें कुसुम राक्षसियोंके
 विपरी दुर्दंभीताको मैंने प्रमहावनेमें देखा है । वे एक ही
 वेषी बारण किने हीनमन्मके केवळ अपने पतिदेवके
 चिन्तनमें डूबी रहती हैं ॥ २५ २६ ॥

अमराश्या विवर्णाङ्गी पथिनीच क्षिमोक्षे ।
 रावणाद् विनिवृत्तार्था मर्त्यकृतमिच्छया ॥ २७ ॥
 वे नीचे भूमिपर छोटी हैं । इमस्तधुद्रुने कमजिनीकी
 मूर्ति उनके मन्मकी कल्पित कीर्ती पड़ गयी है । उनको
 उनका कोई प्रयोजन नहीं है । वे मर्त्यका निश्चय किये
 बैठती हैं ॥ २७ ॥

कपंचिन्मृगशाफाली चिन्थासमुपपाजिता ।
 ततः स्रग्भापिता यैव सर्वमर्थे प्रकाशिता ॥ २८ ॥
 उन मृगजनी सीताको मैंने वही कठिनाईके किष्की
 तरह अपना मिथल दिखाया । तब उनसे बातचीतका

एतत्परं श्रीमद्वाल्मीके वाल्मीकीये सुन्दरकाण्डे पद्योत्पत्तिरसा खरो ६ ५२ ६

इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीये अर्वात्मायन कीर्तिकाम्के सुन्दरकाण्डमें उनका उर्ध्व उर्ध्व पूरा हुआ ॥ ५ ॥

पठितम सर्ग

अङ्गदका लङ्काको जीतकर सीताको ले आनेका उरसाहपूर्वक विचार
 और आम्बवानक द्वारा उसका निवारण

तस्य तद् वचनं धृत्वा वाञ्छित्पुराभारत ।
 मन्त्रिपुत्रो महाबली यमपत्नी दुष्यमनी ॥ १ ॥
 इतमानुषीधे यह बात सुनकर कश्चिपुत्र भाइने
 कहा—मन्त्रिपुत्रको पुत्र से मैंने और विविह दोनों
 बानर अत्यन्त बेमशाती और बख्खन है ॥ १ ॥
 पितामहबरोसेकात् परम पुर्यमास्थितौ ।
 मन्त्रिमोमानार्थे हि सख्योकरितामहः ॥ २ ॥

अबतर मित्रा और खरी बातें मैं उनके समझ रहा हूँ ।
 रामसुग्रीवसख्य च भुक्त्वा प्रीतिमुपागतौ ।
 निवृत्तः समुवाचारो भक्तिमूर्त्तरि शोचता ॥ २९ ॥
 'भीरुम और सुग्रीवकी मित्रताकी बात सुनकर उन्हें
 वही प्रसन्नता हुई । सीताकीसे दुःख उदाचार (पठिम्न)
 मिष्टमान है । अपने पतिके प्रति उनके हृदयमें उन्म
 म्भित है ॥ २९ ॥

यद्य इन्ति वृथाभीष्टं स महात्मा वृथानता ।
 निमित्तमार्थं रामस्तु यद्य तस्य भक्तिमपि ॥ ३० ॥
 'सीता स्वयं ही खे उरबको नहीं मर सकती है
 एते धान पड़ता है कि इधमुध राक्ष महात्मा है—
 तपोबहुते सम्यक् होनेके कारण शाप पानेके अन्त्य
 (तथापि सीताहरणके पापसे वह नष्टमान ही है) ।
 श्रीरामस्वकी उरके बचने केक निमित्तमान होगी ॥ ३ ॥
 सा प्रकृत्यैव तन्महती तद्वियोगाच्च कर्षिता ।
 प्रतिपस्याहशीलस्य विद्येद्य तदुत्तां गता ॥ ३१ ॥

'मन्मकी सीता एक तो लम्बनेसे ही दुबकी-कली
 है, वृत्ते भीरामस्वकीके वियोगसे और भी क्या हो सकती
 है । जैसे प्रतिपदाके दिन लाप्याय करनेवाले मित्रकीकी
 विद्या क्षीय हो जाती है, उसी प्रकार उनका शरीर भी
 अत्यन्त दुर्बल हो गया है ॥ ३१ ॥

एवमास्तं महाभागा सीता शोकपरायणा ।
 यत्र प्रतिकर्त्तव्यं तद् सर्वमुपकल्पयताम् ॥ ३२ ॥
 'एव प्रकार महाभागा सीता तथा शोकमें डूबी रहती
 है । मन्मः इत समय जो प्रतीकार करना हो वह सब
 आपसमें करें ॥ ३२ ॥

एतत्परं श्रीमद्वाल्मीके वाल्मीकीये सुन्दरकाण्डे पद्योत्पत्तिरसा खरो ६ ५२ ६

इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीये अर्वात्मायन कीर्तिकाम्के सुन्दरकाण्डमें उनका उर्ध्व उर्ध्व पूरा हुआ ॥ ५ ॥

सर्वावभारतमनुभवमनयोर्दत्तयाम् पुरा ।
 बरोसेकन मन्त्रो च प्रमथ्य महतीं चमूम् ॥ ३ ॥
 सुवण्याममृत पीरो पीतकली महाबली ।
 पूरवकमें ब्रह्माकीका का मिलनेसे इनका अग्निमान
 बढ़ गया और वे बड़ परमजने मर गये थे । लम्बुर्ध
 कीर्तिके पितामह मन्मकीने मन्त्रिकुमारको मान रखनेके
 लिये पहले इन दोनोंको बह अनुपम बरदान दिया था कि

मुम्हें कोह भी मार नहीं सकता । उठ करके अमिमानते मत हा इन दोनों महाबली बीरोंने देवताओंकी विद्यालय केाके मणकर अमृत पी किया था ॥ २ १३ ॥

पथायेष हि सङ्कुली सभाजिरथकुञ्जराम् ॥ ४ ॥
ब्रह्मा नाशयितुं शक्यो सर्वे तिरङ्गनु वानरान् ।

ये ही होन्ने यदि श्रममें मर जायें वा हाथी, घोड़े और खोखरित हम्ही ब्रह्मका नाश कर सकते हैं । मझे ही और सब वानर षट् रई ॥ ४३ ॥

महामण्डोपि पयाप्तः सखास्रसर्गाणां पुरीम् ॥ ५ ॥
वा ब्रह्मां तरसा हनुं राघव च महाबलम् ।
किं पुनः संहितो बीरैर्बलवद्भिः कृतात्मभिः ॥ ६ ॥
कृतात्मैः प्रवर्गैः शक्यैर्मवद्भिर्बिन्दयैपिभिः ।

मैं मण्डेका भी राखतगणोखरित समस्त ब्रह्मापुरीका वेगपूर्वक विध्वंस करने तथा महाबली राघवको मार डालनेके लिये पर्याप्त हूँ । फिर यदि सम्पूर्ण मजनोंके बाननेशके आप-बैठे बीर, बलवान्, प्रहाराभा शक्तिशाली और विद्यामिश्रणी बानरोंकी सहायता मित्र साथ, सब तो रहन्य ही क्या है ! ॥ ५-६ ॥

वायुसुलोचिनेन वग्धा सङ्केति नः भुतम् ॥ ७ ॥
हृष्टा वृषी न खामीता इति तत्र निबेदितुम् ।
स पुत्रमिष यद्यपामि भवद्भिः क्यारतयौवयैः ॥ ८ ॥

वायुपुत्र हनुमान्कीने मङ्कल जाकर अपने पराक्रमसे ही ब्रह्माके रूँक बाका—बह बाल हम सब योगेने पुन ही थी । आप जैसे स्वतन्त्रमा पुत्रवार्थी बीरोंके रहते हुए मुझ भावना भीरामक सामने बह निवेदन करना उचित नहीं बान पक्का कि हमने हीतादेकीका दखन तो किया, सिन्धु रुई का नहीं तक ॥ ७-८ ॥

यदि वा पुत्रन कश्चिथापि कश्चित् पराक्रमे ।
तुभ्यं सामरदैत्येषु लोकेषु हरिसत्तमाः ॥ ९ ॥
वानरपिरोमनिषा । एवताओं और देवोंखरित हनुं काशमें कोह भी देवा बीर नहीं है वा हृष्टकधी ब्रह्मा मारने और पराक्रम दिखानेमें आपणोंकी क्षमता कर लके ॥ ९ ॥

शिक्षा ब्रह्मां सरक्षीर्मां हत्वा त राघव रणे ।
सीतामादाय गच्छामः सिन्धुयां ह्यप्रमानसाः ॥ १० ॥
मः निष्पन्नसमुदायखरित ब्रह्माका बीतकर मुझमें राघवका बंध करके, हीताको साथ क लङ्कामनोरथ एवं रञ्जित होकर हमका भागामकरथक पाठ करके ॥ ११ ॥

तथाच हतवीरसु राक्षससु हनुमता ।
किमप्युच्य कतम्य गृहीत्वा याम ज्ञानकीम् ॥ ११ ॥
बच हनुमान्कोने राक्षसोंके प्रमुख बीरोंको मार डाला

है, ऐसी परिस्थितिमें हमारा इतने तिरा औरक्या कतम्य हो सकता है कि हम बनकनन्दनी हीताको साथ लेकर ही चले ॥ ११ ॥

रामबलमप्योमप्ये म्यस्याम जनकारमज्ञाम् ।
किं व्यथीकैस्तु ताम् सखाम् वातराम् वातरपभाम् ॥
ययमेव हि गत्या तान् हत्वा राक्षसपुङ्गवान् ।
राघव प्रभुमहाम सुग्रीव सहस्रमणम् ॥ १३ ॥

कथितः । हम बनकशिरोपीको ले पककर भीराम और करमणके बोपने काही कर दें । किञ्चिन्नामें मुझे हुए उन सब बानरोंको हृष्ट देनेकी क्या आवश्यकता है । हमसेगा ही सङ्गमें नककर वहाँके मुख्य-मुख्य राक्षसोंका बंध कर डालें, उसके बाद औरकर भीराम, बचनप तथा सुग्रीवका दर्शन करें ॥ १२ १३ ॥

तमेव कृतसकश्य आम्बयान् हरिसत्तम ।
ब्रह्माच परमप्रीतो वाक्यमर्यथवर्षवित् ॥ १४ ॥

भाइरका देवा लक्ष्य बनकर बानर माडुमोंमें ब्रेड और अर्घ्यलक्षके जावा आम्बवान्ने अत्यन्त प्ररुम लेकर यह लार्थक बात करी— ॥ १४ ॥

मैया बुद्धिर्महाबुद्धे यद् प्रवीपि महाकरे ।
भिद्येते कयमाकता वृक्षिणां दिशमुत्तमाम् ॥ १५ ॥
नामतु कपिराजेन मेव रामेण धीमता ।

महाकरे ! तुम बड़ बुद्धिमान् हा तथापि इत समन को कुछ कह रह हो यह बुद्धिमान्कीका बात नहीं है; क्योंकि बानरराब सुग्रीव तथा परम बुद्धिमान् भगवान् भीरामने हमें उच्छ दक्षिण दिशामें कबल हीताको लोभनेकी आका ही है साथ क भानेकी नहीं ॥ १५ ॥

कपश्चिश्चिञ्जिता सीतामस्माभित्ताभिरौचयेत् ॥ १६ ॥
राघवो नृपशालूखः कुल व्यपदिशान् लकम् ।

यदि हमभाग किही तरह हीताका बीतकर उनके पाठ क भी कमें तो नृपमेड भीराम अपने कुलके स्वबहारका करम करते हुए हमारे इत कर्मको पछें नहीं करेंगे १६ ॥ प्रतिज्ञाय लय राजा हीताविजयममतः ॥ १७ ॥ सर्वेषां कर्षमुक्यानां कय सिध्या करिष्यति ।

प्रायः भीरामने कभी प्रमुख बानरबीरोंके सामने खर्ब ही हीताका बीतकर बनेकी प्रतिज्ञा की है उठे वे सिध्या कैसे करेंगे ! ॥ १७ ॥

बिफळ कम च कृत भयत् तुष्टिम तस्य च ॥ १८ ॥
बुधा च वरित वीर्यं भयत् वातरपुङ्गवाग ।

भठः बानरपिरोमनिषा । एही अरक्षामें हमरा किया-करवा कार्य निफळ हा ब्यपय । भगवान् भीरामको लठेय भी नहा होय और इयाव पराक्रम दिखाना भी ब्यर्ष सिद्ध हाय ॥ १८ ॥

तस्मात् गच्छाम वी सर्वे यत्र रामः सख्यमप्यः ।
सुग्रीवश्च महातेजाः कर्मरसास्य निवेद्ये ॥ १९ ॥

श्लोकभेदे हम सब लोग इस कार्यकी दुःखना देनेके लिये
वही पर्ये, वहाँ कर्मरसवशित भगवान् श्रीराम और महातेजस्वी
सुग्रीव विद्यमान हैं ॥ १९ ॥

व तावदेवा मतिरक्षमा नो
यथा भवान् पश्यति राजपुत्र ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे षष्ठितमः सर्गः ॥ १ ॥

इत प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीय महाकविके सुन्दरकाण्डके सप्तमो सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ॥

एकषष्टितमः सर्गः

वानरोंका मधुवनमें जाकर वहाँके मधु एवं फलोंका मनमाना उपभोग
करना और वनरक्षकसे घसीटना

ततो जाम्बवतो वाक्यमप्युद्धत वनौकसः ।
मन्त्रममुखा वीरा हनुमार्णव महाकपिः ॥ १ ॥

उत्तरतर मन्त्र आदि सभी वीर वानरों और महाकपि
हनुमान्ने भी वाक्यवाक्यी बात भ्रन थी ॥ १ ॥

प्रीतिमन्त्रस्ततः सर्वे वायुपुत्रपुरासराः ।
महेन्द्राभात् समुत्पत्य पुष्पजुः भ्रुवगर्भभाः ॥ २ ॥

फिर वे सब श्रेष्ठ वानर वनरपुत्र हनुमान्के आगे करके
मन-ही-मन प्रकृतवाक्य अनुभव करते हुए महेन्द्रप्रीतिके
शिखरसे उठकर-कूदते पक्ष दिने ॥ २ ॥

मेरुमन्त्रसक्यशा मत्ता इव महागजगः ।
छत्रपन्त इवाकाश महाकाया महाबलमः ॥ ३ ॥

वे मेरु पर्वतके समान विद्याकक्षत्र और बड़े-बड़े मन्त्र
मय गजपक्षोंके समान महाबली वानर आकाशको मन्त्रमरित
करते हुए-से पक्ष रहे थे ॥ ३ ॥

सभाज्यमान भूतैस्तमारमघन्त महाबलमः ।
हनुमन्त महावेग यद्मन्त इव दृष्टिभिः ॥ ४ ॥

उस समय ठिठ आदि भूतलग्न अत्यन्त बेयशाभी महा-
बली बुद्धिमान् हनुमान्कीभी भूति भूति मण्डल कर रहे थे और
अपक नैवीसे उनकी ओर इत उच्च देख रहे थे, मानो
अग्नी दक्षिणोद्गाय ही उन्हें डो रहे हों ॥ ४ ॥

राघवे चापनिर्घृति कर्तुं च परम यशः ।
सम्भाष्य समुदायाः कर्मसिद्धिभिरुपताः ॥ ५ ॥

दियाक्यामोमुखाः सर्वे सर्वे युद्धाभिनन्दिनः ।
सर्वे रामप्रतीकार निश्चिन्तायां ममस्मिन् ॥ ६ ॥

श्रीरामनाथकीके कारकी सिद्धि करनेका उत्सव बड़ा पाकर
उन वानरपक्ष मन्त्रय उच्छ हो गया था । उक्त वाक्यकी सिद्धि

यथा तु रामस्य मतिरिच्छिद्य
तथा भवान् पश्यतु कार्यसिद्धिम् ॥ २० ॥

प्यच्छुकर । तुम बैठा देखते या लोपते हों न
सिखार हमकोयोंके मोक्ष ही है—हम इसे न कर लेंगे, ऐसी
बात नहीं है; तथापि इस विषयमें भगवान् श्रीरामका लेख
निम्न हो, उचीके अनुसर तुम्हें कर्मसिद्धिपर दृष्टि रखने
चाहिये ॥ २ ॥

हो करनेसे उनका उत्तर बड़ा हुआ था । वे सभी मन्त्र
श्रीरामको भिन्न उच्चर सुनानेके लिये उत्सुक थे । सभी
पुत्रका अभिमान करनेबाधे थे । श्रीरामस्वरकीके द्वारा
राघवका पराम्भ हो—ऐसा करने निश्चय कर लिया था
तथा वे सब-के-सब मनस्वी वीर थे ॥ ५-६ ॥

भ्रुवमनाः कामाप्सुरस्य ततस्ते ध्वनगौकसः ।
मन्त्रोपममासेत्सुर्वानं तुमशताधुतम् ॥ ७ ॥

आकाशमें ऊर्ध्वय मारते हुए वे वनवासी वानर ठेकमें
हूँदते मरे हुए एक सुन्दर वनमें जा पहुँचे जो नन्दनको
समान मनोहर था ॥ ७ ॥

यत् तन्मधुवनं नाम सुग्रीवस्याभिरक्षितम् ।
मधुस्य सर्वमूतानां सर्वमूतमनोहरम् ॥ ८ ॥

उत्तम नाम मधुवन था । सुग्रीवका वह मधुवन सर्वक
सुरक्षित था । तमस्त प्राणियोंमेंसे कोई भी उतको हानि नहीं
पहुँचा सकता था । उसे देखकर सभी प्राणियोंका मन डग
गला था ॥ ८ ॥

यद् रक्षति महावीरः सया वधिमुखाः कपिः ।
मातुल्य कपिमुखस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ॥ ९ ॥

कपिभेद महात्मा सुग्रीवके माया महावीरवधियुक्त नग
वानर तथा उक्त वनकी रक्षा करते थे ॥ ९ ॥

ते तद् वनमृषागम्य बभूवुः परमोत्कृष्टाः ।
वाजय वानरस्य मनःकान्त महायनम् ॥ १० ॥

वनरराज सुग्रीवके उक्त मनोरम महावनके फल पहुँच
कर वे सभी वानर वहाँका मधु पीने और फल खाने आदिके
लिये अत्यन्त उत्कृष्ट हो गये ॥ १० ॥

ततस्त धानप हृष्टा हृष्टा मधुपन महत् ।
कुमारमपयाचन्त मधूनि मधुपिङ्गवाः ॥ ११ ॥

तत्र ह्येते भरे हुए तथा मधुके उमान विष्णुः कर्णबाणे
उन कान्तेने उध महान् मधुवनको देखकर कुमार अङ्गदसे
मधुपान करनेकी आज्ञा माँगी ॥ ११ ॥

एतः कुमारस्तान् धृष्टाज्ञाम्यहरप्रमुखान् कपीन् ।
मनुष्यास्य वदो तेषा मिसर्गो मधुभक्षणे ॥ १२ ॥

उठ कस्य कुमार अङ्गदने बाम्पवान् भारि पङ्क-बूड़े
थनयेकी अनुमति लकर उन सबको मधु पीनेकी आज्ञा
दे दी ॥ १२ ॥

तं निष्प्रायः कुमारेण धीमता घालिसन्नुता ।
हरप समपद्यन्त हुमान् मधुकराकुमान् ॥ १३ ॥

हुदिमान् वाञ्छिपुत्र यज्ञकुमार अङ्गदकी आज्ञा पाकर
वे थनर माँगेक हृष्टत भर हुए वृद्धेवर नद गये ॥ १३ ॥

भक्षयन्त सुगन्धीनि मूलानि च फळानि च ।
अगुः प्रहर्षे त सर्वे यमूयुञ्ज मयोत्कटा ॥ १४ ॥

बोकि सुगन्धित फल-मूलेका मधुप खरते हुए उन
हरक बड़ी प्रवन्ता हुए । वे सभी मरते उन्मत्त हा
गये ॥ १४ ॥

ततश्चानुमता सर्वे सुसहृष्टा यनौकसः ।
मुदिताद्य ततस्त च प्रनुरपन्ति ततस्ततः ॥ १५ ॥

पुत्रपत्नी अनुमति मिल बानेसे सभी बानयेकी बड़ा
एँ हुआ । वे आनन्दमग्न होकर इधर उधर नाचने लगे ॥

गायन्ति क्वचित् प्रहसन्ति क्वचि
पूरयन्ति क्वचित् प्रणमन्ति क्वचित् ।

पतन्ति क्वचित् प्रचरन्ति क्वचित्
पूरयन्ति क्वचित् प्रखण्डन्ति क्वचित् ॥ १६ ॥

कहाँ गत कोई हँसत कोई नाचत, कोई नमस्कार
करत, कोई गिरत-पड़त, कोई चोर-चोरत चकत, कोई
रहकत-नूदत और कोई प्रणाम करत य ॥ १६ ॥

परस्परं क्वचिनुगाभवन्ति
परस्परं क्वचिद्विमुपन्ति ।

हुमान् हुम क्वचिन्मिद्रपन्ति
क्षितीनगाप्राग्निपतन्ति क्वचित् ॥ १७ ॥

कहाँ एक दूसरे का पाठ बाँटत मिलते कहीं आनन्दमें
निहार करत कहीं एक दूसरे दूसरे रोह करत और
कहीं एक-दूसरे लज्जित वृत्तपर कूद पड़त य ॥ १७ ॥

महानलान् क्वचिनुदाप्येया
महाद्रुमाप्राग्यभिसम्पत्ति ॥

य य ५ ८ ४—

गायन्तमन्यः प्रहसन्तुपीति
हसन्तमन्यः प्रहसन्तुपैति ॥ १८ ॥

कितने ही प्रचण्ड वेगवाक मानर वृष्ठीः रोहकर बड़े
पङ्क हृष्टोकी क्वचित्पैतक पर्वुच शत ये । कोई गता तो
हृष्टप उसके पास हँसता हुआ जाता था । कहीं हँसत हुए
के पास चोर चरत रोहा हुआ पर्वुचता था ॥ १८ ॥

मुदन्तमन्य प्रणमन्तुपैति
समाकुलतत् क्वचित्पेन्यमासीत् ।

न चात्र क्वचिन्म यमूय मत्तो
न चात्र क्वचिन्म यमूय हताः ॥ १९ ॥

कोई वृत्तेका पीड़ा देता तो दूसरा उलफ पात पङ्क चर
त गबना बट्वा हुआ आता था । इस प्रकार बह लगी थनर
सना मरनेमत्त हाकर उलफ अनुकप चला कर रही थी ।
थानयेक उठ लघुशयमें कोई भी एला नहीं था; जो मत्तवा
न हो गया हो और कोई भी एला नहीं था जो अपने भर न
गया हो ॥ १९ ॥

ततो यन तत् परिभक्ष्यमाण
हुमांश्च विष्पसितपत्रपुष्पान् ।

समीक्ष्य क्वेषाद् ध्विष्यफत्रनामा
नियारयामास कपिः कर्षोस्तान् ॥ २० ॥

तदनन्तर मधुवनक फल-मूक भारिका मधुप हता और
बहोके वृष्टोके पयो एवं दूधोको नष्ट किया जाता देख इति-
मुल नामक थनरको बड़ा क्रोध हुआ और उन्होंने उन
थनयेको बेला करनेध राज ॥ २० ॥

स तै प्रयुद्धैः परिभस्स्यमानो
यनस्य गोत्रा दृष्टिद्वयातः ।

क्वकार भूयो मत्तिमुपस्रज्या
यनस्य रक्षां प्रति यानरभ्यः ॥ २१ ॥

थनर अधिक मत्ता पङ्क गया था; उन बङ्क-बङ्क थनये-
ने थनये रक्षा करनेका उठ हुए थनर(भीरु) उठर कोई
थनमी युक्त थी; तथापि उम तंज्ज्जी इतिमुमने पुन' उन
थनयेके थनये रक्षा करनेका विचार किया ॥ २१ ॥

उवाच क्वचिद्वत् पश्यत्यधीन
मलकमन्याद्य तच्छेजपान ।

समस्य क्वचिद्वत् क्वचिद्वत् क्वकार
तथैव साम्नापज्जगाम क्वचिद्वत् ॥ २२ ॥

उन्होंने निभय हाकर शिष्टी-शिष्टीके बड़ी बातें सुनयीं।
कितनोंका वपदान माग । बहुतोंके साथ मिहकर लदवा
दिया और शिष्टी-शिष्टीके प्रति धार्मिकपूर्ण उपासक ही काम
किया ॥ २२ ॥

स तेमदादमनियप्येये
क्वचिद्वत् तत्र प्रतिष्ठापमाचैः ।

य य ५ ८ ४—

प्रथमये त्यक्तभये समस्य
प्रकृत्यते खाप्यतबेक्ष्य वीषम् ॥ २३ ॥

मरके करण क्लिष्टे वेगप्र संक्रान्त मलम्भ हो गया था, उन बानरोंको अब दक्षिणुक्त बळपूर्वक ठेकेकी चेष्टा करने लगे तब वे सब मिच्छकर उन्हें बळपूर्वक इधर उधर पलीटने लगे । बनरक्षकर अदकाम करनेसे राक्षस्य प्राप्त होग्य, इतकी अर इनकी दृष्टि नहीं गयी । अतएव वे सब निर्भय होकर उन्हें इधर उधर लींन्ते लगे ॥ २३ ॥

एतार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डे एकप्रथितमः सर्गः ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीवल्मीकीयनिर्मित आर्याभारतव्य अदिकाव्यके सुन्दरकाण्डके प्रथितसर्ग पूरा हुआ ॥ ११ ॥

द्विपष्टितम सर्ग

बानरोंद्वारा मधुवनके रक्षकों और दक्षिणुक्तका पराभव तथा सेवकोंसहित दक्षिणुक्तका सुग्रीवके पास जाना

तानुवाक हरिभेद्यो हनुमान् वानरर्षभ ।
मम्यप्रममसो घृय मधु सेयत वानर ॥ १ ॥
अहमावर्जयिष्यमि युष्याक परिपन्थिन ।

उठ राम बानरशिरोमणि कृपिभर हनुमान्ने अपने साथियों-
के कहा—‘वानरो ॥ तुम सब लोग बैसटके मधुका पान
करो । मैं तुम्हारे सिरोपिकोंके ठेकेगा’ ॥ १ ॥

भुत्वा हनुमतो याक्य हरीर्षा प्रवरोऽह्वयः ॥ २ ॥
प्रत्युवाक प्रसन्नारया पिबन्तु हरयो मधु ।
अवश्य फुलकरयस्य वाक्य हनुमतो मया ॥ ३ ॥
अकार्यमपि कर्तव्यं किमहं पुनरीहशम् ।

हनुमान्बनीकी बात सुनकर वानरप्रभर अह्वयने भी प्रसन्न
बिच होकर कहा—‘वानरारया अपनी इच्छाके अनुसार
मधुपान करो । हनुमान्की इस वचन का विश्व करने लगे
हैं अतः इनकी बात लीकर करनेके योग्य न हा तो भी
मुझ अवश्य माननी चाहिये । फिर ऐसी बातके क्लिने ली
कहना ही क्या है । ॥ २ ३ ॥

अह्वयस्य मुपाकपुस्त्या बधन वानरर्षभ ॥ ४ ॥
साधु साध्यति सहस्रा वानरा प्रत्यपूजयन् ।

अत्ररके मुखसे ऐसी बात सुनकर वसी भेद्य बानर हयते
विच उठ और साधु-साधु करते हुए उनकी प्रार्थना करने
लगे ॥ ४ ॥

पूजयित्वाङ्गरं सर्वे वानरा वानरपरमम् ॥ ५ ॥
अनुममधुयन यय नदीयेग इय हुमम् ।

वानरविषयमपि अत्ररके प्रथमा करके व वत बानर

मधोस्तुवन्तो वृशानैर्दशम
स्तलीभ्य पायैश्च समापयन्तः ।

मवात् कपि त कपय' समन्ता-
म्हावन सिद्धियय च चक्रुः ॥ २४ ॥

मरके प्रभयके वे बानर कपिभर दक्षिणुक्तको नलीने
ककेटने, दौड़ते कटने और मधुकों तथा कपोंसे भर-बार
कर मधुपान करने लगे । इस प्रकार उन्होंने उठ विशाल
बनको सब ओरसे फल आदिसे ह्यन कर दिया ॥ २४ ॥

वहाँ मधुवन था, उठ मार्गपर उलीटकर दौड़े गये, जैसे नदीके
कण्डके वेग तटवर्ती वृक्षकी ओर जाता है ॥ २४ ॥

त मधिपदा मधुवन पाठ्यावाक्रम्यशक्तितः ॥ १ ॥
अतिसर्गाच्च पठवो ह्युवा भुत्वा च मैथिलीम् ।
पपुः सर्वे मधु तया रसवात् फलमावधुः ॥ ७ ॥

मिथिल्याकुमापी वीठाका हनुमान्की लो रसकर माने
ये और अन्य बानरोंने उनकी मुखासे यह सुन किया ना कि
वे उह्रामे हैं अत उन वचन उत्तरह बना हुआ था ।
इधर पुनराव अह्वयका आदेश भी मिश्र गया था, इच्छिने
वे सामर्थ्यशाली वसी बानर बानरक्षकोंपर पूरी छलिते
आक्रमण करके मधुवनमें पुल गये और वहाँ इच्छानुकर
मधु पीने तथा रसीले फल खाने लगे ॥ १ ७ ॥

उत्सप्य च तता सर्वे वनपाञ्चन समागतान् ।
त ताडयन्तः शतशः सखा मधुवने तदा ॥ ८ ॥

ठेकेके क्लिभ अपने पाठ माने हुए रक्षकोंके वे सब
बानर ठेकेकी छम्भामें कुकर उल्लस-उल्लसकर माटते थे
और मधुवनके मधु पीने एवं फल खानेमें लगे हुए थे ॥ ८ ॥
मधुनि प्रोषमात्राणि वाहुभिः परिगृह्य त ।
पिपन्ति कपयः कश्चित् सद्रास्ताभ हृष्टयत् ॥ ९ ॥

कितने ही बानर छुंठ के-हृह एकत्र हो वहाँ अपनी
मुखाभागाय एक-एक ऋण मधुध भरे हुए छलकोंके फल
कट और सहाय पी जात थे ॥ ९ ॥

१ अतः आरक व चलेय करके मरक हाव करत है ।
वह प्रायोजकके प्रथमिण था ।

जन्ति च सहिताः सर्वे भङ्गयन्ति तथापरं ।
 केचित् पीत्वापविष्मन्ति मधुनि मधुपिङ्गवाः ॥ १० ॥
 मधुच्छिद्येन केचिच्च अन्तुरभ्योम्यमुत्कटाः ।
 मपरे वृक्षमूलेषु नास्वा गृह्यन्वस्यिताः ॥ ११ ॥
 मधुके समान विज्ञात वर्णवाक्ये वे सव बानर एक साय
 सोर मधुके छोको पीठे वृक्षे बानर उध मधुको पीठे
 और कितने ही पीकर बने हुए मधुको छेक देते थे । कितने
 ही मद्यमत् हो एक वृक्षको मोमसे मारते थे और कितने
 ही बानर वृक्षोंके नीचे बासियों पकड़कर लड़े हो गये
 थे ॥ १० ११ ॥
 अस्यपि च मरुस्थानाः पन्थाभ्यास्तीर्य शेरते ।
 उन्मत्तवेगाः प्रुषगा मधुमत्ताश्च हृष्टयत् ॥ १२ ॥
 कितने ही बानर मरके क्षरप अत्यन्त अस्मिन्न अनुभव
 कर रहे थे । उनका वेग उन्मत्त पुरुषोंके समान देखा जाता
 था । वे मधु पीपीकर म्हाबाके हो गये थे अतः बड़े
 हर्षके साथ पले विहाकर छो गये ॥ ११ ॥
 सिपस्यपि तथान्योम्य स्त्रञ्जन्ति च तथापरे ।
 केचित् श्वेदान् प्रकुर्वन्ति केचित् फूमन्ति हृष्टयत् ॥ १३ ॥
 कोई एक वृक्षपर मधु छेकते, कोई मद्दलडाकर गिरते,
 कोई मरकते और कोई हर्षके साथ पश्चिमोधी मोंठि करव
 करते थे ॥ १२ ॥
 हृष्ये मधुना मत्ताः केचित् सुप्ता महीतले ।
 पृषाः केचिच्चसस्यम्ये केचित् कुयन्ति चेततरत् ॥ १४ ॥
 मधुसे मतवाके हुए कितने ही बानर पृष्ठीपर छो गये
 थे । कुछ छीट बानर ईंठे और कुछ घेरन करते थे ॥ १४ ॥
 ह्यथा कश्चिद् धनन्त्यये केचिद् बुध्यन्ति चेततरत् ।
 येऽप्यत्र मधुपासाः स्युः प्रेष्या दधिमुखस्य तु ॥ १५ ॥
 वेऽपि तैयानरैर्भीमैः प्रतिविद्या विद्या गताः ।
 आनुभिश्च प्रयुयाच्च देवमार्गं च वर्जिताः ॥ १६ ॥
 कुछ बानर धृष्य काम करके वृक्ष गताये थे और
 कुछ उठ बाटका वृष्य ही अथ समकते थे । उठ बनमें
 से दधिमुखके लेक मधुकी गद्यमें निपुण थे वे भी उन
 मरकर बानरोद्यय रोके या पीठे अनेपर सभी रिशाभीमें
 भय गये । उनमेंमें कई रक्षकाओंके अग्रदरक इन्द्रजने
 कथिनर परककर गुटनोंसे लूब रगड़ा और कितनोंके पैर
 पकड़कर भाकायमें उठाक दिया था अथवा उन्हें पीठके
 एक निपकर भाकाय दिला दिया था ॥ १५ १६ ॥
 मधुपन परमोद्दिग्ता गत्या दधिमुख पथाः ।
 इन्मता दत्तवरेहत मधुवन बलात् ।
 स च आनुभिपृषा इयमार्गं च वर्जिताः ॥ १७ ॥

वे सब लेक अत्यन्त उद्दिग्ता हो दधिमुखके पास
 जाकर बोले—'प्रभो ! इतुमान्त्रीके बड़ाबा देनेसे उनके
 दसके सभी बानरोंने क्लपूर्वक मधुवनका विनय कर डाला,
 हमकोयोंके मिराकर गुटनोंसे रगड़ा और हमें पीठके एक
 परककर आकाशक दर्शन करा दिया' ॥ १० ॥
 तथा दधिमुख मुन्यो वनपस्तत्र बानराः ।
 इत् मधुवन भ्रुथा माम्बधयामासतान् हरिन् ॥ १८ ॥
 सब उठ बनके प्रधान रक्षक दधिमुख नामक बानर
 मधुवनके विष्मलक्ष समाचार सुन कर बहो कुपित हो उठे और
 उन बानरोंको सम्बन्ध देते हुए बोले— ॥ १८ ॥
 पलागच्छत गच्छामो धामरत्नसिद्धितान् ।
 वलेनाधारयिष्यामि प्रमुञ्जामान् मधुसमम् ॥ १९ ॥
 'आओ-आओ, जहाँ इन बानरोंके पाठ । इनका
 धर्मक बहुत बढ़ गया है । मधुवनके उलम मधुको छेकर
 खानेवाले इन सबको मैं बलपूर्वक रोऊँगा' ॥ १९ ॥
 भ्रुथा दधिमुखस्येव वचन वानरर्षभाः ।
 पुनर्वाच मधुवन तेनैव सहिता ययुः ॥ २० ॥
 दधिमुखका यह बचन सुन कर वे भीर कपिभेद पुनः
 उन्हींके साथ मधुवनको गये ॥ २० ॥
 मय्ये चैवा दधिमुखाः सुप्रगृह्य महातरुम् ।
 समभ्यधायन् वेगेन सर्वे ते च प्रुषगमाः ॥ २१ ॥
 इनके बीचमें लड़े हुए दधिमुखने एक विद्याक इष्ट
 हायमें छेकर बड़े वेगसे इतुमान्त्रीके हृष्यर पाशा क्रिया ।
 साथ ही वे सब बानर भी उन मधु पीनेवाक बानरोंपर
 दृष्ट पड़े ॥ २१ ॥
 ते शिलाः पावपात्रेव पायाणामपि धानराः ।
 गृहीत्याम्प्यागमन् मुञ्जा यथ ते कपिकुञ्जराः ॥ २२ ॥
 जोचते भरे हुए वे बानर शिला, वृक्ष और पयाण शिन्ने
 उठ स्थानपर आये, जहाँ वे इतुमान् आदि कपिभेद मधुका
 सेवन कर रहे थे ॥ २२ ॥
 यत्नाधिपारपस्तत्र भासतुर्हरयो हरिन् ।
 सद्योऽप्युदाः मुञ्जा भासयन्तो मुद्मुद्गुः ॥ २३ ॥
 अन्ने ओढोंके दंतोंसे दबाते और श्लेषपूर्वक बारबार
 पमघट हुए प सब बानर उन बानरोंको बधूरक रोझनेके
 शिन्ने उनके पास आ पहुँच ॥ २३ ॥
 धय इया दधिमुख मुन्य वानरपुङ्गवाः ।
 अभ्यधायन्त वेगेन इतुमममुखास्तदा ॥ २४ ॥
 दधिमुख कुपित हुआ देख इतुमान् आदि सभी
 भेद बानर उठ अभय बड़ वेगसे उनको आर रोड़े ॥ २४ ॥
 सगृह्य त महापादुमापतन्त महाबलम् ।

वेगव्यस्तं विद्वदाह वाहुम्पा कुपितोऽहम् ॥ २५ ॥

इह केकर भाते हुए वेगघाभी महाबन्धी महाबाहु
वधियुक्तको कुपित हुए अङ्गवने दोनों हाथोंसे पकड़
लिया ॥ २५ ॥

महाश्वो न कृपा चक्र कार्यकोऽय ममेति सः ।

अथैन निरिपयेपाशु वेगेन वसुधातले ॥ २६ ॥

वे मधु पीकर महान्ध हो रहे थे अतः वे मेरे नाना
हैं ऐसा समझकर उन्होंने उनपर दया नहीं दिखायी । वे
दुर्लभ बड़े वेगसे पृथ्वीपर पड़कर उन्हें रागने लगे ॥ २६ ॥

स भन्तबाहुवमुक्तो विद्वजः शोपितोऽक्षितः ।

ममुमोह महावीरो मुहूर्तं कपिकुञ्जरा ॥ २७ ॥

उनकी मुखाँठें बौधैं और मुँह उन्हीं दूध-फूट गये ।
वे झूठे नहा गये और ब्याकुल हो उठे । वे महावीर
कपिकुञ्जर वधियुक्त वहाँ से पड़ीवक मूर्च्छित पड़े रहे ॥ २७ ॥

स कथंभित् वियुक्तस्तेषामैर्वात्तर्पभः ।

उवाचैकस्मत्मागत्य स्वाम्भुत्स्यान् ससुपागतान् ॥ २८ ॥

उन बानरोंके हाथसे किसी तरह छुटकारा मिलनेपर
बानरभेड़ वधियुक्त पञ्चतममें आये और वहाँ एकत्र हुए
अपने सेवकोंके दोहे— ॥ २८ ॥

एतागच्छत गच्छाम्ये भर्ता भो यत्र वानरः ।

सुग्रीवो वियुक्तग्रीवः सहा रामेण तिष्ठति ॥ २९ ॥

‘मायो-मायो अब वहाँ चले वहाँ हमरे स्वामी
मोटी गर्दनवाले सुग्रीव श्रीरामस्वरूपीके साथ विराजमान
हैं ॥ २९ ॥

सर्वे सैवाह्वये दोषं भावयिष्याम पार्थिवे ।

अमर्षा वचनं भुक्त्वा घातयिष्यति वानरान् ॥ ३० ॥

‘प्राणके पाठ पढ़कर तारा दोष अङ्गवके माये मड़
देंगे । सुग्रीव बड़े क्रोधमें हैं । मेरी बात सुनकर वे इन उन्हीं
बानरोंको मरवा दायेंगे ॥ ३० ॥

इष्ट मधुवन छेदत् सुग्रीवस्य महात्मनः ।

पितृपैतामह विष्य धीरपि वुरासदम् ॥ ३१ ॥

महतमा सुग्रीवको यह मधुवन बहुत ही प्रिय है ।

यह उनके बाप-हाथोंका प्रिय वन है । इसमें प्रवेश कर
देवताओंके जिंये भी कठिन है ॥ ३१ ॥

स वानराभिमान् सर्वान् मधुलुम्भान् मतामुपा ।

घातयिष्यति वृद्धेन सुप्रियः ससुहृज्जनान् ॥ ३२ ॥

‘मधुके छोटी इन उन्हीं बानरोंकी आसु लगाव के
पत्नी है । सुग्रीव इन्हें कठोर दण्ड देकर इनके सुहृदोंकी
इन सबको मरवा दायेंगे ॥ ३२ ॥

वध्या ह्येते वुरारमानो घृपाबापरिपथिनः ।

अमर्षप्रभवो राया सफळो मे भविष्यति ॥ ३३ ॥

‘प्राणकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेवाले वे दुष्ट
राज्योंकी वानर वधके ही योग्य हैं । इनका पक्ष होनेका
ही मेरा अमर्षबन्धित रोष सफल होगा ॥ ३३ ॥

पथमुक्त्वा वधियुक्तो वनपाजान् महाबलः ।

जगाम सहस्रोत्पथ्य धमपात्रैः समन्वितः ॥ ३४ ॥

उनके रक्षकोंके ऐसा करकर उन्हें साथ के महाबल
वधियुक्त वहा उल्लङ्घन आकाशमार्गसे चले ॥ ३४ ॥

त्रिनेपात्तरम्यत्रेय स हि प्रातो वनाक्षरा ।

सहस्रांशुसुतो धीमान् सुग्रीवो यत्र वानरा ॥ ३५ ॥

और पकड़ मारते-मारते वे उध खानपर ष्य पुँसे
वहाँ बुद्धिमान् पूर्वयुग बानरराज सुग्रीव विराजमान थे ॥ ३५ ॥

राम ष्य उक्षमण शैय बहू सुग्रीवमेव च ।

समप्रतिष्ठां जगतीमाकाशाश्रियपात ह ॥ ३६ ॥

श्रीराम, अस्मय और सुग्रीवको दूरसे ही देखकर
‘माकाशके अस्तित्व रूपिर हृद पत्र ॥ ३६ ॥

न निपत्य महावीरः सर्वैस्तैः परिवारितः ।

हरिर्वधियुतः पात्रैः पाक्षानां परमेश्वरः ॥ ३७ ॥

स वीनबद्धो भूया कृत्वा शिरसि चाक्षस्त्रिम् ।

सुग्रीवस्याशु ती मूर्धां वरपी प्रत्यपीडयत् ॥ ३८ ॥

वनरक्षकोंके स्वामी महावीर बानर वधियुक्त पृथ्वी
उपरकर उन रक्षकोंके धिरे हुए उदास मुख दिने सुग्रीवने
पाठ गये और शिरपर अक्षस्त्रि बोधे उनके वरपोंमें मरवा
दण्डकर उन्होंने भयान किया ॥ ३७-३८ ॥

हरार्ये श्रीमज्जमयणे बाबनीकीये अदिक्काम्हे सुन्दरकाण्डे शिपठितमः सर्गः ॥ ६९ ॥

एत इका ओरत्तनीकिन्दिमित्थं वारंरामावण अदिक्काम्हे सुन्दरकाण्डे वासठ्ठो सर्गं वुरा हुम्ब ॥ ६९ ॥



त्रिपश्चित्तमः सर्गः

दधिमुखसे मधुवनके विष्वसक्य समाचार सुनकर सुग्रीवका हनुमान् आदि बानरोंकी सफलताके विषयमें अनुमान

तो मूर्खा निपश्चित्त यानर यानरपभः।
 भ्रूँबोद्धिगनहृदयो धान्यमेतदुवाच ह ॥ १ ॥
 यानर दधिमुखसे माया देक प्रणाम करते देख बानर
 जेठेमलि सुग्रीवका हृदय उद्दिम्न हो उठा। वे उनसे इस
 प्रश्न बोले—॥ १ ॥
 रविष्टोच्छिद्य कस्मात् स्व पादयोः पतितो मम।
 धमय ते प्रदास्यामि सरयमेवाभिधीयताम् ॥ २ ॥
 'बड़ा-ठठा। तुम मरे देतेपर कैसे पड़ हो। मैं तुम्हें
 मन्त्रदान दता हूँ। तुम लकी बात बताओ ॥ २ ॥
 कि सम्प्रमासित कस्मिन् ग्रही यत् चकुमहसि।
 दधि मधुयमे स्पस्ति भ्रौतुमिच्छामि धामर ॥ ३ ॥
 'महो, किसके मयसे परों आप हो। जो पूर्वतः हितकर
 गत हो। उठे बताओ क्योंकि तुम सब कुछ करनेक
 योग्य हो। मधुवनमें कुछछ छे दे न। यानर। मैं तुम्हारे
 सुनते वह सब सुनना चाहता हूँ' ॥ ३ ॥
 स समाभ्वासितस्तान सुग्रीवण महारमणा।
 सरयाव स महाप्राज्ञो धाक्य दधिमुखोऽग्रधीव ॥ ४ ॥
 महामा मुषेवक इस प्रश्नर आश्चर्य सेनर महा-
 बुद्धिमान् दधिमुख लड़े होकर बोले—॥ ४ ॥
 नैपस्यरजसा राजन् म स्वया न च वाञ्छिता।
 वन निस्सुखपूर्व त नाशित लक्षु यानरैः ॥ ५ ॥
 'भावन! आपके पिता शुद्धरजसे, वाञ्छित और
 माने भी परक कभी बिन बनके मनमाने उपभोगके
 बिन विशेषसे भाग नहीं ही थी। उन्नीच हनुमान् आदि
 बनजोंने आज नाश कर लिया ॥ ५ ॥
 म्यपारथमई सयान् सहभियनचारिभिः।
 पश्चित्तयिरवा मां हृष्टा भक्षयन्ति विबन्धि च ॥ ६ ॥
 मैंने इन बनधक बनजोंके साथ उन लक्षक रोहनेकी
 बहुत पेशा की परंतु वे मुझे कुछ भी न समझकर बड़े
 हँसके साथ फल खात और मधु करते हैं ॥ ६ ॥
 पभिः प्रथम्यया उ यारित जनपातकैः।
 म्यामप्यकिम्यन द्य भयपन्ति यतीकसा ॥ ७ ॥
 हे! इन हनुमान् आदि बानरोंने सब मधुवनमें लूट
 मकना करके बिना तब हमारे इन बनधकोंके उन
 लक्षक रोहनेकी बात की परंतु वे बानर इनकी और

मुझे भी कुछ नहीं गिनते हुए परोंके लक्ष मादिका मछन
 कर रहे हैं ॥ ७ ॥
 शिष्टमत्रापिष्यन्ति भक्षयन्ति तयापरे।
 निवार्यमाणास्ते सर्वे भ्रुकुटिं द्वांयन्ति हि ॥ ८ ॥
 'सुखे, बानर परों खात-पीत ता हैं ही। उनके लक्षने
 का कुछ बच जाता है, उसे उठाकर चेंक देते हैं और सब
 हमजोग पकते हैं, तब वे उन हमें देही भीई दिखाते हैं ॥ ८ ॥
 इम हि सरम्भतरास्तथा तैः सम्प्रधर्षिता।
 निवार्यन्त वनात् तस्मात् कुन्नेयानरपुङ्गवैः ॥ ९ ॥
 'जब वे लक्षक उनर अधिक कुपित हुए, तब उन्होंने
 इनपर आक्रमण कर दिया। इतना ही नहीं, क्रोधसे भरे
 हुए उन बानरपुङ्गवोंने इन लक्षकोंके लक्ष बनते बाहर
 निकाल दिया ॥ ९ ॥
 ततस्तेषुभिर्पीरैयानरैर्यानरपभाः।
 सरकतयमैः श्लोधायरयः सम्प्रधर्षिता ॥ १० ॥
 'बाहर निकालकर उन बहुलक्षक कीर बानरोंने श्लोषसे
 लक्षकोंके करके बनकी रक्षा करनेका इत भेद बानरोंके
 कर बताया ॥ १० ॥
 पापिभिनिहताः कश्चित् केचिन्नानुभिपहताः।
 प्रकृष्टाद्व च तदा काम देवमार्गं च दर्शिता ॥ ११ ॥
 'किन्हींके बन्धकोंसे मारा, किन्हींके पुच्छोंसे मारा
 दिया, बहुलक्षके इच्छानुसार पक्षीय और किन्हींकी पीठके
 बक परककर आलम्बन दिखा दिया ॥ ११ ॥
 पयमत् हताः शूरास्तपि तिष्ठति भतरि।
 कस्मिन् मधुयन शेष प्रकाम तैद्व भक्षयत ॥ १२ ॥
 प्रमो! आन-वेध स्त्रीकी रहते हुए वे एतकीर
 बनधक उनके हाथ इस तरह मारे-पीठे मय हैं और वे
 भयपणी बानर भन्ती इच्छाके अनुसार करे मधुवनका
 उपभोग कर रहे हैं ॥ १२ ॥
 एव विद्याप्यमान त सुग्रीव यानरपभम्।
 मधुच्छ्रुत् महाप्राज्ञा लक्षमया परपीरहा ॥ १३ ॥
 यन्तपिष्यन्ति सुग्रीवश्च तव इत प्रकर मधुवनके
 लड़े बानरका हृद्यन्त बताया था रहा था उत लक्षक
 पनुचोंकीक लक्षक करनेका परम बुद्धिमान् लक्षमनने
 कन्ने पठा—॥ १३ ॥
 किमयं यानर राजन् पनय प्रभुपुष्पिनः।

किं कार्यमभिनिर्वृत्स्य दुःखितो याप्यमग्रयीत् ॥ १४ ॥

पुत्रम् । बनकी रक्षा करनेवाला यह वानर यहाँ किस
झिमे उपस्थित हुआ है । और किस विषयकी ओर संकेत
करके इतने दुःखी होकर बात की है ? ॥ १४ ॥

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो लक्ष्मणेन महात्मना ।
लक्ष्मण प्रत्युवाचेद् याप्यं वाक्यविशारदः ॥ १५ ॥

महात्मा लक्ष्मणके इस प्रकार पूछनेपर उत्तरकथित करनेमें
कुसुम सुग्रीवके ऊर्ध्वे यौ उत्तर दिवा— ॥ १५ ॥

कार्यं लक्ष्मण सम्प्राह् वीरो वधिमुखः कपिः ।
मङ्गवप्रमुखैर्वीरेभस्तिर्तं मधु वानरैः ॥ १६ ॥

‘आर्य लक्ष्मण । वीर वानर वधिमुखने मुझसे यह कहा
है कि ‘मङ्गव मादि वीर वानरोंने मधुवनका छाप मधु
बाजी किया है ॥ १६ ॥

वैषामकृतकार्योपामीहाराः स्याद् व्यतिक्रमः ।
बान यदभिप्रेक्षास्ते साधितं कम् तद् मधुपम् ॥ १७ ॥

‘इसकी बात सुनकर मुझे यह अनुमान होता है कि वे
किस कार्यके झिमे गये थे, उसे अवश्य ही उन्होंने पूरा
कर लिया है । तभी उन्होंने मधुवनपर व्याक्रमण किया है ।
यदि वे अपना कार्य सिद्ध करके न आये होते तो उनके
हारा ऐसा मर्यादा नहीं बना होता—वे मेरे मधुवनको
घटनेका साधन नहीं कर सकते थे ॥ १७ ॥

चारफलो मूढा प्राप्ता पाळा जानुभिराहताः ।
तथा न गणितइहाय कपिर्धुमुखो बली ॥ १८ ॥
पतिमम वमस्यायमस्त्राभिः स्थापिताः स्वयम् ।
इहा वेषी न संवेहो न चात्येन हनूमता ॥ १९ ॥

‘एक एकके ऊर्ध्वे चारचार लेजनेके झिमे आये तब
उन्होंने इन लकड़के पटककर बुदबुदसे रगड़ा है तथा इन
बखान् वानर वधिमुखको भी कुछ नहीं समझा है । ये ही
मेरे उस बानके मासिक या प्रथम रक्षक हैं । मैंने स्वयं ही
इन्हें इस कार्यमें नियुक्त किया है (किन्तु भी उन्होंने इनकी
बात नहीं मानी है) । इच्छे बान पड़ा है, उन्होंने देवी
सीताका दर्शन अवश्य कर लिया । इधमें कोई संदेह नहीं
है । यह काम और किसीका नहीं हनुमानकीका ही है
(उन्होंने ही सीताका दर्शन किया है) ॥ १८ १९ ॥

न ह्यस्यः साधने हेतुः कर्मणोऽस्य हनूमतः ।
कार्योत्थित्वैतुमति मतिश्च हरिपुङ्गव ॥ २० ॥
एषवसायश्च शीर्यं च भुत कापि प्रतिष्ठितम् ।

इस कार्यके सिद्ध करनेमें हनुमानकीके सिवा और
कोई कारण बना ही देखा सम्भव नहीं है । बानक्षिरोमणि
हनुमानमें ही कार्यसिद्धिकी शक्ति और बुद्धि है । उन्होंने
उपयोग पराक्रम और धारमज्ञान भी प्रतिष्ठित है ॥ २० ॥

आम्ययान् यत्र नेता स्याद्भङ्गदृश्य महाबलाः ॥ २१ ॥
हनूमांश्चाप्यभिघाता न तत्र मतिरन्यथा ।

जिस रथके नेता सम्भवान् और महाबली मङ्गव हैं
तथा अभिघाता हनुमान हैं, उस रथको विपरीत परिणाम—
मलकण्ठ्य सिद्धे, यह सम्भव नहीं है ॥ २१ ॥

मङ्गवप्रमुखैर्वीरेहंत मधुवन किञ्च ॥ २२ ॥
विचित्य इक्षिपामाशामागसी हरिपुङ्गवैः ।

आगतैश्चाप्रभुष्य तत्रत मधुवन हि तैः ॥ २३ ॥
परिंठ च वर्तं हस्तमुपयुक्तं तु वानरैः ।

पातितं वनपाळास्ते तदा जानुभिराहताः ॥ २४ ॥
एतत्पर्यम्यं प्राप्ते यक्तुं मधुरवागिह ।

नास्त्रा वधिमुखो नाम हरिः प्रख्यातविक्रमः ॥ २५ ॥

‘वधिमुख सिद्धाते सीताकीका पला कण्ठकर छोटे हुए
मङ्गव आदि वीर वानरपुङ्गवोंने उस मधुवनपर प्रहार
किया है, जिसे पदबलि करना किसीके झिमे भी सम्भव
ना । उन्होंने मधुवनको नष्ट किया, उठाड़ा और लकड़के
सिक्कर समूचे बानका मनमाने ढंगसे उपभोग किया
इतना ही नहीं उन्होंने बानके रक्षकोंको भी वे मारा और उन्हें
अपने पुटनोंसे मार-मारकर धायक किया । इसी कारण
बतानेके झिमे वे किन्मत पराक्रमी वानर वधिमुख, जो सब
मधुरवासी हैं यहाँ आये हैं ॥ २२-२५ ॥

इया सीता महाबाहो सीमिन्ने पश्य तत्पता ।
अभिगम्य यथा स्वैः विबन्धितं मधु वानराः ॥ २६ ॥

‘महाबाहु सुमित्रानन्दन । इस बातको अपन झीन
कमलें कि जब सीताका पला कण्ठ गया तब कौनके ने लकड़
वानर उत कममें बाकर मधु पी रहे हैं ॥ २६ ॥

न चाप्यश्नुष्यैवेही विभुताः पुरुबर्षभ ।
तत्र वृत्तघर दिव्य धर्मैर्युधैर्नौकसा ॥ २७ ॥

‘पुरुषप्रवर । विरोहनमिन्नीका दर्शन किये बिना उ
दिग्ग बानका, जो देवताओंसे मेरे पूर्वजको करवाना
रूपमें प्राप्त हुआ है वे किन्मत पर वानर करी सिक्कर ना
कर सकते थे ॥ २७ ॥

ततः प्रहृष्टो धर्मात्मा लक्ष्मणाः सहराधवः ।
भुत्वा कर्णसुकां वार्णीं सुग्रीवकववाक्यमुत्तमा ॥ २८ ॥

प्राहभ्यत मूढा रामो लक्ष्मणश्च महायथाः ।
सुग्रीवके सुष्ठवे निकली हुई अनंतको सुख देनेलक
वह बात सुनकर बनारसा लक्ष्मण श्रीरामपरकीके लक
बहुत प्रसन्न हुए । श्रीरामके हर्षकी सीमा न रही और
महात्म्यवली लक्ष्मण भी हर्षसे किञ्च बडे ॥ २८ ॥

भुत्वा वधिमुखस्यैव सुग्रीवस्तु प्रहृष्य च ॥ २९ ॥
वनपाळं पुनर्वाक्यं सुग्रीवः प्रत्यभाषत ।

भुत्वा वधिमुखस्यैव सुग्रीवस्तु प्रहृष्य च ॥ २९ ॥
वनपाळं पुनर्वाक्यं सुग्रीवः प्रत्यभाषत ।

दधिमुक्ताब्जे उपसुक्तं वात सुनकर सुग्रीवको बद्धा इव
 हुमा । उन्नेने अपने बनरक्षकको छिद्र इव प्रकार
 उतर दिव्य— ॥ २१३ ॥

प्रीतोऽस्मि सोऽहं पशुकं वन तैः कृतकर्मभिः ॥ ३० ॥
 अर्पितं मर्षणीयं च वेष्टितं कृतकर्मणाम् ।
 पश्य शीघ्रं मधुवनं सरस्वत्स्य त्वमेव हि ।
 शीघ्रं प्रेषय सार्धोऽस्वान् वनमत्यनुस्वान् कपीव ॥ ३१ ॥

पश्या । अपना क्रय सिद्ध करके छोटे हुए उन
 धर्मों को मेरे मधुवनका उपभोग किया है; उल्लेख में
 मधु प्रलम्ब हुआ है अतः हमने भी हृत्कल्प्य होकर आये
 हुए उन कर्मियोंकी दिवारें तथा उरुहटापूर्ण वेष्टाओंको
 बना कर देना चाहिये । अब शीघ्र आओ और हमसे उच
 मनुवनकी रक्षा करो । ध्यय ही अनुमान् आदि सब बानरोंको
 बन्दी नहीं मेरो ॥ ३ ३१ ॥

इच्छामि शीघ्रं हनुमत्प्रयागा
 वशात्सामुगास्तान् मृगाराजवर्षान् ।

इच्छामे श्रीमद्रामायणे वाक्यीकीये भाषिकाम्ये सुन्दरकाण्डे त्रिपलितमः सर्गः ॥ १३ ॥

इत प्रकर श्रीमत्सूक्तिनिर्मितं भाष्यमनन्यत्र भाषिकाम्ये सुन्दरकाण्डे त्रिसुवर्णो सर्वं पूरा हुमा ॥ १३ ॥

चतु पष्टितम सर्ग

दधिमुल्लसे सुग्रीवका संदेश सुनकर अङ्गद-हनुमान् आदि बानरोंका किष्किन्धामे पहुँचना और
 हनुमान्जीका भीरामको प्रणाम करके सीता देवीके दर्शनका समाचार घताना

सुग्रीवैवैवमुक्तस्तु हृष्टो दधिमुखः कथितः ।
 राघव उक्त्वन्मन्त्रं शीघ्रं सुग्रीव आत्म्ययाद्वयत् ॥ १ ॥
 सुग्रीवके देता कहनेपर प्रसन्नचित्त बानर दधिमुखने
 भीरम अस्मन् और सुग्रीवको प्रणाम किया ॥ १ ॥
 स प्रपश्य च सुग्रीवं राघवो च महाबाह्वी ।
 कनरैः सहितः शूरैर्विभ्रमेधोत्पपात ह ॥ २ ॥
 सुग्रीव तथा उन महाबाही खुशखी कशुओंको प्रणाम
 करके वे शूरों बानरोंके साथ आश्रयमार्गसे उड़ पडे ॥ २ ॥
 स पश्ययागता पूर्वं तथैव स्थरित गताः ।
 निस्त्य गगनाद् भूमौ तद् वन प्रविशेय ह ॥ ३ ॥
 जैसे पहले आये थे उतनी ही शीघ्रतासे वे वहाँ आ
 पहुँचे और आश्रयसे पृथ्वीपर उतरकर उन्नेने उच
 मनुवनमें प्रवेश किया ॥ ३ ॥
 स प्रविशेय मधुवनं वृद्धा हरिपूषयान् ।
 विमशानुजतान् सपाञ्च मेहमानान् मधुवकम् ॥ ४ ॥
 मधुवनमें प्रवेश होकर उन्नेने देखा कि उमरठ बानर

मधुं कृतार्थाम् सह राक्षसाभ्या
 भोतु च सीताभिगमं प्रयच्छाम् ॥ ३२ ॥
 मैं सिद्धके उमान रूपसे मेरे हुए उन हनुमान् आदि
 बानरोंसे श्रीम सिध्ना चारुता है और इन दोनों खुशखी
 कशुओंके साथ मैं उन कृतार्थ होकर छोटे हुए बनीरोंसे यह
 पूछना तथा सुनना चाहता है कि सीताकी प्रातिके किये
 क्या प्रयत्न किया जाय ॥ ३२ ॥

प्रीतिस्त्रीतामौ सम्प्रहृष्टौ कुमारौ
 हृष्टौ सिद्धार्थो धामराजा च राजा ।
 बह्वैः प्रहृष्टैः क्षयसिद्धिं विदित्वा
 वाह्योराचन्मामतिमात्रं नमन् ॥ ३३ ॥

वे दोनों राजकुमार भीरम और अस्मन् पूर्वोक्त
 उमरारते अपनेको उपक्रमनोरय मानकर हृष्टसे पुष्कित
 हो गये थे । उनकी अल्ले प्रसन्नतासे सिद्ध उठी थी । उन्ने
 इव उरु प्रसन्न देख तथा अपने हर्षोत्कृष्ट महर्षे कर्म
 सिद्धिके हाथोंमें आयी हुए बान बानरराज सुग्रीव अस्मन्
 अस्मन्में निमग्न हो गये ॥ ३३ ॥

इच्छामे श्रीमद्रामायणे वाक्यीकीये भाषिकाम्ये सुन्दरकाण्डे त्रिपलितमः सर्गः ॥ १३ ॥

इत प्रकर श्रीमत्सूक्तिनिर्मितं भाष्यमनन्यत्र भाषिकाम्ये सुन्दरकाण्डे त्रिसुवर्णो सर्वं पूरा हुमा ॥ १३ ॥

पूषपति को पहले उरुहठ हो रहे थे अब महरहित हो गये
 हैं—इनका नशा उतर गया है और वे मधुमिभित अस्मन्
 मेहन (मूषेन्द्रियद्वारा स्वाग) कर रहे हैं ॥ ४ ॥
 स तानुपागमद् धीरो पशुप्या करपुडाक्षिम् ।
 तयाच यत्नमं नृदण्यमिषं हृष्टपद्भुदम् ॥ ५ ॥
 और दधिमुक्ता उनका पास गये और हमने हाथोंकी
 अक्षि बौध अक्षरसे हृष्टपुष्क मधुर बाणीमें हृष्ट प्रकार
 बोले— ॥ ५ ॥
 सौम्य रोपो न कर्षण्यो यवेभिः परिपारणम् ।
 महातात्क्ष्यक्षिभिः शोभाद् भयन्ता प्रतिपेधिताः ॥ ६ ॥
 श्लेष्म । इन रूखोंने जो अस्मन्वच आपको रोका था,
 श्लेष्मपूर्वक आपकोराको मधु पीनेसे मना किया था, इतके
 किये आप अपने मनमें श्लेष्म न करो ॥ ६ ॥
 भक्तो वृषावतुप्रसतो भक्षयस्य एकं मधु ।
 पुयपञ्जस्तयमीराध पनस्यास्य महापथ ॥ ७ ॥
 आपका वृषे वृषे-मौद आय है, अतः एक चारवे

ओर मनु पीडितम् । यह एव आपकी ही धर्म्यति है । महावकी
 ओर । आप हमारे सुवचन और इस वनके स्वामी हैं ॥ ७ ॥
 मीक्यात् पूर्व हतो रोपस्तद् भवान् स्तुतुमर्हति ।
 यद्यैव हि पिता तेषामूत् पूर्व हरिपणोम्भवत् ॥ ८ ॥
 तथा त्वमपि सुमीवा मास्यस्तु हरिसत्तम ।

कविभेद । मैंने पहले मूलतानय को रोप प्रकट किया
 था, उसे आप धन्य करें क्योंकि पूर्वकालमें जैसे आपके
 पिता वानरोंके राजा थे, उसी प्रकार आप और सुमीव भी
 हैं । आपज्योके पिता हुए थे और हमारा स्वामी नहीं है । ८ ॥
 आख्यात हि मया गत्या दिव्यस्य तथातय ॥ ९ ॥
 इहोपयान सर्वयामेतथा वनचारिणाम् ।
 भवद्भागमन भुत्वा सहभियानचारिभिः ॥ १० ॥
 महद्यो न तु श्योऽसौ वन भुत्वा प्रधर्षितम् ।

निष्पाप सुवचन । मैंने यहाँसे जाकर आपके पान्चा
 सुमीवसे इन सब वानरोंके वहाँ पचानेका सब कहा था ।
 इन वानरोंके साथ आपका आगमन सुनकर वे बहुत प्रसन्न
 हुए । इस वनके विषयका समाचार सुनकर भी उन्हें रोप
 नहीं हुआ ॥ ९ १ ३ ॥

महद्यो मा दिव्यस्ये सुमीवो वानोम्भरः ॥ ११ ॥
 धीम प्रपय सर्वास्तानिति होवाच पाथिवः ।
 आपके जाया वानराज सुमीवने बड़े हर्षके साथ मुझसे
 कहा है कि उन सबका धीम वहाँ मेरे ॥ ११ ३ ॥

भुत्वा दधिमुलस्यैतद् यथन नृक्ष्यमङ्गवः ॥ १२ ॥
 मद्रवीत्तान् हरिभ्रष्टा पाप्मय पाप्मयिदात्नः ।

दधिमुलकी यह बात सुनकर वातन्वीर करनेमें कुछक
 कविभेद अत्रदने उन सबके मयूर बालीमें कहा— ॥ १२ ३ ॥

दण्डं धुनोऽय गृह्णाता रामेण हरियूथपा ॥ १३ ॥
 भयं च इवादावपाति तन जानामि हतुना ।
 तत् शर्म नह नः स्यतु ह्यने क्वर्ये परतपा ॥ १४ ॥

गन्तव्यपथिवो । अब पहला है भगवान् भीष्मने हम
 कल्लेक छोलेका समाचार सुन लिया क्योंकि य बहुत
 प्रसन्न होकर वहाँकी बात सुना रहा है । इससे मुझ एका बात
 होगी है । अतः उपभोग्ये संशय वनजात को । धर्म पूरा
 हो अब र अब हमको वहाँ वहाँ नहीं करेगा
 चरित ॥ १३ १४ ॥
 पत्न्या मधु यथाद्यम रिश्रान्ता वनचारिणः ।
 किं शय गमन तत्र सुमीवा यय वानरः ॥ १५ ॥

मावकी वनर । जा कर मधु को बुके । अब वहाँ
 येना करने का है । १५ ३ ४ वहाँ वनका चरित वहाँ
 वनराज कहते हैं ॥ १५ ॥

सर्वे यथा मां वक्ष्यन्ति सनेस्य हरिपुङ्गवाः ।
 तथास्मि कर्ता कर्तव्ये भयङ्गिः परयातहम् ॥ १६ ॥
 ध्यानपुङ्गवो । आप सब लोग निश्चय मुझसे
 कहेंगे, मैं वहाँ ही रहूँगा; क्योंकि कर्तव्यके निष्पत्ते में मैं
 ज्योके मर्षी हूँ ॥ १६ ॥

नावापयितुमीशोऽह युवराजोऽस्मि यद्यपि ।
 मयुक्तं कृतकर्माणो वृष्य धर्मयितुं बलवत् ॥ १७ ॥
 यद्यपि मैं युवराज हूँ तो भी आपज्योके दुस्व मैं
 पक्ष सक्षय । आपज्यो बहुत बड़ा धर्म पूरा करके गये
 हैं, अतः बलपूर्वक आपपर शासन करना कर्म ही नहीं
 नहीं है ॥ १७ ॥

तुयतआङ्गवस्वीव भुत्वा वचनमुत्तमम् ।
 महद्यमनसो धाप्यमिदमव्युत्पत्तौ कृतः ॥ १८ ॥
 उक्त समय इस तरह बोझें हुए मद्रवका उक्त वचन
 सुनकर सब वानरोंका चित्त प्रसन्न हो गया और वे सब
 मकर बोझें— ॥ १८ ॥

एव वक्ष्यति को राजन् प्रभुः सन् पातरपथ ।
 पञ्चर्यमयमसो हि सर्वोऽहमिति मय्यते ॥ १९ ॥
 पावन । कविभेद । स्वामी होकर भी अपने मर्षी
 करनेको ज्योके मैंने इस तरहकी बात करेगा । प्रम-
 एकाके मद्रसे उम्भर हो मद्रकरपथ करनेको ही सर्वो
 मानने काते हैं ॥ १९ ॥

एव च सुसह्य पाप्मय नाम्यस्य कल्पयित् ।
 सन्नतिर्हि तथावपाति भयिष्यन्नुभयोम्भ्यात् ॥ २० ॥

आपकी यह बात आपके ही बोझ है । दूसरे भिन्नेके
 मद्रके साथ ऐसी बात नहीं निकलती । यह नाम प्र
 भाकी उपभोग्यका परिषय करती है ॥ २० ॥

सर्वे ययमपि प्राप्ताक्षय गन्तु कृतक्षयता ।
 स यय हरिपीपया सुमीवा पतिरप्ययः ॥ २१ ॥

एव सब काम भी वहाँ वानरोंके अभिनायी पक्षी मुझसे
 विपन्नमान हैं वहाँ चम्पके लिये उल्लसित हो वहाँ आते
 वमीप आये हैं ॥ २१ ॥

स्यया शतुकोहविभिर्नैव शप्य पदात् पवम् ।
 क्विष्व गन्तु हरिधत्त म्माः सत्यमिदं तु त ॥ २२ ॥

वानरभद्र । अबकी आधा प्रसन्न हुए पिता हम कर्म
 गन करी एक पग भी नहीं या करने यह आने लगे
 करते हैं ॥ २२ ॥

एव तु परता तयामहम् प्रायभाषत ।
 शयु गप्ययम हरियुक्तया वामुत्तुमहावता ॥ २३ ॥
 व वानराज सब एका वहाँ वनर भी सब मद्र

हृदय हृषि विव्र उडा । ऊर्ध्वेने मयनी पूँक कंभी एवं केंची
कर बी ॥ १९ ॥

भात्रमुस्तऽपि हरयो रामदानकाङ्क्षिणः ।

भङ्गव पुरतः कृत्वा हनुमन्त ख यानरम् ॥ ४० ॥

हृदनेमि ही भीरामचन्द्रबीके दर्शनही हृष्काले अङ्कुर
और यानरबी हनुमन्को आगे करके वे सब बानर बहो
आपहुँचे ॥ ४ ॥

तऽङ्गदममुखा वीराः प्रहृष्टाश्च मुवास्वित्ताः ।

निपतुर्हरिराजस्य समीप राघवस्य च ॥ ४१ ॥

वे भङ्गद आदि बीर मानन्द और उल्लासले मरकर
बानरराज सुग्रीव तथा हनुनायकीके समीप आवागले नीचे
उठे ॥ ४१ ॥

हनुमाश्च महाबाहुः प्रणम्य शिरसा ततः ।

निपतामक्षतां वैश्वी राघवाय न्यवेदयत् ॥ ४२ ॥

महाबाहु हनुमान्ने भीरुनायकीके खरपोंमें मस्तक
रखकर प्रणाम किया और ऊर्ध्वे यह बतया कि देवी सीता

हृषार्ये भीमद्वानायमे वाक्यमीकीये काङ्क्षिण्यो मुन्दरकाण्डे षट्पद्विंशतः सर्गः ॥ ६४ ॥

इस प्रकृत संवत्सोक्तिनिर्मित मार्तण्डमयन अदिकाण्डे मुन्दरकाण्डे चौसठवों सर्ग पूरा हुआ ॥ ६४ ॥

पञ्चपष्टितम सर्ग

हनुमान्जीका श्रीरामको सीताका समाचार सुनाना

ततः प्रलयण शैल तं गत्वा चित्रकालनम् ।

प्रणम्य शिरसा राम लक्ष्मण च महायक्षम् ॥ १ ॥

युषराज पुरस्कृत्य सुग्रीवमभिवाप च ।

मनूचिमप सीतायाः प्रयच्छुमुपशब्दमुः ॥ २ ॥

तदनन्तर विचित्र काननोंले सुषोभित प्रसन्नप पत्रपर
जाकर युषराज भङ्गदको मारा करके भीराम महाबाबी
कर्मण तथा सुग्रीवको मस्तक छुम्कर प्रणाम करनेके
अनन्तर वह बानरोंने सीताका समाचार बताना आरम्भ
किया— १-२ ॥

राघवाऽतःपुर राघ राक्षसीभिद्वय तर्षणम् ।

राम समनुराग च यथा च नियमा कृतः ॥ ३ ॥

पतदाक्याय त सप्ये हरयो रामसनिधी ।

वेदहीमक्षता भुग्या रामस्तूत्तरमप्रधीत् ॥ ४ ॥

मीना दवा पारणके अन्त पुरमे राक रक्षी गयी है ।
गन्धर्वों ऊर्ध्वे बमछनी रहती है । भीरामके प्रति उनका
मनन्य अनुराग है । रागन सीताक बीवित रहनेक द्विवे
कइत द मावझे जबकि वे रक्षी है । हनु वमय विदेह

पातिशमके कठोर नियमोंका पालन करती हुई मरीचे
सकुचक है ॥ ४२ ॥

हृष्टा वैष्वीरित हनुमद्वदनावसुतोपमम् ।

भाकर्यै पञ्चन रामो हपमाप सखकमज ॥ ४३ ॥

मिने देवी सीताका दर्शन किया है । हनुमान्कीके मुन्के
यह अनुवके समान मयुर बचन सुनकर कर्मणउचित मीरु
को यही प्रकणता हुई ॥ ४३ ॥

निदिशतार्ये ततस्तस्मिन् सुग्रीय पञ्चमात्मजे ।

लक्ष्मणः प्रीतिमात्र प्रीत बहुमातावैक्षत ॥ ४४ ॥

पञ्चपुत्र हनुमान्के विषयमे सुग्रीवने पूछेही ही निम
कर किया या कि ऊर्ध्वेके द्वारा कार्य किइ हुआ है । हनुने
प्रकण हुए कर्मणने प्रीतिपुत्र सुग्रीवकी भोज बई मरले
देला ॥ ४४ ॥

प्रीत्या च परयोपेतो राघवः परबीरहा ।

दहमानेन महता हनुमन्तमवैक्षत ॥ ४५ ॥

सुग्रीवकीका सहा करनेवाले भीरुनायकीने परम प्रीति
और महान् सम्मानके साथ हनुमान्कीकी मरे देला ॥ ४५ ॥

इस प्रकृत संवत्सोक्तिनिर्मित मार्तण्डमयन अदिकाण्डे मुन्दरकाण्डे चौसठवों सर्ग पूरा हुआ ॥ ६४ ॥

इस प्रकृत संवत्सोक्तिनिर्मित मार्तण्डमयन अदिकाण्डे मुन्दरकाण्डे चौसठवों सर्ग पूरा हुआ ॥ ६४ ॥

कुमारीको छोड़ें धृति नहीं पहुँची है—वे सकुचक है १

भीरामचन्द्रकीके निष्क वे सब बातें कडाकर वे कनर पुर
हो गये । विदेहकुमारीक सकुचक होनेका इच्छत सुनकर
भीरामने आगेकी बात पूछव हुए करा— १ ४ ॥

क सीता वर्तत द्यी कथ च मयि वर्तते ।

पत्न्ये सर्वमाक्यात वैदेही प्रति यागरा ॥ ५ ॥

बानरों ! देवी सीता क्यों ! मरे प्रति उनका कैत
भाव है ! विदेहकुमारीके विषयमें वे कभी बातें मुन्के
करों ॥ ५ ॥

रामस्य गदित भुत्या हरयो रामसनिधी ।

चोद्वयन्ति हनुमन्त सीतायुष्मान्तकोयिदम् ॥ ६ ॥

भीरामचन्द्रकीका यह कथन सुनकर वे बानर भीरामके
निष्क सीताक इच्छान्तक अक्षी तरह अननेकाल हनुमन्की
को उधर देनेके लिय प्ररित करने बने ॥ ६ ॥

भुग्या तु यचन तयां हनुमान् म्पत्तारमजः ।

प्रणम्य शिरसा द्यै सीतायै तां दिश प्रति ॥ ७ ॥

उन बानरोंकी बात सुनकर पवनपुत्र हनुमान्जीने
पहले देवी छीताके उद्देश्यसे दक्षिण दिशाकी ओर मल्लक
हृन्मकर प्रणाम किया ॥ ७ ॥

उवाच वाक्य वाक्ययः सीताया वृत्तान्त यथा ।
त मयि काञ्चन विष्य दीप्यमान स्वतेजसा ॥ ८ ॥
वत्सा रामाय हनुमांस्ततः प्राञ्जलिप्रदयति ॥

फिर बातचीतकी कम्बुको धाननेवाले उन बानरबीरने
वैशाखीका दर्शन किस प्रकार हुआ था; वह धारा वृत्तान्त
का सुनाया। तबभ्रातृ अपने देखते प्रकाशित होनेवाली
उस विषय काञ्चनमणिको मन्त्रान् भीरामके हाथमें देकर
हनुमान्जी हाथ जोड़कर बोले—॥ ८ ॥

समुद्रं लङ्कपिस्थाह् रातपोजनमायतम् ॥ ९ ॥
मयच्छं जानकीं सीतां मार्गमागो विद्वहत्या ।

प्रगो । मैं बनकननिरीनी छीताके दर्शनकी इच्छासे
बनका पता लगाया हुआ जो बानर बिरतुत समुद्रको
जोकर उसके दक्षिण किनारेपर था पहुँचा ॥ ९ ॥

तत्र लङ्कैति नगरी रावणस्य दुरात्मनः ॥ १० ॥
रक्षितस्य समुद्रस्य तीरे वसति वक्षिणे ।

वहाँ हुआ था रावणकी नगरी लङ्का है। वह समुद्रके
दक्षिण तटपर ही बसी हुई है ॥ १० ॥

तत्र सीता मया दृष्टा रावणान्तःपुरे सती ॥ ११ ॥
त्वयि सम्पत्स्य श्रीकम्प्री रामा राम मनोरघम् ।

दृष्टा मे पक्षसीमये तर्क्यमावा मुहुर्मुहुः ॥ १२ ॥
पक्षसीभिर्निरूपाम्भी रक्षिता प्रमत्वाधने ।

भीरव । लङ्कामें पहुँचकर मैंने रावणके अन्तःपुरमें
मन्दावनके भीतर राक्षसियोंके बीचमें बैठी हुई छठी-ठानी
सुन्दरी देवी छीताका दर्शन किया। वे अपनी सारी
कमिअन्नामोको आपमें ही केन्द्रित करके किसी तरह जीवन
चारण कर रही हैं। विक्रमाल रूपवाली राक्षसियों उनको
रक्षवाली करती हैं और बारबार उन्हें डोँटती फटकारती
रखती हैं ॥ ११ १२ ॥

दुःकम्पपद्यते देवी त्वया वीर सुखोचिता ॥ १३ ॥
रावणान्तःपुरे क्वा राक्षसीभिः सुरक्षिता ।

पक्षयणीयया दीना त्वयि क्षिप्तापराधया ॥ १४ ॥

भीरव । देवी सीता आपके साथ सुख भोगनेके
कल्प हैं परंतु इस समय बड़े दुःखसे दिन बिता रही हैं।
उन्हें रावणके अन्तःपुरमें रोक रक्खा गया है और वे
पक्षियोंके पहरमें रहती हैं। तिरपार एक बेनी भाव
मिने दुःखो हो उठा आपकी क्षिप्तामें हूयी रहती हैं ॥

पदादाय्या विवर्णाङ्गी पथिनीय हिमामगम् ।
पपयात् विनिवृत्तार्पा मत्तद्व्यकृतनिदृक्षया ॥ १५ ॥

वे नीचे भूमिपर खेती हैं। बसे जाइके दिनेमें पाला
पड़नेके कारण कमबिनी घुल जाती है; उठी प्रकृष्ट उनके
महोकी कानि कीकी पड़ गयी है। रात्रयसे उनका छोई
प्रयोजन नहीं है। उन्होंने प्राय त्याग देनेका निश्चय
कर लिया है ॥ १५ ॥

देवी कथञ्चित् क्राकुत्स्य त्वन्ममा मार्गिता मया ।
इक्ष्वाकुवशयिष्याति शनैः कीर्तिपलाभ ॥ १६ ॥
सा मया नरशार्ङ्गुल शनैर्विष्वासिता तदा ।
ततः सम्भाषिता देवी सर्वमर्थं च वृश्चिता ॥ १७ ॥

शकुन्तलशकुन्तुय्य । उनका मन निरन्तर आपमें ही
लगा रहता है। निष्पण नरभेद । मैंने बड़ा प्रयत्न करके
किसी तरह महारानी छीताका पता लगाया और बीरे बीरे
इक्ष्वाकुवशकी कीर्तिका वर्णन करते हुए किसी प्रकार उनके
हृदयमें अपने प्रति विश्वास उत्पन्न किया। तबभ्रातृ देवीसे
बातबताप करके मैंने यहाँकी सब बातें उन्हें बतलायी ॥

रामसुग्रीवसख्य च भुत्वा ह्यमुपागत ।
नियतः समुवाचारी भक्तिदृशास्याः सदा त्वयि । १८ ॥

आपकी सुग्रीवके साथ मित्रताका समाचार सुनकर
उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। उनका उच्छ्वेदिका आचार-विचार
(पाठित्व) सुदृढ़ है। वे धरा आपमें ही मर्क
रखती हैं ॥ १८ ॥

एव मया महाभाग दृष्टा जनकनन्दिनी ।
उभेय तपसा युक्ता त्वद्गपत्या पुत्रपर्यभ ॥ १९ ॥

महाभाग । पुत्रबोधम् । इस प्रकार बनकननिरीको
मैंने आपकी मर्कसे प्रेरित होकर कठोर तपस्या करते
देखा है ॥ १९ ॥

अभिज्ञान च मे दत्त पदायुक्त तथाम्बिक ।
त्रिजङ्गुटे महाभाग वायसं प्रति राघव ॥ २० ॥

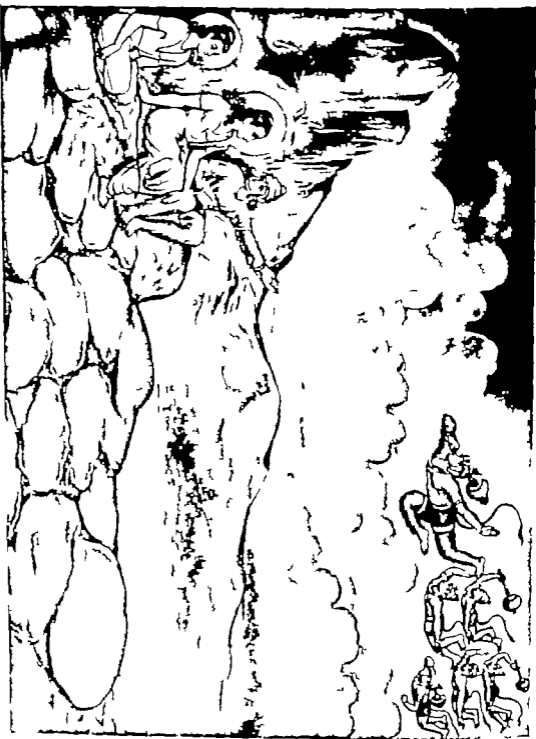
महाभते । रघुमन्दन । त्रिजङ्गुटमें आपके पाठ
देवीके रहते समन एक कोएको लेकर आ पटना परित
हुई थी उस वृत्तान्तको उन्होंने पक्षानके रूपमें सुनते
करा था ॥ २० ॥

विज्ञाप्याः पुनरप्यप रामो वायुसुत त्वया ।
अभिज्ञान यथा दृष्टमिति मामाह जानकी ॥ २१ ॥

मय चास्मै प्रदातव्यो यस्मात् सुपरिरक्षितः ।
धानधीवीने आते धमप सुनते कदा—आयुनन्दन ।
दुम यहाँ बेनी मेरी हाथत देल चुके हो वह उस भगवान्
भीधमका कान्ध और इस मन्धिष बड़े यक्षसे सुरक्षितरूपमें
के अन्तर जनके हाथमें देना ॥ २१ ॥

तुयता धननाम्येष सुप्रयस्योफरुण्यतः ॥ २२ ॥
एव सूडामयिः भीमान् मया त यखरक्षितः ।

तुयता धननाम्येष सुप्रयस्योफरुण्यतः ॥ २२ ॥
एव सूडामयिः भीमान् मया त यखरक्षितः ।



वानसोंको समुद्रपारसे लेके वसुकार सुधी भीरामको जग्यासन दे रहे हैं

प्रेम—बहुत मरका भव हम भोग नहें । इतना करकर
 के म्हाबली बानर भाकाधमें उब चले ॥ २३ ॥

उत्पत्तमनूत्यंतुः सर्वे ते हरियूथपाः ।
 हत्वाऽऽक्षयानिवाकाशयन्प्रोत्थिता इवोपलाः ॥ २४ ॥

आगे-आगे अहद और उनके पाछे वे समस्त वानर
 पूवपक्ष उड़न लगे । वे आकाशको आम्भदित करके गुच्छे
 वे फेंक गये परचरोकी मूर्ति तीव्रगतिसे आरह ॥ २४ ॥

अहद पुरतः कृत्वा हनूमत्त च वानरम् ।
 वेऽम्बर सहस्रोत्पत्य घगचन्तः प्रवहन्तः ॥ २५ ॥
 विमदन्ता महानाद् घना पातेरिता यथा ।

अहद और वानरोंके हनुमान्के आगे करके सभी
 वेमान् वानर सहस्र आकाशमें उडकर बापुसे उड़ाये गये
 आरखेकी मूर्ति बड़े बोर बोरसे गर्बना करते हुए किञ्चिन्ना
 के निवृत्त च पहुँचे ॥ २५ ॥

अहने समनुप्राप्ते सुग्रीषो घानरोम्बरः ॥ २६ ॥
 उवाच शोकसतत राम कमललोचनम् ।

अहदके निवृत्त पहुँचते ही वानरराज सुग्रीबने शाक
 सल्ल क्मन्वनन भीरमासे कहा— ॥ २६ ॥

समाभ्वसिंहि भद्र ते ह्यद्य वेयी न सशयः ॥ २७ ॥
 नागमनुमिह शम्भ्यै तैरतीतसमपरिह ।

प्रथम । वेर्यं वारण कीजिये । आपका कस्वाण हो ।
 धैतावेकीका पला क्या गया है, इसमें सशय नहीं है क्योंकि
 ह्यधर्षं हुए बिना दिय हुए सम्पत्की अपथिकों कियाकर ये
 वानर कदापि यहाँ नहीं आ सकते थे ॥ २७ ॥

अहदस्य प्रहर्षाच्च जानामि शुभदर्शनम् ॥ २८ ॥
 न मत्सक्षशासामागच्छत् कृत्ये हि विनिपातित ।

युवराजो महाबाहुः प्रवृत्तामहहो परः ॥ २९ ॥
 घमर्णन भीराम । अहदकी अत्यन्त प्रवृत्ततासे

भी मुझे इसी बातकी सूचना मिल रही है । यदि क्रम किया
 बिना गया होता तो वानरोंमें भेद युवराज महाबाहु अहद
 मेरे पाठ कदापि छैदकर नहीं आते ॥ २८ २९ ॥

यद्यप्यहदकृत्यामामीहशः खानुपक्रमः ।
 भयेत् तु वीनयन्तो भ्रातृष्विप्लुतमालसः ॥ ३० ॥

यद्यपि कार्य किन्न न होनेपर भी इस तरह लोभोंका
 भयने पर डौटना देला गया है तथापि उस क्षणमें अहदके
 मुक्कपर उड़ाखी ज्यो होती और उनके विशयमें परबदरक
 करण उपक-पुमक मन्च होता ॥ ३ ॥

विद्वैदामह चैतत् पूर्वाकैरभिरितम् ।
 न मं मपुययं हम्पाहृष्ट्या जनकामजाम् ॥ ३१ ॥

मेरे वान-बाहोंके इस मनुकका बिलकी पूर्वजाने भी
 वा य ५ ८ ५—

सदा रक्षा की है, कोई बनककिष्ठीका दहन किये बिना
 विवृत्त नहीं कर सकता था ॥ ३१ ॥

कौसल्या सुप्रजा राम समाम्भसिहि सुप्रतः ।
 ह्यद्य वेयी न सव्हो न चाम्येन हनूमता ॥ ३२ ॥

उत्तम शतका पाछन करनेवाले भीराम । आपकी पाकर
 माता कौसल्या उत्तम छानकी जननी हुई हैं । आप वेर्य
 वारण कीजिये । इसमें कोई संदेह नहीं कि वेची तीताका दहन
 हो गया । किसी औरने नहीं हनुमान्जीने ही उनका दहन
 किया है ॥ ३२ ॥

नह्यम्यः कर्मणा हेतुः साधनऽस्य हनूमतः ।
 हनूमतोह सिद्धिश्च मतिश्च मतिस्ततम ॥ ३३ ॥

अथसायम्भ्य शौर्ये च भुत चापि प्रतिष्ठितम् ।
 जाम्भवान् यत्र नेता स्यात्सहृदश्च हरीम्बरः ॥ ३४ ॥
 हनूमत्साम्भ्यपिष्टाता न तत्र गतिरन्यथा ।

मतिमानोंमें भेद खुनन्दन । इस वामका सिद्ध करनेमें
 हनुमान्कीक सिवा और कोई करव क्या हो ऐसा सम्भव
 नहीं है । वानरशिरोमणि हनुमान्में ही कापसिद्धिकी शक्ति
 और बुद्धि है । ठहीमें उद्योग, पराक्रम भार शान्तान भी
 प्रतिष्ठित है । बिज दम्भके नेता जाम्भवान् और महाबलीमहद
 हों तथा अभिप्राता हनुमान् हों उध दम्भके विपरीत परिणाम—

अलक्ष्म्या मिथे, यह सम्भव नहीं है ॥ ३३ ३४ ॥

मा भूदिसन्तासमायुक्तः सम्प्रत्यमितकियम् ॥ ३५ ॥
 यद्वा हि वृषितीव्रमाः सगताः काननौकसः ।

नैवामकृतकार्याणामीहशः स्याद्युपक्रमः ॥ ३६ ॥
 वनभङ्गेन जामामि मधूर्ना भस्येन च ।

अमित पराक्रमी भीराम । अब आप किन्ता न करें ।
 ये वनवासी वानर जो इतने अहंकारमें भर हुए आ रहे हैं
 कार्य सिद्ध हुए बिना इनका इस तरह मान सम्भव नहीं था ।
 इनके मन्त्र धीने और वन बनाइनेसे भी मुझे पंथा ही प्रतीत
 होता है ॥ ३५ ३६ ॥

ततः किञ्चकिञ्चाश्वत्थं पुधायासम्भ्रमरे ॥ ३७ ॥
 हनूमत्कमहस्तानां नवतां काननौकसाम् ।

किञ्चिन्नामुपयातानां सिद्धिं कथयतामिध ॥ ३८ ॥
 वे इस प्रकार कह ही रहे थे कि जहाँ आकाशमें निवृत्त
 वानरोंकी किञ्चकामियों मुनाकी ही । हनुमान्कीके पराक्रमपर
 गर्व करके किञ्चिन्नाके पाठ भा गबना करनेवाले वे
 वनवासी वानर मन्त्र सिद्धिमें श्रुत्वा ह रहे थे ॥ ३७-३८ ॥

ततः भुम्बा निनात् न कयीमां कपिलस्तमः ।
 आयाताञ्चितकास्तः साऽभयवृष्टमानसः ॥ ३९ ॥

उन वानरोंका बह विद्वान् मुनकर अविष्य सुधीवका

हरय इति खिन्न उवा । उन्वोने मयनी पूषं वंभी एवं उंभी
कर वी ॥ १९ ॥

भाजम्मुस्तंऽपि हरयो रामवदानक्यङ्गिणः ।

भङ्गन् पुरतः कृत्वा हनूमन्त्वं च यानरम् ॥ ४० ॥

इतनेमें ही भीयमन्त्रकीके दर्शनकी इच्छासे अङ्गद
और यानरकी हनुमान्को आगे करके व वय यानर वहाँ
आपहुने ॥ ४ ॥

तेऽङ्गन्प्रमुखा धीराः प्रहृष्टाश्च मुवास्विताः ।

स्मितेर्तुर्हरितामस्य समीपं राघवस्य च ॥ ४१ ॥

वे अङ्गद आदि वीर भानन्द और उल्लाहसे भरकर
यानरयव सुग्रीव तथा सुनायकीके समीप आयाहते नीचे
उठरे ॥ ४१ ॥

हनूमांश्च महाबाहु प्रणम्य शिरसा ततः ।

निवतारप्रसतां देवीं राघवाय न्यवेद्ययत् ॥ ४२ ॥

महाबाहु हनुमान्ने श्रीरघुनाथकीके चरणोंमें मस्तक
रक्षकर प्रणाम किया और ऊँचे यह बताया कि देवी सीता

इत्यार्षे भीमशामकीके बावनीकीके जातिकाम्ने सुन्दरकाम्ने चतुपक्षितमः सर्गः ॥ १४ ॥

इस प्रकार भीमव्याप्तीकीरामायण अष्टिकाकाम्ने सुन्दरकाम्ने चौसठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १४ ॥

पक्षषष्टितम सर्ग

हनुमान्जीका श्रीरामको सीताका समाचार सुनाना

ततः प्रह्वयण शैलं ते गत्वा चित्रकाननम् ।

प्रणम्य शिरसा रामं लक्ष्मणं च महाबलम् ॥ १ ॥

पुषराज पुरस्करय सुग्रीवप्रभिवाद्य च ।

पश्चिमय सीतायाः प्रवक्तुमुपबन्धनम् ॥ २ ॥

इतन्तर विभिन्न काननोंसे सुशोभित प्रसवण पर्वतपर
जाकर पुनराव अङ्गदको आगे करके भीराम महाबली
लक्ष्मण तथा सुग्रीवको मस्तक छुकाकर प्रणाम करनेके
अनन्तर वर यानरोंने सीताका समाचार बताना आरम्भ
किया—॥ १-२ ॥

राघवात्तपुरे रोषं राक्षसीभिर्दृष्टं तर्वात्मम् ।

रामं चमनुपगं च यया च विपया कृतः ॥ ३ ॥

पक्षदाच्याय तं सर्वं हरयो रामसमिप्यौ ।

वैदेहीमहातां श्रुत्या रामस्त्तरमप्रयीत् ॥ ४ ॥

सीता देवां राघवके अन्त पुरमें रोक रक्की गयी है ।
पक्षपिर्वा उन्हे चमन्नती रखती हैं । भीरामके प्रति उनका
अनन्य अतुपग है । परबने सीताके भीतिव रहनेके लिये
वैदेही हा मातकी भवधि दे रक्की है । इत समय विदेह

पालिकस्यके कठोर नियमोंका पालन करती हुई धरने
सकुचक है ॥ ४२ ॥

हृष्टा देवीति हनुमत्त्वनायस्योपमम् ।

भाकर्यं घञ्जम रामो ह्यपमाप सत्प्रकल्पना ॥ ४३ ॥

मने देवी सीताका दर्शन किया है हनुमन्कीके मुझे
यह अमृतके समान मधुर बचन सुनकर अस्मभवरीव श्रेय-
को बढ़ी प्रकल्पना हुई ॥ ४३ ॥

मिहिघतार्थं ततस्तस्मिन् सुग्रीव पञ्चनात्मके ।

लक्ष्मणः प्रीतिमात्रं प्रीतं बहुमावाप्स्येक्षत ॥ ४४ ॥

पञ्चपुत्र हनुमान्के विषयमें सुग्रीवने परबने ही निम्न
कर किया था कि उन्हींके हाथ कार्य ठिठ हुआ है । इन्हीं
प्रकल्प हुए अस्मवने प्रीतिपुत्र सुग्रीवकी ओर यह अर्पण
देला ॥ ४४ ॥

प्रीत्या च परयोपेतो राघवः परधीरहा ।

बहुमानेन महता हनूमन्तमवैक्षत ॥ ४५ ॥

सुग्रीवोंका धार करनेवाके श्रीरघुनाथकीने परम प्रीति
और महान् सम्मानके साथ हनुमान्कीकी ओर देला ॥ ४५ ॥

इत्यार्षे भीमशामकीके बावनीकीके जातिकाम्ने सुन्दरकाम्ने चतुपक्षितमः सर्गः ॥ १४ ॥

इस प्रकार भीमव्याप्तीकीरामायण अष्टिकाकाम्ने सुन्दरकाम्ने चौसठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १४ ॥

कुनारीकी ओर धरि नहीं पहुँची है—व सकुचक है ।
भीरामन्त्रकीके निष्कट वे सब बातें बयाकर वे यानर पु-
रा गये । विदेहकुनारीके सकुचक होनेका इच्छन्त सुनकर
भीरामने आगेकी बात पूरत हुए करा—॥ १४ ॥
क सीता वर्तते इंदी कथं च मयि वर्तते ।
पक्षमने सर्वयाक्यात वैदेहीं प्रति यानराः ॥ ५ ॥
‘यानरा’ देवी सीता कहां हैं । मेरे प्रति उनका कैसा
भाव है । विदेहकुनारीके विषयमें वे कथी बातें मुझे
क्यों ॥ ५ ॥
रामस्य गदितं श्रुत्वा हरयो रामसमिप्यौ ।
चोदयन्ति हनूमन्तं सीतायुत्तान्तकोविदम् ॥ ६ ॥
भीरामन्त्रकीका यह कथन सुनकर वे यानर भीरामके
निष्कट सीताके इच्छन्तको अच्छी तरह बाननेवाके हनुमान्की-
को उधार देनेके लिये प्रेरित करने बने ॥ ६ ॥
श्रुत्या तु यच्चनं तंयां हनुमान् महतरमज्ज ।
प्रणम्य शिरसा न्येय्ये सीतायै तां विशा प्रति ॥ ७ ॥

अन बानरोक्षी बाढ सुनकर पननपुष हनुमान्भीने परके देखी छीताके उरहस्ये दक्षिण विद्याकी ओर मलक छक्कर प्रणाम किया ॥ ७ ॥

उवाच चाक्य चाक्ययज्ञः सीताया दर्शनं यथा ।
त मणि काञ्चन विष्य दीप्यमानं स्वतेजसा ॥ ८ ॥
वस्या रामाय हनुमास्ततः प्राञ्जलिदधवीत् ।

किं बाढभीतकी कम्मको बाननेबाहे उन बानरबीने छीताकीका हयान बित प्रकार हुमा या; वर ता। हृद्यन्त कर हुनाया। छपभात् अपने तेकसे प्रकाशित हनेबाकी उठ विष्य काञ्चनमणिको मगान् भीरामके हाथमें देकर छामान्नी हाथ जोडकर बोधे— ॥ ८ ॥

समुद्रं बहुपित्वाह शतयोजनमायतम् ॥ ९ ॥
अगच्छ जानकी सीता मार्गमापो विहसया ।

प्रणो । मैं बनकनन्दिनी छीताके दर्शनकी इच्छसे उनका पता लगाता हुमा औ सोबन बिलुठ समुद्रको ओंकर उठक दक्षिण किनारेपर था पहुँचा ॥ ९ ॥

तत्र तद्देवि नगरी राघवस्य तुराग्रमः ॥ १० ॥
दक्षिणस्य समुद्रस्य तीरे वसति दक्षिणे ।

वही तुराग्रा रावणकी नगरी छडा है। वर समुद्रके दक्षिण तटपर ही बसी हुई है ॥ १० ॥

तत्र सीता मया ह्यद्य राघवान्तपुरे स्तरी ॥ ११ ॥
त्वयि सन्धस्य ज्ञीघन्ती रामा राम मगोरयम् ।
ह्यद्य मे राक्षसीमध्ये तज्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ १२ ॥
पक्षसीभिर्विकृपाभी रक्षिता प्रमदायने ।

भीरम । छडामें पहुँचकर मैंने रावणके अन्तःपुरमें ममरावनक भीतर राखियोंके बीचमें बठी हुईं क्ती-राखी सुन्नी देखी छीताका दर्शन किया। वे अपनी छारी अभिजाताओंको आपमें ही केन्द्रित करके किसी तरह सोबन बाराण कर रही हैं। विकराक रूपवाकी राखियों उनकी रचनाकी करती हैं और बारंबार उन्हें डोटी-पत्रकाटी रखी हैं ॥ ११ १२ ॥

दुःखमापद्यत देवी त्वया वीर सुखोन्विता ॥ १३ ॥
पश्यान्तपुरं दग्धा राक्षसीभिः सुपक्षिता ।
एकवचीचप दीना त्वयि शिन्तापरायणा ॥ १४ ॥

भीरम । देवी सीता आपके साथ मुझ भोगनेके योग्य हैं, परन्तु इत समय बड़े दुःखसे बिन किता गरी हैं। उन्हें रावणक अन्तःपुरमें रोक रक्ता गया है और वे राखियोंके परदेमें रहती हैं। किरपर एक बेथी धावण किने हुकी हो तथा आपकी शिन्तामें डूबी रहती हैं ॥

पश्यान्तपुरा विपदाङ्गी पथिनीय हिमागम ।
पयवाद् विनिवृत्ताया मत्तवकृतनिदधया ॥ १५ ॥

वे नीचे भूमिपर छडी हैं। बने जाइके दिनेमें पावा पड़नेके कारण कमिनी वृक्ष जाती है उठी प्रकर उनके अङ्गोंकी कान्ति फीकी पड़ गयी है। रावणसे उनका बोध प्रयोगन नहीं है। उन्होंने प्राण त्याग देनेका निश्चय कर लिया है ॥ १५ ॥

देवी कथञ्चित् काकुत्स्थ स्वमना मारिगिता मया ।
इत्याकुत्स्थशयिष्यति शनैः कीर्तयतामघ ॥ १६ ॥
सा मया नरशायक शनैर्विभ्यासिता तदा ।
ततः सम्भाषिता देवो सधर्म्यं च वरिषा ॥ १७ ॥

ककुत्स्थकुम्भभूषण । उनका मन निरन्तर आपमें ही लगा रहता है। निष्पाप नरभेद । मैंने बड़ा प्रयत्न करके किसी तरह महाशयनी छीताका पता लगाया औः चारे चारे इत्याकुत्स्थकी कीर्तिका बर्णन करते हुए किसी प्रकार उनके हृदयमें अपने प्रति विश्वास उत्पन्न किया। छपभात् देवीसे शार्वाङ्गप करके मैंने यहाँकी सब बातें उन्हें बतलायीं ॥

रामसुग्रीवसक्यं च भुक्त्वा हर्षमुपागता ।
मिथतः समुद्रापारो भक्तिद्वयास्याः सदा त्वयि ॥ १८ ॥

आपकी सुग्रीवके क्षय मित्रताका समाचार सुनकर उन्हें बड़ा हर्ष हुआ। उनका उष्कण्टिका माया-विचार (पाठित्व) उतरद है। वे तथा आपमें ही भक्ति रखती हैं ॥ १८ ॥

एव मया महाभाग ह्यद्य अनकनन्दिनी ।
उप्रेण तपसा युक्ता त्वद्गमस्या पुरुषपथ ॥ १९ ॥
महाभाग ! पुरुषोत्तम ! इस प्रकार बनकनन्दिनीको मैंने आपकी मण्डिसे प्रेरित होकर कठोर तपस्या करते देखा है ॥ १९ ॥

अभिज्ञानं च मे वृत्तं यथावृत्तं सपान्तिक ।
चित्रकूटे महाभाग धायस प्रति राघव ॥ २० ॥
व्याहारे । खुनखन ! चित्रकूटमें आपको पास रहनेके रहत समय एक कोएक कर कर आ पटना परित हुईं ही उठ हृद्यान्तको उन्होंने परवानके रूपमें मुझसे कहा था ॥ २० ॥

विज्ञाप्यः पुनरप्यप रामो धायुसुत त्वया ।
अभिज्ञानं यथा ह्यपमिति मामाह जानकी ॥ २१ ॥
मय चास्मं प्रजातप्यो यस्मात् सुपरिरक्षितः ।

बानकीभीने बात समय मुझसे कहा—आपुनखन ! तुम यहाँ बैठी मेरी हाथत रह चुके हो वर सब मगान् भीरमको कताना और इत मणिको बड़ बजते सुरक्षितरूपमें के बाकर उनके हाथमें रना ॥ २१ ॥

सुवृता पञ्चमाप्यथ सुम यस्वापमृत्युपतः ॥ २२ ॥
एव बृहदाम्निः भीमान् मया त पञ्चरक्षितः ।

ममाशिखापास्तिककं तत् स्मरस्तेति धाम्रवीत् ॥२३॥
एव निर्यातिता इमीमां मया ते वारिसम्भया ।

एव ह्यग्न प्रमोदित्ये व्यसने त्वामिवागम ॥ २४ ॥

‘देते समयमें देना जब कि सुप्रिय मी निकर बैठकर
द्रुमारी करी हुईं बाते सुन रहे हो । छाप ही भेरी ने बाते
मी उनसे निवेदन करना—‘प्रमो । आपकी ही हुईं वह
अन्तिमती शूशामि मैंने बड़े यत्नसे सुर शब्द रक्षणी थी ।
बसते प्रकट हुए इस वीतिमात्र रक्षणे मैंने आपकी सेवामें
झेटाया है । निष्पाप रघुनन्दन । संकष्टके समय इसे देखकर
मैं उठी प्रकर आनन्दमग्न हो जाती थी, जैसे प्राणके
दर्शनसे आनन्दित होती हूँ । आपने मेरे सकारमें जो
नेनशिकर विवचन छायाया था, इन्को स्मरण कीजिये ।’
ये बाते धानकी बीने करी थी ॥ २२-२४ ॥

सीवित धारयिष्यामि मास वृशरघारमत्र ॥

ऊर्ध्व मासात्र जीविय एतसां वशामामता ॥ २५ ॥

उन्होंने वह भी कहा— वृशरघनन्दन । मैं एक
मास और जीवन पारण करूँगी । उसके बाद राक्षसोंके
वशमें पहुँकर प्राण त्याग दूँगी—किसी तरह जीवित
नहीं रह सकूँगी ॥ २५ ॥

इति मामग्रवीत् सीता कशाङ्गी धर्मधारिणी ।

इत्यर्थे श्रीमद्भारमयके वाल्मीकीये अदिकाण्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चदशितमः सर्गः ॥ १५ ॥

इस प्रकार श्रीमद्भक्तिनिर्मित अर्धउपारम कवीकाण्ये सुन्दरकाण्डमें पैंउठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १५ ॥

पटुपष्टितम सर्ग

वृशामणिको दन्तकर और सीताका समाचार पाकर श्रीरामका ठनक लिये विलाप

एवमुक्त्वा ह्यनुमता रामो वृशरघारमत्रः ।

त मणि हृदये कृत्वा करोद् सहस्रकमजः ॥ १ ॥

इतुमानुशीके देठा करनेपर वृशरघनन्दन श्रीराम
उस मणिके अपनी छातीसे लगाकर रोने लगा । छाप ही
कमज भी रो पड़े ॥ १ ॥

तं तु ह्यग्न मणिश्रेष्ठ राघवः शाककशितः ।

मन्नाभ्यामभ्रपूर्वाभ्यां सुग्रीवमिदमग्रवीत् ॥ २ ॥

उस भेद मणिके और देखकर शकते व्याकुल हुए
भोरनुवाचकी अपने दोनों नेत्रोंमें आँसू भरकर सुग्रीवसे
इस प्रकार बोले— ॥ २ ॥

यद्यैव धनुः स्यसि स्महावृ वासस्य पस्तकाः ।

तथा ममापि हृदय मणिश्रेष्ठस्य दर्शनात् ॥ ३ ॥

मित्र । जैसे शरभ्य भेनु अपने बड़केके हनेहसे धनुँसे
पृथ करने लगती है उठी प्रकर इस उतम मणिके देखकर

राजणान्तःपुरे कञ्च मृगीयोल्लुक्त्वोपना ॥ ११ ॥

‘इस प्रकार बुजके-पलके छरीरतामी चर्मरूपना टैठ
मुसं आपसे करनेके लिये यह उदेश्य रिया था । बेरल
अन्तःपुरमें कैद हूँ और मयके मारे आँसू छड़ प्रक
इपर-उपर देखनेवाली हरिणीके समान वे छट्ट रह
एव भोर देखा करती हूँ ॥ ११ ॥

एतदेव मयाऽऽख्यात सर्वं राघव यद् यथा ।

सर्वथा सामरज्ये सताराः प्रविधीयताम् ॥ २७ ॥

रघुनन्दन । यही सर्वोक्त वृत्तान्त है जो सन्म-
मैंने आपकी सेवामें निवेदन कर दिया । अब उन प्रमो
उत्प्रकणे पार करनेका प्रयत्न कीजिये ॥ २७ ॥

तो जाताआसौ राजपुत्रो विदित्वा

तथाभिधानं राघवाय प्रयाय ।

देव्या वाक्यार्तं सर्वमियातुपूर्वाद्

वाक्वा सन्पूर्वं वायुपुत्रः शशास ॥ २८ ॥

राजकुमार श्रीराम और कमजके कुछ अक्षर
लिख गया, देठा धानकर तथा वह पञ्चम श्रीरघुनन्दनके
शायमें बैठकर वायुपुत्र इतुमान्से देवी सीताकी करी हुईं ली
बाते क्रमशः अपनी वाणीद्वारा पूजकसे कह सुनती ॥२८॥

इत्यर्थे श्रीमद्भारमयके वाल्मीकीये अदिकाण्ये सुन्दरकाण्डे पञ्चदशितमः सर्गः ॥ १५ ॥

इस प्रकार श्रीमद्भक्तिनिर्मित अर्धउपारम कवीकाण्ये सुन्दरकाण्डमें पैंउठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १५ ॥

आज मेरा हृदय मी प्रचीभूत हो रहा है ॥ १ ॥

मणिरत्नमिद् दृष्टं वदेष्ट्याम्बुजुरेण मे ।

वधूकाले यथा कथमधिकं मूर्ध्नि शोभत ॥ ४ ॥

मेरे अक्षर राधा कनकसे निगाहके तमन देहेहीके वा
मणिरत्न रिया था जो उसके मस्तकर आबद हीकर वही
शोभा पत्ता था ॥ ४ ॥

अर्थ हि अक्षसम्भूतो मणिः प्रयरपूजितः ।

यद्ये परमतुरेण दृष्टः शक्येण जीमता ॥ ५ ॥

‘बसते प्रकट हुईं वह मणि भेद देवतामोहाय पूजित
है । किसी यत्नमें बहुत संश्रुत हुए बुद्धिमान् इन्हने एव
अनकथ यह मणि की थी ॥ ५ ॥

इमं ह्यग्न मणिश्रेष्ठं तथा तातस्य वृशाम् ।

अथास्म्यवगतः सौम्य दैवेहस्य तथा विभाः ॥ ६ ॥

‘सौम्य । इस मणिरत्नका दर्शन करके आज मुने अपने

अपने पुरुष पिताका और निरेहताब महाराज बनकरा भी
वर्धन मित्र गया हो, ऐसा अनुभव हो रहा है ॥ ६ ॥

मय हि शोभते तस्या प्रियाया मूर्ध्नि मे मयि ।
अधाम्य दूर्धानेनाहं प्राप्तां तामिह चिन्तये ॥ ७ ॥

‘यह मयि उदा मेरी प्रिया सीताके खेमन्तपर शोभा
पत्नी थी । आज इसे देखकर ऐसा जान पड़ता है मानो
शैत्य ही मुझे मित्र गयी ॥ ७ ॥

किमाह सीता वैदेही ब्रह्म सौम्य पुनः पुनः ।
पपसुमिध तोयेन सिञ्चन्ती धाप्यपारिणा ॥ ८ ॥

‘सौम्य पवनकुमार । जैसे जेरोध हुए मनुष्यको होखते
अनेके किये उपर बरके छटि दिये जाते हैं, उसी प्रकार
निरेहनिन्दनी सीताने मूर्च्छित हुएसे मुझ समको अपने
धाप्यरूपी शीतल बरके छींचते हुए क्या-क्या करा है । यह
धारकर बताओ ॥ ८ ॥

इतस्तु किं बुध्दतरं यद्विम यारिस्वभभवम् ।
मयि पदयामि सौमित्रे वैदहीमागता विना ॥ ९ ॥

(मय वे सदनजसे बरके—) ‘सुमित्रान्तर । सीताके
पहले माने विना ही जो बरके उत्पन्न हुए इत मयिको मैं
देख रहा हूँ । इतउ बदन गुणकी बात और क्या
हो सकती है ॥ ९ ॥

खिरं जीयति वैदेही यदि मास धरिष्यति ।
सर्वं धीर न जीयय विना तामसितेक्ष्णाम् ॥ १० ॥

(खिर वे हनुमान्सीते को बरके—) ‘धीर पवनकुमार ।
यदि निरेहनिन्दनी सीता एक मासक जीवन धारण कर
सकी तब तो वह बहुत तमयवक जी रही है । मैं ता ककारे
नेमोभासी जानकीके विना अब एक क्षण भी जीवित नहीं
रह सकता ॥ १० ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायण काव्योक्तये श्रीदशरथ सुन्दरकाण्डे पदपष्ठितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

इम प्रथम अध्यायनिर्मित आर्यामातल यदिदारके सुन्दरकाण्डे पाठ्यते सर्वं पूरा ॥ ६६ ॥

सप्तपष्ठितम सर्ग

हनुमान्जीका मगवान् श्रीरामका सीताका संदेश सुनाना

एषमुक्तस्तु हनुमान् राघवय महागमता ।
संज्ञाया भारित सर्वे न्ययययत राघव ॥ १ ॥

महाना भीरुगुणबशके ऐसा कतेवर हनुमान्सीते
धन्यदीभी बनी हुई तब जाते अने निरेहन कर दो ॥ १ ॥

इरमुक्तपती दधी जानकी पुरुषयभ ।
पूययममिज्जान विप्रकूट यथातथम् ॥ २ ॥

नय मामपि तं वेदा यद्य दृष्टा मम प्रिया ।
न तिष्ठेर्यं क्षणमपि प्रवृत्तिमुपलभ्य च ॥ ११ ॥

‘हनुमे बहो मेरी प्रियका देखा है, उसी देखते मुझे
भी न पडा । उधका समाचार पाकर जब मैं एक क्षण भी
पहो नहीं बक सकता ॥ ११ ॥

कथ सा मम सुभोषी भीठभीरुः सती तया ।
भयावहानां घोरानां मध्ये तिष्ठति रक्षसाम् ॥ १२ ॥

‘शाय । मेरी सती-सखी मुमयमा सीता बड़ी खीर
है । वह उन पर रूपवारी भयकर राक्षसोंके बीचमे कैसे
रखी होगी ॥ १२ ॥

दारद्विस्तमियोगमुक्तो नून चन्द्र इयाम्पुनैः ।
आवृतो यद्य तस्या न विराजति सागप्रतम् ॥ १३ ॥

‘निश्चय ही अंधकारसे मुक्त किन्तु बादलोसे ढके हुए
शरकाबीन चन्द्रमाके समान सीताका मुख इत समय
घोमा नहीं पा रहा होगा ॥ १३ ॥

किमाह सीता हनुमस्त्वस्यतः कथयस्व मे ।
पतेन जलु खीयिष्ये भेयजेनातुरो यथा ॥ १४ ॥

‘हनुमन् ! मुझे ठीक-ठीक बताओ सीताने क्या-क्या
करा है । जैसे उमरी दया अनेके बीठा है, उसी प्रकार
मैं सीताके इत संदेश-नाक्यको सुनकर ही खीरन धारण
करूंगा ॥ १४ ॥

मधुरा मधुराकाया किमाह मम भामिनी ।
महविहीना वरारोहा हनुमन् कथयस्व मे ।
तुम्हान् बुध्दतरं प्राप्य कथं जीयति जानकी ॥ १५ ॥

‘हनुमन् ! मुझे विपुही हुए मेरी सुन्दर कविप्रद
बाणी मधुरभाषिणी सुन्दर प्रियतमा अनकनन्दनी
सीताने मेरे किये कौन का संदेश दिया है । यह तु ल-पर
तु ल उठाकर भी कैसे बीबन धारण कर रही है ॥ १५ ॥

वे कथ— पुरुषका । अनकनन्दनी परम विप्रकूट
पर सीठी हुई एक पटनाय क्यापल करत बचन प्रिया था ।

उस बरनेमें पदचानक तीपर इत प्रसार कहा था ॥ २ ॥
सुलक्षणा स्या साधुं जानकी पूयमुनिधना ।

वापसः सहसात्पस्य विद्वार स्तनान्तरम् ॥ ३ ॥
पद विप्रकूटमें कभी अतन इरी भावक धाय मुख

पुष्प लोपी धी । न वाक्तर आपसे कळे उठ गयीं । उस समय किंही कोपने लक्ष्मण उद्वेग उठकी छातीमें लोच मार दी ॥ ३ ॥

पर्यायण च सुप्तस्त्व वेद्युः भरताम्रज ।
पुनश्च किञ्च पत्नी स वन्द्या जनपति वन्द्या ॥ ४ ॥

भरताम्रज । आपल्लेग बायी-बायीसे एक वृत्तेके आङ्गुलें फिर रत्नकर भंते ये । सब आप देखीके आङ्गुलें मन्दाक रत्नकर लोके ये उठ समय पुनः उठी पत्नीने आकर देखीके कळ रेना आरम्भ किया ॥ ४ ॥

तता पुनरुपागम्य विव्दार भुश किञ्च ।
ततस्त्वं बाधितम्लस्याः शोणितम समुक्षितः ॥ ५ ॥

प्यते हैं उठने फिर आकर बोलेसे लोच मार दी । उठ देखीके शरीरसे रक्त बहने लगा और उठल मीग आनेके कारण आप बाग उठे ॥ ५ ॥

यायसेन च सेमेय सतत बाध्यमानया ।
बोधितः किञ्च वन्द्या त्व सुखसुप्त परतप ॥ ६ ॥

शुभ्राच्छ नशाय देनेवाले खुनखन । उस कोपने सब अन्धकार इस तरह पीका दी तब देखी सीताने दुःखसे लोके हुए आपकी भय किया ॥ ६ ॥

तां च द्रष्टु महाबाहो वारिटां च स्तनाम्बरे ।
भात्रीविप इव कुञ्जस्ततो वापस्य त्वमुषिवान् ॥ ७ ॥

महाबाहो । जनकी छातीमें पान हुआ देख आप विरपर लपके समान कुण्ठि हा उठे और इस प्रकार बोले— ॥ ७ ॥

नक्षत्रैः फलं त भीठ वारित ये स्वमात्तरम् ।
का श्रीदेवि सरोपेण पञ्चवक्त्रेण भोगिता ॥ ८ ॥

मीक । किन्तु अपने नक्षत्रके अममालसे दुम्बारी छातीमें पान कर दिया है । तीन कुण्ठि हुए पान मुँहवाले लपके वाय लेख रहा है । ॥ ८ ॥

निरीक्षमाणाः सहस्रा वापस सप्तवैक्षणाः ।
नक्षैः सतधिरेस्तीक्ष्णैस्तामेयाभिमुख्यस्थितम् ॥ ९ ॥

देखा करके आपने सब लक्ष्मण इपर उपर दृष्टि डाली तब उठ कोपके देखा । उठके लीसे वंके लूनमें रंगे हुए ये और वह सीता दक्षीण आर दूर करके ही कहीं बैठा था ॥ ९ ॥

सुता किञ्च स शक्रत्य यायसः पततां वरः ।
धरात्तरगत शाघ्र पवनस्य गती समः ॥ १० ॥

सुता है उदनेच्छमें अथ वह श्रीमा वाच्छ इन्द्रधनुष या अ उन दिने दुम्बान्न विपर रहा था । वह वायु देवताक समान धीमत्तमी था ॥ १० ॥

ततस्तस्मिन् महाबाहो क्रोपसवर्तितेक्ष्णा ।
घायसे त्व म्यन्नाः कृतां मतिं मतिमतां वर ॥ ११ ॥

प्रतिमानोंमें भेद महाबाहो । उस समय आलसे । क्रोपसे मूढने लगे और आपने उठ कोपके फोरे देनेका विचार किया ॥ ११ ॥

स वर्मसंस्तरात् शूद्रा द्रष्टाक्षेण न्ययेज्यया ।
स वीत इव काष्ठाग्निसंज्याकाभिमुखं वायम् ॥ १२ ॥

आपने अपनी कर्माँसे एक कुशा लिफफ हावमें ले लिया और उसे त्रष्टाक्षसे अभिमन्त्रित फिर फिर तो वह कुश प्रथमकाक्षकी मन्त्रके समान प्रकृति हो उठा । उच्छा अथ वह श्रीमा ही था ॥ १२ ॥

स त्वं प्रदीप्तं विक्षेप दर्मे तं घायसे प्रति ।
ततस्तु वायस वीरः स वर्भोऽनुजगाम ह ॥ १३ ॥

आपने उठ कळते हुए कुशको क्रोपकी मंत्र ले दिया । फिर तो वह शीतमान् दर्मे उठ कोपके फरने लगे ॥ १३ ॥

भीतैश्च सम्परित्यक्तः सुरैः सर्वैश्च वायसः ।
शीघ्रैकान् सम्परिक्रम्य वातावरं नाधियच्छति ॥ १४ ॥

आपके भपसे डरे हुए समस्त देवताओंमें भी व क्रोपके त्याग किया । वह तीनों लोकोंमें बकर कम्बला फिर किट्ट करी भी उठे कोई रक्षक नहीं मिला ॥ १४ ॥

पुनरप्यागतस्तत्र त्वत्सकाशमरिहम् ।
त्व त निपतित भूमौ शरण्याः शरणागतम् ॥ १५ ॥

पचाहंमपि क्यकुत्सस्य ह्यपया परिपाकम् ॥

शुभ्रमन भीराम । सब ओरसे निराश होकर । श्रीमा फिर वही आपकी शरणमें आया । शरणमें आ शूचीकर परे हुए उठ कोपके आपने शरणमें ले कि क्योंकि आप शरणागतकलक हैं । वद्यपि वह लपके ने वा तो भी आपने कृपापूर्वक उठकी रखा ॥ १५ ॥

मोघमरु न शर्म्यं तु कर्तुमित्येष राघव ॥ १६ ॥
भवांस्त्वत्साशिर काञ्चस्य विमस्ति स स हस्तिपम् ।

खुनखन । उठ त्रष्टाक्षको अर्थ नहीं किया उच्छा या इच्छिने आपने उठ कोपकी शक्तिनी सं श्रेक डाली ॥ १६ ॥

राम त्या स नमस्कृत्य राघो दशरथस्य च ॥ १७ ॥
विसृष्टस्तु तदा काकः प्रतिपद्ये स्वमाख्यम् ।

भीराम । तदनन्तर आपसे विदा ले वह श्रीमा शूट पर आपका और स्वर्गमें राम दशरथको नमस्कार कर अपने परश्व लका गया ॥ १७ ॥

पयनस्यैवां भेद्यः सख्यधाम्नीलधामपि ॥ १८ ॥
किमर्थमत्र रक्षसु न योजयसि राघव ।

(सीता खरी है—) पञ्चनन्दन । इत प्रकर मन्त्र-
वेद्यमंत्रे भद्र, दक्षिणायमी और श्रीकृष्ण इत हुए मी
कर राघवोंकर मन्त्रे मन्त्रका प्रयोग क्यों नहीं
करत है ? ॥ १८ ॥

न शान्ता न गन्धवा नासुरा न महद्रज्जाः ॥ १९ ॥
तव राम त्वे शकास्त्रया प्रतिसमाप्तिमुत् ।

“शिवम् ! शान्त गन्धव, भद्र और द्रव्य क्षेत्र मी
कनकह्वने आकाश शानता नहीं कर सकत ॥ १९ ॥

तव धीर्यवतः कश्चिदस्मयि यद्यस्ति सम्भ्रमः ॥ २० ॥
स्मिन् मुनिप्रतिवापैर्हस्यता युधि राक्षण ।

“आप इत-पराक्रमत हन्त्र है । यह नरे प्रति
भयका कुछ मी आदर है ता आप धीर ही अपने शीखे
घनते स्व-मिने राघवको नर दक्षिण ॥ २० ॥

शत्रुपदादधामानाय लक्ष्मणो वा परतपः ॥ २१ ॥
स किमर्थं नरवरा न मां रक्षति राघव ।

हमन् ! मयका मन्त्रे भाईभी भाइका संकर शत्रुओं-
का स्थान देनेवाक लक्ष्मणको नरभेद कर्मण क्यों नहीं
की रख करत है ? ॥ २१ ॥

शकौ तौ पुरुषध्यात्री वाय्वग्निसमतज्जसौ ॥ २२ ॥
सुपनामपि युधयो किमर्थं मामुपसृत ।

“न जनों पुरुषसिद्धि भीरुन और कर्मण वायु तथा
धूमिक दुस्य तन्त्री एव दक्षिणाभी है, इतधामोंके भिने
मी दुबक है । त्रि किमन्त्रि नरे देनेका कर रहे है ? ॥ २२ ॥

ममैव दुपहत किञ्चिन्महद्वस्ति न शशय ॥ २३ ॥
समर्थो सहिता यन्मा न रक्षत परतपौ ।

इतने संहर नहीं कि नरा ही कोई देका महान् पान
है त्रिक कारण न जनों शत्रुकाजी और एक साथ रहकर
मन्य हात हुए नही रखा नहीं कर रहे है ? ॥ २३ ॥

वेद्यया शक्यं भुम्भा कर्तव्यं सायुभाषितम् ॥ २४ ॥
पुनरप्यहमायां तामिद् यथानमनुषम् ।

पञ्चनन्दन । विदेह-मिन्त्रीका कर्मकाजक ठचन बनन
सुनकर मीन पुन भावा सीतात यह रात कर— ॥ २४ ॥

स्रक्साक्षविमुखा रामा ह्यसि सत्यतः शप ॥ २५ ॥
यम तु काभिमूत च कश्चनया परितप्यत ।

हय । मी कल्पकी धनय काकर कइय है कि
भीरुनकर्मके दुःशर शोकके कारण ही अब कायोंक विरत
हय है । भीधमके तुको इतक कर्मण मी कत हा
रहे है ॥ २५ ॥

कथं चिद् भवती ह्य न काळः परिशोचिह्वम् ॥ २६ ॥
मन्त्रिन् मुहुर्ते दुःखामानन्त द्रक्ष्यसि भामिनि ।

किसी तरह भा-अ दशन हा गया (आपके निवास-
स्थानका पता क्या गया) भव अब काक करनेका भयकर
नहीं है । नमिनि । मान इकी मुहुर्ते मनन खरे दु-खोंका
कन्त हुआ खलंगी ॥ २६ ॥

साधुभौ नरशार्ङ्गुली राजपुथौ परतपौ ॥ २७ ॥
त्यहृद्यनहृतोस्साहो लज्जा भस्तीर्क्षरप्यतः ।

“शत्रुओंको संशय देनेवाक न जनों नरभेद राघवका
मानके दशनक भिन् उल्लासित हा कइनापुत्रीका कर्मकर मन्त्र
कर देवे ॥ २७ ॥

हत्या च समरे रौद्र राघव सहबाधधम् ॥ २८ ॥
राघवस्था घटारोह लघुरिं तपिता ह्ययम् ।

भराराह ! अनराह्वपने रौद्र राघव राघवका कम्पु
दान्यशोहरित मारकर लुनापवी कर्मण ही भावका कम्पनी
पुरिने क बरिये ॥ २८ ॥

यत् तु रामो विज्ञानीवाग्भिज्ञानमभिन्विदे ॥ २९ ॥
प्रीतिसंजनन तस्य प्रदानु तत् स्वमहसि ।

शुद्धी-शापा देवि । अब आप मुझे कोई देखे परधान
शोभिये, त्रिने भ्रंशमन्त्रकी शानते हैं और वो उनके मनको
प्रमन करनेवाका हो ॥ २९ ॥

सावित्रीक्ष्य विश सखा यण्युद्धयनमुत्तमम् ॥ ३० ॥
मुपस्था यत्नाद् ददौ मया मणिमत महाबल ।

“महाबत्री शेर । तव उ-होन नरों अर देखकर
जनोंमें शोभने सोम इत उत्तम नरिओ मन्त्रे कइते
काकर जसे द दिया ॥ ३० ॥

प्रतिगृष्टा मणिं दाम्नीं तव हता रघुप्रिय ॥ ३१ ॥
शिरसा सम्प्रणम्यैतामहभागमन तपरे ।

पञ्चमिहोके प्रियतम भीरुन । मानक बिने इत
मन्त्रिण जनों हायोंके कइर मीने कइते-रुको मन्त्रक
कइकर प्रदान किना और यों अलक सिन् मी उतावण
हा उठा ॥ ३१ ॥

गमन च कृतेरसाहमवेक्ष्य परवपिनी ॥ ३२ ॥
पिपथमान च हि मामुयाच जनकात्मजा ।

यधुपुष्पमुखां वीना यण्यगद्वभाषिणी ॥ ३३ ॥
ममोत्पतनसम्भ्राम्ता शश्वेगसमाहवा ।

मामुयाच तत साता समान्याऽसि महाक्षय ॥ ३४ ॥
यद् द्रक्ष्यसि महाशार्ङ्गं रान कर्मलताचनम् ।
लक्ष्मण च महाशार्ङ्गं दपरे मे यन्तास्त्रम् ॥ ३५ ॥
“कोटिक विन् उल्लासित हा मुझे अपने शरीरका पकते

दक्ष मुन्दरी जनकनन्दिनी क्षीता बहुत दुःखी हो गयी ।
उनके मुखपर मौसुओंकी धार नह सखी । मेरी उलझने
को देखीसे वे पशप गयी और शोकके वेगसे भारव हो
उठी । उस समय उनका स्वर दशभृगुवद् हो गया था । वे
मुहते करने लगीं—'महाकपे ! तुम बड़े खोभाग्यवादी हो,
जो मेरे महाबाहु प्रियतम कमलनवन श्रीरामको तथा मेरे
मयाली देवर महाबाहु कर्मणको भी अपनी आँखोंसे
देखलो' ॥ १२—१५ ॥

सीतयाप्ययमुक्तोऽहमस्तुथ मैथिलीं तथा ।
पृष्ठमारोह मे वृषि शिरं जनकनन्दिनि ॥ १६ ॥
पायसे वृश्यामप्यद ससुप्रीयं सखरुमणम् ।
राष्य च महाभागे भर्तारमसितोक्षणे ॥ १७ ॥

सीताकीक देवा करनेपर मैंने उन मिथिलेशकुमारीसे
कहा—'देवि ! जनकनन्दिनी ! भाग श्रीम मेरी पीठपर
बढ़ जाइये । महामनो ! श्यामलबन्धने ! मैं सभी सुप्रीय
और कर्मणवदित आपके पक्षिद्वय भीरपुनापजीका आपको
दर्शन करता हूँ' ॥ १६ १७ ॥

सामसीमां ततो वेधी नैप धर्मो महाकप ।
यत्ते पृष्ठ सिधेयेऽह क्षयशा हरिपुङ्गव ॥ १८ ॥
'यह मुनकर सीतादेवी मुहते बोलीं—'महाकपे ! वानर
पिरोमणे ! मेरा यह पन नहीं है कि मैं अपने बगमैं हाथी
दुरैं भी स्वेच्छते दुग्हायी पीठका भाग्य हैं ॥ १८ ॥

पुरा च यर्हं वीर स्पृष्टा गात्रेषु रक्षसा ।
तत्रार्हं किं करिष्यामि फालेनोपनिषिठिता ॥ १९ ॥
गरुडस्य कपिशार्तुल पत्र तौ नृपसेः सुतौ ।

और ! वहक ओ राक्षस राक्षसे ज्ञाप मेरे मर्दोंका
हथी हो गया उस समय वहाँ मैं क्या कर सकती थी ?
मुझे तो करने ही पीदित कर रक्खा था । भतः वानर
प्रवर ! वहाँ वे दोनों रामकुमार हैं वहाँ दूम आओ' ॥ १९ ॥

ह्यार्ये भीमशान्मपये कवमीकीके आदिशब्दे मुन्दरकावदे स्तव्यकित्तमः सर्गः ॥ १७ ॥

इस प्रकार अथलक्षिकनिर्मित भारतरामायण शब्दिकाम्यके मुन्दरकावदे सरलठरीं सर्ग पूरा हुआ ॥ १७ ॥

अष्टपष्टितम सर्ग

हनुमान्जात्रा सीताके सदह और अपनशारा उनक निवारणका वृत्तान्त वताना

भपाहमुत्तर दृष्या पुनरुक्तः ससम्प्रमम् ।

तप स्तव्यत्नरवगाम साहाय्यवृत्तमप्य च ॥ १ ॥

'पुष्पनिद सुनन्दन ! आपक प्रति स्नेह और लोहारके

हृदयेषं सा समाभाष्य भूयः संवेष्टुमास्मिता ॥ ४० ॥
हनुमन् सिंहसकाशौ तालुभौ रामसङ्गम्यौ ।
सुप्रीयं च सहस्रात्यं सर्वान् नृया म्नामपमम् ॥ ४१ ॥

'देखा ककर के फिर मुझे संदेश देने लगीं—
'हनुमन् ! सिंहके समान पराक्रमी इन दोनों भार्य भीप
और कर्मणके; मन्दिनोत्तरित सुप्रीयसे तथा भव क
लोभोंसे भी मेरा कुसल-वभाचार करना और उनका
पूजना ॥ ४ ४१ ॥

यथा च स महाबाहुर्मा तारयति राक्षसः ।
मन्नात्पुन्नाम्नुसरोभात्तत्त्वमाख्यातुमर्हसि ॥ ४३ ॥

'तुमवहाँ देखी बात करना विरुधे महाबाहु खुनाक
की हव तुल्यवागसे मेरा उदार करे ॥ ४२ ॥

इत् च तीमं मम शोकवेग
रक्षोभिरेभिः परिभर्त्सव च ।

न्यास्तु रामस्य गताः समीपं
शिवद्वय तेऽन्वास्तु हरिप्रवीर ॥ ४१ ॥

'वानरोंके प्रमुख वीर ! मेरे इस तीम शोक-वेग
तथा इन राक्षसोंका जो मुझे बचाना-प्रमथना करे
इतका भी उन भीरमपम्यकीके पास जाकर रहने ।
दुग्हाय मार्ग मङ्गलम्य हो' ॥ ४१ ॥

एतत् तवार्पा नृप सपता सा
सीता वधः प्राह विपान्पूर्वम् ।

एतद्य सुवृषवा गदित यथा त्व
अश्लक्ष सीतां कुशला समग्राम् ॥ ४४ ॥

'नरीशर ! आपकी प्रियतमा संवमधीन अर्था लीने
बड़े विपारके साथ वे लारी बातें करी हैं । मेरी वरी
दुरैं इन सब बावोंपर विचार करके आप विधात करे कि
करीपिरोमनि सीता सकुशल हैं ॥ ४४ ॥

कारण देवी सीताने मया लकार करते जानेक बिने उलझ
दुप मुसह पुनः वह उत्तम बात करी—॥ १ ॥

पर्यं पदुविष पाच्यो यमा वाचावधित्यव्या ।

पथा मा प्राप्नुयाच्छ्रीं हत्वा राघणमाह्वये ॥ ५ ॥

‘‘पवनकुमार ! तुम दधरवन्दन मगवान् भीरुमसे
अनेक प्रकारसे देखी बातें कहना, बिल्ले ने समराङ्गणमें वीर
ही रणवक्र वष करके मुझे प्राप्त कर लें ॥ २ ॥

यदि वा मम्यसे वीर वसैकाहमरिष्यम् ।
कस्मिन्विषत् संभूते देवो विभास्त श्वो यमिष्यसि ॥४॥

‘‘शुभ्रभ्रमर दमन करनेवाले वीर ! यदि तुम ठीक समझो
तो यहाँ किसी गुप्त आनने एक दिनके बिये ठहर जाओ ।
अब विभाम करके कछ खँदे यहाँसे चले जाना ॥ ३ ॥

मम आन्यह्यभाभ्यायाः सांनिभ्यात् तव धामर ।
मस्य शोकविपाकस्य मुहूर्ते स्याद् विमोक्षणम् ॥ ४ ॥

‘‘पानर ! तुम्हारे निष्कट रहनेसे मुझ मन्दाग्रिणीको इस
छेकमिपाकसे थोड़ी देरके बिये मी कुटकाग मित्र जाव ॥४॥
यदि हि त्वयि विक्रान्ते पुनरागमनाय वै ।
श्यामामपि संदेहो मम स्वाम्नाञ्च सशया ॥ ५ ॥

‘‘तुम पराक्रमी वीर हो । जब पुनः आनेके बिये यहाँसे
कच आओगे, तब मेरे प्राणोंके बिये मी संदेह उपस्थित हो
कन्या । इसमें संशय नहीं है ॥ ५ ॥

तवावशीमञ्जः शोको भूयो मां परित्तापयेत् ।
तुष्णान् तुष्णपरामूर्तां दुर्गतां तुम्हभागिनीम् ॥ ६ ॥

‘‘तुम्हें न देखनेसे होनेवाले शोक तुष्ण-पर-तुष्ण बढाने-
से परामव तथा दुर्गतिमें पड़ी हुई दुष्ट दुःखिनीको और भी
खलप देता खण्य ॥ ६ ॥

अथ च वीर संदेहस्तिष्ठतीव ममाग्रतः ।
सुमहांस्त्वसहारेषु हर्षुसेषु हरीश्वर ॥ ७ ॥

कथं नु खलु तुष्यार् तरिष्यसि महोदधिम् ।
यानि हर्षुससैन्यानि तौ वा नरधरात्मजौ ॥ ८ ॥

‘‘वीर ! बानरखब ! मेरे सामने यह महान् संदेह-ख
कहा हो गया है कि तुम बिल्लेके सहायक हो, उन बानरों और
मन्त्रियोंके दोषे हुए मी शीर्षे और बामरोंकी वे सेनाएँ तथा
वे दोनों राघकुमार भीरुम और ब्रह्मण इस अमार पाण्डार
को कैसे पार करेंगे ? ॥ ७-८ ॥

श्याणामेव भूतानां सागरस्यास्य छङ्गमे ।
राक्षिः स्याद् धैरन्तेपस्य यायोर्षां तव धामण ॥ ९ ॥

‘‘निष्पाव पवनकुमार ! तीन ही भूतोंमें इस समुद्रको
अपनेकी एक देवी जाती है—निन्दानन्दन गरुड़दे, बाधु
देवतामें और तुममें ॥ ९ ॥

तस्मिन् कार्यनिर्पणो वीरेव तुरतिक्रमे ।
किं पश्यसि समाधानं मुद्दि कार्यविधां पर ॥ १० ॥

‘‘वीर ! जब इस प्रकार इस कार्यका साधन दुष्कर हो गया
है, तब इसकी विधिके बिये तुम कौन-या उपायान (उपाय)
देखत हो । अथविधिके उपाय आननेवालोंमें तुम अज्ञ हो
अतः मेरी बातका उत्तर हो ॥ १ ॥

‘‘वीर ! जब इस प्रकार इस कार्यका साधन दुष्कर हो गया
है, तब इसकी विधिके बिये तुम कौन-या उपायान (उपाय)
देखत हो । अथविधिके उपाय आननेवालोंमें तुम अज्ञ हो
अतः मेरी बातका उत्तर हो ॥ १ ॥

काममस्य त्यजेवैकः कार्यस्य परिसाधने ।
पथात्तः परधीरञ्च यशस्यस्ते बल्लोदयः ॥ ११ ॥

विषयी शीरोक्ष नाथ करनेवाले कपिभेद ! इसमें संदेह
नहीं कि इस कार्यकी विधिके बिये तुम अकेले ही बहुत हो,
तथापि तुम्हारे बल्लञ्च यह तत्रक तुम्हारे बिये ही यशकी हृदि
करनेवाला होग्य (भीरुमके बिये नहीं) ॥ ११ ॥

बल्लैः समर्पेयिषि मा हत्वा राघणमाह्वये ।
विजयी स्वपुरीं रामो मयेत् तत् स्यात् पशस्करम् ॥ १२ ॥

‘‘यदि भीरुम अपनी सम्पूर्ण सेनाके साथ यहाँ आकर
तुझमें राघवको मार बाँके और विजयी होकर मुझे अपनी
पुरीको के फलें तो वह उनके बिये यशकी हृदि करनेवाला
होग्य ॥ १२ ॥

यथाह तस्य वीरस्य धनातुपधिना हता ।
रक्षसा तद्गयावेश तथा माहति राघवः ॥ १३ ॥

‘‘बिल्ले प्रकार राघव राघवने वीरवर मगवान् भीरुमके
भयसे ही उनके धामने न आकर छत्रपूर्वक बनसे मेरा अप
इरण किया था, उस तरह भीरुपुनायकीसे मुझे नहीं प्राप्त
करना चाहिये (वे राघवको मारकर ही मुझ से फलें) ॥१३॥
बलीस्तु संकुळा कृत्वा लङ्का परवत्सर्वम् ।
मा मयेद् यदि काकुत्स्थस्तत् तस्य सद्यश्च भवत् ॥ १४ ॥

शुभ्रभ्रमर खार करनेवाले ककुत्सकुम्भयण भीरुम
यदि अपने धैरिणोंद्वारा लङ्काका परवकित करके मुझे अपने
धम के बयें तो यह उनके बोध पराक्रम होग्य ॥ १४ ॥

तत् पथा तस्य विक्रान्तमनुकृप महारममः ।
अभत्याहवशूरस्य तथा त्वमुपपादय ॥ १५ ॥

प्राहम्ना भीरुम गंग्राममें छोड़ प्रकट करनेवाले हैं,
अत बिल्ले प्रकार उनके अनुरुप पराक्रम प्रकट हो सकें,
वेना ही उपाय तुम करो ॥ १५ ॥

तद्योपहितं धार्ष्यं प्रभित हेतुसहितम् ।
निशम्याहं ततः शोर्षं धार्ष्यमुत्तरमग्रवम् ॥ १६ ॥

‘‘छेदारोपीके उस अधिप्रायमुक्त किनवर्ण और सुकि-
संगत बचनको सुनकर अन्तमें मैंने उग्र इस प्रकार उत्तर
दिया— ॥ १६ ॥

देवि हर्षससैन्यानामीश्वरः पूषतां परः ।
सुग्रीव सत्त्वसम्पन्नस्त्वद्यै कृतनिश्चयः ॥ १७ ॥

‘‘देवि ! बानर और भाधुभ्रोंकी उनाक स्वामी कविभेद

सुग्रीव बड़े शक्तिशाली हैं। वे आपका उदार करनेके लिये हृदय निकाल कर चुके हैं ॥ १७ ॥

तस्य विक्रमसम्पन्नाः सत्यवतो महाबलाः ।
मनःसकल्पसहस्रा निवृद्धो हरपः स्थिताः ॥ १८ ॥

“उनके पास पराक्रमी, शक्तिशाली और महाबली बानर हैं, जो मनके संकल्पके समान तीव्र गतिसे चलते हैं। वे लक्ष-लक्ष उदा उनकी आहाके अधीन रहते हैं ॥ १८ ॥

येनां गोपिर्नाथस्वाद्य विर्यं सञ्जत गतिः ।
न च कर्मणु सीदन्ति महत्स्वमिततेजसाः ॥ १९ ॥

“गोपि, ऊपर और अगल-बगलमें कहीं भी उनकी गति नहीं सकती है। वे अमिततेजस्वी बानर बड़े-बड़े कर्मों का पड़नेपर भी कभी विचिन्न नहीं होते हैं ॥ १९ ॥

असङ्ख्यं तैर्महाभागैर्बालैर्वैश्वसयुतैः ।
प्रवक्षिणीकृत्वा भूमिर्षायुमार्यानुस्मरिणिः ॥ २० ॥

“आयुमार्ग (आश्रय) का अनुसरण करनेवाले उन महाभाग बन्वान् बानरोंने अनेक बार इस पृथ्वीकी परिक्रमा की है ॥ २ ॥

मक्षिशिष्याश्च सुस्याश्च सन्ति तत्र वयोकिंसाः ।
महाः प्रत्यन्तराः कश्चिद्यथास्ति सुग्रीवसंनिधौ ॥ २१ ॥

“यहाँ घुसते बन्कर तथा भरे समान शक्तिशाली बहुत-से बानर हैं। सुग्रीवके पास कोई देवा बानर नहीं है जो घुस से किसी बातमें कम हो ॥ २१ ॥

अहं तावद्विह प्राप्तः किं पुनस्तं महाबलाः ।
महिं प्रकृष्यामि प्रेष्यन्ते प्रेष्यन्ते हितरे जनाः ॥ २२ ॥

“जब मैं ही यहाँ आ गया तब फिर उन महाबली बानरों-के आनेमें क्या संदेह हो सकता है! आप जानती होंगी कि पुत का बानर बनाकर वे ही जंग में भेजे जाते हैं जो निम्न-श्रेणीके होते हैं। अच्छी श्रेणीके लोग नहीं भेजे जाते ॥ २२ ॥

तद्वचं परित्याप्तं वेकिं मम्युत्पैठुं ते ।
एकोत्पातेन ते खड्गामेष्यन्ति हरिचूचपाः ॥ २३ ॥

“अब देखिए। जब उत्पन्न करनेकी व्यवस्था नहीं है। आपका मानसिक दुःख दूर हो जाना चाहिये। वे बानर मृगपति एक ही लक्ष्यमें लक्ष्मणमें पहुँच जायेंगे ॥ २३ ॥

मम पृष्ठगतौ तौ च अद्भुतसूर्याभिवोवितौ ।
त्वरसकृत्वा महाभाग सृष्टिहावागमिभ्यताः ॥ २४ ॥

“अपने पीछेगए जाते हैं अद्भुतसूर्याभिवोवितौ। त्वरसकृत्वा महाभाग सृष्टिहावागमिभ्यताः ॥ २४ ॥

महामागे। वे पुरुषसिंह श्रीधर और कर्मण उद्योगपर उभित होनेवाले कर्मण और सर्वोर्ध्व गति पीठपर बैठकर आपके फल का चर्चेंगे ॥ २४ ॥

अरिष्ण सिंहसंक्रान्ता क्षिप्र द्रक्ष्यसि राघवम् ।
खड्गमयं च धनुष्मन्तं खड्गाहारमुपाप्तम् ॥ २५ ॥

“आप धीमे ही देखेंगी कि सिंहके समान पराक्रमी राघव भीयम और कर्मण हावमें धनुष लिये खड्गके छ पर आ पहुँचे हैं ॥ २५ ॥

नखवज्रायुधान् वीरान् सिंहशार्ङ्गविक्रमान् ।
यानयान् वारणेन्द्राभान् क्षिप्र द्रक्ष्यसि सगताम् ॥ २६ ॥

“नख और बाढ़ों ही किन्त आयुष हैं जो सिंह को बाधक समान पराक्रमी हैं तथा बड़े-बड़े गजसभोंके उभय किन्धी विद्याय कर्मा है, उन वीर बानरोंके आप धीमे ही यहाँ एकत्र हुआ देखेंगी ॥ २६ ॥

शैलम्बुवमिकाधानां खड्गाम्बुमसाजुषु ।
मूर्त्तौ कपिसुख्यातां नक्षिराच्युष्यसे स्वबम् ॥ २७ ॥

“खड्गवती मन्मथवर्तके सिद्धादेवर पराङ्गों और जेवेंके ध्यान विद्याय शरीरवाले प्रधान प्रधान बानर आपका सम्भ करेंगे और आप धीमे ही उनका सिद्धाद सुनेंगी ॥ २७ ॥

निवृत्तपनवास च त्वया सार्धमरिष्यम् ।
अभियुक्तमयोभ्यायां क्षिप्र द्रक्ष्यसि राघवम् ॥ २८ ॥

“आपको कहीं ही यह देखनेका भी लोभन्य प्रद होगा कि धनुषोंका दमन करनेवाले श्रीरघुनाथकी बनकली भवधि पूरी करके आपके हाथ अयोभ्यामें जाकर खोंके उभय पर अभियुक्त हो गये हैं ॥ २८ ॥

ततो मया वाग्भिरदीनवाचिणी
शिवाभिरिन्द्राभिरभिप्रसाहिता ।

जवाह शान्ति मम मैत्रिकारमन्त्र
तथासिधोकेन तथासिपिबिद्या ॥ २९ ॥

“आपके अस्मत्त शोकसे बहुत ही पीड़ित होनेपर भी किन्धी बाणीमें कभी हीनता नहीं आने पायी, उन सिद्धिकेत-कुमारोंको जब मैंने त्रिषु एवं महामुन्य बन्मोहाय शान्त्यम देकर प्रकृत किन्ध तब उनके मनको कुछ शान्ति मिली ॥ २९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये सुन्दरकाण्डेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

इत प्रकर श्रीमद्वाल्मीकीयस्य श्रीरामायणस्य सुन्दरकाण्डस्य अष्टादशोऽध्यायः पूरा हुआ ॥ १८ ॥



मात्र हनुमान्ने विदेहनन्दिनी सीताका फला अग्रपर—
उह्म अनी भोंभो देवकर भर्तके अनुत्तर मेरी, समस्त
सुखदात्री और महाकवी छत्रमण्डी भी रख करी है ॥ ११ ॥

इदं तु मम दीनस्य मनो भूयाः प्रकर्षति ।
यदिहास्य प्रियाक्यातुर्न कुर्मि सद्यश्च प्रियम् ॥ १२ ॥

अब मेरे पास पुरस्कार देने योग्य वस्तुका अभाव है
यह बात मेरे मनमें बड़ी कष्टकरी पैदा कर रही है कि क्यों
किन्ने मुझे ऐसा प्रिय संबन्ध मुनाया उत्तर में कोई वैद्य
ही प्रिय कर्ष नहीं कर पा रहा हूँ ॥ १२ ॥

एष सर्वस्वभूतस्तु परिष्वङ्गो हनुमता ।
मया कालमिमं प्राप्य वृत्तस्तस्य महाह्रमसा ॥ १३ ॥

एष समस्त इन महात्मा हनुमान्को मैं केवल अपना
प्रणय अखिण्डन प्रदान करता हूँ क्योंकि यही मेरा
सर्वस्व है ॥ १३ ॥

इत्युक्त्वा प्रीतिहृद्यङ्गो रामस्त परिपलजे ।
हनुमन्तं हृत्वारामां हृत्कार्यमुपागतम् ॥ १४ ॥

ऐसा करते-करते एतनासुखीके आज्ञा-मन्त्र प्रेमसे पुष्किल
हो गये और उन्होंने अपनी आसके पाठनमें सफ़लता पाकर
बैठे हुए पवित्रत्मा हनुमान्कीकां हृदयसे क्मा किया ॥ १४ ॥

प्यात्वा पुनरवाग्नेद् वक्ष्यन् रघुसत्तमः ।
हरीष्यामीश्वरस्यापि सुप्रीयस्येपतृष्णताः ॥ १५ ॥

हृत्कार्ये श्रीमद्भारमात्रे वाक्सीक्रीये अरिक्वाम्ये पुत्रकाम्ये प्रथमः सर्वः ॥ १ ॥
इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीमिर्मितं मार्गान्तरात् अरिक्वाम्ये पुत्रकाम्ये पदत्रय सर्वं पूरा हुआ ॥ १ ॥

द्वितीय सर्ग

सुग्रीवका भीरामको उत्साह प्रदान करना

त तु शोकपरिपूर्णं राम वृदारथात्मजम् ।
उवाच वक्ष्यन् श्रीमान् सुग्रीवा शोकनाशानम् ॥ १ ॥

इय प्रकार शोकसे संतप्त हुए अग्रमनन्दन भीरामसे
सुग्रीवने उनके शोकका निवारण करनेवाली बात कही—॥ १ ॥

किं त्यथा त्वयत्तं वीर यथात्म्यः प्राकृतस्तथा ।
मेघं भूस्थयञ्च सत्वापं हृत्पञ्च इय सौहृदम् ॥ २ ॥

वीरवर ! आप वृक्षोंके खपाज मनुष्योंकी भाँति क्यों
संशय कर रहे हैं ? आप इस तरह चिन्तित न हों। जैसे
हृत्पञ्च पुरुष वैहारको त्याग देता है उसी तरह आप भी
इस संशयको छोड़ दें ॥ २ ॥

सत्तापस्य च तं स्थानं नहि पश्यामि रामम् ।
प्रवृत्तासुपलब्धार्थां प्राप्ते च मिसये ॥ ३ ॥

किं धोही देखकर विचार करते सुखसंश्लेषके भ्रम
में वानरराज सुग्रीवको मुनाकर यह बात कही—॥ १ ॥

सर्वथा सुकृत तावत् सूतायाः परिमार्गणम् ।
सागर तु समासाद्य पुननष्ट मनो मम ॥ ११ ॥

मनुष्यां । धीतात्री साकत्र क्रम तो मुनाकामसे क्या
हो गया किन्तु सुकृतकभी दुःखसाक निवार करने
मनका उत्साह किं नष्ट हो गया ॥ ११ ॥

कथं नाम समुद्रस्य पुण्यास्य महाभ्रमः ।
हरयो वृक्षिण पार गमिष्यन्ति समागताः ॥ १४ ॥

महान् कल्पशिशे परिपूर्णं समुद्रको पार करना ठीक
ही कठिन काम है। यहाँ एकत्र हुए ये वानर समुद्रके रवि
उपर कैसे पहुँचेंगे ॥ १४ ॥

यद्यप्येव तु वृत्तान्तो वैदेह्या गवितो मम ।
समुद्रपारगमने हरीषां किमिषोत्तरम् ॥ १८ ॥

मेरी छीताने भी यही धैर्य उठाना था किन्तु इतना
अभी-अभी मुझसे क्या गया है। इन वानरोंके समुद्रके प
रानेके निश्चयमें जो प्रश्न सदा हुआ है उत्तर कहलें
उत्तर क्या है ? ॥ १८ ॥

इत्युक्त्वा शोकसन्भ्रांत्यो रामः शत्रुनिर्वाहका ।
हनुमन्तं महात्वाद्भ्रुस्तो ध्यानमुपागमत् ॥ १९ ॥

हनुमन्कीसे ऐसा कहकर शत्रुपुत्रन महात्माहु श्रीम
श्रीमद्वाल्मीकीय होकर बड़ी किन्तयमें पढ़ गये ॥ १९ ॥

हनुमन्कीसे ऐसा कहकर शत्रुपुत्रन महात्माहु श्रीम
श्रीमद्वाल्मीकीय होकर बड़ी किन्तयमें पढ़ गये ॥ १९ ॥

हनुमन्कीसे ऐसा कहकर शत्रुपुत्रन महात्माहु श्रीम
श्रीमद्वाल्मीकीय होकर बड़ी किन्तयमें पढ़ गये ॥ १९ ॥

हनुमन्कीसे ऐसा कहकर शत्रुपुत्रन महात्माहु श्रीम
श्रीमद्वाल्मीकीय होकर बड़ी किन्तयमें पढ़ गये ॥ १९ ॥

हनुमन्कीसे ऐसा कहकर शत्रुपुत्रन महात्माहु श्रीम
श्रीमद्वाल्मीकीय होकर बड़ी किन्तयमें पढ़ गये ॥ १९ ॥

हनुमन्कीसे ऐसा कहकर शत्रुपुत्रन महात्माहु श्रीम
श्रीमद्वाल्मीकीय होकर बड़ी किन्तयमें पढ़ गये ॥ १९ ॥

हनुमन्कीसे ऐसा कहकर शत्रुपुत्रन महात्माहु श्रीम
श्रीमद्वाल्मीकीय होकर बड़ी किन्तयमें पढ़ गये ॥ १९ ॥

हनुमन्कीसे ऐसा कहकर शत्रुपुत्रन महात्माहु श्रीम
श्रीमद्वाल्मीकीय होकर बड़ी किन्तयमें पढ़ गये ॥ १९ ॥

हनुमन्कीसे ऐसा कहकर शत्रुपुत्रन महात्माहु श्रीम
श्रीमद्वाल्मीकीय होकर बड़ी किन्तयमें पढ़ गये ॥ १९ ॥

हनुमन्कीसे ऐसा कहकर शत्रुपुत्रन महात्माहु श्रीम
श्रीमद्वाल्मीकीय होकर बड़ी किन्तयमें पढ़ गये ॥ १९ ॥



भौराम सुप्रावक्ष लक्ष्मण गङ्गा करनक निच उमाहिन सर रह ह



श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणम्

युद्धकाण्डम्

प्रथम सर्ग

हनुमान्जीकी प्रशंसा करके धीरामका उन्हें हृदयसे लगाना और सप्तद्रको पार करनेके लिये चिन्तित होना

श्रुत्वा हनुमत्तो वाप्य यथावद्भिभाषितम् ।
पमा प्रीतिसमायुक्तो वाप्यमुत्तरमब्रवीत् ॥ १ ॥

हनुमान्जीके द्वारा मण्डलरूपसे कहे हुए इन वक्तोंको सुनकर मन्वान् धीराम बड़े प्रसन्न हुए और इस प्रकार उक्त वचन बोले— ॥ १ ॥

इत हनुमता कथं सुमहद् भुवि युद्धभम् ।
मनसापि यद्व्येन न शक्य धरणीतले ॥ २ ॥

‘हनुमन्ते कहा मरी कथं किया है । भूखण्ड देख कर हीनेत्र कठिन है । इस भूखण्डमें वृक्ष कोई तो देख कर हीनेत्री इत मनके द्वारा खेच भी नहीं सकता ॥ २ ॥

नहि त परिपद्यामि पत्तरेत महोद्भिम् ।
कस्यच गङ्गाद् पापोरम्यश्च हनुमता ॥ ३ ॥

यारह वायु और हनुमानको छोड़कर वृक्ष किसी-किसी में एक नहीं देखता; जो महाकारणसे बंधे उनके ॥ ३ ॥

वेङ्कलपयसाणां गन्धर्वोरगरससाम् ।
सप्रधुष्यां पुरीं बभ्रु रायजेन सुरक्षिताम् ॥ ४ ॥

मन्दिः सत्त्वमाभिरय जीवन् कोनाम निष्कमेत् ।
पत्तय राजव यत्तु गन्धर्वं नाम और राक्ष—इनमेंसे निर्यक विषे भी किसी आक्रमण करना असम्भव है तथा वे एतन्के द्वारा मन्दीमंदि मुक्ति है उस बभ्रुपुरीमें अपने एक मन्दि प्रवेश करके तीन महीने जीवित निर्यक करत है ॥ ४ ॥

या विराट् सुदुराधर्मा राक्षसश्च सुरक्षिताम् ॥ ५ ॥
या वीरवल्हस्यस्यो न समः स्यादनुमता ।

य हनुमानके समान वल-वराक्रमसे सम्यक् न हा एक हीने पुरा राक्षसोंद्वारा मुक्ति; अत्यन्त दुर्बल ब्रह्मामे प्रवेश कर सकता है ॥ ५ ॥

कृपाकर्म हनुमता सुप्रोथस्य कृत महत् ।
एवं विधाय स्वयत्न सहश विप्रमन्य च ॥ ६ ॥

मह व रघुपनाथ महामन्य महापदाः ।
यद्वा द्वाभताप भमता परिरक्षितः ॥ ११ ॥

‘हनुमान्ते समुद्र-खड्गन मारि करके द्वारा अपने परक्रमके अनुस्य यह प्रकृ करके एक कल्पे सेबकके वायु युष्मिन्क बहुत बड़ा कर्म सम्यक् किया है ॥ ६ ॥

यो हि श्रुत्यो नियुक्तः सन् भवा कर्मणि युष्करे ।
कुर्याद् सत्यतुरगेण तमाहुः पुरुषोत्तमम् ॥ ७ ॥

य सेबक स्वामीके द्वारा किसी युष्कर कर्ममें नियुक्त होनेपर उसे पूरा करके उदतुस्य वृक्षे कर्मको भी (यदि वह पुंस्य कर्मका विरोधी न हो) सम्यक् करता है वह सेबकमें उक्त कहा गया है ॥ ७ ॥

यो नियुक्तः पर कथं न कुर्यान्नुपतेः प्रियम् ।
श्रुत्यो युक्तः समर्थश्च तमाहुः मन्मय नरम् ॥ ८ ॥

य एक कर्ममें नियुक्त होकर वाप्यता और समर्थ होनेपर भी स्वामीके वृक्षे प्रिय कर्मको नहीं करत (स्वामीने किन्ता कहा है; उक्त ही करके खेत भाव है) यह मन्मय भेरीक सेबक काय्य गया है ॥ ८ ॥

नियुक्तो नृपतेः कथं न कुर्याद् वा समाहितः ।
श्रुत्यो युक्तः समर्थश्च तमाहुः पुरुषाधमम् ॥ ९ ॥

य सेबक मालिकके किसी कर्ममें नियुक्त होकर अपनेमें वाप्यता और समर्थके हात हुए भी उस खचपानीसे पूरा नहीं करता वह अथम करिष्क कहा गया है ॥ ९ ॥

सधिपागो नियुक्तेन इत्य इत्य हनुमता ।
न चात्मा बभ्रुतां नीता सुप्रोथस्यापि तागिता ॥ १० ॥

‘हनुमन्ते स्वामीके एक कर्ममें नियुक्त होकर उक्त वाय ही वृक्षे महात्पाप कर्मको भी पूरा किया अपने गौरवमें भी कभी नहीं आने ही—अनेक-अपम वृक्षोंकी इष्टिमें उक्त नहीं करने दिया और सुप्रोथम भी वृक्षतः संजुष्ट कर लिया ॥ १० ॥

मह व रघुपनाथ महामन्य महापदाः ।
यद्वा द्वाभताप भमता परिरक्षितः ॥ ११ ॥

आव हनुमान्ने विदेहनन्दिनी वीर्याश्च पता क्वचर—
उन्हे अस्मी अर्थां वेत्तुश्च भवेत् अनुत्तर मेरी क्वचर
खुवंधात्री और महाकवी क्वचरभी भी रथा की है ॥ ११ ॥

इत् तु मम वीनस्य मनो भूया प्रकर्वति ।
यदिहास्य प्रियाख्यातुर्न कुर्मि सद्यश्च प्रियम् ॥ १२ ॥

आज मेरे पास पुरस्कार देने का म्य बन्धुका अग्रज है
यह बात मेरे मनमें बड़ी क्वचर पैदा कर रही है कि यहाँ
बिन्दे मुझे ऐसा प्रिय क्वचर सुनाया उक्त्वा मैं कोई पैदा
ही प्रिय क्वचर नहीं कर पा रहा हूँ ॥ १२ ॥

एव सर्वलभूतस्तु परिप्लव्णे हनुमता ।
मया कालमिमं प्राप्य वृत्तस्तस्य महात्मना ॥ १३ ॥

एव समय इन महात्मा हनुमान्को मैं केवल अपना
प्रणव आखिन्न प्रदान करता हूँ क्योंकि वही मेरा
कर्म है ॥ १३ ॥

इत्युक्त्वा प्रीतिहृद्यो रामस्त परिप्लव्णे ।
हनुमन्त कृतारमार्गं कृतकार्यमुपागतम् ॥ १४ ॥

ऐस करते करते खुनायकीके अग्र-प्रत्यक्ष प्रेम्ते पुष्कित
हो गये और उन्होंने अपनी आकांक्षे पावनमें कञ्चया पाकर
जैसे हुए पवित्रत्वा हनुमान्कीके हरभते क्वचर किया ॥१४॥

भ्यात्वा पुनस्वयच्छेधं धवनं रघुसत्तमम् ।
हरीष्मदीश्वरस्यापि सुधीयस्योपगृह्यताः ॥ १५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्भगवतः वाक्येभ्यो बुद्ध्यान्वे प्रथमाः सर्गाः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीमद्भगवतिनिर्मितं वाक्येभ्यो बुद्ध्यान्वे प्रथमाः सर्गाः ॥ १ ॥

द्वितीय सर्ग

सुग्रीवका धीरामको उत्साह प्रदान करना

त तु शोकपरिधूनं राम वशरपालम्भम् ।
उद्यमं धवन श्रीमान् सुग्रीवः शोकनाशनम् ॥ १ ॥

इस प्रकार शोकते कंठ हुए वशरपालन्दन श्रीरामसे
सुग्रीवने उनके शोकनाश करनेवासी बात कही—॥१॥

किं स्वयं तप्यते वीर पयस्याः प्राकृतस्तथा ।
मिथं भूस्तप्य सत्याप कृतप्य इव साहवम् ॥ २ ॥

वीरवर ! भाग वृद्धे स्वपत्य मनुष्याकी मूर्ति स्वयं
कंपन कर रहे हैं ? भाग इस तरह चिन्तित न हो । जैसे
कृतप्य पुत्र्य खेहार्थं स्वया देव्य दे उखे तरह आप भी
इस कंठपत्र में ॥२॥ ॥ २ ॥

सत्याप्य च त स्थानं नहि पश्यामि रावण ।
प्रवृत्तापुत्रसम्भार्यां प्रातः च निन्दये रिपो ॥ ३ ॥

किं योही वेत्तुश्च विचार करके खुबंधाशियेकी क्वचर
ने वानररज सुग्रीवको सुनाकर यह बात कही—॥ १५ ॥

सर्वथा सुकृतं वाच्यं सीतायाः परिमार्गम् ।
सत्तार तु समासाद्य पुनर्नष्टं मनो मम ॥ १६ ॥

बन्धुको ! सीताकी लोकाश्च काम हो सुबधाकस्ते क्वचर
हो गया किं क्वचरकवी बुद्ध्यान्वे विचार करके मैं
मनका उक्त्वा फिर नष्ट हो गया ॥ १६ ॥

कथं माम् समुद्रस्य बुध्दारस्य महाम्भसा ।
हरयो वक्षिर्न पार गमिष्यसि समागताः ॥ १७ ॥

महान् क्वचरशिये परिपूर्व क्वचरको पार करना तो मैं
ही कठिन काम है । यहाँ एकत्र हुए वे वानर क्वचरके वक्षि
तप्य केते पहुँचेगे ॥ १७ ॥

यद्यप्येव तु वृत्तास्तो वैदेह्या यद्वितो मम ।
समुद्रपारगमने हरीष्वा किमिबोत्तरम् ॥ १८ ॥

मेरी धीवने भी यही संदेह उठाया था, किन्तु वृद्ध
अभी-अभी सुकते क्वचर गया है । इन वानरोंके क्वचरके क
बनेके विषयमें था प्रश्न लडा हुआ है उक्त्वा वक्षिर्न
उत्तर क्या है ? ॥ १८ ॥

इत्युक्त्वा शोकसम्भ्रान्तो रामः शत्रुनिबर्हण ।
हनुमन्तं महाबाहुस्ततो ध्यानमुपायमत् ॥ १९ ॥

हनुमन्कीके ऐस करते शत्रुसहन महाबाहु श्रीराम
शोककुल होकर बड़ी कित्तवमें पड़ गये ॥ १९ ॥

इत्युक्त्वा शोकसम्भ्रान्तो रामः शत्रुनिबर्हण ।
हनुमन्तं महाबाहुस्ततो ध्यानमुपायमत् ॥ १९ ॥

इत्युक्त्वा शोकसम्भ्रान्तो रामः शत्रुनिबर्हण ।
हनुमन्तं महाबाहुस्ततो ध्यानमुपायमत् ॥ १९ ॥

इत्युक्त्वा शोकसम्भ्रान्तो रामः शत्रुनिबर्हण ।
हनुमन्तं महाबाहुस्ततो ध्यानमुपायमत् ॥ १९ ॥

इत्युक्त्वा शोकसम्भ्रान्तो रामः शत्रुनिबर्हण ।
हनुमन्तं महाबाहुस्ततो ध्यानमुपायमत् ॥ १९ ॥

इत्युक्त्वा शोकसम्भ्रान्तो रामः शत्रुनिबर्हण ।
हनुमन्तं महाबाहुस्ततो ध्यानमुपायमत् ॥ १९ ॥

इत्युक्त्वा शोकसम्भ्रान्तो रामः शत्रुनिबर्हण ।
हनुमन्तं महाबाहुस्ततो ध्यानमुपायमत् ॥ १९ ॥

इत्युक्त्वा शोकसम्भ्रान्तो रामः शत्रुनिबर्हण ।
हनुमन्तं महाबाहुस्ततो ध्यानमुपायमत् ॥ १९ ॥

इत्युक्त्वा शोकसम्भ्रान्तो रामः शत्रुनिबर्हण ।
हनुमन्तं महाबाहुस्ततो ध्यानमुपायमत् ॥ १९ ॥



धीराम मुप्रीयका लडापर चढाइ करनरु ग्निउ उमाहित कर रह इ

निरसहाय्य शीतस्य शोकपपाङ्गुस्त्रगमनः ।

सवाथा व्यपसीदन्ति व्यसन्न चाभिराच्छ्रति ॥ ६ ॥

युद्ध उल्लासपूर्ण, शीत और मन-ही-मन व्यसन्न पाङ्गु कहता है, उसका व्योम घम निगाह आते हैं और वह बड़ी निरसिमें पड़ जाता है ॥ ६ ॥

इमं शूराः समयाच्च सत्यतो हरियूथपाः ।

त्यग्निमार्यं कृतोऽस्वाहाः प्रयेच्छुमपि पावकम् ।

एषां हर्षेण जानामि तद्व्यापि इतो मम ॥ ७ ॥

युद्धात्सूयगतिं सन्न प्रकृतये सवर्ध एवं शूरीर्य हैं । सवर्ध प्रिय करनेक किय इनक मनमें बड़ा उल्लास है । ये आपक किय कष्टी आगमें भी प्रवेश कर सकते हैं । सुप्रभो बर्षेने और गन्धक मारनेक प्रवर्ण चन्देपर इनक मुँह प्रकृतये तिरक जाता है । इनक इत हर्ष और उल्लासे ही मैं इत बातक जानक हूँ तथा इत विषयमें मेरा अपना ऊँ (निश्चय) और सुदृढ़ है ॥ ७ ॥

विश्वस्य समानेभ्ये स्त्रीषा इत्या यथा रिपुम् ।

राजस्य पापकृमाणा तथा त्वं कर्तुमर्हसि ॥ ८ ॥

अस्य एक श्रीमिसे, किसे हमक्या परकर्मक अपने शत्रु पापकारी यथयस्य वच करके शैलाको यहाँ क आये ॥

सतुरस्य यथा बन्धुभ्यो यथा पदमेव तां पुरीम् ।

तस्य पक्षसराजस्य तथा त्वं कुरु राजस्य ॥ ९ ॥

पुनःपुनः । आप देख करे उपाय श्रीमिन, किसे सुप्रभ सेतु बंध तक और इन उठ उल्लासकरी कर्तुपुरीको देख लें ॥ ९ ॥

यथा तां हि पुरीं लक्षुं भिक्षुवदित्करे स्थिताम् ।

एतं च राषणं युद्धे बर्हन्नाहवधारय ॥ १० ॥

परिक्रमयसेतुं शिखरपर क्रीं हुरे सद्गुपुरी एक बार शीत व्यस्य ल आप यह निमित्त समक्षित कि युद्धमें यथ निश्चय स्थि और माय गय ॥ १ ॥

भवत्पुत्रा सागर सतुं घाते च यदण्डपदये ।

सद्गु न मर्तिवुं शक्या सेमैरपि सुगासुरैः ॥ ११ ॥

वचनक निरालम्ब पर सुप्रभ युद्ध बोधे स्थि ल इन्द्रविलेन क्राय वेत्त और भगुर भी लडाइ पररहित नहीं कर सक ॥ ११ ॥

सतुगन्धाः समुद्रे य पायाद्गुप्तसमीपतः ।

सर्वे तीर्थे च म सौम्यं जितनित्युपधारय ।

इमं हि समरं शीरा हरया कामकपिजः ॥ १२ ॥

भगु न लडाइ निरालम्ब सुप्रभर युद्ध बंध क्राय पर लगी शरी मना उठ पर चली जायगे । जित ल भगु यही समक्षित कि भन्ती मैं ल गयी, क्याकि इच्छातुल्य

युद्ध भारत कनेपाल य यानर युद्धमें यही शीरा स्थिताने-या है ॥ १२ ॥

तद्वत् विद्वद्या युद्धि राजन् सवाथमाश्रिनीम् ।

पुरुगम्य हि लोकऽस्मिन्लोका दीयात्कारयः ॥ १३ ॥

यथाः राजन् । आप इत व्याकुल युद्धिभ भाभव न से-पुद्धिही इत व्याकुलप्राप्त स्वाम है, क्योंकि यह समस्त कर्षो-का निगाह देनेवाली है और एक इत काममें पुरकत शीर्षक नष्ट कर देता है ॥ १३ ॥

यत् तु कार्यं मनुष्येषु शीटीयमपद्यत्प्रकाम् ।

तद्वत्करण्यायैष कर्तुमर्हति सत्यम् ॥ १४ ॥

मनुष्यको कितना भाभव क्या चाहिये, उठ शीर्षक ही वह भवत्प्रक कते, क्योंकि वह कदाको शीम ही अलकृत कर देता है—उसक अर्थात् फलही स्थिि फल देता है ॥ १४ ॥

अस्मिन् काले महाम्यस्र सत्यमातिष्ठ तेजसा ।

शूराणां हि मनुष्याणां स्वस्त्रिभ्यानां महारमनाम् ।

विनष्टं वा प्रणष्टं वा शोकः सयायनाशनः ॥ १५ ॥

अतः म्हाप्राज्ञ श्रीयम । अय इत समय तेवक लय ही पैयस्य भाभव छ । कर यत्तु लो गयी हो या नष्ट हो गयी हो, उसक किय आप-सेते शूरीर महात्मा पुरकत एक नहीं कर्या चाहिये, क्योंकि एक उन कर्मोका निगाह देता है ॥ १५ ॥

तस्य युद्धिमतां श्रेष्ठा सपशास्त्राद्युक्तेयिका ।

मद्विषैः सन्धिषैः साधमरिं जेतुं समर्हसि ॥ १६ ॥

अस्य युद्धिमतांमें श्रेष्ठ और कर्षुर्ष शक्योक मर्मक है । अतः हम-मैम मन्त्रियों एवं कर्षुर्षोका लय रहकर भवत्त ही शत्रुपर विजय प्राप्त कर सकते हैं ॥ १६ ॥

महि पदयाम्यह कंचित्तु विपु लोकतु राषय ।

शूरीतधनुषो यन्म तिष्ठद्विभिसुख्ये रण ॥ १७ ॥

पुनःपुनः । युद्ध ल शीर्षो कर्ममें देख कर शीर नहीं स्थितानी देता, अ यन्त्रिमिमें पनुष यकर यह हुए भारत कर्ममें नष्ट तक ॥ १७ ॥

पानरपु समासक म न कर्ष्य विष्ण्व्यत ।

अचिराद् द्रक्ष्यम सीतां गीत्रां सागरमध्वयम् ॥ १८ ॥

व्यसनेपर कितना भार रक्या गता है, अतः पर किय निगाहने नहीं पास्य । आप शीम ही इन भगुन सुप्रभ पर करक कर्षुर्षक दर्शन करेगी ॥ १८ ॥

तद्वत् शोकमात्रस्य प्रथमानस्य भूयत ।

निद्वेषाः क्षत्रिया मन्त्रा सर्वे चण्डस्य पिभ्यति ॥ १९ ॥

दुष्प्रियाय । अपने हृदयमें एकक सन्न दन्त व्यस्य है । इत समय ल भगु भावक प्राप्त अथ पायक श्रीमि ।

ये सन्निव गन् (श्लेषात्) होते हैं, उनसे कोई चेष्टा नहीं बन पायी परंतु जो शत्रुके प्रति भावस्पर्क उपेते भंग होता है, उससे सब बरत है ॥ १९ ॥

अङ्गनार्ये च घोरस्य ससुभ्रस्य नदीपतेः ।
सहासामिभिरहोपेताः सूक्ष्मबुद्धिर्विचारय ॥ २० ॥

नदिकेके खासी घोर ससुभ्रको पार करनेके लिये स्ना उपाय किया अथ इस विषयमें आप हमारे खप बैठकर मिथ्या कौशिकों क्योंकि आपकी बुद्धि बड़ी सूक्ष्म है ॥ २ ॥

छङ्गिते तत्र तौ सैन्यैर्द्वितमित्येव मिश्रितु ।
सर्वे तीर्थे च मे सौम्य जितमित्यवधार्यताम् ॥ २१ ॥

यदि हमारे सैनिक ससुभ्रको भोंप गये तो श्री निम्न रखते कि मन्त्री भीत भयान होगी । खरी सेनाका ससुभ्रके उस पार पहुँच बना ही अपनी विजय समझिये ॥ २१ ॥

इमे हि हरया शूराः समरे कामरूपिणः ।

इत्यार्ये भीमवृत्तलीलीके अदिकाव्ये पुस्तकाव्ये द्वितीयाः सर्गाः ॥ २ ॥

इस प्रकार भीमवृत्तलीलीके अदिकाव्ये पुस्तकाव्ये इतर सर्ग पूरा हुआ ॥ २ ॥

तृतीय सर्ग

हनुमान्जीका लंकाके दुर्ग, फाटक, सेना-विभाग और संक्रम आदिका वर्णन करके भगवान् धीरामसे सेनाको कूच करनेकी आज्ञा देनेके लिये प्रार्थना करना

सुप्रियस्य वचः श्रुत्वा हेतुमत् परमार्थवत् ।
मतिजग्राह काकुलस्था हनुमन्तमाप्रवीण ॥ १ ॥

सुप्रियके ये मुक्तिमुक्त और उत्तम मन्त्रिणासे पूर्ण बचन सुनकर भीयमफत्रहीने उन्हें स्वीकार किया और फिर हनुमान्हीसे कहा— ॥ १ ॥

तपसा सेतुपन्थेन सागराच्छयपथं च ।
सद्यथापि समर्थोऽस्मि सागरस्यान्य खड्ग ॥ २ ॥

यै उक्तसे पुत्र बोंपकर और ससुभ्रको मुलाकर सब प्रकारसे महाकमरुका भोंप जानेमें समर्थ हैं ॥ २ ॥

कति तुगाणि तुगाया खड्गयास्तद् प्रयोज्य म ।
प्राप्तुमिच्छामि मत् सर्वे क्षान्तादिव यान ॥ ३ ॥

पत्नरघी ! तुम मुझे यह तो बताओ कि उक्त तुगाम खड्गपुरीके लिये तुग हैं । मैं इन तुगके सपन उद्यम कर रिजल हररूपमें जानना चाहूँ ॥ ३ ॥

पत्तस्य परिमाणं च द्वाग्नुगमित्यामपि ।
गुनिक्रम च खड्गया रक्षसां सन्तानि च ॥ ४ ॥

पथमनुल पथप्रथ खड्गयामसि वपयान् ।
सयमायस्य तस्य सयथा तुगात्स क्षामि ॥ ५ ॥

तुमने पत्तकी मन्त्रणा परिभवत पुरीके बरताव्य

तामरीन् विभिमिष्यन्ति शिल्पापावृष्टिभिः ॥ २२

ये बनार संग्राममें बड़े क्षत्रीर हैं और इच्छानुकर क धारण कर सकते हैं । ये पत्तों और पेड़ोंकी पत्तों करते । उन शत्रुओंका संहर कर जाँगी ॥ २२ ॥

कथंस्वित् परिपश्यामि छङ्गित वदन्मस्यम् ।
हृत्मित्येव त मस्ये युद्धे शत्रुनिर्वाह ॥ २३ ॥

शत्रुसूदन भीयम ! यदि किसी प्रकार मैं हत बन सेनाको ससुभ्रके उस पार पहुँची देख सकूँ तो मैं यत्न युद्धमें मर्य हुआ ही समझता हूँ ॥ २३ ॥

किमुक्त्वा बहुधा चापि सर्वथा विजयी मष्यम् ।
निमित्तानि च पश्यामि मनो मे सम्प्रहृष्यति ॥ २४ ॥

बहुत करनेसे स्ना खम ! मेरा तो विश्वास है कि मैं सर्वथा विजयी होंगा क्योंकि मुझे ऐसे ही शत्रुन शिल्पीर हैं और मेरा इतर भी हर्ष एवं उत्साहसे भंग है ॥ २४ ॥

इत्यार्ये भीमवृत्तलीलीके अदिकाव्ये पुस्तकाव्ये द्वितीयाः सर्गाः ॥ २ ॥

इस प्रकार भीमवृत्तलीलीके अदिकाव्ये पुस्तकाव्ये इतर सर्ग पूरा हुआ ॥ २ ॥

दुर्गम बनानेके लक्षण, खड्गकी रक्षाके उपाय तथा रक्षकों भवन—इन लक्षणों मुक्तपूर्वक बय्यफत्रसे श्री देवा दे भतः इन लक्षण ठीक-ठीक वर्णन करे। क्योंकि दुग क प्रकारसे कूच हो ॥ ५-५ ॥

श्रुत्वा रामस्य वचन हनुमान् मास्ततामज्ज ।
वाक्य वाक्यविक्षा भ्रेष्टो राम पुनरप्याज्जभीत् ॥ ६ ॥

भीरुनापकीक मर बनत सुतकर शकीके मर्कं समझनेवाले विज्ञानोंमें भय जनकुमार हनुमान्ने भीरुने फिर कहा— ॥ ६ ॥

भूयतां सर्वमाक्यास्ये तुगकर्म विधानता ।
गुप्त पुरी यथा खड्ग रक्षित्य च यथा पत्तौ ॥ ७ ॥

राक्षसाश्च यथा खिग्धा रावणस्य च तजसा ।
परां समृद्धिं खड्गया सागरस्य च भीमताम् ॥ ८ ॥

विभाग च धनीपस्य निर्देशं याहमस्य च ।
एवमुक्त्या कपिधेष्टः कथयामास तथ्यता ॥ ९ ॥

भावन ! मुनिव । मैं सब लक्षण फल रहा हूँ । ससुभ्रके दुर्ग किं विधिमें पने हैं किं मन्त्र खड्गपुरीकी रक्षकों मरता की गयी है किं तरह वह सेनामेंसे मुपिा है । यत्नक लक्ष्ये प्रभावित हो यत्न उलके प्रति फेज सेर राते

हे, अङ्गुली समुद्रि किन्ती उचन है, समुद्र किन्ना मन्कर है, वेदक वेनिकेन्द्र विमाम करके कहीं किन्ने ऐनिक रसे जने हैं और बहोके बाहनोंकी किन्ती कस्या है—इन सब बहोके में वर्णन करेगा। ऐस करके प्रविशेद इनुमायेने बहोकी बहोके ठीक-ठीक क्ताना आरम्भ किया ॥ ७-९ ॥

हृद्यमुविद्या लङ्का मन्त्रद्विपसमाकुल्य ।
महती रयसम्पूर्णा रक्षोगाम्निपेकिता ॥ १० ॥

अनो ! अङ्गुली हर्ष और आनन्द प्रमादसे पूर्ण है। वह निष्क पुरी मन्त्राळ हाथियोसे ब्याप्त तथा मन्केय रपोसे मरी हुई है। अन्वैके समुद्रान स्या उरमें निवास करते हैं ॥

हृदबदकपादाणि महापरिष्कलित च ।
पत्न्याः विपुलायस्या द्वाराणि सुमहास्मित च ॥ ११ ॥

उस पुरीके चार बड़े-बड़े दरवाजे हैं जो बहुत बने चौड़े हैं। उनमें बहुत मन्कृत किया चो हैं और मोटी-मोटी मन्कालें हैं ॥ ११ ॥

उपेपूषलन्याणि बह्वलित महानि च ।
अपगत प्रतिसैन्यैः सैस्तत्र प्रतिनिवार्यत ॥ १२ ॥

उन दरवाजोंपर बड़े विशाल और प्रबल मन्क लगे हैं। और और फरोंके गेठे बरखते हैं। उनके हाथ आक्रमण देनेवाली शत्रुसेनाको अपने बन्देसे रोक्न शक्य है ॥ १२ ॥

एषु सस्रुता भीमाः काष्ठमयसमयाः रिताः ।
प्रारभ रक्षिता धीरैः शतश्रयो रक्षसा गव्यैः ॥ १३ ॥

किन्हे वीर उल्लसगोने कन्या है जो फल छोदेकी नै हुई, मन्कर और वीसी हैं तथा बिनक मन्की तथा मन्कर किया गया है ऐसी उरको दार्तनियॉ (छोदेके कर्मों-) मरी हुई चार हाथ बन्धी गद्यर्षे) उन दरवाजोंपर उन्कर लगी क्यै हैं ॥ १३ ॥

शैवर्षसु महासास्याः प्राकारो तुष्पधर्यणः ।
मणिकिमुमधैवूर्यमुकाविरक्षिताम्तरः ॥ १४ ॥

उस पुरीके चारों ओर खेनेक बना हुआ बहुत ऊँच फरक्य है किन्ने लोडना बहुत ही कठिन है। उसमें मणि जैसे नीकम और मणिकोषक कम किया गया है ॥ १४ ॥

सर्वतश्च महाभीमाः शीतलोया महाशुभाः ।
भगाथ प्राहपत्यश्च परिष्ठा मीनसेविताः ॥ १५ ॥

परकोठोंके चारों ओर महामन्कर, शत्रुभाक्य मरान् भन्कर करनेवाली ठंडे बससे मरी हुई और भगाथ परपोसे युक्त कर खाद्यो बनी हुई हैं किन्ने घाह और बड़े-बड़े मन्क निवास करते हैं ॥ १५ ॥

द्वारेषु तासा सत्याः सक्त्वाः परमायता ।
यन्मैरुपेता बहुभिर्महद्भिर्गृहपक्किभिः ॥ १६ ॥

उक्त चारों दरवाजोंके सामने उन खाद्योंपर मन्कालोंके रूपमें चार संक्रमे (अन्कीके पुत्र) हैं जो बहुत ही निवृत्त हैं। उनमें बहुत-से बड़े-बड़े मन्क लगे हुए हैं और उनके अक्ष-पाथ परकोठेपर बने हुए मन्कालोंकी पंक्तियाँ हैं ॥ १६ ॥

त्रायस्त सक्त्मास्तत्र परसैन्यागते सति ।
यन्मैस्तीरवकीर्यन्ते परिक्षासु समगठतः ॥ १७ ॥

अब शत्रुकी सेना आती है तब मन्कोंके द्वारा उन संक्रमोंकी रक्ष भी जाती है तथा उन मन्कोंके द्वारा ही उन्हें सब ओर खाद्योंमें गिर दिया शक्य है और वहाँ पहुँची हुई शत्रु-सेनाओंको भी सब ओर फँक दिया जाता है ॥ १७ ॥

एकस्तपकम्प्या वलधाम् सक्त्वाः सुमहावहः ।
कञ्चनैर्बहुभिः स्वमौर्षैर्विक्रान्तिश्च शोभितः ॥ १८ ॥

उनमेंसे एक संक्रम तो बड़ा ही सुदृढ़ और अमेघ है। वहाँ बहुत बड़ी सेना रहती है और वह खनेके अनेक लंगों तथा नकलेसे सुशोभित है ॥ १८ ॥

स्य प्रकृतिमापन्ना युयुस्तु राम रावणः ।
उत्थितश्चाप्रमत्तश्च बलमामनुवर्षणे ॥ १९ ॥

युयुत्तमथै ! रावण युद्धके क्षि उल्लुक् होत हुआ स्वयं कमी क्षुब्ध नहीं होता—सत्य एव भीर बना रहता है। वह सेनाओंके बारंबार निरीक्षण किये स्या खवधान एवं उद्यत रहता है ॥ १९ ॥

लङ्का पुनर्निरालम्बा वेद्यतुर्गा भयावहा ।
नक्षेय पार्वत धाम्य हृषिम च तनुर्विधम् ॥ २० ॥

अङ्गुपर बहार्थ करनेके क्षि कोई भनक्य नहीं है। वह पुरी वेद्यतुर्गके क्षि भी दुर्गम और बड़ी भयावही है। उसके चारों ओर नवी पर्वत बन और हृषिम (सार्ध फरक्य आदि)—ये चार प्रकरक तुर्ग हैं ॥ २० ॥

रिक्त्वा पारे समुद्रस्य दूरपारस्य राषयः ।
नीतपथ्यापि नास्त्यत्र निदहोद्यश्च सर्वता ॥ २१ ॥

युयुत्तन ! वह बहुत पृथक पृथक हुए समुद्रक दक्षिण किनारेक कथी हुई है। वहाँ खनेके क्षि न्यपथ भी मार्ग नहीं है क्योंकि उसमें क्षत्यक भी किसी प्रकार पथ रहन सम्भव नहीं है ॥ २१ ॥

शीतान्ने रक्षिता तुगा सा पूर्वेषपुरोपमा ।

१. शक्यता हाथ है अकन एव मन्करके पुत्र वे, किन्हे अब अन्वयकथ्य होने लगी कनोद्यत भिा रिष्य भाष्य च । एकोषे शत्रुको सेव्य अन्वयक बड़े कर्मों विता देनेकी शक्त बनी क्यै है ।

१. शत्रुको च शत्रुंसा अक्षकर्मिणी गद्य इति वैकल्प्यी ।

वाग्निधारणसम्पूर्णा लङ्गा परमदुर्जया ॥ २२ ॥

यह दुर्गम पुरी पर्यन्तके दिखरपर कक्षी गयी है और
वेपपुरीके समान सुन्दर विलामी देखी है, हाथी, घोड़ोंसे मरी
हुई यह लङ्गा अत्यन्त दुर्जय है ॥ २२ ॥

परिखाद्य शतशय्याय यन्त्राय विधिधानि च ।
शोभयन्ति पुरीं लङ्गा रक्षणस्य दुरात्मनः ॥ २३ ॥

प्लाहयों शतशयियों और तख्त-तख्तके यन्त्र दुरात्म
रक्षणकी उर लङ्गानगरीकी घोमा बढ़ाते हैं ॥ २३ ॥

अयुतं रक्षसाम्ब पूर्वाद्धार समाभितम् ।
शूलहस्त्य दुराधर्याः सर्वे लङ्गाप्रयोधिना ॥ २४ ॥

लङ्गाके पूर्व द्वारपर दस हजार पक्ष खड़े हैं, जो उनके
उन शयोंमें छुड़ पारण करते हैं । वे अत्यन्त दुर्जय और युद्ध
के मुशानेपर लक्ष्यारोंसे बहुतेरेपक्षे हैं ॥ २४ ॥

नियुत रक्षसाम्ब दक्षिणद्धारमाभितम् ।
चतुरङ्गेय सैम्येण पोद्भस्तथाप्यनुत्तमाः ॥ २५ ॥

लङ्गाके दक्षिण द्वारपर चतुरस्रिकी केन्द्रके छान एक
छान पक्ष मोड़ा बटे खड़े हैं । वहाँके ठेकीक भी बड़े
ब्याहुर हैं ॥ २५ ॥

प्रयुत रक्षसाम्ब पश्चिमद्धारमाभितम् ।
षडंशुधर्याः सर्वे तथा सर्वास्त्रकोविदाः ॥ २६ ॥

पुरीके पश्चिम द्वारपर दस हजार पक्ष निरक्ष करते हैं ।
वे उनके-उन बान और लक्ष्यार पारण करते हैं तथा सम्पूर्ण
अस्त्रोंके ज्ञानमें नियुक्त हैं ॥ २६ ॥

स्पर्तुह रक्षसाम्ब उत्तरद्धारमाभितम् ।
रथिनश्चाश्ववाहास्य कुलपुत्राः सुपूजिताः ॥ २७ ॥

पक्ष पुरीके उत्तर द्वारपर एक अर्बुद (दस करोड़)
पक्ष खड़े हैं । जिनमेंसे कुछ ते रथी है और कुछ युद्ध-
स्यार । वे सभी उत्तम कुशमें उत्तम और अग्नी वीरताके
भिमे महाशिव हैं ॥ २७ ॥

शतशोऽथ सहस्राणि मध्यम स्कन्धमाभित्ताः ।
पातुभाना दुराधर्याः सामकोटिष्ठ रक्षसाम् ॥ २८ ॥

हत्थारों श्रीमद्वाल्मीके वाक्योकीसे वायिकायने बुद्धकायने लुटीयः सर्गाः ॥ ३ ॥
१४ प्रकार शेरपानीकिनिर्मित बार्धकाम्बके मुद्रकायने वीर्या सर्व पूरा हुआ ॥ १ ॥

लङ्गाके मध्यभागकी छावनीमें ऐक्यों खड्ग ३
पक्ष खड़े हैं, जिनकी संख्या एक करोड़से अधिक है
ते मया सक्रमा भन्ताः परिखाद्यापूरिताः ।
वग्धा च नगरी लङ्गा प्राक्षरताश्चावसादिताः ।
बद्धैकदेशाः क्षपितो रक्षसानां महात्मनाम् ॥ २१ ॥

किन्तु मैंने उन सब छत्रोंको तोड़ बाध है, सब
पाद ही हैं, लङ्गापुरीको सब दिया है और उसके परकोमें
भी पराधी कर दिया है । इतना ही नहीं, वहाँके निज
कम पक्षोंकी सेनाएँ एक चौथाई भय नष्ट कर दलने
येन केन तु मार्गेण तराम यदथास्रबम् ।
हतेति नगरी लङ्गा बालरैः कपयत्तम् ॥ ३० ॥

ब्रह्मका क्रिन्ही-न-किन्ही सर्गा वा उपमसे एक क
उत्तरको फर कर हैं फिर तो लङ्गाको बान्सेके द्वार नष्ट
ही समझिये ॥ ३ ॥

अङ्गो द्विविधो मैत्रो जाम्बवान् पनसो लङ्गा ।
नीळः सेनापतिश्चैव बद्धशेषेण किं तव ॥ ३१ ॥

(अङ्गः द्विविधः मैत्रः जाम्बवान्, पनः नक्षत्र
सेनापति नीळ-इतने ही बान् लङ्गानिक करतेके भिने
परस हैं । वाकी सेना अक्षर आपको क्या करता है ॥ ३१ ॥

दुष्टमाना हि गत्या तां रक्षणस्य महापुरीम् ।
सर्परत्नना भित्त्वा सञ्जाता च सत्परेणम् ।
सम्पाक्षरां सभक्तानामानविष्यन्ति राक्षस ॥ ३२ ॥

पुण्यन्दन ! ये अङ्गद भवि कीर माक्षधने उल्लं-
कृतते हुए रक्षणकी महापुरी लङ्गामें पहुँचकर उसे पर्यन्त क
जाते, हरकोटे परकोटे और मन्त्रोंवहित नष्ट करते और
को यहाँ से अग्रये ॥ ३२ ॥

पञ्चमाहाय्य क्षिप्रं बहाना सर्वसामहम् ।
मुहूर्तेन तु युक्तेन प्रस्थानमभिरोक्य ॥ ३३ ॥

ऐसा समझकर अरु हीम ही समस्त वेदिनोंको लम्ब
आवरक बसुओंका संहर करके बृच करनेकी आज्ञा दीजिये
और उचित मुहूर्तसे प्रस्थानकी इच्छा कीजिये ॥ ३३ ॥

चतुर्थ सर्ग

भीराम आदिके साथ वानर-सेनाका प्रस्थान और समुद्र-तटपर उसका पड़ाव

धृत्वा हनुमता वाक्य यथापदनुपूर्यशः ।
हनुमत्कीसे बन्नेको क्रमशः यथापदको हुन
कताऽभ्यन्तमहातन्त्र रसाः सत्यपराक्रमः ॥ १ ॥
अप्यप्यग्नी मतोक्सी मन्त्रान् भीरुमने क्ता—॥ १ ॥

पथिवेद्यस्य ह्यहं पुरीं भीमस्य रक्षसा ।
क्षिप्रमेता वधिष्यामि सत्यमेतद् प्रवीमि ते ॥ २ ॥

अनुमत् । मैं तुमसे सच कहता हूँ—तुमने उस भयानक
रक्षसत्री जिस बह्मपुत्रीका वर्णन किया है उसे मैं छीन ही
नश कर दूँगा ॥ २ ॥

मस्मिन् मुहूर्ते क्षुभीय प्रयाणमभिरोक्षय ।
युक्ते मुहूर्ते विजये प्राप्ते मय्य दिवाकरः ॥ ३ ॥

क्षुभीय । तुम इसी मुहूर्तमें प्रख्यानत्री तैयारी करो ।
सूर्यदेव दिनके मध्य भागमें आ पहुँचे हैं । इसीमें यह विजय
लक्षक मुहूर्तमें हमारी यात्रा उपयुक्त होगी ॥ ३ ॥

सीता इत्या तु तद् यातु कासी यास्यसि जीवितः ।
सीता भ्रुत्वाभियाज मं भारामेष्यति जीविते ।
जीवितान्तेऽमृत स्युद्वा पीत्वामृतमिवातुरा ॥ ४ ॥

यात्रा सीताको हरकर उस काम किंतु वह जीवित बचकर
श्रीं लक्ष्मण ! सिद्ध आदिक मुँहसे बह्मपुत्र मरी चदार्थक
आचार सुनकर सीताका भरणे जीवनत्री भाषा देष लक्ष्मणी
कीक उठी तब देते जीवनका अन्त उपस्थित होनेपर यदि
सत्री अमृतका (अमृतलक्षक साधनभूत सिद्ध अंधपिक्र)
सर्प कर के अथवा अमृतलक्षक इषभूत अंधपिक्र पी के तो
उसे जीनेकी आशा हो जाती है ॥ ४ ॥

उत्तराफाल्गुनी ह्ययं भस्त्वु हस्तो न यास्यत ।
मभिप्रयाम क्षुभीय सर्षानीकसमावृता ॥ ५ ॥

आज उत्तराफाल्गुनी नामक नक्षत्र है । इस चन्द्रमाका
इस नक्षत्रसे यथा हमा । इसीमें सुभेज । इसका आज
ही खरी सेनाओंके खण यात्रा कर दें ॥ ५ ॥

निमित्तानि च पद्यामि यानि प्रातुर्भक्षित वै ।
निहस्य राक्षस सत्त्रिमानपिप्यामि जालकीम् ॥ ६ ॥

यस समय जब घातक प्रकृत हो रहे हैं और जिन्हें मैं
रक्ष रहा हूँ उनसे यह विचार होना है कि मैं अबसस ही
एकपक्ष रूप करके अकल्पितनी सीताका के आर्तन ॥६॥

अपरिच्छिन्दि नयनं स्फुरमापमिम मम ।
विजय समनुप्राप्त शसस्त्रीव मनोरथम् ॥ ७ ॥

भूतक स्थि मरी दाहिनी ओंलका ऊपरी भगा फड़क

१ दिनमें दोपहरके समय अथिक्त् मुहूर्त होता है, रक्षी
का विना-मुहूर्त भी कहते हैं । यह कथाके सिद्धे बहुत कल्प
भाव बना है । कथा—युक्ते दक्षिणवाजस्य प्रतिघातं विस्मयन ।
आचने च वसरोह ह्युदर कल्प महापिबित् । इत अथिक्त्-
एकपक्षके बचनेके अनुसार एक मुहूर्तमें दक्षिणवाज निजिक है
एकपि विधिभाषे लक्ष दक्षिणपूर्वके क्षेत्रमें होनेके कारण वह
एक रक्षी बनी जब रात हो ।

या है । वह भी मानो मरी विजय-प्राप्ति और मनोरथसिद्धि
को सूचित कर रहा है ॥ ७ ॥

स्ता यामरराजेन लक्ष्मणेन सुपुत्रितः ।
उद्यस्य रामो भ्रमात्मा पुनरप्यर्थकोवित्रः ॥ ८ ॥

यह सुनकर यमरराज क्षुभीय तथा लक्ष्मणने भी उनका
बड़ा भार कर लिया । लक्ष्मण अर्थवत्ता (नीतिनिपुण)
भनात्मा भीयमने फिर कहा— ॥ ८ ॥

अप्रे यातु वलस्यास्य नीलो मार्गमधेक्षितुम् ।
वृत्तः शतसहस्रेण घामराणां तरसिमाम् ॥ ९ ॥

भूत सेनाक आने-आगे एक लाख घेगवान् बानोंसे भिरे
दुए सेनासि नील मार्ग देखनक स्थि चर्छे ॥ ९ ॥

फलमूल्यता नील शीतकामनधारिणः ।
पथा मधुमता चाद्यु सेना समापते नय ॥ १० ॥

सेनासि नील । तुम खरी सेनाका ऐसे मार्गसे शीघ्रता-
पूर्वक के चम्मे जिसमें फल-मूल्यकी अधिपत्य हो, शीतक
आकृति युक्त लक्ष्मण का ठंडा लक्ष्मण मिल सक और मधु भी
उपलब्ध हो सक ॥ १ ॥

दूरयेयुर्दुरात्मानः पथि मूलफलावकम् ।
राक्षसा पथि राक्षेयास्तेभ्यस्त्व नित्यमुद्यतः ॥ ११ ॥

यममव है दुरात्मा रक्षस राक्षेके फल-मूल्य और लक्ष्मण
पथि आसिसे वृत्त कर दें अतः तुम मार्गमें उक्त सावधान
रक्षक उनसे इन बलुओंकी रक्षा करना ॥ ११ ॥

निम्नपु वनदुर्गेषु वनेषु च यतीकस्तः ।
मभिप्लुत्याभिपद्येयुः परेया निहित वलम् ॥ १२ ॥

बानोंका चारिसे कि नहीं गढ़ों, दुर्गमें वन और लक्ष्मण
आकृ ही वहाँ सय और फूट-खोंकर पर देखते रहें कि कहीं
घनुओंकी सेना तो नहीं छिपी है (एक न हो कि हम आगे
निष्कल रूप और घनु अस्मात् पीछेसे आक्रमण कर दें) ॥

यत्तु फल्यु वल किंचित् सत्रीयोपपद्यताम् ।
पठसि कृत्य घोर मो विक्रमण प्रयुज्यताम् ॥ १३ ॥

किय सेनामें बाल इत अधिक करण दुर्गच्छता हो वह
यहाँ किन्त्रिभाम ही यह क्या कथोंके हमाए यह युद्धरूपी
इत्य बड़ा मयकर है, अतः इतक किय कथ-किन्त्रिमण्यन
सेनाका ही यात्रा करनी चाहिये ॥ १३ ॥

सत्तारीधनिभ भीममघानीक महाबलाः ।
कपिलिहाः प्रकयन्तु शततोऽथ सहस्रराः ॥ १४ ॥

सैकड़ों और हजारों महाबली करिच्छत्री और महाबल
की स्मरणिक समान भंडार एवं अथर वानर-सनाक अथ
भगाका भरण साथ भागे स्थाय चर्छ ॥ १४ ॥

गजबभ गिरिसिद्धाणा गपयभ महापतः ।
गयास्यामप्रता यातु गर्धा दत इपरभा ॥ १५ ॥

पर्वतके समान विद्यालक्षणम् गच्छ महाबली गन्ध तथा
मन्त्रान् चोद्दिष्टी नोति पण्डमी गन्धसेनाके आगो-अगो चरौ ॥

यातु धानरघाहिन्या धानरा प्रकृता पतिः ।
पल्लवन् वृक्षिष पाश्वर्यसुप्रभो धानरपैभः ॥ १९ ॥

उपलब्ध-कूरकर चञ्जेबाळे अग्निमेंके पक्षक धानर
शिरोमणि सुप्रभ इव धानर-सेनाके दाहिने मगधी रथ करते
हुए चरौ ॥ १९ ॥

गन्धहस्तीव पुर्ध्वपरस्तरसी गन्धमादनुः ।
यातु धानरघाहिन्याः सद्य पाश्वर्यमभिष्टिता ॥ २० ॥

धरुपरह्तीक समान तुर्ध्व और केराध्ती धानर गन्ध
मादनु इव धानर-गाहिनीक धममागमें खरकर इच्छी रथ
करते हुए आगे चरौ ॥ २० ॥

यास्यामि पक्षमप्येऽहं बलौघमभिहर्षयन् ।
अभिरुद्ध हनुमन्तमैषपतमिवाम्बर ॥ २१ ॥

जैसे देवराज इन्द्र ऐरावत हाथीपर अम्बु करते हैं
उसी प्रकार मैं हनुमान्के कंधेपर चढ़कर सेनाके बीचम खरकर
करी संताक हर्ष करत हूमा चरौगा ॥ २१ ॥

मद्भेदेनैव सयातु लक्ष्मणद्वान्तकोपमा ।
सावैभैर्मन भूतशो द्विविण्वाधियतिर्यथा ॥ २२ ॥

जैसे धनाप्यध कुनेर छवमोम नामक दियाबन्धी पीठपर
बैठकर यात्रा करते हैं उसी प्रकार अक्षक समान पण्डमी
धमन अगदपर अम्बु होकर यात्रा करे ॥ २२ ॥

आम्यवांश्च सुपेणश्च वगन्धर्षा च धानराः ।
शुभ्रराजो महाबाहुः कुम्भिरसस्तु तं धया ॥ २३ ॥

माहाबाहु शुभ्रराज अम्बुबाहु सुपेण और धानर वेगधर्षा-
वे सेना धानर सेनाक वृक्षभागरी रथ करे ॥ २३ ॥

राघवस्य धवः ध्रुवा सुप्रियो धाहिनीपतिः ।
ध्यातिवृश महाभीरो धानरान् धानरपैभः ॥ २४ ॥

रघुनाथबीरु वह वन कुनकर महापण्डमी धानर
शिरोमणि सेनापति सुप्रियो उन धानरको धमभक्ति भाषा थी।
त धानरराजः सर्वे समुत्पथ्य महाजितः ।

गुहाभ्यां विश्वेरेभ्यश्च आशु पुष्पुविरे तथा ॥ २५ ॥

तव वे समस्त महाकवी धनराज अपनी गुणधर्मों और
शिलरोंसे हीन ही निरुद्धकर उच्छ्रित-कूरते हुए चञ्जे छी ॥

उतो धानरराजं लक्ष्मणेन च पृथिता ।
अगाम रामो धर्मात्मा सद्यस्यो वृक्षिणा विराम् ॥ २६ ॥

तदाभ्यन्त धानरराज सुप्रियो और समस्तक धरु अनुराध
करनेर सेनासहीन भयमथ धीरमन्त्रकी रक्षिण विद्याकी और
प्रसिद्ध हुए ॥ २६ ॥

दातेः दत्तसहस्रीश्च काटिभिश्चायुर्वरिषि ।

वारण्यपैश्च हरिभिर्ययी परिवृतस्ता ॥ २७ ॥

उस समय सेकड़ों हथरों बालों और कपड़ों बननेके
थे हाथीके समान विद्यालक्षण ये; फिर हुए भीरुनाथकी
आगे बन्दे छी ॥ २७ ॥

त यात्तमनुपान्ती सा महती हरिवाहिनी ।
हृष्टा प्रमुञ्चिताः सर्वे सुप्रियेणापि पक्षिताः ॥ २८ ॥

यात्रा करते हुए भीरुनाथ पीछे वह विद्यालक्षण
वाहिनी चञ्जे छपी। उस जेनाके सभी धीर सुप्रियो पीछे
होनेके कारण हृष्ट-मुञ्च एवं प्रकथ ये ॥ २८ ॥

मातृकन्तः प्रपन्तश्च गर्जन्तश्च पुर्वगमाः ।
व्यञ्जन्तो निम्नपन्तश्च जग्मुर्बु वृक्षिणा विशम् ॥ २९ ॥

उनसे कुछ धानर उस सेनाकी रथके छिने उच्छ्रित
कूरते हुए चरौ और पक्षर चञ्जे वे कुछ गर्जनेले
छिने कूरते-कूरते आगे बढ़ करते वे कुछ धानर जेके
समान गर्जते कुछ छिनेके समान बहाइते और कुछ छि
कारिणों मरते हुए रक्षिण विद्याकी और अम्बु हो रहे थे ॥

भक्षयन्ताः सुगन्धीनि मपूनि च फसन्ति च ।
उग्रहन्तो महाबृशान् मञ्जरीपुञ्जधारिणः ॥ ३० ॥

वे सुगन्धित मपु पीठ और भीठे कुछ लाते हुए मञ्जरी
पुञ्ज धारण करनेबाळे विद्यालक्षण हथरोंके उलाककर कंधेके
छिने चढ़ रहे थे ॥ ३० ॥

अप्योत्थं सहसा हता निर्बहन्ति क्षिपन्ति च ।
पतन्तश्चोत्पतन्त्यस्य पातयन्त्यपरे परान् ॥ ३१ ॥

कुछ मत्तले धानर किनाइके छिने एक वृक्षके हो रहे
थे। कोई अपने ऊपर चढ़े हुए धानरको हठकर दूर कर
देते थे। कोई उच्छ्रित-चञ्जे ऊपरके उच्छ्रित पड़ते वे और
वृक्षे धानर वृक्षे-वृक्षेके ऊपरसे चक्के वेकर नीचे गिर
देते थे ॥ ३१ ॥

राज्यां नो निहतव्याः सर्वे च रज्जमीधराः ।
इति गर्जन्ति हरयो राघवश्च समीपता ॥ ३२ ॥

भीरुनाथकीके छपी चञ्जे हुए धानर वह चरते हुए
गर्जता करते वे कि वन उच्छ्रित मार जम्मा करीये।
अन्ध निशाचरोंके भी धंशर कर देना चाहिये ॥ ३२ ॥

पुरस्तदपभा नीस्ये धीराः कुमुद एव च ।
कृपाल शोधयन्ति स्य यानर्यैर्बुभिः सह ॥ ३३ ॥

छले अगे सुप्रभ नीक और धीर कुमुद-ये वृक्ष
संघनक धानरोंके छप घसा ठीक करते छत थे ॥ ३३ ॥
मध्यं तु राजा सुप्रियो रामो लक्ष्मण एव च ।

बलिभिर्यैर्बुभिर्भीमवृत्तः शम्भुनियर्हणः ॥ ३४ ॥

सेनाके मन्धभागमें उच्छ्रित सुप्रियो धीरम और लक्ष्मण-

ने तीनों छत्रमूदन भीर अनेक सस्यामी एव भयकर बानरोंसे
भिर हुए चउ रहे थे ॥ ३१ ॥

हरिः शतवन्धिवीरः कोटिभिर्वशभिभूता ।

सर्वामको ह्यपश्य ररक्ष हरिवाहिनीम् ॥ ३२ ॥

छत्रवन्धि नामका एक भीर बानर दस करोड़ बानरोंक साथ
सकेका ही घायी सेनाका अपने निष्प्रणम रखकर उलकी
रखा करता था ॥ ३२ ॥

कोटीशतपरीवारः केसरी फनसो गजः ।

प्रकोष्ठ बहुभिः पादधमेक तस्याभिरक्षति ॥ ३३ ॥

छौ करोड़ बानरोंके चिर हुए कछी और फनस—य
केनाके एक (दक्षिण) मागकी तथा बहुकते बानर केनीकेको
सब स्थि गज और भर्क—ये उठ बानर-सेनाके दूखे
(गाम) मगकी रखा करते थे ॥ ३३ ॥

सुपेपो जाम्यवाचैष श्रुसैबहुभिरावृती ।

सुधीव पुरतः कृत्या जपन सररक्षतः ॥ ३४ ॥

बहुसम्पक मरुभसे भिर हुए सुपेप और जानवान—
वे हान्ने सुधीवका आगे करके केनाके पिछठ मागकी रखा कर
रहे थे ॥ ३४ ॥

तथा सेनापतिर्वीरो मीळो बानरपुगवा ।

सम्पत्न गृहतां श्रेष्ठस्तद् बलं पर्यवारयत् ॥ ३५ ॥

उन सम्पक सेनापति क्विभेद बानरधिरामसि धीरवर नीळ
अब सगकी सब भइले रखा एवं निष्प्रणम कर रहे थे ॥ ३५ ॥

द्वीमुखः प्रजङ्गम जम्भोऽथ गभसः कपिः ।

सर्वतश्च ययुर्यारस्त्यगयस्तः ग्लवगमान् ॥ ३६ ॥

दहीमुख प्रजङ्ग मम्म और गभस—य भीर सब भइले
बानरको धीम आगे बदनकी प्रेरणा देत हुए चउ रहे थे ॥

एव त हरिशमूख गच्छसि बसवपित्वा ।

मपश्यन्त गिरिच्छष्ट सद्य गिरिशतायुतम् ॥ ३७ ॥

इत प्रकार वे बलमन्त कवि-केसरी भीर बरकर आगे
नइते गय । पच्छ-बकत उठाने परंतभद छात्रिरेको देख
भिके अच-पार और भी उठइहा फ्यत थे ॥ ३७ ॥

मगसि च मुकुस्तानि तटाक्षमि यराणि च ।

रामस्य शासनं क्राव्या नीमकपम्य भीतयत् ॥ ३८ ॥

पञ्चयन् नागराभ्यागांस्तथा जनयशानपि ।

सागरीचमिभ भीमं तत् बानरबल महत् ॥ ३९ ॥

निःसम्प महाघोर नामघोरमिथ्यापथम् ।

पानम उई बहुक-ने मुन्दर सोपर और लक्ष्य दितायी
दिय, किन्तं मन्दर क्रम स्थि हुए थे भीरमन्त्रकीभी
भय थी कि गन्धे कर किसे प्रमगता उठय न कर ।
भयकर बानरान भीरमन्त्रकी इत भइराम बनकर

छत्रके लक्षप्रवाहकी मौलि भयार एवं भयंकर दितायी देने-
बाकी वह विद्याल बानर-सेना मयभीत-सी हाकर नग्येक
कधीपवर्ती सानों और ज्ञानस्येक दूरम ही उठाईती चली आ
रही थी । विष्ट गार्क्य करकेक फारम म्यानक मन्त्रबलम
छत्रकी मौलि वह महाभार ज्ञान पढ़ती थी ॥ ३८ ३९ ॥

तस्य दाशरथेः पादध्वे शूरास्त कपिकुञ्जराः ॥ ४० ॥

दृग्मापुप्लुबुः सर्वे सद्भवा इव ज्ञेयिता ।

वे सभी धरबीर कपिकुञ्जर हाके गय अन्धे दोहोंकी
मौलि उछले-कूठे हुए वुरंत ही शरभन्वद भीरमके
पार पढ़ुन करते थे ॥ ४० ॥

कपिभ्यामुद्गमामौ तौ शुश्रुभान मरुभौ ॥ ४१ ॥

महव्स्यामिच सस्पृषी प्रहाभ्या चन्द्रभास्करी ।

इतमन् और अंमद—इन दो बानर बीरोंका हाये
रहे हुए वे नरभेद भीरम और बरमथ शुक भेर इहसति
इन दो महाप्रसेते संयुक्त हुए चन्द्रमा और सूर्यके समान
शान्य पा रहे थे ॥ ४१ ॥

वेतो बानरराजेन लक्ष्मणेन सुपुत्रितः ॥ ४२ ॥

अगाम रामो भमात्मा ससिम्योदक्षिर्णा विशम् ।

उठ समय बानरराज सुधीव और लक्ष्मणसे सम्पन्नि हुए
भमात्मा भीरम सेनसहित दक्षिण दिशाकी भार बडे आ
रहे थे ॥ ४२ ॥

तमङ्कगतो राम लक्ष्मणः शुभया गिरा ॥ ४३ ॥

उवाच परिपूर्णाग्यं पूषार्यप्रतिभानवान् ।

सम्पथी अंगद कपेक देत हुए थे । वे शकुनोंके हाय
अर्थसिद्धिकी बात अच्छी तरह बान सत थे । उन्होंने पूष-
अम मगवान भीरमसे मत्रकमयी बाणीमें कहा— ॥ ४३ ॥

इतममवाप्य वैवर्ही क्षिप्र हत्या च राजभम् ॥ ४४ ॥

समुद्राद्यः समुद्रायामयोष्या प्रतिपास्यसि ।

महास्ति च निमिषानि विवि भूमौ च राधय ॥ ४५ ॥

शुभानि त्व पद्यामि सदाप्येयायसिद्यय ।

पुनन्दन । मुझे पूषी और आकाशमें बहुत अच्छे-
अच्छे शकुन दितायी देत हैं । वे सब आपका मन्त्रारपत्री
सिद्धिका सृष्टि करत हैं । इनम निश्चय हाय दे कि अय
धीम ही उपनम मारकर हरी हुइ क्विपकीम प्राप्त करेग और
कम्पमनारथ हाकर लुब्धिसिन्धी अन्धप्याद्य पवारंग ॥

भनुयासि दिया यायुः सना मुदुहित सुम्बः ॥ ४६ ॥

पूषयन्तुभ्यराश्चम प्रयवृन्ति नृगण्डिजा ।

प्रसघाद्य विदाः सवा विमलद्य विपाकरः ॥ ४७ ॥

उत्तना च प्रसघाद्यरतु त्वां भागवा गता ।

ग्रहगर्गाविजुदद्य तुवाद्य परमपया ।

अचिप्यन्तः प्रक्ष्यान्त धुय सर्वे प्रदक्षिणम् ॥ ४८ ॥

अचिप्यन्तः प्रक्ष्यान्त धुय सर्वे प्रदक्षिणम् ॥ ४८ ॥

वेदिकय सेनाके पीछे खीतक मन्द हितकर और सुलभय
 समीर चर रहा है । ये पगु और फली पूर्ण गधुर स्वरोसे अपनी
 अपनी कंठी बांध रहे हैं । सब दिशाएँ प्रखन हैं । सूर्यदेव
 निर्मल दिखानी वे रहे हैं । भृगुनन्दन शुक्र भी अपनी उन्मथक
 प्रभासे प्रकाशित हा आपके पीछेकी दिशामें प्रकाशित हो रहे
 हैं । सर्वे स्वर्गियोंका अनुवाय घोमा पता है वह ध्रुवराज
 भी निर्मल दिखानी देता है । ध्रुव और प्रकाशमान खमस्त
 स्वर्गिय भुवको अपने दाहिने रखकर उनकी परिक्रमा करते
 हैं ॥ ४६-४८ ॥

त्रिशङ्कुर्मिथो भाति राक्षसिः सपुरोहितः ।
 पितामहाः पुरोऽस्माकमिद्व्याकृपां महात्मनाम् ॥ ४९ ॥

हमार चय ही म्नामना इस्माकुर्मिथोके पिताम्ह
 रक्षसि मिथो भवने पुरोहित वस्त्रिथोके चय हमस्मोकेके
 खमने ही निर्मल कान्ठसे प्रकाशित हा रहे हैं ॥ ४९ ॥

विमले च प्रकाशते विशाखे निरुपद्रवे ।

महात्र परमस्माकमिद्व्याकृपां महात्मनाम् ॥ ५० ॥

एव महात्मानी इस्माकुर्मिथोके खिये च खसे उचम
 है वह विशाखानामक सुमम नक्षत्र निर्मल एवं उपद्रवण्य
 (मंगल अदि कुछ ग्रहोंकी आश्रयितसे रहित) होकर प्रकाशित
 हो रहा है ॥ ५० ॥

नैर्भूत नैर्भूतानां च नक्षत्रमसिपीरुच्यत ।

मूको मूलवता स्पृष्टो भूप्यत धूमकेतुना ॥ ५१ ॥

पक्ष्मकेच नक्षत्र मूल खिलके देवता निर्भूति हैं मन्वन्त
 पीडित हो रहा है । उर मूलक निवामक धूमकेतुसे आश्रयन्त
 होकर वह धंतावत्र मगपी हो रहा है ॥ ५१ ॥

सर्वे वैतद् विन्यायाय राक्षसामानुपरिहृतम् ।

काले काळगृहीतानां नक्षत्र ग्रहपीडितम् ॥ ५२ ॥

एव उर कुछ रक्षसके विनायके खिये ही उपस्थित हुआ
 है । नक्षत्रि च अमा कालग्रहमें बंधे होते हैं उनकीच नक्षत्र
 कान्ठानुकर ग्रहोंसे पीडित इत्त है ॥ ५२ ॥

प्रमघाः सुरसाभ्यां कानि फलवन्ति च ।

प्रयान्ति नाथिक्च गन्धा पयतुकुसुमा हुमा ॥ ५३ ॥

एक सन्ध और उचम खसे पूर्ण दिखानी देव है
 नंगमम फ्यात फल उपरुच्य होते हैं सुगन्धित वायु अधिक
 सीमगलिते नहीं वह रही है और इक्षुमें श्वेतुओंके मनुष्यर
 पूत्र को हुए हैं ॥ ५३ ॥

स्पृष्टानि क्रपिसम्मानि प्रकाशन्तऽधिकं प्रभो ।

व्यानामिय सन्धानि सप्राम तारकमय ।

पथमाय समीह्यैतत् प्रीतो भयितुमहसि ॥ ५४ ॥

प्रमो । स्पृष्टद बानरी केन्द्र यही धामलभ्यन्त जन
 पदकै है । तारकमय संप्रामक भगवत्पर देवताओंकी सेनाएँ

मिद उर उल्लहसे सम्पन्न थी इषी प्रकर भाव वे बन
 सेनाएँ भी हैं । आर्य । ऐसे शुभ छव्य देलन मल
 प्रखन सेना चाहिये ॥ ५४ ॥

इति अक्षरमाध्यास्य इष्टः सीमिभिरब्रवीत् ।

अथावृत्य महीं कुरुना जगाम हरिवाशिनी ॥ ५५ ॥

अपने माई भीरमको आश्रय देते हुए हमसे न
 सुमिश्रानुभार सम्पन्न कर इस प्रकर कह रहे के उ
 समक बानरोंकी सेना कहींकी खरी भूमिके पेरकर भ
 बने छपी ॥ ५५ ॥

श्रुशवानरशापूर्वैस्सक्यद्वयुधैरपि ।

करामैश्चरणैश्च धानरैश्चरत रसा ॥ ५६ ॥

उर सेनामें कुछ रीठ ये और कुछ खिके क
 पराक्रमी बनर । नल और दंत ही उनके रक्षक थे । वेर
 बानर वैदिक हाथों और वैदिकी अनुष्मिसेसे वही भूच उर
 रहे थे ॥ ५६ ॥

भीममन्त्रैश्च लोक निर्घार्य सवितुः प्रभाम् ।

सपर्वतवनाच्छा वसिजा हरिवाशिनी ॥ ५७ ॥

छाव्यन्ती ययौ भीमा धामिधाम्मुवसंतति ।

उनकी सहायी हुई उर मन्त्र कर धूमने सुनेषी प्रभ
 को हकर सम्पूर्ण जगत्को खिय-ख दिवा । वह मन्त्र
 बानरसेना परंत, नल और आश्रयल्लित रहिन दिखने
 भाव्यादित-थी करती हुई उकी उर भगो क यी के
 बैसे मेघोंकी ध्या अश्रवणसे उरकर आश्रय होती है ॥ ५७ ॥

उत्तरस्याद्य संनायाः स्वस्त यदुयोजनम् ॥ ५८ ॥

वदीक्षानांसि सर्वाणि ससम्भुक्तिपरीतयत् ।

वह बानरी केन्द्र कर खिके नदीको पार करती के
 उर समय अश्रवण कई संक्रांतिक उरमें समक धारएँ
 उखी बहने समती थी ॥ ५८ ॥

सरासि विमन्मभांसि हुमाक्षीर्षाश्च पर्वतान् ॥ ५९ ॥

समान् भूमिप्रदांश्च धनाणि फलवन्ति च ।

मथ्येन च समन्ताश्च तिर्यक वाधश्च साधितवत् ॥ ६० ॥

समावृत्य महीं कुरुना जगाम महती जम्बू ।

व विशाख सेना निर्मल सन्धाक सन्धर, इक्षुसे रहे
 हुए परंत, भूमिक समल्ल प्रदेष्ट और कबसे मरे हुए क-
 इन सभी खानाके मन्थसे, इधर उधर तथा ऊपर-नीचे ल
 भंरकी खरी भूमिके पेरकर एक रही थी ॥ ५९-६० ॥

त इष्टवदनाः सर्वे जम्बुमाक्षरतंहा ॥ ६१ ॥

हरया राधवस्याप्ये समारपितविक्रमा ।

उर अन्तक सभी बानर प्रसन्नमुक्त रूप बसुके सम
 वेगजान थ । एतन्पक्षीकी क्षयविक्रिके किं उतरा कस्य
 उरका पदक था ॥ ६१ ॥

हर्षे धीर्षे बल्येद्रेक्यन् दूर्वायन्त परस्परम् ॥ ६ ॥
वीर्यास्सकजाद् वृषाद् विधिधांश्चक्रुरप्यनि ।

व ज्वालीक ब्रह्म और अभिमन्युनित दूरके करण
गलते एक वृषभ उस्था पराक्रम तथा नन्दा प्रथमक
कम-कमनी उरुय दिन्वा रहे थे ॥ ६२३ ॥

तत्र केचिद् द्रुत जम्बुद्वारेषु च तथापरे ॥ ६३ ॥
एचिद् किञ्चकिलां चक्रुर्वानरा यतगोचराः ।

यास्तेऽप्येव्यद् पुच्छानि सनिजघ्नुः पदाभ्यपि ॥ ६४ ॥

उनमेंसे एक छ बड़ी तनीसे भूखकर चखते थे और
वृष उरुचक्र भाष्यमने उड़ आते थे । किन्तु ही बन
बधी बनर किञ्चकारियां मते, वृषीयर अपनी पूँछ फट
कण और पैर पटकते थे ॥ ६३-६४ ॥

मुञ्जन् विक्षिप्य शैलांश्च द्रुमामन्ये यभञ्जिरे ।

भाराहस्तश्च शृङ्गाणि गिरीणा गिरिगोचराः ॥ ६५ ॥

किन्तु ही अपनी बाँहें फेंककर पर्यंत-शिलों और
हृषभों काड़ बाढते थे तथा पर्यंतपर विचरनेवाले बहुतर
बनर जहाँही शरियोंपर चढ़ आते थे ॥ ६५ ॥

महागुहान् प्रमुञ्चन्ति द्वेषेहामन्ये प्रचञ्जिरे ।

ऊरुपगौश्च मनुवृक्षताजालभ्यमेकदा ॥ ६६ ॥

कार बड़घारते गच्छे और कारें सिन्धार करते थे ।
किन्तु ही अपनी बाँहोंके वेगसे मनेकनेक क्वा-कमगौश
मक बढते थे ॥ ६६ ॥

भ्रूमामायाश्च विचिन्ता विचिन्तीह्यु दिस्त्राद्रुमैः ।

उक्तः शतसहस्रीश्च कोटिभिश्च सहस्ररा ॥ ६७ ॥

यनराणा सुघाराणा भीमत्यरिभूता मही ।

वे तनी बनर बड़ पराक्रमी थे । भेगाइरें खेते हुए
कमरकी घटानों और बड़-बड़े हृषभे लेक करते थे । उन
घसों कलां और करहों बानगेंत विी हुए खरी वृषी
बड़ी घामा फली थी ॥ ६७ ॥

द्य स याति द्विपारात्र महती हरिपाहिनी ॥ ६८ ॥

महद्यमुदिताः सर्वे सुधीपथ्यभिपासिताः ।

यानरास्वरिता याति सर्वे युद्धाभिनन्दिनाः ।

प्रमास्रपिपया सीता मुहूर्ते क्षापि भाषसन् ॥ ६९ ॥

इस प्रकार बड़ विग्राम बनरसेना दिन-रत पकती रही ।
दुर्लभ मुजिन तनी बनर हृष-पुत्र और प्रकल थे । तनी
बरी उपायकीक क्षय चर रहे थे । तनी युद्ध अभिनन्दन
करनेवाले थे और तनी खेताधीशे राजकी केरम पुहना
करन थे । इतकिय उदने घलने कदा से पकी नी विभाष
नदी टिण्ठ ॥ ६८ ६९ ॥

कदा पाश्यसन्नाथ नानावनसमायुतम् ।

घट्टरम्भामासाघ यानरास्त समारहन् ॥ ७० ॥

चखते-चखत पने वृषभे म्यात और अनेकनेक कमनी-
से संयुक्त का पर्यंतक वात पहुँचकर वे ख बनर उरुक ऊपर
चढ़ गये ॥ ७ ॥

ज्ञानमानि विचित्राणि नदीप्रस्रवणानि च ।

पश्यन्नपि ययौ रामः सहास्य मलयस्य च ॥ ७१ ॥

भीयमचन्द्रभी क्वा और मलयक विचित्र कमनी, नदियों
तथा हरनीकी शोभा देखत हुए यात्रा कर रहे थे ॥ ७१ ॥

सम्यकास्तित्कदाश्चूतामदोश्चन् सिन्धुवारक्यन् ।

तिनिशान् करवीराश्च भञ्जन्ति स द्वयगमाः ॥ ७२ ॥

वे बनर मार्गमें सिंठ हुए चम्पा, सिङ्क आम, अघाक,
सिन्धुबाण तिनिय और कखीर आदि हृषभोंके काड़ देते
थे ॥ ७२ ॥

मनुसंशय करञ्जांश्च द्वसन्प्रमोथपावपान् ।

जम्बूकप्रमकञ्चन् मीयान् भञ्जन्ति स द्वयगमाः ॥ ७३ ॥

उरुच-उरुचकर चखनेवाले वे बनरकेकीक राखक भंकोक,
करन, पाक, बराण, म्मुन, भौतल और नीप आदि वृषभ-
को भी काड़ टाकते थे ॥ ७३ ॥

प्रस्तरेषु च रम्येषु विविधा च ननद्रुमाः ।

वायुषाप्रचञ्चिताः पुषीरवकिरन्ति सन् ॥ ७४ ॥

रम्येष पर्यंतपर उगे हुए नन्दा प्रथमके कंभी हृष
वायुके शौकसे हन-हमकर उन बनरोंपर फूझेंकी बरा करते
थे ॥ ७४ ॥

मादतः सुखसस्पर्शे याति चम्बुनशीतला ।

पटपैरनुकृज्जप्रिचनेषु मयुगन्धिषु ॥ ७५ ॥

मधुसे मुग्धचित काने गुनगुनात हुए भीरोंके लय
कम्बुक समान शीतल, मन्द, मुग्ध वायु बढ रही थी ॥

अधिक दीखराजस्तु भानुभिस्तु विभूयिताः ।

धतुम्या प्रच्छो रेणुपायुषगेन चङ्घिताः ॥ ७६ ॥

सुमहद्वानरानीक उप्रयामास सवताः ।

बर पर्यंतपर गैरिभ आदि पनुभने विभूयित दो बड़ी
घामा थे रहा थे । उन पनुभने केकी हुईं पूरु वायुके
वेगमें उड़कर उन विद्युत बनरम्भामां क्व भ्रम भ्रष्टारित
कर देनी थी ॥ ७६ ॥

गिरिप्रस्थेषु रम्येषु सयतः सम्यपुण्डिता ॥ ७७ ॥

कतम्यः सिन्धुमाराश्च यासन्त्यश्च मनाग्माः ।

माधप्यो गाम्धूपमादय पुम्बुगुल्मादय पुण्डिता ॥ ७८ ॥

रम्येष परतगिगयोंक क्व भर हिन्दी हुईं कपरी
सिन्धुवार और पकली क्वाए बरी मन्दम उन पदों थीं ।
प्रकुर मारपी कगारें मुग्धम भी थीं और कुन्दी
सदियों भी हृषम करी हुए थीं ॥ ७७ ७८ ॥

सिरिविस्था मधुकाण्ड वञ्जुला वकुलास्तथा ।

रञ्जकस्तित्रकाद्यैव नागवृक्षादथ पुष्यिताः ॥ ७९ ॥

निर्विस्त्र मधुक (मधुवा) वञ्जुल बहुल रवकः
स्त्रिक और नागकेसरक वृक्ष भी वहाँ स्थित हुए थे ॥ ७९ ॥

धृताः पाटलिकाद्यैव क्रोविकारादथ पुष्यिताः ।

मुषुस्त्रिन्द्रार्जुनाद्यैव शिशयाः कुटजास्तथा ॥ ८० ॥

हिन्द्यालास्तिनिश्रयैव धूपक्य नीपकास्तथा ।

नीलाशोकान्ध सरला मञ्जुलाः पत्रकास्तथा ॥ ८१ ॥

आम पावर और शिवदार भी वृक्षोंमें छड़े थे । मुषु-
स्त्रिन्द्र अर्जुन शिशया कुटज हिंदाळ, तिनीषा धूपक,
कन्द्य, नीलाशोक, सरल, मञ्जुला और पत्रक भी सुन्दर वृक्षों-
में सुशोभित थे ॥ ८ ८१ ॥

प्रीयमापैः पूर्वगीस्तु सर्वे पर्याकुम्भित्तरा ।

वाप्यस्तस्मिन् गिरौ रम्याः पश्वलानि तथैव च ॥ ८२ ॥

धरुवाकाञ्चुवरिताः कारकडयनिपेक्षिताः ।

द्रवैः क्रौञ्चैश्च सङ्कीर्णो घराहसुगसेक्षिताः ॥ ८३ ॥

प्रकल्पते भरे हुए बनमें उन सब वृक्षोंमें घेर लिखा
था । उन पर्यन्त बहुत ही रमणीय वागडियों तथा छोटे-छोटे
ज्योष्य में यहाँ जङ्गल विचरते और अञ्जुनकुट निवास
करते थे । अञ्जुन और क्रौञ्च भरे हुए थे तथा सूभर और
द्रिय उनमें पानी पीते थे ॥ ८२ ८३ ॥

श्रुक्षीस्तरुभिः सिद्धैः शानून्नेद्य भयापहैः ।

व्यान्नेद्य वङ्गुभिर्भूमिः सस्यमानाः समस्तकाः ॥ ८४ ॥

छिद्र तरु (बडइकने), छिद्र मन्कर बाप तथा
बहुतक्यक वृक्ष हाथी को बड़े नीरुप में ख औरते आ-
भाइ उन अस्मानोंका भजन करते थे ॥ ८४ ॥

पद्मैः श्रीगन्धिकाः कुस्तैः कुमुदैश्चोत्पलैश्च तथा ।

पारिशीर्षिषैः पुष्यै रम्यास्तत्र जलाशयाः ॥ ८५ ॥

निम्न हुए सुशोभित कमल कुमुद उत्पल तथा कडमें
होनेवासे मौलि-मौलिक अन्य पुष्पोंमें वहाँके ज्योष्य बड़े
रमणीय दिवाली देते थे ॥ ८५ ॥

तस्य सानुषु कृञ्जनि नानाविज्रगणास्तथा ।

श्याम्या पीनशक्त्रज्यप्र जन् पीडिङ्गि यानगाः ॥ ८६ ॥

उन पर्यन्त निम्नतर गन्ध प्रसारक वृक्ष कम्बल करने
थे । श्वर उन ज्योष्यमें नहाते पानी पीते और जन्में
हीजा करने थे ॥ ८६ ॥

धन्याप्य ग्रायसिन्धु स ईन्दमाकाङ्क्ष यानगाः ।

पन्थाप्यमृतामर्षानि मृयानि कुसुमानि च ॥ ८७ ॥

धन्वुयानगस्तत्र पावयाना मराकटाः ।

द्राप्यमायप्रमृतानि मरुथमानानि यानगाः ॥ ८८ ॥

धनुः विपन्नः व्यथ्यान्ध प्रपूनि मधु विप्लवाः ।

ये आकर्म एक वृक्षपर पानी भी उछलते थे
बानर पर्यन्त चक्र बर्हिके वृक्षोंके मनुक्यान् मीठे
मूखे और फूलोंको लेङ्गते थे । मधुके समान बकरक
ही मदगत बानर वृक्षोंमें छटके और एक-एक ग्राम
भरे हुए मधुके छतोंको लेङ्गकर ऊपर मधु पी के
तस्य (संतुष) होकर चमते थे ॥ ८७-८८ ॥

पावयानकभङ्गन्तो विकर्पन्तस्ताथा श्रताः ।
विधमन्तो गिरिवरान् प्रययुः प्रवर्णयताः ।

पेड़ोंको लेङ्गते श्यामोको लोन्ते और बड़े-बड़े प
प्रतिष्पन्त करते हुए वे श्रेष्ठ श्वर तीव्र गतिमें श्वरे
रहे थे ॥ ८९ ॥

बृहोभ्योऽन्ये तु कपयो नयन्तो मधु वर्षिताः ॥ ९० ॥

अन्ये वृक्षान् प्रपद्यन्ते प्रविबन्धयि क्षयरे ।

वृक्षे श्वर दर्शित भरकर वृक्षोंमें मधुके छते उठकर
और खेर-खेरते गन्ध करते थे । कुछ बानर वृक्षोंपर
जते और कुछ मधु पीने चमते थे ॥ ९१ ॥

धमूक वसुधा वैस्तु सन्पूर्णा हरिपुङ्गवैः ।

यथा कञ्जमकेदारैः पक्षैरिव पशुभ्यः ॥ ९१ ॥

उन बानरकिणमक्षिणोंमें भरी हुई वरुषी मृगि पक्षे
बाणका कञ्जमें पानोंकी स्मरणामें बड़ी हुई पशुओंके छ
सुशोभित हो रही थी ॥ ९१ ॥

महेन्द्रमथ सस्याप्य रामो राक्षीवसोक्थनः ।

भादराह महाबाहुः शिखर तुमभूषितम् ॥ ९२ ॥

कम्बनकन महाबाहु भीमकन्दरी महेन्द्र पर्यन्ते प
पर्यन्तक मोलि-मौलिके वृक्षोंमें सुशोभित उल्ले शिखर
बहु गले ॥ ९२ ॥

तटाः शिखरमादद्य रामो वशाधारमजः ।

कूमरीनसामाक्षीभमपदव्युः सखिस्यशयम् ॥ ९३ ॥

महेन्द्र पर्यन्ते शिखरपर श्वरक ही वशाधारन्त मन्क
भीमजने कसुभौ और मन्तौले भरे हुए सुशुको देखे ।
तें सब समतिकल्प मलय च महागिरिम् ।
भामपुरानुपुष्पेण समुद्रं भीमनिश्चकम् ॥ ९४ ॥

इत प्रभर वे लक्ष तथा अमयक सौपर कम्पन महेन्द्र
पकक क्षयकक्षी सुशुक्र उत्तर च पर्यन्त जहाँ बहा मन्क
गन्ध हो रहा था ॥ ९४ ॥

भरुल्ल अग्रममाणु यक्षजनमनुत्तमम् ।

गामा रमयतां श्वरः समुदीरः सस्यमथा ॥ ९५ ॥

उत्त पर्यन्त उत्तर भरुल्ल मन्क रमानक्षयोंमें श्वर
भगवान् भीम मदीर और सस्यक लक्ष भीम ही कम्प
तदक्षरं वय उद्यम कर्म च पर्यन्त ॥ ९५ ॥

य धीतोपलनला सोयीषः सहस्रोत्थितः ।
 धामासाद्य विपुला रामा ध्वननमप्रथीत् ॥ १६ ॥
 र्वां खड्ग उठी हुर अक्षी तरङ्गोत्ते प्रनरक्षी शिष्योर्षे
 गयी थां उष विस्तृत सिन्धुतटपर पङ्कचकर भीषमने
 दा— ॥ १६ ॥
 जं पयमनुप्राप्ता सुग्रीयि वक्ष्यात्तयम् ।
 हेदूर्त्नी विचिन्ता सा या ना पूषमुपस्थिता ॥ १७ ॥
 ध्रुवीय । धः, हम ख खद्यम क्षुद्रक किनार छ आ गय ।
 मर यहाँ मन्नें फिर बही चिन्ता उपपन्न हा गयी अ हमरे
 मनने पद्व उपासित थी ॥ १७ ॥
 म्ताः परमनीरोऽय सागरः सरितां पतिः ।
 चायमनुपायेन शफ्यस्सरितुमभवत् ॥ १८ ॥
 एखे भ्रगे छ यह ठरिताभोक्ष स्वामी महाधरत पी
 निषमन है किष्क कर्षी पार नहीं दिखानी देता । भव
 किना किन्ही क्षुक्ति उपायके समरक पार कर्ता भस्ममव है ।
 विद्विहव निषरोऽस्तु मन्त्रा प्रस्तूयतामिह ।
 यथर्षं धानरपल पर धारमधानुपात् ॥ १९ ॥
 वृक्षियेय यहाँ मन्त्रा पढ़ान पढ़ अय भीर हमका
 र्शं बैठकर यह विचार आरम्भ करें कि किष्क प्रकर यह
 बनर-मना क्षुद्रक उष पातक पङ्कच कर्षी है ॥ १९ ॥
 र्त्वां स महापातुः सीताहरणकशितः ।
 धामा सागरमासाद्य वासामानापयत् तदा ॥ २० ॥
 एष प्रकर सीताहरणक घातक दुर्षक हुए महापातु
 भीषमने क्षुद्रक किनार पङ्कचकर गठ सम्य खरी केनाक्ष
 र्शं ठरलेकी आज्ञा ही ॥ २ ॥
 सवाः सना निबद्धयन्ता यक्षायां हरिपुङ्गव ।
 सव्यासो मन्त्रकान्तो नः सागरस्यह खड्ग ॥ २१ ॥
 व शब्द — र्श्रियः ! समस्त मन्त्राभोक्ष क्षुद्रक तपर
 र्पण्य अय । भव यहाँ हमारे विष क्षुद्रक-सङ्घनक उपायन
 विचार करनेक अवसर प्राप्त हुआ है ॥ २ ॥
 र्शं म्यासनां समुत्थय मा व कश्चित् कृता प्रजत् ।
 गच्छन्तु मानराः दूरा ध्रय छन्न भय च नः ॥ २२ ॥
 एष समय कर भी मनापनि किन्ही भी कारण भङ्गी-
 भर्त्नी म्नाद्य एतच्छर कर्षी अन्यत्र न अय । समस्त पू
 र्शं बनर-मनारी रक्षक विष यथास्थान चर अय । कषक
 यह अय सना चाहिय कि हमकाकार राक्षसी मन्त्रन गुप्त
 मय न्य तद्व्य है ॥ २ ॥
 रामस्य यवन भुम्बा सुग्रीयाः सहस्रहमनाः ।
 सना निषयायत् तार सागरस्य दुग्मपुत्र ॥ २३ ॥
 धरमकण्ठीक यह वचन सुनकर सभजनकरित सुग्रीर
 न इच्छन्त्योऽय मुग्धन्ति समर-तटम सन्नाद्य ठरय दिष ॥

विराज समीपस्य सागरस्य च तद् यत्नम् ।
 मनुपाङ्गुजलः भीमान् द्विर्तीय इव सागरः ॥ २४ ॥
 क्षुद्रक पस ठरही हुर यह विषय बनर-मना मधुक
 समन पित्रक्षयक अस्म भर हुए वृत्ते समर-भी-सी धामा
 पारय कर्षी थी ॥ २ ॥
 यक्षाघनमुपागम्य ततस्त हरिपुङ्गवाः ।
 निविष्टाश्च पर पार काङ्क्षमाण्य महात्प ॥ २० ॥
 सागर-तटर्षी बनने पङ्कचकर वे सभी भेड धनर क्षुद्रक
 उष पार अनेकी अन्विष्यय मनम विष्य बही ठरर गया ॥ २ ॥
 तयां निविशमानामा सैन्यसनाहनिःखनाः ।
 भस्तर्षीय महानावमणयस्य प्रभुभुष ॥ २० ॥
 र्शं डय कषल हुए उन भीषम आग्नीधी मन्त्रांशक
 सन्त्रण्ये अ महान् कष्यारक हुआ यह महाधरतकी गम्भीर
 गर्भनाक्षी भी दबाकर मुनानी देने सव्य ॥ २ ॥
 सा पालराणां ध्वजिनी सुग्रीयण्यभिपासिता ।
 त्रिधा निविष्टा महता रामस्ययपराभवत् ॥ २० ॥
 सुग्रीयण्यय मुग्धिज वह वानरोंकी विद्यास सना भीषम-
 च्छरीक क्षय-खनन लपर हा पीठ छंर भीर बनरोंक
 मरुष तीन मन्त्रोंने विनक हाकर ठरर गयी ॥ २ ॥
 सा महायक्षमासाद्य हृष्ट धानरयाहिनी ।
 धायुष्मासमाधूत पश्यमाना महाधरम् ॥ २० ॥
 महाधरतक तटपर पङ्कचकर यह बनर-मना यायुष्क वेग-
 न कश्चित् हुए क्षुद्रकी धामा रक्षती हुई वह हयक
 अनुभव कर्षी थी ॥ २ ॥
 दूरपात्ससम्याध रक्षागणनिपथितम् ।
 पश्यन्तो यदुणायास निपनुहरियूयया ॥ २० ॥
 क्षिता दूख कर बहुत दूर था भीर पीचने कर आभय
 नहीं था तथा क्षिमे राक्षसाक्ष क्षुद्राय निषास करत थे उष
 बक्ष्यसव क्षुद्रक रक्षन हुए व बनर-पूषयनि उयक तटपर
 येठ रहे ॥ २ ॥
 यक्षनमामाहाचार ध्यायत् दिवसधय ।
 हसन्तमिव फर्त्तःपेनुत्थन्तमिव चोमिभिः ॥ २१ ॥
 चन्द्राय समुद्भूत प्रसिधन्त्रसमाकुन्वम् ।
 यक्षानिस्समहाप्राईः कर्णो निमित्तिमिगिर्धः ॥ २१ ॥
 यथेने भर हुए नाक्षिक कषय क्षुद्र वहा भयकर
 दिखाय रता था । दिनक अल भार गनक आरभयें—
 प्रदायक समय चन्द्राय हानर उरने पार भ्र गया था ।
 उस समय वह चन्द्र-सुहाक कषण ईक्षुध भर उच्चत तरङ्गे-
 क कारण नाचने-कर प्रसन्न हय था । चन्द्रमाक प्रसन्नियत्न
 भय छ अन् पश्य था । प्रचक्ष वयुष्क समन फाद्यय
 बह-बह प्रादाय भीर क्षिन् नामक महान्-स्योच भी निगल

अनेनाथ महामयकर अक्षरान्ते व्यात विसासी देता य ॥
वीरभोगैरिवाकीर्ण मुञ्जसैर्वदण्डयम् ।
मन्नाड महासखैर्नागावीरसमाकुलम् ॥११२८॥

वह बरुणभय प्रदीत कर्णोवाले कर्णों, विद्याभय अक्ष-
रों और नाना परतोंसे व्यात अक्षर पढ़ता था ॥ ११२८ ॥

सुदुर्ग दुर्गमार्ग तन्नागधमसुखलयम् ।
मकरैर्नागभोगैश्च विद्याया वातखोखिता ।
उत्पेतुश्च निपेतुश्च प्रहृष्टा जलराजाया ॥११२९॥

एकदोष नियतभूत वह अग्नय महाधमर अत्यन्त
दुर्गम था । उठे पार करनेका कोई मार्ग था खचन दुर्गम था ।
उठने वायुकी प्रेरणासे उठी हुई चञ्चल ठरखें, चञ्चल मार्गों
और विद्याभय कर्णोंसे व्यात थी, वह उल्लसते ऊपरको
उठती और नीचेको उतर जाती थी ॥ ११२९ ॥

धम्मिचूणमिच्छाचिन्ध भास्वराभ्युपहारगम् ।
सुरारिनिखय मोर पातालविपय स्व्या ॥११३०॥
सागर चाम्बर चन्ति निर्विघ्नोपमन्त्रद्वय ॥११३१॥

छुद्रक अक्षरका बड़े धमकीसे दिसासी देते थे । उन्हें
देखकर देख अक्षर पढ़ता था मानो छमने भास्वरी चिन्तारिणों
किसरे ही गयी ही । (देखे हुए नक्षत्रोंके कारण आकाश
भी देख ही दिसासी देख था) छुद्रने बड़े-बड़े कर्णों से
(आकाशमें भी राहु आदि एकाक्षर ही देखे जाते थे) छुद्र
देखदारी दत्ता और एषोक्क आवाक-खान धा (आकाश भी
देख ही था; क्वाकि बहो भी उनका संभरण देखा जाया था)
हर्णों ही देखनेमें भयंकर और पातालके समान गम्भीर थे ।
इत प्रकार छुद्र आकाशके समान और आकाश छुद्रके
समान अक्षर पढ़ता था । छुद्र और आकाशमें भयंकर अन्तर
नहीं दिसासी देता था ॥ ११३० ११३१ ॥

सम्पूक्तं नभसाप्यम्भा सम्पूक्तं च नभोऽम्भसा ।
वाह्यम् स हृदयत तारातरसमाकुलम् ॥११३२॥

हृदयों श्रीमद्भ्यामापने वास्मीकीये अक्षरिकायें पुस्तकान्ते चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥
(११ प्रकार श्रीमद्भ्यामिनिर्मित अक्षरामात्रक अक्षरिकायक मुद्रकायमें चौथा सर्ग पूरा हुआ ॥ ४ ॥

अक्षरान्ते मित्र हुआ था और आकाश ॥
आकाशमें ठारे कितने हुए थे और छुद्रने नेत्री ।
वेनों एक-ते दिसासी देते थे ॥ ११२९ ॥

समुत्पतितमेधस्य धीकिमाकाकुलस्य च ।
विधेयो न ह्ययोपसीत् सारारस्याम्बरस्य च ॥११३०॥

आकाशमें मेधोंकी पद्य फिर आनी थी और छुद्र ।
मात्रकोंसे व्यत हो रहा था । अक्षर छुद्र और अ
वेनोंमें कोई अन्तर नहीं रह गया था ॥ ११३० ॥

अभ्योन्मैरहताः सक्ताः सखनुभीमनिस्वना ।
ऊर्मया सिन्धुराजस्य महामैर्य हृद्यम्बरे ॥११३१॥

परस्पर टकराकर और उठकर सिन्धुजन्मी ।
आकाशमें बनेबासी देवताओंकी बड़ी-बड़ी मेरियोंके व
भयानक शब्द करती थी ॥ ११३१ ॥

रत्नीपञ्जसनात् विपत्कमिष वायुना ।
उत्सन्तमिव कुञ्ज यादोगणसमाकुलम् ॥११३२॥

वायुसे प्रेरित हो कर्णोंको उल्लसनेवासी कर्णों तक
कलकल नारते हुए और अक्षरान्ते मय हुआ व
इत प्रकार ऊपरको उल्लस रहा था मानो ऐसी :
हुआ हो ॥ ११३२ ॥

वृद्धशुक्ले महास्वामो याताहतजम्बरयम् ।
अनिखोत्तमाक्षरो प्रपञ्जस्तमिवोर्मिभिः ॥११३३॥

उन महामन्त्री बनरलीने देता, छुद्र कटुके न
साकर पक्षकी प्रेरणासे आकाशमें ऊँचे उठकर उल्लस
के हाथ वृष-सा कर रहा था ॥ ११३३ ॥

ततो विस्वयमापन्ना हरयो वृद्धशुक्लस्य ।
अन्त्योर्मिभ्याससनात् प्रजोखमिय सागरम् ॥११३४॥

तदन्तर बहो लड़े हुए बानरोंने यह भी देखा ।
ककर कटते हुए तल-छुद्रोंके कलकल नारते हुए अ
छार अक्षर पढ़कर-व हो गया है । यह देखकर ऊँचे व
माभय हुआ ॥ ११३४ ॥

पञ्चम सर्ग

श्रीरामका सीताक लिये श्राक और विलाप

सा तु मीलन विधिन्प्यारस्ता सुसमाहित ।
सागरस्यात्तर तीरं स्थापु सा विनिपतिता ॥ १ ॥
नीलन किमरो दिपदन् रणदी चरुता की गयी थी
उस परम खरपन्त बनर-सनाथ छुद्रक उतर तटपर अक्ष
दगल उदण्य ॥ १ ॥

मैम्बय द्विधिब्यापी तय पानरपुङ्गवी ।
विषरनुष्य तां सनां रक्षार्थं सयतादिनाम् ॥ २ ॥
मैम्ब और द्विधिर—व हा प्रमुख बानरकी उत मन्त्री
छाक सिन्धु तब अक्षर निकल उठत व ॥ २ ॥

निविष्टया तु सेमार्या सीरे नन्दनदीपतेः ।

पाश्वर्यस्य लक्ष्मण्य हृद्यु रामो वसन्तमश्रवीत् ॥ ३ ॥

कुमुदके किनारे सेन्द्रक्य पद्मपत्र अनेपर भीषमचन्द्र
कीने अने पत्र बैठ हुए लक्ष्मणकी ओर देखकर कहा—

शक्य किञ्च कालेन गच्छता ह्यपगच्छसि ।

मम चापहृतः कान्तामहस्यहनि यद्यत ॥ ४ ॥

कुमुदचन्द्रनन्दन ! कहा बात है कि शक्य चीजते हुए
लक्ष्मण क्या स्वयं भी दूर हो जाता है परन्तु मेरा शक्य तब
अभी प्राणवत्त्वमात्र न देखनेके कारण दिनादिन बढ़
या है ॥ ४ ॥

न मे दुःख प्रिया वृत्त म मे दुःख हृतति च ।

पश्येयानुशाब्धमि क्योऽस्या ह्यसित्येत ॥ ५ ॥

कुमुदे इस बातका दुःख नहीं है कि मरी प्रिया मुझसे
दूर है । उसका अपहरण हुआ—इसका भी दुःख नहीं है । मैं
तो बार-बार इसीझिमे छोड़कर हूँ चला रहा हूँ कि उसके अंकित
रङ्गके झिमे जो अरबि निकल कर सी गयी है वह खीप्रता-
पूर्वक होती आ रही है ॥ ५ ॥

कहिं वात यतः कान्ता ता स्युष्मा मामपि स्पृशा ।

त्वयि मे गात्रस्यस्यमाश्रये हृदिसमागमः ॥ ६ ॥

‘धवा ! तुम वहाँ रह, जहाँ मरी प्राणवत्त्वमात्र है । उसका
रस्य करके मेरा भी स्पर्श कर । उस
दरममें तुझसे जो मेरे आङ्गोंका स्पर्श होगा, वह चन्द्रमासे हमने-
वाके हृदिकेअङ्गकी मूर्ति मेरे सारे अंगोंका दूर करनेवाला
और आङ्गारकका हानत ॥ ६ ॥

कस्य वृष्टि गत्राणि विरं पीतमिवादाये ।

शा मयति प्रिया सा मा ह्रियमाणा पद्मश्रीत् ॥ ७ ॥

अपहरण होते समय मरी प्यारी खीजने जो मुझे पहा
नाथ ! करकर प्रकथय था वह धीमे हुए उदरकृत विपरी
मूर्ति मर सारे आङ्गोंका दण्ड किये देता है ॥ ७ ॥

हृद्वियोगाभनयता तद्विन्तायिमन्नाब्धिषा ।

परिचिद्विरं दारीर म वृद्धत मन्नाभिना ॥ ८ ॥

मिमन्तामम विपदा ही निम्नार्थ ईषन है उसकी किन्ता
ही किन्तु भी दीक्षिती छपट है वह प्रमत्ति नरे धरिरेष
एतदिन अक्षरी यगी है ॥ ८ ॥

भयगाह्यार्थं स्वप्स्य सौमित्रे भक्त्य विना ।

पथ च प्रत्यलन्क्यमो न मा सुप्तं जल वृहेत् ॥ ९ ॥

कुमुदचन्द्रनन्दन ! तुम यही खो । मैं तुम्हारे किय अकेला
ही कुमुदके भीतर सुतकर जाऊँगा । इस तरह अन्त घसन
करनेपर वह प्रत्यलन्क्य प्रमत्ति मुझ दण्ड नहीं कर सकेगी ॥

वृद्धत चामयानस्य शक्यमतन जीयितुम् ।

पश्यं सा च पानादरक्तं भरनिमाधिती ॥ १० ॥

मैं और वह अन्तके हीता एक ही भूतकर गते हैं ।
विपतमाके अगमकी इच्छा रखनेवाले मुझ विपरीक झिमे
इतना ही बहुत है । इतनेसे भी मैं अंकित रह सकता
हूँ ॥ १० ॥

कदारस्येव कदारः सत्कस्य निरुक्तः ।

उपस्तेहेन ज्ञायामि जीवन्तीं यच्छृण्वेमि ताम् ॥ ११ ॥

जैसे अक्षते मरी दुर्ग क्यारीक सम्पत्के सिना अक्षरी
क्यारीक पान भी अंकित रहा है—सूचना नहीं है उसी
प्रकार मैं जो यह सुनता हूँ कि खीज अंगी अंकित है,
इसीसे जो रहा हूँ ॥ ११ ॥

कदा तु कलु सुधायां उतपत्रायतेक्षणाम् ।

विश्रित्य शब्दं प्रक्यामि सीता स्फुरितामियधियम् ॥ १२ ॥

कब वह समय आयेगा नन शत्रुओंके परका करके मैं
समुद्रिषाक्षिती राक्षसकीके अमन कमलनकी सुमयन्य सीता-
का देखूँगा ॥ १२ ॥

कदा सुचाकदस्तोऽप तस्याः पद्ममिवाननम् ।

ईपुष्पाम्य पास्यामि रसायनमियातुरः ॥ १३ ॥

जैसे उगी रसायनका पान करता है, उसी प्रकार मैं कब
सुन्दर दंतों और विम्बसदृश मन्दिर अठेठोंके मुक्त खीताके
प्रकृतकमलजैसे मुलका कुछ ऊपर उठाकर चूर्णगा ॥ १३ ॥
तो तम्याः सहिती पीनी सनी तासफलोपमी ।

कदा तु कलु सोत्कम्पी द्विलप्यम्यामां भविष्यता ॥ १४ ॥

‘मय आश्रित्वा कली दुर्ग प्रिया खीताके वे परस्पर सते
हुए लक्ष्मणका अमन गेष् और माटे दण्डे सान कब
किन्ति कमनके अय मेरा स्पर्श करेगा ॥ १४ ॥

सा नूनमसितापाही रक्षोमध्यगता सती ।

मन्नाथा नायहनिव घातारं माधिगच्छति ॥ १५ ॥

कमनके नेत्रमातवायी वह सती-अक्षरी खीता, विरुद्ध
में ही नाथ हूँ भाव अनाथकी मूर्ति यक्षोंके भीचम पद
कर निम्न ही कर रहक नहीं आ रही होगी ॥ १५ ॥

कथ जनकराजस्य दुहिता मम च प्रिया ।

राक्षसीमध्यगा शेत स्तुया द्दारथस्य च ॥ १६ ॥

पथ अक्षरी पुत्री महाएन एधरथकी पुत्रक्यू और
मरी विपतन्य खीता यक्षिकक बीचमें कम सती होगी ॥ १६ ॥

अधिष्ठाप्याणि रसासि सा यिषुपात्यतिप्यति ।

यिषुय अस्रवान् नीलाभ्यानिगल्सा दारत्तिय ॥ १७ ॥

वह समय १५ अक्षर कब कि खीज मर हाय उन
दुषय यक्षका किनाय करक उगी प्रकार अन्ता उदार करके
अन हाय अक्षरोंके चन्द्रमया पान अक्षरोंका निवारण करक
उनके अक्षरक मुक्त ही खीज है ॥ १७ ॥

सभाधतनुका नूनं शोकेनानशनेन च ।
भूयस्तनुतरा सीता वशाकस्तुषिपर्यायात् ॥ १८ ॥

स्वभावतः ही दुबले-पतनं शरीरवासी छीया विपरीत देश
कल्पमें पक्ष जानेके कारण निश्चय ही शाक और उपवास करके
और भी बूढ गयी होगी ॥ १८ ॥

कदा नु राक्षसाम्बुस्य निधयोरसि सायकान् ।
शोकं प्रत्याहरिष्यामि शाकमुत्सृज्य मानसम् ॥ १९ ॥

मैं उसकाच राक्षसी छलीमें अपने सारमें पक्षकर
अपने मानसिक शोकका निराकरण करके इन छीयापक्ष शाक
पूर करूँगा ॥ १९ ॥

कदा नु कलु मे साध्वी सीतामरसुद्योपमा ।
साकान्द कण्ठमालम्ब्य मोक्ष्यात्पानन्त्रज अक्षम् ॥ २० ॥

देवकन्याक समान सुन्दरी मेरी छत्री-साध्वी छीया कब
उत्कण्ठपूर्वक मरे गमने काकर अपने नभोंसे आनन्दके
भौंत् बहायेगी ॥ २० ॥

हरावें जोमजामावने कावमीक्षीये अदिब्रह्मे पुत्रब्रह्मे पक्षमः सर्गः ॥ ५ ॥

इन बकार धीमत्यान्मीक्षीय रावराामाधमे अदिब्रह्मे पुत्रब्रह्मे पक्षमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठ सर्ग

रावणका क्रतुभ्रम निर्णयक लिये अपने मन्त्रिपोंसे समुचित मलाह दानका अनुरोध करना

अङ्गायां तु कृतं कर्म घोरं बहू भयावहम् ।
राक्षसेन्द्रो हनुमत्पुत्रं शक्येऽपेक्ष महात्मना ।
भद्रवीर्यं राक्षसान् सयान् द्विष्या किञ्चिद्व्याजमुक्तः ॥ १ ॥

इपर इन्द्रपुत्र पण्डमी महात्म हनुमान्कीने लक्ष्मी
को भयानक भयावह करे कर्म किया था उसे देखकर उसका-
पुत्र रावणका मुक्त कबले कुछ नीचेको छूक गया और
उसने समस्त राक्षसोंसे इत प्रकार कहा— ॥ १ ॥

अपितां च प्रविष्टां च अङ्गा सुष्पच्छा पुरी ।
तेन वानरसमूहेण वृष्या सीता च जानकी ॥ २ ॥

निगान्धरो ! वह हनुमान् को एक बानरपुत्र है अकेला
इस दुर्धर्ष पुरीमें कुछ अन्ध। उसने इसे दखल-बाहल कर जान
और फनककुमारी छीतासे नैट भी कर किया ॥ २ ॥

प्रासादा भर्षितशैत्यः प्रवरा राक्षसा वृष्या ।
सावित्रा च पुरी अङ्गा सयां हनुमता वृष्या ॥ ३ ॥

पुत्र ही नहीं हनुमान्ने दैत्यप्रासादको भयवानी कर
दिया सुष्प-सुष्प राक्षसोंके मार निराध और छत्री अङ्गा-
पुरीमें सावित्री मन्त्र दी ॥ ३ ॥

किं करिष्यामि भद्र वः किं वो युक्तमन्तरम् ।
अप्यतां ना समर्थं यत् कृतं च सुदुर्लभं भवत् ॥ ४ ॥

कदा शोकाग्निं घोरं मैथिलीविप्रयागाजम् ।
सहसा विप्रमोक्ष्यामि यासाः शुक्लतरं यथा ॥ २१ ॥

ऐसा समय बन भावगा, जब मैं मिथिलाकुम्भीके
निष्पत्ते होनेवाला इस भयंकर शत्रुका मर्दिन करनी मी
छाव त्वाग दूँगा ! ॥ २१ ॥

परं विलपतस्तस्य तत्र रामस्य धीमता ।
दिनक्षयात्मन्व्यधुर्भास्करोऽस्तमुपागमत् ॥ २२ ॥

सुदिमान् भीरुमन्त्रभी यहाँ इस प्रकार कियत कर
ही रहे पक्ष दिनका अन्त इनके कारण मन्त्र कियेको
सुधैव अस्ताधरुको य पहुँचे ॥ २२ ॥

आभ्यास्तिष्ठे त्वक्षमणेन रामः सभ्यामुपासत ।
सरन् कमलपत्रार्हा सीता शोकाकुलीकृता ॥ २३ ॥

उस समय ब्रह्मणके धर्म बंधनेपर छोड़ते आहुत हुए
भीरुमने कमलमन्त्री छीयापक्ष चिन्तन करते हुए लक्ष्मीके
की ॥ २३ ॥

पुत्रमन्त्राश्च मन्त्र ही । अथ मैं क्या करूँ । उन्हें व
कर्म उचित और समय जान पड़े तथा कितने कलनेपर
अपका परिणाम निकल उते फताओ ॥ ४ ॥

मन्त्रमूलं च विद्वज् प्रकल्पितं ममस्त्रिणा ।
तस्मात् वै रोषये मन्त्रं रामं प्रति महात्मना ॥ ५ ॥

महात्मनी वीर ! मन्त्री पुत्रपक्ष करता है कि मन्त्र
का मूल कारण मन्त्रिपोंकी ही हुई अन्धी अन्ध ही है ।
इसलिये मैं भीरुमके निराधने भावनेसे अन्ध अन्ध अन्ध
कमस्ता हूँ ॥ ५ ॥

त्रिविधा पुरुषा कोके उत्तमाधममध्यमाः ।
तेषां तु समवेदानां गुणव्यापी वृषाम्यहम् ॥ ६ ॥

पुंसवारमें उत्तम, मध्यम और अधम तीन प्रकारके पुरुष
होते हैं । मैं उन सबके गुण-बोधकर बर्नन करता हूँ ॥ ६ ॥

मन्त्रविभिर्हि सयुक्ताः समर्थैर्मन्त्रविभिये ।
मित्रैर्थापि समानार्थैर्वाभ्यैरपि कथिष्ये ॥ ७ ॥

साहितो मन्त्रवित्या याः कर्मोत्तमान् प्रकथयेत् ।
द्वैवं च कुर्वते यत्नं तस्मात् पुरुषोत्तमम् ॥ ८ ॥

किसका मन्त्र आगे बढाये जानेवाला तीन प्रकारके पुरुष
होता है तथा जो पुरुष मन्त्रनिर्णयमें समर्थ निकलें ऊपर

दुःस-सुसवाळे बान्धवों और उनसे भी बढ़कर अपने दित
करियेके साथ मन्त्र करके कपकप आरम्भ करता है तथा
देवके छारे प्रयत्न करता है, उसे उत्तम पुरुष कहते
हैं ॥ ७-८ ॥

एषोऽर्थं किमुशोर्वको धर्मं प्रकुर्वते मनः ।
एकः कार्यणि कुर्वते तमाहुमन्त्रमं नरम् ॥ ९ ॥

एक अकेल ही अपने कर्तव्यका विचार करता है,
अकेल ही धर्ममें मन लगाता है और अकेल ही उन कर्म
करता है, उसे मन्त्र भेषीका पुरुष कहा जाता है ॥ ९ ॥

गुणबोधौ न निश्चित्य त्यक्त्वा वैकल्पयाभयम् ।
करिष्यामीति याः क्रयमुपहात् स नराधमा ॥ १० ॥

जब गुण-रूपका विचार न करके देवका भी आभय
छेड़कर केवल 'करेगा' इसी बुद्धिसे कर्म आरम्भ करता है
और फिर उसकी उल्लेख कर देता है, वह पुरुषार्थमें अधम
है ॥ १० ॥

एधमं पुरुषा नित्यमुत्तमाधममप्यमाः ।
एव मन्त्रोऽपि विज्ञेय उत्तमाधममप्यमाः ॥ ११ ॥

जैसे वे पुरुष उदा उत्तम मन्त्र और अधम तीन
प्रकारके होते हैं, वैसे ही मन्त्र (निश्चित किया हुआ विचार)
भी उत्तम, मन्त्र और अधम भेदसे तीन प्रकारका समझना
चाहिये ॥ ११ ॥

येकमत्यमुपागत्य शास्त्रावद्येन चक्षुषा ।
मन्त्रिणो यत्र निरतास्तमाहुमन्त्रमुत्तमम् ॥ १२ ॥

जिसमें छात्रके हृदिये उन मन्त्री एकमत होकर प्रवृत्त
होते हैं, उसे उत्तम मन्त्र कहते हैं ॥ १२ ॥

पक्षीरपि मतीगत्वा मन्त्रिणामयतिथया ।
पुनरपि कथां यासः स मन्त्रा मप्यमाः स्मृताः ॥ १३ ॥

जहाँ आरम्भमें कई प्रकारका मतभेद होनेपर भी अन्त-
में उन मन्त्रिकाका कर्तव्यनिरपक निर्वपण एक ही जगह

है, वह मन्त्र मन्त्र माना गया है ॥ १३ ॥
अभ्योन्ममस्तिमास्थाय यत्र सम्प्रतिभाष्यते ।
न चैकमत्ये श्रेयाऽस्ति मन्त्र सोऽधम उच्यते ॥ १४ ॥

जहाँ निश्चिन्तित बुद्धिसे आभय न करके आरसे स्वभा
पूर्वक भाषण किया जग्य और एकमत होनेपर भी जिससे
कस्याकभी सम्मानना न हो वह मन्त्र या निश्चय अप्रथम
कहलाता है ॥ १४ ॥

तस्मात् सुमन्त्रित सानु भवन्तो मतिसत्तमाः ।
कार्यं सम्प्रतिपद्यन्तेतत् कृत्य मत मम ॥ १५ ॥

आप स्व ह्यम परम बुद्धिमान् हैं, इसलिये अच्छी तरह
उत्तर करके जो एक कार्य निश्चित करें, उसीमें मैं अपना
कर्तव्य समझूँगा ॥ १५ ॥

यामराणा हि धीगणां सहस्रीः परिपारिताः ।
गमोऽप्येति पुरीं खड्गमस्त्राकमुपरोधकाः ॥ १६ ॥

(ऐसे निश्चयकी आवश्यकता इसलिये पड़ी है कि)
यम छात्रों पीरपीर बान्धवोंके साथ हमारी मन्त्रापुरीपर आना
करनेके लिये आ रहे हैं ॥ १६ ॥

तरिष्यति च सुस्यक्तं राक्ष्या सागर सुसम् ।
तरसा युक्तारूपेण सानुजः सपञ्चानुगाः ॥ १७ ॥

जब पात भी अच्छीमति होय हा चुम्बी है कि वे सुसंघी
यम अपने समुचित बन्धके द्वारा आर्य, सेना और सेवकोंकेद्वि
मुखपूर्वक समुद्रको पार कर लेंगे ॥ १७ ॥

समुद्रमुच्छेद्येयति रीयैणाभ्यत्करोति या ।
तस्मिन्नेषविष क्वये विदधे यानरेः सह ।

हिस पुरे च सैन्ये च सर्वे सम्मन्त्रतां मम ॥ १८ ॥

जो या ता समुद्रका ही मुक्ता शालमें या अपने पराक्रमसे
जो वृत्त ही उपाय करेंगे। एही स्थितिमें यानरोंसे विरोध
आ पढ़नेपर नगर और सेनाके लिये जो भी हितकर हो
बेधी सम्यह आपसग हीलिये ॥ १८ ॥

हार्षार्थं भीमशत्रुमावने बान्धवीकीय आदिकारण युद्धकाण्ड पद्यः सर्गः ॥ १ ॥

इस प्रकार भीमशत्रुनिर्मित अर्थात्साम्ब अदिकारण युद्धकाण्डमें एका सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ॥

सप्तम सर्ग

राघसोका रावण और इंद्रजित्क बल पराक्रमका वर्णन करत हुए उसे
रामपर विजय पानका विश्वास दिलाया

रामुका राक्षसद्रुण राक्षसास्य महापलाग ।
रुपुः प्राशस्तयः सर्वे रावण राक्षसाभारम् ॥ १ ॥
प्रियतरसमविशय नीतिपाद्यास्त्रपुण्ड्यः ।
एषमघ नः नीतिज्ञ स्तुत धी भौर न व दपुण्ड्य

एकबन्ध ही समस्त य। व बचपान् वा वदुत य किनु
नीतिमी हस्ति महापूत य। इत्येव न राक्षसास्य रावणन
उत्तम पूरुषक कर्ते कही तव न गव क-क-हाय द-द-र उक्त
च-—॥ १२ ॥

राजन् परिचास्त्युष्टिगूलपट्टिकाकुन्तलम् ॥ २ ॥
मुमहन्ना यल कसात् विराज् नञ्जत भयान् ।

भास्व ! हमार पाठ परिय शक्ति श्रुद्धि शूल पट्टिका
ओर भयंते स्त यदुत बही स्ना योत् है पित भाप
पिना स्त्री फलत है ॥ २ ॥

त्यया भोगवर्ती गत्या निजिताः पद्मगा युधि ॥ ३ ॥
कौलमशिक्षराशामी यदेषुभिराशुतः ।

मुमहत्कवत कृत्वा यदयस्त धनत् कृतः ॥ ४ ॥

भायने ता म्गस्ती पुगिमे अक्षर नागोमे भी युदमे
पगन कर दिया था । बहुकपक कछोमे फिरे हुए कैदक-
पिनारक निगामी नुपरमे भी युदमे भायी मार-अट मन्नाकर
पगमे कर लिया था ॥ ३ ॥

स महभरसक्यन त्साधमानस्त्यथा विभो ।
निजतः समर रोयाहोकागलो महाबला ॥ ५ ॥

प्रभो ! महावती साधकत नुकर महादेवके कष
विपदा हानक कारण अणक कष बही स्वभा स्वते वे;
परंतु भायने समय-अने गुरुके उहे दय दिया ॥ ५ ॥

यिनियाप्य न यक्षीषान् विज्ञाभ्य विनिष्ठा च ।
स्या फन्नामगिखरात् विमानमिदमाहृतम् ॥ ६ ॥

प्याशी सनाम पिचलिप करक बरी क्ता लिया और
छिन्नेम परगामी अक कैदकपिनारमे अत उनका पर
विमान । स य ॥ ६ ॥

मयन दानयद्रुष श्रुत्रयान् सत्यमिच्छता ।
दुहिता तथ भायागे दत्ता राक्षसपुत्रम् ॥ ७ ॥

यमपिच्छक ! दानयद्र मयने भायने भयभीत होकर
ही अतम अन्ना मित्र का नमसे दान थी और इसी
दुःखम अरत धनकलीक सयने मन्ना पुत्री मर्दिना
॥ ७ ॥

दानयद्रा महापादा शीषोमिन्ना दुरासका ।
विशूरा यामानिन कुम्भनिभ्या सुगोराहा ॥ ८ ॥

दानयद्र ! भायने दानयद्र मयने भायने भयभीत होकर
ही अतम अन्ना मित्र का नमसे दान थी और इसी
दुःखम अरत धनकलीक सयने मन्ना पुत्री मर्दिना
॥ ८ ॥

निजतास्त महापादा नागा मत्स्य वृत्तन्तम् ।
शार्तुकिमारात् गन्ता जटी य यामाहता ॥ ९ ॥

निजतास्त महापादा नागा मत्स्य वृत्तन्तम् ।
शार्तुकिमारात् गन्ता जटी य यामाहता ॥ ९ ॥

मत्स्य वृत्तन्तम् शार्तुकिमारात् गन्ता जटी य यामाहता ॥ १० ॥

स्वबल समुपाधित्य नीता यदामरिदम् ।
मायाभ्याभिगतास्तथ यक्षयो वै राक्षसाधिप ॥ ११ ॥

प्रभो ! शत्रुबलान यक्षमय ! दानयद्र मयने
कलमान् विपरीते नष्ट न होनेवाले, दुरासक तथा कर दान
मन्नुत उचितते कपन हो गये थे; परंतु अपने कल्याण-
में एक नरक पुत्र करके अपने ही कम्बे मरने उन कम्बे
अपने भयान कर किये और वहाँ उनसे बहुत-से मन्ने
भी प्राप्त की ॥ १ ॥ ११ ॥

शूराश्च यलपस्तश्च दण्डणस्य सुता रणे ।
निर्जित्यस्ते महाभाग चतुर्विधपलातुगा ॥ १२ ॥

महाम्ना ! आपने कपके शूरी और कल्याण पुत्र-
के भी उनसे चतुर्विध सेनाधित युद्धमें फल कर
दिया था ॥ १२ ॥

मृत्युवृद्धमहापाह शास्मलीनुममपिडतम् ।
कालपादामहापीयि यमकिंकरपद्मगम् ॥ १३ ॥

महान्यरेण दुधर्ये यमलोक्महालयम् ।
भयगाहा त्यया राजन् यमस्य यक्षसागरम् ॥ १४ ॥

जयश्च विपुलाः प्रातो मृत्युश्च प्रतियेधिता ।
मुयुजन् च ते सर्वे लोकस्तत्र सुतोयिताः ॥ १५ ॥

भास्व ! मृत्युश्च एक ही क्षिमे महान् पादक कन
दे अ यम-यक्ष-कम्बु की शास्मली आदि श्रुद्धि मीरत के
कालपादकी उच्छक तरत क्षिमे शोभा बहाधी है मन्नु-
स्त्री सर्व क्षिमे निवाल करते हैं तथा अ महान् नरके मय
नुकर है म् यमकम्बुकी महाभयमें प्रवेष्ट करके भायने
मन्नुकमे मन्ने श्रेणी सेनाम मय दान मृत्युमे रोके दिव
भेत महान् त्रिक्र प्राप्त की । यही नहीं मुद्री उलम कर
से अपने बहकि मय स्वयंम पूर्व क्नु कर दिया था ॥

क्षत्रियपुत्रिणीः शशनुत्यपगक्रमा ।
आसीद् धनुमनी पूणा महान्त्रिय गावपी ॥ १६ ॥

पराय वर दुधरी शिवात श्रुद्धी भक्ति दानुम
पत्रम्वी बहुमन्त्रक धरित पीनेम भी हुई ॥ १६ ॥

तथा शीषयुजास्तान् समा राक्षसा इव ।
प्रसदा न स्या राजन् हता समरदुश्चया ॥ १७ ॥

अ शिवात व राक्षस कुन और उमर म मन्ने
दाम मय रतुन मने उमर मन्त्र ॥ १७ ॥

मत्स्य वृत्तन्तम् शार्तुकिमारात् गन्ता जटी य यामाहता ॥ १८ ॥

मत्स्य वृत्तन्तम् शार्तुकिमारात् गन्ता जटी य यामाहता ॥ १९ ॥

महानाहु इन्द्रकिं ही स्व वानरौघ संहार कर बाँधे ॥ १८ ॥
 भनन च महाराज माहेश्वरमनुत्तमम् ।
 इया यत्र वरो लब्धो लोके परमसुखभा ॥ १९ ॥
 प्यराज ! इन्होंने परम उत्तम माहेश्वर यत्रच अनुत्तम
 करके यह वर प्राप्त किया है, जो संसारमें दूसरेके लिये अश्वन्त
 सुखमें है ॥ १९ ॥

शक्तिरोमरमीन च विनिष्ठीर्णात्प्रदोषकम् ।
 पशुकच्छपसम्याधमभ्यमण्डकस्तकुलम् ॥ २० ॥
 इन्द्रमित्थमहाप्राह मन्वसुमहोरगम् ।
 रथम्वगाज्जतोयौच पदातिपुञ्जिन महत् ॥ २१ ॥
 मनेन हि समासाध वेवानां बलसागरम् ।
 गृहीत्ये वैकृत्पतिर्बहुं चापि प्रवेशिताः ॥ २२ ॥

वेकृत्पतिर्बहुं सेना सुदृढके समान थी । शक्ति और
 लम्ब ही उठमें मध्य थे । निम्नकर केंद्री हुईं भैंसों सेवार
 कर कर देती थीं । हाथी ही उस सैन्य-धरमें कृत्पतिर्बहुंके
 समान मरे थे । बोहे मेह-बोहेके समान उठमें छत्र और व्यास
 थे । बरगण और आदिस्त्राज उस सेनास्त्री सुदृढके बड़े-बड़े
 प्राह थे । मन्वसुम और बसुगण बहोके विद्याध नाम थे । रथ,
 हाथी और बोहे अन्वसिके समान थे और पैदल सैनिक

उसके विद्याध तू थे परतु इह इन्द्रकिंने देवतामोंके उस
 सन्ध-सुदृढमें पुच्छर देवराज इन्द्रको कैद कर लिया और उन्हें
 सङ्घापुरीमें धरकर बंद कर दिया ॥ २ - २२ ॥

पितृमहनिपोगाच्च मुक्तः शम्बरवृषहा ।
 गतस्त्रिषिष्य राजन् सर्ववैधनमस्कृत ॥ २३ ॥
 र्वन् । फिर ब्रह्माग्नीके करनेसे इन्होंने शम्बर और
 वृषभगुरुको मारनेवाले सर्ववैधनव्रित इन्द्रको मुक्त किया ।
 तब वे स्त्राग्नीके गये ॥ २३ ॥

उभेद्य त्व महाराज विश्वेन्द्रजित सुतम् ।
 यावत् यान्नर सेनां तां सरामां नयति क्षयम् ॥ २४ ॥
 अन्तः महाराज ! इस क्षमक लिये आप रामकुमार इन्द्र
 किन्ने ही मेकिं, किन्ते ये रामव्रित वानर-सेनाका नहीं
 मानेसे परतु ही संहार कर बाँधे ॥ २४ ॥

राज्यपद्मपुच्छेपमागता प्राकृत्यस्त्रनात् ।
 इदि नैव त्वया कार्या त्वं वधिष्यसि राघवम् ॥ २५ ॥
 प्यन् । खभारण नर और वानरसे प्राप्त हुईं इस
 आपसिके विषयमें किन्तु करना आपके लिये उचित नहीं है ।
 अप्रपन्न हो अपने हृदयमें इसे खान ही नहीं देना चाहिये ।
 आप अवश्य ही रामका बध कर बाँधे ॥ २५ ॥

इत्यार्ये श्रीमद्भामास्ये वाक्यमीदृशे ध्वनिकाम्ये गुह्यकाण्डे अष्टमः सर्गः ॥ ० ॥

इस प्रकार श्रीरामचरितनिर्मित भार्गवनामक आदिकाव्यक गुह्यकाण्डमें अष्टमो सर्ग पूरा हुआ ॥ ० ॥

अष्टम सर्ग

प्राहस्त, दुर्मुख, वज्रवृष्ट, निङ्गुम्भ और वज्रइनुका रावणक सामने शत्रु-सेनाको
 मार गिरानेका उस्ताह दिखाता

उद्यो नीलममुवृषक्याः प्राहस्तो नाम राक्षसः ।
 यप्रसीत् प्राञ्जलिर्षाण्य दूरः सेनापतिस्तदा ॥ १ ॥
 इसके बाद नील मेघके समान श्यामवर्णवाले दूर सेना-
 पति प्राहस्त नामक राक्षसे हाथ जोड़कर कहा— ॥ १ ॥

इन्द्रपालयगन्ध्याः शिवाचपत्न्यगोरगाः ।
 सर्वे धरयितुं शक्याः किं पुनर्मांनयो रणे ॥ २ ॥
 महाराज ! इन्द्रसेना देवता शनव गन्धर्व विद्याच,
 लोके और सर्व सभोके पराजित कर सकत हैं कि उन वा
 मनुष्योंका रणभूमिमें हरना कौन बड़ी कठ है ॥ २ ॥

सर्वे प्रमत्ता विश्वेन्द्र वधिष्याः स हनुमत् ।
 नहि मे जीयतो गन्धोष्ठीवत् स वनगोत्तरः ॥ ३ ॥
 परतु हमसेना अश्वत्थान थे । हमारे मनमें शत्रुओंकी
 धरत कर सकत नहीं था । इधरलिये हम निश्चित बैठ
 थे । परी कारण है कि हनुमान् हमें कोला दें गये । नहीं तो

मेरे भीते-भी यह वानर बहोके भीता-जगता नहीं जा
 सकत था ॥ ३ ॥

सर्षा सागरपर्यन्ता सरीश्वरकाननाम् ।
 करोम्यवानता भूमिमाश्रयणतु मां भयान् ॥ ४ ॥
 यदि आपकी आज्ञा हो तो परतु, वन और वानरोंव्रित
 सुदृढकभी खरी भूमिके में वानरोंसे सूची कर दूँ ॥ ४ ॥

रक्षां वैध विधमस्यामि धानरात् रजनीकर ।
 मगमिष्यति त कुल किञ्चिदागमापगभङ्गम् ॥ ५ ॥

पञ्चस्रवण ! मैं वानरोंके आश्रय तथा दर्शन, अन्त
 भन्नेशय किये गये थीं इत्यस्यी भन्वणक कारण कार कुल
 आपकर नहीं माने लयेगा ॥ ५ ॥

भयपीतु तु सुसकुन्धो दुमुक्ता नाम राक्षसः ।
 इव न क्षमणीय हि सर्वेषां ना प्रथयन्म् ॥ ६ ॥
 त्वभार्य दुर्मुख नामक राक्षसे अश्वन्त कुञ्जि शम्बर

कदा—एवमस्मात्करोत्येवमस्यप नदी है क्योंकि इसके
द्वारा हम सब जगोंका तिरस्कार हुआ है ॥ ६ ॥

मर्षं परिभयो भूयः पुरस्यास्तःपुरस्य च ।
भीमतो रक्षसेन्द्रस्य धानरेण प्रध्वंशम् ॥ ७ ॥

धानरके द्वारा हमसेमोपर जो आक्रमण हुआ है, यह
कमल ब्रह्मपुरीका महाजनके अन्तःपुरका और भीमान्
रक्षसेन्द्रका रावणका भी मारी परामर्श है ॥ ७ ॥

अस्मिन् सुहृते गत्सैको निघर्तिष्यामि धानरान् ।
प्रविशन् सागर भीममम्बर वा रसातलम् ॥ ८ ॥

मैं अभी इसी सुहृतेमें अकेल ही चकर खरे धानरोंको
मार भजऊँगा । मर ही व मरकर सुहृतेमें अन्धकारमें अथवा
रघुलक्ष्मी ही क्यों न सुख गये हों ॥ ८ ॥

ततोऽग्रवीत् सुसक्तुदो वज्ररूपो महाबलः ।
प्रयुह्य परिघं घोरं मासशोषितकवितम् ॥ ९ ॥

इतनेहीमें महाबली वज्ररूप अत्यन्त क्षोभते मरकर रक्त
मांसे खने हुए मन्थनक परिषदक हाथमें खिंचे हुए लक्ष्य—॥

किं नो हनुमत्स्य कार्यं कृपणेन तपसिना ।
राम तिष्ठति कुर्ष्ये सुग्रीवेऽपि सख्यसम्पत्ते ॥ १० ॥

कुर्ष्ये भीर राम सुग्रीव और अन्धकारके रहते हुए इन्हें
उस बेचरे लक्ष्मी हनुमान्ने क्या काम है ॥ १ ॥ २ ॥

अथ राम ससुग्रीव परिषेण सख्यसम्पत् ।
भागमिष्यामि हत्यैका विमोह्य हरिवाहिनीम् ॥ ११ ॥

आज मैं अकेल ही धानर-सेनामें तहलका मन्वा वृत्त
और इस परिषदे सुग्रीव तथा अन्धकारके रावणका भी काम
काम्य करके भेट आऊँगा ॥ ११ ॥

इह ममापर पाक्य शृणु राजन् पविच्छसि ।
उपायकुशलता ह्येय अयेच्छृणुतस्मिन्निदा ॥ १२ ॥

भयान् । यदि भयभी इच्छा हो तो भय यह मेरी
दुष्परी बात सुनें । उपायकुशलता पुरुष ही यदि आत्मस्य छोड़
कर प्रयत्न करे तो यह धनुर्भोर विन्म पद लक्ष्य है ॥ १२ ॥

अथरूपभराः शूराः सुधीमा भीमकृत्वा ।
राससा या सबन्नाणि राक्षसाधिप निश्चिन्ताः ॥ १३ ॥

कामुत्सवमुपसगम्य विधत्ता मानुषं ययुः ।
सर्षे हासम्भ्रमा भूत्या मुक्कम्पु रघुसन्तमम् ॥ १४ ॥

प्रतिता भरतनय आत्रा तय यथीयसा ।
न हि मनां समुत्थाप्य क्षिप्रमबाधयाम्यसि ॥ १५ ॥

भयं गणभयः ! मेरी दुष्परी राव यह दे कि इच्छा
मुझकर कर धारण करनेवाला अत्यन्त भयानक तथा भयंकर
हृदयक लक्ष्मी हाथीका गज एक निमित्त त्वरक बरक
यनुत्पन्न रूप धारण कर भीगमक कम अर्थ और नर लक्ष

किना किसी पवराहके उन पुरुषास्त्रिमणिते करें कि
अपके ऐनिक है । हमें आत्मक छोटे भाई मरने मेव है
इतना सुनते ही वे धानर-सेनाको उठाकर तुरत ब्रह्म
आक्रमण करनेके खिंचे बहोसि लक्ष्य दते ॥ १३-१५ ॥

ततो वयमितस्तूर्पे शूलशक्तिगदाधरा ।
व्यापवाण्यासिहस्ताश्च त्वरितास्त्रत्र यमते ॥ १६ ॥

लक्ष्यभाए हमसेजा यहोसि शूल, शक्ति, गदा, भद्र
बाण और लक्ष्य धारण करने शीघ्र ही मार्गमें उनके पद
पहुँचें ॥ १६ ॥

वाकाशो गण्यशः स्थित्या हत्युतां हरिवाहिनीम् ।
अस्मदास्त्रमहापुष्टया प्रापयाम यमस्यसम् ॥ १७ ॥

किर आक्रमणमें अनेक यूय कलाकर लगे हो बहोसि
पत्थरों तथा शस्त्र-कुर्षीको बड़ी भारी बर्षा करके उस कम
सेनाको यमस्यक पहुँचा दें ॥ १७ ॥

एव खेपुपक्षपैतामस्य रामलक्ष्मणौ ।
अवश्यमपनीतेन जहतामेव जीवितम् ॥ १८ ॥

यदि इस प्रकार हमारी बाईं सुनकर वे दोनों भाई शीघ्र
और अल्पक सेनाको कूच करनेकी आज्ञा दे देंगे और क्षति का
देग तो उन्हें हमारी अनीतिक्रिषि और होत्र देगें जो
हमारे अस्त्रों परास्ते पीडित होकर अपने मार्गोंका पक्ष
कृत पदंग ॥ १८ ॥

कौमभर्क्षमिच्छतो धीरो मुकुन्दो नाम वीर्यवान् ।
अग्रपीत् परमकुदो रापण लोकराजकम् ॥ १९ ॥

तदनन्तर पराक्रमी भीर कुम्भकर्णकुम्भर निडुम्भे
अत्यन्त कुपित होकर कमल जोड़ीको बधनेवाला लक्ष्मी
पदा—॥ १९ ॥

सर्वे भयस्तस्तिष्ठन्तु महाराजेन संपता ।
अस्मेको हसिष्यामि राक्षसं सहस्रममवम् ॥ २० ॥
सुग्रीव सहनुमन्तं सर्वाशेषात्र धारयान् ।

भय का डोम यहाँ महाराजके लक्ष्य पुरुषको देते रहे ।
मैं अकेल ही राम अल्पक, सुग्रीव, हनुमान् तथा भयानक
बालपेंडों भी यहाँ मेराके पद उतार दूँगा ॥ २ ॥ ३ ॥

तथा यज्ञहनुनाम राससा पर्यतापाम ॥ २१ ॥
मुन्नाः परितिहन्तु स्त्रुजां विह्वया वाक्यममपीत् ।

तव पर्यते उमान विघासमव वज्रवृत्त नमक लक्ष
पुष्टि हो यैमो अपने उनकुषा पारया हुआ जैम—॥
स्वैर युयन्तु क्ययाणि भयस्ता विगतज्वराः ॥ २२ ॥
पकाऽह भक्षयिष्यामि तां सर्वां हरिवाहिनीम् ।

अथ वसत्या निमित्त होकर इच्छानुसार अन्ध-भय
काम कर । मैं अन्ध ही लक्ष्मी धानर-सेनाको लक्ष्य करूँगा ॥

सखाः श्रीऽहन्तु निश्चिन्त्याः पिवन्तु मधु वादणीम् ॥ २३ ॥
महनेको बधिप्यामि सुधीव सहलक्ष्मणम् ।
स्यद्द्वयं च हनुमन्त सर्वाभ्येषाद्य धानरात् ॥ २४ ॥

आपक्ष्म स्वस खरकर श्रीदा करं और निश्चित हो
वादणी मदिराको पिये । मैं भकेय ही सुधीव लक्ष्मण भंगत
हनुमन् और मन्य सब धानरौंय भी यहाँ बध कर जाँवैग ॥

हृष्यापैं श्रीमतामापने शक्यीक्षीये आदिश्रम्ये युद्धकण्ठेऽहमः सर्गः ॥ ८ ॥

इस प्रकार श्रीरामकीनिर्मित अर्वागामयन शकिकण्ठके युद्धकण्ठमे अहर्नी सर्वे पूरा हुय्य ॥ ८ ॥

नवम सर्ग

विभीषणका रावणसे भीरामकी अजयता बताकर सीताका लौटा देनेके लिये अनुरोध करना

छयो निकुम्भो रभसः स्युंशशुर्महावजः ।
सुधुजो यक्षकोपय्य महापाश्वर्महोदरी ॥ १ ॥
भस्मिकेजुय्य दुर्धर्षो रश्मिकेजुय्य राक्षसः ।
इन्द्रविद्य महातेजा वलवान् रावणात्मजः ॥ २ ॥
मृच्छाऽप्य विक्रपासो यक्षवृष्टे महाबलः ।
पूमास्रभातिक्रयय्य दुर्मुखय्यैव राक्षसः ॥ ३ ॥
परिधन् पद्मिशाभ्यालान् प्रासाभ्याकिपरम्भान् ।
घापानि च सुभापानि लङ्काय विपुलान्मुभान् ॥ ४ ॥
मण्ड्य परमकुम्भाः समुत्पत्य च राक्षसाः ।
मनुष्यन् रावणं सर्वे प्रदीता इष तेजसा ॥ ५ ॥

उपयोंसे प्राप्त न हो सके उखीकी प्राप्तिके लिये नीतिशास्त्रके
रुता मनीषी विद्वानोंने पराक्रम करनेक योग्य अस्तर रताये
हैं ॥ ८ ॥

ममचेप्यभियुक्तेषु वैद्येन प्रहतेषु च ।
विक्रमास्तात सिद्यन्ति परीक्ष्य विभिन्ना कृताः ॥ ९ ॥

यात ! जो धनु अखनबान हो, किनपर दूखे-दूखे
धनुयोंने आक्रमण किया हो तथा जो महारोग आदिसे प्रव
हानिके कारण दूखे मारे गये हों; उनहोकर मध्येमोंति परीक्ष
करके विधिपूर्वक किय गये पराक्रम सज्ज होते हैं ॥ ९ ॥

अप्रमत्तं कथं त तु विजिगीषुं यत् स्थिताम् ।
क्षितरोपं दुराधर्यं त धर्मियुमिच्छथ ॥ १० ॥

भीरामचन्द्रकी सेलकर नहीं हैं । वे विजयकी इच्छासे आ
रहे हैं और उनके लय सेना भी है । उनहाने क्षत्रको सर्वथा
भीत किया है । अत वे सर्वथा दुर्कर्म हैं । ऐसे अन्ध धीर
को तुमकेग पयस कृपा चाहते हो ॥ १ ॥

समुद्रं लङ्कपित्वा तु घोर नद्वनवीपतिम् ।
गतिं हनुमतो लोके को विधात् तर्कयित्वा ॥ ११ ॥
वसात्परिमेषानि धीयाणि च निशायराः ।
परेषां सहस्राभ्य न कृतव्या क्रययन ॥ १२ ॥

निशायण । नदों और नलियोंक लक्ष्मी मयकर महा
स्मारक जो एक ही छलोगने लोंपरकर यहाँतक आ पहुँच ये
उन हनुमानकीकी गतिपर इत संभारमें सैन बान सज्जा है
भयवा सैन उतम अनुमान आ सज्जा है । धनुभोंके पत
मसंक्ष्य संघार्थ हैं उनमें अस्त्रीय सब और पराक्रम है । इत
बतको तुमकेग मच्छी तरह बान छ । दूखोंकी शक्तिको
गुञ्जकर किसी तरह भी सयस उनकी अवहेलना नहीं करनी
चाहिये ॥ ११ १२ ॥

किं च राक्षसराजस्य रामयापकृत पुरा ।
भाजहार जनस्थानाद् यस्य भार्या यशस्विता ॥ १३ ॥
भीरामचन्द्रकीने पहल राजकाय राजकाय सैनिक
अवराध किया था किन्तु उन यक्षकी महामयकी पत्नीका य
कनस्थानसे हर लय ? ॥ १३ ॥

कस्यदात् निकुम्भः रमल महाबधी सर्वधनु उतप
कभये महापाश्वर्म महोर, दुर्धर्ष भस्मिकेड एस
पिमकटु, महातमसी मन्वान यकणकुमार इन्द्रमित् प्रहस
किम्पसः महाबधी बज्रवद् भूमकः अतिक्रम और निरप्रभ
दुर्मुख—ये सब राक्षस अस्मत् कुपित हो हाथोंमें परिष
पौष्ट, शूल, प्रास, शक्ति करते धनुष बाण तथा पैनी
पायसल बड़े-बड़े लङ्ग लिये उलझकर रावणके सामने आये
और अपने तेजसे उदीत-ते शोकर वे सबके-सब उल्ले
क— ॥ १- ॥

अथ राम बधिप्यामः सुधीवं च सहलक्ष्मणम् ।
रूपय च हनुमन्त लङ्का यंन प्रधर्षिता ॥ ६ ॥
हमसमा आज ही राम सुधीन लक्ष्मण और उत
अपर हनुमन्को भी मार जाँवैगे किन्तु सङ्घापुरी क्यपी
है ॥ ६ ॥

यन् पूरुषितायुधान् सधान् वारपित्वा विभीषणः ।
ममयीत् प्राङ्मुखियाभ्यं पुनः प्रत्युपपश्य तान् ॥ ७ ॥
हृष्यापैं अन्ध-शक्य लिय लड़े हुए उन सब राक्षसको
बनेक लिय उगत देल विभीषणने राक्ष और पुन उन्हें
विदाकर दना हाथ जोड़ राजसं पदा — ॥ ७ ॥

मप्युपर्यतिप्रभिस्तातयाऽथः प्राप्नुंम शशपत् ।
तस्य विक्रमश्चालांस्तम्य युक्तानामुमनीपिणः ॥ ८ ॥
यात ! जो मन्त्रप लम राज और भर—इत ठीन

उत्तर-श्रयोमें अनिष्टप्रसङ्गों तथा पदाप्यमनके स्थानोंमें भी वीर्य देख सकते हैं और इकन-सामप्रियोंमें चौरियों पड़ी दिखायी देती हैं ॥ १६ ॥

गर्वा पयासि स्फुटानि विमदा वरकुञ्जरा ।

वृत्तमम्बाः प्रोपस्त नवमासाभिनम्बिना ॥ १७ ॥

पद्मोन्मत्त वृष सूख गया है नई-नई गजराज मबरहित

हा गये हैं, चड़े नये प्रासते अन्नन्दित (भोजनसे छुट्ट))

हनेर भी वीर्यपूर्ण स्वरमें दिनदिनाते हैं ॥ १७ ॥

सरोजप्रथवत राजन् भिषरोमाः क्षवस्ति च ।

न सभाषऽवलिष्ठस्ते विधानैरपि विस्तिताः ॥ १८ ॥

पान्कर ! गर्वों ऊँटी और लखतेंक योगते सड़े हा

अत हैं । उनक नेत्रोंसे मोक्ष निरते झलत हैं । विधिपूर्वक

विहित्य श्री अनेर भी वे पूर्वत स्वस्थ हो नहीं पात हैं ॥

बापसा सभयाः शूरा भ्याहरस्ति समस्तत ।

समवेदस्य इदमन्ते विमानाप्रैषु सभराः ॥ १९ ॥

शूरा वीर छड़-के-छड़ एकत्र होकर करुण स्वरमें कैंक-

कॉय करने झलते हैं तथा वे छत्राहसे मन्त्रोंपर समूह-के-समूह

इकठे हुए देख सकते हैं ॥ १९ ॥

सुप्रसन्न परिच्छेयस्ते पुरीमुपरि पिच्छिताः ।

उपपद्मस्य सध्यं द्वे भ्याहरन्त्यशिव दिग्वाः ॥ २० ॥

सहस्रपुरीके ऊपर छड़-के-छड़ गीष उरक्य हर्यो करतें

हुए-से मड़पते रहते हैं । दोनों संघाओंके छमय विचारितें

नगरक क्षीय अन्कर अमङ्गल्यक घम्द करती हैं ॥ २० ॥

कम्यदिना सुगाणा च पुरीक्षारेषु सभराः ।

शूयस्ते विपुत्र घोया सविस्फूर्जितानि स्वमाः ॥ २१ ॥

नगरक तमी छरद्वोर समूह-के-समूह एकत्र हुए माघ-

अच्छे पशुओंके डर-अरसे किने अनेवाल जीकर विकसीधी

गङ्गादाहरक छमन मुनाची पड़तें हैं ॥ २१ ॥

तद्व च प्रस्तुत कर्ये प्रायश्चित्तमिद् क्षमम् ।

राज्ये वीर यद्दी यथयाय प्रदीपत्यम् ॥ २२ ॥

भारकर ! पक्षी परिसिद्धिमें मुझे हा मरी प्रायश्चित्त

अप्या अन्न पदव है कि विरहकुमारौ सीमा भीरमन्न-सीमा

स्येय ही अर्धे ॥ २२ ॥

इव च यदि या माहात्माभाद् या ध्याइत मया ।

तयापि च महाराज न क्षर कुमुमहसि ॥ २३ ॥

महाएन ! यदि पद अन्न मीने मय या क्षमक करी हा

हा भी अन्नमे मुत्तमें दाहादि नहीं करती चाहिये ॥ २३ ॥

अयं हि क्षरः सपस्य जनसगास्यापलक्ष्यत ।

दक्षसां राससीनां च पुरस्यस्तपुरस्य च ॥ २४ ॥

इकार्ये भीमशामरके बाजनीवीय अदिकाञ्च सुदक्षणे दक्षमा सगेः ॥ १ ॥

पक्षीका अग्रहरण तथा इच्छे इनेवाञ्च अक्षकुम्भरी

वग पक्षीकी क्षरी करता; एकस-राक्षसी तथा नगर और अन्त

पुर—सभीके स्थिने उपस्थित होता है ॥ २४ ॥

प्रापणे आस्य मन्त्रस्य निवृत्ताः सर्वमन्त्रिणा ।

मवक्ष्य च मया वाच्यं यद् इदमप्यक्ष भुतम् ।

सम्प्रथम्य यथान्यस्यं तव भवान् कर्तुमर्हसि ॥ २५ ॥

यह बात आपके कर्नोतक पहुँचानेमें प्रातः सभी मन्त्री

संज्ञेन करते हैं परंतु अब बात मैंने देखी या कृती है, वह

मुझे तो अप्यक अगो अवक्ष्य निवेदन कर देनी चाहिये अन्त

उत्तर यथास्ति विचार करके आप देख उन्नि उन्नि

देख करे ॥ २५ ॥

इति स्वमन्त्रिणां मध्ये आद्य आतरमूर्जिधान ।

राज्ये रक्षसां श्रेष्ठ पथ्यमेतव् विभीषणा ॥ २६ ॥

इस प्रकार मर्दों विभीषणने अपने मन्त्रियोंके बीचमें

बड़े मार्द एकएक एकएसे वे द्विद्वारी बनन करे ॥ २६ ॥

द्वित महार्ये सुवु हेमुसहित

अतीतकदावापतिसम्प्रतिक्षमम् ।

निराम्य तव्याक्यमुपस्थितराजराः

प्रसङ्गावुत्तरमेतव्प्रथीव ॥ २७ ॥

अप न पक्ष्यामि कुतश्चिदप्यह

न राक्षसः प्राण्यति ज्ञातु मैयिष्ठीम् ।

सुरै सहेमैरपि सगरं कथ

ममाप्रतः स्थासति सङ्गम्याप्रजाः ॥ २८ ॥

विभीषणकी ये द्विद्वक महान् अर्धकी लपक कोक

उत्तिक्रमत तथा भूत मविष्य और वर्तमान-काममें भी कर्न-

वापनमें क्षम्यं बात सुनकर राजकी बुझार पद अक्ष ।

भीरमक तप कर बढ़ानेमें उच्छी आरुति हो गयी थी ।

इच्छिमे उठने इस प्रकार उत्तर दिया— विभीषण ! मैं तो

करति भी करे भय नहीं देखता । एम विपिकेवाकुम्भरी

कीलाके कमी नहीं पा सकत । इन्द्रपदित देवकाओंकी द्वाका

प्रात कर अनेर भी सम्भजनके बड़े मार्द एम मेरे क्षमने

ममाममें कैसे रिक सकेने ? ॥ २७-२८ ॥

इत्यपमुपस्था सुरसैन्यनाराता

महापत्मा सपति सण्डयिष्ठीमः ।

द्वयमन्ते आतरमातप्यादिन

विसजय्यमास तदा विभीषणम् ॥ २९ ॥

एथा करकर देवसेनके नाथक और क्षमपुत्रनेम प्रपक

पपक्रम मन्त्र करनेवाञ्च महाक्षी दक्षानने अन्ते कथार्थती

अई विभीषणअ तत्पञ्च निवा कर निव ॥ २९ ॥

एकादश सर्ग

रावण और उसके सभासदोंका सभाभवनमें एकत्र होना

स बभूव कुर्यो राजा मैथिलीक्षममोहितः ।
 ससम्मानाद्य सुहृदा पाप पापेन कर्मणा ॥ १ ॥
 राक्षसेन्द्र राक्ष राक्ष निपिच्छेद्यकुमारी खीटाक प्रति
 क्षमसे मोहित हो रहा था उसके हितैषी सुहृद् विभीषण
 श्चि उक्त अन्यादर करते छे ये—उसके कुङ्कुमौक्षी निन्दा
 करते थे तथा वह खीटाहरणस्त्री नभन्य पाप-कर्मके कारण
 पथी प्रोक्त किया गया था—इन सब कारणोंसे वह अस्मन्त
 ह्य (किन्तायुक्त एक दुर्बल) हा गया था ॥ १ ॥
 धर्तीय क्षमसम्पद्यो धैवेहीमनुष्मिन्त्यन ।
 भर्तृतसमभे क्खते तस्मिन् धै युधि रावण ॥
 भामासौख्य सुहृद्विभ्य प्राप्तकालममन्यत ॥ २ ॥
 वह अत्यन्त क्षमसे पीड़ित होकर करबार विदेहकुमारी
 का निन्दन करता था इसलिये सुदक्ष अन्तर हीत करनेपर
 भी उसने उक्त समय मन्त्रियों और सुहृदोंके साथ उल्लाह करके
 सुहृदों ही सम्प्रेषित कर्तव्य मान्य ॥ २ ॥
 स हेमञ्जलविकृत मणिविह्वममूर्षितम् ।
 नपान्य विभीषण्यमादरोह महारथम् ॥ ३ ॥
 वह खनेकी जाधीसे आच्छादित तथा मणि एवं मूर्तोंसे
 विभूषित एक विशाल रथपर निश्चिन्ने सुषिञ्चित चढ़े हुए
 था वह चढ़ा ॥ ३ ॥
 तमास्थाय रथधोष्ठ महामभसमलमम् ।
 मय्यी रक्षसा श्रेष्ठो द्वाप्रीवः सभा प्रति ॥ ४ ॥
 महान् मर्षोक्षी गार्गाके समान पर्यगृह्य वेदा करनेकरे
 उस उक्त रथपर आरुढ़ हो राक्षसशिरोमणि रथप्रीव समा-
 मन्तकी ओर प्रस्थित हुआ ॥ ४ ॥
 मसिबमधरय योधा मर्षायुधधरास्ततः ।
 राक्षसा राक्षसेन्द्रस्य पुरस्तात् सम्प्रतस्थिरे ॥ ५ ॥
 उस समय राक्षसराज राक्षसक आगे-आगे वाक-उल्लाहार
 एवं सब प्रकारके आनुषं धारण करनेवाले बहुसंख्यक राक्षस
 पन्था च रहे थे ॥ ५ ॥
 नमयिक्तकृतयाद्य मान्नाभूयन्मूर्षिता ।
 पादवतः पृष्ठतश्चैव परिचाप धनुस्तथा ॥ ६ ॥
 इसी तरह भौतिक-मौखिक आनूयणोंसे विभूषित और नन्दा
 प्रकारके विद्यमान वेरवाल अग्रजिन निशाचर उमे हाथों-हाथों
 और पीठोंकी ओरसे वेरकर चल रहे थे ॥ ६ ॥
 रथोन्नाशिरया दीप्त मर्षाद्य वरधारणः ।
 भन्गुतुवार्मथिमाकीडडिभ्य चाग्निभिः ॥ ७ ॥

एकत्रके प्रधान करते ही बहुतसे अतिरथी और रथी,
 मन्थाले गमरगों और लेख-लेखमें तप-तपशी चारों दिशाने-
 वाले बाहोंपर उभार हो तुरंत उक्त पीछे चल दिये ॥ ७ ॥
 गवापरिग्रहस्यश्च शक्तिमरपाम्पयः ।
 परम्भधधराद्यान्ये तथान्ये शुलपाणयः ।
 ततस्त्वंसहस्राणा सज्जन्ते निम्बन्ते महान् ॥ ८ ॥
 किन्हीं हाथोंमें गदा और परिषं घोभा च रहे थे ।
 कई शक्ति और तमर लिये हुए थे । कुछ छेगोंने करते
 धारण कर रखे थे तथा अन्य उल्लाहक हाथोंमें धूल पनक
 रहे थे, फिर तो वहाँ धरुसों बाघोंका महान घोरा होने लगे ॥
 तुमुला शङ्खशास्त्रस्य सभा गच्छति रावणे ।
 स नेमिघोषेभ महान् सहस्राभिनिनाद्यन् ॥ ९ ॥
 रासमार्गा धिया जुष्ट प्रसिद्धे महारथः ।
 राक्षसक सभाभवनकी ओर यात्रा करते समय तुमुल
 वाङ्मयिनी होने लगी । उक्त वह विशाल रथ अपने परिवर्तोंकी
 पर्यगृह्यसे सम्पूर्ण दिशाओंका प्रतिपन्नित करवा हुआ महान
 घोभाघाथी राक्षसांगपर च पहुँच्य ॥ ९ ॥
 शिमल शालयत्र च प्रवृहीतमशोभत ॥ १० ॥
 पाण्डुरा राक्षसेन्द्रस्य पूणस्तपराधिपो यथा ।
 उस समय राक्षसराज रावणक ऊपर तना हुआ निम्ब
 ल्वेत छत्र पूर्ण चन्द्रमाके समान शोभा च रहा था ॥ १० ॥
 हेममञ्जरिगर्भे च सुदस्फटिकविग्रह ॥ ११ ॥
 चामरप्यजने तस्य रेजतुः सख्यदक्षिणे ।
 उसके दक्षिणे और बायें मगमें सुदृढ स्फटिकके उडवाक
 चक्र और म्यञ्जन् किमें खनेकी मञ्जरियों की हुई थीं,
 वही शोभा च रहे थे ॥ ११ ॥
 त कृतञ्जलय सखे रथस्य पृथिवीस्थिताः ॥ १२ ॥
 राक्षसा राक्षसधोष्ठ गिरोभिस्त वयम्बिरे ।
 मार्गमें पृथीपर चढ़े हुए सभी राक्षस हर्षो हाथ उड
 रथपर बैठे हुए राक्षसशिरोमणि राक्षसकी फिर धुलकर चन्दना
 करते थे ॥ १२ ॥
 राक्षसे स्तूयमानः सञ्जयाग्निर्भरित्वा ॥ १३ ॥
 माससाद् महातज्जा सभा विरचिता तदा ।
 राक्षसेन्द्राय ही गयी लुपि न्य-न्यकर और आधीवार
 मुन्दा हुआ अनुगन्त महातज्जा एवम उम समय विद्यमाना-
 ह्य निर्मित राक्षसभमें पहुँच्य ॥ १३ ॥
 सुपजरज्जनास्तीर्णा विगुदस्फटिकान्तराम् ॥ १४ ॥

कारो पद्यतिष्ठत्स्तु स रामेण हतो रणे ।
मद्यस्य प्रथिर्मा प्रमाया रक्षितभ्या यथावच्छम् ॥ १४ ॥

यदि कोई कि उन्होंने करके मारा था तो वह ठीक नहीं है। क्योंकि सर अस्वाचारी था। उलने स्वयं ही उन्हें मार डालनेके लिये उनपर आक्रमण किया था। इच्छिमे श्रीरामने रणभूमिमें उभर कर कहा। क्योंकि प्रत्येक प्राणीके यथावच्छिन्न अपने प्राणोंकी रक्षा अवश्य करनी चाहिये ॥

पद्यधिमिच्छ वैश्विही भय ना सुमहद् भजेत् ।
अदृष्टा सा परित्याग्या कच्छायै कृते तु किम् ॥ १५ ॥

यदि इसी कारणसे छीनके हरकर अन्न गन्ध हो तो उन्हें कच्ची ही खेया देना चाहिये अन्यथा हमस्मैकेपर गहान् मम आ सकता है। किन्तु कर्मका एक केवल फल है, उसे करनेसे क्या क्षम ? ॥ १५ ॥

न तु क्षम धीर्यवता तेन धर्मानुवर्तिना ।
दैर निरधकं कर्तुं वीर्यस्यमस्य मैथिली ॥ १६ ॥

श्रीराम कसे चमारमा और पराधीनी हैं। उनके साथ धर्म्य देर करना उचित नहीं है। मिथिलेशकुमारी छीनके उनके पास खेया देना चाहिये ॥ १६ ॥

यत्पद्म समाजा साध्यां बहुरत्नसमाकुलाम् ।
पुरी वारपते वायैर्वीर्यस्यमस्य मैथिली ॥ १७ ॥

पद्मक हाथी, पंखे और अनेकों रत्नसे भरी हुई छद्मा पुरीका श्रीराम भरने यथोच्चाय विर्यस्य नहीं कर डालने तकत ही मैथिलीके उन्हें खेया दिया था ॥ १७ ॥

यावत् सुभोवा महती दुर्धर्गा हरिवाहिनी ।
नावस्त्वन्वृत्ति ना छद्मां यावत् सीता प्रवीर्यस्यम् ॥ १८ ॥

पद्मक अत्यन्त ममका विद्याका और दुर्जन्य बानर बाहिनी हमारी छद्माके परबन्धित नहीं कर देती, तभीतक छीनके बापस कर दिया था ॥ १८ ॥

यिमध्यस्थि पुरी तद्वा दूराः सर्वे च राक्षसाः ।
रामस्य वृथिता पत्नी न स्वयं यन्त्रि वीर्यतः ॥ १९ ॥

यदि श्रीरामकी प्राणवस्त्रम् छीनके हमस्मैका स्वयं ही

हृत्कार्ये श्रीमद्वाल्मीके कावलीकीये अदिकाव्ये तुङ्गकाव्ये लक्ष्मणाः सर्वाः ॥ १९ ॥

१९ प्रका श्रीवाल्मीकीनिर्मितं कार्यमानव अदिकाव्ये तुङ्गकाव्ये सर्वे सर्गे पूरा हुआ ॥ १९ ॥

दशम सर्ग

विभीषणका रावणके महलमें जाना, उसे अपराधुनोंका भय दिखाकर सीताका लौट दनेके लिये प्रार्थना करना और रावणका उनकी बात न मानकर उन्हें वहाँसे विदा कर देना

छटाः प्रस्युगसि प्राप्ते प्रयतधर्माथिनिवृत्तः ।

श्रीनामप्रयसकाटां

श्रीरामपुत्रमिथापठम् ।

पक्षसाधितर्षेक्ष भूमिकाया विभीषणा ॥ १ ॥

सुविभक्तमहाकक्ष

महाजनपरिमहम् ॥ २ ॥

नहीं खेया देते हैं तो वह छद्मापुरी नष्ट हो सकती और छान शरीर राख मार डाले जायेंगे ॥ १९ ॥

प्रसाद्ये त्वां वन्तुस्वात् कुक्ष्यं बचन मम ।
दितं तथ्य त्वहं प्रमि वृथियामस्य मैथिली ॥ २० ॥

आप मेरे कसे मारें हैं। अतः मैं आपको निरन्तर प्रकन करता जा रहा हूँ। आप मेरी बात मान लें। मैं अपने दितके लिये छपी बात कह रहा हूँ—आप श्रीरामचन्द्रकीसे उनकी छीना बापस कर दें ॥ २० ॥

पुरा शरत्सूर्यमरीचिसनिभान्
नयाप्रपुङ्गवन् सुखदान् नृपत्तमजाः ।

सुखस्यमोघान् विदितान् यथाय तं
प्रदीपतां वाशरथाय मैथिली ॥ २१ ॥

पद्मकुम्भर श्रीराम पद्मक अपने कपक लिये छपके काछके सूर्यकी किरणोंके समान तेजस्वी, उज्ज्वल अग्रमम एवं पंक्तोंसे सुशोभित, सुखद तथा अमोघ यथोक्ती बर्णों करे, उसके परछे ही आप उन दशरथनन्दनकी तेजमें मिथिलेशकुमारी छीताका सौंप दें ॥ २१ ॥

त्यज्याशु कोप सुखधर्मनाशन
भञ्जस्य धर्म रतिकीर्तिवर्धनम् ।

प्रसीद श्रीराम सपुत्रबान्धवा
प्रदीपतां वाशरथाय मैथिली ॥ २२ ॥

मेरा। आप कोपके त्याग दें; क्योंकि वह सुख और धर्मका नाश करनेवाला है। धर्मका सेवन कीजिये क्योंकि वह सुख और सुवर्णके बढ़ानेवाला है। हमपर प्रलय होयके लिये हम पुत्र और वन्तु-यन्त्रमौलित खींचित रह लें। इसी दृष्टिसे मेरी प्रार्थना है कि आप दशरथनन्दन श्रीरामका हाथमें मिथिलेशकुमारी छीताके खेया दें ॥ २२ ॥

विभीषणवक्त्रः भ्रुत्या रापजो राक्षसेभरतः ।
विसर्जयित्वा तान् सर्वान् प्रथिवेश लक्ष्मणहम् ॥ २३ ॥

विभीषणकी यह बात सुनकर राक्षसराज रावण उन लक्ष्मणसर्वोंके विदा करके अपने महलमें चला गया ॥ २३ ॥

हृत्कार्ये श्रीमद्वाल्मीके कावलीकीये अदिकाव्ये तुङ्गकाव्ये लक्ष्मणाः सर्वाः ॥ २३ ॥

१९ प्रका श्रीवाल्मीकीनिर्मितं कार्यमानव अदिकाव्ये तुङ्गकाव्ये सर्वे सर्गे पूरा हुआ ॥ १९ ॥

दशम सर्ग

विभीषणका रावणके महलमें जाना, उसे अपराधुनोंका भय दिखाकर सीताका लौट दनेके लिये प्रार्थना करना और रावणका उनकी बात न मानकर उन्हें वहाँसे विदा कर देना

छटाः प्रस्युगसि प्राप्ते प्रयतधर्माथिनिवृत्तः ।

श्रीनामप्रयसकाटां

श्रीरामपुत्रमिथापठम् ।

पक्षसाधितर्षेक्ष भूमिकाया विभीषणा ॥ १ ॥

सुविभक्तमहाकक्ष

महाजनपरिमहम् ॥ २ ॥

मन्त्रिमन्त्रिमहामात्रैरनुरक्तैरधिष्ठितम् ।
 यत्सैरात्तपयाप्तौ सर्वतः परिरक्षितम् ॥ ३ ॥
 मत्तमात्तद्विनिश्चालैर्म्याकुलीकृतमास्तम् ।
 शङ्खध्वजमहाघोरं त्वयस्मयाभ्नाव्रितम् ॥ ४ ॥
 प्रमदाजनसमस्याधः प्रञ्जलिस्तमहापयम् ।
 तद्वक्रञ्जननिर्गूहं भूयण्यात्तमभूयितम् ॥ ५ ॥
 गन्धवाणामिवायासमाल्लयः मरुतामिव ।
 रत्नसन्वयसमस्याधः भयम भोगिनामिव ॥ ६ ॥
 त महाभ्रमिवात्स्वस्तेजोविस्तृतस्मिवात् ।
 मप्रञ्जल्यालप्य वीरः प्रसिधेश महाधुतिः ॥ ७ ॥

वृद्धे दिन खेय इह ही धर्म और अर्थक तलक
 ननेयथ भीमकमा महातकवी वीर विभीरु अपने बड़
 मइ एकपत्र रनपके पर गय । वह पर अनेक प्राखदाक
 करण परसिधियेक समूहकी भक्ति शोभा पता थ ।
 गभीर केचाह भा पहाइकी चेटीछे स्मित कली थी ।
 उभे भस्म-भस्म यही-बही कथर्य (त्पादियां) मुन्दर
 उभे कनी हुई गी । बहुतर भेद्र पुरुषेक वहाँ आन-भना
 प्रह रता था । अनेकानेक बुद्धिमान् महामन्त्री अ यय
 क प्रति अनुयाग रखनेवाल थे उसम बैठे थे । विश्व
 कृषि दिव्यी तथा क्रम्यधननें पुराक बहुधुल्यक यक्ष
 धा अरसे उध मननकी रख करते थे । वहाँकी वायु
 मन्थते इक्षियेक नि श्वास मिमित हो नवहर-सी मन
 पड़ती थी । गल खनिके समान यक्षकेका गभीर का
 वहाँ गून्ध रहता था । नाना प्रकारक धारोंके मनोरम शब्द
 ग भस्मना निनादित करत थे । रूप और यौक्नक मदते
 न्शयो युवनीयोंकी वहाँ भीड़-सी कनी रहती थी । उहाँ
 बड़-बड़ मग कगाक बत्ताखपसे मुचरित खन पड़त थे ।
 उठक धरक तपाय हुए मुचरन के हुए थे । उत्तम
 गदरतकी बन्धुभासे बड़ महस अच्छी तरह सब हुआ
 थ अरापन पर गन्धबोके भावाभ और दकताभोक निखन
 नान क मन्थम प्रतीत इहा था । रत्नराजिने परिपूर्ण इने-
 क कल्प नर नागमकरक समान उद्रासित इहा था ।
 देव कन्ध विष्णु कृपापात्र मयं महान मधारी पर्यमे
 नरा करत इ उध प्रमद तकवी विभीरुने रावणक उध
 नन्नें दग्गा किया ॥ १-७ ॥

पुषान् पुष्याहचारारंश्च पञ्चित्रिकुशाह्वान् ।
 सुधायः सुमहातज्जः धातुधिंश्रयसहितान् ॥ ८ ॥
 वहाँ वृद्धपर उन महातकवी विभीरुने अपने चररी
 तिकर उहाँके पदबन्ध नासनादण क्रिय गय पुनार
 एकक रिय पर मुने ॥ ८ ॥
 एजितान् इधियांश्च सर्पिभिः सुमनोपतः ।
 मन्धपरिशो विमान् दशः स महापलाः ॥ ९ ॥

तयश्चत् उन महानथे विभीरुने बदमन्त्रेक इहा
 नासणोत्र दहन किया, मिनक हाथेमे दरी और कीके
 पत्र थे । वृद्धों और अशतोमे उन कबकी पूब की गयी
 थी ॥ ९ ॥

स पून्यमानो रक्षोभिर्वीप्यमानः सततजसा ।
 भासनस्य महावाहुर्बुध्वन् धनवानुजम् ॥ १० ॥

वहाँ खनेपर रक्षणेने उनका स्वागत-ककर किया । फिर
 उन महावाहु विभीरुने अपने तन्ते देखीप्यमान और सिंहा
 खनर विरक्मन कुम्भके छाटे भाइ यवणके प्रथम
 किया ॥ १ ॥

स राजद्विधिमन्मथमासम हमभूयितम् ।
 जगाम समुदाचारः प्रयुज्याचारकायिकम् ॥ ११ ॥

तन्तन्त्र सिंहाचारके जना विभीरुने विख्याता महावाहु
 (महावाहुकी ज्य इ) इत्यादि रूपसे राजक प्रति परम्प-
 प्राप्त शुभादक्षपुत्रक पचनका प्रयोग करके राबके द्वारा
 दृष्टिक संकेतन पताय गय मुचरनूक्ति सिंहाखनपर दे-
 गये ॥ ११ ॥

स रावण महामान विजय मन्त्रिसनिधी ।
 उवाच हितमन्त्र्ये पचन हेतुनिश्चितम् ॥ १२ ॥
 प्रसाद्य भ्रतर ज्येष्ठ साल्पन्नेपस्त्रिकामा ।
 दशकालाथसयादि हृदयेकपरायवा ॥ १३ ॥

विभीरुने कर्तवी भली-सुधी बातोंक अच्छी तरह खनत
 थ । उहाँने प्रथम भादि व्यवहारका यथापरमे निशान
 करके खन्नापूर्ण बन्नेद्वारा अपने बड़ भाइ महामना
 यवणके प्रकन किया और उसके एकन्तमें मन्त्रियेक निकर
 देग फल और प्रथमकके अनुकप सुकियोद्वारा निश्चित
 तथा आयन दिनारक बात करी— ॥ १२ १३ ॥

यदाप्रभूनि यवही समग्रानह परतप ।
 तदाप्रभूनि हृदयस्त निमित्तान्यनुभानि न ॥ १४ ॥

जमुभोंके कथप, देनेवाल महावाहु । जयन विरहदुःखी
 शंता वहाँ आथ है तभीम हम्सदोंका मनेक प्रथमक
 अम-पुत्रक अरागतुन निरवनी दे रह है ॥ १४ ॥

सस्तुलिङ्गि सभूमाम्भः सभूमकस्तुपरायवा ।
 मप्रमधुश्रिताऽप्यमिन्न सम्यगभिवर्धने ॥ १५ ॥

मन्त्रेद्वारा निहित क धपदनेपर भी भय भवती
 तरह प्रवर्जित नही हो रही है । गमन निम्नजियों निरुत्तमे
 खनी है । उमके करक क्षय हुआं उमने स्वयं है और
 मन्थनद्वारे नर भूमि प्रदर दनी है उम स्वयं भी वह
 पूर्वमें मसिन ही रहत है ॥ १५ ॥

भनिष्टप्यमि-प्रनदासु तथा प्रहम्यन्त्युपु य ।
 सरीशुपानि हृदयन हृष्यपु च विरानिद्यः ॥ १६ ॥

रक्षार्थं चोपनिषत्प्रधानं तथा वेदाध्ययनकाले स्नानो मे
भी तेषां देवैः कृतं है और इत्यन्तमभिप्रेयों चोपनिषत् पक्षी
दिखायी वेदी है ॥ १६ ॥

गर्वा पयासि स्वच्छानि विमदा वरकुञ्जराः ।
वीनमभ्याः प्रहेपन्ते मन्त्रमासाभिनन्दिनः ॥ १७ ॥

पशुयुक्तं वृषं सुखं गमा है बड़े-बड़े गन्धर्व मन्त्ररहित
हो गये हैं छोड़े नये प्राप्तसे आनन्दित (मोहन्ते छन्दः)
होनेपर भी वीनतापूर्व स्वरने दिनदिनादे है ॥ १७ ॥

खद्योद्वृण्वतया राजन् भिभरोमाः स्रवन्ति च ।
न साभाबऽवतिष्ठन्तं विधानैरपि विमिष्टिष्यः ॥ १८ ॥

पञ्चन । गणों छोटों और लक्षकों रोग लड़े हो
बत है । उनक नेत्रोंसे आँसू गिरने लगत है । विधिपूर्वक
विमिष्टिष्य भी अनेपर भी वे पूर्वत लख हा नहीं पात है ॥

बाह्यस्य सप्तशः कृत्वा व्याहरन्ति समन्ततः ।
सप्तमेवैवम्व इत्यन्तं विमानाप्रोपु सप्तशः ॥ १९ ॥

भूत और छड़-के-छड़ एकत्र होकर कर्मण लक्ष्में कौं-
कौं करतें लगते हैं तथा वे छममहले मन्त्रनोंस समूह-के-समूह
इकठे हुए देले भते हैं ॥ १९ ॥

सुग्राह्य परिस्वीयन्ते पुरीमुपरि विच्छिद्यताः ।
उपपञ्चास्य सप्तमे द्वे व्याहरन्त्यग्निष शिवाः ॥ २० ॥

सुग्राह्यपुत्रिक उमर छड़-के-छड़ गीष उरुष्य स्वर्णं कृतं
हुए-से मङ्गले खते हैं । दोनों संप्याओंके समय क्षियारि
नगरक समीप आकर अमङ्गलक घण्ट कृती है ॥ २ ॥

कृष्यावातं सुग्राजा च पुरीषारणु सप्तशः ।
भूयन्ते विपुला घोषा सविस्फूर्जितमिन्वनाः ॥ २१ ॥

पनाक समी कर्णकैर समूह-के-समूह एकत्र हुए मास-
पक्षी पक्षुओंके कर-बोले किने अनेबाके चिकन विच्छिद्यते
गन्धर्ववाहक समान सुनायी पडते हैं ॥ २१ ॥

त्वेव प्रस्तुते कर्म प्राप्यश्चित्तमिच्छन्तम् ।
रोषयं धीर वैवही रामयय प्रवीण्यम् ॥ २२ ॥

वीरकर । एषी परिस्फिडिम मुझे ता यही प्राप्तमिच
भ्रष्टा जल पडता है कि विदेहकुमारी सीता भीरमचन्द्रजीसे
प्रेय टी कर्म ॥ २२ ॥

इत्थं च यदि वा मोघास्त्राभावात् वा व्याहत मया ।
तथापि च महाराज न दोषं कर्तुमर्हसि ॥ २३ ॥

महाएन । यदि यह बात मीने म्दर या कर्मसे कही हा
ता भी भावक मुझमें दोषरहित नहीं कर्ती चाहिये ॥ २३ ॥
अर्थ हि दोषः सर्वस्य अकस्याभावापलक्षयतः ।
रक्षसां राक्षसीनां च पुरश्चास्तमुरश्च च ॥ २४ ॥

रूपार्थे धीमत्प्रामादने वासनीशीये आदिष्यन्ते नुद्वयन्ते इत्यमः कर्ताः ॥ १ ॥

इत एवमर्थादिनिर्मितं आर्षाराधनम् अदिष्यन्ते पुरश्चास्तमे दसौ सर्वं पूरा बुध ॥ १ ॥

पक्षिणा अगहरण तथा इत्से इनेवाक्य अगहणुन्त्ये
दोष यहाँभी खरी कता; रक्षस-राक्षसी तथा नगर और मन्त्र
पुर—सभीके किने उपलक्षित होता है ॥ २४ ॥

प्राप्ये चास्य मन्त्रस्य निवृत्ताः सर्वमन्त्रिणः ।
अथस्य च मया वाच्यं पद्म इत्यमयथा भुतम् ।
सम्प्रभाय यथाप्याय तद् भवाम् कर्तुमर्हति ॥ २५ ॥

पद्म इत आपके कर्नोतक पूर्वुपानेमें प्रायः सभी मन्त्री
उत्प्रेच करते हैं परंतु अब मया मीने देली च सुनी है पर
मुझे ता आपके आगे अथस्य निवेदन कर देनी चाहिये अथ
उत्तर यथोक्ति विचार करके आप जैस उक्ति लगती
देख करे ॥ २५ ॥

इति स्वमन्त्रिणां मध्ये भ्राता अस्तरमूषिवान् ।
राजस्य रक्षसां श्रेष्ठं पश्यमेतद् विभीषणा ॥ २६ ॥

इत प्रकर माई विभीषणने अपने मन्त्रियोंके बीचमें
बड़े माई रक्षसराज राकसे ये किताबरी वचन करे ॥ २६ ॥

हित महार्थं मृदु हेतुस्त्वित
अप्यतीतकालाद्यतिस्त्वस्त्वितसाम्प्रतिहामम् ।

मिदमप्य तद्वाच्यममुपस्थितः
प्रसङ्गवानुत्तरनेतत्प्रवृत्तौ ॥ २७ ॥

अर्थ न पद्यामि कुतश्चिद्व्यप्यह
न राजस्यः प्राप्यति जातु मैथिलीम् ।
सुरैः सहोत्पैरपि सगर कथ
ममाप्रता स्वस्यति छद्मपयाप्रजः ॥ २८ ॥

विभीषणजी ये हितकर महान् कर्मोंके लक्षकः क्लेशकः
मुक्तिदंश तथा भूत मलिष्य और बर्तमान-कर्ममें भी कर्म-
साधनमें समर्थ बतें मुनकर राजस्यो बुलाकर पद अर्थ ।

भीरमक लक्ष केर बहनेमें उरुषी मासिक हो गयी थी ।
इसकिने उरुषे इत प्रकर उरुष दिया—विभीषण । मैं तो
कर्मि मी कर्म मम नहीं देखता । राम मिथिलेककुमारी
सीताको कर्म नहीं पा सकत । इन्द्ररहित वेधताओंकी उरुष्य
प्राप्त कर अनेपर भी अस्त्रलोक बड़े माई राम मेरे लक्षने
समाममें बैठे निक उरुषे ॥ २७-२८ ॥

इत्येवमुपत्या सुरसैन्यमवाता
महापसः सपति ऋष्यकिन्वना ।

वशाल्लो अस्तरमास्तपहिन
पितृर्ज्यामास त्वा विभीषणम् ॥ २९ ॥

एता ककर देवसेनाके नाथक और उमराहणने प्रत्यक्ष
पराक्रम प्रकट करनेबाधे महाकवी इत्यननेने अपने कर्मर्षिकरी
माई विभीषणको तत्काल किता कर दिया ॥ २९ ॥

इत्येवमुपत्या सुरसैन्यमवाता
महापसः सपति ऋष्यकिन्वना ।

वशाल्लो अस्तरमास्तपहिन
पितृर्ज्यामास त्वा विभीषणम् ॥ २९ ॥

इत्येवमुपत्या सुरसैन्यमवाता
महापसः सपति ऋष्यकिन्वना ।

एकादश सर्ग

रावण और उसके सभासदोंका सभाभवनमें एकत्र होना

वभूय कुशो राजा मैथिलीक्षाममोहित ।
 मसन्मानाथ सुहृदां पापः पापेन क्रमया ॥ १ ॥
 रज्ज्वेद्यं राजं रज्ज्वं मिथिलेद्यकुमारी खिताके प्रति
 क्रमते मोहित हो रहा था उसके हितैषी सुहृद् विभीषण
 भ्रष्टि उद्यम अनादर करने लगे थे—उसके कुक्षुयौषीं निन्दा
 करते थे तथा वह सीताहरणकी बन्धन पाप-कर्मके कारण
 जयी पापित किया गया था—इन सब कारणोंसे यह अत्यन्त
 क्रुध (निन्तामुक्त एवं दुर्बल) हो गया था ॥ १ ॥
 मदीय कामसम्पन्नो धेधेहीमनुचिन्तयन् ।
 मदीयसमथं काले तस्मिन् वै युधि रावणः ।
 ममात्यैश्च सुहृद्भिश्च प्राप्तकालममम्यत ॥ २ ॥
 वह अत्यन्त क्रमते पीड़ित होकर बार-बार विधेहकुमारी
 का चिन्तन करता था, इसलिये मुदञ्च भवकर वीत बनेपर
 भी उठने उस काम मन्त्रियों और सुहृदोंके साथ सम्बन्ध करके
 सुहृदों ही सम्योनित कर्तव्य माना ॥ २ ॥
 स हेमजालवित्त मयिधितुमभूयितम् ।
 उपगम्य त्रीनीताभ्यमादरोह महारथम् ॥ ३ ॥
 वह लोनेकी अक्षीसे आच्छादित तथा मणि एवं मूर्तसे
 विभूषित एक विशाल रथपर किमो मुषिधित पाड़े चले हुए
 थे अब चला ॥ ३ ॥
 नमास्थाय रथधेष्ठ महामघसमस्रनम् ।
 प्रययी रक्षसा श्रेष्ठो वृणापीयः सभा प्रति ॥ ४ ॥
 महान मणोंकी गर्जनाक समान पर्यहर वेद्य करनेवाले
 उस उत्तम रथपर आसूद् हो रक्षसदिवेगमि वृणापीय सभ-
 मन्त्रकी श्रेष्ठ प्रस्थित हुआ ॥ ४ ॥
 मनिवमधरा याथाः मयायुधधरास्ततः ।
 गतस्त राक्षसन्द्रस्य पुरस्तात् सप्रतभिर ॥ ५ ॥
 उस समय राक्षसराज रज्ज्वक आगे-आगे दाह-उज्ज्वर
 एवं मय प्रक्षरक आयुध धारण करनेवाले बहुसंख्याक राक्षस
 पदा अब रहे थे ॥ ५ ॥
 नन्वाशिरुजयराजं नानाभूयभूरिता ।
 पादयतः पृष्ठतश्चैव परियाय ययुस्तादा ॥ ६ ॥
 इन तरह भौंके आदिन आभूयभूरिता भौंके नन्व
 प्रक्षरक शिरुजय पारा १ भगवित निराधर उस दावे-बाये
 और पीठेकी आरम परकर चले रहे ॥ ६ ॥
 रथभ्यस्तिया नीय मन्त्रैश्च वर्यारजः ।
 भन्तनुवृणापीयमादीशिरुजय वात्रिभिः ॥ ७ ॥

रज्ज्वक प्रस्थान करते ही बहुत-से अतिरथी वीर रथों,
 मत्पले गम्पार्यों और लेख-लेखमें तण्ड-तण्डकी पार्श्व दिशासे
 बाधे बोझोंपर स्वार हो तुरंत उमक पीठे चले गये ॥ ७ ॥
 गदापरिबहस्तद्वय शक्तिमोरपाजयः ।
 परभधधराभ्याम्ये तथाप्ये द्रुलपाजयः ।
 ततस्तुयसहस्राणां सज्जये निःस्वमो महान् ॥ ८ ॥
 किन्हीके हाथोंमें गदा और परिप घोमा या रहे थे ।
 फिर शक्ति और तामर सिंघे हुए थे । कुछ खेजने करते
 धारण कर रखते थे तथा अन्य रथयोंक हाथोंमें हस्त चमक
 रहे थे, फिर तो वहाँ सहस्रों बाघोंक महान् पाज होने लगे ॥
 तुमुदाः दाक्षिणात्यश्च सभां गच्छति रावणे ।
 स मेमिषोपेय महान् सहासाभिनिप्रवृणन् ॥ ९ ॥
 राजमार्गं धिया जुष्ट प्रतिपद् महारथः ।
 रज्ज्वक सभाभवनकी ओर चला करत समय तुमुद
 दाक्षिण्यी होने लगे । उसका वह विशाल रथ अपने परिवर्तकी
 पर्यहरसे सम्पूर्ण शिवाभोंक प्रतिपन्नित करता हुआ महा
 घोमावासी रक्षमार्गपर अब पहुँचा ॥ ९ ॥
 विमल चातपत्र च प्रवृहीसमशोभत ॥ १० ॥
 पाण्डुरः राक्षसेन्द्रस्य पूषस्ताराधिया यया ।
 उस समय रज्ज्वक रज्ज्वक ऊपर तथा हुआ निम्न
 लक्षित छत्र पूष कत्रमाक समान दृश्य था रहा था ॥ १० ॥
 ह्रममञ्जरिगर्भो च गुदस्फटिकधिग्रह ॥ ११ ॥
 चामरव्यजने तस्य रजतुः सभ्यवृक्षिणे ।
 उसका दाहिने और बायें भ्रामों गुद स्फटिकक बंधपाक
 चैवर और व्यजन किनेमें लोनेकी मञ्जरियों फनी हुई थीं,
 पक्षी द्योभय या रहे थे ॥ ११ ॥
 त वृत्रज्वलयाः स्वयं रथस्य पृथिवीरिप्तिता ॥ १२ ॥
 राक्षसा राक्षसभ्रष्ट निराभिस्र ययन्ति ।
 मार्गमें पृथिवीर वृद्ध हुए तथा राक्षस लोने हाथ उद्ध
 रथपर बैठे हुए गच्छनिगमनि गगनमें निर उद्यम करन्दना
 करने थे ॥ १२ ॥
 राक्षसं मूषमानं सद्रुणाधीर्भरिद्वम् ॥ १३ ॥
 म्यन्मदा महानजाः सभा रिगथिता तदा ।
 गच्छेद्दशय श्री मदी मुदी कर करकर आर आयाद
 मुन्यद्रुभा गुदुदमन महान् ॥ १४ ॥ तथा उस समय विश्वमा-
 दाग निर्मित गच्छमन्त्रमें गदना ॥ १३ ॥
 मुयपरत्रयार्मीर्वा रिगुदस्फटिकव्यजगम् ॥ १४ ॥

अथ शर्मन्तु कियते वे सवकेसव मेरे खिमे कमी निष्क
नहीं हुए हैं ॥ ८ ॥

ससोममहन्नाभैमरुद्रिरिय धारसः ।
भवद्विरहमस्त्यर्थं दूत धियमवान्पुयाम् ॥ ९ ॥

जैसे कन्धमा ग्रह और नक्षत्रोंद्वारा मन्त्रकर्मोंसे भिरे हुए इन्द्र स्वर्गाधी सत्यविष्णु उपयोग करते हैं; उसी मूर्ति आत्मकेमूर्ति भिरे रहकर मैं भी ब्रह्माधी प्रभु परब्रह्मामीका मुक्त भोगज्ञा रहूँ—वही मेरी अभिप्रेक्षा है ॥ ९ ॥

महं तु क्वन्तु सवान् वाः समर्पयितुमुद्यतः ।
कुम्भकार्गस्य तु स्वप्नाग्नेममघमघोवपम् ॥ १० ॥

मैंने जो काम किया है उसे मैं पहले ही आप तक भजने तक भयक भापक द्वारा उत्तम कर्मोंसे प्याहाता या परतु उस समय कुम्भकर्म खर्च हुए थे इच्छिमे मैंने इतकी चर्चा नहीं करायी ॥ १० ॥

अथ हि सुतः पद्मसास्त्रं कुम्भकर्णो महाबलः ।
सपदाश्रयुतां मुक्या स इदानीं समुत्पिता ॥ ११ ॥

अमल दास्यभारियानो भेद महास्त्री कुम्भकर्णो उ महीने-
से भं उरे थे । अभी इनकी निंद कथि है ॥ ११ ॥

इयं च दण्डकारण्य्यात् रामस्य महिनी प्रिया ।
रक्षोभिर्द्वारिता इशादानीन्तं जमकारमजा ॥ १२ ॥

मैं दण्डकारण्यमें जो रामकी महिनी प्रिया ।
रक्षोभिर्द्वारिता इशादानीन्तं जमकारमजा ॥ १२ ॥

मा म न नय्यामारो दुर्मिच्छप्रयलसगामिनी ।
प्रियु साकेपु धान्या म न मत्सासदानी तथा ॥ १३ ॥

किन्तु वह मन्त्रगामिनी रक्षिणी मेरी दास्यपर अक्षय
हना नहीं चाहती है । मेरी दक्षिणें सीनी स्वच्छेके अक्षर छीता
क ममान गुन्दर दुस्वी अक्षर छी नहीं है ॥ १३ ॥

तनुमज्या पूषुधाणीं नरविदुनिभक्तना ।
हमविम्यनिभा सीम्या मायय मयनिभक्ता ॥ १४ ॥

उत्तम शरीरका मयभाग भयन्त सुम है अक्षरके छिपे-
का भोग स्वस है मुक्त शरणाग्रक कन्धमाग्र मक्षित करता
है यह श्रेय रूप भोग स्वनाशवासी श्वेता स्वनेत्री कपी दुर्द
प्रतिमाम्ने अन्न पदनी है । एसा मन्त्रा है जेमे यह मया
भुरही रची हुई है मया दा ॥ १४ ॥

सुन्दर हिकम्पा अक्षरणीं शशीं सुप्रतिष्ठिता ।
दृष्ट्वा तामनातो तस्या र्त्विप्यत्र म नरिगजा ॥ १५ ॥

उत्तम शरीरक मयभाग भयन्त सुम है अक्षरके छिपे-
का भोग स्वस है मुक्त शरणाग्रक कन्धमाग्र मक्षित करता
है यह श्रेय रूप भोग स्वनाशवासी श्वेता स्वनेत्री कपी दुर्द
प्रतिमाम्ने अन्न पदनी है । एसा मन्त्रा है जेमे यह मया
भुरही रची हुई है मया दा ॥ १४ ॥

सुन्दर हिकम्पा अक्षरणीं शशीं सुप्रतिष्ठिता ।
दृष्ट्वा तामनातो तस्या र्त्विप्यत्र म नरिगजा ॥ १५ ॥

उत्तम शरीरक मयभाग भयन्त सुम है अक्षरके छिपे-
का भोग स्वस है मुक्त शरणाग्रक कन्धमाग्र मक्षित करता
है यह श्रेय रूप भोग स्वनाशवासी श्वेता स्वनेत्री कपी दुर्द
प्रतिमाम्ने अन्न पदनी है । एसा मन्त्रा है जेमे यह मया
भुरही रची हुई है मया दा ॥ १४ ॥

सुन्दर हिकम्पा अक्षरणीं शशीं सुप्रतिष्ठिता ।
दृष्ट्वा तामनातो तस्या र्त्विप्यत्र म नरिगजा ॥ १५ ॥

उत्तम शरीरक मयभाग भयन्त सुम है अक्षरके छिपे-
का भोग स्वस है मुक्त शरणाग्रक कन्धमाग्र मक्षित करता
है यह श्रेय रूप भोग स्वनाशवासी श्वेता स्वनेत्री कपी दुर्द
प्रतिमाम्ने अन्न पदनी है । एसा मन्त्रा है जेमे यह मया
भुरही रची हुई है मया दा ॥ १४ ॥

उत्तम विमल वस्तु वदन वादलोचनम् ।
पदपस्त्रव्यवतास्तस्याः कामस्य ब्रह्मोक्तिवत् ।

विश्वे वीर्ये भावुति शशी गमी हो; उ
और सुदंभी प्रभुके समान इत तेजस्विनी २ १
तथा उँची नाक और विशाल नेत्रोंसे सुशोभित
एवं मनाहर मुखकर अमलकेका करके मैं अपने पहले
गया हूँ । अपने मुझे अपने अभीन कर किया है ॥ १५ ॥
श्लेषहर्षसामसेन सुवर्षकरणेन ॥ १५
शोकसतापमित्येन अग्नेन कसुपीकृतः ।

जो श्लेष और हय दोनों अन्धकारमें
रहता है शरीरकी कान्तिका सीधी कर देखे के कर
तथा संतापके समय भी कभी मस्ते बुर नहीं देखे ।
अग्ने मेरे हृदयमें कल्पित (मयकुल) कर
है ॥ १७ ॥

सा तु सक्त्वर काल मामयाप्यत भामिनी ॥ १८
प्रतीक्षामणा भर्तार राममापत्यद्वेषम् ॥

तमया धादनेश्याः प्रतिज्ञात क्वा शुभम् ॥ १९

विशाल नेत्रोंवाली मन्मथी छीताने मुझसे एक वर्ष
ममय मोह है । इत बीचमें वह अपने प्रति क्षीणमयी
करेगी । मैंने मनाहर नेत्रोंवाली शीतके उत सुन्दर वस्त्र
सुनकर उसे पूर्ण करनेकी प्रतीक्षा कर ली है ॥ १८ ॥

आस्ताऽह सक्त क्वमात् वातो हय ह्यापरमि ।
कथं सागरमक्षाय तरिप्यसि बभौकसा ॥ २०

यसुसत्त्वप्रगाकीर्णं ती या द्वापर्यामसौ ।

जैसे यह मागमें चमत्-चमत् पाया यह अन्न है उ
प्रभर मैं भी अमयीहोते धमन्वद्वय अनुभव कर ए
पथ वा मुझे शत्रुभीषी आसते अक्षर कर नहीं है स्वर्ण
वनवासी बानर भयया वे हानी वात्स्यकुमार क्षीण
अममय भयंकर अन्न-कनुभौ तथा मस्तेसे भर हुए अमय
महत्प्रणयका कने पार कर सहेगे ? ॥ १९ ॥

अथवा कपिनिकन दूत ना कवन महत् ॥ २१
सुवर्षया कथयतया मृत यम्य ययामती ।

मानुषाया भयंस्वन्ति तथापि तु विमुद्यताम् ॥ २२

अथवा एक ही बानरने आकर हमारे नहीं जा

वही शरणागते सधमनाके लयने लगी हकी हय
रिप्याके जिने लयंका अन्नक बहा है । शीतलोने कपी कने उँ
न वह नहीं उदा वा कि मुझ तक वपका समन हो । वरि हा
विशाल मोघय नहीं कने लगे मैं मुशारी ही का ने । शीत
वा मया विश्वासपूर्वक हनक वन-मयलको दुष्काय ही क
इसे सर्व ही कनी ही करके उँह तक वपका अन्नक रिप
(देखिये महाभारत मंत्र ५६ अक्षर ६ १५)

धर मन्त्र दियो यः । इत्येवमर्थसिद्धिक उपायैश्च समस्त
धना अत्यन्तं यत्नितं है । अतः किञ्चन अस्मी बुद्धिक
मनुष्यः नैव उचितं वान पद्मः । यह वस्त्र ही यथाय । तुम स्व
धना अन्ते विचार अनवर म्यक्त कर । यथापि हमें मनुष्यसं
कष्ट मन् नहीं है, तथापि तुम्हें विषयके उपायवर विचार तो
करना ही चाहिये ॥ २१-२२ ॥

तदा इवासुरे युद्ध युष्माभिः सहितोऽजयम् ।
त म भक्तस्तत्र तथा सुग्रीयप्रमुखात् हरीन् ॥ २३ ॥
पर पार समुद्रस्य पुरस्कृत्य नृपात्मजौ ।
सीताया पत्नीं प्राप्य सन्प्राप्तौ यदण्डालयम् ॥ २४ ॥

उन दिनों जब देवताओं और अनुषेका युद्ध चल रहा
था उसमें आप सब धर्मोक्ती सहायतासे ही मैंने विजय प्राप्त
की थी । आज भी आप मेरे उसी प्रकार सहायक हैं । वे
दुनों रामकुमार सीताका पता पाकर सुग्रीव आदि यन्त्रेका
स्य शिवे समुद्रके उत तटक पहुँच चुके हैं ॥ २३-२४ ॥

मन्युश्च यथा सीता वप्यौ द्वादशधामजौ ।
भवत्प्रमत्तयतां मन्त्रा सुनीत चाभिधीयताम् ॥ २५ ॥

अब आपसका आपसमें कथन करिये और कोई परी
कुन्वर नीति बताइये, किसे सीताको छेड़ना न पड़े तथा वे
दुनों हजारभक्तुमार मारे जायें ॥ २५ ॥

नहिं शक्तिं प्रपद्यामि जगत्पत्यस्य कस्यचित् ।
सागर धानरैस्तीत्या निश्चयेन जपो मम ॥ २६ ॥

आर्तक क्षय समुद्रका पार करके वहाँतक आनेकी शक्ति
कल्पसे गमक सिद्ध और किस्मिमें नहीं रहता है (किन्तु राम और
धनर वहाँ आकर भी मरण कुछ सिद्ध नहीं मन्ते) अतः
यदि निश्चय है कि जल मेरी ही दार्ढ्य ॥ २६ ॥

तस्य क्षामपरीतस्य निदास्य परिद्वितम् ।
कुम्भकम्प्यं प्रचुम्बयथ घचन चङ्गमप्रधीत् ॥ २७ ॥

कामतुर रावणका यह लक्षण प्रसार मुनकर कुम्भकर्ण
का रूप भा गया और उसने इस प्रकार कहा— ॥ २७ ॥

यद्वा तु रामस्य मत्कम्पस्य
प्रसङ्गं साक्षात्कृतुं सा इहाह्वया ।
मरुत्समीक्ष्यय मुनिर्घात तदा
भञ्जत विलस यमुनश्च यमुनम् ॥ २८ ॥

यदि तुम कम्पकहित भावनाक आभयन एक बार स्वयं
ही मन्तव्य विचार करके क्षीयान्त वहाँ तक पहुँच कर स्वयं
के यकी कम्प तुम्हारे विलस हमकाण्ड क्षय इस
विषये मुनिर्घात विचार कर एसा चाहिये था । ठीक उसी
रूप जब कतना सब पृथिवी परतेका उदर हुई तभी
उन्हींके सम्पत्ती परतक कुम्भकारण अन्ते कल्ले पूव
क्षय था (पृथिवी उतर देनेक बाद उनका सब समुद्र

में आकर आत हो गया तब वे पुन उमर चुष्का नहीं
मर सकते उसी प्रकार तुमने भी जब विचार करनेका
अवसर था तब तो हमारे साथ बैठकर विचार किया
नहीं । अब अवसर फिआकर क्या काम सिद्ध करनेक बाद
तुम विचार करने लगे हा ॥ २८ ॥

सर्वमिदंमहाराज कृतमप्रतिमं तय ।
विधियेत सहास्रभिराश्वधाम्य कमप्य ॥ २९ ॥

महाराज ! तुमने जो यह छत्ररूपक छिपकर परकी-हरण
आदि कार्य किया है यह सब तुम्हारे शिव बहुत अनुचित
है । इस पापकर्मके करनेसे पहले ही आपका हमारे साथ
परामर्श कर लेना चाहिये था ॥ २९ ॥

न्यायन राजक्षयाणि यं करति दशानन ।
न स स्तप्यत पश्चात्प्रिभितायमसिनुपः ॥ ३० ॥

दशानन ! जो राज्य का राजकर्षण न्यायपूर्ण करता है
उसकी बुद्धि निश्चयपूर्वक होनेके कारण उसे पीछे पड़ना नहीं
पड़ता है ॥ ३० ॥

अनुपायेन कमणि विपरीतानि यानि च ।
क्रियमाणानि बुष्पन्ति हर्षोष्पयप्रयतप्यिव ॥ ३१ ॥

जब कर्म उचित उपायका अन्तर्गमन क्रिय सिद्ध ही क्रिय
करते हैं तथा जो एक ओर शास्त्रक विपरीत करते हैं वे पाप
कर्म उसी तरह दारकी प्राप्ति कराते हैं, जने अविश्व अभि-
चारिक यकामें हमें गये हसिये ॥ ३१ ॥

यं पश्चात्पूवक्षयाणि कमाप्यभिधिर्करति ।
पूर्व चापकरप्रयाणि स न यद् न्यायनीयौ ॥ ३२ ॥

जब पहले करते काम कर्मोंका पीठ करना चाहता है
और पीछे करते काम काम पहले ही कर डालता है पर
नीति और अर्थनियम नहीं बनता ॥ ३२ ॥

चपलस्य तु छत्यपु प्रसमीक्ष्याधिकं बलम् ।
छिद्रमन्य प्रपद्यन्त यौध्वस्य स्वामिव द्विजा ॥ ३३ ॥

गणुका अन्ते विचारक यत्न भयानक अधिक बल
कर न पारि पर हर काममें यत्न (कल्पना) है तो उसका
दमन करनेक शिवे यह तरह उसक छिद्र दूढ़त रहते हैं जेन
यकी बुध्दय कौय परतका संयमर भाग यदनेक शिव यहक
उस) छिद्रका भावय मत है (किन्तु मुन्कर कर्मिण्यन
अन्ती शक्तिका प्रहार करके बनाया था) ॥ ३३ ॥

स्ययद् महद्दारुण्यं क्षयमप्रतिगित्तिनाम् ।
द्विष्टया स्थो न्यारधीद् रामा द्विषमिधमिशागिरम् ॥ ३४ ॥

महाराज ! तुमने जो भी परामर्श विचार किया सिद्ध
कुम्भ कर्मके वे नदी उदिक का । अन्तरगत
वित्तके करके करने का का शिव था—यह कम्प राज्यसे
बचने (१७७-१७८)

विराजमानो ययुगा रुक्मपद्मात्तरच्छदाम् ।
तां पिशाचशरैः पद्भिरभिगुतां सवाप्रभाम् ॥११॥
प्रविशत महातडाः सुहृतां विष्वक्मण्यम् ।

उस समाके करीम खाने-चारीका नम किया हुआ था
तथा बीच-बीचमें विद्युत् स्फटिक भी बड़ा गया था । उसमें
खेलेक फमवाले देवकी बच्चोंकी चादरें पिठी हुई थीं । वह
समा मदा अपनी प्रान्से उद्मासित हाथी रहती थी । छा खी
मिठाच उखरी रखा करत थे । विष्वक्मणने उस बहुत ही
सुन्दर बनाया था । अपने शरीरसे सुवाभिसा इनिवाले महा-
तमली रावणने उस समास प्रकथ किया ॥ ११ १५३ ॥

तस्या तु वैश्वयमय प्रियकाशिनसप्ततम् ॥१२॥
महत्सापाश्रय मेघे रावण्यः परमासनम् ।
तदा दशदासम्भरयवभूतलङ्घुपराक्रमान् ॥१३॥

उस श्यामभनमें वैश्वयमि (नीलम) का बना हुआ
एक विशाल और उत्तम सिंहासन था किछपर अत्यन्त
सुन्दरम चमड़ेवाले प्रियक नामक मृगस्य चर्म सिंध था
आर उकर मसनद भी रखा हुआ था । रावण उखीर बठ
गया । फिर उसने अपने शीमगानी वृत्तोंमें आका दी—
समानयत म क्षिप्रमिह्वतन् राक्षसामिति ।
धृत्वमस्ति महज्जानं कतप्यमिति ऋषिभिः ॥१८॥

भुमयसा शीम ही यहाँ बैठनेवाले सुविख्यात उखलोक
में पास सुख म आभा स्थाकि शयभोक थाय करने योग्य
महान् शय सुत्तर आ पदा दे । इस बातमें मैं अच्छी तरह
समझ रहा हूँ (भन इकर पिचार करनेके लिये सब समा
सशय यहाँ आना अत्यन्त आवश्यक है) ॥ १८ ॥

राक्षसास्तद्वय भुन्या उद्यायां परिवक्रमुः ।
मनुगहमयस्थाय विहागशयनपु च ।
उद्यानपु च रभासि च्चादयन्ता ह्यभीतरम् ॥१९॥

रावणस्य यह आदेश सुनकर य राक्षस द्वादाम सब आर
पकर खाने लगे । वे एक एक पर विदारमान रावणागार
भीर उद्यानमें जाकर यहाँ निभयक्रमे उन सब राक्षस
राक्षसभामें जानेके लिये प्रीति करने लगे ॥ १९ ॥

त रथान्तवरा एरु दमानक वदान् हयान् ।
मृगान्कडधिरकनुजमुदयं पशुतया ॥२०॥
उस उन राक्षसभामें जो रथपर चढ़कर उन का
मायान हाथिनस्य और वारी सबभूत पशुगार वगार हाकर
अने अने खानन प्रस्ता हुए । यत्रम गाम्भ वंती ही
नक लिये ॥ २० ॥

मा पुत्री परमाद्यया रथमुद्रराशिभिः ।
सम्यक्तद्रायण्य गाम्भित्तिगालयम् ॥२१॥
उस समय ही ही लय रथ हाथिनस्य और वदान् पशु

हुई वह पुत्री बहुसंख्यक गवहोंसे आच्छादित हुए म
भी भौति शोभा पर रही थी ॥ २१ ॥

त वाहनान्यवस्थस्य यान्गनि विविधानि च ।
सभा पद्भिः प्रविशिशुः सिंहा मिरिगुहामिर ॥

गन्तव्य स्थानतक पहुँचकर अपने-अपने कहनों
नाना प्रकारकी सवारियाओं बाहर ही रनकर वे सब स
पल्ल ही उस सभामनम प्रविष्ट हुए माने बहुत-से
किछी पैरतकी कन्दरमें पुस रहे हों ॥ २२ ॥

गङ्गाः पादौ गृहात्वा तु राजा से प्रतिपूजितः ।
पीठप्यन्थ पूसीध्वस्ये भूमौ केचिदुपासिवान् ॥ २३ ॥

वहाँ पहुँचकर उन सभने राक्षके पाँव पकड़ तथा य
भी उनका उत्कार किया । तपमात् कुछ लका कं
शिखकोंपर कुछ श्मा कुशकी क्याइयापर और कुछ क
साधारण पिछेनासे क डी हुई भूमिपर ही बैठ गये ॥ २३ ॥

त समेत्य सभायां वै राजसा राजशासनत् ।
यथाहंमुपेतस्युस्तं राजण राक्षसाधिपम् ॥ २४ ॥

राक्षसी आरुसे उस सभामें एकत्र हाकर वे सब राक्ष
राक्षसयव राजके आसपास यथायोग्य आसनोपर बैठ गये ।

मन्त्रिणश्च यथामुस्या निशितायेषु पण्डिताः ।
अमात्याश्च गुणोपेताः सयथा सुन्दिरशान्तः ॥ २५ ॥

समीपुस्तत्र शतशः शूराश्च पहवस्तथा ।
सभायां हेमजगत्यां सरोर्यस्य सुख्यय वै ॥ २६ ॥

यथायोग्य मित्र-मित्र विरपोंक लिय उचित सम्मति देने
वाले मुक्क मुक्क मन्त्री कर्त्तव्य-निभयमें पाणिगल्लम परच
दनेवाले सचिव सुन्दिरशी कर्त्तव्य उद्गुण-शय्यक उपमन्त्री
तथा और भी बहुत-से शूरवीर सम्पूर्ण श्रेयोके निभयक लिय
और सुकामासिक उपमपर विचार करनेके लिये उस सुन्दरी
अन्तिवासी सभाके भीतर सङ्घोंमें संख्यामें उपस्थित थे ॥

तदा महात्मा विपुल सुयुग्म
रथ पर हसयिधिप्रित्वाहम् ।
गुभ समात्थाय ययो यशाली

विभीषणः ससङ्मजज्जय ॥ २७ ॥
तत्रमात् यामी महात्मा विभीषण भी एक गुणवर्द्धित
सुन्दर अशाम गुक विद्याक ल एव गुमाराक रथपर
आरुद ही अपने पद भारीकी गभामें जा पहुँच ॥ २७ ॥

स पूषजायागजः शान्त
नामथ पद्यापराग्यो यज्ज ।
गुफः प्रहस्ताथ रथय तभ्यः
ददौ यथाहं पूषगासन्तानि ॥ २८ ॥

उस भारी विभयजनक अ भयक नाम यथाप ही
वह भारीक यजार्त्त मन्त्रक उवाच । इस तरह गुक और

उस भारी विभयजनक अ भयक नाम यथाप ही
वह भारीक यजार्त्त मन्त्रक उवाच । इस तरह गुक और

उस भारी विभयजनक अ भयक नाम यथाप ही
वह भारीक यजार्त्त मन्त्रक उवाच । इस तरह गुक और

प्रहस्तने भी क्रिया । तत्र रावणेन तत्र सवस्र यथाप्यस्य पृथक्-
रूपम् आसन्न दिशे ॥ २१ ॥

सुवर्णन्यामणिभूषणाना
सुधासखा ससदि राक्षसानाम् ।
तथा पद्मपद्मगुरुकन्दनाला

अज्ञा श्यगन्धाः प्रवयुः समन्तात् ॥ २२ ॥

मुच्य एवं नाना प्रभारश्चि मम्मिका अभूयगोष्ठ विभूषित
उन मुन्तर वक्रपारी रश्मिंश्चै उष सभामे कष आर यदुमून्य
भगुरु, चन्तन तथा पुष्पहारोक्षी सुगन्ध छ रही थी ॥ २२ ॥

न सुकुशुनानृतमाह कश्चित्
सभासदो नापि अजल्लुक्चञ्च ।
सखिद्रायाः स्वय एतोप्रवीया
भतुः सर्वे दृष्टुभ्यानन त ॥ ३० ॥

हृषीकेशे भीमव्रामाण्ये वास्मीक्षीये भविक्रम्य युद्धकाण्ड पञ्चदश सर्गः ॥ ११ ॥

स प्रकाश धीरात्मनिर्मित भारीसामस्य आदिक्रम्ये कुदक्रम्ये म्भारद्वर्गोर्मा पूराहुआ ११ ॥



द्वादश सर्ग

नगरकी रक्षाक लिय सैनिकोंकी नियुक्ति, रावणका सीताक प्रति अपनी आसक्ति बढाकर उनक
दरपना प्रसंग बताना और भावी कर्तव्यक लिय सभासदोंकी सम्मति माँगना, कुम्भकर्णका
पहल तो उसे फटकारना, फिर समस्त शत्रुओंके वधका स्वय ही भार उठाना

स ता परिपद् दृष्ट्या समाक्ष्य समिस्त्रिय ।
प्रचक्ष्यामास तदा प्रहस्त याहिर्नपनिम् ॥ १ ॥

एतद्विषयी रावनेन तत्र सन्तुल सभास्रे अर दृष्टियत
करत मेलासि, प्रहस्तक, तत्र, अक्षय, तत्र प्रहस्त अक्षय
रिय ॥ १ ॥

सनापन यथा त स्यु वृत्तधियाश्चतुर्थिधा ।
याथा नगररक्षाया तथा व्यत्पट्टमहनि ॥ २ ॥

मनापन । नम भनिधारा एभी अक्षय दा क्रिय
मुक्षत अन्वविद्याम परमन रथी युद्धरार शोधरार और
पैरस यदा नगरा) रक्षम तत्रर रक्ष ॥ २ ॥

स प्रहस्त प्रजित्वात्मा शिर्षयन् राज्ञासमनम् ।
निनिक्षिपद् यत् सव पहिरस्ताथ मन्त्रि ॥ ३ ॥

अपने मनस रावण सनतवाउ प्रहस्तने सारक अक्षय
स पक्ष्य कनस) इच्छाम सन) मन्त्राउ नगरक पहिर और
अनर यथाप्य सनतार निनुन री च ॥ ३ ॥

तत्रा निनिक्षिप्य यत् सर्वे मगगुणय ।
प्रहस्त प्रमुण गता निरमाह उगाद स ॥ ४ ॥

नगरा सन) री मन्त्राउ ननन नरक प्रहस्त
यथा एववक सनने आ ग आर इन प्रहस्त ॥ ४ ॥

उस समय उस सम्यक् कर्ष भी सर्वस्य अक्षय नहीं
पकता था । स सभी समस्त न तो चित्त्राते थे और न
अर-अरसे बातें ही करते थे । वे स्व-क-स्य सफ़्फमनोरय
एवं मयङ्ग पयङ्गी य और सभी अपने स्वामी रक्षकके मुँह
की ओर देख रहे थे ॥ १ ॥

स रावणः शक्यभूता मनस्विन्य
महापत्यता समिती मनस्वी ।
तस्यां सभाया प्रभया चक्रारो
मध्ये पस्त्वामिव यज्ञहस्तः ॥ ३१ ॥

उस महान शक्यपारी महापथी मनस्वी वीरोंक समागम
हानेपर उनक बीचमें बैठा हुआ मनस्वी रावण अपनी प्रभाते
उसी प्रकार प्रबलित हो रहा था जैसे शत्रुओंक बीचमें बज्र-
पारी इन्द्र देवीस्यमान होते हैं ॥ ३१ ॥

स प्रकाश धीरात्मनिर्मित भारीसामस्य आदिक्रम्ये कुदक्रम्ये म्भारद्वर्गोर्मा पूराहुआ ११ ॥

विहित पहिरस्ताथ यत् सव यत्ततस्तव ।
कुक्ष्यायिमन्याः क्षिय यन्भिप्रतमसि त ॥ ५ ॥

पक्षस्यग ! आप महाक्षी महायवारी सन्यक्त मीने
नगरक पहिर और अक्षय सनसल नियुक्त कर दिख ॥ ५ ॥
अब आप स्वस्वचित्त हाकर पीप ही अपने अभीष्ट कथना
संगानन वीरिय ॥ ॥

प्रहस्तस्य यथा शुक्य राजा गम्यहितरिणा ।
सुगण्युः सुहृदो मय्य प्याजहार स रावणः ॥ ६ ॥

रावणा हित सादेनाउ प्रहस्तस यद का मुनहर अपने
गुरभी इच्छा सनतय सनान सुदुगेक जेचने यह सन
थी—॥ ६ ॥

प्रियाप्रिय सुग दु य स्वभान्याम हितहित ।
धमसमाधरुष्यु म्यमहथ परिनुम् ॥ ७ ॥

नन्दसग ! धन अथ और सामन्तारक सक्ष
उत्तान दनेस सारण विर प्रत्यर पूराहुय स्वभ-
दानि भर हित राय विचार सनने कल्प है ॥ ७ ॥

सुरठ-यानि युष्मभिः समारब्धानि सशश ।
मन्त्रमनियुक्तानि न ज्ञानु रिग्ययानि म ॥ ८ ॥

अन नन सन सन) विचार करक म्भिय म्भिय सन-

कर आरम्भ किया है वे सब-के-सब मेरे लिये कभी निष्फल नहीं हुए हैं ॥ ८ ॥

ससोममहन्महाभैमंरुद्रिरिय प्यसथाः ।
भयद्रिरहमस्यर्था वृष्टः शिप्यमवाप्नुयाम् ॥ १० ॥

जैसे पन्द्रमा, ग्रह और नक्षत्रोंसहित मकराण्डेसि बिर हुए इन्द्र स्वर्गकी कल्पित्वा उपभोग करते हैं उन्हीं मूर्ति माण्डोदरेसि भिर खड्ग में भी बह्मकी प्रपुर गन्धर्वकीच सुख योग्या रह्यै—यही मेरी भविष्यता है ॥ ९ ॥

मह तु कस्तु सर्वात् यः समर्थयितुमुद्यतः ।
कुम्भकर्णस्य तु खप्नान्नेममयमचोदयाम् ॥ १० ॥

जाने जब काम किया है तबसे मैं पहले ही अथ सबके सम्मने रखकर आयेके द्वारा उच्छन्न समयन चाहत या परतु उस काम कुम्भकर्ण क्षय हुए ये इतलिये नैने इतकी चन्वा नहीं चक्ष्मी ॥ १ ॥

अथ हि सुताः परमासान् कुम्भकर्णो महाबलः ।
सयंशस्त्रमूर्ता मुक्याः स इदानीं समुत्थिताः ॥ ११ ॥

ब्रह्मस्य शस्त्रधारिणोभे भेद्र महाकषी कुम्भकर्णः सः महीने-से ख रहे ये । अथे इनकी नील सुखी है ॥ ११ ॥

इय ख वृषभकारण्यात् रामस्य महिषी प्रिया ।
रक्षोभिश्चरितोद्देशयाम्नीतम जनकभारजा ॥ १२ ॥

जै दण्डधरस्यसे जो उच्छोक निक्करोका खान है उमकी प्यारी रनी न्नाम्नुखरी खीताफे हर कथा हूँ ॥ १२ ॥

सा मे न शय्यामारोवुमिच्छस्यच्छसगामिनी ।
त्रिपु स्वर्केषु चाम्या मे न सीतासहस्री तथा ॥ १३ ॥

किन्तु वह मरदानिनी खीत मेरी शय्यापर म्भस्व इन्ध नहीं चारही है । मेरी हथिये रीना स्वर्केषु भीतर खीता-क छम्भन सुन्दरी वृष्ठी कोई की नहीं है ॥ १३ ॥

तनुमप्या वृषुभोपी शरत्रिस्तुनिभाम्नाय ।
हेमविन्मणिभा सौम्या मापेध मयनिर्मित्वा ॥ १४ ॥

उच्छके शरीरका मन्मभगा अत्यन्त सुन्दर है कश्चिके पीछे-का मग खूब है मुज शरत्कम्भक पन्द्रमाको कश्चित् करता है वह खेय इय और स्वगावबासी खीत खनेकी कनी हुई प्रसिमाकी जन पहाती है । देया खन्ना है जैसे वह मया-सुरकी रकी हुई कोई माया हो ॥ १४ ॥

सुज्ञोहितकस्वी नृदक्ष्यी खरणी सुप्रतिष्ठिता ।
दृष्ट्वा ताम्बलकौ मस्या वृत्त्यनं मे शरीरजा ॥ १ ॥

उच्छके शरीरके लम्बे लम्ब रगके हैं । राना पर सुखरु पिच्छे और सुखस हैं तथा उनठ नल तबि-जसं श्रम हैं । खीतने टन पन्नाका देवद्व मेरी शय्यासि प्ररम्भिन ही उठती है ॥ १५ ॥

वृत्त्यनं र्भिमन्नागाम्ना सौरीमिय प्रभाम् ।

उत्तस्त विमल यस्तु यदं चारुलोचनम् ॥ १६ ॥
पदयस्तव्पवास्तस्याः कामस्य वशमेपियान् ।

किछमें पीकी आगुति डाली गनी हो, उठ अग्निपी क्म और सुर्गकी प्रभाके समान इत तेकस्किनी खीताफे देहकर तथा ऊँची नाक और विद्याक नेत्रोते सुषोभित उच्छके निम्न एवं म्नाहर सुलभ अवधेकन करके मैं अपने वशमें नहीं ख गया हूँ । कामने मुझे अपने अधिन कर किया है ॥ १६ ॥

श्लोभहर्षसमनेन पुर्णार्णकरणेन च ॥ १७ ॥
शोकस्तवपमित्येन कामेन कस्तुपीडिता ।

जब श्लोभ और हृष दोनों मन्मखाभोंमें समस्तस्ये बन खता है शरीरकी कान्तिशु खीकी कर होता है और श्लो तथा श्लोभके सम्म भी कभी मन्से पूर नहीं होत; उठ कामने मेरे हृदयको क्लृपित (ख्यनुष) कर दिख है ॥ १७ ॥

सा तु सकस्तर काल भामयाजत भामिनी ॥ १८ ॥
प्रतीक्षमाणा भर्तार राममायतस्येकन्व ।

तस्मया चारुनेत्रया प्रतिक्षत खन्वा गुभम् ॥ १९ ॥

विद्याक नेत्रोबासी मन्मन्मि खीतने मुससे एक वर्षक सम्म मोंग है । इत बीचमें वह अपने पति भीपमकी प्रतीक्ष करेगी । मीने म्नाहर नेत्रोबासी खीताक उठ सुन्दर बचनक सुनकर उसे पूर्ण करनेकी प्रतीक्ष कर खी है ० ॥ १८ १९ ॥

आस्ताऽह सतत कामाव् यतो ह्य इयाप्यनि ।
कथ सागरमसोम्य तरिष्यसि तनौकसः ॥ २० ॥

यद्बुसस्यस्यार्कीर्णं तौ वा द्वाशयात्मजी ।

जैसे बड़े मार्गमें चम्भ-चम्भे पोंबा यक जाता है उन्हीं पन्कर में भी क्मपीडाने यक्षवटका अनुभन कर खा हूँ । रीने ता मुझे शानुओंकी अरेसे कोई कर नहीं है— नौकि मे वनबासी बनार अथवा वे दोनों दण्डककुम्भर भीथम और क्मनज अंशंस्य क्म-क्मन्तुमौ तथा मत्स्योसि मेरे हुए अक्षक्य महाखरकफे कैसे पार कर सङ्गे ? ॥ २ ॥

मथय्य कश्मिँकेज कृत ना कयत् महत् ॥ २१ ॥
पुर्णयोग कर्णगतयो मृत यस्य यथामति ।

मानुयाथा भय नास्ति तथापि तु विमृदयत्पम् ॥ २२ ॥

अथवा एक ही बनरने अक्षर हमारे वहाँ म्नाय

० वही उल्लेख समस्तकाके जन्मे बन्यो छद्मे शरत्क प्रिधानेके लिये सर्वथ कल्प खा है । शीतजीवे कनी बनने हूँ से वह वही खा था कि मुझे एक वर्षक समय दो । वरि क्मने रिजोक्ष नीरान कही खाये छे मैं दुन्धारी हो कर्कीनी । लीतने मे सवा शिरश्चार्यक क्मके मन्म म्नायको दुष्प्राथ ही ब । उच्छके खन ही बननी ओरसे क्म एक वर्षक बनकर दिख ब । (इतिवै नरस्यकण्ठ खन ५४ श्लोक १४ १५)

द्वार नन्व दिवा यत् । इत्यस्मिं ऋषिस्त्रिक उपयोक्तु समस्त
 म्ना अत्यन्त कृत्विन है । अतः किञ्चन अपनी बुद्धिक
 मनुष्यार कैय उचित जान पड़े, वह वैश्य ही कदापि । तुम सब
 क्या अपने विचार अनन्य व्यक्त करो । यद्यपि हमें मनुष्यते
 का भय नहीं है, तथापि तुम्हें विकल्प उपायपर विचार तो
 करना ही चाहिये ॥ २१-२२ ॥

तथा वयासुरं युद्धे युष्माभिः सहितोऽप्ययम् ।
 त म भयस्तथा तथा सुग्रीवममुक्त्वा न हरीत् ॥ २३ ॥
 परे पारं समुद्रस्य पुरस्कृत्य मृषामञ्जौ ।
 सीतायाः पक्ष्या प्राप्य सङ्घातो धरणात्मजम् ॥ २४ ॥

उन दिनों जब देवताओं और मनुष्यों का युद्ध चल रहा
 था उसमें आप सब लोगोंकी सहाय्यते ही मैंने विजय प्राप्त
 की थी । आज भी आप मेरे उसी प्रकार सहायक हैं । व
 र्णों रामकुमार सीताका पक्ष पाकर सुग्रीव आदि बानरोंको
 आप स्थिते समुद्रक उत टटकर पहुँच चुके हैं ॥ २३ २४ ॥

भवेया च यथा सीता वध्नौ वृशरथात्मजौ ।
 भयङ्गिमप्यता मन्त्रः सुनीत चाभिधीयताम् ॥ २५ ॥

अब आपसमा आपसमें कथ्य कीकिय मोर कोई ऐसी
 मुद्र नीति कदाप्य किसे सीताका धेयना न पड़े तथा वे
 र्णों दशरथकुमार भरे जायें ॥ २५ ॥

नहि शक्तिं प्रपद्यामि जगत्पन्थस्य कस्यचित् ।
 सगरं पानरैस्तीर्त्वा निश्चयेन जयो मम ॥ २६ ॥

पानरोंके साथ समुद्रका पार करके यहाँतक आनेकी शक्ति
 ज्ञातसे रामके लिये और किधीमें नहीं दस्ताहूँ (किंतु राम और
 कनर यहाँ आकर भी मेरा कुछ सिद्ध नहीं सकते) । मता
 य निश्चय है कि जीत मेरी ही होगी ॥ २६ ॥

तस्य कामपरीतस्य निशम्य परिदक्षितम् ।
 कुम्भकर्मां प्रसुप्तोभ यत्न खंभप्रधीत् ॥ २७ ॥
 कामतुर यवतश्च पर संवर्षं प्रभाप मुनश्च कुम्भकर्मां
 च क्वच भा गता और उठने इत प्रथर कस—॥ २७ ॥

यथा तु रामस्य ससङ्गमस्य
 प्रसष्टा साता खलु सा इहाडिता ।
 मङ्गलं सार्माक्षय्यं सुनिश्चितं तथा
 भोजतं चित्तं यमुनव यामुमम् ॥ २८ ॥

जब तुम सम्पन्नदहित भीरुमक भाभनसे एक बारस्वयं
 ही मनमाना विचार करके सीतान परी पक्षपूर्वक हर जाये
 य उधी समय तुम्हारे चित्तका हमदर्दोंक साथ इत
 विषयमें सुनिश्चित विचार कर ल्या चाहिये था । ठीक उधी
 तब जब यमुना जब पृथ्वीन उतनेका उलट हुई तभी
 उन्होंने यमरात्री परंतक मुञ्चविशेषका भयने जसे पूर्ण
 किया था (पूर्णार उठर जनेक बाद उनका वेग बन समुद्र

में जाकर शान्त हो गया तब य पुन उध कुपटका नहीं
 मर सकता उधी प्रथर तुमने भी जब विचार करनेका
 अवसर था तब तो हमारे साथ बैठकर विचार किया
 नहीं । अब अपसर बिनाकर कर काम सिद्ध करनेके बाद
 तुम विचार करते चल हो ॥ २८ ॥

सर्वमेतन्महाराज कृतमप्रतिमं तव ।
 विधीयेत सहासाभिरावायेयास्य कामयाः ॥ २९ ॥

महाराज ! तुमने जो यह कृत्यकर करके परकी-हरण
 आदि कार्य किया है वह सब तुम्हारे स्थि बहुत अनुचित
 है । इस पापकर्मको करनेते परह ही आपको हमारे साथ
 परामर्श कर ल्या चाहिये था ॥ २९ ॥

स्यायेन राजकायाणि यः करोति वृशदानम् ।
 न स सतप्यत पश्चाद्यिभितार्यमतिनुप ॥ ३० ॥

वृशदान ! जो राजा उस राजद्वयं न्यायपूर्वक करता है,
 उसकी बुद्धि निभयपूर्ण होनेक कारण उसे पीछ पछाना नहीं
 पड़ता है ॥ ३० ॥

मनुष्यायेन कामाणि विपरीतानि यानि च ।
 मित्यमाजानि तुप्यन्ति हर्षोऽप्यपरतथ्यिय ॥ ३१ ॥

जो कर्मां उचित उपायका अथकमन किया दिना ही किये
 जाते हैं तथा जो व्यक्त और शास्त्रक विपरीत होते हैं, वे पाप-
 कर्म उधी तरह दानकी प्राप्ति करते हैं जैसे भपतिभ आदि
 चारिक यहाँमें हमे गये हविष्य ॥ ३१ ॥

यः पश्चात् पूषकायाणि क्रमाप्यभिचिक्रियति ।
 पूर्वं चापरकायाणि स न वेद् नयानयी ॥ ३२ ॥

जो पहले करने जाय्य कयोको पीछ करना चाहता है
 और पीछे करने जाय्य काम पहले ही कर बहता है वह
 नीति और भनीतिक नहीं जानता ॥ ३२ ॥

अपत्यस्य तु कृत्येषु प्रसमीक्षयाधिकं वसम् ।
 छिद्रमन्य प्रपद्यन्त प्रौढान्य स्तमिष द्विजा ॥ ३३ ॥

शत्रुका अने विपक्षक कथका भयनेसे अधिक देल
 कर भी यदि वह हर काममें बसत (कृत्यवान) है तो उनका
 दमन करनेक स्थिते उधी तरह उसका छिद्र द्रुत यत है जैस
 कधी दुर्धनुष कोष पस्तका धौषकर अंग यदनेक स्थिते उसके
 (उध) छिद्रका भाभय उते है (किन कुमार कार्तिकने
 भन्नी शक्तिका प्रहार करके कथा था) ॥ ३३ ॥

त्ययद् महावृशब्धं कायमप्रतिचिन्तितम् ।
 विष्टयास्यां नावधीद् रामा विपमिभमिशामिगम् ॥ ३४ ॥

महाराज ! तुमने नाभी परितानका विचार किया किना

कृष्ण बर्तितेवने कदा कतिके गता कोप्रवतका
 वितीव करके वसते कर कर विधा था—वह प्रथम यथाप्यउते
 व्यक्त है । (दक्षिण कल्प ४६ । ८८)

ही यह बहुत बड़ा दुष्कर्म आरम्भ किया है। कस विपमिभित्त
भङ्गन जानेवालेके प्राण हर लेता है उसी प्रकार भीरम
चन्द्र भी तुम्हारा बच कर जाऊँगे। उन्होंने अभीतक तुम्हें मार
नहीं बाधा इसे अपने शिबे सौम्यपद्मी बात खमाता ॥ १४ ॥

उन्हात् स्वया समारम्भ कर्म ह्यप्रतिम परे।
अहं समीकरिष्यामि हत्वा शत्रुस्तपालघ ॥ ३१ ॥
अनन ! यद्यपि तुमने शत्रुओंके साथ अनुक्ति कर्म
आरम्भ किया है तथापि मैं तुम्हारे शत्रुओंका खतर करके
उन्का ठीक कर दूँगा ॥ १५ ॥

अहमुत्साहयिष्यामि शशस्त्रय मिशास्त्र।
यदि शशविदसन्तौ यदि पाककमाकतौ।
तावह योधयिष्यामि कुचेरघरुणाघपि ॥ ३६ ॥

निष्पन्न ! तुम्हारे शत्रु यदि इन्द्र सूर्य अनि वायु
कुचेर और वरुण भी हों तो मैं उनके साथ युद्ध करूँगा और
तुम्हारे सभी शत्रुओंको उन्हाड़ करूँगा ॥ १६ ॥

गिरिमात्रशरीरस्य महापरिष्योधिना।
मूर्धतस्तीक्ष्णावदस्य विभीषाद् वै पुरवरा ॥ ३७ ॥

मैं परतक छाल विष्णल एवं तीक्ष्ण दाहोंसे युक्त
शरीर मात्र करके महान् परिण हाथमें ल समरभूमिमें उन्नता
हुआ वह गर्ना करूँगा उस समय दक्षराज इन्द्र भी भयभीत
हो जायेंगे ॥ १७ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये पुराणस्ये इत्युक्त्वा सर्गः ८ १९ ॥

इस प्रकार श्रीरामचंद्रनिर्मित श्रीरामायण आदिकाव्यके पुराणस्ये परबर्षो सर्ग द्वा ह्युक्त्वा ॥ १ ॥

त्रयोदश सर्ग

महापार्श्वका रावणका सीतापर बलात्कारके लिये उक्ताना और रावणका श्रापके कारण अपनेको
पंसा करनेमें असमर्थ बनाना तथा अपने पराक्रमक गीत गाना

रावण ह्यनुमाश्रय महापार्श्वो महाबलः।
मुहूर्तमनुसंधिष्यस्य प्राञ्जलिर्वाश्रयमप्रवीत् ॥ १ ॥

तन रावणअनुपिन हुआ अन महाबली महापार्श्वने दा
परीतक कुछ साथ विचार करनेके बाद हाथ जोड़कर
कहा— ॥ १ ॥

या कल्पयि धन प्राप्य मृगघ्नाकनियेषितम्।
न पिबे मधु सम्प्रप्य स मरो यान्निशो भयत् ॥ २ ॥

जो विरहक पशुओं और सर्वेसे भरे हुए दुर्गम वनमें
जाकर वहाँ पीने काय मधु पाकर भी उसे पीना नहीं है वह
पुरव सूर्य ही है ॥ २ ॥

ईश्वरस्वेष्यभार काऽस्ति तव शत्रुनिवर्हणम्।
रमल सह बर्हण शत्रुहमकस्य मूर्धसु ॥ ३ ॥

शत्रुहर्तन महापत्र । भापठा स्वयं ही ईश्वर हैं । भाप-

पुनर्मो स द्वितीयेन शरेण निहन्मिष्यति।
ततोऽह तस्य पत्न्यामि बधिर काममाश्वस ॥ ३४ ॥

धाम मुझे एक धारते मारकर दूधरे कसते मरने को
उसी बीचमें मैं उनका कूल पी लूँगा। इसलिये तुम पूर्ण
निश्चिन्त हो जाओ ॥ ३८ ॥

यद्येन वै दाशरथेः सुखावह
जय त्वाहर्तुमह यतिष्ये।

हत्वा च राम सह सम्मप्यन
कमयामि सर्वान् हरियूयमुष्णद्व ॥ ३९ ॥

मैं दशरथनन्दन भीरमका बच करके तुम्हारे शिबे सुत
दामिनी किन्तु मुझमें करनेका प्रयत्न करूँगा। छत्रमन्त्री
रामको मारकर हमला मानरयूयपतिबोधे सा सऊँगा ॥ १९ ॥

रमल काम विव आश्रयवाकर्षी
कुचस्य कर्षायि हितानि विजयरा।

मया तु राम गमिते यमस्य
शिवाय सीता वशागा भविष्यति ॥ ४० ॥

तुम गौस्ते विशार करो। उच्च गारुणीक फल को
और निश्चित होकर अपने शिबे शिक्कर कर्ष करते हो। मैं
श्राप रामके समक्षके मंत्र दिये जानेपर सीता निरक्षयक शिबे
तुम्हारे अभीन हो जायेंगी ॥ ४ ॥

का ईश्वर कौन है ? भाप वनभोक सिस्पर वेर लकर विदेर
कुमापी खीताके साथ रमण कीकिये ॥ १ ॥

यन्मत् कुचकुटुबुचेन प्रयतस्य महाबलः।
माकम्याकस्य सीतां पीता मुकस्य च रमल ॥ ४ ॥

महाबली बीर ! भाप कुचकुटुबुके फलका अन्तकर
मीश्वके साथ कबालकर कीकिये । दाशरथ भ्राम्यन करके
उनका साथ रमण पत्र उपभोग कीकिये ॥ ४ ॥

सम्भकामस्य तं पाद्मादागमिष्यति किं भयम्।
प्रासमप्रासकाल या सर्वे प्रतिविधास्यस ॥ ५ ॥

जब भापका मनोरथ लक्ष हो जायगा तब फिर भाप
कौन ल भय भयेगा ? यदि कौनमन एवं भविष्यकाकर्म को
भय भाप भी तो उस छमल मया मयापित प्रतीकार किया
जायगा ॥ ५ ॥

कुम्भकर्णः सहास्राभिरिन्द्रजिघ्रं महाबलः ।
 प्रतिप्रेषयितुं शक्तौ सकज्रमपि यजिष्णम् ॥ ६ ॥
 प्लमक्षोके स्वयं यदि मत्सम्पत्तिं कुम्भकर्णं और इन्द्रजिघ्रं
 करने हो जायें तो ये दोनों कज्रपारी इन्द्रको भी आगे बढ़नेसे
 रोक सकते हैं ॥ ६ ॥

उपग्रहान् सान्त्वय वा मेघं वा कुशखैः कृतम् ।
 समतिक्रम्य कृष्णेन सिद्धिमप्येषु रोषये ॥ ७ ॥
 मैं तो नीतिनिपुण पुरुषोंके द्वारा प्रयुक्त सम, दान
 और मेघका छोड़कर केवल दण्डके द्वारा क्रम बना लेना ही
 अच्छा समझता हूँ ॥ ७ ॥

इह प्रयात्नं कथं सत्याम्बद्धं त्वत् महाबलः ।
 एतां शस्त्रप्रथापनं करिष्यामि न सशयः ॥ ८ ॥
 पशुशब्दी राक्षसपुत्र । यहाँ आपके नाम भी जानू आयेगे
 उन्हें हमसे अपने दासोंके प्रतापसे बचाने कर लेगे इसमें
 संशय नहीं है? ॥ ८ ॥

एवमुक्तस्तदा राजा महापापेन रत्नम् ।
 तस्य समुद्रपत्न्यं वाक्यमिदं कथनमप्रधीत् ॥ ९ ॥
 महाकर्णके ऐसे करनेपर उस समय ब्राह्मणके राजा रावण-
 ने उसके बन्धुकी प्रार्थना करत हुए इस प्रकार कहा—॥
 महापार्श्वे निबोध त्वं रहस्यं किञ्चिद्वारमणः ।
 शिरःपूर्वं तदाक्यास्ये यद्वाप्यं पुरा मया ॥ १० ॥

महापार्श्वे । बहुत दिन हुए पूर्वकालमें एक गुप्त बटन
 भ्रिये हुए थी—मुझे श्राप प्राप्त हुआ था । अपने बन्धुके
 उस गुप्त रहस्यका भंग मैं कर रहा हूँ उसे सुनो ॥ १ ॥
 शिरामहस्यं भग्नं गच्छतीं पुष्टिकस्यहाम् ।
 कर्णपूर्वमात्मानमप्रक्षमकाशेऽपिनिशित्प्रमिव ॥ ११ ॥

एक बार मैंने ब्याकरणमें अविनिश्चिताके समान प्रकथित
 होती हुई पुष्टिकस्यह्य नामकी अन्धकारके देला जो शिरामह
 कर्णार्थके भंगनकी श्रेय का रही थी । वह अन्धकार मेरे मनसे
 कर्ण-शिरमही बने कब रही थी ॥ ११ ॥
 एष प्रसङ्ग मया मुक्त कृत्य विषसना ततः ।
 लपन्मूर्धकं प्राप्तं लोकिता मञ्जिनी पद्या ॥ १२ ॥

मैंने कर्णपूर्वक उसके बल उठार दिये और इतना
 उलटत उपमेग किया । इसके बाद वह ब्रह्माक्षीक भंगनमें
 गयी । उसकी दशा दृष्टीद्वारा मकलकर कैंडी हुई कमलिनीके
 समान हो रही थी ॥ १२ ॥
 तस्य तस्य तया मन्ये ब्राह्मणादीन्महाभ्रमणः ।
 यद्य सकुलितं वेधा मामिदं वाक्यमप्रधीत् ॥ १३ ॥

मैंने समझता हूँ कि महापुत्र उसकी ओर दूरपा की गयी
 थी वह शिरामह ब्रह्माक्षीके शत हो गयी । इसके वे अन्धकार

कुलिन हो उठे और मुझसे इस प्रकार बोल—॥ १३ ॥
 अद्यप्रसूतिं यामस्यां बलम्बर्ही गमिष्यसि ।
 तदा ते शतधा मूर्धा फलिष्यति न सशया ॥ १४ ॥
 आकाश यदि तू किसी वृक्षी नापिके स्वयं कर्णपूर्वक
 समानम करेग तो तेरे मस्तकके सौ टुकड़े हो जायेंगे, इसमें
 श्रय नहीं है ॥ १४ ॥

इत्यह तस्य शपथस्य भीताः प्रसभमेव ताम् ।
 नरोहये बलात् सीता धैरेही शयने शुभे ॥ १५ ॥
 इस तरह मैं ब्रह्माक्षीके शपसे भयभीत हूँ । इवीक्षित्य
 अपनी श्रम-शप्यापर निरेहकुम्भी सीताको इतात् एवं कर्ण-
 पूर्वक नहीं चढ़ता हूँ ॥ १५ ॥

सन्मार्गस्थेव मे षणो मादृतस्येव मं गतिः ।
 नैतद् वाशारयिष्येद् ब्रह्मसाव्यति तं माम् ॥ १६ ॥
 भय वेग समुद्रक समान है और मेरी गति बस्युके तुल्य
 है । इस बातको दशरथनन्दन राम नहीं मन्ते हैं । इवीक्षित्य
 न मुझपर चढ़ाई करते हैं ॥ १६ ॥

को हि सिंहमिवासीनं सुप्तं गिरिगुहाशयं ।
 कुर्वं मृत्युमिवासीनं प्रबोधयितुमिच्छसि ॥ १७ ॥
 अन्यथा परैतकी कन्दराममें सुप्तपूर्वक खड़े हुए सिंहके
 समान तथा कुम्भित होकर बैठी हुई मृत्युके तुल्य भयंकर
 मुझ रावणको भ्रम काजना चाहेगा ? ॥ १७ ॥

न मत्तो निर्गतान् बाणान् शिशिह्वान् पक्षगान्निव ।
 रामः पश्यति सप्राने तेन मामभिगच्छसि ॥ १८ ॥
 जैसे वनपुत्रे बूट हुए दो भीमशाल के लोके समान भयंकर
 ज्योंके समरद्वज्रमें भीरामने कभी देला नहीं है, इवीक्षित्य
 वे मुझपर कड़े आ रहे हैं ॥ १८ ॥
 शिरं वज्रसमैर्पाजैः शतधा कार्मुकध्वजुतैः ।
 राममाद्रीपयिष्यामि उदक्यभिरियं कुञ्जरम् ॥ १९ ॥

मैं अपने वनपुत्रे शीमलाद्वज्रक घूटे हुए ऐकड़ों कज-
 रकर बाणोंद्वारा रामको उसी प्रकार कम बहोव जैसे खेद
 उदक्यभोंद्वारा दृष्टीके उते भगानेके लिये कथत हूँ ॥ १९ ॥
 तन्वाक्यं बलमदाशस्ये पसेन महता वृताः ।
 उदितः सविद्य कालं नक्षत्राणां प्रभासिध ॥ २० ॥

जैसे प्रातः काल उदित हुए कस्येव नक्षत्रोंकी प्रभाको
 घन छेते हैं उसी प्रकार अपनी विद्याके सेनासे पिप हुआ
 मैं उनकी उत बलर-सेनाका आत्मकृत कर दूँगा ॥ २ ॥
 न पाशवेद्यपि सहस्रचक्षुषा
 युधासि उपपयो बहणेन वा पुनः ।
 मया स्थिरं बाहुयसेन विजित्या
 पुप पुटी धैर्यवलेन पासिता ॥ २१ ॥

पुत्रमें तो हस्कर नेत्रोंवाले इन्द्र और बरुण भी मंग हुए इस बड़्हापुत्रीके मीने अपने बाहुकामे ही जीत लम्ना नहीं कर सकते । पूर्वकाममें कुनेक द्रव्य पावित था ॥ २१ ॥

हृत्पार्श्वे धीमत्वास्मक्ये वास्मीक्ये अदिकाम्ये पुत्रकाम्ये ज्योत्सः सर्गः ॥ १३ ॥

इस प्रकार धीमत्वास्मीकैयनिर्मित अर्धरागपञ्च अदिकाम्ये पुत्रकाम्ये ज्योत्सो सर्ग पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चतुर्दश सर्ग

विभीषणका रामको अज्ञय बताकर उनके पास सीताको लौटा देनेकी सम्मति देना

निताक्वेन्द्रस्य निशाम्य वाक्य
स कुम्भकर्णस्य च गजितानि ।

विभीषणो राक्षसराजकुम्भ-
मुखाय वाक्य हितमर्थयुक्तम् ॥ १ ॥

राक्षसराज यवनके इन वचनों और कुम्भकर्णकी गंजाभोंका झुनकर विभीषणने यवनसे व सार्थक और हितकारी बचन कहे—॥ १ ॥

वृतो हि वाङ्मतरभोगाराधि-
भित्त्वाविपः सुखितरीक्ष्यवृष्टः ।

पश्चाद्दुस्वीपश्चशिरोऽतिक्रम्य
सीतामहाहिस्तव केन राजन् ॥ २ ॥

राजन् ! सीता नमनकारी विद्यालक्ष्य महात् सर्वको कितने आपके गलेमें बाँध दिया है ! उसके इतरयत्र भग ही उल सर्वका घरीर है चिन्ता ही विप है सुन्दर युक्तन ही तीली बाढ़ है और प्रत्येक हाथकी पाँच-पाँच अङ्गुलियों ही इस सर्वके बाँध फिर है ॥ २ ॥

याक्य छद्मं समभिद्रवति
बलीमुखाः पवतकूटमात्रा ।

बृहस्पुधाश्वैव मखायुधाश्च
प्रसीपता वागारपाय मीथिली ॥ ३ ॥

अकलक परत-दिलरके समान ऊँचे बनरु जिनके होत और नक्त ही भायुष है बड़्हापर चवारी नहीं करत तभीतक आप बहारपनन्दन श्रीरामके हाथम मिथिलेणकुमारी सेनाको बाँध दीजिये ॥ ३ ॥

यावत् गृह्णन्ति गिरांसि बाणा
रामरिता राक्षसपुगवणानाम् ।

बजापन्ना यायुसमागययः
प्रदीपतां वाशरथाय मीथिली ॥ ४ ॥

अकलक श्रीरामकर-शब्दे चमय हुए बन्दे लयन वेक्याकी तथा बड़्हापुत्र बाण राक्षसगिरामकियोंके फिर नहीं कर रहे हैं तभीतक भय बहारपनन्दन श्रीरामकी सेनामें शीलाश्वीके समान कर दीजिये ॥ ४ ॥

न कुम्भकर्णोन्मृजितौ च राज
स्तथा महापापार्थमहोदरी च ।

निकुम्भाकुम्भौ च तथासिन्धवः
स्वस्तु समर्था युधि राक्षसस्य ॥ ५ ॥

पञ्च । ये कुम्भकर्ण इन्द्रकिं महापत्नी महेश्वर निकुम्भ, कुम्भ और मतिन्धव—होई भी तनपानने श्रीरामनाथकीके सामने नहीं ठहर सकते हैं ॥ ५ ॥

जीवस्तु रामस्य न मोक्षसे त्व
गुप्त सविद्याप्यथा मरुद्भिः ।

न पासवस्याह्वयतो न सृत्यो-
र्गभो न परात्ममनुप्रविष्टः ॥ ६ ॥

यदि सूर्य या वायु आपकी रख करे इन्द्र या स्व आपका रोदने किण्ड है अथवा आप आपका या कृत्यमें पुत्र जब तो भी श्रीरामके हाथसे जीवित नहीं बच लेंगे ॥

निशाम्य वाक्य तु विभीषणस्य
स्ततः प्रहस्तो यच्चनं बभाषे ।

न न्ये भयं विद्य न वैबलेभ्यो
न दास्त्वभ्योऽप्यथवा कदाचित् ॥ ७ ॥

विभीषणकी यह बात सुनकर प्रहसने का—यय वैकताभो भयवा दानबैले कभी नहीं बरत । मम क्या बल है ? यह हम जनते ही नहीं हैं ॥ ७ ॥

न यज्ञगन्धर्वमहोरारोग्या
भय न सक्ये फ्तगोरोग्या ।

कथ तु रामाद् भविष्य भयं न
नेन्द्रपुत्रात् समरे कदाचित् ॥ ८ ॥

यमें पुत्रमें न्यो गन्धर्वों बड़-बड़े नगीं पड़ते और करोसे भी मम नहीं होता है फिर हमराइयमें ययकुम्भ रामसे हमें कभी भी कते मम हाथ ? ॥ ८ ॥

प्रहस्तवाक्य त्यहित निशाम्य
विभीषणो राजहितानुष्णही ।

स्तो महापै बचन बभाषे
पमायकामेयु निविद्यवुधिः ॥ ९ ॥

विभीषण रावणके सन्ध द्वितीये य । उनकी बुद्धि
 का धर्म, धर्म और काममें अच्छा प्रवेश था । उन्होंने प्रह्लाद
 के अहितकर बनाने सुनकर यह महान् अर्थसे युक्त बात
 कही—॥ ॥

प्रहस्त राजा व महोत्तरका
 त्व कुम्भकण्ठस्य यथायजात्मम् ।

प्रधीत राम प्रति तत्र शक्य
 यथा गतिः स्वर्गमधर्मबुद्धे ॥ १० ॥

प्रह्ला ! महाशय रावण, महादरु तुम और कुम्भकण्ठ—
 भीष्मके प्रति अब कुछ कह रहे हो, वह सब तुम्हारे लिये नहीं
 हो सकता । ठीक उठी तरह जैसे पाषाण पुरुषकी स्वर्गमें
 पहुँच नहीं हो सकती है ॥ १ ॥

बधस्तु रामस्य मया त्वया च
 प्रहस्त सर्वैरपि रक्षसैवा ।
 कथं भवैर्धर्मनिशारदस्य
 महार्णव तनुमिवाद्भवस्य ॥ ११ ॥

प्रह्ला ! भीष्म अर्थविचार हैं—समस्त कार्यके
 लिये कुशल हैं । जैसे बिना ब्याज या नौकाके कोई महा
 मरुत पार नहीं कर सकता उसी प्रकार मुझसे तुम्हें
 अपना समस्त राक्षसोंसे भी भीष्मका बच होना कैसे
 सम्भव है ? ॥ ११ ॥

धर्मप्रधानस्य महारणस्य
 इन्द्राकुवशाप्रभवस्य राज ।
 पुनोऽस्य द्वापाय तथाभिष्वस्य
 हृत्पुंशु शक्यस्य भवसि मूढा ॥ १२ ॥

भीष्म धर्मके ही प्रधान बल मानते हैं । उनका
 पशुभाव इन्द्राकुवशमें हुआ है । वे सभी कार्यके सम्पादनमें
 धर्म और महारथी वीर हैं (उन्होंने विराट् कुरुक्षेत्र और
 एकीकेश वीरोंका बालकी-बालमें यम्यक भेज दिया था) ।
 जैसे प्रसिद्ध पट्टकनी राज भीष्मसे सामना पढ़नेपर जो
 रक्षक भी अपनी हेडकी नूट खर्चेंगे (फिर हमसे-तुम्हारी
 ये बात ही क्या है !) ॥ १२ ॥

वीक्ष्या न तत्राव् तत्र कङ्कपथ
 तुरासदा राघवधिप्रमुखा ।
 भिष्या शरीर प्रविशन्ति बाणाः
 प्रहस्त तनैव विक्षत्यसे त्वम् ॥ १३ ॥

प्रह्ला ! अभीतक भीष्मके कथने हुए कङ्कपथमुक्त
 दुर्बल पर लीके बाण तुम्हारे शरीरके विधीर्न करके भीतर
 नहीं पुगे हैं; इसीलिये तुम बर-बढ़कर बह रहे हो ॥ १३ ॥

भिष्या न तत्राव् प्रविशन्ति काय
 प्राणान्तिष्ठस्त्वऽशान्तुस्त्ववेगाः ।

दिश्याः शारा राघवधिप्रमुखा
 प्रहस्त तनैव विक्षत्यसे त्वम् ॥ १४ ॥

प्रह्ला ! भीष्मके बाण बज्रके समान केलाधी होते हैं ।
 वे प्राणोंका अन्त करके ही छोड़ते हैं । भीष्मपुत्रकीके धनुष
 से छूट हुए वे तीव्र बाण तुम्हारे शरीरका छेड़कर अन्दर
 नहीं पुते हैं इसीलिये तुम इतनी शक्ती बचाते हो ॥ १४ ॥

न रायस्यो न्यतिबलस्त्रिशीर्षो
 न कुम्भकण्ठस्य सुतो निकुम्भा ।

न बोग्द्विद् द्वाशरपि प्रयोद्गु
 त्व या रमे शक्यस्य क्षमयी ॥ १५ ॥

राघव महाशय विधिपु कुम्भकण्ठकुमार निकुम्भ और
 इन्द्रबिम्बी मेघनाद भी समराज्यमें इन्द्रतुल्य तेमसी दशरथ
 नन्दन भीष्मका वेग खान करनेमें समर्थ नहीं हैं ॥ १५ ॥

द्व्यात्मकं चापि नरात्मको वा
 तथ्यात्मिकायाऽतिरथ्यो महात्मा ।

अकम्पनश्चात्रिसमानसारः
 सपत्न न शक्य युधि राघवस्य ॥ १६ ॥

द्वेषान्तक नरान्तक, अतिक्रम महाशय भतिरथ तथा
 परतके समान शक्तिवाली अकम्पन भी युद्धभूमिमें भीष्मनाथ
 कीक क्षमने नहीं ठहर सकते हैं ॥ १६ ॥

अथ न राजा स्वसन्प्रभिमृतां
 मित्रैरमिक्तप्रतिभैर्भवन्निः ।

अस्यास्यते रक्षसनाशाशयै
 तीक्ष्णः प्रकृत्या ह्यसमीक्ष्यशरी ॥ १७ ॥

अथ महायन रावण तो सर्वसनोंक वशीभूत हैं इसलिये
 खंभ-त्रिकारकर काम नहीं करते हैं । इसके सिवा ये स्वभावसे
 ही क्रोधर हैं तथा राक्षसोंक खतानाशके लिये तुम-जैसे शत्रु
 तुल्य मित्रकी संरक्षणे उपायित करते हैं ॥ १७ ॥

अस्मत्भोगान सहस्रमूर्धा
 गानेन भीमेन महाबलेन ।

बससत् परिसितसिमि भवन्तो
 राजानमुत्क्षिप्य विमोक्षयन्तु ॥ १८ ॥

मनस्य शारीरिक कष्टसे तप्यक खस फनगसे और
 महान् कष्टवाली मयकर नागसे इत रावणको बध्पूषक अपने

१ राजाकीये छल व्यवय माने गये हैं—
 शक्यवशात्तु परस्परमर्षद्वन्द्वय च ।
 पारं चो दृष्ट्या बलं स्वर्गं सद्यथा प्रयो ॥
 (कान्तक पीठिका बचन गानिन्दराजकी टीका राजानव-
 मुक्तसे)
 बाकी और दृष्टकी-करोला बन्ध अकम्पन व्यवयन,
 भी दृष्ट्या और बच—ये राजके छल प्रचारके लक्षण हैं ।

परिसे आवेक्षित कर गस्ता है । तुम सब लोग मिथकर इसे
नग्नकरत बाहर करके प्राणतर्कने बन्धुओं (अर्थात् भीरुम
नन्त्रकीके साथ बैर बौधना महान् सर्पके धरिसे आवेक्षित
होनेके समान है । इत भवन्न भवत् फलनक करण यहाँ
निरखेना असङ्गर गम्य है) ॥ १८ ॥

यायसि केशामहणात् सुहृन्नि
समेत्य सर्वैः परिपूषकामैः ।
निगूह्य राज्ञ परिपक्षितम्पो
भूतैर्यथा श्रीमद्वैश्यातः ॥ १९ ॥

इस राजसे मन्त्रक आपजगाधी सभी कामनार्थ पूष
हुई है । आप सब लोग इसके द्वितीय सुहृद् हैं । अत जैसे
मन्त्रक कर्णग्राही भूतेसे परित हुण पुरुषज उरक द्वितीय
भारमीदमन उरक प्रति फलनकर करक भी उसकी रम्य करते
हैं उधी प्रकर आप सब लोग एकमत होकर—भावत्यकता
हो तो इसके केष पकड़कर भी इसे अनुचित गार्गपर जानेसे
रुके और सब प्रकसे इसकी रम्य करें ॥ १९ ॥

सुवारिणा राघवसागरेण
प्रकप्रधमनस्तारसा भवङ्गिः ।
युक्तस्त्वय त्ररयितु समस्य
कान्तरस्वपातलमुके फलन् नः ॥ २० ॥

इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीके धारिकाम्ये पुरुषकाम्ये चतुर्थः सर्गः ॥ १७ ॥
इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीके धारिकाम्ये पुरुषकाम्ये चतुर्थः सर्गः ॥ १७ ॥

पञ्चदश सर्ग

इन्द्रवित्दारा विभीषणका उपहास तथा विभीषणका उसे फटकारकर
सामने अपनी उचित सम्मति देना

वृहस्पतस्तुल्यमतवचसस्त-
प्रिशाम्य यत्नन विभीषणस्य ।
ततो महारमा यत्नन वभापे
तत्रेन्द्रजिन्मैश्वर्यतयूषमुक्यः ॥ १ ॥

विभीषण वृहस्पतिक समान बुद्धिमान् थे । उनक बन्धो-
क जेसे-तेसे बड़े कससे मुनकर यत्नमूषपक्षिमे प्रधान
महाकप इन्द्रकित्त बहो वर पात पड़ी— ॥ १ ॥

किं नयम न त्वान कनिष्ठ पापय
मनघक धे यदुभिलाषय ।
भस्मिन् कुन्ध याऽपि भयघ ज्ञाताः

नाऽपीहदा नैव पक्ष्य कुयान् ॥ २ ॥
मर अत पक्ष्या ! भाग बहुत पर हुण की भक्ति पर
देना निरर्थक कन पर रह है ? जिम्मे इन कस्ये क्रम न

उत्तम परिषकसी नकसे परिपूर्ण श्रीरजुनाकसी त
इसे हुणे रहा है अबका यो समस्तो कि यह श्रीरामकी पक्ष
क गदरे गर्तमें गिर रहा है । ऐसी दृष्टामें तुम सब लोग
मिथकर इसका उद्धार करना चाहिये ॥ २ ॥

इव पुरस्त्रस्य सराससस्य
राक्षस्य परस्य समुहजनस्य ।
सम्यगपि वाक्य समत ब्रवीमि
नेन्द्रपुत्राय वृहातु मैथिलीम् ॥ २ ॥

यों तो राजसेवहित इस सरे नगरके और सुहृदोंकी
मम महाराजके हितके लिये अपनी बही उन्नम समति दे
हुँ कि मैं राजकुमार भीरुमके हाथोंमें मिथिलेजकुमारी की
क सौंप दूँ ॥ २१ ॥

परस्य धीर्ये स्वयल च पुत्र्या
स्थान सय शेष तदीय बुद्धिम् ।
तथा स्वपक्षेऽप्यनुमूह्य बुद्ध्या
क्रेत् क्षम स्वामिहित स मन्त्री ॥ २२ ॥

प्राप्तवम कथा मन्त्री बही है जो अपने और राजकुमार
बन्धु-प्राप्तवम समस्तकर तथा यमों फलोंकी किति। हानि शीघ्र
बुद्धिका अपने बुद्धिके द्वारा विचार करके जो स्वामीके लिये
दितकर और उचित हो बही बत करे ॥ २२ ॥

किंवा इन्द्र बह पुरुष भी न तो पक्षी बात करेय और न
देख काम ही करेय ॥ २ ॥

नरथन धीर्येण पराक्रमेण
धीर्येण शीर्येण च तेजसा च ।
एकः कुलेऽस्मिन् पुरुषो विमुक्तो
विभीषणस्यैत कस्मिन् एव ॥ ३ ॥

पिताकी ! इनारे इत राक्षसकुलमें एकनाम ये छोटे
पाप्य विभीषण ही एक शीर्ये पयजम येव शीर्ये और एक
मे रहित है ॥ ३ ॥

किं नाम तौ मानुपराजपुत्र
वक्ताकमकल हि राक्षसतन ।
मयाकृतनापि निहन्तुमन्ती
प्राप्तवो कृता भीषणम स भीरा ॥ ४ ॥

न दानां मनस एवमुक्तं न्या है ! उन्हें तो हमारा एक कषासन-क यक्षत श्री मार सकता है फिर भी बरफक बच्य ! आप हम नयी डरा रहे हैं ! ॥ ४ ॥

त्रिसोकन्त्रया ननु खराज
शम्भे मया भूमितले निविष्टः ।
भयार्पिताभ्यापि विशः प्रपन्नाः
सर्वे तथा देवगणाः समप्राः ॥ ५ ॥

मैंने वीनों खम्भोंके खानी देवराज इन्द्रको भी स्वस्ति द्यकर इस नृत्यकर क बिठाया था । उस समय वारे देवता-मैंने भयभीत हो भागकर समूर्ण विद्याभोग्यो धरत की थी ॥ ५ ॥

पेराकता निम्बन्मुपदन् स
निष्कलितो भूमितले मया तु ।
विकृप्य धृती तु मया प्रसङ्ग
विश्रसिता देवगणाः समप्राः ॥ ६ ॥

मैंने इतुपूर्वक देवराज हाथीके दोनों दाँत उखाड़कर उसे समस्ति धृतीपर मिला दिया था । उस समय वह खेर-खेर से चिन्ताग्र रहा था । अपने इस पराक्रमशाय मैंने समूर्ण देवताभोग्यो भयभीत कर दिया था ॥ ६ ॥

सोऽह सुराणामपि वषहन्त्या
द्वैत्योत्तमानामपि शोककर्ता ।
कथ नरेन्द्रात्मजपोस शक्तो
मनुष्ययोः प्राकृत्याः सुधीयाः ॥ ७ ॥

जब इन्द्राभोग्यो भी इर्ष्या दग्ध कर सकता है बड़े-बड़े देवोंको भी शोकमय कर देनेवाला है तथा जब उद्यम पर पराक्रमत सम्पन्न है यही मुक्त-नेत्र शीर मनुष्य-व्यक्तिक दा अकारण यक्षकुमारोंपर धमना देनेनहीं कर सकता है ॥ ७ ॥

अधेन्द्रकल्पस्य तुरासदस्य
महीजससाद् वचन निशाम्य ।
तथा महार्थं वचन वभावे
विभीषण्यः शस्त्रभृतां परिरु ॥ ८ ॥

इन्द्रतुस्य तंभवी महारण्यकमी तुर्क्य शीर इन्द्रकिर्षी ख शत मुनकर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ विभीषणने व महान् अर्थ-में कुछ वचन करे— ॥ ८ ॥

न तात मन्थं तव निम्बयोऽस्ति
पासस्यमघाव्यधिरकपुष्टिः ।
तस्मान् स्वयाप्यामविनाशनाय
वधोऽयदीन बहु विप्रसक्तम् ॥ ९ ॥

जब तात मन्थं तव निम्बयोऽस्ति पासस्यमघाव्यधिरकपुष्टिः । तस्मान् स्वयाप्यामविनाशनाय वधोऽयदीन बहु विप्रसक्तम् ॥ ९ ॥

जुमा है । इसीखिमे तुम भी अपने ही चिन्ताक लिने बहुत-नी निरर्थक बातें पक गये हैं ॥ ॥

पुत्रप्रधावेन तु रावणस्य
स्वमिन्द्रजिमित्रमुखोऽसि शत्रुः ।
यस्येवञ्च राभयतो विनाश
निशाम्य मोहावजुमन्यसे त्वम् ॥ १० ॥

भून्वस्ति ! तुम रावणके पुत्र कदम्बर भी ऊपरसे ही उलके मिला है । मीतरसे तो तुम मित्रके शत्रु ही बन पड़ते हैं । यही कारण है कि तुम भीरुनापथीके द्वारा यक्षराजके विनाशकी बातें सुनकर भी मोहवग उनहीकी हॉ-मै-हॉ मिसा रहे हो ॥ १ ॥

स्वमेव वष्यन् सुदुमतिश्च
स चापि वष्योय इहानपत्स्वाम् ।
बल्ल इह साहसिक च योऽद्य
प्रदेशायन्मत्रकृता समीपम् ॥ ११ ॥

तुम्हारी बुद्धि बहुत ही खोटी है । तुम स्वयं से मार डालनेके योग्य हो ही न तुम्हें यहाँ कुछ प्यया है यह भी बचके ही योग्य है । किन्तु आज तुम-जैसे भाव्यत तुम्हारी शक्तिको इन कम्बुकरोंके समीप आने दिया है यह प्राणदण्ड का ही अपराधी है ॥ ११ ॥

मूढाऽप्रगल्भाऽविनयापपन्न
संक्षिप्तस्वभावोऽद्यमसि तुरात्मा ।
मूकस्त्वमत्यन्तसुदुमतिश्च
स्वमिन्द्रजिन् वाक्कत्या धयीषि ॥ १२ ॥

भून्वस्ति ! तुम अविषयी हो । तुम्हारी बुद्धि परिणम नहीं है । चिन्तन तो तुम्हें दूतक नहीं गयी है । तुम्हारा स्वभाव बड़ा तीका और बुद्धि बहुत खोटी है । तुम अत्यन्त सुबुद्धि तुरमा और मूर्ख हो । इसीखिमे वाक्कत्या धयीषि व मित्र परधी बातें करत हो ॥ १२ ॥

को ब्रह्मदण्डप्रतिमप्रकाशा
मूर्ध्विपतः कश्चनिकशरूपान् ।
सहेस पाणान् यमदण्डकल्पान्
समस्तमुक्तान् युधि राघवण ॥ १३ ॥

भक्तान् भीरुमक शय सुदक सुरानेपर शत्रुओंक सम्यक छाड़ गये तेकभी पण कक्षात् महारण्यक समान प्रसहित छूट है कश्चक समान बन पड़त है और यमदण्डके समान न्यकर होने हैं । मम्म उन्हें वीन मह नरता है ॥ १३ ॥

धनानि रत्नानि मुभूयणानि
वासासि दिव्यानि मर्णाञ्च जिघ्रान् ।
सिन्ना च रामाय विषय दयी
धम्मम राजजिह्व र्थशास्त्राः ॥ १४ ॥

धनानि रत्नानि मुभूयणानि वासासि दिव्यानि मर्णाञ्च जिघ्रान् । सिन्ना च रामाय विषय दयी धम्मम राजजिह्व र्थशास्त्राः ॥ १४ ॥

अतः रामन् । इमल्लेग भन रन सुन्दर आभूषण, में समर्पित करके ही शोकप्रदित हाकर इस नगरमें निराश कर
 विम्व कक्ष निविध मनि और देवी सीताका श्रीरामकी सेवा- सक्ते हैं ॥ १४ ॥

हृषार्थे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये अद्रिकाण्डे पुण्ड्रकाण्डे पञ्चमः सर्गः ॥ १५ ॥

१५ प्रथम श्रीमद्वाल्मीकीरामायण अद्रिकाण्डे पुण्ड्रकाण्डे पञ्चमो सर्गः स्याद्ब्रह्म ॥ १५ ॥

षोडश सर्ग

रावणके द्वारा विभीषणका तिरस्कार और विभीषणका भी उसे फन्कारकर चल देना

सुनिविष्ट हित वाक्यमुक्तवन्त विभीषणम् ।

भाम्नीत् पवण वाक्य गत्यनः कालचोदितः ॥ १ ॥

रावणके स्तिरपर काल मेंइय रहा था इसलिये उसने सुन्दर अर्थके युक्त और हितकर बात करनेपर भी विभीषणसे फटकर बाजीमें कहा— ॥ १ ॥

यस्सेत् सह सपत्नेन हृद्रेनासीविषण च ।

न तु मित्रप्रयात्न सफसेच्छत्रुसंकिना ॥ २ ॥

माई ! शत्रु और कुपित विषयपर उसके साथ रहना पड़े तो वह सं- परंतु जो मित्र करवाकर भी शत्रुकी सेवा कर रहा हो उसके साथ कदापि न रहे ॥ २ ॥

आत्मानि शीघ्र क्षातीनां सर्वलोकेषु राज्ञस ।

हृष्यन्ति भ्यस्मन्नेष्वत क्षातीनां क्षातयः सदा ॥ ३ ॥

पुरुष ! समूर्ण व्यक्तियोंमें सम्बन्धीमन्त्रुओंका जो स्वभाव होता है उसमें अच्छी तरह समझता हूँ । क्षातिनाम सज्जदा अपने अन्य सम्बन्धीओंकी आपत्तियोंमें ही हर्ष मानत हैं ॥ ३ ॥

प्रधान साधक वैद्य धर्मशील च गणसम् ।

क्षतयाऽप्यवगम्यन्त शूरा परिभरन्ति च ॥ ४ ॥

निष्पतर ! जो ज्येष्ठ इतिहास धरत राम्य पाकर स्वयंमें प्रधान हो गया हो राज्यधर्मके अच्छी तरह ज्ञय रहा हो और विद्वान धर्मशील तथा धूरवीर हो उसे भी दुःखमीका अपमानित करते हैं और अस्वपर पाकर उसे नीचा दितानेकी भी चेष्टा करते हैं ॥ ४ ॥

नित्यमन्योम्यसहृद्य व्यसनं प्लवतायिनः ।

प्रच्छन्नहृद्या घोरा क्षतयस्तु भयावहाः ॥ ५ ॥

ज्वालिबल सदा एक दूबेपर संकट मानेपर हर्षकर अनुभव करते हैं । वे बड़े आलसवी होते हैं—मौख्य पढ़नेपर भ्रम छवते और देने छत्र कमाने वन हड़पने और क्षेत्र तथा क्षीका अभ्यरण करनेमें भी नहीं शिचरत हैं । अन्ना मन्नेत्रव क्षिपय रहते हैं अतएव हूर और भयकर होते हैं ॥ ५ ॥

भ्रूयन्त हस्तिभिर्गन्ता द्रुमकाः पथघन पुरा ।

पाराहस्तान् नरान् दृष्ट्वा शत्रुष्य गन्ता मम ॥ ६ ॥

पूर्वकालकी बात है पथघनमें हाथियोंने अपने हारक उठार प्रकट किये थे जो अब भी छोड़ोंके सममें गये और सुने जाते हैं । एक नार कुछ सगोंको हाथमें धंरा लिये भात देल हाथियोंने अब बाते करी थीं उन्हें कहा रहा हूँ मुझे सुना ॥ ६ ॥

नाम्निनास्थानि शस्त्राग्नि नः पाशा भयावहाः ।

घोरा स्वार्थप्रयुक्तास्तु क्षातयो नो भयावहाः ॥ ७ ॥

हमें अग्नि दूबे दूबरे शस्त्र तथा पाषा भय नहीं दे सक्ते । हमारे लिये तो अपने स्वार्थी जति माई ही सम्बन्ध और क्षत्रेकी वस्तु हैं ॥ ७ ॥

उपायमेत वक्ष्यामि प्रहृष्ये मया सशयाः ।

छस्नात् भयावहातिभ्य कुकृष्ट विहित च नाः ॥ ८ ॥

मैं ही हमारे पकड़े आनेका उपाय कर दूँगे इतने उपाय नहीं अतः समूर्ण व्यक्तियों आकाश हमें अपने क्षाति- भाइयोंने प्राप्त होनेवाला मय ही अधिक कष्टदाक बन पड़ता है ॥ ८ ॥

विघत गापु सम्मन्त विघत क्षतिता भयम् ।

विघत स्त्रीषु वाकस्य विघत प्राह्वय तपः ॥ ९ ॥

जैसे गौभाम हव्य कर्मकी सम्पत्ति दूध होता है किन्तोंमें बसक्या होती है और ब्राह्मणमें तपसा रहा करती है उन्हीं प्रकार क्षाति-भाइयोंसे मय अवश्य मात होता है ॥ ९ ॥

ततो नेष्टमिच्छ सीम्य यत्क्षं लोकसत्कृता ।

पेक्ष्यमभिधाताम्य रिपूर्णां मूर्ध्नि च स्थिता ॥ १० ॥

अतः श्रेय ! माय जो साथ संशर भेय सम्मान करती है और मैं जो एश्वर्षवान् कुम्भीन और शत्रुभोके स्तिरपर स्थित हूँ यह सब हममें अमीह नहीं है ॥ १० ॥

यथा पुष्करपत्रेषु पठितास्तोयविन्दवः ।

न प्लवगमभिगच्छन्ति तथानार्येषु स्त्रीहृदम् ॥ ११ ॥

जैसे कमलके पत्रेपर गिरी हुई पानीकी बूँदें उठमें उठतीं नहीं हैं उन्हीं प्रकार अन्नायोंके हारयमें खोहार नहीं विच्छत हैं ॥ ११ ॥

यथा शरदि मघानां सिञ्चतामपि गजताम् ।

न भयत्यम्बुसफस्रस्तयानायुषु सौहृदम् ॥ १२ ॥

जैसे धनुष शूद्रम गऊत और सरसत हुए मेषाक बल-
से बली गयी नहीं होती है; उसी प्रकार अनायोंके हृदयमें
लोकहित भावता नहीं होती है ॥ १२ ॥

यथा मधुकरस्तर्गात् रस विन्द्यथ तिष्ठति ।

तथा स्वमपि तत्रैष तथानायुषु सौहृदम् ॥ १३ ॥

जैसे मीठ वही खाते फूलोंके रस पीता हुआ भी यहाँ
वहका नहीं है; उसी प्रकार अनायोंमें सुहृद्भावित लोक नहीं
रिक्त पता है । तुम भी ऐसे ही अनाय हो ॥ १३ ॥

यथा मधुकरस्तपात् काशपुष्पं पियञ्चपि ।

रसमत्र न विन्देत तथानायुषु सौहृदम् ॥ १४ ॥

जैसे अमर रसकी इच्छासे कपके फूलके पान कर तो
उसमें रस नहीं पा सकता; उसी प्रकार अनायोंमें जब स्नेह
हता है वह किसीके लिये अभद्रात्मक नहीं होता ॥ १४ ॥

यथा पूर्वं गन्धः स्नात्वा शुद्धं हस्तेन वै रजः ।

शुच्यस्यात्मनो ब्रह्म तथानायुषु सौहृदम् ॥ १५ ॥

जैसे हाथी पहले स्नान करके फिर सूँड़से धूस उखलकर
भस्मे धरिरेके नैरेके कर जाता है; उसी प्रकार दुर्कालोंकी मैत्री
शुद्ध होती है ॥ १५ ॥

योऽप्यस्त्ववधिषु प्रयात् वाक्यमन्तत्रिशात्तर ।

अस्मिन् सुहृदो न भवेत् त्वातु भिक्षुं कुलपासन ॥ १६ ॥

कुलकण्ठ निघान्त ! तुमसे भिक्षार है । यदि तैरे लिंग
रूप धर्म एकी करते करवा तो उस इत्थी सुहृदमें अपने प्रलो-
में हाथ धाना पड़ता ॥ १६ ॥

इत्युक्तः पश्य वाक्यं न्यायधारी विभीषणः ।

उत्पश्यत् गदापाणिभ्रातुर्मिः सह राक्षसौ ॥ १७ ॥

विभीषण न्यायानुकूल शर्तों कर रहे थे तो भी उक्तने
कब उनसे पसे कृते बचन कहे तब वे हाथमें गदा लेकर
भय्य शर राक्षसके माथ रखी मन्म उखलकर आकाशमें
बह गये ॥ १७ ॥

अप्रीच्य तदा यान्य ज्ञानप्रदीपा विभीषणः ।

अन्तरिक्षगतः भीमान् ध्याता वै राक्षसाधिपम् ॥ १८ ॥

उठ छम्य अन्तरिक्षमें लड़ हुए तस्वी भ्राता विभीषण-
ने कुत्रिह होकर उखलवान राखलमें क्या—॥ १८ ॥

स त्व ध्याताऽसि मे राजन् प्रहि मा यत् यन्निच्छसि ।

ज्येष्ठा माम्पाः पितृसमा न च धमपथं स्थिताः ।

इह हि परमं वाक्यं न क्षमाम्यप्रज्ञस्य ते ॥ १९ ॥

यान् । तुम्हारी बुद्धि क्षममें पड़ी हुई है । तुम परमके
म्यास नहीं हो । या तो मेरे पड़े भद्र होनेके कारण तुम
निताड नमान अहंरणीय हो । इतलिये मुझे अब-अब च्योरे कर

लो परतु अग्रज होनेपर भी तुम्हारे इत काम-बचनका कदापि
नहीं कर सकता ॥ १९ ॥

सुनीत हितकामिन वाक्यमुक्त वृत्तानत ।

न शुद्धस्त्वकृतारमानः कालस्य यदागतताः ॥ २० ॥

यदानत । अब अस्मिन्दित्रिय प्रकप सबके वशीभूत हो
जते हैं वे हितकी क्षमनासे कहे हुए सुन्दर नीतियुक्त
बचनोंकी भी नहीं ग्रहण करते हैं ॥ २० ॥

सुखभाः पुरुषा राजन् सतत प्रियवादिन ।

अप्रियस्य च पश्यस्य क्त्वा भ्रोता च दुःखभाः ॥ २१ ॥

यान् । कदा प्रिय ब्रह्मेणस्त्री मीनी-मीठी शर्तों करने
वाक क्षमा तो मुग्गमाने सिद्ध सकता है परतु अब तुमनेमें
अप्रिय किंतु परिणाममें हितकर हो पनी खल करने और
मुननयनमें दुःखम होत हैं ॥ २१ ॥

बद्ध कालस्य पादोम सङ्भूतापरहारिणः ।

न नदयन्तमुपसृष्टे स्या प्रदीपत शरणं यथा ॥ २२ ॥

तुम समस्त प्राणियोंके संहार करनेवाले चक्रके पक्षमें
बैच चुके हो । जिसमें आग सम गयी हो उस परकी मूर्ति
नष्ट हो रहे हो । ऐसी दशामें मैं तुम्हारी उपेक्ष नहीं कर
सकता या इवीक्षिये तुम्हें हितकी बात सुना दी थी ॥ २२ ॥

श्रीमपायकसक्यदीः शितैः कश्चनमुपजौ ।

न स्थामिच्छाम्यह प्रष्टुं रामेण सिहत शरैः ॥ २३ ॥

अधमक सुवर्णभूति बाण प्रकलित अमिके छमान
तन्स्त्री और तीक्ष्ण हैं । मैं अधमकें हाथ उन बाणसे तुम्हारी
मृत्यु नहीं देखना चाहता था, इवीक्षिये तुम्हें क्षमनासे की चेष्ट
की थी ॥ २३ ॥

शूराश्च बलकन्तश्च कृतात्प्राश्च नरा रणे ।

कालाभिपञ्चा मीदन्ति यथा बालुकसेमय ॥ २४ ॥

अनक वनीभूत होनेपर बड़े-बड़े दूर-नीट बलवान् और
अकनेवा भी क्षुब्धी मूर्ति या शौचके छमान नष्ट हो जते हैं ॥
मन्मययतु यद्योक्त शुक्रस्याशितमिच्छता ।

अभमान स्ववथा रक्षं पुरीं जमा सराहासाम् ।

खलित संऽस्तु रामिप्यामि सुखी भव मया यिना ॥ २५ ॥

याम्भयान् । मैं तुम्हारा हित चाहता हूँ । इवीक्षिये अब
कुछ भी क्या है वह यदि तुम्हें अच्छ नहीं लगता तो उनक
क्षिय मुझे क्षमा कर दो क्योंकि तुम मेरे पड़े भाई हो । भव
तुम अपनी तथा राक्षसोंकी हित समस्त ब्रह्मपुत्रीकी हित
प्रकारसे रखा करो । तुम्हारा कल्याण हो । भय मैं यहाँसे नया
अर्जय । तुम मेरे लिंगा सुली हो बाधो ॥ २५ ॥

निभायमाणस्य मया हितविषया

न रोषत त यथन निगात्तर ।

परान्तकाले हि मत्प्रयुयो नरा

हितं न शुद्धस्ति सुहृद्गिरीरितम् ॥ २६ ॥

निघान्तवरा । मैं तुम्हारा हितकी हूँ । इवीक्षिये मैंने

तुम्हें बार-बार अनुचित मागपर पकनेसे रक्ष है, किंतु तुम्हें मेरी कृपात छ कृती ह वे श्रीकण्ठ भक्तकर्म भन्ते तुम्हें
बल अन्वी नहीं क्यती है। यद्यपि किं कर्मोष्ठी आयु कृती हुई हितकर बल भी नहीं मानते हैं ॥ २९ ॥

इत्यार्ये श्रीमद्भागवत वाक्यश्रीवे आदिकाम्ये पुण्ड्रकण्ठे प्रोक्तसः सर्गः ॥ १९ ॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवतनिर्मित भावप्रमाणक नदिकाम्ये पुण्ड्रकण्ठे स्तोत्रार्थे सर्ग पूरा हुआ ॥ १९ ॥

सप्तदश सर्ग

विभाषणका श्रीरामकी धरणासे आना और श्रीरामका अपने मन्त्रियोंके साथ उन्हें आश्रय देनेके विषयमें विचार करना

इत्युपस्था पश्य वाक्य रावण राजानुजः ।
भाजगाम मुहूर्तेन यत्र राम सखस्मणः ॥ १ ॥

रावणसे ऐसे कठोर वचन क्यकर उसके छोटे भाई
विभीषण दो ही पक्षमें उस खानपर आ गये जहाँ कस्मण-
सहित भीष्म विराजमान थे ॥ १ ॥

त मेरुशिखराक्षर वीतामिव पराङ्गराम् ।
गमानस्य महीस्यास्त दृङ्गुयार्नराधिपाः ॥ २ ॥

विभीषणकर शरीर सुमेघ फलके शिखरके समान ऊँचा
था। व व्याघ्रघने जलकृती हुई शिखरके समान खन पड़त
थे। पृथ्वीपर लड़े हुए बानरसूयपतिवोंने उन्हें आश्रयमें
स्थित देला ॥ २ ॥

ते चाप्यनुषरपक्षास्य धत्वारो भीमविक्रमा ।
तऽपि पर्यायुधोपक्ता भूपणोत्तमभूरिता ॥ ३ ॥

उनके साथ आ चार अनुचर थे। य भी बड़ा मज्जर
परकम प्रकट करनेवाला थे। उन्होंने भी कबल धारण करके
भद्र-राज मे रक्षते थे और व सब-क-कम उत्तम आभूणगते
विभूतिये थे ॥ ३ ॥

स च मधुवह्नमक्यो यज्ञायुधसमप्रभा ।
परायुधधरो धीरो दिव्याभरणभूरिता ॥ ४ ॥

शेर विभीषण भी मेघ और पर्यवेके समान खन पड़ते
थे। पत्रापी इत्येके समान तेकरी उत्तम आयुधधारी और
दिव्य आभूणगते अर्भट्टत थे ॥ ४ ॥

तमासपक्ष्मं हृष्टा सुभीषो यानराधिपा ।
यानरो सह दुधरध्वन्तयामास युक्तिमान् ॥ ५ ॥

उन चारों पक्ष्मके साथ वीचन विभेकमधे देवकर दुर्धर
एवं युक्तिमान् शेर बानरघन सुभीषने यानरोंके साथ विचार
थिये ॥ ५ ॥

पिन्तवित्या मुहूर्ते तु यानरांस्तानुष्य च ।
हनुमत्प्रमुखाद् सयानिद् यथनमुत्तमम् ॥ ६ ॥

यही देवक कचकर उद्योने हनुमन् भक्ति कर यानरों-
के पर उत्तम बत कही— ॥ ६ ॥

एव सर्वायुधोपेतमनुभि सह यस्तसैः ।
राक्षसाऽऽभ्येति पदमध्यमस्मान् हस्तुन सशरः ॥ ७ ॥

नेलो, उन प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंसे सम्पन्न वह यज्ञत
चर निशाचरोंके साथ आ रहा है। इसमें शेर नहीं कि व
हमें मारनेक स्थिने ही आला है ॥ ७ ॥

सुभीषस्य पत्नः भुत्वा सर्वे ते यानरोत्तमा ।
शास्त्रानुषण्य शीघ्रं च इव यजनमनुकर ॥ ८ ॥

सुभीषकी यह बत सुनकर वे सभी श्रेष्ठ बानर कर्म
और फलके शिखरों उठाकर इस प्रकार कर्म— ॥ ८ ॥

शीघ्रं व्याविशानो राजन् वधायैषां पुरारम्भाम् ।
निपतन्ति हता याचन् धरम्यामस्यचोत्तरा ॥ ९ ॥

पुनः! माप हीन ही हमें इन हुएप्रयत्नोंके बल
आला वीकिये किन्ते ये मन्दमति निहत्कर मरकर ही
पृथ्वीपर गिरें ॥ ९ ॥

तेषा सम्भाषणमपानामन्योन्य स विभीषणा ।
उत्तर तौरमासाद्य जस्य एव व्यतिष्ठत् ॥ १० ॥

आपसे वे इस प्रकार बत कर ही रहे थे कि निम्न
कुन्नेके उस तद्वर आकर आश्रयमें ही लड़े हो गये ॥ १० ॥

स उद्यम महाप्रयत्नः स्वरेण महता महत् ।
सुभीष तांश्च सम्प्रेक्ष्य जस्य एव विभीषणा ॥ ११ ॥

महायुक्तिमान् महायुध विभीषणने आश्रयमें ही लिये
यकर सुभीष तथा उन यानरोंकी भेद देखते हुए उब लत
थे कही— ॥ ११ ॥

एवमो नाम दुष्टो राजसो राजसेष्यरा ।
तस्माहमुजो भ्राता विभीषण इति भुता ॥ १२ ॥

एतन नामम अे दुष्टधारी राजा निशाचरोंके एव
थे उद्धम में उद्यम भारी है। मेय नाम विभीषण है ॥ १२ ॥

तेन जीता जनस्थानादृता हत्या जटायुषम् ।
क्या च विषयम हीना राक्षसीभिः सुरक्षिता ॥ १३ ॥
एवयने क्ययुधे मरकर जनस्थानसे जीव्यच भगवान्



आकाशमें सित होकर विभीषण उषा मकरसे अपना परिचय दे रहे हैं

क्रिया था। उसीने हीन एवं अशुभ हीनको एक रखा है। इन दिनों शैवा राक्षसोंके धरमें रहती हैं ॥ ११ ॥

तमह हेतुभिर्याक्रीडित्विषैश्च म्यदर्शयाम् ।
साधु निर्यात्पता सीता रामापेति पुनः पुनः ॥ १४ ॥

यैने मॉति-मॉतिके मुक्तिव्यक्त बन्नोंशय उसे बारबार कमाता कि द्रुम भीरमचन्द्रबीकी सेनामें सीताको धरर लेय हा—इलीमें भर्मा है ॥ १४ ॥

स व न प्रतिप्रप्राह रावणः फललोदितः ।
उच्यमानं हितं वाक्य विपरीत हवौरधम् ॥ १ ॥

व्यपति मैंने यह बात उसके हितके सिने ही करी थी, तथापि धरले प्रथित होनेके कारण राजने मेरी बात नहीं मन्नी। ठीक उठी प्रकर जेते मन्नाकन पुन्य औरध नहीं लेय ॥ १५ ॥

सोऽहं पबपितस्तेन वासपञ्चाग्रमागतः ।
स्फक्त्या पुत्राश्च वारांश्च राक्षस शरष्य गता ॥ १६ ॥

व्यरी नहीं उठने मुझे बहुत-सी कठोर वरों युवापी और वरकी मॉति नेर थपमान किया। इच्छिने मैं अपने की-पुत्रोंच वही छोड़कर भीरुनाचबीकी धरगने भाया हूँ ॥ १६ ॥
मिक्वयत मां क्षिरं राघवाय महारामने ।
सर्वभोकशरण्याय विभीषणमुपस्थितम् ॥ १७ ॥

वानरो । अब समस्त भेदोंको धरण देनेवाले हैं, उन गहकम भीरमचन्द्रबीके पास धरकर वीर मेरे आममनकी सुकना दो और उनसे धरो—धरणापी विभीषण सेनामें उपस्थित हुआ है ॥ १७ ॥

प्राप्तुः पञ्चन भुव्याः सुप्रीसोः उपुयिक्रमः ।
अधमव्यस्यारप्रतो रामं सरम्भमिद्वमप्रवीत् ॥ १८ ॥

विभीषणकी यह बात सुनकर वीरगदमी सुप्रीवने दुर्गत ही मन्नान् भीरमके पास चकर उरमनके सामने ही कुछ भावेषके साथ इह प्रकार धर— ॥ १८ ॥

प्रथियः शत्रुसैन्य हि प्राप्तः शत्रुतर्कितः ।
निहम्यात्पन्तर उच्यते उरुको वायसानिव ॥ १९ ॥

धमो । आज कोई देरी अब राक्षस होनेके कारण पहले हमारे शत्रु राजकी सेनामें सम्मिष्ठि हुआ था अब मन्मन्नात् हमारी सेनामें प्रवेश पानेके सिने आ गया है। यह सैन्य पाकर हमें उठी तब मार जायेज जेते उरु-कीयोंक कम कम कर देया है ॥ १९ ॥

मन्ने व्यूहे नये चारे युक्तो भवितुमर्हसि ।
वानराणां च भद्रं ते परेषां च परतप ॥ २० ॥

धनुओंको उद्यप देनेवाले खुनन्दन । मन्ना अरुको अपने धरनेकेमन्नेपर अनुग्रह और शत्रुओंक निग्रह करनेके

सिने कर्पांश्रपके विचार केनाकी मोर्बेवदी नीतियुक्त उद्ययो-के प्रयोग तथा गुप्तचरोंकी नियुक्ति आदिके विषयमें उक्त वाचन खन्य चाहिये । ऐसा करनेसे ही आपका मन्म द्दर ॥ २ ॥

अन्तर्धानगता ह्येते राक्षसाः कामरुपिणः ।
शूराश्च निहृतिश्लाघ्ये तेषां जातु न विश्वसेत् ॥ २१ ॥

ये राक्षसेम मनमाना रूप धारण कर सकते हैं। इनमें अन्तर्धान होनेकी भी शक्ति होती है। धरवीर और मामाकी वो ये होते ही हैं। इच्छिने इनका कभी विश्वास नहीं करना चाहिये ॥ २१ ॥

प्रणिधी राक्षसेन्द्रस्य राषणस्य भवेद्ययम् ।
अनुप्रविष्य सोऽसासु मेघं कुर्याथ सशयः ॥ २२ ॥

धममन्ने यह राक्षसराज राजका कोई गुप्तकर हो। यदि ऐसा हुआ तो हमसेमोंमें पुसकर यह पूट पैदा कर देगा, इस्में संदेह नहीं ॥ २२ ॥

अथ वा स्वयमेवैव चिच्छ्रमासाद्य बुद्धिमान् ।
अनुप्रविष्य विश्वस्ते कदाचित् प्रहोत्वपि ॥ २३ ॥

धममन्ने यह बुद्धिमान् राक्षस छिद्र पाकर हमारी विश्वता केनाके भीतर पुसकर कभी स्वय ही हमसेमोंपर प्रहार कर देगा, इह बातकी भी धमना है ॥ २३ ॥

मिश्राद्यविषयश्च शेष मीक्षभूत्यवल तथा ।
सर्वमितव् बलं प्राद्य सर्वपित्या शिपद्रुम् ॥ २४ ॥

धरिनोंकी, कंगकी बरिनोंकी तथा परम्परगत मूर्खोंकी से सेनाएँ हैं इन सबका संग्रह तो किया था उकता है किन्तु अब शत्रुपक्षसे मिले हुए हैं ऐसे सेनिकोंक समझ करानि नहीं करना चाहिये ॥ २४ ॥

प्रकृत्या राक्षसो ह्येष आत्प्रमिष्यस्य वै प्रमो ।
आगतश्च रिपुः साक्षात् कथमस्मिन् विश्वसेत् ॥ २५ ॥

धमने । यह स्वमन्नेसे तो राक्षस है ही अपनेसे शत्रुका मन्ने भी बता रहा है। इस दृष्टिसे यह सखत्त हमारा शत्रु ही क्यों आ पहुँचा है कि इतर कैसे विश्वास किया था उकता है ॥ २५ ॥

पक्षपञ्चनुजो भ्रमता विभीषण इति श्रुतः ।
अतुर्भिः सह रक्षोभिर्भयत शरर्षं गता ॥ २६ ॥

धममन्ने छेमा मन्ने से विभीषणके नामसे प्रसिद्ध है, धर राक्षसोंक साथ आपकी धरगने भाया है ॥ २६ ॥

राक्षसेन प्रणीत हि तमघेहि विभीषणम् ।
तस्माह मिद्राहं मध्ये क्षमं क्षमयता वर ॥ २७ ॥

धमप उस विभीषणको राजका मेरा हुआ ही समझें। उचित धरकार करनेवालोंमें भेद खुनन्दन । मैं तो उरुको धर कर केना ही उचित धरकरा हूँ ॥ २७ ॥

राससो विज्ञया युञ्जथा सविद्योऽयमिहागता ।
महर्तुं मायया छन्नो विश्वस्ते त्वयि धामघ ॥ २८ ॥

निश्चय भीयम् । मुझे तो ऐस्य ज्ञान पड़ता है कि यह
रक्षस राक्षस कहनेसे ही यहाँ आया है । इसकी बुद्धिमें
कुछिच्छा मरी है । यह मायासे छिपा रहेस्य तथा अब माप
इसपर पूरा विश्वास करके इसकी ओरसे निश्चित हो चर्चेंगे,
तब यह आपसीर चोट कर बैठेगा । इसी उद्देश्यसे इसका
यहाँ आया हुआ है ॥ २८ ॥

वभ्यतमेय तीव्रेण वृण्णेन सवियैः सह ।
रावणस्य नृशरसस्य भ्रातृ छोप विभीषणः ॥ २९ ॥

यह महाभूत राक्षस भ्राता है । इसलिये इसे कठोर रूप
देकर इसके मन्त्रिबौद्धिसे नर बाधना चाहिये ॥ २९ ॥

एवमुक्त्वा तु त राम सरभ्यो धाहिन्भीषणः ।
वाक्यञ्चो वाक्यकुशलं ततो मौन्सुपागामत् ॥ ३० ॥

बातनीतकी कर्म करनेवाले एव रामों भरे हुए सेनापति
सुग्रीव प्रवचनकुशल भीरुससे ऐसी बात कहकर पुनः हो
गये ॥ ३० ॥

सुप्रसिष्य तु तत् वाक्यं भुञ्जथा रामो महाबलः ।
समीपस्थानुवाचैव हनुमत्प्रमुखात् कपीन् ॥ ३१ ॥

सुग्रीवका यह वचन सुनकर महाबली श्रीराम अपने निकट
बैठे हुए हनुमान् आदि बानरोंसे इस प्रकार बोले— ॥ ३१ ॥

यतुलं कपिराजेन राजायावज प्रति ।
वाक्यं हेतुमदत्पर्यं भयङ्गिरपि च भुक्तम् ॥ ३२ ॥

बानरों । बानरराज सुग्रीवने राजकाके छोटे भाई विभीषण-
के विषयमें जो अत्यन्त मुक्तिमुक्त बातें कही हैं वे तुम
जनोंने भी सुनी हैं ॥ ३२ ॥

सुहृद्वामर्ष्यं च सुपु युक्त बुद्धिमता तथा ।
समर्थोपसवेन्दु वाग्धर्ती भूतिमिच्छता ॥ ३३ ॥

निष्ठाकी स्वामी उन्नति चाहनेवाले बुद्धिमान् एवं समर्थ
पुरुषको धर्मव्यवर्थाके विषयमें छद्म उपस्थित होनेपर क्या
ही अपनी सम्मति देनी चाहिये ॥ ३३ ॥

इत्येष परिपृष्टस्ते स्व स्व मतमतन्निद्रया ।
सोतषार तथा राममुखः मियबिभीषणः ॥ ३४ ॥

इस प्रकार कहा पूर्वी जनेपर श्रीरामका प्रिय करनेकी
इच्छा रखनेवाले ने सब बानर भाग्यसे जोड़ रखद्विष्ट हो
खबर अपना-अपना मत प्रकट करने लगे— ॥ ३४ ॥

महात् नास्ति ते किञ्चित् शिपुं जाकेपु रामव ।
वात्मानं पूजयन् रामं पूज्यन्मयान् सुहृत्तया ॥ ३५ ॥

पुण्ड्रन । छैनो छेमेने कोई ऐसी बात नहीं है, जो
मनुष्यके ज्ञान व क्षमति हम आपके अपने ही अङ्ग है,

अतः आप मित्रमाफसे हमारा सम्मान बढ़ते हुए हमसे ऊपर
पूजते हैं ॥ ३५ ॥

तथ हि सत्यप्रताः शूरो धर्मिको ब्रह्मिक्रमः ।
परीक्ष्यक्षरी स्मृतिमान् निवृत्तात्मा सुहृत्तु च ॥ ३६ ॥

आप ऊपरकी शूरवीर, धर्मोत्सा, ब्रह्म पराक्रमी, अर्ध-
भूतकर काम करनेवाले, क्षरणाधिकसे सम्पन्न और मित्रों
विश्वास करके उन्हींके हाथोंमें अपने-आपको सौंप देनेको
हैं ॥ ३६ ॥

तस्मिन्नेकैकशस्तायद् सुकम्तु सविधात्मव ।
हेतुतो मतिसाम्यथाः समर्थाश्च पुना पुनः ॥ ३७ ॥

बहुविध आपके सभी बुद्धिमान् एवं समर्थोंकी धर्म-
एक-एक करके शरीरपरीते अपने मुक्तिमुक्त विचार प्रकट
करें ॥ ३७ ॥

इत्युक्ते राघवायाथ मतिमान्भद्रोऽग्रतः ।
विभीषणपरीक्षासंमुच्छ्रय क्वतं हरिः ॥ ३८ ॥

बानरोंके ऐस्य करनेपर उनके पहले बुद्धिमान् बानर भाई
विभीषणकी परीक्षाके लिये सुझाव देते हुए श्रीरामके
बोले— ॥ ३८ ॥

शत्रोः सफरशात् सग्राहाः सर्वथातर्पयष हि ।
विश्वासनीयः सहसा न कर्तव्यो विभीषणः ॥ ३९ ॥

‘सग्राहन् । विभीषण शत्रुके पाससे आना है, इसलिये
उत्तर अग्नी शङ्का ही करनी चाहिये । उसे कुछ विश्वास
नहीं बना क्या चाहिये ॥ ३९ ॥

अव्यवित्याऽऽत्मभाव हि क्वन्ति शतबुद्धयः ।
महर्षित् व रभ्रोपु सोऽनर्थः सुमहान् भवेत् ॥ ४० ॥

बहुतसे शतबुद्धिपूर्ण विचार रखनेवाले जना अपने अपने
भावको छिपाकर बिचल रहते हैं और मोक्ष पाते ही व्यस्र
कर बैठते हैं । इससे बहुत बड़ा अनर्थ हो जाता है ॥ ४० ॥

अर्थानर्थो विनिश्चित्य व्यवसायं भजेत् ह ।
गुणतः समग्रं फुयाद् वापतस्तु विसर्जयेत् ॥ ४१ ॥

महा गुण-रूपका विचार करके पहले वह निश्चय कर
लना चाहिये कि इस व्यवस्थिते अर्थकी प्राप्ति होगी या अनर्थकी
(यह विश्वास धारण करेगा या अहितकर) । यदि उन्में गुण
हो छ उते स्वीकार करे और यदि छेप विनायी हो छे लक्ष्य
वे ॥ ४१ ॥

यदि शत्रोः महास्तस्मिन्स्वल्पमप्यतामधिप्राप्तिवत् ।
गुणान् वापि बहून् धात्वा समग्रः किर्यात् सृप ॥ ४२ ॥

महायय । यदि उन्में महात् रूप हो तो निःश्रेय
उत्तर स्वाम्य कर देना ही उचित है । गुणोंकी दृष्टिसे यदि उन्में
बहुतसे उपयुक्तोंके होनेका पता लगे तभी उत व्यक्तिको
अनाना चाहिये ॥ ४२ ॥

शरभस्त्वय निश्चित्य स्वर्गं पञ्चममयवीत् ।
सिम्भमस्मिन् नरव्याघ्र चारः प्रतिविभीषणम् ॥ ४३ ॥

उत्तन्त्र शरभे संव-विचारकर यह स्वर्गक बात कही—
पुरुषस्त्रि । इत् निभीषणके उत्तर शीघ्र ही कोई गुप्तकर
नियुक्त कर दिया अथ ॥ ४३ ॥

प्रणिधाय हि श्वारेण यथायत् सूक्ष्मबुद्धिना ।
स्वीक्य च ततः कार्यो यथाप्याय परिग्रहः ॥ ४४ ॥

सूक्ष्म बुद्धिवाले गुप्तकरको मेहकर उसके द्वारा यथायत्
स्मते उसकी परीक्षा कर भी अथ । इसके बाद यथोचित
रूपसे उसका संग्रह करना चाहिये ॥ ४४ ॥

ज्ञानपयास्त्वय सम्भेद्य शास्त्रबुद्ध्यायिचक्षणः ।
व्याप्य विज्ञापयामास गुणधत् शोषवर्जितम् ॥ ४५ ॥

इसके बाद परम वतुर धामश्वान्ते शास्त्रीय बुद्धिसे विचार
करके ये गुणयुक्त शोषरहित वनन करे— ॥ ४५ ॥

वदवैराज पापाच्च राक्षसेन्द्रात् विभीषणा ।
सन्शक्यते सम्प्रप्तः सर्वथा शङ्कयतामयम् ॥ ४६ ॥

परस्परान् उक्त वक्ता पापी है । उधने हमारे धाप केर
बोध रक्ता है और यह विभीषण उसीके पहले अथ यथा है ।
सन्धयमे न तो इसके मानेका यह अर्थ है और न खान ही ।
इच्छिमे इसके नियममें सब प्रकारसे छाड़ ही खाना चाहिये ॥

तद्यो मैत्र्यस्तु सम्प्रोक्ष्य न्यापनयकोविदः ।
धाप्य यत्नसम्पन्नो यभापे हेतुमत्तरम् ॥ ४७ ॥

उत्तन्त्र नीति और अनीतिके ज्ञान तथा वाक्यमनसे
अमन मन्त्रने खञ्ज-विचारकर यह युक्तियुक्त उचम बात
कही— ॥ ४७ ॥

अनुजो नाम तस्यैव रावणस्य विभीषणः ।
पृच्छयतां मधुरेणाय शमैर्नरपतीश्वर ॥ ४८ ॥

माहात्म्य । यह विभीषण उक्तका भाटा मयई ही तो
है । इच्छिमे इसके मधुर व्यवहारके खप धीरे-धीरे सब बरतें
पूझनी चाहिये ॥ ४८ ॥

भाषमस्य तु विज्ञाप्य तत्त्वतस्त फरिष्यसि ।
यदि बुधो न बुधो या बुद्धिपूर्व नरर्षभ ॥ ४९ ॥

नरभेद । फिर इसके मन्त्रमे समझकर आप बुद्धिपूर्वक यह
ठीक-ठीक निश्चय करें कि यह बुध है या नहीं । उसके बाद बैठ
उपस्थित हो बैठ करना चाहिये ॥ ४९ ॥

भाय संस्कारसम्पन्नो हनुमान् सखिवोचतमः ।
उवाच पवन स्वस्वाम्यर्षकमपुर सपु ॥ ५० ॥

तपश्चात् तद्विभोमें श्रेष्ठ और अन्ये शास्त्रोंके अन्तर्गत
उत्तरसे युक्त हनुमान्कीने य अथममधुर स्वर्गक सुन्दर
और संक्षिप्त वक्त करे— ॥ ५० ॥

न भवन्त मतिभ्रष्टं स्तमयं पत्रा परम् ।
मतिनायपितुं शक्तो बृहस्पतिरपि तुषन् ॥ ५१ ॥

अथो । आप बुद्धिमानीमें उचम सम्पूर्णशास्त्री और
वचनभोमें श्रेष्ठ हैं । यदि बृहस्पति भी भाषण दें तो वे अपने-
को अपने बद्दकर सका नहीं छिड़ कर सकतें ॥ ५१ ॥

न यात्रान्तापि सघर्षाध्याधिक्यात्त ख काम्ना ।
यस्यामि वक्ष्यं राञ्जन् यथार्थं राम गौरव्यात् ॥ ५२ ॥

माहात्म्य भीषण । मैं जो कुछ निवेदन करूँगा वह
वाद-विवाद या तर्क-स्पर्धा अधिक बुद्धिमत्ताक अभिमान
भयवा किसी प्रकारकी कामनासे नहीं करूँगा । मैं तो कर्षणकी
गुरुत्वसे इति रखकर जो यथार्थ समझूँगा, वही बात
करूँगा ॥ ५२ ॥

अर्थात्पर्यन्तमित्त हि ययुक्त सखिवैस्तव ।
तव शोष प्रपद्यामि क्रिया नभुपपद्यते ॥ ५३ ॥

आपके मन्त्रियोने जो अर्थ और अन्वयके निर्णयके लिये
गुण-शोषकी परीक्षा करनेका सुझाव दिया है उसमें मुझे शोष
दिल्लीकी देखें ; क्योंकि इस समय परीक्षा सेना कदापि
सम्भल नहीं है ॥ ५३ ॥

श्रुते मियोमात् सामर्थ्यमयवोद् न शक्यते ।
सहसा विन्धियोगोऽपि शोषवान् प्रतिभाति मे ॥ ५४ ॥

विभीषण आश्रय देनेक समय है या नहीं—इतना निर्णय
उठे किसी काममें नियुक्त लिये किना नहीं हो सकता और खख
उठे किसी काममें छाड़ देना भी मुझे शक्य ही प्रतीत होना
है ॥ ५४ ॥

आरप्रनिहित युक्त यदुक्त सखिवैस्तव ।
अयत्न्यासम्भवात् तव कारण शोषपद्यते ॥ ५५ ॥

आपके मन्त्रियोने जो गुप्तकर नियुक्त करनेकी बात कही
है उसका कोई प्रयोजन न होनेसे देख करनेका कोई युक्तियुक्त
कारण नहीं दिलायी देख । (जो बुर खता हो और निश्चय
बुधन्त बात न हो उसीके लिये गुप्तकरकी नियुक्ति की जाती
है । अथ अमने लक्षा है और संशक्यसे अपना बुधन्त क्या
या है उसके लिये गुप्तकर मेहनेकी क्या आवश्यकता
है) ॥ ५५ ॥

अवेदाकाण्डे सम्प्रप्त इत्ययं यद् विभीषणा ।
विक्रता तव मेऽस्तीय ता निषोष यथापति ॥ ५६ ॥

पुसके लिय जो यह कहा गया है कि विभीषणका इस
समय यहाँ अना देश-कालके अनुरूप नहीं है । उसके नियममें
भी मैं अपनी बुद्धिके अनुसार कुछ करना चाहता हूँ । आप
क्यों ॥ ५६ ॥

यय वेदाका कालका अयत्नीह यथा तथा ।
पुरुषात् पुरुष प्रप्य तथा शोषगुणायपि ॥ ५७ ॥

वैराग्य रागने दृष्टा विक्रमं च तथा त्ययि ।

युक्तमागमनं ह्यत्र सद्यश्च तस्य बुद्धिः ॥ ५८ ॥

उसके वहाँ आनेका यही उचम देश और काज है, यह बात किछ ठर सिद्ध होती है वैसा क्य रहा है। विभीषण एक नीच पुरुषके पाससे फलकर एक भेद पुरुषके पास भग्या है। उसने दोनोंके दोषों और गुणोंका भी विवेचन किया है। उसभात रावणमें बुद्ध्या और आपमें पराक्रम देख वह राजन को छोड़कर आपके पास आ गया है। इसलिये उसका यहाँ आगमन उचित और उसकी उचम बुद्धिके अनुकूल है ॥ ५७-५८ ॥

महावक्रयैः पुरुषैः स राजन् पृच्छयतामिति ।

यदुक्तमत्र मे प्रेक्षा काश्चित्स्ति समीक्षिता ॥ ५९ ॥

प्यम् । किन्ही मन्त्रीके द्वारा जो यह कहा गया है कि अपरिचित पुरुषोंद्वारा इससे कहीं बातें पूरी नहों। उसके सिपवमें मेरा बौच-बूझकर निश्चित किया हुआ सिपार है किते आपके खमने रसता है ॥ ५९ ॥

पृच्छयमानो विशाह्वेत सहसा बुद्धिमान् वरा ।

तत्र मित्रं प्रबुध्येत मिथ्या पूष सुखागतम् ॥ ६० ॥

यदि कोई अपरिचित व्यक्ति यह पूछेय कि हम कौन हो कहेंसि आये हो । किसलिये आये हो । इत्यादि, तब कोई बुद्धिमान् पुरुष छह उष पूछनेकाकार संदेह करने छोड्य और यदि उसे यह भास्य हो जायय कि उन कुछ बानते हुए भी मुझसे हटे ही पूछा था रहा है, तब मुझसे किये किये हुए उस नवानत मित्रका हृदय कदमित हो जायय (इस प्रकार हमें एक मित्रके बगले बद्धित होना पड़ेय) ॥ ६ ॥

महाक्य सहसा राजन् भाषो बोलुं परस्य वै ।

मास्तरण स्वैर्भिन्नैर्नैपुण्यं पर्युतां माराम् ॥ ६१ ॥

उसके सिवा महाराज । किन्ही वृत्तके मनाधी बातको सख समझ केना अवममन है। बीच-बीचमें स्वमेवले भाव अच्छी तरह यह निश्चय कर दें कि यह खडुभाकने आता है या अखडुभाकते ॥ ६१ ॥

न त्वस्य तुक्तो जानु सत्यते पुणभाकता ।

प्रसन्न वदनं ध्यायि तस्मान्मे मास्ति संशयः ॥ ६२ ॥

वृषधी बाठपीठसे भी कभी इसका दुर्भाव नहीं कश्चित

इत्यर्थे भीमव्वाग्नायके वास्नीकीके नादिकयने बुद्धकायके ससद्वत्ताः सर्गः ॥ १० ॥

इस प्रकार भीमव्वाग्निमिथिते नादिकयनेके बुद्धकायके ससद्वत्ताः सर्गः ॥ १० ॥

होय। इसका गुल भी प्रकन है। इसलिये मेरे मनमें इस प्रति कोई संदेह नहीं है ॥ ६२ ॥

महाद्वितमति स्वस्यो न शक्तः परिसर्यति ।

न ध्यस्य बुद्ध्यागस्ति तस्मान्मे नास्ति संशयः ॥ ६३ ॥

बुद्ध पुरुष कभी निःशक्त एवं स्वकचित एक वस्तु नहीं आ सकता। इसके सिवा इसकी कभी भी दोषयुक्त नहीं है। अतः मुझे इसके निगममें कोई संदेह नहीं है ॥ ६३ ॥

माकारदृष्टापमानोऽपि न शक्यो विनिर्गृहितुम् ।

वसति विषुषोत्थेव भायमस्तर्नातं मृणम् ॥ ६४ ॥

कोई अपने आकारको कितना ही कभी न कियेने उसके भीतरका भाव कभी छिप नहीं सकता। बाहरका आकर पुरुषके के मान्तरिक भावको कश्कर प्रकट कर देता है ॥ ६४ ॥

वेषकालोपमनं च कार्यं कार्यविदा वर ।

सफला कुर्वते सिप्र प्रयोगेणाभिसहितम् ॥ ६५ ॥

कार्यविद्यामें भेद रचनयन । विभीषणका जो मन-मनक का कार्य है, वह वेष-कालके अनुकूल ही है। ऐस कार्य यदि कौन पुरुषके द्वारा सम्पदित हो तो अपने-आपको धीर सफल बनाता है ॥ ६५ ॥

उद्योग तथ सत्येक्य मिथ्यापृथ च रावणम् ।

यस्मिन् च हतं भुव्या सुप्रीय ध्याभियेकितम् ॥ ६६ ॥

राज्यं प्रार्थयमानस्तु बुद्धिपूर्वमिहागतः ।

पतायत् तु पुरस्कृत्य युज्यते तस्य सम्राट् ॥ ६७ ॥

आपके उद्योग राकनके सिध्याचार, वास्नीके वच और सुप्रीयके राज्याभियेकन सम्चार जान-मुनकर राज्य फनेकी इच्छसे यह समझ-बूझकर ही यहाँ आपके पास आता है (इसके मनमें यह निश्चय है कि वरजागतवस्तु इच्छत भीरण मलय ही मेरी रज करूँगे और राज्य भी वे देंगे)। इसी लय यहाँमें हमें रसकर विभीषणका संग्रह करना—उसे अपना बना मुझे उचित ध्यान पकता है ॥ ६६-६७ ॥

पथाशक्ति मयाकं तु राक्षसस्यार्जव प्रति ।

प्रमाणं त्वं हि शेषस्य भुव्या बुद्धिमतां वर ॥ ६८ ॥

बुद्धिमन्तोंमें भेद रचनाय । इस प्रकार इस उच्छकी सरकता और निर्वोपताके किन्धमें मेने पथाशक्ति निवेदन किया हते धनकर अपने आप वैद्य उचित समझें, देख कर ॥ ६८ ॥

अष्टादश सर्ग

भगवान् धीरामका शरणागतकी रक्षाका महत्त्व एव अपना व्रत बताकर विभीषणसे मिलना

मय रामः प्रसन्नात्मा भुव्या वायुसुसस्य ह ।
प्रत्यभापत दुर्धनः भुतयान्तरमनि स्थितम् ॥ १ ॥
वायुन्दन इतमान्त्रीके मुक्तसे अपने मनमें बैठी हुई
वत सुनकर दुर्धन वीर भगवान् धीरामका चित प्रपन्न हो
गया । ये इस प्रकार बोले— ॥ १ ॥

ममापि च विवक्षास्ति काचित् प्रति विभीषणम् ।
श्रोतुमिच्छामि तत् सर्वं भवद्भिः श्रेयसि स्थितैः ॥ २ ॥
मित्रो । विभीषणके सम्बन्धमें मैं भी कुछ खाना चाहता
हूँ । आप सब लोग मेरे हितचक्षुषणमें उभरन खनेबाजे हैं ।
अतः मेरी इच्छा है कि आप भी उसे सुन लें ॥ २ ॥

मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथञ्चन ।
शोभो यद्यपि तस्य स्यात् सखामेतद्वगार्हितम् ॥ ३ ॥
एवं मित्रमालसे मेरे पास आ गया हो, उसे मैं किसी तरह
छाड़ा नहीं सकता । सम्भव है उसमें कुछ खोज भी हो परंतु
शोभीको भावना देना भी स्वयुक्तोंके शिमे निवृत्त नहीं है
(अतः विभीषणको मैं अवश्य अपनाऊँगा) ॥ ३ ॥

सुग्रीवस्त्वद्य तद्वाक्यमभाष्य च विमृश्य च ।
उवाच शुभतरं वाक्यमुवाच हरिपुङ्गवः ॥ ४ ॥
बानरराज सुग्रीवने भगवान् धीरामक इस कथनाको सुनकर
सर्व भी उसे दोहराया और उसका विचार करके यह परम
सुन्दर बात कही— ॥ ४ ॥

स दुष्टो वाप्यदुष्टो वा किनेर रञ्जनीश्वरः ।
ईदृशं व्यसनं प्रायं ज्ञातरं परः परित्यजेत् ॥ ५ ॥
को नाम स भवेत् तस्य यमेव न परित्यजेत् ।
प्रायो । यह दुष्ट हो वा अदुष्ट इसके क्या है तो वह
निष्पन्न ही । फिर जो दुष्ट ऐसे संकटमें पड़े हुए अपने
मार्गको छोड़ सकता है उतना दुष्ट ऐसा ऐसा कौन सम्झनी
इस किसे वह स्वप्न न सके ॥ ५ ॥

वासरधिपतर्वाप्यं भुव्या सर्वानुवीक्ष्य तु ॥ ६ ॥
एतदुक्तस्यमानस्तु लक्ष्मण पुष्पलक्षणात् ।
इति हायाव कङ्कुरस्यो वाक्य सत्यपराक्रमः ॥ ७ ॥
बानरराज सुग्रीवकी यह बात सुनकर लक्ष्मणकी भी-
रुतापत्नी सखी और देवकीर कुछ दुस्करने और पतिव्रत
लक्ष्मणको सम्झलते इस प्रकार बोले— ॥ ६ ॥

भनधीत्य च शरत्वाणि वृत्तान्तनुपसेभ्य च ।
न दाक्षयमीदृवा वक्षुं यदुवाच हरिभ्रारः ॥ ८ ॥
पुमिप्रानन्दत । इस समय बानरराजने श्रेष्ठ बात कही है

वैसी कोही भी पुरुष शार्ङ्गका अभ्यसन और गुदकनौकी सेवा
किसे किना नहीं कर सकता ॥ ८ ॥

अस्ति सूक्ष्मतर किञ्चित् पथाच्च प्रतिभाति मा ।
प्रत्यक्षं लौकिकं चापि वर्तते सद्यःपञ्चसु ॥ ९ ॥

एतद् सुमीव । हमने विभीषणमें जो मार्गके परिस्थानस्य
वक्षकी उद्घातना की है उस विषयमें मुझे एक ऐसे अत्यन्त
सूक्ष्म अर्थकी प्रतीति हो रही है जो सम्प्रदाय राज्याओंमें प्रत्यक्ष
देखा गया है और सभी स्त्रियोंमें प्रसिद्ध है (मैं उचीने तुम
सब लोगोंसे खबर चाहता हूँ) ॥ ९ ॥

अमित्रास्तकुलीनाश्च प्रातिवेद्याश्च कीर्तिताः ।
व्यसनेषु प्रहर्तारस्तस्मात्पयमिहागतः ॥ १० ॥

राज्याओंके शिष्ट दो प्रकारके बताये गये हैं—एक तो
उची कुलमें उत्पन्न हुए अस्ति-मार्ग और दूसरे पक्षी
देशोंके निवासी । ये संकटमें पड़नेपर अपने विरोधी राजा वा राजपुत्र-
पर प्रहार कर बैठते हैं । इसी समयसे वह विभीषण यहाँ आया
है (इसे भी अपने अस्ति-मार्गसे भय है) ॥ १० ॥

अपायास्तकुलीनाश्च मानयन्ति स्वकान् वित्तान् ।
एष प्रायो मरेन्द्रार्णां शाङ्गनीयस्तु शोभनः ॥ ११ ॥

किन्तुके मानने प्य नहीं है ऐसे एक कुलमें उत्पन्न हुए
मार्ग-रक्षु अपने कुटुम्बीकोंको शिरोधी मानते हैं परंतु यही
संस्कृतीय वस्तु अच्छा होनेपर भी प्रायो राज्याओंके शिमे शाङ्ग
नीय होया है (राजपुत्र भी विभीषणको शाङ्गकी दृष्टिसे देखने
लगा है इसलिये इसका अपनी रक्षाके शिमे यहाँ आना
अनुचित नहीं है । अतः हमें इसके उत्तर मार्गके स्वागत
कर नहीं करना चाहिये) ॥ ११ ॥

पस्तु दौघस्तस्या प्रोक्तो ह्यावानेऽरिबलस्य च ।
तत्र ते कीर्तिपिय्यामि यथादात्ममिव शत्रुम् ॥ १२ ॥

हमने शत्रुपक्षीय सैनिकको अपनातेमें वह यह वचन
कहा है कि यह अस्तर देवकीर प्रहार कर देता है उतके
विषयमें मैं तुम्हें यह नीतिशास्त्रक अनुसूच उत्तर दे रहा हूँ
इना ॥ १२ ॥

न कथं तत्कुलीनाश्च राज्यकङ्क्षी च राक्षसाः ।
पश्चिदादि भयिष्यन्ति तस्मात् प्राद्यो विभीषणम् ॥ १३ ॥

धर्मबन्ध इतके कुटुम्बी तो हैं नहीं (अतः हमसे स्वार्थ-
हानिकी आशाइए इसे नहीं है) और यह राजस राज्य पानेका
अभिप्रायी है (इसलिये भी यह हमारा स्वागत नहीं कर
सक्या) । इन राज्योंमें बहुतसे लोग यह विद्वान् भी होते

॥ (भक्तः ये मित्र होनेपर वही कानके सिद्ध होंगे) इत्यभिने
विभीषणको अपने पक्षमें मिला घना चाहिये ॥ १३ ॥

अभ्युपगच्छ प्रहृष्टाश्च ते भविष्यन्ति सगताः ।
प्रजापत्य महाभयोऽभ्युपगतस्य भयमागतम् ॥
इति मेव गमिष्यन्ति तस्मैव प्राहो विभीषणः ॥ १४ ॥

इससे मिला खनेपर ये विभीषण आदि निश्चित एवं
प्रसन्न हो अवेंगे । इनकी ओर यह धारणावृत्तिके अन्वये प्रवृत्त
पुत्रक है, इससे मात्स्य होता है, यक्षोंमें एक वृक्षसे मय कन्त
हुमा है । इसी कारणसे इनमें परस्पर फूट होगी और ये नष्ट
हो अवेंगे । इत्यभिने भी विभीषणको प्रहण कर देना
चाहिये ॥ १४ ॥

न सर्वे अग्रतरस्तत्र भयमिति भरतोपमा ।
मद्रिषा या पितुः पुत्राः सुहृदां वा भयद्रिषाः ॥ १५ ॥

प्रायः सुमीय । संघर्षमें सब मार्ग भयके ही समान नहीं
होते । बापके सब बेटे भेरे ही-बैसे नहीं होते और सभी मित्र
दुम्हारे ही समान नहीं हुआ करते हैं ॥ १५ ॥

पञ्चमुक्तस्तु रामेण सुग्रीवाः सहस्रकन्याः ।
उत्थायेद् महाप्रसङ्गः प्रजातो वाक्यमग्रशीव ॥ १६ ॥

भीषणके ऐसा कहनेपर हस्तकवचित । म्हात्रुदिमान्
सुग्रीवने उठकर उन्हें प्रणाम किया और इस प्रकार कहा—
रावणेन प्रणिहित तमवहि निदाघरम् ।
तत्रग्रह मिग्रह मन्ये क्षमं क्षमक्यां वर ॥ १७ ॥

उचित भय करनेवालोंमें श्रेष्ठ खुन्दन । आप उठ
रखसके एकत्र सब मेरा दुःख ही समझें । मैं तो उसे कैद कर
देना ही ठीक समझता हूँ ॥ १७ ॥

एतस्यो जिज्ञासा बुवृष्य सविष्टोऽपमिहागतः ।
प्रहर्तुं स्वयि विभ्वस्ते विभ्वस्ते मयि वालभ ॥ १८ ॥
सहमणे वा महापाहो स धम्यः सच्चिवैः सह ।
राजगम्य नृशासस्य अस्त्र ह्येव विभीषणा ॥ १९ ॥

निष्पन्न भीषण । यह निष्ठाकर रावणक कहनेसे मनमें
कुटिल विचार केन्द्र ही यहाँ आया है । जब हमअथा इसपर
विश्वास करते इसकी ओरसे निश्चित हो अवेंगे, उस समय
यह अक्षरतः मुझपर भयवा असमक्षर भी प्रहार कर सकता
है । इत्यभिने महापाहा । हूँ रावणके भ्राता इस विभीषणका
मन्त्रिययोग्यत नच कर देना ही उचित है ॥ १८ ॥

पञ्चमुक्त्या रघुभेष्टं सुग्रीवो धाहिनीपतिः ।
यान्यये धान्यकुशाश्च तथा मौनमुपागतम् ॥ २० ॥

प्रचक्रुः ॥ खुन्दनके भीषणसे एका कहकर बह
पीनगी कस्य अननेवासेकेप्रती सुमीय मौन हो गये ॥ २ ॥

स सुग्रीवस्य तद् धान्य वामः धृत्या विमृदय च ।
ततः पुभतर् धान्यमुपाच हरिपुत्रायम् ॥ २१ ॥

सुमीषण यह बचन सुनकर और उत्तर मन्त्रीमें
विचार करके भीषणने उन बानरविरोमणिते यह पत्र मात्स्य
मयी बात कही— ॥ २१ ॥

स तुष्टो धाप्यतुष्टो वा किमेव रजसीधरः ।
सूक्ष्ममप्यहितं कर्तुं मम शकः कथयन् ॥ २२ ॥

स्वानरयच । विभीषण तुष्ट हो या तपु । जब वह
निष्ठाकर किसी तरह भी मया सूक्ष्म-से-सूक्ष्ममें भी प्रविष्ट
कर सकता है ॥ २२ ॥

पिशाचान् वान्यान् यज्ञान् पृथिव्यां चैव राक्षसान् ।
अङ्गुल्यामेव तान् हन्यामिच्छन् हरिगणेश्वर ॥ २३ ॥

स्वानरयुवते । यदि मैं चाहूँ तो पृथ्वीपर जितने भी
पिशाच, दानव, यक्ष और राक्षस हैं, उन सबको एक अङ्गुलि
के अग्रभागसे मार सकता हूँ ॥ २३ ॥

भूयते हि कपोलेन शत्रुः शरणमागतः ।
सर्वित्तस्य यथान्याय स्वैश्च मांसैर्मिन्नित्वा ॥ २४ ॥

सुना जाता है कि एक कबूतरने अपनी छत्रमें अपने
हुए अपने ही शत्रु एक व्यापक यथोचित अस्तिम-कक्ष
किया या और उसे निम्नत्रय के अपने शरीरके मांसके भक्षण
करवा था ॥ २४ ॥

स हि तं प्रतिशप्राह भर्त्याहर्तारमात्मन् ।
कपोतो यानरभेष्ट किं पुनर्मद्रिषो जना ॥ २५ ॥

उस व्यापने उस कबूतरकी भर्त्या कबूतरके पक्ष मिला
बा तो भी अपने पर जानेपर कबूतरने उसका मांस किया
किन्तु भेरे-बैसा मनुष्य धारणागतपर अनुग्रह करे, इसके अन्वये
तो कृपा ही क्या है ॥ २५ ॥

शूरेः कष्यस्य पुत्रेण कष्युना परमर्षिणा ।
शृणु गाथां पुरा गीता धर्मिणा सत्यश्रुतिना ॥ २६ ॥

पूर्वकालमें कष्य मुनिके पुत्र धरणाचारी मार्षि कबूते
एक धर्मविष्णुक गाथाका गान किया था । उसे कथा हूँ
शुनो ॥ २६ ॥

पञ्चाङ्गसिपुट र्नि याचस्य शरणागतम् ।
न हन्यादानृशासायमपि शत्रु परतप ॥ २७ ॥

परतप । यदि शत्रु भी धरणाचारी भवे और र्निमन्त्रके
शय अङ्कुर दक्षकी याचना करे तो उसपर प्रहार नहीं करना
चाहिये ॥ २७ ॥

भर्तार्यो या यद्दि वा हता परेषा शरणं गता ।
मरिः प्राणान् परित्यज्य रक्षितध्या कृतात्मना ॥ २८ ॥

शत्रु दुष्टी हो या अभिमानी यदि वह अपने पिता-
की छत्रमें आये तो शत्रु हारकालमें श्रेष्ठ पुत्रवत् अपने प्राणी
वा यह अङ्कुर उसकी रक्षा करती चाहिये ॥ २८ ॥

स बोद्ध भयाद् वा मोहाद् वा क्रमाद् वापि न रक्षति ।
 सया शक्त्या यथाम्याय तत् पाप लोकागर्हितम् ॥ २९ ॥
 यदि वह ममः मोह मयया किंती क्रमनासे न्यायानुसार
 यथायथि उतन्त्री रक्षा नहीं क्यथा तो उसके उस पाप-कर्मकी
 छेकमें बड़ी निन्द्य होती है ॥ २९ ॥

विनष्टः पश्यतस्तस्य रक्षिणा शरणं गता ।
 मत्प्रय सुहृत् तस्य सर्वे गच्छेद्वरक्षिताः ॥ ३० ॥

यदि शरणमें आया हुआ पुरुष संछन्न न पाकर उस
 रक्षकके देखते-देखते नष्ट हो अन्य तो वह उसके खरे पुण्यके
 भयने खप के जाता है ॥ ३ ॥

एष श्रेयो महानत्र प्रयत्नानामरक्षणो ।
 मत्प्रयं चायशस्य च वलवीर्यपिनाशनम् ॥ ३१ ॥

एष प्रकार शरणगतकी रक्षा न करनेमें महान् दोष
 क्यथा मया है । शरणागतका श्याम स्वर्ग और सुयशकी प्राप्ति
 को मिया देता है और मनुष्यके कष्ट और धीमर्ष नाश करता
 है ॥ ३१ ॥

करिष्यामि यथार्थं तु कण्ठोर्वयनमुत्तमम् ।
 धर्मिष्ठं च यशस्य च स्वर्ग्यं स्यात् तु फलोदये ॥ ३२ ॥

इच्छिये मैं तो महर्षि कण्ठके उस यथार्थ और उत्तम
 वचन ही 'एवम कर्त्तव्य' क्योंकि वह परिणाममें धर्म, यश
 और स्वर्गकी प्राप्ति करनेवाला है ॥ ३२ ॥

सहृदयेय प्रपन्नाय तवासीति च याचत ।
 मभय सप्तमूर्तभ्यो वृथाभ्येतव् यत मम ॥ ३३ ॥

जब एक वर भी शरणमें आकर भी दुश्चार हूँ देख
 कर मुझसे रक्षकी प्रार्थना करता है तब मैं समस्त प्राणियों
 से अभय कर देता हूँ । यह मेरा स्वयंके किये मत है ॥ ३३ ॥
 आनयैत हरिभ्येष्ट वृत्तमस्याभय मया ।
 विभीषणो या सुग्रीव यदि वा राजणा स्वयम् ॥ ३४ ॥

इत्यार्ये श्रीमद्रामायण वाक्यीकोषे अद्विक्रम्यं पुस्तकप्रवृत्तशब्दाः सर्गः ॥ १८ ॥

एत उवाच आरात्मीकेर्मित्तं चार्थप्राप्यं अद्विक्रम्यं पुस्तकप्रवृत्तशब्दाः सर्गः पूरा इत्यु ॥ १८ ॥

एकोनविंश सर्ग

विभीषणका आकाङ्क्षसे उतरकर भगवान् श्रीरामक चरणोंकी शरण लेंना, उनके पूछनेपर रावणकी
 शक्तिका परिचय देना और श्रीरामका राजण-वधकी प्रतिज्ञा करक विभीषणका लज्जाक
 राज्यपर अभिषिक्त कर उनकी सम्मतिसे समुद्रतटपर धरना देनेक लिय बैठना

रावणप्रथमय वृत्त समता राज्यानुबन्धः ।
 विभीषणा महाप्रभो भूमि समप्रतोषयत् ॥ १ ॥

एत प्रथम श्रीरामावयकेकभयम दनेस तिनपर्यन्त मत्

अत अपिभेष्ट सुग्रीव । इह विभीषण हो या स्वयं
 यत्न भा गम्भ हो । तुम दसे के आम्ने । मैंने उते अभय
 दान दे दिया ॥ १४ ॥

रामस्य तु क्त्वा भुत्वा सुग्रीवः प्रुषगोम्भरः ।
 प्रत्यभापत क्राकुत्स्य सौहार्द्वैत्रभिपूरितः ॥ ३५ ॥

भगवान् भीष्मक यह वचन सुनकर बनरगण सुग्रीवने
 सौहार्दसे मरकर उनसे कहा— ॥ ३५ ॥

किमत्र वित्र धमङ् लोकापायशिक्षामये ।
 यत्स्वमार्यप्रभायेयाः सस्त्वयान् सत्यये स्थिताः ॥ ३६ ॥

धर्मङ् । छेकेवरधिमये । आपने क्या यह भेष्ट धर्मकी
 बात करी है इसमें क्या भाव्य है ? क्योंकि आप महान्
 शक्तिशाली और क्षमार्गपर स्थित हैं ॥ ३६ ॥

मम व्याप्यन्तपत्माय शुद्ध वेत्ति विभीषणम् ।
 अनुमानाच्च भावाच्च सप्ततः सुपरीक्षितः ॥ ३७ ॥

यह मेरी अन्तरात्मा भी विभीषणके शुद्ध समझती है ।
 अनुमान्कीने भी अनुमान और मयसे उनकी भीतर-बाहर सब
 आरते मन्त्रीमूर्ति परीक्षा कर ली है ॥ ३७ ॥

तस्मात् क्षिप्र सहासाभिस्तुल्यो भवतु राक्षस्य ।
 विभीषणो महाप्रभश्च सखित्व चाभ्युपैतु नः ॥ ३८ ॥

मतः एतन्नन । मय विभीषण धीम ही खों हमारे
 जैसे शेरक खों और हमारी मित्रता प्राप्त करें ॥ ३८ ॥

एतस्तु सुग्रीववचो निशम्य त-
 उरीश्वरेणाभिहित नरेभ्यतः ।

विभीषणेनाशु जगाम सगम
 पतत्रिराजेन यथा पुरंवरः ॥ ३९ ॥

तदनन्तर बनरगण सुग्रीवकी करी दुर यह बात सुनकर
 रावण भीरुम धीम आगे बढ़कर विभीषणसे मिले, मन्त्र देयरग
 इन्द्र पक्षिगण गवइसे मिल रहे हों ॥ ३९ ॥

इत्यार्ये श्रीमद्रामायण वाक्यीकोषे अद्विक्रम्यं पुस्तकप्रवृत्तशब्दाः सर्गः ॥ १८ ॥

एत उवाच आरात्मीकेर्मित्तं चार्थप्राप्यं अद्विक्रम्यं पुस्तकप्रवृत्तशब्दाः सर्गः पूरा इत्यु ॥ १८ ॥

इद्विमान् विभीषणे मीच उतरनेके किये सुग्रीवो अर
 रेशा ॥ १ ॥

एत प्रथम श्रीरामावयकेकभयम दनेस तिनपर्यन्त मत्

स तु रामस्य धर्मात्मा निपपात विभीषणः ॥ २ ॥
पश्योर्निपपाताय चतुर्भिः सह राक्षसैः ।

वे अपने मरुत सेवकों के साथ इससे भरकर आकर उठते
पृथ्वीपर उतर आये । उतरकर चारों रखलों के साथ परामर्श
विभीषण श्रीरामचन्द्रके चरणों में गिर पड़े ॥ २१ ॥

ममदीक्ष्व तदा वाक्य रामं प्रति विभीषणः ॥ ३ ॥
धर्मयुक्तं च युक्तं च सारप्रत सम्प्रहर्षजम् ।

उस समय विभीषणने श्रीरामसे परामुक्तक मुक्तियुक्त,
अभ्योन्क्ति और हर्षवर्द्धक बात कही— ॥ २२ ॥

अनुजो राघवस्याह तेन चास्म्यथमानिताः ॥ ४ ॥
भवन्त सर्वमृतानां शरण्यं शरण्य गताः ।

ममज् । मैं राघवका श्रेय्य भाई हूँ । राघवने मेरा
अपमान किया है । मैं परमस्त प्राणियोंका शरण देनेवाले हूँ,
इच्छित्ति मैंने आपकी शरण की है ॥ २३ ॥

परित्यक्ता मया लब्धा मित्राणि च भनानि च ॥ ५ ॥
भयद्वतं हि मे राज्यं जीवितं च सुखानि च ।

आपने सभी मित्र बन और लब्धपुरीको मैं छोड़ आया
हूँ । मैं मेरा राज्य, धन और सुख सब आपके ही अधीन
है ॥ २४ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्या रामो वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥
वचसा सान्त्वयित्वैतं शोषनाभ्यां विबन्धिय ।

विभीषणके ये वचन सुनकर श्रीरामने मधुर वाणीका
उपयोग करना ही और नेत्रोंसे मनो उन्हें भी बँधेंगे, इसप्रकार
प्रेमपूर्वक उनकी ओर देखते हुए कहा— ॥ २५ ॥

आख्यादि मम तत्केन राक्षसार्तां वजावहम् ॥ ७ ॥
एवमुक्तं तदा रक्षो रामेणाङ्घ्रिकर्मणा ।
राघवस्य वद सार्यमाख्यातमुपचक्रमे ॥ ८ ॥

विभीषण । तुम मुझे ठीक-ठीक राक्षसोंका वजावह
क्याओ । मन्दावत ही महान् क्रम करनेवाले श्रीरामके देख
करनेपर राक्षस विभीषणने राक्षसोंके समूह बन्धक परिचय देना
आरम्भ किया— ॥ ७-८ ॥

मवध्या सर्वभूसार्तां गान्धर्वोरगपक्षिजाम् ।
एवमुक्तं वराप्रभो वरदातात् क्षयम्मुषः ॥ ९ ॥

पावकुमार । गान्धर्वीके वरदानके प्रभावसे वधमुक्त राघव
(केवल मनुष्योंके बन्धक) गन्धर्व नाम और पक्षी अदि
सभी प्राणियोंके क्षिये अवश्य है ॥ ९ ॥

राघवात्मन्तरे भ्राता मम ज्येष्ठश्च धीर्यवान् ।
कुम्भकण्ठो महातेजाः शक्रप्रतिवज्जे युधि ॥ १० ॥

पावजसे श्रेय और मुझसे बड़ा ओ मेरा भाई कुम्भकर्ण
है, वह महातेजस्वी और पराक्रमी है । मुझने वह इन्द्रके
अपन बन्धाधी है ॥ १० ॥

राम सेनापतिस्तस्य प्रहस्तो यदि तं श्रुत्वा ।
कौशले येन समरे मणिभद्रा पराजितः ॥ ११ ॥

श्रीराम । राघवके सेनापतिक नाम प्रहस्त है । एक
आपने भी उक्त नाम सुना होगा । उसने कैपलकर पीठ हुए
मुझमें कुबेरके सेनापति मणिभद्रको भी पराजित कर दि
या ॥ ११ ॥

बन्धुगोभ्रुलिङ्गिभ्रातृस्त्रयप्यककयो युधि ।
धनुरावाप पस्तिष्ठन्नहृद्यो भयतीन्द्रजित् ॥ १२ ॥

पावजका पुत्र ओ इन्द्रजित् है, वह गोदेके जम्हेके से
हुए दशाने पहनकर मवधय कवच धारण करके हममें सुन
के बन मुझमें लड़ा होता है, उस समय आरस ही ब
है ॥ १२ ॥

सद्यमे सुमहत्क्यूहे तपयित्वा बुधशतम् ।
मन्थार्थानगतः श्रीमानिन्द्रजित् राघव ॥ १३ ॥

पशुनन्दन । श्रीमान् इन्द्रजित्ने अग्निदेवके पुत्र बने
ऐसी शक्ति प्राप्त कर ली है कि वह विश्वभूतसे कुछ
संभारमें आरस होकर धनुर्धर प्रहार करता है ॥ १३ ॥

महोदरमहापाद्वौ राक्षसबाण्यकम्पम् ।
अनीकपास्तु तस्वीते लोकपालस्तमा युधि ॥ १४ ॥

महोदर महापाद और अकम्पन—ये तीनों एक
राक्षसके सेनापति हैं और मुझमें अकम्पनके अज्ञ परम
प्रहस्त करते हैं ॥ १४ ॥

वशकोटिसहस्राणि राक्षसां क्षामकपिषाम् ।
मासशोभितभक्ष्याणां लङ्कापुरनिवासिनाम् ॥ १५ ॥

स तैस्तु सहितो राजा श्लोकपद्ममयोभवात् ।
सह वैषैस्तु तं भग्ना राघवेन दुरात्मना ॥ १६ ॥

पशुमने एक और मातङ्ग मोहन करनेवाले और इन्द्र
नुत्तर रूप धारण करनेमें समर्थ ओ वध कोटि श्वस (एक
बार) राक्षस निवास करते हैं उन्हें साथ लेकर राघव उनके
ने अकम्पनसे युद्ध किया था । उस समय देवदामोदरीत वे
सब श्लोकपाल दुरात्मा राघवसे पराजित हो मारा लङ्कापुर १५-१६

विभीषणस्य तु बन्धस्तच्छ्रुत्वा रघुसत्तमः ।
अन्धीक्ष्य मनसा सर्वमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १७ ॥

विभीषणकी वह बात सुनकर रघुकुम्भकर्मक श्रीरामने मन
ही-मन उस क्षण पराङ्मुख विचार किया और इस प्रकार
कहा— ॥ १७ ॥

यानि कर्माप्सूतानि राघवस्य विभीषण ।
आख्यातानि च तत्केन ह्यवगच्छामि ताव्यहम् ॥ १८ ॥

विभीषण । तुमने राघवके मुझविषयक किन्-किन्
परमर्शोंका वर्णन किया है उन्हें मैं अच्छी तरह जानता
हूँ ॥ १८ ॥

मह हत्या वृदाभिव सप्रहस्त सहात्मजम् ।
राजानं त्वा करिष्यामि सत्यमस्तच्छ्रुणोतु मे ॥ १९ ॥
एतु मुना । म मच वृता हूँ कि प्रहस्त और पुत्रोंके धरित
एकका यव करके मैं तुम्हें लडाका राज बनाऊँगा ॥ १९ ॥

रसातल वा प्रविशेत् पाताळ वापि रावणः ।
पितामहसकाशा वा न म जीवन् विमोक्ष्यते ॥ २० ॥
एकका रखल वा पाताळमें प्रवेश कर जब अपना
पितामह नकाबीक पास चला जब तो भी वह अब मर हाथके
कथित नहीं छूट सकेगा ॥ २ ॥

महत्या रावण सख्ये सपुत्रजनत्वान्धयम् ।
भयोप्या न प्रवक्ष्यामि विश्विस्तीर्णावुभिः शपे ॥ २१ ॥
मैं अपने तीना भाइयाकी खैगन्ध साकर करता हूँ कि
तुझमें पुत्र बालकन और मनु-बालकनके रावणका बंध
किये किना भयोप्यापुरीमें प्रवेश नहीं करूँगा ॥ २१ ॥

धुम्रं तु घक्त तस्य रामस्याह्लिषकमप्यः ।
गिराऽऽप्यध भर्मांमा धकुमेष प्रचक्रमे ॥ २२ ॥

भगवाण ही महान् कर्म करनेवाले भीरुमन्त्रके य
रक्त मुनकर बनामा विभीषणन मस्तक हृत्कर उन्हें प्रताप
दिवा और छिद्र इव प्रकर करना आरम्भ किया— ॥ २२ ॥
राक्षसता यषे साह्यं लड्यायथ प्रधर्षजे ।
करिष्यामि यथाप्यण प्रयेक्ष्यामि च वाहिनीम् ॥ २३ ॥

धम्र ! राक्षसके सहायमें और लडापुरीपर आक्रमण
करके उसे जीतनेमें मैं भाषकी यथासक्ति सहायता करूँगा तथा
प्रतापी शक्ती व्याकर युद्धके दिव रावणकी सेनामें भी प्रवेश
करूँगा ॥ २३ ॥

इति प्रुषण रामस्तु परिष्वज्य विभीषणम् ।
मध्वील्लक्ष्मण प्रीतं समुद्राच्छ्रममाजय ॥ २४ ॥
तत्र घम महायासमभिरिच्छ विभीषणम् ।
राजानं राक्षसा शिष्यं प्रसज्जने मयि मानत् ॥ २ ॥

विभीषणके सेवा करनेपर भगवान् भीरुमें उन्हें हृदयके
साथ किया और प्रकृत हाथ लक्ष्मणके पक्षा - पूषणं मान
रनेका मुमिमानदन । तुम समुद्रमें लक्ष्मण और
एक साथ इन परम पुत्रियान् राक्षसयत्र विभीषणका सहायक
रावणर शिष्य ही अभिरक्ष कर दो । मेरे प्रकृत होनेपर इन्हें
यह लाभ मिलता ही चादिय ॥ २४ २५ ॥

एवमुक्तस्तु सप्तमिभिरभ्यविरिञ्चत् विभीषणम् ।
मप्य धानरमुष्याना राजानं राज्ञामन्वदत् ॥ २५ ॥
उसके पन्थ होनेपर मुमिमानुमार लक्ष्मणन मुप्य-मुल्ल
कनय ॥ २५ ॥ मन्वदत् भीरुमन्त्रे भादराम विभीषणका गृह्ये
२ गटके परत अभिरक्ष कर दिना ॥ २५ ॥

त प्रसाद तु रामस्य वृदा सद्यः पूयद्रमामः ।

प्रमुक्तुमहात्मान साधुसाधिप्रति साम्रयन् ॥ २७ ॥
भगवान् भीरुमन्त्र यह तात्कालिक प्रवाद (अनुमह)के लकर
एक वानर हर्षवनि करने और महात्मा भीरुमन्त्रे साधुभा
वने लगे ॥ २७ ॥

मध्वीञ्च हनुमाच्च सुप्रीयच्च विभीषणम् ।
कथ सागरमस्तौभ्य तराम घटणाळयम् ।
सैन्यं परिषूता सर्वं वानराणा महौजसाम् ॥ २८ ॥

तस्यभात् हनुमान् और सुप्रीयने विभीषणके पूछा—
एक-
एव । हम सब लोग इस अखण्ड समुद्रका महाकाली वानरोंकी
सेनाओंके साथ किस प्रकार पार कर सकेगे ? ॥ २८ ॥

उपायैरभिगच्छथम यथा मयनवीपतिम् ।
तराम तरसा सर्वं ससैन्या घटणाळयम् ॥ २९ ॥

किस उपासके हम सब आग सेनाकेद्वारे नदों और नदियों-
के त्वासी बरणात्म समुद्रक पार कर सकें, यह सज्जों ? ॥ २९ ॥

एवमुक्तस्तु धर्मात्मा प्रत्युयाच विभीषणम् ।
समुद्रं राघवो राजा शरणं गन्तुमर्हति ॥ ३० ॥

उनके इस प्रकार पूछनेपर धर्मात्मा विभीषणके यों उचर
दिये—
एवमुक्तस्तु धर्मात्मा प्रत्युयाच विभीषणम् ।
समुद्रं राघवो राजा शरणं गन्तुमर्हति ॥ ३० ॥

कामिना सगरेणायमप्रमेयो महोदधि ।
फर्तुमर्हति रामस्य कालं कार्यं महोदधि ॥ ३१ ॥

इस भयपर महासगरके राजा समाने मुप्याय था ।
भीरुमन्त्रके कालक संघर्ष हैं । इच्छिये समुद्रका इनका
धम अथप्य करता चादिय' ॥ ३१ ॥

एष विभीषणनोका राक्षसत विपश्चिता ।
आजगामाय सुप्रीयो यत्र रामः सन्वक्रमणः ॥ ३२ ॥

विद्वान् राक्ष विभीषणक एवा करनेपर सुप्रीय उव स्थान-
पर भाये लगे अथभयकरित भीरुम विरमान थ ॥ ३२ ॥

ततश्चाक्यानुमारेमे विभीषणययः शुभम् ।
सुप्रीयो विपुलाप्रियाः सागरस्यापयशनम् ॥ ३३ ॥

यहो विपुल घोषनाथ सुप्रीयन समुद्रपर पला एतक
विरयने ल विभीषणका शुभ कथन था उने करना आरम्भ
किया ॥ ३३ ॥

प्रहृत्या धर्मात्तस्य रामस्याप्यव्यरोजत ।
सत्कर्मण महातजाः सुप्रीयं च हर्षिद्वारम् ॥ ३४ ॥
सन्निव्यायं क्रियादृक्षं क्षितपूषमभारत ।

भगवान् भीरुमन्त्रके धर्मात्तस्य ही धर्मात्तस्य प अना उन्हे
भा विभीषणकी यह बात अच्छी लग्य । महातज्जी गुणाक-
अ सत्कर्मण पर ए वानराण सुप्रीयम बनार राम
एव उत्रम मुमरायण का— ॥ ३४ ॥

विभीषणस्य मन्त्राय मम करमण राचत ॥ ३५ ॥

सुग्रीवः पण्डितो नित्य भवान् मन्त्रविद्यक्षणः ।
उभाभ्या सम्प्रधार्यार्थो रोचते यत्तदुच्यताम् ॥ ३६ ॥

कर्मणः । विभीषणकी यह सम्मति मुझे भी अच्छी लगती है परंतु सुग्रीव उन्नीषिणे बड़े पण्डित हैं और तुम भी समर्थापित कछाह देनेमें छद्म ही कुछ हो । इसलिये तुम दोनों प्रस्तुत कर्मपर अच्छी तरह विचार करके जब ठीक बने पड़े यह बताओ ॥ ३५ ३६ ॥

पश्यमुक्तो ततो वीराणुभी सुग्रीवलिङ्गमप्यौ ।
समुवाचान्वरसयुक्तमिन्द्र वचनमूचतुः ॥ ३७ ॥

ममामन् भीरुमके ऐस कबनेपर वे दोनों वीर सुग्रीव और कृष्णर टनसे आगरपूर्वक बोधे— ॥ ३७ ॥

किमर्थे नो रुग्ण्यद्य न रोषिष्यति राक्षसः ।
विभीषणेन यत्तूकमस्मिन् काले सुखावहम् ॥ ३८ ॥

पुनर्पाछे खुनन्दन ! इस समय विभीषणने आ मुझ दायक कत करी है यह हम दोनोंको न्यौ नहीं अच्छी सोचिये ! ॥ ३८ ॥

हजारों श्रीमद्रामायणे वाक्यकीबने आरिक्काम्ये बुद्धकाबने पृथगेविदित्वा सर्ग ॥ ३९ ॥

इस प्रकार श्रीमद्वल्मीकिर्मित्त आर्यमायव अरिक्काम्ये बुद्धकाबने उन्नीसवौ सर्ग पूरा हुआ ॥ ३९ ॥

विंश सर्ग

धादुलके फहनेसे रावणका झुकको दूत बनाकर सुग्रीवके पास संदेश भेजना, वहाँ वानरोंद्वारा उसकी दुर्बला, श्रीरामकी कृपासे उसका संकटसे छूटना और सुग्रीवका रावणके लिय उचर देना

तता विनिघं ध्वजिनो सुर्यायमाभिषाकित्याम् ।
वदता राक्षसाऽभ्यस्य शशुक्ल नाम पीषवान् ॥ १ ॥
घारा राक्षसराजस्य राजस्य दुर्गामनः ।
तां ह्युवा सयताऽभ्यमा प्रतिगम्य स राक्षसः ॥ २ ॥
आदिप्य लज्जं घमन राजान्विमन्मप्रवीह् ।

इसी बीचमें दुर्गामा राक्षसराज यक्षक गुनकर परकम्पी राक्ष धादुलके वहाँ आकर पगर-तटपर छावनी डान पड़ी हुई सुग्रीवद्वारा मुद्रित्त बानरी मन्त्र का बंता । अब आर कालभाप मे मिल हुई उक्त विगास मनास देगकर यह राक्षस लीट पदा और कन्दस लद्गापुरीम आर गज गजकल ना कथ्य— ॥ १ २ ॥

एव च धानरक्षीषा ननु ममभियतत ॥ ३ ॥
भगाधधायमयश्च द्वितीय इय म्नागरः ।

महागज ! त आर कन्दस भान बुद्धकाश क क दाहक्य न । नय भा रहा है । यह दुर्ग मन्त्रक ममान भगध और मन्त्रमे ॥ ३ ॥

भवदृष्या सागरं सेतुं घोरैऽस्मिन् ब्रह्मालये ।
सङ्गनासावितु शक्या सेन्दैरपि सुरासुरैः ॥ ३९ ॥

ऐस मयकर समुद्रमें पुल बने किन्तु इन्द्रपति ऐस और असुर भी इससे उद्गापुरीमें नहीं पहुँच सकत ॥ ३९ ॥
विभीषणस्य शूरस्य यथार्थं क्षियता यथा ।
मल कालस्यय कृत्वा सागरोऽय नियुज्यताम् ।
यथा सैम्येन गच्छन्नम पुरीं रावणपालित्यम् ॥ ४० ॥

अच्छिय आप शूरवीर विभीषणके यथार्थ रूपसे अनुरोध ही कार्य करें । अब अधिक विष्णु करना ठीक नहीं है । इस समुद्रसे यह अनुरोध किया अब कि वह हमरी सहायता करे किन्तु हम सेनाके साथ रावणपालित उद्गापुरीमें पहुँच सकें ॥ ४ ॥

पश्यमुक्तः कुशास्तीर्षे तीरं नदगदीपकः ।
सन्निवेश तथा रामो वेधामिष हुत्तधाना ॥ ४१ ॥

उन दोनोंके ऐस कबनेपर भीरुमन्त्रकी उस समय समुद्रक तटपर कुछ विष्णुकर उसके ऊपर उठी उठ गये जैसे वेदीपर अभिषेक प्रसिद्धि होते हैं ॥ ४१ ॥

पुत्री दशरथस्वयेमी आतरी रामनक्षमपी ॥ ४ ॥
उत्तमी रूपसम्यघी म्नीत्याया पश्यमगतौ ।

यद्य दशरथक य पुत्र दोनों माई भीरुम और कल्प यह ही रूपान् आर भेद वीर हैं । वे क्षीयक उच्चार करके लिय आ रहे हैं ॥ ४२ ॥

एतौ समगरमासाद्य सन्निषिधी महापुत्र ॥ ५ ॥
पल चाकप्रदामाधुष्य सयतो दशापाजन्म ।
तस्वभूत महागज सिम पदितुमहसि ॥ ६ ॥

महत्तकम्पी महागज ! य दोनों खुबसी कम्पी भी इस समय समुद्र तटपर ही आकर उतर हुए हैं । वनरोंकी यह मन्त्र मन्त्र भयन हम पाकर तबक पक्षी बानको परकर पड़ी उठरी हुई है । यह निरंकुल लोक पात है । अब गेज ही इन विराम विगाय बनेसगी प्राप्त करें ॥ ५-६ ॥

तत्र नृता महागज सिममहन्ति पदितुम् ।
उपप्रदान सामर पा भवा वाच प्रयुज्यन्तम् ॥ ७ ॥

प्राक्सम्प्राट् । आपके दूत शीघ्र खरी बालोभ्र पत्र
 ध्या धनेक शय्य है, अत उन्हे भेजे । तत्पश्चात् स्नेह
 उक्ति समस्त, पैस करे—चाहे उन्हे खीताक सौदा है, चाहे
 मुझसे भीड़ी-मीठी बातें करके उन्हे भजन पदमें लिख्य हैं
 अथवा सुधीन और श्रीयाममें पूट इत्यादि ॥ ७ ॥

दहर्षस्य पत्र भुव्या रात्रयो राक्षसेभ्यः ।
 उद्यम सहसा व्यग्रः सम्प्रभायाद्यमारमन् ।
 शुक्र साधु तदा रक्षो धाक्यमययिद्वां वरम् ॥ ८ ॥

दहर्षस्य शत मुनश्च यत्कथाय यत्र धन्या स्वप
 ही उठा और अपने कर्त्तव्यका निश्चय करके अथवा आगे
 भय शुक्र नामक राक्षसे यह उद्यम कर्त्तव्य ॥ ८ ॥

सुधीन ब्रूहि गत्याऽऽशु राजान वचनान्मम ।
 पथासंविशामह्नीव स्तब्धया परया गिरा ॥ ९ ॥

दूत । तुम मरे करनेसे शीघ्र ही बानरगज सुधीनक पास
 आओ और मधुर एवं उद्यम वाली श्राव निर्भीक्यार्थक जने
 भेज कर श्रेय करो—॥ ९ ॥

स्य ये महागजकुम्भप्रसूतो
 महाबलशररजस्तुतम् ।
 न कञ्चन्यस्तस्य नास्त्यन्य
 स्तायपि म आदत्तमो हरीदा ॥ १० ॥

“बानरगज ! आप बानरगज महागजक कुम्भ उद्यम
 हुए हैं । अररलीय श्रुधरजक पुत्र हैं और स्वयं भी बड़े
 कर्त्तव्य हैं । मैं आपसे अपने मार्गक समान समझता हूँ ।
 यद मुझे भावघ्न कर स्वयं नहीं बुझा है तो मरे श्राव
 आगम कर हानि भी नहीं हुए है ॥ १ ॥

यद् यद्यहर भायां राजपुत्रस्य धीमता ।
 किं तत्र तव सुधीय किंकिर्थां प्रति गम्यस्याम् ॥ ११ ॥

सुधीन ! यदि मैं बुद्धिमान राजपुत्र रामकी लीक्रे हर
 क्षय हूँ तो इतमें अथवा क्या हानि है ? अतः आप
 भिन्नभाषा लोचन ॥ ११ ॥

करीय हरिभिक्षुः प्राप्य दान्या कथयन् ।
 दूरपरि मगधर्षणः किं पुनररयानरे ॥ १२ ॥
 पदार्थे इन लक्षण बानरगज किछ तद भी नहीं
 पद्वय गन्त । यही श्रेयार्थों और गन्धर्वों भी प्रेष्य इन्द्र
 अथवा है फिर मनुष्य और बानरों की बल ही क्या
 है ॥ १२ ॥

स तदा गान्धर्वान् सत्रियो रजनीयकः ।
 शुभ्र विहगमा नृत्या लृणगान्दुय कम्बरम् ॥ १३ ॥

उद्यम तदा गान्धर्वान् इन्द्रस्य कम्बरान्तर उद्यम
 निष्पन्न पुत्र तदा गान्धर्वान् कम्बरान्तर करके गुरव
 आगमने उद् पद्य ॥ १३ ॥

स गत्या दूरमध्यान्मुपयुपरि सागरम् ।
 सखितो ह्यम्बरे वाक्य सुधीवमिन्द्रमधीत् ॥ १४ ॥
 सयमुक पथाऽऽदिष्ट रायमेत दुरात्मना ।

समुद्रक ऊपर-शी-ऊपर बहुत दूरक यथा ठे करके वह
 सुधीनक पास आ पहुँचा और आकाशमें ही उड़कर उठने
 दुःखमा यत्राफी आरुह्य अनुगार वे शरी शर्तें सुधीनसे
 करी ॥ १४ ॥

तत् प्रापयन्त वचन तूर्णमाप्सुस्य यानराः ॥ १ ॥
 प्रापयन्त तदा क्षिप्र लोन्नु हस्तु य मुधिभिः ।

क्षिप्र समन यह श्रेय मुना या या उनी समय बानर
 उच्छ्वर दुरत उमक पास आ पहुँचे । वे चाहते थे कि हम
 शीघ्र ही इसकी पौलें नोच लें और इसे पौलें ही मार
 दें ॥ १५ ॥

सर्वैः पूष्यैः प्रसभ निरुहीतो निदाचरः ॥ १६ ॥
 गगन्मक् भूत्से चाष्ट प्रतिगुह्यावतारितः ।

इस निश्चयक क्षय कर बानरोंने उस निदाचरको कम्-
 पूषक पक्ष लिया और जे कर करके तुरंत आकाशसे नृत-
 पर उद्यम ॥ १६ ॥

यानरैः पीडयमानस्तु शुक्रो वचनमग्रधीत् ॥ १७ ॥
 न दूष्यन् ज्ञानि कङ्कुरस्य धायन्तां साधु धामरा ।
 यस्तु हित्वा मठ भर्तुः समस्त सम्प्रधारयेत् ।
 भनुकषायी दूतः सन् स दूतो वधमर्हति ॥ १८ ॥

इस प्रकार बानरोंक पीड़ा देनेपर शुक्र पुत्र उद्यम—
 प्पुनन्दन । रामक दूतोंक वच नहीं करतें हैं, अतः
 श्राव इन बानरोंक मत्रीमति रोकिये । जो स्वामीके अभियोग
 का छोड़कर अपना मठ प्रकट करने क्कता है वह दूत किन्ना
 करी हुई शत करनेय अपवधी है अतः यही वपक कम्प
 क्षय है ॥ १७-१८ ॥

शुक्रस्य वचन रामः भुव्या मु पण्डितवत् ।
 उवाच मावधिपेति ज्ञताः शक्यामृगयमान् ॥ १९ ॥

शुक्रक वचन और विषयमें मुनश्च भगवान् श्रीगमने
 उभ वीरनेयक प्रनुग पानरोंक पुत्रकर कर—इने मन
 माण ॥ १ ॥

स च पत्रलघुभृत्या हर्षिभिक्षुं गान्धर्वम् ।
 भन्तरिक्ष स्थिता नृत्या पुनवचनमग्रधीत् ॥ २० ॥

उभ कम्पनक शुक्रक पौष्य और उद्यम इन्द्र ही गय
 था (कौंकर बानरोंने उठे नाच श्राव्य थ) फिर उद्यम
 अथवा देनेपर शुक्र आगमने गदा हा गय और पुन-
 वचन—॥ २ ॥

सुधीन गन्धर्वगण महापन्धरानम् ।
 किं मया कसु पन्ध्या गदया स्तद्वराचय ॥ २१ ॥

महान् क्व और परक्रमसे युक्त शक्तिप्राप्ति सुधीव ।
समस्त ब्रह्मैवास्मिन्नस्मिन् रावणका मुने आपकी धरेसे क्या
उत्तर देना चाहिये ॥ २१ ॥

स परमुक्तं ह्यवगाधिपक्ष्वा
ह्यवगाधमाभ्युत्थो महाबलः ।

उपाय वाक्य रजनीश्वरस्य
वार युक्तं युद्धमर्शनसत्त्वा ॥ २२ ॥

शुक्रक इत प्रकर पूछनेपर उस समस्त अपिधियोगमि महा
कपी उद्यतनेका ध्यानरतन सुधीवन उस निष्कारक वृत्ते पर
सय एव निष्पन्न बात कही— ॥ २२ ॥

न मेऽसि मित्र न तथायुक्तमप्यो
न योपकृतासि न मे प्रियोऽसि ।

मरिच्य रामस्य सहायुषम्भ
सतोऽसि चालीय वधार्हं धन्यः ॥ २३ ॥

(वृत् । तुम रावणसे इत प्रकर कहे—) बचके योग्य
वद्यत्न ! तुम न तो मेरे मित्र हो न दयाके पत्र हो न
मेरे उपकारी हो और न मेरे प्रिय व्यक्तिसे ही धरे हो ।
महात्मा श्रीरामके वधु हो इस प्रकार अपने सो-सम्बन्धियों
कहे तुम यात्रीकी मोक्षि ही मेरे शिष्ये बच हो ॥ २३ ॥

निहाम्यह त्वां समुत्त सबाधु
सञ्जातिवर्गो रजनीश्वरेण ।

लङ्का च सर्वा महत्या बन्धेन
सर्वैः करिष्यामि समेत्य भक्त ॥ २४ ॥

निष्कारक । मैं पुत्र बन्धु और कुटुम्बीकोंकहित
तुम्हारा श्वर करूँगा और सभी भरी सेनाके साथ आकर
समस्त लङ्कापुरीको भक्त कर दूँगा ॥ २४ ॥

न मोक्षयस रावण राज्यस्य
सुरैः सद्योऽपि मूढ गुता ।

मत्सहितः सूर्यपथ गतोऽपि
सपैव पातालमनुमेषिषु ।

गिरीशपादाभ्युत्सगता या
हतोऽसि रामेण सहानुत्सल्यम् ॥ २५ ॥

मूल खत । यदि इन्द्र आदि समस्त देवता तुम्हारी
रक्ष करे तो भी भीष्मप्रायकीके हाथसे मत् तुम जीवित नहीं
पूट सकोगे । तुम भक्तपति हो जहाँ आश्रयमें चले जहाँ
पावसमें पुत्र जहाँ भयना महादेवकी चरणाभिन्दाश्र
भाभय से फिर भी अपने स्वर्गलोकित तुम भवस्य भीरुम-
पत्रकीके हाथमें मारे जाओगे ॥ २५ ॥

तस्य त विपु लाङ्कु न पिशाच न राक्षसम् ।
घालारं धनुपदयामि न गन्धर्वे न स्वासुरम् ॥ २६ ॥

कीर्ती क्षरामं मुने कर भी पिशाच राक्षस गन्धर्व या

भसुर एवा नहीं दिलायी देवा से तुम्हारी रक्ष कर घने ।
भयभीतस्य जराबुद्ध गृधराजं जटायुपुम् ।
किं नु ते रामसानिष्ये सक्वशो लक्ष्मणस्य च ।
इत्या सीता विशालमहती यां त्व गृह्य न बुध्यसे ॥ २७ ॥

भिरघ्नके बड़े यमराज नटायुको तुम्हने क्यों मरा ।
यदि तुममें नडा बल था तो भीरुम और लक्ष्मणक पासे तुम्हने
निष्कारकोकर सीताको अपहरण क्यों नहीं किया ? तुम किं
कीं स आकर अपने सिरपर भायी हुई विपुचिन्ना क्यों नहीं
समस्त रहे हो ? ॥ २७ ॥

महाबल महात्मान दुराधर्म सुरैरपि ।
न बुध्यस रघुष्येष्ठ यस्त प्राणान् हरिष्यति ॥ २८ ॥

पुत्रकुलीशक भीरुम महाकपी महात्मा और देवप्रा-
क शिष्ये भी बुद्धमें हैं किन्तु तुम उन्हें मर्मीतक समझ नहीं
सके । (तुमने शिष्यकर सीताको हरण किया है परंतु) मैं
(धरने आकर) तुम्हारे प्राणोंको अपहरण करूँगे ॥ २८ ॥

ततोऽप्रवीध् यातिमुत्तोऽप्यह्नो हरिसत्तमः ।
नाय वृत्ते महाराज वारकः प्रतिभाति मे ॥ २९ ॥

मुक्ति दि वल सवममेन तव तिष्ठत् ।
शुद्धता मागमत्सुमेतदि मम रोचते ॥ ३० ॥

तत्पश्चात् धानुषिपमपि यस्मिन्मर अहने कस-
प्यहारन मुझे तो यह वृत्त नहीं कोई गुतचर प्रतीत होता है । श्ले
क्यों लगे-लगे आपकी खरी सेनाको माप-लोक कर शिष्य है—
पूय-पूय अंतुष्य कहे सिद्धा है । अत इते पक्ष शिष्य
बालः सङ्को न जाने पये । मुझे यही ठीक जल पत्र
है ॥ २९ ॥ ॥

ततो राज्ञ सम्प्रदिष्टा समुत्पत्य वध्वीमुक्ता ।
अगुह्यं बन्धुबन्ध विस्फुल्लमभ्यववत् ॥ ३१ ॥

किं तो राजा सुधीवके आदेशसे बानरने लक्ष्मणके ओ
पक्ष सिद्धा और गौप दिष्ट । वह बन्धुपत्नी मनावकी मी
विष्णु कहेया था ॥ ३१ ॥

मुकस्तु यानरैश्चर्ष्वैस्तत्र तैः सम्प्रदीहिता ।
व्याशुकोश महात्मान राम वृदारघामजम् ।

लुप्येठं न वदाम् पत्नौ भिद्येते मे तथासिषी ॥ ३२ ॥
यां च रात्रि मरिष्यामि जाय रात्रि च यामहम् ।

पतस्मिन्नतर काले यम्मया हाद्युभ फृतम् ।
सर्वे तनुपपद्येया जहां चत् यति जीवितम् ॥ ३३ ॥

उन प्रकृष्ट बानरोंसे पीड़ित हो मुझे वरपन्नत
महत्मा भीरुमको बड़े बरसे पुत्राय और कदा—प्राये ।
सकृत्क मेरी लीले नाची और अंशु पाही च गी है ।
यदि आज मने श्याको समा किया तो मित यमने मय मन

हुन्वा या और किस रतको मैं मरेंगा, कम और मरणके इस मध्यस्थी फलमे, मेने जे भी पाप किया है वह सब भापके ही ज्योइ ॥ ३२ ३३ ॥

नपस्तपत् तदा रामः भुज्या तल्परिदेधितम् ।

हृत्पापे श्रीमद्रामायणे वाक्यीक्रीये आदिकाण्डे युद्धकाण्डे विंशः सर्गः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीवचननिर्मिते श्रीरामायण आदिकाण्डे युद्धकाण्डे बीसवें सर्ग पूरा हुआ ॥ २ ॥



एकविंश सर्ग

श्रीरामका समुद्रक तटपर कुशा विछाकर तीन दिनोंतक धरना देनेपर भी समुद्रके दर्शन न देनेसे क्रुपित हो उसे बाण मारकर विमुग्ध कर दना

एताः सागरयत्नार्थां यभानास्त्रीय राक्षसाः ।
मञ्जलिं प्रकृमुखाः हृत्या प्रतिशिष्टये महोत्थम् ॥ १ ॥

तदनन्तर श्रीयुवाधी समुद्रक तटपर कुशा विछा महाकारक समस्त हाथ जोड़ पूजाभिमुख हो वहाँ छट गये ॥

याहुं मुञ्जङ्गभागाभमुपधायास्त्विन्दनः ।
जातकामपक्षय भूपयैभूयित पुरा ॥ २ ॥

उस समय शत्रुमूक श्रीरामने उसके शरीरकी भोंसि कम्पन और धनपासक पहल छनेके बने हुए सुन्दर आभूषणमे सदा विभूषित रहनेवाली अपनी एक (शक्तिनी) शोइके तर्किया बना रक्सा या ॥ २ ॥

मणिकान्धनकेयूरमुक्तामकरभूषणैः ।
मुञ्जैः परमन्वरीणामभिनृष्टमनकथा ॥ ३ ॥

अप्यायाम रहत समय मनुष्यदिकी अनेक उत्तम नारियों (पापों) मणि और मुक्ताके बने हुए क्यूँ तथा मक्तीके भेद आभूषणमे विभूषित अपने कर-कमलशाय नहसने-पुष्टने आदि समय अनेक बार भीरामक उस शोइके सज्जनी और दखनी थीं ॥ ३ ॥

यन्नुन्मगुरुभिन्धय पुरस्तदभिनयितम् ।
पालमूयप्रक्षयैश्च यन्नुनकपशाभितम् ॥ ४ ॥

पहल कन्दन और अगुम्मे उस शोइकी गया दानी थीं । पाल-सकल मूसरीकी क्षणितपात्र लाल चन्दन उसकी सजावट कराने पर ॥ ४ ॥

शयन व्यासमाह्वान मीलाया गाभित पुरा ।
तप्तस्त्वय सस्त्रभाग गद्गाज्जलनिराधितम् ॥ ५ ॥

अप्यहंगम परम गयनसकल मीलाया मिर उस शोइकी सज्जनी बदन पर और सज्ज सज्जपात्र मिर एवं सज्ज कन्दन चर्चित इइ यह शोइ गद्गाज्जलन निरगत करनकाप तैः तप्तस्त्वय मीलाया मीलाया मीलाया थीं ॥ ५ ॥

१ गद्गाज्जलन सज्जनी बदन पर और सज्ज सज्जपात्र मिर एवं सज्ज कन्दन चर्चित इइ यह शोइ गद्गाज्जलन निरगत करनकाप तैः तप्तस्त्वय मीलाया मीलाया मीलाया थीं ॥ ५ ॥

धानरानप्रवीद् रामो मुच्यता वृत भगवत् ॥ ३४ ॥
उस समय उसका यह विचार सुनकर भीरामने उसका वच नहीं होने दिया । उन्होंने वानचने कहा-छोड़ दो । यह वृत शंकर ही अपना या ॥ ३४ ॥

सयुगे युगसकत्रश शत्रूणा शोकवधनम् ।
सुहृदा नमून श्रीमे सागगन्तव्यपाभयम् ॥ ६ ॥
मुद्ररुतमे नृपके समय यह विचार सुन शत्रुओंका शोक बढ़ानेवाली और सुहृदोंके तीर्पसकलक अनन्वित करनेवाली थी । समुद्रपवन भगवत् नमूनश्रीका शोक भर टनकी लखी सुहृदपर प्रतिष्ठित था ॥ ६ ॥

अस्पता च पुनः सत्य ज्यापातविहसत्यचम् ।
क्षिप्तो दक्षिण याहुं महापरिधसनिभम् ॥ ७ ॥
गोसहस्रप्रदातारं ह्युपधाय मुञ्ज महत् ।
मद्य म तरण याद्य मरण सागरस्य या ॥ ८ ॥
इति रामा पूति कृत्या महायाहुमहावधिम् ।
अभिधाद्ये च विधिवत् प्रयत्न निष्तो मुनिः ॥ ९ ॥

वासी आरक्य शरधार बाण चयनेक कारण प्रत्यक्षाक अथापने किसकी स्वचार राइ पड़ गयी थी, अब विद्यास परिषद समन मुद्रत् एवं बलिष्ठ थी तथा शिष्टक हाथ उन्होंने लखे गोभेके शन क्रिया था उस विद्यास दक्षिणी मुद्रत्क तर्किया अगुम्मे उद्योग भादि गुणमे युन महायाहु भीराम भाव या ल मे समुद्रक पर शर्कण या महायाहु समुद्रक उदार दण्ड एता निधय परत मन हा मन पापी और शरीरका उपममे रणकर महायाहुक अनुकूल करनेक उद्देश्य विधिवत् प्रयत्न इन सब का युक्तान्तर ल गय ॥ ७-९ ॥

तस्य रामस्य मुमस्य पुनार्त्तार्णो मर्त्तियः ।
नियमादप्रमत्तस्य निगास्तिस्राऽभिनयस्युः ॥ १० ॥
कुम बिडी हुए नमून शर निरगत कान्धन न हात हुए भीरामकी वही शन गये उदा हा गता ॥ १० ॥
स त्रिरायातिस्तत्र तयमा धमरामस्यः ।
उपासत तदा रामः स्वामा मरिता पनिम् ॥ ११ ॥
न च द्वापत रूप मन्दा रामस्य सागरः ।
प्रयतन्वापि रामस्य यथाहमभिवृत्तः ॥ १२ ॥

नष्ट हो जायेंगे। उस स्थानमें तब यहाँ कलके स्थानमें विद्यालय
बालकशालादि पैदा हो जायेंगे ॥ २ ॥

मन्त्रमुक्तियुक्तेन शरद्वर्षेण सागर।
पर सीगं गमिष्यसि पद्मिन्द्वयं द्रुवगमाः ॥ ३ ॥

समुद्र । मेरे धनुषद्वारा श्री गणेश वाण-वपसि जन्म लेयी
पंथी दशा हो जायगी तब बानरज्यमें पैदा हो चककर तब
उस पार पहुँच जायेंगे ॥ ३ ॥

विबिम्बान्नाभिज्जानासि पौष्टयं त्वयि विक्रमम्।
वृत्तत्रालयं स्नात्वा मत्तो माम् गमिष्यसि ॥ ४ ॥

गन्धर्वोंके निवासस्थान । वृक्षेण चारों ओरसे बहकर
आयी हुई सज्जपिका संहर करता है। तुमसे मेरे बह और
परक्रमण पता नहीं है। किंतु याद रख (इस उपसंहारके
कारण) तुमसे मुझसे भरी संताप प्राप्त होगा ॥ ४ ॥

ब्राह्मणेणाख्येण संयोज्य ब्राह्मणवृद्धिभिर्न शरम्।
संयोज्य धनुषि श्रेष्ठं किञ्चकारं महाबलम् ॥ ५ ॥

या बहकर महाशक्ति शीघ्रगन्त एक ब्राह्मणके समान
मर्कट वाणसे ब्रह्माक्षसे अभिमन्त्रित करने अपने श्रेष्ठ धनुष-
पर चढ़ाकर लीचा ॥ ५ ॥

तस्मिन् विक्रुष्टे सहसा राषयेण शरानमे।
रोषी समप्रफलेन पक्ताया बभूवसि ॥ ६ ॥

भीरुधनुषीके द्वारा छद्म उस धनुषके लीचे बरत ही
शुभी और भाङ्गध माना करने को और फल ब्रह्मगमा
उठ ॥ ६ ॥

तमश्च ज्येष्ठावमे विशाच न क्वचिदिरे।
प्रतिबुधुभिर्न चाशु सरासि सरितस्तथा ॥ ७ ॥

खरे संवरसे अन्यकार का गया। किसीके विशाभोकर
ज्ञान न रहा। सरिताभों और शरकोमें तत्काल इसका पैदा
हो गयी ॥ ७ ॥

तिर्यक् च सह मत्तमैः सगती बभूवभास्करी।
भास्कराशुभिरापीप्तं तमसा च समापृतम् ॥ ८ ॥

चन्द्रमा और सूर्य नक्षत्रोंके साथ तिर्यक्-गतिसे चलने
का। सूर्यकी किरणसे प्रकाशित होनेपर भी भाङ्गधमें
अन्यकार का गया ॥ ८ ॥

प्रथम्यादौ सदाऽऽकाशमुत्सृज्यशतविधैरिषिभिः।
मास्तरिशाब्धं निघातय निजैश्चरुतुल्यसन्ना ॥ ९ ॥

उस समय भाङ्गधमें सैकड़ों उपसर्ग प्रकटित होकर
जसे प्रकाशित करने लगी तथा अन्तरिक्ष अनुसन्ध जब गयी
गङ्गादाहृत्य साथ चक्रण होने लगा ॥ ९ ॥

ययुःशरैर्वैष ययुर्बिम्बमाकलयन्कन्या।
पञ्च च तदा वृक्षाश्चतस्रानुदहन्मुनिः ॥ १० ॥

शरद्वर्षेण दैव्यप्राप्तिशस्त्राणि यभञ्ज च।

परिवह आदि वायुमेवाका समूह बड़े वेगसे चलने लगा।
वह मेघोंकी फटाके उड़ता हुआ धर-धर पृथ्वीको तोड़ने, बड़े
बड़े पर्वतोंसे चकटने और उनके शिखरोंको लपित करने
गियन लगा ॥ १० ॥

विधि च स्म महामेघाः सहताः समहासनाः ॥ ११ ॥
मुमुक्षुर्नैषुतमन्मोस्ते महाशम्पस्तदा।
यानि भूतानि बहूयानि सुकुशुम्भारानेः सप्तम् ॥ १२ ॥
महदयानि च भूतानि मुमुक्षुर्नैषुतनम्।

भाङ्गधमें गहान् वेगशक्ति विद्युत् वज्र गयी गङ्गादाहृत्य
के साथ टकराकर उस समय वैद्युत् अग्निकी गर्वा करने लगी।
जो प्राणी दिखानी वे रहे वे और जो नहीं दिखानी रहे के
पं सब निष्केशी कड़कने समान मन्त्रकार छन्द करते
लगे ॥ ११ १२ ॥

शिखिरेषु चाभिभूतानि सत्रस्तम्बुद्रिजलि च ॥ १३ ॥
सम्प्रविष्णुधिरे चापि न च पस्पस्विरे भयात्।

उनसे कितने ही अभिभूत होकर पशुपत्नी लगे।
कितने ही भयभीत और उडिना हो उठे। अग्नि-वपसिसे समुद्र
हो गये और कितने ही भयके मारे चकट हो गये ॥ १३ ॥
सह भूतैः सद्योपोमिः सनाता सहस्रसताः ॥ १४ ॥
सहस्रामूत् ततो बंगात् भीमवेगो महोष्धिः।
योजनं व्यसिचक्रम वक्ष्यमभ्यत्र सम्प्लवत् ॥ १५ ॥

समुद्र अपने भीतर खनकने प्रायित्तों, तरङ्गों, लों और
रज्जुवैरहित लहर भयानक वेगसे मुक्त हो गया और मन्त्र-
कारके निना ही तीव्रस्तिसे अपनी मनादा ऊँचकर एक-एक
योजन आगे बढ़ गया ॥ १४ १५ ॥

त तथा समतिक्रान्त नात्किञ्चन राज्याः।
समुद्रतममिजज्ज्ये रामो नव्वलीपतिम् ॥ १६ ॥

इस प्रकार नहीं और नशियोंके लक्ष्य उस उग्रत छुड़के
मनादा ऊँचकर बढ़ जानेपर भी शत्रुमुद्रन भीमपत्तन
अपने स्थानसे पीछे नहीं हटे ॥ १६ ॥

ततो मध्यात् समुद्रस्य सानारा स्वयमुत्पिता।
उत्पापि महाशीलसम्प्रेरोरिष विषाकरा ॥ १७ ॥

तब समुद्रके बीचसे आकर स्वयं मूर्तिमान् होकर मन्त्र
दुःसा माना महाशील मन्त्रपर्वतके आश्रित उद्वेगधमें सूर्य
उदित हुए ॥ १७ ॥

पन्तरोः सह वीताम्यीः समुद्राः प्रत्याहस्यत।
किञ्चैवैषुपसञ्चारा जम्बून्मृषिभूषणाः ॥ १८ ॥

चन्द्रके मुखकाय स्वकिं साथ समुद्रवा दर्शन हुआ।
उपरा जब शिखर वैद्युत्प्रकट समान स्थान पर। उक्त
जम्बून्मनामक मुकपके पन हुए आभूषण पत्तन करने ॥ १८ ॥

इस प्रकार उस क्षण वहाँ तीन पक्ष छोड़े रहकर नीलिके जहातः धर्मैकत्वात् श्रीरामचन्द्रकी स्त्रियाओंके स्थानी स्मृद्रकी उपासना करते रहे परद्र नियमपूर्ण करते हुए भीरामके द्वारा बचोचित पूषा और छक्कर पाकर भी उस मन्दमति महात्मनसे उन्हें अपने भाषितैकिक रूपका दर्शन नहीं करया—वह उनके सम्बन्ध प्रकट नहीं हुआ ॥११-१२॥

समुद्रस्य कृता कृद्यो रामो रक्तमन्त्रध्वजः ।
समीपस्त्वमुपायोत् लक्ष्मण शुभिलक्ष्मणम् ॥ १३ ॥

तत्र बरुणनेत्रप्रान्तवाले भवान् श्रीराम स्मृद्रपर कुण्ठित हाँ उठे और पास ही लड़े हुए शुभिलक्ष्मणयुक्त लक्ष्मणसे इस प्रकार बोले— ॥ १३ ॥

अथलेपः समुद्रस्य न द्वांयति या स्वयम् ।
प्रदामाद्य क्षमा वैष भाद्रप म्रियवाविता ॥ १४ ॥
असामर्थ्यफलाद् द्वेते निर्गुणेषु सतां गुणाः ।

स्मृद्रको अपने ऊपर बड़ा अहङ्कार है किन्ते वह स्वयं मेरे खाने प्रकट नहीं हो रहा है। घाण्टि, क्षमा, लक्ष्मण और मधुर भाषण—ये सब स्मृद्रकोके गुण हैं। इनका गुणहीनोके प्रति प्रयोग करनेपर बड़ी परिणाम होख है कि वे उस गुणवान् पुरुषको भी असमर्थ समझ लेंते हैं ॥

अक्षरप्रशंसितं तुष्ट घृष्ट विपरिध्वंसकम् ॥ १५ ॥
सर्वभोक्तृदुष्टदण्ड च लोका सत्कुरुते नरम् ।

जो अपनी प्रशंसा करनेवाला तुष्ट घृष्ट, लंघन पाया करनेवाला और भण्डे-बुरे सभी क्षोणिक कठोर दण्डका प्रयोग करनेवाला होता है, उस मनुष्यका एक क्षोणिक करते हैं ॥ १५ ॥

न सान्द्र शक्यते कीर्तिर्न सान्द्र शक्यते धरा ॥ १६ ॥
प्रभु सङ्गम लोकेऽसिद्धयो वा रजभूर्धनि ।

सकल्प । खम्भीति (घण्टि) के द्वारा इस अक्षर न ही कीर्ति प्राप्त की जा सकती है न यशस्व प्रखर हो सकता है और न संभ्राममें विभव ही पायी जा सकती है ॥

अथ महात्मनिर्भयै मकरैर्मकराक्षयम् ॥ १७ ॥
निकरतोय सौमित्रे दुवद्रिः पश्य सतता ।

सुमित्रानन्दन । आभ मेरे हाँसेले लख-लख हो मार और मरस लख और उतरकर बहने क्षोणे और उनकी क्षोणिते इस मकरधन (स्मृद्र) का सब भाष्कसहित हो सकता है। तुम यह दृश्य भाव अपनी मौलौ देल लो ॥ १७ ॥

भागिन्वं पश्य भागानि मया भिन्नानि लक्ष्मण ॥ १८ ॥
महाभोगानि मरुत्तानां करिणां च करानिह ।

सकल्प । तुम देख कि मैं यहाँ अन्धमें खड़ेवाले छोटके छोटके, मरुत्ताने विद्याल क्रेबर और लख-लखोंके गुण-दण्डके किन्त लक्ष्मण इ-दुबड़े कर जाकता हूँ ॥

सद्यःशुक्तिक्रवाजः समीपमकर उष ॥ १९ ॥
अथ युजेन महता समुद्र परिशोषये ।

प्रायः महान् युद्ध उतकर लड़ों और खसिक स्मृद्रय तथा मत्स्यो और मरुत्तवित स्मृद्रके में अर्थ मुलाये देता हूँ ॥ १९ ॥

क्षमया हि सम्युक्तं मामय मकरतल्प ॥ २० ॥
असामर्थे विनाशति भिक्षु क्षमामिहो जग ।

प्रायःकर नियासभूत यह स्मृद्र मुझे क्षमते युद्ध देव अक्षय्यै समझने लगा है। ऐसे मूलक प्रति की गयी लक्षके भिक्षु है ॥ २० ॥

न द्वांयति साम्द्र मे सत्तारो रूपमारमता ॥ २१ ॥
यापमानय सौमित्रे शरार्थाशरीरिणापमता ।
समुद्र शोषयिष्यामि पशुभ्यां यान्तु प्रवगाम्ना ॥ २२ ॥

सुमित्रानन्दन । खम्भीतिक भाषय लनेसे वा कर मेरे खाने अपना रूप नहीं प्रकट कर रहा है। इसीसे धनुष तथा विषकर सौमित्र समान मरुत्त बाण छे मरुत्त । मैं स्मृद्रको मुला बार्णव कि बलज्जना देव छे लक्ष्मणको चले ॥ २१-२२ ॥

अथाक्षोभ्यमपि कृद्यः क्षोभयिष्यामि सापरम् ।
बेखसु ह्यतमर्षात् सहाक्षोर्मिसामाकुसम् ॥ २३ ॥
निर्मर्षात् करिष्यामि सापदैवदण्डपास्यम् ।
महार्णय क्षोभयिष्ये महावाक्चक्रकुसम् ॥ २४ ॥

यद्यपि स्मृद्रको अक्षोभ करा गया है किन्तु मैं अक्ष कुण्ठित होकर मैं इसे विधुम्ब कर दूँगा। इसमें लखों लखों उठते रहती हैं किन्तु मैं यह लदा अपने लक्ष्मी मरुत्त (धीमा) म ही रख है। किन्तु अपने बालोंसे मारकर मैं इसकी मर्षाश नष्ट कर दूँगा। बड़े-बड़े जनतासे मेरे हुए इस महात्मनसे इच्छा नष्ट दूँगा—दुःखन ल दूँगा ॥

पशुमुक्त्वा धनुष्याणिः कर्षयिस्सस्त्ररितेसजग ।
धनुर्व रामो दुर्धर्यो युगात्सस्त्रिरिव ज्वलन् ॥ २५ ॥

जो करकर दुर्धर्यो नीर भवान् श्रीरामने शत्रुमें धनुष छे क्षिना । वे क्षोभते भौनिक का करकर देलने लगे और प्रकामिक ध्यान प्रकामित हो उठे ॥ २५ ॥

सम्पीड्य च धनुष्योः कम्पयित्वा शरैर्जगत् ।
मुमोच विशिष्यानुमान् यशानिय द्यतक्रुः ॥ २६ ॥

उन्होंने अपने मरुत्त धनुषको पीरते बकाकर ऊपर पावला चढ़ा ही और उसकी टुटारते सरे करको क्षिप्त करते हुए बड़े मरुत्त बाण छोड़े मरुत्त इन्ते बलुत्त करको मार किया छे ॥ २६ ॥

ते पञ्चन्तो महावेगयतेजसा सापकोत्तम ।
प्रथिशस्ति समुद्रस्य जग विषक्तपन्तम् ॥ २७ ॥

तेजसे प्रस्फुलित होते हुए वे महान् वेगवाली भेड़ बाघ समुद्रके किनारे घुस गये । वहाँ खनेवाले छेद भस्मते फर्क उठे ॥ २७ ॥

श्लोकः समुद्रस्य समीपमकरो महान् ।
स बभूव महाघोरः समाकटरपस्तथा ॥ २८ ॥
पत्थों और मगरोंद्वारा महाखरके कबूतर महान् को खल भस्मत मरकर हो गया । वहाँ पक्षनका कबूतर उड़ गया ॥ २८ ॥

मूर्ध्निमाताविद्यताः शङ्खशुक्तिसमापृता ।
सधूमः परिवृत्तोर्मिः सहस्रासीन्महोदधिः ॥ २९ ॥
बड़ी-बड़ी तरङ्ग-माल्यमोते खप समुद्र म्नात हो उठा । शङ्ख और शीशियाँ पानीके ऊपर छा गयीं । वहाँ धूमों उठने लगा और सारे महासागरमें खल बड़ी-बड़ी चरों चकर चढ़ने लगीं ॥ २९ ॥

व्याधिताः पन्थाभ्यासन् वीर्यस्या वीरिलोचनानां ।
दन्त्याभ्य महावीर्याः पत्थकृतलयासिनाः ॥ ३० ॥
चमकीले जन और वीरिणीवाली नेत्रोंवाले सँ स्फुलित हो उठे तथा पत्थकमें खनेवाले महासागरमें दानव भी म्नाकृत हो गये ॥ ३० ॥

कर्मणः सिन्धुराजस्य सन्क्रमकरस्तथा ।
विन्ध्यमन्वरसकानां समुत्पेतुः सहस्रशः ॥ ३१ ॥
सिन्धुराजकी खसों चरों वा किन्धाचज और मन्वरचक्रके समान विशाल एवं विलकृत भी नाक्यों और मकरको खप स्थिये ऊपरका उठने लगीं ॥ ३१ ॥

म्याधुविततरङ्गीयः सम्भ्रान्तोरगरासतः ।
उद्वर्तितमहाप्राहः सधोयां पदपातयत् ॥ ३२ ॥
खरकी उलक तरङ्ग-माल्यमोते धूमने और चकर चढ़ने लगीं । वहाँ निवाल चनेवाले नाग और राक्षस पस्त गये ।

इत्थं धीनद्राम्बाणे पास्मीक्ष्ये अरिक्वमे पुद्गकापे एकदिशः सर्गः ॥ ३३ ॥

इत प्रकार धीनद्राम्बाणे अरिक्वमे पुद्गकापे एकदिशमें सर्ग हुआ ॥ ३३ ॥



द्वाविंश सर्ग

समुद्रकी सलाहके अनुसार नलके द्वारा सागरपर सौ योद्धन लंघे पुलका निमाण तथा उसका द्वारा धीराम आदिसहित वानरसेनाका उस पार पहुँचकर पढ़ाय डालना

अथायाव रघुध्रेष्ठः सागरं द्वादश पथः ।
अथ म्ना "आपविष्यामि स्वपालक महालय ॥ १ ॥
अथ रघुपालका भीगमने समुद्रमें चरत म्नामने उदा
पदस्थान ! आज न पदस्थानके पुत्रे हुए उदा ॥ १ ॥

बड़े-बड़े प्राह ऊपरके उलकने लगे तथा परपक निवालभूत उठ समुद्रमें लप ओर भारी क्वाहल मच गया ॥ ३२ ॥

सतस्तु त राघवमुद्रवेग
प्रकरमाज धनुःप्रमेयम् ।
सौमित्रिकल्पस्य विनिम्बसन्त
मामेति घोफत्वा धनुरालम्बये ॥ ३३ ॥

उदन्तर भीरुनापक्षी रूपसे लनी गोंग स्ते हुए अपने मरकर वेगवाली अनुपम धनुषको पुनः खींचने लगे । यह देल सुमित्राकुमार कल्पन उलककर उनका पक्ष ल पढ़ने और लक मक भव नहीं; भव नहीं ऐछ करते हुए उलकने उनका धनुष पकड़ लिया ॥ ३३ ॥

एतद्विन्दपि ह्युदधेस्तवाद्य
सम्पत्स्यते वीरतमस्य कथयम् ।
भवद्विधाः क्रोधवशां न यान्ति
वीर्ये भवन् पदयत्तु साधुधुत्तम् ॥ ३४ ॥

(फिर वे बोले—) वीर्या ! आप वीर-धिराम्बाणि हैं । इस समुद्रको नष्ट किये किना भी भयका करके सम्पन्न हो जायगा । भय-वैसे महापुरुष क्रोधके अधीन नहीं होते हैं । भय भय सुदीर्घकालक उपमामने लभ्ये जानेवाले किसी अच्छे उपकरण दधि बाँधे—करें दूखी उच्चन युक्ति खर्चें ॥

अन्तर्हितैर्भावि तपस्तारिहो
प्रह्लाविभिद्वैव सुरपिभिर्भा ।
शब्दः कृतः कष्टमिहा धुयद्वि
मामेति घोफत्वा महता स्वरैज ॥ ३५ ॥

इस समय अन्तर्हितमें अभ्यकरूपसे स्थित महर्षियों और देवर्षियोंने भी भाव ! यह तो पड़े कल्पी शल दे ऐछ करते हुए भव नहीं भव नहीं चरकर यह भारत क्वाहल किया ॥ ३५ ॥

शरन्त्रिधत्तापम्य पविद्रुफ्कम्य सागरः ।
मया निहतमस्यस्य वामुक्त्यपज महान् ॥ २ ॥
पदग ! मर कागाम तुंगी मर्ग जगम दम्ब हा
अपरी नू म्ना लस्य भार उर नीम्ब रत्नग मर नीव

नष्ट हो जायेंगे। उस स्थानमें तब यहाँ सबके स्थानमें विद्यास
सङ्गच्छति पैदा हो जायेंगे ॥ २ ॥

मत्कामुकविच्छेदेन शरयण्येण सागर ।
पर तीर गमिष्यसि पद्मिरेव पुष्पगमाः ॥ ३ ॥

पद्मद्र । मरे पतुपद्रव्य ही गनी शय-कर्मसे सब तेरी
एसी दृष्ट हो जायगी तब बनारसमें पैदा हो चक्रर तरे
उस पर पहुँच जायेंगे ॥ ३ ॥

विकिम्बनाभिजानासि पौरुष न्यपि विक्रमम् ।
दानयालय सत्पत्रं मघो माम गमिष्यसि ॥ ४ ॥

दानवीक निदानस्थान ! तू दृष्ट हो जाते हैं अरसे बहकर
आयी हुई सबदशिक्रम संभ्रम फल है। तुझे मरे सब और
परकमत्र फल नहीं है। किंतु बाद रक्त (इस उपेक्षके
कारण) तुझे मुझसे मारी संताप प्राप्त होगा ॥ ४ ॥

ग्रहणेणाख्येण स्यात्स्य ग्रहण्यन्निभ शरम् ।
सयोम्य धनुषि श्रेष्ठ पिबकप महावलाः ॥ ५ ॥

वो चक्रर महाकधी भीरुमने एक ब्रह्मवपुके ध्यान
भयकर शपथ ब्रह्मसते भविमनिगत करके अपने श्रेष्ठ पतुप-
पर चक्रर सींच ॥ ५ ॥

तस्मिन् किञ्चे सहसा राघवेण शरासन ।
रोक्षी सम्पत्प्रलय पथकम्ब अकस्मिन् ॥ ६ ॥

भीरुपुनापकीके शरण लम्ब उस पतुपके सींच जाते ही
शुभी और भाकरा मानो फटने लगे और परत डगमग
उठे ॥ ६ ॥

तमम्ब अकमाश्रमे विराभ न चक्रशिरे ।
प्रतिष्णुभिरे वायु सरासि सरितस्तथा ॥ ७ ॥

खर संखरमें भयभकर छा गया। किष्कीके विद्याभोका
खन न रहा। सरित्तभा और सखरीमें उत्कम्ब इच्छस पैदा
होगी ॥ ७ ॥

तिर्यक् च सह मासैः सगती बन्धुभास्करी ।
भास्कराशुभिरादीत तमसा च समभूतम् ॥ ८ ॥

चन्द्रमा और सूर्य नक्षत्रोंके साथ तिर्यक् गतिसे चलने
लगा। सूर्यही किणोसे प्रकाशित होनेपर भी आकाशमें
अन्धकार छा गया ॥ ८ ॥

प्रथकानं तथाऽऽकनममुल्लवरातकिरीपितम् ।
भन्तरिभाष निघत्या निर्धमुरतुलसमाः ॥ ९ ॥

उस समय आकाशमें तैरती अकार्य प्रवृत्ति होकर
उने प्रकाशित करने लगी तथा भन्तरिसम अनुसम एवं मारी
गद्गद्वाहटक साथ बहने लगे ॥ ९ ॥

पतुप्यकप्येण पतुपिन्वमादतपककया ।
दभञ्ज च सदा वृक्षाञ्जलानुसह मुहुः ॥ १० ॥

भयकरद्वैव शैलाप्राप्तिशरणि कभद्र च ।
परिवह आदि वायुमेंदोष समूह बड़े काले बने
बह मेघोंकी भयका उड़ता हुआ बारबार बूझेंगे उन
बड़े परतोंसे टकराने और उनके मिलनेकी तन्नि
गिजने लगे ॥ १० ॥

द्विचि च स्म महामेघाः सहताः समाहातया ।
मुमुक्षुर्धुतानम्नास्ते महाशान्यस्तथा ।
यानि भूतानि दृष्ट्यानि शुक्रयुग्माशनेः समम् ।
भद्रदयानि च भूतानि मुमुक्षुर्भैरवलतम् ।

आकाशमें न्यान वेगलक्षी विद्यास बन्न भरी गहन
के खप टकराने उस समय बहुत भन्तिरी वारां फले
जो प्राणी विलायी वे रहे थे और जो नहीं विलायी
वे सब विच्छेदीकी फड़केके समान भयंकर गए
लगे ॥ ११ १२ ॥

शिदिपरे धामिभूतानि सन्नस्तस्युद्विज्जित च ।
सम्प्रविष्यदितरे चापि न च पत्यन्तिरे भयात् ।

उनमेंसे कितने ही भविभूत होकर पराधीन हो
कितने ही मन्धीत और उद्विग्न हो उठे। कोई मन्धते
हो गये और कितने ही मयक मारे जाकर हो गये ॥ ११ ॥

सह भूतैः सतोयोमिः सनागाः सहरासतः ॥
सहसामूत् ततो वेगात् भीमवेणा महोधिः ।
योन्नन व्यतिचक्रम वेखामन्यत्र समूकत् ॥ १२ ॥

छुद्र अपने भीतर खनेवाले प्राणियों, तर्कों, और
रक्षकगहित सख मन्धक केसे मुक्त हो गए और
कम्ब केना ही तीव्रगतिसे अपनी मयाका अंधकार एक
येका भागे बंद गया ॥ १४ १५ ॥

त तथा समतिचक्रस्त नातिचक्रम राष्या ।
समुद्रतममिषणा रामो नक्षत्रीपतिम् ॥ १६ ॥

इस प्रकार नहीं और नदियोंके स्थानी उस उदर ल
मयाका अंधकार बंद होनेपर भी शतुसूदन भीरुमक
अपने स्थानसे पीछे नहीं हटे ॥ १६ ॥

छयो मध्यात् समुद्रस्य सागरः स्वयमुत्थितः ।
उत्पत्तिमहादीप्तान्मेराविव विवकत ॥ १७ ॥

तब समुद्रके बीचसे धगर स्वय मुक्तिमान् हाकर
हुआ माना महादीप्त नेचपरतके भङ्गभूत उदराकाले सूर्य
अधित हुए हीं ॥ १७ ॥

पन्नीः सह वीतमन्यैः समुद्रः प्रत्यददत्त ।
किमभ्यैवैर्यसंक्षयाः जाम्बुन्ध्विभूषणाः ॥ १८ ॥

अमकीके मुलवाले सूर्यके साथ समुद्रका रत्न हुआ
उसका बर्ण रत्नव वैदूर्यमणिके समान लम्ब था। उ
जाम्बुनन्धमक सुवर्णके बने हुए आनन्द पदन रखे थे ॥



श्रीरामरत्न मण्डलिका कला

रक्तमास्याम्बरधरः पद्मपत्रनिभेक्षणः ।

सवपुष्पमयीं दिव्या शिरसा धारयन् स्रजम् ॥ १९ ॥

धाम रंगकं दूर्वाक्षी माय तथा यत्न ही वक्र धारण क्रिये
थ । उक्तं नेत्र प्रकृष्य कम्बुद्वन्द्वके स्मान मुन्दर थे । उक्तने
स्वितर एक दिव्य पुष्पमत्था धारण कर रक्ती थी, जो स्र
म्बरक दूर्वामे बनायी गयी थी ॥ १ ॥

उत्तररूपमयैश्चनेय तपनीयविभूषणैः ।

ध्यात्मज्ञाना च रताना भूयितो भूयणोत्तमैः ॥ २० ॥

मुषर्णं और लोके हुए क्रात्रनक भाभूयण उक्तरी घोष
कृतने थे । वह अपने ही भीतर उरन्त कृष्ण रत्नोंक उत्तम
मान्भूणोते विभूषित ग ॥ २ ॥

भक्तुभिमगिञ्जतः शैल्यो विधिर्धर्मिहमवागिष ।

एक्यवक्षीमध्यगत तरल पाण्डुरप्रभम् ॥ २१ ॥

विपुलनारसा पिभक्तकीस्तुभस्य सहोत्तरम् ।

इष्टिसिं नना प्रकरके पातुमोते अकृत शिवाय पत-
के स्मान घोमा पात या । वह अपने विद्याल कष्टस्यवर
शैलुम मणिके शहर (शर) एक श्वेत प्रमसे मुक्त
मुष्ण रत्न धारण क्रिये हुए था, जो मनीमोक्षी इक्षरी मायक
पम्भमं प्रकथित हो रहा था ॥ २१ ॥

पूर्विततरङ्गौघः क्वलिक्वलित्सकुलः ॥ २२ ॥

शस्त्रिण्युप्रधानाभिराणगाभिः समावृताः ।

पञ्च तरङ्गं उषे परे हुए थी । मयमध्य और नायुमे
प्यत या तथा गङ्गा और सिन्धु भादि नदियों उमे स
रमे परकर लकी थी ॥ २२ ॥

शक्तिमहासाहः सम्भ्राण्णोरगराक्षस ॥ ३ ॥

स्नात्वा सुकृपाभिमालारुपाभिरिन्द्रियैः ।

गागरा समुपक्रम्य पूर्वमामन्त्र्य धीयवान् ॥ २४ ॥

प्रियीक्षु प्राञ्जनिशान्य राघव तत्पणितम् ॥ ॥

उक्त भीतर वहे-वहे साह उद्भ्रान्त हो रहे थे नाग
गेर राक्षस पक्षय हुए थे । देवताभाक समान मुन्दर रूप
प्रभ करक अक्षी दुर्गे विभिन्न रूपधारी नदियोंके साथ गन्धि
गयी नहीनी समुद्रे निकर भाकर परकं अनुपर धीयुप्रमथ
विध सम्प्रथित क्रिये भात फिर हाथ ढाड़कर कहा—२३

हृषीषी पापुराकृणामागो ज्योतिष राघव ।

कथाप सीम्य तिष्ठन्ति दशभर्तं मयासाधिताः ॥ २६ ॥

श्रेयस् गुणवन्त ! दूर्वा नायु भयमय जन् और
वह—१ मरुत अन्त स्वभावमें स्थित रहते हैं अन्ते कण्ठन
म्याद्य कन् नही जाइते— तथा उर्ध्वक भालि रहते
हैं ॥ २६ ॥

कन्धभावा ममाप्यय परगाथाऽहमदृया ।

विश्वरस्तु भयद् गाय पान् न प्रवदास्यहम् ॥ २७ ॥

परु भी यह स्वभाव ही है जो मैं अगण और
भयार हूँ—और मर पार नहीं हो सकता । यदि मरी थाह
मिक्त रूप तो वह निम्नर—नर स्वभावका स्पर्शिक्रम ही शय्य ।
इच्छिमे मैं भांसे पार हानका यह उपाय फलदा हूँ ॥ २७ ॥

न कदापि च लोभाद्वा न भयात् पार्थिपात्मज ।

प्राहन्तश्चकुलजल स्तम्भयेय कयचन ॥ २८ ॥

एनकुमार ! मैं मगर भार नाक भद्रदिने मरे हुए अपने
कम्बु क्रीडी कम्माने, खेमेसे अथवा मयमें किसी तरह
क्षमिक्त नहीं हने दूँगा ॥ २८ ॥

शिघ्रास्ये येन गन्धसि विगहिव्यऽप्यह तथा ।

न प्राहा विधमिप्यन्ति यावत्सेन्य हरिप्यति ।

हरीणां तरण यम करिप्यामि पथ्य म्यत्नम् ॥ २९ ॥

श्रीराम ! मैं एका उष्य स्ताक्रेण, किसी भाग मेरे
पार चक्रे ज्योते प्राह पातरोक रूप नहीं दैगे क्षरी मेना पर
उत्तर न्यायी और मुझे भी लो नही होगा । मैं भयक्षनिमे
म्व कुष्ठ पर मूँडा । वानरोंक पार जानेक लिये भिन्न प्रकर
पुत्र बन जाय, वेला प्रयत्न मैं करूँगा ॥ २ ॥

कमप्रधीत् तदा राम शृणु म वदण्यत्नय ।

भमोषोऽप महाबाह्यः कस्मिन् द्यो निधाम्यताम् ॥ ३० ॥

तप श्रीरामचन्द्रजीन उक्ते कहा—स्वभाष्य ! मेरी
कल गुन । मरु यह विगाळ पात्र भयाप है । कथाभ्य इने
किन् स्थानपर छोड़ा जाय ॥ ३ ॥

रामस्य दक्षत क्षुधा त च हृद्यु महातरम् ।

महोद्धिमहातजा राघव याच्यमप्रधीत् ॥ ३१ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका यह पक्षत गुनकर और उन महान
पापक देवकर महातक्यी महाकगतन रणुनापकीमे कहा—
उत्तरजायकशयऽस्ति कश्चित् पुष्पतरो मम ।
तुममुन्म्य इति क्यातो म्येक क्याता यथा भवान् ॥ ३२ ॥

प्राय ! मेने कर्ममें आर क्षय निकलत एवं पुण्यामा
है, उक्ते प्रकर मेरे उत्तरी और तुमकुण्य नामन विप्यल
एक वहा ही एविव बग है ॥ ३२ ॥

उमदशलक्याणा पश्यस्यत्र इत्यय ।

आभीरप्रमुखाः पापा विपस्मि मन्दिन् मम ॥ ३३ ॥

पहली आभेर भाति इन्दियों बहुत म मनुष्य नियम
परत है किन्क रूप और कम बह ही भवानक है । व म-
कन्व पायी और पुरो दे । व मया मया जन् वीन दे ॥ ३३ ॥

निज कर्मदान पाप मलय पापकमभिः ।

अमाफ विपता राम भय तत्र गगनात् ॥ ३४ ॥

उत्तर यदन्तरि म मया मया तत्र दय रदय दे इत

पापको मैं नहीं सह सकता । भीरम ! आप अपने इस उद्यम
बाणको वहीं उल्लस करीबिने' ॥ ३८ ॥

तस्य तद् बचनं श्रुत्वा सागरस्य महात्मना ।
मुमांघ त शरं वीरं परं सागरवर्षान्नात् ॥ ३९ ॥

महात्मना समुद्रक्य बह बचन सुनकर सागरके रिसाये
मनुखर उठी देघामे भीरमकनत्रकीने बह अस्फल प्रबलित
बाण छोड़ दिया ॥ ३९ ॥

तत्र तन्मस्फलात्पार पृथिव्यां किञ्च विभ्रुत्सम् ।
नित्यास्तिका शरो यत्र ब्रह्माशमितसम्प्रभा ॥ ३९ ॥

वह बज्र और भगनिके समान तेजस्वी बाण किञ्च स्थान
पर मिला था; वह स्थान उध बाणके क्षरण ही पृथ्वीमें दुर्गम
मरभूमिके नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ३९ ॥

मन्वद् य तद्वा तत्र वसुधा शाश्वपीडित्वा ।
तस्माद् मन्वसुक्तात् तोषमुत्पपात् रसतलम्पद् ॥ ३७ ॥

उध बाणसे पीडित होकर उध सम्य वसुधा आर्तनाद
कर उठी । उसकी पारसे जो छेद हुआ; उसमें होकर रसतल-
का सब ऊपरके उठकने लगा ॥ ३७ ॥

स बभूव तद्वा कूपो मत्र इत्येष विभ्रुत्सम् ।
सतत शोत्पितं तोषं समुद्रस्येष दृश्यते ॥ ३८ ॥

वह छिद्र कुएँके समान हो गया और जगके नामसे
प्रसिद्ध हुआ । उस कुएँसे कदा निकलता हुआ सब समुद्रके
कम्पकी भाँति ही दिखानी देव है ॥ ३८ ॥

मन्वदारपशब्दश्च बाहया समपद्यत ।
तस्मात्तद् वापपातनं भयः कुक्षिष्मशोरस्यत् ॥ ३९ ॥

उध सम्य वहाँ भूमिके विदीर्ण होनेका मन्वकर शब्द
सुनायी पड़ा । उध बाणको मिनकर वहाँके भूतलकी कुक्षिमें
(तात्पर्य-छेदके अर्द्धिमें) वर्तमान कम्पके भीरमने सुना
दिया ॥ ३९ ॥

बिष्यात् जितु खोलेषु मरुकात्पारमेव च ।
शोपयित्वा तु त कुक्षिं रामो वृषारपात्मजाः ॥ ४० ॥

वर्षं तस्मै वदी विद्वान् मरवेऽभरविक्रमः ॥ ४१ ॥

उन्ने बह स्थान धीनों कम्पमें मरुकात्पारके नामसे ही
बिष्यात् हो गया । जो परके समुद्रका कुक्षिपरेश था उसे
मुलाकर देखेयम परकमी विद्वान् वृषारफन्दन भीरमने उध
मरभूमिके बरदान दिया ॥ ४० ॥ ४१ ॥

पशम्याध्याश्रययोगश्च फलमूसरसायुक्तः ।
बहुस्तहा बहुस्रीः सुगामिर्विधिपौर्यधिः ॥ ४२ ॥

एह मरभूमि पशुआके सिव दितकरी इष्टी । वहाँ
एग कम होंगे । बह भूमि फल, मूष और रतौसे सम्पन्न
इष्टी । वहाँ ही भादि किन्ने पदार्थ अधिक तुष्टम हीने

पूषकी भी बहुतायत इष्टी । वहाँ सुगम्य क्वरी, रसें
अनेक प्रकारकी ओषधियाँ उत्पन्न होंगी' ॥ ४२ ॥

एवमेतैश्च संयुक्तो बहुभिः सयुतो मरुः ।
रामस्य धरदाभाक्य शिवः फण्या बभूव ह ॥ ४३ ॥

इस प्रकार भगवान् भीरमक धरदाभने पर मर
इस तरहके बहुसंख्याक गुणोंसे सम्पन्न हो उनके सिवः
क्वरी मार्ग बन गया ॥ ४३ ॥

तस्मिन् वग्धं तद्वा कुक्षी समुद्रः सर्जितां पतिः ।
रायव सयवद्वाराभिमिर्दं पञ्चममजरीवत् ॥ ४४ ॥

उध कुक्षिलानके इग्ध हो जानेपर छरितामोंके
समुद्रने समूर्ण धाओंके अन्त भीरमुन्मजरीसे कहा—
अय सौम्य नस्ये नाम तनयो विभ्रकर्मजा ।

पिबा वत्तवरः भीमान् प्रीतिमान् विभ्रकर्मजाः ॥ ४५ ॥

सौम्य ! आपकी सेनामें जो बह नर नामक क्वरी
बानर है उसका विभ्रकर्मजा पुत्र है । इसे इतके सिद्ध
कर दिया है कि धूम मरे ही सम्य सम्य स्थान
नियुक्त होओगे ? प्रभो ! आप भी तो इस विभ्रके अन्त
कर्म हैं । इस नरके हृदयमें आपक प्रति बड़ा प्रेम है ॥

एव सेतु महोत्साहाः करोतु मयि कानरः ।
तस्मै धारविष्यामि यथा श्रेय रिता तत्र ॥ ४६ ॥

एह महान् उदासीबानर अपने पिताके समान ही
कर्मने समर्थ है; अन्त यह मरे ऊपर पुत्रक निर्माण
में उध मुझको धारण करेगा' ॥ ४६ ॥

एवमुक्त्वोत्थिनंश्च समुत्थाय नरकसतः ।
ममपीव कनरोश्रेष्ठो बाहय राम म्हावकम् ॥ ४७ ॥

यों क्वकर समुद्र अहरह हो गया । तब बानरके
उठकर महात्मकी भगवान् भीरमने बोला— ॥ ४७ ॥

शर्द्धं सेतु करिष्यामि बिस्तीर्णं मकराशये ।
पितुः सामर्थ्यामासाद्य तत्त्वमाह महोत्थिः ॥ ४८ ॥

प्रभो ! मैं बिताकी ही हुई शक्तिसे पाकर इत नि
समुद्रपर सेतुका निर्माण करूँगा । महात्मने वीर
है ॥ ४८ ॥

वृक्ष एव करो स्मक पुत्रस्येति मे मतिः ।
भिक्षु क्षामाहृतशेषु सत्त्वक दातमप्यपि वा ॥ ४९ ॥

एवमने पुत्रके सिव अहृतकोंके प्रति इच्छने
प्रयोग ही करते बड़ा अर्थवचक है एव मेरा सिद्ध
है । मैं कर्मोंके प्रति क्षमा कन्यना और दान्नी
प्रयोगके बिचार ह ॥ ४९ ॥

अयं हि सागरा भीमः संतुक्मविद्यतया ।
वदी वृक्षभयाद् गाध रायबाप महात्थि ॥ ५० ॥

अयं हि सागरा भीमः संतुक्मविद्यतया ।
वदी वृक्षभयाद् गाध रायबाप महात्थि ॥

पुत्र मयातक सुदुःखे यथा स्मरक पुत्रोने ही बनाया
हे। फिर भी इतने दुःखद्वारे नहीं दण्डके मयसे ही सेतुकर्म
देखनेकी इच्छा मनमें स्मरक भीरुनापन्दीय अपनी
याह ही है ॥ ५ ॥

मम मातुषये वृथा मन्वरे विद्वकमया।
मया तु सहदाः पुत्रस्तव देवि भविष्यति ॥ १ ॥

भन्दरचक्रपर विभक्तमाश्रीने मरी मलाक नह कर दिया
याकि देवि। तुम्हारे गर्भसे मेरे ही सम्यन पुत्र होगा ॥ ५ ॥

भौरसस्तम्य पुत्रोऽहं सहदा विभक्तमया।
स्मरिताऽस्म्यहमेतन्न तस्यमाह महोवधिः।
न चाप्यहमनुक्तो घः प्रमृयामात्मघा गुणान् ॥ २ ॥

पुत्र मकर में विभक्तमाश्र भौरस पुत्र हूँ और शिस्-
कर्मने उन्कीक समान हूँ। इस सुदुःखने भाव मुझे इन सब
कठोरक स्मरण रिमा दिया है। महात्मगर्भने अब कुछ कहा
है ठीक है। मैं त्रिपु पुत्रे भावकर्मसे अपने गुणोंका नहीं
क्या सक्रय या; इसीलिये भवतक पुत्र था ॥ ५ ॥

समर्थाप्यह सेतु कर्तुं ये वृथात्तये।
तस्मात्पृथिव यजन्तु सेतु धानरपुत्रया ॥ ३ ॥

यै महात्मारणर पुत्र कौचनेमे समर्थ हूँ अतः सब
बानर आन ही पुत्र कौचनेक कर्म आरम्भ कर है ॥ ५ ॥

स्ता विच्छ्या रामेण सधतो हरिपुत्रया।
उत्पततुमहारण्य ह्यथा शतसहस्रदा ॥ ४ ॥

सब मयातक भीषमक मन्वरेने इसलौ बड़े-बड़े बानर
हैं और उक्तकर्मने मरकर सब आर उच्छ्रते हुए गये और
बड़े-बड़े समर्थने पुत्र गये ॥ ५ ॥

त नमान् नरासक्यदाः दास्तासुगणगणभाः।
यश्चतुः पादपास्तत्र प्रथकपुत्र्य सागरम् ॥ ५ ॥

वे पकक समान विद्याक्रमय बानरघिठेमत्रि पर्वक-
विगतों और शृणोंक अह वते आर उन्हें सुदुःखक सींच
सने व ॥ ५ ॥

त नारोऽप्यकर्षेभ्य धरैर्वैगीभ्य धानरा।
कुट्टैरजुर्नक्षत्रसंज्ञितकस्तिमिरीरि ॥ ६ ॥

विद्यार्कः ममर्षाणीभ्य क्षत्रिण्यरैरैभ्य पुष्यितैः।
पूनाधारोऽकृत्सैभ्य सागर समपूरयन् ॥ ७ ॥

ब सब भयकर्म पर सोक कुट्टक भङ्ग लाक
मिन्द मिनिग वर क्षिप्त मिग हुए कनेठ अम
और भयक भवि इष्टम सुदुःख घटने हने ॥ ५ ॥ १ ॥ ७ ॥

ममूर्वाभ्य विमृत्वाभ्य गाव्यान् हरिसत्तमाः।
एद्रक्षन्तिशापस्य प्रवद्वानरास्तकन् ॥ ८ ॥

ब भेद वनर वानर शृण वदम उपाह लोके या
पक उन्वले भी उह ध्या व। इन्द्रपवक सम्यन ऊंच-

ऊंच इच्छेके उठाने लिये चले आत व ॥ ५ ॥
ठालान् वाडिमगुल्माभ्य नारिकेल्यभिषीतकान्।
करीरान् पङ्कजान् निम्बान् सम्राज्ज्वरितस्तक ॥ १९ ॥

तर्को; अनारकी हाडियों नारियक और बरेहेके इच्छे,
करीं वडुक तथा नीमक भी इषर उभरसे ताड़-खोड़कर
सने लो ॥ ५ ॥

हस्तिमात्रान् महाकण्या पापायाभ्य महापल्लवः।
पवतांभ्य समुत्पाद्य यन्त्रैः परियहन्ति च ॥ १० ॥

महाकव्य महावली बानर हापीक सम्यन यकी-बही
प्रिभाभों और पर्वतोंक उठाकर यन्त्रों (विभिन्न लक्ष्णों)
हाय सुदुःखतर स उन्ते व ॥ ६ ॥

प्रक्षिप्यमात्रैरन्वलेः सहसा अक्षमुत्ततम्।
समुत्ससप चाकशामबासर्पान् तता पुना ॥ ११ ॥

शिखलशोंक केंद्रनस सुदुःखक जब सहस्र आश्रयम
उठ उन्ता और फिर बहोसे नीचक निर कता था ॥ ६ ॥

समुद्र शोभयामासुनिपत्तन् समस्तता।
सूषाप्यये प्रगृहन्ति ह्यापत इतयोजनम् ॥ १२ ॥

उन बानरोंने सब आत कपर विद्याकर सुदुःखने हस्यक
मया ही। कुछ दूर बानर छे योक्त कंब सूत पकई
हुए थे ॥ ६ ॥

नववक्रके महासेतु मध्ये मदनशीपता।
स तथा कियत सेतुधानरैर्षौरकमभिः ॥ १३ ॥

नव नरों और नरियोंक क्षामी सुदुःखक पीचने महान्
सेतुक निमग्य कर रहे थे। मयंकर कर्म करनेवाले बानरोंने
मिन्न-बुद्धकर उत समय सेतुनिमात्रक कर्म आरम्भ
किया था ॥ ६ ॥

एतानम्य प्रगृहन्ति विचिन्वन्ति लघापर।
धानरैः शतदास्तत्र रामस्याश्रयपुरैः ॥ १४ ॥

मयाभैः पयताभैश्च लुप्यः क्षाण्डैरपमिधर।
पुष्यितार्मभ्य सतभिः सतु यजन्ति धानराः ॥ १५ ॥

कई नामक लिये दण्ड पकईत व तो कर सम्यनी
उद्यम व। भीषमकदुःखकी भाव्य विगंधान करक सेकई
बानर जो पत्तों और मयोंक सम्यन प्रतीत हान व यहाँ
मिन्नकों और कगोंकय निभ निभ स्वर्णोंक पुत्र कथ रह
।। मिन्नक भ्रमन्ता शृणैक तर व पय शृणैकय भी
वे वनर मनु कौचन व ॥ ६ ॥ १ ॥ ५ ॥

पारायाभ्य गिरिप्रक्यान् गिरिणां शिखरायि च।
इष्टमन्त परिधावन्त्य गृह्य दानपमन्निभाः ॥ १६ ॥

पर्वतों-बही बही-बही नामने और पर्वत शिखर मकर
कब और श्रेष्ठ वनर इन्द्रक सम्यन रि ली लन व ॥

शिव्यानां क्षिप्यमाथाना शैश्वरानां तत्र पत्न्यवत्सम् ।

बभूव तुमुका शम्भुस्तथा तस्मिन् महावधौ ॥ ६७ ॥

उच कस्य उच महासागरम् देवी क्वती दुर्गं शिष्यभों
और निरपये जते हुए पशार्थों निरनेसे बड़ा मीषण घण्ट
हो या या ॥ ६७ ॥

कृतानि प्रयमेनाह्य याञ्जनानि चतुर्दश ।

महदौघजलस्योत्सवरमौः ॥ ६८ ॥

हाथीके समान विद्यासम्पन्न बानर बड़े उत्साह और
तंबीके साथ काममें लगे हुए थे । पहरें दिन उन्होंने
पौरह यंत्रन संभा पुत्र बोधा ॥ ६८ ॥

द्वितीयेन तथैवाह्य याञ्जनानि तु विचरतिः ।

कृतानि स्रवणैस्तूर्ण भूमिकर्षयैर्महाबलैः ॥ ६९ ॥

द्वि वृत्ते दिन मसंकर शरीरवाले महाबली बानरोंने
उंचीसे काम करके बीच योजन संभा पुत्र बोध दिया ॥ ६९ ॥

अथा तृतीयेन तथा योजनानि तु सागरः ।

त्वरमाप्यमहाकायपरेर्षविसारिष ॥ ७० ॥

तीसरे दिन तीसरे प्रकार के कामम लुटे हुए महाकाय
कर्मियोंने समुद्रमें इक्षिप्त यान्न संभा पुत्र बोध दिया ॥ ७० ॥

चतुर्थेन तथा चाह्य द्वाविंशतिरथापि यः ।

पौत्रान्वानि महावेगैः कृतानि त्वरितैस्तथा ॥ ७१ ॥

चौथे दिन महान् वेगावाली और शीघ्रकारी बानरोंने
बारें योजन संभा पुत्र भेरे बोध दिया ॥ ७१ ॥

पञ्चमेन तथा चाह्य स्रवणैः क्षिप्रकरिभिः ।

योजनानि त्रयोविंशत् सुषेकमधिकृत्य वै ॥ ७२ ॥

तथा पाँचवें दिन शीघ्रता करनेवाले उन बानर शीघ्रोंने
सुषेक पर्यंतके निष्कृतक ठेहरें योजन संभा पुत्र बोधा ॥ ७२ ॥

स धानत्वरः श्रीमान् विश्वकर्मा मञ्जो बली ।

वचन्थ सागरे सन्तु यथा चाम्य सिद्धा तथा ॥ ७३ ॥

इस प्रकार विश्वकर्माके बलान् पुत्र कान्तिमान् कविभय
नक्षने समुद्रमें लगे योजन तथा पुत्र तैयार कर दिया । इस
कार्यमें वे अपने शिवाक समान ही प्रसिध्यावाली थे ॥ ७३ ॥

स तन्नेन कृतः सन्तु सागरं मकरालयः ।

दुःसुमे सुभगः धीमान् स्वातीपथ इद्याम्बर ॥ ७४ ॥

मकरालय समुद्रमें नरक शाय निर्मित हुआ पर
दुन्दर और शोभावाली सेतु भागानमें स्वातीपथ (जाया-
पथ) के समान सुशुभित होता था ॥ ७४ ॥

तथा द्यावा सगन्धवा सिद्धाह्य पत्नर्ययाः ।

भ्यागम्य गगनं तस्पुत्रपुत्रकामस्तद्दुहताम् ॥ ७५ ॥

उस समय द्यावा गन्धवा निद्रा और मूर्छि उच
नर्भुन बावरा इतनेके सिव भ्रमणम भाकर यह थे ॥

वृथायोजनविक्षिपीयं यत्तयोजनमप्यवत्सम् ।

वृथानुर्वेकगन्धर्वा नक्षत्रेण सुसुप्कारम् ॥ ७६ ॥

नक्षत्रे काने हुए ली योजन अने और इस योजन
पीढ़े उच पुत्रको देवताओं और गन्धर्वोंने देला; किने
काना बहुत ही कठिन काम था ॥ ७६ ॥

भ्यागृह्यताः गृह्यन्तश्च गर्जन्तश्च ग्लुबगमाः ।

तमविक्षिप्यमसह्य च ह्यभूत् क्षोमहर्षणम् ॥ ७७ ॥

वृथशुग सर्वभूतानि सागरं सन्तुबन्धनम् ।

बानरलोगे भी इधर उधर उछल-कूदकर गर्जना करते
हुए उच अविनय, अहंकार अद्भुत और रोषवाली
पुत्रको देल रहे थे । समस्त प्राणियोंने ही समुद्रमें लगे
बोँबनेकर बह कार्य देला ॥ ७७ ॥

तानि क्रोटिसहस्राणि क्लाराणां महौजसाम् ॥ ७८ ॥

वचन्ता सागरं सेतुं जम्बुगं पारं महोद्यमेः ।

इस प्रकार उन खरस श्रेणि (एक लाख) महाबली
एवं उत्तरी बानरोंके एक पुत्र बोँबने-बोँबने ही समुद्रके उच
पर पहुँच गया ॥ ७८ ॥

विशालाः सुकृताः श्रीमान् सुसूयिः सुसमाहिताः ॥ ७९ ॥

अयोभय महान् सेतुगं लीमन्त इव सागरे ।

बड़े पुत्र बड़ा ही विशाल, सुन्दररखे कन्या हुम्ब,
शोभावाली, समस्त और सुसम्बल था । वह महान् लगे
उपरमें क्षीमन्तके समान खोमा पाठा था ॥ ७९ ॥

उतः पारे समुद्रस्य गन्दापाणिर्बिभीषणः ॥ ८० ॥

परेयामभिधातार्यमसिद्धत् सन्धिर्वैः सह ।

पुत्र तैयार हो करनेपर अपने सन्धिबोँबने साथ निर्यात
गया हाथमें केकर समुद्रके दूरे उधर लड़े हो गले; किन्तु
शत्रुपक्षीय यक्ष यदि पुत्र तोड़नेके किने अर्थ लगे उन्हें
रख दिया था लगे ॥ ८० ॥

सुभीवस्तु उतः प्रह राम सत्यपराक्रमम् ॥ ८१ ॥

हनूमन्त्वं त्वमारोह भङ्गव त्वय सङ्गमया ।

अयं हि विपुञ्जो धीर सागरो मकरालयः ॥ ८२ ॥

वैहायसी युष्ममेती बानरी भारविष्यताः ।

उदन्तर सुभीके उषारयन्त्री भीषणते अर्थात्
धीवर । भाग हनुमान्के कथेपर यह खड़े और अस्य
भङ्गवर्षी पीठपर उबार हो के स्त्रोंकि वह मकरालय समुद्र
बहुत संश-न्योहा है । ये दोनों बानर अज्ञान-संगति
चन्देबाध हैं । अतः ये ही दोनों भाग दोनों मरवाँमे
पारण कर लगे ॥ ८१ ८२ ॥

अपवस्तस्य सैन्यस्य श्रीमान् रामः सतहम्पणः ॥ ८३ ॥

अगम्य धर्म्या धमरामा सुभीपण समन्वितः ।

इस प्रकार चतुर्पर एवं धर्मराम भगवान् भीषण

कर्मण और सुप्रसन्न साथ उस सेनाक आगे-अगे बड ॥
 मन्य मय्यन गच्छन्ति पादर्वतोऽन्ये द्रुपगमा ॥ ८४ ॥
 सलिल प्रपठस्यस्ये मागामस्ये प्रपेक्षिरे ।
 केचिद् दीहापसगताः सुपजा इव पुत्रुष्टुः ॥ ८५ ॥

बूधे यनर सेनाक बीचमे और भक्त-काल्ये हकर
 न बगे । क्रितने ही यनर क्कम कूद पडत और तैर
 च्छत ये । बूधे पुसन्न माग पकइकर बडत य और
 नही भ्रष्टगमेरछठकर गकइक समान उइत पा ॥ ८४ ८५ ॥

पथ म्हात्र घोष सागरस्य समुच्छिद्यतम् ।
 ममन्तर्द्वेष भीमा तरन्ती हरिवाहिनी ॥ ८६ ॥

इस प्रकार पथ बडी हुए उस मन्कर यनर-सेनाने
 से म्हात्र घोषत समुद्रकी वदी हुई मीरन गर्वनाथ भी
 व विष ॥ ८६ ॥

मरात्या हि सा तीर्णा वाहिनी म्हासेतुमा ।
 रं निश्चिदिशे राघो वहुमूलफलमंशुके ॥ ८७ ॥

धीरधीर यनरधी करी सेना म्हाक कनाथ हुए पुलसे
 म्हाक उस पर पहुँच गयी । एका सुभीयने फल मूक

इषार्ये भीमत्रामावने वाक्कीन्धीये धारिकाम्ये मुद्रकावने इतिहाः सर्गाः ॥ २२ ॥

इस प्रकार सेनामन्त्रिनिर्मित धारणमावण धारिकाम्ये मुद्रकावने काँसनों काँ पूरा हुआ ॥ २२ ॥

भैर क्कम करिक्या इस दंतक तनर ही सेनाध
 पडत बड ॥ ८७ ॥

उग्रदूत यन्वकम दुष्कर
 सर्माक्ष्य इवा सह सिद्धसागणैः ।

उपय यन सहसा महर्षिनि
 स्तमन्यपिञ्चन् सुगुर्भैरवैः पृथक् ॥ ८८ ॥

नानान् धयनध बर अदुनुत और दुष्कर कर्म
 दम्बर सिद्ध नाग आग महर्षियोंक साथ देवतास्यग
 उनक पास आय तथा उन्होंने अस्या-अस्या पवित्र एवं
 शुभ क्कम यन्ध अदिक किया ॥ ८८ ॥

उपस्य शत्रून् नरद्वय मेक्षिर्षी
 ससाराया पालयशाश्वतीः समाः ।

इतीथ यम नरद्वसत्कृत
 गुभयचोभिर्षिषिधैरपूजयन् ॥ ८९ ॥

सिद्ध शत्रु—नरद्वय ! तुम शत्रुओंपर विजय प्राप्त करो
 और अनुग्रहपूर्वक सारी पृथ्वीकर सदा पालन करते रहा ।' इस
 प्रकार मौक्तिक-मौक्तिक मन्त्रकालक वचनोंद्वारा यन्त्रसम्मानित
 भीरुमन्त्र उन्होंने अभिन्नदल किया ॥ ८९ ॥



भूयः पद्म मेरु पत्नी रीन आकर चरण कर सूर्यकी ओर
गूँह करके दीनतापूर्ण स्वरमें चीत्कार करते हुए महान् भय
उत्पन्न कर रहे हैं ॥ ७ ॥

रजन्यामप्रकृष्टास्तु सख्यपयति सन्नुग्रमः ।
कृष्णरक्षांशुपर्यन्तो लोफक्षय इवोद्विता ॥ ८ ॥

पृथगे मी फत्रमा पूर्णतः प्रकषित नही होते और
भयने स्वामनके विपरीत रूप दे रहे हैं । ये काली और काल
किरणोंसे म्नात हो इस तरह उदित हुए हैं, मनो कालके
प्रसन्न काल म्य पहुँचा हो ॥ ८ ॥

हृत्सो कसोऽप्रशस्तस्य परिवेषस्तु छोदितः ।
व्यदित्ये किमसे नील लक्ष्म लक्ष्मण इदयते ॥ ९ ॥

कामन । निर्मल सूर्यमण्डलमें नील विद्यु दिखानी देता
है । सूर्यके चारों ओर ऐश देरा पड़ा है जो अन्त रस्ता,
अद्भुत तथा अन्ध है ॥ ९ ॥

रजसा महत्या ध्यायि लक्ष्मणाणि हृत्पानि च ।
युगान्तमिब लोफक्षना पश्य शसन्ति लक्ष्मण ॥ १० ॥

धूमिजालन्दन । देको ये तारे बड़ी भारी धूमिपलिते
भाष्पदित हो हृत्पान हो गये हैं, अतएव कालके भारी
धंकारकी सूचना दे रहे हैं ॥ १ ॥

कालाः इत्येवस्तथा मीषा गृध्राः परिपतन्ति च ।
शिषाभाप्यगुभान् कथान् नवृत्ति सुमहाभयान् ॥ ११ ॥

श्वेत्, श्वेत तथा अथम गीच चारों ओर उड़ रहे हैं
और श्वारिणें अशुभसूचक महाभयंकर बोम्बी बोक रही
हैं ॥ ११ ॥

हृत्पार्ये श्रीमद्यामयके वास्मीकीये अदिकल्पे मुद्रकल्पे प्रबोधिषा सर्गः ॥ ११ ॥
इस प्रकरण श्रीमद्वाल्मीकीयमिदं नवरूपमन्त्र अदिकल्पके मुद्रकल्पमें ठईसर्गें सर्व पूरा हुआ ॥ ११ ॥

चतुर्विंश सर्ग

भीरामका लक्ष्मणसे लङ्काकी शोभाका वर्णन करके सेनाको ब्यूहबद्ध लड़ी होनेका लिये जादव दत्त
भीरामकी आज्ञासे बन्धनमुक्त हुए शुकका रावणके पास जाकर उनकी सैन्यशक्तिकी
प्रबलता बताना तथा रावणका अपने पलकी डींग हाँकना

सा भीरसमिति राक्ष विरपात्र व्यबस्थित्य ।
धातिन्व गुभनक्षत्रा पीयमासीच शारद्वी ॥ १ ॥

धृष्टीने उठ भीर बनरनेनाकी यथाकिन व्यवस्था की
थी । उनका चरण बह देखे ही उन्ध चली थी जेने फत्रमा
और ग्रह नक्षत्रोंने पुक रावणके धर्मिन्व मुज्जेभित हो
रही हो ॥ १ ॥

प्रथमम च यगन त्रस्य वीय वसुधरा ।
पीचमान्य बर्षीपन तन सागरयचसा ॥ २ ॥

वेमैः शूद्रैश्च सन्नेश्च विमुक्तैः कविपक्षैः ।
भविष्यत्यावृता भूमिमांसघनेकिलकर्णम् ॥ १२ ॥

अन्न पड़ता है वानरों और राक्षसोंके फलने हुए किल
कपडों, छत्रों और उल्लारासे बह सारी भूमि पर बरसी
यहाँ मंथ और रक्षकी चीच नम अन्वपी ॥ १२ ॥

सिप्रमन्यैव दुर्धर्मा पुरी राक्ष्यपाक्षितम् ।
अभियाम जयेनैव सर्वैर्हरिभिरावृताः ॥ १३ ॥

इसका अर्थ है किन्ती बस्ती हो लके इस एक
पाक्षित दुर्धर्म नगरी अङ्गापर समस्त धनरोंके लव केवल
पाना अन्ध हैं ॥ १३ ॥

इत्येकमुक्तया धन्वी स रामा समामधपजा ।
प्रतस्थे पुराणे रामो लङ्कामभिमुक्तो विमुः ॥ १४ ॥

देख करकर संग्रामविजयी भगवान् भीरम हाके फल
लिये लकने आगे लङ्कापुरीकी ओर प्रस्थित हुए ॥ १४ ॥

सविभीरपसुमीबाः सर्वे ते वानर्यर्भाः ।
प्रतस्थिरे विन्दन्तो धृत्वानां शिप्टा तपे ॥ १५ ॥

किर विभीरुण और सुपीरके लव वे सभी ब्रह्म
गर्भना करते हुए मुद्रक ही निश्चय रत्नबाठे शत्रुओंके
करनेके लिये आगे बढ़े ॥ १५ ॥

राज्यस्य मियार्थे तु सुतरां वीर्यशालिन्वम् ।
हरीण्या कर्मक्षेत्राभिसुतोप रघुकन्वत् ॥ १६ ॥

वे लकनेलव रघुनयकीका मिन करना चाहते थे । उन
कलापकी वानरोंके कर्मों और वेलाओंसे रघुकन्वन्त और
को बड़ा उत्साह हुआ ॥ १६ ॥

हृत्पार्ये श्रीमद्यामयके वास्मीकीये अदिकल्पे मुद्रकल्पे प्रबोधिषा सर्गः ॥ ११ ॥
इस प्रकरण श्रीमद्वाल्मीकीयमिदं नवरूपमन्त्र अदिकल्पके मुद्रकल्पमें ठईसर्गें सर्व पूरा हुआ ॥ ११ ॥

बभ्रुवस्तन धापेण सहसा हरियूथपा ।
भ्रुव्यमाणास्तव घोष धिनेषुर्षोपवत्तरम् ॥ ४ ॥

उत्तुमुष्णान्ध मुनकर बानरयूथपति इय भीर उत्तरह
में मर गये और त्ने न सह करनेके कारण उसने भी बभ्रुकर
बन्धनेसे गन्ना करते स्ने ॥ ४ ॥

यक्षसाक्षात् श्लथगाला तुभ्रुवस्तपि गजितम् ।
मत्त्वामिष हसाला मेषानामम्बरे खनम् ॥ ५ ॥

रक्षमेंने बानतेंकी वह गन्ना मुनी, आ दपिने भरकर
मिनारकर रह थे । उनकी आवाज आकाशमें मर्षोंकी गन्ना-
क समान जल पड़ती थी ॥ ५ ॥

हृषा वाशारयिल्लुत्तु वित्रभ्यजपत्वाकिनीम् ।
जगाम मनसा सीतां वृयमानेन चेतसा ॥ ६ ॥

दधरधनन्दन भीरामने विचित्र बन्ध-पत्वाकमोसे मुष्ण-
मिन् ब्रह्मापुरीका दलकर म्पथितचित्तम मन-ही-मन सीताका
कारण किया ॥ ६ ॥

मत्र सा मृगशायासी राधणेनोपकथयत् ।
मभिमूढा प्रवेष्टेय ज्योहित्यज्ञेन रोहिणी ॥ ७ ॥

वे भीर ही भीर करे स्ने—शाय । यही वह मृग-
शयका भीता राधणके क्षेत्रमें पड़ी है । उसकी दया मंगलप्रदाने
आमन्त हुए रोहिणीक समान ही रही है ॥ ७ ॥

हीयमुष्याश्च निःश्वस्य समुद्रीक्ष्य खलहमणम् ।
उपाच यच्चन धीरस्तत्रासहितप्रारमण ॥ ८ ॥

मन-ही-मन पक्ष बभ्रुकर भीर भीराम गम-गम संकी
गोन मोंबकर समनकी अर देखते हुए अपने सिय समया
तुरंत हितकर बचन बोले— ॥ ८ ॥

भ्रुवस्मनीमिषाका-मुतिधतां पश्य नक्षमण ।
मनस्य कृतां सद्गु नगाग्र विभ्रकमणा ॥ ९ ॥

कामय । इस लक्ष्मी अर ता इन्ही । यह अपनी
उन्चांम आकाशमें देना वांन्की हुई-थी जल पड़नी है । जल
पड़ने है प्रकाममें विभ्रकमने अपने मनमें ही इस पक्ष
गिरकर सद्गुपुरीका निवाज किया है ॥ ९ ॥

विष्मन्वदुहित्यु सखीणा रक्षित्य पुरा ।
विष्ण्याः पश्मियाद्याः उपतिल पाणकुभिपणे ॥ १० ॥

इसकाय यह पुरी अनेक लक्ष्मन्त्र मन्त्राण्य नी-पूरी
क्याय गये थी । इनक इतन पक्ष जल स्मितारकर
नन्तम भगवत विगुह करनभासना स्थाननत आकाश
में-पत्त तब ही ग्य । १ ॥

पुण्ड्रिणा गामिन्ध लक्ष्म पनधियन्धायमः ।
नाम्बलममपुष्पान्धपुलायनी तुभ ॥ ११ ॥

हृ म न इत उववथ नक मत्ता हृ र अन्तम

ब्रह्मापुरी मुष्णमि हो रही है । उन काननोंमें नन्ध पक्षरक
पथी कक्षर कर रहे हैं तथा स्नें भीर पूर्येकी प्राप्ति करने
क कारण वे यही मुनर बन पड़ते हैं ॥ ११ ॥

पश्य मत्तविहगानि प्रखीनभ्रमराणि च ।
कोच्छिद्यकुल्लखानि बोधपीति शिषाऽनिलः ॥ १२ ॥

देखो यह शीतल मुलद वायु इन कनोंमें, निमने मत्
पक्ष पक्षी पहना रहे हैं । मोरे पक्ष और पूर्येमें धीन हो
रहे हैं तथा निज प्रत्यक लक्ष्म कश्चिस्नेके लक्ष्म एवं धीनिते
प्राप्त हैं । बारंबार कथित कर रहा है ॥ १२ ॥

इति वाशारधी रामो खलमर्षं समभाषत् ।
बलश्च तत्र विभ्रजच्छत्रहयेन कर्मणा ॥ १३ ॥

दधरधनन्दन मगधन् भीरामने अक्षणसे पक्ष क्ता और
पुष्क घोषीय नियमातुधर सनाका विभाग किया ॥ १३ ॥

दाशस्य क्वयिसेनां ता यक्षप्रदाय वीर्यवन्त ।
मङ्गलः सह नीचान् तिष्ठतुरसि तुजयः ॥ १४ ॥

उस समय भीरामने बानरसेनीकेपे यह आकाश किया—
पक्ष विद्यासे सेनामेंसे अपनी सेनाके साथ सकर तुजय एवं
पराकमी भीर अङ्गद नीचक साथ बानरसेनाक पुरुषमूर्धमें इतरय
क स्थानमें सित हैं ॥ १४ ॥

तिष्ठतु धानरयाहिम्या धानरीषसमाकृतः ।
आधितो वृक्षिण्य पादयमृगभा नाम धानरा ॥ १ ॥

इसी तरह श्याम नामक बानर कश्चिस्नेक लक्ष्मणने सिरे
देकर इस बानर-वाहिनीके शरिन पारसमें सड़ रहे ॥ १५ ॥

गम्भहस्तीय तुजयस्तारमी गम्भमादृत ।
तिष्ठतु धानरयाहिम्याः सप्य पादयमधिष्ठितः ॥ १६ ॥

श्यामहस्तीके समान तुजय एवं पंगयासी हैं वे कश्चि
प्रेत गम्भमान बानरसेनाक नाम धारसम गड़ ही ॥ १६ ॥

मूर्ध्नि स्थान्याम्यह यथा सक्षमण समश्चितः ।
जाम्बवाथ सुपणथ यगवर्दी च धानरा ॥ १७ ॥

श्याममुष्या महामान कुर्वि रक्षन्तु तत्रयः ।
ये समनक साथ शरयान देकर इस लक्ष्मण समनक
क्षानमें गड़ा होईंगे । जाम्बवान तुजय और धानर कारकी-
य तीन महामन्थी शीर ज्य ही-ही महाक प्रधान हैं, वे लक्ष्म
लक्ष्म कुर्वि-जगदी रक्ष करें ॥ १७ ॥

जयन् क्विमन्धयाः क्विगज्जऽभिरक्षतु ।
पक्षाधमिय त्वरुण्य प्रचक्षन्ध्रमा वृत ॥ १८ ॥

बानरगज मुष्ण बानरसेनाके विजय जगदी र-में
उनी प्रसर गे हैं ज्य उन्को रक्ष इन लक्ष्मण पक्षम
निगम लक्ष्मण र रहे ॥ १८ ॥

मुविभक्तमहापूडा महाधानररक्षिता ।

मर्मिकिमी सा विषमौ यथा धौः साभ्रसम्प्लवा ॥ १९ ॥

इस प्रकार सुन्दरतासे निमक हो विद्याय मूर्खमें बड़ हुई
वह तेज्य किन्तु बड़े-बड़े बानर रखा करते थे, मेघोंने फिरे
हुए आकाशके समान बान पकड़ी थी ॥ १९ ॥

प्रयुद्ध गिरिभृङ्गाणि महत्तद्य मर्द्दितवान् ।

भ्रसंतुर्वांनरा लङ्घ्य मिमद्वयिषया रणे ॥ २० ॥

बानरजन्मा पर्वतोंके विस्तर और बड़े-बड़े रुख उकेर
युद्धके छिपे छद्मापर चढ़ आये । वे उन पुरीको पदचक्रि
करके धूममें मिला देना चाहते थे ॥ २ ॥

निम्नरैर्विकिरामैमां लङ्घ्यं मुष्टिभिरंघ वा ।

इति स्म वृष्टिरे सर्वे मर्गांसि हरिपुङ्गवा ॥ २१ ॥

सभी बानरयूयपति थे ही मनसूत्र बॉपत थे कि हम लङ्घ्या
पर पर्वत-शिलारैषी क्या करें और लङ्घ्याविक्रियोंको मुक्ती
मार-मारकर समझे पईया दें ॥ २१ ॥

स्तो रामो महातजाः सुमीवमिदमप्रवीत् ।

सुभिभक्तानि सैम्यानि शुक्र एव विमुच्यन्ताम् ॥ २२ ॥

तदनन्तर महातेजस्वी रामने सुमीवते कहा—हमज्जोने
अपनी सेनाओंको सुन्दर ढंगसे निमक करके उन्हें मूर्खक
कर दिया है मता भव इव शुक्रको छोड़ दिया सब ॥ २२ ॥

रामस्य तु यथाः भ्रुत्वा धानरेन्द्रो महाबलः ।

माक्षयामास त वृत् शुक्र रामस्य द्वासान्त् ॥ २३ ॥

श्रीरामचन्द्रजीका यह बचन सुनकर महाबली बानरयज्जने
उनके आरेघते खतरपूत शुक्रको बचनमुक रूप दिख ॥

मोक्षितो रामवाक्येन वानरैश्च निपीडितः ।

शुक्रः परमसन्नस्यो रक्षोधिपमुपागमत् ॥ २४ ॥

श्रीरामचन्द्रजीकी आवासे घुटघ्राय पाकर बानरोंसे पीडित
होनेके कारण आयत्त भयभीत हुआ शुक्र उल्लस्यवनेके पक्ष
गया ॥ २४ ॥

रायपाः प्रहसन्त्यश्च शुक्र वाक्यमुवाच ह ।

किमिमी ते सिती पक्षी तूनपक्ष्म्य दक्षस्ये ॥ २५ ॥

कश्चिन्मनेकविचारां तोया स्व यथामागतः ।

उस समय उरगने हैंउठे हुए-से ही शुक्रसे कहा—ये
दुम्पारी उन्में पौलें बॉच क्ये री गयी हैं । इस्से तुम इव तप
दिकामी देत ह मन्तु दुम्पारे पंख नाच भिद्य गये हों । कहीं
तुम उन चक्षुचिचकाले बानरोंके लंगुछमें तो नहीं कैल गये
थे ? ॥ २५ ॥

ततः स भयसविन्नस्तन राक्षभिर्बाहितः ।

यथर्न प्रत्युवाचद् राक्षसाधिपमुत्तमम् ॥ २६ ॥

गया उरगके इन प्रकार पूछनेम भयमें फस्यव हुए
शुक्रने उन समय उन भय राक्षसगज्जने इव प्रकार उत्तर
दिया— ॥ २६ ॥

सागरम्योत्तरे तारेऽबुध त क्वच लब्ध ।

यथा स्त्रियामह्लिष्ट सान्त्ययम्प्लक्षणा मिरा ॥

महायज । मैंने समुद्रके उत्तर तरपर पुरीकर
कीछ बन्दुत स्वयं चन्द्रोंमें मधुर वाणीब्राय सान्त्यय दें
सुनाया ॥ २७ ॥

हृदयैस्तेरहमुत्प्लुत्य दक्षमात्राः तुकामैः ।

गृहीत्येऽस्म्यपि धारम्यो हस्तुंल्लेसु जमुष्टिभिः ॥

किंहु मुझपर दधि पड़ते ही कुपित हुए बानरों
कर मुझे पकड़ लिया और पूछते मारना एवं पौलें
भारमम किया ॥ २८ ॥

न तं सभापितुं शक्यतःसम्ममोऽत्र न विद्यते ।

प्रकृत्या कोपनस्तीक्ष्णा यान्ता राक्षसाधिप ॥ २९

पक्षस्यज । ये बानर स्वभावसे ही क्रोधी और कौले
उन्ते शत भी नहीं की ज सकती थी । फिर यह पूछ
मकर भ्रौं वा कि तुम मुझे क्या मार रहे हो ? ॥ २९

स च हस्त्य विराधस्य कबन्धस्य क्षरस्य च ।

सुमीवसहित्य रामः स्नीतायाः पद्ममागता ॥ ३०

ज्ये विराध, कबन्ध और सरका यच कर चुके हैं
श्रीराम सुमीवके साथ कीछके खानकर पता पकर उ
उदार करनेके छिपे आये हैं ॥ ३ ॥

स हस्त्या समरे सेतु तीर्त्वा ज छयजोवधिम् ।

एव रक्षासि निर्वृय धन्वी तिष्ठति राक्षसः ॥ ३१

ज्ये रघुनाथकी समुद्रपर पुख बॉच छयजगारज्ये
करके रक्षकोंके तिनकोंके छयन समझकर चतुप ह
छिपे यहाँ पाव ही लड़े हैं ॥ ३१ ॥

श्वसवानरसङ्घनामनीकानि सहकशः ।

गिरिमेषनिकशरणार्णं छम्पयन्ति वसुधराम् ॥ ३२

पर्वत और मेघोंके समान विद्यालक्षय उठें और
बानर-समूहोंकी चहलें सेनाएँ इव पूषीर छा गयी हैं ॥ ३२ ॥
राक्षसार्णं बद्धीचस्य धानरेन्द्रवजस्य च ।

मैतयोर्विद्यतं सधिर्वेषयान्मयोरेव ॥ ३३ ॥

पेक्षा और शनबोंमें जैसे मेघ होना अस्मत्त है
उसी प्रकार राक्षसों और बानरयज सुमीवके केनिमें
छपि नहीं हो सकती ॥ ३३ ॥

पुरा माक्षरमायासि क्षिप्रमेकतरं कुव ।

सीतां खास्मै प्रयच्छाशु युद्ध थापि प्रदीपत्तम् ॥ ३४ ॥

मताः कलक वे लङ्घपुरीकी पहादिकीपर नहीं
चढ़ आने उसके परम ही भाव क्षिप्रपूर्वक हमने एक
काम कर दामिये—या तो तुरत ही उन्हें क्षिताये क्षेय
रीषिय या फिर तमन लड़े शत्रु युद्ध कीजिय ॥ ३४ ॥

शुक्रस्य षष्ठं भुत्वा राक्षसो वाक्यमग्रवीत् ।
 तेषसरकनयस्यो निवृहन्त्य चतुषु ॥ ३ ॥

शुक्रभी यह बत सुनकर राक्षसभी आँसूँ राक्षसे म्बळ
 हो गयो । वह इस तरह पूर-पूरकर देखने लग्य मानो
 भस्मी दृष्टिने उसका दग्ध कर देगा । वह बोला— ॥ १५ ॥

यदि मां प्रति युञ्जेन्न वेधगन्धर्वान्त्वया ।
 नैव सीतां प्रदास्यामि सध्वलोकभयावपि ॥ ३५ ॥

‘यदि देवता, गन्धर्व और दानव भी मुझसे युद्ध
 करनेके तैयार हो जायें तथा यदि स्वर्गके लोग मुझे म्ब
 दिखाने लगे तो भी मैं सीताको नहीं देयऊँगा ॥ ३५ ॥

कदा सम्प्रिभावस्ति ममश्च राष्य शराः ।
 वसन्ते पुपित मत्वा भ्रमरा इव पात्रपम् ॥ ३७ ॥

जैसे मत्वाळ भ्रमर वसन्त ऋतुमें फूलोंसे भरे हुए इच्छर
 दूट पड़ते हैं उसी प्रकार भरे बाण कर उस रघुपत्नीपर
 भाषा करेगे ? ॥ ३७ ॥

कदा शोषितविग्धाङ्ग वीतैः कार्मुकविष्णुतैः ।
 शरैःपत्नीपिप्यामि उरुकाभिरिव कुञ्जरम् ॥ ३८ ॥

यदि भस्कर कर अग्नेय जब भरे वनपसे दूटे हुए
 ठकली बाणोंद्वारा पक्षय होकर रामको धरिपर सहृद्धवान हो
 जायगा और जैसे लख्ठी हुई कुञ्जरीसे धेग हाथीको जन्मते
 हैं उसी तरह मैं उन बाणोंसे रामको दग्ध कर दखेंगा ॥

तथास्य बलमावात्स्ये यद्धन महता घृतः ।
 स्योक्तिवामिव सध्वर्गा प्रभामुघान् विघाकरा ॥ ३९ ॥

जैसे सूई अपने उदयके छाव ही समस्त नक्षत्रोंकी
 ममा हर छत हैं उसी प्रकार मैं विगाळ सेनाके खय
 रघुनीमें लड़ा हो रामकी समस्त बालर-सेनाको आलसत्
 कर दूँगा ॥ ३ ॥

सागरस्येव म यंगो माकृतस्येव न यरुम् ।
 न च दादारपिषेव तन मां योद्धुमिच्छति ॥ ४० ॥

दशरथकुमार रामने सभी समरभूमिमें समुद्रके समान
 भरे वेग और बायुके समान भरे बसकर अनुभव नहीं किया

हृषीकेशं भीमजगामाये वाक्यमीये आदिकाष्टके सुदकाष्टके ऋषिर्षिः सर्गः ॥ १४ ॥

इस प्रकार भीमजगामाये आदिकाष्टके सुदकाष्टके ऋषिर्षिः सर्गः ॥ १४ ॥

पञ्चविंश सर्ग

राषणका शुक्र और सारणका शुक्ररूपसे वानरसनामें भेजना, विभीषणद्वारा उनका पकड़ा
 जाना, भीरामकी कृपास छुटकारा पाना तथा भीरामका संदेश लेकर लक्ष्मण
 लौटकर उनका राषणका समझाना

मयल सागर तीमें राम द्धारथात्मज्ञ । दशरथनन्दन भगवान भीराम नय मन्मथदित सुव्र
 भस्मरूपी राक्षसः भीमान्तर्पयीच्छुक्रसारणी ॥ १ ॥ वार कर पुत्र तव भीमान् एवमन भवने जनों

हे इच्छिमे यह भरे बाण युद्ध करना चाहता है ॥ ४ ॥
 न मे तुषीशयान् वामान् सयियानिव पत्नगान् ।
 रामा पश्यति सप्रामे तेन मां योद्धुमिच्छति ॥ ४१ ॥

यदि तरुणमें बांधे हुए बाण विरभर खपोंके समान
 मयकर हैं । रामने संप्राममें उन बाणोंको देखा ही नहीं
 है इच्छिमे यह मुझसे लड़ना चाहता है ॥ ४१ ॥

न जानाति पुरा धीर्यं मम युजे स राष्यः ।
 मम चापमर्या वीणा शरकोपैः प्रवावितम् ॥ ४२ ॥
 ज्याशब्दतुमुला घोराभारतगीतमहात्मनाम् ।
 नापद्यतलसनाया म्भिमाहितवाहिनीम् ।
 भवग्याद्य महाारङ्ग वावृषिप्याम्यह रणे ॥ ४३ ॥

यह कह करी मुझमें रामको भरे बल-युद्धमेंसे पास
 नहीं पका है इच्छिमे यह भरे बाण लड़नेका हीरका
 रखता है । मंग वनप एक सुन्दर वीणा है जो बाणोंके
 कर्णोंसे बजायी जाती है । उसकी प्रत्यक्षासे जो टड्डार-जनि
 उठती है वही उसकी भस्कर स्वरवही है । आठोंकी
 पीलकर और पुकर ही उठकर उच्छ्वरते गया जानेवाला
 गीत है । नाचनेका छाकते समय जो चट-चट धाव्य होता
 है वही मानो इच्छिपर दिया जानेवाला ताळ है । बहती
 हुई नदीके समान जो वपुर्भूषी बाहिनी है वही मान उच
 छीतलखके छिमे विद्यालय रगभूमि है । मैं समपद्ममें
 उच रगभूमिके भीतर प्रवेश करके अपनी वह मयकर
 वीणा बजऊँगा ॥ ४२ ४३ ॥

न दासवेमापि सहस्रयधुषा
 युजेऽस्मि शसत्यावस्यणतया स्वयम् ।

यन्मन या धयवित्तु शरतन्निन्द
 महाहव वैधपणान या पुमः ॥ ४४ ॥

यदि महासमरमें खसनेवषयी इन्द्र अपथा वाद्य
 बजय या खरं यमराज भयथा भरे बड़े भारी कुंवर ही
 आ जायें तो य भी अपनी बाणाविते मुझे परजित नहीं
 कर सकते ॥ ४४ ॥

मन्त्री पुत्र गीर वारणसे छिद्र कदा—॥ १ ॥
 समग्रं सागर तीर्थं तुस्तार धानर वल्लम् ।
 भ्रमृतपूर्वै रामेय सागरे सेतुवन्धनम् ॥ २ ॥
 अपरि स्मृदन्ध पार कृत्वा अस्मत् कठिन यां तेषु
 भी क्षीरान्तेना उसे औषध इव पार चक्षी भवन्ती ।
 उमक इत्य सागरम् वेदुष्य बौधा यत्ना भ्रमृतपूर्वं
 क्वय हे ॥ २ ॥

सागरे सेतुवन्ध त न द्वाह्या कथचन ।
 भवदय चापि सख्यप तन्मया धानर वल्लम् ॥ ३ ॥
 व्येगोक्तं मुहुरे तुननेर भी मुक्त किन्ती तत्र यद् विषय
 नर्हा इत्य कि स्मृदन्ध पुत्र बौधा गद्य इत्य । धानसेना
 क्तिन्ती हे । इत्यत्र शन मुक्ते अक्षय प्राप्त कृत्वा चादिय ॥२॥
 भवन्ती धानर सैम्य प्रविद्यानुपकृष्टिती ।
 परिमाण च धीर्यं च ये च मुक्याः पुत्रगमाः ॥ ४ ॥
 मन्त्रिणो ये च रामस्य सुग्रीवस्य च सम्मताः ।
 ये पूर्वमभिवर्तन्त ये च शूराः पुत्रगमाः ॥ ५ ॥
 स च सेतुपथा पक्वः सागरे सच्छिखण्डे ।
 निपश च यथा तर्पां धानपणा महामनाम् ॥ ६ ॥
 रामस्य प्यवसाय च धीर्यं प्रहरणानि च ।
 सङ्गमस्य च धीरम्य तस्यत्वा ज्ञानुमहाय ॥ ७ ॥
 क्वय सन्वपतिस्तर्पां धानराणा महत्तन्वाम् ।
 तच्च धात्वा यथातस्य दीप्यमगन्तुमर्हथः ॥ ८ ॥

पुत्र इतो इव तत्र धानसेनामे प्रवेद्य कठो कि
 दुर्गं च परचात न वक्तं । नर्हा चक्र यद् फ्या अत्रभे
 कि धानसेना उक्त्वा क्तिन्ती हे । उनकी धरिष्ठ क्ली हे ।
 उनमं मुक्य-मुक्य धानर गीर गीरमे हे । भीरुम और
 सुधीचक्र मन्त्रिणुक्त्वा मन्त्री क्वेन-क्वेन हे । क्वेन-क्वेन धरवीर
 धानसेनाक आगे रहते हे । भगवत् ब्रह्मणिते मरं
 हुए स्मृदनें यद् पुत्र द्विष तत्र बौधा यत्ना । महामनाकी
 धानसेना धात्वा क्वेसे पद्दी हे । भीरुम और धीर सधनयत्र
 निधय कथ हे ?—ने क्या करना चाहते हे । उनक क्व-
 प्याक्रम क्वेन हे । उन धनाक यत्न क्वेन गीरत भव्य धात्वा
 हे । और उन महामना क्वेसेना प्रथम सेनापति क्वेन हे ।
 इन सब यत्नोनी तुम्हारा लीक-लीक बनानी मात कर
 और तबत्र यथाय शन हा धानर धामसेना भ्रात्र ॥८॥
 इति प्रनिसर्गादिष्टी राक्षसी पुत्रसारणी ।
 हरिकृपथगा रीरां प्रविष्टी धानर पत्नम् ॥ ९ ॥

पञ्च धरग धानर इतो धीर राअ गुक और धरण
 धानर्य धानर इत्य उम धानरी नवामं पुत्र गय ॥ ॥
 ननस्तन् धानर मन्यमयिन्य नगमहरणम् ।
 सध्यानु न्यप्यगच्छन्तां नदा सां पुत्रसारणी ॥ १० ॥

धानसेना वह सेना क्तिन्ती हे ! यह मिना से दूर
 मनसे उल्लभ भद्राद्य धरना भी अस्मत् य ।
 अगार सेनाक देलकर रंगेते लहे हो जाते थे । उठ कर
 गुक और धरण किन्ती तत्र भी उल्लभ गफना नर्हा कर तके
 तद् स्थित पर्वतामेपु निर्दरेपु गुहासु च ।
 समुद्रस्य च तरिपु यत्नपूर्वनेतु च ।
 तस्मात्त च तीर्थं च तर्तुकार्मं च सर्वेश ॥ ११ ॥

वह सेना पर्वतके विशरंसेतु धरनाके अल्लभ
 गुहामोर्गे स्मृदन्ध किन्तारे तथा क्वो और उल्लभमे भी सेने
 दुर्गं थी । उल्लभ कुछ यत्न स्मृद पर कर या था गु
 पार कर पुत्र या और कुछ धन प्रकृते स्मृदकी क
 करतेकी वैपारीमें क्वय था ॥ ११ ॥

निधिष निविशाञ्चैव भीमन्ध महाबलम् ।
 वल्लस्यार्कमहाभ्य दृश्याते निशाचरौ ॥ १२ ॥
 भयंकर कोमरुध करनेवाली वह विद्रुध सेना पुत्र
 जानोपर धाकती उल्ल पुत्री थी और कुछ अक्षर
 दाल्सी अ रही थी । दोनों निशाचरने देता वह क्व-
 वाहिनी स्मृदके समान भयोम्य थी ॥ १२ ॥

तौ दृश्यां महावेद्या प्रतिच्छद्वी विभीषका ।
 ब्रह्मचक्षे स रामाय गृहीत्या शुक्रसारणी ॥ १३ ॥
 धानसेनामे छिपकर सेनाक निर्दुधन करते हुए दोनों
 गभस गुक और धरणक महावेम्बकी विभीषनेने देक
 देकत ही परधान और उन दोनोंके पक्ककर भीरुमक
 नीचे क्या— ॥ १३ ॥

तस्यैतौ राक्षसेन्द्रस्य मन्त्रिणौ शुक्रसारणी ।
 लज्जया सप्तमुतासौ चारौ परपुरजय ॥ १४ ॥
 धानुमारीपर विन्धय धनेबाळ नरेधर । वे इतो इत्ये
 भाय हुए गुतचर एवं राक्षस्यन राक्षसे मन्त्री गुक तत्र
 धरण हे ॥ १४ ॥

तौ इद्रु प्यथितौ राम निपत्तौ जीवित तथा ।
 इत्यत्रजिपुटी भीती यथन चंद्रमूचतु ॥ १५ ॥
 वे इना उल्ल भीरुमकद्वीभेसे दलकर अस्मत्
 अश्लि हुए और भीषनेने निरुध हो गय । उन दोनोंके
 मनमें मर उभा गया । वे हाथ चक्रकर इत प्रक
 क्वय— ॥ १५ ॥

भयामिहागतौ सौम्य रावणप्रतिहातुनी ।
 परिहातु पक्ष मर्ये तरिदं द्युतन्मन ॥ १६ ॥
 धम्य । द्युतन्मन । हम इतो ध धानने मेव हे
 और हम इत क्वी मन्त्रक रिश्यमे आपरयक धनको
 प्राप्त करनक मिय भाय हे ॥ १६ ॥
 तथासाद् यथन भुक्ष्य रामा द्धारधामका ।

महवीर्यं प्रहसन् वापय सधभूतहिते रतः ॥ १७ ॥

उन दानोरी यह बात सुनकर सगुण प्राणियों के हित में जो खनेवाले दण्डरथनन्दन मन्वान् भीरुम हैंउते हुए बरत—॥ १७ ॥

यदि हए वज सर्वे ध्य वा सुसमाहिता ।
यथोक्त या कृत कार्ये छन्दतः प्रतिगम्यताम् ॥ १८ ॥

यदि तुमने सारी सेना देख ली हो हमारी छैनिक शक्ति का ज्ञान प्राप्त कर लिया हो तथा राजपक्ष कपनातुल्यर सन क्रम पूरा कर लिया हो तो अब तुम दोनों अपनी इच्छाके अनुसार प्रकृततयूरीक छोड़ जाओ ॥ १८ ॥

यय किञ्चिद्वह वा भूपसत् द्रष्टुमर्हथः ।
विभीषणो वा कात्स्न्येन पुन सद्वाधियस्यति ॥ १९ ॥

अथवा यदि अभी कुछ देखना बाकी रह गया हो तो फिर देख लो । विभीषण तुम्हें अब कुछ पुनः पूर्वस्मत्ते दिखा देंगे ॥ १९ ॥

न च्च प्रहण प्राप्य मेतस्य जीवित प्रति ।
स्यस्तदाशी गृहीतो च न तूतो वधमर्हथः ॥ २० ॥

यस समय जो तुम पकड़ लिये गये हो, इसके तुम्हें अपने जीवनके विषयमें कोई मय नहीं होना चाहिये क्योंकि यज्ञ-धन अथवायाने पकड़े जब तुम दोनों दूत वचक योग्य नहीं हो ॥ २० ॥

प्रच्छद्यै च विमुञ्चेनी नारी रात्रिचराबुभी ।
रातुपसस्य सतत विभीषण विकर्षिणी ॥ २१ ॥

विभीषण ! ये दोनों राक्षस राजपक्षके गुप्तकर हैं और छिपकर यहाँके मेरे बनेके लिये भये हैं । ये अपने रातुपध (चानखेन) में घूट बाण्डेन प्रयास कर रहे हैं । अब तू इनका मर्या घूट ही गया भल इन्हें काक दो ॥ २१ ॥

प्रविश्य महतीं लज्जां भयङ्कर्यां धनशतुञ्जा ।
बकभ्या रक्षसां राज्ञा यथोक्त धनमं मम ॥ २२ ॥

युद्ध भार कारण ! जब तुम दोनों लज्जामें पहुँचे तब उनरके अटे भई राक्षसराज राजपक्ष मेरी ओरले यह खदिरा दान देना—॥ २२ ॥

यद् बल त्व समाधित्य सीतां मे हृत्सवानसि ।
तद् वदाय यथाकाम सत्सैन्यस्य सयाधन्यः ॥ २३ ॥

यान ! जिस बलके भणसे तुमने मेरी खीवाध अथवायन किया है उसे अब सैन्य और दम्पुकोषदित आकर इच्छा तुम्हें दिखाओ ॥ २३ ॥

आः ब्रह्मन् नमारीं लज्जा सप्राकारां सतोरणाम् ।
रक्षसां च यत्त पश्य शरैर्विष्वसित मया ॥ २४ ॥

अब प्रतापराज ही तुम परछट और इतनाबलके खदिर

लज्जापुरी तथा रक्षसी सेनाका मरे बाणसे विष्वस इता देखोगे ॥
क्रोध भीममह मोक्ष्य ससैन्ये त्वयि राजपण ।

आः कहलये यज्ञवान् यज्ञ दानधैर्यविश्र वासत्रः ॥ २५ ॥

यवाय ! जैसे ब्रह्मपारी इन्द्र दानवांपर अपना यज्ञ छोड़ते हैं उसी प्रकार मैं कृष्ण खेर ही सेनाखदित तुम्हपर अपना ममकर श्रवण छोड़ूँगा ॥ २५ ॥

इति प्रतिसमाधिष्टौ रक्षस्यै द्युकसारण्यौ ।
अयेति प्रतिगम्यैन राजय धर्मवत्सलम् ॥ २६ ॥

अगम्य नमारीं लज्जामभूतां राक्षसाधिपम् ।

भजान् भीरुमत्र यह खेरवा पाकर दोनों राक्षस युद्ध और कारण धर्मवत्सल भीरुपुत्रयवीर्य आपकी नय हो अथ चिरबीबी हो इत्यादि वक्तोद्वारा अभिनन्दन करके लज्जापुरी-में आकर राक्षसराज राखणसे बोले—॥ २६ ॥

विभीषणगृहीतो तु वधार्थं राक्षसेभ्यः ॥ २७ ॥
हृष्टा धमात्मन सुकौ रामेणामिततजसा ।

पकड़ेकर ! हमें जो विभीषणने बध करनेके लिय पकड़ लिया था किन्तु अब अमित तेजसी धर्मता भीरुमने देखा, उन हमें खुशवा दिया ॥ २७ ॥

एकस्थानमाता यत्र क्षत्वारः पुरुपर्यभाः ॥ २८ ॥
लोकपालसम्या दूराः हृत्वाका हृदविक्रमाः ।

रामो दानारथि भीमाहैरुषणस्य विभीषणः ॥ २९ ॥
सुग्रीवस्य महातजा मेहेन्द्रसमविक्रमः ।

एते शक्राः पुरीं लज्जा सप्राकारां सतोरणाम् ॥ ३० ॥
उत्पात्य सप्रामयितु सर्वे विष्टन्तु पानराः ।

दण्डरथनन्दन भीरुम भीमान् उष्मण विभीषण तथा महेन्द्रस्य परक्रीमहातकरी सुग्रीव—य क्षत्रवीर लोकपालके समान शौर्यशाली हृद परक्रीमी और भक्त शक्रोंक हाता हैं । शक्रों य चारों पुरुषप्रथर एक क्रम एकत्र हो गये हैं, वहाँ निश्च निमित्त हैं । और सन पानर अथवा रहे ता भी य चार ही परछट और दरवाजोंक खदित सारी लज्जापुरीको उलाह कर देक वल्ले हैं ॥ २८ २ ३ ॥

यादृश तद्वि रामस्य रूपं प्रहरणानि च ॥ ३१ ॥
वधिष्यति पुरीं लज्जामकस्तिष्ठन्तु त प्रयः ।

भीरामचन्द्रवीर्य का जेवा रूप है और जने उनक भय शक्त हैं उनसे तो यही माहून हता है कि वे भकले ही खरी लज्जापुरीमें बध कर जायेंगे । भय ही वे बाणी तीन पीर भी बटे ही रहे ॥ ३१ ॥

रामलक्ष्मणगुणा सा सुग्रीवस्य च याहिनी ।
यभूष कुषुपतया सर्वैरपि सुरासुरैः ॥ ३२ ॥

माहातम ! भीरुम सभजन और सुग्रीवम सुरशिन यह बानवाँची सन ता समस्त देवदाओं और भयुंरक लिय भी अलस्त नुर्बन है ॥ ३२ ॥

प्रहृष्टयोधा ध्वजिनी महारामना

वनीकसा समग्रति योद्धुमिच्छताम् ।

मल्ल विरोधन शमो विधीयता

प्रदीपता वाशरथाय मैथिली ॥ ३३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बाह्यनीकषिपे अष्टादशोऽध्याये पुत्रकाण्डे पञ्चविंशो सर्गः ॥ १५ ॥

(स प्रथमः श्रीमद्वाल्मीकिरचित आर्याभारतम् अष्टादशोऽध्यायः पुत्रकाण्डे पञ्चविंशो सर्गः पूज्यः ॥ १५ ॥



षड्विंश सर्ग

सारणका रावणको पृथक्-पृथक् वानरयूथपतियोंका परिचय देना

तद्वचः सत्यमह्नीयं सारणेनाभिभाषितम् ।

निशाम्य रावणो राजा प्रत्यभासत सारणम् ॥ १ ॥

(शुक भोर) खरणके ये सन्धे मार खणीक धम्य कुन कर खवनन खरणके करा— ॥ १ ॥

यदि मामभियुञ्जीरन् देवगणभ्रवदानया ।

नैव सीतामहं वधा सर्वलोकभयात्पि ॥ २ ॥

यदि देवता नभर्ष और दानव भी मुझे पुत्र करने का बर्ष और समस्त लोक मय दिसाने सगे तो भी मैं सीता का नहीं दूँगा ॥ २ ॥

स तु सौम्य परिचस्तो हरिभिः पीडित्यो भूषाम् ।

प्रतिप्रदानमपैव सीतायाः साधु मन्यसे ॥ ३ ॥

को हि नम सपत्नो मा समरे जेतुमर्हति ।

श्रीमान् । कन पढ़ता है कि तुम्हें बंदरोंने बहुत सगा किया है । इसीसे मनपीत हाकर दान भाव ही कितने किय देना ठीक समझने सगे हो । अन्य कौन ऐसा धनु है जो समराज्यमें मुझे जीत सके ॥ ३ ॥

इत्युक्त्वा पश्य वाक्य रावणा राक्षसाधिपः ॥ ४ ॥

अदराह तदा श्रीमान् प्रासादात् क्षिप्रयात्पुरम् ।

यदुत्पलसमुत्सथ रावणोऽथ दिक्ष्वया ॥ ५ ॥

ऐस करार वचन अकर श्रीमान् रक्षस्यव रचन वानरोंकी सेनाम निरीक्षण करनेके लिये अपनी कर ताप उनी और बर्षक लमान बनेन रंगरी अहालिअपर चद गया ॥ ५ ॥

ताभ्यां वराभ्यां सहिताराण्यः प्रथममृच्छता ।

पश्यमानः समुद्र त पयतांश्च पन्नति च ॥ ६ ॥

वदन् पृथिवीद्वं सुममूर्जे पृथगमा ।

उस समय रचन अंधते तमना उगा था । उसने उन वानरों गुणपठेक लय न अकर पन और पतोर दखित लिय तव पृथीता लय प्रसय वानरोंने भय दिखयी दिप ॥ ६ ॥

प्राहामनात्वी वानर इय समय पुत्र करनेके लिये उक्त हैं । उनकी सेनाके वानी वीर बोधा बने प्रकन हैं । उन उनके लय 'विरोध करनेके अर्थक्ये करे काम नही सन इयलिय सधि कर लीलिये और श्रीरामकरकीके लोके सीताका खीय दीलिये ॥ ६ ॥

तद्वपारमसह्य च वानराणा महाबलम् ॥ ७ ॥

अलोक्य रावणो राजा परिपश्यत् सारणम् ।

वानरौकी वह बियाल सेना भयार और अलक थी । उसे देखकर राजा रावणने खरणके पूछा— ॥ ७ ॥

एषा के वानरा मुक्याः के शूराः के महाबलाः ॥ ८ ॥

खरण । इन वानरोंमें कौन-कौनसे मुकन हैं । कौन क पीर हैं और कौन ककमें बहुत बदे-बदे हैं ॥ ८ ॥

के पूर्वमभियतन्त महोत्साहाः समन्ताः ।

केरा अजोति सुप्रियाः के वा पूयपयूपाः ॥ ९ ॥

सारणचिह्न मे सर्वे किप्रभावाः सूवगमाः ।

कौन कौनसे वानर महान् उसाहसे समस्त क्षेत्र कुने आग-आग करते हैं । सुधीन किनकी बलं कुनते हैं और कौन पूयपतियोंके भी सूयपति हैं । शरण । व खरी कलं कुने कयायो । खय ही यह भी कयो कि उन वानरोंका प्रकन कैय है ॥ ९ ॥

सारणो राक्षसेन्द्रस्य वधन परिपृच्छता ॥ १ ॥

अथभाषेऽथ मुक्याया मुक्यास्तान वनीकस्ता ।

इय प्रकर पूछते हुए रक्षस्यव रचनका वचन सुनर मुक्य-मुक्य वानरोंका वचनेका लखने उन मुक्य वानरोंके परिचय देत हुए करा— ॥ १ ॥

एष योऽभिमुखो सद्गु नर्वैल्लिपति वानरा ॥ ११ ॥

यूययान्वा सहस्राणां शतान परिवारिता ।

एष्य घोषण महत्या समाकारा स्तारणा ॥ १२ ॥

सद्गु प्रतिहत्य सभा सर्वोक्षयकामना ।

सपशास्त्राण्मद्रस्य सुग्रीवस्य महाामना ॥ १३ ॥

पलास विद्यत धीरा नीलो नाम्रिय यूययः ।

प्राहार्य । यह अ सद्गुमी अर मुल करत वता है अर गरव रहा है एक काल यूययोंसे शिव हुआ है तब किम ही गन्ताक अकस्त नाम्रिय पावते परकर दरकर परत और कताक वदित धारी सद्गु प्रतिहत ही गुंन उदी है

इसका नाम नील है। यह भीरू मूषपतिब्रह्मणे है। समस्त
बनरोंक राज महाभाना सुमीयन्त्री सेनाक भाग यही लड़ा
हवा है ॥ ११-१२३ ॥

बाहू प्रगृह्य यः पदभ्यां मर्हो गच्छति वीर्यवान् ॥ १४ ॥
लङ्गामभिसुखं कौपाद्भीष्णं च विजृम्भते ।
गिरिवृद्धप्रतीकशरां पथकिञ्चलकसनिभः ॥ १५ ॥
स्फोटयत्यतिस्वरम्भो न्यहल न्य पुनः पुनः ।
पथ्य छाङ्गच्छाश्वेन खनन्ति प्रदिशो दश ॥ १६ ॥
एष बानरराजेन सुप्रविणाभिप्रेक्षितः ।
सुयज्ञोऽङ्गो नाम स्वामाह्वयति स्युगं ॥ १७ ॥

जब पराक्रमी बानर दोनों ठगे हुए बाँहोंके एक दूसरी-
के एकद्वार दोनों परसे ठुसीपर टकर रहा है, लङ्गामी और
मुल करक शोषयूक देखता है और बारबार अँगुर्तार लेता
है किधम धीर परतविखरक समान ऊँचा है किधम
अति कमजोरके समान मुनहमे रगनी है न एगसे मर
कर बारबार अपनी पूँछ फटक रहा है तथा किधम पूँछक
मरनेकी मायाकसे दखें दिखाएँ दूँब उठती है; यह सुय-
ज्ञान अङ्ग है। बानरराज सुमीने इसका सुवचनके परपर
अनिके किया है। यह अपने साथ सुयज्ञ किये आपसे छ-
कवा है ॥ १४-१७ ॥

शक्तिना सद्यशा पुनः सुप्रीवस्य सवा प्रिय ।
राधव्यायै पराध्वस्ता शक्रायै यदणो यथा ॥ १८ ॥

प्राचीन यह पुत्र अपने पिताके समान ही कल्यप्रद है।
सुधीयन यह उदा ही प्रिय है। जैसे बरग इन्द्रके किये
पराधम प्रकट करते हैं उसी प्रकार यह भीरामन्दरकीके किये
अपना पुत्रवर्षा प्रकट करके किये उचत है ॥ १८ ॥

एतस्मा स मतिः सर्वो यद् दृष्ट्वा जनकव्रतज्ञा ।
हनुमता योगयता राधस्य हितैरिष्या ॥ १९ ॥

भीरुनायकीका हित चाहनेवाले बगवासी हनुमानकीने
जहाँ आकर बनकनकिनी सीताका दर्शन किया उसक
भीर इत अन्दकी ही खरी बुद्धि काम कर रही थी ॥ १९ ॥

बहूनि चाकेन्द्राणामप दृष्टानि वीर्यवान् ।
परिवृष्टाभिप्रायि त्वा स्वनामीकेन मर्दितुम् ॥ २० ॥

पराक्रमी आइर धानरप्रियमत्रिकोंके बहुतसे वृष किये अपनी
सेनाक साथ आरम कुचन टाकनेक किये आ रहा है ॥ २० ॥
अनुयाहिनृतस्यमपि बलेन महता धृत ।
वीरसिद्धति सप्राप्त सनुहनुस्य नका ॥ २१ ॥

अन्दक एके संग्रामभूमिमें जहाँ वीर विद्याके सेनाके
रिय हुआ उजा है इवम नाम नर है। यही संतु-निमावम
प्रदान हु है ॥ २१ ॥
य तु विरम्य गम्यन्ति इत्यश्नन्ति नन्ति च ।

उयाय च विजृम्भन्त क्रोधेन हरिपुङ्गवा ॥ २२ ॥
एतं सुप्रसहां धाराभङ्गवाभङ्गपराक्रमा ।
अथौ शतसहस्राणि दशकोटिशस्त्रिणि च ।
ए पनमनुगच्छन्ति धीराभन्तुग्यासिनः ॥ २३ ॥
एवैयाघसतं छात्रां स्वनामीकेन मर्दितुम् ।

जब अपने आँसुके गुदिर करक छिनाद करते और
गर्ते हैं तथा जो कपिभेद भीर अपने आकॉसे उठकर क्रोध-
यूक अँगुर्तार लेते हैं इनके योगसे वह देना अत्यन्त कठिन
है। य बड़े मर्कट अत्यन्त कधी और प्रचण्ड पराक्रमी
हैं। इनकी सख्या दस अरब और आठ लाख है। ये सब
बानर तथा चन्दनवनमें निवास करनेवाले वीर बानर इत मूय-
पतिनका ही अनुकरण करते हैं। यह नर भी अपनी सेना
आप लङ्गापुरीके कुचन देनेका होकरा रगता है ॥ २२ २३ ॥

श्वेतो रजतसकशाश्वपटो भीमविभ्रमः ॥ २४ ॥
दुस्मिन् वानरः दूरस्थिषु लोकेषु विभ्रुतः ।
दूर्णं सुप्रियमागम्य पुनगच्छति वानरः ॥ २५ ॥
विभ्रान् वानरीं सेनामनीकानि प्रहर्षयन् ।

एक जो चौकीके समान छेद रंगका चमकत बानर
दिलामी देता है इसका नाम श्वेत है। यह मर्कट पराक्रम
करनेवाळ दुस्मिन् दूरवीर और तीनों लोकमें विख्यात
है। श्वेत बनी तेकीसे सुमीके पास आकर फिर छोट जाता
है। यह बानरीकेका विग्रह करता और छेदिकमें हर्ष तथा
उत्साह करता है ॥ २४ २५ ॥

मा पुरा गोमतीक्षीरे रम्य पठति पद्यतम् ॥ २६ ॥
नाम्न सरोचने नाम नानाम्नायुषो गिरिः ।
तत्र राज्य प्रशास्त्रेप कुमुदो भ्रम दृष्य ॥ २७ ॥

गोमतीके उपर जो नाना प्रकारक वृक्षोंसे युक्त छेदक
नामक परत है उसी रमणीय परतके चारों ओर जो परले विश्वर
कवा था और यही अपने बानरराजम परान करता था
वही यह कुमुदनामक वृषपति है ॥ २६ २७ ॥

योऽसौ शतसहस्राणि सहस्रै परिक्रयति ।
पथ्य यावा बहुष्पामा दीपस्यह्वत्माधिताः ॥ २८ ॥
त्यज्रा पीता सिन्धः प्यथाः प्रकीर्णा धारद्वज्ज्वा ।
भ्रतीना यानरभङ्गः सप्राप्तमभिषाह्वति ।
एयोऽप्यादासतं छात्रा स्वनामीकेन मर्दितुम् ॥ २९ ॥

एक जो बालों बानर छेदिकोंके चारों ओर अपने साथ लीच
बाल है किधम संधी बुममें बहुत बड़-बड़ धल पीठ, भूरे
और छेद रंगक बाळ देस हुए हैं और दकनेमें बड़ भयकर
है तथा जो कधी दीना न दिगाकर दश मुदमी ही हफ्ता
रगता है, उठ बानरका नाम पण्ड है। यह चण्ड भी अपनी
सेनाका छात्रा कुचन देने ही इच्छा रगता है ॥ २८ २ ॥

यस्त्वर सिंहसक्रमाः कपिला वीरकेसरः ।
 निरुवा प्रसन्न लज्जा विधत्तशिव चक्षुष्य ॥ ३० ॥
 क्षिप्र्य कृष्णगिरि सङ्घ पर्वत च सुवर्णाम् ।
 राजन् सत्तमभ्यास्तं सर रम्भो नाम यूथपः ।
 शत शतसहस्राणां त्रिशाष हरिपुङ्गवा ॥ ३१ ॥
 य यान्त घान्त घोरारुण्डाश्रयप्रक्रमाः ।
 परियायानुगच्छन्ति लज्जां मर्वितुमोजसा ॥ ३२ ॥

प्राक् । जो सिंह समान पराक्रमी और कृषि बयकर
 है जिसकी गर्दनमें खड़े-खड़े पाश हैं और जो प्लान क्षमकर
 कृष्णाक्षी और इस प्रकार बेल खा है माना इसे मस कर
 देगा वह रमनामक यूथपति है । वह निरन्तर विन्ध्य कृष्ण
 गिरि सङ्घ और सुवर्ण आदि पर्वतोंपर रहा करता है । उन
 वह युद्धके क्षिमे बध्ता है उठ समस उठक पीछ एक करोड़
 तीस भेड़ मयकर अत्यन्त श्रेणी और प्रकृष्ट पराक्रमी बानर
 चन्दे हैं । वे एक-एक अपने बन्धे कृष्णाक्ष मसक डाब्बेक
 क्षिमे रमनामे एक मोरसे घेर हुए आ रहे हैं ॥ ३-२२ ॥

यस्तु कर्णौ दिवृणुते जम्भते च पुना पुना ।
 म तु सविजते मृत्योर्न च सेनां प्रध्ववति ॥ ३३ ॥
 प्रकम्पत च रोयेण तिर्येक च पुनरीक्षते ।
 पश्य लाङ्गुलविशेषं श्वेदस्येण महाबला ॥ ३४ ॥

जो कर्णोंके डेबवा है बारबार बँभर देता है,
 मृत्युके भी नहीं डरता है और सेनाके पीछे न चकर भयंकर
 सेनाका मण्डन न करके मरेके ही युद्ध करता चाहता है,
 रोयेके कौं खा है शिरडी नकसे देखता है और पूँठ
 फटकरकर सिहनाद करता है इक्ष्वा नाम धरम है ।
 दक्षिणे यह महाबली बानर कैथी गर्बना करता है ॥ ३३ ॥
 महाबला धीतभया इम्य सत्प्रयपकतम् ।

राजन् सत्तमभ्यास्ते शरभो नाम यूथपः ॥ ३५ ॥
 इक्ष्वा केग मदान् है । मम तो इसे धूँ एक नहीं गवा है ।
 राजन् । यह यूथपति धरम उवा रम्भोम अस्त्रेय पर्वतपर
 निवास करता है ॥ ३५ ॥

प्लाम्य धन्विना सर्वे विहारा नाम यूथपा ।
 राज्ञ्छनसहस्राणि धार्यारिशकधिव च ॥ ३६ ॥
 इसके पास जो यूथपति हैं उन सबकी विहार
 संख्या १५ बह पञ्चान् है । राजन् । उनकी संख्या एक
 धार्यारिशकधिव है ॥ ३६ ॥

यस्तु मय इशक्या महाबायुष्य विष्टति ।
 मय्य धनर्थागणां सुराणामिय यासता ॥ ३७ ॥
 नेरीणामिय सन्ध्या यक्षीर भूयत महान् ।
 घात शक्यामृगेन्द्राणा समाममभिकामुत्तम ॥ ३८ ॥
 यय पवतमभ्यास्त धारियाक्रमनुत्तमम् ।
 युद्धं युग्ममहा नित्यं पनतो नाम यूथपा ॥ ३९ ॥

यन शतसहस्राणां शताभं पयुपासत ।
 यूथपा यूथपद्येष्ठ येया यूथानि भागाशा ॥ ४० ॥

जो विद्याध बानर मेघके समान भयङ्करता रखे हुए
 लड़ा है तथा बानरवीरोंके बीचमें ऐस्य बान पड़ा है
 जैसे देवताओंमें इन्द्र ही मुख्यही इच्छावाले बानरोंके बीचमें
 किष्की रम्भीर गर्बना ऐसी सुनासी देवी है मना बहुत-से
 मेरवींका तुमुक नाम हो रहा है तथा जो सुरमें युद्ध
 है वह 'पनस' नामसे प्रसिद्ध यूथपति है । यह पनस पन
 उत्तम परियात्र पर्वतपर निवास करता है । यूथपतिमें जो
 पनसकी सेवामें पचास लाख यूथपति रहते हैं उनके अपने-अपने
 यूथ भङ्गना-भङ्गना हैं ॥ ३७-४० ॥

यस्तु भीमां प्रक्ष्णालीं चामुं तिष्ठति शोभयन् ।
 स्थितां तीरे समुद्रस्य द्वितीय इव सागरः ॥ ४१ ॥
 एय दूर्वरसकप्रशो विन्त्ये नाम यूथपा ।
 पिथवरसि यो वेष्णां मन्वीनुत्तमां मतीम् ॥ ४२ ॥
 पठिः शतसहस्राणि पञ्चमस्य युधमगा ।

जो समुद्रके तटपर स्थित दुर्ग इस उच्छ्रयी-सूरी
 भीमप सेनाके वृक्षे मूर्तिमान् समुद्रकी माली तुष्णमि
 करता हुआ लड़ा है वह दूर्वर पर्वतके समान किष्क-
 ष्य बानर किन्ता नामसे प्रसिद्ध यूथपति है । वह गरिबी
 भेड़ केना नदीका पनी पीवा हुआ विन्ध्य है । यह पन
 बानर उसके उदीक है ॥ ४१-४२ ॥

स्यामाहवति युवाय क्रोधमो नाम धारः ॥ ४३ ॥
 विष्णुस्ता पञ्चपन्थय यया यूथानि भागाशा ।

जो युद्धके क्षिमे उवा भयङ्करे उच्छ्रयता रखे है
 तथा जिसके पास कक-विक्रमघाथी अनेक यूथपति रहते हैं
 और उन यूथपतिोंके पास युष्क-युष्क बहुत-से यूथ हैं
 वह क्रोधन नामसे प्रसिद्ध बानर है ॥ ४३ ॥

यस्तु गैरिकवर्णांभ वपुः पुष्यति धारः ॥ ४४ ॥
 भयमस्य सदा सघान् धाररान् यक्षपिंता ।
 गयया नाम तज्जली त्यां प्रजापतिवर्तते ॥ ४५ ॥

यन शतसहस्राणि सतस्रिता पयुपासत ।
 परियायासत सङ्घा स्थन्वनीकेन मर्वितुम् ॥ ४६ ॥

जो गेरक समान छात्र लगे धरिता पन
 करता है उस तज्जली बानरका नाम धारण है । उसे
 अपने बलपर पड़ा धमंड है । यह उवा उन बानरोंमें
 निरस्त्रर शिष्य करता है । वैरिसे किन्त उमसे यह भारभे
 और पदा आ रहा है । इसकी मंगलं लहर धार बानर
 रहते हैं । यह भी अपनी नेनाके शार कृष्णम पूष्में मिल
 देनी इच्छा रास्ता है ॥ ४४-४६ ॥

यन युष्पसदा पीरा यथा सप्या न विद्यत ।

यूपया गृध्रघोषास्तया गृधानि भागशः ॥ ४७ ॥ परा भी अस्मात् इ । गृधाण्योर्गं भद्रं च यूपयैः ।
 यत्सर्वं-सर्वं यानरं गृध्रैः शीरं इ । इत्येव गता । उन उपकं श्रमा भस्मा गृध्रैः ॥ ४७ ॥
 इत्यर्थे भीमत्रायायने वाक्यीक्येव आदिकार्यं सुन्दरकाण्डे पद्यैः सर्गः ॥ ११ ॥
 एष प्रथम भीमत्राभिनिर्मितं भयंतायायनं आदिकार्यं सुन्दरकाण्डे उन्नीतरौ ततः पूरं कृत्वा ॥ २१ ॥

सप्तविंशः सर्गः

वानरसनाक प्रधान गृध्रपतिर्षोका परिचय

तांस्तु न सम्प्रदक्ष्यामि प्रक्षमापस्य गृध्रान् ॥
 रायथापे पराक्रान्ता य न रक्षन्ति जीवितम् ॥ १ ॥
 (अरण्यं प्रह—) अरण्यं अरण्यं । अण्यं अण्यं अण्यं
 निरीक्षणं कर रक्ष इ । इत्यर्थे गी भाष्ये उन गृध्रपतिर्षोका
 परिचयं यं रक्षा इ । च भीरुतापत्नी इ इत्यं पराक्रान्तं परतको
 उच्यते इ आर भया मर्णोका गद गरी रण्ये इ ॥ १ ॥
 शिष्या यस्य यदुष्यामा र्थिपत्याद्वैतमाश्रितः ।
 ताघ्राः पीताः शिताः द्रुक्ताः प्रकीर्णाः घोरकर्मणाः ॥ २ ॥
 मपूर्वलिताः प्रकाशन्त स्यस्यय मतीचया ।
 पृथिव्यां घातुष्यन्त एग नापेय वानराः ॥ ३ ॥
 यं घृताऽनुगच्छन्ति घानराऽथ सहस्रजाः ।
 गृध्रानुघम्य सहसा लङ्घयन्तस्तपराः ॥ ४ ॥
 गृध्रया हरिगत्रम्य क्षियराः समुपश्रित्वा ।

पाण्डुर-शरीरं उमान् इत्येव गता गरी मी च मर्णोः
 शरीरस्य गृध्रगृध्रं तां स-भर इत्येव तां गृध्रं क्राता
 सभय गरी इ । य स्य पराः शिष्याः भर्णो भोर तद्विषोका
 तयोरेर रक्षा इ । यन्तः य अत्यन्त भयंकर स्थायराऽथ
 रीठ भाष्ये च इ आ रक्ष इ । इत्यं पीतं शिष्या गत्र
 पक्षा देः शिष्या भर्णो यरी भयानक भोर च गृध्रोका
 रण्यं गी मया भयंकर ज्ञा पक्ष्य दे । यह अन्त गयोरे
 गिर ह्यु इत्येव भर्णो गरी अस्या इना रीठोकाय गिर
 कृता इ । इत्यं तां गृध्र इ । यह उमान् शिष्या गत्र
 भोर गृध्रोका इ । यह रीठयान गृध्र पराभय गृध्रानुघ
 रक्षा भोर गरीश-भ च गी इ ॥ १-९ ॥
 यदीयानस्य तु भ्राता पश्येन पयत्पामम् ॥
 भ्रम्य समान्य रूपेण विशिष्टस्तु पराक्रम ॥ १० ॥
 स एव जाम्यवान् नम महागृध्रगृध्रगम् ॥
 घान्ता सुदधती य सम्प्रदाहृत्पयवणा ॥ ११ ॥

इतर यह हर तां गत्र यानर इ । भयंकर कर्म परतियन्
 इय वानरौ तंभी रीठय एवम, पीक, भूर भोर गद
 गीक गद कि कि हाथ पद-यन् शिष्या रीठे इ । य
 इतर यत्र न क ह्यु गता उत घानक अरण्य गृध्रो
 क्रियोऽ गान्त यानर रक्ष इ तथा चय्या गान्त गृध्र
 अन्त रक्षा इ । इत्यं रीठ वानराऽथ किंकर स्य रीठोका
 भोर इत्यं गृध्रोका उपाय इ इ गृध्र गत्राव सहस्र चक्रार
 भास्म्य परतन इत्यं च आ रक्ष इ ॥ २-९ ॥
 शिष्यानि महास्योस्तिष्ठता याम्स्तु पश्यति ॥ १ ॥
 भ्रन्तिव्यं ननयकात्तान मुय सस्यगाममान् ।
 भयव्ययानिर्गतान परा पारमिनाऽथ ॥ २ ॥
 एतनु य य र्थिगृ शिष्येषु नदीषु य ।
 एव स्यान्निगतनं गत्रन्नुक्ताः सुदधन्वाः ॥ ३ ॥
 एषा मध्य शिष्या गत्रन भीमता भीमवृताः ।
 पश्ये इय भीमताः समन्तात् पयिवागिताः ॥ ४ ॥
 श्रुत्वास्तु निगृह्यन्मभ्यान्त नमसां गिवन् ।
 स्यराणांमध्यनिर्गृह्या तांस्तु गृध्रयाः ॥ ५ ॥
 पर नम गदान्य भोर मत्राऽथ मन्त यत्र
 गद कि गीठोका भय । रक्ष इ । सुदध
 भाष्यमवदर परतन इ । समु- कृत्वा रक्ष । रीठ

युत गृध्रक उठ भद्र अभ्यान् इ । य गद-
 गृध्रपतिर्षोका भी गृध्रोका इ । र्थिगृ य पीना परम
 दिवास्वी दा इ । य रूपेण भया वद-ममान रीठे
 किंय परमम उपाय गी पद-भ इ । इत्या सभ्या भूता
 इ । य यद तां गत्र सुदधती भाष्ये अभि रक्षा इ
 भोर उपाय गता भ्रा इ । सुदध मतापेर इत्या उपा
 भोर भय वद-भ भ्रा इ ॥ १-११ ॥
 एतन् सास्य तु महत् फलं गमस्य भीमता ।
 शिष्यास्तु जाम्यवन्त स्यथाथ पहसा पराः ॥ १० ॥
 इ ग सुदधन्व- अभ्यानां वतापु गत्रामं, इत्यं-
 वदु यरी तांसा पी पी भोर उपा इ इ वदु । इत्यं गी
 मन्त ह्यु य ॥ १२ ॥
 भाष्ये परताप्रभ्या महाश्रिपुयाः शिष्याः ।
 सुदधन्ति शिष्यास्तु न गृध्राण्यिजन्ति च ॥ १३ ॥
 राक्षसानी च सहसा शिष्यानी च रामणाः ।
 पतन्त्य संस्था सहसा शिष्याण्यमिनीऽत्रग ॥ १४ ॥
 इत्यं परता गत्राऽथ रक्षा इ । इत्यं यत्र कात्रमा
 यरी भाष्य नदी इ । इत्यं गद गरी वरी वरी रीठोकाऽथ

भरं द्रुपः ॥ यं रक्षते भ्रैर पिशाचैकं समानं क्रूरं हि और
 बड़े-बड़े फलै-फलैतौर चंदकर बहोते महान् मेघोंके समान
 निगम्य एवं विद्युत् पिच्छसम्बु शुभुजैरन ओहते ॥
 इन्हें मनुष्ये कभी मर नहीं होता ॥ १२ १८ ॥

य पममभिसरम्भं ध्रुवमात्मत्वस्थितम् ।
 प्रेक्षन्तं यानराः सर्वे स्थिता यूथपयूथपम् ॥ १५ ॥
 एष यजन् सहस्राक्षं पर्युपास्ते हरीश्वरा ।
 बलेन वक्षसयुक्तो वृद्धो नामैव यूथपः ॥ १६ ॥

ॐ लोक-लोकमें ही कभी उलझ्या और कभी सड़ा
 होता है वहाँ लड़े हुए सब वानर किसी और आश्रय
 पूरक देखते हैं जो यूथपतियोंको भी खतर है और ऐसे
 मर विस्वामी देव है यह इम नामसे प्रसिद्ध यूथपति है ।
 एक पक्ष बहुत बड़ी सेना है । रज्जु । यह यानरपक्ष
 इम अपनी सेनाद्वारा ही खस्राख इन्द्रकी उपस्थान करता
 है—उनकी छात्रताके भिन्ने सेनाएँ मेम्ता रखता है ॥ १५ १६ ॥

या स्थितं योवनं शैलं गच्छन् प्रार्थनं संघते ।
 ऊर्ध्वं तपैव क्षयेन गताः प्राजातिं योजनम् ॥ १७ ॥
 यस्मात्तु परमं रूपं चतुष्पासु न विद्यते ।
 भुजाः सनत्वनो नाम यानराणां पित्रमहः ॥ १८ ॥
 येन युद्धं कथा वृत्तं रणे शक्यं भीमम् ।
 पराजयश्च न प्रसाः सोऽय यूथपयूथपः ॥ १९ ॥

ॐ चकते समय एक योजन वृत्त लड़े हुए फलैको भी
 अपने पार्ष्वभामसे घूँ सेया है और एक योजन उँचकी
 बलुतक असन धरिले ही पहुँचकर उते प्रण कर सेया
 है—येयपामं किसे बड़ा रूप फली नहीं है, यह वानर
 सनादन नामसे विख्यात है । उसे यानरोंके पित्रमह कहा
 जाता है । उस बुद्धिमान वानरने किसी समय इन्द्रको अपने
 साथ युद्धमें भन्कर दिया था किन्तु वह उन्से परास्त नहीं
 हुआ था बही यह यूथपतियोंको भी खतर है ॥ १७-१९ ॥

पश्य विभ्रममायस्य शक्रस्येव पराक्रमः ।
 एष गन्धयकन्यापामुत्सनाः कृष्णयस्त्र ॥ २० ॥
 तथा द्यास्तुर युद्धे साहस्यं विदिपीकसाम् ।
 यत्र वैभयमा राज्ञं जम्बुमुनिवपत् ॥ २१ ॥
 या राज्ञं परितेन्द्राणां यदुक्त्विनरसयिन्वम् ।
 शिहारसुपदां नित्यं भ्रातृस्तं राक्षसाधिप ॥ २२ ॥
 शत्रेण रम्य भूमिान् पल्पान् यानरात्तमः ।
 युद्धेऽप्यरुपनां नित्यं प्रथमं नाम यूथपः ॥ २३ ॥
 गृताः पट्टिसहस्रान् हरीणां समर्थस्थितः ।
 एषपाणसतं ननु स्पन्दनीवनं मारुतम् ॥ २४ ॥

युद्धके निर्यन्दन समय शिवा परक्रम इन्द्रके समान
 उद्यमर इम है तथा दराप्री भी भयुक्त युद्धमें
 इन्द्रमेंही गतापक विरिन्ध अर्धिन एक कथा ।

कन्याके गर्भमें उत्पन्न किया था वही यह रूपम रूप
 यूथपति है । एकपक्ष । बहुतसे किन्नर किन्नर केम भ
 हैं उन बड़े-बड़े फलैको भी खतर है और मर
 मरें कुनेको स्वा विशारक सुल प्रण करके है तथा कि
 पर उगे हुए जडुनके इच्छे नीचे उन्विपिण कुने के
 करते हैं; उसी फलैपर यह तेकवी कन्या वानरकीके
 श्रीन्या रूप भी रम्य करता है । वह युद्धमें कभी मर
 प्रणय नहीं करता और दस भर वानरोंसे निर्य उतर है
 यह भी अपनी सेनाके द्वारा उन्को रौर सम्नेत्र ऐक
 रकता है ॥ २ -२४ ॥

यो गङ्गामनुपपत्तिसि श्रासयन् गजयूथपम् ।
 हस्तिनां यानराणां च पूषधैरमनुस्मरन् ॥ २५ ॥
 एष यूथपतिर्देव गार्जन् गिरिगुहाश्रया ।
 गजान् रोषयते कन्यान्वक्रुञ्च महीश्वरन् ॥ २६ ॥
 हरीणां घाहिनीमुख्यो नवीं हैमक्रीमज्जु ।
 जशीरवीकमाश्रित्य मन्वरं परितोत्तमम् ॥ २७ ॥
 रमतं यानरश्रेष्ठो विवि शक इव लपम् ।

एन शतसहस्राणां सहस्रमभिकर्तते ॥ २८ ॥
 धीर्यधिक्रमवृत्तानां मर्त्यां वाहुशास्त्रियम् ।
 स एष मेता शैतेरां यानराणां महात्मनम् ॥ २९ ॥
 स एष दुर्धरो राजन् प्रमाथी नाम यूथपः ।
 वातमेघोद्यतं मघं यमेमनुपपत्तिसि ॥ ३० ॥
 भीतीकमपि संरम्भं यानराणां सरस्किन्म ।
 उद्धतमरुणाभासं पवनेन समस्तता ॥ ३१ ॥
 कियतंमार्गं बहुशो यत्रैतद्रुद्धं रजः ।

ॐ हाथियों और वानरोंके पुराने बैरप सख भ
 गन्-यूथपतियोंको भयभीत करता हुआ गङ्गा किने
 विचार करता है—कभी पेशोंको टाड़-उलाहकर उनके हाथ
 हाथियोंको आगे बढ़नेसे रक देव है पर्येथी करणमें ख
 और जर-जरते गर्नेत्र करता है यानरपूथेम सने
 तथा उंचाचक्र है, यानरोंकी संग्रामें किं प्रणु के
 माना करके है, ज गङ्गाकेपर विद्यमान उन्कीके
 नामक परंत तथा गिरिधेय मन्वरपक्षत्र भाषण कर
 रक एवं रम्य करता है और ज वानरोंमें उसी प्रम
 भय स्थान रकता है जस समक संकटाभीनें काज्ज ए
 परी यह युद्ध भी प्रमाथी नामक यूथपति है । एक क
 बह भार प्यक्रमपर गर्प रज्जु गन्ध करनसख रक करे
 यानर रक है ज अन वाहुपस्य युद्धभिन एन है ।

१ द्रुपदकीके विना वानरपक्ष केभीके कथक
 वानक राक्षसों को हाथीके रूप धारण करके जगा था वानर
 था । २०से २४ तकमें विवि उ वानरोंके २८ २९ ३० ३१

यह प्रमाथी इन सभी महात्मा बानरौंछ नेता है। वायुके केसले उठे हुए मेरुकी भौति किस बानरकी ओर आप बार बार देख रहे हैं, किससे सम्बन्ध रखनेवाले केवाशाथी बानरौं छी सेना भी ऐसे मरी विलसती देती है तथा जिसकी सेना ह्यर उकासी गयी भूमिख रगकी बहुत बड़ी भूमिपथि कसुसे ख ओर फैलकर जिसके निकट गिर रही है वही यह प्रमाथी नामक वीर है ॥ १५-१२३ ॥

एतेऽसितमुक्ता घोरा गोलाङ्गुल्य महापला ॥ ३२ ॥

शतं शतसहस्राणि ह्येषु वै सेतुवन्धनम् ।

गोलाङ्गुलं महाराज गयाक्षं नाम यूपयम् ॥ ३३ ॥

परिपार्याभिरर्ध्वे लङ्कां मर्वितुमोज्जसा ।

ये काले मुँहवाल कंगूरकालिके बानर हैं। इनमें महान् कल है। इन मक्कर बानरौंछी संख्या एक करोड़ है। महा-राज। जिसने सेतु बाँधनेमें छायावा की है उस कंगूरकालिके कल्पम नामक यूपयसिमे चारों ओरसे घेरकर ये बानर पक्ष रहें और लङ्काको कङ्कर्वक कुचल डालनेके लिये ओर सेरेले गर्जना करते हैं ॥ ३२ ३३ ॥

अमराधरिता यत्र सर्वकाण्डफळद्रुमा ॥ ३४ ॥

यं सूर्यस्तुस्यवषाभमनुपयति पर्वतम् ।

यस्य भासा सदा भासति तद्वर्षा सुगपक्षिप्यः ॥ ३५ ॥

यस्य प्रस्य महात्मानो न त्यजन्ति महापयः ।

सर्वधमफल्लय धृसा सदा फल्लसमन्विता ॥ ३६ ॥

मयूनि च महार्हाणि यस्मिन् पयतस्रस्रमे ।

तत्रैव रमतं राजन् रम्ये काञ्चनपर्यते ॥ ३७ ॥

मुक्यो बानरमुक्याना केसरी नाम यूपयः ।

किस पर्वतपर सभी श्रुद्रुमोंमें फल देनेवाले दृष्य भ्रमरोंसे सेवित विलसती देते हैं। सूर्यदेव अपने ही समान वर्णवाले किस पर्वतकी प्रतिदिन परिष्कार करते हैं। जिसकी क्षन्तिसे वर्षके मृग और पक्षी सदा सुनहरे रंगके प्रतीत होते हैं। महात्मा महामिग किष्क टिकरका कभी त्याग नहीं करते हैं। जोके लक्ष्मी दृष्य सव्युर्व मानाशिष्ठ नस्तुभीधक फल्लक रूपमें प्रधान करत हैं और उनमें सदा फल भरो रहते हैं; जिस श्रेष्ठ शैलपर बहुमूल्य मधु उपलब्ध होते हैं उसी राष्ट्रीय सुवर्णमय पर्वत महामकर ये प्रमुल बानरोंमें प्रधान यूपयति केकी राज करते हैं ॥ ३४-३७- ॥

परिगिरिसहस्राणि रम्याः काञ्चनपर्यता ॥ ३८ ॥

तयो मध्ये गिरियरस्थमिषान्ध रक्षताम् ।

प्रातः ह्यत्र च रात्रीय सुवर्णमय पर्वत हैं उनके बीचमें एक श्रेष्ठ पर्वत है जिसका नाम है कर्वाणिमक। निष्प्राय निष्प्रायस्ते। जैसे राष्ट्रधर्म आप भद्र हैं उसी प्रकार पर्वतोंमें यह कर्वाणिमक उत्तम है ॥ ३८ ॥

तथैक क्विपसा द्यतास्तात्रास्या मयुपिङ्गमाः ॥ ३९ ॥

निवसत्यन्तिमगिरी तीक्ष्णहृदा मखायुधाः ।

सिंहा इव चतुरङ्गा व्याघ्रा इव दुरासदा ॥ ४० ॥

सर्वे वैभानरसमा ज्यल्लवारीधियोपमा ।

सुदीर्घाक्षितलाङ्गुला मत्तमातङ्गसमिभा ॥ ४१ ॥

महापथतस्तच्छारा महाजीमूतलिःखनाः ।

वृषपिङ्गल्लनेशा वि महाभीमगतिस्नानाः ॥ ४२ ॥

मर्दयन्तीव त सर्वे तस्युलङ्गां समीक्ष्य त ।

सर्वों का पर्वतपर अन्तिम शिलर है; उसपर क्विप (मूरे) श्वेत कल मुँहवाले और मधुके समान पिङ्गल वर्णवाले बानर निवास करते हैं, जिसके दाँत बड़े लीखे हैं और नख ही उनके मधुपुत्र हैं। वे सब लियेके समान चार दाँतों-वाले, व्यापक समान दुर्बल अन्तिक समान तेकसी और प्रबलित मुखवाले निपपर उनके समान कधी होते हैं। उनकी वृँछ बहुत बड़ी ऊपरकी ठठी हुई और सुन्दर होती है। वे मलयासे हाथीके समान पराक्रमी; महान् पर्वतके समान, ऊँचे और सुदृढ़ शरीरवाले तथा महान् मेरुके समान गम्भीर गर्भपर करनेवाले हैं। उनके नेत्र गाँठ-गाँठ एवं पिङ्गल वर्णके होते हैं। उनके चलनेपर बड़ा भयावक शब्द होता है। व सभी बानर यहाँ भाकर इस तरह लक्षे हैं मानो आपकी लङ्काको देखते ही मकल डालेंगे ॥ ३९-४२ ॥

एय वैषामधिपतिर्मध्ये तिष्ठति दीर्त्यघान् ॥ ४३ ॥

जयार्थी क्षिप्यमाक्षिप्यमुपतिष्ठति धीयघान् ।

याम्ना पृथिव्या विख्यातो राज्ञश्चासक्रीति यः ॥ ४४ ॥

वैलिय उनके बीचमें यह उनका पराक्रमी सेनापति लडा है। यह बड़ा बलवान् है और विजयकी प्रातिक लिये लडा सूर्यदेवकी उपासना करता है। रात्रि। यह वीर इस भूमण्डलमें दायनलिक नामसे विख्यात है ॥ ४३ ४४ ॥

पयैवादांसत लङ्कां स्वनामीकेन मर्वितुम् ।

विजन्ता बलयाम्भूरः पौरुषे स्व भ्यवस्थिता ॥ ४५ ॥

रामप्रियार्थं प्राणानां दया न कुरुत हरिः ।

यस्यान् पराक्रमी तथा धूरवीर यह शतबलि भी अपने ही पुत्रकार्यके मरणे युद्धक लिये लडा है और अपनी सेना-शाय लङ्कापुरीका मकल डालना चाहता है। यह बानरवीर भीरुमन्त्रवीर प्रिय करनेके लिय अपने प्राणोंपर भी दया नहीं करता है ॥ ४५ - ॥

गजा गधासा गवयो नलो नीलश्च यानरा ॥ ४६ ॥

एकैकमय योधाता काष्ठिभिर्वाभिप्लुतः ।

यत्र गवाध गवय नख और नील—इनमेंसे एक-एक सेनापति दक्ष-रथ करोड़ योद्धाओंसे फिर हुआ है ॥ ४६ ॥

तथान्य यानरश्चछा विष्ण्वपयतयासिनः ।

न शक्यन्त यदुत्थात् तु सप्यान् लपुपिक्रमाः ॥ ४७ ॥

इसी तरह विष्ण्वपयतान निवास करनेवाले और भी बहुत-से शीम पराक्रमी भद्र बानर हैं जो अर्धक हानक शाय लिन नहीं आ सकते ॥ ४७ ॥

सर्वे महाराज महाप्रभावाः
 सर्वे महाशैलनिकशास्त्रयाः ।
 सर्वे समर्थाः पृथिवी क्षणेन
 कर्तुं प्रविश्वस्तविकीर्णशैल्यम् ॥ ४८ ॥

प्राहारज । ये सभी वानर बड़े प्रभवरक्षाही हैं । उनके
 शरीर बड़े-बड़े पर्वतोंके समान विशाल हैं और सभी क्षण-
 में भूमण्डलके समस्त पर्वतोंको धूर-धूर करके खरके
 किलेर देनेकी शक्ति रखते हैं ॥ ४८ ॥

हरावें श्रीमद्वाल्मीकीये आश्रित्यने मुदकाबने ससर्विदाः सर्वाः ॥ २० ॥

इस प्रकार श्रीमद्भक्तिनिर्मित भार्यामायब अधिकारके मुदकाबन सहाईसौं सर्व पा। हुम् ॥ २० ॥



अष्टाविंश सर्ग

शुकके द्वारा सुग्रीबके मन्त्रियोंका, मैन्द और द्विविदका, इनुमानका, भीराम, लक्ष्मण, विभीषण
 और सुग्रीबका परिषय देकर वानरसेनाकी संस्थाका निरूपण करना

सारणस्य वक्षः भुल्या रावण राजसाधिपम् ।
 बलमाविश्य सत् सर्वे शुक्ये वाक्यमथाप्रवीत् ॥ १ ॥
 उत सवी वानरसेनाम् परिषय देकर अब खरण पुत्र हो
 गया सब उसका रूपन कुनकर छुटने राखरण राजपसे
 ध्या—॥ १ ॥

पुत्रन् । आप इन वानरोंमें देवताओंके समान लक्ष्मण
 किन हो वानरोंको सहा देस रहे हैं उनका नाम है मैत्र और
 द्विविद । पुत्रमें उनकी बरगरी करनेवाला कोई नहीं है ।
 महाशैली आकाशसे उन दोनोंने अभ्युत्पान किया है । वे दोनों
 वीर अपने बल-पराक्रमसे शत्रुको कुचक करनेकी शक्ति
 रखते हैं ॥ १-३ ॥

स्वित्पान् पश्यसि पानेद्यन् मसानिय महाश्रिपान् ।
 म्यप्रोषामिषि गाङ्गेयान् सालान् हैमप्रतानिष ॥ २ ॥
 पते दुष्यसहा राजान् वक्षिना कामरूपिणाः ।
 दैत्यदात्मसक्यशा मुञ्जे द्यपराक्रमाः ॥ ३ ॥

य तु पश्यसि तिष्ठन्तं प्रभिन्नमिव कुञ्जरम् ।
 यो बलवत् क्षोभयेत् कुञ्जं समुद्रमपि वाकरम् ॥ ८ ॥
 एतेऽभिगमन्ता लङ्कायां दैत्येभ्यस्तत्र च प्रभा ।
 एतं पश्य पुत्र इदं वानरं पुनरागतम् ॥ ९ ॥
 ज्येष्ठा केसरिणा पुत्रो धातात्मज इति भुक्तः ।
 इनुमानसि विख्यातो खड्गितो यत्र सागरम् ॥ १० ॥

पुत्रर बिते आप मद्रकी धर्य बहानेवाके मद्रक सके
 की मीति सहा देस रहे हैं ओ वानर कुपित होनेर कुञ्जर
 भी विरुद्ध कर सकता है जो शत्रुमें आपके पक्ष मद्रक
 और विदेहनिबनी छिवाके भी मित्रकर गया था उते देखिये ।
 परकभ देखा हुआ यह वानर फिर आया है । यह केसरी
 बड़ा पुत्र है । पवनपुत्रके भी नामसे विख्यात है । उते सब
 इनुमान् करते हैं । इतने परह समुद्र खोंक पा ॥८-१० ॥

पुत्रन् ! किन्हें आप मद्रवाके महागम्भीरोंके समान नहीं
 लषा देस रहे हैं ओ गङ्गातटके वटश्रेण और हिमश्रम्यके
 प्राबल्यके समान आन पड़ते हैं इनका क्या तुल्य है ।
 वे इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले और बलवान् हैं । दलों
 और वानरोंके समान शक्तिवाली तथा मुञ्जेमें देवताओंके
 समान पराक्रम प्रकट करनेवाले हैं ॥ २-३ ॥

कामरुपा हरिभद्रा पलकपसमन्वितम् ।
 अनिवापगतिद्वेष्य यथा सततमा प्रभुम् ॥ ११ ॥
 पक्ष अंगे रूपने मन्त्र बर भेद वानर भन्नी रूपके
 अनुकार रूप धारण कर सकता है । इसकी गति पर्वतों
 कक्षी । यह वायुके समान सर्वत्र आ सक्य है ॥ ११ ॥

एतां ऋतिसहस्राणि तत्र पञ्च च सप्त च ।
 तथा शकुसहस्राणि तथा कृन्डशतानि च ॥ ४ ॥
 एत सुग्रीयसन्धियाः क्रिष्किन्धानिलया सदा ।
 हरया द्धगन्धर्वैकतपन्नाः कत्रमरुपिजाः ॥ ५ ॥

उद्यन्त भास्कर द्रुपा पात्वा फिन पुपुक्षिता ।
 त्रियाञ्जनसहस्रं तु भक्षणमपतीत्य हि ॥ १२ ॥
 आदित्यमादरिष्यामि न मे क्षुब्ध प्रक्षियास्यति ।
 इति निश्चित्य मनसा पुप्नुय पनर्षिता ॥ १३ ॥

नय यह वानर पा उन तमपरी गादे पर वि
 इतने बहुत भूय सन्ने भी । उत समय उगा पुत्र मद्रक

इनकी लफ्फा इच्छित छोटि तरहस सदन वायु और छे इन्
 १० । ये सब उरध वानर महा क्रिष्किन्धानिमें रहनेवाले सुग्रीबके
 मन्त्रों हैं । इनकी उत्पत्ति देवताओं भार गन्धर्वोंसे हुई है । ये सभी
 इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ हैं ॥ ४-५ ॥

यो नौ पश्यसि तिष्ठन्तो कुमारी इयरुपिणी ।
 मैन्द्रश्च द्विविदश्चैव ताभ्यां मास्ति समा युधि ॥ ६ ॥
 प्रथमा समनुजात्ययमृतप्राणिन्दपुभी ।
 भ्यरासन यथा मद्रुमती मापनुमाञ्जसा ॥ ७ ॥

इन पक्षवालोंका उद्योदरण १० ४ ७-११ की हुई
 ११ व्याक अनुकार सनस्य च इहे ।

सकृत् यद् तीन इत्तर यन्म त्रैत्र्य उच्यते गत्वा या । उत
 अन्व मन-ही-मन यह निश्चय करके कि पशुके फल भाविते
 मरी भूल नहीं बरसगी, इत्यस्मि सर्वत्र (जो भाग्यशत्रु दिव्य
 फल है) के आर्तके यह यन्मभिमानी वानर ऊपरको उच्यते
 य ॥ १२ ११ ॥

मन्त्रच्युत्पत्तमं ध्वमपि देवार्चिराससौ ।
 मन्त्रसाधैव पतितो भास्करोद्यमे गिरौ ॥ १४ ॥

वेदपि और उक्त मी किन्हीं परछा नहीं कर सकते
 उन सर्ववैदिक न पहुँचकर यह वानर उदयगिरिपर ही गिर
 पड़ा ॥ १४ ॥

पठितस्य कपरस्य हनुरेक्य शिक्षतच्छे ।
 किञ्चिद् भिन्ना वदहनुहनूमामेव तन वै ॥ १५ ॥

वहाँके शिष्यस्युत्तर गिरनेके कारण इस वानरकी एक
 हनु (ठोकी) कुछ बूट गयी' साथ ही अत्यन्त हद हो गयी,
 इत्यस्मि यह 'हनुमान्' नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ १५ ॥

सत्यमागमयोगेन ममैव विवितो हरिः ।
 गान्य शक्य वत रूप प्रभासो वानुभायितुम् ॥ १६ ॥

एव आशस्त लङ्कामको मयित्तुमोजसा ।
 येन जान्यस्वयत्सती वै भूमकेतुस्तवाप वै ।

अशुष्या निहितमपि क्य विस्मरसे कपिम् ॥ १७ ॥

विश्वस्वयं अक्षयिके उग्ररुते मीन इत वानरका हृत्पान्त
 ठीक-ठीक अना है । इसके बल, रूप और प्रभावका पूर्णरूपसे
 वचन करना किंवदंति मी मरामना है । यह मनेका ही
 खरी अङ्गको मरुत देना चाहता है । किन्ते आपने अङ्गमे एक
 रक्षा या उस अग्निका मी किन्ते अपनी ईश्वरप्रसन्नित
 करके खरी अङ्ग का हावी उत वानरको आप भूस्ते कैते
 हैं ? ॥ १६ १७ ॥

यद्येगोऽनन्तरः शूरा दयामा पद्यनिमेसणा ।
 इत्थमप्युवा मतिरथो स्त्रोके विभुतपौरुष्य ॥ १८ ॥

हनुमानकीक पक्ष ही अ कम्बके समान नेत्रबाके हीके
 धारवीर विद्यत रहे हैं वे इत्थाकुचका अतिरथी हैं । इनका
 पौरुष सम्पूर्ण स्त्रोकेमें प्रसिद्ध है ॥ १८ ॥

पश्चिन् न कस्य धर्मो या धर्मं मातिवर्तते ।
 यो ब्राह्मणस्य वशात्त संव वदयिष्या वत् ॥ १९ ॥

धर्म उनमे कमी अरुना नहीं होय । ये धर्मका कमी
 उभयवृत्त नहीं करते तथा ब्रह्मा और वेद दोनोंके शत्रु
 हैं । वेदवेद्यमाने इनका बहुत ऊँचा समान है ॥ १९ ॥

यो भिन्नाद् गगन धार्यैर्विनीं पापि वारपयत् ।
 यस्य मृत्यारिष्य क्रोधं शक्रस्यैव पराक्रम ॥ २० ॥

ये अपने शत्रुसे अक्रोधध भी नेरन कर सकते हैं

पृथ्वीको भी विदीर्षी करनेकी क्षमता रखते हैं । इनका क्रोध
 मृत्युके समान और पराक्रम इन्द्रके तुल्य है ॥ २ ॥
 यस्य भार्या जनस्थानात् सीता चापि हृता स्वया ।
 स एव रामस्त्वा राजन् योयु समभिवर्तते ॥ २१ ॥

राजन् ! किन्धी मन्मा क्षीताका भाग नानसानसे हर अपने
 हैं, वे ही ये भीरुम आरते युद्ध करनेके क्षिमे समान भाकर
 लड़े हैं ॥ २१ ॥

यस्यैव दक्षिणे पादयो युद्धजाम्बूनदप्रभः ।
 विशाखयज्ञास्ताम्राक्षो नीलकुञ्जितमूर्धजा ॥ २२ ॥
 एयो हि लक्ष्मणो नाम भ्रातुः प्रियहिते रतः ।
 नये युद्ध च कुशला सधशक्यमूर्ता वरः ॥ २३ ॥

उनके बाहिने मगमे जो य युद्ध युवर्षके समान
 अतिमान, विशाख वक्षःखण्डसे युगमिन्न कुछ-कुछ कम
 नेत्रबाके तथा मन्साकर कले-अनत मुँहके केव पारय
 करनेवाके हैं इनका नाम लक्ष्मण है । ये अपने माँके
 प्रिय और हितमें लगे रहनेवाले हैं राक्षसी और युद्धमें
 कुशल हैं तथा शत्रुपूर्ण शक्यकारियोंमें भय हैं ॥ २२ २३ ॥

भमर्यो युर्वयो जेता विक्रान्तश्च जयी यस्मि ।
 रामस्य दक्षिणे वाङ्मूर्त्तित्य प्राणो वहिश्चरः ॥ २४ ॥

य अमर्षणीक, दुर्बल विन्धी पराक्रमी शत्रुको
 पराजित करनेवाके तथा कल्याण हैं । अस्मन् एता ही
 भीरुमके बाहिने हाथ और बाहर निचरनेवाके प्रय हैं ॥ २४ ॥

नष्टेन राष्यस्यार्थे जीयित परिरक्षति ।
 परैवाशसत युवे निहन्तु सर्वराशस्तान् ॥ २५ ॥

वन्दे भीरुनाथर्षके क्षिमे अपने प्राणाकी रक्षा मी
 ध्यान नहीं रखत । ये अनेक ही युद्धमें सम्पूर्ण राक्षसीका
 श्मार कर देनेकी इच्छा रखते हैं ॥ २५ ॥

यस्तु सख्यमसौ पक्ष रामस्याभिस्य तिष्ठति ।
 रक्षोगणपरिहृता राज्ञ ह्येन विभाषणः ॥ २६ ॥

भीमता राजरजेन अशुष्यामभियेषितः ।
 त्यामसौ प्रतिसरम्भो युवार्थेयऽभिवर्तते ॥ २७ ॥

भीरुमन्त्र-वेदी कर्षो भर ष राक्षसते पिरे हुए
 लड़े हैं वे राजा किभीरु हैं । राक्षसियव भीरुमने इन्हें
 अङ्गके राक्षस अतिरिक्त कर दिया है । अब ये भापर
 कुक्ति होकर युद्धके क्षिमे लामने भा गय हैं ॥ २६ २७ ॥

य तु पश्यसि तिष्ठन्त मध्य गिरिमिवायवम् ।
 सर्वदशमागुम्द्राणा भतारममितीवसम् ॥ २८ ॥

किन्हीं अथ सब कनरोंक बीचमें पर्वतके समान
 अविच्छन्न भवते लहा देखते हैं य समान वानरोंक ह्यामी
 अतिरिक्त तक्ष्मी नुभीर हैं ॥ २८ ॥

रावण जयशब्देन प्रतिनन्वाभिनिःसृतौ ॥ १५ ॥

उठके देख करनेपर हुक और खरप बहुत छिन्नत हुए और कम-कमकरके द्वारा रावणका अभिमान करने वहाँसे निकल गये ॥ १५ ॥

मग्नवीथ वृषामिथः समीपस्य महोदरम् ।
उपस्थापय मे शीघ्र चारामिति निशाचरम् ।
महोदरस्तयोक्तस्तु शीघ्रमाहाययधरान् ॥ १६ ॥

इसके पश्चात् बरामुख रावणने अपने पास बैठ हुए महादरसे कहा—'मेरे सामने शीघ्र ही गुप्तचरोंको उपस्थित होनेकी आज्ञा दो ।' यह आदेश पाकर निशाचर महोदरने शीघ्र ही गुप्तचरोंको हाकिम होनेकी आज्ञा दी ॥ १६ ॥

तदाभ्यारोः संशरिताः प्रस्ताः पार्थिवरामसन्नात् ।
उपस्थिताः प्राञ्जल्यो धर्षयित्वा अर्पादिगम् ॥ १७ ॥

राजकी आज्ञा पाकर गुप्तचर उठी धमन विन्मयलक भाषीवाँव दे हाथ झंके सेवामें उपस्थित हुए ॥ १७ ॥

तदाभ्यवीत् ततो वाक्य रावणो राक्षसत्रयिणः ।
षारान् प्रत्यापिच्छाश्चरान् धीरान् विगतसाध्यसान् ॥ १८ ॥

वे सभी गुप्तचर विश्वक्षण धरति, धीर एवं निर्मय वे । राक्षसराज रावणने उनसे यह बात कही— ॥ १८ ॥

इतो गच्छत रामस्य व्यघसाय परीक्षितुम् ।
मन्त्रेष्वभ्यन्तरा येऽस्य प्रीत्या तेन समागताः ॥ १९ ॥

गुप्तधमन अमी वातरसेनामें रामका क्या निश्चय है यह जाननेके लिये तथा गुप्तमन्त्रजामें भ्रम सेनेवाले जो उनके अन्तर मन्त्री हैं और जो ज्ञान प्रेमपूर्वक उनसे मिळे हैं—उनके मित्र हो गये हैं उन उनके भी निश्चित विचार क्या हैं, इतकी जाँच करनेके लिये यहाँने जामो ॥ १९ ॥

कथ स्वपिति जगति किमपि न करिष्यति ।
विहाय निपुण सर्वमागतस्यमशेषता ॥ २० ॥

वे कैसे छेद हैं ! किप तरह जागत हैं और भाव क्या करेगी !—इन सब बातोंका पूर्णरूपसे अच्छी तरह पता लगाकर घेद भाओ ॥ २ ॥

कारेण विदितः शत्रुः पण्डितैर्वैशुधाधिपैः ।
युद्धे कस्यन यत्नन समसाद्य निरक्यत ॥ २१ ॥

गुप्तचरक द्वारा यदि शत्रुकी गति-निश्चय पता पकड़ लय तो मुक्तिमान् राजा धाड़-से ही प्रयत्नके द्वारा युद्धमें उसे पर हराते और मार मगदते हैं ॥ २१ ॥

घारस्तु त तयोऽयुक्त्या महाद्य राक्षसभयरम् ।
शत्रुसमागता हृत्या तदाकाहुः प्रदक्षिणम् ॥ २२ ॥

इत्यर्थे भीमवृत्तमीमांसी परामायणे वाक्यमीमांसी आदिकाम्ये मुद्राकाव्ये दशमोऽध्यायः सर्गः ॥ २१ ॥

इह इकर भीमवृत्तमीमांसी परामायणे आदिकाम्ये मुद्राकाव्ये दशमोऽध्यायः सर्गः ॥ २१ ॥

तत्र 'सुवृत्त अन्ध' करकर इयं मे हुए गुप्तकी शत्रुत्वको आगे करके राक्षसराज रावणकी परिक्रमा की ॥ २१ ॥

ततस्त तु महात्मान आय राक्षससत्तमम् ।
हृत्वा प्रदक्षिण जम्बुद्वीप रामः सत्कमलः ॥ २२ ॥

इस प्रकार वे गुप्तचर राक्षसद्विरोधि महाकाज एकल परिक्रमा करके उस व्यक्तपर गये, जहाँ जम्बुद्वीपकी शीघ्र निराकमान थे ॥ २२ ॥

ते सुवेलेस्य वीचस्य समीपे रामलक्ष्मणौ ।
प्रच्छन्वा दृष्टशुर्गत्वा ससुप्रीथविधीयतौ ॥ २३ ॥

सुवेले फलके निकट जाकर उन गुप्तचरोंने लिये राक्षस भीरम जम्बुज सुप्रीथ और विभीषणको देखा ॥ २३ ॥

प्रेक्षमाण्यभ्यर्तुं ता स बभूवुर्भयविक्रमाः ।
ते तु भ्रमात्मना दृष्ट राक्षसेन्द्रेण राक्षसाः ॥ २४ ॥

वातरोंकी उस सेनाको देखकर वे भयसे ब्याकुल हो उठे । इतनेहीमें धर्मतया राक्षसराज विभीषणने उन सब राक्षसोंको देख लिया । २४ ॥

विभीषणेन तत्रस्था निगृहीता पचच्छब्द ।
शत्रुं च प्रादिवस्थेकः पापोऽपमिति राक्षसाः ॥ २५ ॥

उन उन्होंने एकसाथ वहाँ भागे हुए राक्षसोंको धर कर और अकेले शत्रुत्वको यह साबकर पकड़वा लिया कि यह राक्षस बड़ा पापी है ॥ २५ ॥

मोक्षिताः सोऽपि रामेण दध्यमानः प्रयगमैः ।
अनुशास्येन रामेण मोक्षित्य राक्षसाः परे ॥ २७ ॥

धिर जो वातर उठे पीटने लगे । उन मजान् शीघ्रने इयाक उठे तथा अन्य राक्षसोंको भी मुक्त करा ॥ २७ ॥

धारैर्विद्यस्ते तु विक्रमैर्षुपिक्रमैः ।
पुनर्दुःप्रमनुप्रस्ताः भ्रमस्ततो नदृक्कतता ॥ २८ ॥

कम-विक्रमजम्बुज वीच पराक्रमी वातरोंने वीच उठे उन राक्षसोंके हाथ उड़ गये और वे हँस-हँसते फिर बहने लगे ॥ २८ ॥

ततो दशमीधमुपस्थित्यस्तं
धारा दक्षिण्यधरा निशाचराम् ।
गिरेः सुवृत्तस्य समीप्यसिन
व्यध्वपन् रामदत्त महापता ॥ २९ ॥

तदनन्तर रावणकी सेनामें उपस्थित हो करके वेधमें लय बाहर निकलनेवाले उन महाकाजी निशाचरोंने वह दृश्य ही कि भीरमपचरकीसेना सुवेले फलके निकट देग दागे लगी है ॥ २९ ॥

तदनन्तर रावणकी सेनामें उपस्थित हो करके वेधमें लय बाहर निकलनेवाले उन महाकाजी निशाचरोंने वह दृश्य ही कि भीरमपचरकीसेना सुवेले फलके निकट देग दागे लगी है ॥ २९ ॥

तदनन्तर रावणकी सेनामें उपस्थित हो करके वेधमें लय बाहर निकलनेवाले उन महाकाजी निशाचरोंने वह दृश्य ही कि भीरमपचरकीसेना सुवेले फलके निकट देग दागे लगी है ॥ २९ ॥

तदनन्तर रावणकी सेनामें उपस्थित हो करके वेधमें लय बाहर निकलनेवाले उन महाकाजी निशाचरोंने वह दृश्य ही कि भीरमपचरकीसेना सुवेले फलके निकट देग दागे लगी है ॥ २९ ॥



त्रिंश सर्ग

रावणक मेज हुए गुप्तघरों एवं शार्ङ्गलका उद्यस वानर-सेनाका समाचार बताना
और मुख्य मुख्य वीरोंका परिचय देना

तत्समसोभ्यबलं कङ्काधिपतये वरा ।
सुपथे राघव शैलं निविष्टं प्रत्येक्षयन् ॥ १ ॥

गुप्तघरोंने कङ्कापति राजपक्ष पर बताया कि भीरुमन्त्र
वीरसेना सुबेध परतक पस आकर ठहरी है और पर सर्वथा
अत्रय है । १ ॥

आवर्णां राघव भुङ्क्वा प्राप्त राम महाबलम् ।
जातलोभोऽग्रेऽभवत् किञ्चिच्छार्ङ्गलं वाक्पयमप्रवीणम् ॥ २ ॥

गुप्तघरक मुँहसे पर सुनकर कि महाबली भीरुम आ
पहुँचे हैं राजपक्ष कुछ मस्य हा गया। वह शार्ङ्गलसे वाक्य—

अपयान्वा त वप्यौ वीरभ्यासि निदाह्वर ।
वासि पश्चिमिधाणा कुश्यानां वशामगतः ॥ ३ ॥

भीरुमन्त्र ! तुम्हारे शरीरकी कान्ति परक-सेही नहीं
रह गयी है। तुम वीर (युजी) विश्वासी व रहे हो। कहीं
कुचित हुए शत्रुकीके वशमें तो नहीं पड़ गये थे । ३ ॥

इति तन्नुशिष्टस्तु वाच मन्त्रमुवीरयन् ।
तथा राक्षसदानुलं शाङ्गले भयविह्वलः ॥ ४ ॥

उतके इत प्रकार पूछनेपर मन्त्रसे वक्तव्ये हुए शार्ङ्गले
एकप्रकार राजपक्ष मन्त्र स्वयं करा—

म त वारयितुं शक्या राजन् पालयुङ्क्वा ।
विद्यमस्य बलवन्तश्च राघवण ख रक्षिताः ॥ ५ ॥

पान् ! उन भेद वानरोंकी गति-विचित्र पत्र गुप्तघरों
हय नहीं कराया था शक्य। वे बड़े परकमी बलवान् तथा
भीरुमन्त्रकीके द्वारा मुक्ति हैं । ५ ॥

मयि सम्भाषितुं शक्या सगमदोऽत्र न नश्यते ।
सद्यतो रक्षत पन्था ध्यानतः पथतोपमं ॥ ६ ॥

उतसे बतायाथय कृत्य भी अशक्य है अतः प्साप
सेन हैं आपका बना विचार है इत्यादि प्रश्नोंक किये वहाँ
अवश्य ही नहीं शक्य। परंतोक समान विद्याकथय
करत लव अपने ममारी रख करते हैं अत वहाँ प्रक
दना भी कठिन ही है । ६ ॥

प्रविष्टमत्र द्रष्टाऽहं यत् तस्मिन् विचारित ।
यन्वाद् गृहीता रक्षोभिवहुधासि विचारिता ॥ ७ ॥

उस सेनामें प्रवेश करके जो ही उद्यम गतिविचित्र
विचार कृत्य आरम्भ किया सो ही विचित्रक कथी एकलौ-
न नुस परकजनक कल्पक पकड़ किया और वारवार इधर
उधर घुमाया । ७ ॥

आनुभिमुपिभिवन्तैस्सखैश्चाभिहतो भृशम् ।
परिणीतोऽस्मि हरिभिवलमभ्यं भयपथैः ॥ ८ ॥

उस सेनाक बीच समर्थसे भरे हुए वानरोंने पुत्रों,
मुँहों, दंतों और पथकोंसे मुझे बहुत माप भय कपी सेना
में भरे अन्वपथी चोगया करते हुए लव भर मुझे
घुमाया । ८ ॥

परिणीय ख सखत्र भीतोऽहं रामससदि ।
अपिस्त्राविपीनत्रो विद्वल्लक्षितप्रियं ॥ ९ ॥

कथत्र घुमाकर मुझे भीरुमके दरबारमें ल गया गया ।
उस समय भरे शरीरसे लूत निकल रहा था और अहं अहंमें
वीरता छा रही थी। मैं व्यकुल हा गया था। मरी इन्द्रियों
विचलित हो रही थीं । ९ ॥

हरिभिवप्यमानश्च याचमानः कृत्यञ्जलि ।
राघवण परिब्रतो मा मति ख यदच्छया ॥ १० ॥

वानर पीट रहे थे और मैं हाथ जोड़कर रखाके किये
याचना कर रहा था। उस दृश्यमें भीरुमने अकस्मात् प्त
माक मत् मया' इकर मरी रखा थी । १० ॥

पय शैलशिखरभिस्तु पूरबिस्वा महापवम् ।
द्वारमाधित्य कङ्काया रामस्तिष्ठति सायुध ॥ ११ ॥

भीरुम पर्वतीय शिखरशृंगोंद्वारा कटुका पाकर कङ्का-
के दरबारपर आ बमके हैं और हाथमें धनुष किये लड़
हैं । ११ ॥

गकङ्कमूहमास्त्रय सखता हरिभिर्भूतः ।
मो विवृज्य महातया कङ्कान्यासिपतत ॥ १२ ॥

वे महातस्वी पुत्रपथी गकङ्कमूह अभय ल वानरों-
के बीचमें विराजमान हैं और मुझे विद्या करके व कङ्कापर बने
जते थे वर हैं । १२ ॥

पुगं प्राचरमायाति क्षिप्रमध्वतरं कुव ।
सीतां पापि प्रयच्छामु युद्धं पापि प्रदीयताम् ॥ १३ ॥

पत्रक व कङ्काक परकटवक पहुँचे उतके परक ही
भार शीघ्रपूर्वक उतसे एक वन अवस्थ कर शक्य—या ता
उन्हें खेदकथ कथी शीतसे या युद्धसकमें लड़ दारत उनका
धम्मा कथिय । १३ ॥

मनसा तत् तथा प्रक्य लक्ष्मणा राक्षसाधिका ।
दम्यूलं सुमहदास्यमथावाच स रावणा ॥ १४ ॥

उत्पी बल सुनकर मन-ही-मन उधर विचार करनेके

सर्वे महाराज महाप्रभत्वाः
 सर्वे महाशैलनिकाशकषयाः ।
 सर्वे समर्थाः पृथिवी क्षणेन
 कर्तुं प्रविश्वस्तविकीर्णशैलाम् ॥ ४८ ॥

महाराज । ये सभी बानर बड़े प्रभक्तवाली हैं । उनकी शरीर बड़े-बड़े पर्वतोंके समान विशाल हैं और उनके हस्त में भूमण्डलके समस्त पर्वतोंका चूर-चूर करने के लिये किस्से देनेकी शक्ति रहती है? ॥ ४८ ॥

इत्यादि श्रीमद्दशमस्कन्धे वाल्मीकीये आदिकाण्डे सुब्रह्मण्ये अष्टविंशः सर्गः ॥ २० ॥

इस प्रकार श्रीमद्दशमस्कन्धे आर्षाणामयम अदिकाण्डे सुब्रह्मण्ये अष्टविंशोऽसौ सर्गः समाप्तः ॥ २० ॥

अष्टाविंश सर्ग

शुक्रके द्वारा सुग्रीवके मन्त्रियोंका, मैन्द और द्विविदका, हनुमान्का, श्रीराम, लक्ष्मण, विभीषण और सुग्रीवका परिचय देकर बानरसेनाकी संख्याका निरूपण करना

सारण्यस्य पक्षः श्रुत्वा राषण राक्षसाधिपम् ।
 वल्लभादिश्य तत् सर्वं शुक्रो वाक्यमथाप्रवीत् ॥ १ ॥

उस शरी बानरसेनाका परिचय देकर जब खरण चुप हो गया तब उलका क्रयन सुनकर शुक्रने राक्षसराज राषणसे कहा— ॥ १ ॥

स्वित्वात् पश्यसि यानेतान् मत्तमिय महाक्षिपान् ।
 म्यप्रोधानिष गाङ्गेयान् सत्त्वान् हैमकतानि ॥ २ ॥
 एते बुधसहा राजन् वस्तिनः क्षमकरिणाः ।
 वैत्यदात्म्यसक्वशा युद्धं व्यपराक्रमाः ॥ ३ ॥

धामन् । किन्हीं आप मनुष्योंके समान बहो सहा देस रहे हैं जो गङ्गातटके घटवृद्धों और हिमालयके घासवृद्धोंके समान खन पकते हैं, इनका वेग दुस्सह है । ये इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले और क्लृप्त हैं । दलों और दानवोंके समान शक्तिवादी तथा युद्धमें देवताओंके समान पराक्रम प्रकट करनेवाले हैं ॥ २ ३ ॥

एषां कोटिसहस्राणि नव पक्षं च सप्त च ।
 तथा शङ्खसहस्राणि तथा घृन्मशालानि च ॥ ४ ॥
 एतं सुग्रीवसथिषाः किष्किन्धानिच्छयाः सदा ।
 हरयो व्यगमर्भ्यैरुपन्नाः क्षमकरिणाः ॥ ५ ॥

इनकी संख्या इच्छित कोटि स्रस्र खस सङ्घु और सो हन्त है ॥ ये स्र के-स्र बानर सद्य किष्किन्धानों रहनेवाले सुग्रीवके मन्त्री हैं । इनकी उपरि देवताओं और गन्धर्वोंसे हुई है । ये सद्य इच्छानुसार रूप धारण करनेमें समर्थ हैं ॥ ४ ५ ॥

यो ती पश्यसि तिष्ठती कुमारी व्यकरिणाः ।
 मन्मथ द्विविदस्यैव ताम्यां भास्ति सता युधि ॥ ६ ॥
 प्रहस्य समनुमत्प्रथमृतप्राणिनायुधी ।
 अर्वांसत यथा लङ्गामेती मर्दिनुमाजना ॥ ७ ॥

इन संख्यावांछा लक्ष्यकरणी एही सद्यके समर्थ ही हुई श्रीमद्वाल्मीकीयस्य अष्टविंशः सर्गः समाप्तः ॥

पश्यन् । आप इन बानरोंमें देवताओंके समान समस्त किन दो बानरोंको सहा देस रहे हैं उनके नाम हैं मैन्द और द्विविद । युद्धमें उनकी कसकी करनेवाले बड़े हैं । त्रसाथीकी आहासे उन दोनोंने अमृतपान किया है । ये दोनों बानर अपने बल-पराक्रमसे लङ्काको कुच्छ इच्छनेकी शक्ति रहते हैं ॥ १-३ ॥

य तु पश्यसि तिष्ठन्तं प्रभिन्नमिव कुञ्जरम् ।
 यो बलम् शोभयेत् कृशः समुद्रमपि धानत ॥ ८ ॥
 एषोऽभिगन्ता लङ्कायां वैवस्वतासथ च प्रभो ।
 एतं पश्य पुरा इयं बानर पुनरगतम् ॥ ९ ॥
 ज्येष्ठा केसरिणः पुत्रो वातात्मज इति भुता ।
 हनुमन्मिति विख्यातो लङ्कितो येन सागरः ॥ १० ॥

धरर किन्ते आप मद्रकी बाप बहानेवाले सल्लोके एकी की भौति सहा देस रहे हैं जो बानर कुशिल होनेर लक्षणों भी विशुद्ध कर सकता है जो लङ्कामें आपके पक्ष मन्त्र और विवेहनन्दनी कीजाते भी मिच्छकर गया था उसे देखिने । पहलेका देसा हुआ यह बानर फिर भास्य है । वह कर्णका बहा पुत्र है । पवनपुत्रके भी नामसे किन्तान है । उसे हनुमान् करते हैं । इसीने पहले समुद्र बाँधा था ॥ ८-१० ॥

क्षमकरणा हरिभेष्टो वल्लरूपसमन्वितः ।
 मनिवायगतदिवैष यथा सततया प्रभुः ॥ ११ ॥
 एष अरु स्मृते नम्यत्र यह श्रेष्ठ बानर अपनी इच्छासे अनुसार रूप धारण कर सकता है । इसकी शक्ति बड़ी ही बलवती । यह बासुके समान सर्वत्र आ सकता है ॥ ११ ॥

उद्यन्त भास्कर इयुं बालाः किल बुभुक्षिता ।
 विषाजलसहस्रं तु मध्यान्ममकरीष दि ॥ १२ ॥
 आदित्यमहाहरिप्यामि न मे क्षुत् प्रतियास्यति ।
 इति निश्चित्य मनसा पुप्सुषु यस्मर्षिता ॥ १३ ॥
 एष यह बासुका था उस समकरी बाप है एक दिन इच्छासे बहुत भूख सम्ये थी । उस समय उरते हुए देखते

रुद्रश्च यद् तीन इत्यत्र योक्तं तत्रैवा उक्तं गमा या । उक्तं
 एव मन-मी-मन यद् निश्चय करके किं पार्थके फल भाविते
 मेरी भूल नहीं बावणी, इत्यस्मिं सर्वक्रे (३० आश्रयश्च दिव्य
 फल है) के आर्तके यह क्लमभिमानि वानर ऊपरके उक्त
 ॥ १२२१ ॥

मनाप्युच्यतम् देवमपि देवर्षिराक्षसैः ।
 मन्वसाद्यैष पतितो भास्करोदयने गिरौ ॥ १४ ॥

देवर्षि और राक्षस भी किन्हीं परस नहीं कर सकते,
 उन सुखितक न पहुँचकर यह वानर उदयगिरिपर ही मिर
 रहा ॥ १४ ॥

रितिन्य कपरन्य हनुरेक शिखलखे ।
 किंचित् भिन्ना बहहनुर्वनमानेय तेन वै ॥ १५ ॥

पार्थके शिखलखपर गिरनेके कारण इस वानरकी एक
 हनु (ठन्डी) कुछ कट गयी चाप ही अत्यन्त बड़ हो गयी
 इच्छिमे यह 'हनुमान्' नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ १५ ॥

सत्यमगमयोगेन मस्यैव भित्तितो हरिः ।
 नान्य शक्य वल रूप प्रभाषां वानुभाषितुम् ॥ १६ ॥

एष आशस्ते लक्ष्मणके मथितुमोज्ज्वला ।
 येन आश्वत्थतेऽस्तौ वै धूमकेतुस्त्वयथा वै ।

सङ्घापा निहितव्यापि क्वय विस्तरसे कपिम् ॥ १७ ॥

मिथ्यश्रुतिय व्यक्तियोंके सम्पर्के मैंने इस वानरका वृत्तन्त
 ठीक-ठीक जना है । इसके बल रूप और प्रभावका पूर्णरूपसे
 कपन करता किचिक सिमे भी असम्भव है । यह अकेला ही
 सरी सङ्घको मन्त्र बेना चाहता है । कित्ते आपने सङ्घमें एक
 रक्षा या उक्त अग्निके भी कित्ते अपनी पूँछका प्रयोजित
 करके सरी सङ्घ अथ्य वाली उक्त वानरके आय भूदके कित्ते
 हैं ? ॥ १६ १७ ॥

पक्षैराऽन्तरा शूरा इयामः पक्षमिमेक्षजः ।
 इक्षुक्षुषामतिरयो मनेके विभ्रुत्तरीकया ॥ १८ ॥

हनुमान्कीके पास ही जो कमजके समान नेत्रवाले खँवके
 एकीर भिरान रहे हैं वे इक्षुक्षुषाके अतिरथी हैं । इनका
 वैभव सम्पूर्ण लोकामें प्रसिद्ध है ॥ १८ ॥

यस्मिन् न सज्जत धर्मो या धर्मो नातिवर्तते ।
 यो ब्राह्मणस्य वदन्त्य वेद येवृथिवां वप ॥ १९ ॥

धर्म उनसे कभी भ्रमना नहीं होता । वे धर्मका कभी
 उल्लङ्घन नहीं करते तथा ब्राह्मण और वेद धर्मोंके जता
 हैं । बरवेकधामें इनका बहुत ऊँचा स्थान है ॥ १९ ॥

यो भिन्नाद् गगन बाणैर्मैदिर्ति वापि शारयेत् ।
 यस्य मृत्यारिव श्रोत्रोऽशक्रस्येय पराक्रमः ॥ २० ॥

य अपने शयसि आकाशका भी मेदन कर सकते हैं

पृथ्वीके भी विधीर्ष करनेकी क्षमता रखते हैं । इनका श्रोत्र
 मृत्युके समान और पराक्रम इनके तुल्य है ॥ २० ॥
 यस्य भार्या जनस्थानात् सीता चापि हता त्वया ।
 स एष रामस्त्वां राजन् योद्धुं समभिवर्तते ॥ २१ ॥

पार्थ ! किन्की मया सीताका आय बन्धान्ते हर किये
 हैं, वे ही मे भीराम आपसे युद्ध करनेके सिमे सामने आकर
 खड़े हैं ॥ २१ ॥

यस्यैव दक्षिणे पार्श्वे शुभ्रजाम्बवप्रभः ।
 विशालवक्रास्तास्तासो नीलकुञ्जितमूषका ॥ २२ ॥

एयो हि लक्ष्मणो नाम भ्रातुः प्रियहितं रता ।
 मये युद्धे च कुशलं सर्वशक्यता वरा ॥ २३ ॥

एतक वशिने भ्रममें जो ये युद्ध गुणके समान
 अस्मिमान्, विशाल वक्रास्तासे सुशोभित, कुल-कुल अथ
 नेत्रवाळ तथा मसकमर काये-कस सुँकरके केश धारण
 करनेवाले हैं, इनका नाम लक्ष्मण है । य अपने पार्थके
 भिम और हितमें जो रहनेवाळ हैं एकद्विती और युद्धमें
 कुशल है तथा सम्पूर्ण शक्यपरिणामें भय हैं ॥ २२ २३ ॥

अमयीं तुर्जयो जेता शिक्कान्तव्य जयी वली ।
 रामस्य दक्षिणे बाहुर्नित्य प्रणो वहिब्रार ॥ २४ ॥

जो अमर्षीय, दुर्जन, विकारी, पराक्रमी, शत्रुके
 पराजित करनेवाले तथा शक्यान् हैं । लक्ष्मण सदा ही
 भीरामके वशिने हाथ और बाहर निष्पत्तेवाले प्रण हैं ॥ २४ ॥

नद्येय राघवस्यार्ये ओषित परिरहति ।
 एयैवाशस्तत युद्धे निहन्तु सर्वरक्षसान् ॥ २५ ॥

पार्थके भीरुनाथकीके सिमे अपने प्राणोंकी रक्षाका भी
 ध्यान नहीं रहता । य मकळ ही युद्धमें सम्पूर्ण राक्षसोंका
 खंहर कर देनेकी इच्छा रखते हैं ॥ २५ ॥

यस्तु सख्यमसी पक्ष रामस्याभित्य तिष्ठति ।
 रक्षोमणपरिक्षित्तो राज्ञो ह्येव विभाषणः ॥ २६ ॥

भीमता राजराजम लक्ष्मणामभिषेक्षितः ।
 त्वामसौ प्रतिसरम्भो युद्धार्योऽभिवर्तते ॥ २७ ॥

यहीरामचन्द्रकीके बायीं ओर जो राक्षसोंके विरे हुए
 खड़े हैं य राक्ष विधीयण है । राक्षधिराज भीरामने इन्हें
 सङ्घके सम्मान अभिषिक्त कर दिया है । अथ य भास्कर
 कुञ्जित होकर युद्धके सिमे सामने आ गये हैं ॥ २६-२७ ॥

य तु पदपसि तिष्ठन्त मध्ये गिरिमियाधन्म् ।
 सधशक्यामृगन्द्राया भठारममितीजसम् ॥ २८ ॥

किन्हीं आप सब वानरोंके बीचमें परसके समान
 भविचस यकसे लड़ा देखते हैं य समस्त वानरोंके स्थानी
 अस्मित ठेकसी मुनीय हैं ॥ २८ ॥

न जसा यथासा सुवृष्णा बलेन्द्रमिजनेनेच ।

या रूपीनतिवभ्राज हिमबान्निभ पवता ॥ २९ ॥

शैले शिवालम्ब एव पर्वतोंमें भेद है उसी प्रकार वे तेज
वश बुद्धि, बल और कुक्षी दृष्टिसे उभक्त बानरोंमें सर्वोपरि
विद्यमान हैं ॥ २९ ॥

किंकिन्धां यः समभ्यास्त गुहां सगहनद्रुमाम् ।

दुर्गां पर्वतवुर्गम्यां प्रधातैः सह पूर्यते ॥ ३० ॥

ये गहन इहाते मुक्त किंकिन्धा नामक दुर्गम गुफामें
निवास करते हैं । पर्वतोंके कक्षय उठमें प्रवेश करना अत्यन्त
कठिन है । इनके साथ वहाँ प्रपानप्रधान मूषपति भी
रहते हैं ॥ ३० ॥

यस्यैवा कञ्चामी माल्य शोभते शतपुष्करा ।

कान्तादेवमनुष्पाणां पन्थां लक्ष्मीः प्रतिष्ठिता ॥ ३१ ॥

वनके गलेमें जो लो कञ्चामीकी सुनर्षमयी माल्य सुप्रशभित
है उसमें सर्वत्र लक्ष्मीदेवीका निवास है । उसे देवता और
मनुष्य सभी पना चाहते हैं ॥ ३१ ॥

पतां मान्ता य तारां य कपिराज्यं य शाश्वतम् ।

सुग्रीवो वास्तिन हत्वा रामेभ्य प्रतिपाशिता ॥ ३२ ॥

मन्वान् श्रीरामने वास्तीका मारकर यह मान्य वप
और वानरोंका राज्य—य एव बलुर्दे सुग्रीवको उमश्रित
कर ही ॥ ३२ ॥

शत शतसहस्राणां क्वटिमाहुर्मनीषिणः ।

शत क्वोटिसहस्राणां शङ्कुरित्पभिधीयते ॥ ३३ ॥

पनीषी पुरुष लो क्वत्तकी संख्याको एक क्वोटि करते
हैं और लो क्वत्त क्वोटि (एक नीक) को एक शङ्कु
क्या जाय है ॥ ३३ ॥

शतं शङ्कुसहस्राणां महाशङ्कुरिति स्मृतः ।

महाशङ्कुसहस्राणां शत वृन्मिहोच्यते ॥ ३४ ॥

एक क्वत्त शङ्कुको महाशङ्कु नाम दिया गया है ।
एक क्वत्त महाशङ्कुको इन्द्र करते हैं ॥ ३४ ॥

शत वृन्सहस्राणां महावृन्मिति स्मृतम् ।

महावृन्सहस्राणां शत पद्ममिहोच्यते ॥ ३५ ॥

एक क्वत्त इन्द्रका नाम महावृन् है । एक क्वत्त
महावृन्को पद्म करते हैं ॥ ३५ ॥

शत पद्मसहस्राणां महापद्ममिति स्मृतम् ।

महापद्मसहस्राणां शत क्वथमिहोच्यते ॥ ३६ ॥

एक क्वत्त पद्मको महापद्म माना गया है । एक क्वत्त
महापद्मको सर्व करते हैं ॥ ३६ ॥

शत क्वर्षसहस्राणां महाक्वथमिति स्मृतम् ।

महाक्वर्षसहस्राणां समुद्रमभिधीयते ।

शत समुद्रसाहस्रमोष इत्यभिधीयते ॥ ३७ ॥

शतमोषसहस्राणां महौषा इति विभुक्ता ।

एक क्वत्त क्वर्षको महाक्वर्ष होता है । एक क्वत्त
महाक्वर्षको समुद्र करते हैं । एक क्वत्त समुद्रको मोष
करते हैं और एक क्वत्त मोषको महौष संज्ञक है ॥ ३७ ॥

एव क्वोटिसहस्रेभ्य शङ्कुरां य घातेम च ।

महाशङ्कुसहस्रेभ्य तथा वृन्घातेन च ॥ ३८ ॥

महावृन्सहस्रेभ्य तथा पद्मघातेन च ।

महापद्मसहस्रेभ्य तथा क्वर्षघातेन च ॥ ३९ ॥

समुद्रेण य तनैव महौषेन तथैव च ।

एव क्वोटिमहौषेन समुद्रसहस्रेण च ॥ ४० ॥

किभीपणेन धरिण सन्धिबैः परिवारिता ।

सुग्रीवो धानरेन्द्रस्था पुत्रार्थमनुभवति ।

महाबलवृत्तो नित्य महाबलपरारामः ॥ ४१ ॥

इस प्रकार क्वत्त क्वोटि, लो शङ्कु क्वत्त महाशङ्कु,
लो इन्द्र क्वत्त महाइन्द्र, लो पद्म, क्वत्त महापद्म लो क्वर्ष
लो समुद्र लो महौष तथा समुद्र-सहस्र (लो) क्वोटि महौष
लैनिर्घते और विन्ध्यगते तथा अयन सन्धिबोते विरे हुए
बानरराज सुग्रीव भावको मुद्रके शिमे क्वत्तकरते हुए क्वत्तमें
आ रहे हैं । विद्यास लेनसे विरे हुए सुग्रीव महात् बल
और परक्रमसे सम्पन्न हैं ॥ ३८-४१ ॥

इमां महाराज समीक्ष्य बाहिनी

मुपस्थितां प्रम्यक्षितप्रहोपमाम् ।

ततः प्रयत्ना परमो विधीयतां

यथा अयः स्यात्त परीः पयःभवा ॥ ४२ ॥

[महारण] यह देना एक प्रकथमान माके समान
है । इस उपस्थित देल भाप कोरे पंथ उपाय करे किसे
भापकी निवन्ध है और शङ्कुको शान्ते भापको नीचा न
देखना पड़े ॥ ४२ ॥

इत्यर्थे श्रीमद्वाल्मीकीयै क्वटिकाम्ये पुत्रकाण्डेऽष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीयै क्वटिकाम्ये पुत्रकाण्डमें अष्टाविंशती सर्ग पूरा हुआ ॥ २८ ॥

एकोनविंश सर्ग

रावणका शुक और सारणको फटकारकर अपने दरबारसे निकाल देना, उसके मेसे हुए गुप्तघरोंका भीरामकी दसासे वानरोंके बंगुलसे छूटकर लङ्कामें आना

शुकें तु समाविष्टान् दृष्ट्वा स हरिःपुत्रपत्न ।
 लक्ष्मण च महावीर्ये भुञ्ज रामस्य दक्षिणम् ॥ १ ॥
 समीपस्थ च रामस्य अन्तर च विभीषणम् ।
 सर्वबाहुरराज च सुमीध भीमविक्रमम् ॥ २ ॥
 भद्र्य चापि वलिन वज्रहस्तात्मजात्मजम् ।
 हनुमन्त च विक्रान्त जाम्बवन्त च दुर्जयम् ॥ ३ ॥
 सुपेन कुमुद नील नल च मूकनाभम् ।
 गज गवाक्षं शरभ मैत्र च द्विविधं तथा ॥ ४ ॥

शुकके बल्य अनुवार रावणने समस्त मूपणियोंको देखकर भीरामकी सहिनी बौह महाशक्तकी सम्मगको भीरामके निकट बैठे हुए अपने माई विभीषणको समस्त वानरोंके राज मयंकर पराक्रमी सुमीधको हनुपुत्र बाष्पिके बेटे वज्रनाभ अश्वमेधके वल-विक्रान्तका भी हनुमान्को, पुत्र्य वीर जाम्बवान्को तथा सुपेन, कुमुद नील वानरमेध नल, गज गवाक्ष शरभ मैत्र एव द्विविधको भी देखा ॥ १-४ ॥

किष्किविष्महृदयो जातकोभव्य रावणः ।
 भस्त्रयामास तौ वीरौ कपाम्ते शुकसारणौ ॥ ५ ॥

उन सबको देखकर रावणका हृदय कुछ उद्विग्न हो उठा । उसे श्रेय मा गया और उसने बल समाप्त होनेपर वीर शुक और सारणको फटकारा ॥ ५ ॥

अधोमुक्षी तौ प्रणतान्द्रघ्नीष्णुफसारणौ ।
 रोपगद्रव्या वासा सरण्य पश्य तथा ॥ ६ ॥

बचारे शुक और सारण निनीत गणसे नीचे मुँह झिंके सह रहे और रावणने रोपगद्रद बाणोंमें द्रघ्णपूर्वक बह फडेर बात कही— ॥ ६ ॥

न तावत् सद्यश्च भ्रम सुधिवैरुपजीविभिः ।
 विप्रिय नृपतर्षकु निग्रहे प्रमहे प्रभो ॥ ७ ॥

एतन्निग्रह और अनुग्रह करनेमें भी समर्थ होख है । उसके लिये जीविध चक्रानेबाध मन्त्रियोंको देखी कोरे बात नहीं करनी चाहिये च उसे मद्रिय को ॥ ७ ॥

रिपूजा प्रतिहृष्टाना युवाधमभिवर्तताम् ।
 उभाभ्यां सद्यश्च नाम यकुमप्रस्तथं सत्यम् ॥ ८ ॥

च एतु भस्ने विरपी हैं और युद्धके सिधे धमने धये हैं उनको तिन किधी प्रत्येके ही लुटि करजा क्य तुम धमने सिधे उचित था ॥ ८ ॥

अध्यायां गुरवो वृद्धा वृथा वा पयुपासिताः ।
 सारं यद् पञ्चशाखाणामनुजीष्य न शृण्वत ॥ ९ ॥

युष्मन्मोनि भ्रातृषु गुरु और वृद्धोंकी मय ही सेवा की है क्योंकि राक्षसिध को संरक्षणीय धार है उसे तुम नहीं ग्रहण कर सके ॥ ९ ॥

गृहीतो वा न विहातो भारोऽज्ञानस्य वाद्यते ।
 ईदृशैः सधिवैरुंक्तो मूर्खैर्विषया भराम्यहम् ॥ १० ॥

यदि तुमने उसे प्रहण भी किया हो तो भी इस समन तुम्हें उसका ज्ञान नहीं रह गया है—तुमने उसे युष्म दिया है । तुमको केवल अज्ञानका बोध हो रहे हो । ऐसे मूर्ख मन्त्रियोंके सम्पर्कमें रहते हुए भी मैं अपने राज्यको सुरक्षित रख सकूँ यह बौध्म्यकी ही शक्त है ॥ १० ॥

किं नु मृत्योर्भय नास्ति मां धकु पश्य वक्षः ।
 यस्य मे शासतो जिह्वा प्रयच्छति शुभाशुभम् ॥ ११ ॥

मैं इस राज्यका शासक हूँ । मेरी जिह्वा ही तुम्हें शुभ या अशुभकी प्राप्ति कर सकती है—मैं बाणीमात्रसे तुमपर निग्रह और अनुग्रह कर सकता हूँ फिर भी तुम धमने मेरे धमने कडेर बात करनेका धारस किया । क्या तुम्हें मृत्युका मय नहीं है ? ॥ ११ ॥

अप्येव वृहन् सृष्ट्वा धने विद्यस्ति पादपा ।
 राजवृण्णपरामृष्टास्तिष्ठन्ते नापराधिना ॥ १२ ॥

धमने राजान्को सब सर्व करके भी बरकि वृध लड़े रह जायें यह सम्भव है परंतु राज्यके अधिकारी अमरकी नहीं टिक सकते । वे सर्वथा नष्ट हो अंत हैं ॥ १२ ॥

हन्त्यामह त्विमी पापी शत्रुपक्षप्रशसिमी ।
 यदि पृषोपकरैर्मै मयोधो न मृतुतां प्रवेत् ॥ १३ ॥

यदि इनक परबके उपकारोंको धार करके मंग काय नभम न पड़ अथा तो धनुष्मन्ने प्रमाथ करनेबाध इन धनों पाषियोंको मैं अभी मार डालूँ ॥ १३ ॥

अपप्यद्यत नश्यष्य सनिष्कारयितो मम ।
 नहि धां हन्तुमिच्छामि साराभ्युपहृद्यनि धाम् ।
 इत्याव्य हृतनीं द्वी मयि स्नेहपराङ्मुक्षी ॥ १४ ॥

अब तुम धनों मरी समाने प्रवेशक अधिकारके बधित हो । मेरे पास बस बध्या फिर कभी तुम्हें अपना मुँह न दिलाऊँ । मैं तुम धनोंका बध करना नहीं चाहता क्योंकि तुम दोनोंके सिधे हुए उपकारोंका बध सारण रखता हूँ । तुम धनों मेरे स्नेहके विमुक्त और हृवण हो अंत मरें हुए ही समान हो ॥ १४ ॥

पशुमुक्षी तु सर्पाणां तौ दृष्ट्वा शुकसारण्यौ ।

रायण जयशम्भुन प्रतिगन्धाभिनिगन्तौ ॥ १५ ॥

उसके ऐसा करनेपर गुरु और शरण बहुत क्वचित हुए और जन-जनकारके द्वारा रायणका भगिनन्दन करके यहाँसे निकल गये ॥ १५ ॥

भद्राधीश्व दशमीयः समीपस्य महोत्तरम् ।

उपस्थापय मे शीघ्र चारामिति निशाचरः ।

महोत्तरस्तपोक्तस्तु शीघ्रमाहापयश्चरान् ॥ १६ ॥

इतने पश्चात् महाबल रावणने अपने पास बैठे हुए महोत्तरके कहा—पर धमने शीघ्र ही गुप्तचरोंको उपस्थित होनेकी आज्ञा दो । यह भावना पाकर निशाचर महोत्तरने शीघ्र ही गुप्तचरोंके हाजिर होनेकी आज्ञा दी ॥ १६ ॥

तत्राचारः सत्वरिता प्रसाः पार्थिवशासनात् ।

उपस्थिताः प्राञ्जलयो धधयित्वा जवाशिया ॥ १७ ॥

राजकी आज्ञा पाकर गुप्तचर उठी कम्य विभवसूचक आशीर्वाह दे हाय जेहे सेनामें उपस्थित हुए ॥ १७ ॥

तानप्रवीण् तता ध्यम्य रायणे राक्षसधिपा ।

चरान् प्रत्याधिक्यम्दारान् धीरान् विगतस्ताप्यसान् ॥ १८ ॥

वे सभी गुप्तचर विभवसूचक धीरहीन भीर एव निर्भय थे । राक्षसरायणकने उनसे यह बात कही— ॥ १८ ॥

इतो गच्छत रामस्य ध्ययसार्थं परीक्षितुम् ।

मन्त्रेष्वम्भन्तरा येऽस्य प्रीत्या तेन समागतः ॥ १९ ॥

पुत्रकामा सभी बानरसेनामें रामका क्या निश्चय है यह बतानेके लिये तथा गुप्तमन्त्रणामे योग देनेवाले अब उनके मन्त्रज्ञ मन्त्री हैं और अब जेना प्रमत्पूर्वक उनसे मिले हैं—उनके मित्र हो गये हैं उन सबके भी निश्चित विचार क्या हैं, इसकी जाँच करनेके लिये यहाँसे जाओ ॥ १९ ॥

कथं क्षपिति जानार्ति किमप्य ध करिष्यति ।

विज्ञाय नितुर्णं सर्वमागतमभ्यमदापता ॥ २० ॥

वे कैसे छत है ! किस तरह जाओगे हैं और आज क्या करोगे !—इन सब बातका पूजकमसे अच्छी तरह पता लगाकर खेर आओ ॥ २ ॥

शारेण विदितः शत्रुः पश्चिदेवैस्तुभाधिपैः ।

युद्धं स्वप्नेन यत्नेन समसाद्य मिरस्यते ॥ २१ ॥

गुप्तचरके द्वारा करि शत्रुकी गति-विधिका पता कब अब ही बुझियान् उब धाँहेसे ही प्रसङ्गके द्वारा सुझने लगे पर इनसे और मार मारते हैं ॥ २१ ॥

घारास्तु त तथेत्युक्त्वा प्रहृष्टा राक्षसेश्वरम् ।

शाश्वत्प्रमत्तः कृत्वा तत्राह्वः प्रवृत्तिगम् ॥ २२ ॥

इतल्ले श्रीमद्वाल्मीके वाल्मीकीयै अधिकांशं बुद्धकाण्डे पञ्चोद्विधाः सर्गः ॥ १९ ॥

एव बहुत अन्ध' करकर इतने भरे हुए गुप्तचरोंने शत्रुका आगे करके राक्षसरायणककी परीक्षा की ॥ १२ ॥

ततस्त तु महाबल जय राक्षससत्तमम् ।

कृत्वा प्रवृत्तिजं जम्भुर्वा रामा ससक्तमनाः ॥ २३ ॥

इस प्रकार वे गुप्तचर राक्षसशिरोमणि महाबल रावणकी परीक्षा करके उस खानक गये, जहाँ जम्भुनसहित भीष्म निरुत्थमान थे ॥ २३ ॥

त सुवेनस्य शैबस्य समीपे रामकञ्जनी ।

प्रच्छन्वा वृष्टगुर्वात्वा ससुप्रीविकिरीकनी ॥ २४ ॥

सुबक पर्यन्तके निकट जाकर उन गुप्तचरोंने लिये राक्षस भीष्म कम्पन समीप और विकिरीकने देखा ॥ २४ ॥

प्रेक्षमाणोऽहम् तां ध वन्मुमुक्षुमपिच्छिताः ।

त तु धमत्सुन ह्य राक्षसस्यैव राक्षसाः ॥ २५ ॥

बानरकी उस सेनाको देखकर वे मन्त्रे मन्त्रक हो उठे । इतनेहीमें धर्मसेना राक्षसरायण विकिरीकने उन जब राक्षसको देख लिया । २५ ।

विभीक्येन तत्रस्थं निपृहीत्वा परकञ्जना ।

धर्मयुले प्राहितस्वकाः फलोऽयमिति राक्षसाः ॥ २६ ॥

तब उन्होंने अकसात् वहाँ भाग हुए राक्षसोंको छूट काय और अकेले शार्ङ्गका यह खोजकर पकड़ना लिया कि यह राक्षस कहा जाय है ॥ २६ ॥

मोषिताः सोऽपि रामेण धम्यमानः पूजनामै ।

शाश्वत्स्येव रामेण मोषिता राक्षसाः परे ॥ २७ ॥

किर ता बानर उठे पीटने लगे । तब भवान् भीष्मने श्यावण उसे तथा अन्य राक्षसोंको भी बुझा दिया ॥ २७ ॥

बानरैरर्षितस्त तु भिन्नश्लेषैस्तु विक्रमौ ।

पुत्रकञ्जमनुप्रसताः आसन्तो नरकलताः ॥ २८ ॥

कथं विक्रमसम्पन्न शीम परकनी बानरोंने पीडित हो उन राक्षसोंके हाथ उड़ गये और वे होंछे-होंछे किर बहामें अब पहुँचे ॥ २८ ॥

तयो दशमीवमुपस्थितस्त

घारा बहुकिरियन्वप निरवधयाः ।

गिरोः सुवेनस्य समीपवासिन

म्यक्षेत्रयन् रामयक महाबलमाः ॥ २९ ॥

तदनन्तर रावणकी सेनामें उपस्थित हो चरके बैधने कब शहर विचरनेवाले उन महाकवी निशाचरोंने यह सूचना दी कि भीष्मकन्त्रकीसेना सुबक पर्यन्तके निकट देव जाके पड़ी है । २९ ॥

त्रिंशः सर्गः

रावणके भेज हुए गुप्तधरों एवं शार्दूलका उससे धानर सेनाका समाचार पठाना और मुख्य मुख्य बीरोंका परिचय देना

उत्तमामहोभयवत् लङ्काधिपत्ये श्वराः ।
सुखेके राघव शैले निविष्ट प्रत्यवेद्यन् ॥ १ ॥
गुप्तधरोंने लङ्कापति राजको यह बताया कि भीरुमन्त्र कीकीसेना सुखे परतके पास आकर ठहरी है और यह सर्वथा अभय है । १ ॥

श्वराणा राघवाः भुक्त्या प्राप्तं राम महावल्गम् ।
आतोद्वेगोऽभवत् किञ्चिच्छार्दूल वाक्यमप्रयीत् ॥ २ ॥
गुप्तधरोंने मुँहसे यह मुनकर कि महावली भीरुम आ पहुँच है राजको कुछ मस हो गया । यह शार्दूलसे खबर—
अपयावत् त वयं वीनन्नासि निशाचर ।
मसि कश्चिद्विषायां हृद्धाना वशमागतः ॥ ३ ॥

‘निशाचर । तुम्हारे शरीरकी कान्ति पहले-जैसी नहीं रह गयी है । तुम वीन (बुन्नी) विलायी दे रहे हो । कहीं कुपित हुए दानुओंके वशमें तो नहीं पड़ गये ? ॥ १ ॥
इति तेऽनुशिष्टस्तु वाच मन्वमुदीरयन् ।
तदा राक्षसशार्दूल शार्दूलो भयधिक्रुषः ॥ ४ ॥
उलके इस प्रकार पूछनेपर मयसे मकगये हुए शार्दूलने उलम्बकर राजको मन्द स्वरमें कहा— ॥ ४ ॥

न तं चारयितुं शक्या गमनं यानरपुङ्गवा ।
विकान्ता वलम्बन्तश्च राघवणश्च रक्षिताः ॥ ५ ॥
धक्त् । उन भेज दानुओंकी गति-विधिपर क्या गुप्तधरों काय नहीं खबरना च सकता । वे बड़े पराक्रमी कम्बान् तथा भीरुमन्त्रकीके दानु मुकित हैं ॥ ५ ॥

यपि सम्भाषितुं शक्या सम्प्रदशोऽत्र ललम्बत ।
सद्यस्तं रक्षयत पश्चा यानरैः पर्यतोपरैः ॥ ६ ॥
उससे बातलाय करना भी असम्भव है मरः आप वीन हैं भावका क्या विचार है इत्यादि प्रश्नोंके जिये वहाँ मर-मर ही नहीं सिध्दा । परतोंके समान विद्वलकाम यानर सब भाँसे मारोही रख करते हैं मरः वहाँ प्रकण दाना भी कठिन ही है ॥ ६ ॥

प्रविष्टमात्रं प्रसोऽहं वल्ले तस्मिन् विचारित ।
पथ्याद् गृहीतो रसाभिवद्रुभासि विचारितः ॥ ७ ॥
‘उस मनानं प्रवेश करके ज्यों ही उठकी गतीविधिपर विचार करना आरम्भ किया त्यों ही विभीषणक साथी राजको-ने मुझे पर-चलन कर-करके पकड़ किया और धर-धार इधर उधर घुमाया ॥ ७ ॥

आनुभिर्मुग्धिभिवृत्तेस्तल्लैर्भाभिहतो घृघाम् ।
परिणीतोऽसि हरिभिवल्गमप्ये ममपणैः ॥ ८ ॥
‘उस सेनाक बीच ममपसे मर हुए बानरोंने घुटनों, मुकं, दाँतों और शप्यहासे मुझे बहुत मार और खरी सेना में मेरे अपराधी चंगना करते हुए सब धर मुझे घुमाया ॥ ८ ॥

परिणीय च सद्यं नीतोऽहं रामससदि ।
अधिरन्नाधिरीन्नाहो विद्वलकालितेन्द्रियः ॥ ९ ॥
श्वरत्र घुमाकर मुझे भीरुमक दरबारमें ल जया गया । उस समय मेरे धीरते लत निकल रहा था और अङ्ग-अङ्गमें वीनता छा रही थी । मैं व्याकुल हो गया था । मेरी इन्द्रियों किञ्चित्त ही रही थीं ॥ ९ ॥

हरिभिवृष्मन्मन्त्र याचमानः कृत्वाखलिः ।
राघवण परिश्रान्तो मा मसि च यच्छ्रुत्वा ॥ १० ॥
धानर पीट रहे थे और मैं शाय चढ़कर रक्षके स्त्रिय याचना कर रहा था । उस वरामें भीरुमने अकस्मात् ‘मत् मारो’ मत् मारो’ कहकर मेरी रक्षा की ॥ १० ॥

एष शैलशिम्वभिस्तु पूरयित्वा महाजवम् ।
द्वारमाधित्य लङ्कया रामस्तिष्ठति सायुधः ॥ ११ ॥
‘भीरुम परतमें शिवालगाँववाँ दानु मुनकर पटकर लङ्का के दरवाजेपर आ धमके हैं और हाथमें दानु स्त्रिय लड़े हैं ॥ ११ ॥

गकडम्पूहमास्थाय सद्यतो हरिभिवृत्तः ।
मां सिंसुज्य महावज्ञा चङ्गमयसिक्ततः ॥ १२ ॥
वे महावजली खुनापकी गकडम्पूहा अभय ले बानरों-के बीचमें विरुक्मान हैं और मुझे विश्व करके वे लङ्कापर चढ़े चले आ रहे हैं ॥ १२ ॥

पुरा प्राक्काय्यासि क्षिप्रमकृतर कुव ।
सीता यापि प्रयच्छन्तु युद्ध यापि प्रदीयताम् ॥ १३ ॥
‘वक्तक वे लङ्काक परकायेक पहुँचें उतके पकड़ ही भाव शीघ्रतापूर्वक धमसे एक काम भवत्य कर जाजिये—यद्य ता उन्हें छेदनीके सेना कीजिय या युद्धसकमें लड़ दानर उनका स्वमना कीजिये’ ॥ १३ ॥

मनसा तद् तदा प्रक्य तच्छ्रुत्वा राक्षसाधिप ।
दपदुल मुमद्वान्नास्यमयायाच स राघवः ॥ १४ ॥
उठरी धत मुनकर नन-ही-मन उठार विचार करनेके

यन्मात्रं यत्कुरुष्व राक्षसो यद्वाप्युच्यते यद्वा महत्पूर्वं वात्
क्री—॥ १८ ॥

यदि मां प्रतिमुष्मसे देवान्भर्षवान्का ।
नैव सीता प्रत्याम्यामि सर्करोकभयावपि ॥ १९ ॥

यदि देवता गन्धर्व और दानव मुझसे युद्ध करें और
मन्यून छद्म मुझे भय देने लगे तो भी मैं सीताको नहीं
छेदऊँगी ॥ १९ ॥

एधमुक्त्वा महातजा रायणः पुनरुज्ज्वीह ।
धरिता भक्ता सेना कऽत्र शूराः ब्रह्मगमाः ॥ २० ॥

एत्र क्वक्व महावेक्सी यज्ज हिर क्षेत्र—युध तो
वानरोंकी सेनामें निरुत्थ कर चुक हा उरमें क्षेत्र क्षेत्रसे
बानर अधिक शूरवीर हैं ॥ २० ॥

किंप्रभाः क्रीडशाः सौम्य वानरा ये वुरासदाः ।
कस्य पुष्याद्य वीत्राभ्य तत्प्रमाभ्याहि यस्त्व ॥ २० ॥

शैम्य । अं दुर्जय बानर हैं वे क्षेत्र हैं । उनका प्रमाण
क्षेत्र है । तथा वे किसका पुत्र और क्षेत्र हैं । यस्त्व । वे उन
पार्श्व टीका-टीका बताओ ॥ २० ॥

तध्यात्र प्रतिपत्स्यामि ज्ञात्वा तेषां वक्ष्यावल्भम् ।
भ्यद्य कस्तु संख्यात कर्तव्य युद्धमिच्छत्य ॥ २० ॥

उन बानरोंका स्वभाव जानकर उत्तुष्टर कर्तव्यका
निर्णय करूँगा । युद्धकी इच्छा रखनेवाले युद्धको अपने तथा
धनुष्मदी सेनाकी गमना—उल्लेख विषयकी आवश्यकता जानकारी
अज्ञस्य क्रीणी चाहिये ॥ २० ॥

अर्धयमुका शार्ङ्गला रायणेनोत्तमधरा ।
इद् वक्ष्यमांसे वक्तं रायणसनिधी ॥ २१ ॥

रायणक इस प्रकार वृद्धनेत्र भेद गुणकर शार्ङ्गले उल्लेख
अर्धय या कर्तव्य आरम्भ किया—॥ २१ ॥

अधश्चरजसः पुत्रा सुधि राजन् सुपुर्जया ।
गद्गदस्याथ पुष्याऽत्र जात्रवाविति विभुता ॥ २० ॥

प्राक् । उस बानरसेनामें जम्पवान् नामसे प्रसिद्ध एक
वीर है जिसमें युद्धमें लगन करना बहुत ही कठिन है ।
यद्वा शूद्रवत् तथा गद्गदश्च पुत्र ॥ २ ॥

गद्गदस्याथ पुत्राऽप्या गुरुपुत्रः शतकथ्यो ।
कश्च यस्य पुत्रश्च ह्येतमकेन रक्षसाम् ॥ २१ ॥

गद्गदवा एक वृद्ध पुत्र भी है (जिसका नाम शूद्र
है) । इन्द्रक गुह इत्येतिश्च पुत्र कम्पी है जिसके पुत्र
दनुमान्त अर्जुन ही यहाँ आकर परस बहुतसे एकद्वेष
संदार कर हाव था ॥ २१ ॥

मुपजध्यात्र धमाग्ना पुषा धमस्य पीययात् ।
नीम्य सामप्रमजध्यात्र राजन् वृधिमुना कपि ॥ २२ ॥

धर्मात्मा और परकम्पी सुनेल धर्मका पुत्र है । यस्त्व ।
यदिमुल नामक शैम्य बानर कन्दमाका बेटा है ॥ २२ ॥

सुमुको दुर्मुलध्यात्र केगवर्दी च बानरः ।
सुतुर्वाणरकपेन नूनं सुहः स्वयमुक्त ॥ २३ ॥

सुमुलः वृद्धल और वेगवर्दी नामक बानर—वे सुतुके
पुत्र हैं । निम्न ही स्वयम् ब्रह्मणे सुतुकी ही इन कन्दरीके
स्वयमे सुहृद् की है ॥ २३ ॥

पुत्रो ह्युत्तहस्यात्र नीलः सेनापतिः स्वयम् ।
अनिलस्य तु पुत्रोऽत्र हनुमानिति विभुता ॥ २४ ॥

स्वयं सेनापति नील धनिका पुत्र है । सुनिकत और
हनुमान् बापुका बेटा है ॥ २४ ॥

मता शकस्य दुर्भेदो वक्ष्यामिहो युक्त ।
मैत्र्यश्च द्विवृद्धोभौ वक्षिणावभिसम्भौ ॥ २५ ॥

कल्याण एवं दुर्भेद वीर अत्र इन्द्रका नाती है । वह
अभी नोकमान है । कल्याण बानर मैत्र्य और द्विविध—वे दोनों
अभिनीकुम्भरीके पुत्र हैं ॥ २५ ॥

पुष्य वैयस्यवस्थाप पञ्च कक्ष्यान्कोपेयमा ।
गजा गवाहो गक्ष्यः शरभो गन्धमात्मा ॥ २६ ॥

पञ्च गन्धः गन्ध शरभ और गन्धमारन—वे पाँच
धनुष्मके पुत्र हैं और कक्ष एवं अन्तकक उम्पन परकम्पी
हैं ॥ २६ ॥

वृश यत्तरकष्टयश्च शूराणां युद्धकाङ्क्षिणम् ।
श्रीमतां ववपुत्राणां शोष नास्त्यनुसुखो ॥ २७ ॥

वृश प्रभर देवताश्रीति उत्पन्न हुए देवकी इतरवीर
बानरोंकी संख्या दष्ट करोड़ है । वे उनके-उन युद्धकी इच्छा
रखनेवाले हैं । इनके अतिरिक्त जो शेष बानर हैं, उनके निरुत्थ-
ने मैं कुछ नहीं कर सकता । क्योंकि उनकी गमना असम्भव
है ॥ २७ ॥

पुत्रो वृशारथस्वीय सिंहसहस्रको युवा ।
वृषणो निहता येन कर्णश्च त्रिशिरास्तथा ॥ २८ ॥

वृशारथनन्दन भीरुमका भीविमह सिंहके समान सुदृढ
है । इनकी बुकास्ता है । इन्होंने अकेले ही सर-रूपक और
त्रिशिराका वध कर लिया था ॥ २८ ॥

नास्ति रामस्य सख्यो पित्रम भुवि कश्चन ।
विराधो निहता यम कश्चन्ध्यान्तकापमा ॥ २९ ॥

वृश भूयश्चरमे भीरुमकन्दरीके समान परकम्पी वीर
वृहथ कई नहीं है । इन्होंने ही विराधका और कश्चके समान
विराधस कश्चम भी वध किया था ॥ २९ ॥

यत्तं न शक्वा रामस्य गुणान् कश्चिधरा क्षिती ।
अनस्थानगता यम तथ्यन्ता राक्षसा हताः ॥ ३० ॥

इस भूतलपर कौर भी मनुष्य ऐसा नहीं है जो भीष्म-
के गुणोंका पूर्णस्वप्न वर्णन कर सके। भीष्मने ही मनस्वान-
में उठने राक्षसोंका उद्धार किया था ॥ ३ ॥

खरमण्यभाष भमात्मा मातृगानामिवर्षभः ।
यस्य पाणपथ प्राप्य न जीवेदपि यासद्य ॥ ३१ ॥

भरमात्मा खरमण्य भी भेष गन्धर्वक छानन पराक्रमी है
उनके बलोंका निदाना कन खनेपर देखएव इन्द्र भी जीवित
नहीं रह सकत ॥ ३१ ॥

इयतो ज्योतिमुखश्चात्र भास्करस्यात्मसम्भयो ।
पदपस्याय पुत्रोऽथ हेमकूटः पूषणमः ॥ ३२ ॥

इसके सिवा उस सेनामें श्वेत और अश्विर्मुख—य दो
बानर भगवान् स्वर्णके औरस पुत्र हैं। हेमकूट नामका बानर
बदनका पुत्र बदन्या बन्ता है ॥ ३२ ॥

इत्यार्ये भीमद्वामापणे वाक्सीक्षीये आद्रिकाम्ये सुदकाण्डे त्रिंशः सर्गः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीकृष्णार्जुनसंनिहित आर्षस्मृतिके अद्रिकाम्यके सुदकाण्डमें तीसरा सर्ग पूरा हुआ ॥ ३ ॥

एकत्रिंशः सर्ग

मायारचित भीरामका कृष्ण मन्त्रक दिस्वाकर रावणद्वारा सीताको माहमें डालनेका प्रयत्न

ततस्तमहात्म्ययत्नं लक्ष्म्या नृपतश्चरा ।
सुयल राषय शल निविष्ट प्रत्ययद्यन् ॥ १ ॥
घाटाप्या राषणा भुत्वा प्राप्त राम महायत्नम् ।

जाताद्रोडभयत् क्रिषित् सचिवानिदमप्रवीत् ॥ २ ॥

एकदिवस रावणक गुप्तचरोने जब सन्नाम खटकर यह
बताया कि भीष्मपद्मकी मना सुफ्य परैतर आकर उहरी
है भार उधरर विचर घना भ्रमभव है तब उन गुप्तचरकी
शत मुनकर और महाबली भीष्मने आ गय यह बन्कर
एषयथ कुछ उदका हुआ। उसने भवन मन्त्रिणाम इस
प्रकार कहा— ॥ १ २ ॥

मन्त्रिणः "तीक्ष्णमायान्तु सर्वे य सुखमाहिताः ।
भय ना मन्त्रक्षत्वा हि समप्राप्त इति राषसाः ॥ ३ ॥

मो कभी मन्त्री एकप्रचलित होकर लीज पदी आ
जय। एषय ' यह हमारे विर गुप्त मन्त्रना करनका
भस्तर आ गया है ॥ ३ ॥

विद्वक्कमस्तुतो धीरो नलः पूवगसत्तमः ।
विक्रान्ता वगवानत्र यस्तुपुत्रा स दुधर ॥ ३३ ॥

आनरुधिरामणि वीरवरनठ विधक्कमो पुत्र है। वेगमाफी
और पराक्रमी दुधर वस्तु देखवाका पुत्र है ॥ ३३ ॥

राक्षसानां वरिष्ठश्च तव भ्राता विभीषणः ।
प्रतिपृष्ट्वा पुरीं लक्ष्मा राजवस्य हित रताः ॥ ३४ ॥

आपके बड़े राक्षसिन्द्रमणि विभीषण भी लक्ष्मपुरीका
राम लेकर भीष्मनायकीकी ही हितस्वचनमें लकर खत है ॥
इति सर्वे समाख्यात तथा वै यानर यत्नम् ।
सुयलऽधिष्ठित शैले शेषकश्ये भयान् गतिः ॥ ३५ ॥

इस प्रकार मीने सुयल परैतर उहरी हुए बानर-सेनाका
पूय-पूय वर्णन कर लिया। अब जो शर कार्य है वह भापक
ही हाथ है ॥ ३५ ॥

इत्यार्ये भीमद्वामापणे वाक्सीक्षीये आद्रिकाम्ये सुदकाण्डे त्रिंशः सर्गः ॥ ३ ॥

इस प्रकार श्रीकृष्णार्जुनसंनिहित आर्षस्मृतिके अद्रिकाम्यके सुदकाण्डमें तीसरा सर्ग पूरा हुआ ॥ ३ ॥

तस्यतच्छपसन भुम्वा मन्त्रिणऽभ्यागमन् द्रुतम् ।
ततः स मन्त्रयामास राक्षसैः सधियः सह ॥ ४ ॥

एकदिवस भावय मुनकर कमल मन्त्री लीष्मपूवक
वहाँ आ गय। तब गयने उन राक्षसीय सचिवोंक आग
पैठकर अपहरक कनन्यर विचार किया ॥ ४ ॥

मन्त्रयित्वा तु दुधरा क्षम यत् तद्वन्तरम् ।
यिसज्जयित्वा सखियान् प्रवियन् म्यमालयम् ॥ ५ ॥

दुधर वीर वरभने जो उक्ति बनेन था 'मन्त्र विरनेमें
लीष ही विचार-विमता परक उन सचिवोंका विरा कर
लिया और भवन भवनमें प्रयाग किया ॥ ५ ॥

तथा राक्षसमादाय विपुर्गिष्ठ महावलम् ।
मायाधिन महामाय प्रायिन् यत्र मधिनी ॥ ६ ॥

द्वि उन मदचरी महामायकी, मान गारक एष्य
विपुर्गिष्ठका क्षय मकर उन प्रेमदासन प्रयाग किया जहाँ
नियन्तवृत्तमयी शल्य विदमान था ॥ ६ ॥

इस सर्ग में जो बानरोंके उद्योग बन्दे किया गया है वह सब रावणका उद्योग है उनमें विद्वक्कमने कभीके विद्वक्क
है। वही बानरके सुयल व लसे परत हो दुधरके लक्ष्मपुरीके कर्तव्य बोधे गया है। सुदु इस सर्ग में लक्ष्मण व लक्ष्मण
पारम और कनकदासके उद्योग बन्दे हुए कहा गया है। इस विषय परैतर वहाँ क वहाँ है यह सुयल कर्त
एकदिवसपरिंतु सुयल कर्तव्य निर है

विपुत्रिह्य स मायाव्यवस्थीद् राज्ञसाधिका ।
माहगिन्यायह सीतो मायया उत्तकामजाम् ॥ ७ ॥

७ म मर राधनराध राधन मया ब्रह्मनाम विपुत्रिह्य
म कदा—१२२ इतो मायाहाय ब्रह्मन्निद्रीती खीरायो
मस्ति ह्येते ॥ ७ ॥

द्विरत मायामय गृह्य राधराय [निशाचर ।
मां त्य स्ममुपनिष्ठस्य महद्य सदाश धनुः ॥ ८ ॥

निशाचर । तुम श्रीमन्मन्त्रद्वीता मायात्रिमिह मलक
मर एव महाश धनुजनाये ख्य मरे एव भाभे ॥८॥

पथमुक्तस्तथस्याह विपुत्रिह्य निशाचरः ।
दशायायाम तां माया मुपयुतां स रायणे ॥ ९ ॥

रायणी नद भाष पापर निशाचर विपुत्रिह्यने
कदा—बहुत भयदा । निर उक्त राधराय बड़ी कुमलमने
प्रकट ही हरे भनी भाव निष्करी ॥ ॥

तस्य तुयाडभरद् राजा मन्त्री य विभूरणम् ।
आकाशयनिकरयो च सीतादानदानमः ॥ १० ॥
द्विभूतामामधिपति मशियन महाबला ।

इतम राध राध उभय बहुत मर दृष्ट और उने
भन्ना भानुन उदररर इ िया । निर यद महाकरी
गणपत कोषबध इ तनक विप नगाधराजामे गया ॥

तना मृत्तमद्वयागो दृग् धनदानुजः ॥ ११ ॥
भ्यामुपरी गार्ग्यगमुपयिष्टं मलिनः ।
धतार समनुभ्यान्निमाकाकनिसर गन्धम् ॥ १२ ॥

तुलक यः भद्रं गन्धन वरा द्रव्य रिन दमान
परी ए ह म तपक दान नदी ती । इ भाद्रक
कदिगने ररर भी एमर भी और निर सीता दिव
गपीर बडकर भन्नेरा उसा हिन धररीग ॥११ ॥

उपास्यमाना धाराभी गार्ग्यीभिरदूरतः ।
उपास्यते ततः सीता प्रहय नाम कीचयन ॥ १३ ॥
इदं य गन्ध दूधमुशर उत्तकामजाम् ।

नद क म मर । मर र क नो मे भी ।
नान नरु हाक प न म न वर । इय मर । ही
र क न दार । नर । म न वरा । इ १३ ॥

साधन्यमाना मया मद्रुगमाधिप शिम्वर ॥ १४ ॥
सदृश्या म म नो राधराः समर कतः ।

इति नरा । इ इ मर कतः कतः
ने न मया । इ इ मर कतः कतः
इ इ मर कतः कतः इ इ मर कतः कतः
इ इ मर कतः कतः इ इ मर कतः कतः

छिन्नं ते सर्वत्र मूलं सर्वत्र नित्तो मया ॥ १५ ॥
व्यसनेनमनः सीत मम भार्या भविष्यति ।
विश्वेता मति मूढाकिं सूतन करिष्यति ॥ १६ ॥

मुग्धारी न नद भी सर्वथा कृ गभी । दुग्धरे दपणे
मिने मूल कर दिया । अत्र भयने ऊपर भावे हुए एव
संक्रन्दे ही विश्व हाकर तुम स्वयं गरी मार्को कन कभयो ।
मूढ सीते । अत्र यह रामविपक चिन्तन छोड़ दो । ऊपर
मरे हुए रामका डकर क्या करोगी ॥ १५ १६ ॥

भयक्त्वा भद्रे भावाण्या स्ववासामिभ्वरी मम ।
मन्त्रपुराये निवृत्ताये मूढ पण्डितमामिनि ।

गुणु भद्रवध सीत धार वृत्तवधं यथा ॥ १७ ॥
ग्यरे । मरी एव यनिमोरी स्वामिनी बन जाओ । मूढे ।
तुम अयनेका पड़ी बुद्धिमती कमराती थी न । तुम्हारा पुण्य
बहुत कम हो गया था । इसीलिये ऐसा हुआ है । अब रामके
मारे जानेसे दुग्धाय न उनही प्रतिक्रिया प्रयाजन था यह
कमात ही गया । सीते । यदि मुन्ना पादो हो दुष्करके
पथरी भयंकर फटनाके समय अपने पतिके मारे जानेपर
धर क्माचार मुन ह ॥ १७ ॥

समाधातः समुद्रान्तं हन्तु मा किल राधकः ।
पानरुद्रप्रणीतन पदम महता वृत् ॥ १८ ॥

नरा कत इ राम मुन मरानक लिये समुद्रक किन्ने
तक भाव य । उनक गण पानरुद्र गुमीपरी कपी हुई
सिद्ध मर भी थी ॥१८ ॥

सन्निशः समुद्रस्य पीयथ तीरमथात्तरम् ।
यत्न महता रामा प्रजग्यस्त द्विवाकर ॥ १९ ॥

म गान मेनाक हाय राम समुद्र उरुत तरक
दशर रर । उन समय पुत्रेय भन्नाचयन न न गे म ॥

भगवन्नि पत्न्यात्ममथराय स्थित क्षमम् ।
गुणगुण समाराग यति प्रथम मर ॥ २० ॥

इ भ्रापी ग ॥ उन समय राधरी पारी मारी
म मता मु हाक गरी थी । उन भ्राषामे वरी
गु मर मर मरान र । इ मर मर मरान निरुक्त
न ॥ २ ॥

साद्रुमाप्रणीतन यत्न महता मम ।
यन्मम ग गरी यत्न रामा यत्नमया ॥ २१ ॥

इ इ मर कतः कतः इ इ मर कतः कतः
इ इ मर कतः कतः इ इ मर कतः कतः
इ इ मर कतः कतः इ इ मर कतः कतः
इ इ मर कतः कतः इ इ मर कतः कतः

इ इ मर कतः कतः इ इ मर कतः कतः
इ इ मर कतः कतः इ इ मर कतः कतः
इ इ मर कतः कतः इ इ मर कतः कतः
इ इ मर कतः कतः इ इ मर कतः कतः

इ इ मर कतः कतः इ इ मर कतः कतः

पद्मिष्ठान् परिषाञ्जलान् नृपान् वपञ्चान् महायुधान् ।
 बाणजास्त्रानि शूकानि भास्वगान् कूटमुग्रवान् ॥ २२ ॥
 ययीक्य तोमरान् प्रासादाकाणि मुसलानि च ।
 उद्यम्यैतान्य रक्षोभिर्वाजरेषु निपातितान् ॥ २३ ॥

उत्त सम्य रक्षोने पद्मिष्ठान्, परिष चक्र शूकैः, वपञ्चः
 बड़े-बड़े आयुधः, बाणोंक धनुः, त्रिशूलः, चमकील कूट
 और मुग्र, डबे, तोमर, प्रास तथा मूख ठठा-ठठाकर
 वानरोंपर प्रहार किया था ॥ २२-२३ ॥

मथ सुप्तस्य रामस्य प्रहस्तेन प्रमाथिन्य ।
 भसक्त हतहस्तेन शिरदिच्छन्न महासिना ॥ २४ ॥

उदन्तर शत्रुओंक मथ डकनवाले प्रहसने, शिरक
 हाथ लूट सधे हुए हैं; बहुत बड़ा शस्त्रार हाथमें लेकर उससे
 निना किसी रक्षकक रामचंद्र मस्तक काट डाल्य ॥ २४ ॥

विभीषणाः समुत्पत्य निगृहीतो यदृच्छया ।
 विद्याः प्रयाप्रिताः सैम्यैर्लक्षणैः पूष्यैः सह ॥ २५ ॥

फिर अकस्मात् उछककर उसने विभीषणको पकड़
 लिया और वानररैनिर्घोषित छद्मणको विभिन्न विद्याओंमें
 मग अपनेको विवश किया ॥ २५ ॥

सुग्रीवो प्रीयया सीते भक्त्या पूषगाधिपः ।
 निरस्यनुका सीते हनूमान् राक्षसैहता ॥ २६ ॥

श्वीते! वानरराज सुग्रीवकी प्रीया अट वी गमी
 हनुमान्की हत (ठाकी) नष्ट करके उसे रक्षोने मार
 डाल्य ॥ २६ ॥

आम्बवालय आनुम्यामुत्पन्नं निहतो सुधि ।
 पद्मिर्विभुभिदिच्छतो निहत्तः पादपो यथा ॥ २७ ॥

आम्बवान् ऊपरको उछक रोके थे उसी समय युद्धसमय
 रक्षोने बहुतसे पद्मिष्ठाएव उनके दोनों भुजोंपर प्रहार
 किया। वे छिन्न भिन्न होकर कूट हुए पकड़ी भोंति परगामी
 हो गये ॥ २७ ॥

मैत्र्या द्विविधोभौ तौ वानरपर्यभौ ।
 निम्बसन्तौ यदन्तौ च दधिरेण परिप्लुतौ ॥ २८ ॥
 भस्विना व्यायतौ छिन्नी मध्यं हारिनिप्लुतौ ।

फैद और द्विविध दोनों श्रेष्ठ वानर लूतसे बधप
 हाकर पड़े हैं। वे श्वी शीसे लांघते और पत थे। उठी
 भवकामे उन दोनों विषादजन्य शत्रुसदत वानरोंको
 छन्द्यारदार शीघ्रसे ही अट डाल गय है ॥ २८ ॥

भनुभसिति मेदिन्या पनसः पनसो यथा ॥ २९ ॥
 माराबैबहुभिदिच्छत् शेर द्यौं वरीमुसः ।
 इमुवस्तु महतेज्य निष्कृन् सायकैहता ॥ ३० ॥

पनस नामका वानर पककर फट हुए पनस (कटक)
 के समान पृथ्वीपर पड़ा-पड़ा अन्तिम शीशे छे खा है।
 वरीमुस अनेक नायकोंसे छिन्न-भिन्न हो किसी वरी (कन्वर)
 में पड़ा सो खा है। महातेजसी कुमुद रायकोंसे पायल हो
 भीच्छन्न-नितस्त्य हुआ मर गया ॥ २९-३० ॥

अज्ञो बहुभिदिच्छत् शरैरसाद्य राक्षसैः ।
 परितो वधिरोद्गारी क्षिती निपातितोऽङ्गवः ॥ ३१ ॥

अज्ञकारी अज्ञापर आक्रमण करके बहुतसे राक्षसोंने
 उन्हें बाणोंद्वारा छिन्न-भिन्न कर दिया है। वे सब अज्ञोसे रक्त
 खाते हुए पृथ्वीपर पड़े हैं ॥ ३१ ॥

हरयो मथिता नगै रथजाह्वैस्तथापरे ।
 शायाना मृद्विवास्तत्र ययुर्वर्गैरिवान्मुदा ॥ ३२ ॥

जैसे बादल वायुके धंसे फट खाते हैं उसी प्रकार
 बड़े-बड़े हाथियों तथा रथसमूहोंने वहाँ सभ हुए वानरोंको
 रौंकर मग डाल्य ॥ ३२ ॥

प्रस्ताभ परे वस्त्य हृम्यमाना जघन्यताः ।
 मनुदुतास्तु रक्षाभिः सिंहैरिव महाश्रिपाः ॥ ३३ ॥

जैसे सिंहक लदेइनेस बड़े-बड़े हापी मागत हैं उसी
 प्रकार रक्षकों पीछा करनेपर बहुतसे वानर फीपर शर्पोंकी
 मार खाते हुए मग गये हैं ॥ ३३ ॥

सागरे पतिताः केचित् केचित् गगनमाभिताः ।
 श्रुत्वा हृत्पातुपाकडा वानरौ लुप्तिमाभिताः ॥ ३४ ॥

कोई हयुग्रमें कूद पड़े और कोई आकाशमें उड़ गये
 हैं। बहुतसे गीळ वानरी हृत्किन्न भाभय से पेड़ोंपर अड
 गये हैं ॥ ३४ ॥

सागरस्य च तीरेषु दैलेषु च वनषु च ।
 पिङ्गसास्ते विरूपाक्षे राक्षसैबहवो हव्यः ॥ ३५ ॥

निकरक नेत्रांघासे रक्षोने इन बहुउत्सव भूरे
 बंदरोंके समुद्रतट, फल और कोंमें लदेइ-लदेइकर
 मार डाल्य है ॥ ३५ ॥

एष तथ हतो भर्ता सर्वस्यो मम सन्म्य ।
 श्वतज्या रजापवस्तमिद् व्यास्याहृत शिरः ॥ ३६ ॥

एष प्रकार मरी सेनाने सनिर्घोषित तुम्हारे पति
 मैतके घाट उखर दिया। लूतसे मींग और धूममें छा
 हुआ उनका यह मस्तक यहाँ अन्य गया है ॥ ३६ ॥

तत परमनुभर्तौ राम्यो राक्षसेभ्वर ।
 सीतायामुपशम्यत्या राक्षसीमिदमवर्षीत् ॥ ३७ ॥
 ऐश अर्धर मन्वन्त दुर्बल रक्षकव्य वचने शीघ्रक
 सुनते-सुनते एक राक्षसे अट— ॥ ३७ ॥

राक्षस कूरकर्माण विधुखिह्व समात्म्य ।
 यत् तद्वाचयशिरा मप्रामात् स्वयमाह्वतम् ॥ ३८ ॥
 पुत्र कूरकर्मा एष्व विधुखिह्वो बुधा छे अत्रा जे
 स्वर्गं संग्रामभूमिं रामश्च स्त्रि वहाँ छे भाया है ॥ ३८ ॥
 विधुखिह्वत्प्रा गृह्य शिरस्तस्वशरामनम् ।
 प्रथम शिरस्ता कृत्या राक्षसप्राप्तः स्थितः ॥ ३९ ॥
 तमप्रवीत् ततो राजा रावणो राक्षस स्थितम् ।
 विधुखिह्व महाखिह्व समीपपरिवर्तिनम् ॥ ४० ॥
 तत्र विधुखिह्व वनुपवहित उच मत्तकथं ऊकर भाया
 और स्त्रि मुञ्च रावणश्च प्रथम करके उठके सामने सबा
 हो गया । उच समय अपने पास लगे हुए विशाख विद्यावाक्य
 एष्व विधुखिह्वने राक्ष रावण यौ बन्ध—॥ ३९४ ॥
 मप्रता कुब सीताया शीघ्र वायारथे शिरा ।
 भवस्थां पश्चिमां भूमीं कुर्यात् सातु पश्यतु ॥ ४१ ॥
 पुत्र दक्षयकुमार रामश्च मत्तक शीघ्र ही खिह्वके
 भगो रक्ष इं भिन्ते यह केवारी अपने पतिव्रती अतिव्रत
 भवस्थां भन्वती उग्र दर्शन कर छे ॥ ४१ ॥
 एवमुक्तं तु तत् रक्षः शिरस्तत् प्रियवचनम् ।
 उपनिक्षिप्य सीतायाः क्षिप्रमन्तरधीयत ॥ ४२ ॥

रामके एख करनेकर यह एष्व उच सुन्कर मत्तकने
 खिह्वके निकर रक्षकर तत्तक भवस्थ हो गया ॥ ४२ ॥
 रावणभाषि विज्ञेय भास्कर कर्मुक्तं महत् ।
 त्रिभु जेकेतु विस्वगत रामस्यैतदिति कुम्भ ॥ ४३ ॥
 एकपने भी उच विशाख चमकीले वनुपने यह कथकर
 खिह्वके सामने गळ दिया कि वही रामश्च त्रिभुवनविस्वगत
 वनुप है ॥ ४३ ॥
 इत् तत् तत्र रामस्य कर्मुक्तं ज्यासमाह्वतम् ।
 इत् प्रवृत्तं नारीतं त हत्या निशि मनुष्यम् ॥ ४४ ॥
 स्त्रि बोध—प्रीते । यही तुम्हारे रामश्च प्रवृत्त-
 सहित वनुप है । उसके समय उच मनुष्यको भरकर मत्तक
 इत् वनुपने वहाँ छे अया है ॥ ४४ ॥
 स विधुखिह्वेन सर्वैव तच्छिखरो
 भनुष्य भूमौ विनिक्षीयमाणः ।
 विवेहराजस्य सुतां यशस्विनीं
 ततोऽभ्यर्षीत् तां भवे वप्रातुगा ॥ ४५ ॥
 जब विधुखिह्वने मत्तक वहाँ रक्ता; उसके साथ ही
 एकपने वह वनुप पृथ्वीपर गळ दिया । तत्रभात् वह
 विवेहराजकुमारी यशस्विनी खिह्वते बोध—भव हम मरे
 कथमें हो जाओ ॥ ४५ ॥

इत्यर्थे श्रीमहाभाषणे कस्मीरिभे वाविकान्धे मुद्रकाधने दृक्त्रिस्ता सर्गः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीमत्कस्मीरिभिर्भिर्भाषणम् अक्षिकामके मुद्रकाधने इत्थीसर्वे सौ पूरा हुआ ॥ ११ ॥

द्वात्रिंश सर्गः

श्रीरामके मारे जानेका विश्वास करके सीताका विलाप तथा रावणका सामने आकर
 मन्त्रियोंके सलाहसे युद्धविषयक उद्योग करना

सा सीता तच्छिखरो बहू तत्र कर्मुक्तसुचमम् ।
 सुध्रीपप्रतिषसर्गमाख्यात व हनुमत् ॥ १ ॥
 नयत मुखवर्णं च भनुस्तत्सदृशां मुखम् ।
 केदवान् केदवान्द्रा व त च वृद्धमपि शुभम् ॥ २ ॥
 पतेः सर्वैरभिज्ञानैरभिज्ञाय सुदुःखिता ।
 विजगहँऽत्र कैकेयीं श्रोशन्ती कुररी यथा ॥ ३ ॥

खिह्वीने उच मत्तक और उच उचम वनुपने देवकर
 तथा हनुमन्तकीकी कदी हुई सुधीरक साथ मैत्री-तन्त्रक होने-
 की शन बाद करके अने पतिक-प्रीते ही नेत्र मुखश्च वर्ण
 मुग्धाहनी केग सम्यक् और उच सुन्दर वृद्धमपिके
 ध्वस किया । इन सब विधिसे पतिके पदचनकर ने बहुत

दुखी हुई और कुररीकी भौंति रो-रोकर कैकेयीकी निन्दा करने
 लगी—॥ १-३ ॥
 सखामा भव कैकेयि हतोऽयं कुसुमव्रतः ।
 कुम्भमुत्सावित सर्वे त्वया कञ्जहृत्सीकृष्ण ॥ ४ ॥
 कैकेयि । भव हम कस्मिन्मारेण हो जाओ रघुकुम्भने
 मानवित करनेवाके व मरे पतिवैव मारे गये । हम सम्भवते
 ही कस्मिन्कारिणी हो । हमने हमक रघुकुम्भ केदार कर
 गाय ॥ ४ ॥
 धर्म्येण किं नु कैकेय्याः कृत रामेण विप्रियम् ।
 यमया वीरवसन् वस्य प्रमादिक्रमे वनम् ॥ ५ ॥
 भाव भीरुमने कैकेयीक वीन-व भयपण किया था,

किसे उठने इन्हें चीरकर देकर मरे स्वयं मनमें भेज दिया था ॥ ५ ॥

एवमुक्त्वा तु वैवर्ही घेपमाना तपस्विनी ।

जगाम जगती वाञ्छा सिद्धा तु कव्वी यथा ॥ ६ ॥

ऐसा करकर तु सखी मारी तपस्विनी वदही भावा घरपर कौम्यी हुए कटी कटकीक धमान वृष्ठीपर गिर पही ॥ ६ ॥

सा मुहुरतात् समाभ्यस्य परिलम्बाय श्वेतनाम् ।

तच्छिद्यन् समुपान्याय विन्दन्नापायतेक्षणा ॥ ७ ॥

किर रो पहीम उनकी केतना छटी और ये विशाङ्ग-
धन्ना छीक कुछ पीरन घरपरकर ठस मलकको अपने निकट रखकर विभय करते छयी— ७ ।

हा हतासि महापाहो वीरमठमनुमत ।

इमा ते पश्चिमावर्था गत्प्रसि विभवा कृता ॥ ८ ॥

बाप ! महाबाहो ! मैं मारी गयी । आप श्वेत-
का पावन करनेवाले थे । आपकी इस अन्तिम भयलाको मुझे अपनी आँखोंसे देखना पड़ा । आपने मुझे विभवा कहा दिया ॥ ८ ॥

प्रथम मरण नाया भर्तुर्वैगुण्यमुष्पते ।

सुबृथा सासुबृथाया सवृत्तस्त्व ममाप्रतः ॥ ९ ॥

कैसे पहले पतिका मरना उसके लिये महान् भयवर्धनी
दोग कथा बना है । मुझ क्वी-दायीके घरमें हुए मरे सामने आप-बैसे क्वाचारी पतिका निघन हुआ ; यह मरे लिये महान्
दुःखकी बात है ॥ ९ ॥

महत् दुःख प्रपन्नाया मन्नायाः शोकसागरे ।

यो हि मामुघटन्नातुं सोऽपि त्वं विनिपातितः ॥ १० ॥

यै महान् संकटमें पही हूँ चाकक अनुग्रहें हूयी हूँ वे
मरा उबार करनेके लिये उद्यत थे उन आप-बैसे वीरको भी घनुओंने मार गिराया ॥ १० ॥

सा भ्रममम कौसल्या स्वया पुष्येण राक्षस ।

वत्सेनय यया धनुर्विपत्सा पत्ससा कृता ॥ ११ ॥

पुनन्दन ! प्रते कोरे बडडक प्रति रोहते मरी हुए
गन्धर्व उठ कडकेस किड्या कर रहे क्वी दया मरी स्वयं
कौसल्याकी हुई है । वे दयामयी क्वनी आप-बैसे पुष्ये
किहुइ गयी ॥ ११ ॥

उद्दिष्टं वीरमायुस्त वैश्वैरपि राक्षस ।

भनूत वषट्ण तयामलगापुरसि राक्षस ॥ १२ ॥

रघुवीर ! अतिरिचोने तो आपकी आयु बहुत बही
क्यायी थी किन्तु उनकी बात छटी छिद्र हुए । पुनन्दन !
आप बड़े अत्यायु निकल ॥ १२ ॥

अथवा नरपति प्रया प्राङ्मयापि स्वस्तस्व ।
पचत्येन तथा कस्त्रो भूताना प्रभयो ह्ययम् ॥ १३ ॥

अथवा सुदिमान् हाकर भी आपकी सुदि मारी गयी ।
उमी तो आप छते हुए ही घनुक बचने पड़ गये अथवा यह
काक ही समस्त प्राणियोंके उद्गममें बैठे है । अतः वही प्राणि-
मायको पकसा है—उन्हें घमाघुन कर्मोंके फलसे छुटका
करता है ॥ १३ ॥

अहप मृत्युमापन्ना कस्मात् स्व मयदात्मयिधु ।

अ्यसत्त्वनामुपायकः कुरास्ये ह्यसि वज्रने ॥ १४ ॥

आप तो नीतिशास्त्रक विद्वान् थे । संकटसे बचनेक
उपायोंको बन्दते थे और मन्थनोंके निवारणमें कुशल थे तो भी
कैसे आपका एसी मृत्यु प्राप्त हुई ; अब वृद्धे किसी वीर पुत्र
का प्राप्त इसी नहीं देखी गयी थी ? ॥ १४ ॥

तथा त्य सम्परिष्वज्य रीड्यातिन्नुशसया ।

कालराध्या ममाच्छिद्य हता कमलन्द्रेचन ॥ १५ ॥

कमलनन ! भ्रमण और भस्वत भूर काक्यापि आपका
हन्ते क्वाकर मुझसे हटाव छीन छ गयी ॥ १५ ॥

इह शोपे महापाहो मा विहाय तपस्विनीम् ।

प्रियामित्र यया नार्गो पृथिवीं पुरुषवभ ॥ १६ ॥

पुत्रवत्तम ! महाबाहो ! आप मुझ तपस्विनीको त्यागकर
अपनी प्रियतमा नारीकी मौसि इस वृष्ठीक आश्रितन करक
सहो छे रहे हैं ॥ १६ ॥

अर्चित सतत यत्नव् गन्धमाक्षीमया तय ।

इत् ते मत्प्रियं वीर धनुः कञ्जानमृषितम् ॥ १७ ॥

पति ! किड्या मैं प्रकृत्यैक गन्ध और पुण्यमात्र
आदिके ह्यय नित्यप्रति पूजन करती थी तथा वह मुझ बहुत
प्रिय था यह आपका वही कर्तव्यमृषित धनुष है ॥ १७ ॥

पिथा वृशरथेन त्य श्वशुरेण ममानघ ।

सर्वैश्च पितृभिः सार्धं नूत स्वर्गे समागताः ॥ १८ ॥

निष्पद्य पुनन्दन ! निश्चय ही आप स्वर्गमें जाकर मरे
वधुज तथा अपने पिता महशुव वृशरथते और अन्य सब
पितराले भी मिल होंगे ॥ १८ ॥

दिवि नक्षत्रमूर्तं च महत्कमठत तथा ।

पुण्य राजप्रियंश स्वमात्मना समुपसन्ने ॥ १९ ॥

आप किड्या शशाङ्क पावनको महान् कर्म करक
अर्पुन पुण्यक उपावन कर परसि भयने उठ राक्षीकुडकी
उपवा करक (उसे सङ्ग्रह) ब रद है अब आश्रयमें

य कनकर प्रप्रक्षित इत्या दे (अरण्ये देव्य नहो क्वता
-नाहव) ॥ २९ ॥

कि मा न प्रहसते राजन् कि वा न प्रतिभारसे ।

यासा दालन सप्रधाता भार्या मा सहचारिणीम् ॥ २० ॥

पुनः । आपने अपनी छाटी अबसामे ही कह कि मेरी
नी छाटी ही अबसामे थी मुझे पत्नीरूपमें प्राप्त किया । मैं सदा
अपन लक्ष्य निचरनेवासी सदाप्रसिद्धी हूँ । आप मेरी भार क्यौं
नहीं देखते हैं अपना मेरी बातका उत्तर क्यों नहीं देते हैं ? ॥

सभुज गृहता पाणि चरिष्यामीति यत् स्वया ।

स्मर तन्नाम कश्चिदस्य नय मामपि दुःखिताम् ॥ २१ ॥

कान्तु न्य । मेघ पवित्रहण करते समय जब आपने प्रतिश्रु
थी थी कि मैं तुम्हारे खथ बनाकर लक्ष्मी उषस सरण
कीजिय और मुझ दुःखिनीको भी खय ही ल चिन्ते ॥२१॥

कस्मात्प्रामाण्यहाय त्व गता गतिमता घर ।

सस्मात्प्रामाण्यदुःखोक्त्यप्यस्या मामपि दुःखिताम् ॥ २२ ॥

वातिमनाम भेष खनुवन्त । आप मुझे अपने खथ करने
करके और क्यों मुझ दुःखिनीको अहङ्कर इस ओरसे परमक-
दा क्यों चले गये ? ॥ २२ ॥

कल्पयामि रश्मि रात्र परिष्वक्तं मयध तु ।

कल्पयामिस्तच्छरीरं ते नून विपरिहृष्यते ॥ २३ ॥

मैंने ही अनेक महामय उपचारोंसे तुम्हारे आपक विश
धीनप्रकृति आभिन्न किया था आज उल्टीको मोहमत्त हींसक
कन्तु अपना इकर गहर फलन रहे शो ॥ २३ ॥

मन्निष्ठायादिभिषयैरिष्टगतासदक्षिणैः ।

मन्निष्ठायाण सस्करा कन त्व न तु कल्पयसे ॥ २४ ॥

आपने जो पयाप्त दक्षिणभासे मुझ मन्निष्ठाया आदि
कलाद्वारा भावात् यज्ञपुरणगी आराधना की है फिर क्या कारण
है कि मन्निष्ठायाकी मन्निष्ठ दाहसकारका युष्मा आपको
नहीं मिला रहा है ॥ २४ ॥

प्रयज्यामुपरलोना प्रयाणामकमागतम् ।

परिप्रहयति कौसल्या लक्ष्मण्य शाकन्तासमा ॥ २५ ॥

हम तीन व्यक्ति एक साथ करने भाव थे परन्तु अब
प्रमत्तुस दूर मला कौसल्या करके एक व्यक्ति सम्पन्न
की ही पर सेया हुआ देख सकते हैं ॥ २५ ॥

स तस्याः परिपृच्छस्या वध मिथवसम्य ते ।

तय चाप्यारयत नून निशाया राक्षसेवधम् ॥ २६ ॥

१ रात्रात्पुनःकंचना विरक्तं चन्द्राये न्धर शोभत बभूविव
हते है अहीक करण शाकन्ताने समय कुम्भ ही नष्टक
वश्य है ।

उनके पूछनेपर लक्ष्मण उन्हें रात्रिके समय उखलने
हायसे आपके मित्रकी सेनाके तथा खते हुए आपके भी व-
ध समाचर अपन्य सुनायेगे । ॥ २६ ॥

सा त्वा सुप्त इत कालं मा च रक्षोपुत्र गतम् ।

हृदयेनवदीयंत न भविष्यति राक्षस ॥ २७ ॥

पुनन्वन् । जब उन्हें यह बात होग कि आप खोते
समय मारे गये और मैं उसके फलमें हर कभी नहीं हूँ तो
उनका हृदय विदीय हो जस्य और वे अपने प्राण खण
हेंगी ॥ २७ ॥

मम हेतोरजायाया अन्धया परिप्लव्यताः ।

रामा सागरमुत्तीर्य वीर्यवान् गोपयेत् हता ॥ २८ ॥

हाय । मुझ अनात्मके विषे निष्ठाप उबहुतर भीषम
ब्रह्मान् परक्रीने थे समुद्रखडून-सैवा महान् कर्म करके
मी गायत्री कृरीके बरकर कर्मों हूय गये—बिना मुझ विषे
खत समय मारे गये ॥ २८ ॥

मह दाशरथमाडा मोहात् लक्ष्मणोपसनी ।

शायपुत्रस्य रामस्य भार्या सुसुरजापत ॥ २९ ॥

हाय । दशरथनन्दन भीषम मुझ-सैवी कुलकञ्चिनी
गरीको मोहवश म्हाह खये । पत्नी ही आपपुत्र भीषमके विषे
मृत्युस्य बन गयी ॥ २९ ॥

नूनमस्यां मया जालिं वारितं वाम्मुत्तमम् ।

पाहमप्यैव शोचामि भार्या सज्जीतिथेरिह ॥ ३० ॥

किन्तु यहाँ जब क्या शक करके करते थे एवं लक्ष्मी
अस्तिपि किन्हीं दिव थे उन्हें भीषमकी पत्नी होकर जो मैं
आम छोड़ कर रही हूँ इसके खान पढ़ता है कि मैंने तुम्हें
कर्ममें निश्चय ही उत्तम वानपर्वमें बाधा वाली थी ॥ ३० ॥

साधु पालय मां क्षिप्र रामस्योपरि राक्षस ।

समानय पतिं पत्न्यां कुरु कल्याणमुत्तमम् ॥ ३१ ॥

पूजण । मुझे भी भीषमक शक करके लक्ष्मण मेघ वध
कर जाने इस प्रकार पतिको पत्नीसे मिला हो यह उत्तम
कल्याणकारी कर्म है इसे भवस कर ॥ ३१ ॥

शिरसा मे शिरसास्य कथं कथयेत् पाञ्चप ।

रक्षणागामिप्यामि गर्दि भनुमहसमना ॥ ३२ ॥

पूजण । मरे कितने पतिके शिरसा और मरे शरीरसे
उनके शरीरका कथा कर दो । इस प्रकार मैं अपने महसम
पतिकी गतिवि ही अनुकरण करूँगी ॥ ३२ ॥

हतीय दुःखसमता थिलन्यायापयोक्षणा ।

भनुः शिरो भनुभ्यै वचना जनकसमजा ॥ ३३ ॥

इस प्रकार तुम्हारे केश दूर निशाकम्पना बनकरिनी

स्त्रीय पतिके मलक तथा वनुयको देखने और विक्षप करने धर्मी ॥ १३ ॥

एष लक्ष्म्यमानायां सीताया तत्र राक्षसः ।
अभिनवक्राम भतारमनीकस्यः कृताञ्जलिः ॥ ३४ ॥
अथ सीता इत् तत्र विक्षप कर रही थी, उसी समय वहाँ एककोई सेनाका एक उच्छ हाथ कोड़े हुए अपने स्वामीके पास भ्रम्य ॥ १४ ॥

यिञ्जयस्वार्थपुत्रेति सोऽभियाद्य प्रसाद्य च ।
स्यवेद्यवदनुप्राप्त प्रहस्त याहिनीपतिम् ॥ ३५ ॥
उसने 'अर्थपुत्र महाराजकी क्य हो' कहकर एकका अभिनवन किया और उसे प्रहस्त करके यह सूचना दी कि सेनापति प्रहस्त पवत हैं ॥ १५ ॥

अमत्यै सहितः सर्वैः प्रहस्तस्थामुपस्थितः ।
सेन दर्शनकामेन मह प्रस्थापितः प्रभो ॥ ३६ ॥
'प्रभो !' एव मन्त्रियोंके साथ प्रहस्त महाराजकी सेनामें उपस्थित हुए हैं । वे आपका दर्शन करना चाहते हैं । इच्छिये उन्होंने मुझ यहाँ भेजा है ॥ १६ ॥

नूत्नमस्ति महाराज राजभावात् क्षमास्मित ।
किञ्चिद्वात्ययिक कार्ये तेषां त्व दर्शन कुरु ॥ ३७ ॥
'क्षमाशील महाराज !' निश्चय ही कोई अत्यन्त आश्चर्यका एकद्वय कार्य भा पड़ा है अतः आप उन्हें दर्शन देनेका कर कर ! ॥ १७ ॥

एतच्छ्रुत्वा दशमीवो राक्षसप्रतिवेदितम् ।
अशोकपनिर्कां त्यफत्या मन्त्रिणां दशन ययौ ॥ ३८ ॥
एककोई कभी हुई यह बात सुनकर दशमीव एकज अशोकनाटिक का कहकर मन्त्रियोंसे मिलनेके लिये गया ॥ १८ ॥

स तु सर्वे समर्थैव मन्त्रिभिः कृत्यमात्मना ।
सर्भां प्रविश्य विद्वेष विदित्वा रामपिङ्गलम् ॥ ३९ ॥

इत्यार्ये श्रीमज्जामास्ये वाक्यमीकीये आदिकारो युद्धकाण्डे हाकिमा सर्ग ॥ १९ ॥

इस प्रकार अत्यन्तकीर्तित भाद्रपदक अदिकारके मुररकावने कसीसर्ग सर्ग पूरा हुआ ॥ १२ ॥



त्रयस्त्रिंश सर्ग

सरमाका सीताको सान्त्वना देना, रावणकी मायाका भेद खालना, धीरामके आगमनका प्रिय समाचार सुनाना और उनके विश्वयी होनेका विश्वास दिलाना

सर्गां तु मोहितां ह्यु सरमा नाम राक्षसी ।
अससादाय वैर्हो प्रियां प्रणयिनी सखीम् ॥ १ ॥
विदेहनीकी कीयको मरम पड़ी हुई देख करना नाम-

उसने मन्त्रियोंसे अपने सारे कृत्यका समर्थन करमा और धीरामकन्द्रकीके परक्रमकर पता खगकर समाभवनमें प्रवेश करके वह प्रस्तुत कार्यकी व्यवस्था करने लग्य ॥ १९ ॥

अन्तर्धान तु सञ्छीर्य तच्च फर्मुक्मुचमम् ।
जगाम रावणस्यैव नियौषसममन्तरम् ॥ ४० ॥
रावणक बहोसे निकलते ही वह फिर और उचम वनुय दर्शनो आरम्भ हो गये ॥ ४ ॥

राक्षसेभ्रस्तु तैः सार्धं मन्त्रिभिर्भूमियिक्रमीः ।
समर्थयामास तदा रामकत्रयिमिन्द्रायम् ॥ ४१ ॥
एकएक एककोई अपने उन मन्त्रियोंके साथ बैठकर रामके प्रति क्रिये करनेवाले तत्कालोक्ति फलभ्यका निश्चय किया ॥ ४१ ॥

अधिवूरस्थितान् सर्वान् धत्वाभ्यक्षान् हितैरिणाम् ।
अश्रयीत् कालसदृश रावणो राक्षसाधिपः ॥ ४२ ॥
फिर एकएक रावणने पास ही लगे हुए अपने हितैपी सेनापतियोंसे इस प्रकार समयायुक्त बात कही— ॥ ४२ ॥

शीघ्र मेरीमिनायुं स्फुट कोणाहतेन मे ।
समामयष्य सैष्यानि यत्कथ्य च न करणम् ॥ ४३ ॥
जुम एव सेमा शीघ्र ही बंटते पीट-पीटकर भास वजाते हुए समस्त सेनाकीको एकत्र कर परत उन्हें इसका कारण नहीं बताना चाहिये ॥ ४३ ॥

ततस्तथेति प्रतिगुह्य तद्वच
स्तद्वैव कृता सहसामहत् बलम् ।
समागपदसैव समागत च
न्यवदमन् भर्तारं युद्धकाङ्क्षिणि ॥ ४४ ॥
तब वृत्तोंने धयास्त कहकर रावणकी आज्ञा स्वीकार की और उसी समय लक्षण विशाख सेनाको एकत्र कर दिया फिर युद्धकी अभिखपा रखनेवाले अपने स्वामीको यह सूचना दी कि 'प्यारी सेना भा गयी ॥ ४४ ॥

की राक्षसी उनके पास उसी तरह यानी अश प्रम रखनेवाली सखी भयभीत प्यारी सखीके पास जाती है ॥ १ ॥
माहितां राक्षसन्प्रेष सर्वां परमनु-क्षिताम् ।

अध्यासयामास तदा सरमा मयुभाषिणी ॥ २ ॥

श्रीता यस्म्यप्यधी मयाते माहित हो बड़े बुद्धिमत् पद गयी थी। उव समय मयुभाषिणी सरमाने उन्हें अपने पत्नियों-इत्य धनक्या थी ॥ २ ॥

सा हि तत्र कृता मित्र सीतया रक्ष्यमाणाया ।

रक्षन्ती रावपाविष्टा सातुमोक्षा दृढमत्न ॥ ३ ॥

उषा यजपथी आइते खीटाकीही रख करती थी। उतने अपनी उधर्मा कीताके साथ मैत्री कर ली थी। वह बड़ी दयालु और दृढ़-चरित्र थी ॥ ३ ॥

सा दूर्वा सखी सीता सरमा मद्यन्तनम्रम् ।

उपावृत्त्यापिठता च्चस्तां वडधामिव पास्तु ॥ ४ ॥

उषाने सखी सीताके देखा। उनकी पेशना नरन्ही हो रही थी। जैसे परिमत्से यथी हुई बोड़ी पत्नीकी पूरमें झटकर लड़ी हुई है। उकी प्रकृति सीता भी दृष्टीकर झटकर उने और मिथ्य करनेक करक प्रकृतिधरित हो रही थी ॥

ता समाध्यासयामास सखीसेहेन सुमताम् ।

समाभसिद्धि वैषहि मा भूत्ते मनसो व्यथा ।

उक्ता यत् रावयेन त्व प्रत्युक्तव्य स्व्य स्वया ॥ ५ ॥

नखीस्नहन तत् भीड मया सर्वे प्रतिभुतम् ।

कीनया गहने शून्ये भयमुत्कृत्य रावपात् ।

तष हेतोर्विद्यास्मसि नहि मे रावपात् भयम् ॥ ६ ॥

उकने एक लकीके लेहते उरम म्रतत्र पावन करने-वासी कीताके आश्वस्तन दिया—विदेहनन्दिनी। येयं वारण करो। तुम्हारे मनम क्या नहीं होनी चाहिए। भीड! रावकने तुमसे बं कुछ कहा है और स्वयं तुमने उछं उरकर दिया है वह लष मैने सखीके प्रति लेह होनेक करण हुन किया है। विद्याकोपने! तुम्हारे छिमे मैं रावकका भय छोड़कर म्मोक्तादिभ्यक सुने गहन स्थानमे स्थिरकर गयी बातें हुन रही थी। तुम्हारे रावकसे कोई डर नहीं है ॥ ५-६ ॥

स सम्भ्राण्ण्य निष्कण्ठा पतकते राक्षसेभ्यः ।

तत्र मा विवित सर्वमभिनिक्रम्य मैथिदि ॥ ७ ॥

मिथिलेसकुमारी। राक्षसरावक कित करण योति पत्रककर निकल गया है। उक्ता भी मैं बहों बकर पूर्वकस्ते फ्ला छत्र भाषी हूँ ॥ ७ ॥

न शर्म्यं सौप्तिकं कर्तुं रामस्य विवित्तात्मना ।

पथव्य पुरुषम्यात्रे तस्मिन् निवाकपद्यते ॥ ८ ॥

पम्भ्राण्ण्य भीरयम अपने लक्ष्मको अननेयके लक्ष परगला है। उनका उते समय बण करना किसीके छिमे भी खर्षा भयमत्त है। पुरुषसिख भीरयमक निरयमं इस तरह उनक बण होनेकी खल मुक्तिरंग नहीं बन पड़ती ॥ ८ ॥

न त्वय वाक्य हन्तुं शक्या पावप्याभिना ।

सुरा देवर्षमेवेव एमेव हि सुरहितका ॥ ९ ॥

वानरक्या दूषोंके इतप युद्ध करनेकके है। उनका भी इस तरह मया बना क्वापि समय नहीं है। कर्षिके लीके देवकालेया देवकयम इत्येव पाकित हुते है उकी प्रकृति के वानर भीरयमकन्द्रकीते म्मीमोति सुरहित ॥ ९ ॥

वीधवृत्तमुज्जः श्रीमान् महारसकः प्रतापवान् ।

अन्वी सनहनोपेतो भ्रमात्मा युधि विद्युत् ॥ १० ॥

किष्कन्तो रक्षित्य मित्प्रमात्पन्य परक्य च ।

उक्षमनेन सह भ्रात्रा कुसीने न्यघातकवित् ॥ ११ ॥

हन्व्य परबलीभ्यामभित्पयचकरोद्वयः ।

न हतं रावयः श्रीमान् सीतं शत्रुनिर्हणः ॥ १२ ॥

सीते। श्रीमान् यम गेष्वाकर बड़ी-बड़ी युद्धकीते सुशोभित, चौड़ी छातीवाले, प्रतापी वनुपैरु सुशक्तिव लकीके युद्ध और भूगुणकसे सुनिष्कमत परमत्प्य है। उनसे भ्रात्र परक्रम है। वे मार्ग उरमककी स्वाभतासे अपनी तथा बूले की भी रख करनेमें समर्थ है। नीतिशास्त्रके ज्ञाता और कुक्षीन है। उनक बण और पौरव मजिन्त है। वे शत्रुकोके केनम्मुहोक्ष खार करनेकी शक्ति रखते है। शत्रुपहन भीरयम क्वापि मारे नहीं गये है ॥ १०-१२ ॥

अयुस्युचिहृतयेन सर्वभूतविरोधिना ।

पर्व मयुका रौद्रेण माया मायाकिन्त त्वनि ॥ १३ ॥

प्रावककी युधि और कर्म वेनों ही सुरे है। वह समय प्रायिगोत्र विरोधी, बू और मायावी है। उसने तुमका वह मायाका प्रमेण किया था (वह मद्रक और पतुप मायाकाप रके गये थे) ॥ १३ ॥

शोकस्तं विगतः सर्वकर्मयथ त्वमुपशिक्षितम् ।

सुख त्वां भजत कस्मीः प्रियं ते भवति श्रेष्ठम् ॥ १४ ॥

अब तुम्हारे शोकके दिन रीत गये। वह प्रकमते कस्याका भस्कर उपकिय हुआ है। मिथय ही क्की तुम्हाप तेकन करती है। तुम्हाप मित्र कर्म होने बं रहा है। उसे क्वाती है। हुनो ॥ १४ ॥

उत्तीर्यं सातार रामः सह यानरसेनका ।

समिधिष्टः समुद्रस्य तीरमासाद्य वसिष्ठम् ॥ १५ ॥

भीरयमकन्द्रकी वानरसेनाके साथ समुद्रका किंफन इत पार आ गये है। उन्होंने क्मनके वसिष्ठकटपर पड़ाव जाम है ॥ १५ ॥

द्यो मे परिपूर्णायां कङ्कुरस्या सहस्रकम्पया ।

सहितैः सागरपन्थस्यैर्बद्धेतिगुप्ति रक्षिता ॥ १६ ॥

मैने स्वयं क्मनकयदित पूर्णकस भीरयमका वर्धन किया है। वे समुद्रकटपर उहरी हुई अपनी कंठित सेनामेंकाप लीय सुरक्षित है ॥ १६ ॥



अश्राद्ध-वनमें मीताई अपना मग्गी मरमास पालचीत

अधिरामाक्षयते सीते देवि ते जघन गताम् ।
 पूतामेकं यद्गुणं मासान् बेणीं रामो महाबलः ॥ २४ ॥
 वेनिं संते । फरं महीनासं दुम्भारं केयोकी एक ही बेणी
 बयस्य रूपमे परिणत हा नो च्छटिप्रदेशावक कटक रही है
 एते महाकवी भीरुम भीम ही भयने हाथोले लाकेम ॥१४॥
 तस्य ह्यद्रु मुखं द्रुयि पूषणन्नुमिवावितम् ।
 मोक्षपसं प्राक्कजं वारि मिमोक्षमिव फल्गुनी ॥ २५ ॥
 वरि । जैसे नागिन के बुझ छोड़ती है उसी प्रकार तुम
 उचित हुए पूर्वकप्रके समान अपने परिश्रम मुदित मुल देल
 क प्रकक और बहान्य छाक दमि ॥ २५ ॥
 रावण समर हत्वा तत्रिरावृष्य मयिषि ।
 स्वयां समग्रः प्रियया सुखाहो लक्ष्म्यते सुखम् ॥ २६ ॥
 श्रीविष्णुकुमारी ! समग्र इतने सीत ही रक्तप्रक बप
 करक सुख भंगनेके योग्य भीरुम लक्ष्मन्तरय हा तुम
 मियनमाक लय मनावाधित्य मुल प्राप्त करेगी ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये अष्टादशस्कन्धे सुब्रह्मण्डले षष्ठोऽध्यायः सर्गः ॥ २६ ॥

स ३६२ श्रीरत्नदीपिकेतिष्ठिते भारताख्येण आदिकाण्डे सुन्दरकाण्डे तैत्तिरीयैः सर्गं पूषा हुआ ॥ २६ ॥

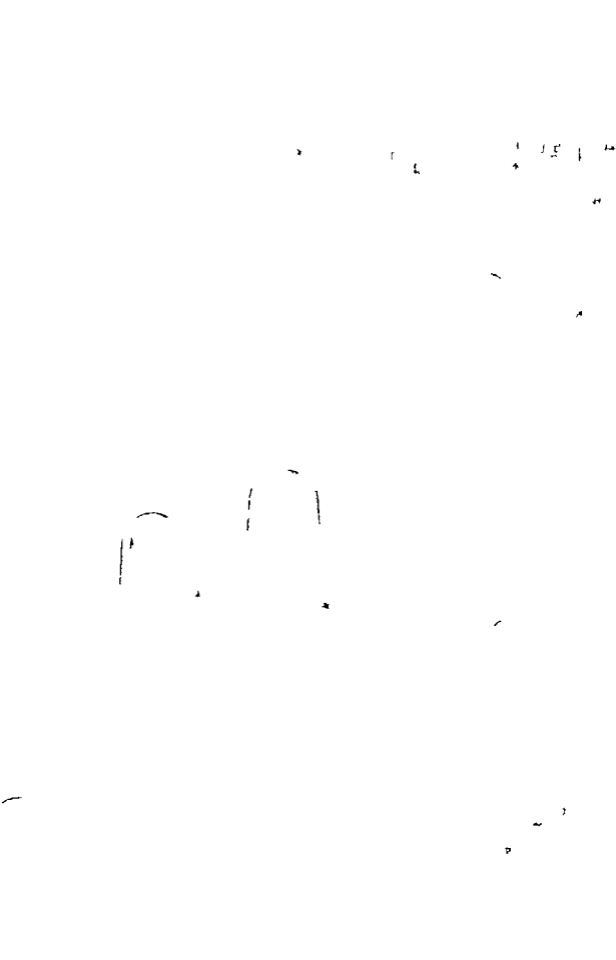
चतुस्त्रिंशो सर्ग

सीताकं यत्रुरोपसे सरमाका उर्ध्वे मन्त्रियोसहित रावणका निश्चित विचार बताना

अथ तां जातसत्वायां तम याचन्पन माहिताम् ।
 सरमा ह्यावृष्यामास महर्षी दृग्भासिषाम्भरा ॥ १ ॥
 रावणके पूर्वोक्त बचनमे मारित एव संभ्रत हुई छिद्रमे
 समान अन्ती बाणीदाग उली प्रकर आह्वार प्रदान किया
 वम प्रीमभ्युत्तुक तापने दण्य हुई पुनीको कर्णोदसपी
 मथमाला भयने कपमे आह्वारित कर गयी है ॥ १ ॥
 तदास्तम्या हितं मन्त्रयोश्चक्षीरन्ती सखी यत् ।
 उवाच कान्ठे कान्ठ्या स्मितपूवाभिभाषिणी ॥ २ ॥
 उदन्ता ममवद्य परधानन और मुन इगार कण
 इनेगामी कगी मय्या भन्ती प्रिय मली भेयरा दिव
 इरनेरी इच्छा गगार यह ममपरिच्छिन्न बचन बोली — ॥ २ ॥
 उम्यह्यप्रहं गत्या स्वदाक्यमवितक्षणम् ।
 निषय पुण्ड्र रामे प्रतिच्छन्ना निवर्तिनुम् ॥ ३ ॥
 इत्या नप्रागत्य कगी । मृतमे यह मरस और
 उन्नाह कि मे भीरुमके लय यार दुष्टाय मर्या और
 गुणमगम्यार निरागन कर दू और फिर इति हुई परामि
 नैर भेक ॥ ३ ॥

एव ह्यजाया ता संनिव सरमाभिमन्त्रयती ।
 मधुरं स्तुक्षयया धृत्वा पूर्वतोक्तमिष्यन्त्या ॥ १ ॥
 एसी बात कबती हुई उम्याते छीटने उस क्षेत्रमी
 मधुर बाणीदाग वा पहले शाकने म्यात भी इत प्रकार
 क्य— ॥ ॥
 सधर्मो गगनं गन्तुमपि यत् त्वं रसात्तमम् ।
 भवगच्छप्रयं कर्तव्यं कर्तव्यं तं मन्त्रितम् ॥ २ ॥
 एतमे । तुम आकाश और पाताळ सभी कण्ड जानेमे
 मम्य हा । मेरे शिव जे कर्तव्य तुम्हें करना है, उमे भय
 क्य रही है, मुनो और समता ॥ २ ॥
 मत्प्रिय यदि कर्तव्य यदि बुद्धिः स्थिरा तव ।
 शत्रुमिच्छसि तं गत्या किं करतीसि रावणम् ॥ ३ ॥
 यदि तुम्हें मग दिव कार्य करना है और यदि इत
 त्रियमे तुम्हारी बुद्धि स्थिर है तो मैं यह जानना चाहती है
 कि गत्य यहाँ यार क्या कर रहा है ॥ ३ ॥
 स हि मयापाया पूषा रावणः गत्रुपावणः ।
 मा माहयति दुष्टमा पीनमात्रय पावकी ॥ ४ ॥
 गत्रुभा ॥ कथनगत्य गत्य पावकलमे मन्त्रित ॥
 यह दुष्टास्य मुन उनी प्रसार मारित मर था है जैसे
 गधगी अधिक मायाम पी ननन यह पीनेगानध मारित
 (प्र ११) एर दती है ॥ ४ ॥

महिं प्र वसमापाया निगमन्व विहायसि ।
 ममयो गतिमन्त्रयु परना गदुडापि या ॥ ४ ॥
 निरागन म्भासामे ही मर मली नै मरी मरना
 मनुमान लनेन मयु मया एव ही मम्य नती है ॥४॥



भनेन प्रेषिता ये च राक्षसा रुपुषिक्रमाः ।

राजवस्तीर्ण इत्येव प्रवृत्तिस्तेरिहाह्वता ॥ १७ ॥

राजवने जो-जो शीमाामी राक्षस भेजे थे, वे उस यहाँ
वही समाचार सम्य है कि श्रीरघुनाथजी समुद्रको पार करके
आ गये ॥ १७ ॥

स तां भुन्या विशालाक्षि प्रवृत्तिं राक्षसाधिपः ।

एष मन्त्रयत सर्वैः सखिवैः सह रायजः ॥ १८ ॥

विशालाक्षचने । इस समाचारको सुनकर यह राक्षसराज
एकत्र अपने सभी मन्त्रियोंके साथ गुप्त परामर्श कर रहा
है ॥ १८ ॥

इति ह्युवाच सरमा राक्षसी सीतया सह ।

सर्वोद्योगं सैम्याता शप्य तुभाय भैरवम् ॥ १९ ॥

जब यहछा सरमा सीतले ने पार्ले कर रही थी, उसी समय
उसने सुदक ऋषि पूर्णतः उपदेशिक वनिर्कोश मौरा नाद सुना ॥

दृग्निर्घातयानिन्याः भुत्वा मेर्या महाखनम् ।

उवाच सरमा सीतामिदं मधुरभाषिणी ॥ २० ॥

इसकी चोटों बन्देबाण्डे पौसेका गम्भीर नाद सुनकर
मधुरभाषिणी सम्माने सीताम भ्या— ॥ २ ॥

सनाहकन्तरी ह्येवा मौरवा भीड मेरिका ।

मेरीनाद् च गम्भीर शृणु तोषवनिखनम् ॥ २१ ॥

श्रीक ! यह म्यानक मेरीनाद सुदके किये ठेपारीकी
सूचना दे रहा है । मेरुकी गर्भनाके समान रागमेरीकर गम्भीर
रूप ध्रुम भी सुन छे ॥ २१ ॥

कल्पयन्ते मत्सम्पत्तौ युज्यन्ते रक्षामिनः ।

इत्यन्ते तुरगाकक्षा प्रसहस्तस्य सहकारण ॥ २२ ॥

पराबाणे हाथी सखे च खे हैं । रथमें बंधे छते च
खे हैं और हथौते बुद्धकार हाथमें मद्य खिय हकिगेचर हो
रहे हैं ॥ २२ ॥

तत्र तत्र च सन्ध्याः सम्प्रसृति सहजशः ।

अप्यन्तं राजमार्गाः सन्धैरद्वयवर्णैः ॥ २३ ॥

पेगवद्विर्नवद्विष्य तोपौषैरिच सागराः ।

ज्यों-ज्यों सुदके किये ऊनर हुए लखसै ऐनिक लोड
रने आ रहे हैं । सारी सड़के भवसुत केगमें सत्र और बड़े
केसत गर्भना करते हुए ऐनिकसे उखे उख मखी च खी
हैं जैस लकड़े अर्थस्य प्रवाह समारमें मिक रहे हों ॥ २३ ॥

शक्राणां च प्रसन्ध्या वर्मणां वर्मणां तथा ॥ २४ ॥

रथयस्त्रिगजानं च राक्षसेन्द्रानुयायिनाम् ।

सम्प्रभो रक्षसामप इषितानां तरस्त्रिनाम् ॥ २५ ॥

प्रभा विष्टुजतां पश्य मन्त्रवचसामुत्थिताम् ।
पम निर्वाहतां धर्मं यथा रूप विभावसोः ॥ २६ ॥
पना प्रकारकी प्रभा किलेरेबाले चमकमान हुए अन्न-

शक्रों; दाहों और कजरोकी वह चमक देखो । राक्षसराज
रथपत्र अटुगमन करनेवाले रथों; पंजों; हाथियों तथा
येनाञ्जित हुए बगधाखी राक्षसोंमें इस समय यह बड़ी हड़बड़ी
रिखायी देती है । श्रीपम श्रुद्धमें वनको ज्यमत हुए वाचानकत्र
केव चम्यस्वमान रूप होता है; वैसी ही प्रभा इन अन्न शक्र
आदिकी रिखायी देती है ॥ २४—२६ ॥

घष्टानां शृणु निर्घोषं रथाना शृणु निखनम् ।

हयानां हेयमाजाना शृणु तृयध्वनि तथा ॥ २७ ॥

हाथियोंपर बन्दे हुए कपटोंका गम्भीर चोप सुनो; रथोंकी
पर्येवहट सुनो और हिनहिनाते हुए घोड़ों तथा भाक्ति-मौलिक
बाहोंकी आवाज भी सुन छे ॥ २७ ॥

उद्यतायुधहस्तानां राक्षसेन्द्रानुयायिनाम् ।

सम्प्रभो रक्षसामप तुमुस्यं ह्योमहपजम् ॥ २८ ॥

श्रीरुवां भञ्जति शोफष्ठी रक्षसा भयमागतम् ।

हाथोंमें हाथियार खिय राक्षसके अनुगामी राक्षसोंमें इस
समय बड़ी चक्रवहट है । इसने यह जान छे कि ऊनपर कर्त
बड़ा भारी येनाञ्चखरी भय उपस्थित हुआ है और शोफका
निवारण करनेवाली कष्ठी तुम्हारी सेवार्ग उपस्थित हा रही है ॥

रामः कमलपद्मस्तो वैश्यानामिध दासवा ॥ २९ ॥

अवजित्य जितकोषेष्टमत्कित्यपरत्कमः ।

राषणं समरे हत्या भर्ता त्याभिगमिष्यति ॥ ३० ॥

तुम्हारे पति कमलपतम श्रीरम कोषको जीत चुके हैं ।
ऊनकर परक्रम भजित्य है । वे हथौते परप्रा करनेबाज
इन्द्रकी भीति राक्षसोंको हथकर समवहपमें रागणकर बच
करके तुम्हें प्राप्त कर छे ॥ २९ ॥

विकमिष्यति रक्षामु भर्ता ते सहलक्ष्मणम् ।

यथा शत्रुषु शत्रुणां विष्णुना सह वासवः ॥ ३१ ॥

जैसे शत्रुसूदन इन्द्रने उपेन्द्रकी छासताते शत्रुभोर
परक्रम प्रकट किया था; उसी प्रकार तुम्हारे पतिदेव श्रीरम
अन्ते भर्ते लक्ष्मणके सहयोगसे राजर्षीपर अपने कज-विक्रमकर
प्रदर्शन करेंगे ॥ ३१ ॥

अगस्तस्य हि रामस्य क्षिप्रमङ्गातां सर्वांम् ।

अहं द्रक्ष्यामि सिद्धार्थो त्वां शशी विमियास्तित ॥ ३२ ॥

शत्रु रागणकर संहार हो जनेपर मैं दीप ही तुम-जैसे
खी-खशीकर यहाँ पधारे हुए श्रीरघुनाथजीकी गदमें सम्य
वैदी देखूँगी । अब दीप ही तुम्हारे मन्त्रप पूष होइ ॥ ३२ ॥

अन्नाप्यानन्वजानि त्व घर्तयिष्यसि ज्ञानकि ।

समागम्य परिष्यका तस्योरसि महोरसः ॥ ३३ ॥

अन्नकान्निर्नि । विराण्ड बध-स्यसे विष्णुश्री श्रीरमक
मिन्नेपर उन्की कस्यीते क्यकर तुम दीप हीनेत्रोंसे अन्न-
के और बहाभगी ॥ ३३ ॥

अचिगम्भोक्ष्यते सीतं देवि ते अद्यम गताम् ।
 दूतामर्कां यद्गुण मासान् वेषीं रामा महाबला ॥ ३४ ॥
 भ्रष्टि खीने ! पर महीनासं तुम्हारे कर्त्तव्ये एक ही वेषी
 वयक रूपम परिणत हा जं कष्टिमवद्यतक व्यक्त रही है
 उसे महाबली भीरुम शीम ही अपने हाथोंसे लाकेग ॥३४॥
 तस्य दद्रा मुख दधि पूषचन्द्रमिवोदितम् ।
 माक्ष्यस शाकञ्च घोरि निर्मोक्षमिद्य वन्मती ॥ ३५ ॥
 रवि । जैसे नाभिल केपुत्र खण्टी है उखी प्रकार तुम
 उदित हुए पूर्णचन्द्रके समान अपने पतिप्र मुदित मुख देल
 पर शाकञ्च भौंनू बहाना खेक दोगी ॥ ३५ ॥
 रावणं समर हत्वा नक्षत्रवृक्ष म्रियिषि ।
 न्यया समग्रा मिथयासुक्ताहो लक्ष्यते सुखम् ॥ ३६ ॥
 मिथिबाहुकारी । समराहुपणं शीम ही यवयक बच
 कृत्क सुख भगानेक नाम्य भीरुम लक्ष्मनतय हो तुक्त
 प्रियमात्र खय मनवाञ्छित सुख प्राप्त करेगे ॥ ३६ ॥

हृष्यो श्रीमद्भामायणे वाल्मीकीये आदिवाक्ये सुब्रह्मण्ये त्रयविंशः सर्गः ॥ ३३ ॥
 "स प्रकर भीमवर्त्मनिमित्तं आदिरामायण आदिवाक्ये सुब्रह्मण्ये त्रयविंशो सर्ग इति ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंश सर्ग

मीठाक अनुरोधसे सरमाका उन्हें मन्त्रियोंसहित रावणका निबिध विशार बताना

भय तां जातसतापां तेन धाक्ष्येन मोषितम् ।
 सरमा ह्युत्पद्यन्त्यस सहो दत्तामिवात्मरथा ॥ १ ॥
 रावणके पूर्वोक्त वचनसे माहित एवं संगत हुई सीताके
 समाने भयनी बापीहाय उखी प्रकार आहाद प्रथम किया
 अने प्रीत्यन्तुके तपस रूप हुई वृष्ठीके बर्थाकेकषी
 मथमस्य अन रूपमे आहादित कर देती है ॥ १ ॥
 ततस्तस्या हितं सुक्यर्थाद्यस्त्रीयन्ती सखी धनः ।
 उवाच क्वान् क्वान्मा स्मितपूर्वाभिभाषिणी ॥ २ ॥
 तदन्तर ममयस परधानने धैर मुमङ्गुकर वात
 करनेवाणी क्ली मगमा भयनी प्रिय मस्त्री सीताके हित
 करने ही इच्छा रखकर यह मयापक्ति बचन क्यो — ॥ २ ॥
 उत्सहयमह गत्या स्वच्छान्यप्रसितदाण ।
 निषद्य युद्धाङ्क रामे प्रलिच्छन्ता निषार्तुम् ॥ ३ ॥
 इच्छार नरावाणी मनी । सुसने यह वादस और
 उभाह है कि मैं भीरुमके पास आकर युद्धाय सहेग जो
 युग्मकमाम्भार निवेदन करू और फिर जिधी हुई बर्धनि
 म्पर भाऊ ॥ ३ ॥
 महि म प्रममाजाया निरान्दम्य विहायामि ।
 स्वमर्गो गन्तिमन्यतु पयना गच्छाडिषि य ॥ ४ ॥
 निगधार भागामं नीम उगल खीनी हुई मरी कर्त्तव्य
 अनुगम्य कानम यमु अथय गच्छ श्री ममर्षे नरी है ॥४॥

सभाजिता त्व रामेन मोक्षिष्यसि महात्मना ।
 सुब्रह्मणे सभायुक्ता कथ्य सत्येन मेविनी ॥ ३७ ॥
 जैसे वृष्ठी उच्चम न्यसि ममिषिक होनेपर ही-मरी
 नेतीसे ब्रह्मदा उठती है उखी प्रकार तुम जस्यमा भीषमसे
 सम्मानित हां भालन्दमन हो आभागी ॥ ३७ ॥
 निरिबरमभित्त विकर्त्तमानो
 हृष इव मण्डसमागतु बग करोति ।
 तस्मिह शरणमम्युपैहि देवि
 दिवसकर प्रभवो ह्यत्र प्रज्जनाम् ॥ ३८ ॥
 देवि । जो निरिबर मेरके चारों ओर वृत्तत हुए अक्षरी
 मति शीप्रतापूर्वक मण्डस्यकार-गतिसे बसत हैं उखी मभावा
 युक्ती (जो तुम्हारे दुष्कर देवता हैं) तुम यहाँ शरण आ
 क्येकि ये प्रकक्योंके दुल देने तथा उनक तु ल वूर करनेमें
 कर्म हैं ॥ ३८ ॥

एष वृषाणां ता सखि सरममिविममवीत ।
 मयुरं त्रक्षय्यथा वाचा पूर्वरोकाभिषयथा ॥ ५ ॥
 ऐसी बात कहती हुई सत्यासे सीताने उस रत्नेमरी
 मयुर बापीहाय आ पहले इकके म्यास थी इत प्रकार
 कहा— ॥ ॥
 समर्पो गगन गन्तुमसि य त्व रसातलम् ।
 भयगच्छद्य कर्त्तव्य कर्त्तव्य त मनुत्तर ॥ ६ ॥
 कर्म । तुम भाषण और पलाय मभी काइ करनेमें
 समथ हा । मेरे खिन्न आ कर्त्तव्य तुम्हें कया है, उते अत्र
 का रही हैं, कुट और समता ॥ ६ ॥
 मन्त्रिय यदि कर्त्तव्य यदि बुद्धिः खिरा तत्र ।
 आनुमिच्छसि त गत्या किं करतीति रावणा ॥ ७ ॥
 यदि तुम्हें मय प्रिय कर्म करना है और यदि तुम
 विषयमें तुम्हारी बुद्धि खिर है तो मैं यह जनना चाहती हूँ
 कि रावण पहिले आकर क्या कर रहा है ? ॥ ७ ॥
 स हि मयायस्यः कूरा रायणः शत्रुरावणा ।
 मां माहयति युद्धात्मा पीतमस्यय धादपी ॥ ८ ॥
 अनुभ्रात दसनवास रावण मयावससे मयस्य है ।
 वह युद्धमा सुत उखी प्रकार म्पदित कर रहा है, जैसे
 कादपी अरिह माधामे पी मनेकर वह पीतनामसे मादित
 (अ त) कर देती है ॥ ८ ॥

तत्रेया सुस्विरा बुधिस्युखेभापुपस्वित्वा ।
भयान्न दान्तस्त्वा भोक्तुमनिरस्ताः स सयुगं ॥ २१ ॥
राक्षसामां च सर्वेष्वमारमन्तश्च यथेन हि ।

उपपत्तेः किरपर फल नाच रहा है । इच्छिते उक्त
मनमे नृपुक्त प्रति ज्ञेय पैदा हो गया है । वही कर्मण है
कि दुर्मे न लौयनने निबन्धनर उचकी बुद्धि सुस्तिर हो
गयी है । यह नस्त्क दुर्मे उक्तक संहार और भयो
वचक इय (नष्ट) नही हो ज्ययण केवल मन दिखान्ते
दुर्मे नही छोड़ सकता ॥ २१ ॥

निहत्य रावण संख्ये सधया निद्रिज्ञैः शूरैः ।
प्रतिनम्पति रामस्त्वामयोध्यामस्तितेसुजे ॥ २२ ॥
कृत्वा नेत्रीबाही शीत । इसका परिणाम मरी इन्द्र
कि ममान् श्रीयम अपने लक्ष्मी शीले बाणोंसे मुद्रस्वसे
यवणका वच कर्क दुर्मे मरणाको छे लवैगें ॥ २२ ॥

इत्यार्ये श्रीमद्वाल्मीके वाल्मीकीये आदिवाक्ये मुद्रकाण्डे षट्षिण्डः सर्गः ॥ २३ ॥

एत प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीयने नारारामायण अष्टाध्यायके मुद्रकाण्डके षोडशोऽर्धे सर्वे वृत्त इत्यं ॥ २३ ॥

षट्षत्रिंश सर्ग

मास्यवान्का रावणको भीरामसे संधि करनेके लिये समझाना

तत्र शङ्खविमिश्रण मेरीशाम्नेन न्यवित्र ।
उपयाति महाबाहु रामः परपुरजया ॥ १ ॥

शत्रुनगरीपर विषय पानेवाले महाबाहु भीरामने शङ्ख
ध्वनिते मिथित हो तुमुल नार करनेवाली मेरीश्री अश्वमेके
वच उच्चार आक्रमण किया ॥ १ ॥

त नितान् निशाम्याथ राक्षसो राक्षसंश्वरः ।
मुहूर्ते ध्यानमास्थाय सन्निधातन्मुद्रैस्त ॥ २ ॥

उत्त मेरीशमदके सुनकर राक्षसराव रावणने हो पक्षितक
कुछ शब्द विचार करनेके पश्चात् अपने मन्त्रियोंकी
ओर देखा ॥ २ ॥

भय तान् सखिवांस्तत्र सर्वान्द्रभाष्य रावणः ।
सर्भां सनात्पन् सर्वोमित्युवाच महाबल ॥ ३ ॥
जगत्सद्वपमः कृपऽगर्हयन् राक्षसंश्वरः ।

उन सब मन्त्रियोंका सम्भाषित करने आरम्भके संताप
वेनेवाले महानकी नूर राक्षसराव रावणने खरी समक
प्रतिपत्ति कर किर्षीन आशय न करत हुए कहा— ॥ ३ ॥
तरय सागरस्यम्य दिक्कर्म बलपीडयम् ॥ ४ ॥
यदुदवत्या रामस्य भ्रमन्तस्तस्मया भुतम् ।
भयतश्चाप्यहं यधि युयु सत्यपराक्रमान् ।
तृष्णीकृतीहृत्वाऽस्यास्य किर्षि गामयिकमम् ॥ ५ ॥

अपक्रमने रामके भयैरय तथा स
सदुनकी आ बुता कर्षणी सुन कीं फ

एतस्मिन्नस्तरे शम्भो मेरीशाम्नेन सन्तुष्टः ।
भुतो वै सर्वसौम्यानां कर्मणन् धरणीतकम् ॥ २७ ॥
इसी समय मेरीशार और शङ्खध्वनिते मिथित हुआ
उक्त सैनिकोंका महान् कोषाहक सुनायी दिया, जो मूक्य
पैदा कर रहा था ॥ २७ ॥

धुत्वा तु त पातरसैन्यमन्
जहागता राक्षसराजकृत्याः ।
हतौजसो हैम्यपरीतकेषाः

अयो न पश्यन्ति नृपस्य योगात् ॥ २८ ॥
अनरसैनिकोंके उक्त भीषण लिखावट सुनकर शङ्खमें
रानेवाले राक्षसराव रावणके संवक इतराह हो गये । उनकी
खरी पैदा रीतवसे म्यात हो गयी । रावणके दोषसे उन्हें
भी कोई कर्मपत्रका उपाय नही दिखानी देखा था ॥ २८ ॥

इत्यार्ये श्रीमद्वाल्मीके वाल्मीकीये आदिवाक्ये मुद्रकाण्डे षट्षिण्डः सर्गः ॥ २३ ॥

एत प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीयने नारारामायण अष्टाध्यायके मुद्रकाण्डके षोडशोऽर्धे सर्वे वृत्त इत्यं ॥ २३ ॥

ये अश्वमेधोको भी आ इस समय रामके पराक्रमकी बात
सुनकर रावणपर एक इच्छेका मुँह देल रहे हैं, संश्रामभूमिमें
अप्यस्यकी वीर समझता हूँ ॥ ४१ ॥

उत्तस्तु सुमहात्माको मास्यवान् नाम राक्षसः ।
रावणस्य वधः धुत्वा इति मातामहोऽपधीत् ॥ १ ॥

रावणके इस आशेपूर्वक बचनको सुननेके पश्चात्
महाबुद्धिमान् मास्यवान् नामक राक्षसने आ रावणका नाम
था इस प्रकार कहा— ॥ १ ॥

विद्यालक्ष्मिनितीतो यो राक्षसो राक्षसं नवानुगाः ।
स शक्ति विरमैश्वर्यमसीत् कुतश्च वधो ॥ ७ ॥

राजन् । जो राव जोहरों विद्यामें सुशिक्षित और
नीलिन अनुकर करनेवाले होख है वह हीरैककक
रामका ध्वस्त करेगा है । वह शत्रुओंको भी बधमें कर
देगा है ॥ ७ ॥

सर्वध्याने हि काश्यपे विपुलंआरिभिः सह ।
स्वपत्तं वर्षेण कुर्वन्महर्षिभ्यर्मज्जुतो ॥ ८ ॥

जो समयके अनुकर आरम्भक होनेपर शत्रुओंके सब
धधि और निग्रह करता है तथा अपने पक्षी इक्षिर्ण कर
रहा है वह महान् वैश्वर्षिक मागी होता है ॥ ८ ॥

कतस्यां राक्ष सधिः समेन च ।
शत्रुमयमम्यत ज्यायान् कुर्वन्ति विग्रहम् ॥ ९ ॥

कतस्यां राक्ष सधिः समेन च ।
शत्रुमयमम्यत ज्यायान् कुर्वन्ति विग्रहम् ॥ ९ ॥

स्मि राक्षसी गन्धि धीरा हा रही हा अधवा ज्य
 पापुत्र क्लान्त ही ग उ रगत हा टम कधि कर स्त्री पारिय।
 अन्नन अधिक् वा क्लान्त गान्धवा गपुत्र कधी अरमन
 न करे। पति म्वा ही धर्मिने दा-वदा हा, गन्धी पापुत्र
 क्षय कर सुद टान ॥ ॥

तन्महा राक्षत मधिः सह रामेण रावण।
 पशुपतमभियुज्जगन्नि सीता तस्मै पर्यायवाम् ॥ १० ॥

इत्येव रावण ! सुत तव भीष्मक कथं कथि सन्ता
 ही अन्धा स्यात् दे। निरक्त मिय गुणर ऊपर अक्षयन
 हा रा हा पर छाता तुम भीष्मकज टोय हा ॥ १ ॥

तस्य दशरथः स्वयं गन्धवाद्य जर्षयिष्यः।
 विराध मा गमन्तान सचिस्त तन राघवाम् ॥ ११ ॥

एत्या, दसत श्रुति और गन्धवा कधी भीष्मकी
 विरम चारत है अतः तुम उत्त विरथ न कर। उनक
 क्षय कधि कर सनेही हो इच्छा फर ॥ ११ ॥

भृशुज्ज्व भगवान् पशो डाघय हि पितृमहाः।
 सुराणामसुराणा च धमाधर्मो तदाधरौ ॥ १२ ॥

मत्तान प्रदान नुर और भनुर हा ही पक्षेकी
 सृष्टि की है। धम और अधर्म हा इनक अभय है ॥१२॥
 धर्मो हि भूयत पक्ष भमराजा महात्मनाम्।

अधर्मो रक्षसा पक्ष हासुराणा च राक्षस ॥ १३ ॥

सुजा ज्ञया है मरात्मा गणधर्मोस पक्ष धर्म है।
 राक्षसबा। राक्षस और भद्रुयस फल अधर्म है ॥ १३ ॥
 धर्मो वै प्रसतऽधम यदा स्वममभूत् युगम्।

अधर्मो प्रसत धर्म यदा तिष्यः प्रवर्तत ॥ १४ ॥

कम य युग हा हा नर धम परकाल हापर अधर्मको
 प्रस स्या है और कम कलियुग ओय है तब अधर्म ही
 धर्मको रक्षा वत्र है ॥ १४ ॥

कन् स्वया सगता सक्त्वात् धर्मोऽपि निहता महान्।
 अधमः प्रगृह्णाति तनासत् यन्निन परे ॥ १५ ॥

धुमने विनिवराक सिपे सच धर्मोस प्रनय करत हुए
 महान धमका नाश किया है और अधमको गल क्लान्त्य है
 इच्छिय इनार हापु इमने प्रकृ है ॥ १ ॥

स प्रमादात् प्रभृज्ज्वल्लेऽधर्मोऽपि प्रसत हि न।
 विषधयति पक्ष च सुराणा सुरभावनः ॥ १६ ॥

धुमनर प्रमादने बदा दुभा सधर्मकी अक्षर भव
 हर्म निगल बना चारहा है और रक्षधर्मोसरा पक्षिन धर्म
 उनक क्लकी वृद्धि कर रहा है ॥ १६ ॥
 विषयपु प्रसक्तन पक्षिकित्करिणा स्वया।

शुपीणाममिकश्यामसुश्रेगा जपिता महान् ॥ १७ ॥

नियमों भाकक हापर न कुठ भी कर गयेनेचय
 तुमन ज मनमना आनरग किया है इमने अधिक क्लान्त
 नरकी श्रुतिगान्ध वग ही उद्गम प्रात हुआ है ॥ १० ॥

तयां प्रभाया बुधरा पर्यंत इव पञ्चक।
 तपसा भावितान्मानो धमस्यानुप्रद स्याः ॥ ११ ॥

एनदा प्रभाव प्रकलित भयनक क्लान्त दुर्भर है। न
 श्रुति-नुनि तरसाक हाप भवन अन्त फरयम सुद करक
 धर्मके ही स्वयने तपर रहत है ॥ ११ ॥

सुकर्मयययजन्मथत तस्तयसं द्विजातया।
 तुह्यस्यान्ध विधिद् पदाभ्यास्वरधीयत ॥ १२ ॥

य द्विकार गुण-गुण्य यथोशय वरम करतः।
 विचित्र अन्मिने आदुष्टि दत नीर नपक्षरने बेदोका पाठ
 फरत है ॥ १२ ॥

अभिभूय च रक्षासि ब्राह्मणानुदीरयन्।
 विद्या विप्रद्रुत्याः स्वया स्तनयित्पुरियाण्ये ॥ २० ॥

एवोंने राक्षसोंको अभिभूत करके धर्म-श्रीही पक्षिका
 बिलार किया है इच्छिय श्रीधम श्रुतम मपनी मालि राक्ष
 कपूर्ण दिग्गर्भोंमें भग गइ हुए है ॥ २ ॥

शुपीणाममिफन्वात्प्रामिहाप्रसमुत्थित।
 भावचे रक्षसा तज्जा धूमा म्याप्य विद्या दश ॥ २१ ॥

अभिभूय तन्मथ श्रुतिगान्ध अमिहाप्रत प्रकट हुआ
 धूम एव दिग्गर्भोंमें स्वात हापर राक्षसोंक संबन्ध हर स्या है ॥
 तपु तपु च दशपु पुण्यप्यव इन्द्रप्रतिः।

अधमाथ तपस्वीय सतापयति राक्षसान् ॥ २२ ॥

मि-मिष बंधोंमें पुष्य क्लान्त ही सग रहकर
 इच्छिय उक्त धमका पक्षन कलेपाक श्रुतिगान्ध च
 खीन तपसा करत है पक्षी राक्षसको संताप वे रही है ॥२२॥
 अश्वानप्रयक्षस्यो गृहीतश्च वरस्तप्या।

मनुष्या धानरा श्रुता गाह्मकृत्स महापत्न्याः।
 पक्षयस्त इहताम्य गर्जन्ति इदधिक्रमा ॥ २३ ॥

धुमने इन्द्रको दानरा और यवाने ही अक्षय होनेवा
 वर प्रात किया है मनुष्य भयान नहीं। परतु यही तो मनुष्य,
 धानर, रीठ और सगूर आकर गरम रह है। वे स-क-उज
 है भी बड़े बसवान् यनेकालिक सम्पन्न तथा सुदृ
 परकमी ॥ २३ ॥

उत्पास्यन् विधिभान् ब्रह्मा घोरान् बहुविधान् वहन्।
 किन्धशमनुपश्यामि स्वयंया रक्षसामहम् ॥ २४ ॥

पाना प्रकटकर वहुतसे मंत्रकर उल्लेखोंको क्लय करक
 र्म ही इन क्लसक राक्षसको किन्धशम ही अक्षर उपस्थित
 दल रहा है ॥ २४ ॥
 अगभिलाम्ना पांग मघाः प्रतिधर्यकराः।

गाणितनाभिर्षरस्ति लङ्गमुष्णेन सवतः ॥ २ ॥
 और यह मंत्रकर मंत्र प्रवण्ड गर्जन-तर्जनके साथ
 'हृत्पर एव अरसेत गम हृतभी नयां पर रह हैं ॥ ॥
 यत्ता वाहनना ख प्रपन्नस्यभुक्तिन्वदा ।
 रजोधस्तस्य विषयाभाज न प्रभास्ति यथापुरम् ॥ ६ ॥
 दोहे-शमी आदि वाहन रा रहे हैं और उनके नेत्रसे
 भभुक्तिन्वु भर रह हैं । निगाएँ भूल भर जानेसे प्रतिनि हो
 मन पक्षकी मॉति मन्त्रप्रिय नहा हो रही हैं ॥ २६ ॥
 ब्याख्या गामायका यथा वाद्यस्थिति न सुभरभम् ।
 प्रसिष्य खड्गामागम समवायाद्य कुर्वते ॥ २७ ॥
 मासभक्षी हित्त पशुः शीवड और शीव मन्त्रकर शब्दी
 बसते हैं तथा खड्गक उपवनमें पुसकर हृद क्नाकर
 बैठते हैं ॥ २७ ॥
 काशिक्याः पाण्डुरैर्दम्बैः प्रहसस्यप्रताः स्थिताः ।
 शिष्याः स्वर्णेषु सुष्पस्यो यथापि प्रतिभाष्य च ॥ २८ ॥
 कनेमें काले रगकी शिवां भवन पीछ दाँत बिसारी
 हुई धमने भाकर लक्षी हो जाती और प्रतिकूल शर्तें धरकर
 भरके धमान पुण्डी हुई अर अरनें हँठी हैं ॥ २८ ॥
 यथाप्या बलिकर्मणि भ्राताः पर्युपमुञ्जते ।
 खारा गाणु प्रजापत्ये मूचका लङ्गमुष्ण च ॥ २९ ॥
 शरीरमें जो पठिकर्म किन्त बढते हैं उत बलि-धमशेषो
 कुच वा अत है । गौश्रोत्र गये और नेत्रअसे नूरे पैया
 हल हैं ॥ २ ॥
 मार्जारो द्वीपिभिः सार्धं खड्गराः शुतकैः सह ।
 किन्ना राक्षसैश्चापि सनेमुमुक्षुषः सह ॥ ३० ॥
 ज्योतिष खप किलान कुताके शय सुभर तथा रक्षक
 और मनुष्याके साथ किन्नर समागम करते हैं ॥ ३ ॥
 पाण्डुरा रक्तपादाश्च विहगाः क्लमवादिताः ।
 राक्षसानां विनाशाय कपात्या विचरन्ति च ॥ ३१ ॥
 किन्नी पीले रक्त नीर पडे ब्याह हैं ने कर्तुर
 पक्षी देखते प्रति हा रक्षकभ माभी विनाश युक्ति करनेके
 सिन्ग बहां ठव अर विचरते हैं ॥ ३१ ॥
 इत्यार्ये श्रीमद्भारतके वाल्मीकीके आदिकण्ये सुब्रह्मणे पञ्चमः सर्गः ॥ ३५ ॥
 एव इत्तम शैवप्रमिदिनिमित्त शर्यामन्त्र मन्त्रिकण्ये सुब्रह्मण्ये देवीशर्वां सने पूा हृद ॥ ३५ ॥

श्रीवीकृषीति व्यसन्त्याः शारिका वेदमसु स्थिताः ।
 पत्निति प्रथिद्व्यापि मित्रित्तः कसईविभिः ॥ ३२ ॥
 प्रथम रहनेवाली शरिकाएँ कसईकी इच्छावाले
 पूर पक्षियामे बने करती हुई गुँप करी हैं और उनसे
 परनिव हो पुष्मीर गिर पड़ती हैं ॥ ३२ ॥
 पक्षिणश्च सूगाः सर्वे प्रत्यावित्य कर्मित त ।
 कराको विक्रयो मुग्धः पुठयः कृष्णपिङ्गलः ॥ ३३ ॥
 काकां यथापि सर्वेषां काल कपकऽन्वबहाते ।
 पक्षी और मृग सभी स्वर्षी और मुँर करक उत हैं ।
 विकरल विकट काय और नूर रगके मूड मुझामे मुण
 पुष्यकर म्म भारण करक चक समन-समयपर हम लक
 शरीकी और देखता है ॥ ३३ ॥
 पशाल्यप्याति दुष्टानि निमित्तान्युत्पत्सति च ॥ ३४ ॥
 विष्णु मन्वामाहे राम मानुष रूपमास्त्रितम् ।
 नहि मानुषमात्राऽसौ राक्षसो बहविक्रमः ॥ ३ ॥
 येन बद्ध समुद्रे च संतुः स परमाहुताः ।
 कुत्स्य नर-यजेन सधि रामेण रावण ।
 बालावधार्य कर्माणि कियतामायत्किमम् ॥ ३६ ॥
 ये तथा और भी बहुतसे अपराहुन हो रहे हैं । मैं
 ऐसा समझता हूँ कि खरुत् भवान् विष्णु ही मानवरूप
 धारण करके राम होकर आये हैं । किन्तों समुद्रेमें अकल
 भ्रमुत् सेतु बंधा है व इहवपक्ष्मी खुशीर वाभरण
 मनुष्यमात्र नहीं हैं । रावण । तुम नरराम भीरुमके साथ
 सधि कर म्म । भीरुमके पञ्चैकिक कर्मा और खड्गमें
 होनेवाले उपातीका अन्धकर जो कार्य नविधम कुल
 देनेवाला हा उठका निधय कने बही कर ॥ ३४-३६ ॥
 इत्वं वयसाम्य निगद्य मास्यवान्
 परीक्ष्य रक्षाधिपतेर्मनः पुनः ।
 मनुष्यनेपूषमवीठया बली
 बभूव दूर्णार्त्तं ममवक्ष्य राक्षसम् ॥ ३७ ॥
 यह बात कहकर तथा रक्षकएव रावणके मनाभावकी
 परीक्षा करके उठम मन्त्रिराम भेद पीडपक्ष्मी महाकषी
 मान्यवान् रावणकी ओर देखता हुआ पुन हा गया ॥ ३७ ॥

पटत्रिंश सर्ग

मानवयानुपर आक्षप और नगरकी रक्षाकर प्रवन्ध करके रावणका अपां अन्तःपुरमें जाना
 वत तु मास्ययतो पाक्य हितमुक्तं दशाननाः ।
 न मयपति दुष्टतम क्लमक्य बधामागताः ॥ १ ॥
 उद्यामा दशमुग रावण क्लमके भयनि हो रा या

इत्येव मास्यवान् श्री कृषी हुई शिवकर वासध भी बर
 धरन नहीं कर सम ॥ १ ॥
 स बहूना भद्रुदि धनके शोधय बधामगताः ।

ममर्षात् परिश्रुत्वास्तो मास्यक्तमथाभवीत् ॥ २ ॥
 वह श्रमके वशीभूत हो गया । अन्तर्हिते उत्कं नेत्र
 ध्रुवने म्ने । उवने मौहै ट्यी फरक मास्यवान्तो क्वा—॥
 हितयुद्धया यवहित कषः परमुष्प्यते ।
 परपक्ष प्रविश्येय नैतरुष्मेजगत मम ॥ ३ ॥
 ध्रुवने शत्रुभ्यः पक्ष छत्र हित-धुष्मिनः नो भरे अहित-
 श्री कठोर याठ करी है; वह पूरी तीरत मेरे कर्नातक
 नहीं पहुँची ॥ ३ ॥
 मातुर छुपण राममक शास्त्रानुगाभयम् ।
 समर्थ मन्यसे कल त्यक्त पिशा घनाध्ययम् ॥ ४ ॥
 वेलाए राम एक मनुष्य ही ता है; किन्तुने स्थाए
 शिवा है कुछ वरदोष । पिताके त्याग देनेसे उवने
 कनकी धारण छी है । उधमें कौन-सी ऐसी विपत्ता है
 किन्ते तुम उमे नबा शास्त्रशास्त्री मान रहे हो ॥ ४ ॥
 रक्षसामीश्वर मा च वषालां च भयकरम् ।
 हीन मां मन्पस कज महीम नवयधिक्रमैः ॥ ५ ॥
 मैं एकलक्ष स्वामी तथा सभी प्रकृतक परक्रमोंने
 स्वामि हूँ वेबलओक मनमें भी भय उत्पन्न करता हूँ
 फिर किछ करणसे तुम मुझे रामकी अपेक्ष हीन
 समझे हो ॥ ५ ॥
 नीरुद्धेष्वेव वा शङ्गे पक्षपातन वा रियाः ।
 स्वर्गाहं परमशुक्ला परमास्ताहनन वा ॥ ६ ॥
 ध्रुवने नः मुझे कठोर शर्तें सुनायी हैं उनके विषयमें
 मुझे शङ्क है कि तुम या तो मुझ-बैते बीरते देव रमत
 हा या ध्रुवने मिर हुए हा अपना धनुर्भेने ऐव करने
 या करनेक शिप्य तुम्हें प्रोत्साहन दिया है ॥ ६ ॥
 प्रभक्त एवस्य हि पश्य क्वऽभिभाषत ।
 परिहृत शास्त्रतत्त्वद्यो पित्र प्रोत्साहनन वा ॥ ७ ॥
 न्यः प्रजावशास्त्री होनेक ताप ही अपने राजपर प्रतिक्रित
 है एमे युद्धकाले कौन शास्त्रान्तर विज्ञान धनुष्य प्रोत्साहन पाय
 किन्तु क्वचन जुना लक्षण है ॥ ७ ॥
 अनीय च वनात् सीता पद्महीनामिभ भियम् ।
 किमर्थं प्रतिश्राव्यामि राघवस्य भयाद्दहम् ॥ ८ ॥
 अमरवीन कम्बुधरी भनि सुन्दरी छी-कष कनसे न
 अक्षर इव केवल रामके मन्ने न केसे खोरा हूँ ॥ ८ ॥
 शूत धानरक्षाटीभिः ससुमीय नखदमण्यम् ।
 पदप कैशिविहाभिश्च राघव तिहत मया ॥ ९ ॥
 कण्ठा कानरने भिरे हुए सुमीन और कम्बुधरीन
 रामधर्म हूँ कुछ ही विनीम मर शर्तें-वह नुम अपनी
 ओंको देव मया ॥ ९ ॥

शङ्गे यस्य न तिष्ठन्ति वैद्यमप्यपि सयुगे ।
 स कस्मात् रावणो युद्धे भयमाहावयिष्यति ॥ १० ॥
 जिसके सामने इन्द्रयुद्धमें वेचता भी नहीं ठहर पाते हैं;
 वही रणग युद्धमें किससे भयभीत इनके ॥ १० ॥
 द्विधा भयपयमप्येष न नमोयः तु कस्यचित् ।
 एष मे सहजा दोषः स्वभावा दुर्लभिमः ॥ ११ ॥
 मैं बीचसे दो दूक हा कर्कश पर किसीक छमने
 छक नहीं छडूँग यह मेरा स्वभाव दोष है और स्वभाव
 किसीके लिये भी दुर्लभ है ॥ ११ ॥
 यदि तावत् ससुद्रे तु सेतुर्बद्धो यच्छ्रया ।
 रामेण विषयाः कोऽप्येव ते भयमागतम् ॥ १२ ॥
 यदि रामने देववद सुदुरपर सेतु बाँध शिवा तो इधमें
 विषयकी कौन बात है जिससे तुम्हें इतना भय हा
 गया है ॥ १२ ॥
 स तु वीर्यार्जय रामा सह धनरसमया ।
 प्रतिज्ञान्प्रमितिं सत्यं न जीवन् प्रतिपास्यति ॥ १३ ॥
 मैं तुम्हारे आगे लम्बी प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि
 सुदुर पार करके बनरसेनावहित आये हुए राम यहाँसे
 जीवित नहीं खोए करेगा ॥ १३ ॥
 एष ध्रुवाण सरथ्य रथ विहाय रावणम् ।
 वीर्यितो मास्यवन्तु चाप्य नोत्तर प्रस्यपाद्यत ॥ १४ ॥
 एही राठे कहत हुए रावणको श्रमसे नष्ट हुकड़ एव
 रथ चनकर मास्यवान् बहुत कर्मित हुआ और उवने कोई
 उत्तर नहीं दिया ॥ १४ ॥
 ज्याशिंगा तु राजान वधमित्या यथोचितम् ।
 मास्यवान्भ्यनुज्ञातो जगाम स्व निषधानम् ॥ १५ ॥
 मास्यवान्ने महाराजकी बय हा' इस विषयजनक
 आशीर्वादने रावणको यथोचित बधाया दिया और उवने आज्ञा
 संकर वह अपने घर चला गया ॥ १५ ॥
 राघवस्तु सहामात्यो मन्त्रयित्वा विमुक्ष्य च ।
 जङ्गलान्मु तदा गुमि क्वरयामास राक्षसः ॥ १६ ॥
 अनन्तर मन्त्रियोंकेहित राक्षस उपगने परस्पर विचार
 किन्तु करके लक्ष्यक जङ्गली राक्षस प्रकन किया ॥ १६ ॥
 अ्यादिवा य पूर्वान्यां प्रहस्तं ठारि राक्षसम् ।
 दक्षिणम्यां महादीप्यो महापादमहासूरी ॥ १७ ॥
 पश्चिमायां य ठारि पुत्रमिन्द्रकित तदा ।
 व्याविशेय महामाय राक्षसेषुभिषूतम् ॥ १८ ॥
 उवने पूर्व दिशापर रामकी राक्षके लिये पछत प्रहस्त
 कनत किया दक्षिण दिशापर महापादकी महापाद और
 महादीप्यके लिये तथा पश्चिम दिशापर अपने पुत्रमिन्द्रके

गता चो महान् महावीर्यो यः । बहू बहुतमं यच्छौद्रता
विद्युद्गता यः ॥ १७-१८ ॥

उत्तरस्यां पुरदारि ज्यादिश्य शुक्रसारणौ ।
स्य चात्र गमिष्यामि मन्त्रिणस्तानुवाच ह ॥ १९ ॥

तदन्तर गतक उत्तर द्वारस्य शुक्र और खरणस्य
रक्षाके क्रिमे बनेकी भासा हे मन्त्रियोंसे राजपते कदा—में
सर्व भी उठर द्वारपर जाईगा ॥ १९ ॥

राससस तु यिकृपासं महावीर्यपराक्रमम् ।
मन्थमेऽस्थापयत् शुल्भे वधुभिः सह राससैः ॥ २० ॥

नगरक बीचकी छापीपर उठने बहुसंयुक्त रक्षाके
साथ महान् बन्ध-परक्रमसे सगन्ध रक्षक विस्मयसे
स्थापित किया ॥ २ ॥

हृत्पापैर् भीमज्ञानायाम् वासीकीये ऋषिकाम्ये बुद्धकाण्डे वरधिपः सर्गः ॥ १९ ॥

इस प्रकार ब्रह्मात्मैर्निर्मित नगरमायम् ऋषिकान्तके बुद्धकाण्डने उद्योसर्गो सर्ग पूरा हुआ ॥ १९ ॥



सप्तत्रिंश सर्ग

विभीषणका भीरामसे रावणद्वारा किये गये लङ्काकी रक्षाक प्रबन्धका वर्णन तथा भीरामद्वारा
लङ्काक विभिन्न द्वारोंपर आक्रमण करनेके लिये अपन सेनापतियोंकी नियुक्ति

नक्षत्रारण्यजानो स तु पायुस्तुता कपिः ।
आरुतवानुक्षत्रजस्य राससस्य विभीषणः ॥ १ ॥
महत्सो प्राक्षिपुष्यस्य सौमिन्निः शरणा कपिः ।
सुपणा सखदावाप्तो मैत्र्यो द्विविद् एव च ॥ २ ॥
गजो गन्धस्ताः कुमुदां कसोऽद्य पलसत्तथा ।
मन्त्रिणवियय प्राप्ताः क्षमवत्ताः समर्थयन् ॥ ३ ॥

शुक्रके देशमें पहुँचि हुए नक्षत्र औरत सुमित्राकुमार
बलस्य बानरराज सुभीर वसुपुत्र इत्यान् श्रुत्वाप्यन्वन्वान
रक्षत विभीषण वासिपुत्र मन्त्र धरम बन्धु-बन्धुकीवर्षित
सुरेण मन्त्र द्विविद् गन्ध गन्धः कुमुदाः नक्ष औरपलस-वे
सक अभयमें मिलकर निवार करने लगे— ॥ १ ॥ ॥

इय सा लक्ष्यत लङ्का पुरी राक्षसपाक्षिण्ड ।
सासुरोत्तरगाम्यर्धैरमरैरपि बुर्जेषां ॥ ४ ॥

पारी बह लङ्कापुरी बिसाधी वती है किठका वाहन राक्षस
कथा है । अमुद्ग नाग और गन्धबोधित संपूर्ण दक्षायुधके
क्रिये भी इतर शिष्य पाना अक्षय कपिन है ॥ ४ ॥

कपयसिद्धि पुरस्त्वस्य मन्त्रपथ्य विनिर्णये ।
निभ्य सनिहितो यद्य रायणा राससप्रधिपाः ॥ ५ ॥

पक्षस्य राक्षस इय पुरीमें सद्य निवास करता है । अन्
भयस्य इतर विषय पानेक उपायोंग निवम करनेके क्रिये
परस्पर विचार करें ॥ ॥

अथ तपु मृष्यप्यपु रावणारण्योऽवधीत् ।

एव विधान मनुष्यां कृत्वा राससपुंगवा ।
कृतकृत्यमिन्द्रामल मन्पतं काण्डोविद्या ॥ ११ ॥

इस प्रकार छद्ममें पुरीकी रक्षामें प्रकल्प करके कान्
प्रति- राससपुंगवमि रावण अपने भापको कृतकृत्य
मानने लगा ॥ ११ ॥

विद्यार्ज्याभास ततः स मन्त्रिणो
विधातमन्त्राय पुरस्य पुष्कलम् ।

जयाशिया मन्त्रिगण्येन पूजितो
विद्येश सोऽन्तपुरमृद्धिमग्महत् ॥ २२ ॥

इस तरह नगरक धरधमसे प्रचुर धनसाक लिये
भासा देकर राजपते सभ मन्त्रियोंका विद्या कर दिया और
सर्व भी उन्नत विद्वन्मूक आशीर्वादसे सम्मानित हो अपने
सम्पत्तिशाली एवं विशाक अन्तपुरम चला गया ॥ २२ ॥

राक्षसप्राम्पपद्यत् पुष्कलार्थं विभीषणः ॥ ६ ॥

उन सके इस प्रकार करनेपर राजपतेके छोटे भ्राई विभीषण
ने संस्कारयुक्त पद और प्रचुर भयसे मरी हुई बाधीम
भ्या— ॥ ६ ॥

मन्त्राः पलसत्सौष्य सम्पातिः प्रमत्तिस्तथा ।
गत्या लङ्का ममासाहत्याः पुरीं पुनरिहगता ॥ ७ ॥

पेरे मन्त्री मन्त्रक, पलस कयाति और प्रमत्ति—वे चले
लङ्कापुरीम आकर फिर वहाँ छोड़ आये हैं ॥ ७ ॥

मूष्या शकुनयाः सार्ये मविद्यास्य रिपोर्बलम् ।
विधानं विहितं यच्च तद् बुद्धाः समुपस्थिताः ॥ ८ ॥

सं उस लोका फलीक रूप धारण करके शत्रुकी सेनामें
गये थे और वहाँ से धनसा की गयी है । उठे अपनी औखों
देकर फिर वहाँ उपस्थित हुए हैं ॥ ८ ॥

सविधानं यथाहस्ते राक्षसस्य पुरात्मना ।
राम तद् वृथतः सार्ये पाथाठय्येन मे शृणु ॥ ९ ॥

भीरम । इन्होंने बुद्धस्य राक्षसके द्वारा क्रिये गय नगर
रक्षाक प्रकल्पक जेस बर्नन किया है उठे मैं ठीक-ठीक
कथता हूँ । आप बह सब सुनते सुनिये ॥ ९ ॥

पूर्वे प्रहस्ताः सयसो द्वारमासाद्य सिष्ठि ।
दक्षिण्य च महावीर्यो महायार्धमहोदरी ॥ १० ॥

पेनासहित प्रहसा नगरके पूर्वद्वारका अभय भेकर लडा

हे । महास्योऽस्मी महापाप्य भ्रैर महादर शिवि शरणर लङ्
हे ॥ १ ॥

इन्द्रजित् पश्चिम शार राक्षसैः बहुभिर्बुधैः ।
पट्टिदासिधनुष्मभिः शूलमुत्ररपाणिभिः ॥ ११ ॥
ननप्रहरणैः शूरेराधुतो रावणात्मजः ।

बभूवुस्त्वक उषधेते विर दुष्ठा इन्द्रजित् नगरके पश्चिम
शरणर लङ्का हे । उरुक साथी राक्षस पहिद्य नङ्क भनुप
एल भ्रैर मुद्रर आदि अन्न शाल शायीने लिये हुए हे । नाना
प्रकारक मायुष भारण करनेवाला धृतीरुते विर दुष्ठा वह
रावणकुमार पश्चिमशरकी रक्षक किये गया हे ॥ ११ ॥

राक्षसाना सहस्रेस्तु यद्गुभिः शस्त्रापाणिभिः ॥ १२ ॥
युक्त परमसयिन्यो यक्षसैः सह मन्थयित् ।
बभूव नगरद्वार रावणः स्वयमास्वित ॥ १३ ॥

स्वयं मन्त्रवेद्य रावण युक्त धरणाभादि कर करल शस्त्रापी
राक्षसोंके साथ नगरके उत्तर शरणर खननकीक साथ लङ्का
हे । वह मन-ही-मन भक्त्युत उरिया नन पढ़ता हे ॥ १२-१३ ॥

विरूपाक्षस्तु महता शूलखड्गधनुष्मता ।
पञ्चन यक्षसैः सार्धं मन्थ्यम गुल्ममाधितः ॥ १४ ॥

भक्तिराघव एव लङ्का भ्रैर भनुप भारण करनेवाली
विद्यमान राक्षसोंनाके साथ नगरके बीचकी धनकोषर लङ्का
हे ॥ १४ ॥

पत्नानेवधिभान् गुल्मोद्धृतायां समुदीक्ष्य त ।
मामक मन्त्रिणाः सर्वे शिष्य पुनरिहागताः ॥ १५ ॥

पुत्र प्रकार मेरे खरे मन्त्री लङ्कामें निमिन्न सानोंर
निपुक्त हुए इन सेनाओंका निरीक्षण करके फिर वीम यहाँ
आर हे ॥ १५ ॥

पञ्चाना वृदासाहस्य रथानामयुत तथा ।
हयानामयुत द्व ष साप्रकाटिञ्च रसासाम् ॥ १६ ॥

पाण्डवकी सेनामें दस हजार हाथी दस हजार रथ बीस
हजार घोड़े और एक करोड़में नी ऊपर पैदल राक्षस हे ॥

विक्रान्त्य यत्कफ्तञ्च समुगुप्यलतायिनः ।
इष्ट राक्षसराजस्य नित्यमत निद्रावरा ॥ १७ ॥

जैसे सभी बड़े हीर कन-कराक्रममें सम्मन आर युद्धमें
अनलक्ष्यी हे । ये सभी निगाकर राक्षसोंपर राक्षसों का साथ ही
मिय हे ॥ १७ ॥

एककन्याया मुदायै गन्धसस्य विगाग्यत ।
परीयात सहस्राणा सहस्रमुपविष्टत ॥ १८ ॥

प्रकृत्याप । इनमें एक-एक राक्षसक राव युद्धक किये
रथ-रथ सानका परवार सम्मिलित हे ॥ १८ ॥

पला प्रवृत्ति नशुया मन्त्रिप्रानां विभीरवः ।
पपमुक्त्वा महापाद् राक्षमास्तनवापात् ॥ १९ ॥

लङ्कायां सखिभ्यै सर्वे रामाय प्रत्यवदन् ।
महानाहु विभीरवने मन्त्रिणोद्भवा क्वापं गम्य लङ्काविषयक
रुमाचारका इस प्रकार क्वाकर उन मन्त्रीस्वरूप राक्षसोंका भी
भीयमसे मिथ्या आर उनका द्वारा लङ्काका खरा इच्छन्त
पुन उनसे कहनाया ॥ १९ ॥

राम कमलपत्राक्षमिद्रुमुत्तरमग्रधीम् ॥ २० ॥
रावणावरजः भीमान् रामप्रियचिकीर्षया ।

तदनन्तर रावणका छात्र माह भीमान् विभीरवने कमलपत्र
भीरमसे उनका प्रिय करनेके किये स्वयं भी यह उचम सत्
करी- ॥ २० ॥

कुयर तु यदा राम रावणः प्रथियुद्धयसि ॥ २१ ॥
पट्टि दातसहस्राणि तथा निपाति राक्षसाः ।
पराक्रमणार्थीयम् तत्रसा सत्सर्गारयात् ।
सहसा शय कृपेण रावणस्य तुरात्मनः ॥ २२ ॥

भीराम । अब रावणने कुमेरके साथ युद्ध किया या
उस समय सत् सत् राक्षस उसके साथ गये थे । वे सत् क-
लक कर, पराक्रम वंश, पर्यकी अधिकृत्य और दैवी दृष्टिसे
कुपव्या रावणके ही समान थे ॥ २१-२२ ॥

अत्र मन्थुन कर्तव्यं कोपये त्या न भीषिय ।
समर्थो ह्यसि वीर्यम् सुराणामपि निग्रहे ॥ २३ ॥

योंने अब रावणकी शक्तिका बर्णन किया हे इतका उचर
न छ आपका मनने मनमें गैतल समी चारिये और न मुक्त
पर रा ही करना चाहिये । मैं आपके उरुता नहीं शयुक्त प्रति
आपका कृपके उभाड़ रहा हूँ क्योंकि आप मनने क-
प्यकन्याया देवताओंका भी मन करनेमें समर्थ हे ॥ २३ ॥

तद्गुवाभ्यतुरङ्गेय पञ्चन महता बृहत् ।
भ्यूद्येद् धानरानीक निमथिष्यसि रावणम् ॥ २४ ॥

पञ्चसैन्य भार इस धानरसेनाका भ्यूह करार ही विशाक
कुरीक्षी सेनामें विर हुए रावणका सिन्धवा कर सँगी ॥ २४ ॥

रावणावरजे धाफ्यमत्र तुगति रावणः ।
शङ्कानां प्रतिघातायमिद् वचनमग्रधीम् ॥ २५ ॥

विभीरवक पक्षी यत् करनेपर भवान् भीरामने
शत्रुओंका पण्डा करनेक किये इस प्रकार क्वा- ॥ २५ ॥

पूयद्वार तु लङ्काया नीला धानरपुङ्गवा ।
प्रहस्त प्रतिपादा स्वाद् धानरपुमुभिर्बुधैः ॥ २६ ॥

बहुसंख्याक धानरम विर हुए कृतिभेद नील पूर शरणर
काकर प्रहस्तका सामना करें ॥ २६ ॥

भङ्गा वालिपुत्रस्तु यत्न महता पून ।
वृथिवे वापता द्वाट महापादयमहादरी ॥ २७ ॥

निगाव पादिनीमें युक्त चन्दिनुमार भङ्गर वृथिव शरणर
सिंह हा महाघर्भे आर महादरक कायनें बाधा दे ॥ २७ ॥

हनुमान् पश्चिमद्वारं निर्घ्रातः पवनसमजः ।
प्रविशत्यप्रमथयामा वक्रुभिः कृपिभिर्बृहत् ॥ २८ ॥

पवनकुमार हनुमान् भद्रमेव अस्मत्प्रभवे सम्पन्न है ।
य पवनसे बानरोंके साथ सज्जके पश्चिम परटकमें प्रवेश
कर ॥ २८ ॥

वैत्यदानस्यमहान्यासुरीणां च महामन्त्रम् ।
मिथकारमिदं श्रुत्वा वरदानबद्धास्मितः ॥ २९ ॥
परिभ्रमति यः सर्वोत्तकान् सतपस्यन् प्रजाः ।
तस्याह राक्षसस्य स्वयमेव यद्य भूताः ॥ ३० ॥
उत्तर नराच्छासन्सह सौमिषिण्या सह ।
निर्घ्रात्याभिप्रवक्ष्यामि सयस्वा यत्र राक्षसाः ॥ ३१ ॥

वैत्य दानसकहो तथा महामन्त्रं श्रुतियौक्तं भद्रकर
करना ही जिन मिय सम्पन्न है, जिनमें समाप्त सुत्र है जो
वरदानही लक्ष्मिने सम्पन्न है और प्रजाकोई छाप देता हुआ
उन्मुख स्वयंसे पूजता रहता है उस राक्षसान् राक्षसके बंध
का हृद निश्चय सद्य में स्वयं ही मुमियाकुमार सम्पन्नके साथ
नगरके उत्तर छतरपर भद्रमन्त्र करके उसके भीतर प्रवेश
करेगा — यहाँ संशयहित राक्षस विधमल है ॥ २ - ३१ ॥

यान्पुत्रं च पलयात्सुरास्य धीययान् ।
राक्षसप्रातुज्जयैव गुह्यं भयतु मय्यमे ॥ ३२ ॥

पवनान् वानरान् सुग्रीव पीठोक्तं परक्रीमि यथा
जम्भयान् तथा राक्षसाञ्च राक्षसकं छाटं भाई निर्भीक्य—यं
भय नगरके धीनके अन्दर आक्रमण करे ॥ ३२ ॥

न चय मानुष रूपं कथं हरिभिराहव ।
एषा भयतु नः सदा युद्धस्मिन् यानर पल ॥ ३३ ॥

नगरमें युद्धमें मनुष्यरा रूप नहीं भरण करना

हरणार्थे श्रीमद्वाल्मीक्ये अर्थोक्तये युद्धकाये सप्तविंशत् सर्गः ॥ ३० ॥

(१५) प्रकार अन्तर्निर्मित अर्थोक्तये अर्थोक्तये युद्धकाये सप्तविंशत् सर्गः पूरा हुआ ॥ ३० ॥

आदिषे । इष युद्धमें बानरोंकी सेनाका हमारे लिये बड़ी लीला
या सिद्ध होगा ॥ ३१ ॥

बानर एव नमिह सज्जनेऽस्मिन् भविष्यति ।
क्य तु मानुषैश्च सप्त बोध्यामहो परम् ॥ ३४ ॥

पक्ष स्वकनगरि वानर ही हमारे सिद्ध होंगे । केवल
हम एक व्यक्ति ही मनुष्यरूपमें रहकर सज्जनेके लक्ष्य पुर
करने ॥ ३४ ॥

मनुष्य सह भ्रात्रा सहस्रजेन सहोत्सवा ।
भारमन्त्र पञ्चमभाय सखा मम किरीलकाः ॥ ३५ ॥

मैं अपने महादेवकी भाई अस्मत्प्रभवे के साथ युद्ध और वे
मेरे मित्र निर्भीक्य अपने चार मन्त्रियोंके साथ पौर्वर्क होंगे
(इस प्रकार हम एक व्यक्ति मनुष्यरूपमें रहकर पुर करेगे)
स रामः कृपसिद्धयर्थमेवमुक्त्वा निर्भीक्यम् ।
सुवेत्यारोह्ये युद्धि सकार मतिमान् प्रभुः ।
रमणीयतरं बभूव सुवलस्य गिरेस्ततम् ॥ ३६ ॥

अपने निश्चयकी प्रयोजनकी सिद्धिक लिये निर्भीक्यको
देख करके बुद्धिमान् भगवान् श्रीरामने सुवेद्य परैतर कान्
का विचार किया । सुवेद्यपरैतर वटापान बड़ा ही रमणीय
था उसे देखकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ३६ ॥

ततस्तु रामो महद्य बलेन
प्रच्छद्य सर्वां पुथिर्षीं महत्सम ।
प्रहृष्टरूपोऽभिजगाम सद्यं

कृत्वा मतिं साऽरिवचं महात्मा ॥ ३७ ॥
तदन्तर महामना महात्मा श्रीराम अक्रीम विद्याके
द्वय परोंकी सखी पृथ्वीके अन्तर्गत करके सज्जकका निश्चय
किय बड़े हर्ष और उत्साहसे सज्जने और बल ॥ ३७ ॥

अष्टात्रिंश सर्ग

श्रीरामका प्रमुख जानतोंके साथ सुबल पवतपर चढ़कर वहाँ रातमें निवास करना

न तु कृत्यं सुयन्त्र्य मतिमागहल प्रति ।
नक्षत्रानुगत्य राम सुग्रीवमिदमपि शीत् ॥ १ ॥
रिभ्रतय ए धमन्नमनुजैर्न निगापरम् ।
मन्त्रं च विधिं च तद्विलया परया गिरा ॥ २ ॥

सुबल पवन नक्षत्रोंके परैतर मन्त्रकेयुक्तकामय
नक्षत्रानुगत्य राम सुग्रीवमिदमपि शीत् ॥ १ ॥
रिभ्रतय ए धमन्नमनुजैर्न निगापरम् ॥ २ ॥
मन्त्रं च विधिं च तद्विलया परया गिरा ॥ २ ॥

सुबल गातु मन्त्रमिमं धानुगतमितम् ।

अभ्याराहामह सर्वे बन्ध्यामाऽत्र निद्रामिमत्सम् ॥ ३ ॥
मित्रा । यह परगण्य युद्ध के दिनों धनुषोंसे भूमीभक्ति
भय हुआ है । हम सब भय इतना बढ़े और आदमी इस
रातमें वहाँ निवास करे ॥ ३ ॥

सद्यं धानाकृपिण्यामा नित्यं तन्व रक्षता ।
यत्तं म मरणात्माय ह्या भाया नृपमना ॥ ४ ॥
यत्तं म मरणात्माय ह्या भाया नृपमना ॥ ४ ॥
यत्तं म मरणात्माय ह्या भाया नृपमना ॥ ४ ॥
यत्तं म मरणात्माय ह्या भाया नृपमना ॥ ४ ॥

येन धर्मो न विहातो न वृत्त न कुल तथा ।
 राक्षस्या नीचया युद्धया यत तद् गार्हित कृतम् ॥ ५ ॥
 क्रियते न ता धर्मज्ञा यानां हे न उदाचारको ही कुल
 क्मणा हे और न कुलधर्म ही विचार किया हे केवल उध-
 सन्धित नीच बुद्धिके कारण ही वह निन्दित कर्म किया है ॥५॥
 तस्मिन् भ वतत रोषा क्वीरिति राक्षसाभ्ये ।
 यस्यापराधाचीनस्य यथा द्रक्ष्यामि रक्षसाम् ॥ ६ ॥
 उस नीच राक्षस नाम डेट ही उधर मेरा रोष क्या
 उठवा है । केवल उठी अनिम निधाचरके अस्वपसे में कमल
 राक्षसों का यथा देखूँगा ॥ ६ ॥
 पद्मे हि कुबत पाप कालपाशावदा गताः ।
 नीचेनमहापचारण कुल तन बिनश्यति ॥ ७ ॥
 पद्मे के पादमें पैना हुआ एक ही पुरुष पाप करता
 है किंतु उस नीचके अपने ही दोषसे वह कुल नष्ट हो जाता
 है ॥ ७ ॥
 एष सम्मन्त्रपत्नेय सप्तोद्यो रावण प्रति ।
 एष सुयुधत्वासाय विप्रसानुमुपायहत् ॥ ८ ॥
 इस प्रकार चिन्तन करते हुए ही भीष्म रावणके प्रति
 कुनित हो विचित्र शिखरवाले सुवेण पर्यंतपर निरास करनेके
 लिये पद गये ॥ ८ ॥
 पृथगे लक्ष्मणश्चैतन्मन्त्राच्छ्रुत् समाहितः ।
 शरणापसुचम्य तुमहवृषिक्रमे रता ॥ ९ ॥
 उनका पीछे चलन भी महान् प्रयासमें उत्तर एवं
 एकप्रविष्ट हो अनुप-यान लिये हुए उस पर्यंतपर भाव्य हो
 गये ॥ ९ ॥
 तन्व्यारोहत् सुप्रीया सामात्यः सथिभीषणम् ।
 हनुमान्करो नीलो मेम्नो द्विविद् एष च ॥ १० ॥
 रामो गथासो गयया शरभा गन्धमादनः ।
 पनसः कुमुदक्षैप हयो रम्भश्च यूथपः ॥ ११ ॥
 जाम्बवाद्य सुपेणञ्च शूर्यभञ्ज महामतिः ।
 दुमुक्तश्च महातज्जलाया दक्षवलिः कपिः ॥ १२ ॥
 एत चाप्यथ यद्वहो वानराः शीघ्रगामिनः ।
 व पायुयग्रवप्यास्त गिरि गिरिवारिणः ॥ १३ ॥
 उपभान् मुप्रीव मन्त्रिषोऽसित विभीषण हनुमान्
 भद्र नील मेन्द्र द्विविद् गुरु गथाशः गयय शरभ
 गन्धमादन पनसः कुमुद हय यूथपति रम्भः जाम्बवान्
 मुपेय महामति शूर्यभ महातज्जनी दुर्गुत तथा कपिक
 हापार्थ भीष्मकाण्डे कास्मीकीके आदिशब्दे युद्धकाण्डे संज्ञितः सर्गः ॥ १६ ॥

एतयस्मि—ये और वृत्त भी बहुतसे धीष्मामी वानर जो
 वायुके समान तेगसे चलनेवाले तथा पर्यंतपर ही विचरनेवाले
 थे; उस सुवेणपरिपर चढ़ गये ॥१—१३ ॥
 अप्यारोहन् शरभाः सुयुधत्वासाय ॥
 त स्वीयैण कालेन गिरिमाद्यञ्च स्वधतः ॥ १४ ॥
 सुवेण पर्यंतपर आँ भीष्मनाथकी विराजमान थे; वे
 कैफों वानर पक्षी ही देखने चढ़ गये और चढ़कर सब
 और विचरने लगे ॥ १४ ॥
 वृष्टुः शिखरे तस्य विपकामिष्ये चो पुरीम् ।
 ता शुभां प्रवरद्वारां प्राकारवरशोभिताम् ॥ १५ ॥
 जह्वां राक्षससम्पूर्णां वृष्टुहरियूथयाः ।
 उन वानर-यूथपतिवोंने सुवेणपर्यंतक शिखरपर लगे हा
 उध सुन्दर जह्वापुरीका निरीक्षण किया जो भाकाधमें ही कनी
 हुई-सी ब्यन पक्षी थी । उसके फाटक बड़े मनोहर थे ।
 उत्तम परछाटे उस नन्दीकी शोभा बढ़ते थे तथा वह पुरी
 रक्ष्येते मरी-पूरी थी ॥ १५३ ॥
 प्राकारवरसस्यैश्च तथा शीलैश्च राक्षसैः ॥ १६ ॥
 वृष्टुस्ते हरिभेद्यः प्राकारमपरं कृतम् ॥ १७ ॥
 उत्तम परछाटेपर लगे हुए नीलवर्णके राक्षस ऐसे ब्यन
 पक्षी थे; मानो उन परछाटेपर वृक्षा परछाये का दिया गया
 हो । उन भेद वानरोंने वह सब कुछ देखा ॥ १६ १७ ॥
 ते वृष्टु वानराः सर्वे राक्षसान् युद्धकाण्डिणः ।
 मुमुक्षुर्षिथिथान् न्यासास्तस्य रामस्य पश्यन्तः ॥ १८ ॥
 युद्धकी इच्छा रखनेवाले राक्षसोंका देखकर वे सब वानर
 भीष्मकाण्ड देखते-देखते नाना प्रकारसे छिन्ता करने लगे ॥
 तत्रोत्सामगामत् सूर्यो सत्यया प्रतिरञ्जितः ।
 पूर्वैश्चन्द्रप्रदीप्तश्च क्षया समतियतत ॥ १९ ॥
 तदनन्तर संध्याकी आधीसे सूर्यो हुए सूर्यदेव अष्टापस-
 न्धे चले गये और पूषण्ड्रमाते प्रकाशित उजैली एत वहाँ सब
 अँर छा गयी ॥ १९ ॥
 ततः स रामो हरिद्याहिनीपस्त्रि-
 धिभीषणेन प्रतिक्थ्य सत्कृतः ।
 सलक्ष्मणो यूथपयूथसयुतः
 सुयुधत्वासाय स्यसत् यथासुम्भम् ॥ २० ॥
 ततश्च विभीषणश्च शरभ सम्मानित हा वानरसेवाक
 न्धनी भीष्मने अपने भाई लक्ष्मण और यूथपतिवोंक लयुधय
 के साथ सुवेणपर्यंतक वृष्मणागर मुमुक्षुक निवास किया ॥ २० ॥

एकोनचत्वारिंश सर्ग

वानरोंसहित भीरामका सुबल-शिवसे उच्चापुरीका निरीक्षण करना

ता रात्रिमुपिठास्तत्र सुषसे हरिपूषपा ।
सुशुप्या दृष्टुर्वीर्य वन्दान्युपवन्तानि च ॥ १ ॥

वानर पूषपतिवारे वह रत उठ सुवेक्षणवैतपर ही वितायी
और बहत्त उन कीरौने उच्चाक कन और उपवन भी
रने ॥ १ ॥

समन्मीम्यानि रम्याणि विशालान्यापस्तानि च ।
द्विदरम्याणि तं दृष्ट्वा यमुज्ज्वलतयिसम्याः ॥ २ ॥

व पड़े ही चौस घान्त मुन्दर विशाष और मिलत
थे तथा देखनेमें भस्मत् रमणीय अन पढ़ते थे । उन्हें देख
कर उन सब बानरोंका बड़ा विस्मय हुआ ॥ २ ॥

सम्पकपदाकबकुलरप्रवृत्तास्यसमाकुला ।

समाल-ससलज्वा मगमालासम्यावृता ॥ ३ ॥

हिन्तालैरजुननीपैः सप्तपथैः सुपुष्पितैः ।

तिलकैः कर्णिकारैश्च पाटलैश्च समस्तैः ॥ ४ ॥

पुष्पुमे पुष्पितप्रैश्च खतापरिगतैर्दुम्भैः ।

सुशु यमुविधोर्विभ्ययधेन्द्रस्यामरावती ॥ ५ ॥

पम्प अराक, वकुष शास-और ताछ वृषाते म्याप्त
समाल-वनसे भान्सादित और नागकेसोंसे भूइत उच्चापुरी
दिसा, अजुन नीप (कदम्ब) सिसं हुण शिवन
सिखक, फनेर तथा पाटल और नाना प्रकारके सिम्ब उछते
किन्तु भयभग पूष्यके मारसे बड़े थे तथा किन्तु उदा-
स्करियों कैली हुई थी इन्द्रकी अमरावतीके उमान घोभा
पती थी ॥ १-५ ॥

विधिभ्रुकुसुमाफसै रत्नकोमलपल्लवैः ।

शपथैश्च तथा मल्लिचिप्राभियनराजिभिः ॥ ६ ॥

विधिप वृषसे सुक खास कमल पल्लवों हरी हरी
पाछे तथा विधिप वनभेजियों भी उठ पुरीकी बड़ी गोभ्य
ह रही थी ॥ ६ ॥

गन्धाद्यस्यतिरम्याणि पुष्पाणि च फलानि च ।

धारपमयगमास्तात्र भूषणानीय मानवाः ॥ ७ ॥

नम मनुष्य भद्रभूय धारण करत हैं उषी प्रकार
पहोम वृष मुद्विपत पूष और भस्मत् रमणीय सब धारण
करत ॥ ७ ॥

तच्छ्वप्रत्यसपन्न मनाज नन्दन्यपमम् ।

एन सपतुक रम्य पुष्पुम पटपदायुतम् ॥ ८ ॥

नेरस्य और नन्दननक उमान पहोम मनाहर कन
वही शत्रुभयमें अमरुने नात ह रमणीय गोभ्य धारण
करत ॥ ८ ॥

वायूहकप्यदिबकैर्नृत्यमानैश्च बहिर्धैः ।

रत परवृताना च शुशुभ वननिर्गरे ॥ ९ ॥

दायूह कप्यदि, कक और नाकते हुण मेर उठ कनके
मुद्राभित करते थे । कनमें शरणाके अदृश्यात कोकिलकी कूक
सुनायी पढ़ती थी ॥ ९ ॥

नित्यमचबिहृगामि भ्रमपञ्चरितानि च ।

कोकिलकुलकण्डानि विहृगामिद्वयानि च ॥ १० ॥

सुहृत्प्राजाभिनिमानि कुरुरत्ननितानि च ।

कोषालकविपुष्पाणि सारसामिद्वयानि च ।

बिबिद्यस्त ततस्तानि वन्दान्युपवन्तानि च ॥ ११ ॥

उच्चाके धन और उपवन नित्य मत्वाछ किङ्कमोसे
विमुद्रित थे । वहाँ वृष्यकी कश्चिभोर मीरे ईडरते रहते
थे । उनके प्रत्येक सपनेमें कोकिलकी कूह-कूह कोक
करी थी । पक्षी चहचहाते रहते थे । चञ्चलकके गीत मुकुरित
होते थे । कुरुरके घन्ट गूँबा करते थे । कोषालकके ककर
होते रहते थे तथा खरसोंकी सरसरी सब और कनकी
रती थी । कुछ बानरवीर उन कनों और उपवनमें
पुस गये ॥ १ ११ ॥

दृष्ट्वाः प्रमुविता वीरा हरया कामकपिवाः ।

तया प्रविशता तत्र वानराणा महीजसम् ॥ १२ ॥

पुष्पससर्गसुरभिर्वदो प्रापसुखाडिक्ता ।

अन्य तु हरिवीराणां यूषाश्लिष्यन् यूषयाः ।

सुप्रीवषाम्यनुज्ज्वला सुशु जन्मुः पलाकिनीम् ॥ १३ ॥

वे सभी वीर वानर इच्छानुसर रूप धारण करनेवाले,
उत्सारी और मानन्दमय थे । उन महातकली कनरोंके
यहाँ प्रवेश करते ही वृष्यके संसर्गसे मुगन्धित तथा प्रावेनित्रकसे
सुख देनेवाली मन्द वायु करने लगी । वृष्ये बसुतसे
सुपरत उन वानर वीरोंके समूहमें निकलकर सुप्रीवशी मय
स एवम-पलाकमोसे अम्बुत उच्चापुरीमें गये ॥ १२ १३ ॥

विधासयस्त विहगान् स्थापयन्त्या मुगक्षिपात् ।

कम्पयन्त्या तां जज्ञा मादौः स्वैर्नवृतां वराः ॥ १४ ॥

गर्वनेवाल उगोसे भेद थे बानरवीर अपने छिन्दावसे
पक्षिमात्र इतत मुगों और हाथियोंके एवं छिन्त तथा
जज्ञा म कम्पित करत हुण भागे बड़ रद ॥ १४ ॥

कुपन्तस्त महापग्य मर्षां चरणपीडिताम् ।

रज्जश्च सहसैवाथै जगाम चरणान्तिथतम् ॥ १५ ॥

वे महान् पागणकी वानर वृष्यीय जब चरणसे दफते
थे तब समय उनक पैरमें उठी हुई धूल धरल ऊपर
रद करती थी ॥ १ ॥

श्रुत्याः सिंहास्य महिषा घाग्भास्य मृगाः खगाः ।

सम दान्धन विधस्ता जम्बुभिस्त्य विदो वदा ॥ १६ ॥

वानरोंके उस सिंहादासे प्रजा एवं मयगीत हुए पीछ, सिंह जैसे हाथी, मृग और पक्षी दलों सिंहाओंकी ओर मग गये ॥ १६ ॥

सिखरं तु त्रिकूटस्य प्रांशु चैकं त्रिविस्वशाम् ।

समन्तात् पुष्पसङ्घन्त महारजतसन्निभम् ॥ १७ ॥

त्रिकूट पर्वतका एक शिखर बहुत ऊँचा था । वह देख बन पड़ता था, मानो स्वर्गलोकका झूठा हो । उसपर सब ओर पीछे रागके फूल सिकं हुए थे जिनसे वह खनेका ख बन पड़ता था ॥ १७ ॥

शस्तयोज्जन्विस्तीर्ण विमल शारदशानम् ।

रुद्ररुण भीममहच्छैव दुष्प्राय शकुनैरपि ॥ १८ ॥

उस शिखरका शिखर छै योजन था । वह देखनेमें बड़ा ही सुन्दर लम्बा, लिंग्म कान्तिमान् और विशाल था । पक्षियोंके सिध भी उसकी खोटीकक पहुँचना कठिन होख था ॥ १८ ॥

मनसापि दुररोह किं पुनः कर्मणा जगैः ।

निविष्टा तस्य शिखरे लङ्का रावणपालिता ॥ १९ ॥

छेग त्रिकूटके उस शिखरपर मनके द्वारा चढ़नेकी कल्पना भी नहीं कर सकते थे । फिर किन्नाद्वारा उसपर आसक्त होनेकी तो बात ही क्या है ! राजनद्वारा पालित लङ्का त्रिकूटके उसी शिखरपर कधी हुई थी ॥ १९ ॥

व्याघ्रो ज्जन्विस्तीर्णा विशाघोज्जन्मयापठ ।

सा पुरी गोपुरैरुच्छ्रैः पाञ्चुराम्बुद्वसन्निभौ ।

काञ्चनन च शासेन राक्षसेन च शोभत ॥ २० ॥

वह पुरी दस योजन चौड़ी और बीस योजन लंबी थी । केहर शरशेक समान ऊँचे-ऊँचे गेपुर तथा खन और खोटीके परकोटे उसकी छेमा बढ़ाते थे ॥ २ ॥

प्रासादैश्च विमानैश्च लङ्का परमभूषिता ।

धनैरिवावतपापापे मध्यमं वैष्णव परम् ॥ २१ ॥

जैसे प्रीयाके अन्तकाल—बर्षा श्रुतमें फनीभूत चारु अक्षय्याधी शोभ बढ़ाते हैं उसी प्रकार प्रासादों और

विमानोंके लङ्कापुरी अत्यन्त सुश्रुति हो रही थी ॥ २१ ॥

यस्यां सत्समसहस्रेण प्रासाद समलङ्कितः ।

कैवल्यसशिखराश्रये दृश्यते क्षमिषोऽस्मिन् ॥ २२ ॥

उस पुरीमें सहस्र लक्षमेंसे अलङ्कृत एक वैष्णवप्रसद था, जो कैवल्य-शिखरके समान दिखायी देता था । वह आक्षय्याधी माफता हुआ-ख बन पड़ता था ॥ २२ ॥

चैत्यं स राक्षसेन्द्रस्य दभूष पुरभूषणम् ।

शतेन रक्षासां सित्य या समग्रेण रक्ष्यते ॥ २३ ॥

राक्षसजन राक्षसका वह वैष्णवप्रसद लङ्कापुरीका अभूषण था । कई दो राक्षस राक्षके सभी खपनोंसे सम्पन्न होकर प्रतिदिन उसकी रक्षा करते थे ॥ २३ ॥

मनोहा काञ्चनवर्ती पर्यतैदपशोभिताम् ।

नन्द्यधातुविधिषैश्च उषानोरुपशोभिताम् ॥ २४ ॥

इस प्रकार वह पुरी बड़ी ही मनोहर सुवर्णमयी, अनेकानेक प्रकारसे अलङ्कृत, नाना प्रकारकी विनिध धातुभासे विभित और अनेक उषानोंसे सुश्रुति थी ॥ २४ ॥

नान्यविहगसमुध्वा नान्यनृगनिषेधिताम् ।

नान्यकुसुमसम्पन्ना नान्यरक्षससेधिताम् ॥ २५ ॥

मौलि-भौतिक विहङ्गम वहाँ अपनी मधुर बग्डी बोध रहे थे । नाना प्रकारके मृग भादि पशु उसका सेवन करते थे । अनेक प्रकारके फूलोंकी सम्पत्तिसे वह सम्पन्न थी और विनिध

पदार्थोंके हुए इच्छित और लाल । इनका ध्यान कर्मका-
रैवक पुष्पक केकास मास्क और विविध है । भूमि लम्बा
और सिखर आदिकी मूलग-नपिकरके कारण इन दोनोंके
नी-नी अर मगने हैं । जैसे वैदिकके देव मन्तर विमाय,
पदक, सर्वोपेय, बन्क नन्दन नन्दनवर्षन और श्रीवास्य
पुष्पके बग्डी गृहपण सामगृह सभिर, विमान मध्यमनिर,
धन वज्रय और विविधवैष्णव, केकासके बन्क हुनुवि पद
महापय म्भक, सर्वोपेय, बन्क, नन्दन गमाय और
गलापण मास्कके मर इतम ईस पदक सिख, मूडक भूवण,
भीमों और पृथीवर तथा विविधके बर एक सुश्रुति व बहुत
वक लसिक, यह मरा श्रीगृह और निवक ।

२ नान्यरक्षसपरीसे गमन करनेकाएव एव जो देवता आदिके पास होता है 'विमान' कहलता है । एतद भविकके मन्त्रनको भी विमान कहते हैं । प्राचीन वास्तुविद्याके अनुसार बहुत बड़ योहा लंबा और कई भूमिनेत्र पक्ष वा पत्तरका बन्क हुनुक मन्त्र धवन विद्यमें अनेक यह लङ्कान और मन्त्रक आदि हो 'न्यास' कहा गया है इसमें वृत्त-से मन्त्रोंसे कुछ विशेष अनुश्रवण लुप्त और इच्छाकार बनी होती है । आदिके मेरसे प्रुत्तमें प्राक्षरके पाँच मर दिने गये हैं—पुरुष

१ अन्वयेनके अनुसार वैष्णवोंके मन्त्रों तथा राजाओंके मन्त्रोंका प्रामाण्य करते हैं । प्राचीन वास्तुविद्याके अनुसार बहुत बड़ा योहा लंबा और कई भूमिनेत्र पक्ष वा पत्तरका बन्क हुनुक मन्त्र धवन विद्यमें अनेक यह लङ्कान और मन्त्रक आदि हो 'न्यास' कहा गया है इसमें वृत्त-से मन्त्रोंसे कुछ विशेष अनुश्रवण लुप्त और इच्छाकार बनी होती है । आदिके मेरसे प्रुत्तमें प्राक्षरके पाँच मर दिने गये हैं—पुरुष

प्रकारकं आभरनात्ते राक्षसं यहाँ निवास करते थे ॥ २५ ॥
 तां समुद्रां समुद्रार्थो लक्ष्मीर्वाङ्ममयाप्रजाः ।
 रावणस्य पुरीं रामो वदार्थं सह बालरैः ॥ २६ ॥
 धन-धान्यं सम्राट् तथा सम्पूर्णं मनोवाञ्छितं वस्तुभ्योऽपि
 मयी-पूरीं उच्यते रावण-पुरीं च अस्मभ्यं वदते मां अस्मीन्वात्
 भीरुमते वानरैः कथं देखा ॥ २६ ॥
 तां महाबाहूहसम्प्रार्थां द्रष्टुं लक्ष्मणपूर्वजः ।
 नगरीं त्रिदिवप्रक्या विस्मय प्राप वीर्यवान् ॥ २७ ॥
 वदे-वदे माहोऽपि सप्तन कथं हुं उच्यते स्तब्धस्य
 हृत्पथे श्रीमद्भामावधे वाल्मीकीये अद्विष्टावधे बुद्ध्यावधे पञ्चमेऽध्यायः सर्गः ॥ २९ ॥
 इतः प्रकारं शंखशरैर्निर्मितं वायुप्रमाणं शक्तिप्रमाणं युद्धप्रमाणं उवाच/सर्वो सर्वं पूता इत्यादि ॥ २९ ॥

नगरीको देसकर पराक्रमी भीरुम वदे निमित्त हुए ॥२६॥
 तां रक्षापूर्णां बहुसुखविभक्त्य
 प्रत्यात्पुम्स्रभिरसंभृतां च ।
 पुरीं महापुम्स्रकबाठमुक्त्वां
 वदार्थं रामो महता बलेन ॥ २८ ॥
 इतः प्रकार मनी विद्याय सेनाक साथ भीरुपुत्रवर्षीने
 भनेक प्रकारक रबोते पूर्ण उच्य-उच्यते रक्षणाकोते
 सुखमित्त कंचे-कंचे माहोऽपि पठिते मसंभृत और कचे-कचे
 पन्कोते युक्त मसंभृत किवाहोनाकी वह अस्तुतः पुरी देखी ॥२८॥
 इतः प्रकार शंखशरैर्निर्मितं वायुप्रमाणं शक्तिप्रमाणं युद्धप्रमाणं उवाच/सर्वो सर्वं पूता इत्यादि ॥ २९ ॥

चत्वारिंश सर्ग

सुग्रीव और रावणका मल्लयुद्ध

ततो रामः सुषेखाम याञ्जनद्वयमण्डलम् ।
 उष्यतेहत्तुं समुग्रीवो हरिपूर्यः समन्वितः ॥ १ ॥
 तरुमधर वानरभूषोते मुक्त सुग्रीवचरित भीरुम सुषेख-
 पर्वतके कसे उच्ये शिखरर चदे किञ्च विचार हो
 सोकाका था ॥ १ ॥
 स्थित्वा मुहूर्ते तत्रैव विधो वश विद्येक्यन्त ।
 विकृतशिकारे रम्ये निर्मितां शिखरकर्मा ॥ २ ॥
 वदार्थं लङ्का सुन्यस्ता रम्यकनकगामित्यम् ।
 वहाँ तो पकी उदरकर इत शिखाकोकी अर दक्षिण
 करते हुए भीरुमने विकृत पर्वतक रमणीय शिखरर सुन्दर
 रंगसे कही हुई शिखरकर्माद्वारा निर्मित लङ्कापुरीको देखा,
 जो मन्दार कनकोसे सुसज्जित थी ॥ २३ ॥
 तस्य गोपुरमग्न्यस्य राक्षसेन्द्र वुरालक्षम् ॥ ३ ॥
 स्वेतचामरपर्यन्त विजयच्छत्रगामितम् ।
 रक्तचन्दनसन्निभं रत्नभारणभूषितम् ॥ ४ ॥
 उच्यते नगरं गुरुरभी क्वतर उन्हे दुर्भ्यं उच्छ्रय
 एवम वेडा दिखायी दिया किशक दानो आर श्वेत कंसर
 बुझाये जा रहे थे किपर विजय-छत्र घोम दे रहा था ।
 एकपक्ष छत्र शरीर रक्तचन्दनसे परिचित था । उलक मङ्गल
 रंगके आभूषणसे निर्भूषित थे ॥ ३४ ॥
 मीलजमीमूतसक्यार्थं हस्तस्यप्रविताम्बरम् ।
 परावृत्तवियोजाप्रदन्तुल्लिखितशरसम् ॥ ५ ॥

शशाङ्गेदितारोप्य सञ्चित रक्तबासुता ।
 उष्यतेऽपेन संछन्न मेघराशिभिर्बाम्बरे ॥ १ ॥
 शरशेखके रक्तके समान अथ रंगसे रंगे हुए कसे
 अञ्जलित हारक वह आकाशमें उष्यतेकसकी पूरते इकी हुई
 मेघमालके समान दिखायी देत था ॥ १ ॥
 पश्यतां धामेन्द्रार्थां राघवसमग्रि पश्यताः ।
 वर्णान्यां राक्षसेन्द्रस्य सुग्रीवा सद्यस्तोत्थिताः ॥ ७ ॥
 मुक्त-मुक्त वानरों तथा भीरुपुत्रवर्षीके कान्ते ही
 राक्षस्य रावणर इति पश्यते ही सुग्रीव खड़ा कचे हो
 गये ॥ ७ ॥
 श्रोधवगत्र सयुक्तः सत्त्वेन च बलेन च ।
 अथसाम्राट्पथोत्थाय पुनसुषे गोपुरस्थले ॥ ८ ॥
 ये शरके वेगसे युक्त और शारीरिक एवं मानसिक कान्ते
 प्रेरित हो सुषेख शिखरसे उच्यते उच्यते गुरुरभी क्वतर
 क्वर पश्य ॥ ८ ॥
 स्थित्वा मुहूर्ते सभ्येभ्य निभयेकन्तरात्मना ।
 दृष्ट्वाऽप्यथ च तद् रक्षाः स्यात्सर्वीह पश्यताः ॥ ९ ॥
 वहाँ तक हारक वे कुत्र देर तो एकपक्ष देसतं रगे । कि
 निर्भयचित्तसे उच्यते उच्यते तिनकेके समान समझकर वे क्वतेर
 क्वीमें गत— ॥ ९ ॥
 श्लोकव्यपश्य रामस्य सञ्जा दासतऽपि राक्षस ।
 न मया माह्वस्यतऽद्य त्वं पार्थिवेन्द्रस्य तज्जसा ॥ १० ॥
 पश्य ॥ मैं अञ्जनाय भगवान् भीरुमका छाया अर
 इस हूँ । माह्वस्य भीरुमके तेक आत्र तू मेरे हाथसे क्वत
 नही सक ॥ ११ ॥

पश्य ॥ मैं अञ्जनाय भगवान् भीरुमका छाया अर इस हूँ । माह्वस्य भीरुमके तेक आत्र तू मेरे हाथसे क्वत नही सक ॥ ११ ॥

त्युक्त्वा सहस्रोत्पत्य पुच्छुवे तस्य खोपरि ।
 गच्छन्प मुकुटं चित्र पातयामास तद् मुनि ॥ ११ ॥
 ऐसा कहकर वे मन्मथात् उच्छन्नर राजाके ऊपर ख
 हने और उसके विचित्र मुकुटोद्ये सोनकर उन्होंने पृथ्वीपर
 गेरा दिया ॥ ११ ॥

उमीक्ष्य तूर्णमात्यान्त बभाषे स निशाचरः ।
 सुग्रीवस्तथ पपोह मे हीनग्रीवो भविष्यसि ॥ १२ ॥

उन्हें इस प्रकार तीव्र गतिसे अपने ऊपर आक्रमण करते
 देख राजाके कहा—ओरे! बनरुक्त तूने क्षमने नहीं भाया
 था; तभीतः सुग्रीव (सुन्दर कण्ठसे मुक्त) था । अब तू तू
 भन्नी इस ग्रीवासे उचित हो ब्यगर् ॥ १२ ॥

इत्युक्त्वोत्थाम व सिम वाहुभ्यामाक्षिपत् तद्ये ।
 कञ्चुबत् स ससुरताय वाहुभ्यामाक्षिपद्वरिः ॥ १३ ॥

ऐसा कहकर राजाके भन्नी से मुञ्चामोहाय उन्हें क्षीम
 ही उठाकर उस उच्छन्नी फर्शपर वे मारा । फिर बनरराज सुग्रीव
 ने भी मँदकी तप उच्छन्नर राजाको दोनों मुञ्चामोसे उठा
 किया और उच्छी फर्शपर बंसे पटक दिया ॥ १३ ॥

परस्पर स्वेद्विद्विभ्याग्री
 परस्पर शोमितरक्यूही ।
 परस्पर द्विद्वयनिक्यूच्ये
 परस्पर शास्मकिर्कियुक्त्वविध ॥ १४ ॥

फिर तब वे दोनों आपसमें गुँघ गय । दोनोंके ही शरीर
 फीनेसे छर और झूतसे क्षयप हो गये तथा दोनों ही एक
 दूसरेकी पकड़में आनेक कारण निस्स्येष्ट होकर झिंसे हुए सेमक
 और पक्कप नामक वृक्षोंके समान विसाली बने सने ॥ १४ ॥

मुष्टिमहारैश्च तन्महारै
 ररन्तिष्वातेश्च करामघातैः ।
 ती क्षमन्तुयुद्धमसङ्कारुप
 महापत्नी रत्नसवानेष्ट्री ॥ १५ ॥

एकछत्रब राजन और बनरराज सुग्रीव दोनों ही बड़े
 पक्कपन से अत दाना दूँसे पक्क कइनी और पंछेकी
 मारक छय पदा भङ्ग मुद करने सने ॥ १ ॥

कृत्या नियुद्ध भूशमुप्रयेगी
 काल विरं गोपुरपदिमन्ये ।

उदिस्य चोत्सिष्य विनम्य वही
 पादतन्माद् गापुरपदिलम् ॥ १६ ॥

गोपुरक चतुनगर बहुत रेतक भरी मस्समुद करके
 वे भवानक वगयस दोनों वीर पार-पार एक दूसरेके उठाकने
 और सुभ्रत हुए पंगत मिय दों-वैचक क्षय पञ्चते
 पलाउ उठ चतुरल ज सने ॥ १६ ॥

अन्योन्यमापीक्ष्य विलम्बेही
 ती पेततुः साङ्गनिष्ठात्मध्ये ।
 उत्पेक्षतुर्मूढितक स्वरासौ
 स्थित्या मुहूर्त्त स्वभिनिःश्वसन्तौ ॥ १७ ॥

एक दूसरेको बगान परस्पर सटे हुए शरीरकासे वे दोनों
 फेडा किलेके परकटे और साहके बीचमें मिर गये । यहाँ
 होखते हुए वे पड़ितक पृथ्वीक अक्षिजन किये पड़े रहे ।
 उरभ्यात् उच्छन्नर लड़े हो गये ॥ १७ ॥

आक्षिप्य चाक्षिप्य च वाहुयोफ्नैः
 सयोजयामासतुराह्वये ती ।
 सरन्माशिशावलसम्प्रयुक्तौ
 सुचेरतुः सम्प्रति युद्धमार्गैः ॥ १८ ॥

फिर वे एक दूसरेक शर-शर आक्षिजन करके उसे वाहु
 पायमें बकड़ने सने । दोनों ही क्षय; सिध (मस्समुद
 विन्यक भन्नात) तथा शारीरक बससे सम्पन्न वे अत उठ
 पुद्धसम्मो कुपतीके अनेक दों-वैच दिलाते हुए प्रमण करने
 सने ॥ १८ ॥

शावृक्षसिहायिष्य अतवद्वौ
 गजेभूपोतायिष्य सम्प्रयुक्तौ ।
 सहस्य स्येद्य न ती करान्या
 ती पेततुर्व युगपद् धरायाम् ॥ १९ ॥

किनके नये-नये रौत निकले हो; एते बाप और किंके
 बथों तथा परस्पर बकड़ते हुए गच्छनक छोटे छोनोंके समान
 वे दोनों वीर बनने बधससस्ते एक दूसरेको बघाते और
 शायसे परस्पर कब आबमाते हुए एक छय ही पृथ्वीपर
 मिर पड़े ॥ १ ॥

उद्यम्य चाप्योन्यमभिक्षिपन्तौ
 सचफमात यद् युद्धमार्गं ।
 भ्यायामशिशावलसम्प्रयुक्तौ
 श्रमे न ती जम्भतुराशु पीरी ॥ २० ॥

दोनों ही कसली बनान वे और मुद्धकी सिध तथा सङ्
 से सम्पन्न थे । अत युद्ध बीचनेक निय उद्यमशील हो एक
 दूसरेपर भाषेय करके हुए युद्धमार्गपर अनेक प्रकटसे विचरण
 करते वे तथारि उन वीरोंके बन्नी पक्कपद नहीं इली थी ॥

याहुषमेवारण्यव्यारण्यौ-
 निन्दारयन्ती पर्यारण्यभी ।
 बिरण कालत भूश प्रयुक्ती
 सञ्चरन्तुमङ्गलमार्गम् ॥ २१ ॥

मनपाक हाथिपोंक समान सुग्रीव और राज गच्छनक
 गुद्ध-दण्डकी मीनि मरु पर्व फिड याहुषमोहाय एक दूसरे
 क दों-वैच उठन हुए यदुन रेतक पद भारक छय
 मुद करते और टिपण्टक पीर परकन ॥ २१ ॥

नै। परस्परमास्ताप यत्ताक्योक्त्यस्तदने ।
मात्रार्थाविव्य भक्तार्थोऽकृतस्थाते मुहुर्मुहुः ॥ २२ ॥

ये परस्पर भिदकर एक दूसरेको मार बान्नेका प्रयत्न कर रहे थे । जैसे वो सिखात बिन्धी भक्त्य बस्तुके छिन्ने कोष पूर्वक स्थित हो परस्पर दृष्टिगत कर बारंबार गुण्डो रहते हैं; उन्ही तरह रावण और सुग्रीव भी छड़ रहे थे ॥ २२ ॥

मग्गहानि विविधाणि स्थानानि विविधानि च ।
गोमूत्रकषणि चिवाणि गतप्रस्थानस्तदनि च ॥ २३ ॥

विचित्र मग्गह और मत्सि-मत्सिके स्थानोन्न प्रदार्शन करते हुए गम्भूषरी रेशाके छमान कुटिब गदिते चढते और विचित्र रीतिते कभी आगे बढ़त और कभी पीछे हटते थे ॥ २३ ॥

तिरञ्जीमगतान्येष तथा चक्रगतानि च ।
परिमोक्षं प्रहाराणा पर्यन परिधायनम् ॥ २४ ॥

अभित्रयणमप्रायवमवस्थान सखिप्रहम् ।
परभृत्तमपाशुत्तमपतुतमकन्दुतम् ॥ २५ ॥

उपन्यस्तमपन्यस्त युयुमार्गविचारदौ ।
तौ विचारतुरन्त्येभ्य धान्तेस्मृञ्च राक्षसा ॥ २६ ॥

वे कभी तिरछी चान्ने चढते कभी गेड़ी चान्ने दावें खदे घूम जाते, कभी भगन स्थानते इकर घणुके प्रहारको मर्य कर देते कभी परबनेमें खय मी दोस-दोसकर प्रयोग करके घणुक आक्रमणते भरनेको बचा छेते कभी एक लड़ा रहत वो वृष्ठा उचड़ चारों ओर दौड़ धरता कभी बनों एक दूसरेके सम्मुख धीप्रार्पूर्वक दौड़कर आक्रमण करते कभी छककर या मेटकभी भौंल घीरेसे उलसकर चढते कभी छड़ते हुए एक ही जगहपर स्थिर रहत कभी पीठकी ओर झट पड़त कभी खनने लड़े-लड़े ही पीठ हटत कभी विरछीको पकड़नेकी इन्डास आने परीरक सिन्धोइकर या छुडकर उसकी भार दौड़त कभी प्रतिहन्तीस रेशे प्रहार करनेक छिय नीचे मुँह छिय उलसर टूट पड़त कभी प्रतिघभी घेडाभी बाँह पकड़नेके छिय भन्नी बाँह पंथ्य देते और कभी विरोधीकी पकड़ते पचनेके छिय भन्नी घौहोको पीछे खीच छेते । इस

दृष्ट्यायें श्रीमद्वाल्मीकिये वाल्मीकीये धरिदिकाम्ये सुदककण्ठे कर्वादिहा लरा ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकिसिर्मित मर्यगमपचन अदिकात्मके सुदककामने चायिसरौं सन पूरा हुआ ॥ ४ ॥

प्रकर मखमुदकी क्रममें परम प्रवीण वानरराज सुग्रीव ठण उलज एक दूसरेपर आघात करनेके छिये मग्गहककर निकर रहे थे ॥ २४-२६ ॥

पटाक्षिप्तान्तरे रक्षो मायावत्कमपात्पलाः ।
आरब्धुमुपसम्पेये क्षाल्या त वालराधिपः ॥ २७ ॥
उत्पपात तदाऽऽकरदा क्षिपकाशी क्षिप्रहमाः ।
रावणः स्थित पशान हरिराजेन बक्षिता ॥ २८ ॥

इसी बीचमें उलस रावणने भन्नी मायावत्किते क्रम छेने-भ्र विचारा क्रिया । वानरराज सुग्रीव इस बातको लड़ गले इच्छिये खड़ा आक्रमणमें उलस पड़े । वे विक्रमोन्मत्तको सुषोमित हाते थे और एकदरको भीत युध थे । वानरराज रावणको चक्रवा देखर निष्क्रम गये और वह लड़ा-लड़ा देखवा ही रह गया ॥ २७-२८ ॥

अथ हरिपरनाथः प्राप्तसप्रामकीर्ति-
निर्दिशरपतिमात्रौ योजयित्वा भमेण ।

गमानमतिविशालं कङ्कपित्वाकर्मसुनु
हरिगणजवत्सम्यं रामपदार्थं जगाम ॥ २९ ॥

बिन्ही संघममें कीर्ति प्राप्त हुई थी वे वानरराज स्वर्गुण सुग्रीव निद्याचरपति रावणको युद्धमें पकड़कर अत्यन्त विशाल आक्रमणमालत्र कङ्कन करके वानरोंकी सेनाके बीच भीरुम-चन्द्रकीके पास आ पहुँचे ॥ २९ ॥

इति स खविदसुनुस्त्रज तत् कर्म कृतल
पवनरास्तिरनीक प्रविशत्सम्महद्वः ।

रघुवरनुपसुनोर्पर्यथ्यनु युजहर्यं
तकन्तुगगजमुक्थैः पूज्यमात्र हरिन्द्रः ॥ ३० ॥

इस प्रकार वहाँ अद्भुत कर्म करके वायुके समान रथि-नामी स्वर्गुण सुग्रीवने दधरपरवकुमार भीरानके सुबन्धितक उलसकभे बढ़ते हुए बड़े हार्कि खय वानरसेनामें प्रवेश किया । उस समय प्रवाल प्रवाल वानराने वानरराजको अभि-नन्दन किया ॥ ३ ॥

१ बरतने प-कनुदमे पार प्रकरके मग्गह बरने हे । इनके वाय दे-पारिगण्ड करवमण्ड करवमण्ड और महा काउक । इनके कथय इस प्रकार हे—एक परते मय व-कर बहर बाउते हुए घणुकर अत्यन्त कला चारिनणक करवाया हे । वो रेशे परबाबाहा गुणो पुव अत्यन्त करन कणमण्डक कहा गया हे । बनेक कथयमण्डको संवाग हातेते एणकण्डक हाव हे और ताव य-एर परवमण्डको संवागने महामण्डक कहा गया हे ।
२ बर सु नने नकनुदमे ०: ल्यन'अ उनेव रिध हे—नेणव सवारा नयण मण्डक म-वाकीर भोह मवाकीर । वेरोका लने दोठलननकमे नक'अ नव विनेन प्रधर'अ नई बवाभान आरिण करवा ही ल्यन करवाय हे । कर्न-भारे वन सिंह वारि ल्यन'अक सुवाव छह हातेको पीठ'अ ही ल्यन करत हे ।

एकचत्वारिंश सर्ग

भीरामका सुग्रीवको दु साहससे राक्षना, लङ्काके चारों दारोंपर धानरसनिर्कोकी नियुक्ति, रामदूत अरुद्रका रावणक महलमें पराक्रम तथा वानरोंक आक्रमणसे राक्षसोंको भय

भय तस्मिन् निमित्तानि ह्यप्यु लक्ष्मणपुत्रजः ।
सुग्रीव सम्परिपञ्च्य रामो वचनमप्रवीत् ॥ १ ॥
सुग्रीवक परीरसे युद्धक चिह्न देखकर छद्मणक बड़े भय भीरामन उन्हें हृदयसे छया किया और इत प्रकर कहा—॥ १ ॥

मसम्मन्थ्य मया सार्धं तद्विद् साहस हृतम् ।
पर्यं साहसयुक्तानि न कुर्वन्ति जनम्भराः ॥ २ ॥

सुग्रीव । तुमने मुझसे छद्म छिपे किना ही यह सब साहसक काम कर बाबा । राक्षसग एने दुःसाहसपूर्ण कर्म नहीं किया करत है ॥ २ ॥

सशय स्याप्य मां चद् बल चेम विभीषणम् ।
कथं कृतमिद् धीर साहस साहसप्रिय ॥ ३ ॥

साहस्रीय धीर । तुमने मुझको 'स वानरसेनाक और विभीषणक भी संग्राममें बाढकर अब यह साहसपूर्ण कर्म किया है, इच्छे हम बड़ा कथं हुआ ॥ ३ ॥

इवार्त्ता मा कृपा धीर पश्यविषमर्षिदम् ।
त्वयि किञ्चित्समापन्न किं कार्यं सीतया मम ॥ ४ ॥

भरतन महाबाहो लक्ष्मणेल यदीयसा ।
शत्रुघ्नन च शत्रुघ्न सशरीरण या पुन ॥ ५ ॥

शत्रुघ्नका दमन करनबाळ धीर । भव धिर द्रुम एव तुम्हम न करना । शत्रुघ्नन महाबाहो । यदि तुम्हें कुछ हो गया तो मैं सीता भरत लक्ष्मण छोट भाई शत्रुघ्न तथा अपने इस शरीरको भी लेकर क्या करूँगा ? ॥ ५ ॥

त्वयि शान्तगत पूर्वमिति म निश्चिता मतिः ।
आन्तर्धाराः त धीर्यं महेन्द्रयरुजोपम ॥ ६ ॥
हस्याहं रावण युद्ध सपुत्रवलयवाहनम् ।
मभिरिच्छ्य च छत्रुर्था विभीषणमथापि च ॥ ७ ॥
भरत राक्षसाराण्य स्वक्य यह महापल ।

मादेर और पराक्रम समान महापथी । यद्यपि मैं तुम्हारे सम्पराक्रमक बन्धन या तथापि अन्तक तुम यहाँ छोटकर नहीं भये थ उसमें पर्य मीने यह निश्चित विचार कर लिया था कि मुझमें पुत्र मेना और बानरोंकद्वैत रावणक बच करके पञ्जाक रामक निर्भीयक अभिरुक् कर दूँगा और अन्तल्याक राव भरतक दफर करने इस शरीरक त्याग दूँगा ॥ ६ ७ ॥

तमय वाञ्छिन राम सुग्रीवः प्रत्यभापत ॥ ८ ॥
तय भयापहतार ह्यप्यु रावण रावणम् ।
मयपामि कथं धीर जान् विप्रममात्मना ॥ ९ ॥

ऐसी बातें फरत हुए भीरामक सुग्रीवने सों उम्ह विषय—धीर रघुनन्दन । अपने पराक्रमक ज्ञान रखते हुए मैं भापको मानाक्य भारहरण करनेवाक रावणक बलकर कैसे क्षमा कर सक्या था ! ॥ ८ ९ ॥

इत्येव वाञ्छिन धीरमभिनन्द्य च राघवः ।
लक्ष्मण लक्ष्मिसम्प्रदासिद् वचनमप्रवीत् ॥ १० ॥

धीर सुग्रीवने अब एसी बात कही, तब उनक अभिनन्दन करके भीरामकन्दरीने शांतात्मक लक्ष्मणसे कहा—॥ १ ॥

परिपृष्टोद्युक्त शीत घनानि फल्लवन्ति च ।
पल्लौच सविभज्येम ह्युह्य सिधाम लक्ष्मण ॥ ११ ॥

लक्ष्मण । शीतल लक्ष्मणसे भरे हुए लक्ष्मण और फल्लसे लक्ष्मण बनका आभय ले हमलगा इस विशास बनरसेनाक विभाग करके भूहरतना कर लें और युद्धक छिपे उपव हो चयें ॥ ११ ॥

लोकाक्षयकर भीम भय पश्यामुपगम्यितम् ।
निवर्हण प्रवीराणामुद्ययानरक्षसाम् ॥ १२ ॥

एत समन मैं लोकाक्षयकी मूचना देनेवाळ भयनक अपशकुन उपस्थित देखता हूँ किन्तु सिद्ध इत्या है शीत वानरों और लक्ष्मणक मुक्क-मुक्क पीरोंका संहार होगा ॥ १२ ॥

वाता हि पश्य घासि कम्पत च धनुधरा ।
पयताप्राणि यपस्त मवन्ति धरणीधरा ॥ १३ ॥

प्रचण्ड भीषी चस रही है, पृथ्वी काँपने लगी है, पतलों शिसर दिखने लगे हैं और दिग्वा नीलकर करते हैं ॥

मघाः कृप्याद्सकाशाः परयाः परयसरा ।
भूयाः कूर प्रयमन्त मिध शानिठविदुभिः ॥ १४ ॥

भय हिंसक शीतोप समान कूर हो गये हैं । व कूटार खरमें लिकट गबना करत हैं तथा रक्त दिन्दुआने मिध हुए लक्ष्मी मूतापूर्ण बना कर रहे हैं ॥ १४ ॥

एकलक्ष्मणसकपशा सप्या परमवाहया ।
ज्वलन्त निपतत्यवदादिम्याग्निमण्डलम् ॥ १५ ॥

अत्यन्त दाहक संघा रक्त-चन्द्रक समान सख पिन्वासी होती है । मूलमें यह लक्ष्मी आगक्य पुत्र निर रहा है ॥ १ ॥

भादित्यमभियाद्यपि जनयस्था महद्रयम् ।
दीन्य दीन्यरा भाग भद्रास्ता मृगच्छिजाः ॥ १६ ॥

निर्मिड पशु भार पथी शीत हा शन्यामूलाक खरमें मूषकी आर वेगत हुए नीलकर फरत हैं 'स्वम ये नृप मय इर समान आर महान् भय ययव करते हैं ॥ १६ ॥

अन्यामप्रकाशश्च सतापयति धनुःसमाः ।
 अणुरकाणुपर्यन्तो यथा लेकस्य समये ॥ १७ ॥

अनन चन्द्रमाश्च प्रकाशं क्षीणं च कदा है । वे
 । जलकी काह कंधप देते हैं । उनके निरारेक्ष भाग अक्षा
 आर लक्ष दिशामी देता है । समाप्त लेखोंके अक्षरक्रममें
 चन्द्रमाश्च लेख रूप रहता है । देख ही इस समय भी
 देना बाव है ॥ १७ ॥

इसो कक्षाऽप्रशस्तश्च परिधयाः सुस्मेहितः ।
 आदित्यमण्डलं नीलं लक्ष्मं लक्ष्मणं दृश्यते ॥ १८ ॥

अनमज । मूर्धमण्डलमें छोटा सना अमण्डलधरी
 और अत्यन्त धार पदा दिशामी देता है । साथ ही वहाँ अमज
 निहू भी दृशियेकर हाता है ॥ १८ ॥

दृश्यन्ते न यथावच्च नक्षत्राण्यपि पतन्ति ।
 युगान्तमिव साकस्य पश्य लक्ष्मणं शासति ॥ १९ ॥

अनमज । ये नक्षत्र अन्धी तरह प्रकाशित नहीं हो
 रह हैं—मन्दिन टिसामी देते हैं । यह अणुम लक्ष्मण
 अक्षरप्र प्रसवच युक्ति करता हुआ मरे अमने प्रकट
 हो रहा है ॥ १९ ॥

अक्षरप्रः द्यनास्तथा गृध्रा नीचैः परिपतन्ति च ।
 शिशुभाष्यगुभा वायुः प्रवृत्ति महात्सवः ॥ २० ॥

मोए वाह आर गोध नीचे गिरत हैं—मूलधर
 अ आ पतत है और गौदक्षिणा चड़े अर-अरसे अमण्डल-
 गृधरक वाली पक्षकी है ॥ २० ॥

तदा शूलश्च खड्गश्च विमुक्तैः कपिराजसवैः ।
 भविष्यत्यायुष्य भूमिमांसानि लक्ष्मण ॥ २१ ॥

असमं युक्ति हाता है कि मानस और अक्षरप्र
 नक्षाय गम मिस, लक्षणं धूम्ये आर पत्राक्ष यह धरती पद
 अक्षरप्र आर वहाँ एक-साक्षी क्षीन नम बायगी ॥ २१ ॥

क्षिप्रमद्य युगधर्यां पुरीं रात्रणपामिनाम् ।
 भविष्याम जयनेय सयता हृदिभिर्भूताः ॥ २२ ॥

अक्षरप्र हाता युक्ति यह लक्ष्मण पुरी धनुःअके क्षिये
 दुःख है तथापि भव हम धीन ी यत्परक साथ इक्षर
 एव भयस वेगवृद्ध अक्षरप्रण च ॥ २२ ॥

इत्थं तु धनुः शरं लक्ष्मणं लक्ष्मणप्रजः ।
 तस्माद्वयत्राण्छीमं परताम्रमण्डपला ॥ ३ ॥

अक्षरप्र एव इत्थं एव दीर मणकी क्षीरमन्त्राक्षी
 एव पदा मि सन १ ताव नीन १ आर अण ॥ ३ ॥

अधर्तीयमु धमगमा तस्मात्पुण्ड्रात् स रात्रय ।
 परा परमधर्यां वृद्धां पण्मातमनाः ॥ २४ ॥

उप न सन १ आर १ मा न १ अरुता मी १ अन्धी

सेनाश्च निरीक्ष्य क्रियाः च धनुर्भोके क्षिये अत्यन्त
 दुःखं यी ॥ २४ ॥

सन्तश्च तु ससुग्रीवः कपिराजसवैर् महत् ।
 कालश्चा राघवः काले समुगात्याभ्यबोधयत् ॥ २५ ॥

किर सुग्रीवकी अहायतास कपिराजकी उस विद्या
 सेनाश्च सुकचित करके समयक्ष जान रखनेवाले श्रीरामने
 अक्षरप्रकाशक धुम समयमे उसे सुदक क्षिये कृच
 करती अशा थी ॥ २५ ॥

ततः काले महाबाहुर्बलित महत्प हृतः ।
 प्रसिद्धः पुरता धन्वी लक्ष्मामभिसुखः पुरीम् ॥ २६ ॥

तदनन्तर महाबाहु धनुर्भर श्रीरामनाथनी उस विद्या
 सेनाके साथ धुम सुदृश्ये अये-अये लक्ष्मणकी अक्षर
 प्रसित हुए ॥ २६ ॥

त विभीषणसुग्रीवी हनुमन्नाम्यवान् नरः ।
 शूभ्रराजसत्या भीसा लक्ष्मणभ्रातृयुस्ता ॥ २७ ॥

उस समय विभीषण सुधीव हनुमान् शूभ्रराज
 अक्षरप्र, नर, नीच तथा अक्षरप्र उनके पीछे-पीछे चले ॥

तदा पश्चात् सुमहतीं पूतनक्षयमौकसाम् ।
 प्रच्छन्ना महतीं भूमिमनुपाति सा राघवम् ॥ २८ ॥

कदाभात् रीजों और बानरोंकी यह विद्यास सेना बहुत
 बड़ी भूमिके आच्छादित करके भीरुनाथनीके पीछे-
 पीछे चली ॥ २८ ॥

शैलशृङ्गाणि शस्तशः प्रयुष्यांश्च महीरुहान् ।
 जगद्गुः पुत्राण्यभ्यां घातराः परधारजाः ॥ २९ ॥

धनुःअक्षरप्र अये बढ़नेसे एकनेवाले हाथीक अक्षर
 विद्यासनाय बानरोंने धनुःको शैलधर और बड़े-बड़े
 वृद्धाक्षरप्र शस्त्रमे ल रक्षा था ॥ २९ ॥

तौ त्वर्द्धीयैश्च फलेन अन्तरी रामलक्ष्मणौ ।
 राघवस्य पुरीं लक्ष्मणमासहत्वरुतिर्दम् ॥ ३० ॥

धनुःआद्य सम करनेवाले व शना भाई श्रीराम और
 लक्ष्मण था ी ही वेरम लक्ष्मणकी पास पहुँच गये ॥ ३० ॥

अक्षरप्रमादिनीं रम्यासुघामसतशयभिताम् ।
 भिन्नवशा सुनुष्यगामुष्यं प्राक्षरतारण्याम् ॥ ३१ ॥

यह रमणीय अक्षर-शाराओंमें अर्द्धन थी । अनेअनेक
 उषास आर नन उसी यामा कदा रह ी । उतक पक्षों
 अक्षर वहा ही अर्द्धन आर उँचा परकाय था । उस परकायमें
 मिसा हुआ ी नक्षरग अक्षर अक्षर था । उन परकायके
 अक्षरग सद्गुणीन पदुँक्षा निरक्षर क्षिय भी अत्यन्त
 अक्षर था ॥ ३१ ॥

तां सुररणि दुर्धरां राम-राक्षस्यघातिताः ।

यद्यान्विदा समीप्य न्यविशन्त वनौकसः ॥ ३२ ॥

यद्यपि देवताभ्योः स्त्रिय भी ब्रह्मणर भाकमन करण
कनिन काम था तो भी भीरुमकी आज्ञासे प्रेरित हो बानर
बयासान रहकर उस पुरीपर एक डालकर उसके भीतर
प्रवेश करते लो ॥ ३१ ॥

लघुयास्तूत्तरद्वार शैल्युत्कृमिबोलातम् ।

राम सहानुजो धन्वी शुगोप च करोध य ॥ ३३ ॥

ब्रह्मण उक्त द्वार पर्यंतगिरकर स्मान ऊँचा था ।
भीरुम और ब्रह्मणने अनुप हाथमें लकर उसका मार्ग रोक
लिया और वही रहकर व अगली सेनाभी रखा करने लगे ॥

रघुमुपनिधिपस्तु रामो दशरथात्मजः ।

लक्ष्मणावुपयो धीरः पुरीं रावणपाच्छिवाम् ॥ ३४ ॥

उत्तरद्वारमाघाय यत्र तिष्ठति रावणः ।
रान्या रामादि तद् द्वार समथः परिरक्षितुम् ॥ ३ ॥

उत्तरपत्तन नीर भीरुम ब्रह्मणको साथ से राजग-
पक्षिण लघुपुरीके पास था उत्तर द्वारपर पहुँचकर वहाँ स्वयं
राज्य लड़ा ग वही डट गय । भीरुमके लिये पूरुष कोई
उस द्वारपर अपने सनिहोत्री रखा करनेमें समर्थ नहीं हो
सकता था ॥ ३४ ॥

रावणाधिष्ठित भीम वरुणनेव सागरम् ।

सायुधैः राक्षसैर्भूमिरिभुगत समलन्तः ॥ ३५ ॥

भीम ब्रह्मणभी स्वयंकर उक्तद्वाराए लव आरसे सुरक्षित
उस भयानक द्वारपर रावण उखी तरह लड़ा था क्ते वरुण
देवता समुद्रमें अधिष्ठित हान हैं ॥ ३५ ॥

लघुनां श्रासज्ज्वल पातालमिव शूनयः ।

विप्यस्तानि च बोधाना यद्गुनि विधिधानि च ॥ ३७ ॥

दशशायुधजालानि तथैव कवचानि च ।
वह उत्तर द्वार भव्य ब्रह्मण्यी पुरपाक मन्में उक्त
प्रकार मय तन्मय करता था जैसे बालकाद्य मुर्छित
पाठन मयदायक जल पड़ता है । उस द्वारके भीतर
याज्ञाभाक यदुतमें भक्ति-मलिक अभय-गण और कवच
रखने गय । किन्हीं भयान भीरुमन देना ॥ ३७ ॥

एव तु ठागमासाद्य नीला हृदिद्यमूपलि ॥ ३८ ॥

धनिष्ठत सह मन्दन द्विविदन च पीयवान् ।

यानरन्वारापी यरात्रमी नील मन्द भोर द्विविदक साथ
ब्रह्मके पुनःद्वारपर बहर डट गय ॥ ३८ ॥

भद्रदा दक्षिणद्वार उग्रहाठ सुमहायनः ॥ ३९ ॥

शून्यभय गवाक्षय गजान गवयन च ।

महाकसी भद्रने शून्य भयानक गज भोर गवयक
साथ रक्षित द्वारपर शून्यकार रखा लिये ॥ ३९ ॥

हनुमान् पश्चिमद्वार ररस्य बलवान् कपिः ॥ ४० ॥
प्रमाद्यिप्रबसान्या च धीरैर्यैश्च सगता ।

प्रमाथी, प्रबस तथा अन्य बानरयोपक साथ बलवान्
कपिधेह हनुमानने पश्चिम द्वारका मार्ग एक लिया ॥ ४० ॥

मध्यमे च स्वयं गुल्मे सुप्रीया समतिष्ठत ॥ ४१ ॥

सह सर्वैरिहोष्टे सुपणयवनतपि ।

उत्तर और पश्चिमक मध्यभागमें (पायम्यकणम) को
राक्षसेनाभी छाप्नी थी उत्तर गडक भार वायुपे समान
केगाली भेद यानरयोपक साथ सुप्रीवने आक्रमण किया ॥

धामगणा तु पटुत्रिशक्तान्वाः प्रख्यातयूथपा ॥ ४२ ॥
निरीह्यापनिधिप्रायः सुप्रीया यत्र यानराः ।

वहाँ बानरयम सुप्रीव थे, वहाँ यानरके उछीक करके
निष्पात यूपयत राक्षसका पीड़ा देत हुए ठास्थित
रहे थे ॥ ४२ ॥

शासनेन तु गमस्य लक्ष्मणाः सविभीषणः ॥ ४३ ॥
द्वारे द्वारे हरीणां तु कोटि फाटीन्यवेशयत् ।

भीरुमकी आरसे निभीरणसहित ब्रह्मणने ब्रह्मण
प्रत्येक द्वारपर एक-एक करके यानरोंक नियुक्त कर दिया ॥

पश्चिमेन तु रामस्य सुप्रेयाः सहजाम्भवान् ॥ ४४ ॥

अनुरात्मध्वमं गुल्मे तस्यो यमुयल्लनुगा ।

मुग्ध और अन्धवान् यदुत-सी सेनाके लव भीरुमकन्द
कोके पीछ थाही ही दूरपर रहकर पीनक मंचेकी रखा
करते रहे ॥ ४४ ॥

न तु यानरशाशूलाः शाशून्य इव दृष्टिणः ।

शूहीत्या तुमशीत्यामान् दृष्ट्य युवाय तस्मिन् ॥ ४५ ॥

व बानरोंक चापोंक समान व-वह दृष्टाने मुक्त थे ।
व हर्ष भोर उत्साहम भरकर शायंम दृष्ट भोर पर्यंत-द्वार
स्त्रिय युद्धक स्त्रिय डट गय ॥ ४५ ॥

सर्वे विद्वन्ब्राह्मण्य सर्वे वृद्धनशायुधाः ।

सर्वे विद्वन्ब्राह्मण्य सर्वे च विद्वन्ब्राह्मण्यः ॥ ४६ ॥

सभी बानरोंकी पूछे मंचक कारण अन्ध-भ्राष्टिक रूपने
दिल रही थीं । दाँवें भर नय ही उन मंचक अन्धुप थे ।
उन मंचक मुम भादि अज्ञान मंचक्य विकारक विविध
विद्ध परिकल्पित हव थे तथा सरक मुम विद्ध एवं विद्वत्क
निन्वापी देते थे ॥ ४६ ॥

वृदानगपयला क्वचित् पञ्चिक् वगुणात्तराः ।

केविद्यागसहस्रम्य यभूवस्तुत्यविद्यया ॥ ४७ ॥

इनमम द्विती यानरमें तब दक्षिणाय क्व था, क्व
उनने भी दम्भान अधिक बलवान् थे तथा द्वितीमें एक
द्वार दक्षिणाक समान वर था ॥ ४७ ॥

वस्ति शौचकक्षाः केचित् संखिच्छतगुणोत्तराः ।

।।ममयवत्काञ्चान्ये तत्रासन् हरियूथपाः ॥ ४८ ॥

किन्तमिं दश ह्यार हाभिर्वीर्यं पतिं श्रीं इतिसे भी
छं गुने रत्नान् यं तथा मन्त्र बहुतेरं वानर-यूथपतिर्ममिं
छं वज्रा परिमाण ही नहीं था । ये अतीम कञ्जाही ये ॥

अद्भुतव्य विशिष्यश्च तथ्यमासीत् समागमः ।

तत्र वानरसैन्यानां शलभानामिवोद्गमः ॥ ४९ ॥

वहाँ उन वानरसेनाओंका टिड्डीरकक उद्गमके समान
अद्भुत एवं निचित्र समागम हुआ था ॥ ४९ ॥

परिपूषामिवाक्षरा सम्पूर्णे च मेविनी ।

लज्जामुपनिविष्टश्च सम्पतत्रिभ्य वानरैः ॥ ५० ॥

एछामें उच्छ-उच्छकर अत हुए वानरोंसे आक्षरा
भर गया था और पुरीम प्रवेश करके लड़े हुए करिछमूहोंसे
पहोँची खरी वृष्ठी आच्छादित हो गयी थी ॥ ५० ॥

शत शतसहस्राणां पूतनक्षणीकृतान् ।

लज्जाकाराण्युपाजमुत्पये योव्यु समस्ततः ॥ ५१ ॥

पैछों अर वानरोंकी एक करोड़ सेना तो लज्जाके चारों
हाथपर आकर डूबी थी और अन्य ऐनिक लख ओर सुदक
स्त्रिय चले गये थे ॥ ५१ ॥

अभूत्तः स गिरिः सर्वैस्त्री समस्तत्र द्ववह्नयैः ।

अयुत्तानां सहस्र च पुरीं तामप्यवसत ॥ ५२ ॥

समस्त वानरोंने चार अग्ने उध बिन्दूक फलंतके
(निम्नर लज्जा कही थी) पर छिया था । छहस्र अयुत
(एक करोड़) वानर छ उध पुरीमें सभी हाथपर लड़ती
हुए मनाग लम्बाकार छनक छिन्न नगरमें सब अर घूमन
रहन थे ॥ ५२ ॥

पातत्पत्तर्वीर्यश्च वभूय दुमगाण्डिभिः ।

सवतः सपूता लज्जा दुष्पपशाणि धायुन्व ॥ ५३ ॥

हाथाम वृध स्त्रिय चरणान् वानरोंछाए लख अग्ने विरी
हुई लज्जामें धायुन्व स्त्रिय भी प्रथम पना छडिन हो गय था ॥

रासस्ता विश्वस्य जम्मुः सहस्राभिनिपीडिताः ।

पातत्पयसत्राणां शम्भुत्पयगजर्जमः ॥ ५४ ॥

मपक समान बाल एवं भर्त्सर तथा इन्द्रकुल्य परछमी
पयगजराय सख आद्य दानक कारण रछछेमें वहा
विश्वस्य हुआ ॥ ५४ ॥

मदान्छन्ताभयन् तत्र यनीपम्याभियततः ।

सागरस्यय भिद्यन्त्य यथा स्यात् सन्दिनम्वनः ॥ ५५ ॥

उन मनुष्य रिउर्षे ५५ भयका मनासक लखकर
वदनारक अन्दक वरुध मदान् चान् दाय छ उछी प्रार

वहाँ आक्रमण करती हुई विद्यास वानरसेनाका महान् कोषका
हो रहा था ॥ ५५ ॥

तेन शम्भेन महता सप्राकारा सत्तोरजा ।

लज्जा प्रखञ्जिता सर्वा सर्वौत्सवककालना ॥ ५६ ॥

उध महान् कोषकाहम्ने परछोटों परछोटों, फलंतों
क्यों तथा अननोखरित समूची लज्जापुरीम इच्छक मय मयी ॥

रामजकमण्युना सा सुप्रीथय च बाहिनी ।

वभूय दुर्धरतरा सर्वैरपि सुरसुरैः ॥ ५७ ॥

श्रीराम लक्ष्मण और सुप्रियसे सुरक्षित वह विद्यास वानर
याहिनी समक्ष देवदत्तों और मसुरोंके छिने मी अस्त्यत दुर्धर
हो गयी थी ॥ ५७ ॥

राघवाः सनिवेश्यैव लसैव्य रक्षासां वधे ।

सम्पन्त्य मन्त्रिभिः सार्धं निमित्त्य स पुनः पुनः ॥ ५८ ॥

अन्त्यर्थाभिभेद्युः क्रमयोगार्थतत्पवित् ।

विभीषणस्यानुमतं राजभ्रमन्तुसरन् ॥ ५९ ॥

अहन् बास्त्रितमय समाह्वयेदमब्रवीत् ।

इस प्रकार रक्षकक बचक छिये अपनी सेनाको बध-
खान लक्षी करके उछके बारके फलंतके अननोखी इच्छासे
भीरुसुनाचनीने मन्त्रियोंके साथ बारबार लख ही और एक
निश्चयपर पहुँचकर छम वान आदि उपालोक क्रमशः प्रवेश-
से मुछन होनेबाध अर्थात्लके कला श्रीराम विभीषणकी अनु-
मति छ रामपतेका विचार करते हुए वास्त्रियुत्र आह्वयके बुद्ध-
कर उनसे इस प्रकार बोले— ५८ ५९ ॥

गत्या सौम्य व्राम्रीय वृष्टि मद्रभ्यात् कृपे ॥ ६० ॥

अह्वयित्वा पुरीं लज्जा भयं त्यज्स्या गलभ्यया ।

अरध्रीक गतैश्चर्यं मुमूर्षान्तप्रच्छेत्तन्म ॥ ६१ ॥

श्रीराम ! कृपिकर ! वरानुछ वरान् राजवक्षसीसे अह
हो गया अर उछक ऐश्वर्य समस्त हो चम्ब वह मन्त्र ही
बाहता दे इच्छिय उछकी केला (विचार-वक्ति) नर हो
गयी है । तुम परछेय कोचकर लज्जापुरीम मय लाइकर आओ
और अन्त्यरहित हो उछके मेरी अग्नेसे य बरते फरो— ६० ६१

श्रीरामिथा वृथतान्यं च गन्धबाप्सरस्ता तथा ।

नगात्ममयं यस्ताया रायां च रजनीचर ॥ ६२ ॥

यद्य पाप ह्य माहाद्यक्षित्सेम रक्षस ।

नूनं त विगत्य दुर्गं स्वयभूयैरपालकः ।

तस्य पापस्य सम्प्राप्ता प्युष्टिरय दुरासया ॥ ६३ ॥

निशाचर ! उछकान ! तुमने मादवच फलंतमें अन्तर
श्रुति देवच मन्त्रों, अछय नाम यध और राजभयका
वहा अन्त्यर किया है । नसात्रेय परछान पाकर दुर्धर ज
अभिमान हो गय था निश्चय ही उछक नर होनेका अन्त्यर
आ गया है । तुम्हार उध पापम दु छे छन भाव उपस्थित

है ॥ ६२ ६३ ॥

यस्य दृग्धरस्तेऽहं दाराहरणकर्षितः ।
 दृग्ध भारयमाणस्तु लज्जादारे व्यथस्थितः ॥ ६४ ॥
 मैं अन्तर्भाविके दृग्ध वेनेराभा घातक हूँ । दुग्धने ओ
 मेरी मायाका अन्तर्भाव किया है, इसके मुझे वडा कष्ट पहुँचा
 है अथ दुग्ध उच्छ्रय दृग्ध वेनेके स्त्रिये मैं लज्जाके कारण भाकर
 लडा हूँ ॥ ६४ ॥
 पदवीं दृघतन्त्र च महर्षीणा च राक्षस ।
 राजर्षीणा च सर्वेषां गमिष्यसि युधि स्थिरः ॥ ६५ ॥
 पक्ष्य । यदि तुम युद्धमें स्त्रियापूर्वक लडा रहे तो उन समस्त
 देवताओं, महर्षियों और राजर्षियोंकी पदवीको पहुँच आओगे—
 उच्छ्रयकी मोक्षि तुम्हें परस्मैकावी हला पड़ेगा ॥ ६५ ॥
 वलेन येन वै सीता मायया राक्षसाभम ।
 मामतिभ्रमयित्वा त्वं हृतवास्तद्विशयां ॥ ६६ ॥
 नीच निघात्तर । किस वलके मरने दुग्धने मुझे भंसा
 देकर मायासे सीताका हरण किया है, उसे अब युद्धके मैदान
 में दिलाओ ॥ ६६ ॥
 अराक्षसमिमं लोका क्वाप्सि निशितैः शरैः ।
 न चाच्छरजमप्येति तामायाय तु मैथिलीम् ॥ ६७ ॥
 पक्षि तुम निशितशकुमारिके अक्षर मरी शरणमें नहीं
 आये तो मैं अपने खीले बाणोंशर इस अक्षरका राक्षसीसे घना
 कर दूँगा ॥ ६७ ॥
 धर्मोत्तमा राक्षसभंष्टा सम्प्राप्तोऽयं क्षिभीपण ।
 उद्दुःश्वपमिद् भीमान् ध्रुव प्रणोत्यकण्टकम् ॥ ६८ ॥
 पक्ष्यम भद्र ये भीमान् धर्मोत्तमा क्षिभीपण भी मरे
 क्षय नहीं आये हैं निश्चय ही उद्दुःश्व निष्कण्टक राक्षस हर
 ही प्राप्त हूँगा ॥ ६८ ॥
 नहि राग्यमभमेष भोक्तु क्षणमपि त्वया ।
 राफय मूर्खसहायम पापेन्वसिद्वितारमण ॥ ६९ ॥
 तुम पापी है । तुम्हें अपने स्वर्गपक्ष बन नहीं दे और
 तुम्हारे संधी-संधी भी मूल है । भद्रः इस प्रकार अन्तर्लोक
 अथ तुम एक क्षण भी इस राक्षसको नहीं मंगा लओगे ॥ ६९ ॥
 युष्मत्त मा धृतिं कृत्या शीघ्रमात्मकस्य राक्षस ।
 मच्छरस्य रणे शान्तस्ततः पूर्तो भविष्यसि ॥ ७० ॥
 पक्ष्य । दृग्धका अभय लेधैर्य प्राप्त करके मेरे क्षय
 युद्ध करे । रणभूमिमें मेरा बाणोंने शान्त (अपहृत्य) होकर
 तुम पूरा (गुद्ध एव) निष्पन्न हो जाओगे ॥ ७० ॥
 पद्यापिशानि सफरलीन पक्षीभूय निगात्तर ।
 मम पशुगण्य प्राप्य न जीयन् प्रतिप्राप्यसि ॥ ७१ ॥
 निगात्तर । मेरा हाथपक्षी अनेक पक्षी यदि तुम
 पक्षी हाथ कीना लड्डमें उड़ते और पित्रत किए ल भी अपने
 परध कीनत नहीं और उछम ॥ ७१ ॥

प्रधीमि त्वां हित वाक्य किपलाभौर्धैक्षिकम् ।
 सुदृष्टा क्रियता लज्जा जीवित ते मपि स्थितम् ॥ ७२ ॥
 'अभ मैं दुग्धें हितकी बात कता हूँ । तुम अपना भाव
 कर लओगे—परलोकेमें तुल वेनेराके दान-पुण्य कर ल और
 लज्जाके ली मरकर देख लो' क्योंकि दुग्धका अन्तर्भाव मेरे अर्थात्
 हो चुका है" ॥ ७२ ॥
 इत्युक्त्वा स तु तारेयो रामेणाक्षिद्रकमणा ।
 जगाम्भ्रजामाविष्टय मूर्तिमानिष हृष्यवाट् ॥ ७३ ॥
 अनामस ही महान् धर्म करनेवाले गगनात् भीरणके
 देख करनेपर तारकुमार आइ मूर्तिमान् अनिषी भौंति
 भ्रजामागति चक्र द्विष ॥ ७३ ॥
 सोऽसिपत्य मुहुर्तेन भीमान् रायणमस्मिद्वरम् ।
 दृग्धासीनमस्यमं रायण सचिवैः सह ॥ ७४ ॥
 भीमान् अत्र एक ही मुहुर्तेम परकृत्य धौपकर राक्षसके
 राक्षसजननें का पहुँचे । वहाँ उछाने मन्त्रियोंके साथ शान्त-
 मायसे बैठे हुए राक्षसका देला ॥ ७४ ॥
 ततस्तस्याविसूरेण निपत्य हरिपुगाव ।
 वीसाम्निसहस्रास्तस्यायत्नम् कनकाङ्कम् ॥ ७५ ॥
 वानरभद्र अत्र एक लनेके बाणोंपर पदने हुए थे और
 प्रत्यक्षि अग्निंक स्थान प्रकथित हो रहे थे वे राक्षसके
 निष्ठर पहुँचकर लडा हो गये ॥ ७५ ॥
 तद् रामवचनं सर्वमस्युनाधिकमुत्तमम् ।
 सामात्य भाषयामास निषयात्मानमात्मना ॥ ७६ ॥
 उन्होंने पहले अपना परिचय दिया और मन्त्रियोंकेहित
 राक्षसके भीरणकन्त्रवीथी कही हुए लखी उच्छ्रय शरोंके स्वो-
 लो मुना ही । न तो एक भी शब्द कम किया और न
 बढ़ाया ॥ ७६ ॥
 शूलोऽहं क्रोसलेन्द्रस्य रामस्याक्षिद्रकमणः ।
 यान्निपुत्रोऽङ्कुरो गमम यदि ते भोषमागत ॥ ७७ ॥
 वे शूल—मैं अनायास ही बड़े-बड़े उच्छ्रय धर्म करनेवाले
 अक्षरनेका महापक्ष भीष्मभूत हूँ और कक्षीका पुत्र अत्र
 हूँ । उच्छ्रय के कक्षी मया नाम भी तुम्हारे धर्मोंमें पडा
 है ॥ ७७ ॥
 आह त्वा रायण रामः क्रीसलानन्वधनः ।
 निपत्य प्रतिपुष्यस्य नृशत पुराया भय ॥ ७८ ॥
 पण्य अनेकस्यम भ्रमन् बढ़ानेका शूलकक्षीका भी-
 रणने तुम्हारे स्त्रिय यह संदेश दिया है—'प्रांत पराज । का
 मरे का और पत्ने शर निष्ठर युद्धमें भय छांमना
 कर ॥ ७८ ॥
 इत्यस्मि त्वां सहामात्यं सपुत्रमतिवाचयम् ।

निरुद्धिन्नास्त्रयो लोका भविष्यन्ति हत स्वयि ॥ ७९ ॥

मै मन्त्री पुत्र और कर्षु-वाच्यवैश्वरिह तुम्हाय वष
रगा क्याकि तुम्हारे भरे बनेते वीनों व्यक्तीक प्राणी निर्भय
ही बर्षों ॥ ७९ ॥

वधवन्निपयशापां गन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
शत्रुमघोदरिष्यामि त्वाभ्युदीर्षां च कण्टकम् ॥ ८० ॥

तुम देवता दानव वध गन्धर्व, नाग और रक्षस—
सर्वक धनु ही । शूरिवीरके शिप तो कटकरप ही ही भय
भय मैं तुम्ह त्वाङ्क कॅकूण ॥ ८ ॥

विभीरुणस्य चैभ्यर्थे भविष्यति हत स्वयि ।
म शत्रु सक्तस्य वैश्वर्ही प्रणिपत्य प्रस्तास्यसि ॥ ८१ ॥

अहः यदि तुम भरे परलौमें गिरधर भावदरवृत्क सीता
क नही बांटाभ्रमो तो भरे हाथने मारे बाओगे और तुम्हारे
मारे बनेनेम वद्वान्क खय ऐश्वर्य विभीरुगके प्राप्त होइ ॥ ८१ ॥

इत्पय परक राफ्य सुभाषे हरिपुङ्गव ।
भमपयशस्यपशो निशाचरगणेश्वरः ॥ ८२ ॥

वनरगिरिशमनि भद्रदके ऐने कठार वचन करनेर
निशाचरगणस्य राबा रावण भयन्त भयन्ति मर गया ॥ ८२ ॥

स्त स गंगमापद्यः ददास्त स्वविवास्तदा ।
गृह्णामिति बुमैषा वप्यतामिति घासकृत ॥ ८३ ॥

रक्ष भर हुए रावणने उस समय भरणे मन्त्रिबौते बार
बार पदा— पकड़ व्य इस दुर्बुद्धि बनरके और मार
हाम्य ॥ ८२ ॥

रावणस्य पद्यः भुञ्जा वीताग्निमिव तज्जसा ।
उग्रहृत्स्त ततो धाराभस्यारा रक्षनीचरा ॥ ८४ ॥

उपवसी यह बल मुनकर पार मर्षकर निशाचरने
प्रान्तिन भविकर समान वक्रवी भद्रदक पकड़ किया ॥ ८४ ॥

प्राहयामास तत्रत्य म्ययमागमानमागमयान् ।
पत्न द्वायितु धीरा यातुधनगण तदा ॥ ८५ ॥

आम्रवडम क्षमत्र त्रपुमार भद्रदने उस क्षम्य रक्षों
क भन्ता वय रिनातक शिप स्वयं ही भरणे-भापवा
पराजा गिया ॥ ८५ ॥

स नान् याहुतयात्मन्त्रनाहाय पतगानिय ।
प्राप्ताद् दानवमनामुत्पयाताद्भ्रुस्तदा ॥ ८६ ॥

इह वय तुमही तद भन्ती दन्ता नुबधाम बहइ हुए
गन तय रावणवैरि (वरिष ही उजम भरे उस मदमरी
उजम ए पराभापवत समान कॅनी भी वय गया ॥ ८६ ॥

तन्प्रात्यतनगतं निपुणस्तत्र गशामा ।
भूमिं निगन्तिता सर्वे राक्षसत्रय्य परयता ॥ ८७ ॥

उनह ७७ अह क्षम तदगा गारने वर उपर

रक्षसव रावणके दस्तने-देसते टुप्पीर मिर पके ॥ ८० ॥

ततो प्रसस्तुविस्तर शैक्यपुङ्गमिवोक्तम् ।
कनकम राक्षसेन्द्रस्य कश्चिपुत्रः प्रकल्पवान् ॥ ८८ ॥

तदनन्तर प्रतापी बामिकुमार भाइय रक्षसवके उन
नक्षत्री चाटीपर, अ परवतदिकरके समान कॅनी भी कै
पटफते हुए मूनेने छो ॥ ८८ ॥

पपत्रस च तद्वाक्यन्त वृशानीकस्य पक्षताः ।
पुरा हिमकता भृङ्ग कञ्जेनेव विहारितम् ॥ ८९ ॥

उनके पैरोंसे आकान्त होकर वह अत रावणके देसते
देसते कॅ गयी । ठीक उसी तरह जैसे पूर्वकालमें कनके
आपाकते हिमालयपर धिलर विदीर्ष हो गया था ॥ ८९ ॥

भङ्गमन्वा प्रसास्तुदिस्तरनाम विशङ्ख्य बालकाः ।
विनद्य सुमहातावसुतपपात विहायता ॥ ९० ॥

इह प्रकर महकषी अत तोड़कर उन्होंने अन्न नम
मुनाते हुए बड़े जोरसे छिनाय किया और वे आक्षयप्रवृत्ति
उड़ चले ॥ ९ ॥

व्यथयन् राक्षसान् सर्वान् हर्ययंश्यापि बालराज ।
स धामराणां मध्ये तु रामपादसंमुपागतः ॥ ९१ ॥

रक्षोंक पीड़ा देत और खमक बानरोंका हथ कबूते
हुए वे बानरसेनाके बीच भीरमन्त्ररक्षीके पास और
आये ॥ ९१ ॥

रावणस्तु पर चक्रे कांभ मासावर्धनपात् ।
किनाया चा मन्तः परयन् निष्ठासापरमोऽभक्त ॥ ९२ ॥

अने महकषक दूतेसे रावणके वका श्रेक हुआ परंतु
किनायकी पड़ी आधी देस पर कवी संघ छोड़ने लइ ॥ ९१ ॥

रामस्तु बहुभिहृष्टकिंनरिः सुबह्वीमः ।
पृतो रिपुयथाकाह्वी युद्धायेवाभ्यर्क्षत ॥ ९३ ॥

इपर भीरमन्त्ररक्षी इतने भरकर गऊना करते हुए बहु
संभवक बानरोंसे मिर रहकर बुद्धक शिप ही बडे रहे । व
भरणे उपुवा वष कट्टा जाते ॥ ९२ ॥

सुपयस्तु महापीयो गिरिकूटापमो हरिः ।
पहुनि सवृत्सात्र यानरेः क्रमस्त्वभिः ॥ ९४ ॥

स तु डागणिय सयस्य सुग्रीवकचक्रात् कपिः ।
पयमवमतं पुष्यो गशत्रापीय वन्द्यमा ॥ ९५ ॥

इही समय परतदिकरक समान किनास भाप मदासाकनी
तुजन बानर पीर मुगबन इच्छयनुभर रूप धारण करनेक
वशम्भक पानरक खप सन्तक कभी इरवाओंता कबूने कर
लिया और सुग्रीवकी आगाक भनुभर य (अने छनिगौरी
रख करने एन मभी हाताग क्मायर बाननक शिप) खी-
बारीम उन क्षमत्र विमरने एग नम कन्मा क्माय अ
मधवार गमन करते हैं ॥ ९५ ॥

तयामर्षोहिषिदात समवक्ष्य यनौकसाम् ।
 लङ्गामुपनिषिथना सागर चाभिरतताम् ॥ १६ ॥
 राक्षसा विस्मय अमुक्त्वास अमुस्तथापरैः ।
 भ्रष्टर समर ह्यतस्त्वर्षमेवोपपत्तिर ॥ १७ ॥

लङ्गापर वर शस्रकर स्फुटवत् पैस हुए उन कनारी
 वानरोंकी छे अश्रेयिणी सेनाश्रेयं देख राक्षसोंका यद्वा विस्मय
 हुआ । लङ्गामे निशाचर मयभीत हा गये तथा अन्य कियेने
 ही राक्षस कमराङ्गममें हर्ष और उल्लाहसे भर गये ॥ १६ १७ ॥
 छुट्टन हि कपिभिभ्यास्त प्राक्करपनिष्ठात्तरम् ।
 वृद्धशू राक्षसा वीना प्राक्कर यान्तीकृतम् ।
 हाहाकररमकुर्वन्त राक्षसा भयमागताः ॥ १८ ॥

हृत्पापै भीमद्वामावने बाकमीश्रीये अन्तिकाम्ने युद्धकाण्डे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ११ ॥
 एत प्रकार अन्तिकाम्नेमिदं भारतामपण अदिशयक बुद्धकाण्डे (काव्योत्तरं) सर्व पूरा हुआ ॥ ११ ॥

उस समय लङ्गाभी नगरदीवारी और माइ खरी-खी-खरी
 वानरोंमें म्मास हा रही थी । इस तरह उल्लेखने चहारदीवारी-
 का वह वानराभ्रर हुई देखा; तब वे दिन-दुली और मयभीत
 हा हास्रकर करते लगे ॥ १८ ॥

तस्मिन् महाभीषणके प्रवृत्ते
 कोलाहले राक्षसराजयोधाः ।
 प्रगुह्य राक्षसि महायुधानि
 युगान्तयाता इव सविचराः ॥ १९ ॥

वह महाभीषण कोलाहल भारगम क्षेपण राक्षसराज यषण
 के योद्धा निशाचर बड़े-बड़े अधपुत्र हाथोंमें मरकर प्रकथयल-
 की प्रकथ वायुके समान लय और विचरने लगे ॥ १९ ॥

द्विचत्वारिंशः सर्गः

लङ्गापर वानरोंकी चढ़ाई तथा राक्षसोंक साथ उनका पार युद्ध

तस्म राक्षसास्तत्र गत्या रावणमन्दिरम् ।
 स्पयद्यन्पुरीं क्त्वा रामस्य सह यानरैः ॥ १ ॥

तदनन्तर उन राक्षसाने रावणक महकमें ऊपर वह
 निवन्त दिया कि भानयक लष भीषणने लङ्गापुरीमें
 चारों भ्रमे पर किया है ॥ १ ॥

ग्यां तु वगरीं धुम्या जलक्याथा निशाचराः ।
 जिगतं त्रिगुण कृत्या प्रासाद् चाप्यगोहत ॥ २ ॥

महाक वर जनेकी पत मन्दिर राक्षसका यद्वा लष
 हुआ भाग पर नगरी राक्षसा परकमें भी लुगुना पन्थ
 करत मरवारी अर्थात्तम जग गया ॥ २ ॥

स ददश मृता लङ्गा मन्गलजनकाननाम् ।
 भमभ्यर्षहृदिगर्भा सप्रता युद्धपरद्विधि ॥ ३ ॥

पदम गगत दम्मा कि पतैत कन भय जननसक्ति
 खरी लङ्गा मर अस्म अमप्य युद्धाभिव्यक्त वानरोंका
 विधि लङ्गा ॥ ३ ॥

स लङ्गा यानरे सर्वैस्तुषां कपिर्निश्चिताम् ।
 कथ क्षययितव्या स्मुभिसि त्रिन्तापररुपवत् ॥ ४ ॥

इस प्रथम प्रथम वानरोंने आच्छादित समुधात
 वरिय लङ्गा मर अस्म अमप्य युद्धाभिव्यक्त वानरोंका
 विधि लङ्गा ॥ ४ ॥

स त्रिन्तापरा मुनिरधयमात्मन्य राणा ।
 गण्यत हरिमुं गण्य द्वापायतनयान ॥ ५ ॥

व १ १ लङ्गा उनक लङ्गा पर पर पर लङ्गा

विद्याल नेत्रोत्थाव रावणने भीषण और वानरमनाओही
 और पुन देला ॥ ५ ॥

यद्यथा सह सैन्येन मुविता नाम पुप्टुव ।
 लङ्गां वददा गुमा यै सयतो राक्षसैर्युधाम् ॥ ६ ॥

इपर भीषणकरकी अम्नी मनाक क्षय प्रमप्रवाहक
 भयो वह । उन्हेने देला लङ्गा लष अरन उल्लेखण
 भात और मुक्ति है ॥ ६ ॥

लङ्गा वातापिर्लङ्गां विप्रचञ्जस्तकिनीम् ।
 जगाम सहसा संसिता दूयमानन घतन्वा ॥ ७ ॥

विचित्र लषक भाग्यभाम अन्तुन लङ्गापुरीका रेणकर
 दहरधनन्त भीषण लषधिन निधने मन हीमन लषका
 करण करने लगे— ॥ ७ ॥

अथ सा मृगययाक्षी मन्तुल जनका मजा ।
 पीडयत प्राकमत्सता एता म्यशिल्लगायिनी ॥ ८ ॥

हात ! वह मृगययाक्षी अन्तुन लङ्गा लष लष
 नर निर गणभ्रत हा पीडा करने करने है और लषकी
 बहीर अन्ती है । मुनय है लङ्गा दुबल हा लष ८ ॥ ८ ॥

निर्णयमाना धमामा यद्दामनुविशयन ।
 विप्रमानायवद् गामा यानरन् जिगता यथ ॥ ९ ॥

इस प्रथम लषकरकाय दिा वि एत लङ्गा
 लषक विप्रम लष हुए वनका भागमन लङ्गा
 वनका लङ्गा लष ॥ ९ ॥ लष लष लष लष लष ॥ ९ ॥

पयमुक्त तु पयति गामादिदृक्मना ।

मध्यांमाणाः प्रवृत्ताः सिंहात्तद्वैरनायकम् ॥ १० ॥
 अङ्घ्रिचूर्णां भीरुमके इव प्रकर उरुहा दंत ही भागे
 रदनेव सिंहे परस्पर होइखी क्खानेनाथं बान्तेने मनेने
 निहानागम वहाँकी बखी और भाऊधरक गुँबा दिया ॥
 दिश्वार्यकिरागीतां लुब्धं मुष्टिभिरेव च ।
 इति स द्धिरे सर्वे मनासि हरियूयपा ॥ ११ ॥
 वे छमल बानर-यूपति मनेने मनने वह निश्चय सिंहे
 लखे व कि हममेगा परंत-दिल्लरोखी बर्षा करके छद्मके
 महर्षिके चूर-चूर कर देगे अथवा मुक्कोते ही नार-नारकर
 बहा देगे ॥ ११ ॥
 उद्यम्य गिरिऋद्धाणि महासिंह शिखरप्रणि च ।
 तर्कंभात्यप्यत्र विधांसिस्तुति हरियूयपा ॥ १२ ॥
 व बानरसेनापति परंतके बड़े-बड़े शिखर उठाकर और
 नाना प्रकारक दृष्टिअ उलाड़कर प्रहार करनेके लिये लखे वे ॥
 प्रसूतां राक्षसंस्तस्य ताम्पनीकानि भागदा ।
 राधवप्रियकरमार्ये लङ्कामाकरुदुस्तवा ॥ १३ ॥
 उल्लस्य उद्यमके देसते-देसत विभिन्न भूमिमें बंटे
 हुए वे बानर-सेनिक भीरुनायाकीअ मिय करनेकी इच्छासे
 लङ्काक छद्मके परधरपर चढ़ गये ॥ १३ ॥
 तं ताम्रयफभा हेमाभा रामार्ये त्यक्तजीविता ।
 लङ्कामेयाम्यवतन्त साकमुपरपोधिना ॥ १४ ॥
 तदि-सैते छाव मुँह और मुक्कोतेकी अन्तिवाक वे
 यानर भीरुमचन्द्रकी सिंहे प्राण निजकर करनेको तैयार
 व । व ख-के-ख खर दृष्ट और ऐक-दिल्लरोखे मुद्ध करने
 वास थे इस्सिमे उन्होंने छद्मपर ही आक्रमण किया ॥१४॥
 त तुमैः पवतामिद्य मुष्टिभिश्च पुत्रगमाः ।
 प्राकरारामाप्सत्पयानि ममन्पुस्तारणानि च ॥ १ ॥
 व सभी बानर दृष्टों परंत शिल्लरो और मुक्कोस अक्षय्य
 भरकथा और दरवाखेको लड़ने को ॥ १५ ॥
 परिखान् पूरयन्तश्च प्रसन्नसस्त्रिधदायान् ।
 पायुभिः पयत्प्रथमं तथाः फाठीश्च कनरा ॥ १६ ॥
 उन बानरने स्वयं मस्ये भरी हुए लारखेको धूल
 पत्त सिंघर, पाठ फूट और कठाले पाठ दिया ॥ १६ ॥
 ततः सहस्रयूपाश्च फाटियूपाश्च यूथपाः ।
 फाटियूपाताश्चास्य लङ्कामादरुदुस्तवा ॥ १७ ॥
 त्रि उ खय यूथ फाटि यूथ और खे फोटे यूकोस खय
 त्रिय अनेक यूपाणि तस समबद्धाक सिंघर चढ़ गये ॥१७॥
 फाञ्जानानि प्रमद्वस्तस्तारणानि प्लयगमाः ।
 ईसासिचाराप्राणि गापुराणि प्रमथ्य च ॥ १८ ॥
 नान्ययन्तः प्लयसन्ध गञ्जन्तश्च प्लयगमाः ।
 लुब्धं तामनिधावन्ति महावारण्यसनिभाः ॥ १९ ॥
 वद वद गन्धकक छानन विप्रवराय यन्त लडेक
 अन हुए रथभ्रम लुब्ध वि प्र वरुदसिंघरक छान

लैवे-लैवे वेपुरोको भी हसते, उल्लसते-चढ़ते एवं कति
 हुए छद्मपर भाषा बोलने को ॥ १८ १९ ॥
 अफस्युदबले रामो लङ्कामेष्व महत्कलः ।
 राजा जयति सुप्रियो राक्षेणामिप्रसिताः ॥ २० ॥
 इत्येष प्रोपयस्यश्च गञ्जन्तश्च प्लयगमाः ।
 मन्मथाकन्त लङ्कयाः प्राकर कप्तमकपिनः ॥ २१ ॥
 प्यदन्त क्ख्याली भीरुमचन्द्रकीअ कम हा, महासि
 क्ख्यालीअ कम हा और भीरुनायाकीके हुए सुप्रियो एव
 सुप्रियो भी कम हा ऐसी शोरगा करते और गम्ती हुए
 इच्छनुखर स्य पारण करनेवाले बानर लङ्काके परछेदेर
 दूट पड़े ॥ २ २१ ॥
 वीरबाहुः सुबाहुश्च नलम्ब पन्तसस्तपः ।
 निपीड्योपनिविष्टास्त प्राकर हरियूयपाः ।
 पतस्त्रिभ्रतरे चक्रुः स्कन्धावारनिवंशनम् ॥ २२ ॥
 खी समय वीरबाहु सुबाहु, नल और पन्त—ने
 बानरयूपति लङ्काके परछेदेर चढ़कर बैठ गये और उठी
 बीचमें उन्होंने वहाँ अपनी सेनाका पक्षय बाध बिना ॥२२॥
 पूर्वद्वार तु कुमुदः कोटिभिश्चाभिर्भूतः ।
 अथुष्य बसयांस्तस्यौ हरिभिर्किंत्तकशिभिः ॥ २३ ॥
 कन्वान् कुमुद विष्णुभीते सुधर्मित हनेवाले वर
 फोड़ बानरोंके साथ (ईशानक्रेणमें रहकर) लङ्काके पूर्व
 द्वारको परकर लड़ा हो गया ॥ २३ ॥
 सहत्यार्ये तु तस्यैव निविष्टः प्रथसो हरिः ।
 पन्तश्च महाबाहुर्वीरभिसहृताः ॥ २४ ॥
 उखी अथवाके सिंभ अन्य बानरोंके साथ म्हाबाहु
 पन्त और प्रथ भी भाकर बट गये ॥ २४ ॥
 वक्षिणद्वारमासाद्य वीराः शठवन्धिः कपिः ।
 भाष्य्य बलयांस्तस्यौ विशात्या काटिभिर्भूतः ॥ २५ ॥
 वीर शठवन्धिने (आग्नेयक्रेणमें स्थित हा) वक्षिण द्वारपर
 अकर बीच फोड़ बानरोंके साथ उसे पर किया और वहाँ पक्ष
 बाध दिया ॥ २५ ॥
 सुपेणा पश्चिमद्वार गत्या सारपिता बन्धि ।
 अथुष्य बलयांस्तस्यौ कोटिकोटिभिरावृताः ॥ २६ ॥
 शरक कन्वान् विवा सुपेण (नैश्वीत्यक्रेणमें स्थित हा)
 कोटि-कोटि बानरोंके साथ वैशिम द्वारपर अक्षय्य करके
 उसे परकर लड़े हो गये ॥ २६ ॥
 उत्तरद्वारमगम्य रामाः सीमिषिणा सह ।
 अथुष्य पलवांस्तस्यौ सुप्रियोश्च हरीश्वराः ॥ २७ ॥
 सुमिषादुमार अक्षय्यकालेन महाकथान भीरुम तथा कन्त
 एव सुप्रियो उत्तर द्वारमें परकर लड़े हुए (सुभीरु पूर्वकथनके

१ १ ३ ४—वहाँ का पूर वक्षिण पश्चिम और वरुद
 पथ अथ व ने अथ ईशान कनि ने अथ और लारअक्षय्य
 अथ अथनेवाले व वक्षि २४६ (२१ वे मनी) पूर्व अदि

अनुसर बाह्यमन्त्रोपमं स्थित हो उरुत द्वारकाली भीरुमन्त्री
छात्रवत् करते थे ॥ २७ ॥

गोसाहस्रो महाशययो गयासो भीमव्रतान् ।

वृताः कोट्या महावीर्यस्तस्मै रामस्य पार्ष्वताः ॥ २८ ॥

अंगूरी जलिके विद्याकन्यय महापरक्रीमी वानर
गणस्य ज्ञे देवनेनें पड़े मयकर थ एक करुण वानरोंके
साथ भीरुमन्त्रकीके एक सखम सहे हो गये ॥ २८ ॥

श्रुक्षणां भीमकोपानां धूम्रः शत्रुनियर्हणः ।

वृताः कोट्या महावीर्यस्तस्मै रामस्य पार्ष्वताः ॥ २९ ॥

इसी तरह महावली शत्रुघ्नान् श्रुभ्रान् धूम्र एक करुण
मानक मन्त्री रीछोके साथ उरुत भीरुमन्त्रकीके वृक्षी
भर सहे हुए ॥ २९ ॥

सनयस्तु महावीर्यं गन्धापाणिर्धिभीरुषः ।

धृतो यत्तस्तु सचिवीस्तस्मै यत्र महाबलः ॥ ३० ॥

कयच आदिने मुखभित महान् परक्रीमी विभीषण हाथमें
गया छिये अपने स्वयंचाल मन्त्रियोंके साथ वही आकर उठ
गये वहाँ महाक्री भीरुमन्त्र विद्यमान थे ॥ ३० ॥

गजो गवाक्षां गवयः शरभा गन्धमादनः ।

समन्तात् परिभ्रायन्ता ररभ्रुहिरिवाहिनीम् ॥ ३१ ॥

गन्ध गवाक्ष गवय शरभ और गन्धमादन—एक भर
धूम-धूमकर बान-केनाकी रखा करते छ्ये ॥ ३१ ॥
ततः कापरीताम्य रावणो राक्षसेश्वरः ।

निपाण सर्वसम्पाना तुतामाप्रापयत् तथा ॥ ३२ ॥

इसी समय अत्यन्त क्रोधने भरे हुए राक्षसान् रावणने
भन्नी खरीमेलाके दूरत ही आकर निकलनेकी आज्ञा की ॥ ३२ ॥
एतच्छुत्वा तदा पान्थ गवणस्य मुखरितम् ।

सहसा भीमनिर्घोषमुबुधुष्ट रजमीचरत् ॥ ३३ ॥

रावणक मुखने आकर निकलनेके आदेश सुनते ही
एकजने छरछा वही भयानक गम्भीर वी ॥ ३३ ॥
ततः प्रथाधित्त मेयद्वन्द्वप्राङ्गुणपुष्कराः ।

हमन्तर्परनिहता राक्षसाना समन्ततः ॥ ३४ ॥

दिर तं राक्षसोंके यहाँ किन्तु गुणमग्य कन्दमरु
समान उरुमन थ और ज्ञे खनेक इन्हे बन्दने या पीट
कर थ वे बहुत ने पाने एक साथ पत्र उठे ॥ ३४ ॥
विनयुञ्ज महाघानाः शङ्खाः शतसहस्रशः ।

गन्धसाना सुघोराणां मुखमारुणपूर्णिताः ॥ ३५ ॥

राजादेवर नीक आदि वृत्तियोंके भास्मान्नी वान् ही मन्त्री
६ व उरुत आदि वानर निजवत्ता ईशान् आदि वानरोंके ररुत
पूर्विक शरीरके अन्तर्गत करके नीक आदिकी महाबल सहे के

साथ ही भयानक राक्षसोंके मुखकी वायुने वृत्ति हो
सन्नों गम्भीर शब्दवाल् शङ्ख बन्दने छ्ये ॥ ३५ ॥

त यमुः शुभनीलवृक्षाः सशङ्खा रजनीचरा ।

विधुमग्नदलसनद्याः सयत्नका श्याम्बुधाः ॥ ३६ ॥

आभूषणोंकी प्रभसे मुद्याभिव स्रुत घरीरवाले वे
निघाचर शङ्ख बन्धत समय विद्युत्मानसे उरुशक्ति तथा पक्
वृक्षियोंस युक्त नील मन्त्रोंके समान ज्ञान पढ़ते थ ॥ ३६ ॥

निष्प्रतन्ति तता सैम्या हृष्ट रावणचन्द्रितः ।

समये पूर्वमापस्य वेगा इय महोदधः ॥ ३७ ॥

तदनन्तर रावणकी प्रेरणाने उरुत सैनिक पड़े हरके
साथ युद्धके क्षिये निकलने छ्ये, मान्ने प्रक्यकर्ममें महान्
मेधोंक ससे भरे जाते हुए समुद्रक वेग भोगे बड़ रहे हों ॥

ततो धानरसैम्येन मुक्तो नयः समन्ततः ।

मलयः पूरितो येन सस्तानुप्रस्थकन्दरः ॥ ३८ ॥

तत्पश्चात् वानर सैनिकोंने स्रुत और बड़ करते सिन्हाद
किन्ना, किन्तु छात्र-बड़े विलसों और कन्दराओंउरुत मध्य-
पूर्वत नून उठा ॥ ३८ ॥

शङ्खुत्तुभुभिर्निर्घोषं सिन्हादस्तग्लिन्धम् ।

पूरिर्षी चान्तरिक्षं च सागर चाभ्यनययत् ॥ ३९ ॥

गजाना वृष्टितैः सार्धं हयाना ह्वेपितैरपि ।

रथाना नेमिनिर्घोषे रक्षसा पद्मसर्नाः ॥ ४० ॥

इत प्रभर हाथियोंक चिन्माइने पाड़ाक दिनदिनाने,
रथोंक पहियाकी परघरहत् एवं राक्षसोंक मुखसे प्रकट हुए
आपासक साथ ही शङ्ख और तुन्तुभियोंक शब्द तथा
वेगवान् बानरक निनादने प्रधी आभ्रघ और समुद्र
निनादित हा उठे ॥ ३९ ॥

पक्षस्त्रिभ्रन्तर धारः सप्रामः समपद्यत ।

रक्षसा धानगणा च यथा दशासुरे पुरा ॥ ४१ ॥

इतनेहीमें पूवजन्म पठित हुए देशानु-संभ्रामकी मोति
राक्षसों और बानरों पर मुक्त होने छ्ये ॥ ४१ ॥
त गन्धिः प्रदीप्ताभिः शक्तिदालपरम्भ्रधः ।

निज्जन्तुवानगन् सघान् फययन्तः स्वयिप्रमान् ॥ ४२ ॥

वे राक्षस हमक्री हुई गदाओं तथा शक्ति एक भर
परछेमें समन्त बानरोंके मारने एक अपने परकर्मकी शरणा
करने छ्ये ॥ ४२ ॥

तथा वृक्षमहाश्रयाः पक्षसमथ धानराः ।

निज्जन्तुस्तानि रक्षानि नज्जर्त्नन्थ यगिनः ॥ ४३ ॥

गन्धी प्रभर वेगवान् विद्यासमय वानर भ्र राक्षसपर पड़
पड़ वृक्षों परने विलसों तथा और दायिम पात्र करने छ्ये ॥

गञ्जा जयति सुभीति इति शब्दो महान्मूढ ।

गञ्जश्चयजपत्युपस्था खलनाम्कर्यां ततः ॥ ४४ ॥

वानरसेनामें धानराज सुभीतकी क्या हो' पर महान् शब्द
'ने क्या । उपर एकस्वका भी 'महाराज राजपक्षी क्या हो'
एखा बहुर अने-अने नामक उल्लेख करते ह्ये ॥ ४४ ॥

राक्षसास्त्यपरे भीमाः प्राकारस्या मर्ही गतान् ।

वानरान् भिम्बिपालेभ्य दृष्टेभ्यैष व्यवारयन् ॥ ४५ ॥

दूरं बहुवसे ममानक रक्षस सो परछेटेपर चड़े हुए
य वृषीर सड़े हुए बानरोंके भिन्दिपालें और दृष्टेसे
विदीर्ष करते ह्ये ॥ ४५ ॥

हृष्येर् श्रीमद्रामायणे वाक्योपदेशे भाषिकाम्ने बुद्धवदने द्विस्वपरिहाः सर्गः ॥ ४२ ॥

एष प्रकार श्रीमद्भक्तिनिर्मित अर्धरातयक अक्षरिफारने पुद्गलामने वनापिस्वर्गे सने पूरा हुइ ॥ १ ॥

त्रिचत्वारिंश सर्ग

इन्द्रपुत्रमें वानरोंद्वारा राक्षसोंकी पराजय

युष्पतां तु तत्तस्तपां धानराणां महात्मन्याम् ।

रक्षसां सम्बभूवाथ यस्त्रोपा सुदारुणा ॥ १ ॥

कान्तर परस्पर युद्ध करते हुए महात्मा बानरों और
राक्षसोंके एक दूसरेकी सेनाके वैसकर बड़ा भयंकर रोप
हुइ ॥ १ ॥

तं हयैः काञ्चनपरिवैगजैर्ध्वान्निशिक्षोपमैः ।

रथैर्ध्वान्द्विस्तसक्तप्रौः फयचैश्च मनारमैः ॥ २ ॥

निययू राक्षसा धीरा भावयन्तो विशो वृषा ।

राक्षसा भीमकम्पाणो राजवस्य जयैरिष्याः ॥ ३ ॥

खेनेक आभुपगास भिम्बित पड़ों हाथियों अग्निकी स्वाधके
खान देगीपमान रणों तथा दुर्सेमुख तेजस्वी मनारम कर्चनों
के युक्त वे वीर राक्षस दण विष्णुओंके अग्नी गर्जनासे गुँबले
हुए निकल । भयानक कर्म करनेवाले वे सभी निष्ठाकर राजव
की विनय गारत थे ॥ २ ॥ ॥

वानराणामपि धमूहहती जयमिच्छताम् ।

भयभायत तां सना रक्षसा घोरकम्पाणाम् ॥ ४ ॥

भयान् भीरवमी विषय धनेराठ बानरोंकी उन
निगाह मेनाने भी पर कर्म करनेवाले राक्षसोंकी मेनार भावा
रिष्य ॥ ४ ॥

एतस्मिन्नात्त मगामन्यान्पमभिभावताम् ।

रक्षसा वानराणां च इन्द्रपुत्रमजतत ॥ ५ ॥

इसके समय वः दूभेपर धान वाक्य हुए गञ्जों और
फनगमें इन्द्रपुत्र जिइ गया ॥ ५ ॥

वानराण्यपि सक्तुन्नाः प्राकारस्या मर्ही गताः ।

राक्षसान् पातयाम्बसुः खमात्सुत्य खबाहुभिः ४६ ॥

उन वृषीर लड़े हुए वानर भी अजन्त कुपित ह्ये उने
और आक्रमणमें उल्लेख परछेटेपर बैठे हुए राक्षसोंके मर्ही
बाहिसे पकड़-पकड़कर मिराने ह्ये ॥ ४६ ॥

स सप्रहारस्तुमुख्ये मांसशोभितकर्षमा ।

रक्षसां वानराणां च सम्बभूवाहुतोपमाः ॥ ४७ ॥

इस प्रकार राक्षसों और वानरोंमें बड़ा ही भयंकर
पमावन युद्ध हुआ जिससे वहाँ रक्त और मांस की खीच कम
गयी ॥ ४७ ॥

मङ्गलेन्द्रजिस्वार्थे वास्त्रिपुत्रेण रक्षसा ।

मयुष्यत महातडास्त्रम्यम्यकेण पथात्पका ॥ १ ॥

वास्त्रिपुत्र महादक छाप महातकनी रक्षस इन्द्रजि
उधी ठर मिइ गया जैसे त्रिनेत्रपारी नरादेवकीके लय
मन्त्रमयुर छड़ रहा हो ॥ १ ॥

प्रज्जेन च सम्पतिरित्य बुर्धपयो रणे ।

जन्मुप्राञ्जिनमारुधो हनूमतापि वानरः ॥ ७ ॥

प्रज्ज नामक राक्षसके छाप उदा ही रणतुर्कन वीर
छपातिने और जन्मुमास्त्रिके छाप वानर वीर हनुमानकीने युद्ध
अरम्य क्रिया ॥ ७ ॥

सगतस्तु महाद्रेधो राक्षसो रावजानुजः ।

समरे तीक्ष्णचेरगल शत्रुजेन विभीषया ॥ ८ ॥

अकत श्रेषने मरे हुए रावजानुज रक्षस विभीषण
धमराइपने प्रणव वेगमास्त्रि शत्रुधनक छाप उल्लेख ह्ये ॥ ८ ॥

तपसेन गजः सार्धं राक्षसेन महाबलः ।

मिडुम्नेत महातज्ज मीलाडपि समयुष्यत ॥ ९ ॥

महाकमी गज वन नामक राक्षसके छाप सइने ह्ये ।
महातकनी तीक्ष्ण भी मिडुम्नेत बानने ह्ये ॥ ९ ॥
वानरपुत्रस्तु सुभीयाः प्रक्षसत सुसगतः ।

सगतः समर भीमान् विरुपाक्षय ज्ञक्षमयाः ॥ १० ॥

बनराज सुभीय प्रक्षसत छाप और भीमान् बरम
खमरुमिने विरुपक्षक छाप युद्ध करते ह्ये ॥ १० ॥
अग्निपुत्रः सुदुर्धरो रक्षिपुत्रुध राक्षसा ।
सुमन्ता यक्षफणध रामण सह सगताः ॥ ११ ॥

बुद्धं वीर रश्मिकेन्द्रं रश्मिकेन्द्रं मुमुक्षु भौर यज्ञकाण्ड-
य स्य राक्षस भीरुमन्त्रकीर्णं खप वृत्तनं स्मो ॥ ११ ॥

यज्ञमुदिभ्य मन्त्रेण द्विविदनाशनिप्रभा ।
राक्षसाभ्यां सुघोराभ्यां कपियुक्त्वा समागतौ ॥ १२ ॥

मैत्रके खप यज्ञमुदि और द्विनिकं खप मद्यनिप्रम युद्ध
करने लगे । इस प्रकार इन दोनों मयानक राक्षसोंकं खप वे
दोनों कपिशिरमणि पार निहे हुए थे ॥ १२ ॥

वीर प्रथमो घोरा राक्षसो रणमुत्तरा ।
समरे तीक्ष्णवेगन नलेन समयुष्यत ॥ १३ ॥

प्रथम नामसे प्रसिद्ध एक भेर राक्षस था, जिसे रणभूमि-
में पहाल करता अत्यन्त कठिन था । यह वीर निष्पाकर
सम्प्राप्तनमें प्रवृत्त भेरावाही नखके साथ युद्ध करने लगा ॥ १३ ॥

धमस्य पुत्रो यज्ञवान् सुपेण इति विभ्रुता ।
स विपुन्मालिना सार्धमयुष्यत महाकपिः ॥ १४ ॥

धमक कृत्वा पुत्र महाकपि सुरेण राक्षस विपुन्मालीके
जय करा देने लगे ॥ १४ ॥

धानराधापणं घोरा राक्षसैरपरैः सह ।
दृष्ट्वा समीपुः सहसा युष्मन्वा च बहुभिः सह ॥ १५ ॥

इसी प्रकार अन्यान्य मयानक वानर बहुलकं खप युद्ध
करनेक वक्रात् वृक्ष-वृत्ते राक्षसकं खप खला इन्द्रयुद्ध
करने लगे ॥ १५ ॥

तथासीन् सुमहद् युद्धं तुमुक्तं रामहृषणम् ।
राक्षसा धनराणां च वीराणां जयमिच्छताम् ॥ १६ ॥

यहाँ राक्षस और वानरवीर अपनी-अपनी विजय चाहते
थे । उनमें बड़ा मर्वकर और रोमान्धकारी युद्ध होने लगा ॥
हरिराक्षसवृद्धेभ्य प्रमूष्य केदारदाहस्यम् ।
दारीरस्यपाटवहाः प्रमुक्षुः शोणितपरागाः ॥ १७ ॥

वानरों और राक्षसकं मरीचने निष्कण्ठकर बहुत-सी जल
की नदियों बहने लगीं । उनकं सिरकं बाध ही वहाँ घाबरा
(नंवार) क मयान वन पहात थे । वे नदियों सनिकोंकी
स्यकृषी काशकृत्वाका बहामें सिये लगी थीं ॥ १७ ॥

स्यवधानम्रमित् कुन्दो पञ्चणव दत्तकृतुः ।
भङ्ग गदया वीर शत्रुसैन्यविवारणम् ॥ १८ ॥

जिसे प्रथम इन्द्र वज्रमें प्रहार करत हैं उसी तरह
इन्द्रकिं भन्कारने शत्रुमन्त्रा विहीन करनेबाध वीर भङ्ग
प गदामें अचल किया ॥ १८ ॥

तस्य काञ्चनाचिप्राङ्गं रथ सादय ससारधिम ।
जयान गदया भीमानङ्गना पगवान् हरिः ॥ १९ ॥

जिन्हे कामाली वानर भीमान् भङ्गने उसकी गदा हाथसे
पहा की और उल्ले गदासे इन्द्रकिं क मुचयकिये रथके

खपि और भेङ्गकरित चूर-चूर कर डाल ॥ १९ ॥
सम्प्राप्तिस्तु प्रजङ्गेन श्रिमियाणोः समाहृतः ।
निजघानाभ्यकार्षेण प्रजङ्ग रणभूमिनि ॥ २० ॥

प्रबद्धने सम्प्राप्तिके तीन बाणोंकं धक्का कर दिया । तब
सम्प्राप्तिने भी अशक्य नामक वृद्धसे युद्धकं मुहानेपर प्रबद्धके
मार डाल ॥ २० ॥

जम्बुमाली रथस्थस्तु रथशक्त्या महायत्नः ।
विभेद् समरे कुन्दां हनुमन्त स्तानन्तरे ॥ २१ ॥

महाबली जम्बुमाली रथपर बैठा हुआ था । उल्ले कुपित
हाकर ध्वराङ्गमें एक रथ-शक्तिकं हाथ हनुमान्कीकी छली-
पर चोट की ॥ २१ ॥

तस्य त रथमस्थाप्य हनुमान् माफ्ता मजा ।
प्रममाप तडेगाशु सह तनैव रक्षसा ॥ २२ ॥

परंतु पवननन्दन हनुमान् उल्लङ्घ्य उसकं उल्ले रथपर
पदा गये और तुरंत ही मथइसे मारकर उल्लेने उस राक्षसकं
खप ही उस रथके भी चोट कर दिया (जम्बुमाली मर
गया) ॥ २२ ॥

मद्वन् प्रथमो घोरो नख सोऽभ्यनुधापत ।
नखं प्रथपनस्याशु पातयामास चभुयी ॥ २३ ॥

निष्पगात्रः दारैस्तीक्ष्णैः क्षिप्रहन्तन रक्षसा ।
वृक्षी भार मयानक राक्षस प्रथम मीरज गमना करक
नखकी मार डौड़ा । क्षिप्रवृक्षक हाथ चम्पनेपासे उस राक्षस-
ने अपने तीक्ष्ण बाणसे नखकं धारीरध भन-विच्छत कर दिया ।
उस नखने कल्लस ही उसकी दोनों भौंलें निष्कण्ठ ली ॥ २३ ॥

प्रसन्तमिव सैन्यानि प्रबस पात्रवधिपाः ॥ २४ ॥
सुप्रीवः सप्तपणैः निजघान जयन च ।

उपर राक्षस प्रबस वानरसेनाका फालकं प्राप्त बना रहा
था । यह देख वानरराज मुषीकने क्षत्रपनामक वृक्षकं उस
वंगवृक्षकं मार गिराया ॥ २४ ॥

प्रपीड्य शरवर्षेण राक्षस भीमवृशानम् ॥ २५ ॥
निजघान बिरुपाक्ष शरवर्षकं लक्ष्मणाः ।

लक्ष्मणने पहले बाणोंकी बणा करक मर्वकर दक्षिणाक
राक्षस विरुपाक्षकं वृत्त पीड़ा की । फिर एक बाणसे मारकर
उस मोठकं पाट कर दिया ॥ २५ ॥

भनिष्कृतुश्च दुष्यो रश्मिकुन्ध राक्षसः ।
सुसज्जा ययकापथ रम निर्धिभितुः शरः ॥ २६ ॥

भनिष्कृतुः दुर्जन रश्मिकुन्ध मुमुक्षु और यज्ञकाण्ड नामक
राक्षसने भीरुमन्त्रकीर्ण भजन बाणसे धक्का कर दिया ॥
तयां चमुष्यां गमस्तु शिरामि समरे शरः ।
कुन्दकानुभिश्चिच्छद् पाररन्विदिशार्थमा ॥ २७ ॥

तयां चमुष्यां गमस्तु शिरामि समरे शरः ।
कुन्दकानुभिश्चिच्छद् पाररन्विदिशार्थमा ॥ २७ ॥

तयां चमुष्यां गमस्तु शिरामि समरे शरः ।
कुन्दकानुभिश्चिच्छद् पाररन्विदिशार्थमा ॥ २७ ॥

तयां चमुष्यां गमस्तु शिरामि समरे शरः ।
कुन्दकानुभिश्चिच्छद् पाररन्विदिशार्थमा ॥ २७ ॥

तयां चमुष्यां गमस्तु शिरामि समरे शरः ।
कुन्दकानुभिश्चिच्छद् पाररन्विदिशार्थमा ॥ २७ ॥

तयां चमुष्यां गमस्तु शिरामि समरे शरः ।
कुन्दकानुभिश्चिच्छद् पाररन्विदिशार्थमा ॥ २७ ॥

उष भीरुमने कुम्भित हो अविधिलाक उमान भयंकर
 तर्षोद्वाप समराङ्गणमे उम चारुके स्त्रि द्युट सिने ॥ २७ ॥
 यज्ञमुद्रिस्तु मैत्रेव मुद्रिन्म निहता रणे ।
 पपात मरथा साश्वः सुराष्ट इव भूतछे ॥ २८ ॥

उष युद्धसमये मैत्रेने यज्ञमुद्रिपर मुनकेक प्रहार किया
 क्रिसे वह रथ और प्रहोत्तवित उषी तरह पूषीपर मित पहा
 मना देफताआध निमान प्रप्यामी हो गया ॥ २८ ॥

निकुम्भस्तु रणे मीळ मीस्यजनक्यप्रभम् ।
 निधिमेव शरैस्तीक्ष्णैः कर्मिणमियाद्युमन् ॥ २९ ॥

निकुम्भने काले क्रयलेके उष्णुषी मोषि नीळ वर्षमाळे
 नीळय रणभेप्रभं अपने वेने बणांद्वाप उषी तरह क्षिप्र-मिष
 कर दिया, जेसे युद्धेस अस्त्री प्रचण्ड क्रिणोद्वाप शरसं-
 ख छाड़ देते हैं ॥ २९ ॥

पुनः शरशतनाथ क्षिप्रहस्तो निशचरः ।
 विमेद् समरे नील निकुम्भः प्रजहास च ॥ ३० ॥

परंतु शीघ्रपूर्वक हाथ चकनेवाळे उष निशाचरने सम-
 राङ्गणने नीळक पुन ही बणोसे प्यल करदिया । एष करक
 निकुम्भ कर-करते हैंसे क्मा ॥ ३ ॥

उन्मैव रथधकेष नीलो विष्णुरिवाहव ।
 शिरश्चिच्छेद् समर निकुम्भस्य च मारथाः ॥ ३१ ॥

यह देव नीळने उषीके रथके पक्षिने मुदन्मकमे निकुम्भ
 तथा उषक शरधिया उषी तरह स्त्रि द्युट किया जेसे भगवान्
 विष्णु संग्रामभूमिमें अपने चक्रेसे देलाक मखक उठा देते
 हैं ॥ ३१ ॥

ब्रह्मानिन्मस्यशो द्विविधोऽप्यशनिप्रभम् ।
 जघान गिरिदुहण मिस्ता मथरससाम् ॥ ३२ ॥

द्विविध सर्प यज्ञ और अगनिके कमान गुह्य था ।
 उशाने क्व उष्णाक देवत-देवत भयनिग्रम नामक निशाचर
 पर एक पस्तधिनरने प्रहार किया ॥ ३२ ॥

द्विविद् धानरम् तु द्रुमयाधिनमाहय ।
 गदरानिन्मस्यो स विष्णुधाशानिप्रभः ॥ ३३ ॥

उष भगनिग्रमने मुदन्मसमें ३३ लकर मुद्द करनेवाल
 बानराज द्विविदक यज्ञद्रुम तकथी पाणोद्वाप धयक कर
 दिया ॥ ३३ ॥

स गदरभिधिराज्ञ द्विविद्ः कथममूर्धच्छाः ।
 नानन मरथ स्यान्व निजघानान्निग्रभम् ॥ ३४ ॥

द्विवि नामक गदर कमान धन पिछा हा गया था
 एगन उधे पहा अथ द्रुमा और उशाने एक समरुधम रथ
 और रक्षयदी । भगनिग्रमध मार मियाय ॥ ३४ ॥

विष्णुम्यादी रथम्यन्तु गदः परञ्जनभूयः ।

युद्धं ताडयामस नन्द व सुदुर्गुहः ॥ ३५ ॥
 रथपर बडे हुए विष्णुमाधीने अपने युद्धवैरिण कर्ष-
 ण्य सुपेणके बारबार पापक किया । स्त्रि च खेर-खेने
 गम्ता करने क्मा ॥ ३५ ॥

त रथस्यमथो बहू सुवपा बानरोत्तमः ।
 गिरिदुह्रेण महता रथमानु स्यज्जन्तव ॥ ३६ ॥

उसे रथपर बडा गेल बानरधिरामणि सुपेणने एक विष्णु
 पूर्व-शिलर चककर उषके रथके शीघ्र ही चूर-चूर कर
 डाल्य ॥ ३६ ॥

अथवेन तु सयुक्तो विष्णुमाळी निशचरः ।
 भयक्रम्य रथात् पूर्ण गदापोजिः क्षितौ क्षितः ॥ ३७ ॥

निशाचरविष्णुमाळी गुरत ही बड़ी कुर्तके लख रक्ते लीये
 चूर पहा और हाथमें गदा लकर पूषीपर लड़ा हो गया ॥ ३७ ॥

ततः क्षोभसमाविष्टः सुबेणो हरिपुङ्गवः ।
 शिबान् सुमहतीं गृह्य निशाचरमभिद्रवत् ॥ ३८ ॥

उबन्तर क्षोभसे भरे हुए बानरधिरामणि सुपेण एक
 बहुत बड़ी शिख खेकर उष निशाचरकी ओर दौड़े ॥ ३८ ॥

तमापस्तत गव्या विष्णुमाळी निशचरः ।
 वक्षस्यभिद्रवणानु सुबेण हरिपुङ्गवम् ॥ ३९ ॥

कषिभेद् सुपेणक भयक्रमण करते गेल निशाचर विष्-
 णुमाधीने लक्षक ही गवासे उन्नी छत्रीपर प्रहार किया ॥ ३९ ॥
 गदाग्रहार त भोरमचिन्त्य युवगोत्तमः ।
 ता सूर्यां पातपाम्पस तद्योरसि महामुध ॥ ४० ॥

गवाके उष भीरु प्रहारकी कुछ भी परना न करके
 बानरपर मुणने उषी परलवाकी शिखक पुनचाप उठा
 किया और उष महासमरने उसे विष्णुमाळीकी छात्रीपर दे
 मार ॥ ४० ॥

शिलाग्रहारामिहता विष्णुमाळी निशाचरः ।
 निष्पिण्डव्यो भूमौ गद्यसुनिपात ह ॥ ४१ ॥

शिलके प्रहारने पयक हुए निशाचर विष्णुमाळीकी छात्री
 चूर चूर हो गयी और वह पण्डित्य दाकर पूषीपर मित
 पहा ॥ ४१ ॥

एव तंगमरः शूरेः शूरास्त रजनीचराः ।
 दग्धे विमथितस्तत्र दत्या इव विवीकता ॥ ४२ ॥

इस प्रकार वे धारपर निष्पचर शारंगण्य बानर शीघ-
 ण्य वही इन्द्रयुद्धमें उषे तरह कुपक दिव गय जेसे
 देवप्रभण्य देल मथ हाय गय थ ॥ ४२ ॥

भर्तृध्यान्वगदाभिध शक्तिप्रमग्नायकैः ।
 भयविद्रव्याणि रथस्तथा सामामिकोटयैः ॥ ४३ ॥
 निहताः कुञ्जमत्तस्तथा बानरराक्षसाः ।

बभूवाम्युगन्धर्वेभ्यः भर्तृर्धरणिस्तथैति ॥ ४४ ॥
 बभूवायोभन घोरं गोमायुगणसेवितम् ।
 क्रयन्थानि समुत्पेतुर्विष्टु वानररक्षसाम् ।
 विमर्षे तुमुले तस्मिन् वेद्यासुररणोपमे ॥ ४५ ॥

उस समय माझे, अन्याय बाणों, गदाओं, शक्तियों,
 छत्रों, छत्रों, दूत और पैरु हुए रणों, शैली बंदों, मरे
 हुए मरुवाले शक्तियों, वानरों रक्षकों, पहियों तथा दूत हुए
 बंधुमें से बरहीपर निखरे पड़े थे, वह युद्धभूमि बड़ी
 ममानक हो रही थी । गीरहोंके समुदाय बहों सब ओर निकर
 रहे थे । वेद्यासुर-संघानके समान उस भयानक मार-झड़में

हयार्थे भीमद्वामावभे वास्मीकीये धात्रिकायै युद्धकाण्डे त्रिंशत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

इस प्रकार भीमद्वामावभे भार्गवसमयक धात्रिकायके युद्धकाण्डमें त्रिंशत्वारिंश सर्ग पूरा हुआ ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंश सर्गः

राममें वानरों और राक्षसोंका घोर युद्ध, अज्ञवके द्वारा इन्द्रजित्की पराभव, मायासे अहश्य
 हुण इन्द्रजित्का नागमय बाणोंद्वारा भीराम और लक्ष्मणको बाँधना

युष्मत्तमेव तथां तु तदा वानररक्षसाम् ।
 रविरस्त गतो रात्रिः प्रभूषा प्राणहारिणी ॥ १ ॥

इस प्रकार उन वानर और रक्षकोंमें युद्ध चमक ही रहा
 था कि सूर्यके अस्त हो गये तथा प्राणोंका उधर करनेवाली
 रात्रि का आगमन हुआ ॥ १ ॥

अप्योन्य वक्ष्यैराणां घोरान्घा जयमिच्छन्तम् ।
 उग्रवृक्ष मिश्रयुद्धं तदा वानररक्षसाम् ॥ २ ॥

वानर और रक्षकोंमें परस्पर घेर भेज गया था । दोनों
 ही पक्षोंके यथा बड़े मयकर थे तथा भयनी-भयनी सिक्क
 पारते थे अतः उस समय उनमें रात्रियुद्ध होने लगा ॥ २ ॥

रक्षसोऽनीति हरयो वानरोऽसीति राक्षसाः ।
 अप्योन्य समरे अञ्जुस्तस्मिस्तमसि दाबणे ॥ ३ ॥

उस दाबण मन्वकारमें वानरपक्षे अपने निष्कषे
 पूछते थे, क्या तुम रक्षक हो ? और रक्षकपक्षे भी पूछते
 थे, क्या तुम वानर हो ? इस प्रकार पूछ-पूछकर समराज्यमें
 वे एक दूसरेका प्रहार करते थे ॥ ३ ॥

हत शरयु शैतीति कथं विद्रवसीति च ।
 एव सुतमुखाः शम्भुस्तस्मिन् सैव्ये तु शुश्रुषु ॥ ४ ॥

केनामें सब ओर प्यारे करते आये तब क्यों मारो
 करते हो?—य मयकर शब्द सुनायी दे रहे थे ॥ ४ ॥

अस्मां काञ्चनसन्नाहास्तस्मिस्तमसि राक्षसाः ।

वानरों और रक्षकोंके मन्व (मन्वकारित पक्ष) सम्पूर्ण
 दिशाओंमें उछल रहे थे ॥ ४३-४५ ॥

निहृण्यमाना हरिपुङ्गवैस्तदा
 मिश्रचराः शोषितगन्धमूर्च्छिताः ।
 पुनः सुयुद्धं तरसा समाभिता
 विद्याकरस्यास्तमयाभिराङ्गिणा ॥ ४६ ॥

उस समय उन वानरशिरोमणियोंद्वारा मारे करते हुए
 निघानर रक्षकी मन्वसे मतवाले हो रहे थे । वे इसके अस्त
 होनेकी प्रतीक करत हुए पुनः बड़े केसते परमात्म युद्धमें
 लतर हो गये ॥ ४६ ॥

सम्भक्ष्यन्त शैलेन्द्रा वृक्षौयधिवन्द इव ॥ ५ ॥

कष्टे-कष्टे राक्षस सुवर्णम क्वचोसे विगृह्णित होकर
 उस मन्वकारमें ऐसे दिलायी देते थे, मानो पत्तकड़ी हुई
 श्लेशिकोंके बनसे मुक्त कष्टे पहाड़ हो ॥ ५ ॥

तस्मिस्तमसि तुप्याते राक्षसा मोभमूर्च्छिताः ।
 परिपेतुर्मावेगा भक्षयन्तां वृक्षजमान् ॥ ६ ॥

उस मन्वकारसे पार पना कठिन हो रहा था । उसमें
 श्लेषसे अभीर हुए महान् कैलासी रक्षक वानरोंको खाते
 हुए उनपर सब ओरसे दूट पड़े ॥ ६ ॥

ते हयान् कश्चनानीशान् प्यजांश्चाशीयिरोपमान् ।
 व्याप्तुष्य दधानैस्तीक्ष्णोर्भामकोपा ब्यवारयन् ॥ ७ ॥

उस वानरोंका क्रोध बड़ा भयानक हो उठा । वे उछल-
 उछलकर अपने तीखे बालोंद्वारा सुन्दरे सबसे उड़े हुए
 रक्षक-दण्डके बाहोंके भीर निगभर छोके समान दिखायी
 देनेपाके उनके पत्तकों भी किसी कर देत थे ॥ ७ ॥

वानरा बन्धिनो युयोऽसोभयन् राक्षसीं चमूम् ।
 कुञ्जरान् कुञ्जारोहान् पताकाप्यजिभे रथान् ॥ ८ ॥

चक्रयुद्धं दवशुभ्य दशानैः प्रथममूर्च्छिताः ।
 कम्बान् वानरान् युद्धमें उधर-सेनाके भीतर हलचल
 मचा ही । वे सन्ने-सन्ने श्लेषसे पगल हो रहे थे अतः
 हाथियों एवं हाथिसवारोंके तथा पत्तक-पत्तकसे सुप्रसिद्ध

गच्छे भी खीच छेते और दौड़ते छट-छटकर छत-छिन्न
र देते थे ॥ ८३ ॥

रत्नमयापि रामाय शरैराशीविषोपमै ॥ ९ ॥
दृश्यादृश्यानि रक्षांसि प्रवराणि निज्जन्तु ।

बड़े-बड़े एख सब कभी प्रकट होकर मुझ फलत थे और
कभी अदृश्य हो जाते थे परंतु भीष्म और द्रुपद विषकर
स्योके समान अपने शर्णाशर दृश्य और अदृश्य सभी
एखसौके मार बाँधते थे ॥ ९३ ॥

सुरासुखरविबस्त रघुनेमिसमुत्थितम् ॥ १० ॥
सराध कर्णेनेत्राणि युध्यतां धरणीरजः ।

अशोक टापस चूर्ण होकर रघुके पहियासे ठकामी हुई
भरतीभी घूळ यंत्रासोकके फल और नेत्र बर कर देती थी ॥

घतमानं तथा घारे सप्रामे लोमहर्यण ।
सधिरीष्य महाघोरा नद्यस्तत्र विस्तुस्तु ॥ ११ ॥

इस प्रकार रोमाजकरी मंसकर संग्रामके छिद्र अनेपर
बहो रक्त प्रवाहके बहानेबासी कृतभी बड़ी मंसकर नदियों
बहने लगी ॥ ११ ॥

ततो मेरीमूवृक्षना पणधाना च निभ्रवता ।
शङ्खनेमिलनारिभयः सम्भभूषादुतोपमा ॥ १२ ॥

तदनन्तर मेरी, मूवृक्ष और फल आदि बाँधकी जन्मि
हाने लगी च शङ्खके शब्द तथा रघुके पहियोंकी चर्चराहटसे
मिंसकर बड़ी अद्भुत अल पड़ती थी ॥ १२ ॥

हताना सतमान्यनां राक्षसानां च निभ्रवता ।
शस्तना वानराणां च सम्भभूषाप्र वारुजा ॥ १३ ॥

घाव हाकर फराहते हुए एखलें और शब्दोंसे लल-
निकल हुए नानरोंके अर्चनाए बहो बड़ा मंसकर प्रतीत
हवा था ॥ १३ ॥

हृतेवानरमुख्यैश्च शक्तिशूलपरम्भयैः ।
निहतः पत्ताक्षरै राक्षसैः क्षमरुपिभिः ॥ १४ ॥

शूलपुण्योपहाय च तत्रासीद् युजमेदिनी ।
सुषेया बुभिक्षेरा च शोणितान्नावकर्तुमा ॥ १५ ॥

शक्ति शूल और फलसे मारे गये मुख्य-मुख्य यान्तों
तथा यानवहाय काष्ठके गडमों डाल गये इन्कातुछर रूप
धारण करनेमें समर्थ पत्ताक्षर गडमोंसे उपसहित उठ
मुझ-भूमिमें रक्तके प्रवाहमें श्रीच हो गयी थी । उसे पहचानना
कठिन हो रहा था तथा बहो टहरना ले और मुसिकर हो गया
था । देख अन पढ़वा था उस भूमिमें शस्त्रकरी पुण्यत्र
उपहार अर्थात् निरा गया है ॥ १४ १५ ॥

सा यभूय निरा घाग हरिराक्षसहारिणी ।
क्षरुतापीच भूतानां सखेयां सुरतिष्ठमा ॥ १६ ॥

यान्तों और एखलेंका छतर करनेबासी वह मंसकर
रानी काष्ठमयिके समान समस्त प्राणियोंके लिये दुर्लभ
हो गयी थी ॥ १६ ॥

उत्सृष्टे राक्षसास्तत्र तस्मिंस्तमसि वाक्ये ।
राममेवान्मसतन्त सङ्घाः शरवृद्धिभिः ॥ १७ ॥

तदनन्तर उस वृक्ष अन्वकारमें बहो वे खर एखलें
हर्ष और उत्साहमें भरकर बाणोंकी वर्षा करते हुए भीष्मपर
ही घावा करने लगे ॥ १७ ॥

तयामाफतवां शम्भुः कुन्दानमपि गर्जताम् ।
उद्धतं इव स्तानां समुद्राणामभूत् कलाः ॥ १८ ॥

उस समय कुन्दि हो गइना करते हुए उन अन्वकारकी
एखलेंका शब्द प्रथमके समय स्यों समुद्रोंके महान् प्रोखल-
का अल पड़वा था ॥ १८ ॥

तयां रामः शरैः पद्भ्यः पद्म जघन निशास्करान् ।
निमयास्तत्रमाशेष शरैरग्निशिखोपमैः ॥ १९ ॥

उस श्रीरामचन्द्रजीने फल मारते-मारते अग्निशब्दके
समान छ मयलक बाणोंसे निम्नाहित छः निशाचरोंको फल
कर रिया ॥ १९ ॥

यज्ञशुभ्यं दुर्षेयां महापार्श्वमहोत्तरी ।
वज्रवृष्टौ महाक्षयस्यौ वासौ शुक्रसारजौ ॥ २० ॥

उनके नाम इस प्रकार हैं—दुर्षेय वीर यज्ञशु महाबलके
महादरु महाअभय बज्रदंष्ट्र तथा वे दोनों शुक्र और वरुण ॥

तं तु रामेण वाजोपैः सर्वमर्मसु खाडित्वा ।
युद्धात्पश्चात्तस्तत्र साक्षरेणायुषोऽभवत् ॥ २१ ॥

भीष्मके कामकुहोंसे घारे मर्मस्थानोंमें वाद पहुँचनेके
क्षण वे स्यों एखलें मुझ छाड़कर मारा गये इक्ष्मिन्
उनकी अयु शेष रह गयी—अन बच गयी ॥ २१ ॥

निमयास्तत्रमाशेष शरैरग्निशिखोपमैः ।
विशास्त्रकर विमलाः प्रविशाश्च महारथाः ॥ २२ ॥

महारथी श्रीरामने अग्नि शिखाने समान प्रमथित मंसकर
बाणोंद्वारा फल मारते-मारते समूर्ण शिखाओं और उनके
अशोकके निर्मल (प्रकाशपूर्ण) कर रिया ॥ २२ ॥

य स्थग्ये राक्षसा वीरा रामस्याभिमुखे स्थिताः ।
तंऽपि नद्या सम्यखाद्य पतन्ता इव पालकम् ॥ २३ ॥

दूरे भी अ-अ एखलेंभी भीष्मके अगने अड़े थे वे
भी उसी प्रकार नष्ट हो गये जैसे अगनें पड़कर पतिते
अब होते हैं ॥ २३ ॥

सुदम्पपुत्रार्थिच्छैः सम्पत्तिः सम्पत्ता ।
पभूव रजनी विद्या सघातैरिव शारदी ॥ २४ ॥

पारो अर सुवर्षमय पञ्चवास शय मित रह थे । उनकी

प्रभासे वह रक्षी सुगुनबोसे विविध निखानी देनेवाची
 धनुः शूद्रकी रात्रिके समान अत्युत्त प्रदीत होती थी ॥२४॥
 राष्ट्रसाला च निन्दवैभेरीणा चैव निःखनैः ।
 सा बभूव मिद्या घोरा भूयो घोरतराभयत् ॥ २५ ॥
 राष्ट्रबोके सिन्धुवाचों और भेरिपोंकी अत्राबोसे वह
 ममानक रात्रि और श्री भयकर हो उठी थी ॥ २५ ॥
 तत्र शश्वन् महाता प्रबुद्धेन सम्मठता ।
 त्रिभूटाः कन्दराक्षीर्णा प्रध्याहरत्रियाचला ॥ २६ ॥
 उस और फेल हुए उठ महान् शश्वसे प्रविभनित हो
 कन्दराबोसे व्याप्त त्रिभूट पर्यंत मानो किसीकी पाठका उत्तर
 देल-ख बदन पड़ता था ॥ २६ ॥
 गोष्ठाशूद्र महाकायास्तमसा तुल्यकर्षसा ।
 सम्परिष्वज्य वाहुभ्यां भक्तमन एजनीचरान् ॥ २७ ॥
 अग्न शक्ति विद्यालक्षय बानर च अन्तधरके समान
 धाम में निद्याचरोंको दोनों मुखाभोंमें कसकर मार डालते
 और उन्हें कुचे आदिबोके खिन्न देते थे ॥ २७ ॥
 महान्स्तु रणे शश्वन् निहतुं समुपस्थिता ।
 रात्रि निजघ्नानानु सारथि च हयानपि ॥ २८ ॥
 शूरी और अश्वर रणभूमिमें धनुषोंका संहार करनेके
 लिए आते बदे । उन्होंने रात्रिप्रपुत्र इन्द्रकिन्द्रे पावक कर
 दिया तथा उसके खरपि और घोड़ोंको भी यमबोके
 पहुँचा दिया ॥ २८ ॥
 इन्द्रचित्तु रय त्यक्त्या हताभ्यो हतसारथि ।
 महान्त महायस्तसार्थवान्तरधीयत ॥ २९ ॥
 अश्वके हुए घोड़े और खरपिके मारे बनेपर महान्
 धाममें पड़ा हुआ इन्द्रकिन्द्रे रयको छोड़कर वहीं अन्तर्पनि
 हो गया ॥ २९ ॥
 त्वं कम वाक्त्रिपुत्रस्य सर्वे द्वाः सहपिभिः ।
 तुष्टुष्टुः पूजनाहंस्य तौ सोभी रामकर्मणौ ॥ ३० ॥
 प्रमोदक योम वाक्त्रिपुत्र अश्वके उस पराक्रमकी
 शक्तिबोके वंशजभों तथा दोनों माई भीयम और
 अश्वपतेन की मूरि मूरि प्रयाश की ॥ ३० ॥
 प्रभाव सर्वभूतानि त्रिपुरिन्द्रजिता युधि ।
 त्वस्तं त महारामान हृष्टा तुष्टाः प्रधर्षितम् ॥ ३१ ॥
 सम्यक प्राणी मुझमें इन्द्रकिन्द्रे प्रमत्तबोके बन्ते थे
 अतः अश्वके हुए उसको पराकित हुआ देख उन महात्मा
 अश्वपर इष्टियत करके सबको बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ३१ ॥
 तदा प्रहृष्टाः कपया ससुप्रीचविभीषणा ।
 शानुसाभिति ननुबुध हृष्टा शानु पराकितम् ॥ ३२ ॥
 इन्धायें भीमजरासाबदे वाक्त्रिपुत्रके आदिकार्ये सुयज्ञाये धनुस्त्वारिणा सर्गः ॥ ३२ ॥

शानुको पराकित हुआ देख सुप्री और विभीषणसहित
 सब बानर बड़े प्रसन्न हुए और अश्वके लज्जनाद देने लगे ॥
 इन्द्रचित्तु तदनेन निर्विद्यो भीमकर्मणा ।
 सयुगे पालिपुत्रेण क्रोध बध्ने सुवाचयम् ॥ ३३ ॥
 मुद्रसकामे ममानक कर्म करनेवाळें वाक्त्रिपुत्र अश्वके
 पराकित होकर इन्द्रकिन्द्रे बड़ा भयकर शत्रु प्रकट किया ॥ ३३ ॥
 सोऽन्तर्धानगतः पापो राक्षसी रणकर्मिणः ।
 प्रहृष्टचयरो धीरो रात्रिा क्रोधमूर्च्छितः ॥ ३४ ॥
 अश्वयो निरिहान् वागान् मुमोषाशान्निध्वंसः ।
 यक्षमकुमार पीर इन्द्रकिन्द्रे ब्रह्माक्षिसे कर प्राप्त कर चुका
 था । मुझमें अधिक कर पानेके कारण वह पापी रणगुप्त शत्रुपसे
 भवेत-ख हो रहा था अतः अन्तर्पनि मिथ्याका आशय से
 अहम्स हो उसने बलक समान ठेकली और तीसे नाम
 बरखने आरम्भ किये ॥ ३४ ॥
 रामं च ब्रह्मण्य वैव घोरेर्नागमयैः शरैः ॥ ३५ ॥
 विनेत्र समरे क्रुद्धः सर्वगात्रेषु राष्ट्रसः ।
 समराङ्गणमें मुक्ति हुए इन्द्रकिन्द्रे भेर सभय बाणों
 द्वारा भीरम और अश्वगको घायल कर दिया । वे दोनों
 खुबकी बन्धु मयने सभी अश्वोंमें चोट लाकर क्षतिवत्
 हो रहे थे ॥ ३५ ॥
 मायया सङ्गतस्तत्र मोहयन् राघवौ युधि ॥ ३६ ॥
 अहृष्टया सर्वभूताना कूटयोधी मिशाखरः ।
 वचम्ब शरघण्णेन अक्षरौ रामसङ्गमौ ॥ ३७ ॥
 मातासे आशुत हो अमला प्राणियोंके लिये अहम्स होकर
 वहाँ कूटयुद्ध करनेलागे उस निद्याचरने पुत्रसकामे दोनों
 खुबकी बन्धु भीरम और अश्वगको मारमें डालते हुए उन्हें
 ल्याकर बाणोंके बल्लममें बाँध लिया ॥ ३६ ॥
 तौ तत्र पुरुषध्यात्रौ क्रुद्धेनाशीविषैः शरैः ।
 सहसाभिहती धीरी तदा प्रेक्षन्त वानराः ॥ ३८ ॥
 इस प्रकार शत्रुपसे मारे हुए इन्द्रकिन्द्रे उन दोनों पुरुष-
 प्रकर धीरोंको वरदा सर्वाक्षर बाणोंद्वारा बाँध लिया । उस
 समय बानरोंने उन्हें नारायणमें बंध देला ॥ ३८ ॥
 प्रकाशरूपस्तु यथा न शक्त-
 स्तौ पाथितु राष्ट्रसराजप्रपुत्र ।
 मायां प्रयोक्तुं ससुपाङ्गणाम्
 यवम्ब तौ राजसुतौ वुरासाम् ॥ ३९ ॥
 प्रकृतबलसे युद्ध करते समय क्या शक्यप्रककुमार
 इन्द्रकिन्द्रे उन दोनों यक्षकुमारोंको बाधा देनेमें समर्थ न हो
 सक्य तब उत्तर ममाक्षर प्रयोग करनेसे उलाहक हो गया
 और उन दोनों भाइयोंका उस वुरासाने बाँध लिया ॥ ३९ ॥

नागराजं वैचक्र बिरश्यापर खमे हुए उन दोनों अये हुए हनुमान् आदि मुष्म-मुष्म कन्त ज्वलि हो क्ये
त्रयोद्व पाये अरसे वेरकर सब कन्त खड़े हो गये । वहाँ विगारमे पड़ गये ॥ २८ ॥

हृषाये श्रीमद्दामाघने वाक्यीकीये वाक्किवाग्ने मुद्दकाग्ने पञ्चकपरिहाः खर्गः ॥ २९ ॥

इस प्रकार श्रीरामप्रियनिर्मित अर्थात्प्राप्त्यन्त अग्निवाग्ने मुद्दकाग्ने वैश्वदेवस्यै सर्वे पू। हुज् ॥ २९ ॥

षट्त्वारिंश सर्ग

श्रीराम और लक्ष्मणको मूर्च्छित देख बानरोंका शोक, इन्द्रजित्का हर्षोद्धार, विभीषणका सुप्रीवको समझाना, इन्द्रजित्का लङ्कामें जाकर पिताको शत्रुवधका इच्छान्त बनाना और प्रसन्न हुए रावणके द्वारा अपने पुत्रका अभिनन्दन

त्ता चां पृथिवीं शैव धीक्षमाणा जनौकसः ।

वृक्षु स्तवतीं पाण्येभ्रातरी रामलक्ष्मणौ ॥ १ ॥

तदनन्तर सब उपसुक्त इस वानर पृथ्वी और आकाशकी छाननी करके छोट तब उन्होंने दोनों भाई भीरम और लक्ष्मणप्र पाण्ये निंवा हुम्न देला ॥ १ ॥

धृष्टेयोपगत द्यु छुत्कम्मपि राक्षसः ।

अज्ञगामाथ स द्यु ससुमीवो विभीषणा ॥ २ ॥

जैसे क्या करके दशरथ इन्द्र प्राप्त हो गये हो उसी प्रकार वह राक्ष इन्द्रकिन्त सब भस्म प्रम क्वाकर बाणबाणों में पिता हो गया तब सुप्रीवद्विगत विभीषण भी उन क्षान्तपर ज्वप ॥ २ ॥

मैलाद्य द्विविदो मैमा सुयेण कुमुदऽह्वः ।

तूणे हनुमता साधमभशावन्त राघवी ॥ ३ ॥

हनुमानकीक साथ नीक द्विविद मैन्व कुणेन कुमुद और अह्वद हुए ही भांरुनाभकीके छिन्ने काक करने क्यो । ३ ॥

अच्छां मम्पुनिदशासो नागितन परिप्लुती ।

शरज्जास्यचित्ती स्तम्भी गायती शरतशरणी ॥ ४ ॥

जब समर के रत्ना भर गूलेने कथरप द्वारा शत्रुपक्षपर पड़ प । शायन उनका छत्र घरीर व्यात हो रहा था । ब निधत्त द्वारा भीर भीर भात स रहे प । अती चयार्थ प हो गया ॥ ४ ॥

निदृशमन्तो यथा सर्पा निदृचयी मन्त्रविषमा ।

दधिन्त्यावदिग्धाद्वा तपनीयाविव शरज्जा ॥ ५ ॥

जबक मन्त्र साध ॥ ५ ॥ और निदृचय पड़ हुए उन क्वा अदृशय पशुम मन्त्र हो गया था । उनक मन्त्र शरज्जा वरत अत्र मन्त्र ॥ ५ ॥ इन्द्र दृशय गिर हुए ही मुत्रमन्त्र पशुम मन्त्र क्वा गहन ॥ ५ ॥

ता धीक्षायन ईर गायती मन्त्रविषिता ।

तूणः क्वा परिप्लुती पाण्यन्त्याह्वन्मपयः ॥ ६ ॥

उपसुक्त ३ हुए ॥ ५ ॥ ३ ॥ ५ ॥ ३ ॥ ५ ॥

मरे नेत्रोंवाल अपने मूयप्रियासे फिर हुए वे ॥ १ ॥

राघवो पतितौ वृक्षु शरज्जासुमन्वितौ ।

बभूवुर्भयवित्तः सर्वे बानरा भविभीषणा ॥ ७ ॥

बाणोंके ज्वसे मारत होकर पृथ्वीपर पड़े हुए उन दोनों सुप्रीवी बभूवुर्भय देसकर विभीषणद्विगत सब वानर ज्वलि हो उठ ॥ ७ ॥

अन्तरिक्षं त्रिरीक्षस्तो विशा सवाद्य बालया ।

न शैन मायया छन्न वृक्षु राघवि रब्धे ॥ ८ ॥

समस्त वानर सम्पूर्ण दिशाओं और आकाशमें कर्कर द्विगत करनेस भी मायापञ्चन यक्षकुमार इन्द्रकिन्ते लभूमिमें नहीं देस पते ॥ ८ ॥

त तु मायाप्रतिफल्य माययैव विभीषणः ।

रीक्षमाणा वृक्षुप्रमे आतुः पुत्रमवस्थितम् ।

तमप्रतिमकमाप्यमप्रतिह्वद्वमहाहव ॥ ९ ॥

तब विभीषणने मायसे ही देसना आरम्भ किन्व । उस समय उन्होंने मायाय ही द्विप हुए अपने उस भूरीकण्डे क्मने लड़ा देला किन्क कर्म अनुपम थे और मुद्दककर्मों किन्क सम्पना करनेवाला कर क्वा नही ॥ ९ ॥

वृक्षान्ताहृत वीर परवानाद् विभीषणा ।

तजस्त यथासा वैव विक्षमज च ससुतः ॥ १० ॥

तब यथा और परकर्मम मुक्त किन्कीरणे मायाक द्वारा ही परदानक मन्त्राय द्विप हुए वीर इन्द्रकिन्ते देस भिन्वा ॥ १० ॥

इन्द्रजित् न्यामनः कम्पती गायती समीक्ष्य च ।

उवाच परमर्षिन्त्र हयपन् सरराक्षसात् ॥ ११ ॥

भीरम भर लक्ष्मणस मुद्दकर्ममें क्वा राव इन्द्रकिन्ते वदा दक्षमन्त्र हुए । उभय क्मन राक्षसे का ही वदान हुए धरने परकर्मम क्वा क्वा अग्नि किन्वा— ॥ ११ ॥

वृषयश्च च हन्वरीं गन्धय च महापत्नी ।

सम्वीतो मामदेषावधत्तरा रामतक्ष्मणी ॥ १२ ॥

वह देसा जिहोंने सर और रूपन क वष किना थ
वे दर्जो मर्ष महावली भीरुम और लम्पन मरे बापोंते मारे
गये ॥ १२ ॥

नेमी मोक्षयितु शक्यावतस्मात्पितृन्धनात् ।
सर्वैरपि समामाय सर्पिसङ्घैः सुपसुरैः ॥ १३ ॥

एहि खरे मुनिसन्तुहोसहित समस्त देवता और असुर भी
मा जयें तो वे इस बाण-कथनसे इन दर्जोको घुटकाए नहीं
रिझ सकते ॥ १३ ॥

यत्कृते चिन्तयानस्य शोकात्तस्य पितुमम ।
असृष्ट्वा शयन गात्रैस्त्रियामा यति शर्वरी ॥ १४ ॥
हस्तेष्वं पत्कृते लङ्का नदी बर्षास्त्रिधाकुल्य ।
सोऽप मूकहरोऽनघः सर्वेषा शमितो मया ॥ १५ ॥

जिनके करम निन्ता और छोड़ते पीड़ित हुए मेरे निता
को सारी रात शय्याका स्थान किन्ने किना ही निन्तानी पड़ती थी
तथा जिनके कारण यह खरी लङ्का बर्षाका कर्म नदीकी मूर्ति
मूकहृत् या बनी थी, हम सभी नदीका कटनेवाले उस
मनबर्षाक म्यान मैंने शान्त कर दिया ॥ १४ १५ ॥

रामस्य उन्मथणद्वैष सर्वेषा च वनौकसाम् ।
त्रिक्रमा निष्फलाः सर्वे यथा शरवि तोयदा ॥ १६ ॥

जैसे शरद्वृष्टिके खरे बादल पानी न बरवानेके कारण
भर्य होते हैं, उसी प्रकार भीरुम उन्मथ और सम्पूर्ण जानरों
के खरे कर्म-क्रम निष्फल हो गये ॥ १६ ॥

एवमुक्त्वा तु तान् सञ्चान् राक्षसान् परिपश्यतः ।
यूपपामपितान् सर्वासाङ्गयत् स च राक्षसि ॥ १७ ॥

असुरी और देखते हुए उन सब राक्षसोंते देख करकर
एवमकुमार इन्द्रजितने जानरोंके उन समस्त सुप्रसिद्ध यूथ-
परियोंको भी मारता आरम्भ किया ॥ १७ ॥

नील नवभिराहस्य मैत्र्य सद्भिविदं तथा ।
विभिस्त्रिभिरमिवधनस्तदाप परमेपुभिः ॥ १८ ॥

उस शत्रुवृत्त निगानर बीरने नीलको नी बापोंसे पश्य
करके मैत्र्य और द्विधिवको तीन-तीन उठक लक्ष्यकोशाय मार
कर उधर कर दिया ॥ १८ ॥

आम्बकन्त मोक्षेपासो विदुष्य पात्यन वससि ।
हनूमतो वेगवतो विस्सजस्य शायन् वृषा ॥ १९ ॥

महापशुर्भर इन्द्रजितने आम्बकान्त्री जालीमें एक बाजते
गहरी चोट पहुँचाकर बंगशास्त्री हनुमान्त्रीको भी इस बाण
मारे ॥ १९ ॥

गवाक्षं शरभ वैव तयप्यमितत्रिक्रमैः ।
द्याभ्यां द्याभ्या महावगो निष्पथयुधि राक्षसि ॥ २० ॥

एवमकुमारस्य मेा उस समय बहुत बड़ा हुआ था ।

उतने मुद्ररङ्गमें अमित पराक्रमी गवाक्ष और शरभको भी
दा-दा बाण मारकर फायल कर दिया ॥ २० ॥

गोस्रद्वलेद्वर वैव वालिपुत्रमथाङ्गम् ।
विन्याथे वधुभिर्वापैस्त्वरमापोऽप राक्षसि ॥ २१ ॥

तदनन्तर बड़ी उठावलीके साथ बाण चलाते हुए एवम
कुमार इन्द्रजितने पुन बहुसंख्याक बाणोंद्वारा कंगरोंके राक्ष
(गवाक्ष) को और वालिपुत्र अङ्गदका भी गहरी चोट
पहुँचायी ॥ २१ ॥

तान् वानरवरान् भित्त्वा शरैरभिशिखोमैः ।
मन्वद् वडबांस्तत्र महासखः स राक्षसि ॥ २२ ॥

इस प्रकार अभितुल्य तंभनी शक्यते उन मुख्य-मुख्य
जानरोंको पायल करके महान् पैर्यशाली और बलवान् एवम-
कुमार वहाँ खेर-खरसे गर्भय करन छत्र ॥ २२ ॥

तानर्धयित्वा बाणौघैस्त्रासयित्वा च वानरान् ।
प्रज्जहास महाबाहुर्वक्त्र चैवमघ-शीत् ॥ २३ ॥

अने बाणसमूहोंसे उन जानरोंको पीड़ित तथा मरभूत
करके महाबाहु इन्द्रजित् अहंसा करने लगा और इस प्रकार
बोध्य— ॥ २३ ॥

शरवन्धेन घोरैष मया वदौ वममुद्ये ।
सहितौ आतरायेतौ निरात्मयत राक्षसा ॥ २४ ॥

एकदो ॥ देस ओ मैंने मुद्रके गुरानेपर मरकर बाणोंके
पाहसे इन दोनों महावी भीरुम और कम्पनको एक साथ
ही बाँध लिया है ॥ २४ ॥

एवमुक्त्वास्तु ते सर्वे राक्षसाः कूटयोभिता ।
एर विस्सयमसासन्दाः कर्मणा सेन हरिर्ता ॥ २५ ॥

इन्द्रजितके देख करनेपर कूट-मुद्र करनेवाले वे सब
राक्षस बड़े पकिट हुए और उनके उस क्रमसे उन्हें बड़ा हर्ष
भी हुआ ॥ २५ ॥

विनेपुष्प महाशयान् सर्वे त उन्मथोपमाः ।
हतो राम इति ज्ञत्वा राक्षसि समपूजयन् ॥ २६ ॥

ब एक-एक मर्दोंक समान गम्भीर लरते म्हात् विन्दव
करने लगे तथा यह समझकर कि भीरुम मारे गये उन्होंने
एवमकुमारस्य बड़ा भूमिभयन किया ॥ २६ ॥

निष्पन्दी तु तथा हृष्टा आतरी रामसङ्गमपौ ।
यत्सुधायां निठच्छृण्वती हताहित्स्त्ववमम्यत ॥ २७ ॥

इन्द्रजितने भी मर यह देखा कि भीरुम और कम्पन-
दर्जो मर्ष शूचीपर निष्पन्न पड़े हैं तथा उनका स्थल भी नहीं
कस या है तब उन दर्जोको मृत हुआ ही छासा ॥ २७ ॥

हर्षेण तु समापिष्ट इन्द्रजित् समितिह्वयः ।
प्रविशेत् पुरीं लङ्का हयपन् सयनेश्वरान् ॥ २८ ॥

हर्षेण तु समापिष्ट इन्द्रजित् समितिह्वयः ।
प्रविशेत् पुरीं लङ्का हयपन् सयनेश्वरान् ॥ २८ ॥

पञ्चचत्वारिंश सर्ग

इन्द्रजित्के बाणोंसे भीराम और लक्ष्मणका अचेत इना और वानरोंका शोक करना

स तस्य गतिमन्विष्यच्छत्र राक्षसुका प्रवृत्तयान् ।
विद्वशातिषकसो यमो दश वानरयूथपान् ॥ १ ॥

कालकर अत्यन्त शक्यतासे प्रवृत्ती एककुमार भीरामने
इन्द्रकिन्का पत्र खानेके लिये दश वानर-यूथपतियोंको भ्रष्टा
री ॥ १ ॥

श्री सुपेणस्य क्षयादौ नील च प्लक्ष्माभिपम् ।
भङ्गश्च बलिपुत्र च शरभ च तरस्मिन् ॥ २ ॥
त्रिविध च हनूमन्तं सातुप्रस्थं महाबलम् ।
श्रुपथ सर्वभस्करभ्रमादिदेश परंतप ॥ ३ ॥

उनमें दो छे सुपेणके पुत्र थे और शेष आठ वानरराज
नील बलिपुत्र भङ्गश्च, वेगशम्भे वानर शरभ, त्रिविध
(सुमान्), महाबली सातुप्रस्थ, श्रुपथ तथा श्रुपमलकम्भे थे ।
शत्रुभ्रंशके लक्षण देनेवाले इन दलोंको उसका अनुसंधान करने
के लिये आका री ॥ २ ॥

ते सप्ताहृष्टा हरयो भीमालुपाम्य पावपान् ।
भाक्षरा विधिदुः सत्यं मर्गाभावा विशो दश ॥ ४ ॥
तत्र वे धमी वानर मयश्चर इष्ट उठाञ्च दलं दिशाम्भेने
लक्ष्ये हुए रहे इसके लिये भाक्षराभावाति जले ॥ ४ ॥

तेषां वेगकटां वगमिपुभिर्येगवचरैः ।
भक्षवित् परमात्रस्तु धारयामास रावणिः ॥ ५ ॥
किन्तु अश्लोकें जाता रावणकुमार इन्द्रकिन्ने अरुन्त
वेगशाम्भे बाणोंकी बर्षा करके अपने उद्यम अश्लोकेश्वर उन
वेगवान् वानरोंके वेगको रोक दिया ॥ ५ ॥

त भीमवेगा हरया नायचैः इतस्विसत्याः ।
नम्बश्चर न दृष्टुमैवैः सूर्यमिषावृत्तम् ॥ ६ ॥
जानोते अत-किञ्चिद् हा जानेपर भी वे मन्वानक काश्यासी
वानर नम्बश्चरने मेघले हके हुए सूर्यकी मूर्ति इन्द्रकिन्को
न देख सके ॥ ६ ॥

रामलक्ष्मणवारंघ सयवेहभिः शराम् ।
सूचामाशयामास रावणिः समिर्तिजया ॥ ७ ॥
कथवात् सुबनिकी यन्त्रपुत्र इन्द्रकिन् किं भीराम और
लक्ष्मण ही उनके धर्मके अश्लोकें कियीं करनेवाले बाणोंकी
शरंघ बर्षा करने लग्य ॥ ७ ॥

निरन्तरगतीरी तु साधुभी रामलक्ष्मणौ ।
मुन्दनन्द्रजिता पीरी परगैः नरतां गतैः ॥ ८ ॥
कुम्भि हुए इन्द्रकिन्ने उन दोनों वीर भीराम और
लक्ष्मणके धारणधारी धर्मशाल इष्ट अर्ध बीधा कि उनके

शरीरमें बोझ-अथ भी ऐश खान नहीं रह गया, ज्यों कथन जले
हों ॥ ८ ॥

तयोः इतज्जामोले सुखाय बभिर बहु ।
तत्रुभौ च प्रकशोले पुष्पिस्तपिव किंशुकी ॥ ९ ॥
उन दोनोंके मन्त्रोंमें जो बात हा गये थे, उनके लक्ष्मी
बहुत रक्त करने लग्य । उस समय वे दोनों माई लिये हुए
गे पञ्चरा हृष्टके समान प्रकाशित हो रहे थे ॥ ९ ॥

ततः पर्यन्तरकाशा भिष्ठाञ्जन्मयोपमः ।
रावणिभातरौ वाक्पयमन्तर्धानस्तोऽङ्गकीर्त् ॥ १० ॥
इसी समय बिलके नेत्रमात्र कुछ छत्र थे और और
खानते अटकर निकले गये क्रोमकोंके डेरकी मूर्ति जन्म वा।
वह रावणकुमार इन्द्रकिन् मन्त्रधान-अन्वयाने ही उन दोनों
माइयोंसे इष्ट प्रकार बोझ—॥ १ ॥

सुष्यमानमनाच्छर्ष्य शक्रेऽपि विद्वेश्वर ।
प्रन्दुमस्तवित्तुं वापि न शक्तः किं पुनर्युवाम् ॥ ११ ॥
शुद्धके समय अस्मत्त हो जानेपर तो सुने वक्ष्यत इष्ट
भी नहीं देख या पा सक्ता; किन्तु हम दोनोंकी क्या शक्ति
है ॥ ११ ॥

प्रापिताबिबुशाङ्गल राघवी कङ्कपणिना ।
एव रोवपरिस्थिता नयामि यमसाङ्गनम् ॥ १२ ॥
यैने हम दोनों गुरुप्रियोंको कंकणमुक्त बालके लक्ष्मी
में पैज किया है । मन्त्र रोते भरकर मैं अभी तुम दोनोंको
कमलके मेले देवा हू ॥ १२ ॥

एवमुक्त्वा तु धर्मशौ भातरौ रामलक्ष्मणौ ।
निर्विमेघं निस्तीर्णवैः प्रमहर्षं ननात् च ॥ १३ ॥
ऐश कहकर वह धर्मके शत्रु दोनों माई भीराम और
लक्ष्मणको देने बाणोंसे बीजने अर्ध और हर्षक अनुभव करते
हुए और-करते गर्भना करने लग्य ॥ १३ ॥

भिष्ठाञ्जन्मपदयामो विस्तरार्थं विपुल धनुः ।
भूय एव शरान् धोरान् विससर्ज महामुध ॥ १४ ॥
अट-अट श्रेयस्की राशिके समान कथ्य इन्द्रकिन् किं
भयने विहाय धनुषको पैककर उत महाभयने धर बाणोंकी
बर्षा करने लग्य ॥ १४ ॥

ततो मर्मसु मर्मको मञ्जयन् निशिलाभ्यारान् ।
रामलक्ष्मणयोर्धीरो ननात् च मुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥
मर्मसङ्घमें बननेवाला वह वीर भीराम और लक्ष्मणक
मर्मस्थानोंमें अपने पैने बाणोंमें बुधवा दुःख शरंघ बर्षा
करने लग्य ॥ १५ ॥

यदी तु शरत्कथनं तद्युगी रणमूधनि ।
 निमेगान्तरमाधेष्य म शेकनुरयेक्षितुम् ॥ १६ ॥
 युद्धके मुहानेर बाणक नन्वनेसे ईषे हुए ये दनों मनु
 फळ मारत-मारते देखे दयाका पहुँच गये कि उनमें भौल
 उदाकर देखनेकी भी शक्ति नहीं ख गमी (वास्तवमें यह
 उनकी मनुष्यताका नाश करनेवाली स्त्रीजामात्र थी । न तो
 झकके भी काबु है । उन्हें येन बीच उल्लास था !) ॥ १६ ॥
 छयो विभिन्नसयाहो शरशल्याचिती कृती ।
 पञ्चमयिय महेन्द्रस्य रज्जुमुक्ती प्रकम्पिती ॥ १७ ॥
 इस प्रकार उनका खर अङ्ग विभ गये थे । बाणोंसे
 म्यत हो गये थे । वेरसीसे मुक्त हुए देवराज इन्द्रके दो
 जनेके कम्पन करित होने लगे ॥ १७ ॥
 ती सम्प्रचलितौ धीरी मर्मभेदेन कश्चित् ।
 निपतनुमहृष्याती जगत्यां जगतीपती ॥ १८ ॥
 ये महान् पनुर्धर धीर भूयात् मर्मस्त्रके भेदनेसे विच-
 क्ति एवं कृशम्य हा प्रक्षीर मिर पड़े ॥ १८ ॥
 तो धीरशयने धीरी शयामी कश्चिरोक्षिती ।
 गण्यस्त्रिसबाह्ववाती परमपीक्षिती ॥ १९ ॥
 युद्धभूमिमें धीररथमार खड़े हुए ये दनों धीर रक्षते
 नरा उठे थे । उनके खरे अङ्गोंमें पाणरूपधारी नाग मिरत
 हुए थे तथा ये अत्यन्त पीड़ित एवं म्पिन हो रहे थे ॥ १९ ॥
 महाविद्य तयागत्रे यभूवाङ्गुलमन्तरम् ।
 नानिर्विण्ण म खापरस्तमाकरामाद्विद्विर्गः ॥ २० ॥
 उनके धीरतेमें एक अङ्गुल भी अङ्ग देखे नहीं थी
 न पायमें किसी न हो तथा हाथाक अग्रभागका कर भी
 अङ्ग पथ नहीं था न गणोंमें विरीध अपना दुग्ध न
 दुग्ध ॥ २० ॥
 ती तु मृग्य निहता रक्षसा कामकृपिणा ।
 भगूकमुद्रुपतुस्तीम जल प्रस्त्रणवापिय ॥ २१ ॥
 उन हरने का निदान रहते है ग्नी प्रार ४ दनों
 का इच्छानुसर कर पारक करनेका उठ मू रक्षके यनों
 म फल हा वेन काम रक्षकी भाग रहा रहे ॥ २१ ॥
 पयन प्रथम रामा विद्या ममसु मागवाः ।
 श्यायिन्द्रजिह्व यन पुरा गथा विन्निद्रित ॥ २२ ॥
 किमपि वे इन्द्र पयन किंच था उठ इन्द्र
 किंच कथाके न उठ हुए कथ इन्द्र ममस्त्रके मन्त्र ।
 एतक एत ए म्पेयम ही पयागती हुए ॥ २२ ॥
 रक्षमुद्रु प्रमन्वाप रजागन्निभिरागुः ।
 मग रथमग रन्तर इन्द्रि शरणि ।

धिष्याथ वत्सदन्तीद्व सिंहवृष्टिः धुरस्तथा ॥ २३ ॥
 इन्द्रकिन्ने उन्हें खेनेफ पंख स्वप्न अग्रभाग और धूळ-
 क खान गलि गले (भयात् धूळघ्नी मासि छिद्ररहित स्थान
 में भी प्रवेश करनेवाले) क्षीमागमी नारीचः अर्धनारीचः
 मस्त्रैः अजडिकः फसदन्तः सिर्हरू और भुर्रि अजिक
 पाणोंद्वारा फयल कर दिया था ॥ २३ ॥
 स धीरशयने शिद्वेऽयिन्यमाविष्य फरमुकम् ।
 भिन्नमुष्टिपरीणाह त्रिन्त रुक्मभूपितम् ॥ २४ ॥
 सिक्की प्रत्यन्त पदी हुई थीः किन्तु मुद्रोका कथन
 वीम्य पड़ गया था न राजों पार्श्वभाग और मगभग
 तीनों स्थानोंमें छत्र हुआ तथा सुवर्णसे नूतित थाः उस पनु
 का त्यागकर भगवान् भीरम बीररथमार खय हुए थे ॥
 यापपाठास्तर रामं पतित पुरुषयभम् ।
 स तत्र लक्ष्मणो हृद्रा निराशा जीनितऽभयत् ॥ २५ ॥
 पैसा हुआ पण किनी दूरीर निवा दे भरनेसे उनकी
 ही दूरीर पत्नीपर पड़ हुए पुरायकर भीरमम दयकर
 कक्षम पर्दा भरने कीकसे निराश हो गये ॥ २५ ॥
 राम कमलपत्राक्ष शरम्य रणतापियाम् ।
 गुशोय आतर हृद्रा पतित धरणीतल ॥ २६ ॥
 कबल पारण देनकाळ और मुद्रने क्लृप हनकाळ भरने
 भाई कमलपत्र भीरमम दूरीर पड़ा रहा लक्ष्मणम बड़ा
 एक हुआ ॥ २६ ॥
 हरयथापि ता हृद्रा सताप परमं गता ।
 शोकतादशुमुपुष्यैरमभुपूरितलभचना ॥ २७ ॥
 उन्हें उठ अवस्थामें देनाकर जानघों भी पड़ा सार
 हुआ । ये एकन आतुर होनायमें भौव भरार परभानाद
 करने लगे ॥ २७ ॥
 यदी तु ती धीरान्य गयाना
 त यानगाः मग्नाग्नाय तस्मिन् ।
 समागत्य पापुस्तुतप्रमुग्या
 शिगद्मतातः परम य जम्मुः ॥ २८ ॥

१ किन्तु अग्रभाग और धूळ क खान गलि गले (भयात् धूळघ्नी मासि छिद्ररहित स्थान में भी प्रवेश करनेवाले) क्षीमागमी नारीचः अर्धनारीचः मस्त्रैः अजडिकः फसदन्तः सिर्हरू और भुर्रि अजिक पाणोंद्वारा फयल कर दिया था ॥ २३ ॥

नमस्तस्मिन्ने वैश्वदेव वीरशाय्यपर खेये हुए उन दोनों मध्ये हुए हनुमान् आदि मुक्क-मुक्क कनर ज्यक्ति हो गये बाणयोश्च चरते अरसे परकर उन बानर खड़े हो गये । वहाँ विषयमें पड़ गये ॥ २८ ॥

हरायो श्रीमद्दामाभने वावमीकीये आदिवाग्ने मुद्दकण्ठे पञ्चकवारिः सताः ॥ २९ ॥

इस प्रकार श्रीमद्दामाभने वावमीकीये आदिवाग्नेके मुद्दकण्ठेमें पैंतसित्तौ सर्वे पू । हुम्ब ॥ २९ ॥

षट्चत्वारिंश सर्ग

भीराम और लक्ष्मणको मूर्छित देख बानरोंका शोक, इन्द्रजित्का हर्षोद्धार, विभीषणका सुत्रीयको समझाना, इन्द्रजित्का लङ्कामें जाकर पिताको अनुबन्धका इचान्त बताना और प्रसन्न हुए रावणके द्वारा अपने पुत्रका अभिनन्दन

ल्लो या पूषिर्दी वैश्व वीक्षतामा वनौकता ।

दृष्ट्या मलती यावैभारौ रामलक्ष्मणौ ॥ १ ॥

तदनन्तर जब उपर्युक्त दस बानर पृथ्वी और आकाशकी कानबीन करके छोटे तब उन्होंने दोनों भ्राई भीराम और लक्ष्मणको बाणोंसे निभा हुम्ब देला ॥ १ ॥

पुष्टेवोपरते श्वे फलकर्मणि रामस्ते ।

आश्रयामाय त वंरा ससुमीवो विभीषणा ॥ २ ॥

इसे बया करके देवराज इन्द्र घान्त हो गये हो उठी प्रकर वह उल्लस इन्द्रजित् जब अपना क्रम बनाकर बाणबाणों से बिल हो गया जब सुमीवखरित विभीषण भी उस खानपर मध्ये ॥ २ ॥

नीलज्व विविधो मैत्रः सुपेया कुमुदाङ्गवा ।

तृणं हनुमता सार्धम्लबशाश्वत राघवी ॥ ३ ॥

हनुमान्कीके साथ नील द्विविध मैत्र सुपेय कुमुद और भाङ्ग द्रुत ही भीरुपुत्रकीके छिने शाक करने लगे ।

अन्धौ मन्वनिश्यासौ शापितेन परिप्लुतौ ।

घारज्जलविती स्तम्भी शायनौ शरतस्वगी ॥ ४ ॥

उस समय वे दोनों भ्राई मृतके अण्यय होकर बाणाय्यपर पड़े थे । बाणोंसे उनका धरत धरत ब्यस्त हो था पा । वे निश्चय होकर धीरे-धीरे छल्ले अ रहे व । उनकी पेशाएँ बर हो गयी थी ॥ ४ ॥

निग्द्वसस्तौ यय सखौ निग्द्वेष्टौ मन्विक्रमौ ।

दधिरक्षापदिग्धाङ्गी तपनीयबिब पञ्चौ ॥ ५ ॥

छाकें उमल वीर लोचने और निग्द्वेष्ट पड़े हुए उन दोनों भ्राइकाच परमम मन्व ही गया था । उनका खर मङ्ग रक बहाकर उल्लेमें उन गये थे । वे दोनों दृष्टकर गिरे हुए हो सुपणमय पञ्चकें उमल खन पड़ते थे ॥ ५ ॥

तौ वीरशयने धीरौ शयनौ मन्वचछितौ ।

पूर्योः सौ परिप्लुतौ बाणव्याकुलसम्बोधनौ ॥ ६ ॥

वीरशयानर खये हुए मन्व पेशावाले वे दोनों वीर भौंके

मे नेत्रोंवाले अपने मूयपतिपासे बिर हुए थे ॥ ६ ॥

राघवो पलितौ दृष्टा शरज्जलसमन्वितौ ।

बभूवुष्यपिशाः सर्वे बानराः सविभीषणाः ॥ ७ ॥

बाणोंके जखसे आहत होकर पृथ्वीपर पड़े हुए उन दोनों रुधरीकी कण्ठोंमेंसे बेलकर विभीषणखरित उन कनर ब्यक्ति हो उठे ॥ ७ ॥

अन्तरिक्ष सिद्धिस्तो विशाः सदाश्च बानराः ।

न वैर्न मायया छल्ल दृष्टु रावणि रणे ॥ ८ ॥

समस्त बानर सम्पूर्ण विशाओं और आकाशमें बरवार इक्षिात करनेपर भी मायाअन्न यक्षकुमार इन्द्रजित्को लभूमिमें नहीं देख पाते थे ॥ ८ ॥

त तु मायाप्रतिच्छल्लं मायैव विभीषणा ।

वीक्षतामो वृश्यांमे आतुः पुक्कमबसिस्तम् ।

कमप्रतिमकर्मोपमप्रतिदृष्टमाहवे ॥ ९ ॥

तब विभीषणने मामासे ही बेलना आरम्भ किया । उस समय उन्होंने मामासे ही छिपे हुए अपने उस मतीकेछे खमने लडा देला किजक कर्म अनुपम से और पुद्गल्यकमें बिलक खमना करनेवाला कोई माया नहीं था ॥ ९ ॥

वृश्यान्विरित वीर परवृश्यात् विभीषणाः ।

तच्छा पशसा वैश्व किञ्चमेव च ससुता ॥ १० ॥

केव नश और परवृश्यासे पुक्क विभीषणने माणाके हाथ ही बरवानके प्रम्यकसे छिपे हुए वीर इन्द्रजित्को देख किया ॥ १० ॥

इन्द्रजित् त्वश्वना कर्मतौ शायनौ समीक्ष्य च ।

उवाच परममीष्टो हयपन् सर्वपक्षतान् ॥ ११ ॥

भीराम और लक्ष्मणको मुद्दकर्मिमें खेते देख इन्द्रजित्को वही प्रकण्ठत हुई । उसने उमल रुधरीका हर्ष बहाते हुए अपने पञ्चकण्ठ पर्यन आरम्भ किया— ॥ ११ ॥

हृयपय्य च हन्तारी करस्य च महाबली ।

साक्षिती मामकैर्वाणैर्भारौ रामलक्ष्मणौ ॥ १२ ॥

एह देखा भिन्नोने कर और रूपवन्न वच किमा थ
वे वानो माइ महाकधी भीरम अर सम्मन्न नर बाणोसे मारे
गये ॥ १२ ॥

नेमी मोहयित्तु दाप्यावेतस्साविपुयम्भनात् ।
सर्वेपि समागम्य सविस्त्राः सुरासुरै ॥ १३ ॥

परि धर मुनिवन्मोहयित समस्त देवता और अमुर भी
था सर्वे तो ये इस बाण-कर्मसे इन दानोंका घुटघराय नहीं
रिख्य सक्त ॥ १३ ॥

यत्कृत चिन्तयानस्य शोकर्वरस्य पितुमम ।
बस्यूदा शयन गात्रैस्त्रियामा याति शर्वरी ॥ १४ ॥

हृत्स्नेप यत्कृत बह्ना नदी वयास्त्रिवाह्वुः ।
सोऽय मूढहरोऽनयः सर्वेषा शमितो मया ॥ १५ ॥

पवित्रक करण विन्दा और शोकरसे पीडित हुए मरे विदा-
क वारी उत धन्याक सप क्रिय विन्दा ही विदानी पवती थी
तथा किके करण यह धारी बह्ना नद्याधममे नदीकी मंति
मकुड या करती थी हम सभी बहक कटनेवाछ उत
अनपेध अत्र मने शान्त कर दिया ॥ १४ १५ ॥

यमस्य छस्मपस्यैव सर्वेषा च बलीकखाम् ।
विश्रम्य निष्पन्नाः सर्वे यथा शरत्रि तोयवा ॥ १६ ॥

जैसे शरत्रयुक्त करे बाहक पानी न बखानेके करण
मर्ये होते हैं उही प्रकार भीरम सम्मन्न और सम्पूर्ण वानरों-
के करे सम्मन्न निष्पन्न हो गये ॥ १६ ॥

एवमुक्त्वा तु तान् सवान् राज्ञस्त्वान् परिपश्यत ।
यूधपानपितान् सर्वास्त्राडयत् स च रावणिः ॥ १७ ॥

मन्थि अर देखत हुए उन उन राक्षसेसे पेश करके
एवमुक्त्वा इन्द्रकिन्ते वानरोंके उन समस्त मुपसिद्ध यूध-
पतिसौम्य भी मत्तना अररम किया ॥ १७ ॥

नील मवभिराहत्य मैत्रु सहिविद् तथा ।
त्रिभिस्त्रिभिस्त्रिभिस्त्रिभिः परमुभिः ॥ १८ ॥

उत धनुमुरन मित्राकर धीरने नीलक नी सपसे पयक
करके मैत्रु और त्रिभिदक तीन-तीन उक्त सपसौहाय मार
कर संप्त कर दिया ॥ १८ ॥

आम्यवन्न महध्यासो भिदूश्च पाप्यन यज्ञसि ।
दनुमतो घगबतो विससत्र शरान् दृञ्च ॥ १९ ॥

महापनुष इन्द्रकिन्ते अम्भपानुषी कर्त्तमिं एक सपसे
गरी च्छ पट्टुचारर काणासी इनुमनबीक नी दत सप
मार ॥ १ ॥

गवाह शरभ चैव त्वय्यमितिश्रमो ।
द्राम्यां द्राम्या महायगात्रिव्याधयुधि रावणिः ॥ २० ॥

यन्पुमारम मेग उव सम्य बहुत यहा कुम्भ था ।

उठने गुह्यसख्ये अमित पराकपी गवाह और धारमम भी
द-श बाण मारकर पापक कर दिया ॥ १ ॥

गोत्याह्लोदधर चैव शक्तिपुत्रमयाह्वम् ।
विश्याधे बहुभियार्णैस्त्वरमाणोऽप्य रावणिः ॥ २१ ॥

तदन्तर बाही उद्वस्मकीक सप बाण चञ्चत हुए रावण-
कुमार इन्द्रकिन्ते पुन बहुसख्यक बाणोंकाप सगुणके राव
(गवाह) से और शक्तिपुत्र अह्वदध भी गहरी चोट
पट्टुचापी ॥ २१ ॥

तान् धामरववान् भिस्वा शरैरन्दिदित्स्त्रोपमैः ।
मन्थद् बह्वबास्तत्र महासस्यः स रावणिः ॥ २२ ॥

इस प्रकार अमितपुन वेदनी सपसे उन मुख्य-मुख्य
वानरोंके पयक करके महान् धैर्यधामी और कम्बान् राज-
कुमार वहाँ और-अरसे गार्त्ता करने लग्य ॥ २२ ॥

तामस्मिन्ना वाणोपैक्यासयित्वा च वानगन् ।
प्रजहास महाबाहुर्वचम सेवमम-रीत् ॥ २३ ॥

अग्ने बाणछूनसे उन वानरोंके पीडित तथा म्भमैत
करके महाबाहु इन्द्रकिन् अहहास करने लग्य और इस प्रकार
केय-॥ २३ ॥

शरयन्धनं शारेण मया वशी चमुमुखे ।
सहितौ भ्रातरपेथौ निदामयत राक्षसा ॥ २४ ॥

राक्षसे ! देल दो, मीने गुह्यके मुहनेन म्भकर बाणोंके
पासे इन दोनों माइयों भीरम और सम्मन्नके एक सप
ही बाँध लिया है ॥ २४ ॥

एवमुक्त्वास्तु तं सर्वे राज्ञस्त्वा कृतयोभिन् ।
पर त्रिसायमापन्ना कमणा तेन हयिता ॥ २५ ॥

इन्द्रकिन्के पेश करनेपर कृत-गुह्य कटनेवाछ वे स
राक्ष बह चकित्र हुए और उसके उव कर्मसे उन्हें बहा हर्ष
मी हुआ ॥ २ ॥

विनेतुश्च महान्म्वान् सर्वे त जसद्रोपमा ।
हतो यम इति श्रवा रावणिं समपूजयन् ॥ २६ ॥

ब सप-सप मेवाके समान गम्भीर खरने महान् सिन्नाह
करने लगे तथा यह समस्तकर कि भीरम म्भ गय उठने
एवमुक्त्वा यहा अभिनन्दन किया ॥ २६ ॥

निष्पन्नी तु तथा द्यूा भ्रातरी रामत्रयमणो ।
वसुधाया निदकच्छासी हतावित्पन्धमन्यत ॥ २७ ॥

इन्द्रकिन्ते मी न्भ यह देखा कि भीरम और सम्मन्न-
दानी म्भ दूर्वान् निरन्धर यह हैं तथा उनना श्वाथ भी नही
बच रह है तब उन दानोंक म्भ हुआ ही समता ॥ २७ ॥

हर्षेण तु समापिप इन्द्रकिन् समितिश्रयः ।
प्रविशत पुरीं सद्वा हययन् सयनश्रुत्वान् ॥ २८ ॥

इत्थे सुदन्विक्री इन्द्रजित्ते बद्धा हर्षं दुःखं तथा वह
स्मान्मन रक्षन्केच हर्षं वदाता दुःखं सञ्जुपुरीमे चक्र
ग्मा ॥ २८ ॥

गमन्त्समणयोर्हृद्गु शरिरे सायकैश्चित् ।
सवर्णाणि स्वाङ्गापाम्हाणि सुमीव भयमाविशत् ॥ २९ ॥

भीयम और धरमणके शरीरों तथा सभी अङ्ग-उपाङ्गोंको
कणोंसे स्पष्ट देख सुभीतके मनमें भय उभा गया ॥ २९ ॥

तमुवाच परित्रस्त घानरेर्म्हं विभीषणः ।
सवापवदन् वीन शोकम्याकुललोचनम् ॥ ३० ॥
मरु चासंगं सुमीव वाग्भवेगो निगृह्यताम् ।

उनके मुखपर दीनता का गभी आँसुओंकी धारा का
कभी और नेत्र छोड़ते व्याकुल हो उठे । उस समय भावपूर्ण
मनमें हीट्ट हुए बानरजन्ते विभीषणने कहा—सुमीव । बरो
मत् । इत्थेले छोड़ें क्षम नहीं । आँसुओंका वह पैग रोके १ ३
पद्यप्रयापि मुञ्जानि विजयो नास्ति नैष्ठिका ॥ ३१ ॥
सभान्यशापत्रस्नाक यदि धीर भविष्यति ।
मोहमयी प्रहास्येत महात्मानो महाबलौ ॥ ३२ ॥
पर्यवस्थापयात्मानमनार्थं मा य क्षनत् ।

सत्यधर्माभिरक्षणा नास्ति मृत्युकृत भयम् ॥ ३३ ॥

धीर । सभी मुञ्जोंकी मयः ऐसी ही स्थिति छोटी है,
उनमें विजय निश्चित नहीं दुःख करती । यदि हममेंमेंका
भय होय होय तो ये दोनों महाकबी महात्मा अबस मूर्ख
त्याग हँगे । बानरजन् । तुम अपनेका और मुझ अनापको भी
हँगाओ । जो क्या कब परमि अतुरग रबत है उन्हें मृत्यु-
का भय नहीं होता है ॥ ३१-३३ ॥

पद्यमुक्त्या तल्लक्ष्य जलङ्घिन्नेन पाजिना ।
सुमीवस्य शुभे मेजे प्रममाज्जं विभीषणः ॥ ३४ ॥

देख कब्रर विभीषणने कहे मीगे हुए हाथसे सुमीव
क दोनों मुन्दर नेत्र पोंछ दिप ॥ ३४ ॥

तदा सन्निव्यमन्त्राय विद्यया परित्रप्य च ।
सुमीवनेत्रे धर्मात्मा प्रममाज्जं विभीषणः ॥ ३५ ॥

तदाभात् हाथमें कल संकर उसे मन्त्रकृत करके
परमम्य विभीषणने सुमीवके नेत्रोंमें छपया ॥ ३५ ॥

विमृज्य धृत्त तस्य क्षपिराजस्य धीमता ।
मधवीत् कालसम्प्रातमसमभ्रान्तमिदं कथा ॥ ३६ ॥

चिर बुद्धिमान् बानरजन्म मीगे हुए मुखको पोंछकर
उन्होंने निरा त्रिषी क्षणरटक यह सम्प्रेषित यत् कही-३६ ॥
न कथाः क्षपिराजंश्च धीमन्मयपरम्बितुम् ।

अतिसाहोपि कालसंस्मिन् मरणापोपक्षरथे ॥ ३७ ॥
चक्रत्सभ्राट् । यह समय परपनेका नहीं है । ऐसे समय-

में अधिक छोड़ना प्रवर्तन भी योग्य मत्र उपस्थित कर देता
है ॥ ३७ ॥

तस्मात्तुत्सुम्य वैक्षम्य सर्वकार्यं किल रात्मम् ।
क्षितं रामपुरोगाणां सैन्यसमनुक्षितम् ॥ ३८ ॥

अच्छिने उन क्षमोंके विगड़ देनाभी इत फलप्रप्तके
काइकर भीयमन्त्रकी किके अगुम अक्का लाम्बी है, उन
सेनाओंके शिवका निचार करो ॥ ३८ ॥

अथ वा रक्षतां रामो यावत्सञ्चारिष्येव च ।
उत्पलसौ हि कश्चिन्नसौ भव नौ व्यपनेष्यताः ॥ ३९ ॥

अथवा कश्चिद् भीयमन्त्रकीको नेत्र न हो तबक
इनकी रक्ष करनी चाहिये । होयमें आ जानेपर ये दोनों पक्ष-
वधी भीरु इयाय क्षय मत्र दूर कर देगे ॥ ३९ ॥

नैतत् किञ्चन रामस्य न च रामो मुमुर्षति ।
नक्षेत्रं हास्यते लक्ष्मीर्बुद्धिभा य गत्वयुषाम् ॥ ४० ॥

भीयमक क्षिये वह संकट कुछ भी नहीं है । वे मत्र
नहीं सक्ते हैं क्योंकि किन्ही आयु क्मात हो सभी है
उनके क्षिये च बुद्धिभा क्मी (शाय) है, वह इनका लग
नहीं कर पौ है ॥ ४० ॥

तस्मादाश्वासत्पारमान बलं चाश्वासय स्वकम् ।
यावत् सैन्यमि सर्वाणि पुना सख्यवत्सम्यहम् ॥ ४१ ॥

अतः तुम अपनेका रेंमाओ और अपनी सेनाको मन्त्रक
रो । तबक मैं इस परपमी हुई सेनाको फिरते पैर् वैवाक्य
शुस्कर करता हूँ ॥ ४१ ॥

एते हि फुल्लनयनस्य साक्षात्साक्षात्साक्ष्यम् ।
कर्म कर्म प्रकथितं हरयो हरिसत्तम ॥ ४२ ॥

कथिनेह ! देखा इन बातोंके मनमें मत्र क्या मत्र
है इसीक्षिने ये मॉलें सख-सखकर देसत हैं और अफली
अनापूर्वी करते हैं ॥ ४२ ॥

मां तु ब्रूय प्रधाबन्तमनीकं सगृह्णर्षितम् ।
त्यक्तुं हरयस्वयस मुक्तपूर्वामिष काजम् ॥ ४३ ॥

(अतः मैं इन्हें मन्त्रकन देने क्या हूँ) मुझे हर्षपूर्वक
इधर उधर छोड़ते देस और भरे हुए पैर् कषावी हुई सेना-
को प्रकथ देनी यन ये सभी बानर परसेकी कनी हुई माक-
की मॉति अपनी कपी मम-व्याप्तके त्याग हँ ॥ ४३ ॥

समाश्वास्य तु सुमीवं पक्षसेन्द्रो विभीषणा ।
विद्रुत वानरणीकं तत् समाश्वासयत् पुनः ॥ ४४ ॥

इस प्रकार सुमीवका अधावन दे रक्षकान विभीषणने
पामनेक क्षिये उपन हुई बानर-सेनाको फिरते कन्कन
की ॥ ४४ ॥

इन्द्रजित् तु महामाया सर्वसैन्यसमावृतः ।
वियशं नगरीं सञ्जां पितरं चाम्नुपागमत् ॥ ४५ ॥

इतर महाभाषानी इन्द्रकिं सरी सेनाके ध्य लङ्कापुरीमें
 कैय भार अपने पिताके पाठ आया ॥ ४५ ॥

तत्र रावणमासाद्य अभिवाद्य कृत्वाञ्जलिम् ।
 भस्त्रवक्षे प्रिय पित्रे निहतौ रामलक्ष्मणौ ॥ ४६ ॥

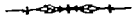
हर्षो रावणश्च पत्त पशुंश्चक्र उदने उभे हाथ खेदकर
 प्रणम किया और भीरम-लक्ष्मणके मारे बानेध प्रिय स्याद
 मुनाम् ॥ ४६ ॥

नत्पयात् ठठो इष्ट पुत्र च परिपञ्जजे ।
 रावणो रक्षसां मध्ये भुत्वा शत्रु निपातिकी ॥ ४७ ॥

राष्ट्रके भीचमें अपने दोनों शत्रुओंके मारे बानेध
 स्मान्कर मुनकर रानज हर्षिते उल्लख पदा और उदने अपने
 पुत्रके हृदयसे ध्या किया ॥ ४७ ॥

उपाभाय च त मूर्ध्नि पत्रच्छ प्रीतम्यासः ।
 पृच्छते च यथावृत्त पित्रे तस्मै न्ययव्यपत् ॥ ४८ ॥

हृत्पापे श्रीमद्रामायणे वाक्यीकीये ष्यदिकाम्ये मुद्रकाण्डे पदत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥
 इस प्रकार श्रीमत्संस्कृतनिर्मित चरित्रमालाकारिकाम्यके मुद्रकाण्डमें सप्तत्वारिंश सर्ग पूरा हुआ ॥ ४६ ॥



सप्तत्वारिंश सर्गः

वानरोंद्वारा भीराम और लक्ष्मणकी रक्षा, रावणकी आज्ञासे राक्षसियोंका सीताका
 पुष्पकविमानद्वारा रणभूमिमें ले जाकर भीराम और लक्ष्मणका दर्शन
 कराना और सीताका दुखी होकर रोना

वसिन् प्रविष्टे सङ्घाया कृत्वायं रावणारभजे ।
 रावणं परिवापाद्य रत्नसुवर्णरत्नभा ॥ १ ॥

रावणकुमार इन्द्रकिं वन भना क्रम स्नाकर सङ्घामें
 नसा गया तब धमी भेद वानर भीरपुनायकीसे चरों बनेसे
 केकर उनकी रक्षा करने को ॥ १ ॥

वनुमानह्रनो नीलः सुपेजः कुमुदो नलः ।
 गञ्जो गवस्तो गवया शरभो गन्धमादना ॥ २ ॥
 काम्यवानुपभा स्कन्धो रम्यः शतवक्त्रिपुष्पः ।
 पृथ्वानीकम्ब पलाश्य द्रुमानान्नाय सयंतः ॥ ३ ॥

सुनान्द्र महारु नील सुपेज कुमुद मङ्ग गरु
 गन्धः गम्य शरभ गन्धमादन काम्यवान् शपम स्कन्ध
 रम्य गन्धर्व और पुष्प—य सब खबरान हो भानी सेनाकी
 मूररचना करके हाथोंमें हृद्य किसे उन आरते पर्य देने
 को ॥ २ ॥

वीर्यमाणा विशः सर्वस्तिवर्गूर्ध्वं च वानराः ।
 तपस्वपि च खेष्टसु राक्षसा इति मनिते ॥ ४ ॥

वे सब वानर समूह दिशाभंगमें ऊपर-नीचे और बनाव
 काव्ये भी देखते रहते थे तथा तिनकेके भी दिख बनेपर
 वही समस्त वे कि राक्षस आ गये ॥ ४ ॥

यथा तौ शरवण्येन निम्नेष्टौ निष्प्रभौ कृतौ ॥ ४९ ॥

किर उल्लख मलक सूँफकर उदने प्रलभचित होकर उस
 पटनाका पूरा निक्षण पूछा । पृष्ठनेपर इन्द्रकिने पित्रके
 धरा कृत्वा न्ये-क-न्यो निवेदन किया और यह बताया कि
 किर प्रकर शत्रुके बन्धनमें बाँधकर भीराम और लक्ष्मणके
 निरचेष्ट एवं निस्तत्र किया गया है ॥ ४८ ४९ ॥

स हर्षवेगानुगतान्तराम्ना
 भुत्वा गिर तस्य महारयस्य ।

जहौ ज्वर वाशरयेः समुत्थ
 प्रहृष्टवाचाभिन्तन्व् पुत्रम् ॥ ५० ॥

महारणी इन्द्रकिंकी उभ बातके मुनकर रावणकी भठ-
 रात्ना हर्षके उदकेले खिन्न ठठी । दशरथमन्त्रन भीरमकी ओर
 से खे उठे मय और चिन्ता प्राप्त हुई थी, उसे उदने त्यागदिया
 और प्रलभतापूर्ण वक्त्रोंद्वारा अपने पुत्रका अभिन्तन किया ॥

रावणस्यापि संघट्टो विश्वजेन्द्रजित सुतम् ।
 मन्त्रुहाव ततः सीतारक्षणी रक्षसीस्तथा ॥ ५ ॥

उपर हर्षिते मरे हुए रावणने भी अपने पुत्र इन्द्रकिंके
 किश करके उस समय सीताकी रक्षा करनेवाली राक्षसियोंके
 बुझाया ॥ ५ ॥

रक्षस्यस्त्रिजय ष्यापि शासनात् तमुपस्थिताः ।
 तत्र उवाच ततो ह्येव रक्षसी राक्षसाधिप ॥ ६ ॥

भयदा परे ही निम्ना तथा अन्य राक्षसियों उल्लख पास
 भासी । तब हर्षिते मरे हुए राक्षस्यके उन राक्षसियोंसे
 कहा—॥ ६ ॥

हताविन्द्रजितव्याय वैश्या रामलक्ष्मणौ ।
 पुष्पक तस्मात्पेय्य दशपथ्य ग्जे हतौ ॥ ७ ॥

मुनस्त्रेमा विदेहकुमारी सीतासे बकर करो कि इन्द्रकिने
 राम और लक्ष्मणके मार डाला । किर पुष्पकविमानपर सीता
 को बंधाकर रणभूमिमें ले जाभा और उन मारे गये दोनों
 बन्धुओंके उठे दिखा दो ॥ ७ ॥

यथाभाषदधृष्ट्या नय मामुपतिष्ठते ।
 सोऽस्य भता सद्य आद्य निहतौ रणभूमिनि ॥ ८ ॥

विलम्बे आभयने गर्वमे मरकर नर मेरे पास नहीं आती भी वह इच्छा पति अपने मार्गके रूप युद्धके सुरनेतर मय गम ॥ ८ ॥

निर्वाण्डा निवर्द्धिन्ना निरपेक्षा न मैथिषी ।
मामुपस्थान्यत सीत्वा सर्वाभरणमूढिन् ॥ ९ ॥

अत्र मिथिष्यकुमारी सीताका उच्छ्री अवेष्टा नहीं रहेगी । वह उमदा आभूषणसे विभूषित हो मम और शङ्काके स्वयंकर मरी सेवामे उपस्थित होगी ॥ ९ ॥

मघ कालवश प्राप्त रूपे राम सस्मरणम् ।
अपेक्ष्य विनिवृत्ता सा चान्या गतिमपश्यती ॥ १० ॥
भक्त्यस्ता विश्रयलासी मामुपस्थास्यते स्वयम् ।

अत्र रजभूमिमें काचके अधीन हुए राम और उमदाका देवलेखन वह उनकी आरसे भक्त्य मन ह्य स्थिति तथा अगने स्थि दूष्य करे आभयन देवलेखन उपरसे निरपेक्ष हो विश्रयलास्यता सीता स्व ही मेरे पास चली आयेगी ॥ १० ॥

तस्य तद् यत्न भुक्त्वा राक्षस्य दुरामना ॥ ११ ॥
राक्षसस्तास्तथेत्युक्त्या जम्बुवै यत्र पुण्यकम् ।

तुयत्मा राजकी वह का मुनकर वे सब राक्षसियों लहृत भच्छा' कर उस स्थानपर गयीं बहों पुण्यक विमान था ॥ ११ ॥

ततः पुण्यकमाश्रय राक्षस्यो राक्षसाङ्गया ॥ १२ ॥
भद्राक्षवनिवृत्त्या तां मधिलीं समुपगमयन् ।

एतन्मै भाङ्गसे उस पुण्यकमिमानका वे राक्षसियों अश्रयदादिधर्मे देती हुईं मिथिपदकुमारीक पास च आयीं ॥ तदमाश्रय तु राक्षस्य भद्राक्षोक्षराजिताम् ॥ १३ ॥
सीतामाश्रयामामुर्विमान पुण्यकं तदा ।

उन राक्षसियोंने पतिके शास्त्रमे व्याकुल हुईं छिद्यमे लक्ष्मण पुण्यकमिमानक श्रादाय ॥ १३ ॥

ततः पुण्यकमाराप्य सीतां विव्रटया सह ॥ १४ ॥
जम्बुवर्षयितु तस्यै राक्षस्य गामलक्ष्मणी ।
राक्षसधाराप्यासत पक्षरूपरजमनिर्गमम् ॥ १५ ॥

अत्र ११ पुषारविमानक विगार विव्रटयद्वित न गतिवियों उद्दे गम ह्यभय ॥ ११ ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥
इयं पारा राक्षस उद्दे राक्षसराशाम भवदृत्त रज्जुगुमि ऊपर विचरत वरागा ॥ १६ ॥

प्रप्यारयत हृद्य ननुपां गामभयम् ।
रापया नक्षमपशय हताग्निजिता रण ॥ १६ ॥

इपर हने पर ह्य राक्षसराश गानने महामं नरय पर ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥
१६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥

विमलेनापि गरुड तु सीता विव्रटया सह ।
द्वृशा वानराणां तु सर्वे सैव निवर्द्धितम् ॥ १७ ॥

विजयके स्वयं उस विमानद्वारा सर्वों काफर लीके रजभूमिमें जो वानरोंकी सेवार् मारी गयी थी, उन सबको देखा ॥ १७ ॥

प्रहृष्टमनसश्चापि द्वृशां विरिञ्चयामन् ।
वानराश्चासिदुःखार्तान् रामसस्मरणप्रसर्ततः ॥ १८ ॥

उन्होंने मांसभक्षी रज्जुको तो मीतरसे प्रलभ देखा और भीरुम तथा हस्तलके पास लड़े हुए वानरोंको प्रलभ तु कते पीड़ित पाया ॥ १८ ॥

ततः सीत्वा द्वृशांभौ शयानी शरत्कलयौ ।
लक्ष्मणं सैव राम च विलसौ शरपीडितौ ॥ १९ ॥

उत्पन्नतर सीताने बाणवाप्यार खेये हुए होने मरें भीरुम और उमदाको भी देखा, जो वानरोंसे पीडित हो संश्रय्यत काफर पड़े थे ॥ १९ ॥

विश्वस्तकक्ष्मी वीरी विप्रविजयशरत्कलयौ ।
सायकैरिच्छसबाङ्गौ शरस्तम्भयौ क्षितौ ॥ २० ॥

उन दोनों वीरोंके कञ्च टूट गये थे, कणु-कणु जम्बु पड़े थे खनकोसे खरे भाङ्ग छिद गये थे और वे वास्तव्योंके कने हुए पुत्तकोंकी भोंति प्रकीर पड़े थे ॥ २० ॥

तौ हृष्टौ धातरी तत्र प्रवीरी पुबचर्भौ ।
शयानी पुञ्जरीकक्ष्मी कुमाराविव पाचकी ॥ २१ ॥
शरत्कलयती वीरी तथाभूली नरर्भौ ।
दुःखाता कल्प्य सीता सुभृशं विलम्पय ह ॥ २२ ॥

जो प्रसुल वीर और समस्त पुत्रोंमें उच्चम वे थे दोनों मरें कम्बुमनराम और कल्पय भक्तिपुत्र कुमार शाल और निरपेक्षकीभोंति शरकम्पूहमें खरो थे । उन दोनोंनरभक्षकोंके उठ भरस्ताने बाणवाप्यार पड़ा देखा हुआकते पीडित हुए क्षीय करवाकनक खरमें नर-बेरसे विषय करने कर्ष ॥ २१-२२ ॥

भतारमनदघाङ्गी लक्ष्मण वासितक्ष्णया ।
प्रेक्ष्य पांमुपु उरणी रुपाद् जनका/मत्रा ॥ २३ ॥
निरीय भगवती रणमक्षयना नान्दनिदीने सैव
भाने पति भीरुम और दपर कावचय धूममें धरत रण पूर हूट कर गने कर्ष ॥ २३ ॥

सपाप्यशाकप्रभिलक्ष्य ममीक्ष्य
तौ धनरां वृक्षमुनप्रभावा ।
वितरुपस्ती निधन तथा सा
दुःप्रान्तिव्य पाक्षयमिद जगाद् ॥ २४ ॥
उनके नेशन भांगू पर रहे । और हृद्य ह्य

म्याप्तसे पीडित था । वैशतामोके तुस्य प्रभावशाली उन अश्वहा कृती हुई वे तुस्य एवं चिन्तामें डूब गयी और दोनों महामोक्ष उस अकस्मात् वैशकर उनक मरणकी इस प्रकार बोलीं ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बास्मीकीये अष्टादशोऽर्शः युद्धकाण्डे सप्तदशोऽर्शः सर्गः ॥ २० ॥

इस प्रकार श्रीवल्मीकिनिमित्त भारतात्मजक अष्टादशोऽर्शः युद्धकाण्डे सैतालीसौं सर्ग पूरा हुआ ॥ ४० ॥

अष्टत्वारिंश सर्ग

सीताका विलाप और त्रिजटाका उन्हें समझा-मुझाकर भीराम-लक्ष्मणक जीवित होनेका विश्वास दिलाकर पुन लज्जामें ही लौटा जाना

भारत निहत हृद्वा लक्ष्मण च महापद्मम् ।
विलसत्य भृश सीता कुरुण शोककर्षिता ॥ १ ॥

अपने स्वामी भीरामक। तथा महाकवी लक्ष्मणको भी मारा गया देख इन्होंने पीडित हुई सीता बार-बार कुरुणात्मक निन्दन करने लगी—॥ १-॥

ऊर्ध्वरुक्षिण्य ये मां पुत्रिण्यविभवेति च ।
तद्य सवै हत रामे क्षान्तिरेऽनृतवादिनः ॥ २ ॥

अधुना लक्ष्मणके श्राव विज्ञानेन मुझे पुत्रवती और सपत्नी बताया था । आज भीरामके मारे जानेसे वे लक्ष्मण-जनी पुरुष अक्षयवादी हो गये ॥ २ ॥

यन्मनो महिर्मां ये माम्भुः पर्लां च सञ्चिषः ।
तद्य सवै हत रामे क्षान्तिरेऽनृतवादिनः ॥ ३ ॥

जिनोंने मुझे यज्ञपुत्र्य तथा विविध लक्ष्मण संपादन करनेवाले उन्मत्तवचनकी पत्नी बताया था आज भीरामके मारे जानेसे वे सभी लक्ष्मणवेषा पुरुष हूँ हो गये ॥ ३ ॥

धीरपरिचयपत्नीत्यां ये विदुर्भर्तृपुंसिजम् ।
तद्य सवै हत रामे क्षान्तिरेऽनृतवादिनः ॥ ४ ॥

जिन धर्मोंने लक्ष्मणोद्योग मुझे भीत उन्मत्तकी पत्नीयोंमें पूजनीय और पत्नीके द्वारा सम्मानित समझा था आज भीरामक न रहनेसे वे सभी लक्ष्मण पुरुष निष्पावादी हो गये ॥ ४ ॥

ऊर्ध्वः सद्यवाये ये मा क्षिप्रः क्षयान्तिकया शुभाम् ।
तद्य सवै हते रामे क्षान्तिरेऽनृतवादिनः ॥ ५ ॥

अधोऽपि शोकके विद्वान्मते अनेवाक जिन प्राणयाने मेरे क्षमने ही मुझे नित्य महाकृपणी कहा था वे सभी लक्ष्मणवेषा पुरुष अथ भीरामक मार जानेपर अक्षयवादी सिद्ध हो गये ॥ ५ ॥

इयानि खलु पद्यानि पादपार्षे कुलक्षिपः ।
व्याधिराम्येऽभिविष्यन्त नरेऽग्रेः पतिभिः सह ॥ ६ ॥

जिन लक्ष्मणभूत कर्मकाक हाथ पैर आदिमें होनेपर कुलवती क्षिप्य अने पति उन्मत्तवचनक सप सभाकीक

परपर अभिषिक्त हती है, वे मेरे दोनों पैरोंमें निमित्त करते निष्पन्न हैं ॥ ६ ॥

वैषम्यं यास्ति यैर्नार्योऽलक्षस्यैर्भाभ्यपुर्लभा ।
नारमन्स्तानि पश्यामि पश्यन्ती हतलक्षणा ॥ ७ ॥

जिन अग्रम लक्ष्मणके धरम्य खेमास्य दुर्लभ होता है और क्षिप्य विषया हो जाती है, मैं बहुत देखनेपर भी अपने अज्ञानमें ऐसे लक्ष्मणकी नहीं देख पाती, उवाचि मेरे खरे हृम लक्ष्मण निष्पन्न हो गये ॥ ७ ॥

सात्यज्जमानि पद्यानि स्त्रीणामुत्पत्ति लक्ष्मणैः ।
ताभ्यद्य निहतं रामे क्तिपानि भवन्ति मे ॥ ८ ॥

क्षिप्योऽपि हाथ पैरोंमें जो कर्मकाक निह हते हैं उन्हें लक्ष्मणवेषा विद्वानोंने अग्रम कथ्या है किंतु अथ भीरामके मार जानेसे वे खरे हृम लक्ष्मण मेरे क्षिमे स्वयं हो गये ॥ ८ ॥

केश्याः सूक्ष्माः समा नीला भ्रुवीं चासहस्रं मम ।
वृत्ते चारोत्तमे अङ्गे इन्त्यभ्याविरह्य मम ॥ ९ ॥

मेरे शिरोके बाळ महीन कण्ठर और कले हैं । माँह परस्पर बुझी हुई नहीं हैं । मेरी पिंडक्षिप्यो (पुट्टोंसे नीचेके मग) गोक-गळ तथा रामप्रति हैं तथा मेरे होंठ भी परस्पर सट हुए हैं ॥ ९ ॥

शङ्खे मेने कृती पादौ गुम्हन्मूक समी धितौ ।
अनुवृत्तनखाः क्षिप्रयाः समाभ्याङ्गुल्यां मम ॥ १० ॥

मेरे नेत्रोंके अक्षयलक भग्य दोनों नेत्र दोनों हाथ दोनों पैर दोनों गुम्ह (तलने) और दोनों कण्ठ विद्यलक एवं मांछ (पुप) हैं । दोनों हाथोंकी मैगुम्हियाँ कण्ठर एवं जिह्वनी हैं और उनक नल गळ एवं उदार चद्रावकाक हैं ॥ १० ॥

समी चाविरसी पानौ मामको ममपूषुकी ।
मग्ना चोत्संधनी नाभिः पादशोऽरुक् च मेधितम् ॥ ११ ॥

मेरे दोनों खान परस्पर सट हुए और स्पृक हैं । इनक अग्रभग्य भीतरकी अरु हवे हुए हैं । मेरी नाभि

गहरी और उसके अस्वास्ते भग उँने हैं । मेरे पासभग
तथा छती मरुज हैं ॥ ११ ॥

मम वर्णो मणिनिभो मूर्धन्यहस्वामि च ।
प्रतिष्ठितां द्वादशभिर्मांभुः शुभलक्षणाम् ॥ १२ ॥

मेरी मूर्धन्यता सरसी हुई मजिके उत्तम उत्तम
है । शरीरके गहरे क्रमक है तथा वेरोधी रतें अँगुलियों
और दोनों कल्ले—य बाजों पूर्णसे अच्छी तरह छट जाते
हैं । इन उनके करक छलनहोंने मुझे प्रामाण्य कदावा ॥

समप्रपञ्चमच्छिद्र पाणिपाद् च वर्णवत् ।
मन्त्रितस्त्येव च मा कन्यास्वस्तिका विभुः ॥ १३ ॥

मेरे हाथके एक एवं उत्तम कलिते युक्त हैं । उनमें
केन्द्र छानी रेलार हैं तथा मेरे हाथोंकी अँगुलियों का
परस्पर छटी होखी है, उच कम उनमें छनिक भी छिद्र नहीं
रह जाय है । कन्याके प्रामाण्यको काननेवाले विद्वानोंने
मुझ मन्त्र-मुक्तानपत्नी बताया था ॥ १३ ॥

अभिराम्येऽभियेको मे द्वाद्यौः पतिव्य सह ।
कृत्वात्कृत्वाऽदकं तत् सर्वं विवर्षीकृतम् ॥ १४ ॥

अभिराम्येक सिद्धान्तको काननेवाले निपुण भाषणोंने
नह बताया था कि मेरा पतिके छप रम्यमित्येक होना
छिद्र आक वे छरी अतें छटी हो गयी ॥ १४ ॥

शोभमित्वा जनस्वान प्रवृत्तिमुपसम्य च ।
तीर्त्वा सागरमस्तोम्यं भ्रातरी गोप्ये हतो ॥ १५ ॥

जान होने माहोंने मेरे छिये कस्त्यानको छन जाय
तथा मेरा समाचार प्रकर कल्लेय्य समुद्रक पर किया छिद्र
हाय । इत्या छन कर केनेके बाद योही-ही रक्षसेनाके
हाय किते इयना इनके छिये गेयबको छीनेके छ्यान था
वे होना मारे गये ॥ १५ ॥

ननु बाहवमाम्नेयमैर्नृं वापम्यमेव च ।
अर्धं ब्रह्मशिरश्चैव राजवती प्रस्थपद्यत ॥ १६ ॥

परद्व य दोनों खुवणी कन्नु तो बाहव म्पानेय
एत्र बापम्य और ब्रह्मशिर अर्ध अर्धको भी कानते थे ।
मनेसे पहले इन्होंने उन अर्धको प्रयोग क्यों नहीं किया । ॥
बहदम्यमनेन रणे मापम्य बासबोपमौ ।
मम ग्वाधानाक्षया निहतौ रमकहजनी ॥ १७ ॥

मुझ अनायाके एक भीरुम और कल्लेय इन्द्रस्य
पराक्रमी थे छिद्र इच्छिताने सर्व मापसे आहवा रहकर
ही इन्हें खभूमिने मार जाय है ॥ १७ ॥

नहि इक्षिपय म्यस्य दाक्षस्य रणे रिपु ।
जीबन् प्रतिनिबर्तेत यद्यपि स्वात्मनोजया ॥ १८ ॥

अन्याया पुत्रस्यमे इत भीरुपुत्राधिके इक्षिपये अहकर

कोरे भी धनु, यह मन्के उत्तम कानली क्यों वे छे
अभित नहीं छोट लकवा था ॥ १८ ॥

न काकस्यक्तिभारोऽस्ति कृतकस्य सुदुर्बलः ।
यव यमा सह भ्रमर रोत युधि निरक्षिताः ॥ १९ ॥

परद्व काकके छिये कुछ भी अथिफ कोय नहीं है
(यह छन कुछ कर लकवा है) । उनके छिये दैत्यो में केवल
निष्ठेय कठिन नहीं है । इह काकके ही कसमे पक्षर अथ
भीरुम अपने मातृके छप मारे जाकर पुत्रभूमिने छे
खे हैं ॥ १९ ॥

न होषामि तथा राम कल्पवं च महारथम् ।
नत्मान जननीं चापि यथा इवम् तरलिनैम् ॥ २० ॥

सा तु क्षिप्तयतं मित्य समस्तप्रमत्तनात्मम् ।
कदा दृक्षामि सीतां च कल्पव च सप्रायवम् ॥ २१ ॥

यों भीरुम, मारपी कल्पव अपने मेरे अन्नी कल्लेके
छिय भी उतना हाक नहीं कन्ती हैं किना अन्नी तरलिनै
छसुधीक छिय कर रही हैं । व तो प्रतिदिन यही लेकती होंगी
कि वह दिन कब अरेया जब कि कन्यारुम नह उमात करके
कानते छोट हुए भीरुम कल्पव और सीताके मैं
देखूँगी ? ॥ २०-२१ ॥

परिवेद्यमानां तां राक्षसी निजटाश्रयित् ।
मा विधात् कृप्य देवि भर्ताय तव जीवति ॥ २२ ॥

इह प्रकार लिजप करती हुई सीतासे उल्लेखी विद्वाने
कहा—देवि ! विधात न करो । दुम्पारे वे कीरिय बीजित
हैं ॥ २२ ॥

अरजामि च वक्ष्यामि महान्ति सवहस्रमि च ।
यथेमौ जीवतो देवि भ्रातरी रामकक्ष्मणी ॥ २३ ॥

देवि ! मैं दुम्पे करे पंसे महान् और उक्ति करय
क्याकेगी कितसे यह सुचित इत्या है कि ये दोनों मातें भीरुम
और कल्पव बीजित हैं ॥ २३ ॥

नहि कोपपीत्यमि हर्षपुस्तुक्षमि च ।
अबन्ति युधि पोषाणां मुक्तामि निवृते पतौ ॥ २४ ॥

मुझने स्वामीके मारे अनेपर पोषाओंके मुँह कथ और
हर्षभी उस्तुफवाते युक्त नहीं रहते (छिद्र क्यों वे दोनों कल्ले
पायी कन्ती हैं । इच्छिये ये काना बीजित हैं) ॥ २४ ॥

इह विमानं वैद्वि पुष्पकं नम्य ममता ।
द्विष्यं र्थां धारयेन्मद्य यद्यती गततीकितौ ॥ २५ ॥

निवेदनछिद्रि ! यह पुष्पक नामक विमान छिय है ।
नहि इन कानोंके प्राय पहले गये छते तो (वैषव्यावकामों)
नह दुम्पे बरज न कदा ॥ २५ ॥

इतभीरुप्रयाण्य हि मतोस्वप्ना निबधमा ।
सेन्य अमति संक्षेपु हतकण्ठे नौजयि ॥ २६ ॥

इयं पुनरसम्भ्रमास्ता निरुद्धिष्ठा तपसिनि ।
 सेना रक्षति काकुत्स्थो मया प्रीत्या निधेदितौ ॥ २७ ॥
 एक स्त्रिया न्न प्रधान वीर मातु आना हे तव उत्कृष्टी
 सना उत्कृष्ट और उद्योगे हीन हा युद्धक्षेत्रमें गयी तब मारी-
 मरी दिखी हे मेने कथभारक नर हो जानेपर नोका कथम
 ही बरती रती है । परतु तपसिनि ! इह सेनामें किसी प्रकार
 की परवाह या उद्देश्य नहीं है । यह इन दोनों यन्त्रकुमारोंकी
 रक्ष कर रही है । इह प्रकार मेने प्रमत्तोंक तुम्हें यह कथाया हे
 कि ये दोनों ग्राह कीर्ति हैं ॥ २६ २७ ॥

सा त्वं भयं सुविश्रम्या भनुमानैः सुखोद्यय ।
 भहतौ पश्य काकुत्स्थो स्नेहादेतत् प्रथमि त ॥ २८ ॥

इक्ष्वियं अत्र तुम इन मायी युवकी मूचना देनेवाले
 भनुमानों (हेतुओं) से निश्चित हा आशा—विधात कथ कि
 य कीर्ति हैं । तुम इन दोनों खुशंगी यन्त्रकुमारोंको इसी रूप-
 में देखा कि ये मारे नहीं गये हैं । यह बात में तुम्हें स्नेहपत्र
 कर रही हैं ॥ २८ ॥

मनुज शोकपूर्व म न च वक्ष्यामि मयिस्मि ।
 चाग्निमुखदशीकरवाह प्रविष्टासि मना मम ॥ २९ ॥

मिथिलेशकुमारी ! तुम्हारा शिष्य-स्वप्न तुम्हारे निम्न
 चरित्रक कारण बड़ा दुःखदायक बन पड़या हे । ईर्ष्यासे तुम
 मरे मनमें कर कर गयी हो । महाएव मेने तुम्हें न तो परछ
 कनी घट करा हे और न आगे ही कर्तुगी ॥ २९ ॥

मेमी शक्ती एणे जेतु सेन्त्रैरपि सुपसुरैः ।
 तावदा इरान ह्यु मया खोवीरित तय ॥ ३० ॥

उन दोनों कीर्तिका यन्त्रमिमिने इन्द्रसक्ति समूह देवता
 और अयुर भी नहीं खीत सकते । बेश कथन देलकर ही मेने
 तुम्हें य बात कही हैं ॥ ३ ॥

इदं तु सुमहश्चिधं शरैः पश्यस्य मैथिलि ।
 विसर्ज्यै पठितावती नैव कश्मीर्विभुञ्जति ॥ ३१ ॥

मिथिलशकुमारी ! यह महान् आश्चर्यकी बात ता
 देखा । बाणोंके छगनेसे ये अथेन हाकर पड़े हैं ता भी अग्नी

इत्यार्ये भीमत्रामापये वाक्यीकीये धारिकार्ये युद्धकाण्डेऽष्टकावधिः सर्गः ॥ ३८ ॥

एत प्रकर शीतलान्प्रतिनिमित्तं अर्चनप्रयत्नं अदिकल्पेन युद्धकाण्डेन नृताकीसर्वां स्तं पूरा कृता ॥ २८ ॥

(शरीरकी खूब कर्मि) इनका त्याग नहीं कर रही है ॥ ३१ ॥
 प्रायेण गतसरवाणा पुरुषाणा गत्यायुयाम् ।
 वक्ष्यमानेषु वक्ष्येषु परं भवति वैकुण्ठम् ॥ ३२ ॥
 किन्तुके प्राण निकल जाते हैं अपना किन्ती आयु समाप्त
 हो जाती है, उनके सुनोपर यदि इष्टियात किया जय तो प्राण
 वहाँ बड़ी विद्वृत्ति दिलायी देती है (इन दोनोंके सुखोंकी
 शायी क्यो-की-न्यो कनी हुई है इच्छिमे य कीर्ति हैं) ॥ ३२ ॥
 त्यज शोकः खं युष्मन् व मोहं च जनक्यात्मजे ।
 गमलक्ष्मणयोरथे नाथं शक्यमर्जवितुम् ॥ ३३ ॥

कनकशिखरी ! तुम भीयम और लक्ष्मणक सिव द्यक,
 तु म् आर मार त्याग दो । य अत्र मर नहीं सकन ॥ ३३ ॥

धुग्वा तु यद्यन तस्याः सीता सुरसुतापमा ।
 कृतावृत्तिरुवाचोमानेवमस्तिवति मैथिली ॥ ३४ ॥

त्रिबन्धकी यह बात सुनकर देवकन्याक समान सुन्दरी
 मिथिलशकुमारी खीयने हाय नईकर उसके करा-मन्त्रिन ।
 एख ही हां ॥ ३४ ॥

विमान पुष्पकं तच्छ सनिबल्य मनाजयम् ।
 क्षीया जिजटया सीता बहुभुमेध प्रवेदिता ॥ ३५ ॥

किर मनक समान वेगनाक पुष्पकमिमानक खीयकर
 त्रिबन्ध दुःखिनी खीयक बहुभुमिमें ही छ गयी ॥ ३५ ॥

तत्प्रिजटया सार्धं पुष्पकाद्यवदद्य सा ।
 भशोकयनिश्चयव राक्षसीभिः प्रवेदिता ॥ ३६ ॥

उपरवात् त्रिबन्धके साथ विमानसे उठनेपर राक्षसिमेंने
 उन्हें पुन भशोकयदिक्त्रमें ही पहुँचा दिया ॥ ३६ ॥

प्रविश्य सीता बहुभुक्षखण्डा
 ता राक्षसेन्द्रस्य विहारमूमिम् ।

सम्प्रेक्ष्य सधिन्य च राजपुत्री
 पर विषाद् समुपाजगाम ॥ ३७ ॥

बहुभुष्मक इच्छमूहने प्रधांनित राक्षसपत्नी उर विहार
 मूमिमें पहुँचकर खीयने उसे देखा और उन दोनों यन्त्रकुमारों-
 का चिन्तन करक वे महान् शोकमें डूब गयी ॥ ३७ ॥

एकोनपञ्चाश सर्ग

भीरामका सचेत हाकर लक्ष्मणके लिये विलाप करना और स्वयं प्राणत्यागका
 विचार करक वानरोंको लौट जानेकी आज्ञा देना

घारण्य शरवन्धन यज्ञी वृत्तरथात्मजी ।

इतरपकुन्वर भीयम और कथमन भयकर ठराकर

निदधसन्धौ यथा गगनी शयानी रुधिराक्षिती ॥ १ ॥

बाणके पथनमें दंभे हुएने पड़े ये । य बहुहृदान ए रहे य

और कुछप्रकार हुए सर्वके समान उँठ ले रहे थे ॥ १ ॥

मैंने त वानरभेद्योः ससुप्रीवमहावलाः ।

पतिशायं महात्मानौ तस्युः शोकपरिप्लुताः ॥ २ ॥

उन दोनों महात्माओंके चारों ओरसे बेरकर सुप्रीव यदि सभी भेद्य महात्मी वानर शास्त्रमें डूबे लड़े थे ॥ २ ॥

पतसिन्नन्तरे रामः प्रायतुष्यत धीर्यवान् ।

स्वित्वात् सखयागाच्च शरैः सदाशितोऽपि सन् ॥ ३ ॥

इसी बीचमें पराक्रमी भोगव नमपादसे बंधे होनेपर भी अपने गौरवी इदवा और शक्तिमत्ताके कारण मूर्च्छित जाग उठ ॥ ३ ॥

मता हृष्टा सरधिर नियुष्ण गाहमर्जितम् ।

भ्रातरं वीनवदम पश्यदेवयव्रातुराः ॥ ४ ॥

उन्होंने देखा कि यह सभ्यत जाणोते अत्यन्त प्रपन्न हाकर लुप्तते प्रपथ हुए पक्ष हैं और उनका चरचर पटुन उत्तर गया है अतः वे भ्रातर हाकर विजय करने लगे—॥४॥

किं नु मे सीतया कार्यं लक्ष्म्या जीवित्तन वा ।

पयान योऽथ पश्यामि भ्रातरं युधि निजितम् ॥ ५ ॥

हाथ ! यदि मुझे सीता मिल भी गयी तो मैं उन्हें लेकर क्या करूँगा ? अपना इस जीवनमें ही रहकर क्या करना है ? वह कि भ्रान्त मैं अपने पराश्रित हुए माँके मुदत्तसम्में पड़ा हुआ देन रहा हूँ ॥ ॥

शफया र्तिप्रसमा नारी मन्यन्ताके विचित्रता ।

न लक्ष्मणसमा भ्रातरं सशिवं साम्यरायिकाः ॥ ६ ॥

पार्वत्यसम्में दूधनेपर मुता सीता-सीते रूखी श्री सिद्ध शक्ती है परतु लक्ष्मणक सम्यन सहायक और युद्धकुशल भय नही मिल सकता ॥ ६ ॥

परित्यक्त्याम्यहं प्राणान् पानराणां तु पश्यत्वम् ।

यदि पश्चत्यमापन्नं मुमिञ्चानन्दपथना ॥ ७ ॥

भूमिनाक जानम्दही वदानेगम समान यदि जीवित न रहे तो मैं बलगेक देलन दएन अपने प्राणोंम परित्राग कर दूँगा ॥ ७ ॥

किं नु पश्यामि कौसल्या मातरं किं नु कर्कष्याम् ।

कथमम्या मुमिञ्चां न पुत्रदानप्रदत्वाम् ॥ ८ ॥

विपत्तनां पयमानां च पयन्तीं कुररीमिष ।

कथमाभ्यामपिष्यामि यदि पान्यामि न विष ॥ ९ ॥

लक्ष्मणक स्त्रिया र्दरे में भयना।। लोदू लमव शमन्व और कर्कषी कस वान दूय तथा मते पुत्र।। १। नेक निर उ मुद हा १७१५म। तुही मरक समन समव मर कुशीरी नभा लषी रव रषी म।। मुमिञ्चम कस ल। उ। ह। वि। ल। १५ ५५ ५५ १।

कार्यं पश्यामि शत्रुञ्च भरतं च बलशिवम् ।

मया तत्र वर्गं पश्यो विष्व तेषाम्भ्रानताः ॥ १० ॥

मैं यद्यत्मी मरत और शत्रुपत्ते कि तत्र वह वह कर्कष कि लक्ष्मण मेरे लक्ष कनको गने वे शिद मैं लड़े नहीं सोकर उनके बिना ही खैरे भाव हूँ ॥ १ ॥

उपसम्मं न शक्यामि सोढुमम्यसुमिषम् ।

इहैव वृथ त्यक्ष्यामि यदि जीवितुमुच्छे ॥ ११ ॥

भोगेना मनाओंकहित मुमिनात्र उपसम्म मैं नहीं कर सकूँगा अतः वही इस देहक त्याग दूँगा । अब मुझमें जीवित रहनेका उत्साह नहीं है ॥ ११ ॥

धिष्ठां सुफुलकर्मोपमन्त्र्यं पतङ्गतं ज्ञाती ।

लक्ष्मणः पतितः शतं शरतस्यं गतानुवत् ॥ १२ ॥

भुञ्ज-जेते तुष्कर्मों और भनार्यंम विचकर है लक्ष्मण कारण करमन मेरे हुएक समान जान-हम्यक से रहे हैं ॥ १२ ॥

स्य नित्य सुविपुष्ण महामायासपति लक्ष्मण ।

गतासुनाथ शक्तोऽसि ममस्तम्भिभाषितुम् ॥ १३ ॥

समस्त ! वन में अत्यन्त विपत्तमें हूँ अतः वह तू लक्ष्मण तुम्हीं क्या मुझे भ्रान्तात्म देत थ परतु अब तुम्हारे प्राण नहीं रहे, इसलिये अब तुम मुझ दुःखिजन का करने में ही अहम्यं हा ॥ १३ ॥

यन्नाथ पशुवा युद्धे निहत्य राक्षसाः किली ।

तस्यामबाप शूरस्त्वं दोषे बिलिहताः हारी ॥ १४ ॥

यंय ! किं लभुमिमें भाव तुमने बहुत-से राजाओंके मर गिराया था उक्षीमें हारवीर हार भी तुम लक्ष्मणक ली अकर ख रहे हा ॥ १४ ॥

शपानः शरतस्यऽसिन् सदाशित्यस्मिन्नुत् ।

शरभूतस्तथा भासि भास्कोऽस्तमिष जज्ञ ॥ १५ ॥

इस वान-शायनर तुम लुप्तते सकरव होकर पड़े हो और पत्राते प्यात हार अन्धपक्षमें अतः हुए सर्वके समान मज्जित हा रहे हा ॥ १५ ॥

पापमिहितममस्वाथ शत्रुपीड भाषितुम् ।

कथा आनुवत्त यस्य हरिरागण सृष्यत ॥ १६ ॥

भयानमें तुम्हारा मर्मस्वस विहीन हो गया, इकाँच तुम परों वान भी नहीं कर सकते । यद्यपि तुम बल नहीं रहे हा, तथापि तुम्हारे नेकोंके लक्ष्मण तुम्हारी मार्मिक पीडा सुनित हा रही है ॥ १६ ॥

पश्य मा वन पान्तमनुयाया महायुतिः ।

भ्रमप्यनुयायामि तर्धन यमत्तपम् ॥ १७ ॥

किं तत्र नदी पया वन लमव महातकरी लक्ष्मण

मरे पीछे-पीछे लगे अथ ये उठी प्रकार मी भी यमलोको
इतक अनुसरण करेगा ॥ १७ ॥

इत्यनुप्राप्तो मित्य मां च नित्यमनुप्रता ।
इभामय गतोऽयस्यां ममत्प्रार्थस्य तुर्नयैः ॥ १८ ॥

मरे मिय वस्तुचन ये और सदा मुझमें अनुपरा एव
भक्तिमय रहते थे, वे ही कृपमय अथ मुझ अनंतरी
तुर्नयिणोंक कारण इत अनस्ताको पहुंच गये ॥ १८ ॥

सुदकटेऽपि वीरेण लक्ष्मणेन न सकरे ।
पर्यं विप्रिय चापि भाविता तु कदाचन ॥ १९ ॥

मुझे एव्य कदा प्रसंग याद नहीं आया जब कि पीर
उत्समने अस्फुट कुचित होनेपर भी मुझ कभी कदाई कठोर या
भाविता कदा कदाभी हो ॥ १ ॥

विससर्जकयोगेण पञ्च बाणशरानि य ।
इत्येवंप्रथिविकस्तास्मात् कर्तवीयाबा लक्ष्मणः ॥ २० ॥

पञ्चस्य एक ही वेगसंत पांच सौ बाणाभी कया करत थे
इत्येव प्रतीषियामें कर्तवीयें भर्जुनस भी बंदकर थे ॥ २ ॥

मल्लैरभ्यामि यो हन्यात्प्राणापि महात्मनः ।
साऽप्यमुष्यां हत रोत नहाहंशयनोचितः ॥ २१ ॥

जो मरन अर्कोद्वय महात्म इत्येक भी अर्कोका कट
करते थे व ही बहुमुख्य शय्यापर खनि योग्य लक्ष्मण अथ
कथ मने कटकर पृथीपर ख रहे हैं ॥ २१ ॥

तनु मिष्या प्रलस्य मा प्रथक्यति न सशायः ।
यामया न कृतो राजा राक्षसानां निर्भीषणः ॥ २२ ॥

मैं किरीटनका राक्षसका उक्त न बना सका अथ मया
ए कृता प्रथम मुझे सदा कथता राक्ष इममें कृत्य नहीं है ॥

यस्मिन् मुहूर्ते सुग्रीव प्रतियातुमितोऽहंस्ति ।
मत्था हीम मया राजन् राघवोऽभिभविष्यति ॥ २३ ॥

अनराध सुग्रीव । तुम इसी मुहूर्तमें वहीसे स्पष्ट आभ
क्योंकि मरे किना तुम्हें अस्वस्थ व्यासकर एवज तुम्हाय
निराधार करेगा ॥ २३ ॥

महान् तु पुरस्कृत्य ससैन्य सपरिच्छदम् ।
त्याग्य तर सुग्रीव नीलं च मम न च ॥ २४ ॥

मित्र सुग्रीव । सदा और सामप्रियकथित भङ्गका
धने करक नस अथ नीलके लथ तुम सुभ्रुक पर
पस जाओ ॥ २४ ॥

एत हि मुमहत्कम यद्व्यपुत्कर रय ।
शूरायाम् तुप्यामि गात्रहृत्नाधिपन च ॥ २५ ॥

इकार्ये भीमहृत्मायने वाक्यीकोवे आदिकायने सुदकाचे एकोनशाखा सर्गः ॥ २५ ॥

मैं कंगूयेंके स्वामी गयाच तथा श्रुत्यम्य नम्रवचने
मी बहुत सुप्र हूँ । तुम सब क्षीणोंने सुदम कइ महान्
पुरुषार्थ कर दिलाया है जो दूसरोंके खिचे अस्फुट
हुकर या ॥ २ ॥

नह्येन एत कम मैत्रेण द्विविदेन च ।
सुद केसरिण सको घोर सम्प्राप्तिना कृतम् ॥ २६ ॥

मित्र और द्विविदेने भी महान पराक्रम प्रकट
किया है । कधी और सम्यगितिने भी समग्रक्रममें घोर सुद
किया है ॥ २६ ॥

गद्येन गबाक्षेण शरमेय गजेन च ।
मन्येन हरिभिर्युद्ध मय्ये त्यकजीवितैः ॥ २७ ॥

पद्यय कथको शरम गज तथा अन्य कानरोंने भी
मरे खिचे प्राणोंका मोह कइकर संभ्रम किया है ॥ २७ ॥

न चातिप्रमितु शक्य देव सुग्रीव मनुपै ।
यसु शक्य वयस्येन सुहृदा या पर मम ॥ २८ ॥

एत सुग्रीव तत् सर्व भवता धर्मभीरव्या ।
मित्रकार्ये कृतमिद् भवद्भिवानरपर्यभा ॥ २९ ॥

अनुकृत्या मया सर्वे यद्ये गतुमहय ।

किंतु सुग्रीव । मनुष्योंक किय देवके विधानने सर्वक्य
असम्भव है । मरे परम मित्र अथवा उक्त सुहृदक नाते तुम
जैसे बर्नीभूक पुत्रक दाय वा मुक्त किया वा सकता या
वह सब तुमने किया है । अनराधिरंगमिषा । तुम कने
मिलकर मित्रक इत कार्यका समग्र किया है । अथ मैं क्या
देता हूँ—तुम सब बर्होइच्छा हो बर्होचल आओ ॥ २८ २९ ॥

तुभ्युत्सस्य य सर्वे धामराः परिवेवितम् ॥ ३० ॥
वतयावकिरेऽभूमि नमैः कृष्णतरुजया ॥ ३१ ॥

भगवान् श्रीरामका यह किवाप नृी भोगोंवाल कि
किन कानरोंने सुना वे सब अथन नेत्रास भासू पराने स्यो ॥

तत् सवाप्यमीकानि स्युपविस्था विनीषण ।
आजगाम गवापाविस्वरित यत्र राघवः ॥ ३२ ॥

तदनन्तर समस्त सेनाभ्रम सिखापुत्रक स्थापित करक
किरीटन हाथमें गया किय तुरंत उठ न्यनार हाट अथ
बर्हो भीरमकन्नबी विद्यमान य ॥ ३२ ॥

स ह्युत्पत्ति पात्त नीत्वज्जनचयापमम् ।
थानय तुद्रुवुः सर्वे मन्यमानस्तु राघविम् ॥ ३३ ॥

कथ अथकोभी राधिक समन कृष्ण कान्तियास
निर्भीरकभी हीरकापुत्रक अथ दान सब बानर उर्है एवजमुभ
इत्येक समस्त इपर उपर भगने स्यो ॥ ३३ ॥

पञ्चाश सर्ग

त्रिभीषणका इन्द्रजित् समझकर बानरोंका पलायन और सुग्रीवकी बाह्यासे बाणबाणका उन्हे
सान्त्वना दना, विभीषणका विलाप और सुग्रीवका उन्हे समझाना, मरुदका जन्म
और भाराम-लक्ष्मणको नागपाशसे मुक्त करके बन्ध बाना

अधोनाभ महाठग्रा हरिराजा महावयलः ।
क्षिमिय व्यथित मन्य मूढयातव मौजले ॥ १ ॥

उस समय महाठग्रा महाकवी बानरराज सुग्रीवने
पड़ा—बानर । बने बधने बरषडरकी मारी दुःख नौक
इगमगने स्मृती है उकी प्रसन्न न यह इनापी सेना खसा
म्यथि हा उठा है इवन्न क्या करण है ? ॥ १ ॥

सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा याल्लुपुत्राऽइन्द्राऽप्रवीर्य ।
न त्व पश्यसि राम च लक्ष्मण च महारथम् ॥ २ ॥

सुग्रीवकी यह बात सुनकर याल्लुपुत्र भइरने करा—
क्या आप श्रीराम और नहारपी लक्ष्मणकी क्या नहीं
देख रहे हैं ? ॥ २ ॥

शरज्जास्रक्षिता वीराकुभी वृदारथात्मजौ ।
शरतस्य महारथानो शयाती रथिराक्षितौ ॥ ३ ॥

य वनों वीर महात्म्य दशरथकुम्भर रक्त भोगे हुए
शर-धम्मर परे हैं और शरथके कनुहसे म्यात हा रहे हैं ॥

धयादधीष् वाकरेन्द्रः सुग्रीवः पुत्रमङ्गवम् ।
यान्निमित्तमिद् मस्य भवितव्य भयन तु ॥ ४ ॥

उस कानरराज सुग्रीवने पुत्र भइरने कहा—पंथ । मैं
एक नहीं मानता कि सेनाने भइरथ ही मगदक मय गयी
है । किन्तु-न-त्रिती मयक करण एख इना शशिये ॥ ४ ॥

विपण्यबद्धना हात त्यक्तप्रहरणा विदाः ।
पलायन्तऽत्र हरपलासातुस्तुल्लखन्ना ॥ ५ ॥

य कानर लक्ष्मण इतने भनने-भनने इवियार डेककर
कम्पन विद्याभोगे भग रहे हैं और मयक करण भासों
घड़-घड़कर देख रहे हैं ॥

भयामयस्य न जज्ञन्त न निरीक्षन्ति पृथक् ।
धिप्रकरन्ति क्षान्ताभ्यं पतित लज्जयन्ति च ॥ ६ ॥

यभयन करते समय उन्हे एक वृक्षके कण्य नहीं
इत्ता है । न पीठकी ओर नहीं देखत हैं । एक वृक्षके
फलीत हैं और य मिर ब्या है उसे खानकर चक्र बैठ हैं
(मयक मारे उठाठक नहीं हैं) ॥ ६ ॥

पतस्त्रिघन्तर वीरा गदापाणिर्बिभीषणः ।
सुग्रीव वधयामास राघव च जयानिय ॥ ७ ॥

इस वीरने वीर विभीषण हायमे गत मिय बहों म
पहुँच और उन्हने विबन्धक भाश्याय देकर सुग्रीव तथा
श्रीकृष्णपर्वीकी भन्दुरप-काम्य की ॥ ७ ॥

विभीषण च सुग्रीव वद्वा कानरभीषणम् ।
शूक्षराज महामात सन्निपकमुखाय ह ॥ ८ ॥

बानरोंका मयभीत करनेवाले विभीषणका देखकर सुग्रीवने
भनने पर ही लड़े हुए महात्म्य शूक्षराज बन्धकले
करा— ॥ ८ ॥

विभीषणोऽप सम्प्रता य वद्वा कानरर्षभम् ।
द्रवन्त्यापतसत्रासा राघवामजरायुष्य ॥ ९ ॥

य विभीषण भाय है किन्हे देखकर बानरसिरोमणिकेने
पर उदर हुआ है कि राघवका वेदा इन्द्रजित् मय न्य ।
इवीदिये इतम मय बहुत बड़ गया है और वे मने
य रहे हैं ॥ ९ ॥

श्रीभ्रमत्वान् सुसत्रस्तान् बहुध्व निप्रधाक्षितम् ।
पयवस्थापयामासि विभीषणमुपस्थितम् ॥ १० ॥

पुम शीघ्र बन्न यह कथा कि इन्द्रजित् नहीं
विभीषण अये हैं । देख करकर बहुत मयभीत हो कम्पन
करते हुए इन सब बानरोंको सुखिर कर—मननेसे रोके ॥

सुग्रीवस्यबभूवस्तु जाम्बवानुसफरिषः ।
शान्तान् साम्बयामास सन्निवर्त्य प्रधाबतः ॥ ११ ॥

सुग्रीवके एख इनेने शूक्षराज बन्धनाने मने
हुए बानरोंको खेयकर उन्हे खन्क्या वी ॥ ११ ॥

त निवृत्ताः पुन सर्वे वामरास्यकसाधस्तः ।
शूक्षराजबन्धुत्वा त च वद्वा विभीषणम् ॥ १२ ॥

शूक्षराजकी यह सुनकर और विभीषणका अपनी भासों
देखकर बानरोंने मयम त्याग दिया तथा वे ख-के-ख मिर
लौट गये ॥ १२ ॥

विभीषणस्तु रामस्य वद्वा गार्ज शरैक्षितम् ।
सङ्गमस्य तु धर्मोत्तमा वभूव व्यथितकृता ॥ १३ ॥

श्रीराम और कम्पनके शरीरको शरसे म्यात हुआ
देख पनाय विभीषणका उस समय बरी मय्य हुआ ॥ १३ ॥

अच्छिन्नेन हस्तेन तपानेने विमृश्य च ।
शोकसम्पीडितमना करोद् विद्युच्छय च ॥ १४ ॥

उन्हने कन्ते भीने हुए उन वनों मयवीके नेत्र फेके
और मन-ही-मन शकसे पीडित हा वे रने और विद्युत
करने बने— ॥ १४ ॥

इमो लो सत्यसम्यची बिभ्रन्तो म्रियसवुगौ ।
इममवस्थां गमितौ राससैः कूटवोधिभिः ॥ १५ ॥

भाम् । किं हे मुद्र अधिक प्रिय या और जे क-
विक्रमसे सम्पन्न थे, वे ही वे दोनों माई भीराम और लक्ष्मण
मायासे मुद्र करनेवाले रामसें द्वारा इस भवत्याको पहुंचा
पिय गने ॥ १५ ॥

भ्रातृपुत्रेण सैतन तुषुप्रेण दुरात्मना ।
राक्षस्या जिह्वया युद्धया वक्षिस्वभ्रुविक्रमौ ॥ १६ ॥

ये दोनों भीर लक्ष्मणपूर्वक पराक्रम प्रकट कर रहे थे ।
परतु माईक इस दुरात्मा कुपुत्रने अपनी कुटिल राक्षसी
भुक्तिसे द्वारा इन दोनोंक खप भान्ना किया ॥ १६ ॥

शरैरिमायल विद्यौ बधिरेण समुक्षितौ ।
वसुभायामिमौ सुप्तौ हृदयेते दक्ष्यकविव ॥ १७ ॥

इन दोनोंक शरीर बाणोंद्वारा पूर्णत छिद गये हैं । ये
दोनों माई मृतसे नहा उठे हैं और इस भवत्सामे पृथ्वीपर
ज्ये हुए ये दोनों राजकुमार कोंदिल भरे हुए खड़ी नामक
बन्धुक छ्मान दिखायी देते हैं ॥ १७ ॥

पथार्थयमुपाधित्य प्रतिष्ठा क्वक्षिता मया ।
त्वयिमौ दृष्टनाशाय प्रसुप्तौ पुरुषपरीमौ ॥ १८ ॥

मैंनेके कळ-सुराक्रमक आश्रम लम्बर मीने बन्धुके
रम्भपर प्रतिष्ठित होनेकी भक्तिभया श्री थी वे ही दोनों
माई पुरुषरिपममि भीराम भार लक्ष्मण देह-त्यागक जिये
खरे हुए हैं ॥ १८ ॥

जीवन्त्य विपन्नेऽस्मि नष्टराज्यमनोरथः ।
प्रागप्रसिद्धस्व रिपुः सक्रामो राक्षसा कृतः ॥ १९ ॥

म्याम मे जीवन्ती मर गया । मेरा राज्यनिरपक
स्मरण नष्ट हो गया । शत्रु राक्षसेन अब खीताके न जीवनेकी
प्रतिष्ठा श्री थी उसके यह प्रतिष्ठा पूरी हुई । उसके पुत्रने
उम लक्ष्मणसेय बना दिया ॥ १९ ॥

एव बिलपमान त परिष्वज्य विभीषणम् ।
सुप्रीगः मत्त्वसम्पन्ना हरिराजोऽग्रवीरिविदम् ॥ २० ॥

इस प्रकार विस्वार करने हुए विभीषणक हृदयसे अग्रकर
गच्छिष्वाही बानरराज सुप्रीगने उनसे यह कहा— ॥ २ ॥

राज्य प्राप्स्यसि धमस्य लज्जयां नेह सदाया ।
राक्षसाः सह पुत्रत्रय स्यान्म नह लप्स्यसि ॥ २१ ॥

धर्मस्य मुझे बन्धुक्रम राज्य प्राप्त होग्य इतने कथन
नहीं हैं । पुत्रव्यति राजन यहाँ अपनी कामना पूरी नहीं
कर सत्राय ॥ २१ ॥

गण्डवापिप्रित्तवद्युभी राजशलकम्पौ ।
न्यक्त्या माह वधिष्यत सगण गायन रणे ॥ २२ ॥

य राजा यह भीराम और लक्ष्मण मृदा त्यागनेक
पश्चात् गण्डवाही पीठपर बैठकर लज्जामिमिने राक्षसाकतहित
धारणका कथ करते हैं ॥ २२ ॥

तमेव साम्बपिस्था तु समाद्वास्थ तु राक्षसम् ।
सुप्रेण भ्यशुर पाद्वै सुप्रीवस्तमुषाच ॥ २३ ॥

राक्षस विभीषणक इस प्रकार खन्तना और आशाकन
रेकर सुप्रीगने अपने सामने जाके हुए शत्रु सुप्रेके
करा— ॥ २३ ॥

सह दूरैहरिगणैलम्भस्त्रावरिदमौ ।
गच्छ स्व भ्रातृै गृह्य क्लिक्किष्वां रामलक्ष्मणौ ॥ २४ ॥

भ्याप होशमे आ जानेपर इन दोनों शत्रुदमन भीराम
और लक्ष्मणको खप से दूरबीर बानरगणोंके कथ क्लिक्किष्वाक
पछे जाये ॥ २४ ॥

मह तु राक्षण हत्वा सपुत्र सहवाच्यकम् ।
मैथिलीमार्गयिष्यामि शक्नो मद्यामिव धियम् ॥ २५ ॥

मैं राक्षसको पुत्र और बन्धु-बान्धवोंव्यति मारकर
उसके हाथसे मिथिलशकुमारी सीताको उठी प्रकर छीन सकूँगा,
जैसे देवराज इन्द्र अपनी सोयी हुई राक्षसीको देवीके
बाँसे हर ज्ये मे ॥ २ ॥

भ्रुत्वैतद् दानेन्द्रस्य सुपेणो धाक्यमधवीत् ।
देवासुर महायुद्धमनुमृत पुरातनम् ॥ २६ ॥

बानरराज सुप्रीकरी यह बात सुनकर सुप्रेने करा—
पूर्वकालमें जब देवासुर-महायुद्ध हुआ था, उसे हमने देखा
था ॥ २६ ॥

तदा ह्य दानवा देवाभ्यारसस्पदाकोविदान् ।
मिजभ्युः शक्यवितुपदस्यव्यस्तौ मुमुर्षुः ॥ २७ ॥

उस समय अब शक्योंके राजा तथा सन्पनेमें हुएस
देवताओंक बारंबार पाजसे अभ्यष्टावित करते हुए दानकोंने
बहुत पायल कर दिया था ॥ २७ ॥

तन्वतान् नष्टसर्पादथ गतासुखं दृष्टस्यसि ।
विद्याभिमन्वयुक्तभिरापधीभिश्चिकित्ससि ॥ २८ ॥

उस मुझमें जब देवता अन्न-शक्योंसे पीड़ित, भक्त और
प्राणरक्ष्य हो ज्ये थे, उन सबकी राक्षक खिय दृष्टस्यसि
मन्वयुक्त विद्याओं तथा दिव्य आयुषियाशाग उनकी
चिकित्सा करते थे ॥ २८ ॥

त्वाम्यौषधान्यात्पितु क्षीराद् वान्तु सागरम् ।
जयत धानराः क्षीप्र सम्पातिपनसात्पा ॥ २९ ॥

ज्यो राय हीकि उन आयुषियोंक त मानकस्मि सम्पाति
और फस भादि बानर क्षीम ही बगल्यक धीरखणरथ तट
पर ज्ये ॥ २ ॥

हरयस्तु विज्ञान्ति पायती न महारधी ।
सञ्जीवकरणीं दिव्या विदात्यां दयन्दिमतम् ॥ ३० ॥

ज्योतिरि भादि बानर यदा यदा-यदा प्रतिजित हुए त

प्रसिद्ध महोपनिषदोऽस्मते ॥ उनसे एकत्र नाम है
संक्षिप्तकपी और सूचीका नाम है विश्वकपी । इन दोनों
दिव्य ओपनिषदों का निमाण लघात् ब्रह्मर्षिने किया है ॥१॥

अन्ध नाम द्राण्ड्य इतीरोह सगरात्सम ।
ममत्त यत्र मथित तत्र ते परमैयधी ॥ ३१ ॥
नो तत्र विहितो देवैः पर्वतो ली महोदधी ।

अथ वायुसुवो राजन् हनुमांस्तत्र गच्छतु ॥ ३२ ॥

स्वर्गमें उत्तम धीरसमुद्रक तस्मिन् चन्द्र आर द्रोण
नामक दो पर्वत हैं जहाँ पूर्वकालमें अप्सुतत्र स्मृत्त किया
गया था । उन्हीं दोनों पर्वतों पर वे भद्र ओपनिषदों बर्तमान हैं ।
महासागरमें देवताआने से उन दोनों पर्वतों पर प्रतिष्ठित किया
था । राजन् । ये वायुपुत्र हनुमन् उन दिव्य ओपनिषदोंको
त्यनेक स्थि बर्हो बर्हो ॥ ३१ ३२ ॥

एतस्मिन्कतर वायुमेषाब्धपि सविद्युतः ।
पर्यस्य सागर तोय कम्पयन्तिव पर्यतम् ॥ ३३ ॥

ओपनिषदों को अपनेकी कला बर्हो फल ही रही थी कि यह अर
त वायु प्रकट हुई । मेघोंकी पटा फिर अग्नी और विद्युतियों
कमकने लगी । वह वायु सगरक कम्पमें हलचल मनाकर
पर्वतोंको कम्पित-सी करने लगी ॥ ३३ ॥

महत्स पद्मबातन सत्यंभीपमहादृमः ।

निपतुर्भोगविटपाः सत्सिद्ध लक्षणात्मसि ॥ ३४ ॥

गर्भक पत्तने उठी हुई प्रच्छन्न वायुने सम्पूर्ण द्वीपके
बड़े-बड़े बूझकी हाथियां तोड़ डाली और उन्हें लक्ष्यसमुद्रक
कम्पमें मिला दिया ॥ ३४ ॥

भ्रमबन् पत्तगाह्यस्ता भागिनस्तत्रवास्तिनः ।

दीपि सत्याणि वावास्ति जम्बुभ्र लवणाणवम् ॥ ३५ ॥

लक्षणाधी महाश्रव लवं मस्य भरा ॥ सम्पूर्ण अ-
बन्तु पीपम्बुद्रक समुद्रक कम्पमें पुत गये ॥ ३५ ॥

कता मुहुताद् गडड धनन्तय महाशयत्सम् ।

वातप दृष्टु मरे उपलम्पतिव वावकम् ॥ ३६ ॥

तरन्तर ७ ही पर्वतोंमें समान वातराने प्रवृत्त अन्वि-
क लम्बन वस्ती महाकपी निरतनन्दन गडडका बर्हो उपलम्पित
देला ॥ ३६ ॥

समागतमभिप्रेक्ष्य नागास्त विप्रवृत्तुषुः ।

पस्तु तैः पुरुरी यदी नरभूतमहापतेः ॥ ३७ ॥

उन्हें अथवा दार क्रि महाकपी नागने कष्टक रूपमें
अदर उन दान महापुरुषोंके कंध गन्ता था वे लव क-लव
पहल भोग लड़ हुए ॥ ३७ ॥

तत्रः सुपथा कायुत्रयी स्यात् प्रपथिक्कथ च ।

यिममद्य च पाथिभ्यो मुच्य चन्द्रसमप्रन ॥ ३८ ॥

कथन्नात् गरुडने उन दोनों खुर्चोंकी बन्धुओंको स्वर्ग
करके अभिनन्दन किया और अपने हाथोंसे उनके कम्पमेंके
समान शान्तिमान् मुक्तोंके पेंछ ॥ ३८ ॥

वैतयेम ससुष्यस्तयोः सदरुदुर्गणः ।
सुवर्णे च तनु स्मिन्ने तयोराशु बभूवतुः ॥ ३९ ॥

गरुडकीअथ स्वर्ग प्राप्त होते ही श्रीराम और कम्पमेंके
सरे पाप भर गये और उनके शरीर लक्ष्य ही दुन्दर शान्तिसे
सुख एवं सिन्ध हो गये ॥ ३९ ॥

मेजो कीये बल वीज उत्साह्य महागुणाः ।
प्रदर्शन च बुद्धिश्च स्मृतिश्च विगुणा तयोः ॥ ४० ॥

उनमें तेज वीज क ब्रह्मन उत्साह, दक्षिणिकी बुद्धि
और सारणशक्ति आदि महान् गुण पहलेसे भी दुगुने हो
गये ॥ ४० ॥

तावुत्थाप्य महातेजा गरुडो वासवोपमी ।

उमी च सलजे ह्ये रामदधेनसुवत्स ॥ ४१ ॥

क्रि महात्कली गरुडने उन दोनों भाइयोंको जो लक्ष्य
इन्द्रके समान थे उठाकर हृदयसे धर लिया । तब श्रीरामकी
ने प्रकृत होकर उनसे कहा— ॥ ४१ ॥

भवत्प्रसादात् भ्यसर्तं शक्तिप्रभय महत् ।

उत्पद्येत स्यत्किञ्चनौ शीघ्र च यत्किनौ कृत्तौ ॥ ४२ ॥

दुन्दरशक्तिके कारण हमसेतौर से महान् संकट म
गया था उसे हम आपकी कृपासे खोप गये । आप विधि
उपायक कता हैं अतः आपने हम दोनोंको क्षीम ही पूर्वक
कस्ते सम्पन्न कर दिया ॥ ४२ ॥

यथा तात सुदारय यथाञ्च च विद्वामहम् ।

तथा भवन्तमासाद्य हृदय मे प्रसीदति ॥ ४३ ॥

मेने कता सुदारय और विद्वामह अन्के कल जनेसे
मेरा मन प्रकृत हो सक्ता था बने ही आपका पाकर मेरा
हृदय हारसे स्थि कला है ॥ ४३ ॥

एव भवान् रूपसम्पन्ना दिव्यस्रगनुस्रपनः ।

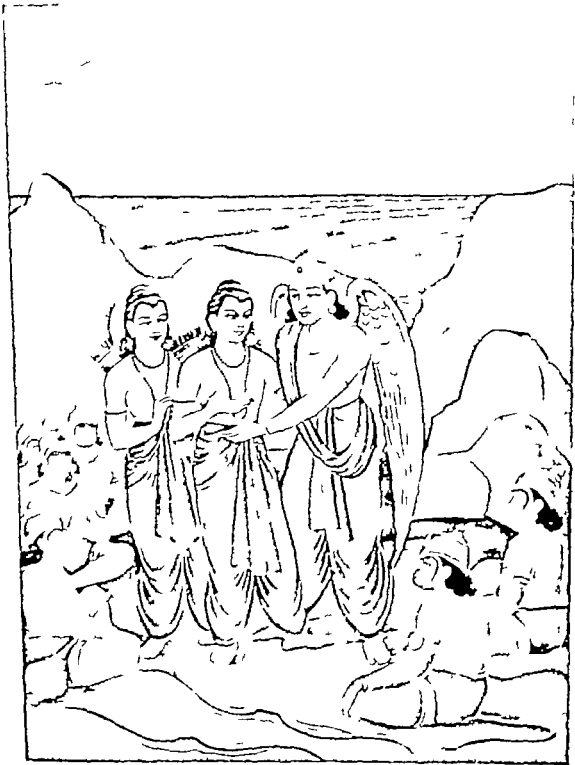
वसानो विरज्य यस्मे दिव्याभरणनूपिता ॥ ४४ ॥

आप बड़े रूपकान् हैं दिव्य पुण्यकी मध्य और दिव्य
अत्रपत्तसे विनूयित हैं । आपने हा लक्ष्य कल कारण कर
रक्ते हैं तथा दिव्य अभूयल आपकी छोमा क्वात हैं । हम
बानना चाहते हैं कि आप क्सेन है ' (सर्वज्ञ होत हुए भी
मन्थानने मानवमन्थक्य अभय लकर गरुडसे ऐसे प्रन
दिये) ॥ ४४ ॥

तमुपाय महातज्ज धनतया महाशक्य ।

पतधिराजः प्रीत्याप्य ह्यपयत्कुञ्जशरणम् ॥ ४५ ॥

तय महात्कली महाकपी परिश्रव निश्रानन्दन गरुडने
मन ही-मन प्रकृत हो आन्करक भावुधने भरे हुए नकथन
श्रीरामसे कहा— ॥ ४५ ॥



धीराम-रक्षणाकी गरुडजास बातचीत

1
2
3
4

मर्ह सक्ता तं कालकृतस्य प्रियाः प्राणो बहिष्करः ।

गच्छमानिह सम्प्राप्तो सुखयोः साहाय्यकरणात् ॥ ४६ ॥

अकुरुत्स ! मैं आपका प्रिय मित्र गन्ध हूँ । बाहर विचरनेवाला आपका प्रण हूँ । आप दोनोंकी सहायताके लिये ही मैं इस समय यहाँ आया हूँ ॥ ४६ ॥

असुरा ना महावीर्या दानवा वा महाबलाः ।

सुराश्चापि सगन्धर्वाः पुरस्कृत्य शतक्रतुम् ॥ ४७ ॥

नेमं मोक्षयितुं शक्ताः शरवन्ध सुदासवन्म् ।

महापराक्रमी असुरः महाबली दानवः देवता तथा गन्धर्व भी मणि इन्द्रका अग्रे करके यहाँ आते तो वे भी इस समयकर छाकर बाणके कबलसे आपका सुदानमे समर्थ नहीं हो सकते थे ॥ ४७ ॥

मायाबलादिमुञ्जिता निर्मित क्रूरकर्मणा ॥ ४८ ॥

एते नृगाः क्रतुधेयास्तीक्ष्णवृद्ध विपौलवणाः ।

रक्षोमायाप्रभाषेण शरभूतास्त्वबाधया ॥ ४९ ॥

क्रूरकर्मा इन्द्रकितने मायाक कलसे किन नृगरूपी बाणोंका कल्पन तैयार किया था; न नाग थे क्रूरके पुत्र ही थे । इनके दोष बड़े तीक्ष्ण होते हैं । इन नागका मिय बड़ा मयकर इन्द्र है । ये रक्षसकी मत्वाक प्रभावसे बाण बनकर आपके शरीरमें स्थित गये थे ॥ ४८ ४९ ॥

सधाम्यश्वासि धमञ्ज राम सत्यपराक्रम ।

वहमर्षन सह आधा समरे रिपुघातिन ॥ ५० ॥

धर्मके शक्ता छपरराक्रमी भीरव । समयज्ञानमें शत्रुओं का खंडार करनेवाले अपने माई उभयलक छप ही आप सब वैशाम्यशाली हैं (अब मनावात ही इस नागाघाते मुख हो गये) ॥ ५० ॥

इम भुत्वा तु वृत्तान्त त्वरमाणाऽहमगतः ।

सहसैषावयोः स्नेहात् सखित्वमनुपाकृत्यन् ॥ ५१ ॥

मैं देवताओंके मुलसे आपसोंके नागसंगम बंधनेका आनन्द सुनकर बड़ी उद्वेगलके लय यहाँ आया हूँ । इस रत्नमें जो स्नेह है उससे प्रेरित हो मित्रवर्धक पावन करने दुःख छूट आ पहुँचा हूँ । ॥ ५१ ॥

मोक्षितौ च महाघोरानुष्णात् सत्यकपम्भजत् ।

अप्रमादञ्च कर्तव्यो युवाभ्यां नित्यमेव हि ॥ ५२ ॥

आकर मैंने इस महाभयकर बाण-कबलसे आप दोनोंको मुहा दिया । अब आपके सदा ही खजबल खना चाहिये ॥ ५२ ॥

महत्या राक्षसाः सर्वे सप्तम कृतपाथिनः ।

दूरान्तां तुदभवाणां भवतामाज्ञय बहम् ॥ ५३ ॥

अपराध गणक स्वयमसे ही संयममें कर्मपूर्वक मुद्र करने-

पाठ होते हैं, परन्तु शुद्धभयबाध आप जैसे धूर्तवीरोंका खजला ही बल है ॥ ५३ ॥

तन्न विभ्वसनीय वो राक्षसान्मा रणाजिरे ।

एतेनैवोपमानेन नित्य जिह्वा हि राक्षसाः ॥ ५४ ॥

वृत्तल्लिमे इषी इयन्तका खमने रतकर आयको रणधर्ममें यत्नेका कमी विश्वास नहीं करना चाहिये क्योंकि रक्षक क्या ही दुष्टिक हात है' ॥ ५४ ॥

एयमुक्त्वा तदा राम सुपर्णः स महाबलः ।

परिष्यस्य च सुस्निग्धमायमुपुष्यकामे ॥ ५५ ॥

ऐसा कहकर महाबली गुरुने उस समय परम स्नेही भी-रवका हृदयसे स्नाकर उनसे जानेकी आज्ञा कनेका विचार किया ॥ ५५ ॥

सखे राघव धमञ्ज रिपूषामपि वत्सल ।

मभ्यनुवातुमिच्छामि गमिष्यामि यथासुखम् ॥ ५६ ॥

व बोले— शत्रुभावर भी क्या दिलानेवाला धर्मक मित्र खुनन्दन । अब मैं सुखपूर्वक यहाँसे प्रस्थान करूँगा । इसक लिये आपकी आज्ञा चाहता हूँ ॥ ५६ ॥

न च कौतूहल कार्यं सखित्व प्रति राघव ।

कृतकर्मा रणे धीर सखित्व प्रतिघेत्स्यसि ॥ ५७ ॥

धीर खुनन्दन । मैंने जो अपनेको आपका सखा बना है इसक लियेम आपको अपने मनम कोई कौतूहल नहीं खना चाहिये । आप मुझमें उच्छ्रिता प्राप्त कर कनेपर मेरे इस उत्सवभावका तय समझ लेंगे ॥ ५७ ॥

शालवृक्षाद्यदोषां तु वृद्धा कृत्वा शरोर्मिभिः ।

राघव तु रिपु हत्वा सीता त्वमुपलब्धस्य ॥ ५८ ॥

अप्य समुद्रको लहरोंके समान अपने बाणोंकी परशरत लड़ाकी एषी दशा कर देगे कि यहाँ केवल शकक और बूढ़े ही देखे रह अवशे । इस तरह अपने शत्रु उषणका खंडार करके आप सीताको भयवच प्राप्त कर लेंगे ॥ ५८ ॥

इत्येवमुक्त्वा पञ्चन सुपर्णः शीघ्रयिक्रमाः ।

राम च नीरुज कृत्वा मध्य तपां बनोक्तसाम् ॥ ५९ ॥

प्रदक्षिण्य तताः कृत्वा परिष्यज्य च शीघ्रवान् ।

जगतामकशामाविश्य सुपर्णः पयसो यथा ॥ ६० ॥

एषी बातें कहकर शीघ्रगामी एवं शक्तिशाली गुरुने भी-रवका नीटोना करके उन बनघोंक बीचमें उनकी परिक्रमा की और ऊँचे हृदयसे स्नाकर वे बाणको ख्यान गतिने आश्रयम नष्ट गये ॥ ५९ ६० ॥

भीरुजी राघवी कृपा कता जानयूयथा ।

सिंहपद तदा मनुजान्निव तुपुपुष्य त ॥ ६१ ॥

भीरव और खनगमने नीटोना हुआ देखे उस समय

सरे धानर-यूपपति विन्दार करने और वृद्ध दिखने
सगे ॥ ६१ ॥

तना भेरी समाजपुसुंद्वाभाप्यवात्पयन् ।

म मु गङ्गान् समग्रहृष्टा स्वैरन्त्यपि यथापुरम् ॥ ६२ ॥

१ ता बान्गोंने डके पीटे, मूदंग बन्धन, गङ्गान्नाद किने
और हगोंस्मल्ले भरकर पहलेकी भौति ने गर्बने और ठाठ
गेंडने सगे ॥ ६२ ॥

अपरे स्फोट्य विप्रस्ता धानप नगापाधितः ।

दुमानुत्पाट्य विविधास्तस्यु शतसङ्ग्रहणः ॥ ६३ ॥

दूसर पराक्रमी धानर अब दूधों और पन्त-शिलरोंको हाथ
में मकर मुद करने ध नाना प्रकारक दूध उलाड़कर अल्लों
की लक्ष्मण युद्ध किये लड़ हा गये ॥ ६३ ॥

हृत्कार्ये श्रीमद्भासायने वाक्यमीकीये आविकार्ये युद्धकार्ये पञ्चमः सर्गः ॥ ५ ॥

१५ प्रकार श्रीमद्भासिनिर्मित आर्यमातङ्ग म्भीक्ष्मके युद्धकार्यमें पचासवीं सर्ग पूरा हुआ ॥ ५ ॥

एकपञ्चाश सर्ग

भीरामक बन्धनमुक्त हानका पठा पाकर चिन्तित हुए रावणका धूम्राधको युद्धके लिये
भेजना और सेनासहित धूम्राधका नगरसे बाहर आना

मया तु मुमुक्षु राष्ट्र धानपणां महीजस्ताम् ।

मत्ता राक्षसैः सार्धं तदा शुभाश रावण्यः ॥ १ ॥

११ समय भीरुय गर्बना करते हुए महाश्वी बान्गोंका
बद मुमुक्षुद राष्ट्रसेवहित राक्षसने मुना ॥ १ ॥

त्रिगुणगर्भारनिर्घोष भुष्या न निन्द्य भुद्राम् ।

मन्त्रिचानां ततस्तेषा मध्ये यधनमप्रधीत् ॥ २ ॥

मन्त्रियोंके बीचमें पैठ हुए राक्षसने जब बह निन्ध
गम्भोर धन यह उपक्रमसे किया हुआ विन्दार मुना तब
बह इत प्रमर बन्ध— ॥ २ ॥

यथार्थी समग्रहृष्टायां धानरत्नामुपमितः ।

यद्दत्त सुमहान् नादा मध्यान्मिव गजनाम् ॥ ३ ॥

सुष्यन्त महती प्रीतिरनयां न्यय सदायाः ।

गथाहि त्रिपुरसनाद्दशुसुभे स्वयम्पाप्य ॥ ४ ॥

इत समय गर्बने हुए मकर समान अब अधिक हर्षमें
अपने बहुरत्नक बान्गोंका यह महान बन्धनक प्रकट
ता रहा है इन्का मर जान पड़ता है कि इन मरधे बड़ा
भीषी हथ पात हुआ है इन्की मरार नहीं है । गभी इत तरह
परवर की गभी मरनामान यह गाथा पढ़ीस लुद्ध त्रिपुर
का उदा है ॥ ३ ॥ ४ ॥

ता मु यदा त्रिपुरसनात्पत्नीं रामतस्मिणी ।

अथ य सुमहान् नादा तदा जनार्णव म ॥ ५ ॥

विशुज्जतो महान्वाकासासयन्तो निशाचरात् ।

सङ्घाद्वाराण्युपाज्जमुस्यैव कामाः सुषगमाः ॥ ६४ ॥

और-बोरेते गर्बने और निशाचरोंका बरते हुए लो
धानर युद्धकी इच्छाले लङ्काके दरवाजोंपर आकर इठ गये ॥

तायां सुभीमस्तुमुल्लो गित्वाद्यो

बभूव शक्यामृगायूपपानाम् ।

क्षये निवापस्य यथा घनान्

नद्यः सुभीमो न्यता निदीय ॥ ६ ॥

उस समय उन धानरूपपवित्रका बड़ा मकर एवं
मुमुक्षु विन्दार उन और गेंडने लङ्का माना भीरुय शत्रुके अन्त-
य आधी रातक समय गर्बने हुए मधोकी गम्भीर गम्भोर उन
न्यर म्मास हा रही हो ॥ ६५ ॥

१२०३ न दनों मर भीरुय और छम्भर तो लील
कापोंले किये हुए हैं । इधर यह महान इन्द्रय भी हो रहा
है जो मेरे मनमें चढ़ा-सी उत्पन्न कर रहा है ॥ ५ ॥

एष अब यधन क्षोफसा मन्त्रिणो राक्षसेश्वरः ।

उपास्य नैश्र्वतास्तत्र समीपपरिषतिना ॥ ६ ॥

मन्त्रिपते ऐक्य करकर राक्षस्यय राक्षसने अपने पास ही
बैठ हुए राक्षसे कहा— ॥ ६ ॥

धायतां तूणमेतया सर्वेषा अब धनीकस्ताम् ।

शक्यश्च त्वं समुत्पन्न ह्यक्षरपण्युत्थितम् ॥ ७ ॥

धुम्भका भीम ही मकर इस बालक पया समग्रभी
कि शक्यम अस्कर उपस्थित होनेर भी इन सब बान्गोंक
हथका कौन-सा कारण प्रकट हा गया है ॥ ७ ॥

तथाकास्तं मुनमभ्रान्ताः प्राक्षरमधिकृत्य च ।

दृष्ट्वा पाम्त्रिता सना सुधीयञ्च महामन्य ॥ ८ ॥

राक्षसक इस प्रमर आदेश देनेर पें उल्ल म्भरप
हुए गये और परममर पक्षर महान्वा सुधीयके हाथ
पाम्त्रित धानरमनाभी मर देगने लगे ॥ ८ ॥

तो अब मुन्दी सुपारण शरपथन राक्षसो ।

समुत्थिता महाभागी विपद्युः स्वयरास्ता ॥ ९ ॥

जब उन्हे मारुय हुआ कि महाभाग भीरुय और राक्षस
उन भ्रान्ता भ्रान्त नागरी राक्षस कथनमे मुक्त हुए
उठ गये हैं तब समय गजक बड़ा हुआ हुआ ॥ ९ ॥

सप्तसहस्रयाः सर्वे प्राक्पराद्ववदथ ते ।
विपर्णा राक्षसा घोरा राक्षसेन्द्रमुपस्थिताः ॥ १० ॥

उनका हृदय मयसे पर्य उठा । वे उन भयानक राक्षस
सहस्रसे उत्तरकर उदात्त हो राक्षसराज रावकभी सेनामें
उपस्थित हुए ॥ १ ॥

तदभिय वृत्तिमुखा रावणस्य च राक्षसा ।
कृत्स्न निघ्नयामासुयंया इदं वाक्यकोशिशः ॥ ११ ॥

वे राक्षसीकी कर्ममें कुछथ था । उनका मुखपर गीनता
छा रही थी । उन निगाचरने वह सारा अभिय समाचार
रावणको यथान्त रूपसे यथाथ ॥ ११ ॥

यो तास्मिन्प्रजिता युध आतरी रामसहस्रणौ ।
निघ्नन्ती शरवन्धन निघ्नकर्मभुजौ हृद्यौ ॥ १२ ॥
यिमुक्तौ शरवन्धन हृद्येते तौ रणाजिने ।
पादास्त्रि गजौ छिन्त्वा गजेन्द्रसमयिज्जमौ ॥ १३ ॥

(१२ कथ—) महाशय ! कुमार इन्द्रकिन्ते किन राम
और कर्मण दानो महयोगी युद्धसकम नामस्त्री यणोंके
कर्मणसे बाँधकर हाथ छिन्ननेमें भी अस्मर्ष कर दिया था
वे गन्धर्वके समान पराक्रमी दाना वीर जैसे हाथी रस्तेके
तड़कर खटवत हो ज्यों उधै तरह बाणवन्धनसे मुक्त हो
कर्मणमें लड़े दिखानी देत हैं ॥ १२ ११ ॥

तच्छुत्वा घचनं तर्पा राक्षसेन्द्रो महाबलः ।
किन्त्वाशोकसमापन्नतो विषर्षवद्ग्रेऽभवत् ॥ १४ ॥

उनका वह कबन मुनकर महाबली राक्षसराज एवण
किन्त्वा तथा वाकके बघीभूत हो गया और उत्तर कर
उत्तर गया ॥ १४ ॥

मरैर्वचधरैर्वदती शरैराशीविषोर्मिः ।
ममाधि स्यसकशरीः प्रमध्येन्द्रजिता युधि ॥ १५ ॥
तद्वत्प्रबन्धमासाद्य यन्नि मुक्तौ रिपू मम ।
सत्रायस्यमिच्छ सभमनुपपत्प्रायस्यह यलम् ॥ १६ ॥

(१५ मन-ही-मन छेचने स्था—) यह विरपर सगोंके
कर्मण मयंकर कर्तानमें प्राप्त हुए और म्मोष धे तथा
किन्ध तेज स्वके समान या उन्हीके द्वारा युद्धसकमे
इन्द्रकिन्ते किन्हे बाँध दिया था वे मर दानों शत्रु परि
उठ मन्धकर्मणमें पड़कर भी उल्ले धूद गये तब तो अब
म भानी छरी सेनाको कमायात्र हो देलका हैं ॥ १५ १६ ॥

निष्पत्त्याः कलु सवृत्ताः शराः पाबकृतजसः ।
भ्यवृत्त यैस्तु सत्राम रिपूर्णा जीवित मम ॥ १७ ॥

किन्ते परक युद्धसकमे मरे शत्रुओंके प्राय ल श्लिये
य वे भविष्यन्त्य नैकथी शय निधय ही आज निष्पत्त
हो गये ॥ १७ ॥

एवमुक्त्वा तु सप्रुद्धा निःश्वसन्पुरगा यथा ।

भयभीद् रक्षसां मध्ये धूम्राक्ष मम राक्षसम् ॥ १८ ॥

ऐसा कहकर अत्यन्त मुक्ति मुखा राजन कृष्णकरत हुए
सर्वके समान खेर-खेरसे सत्त धने का और राक्षसोंके
बीधमें धूम्राक्ष नामक निशाकसे बोध— ॥ १८ ॥

वलेन महता युक्तो रक्षसां भीमविक्रम ।
स्व वधायाशु नियाहि रामस्य सह वार्निगः ॥ १९ ॥

भयानक पराक्रमी वीर ! तुम राक्षसोंकी बहुत बड़ी
सेना खय लेकर बान्तरेवहित रामरा बप करनेके लिये
शीघ्र जाओ ॥ १९ ॥

एथमुक्तस्तु धूम्राक्षो राक्षसश्रेण धीमता ।
परिक्रम्य ततः शीघ्र निजगाम नृपालयात् ॥ २० ॥

युद्धिमान् राक्षसराज इत प्रकार भासा देनेपर धूम्राक्षने
उल्लेखी परिक्रमा की तथा वह दुरत राक्षसराजने बाहर
निकल गया ॥ २० ॥

अभिनिष्पत्त्य तद् दार वलाभ्यभमुवाच ह ।
स्वरयस्त वल शीघ्र किं शिरेण युयुत्सताः ॥ २१ ॥

रावणके यहपरपर पहुँचकर उल्लेखी सेनापतिसे कहा—
सेनाको उल्लेखीके साथ शीघ्र तयार फरो । युद्धकी इच्छा
रखनेवाले युद्धको विजय करनेसे क्या सम ? ॥ २१ ॥

धूम्राक्षवचन श्रुत्वा वलाभ्यसो वलानुगः ।
यस्मद्योऽब्रयामास राघवन्वाहया सुराम् ॥ २२ ॥

धूम्राक्षकी बात सुनकर रावणकी माताके अनुसर
सेनापतिने किन्के पीछे बहुत बड़ी सेना थी, मारी कर्मणमें
देनिहोंके तयार कर दिया ॥ २२ ॥

त वलाभ्यस्य वकिन्ते घोराकपा निशाधराः ।
विमत्तमात्राः सहस्र धूम्राक्ष पर्यवारयन् ॥ २३ ॥

वे भवानक रूपवारी बलवान् निशाचर प्राप्त और वाकि
नादि अस्त्रोंमें फरो बाँधकर हर्ष और उत्साहसे युक्त हो खेर
करते गल्ले हुए भाये और धूम्राक्षके पेरकर लड़े हो गये ॥

विधिधायुधहस्ताश्च शूलसुद्वरपाणयः ।
गार्वाभिः पद्मिनीवन्दैरायसैर्मुसलैरपि ॥ २४ ॥

परिवैर्भिन्निपादोश्च भल्लैः पादौ परभ्रषौ ।
निघ्नयू राक्षसा घोरा नन्दन्तो जलदा यथा ॥ २५ ॥

उनके हाथोंमें नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्र थे । कुल
रामने भयने हाथोंमें शूल और सुद्वर ल रत्न थे । गद
पद्मिनी खेरशस्त्र मूल परिय भिन्निपाद गद पाण
और फरो लिये सुद्वर भयानक राक्षस युद्धके लिये निरत्न ।
वे सभी मण्डके समान गम्भीर गर्भण करत थे ॥ २४ २५ ॥

रथः कवचिनस्त्वस्य पद्मिनीश्च समलक्षणाः ।
स्रज्जटाटविक्रिते खरैश्च विधिधानैः ॥ २६ ॥

हयोः परमशीघ्रैश्च गजैश्चैव मन्त्रैस्तथैः ।
निर्वायुर्नैर्भूतव्याघ्रा व्याघ्रा इव वुरासदाः ॥ २७ ॥

किन्ते ही निशापर जबने मस्कृत तथा खनेकी
श्राध्मरित रणोद्धार युद्धके सिधे बाहर आवे । य
न्य म्ब कबच धारण किये हुए वे । किन्ते ही भेद उल्लस
नाना प्रकारके मुक्त्वासे गर्वो परम शीघ्रगामी घेड़ों तथा
मदमघ हाथियोंपर सवार हो दुर्बल व्याधियोंके समान युद्धके
सिधे नगरने बाहर निकल ॥ २६ २७ ॥

वृक्षसिंहमुनेयुक्त खरै कनकभूपितै ।
भादराह गद्य दिव्य धूम्राक्ष खरमिन्वनः ॥ २८ ॥

धूम्राक्ष रथमें खनेके अश्रुणोसे विमुक्ति ऐसे गर्वे
नथे हुए य किनके मुँह भेड़ियों और सिंहोंके समान य ।
गणेशी भोंति रँकनेवाक्य धूम्राक्ष उस दिव्य रथपर
न्यार हुआ ॥ २८ ॥

म निर्वातो महावीर्यो धूम्राभा राक्षसधृत ।
हमन्त वै पश्चिमद्वाराद्यनुमान पत्र तिष्ठति ॥ २९ ॥

इस प्रकार बहुतसे राक्षसोंके साथ महापराक्रमी धूम्राक्ष
हैला हुआ पश्चिम इतने ज्यों अनुमानकी शत्रुपत्र सम्मत्ता
करनेके लिये लड़ य युद्धके सिधे निकल ॥ २ ॥

गद्यप्रवरमास्याय खरयुक्त खरखनम् ।
प्रयत्न तु महाघोर राक्षस भीमव्रतनम् ॥ ३० ॥
अन्तरिक्षगता मृदाः शकुन्ता प्रत्यपधयन् ।

गर्होसे कुन और गर्होकीसी शक्याय करनेवाचें उस
भेद रथपर बैठकर युद्धके सिधे जाते हुए महाघोर उल्लस
धूम्राक्षमें जो बड़ा मयानक तिलापी देता या आकाशवाणी भूत
पक्षिपाने भगुनभूषण वाली शक्यकर भागे खनेके मना
किया ॥ ३ ॥

गर्वाणो महाभीमा शुभ्रश्च निपपात ह ॥ ३१ ॥
वज्राद्य प्रथिन्प्रक्षय निपनुः कुणपाशनाः ।
कथिगदशो महादयतः फणगध पतिता भुवि ॥ ३ ॥

हवाधो भीमप्रामयक पास्मीकीके अतिक्रम्ये युद्धकाचने दृश्यवाद्याः सर्गाः ॥ ५१ ॥
एव प्रका प्रारान्दरिदिरिर्मित अर्धामकक अतिक्रम्ये युद्धकाचने इरवाहनर्तो मर्न पूरा हुआ ॥ ५१ ॥

उत्के रथके ऊपरी भागपर एक महामयानक गीध
भा गिरा । जबके अग्रभागपर बहुतसे मुर्खसंखर फली
परस्पर गुँधे हुएसे गिर पड़े । उसी समय एक बहुत बड़ा
श्वेत कनक (बड़) खनेसे लथपथ हाकर पृथ्वीपर गिरा ॥

किस्कर वास्तुज्ञान्यान् धूम्राक्षस्य निपातितः ।
यद्यप्य कथिर देव संघघाल च मन्दिनी ॥ ३३ ॥

यह कनक बड़े खेर-खेरसे चीत्कार करत हुआ
धूम्राक्षके पास ही गिरा या । यावर रक्षणी वर्षा करने लगे
और पृथ्वी जानने लगी ॥ ३३ ॥

प्रतिष्ठाम वधी वायुनिर्घातसमनिःखनः ।
तिमिरीष्वधृतस्तत्र विराभ न चक्राशिर ॥ ३४ ॥

वायु प्रतिभूत विराभी भरते खने लगी । उसमें
बज्रपातके समान गड़गड़ाहट पदा हली थी । लम्पूर
दिशाई अन्धकारसे आच्छन्न हो खनेके कारण प्रकाशित नहीं
हली थी ॥ ३४ ॥

स तृपातास्ता ह्यु राक्षसनां भयावहान् ।
प्रयुर्भूतान् सुषोरांश्च धूम्राक्षो व्यथितोऽभवत् ॥

मुमुक्षु राक्षसाः सर्वे धूम्रमन्त्रय पुरःखराः ॥ ३५ ॥
राक्षसके सिधे भय देनेवाचें वहाँ प्रच्छ हुए उन मयंकर
उत्पलेंके देलकर धूम्राक्ष व्यथित हो उठा और उत्कें भंगे
चखनेवाचें सभी उल्लस भक्त से हो गये ॥ ३५ ॥

ततः सुभीमा यदुभिर्निशाधरै
भूतोऽभिनिक्रम्य रजोत्सुको पत्नी ।

द्वरां ता रामवयाह्वुपास्तित्वां
महीपकस्यां यदु धानरीं जमूम ॥ ३६ ॥

इस प्रकार बहुतसेयक निशापरसे धिरे हुए और युद्धके
सिधे उसीके खनेवाचें महाभयंकर बक्यान् उल्लस धूम्राक्षने
नगरने बाहर निकलकर भीरामचन्द्रकीके शत्रुबन्धे सुदृष्टि
एवं प्रस्यकासिक अनुद्धक समान विद्याक बानरी केन्द्रके
देला ॥ ३६ ॥

द्विपचाश सर्ग

धूम्रायका युद्ध और अनुमानकीके द्वारा उत्सक वध

धूम्राक्ष प्रस्य न्यायल गणम नीमशिवमम् ।
दिनदुवागता सर्वे प्रहृष्टा युद्धकारिण्यः ॥ १ ॥
नोश्च गच्छा निगन्तु रूषध निश्चल एव
पुत्रो ह्येव एतन्तः समस्त नगर एवं और उत्तरम
नरैर त्रित्य धन एव ॥ ॥

नगं युनुमुक्त युद्ध सज्जन कपरिप्लसाम् ।
भय्याम्य पात्पयैरिजन्तयां श्लमुद्रैः ॥ २ ॥
उस समय उन नगर और राक्षसोंमें भयंकर भयंकर
युद्ध छिड़ गया । य पार हुईं तथा एतों और युद्धसे एक
समय चट पड़वाने लगे ॥ २ ॥

गक्षसैर्बानर प्रोय विनिहृता समस्तः ।

धानै राक्षसाद्यापि दुर्मूर्धिसमीकृताः ॥ ३ ॥

राक्षसेने चारों अरुने भेर वानरोंके ब्रह्मा आरम्भ
क्रिय तथा वानरोंने भी राक्षसोंका वृद्धने मार-मारकर
परगण्यी कर दिया ॥ ३ ॥

गक्षसास्त्रभिसकृद्वा वामगन् निशिते शरैः ।

विष्यपुष्पौरसकाशैः कम्पत्रैरजिह्वानैः ॥ ४ ॥

कामसे मर हुए राक्षसेने अपने कङ्कपत्रमुक्त लीपे
बानेबाह, कर एवं लीपे चाणोंसे वानरोंका गहरी खाट
पहुँचायी ॥ ४ ॥

त गक्षभिश्च भीमाभिः पट्टिरीः कूटमुद्ररैः ।

पारैश्च परिषिद्धिभैश्चिह्नैश्चैवापि सञ्चितैः ॥ ५ ॥

विदार्यगण्णा रक्षोभिर्धानरास्त महापत्न्याः ।

अमर्षजन्तितोन्वयोऽङ्गुः कमाप्पभितवत् ॥ ६ ॥

राक्षसोंद्रोप भस्कर गदाओं पट्टियों कूट मुद्रों, पार
परियों और हाथम लिये हुए विचित्र चिह्नयुक्त विरीध किये
जते हुए वे महापत्नी वानर अमर्षजनित उस्ताहसे निर्मयकी
गोति महान् क्रम करने लगे ॥ ६ ॥

शरभिर्भिद्यगावास्त शूलनिर्भिद्यद्विजिनः ।

जगद्गुप्ते दुर्मांस्तत्र दिग्घातच हरियूथपा ॥ ७ ॥

शयोंकी चोटसे उनक धारी छिद्र गम्ये । घुसोंकी
मारसे देह विरीभं हा गयी थी । इस भयलाममें उन वानर
यूपकीयने हाथमें दृष्ट और घिसाएँ टांकां ॥ ७ ॥

त भीमयेण हरया नर्वमानास्तस्तस्तः ।

ममभ्यु राक्षसान् धीरान् ममामि च बभारिरे ॥ ८ ॥

उठ छम्प उनका बग पड़ा भयंकर था । बंजर-जंरते
गर्भना करत हुए बर्हा-तर्हां कीर राक्षसोंके पटक-पटककर
गपने लगे और अपने नामोंकी भी फेरना करने लगे ॥ ८ ॥

तद् वभुवाम्भुत धार मुद्र वानररक्षसाम् ।

शिक्षाभिर्विधिषाभिश्च बहुशास्त्राश्च पादपैः ॥ ९ ॥

नाना प्रकारकी शिक्षाओं और बहुत-सी शास्त्राचार
दृष्टक मारते वहाँ वानरों और राक्षसों मर पथ भर्भुत
सुर होने लगे ॥ ९ ॥

गक्षसा मयिष्यः क्वचित् वानरैर्जितकाशिभिः ।

मयम् कथिर केचिन्मुसै कथिरभोजना ॥ १० ॥

निष्पत्त्याछने सुशोभित होनेलम वानरोंने कितने ही
राक्षसोंके मरक हाथ । कितने ही रक्षजकी राक्षस उनकी
मर खाकर अपने मुग्धम रक्ष वस्तु करने लगे ॥ १० ॥

पादेषु वारिष्यः क्वचित् क्वचित् राद्विहृता दुर्मैः ।

शिक्षाभिर्भूमिताः केचित् केचित् वृत्तैर्विदारिताः ॥ ११ ॥

कुछ राक्षसोंकी परलियाँ पड़ बन्नी गयी । कितने ही
दृष्टकी चोट खाकर डेर हो गये, कितने पथयोंकी चोटोंसे
चूर्ण बन गया और कितने ही दंतोंसे विरीध कर लिये गये ॥

एषुत्रैर्विमथितेभ्यः खड्गैश्च त्रिनिपासिताः ।

रथैर्विष्वसितैः केचित् व्यथिता रजनीचराः ॥ १२ ॥

कितनोंके पत्र खण्डित करके मरक बाने गये ।
तखारों छीनकर नीच गिरा दी गयी और रथ चौरपट कर
दिये गये । इस प्रकार वृद्धोंमें पड़कर बहुत-से राक्षस व्यथित
हा गये ॥ १२ ॥

गजेन्द्रैः पर्यताकरैः पर्यतामैर्वनीकसाम् ।

मथितैर्बाजिभिः कीर्ष्यं सारोर्वैर्वसुधातलम् ॥ १३ ॥

वानरोंके चखये हुए पर्यंत-शिसरोंसे कुचक बाले गये
पर्यंतकर गम्भारों, घोड़ों और पुष्टकारोंसे वह धारी रजनीमि
पट गयी ॥ १३ ॥

वानरैर्भीमविक्रमासैराङ्कुष्योत्कुष्य वेगितैः ।

राक्षसाः कर्त्रैस्तीक्ष्णैर्मुष्णयु विनिवारिताः ॥ १४ ॥

भयानक पशुक्रम प्रकट करनेवाले वेगहासी वानर
उत्क-उत्ककर अपने पंजसे राक्षसोंके मुँह नोक लते था
विरीभं कर देते थे ॥ १४ ॥

विपण्णवद्वन् मूयो विप्रकीर्णशिरोऽङ्गाः ।

मूढाः शोषितगन्धेन निपतुभरणीतल ॥ १५ ॥

उन राक्षसोंके मुन्कोर निपाद छा जाता । उनक
बाह स्र और किलर बात और रक्षकी गन्धसे पृथ्वित हा
पृथ्वीपर पड़ जते थे ॥ १५ ॥

अभ्ये तु परममुद्रा राक्षसा भीमविक्रमाः ।

तलेरेवाभिभावन्ति पञ्चसदसैर्महैरीन् ॥ १६ ॥

वृसे भीम प्रकाशनी राक्षस मरुत कुद्र हा अपने
बहुत-सा कठोर तपयोंसे मारते हुए बर्हा वानरोंपर भाषा
करत थे ॥ १६ ॥

वानरैः यातपस्तन्त शगिता वगवस्रैः ।

मुदिभिश्चरजदसैः पादपैश्चावरोधिताः ॥ १७ ॥

मसिचकीके कमयुक्त गिरनेवाले उन राक्षसोंके बहुत-से
अस्त फर्रासी वानरोंने शय मुक्के गौनों और दृष्टकी
मार कपूर निष्काय दिया ॥ १७ ॥

सैम्य तु विद्रुतं हृद्वा पूजासां राक्षसगमः ।

गपथ कदन वक्त्रे वानरणां युयुत्सताम् ॥ १८ ॥

अग्नी सेन्ना वानरोंद्रोप मगयी गर्द रथ राक्ष-
विपमनि पूजाछने बुद्धकी इच्छासे लम्बे भय हुए वानरणा
एगबक छार मरुत किया ॥ १८ ॥

प्राप्तैः प्रमथिताः केचिद् वानराः शोषितस्त्रवाः ।
मुत्रैरगहताः केचिद् पतिषा धरणीतले ॥ १९ ॥

कुछ वानरोंने अपने मछल्ले गोंय दिया बिल्ले के
नदी बाए बहने लगे । फिन्ने ही वानर उसके मुठगणसे
न हार भरतीपर कर गये ॥ १९ ॥

पार्श्वमधिकाः केचिद् भिन्निपालैश्च वारिताः ।
पट्टिदोमथित्वा केचिद् विह्वलस्यो गतासवः ॥ २० ॥

कुछ वानर परधामे चुनल डाल गये । कुछ
भिन्निपालसे नीर दिये गये और कुछ पट्टिगोले मधे जाकर
म्याकुस हो अपने प्राणसे हाथ बा बने ॥ २० ॥

केचिद् विनिहता भूमौ रुधिराद्रा पतोकसाः ।
केचिद् विद्रावित्वा मथाः सद्रुन्दे राक्षसैर्युधि ॥ २१ ॥

फिन्ने ही वानर राक्षसोंपर मारे जाकर कूले छप-
पथ हो पृथीपर ल गये और फिन्ने ही श्रेवमरे राक्षसोंद्वारा
युद्धसत्त्व नदके अनेपर का मागकर छिप गये ॥ २१ ॥

विभिन्नाह्वया केचिद्रेकापादयैः शायिताः ।
विचारित्वात्प्रिशूलैश्च केचिदाग्नेयिनिःसृताः ॥ २२ ॥

किन्नाक हृदय विनीर्ष हो गये । फिन्ने ही एक कर
नरमे मुना दिये गये तथा किन्नाक विद्राव्य विदीप करके
पूछाएने उन की भांते वाहर निम्न हो ॥ २२ ॥

तत् सुभीम महद्युध हरिराक्षससङ्कुलम् ।
प्रथमौ गन्धर्वकुल शिखापादपसङ्कुलम् ॥ २३ ॥

बानर और राक्षसमे मय दुग्ध पर स्थान युद्ध पदा
स्थान इ प्रतीत होता था । उसमें अन्ध घन्नापी यदुल्लय थी
गाथ गिन्नाभा और युद्ध की शक्ति लगी गन्धर्वमे भर गयी
थी ॥ २३ ॥

धनुज्यत्प्रिमधुर दिक्प्रातानसमन्वितम् ।
मन्वस्तन्निर्गतां तद् युद्धगान्धर्वमप्रथमौ ॥ २४ ॥

यह युद्धकी गन्धर्व (स्त्री महत्तर) मनुज प्रकीर्ण
होय था । मनुजी प्रन्नागम जो वानर भन्नि हथी थी वही
मन्व प्रन्नागम मनुज नाद था दिव्यता गन्धर्व प्राय वही
थी और मन्वप्रन्नागम मनुज नाद था वगैरता हस्त था वही फिन्ने
ना भवान न रहा था ॥ २४ ॥

पूषासन्धु धनुष्पाणियानवान् रणमूषनि ।
दत्तन् विद्रावयामास विस्तान्तरगृहिभिः ॥ २५ ॥

मन्वप्रन्धुव हाथमें निव पूषधनु युद्धक यथानेक
जानता वही व दत्ततः इहा हेल्ल गज विष्ठाभन
मन्वप्रन्धु ॥ २५ ॥

पूषासन्धुवन सन्धुष्पाणि प्रत्येय मादन्ति ।
नभ्यरतन सन्धुव प्रद्युध विपुना निव्यम् ॥ २६ ॥

धूम्राक्षकी मारले अपनी केन्द्रसे पीडित एवं न्यफि
देख पवनकुमार हनुमान्की अस्मत् कुपित हो उठे और
निगाल शिख हाथमे से उसके धामने अये ॥ २६ ॥

श्लोधावु विद्रुगण्यप्राक्षः पितुस्तुल्यपराक्रमः ।
शिक्षा ता पातयामास धूम्राक्षस्य रथ प्रति ॥ २७ ॥

उस समय श्लोधाके करण उनके नेत्र बुगुने नम हो
ये । उनका पराक्रम अपने पिता वायुदेवके ही समान था
उन्होंने धूम्राक्षके रथपर वह शिक्षाल शिख दे मारी ॥ २७ ॥

अपठन्ती शिख द्रुवा गवामुच्यम् सम्प्रमात् ।
रथादापुत्रुष्य धनेन वसुधायां व्यतिष्ठत् ॥ २८ ॥

उस शिखका रथ की ओर भाठी देन धूम्राक्ष हीनकी
गया किन्ने उठा और वेगपूर्वक रूपसे कूदकर पृथीपर लड़
हो गया ॥ २८ ॥

सा प्रमथ्य रथ तस्य निपपन्न शिखा मुवि ।
नयककूपरं सादरं सञ्चञ्च सशारासनम् ॥ २९ ॥

वह शिख पहिले कूट भय, धन और वनस्पति
उसके रथमें चूर चूर करके पृथीपर गिर पड़ी ॥ २९ ॥

स भङ्गस्त्रवा तु रथ तस्य हनुमान् मादक्यमज्जः ।
रक्षसां कत्न चक्रे सत्कम्पधितपट्टुमैः ॥ ३० ॥

इस प्रकार धूम्राक्षके रथमें जोरकर करके पवनपुत्र हनुमान्
ने कटी-बड़ी शक्तिपूर्वक युद्धद्वारा उसके रथका ध्वंस करके
किया ॥ ३० ॥

विभिन्निदीप्ता भूत्वा राक्षसा रुधिरागिता ।
द्रुमैः प्रमथिताभ्यामे निपतुर्धरणीतन ॥ ३१ ॥

बहुतरे राक्षसके शिर पूट गये और वे रक्षसे नष्ट उठे ।
दूख बहुत ने निगाबर शिखी मारने कुनक जाकर भरतीपर
होय गये ॥ ३१ ॥

विद्राप्य राक्षस सेन्य हनुमान् मादक्यमज्जः ।
गिरः निखग्मादाय धूम्राक्षमभिनुद्रुय ॥ ३२ ॥

इस प्रकार राक्षसनाथ गरीबकर पवनकुमार हनुमान्ने
एक पराता गिर उठा शिख और धूम्राक्षपर भाव
किया ॥ ३२ ॥

समापत्तन् धूम्राक्ष गवामुच्यम् धीयवान् ।
विन्दमानः सहसा हनुमन्तमभिद्रुयत् ॥ ३३ ॥

उन्हें अन्ध रूपसे धीयवान् भी गया उठा ली
और गन्ना प्रन्धुवा पर लक्ष हनुमान्की ओर
लड़ा ॥ ३३ ॥

तस्य युद्धस्य राक्षसगां ता वदुष्काटयम् ।
गानयामास धूम्राक्ष मत्कण्ठ्य हनुमन्तः ॥ ३४ ॥

पूषधनु युष्माकं द्रुव (द्रुगण) वरक म (वन्धुव) वदुष्काटयक
राक्षस की दूर से गया मारी ॥ ३४ ॥

ताडितं स तथा तत्र गद्या भीमबेगया ।
स कृपिमाकृतयस्सस्त प्रहारमचिन्तयन् ॥ ३ ॥
पुद्गास्य शिरामय गिग्शिङ्गमपातयत् ।

ममन कमान्सी तस गद्यं चट् आकर भी सपुक्
ममने बसधार्थी कपकर हनुमान वहाँ इश प्रहरण कुछ भी
नहीं मिला और पूसाधक नसाकर वह पकटलियर चक्र
लिया ॥ ३ ॥

स विस्मयितसयाद्वा गिग्शिङ्गेण ताडितः ॥ ३६ ॥
पपात सहसा भूमौ विकीर्ण इव पशत ।

पपटलियरकी गरी चट् आकर पुद्गाधक धरे अङ्क
किप्रभिर हा गय और वह लियर हुए पशतकी नाति साख
प्रपीर मर पडा ॥ ३६ ॥

इत्यर्थे भीमद्रामायण ककमाकय आदिकाम्ये सुदकाय्ये विपश्चातः सर्गः ॥ १२ ॥

इम पद्यं श्रीबालकनिर्मितं भार्गवप्रवचनं आदिकाम्ये सुदकाय्येन बानरों ६५ पृष्ठे ॥ ५० ॥

त्रिपश्चातः सर्गः

वज्रदृष्टा सनामहितं सुदकं लिखे प्रम्यानं, वानरा और राक्षसाका युद्ध,
वज्रदृष्टागा वानरोंका तथा अङ्गद्वारा राक्षसोंका संहार

पुद्गार्धं निहतं भ्रुवा रावणो राक्षसदशरुः ।
मयान महत्सऽऽविष्टो निःश्वसन्पुरगो यथा ॥ १ ॥

पुद्गाधक मार शनेच समचार नुनकर एकद्वारा एकन-
का मयान कान दुःख । इ कुहरत हुए सके मयान कर
करन सोंत धने छग ॥ १ ॥

वीचमुष्णं विनिःश्वस्य मयानं क्लृप्युर्गुह्यत ।
भयधाद् गहस्य ह्यं यज्यवृष्टं महापलम् ॥ २ ॥

मयान क्लृपित हो गयनगम लकी सोंत श्वानकर उछने
शर निघाचर महादकी बज्ररूपने कहा— ॥ २ ॥

गच्छत्य धां निवाहिं गच्छसं परिवारितः ।
अहिं शारंगिणं शमं सुर्धनं धाम्ने सह ॥ ३ ॥

और । तुम एकद्वारा एक यम और श्वारंगकुमार यम
और धनपछेति मुमाराक मार डालो ॥ ३ ॥

नभ्यमुत्तथा दुस्तर्षं मायायां गच्छसम्भारः ।
निजगाम बहैः साधैः यदुभिः परिवारितः ॥ ४ ॥

तब वह मायायी एकद्वारा एक अन्धक बहुत बड़ी
मनाक मय गुन पुद्गाक मिया मय लिया ॥ ४ ॥

नरीन्द्राः क्षरन्तु सपुक् सुसमाहितः ।
पयश्चपयज्जिह्वाम् यदुभिः समसङ्गतः ॥ ५ ॥

बह शर्षे पङ्क गदर और ऊँट धारि सवातयाम पुक्
था निरुध पूजः एकम किय हुए था और पयश्च मय

पुद्गार्धं निहतं हृद्वा हतशया निशाचराः ।
प्रस्ता प्रथिविशुक्लुवा धष्यमाणं पुनर्गमे ॥ ३७ ॥

पुद्गाधक मार मना एक मरनग मय हुए निघाचर
नभमी हा यमरोंकी मय मयान हुए धृद्वाम पुन गय ॥ ३७ ॥

स तु पयन्मुतो निहत्य शम्भुं
सुतजयहाः संगित्य सविधीय ।

गिबुवधज्जितममम महात्मा
सुदमगामत् कृपिभिः सुपूज्यमानः ॥ ३८ ॥

इत प्रकार गजुओंका मारकर और रक्षकी भाग बहानेवासी
यदुत-सी नभ्येके प्रयाहित करक महात्मा पवनकुमार हनुमान
यपति धनुवधजनत परिभमने यक मय थे, तथापि बानरोंका
पुंरत एवं प्रयत्ने हुनेसे उन्हें बड़ी प्रशंसा हुई ॥ ३८ ॥

आदिम विपिय प्रभा धनेशाम ननुनन उद्यप्यध र्कध
शाम्य कदात थ ॥ ॥

कने विचित्रकेयूरमुकुटन विभूमिः ।
सनुप स ममाधूम्य सभनुमिषया द्रुतम् ॥ ६ ॥

विचित्र मुकदर और मुकुटन विनूत हा कयन भारण
करक शायम पनुन मिय वह शीम ही निकल्य ॥ ६ ॥

पताकालसुत दीप्त ततश्चाङ्गनभूषितम् ।
रथ प्रवृत्तिषा कृत्वा समारोहाम्पति ॥ ७ ॥

धन-पयश्चभौमं भयङ्कत शीमाम् तथा कनेक श्व-
शाम्य नुचिजि यम्य परिध्या करक मयापत पत्ररु उतर
आन्द हुम् ॥ ७ ॥

श्रुतिभिलापरिधिर्भ्रः स्रुक्कय्य मुसलेरणि ।
मिन्विपानध चापध गकिभिः पट्टिरीरणि ॥ ८ ॥

कईकईगदाभिध निरिज्जय पयश्चधा ।
पदानयध निषान्ति विविधा शस्त्राप्ययाः ॥ ९ ॥

उक्त शय श्रुति विपिय ठमर चिन्ने मुकक, मिन्दि
पध, पनुन शक्ति पट्टि कइ चक, मय और कय
कखेने मुककत यदुन-म परक यदा मय । उक्त हापौम
अनेक प्रकारक अन्ध-जक शाम्य या रहे थ ॥ ८ ॥

विचित्रशासतः सर्वे शीमा राक्षसपुत्रया ।
गजा महाकन्याः धृताश्वसेन इव पत्न्या ॥ १० ॥

विचित्र वक्राचार्य इत्येवमेव समीपं गच्छन् वीरः
तस्मै उद्भवति ह्येव ॥ १० ॥

न मुञ्चकृपाया कृपास्तोमराकुशापाणिभिः ॥

अथ कृपासमुत्थाः शूराकृदा महायत्नाः ॥ ११ ॥

हासोमो विसृज्य अकुशं पारणं कृतेनात् महात्तु क्तिन्भी
गर्तनपरं त्वारं च तथा को मुञ्चकृपा कृतेनात् कुशाद्यं च, व हाथी
मुञ्चके क्तिन्भी कृते ॥ उक्तं च क्तिन्भी मुञ्चकृपा कृतेनात् कुशाद्यं च, व हाथी
मुञ्चके क्तिन्भी कृते ॥ ११ ॥

तद् यत्नसंज्ञकं सर्वं विप्रस्थितमशाभत ॥

प्रभृत्कृपाया मेधा नद्वान्ताः सविद्युताः ॥ १२ ॥

मुञ्चके उद्भवते प्रसिद्धं तुर्गं यत्नसंज्ञकं च छरी सेना
नद्यात्कृते गच्छते इत्येव क्तिन्भी उद्भवते मेधा नद्वान्ताः सविद्युताः
राही च ॥ १२ ॥

मिस्तुत्तं दक्षिणशारादुत्थां यत्र यूपयः ॥

तेषां निष्कममावाचनमशुभं समजायत ॥ १३ ॥

वह सेना कृदात्तं दक्षिणशारात् निकसी, क्तिन्भी वानरसुयपति
अत्र राहं राहं लक्षे च ॥ उच्यते निष्कमते ही उच्यते राहं लक्षे
वामने अशुभमस्तुत्तं अशुभं होने च ॥ १३ ॥

शूराकृदा विप्रस्थात् तीया उद्भवत्तु मयपतस्तदा ॥

वसन्ता पावकज्वाला शिवा घोरा ववाशिते ॥ १४ ॥

मेघप्रति आकाशे तत्प्रभं तु उच्यते उद्भवत्तु होने
को ॥ मयपतं गीदृग् मुहते अगच्छी क्तिन्भी उच्यते इत्येव
अपनी क्तिन्भी उच्यते को ॥ १४ ॥

मयावन्त मुगा घोरा रक्षन्ता निधनं तदा ॥

समापत्तौ याधान्तु मयस्तुत्तं तदा वारणम् ॥ १५ ॥

पारं पदं एते क्तिन्भी उच्यते को क्तिन्भी उच्यते उच्यते
की सुचना मित्रं राही च ॥ मुञ्चकृपा क्तिन्भी अत्र इत्येव मुगा कुरी
तदा क्तिन्भी उच्यते मिर पदं च ॥ इत्येव उच्यते क्तिन्भी उच्यते
अस्या ह्येव राही च ॥ १५ ॥

पदाभिरुत्पत्तिकान् इषु पावकज्वाला महायत्न ॥

पैत्र्यात्मस्य तज्जली निजंगाम रणात्सुकः ॥ १६ ॥

इत उच्यते उच्यते क्तिन्भी उच्यते को महात्तु क्तिन्भी उच्यते
इत्येव पैत्र्यात् नदी उच्यते ॥ इत्येव उच्यते क्तिन्भी उच्यते
इत्येव क्तिन्भी उच्यते ॥ १६ ॥

तास्तु बिभ्रत्तदा इषु वानरा जितकाशिनः ॥

प्रयत्नुः सुमहान्वाहन् विशाः पाप्यं पूरयन् ॥ १७ ॥

सिद्धमते अत्र इत्येव उच्यते उच्यते क्तिन्भी उच्यते को
ते मुञ्चकृपा इत्येव वानरं वदं उच्यते उच्यते क्तिन्भी उच्यते

को ॥ उच्यते अत्र इत्येव उच्यते उच्यते क्तिन्भी उच्यते को
दिया ॥ १७ ॥

तदा प्रयुक्तं तुमुक्तं इरीया राक्षसैः सह ॥

मेराया भीमरुपायामप्योन्यवधकृष्टिणाम् ॥ १८ ॥

तदन्तरं भयानकं रूपं धारणं कृतेनात् वारं वानरं
उच्यते उच्यते उच्यते क्तिन्भी उच्यते को उच्यते उच्यते
याया एकं वृत्तेन वधं कृता च इत्येव ॥ १८ ॥

निष्कमन्ता महोत्साहा भिन्नवृत्तशिरोभरा ॥

बधिरौस्तितसर्वाद्या मयपतन् धरणीतले ॥ १९ ॥

न वदं उच्यते मुञ्चकृपा क्तिन्भी निष्कमन्ता परंतु देहं मयं
गर्तनं कृते अत्रेते पुष्पीरं मिर पदं च ॥ उच्यते उच्यते उच्यते
उच्यते उच्यते उच्यते मयं अत्रं च ॥ १९ ॥

कृष्टिणामप्योन्यमसाद्य शूराः परिप्रवाहवः ॥

विधिपूर्वविधाभ्यास्तत्रात् समरेण निवर्तितम् ॥ २० ॥

मुञ्चके क्तिन्भी पीठेन इत्येव उच्यते मयं परिप्रवाहवः
क्तिन्भी ही उच्यते एकं वृत्तेन निष्कमन्ता पुष्पीरं परस्परं नना
मयं उच्यते उच्यते उच्यते मयं अत्रं च ॥ २० ॥

द्रुमाणां च शिखरायं च शस्त्राणां प्रापि निस्तनः ॥

भूयत सुमहास्तव घोरो हृदयमेव च ॥ २१ ॥

उच्यते मुञ्चकृपा क्तिन्भी उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते
उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते
उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते

रथनेमिलनस्तत्र धनुष्यापि श्रेयवत् ॥

शङ्खमेरीभृत्तानां वभूय तुमुक्तः सनः ॥ २२ ॥

क्तिन्भी उच्यते परिप्रवाहवः परंपरात् धनुष्यापि मयं उच्यते उच्यते
वधा उच्यते मेरी भैरं मुञ्चकृपा क्तिन्भी एकं निष्कमन्ता वधा
मयं उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते

कृष्टिणामपि सत्यस्य बाहुयुक्तसुवर्त ॥ २३ ॥

तस्मै च सरणैश्चापि मुष्टिभिश्च दुर्भरिणि ॥

जानुभिश्च हताः कृष्टिन् भगवद्वाह्यं राक्षसां ॥

शिक्षाभिदत्तुषिणः कृष्टिन् धानरिभृत्तुमुक्तैः ॥ २४ ॥

उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते
व ॥ पण्यं उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते
क्तिन्भी ही उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते
ने शिक्षाभैरे मयं-मयं क्तिन्भी ही उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते
दिया वा ॥ २४ २५ ॥

यज्जपन्तो मुदा बाधै रणे विद्यासयन् हरीन् ॥

वच्यारं लोकसंहारे पाराहृत्य इत्यात्तका ॥ २५ ॥

उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते
मयं उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते
वधा उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते उच्यते

बद्धकस्तोऽस्त्रविधुषो नामाप्रहरण्य रणे ।

अप्सुर्वानरसैन्यानि राक्षसाः क्रोधमूर्च्छिताः ॥ २६ ॥

वध ही क्रोधसे भरे तथा नामा प्रकारके अस्त्र-शस्त्र सिधे अन्य अस्त्रयुक्त बहान् राक्षस भी बानरसेनाओंके रणभूमिमें खंभार करने लगे ॥ २६ ॥

अप्यन तान् राक्षसान् सर्वान् धूष्यं धालिस्तुता रणे ।

क्रोधेन विरुण्यधिष्ठः स्वयंतेक इष्यन्तः ॥ २७ ॥

किन्तु प्रथमकायमें स्वयंतेक अग्नि जैसे प्राणियोंके खंभार करती है, उसी तरह बालिगुप्त अङ्गद और भी निर्भय हो वृते क्रोधसे भस्कर उन सब राक्षसोंका वध करने लगे ॥ २७ ॥

तान् राक्षसगणान् सर्वान् बृहन्नुद्यम्य धीयवान् ।

भङ्ग्यः क्रोधेभ्यम्राक्षः सिंहाः शूद्रमुगानिव ॥ २८ ॥

भस्कर कन्दन घोर शक्रजुस्यपराक्रमः ।

उनकी ओल्ले क्रोधसे झरु हो रही थी । व इन्द्रके तुल्य पराक्रमी थे । जैसे सिंह छोटे वन्य पशुओंको अनायास ही नष्ट कर देता है उसी तरह पराक्रमी अङ्गदने एक बृहत् उठाकर उन समस्त राक्षसगणोंके पार खंभार कररम्म किया ॥ २८ ॥

भङ्ग्याभिहतास्तत्र राक्षसा भीमधिक्रमाः ॥ २९ ॥

इत्यापै भीमहामावने वाक्सीवीथि आदिशब्दे युद्धकाण्डे प्रियव्राथाः सर्गाः ॥ ५३ ॥

स इहम श्रीवामदेविकिर्मित कर्तव्यमायन भद्रिकाम्यके युद्धकाण्डे विरचनार्त्ता सर्ग पूरा हुआ ॥ ५३ ॥

विभिन्नशिरसः पतुर्निकृता इव पावपाः ।

भङ्ग्यकी मार लाकर वे भयानक पराक्रमी राक्षस सिर फट जानेके कारण फटे हुए शृण्णोंके समान प्रधीकर गिरने लगे ॥ २९ ॥

रथैश्चिषैर्ध्वंशैरखैः शरीरैर्हंरिरक्षसाम् ॥ ३० ॥

रथिरोधेण सद्यथा भूमिर्भयकरी तथा ।

उस समय रथों, चित्र-विचित्र अस्त्रों, पाइयों, राक्षस और बानरके शरीरों तथा रथकी धारोंसे मर जानेके कारण वह रणभूमि बड़ी भयानक बन पड़ती थी ॥ ३० ॥

हारकेयूरवलीय शालीय समलकृत ॥ ३१ ॥

भूमिर्भाति रणे तत्र शारवीय यथा निशा ।

याज्ञाओंके हाठ क्यूर (कर्मवृद्ध), वल और धालासे अस्मकृत हुए रणभूमि धारकसूक्ष्मी रात्रिके समान शोभा पाती थी ॥ ३१ ॥

भङ्ग्यस्य च वगन तद् रक्षसवल महत् ।

प्राक्कम्पत तदा तत्र पयननाम्बुषो यथा ॥ ३२ ॥

अङ्गदक वगसे बर्त्ता वह विधाक राक्षसमना उस समय उठी तब क्रांपने लगी जैसे वायुक वगसे मेघ कम्पित हो उठता है ॥ ३२ ॥

चतुष्पञ्चाश सर्ग

वज्रदष्ट और अङ्गदका युद्ध तथा अङ्गदके हाथसे उस निष्ठाभरका वध

सकस्य वा पातन मङ्गस्य पत्नेन च ।

राक्षसाः क्रोधमाविष्टो वज्रदष्टो महाबलः ॥ १ ॥

अङ्गदके पराक्रमसे अपनी सेनाके खंभार इष्ट देल महा-बली एकव वज्रदष्ट अत्यन्त कुर्बत हो उठा ॥ १ ॥

विस्फर्ष्य च धनुर्धरं शक्रप्रदानिष्ठमग्रभम् ।

वानरपद्ममरीकानि प्राकिरन्धरवृष्टिभिः ॥ २ ॥

वह इन्द्रके वज्रके समान ठेकसी भयना भवकर पशुपतींकर बानरोंकी सेनापर बाजाकी बर्त्ता करने लगा ॥ २ ॥

राक्षसाश्चापि मुष्पास्त रथेषु समबसिष्ठः ।

मनाप्रहरण्य शूराः प्रायुष्कृत तदा रणे ॥ ३ ॥

उसके साथ अन्य प्रधान-महान क्षुभीर राक्षस भी रथापर बैठकर हाथोंमें तब-तबके हथिकर सिधे ठंमामभूमिमें युद्ध करने लगे ॥ ३ ॥

वानरपाणां च शूरास्तु त सर्वे सूघगपथाः ।

भयुष्कृत शिखाहस्तः समवेलाः समन्वतः ॥ ४ ॥

कनपने भी वे सिधेय क्षुभीर वे, वे सभी बानरशिखर-

मणि सब आरते एकत्र ही हाथोंमें शिखाएँ सिधे सूतने लगे ॥ ४ ॥

तत्रायुधसहस्राणि तस्मिन्नायोभम शूदाम् ।

राक्षसाः कपिमुष्केषु पातयार्चमिते तथा ॥ ५ ॥

उस समय इस रणभूमिमें राक्षसोंने मुख्य-मुख्य बानरोंपर हथोर अस्त्र-शस्त्रोंकी बर्त्ता की ॥ ५ ॥

वानरयोधै रक्षसु गिरिवृक्षान् महाशिलाः ।

प्रवीराः पातयन्मासुर्मत्तवारणसंनिभाः ॥ ६ ॥

महाबल हाथीके समान शिखाहस्तय बीर बानरोंने भी राक्षसोंपर अनेकनेक पर्यैत, वृक्ष और बड़ी-बड़ी शिखाएँ गिरायीं ॥ ६ ॥

शूराणां युष्पमानानां समरप्यनिवर्तिनाम् ।

तद् रक्षसगणाना च सुयुद्ध समघतत ॥ ७ ॥

युद्धमें पीठ न दिखानेवाले और उत्कृष्टपुष्क ब्रह्मनवास क्षुभीर बानरों और राक्षसोंका यह युद्ध उत्प्रेक्ष्य बक्ष्य गया ॥ ७ ॥

प्रभिक्षितिरसा केचिन्निष्पन्नैः पाद्वैद्य वायुभिः ।
शशौर्वादिस्वेहास्तु रधिरेण समुक्षिताः ॥ ८ ॥

किन्हींकि सिर पूर किन्हींकि हाय और पैर फूट गये
अर बहुतसे योडाओंके शरीर पात्रोंके आघातसे पीड़ित
ग रक्तसे नहा गये ॥ ८ ॥

हरयो राक्षसाश्चैव शेरत गा समाधिताः ।
कङ्कुराभयलाभ्याम् गोमायुकुल्लसकुल्लम् ॥ ९ ॥

घनर और राक्षस दोनों ही फटाफटी ही गये । उनपर
कङ्कुरा गीप और शेर टूट पड़े । गिरझोंकी अगलें
छा गयीं ॥ ॥

कयम्भानि समुत्पनुर्भारुणा धीपयानि वै ।
मुञ्जपाणिदिारदितुभ्रादिउच्छक्रय्याम् भूतल ॥ १० ॥

वहाँ किनक मलक कूट गये ये एते पड़े सब अर
उछले ट्या आ भीर स्वमाकवास सेनिष्पन्न मयमीत करते
ये । योडाओंकी फटी हुई मुञ्जों हाथ सिर तथा शरीरके
मध्यभाग पृथ्वीपर पड़े हुए थे ॥ १ ॥

बानरा राक्षसाश्चापि निपतुस्तत्र भूतले ।
नन्ता घनरसैम्येन हस्यमान निशाचरम् ॥ ११ ॥
याभज्यत यत्न सर्वं यज्ञवृष्टस्य पश्यतः ।

घनर और राक्षस दोनों ही दबोंके खेग वहाँ पड़पायी
वा रहे थे । तबबान्ना कुछ ही देखते बानर-उनिष्पन्नके प्रहारसे
पीड़ित वा खरी निशाचरसेना बज्ररूपक देखते-देखते
भगा खयी ॥ ११ ॥

राक्षसान् भयविभस्तान् हस्यमानान् द्वयगमैः ॥ १२ ॥
दृष्ट्वा न रोयतास्त्रास्तौ यज्ञवृष्टः प्रथमवान् ।

घनरोंकी मारसे राक्षसोंको मयमीत हुआ देख प्रथमी
बज्ररूपकी धीमे क्रोधसे बाध हो गयीं ॥ १२ ॥

प्रथिवेश धनुष्पाणिस्त्रासयन् हरिषाहिनीम् ॥ १३ ॥
नारार्धदारयामास कङ्कुरप्ररजिह्वरीः ।

बद हाथम पतुग म घनरसेनाको मयमीत करण हुआ
यसके नीचेर पुछ गये अर कीध अतबाध कङ्कुरपनुक
पाणाहाग गधुभ्रोंके विरुद्ध करने लगे ॥ १३ ॥

विमेद घनरास्त्रप्र नमस्यदी नय पञ्च ख ॥ १४ ॥
विषयाध परमभृदा यज्ञवृष्टः प्रतारयान् ।

अपन्न मयम मय हुआ प्रथमी बज्ररूप वहाँ एक
एक प्रहारम पांच खत भेड अर नोना घनरास
पयप कर दला था । इस तरह उनसे घनर-स्त्रीमेंको
मरगे पाठ पदुंनयी ॥ १४ ॥

प्रलप सर्वे हरिगण्डाः नरे सङ्कलङ्कितः ।
भङ्ग मयप्रधर्मिन प्रजापतिमिर प्रजा ॥ १५ ॥

अधोसे किनक शरीर छिन्न-भिन्न हो गये वे, वे कल
अनरगल मयमीत हा मङ्कुरकी अर रोड़े नन्ना प्र
प्रबन्धनिधी करणसे ख खी हो ॥ १ ॥

ततो हरिगण्डान् भङ्गान् दृष्ट्वा घानिसुतस्तत्रा ।
क्रोधेन यज्ञवृष्टं तमुदीक्षन्तमुदीक्षत ॥ १६ ॥

उठ समय बानरोंको मयगत देख बाहिकुमार अङ्कुरे
भङ्गी अर देखत हुए बज्ररूपको क्रोधपूर्वक देखा ॥ १६ ॥
यज्ञवृष्टोऽङ्कुरास्त्रोभी योयुध्येते परस्परम् ।
घरतुः परमभृदौ हरिमत्तगजायि ॥ १७ ॥

सिर वे बज्ररूप भार अन्द अस्फुट कुति हो
एक दूसरेसे बेगपूर्वक युद्ध करते छे । वे दोनों रबन्मिन
याप और मलयक हाथीक समान विचार रहे थे ॥ १७ ॥

ततः दशसहस्रान् हरिपुत्र महायसम् ।
जघान मर्मवेशेषु शरीरघ्निशिक्षोपमैः ॥ १८ ॥

उठ समय बज्ररूपने महाकवी बाहिकुमार अङ्कुरे
मर्मसाधनोंम अनि-शिलाक समान तेकसी एक स
शप मरे ॥ १८ ॥

बधिरोक्षितसघात्रो वासिसनुमहायसः ।
विशेष यज्ञवृष्टस्य वृक्ष भीमपरकम् ॥ १९ ॥

इससे उनके खरे अङ्कुर-छलन हो उठे । उन मयम
परकनी महाकवी बाहिकुमारने बज्ररूपपर एक वृक्ष यज्ञवृष्ट
दृष्ट्वा पतन्त त वृक्षमसम्भ्रान्तस्य राक्षसः ।
धिष्ण्येन वज्रुधा सोऽपि मथितः प्रापतद्भुमुषि ॥ २० ॥

उठ वृक्षने अपनी अर माते देखकर भी बज्ररूपके
मनमें बरपट्ट नहीं हुई । उसने सग मारकर उठ वृक्षमें
फरे टुकड़े कर दिये । इस प्रकार सङ्घित होकर वह ही
पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २ ॥

त दृष्ट्वा यज्ञवृष्टस्य विक्रमं तृवगार्थभा ।
प्रपृष्टा विपुल शैल विश्लेष ख ननात् न ॥ २१ ॥

बज्ररूपके उठ परकमक देखकर बानरशिष्ण्ये
भङ्कुरने एक शिलाक बहान लेकर उठक अर दे मरी
अर बड़े बलसे गर्कता थी ॥ २१ ॥

तमापतन्त दृष्ट्वा स रथावाप्युत्स्य वीपवन्त ।
गदापायिरसम्भ्रान्त-पृथिव्यां नमतिष्ठत ॥ २२ ॥

उठ घटानको भगती देव बर परकनी राक्षस किन्न
किन्हीं फणपट्टक रथत हूट पड़ा और फकस गया हाथम
मरर पृथ्वीपर पड़ा हा गये ॥ २२ ॥

भङ्गन शिला क्षिता गत्या तु रथमूधनि ।
मन्वककृपण मादय प्रममाथ रथ तदा ॥ ३ ॥
भङ्कुरमें नैमी हुई बर घटान उनके रथपर पदुम

गधी भेर युद्धक मुक्तानेर न्को परिधे, क्वर तथा पादो-
रहित उष म्पत्र तन्त्रक चूर चूर कर शक्य ॥ २१ ॥

तन्त्रान्यच्छिन्नतर गृह्य विपुल कुम्भभूयितम् ।

पञ्चदशस्य शिरोसि पक्षपासास धानर ॥ २४ ॥

सगभान् चनरधी भङ्गने दृष्टोते भवद्वय दृष्ट्य
विशाल शिन्धर हापने लङ्ग उषे पञ्चदशक मन्त्रकर
दं मय ॥ २ ॥

मभवच्छप्रणितोशरी पञ्चदशः सुसुन्दरितः ।

सुद्वतमभवाभूदा गवामातिद्वय मिश्रयसन् ॥ २ ॥

पञ्चदश र्शधी चारमे मूर्च्छित हो गवा भेर रक्त
कमन करने क्षय । सर गदाश हृदयठ क्षयय हो पक्षितक
भवन पदा र्श । फल उसरी शंस वन्दी र्श ॥ २ ॥

स मन्धसमे गदया बालिपुत्रमवस्थितम् ।

उषान परमप्रुन्ना यशाद्वो निशाशरः ॥ २६ ॥

हामने भनर उष निशाचने भनन कुपित हो
क्षमने पद हृष्ट वन्निपुश्री छापीमे गदास प्रार किया ॥
गवा त्यपन्ना तनस्तप सुधियुजमकूपयत ।

मन्यस्य उग्रतुस्तत्र तापुभी हरिराक्षसा ॥ २७ ॥

दिर गवा ल्याग्र वर पदो मुक्कमे मुद करने सगा ।
वे चनर भेर उज्ज न्को भेर एक दृष्टक मुक्कमेस
माने सगा ॥ ३ ॥

रुधियशारिणा ही तु प्रहारीकनितभमो ।

चमूयतुः सुविमन्त्रप्रयज्ञारकपुधाधिय ॥ २८ ॥

रन्ने ही गद पाककी य भेर पररत यज्ञ हृष्ट
मन्त्र एवं पुषक सन्त्र जत पदत य । भयसक प्रराणम
रहित हो दन्त ही मक गव भेर मुँरने रक्त वमन
करने सगा ॥ २८ ॥

ततः परमनङ्गस्यो भङ्गदं गृयगामन ।

उत्तरास्य गृह्य शिपुशकामात् पुष्पककपुत ॥ २९ ॥

सगभान् सस तन्त्री यनरधियमवि भङ्गदं एक
दृष्ट गवाइकर गद हो गवा । वे पदो उष दृष्टकम्पी
रक्तपुष्पक करत मर भी वन भेर वृत्तम पुषक शिपारी
हो य ॥ ॥

उग्रह चारम चम रक्त च विपुल गुभम् ।

विदुषीशानमण्डने मन्वा य परिपुष्टम् ॥ ३० ॥

उषा वर पुन श्रयनक चरयो स्त्री र्श गव भेर
कुपण र्श शिन्धर तन्त्रर र्श । सर तन्त्रर उषी उषी
पररक र्शन भन्त्ररले गद यनरधो यनन
रन्ने ॥ ॥ ॥

विशाल र्शगव मागोधनु कपिरासमी ।

जपन्तुश्च त्वान्यन्य ननुमो उपकृष्टिमी ॥ ३१ ॥

उष समर पन्तर विजारी इच्छा रन्नेचक वे चनर
भेर गधत पीर मुन्तर एष विविध पंकर पन्को तथा
गर्भेन हृष्ट एक दृष्टार पद करने सगे ॥ ३१ ॥

मय माश्र्मशोमता पुषिन्त्राधिय किपुकी ।

सुष्यमानो परिश्रान्तो जानुभ्यामयनी गती ॥ ३२ ॥

दन्तीक पायोन र्शधी पाण परन उषी किम्भ य
मित हृष्ट प्शाग दृष्टोके क्षमन ग्राभय एते सग । सङ्गत-
सङ्गत मर यनेक करर र्शने ही र्शनीर पुदने
रक्त शिय ॥ ३२ ॥

निमेगन्तरमायेण मङ्गदः कपिकुञ्जरः ।

उद्विष्टत श्रीतापो दृष्टाहत स्वागः ॥ ३३ ॥

श्रुि प्शक मारन-मारन कनिभेद भङ्गद उज्जर लङ्
हा गव । उरक नप यान उरित हो उर य भेर य
रन्ने पद मय हृष्ट मरकमयन उतेकि हो र्श य ॥ ३३ ॥

निमेलेन सुपातन साङ्गमाय महन्दिष्टः ।

उषान पञ्चदशस्य पानिमनुमहापल ॥ ३४ ॥

महापल्य वा नुमामने भानी निमेस एष तत्र धारवासी
भमरिती उज्जरन पञ्चदश विगत मन्त्रक कर शक्य ॥
रुधियोक्षितपाश्र्वस्य यपूर पत्ति द्विधा ।

तद्य मय परीतान गुभ मङ्गहत शिप ॥ ३५ ॥

गुलम सयय गरीयान उष उज्जक वर गपुन
कय दृष्टा मुन्त्र मन्त्रक, शिपक नप र्शक गव य
परनीन निरर न र्शनेमे निमक हो गद ॥ ३५ ॥

पञ्चदश हत हृष्टो गक्षमा भयमाहितः ।

प्रस्ता हान्यद्रयन्त्रो वाप्यमानाः गृयङ्गमे ।

विषम्ययदना श्रीना द्विया द्वियद्वयाङ्गवाः ॥ ३६ ॥

भङ्गदृष्ट मय गवा दन उषा भयन भवन हो
गव । य वनरुभ मर गदर भङ्गक मर मन्त्रमे भय
गव । र्शन मुन्त्रर शिप हो र्शो यो । य पदुन गुभ
य भर तन्त्रक वरर र्शने अन्य मुँर कुप गवा कर
शित यो ॥ ३६ ॥

निहत्य न पञ्चधनः प्रमथयान्

न पानिमनुः कपिमन्त्रप्रथः ।

उगाम र्शे महिता महापला

महश्चनप्रगिभृशियापुनः ॥ ३७ ॥

रङ्गी र्श क्त र्शनी मर प्र कपिकुञ्जर
य र्श शिन्धर र्श हृष्ट मरर वनरन्ने
मन्त्रा हो मन्त्रा र्श हृष्ट र्श मन्त्रा र्श
मन्त्र र्श र्श मन्त्रा र्श ॥ ३७ ॥

एषोपे श्रीमद्भागवत सप्तमोऽध्यायः सुदक्षिणके वसुपञ्चाशत् खण्डे ॥ ११६३ ॥

॥ ११६३ ॥ सुदक्षिणके वसुपञ्चाशत् खण्डे ॥ ११६३ ॥

पञ्चपञ्चाश सर्ग

गवणकी भाङ्गासे अकम्पन भादि राक्षसोंका युद्धमें आना और वानरोंक साथ उनका घोर युद्ध

वज्रवृद्ध हत भुज्जा पाळिपुत्रेण रावणः ।
वलाप्यक्षमुवाचेद् वृताञ्जलिमुपस्थितम् ॥ १ ॥

वाळिपुत्र मज्जदक हाथसे वज्रवृद्धके मारे जानेका
समाचार सुनकर राजपते हाथ बाँधकर अपने पास खड़े हुए
सेनापति ब्रह्मसे कहा—॥ १ ॥

शौच निर्वास्यु बुधार्थं राक्षसा भीमशिकम्बाः ।
अकम्पन पुरस्त्वस्य सर्वेशास्त्रास्त्रकोविदम् ॥ २ ॥

अकम्पन कम्पने मन्त्र-शक्तिके ज्ञाता हैं, अतः उनको
आगे करके भयंकर पराक्रमी दुर्धर उच्छ शीम बसति
युद्धक क्षिय कर्ये ॥ २ ॥

एष शास्ता च गोसा च मेता च युधि सप्तमः ।
भूतिक्रमश्च मे नित्य नित्य च समरप्रियः ॥ ३ ॥

अकम्पनका युद्ध उदा ही प्रिय है । ये सर्वत्र मेरी
उपस्थिति चाहें हैं । इन्हें युद्धमें एक श्रेष्ठ योद्धा माना गया
है । ये शत्रुभङ्गक दण्ड देने अपने सेनिकोंकी रक्षा करने
तथा एकभूमिमें सेनाका संघाटन करनेमें कर्म्य हैं ॥ ३ ॥

एष अप्यसि फाकुरस्त्री सुमीव च महायसम् ।
यानराधापरान् घोरान् हतिप्यथि न सशयः ॥ ४ ॥

अकम्पन दोनों धर्म शीघ्र और अत्यन्तसे तथा
महाकवी तुमारका भी पराका कर देने और दूर-दूरे
भयानक यानराधा भी उदार कर जाली इतमें संघय
नहीं है ॥ ४ ॥

परिपृष्टा स वामापां राजस्य महापलाः ।
सत्स सम्प्रयामास तदा जपुपराम्भः ॥ ५ ॥

धनवती उठ मन्त्रका गिरुधर्म करके शीघ्रपराक्रमी
महावली सेनापति उठ समय युद्धक क्षिय सेना भन्ती ॥ ५ ॥
तदा नान्यप्रहरण्य भीमासा भीमवर्दानाः ।
निपन्वृ राक्षसा मुत्स्या पलाप्यप्रप्रवादिता ॥ ६ ॥

सैन्यात्मि मरीं हा भवान् इनप्रवाभ मुत्स्य-मुत्स्य मय इर
राज्य नान्य प्रसारक अत्र उग्र विष नगर कहर निम्न ॥ ६ ॥
रथमास्थाय सिपुः तमस्यश्चनभूषणम् ।
मयाभा मयग्यश्च मयस्वनमहाभयनः ॥ ७ ॥
राक्षसः सानुना पारैस्तदा निया यकम्पनः ।

७ । मानवता एव मत्वेन विन्ति । विगत रथार भङ्ग
हा पररक्षण ना त एव भयम् भी निम्नय । वर मयक
कम्पन ॥ ७ ॥ या मरक ज्ञान ही उदयम रण था और
व्यक ही दुस्त्र उदीय मन्त्र था ॥ ७ ॥

नहि कम्पयितु शक्यः सुरैरपि महामुधे ॥ ८ ॥
अकम्पनस्ततस्तोपामादित्य इव तेजसा ।

महाकम्पने वेजता भी उते कम्पित नहीं कर सकते के
इसीक्षि बर अकम्पन नामसे विख्यात था और उच्छमें पूर्व
के समान तेजसी था ॥ ८ ॥

तस्य निर्धोवमानस्य सरम्भस्य युगुत्सया ॥ ९ ॥
अकसाव् वैभ्यमागच्छयानता रथवाहिनाम् ।

येगवेगसे मरकर युद्धकी इच्छासे धावा करनेवाले
अकम्पनक रथमें जुते हुए शत्रुओंका मन अकसाव् दीनमा-
की मात हा गया ॥ ९ ॥

व्यस्फुरन्नयनं वास्य सख्य युद्धाभिनन्दिना ॥ १० ॥
त्रिवर्णो मुक्त पञ्च गद्वय्याभवत् स्वना ।

यद्यपि अकम्पन युद्धका अभिन्नहन करनेवाला था,
तथापि उठ कम्प उच्छकी वासी भौल फड़कने लगी । मुक्तकी
कम्पित पीछी पङ्क गयी और वापी गद्वद हो गयी ॥ १० ॥

अभवत् सुदिने कण्ठे दुर्दिन कसमागत् ॥ ११ ॥
ऊधुः क्षगमृगाा सयै पावाः कृता भवावहाः ।

यद्यपि वह कम्प सुदिनका था तथापि उदाका रुखी हवा-
से मुक्त दुर्दिन का गया । कभी पशु और पक्षी मूर एवं
मयदापक पक्षी कम्पने लगे ॥ ११ ॥

स सिंहोपचितस्कन्धाः शालुलसमपिक्मना ॥ १२ ॥
तानुत्पातान्निस्स्यैव निर्वाणाम रणाञ्जिरम् ।

अकम्पनके कंधे सिंहेके समान पुष्ट था । उठकर पराक्रम
स्याके समान था । वह पूर्वके उदाकी भी धर्म परा न करके
एवभूमिती और कत्य ॥ १२ ॥

तथा निर्गच्छतस्तस्य रक्षसा सह राक्षसेः ॥ १३ ॥
पभूय सुमहान् नयः क्षाभयधिव सागरम् ।

किं समय बर राजा दूर उच्छक कथ्य कृतासे निम्नः
उठ कम्प एव महान् कम्पदास दुभा कि क्मुद्रमें भी हलक-
धी मच गयी ॥ १३ ॥

तन दान्तं विप्रस्ता यानराणा महाभयम् ॥ १४ ॥
दुमान्प्रमहाण्यं याम्बु समुपतिष्ठताम् ।

तथा युद्ध महारंद्र सजज परिप्रेरसासाम् ॥ १५ ॥
१४ । महान् कम्पदास यानराी वर विगत उदा भयभीत
हा गयी । युद्धक क्षिय उच्छि हा दुर्धे और मान-विनयें
प्रार इतने-न उन यनय और कच्छमें महाभयं हर युद्ध
हने लगे ॥ १४ १५ ॥

रामपदजयोरर्चं समभित्यक्तत्रेहिनः ।
 सर्वे ह्यतिवला शूरा सर्वे पथतसनिभाः ॥ १६ ॥
 भीमम और रणगके निमत अत्यन्तगके शिमे उल्लत
 हुए ये समस्त धुरवीर अत्यन्त बहुराधी और पर्वतके समान
 विशालभय ये ॥ १६ ॥
 हरयो राक्षसाश्चैव परस्परजिघासया ।
 तेषां विन्वतां शम्भुं सयुगेऽक्षितरक्षिणाम् ॥ १७ ॥
 शुभुये सुमहान् क्रोधात्स्योन्मथमभिगजताम् ।
 बनर तथा राक्षस एक दूसरेक वधकी इच्छते बहो एकत्र
 हुए थे । वे युद्धसमये अत्यन्त वेगवादी थे । क्रोधालु करते
 और एक दूसरेके क्लम करके आपसुके गभते थे । उनका
 महान् शब्द सुदृढक सुनायी देता था ॥ १७ ॥
 रजश्चारुवर्णाभि सुभीममभयश्च मूराम् ॥ १८ ॥
 बद्ध हारिहर्षोभिः सक्तरोध विज्ञो वरा ।
 बनरों और राक्षसोंका उदायी गयी क्लम रणवीर धूम
 बही भयंकर बन पड़ती थी । उनके दलों विशालोंका अत्यन्त
 शक्ति कर लिया था ॥ १८ ॥
 अयोन्य रजसा तेन कीरोयांश्चसपाण्डुना ॥ १९ ॥
 सधृत्वानि च मूर्त्वानि दृष्टानुन रण्यजिर ।
 परस्पर उदायी हुई बह धूम श्लथ हुए रेश्मी बलके
 क्लम पाण्डुवर्णा दिलायी देती थी । उनके द्वारा समपण्डु-
 में क्लम प्राणी दफ गये थे । अतः बनर और राक्षस उन्हें
 दल नहीं करते थे ॥ १९ ॥
 न ध्यजे म पत्यका वा यम या तुरगोऽपि या ॥ २० ॥
 मायुध म्यन्दनो चापि दृष्टने तन रेणुना ।
 उन धूमके अत्यन्त शक्ति करनेक कारण श्वर पत्यक,
 दाल, घोड़ा मत्त मत्त भयवा रथ श्वर भी बलु शिवायी
 नहीं देती थी ॥ २० ॥
 राक्षस्य सुमहास्तेषां नक्षत्रामभिधास्यम् ॥ २१ ॥
 श्रुत्व मुमुक्षो युजे न रूपानि सच्यदिर ।
 उन गभते और शीतल हुए शक्तिगता महाभयकर गत्र
 युद्धसमये स्वयं सुनायी पश्य था परतु उनके रूप नहीं
 दिखती देते थे ॥ २१ ॥
 ह्रीनिप सुसदृश हरयो जप्पुराहय ॥ २२ ॥
 राक्षसा राक्षसाश्चापि निजप्सुस्तिमिर सदा ।
 अथवाय अत्यन्त शक्ति युद्धसमये अत्यन्त शक्ति हुए बनर
 समान ही मार कर देते थे तथा राक्षस राक्षस ही
 करते शक्त थे ॥ २२ ॥
 त पर्येव विनिजस्ता म्वाद्य धनरराक्षसाः ॥ २३ ॥

वधिरात्री तदा चक्रुर्महो पद्मानुलेपनाम् ।
 अपने तथा धनुषके यदाभ्यंक्ष मारते हुए बनरों तथा
 राक्षसों ने नक्षत्रभूमिक रक्षत्री भागते निम्ने दिया और बहो
 श्रव मन्ना ही ॥ २१ ॥
 तस्तु वधिरात्रेण सिञ्च ह्यपगत रज ॥ २४ ॥
 शरीरदायसकीर्णां यभूव च यशुभरा ।
 तदनन्तर रक्तक प्रवाते सिञ्च जानेके कारण बहोधी धूम
 केत गयी और खरी युद्धभूमि कायोंसे भर गयी ॥ २४ ॥
 द्रुमदाकिगवाप्रासीः शिलापरिपतोमरैः ॥ २५ ॥
 राक्षसा हरयस्त्वं जप्सुन्म्योन्यमोज्जसा ।
 बनर और राक्षस एक दूसरेक दृष्ट शक्ति करा, प्राक
 शिवा, परिप और तोमर शक्तिसे पक्षुर्षक मन्त्री-मन्त्री प्रहार
 करते छे ॥ २५ ॥
 वाहुभिः परिष्यक्षरैर्युष्पन्त पथतोपमान् ॥ २६ ॥
 हरयो भीमकमाणो राक्षसाजप्पुराहय ।
 मयंकर कर्म करनेवाले बनर मन्त्री परिषक समान
 युद्धभ्यंक्षर पर्वतकार राक्षसोंके शय युद्ध करते हुए मन्त्री-म
 में उन्हें मारते छे ॥ २६ ॥
 राक्षसास्त्यभिसमुज्जाः प्रासतोमरणाय ॥ २७ ॥
 कपीन् निजजिह्वैरे तत्र शस्त्रैः परमदारुणैः ।
 उक्त राक्षस्येन भी अत्यन्त कुशिल ही शस्त्रोंमें श्राव और
 छेमर शिमे अत्यन्त मयंकर राक्षसोंका बनरोंका वध करते
 छे ॥ २७ ॥
 अकम्पना सुसप्तयो राक्षसानां चमूपतिः ॥ २८ ॥
 सहयति तान् सथान् राक्षसान् भीमविष्ममान् ।
 इस समय अधिक रागमें मया हुआ राक्षसनेनापनि
 अकम्पन भी मयानक पश्यत प्रष्ट करनेवाक उन सभी
 राक्षसोंका शय बदाने काय ॥ २८ ॥
 हरयस्त्वपि रक्षासि महाद्रुममहात्मभिः ॥ २९ ॥
 विशारयन्त्यभिक्रम्य शस्त्राण्यच्छिद्य धायत ।
 बनर भी पक्षुर्षक अत्यन्त करत राक्षसके भय-गत्र
 एनकर बड़े-बड़े शस्त्रों और शिवाभ्यंक्षर उन्हें विरीष
 करते छे ॥ २९ ॥
 प्लक्षिषन्त रौरा हरयः पुमुक्षु नयः ॥ ३० ॥
 मीन्द्रश्च द्विभिदः मुन्नाद्यभुङ्गमनुसमम् ।
 इस समय भी बनर कुमुद नक्षत्र और द्विभिदने
 कुशिल ही मयानक उल्लम का प्रष्ट शिमे ॥ ३० ॥
 त तु धूममहानारा राक्षसानां यमुमुक्षे ॥ ३१ ॥
 क्वन मुमहयधूमसया हृत्पुगया ।
 ममभू राक्षसान् सर्वे मानयदरभ्यभूनाम् ॥ ३२ ॥

उन महावीर बानरधिरामगिषावने युद्धक मुहानेपर वृद्धो-
दाय लेख-सखमें ही राक्षसेका बड़ा भरो खार किया । उन

उजने नाना प्रकारके मन्त्र-शब्दोंद्वारा राक्षसेको मन्त्रीमूर्ति बन
बाध्य ॥ ११ ३२ ॥

हृत्कार्ये श्रीमद्वाल्मीक्ये श्रीमद्वाल्मीके युद्धकाण्डे पञ्चपञ्चासः सर्गः ॥ ५५ ॥

इत इन्द्र मीनस्त्रीकिनीर्षित भार्यामालम् मन्त्रीकान्तके युद्धकाण्डने पञ्चपन्नाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५५ ॥

पट्पञ्चाशः सर्ग

हनुमान्जीक द्वारा अकम्पनका वध

तद् द्यूता सुमहत् कर्म कृत बानरसद्यमा ।
श्रेयमाहारयामास युधि तीव्रमकम्पनः ॥ १ ॥

अकम्पनक बाणोंसे शायक हो सभी बानर भग पड़े । ये
युद्धसखमें लड़े भी न रह सके; फिर युद्ध करनेकी तो बात ही
न्या है ! ॥ ७ ॥

उन बानरधिरामगिषाद्वारा क्रिय गये उठ महान् पराक्रम-
का इन्कार युद्धसखमें अकम्पनका वधा भरी एवं दुःख
श्रेय हुआ ॥ १ ॥

तान् मृत्युपशमपञ्चानकम्पनशरानुगान् ।
समीक्ष्य हनुमान्मन्त्रीनुपतरुषु महाबलम् ॥ ८ ॥

अकम्पनके बाण बानरोंके पीछे सने ये और वे मृत्यु
के मशीन होते जाते थे । अपने बलि-मन्त्रोंकी यह दया देलकर
महाकवी हनुमान्की अकम्पनक पर भय ॥ ८ ॥

श्रद्धामूर्च्छितरूपस्तु धुम्पन् परमकरमुक्कम् ।
द्यूता तु कम् शशृष्णो सारथि वाक्पयमप्रधीत् ॥ २ ॥

त महाप्लुषग द्यूता सर्वे ते प्लुषगर्षभाः ।
समेत्य समरे धीराः सहायाः पर्यवारयन् ॥ ९ ॥

महाकवी हनुमान्कीका भया देख व सम्पन्न वीर बानर
धिरामगि एकत्र ही हाँसूँक उठे जाये औरते परकर उठे
ही गये ॥ ९ ॥

शत्रुभाषा कर्म देख एगने उद्यम थाप घरीर स्यात् हो
गया और अपने उद्यम भनुराक्ष द्रिस्तते हुए उठने खरफिले
का— ॥ २ ॥

व्ययस्वित हनुमस्त ते द्यूता प्लुषगर्षभाः ।
बभूवुर्बल्यन्तो हि बलघ्नस्तमुपाभिताः ॥ १० ॥

हनुमान्कीका युद्धके क्षिप बटा हुआ बल व सभी भेद
बानर उन बलवान् वीरका भाभय छ स्वयं भी बलवान् ही
गये ॥ १ ॥

तत्रैव तायन् स्वर्गिण्य रथ प्रापय सारथे ।
पठे च वकिन्धो ज्वलिन् सुपह्वन् यस्तसान् रणे ॥ ३ ॥

अकम्पनस्तु शैलाम हनुमन्त्वमवस्थितम् ।
महन्द्र इय ध्यायति शरीरभियषय इ ॥ ११ ॥

पकठक स्थान विराटकाथप हनुमान्कीका अपने कमने
उपस्थित देल अकम्पन उनकर धमोंकी फिर वटा करने
क्या मना देकरव इन्द्र कन्धी धरा बरख रहें तो ॥ ११ ॥
अभियन्तवित्या धापीथ्य शरीर पातिसान् कृपिः ।
अकम्पनवधायाप मना कथे महाबलम् ॥ १२ ॥

भारथ ! व बलवान् बानर युद्धमें पहुँचते राक्षसेका वध
कर रहे हैं अतः पढ़त बहा धीमत्तापूर्वक मर रथ
पढ़ना ॥ ३ ॥

अने शरीरर शिष्ये गम उन बानर-कुत्तोंकी परवा न
करक महाकवी हनुमान्ने अकम्पनसे मार टाकनेवा विचार
किया ॥ १२ ॥

पठ च बलघ्नता या भीमरुपाथ बानराः ।
हुमात्सप्रहरणास्तिष्ठन्ति प्रमुञ्ज मम ॥ ४ ॥

स प्रहस्य महातज्जा हनुमान् माप्लुतामज्जाः ।
अभिनुद्राय तद्रुद्रा कम्पयथिय मर्दिनीम् ॥ १३ ॥

हिरा महाकवी पन्डितार हनुमान् महान् महाम
बुरक वृद्धक बया हुआ व उठ उठावी भर ली ॥ १३ ॥

य बानर बलवान् छ हैं ही इनका श्रेय भी बड़ा
मज्जाक है । व वृद्धों और गिताभोंम प्रहार करत हुए मरे
कामने गइ हैं ॥ ४ ॥

पतान् निहन्तुमिच्छामि समरदसाधिना एहम् ।
पत्नी प्रमथित सर्वे रक्षसा हृदयत पलम् ॥ ५ ॥

हिरा महामन्त्री पन्डितार हनुमान् महान् महाम
बुरक वृद्धक बया हुआ व उठ उठावी भर ली ॥ १३ ॥

य युद्धमें लूटा एगनेग : है; अतः मैं इन करम रूप
करना चाहय है । इतने शरीर तथाकम्पनाः मय जाल्य है ।
पर कड गिवाही दया है ॥ ५ ॥

ततः प्रथमिन्द्राद्यन रथत रथिन्य यगः ।
हर्निभ्यपतन् दूराच्छरजालकम्पनतः ॥ ६ ॥

तन्नार उर च ततान् पद्माम उः दूष् ररक दाय
रुपकमें पर अकम्पन हुए ही कान्नादाय का इरव हुआ
उन बलवान् हुए पत ॥ ६ ॥

न स्यात्तु पतनाः पादुः कि पुनर्योदुमाहव ।
अकम्पनशरीरमदाः तत्र पथाभिनुद्रुगुः ॥ ७ ॥

तस्यैव नर्मानस्य क्षीप्यमानस्य तेजसा ।
 बभूव रूपं पुर्णं वीतस्येष विभावसोः ॥ १४ ॥

उत्त सम्यक् बहो गमेरे अरे तेजो वेदीभ्यमान इति रूप
 एतन्नुत्तम रूप प्रकल्पित अतिके समान पुर्ण हो गया
 या ॥ १४ ॥

भारमाल त्वप्रहरणं धात्वा श्रेयधसमन्वितः ।
 शैलमुत्पद्यमानास धेगेन हरिपुङ्गव ॥ १५ ॥

भन्ने हाथों छोड़े इथियर नहीं है, यह नानकर श्रेयध
 मेरे हुए बानरपीठेमणि इतुमान्ने बड़े वेगसे फर्कत उलाह
 किया ॥ १५ ॥

एरुस्थिया सुमहाशील पाणिमैकेन मारसि ।
 स विनय महानाद् भ्रामयामास वीर्यवान् ॥ १६ ॥

उत्त मान् परतका एक ही हाथसे बकर पराक्रमी परत-
 कुम्भर बड़े बोर-बोरते गम्ना करते हुए उसे धुम्ने लगे ॥

ततस्तमभिदुद्राय राक्षसेन्द्रमकम्पनम् ।
 पुरा हि नमुचि सख्ये यज्ञेणेय पुत्रवर ॥ १७ ॥

फिर उन्होंने एकस्यत्र भकम्पनपर धवा किया ठीक उखी
 तद बैसे पूर्वभ्रामने देकेत्रने बज्र छेकर मुद्रससमे नमुचिपर
 भकम्पन किया या ॥ १७ ॥

मकम्पनस्तु तद् द्यूा गिरिद्वयं सनुषतम् ।
 दूरादेव महावाणैरर्धचन्द्रैष्यशारयम् ॥ १८ ॥

मकम्पने उत्त उठे हुए पकटिकाको देख अर्धचन्द्रा
 भर निष्ठास शानोंके धाय उठे दूरसे ही निरीर्ष कर
 दिया ॥ १८ ॥

त पयत्ताप्रमाकरो रक्षोपाण्युत्कारितम् ।
 विष्णीर्ष पतित द्यूा इनुम्यन् श्रेयधमूर्च्छितः ॥ १९ ॥

उत्त एकसे पावते निरीर्ष हो यह परतकिम्बर अग्रघामे
 ही बिकरकर गिर पड़ा । यह देख इनुम्यन्कीके श्रेयधकी चमत्
 न रही ॥ १९ ॥

श्लोऽभ्यर्च्य समासाद्य रोरुपाण्यितो हरिः ।
 त्वमुत्पाद्यमानास महागिरिमियाचिद्रुतम् ॥ २० ॥

फिर उत्त और दसते उन बानरपीठने मान् पस्तके
 कल्प उत्त भयङ्कर नामके दृष्टक एत बकर उत्त शीघ्रता
 पूंके उपाह किया ॥ २० ॥

त दूरीत्या महास्त्रय साऽभ्यर्च्य महागुतिः ।
 मयूढ परता प्रीत्या भ्रामयामास सयुग ॥ २१ ॥

गिरात्त तेजस उत्त भयङ्कर धं हापने तद्वर मदान्की
 इनुम्यन्ने बड़ी प्रकल्पक साथ उत्त पुत्रन्विने पुम्ना
 भ्राम्य किया ॥ २१ ॥

प्रभावन्नुद्योगेन यमञ्ज तरसा हुमान् ।
 इनुमान् परमकुन्दरूपैर्दूरयन् महीम् ॥ २२ ॥

प्रबन्ध श्रेयध मेरे हुए इनुम्यन्ने बड़े वेगसे दौड़कर
 किये ही दृष्टको तद्व साथ और पैरोंकी चमकते थे दूरीको
 भी निरीक्षणी करते लगे ॥ २२ ॥

यज्जाह्य सगजारोहान् सरयान् रयिनस्तया ।
 जम्पन इनुमान् धीमान् राक्षसांश्च पशुखिगान् ॥ २३ ॥

सगजोद्धित हाथियों, रयोद्धित रथियों तथा पैदल राक्षसों
 को भी बुझिमान् इनुमान्की मँतक पाद उछारते लगे ॥ २३ ॥

तमन्तकमिय क्रुद्ध सद्रुम प्राणहारिणम् ।
 इनुमन्मभिमोक्य राक्षसांश्चिद्रुतुः ॥ २४ ॥

श्रेयध मेरे हुए यमपत्नी भोक्ति दृष्ट हाथमें लिय प्राण-
 हारी इनुमान्को देख राक्षस भागने लगे ॥ २४ ॥

तमापतन्त सङ्क्रुद्ध राक्षसाना भयायहम् ।
 ववशाकम्पनो धीरदृशुष्ठाभ च मनाद् च ॥ २५ ॥

राक्षसोंके मय देनेवाले इनुम्यन् भयल कुम्भित होकर
 शुकुम्भोर आक्रमण कर रहे थे । उत्त सम्यक् वीर भकम्पने
 उन्हें देखा । देखत ही यह श्रेयध मेरे गया और बोर-बोरते
 गम्ना करने लगे ॥ २५ ॥

स चतुर्दशभियात्मेनिचितीर्षेहृदारणैः ।
 निधिमेद महाधीर्ये इनुमन्तमकम्पन ॥ २६ ॥

भकम्पने बहका निरीक्षण कर देनेवाले चौदह पने यण
 मारकर महपराक्रमी इनुमान्की पालक कर दिया ॥ २६ ॥

स तथा विप्रकीर्णस्तु नाराधैः दितराकिभिः ।
 इनुमान् दृष्टदो धीरः परुद्ध इय सानुमान् ॥ २७ ॥

इत प्रकार नाराधों और वीरों की कर्मोंसे डिरे हुए वीर
 इनुमान् उत्त सम्यक् दृष्टोत्त भ्यास परतक समान रिरापी देत
 थे ॥ २७ ॥

धिरराज महावीर्यो महाकृपा महापलाः ।
 पुष्पिष्ठाशाकसस्या गिधूम इय पायका ॥ २८ ॥

उत्त उत्त धीर रक्षमे रोग गया था, इष्टव ने
 महानपत्नी महापत्नी और महाशय इनुमान् गिरा हुए
 भजाक एव पुसुरत अतिके समान शोभ पा रहे थे ॥

तलाऽप्य धृष्टमुत्पाद्य दृष्ट्या पगमनुषमम् ।
 शिरस्यभिजयनाः राक्षसन्मकम्पनम् ॥ २९ ॥

तन्मन्म मान् पग प्रकट करके इनुमान्कीने एक
 दृष्ट दृष्ट उगाह निज और पुत्र ही उन पराक्रम्य भकम्प-
 क शिरस २ भाग ॥ २९ ॥

स दूरय दत्तमन मद्रपथन महामना ।
 राक्षसा पानत्त्रण पात च ममार च ॥ ३० ॥

श्रेयसे मेरे बानरभेद महात्मा हनुमानके चक्रये हुए
उस वृक्षकी गहरी छोट काकर राक्षस अक्रम्यन पृथ्वीपर गिरा
और मर गया ॥ ३ ॥

१ हनुमान् निहत भूमौ राक्षसेन्द्रमकम्पनम् ।
पृथिव्या राक्षसाः सर्वे क्षितिकम्प इव दुःमाः ॥ ३१ ॥

मे भूकम्प आनेपर खरे वृक्ष कोपने आते हैं, उसी
प्रकार राक्षसोंपर अक्रम्यनसे रणभूमिमें माया गया देख समस्त
राक्षस स्तब्ध हो गये ॥ ३१ ॥

त्यक्तप्रहरणाः सर्वे राक्षसास्ते पराजिताः ।
लङ्गमभिययुस्त्रासाद् धानरैस्तैरभिद्रुताः ॥ ३२ ॥

बनरोंके लक्ष्मणनेपर वहाँ फल्य हुए थे उन राक्षस
अग्ने मन्त्र-शक्त कैंदर-इतके मारे लङ्गामें भाग गये ॥ ३२ ॥

ते मुक्तकेयाः सम्भ्रान्ता भद्रमानाः पराजिताः ।
भयाच्छूमजलैरङ्गैः प्रक्षयन्निर्घिषुद्रुतुः ॥ ३३ ॥

उनके कष्ट क्षुब्ध हुए थे । वे पहर गये थे और पराजित
होनेसे उनमें पमड चूर-चूर हो गया था । भयके कारण
उनके अङ्गलसे पानी चू रहें थे और इन्हीं अवस्थामें वे भाग
रहे थे ॥ ३३ ॥

अन्यान्व ये प्रमथन्ता विविधुर्नगर भयात् ।
पृष्ठतस्त तु सम्मूहाः प्रेसमाण्य मुहुर्मुहुः ॥ ३४ ॥

मनक कारण एक वृत्तेको कुचसते हुए ये भागकर
लङ्कापुरीमें पुत्र गये । भागते समय वे बार-बार पीछे लूट लूटकर
देखत रहत थे ॥ ३४ ॥

तेषु लङ्का प्रविशेषु राक्षसेषु महाबलमाः ।
समस्य हरयाः सर्वे हनुमन्तमपूजयन् ॥ ३५ ॥

उन राक्षसोंके लङ्कामें पुत्र आनेपर समस्त महाबली बन्तों-
ने एकत्र हो वहाँ हनुमान्की सम्भ्रान्तन किया ॥ ३५ ॥

हरयाप्ये भीमव्यास्यकने वाक्यीकीये आदिकारणे मुद्रकाण्डे पश्यन्नाद्यः सर्वाः ॥ ५६ ॥

१६ प्रथम आश्वत्थीकीनिर्मित आर्य मयब आदिकारणके मुद्रकाण्डे उपन्यासो सर्वे पूर हुता ॥ ५६ ॥

सोऽपि प्रवृक्षस्तन् सवान् हरीन् सम्प्रत्यपूजयन् ।
हनुमान् सत्यसम्पन्नो पथाहमनुकूलताः ॥ ३६ ॥

उन राक्षसोंकी हनुमान्कीने भी उत्पन्नित हो बचनेके
अनुकूल कर्तव्य करते हुए उन समस्त बानरोंके सम्पन्न
किया ॥ ३६ ॥

विनेतुश्च यथामाण्य हरयो क्षितिक्रविनाः ।
षड्पुत्रश्च पुनस्तत्र सम्प्रणानेष राक्षसान् ॥ ३७ ॥

उत्पन्नत् विष्णुसेस्यस्ये सुशोभित होनेवाले बानरोंमें
पूरा सब अणुपर उत्पन्नकर गम्भीरा श्री और वहाँ कीर्तित
राक्षसोंको ही पकड़-पकड़कर बन्धितना आरम्भ किया ॥ ३७ ॥

६ श्रीरक्षोभामभज्जमहाक्षयिः
समस्य रक्षांसि निहत्य मारुतिः ।

महासुर भीमममिषनवराज
विष्णुर्यथैवाक्यस्य चतुर्मुखे ॥ ३८ ॥

जैसे महासुर विष्णुने हनुमन्त महाबली, भस्कर एवं
महान् असुर ममुकैयम् आदिभ्य बध करके श्रीरक्षोभ्य
(विष्णुसम्पत्ती) का वरण किया था, उसी प्रकार महाक्षयि
हनुमान्ने राक्षसोंके पक्ष पहुँचकर उन्हें मौतके घाट उतार
कीर्तित शोभाको वरण किया ॥ ३८ ॥

अपूजयन् देवगण्यस्ता वा क्षयि
सस्य च रामोऽतिवल्लभः सङ्गमाः ।

तस्यै सुप्रीयमुक्ताः प्लवगमा
विभीषणस्यैव महाबलस्तथा ॥ ३९ ॥

उस समय देवता महान्भी श्रीराम, अस्माक, सुप्रीय आदि
बानर तथा अत्यन्त बळशाली विभीषणने भी क्षयिकर हनुमान्की-
य बयोक्ति करार किया ॥ ३९ ॥

सप्तपञ्चाश सर्ग

प्रहस्तस्य रावणकी आश्रयसे निशान्त सेनासहित युद्धके लिय प्रस्थान

अक्रम्यनरथ भुग्या क्रुद्धो ये राक्षसभ्यराः ।
क्रियिन् वीनमुष्यथापि स्वचिरांस्तानुरैस्त ॥ १ ॥

अक्रम्यनके पथमें अत्यन्त पाकर गद्यतयत्र राक्षसों
बड़ा क्रोध हुआ । उनके मुखसे कुछ दैन्य जा गयी और
पर क्षीयतेही भर देनेसे सज ॥ १ ॥

१ न तु ध्याया सुप्रते तु मन्त्रिभिः क्वचिपय च ।
तन्तनु रायनाः पूयदियत्र राक्षस्यधिपाः ।
पुरी पतिपयो मद्रां रायान् गुन्मान्यरिशितम् ॥ २ ॥

यस्य ता दो पड़ितक वह कुछ स्नेह्य यत् । कि उठने
मन्त्रिगैके साथ विचार क्रिय और उधके बार दिनके पूर्वभागमें
राक्षसोंपर राक्षस स्वयं मद्राके सब मद्रोंको निरीक्षण करनेके
लिय गया ॥ २ ॥

सां राक्षसगवीगुप्ता गुल्मपट्टभिरापृताम् ।
द्वन्द्व नगरीं राज्ञ पठाक्षयप्रमामिनीम् ॥ ३ ॥
राक्षसान्नेम सुप्रते और बहुत ही धामिनीमें गिरी हुई
पथ पत्रमभोंने सुशोभित उन नगरीके राज रावणने अपनी
कर देना ॥ ३ ॥

इन्द्रा तु मगरीं हृष्टा रायणो राक्षसेश्वरः ।
उवाचामहितः काले प्रहस्त युद्धोविद्यम् ॥ ४ ॥

हृष्टापुरी जातीं भ्रैसेते शत्रुभ्योऽपि वेरं ली गभी यो । यः
रेवञ्चर उषणवत् यजन्ते मन्ते रितेपी युद्धकष्यभेविर
प्रसृते यह शम्योक्तिं वात कभी—॥ ४ ॥

पुरस्वोपनिषिद्यस्य सहसा पीडितस्य ह ।
नम्ययुद्धात् प्रपद्यामि मोक्ष युद्धविदारम् ॥ ५ ॥

युद्धविदारद वीर । नगरके भस्मन निष्कृत शत्रुभ्योऽपि सेना
उत्पत्ती बाले पक्षी है इक्षीभ्ये काय नगर उषण भ्यषित हो
उठा है । मग मी वृक्षे क्षिपीक युद्ध करनेसे इक्ष्म युद्धकार
हृष्ट नहीं देखता हूँ ॥ ५ ॥

मह या कुम्भकर्णो वा स्व वा सेनापतिमम ।
इन्द्रसिध्वा या निकुम्भो वा प्रहेयुभारमीश्वराम् ॥ ६ ॥

भ्रमरं वा इव तद्वत् युद्धञ्च भ्रमरं मी, कुम्भकर्णं भ्रै सेना-
पतिं तुम वेद्य इन्द्रसिध्वा अथवा निकुम्भ ही उठा सकते
हैं ॥ ६ ॥

स स्व बलमत्ता दीप्तमात्राय परिपृष्टा च ।
विज्ञायावाभिनिषाहि यत्र सर्वे यनीकसा ॥ ७ ॥

भ्रमरं तुम यीम ही सेना सफर विन्मय सिये प्रस्तान
करो और सर्वों मे सय बानर बुट हुए हैं सर्वों गभ्रै ॥७॥

नियान्प्रेष्ये त्वयं च चलिता हरिशाहिनी ।
नर्त्यां राक्षसेन्द्राणां श्रुत्या नाद् द्रविष्यति ॥ ८ ॥

तुम्हारे निम्नते ही खरी बानरसेना तुम त विचलित हो
उठोगी और गर्भते हुए राक्षसिणमलिभोम सिंधिनार मुनकर
भग लक्षी होगे ॥ ८ ॥

षण्णा हादिनीताश्च खलचिच्छाश्च पानराः ।
म संहिष्यन्ति त नाद् सिन्धुनात्रमिय द्विपाः ॥ ९ ॥

पानरथमा यदे पदम डीट और डरदक हते हैं
उन्ने हापी सिन्धी गर्भना नहीं खर सफर उषी प्रभर ने पानर
दुमराय सिन्धुनार नहीं वह लक्ष्मी ॥ ९ ॥

विद्रुत च पत्न तस्मिन् रामा सांमिषिष्णा सह ।
भ्रवरास्त निरात्म्यः प्रहस्त वनामप्यति ॥ १० ॥

प्रलम् । उष बानरथना भग यूपी उष कर्षे यदाय
न यदेक चरय भ्रम्यवसिद्धिं भीराम विररा शरर तुम्हारे
अपैत हा यपगे ॥ १ ॥

भ्यात्मनापिता भ्रैयो नात्र निम्नापीरुताः ।
प्रतिस्वमानुसाम दा यत् तु नो मन्यस हितम् ॥ ११ ॥

युद्धमे मृत्यु सं ग्य हापी है हा भे सक्षी है और न
उषे हा । किन्तु देखे मृत्यु ही भद्र है । (इक्ष्म विन्म) कीम
च किम सपय (यक्षिम्) मे खड (सिन्धु युद्धकाण्ड)

यो मृत्यु होती है, वह भद्र नहीं होती (एव मेव विचार है, ।
इक्ष्मे भद्रमृत्यु या प्रतिमृत्यु अ कुड तुम हमारे सिन्धे द्वितकर
उमसते हा; उते बलभो' ॥ ११ ॥

रायणेनैवमुक्तस्तु प्रहस्तो याहिनीपतिः ।
राक्षसेन्द्रमुयाचे इमस्तुप्रेन्द्रमिन्द्राणा ॥ १२ ॥

रायणक ऐव्य कनेर सनापति प्रहसने उठ उषस्यकके
समस्त उषीकर भयना विचार स्यक किया उते युद्धराय अगुर
राय वक्षिष्वा भयनी स्यहा दिया करते हैं ॥ १२ ॥

राजन् मन्त्रितपूर्वं नः कुदाळ सह मन्त्रिभिः ।
नियान्प्रेष्यापि नो वृष्ठा समवक्ष्य परस्परम् ॥ १३ ॥

(उठने कहा—) थाकन् । इमस्यगोने युद्धम मन्त्रिपों-
क सय परह भी इव विन्मय विचार किया ह । उन दिनों
एक वृक्षेक मतभी अन्वचना करक इमस्यगोने विचार भी
सहा हा गया था (इमसमा उषस्यमसिसे किधी एक निर्णयपर
नहीं पहुँच सक थे) ॥ १३ ॥

प्रदानं तु सीतायाः भ्रैयो व्यपसित मया ।
ममदानं पुनयुद्ध इष्टमय तथय नः ॥ १४ ॥

भ्रैय परहउठ ही यह निभय रहा है कि शीतलीक शीत
देनेसे ही इमस्यगोका कल्याण हाया और १ बीरनेपर युद्ध
भयस्य हाया । उष निभयक भद्रुकर ही हने भाज यद युद्ध
अ संकट दिमापी दिया है ॥ १४ ॥

सोऽहं वलैश्च मानैश्च सततं पुञ्जितस्त्यया ।
साम्यैश्च विविधैः काले किं न कुर्यां हितं तव ॥ १५ ॥

भारतु भयने दान मान और विविध सन्वनाभ्येक
हाय भयस्यसमयपर सदा ही मेव उत्तार किया है । किन्तु मी
भयका द्वितभयन सगो नहीं करेगा ? (अथवा आपर हितक
क्षिये सैन्य-अ धर्म नहीं कर सकेगा) ॥१५ ॥

नदि म जीयित रक्ष्य पुत्रवारधनानि च ।
स्य पश्य मा जुह्वयस्त त्वय्ये जीयित युधि ॥ १६ ॥

मुक्त भरने जीवन श्री पुत्र और धन अदिपी रक्ष
नहीं करती है—सन्धी रक्षक सिय मुक्त पद विन्मय नहीं ।
भार देखिय कि मी द्वित तरह भयक सिय युद्धही जाक्यने
भयने जीवनही अयुक्ति रक्ष हूँ ॥ १६ ॥

एवमुक्त्या तु भतार राज्ञ्य याहिनीपतिः ।
उवाच परसाध्यमानं प्रहस्ताः पुरताः श्मिस्तान् ॥ १७ ॥

अन्ने स्यपी रायन एव्य कदकर प्रयन सनादीं शरम
ने भयने अमने सहा हुए मन्म-अंतेन इष ददर
कहा—॥ १७ ॥

समानयत म नीय राक्षसाना महावन्तम् ।
महाप्यनां तु पगन हतानां च ग्याञ्जित ॥ १८ ॥
अथ स्यन्तु मासावा पक्षिय यनना कसाम् ।

पुण्येण त्विष मरे एव गच्छेद्यी विगत मना ।
अथ । आर मन्वाहायी वषी कन्याद्वयने मर कनेक वगने
मर एव कनेके कन गारर गुन हा वने ॥ १८ ॥

एव तद् वयन भुव्या पलाप्यता महावत्याः ॥ १९ ॥
एव गुपात्रपायासुस्तस्मिन् राक्षसमन्दिरे ।

एव ही एव एव मुनश्च महावशी सनाप्येन यानक
उम मातक एव विगत सेनाद्य मुद्रक त्वि एव
द्वि ॥ १ २ ॥

सा कभूर मुहनेन भीमनाताविषायुधः ॥ २० ॥
मद्य राक्षसरीस्त्रगात्रेण्य समाहृत्य ।

रा ही पहीने नना प्रारक अक-एव त्वि हाथ एव
मन्तक एव एव सदागुी भर एव ॥ २ ३ ॥

दुष्मान तापयतां प्रायणाद्य नमस्यताम् ॥ २१ ॥
भ्यज्यगन्धप्रतिबद्धः सुगन्धिमायता पथी ।

द्विने ही एव एव मन्ती रर अम-रा एव
कने एव अर अक-क नम मर एव अर अ-रा एव
वनी । उम मन्त पेश एव एव मन्ती पा गुव अ-क
वने कने ॥ २२ ॥

एवत्रयं तिस्थिराणं जगदुन्मन्निर्मन्त्रिणः ॥ २३ ॥
अपामगच्छां गह्वरा धारयन् गह्वरतन्त्रिणः ।

एव न मन्-एव अथ-क एव न-एव म-एव म-एव
एव वी अर एव एव म-एव म-एव म-एव वी एव न-एव
एव वी ॥ २३ ॥

एवधुष्काः कर्तव्यां पामाहायुष्य राक्षसाः ॥ २४ ॥
एव न मन्-एव गह्वर मन्-एव एव म-एव

एव न अर एव एव एव एव एव एव एव एव
एव न अर एव एव एव एव एव एव एव एव
एव न अर एव एव एव एव एव एव एव एव ॥ २४ ॥

अपामगच्छां गु गह्वर मन्-एव म-एव ॥ २५ ॥
अपामगच्छां गु गह्वर मन्-एव म-एव ॥ २५ ॥

एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव ॥ २५ ॥

एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव ॥ २५ ॥

एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव ॥ २५ ॥

उरगाधजहुधरे सुयक्ष्य रूपस्वरम् ॥ २६ ॥
सुयणमालसयुक्तं प्रहस्तस्त्रिमं शिष्य ।

एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव ॥ २६ ॥

ततस्तं गन्मास्थाय रावणपरित्यासना ॥ २७ ॥
लक्ष्म्या निययी लूणं पत्तनं महता वृत्ता ।

उम एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव ॥ २७ ॥

तदा द्रुमुभिनिर्षेयः पञ्चमनिर्षेयमा ।
पावित्राणां च निन्द्या पूर्यप्रिय मन्दिनीम् ॥ २८ ॥

उम-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव ॥ २८ ॥

गुभुयं गह्वरान्दध प्रयात पाहिनीपती ।
निन्दन्तां मगन् पारान् राक्षसांश्चमुत्पलाः ॥ २९ ॥

भीमकृष्ण महाभयां प्रहस्तस्य पुटसया ।
गन्दीक प्रहस्त-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव ॥ २९ ॥

नरान्तकं गुम्भकनुमहान्दधः समुत्पलाः ।
प्रहस्तपरिज्ञां ह्यन नियन्तुः परिपाय तम् ॥ ३० ॥

एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव ॥ ३० ॥

एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव ॥ ३० ॥

गह्वरान्दधः गुम्भकनुमहान्दधः समुत्पलाः ।
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव ॥ ३० ॥

एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव ॥ ३० ॥

एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव ॥ ३० ॥

एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव
एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव एव-एव ॥ ३० ॥

सस्य निपाणपोषेण रात्रस्तानां च सद्दाम् ॥
 लङ्गाया सयभूयानि विनेतुर्यिष्टैः सरैः ॥ ३३ ॥
 ऋषभ प्रह्लाद इत्ये कस्य चो मेरी आदि यज्ञे अरै
 गर्भे हुप यज्ञेना गम्भीर पोप हुम्भ, उक्ते भवभीत हो
 हट्टार सब प्राणी विद्वान् सरैने पीत्तार करने स्मो ॥ ३३ ॥
 व्यधमाकारामाविद्य मासगोणितभोजनाः ॥
 मण्डनान्यपसव्यानि खगाद्यम् रथ प्रति ॥ ३४ ॥

उन समय बिना वादमक आकारमे उड़कर रक्त-मांस
 भेकन करनेवाल कत्रो मण्डन बनाकर प्रह्लादके रथमें दक्षिणा-
 क्त परिक्रमा करने लगे ॥ ३४ ॥
 यमन्याः पायज्ज्वालाः शिष्या घोरा घयाशिरे ।
 अन्तरिक्षात् पपातोद्व्य वायुश्च पश्य ययी ॥ ३५ ॥
 यमनक शीरदियाँ दुंदुहे अगामी क्वाथ उलखी हुं
 भुजभुजक वासी घंठने सर्गों । अन्नघते उच्छ्रगत शने
 स्मर और प्रचण्ड वायु चम्बने स्मयी ॥ ३५ ॥

अन्यान्यमभिसरण्या प्रहाद्य न चकाशिरे ।
 मयाद्य रगनिघोरा रथस्योपरि रमसः ॥ ३६ ॥
 ययू र्भिरं चास्य सिग्निद्युश्च पुरसरान् ।
 अनुमूषनि गृधस्तु विलीना दक्षिणामुखः ॥ ३७ ॥
 नन्दनुभयतः गार्धे समग्रा भियमाहरत् ॥

प्रद एतान्क आत्मने युद्ध करने स्मो क्रिभ उनरा
 प्रमद स्मर पद गद्य तथा मथ उष यज्ञके रथक ऊपर गयो-
 भीभी भगवत्तमे गक्रा करने लगे रक्त परछने लगे और
 भगे चम्बनेवाल स्निघ्नंम क्षयने लगे । उक्त पात्रक ऊपर
 गीध-शिष्या और मुद करक आ गे । उक्ते दनों और
 अन्धी भुजभु जोयी जातकर उष यज्ञमें साथी जांभ-अन्धि
 र लगे ॥ ३६ ३७ ॥

माध्वदृग्नाद्यास्य सप्राममयगाहतः ॥ ३८ ॥
 मयादा न्यपतस्तान् मृतस्य हयमादिनः ।
 मदानभूमिने प्रता करते मलय पदके कपूने रगनेदल
 रमर गताः दायन वड कर वातुक गिर पहा ॥ ३८ ॥
 निपाणधीया या च म्याधुभान्मय मुदुदभा ॥ ३९ ॥
 या नव्या मुदुनेन सम च स्मल्लिज हयाः ॥

हृषीर्षी भीमशामाचर वाच्येऽथ आदिवायु पुरः ॥ ३९ ॥

सम यथा वाच्येऽथ नवा मायान्तम ॥ ३९ ॥ युद्धकाण्डे महाप्रज्ञाः सर्गाः ॥ ३९ ॥

अष्टपदाश मग

नानिक द्वाग प्रह्लादस्य रथ

समः प्रह्लाद निपाण एव स्पृष्टाद्यजम् ॥
 रथक वाच्येऽथ नवा विनीचमदिमः ॥ ३९ ॥
 १९८ ॥ ३९ ॥ युद्धकाण्डे ३९ ॥ ३९ ॥

युद्धक विम निरस्त सम्य प्रह्लादी अ परम दुःखम और
 प्रह्लादमान शोभा थी, वह दो ही पक्षमें नष्ट हो गयी । उक्त
 पाद समस्त भूमिमें भी उड़लहाइर गिर पड़ ॥ ३९ ॥

प्रह्लाद त हि निचान्त प्रत्यातगुणपीरुगम् ॥
 युधि नानाप्रहरणा कपिसन्याभ्यपतत ॥ ४० ॥
 शिभर गुण और वीर्य विख्यात थे, वह प्रह्लाद भ्यों ही
 युद्धभूमिमें उपस्थित हुआ, सों ही शिष्य गृध आदि नाना
 प्रकारके प्रहार-अपनों कल्पन बानरसेना उद्यम धमन्य करने-
 क किय भा गयी ॥ ४० ॥

अथ घोषः सुतुमुलो हरीणां समघ्रापत ।
 वृक्षानागजता धय गुरीर्यै गृक्षता शिष्याः ॥ ४१ ॥
 तन्तन्त्र गृधोच्च छडत और भारी शिष्याओंमें उठात
 हुप बानयोंम अन्वत भयकर क्लमल शरों सर और जा
 गया ॥ ४१ ॥

नृतां यक्षसान् य धनराणा च गजसाम् ॥
 उभ प्रमुवित सन्य रक्षोगणयनीकसाम् ॥ ४२ ॥
 एक भर यक्ष छिन्दार कर रद ॥ ता दूखी और
 वानर गरम रहे ॥ उन समय तुमुल नाह यही चल गया ।
 यज्ञों और बानयोंके ये जनों सनाए हर् और उल्लसते भी
 गे ॥ ४२ ॥

पगिताय समधानान्यान्यरथस्यद्विषाम् ॥
 परस्पर गाद्यता निनादा भूयत महान् ॥ ४३ ॥
 अत्यन्त योगदायी समर्थ तथा एक दूधरक कपी इ-अ-
 काल कजा परतर लसकर रहे ॥ उनमें महान् अन्वह
 यरथ मुनयो दप था ॥ ४३ ॥

तत प्रह्लाद कपिगजराहिनी
 मनिप्रतस्थे विजयाय दूमतिः ॥
 विगृहयता च शिष्या ता गम्
 यथा मुमुक्षु गन्तव्यविभायमुम् ॥ ४४ ॥
 ही मना दूधरि प्रद ॥ विरही अन्वितयन तन्वय
 मुषीरी गताही भर दगा और नन पाग मरनक निव
 अन्तर दूध वदो दे उी प्रहर व ॥ हुप गद्य थी उन
 यमामनेने जनेही रथ बन लय ॥ ४४ ॥

हृषीर्षी भीमशामाचर वाच्येऽथ आदिवायु पुरः ॥ ३९ ॥

सम यथा वाच्येऽथ नवा मायान्तम ॥ ३९ ॥ युद्धकाण्डे महाप्रज्ञाः सर्गाः ॥ ३९ ॥
 १९८ ॥ ३९ ॥ युद्धकाण्डे ३९ ॥ ३९ ॥

अगाच्छक्ति महायोगः किंरूपवलयौद्यम् ॥ २ ॥
आचक्ष्व मे महाबाहो धीर्ययन्त निशाचरम् ।

महाबाहो ! यह बड़े धीर और महान् बेगनाम तथा बही गरी सेनासे फिर हुआ हैन यन्त्रा भा रहा है । इसका मन्त्र बड़ और पौरुष देख है । इस पराक्रमी निशाचरको तुझे परचय दो ॥ २३ ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा प्रयुवाव विभीषणः ॥ ३ ॥
एव सेनापतिस्तस्य प्रहसो नाम राक्षसः ।
लज्जया राक्षसेन्द्रस्य विभागवत्सवृताः ।
धीनियान्द्रविचक्रुराः सुप्रक्यास्तपराक्रमाः ॥ ४ ॥

श्रीरघुनायकीका वचन सुनकर विभीषणने इस प्रकार उत्तर दिया—प्रभो ! इस राक्षसका नाम प्रहस है । यह राक्षसका राघवका सेनापति है और छात्रा भी एक विशाल सेना से फिर हुआ है । इसका पराक्रम मन्त्रीमूर्ति विरूपत है । यह नाना प्रकारके मन्त्र-शालीका साथ बल-विक्रमसे सम्पन्न और धूर्त है ॥ ३-४ ॥

ततः प्रहस्त निर्यान्त भीम भीमपराक्रमम् ।
गर्जेन्त सुमहाकाय राक्षसैरभिसवृलम् ॥ ५ ॥
बृहदा महती सन्ध्या धानराणा यक्षीयसाम् ।
अभिसज्जातपोषाणां प्रहस्तमभिगजत्तम् ॥ ६ ॥

इसी समय मध्यपश्चान् धानरोंके विद्या सेनाने भी मरानक पराक्रमी भीषण रूपधारी तथा महाकाय प्रहसके बड़े गर्जन-वक्रक साथ बहुतसे बाहर निकलते देखा । वह बहुत सकुण्ड एकछत्ते फिर हुआ था । उसे देखत ही धानरोंके दमने भी महान् क्रमवृद्ध होने लगे और वे प्रहसकी ओर देग-देखकर गम्भी हने ॥ ५-६ ॥

सहृदासपटिन्त्याश्च पाणानि मुसलानि च ।
गदाश्च परिचाः प्रासा विविधाश्च परम्भधाः ॥ ७ ॥
धनुर्वि च विचित्राणि राक्षसानां जयविषाम् ।
प्रगुह्निताम्यराजन्त धानरानभिधायताम् ॥ ८ ॥

विजारी इण्णचन एकल धानरोंकी ओर रौद्र । उनके हाथोंमें १- एकिक शक्ति एक, कण मुकुट गदा परिष प्राप्त नाना प्रकारके करम और विविध-विचित्र पतुर शस्त्र पा १६ प ॥ ७८ ॥

जगद्गुः पार्ष्णाध्यापि पुणित्यस्तु गिरिस्तथा ।
निन्द्रश्च शिबुना दीपा यायुक्जमाः द्युगमाः ॥ ९ ॥
तत्र धानरने भी पुत्रके इच्छाने फिर हुए तृष परित तथा १६ १६ कपर उठा निय ॥ ॥

तारामगाम्यमासाद्य मद्रामाः सुमहानभून् ।
पद्ममदमपुत्रि च नारदं च परताम् ॥ १० ॥

हिर उना एकक बहुत-पनक शीमें प्रपते और यन्त्रे-

की कपकि साप-स्य आपसमें बड़ा गरी संग्राम किङ्क गवा ।
वहयो राक्षसा तुझे बहान् धानरपुत्रबान् ।
धानरा राक्षसांश्चापि निजधनुर्महो बहान् ॥ ११ ॥

उस पुत्रसम्बन्धे बहुतसे एकछत्ते बहुतों धानरोंका मे बहुतसक धानरोंने बहुतसे राक्षसोंका छार कर डाला ।
शुद्धैः प्रमथिता केचित् फेचित् तु परमायुधैः ।
परिधैराहता केचित् फेचिच्छिद्यः परम्भधैः ॥ १२ ॥

धानरोंमेंसे कोई क्षत्ते और कोई क्षत्ते मय हाथे गये ।
कितने ही परिशोधी मारसे आहत हो गये और कितनेका फरोंसे टुकड़े-टुकड़े कर डाले गये ॥ १२ ॥

निदकलशासाः पुनः फचित् पतिता जगतीतले ।
विविधशस्त्रयाः केचिद्विपुलधातसाभित्ताः ॥ १३ ॥

कितने ही यन्त्रा सोंवहित हो पृथ्वीपर गिर पड़े और कितने ही बाणोंके क्षय बन गये किन्तु उनके हृदय विदीर्ण हो गये ॥ १३ ॥

केचित् शिषा हताः कर्णैः स्फुरन्तः पतिता भुवि ।
धानरा राक्षसैः शूरैः पार्श्वतश्च विगारिताः ॥ १४ ॥

कितने ही धानर उन्मत्तोंकी मारसे वा टूट कर पृथ्वीपर गिर पड़े और तहकड़ाने लगे । कितने ही धूर्तों एकछत्ते धानरोंके पसकियों का ड डाले ॥ १४ ॥

धानरैश्चापि सङ्घैः राक्षसीषाः समन्ततः ।
पार्श्वगिरिर्दक्षिण्य चाम्पिषा वसुधातले ॥ १५ ॥

इसी तरह धानरोंने भी मत्स्यन्त कुपित हो पूछे और पत-विलसोंका सब ओर भूतकर हक-क-हक एकछत्ते धीन डाल ॥ १५ ॥

यजस्यन्तैर्हैर्नैर्मुण्डिभिश्च हता भूशाम् ।
वमन्शापितमास्येभ्या पिशाच्यवृदानसृष्ट्या ॥ १६ ॥

धानरोंके यज्ञस्य फटोर मण्डलों और मुकछत्ते मन्त्रीकी शीट गये एकछत्ते मुँहसे रक्त बमन करने लगे । उनके रोंत और नेत्र छिन्न-भिन्न होकर बिलर गये ॥ १६ ॥

अतस्मिन् च स्यन्तां सिंहमाद्य च मत्स्यम् ।
यभूय तुमुक्ता राघ्ना हरीणां रक्षसामपि ॥ १७ ॥

अतः अतः एक छत्ते या अतः शिंसेके समान रहने लगे थे । इन प्रकार धानरों और राक्षसोंका भयंकर क्रमवृद्ध था तब अतः पूत्र उठा ॥ १७ ॥

धानरा राक्षसाः मुन्या पीग्मामनुमयताः ।
पिप्लवदना प्राग्भक्तुः कमात्पर्मनयत् ॥ १८ ॥

अधम भर हुए धानर और राक्षसोंकी शीटित मार्गका अनुभव कर पुत्रमें शीट नही दि गत थे । प मुँह था-थकर निर्भयक समान बृहद्वृष कर्म करत प ॥ १८ ॥

नरपतङ्गः कुम्भहनुमहात्मकः समुपगतः ।
 एतं प्रहस्तसचिवाः सर्वे जघ्नुषन्वीकसः ॥ १९ ॥

नरपतङ्गः कुम्भहनुः महात्मा भौर अमुत्त—ये प्रहस्तके
 खरे सन्नि बानरैश्च वध करते ज्यो ॥ १९ ॥

तेषां निपलतां शीघ्रं निप्लता खापि धानपान् ।
 द्विविधो गिरिशङ्केण जघामैकं नरपतङ्गम् ॥ ० ॥

धर्मपदार्थक आक्रमण करत और बानरोंको मारत हुए
 प्रहस्तक ध्वजोंसे एकको द्विविध नाम नरपतङ्ग या,
 द्विविधने एक पर्वतक शिखरसे मार शब्द ॥ २ ॥

बुमुक्त्वा पुनरुत्थाप्य कपिः सविपुच्छुद्रुमम् ।
 राक्षसं क्षिप्रहस्तं तु समुपगतमप्यपत् ॥ २१ ॥

किं बुमुक्त्वाणे एक विपुच्छुद्रु वृष ध्विं उठकर धीम्भा
 पूर्वक हाथ बलवानेसकं राक्षस अमुत्तको कुच्छुद्रु शब्द ॥ २१ ॥

अम्बवास्तु सुसमुन्द्रः प्रगृह्य महतीं शिलाम् ।
 पाठयामास तजस्वीं महान्दस्य वक्षसि ॥ २२ ॥

लम्बवा अम्बव कुपित हुए तम्बवी अम्बवाने एक
 बड़ी मपी शिखर उठा बी और उठे महान्दकी छातीपर दे
 म्य ॥ २२ ॥

स्य कुम्भहनुस्तत्र तारेणासाद्य धीत्ययान् ।
 वृषभं महता सद्यः प्राणान् सत्याञ्जयवृ रणे ॥ २३ ॥

बर्षी या पराक्रमी कुम्भहनु । बहू तार नामक बानरसे
 मित्रा और अन्तमें एक शिखर वृषभी शपेटमें आकर उठे
 भी रजवृषिमें अपने प्राणोंसे हाथ बाने पड़े ॥ २३ ॥

अभ्युपमायसात्कर्मं प्रहस्त्य रथमास्थितः ।
 पद्भ्यश्च कृत्वा घोरं धनुष्प्राणिवर्षवैकसाम् ॥ २४ ॥

रथस बैठे हुए प्रहस्तसे बानरोंका यह अभ्युत्त पराक्रम
 नरीं था गया । उठने हाथमें धनुष संकर बानरोंका घोर
 धनुष मारण किया ॥ २४ ॥

घातवत् इव सज्जघ्ने सेनयोः समयोस्तदा ।
 सुभित्तस्याममपस्य सागरस्येष निःस्तनः ॥ २५ ॥

उव सम्य दनों सज्जघ्ने अम्ब मँबरकी भीति पकर
 धार रही थी । विपुच्छु अथर महत्कारकी गर्वनाक अम्ब
 उनकी गर्वना मुग्धकी र रही थी ॥ २ ॥

महत्या हि दारीश्रज्ज राक्षसो रणजुमदः ।
 भद्रयामास सकृन्वा धानपान् परमाहय ॥ २६ ॥

अम्बव अथने से हुए रजवृषदे यक्ष प्रहस्तने अपने
 बान-भूनामय उठ मात्समसे बानरोंका पीड़ित करना
 अग्रम किया ॥ २६ ॥

धानपान्यं दारीरन्तु राक्षसान्य च मद्रिनी ।
 धन्यामिच्छित्वा घोरं पपरीरिव सपृष्य ॥ ७ ॥

धानपान्यं दारीरन्तु राक्षसान्य च मद्रिनी ।
 धन्यामिच्छित्वा घोरं पपरीरिव सपृष्य ॥ ७ ॥

वृष्णीपर वनरौ भौर राक्षसौकी व्यजोक्त डेर समा गये ।
 उनसे आन्धरादित हुई रणभूमि मयानक पर्वतोंत दधी हुई-धी
 अन् पड़ती थी ॥ २७ ॥

सा मही दधिरीषिण्य प्रकृच्छया सम्पक्रदाते ।
 सद्यश्च माभवे मासि पलाशैरिव पुष्पितैः ॥ २८ ॥

रक्तक प्रकृच्छये आन्धरादित हुई यह युद्धभूमि बरगल
 मासमें खिल हुए पलाश-वृक्षोंसे दधी हुई वन नूमि-धी
 सुधमिल छती थी ॥ २८ ॥

हृत्थीरीष्यप्रा तु भन्त्युपधमहाद्रुमाम् ।
 शोणितौषमहत्तोयां यमसागरगामिनीम् ॥ २९ ॥

यक्षद्वीहमहापद्म विनिक्षीणान्तरौवद्यम् ।
 निषक्यपदिरोमीनामहाययवशाद्रुमाम् ॥ ३० ॥

शुद्धहसपराक्षीर्षा कृत्वासारससेविताम् ।
 मन्द-फलसमाक्षीर्षामातस्तानिनिःस्तनम् ॥ ३१ ॥

तां क्यपुरुषपुस्तारां युद्धनूमिमर्षां नदीम् ।
 नदीमिष्य घनप्रपाये ह्यसारससेविताम् ॥ ३२ ॥

राक्षसाः कपिमुत्थास्तं तेषुसा तुस्तारानदीम् ।
 यथा पद्मरजापवस्ता नखिनीं गजपृथपाः ॥ ३३ ॥

मारे गये धीरोंकी सर्वों ही क्लिष्टके दोनों तट थे । रक्तक
 महाह ही क्लिष्टकी महान् अम्बपति थी । दूट-दूट अम्ब शब्द
 ही क्लिष्टक तटकीं शिखर वृक्षोंके अम्ब अन् पड़ते थे ।
 अं यमसागरकी अनुप्रसे मिथी हुई थी । सेनिक्षीके यहूत
 और पक्षिहा (हृदयके दहिने और बायें भाग) क्लिष्ट महान्
 र्क थे । निषक्यी हुई ओतें अर्द्धो संभारक काम देती थी ।
 कट हुए सिर और पङ्क अर्द्धो मत्स्यसे प्रतीत हात थे । शरीर
 क छोट-छोटे अम्बव एवं क्या क्लिष्टमें पाठम भ्रम उदयत्र
 करते थे । अर्द्धो गीष ही हंत कनकर बैठ थे । कृद्धकी वारत
 क्लिष्टक लेम्ब करते थे । मरे ही फेन कनकर अर्द्धो लव अर्द्ध
 देख थे । पीड़ितोंकी कपह क्लिष्टकी क्लिष्टक प्लि थी और
 क्यपयोक क्लि क्लिष्टे पार कृत्वा अम्बव कर्त्तन था उठ युद्ध
 भूमिकनिनी नदीका प्रवाहित करक राक्षस और भेष्ट बानर
 बर्षाके अन्तमें हँस्य और खरखसे सेनित खरिवाकी भाति उठ
 तुस्तार नदीका ठखे तरह पार कर रहे थे बस गम्भयपति
 क्लिष्टक परासे आन्धरादित क्लिष्टे पुष्परीणीम पार करते हैं ।
 ततः सृजन्त बाणीघान् प्रहस्तस्यन्दने क्लिष्टम् ।
 वृषा तरसा नीला विधमन्त द्रुयगमान् ॥ ३४ ॥
 तदन्तर नीलने देखा, रथपर बैठा हुआ प्रथम थाप
 अर्द्धोकी मया करक वेगवृत्त बानरोंम घंटा कर रहा है ॥
 उद्भूत इय यायुः क महदभयपक पल्लव् ।
 समीक्याभिद्रुत युये प्रहस्त्य धाहिन्द्रपति ॥ ३ ॥
 रथान्दित्यपणनं नीसमयाभिद्रुतुप ।

तव धैरे उठी हुई प्रचण्ड वायु मात्स्यधमे महान्
मेघैश्चैः पयस्त्रिंशत्किञ्चिन्मिथं भरक उवा वेती हे उखी प्रभर
नीळ मी कञ्जयुक् राक्षससेनाश्च संहार करने छो । इसी उख
पुत्रस्यधमे उखी सेना मया लक्ष्मी हुई । सेनापति प्रहसने
अप्य भग्नौ सेनाश्री ऐखी बुद्धसा देली तव उखने सर्वैः प्रह
रकनी रवकं ह्यप्य नीळपर ही भाषा क्रिया ॥ १५३ ॥

स धनुर्धन्विणाम् धाष्टो विद्वृष्य परमाहणे ॥ ३३ ॥
नीळय स्यसृजत्वाप्यन् प्रहस्तो षाहिनीपतिः ।

धनुषधारिणोमे भेद और निष्ठाफतोश्री सेनाक नायक
प्रहस्ते उष महाहनरमे अपने धनुषके खीचकर नीळपर
क्योंश्री वगो आरम्भ कर ही ॥ ३३३ ॥

तं प्राप्य विशिखा नीळयिनिर्भिद्य समाहिताः ॥ ३७ ॥
महीं जम्बुर्महाधेगा रोपित्य इव पद्मगाः ।

रोपते भरे हुए लोके समान वे महान् केनाश्री यय
नीळयक पदुंनकर उन्हे मिदीने करके बड़ी खवधानीक धय
परखीने उमा गये ॥ ३७३ ॥

नीळः शरैर्भिहता गिशितैर्ज्वलनोपमैः ॥ ३८ ॥
स त परमबुधधर्मापस्त महाकपिः ।

प्रहस्त ताडयामास धृसमुत्पात्य धीर्यपान् ॥ ३९ ॥

प्रहसके पने बाण प्रकण्डित अग्निके समान बन पड़ते
ये । उनकी चोटसे नीळ बहुत भावक ही गये । इस तख उष
परम बुद्धमे राक्षस प्रहसको अपने ऊपर आक्रमण करते देख
कक विस्मयाश्री महकपि नीळने एक पेड़ उखाड़कर उखीक
ह्यप उकर भाषात क्रिया ॥ ३८ ३९ ॥

स तमाभिहताः कुन्वो मर्नन् राक्षसपुणयः ।
पर्यं शरवर्षाणि धूम्रगमनां धमूयती ॥ ४० ॥

नीळकी चोट खाकर कुपित हुआ राक्षसधनुषमणि
प्रहस बड़ बोरसे गनैसा हुआ उन धनर-संज्ञपरशिर कयोंश्री
बगो करने लग्य ॥ ४० ॥

तस्य वाप्यगणनेष राक्षसस्य तुरात्मनः ।
व्यापयन् चारयितुं प्रत्यगृह्णधिमनीकितः ।

यथेय गोशूया परं शारदं शीघ्रमागतम् ॥ ४१ ॥
पवमेय प्रहस्तस्य शरवपयन् तुरासदान् ।

भिर्नीलित्यस्तः सहसा नीळः सहै तुरासदान् ॥ ४२ ॥

उष दुराग्य राक्षसे बाल-कुन्वोम निवारण करनेमें
कमपे न ह सन्नेपर नीळ भौगन वर करके उन लय ययों-
को अपने भनैर ही प्रहस करने छो । जस लौक बदल
अथी दुर धरन् सुदुरी यगामे पुपपाव अपन धीरपर ही
क्य भव है । उखी प्रहस प्रहसकी उष हुआ खनरयामे
नीळ पुपचप नय वर करके हदन करत र ॥ ४१ ४२ ॥

रोपितः शरवर्षेभ्य सालेन महता महान् ।
प्रजघ्नन हयान् नीळः प्रहस्तस्य महाबलम् ॥ ४३ ॥

प्रहसकी बाणवपति कुपित ही महाबली महाकपि नीळने
एक विषाक खण्डरुके ह्यप उरके बोझोको मार डाल्य ॥

कतो रोपपरीतात्म धनुस्तस्य तुरात्मनः ।
वभक्ष तरसा नीळने ममात् स पुनः पुनः ॥ ४४ ॥

तयमात् रोपते भरे हुए नीळने उष दुराग्यके धनुषके
भी वेगपूर्वक उख दिया और बारबार वे गनैसा करने छो ॥

विधनुः स हतस्तेन प्रहस्तो षाहिनीपतिः ।
प्रगृह्य मुसलं घोरं स्यम्नान्वावयुप्लुवे ॥ ४५ ॥

नीळक ह्यप धनुषदेख क्रिया गय सेनापति प्रहस एक
मयानक मुसल हाथमें लेकर अपने रपसे कूद पड़ा ॥ ४५ ॥

तावुभौ षाहिनीमुख्यौ जातवैरी तरसिनौ ।
स्फिटी हतजसिकाहौ प्रभिधाबिव कुञ्जरी ॥ ४६ ॥

वे दोनों वीर अपनी-अपनी सेनाके प्रधान थे । दोनों
ही एक दूसरेके वैरी और केनाश्री थे । वे मद्रकी धय
बहानेबाके व गन्धर्वोंके ख्यान कृतसे नहा उठे थे ॥ ४६ ॥

उखिलकन्वो सुवीर्यणिर्वैद्वभिरितरेतरम् ।
सिंहशार्दूलसङ्घौ सिंहशार्दूलवेष्टितौ ॥ ४७ ॥

दोना ही अपनी वीली शार्दूलसे कट-कटकर एक-दूसरेके
अङ्गोंको पाक्य करने देते थे । वे दोनोंसिंह और बाणके ख्यान
शक्तिशाली और उन्हीके समान विषयके भिने उचैय थे ॥

विश्रान्तविजयो धीरो समरंभ्यन्वित्तिनी ।
काङ्क्षन्मनौ पशः प्रान्तुं वृषपासकयोरिष ॥ ४८ ॥

दनों वीर पराजनी बिक्री और युद्धम कमी पीठ न
दिखानेबाके वे तथा हुआसुर और इन्द्रके ख्यान युद्धमें मर
पानेकी अभिखपा रखते थे ॥ ४८ ॥

व्यासघान तदा नीळ क्लृप्यते मुससेन सा ।
प्रहस्तः परमयत्तस्ततः सुखाय शोणितम् ॥ ४९ ॥

उष कम्य परम उषोश्री प्रहसने नीळके क्लृप्यते मुससेने
अपगत क्रिया । इसी उन्के क्लृप्यते रकधी बाण पर पली ॥

ततः शोणितविग्धाङ्गः प्रगृह्य च महास्वरम् ।
प्रहस्तस्योरसि कुन्वो विस्सस्य महाकपिः ॥ ५० ॥

उन्क धर अङ्ग रखते भोग गये । तब कचवे भरे हुए
महाकपि नीळने एक विषाक हथ उठाकर प्रहसकी धमिपर
दे मय ॥ ५० ॥

तमखिन्यप्रहारं स प्रगृह्य मुसलं महत् ।
अभिवुद्राय पत्तिनं पञ्चधीळं ध्रुवगमम् ॥ ५१ ॥

उष प्रहारकी धरं परना न करके प्रहस महान् मुसल
हाथमें छिप यकनान् धनर नीळकी अर बड़ वेग्य हीन ॥

तमुपसंगं सरम्भमापन्नत महाकपिः ।
 ततः सम्येक्ष्य ऊप्राह महाशिलाम् ॥ ५२ ॥
 उच मन्कर वेगघात्री रक्षकश्चे रापते भरकर आक्रमण
 करते रेश महत् वेगघात्री म्हाकपि नीळने एक बड़ी मारी
 सिद्ध हार्ये छ थी ॥ ५१ ॥
 तस्य युद्धाभिष्णामस्य सृष्टे मुसल्लयोभिः ।
 प्रहस्तस्य शिला नीळो मूर्ध्नि तूर्णमपातयत् ॥ ५३ ॥
 उच शिवाको नीळने रणभूमिमें छामात्री इच्छावाज
 मुसल्लयोची निघान्तर प्रहस्तक मलकर कल्प दे मय ॥
 नीलेन कपिमुष्येन विमुक्ता महती शिल्प ।
 विभेद् बहुधा घोरा प्रहस्तस्य शिरस्तथा ॥ ५४ ॥
 कपिपत्र नीळक दाय च्छली गयी उच मन्कर एवं
 सिद्ध शिवाने प्रहस्तक मलकर कुचकर उसके कई
 टुकड़े कर डाले ॥ ५४ ॥
 स गतासुगतथीको गतस्तस्यो गतेन्द्रियाः ।
 पपात सहस्रा भूमौ छिन्नमूल इव तुम् ॥ ५५ ॥

उचक प्राण-पलक उड़ गये । उसकी कान्ति उसका बल
 और उसकी खरी इन्द्रियों भी चली गयीं । वह रक्षक बड़से
 कई हुए इधकी मोल्लि छत्र पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ५५ ॥
 विभिन्नशिरस्तस्य पद्मु सुखाव शोणितम् ।
 शरीरावपि सुखाव गिरेः प्रस्रवण यथा ॥ ५६ ॥
 उसके छिन्न-मिन्न हुए मलकले और घटिरले भी पद्म
 जल गिरने जगह माने पर्यन्त पानीका सरण कर रहा है ॥
 ह्युत्पार्यं श्रीमद्भामावने शास्त्रीकथि आदिशब्दे युद्धकाण्डेऽष्टपञ्चासः सर्गः ॥ ५८ ॥

एत प्रकर श्रीमद्भारविभिरिभित्त भार्गवाम्बन् अष्टिकान्तक युद्धकाण्डम् अष्टपञ्चसो सर्ग पूरा हुआ ॥ ५८ ॥

एकोनपद्यितमः सर्ग

प्रहस्तक मारे जानेसे दुखी हुए रावणका स्वयं ही युद्धक लिय पधारना, उसक साथ आये हुए मुस्य
 धीरोंका परिचय, रावणकी मारसे सुग्रीवका अचेत होना, लक्ष्मणका युद्धमें आना, हनुमान् और
 रावणमें धप्यङ्गोंकी मार, रावणद्वारा नीलका मूर्च्छित होना, लक्ष्मणका शक्तिक आपातसे
 मूर्च्छित एवं सचेत होना तथा भीरामसे परास्त होकर रावणका लक्ष्मणमें घुस जाना

तस्मिन् हत रक्षससम्पपाठ
 द्वयगमानाम्पूमेण युद्धे ।
 भीमायुध सागरधगनुत्स
 विबुद्ध्युध राक्षसराजसम्पम् ॥ १ ॥
 बानभेद्र नीळक दाय युद्धस्थलमें उच राक्ष-सेनाद्वि
 प्रहस्तक मारे जानेसे अत्रुद्रक अम्बन् वेगघातीनी और अम्बन्क
 अयुधान युद्ध कर राक्षसराजकी अम्ब मय पत्नी ॥ १ ॥

हते प्रहस्त नीलेन त्वक्कण्य महायत्नम् ।
 राक्षसानामहृषाणां लक्ष्मणभिजगाम ह ॥ ५७ ॥
 नीळक दाय प्रहस्तक मारे जानेपर दुखी हुए राक्षसोंकी
 यह भङ्गमणीय शिवाक सेना लक्ष्मण और गयी ॥ ५७ ॥
 न शोकः समवस्थातु निहते वाहिनीपतौ ।
 सेतुवन्ध समासाद्य विदीर्णं सल्लिख यथा ॥ ५८ ॥
 सेनापतिक मारे जानेपर यह सेना उडर न लगी । जैसे
 बोंब टूट जानेपर नदीका पानी बक नहीं पाता ॥ ५८ ॥
 हत वासिष्णवमुक्थे राक्षसास्तं निदधमाः ।
 रक्ष-पतिगृह गत्या ध्यानमूक्यमागत्य ॥ ५९ ॥
 प्राताः शोकापघ तीव्र विसदा इय तऽभयन् ॥ ६० ॥
 सेनापतिकके मारे जानेसे ये खरे रक्षस अपना युद्ध
 विषयक उच्छर खा पटे और राक्षसराज रावणके मन्त्रमें ल-
 कर तिलाक करण बुन्चाय लड़े हो गये । तीव्र शोक-समुद्र
 में हुए जानेके कारण वे सब-सब अनेक-से हो गये
 थे ॥ ५९-६० ॥

ततस्तु नीले विजयी महायत्न
 प्रदास्यमानः सुकृतेन कम्पया ।
 समेत्य रामेण सलक्ष्मणेन
 प्रहृष्टरूपस्तु यमूष यूयय ॥ ६१ ॥
 तदनन्तर विजयी सेनापति मल्लपत्नी नील अपने इत महान्
 कर्मके कारण प्रदासित होते हुए भीराम और लक्ष्मणसे आकर
 मिल और बड़े हार्थका अनुभव करने लगे ॥ ६१ ॥
 ह्युत्पार्यं श्रीमद्भामावने शास्त्रीकथि आदिशब्दे युद्धकाण्डेऽष्टपञ्चासः सर्गः ॥ ५८ ॥

गत्या तु रक्षाधिपतः शतासुः
 सनापति पापघ्नस्तुशक्तम् ।
 तन्वापि तथा यच्च निदम्भ
 रक्षाधिपः प्रथयन् जगाम ॥ २ ॥
 राक्षसोंने निशान्तरण रावणक पाठ अकर अग्निपुत्र
 नीलक हाथ परन्तक मारे जानेक छान्चार मुनाय । उनकी
 यह पाठ मुनकर राक्षसराज रावणका वडा करण हुआ ॥ २ ॥

सख्ये प्रहस्त निहत निशाम्य
श्रेयार्थितः शोकपरीतचेताः ।

उवाच तान् राक्षसपुत्रमुख्या
निन्दो यथा निर्जरपुत्रमुख्यान् ॥ ३ ॥

पुत्रसङ्घमें प्रहस्त मारा गया वह सुनते ही वह श्रेयसे तन्तमा उठा किन्तु योही ही देरमें उलझ पित उसके किने शाफते झाडुछ हो गया । अतः वह मुझ-मुझ देखतेभति वातपीय करनेवाले इन्द्रभी मूर्ति रखखेनाके पुत्र्य म्बि-अतिर्षिते बोध—॥ ३ ॥

नपयन्ना रिपवे कर्ष्या वैरिभूवत्सलसङ्गः ।
सुविताः सैम्यपात्रो मे सानुयाचः सङ्कुञ्जरः ॥ ४ ॥

शत्रुओंको नान्य समझकर उनकी अपेक्ष्य नहीं करनी चाहिये । मैं किने बहुत छोटे समस्त था, उन्ही शत्रुमाने मेरे उध वेनापतिओ देखओ और हाथिओंसहित मार गिरया, वह इन्द्रभी सेनाओ भी उहार करनेमें सनर्ष था ॥ ४ ॥

सोऽह रिपुनिन्दशाच विजयायाक्विचारयन् ।
लपमेव गमिष्यामि रणशरिरे त्वद्गुहम् ॥ ५ ॥

अब मैं शत्रुओंके उहार और अपनी विजयके किन्तु किन्तु कोई निवार किने कम ही उध मद्भुत मुद्रके मुहनेपर कहेंगा ॥ ५ ॥

अथ तद् वानराणां राम च सहस्रबभ्रुम् ।
निर्वाहिष्यामि वाजोमैत्रन वीरैरिवाग्निभिः ।
अथ सतर्पयिष्यामि पूषिर्षी कपिशिषितैः ॥ ६ ॥

जैसे प्रत्यक्ष भाग वनको उध देदी है, उही तब अथ अपने हाकसङ्घोंसे घनरोषी सेना तथा कर्मजसहित श्रीपमको मैं मझ कर बावेंगा । आब वानरोंके रखसे मैं इत पूषीओ वृत्त करूँगा ॥ ६ ॥

स एवमुक्त्वा स्वछन्नप्रक्षारा
रर्षं तुरगोत्तमराजियुक्तम् ।

प्रक्षारामान वपुया ज्यछस्त
सामादरोहामरराजशत्रुः ॥ ७ ॥

ऐसा कहकर वह देवराज्य शत्रु राक्ष भयिके सम्यन प्रक्षारामान रखर सवार हुआ । उसके रयमें उत्तम घोषोंके समूह वृत्त हुए थे । वह अपने शरीरसे भी प्रत्यक्षित भयिके सम्यन उद्भासित हो रहा था ॥ ७ ॥

स शङ्खमेरीपणभप्रणवै
रस्त्येदित्तकश्चित्तिसहजवै ।

पुष्पैः सधैर्भापि सुपूज्यमान-
सन्ना ययौ राक्षसराजमुख्या ॥ ८ ॥

उसके प्रस्थान करते समय शङ्ख मेरी और पवन आदि शयै बनें छे । योडाभ्या ताब ठोकने गकी और कि-

नद करने छे । कन्हीअन पवित्र स्तुतिगोहाय रखरअ-
शिरोमणि रखवनी मकीगोति समाराचना करने छे । श
मकर उठने माया श्री ॥ ८ ॥

स शौलजीमूतनिकाराशुवै
मौसाशनैः पापकर्मिनेभैः ।

बभौ वृत्तो राक्षसराजमुख्या
भूतैर्धृतो रुद्र इयमरेशः ॥ ९ ॥

पकैत और मेघोंके समान कस एवं विद्याय सम्यपे मांखहारी रखयेंते, किनेके नेत्र प्रव्यसित भयिके सम्यन उरुष हो रहे थे, सिध हुआ राक्षसराजपिराब रखय भूतगर्भसे भिरे हुए, वैषेकर कर्म सम्यन घोमा फटा था ॥ ९ ॥

ततो नगर्याः सहसा महौज्य
निष्कम्य तद् यानरसैम्यमुग्रम् ।

महार्षीवाञ्छस्तनितं वृष्यं
समुद्यत पद्परीरुहस्तम् ॥ १० ॥

महातेजसी रखयने लडापुरीसे अथ निष्कम्य मार-
सम्यन और मेघोंके समान गर्बना करनेवाळी उध भयंकर बानर-
सेनाओ देला वह हाथोंमें पकैत-शिलर एवं इध किने मुद्रके
किने तैयार थी ॥ १० ॥

तद् राक्षसानीकनतिप्रबन्ध
मासोपय रामो मुञ्जगन्ध्रबाहुः ।

विभीषण शस्त्रमूर्ता वरिष्ठ
मुवाच सेनातुरातः पूषुभीः ॥ ११ ॥

उध अत्यन्त प्रबन्ध रखखेनाओ देखकर नगरयन रोष-
के सम्यन मुञ्जबाके वानर-सेनासे भिरे हुए तथा पूष घोष-
सम्यकिते मुक्त भीरयमन्त्रधीने शब्दपारिषीमें श्रेष्ठ विनीषयसे
पूष—॥ ११ ॥

यायापराकाभ्यज्जहन्नुग्र
प्रासासिष्टसमुपशक्तमुग्रम् ।

कस्त्येवमसौम्यमभीकनुग्र
सैम्य मोहेन्द्रोपममगाजुग्रम् ॥ १२ ॥

जैसे नान्य प्रकरणी जन्म फलक्यों और उरुषसे उग्रोमिक
प्राय जह और अथ भावि मझ धाजेंते सम्यन, अन्म
निजर मोडाजोंसे सेकित और महेन्द्रपर्यत-जैसे निपाकम्य
हाथिसेते भनी हुई है, देखी वह सेना किन्ही है ! ॥ १२ ॥

ततस्तु रामस्य निशाम्य धाक्यं
विभीषणः शकृत्समात्वीर्यः ।

शशास रामस्य वक्षप्रवेकं
महात्मनां राक्षसपुंगवाणाम् ॥ १३ ॥

इन्द्रके सम्यन बळ्याकी विभीषण भीरयमी उरुषुंक वात
सुनकर महात्मा रखरशिरोमणियोंके कस एवं सेनिक-शाकिप्र
परिचय सेते हुए उनसे बोधे—॥ १३ ॥

याऽसी गजस्कन्धगतो महामा
न्योद्विताक्षोपमत्पद्मपत्रः ।
सकम्पयश्चागशितोऽभ्युपैति

हाकम्पन त्वनमयहि राजन् ॥ १४ ॥

प्यन् । पर अ महामन्सी वीर हाथीकी पीठपर बैठा है । जिसका मुख तथापि मूर्च्छक समान छत्र रंगका है तथा जो अपने मारने हाथीक मस्तकमें फग्न उरग्न करता हुआ इपर आ रहा है । इसे आप अर्द्धग्न समझे ॥ १४ ॥

योऽसी रथस्यो मृगगजकेतु
धुन्वन् धनुः प्राकधनुःप्रकाशम् ।

करीव भात्युप्रविबुधप्रभुः
स इन्द्रजिघाम परप्रधान ॥ १५ ॥

पर अ रथपर चढ़ा हुआ है जिसकी ध्वजपर सिंहका चिह्न है जिसके दाँत हाथीके समान उभर और बाहर निकले हुए हैं तथा जो इन्द्रधनुषके समान फालितान् धनुष दिखता हुआ आ रहा है । उसका नाम इन्द्रकिन् है । वह बरतलक यमानन कहा प्रकृत हा गया है ॥ १५ ॥

यद्यैव विग्न्यास्तमेहन्द्रकल्ला
धम्यी रथस्याऽतिरथाऽतिधीर ।

विस्मयगयश्चापममुल्यमान
मान्नातिफयाऽतिविबुधकायाः ॥ १६ ॥

पर जो विग्न्याचल भ्रष्टानक और महेन्द्रगिरिक समान विघ्नकाप अतिरथी एवं अतिमय वीर धनुष तिय रथपर बैठा है तथा अपने अनुपम धनुषका फरदार गीच रहा है । रथका नाम अतिराथ है । इसमें क्या बहुत परी है ॥ १६ ॥

याऽसी नयाद्धितत्पद्मप्रभु
रागहा धन्यप्रनिदप्रणादम् ।

गज स्तर गजति धी महामा
महावरा भाम स पर धीरा ॥ १७ ॥

जिसके नेत्र एवं मुख उदित हुए मूक समान स्पष्ट हैं तथा जिसकी आवाज पत्थारी ध्वनिमें भी उत्पन्न है उसका नाम महावरा है । यह महामन्सी का महार नामन चिह्न है ॥ १७ ॥

याऽसी ह्य वाक्षतचिदभाण्ड
मागहा सध्याभ्रगिरिप्रद्यम् ।

प्रास समुपम्य मर्गागमज
विगात्र पराऽगानिमुल्यवम ॥ १८ ॥

यह वाक्षतचिदभाण्ड नाम का सध्याभ्रगिरिप्रद्यम् नाम का समुपम्य मर्गागमज नाम का विगात्र पराऽगानिमुल्यवम नाम का चिह्न है । यह महामन्सी का चिह्न है ॥ १८ ॥

सुवर्णमय आनूयमैले विभूति ध्वजपर चक्रपर चमडीके प्राण (मय) का हाथमें तिय इपर आ रहा है । इसका नाम विगात्र है । यह वाक्षके समान वेगवाधी पाया है ॥ १८ ॥

यद्यैव दूय निर्दिशत प्रगृहा
विद्युत्प्रभ किकरज्जधगम् ।

धृपेन्द्रमास्यैव शशिमक्षणा
मायाति योऽसी त्रिशिरा यदासी ॥ १९ ॥

जिसके वाक्षके वेगका भी अम्ना वाम पता किया है और जिसके निकसीधीधी प्रमा छिद्रकभी रहती है । ऐसे क्षीण विद्युत्का हाथमें तिय जो यह चन्द्रमाके समान श्वेत फालितका काँच पर चक्रपर सुवर्णमय आ रहा है । यह यद्यैव वीर निर्दिशत है ॥ १९ ॥

यसी च जीमूतनिकाशरुपा
कुम्भः पृथुग्युद्धसुजातवस्ता ।

समाहित पधरात्रकेतु
विस्मयत्यन् याति धनुषिधनुन् ॥ २० ॥

जिसका रूप मयके समान कल्प है । जिसकी छाती उमरी हुई । पीड़ी और सुन्दर है । जिसकी ध्वजपर नागाका धनुषके चिह्न बना हुआ है तथा जो एकाग्रचित्त हो अपने धनुषका दिखता और लानिया आ रहा है । यह कुम्भ नामक यन्त्र है ॥ २० ॥

यद्यैव जाम्बूनप्रयज्जुष
दान सधूम परिच प्रगृहा ।

भायाति गस्तायल स्तुभूतो
याऽसी निकुम्भाऽद्भुतपरफला ॥ २१ ॥

जो सुवर्ण और पत्रम करित होनेके कारण होजियान् तथा इन्द्रनीलमणिक मणिक होनेके कारण धूमयुक्त भूमि-का प्रस्मृति हाथ है उस परिपन्न हाथमें सडर का यज्जुम्भाके यज्जुके समान आ रहा है । इसका नाम निकुम्भ है । उसका पर एका अद्भुत है ॥ २१ ॥

यद्यैव सापातिगरीषणु
पत्तापित्त पारकर्षाकरुपम् ।

रथ समाम्भय रिभाणुदप्रा
नरान्तकाऽम्ना नगट्टप्रयाधी ॥ २२ ॥

पर जो धनुष हा और यज्जुम्भा पर हुए पाया परासमें भरहा तथा प्र गीत भूमिक कल्प होजियान् यज्जु आका हा अतिपन्न यज्जु च रहा है । इस परका फला नगटाक है । यह नगट्टीके पराक्रम युक्त यन्त्र है ॥ २२ ॥

१. पर विगात्र पराक्रमने पर २. विगात्र विगात्र है ।
३. पराक्रम युक्त है ४. पराक्रम है ।

५. पराक्रम पराक्रम युक्त है ।

यद्येव नामाधिभघोरकुरी

व्यामोद्गुणोद्ग्रेत्रसृगाभ्यवफसैः ।

भूतैर्धृत्वा भासि विवृत्तनने

यौऽस्ती सुराप्यामपि तर्पहस्त्य ॥ २३ ॥

यत्रैतद्विदुप्रतिमं विभासि

पञ्च सित सूक्ष्मशलाकमग्र्यम् ।

अत्रेव रक्षाधिपतिमहात्मा

भूतैर्धृतो रुद्र इयाकभासि ॥ २४ ॥

यह अब व्याप ऊँट, हाथी, बिल और पौड़केसे मुँहवाले, पत्ती हुई आँसुवाले तथा अनेक प्रकारके भयंकर स्मृवाले भूँसे भिया हुआ है अब देवताओंका भी दर्प दहन करनेका है तथा अर्धाँ, भिन्नक ऊपर पूज चन्द्रमाके समान इकेत एवं फाली कमनीकाय सुन्दर छत्र घोषा पावा है वही यह राक्षसपन मरामना राक्षस है अब भूँसे भिरे हुए रुद्रदेवके समान मुष्मिन्त इत्य है ॥ २३ २४ ॥

असौ किरीटी शलकुण्डलास्यो

नोम्ब्रविन्ध्यापमभीमक्षयः ।

महेन्द्रैर्यपस्यतर्पहस्ता

रक्षाधिपः सूर्य इयायभासि ॥ २५ ॥

यह सिरपर मुकुट धारण क्रिय है । इसका मुल कर्णोमे दिखते हुए कुण्डलमे अंबंडूत है । इसका शरीर गिरियाज रिम्यालय और विन्ध्याचलके समान विशाल एवं भयंकर है तथा यह इन्द्र और यमराजक भी परमेशमे पूर करनेवाला है । देगिय यह राक्षसपन काखर सूर्यके समान प्रकाशित हो या है ॥ २५ ॥

प्रयुयाथ तथा रामा विभीषणमरिचिम् ।

अहा वृत्तमहातजा राधणा राक्षसधर ॥ २६ ॥

तव शत्रुमन भीरुमने किभीरवध इव प्रभर उत्तर दिया—अहा ! राक्षसपन यथवरा तव त्वं बहुत ही यदा-पदा और रक्षितमान है ॥ २६ ॥

म्यदित्य इय तुष्पइया रस्मिन्निभासि राधणा ।

न स्पृकं त्तरय हास्य रूप तज्जन्मनागृतम् ॥ २७ ॥

धरान भन्ती प्रभन म्परी ही भौं । जग्ये शास्य पा ग्ता है कि इनमे अर राजना र्द्विन छ रहा है । तज्जन्मनागृतम् अन्त इनेक धरान इगता रूप मुत ग्ता नही दि तापी ६३ ॥ २७ ॥

इयदानराधणां यतुर्नैवतिथ भयम् ।

प्यदना राक्षसग्रन्थ यतुलन् शिवाजत ॥ ८ ॥

एतन्मनागृतम् २०। मर्णा १। राया ६। पम् ८। ६३३ अर ६३। ६। म नी नही ६३। १२८ ॥

सर्वे पर्यंतस्वच्छशाः सर्वे पयतयोधिनः ।

सर्वे शीतायुधधरा योधास्तस्य महात्मनः ॥ २९ ॥

इस महात्मन राक्षसके सभी योद्धा पर्यंतके सम विशाल हैं । सभी पर्यंतके युद्ध करनेवाले हैं और लक्ष्मण चन्द्रकीके अन्न-सन्न भिने हुए हैं ॥ २ ॥

विभासि रक्षोरजोऽस्ती प्रवृत्तैर्भीमवृशैः ।

मृतैः परिधृतस्तीक्ष्णैर्वृहधद्रिरियास्तकः ॥ ३० ॥

ये दीसिमान् भयंकर दिलायी देनेवाले और उनके सम्भववाले हैं, उन राक्षसोंके भिरे हुआ यह राक्षसपन राक्षस देहापी भूँसे भिरे हुए यमराजके समान अन्न पढ़ा है ।

विष्णुप्यायमद्य पापात्मा मम दक्षिण्य गता ।

अद्य क्रोधं विमोक्षयामि सीताहरणसम्भयम् ॥ ३१ ॥

श्वैग्यन्ध्री नात है कि यह पापात्मा मेरी अर्धोंके खमने आ गया । सीताहरणके कारण मेरे मनमे जो क्रोध अंचित हुआ है उसे आज इसके ऊपर छोड़ूँगा ॥ ३१ ॥

ययमुपस्था ततो रामो धनुरादाय शीर्यवान् ।

कर्मणानुचरस्तस्वी समुद्यत्य शरोत्तमम् ॥ ३२ ॥

ऐसा कहकर कर्म-विक्रमशास्त्री भीरुम धनुष लेकर उत्तम पाण निम्नलकर युद्धके भिने उट गये । इस कर्म सम्भवनने भी उनका खय बिचा ॥ ३२ ॥

ततः स रक्षोधिपतिमहात्मा

रक्षासि तान्याह महापद्मनि ।

शार्यु घयागृहगोपुरेणु

सुनिर्धृतास्तिष्ठत निर्धिशाशा ॥ ३३ ॥

तदनन्तर महामन्त्रा राक्षसपन राधने अपने खय अने हुए उन महापदी राक्षसोंके अहा—धुमसंगा निर्भय और सुप्रच्छ होकर नगरके शायें तथा राक्षसार्गक मन्त्रोमी कर्णादिपौर राके हो जन्म ॥ ३३ ॥

इहागत मां सहितं भयद्रि

पनीकसद्विच्छत्रमिद् विदित्यम् ।

गृह्यां पुरीं तुष्पसाहां प्रमप्य

प्रधर्येयुः सहसा सम्भताः ॥ ३४ ॥

ज्याकि यानरम्या मेर साथ धुम शरम वहाँ आय ६३ इन भयने भिन् भयजा मीना गमसकर छदल एकत्र हो मरी मूर्धे नगरीमे शिवक भीर प्रशय इत्य वृष्टके शिव वहु वद्विन ६ धुम ज्ययग और इन मयहर शोच कर शनै ॥ ३४ ॥

शिवजयित्वा मयियास्ततस्तन्

गतयु र्शर्यु यगानियागम् ।

ध्वशार्यु यानरम्या ग

महाशयः पूयमियाथ शंयम् ॥ ३५ ॥

इस प्रकार जब जग्ने मंत्रियोंको क्रिया कर दिया और
 व राक्षस उसकी आज्ञाक अनुसार उन-उन स्थानोंपर चले
 गये, तब राजपक्ष जैश महासख्य (विमिश्रित) पूरे महासगर
 को विधुम्ब कर देता है, उसी प्रकार धमुद्र-जैसी बानरसनाक
 विदीर्ष करने लग्य ॥ ३ ॥

तमापतन्त सहसा समीक्ष्य
 क्षीतेपुष्पाय युधि राक्षसेन्द्रम् ।
 महत् समुत्पाद्य महीधराय
 बुद्राय रक्षोधिपतिं हरीशम् ॥ ३६ ॥

जमदीय धनुष-बाण शिब राक्षसराज राजपक्ष युद्धस्थलमें
 खड़ा भाग्य देख बानरराज मुषीबने एक बड़ा भारी परत
 मिसर उलाह किया और उसे लेकर उस निशाचरराजपर
 आक्रमण किया ॥ ३६ ॥

तच्छेच्छुष्टं यदुवृक्षसानु
 परगृह्य चिक्षप निदानराय ।
 तमापतन्त सहसा समीक्ष्य
 विच्छुष्टं यापैस्तपनीयपुष्टैः ॥ ३७ ॥

अनेक वृक्षों और जिलरोंसे युक्त उस महान् वृक्ष-शिर
 को मुषीबने रावणपर दे मारा । उस शिरकरको अपने ऊपर
 झटके देस रागनेसे छहवा मुचममय पंखवाक यहुत-से बाल
 मारकर उड़कर दुड़क-दुड़क कर गाय ॥ ३७ ॥

तस्मिन् प्रवृद्धोत्तमसानुपुष्ट
 शृङ्गे निर्वृषिं पतितं पृथिव्याम् ।
 महाहिकन्त्य शरमन्तकाम
 समापद्य राक्षसखोक्तनायः ॥ ३८ ॥

उत्तम वृक्ष और शिरवाला वह महान् राक्षसक जब
 विदीर्षे हाकर पृथ्वीपर गिर पड़ा तब राक्षसकक म्यामी
 राजबने महान् शर् और यमराजक समान एक मयकर पाप
 को लपक किया ॥ ३८ ॥

स म गृह्णीत्यानिलतुल्यधम
 सरिस्तुब्धिं उलनयच्छदाम् ।
 पाण महाम्नाग्नितुल्यधम
 चिक्षप मुषीयधाय कृप ॥ ३९ ॥

उत्तम राजपक्ष पग वायुक समान था । उसमें शिरशरीरों
 पृथ्वी की ओर प्र-रहित अनेक समान प्रकाश पंखवा था ।
 इन्द्रक पक्षी भोंति नदरर वगशम उस राजपक्ष राजपक्ष
 को हाकर मुषीरक पक्षक निय पच्यया ॥ ३९ ॥

स मायक्य रावणयाहुमुक्तः
 ताम्नाग्निरस्वयपुल्यधाम् ।
 सुषीयमाणाद्य विनयं यगाद्
 गृह्णीता श्रीशमिशामाङ्किः ॥ ४० ॥

स प ८

राजपक्ष हाथोंसे छूट हुए उस क्षयको इन्द्रके पक्षकी
 भोंति कान्तिमान् शरीरवासे मुषीरक पास पहुँचकर उसी तरह
 वेगपूर्वक उन्हें भासक कर दिया जैसे स्वामी कान्तिरूपकी
 चक्षुषी हुए भयानक शक्तिने शीघ्रपरीतको विदीर्ष कर
 बस्य या ॥ ४० ॥

स सायकसौ विपरीतचता
 कृजन् पृथिव्या निपात पीर ।
 त वीक्ष्य भूमी पतित चिख
 नेतुः प्रहृष्टा युधि यानुधामा ॥ ४१ ॥

उस राजपक्षी चतसे पीर मुषीर अनेक हा गये और
 आर्तनाद करते हुए पृथ्वीपर गिर पड़ा । मुषीरको देखेहा हा
 भूसकर गिरा देख उस युद्धस्थलमें भाग हुए सब राक्षस बड़े
 एक साथ सिंहादर करने लगे ॥ ४१ ॥

ततो गयासो गयया सुपेण
 स्वययभो ज्योतिमुखो नलम् ।
 शलान् समुत्पाद्य विवृद्धक्याः
 मद्रुद्रुस्त प्रति राक्षसेन्द्रम् ॥ ४२ ॥

तब गयासो, गयया सुपेण, ज्योतिर्मुख और
 नल—ये विप्रासमय बानर परीतगिन्तोंको उलाहकर राक्षस
 राजपक्षपर दूट पड़े ॥ ४२ ॥

तथा प्रहायन् स शकार माघान्
 रक्षोभिषो याषातिः नितामैः ।
 तान् यानन्द्रानपि याषजाल
 विनिव् जाम्बूनवविप्रपुष्टः ॥ ४३ ॥

तयानन्द्रास्त्रिदशारिषाण
 भिक्षा निपतुभुवि भीमश्रयाः ।
 परतु निपाचयेंक गाय राजबने शेरको शीमे राज
 लाइकर उन क्षयक महाशेरक स्वर्ष कर शिष और उन
 बानरशेरोंको भी छानक शिचिप पंखवाक राज-समुद्रोंहाय
 छन-निष्ठ कर दिया । दशद्वारी शरजक जगाम पासक हा
 वे भीमश्रय बानन्द्रगव शरीरर गिर पड़ा ॥ ४३ ॥

ततस्तु तद् यानरसायमुष्ट
 प्रच्छेद्ययामास स पाणजालम् ॥ ४४ ॥
 त पच्यमाना पक्षिणाश्च पीरा
 नानयमाना भयान्त्यधिजा ।

द्वि तौ राजबने अनेके राजसमुद्रोंहाय उक्त भा इन्द्र
 बानरमनास आच्छादित कर दिया । राजपक्षक जगाम पैदित
 और दर हुए पीर बानर उसकी मार गानाकर कर जगाम
 चालकर चलत हुए पणशावे होने लगे ॥ ४४ ॥

तागामुगा राजपसायधना
 जम्मु नरस्य नरस्य स गामम् ॥ ४५ ॥

स प ९

ततो महात्मा स धनुर्धनुष्मा
 नाशाय रामः सहसा जगाम ।
 त ऊहमथः प्राड्डिखिरम्युपय
 उवाच राम परमाद्युत्तम ॥ ४६ ॥

यत्रक संयच्छेति पीडित इ बहुतये कतर शरणागत-
 र-सख माशान् भीरवान्भी धरणात्ने गये । तप धनुर्धर महात्मा
 भीरव खदा धनुष केकर आगे बड़े । उठी समय उदमपन्नी-
 ने उनके सामने आकर हाथ जोड़ उनके से वधाया वचन कहे—

कथमार्य सुपयोता पथायान्य तुरारमन ।
 विभिमिप्याम्यह सैतमनुजानीहि मा विभो ॥ ४७ ॥
 आर्य ! इत दुरमात्र पप करनेके छिये तो मैं ही
 प्यात हूँ । प्रभा ! आप मुझे आशा दीकिये । मैं इतका नाश
 करूँगा ॥ ४७ ॥

तमर्षवीरमहातजा रामः सत्यपराक्रमः ।
 गच्छ यक्षपराधापि भय लक्ष्मण सयुगे ॥ ४८ ॥
 उनकी बात सुनकर महादेवकी सत्यपराक्रमी भीरवान
 कहे—(अच्छा सत्यम्) आर्य ! किन्तु संभामने विषय पाने
 के छिये पूज प्रसन्नगीक रहना ॥ ४८ ॥

रावणा हि महाधीर्यो रणेऽनुत्पराक्रमः ।
 प्रेक्षान्यनानपि सनुभ्रो दुष्पसहो न सदाय ॥ ४९ ॥

क्याकि रावण महान् बळ विक्रमसे सम्पन्न है । यह
 मुझसे अनुत्त पराक्रम विसालता है । यत्र यत्र अधिक कुनित
 होकर युद्ध करने लगे थे तिनो धोकेके छिये इतके बगल
 धरन करता कृतिन हो खरग ॥ ४९ ॥

तस्य चित्तद्राणि मागम्ब सचिउद्राणि च लक्ष्य ।
 क्षुधा धनुषाऽऽत्मान गाथायन्व समाहित ॥ ५० ॥

तुम मुझसे यत्रके छिद्र देरना । उनकी कमबलियों
 त्वम उन्ना और अपने छिद्रोंपर भी दृष्टि रखना (कहीं
 धनु उनके स्वम न उठान पाय) । पक्षप्रस्थित इ पूरी
 लक्षधनीके स्वम अस्ती दृष्टि और धनुषने भी आलस्य
 करता ॥ ॥

राष्यस्य यच्च भुन्वा मग्गरिप्यन्य पूज्य च ।
 भविष्यच्च च रामाय ययौ मीमिषिराहव ॥ ५१ ॥
 भोसुनायबौरी पर बान सुनकर मुमिश्राहुमर सम्मन
 उनक हृदयसे त्वा गये और भीरवम पूज्य एवं अभितारन
 करे व युद्धके छिये बळ दिव ॥ ५१ ॥

स रावण पारणहस्ताद्
 दक्ष भीमायनज्ञानथायम् ।
 प्रच्छद्विपन्त गार्घ्यिजान
 म्पन् यानरान् निप्रिरीणोपान ॥
 दान तव पारादी मुष्प हाथीके पुष्प तदक

स्मान है । उनके बड़ा मयंकर एवं दीक्षिमान् धनुष उद्य
 रस्ता है और भाष-समुद्गीकी वधा करके बानरोंको डकठ उद्य
 उनके शरीरोंको छिन्न-भिन्न किये डकठ है ॥ ५२ ॥

समासोक्त्य महातजा हनुमान् मास्तप्रत्मजा ।
 निवाच शरजाह्वयति विदुद्राय स रावणम् ॥ ५३ ॥

रावणको इस प्रकार पराक्रम करते देल महत्तक
 पनतपुत्र हनुमान्की उसके बाल-समुद्गीम निवारण करते हुए
 उद्यकी और गैरे ॥ ५३ ॥

एव तस्य समासाद्य पाहुमुद्यम्य दक्षिणम् ।
 नासयन् रावण भीमान् हनुमान् वाक्यमग्रधीत् ॥ ५४ ॥
 उसके रथके पास पहुँचकर अपना बायो हाथ उद्य
 क्षिमान् हनुमान्ने रावणसे भयभीत करते हुए कहे—

दक्षानवगन्मर्षयस्यैव साह राक्षसैः ।
 भयप्यथ त्वया प्राप्त वानरेभ्यस्तु त भयम् ॥ ५५ ॥

निशाकर ! तुमने देवता दानव, गन्धर्व सद्य और
 राक्षसोंसे न मारे आनेका कर प्राप्त कर लिया है परंतु बानरोंसे
 तो तुम्हें भय है ही ॥ ५५ ॥

एव म दक्षिणो याहुः पञ्चशस्त्र समुद्यतः ।
 विभिमिप्यति त द्द्वे मृतारमान क्षिरोपितम् ॥ ५६ ॥

वेको पाँच अँगुलियोंसे युक्त पर मेरा दक्षिणा हाथ
 उठा हुआ है । तुम्हारे शरीरमें विरचयसे को बीजात्मा निरा
 करता है उसे म्बक यह इत देहसे अम्बक कर देगा ॥ ५६ ॥
 सुत्या हनुमता पाक्य रावणो भीमविक्रमः ।
 सरकमयनः श्लोधाद्यि वधनामग्रधीत् ॥ ५७ ॥

हनुमान्कीपर यह वचन सुनकर भयानक पराक्रमी
 रावणके नेत्र क्षयसे लख हो उठे और उलने रणपूर्वक
 कहे— ॥ ५७ ॥

क्षिप्र प्रहर निराङ्ग स्थिरां कर्तिमवानुहि ।
 ततस्तयो घातविम्रन्त नाशयिष्यामि यानर ॥ ५८ ॥

यानर ! तुम निराङ्ग शस्त्र हीम से ऊपर म्भार क्ये
 और सुभिर पद्य प्राप्त कर ला । तुममें क्रिन्ता परक्रम है
 पर अन् कनार ही मैं तुम्हारा नाश करूँगा ॥ ५८ ॥
 रावणस्य यच्च भुक्त्वा यापुस्तुतुपत्वाऽप्रधीत् ।
 प्रहत् हि मया पूयमर्से तव मुत्त क्षर ॥ ५९ ॥

रावणको बान सुनकर परतुत्र हनुमान्की कहे—मिनि
 त्र परत ही तुम्हारे पुत्र अधम मार नाश है । इस क्यसे
 वाद ल क्ये ॥ ५९ ॥

एवमुक्त्वा महातजा रावणा राक्षसम्भर ।
 आडधानानितन्मुत्त मन्नागमि धीयवान् ॥ ६० ॥
 उनक इन्ना रदन ही पक्षिकमगमन महातकवी

उत्तमं सुदत्तकर्मो अथर्षा, खल, खिले हुए म्रम
 तप्य भन्व नाना प्रकारकं वृष्टिं च उक्ता-उक्ताकुर राकणपर
 पद्मना अरम्मा किना ॥ ७७ ॥

स वान् वृष्टान् समस्ताप्य प्रतिविचक्ष्य रत्नपा।
 मन्मथर्यथ धारेण शरवणेष पामकिम् ॥ ७८ ॥

उपजने उन एव वृष्टिं चो धामने आनेपर अट मिश्रणा
 और भविष्युज नीकर कजोकी ममानक कर्मा श्री ॥ ७८ ॥

भविष्युज शारीरयण मन्नेनेष महाबलः।
 इत्य कृत्वा क्त्वा रूप पञ्चामे सिपयात् ॥ ७९ ॥

अने मेप क्त्रि महात् परतपर जन्मी वया करता है
 उही उर एतपने जव नीकर कक्कणुकी कर्मा श्री; तब ने
 खेय-य क्व बनाकर राकणमी पञ्चके विकरपर ज्य गय ॥

यावदसमभ्रमालोभ्य पञ्चामे समवस्थितम्।
 जग्यात् राधया श्रेयात् तयो नीको ननयत् ॥ ८० ॥

मफरी पञ्चके उमर बैठे हुए अन्विषुज नीकरो देव-
 कर राधय क्कपय म्म उठा और उधर नीक खेर-खेले
 गर्भना करने को ॥ ८ ॥

पञ्चामे धनुषभाप किरीटाप ख त हरिम्।
 लक्ष्मणाऽथ इत्याथ रामभापि सुविक्रिता ॥ ८१ ॥

नीकच कभी उकनग) म्मयणठ कभी धनुषपर और
 कभी धनुषपर बैन हल श्रीराम अरम्य और इतुमानकी-
 च भी वया निम्नव दुम् ॥ ८१ ॥

रायणापि महातया कपिक्रापयविक्रिता।
 भक्तमाहारयमास इतिमामेपमद्वुतम् ॥ ८२ ॥

वनर नीकपी वद फुटी देकर महातेजसी उकनको
 ने वया अधर्षं दुम् और तहन भद्रुत तेजसी आनेपात्
 राधय सिध ॥ ८२ ॥

रामेण चतुर्भुजस्य मध्यलक्ष्मणः प्रथमगामः।
 सीतलाप्यामरुध्वत् इषा राधयमाहय ॥ ८३ ॥

नीकपी त्रुति गानरो पणयण दुम् हल राधय
 भाकर खल वर वनर वही प्रमत्ताक खय विष्णुकरिचो
 नन हल ॥ ८३ ॥

पानगाया च नादन सपथा गयपसादा।
 गन्धमरिष्यद्वया न किरीटम् प्रसपाद्यत् ॥ ८४ ॥

उम गनर कजोके हल न गानर वया क्कप दुम्।
 पञ्च ही हलन (तन्वत पत्था वा इन्दिय वद क्कप
 थ दूठ निभर न्मा ॥ ८४ ॥

अनपनारी मयुक् पूर्णस्य रायणः शरम्।
 पञ्चगिरिस्थे नन्दमुदक्षत विप्रधरा ॥ ८५ ॥

1 न न निग-य १२२ बापराभा अर्थमन्त्रिक

बाप हायने ठेकर पञ्चक मन्मथपर के हु
 देला ॥ ८५ ॥

ततोऽम्बवीमहातेजा राधयो रक्षणेन।
 कपे सधाययुक्तोऽसि माप्य परब ल

देखकर महातेजसी रक्षकप उन्मने को
 (वानर) तुम उभकोटिकी मापके खप ही मने के
 फुटी मी रसते हो ॥ ८६ ॥

जीपित कालु रक्षस यदि शक्नोऽसि क्व।
 तानि त्वान्यात्मरूपाणि सृजसि त्वनेकम्।

तयापि त्वां मया मुक्ता सायकोऽकामरोहिणी।
 जीपित परिरक्षन्त जीवितान् भ्रातृभिः।

वानर ! यदि एकिक्याभी हो ठ मेरे कने के
 श्री रक्ष करे। तथापि तुम मने परकम् कभी
 मिन प्रकारके कर्मा कर रहे हा तथापि मेरे कोपुणन
 प्रेरित बाप सीतन-रक्षकी नेह बननर मे हुने का
 कर देगा ॥ ८७-८८ ॥

एवमुपस्था महाबाहु राधयो रक्षणेन।
 सधाय बाधमक्षेण समुपस्थितवत् ॥ ८८ ॥

ऐसा कहकर महाबाहु राधयप उन्मने
 राधया सधान करके उठके हाए सेनपरी नीकरो का
 सोऽकाममुक्तेन यापेन नीको बससि त्वयि।

निर्वैद्यममना सहसा स पणत महीत् ॥ ८९ ॥

उठके धनुषसे घूटे हुए उठ कने केभी कने
 गरी चोट की। ने उठकी ओपसे कने हुए पञ्च लके
 गिर पड़े ॥ ९ ॥

वियुग्माहसम्यस्ययोगाशासनभापि तत्रत्वा।
 आनुभ्यामपतत् भूमौ न तु प्राचीर्षितुत् ॥ ९० ॥

यथापि नीकने धृत्वीर पुदने टेक तिके नीके
 अकिरेबके माहात्म्यसे और अपने तेजेके प्रबने प्रोत्त
 नहीं निकले ॥ ९१ ॥

यिसस धानर इषा वशमीवा रजोत्तुक्।
 रचनायुक्मनेन सीमिभिमिषुदुव ॥ ९१ ॥

वनर नीकने अन्त दुम् देव रक्तुग काने के
 गर्भनाके धमान गम्भीर जनि करनेनाम रबक हुए हु
 कुमार क्कणपर भावा किन्त ॥ ९२ ॥

असाद्य ग्णमप्ये व धारयित्वा स्थिता असत्।
 धनुर्विस्मरयामास राक्षसम् ॥ ९३ ॥

मुदभूमिसे सारी वनरनेकाथ अमे वनेने दाम
 सरमणक पत पदुन म्मा और प्राचीन अर्थिक क
 अपने लहा हा प्रतापी राधयप राधय भन धनुषी हल
 करने लग्य ॥ ९ ॥

तमाह सामिप्रिखदीनसत्त्वा
 विस्फारयन्त धनुप्रमयम् ।
 भवहि मामद्य निशाचरोष्ट्र
 न यानरास्त्व प्रतिवायुमहसि ॥ १४ ॥

उस समय अपने अनुपम धनुस्त्रों को बंध कर एकत्र
 कर धनुष्पाक्षी स्वरूपने करा— निशाचरयण ! हमसे तू
 में क्या गया । भय भय तुझे यानपोक काय युद्ध नहीं करना
 चाहिये ॥ १४ ॥

स तस्य धापस्य प्रतिपूषणोप
 ज्यादाप्रमुत्र च निशाम्य राजा ।
 आस्माद्य सौमिप्रिसुपस्थित त
 रोगान्निम वाचमुवाच रक्षः ॥ १५ ॥

समपक्षी यह बात गम्भीर जानिस मुक्त थी और उनही
 प्रसन्नता भी भवान्क टंकार-ध्वनि ही रही थी । उस मुनिक
 युद्ध स्थि उपस्थित हुए सुमित्राकुमारक निष्क वा शस्त्रोंक
 साथ यगने धनुस्त्र कर— ॥ १५ ॥

विष्णुवांसि म राघव इरिमाण
 प्रातोऽन्तगामी विपरीतपुम्नि ।
 भस्मिन् शप्ते याम्यसि मृत्युनोक्
 सस्माद्यमानो मम पाणजाल ॥ १६ ॥

पुण्डरीक धनुस्त्रकार ! क्षेमाक्षी बात है कि तुम मरी
 भा तो क क्षमने आ गए । तुम्हारा धीम ही भन्त होनेका
 है इच्छित्व तुम्हारी बुद्धि विपरीत ही गयी है । भय तुम मरे
 बादक्षुत्सोमे पीड़ित ही इच्छे धन सम्यक्कारी पाया करण ।

तमाह सामिप्रिग्विस्त्रयाना
 गजन्तमुद्धृत्तगिताप्रदष्टम् ।
 रजन् न गजन्ति महामभागा
 विरहधम पापहता परिष्ठ ॥ १७ ॥

सुमित्राकुमार स्मरण ही उस वक मुनिकर कई विमान
 नहीं था । मर वक वर ही ही है और उरह ध और
 यह ही लन गच्छे च रहा था । उस समय सुमित्राकुमार
 ने कहा था 'आरत' महान प्रजापत्य पुत्र उपासी
 है और लन नहीं करे है (उरह पदस्थ करके
 है) । लन ही लन भवान्क गण सम ही हउ
 ही ही ही ही ॥ १७ ॥

आन्वसि धीर्षे नय राजागन्ध

नीय, प्रताप और साहस्यभ भयही उरह जन्ता ही इच्छित्व
 हाथमें धनुस्त्र-धनुस्त्र कर खमन सदा ही । आओ युद्ध कर ।
 धर्म शर्त कानेसे क्या हाथ ? ॥ १८ ॥

स परमुक्तः पुपितः ससज
 रक्षाधिपः सप्त रात्रन् सुपुत्रान् ।
 तस्मिन्समणाः फलान्चिपुपुत्र-
 धिच्छद् यथोर्नदितामपारैः ॥ १९ ॥

अरु एका क्षत्रपर कुपित हुए उरहसमने अरु
 सुन्दर पंजवाल खत बाण छोड़े परन्तु क्षत्रजन स्तनक धन
 हुए विविध पंनोंम सुदुग्धित और तब भारतवात बायोम उन
 करके कर हाथ ॥ १९ ॥

तन् प्रशमाप महसा निष्टतान्
 निष्ठतभागानिय पप्रगत्रान् ।
 उद्देधरः प्राधयत् जगाम
 ससज चान्यान निशितान् पृपयन् ॥ २० ॥

जैसे बड़े-बड़े शरीरक दुग्धे दुग्ध कर दिन बड़े,
 उसी प्रकार अपने समस्त बाणोंम क्षत्र परित हुआ दर
 छद्मरही वलन क्षत्रक यथोर्नद ही गया और उनम दूध
 सीमे पात्र छोड़ ॥ २० ॥

स पापवर्षे तु पपर तीव्र
 रामानुजः फमुक्तसम्पुक्तम् ।
 भुराधयन्त्रासमर्षणमस्तैः
 दाराद्य विष्णुद न सुधुन च ॥ २१ ॥

परन्तु भीषमक छत्र कर क्षमन हुआ विन्दि नहीं
 हुए । उन्होंने अपने धनुस्त्र बाणोंम भारत पात्र ही और
 उरह भर्षण उरह करों तथा लन करके बाणोंम
 पात्रक छोड़ हुए उन म करके ही शर शान ॥ २१ ॥

स पाणजालान्यपि तानि तानि
 मायानि पदयन्त्रवृत्तारिजः ।
 विमिस्त्रिय सन्मन्मन्मन्मन्
 पुनश्च पाणान् निमिस्त्रन्मुमयत् ॥ २२ ॥

उन वही बाणवन्तोंम निष्कत हुआ दर उरहसम
 कर लन-का उरह क्षत्र-वर्षण उरह गया और अरु
 पुन ही लन छोड़ लन ॥ २२ ॥
 स नरसम्यथापि निमिस्त्रान्मन्मन्
 महद्वन्तुस्माऽऽनिर्भामिपमान् ।
 मधाप गण जगन्मन्मन्मन्

स तान् प्रधिच्छद् हि राक्षसमन्द्रः
शिताम्भाराक्षसकृमणमाजघान ।

शरणं कालाग्निसमप्रमेज
सर्वमुत्तरेण कृत्यद्येते ॥१०४॥

परतु उच्छ्रयन्ते उन सनी क्षिते बाणेषु कृत शस्य
और मन्नाथीके रिय हुए कालाग्निक कृतन तेबन्दी भापसे
कर्मणवीक कथ्यरपर जोत श्री ॥ १ ४ ॥

स त्वहमणे रायणसायध्वर्त
अघाल चाप शिफिल प्रयुद्ध ।

पुनश्च सखा प्रतिलभ्य वृचद्भू
विच्छेद् चाप विद्वेशेन्द्रशाशोः ॥१०५॥

उपकण्ठ उस घणसे पीकित हो कर्मणवी निबन्धित हो
उठ । उन्होंने हाथने चो बनुर क रक्ता या उच्छ्रि युद्धी
वीथी पङ्क गयी । फिर उन्होंने वङ्क कृपसे होय संप्रत्य और
देवकीरी उपकण्ठ बनुरक्ये कृत रिया ॥ १ ५ ॥

निवृत्तचाप त्रिभिराजघान
यार्पेस्तथा वाशरथिः शितामिः ।

स सायकान्तौ विचघाल राज्ञा
वृचद्भूश्च सखा पुनराससाव् ॥१०६॥

बनुर कृद अनेगर उपकण्ठ कर्मणने हीन बाण मारे
च बहुत ही हीने थ । उन यार्पेसे पीकित हो रायण रायण
व्याकुल हो गया और पड़ी कृदिनारसे वह फिर उभेव हो
गया ॥ १ ६ ॥

स वृत्तचापः परताडितश्च
मयाद्रगाथा रथिरावसिक्तः ।

उप्राह "किं स्वयमुपद्राकिं"
स्वयभुवृत्ता युधि वृवशतु ॥१०७॥

बुर बनुर कृद गया और जालोंरी गदरी चोर गयी
पड़ी तब गकपता गय गरीर मर्द और रकन भीग गया ।
उन भावनामें उस भयनर "किं स्वयमुपद्राकिं" कृदीरी उपकण्ठ मुद
कृतन मन्नाथीके ही दूर मरि उठा थी ॥ १ ७ ॥

स ता सधूमानन्दमनिशर्गा
दिशामना स्वपति यानराजाम् ।

विश्राप "किं तस्मा जन्मन्तौ
मीमिप्रय राशमगादृन्धयः ॥१०८॥

बुर कर्क पूमकुद म मरक कर्मण (न) थी और
कुदने बानपेय मन्नाथी कर्मण कथी थी । उपकण्ठक म्यामी
यानन वह कर्मण दूर कर्क २६ गन मुमियागुमारर
चमरी ॥ १ ८ ॥

तामपरमन्तो भरतानुजः श्र
उपपन्न वापैश्च दुताप्रिच्छताः ।

तथापि सा तस्य विवश शक्ति
मुञ्जन्तर वाशरथेर्विशालम् ॥१०९॥

मफ्नी और अथी दुर्द उस शक्तिर कर्मणने भक्तिर
कर्मणकी बहुतसे पाशों तथा अथीर प्रहार किया तथापि वह
शक्ति रक्षरयकुमार कर्मणक विद्याक वधाकर्मने कुद
गयी ॥ १ ९ ॥

स शक्तिमाभ्याक्तिसमाहृतः सन्
अज्वाल भूमौ स रघुमवीरः ।

त विह्वलन्त सत्साम्युपेत्य
उप्राह राजा तरसा मुजाम्याम् ॥११०॥

रघुकुलके प्रपान वीर कर्मण यथपि बड़े शक्तिशाली ने
तथापि उस शक्तिसे आहत हो पृथ्वीपर गिर पड़े और कर्मणने
क्यो । उन्हें विह्वल हुआ देख राजा उपपन्न सहा उनके पद
का पहुँचा और उनके वेगपूर्वक अपनी दोनों मुखाभेदि
उगाने क्य ॥ ११ ॥

हिमवान् मन्दरो मेरुश्चैलोपय वा सहामरीः ।
शस्य मुजाम्यामुचर्तुं न शक्या भरतानुजः ॥१११॥

हिम उपपन्ने देवतामोंसहित हिमालय, मन्दपचक मेरु
शिरी अयथा तीनों कोपेको मुखाभेदप उठा केनेकी शक्ति
की बही मरुतके छोटे मार्ग कर्मणको उठानेमें समर्थ न हो
सक ॥ १११ ॥

शक्या द्वाष्ट्या तु सीमित्रिस्तद्विदोऽपि स्तन्मन्दरः ।
विष्णोरमीमास्यभागमालमान प्रत्यनुस्मरत् ॥११२॥

मन्नाथी शक्तिसे उठीने जोत मानेवर भी कर्मणकीने
भगवान् विष्णुक अचिसव अंशकृपसे अपना निन्दन
किया ॥ ११२ ॥

तता दानवद्वयन्त सीमित्रिं वृषकण्ठकः ।
त पीडयित्वा बाहुभ्यां न प्रभुलघुनऽभयत् ॥११३॥

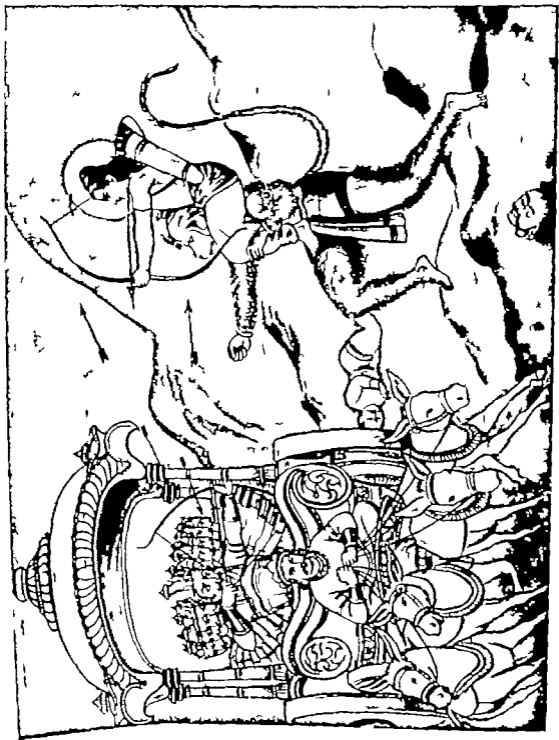
अतः वनपटु उपपन्न धनपौता वन पूष कृतेकण्ठ
कर्मणकी अन्धी दर्नो मुखाभेदे दबाकर दिखनेमें भी कर्मण
न हो सका ॥ ११३ ॥

ततः मुखा पायुमुखा रायण समभिद्रवत् ।
भाजयन्तारनि मुखां यज्जकश्यन् मुष्टिम् ॥११४॥

इति कर्मण कर्मण भर हुए वायुपुत्र हुमानुकी कर्मणकी
भर रोह और भयने पत्र कयी । मुचक्यन रायणकी उथीने
माय ॥ ११४ ॥

तत मुष्टिप्रहारण रायण राक्षसवरः ।
जानुभ्यामगमत् भूमौ पयन्त च पयत्त च ॥११५॥

उम मुचकी मारन उपकण्ठर कर्मण भरवीर मुदने
२६ (५) २६ कर्मण कर्मण और अन्धकार च गिर गया ॥



इन्द्रमातृकीके संघेपर आसुइ भीरासुका रावणके साथ युद्ध

मस्यैव नयैः धयमेः पयात रुधिर यद् ।

विष्णुममानो निक्षेपे न्योपस्य उपाविशत् ॥११६॥

उच्यते मुक्तः, नेत्रं और चान्ते चतुःस्य एक मिते
एव और वर चक्रर इत्या इभ्य रयक पिठले ममाने
निस्वेर इकर अ वैग ॥ ११६ ॥

विष्णो मूर्च्छित्वासीत्तत्र स्थान समात्मभत् ।

विष्णु राक्षस इष्टा समरे भीमविक्रमम् ॥११७॥

श्रुयथा यानराक्षसैव ननुर्बुधाश्च सासुराः ।

वर मूर्च्छित इकर अग्नी मुच-मुच सा बैठा । वहाँ भी
वर स्थिर न रह सक—तद्वपता और छपपला रहा । समर-
इयने मरकर पराक्रमी राक्षस अचत हुया देख श्रुति
देव्य भसुर और धनर इफना करते बगे ॥ ११७ ॥

हनुमानय तज्जली लक्ष्मण रावणार्चितम् ॥११८॥

मन्थयत् राघवाम्नाश वाहुभ्यां परिवृष्टा तम् ।

इक पभान् तंस्वी हनुमान् रावणपीडित छरमपश्च
धनो हाथोटे उठाकर श्रीरघुनायकीक निष्क छ माय ११८
वायुसुतो सुहृत्स्वन भक्त्या परमया च सः ।

राघवाम्नाशकर्मणोऽपि लघुत्वमगमत् कपः ॥११९॥

हनुमान्कीक सेहा और उरुत मक्तिमावके करण
अपनकी उनक डिये एक हो गये । लघुमोके डिये वो वे
भव भी अकर्मण्य ये—वे उरुं दिख नहीं सकते थे ॥ ११९ ॥

त समुत्सृज्य सा शक्तिः सौमिनि युधि निजितम् ।

रावणस्य राधे तस्मिन् स्थान पुनरुपागमत् ॥१२०॥

युद्धम पराकित हुए छरमपश्च छोडकर वर शक्ति पुनः
एकक रयपर छेपे भापी ॥ १२ ॥

रावणोऽपि महातडाः श्रप्य स्या महाद्वय ।

माद्व निमित्तान् वाणाञ्जग्राह च महसनुः ॥१२१॥

पक्षी वेरमे छेपामे अनेपर महातेस्वी रावणने फिर
किशक बनप उठाया और पैने बाण हाथमे डिये ॥ १२१ ॥

आश्वस्त्य विन्त्यस्य लक्ष्मणः चाकुत्सन् ।

विष्णोर्भागममीमांस्यमारमाल प्रत्यनुसरन् ॥१२२॥

छाकुत्सन् अश्वस्त्य भी मगवान् विष्णुक अन्तिन्तीय
अश्वस्त्ये अपना चिन्तन करके लस्य और नीरेण हो
गये ॥ १२२ ॥

निष्प्रदितमहावीर्यां पानराणां महाधमूम ।

राघवस्तु रज इष्टा रावण समभिद्रवत् ॥१२३॥

चान्तेपी निष्प्रद बाहिनीक बह-बहे बीर मार गियस
गय वर देलकर रणभूमिमे रघुनायकीने एकपत्र भाषा
किया ॥ १२३ ॥

भयैनमनुसक्तस्य हनुमान् पाकयमप्रवीत् ।

मम पृष्ठ समाह्वय राक्षस शास्तुमर्हसि ॥१२४॥

विष्णुयथा गदत्मन्तमाह्वयामरवैरिणाम् ।

उठ समय हनुमान्कीने उनके पाठ आकर कहा—
श्रम ! कते मगवान् विष्णु गदइपर चकर दैत्योका छरत
करते हैं उठी प्रकर भाप मेरी पीठपर चढ़कर इत एकछ-
क दण्ड दें ॥ १२४ ॥

तच्छ्रुत्वा राघवो वाक्य वायुपुत्रेण भाकितम् ॥१२५॥

अथाकरोह सहसा हनुमन्त महाकपिम् ।

पवनकुमारकी कही हुई वर शत मुनकर श्रीरघुनाय
की सहस्य उन महाकपी हनुमान्की पीठपर चढ़ गये ॥ १२५ ॥

रथस्य रावण सख्यं वृक्षां मनुजाभिषः ॥१२६॥

तमास्त्रेण्य महातेजा प्रवृत्राव स रावणम् ।

वैरोचनमिव हृद्यो विष्णुरभ्युद्यत्तयुधः ॥१२७॥

महातज श्रीरघुने समरइयने रावणको रयपर बैठा देखा ।
उसे देखते ही महातेस्वी भीरम रावणकी आर उठी प्रकर
रोडे, जैसे कुक्ति हुए, मगवान् विष्णु अफन्य चक उठाये
विष्णुनकुमार सज्जिर दूट पड़े थे ॥ १२६ १२७ ॥

ज्वाशार्धमकरोत् तीम वज्रनिष्पत्तिपुत्रम् ।

निरा गम्भीरया रामो राक्षसेन्द्रमुधाच ह ॥१२८॥

उरुने अपने पनुपकी तीम टंकर प्रकृ श्री अ वज्रकी
मडगाहाइते भी अथिक कठोर थी । इक बाद भीरमचन्द्र
की राक्षसराज यमपते गम्भीर बाणीमे बोडे— ॥ १२८ ॥

तिष्ठ तिष्ठ मम त्व हि एतया विप्रियमीदृशम् ।

ऊ तु यस्तस्यशत्रून् गत्या मोक्षमवाप्स्यसि ॥१२९॥

परस्त्रीमे बाच देने हुए रावण ! लका रह लका रह ।
मंच देखा अयराव करके तू कहीं अकर प्रापकठले सुटकर
या सकेगा ॥ १२९ ॥

यदीन्द्रवैषस्यतभास्करान् पा

स्वयमुर्वैश्यातरशकरान् या ।

गमिष्यसि त्व दशधा विद्रां वा

तथापि मे नाप गत्वा यिमोक्ष्यसे ॥१३०॥

यदि तू इन्द्र, यम अथवा सूर्यके पाक ब्रह्मा अग्नि
या इंकरके समीप अथवा दलों दिशाभोने मगकर अस्व
छे भी अत्र नरे हाफते बच नहीं सकगा ॥ १३ ॥

यद्वैप शक्या निहतस्त्वयाद्य

गच्छन् विगाद् सहसामुपतय ।

स एव रक्षामणराज मृत्युः

सपुत्रप्रीप्तस्य तयाद्य युद्ध ॥१३१॥

जुने भाव अग्नी गतिक इत युद्धम कते हुए कि
समयक आइत किया और अ उठ गतिकी अरम छरव

मूर्च्छित हा गये थे, उन्हीके उस विरस्कारक बदल्य उनेके
छिमे मान नी पुत्रभूमिमे उपस्थित हुआ है ॥ उच्छ्वाज ॥ में
पुत्र-योर्गोचरित ठरी शैत क्लक भया है ॥ १११ ॥

पतन चात्पुत्रवर्शानानि
शरैर्जनस्थानकृतालयानि ।
घनुर्वशास्यात्तयरायुधानि
रक्षसहस्राणि निरूकृतानि ॥१३२॥

पक्ष्म ॥ ठरे खमने महे हुए इस खुबसी राजकुमारने
ही अपने बाणोंद्वारा जनस्थाननिवासी उन शौरह हत्यार
उच्छोकेन संहार कर बाध था, अब अद्भुत एक दर्शनीय योद्धा
ये श्रेय उपायेतम अस्त्र-शस्त्रोत्ते सम्पन्न थे ॥ ११२ ॥

राजवस्य ध्वजः भ्रुत्वा राजसेन्द्रा महायज्ञः ।
घायुपुत्र महायेन सहन्त राघव रणे ॥१३३॥
दोषेण महत्वाऽऽधिपः पूर्ववैरयनुस्मरन् ।
आज्ञघान शरैर्वीरैः कश्मानलशिखोपमैः ॥१३४॥

भीरुमन्त्रवीर्ये यह बल मुनकर महाकवी राजसव्य
राज्य महान् ऐयसे मर गया ॥ उसे पहलेके वैरक्य करण से
भयना और उधने क्षमामित्री शिखाके लयन वीरिच्छवी
बाणोंद्वारा राजभूमिमें भीरुपुत्राधीन थावन बने हुए महान्
कैश्यामी घायुपुत्र इतमान्धे मरवन्त पक्ष्म कर
दिय ॥ ११३ ११४ ॥

राक्षसेन्द्रहथे तस्य ताद्वितस्यापि सत्यके ।
सभाबतजोमुकस्य भूयस्तोऽऽभ्यधधत ॥१३५॥
मुदस्तकने उस राजकके जायसेसे भाहृत हानेपर भी
स्त्रमधिक तेकने सयम इतमान्धीन शीर्ष और भी
बद गया ॥ १३५ ॥

उतो रामो महातजा राघवेन कृतव्रणम् ।
हृद्वा भ्रूयगशार्दूल श्लेषस्य पत्रमपिबान् ॥१३६॥
धानरिणेमत्रि इतमान्धे राघवने पत्रक कर दिना
पह देखकर महातजवी भीरुम श्लेषके काशीमृत हो गये ॥

तस्याभिसङ्गम्य रथ सञ्चक
साभ्यश्चञ्चकममहापताकम् ।
समारथि साशनिशुल्काद्
रामः प्रविच्छेत् शिखी शायी ॥१३७॥

किर तो उन भवान् भीरुमने आक्रमण करके शिख
पडे पत्रक छत्र पनाक करथि भयनि शूक और काह
उदित उधके रथके अपने पने बाँसि शिख शिख करके काट बाध्या

भयंशुशानुं तरसा जघान
बायन यज्ञादग्निस्त्रिमेने ।
भुजास्तरे ध्रुवसुखातरुणे
यज्ञेण मरु भगवानिन्द्रा ॥१३८॥

सैते भगवान् इन्द्रने यज्ञके द्वारा मेरु पर्वतपर आक्रम
किया है। उधी प्रथम प्रभु भीरुमन्त्रवीर्ये यज्ञ और अग्निके
छमन तेकसी क्षणसे इन्द्रधनु राजपत्नी विद्याक एवं मुनर
छरतीमें वेगपूर्वक आघत किया ॥ १३८ ॥

यो यज्ञपातशानिसन्निपाता
द्य बुधुमे नपि सञ्चाल राजा ।
स रामबाणाभिहतो भूयर्षत
शय्याल थाप घ मुमाव शीर ॥१३९॥

अब यज्ञ राज यज्ञ और अग्निसे आघतसे नै क्ये
धुप एवं विपक्षित नहीं हुआ था, वही वीर उध स्मर
भीरुमन्त्रवीर्ये बाणोंसे पायस हो मरवन्त आर्ष एवं क्रमि
हो उठा और उधके क्षणसे प्रनुप धूरकर मिर पड़ा ॥१३९॥

त विह्वलन्त मसमीक्ष्य रामा
समाद्रे कृतमयाधनम्रम् ।
तमाक्षय्ये सहसा किरीट
विच्छेत् रक्षाधिपतेर्महात्मा ॥१४०॥

रजपक्षे व्याकुल हुआ देल महात्मा भीरुमन्त्रवीर्ये
एक क्षमचमठा हुआ सर्वचन्द्राकर बल हाथमें लिया और
उधके द्वारा राजसव्यक सुर्षके समान देरीन्मनन मुकुट
सहस्र काट काट ॥ १४ ॥

त निर्विगाशीविपसन्निपाश
नास्तात्त्रिप सुर्षनिवापकप्रराम् ।
गतथिव कृत्तकिरीटकूट
मुबाच रामो युधि राक्षसेन्द्रम् ॥१४१॥

उध क्षम्य प्रनुप न हानेसे राजन नियहीन करके समन
अपना प्रभाव लो बंटा था ॥ राजककमें निश्री प्रमा छन्त
हो गमी हो उस सुर्वेवके समान निरलेब हो गया था उध
मुकुटके समूह कूट खनेसे भीहीन शिखानी देता था ॥ उध
अबकामे भीरुमने मुकुटभूमिमे उच्छ्वाजसे कहा— ॥ १४१ ॥

इत खया कर्म महत् सुभीम
हृत्प्रवीरक्य कृतस्यवाहम् ।
तस्मात् परिभान्त इति ध्यवस्य
न त्वां शरैःशुषुषुषा कयामि ॥१४२॥

पक्ष्म ॥ मुने आज बड़ा मरकर कर्म किना है मेरी
सेनाके प्रपान-प्रधान वीरिच्छे मार बाध है ॥ इतनेपर भी
पक्ष्म हुआ धमसकर मैं बाणोंद्वारा तुझे वीरके अर्थन नहीं
कर रहा है ॥ १४२ ॥

प्रयाहि ज्ञानामि रणार्थितस्तव
प्रथिव्य पश्चिधरराज ज्ञानम् ।
भाभ्यस्य निर्वीहि रथी च धम्नी
तदा वरुं प्रकल्पि मे ग्यस्या ॥१४३॥

कीर्णचरणा । मीं ज्ञानदा हूँ त् मुञ्चते पीडित हे ।
इच्छिमे आशा देता हूँ, वा, रङ्गामें प्रवेश करके कुछ
देर विभ्राम कर मे । फिर तय मार वनुपके लय
निकम्पना । उध छम्प रयास्व खरर व् फिर मेघ स्र
वेत्तन' ॥ १४१ ॥

ए षडमुक्तो हतवर्षहर्षे
निकृत्तबाया स हताश्वस्तुता ।
शर्यार्वितो भद्रमहाकिरीटो
विशेष लङ्गां सहसा स राजा ॥ १४२ ॥

भगवान् भीरुमके देख करकेनेर राजा रणज छडा
छडामें पुत्र गया । उरुध्व हर्ष और अभिमान मिट्टीमें मिळ
पुत्र था, वनुप का दिया गया था, बोड़े तथा धारयि
भर बाँधे गये थे, महान् किरीट सजिष्ठ हो पुत्र था और
वह लय भी बाँधे बहुत पीडित था ॥ १४४ ॥

हृत्कार्ये श्रीमद्गामाष्ये वाक्प्रीतिष्ये आदिशब्धे युद्धकाण्डे षष्ठोऽपठितमः सर्गः ॥ ५९ ॥
एत प्रकार भोवद्वन्द्विकिरीटित भार्यामाक्य अदिकाम्यके युद्धकाण्डे अठसठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५९ ॥

षष्ठितम' सर्ग

अपनी पराजयसे दुःखी हुए रानणकी आङ्गासे सोये हुए कुम्भकर्णका जगाया
जाना और उसे देखकर वानरोंका भयभीत हाना

ए प्रविश्य पूर्णं लङ्गां रामबाणभयार्दितः ।
भार्यपक्षश राजा वभूव व्यथितस्त्रियः ॥ १ ॥
मन्थान् भीरुमक वानों और म्मसे पीडित हो
एकएक रणज अब छड्डापुरीमें पहुँचा, वन उरुध्व अभिम्यन
पूर-नूर हो गया था । उरुध्वे खरी इन्द्रियों व्यथिते
व्यकुल थी ॥ १ ॥

मातंग इष सिंहेन गरुडेनय पञ्चगः ।
अभिभूतोऽभवत् राजा राघवेण महात्मना ॥ २ ॥
जैसे सिंह गरुडमन्थ और गरुड विषाक नामके पीडित
एवं पराजित कर देव है उधै प्रकार महात्मा रघुनाथजीने
रण रणजको अभिभूत कर दिया था ॥ २ ॥

प्रह्लादप्रतीकाना विद्युत्प्रखितवर्षसाम् ।
अरन् राक्षसबाणाला विद्ययये राक्षसेश्वर ॥ ३ ॥
भगवान् भीरुमके लय ब्रह्मदण्डके प्रतीक ज्ञान पड़ते
थे । उनही हीमि वस्त्राके समान लक्षक थी । उन्हें मार
करके राक्षसव रणजके मनमें बड़ी व्यथा हुई ॥ ३ ॥

ए कञ्जानमय विद्यमानाश्रित्य परमास्रमम् ।
विमलमन्त्राया रक्षांसि राघवणे धाक्यमप्रवीत् ॥ ४ ॥
जैसेके पने हुए विष्य एक भेज सिंहसुनपर बैठकर

तस्मिन् प्रविष्टे रजनीचरेन्त्रे
महावल्लं वानववेयशश्री ।
हरीन् विशादयान् सह लक्ष्मणेन
सकार रामः परमाहयामे ॥ १४ ॥
देवताओं और वनवोंके शत्रु महावधी निगापरएव
एकएके छड्डामें चढे जानेपर लक्ष्मणसहित भीरुमने उध
महायुद्धके मुहानेपर वानरोंके धारीसे बाण निकाले ॥ १४५ ॥

तस्मिन् प्रभम्मे विद्दोम्प्राश्री
सुरासुरा भूतगण विशम्भ ।
ससागराः सप्रिमहोरगाश्च
तथैव भूम्यम्पुचराः प्रहृष्टा ॥ १४६ ॥
देवराज इन्द्रका शत्रु एषण अब युद्धसज्जते मग गया,
वन उसके फगमलका विचार करके देखता मस्तुठ भूत,
दिशाएँ, समुद्र, श्रुतिगण वढ़-वढ़े नाम तथा भूधर और
अध्वर प्राणी भी बहुत प्रलभ हुए ॥ १४६ ॥

हृत्कार्ये श्रीमद्गामाष्ये वाक्प्रीतिष्ये आदिशब्धे युद्धकाण्डे षष्ठोऽपठितमः सर्गः ॥ ५९ ॥
एत प्रकार भोवद्वन्द्विकिरीटित भार्यामाक्य अदिकाम्यके युद्धकाण्डे अठसठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५९ ॥

उरुध्वीं ओर देखता हुआ रणज उध छम्प इत प्रकार
कहने लग्य— ॥ ४ ॥

उत्सर्षं तत् कालु मे मोघं पत् तत परम तपः ।
यत् समानो महेश्च्रेण मानुषेण विनिर्जितः ॥ ५ ॥
जैसे जो बहुत बड़ी तपस्य की थी, वह सब अवश्य ही
व्यर्थ हो गयी क्योंकि अब महेश्चरुस्य पदपत्नी मुक्त राक्षसको
एक मनुष्यने पराज कर दिया ॥ ॥

इत् तव् प्रह्लापो घोर धाक्य मामन्पुपस्थितम् ।
मानुषेभ्यो विजानीहि भय त्वमिति कथया ॥ ६ ॥
जसाब्धेने मुक्तसे कहा था कि तुम्हें मनुष्योंसे मय
मात इत्या । इत बातके अन्धी तरह ज्ञान था' । उनका कहा
हुआ यह धर वचन इत समय सज्ज होकर मेरे समक्ष
उपस्थित हुआ है ॥ ६ ॥

देवदानशगाभ्यर्षयस्तराश्रुसपक्षरीः ।
अथकस्य मया प्राक्त मानुषेभ्यो न वाञ्छितम् ॥ ७ ॥
जैसे जो देवता वनय लक्ष्मर्षं यथ राक्षस और श्रोति
ही अवश्य हानेका पर मंत्र था मनुष्योंमें अभय हानेकी
वत-वाचना नहीं की थी ॥ ७ ॥

तस्मिन् मानुष मन्ये राम दशरथात्मजम् ।

इत्याकुंकुलवृतेन अन्तरप्येन यत् पुरा ॥ ८ ॥

उत्पत्स्यति हि मद्रशपुठयो राक्षसाधम ।

यस्त्या सपुत्र सामात्य सख्य साभ्यचारियिम् ॥ ९ ॥

निह्निष्यति सप्रामे त्यां कुलधम तुमैते ।

वृषैकहमे इष्याकुंठपी एवा अन्तरप्येने मुसे धाप वेते एए क्वा या कि प्यक्षयाम । कुम्भकार । तुमैते । भरे ही कथमें एक देख भेद पुत्रप ठपम इमत्र अं ठसं पुत्र, मन्वी, सेना भय और खरयिके उचित समराज्यभमें मार जायेगा । माय्य इत्या है कि अन्तरप्येने किष्की और संकत क्रिया या यह एधरपकुमार राम वही मनुष्य है ॥ ८ ९ ॥

शतोऽहं वेव्वरथा ख यया सा धरिंत्ति पुप ॥ १० ॥

सेपं सतिा महाभागा जाता जनकनन्दिनी ।

वृत्तके तिषा पूर्वकाळमें मुसे वेदकतीने मी धाप दिया या स्त्रोकि मीने ठकके धाप बकाभर क्रिया या । जन पवृत्ता है वही वह महाभाग्य जनकनन्दिनी खेला होकर प्रकट हुई है ॥ १० ॥

उमा मन्वीभरव्यापि रम्भा घठप्यकल्पका ॥ ११ ॥

ययोकास्त्रमया प्राप्य न मिष्या श्रुतिभाषितम् ।

वही तव उमा, नन्वीभर, रम्भा और वरुण-कल्पाने मी केव केव क्वा या वेसा ही परिणाम मुसे प्राप्त हुआ है । ० सव है श्रुतिसेही बल कभी छूटी नहीं इत्थी ॥ ११ ॥ एतद्य सभागम्य यत्न क्तुमिहाह्वय ॥ १२ ॥ राक्षसाभापि सिष्ठन्तु अयोगोपुरमूषसु ।

यं धाप ही मुक्तपर मय भयवा संकट जननेमें कारण हुए हैं । इस बातको अनन्तर भय तुमकेग आये हुए क्वा को यकनेम प्रयत्न करो । राक्षसकेग यकन्यागै तथा गपुठके शिलपेतर उनकी रक्षक क्रिये डट रहें ॥ १२ ॥

स चाप्रतिमगास्त्रीयो वृददानपवृषहा ॥ १३ ॥

प्रक्षरप्रापिभूतस्तु कुम्भकर्णो विषाध्यताम् ।

धाय ही शिक्र गम्भीरैसी क्वा तुझना नहीं है अ वरुणभी और वनबाजा दर्न इत्यन करनेकाय है तथा प्रजापतिक धापन प्राप्त हुए निद्रा क्रिसे तथा अभिभूत क्रिय रखती है उस कुम्भकर्ण भी अग्रया अय ॥ १३ ॥

उमने ०१०० उमने ६ मयन भक्येल होनेस एतकथ पाप रिषा य कि इत क्तु ०१६ कल्प कथी । कुरीभरव वान्द-मूने देवभर गलत इत्या य इनी ० उमने ०१०० यथा— भरे यतन कर । ए एतयतने ही तरे तुम्ह मया करेन । रम्भा ० निमन्त्र न-०१००के और ० १-००० पुत्रिकभयदे निमन्त्रे म न धाप रिषा य कि निमन्त्र क्रिया ०१६ मय एतकथ ० नर ३० क्तु ०१ ०१०० ।

समरे जितमग्रमान प्रहस्त ख निवृणितम् ॥ १४ ॥

इत्वा रक्षोबख भीममाश्रियेश महाबलः ।

शारेपु पक्षः क्रियतां प्राकारव्याभितक्यम् ॥ १५ ॥

निद्रावशसमाविष्टा कुम्भकर्णो विबोध्यताम् ।

ग्रहस्य मार ग्या और मैं मी समायजनमें फल से ग्या' देख बनकर महाकधी एवजने रक्षोवैधी ममनक सेनाक आवेस दिया कि भूमकेग नमके दरबानेय फ- कर उनकी रक्षके क्रिये मज कर । परकेटोर मी मय शय्य और निद्राके अर्धीन हुए कुम्भकर्ण का ठो ३ सुख स्वपिति मिश्रितः कामोपहतचेतना ॥ १६ ॥ नव सप्त वृषापी य मासान् स्वपिति राक्षसः । मन्त्र कृत्या प्रसुतोऽयमितस्तु मयमेऽहनि ॥ १७ ॥

५ मैं तो सुखी चिन्तित और अल्पकम होकर अग रहा हूँ और) यह राक्षस कमममने अचेत हो वही निमिच्छताक धाप सुकपूर्वक सो रहा है । वह कभी नो, कभी खत कभी दस और कभी आठ मासक उता रहता है । यह आकसे नो महीने पहले मुससे उग्रह करके लेना था ॥ त तु बोध्यत क्रिय कुम्भकर्ण महाबलम् । स हि संक्षेपे महाबाहुः ककुब्ज सर्वरक्षसाम् । यानरान् राजपुत्री ख क्षिप्रमेध हृमिष्यति ॥ १८ ॥

अतः तुमकेग महाकधी कुम्भकर्ण को शीघ्र अग्र रो । महाबाहु कुम्भकर्ण उम्मी राक्षसोंमें भद्र है । वह युवकके बानवों और उन राजकुमारोंके मी शीघ्र ही मार जायगा ॥ १८ ॥ एप केतुः पर सख्ये मुष्यो वै सपरक्षसाम् । कुम्भकर्णाः सदा शोते मूढो प्राम्यसुखे रता ॥ १९ ॥

धमक राक्षसोंमें प्रधान वह कुम्भकर्ण समरभूमिमें हमारे क्रिये सर्वोद्यम विजय-वैजन्तीके समान है किंतु सेवकी बल है कि वह मूल प्राम्यसुखमें अगच्छ होकर गया खेला रहता है ॥ १९ ॥

रामेष्वभिनिरस्तस्य सप्रामेऽस्तिन्नु मुनाक्ये ।

भयिष्यति न म शाकः कुम्भकर्णो विबाधित ॥ २० ॥

यदि कुम्भकर्णके अग्र दिया जब तो इस भस्कर केमाममें मुसे यमने पराजित होनेक शक नहीं होग ॥ २० ॥ किं करिष्याम्यह तन शाकनुत्पवलम हि ।

इहवा प्यसन धार या न साहाय कल्पत ॥ २१ ॥

यदि इस धर संकटक समय मी कुम्भकर्ण मरी खास्य करनेमें अर्थ नहीं हो रहा है तो शत्रुक तुस समयासे हानि पर भी उल्ल मय प्रकण ही क्या है—मैं उसे छत्र कथ करूँगे ॥ २१ ॥

त मु तवृ पथमें श्रुत्या राक्षसन्मुख्य राक्षसाः ।

अमुः परमसरभान्ताः कुम्भकर्णनिपदानम् ॥ २२ ॥





राक्षसोंद्वारा साथे हुए हनुमन्कर्णको अगलेका प्रयाग

उत्सृज्य रावणपत्नी वह बाल सुनकर समस्त उत्सृज्य बड़ी
भरगहटमें पड़कर कुम्भकर्णके घर गये ॥ २२ ॥

तौ रावणसमाविष्ट मासशोफितभोजन्या ।
गन्ध माल्य महाशुभ्रक्यामावाय सहसा ययुः ॥ २३ ॥

रक्त-ज्वरघ्न भोजन करनेवाले वे उत्सृज्य रावणपत्नी आशा
फरकर गन्ध माल्य तथा जाने-धीनेकी बहुत ही सम्पत्ती लिये
सहसा कुम्भकर्णके पास गये ॥ २३ ॥

तां प्रविश्य महाहारा सर्वतो योजन्वयताम् ।
कुम्भकर्णगुह्यां रम्या पुष्पागन्धप्रवाहिनीम् ॥ २४ ॥
कुम्भकर्णस्य निःश्वासात्सुवधूता महाबद्धा ।
प्रविष्टमनाः कृष्णैश्च यज्ञात्प्रविधिशुश्रुवाम् ॥ २५ ॥

कुम्भकर्ण एक गुफामें रहता था वह बड़ी ही सुन्दर थी
और वहाँके वातावरणमें फूलोंकी सुगन्ध छावी रहती थी ।
उसकी लक्ष्मी-वैभवं तब ओरसे एक-एक यज्ञकी यी
तथा उसका दरवाजा बहुत बड़ा था । उद्यमें प्रवेश करते ही
वे महाकभी उत्सृज्य कुम्भकर्णकी साँके बेगसे लक्ष्मा पीछे
ठंड दिये गये । फिर बड़ी कठिनाईसे वैर कमाते हुए वे पूरा
मन्त्र करने के उस गुफाक भीतर घुसे ॥ २४ २५ ॥

या प्रविश्य गुह्यां रम्यां रक्तव्यञ्जनकुहिनाम् ।
दृष्टुर्नैर्भूतव्याघ्राः शयान भीमविक्रमम् ॥ २६ ॥

उस गुफाकी फर्तमें रत्न और सुवर्ण बड़े गये थे जिससे
उसकी रमणीयता बहुत बढ़ गयी थी । उसके भीतर प्रवेश
कर उन भेड़-रक्षसोंने दंष्ट्रा भयानक पराक्रमी कुम्भकर्ण
से खा हे ॥ २६ ॥

तं तु त विहृत सुप्त विकीर्णमिष पर्वतम् ।
कुम्भकर्णं महाविद्रु समेताः प्रत्यबोधयन् ॥ २७ ॥

गहानिद्रामें निमग्न हुआ कुम्भकर्ण जिससे हुए पर्वतके
समान विकृतावस्थामें सोकर झुरटि ले रहा था; अतः वे
सब उत्सृज्य एक ही उद्ये आनेकी चेष्टा करने लगे ॥ २७ ॥

ऊर्ध्वलोमाश्चित्तनुं श्वसात्प्रमिव पद्मगाम् ।
आमयार्त्तं विनिम्बासौ शयान भीमविक्रमम् ॥ २८ ॥

उसका सारा शरीर ऊपर उठी हुई रज्जुत्वस्थितिमें मग्न
था । वह सर्वके समान सौंदर्य लेता और अपने निःश्वसते
ज्योतीको चकलते झाड़ देता था । वहाँ कस्य हुआ वह उत्सृज्य
मन्त्रक बन्ध-विक्रमसे सम्पन्न था ॥ २८ ॥

भीमयासापुट तं तु पातालविपुस्माननम् ।
शयनं म्यस्तसर्पाह म्मेवोक्तधिरगन्धिभम् ॥ २९ ॥

उसकी नासिकाके दानु छिद्र बड़े भयंकर थे । मुँह पताल-
के समान विशाल था । उद्यने अन्तर्गत शरीर शम्भान्न झाड़
रक्ता था और उसकी बेहसे रक्त और चर्बीकी-सी गन्ध प्रकट
होती थी ॥ २९ ॥

कञ्जान्यङ्गवन्ध्याहं किरिटेनार्कवर्षसम् ।
दृष्टुर्नैर्भूतव्याघ्र कुम्भकर्णमरिर्वमम् ॥ ३० ॥

उसकी मुञ्जभोंमें बाजूकर घोम पाते थे । मन्त्रकर
केवली किरिट धारण करनेके कारण वह सूर्यदेवके समान
प्रभापुङ्खते प्रकाशित हो रहा था । इस रूपमें निष्ठापरभद्र
शत्रुभन कुम्भकर्णको उन रक्षसोंने देखा ॥ ३० ॥

ततश्चकुम्भहारमानः कुम्भकर्णस्य आगतः ।
भूयना मेदसकश्च राशि परमवर्षणम् ॥ ३१ ॥

तदनन्तर उन महाकर्म निशाचरोंने कुम्भकर्णके सामने
प्रतिपक्षोंके मेघपत्र-जैसे ढेर ख्या दिये; जो उद्ये मल्लत्त वृष्टि
प्रदान करनेवाले थे ॥ ३१ ॥

सुगार्णां महिषाणां च वराहाणां च सख्यान् ।
चकुर्नैर्भूतवार्तुल्य राशिमन्त्रस्य चाद्भुतम् ॥ ३२ ॥

उन भेड़-रक्षसोंने वहाँ दूगों मैलों और क्षत्रियोंके समूह
बड़े कर दिये तथा अन्तकी भी मन्त्रुत राशि एकत्र
कर ली ॥ ३२ ॥

ततः शोणितकुम्भांश्च मासानि विधिधानि च ।
पुरस्तात् कुम्भकर्णस्य खकुस्त्रिदशाश्रवाः ॥ ३३ ॥

इतना ही नहीं उन देवद्रोहिणोंने कुम्भकर्णके आगे रक्त-
से भर हुए बहुतों बड़े और नाना प्रकारक मंत्र भी रख
दिये ॥ ३३ ॥

द्विलिपुञ्ज परान्यैल कम्बन परतपम् ।
विषैरग्भासासयामासुर्मास्वीगन्धैश्च गन्धिभिः ॥ ३४ ॥

घृणगम्भांश्च सस्रुस्तुपुञ्ज परतपम् ।
जलदा इष जामेदुर्गुत्तुधनास्ततस्तसः ॥ ३५ ॥

तत्पश्चात् उन्होंने शत्रुकेपी कुम्भकर्णके शरीरमें बहुमूल्य
चन्दनक छप किया । दिव्य सुगन्धित पुष्प और चन्दन
सुपीये । मूर्खोंकी सुगन्ध फैलायी । उस शत्रुभन वीरकी खति
की तथा ज्योती-वर्णों बड़े हुए उत्सृज्य मेघोंके समान गम्भीर धनि-
से गर्भना करने लगे ॥ ३४ ३५ ॥

शङ्खांश्च पूरयामासु शशमहस्रश्चप्रभान् ।
तुमुल युगपन्थापि विनेदुष्वाप्यमर्षिताः ॥ ३६ ॥

(इत्येतेर भी क्य कुम्भकर्ण नहीं उठा। तब) अमर्षिते
मेरे हुए उत्सृज्य चन्द्रमाके समान स्थित रंगक बहुतसे शङ्ख
कुँभने तथा एक क्षय तुमुल-धनिसे गर्भना करने लगे ॥ ३६ ॥

नेतुरास्त्रेद्ययामासुभिक्षिपुस्त निशाचराः ।
कुम्भकर्णप्रविबोधार्थं चाद्भुस्त विपुल स्वरम् ॥ ३७ ॥

वे निष्ठापर सिन्हाक करने; वाह ठाँकने और कुम्भकर्णके
विभिन्न भाँकोंके हाकलाने लगे । उन्होंने कुम्भकर्णको कहने
के लिय बड़े अर-खेलेसे गम्भीर धनि की ॥ ३७ ॥

सराङ्गमेरीपञ्चप्रपाद
 सास्त्रोदितस्वस्तिर्साहस्रादम् ।
 विशो द्रयन्वस्त्रिविध किरस्ताः
 भुव्या विहगा साहसा निपेतु ॥ ३८ ॥

राङ्ग, मेरी और पञ्च बन्ने छे। तास ठोके, गन्ने और विन्दाएन शब्द एव और गूँन उठा। वह प्रमुञ्च नाव कुनकर पक्षी समस्त दिशाओंकी ओर मगने और आकाशमें उड़ने छे। उड़ते-उड़ते वे धरत पृथ्वीपर गिर पड़ते वे ॥

यथा सृश सैमिन्यैर्महात्म
 न कुम्भकर्णो बुधुच प्रसुता ।

ततो भुशुष्भीसुंसख्यनि सर्वे
 रत्नोगपास्ते जगद्गुर्गदाभ्य ॥ ३९ ॥

जब उस महान कोशहरते भी सेना बुझा विनाशजन कुम्भकर्ण नहीं बना सक, तब उन समस्त रत्नोंने अपने हाथोंमें मुशुष्भी, मुञ्च और गदाएँ छ कीं ॥ ३९ ॥

त शौक्यप्रज्ञेसुंसखीर्गदाभि
 र्वंशःस्थले सुन्दरमुधिभिन्न ।

सुखप्रसुप्तं भुवि कुम्भकर्णं
 रत्नास्युदघ्राणि तत्रा निजन्तुः ॥ ४० ॥

कुम्भकर्ण भूलकर ही मुकते छे रहा था। उठी अबसा ने उन प्रचक्र रत्नोंने उस समय उसकी छातीपर पर्यंतपिखरों, मुञ्चों, गदाओं, सुन्दरों और सुकर्मों मारना आरम्भ किया ॥ ४० ॥

सस्य निम्बासवातेन कुम्भकर्णस्य रत्नासः ।
 राक्षसाः कुम्भकर्णस्य रत्नात् शोकुर्लं चापराः ॥ ४१ ॥

किन्तु उससे कुम्भकर्णकी निःश्वस-वासुते प्रेरित हो वे सब निशाचर उसके आगे ठहर नहीं पाते वे ॥ ४१ ॥

तता परिविहता गाढ राक्षसा भीमकिङ्कराः ।
 मूवङ्गपणधान् मेरी। शङ्खकुम्भपर्यास्तया ॥ ४२ ॥

यथा राक्षससाहाय्य युगापत्यर्थाचारयत् ।
 नील्यजलचयाचर त तु त प्रपवोधयन् ॥ ४३ ॥

तदनन्तर अपने कर्मोंको सब करकर बाँध लेनेके पश्चात् वे मन्मथक पराक्रमी राक्षस जिनकी संख्या काममा इस हजार थी, एक ही समय कुम्भकर्णको घेरकर लड़े हो गये और अपने कोशके डेरके धावन पड़े हुए उस निशाचरको बन्ने का प्रयत्न करने छे। उन छाने एक जय मूवरा पणक, मेरी शङ्ख और कुम्भ (घँसे) बन्ने आरम्भ किये ४२-४३

अभिप्रन्ता नवन्तश्च न च सम्बुधुच तथा ।
 यथा सैन न शकुस्त प्रतिबाधयितुं तथा ॥ ४४ ॥

सद्यो गुदतर यत्न शक्यं समुपाक्रमन् ।
 इत उरु वे यत्न करने बसत और गन्ने छे ता भी

कुम्भकर्णकी निद्रा नहीं टूटी। जब वे उसे फिर उरु कर न सके, तब उन्होंने पहलेसे भी मारी प्रयत्न आरम्भ किया ॥ ४४ ॥

मन्धानुद्गन् करान् त्रगाजन्तुर्वन्धकरप्रभुशो ॥ ४५ ॥

मेरीशङ्खमुदकांश्च सर्वप्रणौरबाधकन् ।
 निजन्तुभ्यास्य गावाणि महाकरप्रकरकरी ॥ ४६ ॥

मुहूर्त्सुसखैश्चापि सर्वप्रणयसमुपतै ।
 तेन नयेन महत्या लङ्का सर्वा प्रपूरित् ।

सपर्यतवना सर्वा सोऽपि नैव प्रबुध्यते ॥ ४७ ॥

वे धोकें, उठें, गदरों और हाथियोंको बड़ों, छोड़ें ता मनुष्योंसे मार-मारकर ठक-ठकर लेकने छे। खरी कर

अङ्कर मेरी, मूवरा और शङ्ख बन्ने छे तथा पूरा अङ्कर उठाये गये बड़े-बड़े काहोंके ऊपरों, सुन्दरों के

मुञ्चसे भी उसके अङ्गोंपर प्रहार करने छे। उस सब कोशहरते पर्यंत और कर्नोत्तहित खरी लङ्का गूँन उ

पर्यंत कुम्भकर्ण नहीं बग, नहीं बग ॥ ४५-४७ ॥

ततो मेरीसहस्र तु युगापत् समहस्यत् ।
 मुदकराञ्जनकोणानामसकानां समस्ततः ॥ ४८ ॥

तदनन्तर एव और खरों घँसे एक जय बन्ने छे। वे सबके-सब अङ्कित करते रहे। उन्हें बन्नेके

छे बड़े वे, वे सुन्दर सुकर्मके बने हुए वे ॥ ४८ ॥

पथमप्यतिनिद्रस्तु यथा नैव प्रबुध्यते ।
 शापस्य यथाम्प्रपञ्चस्ततः कुशो निद्राप्रचाराः ॥ ४९ ॥

इत्नेपर भी शापके अभीन हुआ वह अशियन नि

निशाचर नहीं बग। इसके बरों आये हुए एव एव बग कोष हुआ ॥ ४९ ॥

तता कोपसमाविष्टाः सर्वे भीमपराक्रमा ।
 तद् यतो बोधयिष्यस्तच्छापुराण्ये पराक्रमम् ॥ ५० ॥

फिर वे रोषसे भरे हुए सभी मन्मथक पराक्रमी नि

उस राक्षसको बन्नेके क्षिमे पराक्रम करने छे ॥ ५० ॥

मान्ये मेरीः समानुद्गुराण्ये बहूर्त्तमहासतम् ।
 केदातक्ये प्रष्टुतुपुः कर्णक्ये दशसि च ॥ ५१ ॥

कोई भीते बन्ने छे कोई महान कोशहर करे

कोई कुम्भकर्णके सिरके शक नापने छे और कोई उसके बल करने छे ॥ ५१ ॥

उत्पुम्भमहात्मानस्य समसिञ्च्यत् कर्णयोः ।
 न कुम्भकर्णो पस्स्ये महागिद्रावद्य गता ॥ ५२ ॥

वृद्धे रत्नोंने उसके रोने कर्मोंमें छे बड़े पान

श्रिये छे और महागिद्राके कर्मों पदा बुझा कुम्भकर्ण उस नहीं हुआ ॥ ५२ ॥

भाये च वलिनस्तस्य कूटमुद्गरपाणया ।
 मूर्ध्नि वससि गात्रेषु पातयन् कूटमुद्गरान् ॥ ५३ ॥
 दूरे बन्वान् राक्षसं क्रौंटेरार मुद्गर हायमे ऊच्य
 ऊर्ध्वे उसके मस्तक, छाती तथा अन्य अङ्गोंपर निगने
 ष्ये ॥ ५३ ॥
 रज्जुबन्धनबन्धाभिः शतश्रीभिश्च सपतः ।
 बन्धमान्ते महाकश्यो न प्राप्नुवन्त राक्षसाः ॥ ५४ ॥
 कस्यमात् एसिध्वेति पंथी हुई घटनिघोद्यत उच्यत एव
 भारसे चोटें पड़ने लगीं । फिर भी उस महाकश्य राक्षसकी
 ग्रीद नहीं टूटी ॥ ५४ ॥
 धारणात्मां सहस्रं च शरीरेऽस्य प्रधाषितम् ।
 कुम्भकर्णस्तथा बुद्ध्या स्वर्गो परमनुप्यत ॥ ५५ ॥
 इसके बाद उसके शरीरपर हथौटें हाथी रोड़ाये गये ।
 एव उसे कुछ स्वर्ग माक्स हुआ और वह आग उठा ॥ ५५ ॥
 स पात्यमालैर्गिरिशिखरभूषै
 रक्षितयस्मान् विपुञ्जान् प्रहारान् ।
 निद्रास्रयात् क्षुद्रयपीडितश्च
 विजम्भमाणः सहस्रोत्पपात् ॥ ५६ ॥
 यद्यपि उसके ऊपर फलतश्चर और हथ मियने धाते
 थे, तथापि उसने उन मयी प्रहारोंको कुछ भी नहीं गिना ।
 रक्षियोंके स्पर्शसे वह उसकी नीद टूटी, एव वह भूषणके मयसे
 पीडित हो अंगड़ाई भेदा हुआ अर्थात् उलझकर लड़ा हो
 गया ॥ ५६ ॥
 स नागभोगाद्यच्छत्रहृत्करयौ
 विक्षिप्य बाहू कितवज्रसारौ ।
 विस्तृत्य वक्त्रं वक्ष्यामुक्ताभ
 निशाचरोऽसौ विकृतं जजम्भे ॥ ५७ ॥
 उसकी दोनों मुन्डों नागोंके शरीर और फलतश्चरोंके
 समान ध्वन पड़ती थीं । उन्होंने बद्धकी शक्तिसे परकित कर
 दिया था । उन दोनों बाँहों और मुँहको फेसकर वह वह
 निशाचर कम्हाईं धने लगा, उस समय उसका मुख वक्त्रहृत्
 के समान विकृत्य बन पड़ता था ॥ ५७ ॥
 तस्य आजम्भमाणस्य वक्त्रं पात्याद्यसिन्धुम् ।
 वृष्टो मेरुशृङ्गमे दिपाकर इयोविश ॥ ५८ ॥
 कम्हाईं धने समय कुम्भकर्णका पात्या-श्रेण मुख मेरु
 फलतके शिखरपर उगे हुए स्वर्गके समान दिखायी देता
 था ॥ ५८ ॥
 स कुम्भमाणोऽतिबलः प्रबुद्धस्तु निशाचरः ।
 निम्बासाम्बाया सज्ज्जे पपतादिष मास्तः ॥ ५९ ॥
 इस तरह कम्हाईं धन हुआ वह अन्ततः सम्पायी

निशाचर बन गया, तब उसके मुन्डते धे धँस निकलती थीं;
 वह फलतसे लम्बी हुईं वायुके समान प्रतीत होती थीं ॥ ५९ ॥
 रूपमुचिष्ठतसस्य कुम्भकर्णस्य तत् वशी ।
 युगान्ते सर्वभूतानि काष्ठस्यैव विभङ्गताः ॥ ६० ॥
 नीरसे ठठे हुए कुम्भकर्णका वह रूप प्रक्यकश्यमे समस्त
 प्राणियोंके शरीरकी इच्छा रखनेवाले काष्ठके समान ध्वन
 पड़ता था ॥ ६० ॥
 तस्य वृत्तान्तिसाद्यो विद्युत्सदृशयवसी ।
 वृष्टशाते महानेत्रे वीतापिब महाप्रहौ ॥ ६१ ॥
 उसकी दोनों बड़ी-बड़ी भौंलें प्रक्यकश्य अग्नि और
 विद्युत्के समान वीतापिबी विसापी देती थीं । वे देखीं लम्बी
 थीं मानते थे महान् प्रह प्रक्यकित हो रहे हैं ॥ ६१ ॥
 ततस्तवशयान् सर्वान् भक्ष्यान्व विंान् वङ्गान् ।
 वराहान् महिपाक्षैव यभस्त स महावल्गः ॥ ६२ ॥
 तदनन्तर एकद्वेने वहाँ धे अनेक प्रकारकी खाने-पीनेकी
 वस्तुएँ प्रचुर मात्रामें रखी गयीं, वे एक-की-एक कुम्भकर्णको
 दिखायीं । वह महाबली राक्षस शत-श्री-वातमें बहुतेरे मैलों
 और स्वर्गोंको चट कर गया ॥ ६२ ॥
 अद्व बुभुक्षितो मास शोणित वृषितोऽपिबत् ।
 मेरुशृङ्गाम्ब मर्द्यान्व पपी शकृत्पुस्तदा ॥ ६३ ॥
 उसे बड़ी भूख लगी थी अतः उसने मरपक मांस
 खाया और प्यास बुझानेके लिये रक्त पान किया । तदनन्तर
 उस इन्द्रप्रद्वी निशाचरने चर्चित मरे हुए कितने ही बड़े कण्ड
 कर दिये और वह कई पक्षे मरिया भी पी गया ॥ ६३ ॥
 ततस्तदा इति ज्ञात्वा समुत्पुङ्गुनिशाचरया ।
 शिरोभिश्च प्रणम्येन सद्यता पर्यधारयन् ॥ ६४ ॥
 तब उसे क्षुब्ध जानकर राक्षस उलझ-उलझकर उसके
 धमने धम्ये और उसे छिर हथका प्रणाम करके उसके चारों
 ओर लड़े हो गये ॥ ६४ ॥
 निद्राभिशाचरनेवस्तु कल्पुपीडितलोचनः ।
 धारयन् सर्वतो हृदि तान् वृष्टा निशाचरान् ॥ ६५ ॥
 उस समय उसका नेत्र निद्राके क्षरण अभङ्गन—कुछ-
 कुछ झुट हुए थे और मस्तिष्क ध्वन पड़ते थे । उसने एव
 ओर हृदि बाधकर वहाँ लड़े हुए निशाचरोंको देखा ॥ ६५ ॥
 स सर्वान् साम्ययामास नैश्रुतान् मैश्रुतान्भ ।
 बोधनात् विक्षितध्यापि राक्षसानिद्रमप्रयीत् ॥ ६६ ॥
 निशाचरोंमें भेद कुम्भकर्णने उन एव राक्षसोंको
 धमना ही और अपने कगाये अपनेक क्षरण विक्षित हो
 उनसे इस प्रकार पूछा— ॥ ६६ ॥
 किमयमहमाहृत्य भयङ्गिः प्रतिवाधितः ।

कश्चित् सुकुशल राक्षो भय वा नेह किञ्चन ॥ १७ ॥

दुःखयोगेन इह प्रकृत आदर करके मुझे किञ्च जिये
कगया है ! यक्षरथय यवन कुशलसे हैं न ! यहाँ कोई मम
तो नहीं उपस्थित हुआ है ! ॥ १७ ॥

अथवा धृक्मन्वेभ्यो भय परमुपस्थितम् ।
यत्परमिय त्वरितैर्भवादिः प्रतिबोधितः ॥ १८ ॥

अथवा निश्चय ही यहाँ दूखोंसे कोई महान् मम उपस्थित
हुआ है किन्तुके निवारणके लिये तुमलोगोंने इतनी उतावलीके
रूप मुझे समझा है ॥ १८ ॥

अथ राक्षसराजस्य भयमुत्पाटयाम्यहम् ।
दारयिष्ये महान्त्रं वा वीरतयिष्ये तथासहम् ॥ १९ ॥

अन्धता तो आज मैं यक्षरथके ममको उलाहल दूँगा ।
महेन्द्र (पर्वत या इन्द्र) को भी चीर जाऊँगा और अन्धको
भी ठंडा कर दूँगा ॥ १९ ॥

न ह्यारण्यकारणे सुप्त बोधयिष्यति माह्वशम् ।
तवाक्यप्रतापैर्तत्पत्न मत्प्रबोधनकारणम् ॥ २० ॥

सुप्तकेसे पुत्रपत्नके किसी छोटे-मोटे कारणवश नींदसे
नहीं जाग्यो जाग्यो । अतः तुमलोगे उठकर उठकर कतामा मेरे
बोधने के लिये क्या कारण है ! ॥ २० ॥

एष ह्येषां चरध्वं कुम्भकर्णमरिदमम् ।
यूपासः सधियो राज्ञः ह्युत्तमिदभ्यत ॥ २१ ॥

यजुसदान कुम्भकर्ण का येमों भरकर इस प्रकार पूजने
का तब राक्षस यमणके सन्धि यूपासने हाथ बढ़कर
करा— ॥ २१ ॥

न मो वैषङ्गत किञ्चिद् भयमस्ति कदाचन ।
मनुपाषो भयं राजस्तुमुक्त सम्प्रयाभते ॥ २२ ॥

महारथ । हमें वैषङ्गाओंकी आरसे तो कभी कोई मम
हो ही नहीं सकता । इस समय केवल एक मनुष्यसे तुमुक्त मम
मास हुआ है जो हमें रक्षा करा है ॥ २२ ॥

न वैतृमालवभ्यो वा भयमस्ति न न कश्चिद् ।
यावद्य मालुप राजन् भयमस्मन्नुपस्थितम् ॥ २३ ॥

यावन् । इस समय एक मनुष्यसे हमारे लिये क्या मम
उपस्थित हो गया है वैश तो कभी देखों और जानतेसे भी
नहीं हुआ था ॥ २३ ॥

यान्तेः पयस्यकारैर्लघुय परिवारिता ।
सीताहरणसदृशात् रामात्सस्तुमुक्त भयम् ॥ २४ ॥

पर्वताकार चन्द्रोंसे आकर इस महापुरीको चारों ओरसे
पेर दिया है । सीताहरणसे अतस्तु हुए भीयमकी आरसे हमें
उपुक्त ममकी मस्ति हुई है ॥ २४ ॥

एकन दान्तेरेभ्य पूर्व दग्धा महापुरी ।

कुमारो निहतश्चासः सानुयात्रा सकुलरा ॥ २५ ॥

पहले एक ही वानरने यहाँ आकर इस महापुरीको
दिया था और हाथियों तथा खच्चिबोंसे श्रित राजकुमार
भी मार बाध था ॥ २५ ॥

सख्य रक्षोधिपद्मापि पौलस्त्यो वैष्णवस्तुक्त ।
प्रजैति सयुगं मुक्तो रामेष्वाश्रित्यवर्षसा ॥ २६ ॥

भीयम धर्मके समान तेजसी हैं । उन्होंने देव
पुत्ररथकुलम्बन साधत् राक्षसव्यय समजको भी मुक्त
कर श्रीकृति छोड़ दिया और करा—यह लोको और अन्धके

यक्ष देवैः हृतो राज्ञा नापि तैर्येनैर् दान्तैः ।
हृतः स इह रामेण विमुक्तः प्राणसहायात् ॥ २७ ॥

महायमकी से दया देकर, देव और दानव भी ;
कर उनके से बह उम्मे कर दी । उनके प्राण बड़े लक्ष
रने हैं ॥ २७ ॥

स यूपासवधः भुत्वा भ्रातृपुंथि पराभयम् ।
कुम्भकर्णो विधुत्तमो यूपासमिदमब्रवीत् ॥ २८ ॥

मुझमें माईकी पराभयसे समग्र रक्षनेवाली भूषण
बह बात सुनकर कुम्भकर्ण आँसों छड़-छड़कर देखने का
और यूपासके इस प्रकार बोध— ॥ २८ ॥

सर्वमयीष यूपास हरिसैम्य सख्यमणम् ।
राज्य च रजे जित्वा तयो द्रक्ष्यामि राजयम् ॥ २९ ॥

भूषण ! मैं अभी जरी वानरसेनाको तथा अन्धकी
रामको भी यन्त्रिमिमें परस्त करके यक्षका दर्शन करूँगा ।
यक्षसास्तर्पयिष्यामि हरीष्यां मांसशोषितैः ।
रामसख्यमणयोश्चापि सख्यं पाश्यामि शोषितम् ॥ २० ॥

आज वानरोंके मांस और रक्तसे रक्षकोंसे तुम
करूँगा और सख्य भी राम और अन्धके लून पीऊँगा ॥ २० ॥

तत् तस्य वाक्यं ब्रुवतो निशाम्य
सगर्वित रोयविबुद्धयेरम् ।
महादरो नैर्भूतयोभ्युक्त्वाः
ह्युत्तमिदमिदं कथाम् ॥ २१ ॥

कुम्भकर्णके लक्षे हुए रथ-रोषसे तुफ भवद्वारपूर्व कथन
सुनकर यक्ष-योद्धाओंमें प्रथम महादरने हाथ बढ़कर बह
बात करी— ॥ २१ ॥

राज्यस्य धधा भुत्वा गुण्यदात्री विमुक्त्य च ।
पद्मात्पि महाबाहो वाचूत् पुंथि विज्ञेयसि ॥ २२ ॥

महाबाहो ! परम पक्षकर महाबाह यमकी बह सुन
कीजिये । फिर गुण-रथका विचार करनेके पश्चात् मुझमें
राजुओंको परस्त कीजिये ॥ २२ ॥

महादरवधः भुत्वा राजसैः परिवारितः ।
कुम्भकर्णो महावेजाः सम्प्रतस्थे महापरा ॥ २३ ॥

महादेवी यह बात सुनकर राक्षसें विरा हुआ महा
 देवी महादेवी कुम्भकर्ण कहते चन्देकी तैयारी करने
 हुए ॥ ८३ ॥

सुममुत्थाप्य भीमाक्ष भीमरूपपराक्रमम् ।
 यक्षसास्त्ररिता जम्बुद्वीपश्रीवसिष्ठेशम् ॥ ८४ ॥

इस तरह सोये हुए भयानक नेत्र, रूप और फलकमवाले
 कुम्भकर्णके उठाकर वे राक्षस क्षीम ही यशसुल एतजक
 मन्त्रमें गये ॥ ८४ ॥

तऽभिगम्य दशम्रीवमासीन परमासने ।
 कसुर्यदाञ्जलिपुत्राः सस्य पव निशाचराः ॥ ८५ ॥

दशम्रीन उषम विहाङ्गपर बैठा हुआ था, उसके पास
 वे सभी निशाचर हाथ बाँधकर बस— ॥ ८५ ॥

कुम्भकण्यः प्रसुप्तोऽसी भ्राता ते राक्षसेश्वर ।
 कथ तत्रैव निर्यातु द्रक्ष्यसे तमिहागतम् ॥ ८६ ॥

राक्षसेश्वर ! आपके भाई कुम्भकर्ण काग लठे हैं ।
 कबिये, व क्या करें ? क्षीमे युद्धकर्म ही पचारें या आप
 उन्हें यहाँ उपस्थित देखना चाहते हैं ? ॥ ८६ ॥

रावणस्वप्रवीक्षुष्यो रक्षसास्त्रानुपस्थितान् ।
 द्रष्टुमनसिहेरुक्षमि पथान्याय च पूज्यताम् ॥ ८७ ॥

उन रावणने वह हर्षके क्षय उन उपस्थित हुए राक्षसें
 का—भी कुम्भकर्णके यहाँ देखना चाहता है, उनका यथे-
 स्थित सत्कार किया गया ॥ ८७ ॥

तपोयुक्त्या तु ते सर्वे पुनरागम्य राक्षसाः ।
 कुम्भकणामिद् पापयमूक्षु रायजचोदिता ॥ ८८ ॥

उन सब आकाश करकर रावणके भेजे हुए वे सब राक्षस
 पुन कुम्भकर्णके पास भा इत प्रकार बोले— ॥ ८८ ॥

द्रष्टु त्वा काङ्क्षत रामा सपरराक्षसपुङ्गव ।
 गमने क्रियतां मुक्तिभ्रातर सम्महयय ॥ ८९ ॥

पामे ! सर्वराक्षसिणमभि महाराज एतज भापका देखना
 चाहते हैं । अतः आप यहाँ पचनेका निचार करें और पचार
 कर अपने भाइका हर्ष बढ़ाएँ ॥ ८९ ॥

कुम्भकणस्तु दुभयो भ्रातुराज्ञाय शासनम् ।
 तपोयुक्त्या महावीर्यः शयन्बहुत्वपत ॥ ९० ॥

भाइका यह आवेग पाकर महापराक्रमी दुर्कर्म वीर कुम्भकण
 बहुराज भक्षा करकर मन्त्रके उठाकर लड़ा हा गया ॥
 प्रज्ञास्य यद्वन ह्यपः स्नातः परमहयितः ।
 पिपासुस्त्वरायामास पानं यतसमीरणम् ॥ ९१ ॥

उठने बड़े हर्ष और प्रसन्नताके साथ मुँह पकड़ स्नान
 किया और पीनेके इच्छाले तुरंत बरबर्नके पत्र स आनेकी
 आशा ही ॥ ९१ ॥

ततस्ते त्वरितास्तत्र राक्षसा रायपादया ।
 मघ भस्त्राञ्च विपिधान् क्षिप्रमेवोपहारयन् ॥ ९२ ॥

तब रावणके आवेगसे वे सब राक्षस तुरंत मघ तथा
 नाना प्रकारके मन्त्र पदार्थ स मन्त्रे ॥ ९२ ॥

पीत्या षट्सहस्रे द्वे गमनायोपपन्नम् ।
 र्षपत्समुत्कटो मत्तस्तजोबलसमन्विता ॥ ९३ ॥

कुम्भकर्ण दो हजार पड़े मघ गटककर चन्देकी उषत
 हुआ । इच्छते ठगने कुछ वाक्यी भा गयी तथा वह मन्त्राका,
 देवीकी और शक्तिधमन् हो गया ॥ ९३ ॥

कुम्भकर्णो वभी हृष्टः क्वलान्तकयमोपमः ।
 भ्रातुः स भवम गच्छन् रक्षोयलसमन्विता ।
 कुम्भकणः पृथ्व्यासैरकम्पयत मन्त्रिनीम् ॥ ९४ ॥

क्षि्र बन राक्षसेंकी सेनाक साथ कुम्भकण भाईके महक-
 की मन्त्र चक्र उठ समय वह रागते भर हुए प्रलयकालक
 विनाशकारी यमराजके समान बदन पड़ता था । कुम्भकण
 अपने पैरोंकी बमकते सारी पृथ्वीका कम्पित कर रहा था ॥

स राजमार्गं ययुषा प्रकशयन्
 सहस्ररश्मिभरणीमियांगुभिः ।
 जगाम तत्राञ्जलिमाख्या घृताः
 शतक्रतुगोहमिव स्वयमुषः ॥ ९५ ॥

जैसे सूर्यदेव अपनी किरणोंसे भूखण्ड प्रकाशित करते
 हैं तथी प्रकार वह अपने तेजस्वी शरीरसे राजमार्गका उद्घासित
 करत हुआ हाथ बाँधे अपने भाइक महकमें गया । ठीक
 तथी तरह जैसे देवराज इन्द्र ब्रह्मादीके चामने जते हैं ॥ ९५ ॥

त राजमार्गं स्वमिमिश्रघातिन
 यमौकसस्त सहस्राव वहिःक्षिताः ।
 ह्युग्रामय गिरिरुद्धकन्य
 पितत्रसुस्त सह धूपयार्त्तः ॥ ९६ ॥

राजमार्गपर बहते समय हनुमती कुम्भकण परंतदिलर
 के समान बदन पड़ता था । नगरक शहर बड़े हुए बानर
 सहस्र उस पिशाचमय राक्षसके देवकर सेनापतिवैरहित
 स्वम गये ॥ ९६ ॥

अचिञ्चरुष्य शरणं स राम
 घञ्जित अचिद् व्यपिताः पतन्ति ।
 अचिद् वराञ्च व्यपिताः पतन्ति
 अचिद् भयाता मुपि शरत् स ॥ ९७ ॥

उनसेते कुछ बानरोंने शरणगतारक्ष्य भगवान
 श्रीरामकी शरण की। कुछ व्यपित होकर गिर पड़े । शरकीरित
 हा मन्त्रुय दिशाभ्रमें भगव गव और यहाँ-तहाँ परगामी हा
 गये और चिन्तन ही बानर भयम पीड़ित हा परस्पर छ-
 गये ॥ ९७ ॥

समद्विष्टमृगप्रथिम किरीटिनं
मृगान्तमात्रित्पमिद्यत्समेतेजसा ।

घनौकसः प्रेक्ष्य विद्युदममृत

भयार्दित्वा वृक्षसिरे यतस्ततः ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बाष्पीक्रीये आदिशब्दे युद्धशब्दे पहिलमः सर्गः ॥ १ ॥

इस प्रकार धेनुवर्गीक्रीर्णित आरामायण आदिशब्दे युद्धशब्दे सप्तमं सर्गं पूरा हुआ ॥ १ ॥

एकषष्टितमः सर्गः

विभीषणका भीरामसे कुम्भकर्णका परिचय देना और भीरामकी आज्ञासे
चानरोंका युद्धके लिये लङ्काके द्वारोंपर बट जाना

ततो रामो महातांजा धनुरास्त्राय धीर्ययान् ।
किरीटिन महाकश्य कुम्भकर्णे वृक्षां ह ॥ १ ॥

तदनन्तर हाथमें धनुष लेकर कश्चिकम्मे सम्पन्न महा-
तेजस्वी भीरामने किरीटपाठी महाकश्य राजस कुम्भकर्णको
देला ॥ १ ॥

त वृष्टा रसस्तद्येष्टं पर्यंताकारवृक्षान्म् ।
कममाणामियाकाशं पुरा न्यययज यथा ॥ २ ॥
सतोयाम्बुवसंभवा कश्चिनाङ्गवमूयजम् ।
वृष्टा पुनः प्रवृष्टस्य यानराणां महात्मनू ॥ ३ ॥

वह पर्यंतके समान विलासी देता था और राज्योंमें सबसे
बड़ा था । जैसे पूर्वाञ्जले महाबान् नापयवने आकाशको
नापनेके लिये जग भरे थे, उसी प्रकार यह भी जग वनाय
जब रहा था । वक्रत स्वरूपके समान कश्चा कुम्भकण छनेके
बाहुश्रवने निरूपित था । उसे देखकर यानरोंकी यह विघ्न
संज्ञा पुन वषे जाने भगने ज्ये ॥ २ ॥

विद्रुतां याहिनीं वृष्टा पथमान् च राक्षसम् ।
सविस्त्रिमिदं रामा विभीषणमुयाच ह ॥ ४ ॥

अनी मेघश्रे भगवत तथा राजस कुम्भकर्णको बहव
दण भीरामचन्द्रबीरो बड़ा आभरने हुआ और उन्होंने
विभीषणमें पूजा— ॥ ४ ॥

पशुसमां पयतसक्रमाः किरीटी हतित्पावनः ।
लट्टाया ददयत पीरा सविशुद्विय तायवः ॥ ५ ॥

यद लट्टाजुगोने पाँच कमल पिपात्राय पीर बीर दे
लिनक मन्नाकर किरीट छान्य पाता है और नभ भूरे है । यह
एक दि गये दाह दे मन्ना पिब किरीट मर हा ॥ ५ ॥

पुशिया वज्रभूताऽमी महानस्यस्य ददयत ।
य वृष्टा गानवाः सर्वे विद्रवन्ति मत्तन्तः ॥ ६ ॥

एन नू त वर परमाण महान् भवन्त्य दृष्टान्तर
दण ह । १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

वह पर्यंतशिखरके समान ऊँचा था । उसके मत्तम
मुकुट गोमा देता था । वह अपने तेजसे सूर्यका रस्य कश्च-
क जान पड़ता था । उस वषे हुए विघ्नकश्चन परं भ्रम
रकश्चन देखकर सभी वनवासी वनर भयसे पीड़ित हो इतर
उत्तर भागने लगे ॥ १८ ॥

मान्वाश्च सुमहान् क्रोऽसौ रक्षो वा यत्कि वसुरा ।
न मयैवविध मृत वृष्टपूर्वं कदाचन ॥ ७ ॥

निभीषण । कश्चो । यह हुते बड़े शीक-शोकम भौन
पुत्र है । कोई राक्षस है या भ्रमर ! मैंने देते प्रणीको पहले
कभी नहीं देखा था ॥ ७ ॥

सम्पूये राजपुत्रेण रामेणाह्वित्कर्णया ।
विभीषणो महाप्रथाः कश्चुस्त्रमिन्द्रप्रथीव् ॥ ८ ॥

मनापश ही बड़े-बड़े कर्मा करनेवाके एककुमार भीरामने
जब इस प्रकार पूजा तब परम बुद्धिमान् विभीषणने उस
कश्चुस्त्रकुम्भकण रचनापरीते इस प्रकार कहा— ॥ ८ ॥

यम धैर्यसतां युजे यासवश्च पराजितः ।
सैव विधयसः पुत्रा कुम्भकणा प्रथययान् ।

भय्य प्रमाणसदृशो राक्षसोऽन्यो न विद्यते ॥ ९ ॥

मत्तन् । जिनके युद्धमें वेबलत कम और देखकर
इन्द्रको भी पराजित किया था, वही यह विभवक प्रतीय
पुत्र कुम्भकर्ण है । इतक कपलर धंसा वृष्टा कोई राक्षस नहीं
दे ॥ ९ ॥

यतन वृषा युधि वृत्तयाश्च
यसा भुजगा विविताजानाश्च ।

गन्धपविद्याभरत्किजराश्च
सहस्रनाम राषय सम्प्रभवाः ॥ १० ॥

पुत्रमन् । इतने बलत, वनत, यश नग यक्षक
कर्ण गिगाभर और जिनकेधं बरखीं वार युद्धमें मर
भयव ॥ १० ॥

वृत्तयाधि विरुगाश कुम्भकर्णे महायमम् ।
हनु नानुजिदगाः पत्तस्यपमिति माहिताः ॥ ११ ॥

इतने नभ बड़े भगवत है । यह महाबली कुम्भकण
वर हापने हुए इतर युद्धमें हाहा हुआ ३ ॥ अमर हाता

भी इसे मारनेमें समर्थ न हो सके । यह काञ्चन है, ऐसा
कमलकर वे स्र-के-उभ मोहित हो गये थे ॥ ११ ॥

प्रकृत्या ह्येव तज्जम्बी कुम्भकर्णो महावक्रः ।
अन्येषा रक्षसेन्द्राणां घरदानकृतं यत्नम् ॥ १२ ॥

कुम्भकर्ण स्वभावसे ही तेजस्वी और महाबलवान् है ।
अन्य रक्षसत्वियोंके पास यों यत्न है, वह करवानसे प्राप्त
हुआ है ॥ १२ ॥

वासेन आत्मभोजेण भुभार्तेन महारमना ।
भक्षित्वानि सहस्राणि प्रजानां सुपट्टन्यपि ॥ १३ ॥

पूरा महाभय रक्षसेन कम करते हैं । बाल्यावस्थामें मूल
से पीड़ित हो कई तरह प्रयत्नोंको का बाध था ॥ १३ ॥

तेषु सम्भक्ष्यमाणेषु प्रजा भयनिपीडिता ।
पाम्पितं स शरणं शक्रं तमप्ययं न्यवेद्यन् ॥ १४ ॥

जब उसी प्रयत्न इसका आहार करने लगे, तब
भस्से पीड़ित हो वे स्र-के-उभ देवराज इन्द्रकी धरपने गये
और उन छत्रने उनके सम्भक्षणा का निवेदन किया ॥ १४ ॥

स कुम्भकर्णो कुपितो महेन्द्रा
अपान यज्ञेण शितानं यज्ञी ।

स शक्यज्जाभिहतो महात्मा
नचाल कोपाद्य मुदा ननात् ॥ १५ ॥

पूछते ब्रह्मचारी देवराज इन्द्रका बड़ा क्रोध हुआ और
उन्होंने अपने हीसे ब्रह्मसे कुम्भकर्णको पापक कर दिया ।
इन्द्रके पक्षकी जोड़ लाकर वह महाभय रक्षस मुख्य हो उठा
और रणरङ्गके अर-अरसे सिंहानार करने लगा ॥ १५ ॥

तस्य नानघमानस्य कुम्भकर्णस्य रक्षसा ।
भुत्वा निनार्त्तं विपस्तां प्रजा भूयो पितृवसुः ॥ १६ ॥

पापक कुम्भकर्णके बार-बार गर्भना करनेपर उसका
मन्त्र सिंहानार मुनिर प्रयत्नोंके धना मन्थित हो और भी
हर गये ॥ १६ ॥

ततः क्रुद्धा महेन्द्रस्य कुम्भकर्णो महावक्रः ।
निष्कृप्यरक्षताद् दन्तं अघनोरसिं पासयम् ॥ १७ ॥

उदन्तर कुपित हुए महाकबी कुम्भकर्णने इन्द्रके देवराज-
के मुँहसे एक दाँत उखाड़ लिया और उससे देवन्द्रकी छाती-
पर प्रहार किया ॥ १७ ॥

कुम्भकर्णप्रहारस्यै विज्रन्याल स पासयः ।
ततो विपशुः सहासा दया प्रह्वयिज्ञानया ॥ १८ ॥

कुम्भकर्णके प्रहासे इन्द्र व्याकुल हो गये और उनका
हरपने करने लगे । यह इन्द्रका उन देवता नरपति
और राजा अर्थात् विपशने हुए गये ॥ १८ ॥

प्रसाभिः सह शक्रञ्च ययो स्थानं स्वयमुपा ।

कुम्भकर्णस्य वीरारम्य शशसुस्त प्रजापतः ॥ १९ ॥
एतन्नात् इन्द्र उन प्रयत्नोंके साथ ब्रह्मकीके धाममें
गये । वहाँ पाकर उन छत्रने प्रयत्निके सम्भ कुम्भकर्णकी
दुष्टतापर विचारपूर्वक वर्णन किया ॥ १९ ॥

प्रजानां भक्षणं चापि देवानां चापि धरणम् ।
आधमध्यस्तन चापि परस्त्रीहरणं भृशम् ॥ २० ॥
पूछके द्वारा प्रयत्नके मलय, देवताओंके धरण (किरकर),
श्रुतियोंके आधमोंके विस्वस तथा परपत्नी कियोंके धारण
हरण होनेकी भी बात बतायी ॥ २० ॥

एव प्रजां यद्वि त्वेष भक्षयिष्यति नित्यशः ।
अशिरेष्वेष कालेन शून्यो लोको भविष्यति ॥ २१ ॥

इन्द्रने कहा—भ्रामन् । यदि यह नित्यप्रति इसी प्रकार
प्रयत्नोंका मलय करता रहा तो योही सम्भमें खरा संसार
पदा हो जायगा ॥ २१ ॥

यासयस्य पश्याः भुत्वा सर्वलोक्षपितामहा ।
रक्षांस्वावाहयामास कुम्भकर्णं द्वादश ह ॥ २२ ॥

इन्द्रकी यह बात सुनकर सर्वलोक्षपितामह ब्रह्मने उन
रक्षकोंको मुझका और कुम्भकर्णसे भी भेंट की ॥ २२ ॥

कुम्भकर्णं समीक्ष्यैष विस्त्रास प्रजापतिः ।
कुम्भकर्णमथाभ्यासाः स्वयभूरिदमप्रधीत् ॥ २३ ॥

कुम्भकर्णको देखते ही स्वयम्भू प्रयत्निके धरों उठे ।
किर अपनेको रणरङ्गकर व उस रक्षसेके धर—॥ २३ ॥

धुस लोकाधिपशाय पौलस्त्येन्द्रसिं निमित्तः ।
तस्मात् त्वमद्यप्रभृति नूतकस्याः दायिष्यसे ॥ २४ ॥

कुम्भकर्ण । निश्चय ही इस कात्तब्र निनाघ करनेके
सिंघे ही विभक्ताने तुझे उत्पन्न किया है भक्त मैं धार देना
हूँ । आइसे तू मुझे कमल छत्र लेगे ॥ २४ ॥

प्रह्वशापाभिभूतोऽद्य निपपाताप्रतः प्रभोः ।
ततः परमसम्भ्रान्तो रायणा पान्यमप्रधीत् ॥ २५ ॥

ब्रह्मकीके धरपने अभिभूत होकर वह रणरङ्गक छत्रने
ही गिर पड़ा । इससे रणरङ्गक बड़ी परगदह हुए और उसने
कहा—॥ २५ ॥

प्रह्वस्य काञ्चनं धृष्टः फलकालं निवृत्त्यत ।
न नतार स्वकं न्याय्यं शान्मुमय प्रजापत ॥ २६ ॥

प्रयत्न । अपने द्वारा सम्भना और कदाया हुआ मुनर-
रूप कब होनेवाला कुछ पत्र होनेक सम्भ नहीं पाता जाना है ।
यह आरना नष्टी है इन इस प्रकार धर दना कशति उक्ति
नहीं है ॥ २६ ॥

न मिथ्यावचनञ्च त्वं स्वप्नस्येयं न सशयः ।

काकस्तु क्रियतामस्य शयने जगते तथा ॥ २७ ॥

‘ म्यापदी वाच कमी हूदी नहीं होती इतलिये अब इसे सेना ही पड़ेगा इधमें उपाय नहीं है परंतु म्याप इसके छिने और अगनेछाई करी समय निकल कर दे’ ॥ २७ ॥

रात्रयस्य वचः भ्रुव्या स्वयमूरिवृमद्यवित् ।

शयिता ह्येव पण्मासमेकह जागरिष्यति ॥ २८ ॥

पापपक्षा यह कथन सुनकर स्वयम्भू ब्रह्माने कहा—

‘ मस्यैव खेता रोग्य और एक दिन बोग्य ॥ २८ ॥

एकेमाहा त्वसौ धीरश्चरन् भूमिं बुभुक्षिता ।

व्यासात्सो भक्षयेत्सोक्तान् सपृष्ट इव पावकः ॥ २९ ॥

‘ तब एक दिन ही यह धीर भूखा होकर पृथ्वीपर विचरगा और प्रयत्नित भूमिके समान गृह पैदाकर बहुउत्तरे खेतीके खा खयगा ॥ २९ ॥

सोऽसौ व्यसनमापद्यः कुम्भकर्णमदोभयत् ।

त्वत्पराक्रमभीतश्च राज्ञा सम्प्रति राक्षसः ॥ ३० ॥

‘ प्यहाराज ! इस समय आपचितने पक्षर और आपके पराक्रमसे भयभीत होकर राजा रावनेने कुम्भकर्णको ब्याप्त है ॥ ३ ॥

स पर निर्गतो धीरः शिविरात् भीमविक्रमः ।

वानरात् मृशासक्तुन्धो भक्षयन् परिधावति ॥ ३१ ॥

‘ यह महानक पराक्रमी धीर अपने शिविरसे निकल कर और माल्यन्त कुपित हो वानरोंको खा खानेके छिमे उन और रोष खा है ॥ ३१ ॥

कुम्भकर्णं समीक्ष्यैव हरयोऽद्य प्रवृत्तुः ।

कथमेतं रूपे कुञ्ज पारयिष्यन्ति वानराः ॥ ३२ ॥

‘ जब कुम्भकर्णको देखकर ही आज खरे वानर प्राग चल ठब रजभूमिमें कुपित हुए इस धीरको य आगे बढ़नेसे कैसे रोक सकेंगे ? ॥ ३२ ॥

उच्यन्तां वानराः सर्वे यन्मस्तेतत् समुच्छिष्टम् ।

इति विश्राम्य हरयो भविष्यन्तीह निर्भयाः ॥ ३३ ॥

‘ तब वानरोंसे यह कह दिया कथ कि पर करी म्यक्ति नहीं बानाहाए निर्मित ऊँच फलमात्र है । ऐध खनकर वानर निभय हो खरेंगे ॥ ३३ ॥

विभीरणवचः भ्रुव्या हेतुमत् सुमुखोद्गतम् ।

उवाच राक्षसो वाक्य नीलं सेन्द्रपतिं तदा ॥ ३४ ॥

‘ विभीषणके सुन्दर मुखसे निकली हुई यह सुकिमुक्त यह सुनकर भीरुपुत्रयकीने सेन्द्रपति नीलो कहा— ॥ ३४ ॥

गच्छ सौम्यानि सर्वाणि ग्यूह्य तिष्ठस्य पापके ।

द्वाराभ्यान्नाय लज्जयाद्ययोश्चास्याय सकम्पयन् ॥ ३५ ॥

‘ मयिन्नन्दन ! अबसे कमल सेनाभौंधी मेधेकरी करके सुदक छिये तैयार रहो और बह्नाक हरीं ठब राक्षसोंपर अभिस्वर बनाकर वही उठे रहो ॥ ३५ ॥

शीलउद्ग्राणि बुभुक्ष्य शिलाभ्यान्पुसहरन् ।

भयन्तः सायुधाः सर्वे धानराः शैलपापयः ॥ ३६ ॥

‘ पर्यंतोंके शिलउद्ग्राणि बुभुक्ष और शिलार्थ एकत्र कर ल ठब तुम और सब वानर मरक राज पर पत्थर छिये तैयार रहो ॥ राक्षसेण समदिष्टो नीलो हरियमूपतिः ।

शशस वानरानीक पथावत् कपिकुञ्जरः ॥ ३७ ॥

‘ भीरुपुत्रयकीनी यह आज्ञा पाकर वानरसेन्द्रपति कथिभेठ नीलो वानरसेनिकोंको मयोनित करके छिये आरेण रिया ॥ ३७ ॥

ततो गथास्तः शरभां वनूमानञ्चस्तथा ।

शैलउद्ग्राणि शैलभा गृहीत्वा द्वारममम्युः ॥ ३८ ॥

‘ तदनन्तर गथास्त शरभ इनुमान और अह्व आदि पर्यंतोंकर वानर पर्यंतशिलर छिमे बह्नाके द्वारस उठ गये ॥ ३८ ॥

रामव्याकथयुपभुस्य हरयो क्षितकरशिला ।

पादपैरर्षयन् धीरा वानराः परबाहिनीम् ॥ ३९ ॥

‘ निबन्धेस्वच्छे सुप्रोमित होनेवाले धीर वानर भीरुमन्त्र धीधीं पूर्वाक आज्ञ सुनकर हृष्टोद्ग्राय शत्रुसेनको पीडित करने लगे ॥ ३९ ॥

ततो हरीणां तत्रनीकसुप्र

एराज शैलपतबृहाहस्ताम् ।

गिराः समीपात्सुग्त यथैव

महम्महाम्बोधरजात्मसुप्रम् ॥ ४० ॥

‘ तदनन्तर शरभोंमें शैल-शिलर और बुध छिये वानरोंकी यह भाकर सेना पर्यंतके लक्षीय सिंधि हुई मेधोधी बही मयी उग्र पराके समान सुप्रोमित होने लगी ॥ ४ ॥

इत्यार्ये धीनद्रमापके पराक्रमीके आदिशय्ये सुदकस्ये परकशितम सर्गः ॥ १३ ॥

एत प्रकर धीरपत्निकिर्निर्मत आरिनात्मन जर्भिकस्ये सुदकस्ये इस्सुदवीं सर्ग पूरा हुआ ॥ ६१ ॥

द्विपष्ठितम सर्ग

कुम्भकर्णका रावणके भयनमे प्रवेद्य तथा रावणका रामसे भय यथाकर
उसे शत्रुसेनाक विनाशक लिये प्ररित करना

स तु राक्षसशास्त्रो निद्रामवसमाकुलः ।
राजमार्गं धिया ज्ञुप ययौ विपुलविक्रमः ॥ १ ॥

श्रापराक्षी राक्षसधिरमणि कुम्भकर्णं निद्रा और मरते
म्यकुल हो अवसमा हुआ-सा शोभावाली राक्षसमति अब
था या ॥ १ ॥

राक्षसाना सहस्रेभ्य बृताः परमबुजया ।
शूरेभ्यः पुण्यवर्षेण कथ्यमाणस्तदा ययौ ॥ २ ॥

बह परम बुज्य बीर हजरो राक्षसे लिय हुआ याथा
कर था या । सङ्कके किनारेपर अब मकान थे उनमेंसे उधके
ऊपर पूज्य शस्त्रये अब रहे थे ॥ २ ॥

स हेमज्जलवितत भानुभास्वरवदनम् ।
बदश विपुल रम्य राक्षसेभ्यनिषेदानम् ॥ ३ ॥

उत्तने राक्षसराज रावणके रमणीय एवं विषमक मकानपर
दर्शन किया, जो खनेधी शक्तिसे आच्छादित होनेके कारण
सूर्यदेवके समान दीप्तिमान् शिवायी देता था ॥ ३ ॥

स तप्तवा स्य इवाभ्रजाल
प्रविश्य रक्षाधिपतनिषेदानम् ।

बदश शूरेऽप्रजमासनस्य
म्वयमुय दाक इरासनस्यम् ॥ ४ ॥

जमे सूर्य संचेकी प्रथमे जिय जयके, उधे प्रकर कुम्भकर्णने
राक्षसराजके मरुत्तमे प्रवेश किया और राक्षसिहासनपर दे
हुए अपने मारक दूरन ही देना माना इयराज इन्द्रने
दिश्य कम्यरसनपर विराजमान स्वयम्भू नमोऽस्य दर्शन
किया हो ॥ ४ ॥

भानुः स भयत गच्छन् रक्षोगणसमन्वितः ।
कुम्भकर्ण्यः पदभ्यासेरकम्ययत मदिनीम् ॥ ५ ॥

राक्षसेष्वहित कुम्भकर्ण भयने मारक भयनमे जते समय
जब-जब एक-एक पैर आगे बढ़ाता था तब-तब शूची सौंय
उठती थी ॥ ५ ॥

साऽभिगम्य गृह भानुः कक्ष्यामभिविगाहा य ।
बहोऽङ्घ्रिप्रमार्शान विमान पुण्यके शुभम् ॥ ६ ॥

मार्शक भयनमे जाकर जब यह भीतरपी कक्ष्यमे प्ररित
हुआ तब उठन भयन यह मारक उद्विग्न भयन्यामे पुण्यके
विमानपर विराजमान देता ॥ ६ ॥

अथ दृष्ट्वा वार्मायः कुम्भकर्णमुपस्थितम् ।
दूषमुपाय सहस्रः सनिकरमुपसनयत् ॥ ७ ॥

कुम्भकर्णके उपस्थित देख इतमुल रावण तुरत उठकर
छड़ा हो गया और बड़े हाके साथ जते अपने समीप
बुझ किया ॥ ७ ॥

अयासीनस्य पयशु कुम्भकर्णां महापलाः ।
आतुवयन्द शरपौ कि कृत्पमिति चाप्रधीत् ॥ ८ ॥

महाक्षत्री कुम्भकर्णने सिंहासनपर बैठे हुए अपने मरुत्त
करजोने प्रणाम किया और पूछा—कौन-कौन कर्य आ
पड़ा है ? ॥ ८ ॥

उत्पत्य सैन मुदितो रावणः परिपन्वज ।
स भ्रात्रा सम्परिप्यक्तो यथाश्याभिनमित्तः ॥ ९ ॥

रावणने उठकर बड़ी प्रकृतिक साथ कुम्भकर्णके
हृदयसे प्रण किया । मरुत्त रावणने उठका आस्विन करके
यथाशक्त्यसे अभिनन्दन किया ॥ ९ ॥

कुम्भकर्णः शुभ दिश्य प्रतिपद्ये घरासनम् ।
स सहासनमाधित्य कुम्भकर्णां महापलाः ॥ १० ॥

सरकमनयः श्राधान् रायण पापयमप्रवीत् ।
इधके पा कुम्भकर्ण सुन्दर दिश्य सिंहासनपर बैठा ।
उठ मालनपर बैठकर महाक्षत्री कुम्भकर्णने मरुत्तने प्रण
भौने किया रावणने पूछा— ॥ १० ॥

किमयमहम्राहस्य स्वया राजन् प्रयाभितः ॥ ११ ॥
दास कस्माद् भय तऽयं का वा प्रया भविष्यति ।

शान्त् । किन्तु लिये तुमने यह आदरक साथ मुक्त
क्याया है ? वताभी, यहाँ तुम्हें किससे भय प्राप्त हुआ है ?
अथवा कौन परलोकक पथिक होनेवाला है ? ॥ ११ ॥

आतर रावणः मुन्द कुम्भकर्णमयन्वितम् ॥ १२ ॥
रायण परिचुत्वाभ्यां नश्राभ्यां पात्स्यमप्रवीत् ।

तब रावण भयने पर वं हुए बुनित मरुत्त कुम्भकर्णने
राजक शस्त्र भौने किय कथ्य— ॥ १२ ॥

अथ त सुमहान् फलः शयानस्य महापल ॥ १३ ॥
सुपुनस्य न जानीय मम रामकृत भयम् ।

महाक्षत्री धीर । तुम्हारे मय शय्य शोभन स्थित हो
गया । तुम यदि निद्रामे निमग्न होकर शय्य नही बनते
कि मुझे हमने भय प्राप्त हुआ है ॥ १३ ॥

एव शार्त्तयिः शीमान् मुर्मयन्मदिता यन्तः ॥ १४ ॥
समुद्र मृदुवित्वा तु मूक नः परिकृतन्ति ।

अ इतरवदुमार बरतान् भीमान् एव सुचारक साथ

समुद्र अर्पण पर्यो आयो है और हमारे कुछका विनाश कर रहे हैं ॥ १४३ ॥

हस्त पश्यत्य नङ्गाया वनङ्गस्युपवनाणि च ॥ १५ ॥
लेहना सुखमागत्य धानरैकार्णव कृतम् ।

धाम । देसो तो सही समुद्रमें पुछ बाँपकर सुखपूर्वक पर्यो आयो हुए धानरौने चङ्गाके समस्त बनों और उपकनोंको एकत्रैवमम कता दिया है—यहाँ धानरक्यो कुछका समुद्र-ख खर रहा है ॥ १५३ ॥

ये राक्षसा मुख्यतमा हतास्ते धानरैर्युधि ॥ १६ ॥
धानराया ह्ययं युधे न पश्यामि कथञ्चन ।
न चापि धानरा युधे जितपूर्वाः कदाचन ॥ १७ ॥

धमरे जो मुख्य-मुख्य उखल बीर ये उन्हें धानरौने युद्धमें मार ब्रह्म किंरु रणभूमिमें धानरौंन खर होला मुझे किसी तरह नहीं दिखायी देता । युद्धमें कभी कोई धानर पहल खेत नहीं गया है ॥ १६ १७ ॥

तदेतद् भयमुत्पन्न प्रायस्वेह महाबल ।
माहाय रश्मिमानघ तव्यो बोधितो भवान् ॥ १८ ॥

महाबली बीर । इस समय हमारे ऊपर यही मय उपस्थित हुआ है । तुम इससे हमारी रक्ष कर और ठाक इन धानरौंको नष्ट कर दो । इसीप्रिय हमने तुम्हें बताया है ॥ १८ ॥

सर्वक्षपितकोश च स स्वमभ्युपपद्य मत्म् ।
त्रायन्वेमा पुर्वे लङ्का याञ्चवृथावदोषिताम् ॥ १९ ॥

धमार खर लम्बा लाली हो गया है मताः मुझपर अनुग्रह करके तुम इस लङ्कापुरीमें रखा करो मय यहाँ केवल बाजक और हृद ही घेर रह गया है ॥ १९ ॥

इत्यार्ये भीमजामाघच बाकसीकीये आधिकार्ये पुत्रकण्ठे द्विपश्चिमाः सर्गाः ॥ १२ ॥

इस प्रकार भीमजामाघचिनिर्जित आर्यतमानन मन्त्रिकर्मके पुत्रकण्ठन नाछरौं सर्ग पूरा हुआ ॥ १२ ॥



त्रिपष्टितम सर्ग

कुम्भकण्ठा रात्रणको उसक कुहृत्योंके लिये उपात्म देना और उसे धैर्य बँधाते हुए युद्धविषयक उस्ताह प्रकट करना

तस्य राक्षसराजस्य निद्राम्य परिदक्षितम् ।
कुम्भकण्ठो धमायद् यद्यन प्रजहास च ॥ १ ॥

राक्षसराज रात्रणय यह निद्राय सुनकर कुम्भकण्ठे ठण्डक मारकर हँस खर और इस प्रकार बोल— ॥ १ ॥

दयो दाया हि याऽस्मान्निः पुरा मन्थयिनिर्णये ।
दितध्वननिमुक्ता सोऽधमासादितस्त्वया ॥ २ ॥

भारतार । परल (निर्भीक आदिक खप) निवार

आतुरर्ये महाबाहो कुब कर्म सुपुण्डरम् ।
मयैव नोकपूर्थो हि भ्राता कश्चित् परतप ॥ २० ॥

भारतारो । तुम अपने इस भार्यके लिये अत्यन्त दुःख परकम करो । परतप । भास्ते परले कभी किसी भार्ये में देखी अनुरय-विनय नहीं थी थी ॥ २ ॥

त्यय्यसि मम च स्नेहा परा सम्भावन च मे ।
वेद्यासुरेषु युधेषु वहुशो राक्षसर्षभ ॥ २१ ॥
त्वया वेधाः प्रतिष्पृष्टा निर्वृतास्मासुरा युधि ॥ २२ ॥

तुम्हारे ऊपर मेरा बड़ा स्नेह है और मुझे तुमसे बड़ी आशा है । राक्षसधिगणके । तुमने देवासुर-संघमके अस्मदी-पर अनेक बार प्रतिष्पृष्टीका खान धरु रणभूमिमें देखदम और असुरोंको भी परतप किया है ॥ २१ २२ ॥

त्वेतद् सर्वमासिद्ध वीर्ये भीमपराक्रम ।
नहि ते सद्यभूतेषु हृद्यते सद्यो वली ॥ २३ ॥

मताः मयंकर पराक्रमी बीर । तुम्हीं यह बात मरुण-पूर्व कार्य समझ कर क्योंकि समस्त प्राणियोंमें तुम्हारे समान यजमान् मुझे वृष्ट करे नहीं दिखायी देता है ॥ २३ ॥

कुहच मे प्रियहितमेतदुत्तमं
यथाप्रिय प्रियरज बान्धवप्रिय ।
स्वतज्जसा व्ययय सपञ्चबाहिर्नी

शरवृष्ण पवन इत्योद्यतो महान् ॥ २४ ॥

तुम युद्धमें ही तो ही अपने कन्ध-बन्धुकोसे भी बड़ा प्रेम रखते हो । इस समय तुम मेरा यही प्रिय और उचम श्रित करो । अपने तेकसे शत्रुभोंको सेनाको उखी तरह व्यपित कर दो, जैसे केसल ठण्डे हुई मन्थक बासु धण्ड श्रुद्धके धारकोंके क्षिप्र-निष्ठ कर देती है ॥ २४ ॥

इत्यार्ये भीमजामाघच बाकसीकीये आधिकार्ये पुत्रकण्ठे द्विपश्चिमाः सर्गाः ॥ १२ ॥

इस प्रकार भीमजामाघचिनिर्जित आर्यतमानन मन्त्रिकर्मके पुत्रकण्ठन नाछरौं सर्ग पूरा हुआ ॥ १२ ॥



त्रिपष्टितम सर्ग

कुम्भकण्ठा रात्रणको उसक कुहृत्योंके लिये उपात्म देना और उसे धैर्य बँधाते हुए युद्धविषयक उस्ताह प्रकट करना

तस्य राक्षसराजस्य निद्राम्य परिदक्षितम् ।
कुम्भकण्ठो धमायद् यद्यन प्रजहास च ॥ १ ॥

राक्षसराज रात्रणय यह निद्राय सुनकर कुम्भकण्ठे ठण्डक मारकर हँस खर और इस प्रकार बोल— ॥ १ ॥

दयो दाया हि याऽस्मान्निः पुरा मन्थयिनिर्णये ।
दितध्वननिमुक्ता सोऽधमासादितस्त्वया ॥ २ ॥

भारतार । परल (निर्भीक आदिक खप) निवार

कते सम्य इनकीगैने जो रोप देला था वही तुम्हें इस समय प्राप्त हुआ है । क्योंकि तुमने श्रित ही पुत्रों और उनकी शत्रुपर विश्वास नहीं किया था ॥ २ ॥

शीर्षं सद्यभ्युपत त्वां फल पापस्य कमणा ।
निरयेष्येह पठन यथा दुष्कृतकमणा ॥ ३ ॥

धुम्में धीम ही अपने पापकर्मका फल सिद्ध गया । जैसे कुम्भी पुत्रोंका मरुद्धमें पड़ना निश्चित है उसी प्रकार

दुर्गे मी अपने दुष्कर्मा का फल मिठना भवस्यम्भावी या ॥
 प्रथमं वै महाराज कृत्यमेतद्विचिन्तितम् ।
 केवलं धीर्यद्वेषेण नानुबन्धो विचारितः ॥ ४ ॥
 पहायाज । कथं पसकं पसंइसे तुमने पहले इस पाप-
 कर्मकी खेरी परखा नहीं की । इसके परिणामका कुछ भी
 विचार नहीं किया था ॥ ४ ॥
 या पश्चात्पूर्वकार्याणि कुर्याद्वैश्वर्यमास्थितः ।
 पूर्वं चोत्तरकार्याणि न स्य वेद् नयानयी ॥ ५ ॥
 जो ऐश्वर्यके अभिमानमें आकर परत करनेवाप्य
 श्रयंका पीठे करता है और पीठ करनेकेपय श्रयंको पहले
 कर शक्या है, वह नीति तथा मनीसिद्ध नहीं बनता है ॥ ५ ॥
 वेदाकारसविहीनानि क्रमाणि विपरीतव्यत् ।
 क्रियमाणानि दुष्यन्ति हर्षोप्यप्यपतेप्यिव ॥ ६ ॥
 जो श्रयं उचित वेदा-कार न होनेपर विपरीत स्थितिमें
 किये जाते हैं वे संस्कारहीन अभियोगमें हाम गय हविष्यकी
 मूर्ति केवल तुल्यके ही कारण हात हैं ॥ ६ ॥
 प्रयाणां पञ्चधा योग क्रमणां या प्रपद्यते ।
 सखियैः समय कृत्या स सम्पन् फलत पथि ॥ ७ ॥
 जो राज सखियोंके साथ विचार करके धय, बुद्धि और
 स्थानपरसे उपस्थित काम दान और दण्ड—इन तीनों
 क्रमोंके पूर्व प्रकरके प्रयोगकर फलमें कदा है वही उत्तम
 नीति-मार्गपर विद्यमान है ऐसा समझना चाहिये ॥ ७ ॥
 पपागम स यो राजा समय स विस्मरति ।
 पुष्यत सखिवैरुद्वेगा सुहृद्वभानुपश्यति ॥ ८ ॥
 जो नरय नीतिशास्त्रक अनुकर मन्त्रियोंके साथ श्रयं
 शरिते केवल उपयुक्त कथनकर विचार करके अनुकर श्रयं
 करता है और अपनी बुद्धिमें सुहृदोंकी भी परवान कर तथा
 है वही कृतम और न इत्येवम नियेक कर बना है ॥ ८ ॥
 धममर्षे हि काम या सैवात् या रक्षसा पत ।
 भञ्जत पुढयः फल त्रीणि ह्यद्भानि या पुन ॥ ९ ॥
 पण्डितान् । नीतिज्ञ पुढयका चाहिये कि धर्म अर्प
 या कामका भयना करके अपने समयपर सयन करे भयना

तीनों ह्यदोष—धर्म-अर्प, अर्प-धम और काम-अर्प इन उपयुक्त
 भी उपयुक्त समयमें ही सेवन करे ॥ ९ ॥
 त्रिषु सैतषु यच्छ्रेष्ठ भृत्या तत्रायवुष्यत ।
 राजा वा राजमानो वा व्यर्थं तस्य वक्तुमुत्तमम् ॥ १० ॥
 धर्म, अर्प और काम—इन तीनोंमें धर्म ही भेद है
 अत विशेष अयसर्वपर अर्प और कामकी उपेक्षा करके भी
 धमका ही सेवन करना चाहिये—इस बातको विषयकीय पुढयों
 से सुनकर भी जो राज या राजपुढय नहीं समझता भयना समझकर
 भी लौकार नहीं करता, उक्त अनेक शास्त्रोंका अभ्यस
 व्यर्थ ही है ॥ १० ॥
 उपपश्यन् सान्त्स्य स मेव काले च विप्रक्रमम् ।
 योग स रक्षसां भेष्ट तदुभौ च नयानयी ॥ ११ ॥
 काले धर्मार्थकामानुषः सम्मन्थ्य सखियैः सह ।
 निषेधेतात्मर्योऽल्लोके न स व्यसनमप्यनुयात् ॥ १२ ॥
 पण्डितोंके समय । जो मनस्वी राज मन्त्रियोंके अर्प
 तरह कदा करके समयके अनुकार दान, भद और पण्डित
 इनके पूर्वके पाँच प्रकारके कामका, नय और भयना तथा
 ठीक समयपर धर्म अर्प और कामका सेवन करता है यह
 इस शकमें कभी दुःख या विपत्तिका भागी नहीं होय ११ १२
 हितानुपगममालोप्य कुष्यात् क्षयमिहा मनः ।
 राजा सहार्थतत्त्वयैः सचिवैरुशिक्षिणीविभिः ॥ १३ ॥
 पण्डितोंके चाहिये कि वह अथतत्त्व एवं बुद्धिहीनी
 मन्त्रियोंकी कदा करके अपने श्रिय परिणाममें रितकर
 दिनाकी वेदा हा, वही धर्म करे ॥ १३ ॥
 मनभिमाय दासायात् पुढय पनुषुष्यत् ।
 प्रागदभ्यात् वक्षुमिच्छन्ति मन्त्रिष्वभ्यन्तरीकृता ॥ १४ ॥
 जो पण्डित समान बुद्धिवाक किले तरह मन्त्रियाक भीतर
 समिहित पर श्रिय गये हैं वे शास्त्रक अर्पमें तो अनत नह,
 फलक पृथक्पथ सर्व पनाना चाहते हैं ॥ १४ ॥
 अशास्त्रविशुगा तथा कार्य नाभिहित धयः ।
 अशास्त्रानभिमाना विपुलां धियमिच्छन्ताम् ॥ १५ ॥
 शास्त्रक ज्ञानसे धन्य और अशास्त्रक अनभिज्ञ हात
 हुए भी प्रसुरकमवि चाहनेराज उन अशास्त्र मन्त्रियोंकी वही
 हुई हात कभी नहीं माननी चाहिये ॥ १५ ॥

१ धर्मका अर्थ है करनेका कथन पुढय और सम्पन्न
 कर्मणः, वेद-शास्त्रके विधान विहितसे कर्मके उपाय और धर्म
 की सिद्धि—इ तीन प्रकारके धय ह ।
 २ नर जननी इति आर एतुये इतिनध सनत हा तव
 एतान्तर्ये वन (सुहृदय) कथा है । अर्पण और एत-
 कथन श्रिय हा जो कामकाक श्रिय कर जेना जना है । जो नर
 जननी इति और एतुये इति धय सनत हा नर उत उत दक्ष
 कथन कथन कथन कथन कथन हाय है ।

वही पर हात वही वही है कि शास्त्रक अनुकर का कथ
 ५ हा कथ कथने कथन और एतिये कथनक हा कथन
 है, कथ उन उन कथनके जो मन्त्रिक कथन कथन कथन कथन
 कथन कथने धर्म और कथन कथन कथन कथन कथने धर्म और पर
 थ और एतिये कथ और कथन कथन करे । नर उत उत कथ
 ६ हा ही कथन कथन है नर उत कथन कथन कथन कथन

अहितं च हितकारिणां धारणात्प्रत्ययित्ति ये नराः ।

अवश्यं मन्त्रवाद्यांस्ते कर्तव्याः कृत्यवृत्तयः ॥ ११ ॥

ज्येष्ठा पृथक्करेण अहितकर वाक्ये हितकर क्य
वेकर करते हैं, वे निश्चय ही उच्छ्रय देने योग्य नहीं हैं । अतः
उन्हें इत करके अलग कर देना चाहिये । वे तो कर्म
निष्पन्ननेवाले ही होते हैं ॥ ११ ॥

विनाशयन्तो भूतारं संहिताः शत्रुभिर्नुषैः ।

विपरीतानि कृत्यानि कारयन्तीहि मन्त्रिणाः ॥ १७ ॥

कुछ बुरे मन्त्री काम आदि उपयोंके कृता शत्रुओंके
साथ मित्र करते हैं और अपने स्वामीको विनाश करनेके किये
ही उसके विपरीत कर्म करवाते हैं ॥ १७ ॥

तान् भवा मित्रसन्धारानमिवात् मन्त्रनिषेधे ।

व्यवहारेण जानीयात् सधियानुपसहितान् ॥ १८ ॥

जब प्रिये वस्तु या कर्मके निश्चयके किये मन्त्रियोंकी
उच्छ्रय की जा रही हो उत समय एक व्यवहारके द्वारा ही उन
मन्त्रियोंके परचयनेका प्रयत्न करो, जो पूरा आदि लेकर
शत्रुओंके मित्र गये हैं और अपने मित्र-से बने रहकर वास्तवमें
शत्रुको काम करते हैं ॥ १८ ॥

अपसहयेह कृत्यानि सहस्रानुपधाकृतः ।

छिद्रमस्ये प्रपद्यन्त शीघ्रस्य समिव द्विजाः ॥ १९ ॥

ज्येष्ठो यथा चक्रम है—आयतरमधीय वचनोंको सुनकर
ही अनुप हो जाता है और उरुता किता छोड़े-लिचारे ही किसी
भी कर्मकी ओर दौड़ पड़ता है उसके इस छिद्र (दुर्बलता)
को शत्रुत्वमें उठी तरह ताड़ जाते हैं जैसे शीघ्र पर्वतके छेद
का पत्थी । (शीघ्रपर्वतके छेदके होकर पत्थी जैसे पर्वतके उस
पार आत करते हैं उठी तरह शत्रु भी राजाके उस छिद्र का
क्रमशःसे काम उठाते हैं) ॥ १९ ॥

यो हि शत्रुमवधाय आरमात् नाभिरक्षति ।

अशांतिरिति साऽनधान्यस्यानाद्यप्यरोप्यते ॥ २० ॥

जो राजा शत्रुकी अवरोधना करके अपनी रक्षाका प्रयत्न
नहीं करता है वह अनेक अनर्थात्मक शत्रुके श्रेया और अपने
स्वाम (राज्य) से नीचे उतार बिच जाता है ॥ २० ॥

यदुक्तमिह स पूर्वं प्रियया प्रऽनुजेन च ।

तदप नाहितं वाक्यं यथेच्छसि तथा कुतः ॥ २१ ॥

जुगुप्सो प्रिय कस्त्री मन्त्ररी और मेरे छोट भाई
निश्चयन वह-तुममें जो कुछ कहा जा यही हमारे किये
हितकर या । जो जुगुप्सो कस्त्री इच्छा हो सेवा करो ॥ २१ ॥

तत्तु शुभराज्यामीश कुम्भरूपस्य भाषितम् ।

अदुर्दिं वीप सवतः मुञ्चन्धनमभारत ॥ २२ ॥

कुम्भरूपी वह का मुनरर दयकुन एवम् भाई
दुर्दिं कर ली और दुर्दिं दाम उन्ने कहा— ॥ २२ ॥

मान्यो गुरुरिवाद्याया किं मां स्वमनुशासते ।

किमेव वाक्प्रभं कृत्वा यत् युक्तं तत् विधीयताम् ॥ २३ ॥

जुम माननीय गुरु और आचार्यकी मूर्ति मुझे उन्ने
क्यों दे रहे हैं ! इस तरह माया देनेका परिष्क करनेसे स्व
काम होमा ! इस समय जो उचित और आवश्यक है
काम करो ॥ २३ ॥

विभ्रमाश्चित्तमोहात् या वल्लवीयाभयेन वा ।

याभिपद्यमिदानीं यत् स्वर्था तस्य पुनः कथा ॥ २४ ॥

जैसे भ्रमसे, चित्तके मोहसे अवस्था अपने एक-परकमसे
मरने परहे जो तुमकोमोही बात नहीं मानी थी, उन्नी इत
काम पुनः बचा करना स्वर्ग है ॥ २४ ॥

अस्मिन् करते तु यत् युक्तं तद्विशर्मा विधित्यतमम् ।

गर्वं तु नाशुशोचन्ति गतं तु गतमेव हि ॥ २५ ॥

ममापनयज दोष विक्रमेण समीकुत ।

ज्येष्ठो वीत गमी खे तो वीत ही गमी । बुद्धिपर
कर्म वीत वाक्य किये बार-बार शोक नहीं करते हैं । अतः इत
काम हमें क्या करना चाहिये इसका विचार करो । अपने
परकमसे मेरे अनीति-वर्तिन तु-लका शान्त कर दो ॥ २५ ॥

यदि कृत्यस्ति म स्नहो विक्रमं याभिगाच्छसि ॥ २६ ॥

यदि कार्यं ममैतत्ते हृदि कार्यतमं मतम् ।

जब मुझपर तुम्हारा स्नेह है यदि अपने मीतर बंधे
परकम कामसे हो और यदि मेरे इस कामको परम कर्ममें
कामकर हृदयमें स्थान देते हैं तो मुझ करो ॥ २६ ॥

स सुहृत् यो विपद्यार्थं दीनममुपपद्यते ॥ २७ ॥

स शत्रुर्षोऽपनीतयु साहान्यायोपकल्पते ।

वही सुहृत् है जो कष्ट कर्म नष्ट हो जानेसे दुःखी हुए
लक्षणपर अभय अनुग्रह करता है तथा वही शत्रु है जो
अनीतिके मार्गपर बचनेसे संकटमें पड़े हुए पुरुषोंकी धर्मरक्ष
करता है ॥ २७ ॥

तमपेयं सुशय्य स यजन् धीरश्रुतजम् ॥ २८ ॥

कथंऽपमिति विद्याय दानेः ऋणमुपाय ह ।

राजको इत परकर धीर एवं दास्य कर्म करते देख
उसे कष्ट कामकर कुम्भरूपी धीर धीरे मयुर कर्मीमें कुछ
बचनेको उद्यत हुआ ॥ २८ ॥

अस्वीप हि सामानस्य भातर धुभितन्निपम् ॥ २९ ॥

कुम्भकथः "नैषाक्य कभापर परिसाम्प्रत्यन् ।

उत्तरे राजा मर मन्त्ररी लारी इन्द्रियों अन्त्य विद्युत्
दा उठी है; अतः कुम्भरूपने धीर धीरे उसे कर्मरक्ष देते
हुए कहा— ॥ २९ ॥

शत्रु राजप्रवर्दिता मम वाक्यमरिचम् ॥ ३० ॥

मत्त रासमराजम् मत्तपमुपाय त ।

रोपं च सम्परित्यज्य स्वस्थो भवितुमर्हसि ॥ ३१ ॥

अनुभवन महायत्न । रावणान हाकर मेरी बात सुनो ।
उल्टाया । संताप करने मर्या है । अब तुम्हें रोप त्यागकर
स्थ हो जाना चाहिये ॥ १ ३१ ॥

मैतममसि कतम्य मयि जीयति पार्थिव ।

तमर्हं नाशयिष्यामि यत् एत परित्यजे ॥ ३२ ॥

शुचीनाय । मेरे अंदरे भी तुम्हें मनने एसा भाव नहीं
होगा चाहिये । तुम्हें किन्तु करण उल्टा होना पड़े रहा है,
उसे मैं नष्ट कर दूँगा ॥ ३२ ॥

मयस्य तु हित वाच्यं सर्वायस्य मया तव ।

वाणुभावाद्भिहितं भ्रातस्नेहाच्च पार्थिव ॥ ३३ ॥

महायत्न । अस्व ही सब भवत्याभोगं मुझे तुम्हारे
हितकी बात कहनी चाहिये । अतः मैंने बन्धुभाव और भ्रातृ
स्नेह करण ही से बातें कही हैं ॥ ३३ ॥

सद्यो यच्च कालेऽस्मिन् कर्तुं स्नेहेन वाणुना ।

शत्रुणां कर्तनं पश्य क्रियमाणं मया त्वे ॥ ३४ ॥

इस समय एक मात्र स्नेहका अ दुःख करना उचित
है बरी कहेंगे । अब रणभूमिमें मेरे द्वारा किया जानेवाला
घनुभोग का देखा ॥ ३४ ॥

अथ पश्य महाबाहो मया समरभूमिनि ।

इतं रामे सह भ्रात्रा द्रुपन्तीं हरिवाहिनीम् ॥ ३५ ॥

महाबाहो । आज युद्धके मुशानेपर मेरे द्वारा मर्याकृत
एक मार करनेक पश्चात् तुम देखोगे कि वनरोंकी सेना
किन्तु उल्टे भंगी अ रही है ॥ ३५ ॥

अथ रामस्य तद् दृष्ट्वा मयाऽऽनीत रणाच्छिप्रा ।

सुखी भद्र महाबाहो सीत्या भयतु तुःक्षिता ॥ ३६ ॥

महाबाहो ! आज मैं समानभूमिसे उमका छिद्र का
काँटे । उसे देखकर तुम सुखी होना और सीत्या दुःखमें
हूँ अयोगी ॥ ३६ ॥

अथ रामस्य पश्यन्तु निधनं सुमहत् प्रियम् ।

सङ्गत्या राक्षसाः सर्वे ये तं निहतपान्धवाः ॥ ३७ ॥

अनुभवे किन्तु एतोंके सगे-सम्बन्धी मारे गये हैं वे भी
आज रामकी मृत्यु होन लें । यह उनके शिष्य बहुत ही शिष्य
वात होगी ॥ ३७ ॥

अथ द्वाकररीतातां स्वयन्पुषपाचिन्वम् ।

दशयुधि विनाशेन कराम्यभ्रुप्रमाज्ज्वलम् ॥ ३८ ॥

अपने माई-काजुओंके मर जानेके अ बाद अत्यन्त
दुःखमें दुःख हुए हैं आज युद्धमें एतका नष्ट करके मैं उनको
अनुषंगी ॥ ३८ ॥

अथ पश्यसकां च सख्यमियं तावत् ।

विकीर्णं पश्य समत् सुमीयं पृथगभ्यरम् ॥ ३९ ॥

‘आज पर्यन्तके समान विघ्नकाय वानरराज सुमीयको
उमराजपने लूतने लक्ष्य होकर गिरे हुए दशासना, अ सर्व
सहित मरक समान दग्धकर होंगे ॥ ३९ ॥

अथ च राक्षसैरेभिर्मया च परिसान्त्विताः ।

त्रिभासुभिर्वाशारथिं व्यथसे त्वं सद्दानघ ॥ ४० ॥

निष्पाप निष्ठाचरराज । ये राक्षस तथा मैं-स्य लक्ष्य
दशरथपुत्र एतका मर जानेकी इच्छा रखते हैं और तुम्हें
इस बातके शिष्य भादवास्तुन देते हैं तो मैं तुमका शिष्यित कर्वा
खते हूँ ॥ ४० ॥

मां निहत्य किञ्च त्वां हि निहनिष्यति राघवः ।

अहमारमणिं संतापं गच्छत्यं राक्षसाधिप ॥ ४१ ॥

राक्षसराज ! पहले मेरा बच करके ही राम तुम्हें मार
सकेंगे किन्तु मैं अपने शिष्यमें रामसे संताप या मननहीं
मानता ॥ ४१ ॥

कामं त्विदानीमपि मां भ्याद्विदा त्वं परतप ।

न परः प्रसङ्गीयस्तं युद्धापातुसविक्रम ॥ ४२ ॥

‘घनुभोगोंके संताप देनेवाला अनुपम पराक्रमी वीर । इस
समय तुम इच्छानुसार मुझे युद्धके शिष्य आदेश दो । घनुभोगोंसे
शुक्रनेके शिष्य तुम्हें पहले किन्हींकी अर देखनेकी आवश्यकता
नहीं है ॥ ४२ ॥

अहमुत्साद्यिष्यामि दाशूस्तय महाबलान् ।

यदि दान्त्रो यदि यमो यदि पायकमाकतो ॥ ४३ ॥

तानह योधयिष्यामि कुशरयकृपाययि ।

‘तुम्हारे महाशक्ती घनु यदि इन्द्र यम अग्नि, वायु,
कुशर और बरुण भी हों तो मैं उनसे भी युद्ध करूँगा तथा
उन लक्ष्य तलाश करूँगा ॥ ४३ ॥

गिरिमात्रदारीस्य दितदुल्लभरस्य म ॥ ४४ ॥

नक्षतस्त्रीकृष्णवृष्टस्य विभीषण्यं ये पुरन्दरः ।

मेरा परतके समान विघ्नका वीर है । मैं हाथमें तीक्ष्ण
त्रिण्डा भारत करता हूँ और मेरी दाँतें भी बहुत तीक्ष्ण हैं ।
मेरे शिनाद करनेपर इन्द्र भी भयसे बरा उठेंगे ॥ ४४ ॥

अथ वा त्यक्तदासस्य मूत्रतस्तरसा रिपून् ॥ ४५ ॥

न मं प्रतिमुखाः कश्चित् स्यात्तु दाको जिर्जीषियुः ।

अपना यदि मैं एतका त्याग करके भी वेगानक घनुभोगों
का वीरता दुःख रणभूमिमें विचरने लूँ तो माई भी अग्नि
खनेकी इच्छाका वृष्य मर जानेसे नहीं उतर सकता । ४५ ॥
मैंने दासपत्या म गदप्या नासिन्ध निश्चिताः गरः ॥ ४६ ॥
हस्तध्यामयं सराम्यं दमिष्यामि सपत्नियम् ।

मैंने तो एतके न गदान न तकराम और न वेने
कानाम ही काम दिये । एतम भरकर काँडे दोनों हाथों ही
बन्धनी इन्द्र वन घनुभोग भी माँवक पाद एतक दूरे ॥ ४६ ॥

यदि मे मुष्टियेगं स राक्षसोऽथ सहिष्यति ॥ ४७ ॥
नतः पास्यन्ति बाणैश्च रुधिर राभवस्य मे ।

यदि राम अन्न मेरी मुष्टीका बेग सह हूँगी तो मेरे बाण
अवश्य ही उनका रक्त पान करेंगे ॥ ४७ ॥

या सप्यसे राजन् किमप्ये मयि तिष्ठति ॥ ४८ ॥
गन्धुविनाशाय त्वं मिर्यातुमुद्यतः ।

राजन् ! मेरे खते हुए तुम किसझिमे चिन्ताकी आगते
सह्य रहे हो ! मैं तुम्हारे घनुप्रोक्ष विनाश करनेके झिमे
सभी रणभूमिमें जानेका उद्यत हूँ ॥ ४८ ॥

मुञ्च रामाद् भय घोरं सिंहनिष्यामि सयुगे ॥ ४९ ॥
राभव इक्ष्मण्य धैर्यं सुग्रीव्य च महावलम् ।

जुम्हें रामसे जो घोर भय हो रहा है उसे त्याग दो ।
मैं रणभूमिमें राम इक्ष्मण और महाकाजी सुग्रीवको मारकर
मार जाऊँगा ॥ ४९ ॥

हनुमस्त च रक्षोर्णं येन जज्ञा प्रवीरिता ॥ ५० ॥
हरीश्च भक्षयिष्यामि संयुगे समुपस्थिते ।
असाधारणमिच्छामि त्वं दातुं महत् यथा ॥ ५१ ॥

बुद्ध उपस्थित होनेपर मैं राक्षसोंका धार करनेवाला
उस हनुमान्को भी शक्ति नहीं छोड़ूँगा किन्तु जज्ञा कर्मनी
थी । साथ ही अन्य बातोंको भी छा आऊँगा । आज मैं
तुम्हें अश्वेकिक एवं महान् वध प्रदान करना चाहता
हूँ ॥ ५०-५१ ॥

यदि चेन्द्राद् भय राजन् यत्रिंश्चापि क्षयमुयः ।
सतोऽहं माशयिष्यामि नैरा तम इवांशुमान् ॥ ५२ ॥

प्राजन् ! यदि तुम्हें इन्द्र भयना स्वयम् प्रकाशे भी
भय है तो मैं उस भयना भी उसी तरह नष्ट कर दूँगा जैसे
सूर्य रात्रिक भयनाशको ॥ ५२ ॥

अपि दयाः शयिष्यन्त मयि सुन्दे महीतळे ।
यम च क्षमयिष्यामि भक्षयिष्यामि पाककम् ॥ ५३ ॥

मेरे दुष्टित होनेपर देवता भी भयगामी हो जाएंगे ।
(फिर मनुष्यों और जानवरों का कत ही क्या है ?) मैं यम-

हृत्पापें श्रीमद्रामायण वाल्मीकीय आदिवाक्ये बुद्धकाण्डे त्रिपठितः समाः ॥ ५३ ॥

एत प्रकार श्रीरामदेवनिर्मित श्री रामायण आदिवाक्यके बुद्धकाण्डमें त्रिपठित सर्व पूरा हुआ ॥ ५३ ॥

राजको भी शान्त कर दूँगा । सर्वशक्ति भविका भी मार
कर आऊँगा ॥ ५३ ॥

व्याधित्य पातयिष्यामि सनक्षत्रं महीतळे ।
शतक्रतुं यथिष्यामि पास्यामि परुणाक्षयम् ॥ ५४ ॥

जसबौखरित सर्वको भी दृष्टीपर मार निरुद्धेगा, इन्द्र
भी बध कर जाऊँगा और छत्रको भी पी आऊँगा ॥ ५४ ॥

पर्वताक्षर्ययिष्यामि वारयिष्यामि मेदिनीम् ।
वीर्यकाण्डे प्रसुप्तस्य कुम्भकर्णस्य विक्रमम् ॥ ५५ ॥

अथ पश्यन्तु भूतानि भक्षयमाणानि सर्वशः ।
न त्विद् भविष्य सर्वमाहारो मम पूर्यते ॥ ५६ ॥

पर्वतोंको चूर-चूर कर दूँगा । यमकाको किरिय कर
जाऊँगा । आज मेरे इन्द्र काये जानेवाले सब प्राणी दीर्घकाल
तक सोकर उठे हुए मुझ कुम्भकर्णका पराक्रम देखें । वह कभी
बिनाशकी आहार बन जाय तो भी मेरा पेट नहीं भर
सकता ॥ ५५-५६ ॥

यथेन तं वाशरथेः सुखावाह
सुखं समाहर्तुमहं प्रजामि ।

निहत्य रामं सह छत्रमजेन
सात्नामि सर्वान् हरियूयामुक्त्वान् ॥ ५७ ॥

यद्यप्यकुम्भर भीरवका बध करके मैं तुम्हें उद्योग
सुखकी प्राप्ति करनेवाले सुख-सौभाग्यको देना चाहता हूँ ।
कर्मजलहित यमका बध करके सभी प्रधान-प्रधान वनस्पत-
पक्षियोंको खा आऊँगा ॥ ५७ ॥

रमल राजन् पिप काच वाकर्णी
कुक्ष्यं हृत्यानि विभीष्य बुद्धम् ।

मयाच रामे गमितं यमक्षय
विशयं सत्त्रिंशदाभायिष्यति ॥ ५८ ॥

प्राजन् ! मम मौन करो मदिरा पीओ और मन्त्रिक
दुःखको दूर करके सब कार्य करो । आज मेरे इन्द्र राम मम-
लक्षक पर्वता बिये जायेंगे- फिर तो क्षीला विश्वका (जग)
के झिमे तुम्हारे भयीन हो जायेंगे ॥ ५८ ॥

चतु पटितम सर्ग

महादरका कुम्भकर्णक प्रति आश्रय करके रावणका बिना युद्धक ही
अभीष्ट वस्तुका प्राप्तिका उपाय बताना

तदुक्तमतिशयस्य यत्किना यादुशयन्तिनः ।
कुम्भकर्णस्य पवन भुष्यथाय महादरा ॥ १ ॥

भयनी बुद्धभोगं युष्मिता होनेशाल विद्युत्कारण एवं
पञ्चान् पञ्च कुम्भकर्णक वद पञ्चमुनहर महादरने का—

कुम्भकर्णं कुले जातो घृष्टः प्राहृतवर्शानः ।
भयस्त्रितो न शक्नोति कृत्यं सर्वत्र वेदितुम् ॥ २ ॥

कुम्भकर्णं । तुम उक्तम कुलं उतस्य हुए हा परंतु
उपायी ऋषि (बुद्धि) निम्नश्रेणीक श्रेणीक समान है । तुम
हीठ और कमही हा इच्छिम्य सभी विषयोंमें क्या कार्यम्प है—
इव वातश्च नदी जान सकतं ॥ २ ॥

नहि राज्ञा न जानीते कुम्भकर्ण नयानयौ ।
स्य तु कैशोरक्याद् घृष्टः केवल वकुमिच्छसि ॥ ३ ॥

कुम्भकर्णं । हमारे महायुध नीति और अनीतिश्च नहीं
जानत हैं एसी बात नहीं है । तुम केवल अपने स्वयंपनक
धरण धृष्टपूर्वक इम तरहकी बातें करना चाहते हा ॥ ३ ॥

स्मरन् धृष्टिं च हानिं च दशकालविधानवित् ।
अरमनश्च परया च बुध्यते राक्षसधरः ॥ ४ ॥

रक्षसधरामणि राखण देश-कालक क्षिय उक्ति कर्मम्प
च जानते हैं और अपने तथा धनुषकके स्थान बुद्धि एवं
स्वप्न अन्धी तरह समझते हैं ॥ ४ ॥

यत् स्वदात्म्यं पश्यता घक्तुं प्राहृतबुद्धिना ।
अनुपासितघृष्टान् कः कुर्वीत तादृशं पुत्रः ॥ ५ ॥

किन्तु इदं पुत्रोन्मी उपासना या संसंग नहीं किया है
और भिद्यो बुद्धि गंवारोंके समान है, ऐस कसवान् पुत्र
भी किस कर्मको नहीं कर सकत—जिसे अनुचित समझता
है, वैसे कर्मको कोई बुद्धिमान् पुत्र कैसे कर सकता है ? ॥

यास्तु धर्मार्यकामांस्तथ प्रवीणि पूषगाधपान् ।
भययोद् स्वभाषेन नहि कस्तजमसि तान् ॥ ६ ॥

किन्तु अर्थ धर्म और कामको तुम पूषक-पूषक भाष्य
बाते कर रहे हा उन्हें ठीक-ठीक समझनेकी दुम्पारे भीतर
शक्ति ही नहीं है ॥ ६ ॥

कर्मै वैय हि सर्वेषां कारणात्मा प्रयाजनम् ।
शेषः पापीषदा यात्र फल भयति कमजाम् ॥ ७ ॥

पुत्रके शासनभूत या विवर्ग (धर्म अर्थ एवं काम)
हैं उन सबका एकमात्र कर्म ही प्रयाजनक है (क्योंकि जो
कमानुष्ठानमें रहित है उसका धर्म अर्थ अथवा काम—कोई
भी पुत्रकार्यं सकत नहीं होता) । इसी तरह एक पुत्रके
प्रयत्नमें निद्र होनेवाले सभी धनुषधुम व्यापारोंका फल यहाँ
एक ही कलाका प्राप्त होता है (इस प्रकार जब परस्पर विरोध
हानेपर भी धर्म और कामका अनुष्ठान एक ही पुत्रके हाथ
रखा देया जाय दे तब तुम्हारा यह करना कि कबत धर्म-
का ही अनुष्ठान करना चाहिए धर्मविषयी कामका नहीं
कर्म सकत हा सकत है ?) ॥ ७ ॥

निःश्रेयसफलप्रयय धर्मापायितरावपि ।
अधमाम्परायाः प्राप्त फलं च प्राप्त्यापिकम् ॥ ८ ॥

निःश्रेयसफलप्रयय धर्मापायितरावपि ।
अधमाम्परायाः प्राप्त फलं च प्राप्त्यापिकम् ॥ ८ ॥

निष्कामभाषते किये गये धर्म (स्व प्यान भारि)
और अर्थ (धनसाध्य यश, दान भारि)—य विचित्रबुद्धिक
हाथ यद्यपि निःश्रेयस (मोक्ष) रूप फलकी प्राप्ति करनेबाछे
हैं तथापि क्रमना-विद्ययते स्वर्ग एवं अभ्युदय भारि अन्व
फलकी भी प्राप्ति करत हैं । पूर्वोक्त न्यायिरूप या क्रियाम्प
निष्क-धर्मका रूप हानेपर अधर्म और अनर्थ प्राप्त हाते हैं और
उनक रहत हुए प्रत्यवायजनित फल भागना पड़ता है (परंतु
काम्य-कर्म न करनेसे प्रत्यवाय नहीं होता; यह धर्म और
अर्थकी अपेक्षा कामकी विद्येयता है) ॥ ८ ॥

पृथ्वीकिकपापरम्य कम पुभिर्निदेव्यत ।
कर्माभ्यापि तु कल्प्यामि लभत काममास्तिः ॥ ९ ॥

ज्योंजो धर्म और अधर्मक फल इत जाक और परलोक-
म भी भंगन पड़त हैं । परंतु जो कामना विद्येयके उद्देश्यसत
यात्पूर्वक कर्मोंका अनुष्ठान करता है उसे यहाँ भी उसका
मुक्त-मनोरथकी प्राप्ति हा जाती है । धर्म आदिफ फलकी मोति
उसका क्षिय काव्यन्तर या लक्ष्मन्तरकी अपेक्षा नहीं हाती है
(इस तरह काम धर्म और अर्थसे विच्छेदन सिद्ध इत्य इ) ॥

तम ह्युसमिद् राजा ह्यपि कर्ष्य मत च मः ।
शशौ हि साहस यत् तद् किमिवाभापनीयत ॥ १० ॥

यहाँ राजक क्षिय क्रमरूपी पुत्रकार्यका सेवन उचित
है ही० । ऐसा ही राक्षसपुत्रके अपने हृदयमें निहित किया
है और यही हम मन्त्रियोंकी भी सम्पत्ति है । धनुष प्रति
खरशुण्यं कर्ष्य करना कौन-सी अनीति है (भत इन्हीं जो
कुछ किया है उचित ही किया है) ॥ १ ॥

एकस्वैयाभियाने तु हेतुयः प्राहृतस्वयया ।
तथाप्यनुपपन्न स यस्यामि यवसायु च ॥ ११ ॥

सुमने युद्धक क्षिय अनेके अपने ही प्रस्थान करनेक
विषयमें जो हेतु दिया है (अपने महान् बसक हाथ धनुष
पराका कर देनेकी जो पारणा की है) उसमें भी जो अछला
एवं अनुचित बात करी गयी है उसे मैं तुम्हारा धमन
रखत हूँ ॥ ११ ॥

यम पूर्वं जनस्थानं यदयाऽतिपस्य हवामः ।
रक्षसा राघव तस्य कथमेका जयिष्यसि ॥ १२ ॥

किन्तुने परत जनस्थानमें पहुँच-के आसन्न पश्ययथी
राक्षसोंका मार जाय या उन्हें राघवी धर भीयमममं तुम
अच्छ ही कैसे पराज करत ? ॥ १२ ॥

यहाँ महारने उक्तकी व्याख्या करनेक निद्र अन्वय
की आसन्न या प्रयास की है । वह अर्थमें नग मता है कल्पने
जो अर्थ और धामन धर्म हो सकत है; मन्त्र २ । ३ मन्त्रम् कर्म-
राज्यं स्वयं हा मन्त्र ६

ये पूर्वं निर्व्रितास्तत्र जनसम्पन्नं महौजसः ।

राक्षसांस्तान् पुरे सर्वान् भीतालघ न पश्यसि ॥ ११ ॥

जनसन्तानं भीरुमाने परकं भिन्नं महान् कम्पाधी
नगान्तोको मर भवता था, वे आभ श्री इत मङ्गापुरीमें
मान हैं और उनका वह भय अस्तक दूर नहीं हुआ है ।

११ । म न राक्षसो नही देखत छ । ॥ ११ ॥

तं सिंहमिव संक्रुद्धं गम दशरथात्मजम् ।

सप सुप्तमहो युद्ध्या प्रबाधयितुमिच्छसि ॥ १४ ॥

दशरथ मुग्ध भीरुम अल्पत कुपित हुए सिद्धक समान
पणक्री एवं मर्कट हैं क्या द्रुम उनको मिङ्गनेप्र छह
करत हो ? क्या सन-दूतकर छय हुए लोको बगाना जाते
हो ? तुम्हारी मूर्खपण आभय होत है । ॥ १४ ॥

उपसन्न तदासा मित्य मोघन स दुरासवम् ।

कस्त मृत्युमियासङ्गमासाद्यितुमर्हति ॥ ११ ॥

भीरुम वहा ही अपने तकसे दृष्टीपमान हैं । वे क्रोध
करनेपर अल्पत दुर्बल और मृत्युके समान अछा हो उन्त
हैं । मर्य कौन बांदा उनका नामना कर सकत है ? ॥ ११-१ ॥

महापश्यमिद् सर्वे शत्रोः प्रसिद्धमात्मनः ।

एकस्य गमनं तात नहि म रोचते मुराम् ॥ १६ ॥

हमारी यह गयी सेवा भी यदि उस अन्धे शत्रु
सम्पना करनेके लिये सही हो तो उसका जीवन भी संभ्रमे
पह तजना है । भत ताल । मुझके लिये तुम्हारा अन्धे
बना मुझे किन्तु अन्ध नहीं समता है ॥ १६ ॥

हीनार्थस्तु ममूद्यार्थं का रिपु प्राहृत यथा ।

निश्चितं जिकित्यागं यामानेतुमिच्छति ॥ १७ ॥

अ स्थापनमें सम्यक् और शत्रोकी चानी समझकर
शत्रुभांश संहार करनेक लिये निश्चित विचार रखनेबाज्य हो
एसे शत्रुको अल्पत क्षापात्र मानकर कौन महापय खेडा
पगमें स्थनी इच्छा कर सकता है ? ॥ १७ ॥

यस्य शक्ति मनुष्येषु स्वर्गा राक्षसांश्चम ।

कथमात्मनं यादु तुत्यनन्त्रियत्यताः ॥ १८ ॥

गणश्रीपणमे ! मनुष्योंमें किसी सम्यक् करनेवाला
दुष्टप शर्त नहीं है तथा अ इन्द्र और एपके समान दम्भी
हैं उन भीरुमक क्षय युद्ध करनेका शैल्य तुम्हें देने हो
रता है ? ॥ १८ ॥

एवमुक्त्वा तु सर्वार्थं कुम्भकर्णं महाद्वार ।

उयाय श्वप्ता मध्य रात्रि त्वाकरायणम् ॥ १९ ॥

एक भयानक युद्ध कुम्भकर्णमें एव नद्वार महान्न
सम्पना उपदेशे कौन देत हुए स्वर्गाय कथनगान पान
न ११ - ॥ ॥

उक्त्वा पुरस्ताद् वैदर्ही किमर्थं त्वं सिद्धम्भसे ।

यवीच्छसि तथा सीता वशाग ते भविष्यति ॥ २० ॥

महापण । आप विदेहकुमारीको अपने छमने पकर
नी कितलिये सिद्ध कर रहे हैं ? आप मन चाहे तभी लीज
आपके वशमें हो सकत है । ॥ २० ॥

एतः कश्चिदुपायो मे सीतोपस्थानकरकः ।

यचित्तोत्तु सया युद्ध्या राक्षसेन्द्र तताः ॥ २१ ॥

राक्षसपण । मुझे एक ऐसा उपाय सूझा है जो सीताको
अपनी छवामें उपस्थित करके ही रहेगा । आप उसे दुर्निव ।
गुनकर अपनी मुक्तिसे उत्तर विचार कीजिये और ठीक बने
ता उसे काममें आर्य है । ॥ २१ ॥

महं शिञ्जिह्वाः सङ्घाटी कुम्भकर्णो कितवन् ।

पञ्च रामवधार्थं नियातस्त्वधोपय ॥ २२ ॥

आप नगरमें यह शक्ति कर हैं कि महोदर शिञ्जि
संघाटी कुम्भकर्ण और कितवन्—प पाँच राक्षस रामको
बच करनेके लिये आ रहे हैं ॥ २२ ॥

ततो गत्वा धय युद्धं दास्यामस्तस्य यज्ञतः ।

अप्यामो यदि तं शत्रुं मोघयैः कार्यमस्ति नः ॥ २३ ॥

एकसंगे राजभूमिमें आकर प्रकृतपूर्वक भीरुमके लय
युद्ध करेंगे । यदि आपका शत्रुभांश हम विजय पा गये हो
हमारे लिये सीताको वशमें करनेके निमित्त वृत्ते शिञ्जि उपन-
की आकरपकटा ही नहीं रह सकत है ॥ २३ ॥

मय जीषति नः शत्रुषय च हृतधनुषागः ।

ततः समभिपस्वयामा मनसा यत् समीक्षितम् ॥ २४ ॥

यदि हमसे शत्रु अन्ध होनेके कारण शक्ति ही रह
गया और हम भी युद्ध करते-करते मारे नहीं गये तो हम
उस उपयको काममें आर्य, जिसे हमने मनसे खबर
निश्चित किया है ॥ २४ ॥

पर्यं युद्धादिहैप्यामो दधिरणं समुक्षिताः ।

यिथाय स्रतनु पापै रामनवमादितीः शरीः ॥ २५ ॥

भक्षिता राधयोऽस्माभिलक्ष्मणश्चति याद्विनः ।

ततः पादौ प्रहीप्यामस्तथ नः काम प्रपूरय ॥ २६ ॥

एकनाममें शक्ति खनाहाए अपने शरीरको खरक
करकर गलेसे लपकाए हो हम यह करत हुए युद्धभूमिमें
वहाँ लोहेके कि हमने राम और लक्ष्मणका ला लिया है । उस
कमय हम भावक पर पकड़कर यह भी कहेंगे कि हमने
गनुका माप दे । इतलिये आप हमारी इच्छा पूरी कीजिये ॥

तताऽवधारय पुटं गजस्कन्धेन पापथय ।

हता रामा महं ध्यय संसन्धं हति सयता ॥ २७ ॥

युद्धप्रप । तब आप शायीकी पीठपर शिञ्जिसे रिताकर

सरे नगरेषु यद् पातना इव * किं भद्रं भौर मनाकं गदित
एव मय गथा ॥ ७ ॥

प्रीत्या नाम तत्तद् भूया भूयाना त्वमरिद्धम् ।
भवात्तद् परिवारात्तद् कामान् यस्तु यद् दायव ॥ ८ ॥
तथा मात्यानि यासांसि धीराणामनुत्पन्नम् ।
एव च यद् पाथभ्यः स्वयं च मुक्तिः पिय ॥ ९ ॥

शुभ्रमन् ! इत्या ही नहां भाप प्रकप्रता दिवसत हुए
भनत कीर संचमैश्च उनकी अभीष्ट बरगुर्दे, तरह-तरहकी भंग-
गामप्रसां, शस-रागी आदि पन-रल, आनूयण, बन्न और
भनुत्पन्न दिवसै। भन्य काकाभोंश्च भी बनुत्पन्न उपहार
रै तथा स्वयं भी मुगी मनात हुए मपयत कौं ॥२८२॥

कथंऽस्मिन् यद्गुलीभूतं क्रीडीतं सपत्न्य गतं ।
भस्तिस्तः ससुहृद् रामा गरासैरिति विभुतं ॥ ३० ॥
प्रशिष्याश्चास्य पापित्य स्तीता रहसि स्नात्ययन्तु ।
धनधान्यश्च कामश्च गरमैश्चना प्रलोभय ॥ ३१ ॥

अदन्तपर जय क्षात्रमं यव भार पर चचा पैत्र जय
दि गम भाने मुहूर्तेऽर्हित गभ्रणीक अहार कन गय और
भनाक फानोम भी यह कज पर जय तव भय भिष्यश्च
कनक्षानक पिय एकान्तमे उठक वाक्स्थानपर जय और
तरह-तरह भीरु बधाकर उम पन चान्य भानि-भालक
म्या और गन भातिना न्यन दिगार्यै ॥ ३ १ ॥

भनपापभया राजन् भूय शाकायुग्मभया ।
सकथया स्यत्पुत्रा स्तीता नष्टनाया गमिष्यति ॥ ३२ ॥
एवन् ! इन प्रारब्धनाम भानेक भन्त्य मानन दक्षी सीता
य शाक और भी बद्द जयपर भीम पर इच्छा न हानस था
भरक नर्पति हा ज्यगी ॥ ३२ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायण बाह्ये अष्टादशोऽध्याये सुदकण्डके चतुःपण्डितमः सर्गः ॥ १२ ॥

सम प्रथा प्रशस्तिर्निरुत्पन्न १ रामायण अष्टादश्याय सुदकण्डके चतुःपण्डितमः सर्गः ॥ १२ ॥

पञ्चपण्डितमः सर्गः

कुम्भकण्ठकी गणवाया

य तथाकस्मिन् निभारम्य कुम्भकण्ठे महाहरम् ।
अभरीद् राक्षसधण्ड भ्रातर गारुड कनः ॥ १ ॥
महाहरक एव बन्दनेत कुम्भकण्ठे उम हाता और भन-
नोई गण्डविगमनि ययनम इहा ॥ २ ॥

सा इ तव नय चार पथान् तव्य दुर्गमम् ।
रामण्यश्च प्रयात्रामि निरंरा दि सुगरी नर ॥ ३ ॥
एवन् ! भात न उम गणवा गमना यव अक दुर्गा
पन नयथ हुए पर हुए । तुम गणवाय युम हाता सुधी
॥ ३ ॥

गमणीय हि भ्रातर विनष्टमधिगम्य सा ।
नराद्यात् श्रीलिपुत्याद्य स्यव्यदा प्रतिपास्यत ॥ ३३ ॥

भनन रणगाय पतिश्च विनष्ट हुआ यन पर निपय्य
तथा गौरी-भुषभ चरन्त्याक करन आपठ परमै भा शक्यैः
सा पुरा सुखमयुजा सुगमाहा बु-नकप्रशता ।
स्यव्यधीन सुख प्रात्या सत्रथय गमिष्यति ॥ ३४ ॥

एव परत सुखम पक्षी हुए रै और सुख भागनक यम्य
ह परंतु इन दिनों तु लम कुनम हा गयी रै । एक्षी इशामे
भभ आरक ही अभीन भनता सुय समतकर यथथा आरगी
मयामे अ शक्यी ॥ ३४ ॥

एतन् सुनीत मम वानन
राम हि हृद्रुप नयन्नयः ।
इक्षिप त सत्पति मत्सुखं नू
महानयुद्धन सुखस्य लानः ॥ ३५ ॥

एत इत्यनमे वही सयन सुन्दर नीति ६ । युद्धमे ल
भीयमम दशन करत ही आरक भन १ (मूल) श्री प्राति
हा सक्यै रै भनः भाप युद्धसकमे बानक पिय उमकु
न ही, वही आरक अभीष्ट म्नारपरी सिद्ध हा गयगी ।
किना युद्धक ही आरक सुखक महात्वा इम्य ॥ ३ ॥

भनष्टमस्या शम्भामसशया
गिर्षु स्युद्धन जयव्रताधिपः ।
यशाश्च पुण्य च महागमहीयन
धियश्चकीर्ति चरित समस्तुम ॥ ३६ ॥
महागम ! अ गय किं युद्धक ही शुभुर विर
पय ६ उठकी मया नष्ट नदा हाता । यमम शीरत भी
सययमं नदा पकृता यह एतन एव महात्वा मया पया तथा
दीप सन्तक कामी एव उदम धीर्लिंग गणयन हाता ६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायण बाह्ये अष्टादशोऽध्याये सुदकण्डके चतुःपण्डितमः सर्गः ॥ १२ ॥

सम प्रथा प्रशस्तिर्निरुत्पन्न १ रामायण अष्टादश्याय सुदकण्डके चतुःपण्डितमः सर्गः ॥ १२ ॥

गञ्जिन म शूभा दूरा निजना इव तापदा ।
पश्य सम्यगमानं तु गात्रन युधि कथना ॥ ३७ ॥
एवीर ज्येष्ठिन बन्दक कनन चर्ष्यै गम्या नदा इव
भन । तुम हाता अर युद्धसकमे भी भनन गामकक हाग
ती गम्य ६ ग ॥ ३ ॥

न प्रययति धामान मम्भा गिबुमा मता ।
नृत्पापित्या गुराम्नु कस कुञ्जिन कुक्कुम् ॥ ३८ ॥
ए एषीश्च भनत हा तुम नली गण्डि हाता भनन
नदा हाता । न कनक इव गणन न हाक युवता हुए
यजम परत हाता ॥ ३ ॥

विन्दतवाला इत्युदीना राधा पण्डितमामिनाम् ।
राजत त्वय्यन्वा मित्य कथ्यमान महोदर ॥ १ ॥

भारत । अ भीम मूर्धं और छूट ही अनेक पण्डित
बाल हागे उन्ही पण्यभोधे तुम्हार हाय कही अनेवासी
ना-पुपही पाठें वदा अन्ही ध्योगी ॥ ५ ॥

युद्ध एतुकरान्त्य भयङ्गिः प्रिययात्रिभिः ।
राज्ञानमनुगच्छन्निः सर्वं हृत्य विनाशितम् ॥ ६ ॥

भुद्धम वायव्या दिग्मानेवाले तुम-अते पापपूलोने ही
नवा राक्षसी हांमे-हां मिनागर खय क्रम चौपट किया है ॥

राजरागा हृता छद्वा क्षीणाः क्रोशो यत्न हतम् ।
राज्ञानमिममासाद्य सुहृद्यिहममिश्रकम् ॥ ७ ॥

अथ ता एद्वामं कषल राव राय रद गये हैं । अन्वना
सासी हां गया और अना मर राक्षी गयी । इत राक्षस पाकर
तुमअगाने मिश्रक क्रमेण शत्रुका काम किया है ॥ ७ ॥

पण निपात्यर्हं युद्धमुद्यतः शत्रुनिर्जये ।
दुमय भवतामय समीकर्तुं महाहय ॥ ८ ॥

यह देना, अब मैं शत्रुका जीतेक लिय उद्यत होकर
समर-निर्जये जा रहा हूँ । तुमअगाने अन्ही लायी नीतिके
अन्य अ पियम परिसिद्धि उद्वन कर ही है उद्वन भयन
महाअमरमे समीकरण करता है—इत निरम उद्वन अरकाक
लिय उद्यत दन्व है ॥ ८ ॥

पयमुकवता पापय कुम्भकण्डस्य धीमता ।
प्रत्युद्योच तना यान्य प्रहसन् राक्षसाधिपः ॥ ९ ॥

युद्धिमान् कुम्भकण्डन भय एक्षी कीर्तिनि शत पही ठप
राक्षसाय यरजन इत्ना दुए उकर दिख—॥ ॥

महाहृदय रामात् तु परिप्रसूता न सदायः ।
न हि राज्यत तां युद्ध युद्धविशारद ॥ १० ॥

भुद्धागारद शत । यह महार भीषमम बहुत नर
गया है इज्जं अंशय नही है । इत्यस्य यह युद्धना पम्ह
नही करता है ॥ १ ॥

यद्धिन्नं त्यक्तमा मसि साहृदन पतन च ।
गच्छ तनुवधाप त्व कुम्भकण्ड ज्ञपाय ॥ ११ ॥

कुम्भकण्ड । मर भा गच्छामे शोदार और बरभो
दहन करे ना तुम्हागी अन्वना करनेवाय नही है । तुम
युद्धना हा त्व एते अर तिस जनक लिय युद्ध-निर्जये
दन्व ॥ ११ ॥

गयानः तनुवच्छापं भयानं सम्भाषिता मया ।
अथ हि कथनः सुमहान् राक्षसानामरिदम् ॥ १२ ॥

तु मु मर ११ । तुम १२१ य । तुम्हार हाय शत्रुना
ना नया कथनक लय हा न दुहे अन्व है । राक्षसा
युद्धकण्ड ॥ ११ यह अन्व १२१ य १॥ १२ ॥

सगच्छ शूलमादाय पाशहस्त इवात्मकः ।
यानरान् राक्षपुत्री य भक्षयादित्यतज्जौ ॥ १३ ॥

भुम पापभारी मयाकक्षी भौति हल छकर जब भेर
सर्वके अन्वन तक्षी उन दोनो राक्षकुमारों तथा बानक
मारकर ला जामे ॥ १३ ॥

समालोपय तु ते रूप विप्रविप्यसि वलपः ।
रामलक्ष्मणयोश्चापि हृदये प्रस्फुटिष्यतः ॥ १४ ॥

अन्तर तुम्हाय रूप देखते ही भाग जायेंगे तथा राम और
लक्ष्मणक हृदय भी विदीर्ष हो जायेंगे ॥ १४ ॥

पशुमुपस्था महातेजाः कुम्भकर्णं महाबलम् ।
पुनर्जातमिद्यारमान मेने राक्षसपुङ्गवः ॥ १५ ॥

महाकक्षी कुम्भकर्णते ऐख करकर म्हातेकक्षी उद्वन
राक्षसे अन्ना पुन नवा अन्व दुभा-अ मन्व ॥ १५ ॥

कुम्भकण्डस्यभिषो आनसस्य पराक्रमम् ।
बभूव मुदितो राज्ञा राक्षस इव निर्मलः ॥ १६ ॥

राज राक्षय कुम्भकर्णके बलभ अन्ही तरह अन्व य
उत्क पराक्रमते भी पूर्ण परिसिद्धि था इत्यस्य यह निर्मल
अन्वके समान परम आहादसे भर गया ॥ १६ ॥

इत्ययमुक्तः सहृदो निरगतम् महाबलः ।
राक्षसु वषम भुत्वा योयमुपुक्तवांसदा ॥ १७ ॥

राक्षस एख करनेवर महाकक्षी कुम्भकर्णं बहुत प्रकन
दुभा । यह राव राक्षमक्षी बत मुनकर उस समय युद्धके
लिय उद्यत हा गया और लड्वापुंसे वाहर निकल्य ॥ १७ ॥

भाक्ष्ये निशित शूल वगाच्छत्रुनिबहणः ।
सर्वे कलायस वीत तसकाश्चनभूषणम् ॥ १८ ॥

शत्रुभोअ छंदार करनेअम उन कीरन बह बसे कीला
अस हायमे लिय, अ सक्ना-अस काल ब्रह्म कना दुभ
नमरीय और वगाय दुए मुअते विभूति य ॥ १८ ॥

इन्द्राग्निसमप्रक्य यज्ञप्रतिमगीरयम् ।
पयदानपण्यभयपक्षपक्षगच्छनम् ॥ १९ ॥

उभे मग्नि इत्क अगनिक अन्व भी । यह बरक
समान भरी था तथा दक्षामो अनवा कथतो यही और
नगरे अ छंदार करनेअम या ॥ १९ ॥

रक्षमाद्वयमहाशम स्वतश्चाद्गतपापकम् ।
भाक्षय त्रिपुन शूल तनुगणितरहितम् ॥ २० ॥

कुम्भकर्णो महातज्जो राक्षय पाक्षयमप्रधीत् ।
गमिष्याप्यदममक्षी तिष्ठत्यिह यत्न मम ॥ २१ ॥

मैं मर दुए अ बहुत पही मन्व करक रही थी अर
उन्व अगाभी तिष्ठतिगो हाइ रही थी । शत्रुभोअ दन्व
य दुए उन तिष्ठत दन्व हायमे १२१ महाकक्षी पुनअर

यवनत दश—ये भद्रय हा युद्धक त्रिय बर्द्धेय । अन्ती
वर दगी ज्ञाय यही रह ॥ २०-२१ ॥

मघ सान् धुधितः कुम्भो भक्षयिष्यामि वातरान् ।
कुम्भफणवशः भुत्वा रावणो बाकयमप्रवीण् ॥ २२ ॥

अत्र ने र्णा है अंत नय रूप भी बड़ा हुआ है ।
इच्छिय क्कन यनोद्य म्भन कर बर्द्धेय । कुम्भकर्मकी
वर दन मुनकर यवन काण—॥ २२ ॥

सैन्य परिशुतो गच्छ शूलमुद्गरपाणिभिः ।
यानरा हि महाम्नाता गूराः सुस्यवसापितः ॥ २३ ॥
एक्यकित प्रमत्तं वा न्येयुद्धानैः क्षयम् ।
तच्छान् परमबुधयः सैन्यैः परिशुतो मज ।
रक्षसामहितं सर्वं शत्रुपक्ष निरूप्य ॥ २४ ॥

कुम्भकर्म । तुम हाथोंमें एक और मुद्गर धारण करने-
वाले होनेसे निर राक्षर युद्धक त्रिय वात्रा कर, स्फोट
नाम्नम्बी बनर बड़ नीर और अस्त्र त्पार्थी हैं । व तुम्हें
मक्षय वा अन्वयपक्ष एक हीतिसे अट-अटकर नष्ट कर
दाँये इच्छय मनासे निरकर सब अस्त्रे दुष्कित हा यहीसे
दया । उन दक्षमें तुम्हें न्यत करना शत्रुओंक त्रिय बनुव
करने हय । तुम रक्षकोंक अहित करनेवाले क्कन शत्रुदक
वा नष्ट कर ॥ २३-२४ ॥

मयासनात् समुत्थम्य ह्यत्र मणिकृतास्त्रगाम् ।
अथयथ महावज्राः कुम्भकणस्य गणयः ॥ २५ ॥

ये इच्छर महावज्रकी यवन अत्र अस्त्रत उठा और
एक सनकी नाक त्रियक धीच-धीयनें न्निर्षी निरपी हुए
थे अक्षर क्कन कुम्भकर्मके कर्म्मनें पदना गी ॥ २५ ॥

महाशान्कुर्वीषाघ्नान् पराम्पाभरणाणि च ।
इह च मृगिसक्काशामावयम्भ महात्मत ॥ २६ ॥

घाईर, मृगिया अष्क-अष्क आनूयन और क्कन-
क क्कन पन्थीय हात—न क्कक उठनें महाअय कुम्भ-
कर्मक भङ्गन पदनाय ॥ २६ ॥

निष्याति च मुगर्थाणि माल्यहामानि गणयः ।
गायतु सज्जयामास भाषयाबान्य कुण्डल ॥ २७ ॥

उन्ना ही नही यवनन क्कक किन्तिन भङ्गोंमें त्रिय
दुष्कित कुम्भकी नाकरी ई ई बय ही भार दनों क्कनोंमें
कुण्डल पदना त्रिय ॥ २७ ॥

काञ्चनकन्दमूर्निष्यभरणमप्युषिता ।
कुम्भकर्मो वृहत्कणाः सुदुताऽग्निविषाणभौ ॥ २८ ॥

दन्तक भन्तः क्कूर और परक अक्षरे आनूयनेत
रुतिन तथा परक क्कन किण्ठक क्कनोंवाक्य कुम्भकर्म धीकी
उत्थ क्कनूने वक्क प्रम्भक्य हुए मन्विन क्कन प्रक्षिति
त उठा ॥ २८ ॥

योर्पात्स्येष महता मचक्षेन प्यराज्य ।
अमृतोत्पादनं नडा मुञ्जकृमय मन्त्रः ॥ २९ ॥

एक क्कटियद्वारे क्कन रक्षी एक किण्ठक क्कनकी
धी किण्ठक वर अमृतकी उत्पतिक त्रिय त्रिय त्रिय क्कन अमृतक्यम-
क क्कन नागराव वायुकिण्ठक किण्ठक हुए क्कनगवकक क्कन
यवन पदना य ॥ २९ ॥

स क्कञ्जल भारसह निवात
विपुल्यभ वीतमिवात्मभासा ।

भाषयमानः कथय रराज
सम्पाञ्जसर्षीत ह्याद्रिराज ॥ ३० ॥

वनम्पर कुम्भकर्मकी क्षत्रांन एक सनेद्य क्कन कीना
ग्या, य नगी-न-नगी अक्षरत क्कन क्कनेनें क्कन, अक्ष-शक्तेसे
भनेद्य तथा अन्ती प्रन्त विपुल्य क्कन इरीयन्तन वा ।
उस धारन करक कुम्भकर्म सम्पाञ्जक क्कन वादकेनें संदुक
निरिवात अक्षत्रकक क्कन शुष्कमित हा र्कय वा ॥ ३० ॥

सचामरणसवाह गूढपाणिः स रामुसः ।
त्रिभिश्चमृतास्तासाहा नारायण ह्यचनभी ॥ ३१ ॥

एर भङ्गोंमें सनी अक्षयक आनूयन धारन करके
हाथोंमें एक त्रिये वर यक्ष कुम्भकर्म उर भाग वक्क, न्त
कनय त्रिभक्षेत्र नानक त्रिय तीन इग क्कनेके क्कन
हुए म्नावात् नययन (क्कन) क क्कन दन पदा ॥ ३१ ॥

आत्रर समरिष्वज्य हृष्या चापि प्रदक्षिणाम् ।
प्रथम्य शिरसा तन्मै प्रतकथं स महावल्लः ॥ ३२ ॥

नाइक इरण क्कनकर उधरी परकना करक न्त महा-
की कीन न्त म्भक इंचक नान किय । तयकात् वर
युद्धक त्रिय पच ॥ ३२ ॥

कमार्दीभिः प्रशस्ताभिः प्रययामास राधणः ।
शत्रुबुधुभितिसौषैः संन्यथापि यराधुर्धः ॥ ३३ ॥

एक क्कनय यवनन उचन आधीनद इकर भद्र भायुधेनें
दुष्कित म्नाथोक थाय उन युद्धक त्रिय निद किय ।
वाथाक क्कन उचन शत्रु और कुम्भुनि अर्ध वात्र की
वक्कय ॥ ३३ ॥

त गरीश्व मुत्सीश सान्दर्भान्मुद्गर्मकः ।
अनुजन्मुमहामात्र्य रथिता रथिनो धरम् ॥ ३४ ॥

हाथी एह और नपोंकी गर्भक क्कन परपेद
वेद्य करनेवाक रपोर क्कन हा भनेकनक महात्मनकी र्की
वर रथियोंमें भेद कुम्भकर्मके थाय त्रिय ॥ ३४ ॥

सौषैः खरभयं सिहद्विप्रमृगविक्रिः ।
अनुजन्मुश्च त धार कुम्भकर्म महापलम् ॥ ३५ ॥

किन्ते ही वक्क कीन कीन त्रिय निर हाथी, मृग और

पश्चिमोपर स्वार हो-हाकर उस भयकर महाकम्पी कुम्भकर्णके पीछ-पीछ गये ॥ ३ ॥

स पुष्पधरैरथकीयमाणा

धृतावपण विरतशूलपाणिः ।

महाकन्टाः द्रोणितगन्धमत्तो

विनिययौ वान्धवद्वयशत्रुः ॥ ३६ ॥

उस समय ठलक ऊपर फूझकी बग हा रही थी। सिरपर रनेत छत्र कण हुआ था और उसने क्षयम तीखा निरुद्ध क रकता था। इस प्रकार देवताओं और राजबौद्ध धनु तथा रक्षकी गन्धसे मतदाय कुम्भकर्ण या स्वाभक्ति करने भी उनमत हा था या मुझके सिन्धे निकल्य ॥ ३६ ॥

पश्रातपय्य बहया महाहाहा महापस्मा ।

भन्ययू रस्तसा भीमा भीमास्ताः शक्यपाण्यः ॥ ३७ ॥

उसके क्षय बहुलसे पैरुछ राज भी गय आ बहू बन्धान; अर-अरते गन्ना करनेवान्, भीम नेशपारी और नयनक रूपनाथ थे। उन सबक हाथोंमें नाना प्रकारके अस्त्र पश्र थे ॥ ३७ ॥

रक्षस्ताः सुबहुभ्यामा नीलाञ्जनधयोपमाः ।

शङ्खनुचम्य सङ्घात्र निरिशात्रां पश्रभधान् ॥ ३८ ॥

भिन्विपानांश्च परिधान् गवाश्च मुसलानि च ।

तासस्त्रधांश्च धिपुस्तान् क्षपणीयान् तुरासदान् ॥ ३९ ॥

उनक नश एतस साथ हा रहे थे। वे सभी कह क्षीम ऊँच और बाप क्षयक करकी मोंनि आस थे। उन्होंने अपने हाथमें शूल तपशार, तीखा धारका करने, विष्टिरास परिप गवा मुल्य बहू-बहू ताइक इधक तने और क्षिर्ष कीरे करत न मने एसी गुम्फे क रक्षकी थीं ॥ ३९ ॥

भयान्यद्रपुराहाय शक्य घोरवृन्दानम् ।

निष्पद्यत महातजाः कुम्भकर्णो महाबलः ॥ ४० ॥

तदनन्तर महाकम्पी महाकम्पी कुम्भकर्णने बहा उम क्त धारक द्विवा किं दहनपर भय मान्दम इन्द्र था। पश्र क्त धारक करक बह मुझके सिन्धे चत पहा ॥ ४० ॥

धनुःशतपर्यायाह स पश्रातसमुच्छ्रितः ।

रीश्र शक्यचक्रमस्ता महापयतसनिभः ॥ ४१ ॥

उस समय यह उ म्पे धनुःक बधनर विसृज और म्पे धनुःक काकर ऊँचा हा गया। उसकी भाँसे हा गरीक पहिराक समान द्यन पढ़ी थी। यह विनाक परैक समय नयकर दिगयी इत्र था ॥ ४१ ॥

सनिपत्य च रक्षांसि दग्धरीश्लेषमो महान् ।
कुम्भकर्णो महाबलः प्रहसतिदमज्जीवत् ॥ ४२ ॥

पहस से उसने राक्ष-सेनाकी म्यू-रकना की। कि राक्षनसने इत्र हुए परैतके समय महाकन कुम्भकर्ण नयना विधास मुल पैरुकर अइहास कयत दुभ हा प्रकार बल- ॥ ४२ ॥

अथ वानरमुख्याना तानि यूपानि भागशाः ।
निर्वहिष्यामि सङ्कुशः पतङ्गानिव पश्रकाः ॥ ४३ ॥

याख्छे। जैसे आग एंकोक अम्ली है, उसी प्रकार मैं भी कुशिल होकर आग प्रचान-प्रचान वानरोंके एक एक इत्र को मस कर इरैग ॥ ४३ ॥

व्यपराश्रयस्थि मे क्षाम घनरा फलधारिणः ।
आतिरसाद्रिधानां सा पुत्रघानविभूषणम् ॥ ४४ ॥

मैं तो कनम विचरनेवाके बेचारे धनर त्येकसे मग करे अथय नहीं कर रहे हैं अंत वे बचक शय नहीं हैं। वानरोंकी क्षति तो हम-जैसे सगोंक नगरोघानका अशुभ है। पुररोधस्य मूल तु राजका सहस्रसमसा। इत तस्मिन् इत सर्वे त अधिष्यामि संयुगे ॥ ४५ ॥

आलवने सद्गुपीर पर इतनेके प्रधान करण हैं- अस्मत्कहित यम। अतः लसे पहले मैं उनींको मुझमें मार्ग्य। उनके अरे जानेपर लगी वानर-सेना लता मी हुई मी हा बपगी ॥ ४५ ॥

एष तस्य धृतापस्य कुम्भकर्णस्य राक्षसाः ।
नारु शकुमहाघोर कम्पयन्त इयार्पयन् ॥ ४६ ॥

कुम्भकर्णक ऐस इनेपर राखेने लमुद्रक क्षिन्ना-कयत हुए बही भयानक गर्जना की ॥ ४६ ॥

तस्य निष्पद्यतस्पूर्ण कुम्भकर्णस्य धीमताः ।
बभूवुर्षौरूपानि निमिस्तानि समस्तताः ॥ ४७ ॥

बुद्धिमन् राक्ष कुम्भकर्णके लभूमित्री अर वेर बहने ही पाप अर धार आयकुन हाने को ॥ ४७ ॥

उत्कश्रानियुता मय्य बभूवुर्गवाभाकण्या ।
समागारयमा शैथ यस्तुधा समकम्पत ॥ ४८ ॥

गरदोक समान नरे रगतास बरस फिर क्षम। लव ही उत्कश्रयत हुआ और निरक्षिर्षो मित। ममुद्र और सौतेरित ली एसी रूपने को ॥ ४८ ॥

धारकणाः शिवा ननुः सज्यालकपसेमुखः ।
मण्डलमन्वपसध्यानि पयशुभ्य विहगमाः ॥ ४९ ॥

भयनक विरदियों मुझमें आग उगयी हुई अमहान्-मूनक कधी बकने लगी। फली मण्डल बौचनर उनको दक्षिण वने परिक्रमा करते को ॥ ४९ ॥

नयनर क नर। इतके पुगनाथ राजा मर दयनेर
क हाथ्य मयनक भित्त इने हाथ्य निर्नयक भित्त क
निनये ही हाथ क यम भाग बरत र।

निष्पपात स गुह्याऽस्य शूले वै पथि गच्छता ।
मास्तुरक्षयन चास्य सख्यो वाहुरकम्पत ॥ ० ॥

राजसे चले सम्य कुम्भकर्णके दृक्पर गीघ आ बैठा ।
उसकी बानी धौल पड़कने छपी और बायी मुञ्च कम्पित
हने लगी ॥ ॥

निष्पपात तत्रा खोल्का ज्यलन्ती भीमनिःस्वना ।
भद्रित्या निष्प्रभञ्जासीष घाति च सुलोऽनिस्स ॥ १ ॥

गिर उली समय कच्छी हुइ उरुध ममकर आघातके
खप गिरी । सूर्यकी प्रभा धीप हा गम्भी और हवा इतने बेगसे
पछ रही थी कि सुलर नहीं बन पड़ती थी ॥ १ ॥

घञ्जित्पान् महोत्पातानुवितान् रोमहृषणान् ।
निपथौ कुम्भकर्णस्तु हृताम्तवसजोदित ॥ २ ॥

इस प्रकार रौंगट लड़े कर देनकाळे बहुतसे बड़े-बड़े
उरुध प्रकट हुए किन्तु उनकी कुछ भी परवा न करके
कच्छी घञ्जिते प्रतिग हुआ कुम्भकर्ण मुद्रक किय
निष्क पड़ा ॥ २ ॥

स लङ्घित्या प्राक्कर पद्भ्यां पक्षतस्निभ ।
पद्भ्यांभवनप्राक्यं घान्तानीकमद्भुतम् ॥ ५३ ॥

पर पक्षके समान ऊँचा था । उनसे लङ्घनी पक्षर
वीथीके दलों वैरुसे मौपकर देखा कि बानरोंकी भद्रियन
सेवा मर्षोन्नी फनीमूत बयाके समान छा रही है ॥ ५३ ॥

ग द्रुमा राक्षसधोष्ठ वानरा पर्वतोपमम् ।
वायुमुष्ण इव पञ्च ययुः सर्वा विशासदा ॥ ५४ ॥

उस पक्षकार भेद राक्षसके देखते ही समस्त बानर
हृत्पायें भीमद्रुमापयसे शाकरीक्षीये माधिकार्ये मुद्रकाण्ये पठ्यष्टितमः सर्गः ॥ १५ ॥
एस प्रकार धीमन्नीकिर्मित भार्यमात्म्य भद्रिकाम्यक मुद्रकाण्ये पठ्यष्टितमः सर्गः ॥ ५५ ॥

हवाते उड़पे गये बानरोंके समान लक्ष्यस सम्पूर्ण दिशाओंमें
भाग लसे ॥ ५४ ॥

तव वानराणीकप्रतिप्रघण्ड
विशो द्रवङ्गिषमिषाभ्रजाजलम् ।

स कुम्भकर्णः समवेक्ष्य हाय
न्ननत् भूयो घनवृषणाभा ॥ ५५ ॥

छिन्न भिन्न हुए बानरोंके उम्हकी मोति उस भद्रियन
प्रपण्ड बानर-वाङ्मिषिका सम्पूर्ण दिशाओंमें मागनी देख नेपोंके
समान कब्य कुम्भकर्ण बड़े हायके साथ समस्त ब्रह्मपरक सदा
गम्भीर स्वरमें बारबार गकैना करने लग्य ॥ ५५ ॥

त तस्य घोर मिनद् निशम्य
यथा मिनद् विधि यारित्स्य ।

पतुर्धरण्या सहस्रं ह्यवज्ञ
निकृत्तमूल्य इव शालवृक्षा ॥ ५६ ॥

माक्रायमें बैठी मर्षोन्नी गकैना हसी दे उलीक समान
उस राक्षसका पार स्थिनाद मुनकर बहुतसे बानर बड़से कर
हुए सञ्चरुणोंके समान पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ५६ ॥

विपुलपरिघपान् स कुम्भकर्णो
रिपुनिधनाय विनिःसृतो महात्मा ।

क्षपिगापभयमादवत् सुभीमं
प्रमुरिव किंकरवृक्षवान् युगागते ॥ ५७ ॥

महाकाय कुम्भकर्णने लङ्घनी ही मोति अपने एक हायमें
विशाल परिघ भी ले रनका था । पर बानर-समूहोंके अन्त्य
पर मय प्रथन करता हुआ प्रक्यकायमें खहरक खपनभूत
काक्षदण्डोंने मुक्त भावपान् काक्षदण्डके समान धनुर्भोंका विनाश
करनेके लिय पुरीसे बाहर निकल्य ॥ ५७ ॥

पठ्यष्टितम सर्ग

कुम्भकर्णके भयसे भागे हुए बानरोंका मंगद्वारा प्रोत्साहन और आवाहन, कुम्भकर्णद्वारा बानरोंका
सहारा, पुनः बानर-सेनाका पलायन और अंगदका उसे समझा-सुझाकर लौटाना

स लङ्घित्या प्राक्कर गिरिकूटोपमो महान् ।
निपथौ नगगात्रं तूर्णं कुम्भकर्णो महाबलः ॥ १ ॥

मराकठी कुम्भकर्ण पर्वत-गिरिक समान ऊँचा और
गिरिकप्रथ था । वह परकोटा धौपकर बड़ी तेजीके साथ
नगसे बाहर निकल्य ॥ १ ॥

नगान् स महान्याद् समुद्रमभिनान्पयन् ।
विहयमित्य निघातान् विधमभिध पर्वतान् ॥ २ ॥

घरर भ्रष्ट पर्वतोंका कस्ता और समुद्रको गुंठला

हुआ-स वह उच्च स्तरसे गम्भीर नज़ करने लग्य । उनकी
बह गकैना किन्नीकी कड़कथ भी माल कर रही थी ॥ २ ॥

तमघण्य मघवता यमम वरुणेन था ।
प्रक्य भीमासमापान्त घानरा विप्रमुमुषुः ॥ ३ ॥

इन्द्र यम अथवा वरुणके हाथ भी उल्लस बध इन्द्र
अभमव था । उत मयनक नेत्रवाल निष्प्रपरक भय देख
कनी बानर मय लड़े हुए ॥ ३ ॥

तास्तु विप्रद्रुतान् द्रुमा राजपुत्रोऽज्ञनाऽप्रवीत् ।

नख नीळ गवाक्षं च कुमुदं च प्रहावजम् ॥ ४ ॥

उन सभे मंगते देख एककुमार अंगरने नख, नीळ,
गवाक्ष और महाकम्बी कुमुदको सम्बोधित करके कहा— ॥ ४ ॥

भास्मान्स्त्वानि विस्मृत्य धीर्याश्रयभिज्जनानि च ।

६ गच्छत भयवस्ताः प्राकृत्य हरयो यथा ॥ ५ ॥

पानर धीरो । अपने उत्तम कुर्बो और उन अश्लीकिक
पदार्थोंको मुझकर साधारण बंधुओंकी भांति मन्मथित हो घूम
क्यों भागे च रहे हा ॥ ५ ॥

साधु सौम्या निवर्तय्य किं प्राणाम् परिरक्षथ ।

नख पुत्राय वै रक्षो महतीय विभीषिका ॥ ६ ॥

शौम्य स्वभाववासे बहानुरो । अच्छा होगा कि घूम छैट
आधा । क्यों पान बचानेके करमें पड़े हो । यह उच्छत हमारे
साथ युद्ध करनेकी शक्ति नहीं रखता । यह तो इसकी बड़ी
भारी विभीषिका है—इन्ने मायासे निष्ठाछ रूप धारण करके
हमारे बचनेके छिप मयै परायेप केज रखता है ॥ ६ ॥

महतीमुत्थितामेना राक्षसानां विभीषिकाम् ।

धिष्ण्यद् विधमिप्यामो निवर्तय्य द्वुरक्षमा ॥ ७ ॥

अन्ने धामने उठी हुई उच्छतीषे इच बड़ी भारी
विभीषिकाके इन अपने पराक्रमसे तह कर दैंगी । अतः जानर
धीरो । छैट मन्मथो ॥ ७ ॥

कुलद्रुण तु समाभवस्य सगम्य च तक्षस्तता ।

वृषान् वृषीत्या हरयो सम्पत्तयू रणाश्विरे ॥ ८ ॥

तब जानरोंने बड़ी कठिनाईसे वेवै धारण किया और
ध्वंशरहिते एकत्र हो हाथोंमें हथ भेकर वे रणभूमिकी
भेद पड़े ॥ ८ ॥

स निवर्त्य तु सरम्भाः कुम्भकर्णं पनीकसा ।

निजध्नुः परमकुन्दाः समवा इव कुक्षराः ॥ ९ ॥

पानुभिर्गिरिच्छ्रेष्ठा दिव्यभिध महापजाः ।

पादपैः पुष्पितामैश्च हन्यमानो न कम्पते ॥ १० ॥

छैटनेपर वे महाकम्बी जानर मतवासे हाथिनोकी भौंशि
भस्वल श्रव और उपसे भर गये और कुम्भकर्णके ऊपर
ऊंच ऊंच परनीच-मिठपठे मिथ्यभ्रं तथा सिल कुप हथेले
पहार करने लगे । उनकी मार ताकर भी कुम्भकर्ण विचलित
नहीं हुआ था ॥ १० ॥

तस्य गम्येषु पतिता भिद्यन्त दहयः दिव्याः ।

पादपाः पुष्पितामैश्च भद्राः पनुमहीतम् ॥ ११ ॥

उनके भद्रोंपर गिरी हुई बहुरी सिद्धरै पूर-पूर
हा ऊठी थी और वे गिन हुए इध भी उठके छपैले
दहयते ही दह-दह दह्यर उपैर गिर पड़ते थे ॥ ११ ॥

नापि भस्वानि सप्तद्रुपा पानराजा महौघसाम् ।

मन्मथ परमापत्तो वन्द्यभ्यतिरिक्तोपिता ॥ १२ ॥

उपर छेपते मय हुआ कुम्भकर्ण भी भक्तव धरक
हो महाकम्बी जानरोंकी सेनाओंको उठी प्रकर रौंते कर
पैते बड़ा हुआ पावानक बड़े-बड़े कालोंको भयकर मसा पर
देता है ॥ १२ ॥

सोदित्वाप्रास्तु बहवाः दोरते वानरर्षभाः ।

निरस्ताः पतिता भूमौ त्वात्रपुष्पा इव हुमाः ॥ १३ ॥

पहुटने भेठ जानर कूले छपप हो परतीपर ल गत ।
किन्हे उठाकर उठने ऊपर फेंक दिया वे अक्ष फूमैले ल
हुप हथेले भौंशि वृष्णीपर गिर पड़े ॥ १३ ॥

सङ्घपन्ताः प्रधावस्ये धानरा नवलोकयन् ।

केचित् समुद्रे पतिताः केचित् गगनमास्थिताः ॥ १४ ॥

जानर ऊँची-नीची भूमिको छेपते हुप कोर-कोरते मने
छो । वे आगे-पीछे और अगल-बागलमें कहीं भी दृष्टि नहीं
बाधते वे । कोरें समुद्रमें गिर पड़े और कोरें अगलमें ही
उड़ते रह गये ॥ १४ ॥

वध्यमान्यस्तु ते धीरा रक्षसज च स्त्रियया ।

सागरं येन ते दीर्घाः पथा तेनैव पुनुरुतुः ॥ १५ ॥

उठ उठने लैक-लैकमें ही किन्हे माप वे धीर कर
सिध मांशि समुद्र पार करके छद्गमें अग्ने ये, उठी मने
भगने छो ॥ १५ ॥

ते स्वप्नानि तथा निम्न विधर्मवद्भ्य भयात् ।

श्रुत्वा वृषान् सम्पकृत्वा केचित् पर्वतमभिजाः ॥ १६ ॥

मनेके मारे जानरोंके मुसकरी कथित छीकी पड़ गयीं ।
वे नीची कहा देख-देखकर भगने और छिपने छो । किन्हे
ही एक इलीपर था लड़े और किन्नेने परतोंकी धरम थी ॥

ममरुद्वार्षभे केचित् गुहाः केचित् समाभिताः ।

निपेतुः केचित्पारे केचित्पैवावतस्मिन् ।

केचित् भूमौ निपतियाः केचित् सुता सूय इव ॥ १७ ॥

किन्ने ही जानर और पानु समुद्रमें डूब गये । किन्नेने
परतोंकी गुधमौम्र भाषय किया । कोरें गिर कोरें पर
स्थानपर लड़े न रह लके, इच्छिम मगो । कुछ पराधर
हा गय और कोरें-कोरें मुरोके तमान गौंठ उठकर पड़ गये ॥
तान् समीक्याहरो भद्रान् धानरामिन्द्रमग्रीत् ।

भयतिष्ठत पुष्पामो निपतय्य युयगमा ॥ १८ ॥

उन जानरोंके भगन देत अगने इल प्रकर क्या—
पानरपीठ । उठते छैट अग्ने । हम लव मिशकर मुक
करेंगे ॥ १८ ॥

भद्रानां पो न पदपामि परिच्छस्य महीमिमाम् ।

भ्यम सयै निवर्तय किं प्राणान् परिरक्षथ ॥ १९ ॥

यदि तुम भग्न गये तो धारी पृथ्वीकी परिभ्रमा करके भी नहीं टुन्नें ठहरनेके लिये खान मिल सके, ऐसा मुझे नहीं दिखायी देता (सुग्रीवकी आश्रमके बिना कहीं भी बनेपर तुम भीतित नहीं बन सकोगे) । इतलिये एव श्लोक श्लोक मारो । क्यों बनने ही प्राण बचानेकी चिक्रमें पड़ हो ? ॥११९॥

निरायुधाना क्रमतामसङ्गतितौषया ।
वायुः क्षुण्णसिप्यस्ति स वै बालाः सुजीवितवाम् ॥ २० ॥

तुम्हारे वेग और पराक्रमको छोड़ें रकनेवास्त नहीं है । यदि तुम हथियार शस्त्रकर ममा ब्रह्मणे तो तुम्हारी बिनमें ही तुमकोयोग्य उपहास करेगी और यह उपहास भीतित खनेपर भी तुम्हारे लिये मृत्युक समान दुःखदायी हेतु ।

कुलेषु श्लाघासर्वेऽस्मिन् विस्तीर्णेषु महत्सु च ।
क गच्छत भयवस्तवः प्राहृत्य हरयो यथा ।
अनार्याः कस्य यस्तीवास्त्यक्त्वा धीर्यै प्रभाषत ॥ २१ ॥

तुम एव श्लोक महान् और बहुत बुरतक फेले हुए श्लोक कुलमें उदयन हुए हो । फिर धाधारण बननेकी मोति मन्थित होकर क्यों भङ्गे जा रहे हो ? यदि तुम पराक्रम छोड़कर मयके क्षरण मगते हो तो निश्चय ही अनार्य समझे सकोगे ॥ २१ ॥

विकल्पयामि धो यानि भवद्भिर्जनससदि ।
यानि चः क नु यस्तानि सोऽव्राणि हितानि च ॥ २२ ॥

तुम बन-धनुदाममें बैठकर अब डींग हॉक करते ये कि हम बड़े प्रचण्ड वीर हैं और स्वामीके द्वितीय हैं, तुम्हारी वे एव बड़ी आज कहीं लक्ष्मी गयी ! ॥ २२ ॥

भीरोः प्रवादाः श्रूयन्ते यस्तु जीयसि भिषकृताः ।
मार्गाः सत्पुत्रैश्चुष्टुः सेष्यतां त्यज्यताः भयम् ॥ २३ ॥

ज्ये स्युःक्योंद्वारा विकृत होकर भी भीकन धारण करता है, उसके उस भीकनके पिताक है । इत तरहक निष्कारक वचन कसरोके उदा सुनने पड़ते हैं । इतलिये तुमको मम छोड़ो और स्युःक्योंद्वारा सेवित मार्गक आशय ज्ञ ॥ २३ ॥

शयामो धा निहत्वाः पुषिय्यामस्यजीयिता ।
शयुयामो ब्रह्मसोक दुष्प्राय च कुयोधिभिः ॥ २४ ॥

यदि हमको मरनेकी ही हो और शत्रुके हाथ मारे जाकर रजभूमिमें छोड़ दिये तो हमें उस नष्टकोशकी प्राप्ति होगी जो कुयोधियोंके लिये परम दुःखम है ॥ २४ ॥

अयन्तुयामाः कीर्तिं या निहत्या दातुमाहय ।
निहता वीरकोकस्य भोक्ष्यामो यस्तु यानराः ॥ २५ ॥

अनर । यदि तुममें हमने शत्रुको मार लिया तो हमें उच्च कीर्ति मिलगी और यदि स्वयं ही मारे गये तो

हम वीरकोकके नेमक उपयोग करेगे ॥ २५ ॥
न कुम्भकर्णः काकुत्स्थ इन्द्राजीवन गमिष्यति ।
वीप्यमानमिधासाद्य पतङ्गो ज्वलन यथा ॥ २६ ॥

धीरपुनायकीके लम्बने खनेपर कुम्भकर्ण भीतित नहीं श्लोक सकेगा ठीक उची तरह, जैसे प्रचण्ड मन्तिके पास पहुँचकर पतङ्ग मरना हुए बिना नहीं रह सकता ॥ २६ ॥

पलायनेन चोद्दिष्टा प्राणान् रक्षामहे वयम् ।
एकेन वहसो भङ्ग यथा न्याय गमिष्यसि ॥ २७ ॥

यदि हमको प्रकृत वीर होकर भी मारकर अपने प्राण बचानेगे और अधिक संस्मामें होकर भी एक मोटाका धाम्ना नहीं कर सकोगे तो हमारा यद्य मिहीनं मित्र क्षयगा ॥

एव तुवाण त शूरमङ्गल कनकाङ्गदम् ।
श्रेयमाणास्ततो याभ्यमूषुः शूरकिर्गर्हितम् ॥ २८ ॥

खनेकर कर्णवद धारण करनेवाले वीरोंका मङ्गल एव ऐसा कह रहे ये उस समय उन भगते हुए वानरोंने उन्हें ऐसा उत्तर दिया, जिसकी शौर्य-सम्पन्न योद्धा क्या निगदा करते हैं ॥ २८ ॥

कृत नः क्वन घोर कुम्भकर्णेन रक्षसा ।
न स्थानकालो गच्छामो वृथित जीवित हि ना ॥ २९ ॥

ये बोले—एकस कुम्भकर्णने हमारा घोर खंभार मचा रखा है मतः यह ठहरनेका समय नहीं है । हम जा रहे हैं क्योंकि हमें अपनी जान प्यारी है ॥ २९ ॥

एताश्चुक्त्या पञ्चम सर्वे त भेक्षित विश्व ।
भीम भीमाक्षमायास्त इन्द्रा यानरयूयपा ॥ ३० ॥

इतनी बात कहकर ममानक नेत्रवाले मीरल कुम्भकर्णके आते देख उन सब वानर-सूयपतिवोंने विभिन्न दिशाओंकी धारण की ॥ ३ ॥

प्रथमप्रास्तु त वीरा मङ्गलेन बर्हीमुस्ताः ।
अनकमैत्र्यातुमामैत्र्य कताः सर्वे निवृत्तिताः ॥ ३१ ॥

उन उन मगते हुए सभी वीर वानरोंका मङ्गलने अस्तवना और आहर-समानक हाथ छोड़ा ॥ ३१ ॥

प्रथमपुत्रीत्याम् यात्रिपुत्रेण भीमता ।
आह्वाम्प्रीक्षास्तस्युच्च सर्वे वानरयूयपा ॥ ३२ ॥

कुत्रिमार यात्रिपुत्रने उन सको प्रकृत कर दिया । ये एव वानरयूयपति सुग्रीवकी आश्रमकी प्रतीक्षा करत हुए लड़े हो गये ॥ ३२ ॥

शुभभदारभमैश्वर्यनीसाः
कुम्भसुपेणगाभाभरम्भतरा ।
द्विपिन्पनस्तवायुपुत्रमुत्प्या
स्वयन्विततराभिमुखं रय प्रयाताः ॥ ३३ ॥

तदनन्तर श्याम धरम, मेन्द, घृष नील, कुमुद, गुण, गलाध, रम्भ, खर, द्विविध पनध और वासुपुत्र हतुगन्

आदि भेद वातर-वीर दुरत ही कुम्भकर्णका साम्य करने लिये लम्बेपत्री भए लड़े ॥ ११ ॥

इत्थार्थे श्रीमद्भागवते वाचस्पतीने आदिश्रम्ये युद्धकाण्डे पठपठितमाः सर्गाः ॥ ११ ॥

"स प्रकार श्रीमद्भागवत विनिर्मित भाररामायण अष्टिकाण्डे युद्धकाण्डे अष्टाध्यायैर्न पूरा हुआ ॥ ११ ॥

सप्तपठितम सर्ग

कुम्भकर्णका भयकर युद्ध और भीरामके हाथसे उसका वध

तं निघृष्टा महाकायाः भुश्याङ्गवचस्तदा ।
नैष्टिकीं बुद्धिभ्रमस्त्वय सत्तं सप्रामकाङ्क्षिणा ॥ १ ॥

अङ्गके पूर्वोक्त वचन सुनकर वे सब विद्याङ्गमय वानर मने गजरोक्ष निश्चय करके युद्ध ही इच्छते थे ॥ १ ॥

समुदीरितवीर्यास्ते समारोपितविभ्रमाः ।
पयवस्थापिता पाच्यैरङ्गत्वेन वल्मीक्या ॥ २ ॥

महास्त्री अङ्गदने उनके पूर्वपरङ्गमोंका वर्णन करके अपने वचनोंवाच्य उन्हें सुखद एवं कष्ट-विभ्रमवन्मन बनाकर लड़ा कर दिया था ॥ २ ॥

प्रयाताश्च गत्या हर्षे मरये कृतनिश्चयाः ।
बाहुः सुतमुत्त युद्ध वातरास्यकजीविताः ॥ ३ ॥

मन वे वानर मरनेका निश्चय करके बड़े हर्षके साथ आगे बढ़े और भीरुका मोक्ष छोड़कर असक्त भयंकर युद्ध करने लगे ॥ ३ ॥

अथ युष्टान् महाकायाः सानूनि सुमहाति व ।
अनरासूर्जमुद्यम्य कुम्भकर्णमभिप्रवध ॥ ४ ॥

उन विद्याङ्गमय वानर-वीरोंने युद्ध तथा बड़े-बड़े पर्यन्त-शस्त्र केन्द्र हत ही कुम्भकर्णपर पाया किया ॥ ४ ॥

कुम्भकर्णः सुखकुन्दो गत्रामुद्यम्य धीर्यअन ।
धर्ययत्समहाकायाः समस्ताव् व्यक्षिपत् रिपूम् ॥ ५ ॥

परंतु असक्त श्रेणते गेरे हुए विक्रमघात्री महाकाय कुम्भकर्णने गवा उठाकर शत्रुओंको मारबध करके उन्हें लारों और बिन्दुंर दिया ॥ ५ ॥

घट्टनि सत चापौ च सहस्राणि च वातराः ।
प्रक्षीर्णाः शेरते भूमौ कुम्भकर्णेन ताडिताः ॥ ६ ॥

कुम्भकर्णकी मार खाकर आठ हजार सत लौ वानर लम्बक भयघानी हो गये ॥ ६ ॥

पोशशापौ च वध च विशातिदासद्येव च ।
परिक्षिप्य च बाहुभ्यां क्षापन् स परिधावति ॥ ७ ॥

भक्षयन् शूद्रासमुद्रां गदहः पद्मगानिव ॥ ७ ॥
हृ खेडः, आठ, दण, वीध और तीत-तीध वानरोंको

अपनी शनों शुकभौते छोड केता और जैसे गरुड लपोंके साथ है उसी प्रकार असक्त श्रेणपूर्वक उनका मध्य करत युद्ध सब भए दौड़ता-फिरता था ॥ ७ ॥

कृच्छ्रेण च समाभ्रष्टा सगम्य च ततस्ततः ।
पृसाद्रिहस्ता हरयस्तस्युः संप्राममूर्धनि ॥ ८ ॥

उठ सम्य वानर बड़ी कठिनार्थते जैसे परभ करके हस्त उधरसे एकत्र हुए और युद्ध तथा पर्यन्तशस्त्र हाथमें लेकर संप्राममूर्धनि बडे रहे ॥ ८ ॥

तदा पर्यन्तमुत्पाठ्य द्विविधः प्लवर्गपरभः ।
शुभ्राथ गिरिशृङ्गाभ बिलम्ब इव तोयवः ॥ ९ ॥

उत्पन्नात् मेचके समान विद्याध शरीरगळे वानरशिरोम्ये द्विविधने एक पर्यन्त उलाइकर पर्यन्तशस्त्रके समान लंबे कुम्भकर्णपर आक्रमण किया ॥ ९ ॥

त समुत्पाठ्य विश्लेषे कुम्भकर्णाय वातराः ।
तमप्राप्य महाकार्यं तस्य सैन्येऽपतत् ततः ॥ १० ॥

उठ पर्यन्तके उलाइकर द्विविधने कुम्भकर्णके उत्तर पंक्था किट बह उठ विद्याङ्गमय एकलक न पहुँचकर उसकी सेनामें ड्रा मिरा ॥ १० ॥

ममर्शाभ्यान् गर्जाब्जापि रथाब्जापि गम्येत्तमान् ।
तानि बाल्यानि रक्षसि पर्वं चाप्यक्षिरेः शिरा ॥ ११ ॥

उठ पर्यन्त-शस्त्रने एकलके कितने ही शेरों हाथियों, रथों गम्यमों तथा बृहते-शूरे एकलोंने नी कुचक बाध ॥

तच्छैलस्येगाभिहृत ह्यक्षरं हस्तारपिम् ।
रक्षसां बभिरङ्गिन्नं बभूवायोधन महत् ॥ १२ ॥

उठ समय बह महान् युद्धकाय निम्ने शैल-शस्त्रके बेगसे कितने ही शेरों और शरणि कुचक गये थे, एकलके बभिरसे शैल्य हा गया ॥ १२ ॥

रथिनां वानरोद्भार्यां शरैः कक्षास्तकपमैः ।
धिरांसि मर्तां बहूः सहस्रा भीमनिभवाः ॥ १३ ॥

उन भयनक शिष्टाह करनेवाले एकल सेनाके रथियोंने प्रथमशस्त्रने यमराजके समान भयंकर शरोंसे गर्भते हुए वानर-युद्धियोंके महाशैले लक्ष्य करया आरम्भ किया ॥

तपस्व महात्मानः समुत्पाद्य महाशुमान् ।
पान्थान् गजानुपुत्रान् राज्ञस्तानभ्यसूयन् ॥ १४ ॥

महामन्त्री वनर भी बह-बड़े पक्ष उखाड़कर शत्रुसेना-
के रथ पक्ष हाथी, जैट और राक्षसोंका संहार करने लगे ॥ १४ ॥

तन्मास्त्रैस्तद्व्राणि शिल्पाश्च विविधान् शुमान् ।
वपयं कुम्भकण्वस्य शिरस्यम्बरमास्थित ॥ १५ ॥

हनुमान्त्री आद्यधर्म पहुँचकर कुम्भकर्णके मस्तकपर
मैत-शिल्लरों, शिल्पाओं और नाना प्रकारके हथौड़ी बना
करने लगे ॥ १५ ॥

व्राणि पक्कटाङ्गानि शूलेन स विभेद् ह ।
पथञ्च वृक्षपरं च कुम्भकर्णो महाबल ॥ १६ ॥

परंतु महाशक्ती कुम्भकर्णने अपने हथौड़े से उन पर्वतशिल्लरों-
को काँड़ हाथी और बरखड़े खानेवाले वृक्षों को भी टुकड़े-टुकड़े
कर डाले ॥ १६ ॥

ततो हरीणा तदनीकमुप
सुद्राव शूल निशित प्रगृह्य ।

तस्यै स तस्यापततः परस्त्र
महीधराम हनुमान् प्रगृह्य ॥ १७ ॥

कलभात् उठने अपने तीक्ष्ण हथौड़े हाथमें लेकर वनपों-
की उध मरकर सेनापर आक्रमण किया । पर देव हनुमान्त्री
एक पर्वत-शिल्लर हाथमें लेकर उस आक्रमणकारी राक्षसका
धमका करनेके लिये लड़े हुए गये ॥ १७ ॥

स कुम्भकर्णं कुपितो अधान
यगन शौलोत्तमभीमक्षयम् ।

मशुभ्रुमे तम तदाभिभूतो
मद्भ्रात्रात्रो रुधिरवसिष्ठः ॥ १८ ॥

उन्होंने कुपित हो भेद पर्वतके समान मयानक शरीरवाले
कुम्भकर्णपर बड़ केमल प्रहार किया । उनकी उस मारले
कुम्भकर्ण ब्याकुल हो उठा । उसका शत्रु शरीर पर्वत ग्रीष्य
हो गया और वह लड़के नष्ट गया ॥ १८ ॥

स शूलमाविष्य तद्विषमध्वज
गिरिं यथा प्रज्यतिताम्बिष्ठहम् ।

याद्वस्तर माकृतिमाजघान
गुरोऽचल प्रौढमिवाप्रदापत्या ॥ १९ ॥

श्लि ग उठने भी विस्तीर्ण समान चमकन हुए हथौड़े
गुमाकर श्लि ग शिल्लरपर भाग बल रही हो उस पर्वतके
ध्वज हनुमान्त्रीकी छतरीने उधे कर मारा देव स्वामी
श्रीरुद्रने अपनी मयानक शक्तिसे शौडरनगर आघात किया
था ॥ १९ ॥

स शूलनिभिधमहाभुव्रान्तर
प्रविहता दापितमुदमन मुखात् ।

तत्राद् भीम हनुमान् महाहय
युगास्तमेघस्तन्त्रिलनोपमम् ॥ २० ॥

उस महासमरमें श्यवी चोटसे हनुमान्त्रीकी शनोभुव्रानों-
के बीचका भाग (बड़ खाल) विदीर्ण हो गया । ये ब्याकुल
हो गये और मुँहसे रक्त वमन करने लगे । उस समय पीड़ाने
मारने उन्होंने बड़ा मरकर आर्तनाद किया, जो प्रत्यक्षकरके
नेपथीकी गर्जनाक समान बान पड़ता था ॥ २० ॥

ततो विनेतुं सहसा प्रहृष्ट
रक्षोगणास्त व्यथित समीक्ष्य ।

प्लवगमास्तु व्यथिता भयताः
प्रमुमुषुः सपति कुम्भकणात् ॥ २१ ॥

हनुमान्त्रीके आचलते पीड़ित रक्ष राक्षसोंके हर्षकी
सेमा न रही । वे सहसा डर डरसे कम्पित करने लगे ।
इसपर कुम्भकर्णके मरते पीड़ित एवं व्यथित हुए वनर मुद-
मूमी छाड़कर भागने लगे ॥ २१ ॥

ततस्तु नीलो यलवान् फयवस्थापयन् यक्षम् ।
प्रथिचिह्नैप शैलाप्र कुम्भकणाय भीमत ॥ २२ ॥

यह देव यक्षान् नीलने वनरसेनाका धर्म बँचाने एवं
मुमिर रखनेके लिये बुद्धिमान् कुम्भकर्णपर एक पक्कट
शिल्लर चढ़ाना ॥ २२ ॥

तदापतन्त समोक्ष्य मुष्णिभिजघान ह ।
मुष्णिहारभिहृतं तच्छौलाप्र व्यशीयत ।

सविस्फुलिङ्ग सज्याळ निपपात महीतळ ॥ २३ ॥

उस पर्वतशिल्लरके अपने ऊपर भादा देव कुम्भकर्णने
उधपर मुक्कड़े आघात किया । उसका मुक्का समते ही बड़
शिल्लर चूर-चूर होकर शिल्लर गया और भागती जिनशरीरों
तथा लोटें निस्फुल्य हुआ दूमीर गिर पड़ा ॥ २३ ॥

श्वयभा शरभा नीळे गयानो गन्धमादन ।
पञ्च वानरशावृक्षा कुम्भकण्यमुपाद्रयन् ॥ २४ ॥

इसके बाद श्वयभ घरम नील गन्ध और गन्धमादन—
इन पाँच प्रमुख वनरशरीरोंने कुम्भकर्णपर पत्ता किया ॥ २४ ॥

दीर्घवृक्षैस्तैर्ल पादमुष्णिभिश्च महापलाः ।
कुम्भकर्णं महाकाय निजघ्नुः सयतो युधि ॥ २५ ॥

ये महाशक्ती शीर चाँगे मारने परकर मुक्कड़धमने महाप्रप
कुम्भकर्णके पर्वतों हथौड़े धक्कड़ों से लगे और मुक्कड़ों मारने
लगे ॥ २५ ॥

स्यशानिय प्रहापस्तान् यदयानो न विष्यथ ।
श्वयभ तु महावर्गं यादुर्म्या परिप्लव्य ॥ २६ ॥

यदिन प हग बड़ डर डरसे प्रहार करत थे, तथापि
उम एका बल पड़ता था मला कर धीरे धीरे चूर पड़ा हो । अतः
इनकी मारम उन ठिक भी पीड़ा नहीं हुई । उठने मरान्
देवगाथी श्वयभके अपनी शनो भुव्रानोंने भर किया ॥ २६ ॥

कुम्भकण्ठमुद्राभ्यां तु पीडितो धानरथम् ।
निपपातयन्भीमः प्रमुखागतशोषितः ॥ २७ ॥

कुम्भकर्णं धर्मं भुञ्जते रथेन पीडितं ह्ये
गन्तव्यं मन्त्रिणां श्रयणं मुँक्षे नूनं निष्कन्धे व्यग्रे भ्रैरं ने
गिर गिर पङ् ॥ २७ ॥

मुष्टिन्व वारुभ ह्रस्वा जाजुना नीसमाहये ।
भ्रजगान गयासं तु कलेनेन्द्ररिपुस्तथा ।

पादनाभ्याहनत् ह्यन्दस्तरसा गन्धमायनम् ॥ २८ ॥
तदनन्तर उभ समभूमिमे इन्द्रोही कुम्भकर्णे धरमन्त्रे

मुक्त्रंभे भरुधर नीसंभे पुदनेषे रगङ् दिया भ्रैर गथाधके
पण्यसे मय । फिर म्रपथ भरुधर उवने गण्यमादतन्त्रं बडे
वग्ने स्मत् मारी ॥ २८ ॥

दृष्टप्रहारपथिता मुमुक्षुः शोभितोऽस्तिता ।
निपतुस्तं तु मदिन्यां निष्कृत्वा इय फिपुक्ता ॥ २९ ॥

उचकं प्रहारेमे प्थितं ह्यु धानर मुँक्षितं हो गभ भ्रैर
रक्षतं नहा उठे । फिर कूटं ह्यु पम्बग-दृष्टमी मौँते श्वीपर
गिर पङ् ॥ २९ ॥

तपु धानरमुख्येषु प्यतितेषु महा मसु ।
धानरायां सहस्राणि कुम्भकर्णं प्रदुदुवा ॥ ३० ॥

उन महात्मन्धी प्रमुभ धानरैके धणयाथी हो जनेवर
ह्यैरौ धानर एकं ख्य कुम्भकर्णर दृष्ट पङ् ॥ ३० ॥

त दोस्तमिर शंखाभागं सर्वे तु पूषणपभाः ।
समापद्यन् संमुत्पत्य ददुष्य महापत्न्याः ॥ ३१ ॥

प्रांतकं समान प्रदीतं दानं गभ ये समस्त महापत्नी धानर
पूषणी उभ पत्न्यवार पञ्चकं ऊपर चद गभ भ्रैर उचक-
उचकप्र उने दाँतेमे शान्दर सगं ॥ ३१ ॥

त मांशुर्नैर्द्याणि मुष्टिभिषाहुभिस्तथा ।
कुम्भकर्णं महापादुं निज्जन्तु पूषणपभाः ॥ ३२ ॥

ध नान्द्रियमन्त्रि नगैर् दाँते मुद्धौ भ्रैर दामोभ
महापदु कुम्भकर्णये मरने ह्ये ॥ ३२ ॥

स धानररहस्यंस्तु रिशितः पयतापमा ।
रगतं शासनप्यामा गिरिगामकदृष्टिय ॥ ३३ ॥

२। पदां भ्रमे ऊपर उने ह्यु गृह्ये मुष्टिभिः रग
रे उने प्रहार प्रहो कनेभ भ्रज ह्युभ नरे पद्मधर
पण्य रीर मरुता पान्य जने प्य ॥ ३३ ॥

बाहुभ्यां धानरान् सवान् प्रपृष्ट स महापत्न्याः ।
भ्रातृप्यामां सत्रजां गदहः पद्मगानिर ॥ ३४ ॥

२न पङ्क गतेभ मन्त्र्य म्हात्तर म्हात् ॥ ३४ ॥
मन्त्र्य म्हात्तर म्हात्तर म्हात्तर म्हात्तर म्हात्तर म्हात्तर
मन्त्र्य म्हात्तर म्हात्तर म्हात्तर म्हात्तर म्हात्तर म्हात्तर
मन्त्र्य म्हात्तर म्हात्तर म्हात्तर म्हात्तर म्हात्तर म्हात्तर

प्रक्षिताः कुम्भकर्णेन पश्ये पातालसन्निभे ।
न्यसापुटाम्भ्यां सजम्भुकणाम्भ्यां वैव धानराः ॥ ३५ ॥

कुम्भकर्णं अपने पातालके समान मुलमे धानरैर्भ शोष्य
कता या भ्रैर वे उठके धनौ तथा नगैर्भैर राखे भ्रैर
निष्कन्धे बडे मे ॥ ३५ ॥

भद्रायन् शूरासकुन्धो हरिन् पश्वत्सन्निभः ।
वभञ्ज धानरान् सर्वान् सङ्क्रुद्धो रससोत्तमः ॥ ३६ ॥

अत्यन्तं क्रोधे भरुधर धानरैर्भ मन्त्र्य म्हात्ते ह्यु
प्रांतके समान विद्यामन्त्र्य उभ उचक्यकने उमस्त धानरैके
आह-मन्त्र कर बाडे ॥ ३६ ॥

मांसशोषितसङ्क्रुद्धो धुयन् भूमिं स रससः ।
चक्षार हरिसेम्येषु कत्रव्यधिरिय मुँक्षितः ॥ ३७ ॥

रथभूमिमे रक्ष भ्रैर मांशुर्भैर धीष मन्त्र्या ह्युभ्यं
उचक्य कवी हुई प्रम्ब्यामिके समान धानरैनामे निचने
मन्त्र्य ॥ ३७ ॥

यज्ञहस्तो यथा शक्रः पाशहस्त इषान्तकः ।
शूलहस्तो यथी युद्धे कुम्भकर्णो महायत्नः ॥ ३८ ॥

ह्यु धामोमे सेरु रथामभूमिमे निचक्य ह्युभा मन्त्र्य
कुम्भकर्णं यज्ञधारी इन्द्र भ्रैर पाशधारी यमराजके समान मन्त्र्य
पङ्क था ॥ ३८ ॥

यथा गुण्डाभ्यरण्यानि भीष्मे बृहति पायकः ।
तथा धानरसैन्यानि कुम्भकर्णो बृवाह सः ॥ ३९ ॥

बैसे भीष्म श्रुतेमे राजानस सृष्टे कम्बोभ म्हात्ते
उभे प्रकार कुम्भकर्णं धानरैनाभौँके रथ्य करने ह्यग ॥

ततस्त पथ्यमानास्तु हतयूथाः पूषणमाः ।
धानरा भयसयिष्य विनेतुर्युष्टिः स्वरो ॥ ४० ॥

मिनेके पूष म्हात्ते नष्ट हो गप ये, ये धानर कुम्भकर्णं
मन्त्र्य म्हात्ते भयमे उदिय हो उठे भ्रैर निवृत्त ह्येमे वीर्य
करने ह्यग ॥ ४० ॥

भनक्रुत्ता पथ्यमानाः कुम्भकर्णेन धानराः ।
रायथ नरण्य जगमुष्यगित्य निरन्वतसः ॥ ४१ ॥

कुम्भकर्णर दामे मन्त्र्य म्हात्ते ह्यु वदुत्त मन्त्र्य, मिन्त्र्य
दिन दृष्ट गप था म्हात्ते हो भीष्मनाथकी भीष्ममे मन्त्र्य ॥
प्रभामान् धानरान् ह्यु पद्मदृष्ट्यामजगामजगः ।

भम्भयारत धानर कुम्भकर्णं महाहय ॥ ४२ ॥
धानरैर्भ म्हात्ते रथ म्हात्ते ह्युभ म्हात्ते उभ महात्मरैमे
कुम्भकर्णं भ्रैर बडे यथा रीर ॥ ४२ ॥

गैन्द्रश्च महत् पूष गिरिन् स मुदुमुक्षुः ।
शामयन् शागायन् सवान् कुम्भकर्णरानुगात् ॥ ४३ ॥

गिरिन् निगिरत् कुम्भकर्णस्य मूर्धनि ।
पुत्रं धानरैर्भ म्हात्ते रथ म्हात्ते रथ म्हात्ते रथ म्हात्ते

हापने के सिद्धा और कुम्भकर्णके पीछे चलनेवाले समस्त
एकज्येष्ठ मयभीत करते हुए उस परंतवशिखरको उसके मस्तक-
पर दे माण ॥ ४२३ ॥

स तेनाभिहतो मूर्ध्नि शैलेनेन्द्ररिपुस्तदा ॥ ४४ ॥
कुम्भकर्णः प्रजम्बवाद्य श्लोघेन महात्वा तदा ।
सोऽभ्यधापयत् श्रेणेन घालिपुत्रममर्याणा ॥ ४५ ॥

मस्तकपर उस परंतवशिखरकी चोट लाकर इन्द्रप्रोही
कुम्भकर्ण उस क्षम्य महान् श्लोघसे कब उठा और उस प्रहार
से खान न कर छक्केके कारण बड़े बेमाले बाधिपुत्रकी ओर
चौड़ा ॥ ४४ ४५ ॥

कुम्भकर्णो महानावत्क्रासयन् सर्वयामनान् ।
शङ्क ससर्ज ये रोपाद्ब्रूवे तु महावलयः ॥ ४६ ॥

बड़े बेमाले गर्भना करनेवाले महाकभी कुम्भकर्णने समस्त
वानरोंको संभसा करते हुए अद्भुतपर बड़े रोते हुए प्रहार
प्रार किया ॥ ४६ ॥

सद्वापकृतं बलवान् युद्धमार्गाविशारदः ।
व्यामथामोक्षयामास बलवान् वानरपर्यभः ॥ ४७ ॥

हिन्दु युद्धमार्गके ज्ञाता कम्बान् वानरशिरोमणि अज्ञानने
कुर्वीते शूकर अपनी भार आते हुए उस क्षम्य अपने-आपको
बधा किया ॥ ४७ ॥

उत्पत्य धैम तरसा तलेनेरस्पताडयत् ।
स तन्वभिहतः कोपात् प्रमुमोहाद्यच्छोपमा ॥ ४८ ॥

धैर्य ही बड़े बेमाले उलझकर उन्होंने उलकी छालीमें एक
पण्ड माण । श्लोघपूर्वक चढाये हुए उस धप्यकभी मर
घाकर वह परंताकर उलझ मूर्च्छित हो गया ॥ ४८ ॥

स उभ्यसन्नोऽतिवलो मुर्ध्नि सगृह्य राससा ।
अपहस्तेन विक्षेप्य विसङ्गा स पपात ह ॥ ४९ ॥

घोड़ी हेरने का उठे हाथ हुआ, वह उस अकण्ठ क-
ण्ठकी उलझने भी नाथे हाथले मुकम बाँधकर अद्भुतपर प्रहार
किया; किन्तु वे अचेत होकर घृणीपर गिर पड़े ॥ ४९ ॥

वसिन् प्रयगगावृत्ते विसृष्टे पतितं मुवि ।
तत्पृच्छं ससुपादाय सुप्रीयमभिदुद्रुय ॥ ५० ॥

बनप्रार अज्ञके अचेत एवं बराणाली हो खनेपर
कुम्भकर्ण बरी हल मकर मुप्रीयकी ओर चौड़ा ॥ ५० ॥

कम्पाकृत्य सम्प्रेक्ष्य कुम्भकर्ण महाबलम् ।
उत्पपत् तदा धीरा सुप्रीयो वानराधिप ॥ ५१ ॥

मदास्वी कुम्भकर्णको अपनी भार आते देस धीर वानर
एव मुप्रीय क्वात् उरकी ओर उलझ ॥ ५१ ॥
स पवत्प्रामुक्तिप्य समाधिष्य महाकपि ।
अभिदुद्राय पगान कुम्भकर्ण महाबलम् ॥ ५२ ॥

महाकपि सुप्रीयने एक परंतवशिखरको उठा किया और
उसे पुमाकर महाकभी कुम्भकर्णपर वेगपूर्वक भासा किया ॥
तमापकृत्य सम्प्रेक्ष्य कुम्भकर्णः प्रयगगमम् ।
तस्यौ विवृत्तसर्वाङ्गो वानरेन्द्रस्य सम्मुक्तः ॥ ५३ ॥

बानर सुप्रीयको आक्रमण करते देस कुम्भकर्ण अपने
खरे सर्वाङ्गको फैलाकर उन वानरएनके खम्बने खड़ा हो गया ॥
कपिशोषितादिग्धाङ्ग भक्षयन्त महाकपीन् ।
कुम्भकर्णं श्यस्तं ह्यप्य सुप्रीयो पाकप्यमग्रधीत् ॥ ५४ ॥

कुम्भकर्णका धार धारी वानरोंके रकते नहा उठा था ।
वह बड़े-बड़े वानरोंको साया हुआ उनके सामने खड़ा था ।
उसे देखकर सुप्रीयने कहा— ॥ ५४ ॥

पातितोऽथ त्वया धीराः कृतं कर्म सुदुष्करम् ।
भस्मितानि च सैन्यानि प्राप्त ते परमं यथा ॥ ५५ ॥

एष्य तद् वानरानीक प्राकृतैः किं करिष्यसि ।
सहस्रैक निपात मे पर्यंतस्यास्य राक्षस ॥ ५६ ॥

पक्ष्य । तुमने बहुत-से वीरोंको मार गिराया; अमन्त
दुष्कर कर्म कर दिखाया और कितने ही सैनिकोंको अपना
ग्यहार बना लिया । इससे तुम्हें शौर्यका महान् यथा प्राप्त
हुआ है । अब इन वानरोंकी सेनाको छोड़ दो । इन खपारण
बंदरोंके बहकर क्या करोगे ? बरि शक्ति हो तो मेरे चढाये
हुए इस परंतवकी एक ही चोट धर लो ॥ ५५-५६ ॥

तद् धाप्य हरिराजस्य सत्त्वधैर्यसमन्वितम् ।
भुक्त्य राससचापूक कुम्भकर्णोऽप्रवीड् वधः ॥ ५७ ॥

वानरएककी यह सत्त्व और धैर्यसे युक्त बात सुनकर
राक्षसद्वार कुम्भकर्ण देख्य— ॥ ५७ ॥
प्रजापतेस्तु पीत्रस्य तथैवर्षरजःसुत ।
धृतिपीडयसम्पन्नस्तमाद् गजसि यान्तर ॥ ५८ ॥

वानर । तुम प्रजपतिके धैर्य, श्रुधत्त्वके पुत्र तथा
धैर्य एवं पीडयते सम्पन्न हो । इसीधिये इस तरह गरज
जो दे ॥ ५८ ॥

स कुम्भकर्णाय धयो निदाम्य
भ्यापिष्य दन्ड सहसा मुमोच ।
तेन्यजघामोरसि कुम्भकर्णं
शैलम पञ्चाशतिसन्निभेन ॥ ५९ ॥

कुम्भकर्णकी यह बात सुनकर सुप्रीयने उस शैल-शिखरको
पुमाकर सहस्य उसके ऊपर डाढ़ दिया । वह यत्र और
अग्रनिके ख्यान था । उसके शय उन्होंने कुम्भकर्णकी
छालीमें गद्री चोट पड़ोपाधी ॥ ५९ ॥

तन्प्रेतदृष्टं सहसा विभिन्न
मुञ्जान्तर तस्य तदा विनाम्ने ।
ततो विरदुः सहसा द्रुपगा
रक्षाम्पाभापि मुदा गिनदुः ॥ ६० ॥

तन्प्रेतदृष्टं सहसा विभिन्न
मुञ्जान्तर तस्य तदा विनाम्ने ।
ततो विरदुः सहसा द्रुपगा
रक्षाम्पाभापि मुदा गिनदुः ॥ ६० ॥

कुम्भकर्णमुद्राया तु पीडितो धानरपभः ।
निपातपभो भीमा प्रमुखागतशोषितः ॥ २७ ॥

कुम्भकर्णश्च देवो मुञ्जोऽसि दधकर पीडित इव मर्षकर
धानरपिरोमपि श्रुपमके मुँहसे लून निरुद्धने ष्या और वे
प्रधीपर गिर पड़े ॥ २७ ॥

मुष्टिला शरभ हत्वा जानुना गीलमाहस्य ।
भाजघान गवाक्षं तु तलेनेन्द्ररिपुस्तदा ।
पाशनाम्यहनात् कुन्धस्तरसा गम्भमाप्लवम् ॥ २८ ॥

तदनन्तर उठ समरभूमिमें इन्द्रादी कुम्भकर्णने धरमको
मुनकेसे मारकर नीलको धुटेनेसे राङ्ग रिय और गवाक्षको
बन्धकसे मारा । फिर ऋषसे भरकर उठने गम्भमाहनाको पड़े
शेखे ष्यल मारी ॥ २८ ॥

वृत्तमहाह्वयपिता मुमुक्षुः श्येजितोक्षिता ।
निपनुस्तं तु मेधिन्यां निरुद्धा इव किञ्चुकाः ॥ २९ ॥
उसके प्रहासे व्यथित हुए धानर मूर्च्छित हो गये और
रुद्धे नष्ट ठठे । फिर ऋ हुए पञ्चपञ्चमी मौलि शृष्ठीपर
गिर पड़े ॥ २९ ॥

तेषु धानरमुष्येषु पातिषेषु महात्मसु ।
धानरप्यां सहस्राणि कुम्भकर्णे प्रदुद्रुषुः ॥ ३० ॥

उन महात्मस्त्री प्रमुञ्ज धानरके धरपाणी हो जानेकर
हबरे धानर एक खप कुम्भकर्णपर दूट पड़े ॥ ३ ॥
त दीक्षमिष दीक्षाभाः सर्वे तु दूकनापभाः ।
समारुह्य समुत्पत्य वदशुभ्य महावपुषा ॥ ३१ ॥

पर्वतके समान प्रतीत होनेवाले वे समस्त महाकवी धानर
मूषपति उठ पर्वतधरर रुद्धके ऊपर पद गये और उच्छ-
उच्छकर उठे दौँतेसे ऋद्धने लगे ॥ ३१ ॥

तं मल्लैर्दधानैश्चापि मुष्टिभिर्बाहुभिस्तथा ।
कुम्भकर्णे महाबाहु निजघ्न्युः दूषगर्गभाम ॥ ३२ ॥

वे धानरपिरोमपि नखों, रौँतों मुञ्जों और शर्योँसे
मद्वहाहु कुम्भकर्णके मारने लगे ॥ ३२ ॥

स धानरसहस्रीस्तु विधितः पर्वतोपमः ।
रराज राससप्याग्रे गिरिरत्नमर्द्धिरिव ॥ ३३ ॥

जैसे पर्वत अपने ऊपर लगे हुए इच्छेसे सुप्रामित होता
है उसी प्रकार सहस्री धानरके भात हुआ वह पर्वतधर
रुद्ध की अद्भुत घोष्य पाने लगे ॥ ३३ ॥

बाहुभ्यां धानरान् सयान् प्रपृष्ट स महावपुः ।
भक्षयामास संकुन्दो गङ्गाः पद्मगामिष ॥ ३४ ॥

जैसे गङ्गा लठेके अथवा आहार बनावे है, उसी तरह
अत्यन्त कुशिल हुआ वह महाकवी रुद्ध समस्त धानरके
दनों हाथोंसे पङ्क-पङ्ककर मक्षण करने लगे ॥ ३४ ॥

प्रक्षिताः कुम्भकर्णेन पक्त्रे पलातसन्निभे ।
नासापुटार्थ्यां सजग्मुः कर्णाभ्यां चैव धनराः ॥ ३५ ॥

कुम्भकर्ण अपने पलातके समान मुलने धानरके शौक्य
कता या और वे उठकर धरनों तथा नाभके धरने कर
निरुद्धने बढे थे ॥ ३५ ॥

भक्षयन् मुद्रासकुन्दो हरिन् पवतसन्निभः ।
यमञ्ज बामपान् सर्वाङ्गं सकुन्दो राससोत्तमः ॥ ३६ ॥

अत्यन्त श्रेयसे भरकर धानरके मक्षण करते हुए
पर्वतके समान विशाकधर्य उठ रुद्धधरने समस्त धानरके
अङ्ग-मङ्ग कर डाले ॥ ३६ ॥

मासशोषितसहस्रेषु कुम्भन् भूमिं स राससा ।
चचार हरिसीम्पयु क्वाष्टाग्निरिव मूर्च्छिताः ॥ ३७ ॥

रजभूमिमें रक्त और मांसकी श्रेय मन्वाता हुआ वह
रुद्ध कवी हुई प्रबन्धनिके समान धानरकेनामि निरुद्धने
लगे ॥ ३७ ॥

कसहस्रो यथा शाकः पाशाहस्त इवान्तका ।
शूळहस्रो कभी मुद्रे कुम्भकर्णो महावपुः ॥ ३८ ॥

एक हाथमें लेकर ध्यानभूमिमें विचरता हुआ मद्रक्षी
कुम्भकर्ण वज्रपारी हन् और पाषपारी समरुद्धके समान धान
पड़ा था ॥ ३८ ॥

यथा शुष्काभ्यारण्यानि प्रीयो वृहति पाषका ।
तथा धानरसैव्यानि कुम्भकर्णो वृदाह सा ॥ ३९ ॥

जैसे प्रीयम श्रुद्धमें राषाजक हले कर्मको कर्म देता है
उसी प्रकार कुम्भकर्ण धानरकेनामको रण करने लगे ॥

तदस्ते धष्यमानास्तु हतयूषाः दूषगामा ।
धानरा भयसविद्यं विनेदुर्विद्वैतौ लौरी ॥ ४० ॥

निकले मूषके-मूष नष्ट हो गये थे, वे धानर कुम्भकर्णकी
भर लाकर मरते उद्विग्न हो उठे और विद्वत् स्वरने धीरकर
करने लगे ॥ ४ ॥

भनेकरो धष्यमानाः कुम्भकर्णेन धानरा ।
पाषय शरण्य जग्मुष्ययित्वा भिक्षवेतसा ॥ ४१ ॥

कुम्भकर्णके हाथसे मरे जाते हुए बहुतसे धानर भिक्ष
दिख दूट गये था व्यथित हो भीखुनापकी धरने लगे ॥

प्रभद्रान् धानरान् इष्ट्वा वज्रहस्तत्रयज्रभङ्गा ।
अभ्यधापत वेगेन कुम्भकर्णे महाहवे ॥ ४२ ॥

धानरके मरते देख बहिष्कुमार मङ्गल उठ महात्मने
कुम्भकर्णकी ओर पड़े वेगसे बीड़े ॥ ४२ ॥

दीक्षपञ्च महाद् युद्धं स्निग्धं स मुमुक्षुः ।
शामपन् राससान् सर्वाङ्गं कुम्भकर्णपशानुगान् ॥ ४३ ॥
विश्वप दीक्षदिक्कर कुम्भकर्णस्य मूर्धनि ।
उद्वाने धरकर गर्जना करने एक विशाक वेध-धरकर

यद् यत् क्षिया किं इनक मारे अनेते श्रीरामवहित यह धरी
 कनर-सेना क्त नष्ट हो अयग्ये ॥ ७१ ॥

विदुष्यं वाहिनीं हृष्टा यानराजाभितस्तता ।
 कुम्भकर्णेन सुग्रीवं गृहीत चापि यानरम् ॥ ७२ ॥
 हनुसाक्षिन्तयामास मतिमान् मास्तात्मजा ।
 पथ गृहीत सुग्रीवे किं कर्तव्य मया भवेत् ॥ ७३ ॥

यानरोंकी सेना इधर उधर भाग रही है और यानरराज
 सुग्रीवको कुम्भकर्णने पकड़ लिया है, यह देखकर बुद्धिमन्
 पवनकुमार हनुमानने सवा—सुग्रीवको इस प्रकार पकड़
 किये अनेतर मुझ क्या करना चाहिये ? ॥ ७२-७३ ॥

पश्चि म्याप्य मया कर्तुं तत् करिष्याम्यसशयम् ।
 भूत्या पयतसकाशो नाशयिष्यामि राज्ञसम् ॥ ७४ ॥
 मरेक्षिये च भी करुता उचित इन्द्र, उते मे नि उदेह करुण्य ।
 परैताकर रूप धारण करके उस उच्छेद्य नाश कर जाईगा ॥ ७४ ॥

मया हते स्वयति कुम्भकर्णे
 महाबले मुषिचित्रीपियेदे ।
 यिमोक्षिते यानरपाथिवि च
 भवन्तु इष्टाः श्रेष्ठगणः समग्राः ॥

सुदक्षाय्ये अपने मुझको मार-मारकर महाबली कुम्भकर्ण
 क गरीबको चूर चूर कर दूँगा इस प्रकार जब यह मरे जायते
 मया बन्धव तथा यानरराज सुग्रीवको उठकी कैदते पुका क्षिया
 करण, तब छोरे यानर हयसि लिख उठेगे भय्या ऐख ही हा ॥

अथवा स्वयमप्येव मोक्ष शक्यति यानरः ।
 गृहीतोऽयं यदि भवत् त्रिदशैः सासुरोत्तरीः ॥ ७५ ॥
 अथवा य सुग्रीव स्वयं ही उठकी पकड़त घूट अयेगे ।
 यदि इन्हें देखता अनुर अथवा नाम भी पकड़ें तो ये
 अपने ही प्रयत्नते उनकी कैदते भी छुटकारा पा जायेंगे ॥

मम्य म तावदात्मान युष्यत यानराधिपः ।
 शैल्यप्रहारभिहतः कुम्भकर्णेन सयुगे ॥ ७६ ॥
 मैं समझता हूँ कि युद्धमें कुम्भकर्णने शिखरके मध्यते
 सुग्रीवको च गहरी चोट पहुँचायी है उठते अचेत हुए
 यानरराजको अभी तक हाथ नहीं हुआ है ॥ ७६ ॥

अथ मुहूर्तात् सुग्रीयो लम्पसमा महाहय ।
 आत्मना यानराणां च यत् पथ्य तत् करिष्यति ॥ ७७ ॥
 एक ही मुहूर्तमें जब सुग्रीव उचत हागे तब महाहयमें
 अपने और यानरोंके जिय च दिनकर कर दगा ठम करेंगे ॥

मया तु मरुतितस्याम्य सुग्रीयस्य महात्मनः ।
 भयतिष्ठ भयत् कदा फीतन्वाद्य द्याभ्यतः ॥ ७८ ॥
 यदि मैं ईहें पुराऊ तो महात्म्य सुग्रीवका प्रसन्न
 नरी हरी उच्च इनक अनेते १८ दगा अर उधरक जिय
 इनक पथय नाय हा करण्य ॥ ७८ ॥

तस्मान्मुहूर्ते काष्ठिष्ये विक्रम मोक्षितस्य तु ।
 भिन्नं च यानरानीक तावदात्मासयाम्यहम् ॥ ८० ॥

अतः मैं एक मुहूर्तक उनके घूटनेकी प्रतीक्षा करूँगा ।
 फिर वे घूट जायेंगे तो उनका पराक्रम देखूँगा । तबतक मरगी
 हुई यानर-सेनाको मैं ही पकटा हूँ ॥ ८० ॥

इत्येष विन्तयित्वाय हनुमान् मास्तात्मजा ।
 भूया सस्वाम्भयामास यानराणां महाहयम् ॥ ८१ ॥
 ऐस विचारकर पवनकुमार हनुमानने यानरोंकी उस
 शिखाके वाहिनीको पुना आभाजन वे स्थिररूपपूर्वक स्थापित किया ॥

स कुम्भकर्णोऽथ विवेश लज्जा
 स्फुरत्तमादाय महाहरिं तम् ।
 यिमात्रचर्यांगुहगोपुरस्थैः
 पुण्याप्यवर्षरभिपूज्यमानः ॥ ८२ ॥

उधर कुम्भकर्ण हाथ-पैर दिखते हुए महाहयनर सुग्रीवको
 खिये-खिये लज्जामें घुस गया । उस समय विमानों (उधमह
 मकरनों), उड़कके रनों और कनी हुई परपंक्तिने तथा
 गोपुरोंमें खनेवाले स्त्री-पुरुष उठम पूजोंकी बर्ण करके
 कुम्भकर्णको स्वागत-करण कर रहे थे ॥ ८२ ॥

अलगा धोवर्षरंस्तु सेष्यमानः दानैः दानैः ।
 राजधीप्यास्तु दीतित्वात् सर्वा प्राप महायलः ॥ ८३ ॥
 अथ और गणयुक्त कक्षी बगानप अमिषिक हो
 उरुमार्गकी छीतलकक फरण महाबली सुग्रीवको पीरे धीर
 हाथ आ गम्य ॥ ८३ ॥

ततः स सप्तमुपलभ्य कृष्णप्रवृ
 यसीपसक्तस्य भुञ्जान्तरस्यः ।
 अयेक्षमाणाः पुरराजमार्गं
 विचिन्तयामास सुहृन्महात्मा ॥ ८४ ॥

तब यही कठिनगदते उचत हा पथयान् कुम्भकर्णकी
 भुञ्जानोंमें दने हुए महात्मा सुग्रीव नगर और उरुमार्गकी
 अर देखकर बारंबार इस प्रकार विचार करने लगे— ॥ ८४ ॥

एष गृहीतन कथं नु माम्
 दास्य मया सम्प्रतिक्रमुमय ।
 तथा करिष्यामि यथा हरीया
 भविष्यतीष्ट च दित य फययम् ॥ ८५ ॥

इस प्रकार इस उच्छेदी पकड़नें आकर अच मैं किस तरह
 इज्जे भरूर पदव्य ल उच्छा हूँ ? मैं रही करूँगा किन्त
 यानरोंके अर्थात् और तिरकर चाप हा ॥ ८५ ॥

ततः कराराः सहसा समस्य
 राद्य हराणाममरुद्रायाः ।
 यरेद्य कर्णो दान्मद्य नाम्ना
 ददद्य पादावदददर पाथा ॥ ८६ ॥
 अथ निधय करक यनप उ यय सुग्रीवने उ का हापों ॥

निद्रा उवके विद्याष कथस्यच्छेते उकरकर बह शेष-
धिलर खल्य नूर-नूर ही गया । यह देख बानर उत्पन्न
बिगादमें हूव गये और राक्षस बड़े हथके खप गर्बना करने लगे॥

स शौच्यटङ्गाभिहतो विसङ्गाः
नमाद् रोषाच्च विवृत्य धकत्रम् ।
प्याविभ्य शूल स तद्धित्यकारा
विक्षेप हर्षक्षपतेर्वंधाय ॥ ११ ॥

उस परंत-दिलरकी चोट खाकर कुम्भकर्णको बड़ा क्रोध
हुआ । यह रोपते मुँह देभकर और-झंसे गर्बना करने लगा ।
फिर उवने निक्कीके समान धमकनेवाले उस शूलको प्रमाकर
सुभीके बपके लिये चलाया ॥ ११ ॥

तत् कुम्भकपस्य भुञ्जप्रणुत्न
शूल शित काञ्चनभामपरिम् ।
क्षिप्र समुत्पत्य निरुद्धा दोर्म्या
यभञ्ज वेगेन सुतोऽमित्यस्य ॥ १२ ॥

कुम्भकर्णके हाथसे घूटे हुए उस तीले शूलको, फिलके
झंसे लनेकी लक्ष्मी लगी हुई थी, वायुपुत्र हनुमान्ने भीम
उल्लङ्घन करने हाथसे पकड़ लिया और उवने वेगपूर्वक
ठोड़ डाला ॥ १२ ॥

उत भारतसहस्रस्य शूल काष्ठयस महत् ।
यभञ्ज जानुमारोप्य तद्वा हृष्टः भूषगमः ॥ १३ ॥
यह महान् शूल हथकर मर कपके छोड़ेका बना हुआ था
जिसे हनुमान्नीने बड़े हथके खप अपने पुत्रोंमें काटकर
उल्लङ्घन ठोड़ दिया ॥ १३ ॥

शूल भग्न हनुमत्त हृष्टा बालरथादिनी ।
हृष्टा नम्यद् यद्गुहाः सघतव्यापि तुमुषे ॥ १४ ॥
हनुमान्कीक हाथ शूलको ठोड़ा गया देख बानर-सेन्य
बड़े हथके भरकर बारंबार खिनाद करने लगे और चारों
ओर शौह काजने लगे ॥ १४ ॥

यभूयाय परित्रस्तो राक्षसो विमुञ्चोऽभवत् ।
सिंहस्यद् घ ठे चक्रुः प्रहृष्टा बगगोचरता ।
मारुति पूज्यांवाकुर्बुधा शूल तयागतम् ॥ १५ ॥
परन्तु यह राक्षस मन्से धरौ उठा । उसके मुलपर
उग्रभी छा गयी और बन-चारी बानर भरफत प्रस्थ हो
खिनाद करने लगे । उन लम्बे शूलको लक्षित हुआ देख
पवनकुमार हनुमान्कीकी भूरी-भूरी प्रशंस थी ॥ १५ ॥

स तत् तथा भग्नमवक्ष्य शूल
सुख्यप रक्तोधिपतिर्महत्तमा ।
उत्पादय लङ्गामलयात् स शृङ्ग
उपान सुभीतिसुप्तस्य तन ॥ १६ ॥
इत प्रगर उस शूलको भन हुआ देख मत्ताराय राक्ष-

यम कुम्भकर्णको बड़ा क्रोध हुआ और उवने बड़ाके निक्की
धरौ मध्य परंतकम धिलर उठाकर सुभीके निक्की
उनपर दे मय्य ॥ १६ ॥

स शौच्यटङ्गाभिहतो विसङ्गाः
पपात मूमौ युधि बानरेन्द्रः ।
त धीक्ष्य मूमौ पक्तिं विसङ्ग
नेतुः प्रहृष्टा युधि वातुभावाः ॥ १७ ॥

उस शौच्यदिलरसे आहत हो बानरराज सुभीत मन्ने
सुप-सुप लो बैठे और मुद्र-भूमिमें गिर पड़े । उन्हें अकेले
शेकर सुभीपर पड़ा देख निष्ठाचरोंका बड़ी प्रसन्नता हुई और
वे राक्षसेजमें खिनाद करने लगे ॥ १७ ॥

समन्युपेत्यातुतपोरधीर्यं
स कुम्भकर्णो युधि बानरेन्द्रम् ।
जहार सुभीवमभिप्रवृञ्ज
पथाभिन्नो मेघमिय प्रबन्धः ॥ १८ ॥

उवन्कर कुम्भकर्णने मुद्र-सखमें मत्तुत एवं मन्ने
परकम प्रकट करनेवाले बानरराज सुभीके पास जाकर लौं
उठा लिया और बैठे प्रन्ध बायु बारोंको उठा के करी
है उकी तरह वह उन्हीं हर के गया ॥ १८ ॥

स त महामेघमिक्काररूप
मुत्पाद्य गच्छन् युधि कुम्भकर्णः ।
रराज मेघप्रतिमानरूपो
मेघर्यया स्युष्किकृतघोररुद्रः ॥ १९ ॥

कुम्भकर्णका लक्ष्य मेघ परंतके समान बन पड़त था ।
यह मन्ने मेघके समान रूपवाले सुभीके उठाकर वह मुद्र
सखसे चला उस समय मयनक उन्के शिलरोंवाले मेघ-
गिरिके समान ही शोभ पाते लगे ॥ १९ ॥

उत्तसामादाय जगाम वीरः
सस्तूयमानो युधि राक्षसेन्द्रः ।
शृण्वन् निन्दर्षं विधियात्मनां
भूषङ्गराजप्रह्विसितागाम् ॥ २० ॥

उन्हीं केकर वह वीर राक्षसराज बड़ाही और बह विषय ।
उस समय मुद्र-सखमें सनी राक्षस उन्की छाती पर रहे थे ।
बानरराजके पकड़े जानेसे आश्चर्यचकित हुए वेकडमेंबैठ-हुल-
ज्जित शम्भ उवे लक्ष सुनायी दे रहा था ॥ २० ॥

तत्तसमावाप्त्य तद्वा स मेने
हरीन्द्रमिन्द्रोपममिन्द्रधीर्यः ।
असिन् हते सर्वमिदं हत स्यात्
सराभवं सैम्यमितीन्द्रराजुः ॥ २१ ॥

इन्के समय परन्की इन्द्रकी कुम्भकर्णने उस समय
वेनेत्रुत्स तेकसी बानरराज सुभीकेको पकड़कर मन्-ही-मन्

मद्रोषसाशोणितविग्धगात्रः
 कम्पायसकप्रयिताम्बमालः ।
 क्वर द्यूत्यनि सुतीक्ष्णदृष्टः
 श्रद्धो युगान्तस्य ह्य प्रवृत्तः ॥ ९० ॥

ज्वरक शयनं मद चर्वा और रक्त छिन्ते हुए थे ।
 उसक कर्ममें नौसेनी मालाए उलही हुए थी तथा उसकी
 दृष्टि बहुत तीक्ष्ण थी । वह महाप्रवृत्तक समय प्राक्लिप्त
 संहर करनेवाले विगाळ रूपारी श्रद्धा समान वानपेपर ह्ये-
 की बना कर रहा था ॥ ९ ॥

तस्मिन् शब्दे सुमिश्रायाः पुत्रः परपुत्रत्वान् ।
 सक्वर् लक्ष्मणः कुन्दो युद्ध परपुत्रत्वया ॥ १०० ॥

उस समय शत्रुनागीर तिस्र पाने तथा शत्रुओंका संहार
 करनेके सुमिश्राकुमार लक्ष्मण कुन्ति हारकर उस राक्षसके
 साथ युद्ध करने लगे ॥ १ ॥

स कुम्भफणस्य शराशरारिः सप्त वीरवान् ।
 निचलात्मान् चान्यान् विससज्ज लक्ष्मणः ॥ १०१ ॥

उन पराक्रमी लक्ष्मणने कुम्भफणक शरीरमें छल बाण
 फेंक दिए । फिर दूसरे बाण छिपे और उन्हें भी उल्लर छोड़
 दिए ॥ १ ॥

सिद्धमानसद्वन्द्व तु विदोष तत् स राक्षसः ।
 छतदशुष्केषु पलथान् सुमिश्रान्दधनः ॥ १०२ ॥

उन्ने पीड़ित हुए उस राक्षसे लक्ष्मणक उस मन्त्रक
 निन्दा कर दिया । तब सुमिश्राक अनन्दक सदानेवाळ
 कर्मका लक्ष्मणक बड़ा मोह हुआ ॥ १ ॥

मयास्य कवचं शुभ्रं जाम्बूनवमयं शुभम् ।
 प्रच्छन्नप्यामास शरीरं सभ्याभ्रमिव मादकः ॥ १०३ ॥

उन्नेने कुम्भफणक शुभ्रनिर्मित तुन्दर एवं वीरिमन्त्र
 कवचक अपने शरीरके डककर उठी उल्ल भरस्य कर दिया
 उसे हाने संव्यासाक शरकसे उल्लाहकर भरस्य कर दिया
 छ ॥ १ ॥

नीलाश्रुतचयप्रणयः शरीरं कञ्चनभूयसीः ।
 भारीच्यमाना गुणुमे मयै सुखं ह्यौगुमान् ॥ १०४ ॥

शरक शयनक दरकीकी शक्तिवाला कुम्भफण लक्ष्मण
 क सुखभूयित शरीरमें व्यापणित हो मंचेसे उल्ल हुए
 भद्रुवाकी मूक बनाने सोमा पा रहा था ॥ १ ॥

तत् स राक्षसा भीमः सुमिश्रान्दधनम् ।
 सायममेव प्रापात्वा धान्यं मघधनिःस्तकः ॥ १०५ ॥

तब उस महाशर लक्ष्मणे मघधी गर्भक बनाने मन्त्र-
 यन्त्र सुमिश्रानन्दन कामना किरकार करत हुए था—॥

मस्तकस्यान्यकृतेन युधि जेतारमाहय ।
 युष्यता मामनीतन प्यापित्वा पीरता सत्या ॥ १०६ ॥

लक्ष्मण ! मैं युद्धमें पतनबन्नी भी किन्तु कष्ट उठाया ही
 नीत छनेकी शक्ति रखता हूँ । तुमने मर साथ निमय हारकर
 युद्ध करते हुए मन्त्री मद्रुत कीक्षाए परिचय दिया
 है ॥ १ ॥

प्रवृत्तीत्यायुषस्येह मृत्योरिव महानुभ ।
 विदुष्यप्रतः पूष्यः किन्तु युद्धप्रयात्क ॥ १०७ ॥

जब मैं महासमरमें मृत्युक क्षमल हथियार उल्लर युद्धक
 क्षिय उधत होऊँ, उध समय आ नरे सामने लड़ा ए बच,
 यह भी प्रयत्नबाध पाए है । फिर आ मुझे युद्ध प्रदान कर रहा
 हा, उसक क्षिये ता करना ही क्या है ? ॥ १ ॥

येतवत् समाकृता वृत्तः सवामरैः प्रभुः ।
 नैव शम्भोऽपि समरे स्थितपूर्वः कदाचन ॥ १०८ ॥

परकतर आरुह हो सन्पूर्ण दशताम्येस फिर हुए
 शक्तिशाली इन्द्र भी परक मर सामने युद्धमें नहीं उल्ल
 करे हैं ॥ १ ॥

मघ त्वयाह सीमित्रे बालेनापि पराक्रमैः ।
 तोपितो गन्तुमिच्छामि त्वामनुप्राप्य राघवम् ॥ १०९ ॥

शुनिशानन्दन ! तुमने शरक छोड़ भी भाव अपने
 परक्रमने मुझे सजुए कर दिया मत मैं तुम्हारी अनुमति
 करके युद्धक क्षिय भीरुमक पास अपना चारख हूँ ॥ १ ॥
 यह तु वायवकासाहस्तोपितोऽह रथे त्वया ।
 राममर्षकमिच्छामि हन्तुं यस्मिन् हत हतम् ॥ ११० ॥

तुमने अपने शीर्ष, कर्ण और उल्लाहसे रजन्मिमें मुझे लक्ष्य
 प्रदान किया है इसक्षिय भव मैं फलक रामका ही मारना
 चारख हूँ किन्तु मार जानेपर छरी शत्रुसेना स्वतः मर
 जायगी ॥ ११ ॥

राम मयापि निहत येऽप्य स्यास्यन्ति सयुग ।
 तावह रोधपिप्यामि स्वपलन प्रमाथिना ॥ १११ ॥

प्ये हाए रामक मारे जानेपर आ दूसरे छरा युद्धन्मिमें
 लड़े रहेंगे उन सबक साथ मैं अपने उल्लरकरी सबक हाए
 युद्ध करूँगा ॥ १११ ॥

इयुक्तपाप्य तद् रक्ष प्रेत्याच स्तुतिसहितम् ।
 मूध घोरतरं धान्यं सीमित्रिः प्रहसन्निव ॥ ११२ ॥

वह राक्षस मघ पूर्वक घात कर बुद्ध तब सुमिश्राकुमार
 लक्ष्मण रजन्मिमें उल्लाहक हंस पक्ष और उल्लर प्रयत्नमिभित
 करत शरीरमें धस—॥ ११२ ॥

यस्य शम्भोऽपिद्वैररसहाः प्राप्य वीरवम् ।
 तत् सत्यं नाप्या धीर इष्टस्तदप पराक्रमः ॥ ११३ ॥

पय दावारधी रामस्तिष्ठत्यद्रिःशालः ।
 धीर कुम्भफण ! तुम मरान् वीरक पाकर आ इन्द्र भद्रि
 दरकक्षेत्र क्षिय भी भयक हा उल्लाह वह तुम्हारा कपन किन्तु उल्ल
 कीक है हत नहीं है । मैंने स्वयं भन्नी भीतान भाव तुम्हारा

वीक्षे नखोद्यप इन्द्रधनु कुम्भकर्णके रोनों कन नोच क्षिये,
दक्षोसि उरुधी नाक कट की और अपने पैरोंके नखोंसे उच
रखसकी रोनों फलियों काइ बाँधी ॥ ८९ ॥

स कुम्भकर्णो हतकर्पनासो
विदारितस्तेन रत्नैर्नखैश्च ।

योगाभिमूढाः सुतधार्द्रगात्रा
सुप्रीवमविभ्य पिपप मूमौ ॥ ८७ ॥

सुप्रीवके रोंओं और नखोंसे रोनों कनोंच निम्न भाग
और नाक कट जाने तथा पक्षीभागके विदीर्ण हो जानेसे
कुम्भकर्णच धरा धरीर उच्छ्रान हो गया । तब उसे बड़ा
पेय हुआ और उन्हे सुप्रीवको पुमाकर भूमिपर फटक दिया ।
फटककर वह उन्हीं भूमिपर गड़ने लगा ॥ ८७ ॥

स मूढले भीमवन्नाभिपिच्छ
सुवारिभिसैरभिहन्यमानाः ।

जगाम च कन्धुककञ्चयेन
पुनश्च रामेण समाजगाम ॥ ८८ ॥

ममानक बध्याधी कुम्भकर्ण वन उन्हीं पक्षीपर गड़
जा या और वे देवदेवी राक्ष उतपर उन औरसे चोट कर
रहे थे, उन्ही कनन सुप्रीव खड़ा गैरकी भौंति केगर्भक
आकृष्टसे उछले और पुनः श्रीमन्कन्धुकीसे आ मिळे ॥८८॥

कर्पनासापिहीनस्तु कुम्भकर्णो महाबलः ।
रराज घोषितोत्सिक्तो गिरिः प्रकञ्चयैरिव ॥ ८९ ॥

महाकधी कुम्भकर्ण मफनी नाक और कन जो बैठा ।
उन्के अहोसि इस तरह बल बने लगा, जैसे फँकते पानीके
झरने गिरत हैं । वह एकसे गहा उठा और हलनोंसे मुक्त
शेखरकी भौंति घोभा पाने लगा ॥ ८९ ॥

घोषितघ्नो महाकायो राससो भीमवर्जना ।
युष्ठायाभिमुञ्चो भूयो मनश्चक्रे निशाचरः ॥ ९० ॥

महाकन एकस राक्षे नहकर और भी ममानक रिक्तभी
बने लगा । उस निशाचरने पुनः धनुके छमने चकर मुक्त
करनेच विचार किया ॥ ९ ॥

अनर्पच्छेषितोद्गारी क्षुभुमे राक्षयानुजा ।
नीस्राहानवधप्रकथः सद्यश्च इव तोष्यः ॥ ९१ ॥

अनर्पक्षक रक्त कनन कटा हुआ उलनच छेद्य भई
कुम्भकर्ण, किन्तु धरीरका रंग कले नेपके समान था,
संक्षयकक्षके वाहकी गौंति सुप्रभित हो रहा था ॥ ९१ ॥

गते च तस्मिन् सुरपञ्चधनुः
क्षोधात् प्रतुप्रथ रणाय भूया ।

अनायुधाऽऽसीति विक्रिय्य रौद्रो
पार तथा मुद्गरमाससाह ॥ ९२ ॥

सुप्रीवके निष्क माग्नेपर वह इन्द्रदेवी राक्ष फिर मुक्त
के क्षिय चौड़ा । उच कनन वह खचकर कि वीरे पक्ष कोई

हथियार नहीं है' उन्हे एक बड़ा मयंकर मुद्गर दे दिया ।

तताः स पुर्याः सहसा महौजा
निष्कम्य तद् वानरसैन्यमुग्रम् ।

बभक्ष रक्षो युधि कुम्भकर्णः
प्रजा युगान्त्रागिरिव प्रवृजः ॥ ९१ ॥

कननतर महाकअध्याधी राक्ष कुम्भकर्ण खड़ा नहुपुं-
से निष्कमकर प्रवृज मर्या करनेवाली प्रवृजअधी प्रवृजि
अनिके समान उच मयंकर वानर-सेनाको मुद्गलक्षमें भक्त
भ्रष्टार कयने लगा ॥ ९१ ॥

युमुक्षितः शोषितमांसवृक्षुः
प्रविद्य तद् वानरसैन्यमुग्रम् ।

कञ्चाद् रक्षांसि हरीन् पिश्यान्
न्वृक्षाश्च मोहात् युधि कुम्भकर्णः ।

यथैव मृत्युर्हरत युगान्ते
स भक्ष्यामास हरीश्च मुकम्बन् ॥ ९४ ॥

उच सम्य कुम्भकर्णको भूख उठा रही थी, अतएव बहक
और मंके क्षिये अन्नक्षित हो रहा था । उन्के उच मयंकर
वानर-सेनामें प्रवेश करके मोहवध वानरों और प्रवृजओंक
धम राक्षसे तथा पिश्याको भी खाना मारम्भ कर दिया । वह
प्रधान प्रधान वानरोंको उन्ही प्रकार अपना प्राय कर रहा था, जैसे
प्रवृजअधमें मृत्यु प्राणियोंके प्राणोंक अग्रहण करती है ॥९४॥
एकं व्री चीन् बहून् हुन्द्रो वानरान् सह राससौ ।

समावृषैकहस्तेन प्रविशेष खरन् मुञ्चे ॥ ९५ ॥

वह बड़ी उतावलीके साथ एक हाथसे श्रेष्ठक एक
था, चीन तथा बहुल-बहुल राक्षसें और वानरोंको छेदकर अपने
मुँहमें खोंक लेता था ॥ ९५ ॥

सम्प्रकञ्चकता मेवः शोषित च महाबलः ।
वृष्यमानो तनेन्द्राग्रीर्भक्ष्यामास बालराज ॥ ९६ ॥

उच सम्य वह महाकधी निशाचर पकैत-क्षिरोधी कर
काया हुआ भी मुँहसे वानरोंकी चर्बी और रक्त निष्का हुआ
उन एकच म्भल कर रहा था ॥ ९६ ॥

ते भक्ष्यमाया हरयो रामं जम्मुस्तथा गतिम् ।
कुम्भकर्णो सूया हुन्द्रः कवीम् क्षावत् प्रधावति ॥ ९७ ॥

उचक क्षय साथे धते हुए वानर मरभित हो उच कन
मनावान् श्रीवमकी धरपने गये । उचर कुम्भकर्ण अन्नक
कुपित हो वानरोंको अपना आहार बनाता हुआ उन और उन्-
पर धावा करने लगा ॥ ९७ ॥

पतानि सद्य वापौ च विदारिजगत् तथैव च ।
सम्परिष्णय वापुष्यां क्षावत् विपरिधयति ॥ ९८ ॥

वह उच आठ कीच कीच तथा ली-ली वानरोंको अपनी
रोपों युष्मभोंमें मर लेता और उन्ह काया हुआ वधूमिमें
वैद्य-क्षिण था ॥ ९८ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा राजपुत्रस्य धीमताः ।
 तं समाकुरुर्हृष्टाः कुम्भकर्णं महायत्ना ॥१३१॥
 बुदिमान् राजकुमार उत्सवकी यह सात सुनकर वे महा-
 बली धानर-नृपति वहे हपके स्य कुम्भकर्णपर चक्र गये ॥
 कुम्भकर्णस्तु सहस्रैः समारूढाः पुत्रवर्गैः ।
 प्यधूमयत् तान् धगन पुष्टहस्तीव हस्तिपान् ॥१३२॥
 बानरोंके शय बानेपर कुम्भकर्ण अत्यन्त कुपित हो उठा
 और जैसे किाहेल हाथी म्हाकलोंको गिरा देल है, उसी प्रकार
 उसने वैशर्वाङ्क बानरोंको अपनी देह हिंसाकर गिरा दिया ॥
 तान् ह्यु मितुतान् रामो वधोऽयमिति राक्षसम् ।
 समुत्पपत् वेगेन धनुवचममादावै ॥१३३॥
 उन लक्ष्म गिरया गया देल भीरमने यह समस्त शिया
 कि कुम्भकर्ण ह्य ह गत्या है । फिर वे नहे वेगसे उल्लखकर
 उस राक्षसकी ओर दौड़े और एक उठम धनुष हाथमें ल
 शिया ॥ १३३ ॥
 शोभरकेसपो धीरो निवृहृष्टिय शश्रुपा ।
 राषपो राक्षस वेगावभितुद्राय वेगिताः ।
 पूषयान् हर्षयन् सर्वान् कुम्भकर्णवल्गवितान् ॥१३४॥
 उस समय उनके नेत्र लजसे लल हो रहे थे । वे धीर
 धीर भीरुनापकी उलकी ओर इस प्रकार देखने लगे मानो
 उसे अपनी दृष्टिसे बध कर जाकेग । उन्होंने कुम्भकर्णके
 कब्जे पीडित समस्त धानरपूषयोंको हर्ष बधत हुए वहे
 वेगसे उस राक्षपर बाधा किया ॥ १३४ ॥
 स चापमादाय युज्गकन्द
 हृदयमुद्र तपनीपयिध्रम् ।
 हरीन् समाभ्यास्य समुत्पपत्
 रामो निवशोत्तमत्पयाजः ॥१३५॥
 युद्ध प्रत्यक्षसे संयुक्त सर्के समान मयंकर और
 मुर्खनेसे बधित होनेके कारण विचित्र घोमासे सम्पन्न उम
 धनुषको हाथमें लेकर भीरमने उठम तरकस और शय बाँध
 शिष और बानरोंको आदकाउन देकर उन्होंने कुम्भकर्णपर
 पहे वेगसे आक्रमण किया ॥ १३५ ॥
 स धारगणैस्तेस्तु घृताः परमनुजयीः ।
 सङ्गम्यानुधरो धीराः सङ्गमत्स्य महायत्ना ॥१३६॥
 उस समय अत्यन्त बुद्धय धानरकुर्हींने उन्हे चारों ओरसे
 घेर रक्ता था । अरमण उनके पीछ-पीछ चक्र रहे थे । इस
 प्रकार वे महाबली धीर भीरम आगे बढ़े ॥ १३६ ॥
 स द्वाद महात्मान किरीटिनमरिचमम् ।
 राषित्यनुत्तरच्छास कुम्भकर्णं महायत्ना ॥१३७॥
 सजान समभिधापन्त यथा रुष्ट विगायजम् ।
 यागमाण हरीन् रुद्र राक्षसोः परिवारितम् ॥१३८॥

उन महान् बलशाली भीरमने देला, महाकम्य धनुषमन
 कुम्भकर्ण मलकर किरीट धारण किये सय ओर भावा कर
 रहा है । उसके धारे अङ्ग लतसे लपप हो रहे हैं । यह रोप
 से भरे हुए दिमाबन्नी भोंति श्वपूर्वक बानरोंको स्वाभ रहा
 है और उन सबपर आक्रमण करता है । पशुवसे राक्ष उसे
 घेरे हुए हैं ॥ १३७-१३८ ॥
 विन्ध्यमन्वरसकश काञ्चनाङ्गनृपणम् ।
 कपन्त रुभिर पकत्राप् धर्मिधमिवोयितम् ॥१३९॥
 यह विन्ध्य और मन्वरचक्रके समान बान पड़ता है ।
 सोनेके यासूत उलकी मुञ्जओंको विभूषित किये हुए हैं तथा
 वह (वर्णालयमें) उमहे हुए लक्ष्मणी मेघकी भोंति मुँहसे
 रक्तकी तथा कर रहा है ॥ १३९ ॥
 जिह्वया परिसिद्धान्त चुकिणी शोषितोक्षिते ।
 नृद्रन्त धानरानीर्क काळमस्तकयमोपमम् ॥१४०॥
 जिह्वाके द्वारा रक्तसे मीने हुए लक्ष्म चाट रहा है और
 प्रक्षयकाणके संशरकारी यमयन्त्री भोंति बानरोंकी सेनाको
 रौंद रहा है ॥ १४ ॥
 त ह्यु राक्षसश्रेष्ठ प्रवीतानलधर्षसम् ।
 विस्फुरयामास तदा कार्मुक पुष्टपयभा ॥१४१॥
 इस प्रकार प्रव्यञ्जित भनिके समान तेजस्वी राक्ष-
 शिरोमणि कुम्भकर्णको देखकर पुत्रवधपर भीरमने उत्कण्ठ
 अना पशुप सींचा ॥ १४१ ॥
 स तस्य चापनिर्घोषात् कुपितो राक्षसयभः ।
 अमृष्यमाणस्त घोषमभितुद्राय राघवम् ॥१४२॥
 उनके धनुषकी टंकर सुनकर राक्षसश्रेष्ठ कुम्भकर्ण कुपित
 हो उठा और उस टंकरध्वनिके सहन न करके भीरुनापकी-
 की ओर दौड़ा ॥ १४२ ॥

• इस लक्षके धार कुछ प्रतिपत्ते निम्नाहित लक्षक अङ्क
 उपर्युक्त होत ह, जो पयवोगी होनेसे वहाँ वर्णसहित दिन ना
 रहे है—

पुरखार	रापरलाये	बरातुध	निधीयत् ॥
अभितुद्राय	वेगेन	अथा	भासराहरे ॥
निधीयत्	पुष्ट	इश	कुम्भकर्णैःशरीरितम् ।
प्रहस्य	रभे शीमं	धजयै	विस्त मर ॥
प्राग्नेरं	धित्यम्	उपरस	धिवं कुम् ॥
अकथयं	कुर्न	वस	वर्णं एननुपपत् ॥
लनेधं	रुष्टं	काक	स्वदन्ताभ्युध्रिय ।
नृद्रि	कमन्तिरन्त्यं	व्यसनं	पु कटाचन ॥
नृद्रन्त	लमवक	कुम्भकार	धर्मिधम ॥
उत्सस	प्रपशत्	रं	रुद्रमं उगमनात्मनि ॥
मरुष्य	वन कुर्वं	श्रीमं	मादरायम् ॥
म	स्वाभं	पुरक्यम	सम्भानन-१३५ ॥

पराक्रम वेत्तु किम् । न रत्नं दशरथनन्दन भगवान् श्रीराम,
यो फलैके समान अविचल-भयवत् लभे ॥ ११३३ ॥

इति भुक्त्वा ह्यनप्रवक्ष्य लक्ष्मण स निशाचरः ॥ ११४ ॥

व्यतिक्रम्य च सौमित्रिणं कुम्भकर्णो महाबाहव ।

राममेवाभितुष्टाय कल्पयन्निव मेदिनीम् ॥ ११५ ॥

कल्पयन् श्री यह वात द्रुतकर उच्यते भवद न कृते हुए
महाकृष्ण निशाचर कुम्भकर्णने सुमित्राकुमारको ब्रह्मण् श्रीराम-
पर ही बता किया । उस समय यह अपने पैरोंकी घमकते
दृष्टीको कल्पित-की किने देण था ॥ ११४ ११५ ॥

मथ वाद्यारथी रामो रौद्रमकर प्रयोजयन् ।

कुम्भकर्णस्य हृदये ससर्ज निशिताभ्यापन् ॥ ११६ ॥

उसे भूते दंष्ट्र दशरथनन्दन श्रीरामने रौद्रात्मक प्रयोग
करके कुम्भकर्णके हृदयमें अनेक तीक्ष्ण दण मारे ॥ ११६ ॥

तस्य रामेण किञ्चस्य सहस्राभिप्रधाततः ।

मङ्गारमिभ्रां क्रुदस्य मुखाधिष्ठेदरर्षिणः ॥ ११७ ॥

श्रीरामके यथोक्ते पापक हो यह खल उन्नत दूट पड़ा ।
उस समय क्षयते मरे हुए कुम्भकर्णके मुखसे मङ्गारमिभित
अगकी छोट निकल रही थी ॥ ११७ ॥

रामात्मविद्यो घोर वै नर्वन् राक्षसपुङ्गवः ।

मम्यधावत् सकुडो हरिन् विश्वाशयन् रणे ॥ ११८ ॥

भगवान् श्रीरामके अकृते पीडित हा राक्षसप्रकर कुम्भकर्ण
घोर गर्जना करता और रणभूमिमें बानरोंके लदेइला हुआ
श्रेयार्थक उनकी घोर दौड़ा ॥ ११८ ॥

तद्येरेसि सिमघ्नस्ते शय वर्हिजयासस्तः ।

हस्ताभ्यास परिजया गवा घोर्ष्यां पपात ह ॥ ११९ ॥

श्रीरामके शरणमें मोरके पंख झरो हुए थे । वे कुम्भकर्ण-
की छातीमें रँध गये । अतः व्याकुल्यके कारण उनके हावते
गदा चूटकर दृष्टीपर गिर पड़ी ॥ ११ ॥

अयुधानि च सर्वाणि धिप्रकीर्णत मूतके ।

स निरायुधभारमान यदा मेमे महाबाहव ॥ १२० ॥

मुष्टिभ्यां च करार्थ्यां च चकार कृन् महत् ।

इत्या ही नहीं उचक अन्य सब आयुध भी भूमिपर
निलर गये । सब उधने समझ किया कि अब मेरे पास कोई
इयित्य नहीं है उस उध महाकृष्ण निशाचरने येनों मुकों
और हाथों ही बानरोंका महान् उधार अरम्भ किया ॥ १२ ॥

स बापैरतिविद्याङ्गः रस्तत्रेन समुक्षितः ।

कथिर परिसुखाय गितिः प्रकल्पय यथा ॥ १२१ ॥

बापोंसे उनके छारे भइ अमन्त धमक हा गये थे,
इच्छिमे यह कृतने नाहा उठा और बैसे फल हलने बहाय है,
उठी तय यह अन्वने इहते रक्षणी भाग याने क्या ॥ १२१ ॥

स ताम्येव च कपपन कथिरथ च मुष्टिघ्नतः ।

यान्तरा राक्षसाञ्जसान् क्पयन् स परिभयति ॥ १२२ ॥

यह कृतने छपपय और पु.ख. श्रेयसे म्हाकुल लेम
यानरों; माछुओं तथा राक्षसोंको भी लाया हुआ पारों के
दौड़ने क्या ॥ १२२ ॥

मथ शृङ्गं समाधिष्य भीम भीमपराक्रमः ।

विक्षेप राममुक्षिष्य वलयाकन्तकोपमा ॥ १२३ ॥

इसी बीचमें वगवतके समान प्रवीठ होनेवाले उध कल्प
एवं ममानक पराक्रमी निशचरने एक मयंकर पतत्र निकल
उठाया और उसे घुमाकर श्रीरामकन्त्रकीको छपय करके कल
दिया ॥ १२३ ॥

अप्राप्तमन्तरा रामः सप्तसिक्तमज्जिह्वौः ।

विच्छेत् गिरिशृङ्गं त पुनः सधाय कर्मुकम् ॥ १२४ ॥

पदा श्रीरामने पुन वनुपक संधान करके छीने बनेउधे
घट बाण मारकर उस फल-शिलरको बीचमें ही टूट-टूट कर
बाधा; अपने पाखक नहीं भाने दिया ॥ १२४ ॥

ततस्तु रामो धर्मात्मा तस्य शृङ्गं महत् क्वा ।

शरैः कञ्चनविशाङ्गैर्विच्छेत् भरताप्रजा ॥ १२५ ॥

कपेकविच्छेपकार चोत्तमानमिथ किया ।

द्वे शतौ धानराणां च पतमानमपातयत् ॥ १२६ ॥

मयके बड़े मई धर्मात्मा श्रीरामने सुवर्णमूषि विधि
बापोंका कन उस महान् फलशिलरको फट टिक उस
समय अपनी प्रमासे प्रकथित-क हासे हुए उस मेकलके
शृङ्गकडय टिकरने भूमिपर गिरते-गिरते दो ती बानरोंको
भगवाभी कर दिया ॥ १२५ १२६ ॥

तस्मिन् काले स धर्मात्मा उक्रम्यो राममप्रवीण ।

कुम्भकर्णवधं युक्तो योगयन् परिसुशान् बहून् ॥ १२७ ॥

उध समय धर्मात्मा कल्पने, को कुम्भकर्णके वधके सिने
निमुक थे उसके वधकी अनेक मुक्तिदोष विचार करते हुए
श्रीरामने कहा— ॥ १२७ ॥

नैवाय बानरान् राजान् न विजानासि राक्षसाव ।

मघः श्रेयितान्मधेन स्वाम् पराङ्घ्रेय बावति ॥ १२८ ॥

वृक्त्वा । यह उचक बापितकी गन्वते म्हाबाह्व हो रहा
है अतः न बानरोंको ज्ञानता है न राक्षसोंको । अपने और
परय राजों ही पक्षोंके घोडाभोंक का छा है ॥ १२८ ॥

साध्वेनमधिरोहन्तु सर्वतो धानरप्रभा ।

पूयपात्र यथा मुष्णास्तिष्ठत्यस्यसिन् समन्ता ॥ १२९ ॥

पयः श्रेय बानर-युवपतिगोमें को प्रधान क्या है; वे
सब ओरते इसके ऊपर बह बय और इसके धरिपर ही
बैठे रहे ॥ १२९ ॥

अधार्यं दुर्मतिः काले गुरुभारप्रवीणितः ।

प्रचरन् राक्षसो भूयौ नाम्नाय् ह्य्यात् प्रवामयन् ॥ १३० ॥

ऐक्य होनेसे यह दुर्मति निशाचर इत समय मनी मारते
पीडित हा रणभूमिमें विचरय करते समय बूधे बानरोंको नहीं
भर सकेगा ॥ १३ ॥

ॐ भवाः मरे अत्रोपर भन्ना पयक्रम दिस्ताभ्र । तुम्हारे
वेदर एवं वष-चिक्रमद्य दान सनेक बर ही नै तुम्हें
पाऊँगा ॥ १५ ॥

स कुम्भकणस्य पत्रो निगम्य
रामाः सपुत्रान् विससज याणान् ।
तैराहता पत्रसमप्रयोगी

न शुभ्रुभ न व्यथत सुरारिः ॥ १५ ॥
कुम्भकणसी यह थात मुनकर भीयमने उरके ऊपर
दुन्दर वनवाळ बहुत-स पाप मरे । पत्रके समान वेगवाळ
ऊ एतोंमें गदवी चट वानर भी यह देखाही राखन न
व शुभ्र हुभा और न व्यथित ही ॥ १५ ॥

यै सायकाः साल्यरा निष्टुता
वाली हतो यानरपुत्रयश्च ।
त कुम्भकणस्य तदा शरीर
पञ्चोपमा न व्यययाम्प्रचभुः ॥ १६ ॥

किं वापाम भद्र सप्तवृष काट गप और यानरयन
बाधैना वप हुभा, ये ही पञ्चोपमा बाण उन सम कुम्भकणके
शरीरमें क्या न पहुँचा सक ॥ १६ ॥

स यारिधारा इव सायकांस्तान्
पित्र शरीरिण्य महम्भ्रदात्रुः ।
जघान रामस्य शत्रुप्रयोग

व्याधिष्य स मुद्गरमुप्रथगम् ॥ १७ ॥
देवयन इन्द्रा षण्ण कुम्भकर्ण कळकी बायके समान
भीयमसी पाणरवाळ अपने शरीरसे पीने छत्र और मयंकर
वेगवाळी मुद्गरके चारा भागसे पुमा-पुमाकर उनके बाणोंके
मदान् धगळ नष्ट करने छत्र ॥ १७ ॥

सतस्तु रस्तः सतजानुन्मि
विप्रासत देयमहाबभूनाम् ।
व्याधिष्य त मुद्गरमुप्रथग
विप्रावपामास चम्पू हरीणाम् ॥ १८ ॥

तदन्तर यह राख देवदाभोंकी विप्राव सेनामें भयनीत
करनेवाळ और लूतने किरत हुए उस उम धगवाळी मुद्गरके
इम-पुमाकर कानरोंकी बादिनीके लवङ्गने जग ॥ १८ ॥

यापम्यमादाय सतोऽपराळ
गामः प्रधिखेप निशाचराय ।
समुद्रं तन अहार याहुं

स कृत्वायाहुस्तुमुळ कलाद् ॥ १९ ॥
यह देख भन्सान् भीयमने बापम नामक वृक्षे भन्-
ष्य संभान करते उस कुम्भकर्णपर कळया और उसके ऊपर
उन निगावरकी मुद्गरवदित बादिनी बौह फट जायी । बौह
का अनेपर यह राख मथलक अलाभमें पीरकर करने
कर ॥ १९ ॥

स तस्य पाहुगिरिऽद्रुककलाः
समुद्रतो राघवयापकृत्वा ।
पपात तस्मिन् हरिराजस्ये

जघान ता धानरधाहिनीं च ॥ १५ ॥
भीरपुनापबद्ध बायसे फटी हुए यह बौह, अब परत-
शिरकर समान अब पड़ती थी, मुद्गरक माप ही कानरोंकी
सेनामें गिरी । उसके नीचे दक्कर कितने ही यानर-सेनिक
अपने प्राणसे हाथ पा बठ ॥ १५ ॥

त यानरा भद्रहत्वयदेशाः
पयन्तमाधित्य तदा विरमणाः ।
प्रपीडिताह्वा वृक्षानुः सुधार
मरेन्द्ररसोऽधिपसनिपातम् ॥ १७ ॥

अ अत्र नद्र होने या मरनेसे पच, वे सितचिच हो
गिनारे बकर लड़े हा गये । उनके शरीरमें पड़ी पीड़ा हो
रही थी और वे पुपचाप माराच भीयम और राघव कुम्भ
कर्णके बर समानक देखने छगे ॥ १७ ॥

स कुम्भकर्णोऽस्मिन्निष्टुताहु
महासिकृत्ताप्र इवाधलेन्द्रः ।
जत्वाटयामास क्रेण वृष्ट

सतोऽभिकुद्राव रणं मरेन्द्रम् ॥ १८ ॥
वामस्याङ्गसे एक बौह का अनेपर कुम्भकर्ण शिररहीन
परतके समान प्रकीट होने छत्र । उसने एक ही हाथसे एक
टाइका इध उलाह किया और उसे लकर रणभूमिमें माराच
भीयमपर घना किया ॥ १८ ॥

त तस्य वाहुं सहतालवृष्टा
समुद्यत पद्मगभोगकल्पम् ।
पन्द्रास्त्रमुफन जघान रामो

पापेन जाम्यूनवृचित्रितन ॥ १९ ॥
तब भीयमने एक मुर्खनृषित बाण निकलकर उसे
एन्द्राङ्गसे अभिमन्वित किना और उसके बाय लर्के समान
ठठी हुए राखकी वृषी बौहके भी कृशवदित फट
गिया ॥ १९ ॥

स कुम्भकर्णस्य भुजो निष्ठुतः
पपात भूमौ गिरिसनिक्रशः ।
विशेषमतानो निजघान वृष्टा

मौलाशिशव्यानरपारुसाद्य ॥ १९ ॥
कुम्भकर्णकी यह फटी हुई बौह परतशिरकरके समान
वृक्षीपर गिरी और छटफटने छगी । उसने कितने ही वृक्षों,
सैकशिकरों, शिवाभों, कानरों और राखलेंकों भी कुफर
जाळ ॥ १९ ॥

तं छिद्ययाहुं समवेक्ष्य रामः
समापतन्त सहसा नष्टम् ।

समापतन्त सहसा नष्टम् ।

समापतन्त सहसा नष्टम् ।

समापतन्त सहसा नष्टम् ।

समापतन्त सहसा नष्टम् ।

समापतन्त सहसा नष्टम् ।

समापतन्त सहसा नष्टम् ।

समापतन्त सहसा नष्टम् ।

समापतन्त सहसा नष्टम् ।

ततस्तु यत्प्रोदतमेप्रकल्पं
 मुजगराजोऽसमभोगाधातुः ।
 तमाप्तवत् धरणीधराम
 मुयाव रामो युधि कुम्भकर्णम् ॥ १४३६ ॥

तदनन्तर जिन्धी भुवाएँ नागराज बाहुकिके समान
 विशाल और मटी भी उन भगवान् श्रीरामने पवनकी प्रेरणा-

न रेचि उंनुगे एक स्यन् पण् ना विष्णवः ।
 रक्षणीकप्रति ने बल उचनेक्य प्रीमि ते ॥
 पण्डुधो वनसेन कुम्भकर्णेन चैनपः ।
 विधीयन्ते महापण्डुः कुम्भकर्णमुयाव ॥
 बरिन ने कुम्भकर्ण रक्षणीधरिनः ।
 न कुं सर्वरक्षीमिन्द्रोऽयं वननागः ॥
 कुं तु वननाग्य सङ्ग कुम्भर्णं तु वा ।
 पण्डुत्वाभुवर्णयो महापण्डुर्विभीक्यः ।
 पक्ष्यभगिनो मूया विष्णवःस उचिता ॥

तब श्रीरामकर्मकीके तिनै बुझ करनेके निमित्त गया हात्में
 तिनै विनीत जलके रूपे बाहर जा हा गये और उस प्रकारक-
 में आई हाकर आईसा नाना करनेके तिनै बने वेगते गये
 रहे । विनीतको सामने देखकर कुम्भकर्णने इस प्रकार कहा—
 बल तुन भाग्य त्वेक हीकर श्रीरामनाग के तिनै कर
 और रणभूमिने हीन मरे ऊपर गया पक्ष्यभो । इस समय तुन
 ध्यानकर्णने हुनप्रकार फिर रहे । तुन जो श्रीरामकी प्रारम्भे का
 गये इससे तुनने हुनभक्तिकर बना दिया । उद्योगीने एक प्राणी
 पने हा कितने इस बगर्भे एक और बन्धी रखा बो है । जो
 र्भने अनुपक होते हा, उन्हें कभी छोड़े दुख नहीं होगा पला
 है । अब पक्ष्यभ तुम्ही इस कुम्भकी रंगानकरप्रणये संरक्षित
 रखनेके तिनै बीजा राहेंगे । श्रीरामनागकीये रूपसे तुम्हें उद्योग-
 का राम प्राप्त होगा । कुम्भ रित । मरी प्रकृतिसे तो तुन परिचित
 ही हा; का धीम मेर उगा प्रकृति हू हू जाओ । इस समय
 समनक बगर्भ मरी निष्कारणिक यह हा गयी है; का, तुम्हें
 मरे स्वनन नहीं प्राप्त होगा च्छदिये । निष्कारण । इस समय बुझने
 समनक होनेके कारण तुम्हें अपने मरणा परनेकी परंपरा नहीं हो
 रही है कचि बल तुन मरे तिनै रक्षणीक हा—ये तुम्हारा
 वन कर्म नहीं परण्ड । पर तुम्हें मधी का बगर्भ है । उचित्यन्
 बुझकरनेके देव्य दानवर महापण्डु विनीतने उचते कहा—
 पण्डुभय वन करनेकाके और । मने इस कुम्भकी रणके तिनै
 रण बुझ कहा था कि तु मरणा उद्योगने मेरी का नहीं तुनी;
 का; ने निगद्य हकर भावनकी प्रारम्भे का क्या । नशापण । वह
 मरे तिनै बुझ हा का पर । का मने श्रीरामय स्वयं ता
 मरणा कर ही । का देव्य बहुर वराही विनीतके देवने मर्त्य
 नरभर्य कर ने परण्ड स्वयं के यह हकर जिन्हा करने
 गये ।

से ठमड़े हुए मेवके समान कर्म और फलक समान की
 घरीलाके कुम्भकर्णके आक्रमण करते देख रणभूमिने उचते
 कहा— ॥ १४३६ ॥

अगच्छ रसोऽधिप मा विगद्य
 मयस्थितोऽह प्रयुहीतथापः ।
 अर्धेहि मां राक्षसवधनाशन
 पस्थ मुञ्जतात् भयित्वा विषेयाः ॥ १४३७ ॥

पक्ष्यभवाज । भाव्यो विगद्य न करो । मैं पण्डु केकर
 लड़ा हूँ । मुझे रक्षसवधका निराद्य करनेकाय कामो । भय
 तुम भी हो ही पक्षीमें अपनी पतना को बैठने (न
 काभोगे) ॥ १४३७ ॥

रामोऽयमिति विज्ञाप्य जहास विद्वत्वननम् ।
 अन्यथावत सङ्कुन्दो हरीन् विद्राक्पयन् रणे ॥ १४३८ ॥

पक्षी राम है—यह स्वनकर वह रक्षस विद्वत् स्वरने
 अट्टहास करने लगा और अन्यत्त दुःखित हो रणभूमिने धरणी-
 को मगठा हुआ उनकी ओर दौड़ा ॥ १४३८ ॥

द्वार्याधिप सर्वेषां हृदयानि वमोक्तसम् ।
 प्रहस्य विद्वत् भीम स मेघस्तानितोत्थमम् ॥ १४३९ ॥
 कुम्भकर्णो महातंजा रात्रय पाक्यमग्ररीत् ।
 नाह विराधो विवेयो न कवयथा स्मृतो न च ।
 न धाळी न च मारीचा कुम्भकर्णया समागता ॥ १४४० ॥

महादेवकी कुम्भकर्ण समस्त वानरोंके हृदयने विद्वत्-
 का कल्या हुआ विद्वत् स्वरने धर-ओरसे हुंकर मेघनाभक
 समान गभीर एवं मर्भकर बाधीमें श्रीरामपक्षीके बोध-
 वाम । मुझे विषय कवय और लर नहीं समझना च्छदिये ।
 मैं मारीच और धाळी भी नहीं हूँ । पर कुम्भकर्ण तुम्हें
 सङ्घने भाव्य है ॥ १४३९-१४४० ॥

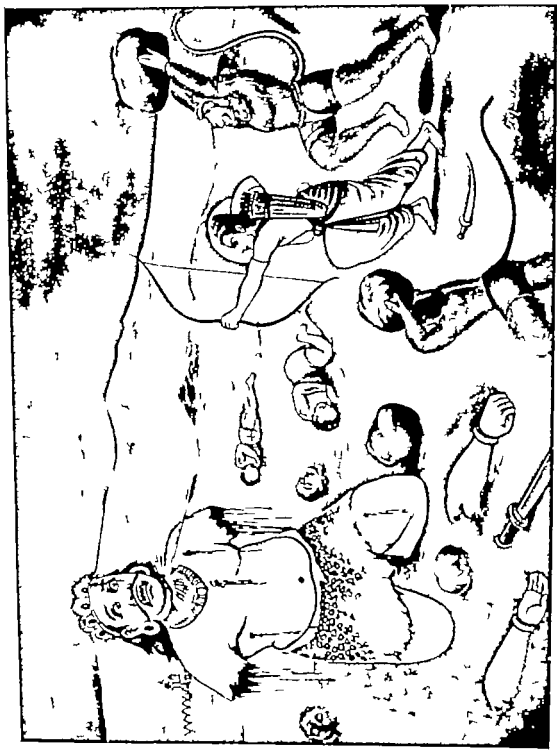
पश्य मे सुवृगर भीम सर्वे काळ्यपसं महात् ।
 अनेन निमित्ता देवा दानवाश्च पुरा मया ॥ १४४१ ॥

ओर इस मर्भकर एवं विषय सुदूरकी ओर देखो । पर
 लक्ष्मण-सब करते छोड़कर बना हुम्भ है । मने पूर्वप्रणये
 इसीके द्वारा समस्त देवताओं और दानवोंके परण्ड किन्
 है ॥ १४४१ ॥

विषयव्यास इति मां मावधानु त्वमहसि ।
 सत्यरापि हि म मे पीडा फणनासायितानानात् ॥ १४४२ ॥

मरे नाक-भन मीधेके छट गये है देख समझकर तुम्हें
 मरी अर्धेहना नहीं करनी च्छदिये । इन दाना अर्धेके नर
 होनेसे मुझे धाळी-की भी पीडा नहीं दृष्टी है ॥ १४४२ ॥

दवायेक्याहुनाह्वस धीर्य नायेतु मऽनपः ।
 ततस्तरां भक्षयिष्यामि दृष्टीकणरिक्तमम् ॥ १४५ ॥
 निष्पद्य सुन्दरन । तुम इसाहुनचक और पुण्ड



ब्राह्मर्षचन्द्रौ निधितौ प्रपुञ्ज
चिच्छेद् पादौ युधि राक्षसस्य ॥१६१॥

उन दोनों मुखाओंके कट जानेपर वह उल्टा खड़ा
अर्धनग्न करता हुआ भीरुमगर दूढ़ पड़ा । उसे अक्षमय
करते देख भीरुमने हो छीले अर्धचन्द्राक्षर बाण छेकर उनके
शय मुद्रस्तसमे उस राक्षसके दोनों पैर भी उड़ा दिये ॥

तौ तस्य पादौ प्रविश्यो विशाक्ष
गिरेगुंहाक्षैव महात्पथ च ।
उद्धां च सनां कपिराक्षसार्ता
विनाशयन्तौ विनिपेतगुञ्ज ॥१६२॥

उसके दोनों पैर विद्या-विदिद्या पर्वतकी कन्दरा
गुहासागठ छद्मगुपी तथा बानरों और रक्षसोंकी केन्द्राओंको
भी प्रतिपन्नित करते हुए स्थीर निर पड़े ॥ १६२ ॥

निरुत्तवाहुर्बिनिरुत्तपावो
विदत्स्य वपत्र धववासुसामम् ।
सुप्राव राम सहासाभिगर्जनं
राहुपथा चन्द्रमिष्यत्तरिक्षे ॥१६३॥

दोनों बाँहों और पैरोंके कट जानेपर उसने बबवानके
छान अपने विचरक मुसको पैरका और जैसे राहु आकाशमें
चन्द्रमाको प्रस उठा है । उठी प्रक्षर वह भीरुमको प्रथेके
छिपे मयानक गबना करता हुआ खड़ा उनके ऊपर दूढ़ पड़ा ॥

अपूरयत् तस्य मुख शितामै
राम शरैर्हमपिभद्रपुङ्गवै ।
साम्पूर्वकस्रो म शरयक बफुत्तु

सुहृज कृष्णैज मुमुञ्चत् जापि ॥१६४॥
तब भीरुमचन्द्रबीने सुवर्णभटित पंखखले अपने छीले
कपोले उखल मुँह भर दिया । मुँह भर जानेपर वह धेधेनेमें
भी भरनर्ष हो गया और बड़ी कठिनाईसे भावनाप करके
मूर्च्छित हो गया ॥ १६४ ॥

अथाद्द् सुवमरीचिकस्य
स द्रक्षान्द्रान्तकस्यलकस्यम् ।
अरिर्हमिन्द्रं निरित सुपुञ्ज
रामा शर मासतनुस्यवेगम् ॥१६५॥

त धजजाम्भूनन्चाठपुञ्जं
प्रसीतस्यज्जलनप्रकाशम् ।
महेन्द्रवज्राशानितुस्यवेग
रामा प्रविशय निशाचरय ॥१६६॥

इसके बाद भगवान् भीरुमने ब्रह्मदण्ड तथा विनाशकारी
बासके समान भयंकर एवं तीव्रता शन अ शरोंकी किरणोंके
छान उठीत इजागरम अभिमनिपत शमुनायक वेम्बी
हय और परगिना अभिनेके छान देवीचनान छीरे और

सुवर्षते विभूषित सुन्दर पंखसे युक्त; भासु तथा इन्द्रके पर
और अशानिके समान वेगशास्त्री था; हाथमें छिन्न और उ
निशाचरको छव्य करके छोड़ दिया ॥ १६५-१६६ ॥

स सत्यको पापधवाहुषोदितो
विशाम स्वभासा दृश सम्प्रकारावत् ।

विधूमसैषात्मनभीमवर्षान्तं
जगाम शक्रप्रशानिभीमविक्रमः ॥१६७॥
श्रीसुनायकीकी मुञ्जओंसे प्रेरित होकर वह शन मन्त्री
प्रभासे दलों दिशाओंको प्रकशित करता हुआ इन्द्रके बलभी
मूर्ति मयकर केसि चम्ब । वह धूमरहित शानिके लल
भगानक दिसाभी देता था ॥ १६७ ॥

स तम्माहापवतकूटसनिभ
सुहृत्तपुत्रं क्षत्रशाककुण्डसम् ।

अकृत् रक्षोऽपिपतेः शिरस्तथा
पयैव वृषस्य पुरा पुरन्दरा ॥१६८॥

जैसे पूर्वकर्ममें देवयय इन्द्रने हुआद्वारक मलक कर
डाख था; उठी प्रक्षर उस शवने रक्षभयक कुण्डकके
महान् पर्वतशिरके समान ऊँचे सुन्दर गोबनकर बाढ़ते
युक्त तथा हिम्मे हुए मनोहर कुण्डलसे अशंकृत मलक
बाढ़ते अक्षय कर दिया ॥ १६८ ॥

कुम्भकर्णशिरो भाति कुण्डललल्लुत्त महत् ।
अदित्येऽस्मुपित राज्ञी मन्वस्य इव चन्द्रमा ॥१६९॥

कुम्भकर्णक वह कुण्डलसे अशंकृत विद्याक मलक
प्रातःकाल सुदोदय शानेपर अक्षयक मन्वसे निगमन
चन्द्रमाकी मूर्ति निस्तेच प्रतीत होता था ॥ १६९ ॥

तद् रामवाप्याभिहतं पयत्
रक्षसशिरो पर्यतसनिभशाम् ।

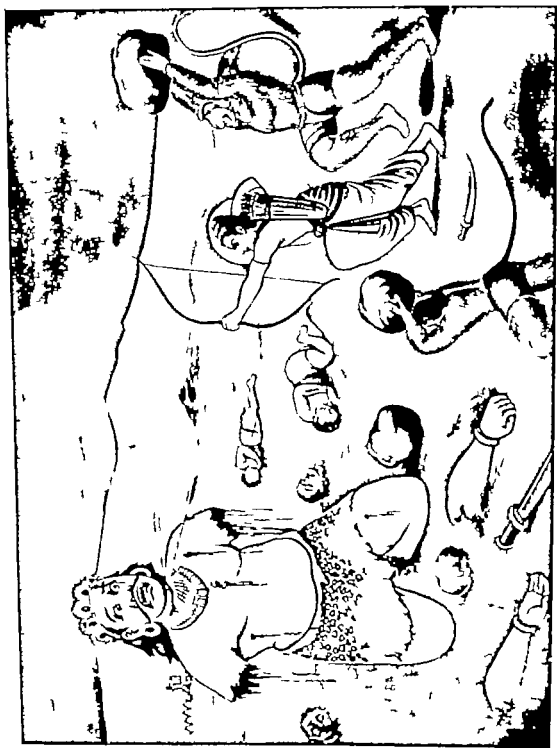
वभक्ष शर्याप्राहृगोपुराणि
प्राकारमुक्च तमपातयत् ॥१७०॥

भीरुमके शरोंसे कटा हुआ रक्षसक वह पर्वताक्षर
मलक छद्मने अ गिया । उसने अपने पनकेसे शरकके मल
पलके किये ही मन्वनों; दरवाहों और ऊँच परकडेका भी
पयशायी कर दिया ॥ १७ ॥

तथातिक्रम्य हिमवत् प्रक्षरा
रक्षस्तदा तोयनिधौ पयत् ।

प्राहान् परान् मीनपरान् भुङ्गमान्
ममदै भूमिं च तथा विचरा ॥१७१॥

इसी प्रकार उठ रक्षसग विद्याक पक्ष भी; अ हिमाक्षके
छान अन पड़ता था तमस्य समुद्रके ऊपरों गिर पड़ा और
पड़े-पड़े प्राहों मन्वी तथा शोंशेंके दीक्षा हुआ स्थीर भीरु
छया गया ॥ १७१ ॥



भुव्या विनिहत सख्ये कुम्भकर्णे महावज्रम् ।

रावणः शोकसतता मुमाह च पपत् च ॥ १ ॥

‘महाकवी कुम्भकर्ण मुदस्वप्ने माय गया’ यह मुनकर रावण खोदने संतत एव नृक्षित हो गया और तत्पश्चात् पृथ्वी पर गिर पड़ा ॥ १ ॥

पितृभ्य निहत भुव्या द्वावास्तकनरान्त्सको ।

त्रिशिराभ्रातिष्ठायाश्च सख्युः शाकपीडिताः ॥ ७ ॥

अपने चाचाक निघनश्च समाचार मुनकर देवान्त्सक नयन्तः त्रिशिर और भतिक्रम कुलसे पीडित हो कुल-कुल कर खने लगे ॥ ७ ॥

भ्रातर निहत भुव्या रामेणाह्निष्कम्पया ।

महोदरमहापाश्र्वां शाकाभ्रातृौ यभूवतुः ॥ ८ ॥

भनायात् ही महान् कर्म करनेवाले भीरवक श्या मर्ह कुम्भकर्ण मारे गये यह मुनकर उसके श्वेत मर्ह महादर और महापाश्र्व शाकसे व्याकुल हो गये ॥ ८ ॥

स्तः हृद्भ्रूत् समासाद्य सखा राक्षसपुङ्गवः ।

कुम्भकर्णवधात् वीना विह्वल्यपाङ्कन्त्रियः ॥ ९ ॥

तन्मनः बड़े क्रोध होयमें अपनेपर राक्षसराज रावण कुम्भकर्ण वधसे दुखी हो विधाय करने लग्य । उसके खरी इन्द्रियों कास्ते ध्वस्त हो उठी थी ॥ ९ ॥

हा पीर रिपुद्वयञ्च कुम्भकर्ण महावज्र ।

स्य मां विहाय य वैवाद् यातोऽसि यमसावमम् ॥ १० ॥

(यह उ-उकर करने लग्य—) हा पीर । हा महाकवी कुम्भकर्ण । तुम दामुओंक दर्पण दहन करनेवाले थे किंतु तुमाम्यवध मुझे भवहाय छाड़कर वनबाँधक्य कर दिने ॥ मम शक्त्यमनुदुःखस्य पाल्पयान्त महावज्र ।

दामुसन्त्य प्रताप्यकः क मां सत्यम्य गच्छसि ॥ ११ ॥

महाकवी पीर ! तुम मर गया इन मर-कपुओंक कष्टक हूँ किन्तु बिना दामुनाम संतत करके मुझे छाड़ अरुत कहीं चय न्य रह ॥ ११ ॥

इदानीं तत्त्वर्हं मस्मि यम्य मे पतिता भुञ्जः ।

श्रियाऽय सन्नाधित्य न विभेमि सुरासुरान् ॥ १२ ॥

इस समय मैं भयान ही नहीं करकर हूँ क्योंकि मरी राक्षसी यदि कुम्भकर्ण भगवाणी हो गया । म्निम भयना करके मैं अपना भार अनुर चिन्तन नहीं करण था ॥ कथमयविधा नाग द्वयानवद्वपहा ।

कान्तादिप्रतिमा ह्यय गणयण रण ह्यः ॥ १३ ॥

इराभा और इननाम द्य पूर करनेवाया एक शीत च अत्रनिम गमल प्रती । हाग था आन रावणमें गमक हाथम कय मया गया । ॥ १३ ॥

यस्य ते यज्जनिष्येपो न कुर्वाद् व्यसन सखा ।

स कय रामपाणार्तः प्रसुतोऽसि महिले ॥ १४ ॥

‘मर्ह ! तुम्हें तो यज्जनि प्रहार भी कभी क्य नहीं पहुँच उठ्य था । परी तुम आन रामके पाणोंमे पीडित हो मूल-पर झेते ख रहे हा ! ॥ १४ ॥

एते वेधगणाः सार्धंभूमिभिर्गगने स्थिताः ।

निहत त्वा रणे ह्यद्वा नितन्मत्सि प्रहर्षिताः ॥ १५ ॥

‘आन समराजने तुम्हें माय गया देल म्नासने सख्य दुप न भूमिमेंसेरित वेवता हर्षणकर कर रहे ॥ १५ ॥

ध्रुवमधैव सहाय लम्बलक्ष्णा द्रुवगमाः ।

भारोक्ष्यस्तीह तुर्गाणि लद्वाद्वावापि सर्धशः ॥ १६ ॥

निम्न ही अन्य अन्तर पाकर हरिसे मेरे दुप शन

आन ही ह्यद्वाके समस्त तुर्गाणि ह्यर्धपर च्द खयेने ॥ १६ ॥

एत्येन मासि म ह्यर्ये किंकरिष्यामि सीतया ।

कुम्भकर्णपिहीनस्य जीविते नास्ति म मतिः ॥ १७ ॥

अस्य मुझे राक्षसे कर्ह प्रयाजन नहीं है । सीतासे कर भी मैं क्या करूँगा । कुम्भकर्णके निना बीनेक मेरा मन नहीं है ॥ १७ ॥

यद्यह भावहन्तार म हन्मि युधि राघवम् ।

मनु मे मरण भेषो न वेद् व्यर्थंजीवितम् ॥ १८ ॥

अदि मैं युद्धन्यधमें अपने नार्थक वध करनेका यमक्य नहीं मर सकता हा मेरा मर जाना ही भय है । इस निरर्थक जीवनश्च मुश्किल रखना कष्टवि भयना नहीं है ॥

अद्यय त गमिष्यामि वश यशानुभा मम ।

महि भानून समुत्सृज्य सर्धं जीबितुमुत्तरे ॥ १९ ॥

मैं आन ही उन वेधाम खड्गों, बर्हों मेरा ऊना मर्ह कुम्भकर्ण गया है । मैं अपने माहर्षिक्य छाड़कर धरमर भी बीकन नहीं रह सक्य ॥ १९ ॥

व्या हि मा हसिष्यस्ति ह्यद्वा पूयापकारिणम् ।

कथमिन्द्र जपिष्यामि कुम्भकर्ण हत स्वधि ॥ २० ॥

मेने परह देखाओंक अन्तर क्रिया था । अर वे मुझ वधकर हूँगे । हा कुम्भकर्ण ! तुम्हारे मरे जानेपर अर मैं इन्द्रम कते बीत सकूँगा ॥ २० ॥

तद्विद्ं मामनुप्राप्त विभीषणवजः शुभम् ।

यद्वापानामया तस्य म गृहीत महासता ॥ २१ ॥

मेने महाम्य विभीषणसे कही हूँ म्नि उद्यम कर्तव्ये अहन्तार म्हीकर नहीं क्रिया था वे मेरे ऊन भाग प्रकथ-कय पतिन हा रही है ॥ २१ ॥

विभीषणवधस्तयान् कुम्भकर्णप्रदस्तया ।

विन्द्याऽय समुत्पथा मां दीर्ययति श्रान्ता ॥ २२ ॥

भवते कुम्भकर्णं शीरं प्रह्लादश्च यद् दारुणं विनश्यत्
उत्सव हुव्य है, तभीसे विभीषणाकी बात याद आकर मुझे
छस्वित कर रही है ॥ २२ ॥

तस्यैव कर्मणः प्राप्ते विपाक्ये मम शोकतः ।
यग्नया धार्मिकाः भीमान् सन्निरस्तो विभीषणः ॥ २३ ॥

पैने धर्मपरायण भीमान् विभीषणको खे परते
निरस्त किया या उसी कर्मका यह शोकदायक
परिणाम अब मुझे मंमना पड़ रहा है ॥ २३ ॥

हर्यापे भीमजाम्बवणे वासुकीकीये आदिकाण्डे युद्धकाण्डेऽष्टादशितमः सर्गः ॥ १८ ॥

इस प्रकार भीमजाम्बवण निर्मित आर्यसमाज अफ्रीकाण्डे युद्धकाण्डे अष्टादशौं सर्ग पूरा हुआ ॥ १८ ॥

एकोनसप्ततितम सर्ग

रावणके पुत्रों और भाइयोंका युद्धके लिये जाना और नरान्तकका अज्ञदक द्वारा वध

पथं विद्यपमामस्य रावणस्य दुरात्मनः ।
भ्रुव्या शोकाभिभूतस्य त्रिशिरो वाक्पयमत्रधीतः ॥ १ ॥

दुरात्मा रावण अब शोकसे पीड़ित हो इस प्रकार विषय
करने लग्य तब त्रिशिरने कहा— ॥ १ ॥

पथमेव महावीर्यो हतो नस्तप्तमभ्यमः ।
न तु सन्पुत्रया राजन् विद्यपस्ति यथा भवान् ॥ २ ॥

पथक ! इतने संदेह नहीं कि हमारे मरने का खे
इस समय युद्धमें मारे गये हैं ऐसे ही महान् पराक्रमी थे
परंतु आप बिना प्रकर गये-कल्पते हैं उस तरह भेद प्रकर
किस्कीं सिने विषय नहीं करते हैं ॥ २ ॥

नूनं त्रिभुयजम्यापि पर्याप्तस्त्वमसि प्रभो ।
स कसात् प्राहृत इष शोचम्यात्मानमीदृशाम् ॥ ३ ॥

प्रभो ! निश्चय मगर मरने ही तीनों समझते भी अहा
लेनेमें समथ हैं फिर इस तरह आचारण प्रकरकी मौखि क्यों
अपने भावको छोकमें डाल रहे हैं ? ॥ ३ ॥

प्रह्लादासित तं शक्तिं कवचं सायका धनुः ।
सहस्रशरस्युक्तो रथा मघसमखनः ॥ ४ ॥

आपके पास ब्रह्मावीर्य ही कुछ शक्ति कवच धनुष
तथा शत्रु हैं खय ही मघ-भाकीक लयन शत्रु करनेयस्य
रथ भी है बिसमें एक हजार शरों से भरे खन हैं ॥ ४ ॥

स्ययासहृदि शस्त्रेण विनास्य वृक्षशमयाः ।
स सव्यायुधमस्यघ्रा गणय प्रस्तुमहसि ॥ ५ ॥

आपने एक ही शस्त्रमें वृक्षाओं और दानशत्रु अनेक
शर पठाया है अतः सब प्रकारक अथ शत्रुओं मुण्डजत
होनेसे आप रावण भी दण्ड द सकते हैं ॥ ५ ॥

इति बहुविधमाकुलमन्तरात्मा
रुपणमतीथं विलप्य कुम्भकर्णम् ।
म्यप्यस्यपि दशाननो मृशार्तं
स्तमनुजमिन्द्ररिपु हत विदित्वा ॥ २४ ॥

इस प्रकार भौतिक-भौतिकी रीतकपूर्वक मरकत विषय
करके व्याकुलचित्त हुआ दशमुख रावण अपने छोटे भाई
इन्द्र-शत्रु कुम्भकर्णके वधका संरण करके बहुत ही व्यथित
हो पुनः कृष्ण-शिर पड़ा ॥ २४ ॥

काम तिस्र महाराज निर्गमिष्याम्यह रणे ।
उद्धरिष्यामि ते शत्रून् गतदः पथगणिय ॥ ६ ॥

अथवा महाराज ! आरंभे इच्छा हो तो यही रहे । मैं
स्वयं युद्धके लिये बर्जेज और बसे गश्क सर्वोक्त संवार करते
हैं उसी तरह मैं आपके शत्रुओंको बहसे उलाड़ डेऊंगा ॥
शत्रुओंको देयरजेस नरको विष्णुमत्र यथा ।
तथाच शयिता रामो मया युधि निपातितः ॥ ७ ॥

जैसे इन्द्रने शत्रुसुरको और भगवान् विष्णुने नरक-
सुरको मार लिया था उसी प्रकार युद्धसममें आज मरे
हारा मारे आकर राम सहाके लिये खे बर्जेगे ॥ ७ ॥

भ्रुव्या त्रिशिरसो वाक्पय रावणा राक्षसाधिपः ।
पुनर्जातमिषारमान मम्यते कालखोदितः ॥ ८ ॥

त्रिशिरकी यह बात सुनकर उल्लस्य रावणको इतना
संतोष हुआ कि वह अपना नया कम हुआ-स मानने लग्य ।
कल्पसे प्रतिशत होकर ही उल्लसि देखि हा गयी ॥ ८ ॥

भ्रुव्या त्रिशिरसा वाक्पय द्वावन्तकनरान्तकी ।
अस्तिक्षयश्च तजस्वी बभूव्युर्दशविता ॥ ९ ॥

त्रिशिरका उपयुक्त कपल सुनकर देवस्यक नरान्तक

१) यहाँ बिन मरकसुरका मान भाषा है वह त्रिपिंडित
नामक शस्त्रक द्वारा त्रिदिव्यक लक्ष्मी उत्पन्न हुए शत्रुकी अति
स्वयं पुत्रकेम एक था उक्त स्वयं लयनः इत प्रकार है—शत्रु
नमुनि शत्रु, सुन अ ६, नाक अंत वाचनाय । अथान्
अज्ञानसे शत्रुने बिन भूनिपुत्र नाकसुरका वध किया था वह
यही उल्लसित मरकसुरम भिन था । त्रिशिर अतः राजाक उत्प-
न हो उल्लस्य अतः ही लक्ष्मी पथ था ।

और तेवही अतिक्रम—वे तीनों युद्धके लिये उत्सहित हो गये ॥ १ ॥

ततोऽहमहमित्येव गर्भन्तो नैर्भूतपभाः ।

राजपस्य सुता बीराः शक्रतुल्यपराक्रमाः ॥ १० ॥

यै युद्धके लिये अर्केगा, मैं अर्केगा' ऐसा करते और गर्भित हुए ५ तीनों भेट निघान्तर युद्धके लिये तैयार हो गये ।

राजपके ये भीरु पुत्र इन्द्रके समान पराक्रमी थे ॥ १ ॥

अन्तरिक्षमात्वा सर्वे सर्वे मायाविशारदाः ।

सर्वे त्रिविशार्वर्याः सर्वे समरतुर्मदाः ॥ ११ ॥

वे सब-सब आकाशमें विकरल करनेवाले, मायाविशारद, राजकुमार तथा देवताओंके भी एवं दखन करनेवाले थे ॥ ११ ॥

सर्वे सुयुक्तसम्पन्नाः सर्वे विस्तीर्णकीर्तयः ।

सर्वे समरमासाद्य न भूयन्ते स निर्वृताः ॥ १२ ॥

वेवैरपि सगन्धर्वैः सक्तिरमहोरगीः ।

सर्वेऽस्त्रापियुयो धीराः सर्वे युद्धविशारदाः ।

सर्वे प्रवरविज्ञानाः सर्वे सम्भवयस्तया ॥ १३ ॥

वे सभी उद्यम करनेसे सम्पन्न थे । उन सभी कीर्ति तीनों क्षेत्रोंमें फैली हुई थी और समरभूमिमें आनेपर गणनों किछों तथा बड़े-बड़े नागैरुद्धित देवताओंमें भी कभी उन लक्ष्मी पराक्रम नहीं हुनी गयी थी । वे सभी अज्ञानेका, तभी भीर और तभी युद्धकी कथमें निपुण थे । उन सबको शत्रुओं और शास्त्रोंके उद्यम खान प्राप्त था और अपने तत्त्वोंके द्वारा बरतन प्राप्त किया था ॥ १२ १३ ॥

स तैस्तया भास्करतुल्यवर्तैः

सुतैर्वृताः शत्रुबलधियापन्नैः ।

रराज राजा मधवान् पयामरै

वृन्तो महाशानवर्षपन्नाशरैः ॥ १४ ॥

सुर्गके समान तेजस्वी तथा शत्रुओंकी सेना और सगन्धर्वोंके वीर बान्धवोंने उन पुत्रोंसे फिर हुआ राक्षसोंके राज्य उद्यम बड़े-बड़े दानवोंका दर्य पूर्ण करनेवाले देवताओंसे मिले हुए इन्द्रकी भाँति घोषा पा रहा था ॥ १४ ॥

स पुत्रान् सग्नरिष्वन्य मूपयित्वा च भूपजैः ।

अशीर्षिभ्यः प्रानस्ताभिः प्रययामास वै रणे ॥ १५ ॥

उद्यमे अपने पुत्रोंको हारयते स्म्राकर नाना प्रकारके आभूषणसे विभूषित किया और उद्यम आशीर्वाद देकर राजभूमिमें भेजा ॥ १ ॥

युद्धाम्पच च मल च धातरी धारि रायणः ।

रक्षपार्यं कुमार्याणां प्रययामास सयुग ॥ १६ ॥

उद्यमन अन्त दनों भाइ युद्धाम्पच (म्हापार्यं) और मल (म्हादर) का भी युद्धमें कुमारीकी रक्षाके लिये भेजा ॥ १६ ॥

तेऽभिघाद्य महात्मानं राजप लोकराजपम् ।

हत्वा प्रसिषिष्य वैव महाकाया प्रतस्त्रिरे ॥ १७ ॥

वे सभी महाशय राक्षस समस्त क्षेत्रोंको रक्षनेके महामना राजपको प्रथम और उद्यमी परिक्रम करके युद्धके लिये प्रसिद्ध हुए ॥ १७ ॥

सर्वौषधीभिर्गन्धैश्च समासभ्य महाबलम् ।

निर्जग्मुर्नैर्भूतधेष्टाः पश्येते युद्धकाङ्क्षिणः ॥ १८ ॥

त्रिशिराभ्यातिक्रम्यश्च ह्येयान्तकनराजतकौ ।

महोदरमहापाभौर्नैर्निर्जग्मुः क्यस्योयिता ॥ १९ ॥

उन प्रकारकी भाषणियों तथा गन्धोंके साथ करते युद्धकी अभिजाता रक्षनेवाले त्रिशिरा अतिक्रम, देयन्तक, नरन्तक, महोदर और म्हापासर्व—ये छः महाकवी भेट निघान्तर काव्यसे प्रेरित हो युद्धके लिये पुरीसे दूर निकल ॥ १८ १९ ॥

तत्र सुदर्शनं नाग मीलजीमूतसक्तिभम् ।

पराबतकुलं जलमादरोह महाव्रत ॥ २० ॥

उत्त सम्य महोदर ऐश्वर्यके कुलमें उत्पन्न हुए कव्ये गणके समान रंगवाले 'सुरदर्शन' नामक हाथीके स्वर हुआ ॥

सर्वायुधसमायुक्तस्त्रीभिश्चाप्यलकृता ।

रराज राजमास्थाय सविदेवास्तमूर्धनि ॥ २१ ॥

समस्त आभूषणोंसे सम्पन्न और तृपितोषे अलंकृत महोदर उद्यमीकी पीठपर बैठकर मलाकव्यके विश्वरत्न निरुपमन सुसैवके समान घोषा पा रहा था ॥ २१ ॥

द्योत्तमसमायुक्त सर्वायुधसमाकुम्भम् ।

म्यदरोह रथधेष्ट त्रिशिरा रावणामजा ॥ २२ ॥

उद्यमकुमार त्रिशिर एक उद्यम रथपर भास्व कुम्भ किछमें सब प्रकारके मख-शस्त्र रखे गये थे और उद्यम केने कुते हुए थे ॥ २२ ॥

त्रिशिरा रथमास्थाय विरराज धनुर्धरः ।

सत्रिपुतुल्यः सस्यासः सेन्द्रपाप इवाम्बुदः ॥ २३ ॥

उद्यम रथमें बैठकर पशुप धारण किस त्रिशिरा त्रिपुत् उरुध्व ज्जम्भ और इन्द्रपशुपसे युक्त मेघके समान घोषा पाने लगा ॥ २३ ॥

यिभिः किरिदैस्त्रिशिराः शुभ्रमे स रथोत्तमे ।

हिमवानिय शैलमृद्रिभिः कञ्जानपयतैः ॥ २४ ॥

उद्यम उद्यम रथमें स्वार हो तीन किरिदोंसे युक्त त्रिशिर तीन सुवपव शिखरोंसे युक्त त्रिशिरा हिमवन्के समान घोषा पा रहा था ॥ २४ ॥

अतिक्रम्याऽतितमसी राशसम्प्रसुतस्तदा ।

आदराह रथधेष्ट धेष्टः सयधनुष्मताम् ॥ २५ ॥

गल्पराज रावणका अल्पत तेजस्वी पुत्र अनिताय मन्थ

वनपारिषोमे भेद या । वह भी उस समय एक उत्तम रथपर
अस्व हुआ ॥ २५ ॥

सुखद्वयं सुसयुक्तं सनुकर्यं सुकृवरम् ।
तृणीयाथासनेर्वसं प्रासासिपरिष्वाकुन्मम् ॥ २६ ॥

उस रथके पक्षीय और घुरे बहुत कुन्दर थे । उसमें उत्तम
धड़े जुते हुए थे तथा उसके अनुकर्य और नूर्कर भी सुदृढ़
थे । तृणीय, शाय और वनपुष्प करण वह रथ उदात्त हो
रहा था । प्रस, सङ्ग और परिषोते वह मरा हुआ था ॥२६॥

स काश्चान्धिविधेण किरीटेन विराजता ।
भूपयैव चभी मेढः प्रभाभिरिष भासयन् ॥ २७ ॥

वह सुवर्णनिर्मित विचित्र एवं दीप्तिशाली किरीट तथा
अन्य भाग्यशोभे विभूक्ति हो अपनी प्रभासे प्रकाशक सिक्कार
करत हुए मेघपर्वतके समान सुशोभित होता था ॥ २७ ॥

स रराज रथे तस्मिन् राजसूनुमहाबला ।
वृत्तो नैर्धृतशार्तुलैर्वज्रपाणिरिवामरैः ॥ २८ ॥

उस रथपर भेद निष्पात्रांसे निकर बैठा हुआ वह
महाकबी राक्षसराजकुमार, रेवतशोभेते भिरे हुए बज्रपाणि
इन्द्रके समान श्रेया पाता था ॥ २८ ॥

हयमुच्यैःप्रवःप्रव्य इवत कनकभूपणम् ।
मनोजय महाकरप्रमासराह मरुत्तकः ॥ २९ ॥

मरुत्तक उच्येभ्याके समान स्वेत बर्षबाह एक सुवर्ण
भूषित विशालकनक और मनके समान वेगशाली भरथपर
अस्व हुआ ॥ २९ ॥

गृहीत्वा प्रासमुत्क्राम विरराज मरुत्तकः ।
शक्तिमाश्राय तंजसुी गृहः शिक्तिगतो यथा ॥ ३० ॥

उत्क्रामके समान दीप्तिमान्, प्रास हापने ककर तन्वरी
मरुत्तक शक्ति शिपे मोरपर बैठे हुए तंजमुत्तके सम्यक् कुम्भ
शक्तिकेके समान सुशोभित हो रहा था ॥ ३ ॥

देवास्तका समश्राय परिष हेमभूपणम् ।
परिपृष्टा गिरि शोभ्यो यपुर्विष्णोर्विहम्ययन् ॥ ३१ ॥

रेवतक स्वभूषित परिष ककर समुद्रमन्थनके समय
होने हाथोते मन्दराणके ठठाने हुए भगवान् विष्णुके स्वस्व-
का अनुकरणका कर रहा था ॥ ३१ ॥

महापाभो महातेजा गन्नामाश्राय शीर्ययान् ।
विरराज गन्नापाणिः कुपर इष सयुग ॥ ३२ ॥

महातेजसी और पराक्रमी महापासने हापने गता ककर

युद्धरथमें गन्नापारी कुदरेके समान शोभा पाने क्या ॥३२॥
ते प्रतस्युमहात्मानोऽमराधत्या सुरा इष ।
तन् गजैश्च तुरजैश्च रथैश्चानुवृत्तिस्रवैः ॥ ३३ ॥
मनुयेतुर्महात्मानो रक्षसाः प्रवरायुषा ।

अमराधरीपुरीसे निकलनेवाले देवराजोंके समान वे सभी
महाशय निशाचर लड़ापुरीसे चले । उनके पीछे भेद अमुप
पारण शिपे विशालकनक राक्षस हाथी, घोड़ों तथा मेघकी
गर्जनके समान बर्षाघट पैदा करनेवाले रथोंपर सवार हो
सुदके शिपे निकल ॥ ३३॥

ते धिरेऽसुमहात्मान कुमाराः स्यवर्षसाः ॥ ३४ ॥
किरीटिभ्यः श्रिया जुष्टा प्रहा वीता हवाम्बरे ।

वे स्यवर्षस तेजसी, महान्तसी रक्षसराजकुमार मरुत्तक-
पर किरीट धारण करके उत्तम शोभा-वर्षसिसे सेवित हो
आकाशमें प्रकाशित होनेवाले प्रहोक समान सुशोभित हो रहे
थे ॥ ३४॥

प्रशुहीता चभौ तेषा शक्यापामावकिः सिध ॥ ३५ ॥
धारवृज्जम्प्रीकाशा हसावतिरियाम्बरे ।

उनके हाथ धारण की हुई अस्त्र-शक्योंकी स्वेत पत्कि
आकाशमें धरद्वन्द्वके धारकोंकी मौलि उन्मथल कान्तसे युक्त
होंकी भेषीके समान घामा पा रही थी ॥ ३५॥

मरण यापि निश्चित्य शत्रुणां धा पराजयम् ॥ ३६ ॥
इति कृत्वा मतिं धीराः सञ्जयुः सयुगाधिनाः ।

भाव या तो हम शत्रुओंको फाल कर दगे या स्वयं
ही मृत्युकी गेदमें उनके शिपे तो कहेंगे—येख निश्चय करके
वे भी राक्षस युद्धके शिपे आगे बढ़े ॥ ३६॥

जगद्भ्य प्रयेनुभ्य निक्षिपुभ्यापि सायकन ॥ ३७ ॥
जयद्वय महात्मानो नियन्तो युद्धयुग्दाः ।

वे युद्धयुग्द महामन्सी निशाचर गन्ते शिखार करते
कण हापने कट और उन्हें शत्रुओंपर फाड़ देते थे ॥३७॥
स्वद्विवास्फोटितानां पै सचचाक्षेप मन्दिनी ॥ ३८ ॥
रक्षसां सिंहनादीश्च सस्फोटितमियाम्बरम् ।

उन राक्षसोंके गर्नेने, वाह ठोकने और शिखार करनेसे
पृथी क्षमित-थी होने लगी और आकाश फटने-वा लगा ॥३८॥
तऽभिनिष्क्रम्य मुषिता राक्षसेन्द्रा महाबलाः ॥ ३९ ॥
दृष्टुर्नारनातिक समुद्यतशिरानाम् ।

उन महाकबी राक्षसशिपमवि धीरोंने प्रथमकण्ठक नगर
की छिन्नेते शर निष्कर देखा, शान्दीकी सवा पक्षशिपर
और यह-यह दृष्ट उदय युद्धके शिपेतेषार लगी है ॥३९॥
हरयाऽपि महात्माना दृष्ट्वा राक्षस यजम् ॥ ४० ॥
इत्यप्यभरथसम्भाष चिद्विपीशसनादितम् ।
नीलकीमृतसकप्रद समुद्यतमहायुधम् ॥ ४१ ॥

(१) एक घुरेतर कुदरेके ककारकमते कानि ककरतंजका
कुदरं करते हैं । २ कुदर उच्य ककरके करते हैं । विरर जुष्ट
रथका जग है । यरीके हल्लेमें भी ककरककाने कुदर कता
ककर था ।

महामना बन्धनेन मी उखल्येनापर वदियाव किया । यह हाथी, घोड़े और रघोंसे मरी थी, तेकनों-हमरों पुंयुक्तोंकी स्नह्मसे निनादिव मी, कबसे मेनोंकी भय-कैसी दिसाभी वेती थी और हाथोंमें बने-बने व्यसुध बन्धे हुए थी ॥ ४४१ ॥

दीप्तान्तरप्रथिमस्यैतैर्भुवैः सस्यतो वृत्तम् । तत् इन्द्रा बलमायात लम्बलक्ष्माः द्रुवङ्गमाः ॥ ४४२ ॥ समुपगतमहारोसाः सम्मन्वेतुमुर्मुर्मुः । म्मुष्यमाणा रक्षासि प्रतिकर्तव्यं वानराः ॥ ४४३ ॥

प्रबन्धित अग्नि और सूर्यके समान तेकसी रक्षकोंने उठे छत्र भेरेसे घेर रखा था । निघानरोंकी उठ केन्द्रको आठों देख बानर प्रहार करनेका मन्थक पाकर महान् परबोधिसर उठाने बरबार गर्माना करने लगे । वे रक्षकोंका सिंहावा सरत न करनेका करण बरबसे बने-बनेसे दहाइने लगे थे ॥ ४४२ ॥ ४४३ ॥

ततः समुत्कण्ठरथ निशाम्य रक्षागणा वानरयूयपानाम् । म्मुष्यमाणाः परहर्षमुग्र महाबला भीमतरा प्रबन्धुः ॥ ४४४ ॥

वानरयूयपथियोंका यह उठ सरसे किना हुआ गर्जन-कर्मन हुनकर मर्मकर एवं महान् बळसे सम्पन्न रक्षकजग हनुमोंका हथ उठान न कर लके अतः स्वयं मी अत्यन्त मीम्य सिंहावर करने लगे ॥ ४४४ ॥

ते रक्षसचक्र घोर प्रविश्य हरियूयपाः । विघेठउद्यतैः शौचैर्नगाः दिग्भरिणो यथा ॥ ४४५ ॥ तत्र बानर-यूयपथी रक्षकोंकी उठ मर्मकर सेनामें पुत्र गम और शौच्यइ उठाने शिखरोंबाळ परबोंकी भौंदि वहाँ निचरन करने लगे ॥ ४४५ ॥

केविकृत्कण्ठशमाधिष्य केवितुर्ध्या द्रुवङ्गमः । रक्षसैर्म्येषु सङ्गुहाः केवित् द्रुमसिंहायुधमः ॥ ४४६ ॥ त्रुमाद्य विपुलस्त्रधान्यं यद्वा बानरपुङ्गवाः ।

इधों और शिखरोंका आयुधके समने बारण किने बानर सेना रक्षकोंकेभोर अत्यन्त कुपित थे आकाशमें उड़-उड़ कर निचरने लगे । कितने ही बानरधिर्ममथी और मोटी-मोटी घाटाभंगेवाळ इधोंको हथमें लकर धृष्णीपर निचरन करने लगे ॥ ४४६ ॥

तत् सुदमभयत् घाटं रक्षोवानरसकुलम् ॥ ४४७ ॥ त पापुपशित्परीक्षेभहुर्वृधिमनूपमाम् । बाणोपैर्वायंमणाय हारया भीमविक्रमाः ॥ ४४८ ॥ उठ सम्य रक्षकों और बानरोंके उठ सुदने बड़ा मर्मकर रूप धारण किया । रक्षकोंने बाणधरुकी कर्वाइए सब बानरों को भले बहनेसे रक्ष उठ सम्य वे मर्मकर पराक्रमी बानर उनपर कुछ शिखरों तथा शौचिलरोंकी अनुपम वृधि करने लगे ॥ ४४७-४४८ ॥

सिंहनादान् विनेतुञ्च रथ राक्षसबानराः । शिलाभिश्चूर्णयामासुर्यांतुधानान् द्रुवङ्गमाः ॥ ४४९ ॥ निर्घन्तुः सयुगे कृद्वाः कवचाभरणवृत्तन ।

रक्ष और बानर दोनों ही वहाँ रथकेबने सिंरोंके लयन बहाक रहे थे । कुपित हुए बानरोंने कर्णों और अनुपकी विनूषित बहुते रक्षकोंको मुदखलमें शिखरोंकी मारसे कुञ्च दिया—मार बाळ ॥ ४४९- ॥

केवित् रथगठान् धीरान् राक्षसजिगताग्नि ॥ ५० ॥ निर्घन्तुः सहसाऽऽद्रुत्य यातुधानान् द्रुवङ्गमः । कितने ही बानर रथ हाथी और बनेपर बैठ हुए और रक्षकोंको भी खल उखलकर मार बाळते थे ॥ ५० ॥

शौच्यइशक्तिताज्ञास्ते मुष्टिभिर्वाणसोवयाः ॥ ५१ ॥ वेद्युः पंतुञ्च नेतुञ्च तत्र राक्षसपुङ्गवाः । वहाँ प्रथम-प्रथम रक्षकोंके घोर परब-शिकरते आच्छादित हो गये थे । बानरोंके मुक्कोंकी मार लकर कितनोंकी मौंसे बाहर निकल आयी थी । वे निघानर मगके गिरते-पड़ते और चीखर करने थे ॥ ५१ ॥

राक्षसाद्य धारैस्तीक्ष्णैर्विभितुः कपिकुञ्जरान् ॥ ५२ ॥ शूलमुद्गरकङ्कैश्च जघ्नुः प्रासैश्च शक्तिभिः । रक्षकोंने मी पने नाजेंसे कितने ही बानर-धिर्ममथियोंके शिरीष कर दिया था तथा धुंरों, मुद्गरों लड़ों प्रांके और शक्तिमेंसे बहुकोंका मार गिरना था ॥ ५२ ॥

मन्मोक्ष्य पातयामासु परस्परजघैरिणः ॥ ५३ ॥ रिपुशान्तिविक्षिप्यज्ञास्तत्र बानररक्षसाः । हनुमोंका रक्त बिनके घरीरोंमें छिपते हुए के वे बानर और रक्षक वहाँ परस्पर निबन्ध पानेकी इच्छते एक दूसरेको बरपायी कर रहे थे ॥ ५३ ॥

ततः शौलेभ्य खड्गैश्च विसृष्टैरहरिरक्षसैः ॥ ५४ ॥ सुहृतेनावृत्त भूमिरभयच्छेपितोसिता ।

बाड़ी ही देरमें वह मुदभूमि बानरों और रक्षकोंके परबमें गने परब-शिकरों तथा लक्ष्मणसे माच्छादित हो रक्षके प्रवाहसे छिप उठी ॥ ५४ ॥

विकीर्णैः पर्वतान्धरै रक्षोभिरभिमर्दितैः । आसीत् यत्सुम्भी पूर्णं तदा युद्धमवाहितैः ॥ ५५ ॥ मुदक मरते उन्मत्त हुए परब-धर रक्षक शिखरोंकी मारसे कुञ्च दिये गये थे छत्र और किले पड़े थे । उनसे वहाँकी साथी भूमि पट गयी थी ॥ ५५ ॥

माशिताः शिष्यमाणाश्च भद्ररीसाश्च वानराः । पुनरङ्गैस्तथा धम्बुरासथा युद्धमहूतम् ॥ ५६ ॥ रक्षकोंने बिनके मुदके धाधनत शौच-शिलरको लड़ पाइ बाळ था वे बानर उनक प्रघांसे निबन्धित मि

बानेर उत एकलोकं भक्त्यन्त निरुद्ध आ अपने हाथपर आनि
भङ्गोद्योग ही भद्रमुत् युद्ध करने लगे ॥ ६ ॥

बानरान् बानरैरेव जघ्नुस्त नैश्वस्यभामा ।
यज्ञसाज् राजसरोरेव जघ्नुस्त यानरा भपि ॥ १७ ॥

एकलोकं प्रभान-प्रभान वीर बानरैश्च परकृष्णर उन्हे
बुद्धे बानरैश्च परकृष्णर दते थे । इही प्रकार बानर भी एकलोकसे
ही एकलोक मार रहे थे ॥ १७ ॥

भ्रातृभ्यश्च शिखाः शीलाञ्जघ्नुस्ते राजसास्तदा ।
तथां चाच्छिद्य शक्यापि जघ्नु रक्षांसि यानराः ॥ ८ ॥

उस समय एकलोक अपने शत्रुभयोंके हाथसे शिखाओं और
शील-शिखरोंके छीनकर उन्हासे उनपर प्रहार करने लगे तथा
बानर भी एकलोकसे हथियार छीनकर उनकी हत्या उनका
बध करने लगे ॥ १८ ॥

निजघ्नु शैलभृङ्गैश्च विभिदुश्च परस्परम् ।
सिंहनशान् विनेदुश्च रणे यज्ञसयानरा ॥ १९ ॥

इस तरह एकलोक और बानर दोनों ही एकलोक काटा एक-
दूसरेके परस्पर-दिलखते मारने, मछल-शत्रुओंसे विदीर्ण करने
तथा एकलोकसे शिखरोंके छानन बहाइने लगे ॥ १९ ॥

छिद्यवस्तनुश्रामा राजसा यानरैरेव ।
रथिर प्रवृत्वास्तत्र रससारमिव द्रुमाः ॥ २० ॥

एकलोकोंकी शरीर-रक्षाक खपनभूत कवच भादि छिद्य
भिन्न हो गये । बानरोंकी मार खाकर ये अपने शरीरसे उखी
प्रकार एक पहाते लगे जैसे वृक्ष अपने ऊनाम गोंद पराधा
छूट हैं ॥ २० ॥

रणेन च रथ चापि पारमेष्ठ्यपि पारणम् ।
इयम च हय कश्चिद्विजघ्नुयानरा रणे ॥ २१ ॥

विजने ही बानर एकलोकसे रथने तथा हाथासे हाथीका
और पाइस पाइस मार मियात थे ॥ २१ ॥

धुत्पैरध्वजैश्च भस्त्रैश्च निरिहताः शरैः ।
यज्ञसा यानरान्द्राणां विभिदुः पक्षपातित्वा ॥ २२ ॥

बानर-वृषपत्तिकाक चक्रप हुए वृषों और शिखरोंका
निघाकर यज्ञा तीर धुत्पे अभ्यन्तर और भद्र नामक
बाणोंसे काट-काट काहत थे ॥ २२ ॥

विचिन्वाः पयत्वास्तंश्च द्रुमच्छिन्नश्च सयुग ।
इतश्च कश्चिद्विजघ्नुयानरा पशुध्वजैश्च ॥ २३ ॥

दूर-दूरकर मार हुए परसे कर हुए वृक्ष तथा वृक्षों
और बानरोंकी शरणाप पर उन्हेक करन एक लुकमें चला
छिन्न करिन हो गये ॥ २३ ॥

त यानरा गार्ग्यहृष्टयथाः
समाभामासाद्य भय विमुच्य ।

युद्ध स सर्वे सह राजसैस्त
नानायुधैश्चभुरवीनसत्त्वाः ॥ २४ ॥

बानरोंकी खरी बछाणें गर्ते भरी हुए तथा हथ और
उत्सहसे युक्त थी । उनका हथमें दीनाप नहीं थी तथा
उन्होंने एकलोक ही नाना प्रकारक आयुध छीनकर इतगत
कर लिजे थे, भव य एक सामानम पदुंनकर एकलोक साथ
मम काइकर युद्ध कर रहे थे ॥ २४ ॥

तस्मिन् प्रवृक्ष तुमुल विमर्दे
प्रहृष्यमात्रेषु धत्तमुद्युतु ।
निपात्यमानेषु च राजसपु
महापया ध्वगणाश्च ननुः ॥ २५ ॥

इस प्रकार जब भयकर मरभद्र मन्त्री हुए थी, बानर
प्रसन्न थे और एकलोकोंकी काणों गिर रही थी उस समय महर्षि
तथा देवगन हथनाद करने लगे ॥ २५ ॥

स्तो हय मारुततुल्ययग
मारुह्य शक्ति निरिहतां प्रवृष्ट ।
नरान्तक्यो यानरसैन्यमुर्ध
महापय मीन इवापिपदा ॥ २६ ॥

तदन्तर बायुक समान तीन पगपास पाइपर सवार हो
हाथमें तीली शक्ति खिय नयन्तक बानरोंकी भयकर सन्तान
उखी तरह पुला जैसे काइ मरस महाकाणमें प्रपदा कर
रहा हो ॥ २६ ॥

स यानरान् सत गतानि वीरः
प्रसन्न वीरान् विनिर्विमेश् ।
एक सशनेन्द्ररिपुमहात्मा
जघ्नु सस्य हरिपुङ्गवानाम् ॥ २७ ॥

उस महाकाण इन्द्रशही वीर निघापरने चमकसात हुए
मूलम अकल ही कल लो बानरोंका और नाम और धननरमें
बानर-वृषपत्तिकाकी एक बहुत बड़ी सेनाम सवार कर बावला

इन्द्रोश्च महात्मान हयवृष्टप्रतिष्ठितम् ।
घरन्त हरिसम्पु विद्याधरमहापयः ॥ २८ ॥

पाइकी वीरपर सेठ हुए उस महाकाणकी वीरका विद्याधरों
आर महर्षिकने बानरोंकी सन्तानमें निघरन ११ ॥ २८ ॥

स तस्य वृष्टा मार्गो नामगणितकृत्म् ।
पतितः पयत्वाश्च यानरभिमसृजतः ॥ २९ ॥
२६ शि मन्में निरुद्ध करण वहा पणगाई हुए
परिघार पानएल नाम (वही) यह था देर वही २६ एं
मलध भव मन करी ॥ २९ ॥
याइ विघर्मनु बुद्धि चक्रुः एगगुद्गवाः ।
तावन्तान्प्रतिद्रम्य निघयन्त महात्माक ॥ ३० ॥
उनका प्रपत नपत कर ३ १६ करम करनध

विचार करते; तब एक ही नरपत्नक इन सबका कर्षण कर मान-
की मारते पयस कर देता था ॥ ७ ॥

उबलत प्राप्तमुद्यम्य सप्रामाये नरान्तका ।

ववाह हरिसैम्यानि वल्गवीय विभाकसुर ॥ ७१ ॥

जैसे दानव सब सुखे कांछेंका क्यथा है उन्ही प्रकार
प्रसन्नित प्राप्त शिमे नरपत्नक मुद्रकं मुहनेपर वानर-सेनाओंको
वध करने छया ॥ ७१ ॥

पावतुत्पाटयामासुर्वृक्षाभ्यौघान् कनीकसः ।

ताघत् प्राप्तहताः पतुर्वसकृता इयचक्षः ॥ ७२ ॥

वानरभंग कथक इध और पर्वत-शिकरोंको उलाड़ते
उत्तक ही उनके मलेकी चट लाकर मजके मारे हुए पर्वतकी
गोंडि उड़ जाते थे ॥ ७२ ॥

विष्टु सर्वांसु वल्लवान् विषघार नरात्तकः ।

प्रमृद्भन् सर्वातो युजे प्राष्टृकघटे वधामित्तः ॥ ७३ ॥

जैसे कर्नाकभने प्रचण्ड वायु सब ओर हथोंको टोड़ती-
उलाड़ती हुई विचरती है उन्ही प्रकार वल्लवान् नरपत्नक
रजभूमिने वनरोंको रौंदा हुआ समूह दिशाओंमें विचरने
छया ॥ ७३ ॥

न शेकुर्धावित्तु वीरा न स्वातु स्पम्बित्तु भयात् ।

उत्पतन्त स्थितचपन्त सर्वात् न बिभ्याथ वीपवान् ॥ ७४ ॥

वानर और मयके मारे न तो भया पाते थे न लड़े उड़
पाते थे और न उनसे डूषी ही करे शेष करते कती थी ।
पराक्रमी नरपत्नक उठक्यत हुए; पड़े हुए और जाते हुए
सभी वानरोंपर मालेकी घोट कर देता था ॥ ७४ ॥

एकेनात्तककश्यपं प्रासेन्वदित्यतोज्ञसा ।

भद्रानि हरिसैम्यानि निपतुर्धरपीतलं ॥ ७५ ॥

उत्तक प्राप्त (भाष्य) अपनी प्रमथ सुके समान
उहीत हो रहा था और यमपयके समान मयकर बान पड़ता
था । उस एक ही मलेकी मारते पयस इन्कर छड़-छड़
वानर धरतीपर ल गये ॥ ७५ ॥

वज्रनिष्पेपसहश प्राप्तस्याभिनिपातन्म् ।

न शंकुर्धानरा छोदु तं पितुर्मुहालनम् ॥ ७६ ॥

बज्रके भाष्यतमे भी मय करनेवाले उस प्राप्तके वज्रप
प्रहारको वानर नहीं उड़ उठे । ये बंद जाते नीलकर करने
छो ॥ ७६ ॥

पठता हरिबीराण्या रूपानि प्रचक्षन्तिर ।

पञ्चभिप्राप्रकृताना शैलानां पठतामिव ॥ ७७ ॥

वहाँ मिलते हुए वानर-वीरोंके रूप उन पर्वतोंके समान
दिखायी देते थे जो बज्रक भाष्यतस पिपारोंके विटीर्न हो
जनेस पयज्ययी हो रहे हैं ॥ ७७ ॥

य तु पूर्वं महात्मानः कुम्भकर्णेन पतित्वा ।

तं स्वस्था वानरभेष्टाः सुग्रीवमुफत्स्विर ॥ ७८ ॥

पहले कुम्भकर्णेने किन्हे रजभूमिने गिरा दिया था
महामनस्वी भेष्ट वानर उस समय स्वस्थ हो सुग्रीवकी सेवा
उपसित हुए ॥ ७८ ॥

प्रेक्षमाप्यः स सुग्रीवो वददो हरिवाहिनीम् ।

नरपत्नकभयत्रस्ता विद्रवस्तीं यतस्तदा ॥ ७९ ॥

सुग्रीवने सब सब ओर दृष्टित किया तब देख नि
पानरोंकीसेना नरपत्नकसे भयनीत होकर इपर-उपर भय
रही है ॥ ७९ ॥

बिभ्रुतां वाहिनीं दृष्ट्वा स वददं नरात्तकम् ।

शुहीत्यसमापास्त ह्यपृष्टप्रतिष्ठितम् ॥ ८० ॥

सेनाका मागती देख उन्हींने नरपत्नकपर भी दृष्टि शक्य
को बोझकी पीठपर बैठकर हाथने भाव शिमे मर रहा था
दृष्टोयाथ महातेजाः सुग्रीवो बालराधियः ।

कुमारमङ्गल वीर शक्तुत्पयपराक्रमम् ॥ ८१ ॥

उसे देखकर महातेकसी वानरपत्न सुग्रीवने इन्द्रपत्न
पराक्रमी वीर कुमार भद्रवसे कहा— ॥ ८१ ॥
गच्छैन रासस वीर योऽसौ नुरगमास्वितः ।

शोभयन्त हरिवस सिप्रं प्राणर्विभोजय ॥ ८२ ॥

जेटा । वह जो बोझपर बैठा हुआ वानर-सेनेमें इन्द्रपत्न
मना रहा है, उस वीर राससका सम्मन करनेके शिमे जाओ
और उनके प्राणोंका धीम ही अन्त कर दो ॥ ८२ ॥

स भर्तुर्वचनं ध्रुवा निष्यपात्तङ्गवस्तवा ।

अनीत्प्रममसकाद्यावशुमानिव वीपवान् ॥ ८३ ॥

लगायीकी यह अज्ञा सुनकर पराक्रमी मङ्गल उस सम
नेपोंकी पयके समान प्रतीय होनेवाली वानर-सेनासे उन्ही तरह
निकले, जैसे सूर्यदेव बादलोंके अटेकसे प्रकट हो रहे हैं ॥ ८३ ॥

शैलसघातसकाद्यो हरीषामुत्तमोऽङ्गुः ।

रासाङ्गद्वन्द्वः सधातुरिष पर्वतः ॥ ८४ ॥

वानरोंमें भेष्ट मङ्गल शैल-समूहक समान निषाङ्गम
थे । वे अपनी बोंहोंमें शब्द पाएय किने हुए थे इत्थिने
सुवर्ण आदि धातुआते युक्त पर्वतके समान शोभ पाते थे ॥
निरायुधो महातजाः केसलं गङ्गावृषवान् ।

नरपत्नकमभिक्रम्य धान्तिपुत्रोऽग्रवीह्व कचः ॥ ८५ ॥

शक्तिपुत्र भद्र महातकसी थे । उनके पस कोई हथियार
नहीं था । केसल नल और दग्द ही उनके भक्त-सह थे ।
वे नरपत्नकके पस पर्वुचकर इस प्रकार वध— ॥ ८५ ॥

विष्ट किं प्राहूर्तवभिहरिभिरस्य करिष्यसि ।
अस्मिन् वज्रसमस्पर्शे प्राप्तं क्षिप ममार्षसि ॥ ८६ ॥

भा निराकर । तत्र च । इत आचार्य संवीर्य
मारुतं नृ कथा करोग ! तत्र भद्रवी षट पत्रक सम्पन्न अथवा
हे ! किन्तु बय इत मयी इत छोपीर का मय ? ॥ ८६ ॥

भद्रवस्य पथः भ्रुवा प्रभुप्रथम नयन्तकः ।
सदस्य इदानीरोष्ट निम्नस्य च भुजगवत् ।
अभिगम्याहृद् मुन्दो पालिपुत्र नगन्तकः ॥ ८७ ॥

भद्रवमी यह बात सुनकर नयन्तकम पहा रूप दुभा ।
यह कुनि हा दौंतोमे अष्ट इसा सर्मी भौनि मयी खौष
छ पालिपुत्र भद्रवक पाठ आकर मया हा मय ॥ ८७ ॥

स प्रासमाविष्य तदाहृदाय
समुज्वलन्त महसाससज्ज ।
स पालिपुत्रोत्तमि यत्कथय
पमूत्र भग्ना म्यपतथ भूमो ॥ ८८ ॥

उत्तम उस पमकट हुए भातक्य गुमाकर कथ्य उस
भद्रवर दे माय । पालिपुत्र भद्रवना पथ-मल पत्रक सम्पन्न
कथर वा । नयन्तकम नात्य उतार रक्यकर दूट गया और
स्मीनार च पहा ॥ ८८ ॥

म प्रासमात्ताक्य तदा विभन्त
सुपण्टसोरगभोगकथयम् ।
तन् समुद्यम्य स पालिपुत्र

स्तुगमग्याभिप्रधान मूर्धि ॥ ८९ ॥
उत भात्य गददक दाय गगित विम ग्य हाक
एपीसी भाति दूक-दूक हाकर पहा दग कानिपुत्र भद्रवने
इपीसी ऊँची करक नयन्तकक फडक मन्तकर यह जलम
कथय माय ॥ ८९ ॥

निमल्लयाद् स्फुटिताक्षिताग
निष्पन्त्याश्चिषाऽप्यतसनिष्पातः ।
स तस्य यात्री निरपात भूमौ
तत्प्रहारण विदीचामूषा ॥ ९० ॥

उत प्रहारन पद्य मिर का गय पर मोचक्य रीम
गरी मी वृट गय भर जम ११ निरहा भाव । यह
रसि-कर मय-दीनि हाकर कृषिक निर पहा ॥ ॥

नगन्तकः प्रापन्त उगाम
तत्र नुवग पतिव गर्माक्य ।
स मूर्धिसुद्यम्य महाप्रनाश
उत्थन नीरि मुधि पालिपुत्रम् ॥ ९१ ॥

यद्यथा १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

मयाहरो मुधि विदीचामूषा
सुस्नाप तीम रुधिर भूदोष्णम् ।
मुर्धा विजज्याल मुमोह वापि
सर्पा समासाद्य विचिक्षिय च ॥ ९२ ॥

मुकरी मारण भद्रवक निर दूट गया । उक्त कर्णपूर्वक
गर्भ-गर्भ रकडी पाय परत लयी । उतक माथने रही कज्ज
दुर । मे मूर्च्छित हा मय और याही देरने बय हाय दुभ्र तप
उत पथकी शक्ति रंगकर भभयपदिनि हा उट ॥ २ ॥

अथाहरो मृत्युसमाप्तवग
सपाय मुधि गिरिट्ठकथयम् ।
निपातयामास तदा महारामा
नयन्तकस्योरसि पामिपुत्रम् ॥ ९३ ॥

किर भद्रवने पत्र-निरारक समन भन्व मुषा कान्य,
क्षिना यग मृत्युक सम्पन्न या । किर उन महारामा पालकुमार
ने उद्यम नयन्तकरी छापीमे प्रार किन्वा ॥ ३ ॥

स मुधिनिर्भेषनिमप्ररशा
ज्यात्य पमन्दाणित्रदिग्धगायः ।
नयन्तक्य भूमितल पयात
पयावना पञ्चनिपातभग्ना ॥ ९४ ॥

मुकक भागतम नयन्तकम हृदय विगीच हा गय ।
यह मुनेम भागमे तात्य-थे उगवने मय । तबक कार भद्र
लहृट्टदान हा मय और यह पत्रक मार दूण प तथी भादि
कृषीर निर पहा ॥ १ ॥

तदात्तस्थि विद्वान्तमाना
पनीकमा धेय महाप्रवाद् ।
पन्थ तस्मिन् निहतऽपयसि
नयन्तक पालिमुत्रन कथय ॥ ९५ ॥

पालिमुत्रारक मय मुक्यमतेने उ मय पाकरी नयन्तक
मार कनार उत समन आधममे इन्द्रभन और नूमाकर
कथयने यह दाय हांनार १ ॥ ॥

अथाहरो गनमनजहारण
सुमुपक त एत यन्दि निमम् ।
शिनित्तिय वाऽप्यत्र भीमकमा
पुनथ मुन् स पन्थ हागः ३ ९६ ॥

म १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० ११ १२ १३ १४ १५ १६ १७ १८ १९ २० २१ २२ २३ २४ २५ २६ २७ २८ २९ ३० ३१ ३२ ३३ ३४ ३५ ३६ ३७ ३८ ३९ ४० ४१ ४२ ४३ ४४ ४५ ४६ ४७ ४८ ४९ ५० ५१ ५२ ५३ ५४ ५५ ५६ ५७ ५८ ५९ ६० ६१ ६२ ६३ ६४ ६५ ६६ ६७ ६८ ६९ ७० ७१ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ७९ ८० ८१ ८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ८७ ८८ ८९ ९० ९१ ९२ ९३ ९४ ९५ ९६ ९७ ९८ ९९ १००

सप्ततितम सर्ग

हनुमान्जीके द्वारा देवान्तक और त्रिशिराका, नीलके द्वारा महोदरका तथा शूराभके द्वारा महापार्श्वका वध

नरान्तक हत इन्द्रा सुकुमुनीश्वर्यभाग ।

देवान्तकस्त्रिभूर्धा च पौलस्त्यश्च महाधरा ॥ १ ॥

नरान्तकने मार गया देव देवान्तक, पुत्रस्यकुञ्जवन त्रिधिय और महोदर—यं श्रेष्ठ राक्षस हाहाकर करने भ्यो ॥ १ ॥

शूराका मेघसकारां धारणेन्द्र महाधरा ।

वालिपुत्र महावीर्यमभियुद्राव वेगवान् ॥ २ ॥

महोदरने मेघक धमन गम्पकर बैठकर महापराक्रमी अह्वरके ऊपर बड़े वेगसे पाया किया ॥ २ ॥

भाद्रकपसनसत्प्रस्तदा देवान्तको बन्धी ।

श्रावाय परिघं घोरमङ्गय समभिद्रवत् ॥ ३ ॥

श्रावके मारे जनेसे कंठ हूए कवान् देवान्तकने म्यानक परिघ हावने केकर अह्वरपर आक्रमण किया ॥ ३ ॥

रथमावित्यसक्या युक्त परमवाजिभिः ।

आस्थाय त्रिशिरा वीरो वालिपुत्रमघ्याभ्यगात् ॥ ४ ॥

इस प्रकार वीर त्रिधिय उचम भेङ्गसे जुटे हुए श्रावस्य लेकनी रथपर बैठकर बाणिकुमारका खम्पा करनेके लिये आस ॥ ४ ॥

स त्रिभिर्वैश्वर्यैर्जा राक्षसेन्द्रैरभितुता ।

बृक्षमुत्पाटयामस महाविटपमङ्गवा ॥ ५ ॥

देवान्तकश्च त वीरविशेष सहसाङ्गवा ।

महाधृष्टं महाराज दाका वीतामिवाशान्तिम् ॥ ६ ॥

देवान्तकोका दई दखन करनेवाले उन तीनों निष्ठापर प्रियोंक आक्रमण करनेपर वीर अह्वरने निष्ठाक धासाभासे युक्त एक बृक्षमे उभाइ किया और उसे इन्द्र प्रज्ज्वलितवक्रक प्रहार करके है उठी प्रकार उन बाणिकुमारने बड़ी-बड़ी धासाभासे युक्त उस महान् बृक्षमे खड़ा देवान्तकर दे माय ॥ ५-६ ॥

त्रिशिरास्त प्रविच्छेत्त शरीराशीनिपापमैः ।

स वृक्ष कृत्तमाद्येभ्य उत्तरपात तदाङ्गवा ॥ ७ ॥

स वधय तदा वृक्षाभ्यात्मभ्य कपिकुङ्करा ।

तान् प्रविच्छेत्त सकुञ्जलितिशिरा निधिमैः शरीरैः ॥ ८ ॥

परत त्रिधियने विपचर शरीरक धमन मर्यकर पाया मार कर उस बृक्षक तन्दे-तुङ्कइ कर दिव । बृक्षमे लजित हुआ देव कपिकुङ्कर अन्त तत्काक आश्रयमे उछले और त्रिशिरा पर बूझे तथा शिराभौती बना करने लगे किन्तु कपल भरे ए त्रिधियने पने पण्डोदाए उनको भी काट गिया ॥ ७-८ ॥

परिधामेण तान् वृक्षान् वभञ्ज स महोदर ।

त्रिशिराभ्याङ्गत् वीरमभियुद्राव सायकैः ॥ ९ ॥

महोदरने अपने परिधके अग्रभागसे उन बूझके ले खेइ बाबा । तत्पण्डत् खपण्डकी बर्षा करते हुए त्रिधियने वीर अह्वरपर पाया किया ॥ ९ ॥

गजेन समभितुस्य वालिपुत्रं महोदर ।

अघानारसि सकुन्दस्तोमरैवजसंनिभैः ॥ १० ॥

साथ ही कुपित हुए महोदरने हाथीके द्वारा अक्रम करक बाणिकुमारकी छातीमे कन्नतुस्य तोमरैक प्रहर किया ॥ १० ॥

देवान्तकश्च सकुन्दः परिधेण तदाङ्गवम् ।

उपगम्याभिवृत्त्याशु व्यपचक्राम वेगवान् ॥ ११ ॥

इसी प्रकार देवान्तक भी अह्वरके निकट आ गन्त कपपूर्वक परिधक द्वारा उन्हे घेठ पहुँचाकर द्रुत वेगसे बरसे पूर हट गया ॥ ११ ॥

स त्रिभिर्वैश्वर्यैर्जा राक्षसेन्द्रैरुद्युगपत् समभितुता ।

न विध्वज्ये महातेजा वालिपुत्रः प्रत्यापवान् ॥ १२ ॥

उन तीनों प्रमुख निष्ठाकरने एक साथ ही बाण किन पा तो भी महोदरकी और प्रतापी बाणिकुमार अह्वरके मनमे तनिक भी भया नहीं हुई ॥ १२ ॥

स वगवान् महावग कृत्वा परमदुर्जया ।

तलेन समभितुस्य अघानास्य महागजम् ॥ १३ ॥

वे अत्यन्त दुर्जन और बड़े वेगवाली वे । उन्हेन मन्त वेग प्रकट करक महोदरके महान् गम्पकर आक्रमण किन और उसके म्हाकपर बरसे पण्ड माय ॥ १३ ॥

तस्य तेन प्रहाङ्ग नागराजस्य सयुगे ।

पततुर्नयमे तस्य विन्मारा स कुङ्कर ॥ १४ ॥

मुद्रस्यभमे उनके उस प्रहाङ्गे गम्पककी दोनों शरीर

निष्ठाकर दृष्टीपर गिर गयी और वह तत्काक मर गया ॥ १४ ॥

विपार्णं चास्य निष्पृष्य वालिपुत्रो महाबला ।

देवान्तकमभितुस्य ताडयामास सयुगे ॥ १५ ॥

किन्तु महाश्री बाणिकुमारने उस हाथीका एक शरीर उलाइ किया और मुद्रस्यभमे दोहकर उठीक द्वारा देवान्तक पर घेठ बी ॥ १५ ॥

स विह्वजस्तु तजसी पाताङ्गत् इय हुमा ।

स्यभारससयुगे च सुभाष उधिर महत् ॥ १६ ॥

तेनन्वी देवान्क उष प्रहारेते म्यनुस हो गया और
वायुके विभयें हुए वृषभ्री मौलि कौपने क्या ॥ उनके शरीरते
महादरके समान रगस्यध्व रक्तका महान् प्रवाह वह च्छा ॥

अथाभ्यस्य महातज्जा कृष्णप्राग् देवान्तको यक्षी ।
अग्निभ्य परिध वेगादाज्ज्वलन तदाह्वयम् ॥ १७ ॥

तथाभात् महातेजस्वी कृष्णान् देवान्तको वही कठिनाईसे
अग्नेको ह्यमाह्वर परिध ठाया और उस वेगपूर्वक पुमाकर
अह्वयन वे माप ॥ १७ ॥

परिधभिहतस्मापि वानरेन्द्रमजस्तदा ।
अनुम्या पतितो भूमौ पुनरेवात्पपात ह ॥ १८ ॥

उष परिधकी चोट साकर वानरयस्कुमार अह्वरने भूमि
पर घुटने टेक दिये । फिर तुरत ही उठकर व ऊपरकी ओर
उछले ॥ १८ ॥

तमुत्पठन्त सिधिरास्त्रिभिर्बाणैरजिह्वानैः ।
पोरैर्हरिपथः पुत्र स्रष्टेऽभिजधान ह ॥ १९ ॥

उछलेते समय त्रिधियने तीन धीये जानेवाले मयकर
बाणोंवाय वानरयस्कुमारके अग्रमें गहरी चोट पहुँचायी ॥

ततोऽह्वय परिश्रित सिभिर्नैश्वतपुङ्गवैः ।
हनुमानय विहाय नीलस्त्रापि प्रतस्पतुः ॥ २० ॥

तदनन्तर अह्वरके तीन प्रमुख निशाचरोंसे फिर हुआ
पल हनुमान् और नील भी उनकी छायाके छिपे अग्रसर
हुए ॥ २ ॥

तद्यजिह्वेय दौडाप्र नीलस्त्रिशिरस तदा ।
तद् रावणसुतो धीमान् विमेद् निशितैः शरैः ॥ २१ ॥

उष समय नीलने त्रिधियपर एक फर्तशिरस चट्टया
किये उस बुद्धिमान् यन्त्रपुत्रने छिपे बाण मारकर उते छेद
छेद डाल्य ॥ २१ ॥

तद्वाणशतनिर्भिन्न विशारितस्मिस्तलम् ।
सपिस्तुजिह्वं सज्वाल निपपत्त गिर शिरः ॥ २२ ॥

उसके टेकड़ों फाँसे किरौरी होकर उसमें एक-एक
शिक्र बिसर गयी और वह फर्तशिरस आगधी चिनारियों
तथा न्यायके खय पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ २२ ॥

स पित्रम्भितमालोक्य हयाद् देवान्तको यक्षी ।
परिधर्षभिवुद्राय मादृतामजमाह्वय ॥ २३ ॥

अग्ने भाईका पयक्रम बदला देत बलवान् देवान्तको
बड़ा ही हुआ और उसने परिध मरर पुत्रस्यअग्ने हनुमान्की-
से थापा दिया ॥ २३ ॥

तमापतन्तमुत्स्य हनुमान् कपित्पुङ्गरा ।
अज्रघान तदा मूर्ध्नि यजकल्पन मुधिय ॥ २४ ॥

इस आन हय पनेहुँकर हनुमान्कीने उधकर मन्त
बत्र ठीरों मुकस उध करिपर माप ॥ २४ ॥

शिरसि प्राहर्द् वीरस्वदा वायुसुतो यक्षी ।
मावेनाकम्पयन्वैव राक्षसान् स महाकपि ॥ २५ ॥

कम्पान् वायुकुमार म्हाकपि हनुमान्कीने उष समय
देवान्तकोके मत्तकर प्रार किया और अपनी भीरुन गर्दनासे
उधरोंको कम्पित कर दिया ॥ २५ ॥

स मुधिनियिप्रयिभिन्नमूषा
निवान्त्वन्त्यासिद्विक्रियिजिह्वः ।

देवान्तको राक्षसराजसुनु
गंतासुदम्यो सहसा पपात ॥ २६ ॥

उसके मुधि-महासे देवान्तकोके मत्तक पत्र गया और
सि उठा । दौत, मौलें और लयी जीम बाहर निकल अग्नी
तथा वह राक्षसराजकुमार प्रायःअप्य होकर खूब पृथ्वीपर
गिर पड़ा ॥ २६ ॥

तस्मिन् हते राक्षसयोधमुख्ये
महावले सयति देयरात्री ।

कृष्णस्त्रिशीर्षा निशित्वात्सुम
वधप नीखोरसि वाणययम् ॥ २७ ॥

उध-मोहाभ्रमें प्रधान महाकवी देवतोही देवान्तकोके
मुद्रमें मारे जनेपर त्रिधियको बड़ा म्भप हुआ और उसने
नीलकी छावीपर पने बाणोंकी मयंकर बाणें मारम कर
ही ॥ २७ ॥

महोत्रस्तु सक्त्याः कुञ्जर पथतोपमम् ।
मूयः समधिरुच्छानु मन्त्र रस्मियानिष ॥ २८ ॥

तदनन्तर अत्यन्त रूपसे भय हुआ महादर पुनः शीघ्र
ही एक पत्ताकर हाथीपर उधार हुआ मानो वृषदेव मन्द्य
चकर आरुद् हुए हो ॥ २८ ॥

ततो बाणमय पर्यं भीलस्यपधंपातयत् ।
गिरौ पर्यं तद्विधमकापावामिष तोपयः ॥ २९ ॥

हाथीपर पदकर उसने नीलक ऊपर बाणोंकी विक्रत बरा
की मानो इन्द्रपुत्र एवं त्रिपुण्ड्रकसे मुक्त मय किये
परंतपर खड़ी बरा कर रहा हो ॥ २९ ॥

तदा शरीरपरभिवृष्यमाणा
विभिधगायाः कपित्सेम्यपातः ।

नीला पभूवाय विधुरगात्रा
विधमितस्तन महापलन ॥ ३० ॥

पान-कुहोंकी निकर बरा हानम वानरमेयगति नीलक
खरे अत्र धन-विध हा गय । उनका गीर-मिधिय हा गय ।
इस प्रकार मत्तपथी महापन उई मूर्ध्नि करक उनक क-
पिक्रममें मुच्छित कर दिया ॥ ३ ॥

ततस्तु नीला प्रस्मिन्धनयः
शक समुत्पद्य सगृह्ययद्यत् ।

ततः समुत्पस्य महोप्रवेगो

महाव्र तेम जपान मुष्टि ॥ ३१ ॥

तत्रभक्त होशमें मानेपर नीचने हृष-कम्पुहोते मुक्त एक
दोष-शिक्षरको उलाह किया । उनका वेग बड़ा भयंकर था ।
उन्होंने उलझकर उस वृषको महाव्रके मस्तकपर दे मारा ॥ ३१ ॥

ततः स वैलाभिनिपातभाज्ये

महोव्रस्तेन महाश्रियेन ।

व्यामोहितो मूमितके गतासुः

पपात फज्जाभिहतो पथाद्रिः ॥ ३२ ॥

उस परव्रतशिक्षरके अपराधसे महोव्र उस महान् गम्बरक-
के खप ही चूर-चूर हो गया और मूर्च्छित एवं प्राणहृत्य हो
पथके मारे हुए पर्वतकी भोंसि वृषीपर गिर पड़ा ॥ ३२ ॥

पितृष्य मिहत् बह्य विशिराव्यापमात्स्य ।

हनुमन्त च संकुब्धो विभ्याप मिशितौ शरैः ॥ ३३ ॥

पितृके माईका माप गया वेला विशिराके श्रेयकी धीमा
न थी । उधने वनुप हापमें से किया और हनुमान्-कीसे देने
शरोंसे बीषना मारम किया ॥ ३३ ॥

स वायुसनुः कुपितश्चिसेप दिस्सर गिरैः ।

विशिरावसाधुरैस्तीक्ष्णैर्विनेज् वहुधा बन्धि ॥ ३४ ॥

स पवनकुमारने कुपित होकर उस एकलके ऊपर
पर्वतका शिक्षर बज्रया परद क्यवान् विशिरने अपने तीसे
घमफेंसे उठके कई टुकड़े कर डाले ॥ ३४ ॥

तद् स्पर्श शिक्षर बह्य हुमवर्षे तथा कपिः ।

विचसज्जं रणे तस्मिन् रावणस्य सुतं प्रति ॥ ३५ ॥

उस पर्वतशिक्षरके प्रहारसे स्पर्श हुआ इस कपिर
हनुमान्ने उस रणभूमिमें रावणपुत्र विशिरके उपर हथौड़ी
बारां भारम की ॥ ३५ ॥

तमापत्तमाकरो हनुमवर्षे प्रतापवान् ।

विशिरा मिशितैर्पापैश्चिच्छेत् च कन्धत् स ॥ ३६ ॥

किंतु प्रवर्षी विशिरने आकाशमें होनेवासी वृषोंकी उस
दृष्टिके अपने देने बगसे छिप-भिन्न कर दिया और बड़े
बड़से गर्ना की ॥ ३६ ॥

हनुमास्तु समुत्पस्य ह्य विशिरसस्तदा ।

विद्वदार स्तैः कुब्धो मागेत्त्रं सुगराक्षिभ ॥ ३७ ॥

स हनुमान्की क्रूरकर विशिरके पास च पहुँचे और
पैते कुपित सिंह गम्बरको अपने पंजरे कीर डालना है
उसी प्रकार शंभे मरे हुए उन पवनकुमारने विशिरके पंजे
को अपने नगोंसे निरीष कर डाला ॥ ३७ ॥

भय नाकि समासाद्य वनराशिमियात्तका ।

विश्रपाश्विन्पुयाय विशिरा रावणारमजः ॥ ३८ ॥

वह वेला रावणकुमार विशिरने शक्ति हाथमें ली मने
यमरकने कल्पशिक्षे खप से किया हो। वह शक्ति केर
उधने पवनकुमार हनुमान्पर चकनी ॥ ३८ ॥

विषः क्षिप्तमिषोदकां ता शक्तिं क्षिप्तामसङ्कल्पम् ।

गृहीत्वा हरिदासुंक्षे बभञ्ज च नलत् ॥ ३९ ॥

जैसे आकाशसे उदकापात हुआ हो उसी प्रकार वह
शक्ति; किशकी गति कभी कुण्ठित नहीं होती थी, चकनी परद
वानरभेद हनुमान्कीने उधे अपने हाथमें खानेसे पड़े ही
हाथसे फड़ किया और तोड़ डाला, छोड़नेके कर उन्होंने
भयंकर गर्ना की ॥ ३९ ॥

तां बह्य धोरसंक्रशां शक्तिं भग्ना हनुमत् ॥

प्रहृष्टा वानरराज्यं विनेतुञ्जित्वा पथ ॥ ४० ॥

हनुमान्कीने वह मयफक शक्ति तोड़ दी; वह वेला वान-
रान् भक्त्य हर्षसे उदकस्थित हो मेवोंके समान गम्भीर गर्ना
करने लगे ॥ ४० ॥

ततः लह्य समुद्यम्य विशिरा एतस्तोचमा ।

निष्कान तथा बह्य पानरेद्रस्य बसति ॥ ४१ ॥

तब एकलशिरामेवि विशिरने तन्मार उठायी और क्षी-
भेज हनुमान्कीकी कतीक उधकी मरपूर थोडे की ॥ ४१ ॥

बह्यभ्यायभिहत्वे हनुमान् माकतमजः ।

अजपान भिमुर्धन तखेनोरसि धीर्यवान् ॥ ४२ ॥

तन्मारकी चोटसे पासक हो परकमी पवनकुमार हनुमान्
ने विशिरकी कट्टीमें एक उनाच बड़ दिना ॥ ४२ ॥

स तन्माभिहतस्तेन एतस्तद्यस्युधो भुवि ।

निष्पात महातजाशिशिरास्त्यक्तचेतनः ॥ ४३ ॥

उनका सपक काले ही महातेकसी शिरिया मनी
पेजना को बैठा । उसके हाथसे हविषार सिकक गया और वह
स्वर्भ की वृषीपर गिर पड़ा ॥ ४३ ॥

स तस्य फततः खड्गं तमाश्लिष्य प्रहाकपिः ।

मनात् गिरिसकशस्त्रासपन् सर्वराक्षसान् ॥ ४४ ॥

गिरते समय उस राक्षकके खड्गको धीनकर परंजकर
महाकपि हनुमान्की उस राक्षकोंके मयभीत करते हुए कर
थोड़े गर्ना करने लगे ॥ ४४ ॥

अमुप्यमाणस्त पोषमुत्पपात निशाचर ।

उत्पस्य च हनुमन्त एतद्वयामास मुष्टिया ॥ ४५ ॥

उनकी बड़ गर्ना उस निष्कारके छरी नहीं गयी अतः
वह एकल उदककर सड़ा हो गया । उठत ही उधने हनुमान्
कीकी एक मुक्का माप ॥ ४५ ॥

तन मुष्टिमहारण एशुकोप महाकपिः ।

कुपितश्च निजम्राह क्रिस्टि राक्षसाभम् ॥ ४६ ॥

उद्यकं मुनिकं च तं साधु महाकविं हनुमान् श्रीं च ।
 प्रथं बुध्ना । कुम्भितं हनपरं उन्हाने उद्य राधुष्यं मुकुटमण्डितं
 मस्तकं पश्यन् किम्वा ॥ ४६ ॥

स तस्य शीर्षेण्यसिना शितेन
 किरीटजुष्टानि सकुण्डलानि ।

कुन्दः प्रधिच्छेत् सुतोऽनिलस्य
 रवण्डुः सुतस्येष शिरसि शक्रः ॥ ४७ ॥

किर तां मेसे पूर्वशब्दे इन्द्रं तद्यके पुत्र विद्यमानके
 तीर्णे मस्तकौषधं ब्रह्मते श्चट् शिपाया वा; उखी प्रकर कुम्भित
 हुप पवनपुत्र इत्यन्वले रवणपुत्र त्रिधिराक किरीट और
 कुन्दशब्देवैद्य तीर्णे मस्तकौषधं तीली उद्यवरासे श्चट् शक्य ॥

ताम्यापताम्याप्यगधनिमानि
 मन्दीतयैश्चानरुद्धाचनानि ।

पशुं शिरांसीन्द्ररिपोः पृथिप्यां
 ज्योतींषि मुक्तानि यथाकर्ममार्गात् ॥ ४८ ॥

उत्त मस्तकौषधी समी इन्द्रिणो विद्यात्त यी । उत्तमी ओलें
 प्रमथित्वा अग्नि के समान उरीत हा थी यी । उत्त इन्द्रोषी
 त्रिधिरके * तीर्णे किर उखी प्रकर उन्हीपर गिरि मेसे माक्या-
 से तारे टूटकर गिरत है ॥ ४८ ॥

ससिन् हतं देधरिपोः शिशीर्षे
 हनुमत्ता श्चट्पराक्रमेण ।

ननुः पूषणाः प्रचख्यन्त भूमि
 रक्षांस्यपोः सुनुषिरे समम्यात् ॥ ४९ ॥

वेद्योषी त्रिधिर च इन्द्रस्य पयस्वी इत्युमान् श्रीके
 शयते माय गया; तव सम्पत्त बानर इर्ष्याद क्रन्दे क्यो;
 पयसी कौपेने क्यी तथा राधुष्य चरौ विशाभौषी और मया
 चम् ॥ ४९ ॥

हत् त्रिशिरस इद्वा तथैव च महोदरम् ।
 हतीं प्रेक्ष्य बुधधर्षी देवान्तरान्तरकौ ॥ ५० ॥

शुक्राय परमामर्षी मत्तो राक्षसपुङ्गवा ।
 जग्राहात्किम्पत्तोऽद्यापि गन्तं सपायसीं सदा ॥ ५१ ॥

त्रिधिर तथा महोदरश्च मय गन्ता रेख और बुक्य भीर
 देखन्तक एव नरात्तक्य भी काक्य गद्यमे गया हुआ अन्
 अफन्त अमर्षीक्य राधुष्यशिरममि मत्त (महापार्ल) कुम्भित
 स उदा । उद्यने एक तंकिन्धी गया द्यपने थी ओ सम्युत्तः
 बहरी क्यी हुई थी ॥ ५०-५१ ॥

हेमपट्टपरिचिता मासदाण्डितफनिजम् ।
 विराजमाना विपुलां शत्रुनाण्डितपिताम् ॥ ५२ ॥

उद्यर श्येनस पत्र बहा हुआ था । मुदरुशब्दे पुरुच्छे-
 पर श्च शत्रुभाके रक और नक्षेमे लन क्यी थी । उद्यम
 आभर विद्यात्त था । बह कुन्दर श्येनस क्यन्त तथा शत्रुभौ-
 क रक्ये वृत्त हनेक्यी थी ॥ ५२ ॥

तजसा सम्प्रतीतामां रक्तमाह्वयिभूषिताम् ।
 परावतमहापद्मसाधभौमभयायहाम् ॥ ५३ ॥

उत्तम्य अग्रभागतेन्से प्रमथित इत्ये थ । वह श्यक
 रंगक पूज्येसे क्यन्ती गयी थी तथा परावत, पुण्डरीक और
 सन्भौम नामक दियाबोंके भी मयनीत करनेवाथी थी ॥ ५३ ॥

गदामादाय सङ्क्रुयो मत्तो राक्षसपुङ्गवा ।
 हवीन् समभितुद्राय युगात्तामिरिव ज्वलन् ॥ ५४ ॥

उद्य गदाक्यो हायमे लेकर श्चोवसे मय हुआ राक्ष-
 शिरममि मत्त (महापार्ल) प्रथमकाक्यी अग्नि के समान
 प्रमथित हो उदा और वानरौषी और वीहा ॥ ५४ ॥

अयर्षभः समुत्पत्य धानरो रावजानुजम् ।
 मत्तानीकमुपागम्य तस्यै तस्याप्रतो बली ॥ ५५ ॥

उद्य श्रुपम नामक बहमान् धनर उच्छकर राक्षके
 छोट मांरे मन्थनीक (महापार्ल) के पाठ आ पहुँचि और
 उद्यके धामने लड़े हो गये ॥ ५५ ॥

तं पुरस्तात् स्थित इद्वा बानर पर्यतोपमम् ।
 अजधानोरसि क्रुञ्चो गदया वज्रकल्पया ॥ ५६ ॥

पर्यतोपम बानरौषी श्रुपमके धामने खडा रेख कुम्भित
 हुप महापार्लने अपनी बज्रस्यस्य गद्यते उत्तमी छतीपर
 प्रहार किया ॥ ५६ ॥

स तथाभिहतस्तेन गदया वानरर्षभः ।
 भिष्यवशा समाधृतः सुष्वाष रुधिर बधु ॥ ५७ ॥

उद्यक्ये उद्य गदाक्ये आधाकते बानरशिरममि श्रुपमक्य
 बहस्यक छट-विषत हा गया । व कौपे उटे और अधिक
 माधामे लक्ष्मी बाव बहाने क्यो ॥ ५७ ॥

स सग्नान्य विरात् सङ्क्राम्यभो धानरोधरः ।
 क्रुञ्चो विस्फुरमापीष्टो महापार्षदमुद्वैसत ॥ ५८ ॥

बहुत देरके श्च ट्रेयामे आनेकर बानरराव श्रुपम
 कुम्भित हो उटे और महापार्लकी और देखने क्यो । उद्य
 क्यय उनके ओठ फटक रहे थे ॥ ५८ ॥

स वेगयान् योगयद्भ्युत्सेय
 तं राक्षस वानरयीरमुष्यः ।

सवर्ष्यं मुषिं सहसा जघन
 पाङ्कतरे शैबनिकशरुपम् ॥ ५९ ॥

बानरवीर्येमे प्रथम श्रुपमक्य रूप पर्यंतक समान अन्
 पड्य था । वे बड़ कगयाथी थे । उन्होंने बगुलक उद्य
 राधुष्यक पठ पहुँचकर मुष्क वानर और धरुष्य उद्यकी छतीपर
 प्रहार किया ॥ ५९ ॥

स कृचमूयः सहसय पूश
 सितौ पयात स्रवज्जाहित्यङ्गः ।

ता चास्य घोरा यमवृक्षकल्पान्

गवां प्रशुद्धाणु तथा नन्द्यत् ॥ ६० ॥

किर तो महापार्ष्व बड़से कटे हुए वृक्षकी मूर्ति उखल दृष्टीपर गिर पड़ा । उसके खरे अङ्ग रहते नहा उठे । इधर श्रुपम उस निशाचरकी यमवृक्षके छमान भयंकर गदाओ धीमि ही हाथमें छेकर धोर-धोरसे गन्ना करने लगे ॥ ६० ॥

मुहूर्तमासीत् स गतासुकस्याः

प्रत्यागतात्मा सवसा सुरारिः ।

उत्पत्य सम्पाद्यसम्पन्नवर्षम्

स्त, वारिराजामजमाजघान ॥ ६१ ॥

बेददोही महापार्ष्व वो पङ्क्ति मुर्देकी मूर्ति पड़ा रहा । किर होयमें श्रुनेपर यह उखल उठकर लड़ा हो गया । उसका रक्तचित्त शरीर संपन्नकके बादलोंके समान झक झिल्ली देता था । उसने वरुणपुत्र श्रुपमके गदरी चोट पहुँचायी ॥ ६१ ॥

स मूर्च्छितो भूमितले पपात

मुहूर्तमुत्पत्य पुनः ससंघः ।

तमेव तस्याग्निधराद्रिकल्पान्

गवां समाविध्य जघान सख्ये ॥ ६२ ॥

उस चोटसे श्रुपम मूर्च्छित होकर दृष्टीपर गिर पड़े । वो पङ्क्ति बाद होयमें आनेपर वे पुनः उठकर खाने भा गये और उन्होंने मुद्गकल्पमें महापार्ष्वकी उखी गदाओ, जो किश्री पर्वतराजकी बहानके छमान बन पड़ती थी घुमाकर उस निशाचरपर दे मारा ॥ ६२ ॥

सा तस्य रौद्रा समुपेत्य दूर्ध्वं

रौद्रस्य वेधाप्यरथिप्रनाजो ।

विभेदं वहाः क्षतञ्च च मूर्ति

सुखाय भावम्भ इवाद्रिराजः ॥ ६३ ॥

उसकी उस भयंकर गदाने देखा; यह और ब्राह्मणसे धनुष रखनेवाले उस रौद्र-राजके शरीरपर चोट करके उसके

हृत्पार्श्वे श्रीमद्भगवान्ने वाक्मीचीये आदिकल्पे बुद्धकल्पे स्तुतिवमाः सर्गाः ॥ ७ ॥

इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीयपराम्पत्ये मुद्गकल्पमें सत्तरवीं सर्ग पूरा हुआ ॥ ७० ॥

एकसप्ततितम सर्ग

अतिकायक भयंकर मुद्ग और लक्ष्मणक द्वारा उसका वध

सबल व्यथितं दृष्ट्वा तुमुसु लोमहयजम् ।
ध्मार्गुष्य निहतान् दृष्ट्वा शकनुत्पयपाक्रमन् ॥ १ ॥
सिद्धयौ चापि सद्यस्य समरं सन्निपासितौ ।
मुद्गन्मथ च मर्षं च भ्रातरी राक्षसात्तमी ॥ २ ॥
शुक्लय च महातजा प्रद्वग्धपरा युधि ।

वक्रान्धकसे विठीय कर दिया । किर ता जैसे पंजव हिमात्म गेर आदि पादुगोंसे मिक हुआ लक कल्ल है उसी प्रकार वह भी अधिक मात्रासे रक्त खाने लगा ॥१॥
अभिवुद्भव सेवेन गवां तस्य महत्प्रमणा ।
तां गृहीत्या गवां भीमामाविष्य च पुनः पुनः ॥ १४ ॥
मत्तान्त्रिकं महत्या स जघान रजमूर्धभिः ।

उस समय उस राक्षसे महामना श्रुपमके हाथसे मर्ष गवा छेनेके लिये उनपर पावा किया किन्तु श्रुपमने लभ्यात्क गदाओ हाथमें छेकर बारबार पुमम्य और बड़े बड़े महापार्ष्वपर आक्रमण किया । इस तरह उन महामनी कल-पीरने मुद्गके घुशानेपर उस निशाचरकी जीवन-जीव छोट कर दी थी ॥ १४३ ॥

स खया गव्या भयो विशीर्णवदानेक्षणा ॥ १५ ॥
निपातत तदा मत्तो वज्राहत इक्षवत्तः ।

अम्पी ही गदाकी चोट खाकर महापार्ष्वके रोंग टूट गये और ओंखें फूट गयीं । वह वक्रके मारे हुए पर्वत-सिखर की मूर्ति लक्षक घराशायी हो गया ॥ १५३ ॥

विशीर्णनयने भूमौ गतसखे गच्छयुधि ।
पतिते राक्षसे तस्मिन् विद्रुत गस्तर्षं बध्म् ॥ १६ ॥

किश्री ओंखें मार और वेत्ता विद्रुत हो गयीं की यह राक्ष महापार्ष्व जब गदायु होकर दृष्टीपर गिर पड़त व राक्षोंकी सेना लव और माग चयी ॥ १६ ॥

तस्मिन् हुते भ्रातरि राक्षजस्य
तन्नेश्वरतर्षं बध्मर्षवामम् ।

त्यक्त्वायुध केवलजीवितार्थं
बुद्भव भिद्यार्षवर्षसंनिपातवाम् ॥ १७ ॥

राक्षजके भाई महापार्ष्वका वध हो जानेपर राक्षसोंकी यह समुद्रक छमान विद्याछ सेना इयियार पंकर केक बन बनानेके लिये लव और मागने लगी; मान्ने महाश्वर फूटकर लव और बहने लगा हो ॥ १७ ॥

अतिकायोऽत्रिसकारो देवदानवदपहा ॥ १ ॥
अतिभयने देला; धनुर्भोंके रंगदे लड़े कर देनेवाली मरी भयंकर केव व्यथित हो उठी है इन्द्रके द्रव्य पराक्रमी मेरे माहर्षीभ-छंदा हो गया है तथा मेरे पाच्य—उत्तरी मरी मुद्गेमथ (महादर) और मथ (महापार्ष्व) भी लमगज

मे मार मिरये गव है त्व उठ महालक्ष्मी निशाचरको बड़ा
 म्ब बुध ॥ उसे ब्रह्मकीते बरतन प्राप्त हो बुध वा ।
 भक्तिभय पराँठके समान निद्राबन्धन तथा देवता और
 शनयोके दर्पका दखन करनेवाला वा ॥ १-१ ॥

स भास्करसहस्रस्य सभातमिव भास्वरम् ।
 रथमादद्याद्यन्तरिभिर्बुधैश्च वान्धवम् ॥ ४ ॥
 वह इन्द्रका शत्रु वा । उठने खलौं तूको छूहकी
 भाँति बैठीप्यमान ठेकनी रथपर भास्वर होकर वानपौर
 बना किया ॥ ४ ॥

स बिसर्गस्य तथा व्याप किरिटी मृदकुण्डला ।
 नाम सभ्रस्ययामास मन्त्रव्यं च महासन्तम् ॥ ५ ॥
 उसके मन्त्रकर किरिट और कर्णोंमें शुद्ध सुवर्णके बने
 हुए कुण्डल सम्पन्ना रहे थे । उठने भनुरकी टहलार करके
 मन्त्र नाम बुनवा और बड़े जोड़े गर्जना की ॥ ५ ॥

तेन सिंहप्रभादेन न्यप्रविभाबधेन च ।
 न्याशब्देन च भीमिन प्रासयामास वान्धवम् ॥ ६ ॥
 उस सिंहाप्रभादेन न्यप्रविभाबधेन च ।
 न्याशब्देन च भीमिन प्रासयामास वान्धवम् ॥ ६ ॥

उस सिंहाप्रभादेन न्यप्रविभाबधेन च ।
 न्याशब्देन च भीमिन प्रासयामास वान्धवम् ॥ ६ ॥
 उस सिंहाप्रभादेन न्यप्रविभाबधेन च ।
 न्याशब्देन च भीमिन प्रासयामास वान्धवम् ॥ ६ ॥

तं तस्य रूपमालोक्य यथा विष्णोस्त्रिविक्रमे ।
 भयात् पामन्योधास्ते विद्रवन्ति ततस्तदा ॥ ८ ॥
 विष्णुभयव्यतारके समान बड़े हुए मगान् विष्णुके
 विराट् स्मयी भाँति उठकर शरीर देखकर वे वानर-सैनिक
 मयके मरे हार-उपार मानने लगे ॥ ८ ॥

तेऽतिक्रम्य समासाद्य वान्धव मूढचेतसः ।
 शरप्यं शरप्यं जम्बुद्वीपमाश्रजमाह्वये ॥ ९ ॥
 भक्तिभय निम्न आते ही शनयोके चित्तपर मूढ़ का
 गता । है शुद्धसत्यमें सभ्रस्यके बड़े मारे परब्रह्मरत्न
 मगान् भीमनकी शरप्यमें गये ॥ ९ ॥

ततोऽतिशय्य काकुत्स्थो रथस्य पथतोपमम् ।
 श्वर्गं धमिलं दूरात् गर्जन्त कासमभयत् ॥ १० ॥
 रथपर बैठे हुए परताकर भक्तिभयना भीमनकरकीने
 की देख्य । वह हाथमें बनुर शिन्ने कुछ दूरपर प्रभयघरके
 वेपकी भाँति गर्जना कर रहा था ॥ १० ॥

स तद्बुद्ध महाशय्य रथयस्तु सुविश्रिता ।

वान्धवन् सान्त्वयित्वा च विनीयणमुवाच ह ॥ ११ ॥
 उस महाशय्य निशाचरको देखकर भीमनकरकीने भी
 बड़ा विनय हुआ । उन्होंने वानरोको धन्यना दकर
 विनीयणवे पूछ— ॥ ११ ॥

कोऽसी पर्यंतसक्योऽथ भनुप्यात् हरिखोचनः ।
 युक्ते ह्यसहस्रेण विशाले सन्धमे स्थितः ॥ १२ ॥
 निमील्य । हार जोड़ते जुते हुए विशाल रथपर बैठा
 हुआ वह पर्यायकर निशाचर सैन है । उसके हाथमें पतुप
 है और आँखें धिक्के समान टेबलनी दिखायी देती है ॥

य एव निशितैः शूद्रैः सुतौक्ष्णैः प्रासद्योमरैः ।
 अर्धेष्मन्निधूतो भाति भूतैरिष मदेभ्यर ॥ १३ ॥
 वह योंते धिरे हुए मूढब्रह्म महादेवकीके समान ठीले
 पूछ तथा मगन्त ठेकवारपाले टेबली प्रास्ये और उमरोंसे
 शिरकर मय्युत छाया पा रहा है ॥ १३ ॥

कास्त्रिह्यप्रकाशाभिर्यं प्रयोऽभिविराजते ।
 अद्युतो रथशक्तीभिर्यिद्युक्तिरिष तोयदा ॥ १४ ॥
 यचना ही मही, कसकी शिवाक समान प्रकाशित होने
 वाली रथशक्तिमेंसे निय हुआ यह वीर निशाचर किमु
 म्माब्रह्मसे आरुत मेभके समान प्रकाशित हो रहा है ॥ १४ ॥
 भनुरिष वास्य शङ्कालि हेमपुष्पानि सर्वादाः ।
 शोभयन्ति रथभ्रंशं शकृत्पापिस्वाभ्यरम् ॥ १५ ॥

किन्के पूर्यमाने छेने भड़े हुए हैं; देखे बनेकनक
 सुशक्ति पतुप उसके भेद रथकी लज ओरसे उठी तरह घोसा
 बदा रहे हैं; जैसे इन्द्रपतुप अकाशको सुशक्ति कर्य है ॥
 य एव रक्षाशार्पुस्ये रजमूर्ध्नि विराजयन् ।
 अय्येति रथिनां श्रेष्ठो रथेनाविस्पर्धसा ॥ १६ ॥

यह राक्षसेमें धिक्के समान पराकमी और रथमेंमें
 भेद वीर अपने मूढसत्य ठेकनी रथके ह्यर रथमूर्ध्नि रथना
 बड़ाइ हुआ मेरे समने आ रहा है ॥ १६ ॥
 अजडहृत्प्रतिष्ठेन राहुष्पाभिविराजते ।
 सूर्यरश्मिममैर्वाथिर्विदो दश विराजयन् ॥ १७ ॥

इसके अजडके शिरपर क्वाभमें राहुका चिह्न अक्षित
 है, जिससे रथकी गड़ी घोसा हो रही है । यह सूर्यकी शिरोंके
 समान चमकीले कण्ठसे रथों दिशाओंको मध्मिष्ठ कर
 रहा है ॥ १७ ॥

श्रिन्धत मेघनिहाय इमपुष्टमकटशरम् ।
 शतकन्तुधनुष्यस्य धनुष्पास्य विराजत ॥ १८ ॥
 शतके पतुपका पूर्यमान छेनेसे मदा हुआ तथा पुष्प
 आरिसे संबद्ध है । यह आदि, मय्य और मय्य तीन
 कण्ठमें छपर हुआ है । उठमी प्रास्यजाते पर्यापी गमनके

ध्वज इन्द्रवज्रनि प्रकट इत्थी है । इव निशचरका धनुष
इन्द्र धनुषक समान शोभ्य पात्य है ॥ १८ ॥

सप्यत्र सप्ततकथ्य सानुषयो महारथः ।
यनुसादिसमायुक्ता मयजानितनिःस्वनः ॥ १९ ॥

इवच निःश्रवण रथ पथक, पयरा और धनुषर (रथक
नीच बनो हुए आचारभूत शय) से युक्त, चार सप्यपिसे
निष्पन्न और मयरी गन्नाके समान परंपरक पेश
करनेवाले है ॥ १९ ॥

यिदानिद्विदा धाद्यो च तूष्णस्य रथमाश्रिताः ।
कामुष्यपि च भीमानि ज्याद्यश्चञ्चन्प्रियङ्गुस्य ॥ २० ॥

इतक रथर शीघ्र क्लृप्त दश भंकर धनुष और
आठ धनुषर एवं विद्वत्कर्त्री प्रत्यक्षार्थे इत्थी हुए हैं ॥ २० ॥

तां च शशीं च पादस्थो प्रवृत्तौ पादपदाभितौ ।
चमुदस्तासदाश्रिता व्यन्कस्तदवयवयो ॥ २१ ॥

उनो वगर्ज्य श पयश्वी कर्णारं शोभ्य पा र्थी है
श्रीमी मूठे चर हाय शी और तयार दश हाय शी है ॥ २१ ॥

रथकान्गुणा धीरो महापयतसनिभः ।
कथ्यः कालमहावक्रता मयस्य इव भास्करा ॥ २२ ॥

धानने कथ रंगी माला धारण द्वि महाद परावक
कल्पन आचरतामा पर धीरधीर निशचर कथ रंगम दिशापी
दश है । रथम गिगत मुत्र वाकक मुत्रक कल्पन भयकर
है तथा पर मतेपी भरमे भिन हुए पूर्ण क कल्पन प्रकथित
रथ है ॥ २२ ॥

धनुनाद्भुतजान्यां भुजान्यामर गाभत ।
शृङ्गाभ्यामिव मुद्गाभ्या दिमरान् पयगधमः ॥ २३ ॥

इतपी जहने श्वेदक वाहर एवं हुए हैं । इन
मुद्गकेक शय पर शिवानमा निगनर । इन शिवान
पुत्र शिविगनर दिम रक कल्पन : ना पाय है ॥ २३ ॥

पुण्ड्रान्यामुनाभ्या च भानि वरश्च तुर्नीपणम् ।
पुनःशम्भन्वत पतिपूर्वो निगाकरा ॥ २४ ॥

उप भन्ता नता मुनाभ्या उने हुएरता
भयता ता पुन व लक ल । क लेप शि । हुए र्नीपण
पुनःशम्भन्वत पतिपूर्वो निगाकरा है ॥ २४ ॥

वा २२ म मया तादा शम्भं वासगाणमम् ।
प द्वा यनगा मते भयता शिदुता शिवाः ॥ २५ ॥

तयता न । इव पर पयसा परपनर
। । शी क्लृप्त रथ इव । ता र्थी : कथे भर
॥ २५ ॥

प द्वा यनगा मते भयता शिदुता शिवाः ॥ २५ ॥
पयपय मय इम गावत शिमान ॥ २६ ॥

भूमि सशशी राजकुमार श्रीयमक इन प्रभर लूनेक
महातेज्यी किमीराने खुनाधर्षित इव प्रभर था—प्र२५

वृशमीयो महातया राजा पृथपपानुजः ।
भीमकला महात्मा हि रावणो राक्षसेश्वरः ॥ २६ ॥

तस्यासीद् धीयवान् पुत्रो रावणप्रतिभो बलः ।
शूद्रसेयी भुक्तिभरा सयाश्रयिपुत्रो वरः ॥ २८ ॥

मगान् । न जुनेरथ जय भातः महातेज्यो ना-
कथ, मयानक कर्न करनेपास तथा राधसेश्वर मयरी दम्भ
यक रथक है, उधक एक पदा पयश्वी पुत्र उतव बुध
न कथमे रावणक ही कल्पन है । पर हुए पुत्रपेयम सन
करनेवाला, वेद शास्त्रीय गद्य तथा शगूर्ण अश्वसेवाभे
भेय है ॥ २७-२८ ॥

मध्यगृष्ट मागगृष्टे खड्गे धनुषि कण्ठे ।
नेश् सान्त्य च दान ध नय मन्त्रे च सम्मतः ॥ २९ ॥

हापी-पदार्थों की छापी करने, क्लृप्तार जल्पने, धनुषक
बाणों का संपन्न करने, प्रायश्चा र्थोचने, स्वय वेपनः कम
और दानम प्रथ्या करने तथा न्यायपुक्त कथन एवं मन्त्र
दानमें पर कथक हाथ सम्मानित है ॥ २९ ॥

यस्य पाशु समाधित्य खड्गा भयति निभया ।
तनय धान्यमाश्रित्या भतिश्चपमिम विदुः ॥ ३० ॥

उर्ध्वक बाहुपठम आभय मन्त्र द्वापुरी तथा निरिन
रहती आधी है । यरी पर वीर निशचर है । यह हावरी
दूरी पत्नी धान्यमाश्रित्या पुत्र है । इव कम अधिघनक
नामक अन्त है ॥ ३० ॥

एगन्त्रराधिता मदा तपसा भाषित्वात्मना ।
भय्रापि धान्यपात्स्यति विपयश्च पराजिता ॥ ३१ ॥

धारयान विदुश्च मन्त्र इत्ययम इव अतिघनने र्थी-
धक्यक मलायथी भावक्यपी थी । इव नलाकेत भेक
विश्वर मन्त्र इव है और उनक हाथ शूद्रकन शगूर्ण
पत्नी शिवा है ॥ ३१ ॥

तुगातुदरवधत्त इजममम स्वयमुग ।
पयस्य कथय द्विष्य तया शिमान्भरा ॥ ३२ ॥

नाशन इव इवयथी और शगूर्ण न चर अनेक
परपन शिवा है । वी म कथन और शूद्रक कल्पन शक्य
एव म इतक व हुए है ॥ ३२ ॥

एतन गन्तव्य द्या दानमश्च पराजिता ।
वर्षिण्यनि च शान्ति यताभ्योनि निवृत्तिका ॥ ३३ ॥

इम इव पर गन्तव्य मन्त्रा चर मन्त्रा शिवा
इत्ये वी कथनी है चर मन्त्रा चर मन्त्रा है ।
पय शिमान्भरा पन वावगिदुष्य भीमप्रः
पयाः शान्तिगन्तव्य मुत्र मन्त्रादनाम ॥ ३३ ॥

पक्ष बुद्धिमान् राक्षसे अपने बाणोंद्वारा इन्द्रके वज्रको भी कुण्ठित कर दिया है तथा युद्धमें लड़के स्वामी बरगणके पापको भी छुड़ नहीं होने दिया है ॥ १४ ॥

एयोऽस्तिक्रयो वल्लघान् राक्षसामानमधर्यभः ।
स रावणसुतो भीमान् देवदानधर्षहा ॥ ३५ ॥

राक्षसोंमें भेद यह बुद्धिमान् रावणकुमार अतिक्रम पक्षा लक्ष्मण तथा देवताओं और दानवोंके वधको भी दखन करने-वाला है ॥ ३५ ॥

तद्वसिन् क्रियता यज्ञः क्षिप्रं पुदयपुङ्गव ।
पुरा धानरसैम्पानि क्षयं नयति सायकैः ॥ ३६ ॥

पुदयपुङ्गव ! अपने सायकोंसे यह सारी धान-सेनाको खाकर कर बाधे, इसके पहले ही भय इस राक्षसको परास्त करनेका शीम प्रयत्न कीजिये ॥ ३६ ॥

एयोऽस्तिक्रयो वल्लघान् प्रधिदय हरिवाहिनीम् ।
विस्फुरत्याम्नास धनुर्गनाद् स पुनः पुनः ॥ ३७ ॥

विभीषण और भगवान् भीरुगर्भमें इस प्रकार बातें हो ही रही थी कि लक्ष्मण अतिक्रम धानरसै सीनानें कुछ भाषा और धरंधार गर्भना करता हुआ अपने धनुस्वर टंकर देने लगा ॥ ३७ ॥

त भीमवपुष इष्य रघस्य रघिना धरम् ।
भभिपेतुर्महात्माना प्रधाना ये धनौकसा ॥ ३८ ॥

कुन्नुयो द्विविधो मैन्वो भीष्म शरभ पय ष ।
पापैर्गिरिर्भृष्टैश्च युगपत् समभिद्रवन् ॥ ३९ ॥

रघिगर्भमें भेद और भयंकर घटीराजके उस राक्षसको रघुवर बैठकर भाते देख कुमुद, द्विविध, मैन्व, भीष्म और शरभ अदि जो प्रधान-प्रधान महामन्त्री धानर से से इस तथा पर्यधिकार धारण किये एक साथ ही उठकर दूट पड़े ३८ ३९ तथा युष्ठाश्च शौचाश्च शरीः कनकमूर्षणीः ।
अतिक्रम्यो महावज्रास्त्रिभुजेऽपिर्षा धरः ॥ ४० ॥

परतु अन्नवेलाओंमें भेद महादेवकी अतिक्रमने अपने सुवर्णमूर्धित बाणसे धानरोंके चक्रमें हुए शूरी और पर्य-धिकारोंको धर गिराया ॥ ४ ॥

ताभ्येप सर्षान् स हरिष्पदो सर्षायसैर्वली ।
विष्याधाभिमुखान् सख्ये भीमकस्यो निशाधरः ॥ ४१ ॥

तब ही उस पक्षान् और भीमकस्य निशाचरने कुछ खड्गमें खमने भाय हुए उन खसल धनराजों कोके पाण्डे कीय शक्य ॥ ४१ ॥

तद्विधा बाणयण्य भिन्नगात्राः पराक्रियः ।
न दोरुस्त्रिकापय प्रतिहृत्तु महाहथे ॥ ४२ ॥
उठ ही बाणराशि भरत ही उनके घटीर धन-निष्ठ ही

गये । खने बार मन भी और कोई भी उस महाधमरने अतिक्रमण खमना करनेमें क्षम्य न हो सके ॥ ४२ ॥

तत् सैभ्य हरिषीराणा वासय्यमास राक्षसः ।
सुगयूयमिव क्रुद्धो हरिषीकनधर्षितः ॥ ४३ ॥

जैसे पनालीके कोष्ठसे मग हुमा कुण्ठित छि मृगोंके छुंभके मयमीत कर देता है, उसी प्रकार वह राक्षस धनर वीरोंको उस सेनाको राक्ष देने लगा ॥ ४३ ॥

स राक्षसेन्द्रो हरियूयमभ्ये
नायुष्यमान निजघ्नान कथित् ।
उत्सत्य राम स धनुर्कल्लोपी
सर्गावित् यान्कयमिव वभापे ॥ ४४ ॥

धानरोंके छुंभमें विचरते हुए राक्षसचक्र अतिक्रमने किसी भी ऐसे योद्धाको नहीं मार, जो उसके छप मुद्द न कर रहा हो । धनुष और तरछल धारण किये यह निशाचर उल्लसकर भीरुगर्भके पक्ष आ गया तथा बड़े गर्वसे इस प्रकार बोले— ४४ ॥

रथे स्थितोऽहं शरचापपाणि
मं प्राकृत कश्चन योषध्यामि ।
पस्यस्ति शक्तिर्ष्ववसाययुक्तो

ववातु मे शीघ्रमिहाद्य युद्धम् ॥ ४५ ॥
यौ धनुष और बाण लेकर रघुवर बैठा है । किसी क्षपाण प्राप्तिसे मुद्द करनेका मेरा विचार नहीं है । जिसके अंदर शक्ति हो, वहस और उतवाह हो, वह शीम यहाँ आकर मुझे युद्धक भक्कर दे ॥ ४५ ॥

तत् तस्य पाप्य सुवतो निशाम्य
कुक्षेप सीमित्रिरमिप्रहस्ता ।
अमृष्यमण्यश्च समुत्पपात्

जप्राह क्षाप स ततः सपितया ॥ ४६ ॥
उसके ये अर्धकरण धनर मुनकर धनुइन्ता मुमिषा-कुम्बर कदमको पक्षा क्षप हुआ । उसरी पार्श्वको खन न कर खमनेके कारण वे आगे बढ़ आये और किन्ति मुस्कराकर उन्होंने अपना धनुष उठाया ॥ ४६ ॥

क्रुद्धः सीमित्रिरुत्सत्य तूष्णाशक्तिव्य सायकम् ।
पुरस्तत्प्रतिक्रायस्य विषकार्यं महत्तनुः ॥ ४७ ॥

कुण्ठित हुए सपनल उल्लसकर आगे भाये और तरछले बाण लीचकर अतिक्रमके लामने भा भयने निशाच धनुषमें सींके लगे ॥ ४७ ॥

पूरयन् स महीं सयमाकाश सागर विद्राः ।
ज्याऽग्नी लक्षमण्योप्रज्यासयन् रजनीधरान् ॥ ४८ ॥

धनपद धनुषकी प्रत्यक्षात् यह लब्ध पक्षा भक्कर

या । वह धरी पृथ्वी, आकाश, सुन्दर तथा सम्पूर्ण विद्याभेदों में
गैब उठा और निधानोंको प्राप्त देने का ॥ ४८ ॥

सौमित्रोद्भापनिर्घोषं भुत्वा प्रतिभयं त्वा ।
विसिन्धिये महातेजा यत्प्रसेन्द्रात्मजो बली ॥ ४९ ॥

सुमित्राकुमारके धनुषकी वह मजलक टंकर सुनकर उस
समय महातेजस्वी कम्पान् रजस्यककुमार अतिक्रमको बड़ा
विसय हुआ ॥ ४९ ॥

तदातिक्रमयाः कुपितो बभूव हस्मन्ममुत्थितम् ।
अप्याप निरिगत वाणमिदं वचनमप्रधीत् ॥ ५० ॥

हस्मन्को अपना खम्ना करनेके लिये उठा देस अतिक्रम
ऐसे भर गया और टीका बाण हाथमें लेकर इस प्रकार
बोला— ॥ ५० ॥

बाह्यस्वमसि सौमित्रो विक्रमोऽप्यभिरुद्राणा ।
गच्छ किं काष्ठसकाशं मां बोधयितुमिच्छसि ॥ ५१ ॥

सुमित्राकुमार ! इस सभी बाहक हो । परक्रम करनेमें
दुर्गठ नहीं हो, अतः जैद बभूव । मैं तुम्हारे लिये क्रमके
खाम हैं । मुझसे यज्ञनेकी इच्छा क्यों करते हो ? ॥ ५१ ॥

नहि महाब्रह्मसुपर्णा वाप्यासां विम्वयन्पि ।
सोढुमुत्सहते वेगमन्तरिसमयो मही ॥ ५२ ॥

मेरे हाथसे बड़े हुए बाणोंका वेग गिरिजान हीमख्य भी
नहीं था सकता । पृथ्वी और व्याकरण भी उसे नहीं खान कर
करते ॥ ५२ ॥

सुखमसुखं क्वचामि विबोधयितुमिच्छसि ।
स्वस्य चाप नियतं त्वं प्राप्यन्न जहि मज्जतः ॥ ५३ ॥

दुःख सुखसे खीपी (घान्त) हुई प्रकल्पितको क्यों कान्ता
(प्रजापति करता) चाहते हो ? धनुषको यही ओढ़कर जैद
बभूव । मुझसे मित्रकर अपने प्रयोग परित्याग न करो ॥

अथवा त्वं प्रतिस्तम्भो न विवर्तितुमिच्छसि ।
विष्टं प्राप्यान् परित्यज्य गमिष्यसि यमहायम् ॥ ५४ ॥

अथवा इस बड़े भारकीरी हो, इसीलिये खेदना नहीं
चाहते । अच्छा, अबे यों । अभी अपने प्रयोगोंसे हाथ धोकर
यमकाकीरी यात्रा करने ॥ ५४ ॥

पश्य मे निशितान् वाजान् रिपुवर्षनिपूबानान् ।
ईश्वरपुषसकाशांस्तत्त्वज्ञानभूषानान् ॥ ५५ ॥

धनुषोंका वर्ष पूरा करनेका मरे इन खिले बाणोंको
को तने हुए सुवर्षके भूषित हैं देखो । वे मगधान् धंकरके
विद्युत्की खामला करते हैं ॥ ५५ ॥

एव तं सर्पसंक्षरानो वाप्याः पाससि धाणितम् ।
मृगापज इव क्षुद्रो नागराजस्य शोणितम् ।
इत्येयमुपत्या सङ्ख्यः शर धनुषि संवृष ॥ ५६ ॥

ऐसे कुपित हुआ कि गकरजन्म जून पीटा है जो
प्रकर यह खर्कके खान भूमिकर बाण तुम्हारे रक्तक बन
करेगा । ऐस करकर अतिक्रमने अकन्त कुपित हो अपने खर
पर बाणक संभान किना ॥ ५६ ॥

भुत्वातिक्रमस्य बन्धः सरोष
सर्गावर्तं सयसि राजपुत्राः ।
स संयुक्तोपातिवलो मन्सली
उवाच वाक्यं च ततो महार्यम् ॥ ५७ ॥

मुद्रत्यज्जो अतिक्रमके रोष और गति मेरे हुए त
बचनको सुनकर अकन्त बख्शाभी एवं मन्सली रजकुकर
हस्मन्को बड़ा क्षोभ हुआ । वे यह मन्सन् मसिसे मुद्र कन
बोले— ॥ ५७ ॥

न वाक्यमात्रेण भवान् प्रधात्रे
न कथनानात् सत्युद्धपा भकन्ति ।
मयि स्थित धन्विनि वाणपाजौ
निर्दुर्हायखात्मवत्तं तुरात्मन् ॥ ५८ ॥

पुरात्मन् ! केवल शरीर कानेसे व बड़ा नहीं हो खल ।
शिके बीग होंकनेसे कोई श्रेष्ठ पुरुष नहीं होते । मैं हाथमें धनु
और बाण लेकर तेरे खामने लड़ा हूँ । व अपना खर क
मुझे सिद्ध ॥ ५८ ॥

कर्मण्य स्वयमारमान न विकल्पितुमर्हसि ।
पौत्रेणैव तु यो युक्तः स तु शूर इति स्मृता ॥ ५९ ॥

परक्रमके हाथ अपनी शूरतापरिचय दे । बड़ी खिल
बचरना तेरे लिये उचित नहीं है । धर नहीं मान्य गन है
किधमें पुरुषार्थ हो ॥ ५९ ॥

सर्वायुषसमायुक्तो धन्वी त्वं रथमारुहितः ।
शरीरौ यदि वाप्यर्क्षीर्शौरस पराक्रमम् ॥ ६० ॥

मेरे पाव खर तरहके इयिपर मीमूह हैं । व पतुन केकर
रथम बैठा हुआ है अतः बाणों अथवा अन्य अस्त्र-शक्यके
हाथ परसे अमन्त परक्रम सिद्धा ॥ ६० ॥

उवाः शिरस्तं निशितैः पातयिष्याम्यहं शरीर ।
मास्ताः काष्ठसम्पत्तं वृस्तात् तास्तफळं यथा ॥ ६१ ॥

उसके बाह में अपने खिले बाणोंसे तेरा मसक उठी
तब कर निरकेंद्र, जैसे बाण काष्ठकानेसे परसे हुए खरके
फळको उसके वस्त (बीबी) से नीच निरा देती है ॥ ६१ ॥

अथ ते मामक्यं पाप्यास्तत्त्वज्ञानभूषणा ।
प्रसन्नित रुधिरगात्रात् वाणशन्त्यात्परोत्थितम् ॥ ६२ ॥

आब तने हुए सुवर्षके निरुक्ति मेरे बाण अपनी नैक
हाथ किये गने खिलेसे निकले हुए तेरे शरीरके रक्तक बन
करेगे ॥ ६२ ॥

बान्नाऽपमिति विषय न पायप्राप्तुमर्हसि ।
बान्ने या पत्रि या वृद्धो मृत्युं आर्षहि सपुगे ॥ ६३ ॥

‘तू मुझे बाळक बनकर मेरी अन्वेषणा न कर । मैं
बाळक होंकें अपना युद्ध, किन्तु मैं तू तू मुझे अन्वेषण ही
कमना से ॥ ६१ ॥

पालेन विष्णुमा लोकप्रथमः क्रान्ताभिविह्रमैः ।
छद्मणस्य यच्चः भ्रुत्वा हेतुमात् परमार्यवत् ॥ ६४ ॥
मतिक्रम्या प्रभुश्रेष्ठे वाप्य शोचममावहे ॥ ६४ ॥

व्यामनरूपधारी भक्तान् विष्णु दलनेमै बाळक ही ये
किन्तु अपने तीन ही पत्नी उन्हेने क्यूची त्रिधरत्री नाम की
थी । मरणाधी वह परम स्वयं और युधिष्ठिर यत्त मुनकर
अतिक्रम्ये श्रेष्ठे स्त्रीमा न रही । उन्हेने एक उत्तम वाप्य अपने
हाथमे सं लिया ॥ ६४ ॥

कतो विद्याधरत भूत्वा श्रेया शैत्या महार्यय ।
गुह्याकथ्य महात्मानस्तत् युद्ध प्रभुमागमन् ॥ ६५ ॥
उदनन्तर विद्याधरः मृत देवता दैत्य महर्षि तथा
महात्मना गुह्याकथ्य उक्त युद्धकं देवनेके लिये आये ॥ ६५ ॥
सर्वोऽतिक्रम्या कुपितश्चापमापोष्य सायकम् ।
छद्मणाय प्रविष्टोप ससिपथिव्य चाम्बरम् ॥ ६६ ॥

उक्त स्वयं मतिक्रम्यने कुपित हो भनुपर वह उत्तम वाप्य
बद्धमा और आभ्रदशकं स्मयना प्राप्त बनते हुए-से उसे सम्पन्न
पर चला दिया ॥ ६६ ॥

तस्मिन्पल्लव सिद्धित शरमाशीविधोपमम् ।
अर्धचन्द्रोप विच्छिन्नं छद्मणः परवीरहा ॥ ६७ ॥
किन्तु शत्रुदोषकं शरं कर्त्तेश्च स्वयं यत्त अर्ध
चन्द्राक्षर बाणकं दृश्य अस्मी अन्ध भासे हुए उक्त विषय
सर्वके युद्ध अन्ध एव तीक्ष्ण बाणको अट बाण ॥ ६७ ॥

त निहर्त्त शरं दृष्ट्वा कृत्तभोगमिवोराम् ।
मतिक्रम्यो मृशं हृन्म पञ्च बाणान् समारब्ध ॥ ६८ ॥
जैसे सर्वका पत्र कर अथ उन्हीं प्रकार उक्त बाणको
लखित हुम्ब देल अस्मत्त कुपित हुए अतिक्रम्यने पाँच
बाणोंम भनुपर रक्ता ॥ ६८ ॥

तामशरान् समप्रविष्टोप छद्मणाय निशाकरः ।
तानमातामिस्यैर्वापिषिच्छिन्नं भरतानुजा ॥ ६९ ॥

किन्तु उक्त निशाकरने सम्पन्न ही ये पाँचों वाप्य चम्ब
दिये । वे बाण उन्के धनीय अभी अने भी नहीं बचे थे कि
स्वयं यत्त तीक्ष्ण बाणको उन्के टुकड़े-टुकड़े कर डाले ॥ ६९ ॥

स ताम्बिष्ठवा शितैर्बाणैर्महामयाः परवीरहा ।
मायद् निदिशत यार्थं ज्वलन्तमिव सज्जता ॥ ७० ॥

शत्रुवीरणा शरं कर्त्तेश्च स्वयं यत्त अने पने
स्ययने उक्त कलाकं पल्लव कर्त्तेश्च पञ्चमात् एक तत्र बाण
हाथमे लिया अ अन्हेने तेन्ही प्रकलित-स्य ही रहा था ॥ ७० ॥

तमावाप धनुःश्रेष्ठं योजयामास छद्मणः ।
विचकुर्य च वेगेन विससर्ज च सायकम् ॥ ७१ ॥

उत्ते केकर छद्मणने अपने श्रेष्ठ भनुपर रक्ता उत्तरी
प्रत्यक्षाके सीवा और वह वेगसे यह सायक अतिक्रम्य
छेद दिया ॥ ७१ ॥

पूर्णापठविरुष्टेन शरेण मत्तपर्यणा ।
छलाटे राक्षसश्रेष्ठमाजघान स धीर्यवान् ॥ ७२ ॥

भनुपर पूर्णस्वसे सायक छेदने गये तथा छकी दुई
गोंडपासे उक्त बाणके द्वारा पराक्रमी छद्मणने राक्षसश्रेष्ठ
अतिक्रम्यके अक्षयमें गहरा आघात किया ॥ ७२ ॥

स लक्ष्मणे शरो मद्रस्तस्य भीमस्य रक्षसः ।
दृष्ट्वा शोणितेनासः पञ्चमेन्द्र इवाचले ॥ ७३ ॥

वह बाण उक्त म्यानक राक्षसके अक्षयमें पड़ गया और रक्तसे
मोंगकर फर्कते सट हुए किन्ही नागराजकं अमान निन्नाथी
रने अथ ॥ ७३ ॥

पक्षस्तः प्रथकम्येऽथ छद्मणेषुप्रपीडितः ।
रुद्रबाणदत्तं घोरं यथा त्रिपुरगोपुरम् ॥ ७४ ॥
शिरसायामास चाभ्यस्य विन्दुष्य च महावलः ।

स्वयं यत्त बाणसे अत्यन्त पीडित हो वह राक्षस कोंप
उठा । ठीक उन्ही तरह, जैसे मगान् रुद्रक शणैसे आहत
हो त्रिपुरका मयंकर गेपुर रिख उठा था । किन्तु योही ही
देरमें छद्मकर महाकवी अतिक्रम्य बाणी चिन्तामें पड़ गया
और कुछ सांच-निचरकर बोध— ॥ ७४ ॥

साधु बाणनिपातेन त्वाभमीयाऽस्ति म रिपु ॥ ७५ ॥
विधापेय किन्तुर्पासं चिन्तय च महाभुजौ ।
स रघोपस्थमास्याय रथेन प्रचचार ह ॥ ७६ ॥

पाशाघ । इस प्रकार अमोघ बाणम प्रयोग करनेके
कारण तुम मेरे शत्रुभीय शत्रु हो । मुँह कैम्बकर देख करनेके
पश्चात् अतिक्रम्य अपनी दर्नी विषाघ मुख्यश्रेष्ठे पात्रोंमें
करके रथके पिच्छमें अन्हेने बैठकर उक्त रथक द्वारा ही आगे
बढ़ा ॥ ७५-७६ ॥

एष धीन् पञ्च सतेति सायकान् राक्षसपभः ।
मायद् सद्यं चापि विचकुर्योऽससर्ज च ॥ ७७ ॥

उक्त राक्षसगिरमधि घीने अन्धः एक, तीन पाँच और
छत्त सायकोंको केकर उन्हीं भनुपर बद्धमा और वेगपूर्वक
सायक चम्ब दिया ॥ ७७ ॥

तं पाप्माः कालसक्यशा राक्षसेन्द्रधनुदधुताः ।
हमपुत्रा रविप्रथ्याभ्रकुर्वन्तिमियाम्बरम् ॥ ७८ ॥

उक्त राक्षसराजकं भनुगत दूरे हुए उन मुक्कभूयित
सर्वस्य केकरी तथा बाळक अमान मयंकर यार्थने आराध-
क प्रकथत पूर्ण-स्य कर दिया ॥ ७८ ॥

ततस्तत्र राक्षसोत्सृष्टाभ्यां राघवानुजः ।

भ्रमन्भ्रान्ताः प्रसिध्देषु निशितैव बुधिः शरैः ॥ ७९ ॥

परंतु रघुनाथजीके छोटे भाई भ्रमनने बिना किसी प्रकारके उठ निशाचरका रूपसे हुए उन बाणकुम्होंके तेज धारकाते बहुसंख्यक क्षयकोटय काट गिरया ॥ ७९ ॥

ताभ्यारान् युधि सम्पत्क्य निकृष्टान् रघवात्मजः ।

बुधोप शिवशेन्द्रारिर्जमाह निशितं शरम् ॥ ८० ॥

उन बाणोंके क्या हुआ देल इन्द्रशेरी राघवकुमारको नडा श्रेण हुआ और उसने एक हीका बाण हाथमें किया ॥

स सभाय महातेजास्त बाण्य सहस्रोत्सृजत् ।

तत्र सीमिभ्रिमायात्समाश्रयत् स्तनास्तरे ॥ ८१ ॥

उसे धनुषर रखकर उठ महातेजाली बीरने छल छोड़ दिया और उलकें दण्ड समने अते हुए सुमिभाकुमारकी छलीम भयाव किया ॥ ८१ ॥

भतिक्रायन् सीमिभ्रिस्ताडिता युधि वसति ।

सुध्राय दधिर तीर्मं मद् मत्त इव श्रियः ॥ ८२ ॥

भतिक्रमक उठ बाणकी चोट लाकर सुमिभाकुमारकी सुदस्यभमें अपने वक्षसके तीजगलिते रक्त बहाने लगे, मन्त्र का मतवाच हाथी मस्तकसे मदर्षी वनों कर रहा ॥ ८२ ॥

स लकार तदात्मान विशास्य सहसा विभुः ।

अमाह ध शर तीक्ष्णमश्रेणापि समाश्रये ॥ ८३ ॥

फिर सामर्थ्यवाली अभंगने छल अपनी छातीसे उठ बाणकी निशान दिया और एक तीखा क्षणक हाथमें लेकर उसे दिग्भाङ्गने संश्लिष्ट किया ॥ ८३ ॥

आग्नेयं तदाश्रेण योजयामास सायकम् ।

स जज्वाल तदा यापो धनुष्यस्य महारमतः ॥ ८४ ॥

उस समय अपने उस क्षणकमें उगड़ने आग्नेयाङ्गसे अभिमन्त्रित किया। अभिमन्त्रित होते ही महात्म्य अभंगने धनुषर रस्ता बुझ बर बाण लक्ष्म प्रज्वलित हो उठा ॥

भतिक्रयोऽदितिवसती रौद्रमस्तु समाश्रये ।

तत्र बाण्य मुजह्वारं हेमपुष्टमयाजयत् ॥ ८५ ॥

उपर अत्यन्त तंकसे भतिक्रमने भी एक सुवर्णमय पञ्चदश शिपर लकें छान भर्षकर बाण हाथमें किया और उस धनुषर रस्ता ॥ ८५ ॥

तद्वत् स्वसितं घोरं लक्ष्मण्य शरमाहितम् ।

भतिक्रयाय शिष्टाय कालद्वन्द्वमिवास्तकः ॥ ८६ ॥

इतनेहीमें समनने पिशाचकी पकिते छम्न उठ प्राचीन एवं भारी बाणमें अनितान्तर उपर कस्यया मना समतबने अपने बालरुद्धता प्रत्य किया ॥ ८६ ॥

आग्नेयाद्राभिसयुक्तं द्रुप पाण्य निपाचरः ।

उत्ससर्ज तदा बाण्य रौद्र सूर्याङ्गयोजितम् ॥ ८७ ॥

आग्नेयाङ्गसे अभिमन्त्रित हुए उठ बाणका अपनी मक अते देल निपाचर भतिक्रमने उलक ही अपने मस्त बाणको सूर्याङ्गसे अभिमन्त्रित करक लक्ष्य ॥ ८७ ॥

तापुभायम्बरे वाणाकन्योप्यमभिजगन्तुः ।

तेजसा सम्पत्प्रसाधौ कृदाविव भुजङ्गौ ॥ ८८ ॥

वाकन्योप्य विनिर्द्वेष पेततुः पृथिवील्ले ॥ ८९ ॥

उन दोनों क्षयकोंके अभंगगा तेजसे प्रज्वलित हो गये। आकाशमें पहुँचकर वे दोनों कुक्ति हुए दो लोंकी लीये आपसमें उलक गये और एक दूसरेको दण्ड करक रूपीम मिर पड़े ॥ ८८ ८९ ॥

निरसिद्धी भसकृती न भाजेते शरोत्तमौ ।

तापुभौ वीर्यमालौ स न भाजेते महीतले ॥ ९० ॥

वे दोनों ही बाण उरम कोटिके से और अपनी शक्तिसे प्रज्वलित हो रहे थे तथापि एक-दूसरेके तेजसे मस्त कर मरना-मरना तेज लो बैठे। इच्छिमे वृत्त्यर निष्पन्न होनेके कारण उनकी छोना नहीं हो रही थी ॥ ९ ॥

ततोऽतिक्रयाः सङ्क्रोशस्तप्राप्तैरीकमुत्सृजत् ।

उत्सृष्टेषु सीमिभ्रिस्तमश्रेण्य वीर्यवान् ॥ ९१ ॥

उरन्तर भतिक्रमने अत्यन्त कुक्ति हो लया देख्यते मन्त्रसे अभिमन्त्रित करक एक हीकक्ष बाण छडा फट परकमी कस्यपने उठ अन्तको पन्नाङ्गसे फट दिया ॥ ९१ ॥

पेयीक निहत द्रुप कुमारो राघवात्मजः ।

पाप्यन्वस्त्रेण सङ्क्रोशो योजयामास भायकम् ॥ ९२ ॥

ततस्तवर्कं शिष्टेषु सङ्गमणाय निशाचरः ।

पाप्यन्वेन तदश्रेण्य निशघान स लक्ष्मणः ॥ ९३ ॥

लौकिक बाणका नष्ट हुआ देल राघवपुत्र कुमार भतिक्रमके श्रेणकी लीमा न रही। उठ रखने एक क्षणको पाप्याङ्गसे अभिमन्त्रित किया और उसे अभंगको छल करके बल दिया परंतु अभंगने बाणप्याङ्गका उरम भी नष्ट कर दिया ॥ ९२ ९३ ॥

मद्यैव शरधारानिर्धाराभिरिय तोयतः ।

मध्यवर्षत सङ्क्रोशो लक्ष्मणो राघवात्मजम् ॥ ९४ ॥

उलभालू बैठे नेत्र अभंगी धार करछता है उठी परम अत्यन्त कुक्ति हुए कस्यपने राघवकुमार अतिप्रवर बाण-धारकी वनों भररम कर ही ॥ ४ ॥

वऽतिक्रयं समासाय कथय पञ्चमूर्तिः ।

भग्नप्राघट्यास सहसा पतुषाण्य महीतले ॥ ९५ ॥

अनिताने एक दिग्म कचव बाँध रस्ता या किनें हीरे बड़ हुए थे। अभंगक धार अतिरावक पहुँचकर

उसके कवचसे उफरते और नोक दूट जानेके कारण छत्र
पृथीपर गिर पड़ते थे ॥ १५ ॥

ताम्रोष्णमभिसम्प्रेक्ष्य लक्ष्मणाः परधीरहा ।
अभ्यवर्षत वायाना सहस्रेभ्य महायशाः ॥ १६ ॥

उन सार्धोष्णे अस्त्रच्छ दुःआ देव शत्रुधीरोष्ण संशत
करनेवाले महायशस्वी अस्त्रमणे पुनः छत्रसौ बर्णोष्ठी बर्णा श्री ॥

स धृष्यमाणो घाणौघैरुत्क्रियो महाबला ।
अवध्यकथवः सख्यं राक्षसो मैव विज्यये ॥ १७ ॥

महाबली भक्तिप्रयत्न कवच अमेघ या इच्छिमि मुञ्च
सख्यं वाप-धूम्रौष्ठी बर्णा होनेपर भी वह राक्षस व्यथित नहीं
होता था ॥ १७ ॥

शर आशीविषाक्षर छद्मण्याय ध्यपावुञ्जत् ।
स तेन विद्वाः सौमित्रिर्मर्मवेदो दारेण ह ॥ १८ ॥

उसने अस्त्रमणपर विषमर शक्ति समान मन्कर बाण
पकवाया । उस बाणसे मुमित्राकुमारके मर्मसख्यमें जोड़
पहुँची ॥ १८ ॥

मुहुर्तमात्र निःसङ्घो ह्यभयच्छत्रुव्ययनः ।
ततः सङ्घामुपलभ्य शत्रुभिः सायक्येत्तमैः ॥ १९ ॥
निःसङ्घान् हयान् सख्ये सारथिं च महाबला ।
अ्यस्योष्णमयन हृत्या शरवर्षैररिवमा ॥ २० ॥

अतः शत्रुओंको संघान् देनेवाले अस्त्रमण हो पड़ितक
अचेत-अवस्थामें पड़े रहे । फिर होवमें जानेपर उन महाबली
शत्रुमन वीरने शत्रुओंकी बर्णति शत्रुके रथकी पकवाये नष्ट
कर दिया और फल उचन शयकसे रथभूमिमें उसके घोड़ों
तथा शरथिकों भी यमकाय पहुँचा दिया ॥ १९ १ ॥

असम्प्रान्तः स सौमित्रिस्ताम्राणभिलक्षितान् ।
मुमोष्य छद्मणो धापान् यथार्थं तस्य रक्षसाः ॥ २० ॥
न शक्यत् क्व कर्तुं युधि तस्य मरोत्तमा ।

छत्रमभ्यात् सम्प्रमर्शित नरभेद मुमित्राकुमार अस्त्रमणे उस
उपलब्ध कवचके श्रिय बौध-भूसे हुए बहुतसे अस्त्रोष्ण बाण छोड़े
तथापि वे समग्र अस्त्रमें उस निष्ठावरक शरीरको वेध न कर ॥

अर्यैतन्भ्युपागम्य धायावाक्यमुपाव ह ॥ २० ॥
प्रह्लादपरो ह्येव अयप्यकथवापुत ।
द्राक्षेणास्त्रेण भिष्यन्तमर यप्यो हि नन्दया ।

अप्यथ एव ह्यम्ययामत्त्राणां कथयती यती ॥ २० ॥
तदनन्तर वायुदेवकने उनका फल आकर कहा—
‘मुमित्रानन्दन । इव राक्षस भद्रादौते यरवान् प्रह दृष्टा है । यह
अमेघ कवचसे उष्ण दृष्टा है । अतः इत्थं अस्त्रकने विधीर्ष कर
हालाः अन्वप्य यह नहीं मार्य जायेगा । यह कवचधारी
कवचान् निष्ठावर अन्य अस्त्रके श्रिय अन्वप्य है ॥ २० २ ॥

ततस्तु वायोर्षचन निशम्य
सौमित्रिरिन्द्रप्रतिमानधीर्यः ।

समावृषे वाणमयोप्रवेग
तद्गङ्गास्य सहसा नियुज्य ॥ २० ॥

अस्त्रमण इन्द्रक समान पराक्रमी था । उन्होंने वायुदेवता-
का उर्ध्वक वचन सुनकर एक मन्कर वेगवाले वाणका
छत्रा ब्रह्मास्त्रसे अभिमन्त्रित करके अनुपपन्न रक्षसा ॥ २ ॥

तस्मिन् यरास्त्रे तु नियुज्यमाने
सौमित्रिणा वाणवरे शिवाग्रे ।

विशम्य चन्द्रार्कमहाप्रहास्य
नभस्य तद्भास ररास चोर्षी ॥ २० ॥

मुमित्राकुमार अस्त्रमणके द्वारा उक्त चारबाण उक्त भेद
बाणमें ब्रह्मास्त्रकी संयोजना की जानेपर उक्त समय शत्रुओं
दिशापर्यन्त चन्द्रमा और सूर्य आदि बड़े-बड़े ग्रह तथा अन्तरिक्ष-
लोकके प्राणी परा उठे और भूतलकमें गहान् कोयलक मन्त्र
गया ॥ २ ॥

त प्रह्लाणोऽख्येण नियुज्य च्यप
शर सपुङ्गु यमवृत्कल्पम् ।

सौमित्रिरिन्द्रारिसुतस्य तस्य
ससर्ज वाथ युधि यत्रकल्पम् ॥ २० ॥

मुमित्राकुमारने अनुपपन्न रक्षक हुए उस दुन्दर पक्षवाले
बाणको कव ब्रह्मास्त्रसे अभिमन्त्रित किया तब वह यमवृत्के
छद्मन मन्कर और ब्रह्मके समान अमोघ हो गया । उन्होंने
मुद्रास्त्रकमें उक्त बाणको इन्द्रादी उष्णके बेटे अतिक्रम्यत्
अस्त्र करके पकवा दिया ॥ २ ॥

त छद्मणोत्सृष्टयिषुज्ययण
समापतन्त अ्यसतोप्रपगम् ।

सुपणयजोत्तमचिप्रपुङ्गुं
तदात्तिक्रिया समरे इवरा ॥ २० ॥

अस्त्रमणके ज्ञाप्य हुए उक्त बाणका वेग बहुत बढ़ा हुआ
था । उसके पंक्त गरुड़के छद्मन था और उनमें हीरे बड़े
हुए थे । इच्छिमं उनकी विचित्र शोभा होती थी । अतिक्रम्यने
अमर अस्त्रमें उक्त बाणको उक्त छद्मन वायुके छद्मन मन्कर
देगते अग्नी अन्त भूते देता ॥ २ ॥

त प्रह्लाणः सहसात्तिक्रियो
अघान् पाथर्षिर्दितैरनकैः ।

स सायकस्तस्य सुपणयघण
स्तथाविधानं जगाम पादयम् ॥ २० ॥

उन देवास्त्र अतिक्रमने शरछ उष्णके ऊपर बहुत स
देने पाथ अक्षय्यं ता भी वह गरुड़क समान पगदायी शयक
बड़े वगैरे उष्णक पाथ अ पहुँचा ॥ २ ॥

समागत प्रेष्य तदातिक्रम्यो

वाण प्रवीणान्तककालकलन्तम् ।

अपान शक्यपदिगवाकुञ्जरीः

दूखे शरीरान्यविपप्रघोष्ट ॥१०९॥

प्रत्यङ्गुर कालक समान प्रमखित हुए उध बाणको
अन्यन्त निष्कट ध्याय देवकर भी अतिक्रम्यभी मुद्रविपयक
पद्य नष्ट नहीं हुए । उठने पकिके शक्ति गदा कुञ्जर, ध्वज
तथा बाणोंद्वारा उसे नष्ट करनेका प्रयत्न किया ॥ १०९ ॥

तान्यापुधान्यद्भुतविप्रहासि

मोघानि फृत्या स शरीरभिदीप्तः ।

प्रपृष्टा तस्यैव किरौटञ्जुर

तदातिक्रम्यस्य शिरो अहार ॥११०॥

पशु अभिन क समान प्रमखित हुए उध बाणने उन
अद्भुत अज्ञेयका व्यथ करके अतिक्रम्यके मुकुटस्थित
मन्त्रकका पड़से अन्ना कर दिया ॥ ११० ॥

तच्छिरः सगिरत्प्राय मङ्गमणेषुप्रमद्वितम् ।

पपात सहसा मूमी गृह्ण हिमयता यथा ॥१११॥

स मन्त्रक भावने फटा हुआ राक्षसका वह शिरकापमहित
मन्त्रक दिवात्मक पिलरकी मूर्ति खूब घुम्पीकर का
पदा ॥ १११ ॥

स भूमो पतित इद्रा विक्षिताम्यरभूषणम् ।

यभूवुच्ययिता सर्वे हतानाया निगमचराः ॥११२॥

उसका शत्रु और आभूषण सब और स्थिर गय । उसे
पर पीर पड़ा दान मरतेस बच हुए समस्त निशाचर स्थित
ही उठ ॥ ११२ ॥

त शिरणमुज्ज्रा दाना प्रहारजनितधाम्ना ।

द्वयार्थे श्रीमद्वाचम्ये वाचमीकीय आदिप्रत्ये बुद्धकण्डे पञ्चमस्कन्धः सर्गः ॥ ७१ ॥

एव प्रकार शिरसर्पिर्द्विभित्ता-वाचम्ये अदिकल्पके बुद्धकण्डमे इन्द्रतारो सम हूा हुआ ॥ ७१ ॥

द्विमघतितम सर्ग

राजगम्बिन्ता तथा उमक्य राघसोका पुरास्त्री रद्याक लिय मायधान रहनका आदश

भक्तिमय हत भुजा नक्षमपत महामन्य ।

उज्जमगमन् गम्य वयन यदमन्धीन् ॥ १ ॥

सर्व-वचन-क-द्वय-भा-धारा-य-म-य-ए-व-मु-व-र-

दिनेतुदुन्दुबैर्हवा सहसा किलरीः सरीः ॥११३॥

उनके मुसपर विपाद का गया । उनपर अब मर ली
थी उससे एक आनेके कारण वे और भी दुखी हो गये
ये । अतः वे बहुसंख्यक राक्षस सहाय निकट लगे कर
खेते रहे निरहने लगे ॥ ११३ ॥

उत्तस्तपरित याता निरपेक्षा निशाचराः ।

पुरीमभिमुखा भीता प्रफण्डो भायके हते ॥११४॥

ऐनप्रानकके मारे जानेपर निशाचरोंका मुद्रकित्तक
उत्सह नष्ट हो गया अतः वे भयभीत हो हुए ही खड़े-
पुरीकी ओर भाग लगे ॥ ११४ ॥

प्रहर्षयुक्ता बहुवस्तु यानराः

प्रफुल्लपद्यप्रतिमानास्तदा ।

मपूज्यैस्त्वङ्गमजमिष्टभागिर्न

हते रिपौ भीमबले पुरासत् ॥११५॥

इपर उठ मसंकर कल्याणी दुर्कम पापुके मारे जानेपर
बहुसंख्यक बानर हय और उत्सहसे भर गये । उनके मुख
प्रफुल्ल कम्बलोंके समान निकल उठे और वे अभीष्ट निकलके
भागी बीरकर अस्मजकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे ॥११५॥

मतिपन्नमतिकायमभकल्प

युधि विलितास्य स लक्ष्मजाः प्रपृष्टा

स्वरितमघ तदा स रामपाश्र्वे

कपिनिवहदस्य सुपुंसितो जगम ॥११६॥

मुद्रम्यल्लो अत्यन्त कल्याणी और मन्त्रके समान विद्रम्य
अति मयको परधारी करके अस्मज बड़े प्रसन्न हुए । वे उठ
समय यानर-समूहमें सम्मानित हो हुए ही भीयमपत्रके
क पास गये ॥ ११६ ॥

अक्षयनः महस्वभा नुम्भकजस्तथैव च ॥ २ ॥

पठं महायज्ञा वीरा राक्षसा युद्धकण्ठिणा ।
 जेतारः परस्मैभ्याम् परैर्निस्त्वापराजिता ॥ ३ ॥
 अस्मत् अमयवीर्यं पूज्याः सम्पूय दक्षिणारिषोर्मे भ्रेष्ट
 मङ्गलम् प्रहृष्ट तथा कुम्भकर्म—ये महाकथी वीर राक्षस
 स्य युद्धवीर्यं अभिभूय रक्षते ये । ये सन्केसव दधुभ्रोकी
 सेनाभोर निम्न पते भोर त्वप विपक्षिणोसे कनी पराभित
 न्नी हत ये ॥ २ ॥

सस्मैभ्यान्ते हता वीरा रामेणाह्विष्टकमणा ।
 राक्षसाः सुमहाकन्या गानाशास्त्रविशारदाः ॥ ४ ॥
 परंतु अन्त्यास ही महान् कर्म करनेवाले रामने नाम्न
 प्रभरकं धर्मोके कान्मे नियुज्य उन विद्यासम्पन्न वीर राक्षसोक्त
 सेनास्थित संश्र कर बाध्य ॥ ४ ॥

कन्ये च वक्ष्यः शूरा महात्मानो निपातिष्वाः ।
 प्रक्षयतश्चञ्चवीर्येण पुत्रप्रेम्नुजिता मम ॥ ५ ॥
 तौ भ्रातरौ तत्रा वक्षी घोरैर्वृत्तघरैः शरैः ।
 यत्र शयस्य सुदैः सर्वैरसुरैर्वा महावलैः ॥ ६ ॥
 मातुः तद्वन्धनं घोरं यज्ञगन्धर्वपद्मरैः ।
 तत्र जाने प्रभावेवा मापया मोहनेन वा ॥ ७ ॥
 शरवन्धाद् विमुक्तौ तौ भ्रातरौ रामवक्ष्यमपौ ।

भोर मी बहुतसे महात्मन्सी शूरवीर राक्षस उनके शूर
 मर निरसे गये । कियेके क वीर पराक्रम सत्र निष्पात
 है उध नरे बटे इन्द्रकिर्ने उन दोनों माहोकी वरदानप्राप्त
 घोर नामस्तम्भ शर्मते बंध किया था । वह धोर कचन
 समस्त दंष्ट्रा और महाकथी भनुर मी नहीं लक्ष लक्षते ये ।
 यत्र गन्धर्व और नायिक किय मी उध कचनते युद्धकार
 निष्पन्ना भस्मज्ज या तो मी ये वनों मई राम और कक्षत्र
 उध शय-कचनते मुक्त हो गये । न जाने कौन-ख प्रथम था
 केही माया मी जयवा किन्त तत्राही मोहिनी अथचि आदिक
 प्रक्या किया गया था कियेके वे उध कचनते हूट गये ॥
 य योधा मिताताः शूरा राक्षसा मम द्वाप्तनात् ॥ ८ ॥
 त सर्वे निहता युद्ध बानरैः सुमहावलैः ।

येही भाजते के-ख शूरवीर केदा राक्षस युद्धके सिधे
 निकडे, उन सत्रोके उमयज्जयने महाकथी बानरोंने मार
 बाध्य ॥ ८ ॥
 त न पदयाम्यह युद्ध याऽप्य राम सखदमणम् ॥ ९ ॥

नाशयेत् सबल वीर ससुप्रीय विभीषणम् ।
 वीं आत्र देसे किन्ही वीरको नहीं देखता, ख युद्धमें
 कसमपवहित रामको भोर सेनातन्त्र सुप्रीववहित वीर विभीषणको
 नष्ट कर दे ॥ ९ ॥
 भनो सुवल्बधान् रामो महद्वल्बवल्ब च वै ॥ १० ॥
 यस्य विक्रममासाद्य राक्षसा निधनं गताम् ।

अनो ! राम बड़े बख्तान् हैं, निम्न ही उनका अस्त्र-
 म्भ नरान् है कियेके बल-विक्रमका सामना करके अर्थस्य
 राक्षस कसक गखमें चले गये ॥ १० ॥
 त मन्ये राघव वीर नरायणमनामयम् ॥ ११ ॥
 तद्गयादि पुरीं खड्गं पिहितद्वारतोरणा ।
 वीं उन वीर रक्ष्नायको रंग-कोकते रक्षित साक्षत् नामक-
 स्य मन्ता हैं—क्योंकि उनकोके मयते खड्गपुरीके छपी दरवाजे
 भोर सदर फटक सदा बंद रहते हैं ॥ ११ ॥
 मप्रमसौख्यं सद्यत्र गुल्मे रक्ष्या पुरीं स्थियम् ॥ १२ ॥
 अशोक्यनिका वैष यत्र सीताभिरक्षयत् ।
 वाक्य ! तुमथेका हर समय खपचान रहकर सैनिकवहित
 इस पुरीकी भोर बर्हों छेक्य रक्षी गयी है उध अशोक-
 गिभिर वाटिकाकी मी विशेषरूपसे रक्ष कर ॥ १२ ॥

निष्क्रमो वा प्रवेशो वा वातस्य सद्यैव नः ॥ १३ ॥
 यत्र यत्र भयेद् गुल्मस्तत्र तत्र पुनः पुनः ।
 सर्वतश्चापि तिष्ठन्न स्वैः स्वैः परिभृता यदीः ॥ १४ ॥
 अशोक-वाटिकामें कब कौन प्रवेश करवा है भोर कब
 वरहेत बाहर निकलवा है इसकी हमें सदा ही अनकथी रक्षनी
 चाहिये । बर्हों-बर्हों सैनिकोंके गिभिर हो, बर्हों बरंबार देख
 मय्य करना ख भोर अपने-अपने सैनिकोंके साथ परेपर
 रहना ॥ १३-१४ ॥
 द्रष्टव्यं च पद् तेषां क्षान्तवर्णां निदायवता ।
 प्रत्यापे बाधयन्ते वा प्रत्यूपे वापि सबशः ॥ १५ ॥

निदायवत ! प्रशोच्यन्ते आभी एत तथा प्रातःकर्म
 मी सर्वथा बानरोंके आने-जानेपर इच्छि रक्षना ॥ १५ ॥
 गन्धका तत्र कतन्वया यानरेषु कदाचन ।
 द्विपदा बद्धमुमुक्तमापत्त् किं स्थितं यथा ॥ १६ ॥
 बानरोंकी अरुते कनी उपेक्ष्यन्त नहीं रक्षन्त चाहिय

श्वैर सदा इव वातपर इषि रत्नानी व्यहिये किं शत्रुशोभी केव
 पुत्रकं किम् उषमधील तो नहीं है ! भाङ्गमल तो नहीं कर
 रही है भयना पूर्वकम् ध्वो-की-तहाँ कड़ी है न ? ॥ १६ ॥

ततस्त्वं राक्षसाः सर्वे भ्रुवा लङ्घयिष्यस्य सत् ।
 घञ्चम सर्वमातिष्ठन् यथापत् तु महावज्रमः ॥ १७ ॥

लङ्घयिष्यस्य यह आदेश सुनकर उम्भट् मन्नाक्षी रक्षस
 उन कड़ी धाँकेकर यथापत् रूपसे पकड़न करने लगे ॥ १७ ॥

तान् सवान् हि समादिक्ष्य रावणो राक्षसाधिपः ।
 मन्पुत्राक्ष्य वहन् कीनः प्रविशेश स्वमान्धपम् ॥ १८ ॥

इत्थार्थे श्रीमद्भामिनीयने वाल्मीकीयैः आदिक्ष्यते पुत्रकाण्डे त्रिस्तुतितमाः सर्गाः ॥ ७२ ॥

इस प्रकार श्रीमद्भामिनीयैः अर्थरामायण अक्षरिकाण्डे पुत्रकाण्डम अक्षरार्थे सर्वं पूरा हुआ ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितम सर्ग

इन्द्रजित्क मन्नाक्षसे वानरसेनासहित श्रीराम और लक्ष्मणका मूर्च्छित हाना

ततो हताम् राक्षसपुङ्गवांस्रान्
 व्यान्तकादिभिः शिरोऽपतिक्षयान् ।

रक्षागणास्तत्र हतावशिष्ट-
 स्तं राघवाय त्वरितः शशंसुः ॥ १ ॥

तमामभूमिमे मे निघाचर मरनेसे बच गये थे उन्होंने
 तरंग रावणके पास आकर उसे देखाकर, विक्षिप्य श्वैर
 अतिरूप श्वदि रक्षसपुत्राणके मार करनेकर उमाचर
 सुनाया ॥ १ ॥

तदा हतास्तान् सहसा निशम्य
 राज्ञा महाबाह्यपरिप्लुतास्तः ।

पुत्रक्षय भ्रातृवध च घोरं
 विचिन्म्य राज्ञा विपुल मन्ध्वी ॥ २ ॥

उनके बच गये शत मुनिकर राज रावणके नेत्रोंसे खूब
 अर्धमुश्रीसे बह आ गयी । पुत्रों और भ्रातृवध भयानक
 बच गये शत खचकर उषम बड़ी विन्या हुई ॥ २ ॥

ततस्तु रामानमुनीक्ष्य कीन
 शाक्यपथे समारिपुल्लयानम् ।

राघवभा राक्षसराजस्य
 स्तमिन्द्रजित्क पाण्ड्यमिन्द्रं पभागे ॥ ३ ॥

उन सबको पूर्वोक्त आदेश देकर रक्षसराज रावण अपने
 हृदयमें जुगे हुए पुत्र और श्रोत्रस्त्री कीटकी पीड़ा का
 वदन करता हुआ शीतमाकसे अपने महामने गया ॥ १८ ॥

ततः स सवीरपितृकोपयति
 मिश्राचराण्यामधिपो महाबलः ।

तत्रैव पुत्रव्यसन विचिन्तयन्
 सुहृर्मुहुर्यस्य तथा विचिन्तयन् ॥ १९ ॥

मन्नाक्षी निघाचरराज रावणकी श्रोत्राणि मरक ली
 थी । वह अपने पुत्रकी उस मृत्युको ही याद करके उस ऊन
 शरदार कभी लेता कौन रहा था ॥ १९ ॥

राज रावणको शोकके अन्तर्में निमग्न एवं शीत हुआ
 देल रचियोंमें भेद रक्षसराजकुमार इन्द्रजित्ने गर
 कही— ॥ १ ॥

न तात माह परिगन्तुमर्हसि
 यजेन्द्रजिह्वीवति वैश्रुतेषा ।
 नन्दारिवाजाभिहतो हि कश्चित्
 प्रापान् ससर्पाः समरोऽभिप्रातुम् ॥ ४ ॥

व्यत । राक्षसराज । कस्तक इन्द्रजित् अक्षित है उक्त
 भ्रम किन्ता और मोहमें न पड़िये । इस इन्द्रजित्के शोकसे
 पाण्ड्य होकर कोरे भी उमराइयमें अपने प्राणोंकी रक्षा नहीं
 कर सक्य ॥ ४ ॥

पश्याद्य राम सह लक्ष्मणेन
 मश्राप्यनिर्मिच्छकियीष्येहम् ।

गतायुष मूमितले रायाण
 नितौः शरंराकितसयगात्रम् ॥ ५ ॥

देखिय अब मैं राम और लक्ष्मणके शरीरमें शोकसे
 क्षिप्त-भिन्न करके उनके खरे अश्रुको लीने खप मेंसे भर
 देता हूँ, और वे दोनों भद्र गदगु हाकर सदाकं किम् परकील
 से अत है ॥ ५ ॥

हमां प्रतिष्ठा शृणु शक्रशत्रोः
सुनिश्चितां पीरुप्रीधयुक्ताम् ।
अथैव राम सह स्रद्धमयेन
सत्सर्पिष्यामि शरत्सोपैः ॥ ६ ॥

‘अथ युवा इन्द्रशत्रुकी इव सुनिश्चित प्रतिष्ठाये च मेरे
पुरुषार्थे और देवकर्म (ब्रह्मायैवै कृत्य) से भी सिद्ध
होनेवासी है तुन सीद्धिये—मैं आथ ही अस्मत्प्रवर्धित रामको
अपने अमोघ नाशोके पूर्णतः तुम कर्केन्द्र—उनकी युद्धविषयक
विषयक बुझा दूँगा ॥ ६ ॥

अथेन्द्रयैवसप्तविष्णुबद्ध
साध्याश्च वैश्वानरसाम्प्रसर्षाः ।
द्रुह्यन्ति मे विक्रमममयेय
विष्णोरिवोद्यं वल्लिपञ्चपाटे ॥ ७ ॥

‘अथ इन्द्र मम विष्णु, बद्ध, जप्य, अग्नि एवं और
पुत्रपत्न्या इतिके सम्बन्धमे मत्तान् विष्णुके मन्कर विक्रम-
की मूर्ति मेरे अथर पराक्रमक देखेंगे ॥ ७ ॥

स पयमुक्त्वा त्रिवेदेन्द्रशत्रु
राष्ट्रच्छय राक्षसमज्ञीन्सत्याः ।
समाहरोहानिष्ठहृत्पयवेग

रथं स्रष्ट्रेषुसमाधिपुक्तम् ॥ ८ ॥

ऐथ कहकर उशरन्ता इन्द्रशत्रु इन्द्रकित्ने उन्म
रक्षते आरक्ष थी और अन्धे राक्षसे कुठे हुए, युद्धरङ्गणी
से समस्त एवं नायक समान केगाछाकी रथपर वह सवार
हुन्ने ॥ ८ ॥

समाम्थाय महातेजा रथ हरिरथोपमम् ।
जगम स्रद्धसा तथ यत्र युद्धमरिदम् ॥ ९ ॥

उत्तर रथ इन्द्रक रथक समान जान पड़या था । उत्तर
अरुद्ध हो शत्रुभेदा दमन करनेवाला वह महातेज्स्वी
निशान्न स्रद्ध उठ खानपर आ पहुँचा यहाँ युद्ध हो रहा
था ॥ ९ ॥

त प्रस्थित महामानमनुजसमुद्हायस्य ।
सह्यमाजा बहया धनुज्यरपाणया ॥ १० ॥

उठ महामानी धीरको प्रस्थान करत हुए बहुतसे
महास्त्री राक्षस हाथमे भेद धनुष सिधे हर्ष और उत्सुक
आथ उत्तर पीठ-पीठे बैठे ॥ १० ॥

गदस्कन्धगता केचित् केचित् परमवाग्निभिः ।
भ्यामवृद्धिकमाज्जोरखरोद्रेभ्य मुजङ्गमैः ॥ ११ ॥
यराहेः भ्याप्रीः सिद्धैजम्बुकैः पर्वतोपमैः ।
काकहृत्समपूरैश्च राक्षसा भीमविक्रम्याः ॥ १२ ॥

अरे हाथीपर बैठकर चले तो अरे उत्तमवाणीपर । इनके
खिला बाण, सिन्धु, विद्याय राखे, ऊँर अर्ष सुन्दर, अम्य
रिषक कन्तु, सिद्ध पर्वतार गीदह, शैमा इंस भोर मोर
आदिकी सवारियोंपर चढ़े हुए मयानक पराक्रमी राक्षस बहो
युद्धक सिन्धे आये ॥ ११ १२ ॥

प्रासपट्टिनिश्चिदापरम्बभगवाधपः ।
मुद्राण्डिमुद्ररथपट्टिदाताप्रीपट्टिदायुधाः ॥ १३ ॥

उन अपने प्रास पट्टि, अङ्ग फरसे गया मुद्राण्डि मुद्रर
इंके, पतन्त्री अथर परिष आदि अयुध धारण कर रक्षते थे ॥ १३ ॥

स शङ्खनिन्दैः पूर्णैरेरीषां खापि निःस्वमैः ।
जगाम त्रिवेदेन्द्रारिराजि भगेन वीर्यवान् ॥ १४ ॥

शङ्खोंकी धनिके खप सिन्धी हुने भरिवाकी मयानक
आथाय सभ अथर गैब ठठी । उस श्रुतबनादके लय इन्द्रद्रोही
पराक्रमी इन्द्रकित्ने बड़े वेगसे रथभूमिकी अथर प्रस्थान
किया ॥ १४ ॥

स शङ्खशशिवर्षेण छत्रेण रिपुसूदनः ।
रराज प्रतिपूर्णेन नभश्चन्द्रमस्ता यथा ॥ १५ ॥

अथे पूर्ण चन्द्रमासे उपस्थित अथरशकी घोमा छती है
उसी प्रकार ऊपर तने हुए शङ्ख और शशिक समान बजबाजे
रथे छत्रसे वह शत्रुसूदन इन्द्रकित्ने सुशोभित हो रहा था ॥

धीम्यमानस्तता धीरा ईशैर्हैमविभूषण ।
घाटप्यामसुक्वीश्च मुक्थ्य सयधनुष्मताम् ॥ १६ ॥

अनेके अमभूषणसे विभूषित और समस्त धनुर्धरोसे भेद
उठ धीर निशान्नरथे बानी अस्त्रम सुवर्णनिर्मित उत्तम एवं
मन्वर रैकत हुष्यमे अथे थे ॥ १६ ॥

स तु द्रष्टुं पिन्यान्त बलेन महता घृतम् ।
राससाधिपतिः भीमान् रावणा पुषमघवीह ॥ १७ ॥

निश्चिन्त सेनासे विर हुए अपने पुत्र इन्द्रकित्ने प्रस्थान
करते देण राक्षसोंक उन्म भीमान् रावणने उन्धे वदा—१७॥
त्वमप्रतिरथः पुष स्वया धी पासवा जितः ।

किं पुनर्मानुषं क्षुप्य निहमिष्यसि राक्षसम् ॥ १८ ॥

वेदा । अहं मी ऐसा प्रविष्टवन्ती रथी नहीं है ओ दुम्हार खमना कर सके । दुमने देवराज इन्द्रको मी परकित किया है । फिर आकनीसे भीत डेने योग्य एक मनुष्यको परस करना दुम्हारे किये कौन बड़ी बात है । दुम भयम ही खुबकी रामभ्र बध करेगे ॥ १८ ॥

तथोक्ते रामसेन्ध्रेण प्रत्यगृह्णामहाशिया ।
ततस्त्रिजन्त्रजित्वा लङ्का सूर्यप्रतिमतेजसा ॥ १९ ॥
रराजाप्रतिवीर्येण धीरिवाक्येण भास्वरा ।

राक्षसराजके ऐसा कहनेपर इन्द्रजित्ने उसके उध महान आधीर्बादको फिर छुन्नकर ग्रहण किया । फिर तो जैसे मनुष्य तेजस्वी सूर्यसे अक्रान्धकी घोमा होती है, उसी प्रकार अप्रतिम शक्तिशाली और सूर्यतुल्य तेजस्वी इन्द्रजित्ने लङ्कापुरी लुण्ठित होने लगी ॥ १९ ॥

स सम्प्राप्य महातेजा सुखभूमिमारिन्दमः ॥ २० ॥
स्वपयामास रक्षासि रथ प्रति समन्तरा ।

महातेजस्वी शत्रुवधन इन्द्रजित्ने रणभूमिमें पहुँचकर अपने रथके चारों ओर रखलेको सजा कर दिया ॥ २० ॥
ततस्तु ब्रुतभात्कार ब्रुतमुक्त्वावशाप्रभाः ॥ २१ ॥
ब्रुवुधं राक्षसभ्रष्टा विभियमन्त्रसप्तमैः ।
स हथिर्काञ्जसत्करैस्त्यगन्धपुरस्कृष्टैः ॥ २२ ॥
ब्रुवुधं पावकं तत्र राक्षसेन्द्राः प्रव्रज्ज्वलात् ।

फिर बीचमें रथसे उतरकर दृष्टीकर अग्निकी स्थापना करके अग्निगुप्त तेजस्वी उस राक्षसधिरामलि बीरने फन्दन पूछ तथा कथा आदिके द्वारा अग्निदेवभ्र पूजन किया । उसके बाद उस महावीर राक्षसजने विभिर्बृक भेद मन्त्रोंपर उपासक करते हुए उस अग्निमें हविष्यत्री भाहुषि वी२१ १२३ शक्याणि शरपथापि समिधाऽप्य बिभ्रितक्याः ॥ २३ ॥
नाहितानि च पासांसि क्षुधं काष्ण्यायस तथ्य ।

उध कस्य राक्ष ही अग्निदेवीके चारों ओर निघनेके नियं कुप या क्रोधके पते य । बरेहकी छत्रहीसे हीसमिधा च नाम मिय गवा था । काञ्ज रंगके बन्ध उपयामे म्यय गव और उध आभियारिक यज्ञमें ज मुवा था वह लहरका फ्य हुआ था ॥ २३ ॥

स तथापि समास्त्रियं शरपथैः सतोमरैः ॥
छगस्य कृष्ययथस्य गल जग्राह जीकता ।

उधने बाहों तैमरसहित छत्रकी कसके पत्तोंके च चारों ओर फैलकर होमके सिन्धे काञ्जे रंगके जीवित गन्ध पकवा ॥ २४ ॥

सङ्घेव समिधस्य विधूमस्य महाश्रिवाः ॥
बभूवुस्तपि जिह्वानि विजय धाम्यदर्शयत् ।

एक ही बार ही हुई उध अगुठिसे अग्नि प्रज्वलि उठी । उसमें धूम नहीं दिखायी देता था और कसकी बड़ी छपटें उठ रही थीं । उध कस्य उध अग्निसे वे लगी मकट हुए, जे पूर्वजकने उधे अपनी विजय दिखा चुके । मुदसकने उधके विजयकी प्राप्ति कर चुके थे ॥ २५ ॥
प्रवक्षिष्याथशैशिकस्तप्तकराञ्जस्तमिभः ॥ २६ ॥
हविस्तत् प्रतिजग्राह पावकः क्षयमुचिषत् ।

अग्निदेवकी किन्ना दक्षिणावर्तं दिशानी देने के उधका बर्ष उपावे हुए सुवर्षके समान दुम्ह रथ ॥ २७ ॥
वे स्वयं मकट होकर उसके दिये हुए हविष्यका प्रव्र रते थे ॥ २६ ॥

सोऽस्त्रमाहारयामास ब्राह्मणमन्त्रविद्वरवः ॥ २८ ॥
धनुष्वात्मरथ चैव सर्वं तथाभ्यमन्त्रयत् ।

उधन्तर ब्रह्मविद्याविद्यारह इन्द्रजित्ने ब्रह्म आवाहन किया और अपने बनुप तथा रथअग्नि स्व बल का बहों छिद ब्रह्मकामन्त्रसे अभिमन्त्रित किया ॥ २७ ॥
तस्मिन्नाह्वयमानऽस्त्रे ह्वयमाने च पावके ।
सार्कप्रहंस्तुत्सव पितृणास नभस्वखम् ॥ २८ ॥

कन अग्निमें अगुठि देकर उधने ब्रह्मकाका भाष किया तब सूर्य फन्दमा ग्रह तथा नक्षत्रोंके क्षय अन्ती भेकके सभी शशी मयभीत हो गये ॥ २८ ॥

स पापक पावकृत्तितंज्ज
बुस्या महेश्चप्रतिग्रभाया ।
सथापयाणासिरथाभ्यस्तुता
रोऽस्तद्वधऽरमानमधिक्यरीर्यो ॥ २९ ॥

किन्ना तत्र अग्निके समान उठीत हो या था तथा देवराज इन्द्रके समान अनुपम प्रभुसकं पुक था उध अग्नि

पराक्रमी इन्द्रकिन्ने अधिनिमें अश्रुति देनेके पश्चात् वनुप
बध, रथ, बाहु, घोड़े और धारयिषहित मयने-आवध
अज्ञापनेमें भरस्य कर किया ॥ २९ ॥

उद्यो हयराधाकीर्णं पताकाव्यजरोभितम् ।
निर्वयी राक्षसबलं तर्जमाल युयुत्सया ॥ ३० ॥

इसके बाद वह पाद और रथसे म्यात तथा पञ्च
पञ्चम्योसे मुद्यामित उल्लसनेनामें गया जो युद्धकी इच्छासे
गम्भा कर रही थी ॥ ३ ॥

त शरैश्चतुर्भिश्चिकेस्तीक्ष्णघोरीरक्षकृतैः ।
वोमरैरङ्गुलीभ्यापि यानराक्षसुराहय ॥ ३१ ॥

ये राक्षस दुःख बगनाके, सुवचभूति विचित्र एव बहु
संक्षय शर्मो, तमयों और अङ्गुलीहाय एवभूमिमें वानरोंपर
पहार कर रहे थे ॥ ३१ ॥

राशयिस्तु सुखमुद्वस्तान् निरीक्ष्य निशाचरान् ।
इष्टा भक्त्यो युञ्जन्तु वानराणां मिषासया ॥ ३२ ॥

एवमपुत्र इन्द्रकिन्ने धनुष्योके प्रति म्भवन्त क्रोधसे भया
दुःख था । उक्त निशाचरोंकी ओर देखकर कहा— तुम
क्या वानरोंको मार जानेकी इच्छासे हर्ष और उन्मत्तपूर्वक
उरु करो' ॥ ३२ ॥

उपस्ते राक्षसाः सर्वे गजन्तो जयन्त्यङ्घ्रिणः ।
मभ्यपर्दन्त्यो घोर वानराभ्यारयुष्टिभिः ॥ ३३ ॥

उत्के इस प्रकार मरेजा देनेपर विन्ध्यकी अधिकांश
रक्षनेवाके वे समस्त राक्षस बर-बरसे गर्क्य करते हुए वहीं
वानरोंपर शालीकी मन्कर बना करते छे ॥ ३३ ॥

स तु नक्षीकनारखीगवाभिर्मुञ्चकैरपि ।
रक्षोभिः सधृताः सख्ये यानरान् विषकर्ष ह ॥ ३४ ॥

उस युद्धसमयमें राक्षसोंसे घिरे राक्षस इन्द्रकिन्ने की
नालीक, नायच गया और मुच्छ आदि अज्ञ-शस्त्रोंहाय
वानरोंपर व्हाय आरम्भ किया ॥ ३४ ॥

त वध्मामान्ना समरं यानराः पादपायुधाः ।
मभ्यपद्यन्त सङ्घसा राशयि नैष्ठपापयैः ॥ ३५ ॥

तमराक्षसमें उरुके अज्ञ-शस्त्रोंमें शयस होनेवाले वानर
भी जो इच्छेमें ही इतिपादक क्रम मते थे तन्त्र राक्षसकुमार
पर टैक-शिक्षण और इच्छेकी बर्ता करते छे ॥ ३५ ॥

इन्द्रकिन्ने तु तथा क्रुद्धो महातेजा महाबलः ।
वानराणां शरीराणि व्यधमद् रावणात्मजः ॥ ३६ ॥

उस समय क्रुद्धित हुए महातेजस्वी महाबली एवमपुत्र
इन्द्रकिन्ने वानरोंके शरीरोंको छिन्न-भिन्न कर डाल्य ॥ ३६ ॥

शरैर्वैकेल स हरिन् नव पञ्च ष सप्त च ।
बिमेद् समरे क्रुद्धो राक्षसान् सगग्रहययन् ॥ ३७ ॥

एवभूमिमें राक्षसोंको हर्ष बदाता हुआ इन्द्रकिन्ने रणसे
भरकर एक-एक बाणसे पौं-पौंच सप्त-सप्त तथा नौ-नौ
बानरोंको विहीन कर डालता था ॥ ३७ ॥

स शरैः स्यसंघातैः शातकुम्भभियभूयणैः ।
यानरान् समरं पीतः प्रममाप सुपुत्रय ॥ ३८ ॥

उस अत्यन्त दुर्बल शरीरसे सुवचभूयित नृकृत्यस्य तन्वशी
कवकांहाय उमरभूमिमें वानरोंको मय डाल्य ॥ ३८ ॥

त भिषगाद्याः समरं यानराः शरपीडिताः ।
पतुर्मयितलंक्षयाः सुरैरिथ महासुराः ॥ ३९ ॥

रम्येक्षमें देवताओंहाय पीडित हुए बड़े-बड़े असुरोंकी
मूर्ति इन्द्रकिन्नेके बाणोंसे व्यथित हुए वानरोंके शरीर छिन्न
मिन्न हो गये । उनकी विन्ध्यकी अज्ञापर उपारपत छे गया
और वे अनेक-से हाकर दृष्टीपर गिर पड़े ॥ ३९ ॥

त तपन्तमिषादित्य धारैर्बाणगभस्तिभिः ।
अभ्यधावन्त सङ्कुन्धाः सयुग वानरवभाः ॥ ४० ॥

उस समय युद्धसमयमें बाणकी मन्कर किरकोंहाय सूर्यके
छयन करते हुए इन्द्रकिन्नेप्र प्रथम प्रधान वानरोंने वड़े रोचके
वध भाव किया ॥ ४० ॥

तस्तु वानराः सर्वे भिषद्वा विधेतसः ।
व्यथिता विद्रपन्ति स रथिरेण समुक्षिताः ॥ ४१ ॥

परद्व उरुके बाणोंसे शरीरके छन-छिन्न हो जानेसे वे छव
वानर अत्यन्त-स हा गये और मृतक सययय हा व्यथित हाकर
इधर उधर मगाने छे ॥ ४१ ॥

रामस्यायें पराक्रम्य वानरास्त्यपर्कजीपिकाः ।
मन्दन्तःऽन्विषुत्तास्तु समरं सशित्तयुधाः ॥ ४२ ॥

वानरोंने मराना न भीएमक छिय भन्ने बीचनका मद्द
छद दिश था । वे पराक्रमपूर्वक गम्भा करत हुए राक्षस

शिक्षार्थं क्रिये समरभूमिमे इते रई—युद्धभूमिसे पीठे
न इष्टे ॥ ४२ ॥

त द्वुमैः पवतामैश्च शिखाभिश्च पृषगमा ।
अभ्यवपन्त समर रावणि समवस्थितः ॥ ४३ ॥

समराङ्गणम सई द्वुप वे वानर रावणकुमारपर वृष्टो
पततशिलरौ और शिखाओंकी बर्षा करने लगे ॥ ४३ ॥

त द्वुमाण्या शिलानां च व्यर्थे प्राणहर महत् ।
भ्यपोहत महातश्चा रावणिः समितिःश्रयः ॥ ४४ ॥

द्वुष्टों और शिखाओंकी वह मारी वृष्टि रज्जुओंक प्राण हर
कनेवासी थी परन्तु समरनिक्की महातेक्की रावणपुत्रने अपने
शर्णोंद्वारा उसे दूर हटा दिया ॥ ४४ ॥

तत पत्नकसकशरौः शरैराशीपिणोपमैः ।
वानराणामनीकानि विमेव समरे प्रभुः ॥ ४५ ॥

तत्पश्चात् विपथर लक्षके समान मयकर और अग्निगुप्त
तक्की बाणोंद्वारा उस शक्तिवासी क्षीरने समराङ्गणमे वानर
सैनिकोंको विदीर्ण करना आरम्भ किया ॥ ४५ ॥

मष्टाद्वाशरैस्तीक्ष्णैः स विवृष्ट्वा गन्धमादनम् ।
विध्याथ नद्यभिश्चैव नल्ल वृराड्वस्थितम् ॥ ४६ ॥

उसने अन्तराल तीक्ष्ण बाणोंसे गन्धमादनको ध्वस्त करके
दूर लक्षे द्वुप नखर भी नौ बाणोंसे प्रहार किया ॥ ४६ ॥

सप्तभिस्तु महावीर्यो मैत्र्य मर्मविदारकैः ।
पञ्चभिर्दिशिजैश्चैव गज विध्याथ सपुगे ॥ ४७ ॥

इसके बाद महापराक्रमी इन्द्रकिर्त्तने सप्त मर्ममेही लक्षकों-
द्वारा मैत्रको और पाँच बाणोंसे गजको भी युद्धस्थलमे बीच
शाय ॥ ४७ ॥

आम्बभक्त तु द्वाभिर्नौक त्रिचन्द्रिरेष च ।
सुग्रीवसुपथ शैव साऽऽङ्गद त्रिभिव् तथा ॥ ४८ ॥
शोरैर्वृक्षपरैस्तीक्ष्णैर्मिच्छाप्यनकरोत् तदा ।

त्रि इस बाणोंसे आम्बवान्को और तीस क्षयकोंसे नौकको
ध्वस्त कर दिया । तदनन्तर बरदानमे प्राप्त द्वुप बहुलम्बक
तीक्ष्ण और मयनक क्षयकोंके प्रहार करके उस समय उसने
सुग्रीव शृगम भद्र और त्रिकिर्त्त भी निःप्राण-त्व कर
दिया ॥ ४८ ॥

अन्यात्रपि तथा मुष्यान् वानरान् बहुभिः शरैः ॥ ४९ ॥

भर्षयामास सकृद्यः कषसाग्निरेव मूर्च्छितः ।

स्य अर केही हुई प्रख्यातिक समान भक्त रक्षे मे
द्वुप इन्द्रकिर्त्तने वृक्षे-वृक्षे भेद वानरोंको भी बहुलक
क्षणोंकी मारते व्यथित कर दिया ॥ ४९ ॥

स शरैः स्वयसकशरैः सुमुक्तैः शीघ्रगामिभिः ॥ ५० ॥
धानराणामनीकानि निर्ममथ्य महारणे ।

उस महासमरम रावणकुमारने अक्की तरह लई दु-
र्घर्षदुस्व तेक्की शीघ्रगामी सक्कशराय वानरकी सेनामें
मय शाय ॥ - ॥

अकुत्सा धारण्यं सेनां शरज्जालन पीडिताम् ॥ ५१ ॥
द्वुपः स परया प्रीत्या द्दर्शां सतजाक्षिताम् ।

उसके कणकलेसे पीडित हा वानरीसेना आकुस ह-
और रक्षते नहा गयी । उसने बड़े हर्ष और प्रसन्नताक
गजुसेनाकी इस पुरवन्माको देखा ॥ ५१ ॥

पुनरेव महातेजा राक्षसेन्द्रमजा बली ॥ ५२ ॥
संसृज्य वापवर्षे च शक्यवर्षे च दाहणम् ।
ममर्षं वानरानीक परितस्त्रिभुजिष् बली ॥ ५३ ॥

वह राक्षसराजकुमार इन्द्रकिर्त्त बड़ा तेक्की प्रभवक
एवं बलवान् था । उसने एक ओरसे बाणों तथा अन्य
भक्त-शर्णोंकी भंकर बर्षा करके पुनः वानर-सेनाको ह-
डाक ॥ ५२ ५३ ॥

लसैन्धुमुत्सृज्य समस्य तूर्णं
महाहव वानरवाहिनीषु ।

अहव्यमनाः शरज्जाक्षमुर्मं
वपथ नीम्बान्बुधरो पथाम्बु ॥ ५४ ॥

तत्पश्चात् वह अपनी सेनाके ऊपर मगल्य कर्षा
उस महासमरमे दुर्गत वानर-सेनाके ऊपर वह गर्वुच्य भ-
स्य आक्षयमे अहव्य राक्षर मयनक कणकुम्भी उ-
तए बर्षा करने सहा जैसे कर्ष मेष कर्षी ह-
करता है ॥ ५४ ॥

त शरज्जिद्राजविपीर्षं दहा
मयाहाव्य विल्लरमुधवन्ता ।

रणे निपतुर्हैरयोऽद्रिकश्या
पथेन्द्रपञ्जाभिहत्या मगन्द्रा ॥ ५५ ॥
जैसे इन्द्रके बलसे अहव्य हा बड़े-बड़े पतत पराणवी ।

बत है; उसी प्रकार व पतनाकर बानर रणभूमिमें इन्द्रबिन्दु
बाणोंद्वारा छन्दसे मारे अकर घरीरक छन्द-विभक्त हो जानेसे
विह्वल स्वरमें चीन्चत-चित्पात हुए पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ५५ ॥

त केवल सद्ब्रह्माः शिवायान
बाणान् रणे यानगथाहिनीपु ।

मायाधिगूढं च सुगन्द्रशायु
न चात्र त राक्षसमप्यपश्यन् ॥ ६ ॥

रणभूमिमें बानर-सेनाओंपर जो पीनी बारबाल बल
गिर रहे थे केवल उन्हींके व बानर देख रहे थे । मायासे
छिपे हुए उस इन्द्रशायी राक्षसके कहीं नहीं देख पात थे ॥

उतः स रक्षाधिपतिमहात्मा
सवा विशो बाणगणौ शिवाग्रैः ।

प्रच्छन्नध्यामास रविप्रकाशे-
र्विशारयामास च वानरान्द्रान् ॥ १७ ॥

उस समय उस महात्म्य राक्षसकने तीखी बारबाल
सूर्यदृश्य टेकनी बाण-समूहोंद्वारा समूचे विश्वभ्रंशके तक दिया
और बानर-सेनापतियोंके पायक कर दिया ॥ ५७ ॥

स शूलमिच्छिशापरम्भधानि
व्याधिद्वीपातल्लसप्रभाणि ।

सविस्फुलिहोऽज्यलपावकामि
धर्यं ताम् प्रवगन्त्रसैन्य ॥ ८ ॥

वह वानरराजकी भनाम व हुए प्रकाशित पावकके
समान दीप्तिमान् तथा किनाररियाखरित उरगक मान प्रकट
करनेवाले अस्त्र शस्त्र और फलककी दुःसह वृद्धि करने
छन्द ॥ ५८ ॥

सता ज्यसमसकशोबाणैर्दानरपूर्यया ।
साहितो दाक्षजिह्वाणैः प्रफुल्लो ह्य किंशुकः ॥ ५९ ॥

इन्द्रबिन्दुके चक्षुस हुए अभिप्रेतस्य टेकनी बाणोंसे पायक
हो रकने नहाकर खरे बानर-सूयपति जिह्वे हुए फलक इष्टक
समान बन पड़त थे ॥ ५९ ॥

तस्योऽप्यमभिसर्पन्ता निनवस्तस्य विश्वरम् ।
राक्षसेन्द्राखनिर्भिषा निपेसुबानररभा ॥ ६० ॥

राक्षसके इन्द्रबिन्दुके बाणसे विधीने हो व भेद बानर
एक दूल्के समने अकर विह्वल स्वरमें चीन्चर करते हुए
परपायी हो बत थे ॥ ६० ॥

उन्नीसमाणा गगन कश्चिन्नत्रेषु साहितो ।
शरिर्विद्यिगुरन्धोम्य पतुष्व जगतीतल ॥ ६१ ॥

किन्तने ही बानर आकाशपट्टी और देख रहे थे । उसी
समय उनक नेत्रोंमें बाणोंकी चाल खड़ी, अत वे एक दूल्के
घरीरने छू गये और पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ६१ ॥

हनूमन्त च सुसर्पिमङ्गल गन्धमादनम् ।
जाम्बवन्त सुपथ च षण्णशिनमय च ॥ ६२ ॥

मैन्व च द्विविधं मील गवाक्ष गवय तथा ।
केसरि हरिलामान विपुद्बुधं च वानरम् ॥ ६३ ॥

स्यालन ज्योतिमुख तथा वभिमुख हरिम् ।
पावकशं नल शैव कुमुद चोष धारम् ॥ ६४ ॥

प्रासैः शूलैः शिखिर्वापैरिन्द्रजिम्बन्वसहितैः ।
यिभ्याथ हरिशानूखन् ससोस्तान् राक्षसोत्तमः ॥ ६५ ॥

राक्षसपर इन्द्रबिन्दुने विष्य मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित प्रासों
द्वारा और पने बाणोंद्वारा हनुमान सुग्रीव भगद गन्धमान्
कम्बवान् मुसप्र वेणुर्ध्या मन्द द्विविध नील गवाक्ष
गवय कछरी इन्द्रिय विपुद्बुध स्यालन ज्योतिमुख
वभिमुख पावकश नल और कुमुद आदि सभी भेद बानरोंके
पायक कर दिया ॥ ६२-६५ ॥

स वै वाग्बिहगिर्ययुमुक्यान्
निर्भिद्य बाणस्तपनीयधर्षे ।

वक्ष्य राम शरसृष्टिजालैः
सलक्ष्मण भास्कारदिमकलयैः ॥ ६६ ॥

गवाभा और मुकजक समान अग्निमान् बाणोंद्वारा बानर
सूयपतियोंके छत-विभक्त करके वह छम्बणखरित भीगमपर
सूर्यकी किरणोंके समान फलकके बाणसमूहोंकी वया करने
छन्द ॥ ६६ ॥

स बाणपरग्भिसृष्यमाणा
धाराभिपाठानिब तानचिन्त्य ।

समीक्षमाणाः परमाद्भुतधी
रामसन्ता लक्ष्मणमित्सुवाच ॥ ६७ ॥

उन बाणबाणके अन्वय पने हुए परम अद्भुत दृष्ट्यसे
सम्पन्न भीयम पानीकी बाणक समान गिरनेवाले उन
बाणोंकी क्राइ परवा न करके छम्बणकी और इंसत हुए
बाण—॥ ६७ ॥

भसौ पुनर्भ्रमण्य राक्षसेन्द्रो
प्रह्लादमाधित्य सुरेन्द्रशत्रुः ।

निपात्यित्वा हरितैर्मयमसा
शिरसैः शरैरव्यति प्रसक्तम् ॥ ६८ ॥

कर्मणः । वह इन्द्रोही एकस्यत्र इन्द्रकिं प्राप्त हुए
ब्रह्मात्मनः महाप संकर बानर-सेनाके प्रपणमी करनेके
पश्चात् अब लील बालोद्धार हम वर्तनोंके भी पीकित कर
रहा है ॥ ६८ ॥

खयमुवा वृत्तकरो महात्मा
समाहितोऽप्यर्हितभीमकश्यः ।

कथं नु दास्यो युधि नख्येहो
सिंहन्तुमघेन्द्रमिदुघात्मकः ॥ ६९ ॥

ब्रह्माक्षिते बरदान पाकर सत्र स्ववपान रखनेवाले इत
महामन्त्री वीरने अपने भीषण शरीरके अरक्षण कर लिया
है । युद्धमें इत इन्द्रकिंके शरीर छे बिनाभी ही नहीं देता,
पर वह अस्त्रोंका प्रयोग करता था रहा है । ऐसी दशामें इते
हमसेना किंत उद्योग मार सकते हैं ? ॥ ६९ ॥

मय्ये खयभूर्भगवानधिन्य-
सतस्यैतदस्य प्रभवश्च योऽस्य ।

बाणाबापात् त्वमिहाद्य भीमन्
मया साहाय्यप्रमत्ताः सहस्र ॥ ७० ॥

पवयम् भवान् ब्रह्माका स्वरूप अस्मिन्व है । वे ही इत
कात्तक यदि कारण हैं । मैं समझता हूँ उन्होंने कर भक्त
है अतः कुम्भिनः गुमिबाकुमार । तुम मनमें कितने प्रकारकी
पकपट्ट न कर मरे साथ नहीं पुपचाप लगे हो इन बालों-
की मार ल ॥ ७ ॥

प्रच्छाद्यत्येव हि रत्नसम्प-
सदा निशः सायकयुधिजासैः ।

पतन्व सर्वे पठिताम्यशर-
न भ्रजत वानरराजसैम्यम् ॥ ७१ ॥

हजारों भीमनामाचन बास्कीकीके आनिपात्रों बुद्धकाण्डे त्रिस्तुलितमा लभे ॥ ७१ ॥

एत प्रदात श्रीवन्दनीर्निर्मित आर्षामाचन अक्षिरामके बुद्धकाण्डे

विहाराईं सर्व पूरा हुआ ॥ ७१ ॥

एव एकस्यत्र इन्द्रकिं इत समय बाण-सूत्रोंके लं
करके तमूर्धे दिशामोंके आच्छादित क्रिमे देल है । कतल
मुभीबन्धी यह धरि सेना, त्रिस्तके प्रचान-प्रचान हारैर बरज
से गन हैं अब शोभा नहीं पा रही है ॥ ७१ ॥

मावा तु बद्धा पतितौ विसर्षौ
निवृत्तयुद्धौ हतहर्षरोषौ ।

भुव प्रवेक्ष्यत्यमपरिवाच-
मसौ समास्ताद्य राजाभ्यसङ्गीम् ॥ ७२ ॥

एक हम दोनों हर्ष एवं रोषसे रहित तथा युद्धसे निरत
हो अथेव-से होकर मित बच्येगे तब हमें उठ मनबच्ये देल
युद्धके मुद्दानेन विजय-सङ्गीको फकर अचल ही वह एक-
पुरी लङ्कामें जेद बचया ॥ ७२ ॥

ततस्तु तद्विन्दुमिदोऽकाजौ
बैभूषतुस्तत्र त्वा विशरौ ।

स चापि तौ तत्र विपाद्यित्वा
नम्यद्द्वयोर्बुधुधि राक्षसेन्द्रः ॥ ७३ ॥

तदनन्तर वे दोनों भाई भीषण शरैर कामर बरौ हए
किंके बाण समूहोंसे बहुत पाक हो गये । उठ लज उठ
वर्तनोंके युद्धमें पीकित करके उठ एकस्यत्रके बड़े हर्षके लज
गर्कण थी ॥ ७३ ॥

ततस्तदा बानरसैन्यमेव
राम च सक्ये सह उद्भवमेव ।

विष्यद्यित्वा सहस्रा विवेश
पुरीं दशग्रीवभुजगिगुप्ताम् ।

सस्तुषमानः स तु यातुधासैः
पित्रे च सर्वे ह्यपितोऽभ्युवाच ॥ ७४ ॥

इत प्रकार कामामें बानरोंकी सेना तथा ब्रह्मन्कर्षित
भीषणके मूर्धित करके इन्द्रकिं लला दशमुख एककी
मुजबोंद्वारा पकित ब्रह्मपुरीमें पक गय । उठ लज उठ
निष्ठाकर उठकी सृष्टि कर रहे थे । वहाँ बाकर उठने पितरों
प्रत्यक्षपूर्वक आन्ती विजयका साथ कामाचार लला ॥ ७४ ॥

इत प्रदात श्रीवन्दनीर्निर्मित आर्षामाचन अक्षिरामके बुद्धकाण्डे

विहाराईं सर्व पूरा हुआ ॥ ७१ ॥

चतुःसप्ततितमः सर्गः

जाम्बवान्के आदशसे हनुमान्जीका हिमालयसे दिम्ब ओपधियोक पर्वतको जाना और उन
आपधियोकी गंधसे भीराम, उरुमण एव समस्त वानरोंका पुनः स्वस्य होना

तपोस्तदास्त्रादितयो रजाम्बे
सुमोह सैम्य हरियूषपानाम् ।
सुग्रीषनीकाङ्गवज्राम्बफन्तो
न चापि किञ्चित् प्रतिपेदिरे ते ॥ १ ॥

युद्धके मुशनेपर जब ये दोनों भाई भीराम और उरुमण
निम्ब्य हाकर पङ्क गम लव वानर-सेनापतियोंकी वर सेना
किञ्चैम्पतिन्ड हो गयी । सुग्रीव नीक, अंगद और जाम्बवान्
को भी उठ समय कुछ नहीं बख्ख पा ॥ १ ॥

तत्रो विपण्य समवक्ष्य सर्वे
विभीषणो बुधिमतां धरिष्ठा ।
उवाच शाकाम्बुगराञ्जरीरा
नभ्यास्तयप्रप्रतिमैषयोभिः ॥ २ ॥

उठ समय सबको बिपारमें पूषा हुआ देख बुधिमनोंमें
भइ विभीषणने वानरएक उन बीर केनिचोको अथलन
पते हुए अनुपम शयीमें करा—॥ २ ॥

मा भण्य नास्त्यत्र विपाङ्कशस्त्रे
यदायपुत्रो ह्यवशी विपण्यौ ।
स्वयमुवा धाफ्यमपोहहत्यौ
यत्साम्प्रिताविम्ब्रजितास्रजालैः ॥ ३ ॥

वानर बीर । आपका भयभीत न हों । यहाँ बिपदका
भयन नहीं है क्योंकि इन दोनों अर्धपुत्रोंने प्रयाजीक
बन्नोंका आदर एवं पावन करते हुए स्वयं ही हथियार नहीं
उठाया व इच्छिय इन्द्रकिन्ने इन दोनोंको अपने अस्त्र-
समुहसे अभ्यपणित कर दिया पा । अतएव ये दोनों भाई
कंस विराहमल (मुँडित) हा गय है (इनक प्राणोंपर
कंपर नहीं आया है) ॥ ३ ॥

तस्मै तु वच परमात्ममत्तु
स्वयमुवा प्रह्वाममाधर्षायम् ।
कम्पानयन्ती सुधि रात्रपुत्री

निपातिती काऽत्र विवाङ्कशकः ॥ ४ ॥
जम्बु नकाण्डे पर उरुम अम इन्द्रकिन्ध दिया

पा । मझाकाके नामसे इसकी प्रसिद्धि है और इतकर बल
अस्थ है । संवामने उरुम अमादर—उरुम्री मयादाकी रक्ष
करते हुए ही ये दोनों राजकुमार भगवानी हुए हैं अतः
इसमें खेदकी कौन-सी बात है? ॥ ४ ॥

प्राह्वामल्ल सलो धीमान् मानयित्वा तु मारुतिः ।
विभीषणवचः श्रुत्वा हनूमानिदमप्रवीत् ॥ ५ ॥
विभीषणकी बात सुनकर बुधिमन् पवनकुमार हनुमन्ने
ब्रह्माकाका सम्पन करते हुए उनसे इत प्रकर करा—॥ ५ ॥
अस्त्रिष्वस्त्रहत सैम्ये धारताप्यां तरस्विनाम् ।
यो यो धारयत प्राप्स्यंस्त तयाभ्यासयावदे ॥ ६ ॥

प्राह्वामल्ल । इत भजसे पायक हुए वेगप्राप्ती कर
गेनिचोंमें जो-जो माल बाल करते हों, उन-उनका हमें चक्रकर
म्याथालन देन चाहिये ॥ ६ ॥

स्युभी युगपद् धीरी हनूमद्राक्षसोत्तमी ।
उरुकाहस्तौ तवा रायौ रणनीचं विचेरतुः ॥ ७ ॥

उठ समय रात हा गयी थी, इतखिये हनुमन् और
एकप्रकर विभीषण दोनों बीर अपने अपने हाथमें मखस
स्त्रिय एक ही साथ लज्जामिमें विचरने लगे ॥ ७ ॥

भिषज्जाङ्गसहस्रोदपादाङ्गुलिशिरोधरीः ।
स्वयङ्गिः क्षतज गाम्भी प्रस्रयङ्गिः समन्ततः ॥ ८ ॥
पतिताः पवताक्षरैपानरैरभिसवृताम् ।
शस्त्रैश्च पतिर्लक्षितवहदाद्यत पशुधराम् ॥ ९ ॥

निष्ठी रूँठ हाथ पैर, ब्रोक भंगुलि और मीठा म्यदि
भइ कर गय व अतएव जो अपन शरीरसे रक्त बहा रहे
व एत परतकाकर वानरोंक निन्देस बहोनी खरी नूमि लव
अतएव पर गयी थी तथा यहाँ गिरे हुए वनधीन भय-उल्लेस
थी आच्छादित हा गयी थी । हनुमन् और विभीषण इत
भरसामें उठ पुनःनूमिम निरीक्षण किया ॥ ८ ॥

सुर्षायमद्दन् मीळ शरथ गधम्यहन्म् ।
जाम्बफन्त सुपश च पगवादानमय च ॥ १० ॥

मिन् नक्ष ज्योतिर्मुख द्विविद् चापि यानरम् ।
विभीषणो हनुमान्श्च पृथुशात हतान् ॥ ११ ॥

सुमीन अंगद, नील, शरम, गन्धमालन अम्बवान
सुपन वगदर्या मैन्ड, नक्ष, ज्योतिर्मुख तथा द्विविद्—इन
समी वानरोंको हनुमान् और विभीषणने मुझसे पापक हाकर
पड़ा देला ॥ १ ११ ॥

सप्तपश्चिहत्याः कथ्यो वानराणां तरन्विनाम् ।
महाः पञ्चमशायण पल्लवेन स्वयमुद्यः ॥ १२ ॥

ब्रह्मावीक मिय अक्ष—ब्रह्माक्षने दिनक चार भाग
ज्योतिष हरे-हरे करण्ड करण्ड वानरोंको हताहत कर दिया
या । सब कथक पौंसों भोग—सवाहककक रोप रह गया,
सब ब्रह्माक्षक प्रयोग कर हुआ था ॥ १२ ॥

सागतौघनिभ भीम द्यूा वाणार्थित वक्त्रम् ।
मागते ज्ञान्यघन्त च हनुमान् सविभीषणः ॥ १३ ॥

समुद्रके समान विद्याक एव भयकर वानर-सेनाको
वाणोंसे पीड़ित देख विभीषणवर्षित हनुमान्को ज्ञान्यवान्को
हूँ देने लगे ॥ १३ ॥

स्वभाषद्वरया युक्तं ध्रुव शरदातैश्चितम् ।
प्रज्जपतिस्तुत वीर शाम्यकतमिय पाथकम् ॥ १४ ॥
द्यूा समभिसकम्प पीलस्यो वाक्यमप्रधात् ।
कथिद्वार्यं शरैस्तीक्ष्णैर्न प्राणा प्वसित्प्रस्तव ॥ १५ ॥

ब्रह्मावीके पुत्र वीर बाम्यवान् एक ठो स्वभाविक हुआ-
बलाने युक्त थे ध्रुव उनको धरीरम लेकड़ा बाण भेजे हुए
थे भत व हुआती हुई आगके समान निखन खिलासी बंध
थे । उनको हलकर विभीषण तुरंत ही उनको पाठ गये और
बल— भार्य । इन गीसे बलाके महारसे अपने प्राण निष्क
थे नहीं गये ? ॥ १४ १५ ॥

विभीषणवचः श्रुत्वा जाम्बवानुशुक्लवः ।
कृष्णवन्मुशिरिन्त वाक्यमिद् यथकमप्रधीत् ॥ १६ ॥

विभीषणकी बात सुनकर श्रुधराक जाम्बवान् बड़ी
क्रुडिनातेसे वाक्यको उच्चारण करत हुए इस प्रकार
कहे— ॥ १६ ॥

नैश्रुत्कम्प महावीर्यं स्वरण त्वाभिसहस्रय ।
विज्जगात्रा निर्रैर्वापेन श्वापदयामि बधुषु ॥ १७ ॥

महापराक्रमी राक्षसराज । मैं कथक स्वसे तुम्हें जान
रहा हूँ । मेरे सभी अङ्ग देने वाणोंसे बिभ हुए हैं, भाः मैं
भौल लाकर तुम्हें नहीं देख सकता ॥ १७ ॥

अजम्ब सुमजा यम मातग्निश्चा च सुकृत ।
हनुमान् वानरभेष्टः प्राणान् धारयत कश्चित् ॥ १८ ॥

उत्तम शतके पाकक विभीषण । यह ठो कथक
भिनक कम देनेसे अज्जनादेवी उत्तम पुत्रकी कन्नी और
वायुदेव भद्र पुत्रके जनक मने जते हैं, वे वानरभेष्ट हनुमान्
कीं बंशित हैं ? ॥ १८ ॥

श्रुत्वा जाम्बवतो वाक्यमुवाचोर्व विभीषणा ।
आयपुत्रावतिक्कम्प कस्मात् पृच्छसि मावतिम् ॥ १९ ॥

जाम्बवान्को यह प्रश्न सुनकर विभीषणने पूछा—
श्रुधराज । आप दोनों महापराक्रमियोंको हाकर कम
पराक्रमार हनुमान्को ही क्यों पूछ रहे हैं ? ॥ १९ ॥

नैव राजनि सुप्रियं याज्ञव श्वपि राक्षस ।
स्वर्षं सवर्षिताः स्महो यथा वायुसुत पर ॥ २० ॥

भार्य । आपने न ठो राक्ष सुप्रियरु न भयकर और
न ममान् भीरुमन ही बेश स्नेह दिनाया है जेव वान-
पुत्र हनुमान्कोके प्रति आपका प्रणद प्रेम कश्चित हो
रहा है ? ॥ २० ॥

विभीषणवचः श्रुत्वा जाम्बवान् वाक्यमप्रधीत् ।
शृणु नश्रुत्तशार्जुन यस्मात् पृच्छामि मावतिम् ॥ २१ ॥

विभीषणकी यह बात सुनकर जाम्बवाने कर्ण-
पृच्छस्यत । सुनो । मैं पराक्रमार हनुमान्कोके क्यों पूछत
हूँ—यह क्या रहा हूँ ॥ २१ ॥

अस्मिन्धीयति वीरं तु हतमप्यहत बधम् ।
हनुमत्पुनिस्रतमाप्यं जीकल्लोऽपि मृत बधम् ॥ २२ ॥

वकि वीरवर हनुमान् जीवित हो तो यह मरी हुई केन
मी जीवित ही है—एक समझना प्यदिन और यदि उनके
प्राण निष्क गये हो तो हमझना जीव हुए मी मृतके ही
तुम्हें हैं ॥ २२ ॥

भरत मावतिस्ततः मावतप्रतिमां यत्नि ।
वैश्वानरसमो बीर्यं जिविलाया कथो भवेत् ॥ २३ ॥
प्यत । यदि वायुके समान वेगवाली और अथिके

स्मन् पराक्रमी पवनकुमार इतुमान् भीष्मि है तं इमं सवक
 अग्निं हनेषी माघ्य नी च सकृदी है ॥ २३ ॥

छठा वृद्धसुपागम्य विनयेमाग्यधात्रपत् ।
 युद्ध आम्बवत् पात्री हनुमान् मादव्यात्मजः ॥ २४ ॥

बूढ़े अम्बवानक इत्या कथ्ये ही पवनपुत्र इतुमान्भी
 उनक पक्ष अ गय और दानों पैर पकड़कर उन्होंने कितीत
 म्बवत् उन्हें प्रणाम किया ॥ २४ ॥

धुम्बा हनुमतो वाक्य तदा विष्यधितेन्द्रियः ।
 पुनजातमिषान्मान मन्यत स्मर्त्तपुत्रयः ॥ २७ ॥

इतुमान्भीषी बाल मुनकर उस समय शुक्यपत्र अम्बवान्
 ने किनी की वरी इन्द्रियों काँके प्रहारसे पीड़ित थीं अपना
 पुनरुत्पन्न हुआ-स्य माना ॥ २७ ॥

छठेऽप्रयीम्बहातजा हनुमन्त स आम्बवान् ।
 भागच्छ हरिदापुत्र वानरांस्त्रातुमर्हसि ॥ २६ ॥

त्रि उन महातेजस्वी अम्बवान्ने इतुमन्भीमं कथा—
 भानरसिंह । आम्बः समूर्ण बालरांशी रथा कर ॥ २६ ॥

गान्या विष्मन्पर्याप्तस्त्वमया परमं सखा ।
 स्वत्पराक्रमकस्त्वोऽय मन्य पद्यामि कथन ॥ २७ ॥

पुम्पारे सिखा वृद्धा कर पूष पराक्रमने युक्त नहीं है ।
 तुम्हीं इन सबके परम सहायक हो । यह समय तुम्पारे ही
 पराक्रमक है । मैं वृद्धे किखीका इसक योग्य नहीं देखता ॥

शुक्यधानरवीराणामनीकानि प्रहयय ।
 विशास्यौ कुरु जायेती सावित्री रामसहस्रज्यौ ॥ २८ ॥

पुम वीरों और बानरवीरोंकी सनाओंका हर्ष प्रदान कर
 और कल्पसे पीड़ित हुए इन दानों गार्ह भीषम और कर्मज-
 क धारेने स्वयं निष्काशकर इन्हें मन्थ कर ॥ २८ ॥

गत्वा परमप्रभ्यानमुपपुपणि सगरम् ।
 क्षिम्बन्त नगभ्येच्छ हनुमन् गन्तुमर्हसि ॥ २९ ॥

हनुमन् । समुद्रक ऊपर-ऊपर उड़कर बहुत दूरका गस्ता
 वे करके तुम्हें फलतः द्विमासपर अन्य आदिम ॥ २९ ॥

तदा कथ्यन्तमस्युक्तमुपभ पयत्तममम् ।
 कैशसतिश्वर धाय द्रक्ष्यस्यारिगिदुवत् ॥ ३० ॥

पुत्रधरन । वहाँ पहुँचनेपर तुम्हें बहुत ही जैँच गुणजम्ब
 उद्यम पर्यंत श्रमभय तथा कथ्यत-क्षिम्बक वरुँन दगा ॥ ३० ॥

तयोः शिखरयार्मथ्ये प्रवृत्तमनुलप्रभम् ।
 सर्षापधियुत वीर द्रक्ष्यन्त्योपधिपर्यतम् ॥ ३१ ॥

वीर । उन दोनों शिखरोंक बीचम एक ओंठपिथोका
 पर्यंत दिखामी दंगल अ अत्यन्त शीतमान् है । उसमें इतनी
 घनक है मिलकी कहीं तुलना नहीं है । यह पर्यंत सब प्रकारकी
 अणुपिथसे सम्पन्न है ॥ ३१ ॥

तस्य वानरशाकुल चतस्रो मूर्ध्नि सम्भया ।
 द्रक्ष्यस्योपधयो वीता वीपयम्तीदिशो दृश ॥ ३२ ॥

वानरसिंह । उसक शिखरपर उभयन चार अणुपिथों
 तुम्हें दिखामी दंगरी अ अफ्री प्रमाने दलों त्रियाओंका
 प्रकमिज किप रती हैं ॥ ३२ ॥

मृतसञ्जीवनीं येष विशाह्यकरणीमपि ।
 सुपम्कर्मणीं येष मधार्थी च महौरधीम् ॥ ३३ ॥

उनके नाम इस प्रकार हैं—मृतसंजीवनी विद्याम्यकरणी
 सुपम्कर्मणी और सजनी नामक महौरपि ॥ ३३ ॥

तां मया हनुमन् युद्ध क्षिप्रमागन्तुमर्हसि ।
 भाग्भासय हरिन् प्राययौज्य गन्धपहारमज ॥ ३४ ॥

हनुमन् । पवनकुमार । तुम उन सब ओंठपिथोंका
 लेकर वीम लौट आओ और बानरोंका प्राणदान देकर आभासन
 हो ॥ ३४ ॥

शुभ्या आम्बवता वाक्य हनुमान् मादव्यात्मजः ।
 भापूयत वलान्दरैषापुपर्वारियाणवः ॥ ३५ ॥

अम्बवानकी यह बात सुनकर वासुन्धरन इतुमान्भी उल्ले
 कर अस्वेम पक्षम भर गये जैन महालागर वायुके कणन
 भ्यात हो गया है ॥ ३५ ॥

स पयत्ततयाप्रम्यः पीडयन् पयत्तममम् ।
 हनुमान् दृश्यत वीग तितीय इय पर्यतः ॥ ३६ ॥

वीर हनुमन् एक पर्यंतक शिखरपर लड़ हा गय और
 उस उद्यम पर्यंतको पर्यंते दात हुए द्वितीय पर्यंतक समान
 दिशाकी बने लगे ॥ ३६ ॥

हरिपाद्भिनिभद्रा निरसाद् स पयतः ।
 न दाशाक तत्रामान वाहुं भुगानिरीडितः ॥ ३७ ॥

हनुमन्वीरक चरकोक अत्यन्त पीड़ित हो यह पक्ष कर्तव्य
 अत गया । अधिक दबाव पड़नेक कारण यह अपने प्ररीरका
 भी धारण न कर सका ॥ ३७ ॥

तस्य पेतुर्नागा भूयौ हरिवेगाच्च जज्वलुः ।
 शृङ्गाणि च ध्वज्ययन्त पीडितस्य हनूमत् ॥ ३८ ॥

हनुमान्शैके भारते पीडित हुए उठ परंतके वृक्ष उन्मथि
 वेगसे दूटकर पृथ्वीपर मित पक्षे और कितने ही वृक्ष उठे ।
 तब ही उठ पहाड़की चोटियों की बहने कमी ॥ ३८ ॥

तस्मिन् सम्पीड्यमाने तु भङ्गद्रुमशिलामलं ।
 न नोऽकुर्वाकताः स्वातु घूर्णमाने नगोत्तमे ॥ ३९ ॥

हनुमान्शैके दृष्टानेपर वह भेद फलत दिखने क्या । उक्त
 वृक्ष और शिखरों दूट-फूटकर गिरने कमी अतः वनर वहाँ
 उठर न सके । ३९ ॥

सा घूर्णितमहाद्वारा प्रभङ्गरुहगोपुरा ।
 लङ्का नामाकुल्य राज्ञौ प्रनुचेबाभवत् तथा ॥ ४० ॥

लङ्काका विद्यालय और केंच्य द्वार की शिख गया । मन्थन
 और दरवाजे बह गये । कन्धी नारी भयसे भ्याकुल हो उठ
 रतमें नाचती-सी बन पड़ी ॥ ४ ॥

पृथिवीधरसकप्रशो निपीड्य पृथिवीधरम् ।
 पृथिवी क्षोभयामास सार्जवा मासततमजः ॥ ४१ ॥

परंतान्तर पवनकुमार हनुमान्शैने उठ परंतको दबाकर
 कृपी और छुद्रने की हकचक पैदा कर दी ॥ ४१ ॥

श्वडरोह तथा तस्मान्मरिर्मैत्रयपवतम् ।
 मेघमन्दरसकप्रश मन्थप्रत्यवपाकुलम् ॥ ४२ ॥

तदनन्तर वहाँसे आगे बढ़कर वे मेघ और मन्थरपक्षके
 कमान केंच मन्थपक्षपर चढ़ गये । वह परंत नाम प्रकरके
 सरनौसे म्यात वा ॥ ४२ ॥

मन्थद्रुमलताकीर्ण विक्रसिक्रमखोत्पलम् ।
 सेषित वृषगाधैर्षैः पक्षिपोमनमुष्णितम् ॥ ४३ ॥

वहाँ मौलिक-मौलिके वृक्ष और छटाएँ कोधी थी । क्रम
 और कुद्र सिक हुए थे । रेखा और कन्धर्ब उठ परंतका
 सेवन करते थे तथा वह छठ सेवन केंचा वा ॥ ४३ ॥

विद्याधरैर्मुनिवैरवस्तोभिर्मिदिकितम् ।
 नानामृगगणाकीर्ण पशुकन्दरशाभितम् ॥ ४४ ॥

विद्याधर श्रुति-मुनि तथा अन्धकार भी वहाँ निवास
 करती थी । अनेक प्रकारके मृगतन्त्र वहाँ लव और कोष हुए
 थे तथा वृत्त-श्री कन्दारों उठ परंतकी शोभ्य बगरी
 थी ॥ ४४ ॥

सर्वाणाकुलपर्यन्त यज्ञगन्धर्वकिञ्चरन् ।
 हनूमन् मेघसकप्रशो बभूवो मासततमजः ॥ ४५ ॥

पवनकुमार हनुमान्शै वहाँ खनेवाले यज्ञ गन्धर्व और
 किञ्चर आदि कन्धे भ्याकुल करते हुए मेघके कमान कने
 कने ॥ ४५ ॥

पद्म-या तु शौक्यमापीड्य वडवामुलकमुलम् ।
 विबुत्वोप ननावोच्छ्वैस्त्रासपन् रजनीचरान् ॥ ४६ ॥

वे दोनों पीरीसे उठ परंतको दबाकर और बडवानल
 कमान अपने प्रभंकर मुलको पैककर निद्यानरोंके बरते हुए
 खेर-खेरसे गर्जना करने कने ॥ ४६ ॥

तस्य नानघमानस्य भुत्वा निकम्मुत्तमम् ।
 सङ्गुस्वा रासलव्याघ्रा न शकुं स्तम्भितुं क्वचित् ॥ ४७ ॥

उक्त खरसे बरंकर गर्जते हुए हनुमान्शैक वह मान
 किन्दर मुनकर लङ्कानारी भेद रक्षक भवके मारे कहीं शिख
 दृष्ट भी न सके ॥ ४७ ॥

ममस्त्वृथा समुद्राय मासतिर्मिमविक्रमा ।
 राघवायै पर कर्म समीहित परंतपः ॥ ४८ ॥

शुभ्रोंको छंटाप देनेवाले ममानक परकमी पवनकुमार
 हनुमान्शैने छुद्रका नमस्कार करके श्रीरामचन्द्रशैके किं
 महान् पुत्रवार्प करनेका निमय किया ॥ ४८ ॥

स पुच्छमुपाम्य मुजङ्गकस्य
 वितम्य पृष्ठ भयणे निकुण्य ।

विबुस्य वक्त्र वडवामुल्लाप
 मापुच्छुये भ्योमिन् सबाहवेगः ॥ ४९ ॥

वे अन्धी छानकार वृद्धोंके ऊपर उठाकर पीठको डकन
 देनेकी कान शिखेवकर और बडवामुल्ल अप्पिके कमान अपना
 मुल पैककर प्रचण्डवेगसे भाकराये उठे ॥ ४९ ॥

स वृक्षकाण्डासारस्ता जहार
 वीर्यशिशुता मण्डतपालरांभ ।

बाहूबधेगोद्व्रतसम्पुष्पा
 सतं क्षीपवगा सखिषे निवतुः ॥ ५० ॥

हनुमान्शै अपने लीज केसे कितने ही वृक्षों परंत
 शिखरों शिखाओं और वहाँ खनेवाले लक्षणर वनरोंके भी
 क्षय क्षय उड़ात गये । उनकी मुखाभी और मौलिके केसे

रू दँक दिव्य शक्तेः शरवः क्व उन्मत्तः क्वा शान्तः इति गन्तुः
 न वे इह आदिः समुद्रकः नमो निरः ५३ ॥ ५ ॥

स खी प्रसाधोरगभोगकल्पी
 मुञ्जौ मुञ्जगारिनिष्काराधीयः ।

जगाम शैलः भगवत्प्रमथ्य
 विश्वः प्रकर्षयिष्य वायुस्तुः ॥ ५२ ॥

एतं शरीरं मीलिं विस्राप्ती देनेशब्दी भवन्ती इतो
 मुञ्जशब्दे पञ्चमकार गणकं समान पराकमी पञ्चपुत्र इत्युक्तं
 अर्च्यं विश्वमूर्च्छं खीयते इत्ये-से भेदः परंतु गिरियत्र दिग्मात्म-
 की भेदः कश्च ॥ ५१ ॥

स सागरं धूर्जितधीनिमात्र
 तद्भ्रमसा भ्रामितसर्वस्वम् ।

सर्तिस्रमण्याः सहसा जगाम
 चक्र यथा विष्णुकराममुक्तम् ॥ ५१ ॥

विष्णुः उरगमाध्यय इत्ये खी धीं तथा विलक कश्चक इत्ये
 अमल कश्च-क्यु इत्ये उभर पुम्यय च रोये उच महासमर
 कश्च दकत इत्ये इत्युक्तं मगवान् विष्णुक इत्ये छूट इत्ये
 चक्रुषी मीलि छदा भागे चक गय ॥ २ ॥

स पयसां पक्षिगणान् सरासि
 नदीस्तटाक्षानि पुराचमामि ।

स्फुरिताक्षयांस्तानपि सम्प्रवीक्ष्य
 जगाम यथात् विप्लुत्सुखधमः ॥ ५३ ॥

जगाम क्व भवने विता वायुके ही अम्यन या । वे
 अनेकानेक परंतु पक्षिनीं कश्चनरी नदियों तच्छब्दो नगरो
 तथा अमुदिशार्थं ननपतौश्च दकते इत्ये चक्रे केसले अने कदने
 छने ॥ ५३ ॥

भद्रित्यपयमाधित्य जगाम स गतभयः ।
 हनुमांस्त्यरिता वीरः पितुस्तुस्त्यपयप्रक्रमः ॥ ५४ ॥

वीर इत्युक्तं भवने विनाक ही तुस्य पयकमी भद्र
 शीम्यामी य । न सर्वेके मार्गत्र आभय स पिना यक-मादि
 शीम्यदूर्वक अम्यर हा रोये ॥ ५४ ॥

अपन महता युक्ते मारुतिशतदहस्य ।
 जगाम हरिणादुस्य विश्वः शम्भुः नावपन् ॥ ५५ ॥

वनपिंह वरननुभर इत्युक्तं मयान् कगले पुत्र य । ४

मयूर्तं विश्वमूर्च्छं शम्भुपमान कृते इत्ये वायुक अम्यन कगले
 भगव दे ॥ ५० ॥

सर्वस्वाम्यवतो बाधय मारुतिर्भीमविप्रमः ।
 वृशं सहसा चापि हिमवन्त महाकपिः ॥ ५६ ॥

महाकपि इत्युक्तं श्रीकृष्ण कश्च-कृष्ण बहा मयंकर या ।
 उन्मोने कश्चकारके कश्चनोश्च सारय कृत इत्ये छदा पहुँचकर
 दिग्मात्म परंतुश्च दर्शन किय्या ॥ ५६ ॥

नानामस्रचयोपेत यदुक्तश्चरनिह्वरम् ।
 द्युताञ्जलयस्तदाहाः शिलास्तदावृशानैः ।
 घोभित विश्विधैर्षुशैरगमत् पयताचमम् ॥ ५७ ॥

वहो अनेक प्रक्रमके छत वर रोये । वहुत-सी कन्दरायें
 और झरने उलझी घामा बहा रहे ये । एकेत कश्चर्षोके
 कन्दुश्वी मीलि मताहर विस्राप्ती देनेशब्द शिलायें और नाम
 प्रक्रमके वृद्धोले उच भेद परंतुकी अर्धवृत्त घामा हा रही थी ।
 इत्युक्तं उच परंतुवर पहुँच गय ॥ ५७ ॥

स त समासाद्य महामगन्द्र
 मतिप्रहृष्टोत्तमहेमगुट्टकम् ।
 वृशं पुष्यानि महाभ्रमाणि
 सूर्यसिंहोत्तमसेवितानि ॥ ५८ ॥

उच महावृत्तकश्च अनेके ऊँचा भेद शिलार मुक्कपम्य
 विस्राप्ती रोव या । वहाँ पहुँचकर इत्युक्तं श्रीने परम पवित्र
 पहे-वहे आभय देव किनें देवर्षियोंक भेद अनुशय निवार
 कृता या ॥ ५८ ॥

स ग्रापकोश रज्जुतालय च
 शर्यालय बद्रदायमासम् ।
 ह्यातन प्रक्षरिश्च वीरं
 वृशं यैपस्तकिकराश्च ॥ ५९ ॥

उच परतवर उन्मो दिग्मार्ग मगवान् ब्रह्माश्च स्थान,
 उन्मोके वृक्षे लक्ष्य रज्जुनाभिक्रम स्थान इत्येक भयन वहाँ
 लखे हाकर बद्रदेवेने त्रियुगपुत्रर शय छाड़ा था वर स्थान
 मगवान् इत्ये शब्द शरुस्थान तथा ब्रह्माश्च देवताश्च वीरिमान्
 स्थान—ये सभी दिग्म स्थान दिग्वासी दिग्म । अथ ही यनराजक
 मवक भी वहाँ इधियंकर इत्ये ॥ ५९ ॥

पह-वालय यंभयनालय च
 स्यमभ स्यनियमथन च ।

महास्यप शकरचर्मक च

वर्षां नभिं च वसुधराया ॥ ९० ॥

इसके सिवा भयिन्ना कुबेरच और द्वाद्य सूयके
उमापेद्याच भी सर्वद्वय्य टेकली स्थान उन्हें इक्षिणेचर हुआ ।
यदनुत्त नया प्राकरबीक बनुर और वसुधरायी नागिके
स्थानोंका भी उन्होंने बर्तन किया ॥ ९ ॥

कैवलयमप्रप हिमवच्छिन्ना च

तं ये पूय कञ्जन्तौखमद्रपम् ।

प्रयत्नसर्वोपधिसम्प्रदीप्त

द्वया सर्वोपधिपर्वतेन्द्रम् ॥ ९१ ॥

उत्पन्नत् भेद कैवलयर्षत हिमाञ्ज-शिख, शिवजीके
बाहन इयम तथा सुवर्षमव भेद पर्वत श्रुपमन्ने मी देसा ।
इसके बाद उनकी इन्दि सम्पूर्ण अंगधियोंके उत्तम पर्वतर
पक्षी को उन प्राकरकी वीसिमली अंगधियोंसे देखीयमान हो
या था ॥ ९१ ॥

स त समीक्ष्यान्तराशिर्षितं

विसिद्धिमे वासवपूक्तजुग ।

अप्युत्स्य त औपधिपर्वतेन्द्र

तत्रीयधीना विचय कञ्जर ॥ ९२ ॥

अभिराक्षिक समान प्रकण्ठि हनेबाक उठ पर्वतको
देखकर पवनकुमार हनुमन्जीका बड़ा विस्मय हुआ । वे
नूरकर आंगधियोंसे मरे हुए उठ गिरिराजकर पद गने और
वहाँ पूर्वोक्त जाये अंगधियोंकी खोज करने लगे ॥ ९२ ॥

स येज्जलसहस्राणि समतीत्य महाकपिः ।

विष्णोपधिधर दीर्घं वधधरम्माकथयत्तजः ॥ ९३ ॥

महाकपि पवनपुत्र हनुमन्जी लखों योक्त अंगकर वहाँ
अंग वे और हिम्य अंगधियोंको पारण करनेबाक उठ गेक-
थिलरपर विचरण कर रहे थे ॥ ९३ ॥

महौपधयस्ततः सर्पास्तस्मिन् पर्वतसप्तम ।

विष्णवाधिर्नम्यात्त तता जम्पुरवर्दानम् ॥ ९४ ॥

उठ उत्तम पर्वतर रहनेबाकी सम्पूर्ण महौपधियों यह
कानकर कि कई हुने लगेक सिन्ने मा या है ताकाच अहस्य
हा गती । ९४ ॥

स ता महासमा हनुमन्पदय

इत्युत्पय रोयाच भूय नम्याद् ।

भमूष्यमाणोऽधिसमानवधु

महीभरेन्द्र तमुवाच क्वचम् ॥ ९५ ॥

उन भोपधियोंको न देखकर महात्म्य हनुमन्जी कुभी
हो उठे और रोयके कारण खोर-खोरसे गर्जना करने लगे
अंगधियोंका छिपाना उनक सिन्ने मसक्य हा गया । उन
मौखें अनिक समान छक हो गयी और वे उठ पर्वतर
इध प्रकार बाठे— ॥ ९५ ॥

किमेतद्व सुविनिश्चित त

यद् राधमे नासि इत्यनुकम्प्य ।

पक्ष्याद्य मद्राहुबलाभिमूढो

विकीर्णमात्मानमयो नान्द्र ॥ ९६ ॥

नानेन्द्र ! तुम भीरुजानाकीपर मी हज नही कर ले
देख निश्चय तुमने किस बखतर किया है ! भाव मेरे बहुत
से परकित होकर तुम अपने-अपनके लज और क्लिष्ट कु
देसो ॥ ९६ ॥

स तस्य मृङ्ग सनग सनग

सकञ्जल भातुसहस्रानुपम् ।

विकीर्णफूट ज्वलितप्रसजु

प्रपृष्ट वेगाल् सहस्रोभ्रमाय ॥ ९७ ॥

एक कञ्जर उन्होंने बेगले पकड़कर लुखें, लुखें
सुवर्ष तथा अन्य लखों प्रकारकी बाहुकोंसे मरे हुए उ
पर्वतधिलरको ही सहस्र उलाड़ किया । बेगले उलझे करने
करन उलझी बहुत-सी पोरिजाँ मिलकर मिर पड़ी । उ
पर्वतकर ऊपरी भाग अपनी प्रभले प्रकण्ठित-व हो ल
या ॥ ९७ ॥

स त समुत्पास्य लामुत्पास्य

विनास्य क्वचन् ससुरासुरेन्द्रान् ।

सस्तूपमानः कञ्चरैरनङ्गे

अगम बंगाद् गबहामयेगः ॥ ९८ ॥

उठे उलाड़कर साथ ल हनुमन्जी देवेधरो और
असुरेधरैरहित सम्पूर्ण अङ्गोंको मय-धील करले हुए दबके
समान मर्षकर बेगले आकाशमे उड़ चले । उठ तमप खुत-
से आकाशवापी प्राणी उनकी लुति कर रहे थे ॥ ९८ ॥

स भास्कराश्यामनुपपद्य

सत भास्कराभ शिखरं प्रपृष्ट ।

1

.

1

1

1

लित्ते हुए पञ्चपुष्पैस्ते युक्तस्त्री विलापी वेती यी ॥ २६३ ॥

हस्त्यप्यक्षैर्गङ्गैर्मुक्तैर्मुक्तैश्च तुरगैरपि ।

बभूव लज्जा स्मेकस्मते भ्रान्तप्राहृ हृषार्णवाः ॥ २७ ॥

हाथिपौकं अन्वच्छेने हाथिपौक्रे श्वेः अन्वाम्बच्छेने
अस्त्रौकं भी सख दिया वा । ते वरौ इपर-उपर म्ना रहे
रे इस्ते सद्वापुरी प्रख्यकस्मते भ्रान्त होकर भूस्ते हुए
प्रासैस्ते युक्त महाखगरके छमान प्रतीत होती थी ॥ २७ ॥

भक्ष्य मुक्त गजो हृष्टा क्वचिद् भीतोऽपसर्पति ।

भीतो भीत गज हृष्टा क्वचिदभ्यो नियतैते ॥ २८ ॥

कहीं लुभे हुए जोड़ेको देखकर हाथी मनभीत होकर
मगध था और कहीं बरे हुए हाथीको देखकर भी जोड़ा
मगधे छान्त था ॥ २८ ॥

लज्जाया दक्षामानाया शुभ्रुमे च महोदधिः ।

छायाससकसन्निभो लोहितोद् ह्यार्णवाः ॥ २९ ॥

सद्वापुरीनं कश्चे छम्ये छुभ्रमे भ्रग्वी आम्बक्य प्रति-
क्षिप्य पङ्क राता था जिससे वह महाखगर क्लम फनीस्ते युक्त
कसखगरके छमान शोभ पाख था ॥ २९ ॥

सा बभूव मुहूर्तेन हरिभिर्द्विपिषा पुरी ।

लोकस्यास्य भये धार प्रदीप्तेय वसुधरा ॥ ३० ॥

बानरोंद्वय किसने भ्रग्वी म्नासी गली थी वह सद्वापुरी
वा ही पक्षीमें संवारक पर संवारक छम्य दग्ध हुई पृथ्वीक
छमान प्रतीत हाने लये ॥ ३० ॥

नारीजनस्य धूमन ध्यासस्योन्वैपिनतुरा ।

स्यना उययनतस्य प्रभुय शतयाजनम् ॥ ३१ ॥

धूमन भास्करिन और भ्रग्वी संगत शस्त्र उषस्सले
भ्रान्तवद कर-ही हुई सद्वापुरी नारिय स कक्ष्य कन्दन से यान्त
दूतक मुन्वरी देवा था ॥ ३१ ॥

प्रदग्धप्रधानरागन् राससान् निगातान् वधिः ।

सहसा शुभ्रनन्ति सा हृषयाऽप युयुनयः ॥ ३२ ॥

सिद्ध उषा वर मय य एम उ-अ उषा नगरमे
वार नि-सा अक उर मुन्वरी सजात कस्तर मख
उ-वही य ॥ ३२

उत्पुष्पं धनरागा यत्ता न-धनम् ।

दिग्गङ्गा समुद्रं च पूर्णि १ २ ३ ३३ ॥

बानरोंकी गर्जना और राक्षसोंके आर्तवदसे दखें किन्त
छुभ्र और पूषी गूँच उठों ॥ ३१ ॥

विशाल्यो च महात्मानो तापुभी रामकर्मणो ।

मसम्भ्रान्तौ अगृह्यतुस्ते उभे धनुषी बरे ॥ ३४ ॥

इपर वाग निकल बनेले सख हुए दोनों नरों म्ना
भीरम और छस्मयने किना किसी पसपदके भ्राने के क
उठाने ॥ ३४ ॥

ततो विस्मरयामास रामश्च धनुश्चमम् ।

बभूव तुमुक्तः शश्वो राससानां भयावहः ॥ ३५ ॥

उठ छम्य भीरमने म्पने उठम धनुषको लोचने उठे
मर्ककर उकर प्रकट हुई जो राक्षसोंको म्पगीत कर देनेकी
थी ॥ ३५ ॥

अशोभत तदा रामो धनुर्विस्मरयन् महत् ।

भगव्यासिष सङ्गुशो भवो वेदमर्षं धनुः ॥ ३६ ॥

भीरमन्त्रन्त्री म्पने विगाळ धनुषको लोचने हुए जै
तरह घोना पा रहे थे जैसे विपुलपुरपर कुम्भि से म्पम
उकर भ्राने वेदम्य धनुषकी टंकर करते हुए मुक्किय
हुए थे ॥ ३६ ॥

उत्पुष्पं यानराणां च राससाना च निम्नतम् ।

ज्याशब्दस्तापुभी शब्दावति रामस्य तुभुवे ॥ ३७ ॥

बानरोंकी गर्जना तथा राक्षसोंके क्रोधाह—इन छम
प्रकारक शब्दोंसे भी ऊपर उठकर भीरमके धनुषकी टंकर
मुनायी पड़ती थी ॥ ३७ ॥

यानरेवृष्टुष्टोषोषश्च राससानां च निम्नतः ।

ज्याशब्दश्चापि रामस्य त्रयं व्याप विदा वृ ॥ ३८ ॥

बानरोंकी गर्जना राक्षसोंके क्रोधाह और भीरमके
धनुषकी टंकर—य तीनों प्रकरके शब्द दखें दिखभने
म्यात हा २६ य ॥ ३८ ॥

तस्य कामुकनिमुक्तः गतस्मत्पुष्पापुत्तम् ।

कस्तसगृष्टप्रतिम विक्षीणमभवत् भुवि ॥ ३९ ॥

भगवन् भीरमक धनुषमे दूट हुए वापाहृष्ट नर
पुरीम वह नगरद्वार च-उयन विगरक छम्य ईय व
दूट दूटकर नृन्मर वि रर गता ॥ ३९ ॥

नता रामागन् हृष्टा विमानपु गृह्यु च ।

रासगन्त्राण्यं तुमुना समपद्यत ॥ ४० ॥

छामहस्य मन्त्रानां तथा अन्य यज्ञोपरि गिरते हुए भीगमके
 यज्ञोपे देवतकर राक्षसविमोने युद्धके सिन्धे पही भयकर
 वेपरी थी ॥ ४ ॥

तेषां सन्महामानानां सिंहदन्तं च कुपताम् ।
 शर्वरी राक्षसेन्द्राणां रीरुथिय समपद्यत ॥ ४१ ॥

कमर ककर और कवच आदि शौभङ्ग युद्धके सिन्धे
 तेयार होते तथा खिन्नार करत हुए उन राक्षसश्रीमोके सिन्धे
 वह उत क्रमरात्रिक समान प्राप्त हुए थी ॥ ४१ ॥

धात्रिष्य धामरेन्द्रास्ते सुग्रीबेण महारमणा ।
 भ्रसन्तु द्वारमासाद्य युष्मच्च च द्रुपगमा ॥ ४२ ॥

उत छम्य महारमा सुग्रीबने प्रथान-यथान बानरोंछ यह
 भाग्य ही—बानरवीरो । तुम छय छेग अपने-अपने निकर
 वली द्वारपर बकर युद्ध करो ॥ ४२ ॥

यद्य पो नितय कुर्यात् सत्र तत्राप्युपस्थितः ।
 स हस्तम्योऽभिसम्प्युत्स्य राजशशासनवृषकः ॥ ४३ ॥

भुमछाणोंमेते च यहाँ-यहाँ युद्धभूमिमें उपस्थित हकर
 भी मरे भारेद्यन्न पावन न करे—युद्धमें मुँह माड़कर माग
 अन्न, उसे तुम छय छेग पकड़कर मार डालना क्योंकि पर
 राजब्रह्म ठठठन करनेवाला हमार ॥ ४३ ॥

यद्यु धान/मुक्ष्येपु श्रीतास्त्रोऽज्यस्यपाणिषु ।
 सिस्तपु द्वारमाभित्य राधय क्रोध भाविशत् ॥ ४४ ॥

सुग्रीवकी इस अन्नक भनुवर जब मुक्ष्य-मुक्ष्य बानर
 कळत मथ्यह हाथमें सिन्धे नमस्कारपर बकर डट गये, छय
 फलकच बहा क्रोध हुआ ॥ ४४ ॥

तस्य जृम्भितयिक्षपाव् ध्यामिभा धै विद्यो बदा ।
 रूपभानिय रुद्रस्य मन्युगाभेप्यहृदयत ॥ ४५ ॥

उत्तने भोगहार बकर च भ्रमोंछ संचाखन क्रिया उत्तने
 रस निघार्ये भ्यानुक हो उठी । पर क्रमकरक भ्रमोंमें
 प्रकट हुए मूर्तिमान् रूपकी मौँति दिताथी रने छय ॥ ४५ ॥

स कुम्भ च निकुम्भं च कुम्भकजारमजापुभी ।
 प्रययामास सङ्घ्वा राक्षसैर्गुभिः सह ॥ ४६ ॥

अपने भर हुए एवगने कुम्भकजके दो पुत्र कुम्भ
 और निकुम्भक बहुतसे उछखके छय मथ्य ॥ ४६ ॥

यूपासः शोषिततक्षत्र प्रवृत्तः कर्मगस्तथा ।
 निययुः कौम्भकजिभ्या सह राधयणासमात् ॥ ४७ ॥

एवगकी भाङ्गने पूष्य गज्जिठत प्रवृत्त और कर्मग
 की कुम्भकजक तना पुत्रक अय-छय युद्धके सिन्धे
 निकम्भ ॥ ४७ ॥

राक्षसा गच्छतापीय सिंहनाम् च नाययन् ॥ ४८ ॥

उत छम्य सिद्धके समान दहाइते हुए रावगने उन छम्य
 महाकली राक्षसोंको अवेश दिया—वीर निघाकरो । इवी
 एतमें तुमछमा युद्धके सिन्धे बभ्य ॥ ४८ ॥

तसस्तु चोचिवास्तन राक्षसा ज्वलितायुधा ।
 तद्गुप्या निययुर्याराः प्रपद्यन्तः पुनः पुनः ॥ ४९ ॥

राक्षसककी भाहा पाकर वे वीर राक्षस हाथमें चमकीके
 मन्त्र-राक्ष सिन्धे बार-बार गर्क्य करते हुए ब्रह्मपुर्वे बार
 निकम्भ ॥ ४९ ॥

राक्षसां भूयस्यभिर्भाभिः स्वाभिश्च सर्वदाः ।
 सङ्कुस्त सप्रभं स्योम हरयश्चान्निभिः सह ॥ ५० ॥

राक्षसोंने अपने भूभूयसोंकी तथा अपनी प्रभसे और
 बानरोंने महाकली भ्रगते बहोंके आकाशको प्रकाशसे परिपूर्ण
 कर दिया था ॥ ५० ॥

तत्र तावधिपस्यभा तावयां भा तथैय च ।
 तपोराभग्न्यभा च ज्यन्तिता धामभासयत् ॥ ५१ ॥

चन्द्रमाकी तपशोंकी और उन एनों सेनाओंके
 भूभूयसोंकी प्रज्जित प्रभने आकाशक प्रकाशित कर
 दिया था ॥ ५१ ॥

चन्द्रमा भूयणाभा च प्रहाणां ज्यस्तानां च भा ।
 हरिराक्षससंस्थानि भ्रजयामास सवतः ॥ ५२ ॥

चन्द्रमाकी चौदनी अभूयसोंकी प्रमा तथा प्रकाशमान
 प्रशोंकी रीक्षिने छय आरत राक्षसों और बानरोंकी सेनाओंक
 उत्राक्षित कर रक्या था ॥ ५२ ॥

तत्र चार्धप्रवीतानां गृहाणां सागरः पुनः ।
 भाभिः ससकमसिन्नब्रह्मोर्मिः शुशुभेऽधिकम् ॥ ५३ ॥

मनुक अपबळ एशोंकी प्रभयक कळमें प्रक्षितिप पङ्गनेने
 चत्रय सर-रोक्यम छमुद्र भयिक शायम था रहा था ॥ ५३ ॥

पताकाध्यत्रसयुक्तमुत्तमानिपरभ्यधम् ।
 भीमाभ्ररधमातह नानापचितसमाकुलम् ॥ ५४ ॥

श्रीतशूनगदाकङ्कम्यसतामरकामुकम् ।
 तद् राक्षसयन्त भीम धारदिक्रमपौहयम् ॥ ५५ ॥

राक्षसोंकी वह मयकर सत्र पञ्च-न्यानाभसे मुखभित
 थी । वेनिकोंके हाथमें उत्तम लङ्ग और करम चमक रहे थे ।
 मथ्यक पाहे रय और शक्तिगम एवं नाना प्रकारक वेदेक
 छनिधम वह छेव थी । चमकन हुए हथ गदा कसकर,
 माक तमर और पत्रुप आदिने युक्त हुए वह मना मथ्यक
 विक्रम एवं पुकराई प्रकट करनेवाली थी ॥ ५५ ॥

बहणे ज्यन्तिम्यस किङ्किणीगतनादितम् ।

हेमशालासितमुञ्ज व्याघ्रेक्षितपरम्बधम् ॥ ५६ ॥
 व्याघ्रमिष्टमहाशस्त्र याणससत्कामुंक्त् ।
 गन्धमात्यमधूसैकसम्मोदितमहानिलम् ॥ ५७ ॥
 घोरं दूरजनाकीर्णं महान्बुधरनिःस्वम् ॥

उठ सेनामें भयंकर रहे थे। ऐकड़ों दुमुकुम्बों
 संकर सुनायी पड़ता था। ऐनिसेंही मुकुम्बोंमें खनेके
 आभूयन बंधे हुए थे। उनके द्वारा फसे चमये अब रहे थे,
 बड़-बड़ पात्र पुमान् अबे थे। अनुपर पाणोंकर संपान किया
 गया था। फन्दन, पुष्पमाम और मधुभी अधिकप्राये बहोंके
 महान् वातावरणमें अनुपम गन्ध छर रही थी। बड़ सेना
 इसीप्राये व्याप्त तथा महान् मेघोंकी गर्कणके समान स्थिरावते
 निरग्रित होनेके कारण ममंकर विसाधी देवी थी ॥५६-५७॥

तद् दृष्ट्वा बलमापात राक्षसाना दुपसवम् ॥ ५८ ॥
 सचपालं ब्रह्मगाना यत्कमुच्यैर्नन्मथ च ।

एषोऽपि उठ दुर्बल सेनाको आधी देख वानरसेना
 भाये बड़ी और उब खरसे गन्ध करने लगी ॥ ५८ ॥

अयन्वन्नुस्य च पुनस्तद् यत्न रक्षसा महत् ॥ ५९ ॥
 मन्मयात् प्रत्यरिषत् पतगा इय पापकम् ॥

एषोऽपि विद्यत्त सेना भी बड़ केसे उठकर राघु-
 सेनाकी ओर उठी उरह अपरक हुर जैसे फाड़ भागर
 दूट पड़त है ॥ ५९ ॥

तया भुज्जपरमशाम्यामृष्टारिपाशानि ॥ ६० ॥
 राक्षसानां यत्नं ध्रुव भूया परमशाभत ।

ऐनिसेंही ध्रुवओंके म्यायाने ज्यों परिष और भपनि
 हस रहे थे, एषोऽपि वह उचम सेना बड़ी दायवा रही थी ॥

तत्राममत्ता इत्येत्यनुहरयोऽथ युयुस्तया ॥ ६१ ॥
 तक्षुर्मरभिघ्नन्ता मुष्टिभिश्च निगाचरान् ॥

वहो मुद्रही इच्छागान वानर उन्मचन होकर हूँ
 पापों और मुद्रमें निगाचरोंके मारत हुए उनपर दूट
 पड़ ॥ ६१ ॥

तथापततां तयां हरीणां निर्गितां शरोः ॥ ६२ ॥
 शिरासि सहसा जह्नु राक्षसा भीमयिक्रमाः ॥

इसे प्रकर भयनके पापकी निगाचर भी भान हीने
 वचन वचन भव हुए वानरोंके मनके मद्रक धर शरकर
 मितन की ॥ ६२ ॥

दानदलकपाथ मुष्टिभाभप्रमस्तदाः ।
 शिख्यनहात्प्रमन्वाहा विषयस्तत्र राक्षसाः ॥ ६३ ॥

एतर्षे धंम्याम्यन सर्म्यधव भादृष्टाये बुद्ध्याये पत्र्यकितया मर्षा ॥ ६५ ॥
 एत रव्य इन्दीन्देन भावकन विच्यक बुद्ध्यायन रचद्वारी तर्षे दृष्टा दृष्ट ॥ ६७ ॥

बनरोंने भी होंते निगाचरोंके कल फट गिने
 मुद्रकोंसे मारमारकर उनके मद्रक विधीन कर दिव और
 शिख्योंके प्रहरत उनके मद्र-मद्र कर दिने। इस अस्तन
 वे राक्षस बहों विचर रहे थे ॥ ६३ ॥

तथाचान्यपरे तेषां कपीन्द्रमसिभिः शितैः ।
 प्रवरानभितो जघ्नुघोररूपा निशाचराः ॥ ६४ ॥

इही प्रकर घोर रूपवारी निगाचरोंने भी गुप्स-गुप्स
 बनरोंको भयनी तीखी तन्वायेंसे खर्बया पावक कर दिया था ॥

अन्तमस्य जघानान्यः पातयस्तमपातयत् ।
 गर्हमाण जगर्हाम्यो वृशन्तमपराऽवशात् ॥ ६५ ॥

एक घोर धर वृक्षे त्रिषी वंदाकी मारने लगाय फ
 वष वृक्ष म्यकर उस मारने लगाय था। इही प्रकर एको
 गिरते हुए वंदाको वृक्ष भाकर पणायी कर दब था।

एकही निन्दा करनेवालोंकी वृक्ष निन्दा कटा और एको
 दैतसे फटनेवाकोंको वृक्ष भाकर फट देता था ॥ ६५ ॥

देहीत्यन्यो वृक्षान्यो वृक्षान्तिपरः पुनः ।
 किं ह्येवयसि तिष्ठति तत्राम्योम्य वभापिरे ॥ ६६ ॥

एक भाकर फटा कि मुझे मुद्र प्रहन कर' ले वृक्ष
 उधे मुद्रका भनकर देता था; फिर वीक्षण फटा था कि पुन
 न्यों क्या उठत हो? मैं इवक खच मुद्र फटा है। एत
 कदा वे एक वृक्षेते फटें करते थे ॥ ६६ ॥

विप्रसम्भितराक्ष स विमुक्तकयनायुधम् ।
 समुद्यममहप्रास मुष्टिद्वारसिफुकुलसम् ॥ ६७ ॥

मायतत महारीर्षं युञ्ज वानररक्षसाम् ।
 वानरान् वना सप्तति राक्षसा जघ्नुराहवे ॥ ६८ ॥

राक्षसान् वना सप्तति वानराद्याम्यपातयन् ।
 उठ कनय वानरों और राक्षसेमें बड़ा भयंकर मुद्र सेने
 लगा। इविचर मित अठ, कचय और भन-चय वृष्ट जं।

बड़-बड़ भाव उच उठ विसाधी दूट तथा मुद्रों; एत
 तन्वायें और म्बोंकी मार होती थी। उठ मुद्रसमने एत
 रक्ष-रक्ष या खन-खत वानराद्य एक खच मार मितत प और
 वानर भी रक्ष-रक्ष या खन-खत एषोऽपि एक खच पराजय
 कर देत था ॥ ६७-६८ ॥

विप्रसम्भितराक्ष स विमुक्तकयवायुधम् ।
 यत्न राक्षसमासम्भय वानराः पयरायन् ॥ ६९ ॥

एषोऽपि पात्र गृह गप कचय और रव दूट मर तप
 उठ एषो मनाद्य एकोर वानरोंने तब अरान पर दिव ॥

एतर्षे धंम्याम्यन सर्म्यधव भादृष्टाये बुद्ध्याये पत्र्यकितया मर्षा ॥ ६५ ॥
 एत रव्य इन्दीन्देन भावकन विच्यक बुद्ध्यायन रचद्वारी तर्षे दृष्टा दृष्ट ॥ ६७ ॥

षट्सप्ततितमः सर्गः

अङ्गुलके द्वारा कम्पन और प्रजङ्गका, त्रिभिदके द्वारा क्षोपिताक्षका, मैन्दके द्वारा

यूपाक्षक और सुग्रीवके द्वारा कुम्भका बध

प्रयुक्ते सकुले तस्मिन् खेरे वीरजन्मस्ये ।

अङ्गुल कम्पन वीरमाससाद् रणोत्सुकः ॥ १ ॥

बध वीरकनोच्च विनाश करनेवाला वह खेर फमासन
पुत्र बध रहा या उस समय अङ्गुल संग्रामके क्षिप्ते उत्सुक
होकर वीर कम्पनका क्षमना करनेके क्षिप्ते आये ॥ १ ॥

अङ्गुल्य सोऽङ्गुल कोपात् तद्व्यामास वेगिता ।

गव्या कम्पनाः पूर्वे स खषाञ्च सूत्राहता ॥ २ ॥

कम्पने अङ्गुलके श्लेषपूर्वक छन्दस्वरूप बड़े वेगसे
उन्के ऊपर पहले गन्ताका प्रहार किया । इससे उनको बड़ी
चोट पहुँची और वे कौपक्य बेहोश हो गये ॥ २ ॥

स सहा प्राप्य तेजस्वी विश्लेषे पितृस्वरगिरेः ।

वर्जितश्च प्रहारेण कम्पनाः पतितो भुवि ॥ ३ ॥

सिर चल होनेपर तेजस्वी वीर अंभरने एक पर्वतका
पिच्छर उठाकर उस रजकपर दे मारा । उस प्रहारेसे पीबिध
हो कम्पन टूटकर गिर पड़ा—उसके प्राण-यत्नेका उद्ब गये ॥

उत्सुकु कम्पन इयुः शोषित्वाहो हत रणे ।

रथेनाभ्यपतन् स्त्रिय तत्राङ्गुलमनीतयत् ॥ ४ ॥

कम्पनको युद्धमें माया गमा देस क्षोपिताक्षने रथपर
बैठकर दूरत ही निर्भय हो अङ्गुलपर बाधा किया ॥ ४ ॥

सोऽङ्गुल निदितौर्बाधैस्त्वा विश्रमाथ वेगिता ।

धारीतृवारणैस्तीक्ष्णैः कश्चाम्भिसमविप्रहीः ॥ ५ ॥

उसने नदीरको विधीय करनेमें क्षमय और कश्चाम्भिके
अमान अङ्गुलवाले तीक्ष्ण तथा वेने बाणोंकाय बड़े वेगसे उस
क्षम अङ्गुलको चोट पहुँचायी ॥ ५ ॥

धुरधुरम्पनात्तौर्षैर्त्सव्णैः दिक्सीमुखैः ।

कर्णित्वाभ्यविपाठैश्च बहुभिर्मिथितैः शरैः ॥ ६ ॥

अङ्गुल प्रतिविद्याज्ञो वाक्छिपुषः प्रत्यपवान् ।

भनुबध रथ बाणान् ममर्द्दं तरसा बध्नी ॥ ७ ॥

उसके पकाने हुए धुरे धुरे नाराचै करतवस्त,
दिक्सीमुख कैत्री शर्य और विगीत नामक बहुसंख्याक तीसे

कनौसे सब प्रतापी वाक्छिपुष अङ्गुलके ऊरे अङ्गुल विच गये, उस
उन कम्पान् वीरने बड़े वेगसे उस रजकके मयंकर बनुष,
रथ और बाणोंको कुचक डाल्य ॥ ६-७ ॥

शोषिताक्षस्ततः क्षिप्रमसिचर्म समस्यत् ।

उत्पपत् तत्रा हृद्यो वेगधामविचारयन् ॥ ८ ॥

तरनस्तर वेगवान् निष्पन्नक्षोभित्वास्ते कुपित हो तत्कथ
ही डाल और तस्वार हाथमें सं भी तथा वह बिना छोड़े
विचार रफते कूद पड़ा ॥ ८ ॥

त क्षिप्रतरमाप्युत्स्य परामुष्याङ्गुलो वध्नी ।

कनेण तस्य त खङ्ग समाक्षिप्य गत्वा च ॥ ९ ॥

इनेहीमें बखान्, अङ्गुलने क्षीभ्तापूर्वक उच्छस्कर उसे
पकड़ किया और अपने हाथसे उच्छ्वी उस तस्वारका छीनकर
बड़े वेगसे सिंहनाय किया ॥ ९ ॥

तस्यासपत्नके खङ्ग निजघाल तयोऽङ्गुलः ।

पक्षोपपीतवचनेन विच्छेत् कपिकुञ्जरः ॥ १० ॥

सिर कपिकुञ्जर अङ्गुलने उसके कंधेपर तस्वारका बार
किया और उसके शरीरका इस तरह चीर दिया माना उसने
यक्षोपपीत पाने रखा ॥ १० ॥

त प्रयुञ्ज महाबाहूँ विनय च पुनः पुनः ।

वाक्छिपुषाभितुमुद्राय रणशीर्षे परानरीन् ॥ ११ ॥

इसके बाद वाक्छिपुषने उस विद्याका साङ्गके केकर बारबार
गफना करते हुए युद्धके मुहानेपर बूधे शत्रुभोंपर बाधा
किया ॥ ११ ॥

प्रजङ्गस्तदितो वीरो यूपाक्षस्तु ततो वध्नी ।

रथेनाभिययौ हृद्यो वाक्छिपुष महाबलम् ॥ १२ ॥

इनेहीमें प्रजङ्गको साथ क्षिप्ते बखान् वीर यूपाक्षने
कुपित हो रथके हाथ महाकसी वाक्छिपुषपर आक्रमण किया ॥
अपसीं तु गत्वा पृच्छ त वीरः कनकाङ्गुलः ।

शोषिताक्षः समाभ्रस्य तमेवातुपपात ह ॥ १३ ॥

इस वीचने उसनेके बाधकर पाने वीर शोषिताक्षने अपने-

१. किलक कपयणा नासिके सुरैके समान हो कले हुए
कहते हैं । २. कर्णित्वाभ्यविपाठेण च बहुभिर्मिथितैः शरैः
कणिक नाम अघटाच है । कर्णिते वीसेके कर्णक एक-एक-एक बोधा
ही शेष है । ४. कनेके दौलके समान किलक कपयणा हो कले
वातरगत का गया है । ५. किलक मुकम्पना कट्ट (कर्णितेण)
के पीछेके समान हो कट्ट कनेके दिक्सीमुख कहते हैं ।

१. किल कनेके शोषी पारवंगगोमें कानन-या कपयणक हो, वह
कली कहलाया है । २. किलक कणिक वा कपयणा बध हो वह
'कनक' है । किली शिरीके मर्मे काने पारकण 'कनक' कहते हैं ।
८. कनेके कनेके अयमाके समान कपयणाके कणिक नाम
'विपाठ' है । (पमानाधिकारको)

शो वंमककर जेवेकी गदा उठावी और अङ्गदम ही पीठा
किया ॥ १३ ॥

प्रजङ्गस्तु महावीरो यूपाम्नसहितो यत्नी ।
गदयाभिव्ययो क्रुद्धो वाङ्मिपुत्र महाबलम् ॥ १४ ॥

किं यूपाम्नसहित बलवान् महावीर प्रजङ्ग क्रुपित हो

महाबली वाङ्मिपुत्रर गदा उकर जब क्या ॥ १४ ॥

स्योर्मध्यं कपिभ्रष्टः शोषिताम्नप्रजङ्गयोः ।
विशाम्नयोर्मध्यगता पूजकम् इयावभी ॥ १५ ॥

वाङ्मिपुत्र और प्रजङ्ग दोनों राक्षसोंके बीचमें कपिभ्रष्ट
अङ्गद वैधी ही शोषण पा रहे थे जैसे दोनों विशाम्नान् राक्षसोंके
बीचमें पूर्ण चन्द्रमा सुशोभित होते हैं ॥ १५ ॥

अङ्गद परिव्रजन्तौ मैत्र्यो द्विविध एव च ।
तस्य तस्यतुरभ्यासो परस्परविद्वेषस्य ॥ १६ ॥

उस समय मैत्र्य और द्विविध अङ्गदकी रक्षा करनेके लिये
उनके निकट आकर सजे हो गये । वे दोनों अपने-अपने श्रेय्य
विषयी सेवकाही तन्मय भी कर रहे थे ॥ १६ ॥

अभिपतुर्महाश्वयाः प्रतिशस्ता महापद्मः ।
राक्षसा धानरान् रोषादसिवाजगदाधराः ॥ १७ ॥

इतनेहीमें उल्लारः राज और गदा धारण किये बहुदलसे
महाबली विशाङ्कम राक्षस राक्षसोंके बानरोंपर दूट पड़े ॥

अपायां धानरंम्राप्या विभी राक्षससर्पुगवैः ।
ससकानां म्बुव् युद्धमभबद् रोमहर्षणम् ॥ १८ ॥

ये तीन बानर-सेनापति उन तीन प्रमुख राक्षसोंके साथ
उल्लसे हुए थे । उस समय उनमें रौंगटे खड़े कर देनेवाला
महान् युद्ध ठिक् गया ॥ १८ ॥

तं तु वृक्षान् समग्रशय समप्रविष्टिपुराहवे ।
कङ्गेन प्रतिविशेष्य तान् प्रजङ्गं महाबलः ॥ १९ ॥

उन तीनों बानरोंने रणभूमिमें वृक्ष छेदकर युद्धमें
निष्कारणकर चम्पयः परंतु महाबली प्रजङ्गने अपनी उल्लारसे
उन सब वृक्षोंको काट गिराया ॥ १९ ॥

रणालयान् हुमान्मैत्र्यान् प्रतिविष्टिपुराहवे ।
शरौषो प्रतिविशेष्ये तान् यूपाम्नो महाबलम् ॥ २० ॥

उल्लारः उन्होंने रणभूमिमें उन राक्षसोंके रक्षा और जेहों-
पर वृक्ष तथा परैतशिलर चक्षया परंतु महाबली यूपाम्ने
अपने बानरसुहृदोंसे उनके दुकड़े-दुकड़े कर डाले ॥ २० ॥

सुधान् द्विविधमैत्र्याभ्या हुमानुराग्यथ भीयधान् ।
यभङ्ग गदया मय्यं शाणित्याशः प्रतापवान् ॥ २१ ॥

मैत्र्य और द्विविधने किन-किन वृक्षोंमें उलाड़ उलाड़कर
उन राक्षसोंपर चक्षया था उन सबको पक्ष-विक्रमशापी और
प्रतापी दृष्टिकालन गदा मारकर बीचमें ही लड़ बाध्य ॥२१॥

उद्यम्य विपुलं सङ्घं परममविदारणम् ।
प्रजङ्गे वाङ्मिपुत्राय अभितुप्राय वेगितः ॥ २२ ॥

तत्प्रभात् प्रजङ्गने धनुओंके भन्नेके निरीक्षण करनेकी
एक बहुत पड़ी उल्लार उठाकर वाङ्मिपुत्र अङ्गदपर कर्णोंके
आक्रमण किया ॥ २२ ॥

तमम्यादागत इयं यानेन्द्रो महाबलः ।
आजघानाभ्यकर्षेण तुमेपातिबलस्तदा ॥ २३ ॥

बाहुं चास्य सनिस्त्रिशमाजघान स मुष्टिना ।
वाङ्मिपुत्रस्य ध्यतेन स पापात् सितवक्षिः ॥ २४ ॥

उसे निकट आया देस बतिशय वाङ्मिपुत्रकी महामनी
बानरस्य अङ्गदने अशक्य नामक वृक्षसे माप ।
साथ ही उल्लारी बौधवः कितने उल्लार घीः उन्होंने एक एक
माप । वाङ्मिपुत्रके उस भापतसे वह उल्लार घूटकर घूर्णित
था गिरी ॥ २३ २४ ॥

तं द्यूता पतितं भूमौ सङ्घं मुसलसनिभम् ।
मुष्टिं सवर्तयामास कञ्जकर्ष्यं म्हाबलः ॥ २५ ॥

मुख-जैधी उस उल्लारको घूर्णित पड़ी देस महामनी
प्रजङ्गने अपना बन्नेके लान भन्कर मुसल युयान् आरम्भ
किया ॥ २५ ॥

स लम्बाटं महावीर्यमङ्गदं बानरार्थभम् ।
आजघान महातेजाः स मुहूर्तं चक्षस ह ॥ २६ ॥

उस महातेजसी निशाचरने महाकायकी बानरिप्रेमि
अङ्गदके लम्बाटमें बड़े चरसे मुसल माप कितने अङ्गदको
पहीलक चक्र अद्वय रहा ॥ २६ ॥

स सङ्घां प्राप्य तंखली वाङ्मिपुत्रा प्रतापवान् ।
प्रजङ्गस्य शिरः कप्यात् पातयाम्मस मुष्टिना ॥ २७ ॥

इसके बाद होयमें आनेपर तेजसी और प्रतापी वाङ्मि-
कुमारने प्रजङ्गको पैसा पूरा माप कि उल्लार फिर बढ़ते
शक्य हो गया ॥ २७ ॥

स यूपाम्नोऽभुर्पूर्णाः पितृष्ये निष्ठे रजे ।
अचरुद्य रथात् शिरां क्षीणेपुः कङ्गमापये ॥ २८ ॥

रणभूमिमें अपने प्याचा प्रजङ्गके मरे जानेपर मुखकी
शूलोंमें अस्त्र पर भाये । उसके शय नष्ट हो चुके थे ।
इत्थिन दूरत ही रखते उल्लार उठने उल्लार हापने
के ली ॥ २८ ॥

तमापकृत सम्येक्ष्य यूपाम्नं द्विविधस्परद ।
आजघानारसि क्रुद्धो जग्राह च वसाम् वली ॥ २९ ॥

यूपाम्नको आक्रमण करते देस कबान् वीर द्विविधने
क्रुपित हो बड़ी क्रुपिके साथ उनको छातीमें चोट ली और
उसे वल्लुर्षक पकड़ लिया ॥ २९ ॥

गृहीत भ्रातर हृष्टा शोणित्यासो महापत्नः ।
 म्यज्जपान महातेजा वसति त्रिविधं तदा ॥ ३० ॥

मार्गो पक्वा गन्ता देस मन्तेन्मयी एव महावधी
 शोणित्यासने त्रिविधो छात्रीमे गत्वा मारौ ॥ ३ ॥

स उद्योमिहवस्तेन चकात च महाबला ।
 यथात् स पुनस्तस्य जहार त्रिविधो गवाम् ॥ ३१ ॥

शोणित्यासो मार लाकर महाकषी त्रिविध विचक्षित हो
 उठे । जयभात् सत्र उठने पुन गत्वा उठायी, तब त्रिविधने
 सप्तकर उसे छीन लिया ॥ ३१ ॥

पक्षिस्तन्तरे मैत्रो त्रिविधाभ्याशामागाम् ।
 यूपास ताहयामास छन्देनोरसि वीर्यवान् ॥ ३२ ॥

इक्षी वीचमे पराकमी मैत्रु मी त्रिविधक पास आ गये
 और उन्होंने यूपासकी छन्दोमे एक सप्यक मात ॥ ३२ ॥

दो शोणित्यासयूपासद्वौ ध्रुवगाम्या तरस्त्रिणौ ।
 पाक्यु सवरो मीप्रममकारोत्पादन मृशम् ॥ ३३ ॥

व दनों वैशाखी वीर शोणित्यास और यूपास उन दोनों
 बानर मैत्रु और त्रिविधके साथ समप्राप्तमे बड़ी तेजसे छीना
 सप्यी और पटकपदवी करने लगे ॥ ३३ ॥

त्रिविधः शोणित्यासं तु विद्वार म्लैमुक्ते ।
 निश्चिदेष स वीर्येण क्षिप्रवाविभ्य वीर्यवान् ॥ ३४ ॥

पराकमी त्रिविधने अपने नखोंसे शोणित्यासक मुँह तोच
 लिया और उन सज्यूरक पृष्ठीपर पटककर पीछ डाला ॥

यूपासमभिसक्तुदो मैत्रो बानरपुगवः ।
 पीहयामास बाहुभ्या पपात स हतः सितौ ॥ ३५ ॥

उपभ्यात् अत्यन्त श्रेयसे भर हुए बानरपुत्रक मैत्रुने
 यूपासको अपनी दोनों बोंहोंसे इस तरह बधाय कि वह निपटप
 होकर पृष्ठीपर गिर पड़ा ॥ ३५ ॥

हृत्प्रवीरा श्यकित्वा राक्षसेन्द्रबन्धुस्तथा ।
 जगामभिमुखी सा तु कुम्भकण्ठमजो यता ॥ ३६ ॥

इन प्रमुख वीरोंके मारे अनेपर राक्षसवधकी सेना श्यकित
 हो उठी और भागाइर उठ अनेर पत्नी गम्भी बहो कुम्भकण्ठ
 पुत्र युद्ध कर रहा था ॥ ३६ ॥

आपत्कर्त्ता च बगान कुम्भकर्त्ता सात्वयधमम् ।
 शर्यात्कृष्ट महावीर्यधम्बलदोः प्रवर्गयो ॥ ३७ ॥

धैरसे मगकर भती हुए उस सेनाके कुम्भने सत्वयध
 की । वृष्ठी और महापराकमी बानर युद्धमे सज्य होनेके कारण
 जर-अनेसे गर्भ्या करने लगे ॥ ३७ ॥

निपाठितमहावीर्यं हृष्टा रक्षधम् तदा ।
 कुम्भा प्रथमे सज्यो रण कम् सुपुष्करम् ॥ ३८ ॥

पक्ष्मनेनाह बहे-बह वीरोंको मात गया देस तेकरी

कुम्भने रणभूमिमे अत्यन्त दुष्कर कर्म करना आरम्भ किया ॥
 स धनुर्बन्धिनां भेषः प्रगृह्य सुसमाहित ।
 मुमोत्वाशीविपप्रथ्याम्भरान् पृहविशारणान् ॥ ३९ ॥

वह धनुर्बंदोने भेष या और युद्धमे विचको अत्यन्त
 एकत्र रखवा था । उसने धनुष उठाय और दारिद्र्ये विदीर्ष
 करनेमे समर्थ एवं कर्षिके समान बिपैले नापोंको बरखना
 आरम्भ किया ॥ ३९ ॥

तस्य तक्ष्णुधुमे भूय सवार धनुकतमम् ।
 विपुद्गैपक्षताधिष्णवृत्तितैम्भुधुयया ॥ ४० ॥

उठना वह बाणवद्विज उठम धनुष विपुत् और पेरक-
 की प्रभासे युक्त द्वितीय इन्द्रधनुषके समान अधिक शोभा पा
 रहा था ॥ ४ ॥

शक्यैकपुत्रमुकेन जपान त्रिविध सदा ।
 तेन हाटकपुत्रेण पत्रिणा पत्रवत्सला ॥ ४१ ॥

उठने छनेके पक्ष्म लगे हुए पत्रमुक्त बाणवद्वि, वो धनुष-
 को कतक लीपकर छत्र गया था त्रिविधके पायक कर
 दिया ॥ ४१ ॥

सहस्राभिहतस्तन विप्रमुक्तपदः स्फुरत् ।
 निपपात त्रिकूटभो विह्वलन् प्रवगात्तमा ॥ ४२ ॥

उठके बलसे सज्य अहत होकर निकट पर्यंके समान
 शिवालम्बन बानरभेड त्रिविध म्यकुञ्ज हो गये और उडपदावे
 हुए शैव कैलाकर पृष्ठीपर गिर पड़े ॥ ४२ ॥

मैन्द्वस्तु भ्रातर तत्र भग्न हृष्टा महाहृद्य ।
 अभितुष्ट्राव धेगेन प्रगृह्य विपुलां शिल्पम् ॥ ४३ ॥

उस महाकरमे अपने मार्गके पायक होकर गिय देस
 मैत्रु बहुत बड़ी शिष्य उद्यकर वेगूर्वक रौड़ ॥ ४३ ॥

ता शिल्पां तु प्रचिक्षेप राक्षसाय महापक्ष्म ।
 विमेव ता शिल्पां कुम्भा प्रसन्नैः पक्षभिः शरैः ॥ ४४ ॥

उन महाकषी वीरने वह शिल्पा उस राक्षसक कस्य ही
 पर्ये कुम्भन पौष बमकीले नापोंकाउ उस शिल्पाको टूक-टूक
 कर दिया ॥ ४४ ॥

सधाय श्वाभ्य सुमुक्त शरमार्गपिपापमम् ।
 म्यज्जपान महातेजा वसति त्रिविधाप्रजम् ॥ ४५ ॥

शिर निपकर लंके समान मयकर और कुन्दर भयभगा
 बाण वृक्ष पाप धनुषपर रत्ना और उठक हाउ उस महा-
 तेकरी वीरने त्रिविधक बड़े मार्गकी छन्दोमे गदरी चोट
 पहुँचायी ॥ ४५ ॥

स तु तम प्रहास्य मैत्र्या धानरयूषयः ।
 ममम्बभिहतस्तन पपात भुवि मूर्च्छिताः ॥ ४६ ॥

उठठ उस प्रहारके बानरयूषयने मैत्रुके मर्तबानने

मारी आघत पहुँचा और वे मुर्मिकत होकर पृथीवर गिर पड़े ॥ ४६ ॥

अङ्गदो मातुङ्गी इन्द्रा मथिठी तु महाबली ।
अभिपुत्राय वगेन कुम्भमुघातकर्तुंकरम् ॥ ४७ ॥

मैद और विविध अङ्गदके मन्त्रा थे । उन दनों महाबली कीरोंको पायक हुआ एक अङ्गद भद्रुप तंकर लड़े हुए कुम्भके ऊपर बड़े वेगसे दूटे ॥ ४७ ॥

उत्स्रपल्लव विष्ण्वाध कुम्भः पञ्चभिरावसौ ।
त्रिभिश्चात्म्यैः शितैर्बाणैर्महागणैश्च ठोमरी ।
सोऽङ्गद बहुभिर्बाणैः कुम्भो विष्ण्वाध पीयूषाम् ॥ ४८ ॥

उन्हें अठ रेश कुम्भने छरीक बने हुए पाँच बाणोंसे पायक कर दिया । फिर तीन तीक्ष्ण बाण और मार । जैसे महाबल अङ्गुहासे मत्वाके हाथीका मारण है, उसी प्रकार पराक्रमी कुम्भने बहुतेसे बाणोंवाय अङ्गदको बीच बाध ॥

श्लकुन्धभारैर्निशितैस्त्रीक्ष्णैः कलकमुष्णैः ।
अङ्गदः प्रतिपिच्छाहो बाणिपुत्रो न कम्पत ॥ ४९ ॥

किन्ती भार कुण्ठित नहीं हुई थी तथा जे सुबकीसे निम्नित वे देसे तब और वीसे बाणोंसे बाणिपुत्र अङ्गदका क्या शरीर छिद्र गया था जे भी वे कम्पित नहीं हुए ॥ ४९ ॥

शिखरात्पर्वतपार्थिव तस्य मूर्ध्नि पर्वतं ह ।
स प्रथिच्छेत्तु ह्यनु सवौन विदेत्तु य पुनः शिखा ॥ ५० ॥
कुम्भकर्णोत्स्रजः श्रीमान् बाणिपुत्रसमीरितान् ।

उन्होंने उस उच्छलक मत्वाकर शिखरों और हथोंकी बर्षा आरम्भ कर दो । किन्तु कुम्भकर्णकुमार भीमवत् कुम्भने बाणिपुत्रके पक्षबं हुए उन उच्छत हथोंको अट दिया और विष्ण्वाधको भी तोड़-खेड़ बाध ॥ ५० ॥

अपल्लव च सम्प्रेक्ष्य कुम्भो बानरपुत्रपम् ॥ ५१ ॥
अुवौ विष्ण्वाध बाणाभ्यामुत्स्रज्जम्पानिश्च कुञ्जरम् ।

तपश्चात् बानरपुत्रपति अङ्गदको अपनी ओर अठे रेश कुम्भने था बाणोंसे उनकी मौँहोंने म्हात किया, मना दो उत्स्रजोंवाय किन्ती हाथीके मार गया हो ॥ ५१ ॥

तस्य सुखाद्य रश्मिरे विहितं बाध्य ज्येष्ठने ॥ ५२ ॥
अङ्गदः पाणिन्य जेजे विधाय रश्मिरेऽङ्कितं ।
छात्मास्रजमेकेन परिजमाह पाप्मिन्य ॥ ५३ ॥
सम्पीड्येवसिं सस्रज्ज्ज करेणाभिमिक्षेत्स्य च ।

किन्चित्पुत्रवत्स्यैकमुपमाप महारणे ॥ ५४ ॥
अङ्गदकी मौँहोंसे रेश बने ज्येष्ठ और उनकी ओँसों बंद हो गयीं । तब उन्होंने एक हाथसे बल्लसे भीड़ि हुई अपनी दनों ओँसोंको एक किया और चुले हाथसे पल ही लड़े हुए एक लक्षके हथको पकड़ा । किन्ती छरीसे रवाकर

उनेछरित उठ चुक्को कुछ छत्र दिया और उस म्हात्मक एक ही हाथसे उठे उलाड़ किया ॥ ५२-५४ ॥

तस्मिन्नुकेतुप्रसिद्धं वृक्ष मन्वरसमिभम् ।
समुत्स्रजत वगेन मिस्तां सर्वरक्षताम् ॥ ५५ ॥

वह वृक्ष इन्द्रधनुष तथा मन्वरज्यके समान तीक्ष्ण था उसे अङ्गदने एक उच्छलके देलते-बेसत बड़े से कुम्भर दे मार ॥ ५५ ॥

स विच्छेद्ये शितैर्बाणैः सप्तभिः काशमेवैः ।
अङ्गदो विष्ण्वाधोऽपीक्ष्य स एतत् सुमेध च ॥ ५६ ॥

किन्तु शरीरको विरीय कर देनेवाले छत लंबे का मारकर कुम्भने उस काष्ठ-वृक्षके टुकड़े-टुकड़े कर जाले इतने अङ्गदको बड़ी ध्याया हुई । वे पायक तो वे ही; किन्ती जे मुर्मिकत हो गये ॥ ५६ ॥

अङ्गद परित्त इन्द्रा सीवतमिव सगारै ।
पुरासह हरिभेष्टा राजवाय न्यबंदयन् ॥ ५७ ॥

दुर्बल और अङ्गदको लुङ्गने इतने हुएक समान जमी पर पड़ा रेश भेष्ट बालरोंने भीरकुनापकीके इत्थी सुक्का थी रामस्तु व्यथितं श्रुत्वा बाणिपुत्र महाहय ।

ध्याविवेश हरिभेष्टाज्जम्भकम्मुखात्स्रजः ॥ ५८ ॥
भीरमने का युवा कि बाणिपुत्र अङ्गद म्हात्मने मुर्मिकत होकर गिरे हैं; तब उन्होंने कामधर्य आदि सुसुत बालर कीरोंका सुखके सिद्ध बनेकी ध्याया ही ॥ ५८ ॥

ते तु बानरशार्ङ्गः पुत्रा रामस्य वप्रसजम् ।
अभिपेठुः सुसंकुञ्जाः कुम्भमुघातकर्तुंकरम् ॥ ५९ ॥

भीरमपम्बकीका आदेश सुनकर भेष्ट बालर और मन्वर कुण्ठित हो बनुप उठाये लड़े हुए कुम्भर एक अठेसे दूटे पड़े ॥ ५९ ॥

तमे हुमशिक्षाहस्ताः कोपेत्तरकलेबन्धा ।
रिरक्षिप्यन्तोऽम्पतजङ्गलं वानरर्षभा ॥ ६० ॥

वे तमी प्रमुख बालर अङ्गदकी रक्ष करना बल्ले के म्हात खेचते जङ्गल ओँसों किन्ती हाथोंमें वृष और सिद्धर्य अंकर उठ रक्षककी ओर रोड़े ॥ ६० ॥

आम्बवांश्च सुपेण्यश्च वेपथ्यर्षी च कतरा ।
कुम्भकर्णोत्स्रज वीर ह्युवा सभित्तुमुहुः ॥ ६१ ॥
बामबान; सुपेण और केरुधरोंने कुण्ठित हो कर कुम्भकर्णकुमारपर धावा किया ॥ ६१ ॥

समीक्ष्यापतललांस्तु वानरेष्वाम् महाबलान् ।
आम्बधर शरीमेण जनेनञ्च जङ्गलायम् ॥ ६२ ॥
उन महाबली बानर-पुत्रकीजोंका आम्बलन करते रेश कुम्भने अपने बापकम्पुहोवाय उन लक्षके उठी तब एक

सप्तसप्ततितमः सर्गः

हनुमान्के द्वारा निकुम्भका वध

अस्तर इष्टा सुप्रीयेण निपातितम् ।
कोपेन चानोरम्भमुनेरुत ॥ १ ॥

इ हाय अनेने मारि कुम्भका माप गया देल
वानरराजकी ओर इव प्रकर देला माना उन्हे
ते दग्ध कर देगा ॥ १ ॥

रामसनर्था वृत्तपञ्चाङ्गगुल शुभम् ।
परिचं धीरो महेन्द्रशिकरोपमम् ॥ २ ॥

धीर-धीरने महेन्द्र कर्तके शिकर-जैसा एक सुन्दर
लख परिच हायने किया; जो पूछोकी कछिपोंसे अर्कद्वय
किसेम पौन-पौच भंगुके चौड़े छारेके पत्र बड़े
। २ ॥

परिक्षिप्तं वज्रपितुमभूषितम् ।
शोपम भीम रक्षसां भयनाशामम् ॥ ३ ॥

उ परिपसे खनेके पत्र मी बड़े ये और उमे हीरे तथा
भी निपुणित किना गया था। वह परिच यमरुकेके समान
र तथा राखनेके भयकर माघ करनेवाला था ॥ ३ ॥

पेष्य महातज्जा शकृत्पञ्जसमीजसम् ।
तद् विधुत्तास्यो निकुम्भो भीमविक्रमः ॥ ४ ॥

उठ इन्द्र-बनके समान वैश्वी परिपको पुमावा मुझ वह
। कभी भयानक पराकामी राख निकुम्भ हुँह देखाकर
केरते गर्जना करते लगा ॥ ४ ॥

गतल निष्केय भुञ्जस्वीरङ्गैरपि ।
वज्रान्ध्यां च विषान्ध्यां मासृपा च सचिन्त्रया ॥ ५ ॥

कुम्भो भूपैभाति तन स्र परिपञ्च च ।
धन्वधनुया ममः सविद्यारस्तनपिरनुमान् ॥ ६ ॥

उत्के क्वाकलने खनेकर पदक था। मुझभोंमें बाव
र शोम देते थे। कर्तोंमें विचित्र कुम्भक हयमन्त्र रहे
। और क्लेशमें विचित्र मासृ कामना रही थी। इन सब
आभूषणों और उठ परिपसे भी निकुम्भकी वैश्वी ही शोमा
हो रही थी; जैसे विद्युत् और गर्जनासे कुछ मंत्र इन्द्र-पशुपते
सुयोगित इष्ट रहे ॥ ५ ॥

परिप्रापेण पुस्फोटे घातप्रस्थिर्महात्मनः ।
प्रजम्बास सद्योपद्य विधुम् इव पावका ॥ ७ ॥

उठ महात्म्य यक्षके परिपके अयमासे डककर प्रकर
आवह यदि उठ महाबाहुमेंके वंशि दूद-दूद गयी तथा वह
भारी गड़गड़ाहटके साथ धूमरहित अग्निभी मोंसे प्रस्थित
हो उठा ॥ ७ ॥

नन्या पित्र्यावत्या गन्धर्षभपनोत्तमिः ।

सतारागणनक्षत्रं ससम्प्रसमहामहम् ।
निकुम्भपरिघातपूर्णे भ्रमतीप मभस्वहम् ॥ ८ ॥

निकुम्भके परिघ पुमानसे विटपनवी नगरी (अम्बकपुरी);
गन्धर्वोंके उत्तम मयन; शरिः नक्षत्र; चन्द्रमा तथा बड़े-बड़े
महोंके साथ समस्त आकाशमण्डल पूम्ब-ख प्रवीत हाया था ॥

पुरासद्भ्य सज्जं परिग्रभरणप्रभा ।
प्रोचन्धनो निकुम्भाभिर्युगान्त्वामिरिपोरिपतः ॥ ९ ॥

परिघ और आभूषण ही कितनी प्रभा ये शेष ही कितन
खिने ईषनका क्रम कर रहा था वह निकुम्भ नामक अग्नि
प्रसमकक्षत्री भ्रमके समान उठी और अत्यन्त दुर्बल हो
गयी ॥ ९ ॥

राससा बानवाभ्यापि न दोकुः सन्पितुं भयात् ।
हनुमास्तु विदुत्पोरस्तासौ प्रमुञ्जतो पत्नी ॥ १० ॥

उठ कस्य रास और वानर भयके मारे रिङ्-हुङ्ग मी
न उठ। केरक म्हात्म्यी हनुमान् अग्नी काही लाकर उठ
रासके सामने खड़े हो गये ॥ १ ॥

परिषोपमयाद्भुस्तु परिघ भास्करप्रभम् ।
वळी पल्लवतस्तस्य पातयामास पक्षसि ॥ ११ ॥

निकुम्भकी मुञ्चएँ परिपक समान थीं। उठ महापत्नी
रक्षसे उठ धूर्तुत्स्य तन्मयी परिपको कमान् धीर हनुमान्-मी-
की काटीकर दे माप ॥ ११ ॥

स्विरं तस्योरसि ब्यूढं परिघा द्यतभा स्रजा ।
विशीर्यमाणा सहसा उरुकाश्रुतिमिन्द्रपर ॥ १२ ॥

हनुमान्कीके काही बड़ी मुटु और विघाण थी। उत्के
रूपते ही उठ परिपक खला सेकड़ों दुकड़ होकर बिलर गया,
मानो अम्बकधर्म ले-ले उरुकाएँ एक साथ गिरी हों ॥ १२ ॥

स तु तन प्रहारेण न क्षवाळ महाकफि ।
परिषण्य समापृता यथा भूमिचलउचल ॥ १३ ॥

महाकफि हनुमान्की परिपसे आवह होनेपर भी उठ प्रहर
से बिचलित नहीं हुए; जैसे नूकन होनेपर भी कर्त नही
गिया ॥ १३ ॥

स तथाभिहतस्तन हनुमान् भूषणोत्तम ।
सुष्टिं सवकतामास पसन्प्रतिमहापत्न ॥ १४ ॥

अत्यन्त महन् यक्षायती बनरविद्यमन्वि हनुमान्कीन इव
प्रकार परिपकी मार लाकर पक्षुर्बक अग्नी मुझी वीपी ॥ १४ ॥
तमुद्यम्य महातज्जा निकुम्भारसि पीययान् ।
अभिविहाय पगन पगयान् धानुविक्रमः ॥ १५ ॥

॥ १५ ॥

उपलम्भभाषावैव नासि धीर मया इतः ।
कृतकर्मपरिधम्यो विभान्तः पद्य मे वसम् ॥ ७९ ॥
धीर । अस्तक अ मीन इत्याप पय नहीं किया है,
उसने करण है अंगोंके उपलम्भक मय—योग यह करण
मेरी निन्दा करते कि कुम्भ बहुतसे वीरोंके लय युद्ध करके
यह गया था उस वधानमें सुमीने उसे मार है, अतः मय
तुम कुछ निभाम कर जा, फिर मेरा यह देखो ॥ ७९ ॥
नन सुमीबधकथेन सावमनेन भागितः ।
भन्नराज्यवृत्तस्येव तेजस्तस्याम्बधत् ॥ ८० ॥

सुमीके इस अपमानयुक्त बचनद्वारा सम्मानित हो
धीरे भावुति पावे हुए अग्निदेवके समान कुम्भका तेज
बढ़ गया ॥ ८० ॥
ततः कुम्भस्तु सुमीधं पाशुभ्यां जगृहे तदा ।
गज्यविपातीतमसौ निज्वसन्तो मुमुक्षुः ॥ ८१ ॥
अपोन्यगात्रप्रपिती धर्मन्तावितरेतरम् ।
सधूर्मां मुखतो ज्वालां विरुजन्ती परिधमात् ॥ ८२ ॥

फिर तो कुम्भने सुमीबध अपनी दोनों मुखाजसे पकड़
लिया । तबभात् ये दोनों धीर मयमच गम्भारोंकी मौति
बारबार कभी कभी बीचो बीच हुए एक-दूसरेसे गुँध गये । दोनों
दनोंका रगड़ने लगे और दोनों ही अपने मुलत परिभनके
धरम धूमयुक्त आगकी ज्वाला-सी उगड़ने लगे ॥ ८१-८२ ॥
तयोः पादाभिधाताश्च निमग्न्या चाभकमही ।
व्याधूर्णिततरङ्गश्च धुधुमे वदनालया ॥ ८३ ॥
उन दोनोंके पैरोंके आधरसे परती नीबको धँसे लगी ।
हथी हुई उड़ते हुए वदनात्म्य लुद्रमे आर-ज
आ गया ॥ ८३ ॥

ततः कुम्भ समुखिष्य सुमीधो लपयाम्भसि ।
पल्लयामास धगेन धर्षण्यनुवधेस्तम् ॥ ८४ ॥
इतनेहीमें सुमीने कुम्भका उठाकर बड़े बगले लुद्रके
बलम रोक दिया । उसमें गिरते ही कुम्भका लुद्रका निज्ज
तक बेलना पड़ा ॥ ८४ ॥
ततः कुम्भनिपातं जलराशिः समुत्थितः ।
विश्रमाम्बरसङ्घाशो विससर्पं समन्ततः ॥ ८५ ॥

कुम्भके गिरनेसे बड़ी भारी जलराशि ऊपरको उठी अ
किन्त्य और मन्दपथके समान जान पड़ी और सब ओर
पैर गयी ॥ ८५ ॥
ततः कुम्भः समुत्पत्य सुमीधमभिपात्य च ।
अज्रपागरसि मुञ्जा वज्रकल्पम मुत्थि ॥ ८६ ॥
इतके बाद कुम्भ पुनः उठकर बार भया और क्षय-
पूर्ण सुमीका परककर उनकी छातीपर उठने बज्रके समान
मुन्धेसे प्रार किया ॥ ८६ ॥

इत्यारं भीमवृत्ताय च वास्मीकी च आदिवासे मुद्रकापे परमस्तितमः धर्ताः ॥ ७९ ॥
इह प्रकार अरुणकीभिर्मित आवासान्त अरुणका मुद्रकापेने विदसरोर्त्तं पूरा हुआ ॥ ७९ ॥

तस्य धमं च पुस्त्येष्ट सज्जे चापि शोकिन्म् ।
तस्य मुष्टिर्धावेगः प्रतिजप्तेऽस्मिन्वद ॥ ८७ ॥
इसके बानरवधन कनक दूध गन्ध और कलौसे
बने लगे । उसका महान् केलाकी मुक्क सुमीकी
पर बड़े वेगसे लगा था ॥ ८७ ॥
तस्य वेगेन तत्रासीत् तेजः प्रज्जसित महत् ।
वज्रनिष्पेयसङ्घाता ज्वाला मेरोर्यथा गिरे ॥ ८८ ॥
उसके वेगसे वहाँ बड़ी भारी ज्वाला एक ठी
गानो मेरु पर्वतके शिखरपर बज्रके अघातसे भया प्रक-
गयी हो ॥ ८८ ॥

स तथाभिहतस्तेन सुमीधो कानरर्षभा ।
मुष्टिं स्वतयामास वज्रकल्प महावज्रः ॥ ८९ ॥
अर्थःसाहस्रविकचरविमन्वद्वज्रकल्पम् ।
स मुष्टिं पातयामास कुम्भस्योरसि वीर्यवान् ॥ ९० ॥
कुम्भके द्वारा इस प्रकार अहत होनेका वस्तु
महावकी परम पराक्रमी सुमीने भी अपना वज्रकल्प मु-
ठेगाय और कुम्भकी छातीमें कर्णपूर्वक मारवा किया ।
मुक्केपर तेज लसते फिरातेसे प्रकथित सूर्यमण्डले लय
उठीत हो रहा था ॥ ८९-९० ॥

स मु तं प्रहारेण विद्वल्लो मुशपीडितः ।
निपपात तदा कुम्भां गज्यविषिच व्रवका ॥ ९१ ॥
उस प्रहारेसे कुम्भके बड़ी पीड़ा हुई । वह लुद्रके
मुकी हुई अगदी लय गिर पड़ा ॥ ९१ ॥
मुष्टिनाभिहतस्तेन निपपातञ्च राक्षसः ।
खेहित्वह इवाकाश्यात् दीतरदिमर्षदृच्छया ॥ ९२ ॥
सुमीधके मुक्केकी चोट साफ़ वह उल्टा मन्धरसे
अकसात् गिरनेवाले मन्धरकी मौति लक्ष्य परपा
से गया ॥ ९२ ॥
कुम्भस्य पत्तो रूप भन्स्येरेसि मुष्टिः ।
बभौ उद्राभिपन्नस्य यथा रूपं गर्वा पते ॥ ९३ ॥

मुक्केकी मारसे शिखर कथासक पूर-पूर हो गया अ
वह कुम्भ सब नीचे गिरने लगा उस उल्टा लय करेसे
अभिभूत हुए सुर्विकके समान जान पड़ा ॥ ९३ ॥
तस्मिन् हते भीमपराक्रमेण
मूवगमान्वासुपनेष युदे ।
मरी सशैल्य सवना यथास
अर्थं च रक्षांशयधिकं विवेधा ॥ ९४ ॥
अर्थकर पराक्रमी बानरवध सुमीके द्वारा मुद्रके उठ
निघानरके मारे जानेका फल और दोनोंके लगी हुई
होने लगी और राधकेक हृदयमें मन्धरा मय लगा गया ॥

अर्थकर पराक्रमी बानरवध सुमीके द्वारा मुद्रके उठ
निघानरके मारे जानेका फल और दोनोंके लगी हुई
होने लगी और राधकेक हृदयमें मन्धरा मय लगा गया ॥

तस्य धमं च पुस्त्येष्ट सज्जे चापि शोकिन्म् ।
तस्य मुष्टिर्धावेगः प्रतिजप्तेऽस्मिन्वद ॥ ८७ ॥
इसके बानरवधन कनक दूध गन्ध और कलौसे
बने लगे । उसका महान् केलाकी मुक्क सुमीकी
पर बड़े वेगसे लगा था ॥ ८७ ॥
तस्य वेगेन तत्रासीत् तेजः प्रज्जसित महत् ।
वज्रनिष्पेयसङ्घाता ज्वाला मेरोर्यथा गिरे ॥ ८८ ॥
उसके वेगसे वहाँ बड़ी भारी ज्वाला एक ठी
गानो मेरु पर्वतके शिखरपर बज्रके अघातसे भया प्रक-
गयी हो ॥ ८८ ॥

स तथाभिहतस्तेन सुमीधो कानरर्षभा ।
मुष्टिं स्वतयामास वज्रकल्प महावज्रः ॥ ८९ ॥
अर्थःसाहस्रविकचरविमन्वद्वज्रकल्पम् ।
स मुष्टिं पातयामास कुम्भस्योरसि वीर्यवान् ॥ ९० ॥
कुम्भके द्वारा इस प्रकार अहत होनेका वस्तु
महावकी परम पराक्रमी सुमीने भी अपना वज्रकल्प मु-
ठेगाय और कुम्भकी छातीमें कर्णपूर्वक मारवा किया ।
मुक्केपर तेज लसते फिरातेसे प्रकथित सूर्यमण्डले लय
उठीत हो रहा था ॥ ८९-९० ॥

स मु तं प्रहारेण विद्वल्लो मुशपीडितः ।
निपपात तदा कुम्भां गज्यविषिच व्रवका ॥ ९१ ॥
उस प्रहारेसे कुम्भके बड़ी पीड़ा हुई । वह लुद्रके
मुकी हुई अगदी लय गिर पड़ा ॥ ९१ ॥
मुष्टिनाभिहतस्तेन निपपातञ्च राक्षसः ।
खेहित्वह इवाकाश्यात् दीतरदिमर्षदृच्छया ॥ ९२ ॥
सुमीधके मुक्केकी चोट साफ़ वह उल्टा मन्धरसे
अकसात् गिरनेवाले मन्धरकी मौति लक्ष्य परपा
से गया ॥ ९२ ॥
कुम्भस्य पत्तो रूप भन्स्येरेसि मुष्टिः ।
बभौ उद्राभिपन्नस्य यथा रूपं गर्वा पते ॥ ९३ ॥

मुक्केकी मारसे शिखर कथासक पूर-पूर हो गया अ
वह कुम्भ सब नीचे गिरने लगा उस उल्टा लय करेसे
अभिभूत हुए सुर्विकके समान जान पड़ा ॥ ९३ ॥
तस्मिन् हते भीमपराक्रमेण
मूवगमान्वासुपनेष युदे ।
मरी सशैल्य सवना यथास
अर्थं च रक्षांशयधिकं विवेधा ॥ ९४ ॥
अर्थकर पराक्रमी बानरवध सुमीके द्वारा मुद्रके उठ
निघानरके मारे जानेका फल और दोनोंके लगी हुई
होने लगी और राधकेक हृदयमें मन्धरा मय लगा गया ॥

अर्थकर पराक्रमी बानरवध सुमीके द्वारा मुद्रके उठ
निघानरके मारे जानेका फल और दोनोंके लगी हुई
होने लगी और राधकेक हृदयमें मन्धरा मय लगा गया ॥

अर्थकर पराक्रमी बानरवध सुमीके द्वारा मुद्रके उठ
निघानरके मारे जानेका फल और दोनोंके लगी हुई
होने लगी और राधकेक हृदयमें मन्धरा मय लगा गया ॥

अर्थकर पराक्रमी बानरवध सुमीके द्वारा मुद्रके उठ
निघानरके मारे जानेका फल और दोनोंके लगी हुई
होने लगी और राधकेक हृदयमें मन्धरा मय लगा गया ॥

अर्थकर पराक्रमी बानरवध सुमीके द्वारा मुद्रके उठ
निघानरके मारे जानेका फल और दोनोंके लगी हुई
होने लगी और राधकेक हृदयमें मन्धरा मय लगा गया ॥

अर्थकर पराक्रमी बानरवध सुमीके द्वारा मुद्रके उठ
निघानरके मारे जानेका फल और दोनोंके लगी हुई
होने लगी और राधकेक हृदयमें मन्धरा मय लगा गया ॥

अर्थकर पराक्रमी बानरवध सुमीके द्वारा मुद्रके उठ
निघानरके मारे जानेका फल और दोनोंके लगी हुई
होने लगी और राधकेक हृदयमें मन्धरा मय लगा गया ॥

अर्थकर पराक्रमी बानरवध सुमीके द्वारा मुद्रके उठ
निघानरके मारे जानेका फल और दोनोंके लगी हुई
होने लगी और राधकेक हृदयमें मन्धरा मय लगा गया ॥

सप्तसप्ततितम सर्गः

हनुमान्के द्वारा निकुम्भका वध

निकुम्भो आतर इष्य सुमीयेण निपातितम् ।
 प्रहृष्टिष कोपल वानरेन्द्रमुदैहस्य ॥ १ ॥
 मुमीषके वर्य अने भय कुम्भक माण ग्या देल
 निकुम्भने वनरराजकी अंर इव प्रकार देला; मानो उन्हें
 अने श्रेष्ठे दण्य कर देग ॥ १ ॥
 एता सन्ध्यामसन्ध्रं वृत्तपञ्चाङ्गगुल शुभम् ।
 भाद्र परिष धीरो महेश्वरशिखरोपमम् ॥ २ ॥
 उठ पीर-धीरने महेश्वर परतके शिखर-जैव एक मुन्तर
 एवं विशाल परिष हाथमें स्थित अ पूज्योत्री छविमोते मण्डल
 का और किने पाँच-पाँच अंगुलके चौड़े छात्रक पत्र बड़े
 गये थे ॥ २ ॥
 हेमपद्मपरिक्षिप्तं वज्रविभुमभूषितम् ।
 यमदण्डोपमं भीम रक्षसा भयनाशनम् ॥ ३ ॥
 उठ परिषमें छानेके पत्र भी बड़े थे और उम हीरे तथा
 मूंगेसे भी विभूषित किया गया था। वह परिष वनरराजके समान
 मर्याद तथा राजसौके अथवा नग्न करनेवाला था ॥ ३ ॥
 तमाविष्य महातज्जा शक्यजसमीजसम् ।
 किन्नाद विधुचासो निकुम्भो भीमविक्रमः ॥ ४ ॥
 उठ इन्द्रजन्मके समान तन्मयी परिषका सुमत्या हुआ वह
 महातेजस्वी मयनक पराक्रमी राजस निकुम्भ हुए राजकर
 अर-अरते गर्जन करने लगा ॥ ४ ॥
 उरोगतल निष्केण भुजस्पर्शवैरपि ।
 कुण्डसाम्यां च विद्याभ्यां मालया च सचित्रया ॥ ५ ॥
 निकुम्भो भूषयैभाति तत्र स परिषण च ।
 यथन्द्रधनुषा मया सविद्युस्तलपितुमान् ॥ ६ ॥
 उरुद वक्रःसकमें छानेका पदक था। भुजाओंमें शक्य
 वर ग्रन्थ होते थे। कर्णोंमें विचित्र कुण्डल शतमाल रर
 थे और गर्भमें विचित्र माला कानगा थी थी। इन सब
 आभूषणसे और उठ परिषने भी निकुम्भकी देखी ही थाभा
 हा थी थी उस विभु और गर्जनाने युक्त मय इन्द्र धनुषने
 मुष्णप्रतिव दगा है ॥ ६ ॥
 परिषापल पुस्कन्द पतप्रन्थिमहात्मनः ।
 प्रजम्बाञ्च सपारम्ब विभूम इव वाक्का ॥ ७ ॥
 उठ महाशय राजसक परपक अग्रधाने उद्वारकर प्रवह
 आरह अदिर सन महागुणधरो की कृप दूर दूर गयी तथा वह
 अरी गङ्गाद्वारक साथ भूमरित भक्तिकी मोती प्रनन्ति
 हा उठा ॥ ७ ॥
 कया विदपाह्वया गन्धपभयनाद्यम् ।

सत्पारागणनक्षत्र सचन्द्रसमहाप्रहम् ।
 निकुम्भपरिषापूर्णे भ्रमतीय नभस्सखम् ॥ ८ ॥
 निकुम्भके परिष सुमानेसे किष्कण्डी नगरी (मल्लप्रपुरी)
 गन्धर्वके उद्यम मफल धार नक्षत्र, चन्द्रमा तथा बड़े-बड़े
 प्रदोंके साथ समस्त व्यक्तिसमष्टिक पूज्य-स्य प्रकीर्त हाता था ॥
 सुरासद्वय सज्जे परिषाभरणप्रभा ।
 अघनधनो निकुम्भाम्भियुगास्त्वाम्निरिषोत्पितः ॥ ९ ॥
 परिष और मानूपण ही किष्कण्डी प्रमा थे; श्रेष्ठ ही किष्क
 ण्डी ईश्वरका काम कर रहा था वह निकुम्भ नामक अग्नि
 प्रक्यवाक्यकी भागके समान ठठी और अत्यन्त युवैय हो
 गयी ॥ ९ ॥
 राजसा यानराभापि व दक्षुः स्यम्बितु भयात् ।
 हनुमान्तु विवृत्पारस्तस्वी प्रमुस्ततो यस्वी ॥ १० ॥
 उठ सम्य राजस और वानर भयके मोरे विद्व-बुद्ध की
 न सक। इन्द्र महाशय हनुमान् मन्त्री छली लाकर उठ
 राजसके समने लाइ हो गये ॥ १ ॥
 परिषापमशाहुस्तु परिष भास्करप्रभम् ।
 यस्वी पलयतस्तस्य पातयामास यस्तसि ॥ ११ ॥
 निकुम्भकी भुजाएँ परिषके समान थीं। उठ महाशय
 राजसने उठ मृत्युस्य तेजस्वी परिषका कबवान् पीर हनुमान्जी-
 की छलीपर दे माय ॥ ११ ॥
 स्थिर तस्योरसि म्यूह परिष शतभा पूताः ।
 विकीयमाजा सहसा उरुपागतमियाम्पर ॥ १२ ॥
 हनुमान्कीकी छली बड़ी मुहद और विशाल थी। उरुमा
 उच्यते ही उस परिषके छाया तेजसों दुकद हाकर किलर गये;
 अन्त अग्रघने छे-छे उरुपाएँ एक साथ गिरी हों ॥ १२ ॥
 स तु तत्र प्रहारण न चवाञ्च महाकफिः ।
 परिषण समापूता यथा भूमिषलङ्घयत् ॥ १३ ॥
 महाकफि हनुमान्की परपठ आरत हानेर भी उठ प्रहार
 से विचम्बि नहीं हुए; बस भूकण्य हानेर भी पतन नही
 श्रित्य है ॥ १३ ॥
 स तयभिहतस्तन हनुमान् वृषगण्यतमः ।
 मुष्टि सपतयामास पलनातिमहापलः ॥ १४ ॥
 अथवा मदान् वरुणाधी वानरपरिषण्य हनुमान्धन इन
 प्राण परपकी मार त्याग्य वरुणके अन्धी मुष्टी बापी ॥ १४ ॥
 तमुद्यम्य महातज्जा निकुम्भारसि यीययान् ।
 भनिचिरैव पगन पगयान् पायुकिन्मः ॥ १५ ॥

वे महान् तेमस्वी, पराङ्गी, वेगवान् और बायुके समान
बल-शक्तिसे सम्पन्न थे। उन्होंने मुक्ता तनकर बड़े केसे
निकुम्भकी छातीपर मार ॥ १५ ॥

तत्र पुस्तप्रेट बर्मास्य मसुस्त्रात् च शोभितम् ।
मुष्टिना तेन सज्जो मेधे विपुविचोत्थिता ॥ १६ ॥

उस मुक्ककी घोटसे बर्मा उसका कपच फट गया और
छातीसे रक्त बहने लगा मानो मेधमें विकम्बी चमक उठी
हो ॥ १६ ॥

स तु तेन प्रहारं च निकुम्भो विवक्ष्यन् च ।
स्वस्वभावि निजप्राह हनुमन्त महाबलम् ॥ १७ ॥

उस प्रहारेसे निकुम्भ विचलित हो उठा फिर बोली ही
वेरमें ईभककर उसने महाबली हनुमान्कीच पकड़ लिया ॥

शुक्रशुक्र तथा सख्ये भीमं छद्मनिवासिनः ।
निकुम्भेन्द्रेघटं बद्ध्वा हनुमन्त महाबलम् ॥ १८ ॥

उस समय युद्धसकमें निकुम्भके हाथ महाबली हनुमान्
कीच अग्रहण होता देख छद्मनिवासी राक्षस म्यानक खरने
विचमसूचक गर्बना करने लगे ॥ १८ ॥

स तथा द्वियम्यषोऽपि हनुमांस्तन रक्षसा ।
अजघ्नानलिखसुतो वषट्कश्रेण मुष्टिना ॥ १९ ॥

उस राक्षसके द्वारा इस प्रकार अग्रहण होनेपर भी पवनपुत्र
हनुमान्कीने अपने बलद्वयसे मुक्ककेसे उत्तर प्रहार किया ॥ १९ ॥

आरमानं मोक्षयित्वाथ क्षित्वावम्लवपघत ।
हनुमानुगममायासु निकुम्भ मादत्तारमज्ज ॥ २० ॥

फिर वे अनेकसे उसके फलसे कुड़ाकर पृथीपर लड़े
हो गये। उधन्तर बायुपुत्र हनुमानने उत्कण्ठ ही निकुम्भको
पृथीपर दे मार ॥ २ ॥

इत्यार्ये श्रीमद्भगवत्पुत्रे वाक्मीकिये आदिशब्दो बुद्धशब्दे लक्षसंज्ञितमाः सर्गाः ॥ ३० ॥

इस प्रकार श्रीवल्मीकीनिर्मित आदिमानव कथिकम्भके बुद्धशब्दमें स्तहउत्तरीं सर्व पूरा हुआ ॥ ३० ॥

अष्टसप्ततितम सर्ग

रावणकी आज्ञासे मकराक्षका युद्धके लिये प्रस्थान

निकुम्भ मिहत् भुत्वा कुम्भ च बिलिपाठितम् ।
रावणः परमार्थी प्रज्ज्वालकम्बो यथा ॥ १ ॥

निकुम्भ और कुम्भको मार गया सुनकर रावणको बड़ा
शोक हुआ। वह आगके समान लक्ष उठा ॥ १ ॥

मैश्रुताः क्रोधभोग्नाम्नां द्वाभ्यां तु परिमुञ्चिताः ।
खरपुत्र विशालाक्ष मकराक्षमजोद्वयत् ॥ २ ॥

रावणने क्रोध और शोक दोनोंसे व्यकुल हो विद्याल
नेनोंका लक्षण मद्रपक्षे करा— ॥ २ ॥

गच्छ पुत्र मयाऽऽपगतो पक्षन्वभिसमन्वितः ।
रावण लक्ष्मण शैव जहि ती सखनीकसी ॥ ३ ॥

मिक्षित्य परमायत्तो निकुम्भं निक्षिरेव च ।
उत्पत्य चास्य वेगोल पप्योरसि वेपकन् ॥ १ ॥
परिवृष्टश्च वाहुभ्यां परिवृत्त्य शिरोधराम् ।
उत्पादयामास शिरो धैरवं नन्दते मत् ॥ २ ॥

इसके बाद उन कोणासी धीरने बड़े प्रयासे निकुम्भ
पृथीपर गिराया और लक्ष रागा। फिर केसे लक्ष
उसकी छातीपर चढ़ बैठे और दोनों हाथोंसे गन्ध मने
उन्होंने उसके मस्तकको उखाड़ लिया। गन्ध मनेहते व
वह लक्ष भस्मकर आर्तनाद कर रहा था ॥ २१ २२ ॥

अथ निन्दति साक्षिते निकुम्भे
पवनसुतेन रणे बभूव युद्धम् ।

वधारणसुतराक्षसेन्द्रस्त्वो-
भुंशतरमागतरोचयोः सुभीमम् ॥ २३ ॥

रणभूमिमें बायुपुत्र हनुमान्कीके द्वारा गर्बन करने
निकुम्भके मारे जानेपर एक वृक्षेपर अस्मत् कुक्षित ।
श्रीयम और मकराक्षमें बड़ा मर्मकर युद्ध हुआ ॥ २३ ॥

व्यपते तु जीवे निकुम्भस्य हृद्य
बिन्दुः पूर्वांग विद्याः सखलुब्ध ।

ज्वालेव चोर्षी पश्यतेव सा यी-
र्षं राक्षस्तामा भय नाशिवेश ॥ २४ ॥

निकुम्भके प्रायःभाग करनेपर सखी बालर बड़े हर्षके व
गर्बने लगे। सम्पूर्ण विद्याएँ कोब्रह्मसे भर गयीं। वृ
चकली-सी बन पकी भाषाकर मना फट पड़ा हे ऐश शरी
होने लगा वष्य राक्षसेंकी सेनामें मय क्या गया ॥ २४ ॥

वेद्य । मेरी आज्ञासे विद्याल सेनाके वाप बंधे और
बंधरंशित उन दोनों माई राम तथा लक्ष्मणको मर
जाय ॥ ३ ॥

रावणस्य बजाः भुत्वा शूद्रमानी करारमजा ।
बाहमित्यवधीदृष्टो मकराक्षो मिदाचरम् ॥ ४ ॥

सोऽनिवाद्य द्यूशीच कृत्वा चापि प्रक्षिपम् ।
निर्वागाम द्यूशानुभ्याद् रावणस्याश्रया बली ॥ ५ ॥

रावणकी यह बात सुनकर अनेकसे दूरधीर मनेनेबने
करपुत्र मकराक्षने हर्षपूर्वक करा—पहुत अफना। फिर
उस कभी धीरने निदाचररावणकको प्रणाम करके उठी

परिक्रमा की और उठकी आवा सेकर वह उन्नत राजमन्त्रने
 शर निरुद्ध ॥ ४८ ॥

समीपस्थं पलाय्यन्न सरपुत्रोऽग्रभीष्टं वचः ।
 रथमानीयता तूर्णं सैन्य स्थानीयता स्वरात् ॥ ५ ॥

पाव ही सेनाप्यन्न लड़ा या । शरके पुत्रने उठने प्या-
 केन्यते । वीर रथ ल आभो और द्रुत ही सेनाको भी
 बुझायो ॥ ५ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा वक्ष्यन्त्यसौ निशाचरः ।
 समन्तं च वल्लं चैव समीपं प्रत्यपाक्ष्यत् ॥ ७ ॥

मकरध्वजी यह बात सुनकर निशाचर सेनापतिने रथ और
 सेना उसके पक्ष धरकर लड़ी कर दी ॥ ७ ॥

प्रक्षिप्य रथं कृत्वा समावृष्टं निशाचरः ।
 वृत्तं सचोक्ष्यामास शीघ्रं वै रथमावृष्टं ॥ ८ ॥

तब मकरध्वने रथकी प्रक्षिप्या की और उठकर आकर
 शर सरपिण्डे आदेश दिया— रथको घेरियो पूर्वक से
 पछे ॥ ८ ॥

भयं तान् राक्षसान् सर्वान् मकराक्षोऽग्रधीक्ष्वम् ।
 यूथं सर्वे प्रयुष्यन्थ पुरस्तात्तमम राक्षसाः ॥ ९ ॥

इसके बाद मकरध्वने समस्त राक्षसें कहा— निशाचर ।
 हमसे भय मत करो ॥ ९ ॥

महं राक्षसराजेन रायणेन महारथना ।
 भाङ्गताः समरे हस्तुं तापुभौ रामकर्मणौ ॥ १० ॥

मुझ महामना राक्षसराज रामने समरभूमिमें राम और
 कर्मण देनों माइयोंके मारनेकी आज्ञा दी है ॥ १० ॥

भयं रामं वधिष्यामि कर्मण च निशाचरा ।
 शाकाम्नां च सुप्रीव वानरांश्च शरोचमैः ॥ ११ ॥

पावसे । आब मैं राम कर्मण बानरराज मुण्डे तथा
 शरोंके बानरोंके मारने उन्नत बानरोंका बंध करूँगा ॥

भयं शूलनिपातैश्च दानपत्रां महाबभूम् ।
 भ्रष्टहिष्यामि सम्प्राप्तं शुक्रेण्यमिमांशुः ॥ १२ ॥

जैसे भयं शूली सक्कीको कर्म देती है उठी प्रकार आज
 मैं शूलोंकी मारने कर्मने कर्मों हुई बानरोंकी निशाक वधिनीके
 कर्म कर जाऊँगा ॥ १२ ॥

मकराक्षस्य सधुल्या वचनं तं निशाचरा ।
 सर्वे मान्युधापता पक्ष्यन्तः समाहिताः ॥ १३ ॥

मकरध्वज यह वचन सुनकर नाना प्रकारके अस्त्रबाणसे
 समस्त वे समस्त पक्ष्यात् निशाचर मुझक विषे धरवान
 हो गये ॥ १३ ॥

तं वामरूपिणां हृत् वृष्टिषा पिच्छलक्षणाः ।
 मत्तगा इव नन्द्या रस्तकृता भयविहाः ॥ १४ ॥

परियाय महाकाया महाकाय सरात्मजम् ।
 मभिज्ञमुस्तातो ह्यथाबालपत्नौ यस्तुम्भराम् ॥ १५ ॥

य वचकेस्य इच्छातुखर रूप भारण करनेवाले भेरे मू-
 स्वमापक थे । उनकी दाईं बही-बाही और आँसू नूरी थीं ।
 उनके केश सब और किले हुए थे इच्छिये वे बड़े मयलक
 बन पड़ते थे । हाथीक समान विस्फटते हुए वे विशालकाय
 निशाचर सरक पुत्र महाकाय मकरध्वज चारों ओरसे घेरकर
 पृथ्वीको कंधते हुए यह हर्षके साथ युद्धभूमिमें और
 चले ॥ १५ १६ ॥

शङ्कुमेरीसहस्राणामाहताना समन्ततः ।
 क्षोडितास्फोटितानां च तत्र शश्रुमो महानभूत् ॥ १६ ॥

उस समय चारों ओर सहस्रों शङ्कुकी ध्वनि हो रही थी ।
 इन्होंने इन्हें पीटे जते थे । घोड़ाओंके गर्दने और ताक
 ठोंकनेकी अवशय भी उनके साथ मिठी हुई थी । इस प्रकार
 बहों बड़ा भारी क्षोडक मच गया था ॥ १६ ॥

प्रक्षोभ्य करात् तस्य प्रतोदः सारथेस्तथा ।
 पपात साहसा दैवात् ध्वजस्तस्य तु रक्षसाः ॥ १७ ॥

उस समय मकरध्वज के सारथिके हाथसे चातुर्क हूटकर
 नीचे गिर पड़ा और दैवध्वज उस राक्षसराज के भी कर्म
 प्रयोगी हो गया ॥ १७ ॥

तस्य ते रथसमुत्था हया विक्रमधर्षिताः ।
 चरपौरहकुलेर्गता दैत्याः साक्षमुत्था ययुः ॥ १८ ॥

उसके रथमें वृत्त हुए घोड़े विक्रमधर्षिता गये— वे अपनी
 नाना प्रकारकी विचित्र चालें मूक गये । पक्ष ठ कुट्ट हू-
 वर आकुल— सक्षुडवाते हुए पैरोंसे गये फिर दीकसे चलने
 लगे । परंतु भीरुते वे बहुत बली थे । उनके मुखपर
 भौंभूकी धारा बह रही थी ॥ १८ ॥

प्रवृत्ति पवनस्तस्मिन् सपासुः खरदाहणः ।
 निषाणे तस्य रीद्रस्य मकराक्षस्य तुर्मतेः ॥ १९ ॥

बुध बुद्धिवाते उस मकर राक्षस मकरध्वजी यात्राके
 समय धूमने मरी हुई दाहण एवं प्रवृत्त बाधु धक्के लगी
 थी ॥ १९ ॥

तानि हृष्टा निमित्तानि राक्षसा धीयत्तमाः ।
 अधिस्य निगताः सर्वे पत्र तो रामकर्मणौ ॥ २० ॥

उन सब अंगकुनोंमें देहकर भी वे महानकायकी राक्षस
 उनकी हर्ष पत्रा न करके सब कर्मण उस सानर गण बड़ी
 भीरव और कर्मण विषयने थे ॥ २० ॥

धनगजमहियाहस्तुस्यथया ।
 समरमुक्ष्यसहृद्वासिभिः ॥

भयमहमिति युद्धकाण्डस्त
 रजनियराः परियधमुमुक्षुः ॥ २१ ॥

ये त्वया निहता धृताः सद्यः सैव वसिष्ठासि ॥ १४ ॥

अब मरे बाणोंके वेगसे यमराजके राममें पहुँचकर
दुःखे उन्हीं वीर निघाञ्चरोंके खप निवास करना पड़ेगा जो
दुःखारे हाक्से मारे गये हैं ॥ १४ ॥

बहुभाष किमुक्तेन शृणु राम ध्रुवो मम ।

पश्यन्तु सकला लोकस्तस्यां मां चैव रणाञ्जिरे ॥ १५ ॥

ध्रुव । यहाँ बहुत करनेसे क्या काम ? मेरी बात सुना ।
सब लोग इस समयराज्यमें लड़े होकर केवल तुमको और
मुझको देखें—दुःखारे और मेरे युद्धका अभ्यक्षेण करें ॥ १५ ॥

मत्प्रेर्या गव्या पापि वाह्यभ्यां वा रणञ्जिरे ।

अभ्यस्तं येन वा राम धरतां तेन वा सूधम् ॥ १६ ॥

ध्रुव । दुःखे रणभूमिमें मझोंसे, गहासे भयवा दोनों
युद्धमेंसे—किससे भी सम्प्राप्त हो, उन्हींके द्वारा आज तुम्हारे
खप मेरा युद्ध है ॥ १६ ॥

मकरास्रवः श्रुत्वा रामो दशरथस्तमजः ।

अमरीचं प्रहसन् वाक्यमुत्तरोत्तरवादिनम् ॥ १७ ॥

मकरास्रकी यह बात सुनकर दशरथनन्दन मगलान्
भीरम और-जोसे हैंछने को और उत्तरोत्तर बातें करनेवाले
उस एकसे बोले— ॥ १७ ॥

कथसे कि वृथा रह्यो बहुम्यसहशानि त ।

न त्वे शक्यते अंतुं किंन युजेन धागकात् ॥ १८ ॥

'निघाञ्चर । कौं ध्ययं बीम हौंकर है । ठरे मुँहसे बहुत-
सी देखी बातें निकल रही हैं जो वीर पुरुषोंके योग्य नहीं है ।
स्वामिमें युद्ध किसे किना करी बरुवाके बसते विषम नहीं
मास से सज्जी ॥ १८ ॥

धृत्वृश सहस्राणि रक्षसा स्वस्तिव च यः ।

भिरिरा वृणमन्वापि वृषके निहतो मया ॥ १९ ॥

स्यारिष्टावापि मासेन शूभ्रगोमायुबायसा ।

भविष्मत्पराधै पाप तीक्ष्णतुण्डन्याहुता ॥ २० ॥

पानी उधर । यह ठीक है कि दण्डकारण्यमें जोरह
हकर एकमेंके साथ ठरे पिता करका भिरिराध और
वृणमन् भी मैंने बध किया था । उस समय तीली पोंप
और अगुहाके समान पंखधरे बहुतने गीधों गीरहों तथा
श्रीशंभू भी उनके मंके मन्की तरह वृत्त किया था और
अब आज वे ही मंके भरपेट भोजन पारंगे ॥ १९ २ ॥

राघवैषेधमुक्तरु मकरास्रो महापत्नः ।

बाणोध्यन्मुचत् तस्मै राघवाय रणाञ्जिरे ॥ २१ ॥

भीरुतापकेके देख करनेपर महाकवी मकरास्रेण एव
भूमिमें उनक ऊपर बाण मनुष्यों की बर्ता भरम्य कर री ॥

साम्भराम्भरार्येण रामधिच्छेद् नकथा ।

निवृत्तुमुपि विच्छिन्ना रुमपुङ्गा सहस्रशः ॥ २२ ॥

परंतु भीरुमने खप भी बाणोंकी जोरकर करके उस
एकसेके बाण टुकड़े-टुकड़े कर डाले । वे कट हुए धनदरी
पौलवाले खसों बध टुपीपर गिर पड़े ॥ २२ ॥

तद् युद्धमभवत् तत्र समस्थाप्योन्यमोजसता ।

स्ररास्तसपुषस्य सन्नेवेशरथस्य च ॥ २३ ॥

दशरथनन्दन मगलान् भीरुम और उधर सारके पुष
मकरास्र—इन दोनोंमें एक दूसरेके निकट भाकर कर्णवर्क
युद्ध होने लगा ॥ २३ ॥

जीमूतपारिवाकाश शप्यो ज्यातकपोरिव ।

धनुर्मुक्ताः खनोऽम्योन्यं श्रूयते च रणाञ्जिरे ॥ २४ ॥

उन दोनोंकी प्रत्यक्षा और हथेलीकी राइसे धनुषके द्वारा
ज टंडर शब्द प्रकट होता था वह उस समयराज्यमें परस्पर
भिन्नकर उन्हीं तरह झुनायी देता था, जैसे भाकराधमें दो
मझोंके गबनेकी मगलान शरीर है ॥ २४ ॥

वेवान्धवागन्धर्वौ किन्तराद्य महोरगात् ।

अन्तरिक्षगताः सर्वे द्रष्टुं कामास्तदनुत्तमम् ॥ २५ ॥

वेन्दा, वानर, गन्धर्व किसर और पड़े-बाड़े नाम—
ये सब-क-सब उस अद्भुत युद्धके देखनेके लिये अन्तरिक्षमें
भाकर लड़े हो गये ॥ २५ ॥

विशमन्वोन्यगात्रेषु विगुण धर्षते वलम् ।

कुत्प्रतिकुत्सम्योन्यं कुत्ता सी रणाञ्जिरे ॥ २६ ॥

दोनोंके शरीर बाणोंसे बिच गये वे छि भी उनका बध
तुष्टना पदता जाता था । वे दोनों संगामभूमिमें एक-दूसरेके
अधोंको मरते हुए लड़ रहे थे ॥ २६ ॥

राममुक्तास्तु वाणोद्यन् राक्षसस्तस्यच्छिन्नु रमे ।

रक्षोमुक्तास्तु रामो वै शैकधा प्राच्छिन्नच्छरैः ॥ २७ ॥

भीरुमकरास्रकेका छोड़े हुए बाण-धनुषोंके वह उधर
रणभूमिमें कट डालता था और उधरके कथये हुए खपके-
की भीरुमकरास्रकी अपने धणोंद्वारा टूक-टूक कर डालते थे ॥

बाणोद्यच्छिन्ना सर्वा विशास्य प्रविशस्तथा ।

सहस्रा वसुधा सैव समन्ताम् प्रकश्रत ॥ २८ ॥

अपूर्ण दिया और निरिदारों काज-समूहोंसे आच्छाणित
हो गयी थी तथा सारी पृथ्वी टक गयी थी । बाणों और कुत्
भी विलायी नहीं देता था ॥ २८ ॥

उता कुत्को महापापुधनुषिच्छिद् सयुग ।

मशभिरथ नापदैः स्र्म विष्याथ रामय ॥ २९ ॥

हरनन्तर महापापु भीरुमकरास्रकीने कथमें भरकर उस
गण्डक धनुषके युद्धभूमिमें कट िया और भाठ नाप-चौराए
उतक सारथिअ भी पंठ दिया ॥ २ ॥

भिस्या रथ दारै रामो हत्या भयानपातयत् ।

विरयो वसुधस्यः स मकराक्षो निशाचरः ॥ ३० ॥

किर मनेफ बगोंसे रपका छिन-मिन करके भीरामने पोहोंका नी मार गिया। रथीन हो बनेर निशाचर मकराक्ष भूमिपर लड़ा हो गया ॥ ३ ॥

तच्छिष्टं वसुधा रक्षः शूल उग्रह पाणिना ।

शासन सर्वभूतानां युगान्तामिसमप्रभम् ॥ ३१ ॥

भूमिपर लड़े हुए उस राक्षसेने शूल हाथमें छिया जो प्रथमब्रह्मरी अमिक उग्रान् वीशिमान् तथा समस्त प्राणिकोंको समनीत करनेवाला था ॥ ३१ ॥

पुरघाप महच्छूल रुद्रवत् भयकरम् ।

आग्न्यन्वमाममाकाशो सहारास्त्रमिधापरम् ॥ ३२ ॥

बह परम दुर्गम और महान् शूल भगवान् घंकरका दिया हुआ था जो बहुत ही मर्याद पर। बह बूके संहायकभी भौंसे आकाशमें प्रसन्न हो उठा ॥ ३२ ॥

यद्गुणैर्बलताः सवा भयातां विदुता विशाः ।

विभ्राम्य च महच्छूल प्रव्यसन्त निशाचराः ॥ ३३ ॥

स श्रेष्ठात् प्राहिणात् तस्मै रामवाय महाहय ।

उसे देखकर सभूने देकर मयसे पीड़ित हो सब दिशाओं में भाग गये। उस निशाचरने प्रसन्न होत हुए उस महान् शूलका प्रमाद महात्मा भीरुनामकीके ऊपर श्रेष्ठपूर्वक बलवा ॥ ३३ ॥

तमापतन्त ज्वलित सरपुष्कराच्छुतम् ॥ ३४ ॥

वापीक्षुर्भिरिकाशो शूल चिच्छेद् राक्षसाः ।

सरपुष् मकराक्षके हाथसे घूटे हुए उस प्रसन्न शूलको अपनी ओर आठ देस भीरामकन्द्रवीने चार बाण मारकर आकाशमें ही उलझ कर डाला ॥ ३४ ॥

स भिक्षो मैकधा शूला विष्वहाटकमण्डितः ।

ज्यशीर्यत महोलेष्व रामवाणावित्तो मुषि ॥ ३५ ॥

विष्व मुनकने विभूमित वह शूल भीरामके बाणोंसे मण्डित हो अनेक टुकड़ोंमें बँट गया और बड़ी भारी उरुअके समान भूतकर बिलर गया ॥ ३ ॥

हाथों श्रीमद्वाल्मीकीय वादिकाम्ये सुदकरणे पञ्चोक्तसीतितमाः स्तोः ॥ ३५ ॥

इम प्रकार आशस्त्रिकर्मिन्त मा गमाला अदकाम्ये सुदकायम वनामर्वा सर्व पूरा हुआ ॥ ३५ ॥

अशीतितम सर्ग

रावणकी आज्ञास इन्द्रजित्का पौर बुद्ध तथा उसका वधक विषयमें भीराम और लक्ष्मणकी बातचीत मन्त्रारण इत ध्रुवा रावणा समितिजय।

रावण महताविष्टा वृत्तान् कडकयाप्य च ॥ १ ॥

मदरथम मय गया मुनकर नमरुबबरो एवज महान

रावण भरनर होत पीन्ने सग्न ॥ १ ॥

तच्छूल निहत इष्टा रामेणाह्निहर्षणा ।
सायु साधिवि भूतानि व्याहरन्ति कभेगताः ॥ ३६ ॥

भनावाच ही महान् कर्म करनेवाले भीरामके इष्ट अ शूलको लथित हुआ देस आकाशमें लित हुए लई लई उन्हें छत्रुघार देने लगे ॥ ३६ ॥

त इष्टा निहत शूल मकराक्षो निशाचरा ।
मुष्टिसुपम्य कङ्कुरस्य विष्ट तिष्ठति जाग्रवीत् ॥ ३७ ॥

उस शूलके टुकड़े-टुकड़े हुए देस निशाचर मकराक्ष पूल तानकर भीरामकन्द्रवीने कहा—कसे । लड़ा फ लड़ा रह ॥ ३७ ॥

स त इष्टा पतन्त तु प्रहस्य रघुवन्ता ।
पावकाल्य एतो रामा सव्यं तु शारासते ॥ ३८ ॥

उसे आक्रमण करते देस भीरामकन्द्रवीने हँसकर मने घनुपर आभेयबल्य संघान किया ॥ ३८ ॥

तनास्त्रेण हत रक्षः कङ्कुरस्थेन तथा रणे ।
सच्छिष्टहृदय तत्र पपात च ममार च ॥ ३९ ॥

और उस अनेक शय उन्हेंने रगभूमिमें लकड़ उ उखलर प्रहार किया। बाणके आघातेसे रक्षकम इरन गिरने हो गया अतः बह मिर और मर गया ॥ ३९ ॥

इष्टा त राक्षसाः सर्वे मकराक्षस्य पातनम् ।
कङ्कामेव प्रधावन्त रामबाणभयादिताः ॥ ४० ॥

मकराक्षक बराधायी इना देस वे एव राक्ष भीराम कन्द्रवीके बाणोंके मयसे व्याकुल हो कङ्कामें ही भाग गये।

वृक्षारण्यपस्तनुबाणवेगे

रजनिधर निहत सारात्मज तम् ।

म्वदुशुरय वेवताः महद्रा

गिरिमिय घञ्जहत यथाविशिष्यम् ॥ ४१ ॥

वेवतामाने देला, श्रेष्ठ बरका मय हुआ परंतु सिर जाया है उषी प्रकार सरका पुत्र निशाचर मकराक्ष रक्षक-कुमार भीरामकन्द्रवीके बाणोंके वेगसे मार डाला गया। इन्ने उन्हें वही प्रसन्नता हुई ॥ ४१ ॥

इम प्रकार आशस्त्रिकर्मिन्त मा गमाला अदकाम्ये सुदकायम वनामर्वा सर्व पूरा हुआ ॥ ३५ ॥

सुमित्तत तथा तत्र कि कावमिति जित्तपन् ।

भादिङ्गाथ संभुजो रणापन्त्रजित सुतम् ॥ २ ॥

कुपित हुआ पर निशाचर उस समय वहाँ इस कियने

वह गया कि अब क्या करना चाहिये। उठने आकन्त रूपसे

मरकर भवने पुत्र इन्द्रकिन्ने युद्धके शिब्य बानेकी आशा थी।

उद्दि धीर महावीर्यी भ्रातरी रामकम्मपी ।

अहस्यो हृदयमानो वा सर्वथा त्य वलाधिक ॥ ३ ॥

बह बोख—वीर । तुम मस्तकम्पी राम और अरज्य

दनों माइयोंके छिपझर वा प्रत्यक्षन्वते मार बाबा कसोंकि

तुम पसमें सबथा बड़े-बड़े हो ॥ ३ ॥

त्यमप्रतिमकर्माण्यमिन्द्र जयसि सयुगे ।

किं पुनर्मानुषी हृद्वा न यच्चिप्यसि सयुगे ॥ ४ ॥

किष्कं पराक्रमकी कहीं वृष्णा नहीं है; उस इन्द्रको भी

तुम युद्धमें पराज्य कर देते हो फिर उन दो मनुष्योंके ख

भूमिमें अपने धमने पाकर क्यों नहीं मार छोड़े ? ॥ ४ ॥

तयोको राक्षसेन्द्रेण प्रसिद्युद्ध पितृव्यः ।

पद्ममौ स विधिवत् पावक जुहुयेन्द्रजित् ॥ ५ ॥

राक्षसराज रायणके देखा करनेपर इन्द्रकिन्ने पिताकी

अथ शिरःपार्यं श्री और चक्रभूमिमें जाकर अग्निकी स्थापना

करके उल्लेख विधिवत्क इवन किया ॥ ५ ॥

जुहुतव्यापि तत्राग्नि रजोष्णीपधराः शिष्यः ।

आजस्युक्ताय सन्भ्राता राक्षसो यत्र पश्यात् ॥ ६ ॥

उसके अग्निम इवन करते छमज उस वल पातण किये

पहुत-थी किमों पश्याथी हुईं उस स्नानपर भार्या, अहाँ वह

एकपुत्र इवन कर रहा था ॥ ६ ॥

शस्त्राणि शरपश्याणि समिधोऽथ विभीतकाः ।

सोहितानि च पासांसि द्युवं कण्ठ्यांस तथा ॥ ७ ॥

उसके तस्मार अदि शस्त्र ही छपत—कुशाक्षरकण

कम दे रहे थे बड़े-बड़े सङ्गी छभिभा थी सङ्घ बल और

अदोत्र सुभा—ये सब वस्तुएँ उपक्रममें भयो गयी थी ॥७॥

सर्वतोऽग्नि समास्तीय शरपयैः सखेमरैः ।

छगस्य सबहृण्णस गल जग्राह जीवतः ॥ ८ ॥

उसने छमजकहित शस्त्रकी सरस अग्निम चारों ओर

बिछा दिये । उसके बाद काल रंगके अनित चकराव गल

पङ्कज उने अग्निम होम किया ॥ ८ ॥

सङ्घोमसमिद्धस्य बिभ्रमस्य महाधिपः ।

पभुपुस्तामि लिहानि विजयं वर्यायन्ति च ॥ ९ ॥

एक ही बार किये गये उस छमसे अग्नि प्रकथित हो

उठो उठम पुओंनहीं पाओर बड़ी-बड़ी मरते उठ रही थीं । उस

अग्निमें व छभी चिद्र पङ्कज हुए अ विजयके वृष्णा बतेया।

प्रक्षिप्यावन्निखस्तहादपस्निभः ।

हविस्तान् प्रतिजग्राह पावकः स्यमुत्थितः ॥ १० ॥

उठ छम्य तनाये हुए मुबबेके छमज कान्तिमान अग्नि

देवने स्वयं प्रकट होकर हविष्य ग्रहण किया । उनकी व्यास

रक्षिणावत होकर निकल रही थी ॥ १ ॥

दुस्त्वामि तर्पयित्वाथ वेदानवरारससन् ।

आहरोह रथघोष्ठमन्तधानात् शुभम् ॥ ११ ॥

अग्निमें माहुति दे आभिचारिक बह-छमपी देवता;

छमज तथा राक्षसोंके वृत्त करनेके पश्चात् इन्द्रकिन्ने अन्तधान

होनेकी शक्तिसे छमज मुन्वर रथपर आस्य हुआ ॥ ११ ॥

स याजिभिश्चतुर्भिस्तु वाप्यैस्तु निशितैर्युतः ।

आरोपितमहाचापः शुशुभे सन्वग्नेशमः ॥ १२ ॥

चार पाइों पैने पाणों तथा अपने भीतर रत्न हुए

शिशाङ्क वतुपये युक्त यह उल्लेख रथ बड़ी घोमा पा रहा था ॥

ज्यन्वन्त्यमानो वपुषा तपनीयपरिच्छया ।

मृगीश्वन्मार्धकम्रैश्च स रथाः समलङ्कृतः ॥ १३ ॥

उसके स्व स्वमान छेनेके बने हुए थे अन्तः यह रथ

अग्ने स्वस्वसे प्रकथित-सा ज्ञान पश्या था । उद्यमें मृग,

अर्धकन्द्र और पूर्णकन्द्र अङ्कित अग्ने गये थे; किन्ते उसकी

सङ्घट आर्धकन्द्र दिक्कामी देती थी ॥ १३ ॥

जाम्यन्मृगमहाकम्पुर्द्विपावकसमिभः ।

वभूयेन्द्रजितः केतुर्वैद्यसमलङ्कृतः ॥ १४ ॥

इन्द्रकिष्क मन्त्र प्रकथित अग्निम स्वान दीक्षिभान्

पा । उसमें खनेके बड़े-बड़े कड़े पहनाये गये थे और उसे

नीलमसे मलङ्कृत किया गया था ॥ १४ ॥

तेम चादित्यकश्यपेन ब्रह्माश्लेषे च पाशिता ।

स बभूव दुराधयो रावणिः सुमहापलः ॥ १५ ॥

उस धृष्टस्य वेन्सी रथ और ब्रह्माश्लेषे छुरक्षित हुआ

वह महानवी रायणकुमार इन्द्रकिन्ने वृक्षोंके अग्ने युद्धय था

गया था ॥ १५ ॥

सोऽभिनिर्षाय नारायिन्द्रजित् समितिजयः ।

दुस्त्वामि राक्षसैर्मन्त्रैरन्तर्धानगतोऽप्रवीत् ॥ १६ ॥

छमरजिन्नी इन्द्रकिन्ने नगरसे निष्कम्प निर्वृत्ति-वेकल-

छमपी मन्त्रोंसे अग्निमें माहुति दे अन्तधानकी शक्तिसे

छमज हा इव प्रन्धर बन्ध— ॥ १६ ॥

अद्य हस्या रणे धी सौ मिष्या प्रयजिती धन ।

जयं विभे प्रदास्यामि रावणाय रणेऽधिकम् ॥ १७ ॥

अब स्वयं ही कम आय है (अथवा हूँ ही वरन्धीय

बाना धारण किये हुए हैं) उन दोनों माई राम और अरज्य-

को अद्य रथभूमिमें मारकर मैं अपने पिता रावणको उत्तर

अव प्रदान करूँगा ॥ १७ ॥

अद्य निधानरामुर्धौ हत्वा राम च सङ्गमणम् ।

फरिष्य पत्मा प्रीक्षितिस्युक्त्यान्तरधीपतः ॥ १८ ॥

अथ यम और कर्मनक्षत्र मारकर पृथ्वीको बानरोंसे सुती करक में निनाको परम संशोध वृष्य ११ ऐख करकर बह भद्ररूप हो गया ॥ १८ ॥

अपराधताय समुद्रा वृषाग्रीयण पावितम् ।

तीक्ष्णकर्मकर्मप्रवर्त्ताक्षणस्त्रिवाग्रिपू रण ॥ १९ ॥

तदाभान् दधुमग राशने प्रथि हा इन्द्रधनु इन्द्रकिर सुनिन हाकर रजूमिमें अथा । उठके हायमें धनुप और तीले नापच य ॥ १९ ॥

स दृष्टा महावीर्या नागी त्रिशिरसाविव ।
यूजन्तविवुजास्तिति धीरा यन्तत्प्रभाष्यौ ॥ २० ॥

मुद्रसन्धेयं भा इर उठ निषाचले यानेके वीपर्म लफे हो बाभ-उन्धेकी बना करत हुए महापद्मी वीर भीयम और कामनक्ष वही (केंन और मने कपोल सुक) हाकेक बाण) छिन धिचयन नागेके छमन देखा ॥ २ ॥

इमांस्तविति सविम्य सज्य कृत्या च क्षमुकम् ।
स्ततानुधाराभिः पजम्प इय वृष्टिमान् ॥ २१ ॥

य ही य दाने हे ऐख छत्रकर इन्द्रकिरने अपने धनुप पर प्राय्या चन्द्रापी और ज्ञानी बर्ता करनेबाळ मेपथी भोंनि भन्ती कण पाषाणसे छमल दिखभेअं भर दिया ॥

स तु वहायसरथा युधि तां रामलक्ष्मणी ।
अक्षयुपयय लिष्टन् विम्याथ निनिशो शरो ॥ २२ ॥

उठता रथ भागामें लहा था और भीयम तथा छमन्य पुडूमिमें गिरजमान य । उन दाने की हाथि अक्षय हाकर बह गाम उई डेन पाठन बांधन लग ॥ २२ ॥

ती तज्य गग्यमान परीनी गममक्ष्मणी ।
धनुरी सगर कृत्या विष्यमथ्य प्रभक्त्यु ॥ २३ ॥

गम गनाक वगम भग्न हुए भीयम और सधयने भी अपने अपने धनुपन नागों छमन करक निज अथ चरत धिन ॥ २३ ॥

प्रच्छद्रपत्न्या गगन गजजर्नमहापसा ।
तमस्य वृषगजान्यैव पस्तगतुः गता ॥ २४ ॥

अ महापत्नी कुमुदन गुरुपन नक्षी चाम्भयान अक्षमया अ उरत करके की गजगणा जन्म बाण रचें नतीकिय ॥ २४ ॥

ए हि वृषासपहारा य एक प्रच्छद्रपत्न्याः ।
रिप्राध्वपक्ष्य धीमान् नैरागतमाया वृषाः ॥ २५ ॥

ए वृषासपहारा य एक प्रच्छद्रपत्न्याः ।
रिप्राध्वपक्ष्य धीमान् नैरागतमाया वृषाः ॥ २५ ॥

शुभुके चरतस्तस्य न च रूप प्रच्छद्रते ॥ २६ ॥
उठकी प्रत्यक्षापी टंकर नहीं गुनापी देती थी । धीमे पक्ष्याएत तथा शोकोंकी थारकी अथाव भी कर्ममें नौ लक्ष्मी थी और सव और बिचरते हुए उठ राखकर रूप भी लक्ष्मी गंधर नहीं होता था ॥ २६ ॥

धनान्धकरो तिमिरे शिखरर्भमिच्छतम् ।
स वधये महाबाहुर्नारायणराक्षसिभिः ॥ २७ ॥

महाबाहु इन्द्रकिर उठ फने भन्धकर्मने लौं छी कर्म नहीं करती थी, परंपरीकी भरसुत वृषिक छमन भापण कर्म शयोंकी बर्ता करने लगा ॥ २७ ॥

स राम सूर्यसकरीः शरैर्वृत्तरीर्ब्रह्म ।
विम्याथ समरे हृजः सर्वगात्रेषु राक्षसिः ॥ २८ ॥

छमयुधमें कुशित हुए उठ एकत्रक्रमने कर्ममें प्रथं हुए धर्यहुस्य तेकली नाचोंबाण भीयमकरबीक कर्म भद्रोंमें पाव कर दिया ॥ २८ ॥

ती हृष्यमदनी न्यराचैधाराभिरिव पशती ।
हेमपुङ्गवान् नरभ्यामौ तिप्मान् मुमुचतुः शरणाः ॥ २९ ॥

क्षेस हा परंछेपर ज्ञप्ती भाएवं बल छी सें उमें प्रकर उन रजों नरभेड धीरोंपर मपयोंकी मार पड़न ली । उठी भवकामें वे दानों वीर भी लनेके फंसेलि तुरंतमे उने कण छड़ने लग ॥ २९ ॥

अन्तरिक्ष समासाद्य रावणि कद्रुपत्रिणः ।
निद्रस्य पतगा भूमौ पतुस्त शोषिताप्लुताः ॥ ३० ॥

व कद्रुपत्रमुक बाभ आवागमें पदुंचकर पतुनून इन्द्रकिरके धत किण करक रक्षर्म हरे हुए पृथीर मि पवत वे ॥ ३ ॥

अतिमान गरीषण श्रीष्यमाला नराक्षमी ।
तत्तिवृन् पतता भस्तरनकैर्विचक्रतता ॥ ३१ ॥

वाग्युहान अन्धन इरीष्यमन वे रजों नभेड ही अन्ध डार गिन हुए मयभोग अनेक अन्ध मारकर भा विमान य ॥ ३१ ॥

यया वि वृहदयान तां शरान् निमित्तान्निच्छत ।
त्मानु तां शारणी मरुजान्दक्षमुत्तमम् ॥ ३२ ॥

(अ अन्धन हीय बान अः । उठी देन उने अने व रजों अरे दरापयुकर भीरव और कामन भाभ २५ मभास २५ य १३ ॥ ३२ ॥

गवनिष्णु शिवा मया रथनातिरथावतम् ।
विम्याथ तां शारणी मरुजान् निनिशो शरोः ॥ ३३ ॥

भागधे हीर ननुक १ रक्ष्मा भाभ २५४ दः पूष रिप्राध्वने ही मपन और वही १ मभास य १

या । तस्मै भयने देने बर्षोद्वाय उन दोनों दारपकुमारोंके पाक कर दिये ॥ ३३ ॥

तेनातिविद्यौ तौ भीरी बन्धुपुत्रौ सुखलता ।
बभूवुर्दुर्दारपी पुष्पिण्याधिप किशुकी ॥ ३४ ॥

उत्के खनेके पक्षपाते हुएद खनकोंद्वारा भक्त पाक हुए वे दोनों भी दारपकुमार रक्षरहित हो लिखे हुए पक्षपातोंके समान प्रतीत होते थे ॥ ३४ ॥

मय्य वेगगतिं कश्चिच्च व क्व धनुः शरत् ।
न चास्य विदितं किञ्चित् सूर्यस्येवाद्भ्रसम्पद्ये ॥ ३५ ॥

इन्द्रकिरी वेगपूर्ण गति रूप धनुष और बर्षोंके फेर खेल नहीं पता था । मेघोंकी वयमें छिपे हुए सूर्यकी मूर्ति उलझी फेर भी बात किसीके हाव नहीं हो पाती थी ॥ ३ ॥

तेन विद्याया हरयो निहताया गतासवा ।
बभूवुः शतशस्तत्र पतिता धरणीतले ॥ ३६ ॥

उत्के द्वारा पायक और आहत होकर कितने ही वनर अपने प्राणोंसे हाथ जो डेटे तथा कैदों मंडा मरकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ३६ ॥

सहस्रमस्तु ततो ह्युद्यो ज्ञातर याक्यममघधीत् ।
प्राङ्मर्मन् प्रयोक्ष्यामि यथार्थं सार्धरक्षसाम् ॥ ३७ ॥

तब हस्तकाण्डे वषा श्रेष्ठ हुआ और उन्होंने अपने मूर्ध से कहा—‘अर्थ ! अब मैं हस्त एकलौक शरारके छिपे ब्रह्मका प्रयोग करूँगा’ ॥ ३७ ॥

तमुवाच ततो रामो लक्ष्मण शुभलक्षणात् ।
नैकस्य हेतो रक्षांसि पृथिव्यां हन्तुमर्हसि ॥ ३८ ॥

उनकी यह बात सुनकर भीरामने शुभलक्षणसम्पन्न ससजसे कहा—‘भार ! एकके क्षत्रण भूगण्डके समस्त एकलौक वध करना तुम्हारे छिपे उचित नहीं है ॥ ३८ ॥

अपुण्यमालं प्रकृष्टं प्राक्षति शरण्यागतम् ।
पस्यपमान मस्य वा न हन्तु त्वमिहार्हसि ॥ ३९ ॥

हृत्पार्थे श्रीमद्रामाणो बाधनीकीके अधिकाण्डे युद्धकाण्डेऽशीतितमः सर्गः ॥ ८ ॥

इस प्रकार श्रीमत्सर्गके निमित्त आरंभमात्र अष्टिकाण्डे युद्धकाण्डे अस्तेरीं तर्क पूरा हुआ ॥ ८ ॥

एकाशीतितम सर्ग

इन्द्रवित्तके द्वारा मापामयी सीताका वध

विद्याय तु मन्त्रस्य राषवस्य महात्मनः ।
स निहृत्पाहवात् तस्मत् प्रविशेश पुर तदा ॥ १ ॥

महात्म्य पुनापयौक मन्त्रोपदेशके समस्त इन्द्रकि युद्धे निहृत् हो लक्ष्मणके वध गया ॥ १ ॥

सोऽनुस्मृत्य बर्षं तेषां राक्षसानां तपस्विनाम् ।

तस्यैव तु बधे यत्न करिष्यामि महाभुज ।
अग्नेक्ष्वायो महावेगानक्रागाशीविपोपमान् ॥ ४० ॥

महाबाहो ! जो युद्ध न करता हो, क्षिप्य हो, हाथ ऊढ़ कर धरनेमें आया हो; युद्धसे मग रहा हो मथवा पाक हो गया हो; ऐसे व्यक्तिको दुर्मे नहीं मारना चाहिये । अब मैं उस इन्द्रकिके ही वधका प्रयत्न करता हूँ । आओ, हमसेम विद्वेके सौधी मूर्ति मयंकव तथा भक्त वेगवाली अश्वीक प्रयोग करें ॥ ३९४ ॥

कसेम मायिन भुद्रमन्तार्हितरथ पञ्जत् ।
राक्षस मिहनिष्पन्ति वृषा वानरपूयपा ॥ ४१ ॥

यह मापामी राक्षस बड़ा नीच है । इन्से भक्तपान-वक्ति से अपने रथको छिपा लिया है । यदि यह वीर जय वा वानरपूयपति इस राक्षसके मन्त्रस्य मार जायेंगे ॥ ४१ ॥

यद्येय भूमिं विशतं दिव या
रसात्स धापि नभस्तस्य वा ।

एष सिग्बोऽपि ममात्सवग्धः
पत्तिप्यते भूमितले गतास्तु ॥ ४२ ॥

यदि यह पृथ्वीमें समा जय, सर्गको जसा जय, रसात्समें प्रवेश करे अथवा आकाशमें ही स्थित रहे तथापि इस तरह छिपे होनेपर भी मेरे अश्वोंसे हाथ होकर प्राणस्थ हो मृतकर अवश्य निरेग’ ॥ ४२ ॥

इत्येवमुक्त्वा वक्त्र महायं
रघुमहीरः प्लवगर्षमैर्षुता ।

वधाय रौद्रस्य मूर्धासकर्मज
सत्वा महात्मा स्वरितं निरीहत् ॥ ४३ ॥

इस प्रकार महान् अभिप्रायसे युक्त वक्त्र करकर वानर शिरोमणियोंसे चिरे हुए रघुजके मनुज वीर मसुला भीराम-करपी उस मूर्धका मयानक राक्षस वध करनेके क्षिप्य एकलौक ही इतर-उपर इक्षिप्त करने लगे ॥ ४३ ॥

श्रेष्ठवज्रेक्षणो दूरो निर्वागमाय राषणिः ॥ २ ॥

वर्षो ज्येष्ठ वक्त्रान् राक्षसोंके वक्त्र धरन हो भाक्त एहदर एवकुमारकी मूर्ति श्रेष्ठके वज्र हो गयीं । वह पुनः युद्धके छिपे निहत् ॥ २ ॥

स पश्चिमन शरण निष्यी राक्षसीभूतः ।

इन्द्रजित् सुमहावीर्यं वीरस्त्वो वैषकण्ठका ॥ ३ ॥

पुष्पस्यकुम्भे उरुत्पन्न महापराक्रमी इन्द्रजित् वैषकण्ठके
श्लिषे कण्ठकस्य वा । बह राक्षसैश्चि बहुत बहो केच स्वय
छेकर नगरके पश्चिम द्वारसे पुन बाहर आया ॥ २ ॥

इन्द्रजित् तु ततो हृद्वा भ्रातरी रामसकृमणी ।
रणावाभ्युपगतौ धीरौ माया प्रातुष्करोत् तदा ॥ ४ ॥

रतौ माई धीर श्रीराम और छसपकके युद्धके श्लिषे उच्यत
रेख इन्द्रजित्ने उच सम्य माया प्रकृत श्री ॥ ४ ॥

इन्द्रजित्पु रथे स्थाप्य सीतां मायामयीं तदा ।
पत्नेम महतावृत्य तस्या वधमरोचयत् ॥ ५ ॥

उसने मायामयी सीताको निर्माण करके उसे अपने रथपर
बिठा लिया और विशाल सेनाके धेरेमें रखकर उलझ बध
करनेका विचार किया ॥ ५ ॥

मोहत्यायै तु सर्वेषां बुद्धिं कृत्वा सुषुमति ।
हस्तु सीतां भ्यवसितो वानरभिमुखो पयौ ॥ ६ ॥

उसकी बुद्धि बहुत ही सोटी थी । उसने उन्मत्त मोहमें
बाननेका विचार करके मायासे कनी हुई सीताको मारनेका
निश्चय किया । इसी अभिप्रायसे वह वानरोंके समने
गया ॥ ६ ॥

स हृद्वा स्वभिनिर्यान्त सर्वे ते ह्यनगौकसा ।
उत्पत्तुरभिसङ्क्रुद्धा विशाहस्ता युयुत्सवा ॥ ७ ॥

उसे युद्धके श्लिषे निश्चयसे देख सभी वानर क्रोधसे भर
गये और हाथमें शिख उठाये युद्धकी इच्छासे उनके ऊपर
दृष्ट पड़े ॥ ७ ॥

हनुमन् पुरतस्तपान् जगाम कपिकुञ्जरा ।
प्रवृष्टा सुमहच्छुभ्रं पर्वतस्य दुरासदम् ॥ ८ ॥

कपिकुञ्जर हनुमान्की उन सबके समने आगे चले ।
उन्होंने पर्वतका एक बहुत बड़ा पिलर छे रक्सा था बिते
उठाना पुरसेके श्लिषे निवान्त कठिन था ॥ ८ ॥

स वदर्श हतामन्वां सीतामिन्द्रजितो रथे ।
एकयणीधरां वीरामुपशासकृशानाम् ॥ ९ ॥

उन्होंने इन्द्रजित्के रथपर सीतासे देखा । उनकी गुरी
मारी गयी थी । ये एक वैशो धारण किये बहुत दुली रिसाल्ही
देवी थी और उपद्रव करनेके कारण उनका मुत्र पुष्प-फल
हो गया था ॥ ९ ॥

परिद्विष्टैकयसमाममृज्जां
रजामलाभ्यामासिप्तः स ॥ १० ॥

उ र एक ही मं श्रीरघुनाथकी-
धी दिग् ने उरुत्पन्न थे । उनके
खर पर ' वे भेद और
मुन्दर ॥

तां निरीक्ष्य मुहूर्ते तु मैथिलीमप्यवक्ष्य च ।
पमृगाशिरदृष्ट्या हि तत्र सा जलकरमजा ॥ ११ ॥

हनुमान्की कुछ देरतक उनकी ओर देखते रहे । मन्त्र
वह निश्चय किया कि ये मिथिलेशकुमारी ही हैं । उन्होंने कर्क
किशोरीसे बोड़े ही दिन पहले देखा था, इसलिये वे हीन ही
उन्हें पहचान सके थे ॥ ११ ॥

आवधीत् तां तु शोकात्तां निराकम्वां तपस्विनीम् ।
हृद्वा रथस्थितां वीमां राक्षसेन्द्रसुतप्रभितम् ॥ १२ ॥

उच्छयकके पुत्र इन्द्रजित्के पाठ रथपर बैठी पूर्ण
तपस्विनी सीता शोकसे पीड़ित थीं एवं आनन्दरहित थे
यही थीं ॥ १२ ॥

किं समर्थितमस्येति चिन्तयन् स महाकपिः ।
सह तैर्धान्तरक्षेत्रभ्यघावत रावणियम् ॥ १३ ॥

सीताको बहों देखकर महाकपि हनुमान्की वह छेपने
को कि आशिर इस उच्छयका अभिप्राय क्या है । फिर वे युद्ध
मुख्य वानरोंको साथ लेकर रावणपुत्रकी ओर बोड़े ॥ १३ ॥

तत् धानरचक्ष हृद्वा रावणिग क्रोधमूर्च्छिता ।
कृत्वा विक्रोरा निर्भ्रिया मूर्च्छि सीतामकर्णयत् ॥ १४ ॥

वानरोंकी उच सेनाको अपनी ओर आड़ी देख उन्मत्त
कुमारके क्रोधकी सीमा न रही । उसने उन्मत्तको समने
बाहर निकल्य और सीताक छिपके केश पकड़कर उन्हें
पवीया ॥ १४ ॥

तां क्षिप्य पद्मतां तेषां ताडयामास राक्षसाः ।
क्रोशन्तीं राम रामेति मायया योजितां रथे ॥ १५ ॥

मायाद्वारा रथपर बैठाभी हुई वह भी था उन्मत्त
राम करकर बिस्वा रही थी और वह उच्छय उन सबके देखते
देखते उच कीको पीट रहा था ॥ १५ ॥

पृथीतमूधसां हृद्वा हनुमान् वैश्यामागत ।
पुञ्जज वारि नेत्राभ्यामुपसृजन् माकृतात्मजा ॥ १६ ॥

सीताम केश पकड़ा गया देख हनुमान्कीको बड़ा दुःख
हुम्ब । वे पवनकुमार हनुमान् अपने नेत्रोंसे दुःखकण्ठि अर्द्ध
रहते थे ॥ १६ ॥

तां हृद्वा स्वाठसर्वाहीं रामस्य महिषीं म्रियाम् ।
अथ ' वापस्य क्रोधेधाव् रक्षोधिपालाम्जम् ॥ १७ ॥

अ तथा हनुमान्की प्यारी पदरानी सीतासे
उच हनुमान्की कुम्भित हो उठे और उच उच्छय
उच ' वे क्रोध बाधीमें पत्ने- ॥ १७ ॥
उरा कदाप तस्यदा ।
प्रद राक्षसी ॥ १८ ॥
बनने किना गुल्य दुम्बरे

उत्तमी खीवाके केठोन्न स्पर्श कर रहा है । तेष कम ब्रह्मर्षियों के कुम्भमें हुआ है तथापि तूने रक्षक-व्यतिके स्वभावका ही अभय किया है ॥ १८ ॥

धिक् र्वां पापसमाधार यस्य तं मस्तिरीहशी ।
नृशसान्यय पुर्वुत्त धुद्र पापपराक्रम ।
अन्यापस्येहशा कर्म घृणा ते नास्ति निर्वृण्य ॥ १९ ॥

‘अरे ! तवी बुद्धि ऐसी विगाड़ी हुई है ! विचार है तुझ जैसे पापचारीको । नृशंस ! अनर्ष ! तुपचारी तथा पापपूर्ण पराक्रम करनेवाले नीच ! तैरी यह क्रूरत नीच पुरुषोंके ही शंभ्य है । निर्दयी ! तैरे हृदयमें तनिक भी दया नहीं है ॥ १९ ॥

व्युत्था गृहाद्य यस्याद्य रामहस्ताद्य मैथिली ।
किं तथैवापराद्या द्वि यन्ना हसि निर्दय ॥ २० ॥

बन्धारी मिथिलेशकुमारी परते, रण्यते और भीरामपञ्चरत्नके करकमलोंके आश्रयसे भी विपुद्ग गयी हैं । निन्दुर ! इन्दौने तेष क्या अपराध किया है, अ तू इन्दौ इतनी निर्दयतासे मार रहा है ! ॥ २० ॥

सीता हत्या तु न चिर जीविष्यसि कथञ्चन ।
यथाहं कर्मणा तेन मम हस्तगतो ह्यसि ॥ २१ ॥

सीताका मारकर तू मणिक क्षण्टक किया तब जीवित नहीं रह सकेगा । बचके शोभ्य नीच ! तू अपने पापकर्मके फल मरे हाथमें पड़ गया है (अब तेष बीना कठिन है) ॥

ये च ग्रीष्मतिनां श्लोक्ष श्लोकवर्ष्यैश्च कुस्त्रित्वा ।
इह जीवितमुत्सृज्य प्रत्य छात् प्रति छप्स्यसे ॥ २२ ॥

ध्वजमें अपने पापके फल बचके दास्य मान गये अ चोर आदि हैं व भी किन श्लोकोंकी निन्दा करते हैं तथा अ श्री-हस्ताच्छेद ही मिस्र हैं तू यहाँ अपने प्राणोंका परित्याग करके उहाँ नरक-ध्वजमें जायगा ॥ २२ ॥

इति सुपायो हनुमान् सायुर्भरिभिषूत ।
अन्याधावत् सुसम्पन्नो राक्षसन्सुत प्रति ॥ २३ ॥

ऐसी पावें कइलें हुए हनुमान्की भयन्त कुपित श शिष्य आदि अशुभ शाल्य करनेवाले यानरपीरोंक साथ राक्षस-कुमारपर दूर पड़ ॥ २३ ॥

भायतन्त महावीर्यं तद्वनीकं यमीकस्ताम् ।
रक्षसा भूमिकृपाणागमनीकन न्यधारयत् ॥ २४ ॥

यानरक उक्त महावीर्यकी सेन-कुमारपक्ष आक्रमण करने देत इन्द्रकिन्त भयानक शपथका उद्देश्यसे सेनाके हाथ उभे अने यजनमें उतरा ॥ २४ ॥

स तां पाणसहस्रेण विज्ञान्य हरिवाहिनीम् ।
इन्मन्त हरिभद्रमिन्द्रजित् मस्युयाच ह ॥ २५ ॥

किर तदसा कण्ठ-उप उभ यानरगदिनेमें दबनक मया

अ इन्द्रकिन्ते अपिभेद हनुमान्कीसे क्या— ॥ २५ ॥

सुमीवस्त्वं च रामश्च यन्निमित्तमिहागतः ।
सां वधिष्यामि कैवलीमथैव तथ पश्यतः ॥ २६ ॥

इमां हत्या ततो रामः कुरुष्व त्वा च यानर ।
सुमीव च वधिष्यामि तं बान्धव्यं विभीषणम् ॥ २७ ॥

‘यानर ! सुमीव, राम और तुम सब श्लोकिकके सिन्धे यहाँ एक आये हो, उस विदेहकुमारी सीताका मैं अभी तुम्हारे देखते-देखत मार बाँवूँगा । इसे मारकर मैं क्रमशः राम-कर्मसज्ज, तुम्हारा, सुमीवका तथा उस अनार्य विभीषणका भी बच कर जाँवूँगा ॥ २६ २७ ॥

न हन्तव्याः क्षिपयन्नेसि यत् प्रवीषि हृद्यगाम ।
पीडाकरममिशाणा यद्य कर्तव्यमेव तत् ॥ २८ ॥

‘यानर ! तुम जो यह कह रहे य कि क्षिप्योको मारना नहीं चाहिये उसके उतरमें मुझ यह कहना है कि जिस क्षयके करनेसे शत्रुओंको अधिक कष्ट पहुँचे, वह कर्तव्य ही माना गया है ॥ २८ ॥

तमेवमुपस्था कर्तुं सीतां मायामयीं च ताम् ।
शितभारेण, लङ्केन मिज्जयानन्द्रजित् स्वयम् ॥ २९ ॥

हनुमान्कीसे ऐस करकर इन्द्रकिन्ते स्वयं ही तेज धार बासी लङ्कापरते उस रती हुई मायामयी सीतापर पातक प्रहार किया ॥ २९ ॥

यद्योपवीतमार्गेण छिन्ना तन तपस्विनी ।
सा पृथिव्या पृथुभोजी पपात प्रियदर्शय ॥ ३० ॥

शरीरमें यक्षणीत धारण करनेका अ स्वप्न है, उसी आहसे उस मायामयी सीताक रो नकड़े हा गये और वह रथक कृतिप्रदेशबासी प्रियदर्शना तपस्विनी पृथ्वीपर गिर पड़ी ॥ ३० ॥

तामिन्द्रजित् क्षिप्य हत्या हनुमन्तमुबाध ह ।
मया रामस्य पदयमा मिया गन्धनिपूदिताम् ।
पया विशस्ता वैदही निष्कन्धे या परिभ्रमः ॥ ३१ ॥

उस श्रीश बध करक इन्द्रकिन्त हनुमान्को क्या— देख था, मीने रामकी इस प्यारी कनीच लक्ष्मणके बाद बाया । यह रती कवी हुए विदेह-राजकुमारी छला । अब तुमको मया पुद्गक क्षिप परेभम स्वयं है’ ॥ ३१ ॥

तदा लङ्केन महता हत्या तामिन्द्रजित्स्वयम् ।
इहा स रथमास्थाप न्नाय च महात्मनम् ॥ ३२ ॥

इत प्रहार स्वयं इन्द्रकिन्त रिगत गद्गम उक्त मायामयी श्रीश बध करक रथार बडा-नेडा बड़ हरिके मया अर करम स्थितार करन स्वयं ॥ ३२ ॥

यानराः पुधुपुः गन्धमदूर प्रत्यवन्तिता ।

व्याख्येयस्य नक्तस्तवुर्गं सभितस्य तु ॥ ३३ ॥

पक्ष ही लखे हुए बानरोंने उसकी उस गर्कनाको मुना । वह उस बुनीम रफपर बैठकर मुँह बन्दे किन्तु छिन्दाव करता था ॥ ३३ ॥

तथा तु सीतां विमिहस्य तुर्मतिः

प्रहृष्टप्लेताः स बभूव रावणिः ।

इत्यायं भीमद्रामायणे वाक्यीकीये काविक्रम्ये युद्धकाण्डे पृथ्वीसितायाः सर्गाः ॥ ८१ ॥

इस प्रकार भीमव्यासकीनिर्मित आर्याव्याख्ये युद्धकाण्डमें इत्याख्येर्को सर्ग पूरा हुआ ॥ ८१ ॥

द्वयशीतितम सर्ग

हनुमान्जीके नेत्रत्वमें बानरों और निशाचरोंका युद्ध, हनुमान्जीका भीरामके पास लौटना और इन्द्रजित्का निकुम्मिला-मन्दिरमें जाकर हाम करना

ध्रुवा तु भीमनिर्द्धाव शक्रशरानिसमखनम् ।

वीर्यमप्या विशाः सर्वां युयुव्यानया मृशम् ॥ १ ॥

इन्द्रके बज्रकी गड़गड़ाहटके समान उस भयंकर छिन्दावके सुनकर बानर समूहमें विशाभ्येकी ओर देखते हुए अर-ओरसे भागने लगे ॥ १ ॥

तानुवाच ततः सर्वां हनुमान् माकृतात्मजाः ।
विषण्णवदन्मन् दीनांशस्त्रप विद्रवतः पृथक् ॥ २ ॥

उन सबको विषादग्रस्त रीन पर्व भयभीत होकर भागते देख पवनकुमार हनुमान्जीने कहा— ॥ २ ॥

कस्याप् विषण्णवदया विद्रवथ्व प्रथमता ।
त्यक्तयुवसमुत्साहाः शूरस्यं क्व तु यो गतम् ॥ ३ ॥

जानते ? तुम क्यों मुझपर विषाद किये युद्ध-विषयक उसका छाड़कर माने क्या रहे हो ? तुम्हारा वह छोड़ क्यों नब्य गया ? ॥ ३ ॥

पृष्ठतोऽनुमज्जर्षं मामप्रता पाल्तामाहयं ।
घृरैरभिसन्नेपतैर्युक्त हि निपतितुम् ॥ ४ ॥

मैं युद्धमें अग्रे-अग्रे पकड़ा हूँ । तुम सब लोग मेरे पीछे आ जाओ । उसम कुर्बमें उत्पन्न घृणीयोंके सिद्ध युद्धमें पीठ दिखाता कर्नया अनुक्ति है ॥ ४ ॥

पवमुक्ता सुसक्तुया वायुपुत्रेण धीमता ।
शौल्ठडान् तुमांशेष जघृहृष्टमालसाः ॥ ५ ॥

बुद्धिमान् वायुपुत्रके ऐसा कहनेपर बानरोंका चित्त प्रसन्न हो गया और पृथक्-पृथक् भक्त्य कुम्भित हो उन्होंने हाथोंमें पर्यन्तिलकर ओर दृष्ट उठ्य सिम् ॥ ५ ॥

अभिपतुथ गजन्ता राक्षसान् बालरवभा ।
परिवाय हनुमन्तमप्ययुथ महाहय ॥ ६ ॥

ये भेद करनबीर उस महास्मरमें हनुमान्जीके आरों

तं दृष्टकप समुप्रीक्ष्य बालरा
विषण्णरूपाः समभिप्रतुहुवा ॥ ३१ ॥

राजको उस पुत्रकी बुद्धि बड़ी लोदी थी । उनका पक्षर मायामी खीटाका पक्ष करके अपने मनमें बड़ी प्रसन्नता अनुभव किया । उसे इयंते उल्लुख देख करन निकल मला ही भ्रमा लखे हुए ॥ ३४ ॥

ओरसे घेरकर उनका पीछे-पीछे चल और कर-कले पर्व करते हुए वहाँ राक्षसेपर दृष्ट पड़े ॥ ६ ॥

स तीर्णानुरस्यैस्तु हनुमान् सर्कोते वृतः ।
वृताहान इवार्षिष्मानवृष्ट्यनुवाहिशीम् ॥ ७ ॥

उन मेष बानरोंद्वारा वह आरसे भिरे हुए हनुमान्जी आकाशमध्यमेंसे युक्त प्रकथित अग्निगी मीथि धनु-केन्द्रके राक्ष करने लगे ॥ ७ ॥

स राक्षसानां कञ्च कञ्चर सुमहाकपि ।
वृषो धानरसैन्येन कास्यन्तकपमोपमाः ॥ ८ ॥

बानर-सैनिकोंसे भिरे हुए उन महाकपी हनुमान्जी प्रथमकाक संहारकारी यमराजके समान राक्षसोंका छत्र आरम्भ किया ॥ ८ ॥

स तु शोकेन काविद्यः कपेन महत्त कपिः ।
हनुमान् रावणिरथ महतीं पालयच्छिष्याम् ॥ ९ ॥

खीटाक पक्षसे उनके मनमें बड़ा शोक हो रहा था और इन्द्रकिन्ध आयाचार देखकर उनका श्रेण भी बहुत बढ़ गया था इत्येने हनुमान्जीने रावणकुमारके लपर एक बहुत बड़ी शिष्य केंपी ॥ ९ ॥

तस्मात्कर्त्तव्यं हृष्टैरथः सारथिना तथा ।
विधेयाभ्यसमायुक्तः किञ्चरमपयाहितः ॥ १० ॥

उसे अपने ऊपर अती देस धरभने उत्कण्ठ ही भनने अधीन रहनेवाक छोड़ते उठे हुए उस रवका बहुत दृष्ट द्य किया ॥ १० ॥

तस्मिन्द्रजितमप्यप्य रथस्यं सहसारापिम् ।
विधेया धरणीं भिक्षा सा शिवा व्यथमुद्यता ॥ ११ ॥

अतः अर्यसिद्धित रपर बटे हुए इन्द्रकिन्धके कलक न पहुँचकर वह शिष्य परती सड़कर उसके मील समा गयी । उसके पञ्चानेक जय उपांग मर्ष हो गया ॥ ११ ॥

पवित्रायां दिक्कया तु व्यपिवा रक्षसा चम्पू ।
 निफतन्त्या च सिन्ध्या राक्षसा मथिता भूराम् ॥ १२ ॥
 उच शिब्यक विरनेभ उच रक्षससेनाया बही पीडा
 दुर्गे । विरती दुर्गे उच शिब्यने बहुतर राक्षसं कुचक बाष्पा ॥
 तमभ्यधावन्शतशो ननुता काननौकसा ।
 त दुमाद्य महाक्षया गिरिःशक्ति बोधताः ॥ १३ ॥
 तत्रात् सेकडां विद्यालय्य बानर हापोमं इध एवं
 पवविस्तर उठाप गर्भ्य करते हुए इन्द्रकिरी अर रोडे ॥
 क्षिपस्तीन्द्रजित सख्ये धानरा भीमविक्रमः ।
 बुधशैलमहाहायर्षे विरुजन्तः प्लवगमा ॥ १४ ॥
 राण्या कदन चक्रनेदुम्ब विधिषे स्नने ।
 वे मयनक परम्प्री बानर भीर बुधसख्ये इन्द्रकिरीपर
 उन इष्टो और पल्ले-गिरिपेठे डेके स्ने ॥ इष्टो और
 शैलशिलपेठे बही म्नी वृष्टि करत हुए वे बानर रात्रुभेष्ट
 छत्र करने और मौलि-मौलिषी आराधनें गम्ने स्ने ॥ १४३ ॥
 यानरैस्सैमहाभीमैर्षोररूपा निशाचराः ॥ १५ ॥
 पीयादभितया वृक्षैर्यवधस्त रणसिती ।
 उन म्नाभयंकर बानरोने इष्टेष्टार धरतनपारी निशाचपेठे
 क्तवृक्ष कर निराया । व रणभूमिं विरकर छत्रपयने स्ने ॥
 स संन्यमभिवीक्ष्याय बानरात्रितमिन्द्रजित् ॥ १६ ॥
 प्रपुष्टित्युधः क्रुद्धः परानभिमुखा ययौ ।
 भन्नी केपत्र बानरोण्य पीडित हुए रत्न इन्द्रकि
 शोपवृक्ष भय-रक्ष स्त्रिय रात्रुभेष्ट खमने गत्वा ॥ १६३ ॥
 स शरीयानबरात्रुजन् स्वसन्यनाभिसञ्चुतः ॥ १७ ॥
 जघन कपियावृक्षान् सुपहन वडविक्रमः ।
 शूलरघनिभिः भद्रैः पद्भिः शूलमुहुरैः ॥ १८ ॥
 भन्नी सेनात विर हुए उच सुदक्ष परम्प्री भीर निशाचरने
 पत्र-शुद्धेकी पना करत हुए एक पत्र लम्बाए पद्भि
 तथा मुहुरेकी मारन बहुहन कनरवीठे म्नाहत कर विध ॥
 त बाण्युतरांस्तम्य धानरा जम्पुराहय ।
 वृक्षरूपविटपैः शैलैः निशाभिध महापसः ॥ १९ ॥
 इनुमान् कदन चक्र रक्षसा भीमकम्पाम् ।
 बानरोने भी बुद्धन्तमे इन्द्रकिरीठ भुपरोम मय ।
 महाप्री इनुमान्की मुम्भ रागाभ्ये और शक्तिबान एष
 इष्टो तथा दिग्बधाशर भीमकमे राक्षसेना शरार करने स्ने ॥
 सनिवाय परानीकमप्रार्थन् तान् पनीकसः ॥ २० ॥
 इनुमान् सनिवठरः त न साध्यमिन् पनम् ।
 इम तरत रात्रुभनाद्य पग राक्षर इनुमान्कीने कनरने
 वरा—रुपुभः ॥ भव सैर पथ्य भव इमे इव मयाक छत्र
 करनेभ भवायद्या नहा र्ग गी ॥ २० ॥

त्यपस्वा प्राप्यान् विषेष्टन्तो रामप्रियक्षिकीपवः ॥ २१ ॥
 यथिमिष हि युष्यामो हना सा जनकामजा ।
 भूमद्यग किंक स्त्रिय भीरमभ्यर्षकीष मिय करनेकी
 इच्छा रत्नकर शर्माका मार छाड पूरी पडाक सय युद्ध करते
 थे, व कनककिरीषी शैला मारी गती ॥ २१३ ॥
 इममर्षे हि विद्याप्य राम सुप्रियवेश स ॥ २२ ॥
 तो यत् प्रतिविधास्यत तत् करिष्यामहे पयम् ।
 'यव इव बतधी सूचना म्नाधान् भीयम और मुदीवशे
 इ देनी बाहिय । छि व देनों इवक स्त्रिय शैव प्रदीभर
 क्षणे, वैद्य ही इन भी करेगे ॥ २२३ ॥
 इत्युपस्ता बानरभेष्टो धारयन् सवयानरान् ॥ २३ ॥
 शान शनैरसत्रस्ता सपत्नः सत्यवतत ।
 एसा बरकर बानरभय इनुमान्कीने सय बानरोके मुदस
 म्ना कर दिया और पीरे पीर खरी नेनाक सय निर्मय हाकर
 खेट शय ॥ २३३ ॥
 ततः प्रेक्ष्य हनुमन्त यजन्त यत्र राषभः ॥ २४ ॥
 स होनुकामो दुष्पत्ना गतधेत्य निङ्गुम्बिलाम् ।
 इनुमान्कीष भीरमकन्त्रकीष पक्ष चत रेल कुरमा
 इन्द्रकिरी हाम करनेकी इच्छात निङ्गुम्बिलकी मन्दिरमे गया ॥
 निङ्गुम्बिलमधिष्ठाय पाषक जुष्टपन्त्रजित् ॥ २५ ॥
 पक्षभूर्म्यां तथा गत्वा पावकस्तन रक्षसा ।
 इयमानः प्रजग्वाल हामगोणित्युक्त तथा ॥ २६ ॥
 साञ्चिःसिन्ध्या दृष्टो हामगोणिततापित ।
 सध्यागत इयादित्यः सुतीव्राग्नि समुत्थित ॥ २७ ॥
 निङ्गुम्बिल-मन्दिरमे बरकर उच निशाचर इन्द्रकिरीने
 अभिने भद्रुति ही । तन्न्तर पक्षभूर्मि भी बरकर उच
 राक्षसे अभिदेवक हामक हाप वृत् किया । व हामगोणित
 म्नाकी भानिन्दारिक भनिदेवता भद्रुति पाव ही हाम और
 घातित वृत् हा प्रनक्ति हा उठ और जम्भ्यभाये भद्रुत
 दिग्वासी देने स्ने । व हीन वज्राक भनिदेवता शंभा भद्रक
 मूर्षेकी भेति प्रकर हुए प ॥ २५-२७ ॥
 भयपन्त्रजित् राक्षसभूतय सु
 जुहाव इत्य विधिष्य विधाकथित् ।
 ह्यु प्यतिष्ठन्ते च राक्षसास्तन
 महासमूहसु नयानपजा ॥ २८ ॥
 इन्द्रकिरी वक्र विपानम कथ्य या । उन्ने लम्भ
 राक्षसक भयुदयक स्त्रिय निधिपूर्वक दहन करवा भारत्य
 किया । उच इनके इरावर महापुद्धक भवकरोने की-भनी-
 क्तव्यकृतपयक कथ्य राक्षर सड हा गय ॥ २८ ॥

इयावै भीमनामाकन कल्पकीष्ये भद्रिष्येव बुद्धकाक इयमिन्द्रमः मय ॥ २९ ॥

इम प्र ॥ २९ ॥ भवन्तीन्द्रिनरु नापिप्रापन भद्रिष्येवक बुद्धकाकमे वक्रभारी मर्षे ह्युमा ॥ २९ ॥

त्र्यशीतितम सर्ग

सीताके मारे जानेकी बात सुनकर श्रीरामका धोकरसे मूर्च्छित होना और लक्ष्मणका उन्हें समझाते हुए पुरुषार्थके लिये उद्यत होना

राघवश्चापि विपुलं च राक्षसबन्धैकसाम् ।

श्रुत्वा सप्रामलिघीय जाम्बवन्तनुवाच ह ॥ १ ॥

मत्तान् भीमने भी उखलें और बानरोंके उस महात्
मुद्रपोषणे मुनकर सम्भनन्ते क्वा—॥ १ ॥

सौम्य नून हनुमता ह्यत कर्म सुदुष्करम् ।

श्रूयते च यथा भीमः सुमहात्मपुंभलना ॥ २ ॥

सौम्य ! निश्चय ही हनुमान्जीने अत्यन्त दुष्कर कर्म
श्रमम् किया है क्योंकि उनके मातृपौत्र यह महाभयंकर
धन्व स्य मुतापी पशुता है ॥ २ ॥

तत् गच्छ कुत साहाय्यं स्वबलेनभिसंबृतः ।

क्षिप्रमुद्रपठं तस्य कपिभेष्टस्य युध्यतः ॥ ३ ॥

भ्रतः शूभराज ! द्रम अपनी सेनाके छप शीम ज्यो
भैरु ब्रह्मते हुए कपिभेष्ट हनुमन्जी स्वाम्य क्य ॥ ३ ॥

शूभराजस्तपोयुक्त्वा स्वेनम्रीकेन सवृतः ।

भयाच्छब्दं पश्चिमं द्वाय हनुमान् पत्र वातरः ॥ ४ ॥

जब बहुत भया कबकर अपनी सेनाके विरे हुए
शूभराज सम्भनन् कङ्काके पश्चिम शरपठः ज्यों बलरवीर
हनुमान्जी विराजमान ये आये ॥ ४ ॥

भयापान्त हनुमन्त ववर्षां पतिस्तदा ।

बाह्यैः ह्यस्तप्रामैः भ्यसन्निरभिसंबृतम् ॥ ५ ॥

यहाँ शूभराजने मुद्र करके खेटे और कंधी सँस लीचते
हुए बानरोंके छप हनुमान्जीको आते देला ॥ ५ ॥

हृष्टा पथि हनुमान् च तद्वक्ष्यन्मुद्रपठम् ।

नीलमघनिभ भीम सनिवार्यं स्ववर्तत ॥ ६ ॥

हनुमान्जीने भी मार्गमें नील मेघके समान मयकर शूभ-
सेनाको मुद्रके लिये उद्यत देव उडे रोष और उनके छप
ही ने खेडे आये ॥ ६ ॥

स तेन सह सैन्येन सनिकर्षं महापराः ।

शीमन्नागम्य रामस्य दुर्नक्षितो बाल्यमप्रवीत् ॥ ७ ॥

महापरासी हनुमान्जी उठ सेनाके छप शीम म्माद्यन्
भीरामके निकट आय और दुली होकर कहे—॥ ७ ॥

सामरे युध्यमानान्मसाक मेक्षतां च सः ।

अप्यन कर्तव्यं सित्त्वामिन्द्रमिच्छं राक्षसात्मजा ॥ ८ ॥

प्रभे ! हमझा मुद्र करनेमें जो ने उठी सम्य सम
भूमिमें पवनपुत्र इन्द्रकिन्ने हमारे देखते-देखते ऐसी हुई
धीयको मार बाध है ॥ ८ ॥

उद्भ्रमन्तचित्तस्तां हृष्टा विपश्यन्तेऽहमर्तिवम् ।

तद्वह भवतो वृत्तं विज्ञापयितुमाप्सता ॥ ९ ॥

शुभ्रदमन ! उन्हें उठ मनसामें देख मेरा नि
उद्भ्रमन्त हो उठा है । मैं विचारमें हूँ गम्भीर । इच्छिने
आफ्ने यह समाचार भवानेके लिये मया हूँ ॥ ९ ॥

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा रामस्य शाकमुच्छ्रितः ।

नित्यपाठं तदा भूमौ छिन्नमूळं ह्यहं तुमा ॥ १० ॥

हनुमान्जीकी यह बात सुनकर श्रीरामकी उठ छ
शाकसे मूर्च्छित हो कबले कटे हुए वृक्षकी मूर्ति लक्ष
पृथीपर गिर पड़े ॥ १० ॥

तं भूमौ देवर्षिकं पतितं हृदयं राघवम् ।

अभिप्रेतुः समुत्पत्य सद्यैतः कपिसत्तमा ॥ ११ ॥

देवर्षिक टेकनी भीरपुनापनीको भूमिपर पड़ा देव सम
भेड गानर सम अन्दरे उठकर बहों आ पहुँचे ॥ ११ ॥

मासिञ्जन् सखिच्छेद्यैः पयोत्पन्नमुगान्निभिः ।

प्रवृत्तमन्तव्यार्थं सहस्रान्निमित्तोत्पितम् ॥ १२ ॥

ये काल और उत्पन्नकी सुमन्ते मुद्र कल के अर्ध
उनके छपर छिन्नकने छो । उठ सम्य ने उखल प्रकृति
होकर दहन-कर्म करनेवाली और पुतापी न अब उठनेका
अनिके सम्य विज्ञापी देते ये ॥ १२ ॥

तं लक्ष्मणोऽप्य बाहुभ्यां परिष्कन्त्य सुदुष्कितः ।

उवाच राममलस्य वाक्यं देवर्षिसमुत्तम् ॥ १३ ॥

मार्गकी यह मनसा देवकर अकनको बड़ा दुःख हुआ
ये उन्हें यहाँ मुद्राओंमें मरकर बैठ गये और अत्यन्त दुःप
भीरामसे वह प्रकृतियुक्त एवं प्रयोक्तानी बात कहे—॥ १३ ॥

शुभे कर्त्तव्ये सिद्धान्तं त्वामर्थं विहितमिन्द्रम् ।

अनर्थोऽप्येव न शक्योति प्रातु धर्मो निरर्थकः ॥ १४ ॥

अर्थ ! आप उठ शुभ मर्मापर स्थिर करनेवाके और
चित्तिश्रय हैं, तथापि धर्म आपको अनर्थसे बच नहीं कर
है । इच्छिने वह निरर्थक ही कान पशुता है ॥ १४ ॥

मृतानां स्थापयणां च जङ्गमानां च दहनम् ।

यथास्ति न तथा धर्मस्तेन न्यासीति मे मतिः ॥ १५ ॥

न्यायों तथा पशु अर्थि बहम प्राणियोंकी भी दुःख
प्रत्यक्ष अनुभव होता है किंतु उनके दुःखमें धर्म करण नहीं
है (क्योंकि न तो उनमें धर्माकरकी शक्ति है और न धर्म
उनका अधिकार ही है) अतः धर्म मुक्तक लपन नहीं है
देख मेरा विचार है ॥ १५ ॥

पदेव स्वस्ववरं व्यक्तं जङ्गमं च तथाविधम् ।
 न्ययमर्षस्ताया युक्तस्त्वद्विधो न विपद्यते ॥ १६ ॥
 भ्रैते स्वस्वरं मृतं बर्माधिकारी न होनेपर भी सुखी देखा
 जाता है, उठी प्रफर बङ्गम प्रणी (पद्य आदि) भी सुखी
 है, वह बात स्वयं ही समझमें आती है । यदि कोई बर्मा
 है, वहाँ सुख भवम्प है तो ऐव भी नहीं कहा जा सकता
 क्योंकि उच दृष्टमें आप-बैसे भमात्मा पुत्रका विपत्तिमें नहीं
 पड़ना चाहिये ॥ १६ ॥

पद्यधर्मो भयद् भूतो रवणो नरक मज्जेत् ।
 भवांश्च धर्मसयुक्तो नैव व्यसनमन्नुपात् ॥ १७ ॥
 यदि अर्धमं भी भी उवा होती अर्थात् अर्धमं अवश्य ही
 दुःखका कारण होता तो उचकको नरकमें पड़ खना चाहिये
 या और आप-बैसे भमात्मा पुत्रपर संकट नहीं आना
 चाहिये या ॥ १७ ॥

तस्य च व्यसनाभावाद् व्यसनं चागतं त्वयि ।
 धर्मो भयत्पद्यधर्मश्च परस्परविरोधिनी ॥ १८ ॥
 पद्यपर तो कोई संकट नहीं है और आप संकटमें पड़
 गये हैं अतः धर्म और अर्धमं दोनों परस्परविरोधी हो गये
 हैं—धर्माभावात् दुःख और पापभावात् सुख मिटने लग
 है ॥ १८ ॥

धर्मोपपत्तये च धर्ममधर्मं चाप्यधर्मताः ।
 यद्यधर्मो युज्येयुर्धर्मधर्मः प्रतिष्ठितः ॥ १९ ॥
 न धर्मो विद्युग्धेराधर्मदृष्टयो जन्ता ।
 धर्मोपाचरतां तेषां तथा धर्मफलं भवेत् ॥ २० ॥

यदि धर्मसे धर्मफल (सुख) और अर्धमसे अर्धम-
 फल (दुःख) ही मिटनेका निमित्त होता तो किन यद्य
 अर्थमें अर्धम ही प्रतिष्ठित है वे अर्धमके फलभूत दुःखसे ही
 मुक्त होत और जो अर्धम अर्धममें कवि नहीं रहत हैं, वे
 धर्मसे—धर्मके फलभूत सुखसे कभी बाधित न होत । धर्म-
 मार्गसे चल्नेवाला इन भमात्मा पुत्रोंको केवल धर्मफल—
 सुख ही प्राप्त होवा ॥ १९ २ ॥

यस्मात्तथा विपद्यन्त येष्वधर्मः प्रतिष्ठितः ।
 विज्यद्यन्त धर्मतासाञ्च तस्मादती निरप्यकी ॥ २१ ॥
 किन्तु किनमें अर्धम प्रतिष्ठित है उनको तो धन बढ़ रहे
 हैं और जो स्वभावसे ही धर्माचरण करनेवाले हैं वे सबधर्म
 पड़े हुए हैं । इच्छिये व धर्म और अर्धम—दोनों निरर्थक
 हैं ॥ २१ ॥

बभूवस्त पापकामाणो यद्यधर्मो यद्यध ।
 यद्यधर्मदृष्टाधमो स ह्यहा क धधिप्यति ॥ २२ ॥
 भुन्दन । यदि पापाचारी पुत्र धर्म या अर्धममें गये
 हत हैं तो धर्म या अर्धम क्रियाकर होनेके कारण (आदि

मय्य और अन्त) ही ही क्षयितक रह सकता है । पद्य
 धर्ममें जो वह स्वर्ग ही नष्ट हो पायगा; फिर नष्ट हुआ वह धर्म
 या अर्धम किन्तु बच करेगा ॥ २२ ॥

अथवा विहितेनप्य हन्यते हस्ति चापरम् ।
 विधिः स स्थिरत तेन न स पापेन कमाया ॥ २३ ॥
 अथवा यह ध्वज यदि विधिपूर्वक क्रिये गये धर्मविचार
 (ध्येययाग आदि) के द्वारा मार खड़ा है या स्वयं देव
 धर्म करके दूखेको माफ़ा है तो विधि (विहित कर्मजनित
 अट्ट) का ही हत्याके योग्ये सिद्ध होना चाहिये, कर्मका
 अनुष्ठान करनेवाले पुत्रका उच पापकर्मसे सम्बन्ध नहीं होना
 चाहिये (क्योंकि पुत्रक क्रिये हुए अपराधका दण्ड सिद्धको
 नहीं मिष्ट है) ॥ २३ ॥

अहप्रतिकारेण भयच्छेद्यसता सता ।
 कथं शक्यं पर प्राप्नुं धर्मोपाचिकपण ॥ २४ ॥
 प्राप्नुसूदन । जो धर्मन न होनेके कारण प्रदीपकर हमसे
 ध्वज है अन्तक है और अन्तके अमान विष्मन्त है, उच
 धर्मके द्वारा दूखे (पापभावा) को बन्धकसे प्राप्त करना
 कैसे सम्भव है ॥ २४ ॥

यदि सत् स्यात् सता मुच्य नसत् स्यात् त्व किंचन ।
 त्वया यदीदृश प्राप्त तस्मात् तन्नोपपद्यते ॥ २५ ॥
 अन्तकमें भेद रसुधीर । यदि अर्धमजनित अट्ट ध्व
 या ध्वम ही होता तो आपका कुछ भी अट्टम या दुःख नहीं
 प्राप्त होता । यदि आपको ऐसा दुःख प्राप्त हुआ है तो अर्धम
 जनित अट्ट ध्व ही है, इस कथनकी संगति नहीं बैठती ॥

अथवा दुर्बलाङ्गीयो बल धर्मोऽनुपपद्यते ।
 दुर्बलो ह्यतमयावो न सेष्य इति म मतिः ॥ २६ ॥
 यदि दुर्बल और अट्टर (स्वतः कार्य-साधनमें अक्षम)
 होनेके कारण धर्म पुत्रधर्मका अनुष्ठान करता है, तब तो
 दुर्बल और अट्टरकी मर्यादासे रहित धर्मका सेवन ही नहीं
 करना चाहिये—यह मेरी स्पष्ट राय है ॥ २६ ॥

• इस अध्यायके १६ वेंसे २५ वें श्लोक स्वप्नद्वये दो
 धर्म और अर्धमके उचक कावचन किया है वह अट्टमके दुःख
 देकर स्वयं पलते भी कल्पि दुःखी होकर ही मिया है । अतः
 अट्टर पलतर धर्मका किन्तु धर्मो विनाशो मय्य-धर्मके बन्ध
 देकर धर्मके अन्तभूत हो गया धर्मको लोपना है उचि अट्टर
 मियाय धर्मके दुःखके देकर दुःखके धर्मके अन्तसे उच अट्टरको
 अन्तभूतकी कानिष्ठार्थ पदों खना भी धर्मद्विता धर्मका ही
 परिचायक है । अथ धर्मका दुःखका धर्मका कुछ कम हो जानेपर
 तो स्वयं अट्टमको ही १५ वें श्लोकसे उच हत है कि धर्मका
 अट्टमनाशन करके कोई दुःखमें प्राप्न करनेका किन्तु उचाने है
 उच पदों पद्य ही ।

वदस्य यदि चेद् धर्मो गुणभूताः पराक्रमैः ।
धर्ममुत्सृज्य सर्वत्र यथा धर्मो तया वले ॥ २७ ॥

यदि धर्म बल अथवा पुरुषार्थका अथ वा उपकरण
साध है तो धर्मको छोड़कर पराक्रमपूर्ण बर्तन श्रीशिव । जैसे
आप धर्मका प्रबल मानकर धर्ममें लगे हैं, तब प्रकर बलका
प्रबल मानकर बल वा पुरुषार्थमें ही प्रवृत्त होय ॥ २७ ॥
अथ चेत् सत्यबलान् धर्मः किञ्च परतप ।
अनुत् २७व्याकरणे किं न बद्धस्तथया विना ॥ २८ ॥

पानुओंको कंठाप देनेवाले अनुत्पन्न । यदि आप कस्य
मानकर धर्मका पालन करते हैं अर्थात् पिताकी आज्ञाको
स्वीकार करते उनके कस्यकी रक्षक धर्मका अनुत्पन्न करते
हैं तो आप स्वैच्छ पुत्रके प्रति पुत्रवत्प्रकार अभिप्रेक्ष करतेकी
सा बात विधाने करी थी उस उपपन्न पालन न करनेपर
पिताका वह अत्यन्त अशर्म प्राप्त हुआ तबकी प्रारण वे
अपने विमुक्त होकर मर गये । ऐसी दशामें क्या आप राजके
पक्षमें रहे हुए अभिप्रेक्ष-सम्बन्धी कस्य बचनसे नहीं देंगे हुए
ये । उस उपपन्न पालन करनेके लिये बाध्य नहीं थे (यदि
आपने पिताके पक्षमें रहे हुए बचनका ही पालन करनेके
पुत्रवत्प्रकार अपना अभिप्रेक्ष कर लिया होता तो न पिताकी
मृत्यु हुई होती और न सीता हरण भादि अनर्थ ही संभवित
हुए होते) ॥ २८ ॥

यदि धर्मो भवेद् भूत अधर्मो वा परतप ।
न ह्य हत्या मुनिं क्वी कुर्याद्विज्या शक्तकृणुः ॥ २९ ॥
शुश्रुवन् महाउच । यदि केवल धर्म मन्वा अधर्म ही
प्रबलरूपसे अनुत्पन्नके योग्य होता वा ब्रह्मचारी इन्द्र पौरुष-
द्वारा विश्वरूप मुनिकी हत्या (अधर्म) करके फिर पत्र (धर्म)
का अनुत्पन्न नहीं करते ॥ २९ ॥

अधर्मसंभितो धर्मो विन्रशापति राधव ।
सर्भमितद् यथाकामं काकुत्स्थ कुर्वत मरा ॥ ३० ॥
अनुत्पन्न । जैसे मित्र जो पुत्रगात्र है, उसके मित्र
हुआ धर्म ही शत्रुओंका नाश करवा दे । अतः काकुत्स्थ ।
प्रत्येक मनुष्य आज्ञाव्यवस्था एवं चिकित्से अटकार इन उपपन्न
(धर्म एवं पुरुषार्थका) अनुत्पन्न करता है ॥ ३० ॥

मद्रं बद्ध मत् तत्त धर्मोऽयमिति राधव ।
धर्ममूख त्वया शिष्य राज्ञ्यमुत्सृज्यता त्वा ॥ ३१ ॥
पठत राधव । इस प्रकार समझानुसार धर्म एवं पुरुषार्थ-
मेंसे किसी एकका अग्रथम लेना धर्म ही है, ऐसा मेरा मत है ।
आपने उस मिल राज्यका त्याग करनेके धर्मके मूखभूत अधर्मका
उत्प्रेक्ष कर बाध्य ॥ ३१ ॥

अर्थोऽप्येऽथ प्रवृत्तेभ्यः संशुचेभ्यस्तत्तत्तत्ता ।
प्रियाया सखीः प्रवृत्तेभ्यः पर्यवेभ्यः ह्ययापगा ॥ ३२ ॥
जैसे परवृत्ते नदियों निष्कम्बी हैं, तब तब ज्यों-ज्यों

समय करके स्वयं भीर बड़े हुए अर्पित करी किन्तु (जो
वे योगप्रधान हो या योगप्रधान) सम्पन्न होती हैं (निष्कम्ब
मय होनेपर सभी किन्तु, योगप्रधान हो जाती हैं और सम्पन्न
मय होनेपर योगप्रधान) ॥ ३२ ॥

यद्येन हि विमुक्तस्य पुरुषसङ्ग्रहोत्सा ।
विच्छिद्यन्ते क्रियाः सखा प्रीप्से कुसरितो यथा ॥ ३३ ॥
जो मन्वुक्ति मानव अर्पित वक्षित है तबकी करी किन्तु
तब तब छिन्न-मिन्न हो जाती हैं, जैसे प्रीप्से शत्रुमें छोटी
छाटी नदियों सूख जाती हैं ॥ ३३ ॥

सोऽयमर्थे परित्यज्य सुखकामाः सुखैषिताः ।
पापमाचरते कर्तुं तदा योग प्रवर्तते ॥ ३४ ॥

जो पुरुष सुखमें पक्ष हुआ है वह नदि प्राप्त हुए
अर्थको त्यागकर सुख चाहता है तो उस अमीष्ट सुखके लिये
अन्त्याकर्षक अर्थोपार्जन करनेमें प्रवृत्त होता है, इसलिये उसे
ठाइन कल्पन भादि योग प्राप्त होते हैं ॥ ३४ ॥

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।
यस्यार्थाः स पुर्मौल्योके पस्यार्थाः स च पण्डिता ॥ ३५ ॥

किसके पास धन है तबकी अधिक मित्र होते हैं ।
किसके पास धनका खजाना है तबकी सब लोग मार्ग-वन्दु करते
हैं । जिसके यहाँ धर्मसिद्ध धन है, वही अर्थमें भेद पुरुष करवाता
है और जिसके पास धन है, वही विद्वान् समझा जाता है ॥ ३५ ॥

यस्यार्थाः स च विक्रम्यो यस्यार्थाः स च बुद्धिमान् ।
यस्यार्थाः स महाभागो यस्यार्थाः स गुण्यधिकः ॥ ३६ ॥

किसके यहाँ धनराशि एकत्र है वह पण्डित ही कहा
जाता है । जिसके पास धनकी अधिकता है, वह बुद्धिमान् माना
जाता है जिसके यहाँ धर्मसंग्रह है वह महात्मा सम्पन्न
करवाता है तथा जिसके यहाँ धन-सम्पत्ति है, वह गुणोंमें भी
बढ़ा-बढ़ा सम्पन्न जाता है ॥ ३६ ॥

अथसैते परित्यज्यो योग्याः प्रख्याहृत मया ।
राज्यमुत्सृज्यता धीर येन बुद्धिस्तथया कृत ॥ ३७ ॥

अर्थका त्याग करनेसे जो मित्रका अग्रथम भादि योग
प्राप्त होते हैं उनका मैंने रक्षक-रूपसे वर्णन किया है । आपने
राज्य छोड़ते समय क्या धर्म खोजकर अपनी बुद्धिमें अर्थ-
त्यागकी माकनाश जान लिया वह मैं नहीं जानता ॥ ३७ ॥

यस्यार्था धर्मैकमाध्यास्तस्य सर्वे प्रवृत्तिभ्यः ।
अधनेनार्थैकामेव नार्थाः शक्यो विविक्तव्य ॥ ३८ ॥

किसके पास धन है तबकी धर्म और धर्मरूप करी
प्रवेदन विद्य होते हैं । उसके लिये सब कुछ अनुत्पन्न
जाता है । जो धर्मन है वह अर्थकी इच्छा रखकर तब
अनुत्पन्न करनेपर भी पुरुषार्थके विना उसे नहीं प
करवा ॥ ३८ ॥

हर्षा कामस्य दर्पस्य धर्मो श्लेषः शमो व्रमः ।
 अर्थावृत्तानि सर्वाणि प्रवर्तन्त नृपाधिप ॥ ३९ ॥
 धरेभर ! हर्षं, क्रमं, दर्पं, धर्मं, श्लेषं, शम और व्रम-
 ये सब मत होनेसे ही सफल होते हैं ॥ ३९ ॥
 येयां नदयत्यय लोकेभरतां धर्मचारिणाम् ।
 तेऽर्थास्तथपि न हृदयन्त पुर्विनेषु यथा प्रवृत्त ॥ ४० ॥
 जो धर्मका आचरण करनेवाले और तपस्यामें जो हुए
 हैं उन पुरुषोंका वह अंक (ऐहिक पुरुषार्थ) अर्थाभयके
 कारण ही नष्ट हो जाता है यह स्पष्ट देखा जाता है । वही अर्थ
 इस युर्विनेमें आपके पास उठी उठा नहीं दिखायी देता है,
 जैसे अज्ञानमें शरक फिर मानेपर धर्मोंके वर्धन नहीं होते
 हैं ॥ ४० ॥

स्वयि प्रमजित वीर गुरोव्य वचने स्थिते ।
 रक्षसापहता भार्या प्राणैः मियतरा तव ॥ ४१ ॥
 वीर ! आप पूर्य सताकी भाखा पाकर करनेके लिये
 उमन छोड़कर जानमें चले आये और स्वयंके पावनपर ही बटे
 रहे परंतु उसके आपकी पत्नीको, जो आपको प्राणोंसे भी
 अधिक प्यारी थी, हर लिया ॥ ४१ ॥
 तद्वच विपुल वीर दुःखमिन्द्रजित्वा कृतम् ।
 कर्मणा व्यपनेष्यामि तस्मात्तुच्छिद्य राघव ॥ ४२ ॥

हृष्यायै श्रीमहाभाग्ये वास्त्विकीये आदिशक्ये सुदकाम्ये चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

स्त प्रकार श्रीबाल्मीकिविरचित आरंभमानज अष्टादशस्कं सुदकाम्यं विराटसर्गं सर्गं पूरा हुआ ॥ ८१ ॥

चतुरशीतितम सर्ग

विभीषणका भीरामको इन्द्रजित्की मायाका रहस्य बताकर सीताके जीवित होनेका विश्वास दिलाना
 और लक्ष्मणको सेनासहित तिहुमिथला-मन्दिरमें मेखनेके लिये अनुशोभ करना

राममायासमने तु लक्ष्मणं अवाकस्तसे ।
 निश्चित्य गुरुमायं लक्ष्मणं तत्रागच्छन्तु विभीषणः ॥ १ ॥
 आत्मिक कर्मण अथ भीरामको इस प्रकार अज्ञातन दे
 खें, उठी समन विभीषण्य बानरसेनिकमें अपने-अपने खान
 पर स्थापित करके वहाँ आये ॥ १ ॥
 मन्त्रप्रहरणैर्वीरैर्भृत्युर्भित्तिसप्ततः ।
 मीमांस्यन्वयाकारैर्मार्तंतीरिष यूधयैः ॥ २ ॥
 मात्र प्रहरके अज्ञ-ज्ञान कारण लिये चार निशाचर
 वीर, जो काही कर्म-धर्मिक समान कासे हवीरको मूषयति
 गणपणोंके समान बन पड़ते थे वारों ओरते धरकर उनको
 रक्ष कर रहे थे ॥ २ ॥
 सोऽभिगम्य महात्मान राघव शोकसमस्रसम् ।
 वानरोंभापि वृद्धो याप्यपयाकुलेस्तजान् ॥ ३ ॥
 वहाँ आकर उन्होंने देखा महात्म्य अक्षय्य पाऊने मय
 हैं तथा बानरोंके नौनों भी भौं भर हुए हैं ॥ ३ ॥

वीर खनुन्दन ! भाव इन्द्रजित्ने हमलोगोंको जो महात्
 तुल दिया है, उसे मैं अपने पयकमसे पूर करूँगा अतः
 निन्ता छोड़कर उठिये ॥ ४२ ॥
 उच्छिद्य नरशाबूज वीर्यवाहा पृथ्वत ।
 किन्मात्मान महत्त्वानमात्मन नववुभ्यसे ॥ ४३ ॥
 नरभेद ! उत्तम व्रतका फलन करनेवाले महात्ताह ।
 उठिये । आप परम बुद्धिमान और परमरम्य हैं इस रूप
 अपने-आपको क्यों नहीं समझ रहे हैं ? ॥ ४३ ॥
 मयमनस तत्रोदित मियायै
 जनकसुखमिधन निरीक्ष्य दृष्ट ।
 सरयगाजहया सपत्नसेन्द्रा
 भूशामिपुभिर्विनिपातयामि कङ्काम् ॥ ४४ ॥
 निपाय खुवीर ! यह मैंने आपसे जो कुछ कहा है,
 यह सब आपका मिय करनेके लिये—अपका प्यान शोककी
 आंसे हटाकर पुरुषार्थकी ओर आकृष्य करनेके लिये कहा
 है । मय मनकन्दिनीकी मूल्यका इच्छन्त जानकर मय
 राय बन् गता है, अतः अन्न अपने बानोंकाप हाथी, पेड़े
 रथ और उसकेसयन राजनगरीत छपी कङ्काको भूमने मिय
 गूँगा ॥ ४४ ॥

हृष्यायै श्रीमहाभाग्ये वास्त्विकीये आदिशक्ये सुदकाम्ये चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

स्त प्रकार श्रीबाल्मीकिविरचित आरंभमानज अष्टादशस्कं सुदकाम्यं विराटसर्गं सर्गं पूरा हुआ ॥ ८१ ॥

राघव च महात्मानमिदवाकु कुलमन्त्रणम् ।
 वृद्धां मोहमापन्न लक्ष्मणस्याहमप्रथितम् ॥ ४ ॥
 खप ही इस्वाकु कुलन्दन महात्ता भीरुनापकीपर भी
 उनकी दृष्टि पड़ी जो मुश्किल ही कर्मणकी गेयमें छेटे हुए
 थे ॥ ४ ॥
 मीहित शोकस्तत इषु राम विभीषणः ।
 अन्तर्गुणैः क्षीमात्मा किन्तविति सोऽप्रपीत ॥ ५ ॥
 भीरामकर्मकीको अहित तथा शोकसे उदत दल विभीषण-
 क इदम मान्तरिक दु ससे शीन श गया । उन्होंने पूरा—
 प्यह क्या बात है ? ॥ ५ ॥
 विभीषणमुलं इषु सुग्रीव ताव्य बानराम् ।
 लक्ष्मणोवाच मध्वार्थमिदं वाप्यपरिप्लुतः ॥ ६ ॥
 उन कर्मणने विभीषणके मुँहकी ओर देखकर तथा सुग्रीव
 और वृषे-वृषे बानरोंपर हृदियत करके भौं बहाते हुए
 मन्दस्वमें कहा— ॥ ६ ॥

दृष्ट इन्द्रजित्वा सीत्वा इति श्रुत्वाैव रावणः ।
इन्द्रमद्रवणात् सौम्य ततो मोहमुपाभ्रिताः ॥ ७ ॥

श्लोम ! इन्द्रानुषीके मुँहसे यह सुनकर कि पृथ्विभूते
सीत्वासीके मार बाबा' भीरुपुनापनी उत्कृष्ट मूर्च्छित ही गये
हैं ॥ ७ ॥

कथयन्त तु सीमित्रि सनिबायै विभीषणा ।
पुष्कलप्रथमिद् वाक्य बिर्सेस यममावधीत् ॥ ८ ॥

इव प्रकर करते हुए ब्रह्मणको विभीषणने रोका और
भनेत परे हुए भीरुपुनापनीके यह निमित्त बोल करी-॥८॥
मनुजेध्वार्तरुपण यदुक्तस्य इन्द्रमता ।
तत्रयुक्तमह मन्थे सागरस्येव शोणणम् ॥ ९ ॥

भाषाण ! इन्द्रानुषीने दुखी होकर जो आपने उमाचर
सुनाया है, उसे मैं समुद्रको खोज देनेके समान ब्रह्मण
मान्त्र हूँ ॥ ९ ॥

मनिप्राय तु जगन्मि रथयस्य पुपलमना ।
सीतां प्रति महाबाहो न च घातं करिष्यति ॥ १० ॥

महाबाहो ! दुखमा राजपत्र खेताक प्रति क्या माग है
यह मैं भन्गी तरह जानता हूँ । यह उनका वच करायि नहीं
करते देगा ॥ १ ॥

यत्कथयन्तः सुवसुतो मया हितविभीषुणा ।
पैत्रेहीमुख्यस्येति न च तत् कृतवान् वचाः ॥ ११ ॥

यैने उक्ता हित करनेकी इच्छासे भनेक बार यह अनुरोध
किया कि विवेकुमरुको छोड़ दो किंतु उसने मेरी बात
नहीं मानी ॥ ११ ॥

नैव साम्प्र न वनेन न भ्येन कृतो युधा ।
सा प्रचुमपि शाक्यत नैव बान्धेन केनचित् ॥ १२ ॥

सीताको वृत्तय करेई युद्धय धम धम और मेवनीतिके
हाथ भी नहीं देल उक्ता फिर युद्धके हाथ कैसे देल सकता
है ॥ १२ ॥

बावरात् मोहयित्वा तु प्रतियाताः स राक्षसाः ।
मर्यामयीं महाबाहो तां विधिं जगन्वरात्मजाम् ॥ १३ ॥

महाबाहो ! उद्यत इन्द्रकिं बानरोंको मोहने बाकर
पका गया है । बिनाकर उठने बल किया या वह मर्यामयी
बनकी थीं एव निमित्त धमकिये ॥ १३ ॥

सैत्य निकुम्भिसमप्र प्राप्य होमं करिष्यति ।
इत्यथानुपयातो हि वृषैरपि सचासवैः ॥ १४ ॥
जुराधर्यो भक्त्येव सप्रामे राक्षसात्मजा ।

यह इव सम निकुम्भिसमन्धिरने बाकर हम करेग
और सब हम करके झेठिया उठ सम उठ एकचक्रुमारको
संयामने परका बना इन्द्रजित्वा कर्ण देवताओंके सिन्धे भी
कदिन इष्ट ॥ १४ ॥

तेन मोहयता नूनमेया माया प्रबोक्षित ॥ १५ ॥
विष्णमन्धिच्छता तत्र बानराणां पराक्रमे ।

निरचय ही उठने हमझेगोंको मोहने बाकोके सि
ही यह मानाका प्रयोग किया है । उसने उक्त हेतु—
बानरोंका पराक्रम चलाया था तो मेरे इव कर्णने विष्णु जो
(इच्छिये उठने देख किया है) ॥ १५ ॥

सस्येयास्तत्र गन्धप्रमे यावत्तत्र सम्पन्थे ॥ १६ ॥
त्यजैत नरयद्रवृद्ध मिष्या सत्तपमागतम् ।

अकृत्क उतत्र होम-कर्म उपास नहीं होतः उनके जने
ही हमसेना केनाशित निकुम्भिसमन्धिरने पक्ष पक्ष । तबसे
हते ही मात हुए इव संयामने स्वाम दीक्षिने ॥ १६ ॥

सीते हि बह सर्वे ह्युत्वां शोककरितम् ॥ १७ ॥
इह त्व लब्धवृद्धयस्तित्त सत्तपसमुच्छ्रिता ।
कर्मण प्रेययास्यमिः सह सैम्यानुकर्षिणि ॥ १८ ॥

मन्थे ! आपको छोड़ते उद्यत होते देल खरी सेन
युद्धने परी हुई है । आप तो पैरने कसे को-पदे हैं अतः
सकथित होकर परी रदिने और केनाको केकर बने हुए सब
समोंके साथ ब्रह्मणकीको मेव दीक्षिने ॥ १७-१८ ॥

एत तं नरशार्दुकां रावणि निविष्टैः शरैः ।
त्वाशयिष्यति तत्कर्म ततो वच्यो भविष्यति ॥ १९ ॥

ये नरभेड ब्रह्मण भयने देने बर्षसे मारकर उक्त
कुम्भरको यह होमकर्मत्याग देनेके सिन्धे निवध कर देंगे । इच्छे
वह माय या छोडगा ॥ १९ ॥

तस्मैत निविष्ट्यास्तीक्ष्णया परिपुत्राद्वाक्त्रिणा ।
पतत्रिण इवासीस्या घरा पात्यन्ति शोषितम् ॥ २० ॥

ब्रह्मणको ये देने बाप को पक्षियोंके भाङ्गूत फले हुए
होनेके कारण बड़े देगासी हैं कफ अति मूर पक्षियोंके उक्त
इन्द्रजित्वाके रक्षका धन करिगे ॥ २ ॥

तत् सविश महाबाहो नक्षत्राणुभक्तप्रणम् ।
राक्षसस्य चिन्त्राप्य वर्जं कक्षपरतो यथा ॥ २१ ॥

कथा महाबाहो ! जैसे बजराती इन्द्र देवोंके बनेके सि
बजरा प्रयोग करत हैं ठरी प्रकन धम उठ उठने
किनाचके सिन्धे ब्रह्मणसमन्धिरने ब्रह्मणको बनेकी मर
दीक्षिने ॥ २१ ॥

मनुजवर नक्षत्रविपक्षयो
रिपुनिघतं प्रति पक्षतोऽप्य कर्तुम् ।
त्वमशिशुश्च रिपोर्वधय वर्जं
विधिजरिपोर्मघने यथा मोहना ॥ २२ ॥

परेशर ! शत्रुच किनाश करनेमें सब वह कक्षकोप कर
उचित नहीं है । इच्छिये आप शत्रुबनके सिन्धे उठ
उठ ब्रह्मणको मेदिने जैसे देवताही ईश्वरोंके निघयने

स्त्रिये देवयान इन्द्र ब्रह्म प्रयोग करते हैं ॥ २२ ॥

समाप्तकर्मा हि स राक्षसार्थभो

भयत्यहृदयः समरे सुरासुरैः ।

युयुस्सता तेन समाप्तकर्मणा

भयत् सुराणामपि सशयो महाहृत् ॥ २३ ॥

हृत्पापैर् श्रीमद्भागवतने वाक्यीकीये आदिकाण्डे युद्धकाण्डे षण्णवतीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

इस प्रकार श्रीवल्मीकिनिर्मित भारतामात्म्य अष्टिकाण्डके युद्धकाण्डमंत्रोत्पत्तीर्णो सर्ग पूरा हुआ ॥ ८८ ॥

पञ्चाशीतितम सर्ग

विभीषणके अनुराधसे श्रीरामचन्द्रजीका लक्ष्मणको इन्द्रजित्के वधके लिये जानेकी आज्ञा देना और सेनासहित लक्ष्मणका निकुम्भिला-मन्दिरक पास पहुँचना

तस्य तद् वचनं श्रुत्वा राघवः शोककरीरितः ।

नोपधारयते ब्यर्कं यदुक्तं तत्र रक्षसा ॥ १ ॥

भगवान् भीषण शोकसे पीड़ित थे, अतः राक्षस विभीषण-

ने ओ कुछ कहा उनकी उस बातसे मुनकर भी वे उस स्वप्न-

कल्पसे कमल न सकें—उत्तर पूरा ध्यान न दे सकें ॥ १ ॥

ततो धैर्यमयश्चरत् रामः परपुरजयः ।

विभीषणमुपासीतमुपाव कपिसतिषी ॥ २ ॥

उपरन्तर शत्रुनागरीर विजय पावेनाक भीषण कैयं धारण

करके अनुमानकीक कर्मण बैठे हुए विभीषणसे बोल—॥२॥

नैश्वस्यधिपत पाप्म्य यदुक्तं त विभीषण ।

भूयस्तच्छत्रुमुनिच्छामि मूढि यत्ते विपक्षितम् ॥ ३ ॥

प्राथम्यर विभीषण । तुमने अभी-अभी जो बात कही

हे उसे मैं फिर सुनना चाहता हूँ । योस्ये तुम क्या करना

चाहते हो ? ॥ ३ ॥

राक्षस्य यच्च भुज्य पाप्म्य धान्य धान्यविशारदः ।

यत् तत् पुनरिह वाप्य यभाप्यध विभितयणा ॥ ४ ॥

भोसुनापकोही यह बात मुनकर धन-नीनेने कुछक विभीषण-

ने, यह जो बात कही थी उसे पुन बुरावतें हुए इस मधर

कहा—॥ ४ ॥

यथाऽऽसत महायाहा त्यया युस्सनियशम् ।

तत् तथानुष्ठित वीर शब्दवाक्यसमन्तरम् ॥ ५ ॥

जहायाहा ! अतने जो मेनाओका पयासान स्थापित

करने ही आज ही की वीर ! वह काम तो मैंने अतकी आज्ञा

हने ही पूरा कर दिया ॥ ५ ॥

तान्यनीकानि सयापि विभक्तानि समन्ततः ।

विन्यस्ता यूथपाध्व यथान्याय विभागदा ॥ ६ ॥

उन सब मनाओका विभक्त करके सब ओरक दरवाजों

पर अथवा हिन्ध और यथानि वीजन वतों अथक-अथक

यूथपाध्व भी विभक्त कर दिया ॥ ६ ॥

वह राक्षसशिरोमणि इन्द्रजित् जब अपना अनुग्रह पूरा कर लेगा, तब हमराज्यमें देवता और असुर भी उसे देख नहीं सकेंगे । अपना कर्म पूरा करके जब वह युद्धकी इच्छासे रथभूमिमें लड़ा होगा, उस समय देवताओंको भी अपने श्रीकनकी रक्षके विन्यमें महान् खिह होने समझा ॥ २१ ॥

हृत्पापैर् श्रीमद्भागवतने वाक्यीकीये आदिकाण्डे युद्धकाण्डे षण्णवतीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

इस प्रकार श्रीवल्मीकिनिर्मित भारतामात्म्य अष्टिकाण्डके युद्धकाण्डमंत्रोत्पत्तीर्णो सर्ग पूरा हुआ ॥ ८८ ॥

भूयस्तु मम विद्याप्य तच्छत्रुण्य महाभयो ।

त्वय्यक्षरणसतते सततहृदया धयम् ॥ ७ ॥

जहायाहा ! अब पुनः मुझे ओ बात भापकी सेवामें

निवेदन करनी है उसे भी मुन कीजिये । निना किसी क्षरणके

भापके संकट सेनेसे हमकोमेंके हृदयमें भी यहा क्षाप हो

या है ॥ ७ ॥

त्यज राजधिमं शोक मिष्या सत्यपमागतम् ।

यदिय त्यज्यता चिन्ता शत्रुहपयिधभिनी ॥ ८ ॥

ज्याज ! मिष्या प्राप्त हुए इस घांक और क्षापको त्याग

कीजिये खय ही इस चिन्ताको भी अपने मनसे निष्कल

कीजिये क्योंकि यह शत्रुओंका हय क्वानेवसी है ॥ ८ ॥

उद्यमः कियतां वीर हयः समुपसम्पत्ताम् ।

प्राप्तध्या यद्वि ससिता हन्तव्याश्च निशासरा ॥ ९ ॥

वीर ! यदि भाप सेताज पना और निशासरोका वध

करना चाहते हैं तो उद्योग कीजिये हय और उत्तरक

क्षाप कीजिये ॥ ९ ॥

रघुमन्दन पर्यापामि भूयता म हित वचः ।

साधयं यातु सीमिप्रियेलेन महता वृता ॥ १० ॥

निकुम्भिस्रया सम्प्रात हन्तु रावणिमाहय ।

रघुमन्दन ! मैं एक अथकक बात बतलाता हूँ ; मेरी इस

हितकर बातको सुनिये । रावणकुम्हार इन्द्रजित् निकुम्भिस्र

मन्दिरको और गया दे अतः व सुमिप्रातुम्हार कामन

विशास मना क्षय सकर अभी उत्तर अथकक करे—मुद

में उत रावणपुत्रक वध करनेके लिय उत्तर बदाई कर दें-

परी अच्छा होगा ॥ १३ ॥

धनुमण्डलनिमुक्तं रात्रीधियविद्यापम ॥ ११ ॥

नरिहन्तु महाप्रासा रावणि समिप्रियया ।

धनुर्विद्यकी मतापुत्रक सामन्य अनेक मन्त्रककक धनु

हय छान्द मव विपार गयेक तुन्ध भयनक अनन्य रावण

पुत्रक वध करनेमें क्षय है ॥ ११ ॥

तेन धीरेण तपसा वरदामात् स्वयमुषः ।
मन्त्र प्रख्याशिरा प्राप्त कर्ममात्रं तुरङ्गमा ॥ १२ ॥

उष वीरने तपस्व करके ब्रह्माक्षीके वरदानसे ब्रह्मशिर
नामक मन्त्र और मनचाही गतिसे लक्ष्मणेवाके पाड़े प्राप्त किये
हैं ॥ १२ ॥

स एष किञ्च सौम्यत प्राप्तः किञ्च निकुम्भित्वम् ।
यपुषिष्ठ्यत् कृत कर्म हृदयं सर्वोच्च विद्धि नः ॥ १३ ॥

निश्चय ही इस समय सेनाके लय वह निकुम्भित्वमें गया
है । क्वचित् अपना हक-कर्म समय करके यदि वह उठेगा
तो हम सब लोगोंके उसके हाथसे मर ही समझिये ॥ १३ ॥

निकुम्भित्वामसम्प्राप्तमहृताग्निं च यो रिपुः ।
स्वामातदापिन हस्याविन्द्रशबो स त वधः ॥ १४ ॥
बरो दूधो महायाहो सर्वलोकेश्वरेण वै ।
इत्येव विहिता राजन् वधस्तस्यैव धीमता ॥ १५ ॥

महाबाहो ! सम्पूर्ण जनोंके स्वामी ब्रह्माक्षीने उसे करवान
देते हुए कहा था—इन्द्रशबो ! निकुम्भित्व नामक वरद्वष्ट
के पक्ष पहुँचने तथा हक-सम्पन्धी कार्य पूर्ण करनेके पक्षके
ही अंशु तुष्ट अठ्ठशरी (राजशरी) को मारनेके लिये
आक्रमण करेगा; उल्लेखके हाथसे दुःशर वध होगा । राजन् !
इस प्रकार बुद्धिमान् इन्द्रशक्तिश्री मृत्युञ्जय विधान किया गया
है ॥ १४ १५ ॥

पधायेन्द्रशिवो राम सन्निशस्य महाबलम् ।
हत तस्मिन् हत विद्धि रायण ससुहृद्व्रजम् ॥ १६ ॥

इच्छिये भीरुम ! अप इन्द्रशक्ति वध करनेके लिये
महाबली सम्भवका भाग हीलिये । उसके मार अपनेपर एकज
अपने सुहृद्वोचदित मर ही समझिये ॥ १६ ॥
विभीषणवत्सः भृत्या रामो वास्यमघाप्रथीत् ।
जान्ममि तस्य रीद्रस्य माया सत्यपराक्रम ॥ १७ ॥

विभीषणक वचन सुनकर भीरुमन्त्रश्री दोषकण परित्याग
करके बने—अस्वराजकी विभीषण ! उस भयंकर राक्षसकी
मायाध में जानता हूँ । १७ ॥

स हि प्रह्लादभित्त् प्राज्ञा महाामाया महाबलः ।
कृतास्यमजान् सप्राम द्धयन् स्वयदणानपि ॥ १८ ॥

यह ब्रह्माक्षय मन्त्र बुद्धिमान् पदुत वहा मायावीभोर
महान् पन्थान् दे । परममदित लभूय दक्षभोंस भी वह
युद्धमें भवत कर लक्षा है ॥ १८ ॥

तप्यान्तरिक्षं धरतः धरधम्य महायशः ।
न गतिमापत पीर म्यस्ययाभसम्भव ॥ १९ ॥
राघवन्तु गिपामाया मायावीर्यं दुरात्मनः ।
नश्यत कर्तारंममप्रमिदं ययनमप्रथीत् ॥ २० ॥

मत्प्राप्त्ये गीर ! जगद्भिर् १८तदित आद्यधमे
विनयने प्रापते उम समय क लोमें जि हुए १३ की भर्त्

उल्लेख गतिका कुछ फल ही नहीं यच्छा । विभीषणसे वे
कर मलान् भीरुमने अपने शत्रु दुरात्म इन्द्रशक्ति
शक्तिके वनकर महाश्री वीर कर्मगते वह बात कही—
यद् बान्नेन्द्रस्य बलं तं सत्त्वं सवृत्तः ।
हनुमत्प्रमुक्तैश्चैव यूपरीः सह सम्भव ॥
जाम्बवेनर्हापतिना सह सौम्येन सवृत्तः ।
अहि तं राक्षससुत मायाबलसमन्वितम् ॥

सम्भव । वानरराज सुप्रियकी जो भी सेना है व
खप छे हनुमान् आदि मूषपतियों, शूद्रराज सम्भव
मन्व सैनिकोंसे विरे राक्षस तुम मायाबलसे सम्पन्न एवं
कुमार इन्द्रशक्ति वध करो ॥ १९ २० ॥

अथ स्वा सधिवैः सार्धं महारामा रजनीन्दरः ।
मभिहस्तस्य मायातां पृष्ठतोऽनुगमिष्यति ॥

ये महामना राक्षसराज विभीषण्य उल्लेख मायामतेः
तस्य परिचित हैं; अतः अपने मन्त्रियोंके साथ वे भी
पीछे-पीछे जाएंगे ॥ २१ ॥

राघवस्य यथा भुत्वा सम्भव्या सविभीषणः ।
अप्राह कर्मुक्तैश्चैवमन्यत् भीमपराक्रम ॥ २२ ॥

भीरुनापक्षीकी यह शत सुनकर विभीषणवदित म
परकमी कर्मपने अपना मोह धनुष हाथमें लिया ॥ २४
समय कक्षकी लक्ष्मी सशरी वामवापसुत् ।
रामपाहावुपसृष्ट्य ह्यः सौमित्रिण्णवीत् ॥ २५ ॥

वे युद्धकी सब सामग्री छेकर तैयार हो गये । उ
कषय धारण किया तस्कार बौच ली और उत्तम बध
बाँधे हाथमें धनुष छे लिया । तत्पश्चात् भीरुमन्त्रश्रीके
पूकर हरते मरे हुए सुमिश्राकुमारने कहा— २५ ॥
अथ मत्प्रमुक्तोमुक्ताः शय विभीषण राक्षसिम् ।
अनुगमिपतिष्यन्ति हंसा पुष्करिणीमिम् ॥ २६ ॥

भार्ये । आज मेरे धनुषसे धूँट हुए सब राक्षसकुम्भ
विभीषण करके उल्लेख तद्वदामे निर्दये जसे इत कम
भरे हुए लठवरो उतरते हैं ॥ २६ ॥

अधीय तस्य रीद्रस्य शरीरं मामकाः शराः ।
विधमिष्यन्ति भित्त्वा त महावापगुण्युत्था ॥ २७ ॥

इत विरास धनुषसे सूटे हुए मेरे सब भाव हीः
भयंकर राक्षसक शरीरको विरोध करके उते क्षान्तक गा
शत होंगे ॥ २७ ॥

पथमुक्त्वा तु वचनं पुत्तमान् भानुरप्रतः ।
स राघवियथाकाङ्क्षी लक्ष्मणस्त्परितं ययौ ॥ २८ ॥

इ किन्तु वध ही अभित्थय रत्नेवत्त तस्यै लक्ष्म
अने भयंकर क्षमन एषे वा इदकर इत बहोस पत रि
साडभियाध गुरावादी हृत्या थापिप्रवृत्तिष्यम् ।
निकुम्भित्वमभिययी वस्य राघवियासितम् ॥ २९ ॥

पृथक् तन्हेने भयने बहू गच्छन् चरणैर्नि प्रथमं क्रिया,
चिरं तन्वीं परिक्रम्य करकं यवनकुम्भच्छायां पश्चित् निकुम्भिस्य-
मन्त्रिरकीं शिरः प्रस्थानं क्रिया ॥ २९ ॥

विभीषणेन सहितो राजपुत्रः प्रत्यापयान् ।
पृथक्स्थपयतो भ्रात्रा उरुमणस्वरितो वयो ॥ ३० ॥

माह भीरुमहाय सन्निवाचनं क्रियं अनेकं पश्चात्
निमीरकध्वितं प्रत्यापी राक्षसुमार उरुमण बहो उद्यमनीकं
वप चर ॥ ३ ॥

यानराणां सङ्घैस्तु हनुमान् बहुभिभूतः ।
विभीषणस्य सामान्यो सङ्गमण स्वरितं वयो ॥ ३१ ॥

इह इत्थं वानरसैनिकं वप हनुमान् और मन्त्रिणोद्धृतं
निमीरणं यी उरुमणक पीठे श्रीमच्छायाक प्रमितं हुए ॥ ३१ ॥

महता हरिसैव्येन सङ्गममभिसूतः ।
शूरासङ्गस्यैव वैष्व इव च पथि विद्वितम् ॥ ३२ ॥

विशाल वानरसनाद्धितं चिरे हुए उरुमणने वेगवृत्त
नाये बहूकर मण्ये लकीं हुइ शूरासङ्ग सन्ध्यावर्धी
मेनाकं वैशा ॥ ३२ ॥

स गत्या दूरमध्यामं सौमित्रिमित्रजन्तम् ।
राक्षससङ्घस्य दूरात्पश्यत् शूरासङ्घितम् ॥ ३३ ॥

दूरात्पश्यत्पत्ता तं कर उनेत्त मिश्रीकं आनन्धितं करने-
इत्यार्थे भीमहायायने वाक्यमिदं अदिश्याये युद्धकाण्डे पडशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

इस प्रकार श्रीमत्संस्कृतनिर्मित आरामानाम अदिश्यायेके युद्धकाण्डे पडशीतितमः सर्गः पूरा हुआ ॥ ८५ ॥

पडशीतितम सर्ग

वानरों और राक्षसोंका युद्ध, हनुमान्जीक शरा राक्षससेनाका संहार और उनका इन्द्रजित्को
इन्द्रयुद्धक लिय लठकारना तथा उरुमणका उसे दखना

अथ तन्म्यामबन्ध्याया उरुमण राक्षणानुम् ।
परगामहितं यास्यमपसापक्रम्यधीत् ॥ १ ॥

उस अन्धव्यामे उचनक छार भाइ विभीषणेने उरुमणसे
एकी वान कही अ उनक अनीध अयक शिर करनेवाकी
तथा शत्रुभेकं क्रिय भवितकर थी ॥ १ ॥

यद्वत् रक्षसानीकं मद्यस्यामं विद्वोन्पत ।
पथव्यापाप्यतां शीघ्रं कृषिभिश्च शिख्यापुथैः ॥ २ ॥

तस्यानीकस्य महता मदनं यत् उरुमण ।
राक्षससङ्घस्योऽप्यत्र भिन्नं हृद्यो भविष्यति ॥ ३ ॥

१ वाक्य—उरुमण ! यह उनेने अ मणोकी कसी
पयकं उमान राक्षसोकी सन् दिखायी रही है उरुक वप
शिरकरो अयुच वारण करनेवाक वानरवार शीघ्र ही युद्ध
पड दे और अथ यी इस विशाल शक्तिकं शूराक मदन
करनेक प्रयत्न करे । इसका मन्त्र दूरनेस उरुमणक
पुत्र इन्द्रजित् यी तने पछे दिखायी देग ॥ २-१ ॥

वाक्य मुमिषाकुमारने कुक दूरसे ही देखा; उरुमणक उचनकी
सेना मन्त्रा बोधे लकी है ॥ १ ॥

स सम्यगप्य धनुष्याणिमायायोगमरिचम् ।
तस्यौ शूराधिभानेन विजितुं रघुनन्दना ॥ ३३ ॥

शत्रुभेकं वन करनेवाक रघुकुलनन्दन उरुमण हाथमें
धनुष अ शूराधीक निमित्त क्रिय हुए निधानक अतुकर उरु
मण्यपी राक्षसक शीतनक लिय निकुम्भिस्य नामक स्थानमें
पूर्वोचकर एक काह लख हा गव ॥ ३८ ॥

विभीरणेन सहितो राजपुत्रः प्रत्यापयान् ।
महान् स च वीर्यं तथानिहतसुगणं च ॥ ३९ ॥

उरु उरुम प्रतापी राक्षसुमार उरुमणक वप विभीषण
पीर भाइ वप पन्नकुमार हनुमान् यी व ॥ ३९ ॥

विविधममच्छास्त्रभासरं तद्
शूरासङ्गं गहनं महारथैश्च ।
प्रतिभयतममप्रमथयणं

विमिरमित्य श्लिषता पथ विवेद्य ॥ ३६ ॥

चमकीक अन्न-शस्त्रों अ प्रकाशित हो रही थी; अथ
और महारथियोंके करण गहन दिखायी दृष्टी थी निरुक्त
वेगक काह म्प नही था तथा अ अनेक प्रकारकी शूरासङ्गमें
हथिगन्धर दृष्टी थी अन्धकारक उमान कसी उस शत्रुनेनाम
विभीषण अदिके वप सङ्गमने प्रवेश किया ॥ ३६ ॥

चमकीक अन्न-शस्त्रों अ प्रकाशित हो रही थी; अथ
और महारथियोंके करण गहन दिखायी दृष्टी थी निरुक्त
वेगक काह म्प नही था तथा अ अनेक प्रकारकी शूरासङ्गमें
हथिगन्धर दृष्टी थी अन्धकारक उमान कसी उस शत्रुनेनाम
विभीषण अदिके वप सङ्गमने प्रवेश किया ॥ ३६ ॥

विमिरमित्य श्लिषता पथ विवेद्य ॥ ३६ ॥

चमकीक अन्न-शस्त्रों अ प्रकाशित हो रही थी; अथ
और महारथियोंके करण गहन दिखायी दृष्टी थी निरुक्त
वेगक काह म्प नही था तथा अ अनेक प्रकारकी शूरासङ्गमें
हथिगन्धर दृष्टी थी अन्धकारक उमान कसी उस शत्रुनेनाम
विभीषण अदिके वप सङ्गमने प्रवेश किया ॥ ३६ ॥

विमिरमित्य श्लिषता पथ विवेद्य ॥ ३६ ॥

चमकीक अन्न-शस्त्रों अ प्रकाशित हो रही थी; अथ
और महारथियोंके करण गहन दिखायी दृष्टी थी निरुक्त
वेगक काह म्प नही था तथा अ अनेक प्रकारकी शूरासङ्गमें
हथिगन्धर दृष्टी थी अन्धकारक उमान कसी उस शत्रुनेनाम
विभीषण अदिके वप सङ्गमने प्रवेश किया ॥ ३६ ॥

चमकीक अन्न-शस्त्रों अ प्रकाशित हो रही थी; अथ
और महारथियोंके करण गहन दिखायी दृष्टी थी निरुक्त
वेगक काह म्प नही था तथा अ अनेक प्रकारकी शूरासङ्गमें
हथिगन्धर दृष्टी थी अन्धकारक उमान कसी उस शत्रुनेनाम
विभीषण अदिके वप सङ्गमने प्रवेश किया ॥ ३६ ॥

चमकीक अन्न-शस्त्रों अ प्रकाशित हो रही थी; अथ
और महारथियोंके करण गहन दिखायी दृष्टी थी निरुक्त
वेगक काह म्प नही था तथा अ अनेक प्रकारकी शूरासङ्गमें
हथिगन्धर दृष्टी थी अन्धकारक उमान कसी उस शत्रुनेनाम
विभीषण अदिके वप सङ्गमने प्रवेश किया ॥ ३६ ॥

चमकीक अन्न-शस्त्रों अ प्रकाशित हो रही थी; अथ
और महारथियोंके करण गहन दिखायी दृष्टी थी निरुक्त
वेगक काह म्प नही था तथा अ अनेक प्रकारकी शूरासङ्गमें
हथिगन्धर दृष्टी थी अन्धकारक उमान कसी उस शत्रुनेनाम
विभीषण अदिके वप सङ्गमने प्रवेश किया ॥ ३६ ॥

चमकीक अन्न-शस्त्रों अ प्रकाशित हो रही थी; अथ
और महारथियोंके करण गहन दिखायी दृष्टी थी निरुक्त
वेगक काह म्प नही था तथा अ अनेक प्रकारकी शूरासङ्गमें
हथिगन्धर दृष्टी थी अन्धकारक उमान कसी उस शत्रुनेनाम
विभीषण अदिके वप सङ्गमने प्रवेश किया ॥ ३६ ॥

चमकीक अन्न-शस्त्रों अ प्रकाशित हो रही थी; अथ
और महारथियोंके करण गहन दिखायी दृष्टी थी निरुक्त
वेगक काह म्प नही था तथा अ अनेक प्रकारकी शूरासङ्गमें
हथिगन्धर दृष्टी थी अन्धकारक उमान कसी उस शत्रुनेनाम
विभीषण अदिके वप सङ्गमने प्रवेश किया ॥ ३६ ॥

चमकीक अन्न-शस्त्रों अ प्रकाशित हो रही थी; अथ
और महारथियोंके करण गहन दिखायी दृष्टी थी निरुक्त
वेगक काह म्प नही था तथा अ अनेक प्रकारकी शूरासङ्गमें
हथिगन्धर दृष्टी थी अन्धकारक उमान कसी उस शत्रुनेनाम
विभीषण अदिके वप सङ्गमने प्रवेश किया ॥ ३६ ॥

सथ ही बड़े-बड़े रथ सेक्टर युद्ध करनेवाले बानर और
मायू भी बर्षों लड़ाई हुई राक्षस-सेनापर एक साथ ही टूट पड़े।
राक्षसाय दितैर्वापैरसिभिः शक्तितोमरैः।
अभ्यर्तन्त समरे कपिसैन्यप्रियासया ॥ ८ ॥

उपरते राक्षस भी बानरसेनाको नष्ट करनेकी इच्छासे
समराङ्गणमें हीने बर्षों लड़ाई, धकियाँ और लम्बे-लम्बे
प्रहार करते हुए उनका खनाम करने लगे ॥ ८ ॥
स सम्प्रहारस्तुमुक्ता सञ्जये कपिरक्षसाम्।
शम्भेन महत्या जङ्गु जययन् वै समन्ततः ॥ ९ ॥

इस प्रकार बानरों और राक्षसोंमें परामर्श युद्ध होने
लगा। उसके महान् फलदायकते लम्बी जङ्गुपुरी एवं ओरसे
गूँब उठी ॥ ९ ॥

शस्त्रैश्च विविधाकारैः दितैर्बाणैश्च पापैः।
उद्यतैर्गिरिपुङ्खैश्च शेरैरक्षशाम्यभूतम् ॥ १० ॥
नाना प्रकारके शस्त्रों वने पापों, उठे हुए इष्टों और
मन्त्रानक पर्यन्त-धिसरते बर्षोंक आक्रमण सम्पन्नकित हो गया।
राक्षसा बानरसेत्रेपु विकृतमन्त्राहवः।
निवेद्यशक्तः शस्त्राणि क्लृप्तस्त इमुमहज्जयम् ॥ ११ ॥

निष्कर गूँब और बर्षोंनाक राक्षसने बानर-यूथपरिधोपर
(नाना प्रकारके) शस्त्रोंक प्रहार करते हुए उनके सिन्धे
महान् म्म उपस्थित कर दिया ॥ ११ ॥

तद्यैव सकलैर्वृक्षैर्गिरिपुङ्खैश्च बानराः।
अभिजन्तुर्निजन्तुश्च समरे सर्वप्रसस्तान् ॥ १२ ॥
तबै प्रकार बानर भी समराङ्गणमें समूची इष्टों और
पर्यन्त-धिसरारहाय समस्त राक्षसोंको मारने एवं हरावत
करते लगे ॥ १२ ॥

शुक्रबानरमुक्यैश्च महाकायैर्महाबलैः।
राक्षसां युष्मन्मानायां महद्भयमजायत ॥ १३ ॥
शुक्र-मुक्म महाकाय महाबली शीघ्रों और बानरोंसे बहते
हुए राक्षसोंको म्मान् म्म लगने लगा ॥ १३ ॥

कामनीकं विषण्णं तु भुत्वा शत्रुभिरर्चितम्।
वदतिष्ठत दुर्धराः स कर्मण्यनुष्ठितम् ॥ १४ ॥
उष्णकुमार इन्द्रकिड बड़ा दुर्धर वीर था। उठने म्म
झुना कि मेरी सेना शत्रुभोंद्वारा पीड़ित होकर बड़े दुःखमें
पड़ गयी है, वह अनुष्ठान समाप्त होनेके पहले ही वह युद्धके
सिन्धे सठ लड़ा हुआ ॥ १४ ॥

शुक्राभ्यकराभिनात्य जट्टज्योषः स राक्षसिणः।
थाकरोह रथ सज्य पूर्वयुक्त सुस्यतम् ॥ १५ ॥
उय समन उसके समाने बड़ा श्रेय उत्पन्न हुआ था।
वह इष्टोंके सन्धकारते निष्कण्ठ एक सुलभित रथपर भास्य
हुआ जो पहलेसे ही सेक्टर तैयार रक्खा गया था। वह
रथ बहुत ही सुदृढ़ था ॥ १५ ॥

स भीमकामुकशरत कुप्याङ्गनचोपमा।
रक्तस्यनयनो भीमो बभौ मृत्युरिवात्मका ॥ १६ ॥

इन्द्रकिड हाथमें मयंकुश बन्य और लक्ष्य वे।
अग्ने केनेलेके देर-सा बान पड़ा था। उष्ण गूँब और
लगा वे। वह मयंकुश राक्षस विनाशकारी मृत्युके लम्बन प्र
देता था ॥ १६ ॥

हृष्टैव तु रथस्य त पर्ययतत तद् वनम्।
राक्षसा भीमयोगानां जक्षमणेन युयुत्सवाम् ॥ १७ ॥
इन्द्रकिड रथपर बैठ गया, वह देखत ही लक्ष्यनक
युद्धकी इच्छा रखनेवाले मयंकुश वेगवानी राक्षसोंकी पर ले
उठके आलवाय लक्ष्य ओर लड़ाई हो गयी ॥ १७ ॥
तस्मिंस्तु क्राळे हनुमानकजत् स युवास्तम्।
धरणीधरसकाशो महाहृत्समरिचमम् ॥ १८ ॥

उठ समन शत्रुभोंक दमन करनेवाले पर्यन्तके लम्ब
विधात्मकय हनुमान्कीने एक बहुत बड़े इष्टको, किसे टोकर
था उखाड़ना कठिन था, उखाड़ दिया ॥ १८ ॥
स राक्षसानां तत् सैम्य क्राळाम्भिरिव निवृहत्।
अकार बहुभिर्बृक्षैर्गिरिःसञ्च युधि बानरा ॥ १९ ॥

किर तो वे बानरवीर प्रख्यातिके समान प्रबलिय हो उं
और युद्धक्षममें राक्षसोंकी उध सेनाको हथ करते हुए ल
संघनाक इष्टोंकी मारते अनेक करने लगे ॥ १९ ॥
विष्वसपन्त करसा हृष्टैव पथनरपञ्चम्।
रक्षसाणां सहस्राणि हनूमन्तमवाकिरत् ॥ २० ॥

पन्तकुमार हनुमान्की बड़े वेगसे राक्षस-सेनाका निवृ
कर रहा है वह देखते ही लक्ष्यों राक्षस उनपर म्म-लक्ष्यों
कर्षा करते लगे ॥ २० ॥

शितशुक्रधराः शूडैरसिभिश्चासिपायवा।
शक्तिहस्ताश्च शस्त्रैर्भिः पट्टिरीः पट्टिधमयुधाः ॥ २१ ॥
यमकीले हाथ धारण करनेवाले राक्षस लक्ष्यों किने
हाथमें लम्बारों भी वे लम्बारोंसे, शक्तिधारी शक्तिसे और
पट्टिधारी राक्षस पट्टियोंसे उनपर प्रहार करने लगे ॥ २१ ॥

परिधैश्च गदाभिश्च कुम्भैश्च शुभद्वयैः।
शतशब्द शतश्रीभिरावसैरपि मुद्गरैः ॥ २२ ॥
शेरैः परशुभिश्चैव भिन्निपादैश्च राक्षसाः।
मुदिभिर्षडकस्यैश्च तलेरशक्तिसिन्धैः ॥ २३ ॥
अभिजन्तु सम्यसाद्य समन्तात् पर्यन्तमम्।
तेपामपि च सङ्कटावकाश कर्त्तुं महत् ॥ २४ ॥

बहुतसे परिधै गदाओं मुद्गर लक्ष्यों शेरों लक्ष्यों
शेरोंके बने हुए मुद्गरों ममानक करलें भिन्निपादों, बरके
समान मुक्कों और अशक्तिसिन्धे वन्यहाते वे लम्ब राक्ष
पस आकर लक्ष्य ओरसे पर्यन्तकार हनुमान्कीपर प्रहार करने
लगे। हनुमान्कीने कुविद्य होकर उनका भी महान् छार किया ॥

स इवर्षं कृपिभेष्टमखलोपममिन्द्रजित् ।
 सुवमानमसत्रस्तममिश्रान् पवनारामञ्चम् ॥ २१ ॥
 इन्द्रजित्ने देव्यः कृपिभर पवनकुमार इतमान् पवतके
 क्मन् भवस्य इति युद्धभाषसे अस्मि यमुञ्जोश्च खारु कर
 रते ॥ २१ ॥

स सारथिमुयाचद् याहि यवैष वानरः ।
 क्षयमय हि नः क्रुयाद् यज्ञसागामुपस्थितः ॥ २१ ॥
 यह ऐनकर उठने अपने खरपिसे कहा—क्यों यह
 वनर युद्ध करता है वहाँ चला । यदि उसकी उपेक्षा की
 गयी तो यह हम सब राक्षसोंका निराश ही कर डालेगा ॥ २१ ॥
 इत्युचः सारथिस्तन ययौ पत्र स माहतिः ।

पहन् परमवुधर्षे स्थितमिन्द्रजित् रथे ॥ २७ ॥
 उच्यते एष कन्देभर सारथि रथपर बैठे हुए भस्वन्
 युज्ये वीर इन्द्रजित् इत्याहुः उच स्थानपर गयाः क्यौ
 पवनपुत्र इतमान्की विराजमान ॥ २७ ॥

सोऽभ्युपाय शरान् खड्गान् पट्टिशोश्च परम्भधान् ।
 भस्मययत्त युधयः कृपिमूषाभि राक्षसः ॥ २८ ॥
 यहाँ पहुँचकर उठ युज्ये राक्षसे इतमान्कीक मस्तकपर
 कर्णों, तलवारों, पट्टियों और बरखोंकी वग आरम्भ कर दी ॥
 तानि दास्याभि घोराभि प्रतिपृच्छ स माहतिः ।

रायेण महतायिद्यो वाक्य चेदमुपाय ॥ २९ ॥
 उन भयानक कर्णोंको अपने राथीपर झेलकर पवनपुत्र
 इतमन्की महान् रायसे भर गया और इत प्रकार बोले—
 युष्यस्य यदि दारुणसि रायपातमञ्च युमेते ।
 पायुपुत्र समासाद्य न अयन् प्रतियास्यसि ॥ ३० ॥
 युद्धदि उपवनकुमार । यदि यह घोरवीर तु ता आओ,
 मेरे खप मस्तकुद करे । इत वायुपुत्रसे भिड़कर भीति नहीं
 और उच्यते ॥ ३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायण बाष्पमीकीये आदिकाण्डे युद्धकाण्डे षडशीतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥

(स प्रजा भैरवस्तर्कित्तिर्देव आशमामय आदिकाण्डे युद्धकाण्डे विपयस्तर्कित्तिर्देव पूजा कुना ॥ ८९ ॥

सप्ताशीतितमः सर्गः

इन्द्रजिन् और विभीषणकी रायपण बातचीत

एवमुक्त्वा तु सामिपि जानह्यौ विभीषणः ।
 धनुष्पाणि तमाश्राय स्वयमाणा उग्राम सा ॥ १ ॥
 पूतेक वा बरबर होने भर हुए विभीषण धनुष
 कुंभयातुमारुध क्षय उचर बड़े फल भये ॥ १ ॥
 भरिदूर तथा गथा प्रविश्य तु महद् बन्धम् ।
 भद्राप्य तन्वन् नरमयाय विभीषणः ॥ २ ॥
 यदा हा तु वनर (विभीषण) एक महान् बन्धने—यद्य
 एक वनराय (विभीषण) आश्रयदाता बन दिश्यात् ॥ २ ॥

पाहुभ्यां सम्प्रयुष्यस्य यदि म इन्द्रमाहवे ।
 योग सहस्य युयुधे ततस्त्य रक्षसा वत् ॥ ३१ ॥
 धुम्ने । अपनी मुन्बयोहाय मर खप इन्द्र-युद्ध करो ।
 इत वाहुयुद्धमें यदि मेरा वग छद् व्य ता तुम राक्षसोंमें भेड
 पीर छम्भे बाधने ॥ ३१ ॥

हनूमन्त जिघासन्त समुपतदापसनम् ।
 रावणामञ्जमाचष्ट लक्ष्मणाय विभीषणः ॥ ३२ ॥

यवनकुम्भर इन्द्रजित् धनुष उठाकर इतमन्कीक वप
 करना चाहता था । इषी भवत्सामे किभीषणने करमयाय
 उच्यते परिचय दिया— ॥ ३२ ॥

यः स वासुधनिर्जैता रावणस्यामसम्भयः ।
 स एष रथमास्थाय हनूमन्त जिघासति ॥ ३३ ॥
 ठमप्रतिमसम्पन्नैः द्वारैः शत्रुनिवारणैः ।
 अविशान्तकरधैरैः सौमित्र रायणि जहि ॥ ३४ ॥

धुमिप्रान्तरन । उपवनक्य जे युप इन्द्रक्य भी भीत युध
 है, वही यह रायपर बैठकर इतमान्कीक वप करना चाहता
 है । अतः आप युनुभोश्च विद्यारण करनेवाला; अनुपम
 भाकर प्रकरोसे युक्त एवं श्रान्तकपी भरकर कर्णोंहाय उच
 रायवनकुमारक्य मार डालिये ॥ ३३ ३४ ॥

इत्येवमुक्त्वा तुवा महात्मा

विभीषणेनारिविभीषणनेन ।

वृषदा त परतसनिम्वरा

रथस्थित भीमबल दुरासकम् ॥ ३५ ॥

युनुभोश्च भयभीत करनेवाला विभीषणक एष कन्देभर
 उच कणव महात्मा कर्मजने रथपर बैठे हुए उच भद्रंकर
 कथाकी परतवाचर बुज्य रायवद क रता ॥ ३५ ॥

नीलज्रीमूतसद्यरा न्यप्राध नीमद्वजन्म् ।
 तज्जरी रायवध्याया लक्ष्मणाय न्यवदयन् ॥ ३ ॥
 यहाँ एक वरावदक वृष वा जे इयमनपदक क्मन्
 कल और हवनने भरकर था । एतन्क तन्की अद्य
 विभीषणने लक्ष्मणे यहाँके क वन्ध्यादि उचर करता— ॥ ३ ॥
 इदापदार भूधान्य पनवान् रावणायजः ।
 उपहस्य तदा पथ्यान् सप्राममभिरुनेन ॥ ४ ॥
 धुमिप्रान्तरन । वर वर वर वर वर वर वर वर वर

भाकर पहले मूर्खोंके बलि देता; उसके बाद मुझमें प्रवृत्त
हृत्वा है ॥ ४ ॥

अवस्था: सर्वभूतानां ततो भवति राजस्यः ।
निश्चित्य सन्तरे दाम्बु वज्रासि च शरोत्तमौ ॥ ५ ॥

पूर्वसे संग्राममूर्खमें यह एकदम संपूर्ण मूर्खोंके लिये
आरम्भ हो जाता है और उच्चम बाणोंसे शत्रुओंको मारता तथा
बाण छेदा है ॥ ५ ॥

तमप्रविष्ट न्यप्रभं वलिन रावणरमजम् ।
पिण्डस्य शरैर्वृत्तिः सरथ साम्बसारथिम् ॥ ६ ॥

अत अन्तक भइ इत भरदके नीचे आये; उसके पहले
ही भाप अपने तेरुकी बालोंद्वारा इत बलवान् रावणकुमारको
रथ में और शरविशदित नष्ट कर दीजिये ॥ ६ ॥

तथेत्युक्त्वा महातेजाः सौमित्रिमिब्रनम्बुनः ।
वन्मूढावस्थितस्तत्र धिक्चि विस्फुरथन् धनुः ॥ ७ ॥

तब पबहुत अन्धधर करके मित्रोंके अन्दर बतानेवाले
महातेरुकी सुमित्राकुमार अपने विचित्र वज्रपत्नी टंकर करते
हुए वहाँ लड़े हो गये ॥ ७ ॥

स रथेनाग्निधर्मैः वलवान् रावणरमजम् ।
इन्द्रचित् कवची सङ्गी सप्तजः प्रत्यवदथत ॥ ८ ॥

इतनेमें ही बलवान् रावणकुमार इन्द्रचित् अभिनिक समान
तेरुकी रथपर बैठा हुआ बनन; सङ्ग और अन्धके साथ
रिसाली पड़ा ॥ ८ ॥

तमुद्यच्च महातेजाः पौत्रस्त्यमपराङ्गितम् ।
सामाह्वये त्वां समरे सम्प्रायुर् युयुं प्रयच्छ मे ॥ ९ ॥

तब महातेरुकी अमजने पराङ्गित न होनेवाले पुत्रस्य-
कुम्भन्दन इन्द्रचित्के कहा—पुत्रसकुमार ! मैं तुम्हें युद्धके
लिये सम्मनप्राप्त हूँ । तुम अपनी तरह से सम्मन मेरे साथ युद्ध
करो ॥ ९ ॥

पथमुक्तो महातेजा मनस्वी राजात्मजा ।
भगवतीत् पठन वाक्य तत्र हृद्वा पिभीपयम् ॥ १० ॥

अमजके देख करनेपर महातेरुकी और मनस्वी रावण
कुमारने वहाँ विभीषणको उपस्थित देख करके शय्योंमें
पड़ा— ॥ १० ॥

इह त्व आतसंबुद्धः साहाय्यं भाव्य पितृमम ।
कथं भृष्टासि पुत्रस्य पितृव्यो मम राक्षस ॥ ११ ॥

एकदम ! यही तुम्हारा कर्म हुआ और वही बहकर तुम
इतने बड़े हुए । तुम मेरे पिताके छोटे भाई और मेरे भाचा
हो । फिर तुम अपने पुत्रसे-पुत्रसे क्यों ब्राह्मणसे हो ॥ ११ ॥

न श्रुतित्वा न सीदार्थं न श्रुतित्वा तुमत् ।
प्रमाज न च सीदर्थं न धर्मो धमकृत् ॥ १२ ॥

हुम्बि । तुमने न तो कुटुम्बीकोंके प्रति अपनापनका

भाव है; न आत्मीयकोंके प्रति लोह है और न अपनी कौ-
श्र अमिमान ही है । तुममें कर्तव्य-अकर्तव्यकी भ्रंशता; अ-
प्रेम और धर्म कुछ भी नहीं है । तुम एकदम-धर्मका अन्ध
करनेवाले हो ॥ १२ ॥

शोष्यस्त्वमसि बुद्धुदे निम्बनीपद्य साधुभिः ।
यस्त्य स्वजनमुत्सृज्य परवृत्त्यत्वमागता ॥ १३ ॥

‘बुद्धुदे’ । तुमने स्वकोंके परित्याग करके दूकोंमें
गुल्मी स्वीकार की है । अतः तुम उत्सृज्योद्वारा निम्बने
और धरकके साथ हो ॥ १३ ॥

मैतच्छिथिलत्वा बुद्धुथा त्व वेसि महुवन्तरम् ।
क च स्वजनसवासा क च नीच पराधया ॥ १४ ॥

नीच निष्ठाकर । तुम अपनी शिथिल बुद्धिके द्वारा
महान् अन्तरको नहीं समझ पा रहे हो कि क्यों तो स्वकोंके
साथ रहकर स्वकन्वताका आनन्द सेना और क्यों दूकोंमें
गुल्मी करके जीना है ॥ १४ ॥

गुणवान् वा परजनः स्वजनो निर्गुणोऽपि वा ।
निर्गुणः स्वजनः श्रेयान् वा परा पर पद्य सा ॥ १५ ॥

पूछते श्रेय लिये ही गुणवान् क्यों न हों और स्वक
गुणहीन ही क्यों न हो ! वह गुणहीन स्वक भी दूकोंमें
अपेक्ष भेद ही है । क्योंकि वृष्ण वृष्ण ही होख है (वह क्यों
अपना नहीं हो सकता) ॥ १५ ॥

याः स्वपक्ष परित्यज्य परपक्षं निवेद्यते ।
स स्वपक्षे क्षयं याते पञ्चात् कैरिच हन्त्यते ॥ १६ ॥

जब अपने पक्षको छोड़कर दूसरे पक्षके श्रेयोंमें सेन
करता है वह अपने पक्षके नष्ट हो जानेपर फिर उन्हींके द्वारा
मर जाय सकता है ॥ १६ ॥

निरजुहोहात्या जेय याचशी ते विरक्षकर ।
स्वजनेन त्वया शक्य वीर्य रावणानुज ॥ १७ ॥

परपक्षके छोड़े मार निष्ठाकर । तुमने अमजको इत
कान्तक के व्याकर मेरा बच करनेके लिये प्रयत्न करके ब-
नैथी निरक्षर रिसाली है; देखो पुत्रवर्ष तुम्हारे-सैव स्वक
ही कर सकता है—तुम्हारे सिवा वृद्धे किसी स्वकके लिये
देख करना सम्भव नहीं है ॥ १७ ॥

इत्युक्तो भव्यपुत्रेण प्रत्युद्यच्च विभीषणा ।
अजानधिव मच्छीछ किं राक्षस विकरपते ॥ १८ ॥

अपने भयनेके देख करनेपर विभीषणने उठकर दिव-
प्राक्षस । तू आज देखी देली क्यों बघरता है ! अब परत
है तुम मेरे स्वभावका पता ही नहीं है ॥ १८ ॥

राक्षसेन्द्रसुतासाधो पादप्य स्वस गीरवत् ।
कुले यद्यप्यह जातो रक्षसां क्रूरकर्मण्याम् ।
गुणो या प्रथमो नृप्यां तम शीघ्रमराक्षसम् ॥ १९ ॥

भयम् । एकस्वपञ्चमुष्मत् । बहोके बहूप्यनका स्वस्व
 करत् तू हत कठोयत्वात् परित्याग कर दे । यद्यपि मेघ कम
 मूक्यमा एकलोकं कुम्भे ही हुआ है तथापि मेघ धीक-स्वप्न
 एकलोक-व नही है । छयुक्तयोंके जो प्रथम गुण उत्प है
 मैंने उल्लेख आभय उ रक्ता है ॥ १९ ॥
 न रमे दारुण्येसाह न खापमैण धै रमे ।
 भ्यामा विपमशीखोऽपि कथ भ्राता निरस्यते ॥ २० ॥
 कृतापूर्वं कर्मि मेघ मन नहीं क्लमा । अभर्मि मेरी
 बधि नहीं हाथी । यदि अपने भाईका धीक-स्वप्न अभनेसे न
 मिक्ता हो तो भी बहा भाई छाट भाईको कैसे परसे निकल
 उछता है ! (परंतु मुझ परसे निकल दिया गया; फिर मैं
 वृत्ते छयुक्तयन आभय नको न हूँ ।) ॥ २ ॥
 धमात् प्रकृत्युतशील हि पुढपं पापनिभयम् ।
 त्यक्त्वा सुखमवाप्नोति हृष्टप्रदाशीविपं यथा ॥ २१ ॥
 निष्कथ धीक-स्वप्न भर्मि भ्रष्ट हो गन्व हो; किन्ते
 पाप करनेका हृद निभय कर लिया हो; ऐसे पुढरका त्याग
 करके प्रत्येक प्राणी उली प्रकर मुली होया है जैसे हाथपर
 बैठे हुए लहरीके लोको त्याग देनेसे मनुष्य निर्भय हो जाता
 है ॥ २१ ॥
 परस्वहरणे युक्त परदारभिमर्शकम् ।
 त्याज्यमाहुपुरातमान वेदम प्रभसित यथा ॥ २२ ॥
 वृत्तोंका मन कृष्टा हो और पयवी क्रीर छय
 क्लमा हो; उठ दुरातमाका क्लते हुए परकी मौलि त्याग देने
 शक्य कताया गया है ॥ २२ ॥
 परस्वार्ता च हरण परदारभिमदानम् ।
 सुहृदामतिदाया च ज्यो दोषाः क्षयायहा ॥ २३ ॥
 पयसे भनका भाहरण परस्वोके छय उर्ता और अपने
 प्रियेकी मुहदोंपर भविष्य घटा—अविश्वास—ये तीन शेष
 विदायकरवी कपसे गये हैं ॥ २३ ॥
 महर्षीण्यं यथा धारः सर्वदेवैश्च विग्रहः ।
 भभिमानश्च रोगश्च परस्य प्रतिकूलता ॥ २४ ॥
 पत दारा मम ध्यातुर्ज्ञेयितैभ्यवनाज्ञाना ।
 गुणान् प्रकृत्युतयामास्तु पप्रतानिय तायदा ॥ २५ ॥
 महर्षीण्यं भर्षर बप सन्पूर्वैरेवभाक छय विरुध
 अभिमन टग, पैर और धर्मके प्रतिकूल चन्द्र—ये दार

मेरे भर्षमें मौमूह हैं जो उसके प्राण और एक्ष्य दोनोंका
 न्याय करनेवाछ हैं । जैसे शत्रु परकीको आच्छादित कर देते
 हैं; उली प्रकर इन उद्योते मेरे भाईके कर गुणोंको उफ दिया
 है ॥ २४ २५ ॥
 द्वापैर्योः परित्यक्तो मया भ्राता पित्र लथ ।
 नियमसि पुरी लडा न कस्य न च ते पिता ॥ २६ ॥
 'इन्ही दोषोंके कारण मैंने अपने भाई एवं तरे निताका
 त्याग किया है । अब न तो यह लडापुपी रोखे न व रोख
 और न तरे पित्र ही रह जायेंगे ॥ २६ ॥
 अतिमानश्च बालश्च दुर्पिनीतश्च राक्षस ।
 यज्ञस्वश्च काष्ठपादोन मूहि मां यत् यद्विन्दसि ॥ २७ ॥
 पाक्ष ॥ तू भक्त अभिमानी, उहृष्ट और शक
 (मूर्ख) है; कसक पादमें पैसा हुआ है; इत्थिय तैपी ज-
 को इच्छा हा मुझ कर के ॥ २७ ॥
 अद्योह ध्यसन प्राप्त यन्मा परुपमुक्तयान् ।
 प्रयच्छु न त्यथा शक्य न्यमोष राक्षसाभम ॥ २८ ॥
 नीच राक्षस ! तूने मुझसे जे कठोर बात कही है; उल्लेख
 यह फल है कि आज तुझपर यहाँ घोर लकट अग्रा है । अब
 तू बराबर नीचेतक नही जा उछता ॥ २८ ॥
 धययित्वा च काकुत्स्थं न शक्य जीवितु त्यया ।
 युष्मत्स नरप्येन लक्ष्मणेन रणे सह ।
 हतस्वं देवताकार्यं करिष्यसि यमहायम् ॥ २९ ॥
 ककुत्सकुम्भूयम छमनका निरस्कर करत् तू बीसिन
 नहीं रह उछता अता इन नरदेय छमनके छय एनभूमिमें
 युद्ध कर । यहाँ माय शक्य तू ममभ्रकमें पनुचग और
 देवताभ्रक कार्य करेग (उन्हें शंभु करेग) ॥ २९ ॥
 निन्दायस्वारमपस समुघत
 कुरुष्य सयायुधसायकप्ययम् ।
 न लक्ष्मणस्येत्य हि याणोचर
 स्वमद्य जीवन् सखलोगमिष्यसि ॥ ३० ॥
 'अब तू अपना पैसा हुआ छय बड रिना समन
 अयुधों और छयभ्रक छय कर न; परंतु छमनक यानोंका
 निराय्य बनकर भाव तू सेनाकीरत ज्विन नहीं छैट
 उछग' ॥ ३ ॥

इकार्ये धीमद्वामाकने वास्मीकीये धदिशय्य युद्धकाण्डे अष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८० ॥

एत प्रका धीमद्वामाकनेर्भक्तिर्भक्त भागवतपण अरिनाम्नक मुद्रकाण्डे सप्तर्षी सर्ग पूरा हुआ ॥ ८० ॥

अष्टाशीतितम सर्ग

नरुमग और इन्द्रचित्की परस्पर रावभरी बातचीत और धार युद्ध

विभीषणपथः धुम्गा रावलिः प्रथममूर्च्छितः । निर्भरतरी पर रत मुनकर यानकुम्पर इन्द्रिन्
 धमपीन् परर यानस्य प्रथमनाभ्युत्पपात च ॥ १ ॥ कथम मूर्च्छितश्च ता उडा । रर ग्वाक इतर बाने

विक्रान्ती यत्नसम्पन्नायुधौ विक्रमशयिनी ।

उभौ परमवृषैषावतुल्यवन्दतेजसौ ॥ ३४ ॥

ये दोनों वीर पराक्रमी यत्नसम्पन्न, विक्रमशायी, परम वृक्ष्य तथा अनुपम कृष्ण और तेजसे युक्त होनेके कारण अत्यन्त वृक्ष्य ये ॥ ३४ ॥

युयुधते तदा वीरौ महाविष कभोगतौ ।

यत्नसम्पन्नाविष हि तौ युधि वै तुष्पधर्यौ ॥ ३५ ॥

जैसे अक्रान्ति दो प्रह टक्य गये हैं, उसी तरह वे दोनों वीर परस्पर युद्ध रहे थे । उस युद्धस्थलमें वे इन्द्र और वृषासुरके समान वृक्ष्य वन्दते थे ॥ ३५ ॥

युयुधाते महात्मानौ तदा केसरिणाविव ।

वह्नयसुजायौ हि मार्गधीधनवस्त्रितौ ।

नरराक्षससुभ्यौ तौ प्रहृष्टावभ्ययुष्मत्तम् ॥ ३६ ॥

वे महामन्त्री नरभेद तथा रक्षसपर वीर जैसे हो विह आपसमें बह रहे हैं उसी प्रकार युद्ध करते थे और बहुतसे बालोंकी सर्प करते हुए सुदन्तमें डटे हुए थे । दर्शने ही बड़े हर्ष और उत्साहके साथ एक-दूसरेका खम्भा करने थे ॥ ३६ ॥

ततः शयान् वाशरथिः संधायामिन्नकर्षण ।

ससर्ज राक्षसेन्द्राय हृद्यः सर्प इव श्वसन् ॥ ३७ ॥

तदनन्तर बधरफनन्दन शत्रुमर्दन कर्मणने कुम्भित हुए सर्पकी भाँति बंधी सोंध लीन्ते हुए अपने धनुस्तर अनेक बाण रक्ते और उन लक्षके उपस्थान इन्द्रकिरण चम्पया ॥

तस्य ज्योत्स्ननिर्घोष स भुत्वा राक्षसधिया ।

वियर्षवद्भ्यो भूत्वा कृष्णमण समुदेसत ॥ ३८ ॥

उनके धनुस्तरकी बोधिते प्रकट होनेवासी टंकरफननि मुनकर रक्षस्यव इन्द्रकिरण मुँह उठाव हा गया और वह पुनःबाण कर्मणकी ओर देखने लगा ॥ ३८ ॥

वियणयदन ह्यु राक्षस रावजातमजम् ।

सौमित्रि युवस्युक्त प्रत्युषाच विभीषणा ॥ ३९ ॥

एकत्रकुमार इन्द्रकिरण मुँह उठाव देखकर विभीषणने युद्धमें लगे हुए सुमित्राकुमारके कृष्ण—॥ ३९ ॥

निमिद्यान्पुप पदयामि पान्यसिन् रावणात्मजे ।

एष तन महापाहो भग्न एष न सदायः ॥ ४० ॥

पहायाहा ! इन समय एकत्रपुत्र इन्द्रकिरणमें युद्ध जो सज्जन दिगायी दे रहे हैं उनसे वन्द पढ़व है कि निःशब्द इन्द्र उग्रद मंग हा गया है भना आर इन्द्र बचके सिन् दीपक है ॥ ४० ॥

तदा संधाय सौमित्रिः "रावणादीधियापमान् ।

मुमान् विदिश्राक्षसिन् सपान्ति विगारयन्तान् ॥ ४१ ॥

तव सुमित्राकुमारने तिरपर लक्षके समान भयंकर बालों

को धनुस्तर चढ़ाया और उन्हें इन्द्रकिरणों वन्द करते वन्द दिया । वे बाण क्या वे महाविप्लवे सर्प थे ॥ ४१ ॥

राक्षसशान्तिरामस्पर्शैः कर्मणोऽनन्ततः शरैः ।

मुहूर्तमभकम्भूः सर्वैः ससुभितेन्द्रिया ॥ ४२ ॥

उन बालोंका स्पर्श इन्द्रके कर्मणों मूर्ति दुःख व कर्मणके चढ़ाये हुए उन बालोंकी चोट लाकर इन्द्रकिरणों पकीके सिन्ने मुहूर्त हो गया । उरुकी सारी इन्द्रियों सिद्ध हो उठी ॥ ४२ ॥

वपकम्प्य मुहूर्तेन सत्वां प्रत्याप्यतेन्द्रिया ।

वृषादीपस्त्रित वीरभञ्जौ वृष्टारथात्मजम् ।

सोऽभिवाचयाम सौमित्रि रोषात् सरक्तलोचनः ॥ ४३ ॥

योभी देरमें वन्द रोष हुआ और इन्द्रियों मुक्ति हुई । वन्द उरुने रणभूमिमें वृष्टारथकुमार वीर कर्मणके वन्द देखा । देखते ही उसके नेत्र रोक्ते अन्त हो गये और व सुमित्राकुमारके सामने गया ॥ ४३ ॥

भञ्जवीर्यैः नम्रसाद्य पुनः स पठवन्वा ।

किं न सप्तसि तद् युजे प्रथमे मत्पराक्रमम् ।

निष्पद्यस्व सह भ्रात्रा यथा युधि विबोहते ॥ ४४ ॥

हाँ पहुँचकर वह उनसे कठोर बालीने केवल— सुमित्राकुमार ! पहले युद्धमें मैंने जो पराक्रम दिखाव वन्द उसे क्या द्रम भूष गये ! उस दिन द्रमको और द्रमके नरों को भी मैंने बौध किया था । उस समय द्रम युद्धभूमिमें लगे पड़े उटपटा रहे थे ॥ ४४ ॥

युथां बल्लु महायुजे वृष्टारथान्तरि शरैः ।

शायितौ प्रथमं भूमौ विस्त्रौ सपुरासरौ ॥ ४५ ॥

उस महायुद्धमें वन्द एवं अचानके समान तेजसी बल्लु द्रम मैंने द्रम दोनों भाइयोंके पहले धरतीपर मुक्त दिया था । द्रम दोनों अपने आसपासी रीतिरूपके वन्द मुहूर्त रोक्ते पड़े थे ॥ ४५ ॥

स्मृतिवाग्दक्षि तं मय्ये व्यर्षां वा पमसात्तम् ।

गन्तुमिच्छसि यग्मां स्वमाभर्षयितुमिच्छसि ॥ ४६ ॥

अपना भावून होवा है कि तुम्हें उन वन्द बालोंकी वन्द नहीं आ रही है । वह स्वयं वन्द पढ़व है कि द्रम समयमें लगे बना चाहते हैं । इधीकिये द्रम मुझे पराजित करनेकी इच्छा रखते हैं ॥ ४६ ॥

पद्मि तं प्रथमे युजे न वृष्टा मत्पराक्रमम् ।

अद्य त्वां वृष्टायिष्यामि सिच्छन्तीं व्यवस्त्रिम् ॥ ४७ ॥

पद्मि पहले युद्धमें तुमने मेरा पराक्रम नहीं रखा है वन्द अद्य तुम्हें दिला दूँगा । इस समय मुक्तिरथावले पड़े रण ! इत्युपन्ना सततभित्वायैरभिबिष्याथ नदमजम् । वृष्टायिस्तु इन्मन्त तीक्ष्णधारः शयात्तमौ ॥ ४८ ॥

एषा क्वचन वीक्षी पारजात एत वानोसे उरने वरमन-
को धनस कर दिया और इस उरन वयकोहाय सुमन्मन्-
पर प्रहार किया ॥ ४८ ॥

ततः शरशतेभ्यः सुमयुक्तेन वीर्यबाध ।

श्रोभ्यद् द्विगुणसरभ्यो निर्विमिद् विभीषणम् ॥ ४९ ॥

तस्यभ्रातृ वृते एतसे मेरे हुए उर वरकमी निगबने
मन्वी तपसे छोड़े गये थे वानोहाय विभीषणको शत्रुपूषक
छत्र-निष्ठ कर दिया ॥ ४९ ॥

तद् ह्येन्द्रजिता कर्म कृत रामानुजस्य ।

अभिसन्धित्या प्रहसन्मैतत् किञ्चिदिति सुषन् ॥ ५० ॥

इन्द्रजिताय किये गये इस वरकमको देखकर भीष्मके
छोट मारें वरमनने उरभी कोई परवा नहीं की और हँसे-
हँसे कहा—वह था कुछ नहीं है? ॥ ५० ॥

मुयोस्य च शरान् शरान् सयूढ मरुयुगा ।

अभीक्ष्ण्यन्तः कुड्यो राषण्यि लक्ष्मणो युधि ॥ ५१ ॥

खय ही उन नरभेद वरमनने मुलपर मन्वी वरमनक
नहीं मने थी । उन्होंने युद्धसममें कुपित हो मरकर थाप
हाथमें किये और उन्हें यवनकुमारको खन करके कहा दिया ॥

मैत्र एष्यताः शूराः प्रहरन्ति निघावत ।

अथवभ्यात्पयीषाञ्च घारा हीमे सुखासञ्च ॥ ५२ ॥

हिर ने बोले—निघावर । रमन्मिमें आये हुए छर
वीर इस तरह प्रहार नहीं करते । इमारें ने थाप बहुत इन्के
मोर वरमने हैं । इनसे छत्र नहीं छोड़े—मुल ही मिच्छा है ॥

मैत्र शूरास्तु युष्मन्ते समरे युद्धकाङ्क्षिणा ।

इत्येष व ह्रुवन् धन्वी शरीरविषयवै ॥ ५३ ॥

'युद्धकी इच्छा रखनेवाले शूरवीर वरमनने इस तरह
युद्ध नहीं करते हैं ।' ऐस कहते हुए वनुर्ब वीर वरमनने
उर यक्षपर वानोकी वानों मारम्मा कर थी ॥ ५३ ॥

तस्य बाणैः सुविष्वस्त कवचं काञ्चन महत् ।

अपरीर्यत ख्योपस्य तावज्जाडमिवाम्बरत् ॥ ५४ ॥

वस्त्रके बाणसे इन्द्रजित्का मरान कवच को वनेष
का हुमा था दूटकर रपकी बैठकमें किलर गया माने
आकाशसे खपकोष व्मह दूटकर गिर पडा हा ॥ ५४ ॥

विधूतवमा नापयैवमूष च कृतमज ।

इन्द्रजित् समरे वीरः प्रत्यये भानुमानिच ॥ ५५ ॥

कवच कट जनेर तपचोकें प्रहारसे वीर इन्द्रजित्के
खरे मारोंमें पाव हो गय । वह वरमनने रखसे रजित्त हो
मरःकाक पूर्वकी भौंसे दिखायी देते व्मह ॥ ५५ ॥

तव भयानक पराक्रमी वीर यवनकुमारने अत्यन्त कुपित
हो वरमन्मिमें वस्त्रके खसों वानोंसे पाकस कर दिया ॥

अपरीर्यत महश्चिष्य कवच लक्ष्मणस्य तु ।

कृतप्रतिहृत्यभ्येत्य वन्मूषतुरिन्द्री ॥ ५७ ॥

इससे वस्त्रका भी दिव्य एव विद्याक कवच छिन्न-मिन्न
हो गया । व वानों धनुदमन वीर एक वृत्के प्रहारका कवच
पने वगे ॥ ५७ ॥

अभीक्ष्ण्य निःश्वसन्ती तौ युष्मेतां तुमुल युधि ।

शरसंकुचसबाहौ खर्यतो रथिरोक्षितौ ॥ ५८ ॥

वे वारवार हँसे हुए वरमनक युद्ध करने वने । युद्ध
सममें वानोंके आपतसे दोनों वारे भङ्ग वान-निष्ठ हो गये
ये । मर वे दोनों वन वरसे व्महृदहन हो गये ॥ ५८ ॥

सुवीर्यकाल तौ वीरावभ्येत्य निशितैः शरैः ।

तस्मत्तुर्महारामाती एणकमविशारतौ ।

वन्मूषतुम्भारमजये पत्नी भीमपराक्रमौ ॥ ५९ ॥

दोनों वीर वीर्यकालक एक-वृत्केपर पने वानोंका प्रहार
करते रहे । दोनों ही महामन्त्री तथा युद्धकी वरमने निपुण
ये । दोनों मरकर पराक्रम प्रकट करत वे और अफ्री-अफ्री
मिन्मके किये वस्त्रशौक ये ॥ ५९ ॥

तौ शरीरैस्तपाक्षीर्षी निहृत्तकवचवज्जौ ।

सुजन्तौ रथिर शोभ्य जल प्रकणपातिय ॥ ६० ॥

दोनोंके शरीर थाप-समूहोंसे म्यात थे । दोनोंके ही कवच
वीर मर कर गये थे । जैसे दो वरने व्मह वहा रहे हैं उसी
तुष्ट वे दोनों अपने शरीरसे गरम-गरम रक्त बहा रहे थे ॥

शरसर्वं कतो घोर मुञ्जतोर्भामिन्वितनम् ।

साधारण्योरिवाकाशे नीलयोः कास्मेभयोः ॥ ६१ ॥

दोनों ही मरकर वानोंके खप वानोंकी घोर वया कर
रहे थे मानो प्रकणकालके दो नील नेत्र मरुधरमें वरुकी
वया बरल रहे हैं ॥ ६१ ॥

तयोरप्य महान् कालो व्यतीयात् सुध्यमानयोः ।

न च तौ युद्धयैमुक्य ह्रम व्यप्युपजम्मतुः ॥ ६२ ॥

वहाँ वृद्धते हुए उन दोनों वीरोंका बहुत अधिक समय
व्यतीत हो गया परंतु वे दोनों न तो युद्धसे विमुक्त हुए और
न उन्हें वरमन ही हुए ॥ ६२ ॥

अव्याप्यत्यकिञ्चिदं श्रेष्ठौ वरापत्तौ पुनः पुनः ।

पराजुघातव्याकपानत्तरिते पवन्मनुः ॥ ६३ ॥

दोनों ही मरनेकेसममें श्रेष्ठ वे और वरवार अपने
अज्ञोष प्रदरैन करते थे । उनाने आकाशमें छोड़े-वड़े
वयोष वरु-का वीर दिया ॥ ६३ ॥

अपतत्रोपमसन्ती वसु विभ च सुपुत्र च ।

उभौ तु तुमुल घोरं वक्रतुणरराहसी । १४ ॥

व मनुष्य और राक्षस—दोनों वीर बड़ी कुशलिके साथ
मनुष्य और सुन्दर दंगले बाणैक प्रहार करते थे। उनके
बाण चम्पनेकी कठमने कहीं टोप नहीं हिलानी देता था।
व दोनों धर परस्परान मुझ कर रहे थे ॥ ६४ ॥

तयोः पूयङ्क पूयङ् भीमः शुभ्रुये लक्ष्मिस्तनः ।
स कर्म्यं जनयामास निर्घात इव वारुण्यः ॥ ६५ ॥

बाण चखन कर्म्य उन दोनोंकी इयेकी और प्रत्यक्षात्
मर्षकर एवं तुमुक नाद पूयङ्-पूयङ् सुनायी देता था; व
मर्षकर वज्रापात्री भाषाबद्ध समन भोतामोंके हृदयमें कर्म्य
उत्पन्न कर देता था ॥ ६५ ॥

तयोः स भ्राजत शम्भुस्तथा समरमत्तयोः ।
सुधागयोनिंस्तनोगमग मघपोरिव ॥ ६६ ॥

उन दोनों रणेनमत्त वीरोंका यह धम्भ भाङ्गधामे परस्पर
टकरते हुए दो महामर्षकर मर्षोंकी गङ्गाकाटक समान
मुग्धमिन् हटा था ॥ ६६ ॥

सुगम्पुत्रानराधैर्बलवन्ती कृतमजौ ।
प्रसुसुयात रुधिर कीर्तिमन्ती जये पूती ॥ ६७ ॥

वे दोनों कम्बान् योद्धा धनेक बलबाळ नाराजोंसे पयस
हा धरिसे मृत रहा रहे थे। दोनों ही यगस्त्री थे और अपनी-
अपनी निबन्धके लिये प्रयत्न कर रहे थे ॥ ६७ ॥

त गाप्रयोनिपठिता रुक्मपुत्राः प्राप युधि ।
धरुम्निग्धा विनिष्यतुर्विविधुर्धरणीतस्रम् ॥ ६८ ॥

युद्धमें उन दोनोंके बचनेसे हुए सुपर्णमय पक्षवाले बाण
एक वृक्षके धरिपर पड़ते; रक्तने भीगकर निष्कले और
परतीमें समा खत थे ॥ ६८ ॥

अन्य सुनिर्गतिः शशीयकपदो सजप्रहृत् ।
यमन्नुधिच्छिन्नुर्येष तयोषाणाः सहस्रशः ॥ ६९ ॥

उनके हृदय बाण भाङ्गधामे तीक्ष्ण धारोंसे टकराने और
उन्हें लड़कर टकड़े टकड़े कर डालते थे ॥ ६९ ॥

स पभूय रणा धारस्तवाषाणमयध्वज ।
ग्निध्यामिव वृन्माभ्यां सत्र कुन्मयध्वजः ॥ ७० ॥

यह यद्वा भारकर मुझ हा रहा था। उनमें उन दोनोंके
बाणोंका कन्दू यन्त्रमें गाहनत्व और भाङ्गनीर नामक दो
न त्रिंशत् अक्षयक क्षय विंशत् हुए कुन्माक करधी भानि खन
पडा था ॥ ७० ॥

इत्यर्थे धीमन्मयस्य वास्योद्येयै भादिद्यमे बुद्धयर्थेऽशार्तान्निमः मग ॥ ८४ ॥

म उरर अशार्तान्-उर्तिर्नैः नपानावन् अदीशान्क बुद्धयर्थे मद्गुणार्थं मन् वृत्तं ॥ ८ ॥

तयोः कृतमजौ वही शुभ्रुभाते महत्सम्भो ।
सुपुण्याविव निष्यन्ती वने किञ्चुकास्मकी ॥ ७१ ॥

उन दोनों महामनस्वी वीरोंके बलविक्रत धरिपर काने पर-
हीन एवं भास पुष्पोंसे भरे हुए पक्ष्य और सेमक हकींके
समान सुषोभित होते थे ॥ ७१ ॥

वक्रमुस्तुमुख घोरं सनिपात मुमुसुहुः ।
इन्द्रजिह्वसुम्पञ्चैव परस्परजयैषियौ ॥ ७२ ॥

एक वृक्षका खिलनेकी इच्छावाळ इन्द्रजिह्व और प्लवन
रु-रुद्धकर धरंभार मर्षकर मार-भट मचाते थे ॥ ७२ ॥

लक्ष्मणो रावणि युद्धे रावणिश्चापि लक्ष्मणम् ।
अन्योन्यं त्रयभिन्नस्तौ न धर्मं प्रतिपद्यताम् ॥ ७३ ॥

कर्मण एवभूमिमें रावणकुम्भरपर खेट करते थे और
रावणकुम्भर कर्मणपर। इत तरह एक वृक्षपर प्रहार करते
हुए वे वीर यद्धते नहीं थे ॥ ७३ ॥

वाणजालैः दारीरस्यैरषगादेस्तारिनी ।
शुशुभाने महावीर्या प्रकटाविव पर्यती ॥ ७४ ॥

उन दोनों वेगवाळी वीरोंके धरिमें बाणोंके समूह र्वत
गये थे। इच्छिये व दोनों महापराक्रमी योद्धा विनर बहुबलके
इव उग गये हा; उन दो परीखके समान धारण
पाते थे ॥ ७४ ॥

तयो रुधिरसिक्त्रानि सचूतानि शरैर्भुंशाम् ।
यभाज्जु सर्वैषाश्रयि ज्यञ्जन्त इव पावका ॥ ७५ ॥

बाणोंसे बके और लूत्से भिये हुए उन लम्पक लरे
अङ्ग बळी हुई आगके समान उगीत हो रहे थे ॥ ७५ ॥

तयोरथ महान् कालो व्यतीपात् युष्मानयोः ।
न ख ती युद्धैरेमुक्य भ्रम चाप्यभिन्नमतुः ॥ ७६ ॥

इत तरह युद्ध करते-करते उन दोनोंका बहुत समय मकैत
हा गया। परंतु व दोनों में तो युद्धसे विनृत हुए और न उन्हें
यक्षयट ही हुई ॥ ७६ ॥

भय समरपरिधम निहन्तु
समरमुद्यप्यजितस्य लक्ष्मणस्य ।

प्रियहितमुपपाद्यन् महा मा
समरमुत्सव्य विभीरणोऽप्यतस्य ॥ ७७ ॥

युद्धक मुदानेपर पराजित न होनेनाल लक्ष्मणक युद्धकीन
धमद्य निराण तथा उनक द्विष एवं हितप्र कम्बदन करनेक
लिय महा मा विभीरण युद्धभूमिमें अक्षर नाई हा गया ॥ ७७ ॥

एकोनवतितम सर्गः

विभीषणका राक्षसोंपर प्रहार, उनका वानरयूथपरिषोंको प्रोत्साहन देना, लक्ष्मणद्वारा इन्द्रजितके सारथिका और वानरोंद्वारा उसके घोड़ोंका बध

युष्मन्मानी ततो ह्युवा प्रसक्तौ मरुराक्षसौ ।
प्रभिन्नास्त्रिय मालाङ्गी परस्परज्वरिणी ॥ १ ॥
सयोर्युद्धं प्रप्लुक्तमो मत्वापधरो यत्नी ।
शुभ्र स रायणभ्राता तस्मै सप्तममूर्धनि ॥ २ ॥

ब्रह्मण और इन्द्रजितके दो मदमग हाथियोंकी भौंति परस्पर बिल पानेकी इच्छासे युद्धसक होकर झड़ते देख उन दोनोंके मुँहसे देखनेकी इच्छासे रायणके कन्धान् मार्गेश्वरके निभीरु सुन्दर धनुष धारण किये उस युद्धके मुहानेपर स्पर्क लगे श गये ॥ १ २ ॥

ततो विस्मरण्यामास महत् धनुस्वस्थितः ।
उत्ससस च तीक्ष्णामान् राक्षसेषु महादारान् ॥ ३ ॥

वहाँ लगे होकर उन्होंने अपने विशाक धनुषके लोधा और रक्षसोंपर तब धारवाल बड़े-बड़े नाणोंके बरखना मारम्भ किया ॥ ३ ॥

ते शराः शिखिसस्यशां निपतस्तः समाहिताः ।
राक्षसान् द्राप्यामासुर्वेज्जानीय महागिरीन् ॥ ४ ॥
तेषु पत्र नामक मूत्र बड़े-बड़े फलोंके बिठीरु कर देते हैं उखी मूत्र विभीषणके पक्षसे हुए वे बाल बिनका सर्प अगक उमान ब्रह्मनेपाल्य था राक्षसोंपर मारकर उनके अङ्गों से खरेते लगे ॥ ४ ॥

विभीषणस्यानुचरास्तऽपि शस्त्रसिपाद्भिः ।
चिच्छिदुः समरधीगन् राक्षसान् राक्षसोचमाः ॥ ५ ॥

विभीषणके अनुचर भी राक्षसोंमें भेद बीर य अत वे भी समराक्षसोंमें शस्त्र गड़ और पहिणोंद्वारा बीर राक्षसोंका वंश धरत लगे ॥ ५ ॥

राक्षसंस्त्रीः परियुतः स तदा तु विभीषणः ।
पत्नी मध्यं प्रभूषाना कन्धनानामिय द्विपः ॥ ६ ॥
उन चार गधसोंसे फिर हुए विभीषण पूर गन्धवनमेंके बीचमें गड़ हुए गन्धवनकी भौंति गाभा पात थे ॥ ६ ॥

तत्र सधादमामा धै हरीन् रक्षाधमियान् ।
उत्ताप यवन काल कालज्ञा रक्षसा वर ॥ ७ ॥
गधसोंमें भेद विभीषण समर्पित कर्णसे जानते थे इच्छिय इहाने वानवाप किन्हे उधसोंका बध करना दिय था युद्ध दिय प्रभु इत हा ग गन्धवनके अनुचर बाल बही— ॥ ७ ॥

एषऽप्य राक्षसद्रव्यं परायणमथम्बितम् ।
प्लप्लप्य पल तस्य किं निहतं हरिभयम् ॥ ८ ॥
गन्धेभ्य भय उदनाइ का इतन हा ' एषकय

रायणका वह एकाग्र छाया है, जो हमारे सामने लड़ा है ।
रायणकी सेनाका इतना ही मग अब सेग रह गया है ॥ ८ ॥
अस्त्रिय निहते पापे राक्षसे रणमूर्धनि ।
रायण यर्षयित्वा तु शेषमस्य पल हतम् ॥ ९ ॥

पूरा युद्धके मुहानेपर इस पापी राक्ष इन्द्रजितके मारे जानेपर रायणके छोड़कर उलकी खरी ठेनाकी मरी हुई ही समझे ॥ ९ ॥

प्रहस्तो निहतो वीरो निकुम्भश्च महाबलः ।
कुम्भकर्णश्च कुम्भश्च धृष्टासश्च निशाचरः ॥ १० ॥

वीर प्रहल मरा गया महाबली निकुम्भ कुम्भकर्ण, कुम्भ तथा निशाचर धृष्टास भी कालके गधमें बले गये ॥ १० ॥

जम्बुमाळी महामाळी तीक्ष्णधंगोऽशनिप्रभः ।
सुतज्जो यज्ञकोपश्च यज्ञद्वेषश्च राक्षसः ॥ ११ ॥
सह्यादी विकटोऽरिष्णस्तपनो मन्व पय च ।
प्रघातः प्रसक्तौव प्रज्ज्जो जह एष च ॥ १२ ॥
अग्निकेतुश्च तुष्यो रश्मिकेतुश्च धीयवान् ।
विपुष्टिर्जो द्विजिह्वश्च स्यराशुश्च राक्षसः ॥ १३ ॥
अकम्पनः सुपाश्वर्षश्च चक्रमाळी च राक्षसः ।
कम्पनः सस्वन्वी तौ द्याम्बकनरस्तकौ ॥ १४ ॥

जम्बुमाळी म्यामाळी, तीक्ष्णधंग, अशनिप्रभ सुतज्ज, यज्ञकोप राक्ष बरदइ खंडारी विष्ट अरिष्ण, तपन, मन्व, प्रघात, प्रसक्त, प्रज्ज, जह, दुर्बल अग्निकेतु पराजयी रश्मिकेतु, विपुष्टि, द्विजिह्व, राक्षस स्यराशु अकम्पन, सुपाश्वर्ष निशाचर चक्रमाळी, कम्पन तथा च दोनों शक्तिशाली बीर देवान्तक और नरनरक—य मभी मरे च युद्धे हैं ॥ ११—१४ ॥

एतान् निहत्यातिबल्यन्पहन् राक्षससत्तमान् ।
बाहुभ्यां सागर वीत्वा सङ्घर्षतां गाण्डू लघु ॥ १ ॥
इन अत्यन्त बलशाली बहुबलक राक्षसिधमरिषोंका बध करक तुमसंगाने हाथोंत तरकर समुद्र धार कर लिया है ।
नभ गाण्डू सुरीक स्पर्क पर अमना गधत बन्धा हुआ है । अतः इन की शीम ही तैप बाध ॥ १ ॥

एतावद्बलं गय या जतप्यमिति वानराः ।
हन्तः सर्वे समागम्य राक्षसा यत्तद्वर्तिता ॥ ११ ॥
धनग ! इतनी ही राक्षसेना और गय रह गयी है जिस तुम्हें कीटना है । अपने वन्दर पमट धरनेवात मान कथ गाण तुमसे निदइ मारे च युद्ध है ॥ ११ ॥
अयुक्त निधन कर्तुं युष्मन् जनितुमम ।

पुत्रामपास्य रामायै निहृम्या भ्यनुपत्यजम् ॥ १७ ॥

यै इहके वापस्य मार्यै हूँ । इह नाते नर मेघ पुत्र है ।
भतः मेरे शिष्ये इहक वप करण भनुक्ति है, तथापि श्रीराम-
चन्द्रकीके शिष्ये दवाको शिष्यजति दे मैं मनने इह मतीकेको
मारनेके शिष्ये उचत हूँ ॥ १७ ॥

धनुस्त्रयमस्य मे वाप्य चाहुम्येष निहृम्यति ।

उत्तमैव महाबाहुर्लक्ष्मणः शमयिष्यति ॥ १८ ॥

भव मैं स्वय मारनेके शिष्ये इहक इषियार चक्रनाचाहय
हूँ उव छमय औत् मेरी इति बंद कर देते हूँ । भतः ये
महाबाहु छमय ही इहक किनाश करेगे ॥ १८ ॥

धान्यं चतुःसम्भूय मृत्यानस्य समीपगान् ।

इति तन्मतिपरासा राक्षसेनाभिषोदितः ॥ १९ ॥

वानरेन्द्रा जहापिरे काङ्क्षसिन्धु च विष्णुजः ।

श्वानरो । तुम्होका हांड क्वाकर इहके समीपकीं केवको
पर टूट पको और उन्हे मार बास्के । इह प्रकर भलस्य कपसी
उचव विभीककेके प्रीति करनेपर क्वात्पुपति इर्ष और उचव-
से मर गये तथा अपनी पूँछ पटकने लगे ॥ १९ ॥

तवस्तु कपिदमर्मुला इषंभस्तस्य पुनः पुनः ।

मुमुक्षुर्विधिधान् नृवान् मय्यन् द्रष्टुं च बर्हिणः ॥ २० ॥

किर वे दिहके छमय पराक्रमी वानर धारधार गकते हुए
उकी तरह नाना प्रकारके घाव करने लगे, जैसे बादलकेको
देखकर मोर अपनी बोझी बोझने लगते हैं ॥ २ ॥
आम्ययातपि तौ सर्वैः सपृथ्वीरभितस्तुतः ।
तेऽस्मभित्तपहयामासुर्नक्षेत्रीन्तैश्च राक्षसान् ॥ २१ ॥

अन्ते मूयबाधे छमस्य मृदुयैस्ते किर हुए चम्बवान्
तथा वे वानर पत्थरों, नलों और बौँटोंसे वहाँ उचकेंके पीटने
लगे ॥ २१ ॥

निष्पन्तमृसाभिपति राक्षसास्ते महाघराः ।

परिचयुर्मय त्यक्त्या तमनेकविधायुधाः ॥ २२ ॥

अन्ते ऊपर प्रहार करते हुए शूद्राव चम्बवान्को
उन महाकधी राक्षसोंने मय छोड़कर चारों ओरले बेर किया ।
उनके हाथमें अनेक प्रकारके अस्त्र-यन्त्र थे ॥ २२ ॥
घाते परानुभित्तपिष्यैः पट्टिरीर्यपित्तोमरीः ।
जाम्ययस्त मृष जघ्नुर्निष्पन्तं राक्षसां चमूम् ॥ २३ ॥

वे राक्षस सेनाग्र संहार करनेवाले चम्बवान्पर युद्धसक-
में शक्य होने परलें, पत्थरों इतों और ऊर्मयय प्रहार
करने लगे ॥ २३ ॥

स सम्महारस्तुमुषं सज्जो कपिरक्षसाम् ।

दवातुगार्वां कुञ्जानां यथा भूमिो महासक्तः ॥ २४ ॥

कनरों और राक्षस वर मण्डपक अथवे मेरे हुए
रेकताभों और भनुवेक संघमयभी भोंति वहा भयंकर छ चक्र ।
उत्तमै वइ दर करते मयनक क्वावह होने लगे ॥ २४ ॥

हनुमानपि संकृष्य साञ्जमुत्पन्न्य पर्वतत् ।

स खड्गमज स्य पृष्ठावरोप्य महामनाः ॥ २५ ॥

रक्षसां क्वयन चक्रे दुरासावः सहस्रशः ।

उव छमय महामनसी हनुमान्कीने छमनको मनी
पीठसे उतार दिया और सब भी भलस्य कुम्भित हो फौँटिकरने
एक लम्बा छ त्वाइकर खसों राक्षसोंक खंड करने
लगे । धनुस्त्रोंके शिष्ये उन्हें फण्ट करण बहुत ही कठिन
था ॥ २५ ॥

स वृथा हतुमुल युयं पितृव्यस्येन्द्रजिद् वधी ॥ २६ ॥

खड्गमय परवीरकाः पुनरेवाभ्यधावत ।

राजुकीरोंक खंड करनेवाले क्वयन इन्द्रजित्ने मने
पाचको भी धेर युद्धक अवकर देकर पुनः छमनकर पण
किया ॥ २६ ॥

तौ मयुदौ तदा वीरौ नृपे खड्गमयराक्षसां ॥ २७ ॥

शरीरामभियर्पन्तौ जघ्नतुस्तौ परस्परम् ।

छमय और इन्द्रजित् दोनों पीर उव छमय राक्षसीं
बड़े बेगसे युद्धने लगे । वे दोनों बाणकुम्भोंकी बर्षा करते
हुए एक दूसरेको पोट पहुँचने लगे ॥ २७ ॥

अभीक्ष्ण्यन्तश्चतुः शारङ्गसैर्माहाबलौ ॥ २८ ॥

अन्नादित्याविधोप्यन्तं यथा मैथिलतरुणिनी ।

वे महाबली वीर शर्पाक बाध-व निहकर बारंबर एक
दूसरेको टक देते थे । ठीक उसी तरह जैसे बर्षाअर्षमें से-
शाभी चन्द्रम और सूर्य बादलोंसे गच्छादित हो क्या करते
हैं ॥ २८ ॥

नद्यावानं न सधार्तं धनुषो वा परिग्रहः ॥ २९ ॥

न धिममोहो वाप्याना न विकर्षो न विग्रहः ।

न मुष्टिप्रतिसधानं न छड्यप्रतिसपापनम् ॥ ३० ॥

महदयत तयोस्तत्र युध्यतोः पाणिध्रम्यवत ।

युद्धमें लगे हुए उन दोनों वीरोंके हाथोंमें इतनी ऊर्जा
थी कि तरफले बाणोंका निहकर उनको बनपर रकना
धनुषके इह हाथसे उव हाथमें धना, उसे मुझीमें इदवर्षक
पकड़ना, कनसक लीक्य बाणोंक विमला करण उन्हें
छोड़ना और छस वेधना आदि कुछ भी रिलानी नहीं
पड़ता था ॥ २९ ॥ ३० ॥

आप्येगप्रयुक्तैश्च बाण्यज्जालैः सम्मत्तः ॥ ३१ ॥

अन्तरिक्षेऽभिसम्पन्ने न रुपाणि चक्रादिर ।

धनुषके बेगसे छोड़े गये बाणकुम्भोंका भारमण ल
आरसे इक गया । भतः उत्तमै काकर यस्तुभोंका वीक
बद हो गया ॥ ३१ ॥

खड्गमजो रावणि प्राप्य रापजिह्वापि खड्गमयम् ॥ ३२ ॥

धम्यपस्य भवत्युग्रा ताम्यामम्यांम्यविभेदे ।

कनसक रावणकुमारके पाल पहुँचकर और रावणुमार

सम्पन्नके निकट जाकर दोनों परस्पर मूझने लगे । इत प्रकृष्ट
मुद्र करते हुए सब वे एक वृक्षपर प्रहार करने लगे तब
मर्मकर सम्भवतया देवा हो जाती थी । शय-क्षणमें यह निश्चय
कला कठिन हो जाता था कि समुद्रकी विषय या पयन्म
होवे ॥ १२३ ॥

वाभ्यामुभाभ्यां छरसा प्रसूदौर्विशिशैः शितैः ॥ १२३ ॥
निरन्तरमिवाकाशं बभूव तमसा वृत्तम् ।

उन दोनोंके द्वारा बभूवक ओंके गये तीखे बाणोंसे
अकाश ठसठस भर गया और वहाँ भँपेरा छा गया ॥ १२३ ॥

तैः परस्त्रिभ्य बभूविस्रयोः शरशतैः शितैः ॥ १२४ ॥
विशब्धं प्रविशाम्येष वभूवुः शरसङ्घट्टयाः ।

वहाँ गिरते हुए बहुसंख्याक बमों और छेकड़ों तीखे
बाणोंसे सम्पूर्ण विशाणों और निदिशाएँ भी व्याप्त हो गयी १२४

तमसा पिहितं सर्वमासीत् प्रतिभय महत् ॥ १२५ ॥
मस्त गते सहस्राणी सवृत् तमसा च वै ।

रुधिरौषा महानतः प्रावतन्त सहस्रशतः ॥ १२५ ॥

अतः उन कुछ अल्पकारसे भयान्जन हो गम्य और बड़ा
म्यानक रूप दिखायी देने लगे । सर्व अस्त हो गये, उन
आर भँपेरा फैल गया और रक्तके प्रवाहसे पूज लखों बड़ी-
बड़ी नदियाँ बर लगी ॥ १२५ ॥

मन्मथादा शरण्या शरिभिस्त्रिपुर्भामिमिस्वनान् ।
न तदानीं यद्यौ वायुर्न च अन्वाह पापकः ॥ १२७ ॥

मंसमन्थी मर्मकर मनु अपनी बाणीद्वारा म्यानक रूप
प्रकट करने लगे । उस समय न तो वायु चलती थी और न
भाग ही प्रवृत्त होती थी ॥ १२७ ॥

सस्तपस्तु कोकेज्य इति अन्नस्पुस्ते महर्षवः ।
सम्पेतुश्चात्र सतसा गन्धर्वाः सह चारथैः ॥ १२८ ॥

महर्षिगण कोक उठे—संहरका कस्याम हो । उस
क्षण मन्मथोंके बड़ा शंका हुआ । वे चारथोंके साथ पहल्लि
भाग लगे ॥ १२८ ॥

मप राक्षससिंहस्य कृष्णान् कनकभूषणान् ।
शौर्यवृत्तिर्गुः सौमिपरिविष्याथ वनुरो ह्यारः ॥ १२९ ॥

वन्तर कल्पनेने चार पात्र मारकर उत एकसिंहके
लम्बे आभूषणले छत्रे हुए कनक रंगके चारों छत्रोंके
होए लिये ॥ १२९ ॥

ततोऽपरेण भस्त्रेण पीतत्र निशितत्र च ।
सम्भूषणपतमुक्तेन सुप्रथमं सुवचसा ॥ १३० ॥
महोद्भानिस्त्रयन् सतसा विपरिप्यतः ।

स तत्र धाम्नाशनित्यं वज्रशस्त्रानुनाशिनः ॥ १३१ ॥
सपथयत् राधयः भीमान्दिगाः क्षयात्प्राहारत् ।

उपरमार् सुदुष्कन्तन भीमान् कल्पनेने दूसरे छत्रे,
पानीदार सुन्दरपक्षपाके और चमकीले भस्त्रेसे जो इन्द्रके बज्रकी
समानता करवा था तथा जिसे कान्तक बाँधकर छोड़ा गया
था, रणभूमिमें बिकरते हुए इन्द्रजिह्वके शरयिक्रम मस्तक
शीघ्रापूर्वक पहरेसे मरना कर दिया । वह बज्रोपम बाण छूटनेके
क्षण ही इयधिके शब्दसे अनुनादित हो उनकापत्र हुआ
आगे बढ़ा था ॥ ४ ५२३ ॥

स पान्तरि महातेजा हते मन्योद्वीसुत् ॥ ४२ ॥
सय सारथ्यमकरोत् पुनश्च धनुरस्यूशत् ।
तवह्रुतममूत् तत्र सारथ्यं पश्यतां युधि ॥ ४३ ॥

शरयिके मारे जानेपर महातेजस्वी मन्योद्वीकुमार इन्द्र
जिह्वे लगे ही शरयिक्रम की क्षम होया—छत्रोंके भी
अभूमें रक्तता और फिर वनुरके भी चमकता था । पुनस्तस्यमें
उत्के शर्य वहाँ शरयिके कर्मका भी सम्पादन होता शरयोंकी
दृष्टिमें बड़ी अद्भुत बात थी ॥ ४२ ४३ ॥

हयेपु स्यमहस्व तं सिष्याथ निशितैः शरैः ।
धनुष्यथ पुनर्म्यत्र हयेपु मुमुक्षे शरान् ॥ ४४ ॥

इन्द्रजिह्वे मन्योद्वीके छेकनेके छिन्दे शय बढ़ाया, तब
सम्पन्न उसे तीखे बाणोंसे नेपने लगे और सब बह मुद्रके
छिन्दे वनुर उठाया, तब उसके चोड़ोंपर चमोका प्रहार
करते थे ॥ ४४ ॥

छिन्द्रेषु तेषु शायौर्षिर्विचरत्समभीतवत् ।
अर्थात्स समरे सौमिधिः शीघ्रकृत्तमः ॥ ४५ ॥

उन छिद्रों (बाण-मस्तकके अक्षरों) में शीघ्रापूर्वक
शय चमकनेवाले श्रमिवाकुमार सम्पन्नने क्षयज्ञानमें निर्मम
से बिकरते हुए इन्द्रजिह्वके अपने बाण-छत्रोंद्वारा अत्यन्त
पीड़ित कर दिया ॥ ४५ ॥

निहतं शारथिं दृष्ट्वा समरे रायणममजः ।
मज्जही समरोद्धरं विपण्यः स पभूव ह ॥ ४६ ॥

समभूमिमें शरयिक्रम मारा गया देव रायणकुमारने
मुद्रविषयक उत्तर भरना दिया । पर शिवदनें दूज गया ॥
विपण्यवदनं दृष्ट्वा राक्षस हरियूथपाः ।
ततो परमसङ्घट्टं लक्ष्मण चाभ्यपूतयन् ॥ ४७ ॥

उत एकलके मुणपर विनाद छाया हुआ दैत च बानर
यूथपति बड़े प्रसन्न हुए और क्षमका भी नूर-नूरि प्रदंश
करने लगे ॥ ४६ ॥

कतः प्रमाथी रभसः नरभो गन्धमादनः ।
अमृष्यमाणोद्धरयारक्षकुर्येग हरीधरा ॥ ४८ ॥

तबभ्रातृ प्रमाथी परम रमल और क्षममादन—इन
चार क्षमरभोंने क्षमगत नरभर अन्न मरान् बरा
प्रसन्न किया ॥ ४८ ॥

स श्यास्य हयमुष्येषु तूष्णमुत्पात्य वानराः ।
चतुषु सुमहापीथा निषतुर्भामियुक्ता ॥ ४९ ॥

स श्यास्य हयमुष्येषु तूष्णमुत्पात्य वानराः ।
चतुषु सुमहापीथा निषतुर्भामियुक्ता ॥ ४९ ॥

स श्यास्य हयमुष्येषु तूष्णमुत्पात्य वानराः ।
चतुषु सुमहापीथा निषतुर्भामियुक्ता ॥ ४९ ॥

स श्यास्य हयमुष्येषु तूष्णमुत्पात्य वानराः ।
चतुषु सुमहापीथा निषतुर्भामियुक्ता ॥ ४९ ॥

स श्यास्य हयमुष्येषु तूष्णमुत्पात्य वानराः ।
चतुषु सुमहापीथा निषतुर्भामियुक्ता ॥ ४९ ॥

स श्यास्य हयमुष्येषु तूष्णमुत्पात्य वानराः ।
चतुषु सुमहापीथा निषतुर्भामियुक्ता ॥ ४९ ॥

स श्यास्य हयमुष्येषु तूष्णमुत्पात्य वानराः ।
चतुषु सुमहापीथा निषतुर्भामियुक्ता ॥ ४९ ॥

स श्यास्य हयमुष्येषु तूष्णमुत्पात्य वानराः ।
चतुषु सुमहापीथा निषतुर्भामियुक्ता ॥ ४९ ॥

स श्यास्य हयमुष्येषु तूष्णमुत्पात्य वानराः ।
चतुषु सुमहापीथा निषतुर्भामियुक्ता ॥ ४९ ॥

स श्यास्य हयमुष्येषु तूष्णमुत्पात्य वानराः ।
चतुषु सुमहापीथा निषतुर्भामियुक्ता ॥ ४९ ॥

वे चारों बानर महान् बध्नाधी और मंकर परकमी
 थे । वे खर उल्लङ्घन इन्द्रकिंके चारों घोड़ोंपर कूद पड़े ॥
 उपामधिष्ठिताना तैर्वाचरेः पर्वतोपमैः ।

मुक्ताभ्यो बधिर ध्यक्त हयानां समकतैत ॥ ५० ॥
 उन पर्वतारूढ बानरोंके मारते दब खनेक करण उन
 घोड़ोंके मुलोंसे लूत निकलने लगा ॥ ५० ॥

ते हया मथिता भग्ना भ्यसचो धरणां गताः ।
 ते निहत्वा ह्यांस्तत्र प्रमथ्य च महारथम् ।
 पुनरुपस्य वेगेन तस्युल्लङ्घनपावर्षतः ॥ ५१ ॥

उनसे रादे खनेक करण घोड़ोंके मात्र-मात्र हो गये और
 वे प्राणहीन होकर पृथ्वीपर गिर पड़े । हब प्रकार घोड़ोंके खन
 के इन्द्रकिंके विघात रथको भी तोड़-फोड़कर वे चारों
 बानर पुन फांते उल्लङ्घ और खम्बके पास आकर लड़े
 हो गये ॥ ५१ ॥

ह्यार्यो श्रीमद्भगवान्ने वाक्सीक्रीये आविक्रान्धे जुद्धकान्धे पक्षेनकवतिनाः सर्गः ॥ ८९ ॥

“त प्रकार श्रीमद्भगवान्ने श्रीरामायण जर्दिकान्धे युद्धकान्धे नवतिसर्ग सर्ग पूरा हुआ ॥ ८ ॥



नवतितम सर्ग

इन्द्रजित् और लक्ष्मणका मयंकर युद्ध तथा इन्द्रजित्का बध

अ ह्यम्बो महातजा भूमौ तिष्ठन् निशाधरः ।

इन्द्रजित् परमकुञ्जः सम्मञ्जरशाल तंजस्य ॥ १ ॥

घोड़ोंके मारे खनेपर पृथ्वीपर लड़े हुए महतेकसी
 निशाचर इन्द्रजित्का श्रेष्ठ बहुत बढ़ गया । वह तेकते
 प्रमथित-ख हो उठा ॥ १ ॥

तौ धन्विनी त्रिषांसन्त्याकन्योन्पमिपुभिर्बुधाम् ।

विजयेन्मभिनिष्कन्दौ बने गजभूपापिष ॥ २ ॥

इन्द्रजित् और लक्ष्मण दोनोंक हाथमें घनुप थे । दोनों
 ही अपनी-अपनी विषयक शिप एक दूसरेक सम्मुख मुद्रमें
 प्रवृत्त हुए थे । वे अपने घोषाहाथ परस्पर नचकी इन्हा
 रथकर बनेमें लड़नेके शिपे निकल हुए दो गजबोंक समात
 एक दूसरेपर गदरी पोट करने लगे ॥ २ ॥

शिवहृष्यन्तश्चान्योम्य त राक्षसग्रीकसाः ।

भतारं न जडुर्बुद्धे सम्मन्तस्तस्तस्त ॥ ३ ॥

बानर और राक्षस भी परस्पर स्वार करते हुए इधर
 उधर दौड़ने रहे परन्तु अपने-अपने स्वर्मीक शिप न छोड़
 लेंगे ॥ ३ ॥

तलस्तान् राक्षसान् सवान् हयान् रायणारमजः ।

स्नुभ्याना हरमाप्यथ इद यत्नमप्रवीत् ॥ ४ ॥

तदनन्तर राक्षसकुमारने प्रथम दो प्रणव करक राक्षसीका
 हाँ बदात हुए बहा— ॥ ४ ॥
 लक्ष्मण पशुसन्तानाः ससक्ताः सवत्या विनाः ।

अ ह्यम्बावृक्षुत्प रघामधितसारथिः ।

शरवर्षेण सौमित्रिमम्यभक्त राक्षसिः ॥ ५२ ॥

खरथि तो पक्ष ही मार गया था । मन छोड़े भी नर
 बाक गये तब राक्षसकुमार रथसे कूद पड़ा और शरवर्षी
 क्या करवा हुआ सुमित्राकुमारकी ओर बढ़ा ॥ ५२ ॥

उठो महेश्वरप्रतिमा स लक्ष्मणा

पथातिव त निहतैर्ह्योत्तमैः ।

सृजन्तमाशौ निदिशाम्योत्तमतन्

सुधा तदा वाणगपैश्वरारथत् ॥ ५३ ॥

उस लक्ष्मण इन्द्रके समान परकमी धरमयने श्रेष्ठ घोड़ोंक
 मारे खनेसे पैदल चक्रकर सुझने तीखे उसका बन्नाधी पर्व
 करते हुए इन्द्रकिंको अपने लक्ष्मणकुंभीकी मारते अत्यन्त
 पायस कर दिया ॥ ५३ ॥

मह विज्ञाप्यते सो धा परो या राक्षसोत्तमा ॥ ५ ॥

श्रेष्ठ निशाचरों । चारों विघातमें अन्धकार छ रहा
 है अत क्यों अपने या पदवर्षी परधान नहीं हो रही है ॥
 पूछें भवत्यो युष्मन्तु हरीणां मोहन्यसै ।

अहं तु रथमास्थाप भागमिभ्यामि सयुगे ॥ ६ ॥

तथा भयन्ताः कुर्वन्तु यथमे हि वनीकसाः ।

न युष्मयुम्भारमाणाः प्रविष्टे नगर मयि ॥ ७ ॥

पृथग्विय में खला हूँ । दुखे रथपर बैठकर शीघ्र ही
 युद्धक शिपे आऊँगा । तबतक तुमकाय बानरोंके श्रेष्ठमें
 बाकनेक शिपे निर्नय होकर ऐला युद्ध कर किन्ते व मष्ट
 मनसी बानर नगरमें प्रवेश करते समय मर लामना करनेके
 शिपे न करेंगे ॥ ५-७ ॥

इत्युक्त्वा रायणसुता वञ्चित्वा वनीकसाः ।

प्रविष्टा पुरीं सञ्चं रथहेतोःरनिग्रहा ॥ ८ ॥

एवं कृत्वा रायणसुता रायणकुम्भर बानरोंक लक्ष्मण र
 रथक शिपे सञ्चपुर्वीमें पक्य गया ॥ ८ ॥

अ रथ भूर्पयित्वाथ दक्षिण हसभूरितम् ।

मासासिदारसंयुक्त युक्तं परमवाग्भिः ॥ ९ ॥

अधिष्ठित हयजेन मृत्नासापवृदिभ्यः ।

अधराह महातजा रायणिः समितिहयाः ॥ १० ॥

उसने एक कुरवभूमि सुन्दर रथका मदकर उत्क
 डर प्राप्त गज तथा बाण अदि अक्षरकर कापरी रक्षी

किर उरुमे उरुम पावे कुलबाये और यन्त्र हौंकेकी विपाके
 बनकर तथा शिल्पर उपवेश बेनेराज करियको उरपर
 सिठाकर यह महातेजसी समरविजयी यवगकुमार स्वयं मी
 उर रपर आरुद्र हुआ ॥ ११० ॥

स राक्षसगणैर्मुकुन्दैर्बृतो मन्त्रोद्वरीमुता ।
 त्रिपदी नाराय् धीतः कृतप्रतबलधोवितः ॥ १११ ॥

किर प्रसन्न राक्षसोंके खप के धीर मन्त्रोद्वरीकुमार कण-
 शक्तिसे प्रेरित हो नगरसे बाहर निकल्य ॥ १११ ॥

सोऽभिमिच्छन्त्य नगरादिन्द्रजित् परमौजसा ।
 मन्मयास्त्रवैरैर्यैर्बाह्मण्य सविभीषणम् ॥ ११२ ॥

नगरसे निकलकर इन्द्रजितने अपने नेगशास्त्री भोजोंद्वारा
 विभीषणसेहित छलनगर बन्धुबन्ध भासा किया ॥ ११२ ॥

ततो रघुस्यमासोपय सौमित्री रावणात्मजम् ।
 कनराज्य महावीर्यां राक्षसस्य विभीषणम् ॥ ११३ ॥

विक्रय परमं जगमुखापवात् तस्य धीमताः ।
 एतन्कुमारको रपर बैठा देख सुमित्रानन्दन कल्पन,
 महापराक्रमी बानरगल तथा राक्षसगल विभीषण—उसको बड़ा
 किसय हुआ । सभी उर बुद्धिमन्त्र निष्कारकी कुटी देखकर
 रंग ख गये ॥ ११३ ॥

एयमिच्छापि सङ्कुद्रो रये यानरयूषयान् ॥ ११४ ॥
 पातयामास बाणौघैः शतशोऽप्य सहस्रशः ।

तदाभ्यात् श्रेवते भरे हुए रघुवपुत्रने अपने बाण-धूम्रों-
 द्वारा रणभूमिमें वेदकों और हथारों बानर-यूषपशियोंको गिराना
 भरम किया ॥ ११४ ॥

स मण्डवीकृतधनु रायणिः समितिजया ॥ ११५ ॥
 हीनम्यहमत् कृद्भ्यः पर बाधवमास्सिता ।

पुढविककी यवगकुमारने अपने धनुषको इतना लीजा
 कि वह मण्डवामर बन गया । उरने कुपित हो बड़ी दीप्रकके
 धप धनरोंक शर आरम्भ किया ॥ ११५ ॥

ते परममान्द हरयो नाशवैर्मिमविक्रमाः ॥ ११६ ॥
 सौमिन्नि शरणं प्राप्ता प्रजापतिमिव प्रजाः ।

उरके नाशकोंकी मार साते हुए मयानक मयककी
 बानर सुमित्राकुमार कल्पवकी शरणमें गये याने
 मरने मरनेकी ही शरण ली है ॥ ११६ ॥

तदा समरकोपेन प्रवृत्तितो रघुनन्दनः ।
 विच्छेदद् कर्मुकं तस्य दशैर्यन् पाणिबाधयम् ॥ ११७ ॥

तब शत्रुके पुढसे रघुनन्दन कल्पवक श्रेव यहक
 उर । वे रोये क्ल उर और उरोंने अपने हाथकी कुटी
 पिलाते हुए उर राक्षसके धनुषको काट दिया ॥ ११७ ॥

सोऽप्यन्धमुकुन्माहाय स्रग्धं धके त्यरपिप ।
 तप्यस्य त्रिभिर्बाणैर्बाह्मण्यो निरहन्त्यत् ॥ ११८ ॥

उरोंने अन्ध कुपित हो अपनी शीम अन्न-संघातकी
 कल्पक मरहान करते हुए उन उरके राक्षसोंके प्रत्येक
 शरीरमें तीन-तीन बाण मारकर पत्थर कर दिया तथा राक्षस
 राक्षस पुत्र इन्द्रजितको भी अपने बान-धूम्रोंद्वारा गरी जट
 पंहुचपी ॥ ११८ ॥

यह देख उर निष्कारने दुरंत ही वृक्ष धनुष छेकर
 उरपर प्रत्येका चबायी परन्तु कल्पजने तीन बाण मारकर
 उरके उर धनुषको मी काट दिया ॥ ११८ ॥

अरौमं शिष्यभन्वानमाशीषिविविधोपमै ।
 शिष्याधोरसि सौमिन्नी रायणि पञ्चभिः शरैः ॥ ११९ ॥

धनुष कट जानेपर निषपर शकिके मन्मन पाँच मयकर
 बाणोंद्वारा सुमित्राकुमारने यवगपुत्रकी छातीमें गरी चोट
 पंहुचपी ॥ ११९ ॥

त तस्य कथं निर्भिद्य महाकरमुंक्षनिःसृताः ।
 निपेतुर्धरणीं वाप्या रक्षा इव महोरगाः ॥ १२० ॥

उनके विशास धनुषसे छूटे हुए वे बाण इन्द्रजित्क
 शरीर सेकर साध रंगके बने-बने शरीरके समान पृथ्वीपर
 गिर पड़े ॥ १२० ॥

स शिष्यभन्वा कथिर धमम् कण्ठेण रायणिः ।
 जग्राह कर्मुकश्रेष्ठं दृढज्य बलवत्तरम् ॥ १२१ ॥

धनुष कट जानेपर उन बाणोंकी चोट साकर मुँहसे रक्त
 मन्मन करते हुए यवगपुत्रने पुनः एक मन्वत् धनुष हाथमें
 लिया । उरकी प्रत्येका मी बहुत ही दृढ़ थी ॥ १२१ ॥

स छह्मण्य समुद्दिश्य पर व्यपवमास्थितः ।
 बयर्षं शरवर्षाणि धर्षाणीथ पुरद्वरः ॥ १२२ ॥

किर तो उरने कल्पकको कल्प करके बड़ी कुटीके धाय
 बाणोंकी बर्षा आरम्भ कर दी, याने देखकर इन्द्र क्ल करख
 रहे हैं ॥ १२२ ॥

मुकमिन्द्रजित्वा तत्तु शरपयमरिदमः ।
 आचारयदसम्भ्रातवो छह्मण्यः सुतुरासवम् ॥ १२३ ॥

यदि इन्द्रजित्द्वय की गयी उर बाणबर्षाको एकत्र
 बहुत ही कठिन था, तो भी धनुषमन कल्पनेने दिया किसी
 परशरके उरको रोके दिया ॥ १२३ ॥

सर्वशयामास तत्र रायणि रघुनन्दनः ।
 असम्भ्रातवो महातेजास्तद्गुह्यमिवाभयत् ॥ १२४ ॥

रघुनन्दन महातेजसी कल्पकक मनमें तनिक भी
 परशर नहीं थी । उन्होंने उर यवगकुमारको अब अपना
 पौरुष दिखाया यह अद्भुत-वत् ही था ॥ १२४ ॥

ततस्तान् रासस्तान् सर्वास्त्रिभिरेकैकमाहय ।
 अविष्यत् परमकृद्द दीप्राज्य सग्नदशपन् ।
 रासक्षेत्रसुतं चापि यापीधैः समशाडयत् ॥ १२५ ॥

उरोंने अत्यन्त कुपित हो अपनी शीम अन्न-संघातकी
 कल्पक मरहान करते हुए उन उरके राक्षसोंके प्रत्येक
 शरीरमें तीन-तीन बाण मारकर पत्थर कर दिया तथा राक्षस
 राक्षस पुत्र इन्द्रजितको भी अपने बान-धूम्रोंद्वारा गरी जट
 पंहुचपी ॥ १२५ ॥

उरोंने अत्यन्त कुपित हो अपनी शीम अन्न-संघातकी
 कल्पक मरहान करते हुए उन उरके राक्षसोंके प्रत्येक
 शरीरमें तीन-तीन बाण मारकर पत्थर कर दिया तथा राक्षस
 राक्षस पुत्र इन्द्रजितको भी अपने बान-धूम्रोंद्वारा गरी जट
 पंहुचपी ॥ १२५ ॥

उरोंने अत्यन्त कुपित हो अपनी शीम अन्न-संघातकी
 कल्पक मरहान करते हुए उन उरके राक्षसोंके प्रत्येक
 शरीरमें तीन-तीन बाण मारकर पत्थर कर दिया तथा राक्षस
 राक्षस पुत्र इन्द्रजितको भी अपने बान-धूम्रोंद्वारा गरी जट
 पंहुचपी ॥ १२५ ॥

उरोंने अत्यन्त कुपित हो अपनी शीम अन्न-संघातकी
 कल्पक मरहान करते हुए उन उरके राक्षसोंके प्रत्येक
 शरीरमें तीन-तीन बाण मारकर पत्थर कर दिया तथा राक्षस
 राक्षस पुत्र इन्द्रजितको भी अपने बान-धूम्रोंद्वारा गरी जट
 पंहुचपी ॥ १२५ ॥

उरोंने अत्यन्त कुपित हो अपनी शीम अन्न-संघातकी
 कल्पक मरहान करते हुए उन उरके राक्षसोंके प्रत्येक
 शरीरमें तीन-तीन बाण मारकर पत्थर कर दिया तथा राक्षस
 राक्षस पुत्र इन्द्रजितको भी अपने बान-धूम्रोंद्वारा गरी जट
 पंहुचपी ॥ १२५ ॥

उरोंने अत्यन्त कुपित हो अपनी शीम अन्न-संघातकी
 कल्पक मरहान करते हुए उन उरके राक्षसोंके प्रत्येक
 शरीरमें तीन-तीन बाण मारकर पत्थर कर दिया तथा राक्षस
 राक्षस पुत्र इन्द्रजितको भी अपने बान-धूम्रोंद्वारा गरी जट
 पंहुचपी ॥ १२५ ॥

सोऽस्तिक्रियो बद्धस्ता शत्रुणा शत्रुघातिना ।
असक्त प्रेययाम्नास लक्ष्मणाया बह्वृक्षधरन् ॥ २३ ॥

शत्रुघ्नता प्रपन्न शत्रुके बाणोते अत्यन्त धन्यश्च इत्यत्र
इन्द्रकिन्द्रे लक्ष्मणस्य उपाहार बहुत बाण करछाये ॥ २६ ॥

तान्मातामिहैतैर्वापैस्त्रिष्वध्वे परधीरहा ।
सारथेरस्य च रणे रथिनो रथसत्तमः ॥ २७ ॥
शितो जहार धमारता भद्रेणामस्तपर्वणा ।

परंशु शत्रुवीर्येण उचार करनेवाले रथिनोमे भेद बनारसा
लक्ष्मणने अपने पासक पहुँचनेसे पहले ही उन बाणोंको
अपने धीले धन्यकोहाय फट जाऊ और रणभूमिमें रथी
इन्द्रकिन्द्रे उत्तमिन्द्र मत्तक भी लक्ष्मी हुई गौतवाले अत्यन्त
उका दिया ॥ २७ ॥

असुग्राह्ये हयास्तत्र रथमसुग्राह्यिह्वसाः ॥ २८ ॥
मण्डलान्यभिधावन्ति तत्सुगतमित्यभवात् ।

सर्पिक न घनेपर भी नहीं उसके पोड़े ब्याकुल नहीं
हुए । पूर्ववत् धामतमावसे रथको डोले रहे और निम्न
मकरके वीरने बरछले हुए मण्डलान्यत्र गतिसे दौड़ खाते रहे ।
एक एक मत्सुग्राही बाव भी ॥ २८ ॥

अमर्षवशात्पथः सौमिभिर्बिद्ययिक्तमः ॥ २९ ॥
प्रत्यविष्यत्प्रासास्य शरीर्विधासयन् रणे ।

सुदृढ पराक्रमी सुमित्राकुमार लक्ष्मण अमर्षके वशीभूत
हो रथकेवने उसके बाणोंको मयमीत करनेके लिये उन्हें
बाणोंसे बेचने लगे ॥ २९ ॥

अमर्षवशात्प्रसक्तमर्षं रावणस्य सुतो रणे ॥ ३० ॥
यिष्याथ वशाभिर्बाणैः सौमिभि तममर्षजम् ।

रावणकुमार इन्द्रकिन्द्रे सुदृढत्वमें लक्ष्मणके इस पराक्रम
को नहीं खूब उन्नत । उन्ने उन अमर्षशील सुमित्राकुमारको दत्त
बाण मारे ॥ ३० ॥

ते तस्य धत्तप्रतिमाः शाराः सर्पविणोपमाः ।
बिडम्ब जम्बुवागत्य कवच कश्चिन्मप्रभम् ॥ ३१ ॥

उन्के वे वज्रद्वय बाण उनके विषयी भोंति प्राणघाती
ये, तथापि लक्ष्मणके सुदृढी कर्मिणाले कवचसे टकराकर नहीं
नष्ट हो गये ॥ ३१ ॥

अभेद्यकवचं मत्वा लक्ष्मणं रावणपारमहा ।
लक्ष्मणं लक्ष्मण बाणैः सुपुत्रैस्त्रिभिरिन्द्रजित् ॥ ३२ ॥
अविष्यत् परमकुन्दाः शीघ्रमर्षं मवशीयन् ।

तैः पूर्यन्तेऽलक्ष्मणत्वौः सुशुभे रघुनन्दना ॥ ३३ ॥
रथामे समरदक्षायी किन्तु इव पर्यता ।

लक्ष्मणका कवचं अभेद्य है ऐल लक्ष्मणकर रावणकुमार

१ एतेके लक्ष्मणके कवचके इत्येव नर्वन वा कुञ्ज है ।
उन्के कर लक्ष्मणने फिर बनेव कवच करन किया था । वह सब
मर्षको अणु था है ।

इन्द्रकिन्द्रे उनके उपाहारमें सुन्दर पंखवाले तीन बाण मारे ।
उन्ने अपनी मन्त्र लक्ष्मणकी पुत्री दिखाते हुए अत्यन्त
श्रेष्ठपूर्वक उन्हें पावक कर दिया । उपाहारमें भेते हुए उन
बाणोंसे पुदरी स्वया रावनेवाले रघुकुलम्बन लक्ष्मण
संभ्रमके घुशानेपर तीन शिलारोंवाले पर्वतके समान छोड़ प
रहे थे ॥ ३२ ३३ ॥

स तथाप्यर्षितो वामे राक्षसेन तदा सुभे ॥ ३४ ॥
तमसु प्रतिविष्याथ लक्ष्मणा पञ्चभिः शरीः ।

यिद्विष्येन्द्रजितो युये पदन् शुभकुण्डले ॥ ३५ ॥

उस राक्षसके हाथ पुदमें बाणोंसे इस प्रकार वीक्षित लिये
जानेपर भी लक्ष्मणने उस समय दूरत पाँच बाणोंका सफल
किया और पनुपक्षे लीचकर लक्ष्मणे हुए उन बाणोंके हाथ
दुन्दर कुण्डलमें सुशोभित इन्द्रकिन्द्रे सुताप्यत्रसे उच-
कित्त कर दिया ॥ ३४ ३५ ॥

लक्ष्मणोन्मज्जितौ वीरौ महावलचारसौगौ ।
अभ्येत्य जञ्जतुर्वीरौ विश्वैर्भामविक्रमौ ॥ ३६ ॥

लक्ष्मण तथा इन्द्रकिन्द्रे दोनों वीर महावलचारात्सौ ।
अभ्येत्य जञ्जतुर्वीरौ विश्वैर्भामविक्रमौ ॥ ३६ ॥

उतः शोषितविषाह्वौ लक्ष्मणोन्मज्जितुभौ ।
रणे तौ रेजतुर्वीरौ पुप्यितायिच किमुक्तौ ॥ ३७ ॥

इसके लक्ष्मण और इन्द्रकिन्द्रे दोनोंके शरीर बहुरूपान से
गये । रणभूमिमें वे दोनों और पूछे हुए पराचके हल्लोकी
भोंति शोभा पा रहे थे ॥ ३७ ॥

तौ परस्परमन्येत्य सर्वायणेपु धनिकौ ।
घोरेर्विष्यधनुर्बाणैः कृतभात्याशुभौ ॥ ३८ ॥

उन दोनों पनुपर वीरोंके मनमें विषय पानेके लिये एक
एकस था; अतः वे उपाक्रमें मिश्रकर एक वृत्तेके लगी
अहोंको मर्षकर बाणोंका निघाना ब्याने लगे ॥ ३८ ॥

उतः समरक्षेपेन सयुतो राघव्यात्मजा ।
विभीषणं विभिर्बाणैर्विष्याथ क्वाने शुभे ॥ ३९ ॥

इसी वीरमें समरोक्ति श्रेयसे पुष्ट हुए एकपुत्रमनने
विभीषणके सुन्दर मुखपर तीन बाणोंका प्रहार किया ॥ ३९ ॥
अयोमुखैस्त्रिभिर्विष्या राक्षसेन्द्रं विभीषणम् ।
एकैकेणविषिष्याथ तान् सर्वान् हरिपूयपान् ॥ ४० ॥

लिनके अग्रभागमें आरेके फल लगे हुए थे ऐसे तीन
बाणोंसे राक्षसको विभीषणको धक्का करके इन्द्रकिन्द्रे उन
शमी नान-पूयपरिधोर एक-एक बाणका प्रहार किया ॥ ४० ॥

उसमें दृढतरं कुण्डो लक्ष्मण गव्या हयान् ।
विभीषण्यो महातडा राघवोः स तुरारमना ॥ ४१ ॥
इसके महातेजसी विभीषणको उपर बड़ा श्रेय भय

धैरं तन्नो भवती गच्छते उच्यते इत्युक्त्वा राजपुत्रमारके चार्यो
वेदोऽपि मरुत्वात् ॥ ४१ ॥

स इत्याम्बावप्यनुत्थं रथाबिहतसारथेः ।
मध्यं शक्तिं महातेजाः पितृष्यस्य मुमोष ह ॥ ४२ ॥

किञ्च स्वयं पश्ये ही मायं च पुत्रा या और भय
वेदे मी मारुत्वात् गमे, उच्यते नीचे कूदकर महातेजसी
इन्द्रकिन्ते भवने चाचपर शक्तिका प्रहार किया ॥ ४२ ॥

वामापलर्त्तां सम्प्रेक्ष्य सुमिथानम्बुधर्षणम् ।
विष्टेन निशितैर्यापैर्दशाभपातयत् सुखि ॥ ४३ ॥

उच्यते शक्तिसे माथी देख सुमिथानम्बुधर्षणम्
असम्पने तीक्ष्ण बाणसे काट काट कर और दस टुकड़े करके उठे
पृथ्वीपर गिरा दिया ॥ ४३ ॥

तस्मै दृढधनुः कुन्दो इत्याम्बाय विभीषणम् ।
वज्रस्पर्शसामान् पञ्च ससज्जोरसि मार्गाप्यह ॥ ४४ ॥

उच्यते दृढधनुः कुन्दो इत्याम्बाय विभीषणम्
वज्रस्पर्शसामान् पञ्च ससज्जोरसि मार्गाप्यह ॥ ४४ ॥

उच्यते दृढधनुः कुन्दो इत्याम्बाय विभीषणम्
वज्रस्पर्शसामान् पञ्च ससज्जोरसि मार्गाप्यह ॥ ४४ ॥

उच्यते दृढधनुः कुन्दो इत्याम्बाय विभीषणम्
वज्रस्पर्शसामान् पञ्च ससज्जोरसि मार्गाप्यह ॥ ४४ ॥

उच्यते दृढधनुः कुन्दो इत्याम्बाय विभीषणम्
वज्रस्पर्शसामान् पञ्च ससज्जोरसि मार्गाप्यह ॥ ४४ ॥

उच्यते दृढधनुः कुन्दो इत्याम्बाय विभीषणम्
वज्रस्पर्शसामान् पञ्च ससज्जोरसि मार्गाप्यह ॥ ४४ ॥

उच्यते दृढधनुः कुन्दो इत्याम्बाय विभीषणम्
वज्रस्पर्शसामान् पञ्च ससज्जोरसि मार्गाप्यह ॥ ४४ ॥

उच्यते दृढधनुः कुन्दो इत्याम्बाय विभीषणम्
वज्रस्पर्शसामान् पञ्च ससज्जोरसि मार्गाप्यह ॥ ४४ ॥

उच्यते दृढधनुः कुन्दो इत्याम्बाय विभीषणम्
वज्रस्पर्शसामान् पञ्च ससज्जोरसि मार्गाप्यह ॥ ४४ ॥

उच्यते दृढधनुः कुन्दो इत्याम्बाय विभीषणम्
वज्रस्पर्शसामान् पञ्च ससज्जोरसि मार्गाप्यह ॥ ४४ ॥

द्वयं चैर-वेरते खिचि चते हुप उच्यते दोनोऽपि भयं धनुषं दो
श्रीश्च पक्षिणोऽपि समानं शब्दं कृतं ह्ये ॥ ४१ ॥

ताभ्यां तु धनुषि श्रेष्ठे सहितौ सायकरोचमौ ।
विकृष्यमाणौ वीरम्या मृशं जन्वन्तुः क्षिया ॥ ५० ॥

उन बीरोने भयने-भयने श्रेष्ठ धनुषपर जो उच्चम शायक
रखे ये, वे खिचि चते ही भावस्त वेकसे प्रख्यलित ही
उठे ॥ ५० ॥

तौ भास्यन्तावाद्यार्थं धनुर्भ्यां विशिखौ च्युतौ ।
मुञ्चेम मुञ्जमाहृत्य समिपेततुरोऽज्ञसा ॥ ५१ ॥

दोनोंके शयन एक शयन ही धनुषसे छूट और भयनी
प्रमाते शयनकाश्रमे प्रकाशित करने ह्ये । दोनोंके मुञ्जमाग पड़े
बेगसे भासनेमें टकरा गये ॥ ५१ ॥

समिपातस्तयोऽभासीच्छरयोर्धोरूपयोः ।
सधूमस्विस्तुक्षिप्रञ्च तखोऽग्निवाऽहोऽभवत् ॥ ५२ ॥

उन दोनों म्यानक बाणोकी ह्यो ही टकरा हुए, उठते
हास्य अग्नि प्रकट हो गयीं । अग्निसे धूममें उठने ह्ये और
किन्नागसिरीं दिखायी दीं ॥ ५२ ॥

तौ महाप्रहसन्काशावम्योन्यं सन्निपत्य च ।
साम्राते शतथ यतौ मेदिन्या चैव पततु ॥ ५३ ॥

वे दोनों काज दो महान् यहाँकी मंति भयकमें टकरकर
छेकड़ों टुकड़े हो संयगभूमिमें गिर पड़े ॥ ५३ ॥

शरीरं प्रतिहतौ दृष्ट्वा तावुभौ रणमूर्च्छनि ।
वीक्षितौ जातरोपौ च अक्षमणेन्द्रजितौ तदा ॥ ५४ ॥

युद्धके मुहानेपर उन दोनों बाणोका भासवने अपात-
प्रतिपातसे व्यर्थ हुआ देख अक्षमण और इन्द्रकिन् दोनोको ही
उस समय डर्रा हुए । फिर दोनों एक दूसरेके प्रति अक्षमण
रोपते भर गये ॥ ५४ ॥

सुखरम्भस्तु सीमियिरत्नं वाहनमावत् ।
रीन्द्रं महेन्द्रजिद् युवेऽप्यसृजद् युधि निष्ठिताः ॥ ५५ ॥

सुमिथानन्तर अक्षमणने कुलित हाकर वाहनका उठाया ।
शयन ही उस रणभूमिमें खड़े हुए इन्द्रकिन्ते पैशाच उठाना
और उठे वाहनकाके प्रतीकारक सिम छोड़े दिया ॥ ५५ ॥

तेन तद्विहितं शस्त्रं वाहनं परमाद्भुतम् ।
ततः कुन्दो महतेजा इन्द्रजिद् समितिद्वयः ।
भानेर्षं सव्ये दीर्घं स लोकं सक्षिपप्रिय ॥ ५६ ॥

उच्यते पैशाचसे अगत हाकर अक्षमणका अक्षमण भयुक्त
वाहनका शान्त हो गया । तन्तर अक्षमणकी मृदातेजनी
इन्द्रकिन्ते कुलित हाकर हीसिमन् भानेर्षकाका संयन किया,
माने च उचके हाथ अक्षमण कोऽपि प्रसव कर देना चाहता
हो ॥ ५६ ॥

सौरिण्यश्रेणं तद् वीरं अक्षमणा पयपारयत् ।
अर्षं निवारितं दृष्ट्वा वायणिः प्रधममूर्च्छितः ॥ ५७ ॥

उच्यते सौरिण्यश्रेणं तद् वीरं अक्षमणा पयपारयत् ।
अर्षं निवारितं दृष्ट्वा वायणिः प्रधममूर्च्छितः ॥ ५७ ॥

पर्वत नीर स्मरणने सर्वाङ्गके प्रयोगसे उसे शान्त कर दिया। अपने मन्त्रको प्रतिष्ठित हुआ देख रागकुम्भर इन्द्रकिन्त्र मनेत-स्य हो गया ॥ ५० ॥

मातृदे निशित पाणमासुर शत्रुशारणम् ।
तस्माद्यापात् विनिपेतुर्भौकराः फूटमुद्रराः ॥ ५८ ॥
शूलानि च मुन्युपकष्यद्य गदाः खड्गाः परश्वधाः ।

उठने भासुर नामक शत्रुनाथक उससे कष्यका प्रयोग किया, फिर तो उसके उस शत्रुपसे चमकते हुए कूट, मुद्गर, धनुः, मुद्युधि गदा, खड्ग और फरसे निकलने लगे ॥ ५८ ॥

तद् दृष्ट्वा लक्ष्मण्याः सख्योऽघोरमलमयासुरम् ॥ ५९ ॥
अश्रुपैः सर्वमूढानां सर्वत्राक्षविदारणम् ।
माहेश्वरेण बुधिमाम्बुदस्य प्रत्यवारयत् ॥ ६० ॥

रजभूमिमें उस मर्कट आसुरकाको प्रकट हुआ देख लेकरी लक्ष्मणने समूर्ण मन्त्र-शक्तिके विरीच करनेवाले माहेश्वरका प्रयोग किया किन्तु लक्ष्मण प्राणी मिथुन ही निवारण नहीं कर सकते थे। उस माहेश्वरकाके द्वारा उन्होंने उस आसुरकाको नष्ट कर दिया ॥ ५९ ॥

तयोः समभवत् युद्धमनुत् रोमहर्षणम् ।
गगनस्थानि भूतानि लक्ष्मणं पर्यवारयन् ॥ ६१ ॥

इस प्रकार उन दोनोंमें अत्यन्त अशुभ और रोमाहर्षण ही पुत्र होने लगा। आकाशमें रहनेवाले प्राणी लक्ष्मणको घेरकर लड़े से गये ॥ ६१ ॥

शैरबाधिरुते भीमे युद्धे यानररक्षसाम् ।
भूतैर्बाधुभिराकाश विभिर्दैवघृत्त चणौ ॥ ६२ ॥

शैर-गन्तारो गूँकले हुए चानरों और राक्षसोंके उस मन्थन पुरुके छिड़ जानेपर आभयविक्रित हुए बहुलंस्कृत प्राणी आकाशमें भाकर लड़े से गये। उनसे धिरे हुए उस अक्षयकी अद्भुत घोमा हो रही थी ॥ ६२ ॥

शुचयः क्लिरो देवा गन्धर्वागदक्षोरगाः ।
शतक्रतुं पुरस्कृत्य ररक्षुर्लक्ष्मण रणे ॥ ६३ ॥

शुचि क्लि, देवता गन्धर्व गदक और गाग ही इन्द्रको अपने करके रजभूमिमें दुमिनाकुमारकी रक्षा करने लगे ॥ ६३ ॥

अयान्य मार्गणश्रेष्ठं सवधं राक्षयालुजा ।
दुष्टपशनसमस्पर्शं राक्षजारामश्वारणम् ॥ ६४ ॥

अन्यथा लक्ष्मणने वृत्त उचम बाप अपने शत्रुपपर रक्षा; किन्तु स्पष्ट भागके समान लक्ष्मणनाथ था। उसमें एवमकुमारको विरीच कर देनेकी शक्ति थी ॥ ६४ ॥

सुपथमनुवृत्ताः सुपर्वाण सुसखिस्तम् ।
सुपर्णविकृत भीरा शरीरलठकरं शरम् ॥ ६५ ॥
पुरश्चार दुर्भियह राक्षसानां भयत्यहम् ।
माशीविपविपमर्क्यं देवसमैः समर्षितम् ॥ ६६ ॥

येन शक्तो महातेजा दान्ध्यानजयत् प्रभु ।
पुरा देवासुरे युद्धे धीयवान् हरिपाहना ॥ ६७ ॥

अपेन्द्रमल्ल सौमिकि सयुगोप्यपकृष्टम् ।
शरश्रेष्ठ धनुश्रेष्ठे विकर्षधिवमवधीत् ॥ ६८ ॥

सस्मीर्षोऽलक्ष्मणो पाप्यमर्षसाधकमात्मनः ।
भर्मा मा सत्यसधाय रामो वाशरधिर्यसि ।
पौरुषे धामप्रतिद्वन्द्वसवैन जहि राक्षसिम् ॥ ६९ ॥

उसमें सुन्दर पर लगे थे। उस बाणका खप भद्र मुद्रके एवं गेह था। उसकी गौँठ भी सुन्दर थी। यह बहुत ही मजबूत और युवर्षसे भूषित था। उसमें धीरको भीरु बाने की समता थी। उसे रेणुना अत्यन्त कठिन था। उसके आकल को यह केना भी बहुत मुश्किल था। यह राक्षसोंके मनोमोद करनेवाला तथा विपपर लड़के विपकी मौखि शत्रुके प्राण लेने वाला था। देवताओंद्वारा उस बाणकी क्या ही पूजा की गयी थी। पूर्वकालके देवासुर संग्राममें हरे रागके चङ्गति युक्त रक्षकों; पराक्रमी शक्तिमान् एवं महादेवकी इन्द्रने उन्हीं बाणसे दानवोंपर विजय पायी थी। उक्त नम था ऐन्द्राक्ष। वह युद्धके मजल्लेपर कभी पराजित या भल्लस नहीं हुआ था। योग्यसम्पन्न भीरु दुमिनाकुमार लक्ष्मणने अपने उचम शत्रुप पर उस भेद बाणको रक्षक उसे लीकते हुए अपने अग्निप्राय को छिद्र करनेवाली यह बात कही—यदि शरपरमन्थन भनवान् भीरम बर्मात्म्य और अत्यपठिष्ठ हैं तथा पुरुषकी उन्नी समानता करनेवाला हूँगा कोई भीर नहीं है तो है मन्त्र। इस इश एवमपुत्रका बच कर जाके ॥ ६५-६९ ॥

इत्युक्त्या बाणमर्क्यं विदुष्य तमसिद्धागम् ।
लक्ष्मणा समरे वीरः सख्यैर्भूजितं प्रति ।
ऐन्द्राक्षोण सप्तसुन्य लक्ष्मणाः परसीरहा ॥ ७० ॥

उमराजनमें देख करके शत्रुवीरोंका खार करनेवाले भीर लक्ष्मणने सीके जानेवाले उस बाणको अल्लक लीककर ऐन्द्राक्षसे युद्ध करके इन्द्रकिन्त्रकी ओर लड़े दिया ॥ ७० ॥

तच्छिरः सशिरस्त्राण भीमज्जवकिरकुण्डलम् ।
ममप्येभ्रुजिता कष्यात् पालयामास मूढके ॥ ७१ ॥

शत्रुपसे लूटने ही ऐन्द्राक्षने काममहते हुए कुण्डलके युक्त इन्द्रकिन्त्रके शिरस्त्राणजहित वीरिमात्र मन्त्रको बड़से करकर करीपर मित दिया ॥ ७१ ॥

तद् एतस्यतनुःसस्य भिषक्स्वर्णं शिरो महत् ।
तपनीयनिर्भं मूर्ध्नी वृद्धो रूधिरोसितम् ॥ ७२ ॥

उसकाशुभ इन्द्रकिन्त्रका कपेपरसे क्या हुआ वह मियाथ छिद्र को लूटने कपप हो रहा था भूमिपर मुण्णके कपप दिलायी देने का ॥ ७२ ॥

इतः स निरप्यतथा धरण्यां राक्ष्यामज्जा ।
कक्ष्यी सशिरस्त्राणो विमविजशारासना ॥ ७३ ॥

इतः स निरप्यतथा धरण्यां राक्ष्यामज्जा। कक्ष्यी सशिरस्त्राणो विमविजशारासना ॥ ७३ ॥



मथनाद-वध

इत प्रह्वरमाय चक्र क्वच, तिर और शिरज्जालखरित
पवनकुमार पराशामी हो गया । उल्ला पनुप दूर च
गिर ॥ ७१ ॥

बुद्धुस्तुते तसा सर्वे धनराः सधिभीषणाः ।
हृष्यन्ते निहते तस्मिन् देवा वृषभधे यथा ॥ ७४ ॥
येते वृषासुरश्च भव होनेपर देवता प्रकृत हुए ये, उधै
प्रह्वर इन्द्रकिरके मारे ज्ञानेपर विभीषणखरित समस्त धनर
हर्षते मर गये और चोर-चोरते सिन्हाार करने छगे ॥ ७४ ॥
मयान्तरिक्षे देवतानामूर्पीनां च महात्मनान् ।
अत्रेऽप्य अपसनायो गन्धर्वाप्सरसामपि ॥ ७५ ॥

अप्रकामे रेकशर्मो, महात्मा श्रुधियों, गन्धर्वों तथा
अप्सरओंच मी विभवकनित हर्षनाह रूब ठठा ॥ ७५ ॥
पतित समभिज्ञाय राक्षसी सा महाचमूः ।
वन्धमान् विद्यो मेजे हरिभिक्षित्काशिभिः ॥ ७६ ॥
इन्द्रकिरके पराशामी हुभा ज्ञन राक्षसोंकी यह विषाड
केना विवकते उल्लखित हुए बानरोंकी मर काकर सम्पूर्ण
दिशाओंमें भ्रमने लगी ॥ ७६ ॥

वाक्रेवन्धमान्वास्त शक्याप्युत्तुज्य राक्षसाः ।
सङ्ग्रामभिमुष्णा सङ्ग्रामैरसंज्ञाः प्रधायिताः ॥ ७७ ॥
फनरोंकाप मारे जते हुए राक्ष अन्नी दुप-दुप को
देते और मन्-वाकोंको छोड़कर वेकीते मागते हुए सङ्ग्रामी
मर गये गये ॥ ७७ ॥

दुनुबुधबुधा भीटा राक्षसाः शतशो विद्याः ।
स्पर्शसा प्रहरयान् सर्वे पद्मिशासिपरम्भधान् ॥ ७८ ॥
राक्ष बहुत डर गये थे- इच्छिये वे लक-के-लव परिघ,
सङ्ग्राम और फरते आदि दलोंको लागाकर छेकड़ोंकी संख्यामें
एक छप ही छप दिशाओंमें मारने छगे ॥ ७८ ॥

वृषिहृद्गं परित्रस्ताः प्रविष्टा धनवर्दिताः ।
समुद्र पठिताः केचित् केचित् पर्यतमाभिताः ॥ ७९ ॥
बानरोंते कीदित होकर कीई डरक मारे कङ्ग्रामें मुस गये,
कोई कङ्ग्रामें कूद पड़े और कोई-कोई पर्यतकी कायीपर चढ़
गये ॥ ७९ ॥

हृद्यमिन्द्रमित ह्युद्य दायान च टण्डितौ ।
राक्षसार्मा सहस्रेषु न कश्चित् प्रायश्चदयत ॥ ८० ॥
इन्द्रकिर माय गया और लवभूमिमें छे खा रे पर
रेल ह्युद्ये राक्षसोंमें एक भी वहाँ लडा नहा दिरायी
रिष ॥ ८ ॥

यथास्त गत भाक्षित्य नयतिष्ठन्ति रक्षसाः ।
तथा तस्मिन् निपतित राक्षसास्त गत्वा दिवाः ॥ ८१ ॥
येते मूढ भल हा ज्ञानेस उबकी छिखें वरों नरों
मरते रे उधै प्रह्वर इन्द्रकिरके पराशामी होनेस वे राक्ष
वहाँ एक न वर, सम्पूर्ण दिशाओंमें भ्रम गये ॥ ८१ ॥

शास्त्ररक्षिरिपावित्यो निर्वाण इय पायका ।
बभूव स महायाहुष्यपास्तगतजीवितः ॥ ८२ ॥

महायाहु इन्द्रकिर निष्पाण हो ज्ञानेपर दाम्त किरगोंवाते
सर्व अयथा बुद्धी हुई आगके समान निस्तेज हो गया ॥ ८२ ॥
प्रधान्तपीडायाहुको विनष्टारिः प्रहर्षयान् ।
बभूव श्लोकः पतिते राक्षसेन्द्रसुते सदा ॥ ८३ ॥

उस सम्य राक्षरावकुमार इन्द्रकिरके समरभूमिमें गिर
पानेपर खरे संखरनी अधिज्ञाया पीडा नष्ट हो गयी । सक्का
शुभु मार गया और सभी हर्षते मर गये ॥ ८३ ॥
हर्षे च क्षम्रे भगवान् सह सर्वमहर्षिभिः ।
अगाम निहते तस्मिन् राक्षसे पापकर्मणि ॥ ८४ ॥

उस पापकर्मों राक्षसके मारे ज्ञानेपर सम्पूर्ण महर्षियोंके
स्य मगवान् इन्द्रके बकी प्रकृतता हुई ॥ ८४ ॥
आकाशे चापि देवानां शुभ्रये पुण्डुभिस्यमः ।
नृत्पन्निरप्सरतोभिश्च गन्धर्वैश्च महात्मभिः ॥ ८५ ॥

आकाशमें नाचती हुई अप्सराओं और गाते हुए मशामना
गन्धर्वोंके दास और गानकी लनिके छाप देवताओंकी पुण्डुभि-
का शान्त मी मुनापी देने छग ॥ ८५ ॥
पथर्षुः पुष्पधराणि तन्नुतमिषाभयत् ।
प्रशराम हते तस्मिन् राक्षसे मूरकर्मणि ॥ ८६ ॥

देवता आदि वहाँ फूलोंकी परां करने छगे । पर हस्य
अप्युत्-स्र प्रतीत हुआ । उस मूरकर्मों राक्षसके मारे ज्ञानेपर
वहोंकी उड़ती हुई भूक दाम्त हो गयी ॥ ८६ ॥
शुद्धा भाषो नमश्चैष अहमुर्षेयदानवाः ।
आजमुः पतित तस्मिन् सर्वलोकाभयावहे ॥ ८७ ॥

अशुद्ध साहित्यस्तुद्य देवगन्धर्वदानवाः ।
विज्वयाः शास्त्रकलुषाः प्राह्वणा विचरन्तिवति ॥ ८८ ॥
सम्पूर्ण अज्ञेय मय देनेवाले इन्द्रकिरके भयशायी
हानेस बल लच्छ हा गया आकाश और निर्मल दिग्गयी देने
छग और देवता तथा दानव हर्षते लिख ठठे । देवता, गन्धर्व
और दानव वहाँ आभ और लव एक छाप छंगुड हाकर वास-
भव शक्यकाम निमित्त वरों क्लेशाल्य हाकर वरों विचरें ॥

कतोऽम्यनम्यन् सङ्ग्रामः समरे हरियूथपाः ।
तमप्रतिपक्ष ह्युद्य हत मैश्रतपुङ्गवम् ॥ ८९ ॥
तमपङ्कममें अन्तिम वस्यजयी निशाचरपठममि इन्द्र
किरके मार गया हय हर्षते मरे हुए यानर-मूषरति सम्भवस
अभिन्नन करने छगे ॥ ८९ ॥

विभीषणा इन्माद्य आम्बयाश्चसगूथपाः ।
विज्वयनाभिनन्दन्स्तुपुथुर्धापि सक्रमम् ॥ ९० ॥
विभीरव हनुमान् और वीज-मूषरती आम्बयान्—य हय
विचरक निव सम्भवस्यैव अभिनन्दन करत हुए उनकी
भूरी नूरी मरघं करने छगे ॥ ९ ॥

क्षयेऽन्तश्च भ्रूयन्तश्च गर्भोऽन्तश्च भ्रूयवगमाः ।
 सन्धश्चक्षा रघुसुत परिषार्योपतस्थिते ॥ ११ ॥
 एवं एवं रक्षन् भस्कर पञ्च बानर किञ्चकिञ्चते, नूदते
 और गकैत हुए बहो खड्डुभन्वन स्तम्भको ढेरकर लड़े
 छे गये ॥ ११ ॥
 खड्डुस्थानि प्रविष्टान्तः स्फोटयन्तश्च यानराः ।
 लक्ष्मणे जपतीत्येव धावन्य विभ्रावयस्तदा ॥ १२ ॥
 उस समय भस्मी रूँडोके हिणते और फरकरते हुए
 बानर गीर 'भस्मपत्री बय हो' यह नाद भगाने लगे ॥ १२ ॥
 मन्थोम्य च समाक्षिप्य हरयो हृष्टमानसाः ।
 चहुदन्वावचगुणा पामथाभयसत्कथाः ॥ १३ ॥

हर्यार्ये भीमवृषामापये बाक्ष्मीक्षीये धारिकाम्ये मुद्रकाद्ये लक्षितमाः सर्गाः ॥ १ ॥

इत प्रकार भीमवृषाक्षीयिते मार्यवृषामान् लक्षितकाम्ये मुद्रकाद्ये लक्षिते र्गाः द्वा इत्या ॥ १ ॥

एकनवतितम सर्ग

लक्ष्मण और विभीषण आदिकष धीरामचन्द्रकीके पास आकर इन्द्रजित्के बधका समाचार
 सुनाना, प्रसन्न हुए भीरामके द्वारा लक्ष्मणको हृदयसे लगाकर उनकी
 प्रशंसा तथा सुपेणद्वारा लक्ष्मण आदिकी चिकित्सा

दधिरक्षिभगावस्तु लक्ष्मणः शुभलक्षणाः ।
 बभूव हृष्टस्त हत्वा शत्रुजेतवमाहव ॥ १ ॥
 संग्रामनृमिने शत्रुविन्धी इन्द्रकिष्क बध करके रकते
 मीने हुए शरीरबाछे श्रमश्चक्ष्ण लक्ष्मण बहुल प्रसन्न हुए ॥
 तदा स आन्वयन्त च हनूमन्त च धीर्यवान् ।
 संनिपत्य महातज्जात्वाञ्च सर्षान् धनौकसाः ॥ २ ॥
 आजगाम ततः शीघ्रं यत्र सुप्रीथराक्ष्णी ।
 विभीषणामवष्टभ्य हनूमन्त च लक्ष्मणा ॥ ३ ॥
 यत्र किष्कन्ते सन्त वे महातेजसी सुमिश्राकुम्भ
 आम्बकर और हनुमान्कीके रोडकर मिठे और उन समय
 बानरको खप छे धीमणार्थक उस खानपर भाये लो
 बानरएव सुप्रीथ और भगवान् भीषम विषमन्त वे । उस
 समय लक्ष्मण विभीषण और हनुमान्कीका श्वाय केकर बध
 रहे थे ॥ २ ॥
 ततो राममभिष्टभ्य सीमिन्निरभियाद्य च ।
 तस्यै भ्रातृसमीपस्थाः शक्येन्ब्रानुजो यथा ॥ ४ ॥

भीरामचन्द्रकीके लक्ष्मणे आकर उनक चरणोने प्रणम
 करके सुमिश्राकुमार भन्ते उन श्येड भ्रातृके पास उखी तरा
 लड़े छे गये, बैसे इन्द्रक पाठ उष्यत्र (बामनसुधारी भीररि)
 बड़े होते हैं ॥ ४ ॥

निष्प्रिय धाराय यथशाय महात्मन ।
 आशयश्चे तथा धीरो धोरमिन्द्रजितो पथम् ॥ ५ ॥

बानरोंक चित हरति भय हुआ था । वे विभिन्न गुणों
 बाछे यानर एक-दूसरेको हृदयते लगाकर भीरामचन्द्रकीके
 सम्मुख रखनेवाकी कथार्ये करने लगे ॥ ११ ॥

तदसुकरमयाभिधीष्य हृष्टा
 मियसुहृदो युधि सक्षमणस्य कर्म ।
 परमसुपक्षभन्मनाप्रहर्षे

यिनिहतमिन्द्ररिपु निशाम्य देवाः ॥ १४ ॥

मुद्रकाम्ये लक्ष्मणके प्रिय सुहृद् बानर उनका ब
 दुष्कर एवं महान् पराक्रम देख बड़े प्रसन्न हुए । देखा भी
 उस इन्द्रजोही राक्षसक बध हुआ देख मनमें पड़े भाई हर्षक
 अतुल्य करने लगे ॥ १४ ॥

उस समय गीर विभीषण प्रसन्नतापूर्वक बौदनेके हुए
 ही शत्रुके मरे जानेकी बात सूचितकी करते हुए भाये और
 लक्ष्मणा भीरुपुनायकीके बोछे—'प्रभो ! इन्द्रकिष्के बधक
 भयंकर कार्य सम्पन्न हो गया' ॥ १ ॥

राबबेस्तु शिरक्षिष्णं लक्ष्मणेन महात्मना ।
 न्यवेद्यत रामाय तदा हृष्टो विभीषणः ॥ २ ॥

विभीषणने बड़े हर्षके साथ भीरयते यह निश्चय किया
 कि महात्म्य लक्ष्मणने ही यक्षकुमार इन्द्रकिष्क मरक
 भाय है ॥ २ ॥

अप्येष तु महाधीर्यो लक्ष्मणनेन्द्रजिह्वधम् ।
 प्रहर्षमनुल लेभे बाल्य येवमुवाच ह ॥ ३ ॥

'लक्ष्मणके द्वारा इन्द्रकिष्कक बध हुआ है' यह समाकर
 सुनते ही महापराक्रमी भीरामचन्द्रकीके अतुल्य हर्ष प्राप्त हुआ
 और वे इत प्रकार बोछे— ॥ ३ ॥

साधु लक्ष्मण तुष्टोऽस्मि कर्म बाधुकरं कृतम् ।
 राघवोहिं यिन्द्रयेन त्रितमिस्तुपधात्य ॥ ४ ॥

धाराय ! लक्ष्मण ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ । अब
 तुमने बड़ा दुष्कर पराक्रम किया । यक्षकुपुत्र इन्द्रजित्के
 मरे जानेसे तुम यह निश्चित जान लो कि अब हमलोग
 युद्धमें जीत गये' ॥ ४ ॥

स तं शिरस्युपाश्रय लक्ष्मण्य क्षीतिवर्धनम् ।
 लक्ष्मणं बलात् स्नेहायुद्धारोप्ये वीपपाद् ॥ ५ ॥

प्रयेदय समुत्सङ्गे परिभ्रज्यावपीडितम् ।

व्रतस्य सङ्गमया स्निग्धं पुनः पुनर्बहिःसत ॥ १० ॥

यद्यपि बुद्धि करनेवाले उत्सङ्ग (उत्त उभय अपनी रणल मुनकर) कन्दा रहे थे किन्तु पराक्रमी भीरुमाने उन्हें लक्ष्मण खीनकर गेरने छ विषय और बड़े लोहसे उनका मस्तक हँसा । दावोंके आभावसे पीडित हुए स्त्री कथु प्रमनका गेरने बिठाकर और हृदयसे कणकर ने बड़े प्यारसे उनकी आर बारबार देखने लगे ॥ ११ ॥

राक्षससमीहितघास्त निभ्रज्यसन्तु सङ्गमणम् ।

यामस्तु पुनःसततं तं तु निभ्रज्यसपीडितम् ॥ ११ ॥

मूर्च्छितं चैनमुपाश्राय भूयः सस्पृश्य च त्वरन् ।

उवाच सङ्गमण वाक्यमाभ्यास्य पुरुषपर्यभा ॥ १२ ॥

उत्सङ्ग अपने शरीरमें बँसे हुए बाणोंके द्वारा अत्यन्त पीडित थे । उनके झट्टोंमें कण-कण पाव हो गया था । ५ बारबार लंबी लॉस लॉपते थे आश्रयनित कंधेवाले उत्सङ्ग हो रहे थे तथा उन्हें लॉस झनेमें भी पीड़ा होती थी । उक्त मन्त्रामें पुरुषोत्तम भीरुमाने लोहसे उनका मस्तक हँपकर पीड़ा दूर करनेके लिये पुनः कन्दी-कन्दी उनके शरीरपर हाथ डेर और मन्त्रासन देकर अज्ञानमें इस प्रकार ब्रह्म—।

कृतं परमकल्याणं कर्म पुष्करकर्मणा ।

मया मन्त्रे हते पुत्रे राक्षस निहत युधि ॥ १३ ॥

मयाह विजयी शम्भो हते तस्मिन्पुरात्मनि ।

रावणस्य युवांसस्य विष्टया वीर त्वया रणे ॥ १४ ॥

छिद्योहि वृक्षिण्यो बाहुः स हि त्वया प्रयाधया ।

वीर ! तुमने अपने पुष्कर पराक्रमसे परम कल्याणकारी कर्म उत्सङ्ग किया है । अद्य बनेके गुरे अनेपर पुष्करसङ्गमें रावणको भी मैं मारा गया ही मानता हूँ । उक्त युवप्रभा शत्रुका ब्रह्म हो जनेले आब मैं वास्तवमें विजयी हो गया । खीन्यान्त्री बात है कि तुमने रणभूमिमें इन्द्रविद्युत्का ब्रह्म करके निर्दोषी निघाकर रावणको शक्ति ही ब्रह्म शम्भो क्योंकि वही उक्तका सपसे बड़ा छापर था ॥ १३ १४ ॥

विनीयमहान्मद्रथा छत्र कर्म महद्व रणे ॥ १५ ॥

महापद्मैस्त्रिभिराः कथञ्चिद् विनिपातितः ।

निपमित्वा छत्राऽस्म्यद्य निपास्यति हि रावणम् ॥ १६ ॥

विभीषण और इन्द्रमान्द भी वरभूमिमें महान् पराक्रम कर दिगाया है । तुम सब धर्मोंमें मिश्रकर तीन दिन और तीन पत्रमें किसी तरह उक्त वीर रावणको मार गियेया तथा मुझे एतुरीन बना दिया । अब रावण ही युद्धके लिये निकटगत ॥ बलभूतल महत्वा निपास्यति हि रावणम् ।

बलभूतल महत्वा भुत्या पुत्र निपातितम् ॥ १७ ॥

एतन् मेन-शुचयवरीत पुत्रका माप गन्ध मुनकर

परम विघात बना थाब उक्त युद्धके लिये आगेज ॥ १७ ॥

त पुत्रबधसतत निर्यान्त राक्षसाधिपम् ।

पलेनापृत्य महाता निहनिष्यामि दुर्जेयम् ॥ १८ ॥

पुत्रके बधसे छत होकर निकल हुए उक्त दुर्जेय राक्षस-यान रावणको मैं अपनी बड़ी मारी सेनाके द्वारा डेरकर मार डारूँगा ॥ १८ ॥

त्वया सङ्गमण नय्येन सीता च पृथिवी च मे ।

न दुष्याया हत तस्मिन्शाक्रेतरि साहय ॥ १९ ॥

उत्सङ्ग । इन्द्रविद्युत् इन्द्रको भी भीत पुष्कर था । सब

उसे भी तुमने पुष्करभूमिमें मार गियाया; तब तुम-जैसे व्यक्त और छायाकके होते हुए मुझे सीता और भूमण्डलके राक्षसोंके प्रात करनेमें कोई कठिनाई नहीं होगी ॥ १९ ॥

स त भ्रातरमाभ्यास्य परिवेद्य च रावणम् ।

रामा सुयोज मुदितः समाभाष्येदमग्रधीत् ॥ २० ॥

इस प्रकार भ्रातृको आश्रयन देकर एतुकुछनभन भीरुमाने उन्हें हृदयसे अग्र स्थित और प्रकृत्यपूर्वक सुयोजको पुष्कर कण—। २ ॥

विशस्वोऽप्य महाप्राय सीमिथिर्मित्रपत्सलः ।

यथा भवति सुस्वस्वस्तया त्व समुपावर ॥ २१ ॥

परम बुद्धिमान् सुयोज । तुम वीर ही ऐसा उपचार करो सिद्धे व मित्रवत्सल गुमिनाकुम्भ पूर्णता लक्ष हो बनें और इनके शरीरसे बाण निकलकर पाप करनेके क्षय ही लयी पीड़ा दूर हो बान ॥ २१ ॥

यिद्यात्यः श्रियता क्षिप्रं सीमिथिः सविभीषणम् ।

श्रुत्वावानरसैम्यानां द्युपणां धुमयोधिनाम् ॥ २२ ॥

ये वाप्यथोऽप्य युष्मन्ति सदात्या यथितस्तथा ।

तेऽपि सर्वे प्रयत्नेन मिपन्त सुस्मिन्स्तथा ॥ २३ ॥

धुमिनाकुमार उत्सङ्ग और विभीषण इन्हींके शरीरसे तुम वीर ही बान निकल हो और पाव अन्ध कर हो । इन्हींद्वारा युद्ध करनेवाले जो धुमिना वीर वीर तथा वानर सेनिक हैं, उनमें भी जो दूखे-दूखे श्रेया पापास बिंधे हुए और पापस होकर मुक्त कर रहे हैं उन सभीको तुम प्रयत्न करके मुक्ति एवं स्वस्व कर दो ॥ २२ २३ ॥

एवमुक्त्वा स रामेण महारामा हरिपूरुषः ।

उत्सङ्ग्याय वृषो नस्तः सुयोजः परमार्थम् ॥ २४ ॥

महात्मा भीष्मकद्वैक ऐसा करनेस पान-युपनति मुनने उत्सङ्गकी तन्त्रमें एक बहुत ही उच्च अर्थविषय ही ॥ २४ ॥

स तस्य गन्धमाप्राप विन्द्य समपद्यत ।

तदा त्रिद्वन्द्वेय सकृदमय एव च ॥ २५ ॥

उनको कन्ध भूत ही उत्सङ्गके शरीरसे वन निकल गये और उनकी कयी पीड़ा दूर हो गयी । उनके शरीरमें त्रिद्वे भी वर व स्वस्व कर गये ॥ २५ ॥

विभीषणमुखात्तां च सुहृदां राक्षसाक्षया ।

सर्वबाह्यमुखात्तां चिह्नितसामकरोत् तदा ॥ २६ ॥

श्रीरामचन्द्रकीर्ति भावते सुपेयने विभीषण आदि
पुत्रहो तथा समस्त बान्धवियोगविषयो श्री राक्षस चिह्नित
की ॥ २६ ॥

तदा प्रकृतिमापन्नो हतशत्रुणो गतः ।

सौमिभिर्मुमुक्षे तत्र क्षयेन बिगतम्बरा ॥ २७ ॥

किं तो क्षयमरने वाज निष्कष्यते और पीडा दूर हो
जानेसे सुमित्राकुमार स्वस्य एवं नीरेता हो सर्वत्र स्तुत्य
करने को ॥ २७ ॥

तत्रैव रामा मूषगाभिपक्षया
विभीषणसहस्रैस्तिस्रः वीर्यवान् ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बाह्योऽध्याये पुत्रकण्ठके एकम्वतितमः सर्गः ॥ ११ ॥

एत प्रकार श्रीवाल्मीकिदेवैरेतं काव्यानामय मन्त्रिकण्ठके सुहृदाक्षये इत्यनेनोऽर्थात् पूरा हुआ ॥ ११ ॥

द्विनवतितम सर्ग

रावणका श्लोक तथा सुपार्श्वके समझानेसे उसका सीता-बधसे निवृत्त होना

तदा वीर्यस्यसविधाः ध्रुत्वा ज्येष्ठजितो यधम् ।

व्याधसहसुरभिक्वाय वराभीवाय सत्यरा ॥ १ ॥

यजन्के मन्त्रिणैरेव इन्द्रकिंके बधका समाचार सुना,
तब उन्होंने स्वयं भी प्रत्यक्ष देखकर इतना निश्चय कर लेनेके
बाद द्रुत आकर बधपुत्र यजन्के खण हाथ कर सुग्राह्य ॥

युद्धे हतो महापुत्र जङ्गमणेन तबाराजः ।

विभीषणसहायेन मियतां नो महापुत्रिः ॥ २ ॥

ये श्लोक—महापुत्र । युद्धमें विभीषणकी सहायता लेकर
जङ्गमने व्याधके सहायकेसी पुत्रको हमारे देनिश्लोकके देखते-
देखते मार गये ॥ १ ॥

शूरा शूरेण सगम्य सयुगेष्वपराजिता ।

सङ्गमणेन हताः शूराः पुत्रस्ते विबुधेन्द्रजित् ॥ ३ ॥

गताः स परमार्होकाभ्यारैः सतप्य सङ्गमणम् ।

किन्ते देवताभ्रंके राक्ष इन्द्रका भी पराजित किया जा
और युद्धके युद्धमें किन्ती कभी पराजय नहीं हुई थी वही
भाषण शरीर पुत्र इन्द्रकिं शीर्षकमप्य जङ्गमके खण
निहकर उनके शूरा मार गये । वह अपने शार्ङ्गद्वारा
जङ्गमके वृत्तः वृत्त करके उठान आश्रमे गये ॥ ३ ॥

स त प्रतिभय ध्रुत्वा यर्षं पुत्रस्य शक्यम् ॥ ४ ॥

पारमिन्द्रजितः सख्ये कदमर्से प्रापिन्महाहत् ।

युद्धमें अपने पुत्र इन्द्रकिंके भयानक बध कर के एवं
यजन् कण्ठकर मुनेपर यजन्के वही भरी मूषगने भर
रक्ष्य ॥ ४ ॥

अथेक्ष्य सौमिभिरतोसासुत्पित्त

मुवा ससैभ्याः सुखिर ज्वाहिरि ॥ २८ ॥

उस समय ममान् श्रीराम, धनुराज सुमीर, विभीषण
तथा पराक्रमी शूराका बन्धनान् जङ्गमके निरेता होकर
सदा दुःख देल केनाच्छित बड़े प्रसन्न हुए ॥ २८ ॥

अपूजयत् कर्म स सङ्गमणस्य

सुपुष्कर वाशरधिर्महात्मा ।

बभूव ह्येव पुषि बान्धवो

मिथम्य संशकञ्जित मियतितम् ॥ २९ ॥

शरयजन्के महापुत्र श्रीरामने जङ्गमके उठ करके सुपु-
त्रकण्ठकी पुनः भूरि-भूरि प्रशंस की । इन्द्रकिं युद्धमें म
मिया गया; वह सुनकर बान्धव सुपुत्रको भी कर्म
प्रशंसता हुई ॥ २९ ॥

सङ्गम्य विपत् संघां राजा राक्षसपुंगवा ॥ ५ ॥

पुत्रशोककुण्डो वीनो विस्मयापकुण्डेन्द्रिया ।

किं शीर्षकके बाद होयमें शूकर जङ्गमपर एव
यजन् पुत्रशोकसे व्याकुल हो गया । उसकी खरी इन्द्रकी
भङ्गुल ठठी और वह दीनतापूर्वक निश्चय करने लगा—

हा राक्षसबन्धुमुष्य मम सस्य महात्सव ॥ ६ ॥

त्रित्येन्द्रं कथमद्य त्वं सङ्गमणस्य वरां गता ।

या पुत्र । श शूराकेनाके महापुत्री कर्णपर । इय
तो पारके इन्द्रपर भी निश्चय पा कुंके ये; किं आज जङ्गमके
बधमें कैसे पड़ गये ॥ ६ ॥

गनु त्वमिपुभिः कृद्वो भिन्ध्याः कदास्तथावपि ॥ ७ ॥

मन्वरस्यापि शृङ्गाणि किं पुनर्जैसमर्षं युधि ।

वेद्य । इम तो कुपित होनेपर अपने बन्धुके कर्म और
अपराधकी भी विदीर्ष कर उठते थे; मन्वरपक्षके शिकारीके
भी लेह-लेह उठते थे किं युद्धमें जङ्गमके मार भिन्ना
द्वारा किंके कर्म बड़ी बल थी ॥ ७ ॥

अद्य धैवसत्ये राजा भूयो बहुमतो मम ॥ ८ ॥

यन्मद्य त्वं महापाशं संयुक्तः काक्षधर्मणा ।

व्याप्यो । आज सर्वके पुत्र शूराका यजन् कर्ण
अधिक बल पड़ने लगा है किन्हीं युद्धों में काक्षधर्म
संयुक्त कर दिया ॥ ८ ॥

एव फण्याः सुयोधानां सतामरगणेष्वपि ।

या ह्येव ह्यप्येव भर्तुः स पुमान् सर्गामृच्छति ॥ ९ ॥

धम्मस्य देवत्वधोमं मी अण्णे योद्धाओअं यही मर्मा
हे । ये भवन्ते त्यागीके विन्ने सुद्धमे माग बत्ता हे वह पुत्रप
सर्वाओक्रमे बत्ता हे ॥ ९ ॥

मद्य वेवणाणां सय्ये छेकपाळा महर्षयः ।
इतमिन्द्राजित भुक्त्वा सुखं सख्यमित्ति निर्भया ॥ १० ॥

अत्र समस्त देवता छेकपाळ तथा महर्षि इन्द्रचित्क
मद्य भना मुनकर निहर हो सुखकी नीर वो छेकगे ॥ १ ॥

मद्य छेकपाळयां कृत्वा पूयिषी च सक्कनना ।
एकेनेन्द्राजिता हीना श्येय्य प्रतिभाति मे ॥ ११ ॥

मात्र हीनों श्यक और कननौवरित यह सारी पृथ्वी भी
भक्रमे इन्द्रचित्के न होनेसे मुझे सूची-सी दिखायी देती है ॥

मद्य नैत्रासक्कम्याना भोव्यामन्तापुरे रघम् ।
करेणुसक्कस्य पया निताद् गिरिगद्धर ॥ १२ ॥

जैसे गन्धर्वकर्मारे बानेपर पर्यंतकी कन्दरामे इधिनियौक
अवनाद मुनाही पड़ता है उही प्रकार भाव भन्तापुरमे मुझे
रक्षण-क्याओका ककम-कन्दन मुन्ना पड़ेगा ॥ १२ ॥

यौरान्त्यं च लङ्का च रसासि च परतप ।
मातर मां च भार्याश्च क गताऽसि विहाय ना ॥ १३ ॥

धनुओको छताप देनेताछ पुत्र । भाव अपने मुफवन्
परके लङ्कापुरीके समस्त रासलोके अपनी मौको, मुसको
और अपनी पत्नियौको—इम सब छोड़के छोड़कर इम कहीं
फडे गये ॥ १३ ॥

मम नाम त्यया वीर गतस्य पमसावन्म ।
प्रेतकपयामि क्षय्यापि थिपरीत हि वतसे ॥ १४ ॥

वीर । हेना तो वह जाइये या कि मैं पहले मरभक्रमे
कल्य और इम यहाँ रहकर मेरे प्रेतकर्म करते परत इम
विपरीत भवकामे शिव हो गये (इम परछेकपासी हुए
और मुझे इमहाय प्रेतकर्म करना पड़ेगा) ॥ १४ ॥

स त्वं जीवति सुप्रसिधे खम्मणे च सराचये ।
मम शक्यमनुवृष्टस्य क गतोऽसि विहाय ना ॥ १५ ॥

हाव । राम कदमज और सुगीव अभी बीकित है। ऐसी
भवकामे मेरे इतरकर्म कौय निरकर्म विना ही इम होने छोड़
कर कहीं चले गये ॥ १५ ॥

पयमादिबिहायार्ते रावणं राक्षसाधिपम् ।
आविशद्य महान् क्रोयः पुत्रध्वंसनसम्भवा ॥ १६ ॥

इत प्रकार आठमावसे बिबाय करते हुए एछएव
रावणके इतरकामे भवने पुत्रके बचका सरण करके महान्
शोकका माषेय हुआ ॥ १६ ॥

प्रकृत्या क्रोपन् ह्येन पुत्रस्य पुनराधयः ।
पीतं सखीपयामासुर्धर्मैःकमिष रदमया ॥ १७ ॥

एक तो वह स्वभावसे ही क्रोधी था । दूरे पुत्रकी
च प ५ १ ७—

चिन्त्याओने उसे उचेकित कर दिया—कसते हुएको और
भी क्या दिया । जैसे स्वर्षकी किरणें प्रीम्य शत्रुमें उसे अधिक
प्रचण्य बना देती हैं ॥ १७ ॥

सञ्जाटे धुक्कुटीभिश्च सगताभिर्धर्मयेजत ।
युगात्से सह क्कैस्तु महोर्मिभिरिषोद्धि ॥ १८ ॥

कल्यटमें देखी मौहोके करण यह उही तरह योग्य पता
या बसे प्रक्यकर्ममें मनरों और बनी-बनी कर्णसे महा
खगर मुगामित होय है ॥ १८ ॥

क्रोपाव् विजम्भामापस्य वक्कवाद्ध्यसमिव ज्वलन् ।
उत्पपात् सधूमान्निर्धुवस्य यव्नायिय ॥ १९ ॥

जैसे वृत्राहुरके मुससे भूमवहित अग्नि प्रकट हुई भी
उही तरह रोपते नैमाई भेत हुए रावणके मुससे प्रकटक्यमें
धूमयुक्त प्रकटित अग्नि निकलने लगी ॥ १९ ॥

स पुत्रघषसततः शूरः श्लोभयद्य गता ।
समीक्ष्य रावणो बुद्धया वैवेद्या गोचयव् यथम् ॥ २० ॥

अपने पुत्रके वषसे संतत हुआ धूर्वीर रावण खख
श्लोभके वहीभूत हो गया । उधने बुद्धिसे श्लेच-विचारकर
बिरेहकुमारी खीताके मार जानना ही अच्छा समझा ॥ २ ॥

तस्य प्रकृत्या रक्ते च रक्ते क्रोधाग्निनापि च ।
रावणस्य महाघारे वीते नन्ने वभूवतु ॥ २१ ॥

रावणकी ओलें एक तो स्वभावसे ही साध थी । दूरे
श्लोभाग्निने उन्हीं और भी रक्षणकर्म की का दिया था । अतः
उधके वे क्षीतिमान् नेत्र महान् खेर प्रदीत होते थे ॥ २१ ॥

पोरं प्रकृत्या रूपं तत् तस्य श्लोभाग्निमुर्ध्विष्ठतम् ।
वभूव रूपं कुञ्जस्य रुद्रस्येव वुरासवम् ॥ २२ ॥

रावणकर्म रूप स्वभावसे ही भयकर था । उसपर श्लोभाग्नि
का प्रमथन पड़नेसे वह और भी भयानक हो पस्य और
कुम्भित हुए रुद्रके समान वुर्जय प्रदीत होने लग्य ॥ २२ ॥

तस्य कुञ्जस्य नेषाम्या प्राफटन्नभुयिष्वया ।
वीषाम्यामिव वीताभ्या साविर्ष्याः स्नेहविन्त्वा ॥ २३ ॥

श्लोभसे भरे हुए उस निराकरक नेत्रोंसे आँतुओकी बूँदें
निलने लगीं मन्ता कल्लते हुए वीषकैसे श्लेक खय ही तेकके
बिंदु हाव रहे हैं ॥ २३ ॥

वन्दान् विवृशतस्तस्य भूयतं वदानस्तना ।
यन्त्रस्याकृत्यमाणस्य मज्जतो दामधैरिय ॥ २४ ॥

वह दौत पीछने लग्य । उस समय उधके हँसोंके
कटकयानेका ओ राव्य मुन्यपी देवा था वह समुद्र मन्थनके
समय दानवोंहाय लीये आते हुए मयन कन्धक रूप मन्त्र
पकड़ी धनिके समान बन पड़वा था ॥ २४ ॥

कालान्निरिच सकुन्दा यां या विरामपैक्षत ।
तस्यां तस्या भयधस्य राक्षसाः सविष्ठित्पिर ॥ २५ ॥

कालान्निरिच सकुन्दा यां या विरामपैक्षत ।
तस्यां तस्या भयधस्य राक्षसाः सविष्ठित्पिर ॥ २५ ॥

अस्मिन्ने समान अस्मन्त कुपित हो वह किञ्चिद्वि-
दिशाभी अरु इति शाल्मा या उरु-उरु दिगाम लहे हुए
राक्षस भयभीत हो अस्मन्त आदिक्की अोटमें छिय जाते ये ॥
तमन्तकमिष कुञ्ज शराशरभिसाविपुम् ।
वक्षिमाप्य दिशा सर्वा राक्षसा मोपब्रम्सुः ॥ २६ ॥

शराशर प्राप्तिमें अस्मन्त अनेकी इच्छावाळ कुपित अस्मन्त
समान अस्मन्त दिशाओंकी ओर देखते हुए राक्षसके पान राक्षस
नहीं जाते थे—उसके निष्कट जानेका खरस नहीं करत थे ॥
ततः परमसमुद्रा राक्षसो राक्षसाधिपः ।
अध्रवीर् रक्षसा मध्ये सत्सम्प्रियपुराहव ॥ २७ ॥

तब अस्मन्त कुपित हुआ राक्षसराज राक्षस युद्धमें राक्षसा
अस्मन्त आदि करनेकी इच्छासे उनका बीचमें लड़ा होकर अस्मन्त—
मया सर्वसहस्राणि चरित्वा परम नयः ।
तं पुं सेष्वक्षत्रोषु स्वयम् परितोषितः ॥ २८ ॥

निगाचो ॥ नेने लक्षों वर्षोंतक कठोर तपस्व करने
निमित्त तपस्वामात्री अस्मन्तपर स्वयम् ब्रह्माक्षीको संतुष्ट
किना है ॥ २८ ॥
तस्यैव तपसो मनुष्या प्रसादात् स्वयमुवः ।
मासुरेष्वो न देवेश्या भय मम कदाचन ॥ २९ ॥
उसी तपस्वाके फलसे और ब्रह्माक्षीकी कृपासे मुझे
देवताओं और असुरोंकी अस्मन्तसे कभी भय नहीं है ॥ २९ ॥
कक्ष ब्रह्मरक्ष में यदावित्यसमप्रभम् ।
देवास्तुष्विमर्षेषु न चिञ्चन क्वमुषिभिः ॥ ३० ॥

मेरे पास ब्रह्माक्षीका दिना दुःख कलन है जो दुर्लभ
समान वसुधा रहता है । देवताओं और असुरोंके लक्ष्य
पठित हुए मेरे संग्रामके अलक्ष्यपर वह ब्रह्मके प्रहारसे भी
दृष्ट नहीं करे है ॥ ३० ॥

तेन मामद्य संयुक्तं रराखमिह सयुगं ।
प्रतीयात् काऽद्य मामाद्यौ साक्षादपि पुरवर्तः ॥ ३१ ॥

वृक्षमिष यदि आज मे युद्धके क्षिमे तीघार हो रथपर
देवकर रथमिमें लड़ा होई तो अस्मन्त मेरा सम्पन्ना कर
सक्य है । अस्मन्त इन्त ही स्वो न से वह भी मुझसे युद्ध
करनेका चाहत नहीं कर सक्य ॥ ३१ ॥

यत् तदाभिप्रस्तान्न सारात् कस्मुं क महत् ।
देवास्तुरियमर्षेषु मम वृत्त अयंभुषा ॥ ३२ ॥

मद्य तुर्यदक्षीर्भूमि धनुर्वत्याप्यता मम ।
रामलक्ष्मणयोरेव पथाय परमाहव ॥ ३३ ॥

अन दिनों देवास्तुर-संग्राममें अस्मन्त हुए ब्रह्माक्षीसे युद्ध
का शयनरहित निशाच पशुन प्रदान किया था आज मेरे
वही मयलक धनुषको सेकड़ों मन्त्र-शरीरोंकी अस्मन्तसे लक्ष्य
प्राप्तमें राम और लक्ष्मणका शयन करनेके सिवा ही
उठाया जाय ॥ ३२-३३ ॥

स पुत्रवधसततः क्रूरः क्रोधवश गतः ।
समीक्ष्य रावणो युद्धया सीतां हन्तुं व्यवस्यत् ॥ ३४ ॥

पुत्रके वधसे संतप्त हो क्रोधक वशीभूत हुए क्रूर राक्षस
अस्मन्त बुद्धिसे सेव-निषारकर सीताको मार जानेका ही
निश्चय किया ॥ ३४ ॥

प्रत्ययक्ष्य तु ताव्राज्ञं सुभारो धीरवदनः ।
दीम्भे दीन्स्वरान् सर्वास्तायुवाच निशाचरान् ॥ ३५ ॥

उसकी अर्थात् क्रोधसे व्याप्त हो गयी और अहंति अस्मन्त
मयानक दिलायी देने लगी । वह स्व और इति शाल्मन्
पुत्रके क्षिमे दुष्ठी हा रीनतार्थ लक्ष्मण अस्मन्त निष्कट-
से लेख — ॥ ३५ ॥

मापया मम वस्तेन वञ्चनार्थं वनैकसाम् ।
किञ्चिद्व्य हत तत्र सीतेयमिति वृत्तिस्तम् ॥ ३६ ॥

मेरे देखने मापसे कलक वानरोंको चक्रमा देनेके क्षिमे
एक अहंतिव्यवहार हीका है । ऐसा करकर विवाहा और
हठे ही उसका बंध किया था ॥ ३६ ॥

उपिवृत्तं तप्यतेनाह करिष्ये प्रियमात्मनः ।
वैदेहीं नाशयिष्यामि स्रजवन्धुमनुमताम् ॥ ३७ ॥

जो आज तम हठको मैं स्व ही कर दिलाऊँगा और
ऐसा करके अपना प्रिय करूँगा । उस अस्मन्तकम राममें
अनुपगत रत्ननेनाभी सीताका नाश कर दूँगा ॥ ३७ ॥

इत्येवमुक्त्वा सखियान् लङ्कामागु परानुशत ।
उत्प्लूत्य गुणसम्पन्न विमन्त्रान्तरार्थसम् ॥ ३८ ॥
सिन्धुपात स धनेन सभार्थः सखिर्वृतः ।
रावणो पुत्रधाकेन मृशमाकुञ्चयेततः ॥ ३९ ॥

मन्त्रिणसे ऐसा करकर उसने सीमा ही तक्षार हावमें
संक्षी जो लङ्कागत गुणसे युक्त और अस्मन्तके समान
निर्मल अस्मन्तवाही थी । उसे मयानसे निष्कटकर पत्नी और
मन्त्रिणोंसे पितृ दुःख राक्षस बड़े वेगसे भागे बड़ा । पुत्रके
शक्तसे उसकी अंतमा अस्मन्त अस्मन्त हो रही थी ॥ ३८-३९ ॥
संक्षुब्धः स्रजमाश्रय सहसा यत्र मैथिली ।
प्रजगत् राक्षस प्रेक्ष्य सिंहनासं विषुक्तपुः ॥ ४० ॥

वह अस्मन्त कुपित हो तक्षार कर सहसा उस अस्मन्त
अ पट्टेना अर्थात् सिन्धुकेद्वारा सीता मोक्ष थी । उरु
जाते हुए उस राक्षसको देवकर उसके मन्त्री सिन्धु
करने लगे ॥ ४० ॥

ऊर्ध्वाम्प्राण्यमस्त्रिण्य सानुद्रेक्ष्य राक्षसम् ।
भयैर्न तापुनी कपू अस्मन्तौ प्रापयिष्यतः ॥ ४१ ॥

वे राक्षसको उरने मय देव एक-दूरेक अस्मन्त कर
देव—आज इते देवकर वे दोनों माई राम और लक्ष्मण
अस्मन्त हो उठेंगे ॥ ४१ ॥

लोकपाप्य हि अत्याग कुदोम्भनन निर्विद्यः ।

वहस्य द्वाभ्यश्चाभ्यामे सयुगेप्यभिप्रायिता ॥ ४२ ॥
 अस्मिंश्च कुपित इनेपर इम राक्षसराजो इन्द्र आदि चार्षी
 अन्वयाभेदां शीत मिया और दूसरे बहुत ने प्रभुभोजन मी सुदम
 मार गिरया था ॥ ४२ ॥

त्रिषु सोकेषु रत्नानि मुञ्चके आहृत्य रायणः ।
 विक्रम च वले वैव मात्स्यस्य सद्यशो भुवि ॥ ४३ ॥
 पत्नीं शोकोर्ने च रत्नमूल पदार्थं ई उन स्वयं व्यकर
 एतन्न मंग रहा है । नृमण्डलमें इतक समान पराक्रमी और
 सम्मान दूसरा कोई नहीं है ॥ ४३ ॥

तथा सञ्जल्पमानान्ममशाकवल्किना गताम् ।
 मभिमुद्राश्च वैवर्ही रायणः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ४४ ॥
 ये इस प्रकार बातचीत कर ही रहे थे कि शोकेसे अचत-
 न हुआ एतन्न अयोध्यावाटिकामें बैठी हुई त्रिवेङ्कुमायी
 श्रीरत्न वच करनेके लिये बोझा ॥ ४४ ॥

बायमाणः सुसमुद्रः सुहृद्भिर्हितवृत्तिभिः ।
 अभ्यधावत समुद्रः श्रे प्रहो रोहिणीमिव ॥ ४५ ॥
 उसके हितकर विचार करनेवाले सुहृद् उस समय
 एतन्न करनेकी चेष्टा कर रहे थे तो भी वह अत्यन्त
 कुपित हो शैश आकाशमें कोई नूर प्रह रोहिणी नामक नक्षत्रपर
 आक्रमण करता है, उसी प्रकार वीरताभी अंगे बोझा ॥ ४५ ॥

मैथिली रक्ष्यमाणा तु राक्षसीभिरभिनन्दिता ।
 पद्मं राक्षस कुञ्च निस्त्रिदावरधारिणम् ॥ ४६ ॥
 व निद्राम्य सनिस्त्रिदा व्यथिता जनकात्मजा ।
 निवार्यमाण बहुशाः सुहृद्भिरभिर्द्विर्तितम् ॥ ४७ ॥

उस समय मन्तीवासी भीला राक्षसियों कछपनमें थी ।
 उन्होंने देखा शोकेसे मग हुआ राक्षस एक बहुत बड़ी लक्ष्मण
 लिये युवा मारनेके लिये आ रहा है । यद्यपि उसके सुहृद् उसे
 बरबर रोक रहे हैं तो भी वह छोड़ नहीं रहा है । इस तरह
 लक्ष्मण व रावणका आने देना अनकल्पितोंके मनमें बड़ी
 म्पत्ता हुई ॥ ४६ ४७ ॥

सीता दुस्मरसमाविष्टा पिच्छपत्नीन्ममप्रदीप्त ।
 यथाप मामभियुद्धा सतमभिद्रवति सयम् ॥ ४८ ॥
 परिष्पन्ति सनाथा मामनायामिव युमति ।
 सीता तु लामं दूष गतीं और विहाय करती हुई इस
 प्रकार पछी—पर दुर्मुखि राक्षस किन तरह कुपित हो स्वयं
 मरी अंगे बोझा आ रहा है, इससे अन्न पड़ना है यह जानाया
 होनेपर मी मुक्त अनायासकी भौति मार हाथमें ॥ ४८ ॥
 पशुदाभ्यांश्यामस भर्तार मामनुद्यताम् ॥ ४९ ॥
 भाया मम भयस्त्विति प्रत्याख्याता भुय मया ।

मैं अपने पतिमें अनुपगत रहती हूँ तो भी इन्होंने अनेक
 बार प्रवृत्त किया कि भुम मरी अन्नका फल आये । ठर समय
 निश्चय ही मैंने इसे दुःख दिया था ॥ ४९ ॥

सोऽय मामनुपस्थाने व्यक्तं वैराद्यमगतः ॥ ० ॥
 क्रोधमाहसमाविष्टो व्यक्त मा हन्तुमुद्यत ।

मरे इस तरह उठकरनेपर निश्चय ही यह निराग हा
 क्रोध और मोहक बधीनूत हा गया है और अकस्म ही मुझे
 मार करनेके लिये उद्यत है ॥ ५० ॥
 मयथा तौ नरव्याघ्रौ अक्षरौ रामलक्ष्मणौ ॥ ५१ ॥
 मक्षिमिच्छामनार्थेण समरऽद्य निपातितौ ।

अथवा इस नीचने आज समराङ्गनमें मरे ही करण
 दोनों मात्र पुरुषसिंह भीयम और अकस्मिक मार गिरया है ॥
 भैरवो हि महान् मयोः राक्षसाना भुता मया ॥ ५२ ॥
 यद्गामामिह ह्यथाना तथा विक्रोदाता मियम् ।

क्योंकि इस समय मैंने राक्षसोंका बड़ा मरदकर खिन्नात
 बना है । इससे मरे हुए बहुतसे निराकर अपने प्रियकोंको
 पुच्छर कर थे ॥ ५१ ॥
 यथा विष्णुधिमिच्छोऽय विनाशो राजपुत्रयोः ॥ ५३ ॥
 मयथा पुत्रद्वयेन महत्या रामलक्ष्मणौ ।
 विधमिष्यति मां त्रैशा राक्षसः पापनिश्चया ॥ ५४ ॥

अहो ! यदि मरे करण उन राजकुमारोंका विनाश हुआ
 तो मरे जीवनको धिक्कार है अथवा यह मी सम्भव है कि पप
 पूर्व विचार रखनेवाला यह मरकर राक्षस पुत्रशोकसे उद्यत
 हो भीयम और अकस्मिक न मार करनेके कारण मरा ही बच
 कर जाये ॥ ५३ ५४ ॥

हन्तुमस्तु तद् यास्य न ह्यन भुद्रया मया ।
 यद्यह तस्य पृष्ठन तत्रायासमनिर्जिता ॥ ५५ ॥
 त्वदीयमनुशोचय भर्तुरनुगत्य सती ।

युद्ध भुद्र (मूर्ख) नापिने हनुमानकी कही हुई यह
 बात नहीं मानी । यदि भीयमहाय जीनी न जानेपर भी उस
 समय हनुमानकी पीठपर बैठकर चली गयी होती तो पतिके
 अङ्गमें खान पाकर मान इस तरह घोरघोर शांफ नहीं करती।
 मन्थे तु हृदय सभ्याः कौसल्यायाः फलिष्यति ॥ ५६ ॥
 एकपुत्रा यथा पुत्र विनष्ट भोष्यत सुधि ।

अरी खल कोक्या एक ही बरकी मों हैं । यदि वे
 युद्धमें अपने पुत्रका विनाशका नमाचार सुनें तो मैं समासनी
 हूँ कि उनका हृदय अक्षय कर जायगा ॥ ५६ ॥
 सा हि जम्भ च वात्य च यौयम च महात्मना ॥ ५७ ॥
 धमक्यापि रूप च दृष्टी सस्मरिष्यति ।

वे उठी हुई अपने महात्म्य पुत्रके अन्न सत्यावस्था
 उभाव्या चम-कर्म तथा रूपका कारण करेंगी ॥ ५७ ॥
 निरागा निहत पुत्र दृष्ट्या भाज्यमचतना ॥ ५८ ॥
 अग्निमायक्यत नूनमया पापि प्रयक्ष्यति ।
 अपने पुत्रके मारे जानेपर पुत्र-दहनमें निराग एवं
 अकत-सी हा में उनका भाद करके निश्चय ही कन्धी भागमें

समा ज्योती भयना सख्युधी ऋषारामे आत्मविवर्तन
कर ह्येनी ॥ ५८३ ॥

धियास्तु कुक्ष्यामसती मन्वरां पापनिश्चयाम् ॥ १९ ॥
बहिमिच्छमिम शोकं कौसल्या प्रतिफसरात् ।

‘‘पुण्यपूर्ण विचारभाषी उस दुःख कुनही मन्वराका पिछार
दे किके करण मेरी रात कौसल्याको यह पुनःपुनः शोक
देखना पड़ग्य ॥ ५९३ ॥

इत्येष मथिलीं हृद्वा विलपन्ती तपस्विनीम् ॥ ६० ॥
रोहिणीमिदं खन्नेयं विना प्रहयशा गताम् ।

एतस्मिन्नन्तरे तस्य भगवत्यः शीलवाग्मुचिः ॥ ६१ ॥
सुगार्भ्यां नाम मेधावी रावण एतसा वरम् ।

निष्कार्यमाणः सविधैरिदं पद्यनमधवीत् ॥ ६२ ॥
‘‘उत्तरमासे विदुःकर किन्ही मूर प्रहके वणमे पड़ी हुई
रोहिणीकी भोंति तपस्विनी कीताको इव प्रकार विभ्रत करती
देस उनभके सुप्रसन्न एवं हृद आचार विचरनाले सुपुण्य
नामक बुद्धिमान् मन्त्रीने वृद्ध सचिवको मना करनेपर भी
उस समय राक्षसराज राजपसे यह बात कही—॥ ६ - ६२ ॥

कथं नाम वृथाप्रीय साक्षाद्भयणानुज ।
हन्तुमिच्छसि वैदेहीं श्लोभाद् भगमपास्य च ॥ ६३ ॥

‘‘महाराज वृथाप्रीय ! तुम तो शत्रुत्तु कुनेरक मई हो
किन्तु कथके कारण परमेश्वरे विष्णुकी ये विदेहकुमारीके बचनी
इच्छा कैसे कर रहे हो ॥ ६३ ॥

यद्विधाप्रतस्तनातः स्वकर्मनिरतस्तथा ।
क्रिया करमाद् वध वीर मन्पले राक्षसेश्वर ॥ ६४ ॥

‘‘वीर राक्षसराज ! तुम विविधकर्म प्रहाचर्यका पापन करते
हुए वेदविधाका अभ्यसन पूरा करके गुरुकुलमे स्नातक
इत्याद्यों ब्रह्मब्रह्मपाण ब्राह्मणीकीये आदिब्रह्मये पुत्रकापके हितवतितमा समो ॥ ६४ ॥

इस प्रकार भीमव्यासमीकीरचित अष्टाशतक अष्टिकान्तक मुद्रकाकमे कलकौत्सना पूरा हुआ ॥ ६४ ॥

सर्वे भक्तता सर्वेण हस्त्यप्येन समभूता ।
निर्गन्तु रघुसङ्घेय पावतेशोपदोभित्ता ॥ १ ॥

एकं राम परिक्षिप्य समरे हन्तुमर्हथ ।
वर्षन्तः शरवर्षाणि प्रावृत्तकाल इयाम्बुजा ॥ ४ ॥

‘‘वीर ! तुम सब योग समस्त साथी शंभे, रघुसङ्घ
तथा पैरुव सेनिकसे निरकर उन एकसे सुप्रोभित होते हुए
नगरसे बाहर निकल्य और समरभूमिमें एकत्रत्र रामको साथी
भेरेसे देरकर मार डालो । केशे बर्षाकालमे बारह काल
नहीं करते हैं, उन्ही प्रकार तुमसंग भी वर्षाकी वृष्टि करते हुए
रामको मार डालनेका प्रयत्न करो ॥ १ ॥ ॥

सर्वे भक्तता सर्वेण हस्त्यप्येन समभूता ।
निर्गन्तु रघुसङ्घेय पावतेशोपदोभित्ता ॥ १ ॥

एकं राम परिक्षिप्य समरे हन्तुमर्हथ ।
वर्षन्तः शरवर्षाणि प्रावृत्तकाल इयाम्बुजा ॥ ४ ॥

‘‘वीर ! तुम सब योग समस्त साथी शंभे, रघुसङ्घ
तथा पैरुव सेनिकसे निरकर उन एकसे सुप्रोभित होते हुए
नगरसे बाहर निकल्य और समरभूमिमें एकत्रत्र रामको साथी
भेरेसे देरकर मार डालो । केशे बर्षाकालमे बारह काल
नहीं करते हैं, उन्ही प्रकार तुमसंग भी वर्षाकी वृष्टि करते हुए
रामको मार डालनेका प्रयत्न करो ॥ १ ॥ ॥

‘‘महाराज वृथाप्रीय ! तुम तो शत्रुत्तु कुनेरक मई हो
किन्तु कथके कारण परमेश्वरे विष्णुकी ये विदेहकुमारीके बचनी
इच्छा कैसे कर रहे हो ॥ ६३ ॥

यद्विधाप्रतस्तनातः स्वकर्मनिरतस्तथा ।
क्रिया करमाद् वध वीर मन्पले राक्षसेश्वर ॥ ६४ ॥

‘‘वीर राक्षसराज ! तुम विविधकर्म प्रहाचर्यका पापन करते
हुए वेदविधाका अभ्यसन पूरा करके गुरुकुलमे स्नातक
इत्याद्यों ब्रह्मब्रह्मपाण ब्राह्मणीकीये आदिब्रह्मये पुत्रकापके हितवतितमा समो ॥ ६४ ॥

हकर निकले थे और तपसे उद्य अपने कर्तव्यके उत्तम
समे रहे तो भी भ्रम अपने हाथसे एककीकर बच करन न
कसे ठीक समझते हो ॥ ६४ ॥

मथिलीं रूपसम्पदां प्रत्यवेक्ष्य पार्थिव ।
तस्मिन्नेय सहास्राभिराहधे श्लोभनुत्सुज ॥ ६५ ॥

‘‘तृतीयाध । इस मिथिलाकुमारीके विभ्य रूपकी ओर
देखो (देखकर इतक ऊपर हस्य कर) और मुझने स
संगेक जय चक्रकर रामपर ही भजना श्रेय उखरो ॥ ६५ ॥

अभ्युत्थान स्वमतौय कृष्णपक्षवतुर्वशी ।
कृत्या नियाह्यमाबास्या विजयाय बलवृता ॥ ६६ ॥

‘‘आज कृष्णपक्षकी चतुर्वशी है । अतः भव ही उरुवी
तेयारी करके फल अमावास्याके दिन सेनाके जय किकने
श्रेय प्रदान कर ॥ ६६ ॥

शूरो भीमान् रथी खड्गी रघुप्रवरमास्थिताः ।
हस्ता दाशरथि राम भवान् प्राप्स्यसि मैथिलीम् ॥ ६७ ॥

‘‘तुम धूर्वीर बुद्धिमान् और रथी वीर हो । एक श्रेय
रथपर अरुद्ध हो खड्ग हाथमें लेकर युद्ध करो । रघुसङ्घ
रामका बच करके तुम मिथिलाकुमारी कीतको प्राप्त कर
संगे ॥ ६७ ॥

स तत्तु वुरात्मा सुहृदा मिथेदितं
वधा सुषमर्ये प्रतिवृद्धा रावणम् ।

पुत्र सगामाय तत्रा वीर्यवान्
पुत्र सभां च प्रकपी सुहृद्वृता ॥ ६८ ॥

‘‘मित्रक करे हुए उस उत्तम धर्मानुकर बचनको लीकर
करके बचान् हुएत्मा रक्ष्य महर्षिमें ज्येष्ठ गया और कति
किन्तु अपने सुहृदको साथ उखने राक्षसनामे प्रवेश किया ॥ ६८ ॥

‘‘महाराज वृथाप्रीय ! तुम तो शत्रुत्तु कुनेरक मई हो
किन्तु कथके कारण परमेश्वरे विष्णुकी ये विदेहकुमारीके बचनी
इच्छा कैसे कर रहे हो ॥ ६३ ॥

यद्विधाप्रतस्तनातः स्वकर्मनिरतस्तथा ।
क्रिया करमाद् वध वीर मन्पले राक्षसेश्वर ॥ ६४ ॥

‘‘वीर राक्षसराज ! तुम विविधकर्म प्रहाचर्यका पापन करते
हुए वेदविधाका अभ्यसन पूरा करके गुरुकुलमे स्नातक
इत्याद्यों ब्रह्मब्रह्मपाण ब्राह्मणीकीये आदिब्रह्मये पुत्रकापके हितवतितमा समो ॥ ६४ ॥

इस प्रकार भीमव्यासमीकीरचित अष्टाशतक अष्टिकान्तक मुद्रकाकमे कलकौत्सना पूरा हुआ ॥ ६४ ॥

त्रिनवतितम सर्ग

भीरामद्वारा राक्षससेनाका संहार

स प्रविश्य सभां राज्ञा दीनां परमबुद्धितः ।
निपसात्प्रासन मुख्ये सिंहा हृदय श्वसन् ॥ १ ॥

‘‘तदामे पहुँचकर राक्षसराज राजन अकन्त हुआ एक
दीन हो श्रेष्ठ विद्याकरन बैठा और कुपित सिंहाकी भोंति जमी
हॉल छेने कर ॥ १ ॥

अप्रवीण स तान् सर्वान् बलमुत्थाम् महाबलः ।
रावणः प्राङ्मुखीकथ्य पुष्पस्यसनकर्षितः ॥ २ ॥

‘‘यह महावीर राजन पुत्रशोकसे पीड़ित हो रहा था । अतः
अपनी सेनाके प्रधान-प्रधान यन्त्रागणोंसे हाथ खींचकर
श्रेय—॥ २ ॥

‘‘महाराज वृथाप्रीय ! तुम तो शत्रुत्तु कुनेरक मई हो
किन्तु कथके कारण परमेश्वरे विष्णुकी ये विदेहकुमारीके बचनी
इच्छा कैसे कर रहे हो ॥ ६३ ॥

अथशब्द शरीरस्त्रीरूपैर्भिन्नगात्र महाहृद्ये ।
भवद्भिः श्वां निहन्तास्त्रि राम लोकस्य पश्यताः ॥ ५ ॥
अथवा नै ही कश्च महात्मारमेतुं तुम्हारे धाप रहकर अपने
तीले धागोसे रामक शरीरको छिन्न-भिन्न करके उन श्वेगोंके
देखते-देखते उन्हें मार बाँटते ॥ ५ ॥
इत्येतत् वाक्यमावाप राक्षसेन्द्रस्य राक्षसाः ।
निर्वयुस्ते रथैः शीघ्रैर्नान्यनीकैश्च ससुताः ॥ ६ ॥
एकएककी इध आशाको विगर्धान् करके ये निशाचर
शीलाग्नी रथों तथा नाना प्रकारकी सेनामेंति युक्त हो उड़ते
निकले ॥ ६ ॥
परिपन्न पद्भिः श्वांश्चैव शरकश्च परम्भवान् ।
शरीरालम्बरान् सर्वे चिक्षिपुर्वानरान् प्रति ॥ ७ ॥
बान्धवान् तुम्हाप्येकान् राक्षसान् प्रति चिक्षिपुः ।
वे उन एकस बान्धवोंपर परिप पड़िद्य, शरक लम्बर
तथा करते भादि शरीरलाएक अन्न-शर्करा प्रहार करते छे ।
इसी प्रकार बानर भी एकछोरपर पड़ों और कल्पसेकी बर्षा
करते छे ॥ ७ ॥
स सप्तमो महाभीमा स्वयंस्योदयन प्रति ॥ ८ ॥
रक्षसां बानराणां च तुमुजः समपद्यत ।
स्योदयके समय एकछे और बानरोंके उस तुमुज युद्धने
महानपर कर सम पारस किया ॥ ८ ॥
त गवाभिश्च शिवाभिः प्रासैः कर्हैः परम्भयैः ॥ ९ ॥
अभ्योम्य समरे जम्बुस्तादा बानरराक्षसाः ।
बानर और राक्षस उस युद्धमिमिने विविन्न गवाधों,
माँहों, लम्बायों और फलखंड एक बूसेको मारने छे ॥ ९ ॥
एव प्रकृते सप्तमे द्वाहृत सुमहद्भ्रजः ॥ १० ॥
रक्षसां बानराणां च शान्तं शोषितविभ्रयैः ।
इव प्रकार मुद छिन्न बानेपर छे बहुत बड़ी धूम्राधि
उड़ रही थी वह एकछे और बानरोंके रक्षका प्रवाह जारी
होनेसे शान्त हो गयी । यह एक अद्भुत कल थी ॥ १० ॥
मातंगारयहृद्यश्च शारमस्या भ्रमद्भुमाः ॥ ११ ॥
शरीरसंघटवहात् प्रसङ्गः शापित्यपगात् ।
रथमिमिने बहुतसे किन्ती ही नरिबों वह पर्वों के फल
क्याही भोति शरीरसुदामको ही बहने छिन्दे जाती थी । गिरे
हुए हाथी और रथ उन नरियोंके निजारे बान पड़ते थे ।
एव मत्स्यक समान प्रतीत हुते थे और ऊँचे ऊँचे पर्व ही
उनके लक्ष्यों हुए थे ॥ ११ ॥
ततस्ते यामराः सर्वे द्योगिनौषपरिप्लुष्टाः ॥ १२ ॥
भवद्भ्यमरघानम्भान् नृपान्प्रहरणानि च ।
द्व्यप्लुष्ट्याप्लुष्ट्य समरं बानरान्द्रा बभञ्जिरे ॥ १३ ॥
अस्य बानर नृपते बधपथ हो रहे थे । वे क्रूर-क्रूरकर

समरप्लुष्टये राक्षसोंके पर्वः कनकः रथः पड़े और नाना
प्रकारके अन्न-शर्करा निग्राह करने छे ॥ १२ ॥
केशान् कण्ठलाटं च नासिकाश्च द्रुघगमाः ।
रक्षसां दृशनेस्तीक्ष्णैर्नक्षेत्राणि व्यकर्तयन् ॥ १४ ॥
बानर अपने तीक्ष्ण दंतों और नखासे निशाचरोंके केश,
कान, कण्ठ और नाक कुतर बाँधते थे ॥ १४ ॥
एकैकं पक्षसं सभ्ये शतं बानरपुत्राणाः ।
अभ्युधासन्त फलिनः श्वसं शकुनयो पया ॥ १५ ॥
बते फलसभ्य वृक्षों और सेकड़ों पक्षी वीड़े करते हैं,
उसी प्रकार एक-एक राक्षसर श्वेती बानर दूट पड़े ॥ १५ ॥
तदा गवाभिर्गुर्वीभिः प्रासैः कर्हैः परम्भयैः ।
निर्वयुर्वानरान् घोरान् राक्षसाः पथतोपमाः ॥ १६ ॥
उस समय पर्वदारकर राक्षस भी भारी गवाधों, माँहों,
लम्बायों और फलखंड मयंकर बानरोंको मारने छे ॥ १६ ॥
राक्षसैर्यभ्यमानासां बानराणां महाचमूः ।
शारभ्यं शरकं पात्यं रामं दृशरघात्मजम् ॥ १७ ॥
एकछेहाथ भारी बड़ी हुई बानरोंकी वह निशाच सेना
शरणागतकलकल दृशरघनपवन मगधान् भीषणकी शरणमें
गयी ॥ १७ ॥
ततो रत्नो महातेजा धनुरावाय वीर्यवान् ।
प्रविश्य राक्षसं सैम्यं शारभ्यं धर्मं च ॥ १८ ॥
तत्र बभूविक्रमशास्त्री महातेजस्वी भीषणने धनुज के
एकछेकी सेनामें प्रवेश करके बाणोंकी फटा बारम्भ
कर ही ॥ १८ ॥
प्रविष्ट तु तदा रामं मेघः स्वयमिबाम्बर ।
गधिजमुर्महाघोरा निर्वहन्त शराम्निव ॥ १९ ॥
जैसे आकाशमें बारूक धपते हुए सूर्यपर अक्रमय नहीं
कर सकते उसी प्रकार सेनामें प्रवेश करके अपने बाणकी
अग्निसे राक्षसेनाको दग्ध करते हुए भीषणने के महाभूत
निशाचर भाषा न कर लें ॥ १९ ॥
हृतात्म्येन सुभोपायि रत्नोऽत्र रजनीधरा ।
रत्ने रामस्य वृद्धाः कमाभ्यसुकरपाणि ते ॥ २० ॥
निशाचर रणमिमिने भीषणकरनेके हाथ किये गये
अस्वत धोर एवं कुम्भर कमोत्र ही देख पड़े थे उनके
लक्ष्यको नहीं ॥ २० ॥
वाल्क्यन्त महासैम्य विधमन्त महात्पान् ।
वृद्धास्तं न वै राम यात यतयत पथा ॥ २१ ॥
जैसे फलमें कच्ची हुई दवा बड़-बड़े वृक्षोंके दिवन्ती और
वाँड़ बाँधती है तो भी वह देखनेमें नहीं आती उसी प्रकार
भगवान् भीषण निशाचरोंकी निशाच सेनाको विचक्षित करते
और कितने ही महादुर्घोषोंकी धमकियों उठा देते थे छ मी वे
राक्षस उन्हें देख नहीं पते थे ॥ २१ ॥

स्निग्धं भिन्नं शरैर्वैद्यं प्रथमं शास्त्रपठितम् ।

वसु रामायणं वृद्धशुभं राम शीघ्रप्रवृत्तम् ॥ २२ ॥

ये अग्नी सेनाञ्च भीरुमकं हाय गणाने सिद्ध-मिन्द्र दग्धः
मम्य और पीडित हस्ती कुर्षं देवत ये किन्तु शीघ्रप्रवृत्तं मुद्र
करनेवाके भीरुम उनकी हथियं नहीं आते ये ॥ २२ ॥

प्रहरन्त शरीरेषु न तं पश्यन्ति राक्षसम् ।

इन्द्रियायैषु तिष्ठन्त भूतामलामिय प्रजाः ॥ २३ ॥

अग्ने घटीघण्ट प्रहार करने हुए भीरुपुनापथीञ्च ये
उत्थी उठ नहीं देस पाते ये जैसे शम्भादि विपद्योके माछ-
रूपमें स्थित भीरुगणाञ्च प्रभयं नहीं दन्म पाती हैं ॥ २३ ॥

एष हन्ति राज्ञानीकमेव हन्ति महारथान् ।

एष हन्ति शरैरुत्तरीष्वैः पशूलीन् वाजिभिः सह ॥ २४ ॥

इति तं राक्षसाः सर्वं रामस्य सहयान् रणे ।

अप्यस्य कुपिता जघ्नुः साहय्यात् राक्षसस्य तु ॥ २५ ॥

ये राम हैं, जो हाथियोंकी सेनाञ्च गार रहे हैं ये रहे
राम, ये बड़े-बड़े रथिवाञ्च छहार कर रहे हैं नहीं-नहीं ये हैं
राम आ अपने दैने मारोति घोड़ोंसहित पैदल सैनिकोंञ्च दब
कर रहे हैं इस प्रकार न सन राक्षस भीरुपुनापथीञ्च किंचित्
उपनतके क्षरण समीञ्च राम उमस्य छेते और रामके ही प्रमत्त
क्षेत्रमें मरकर आपसमें एक दूसरेको मारने झगते थे ॥ २४-२५ ॥

न तं वृद्धशिरं राम वृद्धमपि वाहिनीम् ।

मोहिताः परमात्मन गान्धर्वेण महात्मना ॥ २६ ॥

भीरुमचक्रभी रामसेनाञ्च दग्ध कर रहे थे तो भी वे
राक्षस उन्हें देव नही सके । महात्मा भीरुमने राक्षसोंञ्च
गन्धर्वनामक विष्य अकलते मोहित कर दिया था ॥ २६ ॥

त तु रामसहस्राणि ग्णे पश्यन्ति राक्षसाः ।

पुनः पश्यन्ति कण्डुस्यमकमव महारथव ॥ २७ ॥

अतः न राक्षस रणभूमिमें कभी ठी हारों राम देलते थे
और कभी उन्हें उस महात्मारमें एक ही रामका वहीन हता
था ॥ २७ ॥

अमर्त्या काञ्चनी कौटि कासुकस्य महारथमाः ।

भलात्तचक्रप्रतिमां वृद्धशुभं न राक्षसम् ॥ २८ ॥

न महात्मा भीरुमके पनुपथी सुनही कोटि (नोक भा
अंगमाय) का अमर्तचक्रकी मूर्ति पूरनी देकत थे किन्तु
सकल भीरुपुनापथीस नही देस पाते थे ॥ २८ ॥

शरीरमभि सस्वार्थिः शरारं ममिकामुक्त्तम् ।

न्यायोपठकनिर्घोषं तज्जोषुविद्युत्प्रभम् ॥ २९ ॥

विध्यास्त्रगुणपर्यन्त निष्पन्नं मुषि राक्षसान् ।

वृद्धा रामघातं तत् काष्ठचक्रमिन्द्र प्रजाः ॥ ३० ॥

मुद्रकअग्ने राक्षसोंञ्च छहार करत हुए भीरुमचक्रकी
सकल चक्रक अमान अन पड़त थे । घटीरका मन्मन्ना

अर्थात् नामि ही उस चक्रकी नामि थी; वज ही उसके अत्र
हानेवासी ज्वालय था; बाण ही उसके अरे थे; पनु ही
नेमिञ्च स्थान दग्ध किन्तु हुए था; पनुसकी ठंकर और क-
रुनी—न ही दोनों उस चक्रकी परंपरत थी; तेज-मुद्रि और
अग्नि भादि गुण ही उस चक्रकी प्रभा थे तथा विष्णुकी
गुणप्रभाञ्च ही उसके प्रान्तभाग अर्थात् धार थे । अते प्र
प्रसन्नअग्ने अत्रचक्रञ्च दर्शन करती है उठी प्रहार एक
उस उमन भीरुमकनी चक्रक देस रहे थे ॥ २९ ॥

अभीर्कं वृशसाहस्य रथानां वातरहस्यम् ।

अप्यवशा सहस्राणि कुक्षाराणां तरलिनम् ॥ ३१ ॥

बनुर्दश सहस्राणि सातोहाणां च बाजिनम् ।

पूर्वं शतसहस्रे द्वे राक्षसानां पृथगिणम् ॥ ३२ ॥

विषसस्याद्यभागं शरैरग्निशिखोपमैः ।

हताम्येकेन रामेण रक्षसा क्यमकृपिणाम् ॥ ३३ ॥

भीरुमने अकेल दिनेके आठवें भगा (वेद परे) में
ही भागकी आठक अमान तेजसी कर्षोहाय इन्धनतर स
भारण करनेवाञ्च उमलके वायुके उमन केगाथी दस हजार
रथोंकी अवतार हजार केगान्, हाथियोंकी और हजारउम-
कहित घोड़ोंकी तथा पूरे दो अमल पैदल निचान्तोंकी सेना
छहार कर बाण ॥ ३१-३३ ॥

ते हताम्बा हतरथाः शान्त्य विमथिताश्चजाः ।

अभिपतुः पूर्वां लङ्का हतयेना निशाचराः ॥ ३४ ॥

अन घोड़े और रथ नष्ट ही गने तथा अमल ठोड़ अत्र
बाळ गने तम मरनेसे बर्ब हुए निशाचर शान्त ही अण्डुपुर्ने
भाग गये ॥ ३४ ॥

हतैर्गणपदात्पद्मेसाह् बभूव रथाञ्चिरम् ।

आकीडभूमिः कुक्षस्य कप्रस्थस्य महात्मना ॥ ३५ ॥

अरे गये हाथियों घोड़ों और पैदल सैनिकोंकी अकलते भी
कुर्षं वह रणभूमि कुचित हुए महात्मा अरवेवकी भीहाभूमि की
प्रतीत क्षेत्री थी ॥ ३५ ॥

ततो वषाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षया ।

साधु साञ्चिन्ति रामस्य तत् कर्म तमपूजयन् ॥ ३६ ॥

तदनन्तर देवता गन्धर्व सिद्ध और महर्षिनीने लपकर
दंकर मरान् भीरुमके इस कर्मकी प्रशंख थी ॥ ३६ ॥

अग्रथीञ्च तदा रामः सुधीञ्च प्रत्यन्तरम् ।

विभीषणश्च धर्मोत्सा हनुमन्तश्च बानरम् ॥ ३७ ॥

जाम्बवन्त हरिभोष्टं मैत्र्यं शिविद्विमेव च ।

पात्तकचक्रसं विषयं मम वा अयम्बकस्य वा ॥ ३८ ॥

उस समय धर्मोत्सा भीरुमने अरने पाठ लहे हुए सुकीं,
निभीषण अंकर हनुमन्त, जम्बवान, कृपिभोष्ट मैत्र उच
शिविद्विसे कथा—मह विष्य अमल-वज गुणमें है वा मन्मन्त
रक्षसों ॥ ३६-३८ ॥

निहत्य ता राक्षसराजप्रदाहिर्षीं
रामस्तत्रा शक्रसमो महारमा ।
भक्षेयु शत्रुंयु जितकृमन्त्र
सस्तूयत द्वगमौ प्रहृष्टैः ॥ ३० ॥

द्वार्यायै श्रीमद्रामायणे बाह्यकीर्तये भाविक्रम्ये युद्धकाण्डे त्रिनवतितमाः सर्गाः ॥ १३ ॥

इम प्रथम श्रीवामनकिर्मित्त अर्चरामायण अदिक्रम्यक युद्धकाण्डे त्रिरानवर्षो सग पूजा हुम् ॥ ३ ॥

चतुर्नवतितम सर्ग

राक्षसियोंका बिलाप

तानि नागसहस्राणि साराहाणि च वाजिनान् ।
रथानां स्वन्वित्यनां सध्वजाना सहस्राणाम् ॥ १ ॥
राक्षसानां सहस्राणि गवापरिषयोभिन्वाम् ।
कञ्चनध्वजविभ्राणा शूराणां कामरूपिणाम् ॥ २ ॥
निहतानि दारैर्वीरैस्तासकाञ्चनभूषणैः ।
राज्येन प्रयुक्तानि रामेणाक्रिष्टकर्मणा ॥ ३ ॥
इषु भुक्त्वा च सम्भ्रास्ता हतदोषा निशाचराः ।
राक्षस्यश्च समागम्य वीनाभिन्वयपरिप्लुताः ॥ ४ ॥

अनयास ही महान् पराक्रम करनेवाले भगवान् भीरुमके द्वारा उनके तथाय हुए मुषणसे विभूषित चमकीले शस्त्रोंसे रथमके मेत्र हुए इत्ये हाथी उवापैधित खसों पड़े, अतिके समान देरीप्यमन एवं अर्थसे मुष्णित खसों रथ तथा इन्काशुखर रूप धारण करनेवाले मुषणमय धरुसे निचिन धाम्ना पानेवाल और गवा-परिषोंसे युद्ध करने-वाले इन्का शूरीर राक्षस मारे गये—यह देख-मुनकर मरनेसे बच हुए निशाचर मरग उठे और बहूतमें आ एकलियेसे मिष्कर बहुत ही दुष्ठी एवं चिन्तामन हो गये ॥ १—४ ॥

विभवा हतपुत्राश्च क्षेप्रास्यो हतबाह्वयाः ।
राक्षस्यो सह सगम्य बुःकाताः पयवेवयन् ॥ ५ ॥

अिके पति पुत्र और भई-बन्धु मारे गये य ५ ५
भगव राक्षसों घुंङ-की-घुंङ एकत्र होकर दु लसे घेवित हो
निष्पन्न करने सर्ग— ॥ ॥

कथ दूषणसा वृक्षा करतव्य निर्णयोद्वरी ।
भाससात् बन राम कर्तृसमकृपिणम् ॥ ६ ॥

हाय ! किक्र पट बैठा हुआ और भाकर विक्रम
है वह बुनिया दूषणका बनमें कामदेवक समान रूपवाल
भीरुमके राम कामदाय लकर कैते गयी—किम उष् खनेक
काल कर लगी ? ॥ ६ ॥

सुहृन्मार् महासख्यं सधभूतहित रतम् ।
त इषु साकवप्या सा वीनकृपा प्रकृमिता ॥ ७ ॥

य भगवान् राम सुहृन्मार् और महान् बख्शाही हैं तथा
गृह्य शकियेके हितमें संकल्प करते हैं उन्हें देखकर वह

उस भवसरपर इन्द्रतुल्य तेजस्वी महात्म्य भीरुम अ
मन्त्र-शस्त्रोंका संचालन करते समय कभी धकते नहीं य, उस
राक्षसकभी सेनाका संहार करके हर्षमरे इक्ताअंक लुगवाय
इय गूक्ति एवं प्रयक्ति होने लगे ॥ १ ॥

कस्या राक्षसी उनक प्रति क्रमभगवसे युक्त हो गयी—यह
कैस हुआर है ? यह युधा तं एकक द्वारा मर जानेक
योग्य है ॥ ७ ॥

कथं सर्वगुणैर्हीना गुणकृत महौजसम् ।
सुसुखं दुर्मुखी रामे कामयामास राक्षसी ॥ ८ ॥
क्यों सर्वगुणसम्पन्न महान् बख्शाही तथा सुन्दर मुख
वाच भीरुम और क्यों वह लभी गुणोंसे हीन दुर्मुखी
राक्षसी ! उसने कैसे उनकी कामना की ! ॥ ८ ॥

जनस्यास्यात्यभाग्यत्वाद् वल्लिनी दलतमूर्धजा ।
अकार्यमपहास्य च स्वत्यक्रपिगार्हितम् ॥ ९ ॥
राक्षसानां विनाशाय दूषणस्य खरस्य च ।
अकारप्रतिकृपा सा राक्षस्य प्रधयणम् ॥ १० ॥

अधिक लरे अज्ञोंमें छर्चिया पड़ गयी हैं सिरके नास
छकर हो गये हैं तथा अब किसी भी हस्तिसे भीरुमके नाम्य
नहीं है उस युधने हम बहूतशकियोंके दुःभाग्यमें ही खर
दूषण तथा अन्य राक्षसोंके किन्नायके छिंये भीरुमका पर्यय
(उन्हें मरने रखते दूषण करनेका प्रयास) किया था ॥ ९ ॥
लक्षिमिचमिद् वैरं राधणम कृतं महत् ।
धधाय सीता साऽऽनीता द्वाभीषण रक्षसा ॥ ११ ॥

उत्कं अरण ही दशमुख राधम राधनेने यह महान् वैर
बॉब किया और अपने तथा राधमकुलके बचक लिय वह सीता
कीधे हर कथा ॥ ११ ॥

न च सीतां दशभीषा प्रपानति जनकरमजाम् ।
पद बलवता वैरमक्षम राधयण च ॥ १२ ॥

दशमुख राधम जनकनिनी सीताको कभी नहीं पा
लकेगा परतु उठने समान रघुनायकीने अमित वैर बॉब
किया है ॥ १२ ॥

दृष्ट्वाही प्रार्थयानं त विरोध प्रक्य राक्षसम् ।
हतमंजन रामेण फयात लक्षिद्वानम् ॥ १३ ॥

राधम विरोध बिरेहकुमरी सीताको प्राप्त करत्य चाहता
है, यह देख भीरुमने एक ही क्षणसे उत्तम क्रम तमान कर
दिया । वह एक ही दृष्ट्य उनकी अन्त्य राधिच अमहनेके
छिये कधी था ॥ १३ ॥

यनुद्वा सहस्राणि रक्षसां भीमकमपाम् ।
 निहतानि जनम्भानि शरीरप्रिदिशिषोमेभिः ॥ १४ ॥
 खरश्च निहतः सप्य कृष्णश्रिदिशिपस्तथा ।
 गदगदित्यमकम्पया पयात तप्रिद्दानम् ॥ १५ ॥

जनम्भानमे मयनक कर्म करनेवास जोइह इअर राख्ये-
 क्ष भीयमने भनिदिश्याके समान तक्ष्मी काणोहाए कसके
 लभ्ये हाउ शिषा या भीर सुर्वके सहा प्रभणमान खपश्रै-
 म समगद्रुपमे गरु दूयन तथा श्रिदिश्या भी खर कर
 गला ग य उनरी अत्रयनास समस्त कनेक खिय पर्यात
 टान्त भा ॥ १४ १५ ॥

हता याजनपातुश्च कयन्था उधिराणानः ।
 यथाप्राग् नन्दुन्वाऽथ पयात तप्रिद्दानम् ॥ १६ ॥

यथाप्राग् राउठ कस्यरी सोह एक-एक कसने सरी
 त भीर ग कम्पया वइ कर करन शिन्वाइ करण या
 प भी ग भीयमने हा म माय गया । यह इअस्त ही
 भीयमने कसके दूयन पयकमरा जल कयनेक लिय पयात
 ग ॥ १६ ॥

जघान यन्नि राम सहस्रनयनामजम् ।
 यान्नि मरुत्कम्पया पयात तप्रिद्दानम् ॥ १७ ॥

मरुत्कम्पया समस्त मरुतारा बरगान् इत्कुमार यक्षीभे
 भीयमने जने एक ही यणन मार गिणया । उनरी शक्ति-
 का अनुमान लगनक शिषा यह एकही उदारयन कशीहे ॥ १७ ॥

श्रुत्वायुक्त्वा पतन्धरं क्षिता भस्मनाराधः ।
 सुर्धाम प्राक्षिप राज्य पयात तप्रिद्दानम् ॥ १८ ॥

सुर्धाम बला ही दू ही भीर निराध शार श्रुत्वायुक्त्वा
 पतन्धर निराध का म पानु भीयमने उ-इ श्रिदिश्याके
 गदं हागनर बिडा शिषा । उनक प्रभारम कसतनेक
 शिषा ग एक ही हा ग गति हे ॥ १८ ॥

धनतपसिनि पाक्य सर्वो रक्षसां दितम् ।
 युक्तं शिर्षापचनात् माताम् तस्य न रागत ॥ १९ ॥

शिर्षापचयः कृष्याद् यदि स धनदानुजः ।
 दनाननभूत्वा दूयता नयन्त्या भिरिष्यति ॥ २० ॥

धनतपसिनि धन भये भीर कर्षेण दूय का वही भी
 शिर्षापचयः कृष्याद् यदि स धनदानुजः धन
 दनाननभूत्वा दूयता नयन्त्या भिरिष्यति ॥ २० ॥

धनतपसिनि धन भये भीर कर्षेण दूय का वही भी
 शिर्षापचयः कृष्याद् यदि स धनदानुजः धन
 दनाननभूत्वा दूयता नयन्त्या भिरिष्यति ॥ २० ॥

धनतपसिनि धन भये भीर कर्षेण दूय का वही भी
 शिर्षापचयः कृष्याद् यदि स धनदानुजः धन
 दनाननभूत्वा दूयता नयन्त्या भिरिष्यति ॥ २० ॥

पुत्र इन्द्रकिं भी उन्दीके हापसे मार गया तक्षिपि यन्म
 भगवान् भीयमने प्रभवको नहीं समस्त ररा हे ॥ २१ ॥
 मम पुत्रो मम भ्राता मम भ्राता रणे हतः ।
 इत्येव भूयते शम्भो राक्षसीना कुले कुले ॥ २२ ॥

हाय मेव वेदा मार गया प भरे भरीको प्रभयेते
 हाय पोना पडा । भणभूमिमे मरे पविदेव मार शास गये प
 कडाके पर-करने राक्षसियोके ये शम्भु सुवापी देत हे ॥ २२ ॥

रथाप्यन्यथाश्च हतस्तत्र तत्र सहस्रशः ।
 रणे रामस्य शूरेण हताश्चापि पदातयः ॥ २३ ॥

भस्मपट्टणमे घृषीर भीयमने धरौ-धरौ सरस्ते रणे
 शंभो भीर हापियोक्ष संहार कर शास्य हे । वैदम सेनिषीका
 भी भीतेके फाउ उठार दिया हे ॥ २३ ॥

रुद्रो वा यदि वा विष्णुर्महेन्द्रो वा शतक्रतुः ।
 हन्ति नो रामरूपेण यदि वा स्वयमन्तका ॥ २४ ॥

भयन पडा हे, भीयमने रूप पारण करके हमें सखर
 भगवान् इददेव भगवान् विष्णु, छलकड इअर भयन स्वने
 पमयन ही मार रहे हे ॥ २४ ॥

हतप्रथीरा रामेण निरागा जीवित ययम् ।
 भयदयस्यो भयस्यान्तममाथा विलपामह ॥ २५ ॥

हमारे प्रयुज जोर भीयमने हापसे मारे गये । भय
 हमसमा अपने जीनसे निराध हो कशी हे । हमें इत भयन
 भन्त नहीं गिणाके देता, भाएप हम अन्धपरी भोंडि विभय
 कर रही हे ॥ २५ ॥

रामहस्ताद् क्षामीयाः शूरो वृषामहावराः ।
 इव भय महापात समुत्पन्न न बुद्ध्यत ॥ २६ ॥

यद्यपुत्र एव घृषीर हे । इत प्रभासीन मदान् पर
 दिया हे । इथे परभइ करण यह भीयमने हापसे अ
 दुए इन मरुतार भयने नहीं समस्त पडा हे ॥ २६ ॥

त न द्या न गन्धया न पित्राया न राक्षसाः ।
 उपरुष्ट परित्रानु गता रामस्य सयुग ॥ २७ ॥

पुत्रभनमे भीयमने भि मारेके धन खप, उन न
 प हाय न गन्धरी, न पित्राव भीर न गन्ध ही वय
 मडा हे ॥ २७ ॥

उत्पात्राश्चापि दृश्यन्त रायणस्य रथस्य ।
 कायन्ति हि रामस्य रायणस्य निपहसम् ॥ २८ ॥

रायणके प्रभव पुत्रमे न उ-गि गये दाहे हे
 लक उग लक क गिनारी ही भूयस दा हे ॥ २८ ॥

विद्यामदन प्रीतन दूयदानरागरीः ।
 गतनष्ठाभयं दूय मनुष्यानाम काचितम् ॥ २९ ॥

प्रकथन का हाउ लक क इअरे लक क
 लकके मरा म-नानन इ दिहा का म-दूय ही लक
 मनन लक लक के हाउ लक क ही हा के थे ॥ २९ ॥

एविव मानुष मय्ये प्राप्तं निखशय भयम् ।
 वीथिताम्लकर धोर रक्षसां रायमस्य च ॥ ३० ॥

भक्त मुझे एसा भक्त पक्ता है कि यह निःसंशय
 मनुष्योंकी भांसे ही धोर भक्त प्राप्त हुआ है, जो उसकी
 तथा रणपक्षे कीचनका भक्त कर देनेवाला है ॥ ३० ॥

पीडयमानस्तु यच्छिन्न धरवामेन रक्षसा ।
 दीपैस्तपोभिर्यिबुधाः पितामहमपूजयन् ॥ ३१ ॥

यजमान राक्षस रणपक्षे अपनी उशीत कस्या तथा
 धरवानके प्रभावसे जब देवताओंको पीडा ही तब उन्होंने
 पितामह ब्रह्माजीके भावपना की ॥ ३१ ॥

यजमानां सिताधाया महात्मा वै पितामहः ।
 उपाच देवतास्तु इव सदा महत्त्वचा ॥ ३२ ॥

पूजने महात्मा ब्रह्माजी संतुष्ट हुए और उन्होंने
 देवताओंके हितके लिये उन समते यह महत्त्वचा बत
 करी ॥ ३२ ॥

बधमनुस्ति ङ्काकस्त्रीन् सर्वे दानवराक्षसाः ।
 भयेन प्रभृता नित्य विचरिष्यन्ति शाश्वतम् ॥ ३३ ॥

आकसे कमला दानव तथा राक्षस मयसे मुक्त होकर ही
 नित्य-निरन्तर तीनों ओरोंमें विचरण करेंगे ॥ ३३ ॥

क्षैतेस्तु समागम्य सर्वैश्चेन्द्रपुरोगमैः ।
 धूपध्वजस्त्रिपुरहा महाद्वयः प्रतोपितः ॥ ३४ ॥

पराभात इन्द्र आदि सम्पूर्ण देवताओंने मिलकर
 त्रिपुराघक रूपमय महादेवजीको संतुष्ट किया ॥ ३४ ॥

प्रसधस्तु महादेवो देवानतव् यकोऽधवीत् ।
 उत्पत्स्यति हितार्थे यो नारी रक्ष क्षयावहा ॥ ३५ ॥

संतुष्ट होनेपर महादेवजीने देवताओंसे कहा—जुम
 धर्मके हितके लिये एक किरम्य नारीका अधिकारा होना
 कमल राक्षसोंके विनाशमें कारण होगी ॥ ३५ ॥

एषा इवैः प्रयुक्ता तु क्षुब्ध यथा दानवान् पुत्रा ।
 भक्षयिष्यति न सयान् राक्षसस्त्री सरायणान् ॥ ३६ ॥

इत्यों भीमप्रतापयव कास्त्रीकीये आदिग्रन्थे सुदृशय्ये
 इत प्रकर भीमप्रतापयव अतिग्रन्थे सुदृशय्ये ज्ञानवर्ता का पूरा हुआ ॥ ३६ ॥

जैसे पूरकग्रन्थमें देवताओंका प्रयुक्त हुई बुधाने दानवों
 का भक्षण किया था उसी प्रकार यह निष्ठाचरत्वकीनी कीत
 राक्षसकीत इस रूप लगेको ला जानी ॥ ३५ ॥

रायमसापनीतान् दुर्धनिखस्य बुमतोः ।
 भय निदानको धोरः शोकेन समप्रिप्लुतः ॥ ३७ ॥

पराङ्क और दुर्धनि रायमके अभ्यासे यह शाकसंयुक्त
 धर विनाश इस रूपसे प्राप्त हुआ है ॥ ३७ ॥

त न पद्मामहे लोके यो ना शरणवो भवत् ।
 राघवणोपसृष्टानां कालेनेव युगास्तये ॥ ३८ ॥

आत्ममें हम किसी ऐसे पुरुषको नहीं देखती हैं, जो
 महाप्रलयके समय काश्ची मौलि इत समय भीरुनायकीसे
 अकृतमें पकी हुई इस राक्षसोंको धारण दे सके ॥ ३८ ॥

नास्ति नः शरण्य किंचिद् भूये महति तिष्ठस्यम् ।
 दायाग्निषेष्टानां हि फरेण्णा यथा वने ॥ ३९ ॥

हम वही नारी भयभी अतस्वामिं स्थित हैं । जैसे वनमें
 दावानलसे पिकी हुई इधिनियोंकी करी प्राण बचानेके लिये
 बगह नहीं मिचती, उसी तरह हमारे लिय भी कोई धारण
 नहीं है ॥ ३९ ॥

प्रासकाल कृत तन पीतस्येन महात्मनः ।
 यत एव भय ह्य तमेव शरण गतः ॥ ४० ॥

महात्मा पुष्टस्यनदन किमीरणने कमणचित्त धर्य
 किया है । उन्हें बिनसे मन दिवायी दिया, उन्होंने ही धारणमें
 वे चले गये ॥ ४० ॥

इतीय सया रजनीचरस्त्रियः
 परस्पर सम्परिरम्य यादुभिः ।

विषेदुरतातिभयाभिपीडिता
 धिनयुदञ्चैव तथा सुदाकणम् ॥ ४१ ॥

इत प्रकर निष्ठाचरोंकी करी त्रियों एक दूखीका
 बुवाओंमें मरकर अर्धभार एवं विषमसत हा गयी और
 अमन्त मन्ते पीडित हैं अति मन्कर कन्दन करनेलगा ॥ ४१ ॥

पञ्चनवतितम सर्ग

रावणका अपने मन्त्रियोंको बुलाकर शुशुभधविषयक अपना उत्साह प्रकट करना

और सबक साथ रणभूमिमें आकर पराक्रम दिखाना

आताय राक्षसीनां तु सद्गुणा वै कुलकुल ।
 रायमः कदण शब्द शुभाव परिक्षितम् ॥ १ ॥

याने शब्दक परस्परने उदमम राक्षसोंके कदना-
 म्मके शिन् मुन्य ॥ १ ॥

स तु शीघ्रं विनिश्चय्य मुहूर्तं ध्यानमाश्लिषः ।

बभूव परमकुडा रावणो भीमदानम् ॥ २ ॥
 यह सज्ज मर तीचर ही परमके धननका हा कुल
 कन्दका रत कणभार गान अन्ता गुना हा वन नानक
 रिगदवी ने कम ॥ २ ॥

सहस्य दानवाद्यं प्रथसरत्कदायम् ।

क्याये भीरुनायकीक साय युद्ध करनेके लिये आ रहा है
इस प्रकारकी कम्बू ध्वनि कर्णोंमें पड़ रही थी ॥ १६ ॥

तेज मात्रेण महत्त्वं पृथिवी समकम्पत ।
त शब्द सहसा भुत्वा धानरा पुनुपुर्नमात् ॥ ३७ ॥

उस मरानादसे पृथ्वी कंप उठी । उस सम्पन्नक शब्दको
सुनकर उस धानर खल मससे मना पड़े ॥ ३७ ॥

रावणस्तु महापाहुः सखिवैः परिवारितः ।
भाजगाम महातजा जयाय विजय प्रति ॥ ३८ ॥

मन्त्रियैषि पिप हुमा महावेम्स्यी महापाहु रावण युद्धमें
विक्रमकी प्रासिक उद्देश्य केकर वहाँ आया ॥ ३८ ॥

रावणेनाम्प्यनुघातौ महापाद्वसमहोवरी ।
विक्रपासम्ब तुभयो रथानादवकुस्तदा ॥ ३९ ॥

रावणकी आज्ञा पाकर उस समय महापाद्वं महादेव तथा
दुर्गम वीर विक्रपाद—वीरों ही रथोंपर आत्य दुष्ट ॥ ३९ ॥

तं नु ह्यभिमन्वन्ता भिन्वन्त इव मेदिनीम् ।
नाद् घोर विमुञ्चन्तो निपयुर्जयकाङ्क्षिणः ॥ ४० ॥

वे हाँपकर कर-करसे इस तरह रहाइ रहे वे मनो
पृथिवीको विरीच कर डालेंगे । वे विन्नापी हृष्ठा मनमें लिये
घोर छिन्नाद करते हुए पृथिवी काहर निकल ॥ ४० ॥

कदा युवाय तज्जली रक्षोगायसैर्बृता ।
निर्ययायुघातधनुः काल्यन्तकयमोपमः ॥ ४१ ॥

उदन्तर अथ मृत्यु और नमराके छान भयंकर
देवकी रावण बनुर हाथमें छ राखेंकी सेनासे फिरकर युद्धके
लिये मरने बढ़ा ॥ ४१ ॥

कतः प्रकथित्यदंश रथेन स महारथा ।
घारेण निययी तन यत्र तौ रामलक्ष्मणौ ॥ ४२ ॥

उसके रथके बोहे बहुत तब लम्बेबाड़े थे । उसके हाथ
वह महारथी वीर हनुके उठी डारते बाहर निकल कर
भीरम और अस्मय मैसूर थे ॥ ४२ ॥

ततो नष्टप्रभा सूर्यो विशाभ तिमिरावृता ।
दिशाभ ननुष्योराभ सचत्वाल च मेदिनी ॥ ४३ ॥

उस समय सूर्यकी प्रभा धीकी पड़ गयी । उसका विशाभों-
में अन्धकार छा गया मर्मकर फी अग्रम बोधी कसने को
और परली डालने करी ॥ ४३ ॥

ययर्प हधिर वधभस्त्रालुभ तुरगमा ।
अज्ञामे न्यपतद् धूमो धिनोतुआशिव शिवाः ॥ ४४ ॥

बादल रक्तकी बना करने को । बोहे अज्ञानकाकर गिर
पड़ । अज्ञके समभागर गीष अज्ञक बैठ गया और गीहदियों
अमङ्कलक बोधी कसने लगी ॥ ४४ ॥

नपन आसुररद् धर्म धामो बाहुरकम्पत ।
विवपयन्तआसीत् किंचिद्भद्रयत सनः ॥ ४५ ॥

नपन आसुररद् धर्म धामो बाहुरकम्पत ।
विवपयन्तआसीत् किंचिद्भद्रयत सनः ॥ ४५ ॥

बोंपी आँसू फड़कने करी । बोंपी मुन खल कर
उठी । उसके चेहरेका रंग पीछ पड़ गया और अज्ञक पड़
कर गयी ॥ ४५ ॥

कतो निप्यततो युद्धे वृथाप्रीपस्य रक्षसः ।
रपे निधनशसीनि रूपाण्येथानि अङ्घ्रि ॥ ४६ ॥

राक्षस वृथाप्रीप्यों ही युद्धके लिये निकल, लों
ही रणभूमिमें उसकी मृत्युके सूचक अस्त्र प्रकट होने
को ॥ ४६ ॥

अन्तरिक्षात् पपातोल्का निर्घातसामित्तना ।
धिनोतुपृथिव्या वृथा धायसैरभिमिश्रिताः ॥ ४७ ॥

आकाशसे उरुकायात हुआ । उससे बरपातके अन्त
गडगडाहट पैदा हुई । अमङ्कलक फी वीर बोधमें
मिलकर अग्रम बोधी कसने को ॥ ४७ ॥

पथामधित्तयन् घोरातुत्यातान् समवस्त्रितान् ।
निर्ययी रावणो मोहात् वषार्थ कसलोद्विताः ॥ ४८ ॥

इन भयंकर उरपातोंको धामने उपस्त्रित रेलकर भी एक
उनकी कोर परना नहीं की । वह कसले प्रेरित हो जेसक
अपने ही यथके लिये निकल पड़ा ॥ ४८ ॥

तेषां तु रथघोषेण राक्षसाना महारमनाम् ।
धानराणामपि अमूर्द्ययैवाम्यवर्तत ॥ ४९ ॥

उन महाअप्य राक्षसोंके रथका गम्भीर घोष सुनकर
बानरोंकी सेना भी युद्धके लिये ही उनके धामने आकर
बट गयी ॥ ४९ ॥

तेषां तु तुमुल युद्धे वपुर् कपिरक्षसाम् ।
अन्योन्पमाङ्गपालयना हुन्मला जयमिच्छन्तम् ॥ ५० ॥

फिर तो अग्नी-अग्नी कीत धारत हुए रोयपूर्ण एक-
दुजेको अज्ञकलेनाके बानरों और एकधमें प्रुष्ट पुर
किङ गया ॥ ५० ॥

कता हुन्तो वृथाप्रीका शरैः काञ्चनमूपयै ।
धानराण्यमरीकेषु कञ्चन कञ्चन महत् ॥ ५१ ॥

उस समय वृथाप्रीक रावण अपने दुर्बलभूति बायोदरा
बानरोंकी सेनामें रोयपूर्ण बड़ी भरी मार-अज्ञ कसने
अप ॥ ५१ ॥

निकृच्छिरसः केचिद् रथघेन यधीमुक्ता ।
केचिद् विविधप्रहृत्वा केचिच्छ्रेयसिधियजिताः ॥ ५२ ॥

एकधने कितने ही बानरोंके फिर कस किन्, कितनोंकी
छावी ठेक बाधी और बहुतोंका कन उड़ा दिये ॥ ५२ ॥

निरुच्छयासा हता केचिद् केचिद् पादेषु वारिताः ।
केचिद् विभिद्यधिरसः केचिद्भुर्विवाङ्मया ॥ ५३ ॥

निरुच्छयासा हता केचिद् केचिद् पादेषु वारिताः ।
केचिद् विभिद्यधिरसः केचिद्भुर्विवाङ्मया ॥ ५३ ॥

किन्तौने पापक हाकर प्राण त्याग दिव । एवमने कितने
ही वानपैथी पसकियां छाह बास्ये, किन्तोंके मद्यक कुचक
बाह और किन्तोंकी भोंसैं वीर्य कर दी ॥ ५३ ॥

वृशाननाः श्लोचविबुधनत्रो
यतो यद्येऽप्येति रथेण सकथे ।

ह्यापार्थे श्रीमत्रामापक बास्नीकथिये भाविकाम्य सुदक्षणे पणवतितमः सर्गः ॥ ५३ ॥

इस प्रकार श्रीमत्रामापक बास्नीकथिये भाविकाम्य सुदक्षणे पणवतितमः सर्गः ॥ ५३ ॥

ततस्ततस्तस्य शरप्यग
सोढु न शेकुदरिप्युपास्त ॥ ५४ ॥

इयमुक्त एवमक नेत्र क्षयते पून रहे थे । वह अयन
रथक हाथ सुदक्षणेमें बर्हो-बर्हो गया, बर्हो-बर्हो व बानर
पूयवति ठवक बापोंका धग न छह सक ॥ ५४ ॥

पणवतितम सर्ग

सुग्रीवद्वारा राक्षससेनाका सहार और विरूपाक्षका वध

तथा तैः वृशगाभैस्तु वृशार्थीयण मागजैः ।
यभूय यमुधा तत्र प्रक्षीया हरिभिल्ला ॥ १ ॥

इस प्रकार जब एवमने अपने बापोंके बानरोंके अङ्ग-मङ्ग
कर बाह, तब बर्हो बराघापी हुए बानरोंके वह खरी रथभूमि
पट गयी ॥ १ ॥

यवपस्याप्रसद्या त शरसम्पातमकृता ।
न शकुः सहितु वीत पतङ्गा ज्वलन यया ॥ २ ॥

एवमक उस अक्षय रागप्रहारक वे बानर एक क्षम भी
नहीं छह सक ठाक वंसे ही, जैसे पतंग अकरी आकाश स्वर्ग
खनन भी नहीं छह सकत हैं ॥ २ ॥

तऽप्या निशितपाणीं क्राशस्तो विप्रतुमुवा ।
पावकाचिसमायिष्य वृशानाथ यया गङ्गा ॥ ३ ॥

एकदशकक ठाक बानोंकी मारत पीड़ित छ वे बानर
उसी तरह वीर्यत-विस्तार हुए मग के कल राजानकधी
बाहभोंके निरकर अकत हुए हाथी वीरकर कत हुए
मगह हैं ॥ ३ ॥

वृशगानामनीकानि महाधार्मीष मारुतः ।
सययां समर सस्मिन् विधमन् रायणा शरैः ॥ ४ ॥

जब हाथ बह-बह बरसोंके छिप्र-भिष कर रही है,
उसे प्रकार एवम अपने बापोंके पनरकनाभोंके शर करत
हुआ कन्या-जमें विचरने लग्य ॥ ४ ॥

कृत्वा तरसा कृत्वा राक्षसत्रा यनीकसाम् ।
भ्यससात् तत्रा युद्ध स्वरित रायण रथे ॥ ५ ॥

वह बगने बानरोंके शर करक वह राक्षसक
कन्या-जमें राजनक निय सुग ही भीएमकन्यनीक करत ज्य
पहुंचा ॥ ५ ॥

सुप्रयस्यन् करीरुं ह्युभयन् विद्रावितान् रथ ।
गुल्म सुपण निक्षिप्य शक युद्ध द्रुत मनः ॥ ६ ॥

उपर सुमोझे हाथ पनरकीक एवमक शरह करकर
कन्या-जमें ज्य रह हैं उस ऊठने कन्याके फिर एवमके

मर सुगनक खीरकर नयं भीम ही मुह करनेका विचार
किया ॥ ६ ॥

आत्मनः सद्यदा वीर स त निक्षिप्य वातरम् ।
सुग्रीवोऽभिमुक्त शत्रु प्रतस्थ पावपायुधः ॥ ७ ॥

सुगनक अपने ही कमान परकनी वीर कमानकर उन्होंने
कन्याकी रथक कार्य खीर और लय हुए कर शत्रु कामन
प्रस्थान किया ॥ ७ ॥

पादयतः पृष्ठतश्चास्य सर्वे वानरयूथया ।
भनुजमुमहाशस्त्रान् विविधाश्च पनस्पतान् ॥ ८ ॥

उनक कमान-बासमें और पीठ कमान बानरपूयवति वह
बड़े पत्थर और नाना प्रकारक हुए करक कर ॥ ८ ॥

मनश् युधि सुग्रीय स्वरण महता महान् ।
पोययन् विविधाश्चाभ्यान् ममग्याक्षमराक्षसान् ॥ ९ ॥

ममक के महाकरया राक्षसान् वानर-पत्थर ।
सुगान्तसमय वायुः प्रयुजानगमानिय ॥ १० ॥

उस कन्य सुग्रीवने सुदमें उपनयन गन्ना की और
प्रकपकथमें बह-बह हथोंके उगाह केंद्रनक वायुकरके
मोति उन विघातकथ बानरकनी विभिन्न प्रकारकी अकृति
बाह बह-बड़े एवमके मित-मितकर नथ एवं कुचक
काम ॥ ११ ॥

राक्षसान्मर्नीकसु शंसययं ययव ह ।
भक्षमययं यया मया पक्षिसदसु कथन ॥ १२ ॥

जैसे बरह करने पथियोंके कन्यापनर भन करतया है,
उसी प्रकार सुग्रीव राक्षसोंकी कन्याभोंके बह-बह कपोंकी पत्थ
करने लगे ॥ ११ ॥

कपिराक्षपिमुत्तस्तः गतवर्गन्तु राक्षसाः ।
विकीपतिरस्य पत्रायकीया इष परतः ॥ १२ ॥

बानरकक बहव हुए कन्या-जोंके जमें सुदके
मद्यक कुचक कर और व दह हुए पत्रक कथन परतया
छ करत ॥ १२ ॥

भय सङ्गीयमाणेषु राक्षसेषु समस्ततः ।
सुग्रीवस्य प्रभानेषु ननुस्तु च पतस्तु च ॥ १३ ॥
विक्रपाक्षस्य स्वर्गं स्वम धन्वी विभ्राम्य राक्षसः ।
रघुशत्रुस्य तुर्धर्षो गजस्वल्भुपासहत् ॥ १४ ॥

इस प्रकार सुग्रीवकी मारसे जन जन भेद राक्षसोंका
विनाश करने लगा तथा वे मरने और आर्तनाद करते हुए
पृथ्वीपर गिरने लगे तब विक्रपाक्ष नामक दुर्भय राक्षस हाथमें
धनुष से अपना नाम घोषित करके हुआ रघुसे क्रूर पडा और
राधीकी पीठपर आ चडा ॥ १३ १४ ॥

न त क्षिपमयाह्वय विक्रपाक्षो महाबलः ।
नन्द भीमनिर्द्धाव धानरतन्यधावत ॥ १५ ॥

उस हाथीपर चढ़कर महाबली विक्रपाक्षने पकी म्यानक
आवाजमें गर्भना की और धानरोंपर वेगपूर्वक आका किया ॥

सुग्रीव स शरान् धोरान् विससर्ज धमुमुक्षे ।
म्यापयामास षोडशान् राक्षसांश्च सम्प्रहर्षयन् ॥ १६ ॥

उत्तने सेनाके मुद्गनेपर सुग्रीवका क्रय करके बड़े मर्दकर
बाण छोड़ और बट्टे हुए राक्षसोंका हर्ष बढ़ाकर उन्हें सिरका
पूर्वक व्यापित किया ॥ १६ ॥

साऽस्तिपिण्डः शितीर्षावीः कृपिन्स्त्वेन रक्षसा ।
शुभेदा च महाशोभा यच्च वासा मनो बध्ने ॥ १७ ॥
उच राक्षसके वेने कर्षोसे अत्यन्त पासक हुए धानरयज
सुग्रीवने मदान् शोषधे भरकर भीरजगर्भना की और विक्रपाक्ष
का मर शान्नेका विचार किया ॥ १७ ॥

ततः पदपुमुत्सृज्य दारुं सम्प्रभतो हरिः ।
भविष्यत्प्रधानान्य प्रमुञ्जे त महागजम् ॥ १८ ॥

हाथीर तो म ध ही मुन्दर ढंगसे मुद्र करना भी जानते
। अतः एक वृक्ष उखाड़कर अगे बढ़े और अपने खम्भे
पर हुए उठकर विद्याल हाथीपर उठने उस वृक्षमें दे
मार ॥ १८ ॥

न तु महाराभिहतः सुग्रीवण महागजा ।
भगासपद् धनुमात्र निरसाद् नन्द च ॥ १९ ॥

सुग्रीवके प्रहारसे पायल हो पर महान् गजयज एक धनुष
की उ हटकर केक गण और पीड़ासे आर्तनाद करने लगा ॥ १९ ॥

गजात् तु मथिताद् नृणामपक्रम्य स पीयवान् ।
राक्षसाऽभिमुखाः ऽनु प्रत्युत्थ्य ततः कपिम् ॥ २० ॥

आरभ चम खड्ग उ प्रगृह्य सधुविभ्रमः ।
भक्तपत्रिय सुग्रीपमाससाद् व्ययम्भितम् ॥ २१ ॥

पराक्रमी राक्षस विक्रपाक्ष उस पयज हाथीकी पीठ पर
उर पडा भेद शक्यतकार न घोम्भयार्थक अपने धनु
मुद्गकी भर बना । मुद्गा एक आनर विख्यातक गज
म । पर उन्हें करारक दुम्भसा उनक पास व्य
पदना ॥ २०-२१ ॥

स हि तस्याभिसङ्गुहः प्रगृह्य विपुलां शिखाम् ।
विक्रपाक्षस्य विक्षेप सुग्रीधो जलशोपमाम् ॥ २२ ॥

यह देख सुग्रीवने एक पबुत पकी शिख हाथमें ली
या मेपके छान काही थी । उसे उन्होंने विक्रपाक्षके शरीर
कोषपूर्वक दे मार ॥ २२ ॥

स तां शिखामापकर्त्सीं हृष्ट्य राक्षसपुग्गम् ।
अपक्रम्य सुविश्रान्तः सङ्गेन प्राहरत् तथा ॥ २३ ॥

उस शिखको अपने ऊपर आली देख उस परम पराक्रमी
राक्षसशिरोमेधि विक्रपाक्षने पीछे हटकर मानरथा की भेद
सुग्रीवपर तन्मार चलयी ॥ २३ ॥

तत्र सङ्गप्रहारेण रक्षसा वदित्वा हता ।
मुहूर्तमभवद् मूमौ विस्र इव क्षतरः ॥ २४ ॥

उस बन्धान् निशाचरकी लक्ष्यरसे पयज होकर क्षतर
यज सुग्रीव मुहूर्तक होकर सोकी देर परकीपर पड़े रहे ॥ २४ ॥

सहसा स तदात्पथ्य राक्षसस्य महाशोभे ।
मुष्टिं स्वर्ष्य वेगेन पतयामास यक्षसि ॥ २५ ॥

फिर सहस्र ठक्कर उठने उग महाशरसे मुष्टी कौं-
कर विक्रपाक्षकी छातीपर वेगपूर्वक एक मुक्क मय ॥ २५ ॥

मुष्टिप्रहारमिहतो विक्रपाक्षो निद्रावरा ।
तेन सङ्गेन सङ्गुहः सुग्रीवस्य धमुमुक्ष ॥ २६ ॥

कपय पतयामास पद्म्यामभिहताऽपतत् ।
उत्तके मुक्केकी चोट लाकर निशाचर विक्रपाक्षको कोष
और बंद गया और उठने सेनाके मुद्गनेपर उठी लक्ष्यको
सुग्रीवके कनकका कर गिराया खप ही उठके वेचैक आवाज
पाकर वे पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ २६ ॥

स समुत्थाय पतितः कपिस्तस्य ध्यसजयत् ॥ २७ ॥
तन्प्रहात्मदानः समान भीमनिःश्वसम् ।

गिरे हुए सुग्रीव पुन उठकर खड्ग हो गये और उन्होंने
उस राक्षसका बजके छान भीरज शब्द करनेका पयज
मार ॥ २७ ॥

सङ्गप्रहार तद् रक्षाः सुग्रीपस्य समुद्यतम् ॥ २८ ॥
नेतुम्यामायपितृयैः सुष्टिनोरसि ताडयत् ।

सुग्रीवके बन्धन हुए उस पयजका शर बर राक्षस अपने
मुद्गकीगणने पया गया और उठने सुग्रीवकी छातीपर एक
पूज मार ॥ २८ ॥

ततस्तु सङ्गुहवरा सुग्रीयां धानरघराः ॥ २९ ॥
माक्षित स्वामन्य हृष्ट्य महार तन रक्षसा ।

स दृशान्तरं तस्य विक्रपाक्षस्य धानरः ॥ ३० ॥
नच तां धनराजशुभेरेक अपधी खेना न री ।

उत्तने देगा कि पक्षने मरे प्रहारको पयज कर दिया और

अपने ऊपर उक्ता सर्वा नहीं होने दिया । तब वे विस्फोटपर
प्रहार करनेका अवसर देखने लगे ॥ २९ १ ॥

ततोऽन्य पातयत् श्लोधाच्छङ्खवेदो महातस्मन् ।
श्लेष्म्राशानिकन्द्येन हलेभानिहतः क्षिती ॥ ३१ ॥

पपात रुधिरक्षिप्तः शोषित हि ससुन्निरन् ।

श्लेष्मन्वस्तु विरूपाक्षो जल प्रस्रवणप्रिय ॥ ३२ ॥

एतन्तर सुग्रीवने विरूपाक्षके छत्राटपर श्लेषपूर्वक वृत्त
महान् गण्ड मारा; कितना स्पष्ट इन्द्रके बज्रके समान कुण्ड
या । उसके आहत होकर विरूपाक्ष क्षीणपर गिर पड़ा । उक्ता
धरा धरीर कृतसे मीग गया और वह समस्त इन्द्रिय-प्रस्रवणसे
उत्थि प्रहार रक्त समन करने लगा; जैसे सरनेसे कल गिर
जा हो ॥ ३१ ३२ ॥

विषूचनयन श्लोधात् सफेनं रुधिराश्रुतम् ।

वृद्धगुस्तं विरूपाक्षं विरूपाक्षतर कृतम् ॥ ३३ ॥

स्फुरन्त परिभतस्त पाशैर्न रुधिरोक्षितम् ।

कदम्ब च विनर्दन्त वृद्धगुः कपयो रिपुम् ॥ ३४ ॥

उस उल्लसरी ओंसें श्लेषसे कृत रही थीं । वह केनयुक्त
रुधिरसे ढूँडा हुआ था । बानरोंने देखा विरूपाक्ष अत्यन्त
विरूपाक्ष (कुम्भ नेत्रवाला और मयंक) हो गया है । कृत-

इत्थार्ये श्रीमद्रामायणे बाह्योद्गीये भाविकारण्ये युद्धकाण्डे सप्तमवतितमः सर्गः ॥ २९ ॥

इत प्रकर श्रीमद्गीतिकाभिर्मित्त भवराजस्य अत्रिकाम्यक युद्धकाण्डे पान्तमेतौ सर्गं कृतं हुम् ॥ २९ ॥

सप्तमवतितम सर्ग

सुग्रीवके साथ महोदरका घोर युद्ध तथा वध

हृष्यमाने वले तृणमन्योर्ध्वं त महाधुम् ।
सरसीय महापामे स्वपक्षीणे वभूवतुः ॥ १ ॥

उक्त महाधुम्ने वे दानों भारती सेनाएँ परस्परकी मार
करते प्रसन्न प्रीतिप्रधानों सेकने हुए वे वृक्षलोककी तरफ
धीमे ही धीमे हो चलीं ॥ १ ॥

लबलस्य सु घातन विरूपाक्षवचन च ।
बभूव विरुपुं हृन्दो रायण्यं राक्षसाधियः ॥ २ ॥

अग्नी सेनाक निनाध और विरूपाक्षक बचते एतदवयव
एकका श्लेष दूना बद् गय ॥ २ ॥

प्रक्षीय ग्यवळ हृष्टा धष्यमान यक्षिसुलैः ।
वभूवस्य ग्यथा युद्धे हृष्टा वैवयिपर्ययम् ॥ ३ ॥

बानरकी मारने अग्नी सेनाके तीव्र हुई देल दबक
उक्त-करत हृषित करके मुडबलने उठे नहीं ग्या
हुं ॥ ३ ॥

उवाच च सर्मापस्थ महादरमनस्तारम् ।

भस्मिन् कालमहापाहो जयादा स्वयि म स्थिथ ॥ ४ ॥

उधने पास दो लड़ हुए अंतरत काल—महापाहो ।

से व्यपप ह्य छटपटावा करतें बक्षता तथा करपायनक
भारतनाप कथा है ॥ ३३ ३४ ॥

तथा तु तौ सयसि सम्प्रयुक्तौ

सरस्मिनी यानरयस्त्रसायम् ।

बर्ध्मर्णयो सस्वन्तुभ भीमौ

महार्णवी द्वाभिय भिन्नसेत् ॥ ३५ ॥

इत प्रकर वे दोनों वेगवाली बानरों और राक्षसोंके सेन-
समुद्र मयादा तोड़कर बन्देबासे हो भयानक महासंगर्षके
समान परस्पर संयुक्त हो युद्धभूमिमें महान् क्रोधग्रह करने
लगे ॥ ३५ ॥

विनाशितं प्रक्ष्य विरूपेनत्र

महाबळ त हरिपाथिविम् ।

बलं समेत क्षपिरस्तसाय-

मुषुच्युत्तगङ्गाप्रतिमं वभूय ॥ ३६ ॥

बानरराज सुग्रीवके द्वारा महाबली विरूपाक्षक वध हुआ
देख बानरों और राक्षसोंकी सेनाएँ परस्पर हो झड़ी हुई गङ्गाके
समान उद्वेक्षित हो गयीं (एक ओर आनन्दकलित क्रोधाहृत
या तो दूधरी और शोकके कारण आर्तनाद हो रहा था) ॥ ३६ ॥

इत समय मेरी विनयकी भाषा तुम्हारे ऊपर ही अव्यक्तित
है ॥ ४ ॥

अहि शत्रुचर्मूं पीग धर्षयाद्य पराक्रमम् ।
भर्तृपिच्छस्य कावोऽप्यनिषेर्षुं साधुयुष्मत्प्रम ॥ ५ ॥

‘धीर । आज अपना पराक्रम दिखाओ और शत्रुसेनाका
वध करो । यही खानीके भयनाका बरबध पुत्रनेत्र समय है ।
अस्य अग्नी उरु पुत्र कर्तुः ॥ ५ ॥

एवमुक्तस्तपेल्युक्तया राक्षसाम्ना महोदर ।
प्रथियनारिसेनां स फलङ्ग इय पायकम् ॥ ६ ॥

एकका वेश करनेपर राक्षसराज महोदरने षष्ठुत अन्धा
करकर उलकी भाङ्ग गिरपायों की और जैसे फलङ्ग भागमें
झुंरवा है उठी प्रकर उधने शत्रुसेनामें प्रवेश किया ॥ ६ ॥

ततः स कश्चन धक्के यानराणा महापत्नम् ।
भर्तृनाचयन तज्जली स्थन धीर्येण चोदितः ॥ ७ ॥

नेनाम प्रवेग करक ठेकवी और मरुतकी महोदरने
खानीकी अन्धते प्रति ह्य भयान पराक्रमकर बानरोंका वध
भारम्भ किया ॥ ७ ॥

वानरास्य महासत्त्वाः प्रपुच्छ विपुच्छाः शिखाः ।
प्रविश्यातिरिच्छ भीमं जञ्जुस्ते सर्परासस्रवात् ॥ ८ ॥

वनर भी बड़े शक्तिवादी थे । वे बड़ी-बड़ी शिखरें
केकर धनुषी मर्मकर सेनामें युध गये और समस्त राक्षसोंको
ध्वंस करने लगे ॥ ८ ॥

महोदध सुसुहृद्वाः शरैः कञ्जममूययौ ।
विच्छेत् प्रामिपादोऽथ वानराणा महाहथे ॥ ९ ॥

श्वोररने अस्मत् कुम्भित होकर अपने सुवपभूमित शरों-
द्वारा उध महासुहृदों वानरोंके शयन-र और धर्म कर
बाधी ॥ ९ ॥

तदस्ते वानराः सर्वे राक्षसैरर्विता भृशम् ।
विश्वे वशं हुयाः केचित् केचित् सुग्रीवमाश्रिताः ॥ १० ॥

राक्षसोंद्वारा अस्मत् पीड़ित हुए भ सब वानर वसों
विश्वामोंमें मानने लगे । किन्तु ही सुग्रीवकी शरणमें गये ॥
प्रभन्म समरे बभूव वानराणां महाबलम् ।
अभितुद्राव सुग्रीवो महोद्वरमन्करम् ॥ ११ ॥

वानरोंकी शिखाके सेनाको अमर्यमिते मागरी देस
सुग्रीवने पक्ष ही लड़े हुए महोद्वरपर अक्रान्त किया ॥ ११ ॥
प्रपुच्छ विपुच्छां घोरा महीधरसमां शिखम् ।
विशेषे च महातेजास्तस्यभाय हरीन्धरा ॥ १२ ॥

वनरराज बड़े तक्ष्मी थे । उन्होंने जगतके समान शिखाके
एवं मर्मकर शिख ठठाकर महोद्वरके बचके स्थिते उपपर
कक्षणी ॥ १२ ॥

वामापकर्णौ सहसा शिखां दृष्ट्वा महोद्वर ।
असम्भ्रान्तस्ततो वायैर्निर्विभेत् दुरासवाम् ॥ १३ ॥

उध दुर्गम शिखाको छात्र करने ऊपर आती देसकर
भी महोद्वरके मनमें कषाहट नहीं हुई । उधने बायोद्वारा उसके
दृक्ने-दृक्ने कर लड़े ॥ १३ ॥

रक्षसा तेन वायौर्निर्दिष्टा सा सहस्राध ।
नियपात् तद्वा भूमौ दृग्भयमिवाकुञ्जम् ॥ १४ ॥

उध राक्षसके बाणसमूहोंके कटकर छासों दृक्नोंमें विमल
हुई बड़ शिखा उस समय आकुञ्ज हुए अक्षयवृन्दकी मूर्ति
दृक्नीकर गिर पड़ी ॥ १४ ॥

तं तु भिर्वा शिखां दृष्ट्वा सुग्रीवा क्रोधमूर्च्छिता ।
सासमुत्पात्य विशेषे तं स विच्छेत् नैकध ॥ १५ ॥

उध शिखाको विदीर्ष हुई देस सुग्रीवको क्रोध बहुत बढ़
गया । उन्होंने एक पाण्डव हाथ उठाकर उध राक्षसके अमर
दंड पर किंदा राक्षसने उसके भी कई दृक्ने कर लड़े ॥ १५ ॥

शरैश्च शिववृत्तैर्भ शूरः परवज्रावैना ।
स वद्वर्षे तदाः कृयाः परिचं पक्षित मुनि ॥ १६ ॥
अथ ही धनुसेनाम वनन करनेवाले उस धनुषीने इन्हें

अपने बाणोंसे पापक कर दिया । इही समय क्रोधने भी हुए
सुग्रीवको वहाँ दृक्नीकर पड़ा हुआ एक परिच रिच्छ
दिया ॥ १६ ॥

आपिच्य तु स त वसि परिचं तस्य वद्वर्षम् ।
परिच्छेद्योमघनेन जघान्तस्य ह्येतोमन् ॥ १७ ॥

उध तेकली परिच्य प्रयाकर सुग्रीवने महोद्वरके मनमें
कुर्षी दिलाते हुए उध अमरक केगाद्री परिचके द्वारा ज
राक्षसके उपम वेदोंको मार जल ॥ १७ ॥

तस्माद्वद्वर्षाद् वीरा सोऽवपुस्तस्य महोद्वर ।
गदां जघान् सङ्क्रुयो राक्षसोऽथ महोद्वर ॥ १८ ॥

वेदोंके मारे शनेपर वीर राक्षस श्वोरर अपने शिखा
रक्षते नूर पड़ा और अस्मत् ऐसे मरकर उधने गया उध
भी ॥ १८ ॥

गदापरिचहस्ती नी युधि वीरौ समीपतु ।
नर्नन्ती गोवृषप्रक्ष्मी ब्रह्मविष सविपुटी ॥ १९ ॥

एकके हाथमें गया भी और दूसरेके हाथमें परीप । वे
दोनों वीर युद्धलक्षमें दो लड़ों और शिखाकेद्वारा दो मेषके
अमन गर्जना करते हुए एक दूसरेके मिड गये ॥ १ ॥

ततः क्रुद्यो गदां तस्मै विशेषे रज्ज्वीकर ।
ज्वलन्ती भास्कराभासां सुग्रीवस्य महोद्वर ॥ २ ॥

तदनन्तर कुम्भित हुए राक्षस महोद्वरने सुग्रीवपर सर्वद्व
वेकते बमकरी हुई एक गया बलानी ॥ २ ॥

गदां तां सुमहाभयोपमापकर्णौ महाबल ।
सुग्रीवो रोषवज्राहाः ससुद्यम्य महाहवे ॥ २१ ॥
आजघान गदां तस्य परिच्छेप हरीन्धरा ।
पपात् तरसा भिन्नाः परिचलस्य मूले ॥ २२ ॥

उध महामर्मकर गदाको बमनी और आड़ी देस मही-
कर्ममें महाकरी वनरराज सुग्रीवके नेत्र ऐसे बल ही गये
और उन्होंने परिच ठठाकर उसके द्वारा राक्षसकी गला
आघात किया । वह गया गिर पड़ी किंदा उसके केले उध-
कर सुग्रीवको परिच भी टूटकर दृक्नीकर वा गिरा ॥ २१ २२ ॥

तत्रे जघान् तेकली सुग्रीवो वसुधास्तस्य ।
आपस सुसुतं घोरा सर्वतो हेममूर्च्छितम् ॥ २३ ॥

उध तेकली सुग्रीवने भूमिपते एक अनेक २ कर
मूक ठठाया, किन्तु सब मरेसे लेना पड़ा हुआ
था ॥ २३ ॥

स तसुद्यम्य विशेप सोऽप्यस्य प्रक्षिपद् वनाम् ।
भिन्नाकम्प्यमासाद्य पेतुस्ती महीतलं ॥ २४ ॥

उधे ठठाकर उन्होंने राक्षसके वे माय । सब ही उध
राक्षसने भी इनके ऊपर गया कभी । गया और मूक दोनों
आपको उधकर दृक् गये और कर्मकर था गिरे ॥ २४ ॥

ततो भिष्मप्रहरणौ मुष्टिभ्यां तौ समीपतः ।
तेजोवदसमाधिष्ये वीताविष इत्यारामौ ॥ २५ ॥

वे दोनों वीर तेज और बलसे सम्पन्न थे और पकड़ी हुई अग्निपोंके समान उठीत हा रहे थे । अपने-अपने श्वसुपोंके दृष्ट करनेपर वे धूलसे एक दूसरेके भावने लगे ॥ २५ ॥

अप्यनुद्यौ त्वाम्योन्य नदन्तौ च पुनः पुनः ।
तस्मैवाभ्याम्यमासाद्य पततुश्च मरुतिर्युः ॥ २६ ॥

उस समय बार-बार गम्भीर हुए वे दोनों योद्धा परस्पर क्रुद्धि प्रहार करने लगे । फिर पय्यपोंसे एक दूसरेके मारकर ज्यों ही जूनीपर गिर पड़े ॥ २६ ॥

तपततुस्तदा तूर्णं अप्यनुद्यौ परस्परम् ।
पुत्रैश्चिक्षिपुतुर्धौराक्येभ्यमपरराजितौ ॥ २७ ॥

फिर लक्ष्मण ही दोनों उछले और भीम ही एक दूसरे से चोट करने लगे । वे दोनों वीर हार नहीं मन्तते थे । दोनों ही दोनोंपर युवाभोग्यप्र महार करने रहे ॥ २७ ॥

अप्यनुद्यौ धर्मं वीरौ वाहुपुत्रे परंतपौ ।
अज्ञहार तदा अज्ञमदुरपरिवर्तिनम् ॥ २८ ॥

पक्षसधर्म्या सार्धं महावेगो महोदरः ।
तथैव च महाबाहू धर्मणा पठित सह ।

अप्राद्य वानरभ्येष्टः सुग्रीवो वगयत्तरः ॥ २९ ॥

शुभ्रुओंके तपानेवाले वे दोनों वीर कङ्कुमुद करने-करते पक गये । उन महान् वेगवाली राक्षस महोदरने खड़ी ही घूर पर पड़ी हुई दाहकरीत लक्ष्मण उठा डी । उसी उपद्रु अकल्पत वेगवाली करिभेद सुग्रीवने भी वहाँ गिरे हुए विद्याल सङ्घके दाहकरीत उठा किमा ॥ २८ २९ ॥

ततो रोपपरित्यागौ जन्तवश्चम्यधायतम् ।
उपत्यसी रथे हृद्री मुष्णि शस्त्रविशारदौ ॥ ३० ॥

महोदर और सुग्रीव दोनों युद्धके वैदजनमें हाथ बजानेकी क्षममें चढ़र थे तथा दोनोंके शरीर रणसे प्रभावित थे; अतः रणभूमिमें हार और उत्साहसे युक्त हो वे समन्त उठाये गम्भीर हुए एक दूसरे दृष्ट पड़े ॥ ३ ॥

वक्षिण मण्डलं ज्योती सुदूर्णं सम्यरीपतुः ।
अप्येत्यमभिसङ्गृही जये प्रथिहितानुभी ॥ ३१ ॥

वे दोनों बड़ी तेजसे शय-बायें पैरने बरक रहे थे दोनों पर दोनोंपर क्रोध बढ़ा हुआ था तथा दोनों ही अपनी-अपनी निरुपनी श्रेया संग्रह हुए थे ॥ ३१ ॥

अतः तु दारो महावेगो धीर्यमहाधी महोदरः ।
तदा तु दारो महावेगो धीर्यमहाधी महोदरः ।

इत्यार्यं धीमहाभ्याम्बे वासुदेवो वासुदेवो मुद्रकण्डे सप्तमपठितमा सर्गः ॥ २७ ॥
इस प्रकार हीमहाभ्याम्बे वासुदेवो वासुदेवो मुद्रकण्डे सप्तमपठितमा सर्गः २७ ॥

अपने बलपर बमंड करनेवाले महान् वेगवाली तथा धीर्य सम्पन्न दुर्बुद्धि महोदरने अपनी वर लक्ष्मण सुग्रीवक विद्याल कबलपर दे मारी ॥ २२ ॥

अप्यनुत्कर्षताः सार्धं सङ्ग्रेन कपिकुक्षरः ।
अहार सशिरस्त्राप्य कुण्डलोपगत शिरः ॥ २३ ॥

सुग्रीवके कन्चमें लगी हुई लक्ष्मणके जब वह राक्षस लीचने लगा; उसी समय कपिकुक्षर सुग्रीवने महोदरके शिरस्त्रासहित मुण्डकमण्डित मस्तकको अपने सङ्गसे फट लिमा ॥ २३ ॥

निकुचशिरसस्तस्य पठितस्य मूर्ध्नि तडे ।
तद् बल राक्षसेन्द्रस्य दृष्ट्वा तत्र न हृद्यते ॥ २४ ॥

मस्तक फट जानेपर राक्षसराज महोदर लुब्धीपर गिर पड़ा । पर देखकर उसकी सेना फिर वहाँ नहीं दिसासी ही ॥ २४ ॥

इत्या त घातैः सार्धं ननाद मुविद्यो हरिः ।
शुक्रोद्य च वृशाधीयो यभौ हृष्टश्च रावणः ॥ २५ ॥

महोदरके मारकर प्रलभ हुए वानरराज सुग्रीव अन्य वानरोंके साथ गम्भीर करने लगे । उस समय वृशासुख राक्षसके बड़ा क्रोध हुआ और भीरपुनायकी शरसे लिख उठे ॥ २५ ॥

विपय्यनभन्वाः सर्वे राक्षसा वृक्षिषेतसः ।
विद्रुपति सतः सर्वे भयविषस्तषेतसः ॥ २६ ॥

उस समय समस्त राक्षसोंका मन दुःखी हो गया । उन सबके मुखापर विषय छा गया और वे सभी मयभीतचित्त होकर वहाँसे भाग पड़े ॥ २६ ॥

महोदरं तं विनिपात्य भूतो
महागिरो कृष्णमिषैक्यशास्त्रं ।

स्योत्तमजस्तत्र एराज लक्ष्म्या
स्यो सवतोभिरियापृष्या ॥ ३७ ॥

महोदरका शरीर किन्ही महान् पर्यन्तके एक दृष्टे हुए मिलर-वृक्ष बल पड़ता था । उसे जूनीपर गिरकर सुदूर्ण सुग्रीव वहाँ निरुपनीश्रेया सुग्रीव गिरे लगे; मानो अमर्यादीय सुदूर्ण अपने लक्ष्मणके प्रकथित हा रहे हों ॥ ३७ ॥

अथ विजयमशाय्य वानरोद्रः
सामरमुञ्चे सुरसिद्धयस्तस्यै ।

अवनितकण्ठैश्च भूतसद्वै-
हैकवसमाकुचितैरिरीक्ष्यमाणः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार वानरराज सुग्रीव युद्धके सुशानेपर निरुप पाकर बड़ी धोमा पाने लगे । उस समय देवता, सिद्ध और यक्षोंके अनुशय तथा भूतनिवासी प्राणियोंके ऊपर भी पड़े हरिसे उनकी गौर देखने लगे ॥ ३८ ॥

अष्टनवतितम सर्ग अंगदके द्वारा महापार्श्वका वध

महोदरे तु निवृत्त महापाश्र्वो महाबलः ।
सुमीषेण समीक्ष्याथ श्लेषात् सरकलोन्वनः ॥ १ ॥

सुमीषक द्वारा महोदरके गारे अनेपर उनकी ओर देख-
कर महाश्वशी महापार्श्वके नेत्र श्लेषसे छाड हो गये ॥ १ ॥
अह्वस्य चमू भीमां शोभयामास मार्गधैः ।
स यानराणां मुख्यानामुत्तमाङ्गानि राक्षसाः ॥ २ ॥
पातयामास कापेभ्यः फलं क्षुन्ताद्विधानिह्लाः ।

उठने अगने बाणोंद्वारा अगश्वशी मयंकर सेनामें हलचल
मचा दी । वह उल्लस मुख-मुख वानरोंके मस्तक बढ़ते क्षर-
क्षरकर गिरने लगा माने वायु हुन्त या बंठकसे फल गिरा
थी हो ॥ २ ॥

केयांश्चित्रिभुभिर्पाण्डुभिश्छेद्याथ स राक्षसाः ॥ ३ ॥
यानराणां सुसरम्भः पार्श्वे केयांश्चिदाक्षिपत् ।

श्लेषसे भरे हुए महापार्श्वने अपने बाणोंसे किन्नरोंकी
बाँहें छर दी और किन्ने ही वानरोंकी पलभियों उठा दी ॥ ३ ॥
तऽर्दिता वाप्यवर्षेण महापाश्र्वेण यानराः ॥ ४ ॥
दियाद्विमुखाः सर्वे बभूवुर्गतचतसराः ।

महापार्श्वकी शपकनसे पीड़ित हां बहुवसे वानर
सुखस विमुक्त हो गये । श्वकी चेतना खटी रही ॥ ४ ॥
निगम्य पञ्चमुद्दिग्रमङ्गवो राक्षसाविवृत्तम् ॥ ५ ॥
वर्गं चक्रे महावंगो समुद्रं ह्य पथसु ।

उम उल्लखे पीड़ित वानर-सेनामें उद्दिग्न हुई देख
महान् वगदासी अङ्गदने पूर्वियके दिन समुद्रकी गौँसे अपना
नाथी वेग प्रकट किया ॥ ५ ॥
भायस परिषद् शूद्रा स्वैरदिमसमप्रभम् ॥ ६ ॥
समर यानरश्छा महापाश्र्वे स्पपातपत् ।

उन वानरचिरमजिने स्वर्गो किरकके छान दमकने-
वाला एक लहेजा परिष उठाकर महाकम्पपर दे माप ॥ ६ ॥
स तु तम महारण्य महापाश्र्वो विचतनः ॥ ७ ॥
सवृत्तः स्यन्दन्यात् तस्मात् विशयश्चास्तद् भुवि ।

उठ प्रहार महापाश्र्वी सुष-सुष खटी रही और वह
सुँडत हां शरपिहित रूपसे नीच आ पड़ा ॥ ७ ॥
तस्यासुराजस्यश्वी मीनाश्रनचपापमः ॥ ८ ॥
निगम्य सुमहावीर्यः स्वयूथान्मपसनिभात् ।
प्रशूभ गिरिश्रुद्धाभा मुञ्च्य स यितुस्य तिलाम् ॥ ९ ॥
भभ्याश्रनान तरणा यथऽप्यमन्दं च तम् ।

हृषी मन्त्र का : शेरनः ८ ८६ मन्त्र रूप वनगम
मरन पात्रकी और तन्की श्रुपात्र यमवन्दे मनेती

पटाके सरण अपने मूषसे बाहर निकलकर कुचित से एक
पर्वतशिलरके छान विशाख दिखा हाथमें छे थी और उठके
द्वारा उठ राखके पोर्कोके मार बाध तथा उठके रूपसे नै
चूर्ण कर दिया ॥ ८ १ ॥

मुहूर्तास्तम्भसंभस्तु महापाश्र्वो महाबलः ॥ १० ॥
अह्वत् बहुभिर्यानेभूयस्त प्रत्याबिभ्यत् ।
आम्यपमत् त्रिभिर्घापीराजप्रथम सन्कल्पते ॥ ११ ॥

हो पक्षीके बाद होयने अनेपर महाश्वशी महाश्वशी
बहुवसे बाणोंद्वारा पुनः अह्वत्के पक्षक कर दिया और
आम्यनाश्री छातीमें भी तीन पाप मारे ॥ १ ११ ॥
श्रुत्सुराज गथास्तं च जप्यम् बहुभिः शरीः ।
गथास्तं आम्यवन्तं च स द्रुमा शरपीडितौ ॥ १२ ॥
जग्राह परिषद् घोरमङ्गवः कोपमूर्च्छितः ।

हना ही नहीं उठने रीछोंके राज गम्यश्वसे भी बहुवसे
बाणोंद्वारा छत-विफल कर दिया । गम्यश्व और आम्यनाश्री
बाणोंसे पीड़ित देख अह्वत्के श्लेषकी सीमा न थी । उठने
नभंकर परिषद् हाथमें से किया ॥ १२ ॥

तस्याङ्गवः सरोपाश्रो राक्षसस्य तमापसम् ॥ १३ ॥
शूरस्थितस्य परिषद्ं शरिदिमसमप्रभम् ।
श्राभ्यां भुजाभ्यां सगृह्य भ्रामयित्वा च वेगावत् ॥ १४ ॥
महापाश्र्वस्य विशेषेण वधार्थं वाञ्छितः सुतः ।

उनका वह परिषद् स्वकी किरकोंके छान अपनी प्रम
किलेर रहा था । बाधियुव अह्वत्के नेत्र श्लेषसे छरछे उठे थे ।
उन्होंने उठ छारमय परिषद्में दोनों हाथोंसे पञ्चक्षर मुखक
और वृ लहे हुए महापार्श्वके वधके लिये वेगपूर्व
चम्य दिशा ॥ १३ १४ ॥

स तु शित्तो पथयता परिषदास्य रक्षसाः ॥ १५ ॥
धनुश्च शशरं हस्ताच्छिरस्त्राण च पातयत् ।

यमयान् पीर मङ्गदके पक्षय्ये हुए उठ परिषने पक्ष
महापार्श्वके हाथसे बालाहित धनुष और मस्तकसे टोप गिरा
दिये ॥ १५ ॥

त समासाद्य वेगान् यान्तिपुत्रा प्रत्यपधात् ॥ १६ ॥
तस्मैनाम्यहनत् कृन्वा कण्ठमूले सकुण्डलं ।

किर प्रतापी यान्तिपुत्र अङ्गद लहे वेगसे उठके पक्ष
पहुँच और कुभित शर उठने उठके कुण्डलमुक्त करने
पाप गालमें एक पक्षक माप ॥ १६ ॥

स तु कृन्वा महावेगो महापाश्र्वो महापुतिः ॥ १७ ॥
करवचन जग्राह सुमहात्त परमथाम् ।

तव महान् वेगप्रवी महादेवकी महाशरानि कुभित हल
एक हाथमें बल बढ़ा काज न किया ॥ १७ ॥

त वैसर्पितं विमल शैलसारमय इदम् ॥ १८ ॥
रत्नस्य परमकुण्डो वाळिपुत्रे न्यपातयत् ।

उस फरतेको ठकमे हुषोकर उरु किमा गया था और वह
मध्ये खोरेका बना हुआ एवं सुदृढ़ था । राक्षस महाप्रसन्नि
भक्त कुपित हो उस फरख वाळिपुत्र आज्ञापर दे मारा ॥ १८ ॥
तत्र यामासफळके भुजा प्रत्यषपासितम् ॥ १९ ॥
मङ्गो मोक्षयामास सरोया स परश्वधम् ।

उत्ते मङ्गके बायें कंधेपर बड़े वेगसे उस फरतेका
प्रहार किया था परंतु रोते भरे हुए मङ्गदने फरकाकर
अग्नेको बचा लिया और उस फरतेको व्यर्थ कर दिया ॥ १९ ॥
स धीरो वज्रसक्ताशमङ्गो मुष्टिमात्मना ॥ २० ॥
सप्रतयत् सुसकुञ्चः पितुस्तुल्यपराक्रमः ।

उत्पन्नात् भावन्त श्रेषसे भरे हुए धीर मङ्गदने को
अग्ने भिखके समान ही पराक्रमी थे, वज्रके समान मुष्टी
शैली ॥ २० ॥

राक्षसस्य स्तमान्मारो मर्मज्ञो हृदय प्रति ॥ २१ ॥
इन्द्राशनिस्तमस्यर्षो स मुष्टि विन्यपातयत् ।

वे इन्द्रके मर्मस्थानसे परिचित थे मठ उन्होंने उध
रखके सन्नेके निरुद्ध छातीमें बड़े वेगसे मुक्ता माया
विष्णु सर्प इन्द्रके वज्रके समान अक्षय था ॥ २१ ॥

तत्र तस्य निपातेन राक्षसस्य महान्भ्रूषे ॥ २२ ॥
फरख हृदयं घास्य स पपात हतो भुवि ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे शकतीश्वरिणे आदिकण्ठे युद्धकण्ठेऽष्टमोऽध्यायः समाप्तः ॥ १८ ॥
इस प्रकार श्रीरामलीलिकीर्तिनिर्दिष्ट अर्षारामायण अदिकण्ठक युद्धकण्ठमें अठ्ठमनेर्तौ का पूरा हुआ ॥ ८ ॥

पकोनशततमः सर्गः

श्रीराम और रावणका युद्ध

महोत्तरमहापाश्वीं हतौ ह्यु स रावणः ।

वसिष्ठ निहत बीर विक्रपासे महापले ॥ १ ॥

भवियेना महान् श्रेयो रावण तु महामुष्टः ।

सप्त शंखोद्दयामास वापय येवमुपास ह ॥ २ ॥

महाबली बीर विष्णुका वो माया ही गया था म्भोर और
महाप्रसन्ने मी अक्षके गळमें बाध दिने गये—वह देख उठ
महात्मारके भीतर रावणके हृदयमें महान् श्रेयका अज्ञेय हुआ ।
उत्ते खरभिक्षे रघु अर्षय बढानेकी आज्ञा थी और इस प्रकार
आ— ॥ १ ॥ ॥

निहत्यनाममात्यानां रुद्रस्य मगरस्य च ।

दुष्कर्मवादानप्यामि हत्वा ती रामत्सहमयी ॥ ३ ॥

पुत्र । मेरे मन्त्री मारे गये और सहापुरीपर खरों अज्ञेते
देत बाध गया । इन्के सिने मुझे बड़ा दुःख है । आज राम

उत्तम वह वृत्त अज्ञेते ही उस महात्मारमें राक्षस महा
पार्षथ हुआ पर फट गया और वह मरकर पृथ्वीपर गिर
पड़ा ॥ २२ ॥

वसिन् विनिहते भूतौ तत् सैष्यसन्मधुसुतो ॥ २३ ॥
अभवत् महान् श्रेयो समरे रावणस्य तु ।

उसके मरकर पृथ्वीपर गिर जानेके पश्चात् उसकी सेना
विभुम्भ हो उठी तथा समरभूमिमें रावणको भी महान् श्रेय
हुया ॥ २३ ॥

यानराणां प्रहृष्टानां सिंघनात् सुपुष्कला ॥ २४ ॥
स्यन्दयन्निव शशेन सङ्गां साहाय्यगोपुराम् ।

सहोद्रेषेव वेधाना नात् समभक्षमहान् ॥ २५ ॥

उस समय इससे भरे हुए बानरोंका महान् सिंघनाद
हने क्या । वह आहात्मिकश्रेयो तथा गेपुरेकृत सहापुरीको
श्रेयवा हुआ—ख मरीत हुआ । अज्ञेदरहित बानरोंका वह
म्हानाद इन्द्रसहित देवताओंके सम्भीर भोजन अन्न पकड़ा
था ॥ २४ ॥ ॥

मपेन्द्रशशुम्भिशालपालां
वनीकसां शैष महाभजादम् ।

भुत्वा सरोय युधि राक्षसेन्द्रा
पुनश्च युद्धाभिमुखोऽघतस्थे ॥ २६ ॥

युद्धसकलमें वेपताओं और बानरोंकी वह बड़ी मारी
गर्केना मुनकर इन्द्रप्रोही रखकर रावण पुन वेगपूर्वक युद्धके
क्षिमे उल्लुक् हा बहो लड़ा हा गया ॥ २६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे शकतीश्वरिणे आदिकण्ठे युद्धकण्ठेऽष्टमोऽध्यायः समाप्तः ॥ १८ ॥
इस प्रकार श्रीरामलीलिकीर्तिनिर्दिष्ट अर्षारामायण अदिकण्ठक युद्धकण्ठमें अठ्ठमनेर्तौ का पूरा हुआ ॥ ८ ॥

और अक्षयका पथ करके ही मैं अग्ने इव युद्धका दूर
करूँगा ॥ १ ॥

रामवृक्ष रणे हस्मि सीतापुष्पफळप्रदम् ।

प्रशयता यस्य सुप्रियो जाम्बवान् कुसुमो नक्ष ॥ ४ ॥

दिविष्वक्षेव मैन्ध्व्य अज्ञेदा गन्धमादन ।

हनुमान्भ्य सुपेणभ्य सयै च हरिद्यूषपा ॥ ५ ॥

रामभूमिमें उध रामकमी वृक्षमें उल्लाह केंद्रुग जो
सीताकमी वृक्षके शर फल देनेवाला है तथा सुप्रिय जम्बवान्,
कुसुम, नक्ष प्रिभिर मैन्ध्व्य अज्ञेद गन्धमादन इतुमान् और
सुपेय आदि उनका बानरपुत्रादि विश्वी पास्ता-
मण्डलाएँ हैं ॥ ४-५ ॥

स विशो ददा घोषेय रघस्यास्त्रिणो महान् ।
नाप्यन प्रथयी तूर्णं रावण आम्बधाकत ॥ ६ ॥

देख कर मरान् अतिरथी बीर रावण अपने रथकी
पर्वपट्टे देखें दिशामौखे गुँथव्य हुआ बही देखीके खप
भीरुनायकीभी अर वदा ॥ ६ ॥

पूरित्य तम शश्वन् सन्धीगिरिकाम्पम् ।
सचचाल मही सद्यो वल्लसिहसृगद्विजा ॥ ७ ॥

रथकी आवासे नदी फल और कर्मोखरित वहाँकी
साथी नूमि गुँथ उनी, परली शक्ये अथ और बहकि शते
पुन-पत्नी मयसे यर्य उडे ॥ ७ ॥

तामस सुमहाघोर चक्रराज सुदारुणम् ।
निद्राह कर्णन् सयौस्त प्रपुगु समन्ततः ॥ ८ ॥

रथ समन रावणने वामें नामबास अत्यन्त मयकर
महाघोर अघघ्न प्रकट करके छमल वानरोंके मस करना
भारम किमा । एक और उनकी साथी मितने अथी ॥ ८ ॥

उत्तरपात रजा भूमौ तैभूमैः सम्प्रधायितौ ।
नहि तत् संहितुः शकुम्भद्वेषा निर्मित स्वयम् ॥ ९ ॥

उनक पाँच उमड़ गय और वे इधर उधर भगने सगे
इच्छे एनूमिमें बहुत धूल उड़ने लगी । वह कामठ अन्न
खान्नु ब्रह्मावीम बनाया हुआ था, इसलिये वानर-योद्धा
रसक वेगम स ह न करे ॥

तान्यनीकाम्यनघानि रावणस्य पातमः ।
दद्रु भन्तानि पातदा राघवाः पयसस्थितः ॥ १० ॥

रावणक उच्च पात्राम भाहत हा वानरोंकी ठेकड़ों सेनाएँ
वितर वितर हा गयी हैं—यह दूर भगान् भीषम युद्धके
अप उघट हा सुभिरभारने पर हा गय ॥ १ ॥

तदा राक्षसागृह्णा विद्राघ्य हरिपाहिनीम् ।
स इन्द्रा तदा राम तिष्ठन्तमपरामितम् ॥ ११ ॥
मरमणम सह ध्याया विष्णुना यामर्ष यया ।

उपर वानर-सेना का गढ़इकर एअसिह रावणने देला
दि निर्भय परमि न हनेगम भीषम अपने भद्र सखमकर
रथ उभा पर हा है उन इन्द्र अपने उघट भाइ भगान्
तिगु (उमर) का गय हा हा है ॥ ११ ॥

भान्निगन्तमिगन्तमपरमण्य महद् धनुः ॥ १२ ॥
पञ्चप्रयानाया शृषिवाशुमर्दिनम् ।

र अपने निगन्त धनुष उठाकर आवासे देला
रानी-पदा ॥ १ ॥ उनक नव दिशिय अमररथ
गन्त निगन्त । धनुष वही बही था और व धनुषम
गन्त रानने ॥ १२ ॥

श्वश रामा महाभजा रीमिनिगदित्ता वनी ॥ १३ ॥
यानराध रथ भगान्वापसम च रावणम् ।
गर्मिण्य राघवा इत्य मथ्य उमाह कामुकम् ॥ १४ ॥

तदनन्तर छमपसहित सबे हुए महतेमली महली
भीषमने एनूमिमें वानरोंके मागले और एकपके अने सेव
कामने बड़े हाँफ अनुभव किया और धनुषके मजमके
हदयके खप पकड़ा ॥ ११ ॥

विसफारयितुमारोमे ततः स धनुःसमम् ।
महावेगं महानाद् निर्भिन्मुखिव मेखिसीम् ॥ १२ ॥

उन्होंने अपने महान् वेगवासी और महान् मथ
करनेवासे उच्च धनुषके इस उर खींचना और उरके
टुकार करना भारम किमा; मनी के पूबकी सिरीस क
कामने ॥ १२ ॥

रावणस्य च वाणौषी रामविसफारितेन च ।
शश्वेन राक्षसास्तेन पेतुञ्च शतशस्तदा ॥ १३ ॥

रवणके शप-छमूहोंके तथा भीषमपन्नकीके धनुषकी
टुकारके से मयकर शब्द प्रकट हुआ; उसके आवाजके डेर
ठेकड़ों उघट उरकक चराघायी हो गये ॥ १३ ॥

तयोः शरपथ प्राप्य राघवो राजगुह्ययो ।
स वभी च यथा राहुः समीप शशिसूर्ययो ॥ १४ ॥

उन दोनों रावणमारोंके शपोंके मयमें अकर एक
पन्नमा और सूर्यके समीप स्थित हुए राहुकी मीति अथ
पाने मथ ॥ १४ ॥

तमिच्छन् प्रथम योमुं अक्षमणो मिशितैः शरी ।
मुमोच धनुरायस्य शपानन्निशितोपमान् ॥ १५ ॥

अमथ अपने वेने शपोंके हाथ परणके खप यने
सबे ही युद्ध करना चाहते थे इसलिये धनुष वनम के
भनिसिपाकक समन सेकसी एण उाउने अगे ॥ १५ ॥

यान् मुक्तमाधानाश्चतौ लक्षमणेन धनुष्पतत ।
पाषाण् पाणीमहातजा राघवाः प्रत्यदारयत् ॥ १६ ॥

धनुषके सखमके धनुषके बूटके ही उन शपोंके मह-
ठेकसी एषके अपने खपमेंअथ अभाएमें ही कर मिसया
एकमकन वाषेन विभिन्नान् वृशभिद्वा ।

मथमणस्य प्रविच्छद्वा यान् पाषित्वाययम् ॥ २० ॥

यह अपने हाथोंकी पुनी दिवत्य हुआ सखमके एक
वात्रम एक वाषेन तीन वाषोंके तीन वाषने और ए
श्याम उाउने ही शपोंके बट देण थ ॥ २ ॥

भम्पतिप्रणय रीमिनि रावणाः समिनिजया ।
भागनाद् रजे राम भिन्न गान्मिशापरम् ॥ २१ ॥

अतीरथी वान सुनिशुमार का वाषकर एनूमिमें
रुम (वरुणी भा) भीषम भगम गह मथ भीषमके पर
थ ररुण ॥ २१ ॥

रथ वाषके ममागाण अथसत्खमप्रणया ।
मथसृष्टच्छपयानि रावणा राक्षसभरता ॥ २२ ॥

१ ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ १६ ॥ १७ ॥ १८ ॥ १९ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥

भीरुनायकीके निरुद्ध अकर मोपसे उरुध आँखें किने राख-
एव राख उनके ऊपर बाणोंकी दृष्टि करने लग्य ॥ २२ ॥

शरधारस्ततो रामो रावणस्य धनुश्श्रुत्वा ।
दृष्ट्वापठिताः शीघ्रं महाबाह्महा सत्परम् ॥ २३ ॥

रावणके धनुषसे गिरवी हुई उन बाण-धारभँगर दृष्टिक्र
करके भीरुगने बड़ी उखकड़ीके खप दृष्टि ही कई मह
हयमें छिमे ॥ २३ ॥

वाम्पद्वीपास्ततो भृश्टैस्तीक्ष्णैश्चिन्त्येत् रावणः ।
दीप्यमानान् महाभयोराभ्युपगच्छीद्विषोपमान् ॥ २४ ॥

रघुकुम्भपुत्र भीरुगने रावणके विषधर लोके समान
महामान्हर एवं शीशमान् बाणधर्योंको उन तीक्ष्ण महोत्ति
कट बाण्य ॥ २४ ॥

राषवो रावण तूर्णं राषयो राषय तथा ।
अप्यल्प विविधैस्तीक्ष्णैः शरपर्यैर्वैवपनुः ॥ २५ ॥

किर भीरुगने रावणके और राषणने भीरुगनके अपना
अल्प बनाप और दर्नों ही शीघ्रतापूर्वक एक दूसरेपर मौलि-
मौलिक वैन बाणोंकी बपा करने लगे ॥ २५ ॥

अंरनुद्य चिरं विप्र मन्वृच्छ सस्यवसिषाम् ।
बाणधगात् समुत्तिहासकस्योप्यमपरराजितौ ॥ २६ ॥

वे दर्नों निरकाखक बर्ण विविध दर्भ-बायें वैतेसे
विचल रहे । बाणके वेतेसे एक-दूसरेको पापक करते हुए वे
दर्नों की परबन्ध नहीं होते थे ॥ २६ ॥

तपोर्महान् विभ्रेसुदुग्गपत् सम्ययुष्यतोः ।
रौद्रयोः सायकमुचोयमात्कनिकाशयोः ॥ २७ ॥

एक खप बहते और क्षयकीही बर्ण करते हुए भीरुग
भैर रावण ममराव और अन्तरके समान भ्रमंकर बान पड़ते
थे । उनके मुहसे समूर्ण शशी शयें उठे ॥ २७ ॥

एतत् विविधैर्पापैश्चभूय गगन तदा ।
पद्मैरिवातपापाये विपुत्रमात्रासमाकृतैः ॥ २८ ॥

जैसे बरा श्रद्धमें विपुत्र-समूहोंसे व्यथ मेघोंकी फयते
अभ्रय अभ्रवाहित हो जाता है उसी प्रकार उठ समान गगन
पद्मरक बर्णते वह हक गया था ॥ २८ ॥

पशक्षिप्रमिवाकाशं यभूय शरवृष्टिभिः ।
महावगीं सुतीक्ष्णाग्रेपृष्णपयैः सुपाजितैः ॥ २९ ॥

भीरुकी घेंबके तुन्डर परसे मुघोमित और ठेक धारवाले
महान् वेगवाधी बाणोंकी अन्तरक बपते आकाश देखा अन्
पड़ता था मानो उठमें बहुतसे झरसे लगा गये हों ॥ २९ ॥

शरभ्यकारम्याकाशं यन्मुग्ध परम तदा ।
गवऽस्त तपने चापि महामेघाबिबोत्पितौ ॥ ३० ॥

ये बने-बने मेघोंकी मौलि उठे हुए भीरुग भैर रावणने

सूर्यके अन्त और उदित होनेपर भी बाणोंके गहन अन्धकारसे
आकाशको ढक रक्ता था ॥ ३० ॥

तयोरभूमहासुदमभ्योप्यधकाङ्क्षिणोः ।
महासायमपिष्य च वृषवासाययोरिष ॥ ३१ ॥

दोनों एक-दूसरेका खप करना चाहते थे अतः वृषाश्रु
और इन्द्रकी मौलि उन दोनोंमें ऐष मस्य युद्ध होने लग्य,
ओ युद्धम तथा अन्त्य है ॥ ३१ ॥

उभौ हि परमेष्वासायुधौ युद्धविघारौ ।
कभायकसिद्धं मुक्खायुधौ युद्धे विचेरतुः ॥ ३२ ॥

दोनों ही महान् धनुष और दर्नों ही युद्धकी कवमें
निपुण थे । दोनों ही अन्धवेचामोंमें भेद थे अतः दर्नों बने
ही उत्तरहसे रपभूमिमें विचरने लगे ॥ ३२ ॥

उभौ हि येन प्रज्वलस्तेन तेन शरोर्मयः ।
ऊमयो वायुना विशा जम्मुः सतारयोरिष ॥ ३३ ॥

वे अग्नि-विष भागसे बहते, उठी-उठीसे बाणोंकी छहर-ही
उठने लगती थी । ठीक उठी तरु, जैसे वायुके बपेके साकर दो
सुत्रोंके अग्नि तलाक तरु उठ रही हों ॥ ३३ ॥

तदा ससकहस्तस्तु राषयो लोकरावणः ।
नाराममात्रा रामस्य लछाते मत्पमुञ्जत ॥ ३४ ॥

उदनन्तर अिकके हाथ बाण छोड़नेमें ही लगे हुए थे,
समस्त अन्धके रजनेवाले उस राषणने भीरुगमन्त्रकीके
अखटमें नारणोंकी गाभ-ही पहना थी ॥ ३४ ॥

रौद्रधापप्रयुक्ता तां तीक्ष्णैस्फड्लप्रभाम् ।
शिरसाभ्यरपत् रामो न व्यथामभ्यपघत ॥ ३५ ॥

भ्रमंकर धनुषसे सूटी और तीक्ष्ण कम्बरके समान
स्वाम अन्तिके प्रकमित छोटी हुई उध नापन-मात्राके
भीरुगमन्त्रकीने अपने शिरपर धारण किया किन्तु वे व्यथित
नहीं हुए ॥ ३५ ॥

अथ मन्त्रानपि जपन् रौद्रमरुमुदीरपत् ।
शारान् भूया समादाप राम क्रोधसमन्वितः ॥ ३६ ॥

तयबधत् क्रोधसे भरे हुए भीरुगने पुनः बहुतसे बाण
अकर मन्त्रजपपूर्वक वैयाकरण प्रयोग किया ॥ ३६ ॥

मुमोक्ष च महावेजाहापमायस्य वीर्यवान् ।
तामशापन् राक्षसेन्द्राय सिद्धोपाधिष्यसायकः ॥ ३७ ॥

किर उन महावेदकी महान्द्रकी और अग्निविषकयते
बाणबपा करतेबाहे भीरुगकीने धनुषके अन्तरक लीनकर
वे लयी बाण राखणक राखणपर छोड़ दिये ॥ ३७ ॥

ते महामेघसकाशे कयसे पठिताः शाराः ।
अवप्ये राक्षसोद्भस्य न व्यथां जगपस्तदा ॥ ३८ ॥

वे खप उखकटक रावणके महामेघके समान खक रंगे

अमेघ क्वचपर मिते ये इच्छन्ति उरु सम्य उते म्पित न
कर सके ॥ १८ ॥

पुनरेवाथ त रामो रघस्य राज्ञसाधिपम् ।
सत्यटे परमाश्रेण सर्वात्मकुशलोऽभिनत् ॥ ३९ ॥

सगुण भक्त्यैक संनाम्नने कुशल भगवान् भीष्मने पुन
रपपर बैठे हुए राजपराब रावमके छयाटमे उचम भक्त्यैक
प्रहार करके उते पायस कर दिया ॥ १९ ॥

न भित्वा याणरूपाणि पञ्चशीर्षा इयोरनाः ।
भवसम्ता विविगुर्ममि रावणप्रतिकूक्षिताः ॥ ४० ॥

भीरामके व उतम बाण रावमसे पायस करके उसके
निवारण करनेपर फुटकारते हुए पौंच शिरबाध क्योके समान
परकीने क्या गय ॥ ४ ॥

निहत्य राघवम्यास्य रावणाः क्रोधमूर्च्छितः ।
भासुर सुमहाघोरमस्य प्राबुद्धकार सः ॥ ४१ ॥

भीरुनायकीके अक्रोध निवारण करके क्रोधसे मूर्च्छित
हुए रावणने भासुनामक वृक्ष महाभयंकर अक्र प्रकट किया ॥
सिंहप्याममुखाभ्यापि कबुकोकमुखानपि ।

गुह्रदप्येनमुखाभ्यापि श्टयाश्ववदास्तया ॥ ४२ ॥

इहामृगमुजांभ्यापि व्याधितास्यान् भयावहान् ।
पञ्चास्यास्तलिहामांश्च ससर्ज सिधिताम्पारन् ॥ ४३ ॥

दारान् पुरमुखांभ्याम्यान् पराहमुजसभितान् ।
भ्यानकुम्भुत्तरश्रांश्च मकराशीवियनमान् ॥ ४४ ॥

पताभ्यान्यांश्च मायाभिः ससर्ज निशिताम्पारन् ।
रामे प्रति महातजाः क्रुद्धः सर्व इय भवसन् ॥ ४५ ॥

उत्तम स्थि पाप, बद्ध चक्रबाध गीय, बाध, स्थिर,
भईय, गदरे एधउ कुपे, मुगे मर भैर अरीते सौयके समान
मुगबाध शक्रोभी गृध्र होने कपी । ५ बाध मुह वैभय नभदे
पायस हुए पौंच मुगराब भयंकर शक्रके समान बान पड़ते
थ । फुकाराते हुए शरीरी भक्ति कुम्भित हुए महातेकपी
रागने इनरा तथा अन्य प्रभारक तीर शक्रोश्च भी भीष्ममक
ऊपर प्रयाग दिया ॥ ४२-४५ ॥

ह्यार्षे श्रीमद्रामायण बाचमीरूप आदिशस्य बुद्धिभक्त्यै पञ्चोन्मत्ततम्य सण ॥ ९९ ॥
११ प्रका श्रीगर्लर्भिनर्भिन अत्रामायण अत्रिभारके बुद्धिभक्तने भिन्नातर्वा का पूरा बुद्ध ॥ ९९ ॥

भ्यसुरेण समाविष्टः सोऽश्रेण रघुपुङ्गवः ।
ससर्जार्जं महोत्साह पायसं पावकोपमा ॥ ४६ ॥

उरु आगुराकते आहूत हुए अग्नि-गुप्त्य ठेकपी मरान्
उत्साही रघुकुश्लिभक भीरामने भाभेयात्तक प्रमेम किम् ॥
अग्निवीतमुखान् यापांस्तत्र स्वर्गमुखानपि ।
चन्द्रार्धचन्द्रपफवांश्च धूमकेतुमुखानपि ।
प्रहन्मत्तवर्षांश्च महोत्साहमुजसस्थितान् ॥ ४७ ॥
विपुल्लिखोपमांश्चापि ससर्ज विविधाम्पारन् ।

उत्तके हार उठोने अग्नि सूर्य, चन्द्र, भयंकर धूम-
केतु, मर, तन्त्र, उरुका तथा निकलीकी प्रभाके समान प्रकटित
मुजबाधे नाना प्रकारके बाज प्रकट किये ॥ ४७ ॥

ते रावणशरा घोरा राघवात्प्रसमाहताः ॥ ४८ ॥
विलय जम्बुराकशे जम्बुद्वीप सहस्रशः ।

भीरुनायकीके भाभेयाकते आहूत हो रावणके वे
भयंकर बाज आक्राममें ही सिधीन हो गये तथापि उनके
शय छड़के मानर मोरे गये वे ॥ ४८ ॥

उत्स्र निहत बद्धा रामेनाह्निप्रकमप्य ॥ ४९ ॥
हृद्य भेतुस्ततः सर्वे कपयाः क्रमरुपिणः ।

सुप्रीयाभिमुखा धीराः सम्परिक्षिप्य राघवम् ॥ ५० ॥

मनपात ही मरान् कर्मा करनेबात भीष्मने उर
भासुपराकते नष्ट कर दिया, यह देस इच्छतुखर रूप धारण
करनेबाधे सुधीन आदि सभी धीर मानर भीष्ममत्र शरों भेरे
से परेकर हर्तनष्ट करने क्ये ॥ ४९-५० ॥

उत्स्रत्स्रं विनिहत्य रामया
प्रसस्र तद् रावणबाहुनिम्बुत्तम् ।
मुशान्वितो वाघारयिमहात्मा
विनेतुकरुण्येमुद्रिताः कपीभराः ॥ ५१ ॥

हृद्यरमन्दल महात्मा भीष्म रावणके हाथसे गूट हुए
उर आसुपराकता कर्तव्यक विनाश करके बड़े प्रकट हुए भेरे
धनर-नृपयति भानन्दमन हा उध सारते छिन्नाष्ट करने क्यो।

शततम सर्ग

राम और रावणका युद्ध, रावणकी शक्तिस उद्दमणका मूर्च्छित
दाना तथा रावणका युद्धसे भागना

तस्मिन् प्रसिद्धेन इत्य मु रावणा रासमाधिक ।
मप्य ए जिमुनें यम ब्रजधापारममन्तरम् ॥ १ ॥
मयन सिद्धि राद्रमन्वद्वय महागुतिः ।
उत्पद्य रावणा धीमै रावणाय प्रशक्यम् ॥ २ ॥

भन्ने उर अत्रक मर हा खनार महात्तमी रावणक
रावणने दूता बाध प्रकट दिया । उरुन क-नरुध भीष्मक
ऊपर एक दृश्य भयंकर अत्रक धाइनस भावजन किता
किनी मरगुरने कयय पा ॥ १ २ ॥

उक्तः शूलानि निबद्धेर्वादाश्च मुसलानि च ।
 कर्मुक्त्वाद् वीर्यमानानि घञ्जसापि सर्षपाः ॥ ३ ॥
 मुद्रयाः कूटपाशश्च वीताश्वारमयस्तथा ।
 निष्पत्तुर्विधावलीक्ष्या घाता इव युगक्षये ॥ ४ ॥
 उच्यते स्वयं रावणके पनुपते वरके समान इव और
 वनके हुए हुए, गदा, मूक, मुद्रा, कूटपाश तथा चम-
 पयवी अग्नि अदि मोक्षि-मोक्षिके लीखे मन्त्र छूने को
 माना प्रत्यक्षमें बाबुके विविध रूप प्रकट हो रहे हैं ॥३-४॥
 तद्वत् रावणः भीमानुत्तमात्मविदा धरः ।
 जघन परमार्थमेव गान्धर्वेण महाघुतिः ॥ ५ ॥
 तब उसम मन्त्रके हाथमेंमें भेद महातेजस्वी भीमान्
 रजुनाथीने गान्धर्वनामक भेद मन्त्रके द्वारा रावणके उच
 मन्त्रके ध्वस्त कर दिया ॥ ५ ॥
 तस्मिन् प्रतिहतेऽस्त्रे तु रावणेव महात्मना ।
 रावणः क्रोधध्वज्राहा सौरमन्त्रमुदीरयत् ॥ ६ ॥
 महात्मा रजुनाथीके द्वारा उच मन्त्रके प्रतिहत हो जानेपर
 रावणके नेत्र झपटे अन्ध हो गये और उचने सूर्यमन्त्र
 प्रयोग किया ॥ ६ ॥
 ततश्चक्रापि निष्पेतुभास्वरपि महान्ति च ।
 कर्मुक्त्वाद् भीमयोगस्य दशग्रीवस्य धीमताः ॥ ७ ॥
 फिर ता मन्त्रक वेगशाली हुमिस्मन् रावण दशग्रीवके
 पनुपते बड़े-बड़े तेजस्वी मन्त्र प्रकट होने लगे ॥ ७ ॥
 तैपसीवृत्तान् वीत सम्पत्तुः समस्ततः ।
 पयस्त्रिभ्य विदो वीताश्वन्सूर्यप्रहारेव ॥ ८ ॥
 चन्द्रमा और सूर्य अदि ग्रहोंके समान अन्धकारके वे
 दोषीमान् मन्त्र-शक्त एवं अन्ध प्रकट होते और मरते थे ।
 उनसे अन्धकारमें प्रकाश का गया और सम्पूर्ण विशाल
 उन्नाश्वि हो उठी ॥ ८ ॥
 यानि चिच्छेद् वाणीषैश्चक्राणि तु स रावणः ।
 म्युपधासि च शिवापि रावणस्य खमुमुखे ॥ ९ ॥
 परंतु भीममन्त्रकीने अपने बाणमुद्धाराय सेनाके
 मुनिपर रावणके उन चक्रों और विविध म्युपधोंके टुकड़े
 टुकड़े कर डाले ॥ ९ ॥
 तद्वत् तु हत ह्यु रावणो राक्षसाधिपः ।
 विष्याथ दशभिर्वापै राम सर्वेषु ममसु ॥ १० ॥
 उच मन्त्रके नष्ट हुआ देख राक्षसराज रावणने दस
 बाणोंद्वारा भीममन्त्रके खरे मर्मस्पर्शमें गहरी चोट पहुँचानी ॥
 स विदो दशभिर्वापैर्महाकर्मुकलिःसृतेः ।
 रावणेन महातया म प्रकम्पस्त रावणः ॥ ११ ॥
 रावणके विप्राक पनुपते दूरे हुए उन दस बाणोंसे
 बाणक हनेपर भी महातेजस्वी भीरुनाथकी विचलित नहीं हुए।

ततो विष्याथ गात्रेषु सर्वेषु समितिजपः ।
 रावणस्तु सुसुहृदो रावण वहुभिः शरैः ॥ १२ ॥
 ततश्चात् समरविजयी भीरुवीरने अत्यन्त कुपित हो
 बहुतेके बाण मारकर रावणके खरे अश्रुमें पन कर दिया ॥
 पतस्मिन्सरे हृदो रावणस्यानुजो बली ।
 सङ्गमणः सायकान् सप्त अप्राह परवीरहा ॥ १३ ॥
 इसी बीचमें शत्रुवीरोंका खार करनेवाले महावीरमनुज
 सम्पानने कुपित हो खल खरक हाथमें लिये ॥ १३ ॥
 तैः सायकैर्महायेनै रावणस्य महाघुतिः ।
 पञ्च मनुष्यदीर्घे तु तस्य चिच्छेद् वैकथा ॥ १४ ॥
 उन महान् वेगशाली सायकोंद्वारा उन महातेजस्वी
 दुर्मिषाकुमारने रावणकी अस्त्रके, किये मनुष्यकी खोपड़ीका
 चिह्न था, कई टुकड़े कर डाले ॥ १४ ॥
 सारयेन्नापि बाणेन शितो ज्वलितकुण्डलम् ।
 जहार सङ्गमणः भीमान् नैर्भूतस्य महावला ॥ १५ ॥
 इतक बाद महावीर भीमान् व्यमनने एक बाणसे उच
 राक्षसके खरपिच्छ कान्तगाठे हुए कुण्डलमें मण्डित मन्त्रक
 भी चट किया ॥ १५ ॥
 तस्य बाणैश्च चिच्छेद् धनुर्गजकरोपमम् ।
 सङ्गमणो राक्षसेन्द्रस्य पञ्चभिर्निशितैस्तथा ॥ १६ ॥
 इतना ही नहीं सम्पानने पाँच पने बाण मारकर उच
 राक्षसपक्षके हाथीकी सूँहके समान मूठे पनुपक्षे भी चट डाला ॥
 नीलमेघनिभाश्वस्य सङ्गम्यान् पर्वतोपमान् ।
 अघान्प्रप्लुत्य गह्वरा रावणस्य विभीषणम् ॥ १७ ॥
 तदनन्तर विभीषणने उच्छ्वस्त्र अपने गदासे रावणके
 नीच सेपके समान क्षान्तिनाभे दुन्दुवर पर्वताश्वर बाणोंके भी
 मार लिया ॥ १७ ॥
 इवादात् तु तवा वेगात्प्रप्लुत्य महारयात् ।
 श्लेषमहारयात् क्षीर्मं क्षातरं प्रति रावणम् ॥ १८ ॥
 बाणोंके मारे जानेपर रावण अपने विप्राक राक्षसे केन-
 पूर्वक हृद पड़ा और अपने माँपर उठे बड़ा क्रोध आया ॥
 तदा शक्ति महाशक्तिः प्रदीप्तमानीमिष ।
 विभीषणाय चिक्षेप राक्षसेन्द्रः प्रतापयान् ॥ १९ ॥
 उच उच म्यान् शक्तिशाली प्रदीप्त राक्षसपानने विभीषण
 को मारनेके लिये एक वज्रके समान प्रनक्षित शक्ति बरपायी ॥
 म्यातामेव ता बाणैस्त्रिभिश्चिच्छेद् उरमणः ।
 अयोवृत्तिष्ठत् सन्मदो वानपाया महारणे ॥ २० ॥
 वह शक्ति अभी विभीषण तक पहुँचने भी नहीं पसी
 थी कि सम्पानने तीन बाण मारकर उसे बीचमें ही चट
 दिया । यह देख उच महाहर्षमें बनपेस म्यान् हर्षन्कर
 रूँब उठा ॥ २ ॥

सम्पत्ता विधा क्षिप्र शक्तिः कश्चनमात्रिणी ।

सविस्त्रुमिज्ञा ज्वलिता महोत्सेये दिवश्च्युता ॥ २१ ॥

खेनेषी मायसे अंबकुल बह शक्ति हीन मारुतेम विपत्त
होकर दृष्टीपर गिर पड़ी, मानो अक्षयघटे फिनगरिसोसहित
बड़ी मरी उरुध दूधर गिरी ॥ २१ ॥

तता सम्भाषिततरा कश्चेनापि दुरासवाम् ।

जग्राह विपुला शक्तिं क्षीप्यमाना स्वतेजसा ॥ २२ ॥

दरनतर एकवने निभीरवको मारुतेक क्षिपे एक देवी
विशाल शक्ति हायमे भी जे मयनी अमोक्ताके क्षिपे विशेष
विचयत थी । अरु भी उसके वेगको नहीं छह ऊरुया या ।
बह शक्ति अपने तेजसे उरीत हो रही थी ॥ २२ ॥

सा धेगिया वज्रवता राघवेन युवात्मना ।

जग्राह सुमहातेजा वीरशक्तिसमप्रभा ॥ २३ ॥

युवात्मा बखान् राघवके द्वारा हायमे भी हुई बह वेग-
शक्तिनी महातेजस्विनी और वज्रके समान वीरिगती शक्ति
अपने दिव्य शक्तसे प्रकथित हो उठी ॥ २३ ॥

एतस्मिन्काले वीरो लक्ष्मणस्त विभीषणम् ।

प्राणसंशयमपन्नं लक्ष्मणमपघत ॥ २४ ॥

इली बीचमे विभीषणको प्राण-संशयकी अवस्थामे पड़ा
बेल वीर अस्मयने द्वारा उनकी उरु की । उन्हें पीछे करके वे
स्वर्ग शक्तिके सामने लड़े हो गये ॥ २४ ॥

त विमोहयितुं धीरश्चापमामय्य लक्ष्मणः ।

राघवा शक्तिहस्तं च शरवर्षैरवाकिरत् ॥ २५ ॥

विभीषणको बचानेके क्षिपे वीर अस्मय्य अपने धनुषको
लींकर हायमे शक्ति क्षिपे लड़े हुए राघवपर कर्णोंकी कर्ता
करने को ॥ २५ ॥

कीर्षमाया शतौघेन विस्फुटेन महात्मना ।

न प्रहर्तुं ममकाके विमुक्षीहृतविक्रमा ॥ २६ ॥

महात्मा अस्मयके छोड़े हुए बच-ऊर्ध्वको निघाना
कनकर राघव अपने मारुको मारनेके परक्रमसे विमुक्त हो
गया । अब उसके मनमे प्रहार करनेकी इच्छा नहीं रह
गयी ॥ २६ ॥

मोक्षित आतर इदु लक्ष्मणेन स राघवाः ।

लक्ष्मणाभिमुखसिद्धिर्निर्वा वधसमग्रवीत् ॥ २७ ॥

अस्मयने मेरे मारुको बचा किया यह बेल एक उनकी
ओरें हँस करके लड़ा हो गया और इध प्रकार बोझ—॥२७॥

मोक्षितस्ते बलदस्ताधिन् वसाधेव विभीषणा ।

विमुष्य यस्तस शक्तिस्यपीयं बिनितपत्पत् ॥ २८ ॥

अपने मरुपर भयं रहनेवाले अस्मय । दुमने ऐध
प्रयत्न करके निभीषणको बचा किया है इहिलिपे अब उस
राघवको ओहकर मैं दुम्हारे ऊपर ही इध शक्तिकर प्रहार
करत है ॥ २८ ॥

एषा ते हृदयं भित्त्वा शक्तिर्होहितलक्षणा ।

मत्वाहुपरिपोत्सृष्टा प्राणान्नाय वासति ॥ २९ ॥

एष शक्ति लभयते ही धनुषोंके लुत्ते लक्ष्मण
है यह मेरे हाथसे चूटते ही दुम्हारे हृदयको निर्दोष करके
प्राणोंको अपने लय के जायगी ॥ २९ ॥

इत्येषमुक्त्वा वा शक्तिमएषां महात्मनाम् ।

मयेन मापाविहिताममोषां शत्रुघातिनीम् ॥ ३० ॥

लक्ष्मणाय समुद्दिश्य उरुहस्तीमिवा तेजसा ।

राघवः परमकुदाक्षिण्ये च नन्दत् ॥ ३१ ॥

ऐध अरु अत्यन्त कुतित हुए एकवने मन्मथकी
मापासे निर्मित, आठ पयोंसे विभूषित तथा मन्मथपर
शब्द करनेवाकी, उस अमोष एवं शत्रुघातिनी शक्तिको जे
अपने तेजसे प्रकथित हो रही थी, अस्मयको जल करके
अध दिया और बड़े जेरते गर्जना की ॥ ३१ ॥

सा क्षिप्र भीमवेगेन घञ्जाघानिसमस्ता ।

शक्तिरभ्यपतत् घञ्जाघ्नकर्मणं एणमूर्धनि ॥ ३२ ॥

वज्र और अमानिके समान गड़गड़ाहट पैदा करनेवाकी
बह शक्ति युद्धके मुद्देपर म्यालक बगसे पञ्जवी गयी और
अस्मयको बगपूर्वक कनी ॥ ३२ ॥

तामनुष्णाहरेच्छक्तिमापतन्ती स राघवा ।

लक्ष्मणस्तु लक्ष्मणायैति मोघा भव हतोद्यमा ॥ ३३ ॥

अस्मयकी ओर आती हुई उस शक्तिके अस्म करके
मानान् भीरुमने कर—अस्मयको अस्मय हो, तैय प्राण-
माशक्तिपरक उद्योग नह हो अतएव तू व्यर्थ हो ॥ ३३ ॥

राघवेन रणे शक्तिः कुन्तेयापीविबोधत् ।

मुक्त्वाऽऽशरस्यभीतस्य लक्ष्मणस्य ममका सा ॥ ३४ ॥

बह शक्ति विपपर शक्ति समान मन्कर थी । राघुकीने
कुतित हुए राघवने अब उसे छोड़ा तब बह दूरत ही निर्मम
वीर अस्मयकी कर्तमें बूब गयी ॥ ३४ ॥

न्यपतत् सा महावेगा लक्ष्मणस्य महोरसि ।

जिह्वेवोरगराजस्य क्षीप्यमाना महायुति ॥ ५ ॥

उद्यो राघवयवेगेन सुहृत्सवगाहया ।

शक्त्या विभिद्यहृदया पपात मुवि लक्ष्मणा ॥ ३६ ॥

गगणक बामुकिकी शिवाके अयन देरीपानन कर
महातेजस्विनी और महावेगकी शक्ति अब अस्मयके निघण
बधसकनर गिरी तब राघवके केससे बहुत गहराँ तक पहुँच
गयी । उस शक्तिते हृदय निर्दोष हो जानेके कारण अस्मय
दृष्टीपर गिर पड़े ॥ ३६ ॥

लक्ष्मणस्यं समीपस्थं लक्ष्मणं प्रेक्ष्य राघवा ।

आवस्तंहामहातेजा विपण्यहृदयोऽभयत् ॥ ३७ ॥

महातेजस्वी रघुनाथकी पध ही लड़े मे । वे अस्मयको

वत् अन्तरामे देवकर आत्मेहके कारण मन-ही-मन विपादमे
हूव गये ॥ १० ॥

स मुहूर्तमिव ध्यात्वा वाप्यपर्याकुलेक्षणः ।

बभूव सरम्भतरो युगास्त इव पाककः ॥ १८ ॥

ये दो बड़ी तक चिन्तामे हूने रहे । फिर नेत्रोंमें आँसू
मरकर प्रकम्पकर्म प्रकथित हुई अग्निके समान मरुत
ऐससे उहीस हो उठे ॥ १८ ॥

न विपादस्य काल्येऽयमिति सचिन्त्य राघवः ।

चक्रे घृतमुलं युक्तं रावणस्य यत्ने धृता ।

सर्वभस्मेन महता क्लमप्य परिधीक्ष्य च ॥ १९ ॥

मह विपादका समय नहीं है' ऐस खेचकर भीरुनाथकी
रगणके बचक निश्चय करके महान् प्रकलके द्वारा खरी घण्टि
झाकर और क्लमप्यकी ओर देखकर अस्त मरकर युद्ध
करने लगे ॥ १९ ॥

स दूर्वा लतो रामः शक्यया भिन्न महाहये ।

क्लमप्य सधिरासिधं सपन्नगमिबानकम् ॥ ४० ॥

उत्तमात् भीरुमने उठ महकमरमें धकिते विरिषं हुए
क्लमप्यकी ओर देला । व कृतमें क्यपप होकर पड़े ये और
संयुक्त कर्मके समान ज्ञान पड़ते थे ॥ ४० ॥

यामपि प्रसिद्धां शक्तिं राघवेन बलीयसा ।

पात्तस्ते हरिभेद्य न शेकुत्यमर्षितुम् ॥ ४१ ॥

अस्त क्लमान् राघवकी चक्री हुई उठ घण्टिके
क्लमप्यकी झटपटे निष्कलनेक किये बहुत प्रयत्न करनेपर भी
ये मेह वानराण कल न हो सके ॥ ४१ ॥

सर्वैवात्रैव धात्रीपैस्ते प्रबेकेण रक्षसाम् ।

सौमित्रो सा विनिर्भिद्य प्रथिद्य धरणीतकम् ॥ ४२ ॥

क्योंकि ये वानर भी उच्छ्वितेमवि राघवके बाध-समूहों-
से बहुत पीड़ित थे । वह शक्ति सुमिबाहुगारके धारीको
किरीस करके परतीतक पहुँच गयी थी । ४२ ॥

तां करार्यां परासूक्ष्म यामा शक्ति भयावहाम् ।

पभञ्ज समरे कृद्रो यन्मान् विषकर्ष घ ॥ ४३ ॥

ज महाकवी रघुनाथकीने उठ भयंकर शक्तिसे अपने
शेपे हासे पकड़कर क्लमप्यके धारीसे निष्कल और
क्यपपकर्ममें कुण्ठि हो उठे लोह शक्य ॥ ४३ ॥

तस्य निष्कयतः शक्तिं राघवेन यलीयसा ।

दयः सर्वेषु गात्रेषु पातित्या मममेदिनः ॥ ४४ ॥

भीरुमन्कवी जल क्लमप्यके धारीसे शक्ति निष्कल रहे
ये उस क्लम महाकवी राघव उनके क्लमप्य भङ्गोपर मर्ममेरी
रगणोंकी बर्तों करता रहा ॥ ४४ ॥

अचिन्तयित्वा क्वं धाणान् समादिक्ष्य च लक्ष्मणम् ।

धर्मवीर्य हनुमत्सं सुमीव च महाकपिम् ॥ ४५ ॥

परंतु उन कालोंकी परता न करके क्लमप्यको हृदयसे
जगकर भागान् भीरुम हनुमन् और महाकपि सुमीवसे
सके— ॥ ४५ ॥

क्लमप्य परिचार्यैव विद्युष्य धनरोत्तमा ।

पराक्रमस्य कल्योऽय सप्रसतो मे चिरन्तितः ॥ ४६ ॥

अधिवरो । तुमक्या क्लमप्यको इली तब एक अंगरेसे
केकर लड़े रहे । अब मेरे किये उस पराक्रमक्य क्लमप्य भाव
है, जो मुझे चिरकालसे अभीष्ट था ॥ ४६ ॥

पापात्मार्यं दृशप्रियो यध्मतां पापनिक्षयः ।

कालित्वा पल्लवस्त्येव घनोत्स मेघदर्शनम् ॥ ४७ ॥

मह पापात्मा एवं पापपूर्ण विन्कर रत्ननशाके दशमुल
रावणक्य भाव मार बाध्य जाम, यही सक्ति है । जैसे पर्येक
धीष्य श्रुतक अन्तमें मेघक दहनकी इच्छा रखी है, उसी
प्रकार मैं भी इच्छा बप करनेके किये चिरकालसे इस देवना
थाहा ॥ ४७ ॥

मस्मिन् मुहूर्ते नधिरात् सत्य प्रतिभूयामि वा ।

भरावणमराम वा जगद् प्रक्यथ धाम्ना ॥ ४८ ॥

व्यमनो । मैं इस मुहूर्तमें तुमारे कर्मने महकवीप्रसिद्धा करके
क्या है कि कुछ ही देरमें यह संकर राघवसे उचित दिखानी
देगा या उमते ॥ ४८ ॥

राज्यनाशं कमे वास वृक्षके परिधावनम् ।

वैद्येक्यम परामर्शो रक्षोभिष्य समागमम् ॥ ४९ ॥

प्रथ बुद्ध महाघोर क्लेशक्य निरयोपमः ।

अथ सर्वमह त्यक्त्ये निहत्वा राघव रणे ॥ ५० ॥

धरे क्लमप्य नाथ, क्लमप्य निगाव, दक्षकाल्यकी रीढ़
धूप, बिदेहकुम्भी कीटाक्य उच्छ्वारा अग्रहरण तथा राखके
वाह संमाम—इन क्लमके कारण मुझे महापत्त बु ल छाता
पड़ा है और नरकके समान क्ल उठला पड़ा है किंतु रण-
भूमिमें राघवक्य बप करके भाव मैं धरे बु-सोसे घुटकाय
ब कर्त्तगा ॥ ४९-५० ॥

यद्यं धानर सैन्य समानीतमि मया ।

सुमीवक्य हृता राम्ये निहत्वा धाठिन रणे ।

यद्यं सामारः म्रान्तः सेतुपदक्य सागरे ॥ ५१ ॥

सोऽयमद्य रणे पापक्यसुविपयमागता ।

वधुर्विजयमागत्य नाय जीवितुमर्हति ॥ ५२ ॥

कितने किये मैं धनरोंकी मह विधाक्य सेना धाप क्यया
है किन्तु कारण मैंने मुझमें शकीक्य बप करके सुमीवको
राखकर निगाव है तथा कितने उदैससे सुभ्रुप पुत्र बौध
और उने धर किया बट धापी राघव और मुझमें मरी
अंतोक्य क्लमने उच्यकित है । मर दियेवमें अक्षर भव यह
कीवित रदने क्यय नहीं है ॥ ५१-५२ ॥

हृदि हृदिविपस्थेषु सर्पस्य मम राक्षसः ।
यथा या वैततयस्य हृदि प्राप्ते भुज्जगामः ॥ ५३ ॥
पश्चिमाश्रते श्वारक्षरी शिवा प्रसार करनेवाले सर्पकी
आँकोंके खमने आकर बैठे कोई मनुष्य भीक्षित नहीं बच
सक्य भयवा जैसे किन्तवानन्दन गरुडकी हृदिमें पड़कर धीरे
महान् सर्प भीक्षित नहीं बच सक्य, उसी प्रकार मन्त्र राक्षस
मेरे सामने आकर भीक्षित या सङ्घुषण नहीं छेद सक्य ॥ ५३ ॥
सुख पश्यत दुर्धरा युद्ध धानरपुङ्गवाः ।
भासीनाः पर्यताप्रेषु मम राक्षसस्य च ॥ ५४ ॥
दुर्धरा गानरप्रेमणियो ! मम तुमझोगे फँसके
शिलरज्ज्वर पंडकर मेरे और राजपके इत युद्धके सुखपूर्वक
देखो ॥ ५४ ॥
मया पश्यन्तु रामस्य रामस्य मम सयुगे ।
त्रयो लोकः सगन्धर्वाः सदेवाः सर्विचारजाः ॥ ५५ ॥
आम्य संग्राममें देवता गन्धर्व, सिद्ध, श्रुति और चारको-
सहित तीनों लोकके प्राणी रामका रामत्व देखें ॥ ५५ ॥
मया कर्म करिष्यामि पाङ्गोक्ताः सचराचराः ।
सदेवाः कथयिष्यन्ति पावद् भूमिर्भरिष्यति ।
समागम्य सदा साके यथा युद्ध प्रवर्तितम् ॥ ५६ ॥
'मया मैं वह पराक्रम प्रकट करूँगा, किन्तु सबक
या पृथ्वी क्षयण रहेगी तबक चरचर जगत्के जीव और
देवता भी तथा लोकमें परक होकर बर्षा करेंगे और किन्
प्रकार युद्ध हुआ है उसे एक वृत्ते करेंगे' ॥ ५६ ॥
पश्यन्तु स्यात् शितैर्वाप्यैस्तस्यश्चान्मनूयैः ।
माज्ञापान रणे रामा दशमीव समाहिताः ॥ ५७ ॥
ऐस प्रकार भगवान् भीराम खबपान हो अपने सुवर्ण
नृपित होने बर्षोंके रणभूमिमें दशान्न राक्षसके क्षयण
करने लगे ॥ ५७ ॥

तथा प्रतीतिर्नाराचैर्मुंसस्यैवापि राक्षसः ।
अभ्यर्चयत् तथा रामं धाराभिरिव तोषत् ॥ ५८ ॥
इसी प्रकार बड़े मध ककरी भय शिपय है, उसे
कर उखन श्री श्रीरामपर लम्बीके नाराचों और मूँसकी बर्षा
करने लग ॥ ५८ ॥
रामराक्षसमुत्तानामप्योष्यमभिधिप्रवृत्तम् ।
वराणां च शराणां च बभूव तुमुष्ण ललाः ॥ ५९ ॥
एक वृत्तेपर घोट करते हुए राम और राजपके
छोटे हुए भेड़ बाणोंके परस्पर टकरानेसे बड़ा भयंकर क्षय
प्रकट होय था ॥ ५९ ॥
विच्छिन्नाश्च विकीर्याश्च रामराक्षसजोः शराः ।
भन्तारिशात् प्रवीक्षाप्रा नियेतुर्धरपीठके ॥ ६० ॥
भीराम और राजपके क्षय परस्पर किन्-किन् होकर
अच्छरते पृथीपर गिर पड़ते थे । उत क्षय उनके भयना
वड़े ठीस दिखानी देते थे ॥ ६० ॥
त्योर्गर्वावसिर्धयो रामराक्षसयोर्महात् ।
शस्त्राः सर्वमूत्रतां बभूवामुतोपमा ॥ ६१ ॥
उम और राजपके बनुषकी प्रत्यज्ञाते प्रकट हुए आन
टंकारजनि समस्त प्राणिकोंके मनमें शत्रु उत्पन्न कर देती
थी और बड़ी अद्भुत प्रवृत्त होती थी ॥ ६१ ॥
स कीर्यमजाः शरज्जाम्बुद्धिभि
मंहातराज वृत्तिभनुष्णवर्षिता ।
भयात् प्रतुद्राव समेस्य राक्षसो
ययामिस्तन्यभिहतो बभूवकाः ॥ ६२ ॥
जैसे वायुके पनेसे आकर मेष किन्-किन् हो जय है
उसी प्रकार वीरिमान् बनुष बारण करनेवाले महामय भीरामके
बाण-छमूँसकी वगैरे अद्भुत एवं पीकित हुआ राजप मने
मारे बर्षते मया गया ॥ ६२ ॥

इहाप्ये धीमत्प्रामात्ये वाक्यीकीने वादिशब्दे युद्धशब्दे सततमा सर्गः ॥ १ ॥

इस प्रकार धीमत्प्रामात्ये धीमत्प्रामात्ये धीमत्प्रामात्ये धीमत्प्रामात्ये धीमत्प्रामात्ये धीमत्प्रामात्ये धीमत्प्रामात्ये ॥ १ ॥

एकाधिकशततम सर्ग

भीरामका बिलाप तथा इनुमान्जीकी लायी हुई औपधिके सुपेणद्वारा
किये गये प्रयोगस लक्ष्मणका सचेत हो उठना

राक्षसा निपातितं ह्यु राक्षसेन धर्मिपसा ।
सहस्रमणं समरे दूर शापितोपपरिच्युतम् ॥ १ ॥
स क्षया तुमुल युद्ध राक्षसस्य दुरात्मनः ।
पिच्छुश्चनेय पाणीधान सुपेणमिदमप्रवीत् ॥ २ ॥
महाबली राक्षसे दूरवीर लक्ष्मणके अन्धी धरिने
युद्धमें बचवाणी कर दिया था । वे रक्तके प्रवाहते नष्ट हो

थे । वह रक्त भगवान् भीरामने दुरात्मा राजपके लक्ष जोर
युद्ध करके राज-छमूँसकी बर्षा करते हुए ही सुपेणके रूप
प्रकार कहा— ॥ १ ॥
एव राक्षसकीयेण लक्ष्मणः पतित्य मुनिः ।
सपपञ्चशत पीरो मम शोकमुदीरयत् ॥ ३ ॥
'व भीर लक्ष्मण राजपके पराक्रमसे पापक हार पृथीपर

पदे ईं ध्येयं चेतः सायं ह्युप सर्वांश्च भक्तिं उच्यते ॥ १ ॥
 इत्थं भक्त्याये इहैरेवैरुक्ते मेव शक्तं बद्धं च राहै ॥ २ ॥
 शोभिताद्रमिमं वीरं प्राणैः प्रियतरं मम ।
 पश्यतो मम क्व शक्तिर्षोऽनु पयाकुलमनः ॥ ३ ॥

ये वीर मुमिमाकुमार मुझे प्राणोंसे भी बद्धकर प्रिय हैं,
 इन्हें सहृदयान देखकर मेरा मन म्पकुल हो रहा है, ऐसी
 रक्षामें मुझमें सुद करनेकी शक्ति क्या होगी ? ॥ ४ ॥

मय स समररक्षाभी भ्राता मं शुभदृष्टानः ।
 यदि पश्यत्यमापन्नः प्राणैर्मै किं सुखेन वा ॥ ५ ॥

ये मेरे शुभदृष्टान भाई, जो क्या सुदृष्ट होकर
 रक्षते वे यदि मर गये तो मुझे इन प्राणोंके रखने और
 सुख मनेनेसे क्या प्रयाजन है ? ॥ ५ ॥

अश्लीलं हि म धीर्यं अश्लीलं करान् धनुः ।
 अश्लीलं व्ययस्तीव्रं हि विद्यापवशा गता ॥ ६ ॥

इत समय मेरा फलक अश्लील हो रहा है, हाथसे
 धनुष लकड़का-का च रहा है मेरे अश्लील शिथिल हो रहे
 हैं और नेत्रोंमें आँसू भर गये हैं ॥ ६ ॥

अश्लीलं गम्राणि मन्वयाने नृणामिष ।
 किन्त्या मे वर्धते तीव्रा मुमुष्यापि च जायते ॥ ७ ॥
 भ्रातरं निहतं ह्यनु रावजेन दुरात्मना ।
 विपन्नतु तु दुःस्मृतं मर्मम्यभिहतं शृणुम् ॥ ८ ॥

जैसे स्वप्नमें मनुष्योंके शरीर शिथिल हो जाते हैं, वही
 रण मेरे इन भाइयोंकी है। मेरी छीम किन्त्या बढ़ती च रही है
 और दुरात्म रावणके हाथ पापक होकर मार्मिक अशक्त
 मयन्त पीड़ित एवं दुःस्मृत हुए भाई अशक्तके अहर्हत
 देख दुःस्मृत करनेकी इच्छा हो रही है ॥ ७-८ ॥

रावणो भ्रातरं ह्यनु प्रियं प्रार्थं यद्विचारम् ।
 दुःखेन महत्वाविद्या ध्यानशोकपरायणः ॥ ९ ॥

भीरुनापत्री बाहर बिचरनेवाला प्रार्थकोंके समान प्रिय भाई
 अशक्तके इत अहसासे रक्ष महान् दुःखसे म्पकुल हो गये
 किन्त्या और शोकमें हुए गये ॥ ९ ॥

पर विद्यात्मापन्ना विजयत्पाकुलसन्निधयः ।
 भ्रातरं निहतं ह्यनु लक्ष्मण रणयास्तुषु ॥ १० ॥

उनके समने वहा विद्या कुशल । इन्द्रियोंमें म्पकुल
 पा गयी और वे स्वन्मित्री धूममें पापक हाथर पड़े हुए
 भाई अशक्तके अह रगकर निम्न करने लगे— ॥ १ ॥

विजयापि हि म शूरं न विद्यायापकृतत ।
 अशक्तुर्विपद्यन्तः च प्रीतिं जनयिष्यति ॥ ११ ॥

एतदि । अशक्तममें विद्या भी मित शय ले मुझे
 प्रणयन नहीं होगी । अशक्त समने फलक भन्ती शोदनी

निलेरे हैं तो भी वे उसके समने कौन-का आश्वास वेदा कर
 लकीं ? ॥ ११ ॥

किं मे सुखेन किं प्राणैर्युद्धकर्षे न विद्यत ।
 यत्राय निहतः शोते रणामूर्धनि लक्ष्मणः ॥ १२ ॥

अब इत सुदृष्टे अथवा प्राणोंकी रक्षसे मुझे क्या प्रयोजन
 है ? अब लड़ने भिड़नेकी क्या अभयपत्रा नहीं है । अब
 संग्रामक मुहानेर मारे आकर अशक्त ही लड़के किम्य हो गये,
 वन युद्ध अन्तेसे क्या धन्य है ? ॥ १२ ॥

पथैव मां यत यात्तमनुयाति महापुति ।
 अहमप्यनुयास्यामि तपैथैन यमक्षयम् ॥ १३ ॥

कनमें आठ समय बेश महातकली अशक्त मेरे पीछे-
 पीछे चले आये थे, उथी लक्ष्मण कमलोकमें जाते समय मैं भी
 इनके पीछे-पीछे आऊँगा ॥ १३ ॥

इत्यनुजयो नित्यं मा स नित्यमनुयातः ।
 इमामधस्थां गमितो राक्षसैः फृत्योधिभिः ॥ १४ ॥

एवम् । अ लक्ष्मण मुझमें अनुयाण रखनेवाले मेरे प्रिय
 क्युञ्ज ये, उन्से युद्ध करनेवाले निशाचरोंने भाव उनकी
 मर दशा कर ली ॥ १४ ॥

देशे देशे कलत्राणि दशे दश च यान्धयाः ।
 त तु देशे न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः ॥ १५ ॥

प्रत्येक देशमें कियों मिथ लकड़ी हैं, देश-देशमें जड़ि-
 मार उपलब्ध हो लकड़े हैं परंतु देख कोई देश मुझे नहीं
 दिखायी देता जहाँ खादर भाई मिथ लके ॥ १५ ॥

किं तु राम्येन दुर्धरं लक्ष्मणेन विना मम ।
 कर्षं पश्याम्यह त्यन्मां सुमित्रा पुत्रपत्सलक्ष्मम् ॥ १६ ॥

दुर्धरं वीर अशक्तके किता मैं राम्य लकर क्या करूँगा ?
 पुत्रपत्सलक्ष्मण सुमित्राके किम तद पान कर लूँगा ॥ १६ ॥

उपाज्जम न दास्यामि सोऽनुं वत्त सुमित्रया ।
 किं तु वक्ष्यामि कीसन्तां मातरं किं तु कैकेयीम् ॥ १७ ॥

माता सुमित्राके दिये हुए उल्लेखके अन्ते लक्ष्मण ?
 मातर कैकेया और कैकेयीके क्या बगत लूँगा ? ॥ १७ ॥

भरत किं तु पश्यामि शत्रुञ्च च महापत्नम् ।
 सह तन पत्नं यातो विना तन्वगता कथम् ॥ १८ ॥

भरत और महापत्नी शत्रुञ्च वर पूर्वमें कि भाग अशक्त
 के साथ बनमें गये थे फिर उनक किता ही देम कीर भाप
 ले उन्हें मैं क्या उल्लेख लूँगा ? ॥ १८ ॥

इदं मरणं धेवा न तु पशुपिगहयम् ।
 किं मया नृपुत कम वृत्तमप्यत्र जगनि ॥ १९ ॥

यन म ध्यामका भ्राता निहतभ्रातरत मितः ।
 अत्र मेरे प्रिय पत्नी मर गयी अशक्त है । जहाँ
 क्युञ्जोंमें आकर उनकी वही दुर्द राधा-गरी शने मुन्य

अन्ध नही। मैंने पूर्वकर्ममें जैन-या भयपण किया था; किन्तु के कारण मेरे खमने कड़ा हुआ मेरा चमत्कार और मारा गया ॥ १९३ ॥

हा अतमनुजश्रेष्ठ शूराणां प्रवर प्रभो ॥ २० ॥
एकका कि तु मां त्यक्त्वा परलोकाय गच्छसि।

या मारं नरभेद वस्मण ! हा प्रमत्वाद्यामी ह्यप्रवर !
तुम मुझे छोड़कर अकेले क्यों परलोकमें जा रहे हो ? ॥ २१ ॥
विनयस्त च मां अज्ञा किमर्थं त्यक्त्वावसे ॥ २१ ॥
उत्तिष्ठ पश्य किं शेषे वीर मां पश्य बधुया।

भया ! मैं तुम्हारे बिना रो रहा हूँ। तुम मुझसे बोझते क्या नहीं हा ! भिम क्यु ! ठठो। भौंल कोझकर देखो। क्यों ख रहे हो ? मैं बहुत दुखी हूँ। मुझपर दक्षिणत करो ॥ शोकतस्य प्रमत्तस्य पथेतेषु वनेषु च ॥ २२ ॥
वियग्नस्य महाबाहो समाध्यासयित्वा मम।

महाबाहो ! परतैं और कर्मोंमें कब मैं शोकसे पीड़ित हो प्रमत्त एवं विचारप्रल हो जाया था; तब तुम्हीं मुझे धर्म दिखते थे (फिर इत समय मुझे क्यों नहीं धन्यवना देते हो ?) ॥ २२ ॥

राममेव सुवाण तु गोकर्ण्यकुन्तिमिश्रियम् ॥ २३ ॥
व्याध्यासयन्मुयाजेद् सुप्रेषः परम पथा।

इत तरह विभ्रम करत हुए मगधन् भीरुमभी धारी इन्द्रिनी शोकसे व्याकुल हो उठी थी। तब समय सुप्रेषने उन्हें आश्वस्त करते हुए यह उचम बात कही— ॥ २३ ॥
त्यजेमा नरशार्ङ्गं सुदिं धीहृत्पक्षरिपीम् ॥ २४ ॥
शाकलजननीं चिन्तां तुक्त्वा यायेद्भयमुक्ते।

युद्धरिदि ! व्याकुलता उत्पन्न करनेवाली इस चिन्तामुक्त बुद्धि पर प्रियाता भीमिया; क्योंकि युद्धके मुदानेपर की हुई चिन्तन यत्नोक्त समय ही ही और केवल शोकका भ्रम देखी है ॥ २४ ॥

नेव पञ्चथमापथ्य लक्ष्मणो लक्ष्मिवधनः ॥ २५ ॥
महास्य विष्टत यदत्र न च इयामत्यमागताम्।
सुमभ च प्रमन्न च मुखमस्य निराक्षयताम् ॥ २६ ॥
आरु भाई शोभायुक्त लक्ष्मण मेरे नहीं हैं। देखिये इनके मुखमें आरुनी अभी विगशी नहीं है और न इनके पदसर कायाम ही भया है। इनमें मुरा प्रमन्न एवं चम्पामन् । गये दे रहा है ॥ २५ ॥ २६ ॥

पद्मप्रयत्नो हस्ती सुममन्न उ सोचन।
नवरा हृदयत रुपां गन्धामृतं जितां पत ॥ २७ ॥
इनके हाथों में हथकौड़ी कमाउ जैनी नोमत है भाई भी नगा त है। प्रकलाप ! म हुए चिन्तों में पथ्य रूप नहीं है त क प है ॥ २७ ॥

विपारं मा कृया वीर समापोऽयमरिषम्।
आख्याति तु प्रसुत्तस्य स्रक्षताशस्य मूलसे ॥ २८ ॥
खोच्छवात्तं हृदयं वीर कम्पमानं मुहुर्मुहुः।

शत्रुघ्नोश्च वसन करनेवाले वीर ! आप विचार न करें। इनके धीरमें प्राण हैं। वीर ! मे खे गये हैं। इनका वीर शिथिल होकर मूलभर पड़ा है। सँध कल रही है और हलर पारवार कमिस्त हो रहा है—उत्तभी गति बंद नहीं हुई है। यह कल्प इनके चिन्तित होनेकी सूचना दे रहा है ॥ २८ ॥
एवमुक्त्वा महाबाहू सुप्रेषो राभव ववा ॥ २९ ॥
समीपस्वमुवाचेद् हनुमन्त महाकपिम्।

भीरुमकत्रभीते ऐश कृच्छर परम बुद्धिमान् सुप्रेषने एव ही लखे हुए महाकपि हनुमान्भीते कथा— ॥ २९ ॥

सौम्य शीघ्रमितो गत्या पथत हि महौदयम् ॥ ३० ॥
पूर्वं तु कथितो योऽसौ वीर जाप्यवत्था तव।
वक्षिणे शिखरे जलां महौपधिमिहान्त्य ॥ ३१ ॥
विशम्भकरर्षी नवमा सायम्भकरर्षी तथा।
सर्वाविकरर्षी वीर सभानी च महौपधीम् ॥ ३२ ॥
सर्वाविकर्यर्षी धीरस्य छक्रमणस्य त्वमागत्य।

सौम्य ! तुम धीम ही पारतैं मद्येव परतपरु किन्तु पथ नमकवान् दुर्गे परते कथ बुके हैं नभो और उनके इक्षिण शिखरपर उगी हुई विशम्भकरकी सौवम्भकरकी सर्वविकरणी तथा सर्वांनी नामसे प्रसिद्ध महौपधिघोष कर्षी के नभो। वीर ! उन्हींसे वीरवर कल्पनेके बीजनी रख होगी ॥

इत्येषमुक्तो हनुमन्त गत्या वीरधिपकताम्।
चिन्तामभ्यगमच्छ्रीमानज्ञानस्तत्र महौपधीः ॥ ३३ ॥

उनके ऐश कर्नेर हनुमान्की अपधिपरत (मोररिदि) पर गये परु उन महौपधिघोषे न परकाननेके कारण न चिन्तामें पड़ गये ॥ ३३ ॥

तस्य बुद्धिः समुत्पन्न्य मादतरमितोजसः।
इदमय गमिष्यामि शूहीत्या दिसर गिरे ॥ ३४ ॥

इसै समय अमित तकभी हनुमान्कीक इदमय वर विष्टर उत्पन्न हुआ कि मैं परतैं इत शिखररु ही से चरूँ ॥ ३४ ॥
अस्मिन्सु निपतर जात्यमोर्गर्षी तां सुखायहाम्।
मत्कणायागच्छामि सुप्रेषो श्रेयमप्रवीत् ॥ ३५ ॥

इही शिखरपर वह सुखदायिनी भाषि उरुत्पन्न होखे इभी पथ्य मुता भनुमन्त कला इना है कर्षि कुर्वने पथ्य ही कथा था ॥ ३५ ॥

१ परतैं एव इत समय बुद्धि निवृत्त पर नये भर योग हुए करनेवाली। २ उरतैं नये वही (या कानकी)। ३ कुर्वं इत कर च न पठन करनेवाली। ४ ही कुर्वं कुर्वं नानकी।

अपुत्रं यदि गच्छामि विदालयकरणीमहम् ।
 कात्यायनेन शोषः स्यात् वैश्वाम्नीय महावृभंघत् ॥ ३६ ॥
 यदि किञ्चिद्विषीको विवेकिनो ही श्वेत यत्के तो अथिक्
 सम्य वीतनेते दोषकी सम्भावना है और उससे बड़ी मयी
 पदपट्ट हा उच्छी है ॥ ३६ ॥
 इति संक्षिप्त्य हनुमान् गत्वा क्षिप्रं महाबलम् ।
 म्बसाय पर्वतभेदे शिः प्रकम्प्य गिरेः शिरः ॥ ३७ ॥
 पुस्त्यनागतवगण्य समुत्पाठ्य महाबलम् ।
 गृहीत्या हरिघातुलो हस्ताभ्यां समतोच्छ्रयत् ॥ ३८ ॥
 ऐत्र सन्धर महाबली हनुमान् नुरंत उर भेद पतके
 पत्त य पुरुषे और उसके शिखरको छीन कर दिखकर
 उसे उखाड़ लिया । उसके ऊपर गन्ना प्रकाशके बृह लिके हुए
 थे । बनभेद नानाथी हनुमान्ने उसे दोनों हाथोंपर उठाकर
 लैसा ॥ ३७-३८ ॥
 स नीलमिष क्षीमूर्तं शोषपूर्वं नभस्तस्मिन् ।
 उत्पद्यत गृहीत्या तु हनुमाभिराक्षर गिरेः ॥ ३९ ॥
 काले मरे हुए नीले मषके समान उस पर्वतशिखरको
 लेकर हनुमान्नी उतरको उछके ॥ ३९ ॥
 समागम्य महावेगः सत्यस्य शिखर गिरेः ।
 विभ्रम्य किञ्चिदनुमान् सुपेपमिदमग्रवीत् ॥ ४० ॥
 उनका वेग महान् था । उस शिखरको सुपेपके पास
 पहुँचकर उन्होंने दृष्टीपर रत्न त्रिय और खेड़ी देर विभ्रम
 करके हनुमान्नेने सुपेपके इस प्रकार कहा— ॥ ४० ॥
 शौरधीनीवगच्छामि ता भर्ह हरिपुत्र्य ।
 तद्वि शिखरं कृत्यन् गिरेस्तस्याहृत मया ॥ ४१ ॥
 अथेभेद । मैं उन अशुभिकेप परचान्त्र नहीं हूँ ।
 इतल्लिमे उस पर्वतका छप शिखर ही लेता भाया हूँ ॥ ४१ ॥
 एष कथयामास तु प्रदास्य पवनसाम्बजम् ।
 सुपेपो धानरभेद्यो जग्राहोत्पाठ्य शौरधीः ॥ ४२ ॥
 ऐत्र करते हुए हनुमान्नीकी भूरी-भूरी प्रशंसा करके
 बनभेद सुपेपने उन अशुभिकेपको उखाड़ लिया ॥ ४२ ॥
 विविक्तास्तु बभूवुस्त सर्वे धानरपुत्र्या ।
 दृष्ट्वा तु हनुमत्कर्म सुरैरपि सुकुपकरम् ॥ ४३ ॥
 एतन्वीथीय बहू कर्म देवत्रयोक त्रिय भी अत्यन्त
 दुष्कर था । उसे लेकर समस्त धानरपुत्रपति बहू निमित्त
 हुए ॥ ४३ ॥
 उतः संसोदपित्या ठामोर्ध्वा धानराक्षसाः ।
 उदमपयस्य दूरी कस्तः सुपेपः सुमहाधुतिः ॥ ४४ ॥
 महादम्भी कविभेद सुपेपने उस अशुभिकेप कृत वीरकर
 कर्मनकीकी नाकमें दे रिया ॥ ४४ ॥
 सदास्या स समाप्राय सङ्गमनः परधीरहा ।
 विदास्या विबज्जं शशिमुदविष्टमदीतसत्त्वं ॥ ४५ ॥

धनुका खर करनेवाले उदमपके खरे शरीरमें बाण पैसे
 हुए थे । उस बनसामने उस अशुभिकेप सुपेप ही उनके शरीर
 से बाण निकल गये और वे नीरोग हो शीघ्र ही मृतकसे उठकर
 लड़े हो गये ॥ ४५ ॥
 तमुत्थित तु हरयो मृतछातु प्रेक्ष्य उदमणम् ।
 साधुसाधिति सुमिती सङ्गमन्य प्रत्यपूजयन् ॥ ४६ ॥
 उदमपको मृतकसे उठकर लड़ा हुआ देख के धानर
 अत्यन्त प्रसन्न हो 'सुपु-सुपु' करकर उनकी भूरी भूरी
 प्रशंसा करने लगे ॥ ४६ ॥
 पद्मेरीत्यग्रवीत् रामो लङ्गमण परधीरहा ।
 सल्लजे गाहमाक्षिङ्गय थाप्यपयाकुलेक्षणः ॥ ४७ ॥
 तत्र धनुधीरैश्च सार करनेवाले मत्स्यान् श्रीरामने
 उदमपसे कहा— 'अभ-भा-भा' देखा बहकर उन्होंने उन्हें
 दोनों मुखाभोंमें भर दिया और गाढ़ भास्तिगन करके हृदयसे
 बन्द किया । उस समय उनके नेत्रोंमें आँसू छटक रहे
 थे ॥ ४७ ॥
 अग्रवीथ परिष्वज्य स्त्रीमित्रि राधयस्तदा ।
 विप्रया स्या वीर पत्यामि मरणात् पुनरागतम् ॥ ४८ ॥
 मुमिभानुमारको हृदयसे स्पर्शकर भीष्मनाथकीने कहा—
 'वीर । बड़े शौभाग्यकी बात है कि मैं तुम्हें मृत्युका मुससे
 पुन लौया हुआ देखता हूँ ॥ ४८ ॥
 नहि मे जीवितेनार्थः सीतया च जयेम या ।
 को हि मे जीवितेनापस्तस्यपि पशुत्वमागत ॥ ४९ ॥
 तुम्हारे किना मुझ जीवनकी रखसे छीजने अथवा
 निरक्षसे भी कर मतलब नहीं है । जब तुम्हीं नहीं रहोगे तब
 मैं इस जीवनका रागकर क्या करूँगा ? ॥ ४९ ॥
 इत्यय भुवतस्तस्य राधयस्य महात्मनः ।
 स्तिङ्गः शिथिलया धाया लङ्गमनो थाप्यमग्रवीत् ॥ ५० ॥
 महात्म्य एतन्नाथके ऐत्र करनेपर समान शिवान् हा
 शिथिल बाणीमें धीरे-धीरे बाल— ॥ ५० ॥
 तां प्रतिष्ठां प्रतिप्राय पुरा सत्यपराङ्म ।
 लघु कश्चिद्विवास्तयो नैव त्व यकुमहसि ॥ ५१ ॥
 भय । भाप सम्वररक्षणी हैं । भानने परह राधयका
 बंध करके निर्भीकताका ब्रह्माद्य रात्म देने। प्रतिष्ठा की थी ।
 वैले प्रतिष्ठा करके अब किन्ना भूठ और निरस मनुष्यकी
 योगि अनाका पत्नी बान नहीं बदनी चरिय ॥ ५१ ॥
 नहि प्रतिष्ठां कुयन्ति वितया मायगादिन ।
 सद्यप हि महत्स्यस्य प्रतिष्ठापगिपालनम् ॥ ५२ ॥
 निरादयमुपगमन्तु च नाम त मन्टनजन्य ।
 यथन गदमन्याप प्रतिष्ठापनुरागस्य ॥ ५३ ॥
 अनाथी पुत्रप कृती प्रतिष्ठा नहीं करत हैं । 'नियम

पक्ष ही बक्ष्यनक्ष बक्ष्य है । निष्पण रघुवीर । मेरे ब्रिमे
आपको इतना निराप नहीं होना चाहिये । भाव रघुनक्ष
बप करके आप अपनी प्रतिष्ठा पूरी करिये ॥ ५२-५३ ॥

न जीवन् यास्यते शत्रुसत्त्व बाणपर्यं गता ।

मर्यतच्छरीरव्यवस्थस्य सिंहास्तेषु महागजाः ॥ ५४ ॥

आपके बाणोंका ब्रह्म बनकर रघु ब्रह्मित नहीं होट
सकता । जीव उठी तरह बैठे गरबते हुए किसी दाइबाके
बिहके खमने ब्रह्मकर महान् रघुसत्त्व ब्रह्मित नहीं रह
सकता ॥ ५४ ॥

भक्त तु वधमिच्छन्प्रमि शीघ्रमस्य तुरात्मनः ।

बायवस्य न यास्येत् इत्यर्क्या विवाहकरः ॥ ५५ ॥

ये सुर्वैरिव ज्यते दिनमरुत्त भ्रमणकर्म पूर करके

हजारों भीमजामाघने बाकरीकीबे बादिबाघके मुद्रकाघने एकधिकसततमः सर्गः ॥ १ ॥

इत प्रकार श्रीनारदसिद्धिर्षित् अर्चयन्वन श्रीभक्तके मुद्रकाघने एक ही पक्षों सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ॥

दशधिकशततम सर्ग

इत्रके मेजे हुए रथपर बैठकर श्रीरामका रावणके साथ युद्ध करना

कर्मजनेन तु तव् वाक्यमुक्तं भुत्वा स राक्षसा ।

सद्यमे परवीरयो भुत्वादावाय वीर्यवान् ॥ १ ॥

कर्मजकी कमी हुई उठ बातको सुनकर रघुवीरोंका
संहार करनेवाले पराक्रमी भीरुजने बनप सेकर उठकर
बाणोंका संगान किया ॥ १ ॥

रावणाय शयन् धोयन् विषसज्जं वनमुत्तले ।

अथास्य रथमास्थाप रावणो राक्षसाधिपः ॥ २ ॥

अस्यभावत काकुत्स्थं स्वर्भानुरिष भास्करम् ।

उन्होंने सेनाके मुहानेपर रावणको ब्रह्म करके उन

समंकर बाणोंको छोड़ना ब्रह्म किया । इतनेमें एकछया
रावण भी वृधे रथपर उवार हो भीरुजने उठी तरह बध
मात्रा बैठे राहु सूर्यपर भास्करन कृता है ॥ २३ ॥

दशमीयो रथस्यस्तु राम यज्ञोपवीः शरीः ।

भाजयन्त महादीक्ष भागभिरिष तोषणः ॥ ३ ॥

रघुसत्त्व रावण रथपर बैठा हुआ था । वह अपने
यज्ञोपवी बाणोंका भीरुजने उठी तरह बीजने ब्रह्म बैठे मेघ
त्रिभे महान् पर्यन्त कर्मकी बाणबादिह हवि कला है ॥

दीमपायकसकारोः शरीः काञ्चनमूलयोः ।

अभ्यर्चयत् रणे रामो दशमीबं समहितः ॥ ४ ॥

भीरुजनेकी भी एकमन्त्रिच हा रथभूमिमें रघुसत्त्व
रावणपर प्रब्रह्मिच अभिने छान्य तेरकी मुद्रवर्धनित बाणोंकी
पर्वं करने को ॥ ८ ॥

भूमि स्थितस्य रामस्य रथस्यस्य स रक्षसा ।

न सर्वं युद्धमित्याहुर्वैषम्यधरिहरा ॥ ५ ॥

असाकसके नहीं जाने चाहे, तसक ही कितना हीम कर्म
हो सके, मैं उठ दुराव्य रावणका बध देकरा भव्य ॥ ५५ ॥

यदि वधमिच्छसि रावणस्य संभवे

यदि व हतां हि तवेच्छसि प्रतिष्ठाम् ।

यदि तव राजसुतामिच्छस्य सर्वं

कुत व कसो मम शीघ्रमथ वीर ॥ ५६ ॥

आपमें । वीरकर । यदि आप मुझमें रावणका बध करके
चाहते हैं यदि ब्रह्मके मनमें अपनी प्रतिष्ठाके पूरी करनेमें
इच्छा है तथा आप राक्षकुम्भीरी छीलाके पनेकी प्रतिष्ठा
रखते हैं तो आज हीम ही रावणको मारकर मेरी प्रार्थना
सक्य करे ॥ ५६ ॥

मुद्रकाघने एकधिकसततमः सर्गः ॥ १ ॥

इत प्रकार श्रीनारदसिद्धिर्षित् अर्चयन्वन श्रीभक्तके मुद्रकाघने एक ही पक्षों सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ॥

भीरुजनेकी भूमिपर लड़े हैं और वह यस्त रथपर बैठा
हुआ है, देखी दशामें इन दोनोंका युद्ध करार नहीं हो कर
आकाशमें लड़े हुए देकरा गन्धर्व और फिर इत लड़ाई
करें करने को ॥ ५ ॥

उत्तमे देववराः श्रीमात्मनुत्वा तेषा कसोऽनुत्तम् ।

अह्वय मातादि शत्रुके कसल खेदमत्रपीत् ॥ ६ ॥

उनकी ये अमृतके छान्य मधुर काठें सुनकर तेरकी

देवराज इतने मन्त्रिके बुझकर कहा— ॥ ६ ॥

एथेन मम भूमिर्छं शीघ्रं पाहि रघूत्तमम् ।

माह्वय भूतल पाता कुत देवहितं महत् ॥ ७ ॥

धरते । रघुकुच्छितक भीरुजनेकी भूमिपर लड़े हैं ।

मेघ रथ सेकर द्रुम हीम उनके पास बाणों । भूतलपर युद्ध

कर भीरुजनेके युद्धकर को—यह रथ देवराजने अपनी

छेपने मेना है । इत लड़ाई उन्हें रथपर निगाकर द्रुम

देकराओंके महान् हितकर कर्म सिद्ध करे ॥ ७ ॥

इत्युक्त्वा दशराजेन मातासिद्धेवसारथिः ।

प्रणम्य शिरसा दयं ततो यथनमप्रवीत् ॥ ८ ॥

देवराजके इत प्रकार करनेपर देव-स्यपि मन्त्रिके उन्हें

मन्त्रक हृष्टकर प्रणाम किया और यह बात कही— ॥ ८ ॥

दीम यास्यामि देवेन्द्र सारथ्य व करोम्यहम् ।

ततो हृदय सयोम्य हरितैः समन्वोत्तमम् ॥ ९ ॥

वेकर । मैं हीम ही आपके उत्तम रथमें हरे रथके

पथे बैठकर उसे लय ब्रिमे जड़ोंगा और भीरुजनेकी
अरथिक कर्म भी करेगा ॥ ९ ॥

तदा काञ्चनपिशाङ्गः किङ्किणीरासमूर्पितः ।
 तदभासित्यसकृदाशौ वैशूर्यमयकूबरः ।
 सद्युधैः काञ्चनापीडैर्युक्तः श्वेतप्रकीर्णकैः ॥ १० ॥
 हरिभिः सर्वसकाशैर्हैमजास्रधिमूर्पितैः ।
 कर्ममयेषुष्यया श्रीमान् देवराजस्यो वरः ॥ ११ ॥
 देवराजेन सविष्टो रथमातङ्ग मातङ्किः ।
 मम्मर्षतत काङ्कुत्स्थमपतीर्य त्रिविष्टपात् ॥ १२ ॥

उदन्तर देवराज इन्द्रश्च यः शोभाश्रीमी श्रेष्ठ रथ है।
 किङ्के उभी अत्यन्त सुवचन्य होनेके कारण विभिन्न शोभा
 धारण करते हैं, किङ्के सेकड़ों पुंशुक्रांशिते विभूषित किया
 गया है, किङ्की कान्ति प्रकाशके सुवर्णी मूर्ति अल्प है।
 किङ्के कूर्मने वैशूर्यमयि (नीलम) बड़ी गम्भी है किङ्की
 सुवर्णस्य तन्वी हरे रगमाकि, सुवर्णकण्ठसे विभूषित तथा
 सेनेके लक्ष-वस्तुसे लगे हुए अन्के छोड़े कुते हैं और उन
 पोर्णको श्वेत रंकर आसिते अर्धकृत्य किया गया है तथा
 किङ्के अकर्म हथ सेनेका बना हुआ है, उष रथर अकर्म
 से मन्कि देवराजका संरोध से स्वतिते भूकल्पक उत्तरकर
 भीरुमन्त्रकीक खमने लड़ा हुआ ॥ १ - १२ ॥

ममर्षीच तथा राम समेतो रथे स्थितः ।
 मन्त्रादिर्मन्त्रिर्वाक्य सहस्राक्षस्य सारथिः ॥ १३ ॥
 अक्षमेकन इन्द्रश्च सपि भावकि जलुक् सिन्धे रथपर
 वैद्य हुआ हाथ बाइकर भीरुमन्त्रकीसे बोध—॥ १३ ॥
 सहस्राक्षेण काङ्कुत्स्थ रथोऽय पित्रयाय ते ।
 यथास्तव महासत्त्व श्रीमन्शत्रुनिघर्षण ॥ १४ ॥
 म्हाकवी दानुमूदन श्रीमान् सुधीर । अक्ष नैवपापी
 देवराज इन्द्रने किष्कण्ड सिन्धे भाषको यह रथ स्मार्पित
 किया है ॥ १४ ॥

इदमैन्द्रं महाभाप कवच आभिसन्निभम् ।
 धारणादित्यसकृदाशः शक्तिञ्च विमन्त्र शिषा ॥ १५ ॥
 यह इन्द्रका विषाख धनुष है। यह अग्निके अग्नि
 देवकी कवच है। य सर्वश्रेष्ठ प्रकाशमान वाज हैं तथा
 यह कर्मधर्मकी निर्मक शक्ति है ॥ १५ ॥
 धरुहार्मं रथ भीर राक्षस आहि रायणम् ।
 मया सारथित्वा देव मन्त्रेन्द्र इय दानयान् ॥ १६ ॥

भीरर महायन । अय इष रथपर आक्य से
 पुस करविषी महाभासे राक्षसराज रथमन्त्र उठी तद्द बन्
 भीरिये जैसे मन्त्रेन्द्र दानराज संहार करते हैं ॥ १६ ॥
 इत्युक्तः सम्पारिकस्य रथं तमभिधाया च ।
 धारुहार्मं तदा रामो क्षोर्कतुहल्या विराजयन् ॥ १७ ॥
 म्हाकिके ऐव अनेकर भीरुमन्त्रकीसे उष रथकी
 परिक्रमा की और उसे प्रथान करके वे उत्तर धरार हुए ।

उष धमय मफरी शोभासे वे समस्त अर्धको प्रकाशित
 करने लगे ॥ १७ ॥
 तद् बभौ धानुर्वं युद्धं दैरथ्य रोमहर्षणम् ।
 रामस्य च महाभाहो रायणस्य च रक्षसा ॥ १८ ॥
 उत्तरभात् महाभाहु भीरम भोर उषस रथमने दैरथ्य
 युद्ध प्रारम्भ हुआ, जो बहा ही भव्युत और रंगत लड़े कर
 देनेवाला था ॥ १८ ॥

स गान्धर्षेण गान्धर्षे वैशं वैशेन रायणः ।
 अर्धं राक्षसराजस्य सधाम परमात्मवित् ॥ १९ ॥
 भीरुमन्त्रकी उषम अर्धको शया थे। उन्होंने उषस-
 राजके चक्ये हुए गान्धर्ष-अर्धसे गान्धर्ष-अर्धसे और देव-
 अर्धको देव-अर्धसे नष्ट कर दिया ॥ १९ ॥
 अक्ष तु परम धीर राक्षस राक्षसाधिपः ।
 ससर्ज परमाहुयः पुनरेव निधयचरः ॥ २० ॥
 उन राक्षसोंके राजा निष्पत्त रथमने अत्यन्त कुपित हो
 पुनः परम मन्त्रक राक्षसाक्षक प्रयोग किया ॥ २० ॥
 ते रथमधनुर्मुक्ताः शराः काञ्चनमूर्पणाः ।
 मम्मर्षतत काङ्कुत्स्थ सपा भूत्वा महाविपाः ॥ २१ ॥

किं वो एवमके धनुषते पूटे हुए सुवर्णमूर्पित शय मस-
 विरेते लं हो-होकर भीरुमन्त्रकीके निष्पत्त पशुपते लगे ॥
 त दीतयद्गया दीत यमन्तो ज्वलन मुसैः ।
 राममेशस्यकर्तन्त ध्यादितास्या भयानका ॥ २२ ॥
 उन शरोंके मुल अगके समान प्रमन्त्रित होते थे। वे
 अपने मुसैके बन्धी भाग टाक रहे थे और मुंह देख्ये
 होनेके कारण बड़ मयंकर बिलायी वेते थे। वे ल-के-ल
 भीरुमन्के ही समने आने लगे ॥ २२ ॥
 तैर्षासुकिसमस्यशैर्षासभोगैर्महाविपैः ।
 विशाख सतथा सर्षा विविशश्च समाभृता ॥ २३ ॥

उनका सर्षा बासुकि नागके समान अक्षय था। उनके
 अन् प्रमन्त्रित हो रहे थे और वे महान् विपते भरे थे। उन
 सर्षाकर बाणोंसे व्यस्य होकर सम्पूर्ण विशाई और विविशार्दै
 आम्भारित हो गयीं ॥ २३ ॥
 तम् द्रुपु पद्भ्यान् रामा समापतत ध्याह्य ।
 अक्ष गारुडमर्तं वार प्राहुःकर्म भयाधहम् ॥ २४ ॥

युद्धलक्ष्मे उन सर्षाके आते रेल म्हात्वा भीरुमने
 अत्यन्त भयंकर तडडाकासे प्रकट किया ॥ २४ ॥
 त रायवधनुमुक्त्य रथमधुमुक्त्य दित्तिप्रभा ।
 सुपर्णाः काञ्चना भूत्वा निचरुः सर्पशयथः ॥ २५ ॥
 किं वा भीरुनायकीक धनुषते पूट हुए युद्धर रक्ष-
 काक अग्निपुस्य तन्वी हाथ तर्कोक दानुमूत सुवचनय गक्य
 बनकर लय और विचलने लगे ॥ २५ ॥

तं धनुः सर्वाभ्याराज्युः सर्परूपान् महाजवान् ।
 सुपर्णरूपा रामस्य विधिक्षाः क्षमकृपिणः ॥ २६ ॥
 भीरुमके इच्छानुत्तर स्म धारण करनेवाले उन गन्धा-
 न्धर शर्पोंने रावणके महान् वेगधारी उन समस्त सर्पोंकर
 सायम्पैका धारा कर डाले ॥ २६ ॥
 मझे प्रतिहते हुन्दां रावणो रक्षसाधिय ।
 अभ्यर्कान्तं तवा राम घोराभिः शरसूचिभिः ॥ २७ ॥

इस प्रकार अपने मरकट प्रतिहत हो जानेपर राक्षसराज
 रावण क्रोधित हो उठा और उस समय भीरुनायकीपर
 पकर शर्पांकी वर्षा करने लगा ॥ २७ ॥

तत शरसहस्रेण राममहिषधरिणाम् ।
 मथित्वा शरीरेषु मातलिं प्रत्यथिभ्यत ॥ २८ ॥

मनासा ही महान् कर्म करनेवाले भीरुमके उसी
 शर्पोंसे पीड़ित करके उठने मातलिं भी अपने शर-धनुओंसे
 धरक कर दिया ॥ २८ ॥

चिच्छेत् केतुमुद्दिम शरैश्चैकेन रावणः ।
 पातयित्वा रघोपस्थं रघात् केतुं च काञ्चनम् ॥ २९ ॥
 पञ्चानपि जघानाभ्याशरजालेन रावणः ।

उत्पन्नान् रावणने इन्द्रके रघवी धरकके अपने करके
 एक शर मारा और उससे उस शरकके धरक डाला । उस
 धरके हुए सुवर्णमय धरक पर रावणके ऊपरसे उठके निचके मार्गसे
 गिरकर रावणने अपने शर्पांके जालसे इन्द्रके शर्पांकी भी
 धर-निधर कर दिया ॥ २९ ॥

विनेतुर्वेगान्भयैचारणा दानवैः सह ॥ ३० ॥
 राममार्ते तथा ह्यु चिच्छास परमर्षयः ।
 व्यथित्वा दानेन्द्राद्य वभुः सविभीरुणा ॥ ३१ ॥

यह देख देखा गन्धर्व चरण तथा दानव विचरने
 हुए गये । भीरुमका पीड़ित देख विद्वों और मूर्खियोंके मनने
 भी बढ़ी मन्या हुई । विभीरुकरहित धरने धन-पूषणपति भी
 बहुत दुःखी हो गये ॥ ३१ ॥

रामचन्द्रमस ह्यु प्रसत रावणराहुण्य ।
 प्राज्ञापत्य व नक्षत्रं रोहिणीं शशिका म्रियाम् ॥ ३२ ॥
 समान्द्रम्य बुधस्तस्वी प्रजातामदित्यवहा ।

भीरुमकी चन्द्रमाका रावणकी राहुसे मरत हुआ देख
 बुध नामक ग्रह शिकके देवता प्रकथित हैं उस चन्द्र-मिया
 राहिणी नामक नक्षत्रपर मान्य करके प्रजातर्किके किये
 भदितधारक हो गया ॥ ३२ ॥

सपूमपरिपृप्तोऽमः प्रत्यजधिय सागरः ॥ ३३ ॥
 उत्पपात तवा मुन्दाः सूर्याधिय विपाकरम् ।

अमुत्र प्रकथित-धरने मया । उद्यमे करणसे पूर्वो-या
 उठने लगा और यह कथित-धर होकर ऊपरकी ओर हो

मन्धर बढ़ने लगा माने सूर्यदेवके हू केना चरत ॥
 शतशर्पाः सुपर्णयो मन्धरिर्मर्विकारः ॥ ३४ ॥
 महाद्वयत कबन्धुः ससक्तो धूमकेतुणः ।

सूर्यकी किरणें मरत हो गयीं । उसकी कथित उन्मत्त
 मूर्खी करकी यह गयी । यह भयन्त मन्धर कबन्धके किये
 युक्त और धूमकेतुनामक उत्पत्त प्रहसे संकट रिखने
 देने लगा ॥ ३४ ॥

क्षोसस्यनां च नक्षत्रं व्यक्तमिन्द्रान्तिके ॥ ३५ ॥
 माहत्याङ्गरकस्तस्वी विशाकमपि चाभरे ।

आकाशमें इन्द्रकुवर्णियोंके नक्षत्र किताकाउर किये
 देवता इन्द्र और मनि हैं, आकाश करके मंगल का ठेका ॥
 वृषास्यो विशातिमुक्तः प्रपृहीतारासकः ॥ ३६ ॥
 महाद्वयत वृषाप्रियो मैत्रक एव पर्यतः ।

उस समय वस मरकट और वीर मुक्तमूर्खी उक्त
 वृषाप्रियो एवक हाथोंमें धनुष किये मैत्रक पर्यतके उक्त
 रिखनी देवा या ॥ ३६ ॥

मिरच्यमानो रमस्तु वृषाप्रिवेण रक्षसः ॥ ३७ ॥
 शशाङ्केषुभिसधातु सायधन् रममूर्षनि ।

राक्षस रावणके शर्पोंसे शरंशर मिरक (अस्त)
 होनेके कारण मजान् भीरुम मुक्तके मुहानेपर अपने धरक
 का संभल नहीं कर पाते थे ॥ ३७ ॥

स हत्वा भुङ्कति ह्युः किञ्चित् सरकलोचनाः ॥ ३८ ॥
 जगाम सुमहावीर्येण तिपृहक्षिण रक्षसान् ।

उत्तमन्धर भीरुनायकीने क्रोधकर मरकट किये । उनकी
 मूर्खी देखी हो गयी, नेत्र कुञ्ज-कुञ्ज मरकट हो गये और मूर्ख
 ऐव महान् क्रोध हुआ किये मन्धर पकटा या कि वे मरकट
 राक्षसोंको मरक कर डालेंगे ॥ ३८ ॥

तस्य मुन्धस्य वचनं ह्यु रामस्य धीमता ।
 सर्वमूढानि विनेतुः प्रकथ्यत च मेदिनी ॥ ३९ ॥

उस समय कथित हुए बुद्धिमान् भीरुमके मुक्तकी ओर
 देखकर मरकट प्राणी मरकसे पर उठे और पृथ्वी शर्पोंने कनी ॥
 सिंहशार्ङ्गनाभ्यैः संघबाह बहत्तु मः ।
 बभूव चापि ह्युभितः समुद्रः सरितां पतिः ॥ ४० ॥

सिंहों और मरकटोंसे मरक हुआ पर्यत शिक गया । उठके
 ऊपरके हुए धरने मने और शशिकांकी स्थायी कथने मरक
 का गया ॥ ४० ॥

सगन्ध सरनिर्घोया गगनं पकया धन्यः ।
 भीत्यातिक्रम्य गर्वता समस्तात् परिचक्रमुः ॥ ४१ ॥

आकाशमें सब ओर उत्पलपूषक गर्वमाकर प्रकथ
 गन्धा करनेवाले सके शरक गये हुए पकर कथने मने ॥

रामं हृद्य सुसङ्कुचमुत्पाताम्रैश्च दारुणान् ।
 विभ्रैस्तु सत्रभूतानि रावणस्याभयवद् भयम् ॥ ४२ ॥
 भीरुमन्त्रवीर्ये अत्यन्त कुपित भौर दारुण उत्पद्यते
 प्राङ्मुख देसकर समस्त प्राणी भयनीत हो गये तथा रावणके
 मीकर भी मय क्या गथा ॥ ४२ ॥
 विमानस्यास्तदा देवा गन्धर्वाश्च महोरगाः ।
 श्रुतिवानशर्पेत्याद्य गरुत्मत्सद्य खेचराः ॥ ४३ ॥
 हृत्पुस्तं तदा युञ्ज कोकसवर्गसस्वितम् ।
 मानप्रहरणैर्भूमिः शूरयोः सम्पयुज्यतोः ॥ ४४ ॥
 उस समय विमानार बैठे हुए देवता, गन्धर्व, बड़े-बड़े
 नाग, श्रुति दानव, देस तथा गरुड़—ये सब आकाशमें
 स्थित होकर मुद्रापरक्य हृत्पुस्तं भीरुम और रावणके धमका
 ओंके प्रक्यवी मूर्ति उपस्थित हुए तथा प्रकारके मयनक
 प्रारंभि मुक्त उस मुद्राक हस्य देखने लगे ॥ ४३ ॥
 कृष्णः सुरासुराः सर्वे तदा विग्रहमागताः ।
 प्रसन्नामा महायुञ्ज वाक्य भक्त्या प्रहृष्टवत् ॥ ४५ ॥
 उस भक्तपर मुद्रा देखनेके क्रिये आद्य हुए समस्त
 देवता और अतुर उस महाधमका देसकर मक्तिभवते हर्षपूर्वक
 कर्ते करने लगे ॥ ४५ ॥
 वृक्षभीष ज्येष्ठ्यादुरसुराः समवस्थिताः ।
 देवा राममयोस्तुस्ते त्वं ज्येष्ठि पुनः पुनः ॥ ४६ ॥
 वहाँ खड़े हुए अतुर वृक्षभीष सम्बन्धित करत हुए
 बसे—राजव । तुम्हारी क्या हो । उपर देवता भीरुमके
 पुनरकर धरंसार करने लगे—पुनन्दन । आपकी क्या हो,
 क्या हो ॥ ४६ ॥
 पतङ्गिभ्रमरं च भ्रैषाद् वायवस्य च रायवः ।
 प्रहृष्टमो मुष्णामा सूरान् प्रहरण महत् ॥ ४७ ॥
 इसी समय दुष्टस्या राजवने ह्यपमें आकर भीरुमन्त्रवी-
 र प्रहार करनेकी इच्छासे एक बहुत बड़ा हथियार
 उठाया ॥ ४७ ॥
 यज्ञसार महामातृ सयशानुनिर्हणम् ।
 शैलपुङ्गवनिभैः कूटैश्चिच्छादिभयावहनम् ॥ ४८ ॥
 संपूर्णमिय शीघ्रमात्र युगात्वात्मिषयोपमम् ।
 भविरीप्रमन्त्रसाद्य कालेनापि नुरासवम् ॥ ४९ ॥
 यह बरके समान चकिष्वायी महान् घमक करनेलक्ष तथा
 संपूर्ण शानुमात्र छंदारक था । उसकी शिखाई शैल-शिल्पिक
 समान थी । यह मन और नेशींभी भी भयनीत करनेबाधा था ।
 उसक अप्रमय पदुत लीले थे । यह प्रक्यकजरी धूममुक्त
 अतिरपिठक समान अत्यन्त मरंकर जान पड़ता था । उसे
 फण या नर कला कालक क्रिये भी कठिन एवं असम्भव
 था ॥ ४८ ॥
 प्रासन सबभूतार्थं हारण मेघन तथा ।

प्रवीत इव रोयण शूल जग्राह रावण ॥ ५० ॥
 उसका नाम था हृत् । यह धमका भूतोंके स्थि-भिन्न
 करके उन्हें भयनीत करनेवाला था । रोते उठीत हुए राजवने
 उस हृत्के हाथमें से क्रिया ॥ ५० ॥
 तच्छूळ परमकुन्दो जग्राह युधि वीपयान् ।
 भनीकोः समरे शूरे राक्षसैः परिवारितः ॥ ५१ ॥
 समरभूमिमें अनेक सेनाओंम विभक्त शूरीर राक्षसे
 धिरे हुए उस परमकी निशाचरने वह क्षेत्रके व्यय उस हृत्-
 के प्रहय क्रिय था ॥ ५१ ॥
 समुद्यम्य महाक्षयो नन्दत् युधि धैरवम् ।
 सरकनपनो रोप्यत् स्वसैन्यमभिहर्षयन् ॥ ५२ ॥
 उसे ऊपर उठाकर उस विद्याक्षय राक्षसे युद्धसम्मो
 बड़ी भयानक गर्भना थी । उस समय उसक नेत्र रंगले व्यक्त
 हो रहे थे और वह अपनी सेनाक हर्ष बना रहा था ॥ ५२ ॥
 पृथिवीं चात्परितः च विशाद्य प्रविशस्तथा ।
 प्राकम्पयत् तदा घन्तो राक्षसंस्तस्य दारुणः ॥ ५३ ॥
 राक्षसराज रावणक उस मर्षकर छिन्नादेने उस समय
 पृथ्वी, आकाश, विद्यामों और विदिशाओंके भी कम्पित कर
 दिया ॥ ५३ ॥
 अतिक्षयस्य मदेन तेन तस्य युगामनः ।
 सर्वभूतानि पिबेस्तु सागराद्य प्रक्षुभुमे ॥ ५४ ॥
 उस महाधम युगामा निशाचरके भैरवनादसे संपूर्ण
 प्राणी घरा उठे और सागर भी विभुम्भ हा उठा ॥ ५४ ॥
 स शूरीस्वा महावीर्यः शूलं तत् रथयो महत् ।
 विमद्य सुमहानाद राम परुषमप्रवीत् ॥ ५५ ॥
 उस विद्याक हृत्के हाथमें धेकर महापरमकी राजवने
 वह बरते गर्भना करके भीरुमसे कटार बाणोंमें कहा—
 शूलोऽयं यज्ञसारस्त राम रोपान्मयोघातः ।
 तय भ्यात्सहायस्य सद्यः प्राणान् हरिष्यति ॥ ५६ ॥
 याम । यह हृत् बरक समान शक्तिप्राप्ती है । इस मीने
 रणपुरुष अपने हाथमें क्रिया है । यह नाशकित तुम्हारे प्राणों
 का तारक्य हर लेगा ॥ ५६ ॥
 रक्षसामद्य शूराणां निहतानां चमुमुक्ष ।
 त्वां निहत्य रणक्षोभिन् करोमि तरसा समम् ॥ ५७ ॥
 मुद्राकी इच्छा रखनेबाध रावण । आज तुम्हारा क्या
 करके सेनाके मुदानेक या शूरीर राक्षस मारे गये हैं उन्हीके
 समान अबलामें तुम्हें भी पहुँचा दूँगा ॥ ५७ ॥
 तिष्ठेदानीं निहमि त्वामार शूलन रावण ।
 पयसुस्तस्य स विश्वत तच्छूळं राक्षसाधिपः ॥ ५८ ॥
 पयसुस्तक राक्षसमार । दहण अभी इस हृत्क हाथ
 तुम्हें मीतक पाठ उठवना है । पय कहकर राक्षसराजवने
 भीरुमपरवीक ऊपर उस हृत्क क्या दिया ॥ ५८ ॥

तद् राज्यकरप्रमुक्त विद्युन्मल्लसामाभूतम् ।
 मद्यपट महानर्तं विपद्रवमशोभत ॥ ५९ ॥
 राजके हाथसे छूटे ही वह ह्य आक्राम्ये आकर बमक
 ठठा । वह विद्युन्मल्लमौसे म्यास-ख बल पड़ता था । आठ
 बंसेसे मुक्त होनेके करण उससे गम्भीर श्रेय प्रकट हो रहा
 था ॥ ५९ ॥

तच्छूळ राषधो ह्य्वा ज्वलन्तं धोरवर्दानम् ।
 ससर्जं विशिखान् रामव्यापमायस्य वीर्यवान् ॥ ६० ॥
 तम पपकमी खुदुब्धनवन श्रीरामने उव भवकर एवं
 प्रखण्डित ह्यमके अपनी ओर आते देख बनय उनकर बाणोंकी
 वग आत्म कर ही ॥ ६ ॥

व्यापन्त शरीश्रेण वारयामास राषधा ।
 उत्पन्त युगान्तानि ज्वलैषेरिव सासधा ॥ ६१ ॥
 श्रीरामप्रयत्नसे बाणध्वजद्वारा अपनी ओर आते हुए
 ह्यमके उठी तरह रोक्केका प्रकाश किया जैसे देवराज ह्य
 क्षरकी ओर उठती हुई प्रकान्तिको संवर्तक मेणोंके बरखये
 हुए कम्पनहके द्वारा धाम्त करनेकी चेष्टा करते हैं ॥ ६१ ॥

मिर्बदाह स तन्न पावान् रामकर्मकुलिःसुतान् ।
 रणव्यस्य महाभ्याहा पतद्धानिव पावका ॥ ६२ ॥
 परत जैसे भाग पतगोको सम्य रेती है उठी तरह राजक
 के उर महान् ह्यमने भीष्मकन्द्रकीके बनुरते छूटे हुए समस्त
 बाणोंको बमकर मस कर दिया ॥ ६२ ॥

ताम् ह्य्वा भयमसाह्वताभ्याससस्यशीघ्रवितान् ।
 सायकामन्तरिक्षस्थान् राषधा क्रोधमहरत् ॥ ६३ ॥
 श्रीरामनायकीने सब देखा मेरे लयक मन्तरिक्षमें उर ह्यमके
 स्यशीघ्र होते ही घुर-घुर हो एकके डेर बन गये हैं तब उन्हें
 बड़ा क्रोध हुआ ॥ ६३ ॥

स तां मारुषिना भीतां शक्तिं पासधसम्मलाम् ।
 जग्राह परमकुन्तो राषधो रघुनवन्त् ॥ ६४ ॥
 अकन्त श्रेणसे मर हुए रघुदुष्कमन्वन रघुवीने मारुषिनी
 करती हुई देवेन्द्रद्वारा क्षमानित शक्तिको हाथमें ले लिया ॥
 सा लोसिता यक्षरता शक्तिं धंष्टाकृतधना ।
 कनाः प्रग्वालयामास युगान्तोहकेव साप्रभा ॥ ६५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बाष्पीकीने धारिवाणे पुरुषारणे इत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १ ॥
 इस प्रकार श्रीरामनिर्मित नरैरामायण धरिवाणके पुरुषारणे एक ही दोहों सर्व पूरा हुआ ॥ १ ॥

यस्मान् श्रीरामके द्वारा उठानी हुई वह शक्ति प्रकृत
 प्रखण्डित होनेबाधी उच्छ्रके समान प्रकाशमान थी । उसे
 समस्त आकाशको अपनी प्रगुये उन्नाखि कर दिख तब
 उसके पतनाह प्रकट होने लगा ॥ ६५ ॥

सा क्षिता राक्षसेन्द्रस्य तस्मिन्मूले पपात ह ।
 भिष्वाः शक्त्या महाभ्याहो निपपत् गतदुक्ति ॥ ६६ ॥
 श्रीरामने सब उसे कम्पाया, तब वह शक्ति उच्छ्रकके ज
 ह्यमर ही पड़ी । उसके प्रहारने दूक-दूक और निलोह से वह
 महान् ह्यम घृणीपर गिर पड़ा ॥ ६६ ॥

मिर्विमेह्यु ठतो वापैर्हयास्य महाजघान् ।
 रामसतीह्यैर्महाधरोर्षज्जघनैरजिह्वयैः ॥ ६७ ॥
 इसके बाद श्रीरामचन्द्रजीने छीपे जानेबाहे मारोसक
 कजदस्य पने बाणोंके द्वारा राजकके अकन्त वेगधारी पोषोंके
 पावक कर दिया ॥ ६७ ॥

मिर्विमेहोरसि तद्वा राषध निशितैः शरैः ।
 राषधा परमायत्तो सम्यटे पत्रिभिक्षिभिः ॥ ६८ ॥
 तिर अकन्त खपधान होकर उन्होंने तीन तीले छीपे
 राजकी करती छेद बाधी और तीन पंखदार बाणोंसे उल्ले
 क्कमरने भी घोट पहुँचानी ॥ ६८ ॥

स शरैर्भिन्नसर्षाङ्गो गात्रप्रकाशरोषिता ।
 राक्षसेन्द्र समूहस्यः फुल्लभारीक इषावनी ॥ ६९ ॥
 उन बाणोंकी मारते राजकके शरीर मज्ज छर-निसल से
 गवं । उसके शरीरते लूनकी भाग जाने लगी । उस क्षण
 अपने केन्धक्युमें लधा हुआ राजकका राजक फूँसेसे मरे
 हुए अक्षोकहृदके क्षमन शोभा पाने लगा ॥ ६९ ॥

स रामवापैरतिविद्ययाशो
 निशाचरोन्द्रः क्षतवार्त्तयाशः ।
 जगाम श्रेयं च सम्राजमभ्ये
 श्रेयं च बहू सुधुर्षां तन्नामीम् ॥ ७० ॥
 श्रीरामचन्द्रकीके बाणोंसे जब शरीर अकन्त क्षम
 हो चहुँछान हो गया तब निशाचरराज राजकके उर राजकीमें
 बढ़ा खेर हुआ । धाय ही उस क्षम करने बड़ा मरी श्रेय
 प्रकट किया ॥ ७ ॥

त्र्यधिकशततम सर्गं

श्रीरामका राषणको फटकारना और उनके द्वारा पावक किये गये
 राषणको सारथिका रमभूमिसे बाहर ले जाना

स तु तेन त्वा श्रेयात् फलकस्थेनार्वितो मुराम् ।
 पवणः समरदस्ययी महाश्रेयमुपागमत् ॥ १ ॥ श्रीरामचन्द्रकीके द्वारा श्रेयपूर्वक समस्त पीठित भि
 वनेपर पुरकी इच्छा रखनेबाहे राजकके महान् श्रेय हुआ ॥

स मीतमयनेऽमर्याद्यापमुचम्य धीर्यवान् ।
अभ्यर्थात् सुसकुन्तो राघव परमाहव ॥ २ ॥
उत्तके नेत्र अभिके समान प्रप्रकित हो उठे । उत
पपञ्चमी बीरने अमर्यादक चतुग उठाया और भस्त्रत कुपित
हो उत महात्मने भीरपुनापम्बीको पीवित करना आरम्भ
किया ॥ २ ॥

बाणधारासहस्रैस्तेः स तोषद् इवाम्यथात् ।
राघवं रावणो यामैस्तटाकमिव पूरयन् ॥ ३ ॥
मैंसे शब्द आग्रहते जखरी बाण बरलाकर ताबबको
मर देता है । उखी प्रचर रावणने छहसी बाणबाणमौकी छुटि
करके भीरपमन्त्रबीको आष्कादित कर दिया ॥ ३ ॥
पूरितः शारङ्गालेन भनुमुक्तेन सयुगे ।
महागिरिरिवाकम्प्य फाकुजस्यो न प्रकम्पते ॥ ४ ॥

युद्धरक्षमें रावणके चतुसते दूटे हुए बाणसयुगेते म्पस
ए बनेने भी भीरपुनापम्बी विचकित नहीं हुए। क्योंकि वे
महान् परकैत्री मीति मचक थे ॥ ४ ॥

स शूरो शारङ्गालमि वारयन् समरे स्थितः ।
गभस्तीनिय सुयस्य प्रतिजग्राह धीयवान् ॥ ५ ॥
वे समपुत्रयमें अपने बाणोंते रावणके पापोंका निवारण
करते हुए शिरमयते लगे रहे । उन पपञ्चमी खुचीरने सुय-
की प्रिवीकी मीति रात्रुक बाणोंको ग्रहण किया ॥ ५ ॥

उतः शरसहस्राणि क्षिप्रहस्तो निशाचरः ।
निजघानोरसि कुन्तो राघवस्य महारमणः ॥ ६ ॥
वरनन्तर शीघ्रवर्णक हाथ चबनेपात् निघाचर रावणने
कुपित हो महामन्न उपभेद्रको छातीमें छहसी बाण
मारे ॥ ६ ॥

स शोषितसमाश्रिग्धः समर कश्मण्यामजः ।
इच्छ सुख इषारण्ये सुमहान् किञ्चुकद्रुमः ॥ ७ ॥
कमरूमिमें उन पाणोंते पायल हुए कश्मणके बड़े भाई
भीरप रकने नरा उठ और बंगलमें लिखे हुए पत्रपत्रके
महान् इधकी भाति शिखरी देने लगे ॥ ७ ॥

शराभिघातसरणः सोऽभिजग्राह सायधनुः ।
चक्रुस्तथा सुमदातज्ज युगान्त्यदित्ययच्छसाः ॥ ८ ॥
उन पत्रोंक अघातमें कुपित हो महातेरुके भीरपने
कमराकक हों) यों शिखरी कवचोंक हाथमें
किया ॥ ८ ॥

क्याऽब्रुवन् सुसङ्घी तापुनी रामराघवाः ।
रागाग्धघर समर मीपद्मपतां तदा ॥ ९ ॥
हिर त वे दोनों राघव रावणने कुछ हो वान बजने
ए। कम्पनमें कपोंक अघातका ए। गत । यह कल्प
अपम और वान देने एक दूबरेक देव नहीं पडे थे ॥ ९ ॥

ततः क्रोभस्तदाविष्टो रामो वशरथात्मजः ।
उवाच राघव धीरा प्रहस्य पठप धन्वा ॥ १० ॥
इही कम्प कोषते मरे हुए वीर बहुरपद्रुमार भीरपने
रावणने ईकते हुए फटोर बाणोंमें कहा— ॥ १० ॥

यम भार्या जनस्थानाङ्गतात् रामुसाधम ।
इता त पियदाय यस्मात् तस्मात्स्थ न्नासि धीयवान् ॥ ११ ॥
नीच गच्छ । तू मेरे अनकानमें अनस्थानसे मेरी भवदाय
कीको हर जया है । इच्छिमे तू कबान् या पपञ्चमी तो
क्यापि नहीं है ॥ ११ ॥

यया विरहितां दीनां घर्तमानां महायने ।
पदेर्ही प्रसभ इत्या शूरोऽहमिति मन्यसे ॥ १२ ॥
विघात वनमें मुसते विष्णु हुई वीन भवस्थामें विघयमान
विदेहपञ्चसुग्रीवीक कम्प्यक अघारण करके तू अपनेको शूरी
कमसता है । ॥ १२ ॥

स्त्रीषु शूर पिनाशासु परदापभिमदानम् ।
कृत्या कापुत्रय कम शूरोऽहमिति मन्यसे ॥ १३ ॥
अकलय भवकाभोंपर वीरता विखानेकास निघाचर ।
परकीके अघारणसे कम्प्यक रचित कर्म करके तू अपनेको
शूरी मानता है । ॥ १३ ॥

भिजगमयात् निरुज्ज घारिभेष्यनवस्थितः ।
दपाम्भूरयुमुपादाय शूरोऽहमिति मन्यस ॥ १४ ॥
पर्येकी मयादा मङ्ग करनेवाले पापी, निरुज्ज और
छदाचारण्य निघाचर । तूने बरक फर्मइते बैदेरीक रूपमें
अपनी मीत कुभापी है । क्या अब भी तू अपनेको शूरी
कमहाव है ? ॥ १४ ॥

शूरेण धनवधात्रा पक्षिः सयुवितम च ।
दस्त्रघनीय महाकम यदास्य च छत त्पया ॥ १५ ॥
तू बड़ा शूरीक, बलममम और काछन् पुनेरक भाई
को है । इच्छिमे तूने यह पत्र मगळनीय और महान्
यज्यक क्ये किया है ॥ १५ ॥

उत्तेक्याभिपद्यस्य गहितस्याहितस्य च ।
कमणा प्राप्नुहीरानां तन्पाद्य सुमहत् फलम् ॥ १६ ॥
अभिमयनरूक द्विप गम उन निमित्त और अदितकर
फारमीक जो महान् कत है उत तू भाव अभी प्राप्त
कर त ॥ १६ ॥

शूरोऽहमिति यामानमगच्छसि युमेते ।
मिष सङ्गच्छसि त सीता यौतयत् प्यपकारताः ॥ १७ ॥
यद्ये कुत्रिचक निघाचर । तू अपनेको शूरीने कम्प
कमता है । किन्तु छेपक करती तए युगते कमर मुते
तन्क भी टग नहीं भये । ॥ १७ ॥

यदि मत्सन्निधौ सीता धरिण्या स्यात् स्वया वज्रात् ।
अत्रर तु सरं पश्येस्तदा मत्सायकैर्दतः ॥ १८ ॥

यदि मेरे समीप तु सीता का बन्धनार्थक प्रयत्न करेगा तो
मत्सक मेरे समक्षसे नाथ ब्रह्म अपने मार्ग करके दर्शन
करता होगा ॥ १८ ॥

विद्ययासि मम मन्दारमञ्जुविपयमागतः ।
अथ त्वा सायकैस्तीक्ष्णैर्मयामि यमसादनम् ॥ १९ ॥

मन्दबुद्धे ! तू मन्दाग्री वात है कि मन्दा तु मेरी अँसों-
गमने आ गया है । मैं अभी तुझे अपने ठीले बाजोंसे
पकूँगा ॥ १९ ॥

अथ त मच्छरीरिष्ठमन् शिरो ज्येष्ठितकुण्डलम् ।
कम्पाया व्यपकपन्तु विक्रीर्णे रणपापुपु ॥ २० ॥

अब मेरे बाजोंसे काकर रणभूमि की धूमने पड़े हुए
काममादे कुण्डलसे युक्त ठेरे मलकको मध्यमग्री जीवन्तु
मखी ॥ २० ॥

निपत्योरसि सुध्यास्ते क्षिता क्षितस्य पथप्य ।
पियन्तु रुधिर तथात् पापशाल्यास्तरोस्त्रितम् ॥ २१ ॥

पथप्य ! तेरी अथ वृन्धीपर केशी पड़ी हा उलकी काटी
पर बहूतसे पथ टूट पड़े और बाजोंकी तोफसे किय गये छेदके
बाध प्रभावित होनेवाले छरे मूला अर्थात् बड़ी प्याठके पथ
भिसे ॥ २१ ॥

अथ मन्वाप्यभिघ्नस्य गतासोः पतितस्य ते ।
करन् त्यक्तप्रापि पठगा गुरुमन्त इषोरगान् ॥ २२ ॥

अब मेरे बाजोंसे निरीच और प्राणहृत्य हाकर पड़े हुए
छरे वारीरकी अँसोंके पक्षी उठी तरा खीचें जैसे गन्ध
सर्पोंसे खींचते हैं ॥ २२ ॥

इत्येव स वन् धीरो रामः शत्रुनिवहृषा ।
राक्षसम् समीपस्य शरयैरवाकितम् ॥ २३ ॥

ऐसा करते हुए शत्रुभोक्ष नाथ करनेवाले वीर भीरुमने
पथ ही तजे हुए राक्षसगण उपजकर बाजोंकी कर्पा आरम्भ
कर दी ॥ २३ ॥

यभूय द्विगुण वीर्यं बलं हर्यं च सयुग ।
रामस्यास्रपथं खंय शत्रोर्निधनकाङ्क्षिणम् ॥ २४ ॥

उन समय पुत्रव्ययने शत्रुवधारी इच्छ्य रखनेवाले
भीरुमम वन पराक्रम उल्लाह और अन्न-पथ पकूँकर वृत्ता
हा गया ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायण पाष्मीक्रीय भाद्रिग्रन्थे पुत्रव्ययने स्वयिच्छवतमा सर्गाः ॥ १ ॥

एव प्रथम अध्यायनिर्दिष्ट अरामायण अध्यायके पुत्रव्ययने एक सी वीरता का पूरा हुआ ॥ १ ॥

मातुर्बभूवुरथापि सर्वाणि विदितस्तमाः ।
प्रहर्षाच्च महातेजाः शीघ्रहस्तस्तरोऽभवत् ॥ २५ ॥

आत्महानी रघुनाथकीके समने सभी अन्न अपने-आ
प्रकृत होने लगे । हर्ष और उत्साहके कारण सारेको
मगमान् भीरुमन्त्र हाथ बड़ी तेजीसे चमने लग ॥ २५ ॥

शुभाभ्येतानि चिह्नानि विद्यायात्मगतानि सा ।
भूय एषार्णवत् रामो राघव्य राक्षसाण्डहत् ॥ २६ ॥

अपनेमें ये शुभ चिह्न प्रकृत हुए धन राक्षसों का मृत
करनेवाले मगमान् भीरुम पुनः राजको पीड़ित करने लगे ॥

हरीणा चास्मनिकरैः शरयैश्च राघवात् ।
हृष्यमानो दशग्रीवा विभूर्भृहद्वयोऽभवत् ॥ २७ ॥

बाजोंके चमने हुए प्रहारखम्हों और भीरुमन्त्रकीके
कोड़े हुए बाजोंकी बासि आरत होकर राजका हृदय मल्ल
एवं विभ्रात हो उठा ॥ २७ ॥

यदा च शक्य नारेमे न चकारं शारासनम् ।
वास्य प्रत्यकरोत् वीर्यं चिह्नयेनान्तरात्मनः ॥ २८ ॥

क्षितायाशु शारास्तेन शक्यापि विविधानि च ।
मग्नायाप्य पर्यन्ते मृत्युकण्ठेऽभ्यवर्तत ॥ २९ ॥

सुप्तस्तु रथन्तस्य तथपस्य निरीक्ष्य तम् ।
शरैर्मुखात्सम्भ्रान्तो रथ तस्याप्लावहत् ॥ ३० ॥

जब हृदयकी मृत्युकण्ठके कारण उद्यमें शक्य ठठठके
पनुपका खींचने और भीरुमके पराक्रम का खमना करनेकी
क्षमता नहीं रह गयी तथा जब भीरुमके शीघ्रापूर्वक चमने
हुए राज एवं मँति मँतिके चमन उलकी मृत्युके लक्ष
कमने लगे और उलका मृत्युकण्ठ समीप आ पहुँचा, तब उलकी
ऐसी भवता देल उलका रथकाक करणिया किना किरी
पकण्डके उलके रथको रणभूमिसे दूर हटा के गया २८—१

रथ च तस्याथ जनेन सारथि-
निवार्य भीम जन्मस्मन् तदा ।

जगाम भीत्या समरागमहीपति
निरसतवीर्यं पतित समीक्ष्य ॥ ३१ ॥

अपने राजका धकिरीन हाकर रथपर पड़ा देल राजका
सरथि मेपक समान गम्भीर और करनेवाले उलके मयनक
रथको छोड़ाकर उलके लय ही भयके मोरे समरभूमिसे दूर
निकल गया ॥ ३१ ॥

अपने राजका धकिरीन हाकर रथपर पड़ा देल राजका
सरथि मेपक समान गम्भीर और करनेवाले उलके मयनक
रथको छोड़ाकर उलके लय ही भयके मोरे समरभूमिसे दूर
निकल गया ॥ ३१ ॥

अपने राजका धकिरीन हाकर रथपर पड़ा देल राजका
सरथि मेपक समान गम्भीर और करनेवाले उलके मयनक
रथको छोड़ाकर उलके लय ही भयके मोरे समरभूमिसे दूर
निकल गया ॥ ३१ ॥



चतुरधिकशततमः सर्गः

रावणका सारथिको फटकारना और सारथिका अपने उत्तरसे रावणको सतुष्ट करके उसके रथको रणभूमिमें पहुँचाना

ए त्तु मोहाद् सुसमुद्रा कृतान्तथञ्जोदितः ।
 भ्रमेभस्तरत्तन्मनो रावणाः स्रुतमग्रवीद् ॥ १ ॥
 यवण काचकी शक्तिसे प्रेरित हो रहा था, अतः मोहवश
 अस्फुट कुम्भि हो झपटसे जख भौलें करक अपने सारथिके
 बोध—॥ १ ॥
 हीनधीयमिषाशुष्ट पौटयेण विषजितम् ।
 भीठ छपुमियासस्य विहीनमिष तेजसा ॥ २ ॥
 पिमुकमिय मायाभिरुल्लैरिष यधिष्ठितम् ।
 मामभयाय तुर्वुदे स्वया युद्धया विषोद्यते ॥ ३ ॥
 'तुर्वुदे'। क्या तुने मुझे परक्रमण्य, मत्स्यय, पुरगार्य-
 पन्थ, इरपक, अन्ता, येयहीन, निलेक, मान्यरहित और
 भकों कनय बजित समस्त रक्षा है, ओ मरी अवहेलना
 करके तू ममी बुद्धिसे मनमन्या भ्रम कर रहा है (तूने
 मुझसे पूछा क्यों नहीं ?) ॥ २३ ॥
 किमर्यं मामथज्ञाय मच्छन्दमन्वेष्य च ।
 त्वया शत्रुसमक्षं मं रयोऽयमपवाहितः ॥ ४ ॥
 मेरा अग्रियाय क्या है यह जाने किना ही मेरी अवहेलना
 करके तू किस किन्तु शत्रुके समनेसे मया यह रथ हटा
 क्या ? ॥ ४ ॥
 त्वयाद्य हि प्रमान्यय चिरकालमुपाजितम् ।
 यशो धीर्यं च तेजस्य प्रत्ययस्य विभाशिता ॥ ५ ॥
 मन्तर्त्तं। आब तुने मेरे चिरकालसे उपाजित यद्य
 परक्रम तेज और विश्वतमर पानी फेर दिया ॥ ५ ॥
 धात्रोः प्रख्यातधीयस्य रक्षणीयस्य विक्रमौ ।
 पश्यता युद्धसम्भोऽहं कृतः कापुत्रयस्त्वया ॥ ६ ॥
 फरं शत्रुस्य बन्धनकर्म विन्यात है। उसे अपने क-
 विक्रमहाय संशुध करना मेरे किम उचित है और मैं युद्धक
 धीमी हूँ तो भी तुने रथ हटाकर शत्रुकी दक्षिणे मुझे फेरकर
 शिष्ट कर दिया ॥ ६ ॥
 यत् त्व फयमिव माहाद्य चेद्दृष्टसि दुर्मते ।
 साय्योऽय प्रकृतिको मे परेण स्वपुनरुच्छता ॥ ७ ॥
 'दुर्मते'। यदि तू 'म' रथका मोहवश किसी तरह भी
 शत्रुके सामने नहीं चलाता है तो मेरा यह अनुमान क्या है
 कि शत्रुने मुझे पूरा बेकार कर दिया है ॥ ७ ॥
 यहि तद् विद्यत कम सुहृदो हितकामिण्यः ।
 रिपूणा सद्यदा स्यतद् यत् स्वयैतन्ननुष्ठितम् ॥ ८ ॥
 'दित'। आनेवाले मित्रका यह भ्रम नहीं है। तुने ओ
 कार्य किया है, यह शत्रुकी कदने फण्य है ॥ ८ ॥

निवर्तय रथ शीघ्र यावन्नापैति मे रिपुः ।
 यत्रि धाप्युगितोऽसि त्व स्ययैते यत्रि मे गुणा ॥ ९ ॥
 यत्रि तू मेरे साथ बहुत दिनोंसे रहा है और यदि मेरे
 गुणोंका तुझे स्मरण है तो मेरे इस रथका शीघ्र छोटा ल जात।
 करी ऐसा न हो कि मेरा शत्रु मया मया ॥ ९ ॥
 एष परुषमुकस्तु हितयुद्धिरयुद्धिना ।
 मग्रवीद् रावण स्रुतो हितं सानुनय यथा ॥ १० ॥
 यद्यपि सारथिकी बुद्धिमें यत्रकके छिमे हितकी ही भावना
 थी तथापि उस मूलने कथ उल्टे पक्षी फटकर जात करी, तब
 सारथिके बड़ी किनयके साथ यह हितकर बचन क्या—॥ १० ॥
 न भीतोऽसि न मूढोऽसि नोपजसोऽसि शत्रुभिः ।
 न प्रमत्तो न मिन्सेहो विस्मृता न च सक्तिया ॥ ११ ॥
 'महाद्य'। मैं बच नहीं हूँ। मेरा निवृत्त भी नष्ट नहीं
 हुआ है और न तुझे शत्रुधोंने ही बहकया है। मैं बलावधन
 भी नहीं हूँ। आपका प्रति मया स्नेह भी कम नहीं हुआ है
 तथा आपने अब मया स्मरण किया है उसे भी मैं नहीं
 भूष्य हूँ ॥ ११ ॥
 मया तु हितकामेन यदाद्य परिरक्षता ।
 स्नेहप्रसन्नमनसा हितमित्यप्रियं कृतम् ॥ १२ ॥
 मैं क्या आपका हित चाहता हूँ और आपके यद्यकी
 रक्षके छिमे ही मलधीक रहता हूँ। मेरा हृदय आपके प्रति
 स्नेहसे भरा है। इस कर्मसे आपका हित होगा—यह स्मरण
 ही मैंने इसे किया है। मते ही यह आपकी अग्रिय क्या ॥ १२ ॥
 नासिधये महापज त्व मां निपहितं रत्नम् ।
 कश्चिल्लघुरिबाणायो योपतो गन्तुमर्हसि ॥ १३ ॥
 'महाद्य'। मैं आपके प्रिय और हितमें तरार रहनेवाला
 हूँ; अतः इस कर्मके किन्तु भ्रम किसी भ्रमे और अन्याय
 पुरुषकी मूर्खि मुझपर दोषदोषन न करें ॥ १३ ॥
 श्रूयता प्रति शस्त्र्यामि यधियित्तं मया रथाः ।
 नदीयेण इषाम्भेभिः सपुत्रो यिनिपठिता ॥ १४ ॥
 'जसे'। अन्नादिक कर्मण बना हुआ सपुत्रक कठ मरीके
 वेगक पीठ छोटा देता है उन्ही प्रकार मैंने किन कर्मसे
 आपके रथको युद्धभूमिसे पीठ हटाया है उसे क्या रहा हूँ,
 मुनीये ॥ १४ ॥
 भ्रम तथाप्यगच्छमि महता रणकमणा ।
 नहि त र्थयसौमुख्यं प्रकुर्ये नोपधारय ॥ १५ ॥

एवम समं मेने यह एमस्य वा किं आप महान् युद्धके
कल्प यद् गये है। धनुषी अपेक्षा मेने आपकी प्रसन्नता
नहीं देखी, आपने अधिक परकम नहीं पाया ॥ १५ ॥

रघोऽह्वनस्त्रिधास्य भ्रम्य मे रथवाजिनः।
दीन्य धर्मपरिभ्रान्ता गतवो पर्यहृष्ट इव ॥ १६ ॥
मेरे घोड़े भी रथको खींचते-खींचते एक गये थे। इनके
पांव छत्रकड़ा रहे थे। वे भूषते पीड़ित हो वर्षाकी मारी
दुई चौकीके समान बुझी हो गये थे ॥ १६ ॥

निमित्तानि च भूयिष्ठ यानि प्रातुर्भवन्ति नः।
तपु तपत्रभिफनेषु लक्षयाम्यप्रक्षिप्यम् ॥ १७ ॥
साथ ही इस समय मेरे धमने धे-धे सम्य प्रकट हो
रहे हैं यदि वे एकत्र हुए तो हमें उसमें अपना अमङ्गल ही
दिखायी देता है ॥ १७ ॥

देशकालौ च विद्येयौ लक्षणातीक्ष्णानि च।
दैन्यं हर्षञ्च खेदञ्च रयिनञ्च वक्ष्यवक्षम् ॥ १८ ॥
धरतिभ्यो देश-कालञ्च शुभशुभ लक्षणीकः रथीषी
नेत्रभौकः। उक्त्वा अनुस्वह और खेदञ्च तथा क्लेशकञ्च
भी जान रक्षना चाहिये ॥ १८ ॥

सखनिम्नानि भूमेश्च समानि विपमणि च।
युद्धकालञ्च विद्येया परस्परान्तरवर्षान्मम् ॥ १९ ॥
बराहिके धे उँचे-नीचे सम-निचम ज्ञान ही, उनकी
भी धनकरी रखनी चाहिये। युद्धकाल उपयुक्त अवसर कब
होय इसे जानना और धनुषी दुर्बलतापर भी दृष्टि रखनी
चाहिये ॥ १९ ॥

उपधानापयाने च स्थान प्रत्यपसर्पणम्।
सर्भितव् रथस्थेन क्षेत्रं रथकुट्टमिन्य ॥ २० ॥
धनुषके पास धमने वृह हदने युद्धमें खिर खने तथा
युद्धभूमिसे भङ्गा हो जानेका उपयुक्त अवसर कब आता है
इन सब बातोंको समझना रथपर बैठे हुए धरतिभ्य करतब्य है।

तत्र विभ्रामहेतोस्तु तथैर्षा रथवाजिनाम्।
रौर्षं वर्जयथा जेद् क्षमं हतमिद् मया ॥ २१ ॥
धरतिभ्यो तथा इन रथके घोड़ोंको घोड़ी देरक विधम
देने और खेद वृह करनेके लिये मेने धे यह धर्म किया है,
सर्षय ठकित है ॥ २१ ॥

हृषार्थे श्रीमद्भ्रम्ययने वाक्यीभ्यो वाकिकाम्ये
एत प्रभर श्रीमद्भ्रम्ययने अर्षरामायण अर्थिकाम्ये

स्वेच्छया न मया वीर रघोऽयमपवाहिता।
भर्तुः स्नेहपरीतेन मयेद् यत् हृत प्रभो ॥ २२ ॥

धीर। प्रभो! मेने मनमानी करनेके लिये नहीं हृषार्थके
स्नेहवध उनकी रक्षाके लिये इस रथको वृह हम्मा है ॥ २२ ॥
आज्ञापय पयातर्यं धक्यस्वरिनिवृत्त।
तत् करिष्याम्यह वीर गताभुभ्येन धतसा ॥ २३ ॥
धनुसहन धीर। मम आज्ञा दीजिये। मम ठीक
समझकर जो कुछ भी कहेंगे उसे मैं मनमें आपके श्रुत्ये
उत्थप होनेकी आकांक्षा रखकर कहूँगा ॥ २३ ॥

सन्तुष्टेन वाक्येन पथणस्तस्य सारधेः।
प्रशस्त्यैव बहुविधं युद्धलुभ्योऽवधीविधम् ॥ २४ ॥
धरतिभ्यो इस कथनसे राकब बहुत धुंष्ट हुआ और
नाना प्रकारसे उसकी खरादना करके युद्धके लिये धेक्ष्य सेक
बोझ—॥ २४ ॥

एवं शीघ्रमिमं सृष्ट राघवाभिमुखं नय।
नाहत्या समरे धनुर् निभर्तिष्यति राकवा ॥ २५ ॥
सृष्ट। मम हृम इस रथको शीघ्र समके धमने धे
पक्षे। एवम धमने अपने धनुषोंको मारे बिना पर नहीं
धेरेगा ॥ २५ ॥

एवमुक्त्वा रथस्थस्य राघवो राक्षसेभरः।
दशै तस्य शुभं क्षेत्रं हस्तभरजमुत्तमम्।
शुक्ल राघववाक्ययानि सारथिः संम्यमर्षत ॥ २६ ॥
ऐसा कहकर राक्षस्यन राकबने धरतिभ्यो परस्परके
स्पर्धे अपने हाथपर एक कुम्हर माभूज उतारकर दे दिया।
राकबका अर्थेध सुनकर धरतिभ्ये पुनः रथको कीम्य ॥

ततो हृत राघववाक्ययचोविता।
प्रबोद्धयामास हयान् स सारथिः।
स राक्षसेभ्यस्य ततो महारथा
सज्जेन रामस्य रणाप्रतोऽभकत् ॥ २७ ॥

राकबकी आज्ञासे प्रेरित हो धरतिभ्ये दुरंत ही अपने
घोड़े हँके। फिर तो राक्षस्यकब यह विद्यक रथ धमनमें
युद्धके मुनानेपर धीयमन्त्रकीके समीप आ पहुँचा ॥ २७ ॥
युद्धकालसे चतुर्दिकसततमः सर्षा ॥ १ ४ ॥
युद्धकालमें पर ती आर्यों सर्ष पूरा हुआ ॥ १ ४ ॥

पञ्चाधिकशततम सर्ग

अगत्य मुनिष्ठा श्रीरामको विजयक लिये 'आदित्यहृदय' के पाठकी सम्मति देना
ततो युद्धपरिभ्रान्तं समरे धिन्तया स्थितम्।
वैवतैश्च समागम्य द्रष्टुमभ्यागतो रजम्।
रावर्षं चाप्रतो हृष्टा युदाय सन्तुपस्थितम् ॥ १ ॥ उपगम्याश्रीवृत् राममगतस्तो भगवांस्तथा ॥ २ ॥

उपर भीरुमन्त्रनी युद्धे यत्कञ्च चिन्तय कर्ते हुण्
रपभूमिमे खड्ग ये । इतनेमे राकन भी युद्धके सिन्धे टनके
धमने उपस्थित हो गया । यह देख मन्वान् क्वास्म्य मुनि,
यो देवताभोक्त्वा वाप युद्ध देखनेके सिन्धे आये थे, भीरुमन्त्रके
पार ब्रह्मर कोड़े—॥ १-२ ॥

राम राम महाबाहो शृणु गुह्यं सनातनम् ।
पद सर्वानरीन्द्र घत्स समरे विजयिष्यसे ॥ ३ ॥

स्वक हृदयमे रम्य करनेवाले महाबाहो राम ! यह
कनाशन गोपीय छात्र मुना । शर ॥ इतके करते तुम युद्धमें
भगने समस्त शत्रुओंपर विजय पा जाओगे ॥ ३ ॥

मादित्यहृदय पुण्य सर्वशत्रुविनाशनम् ।
जपान्तु सप नित्यमस्त्य परमे शिषम् ॥ ४ ॥
सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
चिन्त्याशोकप्रशमनमायुषधनमुत्तमम् ॥ ५ ॥

यह गोपीय श्रोत्रक नाम है 'मादित्यहृदय' । यह
पम पवित्र और सम्यक् शत्रुओंका नाश करनेवाला है ।
इतके करते सब विकल्पी प्राप्ति हाती है । यह नित्य मन्त्र
और पम कल्याणम शीतल है । सम्यक् मङ्गलोंका भी मङ्गल
है । इसके सब पापोंका नाश हो जाता है । यह चिन्त्या और
शोकके निवारने तथा आयुको बढ़ानेवाला उषम धामन है ॥
रक्षिमन्त्र समुद्यन्त देवासुरनमस्कृतम् ।
पूज्यस्त विवस्वन्त भास्करं मुचनेश्वरम् ॥ ६ ॥

मन्वान् सर्व भवनी मन्त्र किशोरे तुष्टोमित
(रक्षिमन्त्र) है । ये नित्य उदय होनेवाले (समुद्यन्)

देवय और असुरोंसे नमस्कृत, विवस्वन् नामसे प्रसिद्ध,
प्रमात्र विस्तार करनेवाले (भास्कर) और शंकरके स्वामी
(मुचनेश्वर) हैं । तुम इनका [रक्षिमन्त्रे नमः, समुद्यन्ते नमः,
देवासुरनमस्कुत्वाय नमः, विवस्वते नमः, मन्त्रस्वयं नमः,
मुचनेश्वय नमः—इन नाम-मन्त्रोंके द्वारा] पूजन करो ॥

सषदेधात्मको ह्येष तेजस्वी रक्षिमभावना ।
एष देधासुरगणोद्धोकान् पाति शभस्तिभिः ॥ ७ ॥

सम्यक् देवता इन्हींके स्वरूप हैं । ये तेजस्वी यधि तथा
मन्त्री किशोरे अष्टको उष्ण एवं सूर्ये प्रदान करनेवाले
हैं । ये ही भवनी रक्षिमन्त्रोका प्रहर करने देवता और असुरों-
वरित सम्यक् मन्त्रोंका पञ्चन करते हैं ॥ ७ ॥

एष ब्रह्मा च विष्णुश्च शिवाः स्कन्धः प्रजापतिः ।
महेश्रो भवन्तः कास्त्रे पमः सोमो ह्यपो पतिः ॥ ८ ॥
विश्रो वसवा साभ्या अभिनी मदतो मनुः ।
वायुर्भङ्गिः प्रजाः प्राण श्रुतुर्द्वौ प्रभाकरः ॥ ९ ॥

ये ही ब्रह्मा विष्णु, शिव, स्कन्ध, प्रजापति, इन्द्र, कुबेर,
ब्रह्म, पम, अश्रमा, परशु, विश्व, वायु, वाप्य, अभिनीकुमार,
मन्त्रप, मनु, वायु, मन्त्रि, प्रजा, प्राण श्रुतुर्द्वौके प्रकट
करनेवाले तथा प्रम्यके पुत्र हैं ॥ ८ ॥

श्रुतित्या सविता स्यात् कला पूग गभस्तिमान् ।
सुवर्णसङ्घटो भानुर्द्विरापरैश्चा विषाकरः ॥ १० ॥
हरिदम्बाः सङ्घटार्थिः सप्तसप्तमिरीकिमान् ।
विमिरोमघनः शम्भुस्त्वष्टा मातैर्द्वयोऽशुमात् ॥ ११ ॥
द्विरम्बगर्भोः शिशिरस्तपनोऽहस्करो रविः ।

विविधोग

० नमः मादित्यहृदयश्रोत्रकामत्स्यपरिलत्तुम्बुरं मादित्यहृदयपूर्वे मन्वान् ब्रह्म रक्ष्य निरसापेरविष्णव्य ब्रह्म-
विष्णुयोः सर्वं ब्रह्मेश्वी च विविधानः ।

ब्रह्मविष्णुस्य

० ब्राह्मणवर्चसे नमः किरिति । ननुचुचुभ्रवसे नमः मुनेः । मादित्यहृदयपूर्वकस्यै नमः इति । ० वीर्याव
नमः मुनेः । रक्षिमन्त्रे मङ्गले नमः परकोः । ० लक्ष्मिभिराशिरिष्णवस्यै नमः यान्नी ।

हरम्याय

इत एतेके महामन्त्र और ब्रह्मन्त्र तीन प्रकारसे मिले जाते हैं । वेदक प्रमन्त्रे गावरीमन्त्रके अन्तर्गत रक्षिमन्त्रे नमः इत्यादि
० नाम-मन्त्रोंके । यहाँ नान-मन्त्रोंके मिले जानेके म्हात्म्य प्रकर बताया जाय है—

० रक्षिमन्त्रे मङ्गलमन्त्रं नमः । ० समुद्यन्ते लक्ष्मीमन्त्रं नमः । ० देवासुरनमस्कृत्य मन्त्रनाम्नं नमः । ० विवस्वते मन्त्रमि-
न्त्रं नमः । ० वात्सल्य वनिषिकाभ्यं नमः । ० मुचनेश्वर्य भद्रैर्द्वयप्रमन्त्रं नमः ।

हृदयविष्णुस्य

० रक्षिमन्त्रे हृदय नमः । ० समुद्यन्ते द्विसे म्हात् । ० देवासुरनमस्कृत्य मन्त्रमन्त्रं नमः । ० विवस्वत मन्त्रमन्त्रं नमः ।
० मन्त्रमन्त्र मन्त्रमन्त्रं नमः । ० मुचनेश्वर्य मन्त्रमन्त्रं नमः । इत प्रकर मन्त्र करके निष्पद्यित मन्त्रके मन्वान् सर्वं मन्त्रं मन्त्रं
वर्षं नमस्त्य ह्रदय विविधे—

० सूर्यः स्यात्पञ्चमिरीषं मन्त्रं देवय भीमवि नित्ये ये मः प्रकोदपत्तः ।
नमस्त्य मादित्यहृदयं शीतलं वाड शरय वनिषः ।

अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥

अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥

अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥

अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥

अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥

अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥
 अग्निगर्भोऽद्वितो पुत्रः शङ्खा शिशिरनाम्ना ॥ १२ ॥

के स्वामी तथा बिनके अविपत्ति व्यापके प्रथम है ॥ ११ ॥
 जयाय जयभद्राय ह्यभ्याय नमो नमः ॥
 नमो नमः सहस्राद्यो आदित्याय नमो नमः ॥ १७ ॥

अथ अमरकम तथा विष्णु और कल्याणके उद्योग ॥
 आपके रथमें हरे रंगके घोड़े सुते रहते हैं। आपके करके
 नमस्कार है। खसौं किरणोंसे सुशोभित मगधरुई।
 व्यापके आरंभ प्रथम है। आप अद्वितिके पुत्र होनेके कारण
 आदित्यामने प्रसिद्ध हैं; आपके नमस्कार है ॥ १७ ॥
 नम उग्राय धीपय चारुकाय नमो नमः ॥
 नमः पद्मप्रबोधाय प्रकम्पाय नमोऽस्तु ते ॥ १८ ॥

उग्र (अमरकोंके सिने मयंकर), नीर (अक्षि-
 सम्पन्न) और चारुग (धीमत्प्रामी) स्वर्देवको नमस्कार है।
 कमलोंको विकसित करनेवाले मन्त्र देवचरी मार्गको
 प्रथम है ॥ १८ ॥

अथेशान्तायुतेऽग्रय सुरापादित्यवर्षसे।
 भास्वते सर्वभद्राय रौद्राय वपुये नमः ॥ १९ ॥

५ फलकर-रूपमें) आप ब्रह्मा धिक् और विष्णुके भी
 स्वामी हैं। सूर अथवा धिक् है, वह स्वर्गमण्डल अथवा ही
 देव है, आप प्रकृष्टते परिपूर्ण हैं स्वका स्वहा कर देनेका
 अग्नि आपका ही स्वयं है, आप रौद्ररुम चारण करनेवाले
 हैं आपके नमस्कार है ॥ १९ ॥

तमोष्णाय हिमन्नाय शत्रुन्नायामिहात्मने।
 कृतघ्नकाय इषाय ज्योतिषां पत्ये नमः ॥ २० ॥

अथ अथन और अन्धकारके नाशक, कष्ट एवं श्रेष्ठ-
 के निवारक तथा शत्रुनाश करनेवाले हैं आपका स्वयं
 अग्रय है। आप कृतघ्ननाश करनेवाले समूर्ण ज्योतिषों-
 के स्वामी और देवत्वस्व हैं आपके नमस्कार है ॥ २० ॥
 तप्तपामीकराभाय हरये विम्बकर्मणे।
 नमस्तमोऽग्निमिच्छय नवये स्रक्साक्षिणे ॥ २१ ॥

आपकी प्रभा तथाय हुए सुकर्षके समान है, अथ हरि
 (अथनका हरण करनेवाले) और विम्बकर्म (अन्धकी श्रेष्ठ
 करनेवाले) हैं आपके नाशक प्रकृष्टत्वस्व और अन्धके लक्ष्य
 हैं। आपके नमस्कार है ॥ २१ ॥

गद्ययत्येय वै भूत तमेव सृजति प्रभुः।
 पायत्येय तपत्येय धरत्येय गभस्तिभिः ॥ २२ ॥
 अथनान्त । ये भगवान् स्वर्ग ही समूह भूतोंका उत्पन्न
 सृष्टि और पालन करते हैं। ये ही अपनी किरणोंसे स्वर्ग पुँजको
 और बर्तों करते हैं ॥ २२ ॥

पर सुतेषु जागति भूतेषु परिनिष्ठिता।
 पर वीर्यामिहोर्ध्वं च फलं वैशान्तिहोत्रिणाम् ॥ २३ ॥
 ये तब भूतोंमें अन्धकारीरूपसे स्थित होकर उनके लक्ष्य
 अनेपर भी जागते रहते हैं। ये ही अग्निहोत्र तथा अग्निहोत्री
 पुरुषोंको मित्रेवासे पूजते हैं ॥ २३ ॥

हेयाद्यः प्रत्यक्षैव प्रवृत्तां फलमव च ।
यानि ह्यन्यानि ह्येकेषु सर्वेषु परमप्रभुः ॥ २४ ॥

(यहमें मग प्राण करनेवाले) देवता यज्ञ और यज्ञोंक
रूप ही यी हैं । सर्वपूर्ण व्यक्तियों किनी क्रियाएँ होती हैं
उन सबका फल देनेमें यी पूर्ण समर्थ हैं ॥ २४ ॥

एतन्मापस्तु ह्यप्येषु क्वाप्यारु भयेषु च ।
धीतयन् पुरुषः क्वधिषावसीदति राघव ॥ २५ ॥

प्रायः । विपत्तिमें कष्टमें दुर्गम मार्गमें तथा और किसी
मनके भयकरार में कोई पुरुष इन मूर्खिणका धीर्तन करता
है उसे दुःख नहीं भेजना पड़ता ॥ २५ ॥

पूज्यपस्विनमकामा वृषधेष अगत्यतिम् ।
एतस् विमुञ्जित जन्त्या युधेषु विह्वयिष्यति ॥ २६ ॥

प्रसन्निय तुम एकप्रसन्निक हाकर इन वैश्वधिवेक
काशोककी पूजा कर । इस भादित्यहदयका तीन बार
बार करनेसे तुम युद्धमें विजय पाओगे ॥ २६ ॥

भक्तिन् दानं महाबाहो रावण त्व अहिष्यसि ।
एवमुक्त्वा ततोऽगस्त्या जगाम स पथागतम् ॥ २७ ॥

महाबाहो ! तुम इसीधन रावणका वचन कर सकोगे । यह
करकर अमृत्यवी बने आये य ठीकी प्रकार वचन गये ॥२७॥
एतच्छ्रुत्वा महातजा नशुशोकोऽभयत् तदा ।
धारयामास सुप्रसन्नो राघवः प्रयत्नामवान् ॥ २८ ॥

इत्यार्षे भीमव्रामायेन वाक्प्रीयैर्भाविष्याम्ये युद्धकाण्डे पञ्चदशोऽध्यायः सर्गः ॥ १ ५ ॥

इस प्रकार श्रीमहाभक्तिनिर्मित अमरकमवचन-भक्तिप्राप्तक युद्धकाण्डमें एक तीर्थवर्ता सग पूरा हुआ ॥ १ ५ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः सर्गः

रावणक रथका दान भीरामका मातलिका सावधान करना रावणकी पराजयक सूचक
उत्पातों तथा रामकी विजय सूचित करनेवाले शुभ शकुनोंका वगन

सारथिः स रथ इष्टः परसैव्यधरणम् ।

गन्धधनगराकार समुच्छिद्रतलाकिनम् ॥ १ ॥

युक्त परमसम्पन्नवाजिभिर्हेममालिभिः ।

युवायकधैः पूर्ण पलाशरथप्रमालिभम् ॥ २ ॥

प्रसन्नमिव साक्षात् नान्दयन्त यमुधराम् ।

प्रयाता परसैव्यान्त स्वसैन्यस्य प्रहरणम् ॥ ३ ॥

रावणस्य रथ क्षिप्रं चाद्रयामास सारथिः ।

रावणक सारथिने रथ और उत्सवस युक्त हाकर उनक

रथका सम्पन्नरथ हाँका । वह रथ यामुन्नाद्य युक्त हातनशास

या और सन्धधनगरक समान आभारकक रिकारी रथ

था । उठकर बहुत ऊंची पलाश धरग रही थी । उस रथमें

उत्सव गुणान सम्यक् और धनक हाथन भनहन पद युन

दुर था । रथक और युद्धकी आनन्दक सामग्री भी पड़ी

भादित्य प्रेक्ष्य जप्सवद् पर ह्यमयातायान् ।

धिराद्यम्य शुचिभूत्वा धनुरात्राय वीरयान् ॥ २९ ॥

रावण प्रेक्ष्य ह्यथामा अयार्थं समुपागमत् ।

ससपतनन महत्या द्यूतस्तस्य वचऽभयत् ॥ ३० ॥

उनका उपदेश सुनकर महातन्त्री भीरमचन्द्रवीरका हाँक

दुर हाँ गया । उन्होंने प्रकृत हाँकर युद्धनिष्ठे भादित्य-

हृदयक धारण किया और तीन बार आचमन करक

शुद्ध हाँ मगान् पूर्वकी ओर देखत हुए इत्थन तीन

बार वच किया । इसमें उन्हें बड़ा हर्ष हुआ ।

किर मम पराक्रमी रघुनाथकी वनुर उठाकर रावणकी

ओर दूला और उत्सवपूर्वक विजय पानेके किये ये भयो

बढ़े । उन्होंने पूरा प्रकृत करक रावणक वचन निभय

किया ॥ २८-३१ ॥

अथ रथिरयद्विरीक्ष्य राम

मुदितमनाः परम प्रहृष्यमाणः ।

निदिश्वरपत्तिसस्रय विदित्वा

सुतुण्यमभ्यगतो वचस्त्वयति ॥ ३१ ॥

उस समय देवताओंक मन्थमें लड़ हुए मगान् सुर्गे

प्रकृत हाँकर भीरमचन्द्रवीरकी ओर दूला और निशाचरयक

रावणक किनासक समय निष्ठ वनकर इत्पूर्वक कथा—
युनमन । अब बस्ती कर ॥ ३१ ॥

थी । उस रथने पञ्च पञ्चस्रस्रोंके तो माला छे परन रकनी

थी । वह आभारक अमना प्राप्त कता कुभ-या वन

पड़ता था । वसुधवचन अमनी परर धनिने निनादिन कर

ता था । वह युद्धकी मन्त्राओंक नाथक और अमनी सेनाक

महाभयक इत पदानाथक था ॥ २-३५ ॥

तमापतन्त सहसा स्तनपन्त महाभयकम् ॥ ४ ॥
रथ राक्षसराजस्य नरराजा ददा ह ।
नरराज भीरमचन्द्रकीन कल्या वर्त भात हुए विमान

अनन अमरुत और पर पर ध्वनिन युक्त राक्षसराज
रावणक उठ रथक दना ॥ ३५ ॥
कृष्णवाजिसमायुक्तं युक्त रीद्रथ परसा ॥ १ ॥
रीष्यमातमिशायान् विमान स्यययमम् ।
रथने वन रथक पर उठा हुए था । रथकी सानि

बड़ी मर्षकर थी । वह आश्रयमें प्रसन्नित होनेवाले स्वयंभुव
 थेकसी विमानके समान दृष्टिगोचर होता था ॥ १६ ॥

तद्विस्तारान्तरात्तु वृद्धितेऽप्युपभ्रमम् ॥ ६ ॥
 शरत्भावा विमुञ्चन्त धापधर्मिणाम्बुदम् ।

उपर फहरती हुई पदाक्षरों विद्युत्के समान जल पड़ती
 थी । वहाँ जो रावणका अनुचर या उसके द्वारा वह रथ इन्द्र
 अनुचरी छाया छत्रपटा या और शार्पोंकी धारावाहिक वृष्टि
 करण था । इसमें वह ऋषयाचार्यों मेघके समान प्रतीत
 होता था ॥ १६ ॥

न ह्यु मेघसकृशमापत्त रथ रिपोः ॥ ७ ॥
 गिर्यभ्राभिभूषस्य दीर्यतः सहस्रात्मनम् ।
 विस्मयारयन् वै वेगेन बालजम्बानत धनुः ॥ ८ ॥
 उवाच मातङ्गि रामः सहस्रात्मस्य सारथिम् ।

उसकी भलाज ऐसी माध्यम इती थी माना बज्रके
 आघाते किसी फलके फटनेका शब्द हो रहा हो । मणके
 समान प्रतीत होनेवाले शत्रुके उध रथको अथवा देख भीष्म-
 चन्द्रबीने बड़े वेगसे आने अनुपपर टकरा रही । उध सम्य
 उनका वह अनुचर द्वितीयाक चन्द्रमा-काय विलापी देख था ।
 भीष्मने इन्द्रद्वाराथि मातङ्गि कहा— ॥ ७-८ ॥

मातङ्ग पश्य सरब्धमापत्त रथ रिपोः ॥ ९ ॥
 यथापसम्प पतत्या संगत महत्या पुनः ।
 समरे हन्तुमात्मान तथातन कृता मतिः ॥ १० ॥

मातङ्ग ! देखा मरी शत्रु रावणका रथ बड़े वेगसे आ
 रहा है । रावण किस प्रकार प्रकृष्टिभावसे महान् वेगके साथ
 पुन आ रहा है उससे जल पड़ता है इतने समरभूमिमें
 अपने रावण निश्चय कर लिया है ॥ ९ ॥

तद्भ्रमाम्भ्रमातिष्ठ प्रत्युद्गाच्छ रथ रिपोः ।
 विज्वसयितुमिच्छामि वायुमैघमिवोत्थितम् ॥ ११ ॥

अथः अत्र द्रम लवणन हो अथम् और शत्रुके रथकी
 ओर आने बड़ा । जैसे हवा उमड़ हुए बादलोंके किम-मिष
 कर शम्की है उसी प्रकार भाव में शत्रुके रथका विज्वस
 करना चाहता हूँ ॥ ११ ॥

अधिष्णवमसम्भ्रान्तमम्ब्राह्मण्यपज्ञाप्यम् ।
 रक्षिसन्धारनियत प्रबाध्य रथ हुतम् ॥ १२ ॥

अथ तथा फलवदत ऋषिकर मन और नेत्राको स्थिर
 रखत हुए घोड़ाकी बगवार कर्णने रक्ता और रथका ठेक
 फलभी ॥ १२ ॥

काम न त्व समाधयाः पुरङ्गरथावित्ता ।
 युयुत्सुरक्षमकराः क्षारय त्वा न द्वाहाप ॥ १३ ॥

भुजों देववत इन्द्रका रथ हौंकरन अन्वय है अथ
 तुमको कुछ गिलावनेकी आवश्यकता नहीं है । मैं एकप्रथिय

होकर मुझ करने चाहता हूँ । इतनी इतने लौकिक
 स्वरूपमात्र क्या रहा हूँ । तुमने किन्ना नहीं देखा हूँ ॥ ११ ॥

परितुष्टः स रामश्च तदा कथमेव मत्तमि ।
 प्रबोधयामस्त रथ सुरसारविद्युत्तमः ॥ १३ ॥
 अपसम्प तदा कुर्वन् रावणस्य प्रहारकम् ।
 बालसम्भ्रतारजसा रावणं ज्वलन्वृणक्त ॥ १४ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके इस वक्तसे देवताओंके वेद लकी
 मातङ्गिके बड़ा संतोष हुआ और उन्होंने उनको किन्ना
 रथको शक्ति रखते हुए अपने रथको अपने कण्ठ । उसे
 पहिचसे इतनी भूक उड़ी कि यज्ञ उसे देवदत्त की
 उठा ॥ १४ १५ ॥

तदा हुन्द्रो ब्रह्मनिवृत्तान्विस्मयारितेक्षणः ।
 रथमस्मिन्ना राम सारथैरवबृणक्त ॥ १६ ॥

इससे दशमुख रावणको बड़ा श्रेय हुआ । वह लकी
 सङ्ग-सङ्ग भौंसें फाड़कर देखात हुआ रथके लकने हुए
 श्रीरामकर शार्पोंकी वृष्टि करने लगा ॥ १६ ॥

धर्मप्यामिषितो रामो धैर्यं रोषेण जम्भकम् ।
 जग्राह सुमहाबलीमैत्र युधि शारत्तमम् ॥ १७ ॥

उसके इस भावमसे श्रीरामचन्द्रजीको बड़ा श्रेय हुआ ।
 फिर उसके साथ ही धैर्य बालन करके मुद्रसकने लकीने
 इन्द्रका अनुचर शार्पोंके किन्ना जो बड़ा ही वेगवाली था ॥ १७ ॥

शारत्तं सुमहाबेगात् सुर्वैरस्मिन्समप्रमत्तम् ।
 तदुपाहं महत् युवमन्यान्वधकश्चिन्नो ।
 परस्परभिमुक्तयोर्दसवारिव निहायोः ॥ १८ ॥

साथ ही स्वयंकी फिरणोंके समान प्रकाशित होनेके समय
 वेगवाली शार्प भी प्रवृत्त किये । तदाभात् एक कूलेके लकी
 इच्छा रखकर भीष्म और रावण दोनोंमें बड़ा मरी हुए
 अरुण हुआ । दोनों दृष्टि मरे हुए दो किन्नोंके समान अपने-
 अपने बड़े हुए थे ॥ १८ ॥

ततो वृथाः सगन्धर्वाः सिद्धाश्च परमर्षकाः ।
 समीपुर्द्वैरथं द्रष्टुं रावणस्यपञ्चक्षिणा ॥ १९ ॥

उध समय रावणके विनाशकी इच्छा रखनेवाले देवता
 सिद्ध गन्धर्व और महर्षि उन दोनोंके देवत मुद्रको देखनेके
 किन्ना वहाँ एकत्र हो गये ॥ १९ ॥

समुत्पन्नुरथोत्पत्ता दाक्षिणा रोमहर्षजा ।
 रावणस्य विनाशाय रामस्योद्घाया च ॥ २० ॥

उध मुद्रके समय देव मर्षकर उत्पन्न होने लगे थे
 रौंटे बड़े कर देनेवाले थे । उनसे रावणके विनाश और
 श्रीरामचन्द्रजीके अनुदयकी सूचना मिली थी ॥ २० ॥

यस्यै रुधिरं वृथा रावणस्य रथापरि ।
 बाता मण्डकिनस्यैवा व्यपसस्य प्रवक्तवुः ॥ २१ ॥

मय यत्नकं रूपं रक्षन्ती कथा करते ह्ये । बड़े वेगसे
उठे हुए । यद्यपि उसकी कामधर्त परिक्रमा करते ह्ये ॥२१॥

महत्पुत्रकुलं चास्य भ्रममात्रं नभस्फल ।
यत्न येन रथो याति तत्र तत्र प्रधावति ॥ २२ ॥

बिज-बिज मगसि रथयन्त्रं रथं यत्ना याः उखी-उखी
भोर भाङ्गामे नैऋत्या हुञ्ज गीषोच्चं महान् समुदायं दौष्ट
बला या ॥ २२ ॥

सम्पत्त्या चाधृता ह्युत्पत्त्या अपापुष्पनिकाशया ।
हृष्यतं सम्पत्तिभक्तं विवसेऽपि वसुधरा ॥ २३ ॥

भयभयमे ही भया (अङ्कुक) के पूर्यती-सी उरु रंग-
यात्री उरुवे आरुत हुई उरुपुत्री-भूमि दिनमे भी उरुती
हुई-सी दिवायी देती थी ॥ २३ ॥

सनिपाता महोक्त्वाच्च सम्पत्तेरुदाहृताः ।
विषादपस्त रक्षांसि राधपस्य तदाहिताः ॥ २४ ॥

रथपके धमने वसुधरा-सी गङ्गाहाट और वही
नसी उरुपके उरु वही-वही उरुपके गिरने उरु, उरु
उरुके अरुति-सी सुनना दे रही थी । उन उरुपके उरुपके
गिरनेमे उरु दिना ॥ २४ ॥

रथपञ्च यत्तत्र प्रथमात्त वसुधरा ।
रक्षसां च प्रहरतां सूहीत्य इव याह्वरः ॥ २५ ॥

रथपके अगे पक्षी हुई सुपदेवकी किरने परीत्य
पातभोक उरुन उरु, पीके, उरु और उरुके रंगकी
दिवायी देती थी ॥ २५ ॥

वाग्नाः पीताः सिताः इयताः पतिताः सूर्यरश्मयः ।
हृष्यन्त राधपञ्चममे पयतस्येव धातवः ॥ २६ ॥

रथपके अगे पक्षी हुई सुपदेवकी किरने परीत्य
पातभोक उरुन उरु, पीके, उरु और उरुके रंगकी
दिवायी देती थी ॥ २६ ॥

सूधैरनुताभास्य वामनयो ज्वलन् मुष्ठीः ।
प्रयोदुमुष्ठीभक्तस्यः सरम्भमद्यैव विद्याः ॥ २७ ॥

रथपके उरुपके पूर्ण मुष्ठी अरु देहती और अपने-
नपने मुष्ठीमे उरु उरुपकी हुई गीदपिनी अमङ्कुक
केकी उरुती थी और उनके पीके उरुके-उरुके गीद
मदपके उरुके थे ॥ २७ ॥

प्रतिपुत्रं यवी धायू रथे पांसुन् समुत्किरन् ।
तस्य रमसराजस्य कुञ्जन् इतिविद्यमपमम् ॥ २८ ॥

रथभूमिमे पूरु उरुती वायु उरुपके उरुपकी ओर
रंर उरुती हुई प्रतिपुत्र विद्याकी अरु वर रही थी ॥ २८ ॥

हृत्वायै धीमतामावने वाक्प्रीयै वाक्प्रीयै सुखकाण्डे पञ्चमोऽध्यायः सर्गः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवत-संस्कृत-अनुवाद-संस्थान-व्यवस्थापक-मुद्रणालय-द्वारा मुद्रित-पुस्तक-संख्या-१२८७

निपेतुर्मिन्द्राशयं सैम्ये चास्य समन्तताः ।
सुर्विपद्मलरा घोषं विन्व जलधरोदयम् ॥ २९ ॥

उरुपकी उरुपके उरु अरुके विना वादके ही उरुपके
एवं उरुके उरुपके उरु उरुपके विरुपकी गीरी ॥ २९ ॥

विशब्दं प्रविशः सया यभूवुस्तिमिराधृताः ।
पासुष्येण महता सुवर्षे च नभोऽभवत् ॥ ३० ॥

उरुपके उरुपके उरु अरुके उरुपके उरुपके उरुपके
उरु गीरी । उरुपकी वही मारी उरुपके उरुपके उरुपके
दिवायी देना उरुपके उरु गीरी ॥ ३० ॥

कुवत्स्यः कलहं घोषं सारिकास्तद्वयं प्रति ।
निपेतुः शतशस्तत्र दाहण्य दाहण्यस्तत्र ॥ ३१ ॥

भयानक भावात्त करनेवाली उरुपकी उरुपके उरुपके
आपके उरु उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके
उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके

उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके
उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके

उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके
उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके

उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके
उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके

उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके
उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके

उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके
उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके

उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके
उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके

उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके
उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके

उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके
उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके

उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके
उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके

उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके
उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके

उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके
उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके

उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके
उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके

उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके
उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके उरुपके

सप्ताधिकशततम सर्ग

श्रीराम और रावणका पोर युद्ध

ततः प्रवृत्त सुकृत रामरावणयोस्तथा ।
सुमहद् वैरथ युद्ध सवलोकभयावहम् ॥ १ ॥

तदनन्तर भीराम और रावणमें अत्यन्त क्रूरतापूर्वक
"त वैरथ युद्ध आरम्भ हुआ जो समस्त लोकोंके लिये
"कर या ॥ १ ॥

तथा राघवसैन्यं च हरीषा च महद्द्रुतम् ।
प्रवृत्तप्रहरणं निरूप्य समपतत ॥ २ ॥

उस समय रावणों और जनसेनो विशाख सेनाएँ हाथमें
द्विपार लिय रहनेपर भी निरपेक्ष लड़ी थी—भेदों कीतीपर
प्रहार नहीं करता था ॥ २ ॥

सम्प्रयुद्धौ तु तौ हृष्टौ वसथश्चरत्ततस्ती ।
व्यासिप्तहृत्प्रा सखे पर विस्रयममाताः ॥ ३ ॥

मनुष्य और निगावर दोनों वीरोंका बन्धुत्व युद्ध करते
देख सबके हृदय ठन्दीकी ओर लिन गये अतः सभी बड़े
आश्चर्यमें पड़ गये ॥ ३ ॥

नामाप्रहरणैश्चप्रभुर्जैर्विस्मितबुद्धयः ।
तस्याः प्रह्वं च समाम नाभिजसु परस्परम् ॥ ४ ॥

दोनों अरुक्त संनिर्गम हाथोंमें माना प्रकरके अन्ध राक्ष
विषमता व और उनका हाथ युद्धके लिये अन्ध थे तथापि
उस भद्भुत संभाममें देखकर उनकी बुद्धि आश्चर्यचकित
दा उठी थी इत्यस्य व प्रुपचाप लड़े थे । एक-दूसरेपर
प्रहार नहीं करते थे ॥ ४ ॥

रक्षसां राज्ञ च्यापि यानराणां च राघवम् ।
पदपातं विस्मितप्रक्षणां सन्त्य विज्रमियाचभौ ॥ ५ ॥

गहन रावणकी भार देन रहे थे और बानर भीरुनाय
कीकी ओर । उन सबका नश विस्मित थे अतः निराश्रय
पड़ी यदन्त प्रणय उभय पक्षकी सेनाएँ विचलितचित्तकी
रूप पड़ती थी ॥ ५ ॥

तौ तु तत्र निमित्तानि हृष्टौ राघवराजौ ।
दृष्टवुद्धौ म्भिरामर्षौ युयुधान द्यर्भक्तियत् ॥ ६ ॥

भीराम और रावण दोनों वहाँ प्रकट होनेगले निमित्तों-
की देनकर उनका भावो पक्षका विचार करके सुदरिणयक
विचारको गिर कर लिया था । उन दोनोंमें एक-दूसरेक
प्रति भयराध भय दृढ़ हा गया था इत्यस्य व निर्भयसे
द्वन्द्व युद्ध करने लगे ॥ ६ ॥

जत्रप्राप्तिं चानुत्सवा मत्प्रयमिति राघवः ।
दृष्टौ स्वर्षियमयश्च युज्यद्वान्यतां तत्रा ॥ ७ ॥

भीराम सन्ध्याय वद विधात था कि मरी ही की दृष्टि

भीर रावणको भी वह निश्चय हो गया था कि जो जलन की
भना होगा अतः वे दोनों युद्धमें अपना वर पक्षका युद्ध
करके दिलाते लगे ॥ ७ ॥

ततः क्रोधाद् वृशादीनः शरान् सञ्चय कौर्यकम् ।
मुमोष ध्वजमुद्दिश्य राघवस्य रणे स्थितम् ॥ ८ ॥

उस समय पराक्रमी दशाननने क्रोधापूर्वक कौर्यक लेना
करके भीरुनायकीके रथपर चढ़ती हुई बन्धुको निशान
बनाया और उन राणोंको छोड़ दिया ॥ ८ ॥

तं शपास्तमन्वसाय पुरंदररघवस्यकम् ।
रथ्याकि परामुष्य निर्येतुर्नवीतके ॥ ९ ॥

परतु उसके चक्षुमें हुए वे शप इत्याके रथकी बन्धुका
न पहुँच लके केवल रथ्याकिको छोड़ें हुए करतीपर गिर लगे ॥

ततो रामोऽपि सक्तुञ्जलापमाह्वय कौर्यकम् ।
दृष्टमसिद्धं कर्तुं मन्वसा समन्वयकते ॥ १० ॥

तब महाकवी भीरामकन्धुने भी कुपित होकर अपने
पनुपको लान्वा भीर मनहीमन रावणके कुलका लक्ष
जुझने—उसके लक्षके कट गिरनेका विचार किया ॥ १० ॥

राघवध्वजमुद्दिश्य मुमोष स्थितं शरम् ।
महासपमिवासाद्य जसन्त स्वेन तेजसा ॥ ११ ॥

रावणके ध्वजको धसन करके उन्होंने विशाख लीके
कमल अस्त्रा और अपने तेजसे प्रकलित तीक्ष्ण बन
छाड़ दिया ॥ ११ ॥

रामश्चिह्नं तजस्वी क्तुमुद्दिश्य सावकम् ।
जगम स मर्षो छित्त्वा वृशादीनश्चक्रां शरा ॥ १२ ॥

तेजस्वी भीरामने उस रावणकी ओर निशान लक्षक
भना सावक बसया और वह दशाननक उस बन्धुको कट
कर वृष्ठीमें समा गया ॥ १२ ॥

स निहृष्टाऽपतत् भूमौ राघवस्यवृत्तध्वजः ।
ध्वजस्योत्थमयत् हृष्टा राघवः स महाबाहो ॥ १३ ॥

सम्प्रदीप्ताऽभयत् क्रोधाद्मवाल् प्रहृष्टचित्तः ।
स राघव्यामापतः शरवर्षं कृत्वा ह ॥ १४ ॥

रावणके रथका वह ध्वज कटकर भरतीपर गिर पड़ा ।
भयन ध्वजका विध्वंस हुआ इस महाबाही रावण कोचले का

१ लक्ष्मी कर्णोत्पत्तय वह दोन दिग्गमे कर्णके लक्ष्मी
पत्तये कर्णकी गणो थी । कुछ निगानने लक्ष्मिध्वज नर—लक्ष्मी
की भरतुन गणयने किया है । देखा नरं माननेपर वह लक्ष्मी
निहृष्ट है कि लक्ष्मी कर्ण पत्तये कर्णकी भरतुन कर्णके वे ध्वज लक्ष्मी
नरं भरतुन कर्णके ही गिर पड़ा ।

उठा और अमर्षके कारण विपक्षीको बध्ना हुआ-या बन
पड़ा । वह देखके वशीभूत होकर बाणोंकी बणा करने लगा ॥
रामस्य तुरगान् दीप्तिः शरैर्यिभ्याध राधणाः ।
ते दिभ्या हृत्पस्तत्र नास्त्रलज्जायि बभ्रुः ॥ १५ ॥
बभ्रुः स्वस्वहृत्पया पद्ममलैरिधाहताः ।

राजपने अपने ठकसी बाणोंसे भीरमकन्द्रकीके घोड़ोंको
घबरा करवा मारम किना परंत्त वे जोड़े दिम्ब से इतकिये
न ता बहकान् मौर न अपने खानते विचञ्चित ही हुए ।
वे पूर्वकत् स्वस्वचिच बन रहे; माना उनपर कमलकी नाणों-
से प्रहार किया गया हा ॥ १५ ॥

तेयामसम्भ्रम हृद्गु बाजिनां राधणस्तदा ॥ १६ ॥
भूय एव सुसकुन्दा शरपर्य मुमोष ह ।
गदाश्च परिघाश्चैव सन्नप्रिय सुसखानि च ॥ १७ ॥
गिरिभ्रूहाणि वृक्षांश्च तथा शूलपरश्वधान् ।
माय्याविहितमेतद् तु दाम्बधर्मपातयत् ।
सहस्रशस्त्रा यानानभ्रातृव्योघोषमः ॥ १८ ॥

उन बाणोंका प्रहरणमें न पड़ना देख रावणका श्रेय
और भी बढ़ गया । वह पुनः बाणोंकी बणा करने लगा ।
गदा चक्र, परिघ, मूलक, फलत-शिकर, इष्ट, शूल करते तथा
माय्यानिर्मित अन्यान्य दण्डोंकी वृष्टि करने लगा । उधने हृदयमें
पद्मकण्ठ अनुभव न करके जहाँ बाण छाड़े ॥ १६-१८ ॥
तुमुक्त्वा त्रासजनन भीमं भीमप्रतिलखन् ।
तद् धर्ममभवद् युद्धे नैकशस्त्रमय महत् ॥ १९ ॥

युद्धसमये अनेक दण्डोंकी वह विशाल बणा बड़ी
भयानक, तुमुक्त्वा बाधकक और मर्वकर कम्बलसे पूर्व थी।
विमुष्य राधयरा समस्ताद् धानरं यत् ।
घ्रायकैरन्तरिक्षं च वक्रार सुनिरन्तरम् ॥ २० ॥
सुमोष च दशमीवो निरासङ्गेनास्तरात्मन् ॥

वह घबराकर भीरमकन्द्रकीके राधक डाइकर सब और
से धानर-सेनाके ऊपर पड़ने लगी । दशमुख रावणन प्रयोंक
मोह छोड़कर बाणोंका प्रयोग किया और अपने ध्ययकोसे
कोई आकाशको उठाठस मर दिया ॥ २ ॥

अप्यपच्छमत्त त हृद्गु त्वर राधय रजे ॥ २१ ॥
प्रहसन्निय काकुलस्यः सन्ध मिशितामच्छरान् ।
स मुमात्त त्वा पाणाम्छतयोऽथ सहस्रशः ॥ २२ ॥

उदन्तर राधूमिमे वक्रपथ बाण च्यनेने अधिक
परिभ्रम करते दूक भीरमकन्द्रकीने ईच्छे हुए-से तीक्ष्ण बाणों
का ध्वनन किया और उन्हें वेकड़ा तथा दम्बोकी संख्या
में छोड़ा ॥ २१ २२ ॥

तान् हृद्गु राधयकाके स्वशरीः च निरन्तरम् ।
ताभ्यां त्रियुक्तेन तदा दारधर्येण भासता ॥ २३ ॥
दारधर्यमिवावति द्वितीय भास्वदम्बरम् ।

उन बाणोंको देखकर रावणने पुनः अपने बाण भरवये
और अक्रमकण्ड इतना भर दिया कि उधनें शिक रखनेकी भी
कम नहीं रह गयी । उन दण्डोंक द्वारा भी गयी धमकीके
बाणोंकी कपसे बहोका प्रकथमन आकाश बाणोंसे बह होकर
फिरी और ही आकाश-का प्रतीत होता था ॥ २३ ॥

नागिमित्तोऽभवत् बाणो नानिभेत्ता न निष्फळः ॥ २४ ॥
अभ्योम्यमभिसहस्य निपेतुर्धरणीतले ।
तथा सिखुजतोबाणान् रामरावणयोर्भूष ॥ २५ ॥

उनका च्यया हुआ काह भी बाण अत्यन्त पूर्वसे बिना
नहीं रहता था, अत्यन्त बंधे वा विधीर्ष किये बिना नहीं
रहता था तथा निष्फळ भी नहीं होता था । इस तरह युद्धमें
घबरावणों करते हुए भीरम और रावणका बाण सब आपसमें
टकरते थे, तब नष्ट होकर दूम्बीर गिर करते थे ॥ २४ २५ ॥
प्रायुष्यतामयिच्छिन्नमस्त्यस्ती सव्यदक्षिणम् ।
सन्नतुश्च शरैर्बौरैर्निबद्धच्छासनिवाम्बरम् ॥ २६ ॥

वे दोनों मोड़ा बाण-धर्य प्रहार करते हुए निरन्तर युद्धमें
लगे रहे । उन्होंने अपने मर्वकर बाणोंसे अक्रमकण्डे इस
तरह भर दिया कि माना उधनें सँघ छेनेकी भी क्या नहीं
रह गयी ॥ २६ ॥

रावणस्य हृद्यान् रामो हयान् रामस्य राधयाः ।
जगत्सुस्ती तयाम्पोम्य हतातुल्यपरिपी ॥ २७ ॥
भीरयने रावणक घोड़ोंको और रावणने भीरमके घोड़ों
का पकड कर दिया । वे दोनों एक दूसरेक प्रहारका बरब
जुझते हुए परस्पर मारता करते रहे ॥ २७ ॥

एव तु तौ सुसकुन्दा चक्रतुर्गुणमुत्तमम् ।
सुहृत्तमभवत् युद्धे तुमुक्त्वा रोमहर्षणम् ॥ २८ ॥

इस प्रकार वे दोनों अत्यन्त श्रमसे मरे हुए उधम वीत्ति-
से युद्ध करने लगे । वे बड़ीतक हा उन दण्डोंमें ऐसा भवकर
संशय हुआ, जो रंगट लगे कर देनेकाय था ॥ २८ ॥

ही तथा युष्पमानौ तु समरे रामराधयी ।
वक्रशुः सर्धभूतानि विस्तिरेगास्तरात्मन् ॥ २९ ॥

इस प्रकार युद्धमें लगे हुए भीरम तथा रावणको सम्पूर्ण
प्रणी चञ्चितियसे निहारने लगे ॥ २९ ॥

धर्वयस्ती तु समरे तपोस्ती स्यन्त्येच्छमी ।
परस्परमभिसुन्दी परस्परमभिसुती ॥ ३० ॥

उन दोनोंक के भेद राध (तथा उधनें बैठे हुए रही)
धमभूमिमें अत्यन्त श्रेयपूर्वक एक दूसरेको पीड़ा देने और
परस्पर भाना करने लगे ॥ ३ ॥

परस्परवधं सुकी घोररूपी बभ्रुयतुः ।
मण्डकानि च धीपीथ गतप्रत्यागस्तानि च ॥ ३१ ॥
दशयन्ती बहुविध स्त्री सारप्यजा गतिम् ।

एक वृक्षके बगके प्रयत्नमें छोड़े हुए वे दोनों वीर बड़े
 ममानक जान पड़ते थे। उन दोनोंके खरथि कमी रबक
 चक्रर करते हुए वे बस कमी खीब मासि दौड़ाते और
 कमी आगेकी ओर बढ़ाकर पीछेकी ओर खैदाते थे। इस तरह
 वे दोनों अपने रथ हॉकनेमें विविध प्रकारक शनक परिचय
 देने लगे ॥ ३१३ ॥

धर्मयन् रावज रामा राघव चापि राक्षसः ॥ ३२ ॥
 गतिवग समापयौ प्रकर्मनमिवर्तते ।

श्रीराम रावजक पीड़ित करने लगे और रावज श्रीरामको
 पीडा देने लगा। इस प्रकार युद्धविषयक प्रवृत्ति और निरुत्ति-
 न व दोनों तरफुक्त गतिवेगका आशय छोटे थे ॥ ३२३ ॥

श्रियताः शरबाह्वलि तयोस्तौ म्यन्नेत्तमौ ॥ ३३ ॥
 चरतुः सयुगमर्ही सासारा जलदाक्षि ।

राजसूहोकी कर्ण करते हुए उन दोनों पीरोंके वे भेद
 रथ कभी बाध मिलते हुए दो कबचोंके समान युद्धभूमिमें
 निचर रहे थे ॥ ३३३ ॥

दशयित्वा तथा तौ तु गतिं धनुर्विधा रथे ॥ ३४ ॥
 परस्परस्याभिमुखौ पुनरेव च तस्थतुः ।

वे दोनों रथ युद्धक्षममें भौति मौलिकी गतिका प्रदर्शन
 करनेके बाद फिर आमने-सामने आकर खड़े हो गए ॥ ३४३ ॥

धुग धुरण रथयोर्वक्त्र वफत्रेय पाजिगम् ॥ ३५ ॥
 पताश्रम पताश्रमिः समीयुः स्थितयोस्तथा ।

उस समन वहाँ खड़े हुए उन दोनों रथोंके युगल
 (हथौड़ीके संधि) युगलरते धेड़ोंके मुल विपकी धेड़ोंके
 मुकते तथा पताश्रम पताश्रमोंसे मिल गयीं ॥ ३५३ ॥

रायस्य क्ता रामा धनुमुक्तेः शिखीः शरीः ॥ ३६ ॥
 चतुर्भिश्चतुरो शीतान् हयान् प्रत्यपसर्पयत् ।

उपमात् श्रीरामने अपने चतुरसे बूटे हुए चार देने
 बाणोंकाय रावजके चारों सेबली धेड़ोंका पीछे हटनेके लिये
 निवाह कर दिया ॥ ३६३ ॥

स कौभ्यशामपञ्चो हयामापसर्पजे ॥ ३७ ॥
 मुमोच निशित्त्रन् बाणान् राघवाय दशानतः ।

बाणोंके पीछे हटनेपर दशमुख यन्त्र श्रेणके बधीभूत
 हो गया और श्रीरामपर लिये बालोंकी फर्ण करने
 लगा ॥ ३७३ ॥

सऽतिविश्रान् बलवता दशमीयन् राघवा ॥ ३८ ॥
 जगाम न विक्रम च न चापि स्थितोऽभवत् ।

बलवान् दशमनक हाथ भक्तक धयक किये जानेपर
 भी श्रीरामयात्रीक चरपर विक्रमक न भयी और न उनक
 मनमें व्यथा ही हुई ॥ ३८३ ॥

विश्रय च पुनबाणान् बज्रसारसमस्तान् ॥ ३९ ॥

खरथि बज्रहस्तास्य समुद्रिष्य दक्षिणः ।

उपमात् रावजने इन्द्रके खरथि मल्लिकी के
 बज्रके समान शब्द करनेकाल बग छोड़े ॥ ३९३ ॥

मल्लिकेस्तु महावेगाः शरीरे पतिताः क्षया ॥
 न सूक्ष्ममपि सम्मोहं व्यथां च मनुषुषि ।

वे महान् वेगवाली बाण युद्धक्षममें मल्लिकी
 पकड़ ठन्हे बोझा-सा भी मोह वा व्यथा न वे लगे ॥

तथा धर्मवया हुन्ना मल्लिके तत्रऽऽतथा ॥ ४१ ॥
 बध्मर हरजाकेन राघवो विमुक्तं रिपुम् ।

रावजहाय मल्लिकी प्रति मल्लिकीके श्रीरामपत्रकी
 सेवा श्रेण हुआ, वेक अपनेपर किये गये मल्लिकीके बंधी
 था। अतः उन्होंने बाणोंका बज्र-सा विक्रम करने लगे
 मुकते विमुक्त कर दिया ॥ ४१३ ॥

विशतिं विशतिं बहिं शतशोऽप्य सहस्रशः ॥ ४२ ॥
 मुनेष राघवो वीरः साधकान् स्थान्ने रिषेः ।

धीर खुनापकीने धनुक रबर श्रेण, तीक लठ, लौ और
 हथक हथक बाणोंकी दूधि थी ॥ ४२३ ॥

राघवोऽपि क्ता हुन्तो रथस्यो राक्षसेभ्यः ॥ ४३ ॥
 यद्गमुच्छखर्वेण राम प्रथमवर्षत् रथे ।

उन रथपर बैठा हुआ यक्षशत्रु यन्त्र मी दुर्गि से
 उठा और गया तथा मूखोंकी कसि यक्षभूमिमें श्रीरामने
 पीडा देने लगा ॥ ४३३ ॥

तत् प्रवृत्त पुनर्पुर्बं तुमुक रोमवर्षकम् ॥ ४४ ॥
 यदाता मुसल्लगं च परिचार्त्ता च विष्कलीः ।

शराणां पुष्पनादैव श्रुमिताः सत सन्नराः ॥ ४५ ॥

इस प्रकार उन दोनोंमें पुनः बड़ा मंजन और ऐक्यकी
 युद्ध होने लगा। गतामी, मुसलों और परिवर्ती मल्लिकी
 तथा बालोंके पंखोंकी शनकाली हुई हथके लती लठर निमुक्त
 हो उठे ॥ ४४५५ ॥

शुष्धाना सागण्यां च पातकलकमलिला ।
 स्थिष्ठ दक्ष्या सवै पञ्चदश सहस्रशः ॥ ४६ ॥

उन विमुक्त समुद्रोंके पातकलकमें निवाह करनेकी
 समस्त दानक और सहली न्या स्थिति हो गये ॥ ४६ ॥

यक्षस्य मन्त्रिणी कृत्वा शरीरवन्धनम् ॥ ४७ ॥
 भास्करो निष्पन्ध्यासीथ ववी व्यापि मारताः ॥ ४८ ॥

परंतो कौं और कननोच्छ्रित गरी दुर्गि और
 उठी लक्ष्मी प्रभ जत हो गयी और बाणकी गति में
 रुक गयी ॥ ४७ ॥

क्ता द्याः सगम्भ्याः सिद्धाश्च परमयथा ।
 विन्तामापदित् सवै सक्रिजमहोत्ता ॥ ४८ ॥

देवता, गन्धर्व, सिद्ध महर्षि किन्नर और बड़े-बड़े नाग
उन्हीं चिन्तामें पड़े गये ॥ ८८ ॥

सखित गोपद्राणेभ्यस्तु खोकास्तिष्ठन्तु शम्भवाः ।

अपता राक्षस सख्ये राक्षस राक्षसेश्वरम् ॥ ४९ ॥

सख्ये मुँहसे यही बात निकलने लगी—पौ और ब्राह्मणों
का सम्बन्ध ही, महाहस्ते उदा रहनेवासे इन खेकेंद्री राक्ष
से और भीखुनापकी युद्धमें उच्छरण रखकर किन्कर
पर्व ॥ ४९ ॥

एव अपतोऽपश्यस्ते देवाः सर्पिगजास्तदा ।

रामरावणयोर्युद्धं सुषोर रोमहर्षणम् ॥ ५० ॥

इस प्रकार करते हुए क्षुण्णितहित वे देवना भीयम और
एवमके मन्थन मन्थन तथा रोमाद्राकारी युद्धको देखने लगे ॥

गन्धर्वाप्सरसां सङ्घं दृष्ट्वा युद्धमनुपमम् ।

गगन गगनाक्षरं सागरः सागरीपमः ॥ ५१ ॥

रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिष ।

एवं द्रुक्मते दृष्टुस्तद् युद्धं रामरावणम् ॥ ५२ ॥

गन्धर्वों और अप्सरामोंके श्रुत्वा उच अनूपम युद्धको
देखकर करने लगे—आकाश आकाशका ही दृश्य है, समुद्र
समुद्रके ही समान है तथा गम और रावणक युद्ध गम और
रावणक युद्धके ही उदाह है • देखा करते हुए वे सब योग
एव-एवमक युद्ध देखने लगे ॥ ५१-५२ ॥

तदा क्रोधाम्महाबाहू रघूणां क्षीर्तिवर्धना ।

सभ्रय धनुया रामा शरमाहीविद्योपमम् ॥ ५३ ॥

रावणस्य शिरोऽपिच्छन्त्यमीमग्ज्यस्तिकुण्डसम् ।

वधिस्रः पठित मूनी हर्षं खोकैस्त्रिभुस्तदा ॥ ५४ ॥

तदनन्तर रघुकुक्षी क्षीर्ति बहानेवाके महाबाहू भीयम
अनुभवे कुम्भित होकर अपने धनुषपर एक विषपर सर्वके
धमन काका संघन किया और उसके द्वारा कामगघते हुए
कुण्डलके युद्ध रावणक एक सुन्दर मस्तक काट बाध्य ।
उत्पन्न वह क्रय दुष्मा फिर उस धमय दूष्पीर फिर पड़ा भिडे
वीनी खेकेंके प्राप्तिमें देखा ॥ ५३-५४ ॥

तस्यैव सद्यदा भान्यद् रावणस्योदरिष्ठं शिरः ।

तद् दित सिमहस्तत रामेय सिम्रक्षरिणा ॥ ५५ ॥

द्वितीय रावणशिरदिच्छन्न सपति सायकैः ।

उसकी काट रावणके बैला ही वृषण मया फिर उतलन
ही गया । शीघ्रतापूर्वक हाथ चकनेवाक शीघ्रकर भीयमने
युद्धकाळमें अपने साहसोहाय रावणक वह वृषण फिर भी
धीम ही काट बाध्य ॥ ५५ ॥

छिन्नमात्रं च लक्ष्मीर्षे पुनोष प्रहृष्यत ॥ ५६ ॥
लप्यशानिसकाशैश्छिन्नं रामस्य सायकैः ।

उसके कट्टे ही पुना नया फिर उतलन दिलायी
देने अथ किन्तु उसे भी भीयमके बज्रद्वय खपघने
काट बाध्य ॥ ५६ ॥

एवमेव शत छिन्न शिरसां तुल्यवचंसाम् ॥ ५७ ॥
स खैव रावणस्यात्मो हृदयते जीवितस्ये ।

इस प्रकार एकसे तेजवाक उसके सौ सिर काट
बाडे गये; तथापि उसके जीवनक नाश होनेके छिने उसके
मस्तकमें अन्त होता नहीं दिलायी देता या ॥ ५७ ॥

तदा सर्वास्त्राणि वीरः कौसल्यानन्ववर्धन ॥ ५८ ॥
मर्गावैर्बुभुभिर्युक्तमित्यपामासु रावणः ।

तदनन्तर कौसल्याक आनन्द बहानेनाक; सम्यक् अशोक
हाथ वीर भीयमकन्द्रकी अनेक प्रकारक बाणोंके युक्त होनेपर
भी इस प्रकार किन्ता करने लगे—॥ ५८ ॥

मारीचां निहतो वैस्तु खरो वैस्तु सद्रूपयः ॥ ५९ ॥

कौञ्जावटे विराधस्तु कवन्धो दृग्दक्षयने ।

यैः साञ्ज गिरयो भद्रा वाली च भुभितोऽनुभिः ॥ ६० ॥

त इम सायकाः सर्वे युद्धे प्रत्यथिका मम ।

किं तु तद् कारण येन रावणे मन्वतजसा ॥ ६१ ॥

अस्यो ! मैंने किन बाणोंसे मारीच खर और दृषणक
मारा कौञ्जकके गड्डुने विषयका बध किया; दृषणकरयने
कवन्धके मौतके बाद उताय सभ्रहृष्ट और फलौंके विदीन
किया वालीके प्राण क्षिय और समुद्रक भी धुम्ब कर दिया
अनेक बारके उग्राममें परीक्षा करके किन्धी अन्धेभताका
निश्चल कर किया गया है; वे ही वे मेरे सब खपक आज
रावणके ऊपर निस्तेज—कुम्भित हो गये हैं; इच्छा क्या
कारण हो सक्य है ! ॥ ५९-६१ ॥

इति चिन्त्रपरञ्जालीह्रममत्तञ्च सयुगे ।
धवर्षे शरक्योणि रावणे रावणारसि ॥ ६२ ॥

इस तरह चिन्तामें पड़े होनेपर भी भीखुनापकी युद्ध
सकने उक्त खपभान रहे । उन्होंने रावणकी अवीर बाणोंकी
हाथी अथ ही ॥ ६२ ॥

रावणाऽपि ततः हृद्यो रयस्यो राक्षसद्वराः ।
गार्भुसलखवर्षेण राम प्रत्ययद् रणे ॥ ६३ ॥

तब रयणर बैठे हुए उच्छरण रावणने भी कुम्भित होकर
रजभूमिमें भीयमको गदा और मूलधौंकी बाणसे पीकिल करना
आरम्भ किया ॥ ६३ ॥

तद् प्रवृत्त महद् युद्धं तुमुक्तं रामहर्षणम् ।
अस्तरिसं च भूमी च पुत्रश्च गिरिमूधनि ॥ ६४ ॥

उस महायुद्धने बड़ा भयंकर रूप धारण किया । उन

गगन गगनाक्षरंसे भामरावणकार्यके अनेकके अन्वयक
कथन है । महा युद्ध ही वस्तु अन्वय और अन्वयकसे लगी गम
होती है उन्वय न निकलके वहाँ अन्वयककथन होय है ।

देवते ही रोमते लड़े हो जाते थे । वह मुझ कभी
अपराधमें, कभी भूलभ्रम और कभी-कभी पूर्वतके शिलरपर
होख या ॥ ६४ ॥

देवदानवपक्षाणां पिशाचोरगरक्षसाम् ।
पक्ष्यतां तमहद् युयं सर्वपापमकत ॥ ६५ ॥

देवता धनवः, मरु पिशाचः, नाग और उखलेंके
देवते-देवतं वह महान् संग्रामवापी रत चञ्चल रहा ॥ ६५ ॥

नैव रात्रिं न वियस न मुहूर्तं न च क्षणम् ।
गमराकणयोर्युयं विराममुपगच्छति ॥ ६६ ॥

भीरम और उकणव वह मुझ न उगमें पंर होता था
हृत्पार्थे श्रीमद्वाल्मीके वाक्यीकीय भाविकान्ते

इत प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीय श्रीरामायण अदिकान्त युद्धकायमें एक सी साठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १०० ॥

और न दिनमें । दो बड़ी अथवा एक कल्पे दिने भी
वियम नहीं हुआ ॥ ६६ ॥

दशरथकुमारस्येन्द्रबोधात्
उद्यमनकेव्य एते स पावकाः ।
सुरवररथसारविर्महात्मा
रत्नरतराममुवाच कल्पकायुः ।

एक ओर दशरथकुमार भीरम ने और पूर्व
राक्षसराज एवम् । उन दोनोंमेंसे भीरुनायकीकी युद्धमें
होती न देव देवराजके खरपि महात्मा मत्किने युद्ध
भीरमसे श्रीमद्वाल्मीक कथा— ॥ ६७ ॥

युद्धकायदे सखिकिन्नाततः लर्कः ॥ १०० ॥

अष्टाधिकशततम सर्ग श्रीरामके द्वारा राजबका बध

अथ सस्मारयामास मातस्त्री राक्षस तदा ।
अज्ञानद्विय किं धीर त्वमनमनुकृतसः ॥ १ ॥

मातस्मिने श्रीरुनायकीके कुछ बार दिखत हुए कथा—
भीरवर ! अथ अनजानकी तरह क्यों इस राक्षसका अनुसरण
कर रहे हैं ? (यह जो अज्ञ चञ्चल है उसके निवारण करने
बाधे अज्ञान प्रयोगमात्र करते रह जाते हैं) ॥ १ ॥

विद्युज्जासै वधाय त्वमस्यं पैतामर्हं प्रभो ।
किन्नाशकाः कथितो यः सुरैः सोऽप्य वर्तते ॥ २ ॥

प्रभो ! अथ इतक बधके लिये ब्रह्माकीके अज्ञान प्रयोग
कीकिये । देवताओंने इसके निनाशका जो उमर बताया है, वह
अज्ञ भा पहुँचा है ॥ २ ॥

ततः संस्मारितो रामस्ततः याक्येन म्रतष्टेः ।
जग्राह स शरं वीरं निःश्वसन्तमिवोरगम् ॥ ३ ॥

मातस्मिने इस वाक्यसे श्रीरामचन्द्रकीको उठ अज्ञान
सरण हो गया । फिर तो उन्होंने फुफ्फुसते हुए लपके
छम्पन एक तेजस्वी बाण हाथमें लिख ॥ ३ ॥

यं तस्मै प्रथमं प्राहृत्परास्तयो भगवान्नुविः ।
दृष्ट्वाहर्तं महद् वायमममोर्षं युधि र्थीर्षकम् ॥ ४ ॥

यह बड़ी राज था किसे पहले शक्तिवासी भगवान्
ममस्तव श्रुतिने पुनायकीको दिया था । वह पिशाच बाण
ब्रह्माकीका दिया हुआ था और मुझने भगमोष था ॥ ४ ॥

दृष्ट्वाणा निर्मितं पूर्वमिन्द्रार्थममितीजसा ।
दत्तं सुरपतः पूर्वं विश्वेकजयकाङ्क्षियः ॥ ५ ॥

अमित तेजस्वी ब्रह्माकीने पहले इन्द्रके लिये उस बाणका
निर्माण किया था और तीनों क्षेत्रोंमें विश्व पानेकी
इच्छा रखनेबाधे देवद्वारा ही पूर्वप्रार्थने कथित किया था ॥

अथ वाजेयु पवनः फले पञ्चकभास्करौ ।
शरीरमाकाशमर्षं गौरवे मेकमन्वरी ॥

उठ बाणके वेगमें वायुकी चारमें अग्नि और
शरीरमें आकाशकी तथा शरीरमें मेघ और मन्वरा
प्रतिष्ठा की गयी थी ॥ ६ ॥

जात्यस्यमार्तं वपुषा सुपुङ्गु हेमभूषितम् ।
तेजसा सर्षमृतानां हृत भास्करकर्मसम् ॥ ७ ॥

सधूममिव कर्खाग्निं वृत्तमाशीषिबोयम्म् ।
नरत्प्रगाद्यवृत्तानां भेवन सिप्रकाशिरजम् ॥ ८ ॥

यह सम्पूर्ण शूनोंके तेजसे बनाया गया था । उल्ले ।
समान श्योति निकलती रहती थी । वह मुकवति मूलि ।
पंखते कुछ स्वरूपसे कायसमान प्रकण्डकी वृ
अग्निके समान भन्कर, शीशियान् विषपर लपके ।
विदेवः, मनुष्य हाथी और जड़ोंके विदीर्ष कर उल्ले
तथा शीश्यापूर्वक अस्मक मेहम करनेवाला था ॥ ७-८ ॥

शरारणां परिघाणां च शिरीषां कापि मेकम् ।
नानाशधिरिन्द्राणां मेकोदित्थं सुबाधकम् ॥ ९ ॥

वज्रसारं महातार्दं नाभ्यसमितिशिवाबकम् ।
सर्षमिन्द्रासज भीम दशस्तमिव पञ्चकम् ॥ १० ॥

कडुशुभबकमनां च गोमायुगवारसकम् ।
नित्यभक्तमन् युये धमकपं भयात्कम् ॥ ११ ॥

बड़े-बड़े बरबाओं परियों तथा फलोंके भी उल्ले-
देनेकी उधमें शक्ति थी । उल्ले वाप शरीर नाना प्र
रकमें नहाना और चर्षि परिपुत्र हुआ था । देवतेमें
वह बड़ा भन्कर था । वज्रके समान कठोर महान् क
पुष्टः अनेकनेक मुझमें शपुतेन्द्रके विदीर्ष करनेवाला ।



११६

११७

११८
११९
१२०

शत्रु रनेद्यथा तथा पुत्रकारते हुप सर्वक मन्त्र मयकर या ।
 पुत्रमे उह यमपुत्रक मयापह रूप धारण कर छेद्य था ।
 समन्मिने नीए गीष काल, गीरक तथा विद्यापौत्रो वह
 सदा भन्व प्रदान करता या ॥ १-११ ॥

नम्बून यमपुत्राणा रक्षसामिवसाधनम् ।
 याजित विविधैवाग्निभारविश्रैर्गुरुमत् ॥ १२ ॥

वह खपक वनर-पुपयिपौत्र आनन् रनेद्यथा तथा
 यम्बुका दु लने राक्षनेद्या या । गवहक मुन्दर विचित्र
 और नना प्रक्षरक वंश बगाकर वह वंशपुत्र बना हुआ था ॥
 तमुचमपु लोकागामिक्याकुभयभारानम् ।

द्विपत्वा कीर्तिहरण प्रहर्षकरमात्मनः ॥ १३ ॥
 भूमिमन्त्र ततो रामस्त महेषु महाबलः ।

यद्भ्यक्तेन विधित्वा सङ्घ कमुके पत्नी ॥ १४ ॥
 वह उचन वाज वनत्र छोडे तथा इक्ष्वाकुधियौके मन्-
 धा नपक या यजुओंकी कीर्तिप्र अग्रहार तथा अपने
 हाथी बुद्धि करनेवाला था । उठ महन् खपकके बेदाक
 विधिन अभिमन्त्रित करक महाबाही भीरामने अपने धनुषपर
 रक्षा ॥ १३ १४ ॥

वकिन् सार्धवमान तु राघवप शरोत्तम ।
 सवभूयानि सत्रसुखवात य धनुषरा ॥ १ ॥

भीरुनायकी क उठ उचन बाणध संघान करने छोडे,
 ल कपूज प्रायो पय उडे और फली दम्बन लयी ॥ १५ ॥
 स राघवाय सङ्घो भुदमापय्य कमुकम् ।

चिरान परमापत्तः शर ममविशारजम् ॥ १६ ॥
 भीषन्न भान्त कुन्ति ए बह बलक क्षय धनुषध
 पूरकम गांजर उठ मनेदेरी बाणके यजनर चय
 दिप ॥ १६ ॥

स पद्म इव दुर्धरो यज्ञियाहुविसर्जितः ।
 हृष्यन्त इव बाणार्थो न्यपत्तु गव्योरसि ॥ १७ ॥

ब्रह्मची इन्द्र हाथेन हुट हुप ब्रह्म कम्बन दुर्धर
 और इन्द्र कम्बन भनिगर्ष वह काय रात्रकी प्राणीर
 प्र क्य ॥ १७ ॥

स विरुद्य महायगा शरीरान्तकरः परा ।
 विमद हृदय तस्य राघवस्य दुरात्मना ॥ १८ ॥

जीरक भन्त हर वनराज उठ महान् मन्त्रके भेद
 करने पूजन ही दुरामा गन्धक हृदयध विशेष कर
 रत्न ॥ १८ ॥

रधिगन्धः स यान शरीरान्तकरः परा ।
 राघवस्य हृदय प्राणान् विपत्त धरत्नानम् ॥ १९ ॥

गीरक भन्त हर गन्धक मन्त्र हर जीरक्य वह
 ल २ ल गन्धक मन्त्रक पराधनेत्वा मन्त्र ॥ १९ ॥

स गग राघव हाथा रधिगन्धहृदयधरि ।
 हृदयमा निवृत्तम् स मुनी पुनर्गायित्वा ॥ २० ॥

५० १ १३-

इस प्रकार राघवका बंध करक मन्त्रे रंगा हुआ वह
 शान्ताश्री काय भन्ना धम पूर करनेक पश्चात् पुन किन्ति
 सेनकधी मौंति भीरामचन्द्रकी तरकसमें खेद भावा ॥ २ ॥

तस्य इक्ष्वाकृतस्यापु कमुक तत् ससायकम् ।
 निपपात सह प्रायेभ्रदयमानस्य जीवित्वात् ॥ २१ ॥

भीरामक यान्त्री शत्रु ल्याकर राघव कीपले हाथ पो
 देठा । उठक प्राण निकलनेक क्षय ही हाथले खपककदित धनुष
 भी छूटकर गिर पड़ा ॥ २१ ॥

गतासुभीमिवगस्तु नैर्भ्येतिन्त्रा महापुति ।
 पपात स्मन्नात् भूमा धुषो पद्महतो यथा ॥ २२ ॥

वह भयानक वेपथ्याही महातन्वी यक्षकाय प्राणहीन हो
 ब्रह्म मरे हुप इयानुरधी मौंति रपत पूष्पर गिर पड़ा ॥
 त ह्यू पतित भूमी हठोगा निशाचराः ।

हृत्नाथ्य भयप्रस्ताः सपतः सम्प्रतुतुतुः ॥ २३ ॥
 उचयका पूष्पर पड़ा इक्ष मनेसे बने हुप कम्बुने
 निघान्तर न्यायीके मार बनेसे मन्त्रभीत हो सब अर भयग
 ग्य ॥ २३ ॥

नन्दन्तन्नाभिपुस्तान् चानरा द्रुमपाथिनः ।
 श्वासीज्वष ह्यू पात्ता जितकादिनः ॥ २४ ॥

इक्षुस राघवका बंध हुआ रेश विक्रय मुपमित
 हनेद्यत पान्ठ न इच्छोद्य युद्ध फनयत य, गन्धक करत
 हुप उन यक्षोंपर दूढ पड़ा ॥ २४ ॥

भदिता धारैरिष्टलद्रुमभ्यपत्तु नयात् ।
 हताभयत्वात् करुणायापप्रक्षयौमुखा ॥ २५ ॥

उन होतोस्त्विकित धारोहाय पीडित विप अनरक
 उच्छ मन्त्र मर ह्युतुपीये अर भय गय क्योकि उनका
 अंभन नष्ट हो गया था । उनक मुक्तर करकमुक भोतुभो-
 की पाप बर रही थी ॥ २५ ॥

तत्र विनतुः सहस्र यानग जितकादिन ।
 धन्ता राघवजय राघवस्य च तद्भयम् ॥ २६ ॥

उठ कन्व कन्व विन्क-कन्वीन मुपमित ही भन्त
 हां और उच्छाहसे भर गय तथा भीरुनायकी विजय और
 रात्रक बंधी फला करत हुप दर परन मन्त्रा करने
 छोडे ॥ २६ ॥

मघान्तरिक्ष म्यन्दत् सीम्यन्निवरातुदुभिः ।
 विष्णवपयहृत्स्य माता सुसुम्ना यया ॥ २७ ॥

इक्ष कन्व अक्षयने मरु मन्त्र न्यायकी हुनुन्नि
 रान लयी । सुविम मुपपति १० १ हुं न्द मन्त्र म्नाय
 प्रदित होने लयी ॥ २७ ॥

निपपातन्निशाथ पुष्पगृष्टिन्ना मुनि ।
 द्विर्म्य राघवस्य दुर्गाया मनाहम् ॥ २८ ॥

कन्व मन्त्र म्नाय न्यायकी हुनुन्नि
 मन्त्र म्नाय १० १ हुं न्द मन्त्र म्नाय ॥ २८ ॥

५० १ १३-

रामवस्तवसयुक्ता गगने च विद्युभुये ।
 साधुसाधिविति वागव्या इक्ष्वाकर्त्ता महात्मन्वम् ॥ २९ ॥
 माकाधामे महामना देवताओंके मुखते निकम्बी हुई
 भीयमचन्द्रभीषी स्तुतिते युक्त लघुबादभी मद्य बायी सुन्दरी
 देते स्मृष्टि ॥ २९ ॥
 अविषया महान् हर्षो वैधाना आरजैः सह ।
 गत्ये निहतो रीद्रे सर्वलोकाभयकरे ॥ ३० ॥
 सम्पूर्ण लक्ष्मणे मम देनेवाले रीद्रे राक्षस राणके मारे
 जनेपर देवताओं और आरजोंके महान् हर्ष हुआ ॥ ३ ॥
 तत्र सक्रम सुप्रीयमह्यं च विभीषणम् ।
 यथा राक्षसा प्रीतो इत्या राक्षसपुत्रावम् ॥ ३१ ॥
 श्रीगुणाधीने राक्षसमन्त्र मारकर सुप्रीय, अह्य तथा
 विभीषणके सम्प्रमनोरप किया और स्वयं भी उन्हें बड़ी
 प्रसन्नता हुई ॥ ३१ ॥

प्रकन हो गयी—उत्तमे प्रकाश का गया, आकाश निर्मल
 गया प्रसीध कोपना बंद हुआ, हवा स्वभाविक
 चकने स्त्री तथा सूर्यकी प्रभा भी स्थिर हो गयी ॥ ३२ ॥
 तदास्तु सुप्रीयविभीषणकृत्वा
 सुहृद्विशिष्टाः सहस्ररुमजस्तादा ।
 समेत्य हृष्टा विजयेन राक्षस
 रयेऽभिराम विधिनाभ्यपूजयन् ॥ ३
 सुप्रीय विभीषण मन्त्र तथा अहमप भवने ह्य
 क्षय युद्धमें भीयमचन्द्रभीषी विजयते बहुत प्रकन ।
 इसके बाद उन अपने मित्रकर नभनाभिराम भीयमकी विधि
 पूज की ॥ ३१ ॥

ततः प्रजम्मुः प्रशम मद्वजा
 विशा प्रसदुर्विमल नरोऽभवत् ।
 मही चक्रम्य न च माकतो वयी
 स्थिरमभद्राप्यभयय् विशाकरः ॥ ३२ ॥
 तत्रात् देवताओंका बड़ी शान्ति मिली सम्पूर्ण विशाएँ
 हृष्ये श्रीमत्प्रामकने वास्नीकीये आदिशब्दोंके सुदृक्कण्ठेऽह्यधिकततमः स्तः ॥ १ ८ ॥
 इत इतर श्रीवाल्मीकीनिर्मित खरंरामराम अदिशब्दके सुदृक्कण्ठमें एक ही शब्दों से पूज हुआ ॥ १ ८ ॥

स तु निहतरिपुः स्थिरप्रतिष्ठः
 स्वजनबलाभिवृत्तो रये बभूव ।
 रघुकुलसुपनम्बुनो महौजा
 शिवशागवैरभिषद्युतो महेन्द्रः ॥ ३
 उद्युक्ते मरकर मन्त्री प्रतिष्ठा पूर्ण करनेके पश्चात् ल
 क्षित सेनाके विरे हुए महातेकसी रघुकुलराजकुमार भ
 रणभूमिमें देवताओंसे विरे हुए इन्द्रकी मूर्ति छोड
 णे ॥ ३८ ॥

नवाधिकशततम सर्ग

विभीषणका बिलाप और भीरामका उन्हें समझाकर राणके अन्त्येष्टि-संस्कारके लिय जावेष्ट देन
 भावर निहत हृष्टा दायान विजितं रये ।
 शोकवेगपरिहाताया विवक्ष्यप विभीषणः ॥ १ ॥
 पराक्षित हुए भाईके मरकर रणभूमिमें पड़ा देक
 विभीषणका हृदय हाकके वेगसे व्याकुल हा गया और वे
 विवक्षप करने लगे— ॥ १ ॥
 धीरचिह्नान्त यिष्यन्त प्रयीण नयकोविद् ।
 महार्हादायगपत किं शेषे निहतो भुवि ॥ २ ॥
 या विष्यन्त पराक्रमी धीर भाई दधानत । हा अर्धकुल
 मीतित्र । तुम तो तहा बहुतमूल्य किन्हीनैपर खया करते थे,
 अबइत तरह मारे अकर भूमिपर क्यों पड़े हो ? ॥ २ ॥
 निक्षिप्य क्षीर्षो निक्षेयी मुखयज्ञदभूमिपी ।
 मुकुटनापयूषेण भास्कराक्षरध्वजसा ॥ ३ ॥
 हे धीर ! इन्द्रकी व शब्दबदले किन्चित् यमों निष्ठात
 धुष्ये निरवध हो गयी है । तुम इन्हें कबकर क्यों पड़े हुए हो ?
 इन्द्रके माथना मुकुट च मूर्ति उमज देकसी है यहाँ देक
 पड़ा है ॥ ३ ॥
 तद्विद् धीर सप्रधातं यमस्या पूर्वमीरितम् ।
 क्षममाहपरितस्य पत् तत्र दधितं तप ॥ ४ ॥

धीरकर ! भाव तुम्हारे ऊपर बड़ी लक्ष्य भाव
 है किन्के लिये मैंने तुम्हें पहलेसे ही अग्रह कर विष
 किन्तु उठ समय काम और मरके वशीभूत होनेके कारण ?
 मेरी बातें नहीं रची थी ॥ ४ ॥
 यथा हर्षात् प्रहस्ता या नन्प्रक्षिणापरे जनाः ।
 न कुम्भकण्ठोऽतिरथो नातिक्रयो मरान्तका ।
 न स्वय बहु मन्येधासस्तेष्वर्षोऽयमागतः ॥ ५ ॥
 अहकारके कारण न तो प्रहसने न इन्द्रकीने, न
 लोभने न अतिरथी कुम्भकण्ठने न अतिक्रयने, न मन्त्र
 और न स्वयं तुम्हने ही मेरी बातोंके अधिक मूल्य दिया ।
 उल्लेख कम वह खमने आया है ॥ ५ ॥
 गतः सेतुः सुगीठाना गतो धमस्य विप्रहः ।
 गतः सत्वस्य सक्षपः सुहृत्प्रम्य गतिगता ॥ ६ ॥
 अदित्या पतिष्ठे भूमौ ममस्तमसि चन्द्रमा ।
 विप्रभानुः प्रणास्याधिर्ष्यषसायो निवधमा ।
 भसिन् निपतित धीरे भूमौ शब्जभूता परे ॥ ७ ॥
 धान घाजपासिधमें भेद इत धीर पणवत् भयल
 होनेसे मुन्दर नीतिपर बन्धेनाक अर्धेकी मयाए हृद

परमेश्वर मूर्तिमान् विग्रह चम्प गन्वा, स्रज (कस) के संयोज्य
सलन नष्ट हो गया। सुन्दर हाथ चम्पनेवाले भीरोका वराप
चम्प गन्वा, सुर्से पृथ्वीपर गिर पड़ा; चन्द्रमा अँधेरेमें डूब गया।
प्रत्यक्षित भोग पुस्त गन्वी और वारा उल्लाह निरर्थक हो
गया ॥ ६७ ॥

किं दोषमिहल्लाकस्य गतसस्वस्य सम्प्रति ।
रणे राक्षसशार्ङ्गके प्रसुप्त इव पांसुपु ॥ ८ ॥
रवभूमित्री पूष्णे उल्लसितरोमणि रक्त्रके खे जनेसे
इव श्रेष्ठश्च श्वाभार भौर बह उमास हो गया । भव
परों क्या धन रह गया ! ॥ ८ ॥

पृथ्विप्रवालः प्रसभास्यपुप्य
सापोवळा शौर्यनिबन्धमूळः ।
रणे महान् राक्षसराजपुत्रः
सम्मर्षितो राक्षसाकृतन ॥ ९ ॥
हाम । देव ही जिसके पसे थे, इत ही सुन्दर पूछ था;
कम्प ही बह और शौर्य ही मूळ था; उस राक्षसराज रजग-
न्वी म्हात्र, पुष्प आब रजभूमिमें भीयपनेत्रकमी प्रचण्ड
बापुने सीद बाबा ॥ ९ ॥

सञ्जोयिषाणः कुलषदावधः
कोपप्रसङ्गापररागप्रह्लाः ।
इत्याकुसिहापयुहीतवेहः
सुप्तः क्षितौ रापजगन्धहस्ती ॥ १० ॥
लेब ही जिसके दाँत थे, बंधापरम्यर ही पृष्ठमाग भी,
क्षय ही नीचेके (वैर आदि) अङ्ग थे और प्रखर ही छण्ड
दण्ड था वह रजगन्धी गन्धहस्ती आब इत्याकुसंधी भीयम-
न्वी जिसके हाथ धरिरेके किरीट कर दिये अनते छात्रके किं
स्वीपर स गता है ॥ १० ॥

परारुमेस्ताहृदिज्जम्भियासिं
निःश्वसाधूमः स्वबळप्रदायः ।
प्रतापवान् स्वपति राक्षसाधि-
निवासितो रामपयोधरेण ॥ ११ ॥
परारुम और उल्लाह जिसकी बट्टी हुई प्माअभंकि
कम्पन थे; निःश्वस ही पूस था और अस्त्र बळ ही प्रदाय
था; उस राक्षस रजगन्धी प्रतापी अस्त्रिणे इत कम्प युद्धलक्ष-
में भीयमन्वी मपने बुझा दिया ॥ ११ ॥

सिंहस्तस्य द्रुल्लककुडिराणः
परभिमिश्रश्चमगन्धराहः ।
रक्षोभूपञ्चापालकजसभुः
क्षितीश्वरध्याप्रह्लाऽयसप्रः ॥ १२ ॥
पक्षर वनिज जिसकी पूँछ कडुर् और सींग थे अ
धनुर्भोर बिबध पानेवाळ था तथा परारुम और उल्लाह
आदि प्रकट करनेमें जो बापुके कम्पन था पपस्त्राकमी भौंन
तथा ज्मनेसे पुक्त वह राक्षसराज रजगन्धी धौंन माराव

भीयमन्वी व्याप्राहार माय अक्षर नष्ट हो गया ! ॥१२ ॥
यदन्तं हेतुमदास्य परिषदार्थनिश्चयम् ।
रामः शोकसमाधिपमित्युवाच विभीषणम् ॥ १३ ॥
जिसे अर्थनिश्चय प्रकट हो रहा था, एही मुक्तिसंगत
बात करत हुए शाकम्पन विभीषणसे उठ कम्प मगलान्
भीयमने कहा— ॥ १३ ॥

नाय यिनष्टे निष्प्रेः समरं शण्डधिक्रमः ।
अभ्युपगतमहोरस्ताहः पतितोऽयमदाक्षितः ॥ १४ ॥
विभीषण ! वह राजन समराङ्गमें मयमर्ष होकर नहीं
माय गया है । इधने प्रचण्ड परारुम प्रकट किया है, इकर
उल्लाह पशुत पड़ा हुआ था । इसे मृत्युसे छोड़ भय नहीं था ।
वह देवात् रजभूमिमें पराधावी हुआ है ॥ १४ ॥
नैव विनष्टाः शोषान्ते सप्रधर्मव्यवस्थिताः ।
पृथ्विमाशसमाना ये निपटन्ति रणाजिरे ॥ १५ ॥
अब भोग अपने अभ्युपगती इच्छति क्षियपधर्मसे खिल
हो उमराङ्गमें मारे जाते हैं । इस तरह नष्ट होनेवाले अयोग्य
नियममें शाक नहीं कल्प जादिय ॥ १५ ॥

येन सेन्द्राक्षयो ओकाभ्रासिता युधि धीमता ।
तस्मिन् कालसमायुगे न काळा परिद्योयितुम् ॥ १६ ॥
भक्ति बुद्धिमान् बीरन इन्द्रधरित तीनों ओकेओके युद्धमें
मयभीत कर रक्ता था बही यदि इत कम्प कम्पके अर्धन
हो गया तो उसके क्षिये छोड़ करनेअभवकर नहीं है ॥१६ ॥
नैकान्तविजयो युद्धे भूतपूर्वाः कदाचन ।
परिषां हन्त्यते पीरः परान् वा हस्ति सयुगे ॥ १७ ॥

युद्धमें किसीको उवा विजय-ही-विजय मिले, ऐसा परते
भी कभी नहीं हुआ है । बीर पुरुष संग्राममें वा तो धनुर्भो-
हार माय जाता है वा स्वर्ग ही धनुर्भोके मार गिरता है ॥
इयं हि पूर्वः सद्विद्या गतिः क्षमियसम्मत्तः ।
ज्ञानियो मिहवः सत्ये न शोष्य इति निश्चयः ॥ १८ ॥

आब रजगन्ध अ गति प्राप्त हुए है वह पूर्वकालके
महापुरुर्भोवाय कतामी गनी उत्तम गति है । क्षय-बुद्धिक्रम
अभय सनेबाम धीरोंके क्षिये तो वह बड़े अदरपी पत्ता है ।
क्षिय-बुद्धिसे रहनेवाळ बीर पुरुष यदि युद्धमें मार गया
हो तो वह शाकके सत्य नहीं है; परी शाकअ सिद्धास है ॥
तदर्थं निश्चय द्रुपू तत्त्वमास्यय विज्यरा ।
यत्सिंहान्तर्ग कर्ष्ये कृत्यं तत्पुञ्जित्यय ॥ १९ ॥

शाकके इत निश्चयपर विचार करके क्षियक बुद्धिअ
अभय क तुम निश्चित हा ब्राह्म और भय अगे अ युद्ध
(प्रत-संस्कार आदि) कर्ष्य कर्ना हा उठक कम्पमें
विषय कर ॥ १ ॥
तमुक्त्यापम्यं विजयन्त राजपुत्र विभीषणः ।
उपायं शाकसतसो ध्यतुहितमन्तरम् ॥ ० ॥
परम परारुमी रजगन्धार भीयमक एव करनेपर शाक

छेत्त इष्ट विभीषणने उन्ते अपने मार्गके सिधे हितकर
बत करी—॥ २ ॥

योऽप्य विमर्शव्यविभ्रष्टपूर्वं

सुरैः समस्तैरपि क्षासवेन ।

भयत्प्रमत्साद्य रथे विभ्रष्टे

वस्त्रमिवासाद्य यथा समुद्रः ॥ २१ ॥

मगतम् । पूर्वकालमें मुद्रके अक्षरोंपर समस्त देवताओं
तथा इन्द्रने भी किते कमी पीछे नहीं इत्याय य वही यमम
अथ रथभूमिम व्यापसं टकर लेकर उखी तरह धातु हो गया,
जैसं समुद्र अपनी तट भूमितक चकर घात हो जाता
है ॥ २१ ॥

भमन वृत्तानि वनीपकेषु

भुक्ताश्च भोगा मिभूताश्च भूत्याः ।

धनानि मित्रेषु समर्पितानि

वैराग्यमित्रेषु च पापितानि ॥ २२ ॥

धरने याचनेके दान सिधे, मग्न मग्न और मर्याद
भरण-योग्य किंसा है । मित्रोंके धन अर्पित किने और
घनुमोंसे वैरका बचन किया ॥ २२ ॥

योऽद्विज्ञानिभ्य महातपाश्च

वेदान्तगा कर्मस्तु चाप्यशूरः ।

इत्यार्षे श्रीमद्भागवते वाक्यटीके आदिप्रश्ने बुद्धकामने क्वाधिकशततमा सर्गः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवतटीके अष्टादशस्कन्ध अद्विज्ञानके बुद्धकामनक एक ती नवीं सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ॥

दशाधिकशततम सर्ग

रावणकी सिर्वाका बिलाप

रावण निहत भुत्या रामवेण महात्मनः ।

भन्तापुत्रात् सिनिष्यत् राक्षस्यः शोककर्षिताः ॥ १ ॥

महात्मा धीशुन्यायसीक इय एकक मारे जानेका
छमाकर मुनकर छोडते व्याकुल हुई उखलियों अन्त-पुखे
निम्न परीं ॥ १ ॥

पापमानाः सुषुप्तुना यत्स्यः क्षितिपांसुषु ।

विमुक्तकेदय शोकवता गावो यत्नहता इय ॥ २ ॥

अपकं बरंवार मना करनेपर भी वे बरखीकी धूममें
खरने छाडी थीं । उनक बेमा सुखे हुए थे और कितने
बचड़ मर गये हैं उन गौभेदक उमान ये शपथ आहुर
दा रही थीं ॥ २ ॥

उत्तराय विनिष्क्रम्य शापन सह राक्षसैः ।

प्रविद्यावाधन याद विविभ्यन्त्या हतं पतिम् ॥ ३ ॥

राक्षसैक क्षण शपथ उत्तर दरताम निरुत्तर भयंकर
गुदभूमिने प्रयोग ररक २ भयं मर हुए पतिसे शोकने
छतीं ॥ ३ ॥

एतस्य च प्रेतजन्तव इव

तत् कर्तुमिच्छन्मि तव

एव यमम मन्त्रिणोः स्वात्मनो

मम-मममि कर्मों में अह हूँ—एत कर्मक रस है ।

प्रेतमाकरो प्राप्त हुआ है मत् मत् मैं ही बनकर

इच्छा प्रेत-कृत्य करना चाहता हूँ ॥ २३ ॥

स तस्य कल्पैः कल्पैर्महात्म

सम्बोधितः स्तपु विभीषण्येव ।

मन्त्रापामानस कोट्यस्तुः

सर्वाणिमाभ्यन्तरीयसत्तनः ॥ २४ ॥

विभीषणके करवाकालक वक्तोद्वारा मन्त्री तव उन्ते

कनेपर उदारवेता रक्तकुमार महारमा श्रीरामने उन्ते उन्ते

सिधे स्वर्गोंर उच्चम श्रेष्ठोपी प्राप्ति करनेके लक्ष्य अन्तेके

करनेकी भाषा ही ॥ २४ ॥

मरणप्राप्ति वैरागि निर्भूत ना प्रयोक्तव्यम् ।

किन्तुतामव्य सत्क्यारो ममाप्येव कथं तव ॥ २५ ॥

व शोभ—विभीषण ! वैर बीकन कालक ही कत है ।

मरनेके बाद उच वैरका मन्त हो जाता है । मत् इन्त

प्रयोक्त सिद्ध हो हुआ है मत् मत् तुम इच्छा उत्तर

करे । इस समय वह जैसे तुम्हारे स्नेहका प्राप्त है, उन्ते तव

मेग भी स्नेहमानक है ॥ २५ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्भागवते वाक्यटीके आदिप्रश्ने बुद्धकामने क्वाधिकशततमा सर्गः ॥ १ ॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवतटीके अष्टादशस्कन्ध अद्विज्ञानके बुद्धकामनक एक ती नवीं सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ॥

अर्धपुत्रेति वाविष्यो हा मयेति च सर्वथा ।

परिपेतुः कथम्भावां महीं घोषितकर्म्मम् ॥ ४ ॥

हा आर्धपुत्र / हा नाथ / की पुत्र मन्त्री हुई थे

रथ-की-रथ उठ रथभूमिमें बहों बिना मत्तकके कर्त्त सिद्धी

हुई थी तथा रक्षकी बीच कम गयी थी, तव अरे मन्त्री-

पहली मत्तकने कर्त्तों ॥ ४ ॥

ता वाप्यपरिपूर्वाक्या भर्तृशोकपरराजिनः ।

करिष्य इय नर्तन्याः करन्त्यो हलचूचयः ॥ ५ ॥

उन्ते नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बर रही थी । वे कर्त्तों

शकते वेमुष हा पूषपतिर मारे जानेपर इतिनिबेकी तव

करक-करन पर रही थी ॥ ५ ॥

वृद्धगुप्ता महाकरय महावीर्य महापुतिम् ।

रायवं निहत भूमौ नीत्प्रभ्रतकपापमम् ॥ ६ ॥

उन्होंने महाभाग महाशयकी और महावीर्यी राक्षसों

देता क नाउं बयतके घर का वृष्टीपर मग पड़ा था ॥ ६ ॥

ताः पति सहसा इमा दायान रणपांसुषु ।

नियेतुस्तस्य गात्रेषु चिच्छन्ना वनच्छता इव ॥ ७ ॥
 रणभूमिन्त्री धूमिमें पदे हुए अपने मृतक पतिपर उख
 हरी पड़ते ही व कटी हुई बनायी अताओंके समान उतफ
 मङ्गल गिर पड़ी ॥ ७ ॥

बहुमानात् परिप्यज्य काचिद्वन दरोद् ह ।
 खरप्यौ काचिद्विश्रम्य काचिद् कण्ठेऽवच्छम्य च ॥ ८ ॥
 उनमेंते कई तो बड़े भावरके क्षय उल्लस आखिल
 करके, कोई पैर पकड़कर और कोई हाथसे अङ्कुर रोने लगीं।।
 उल्लिख्य च मुञ्जी काचिद् भूमौ सुपरिचरते ।
 इतस्य वदन दृष्ट्वा काचिन्मोहमुणगमत् ॥ ९ ॥
 कई भी अपनी दोनों मुबार्ये ऊपर उठा पडाइ ला
 कर गिरी और बरतीपर छोड़ने लगी तथा कई भरे हुए
 लमीक मूल देसकर मूर्च्छित हो गयी ॥ ९ ॥

काचिद्गृहे शिरः कृत्वा दरोद् मुञ्जमीरुती ।
 काचपयस्त्री मुख वापैस्तुपारैरिष पञ्चमम् ॥ १० ॥
 कई पतिपर मस्तक गादमें उल्लस उतख मुँह निहाली
 और अङ्कुरोंके कलखकी मूर्ति अमु-किनुओंसे पतिके
 मुक्तकिन्दक नहाली हुई रोदन करने लगी ॥ १ ॥
 एकमार्ताः पति दृष्ट्वा राघव निहत मुञ्चि ।
 बुद्धुर्बुद्धुधा शोकाद् भूयस्ताः पर्यवेक्षयन् ॥ ११ ॥

इस प्रकार अपने पतिदेवता राघवको बरतीपर मरकर
 गिरा देख वे एक-की-एक अर्तमायसे उठे पुकारने लगीं और
 ओंके कारण नाना प्रकारसे विषाद करने लगीं ॥ ११ ॥

येन विश्रान्तिः शस्त्रे येन विश्रासितो यमः ।
 येन वैभवयो राजा पुण्यकेण वियोजितः ॥ १२ ॥
 गम्भीर्याणामृयीणां च सुराणां च महात्मनाम् ।
 भय येन न्ये वृत्त सोऽयं शैल रणे हतः ॥ १३ ॥
 वे बोझी— हाव । किन्होंने समयन और इन्द्रको भी
 मन्धीत कर रक्ता था उल्लसिउल्लस मुबेरक पुण्य किमान
 छिन किना था तथा गन्धर्वों श्रुतियों और महात्मनी
 देवताओंको भी रणभूमिमें मय प्रदान किना था वे ही हमारे
 प्रत्यय अथ इस सम्राट्त्वपमें मारे अकर उतख सिम्य ल
 गये हैं ॥ १२ १३ ॥

असुरेभ्यः सुरेभ्यः वा पद्मगम्याऽपि वा तथा ।
 भय यो न विजानाति तस्येद् मालुपाद् भयम् ॥ १४ ॥
 एव ! अब असुरों देवताओं तथा नागावे भी मन्धीत
 होकर नहीं जानते वे उन्हींका आब मनुष्यने यह मय प्राप्त
 ल गय ॥ १४ ॥

अवप्यो दृपताना वस्तथा क्षानधरक्षसाम् ।
 हतः साऽप्य रणे शैल मानुषेण पशतिवा ॥ १५ ॥
 किन्हें देवता राजन और उल्लस भी नहीं मार उल्लस
 वे वे ही अथ एक देवक मनुष्यक हाथसे मारे अकर रण
 भूमिमें ल रहे हैं ॥ १५ ॥

यो न शक्यः सुरैर्हन्तु न यज्ञैर्नासुरैस्तथा ।
 सोऽप्य काचिद्विद्यास्तस्यो मृत्युं मर्येण लम्बिताः ॥ १६ ॥
 'य' देवताओं, असुरों तथा यज्ञोंके क्रिये भी अशक्य थे,
 वे ही किसी निष्क प्राणीक समान एक मनुष्यके हाथसे
 मृत्युके प्राप्त हुए ॥ १६ ॥

एव यदृत्स्यो दकनुस्तस्य ता दुःकिताः स्त्रियाः ।
 भूय एव च बुद्धवार्ता विलेपुञ्च पुनः पुनः ॥ १७ ॥
 इस तरहकी बातें बरती हुई रणपत्नी वे बु-खिनी स्त्रियों
 पहाँ फूट-फूटकर रोने लगीं तथा दुःखसे आतुर होकर पुन
 बारबार विषय करने लगीं ॥ १७ ॥

अष्टम्भता तु सुहृदा सतत हितवादिनाम् ।
 मरण्यायाहता स्तीत्वा राक्षसाश्च निपातितः ।
 एताः सममिदानीं ते वयमात्मा च पातितः ॥ १८ ॥
 वे बोझी—प्राणनाश । आपने सदा हितकी बात क्ताने
 वाले सुहृदोंकी बातें भनसुनी कर दीं और अपनी मृत्युके
 क्रिये छीताअ भावहरण किया । इसका फल यह हुआ कि वे
 राक्षस मार गिराये गये तथा आपने इस समय अपनेको रण-
 भूमिमें और हमकोकेन्द्र महान् बु-खके समुद्रमें गिरा दिया ।
 बुजानेओपि हितं वाक्यमिदो ज्ञाता विभीषणः ।
 इत्थं पदपितो मोहात् स्वयाऽऽत्मवधकाङ्क्षिणा ॥ १९ ॥

आपके प्रिय भाई विभीषण आपका हितकी बात क्ता
 रहे वे तो भी आपने अपने वचनोंके क्रिये उन्हें मोहबाध कट्ट
 वचन सुनाये । उधीअ यह फल प्रत्यक्ष सिद्धापी सिद्ध है ॥
 यत्नि निर्पातितः ते स्यात् सीता रामाय मैथिली ।
 न नः स्याद् व्यसन घोरमिद् मूढहर महत् ॥ २० ॥
 यदि आपने मिथिलेवाकुमारी सीताका भीयमके पस
 ज्ञेय दिया हाव ता न-मूढहरित हमारा विनाश करनेवाला
 यह महाघोर उल्लस हमपर न आया ॥ २ ॥

वृत्तकामो भवेद् भ्राता रामो मित्रकुल भवेत् ।
 वय चाविधवाः सवाः सकाम्य न च दात्रयः ॥ २१ ॥
 सीताको छोड़ देनेपर आपके भ्राई विभीषणका भी
 मनोरथ उल्लस हा ज्ञाना भीराम हमारे मित्र-वचनों भा ज्ञते,
 हम सबको विधवा नहीं बना पवता और हमारे शत्रुओंकी
 क्षमताएँ पूरी नहीं होतीं ॥ २१ ॥

त्वया पुननुदासन सीता सकम्भता यत्नात् ।
 राक्षसा वयमात्मा च वय तुभ्य निपातितम् ॥ २२ ॥
 परतु अथ ऐसे निपुत्र निष्प कि ज्ञेताअ कर्त्तृक
 केद कर किना तथा राक्षसोंका हम किणक आर अपने
 अपनका—तीनोंका भी एक क्षय नीच गिरा दिया—विरसिमें
 हाव विद्य ॥ २२ ॥

न कामकरः काम या तप राक्षसपुण्य ।
 द्वेष खेप्यत सर्वे हन दृपत हस्यत ॥ २३ ॥
 पाकप्रतिपदमे । भावना स्वेच्छापर ही हमारे विनाशमें

कारण हुआ हो, देखी कत नहीं है। देव ही वह कुछ करता है। देवका माय हुआ ही भय काय या मरता है ॥ २१ ॥
 वानराणां विनाशोऽयं राक्षसानां च त रणे ।
 तव शैव महाबाहो वैश्वोपायुपासतः ॥ २४ ॥
 महाबाहो । इस युद्धमें बानरोंका, राक्षसोंका और
 आपका भी विनाश देवयामते ही हुआ है ॥ २४ ॥
 मैयाप्येन च कामेन विक्रमेण न खाह्वया ।
 दास्यया वैश्वगतिर्लोकं निवर्तयितुमुद्यतः ॥ २५ ॥

हाथपै श्रीमद्गामावधे वाचिकीये वादिकाम्ये युद्धकाव्ये वृकाभिरुत्तमाः स्मैः ॥ ११ ॥
 इत प्रकर श्रीमद्वाल्मीकीयैर्विनिर्मितं अर्चरामायणं वदिकाम्ये युद्धकाव्येमे एक सौ दसवां स्तु पूरा हुआ ॥ ११ ॥

एकादशाधिकशततम सर्ग

मन्दोदरीका विलाप तथा रावणके श्रवणका दाहसंस्कार

तासां विरूपमानाना मद्वा राक्षसयोपिताम् ।
 ज्येष्ठपत्नी प्रिया मीन्य भर्तार समुवैसत ॥ १ ॥
 पशुमीय हत शूपा रामेणाश्लित्यकर्मणा ।
 पतिं मन्दोदरी तत्र कृपया पर्यवेद्यत् ॥ २ ॥
 उस समय विख्यात करी हुई उन राक्षसियोंमें जो राक्षस-
 की ज्येष्ठ एवं प्यारी पत्नी मन्दोदरी थी, उठने अश्लित्यकर्मा
 मत्तान् भीरवकं ह्ययं मारे गये अपने पति दशमुख
 यम्पको देला । पतिको उठ भयह्वामें देलकर यह वहाँ
 भयमय दिन एवं दुःखी हो गयी और इस प्रकार विख्यात
 करने लगी—॥ १ २ ॥

ननु नाम महाबाहो तव वैभवणानुज ।
 ह्यस्य प्रमुखे स्थातुं वसत्यपि पुरवरा ॥ ३ ॥
 महाबाहु कुबेरके छोटे भ्राते । महाबाहु राक्षसजन ।
 वः अप्य श्रेष्ठ करते थे, उस समय इन्द्र भी आपके समने
 लड़े होनेमें मय लाते थे ॥ ३ ॥
 श्रुण्वयश्च महान्तोऽपि गन्धर्वाश्च यदाश्रितः ।
 ननु नाम तयोद्रेगाधारण्याश्च विशो गताः ॥ ४ ॥

‘बड़-बड़ श्रुति पञ्चमी गन्धर्व और चारण भी आपके
 दरत चारों दिशाओंमें भ्रम गये थे ॥ ४ ॥
 स त्व मानुषमात्रेण रामेण्य सुधि निर्जितः ।
 न व्यपग्रपस राज्ञन् किमिद् राक्षसभ्यर ॥ ५ ॥
 ‘वही भाप आज युद्धमें एक मानवमात्र यामसे परका
 हा गव । यम् । क्या आपका इतसे छात्रा नहीं आती है ।
 यस्मैश्च । अनिय त्रं वशी, पर क्या बात है ॥ ५ ॥
 कथ प्रत्यास्यमाद्रम्य धिया यीर्येण चान्यितम् ।
 भजिररा जपान त्वां मानुषा वनगातरः ॥ ६ ॥
 भयान वीरोंमें स्वयंसे जितकर अपनेको लम्बितवाम्नी
 और पराधीनताय च । आपका यममें उर बना दिधीक
 विना गमना नहीं था फिर आप मेने वीरमे एक वनगामी
 वदुष्कने वम मार दाता ॥ ६ ॥

‘कंठमें फल देनेके लिये उद्युक्त हुए
 भ्रौंरं बनसे, काम्नासे, प्यारसे, बलसे बल
 मी नहीं परत लच्छ ॥ ३५ ॥
 किलेपुरेवं दीन्यस्ता राक्षसभिरप्येविक ।
 कुरावं इव दुःखार्ता वाप्यपयोऽनुनेकम् ॥
 इस प्रकार राक्षसयाम्नी लमी किले हुकले
 भौंलामें मौसु भरकर दीनभक्तसे कुरीपी ली
 करने लगी ॥ २६ ॥

वृकाभिरुत्तमाः स्मैः ॥ ११ ॥
 इत प्रकर श्रीमद्वाल्मीकीयैर्विनिर्मितं अर्चरामायणं वदिकाम्ये युद्धकाव्येमे एक सौ दसवां स्तु पूरा हुआ ॥ ११ ॥

मानुषाणामन्विये चरतः कामकपिना ।
 विन्नाशस्तत्र रामेण सजुये नोपपद्यते ॥
 भाप देते देहमें बिकरते थे, वहाँ
 नहीं हो सकती थी । आप इच्छानुसार स्व दास्य
 समर्थ थे ली मी युद्धमें रामके हाथसे अपना किल
 यह सम्भव भयषा विशासके योग्य नहीं बन फल
 न बैतत् कर्म रामस्य अद्भुतमि वमुमुजे ।
 सर्वताः समुपेतस्य तत्र तेनभिर्भयम् ॥
 युद्धके मुहातेपर सब भेसे बिकन फनेको
 भीरवकं ह्ययं जो परकन हुई, यह भीरवक का
 देख मुने विश्वास नहीं होता (कव कि उग्र उरै ।
 समस्तो र्) ॥ ८ ॥

अथवा रामकूपेण कृत्रस्ता स्वकाप्रपत्ता ।
 मायां तव विन्नाशाय विधापाप्रतिवर्तितम् ॥
 अथवा लच्छत कव ही अर्थात् मय लच्छत
 विनाशके लिये भीरवके रूपमें यहाँ म पुरुष च
 अथवा वासपेन तव धर्मितोऽसि म्हात्त ।
 वासवस्य तु का दाकित्स्वां द्रुष्टुमपि लजुये ॥
 महाबाहू महावीर्यं ज्यशां म्हाजसम् ॥
 ‘महाश्वी वीर । अथवा यह भी सम्भव है कि
 इन्द्रने आपपर आक्रमण किया हा परत इन्द्रकी
 है जो युद्धमें न आपकी ओर आँल उठाक
 लईः क्योंकि आप मरावामी, महापराक्रमी और
 देवघनु व ॥ १ ३ ॥
 व्यक्तमय महायोगी परमात्मा सत्काम ।
 भनादिमध्यनिधना महता परसा महान् ।
 तमसा परमा धाता शानुषमगहाकार ।
 भीरवसपत्ता न्मियभीरजप्याः दापयते भुक्त ।
 मानुष रूपमाप्षाय विष्णुः सत्यपराक्रमा ।
 सर्वः परिपृता र्ययानरस्यमुपागतौ ॥

सबलोकेश्वर। भीमौल्लोकना हितकाम्यया ॥ १४ ॥
स राक्षसपरीक्षार वैषद्यु भयापहम् ।

भीष्म ही ये भीरवमन्त्रन्त्री महान् योगी एवं स्नातन
परम्परा हैं । इनका भाविक, मन्त्र और मन्त्र नहीं है । ये
महान्त्रे भी महात्, मन्त्रान्त्रधरते परे तथा
सन्त्रे धारण करनेवाक परनेभर हैं खे अपने हाथमें शङ्ख,
चक्र और गदा धारण करते हैं किन्तु बन्धुसम्भमें भीरवसम्भ
विद् है मन्त्रही बन्धी किन्तु कभी साध नहीं छाड़ता।
किन्हीं परस्त्र करना सर्वथा असम्भव है तथा ख निम्न स्थिर
एवं सम्पूर्ण व्यक्तिके भधीभर हैं उन कल्पपरम्प्री भगवान्
किन्तुने ही समस्त व्यक्तिके हित करनेकी इच्छते मनुष्यसम्भ
सम् धारण करके धनरक्षणमें प्रकट हुए सम्पूर्ण देवतासंके
सम् अन्त्र राक्षससहित आपका बध किया है क्योंकि आप
देवतासंके शत्रु और समस्त संघरके सिन्ने मन्त्रक ये ॥
इन्द्रियाणि पुरा जित्या जित विमुचन त्वया ॥ १५ ॥
स्वप्निरिष तत् वैरमिन्द्रिवरेष निर्वृता ।

प्राय । पहले आपने अपनी इन्द्रियोंने भीतकर ही
किन्हीं व्यक्तिके निम्न पायी थी, उस बरके बार रखती हुई
वै इन्द्रियोंने ही मन्त्र आपको परस्त्र किया है ॥ १५ ॥

वैष हि अनस्थाने राक्षसैर्वहुभिर्भुतः ॥ १६ ॥
वरसु मिहते भ्राता तदा रामो न मानुषः ।

प्राय मीने मुना कि कान्सासनमें बहुतेरे राक्षसोंके विरे
हनेपर भी आपके भाई वरसो भीरवने मार डाल्य है, तभी
मुझे विश्वास हो गया कि भीरवमन्त्रन्त्री कोई खपाण मनुष्य
नहीं हैं ॥ १६ ॥

वैष नगरीं जगु तुप्यवेशां सुरैरपि ॥ १७ ॥
प्रथिद्यं हनुमान् वीर्यात् तवैष व्यथित्य ययम् ।

जिस जगु नगरीमें देवतासंके भी प्रवेश होना कठिन
था वहीं बन हनुमान्की सम्पूर्णक पुत्र आपे उसी समय
हमको मानी मनीषकी व्याख्यासे व्यथित हो उठी थीं ॥
क्रियतामस्विरोधक्य राघवणेति फमया ॥ १८ ॥
उष्यमात्वा न गृह्णासि तस्येय ष्युष्टिरगत्य ।

मीने बारबार कहा—आपनयाय । आप खुनवापकीसे वैर
विषय न भीक्षिय परंतु आपने मेरी शत्रु नहीं मानी ।
उष्येभ भाव यह फल सिद्ध है ॥ १८ ॥

भक्तसाक्षात्भिक्षामोऽसि सीता राक्षसपुङ्गव ॥ १९ ॥
एदत्रयस्य विनाशाय देहस्य सज्जनस्य च ।

प्रायमया । आपने अपने देहपर्यन्त घटिके तथा
संक्रामक विनाश करनेसे किन्हीं ही अक्रामक सीताकी कामना
की थी ॥ १९ ॥

भद्रव्यस्या विशिद्यं ता रोहिण्याऽपि तुर्मते ॥ २० ॥
सीता धरयता मान्यां त्वया ह्यसद्वदा एतम् ।

यसुधाया हि यसुधां धियाः थीं भद्रव्यसङ्घाम् ॥ २१ ॥

तुर्मते । भद्रव्य ही शीता अरुणती और रोहिणीते भी
बद्धकर पतिव्रता हैं । ये वसुधाकी भी वसुधा और भीष्म भी
भी हैं । अपने लामीके प्रति अनन्त अनुपमा रत्ननेवाकी और
सम्भी पूजनीय उन सीतादेवीका तिरस्कार करके आपने बड़ा
अयुक्तिक कार्य किया था ॥ २० ॥

सीता सर्वात्मनःप्राणीमरण्ये यिधने शुभाम् ।
सम्प्रतिपत्त्या तु तां वीनां छयाताऽऽत्मसङ्कल्पम् ॥ २२ ॥

अप्राप्य त वैष काम मैथिलीसगमे कृतम् ।
पतिव्रतायास्तपसा नूनं दग्धोऽसि मे प्रभो ॥ २३ ॥

मीने प्राणनाय । सर्वाऽऽनुदरी शुभसङ्घा सीता निर्वन
कनमें निराश करती थी । आप छपते उन्हें कुःखने डालकर
यहाँ हर कने । यह आपके सिन्ने बने कङ्ककी बात हुई ।
मिथिलेयाकुमारीके साथ सम्भगमे किन्ने खे आपके मनमें
कामना थी उसे तो आप पा नहीं सके, उरुत उन पतिव्रता
देवीकी तपस्यसे कङ्क मस हो गये । अचरम ऐसी ही
बात हुई है ॥ २२ ॥

तवैष यच्च दग्धस्त्वं धर्यवस्तनुमभ्यमाम् ।
वैषा यिम्यति तं सर्वं सेव्याः साग्निपुरोगमाः ॥ २४ ॥

कङ्ककी सीताका अपहरण करते समय ही आप कङ्क
रख नहीं हो गये—यही आभर्यकी शत्रु है । आपकी कि
गङ्गिमाते इन्द्र और अग्नि भादि सम्पूर्ण देवता आपसे बरत
ये उकीने उस समय आपका रण नहीं होने दिया ॥ २४ ॥
अद्ययमेष लभत फल पापस्य कर्मणः ।
भर्ताः पर्यागते ब्रह्मते कता वास्त्याय सदायः ॥ २५ ॥

आपवस्त्रम् । इसमें कोई संदेह नहीं कि समय भानेपर
कृतिके उसके पाप-कर्मका फल भवत्स मिश्रता है ॥ २५ ॥

शुभकङ्कभ्रमभावाति पापकृत् पापमदन्ते ।
विभीषणः सुखं प्राप्तस्त्व प्राताः पापमीढयाम् ॥ २६ ॥

शुभकर्म करनेवालेके उतम कर्मकी प्राप्ति होती है और
पापीका पापका फल—तु ख भोगना पता है । विभीषणका
अपने शुभ कर्मके कारण ही सुख प्राप्त हुआ है और आपका
ऐसा कुःख भोगना पड़ा है ॥ २६ ॥

सम्यग्या प्रमदास्तुभ्य रूपणान्यधिकस्ततः ।
मनह्ययामापधस्त्य तु मोहात्त युज्यस्य ॥ २७ ॥

आपका परने सीतादेवीसे भी अधिक सुन्दर रूपकी
हुकी सुखिकों मोह है परंतु आप कमक बधीभूत हो
मोहयय इय शत्रुका समझ नहीं पाते थ ॥ २७ ॥

म फुलन न रूपण्य न दाक्षिण्यन मैथिली ।
मयाधिका या तुदया या तत् तु माहात्त पुज्यस्य ॥ २८ ॥

मिथिलेयातुम्मी शीता न थ कुसुम न रूपमें और न
दाक्षिण्य भादि गुणोंमें ही तुलना यद्कर है । ये नर कथकर
भी नहीं हैं परंतु आप मोहयय उस पापी और नहीं पान
देते थ ॥ २८ ॥

पश्येत्प्रहार शरान्ते अष्टसञ्जायगुण्डानान् ॥ ६२ ॥
बहिर्निष्पतितान् सर्वान् कथं बहूनां न कुप्यसि ।

आप भन्ती क्षिप्रते बड़ा प्रेम करते थे । आप आपकी सभी क्षिप्रों का बड़ा प्रेम करते थे । परवा इत्यन्त बहुर निष्क आयी हैं । इन्हें देखकर आपसे प्रेम क्यों नहीं होता ! ॥ ६२ ॥
अथ श्रीडासहायस्तेऽनायां स्त्र्यस्तप्यते जनाः ॥ ६३ ॥
न वैमनाम्बासपसि किं वा न बहुमम्यसे ।

प्रायः ! आपकी श्रीशशस्त्री बहू मन्दोदरी का प्रेम मनाप होकर निष्क कर रही है । आप इसे अपमान क्यों नहीं देते भयशा अस्त्र आदर क्यों नहीं करते ! ॥ ६३ ॥
यास्तस्या विभवा राजन् इत्या मेका कुलक्षियाः ॥ ६४ ॥
पतिवता धमपत्या गुह्यगुह्यमे रथाः ।
नाभिः शोक्नभित्ताभिः शस्तः परवश गताः ॥ ६५ ॥
त्वया विप्रहृताभिश्च तदा हस्तस्तदागतम् ।

प्रायः ! आपने बहुत-सी कुलक्षिणाओंको, अं गुह्यगुह्य-की सेवानें करी रहनेवासी धर्मपत्न्या तथा पतिवता वी, विभवा क्राया और उनका अपमान किया था अतः उस समय उन्होंने शोके से हस्त होकर आपसे शाप दे दिया था, उल्लेख यह कह है कि आपका शाप एवं गुह्यके अधीन होना पड़ा है ॥ ६४-६५ ॥

प्रचायः सत्यमेवायं त्वां प्रति प्रपद्यो सृप ॥ ६६ ॥
पतिवत्यानां मन्त्रणात् पतन्त्यभूमि भूतले ।

माराधः । पतिवताओंके आँसू इस पृथ्वीपर स्थिर नहीं मिले यह कष्ट आपके ऊपर प्रायः ठीक-ठीक पडी है ॥ ६६ ॥

कथं वा नाम ते राज्ञोऽज्ञानकर्म्य तेजसा ॥ ६७ ॥
नारीचौर्यमिदं क्षुद्रं कृतं वीर्यवीर्यमानिन्य ।

प्रायः ! आप तो अपने तेजसे हीनें अज्ञानके आश्रित करके अपनेसे बड़ा अज्ञान मानते थे कि मैं भी पत्नी कीसे चुपनेका यह नीच काम आपने कैसे किया ! ॥ ६७ ॥

अपनीयाभमात् रामं मन्त्रणाच्छाया त्वया ॥ ६८ ॥
भयनीत्या रामपत्नी सा अपनीया च लक्ष्मणम् ।

प्रायःमम मुझे बहाने भीरुमने अज्ञानसे पूर इत्या और अज्ञानके भी अज्ञान किया । उसके बाद आप भीरुम-पत्नी कीसे चुपकर यहाँ के आये । यह भयनी बड़ी अज्ञान है ॥ ६८ ॥

क्यातये च न त पुन्ये कदाचित् संसारात्म्यहम् ॥ ६९ ॥
तत् तु भाष्यविषयं सान्मूलं ते पक्षसप्तमम् ।

प्रायःमम कभी आपने वापला दिलीप ही यह मुझे पार नहीं पड़ना परंतु मन्त्रके फेरते उस दिन कीसेम हल करते समय निष्क ही आपने वापला अ गयी थी जो आपके निष्क विनायमी रूप्य दे रही थी ॥ ६९ ॥

मत्प्रतिान्वागतपद्यां वर्तमानविषयानां ॥ ७० ॥

मैथिलीमाहतां बद्धां प्यात्वा निम्बस्य वापलात् ।
सत्यं च महाबाहो देवरो मे यद्बलीत् ॥ ७१ ॥
अयं राजसमुत्थानां विनाशः प्रत्युपस्थितः ।

महाबाहो ! मेरे देवर निम्बस्य सत्यवादी भूत मेरे निम्ब के साथ तथा वर्तमानके भी समझनेमें कुछ है । उन्होंने हरकर कभी हुईं मिथिलेककुम्पी कीसेमे देखकर मन में कुछ विचार किया और अन्तमें वही जैत होकर अज्ञान अथ प्रथम-प्रधान एकलौके विनाशक समय उपस्थित हो गया है । उनसे यह बात ठीक निष्क ॥ ७०-७१ ॥

कामक्रोधसमुत्थेन व्यसनेन प्रसङ्गिणः ॥ ७२ ॥
निवृत्तसत्यकृतेर्नाथः सोऽयं मूढोऽपि महान् ।
त्वया कृतमिदं सर्वमनाथ राजस कुलम् ॥ ७३ ॥

अज्ञान और क्रोधसे उत्पन्न आपके आश्रितजनक होने कारण यह सत्य देखने नष्ट हो गया और बहूमुख्य नष्ट करनेवाला यह महान् अनर्थ प्राप्त हुआ । अज्ञान आपने कष्ट एकलकुल अनाथ कर दिया ॥ ७२-७३ ॥

नहि त्वं द्योवित्तम्यो मे प्रख्यातबन्धुवैरवा ।
स्त्रीसभवात् तु मे बुद्धिः कदाचन्ये परिवर्तते ॥ ७४ ॥

अज्ञान अपने एक और पुरुषार्थके सिद्धे निष्क के अज्ञान आपके सिद्धे होकर मेरे सिद्धे उचित नहीं है । तथापि स्त्रीसभवाके कारण मेरे हृदयमें ईदित आ गयी है । सुकृत पुण्यत्वं च त्वं गृहीत्या सां गतिं गता । आत्मानमनुशासामि त्वद्विनाशेन बुद्धिस्ताम् ॥ ७५ ॥

अज्ञान अज्ञान पुण्य और पाप का अज्ञान अपनी कीर्ति पतिसे प्राप्त हुए हैं । आपके विनाशमें मैं महान् कुलमें पड़ गयी हूँ । इच्छिमे बरबर अपने ही सिद्धे होकर करती हूँ । सुकृतं हितकामाणां न भुवं वक्त्रं त्वया । आत्पूर्णां वीर्यं कदाचन्येन हितमुक्तं दशासन ॥ ७६ ॥

महाबाहू दण्डनः । हित करनेवाके सुकृतं तथा कर्म-ने जो आपने कर्मपूर्ता किन्ही बर्तें करी थी, उन्हें अपने मनमुनी कर दिया ॥ ७६ ॥

हेतुव्ययुक्तं विभिन्नकर्मैश्चकरमन्त्राणम् ।
विभीषणेनाभिहितं न कृतं हेतुमत् त्वया ॥ ७७ ॥

किन्हीरुक्त कर्म भी मुक्ति और प्रयोजनसे पूर्ण था । विभीरुके अपने समने प्रयुक्त किया गया था । वह कर्मपत्नी के वा ही बहुत ही अज्ञान मन्त्राने का गया था किंतु उस मुक्तिपुत्र काको भी आपने नहीं माना ॥ ७७ ॥

मारीचकुम्भकण्ठ्यायां वापय मम पितृसत्या ।
न कृतं धियमत्तेन तस्यैव पत्न्यात्ताम् ॥ ७८ ॥

अज्ञान अपने बहूके पत्नीमें मत्तकाले हा रहे थे अज्ञान मरीच कुम्भकर्ण तथा मेरे पिताजी पदी हुईं बात भी आपने नहीं मानी । उल्लेख यह ऐसा अज्ञान आपसे प्राप्त हुआ है ॥ श्रीमद्गीमूलसकादा पितृम्यर शुभाह्व ॥

सुगन्धानि विनिक्षिप्य किं शोभे कथिरावृता ॥ ७९ ॥

प्राणनाथ ! अथवा नीच मेपके समान भ्याम वर्णं है ।
भय घरीवर पीत बल भौर बौहोमे सुन्दर बामुन्दं पारल
बन्देबाह है । भ्याम सुन्दे लयपय हा अपने घरीरभे मय
भर छितपकर नहीं क्यों खे रहे हैं ? ॥ ७९ ॥

प्रसुप्त इय दोषात्तां किं मा न प्रतिभाषसे ।

यै शोभते पीकित हा रही है और भाप गदयी नीदने
छाये हुए पुष्पभी मोक्षि मेरी बतबय बचाप नहीं दे रहे हैं ।
नाथ ! देख क्यों हो रहा है ? ॥ ७९ ॥

महावीरस्य वृहस्प सयुगेऽप्यस्त्राविना ॥ ८० ॥

पातुधानस्य वृषिर्हृषी किं मा न प्रतिभाषसे ।

मै महान् पराक्रमी, बुद्धदृष्टाथ और समरभूमिसे पीठे
न इन्देबाह मुमाथी नामक पद्यलभी वीक्षित्री (नखिनी)
है । भाप मुझसे बढते क्यों नहीं हैं ? ॥ ८० ॥

उचिष्टोच्छिष्ट किं शोभे नथ परिभवे कृते ॥ ८१ ॥

अथ ये निभया सङ्गं प्रविष्टा स्युस्त्वमपः ।

प्राणनाथ ! उच्छिष्ट, उच्छिष्ट । भीषमक हाथ अपमक
नून फामक द्विय गथा है तो भी भाप छे कैसे रह हैं ?
अथ ही ये सुर्गभी द्विर्ले सङ्गमे निर्भय होकर प्रविष्ट हुई
हैं ॥ ८१ ॥

यन सूर्यस दाहुर समरे सूर्यज्वला ॥ ८२ ॥

यस यज्ञधरस्वेर साऽप्यं त सलतां ता ।

एते बहुप्रहराणो हेमजालपरिप्लुता ॥ ८३ ॥

परिषा अयार्कपल पापैरिच्छा सहस्रधा ।

भीरर ! भाप समरभूमिमें विष्ट सुर्गस्य वेकभी
परेषक हाथ सयुभौध धार विना करते थे यज्ञधरी इन्द्रके
बगरी भीक्षि आ तथा अयार्क हाथ पूजित हुआ था सभूमिमें
बहुप्रहराण सयुभौध प्राय सेनेबाधा था और क्लिष्ट छनेकी
य मे किर्णन किया गया था अथवा बहु परिर भीषमक
कर्मसे हासो दुष्कर्मों किन्तु हाकर इपर उपर विष्टप
परा है ॥ ८२ ८३ ॥

प्रियाभिशापसगृहा किं दये रण्यमद्वितीम् ॥ ८४ ॥

सप्रियामिदं कस्मात्त मा नचष्टस्यनिभारितुम् ।

प्राणनाथ ! भाप भाभीप्यरी पत्नीके मोक्ष एवभूमिवा
अधिन करके क्यों गव रह है और छिष्ट अरवनेमुते अधिन
शे मन्त्रर मुक्तन कल्प्य तक नहीं पारत है ? ॥ ८४ ॥

पिगम्बु हृदय यस्या ममद् न सहस्रधा ॥ ८५ ॥

स्यपि पञ्चम्याग्ने कलत्रं यद्वर्द्धितम् ।

भरती मुजु हा रनेपर भी नरे उरुवर्द्धि हृदयके
हृदये दुःख हा हो उठे भाप मुजु उरुवर्द्धित यही
कर है ॥ ८५ ॥

इत्यय विलम्बी सा पापययपुनःशपाम् ॥ ८६ ॥

पुनरागच्छपहृदयं तदा मत्सुमागमम् ।

कस्मिन्नाभिहता सद्या बभौ सा राघवोरसि ॥ ८७ ॥

सभ्यानुत्के जलत् वीता विद्युद्वियोज्यस्य ।

इस प्रकार विष्णुप करती हुई मन्दादरीके नेत्रोंमें मौसु
मर हुय थे । उठकर हृदय स्नेहसे द्रवीभूत हा रहा था । वह
रती-रती सदास मूर्च्छित हा गभी और उधे भयस्थाने
यजपदी छातीपर गिर पड़ी । उनकाक यद्यत्समपर मन्दादरीभी
पथी ही छोया हो रही थी जैसे छयाभी ब्यथिते रंगे हुए
शरभमें वीक्षिम्भी विद्युत् चमक रही हो ॥ ८६-८७ ॥

तथागता समुत्थाप्य सपत्न्यस्तां भृशानुराग ॥ ८८ ॥

पययस्यापयामासु रुद्रयो बरतीं भृशाम् ।

उठभी छीते भी शोभते भयन्त आनुर हा रही थी,
उन्होंने उठे उठ भयस्थाने देखकर उठाया और स्वयं भी
पठे-पठे कर करते विज्ञाप करती हुई मन्दादरीके भीरय
सैपाथ ॥ ८८ ॥

किं त न गिदित्वा वेदि लोकाणां स्थितिरधुया ॥ ८९ ॥

द्वाराविभाषापपाय राक्षा ये चक्षुःश्रुता धिया ।

ये शोक—महानी ! क्या भाप नहीं जानती कि संसार
का स्वरूप अस्तिर है । क्या बहक जानेपर राक्षसोंकी लक्ष्मी
स्तिर नहीं पती ? ॥ ८९ ॥

इत्थयमुच्यमाना सा सदाभ्यं प्रहरत् ह ॥ ९० ॥

अपयन्ती तदाक्षण स्तौष्यपत्र सुनिमलम् ।

उन्हे देया करनेपर मन्त्री घूट घूटकर गने लगी ।
उठ समय उठक रनों सन और उन्मत्त मुप आँसुभूते नहा
उठे थे ॥ ९० ॥

पतस्त्रिप्रन्तर रामो विभीषणमुद्राय ह ॥ ९१ ॥

सस्त्रयः श्रियतां भ्रातुः स्त्रीगणाः परिसान्धयताम् ।

इसे धन्य भीषमन्द्रकोने विभीषणसे भ्राता-पुत्र शिरो-
को पेरें सैबाभी और अपने मन्त्रेण दाह-संस्कार
क्ये ॥ ९१ ॥

तमुयाच ततो धीमान् विभीषण इत्ययः ॥ ९२ ॥

विमूरय बुद्धया प्रथित धम यसहित हितम् ।

यह मुनकर बुद्धिमान् विभीषणने (भीषमक अधिनाय
अननेके उरुवने) बुद्धिसे श्रेय-विचारकर उनसे यह धर्म
और अधम युक्त विनयपूर्ण तथा हितकर वान बरी— ॥ ९२ ॥
स्वकधमयत पूर्ण न्यासममृत तथा ॥ ९३ ॥
मादमहासि सस्त्रुं परद्रागनिमनात्म् ।

भावात् । किन्ते धर्म और गणपकरस राग कर दिया
जा उरु निरुचि अक्यवारी तथा पठ्यो कीध हाती
करनेक्यथा यथा चारुवाय करन्य मै उच्छिष्ट नहीं
कनसप है ॥ ९३ ॥

आनुरागं हि म ननुत्पय सयादित वता ॥ ९४ ॥

राज्या नाहेतं पूर्वां पूज्यापि सुदुर्गाद्याम् ।

अरुके भरतने संभ्रम करनेक्या पर एता मन्त्रेके क्यते

सर्वथा सर्वभूतानां नास्ति मृत्युरस्यतया ।

तथा तद्वत्स्य मृत्युर्मेधिसिद्धिद्वयलक्षणः ॥ २९ ॥

अधरमं कभी किसी भी प्राणीकी मृत्यु अक्षररूप नहीं होती है । इस नियमके अनुसार मिथिलेशकुमारी कीटा अपकी मृत्युअक्षररूप बन गयी ॥ २९ ॥

सीतानिमिषजो मृत्युस्त्वया वृत्रावुपाहृतः ।

मैथिली सह रामेण विशोक विहरिष्यसि ॥ ३० ॥

अक्षयपुण्या स्वह धारे पतिता शोकसागरे ।

भापने सीताके अरण होनेवासी मृत्युको स्वर्न ही वृत्ते शुभ्य किया । मिथिलेचानन्दनी सीता अब शोकहित हो भीषमके घाय विहार करेगी परंतु मेरा पुण्य बहुत बोका ॥ इतकिये वह बस्ती समाप्त हो गया और मैं शोककंधे पर अनुद्वमं गिर पड़ी ॥ ३०-३१ ॥

कैलासे मन्वरे मेरी तथा औररये वने ॥ ३१ ॥

देवोचानेपु सर्वेषु विहृत्य सखिता त्वया ।

विमानेनानुरूपेण या धाम्यनुत्तया क्षिया ॥ ३२ ॥

पद्मपत्नी विविधान् देशास्तांस्तान्निश्चरगम्बरा ।

अश्रिता क्रमभोगेभ्यः सासि धीर वधात् तव ॥ ३३ ॥

धर । जो मैं विविध कलाभूषण धारण करके अनुपम शोभते सम्पन्न हो मनके अनुक्रम विमानद्वारा आपके साथ कैलाश मन्दपञ्च, मेरुपर्वत, वैभरय कन तथा समूर्ण देवोचानोंमें विहार करती हुई नाना प्रकारके देशोंको देखती फिरती थी वही मैं आज भयानक रूप हो बनेते समस्त क्रमभोगोंसे वञ्चित हो गयी ॥ ३१-३३ ॥

सैवात्म्येवासि सवृत्ता भिर्ग्राहा चक्षुषां क्षियम् ।

हा राजन् सुकुमार तं सुभु सुत्पक्षसमुच्चसम् ॥ ३४ ॥

कान्तिधयीपुतिभिस्तुल्यमितुपुपधिविधाकरैः ।

किरीटफूटोरज्यखित तात्रास्य वीरकुण्डलम् ॥ ३५ ॥

मन्व्याकुललोहास मूला यत्पानभूमिपु ।

विधिपक्षगर्धं चाह धल्युसितकथ सुभम् ॥ ३६ ॥

तयंवाद्य तयैव हि पक्ष न भावते प्रभो ।

रामसायकनिर्मलं रक्तं कथिरिष्यसौ ॥ ३७ ॥

विशीर्षमेधेमसिष्णक कर्णं सन्वन्दरेणुभिः ।

मैं वही धनी मन्दोदरी हूँ किन्तु आज वृषी कीके समान हो गयी हूँ । राजभोंकी पक्षत राजस्यकीको विचार है । हा राजन् । आपका जो सुकुमार सुलभगण्ड सुन्दर भीरो, मनोहर लम्बा और ठेकी नाथिकाले सुक ना कथित छोभा और तेजक हाथ का क्रमघः पत्रम्य सूर्य और कमलस्य स्रवित करवा ना किरीटोके समूह जिसे क्रममा कथय रहते य कितक अक्षर तोंके समान बाध ये किलमें वीसिम्यन् कुण्डल दमद्वे रहते य पान भूमिम किशटे नेत्र नरस्य म्हाकुल और पक्षस रते अत य जो नाना प्रकारके कर्ण धारण करत था मन्दार और सुन्दर था तथा

मुक्तपक्ष मीठी-मीठी बातें किया करता था जो मन्त्र मुसारकिये आज शोभा नहीं पा रहा है । प्रभो ! वह भीष्मके सवक्रोंसे विदीर्ण हो सूतकी धारते रंग गया है । हस्त मेरा और मक्षिष्ण क्षिप्त भिन्न हो गया है तथा रपत्री भूमी इयमें स्थिता आ गयी है ॥ १४-१७ ॥

हा पश्चिमा मे सम्प्राप्ता वृत्रा वैषण्व्याधिनी ॥ ३० ॥

या मयाऽऽसीष सम्मुद्यता कथाविद्यपि मन्वया ।

हाय ! मुक्त मन्दमाग्निनी कभी किलके विवरण तक नहीं था ; वही मुझे वैषण्वक दुःख प्रदान करते अन्तिम अवस्था (मृत्यु) व्यापको प्राप्त हो गयी ॥ १८ ॥ पिता वात्स्यराजो मे भर्ता मे राक्षसेश्वरः ॥ १९ ॥ पुत्रो मे शक्रनिर्जोता इत्यह गर्विता मुहाम् ।

पानवराज मन मेरे पिता, राक्षसराज राजन मेरे और इन्द्रप भी विषय प्राप्त करनेवाद्य इन्द्रकिं मेरा है—मह क्षेत्रकर मैं असक्त गर्वसे मरी रखी थी ॥ १९ ॥ वसतिरमयणाः मूराः प्रख्यातबळपौरुषाः ॥ ४० ॥ अकुतक्षिद्रया नाथा ममेत्यासीमस्तिर्हुवा ।

मेरी यह हृद धारणा बनी हुई थी कि मेरे राज के अंगे हैं जो वर्षसे मेरे हुए राजुओंको मय शक्तमें लभ हूँ विख्यात बळ और पौरुषसे सम्पन्न तथा किशोरे ममशैव नहीं होनेवाले हैं ॥ ४ ॥

तेपामेयंप्रभावाणा युष्मक राजसर्वभाः ॥ ४१ ॥

कथं भयमसम्बुद्धं मानुपाविद्वशगतम् ।

एशुशयिधेममिभो । ऐसे प्रमत्तवासी हुमसर्गोंको न मनुष्यते अज्ञात मय किंव प्रश्न प्राप्त हुआ । ॥ ४१ ॥

किंगपन्ननीक्षनीक तु प्रांशुशोकोपम महत् ॥ ४२ ॥

केयूराङ्गवैदूर्यमुक्ताहारकरगुण्यलसम् ।

अप्य विहारोप्यधिक वीर सप्रामभूमिपु ॥ ४३ ॥

भाप्याभरणभाभियद् विद्युन्निरिष छेयवा ।

त्वेवाद्य शरीरं त तीक्ष्णैर्नकरारिभितम् ॥ ४४ ॥

पुनर्दुर्लभसस्यस्य परिष्वक्तु न शक्यते ।

जो शिकने इन्द्रनील-सखिके समान वराम उँके ऐक-शिकरके समान विद्याक तथा केयूर, अङ्गद, नीलम और मोथिपोंके हर एवं कुर्सेकी माध्याभाते सुश्रवित होनेके कारण अस्यत प्रक्षयमान विलासी देता था विहार-सखीमें अधिक कन्तिम्यन् तथा संप्राम-भूमिकोंमें अशिक्षण वीसिम्यन् प्रकृत होता था और माभूतकीकी प्रमत्ते किलकी विद्युत्प्रकाशसहित मणकी-छी शोभा होती थी वही अयपय शरीर अब अनेक क्षीन बतोंसे भय हुआ है अतः यद्यपि आकसे किं हतव्य स्वर्ण मेरे किये दुर्लभ हो अयपय तथापि इन वाक्पाक करन मैं हतव्य अभिज्ञान नहीं कर पाती हूँ ॥ ४२-४४ ॥

श्राविधः शरुलैपद्मद् वाणैर्लङ्गैर्निरन्तरम् ॥ ४९ ॥
सर्पितममसु मुदा सखिप्रभायुवन्धनम् ।
सितौ निपतित राजप्रदयाम धी दधिरेच्छ्रिये ॥ ५३ ॥
वज्रप्रहारमिहयो विकीर्ण इव पर्वता ।

पाम् । भैरे खरीश्री इह कौटोसि मरी छेठी है, उली
फकर अपने घरीलें इतने बाप ओं हैं कि फीं एक भगुल
भी अन्न नहीं रह गयी है । वे सभी बाप मर्म सानोंमें पेश
गये हैं और उनसे घरीरक्ष ज्ञानु-रूपन छिन्न-मिन्न हो गया
है । इह भरलामे दृष्णीपर पहा हुआ आपन्न यह पाम
धरीर, किरार रक्तश्री भजन छया छ रही है, वज्रश्री मारते
पूर-चूर होकर बिल्वे हुए पर्वतके समान अन्न पड़ता है ॥
हा सन्धः सप्तमेषु च रामेण कथं हता ॥ ४७ ॥
सर्वं मृत्योरपि मृत्युः स्यात् कथं मृत्युवशां गता ।

पाम् । यह सन्ध है या सन्ध । हान् । अप् श्रीयवके
हासे कैंसे मारे गये ? आप तो मृत्युश्री भी मृत्यु ये फिर
सर्व ही मृत्युके भचीन करते हो गये ॥ ४७ ॥

वैभोप्यवसुभोकारं वैभोप्यवद्वेगम् महत् ॥ ४८ ॥
क्षेत्रं स्मकपाख्यनां क्षेत्रं हाकृत्य च ।

द्वारणां विमहीतारमाधिपूतपरक्रमम् ॥ ४९ ॥

आपने तीनों आश्रमोंके सम्पत्तिका उपमेना किया और
किशोरीके धर्मियोंको महान् उद्वेगमें डाल दिया था । आप
अपनेअपने ही विषय पा चुके थे । आपने कैलाश पर्वतके
धप ही ममान् दारुण भी उठा किया था तथा बड़े-बड़े
भिमिनी वीरोंको मुदमें बंदी बनाकर अपने परक्रमके
प्रकट किया था ॥ ४८ ४९ ॥

कोकरोमपितारं च सायुभूतविदारणम् ।
श्रेयसा इतद्यप्यनां कथार रिपुसमिधां ॥ ५० ॥

आपने हमस सबरक्ष क्षममें काम सायु पुरगोंकी
द्विज भी और सायुभीके क्षमि भक्तपर्वक अर्धरूपमें
पर्व करी ॥ ५० ॥

सायुधधृष्यगोतारं हन्तार भीमकर्मणाम् ।

हन्तार दानयेन्द्राणां पक्षानां च सहस्रधा ॥ ५१ ॥

भजनक पनाकम करनेवासे विरसियोंको मारकर अपने
जड़के ब्रह्मों और सेवकोंको रक्षा थी । दानकों तरघरों और
इन्को मर्येको भी सैवक धार उठाया ॥ ५१ ॥

निवातकयचान्य तु विमहीतारमहाय ।
वैक्ययविलोतां चत्वार स्रजनस्य च ॥ ५२ ॥

भारतं समराज्यमै निपद्यत्तत्र नामक दानकों भी
रमन किया बहुत से पक्ष नष्ट कर डाले तथा अश्लीयकोंकी
रक्षा ही रक्षा थी ॥ ५२ ॥

धमव्यवस्थापेचार मायास्यारमहाय ।
दशसुतनुकन्यानामहाहतीं ततस्तदा ॥ ५३ ॥

अपार धर्मको अरुणामे खनेबाक तथा लाममें अरु-

श्री दधि करनेबाक व । देवताओं, अमुओं और मनुष्योंकी
कन्याओंको इधर उधरसे हर छत थे ॥ ५३ ॥

शत्रुश्रीशोकद्वार नेतां स्रजनस्य च ।
स्रद्धाहीनस्य गोत्रार क्वतर भीमकर्मणाम् ॥ ५४ ॥
अस्माक क्षमभोगानां वातार रथिणां वरम् ।

एवमभाय भतां ह्यु रामस्य पाठितम् ॥ ५५ ॥
निरासि या वृहमिर्मं भारयामि हतप्रिया ।

आप सायुश्री कियोंको शोक प्रजन करनेवासे, लक्ष्मों-
के नेता स्रद्धापूर्विक (स्रद्धा, म्यानक कर्म करनेबाके तथा हम
सबकोकेसब काम्यभोगसुख होनेवाके थे । येते प्रमापश्रीकी
तथा रथियोंमें भेद भगने प्रियतम पतिको श्रीयमकन्दकीके
छाप बरशापी किया गया देसकर भी अ में अस्माक इत
घरीरको वारण कर रही हैं, प्रियतमकं मारे कनेपर भी जी
रही हैं-यह मेरी पयापदवस्थाक परिचायक है ॥ ५४-५५ ॥
शयनेषु महाहृषु शयित्वा राजसेम्बर ॥ ५६ ॥
इह कस्मात् प्रसुप्तोऽसि धरण्यां रेणुसुषिटा ।

प्राथक्येन । आप तो बहुतस प्रसंगपर शयन करते थे,
फिर यहाँ परतीपर भूमिमें छिपे हुए क्यों छे रहे हैं ॥ ५६ ॥
यदा मे कन्या दास्ये उक्तमथनेन्द्रजिह्वं मुधि ॥ ५७ ॥
तदा त्वमिहता सीममथ त्यस्मिन् निपायिता ।

अब अस्मनेने मुदमें मारे कैंसे इन्द्रजिह्वं माप था उक्त
कन्य मुझे गहर आपत पहुँचा था और आज अरुणक बप
हानेते था मैं मार ही डाली गयी ॥ ५७ ॥

साह वन्धुजरीर्षीणां हीना नाथेन च त्वया ॥ ५८ ॥
विहीना क्षमभोगैश्च शोषित्वं शान्धतीः समाः ।

अब मैं कन्यकोंसे हीन, आप-असे स्वामीसे रहित तथा
क्षमभोगसे वञ्चित होकर अनन्त कष्टक शोकमें ही डूबी
रहूँगी ॥ ५८ ॥

मयस्ये श्रीधर्मस्यैत राजघष्य सुदुर्गमम् ॥ ५९ ॥
नथ मामपि दुःखातीं न धतिष्ये स्वया विन ।

पञ्चन । आज आप जिस अत्यन्त दुर्गम एवं विपन्न
मार्गपर गये हैं, वही दुःख दुःखिपन्न भी से पश्चिने । मैं आपके
विना बीभित नहीं रह सकूँगी ॥ ५९ ॥

कस्मात् र्त्न मा विहायेह रूपर्णां गन्तुमिच्छसि ॥ ६० ॥
हीनां विलसतीं मन्दां किं च प्रो न्यभिभाषसे ।

शाय । मुझ अथहायको यही शोककर आप क्यों अन्ध
पथ अन्ध चारत है ? मैं तीन भ्रमालिनी होकर अथक
किये उ रही हूँ । आप मुझसे कबत क्यों नहीं ? ॥ ६० ॥

ह्यु न कस्यमिच्छतां मामिहानयगुण्डिताम् ॥ ६१ ॥
निगतां नगरद्वारात् पक्ष्यामपागता प्रभो ।

पम् । अब मेरे मुँदपर कबत नहीं है । मैं नगर-द्वार
देकर ही कबकर यहाँ आयी हूँ । इत दशामें मुझ देलकर
आप कबत क्यों नहीं करते हैं ? ॥ ६१- ॥

पर्येष्टार शरास्ते भ्रष्टजानुगुदनात् ॥ १२ ॥
बहिर्निष्पतितान् सयान् कथं हृद्वा न कुप्यसि ।

आप भगनी स्त्रियोत्ते बड़ा प्रेम करते थे । अब आपकी
सभी स्त्रियाँ अब अङ्कुर परदा इत्यङ्कुर शहर निरुद्ध भयी
हैं । इन्हें देखकर आपका क्रोध क्यों नहीं होता ? ॥ १२ ॥
मय प्रविष्टासहायस्त्वऽनायो छाद्यन्त्यते जना ॥ १३ ॥
न सैनमाभ्यासयसि किं वा न बहुमन्यसे ।

आप ! आपकी श्रीशरणावली यह मन्दारपी आम
मन्दाप होकर विषय कर रही है । आप इसे आपाधन क्यों
नहीं देते आपका अधिक आदर क्यों नहीं करते ? ॥ १३ ॥
यास्त्वया विभवा रामन् हृत्वा नैकाः कुण्डलियः ॥ १४ ॥
पतिमता धमरता गुरुशु रूयमे रताः ।
तमिः शोकाभितस्ताभिः शतः परवशा गतः ॥ १५ ॥
त्वया विमहताभिन्नं तद्वा शतस्यतनागतम् ।

पावन् ! अपने बहुत-सी कुण्डलियाँ भौंके, जो गुरुकी-
की सेवामें लगी रहनेवाली, बर्नपत्न्या तथा पतिवत्ता थी,
विषवा क्ताया और उनकर मयमान किया या अतः उत
धनम उन्होंने शोकसे संशत होकर आपको प्राप्त दे दिया या,
उसीपर यह कह है कि आपके शत्रु दरं मृत्युक अर्पित होता
पशा है ॥ १४-१५ ॥

प्रवादा सत्यमेवायं त्वां प्रति प्रायशो नृप ॥ १६ ॥
पतिप्रताप्यं नाकसात् पतन्त्यभूमि भूतले ।

महापरा ! पतिव्रताभीके औं इत दूनीपर स्वयं नहीं
मिःते यह कदापि आपके ऊपर प्रायः ठीक-ठीक पडी
है ॥ १६ ॥

कथं च नाम ते राज्ञोऽज्ञानकर्म्ये तेजसा ॥ १७ ॥
माठीवीर्यमिदं हृद्मे कृत शौचशीयमानिमिध ।

पावन् ! आप तो अपने तेजसे लौनीकोभीके अज्ञान करके
अपनेको बड़ा हुरीर मानते थे कि त्रि भी पानी कीको सुगनेका
यह शीब काम आपने कसे किया ? ॥ १७ ॥

अपनीयाभ्रमात् रामं यन्मृगच्छघना त्वया ॥ १८ ॥
भागीत्या रामपत्नी सा अपनीय च कक्षमणाम् ।

आपकाय मृगत बहाने श्रीरामको अग्रमते दूर इत्या
और कक्षमको भी भ्रमा किया । उसके बाद आप भीराम-
की लीलाको सुगदर नहीं के आये। यह विदानी बरी कश्मला
है ॥ १८ ॥

कातर्यं च न तं पुत्रे कदाचित् ससपायन्वहम् ॥ १९ ॥
तत् तु भाग्यविपय सन्नुत ते पक्षसप्तमम् ।

पुत्रमें कभी अपने कश्मला दिखली हो यह मुझे
बद नहीं पड़ा परंतु मन्वदे केरत उत दिन लीला
हरण करते समय निधप ही आपने कश्मला अ गयी थी,
अ आनेके निश्च विचारमें मृग्य दे रही थी ॥ १९ ॥

अनीत्यागतपथा पर्यमादविचरतया ॥ २० ॥

मैथिलीमाहतां हृद्वा भ्यात्वा निःश्वस्य वायवत्म् ।
सत्यगात् स महावाहो देवरो मे यत्नशीत् ॥ २० ॥
अयं राक्षसमुच्यता विनाशः प्रत्युपलब्धः ।

महावाहो ! मेरे देवर विभीषण उत्तरापी भूत और श्वेत
के साथ तथा कर्तमानमे भी समझनेमें कुशल है । उन्हें
हरकर अपनी हुरी मिपेदेयकुम्भी लीलाको देखकर मैं ही
मन कुछ विचार किया और मन्वदेमें लगी लौत कोइकर का-
अब प्रपन्न-प्रधान पक्षीके विनाशका समय उपलब्ध हो
गया है । उनही वह वाद ठीक निष्करी ॥ २०-२१ ॥

कामक्रोधसमुपेन इयत्नेन प्रसङ्गिन् ॥ २२ ॥
निवृत्तस्त्वकृतेनार्योः सोऽय मूलहरो महान् ।
त्वया कृतमिदं सर्वमनाय रामस कुलम् ॥ २३ ॥

अम और क्रोधसे उत्पन्न आपके कार्यकर्मनाशक होने
कारण यह त्वय ऐश्वर्य नष्ट हो गया और बड़भूषण नष्ट
करनेवाला यह महान् अनर्थ प्राप्त हुआ । अब आपने उनका
पक्षकुम्भी अनाप कर दिया ॥ २२-२३ ॥

नहि त्वं शोभितभ्यो मे प्रख्यातवर्षाद्वया ।
स्त्रीलभावात् तु मे सुखिः काश्यपे परिवर्तते ॥ २४ ॥

स्वयं अपने बड़ा और पुत्रप्रापके लिये विन्मल हो
मला आपके लिये शाक करना मेरे लिये उचित नहीं है
वर्षा की लीलाकारण कारण मेरे हृदयमें दीनत्व आ गयी है ।
सुखत पुत्रकर्म व त्वं गृहीत्या त्वां गति गतः ।

आरामानमनुशोचामि स्वक्षिनाशेन दुःखित्याम् ॥ २५ ॥

अप भग्न्य पुत्र्य और पाप साथ संकर भगनी लीलाकार
गतिको प्राप्त हुए हैं । आपका विनाशसे मैं महान् दुःखमें पड़
गयी हूँ । इच्छित्ये चरंचर अपने ही लिये शोक करती हूँ । ॥ २५ ॥
सुहृदो हितकामाना न भूत वचनं त्वया ।

आपुणा वैव काश्यपेन हितमुक्त बदानम् ॥ २६ ॥

महापरा बचनान् हित वाहनेको सुहृदो तथा कश्मला-
ने को अपने कर्णकटाः प्रिःकी वहाँ कही थी, उन्हें अपने
अनुशुची कर दिया ॥ २६ ॥

हेत्वायुक्त विधिषक्त्रैवस्करमदाहव्यम् ।
विभीषण्येनमिहितं न कृत हेतुमत् त्वया ॥ २७ ॥

विभीषणकर कर्म भी मुक्ति और प्रवेकनसे पूर्व था ।
विभिर्क आपके लयने प्रस्तुत किया गया था । वह कश्मलाकी
तो पा ही बहुत ही छीम अग्रामे कहा गया था किंतु उत
मुक्तिपुत्र कर्मको भी आपने नहीं माना ॥ २७ ॥

माठीकुम्भकामाभ्यां वाप्य मम पितुस्तथा ।
न कृतं धीर्यमत्तेन तस्यैवं फलमिहदाम् ॥ २८ ॥

आप अपने कर्णके पर्यममें मत्तासे हा रहे थे अतः
माठी कुम्भकर्म तथा मेरे पिताकी बरी हुरी कर्म भी आपने
नहीं माना । उल्लेख यह ऐसा काम आपके प्राप्त हुआ है ।
श्रीमद्वीमलसकाशा विशाखर कुभावात् ।

कृणावामि विनिश्चिन्य किं दोषे रुषिरावृतः ॥ ७९ ॥
 (प्राग्भाष) । अथान्न नीक मेवकं तमानं प्याम कर्म दे ।
 भावः शरीरपर पीत वन्न भौर बोहोमिं मुन्नर वाजुरंद बारण
 ऋतेक्यत है । भाग्न लूनसे लयपय हा अपने शरीरको मन्न
 अर शिखरकर यहाँ क्यो खे रहे है । ॥ ७९ ॥
 प्रसुप्त इय सोचार्त्ता किं मां न प्रतिभापसे ।
 मैं सोचते पी देत हा रही हूँ और भाव गहरी नींदमें
 छपे हुए पुरुषकी भक्ति मेरी बातका जबाब नहीं दे रहे है ।
 नाय । ऐश क्यो हो रहा है । ॥ ७९ ॥
 महावीरस्य वृक्षस्य सयुगोत्पन्नान्निनः ॥ ८० ॥
 यातुधानस्य वीहिर्षी किं मां न प्रतिभापसे ।
 मैं महान् पुरुषकी युद्धयुद्ध और छमरूमिसे पीठे
 न इन्देवास मुमाथी नामक वृक्षकी रोहिणी (नखिनी)
 हूँ । भाव मुझसे देखते क्यो नहीं है । ॥ ८० ॥
 उच्छिष्टोच्छिष्ट किं दोषे मय परिभव एत ॥ ८१ ॥
 मय धि निभया लज्जां प्रसिद्धाः स्युत्समयः ।
 भ्रष्टपथ । उच्छिष्ट उच्छिष्ट । भीयमक हाथ अथान्न
 लून परामन्न भिन्न गया है तो भी भाव खे कैसे रहे है ?
 अथ ही व सूर्यकी भिरजे लज्जामें निर्भय होकर प्रसिद्ध हुई
 है ॥ ८१ ॥
 येन सुवयसं वृक्षं समरे स्वयवसा ॥ ८२ ॥
 यमं यमप्रसव्यं साऽप्य त सततार्त्तितः ।
 एष बहुमहर्षो हेमजालपरिप्लुतः ॥ ८३ ॥
 परिषा प्यरक्ष्यल पापदिल्लघ्न सहस्रधा ।
 शरीर । भाव छमरूमिमें विष्ट सूर्यस्य वेक्यी
 परेरेके हाथ वृक्षको भ्रष्ट विषा करने के यमप्रसवी इन्द्रक
 वृक्षकी भाँति अब वृक्ष अथान्न हाथ पूरिहा हुआ था वा रणभूमिमें
 बहुमहर्षक वृक्षको प्रथम धनेवास या और विभे घनेपे
 य ममें विनूयन विषा गय था अथान्न वह परीर भीमक
 कथामें लखों दुन्दुभेमें विभक्त हाकर इपर उपर विगत
 रहा है ॥ ८२ ८३ ॥
 यियांमिशापमृष्टा किं ये रणमर्त्तिन् ॥ ८४ ॥
 धर्मियामिर कक्षाद्य मा नकृत्स्वभिभारिपुम् ।
 अन्वय । भाव अन्वीप्यपी वलीके भक्ति एवमुमिध
 भक्ति रण करके की ग्य रहे है और शिखरकरवयस्य भक्ति-
 के मन्नकर मुझमें अन्वय तक नहीं पात है ॥ ८४ ॥
 धिगम्यु इत्यं यस्या ममरं न महस्रथा ॥ ८५ ॥
 स्यापि पञ्चममान्नं पलनं पाकमर्त्तिडितम् ।
 भावती वृत्त हा अन्वेर भी नर लक्ष्मीदिहा इत्येक
 इत्यो रक्ष नाही ही ही भाव मुझ लक्ष्मीदिहा नहीं ही
 कि रहे ॥ ८५ ॥
 इत्यथ शिखरन्त्री सा पाण्डवपुत्रक्षणा ॥ ८६ ॥
 अनदात्मकपदव्या मदा मरुमुतागमम् ।

कर्मसाभिहत्या सध्या धमी सा राक्षसोरसि ॥ ८७ ॥
 सप्यानुक्ते जलद्रे वीता विपुविषोन्नयसा ।
 इस पञ्चर विषय करती हुई मन्दारकी नेत्रोंमें भीम
 भरे हुए थे । उतपन्न इत्यथ स्नेहसे द्रवीभूत हा रहा था । वह
 उती-उती लहय मूर्च्छित हा गनी और उथे भवस्थामें
 यवकी छाडीपर गिर पड़ी । उतपन्न वध-समयपर मन्दारकी
 पक्षी ही छाया हो रही थी, जैसे कृष्णकी छाँवसे गेने हुए
 बादलमें धीमेमती विपुत्त्व पमक रही हो ॥ ८६ ८७ ॥
 तथागतो समुत्थाप्य सपत्न्यस्तां भृशानुराः ॥ ८८ ॥
 पयवस्थापयामासु उदरयो दशतीं भृशाम् ।
 उदरी खेतों में सोचते भवन्त भानुर हा रही थी,
 उन्होंने उठे उठ भवस्थामें देखकर उठाया और स्वयं भी
 उठ-उठे उठ-उठते विषय करती हुई मन्दारकीके पीरक
 रेषाया ॥ ८८ ॥
 किं त न विदिता वृत्रि लोफाना स्थितिरभुया ॥ ८९ ॥
 वृशारिभागपयसि रावां ये चञ्चला धिया ।
 वे खेतों—मदाराणी । सा भाव नहीं जानती कि संसार
 का लक्षण भस्वर है । क्या बदल जानेपर उच्छिष्टकी लक्ष्मी
 स्थिर नहीं रहती ॥ ८९ ॥
 इत्यथमुच्यमाना सा सशरम् प्रहरात् ॥ ९० ॥
 क्षयपन्थी तत्राश्रेण स्तनीषपत्र सुनिर्मलम् ।
 उनके एका करनेपर मन्दादी वृत्तकर एने लयी ।
 उठ लय उठक दनों क्षान और उ वन्न मुन्न भीमभ्रंसे नहा
 उठ था ॥ ९० ॥
 परस्मिन्नन्तरं रामो विभीषणमुशाच ह ॥ ९१ ॥
 सस्वरार क्रियतां भ्रातुः स्त्रीगणं परिसाम्प्यताम् ।
 ऐसे लय भीमककरअने विभीषणसे ब्रह्म-धन विभो-
 क्ये पीरे रेषाओ और अपने मन्दाद्य हा-रक्षकर
 क्य ॥ ९१ ॥
 तमुयाय ततो धीमान् विभीषण इत्यथः ॥ ९२ ॥
 विमुरय बुद्ध्या प्रथित धम धसहित दितम् ।
 यह मुनकर बुद्धिमान् विभीषणने (भीमकक्ष अभिगय
 अनेके उरवसे) बुद्धिमें क्षम-विचारकर उनमें यह धर्म
 और अर्थमें बुद्धि अिनार्थ तथा शिखर वा करी— ॥ ९२ ॥
 स्यधममन मूर्त्तं नृणासमनृतं तप्य ॥ ९३ ॥
 मादमहामि सम्कृतं परश्रगभिमानम् ।
 भावन् । शिखर धर्म और शिखरका लक्षण कर शिख
 वा उच्छिष्ट विषय अन्वयकी तथा उदरी कीध राव
 करेकराव तथा उरवकाव कथ में उचित नहीं
 समताय है ॥ ९३ ॥
 आशुक्रादि म दावृत्त्यं स्यादितं स्तः ॥ ९४ ॥
 वास्य माहेते पूर्वां पृत्यधति गुदगार्याम् ।
 अन्वय अनेके अन्वय करनेका पर उरव मन्दाद्य क्यसे

सुपुत्रं वानराणां च सुप्रीवस्य च मन्त्रितम् ॥ २ ॥
 अनुपगं च वीर्यं च मातृतेजोऽम्बुजस्य च ।
 पतिव्रतात्वं सतिष्याया हनुमति पराक्रमम् ॥ ३ ॥
 कथयन्तो महाभागो जम्बुद्वीपे पथ्यागतम् ।

एवमके मयंकर बभू, श्रीरघुनाथजीके पराक्रम, वानरोंके उचम पुत्र सुप्रीवजी मन्त्रण, अम्बुज और हनुमान्जीकी श्रीरामके प्रति भक्ति, उन दोनोंके पराक्रम, सैनाके पतिव्रत तथा हनुमान्जीके पुरुषार्थकी शक्ति इतने हुए थे महाभाग देवता आदि जैसे अपने थे, उन्हीं पर प्रकृतपूर्वक बने गये ॥ २ ३ ॥

राघवस्तु रघु विष्वमिन्द्रवृत्तं शिक्षिप्रभम् ॥ ४ ॥
 अनुष्ठाप्य मन्त्रावाहुर्मातङ्गि प्रत्यपूजयत् ।

इसके बाद महाबाहु मन्वान् श्रीरामने इन्द्रके दिये हुए विष्णु रघुके ओ अग्निके उमान देरीप्यमन था, ओ अनेकी भाषा देकर मातङ्गिका बड़ा सम्मान किया ॥ ४ ॥

राघवेनाभ्यनुकृत्यो मातङ्गि शक्रस्यारथिः ॥ ५ ॥
 विष्णु त रघमास्त्रप विमोरोत्पपात ह ।

तब इन्द्रधारणिय मातङ्गि श्रीरामकद्रवीकी भाषासे उठ विष्णु रघुपर बैठकर पुनः विष्णु ओरफे ही चले गये ॥ ५ ॥

तस्मिन्नु विवमाकूटे सरथे रथिभ्यां वरा ॥ ६ ॥
 रामया परमप्रीतः सुमीष परिप्लवे ॥

मन्त्रोंके रपतदित देवकाकूटे चले अनेपर रथियोंमें भेड़ श्रीरामने बड़ी प्रकृतके साथ सुमीषको इतरसे अग्य किया ३ ॥ परिप्लव्य च सुमीषं अक्षमपेन्मभिषादितः ॥ ७ ॥

पूज्यमानो हरिगणैरासगाम बालापम् ।
 सुवीर्यञ्च आश्विनं करनेके पक्ष्यत् कर उन्हीं अक्षमकी ओर दृष्टि डाली तब अक्षमने उनके परश्वोंमें प्रथाम किया । फिर वनरतेनिधोसे उम्मानित हो ये सेन्वाकी अक्षनीपर और भाये ॥ ७ ॥

अथोत्था च कपकुस्थां समीपपरिवर्तिनम् ॥ ८ ॥
 सौमिभि सख्यसम्पन्नं अक्षमर्षं वीततेजसम् ।
 विभीषणमिम सौम्य लङ्कायामभिषेचय ॥ ९ ॥
 अनुरक्त च भक्त च तथा पूर्वपकारिणम् ।

वहाँ आकर रघुनाथजीने अपने समीप लक्षे हुए बस एव उदीत तेजसे तप्यत् सुभिन्नमन्त्र अक्षमवसे कहा—पक्ष्यत् । अब हम अङ्गामें आकर इन विभीषणच अम्बुभिषेक करो—सर्वेकि व मेरे प्रेमी, भक्त तथा पहले उपकार करनेवाले हैं ॥ ८ ९ ॥

एव म परमा कामो यदिम राघप्यानुजम् ॥ १० ॥
 अङ्गया सीम्य पश्येयमभिरिक्तं विभीषणम् ।

श्लेष्य । यह मेरी बड़ी इच्छा है कि राघवके छोटे भाई इन विभीषणमें मैं अङ्गके उग्यपर अभिरिक्त देखूँ ॥ १० ॥
 एवमुक्तस्तु सौमिनी राघवेन ॥ ११ ॥

तथेत्युक्त्वा सुसंहृष्टः सौमिर्न कथञ्चने
 त घटं वानरेन्द्राणां हस्ते इत्थं मन्वेज्जम्
 अयानिवेश महासत्त्वञ्च समुद्रसन्धिं तत्र
 महात्म श्रीरघुनाथजीके ऐव अनेकर

अक्षमको बड़ी प्रकृत्य हुई । अनेके प्लुत अक्षम सेनेका बड़ा हाथमें किया और उसे वनररूपाकीनी देकर उन मन्वान् वाकिशाकी तथा मन्वे वानरोंको समुद्रका कक के अनेकी आज ही ॥ ११ ॥

अतिशीघ्रं ततो गत्वा बालपस्ते मन्वेज्जम् ।
 अङ्गतास्तु अक्षं पृथु समुद्रात् कानरोत्तमा ।
 ये मनके उमान देवकाकी भेड़ ककर दुरंत ही म समुद्रसे कक केकर छोड़ अने ॥ ११ ॥
 ततस्तेजं घटं पृथु सत्त्वप्य परमात्मे ॥
 अनेन तेन सौमिबिरभ्यपिञ्चय विभीषणम् ।
 अङ्गार्यां रक्षसां मध्ये राजार्त्तं रामराजणम् ।
 विधिना मन्त्राष्टेन सुहृद्राजसमाकृतम् ।
 अभ्यपिञ्चंस्तदा सर्वे रक्षसा वानराणाञ्च ॥

उत्तरतर अक्षमने एक पर केकर उसे उचम का स्थापित कर दिया और उत परके ककसे विभीषणमें निषिके अनुत्तर अङ्गके उक्त्वापर अग्निफे कि पर अग्निफे श्रीरामकद्रवीकी भाषासे हुआ था । उत एककोके बीचमें सुहरते भिरे हुए विभीषण राजकीय किपवमन थे । अक्षमके बाद तभी एकको और क भी उनका अग्निफे किया ॥ १४-१६ ॥

महर्षमनुजं गत्वा तुष्टुत् रामसेव वि ।
 तस्यामात्या जहृषिरे भक्तः ये वास्य राक्षसाः ॥ ११ ॥
 बहुभिन्निक अङ्गार्यां रक्षसेर्षं विभीषणम् ।
 राघवा परमां प्रीतिं जगाम सहस्रसखा ॥ १२ ॥
 ये अक्षम प्रकृत होकर श्रीरामकी ही लुष्टि करने क एकलव्य विभीषणके अङ्गके उक्त्वापर अग्निफे देव क मन्वी और प्रेमी उक्त्वा बहुत प्रकृत हुए । जब ही अक्षम उदित श्रीरघुनाथजीके भी बड़ी प्रकृत्य हुई ॥ १०-१८ ॥
 स तत् राज्यं महत् प्राप्य रामवृत्तं स्निहीषवा ।
 सास्वपितृया प्रकृत्यपस्ततो राममुपागामत् ॥ १९ ॥

श्रीरामकद्रवीके दिये हुए उत किञ्चक रामको क विभीषण अपनी प्रवासे जानवना वे श्रीरामकद्रवीके क भाये ॥ १९ ॥

दम्पसत्तन् मोदकाञ्च सखाः सुमनसस्तथा ।
 आज्ञुररुप सङ्घाः पीरास्तस्मै निशाचराः ॥ २० ॥
 उच अक्षम इदंते भरे हुए नगरनिवाथी निष्ण विभीषणको अर्पित करनेके क्षिमे बड़ी अक्षम मिताई कर और दृष्ट अने ॥ २ ॥
 स चन्द्र पुरीत्या दुर्भर्तौ राघवाय म्यवेत्पत् ।



विभीषणकः राज्याभिषेकः

मेघ शुभु यः । यद्यपि ज्येष्ठ होनेसे शुभकनोक्ति गैरबन्धे करण
वह मेघ पूर्य था, तथापि वह मुहूर्ते छक्कर पाने योग्य नहीं
है ॥ १४३ ॥

सुधास इति मा राम वक्ष्यन्ति मनुजा मुधि ॥ १४४ ॥
श्रुत्वा तस्यागुणान् सर्वे वक्ष्यन्ति सुकृत पुनः ।

श्रीधाम ! मेरी वह बात सुनकर उत्तरके मनुष्य मुझे
हूँ अवश्य कहेंगे परंतु जब रावणके दुर्गुणोंको भी सुनेंगे,
तब उन क्षम मेरे इस विचारको उचित ही कगारेंगे ॥ १४३ ॥

तच्छ्रुत्वा परमप्रीतो रामो धर्मवृतां वरः ॥ १४४ ॥
विभीषणमुवाचैव वाक्यञ्च वाक्यकोविदः ।

वह सुनकर परमसमाधोमें भेद श्रीरामचन्द्रकी वचने प्रकृत
एव । वे वास्तविक करनेमें बड़ा प्रवीण थे अथ सर्वोत्तम
अभिप्राय समझनेवाले विभीषणसे इस प्रकार बोले— ॥ १४४ ॥

तवापि मे प्रिय कार्य स्वप्नभावानमया कृतम् ॥ १४५ ॥
भवस्य तु क्षम वाच्यो मया स्व राक्षसध्वरः ।

प्राक्सपाम ! मुझे द्रुपदा मा भी प्रिय कथा है क्योंकि
तुम्हारे ही प्रभावसे मेरी कथित हुई है । अवश्य ही मुझे द्रुपदसे
उक्ति प्राप्त करनी चाहिये अतः सुनो ॥ १४५ ॥

मधर्मोन्मत्तसयुक्तः क्षम स्वयं निशाचरः ॥ १४६ ॥
तंजखी वल्लवाम्बूरः सप्रामेयुषः क्लियशतः ।

यह निशाचर मझे ही मधर्मी और अक्षयपापी रहा हो
परंतु समाप्तमें सदा ही तेजस्वी कल्याण तथा धूर्तवीर रहा
है ॥ १४६ ॥

रात्रक्रतुमुक्तेर्यैः श्रूयत न पराश्रितः ॥ १४७ ॥
महात्मा वससाम्यधो रायणा लोकरायणः ।

सुना जाता है—इन्द्र आदि देवता भी इसे पराश्रय नहीं
कर सकें थे । अतः कर्षणको रक्षनेवाच्य रावण बन्ध-परकर्मसे
छम्पन तथा महात्मनासी था ॥ १४७ ॥

मरणान्तादि वैरायि निर्वृत्त नः प्रयाजन्तम् ॥ १४८ ॥
क्रियतामस्य सस्वधरो ममाम्येव यथा तथ ।

दूर मरनेका ही पक्ष है । मरनेके बाद उसका अन्त
हा बाध है । अथ इत्याय प्रयोजन भी सिद्ध हो चुका है अतः
इस समय जेसे वह तुम्हारा मर्त्य है वैसे ही मेघ भी है;
इतकिये इसका वाह-संस्कार कर ॥ १४८ ॥

स्वस्तस्वरायामहापाहो सस्वधर विधिपूर्वकम् ॥ १४९ ॥
क्षिप्रमर्हति धमेजयं यथाभागं भविष्यति ।

प्राक्सपाम ! धर्मक अनुकर रावण तुम्हारी मरनेके क्षीम
ही विधिपूर्वक वाह-संस्कार प्राप्त करनेक क्षम्य है । ऐसा करनेसे
तुम यहाँके भ्रात्री सम्भवे ॥ १४९ ॥

राघवस्य यथा श्रुत्वा स्वस्वमाणो विभीषणः ॥ १५० ॥
संस्वरायितुमारमे धातर राघव दयम् ।

श्रीधामचन्द्रकीसे इस वचनसे सुनकर विभीषण युद्धमें

मारे गये अपने मर्त्य रावणके वाह-संस्कारही
तेवारी करने को ॥ १४९ ॥

स प्रविश्य पूर्णं दग्धां राक्षसेन्द्रो विभीषणः
रावणस्याग्निघोषे तु विद्यापयति सत्वरम्

राक्षस्यन विभीषणने दग्धापुत्रीमें प्रवेश करके
अग्निहोत्रका शीघ्र ही विधिपूर्वक समाप्त किया ॥ १५० ॥

शकटान् दाहकृपापि शशीन् वै पाञ्चकंस्तथा
तथा चन्दनकाष्ठानि काष्ठानि विधिधानि च

भगवति सुगन्धानि गन्धाञ्च सुरभीस्तथा ।
मथिमुकामवाह्यानि निर्यापयति राक्षसः ।

इसके बाद शकट, छक्की अग्निहोत्रकी अग्नि
कण्ठनेतरे पुरोहित, चन्दनकाष्ठ, अम्य विलिप
छक्कीयों, सुगन्धित भगव अस्यान्य सुन्दर गन्धसुक्त
गन्धि मोती और मूँग—इन सब वस्तुओंको उन्होंने
किया ॥ १५१ ॥

श्वजगाम मुहूर्तेन राक्षसैः परिवारितः ॥
ततो मात्स्ययता सार्धं क्रियासेव चक्रर सः ।

शिर दो ही बर्षोंमें राक्षसों शिरे हुए वे शीघ्र
चक्र भये । तदनन्तर मात्स्यवान्के साथ मित्रकर उन्होंने
संस्कारकी तैयारीका कार्य पूरा किया ॥ १५१ ॥

सौषर्षी दिग्विकान्द्रिष्यामारोप्य शीमवाचसत्म् ॥
रावण राक्षसाधीशामभुवर्षामुक्ता द्विज्या ।

दूरघोरेण विधिधैः स्तुयन्निष्ठाभिनन्दितम् ॥
मौक्तिकेति वाचपाण्ड्याय स्तुति करनेवाले मम

शिवम अभिनन्दन किया था राक्षस्यन रावणके उठ कर
रोशनी यज्ञसे छक्कर उठे सेनेक दिग्म किमनमें एक
पश्चात् राक्षसकीय माहात्म्य यहाँ नेत्रोंसे भौंसे, बहते
सके हो गये ॥ १५२ ॥

पताकप्रभिन्न विधायिणः सुमनोभिश्च विक्रितम् ।
उत्सिध्य विधिधैः तां तु विभीषणपुराणमाः ॥ १५३ ॥
वस्तिणाभिमुक्ताः सर्वे पृथक् काष्ठानि मेदिरे ।

उत्सिध्य विधिधैः पताकप्रभों तथा फूलोंसे लक्ष
गता था । शिवसे वह विधिधैः योग्य पारण फलही
विभीषण आदि राक्षस उठे कथेपर उठाकर तथा अन्य स
अंग हाथमें लिये काठ किये दक्षिण दिशामें समझानभूमि
आर चक्र ॥ १५३ ॥

मग्नयां क्षीप्यमानास्ते तदाश्वयुसमीरिताः ॥ १५४ ॥
शरण्याभिगताः सर्वे पुरस्तात् तस्य तं ययुः ।

यजुर्वेदीय पात्रघोषाय दोषी क्ती हुई त्रिभिध अग्निर्
प्रकल्पित हो उठी । वे सप सुन्दरमें रक्ती हुई चो और
पुराहितगण रुई छेकर लपके मग्ने भागे गये रहे थे १५४ ॥

अन्वपुराणि सवायि च्चमनानि सस्वरम् ॥ १५५ ॥
पृष्ठतोऽनुपयुक्तानि द्रव्यमानानि सर्षता ।

अन्वपुराणि सवायि च्चमनानि सस्वरम् ॥ १५५ ॥
पृष्ठतोऽनुपयुक्तानि द्रव्यमानानि सर्षता ।

मन्तपुरकी खरी जियौं रोटी हुईं दुर्लभ ही रावके पीछे-
पीछे पक पड़ीं । वे सब और छड़सङ्गाली ककड़ी यी १११३
राज्य प्रयते वेदो स्यान्व ते मुशानु क्तिताः ॥११२॥
चित्तां चन्दनकाष्ठैश्च पद्मकोशीरघन्तुनैः ।

ग्राह्याया सवतयामाच्च राह्यशस्त्रजाह्वताम् ॥११३॥
आगे आकर एकचके विमानको एक पवित्र स्थानमें रख
कर अस्त्रत दुस्ती हुए विभीषण भादि एकजैने मन्मचन्दन-
कण्ड, पद्मक, उशीर (लस) तथा अन्य मन्मके चन्दनों
द्वारा वैशोक विधिते चिता बनायी और उसके ऊपर रङ्ग
रङ्गक मृगक शर्म बिछाया ॥ ११२ ११३ ॥

प्रथम् राक्षसेन्द्रस्य पितृमेधमनुष्ठमम् ।
वेदिं च दक्षिणामार्ग्यं यथास्थानं च पाषकम् ॥११४॥
पूजवान्येन सम्पूर्णं ह्युप स्कन्धे प्रविक्षिपुः ।
पादयोः शकटं प्रापुकुर्यौश्चोत्सृज्य तदा ॥११५॥
उसके ऊपर एककारके शयको सुसज्ज कर उठौने उठम
विधिते उसका पितृमेध (शहस्रकर) किया । उठौने चिता
के दक्षिण-पूर्वमें वेदी बनाकर उसपर यथास्थान मन्मको
स्थानित किया था । फिर दक्षिणदिशत पीछे मरी हुईं सुना
एकके बंधेपर रखी । इसके बाद तैरैपर शकट और बाँधों
पर उठलक रक्ता ॥ ११४ ११५ ॥

शिवपात्राणि सवाणि भरणि शोच्यपरणिम् ।
दत्त्वा तु सुसज्जं घान्यं यथास्थानं विषकमुः ॥११६॥
तथा शकटके समी पात्र, भरणि, उदरपरि और दूसक
भादिको भी यथास्थान रख दिया ॥ ११६ ॥
यस्यश्चेत्तेन विधित्वा महर्षिर्विहितं च ।
तत्र मेघपतुं हत्वा राक्षसेन्द्रस्य राक्षसाः ॥११७॥
परिस्तारयिष्वा राज्ञो धृताका समवेशयन् ।
गन्धर्वास्त्वेरलङ्कस्य राज्यं वीनमानसाः ॥११८॥
वशक विधि और महर्षियोंद्वारा उचित क्रमसूत्रोंमें
रखयी गयी मन्मकेते बहों खप कर्य हुआ । राजसोंने
(एकजैरी पीछेके अनुसर) मन्म पतुञ्ज हनन करके एका
पतञ्ज की चितापर पक्षय हुए मृगचर्मको पीछे कर कर दिया
फिर रावणके दावका चन्दन और पूज्यते अर्धकृत करके वे
पक्षय मन्महीमन हुआका अनुभव करने लगे ॥११७-११८॥

इत्यार्षे धीमन्नामायने वाक्मीश्वर्ये धादिशस्ये सुहृदस्ये एकवृत्साधिष्ठातवता सर्गाः ॥ १११ ॥
एत प्रथम धीमन्नामैर्निर्मितं अर्धगामयन अदिशस्येकं सुहृदस्येन एक मी व्याहर्तौ म्ना पूता कुञ्ज ॥ १११ ॥

विभीषणसहायास्ते षष्ठीश्च विधिधैरपि ।
खड्गैरवकिरन्ति सा वाष्पपूयमुखास्तथा ॥११९॥

फिर विभीषणके खप अन्वान्य एकजैने भी चितापर नान्य
प्रकारक वन और जवा बिलेर । उस समय उनके मुखपर
आँसुमोंकी धार यह पड़ी ॥ ११९ ॥
स द्वौ पावकं तस्य विधियुक्तं विभीषणा ।
आत्वा सैयार्द्रषक्त्रेण तिष्ठन् वर्मविमिश्रितान् ॥१२०॥
उदकेन च सन्मिभान् प्रदाय विधिपूर्वकम् ।

द्याः क्षिपोऽनुमयामास सान्त्वयित्वा पुनः पुनः ॥१२१॥
उदनस्तर विभीषणने चित्तामे विधिके अनुसर भाग
क्यापी । उसके बाद लान करके भीगे वन परने हुए ही
उठौने तिष्ठ, कुञ्ज और ककके द्वारा विधिवत् रूपनको
कमकुछि दी । उपरभात् रावणकी जियौंको बाँधार सन्तना
देकर उनसे पर चन्दनेके क्षिये अनुमन-निम्न की १२ १२१
गम्यतामिति द्याः सर्वा विधिद्युर्नगर उता ।
प्रविष्टासु पुर्यं स्त्रीषु राक्षसेन्द्रो विभीषणः ।
रामपार्श्वसुपागम्य समतिष्ठत् विनीतयत् ॥१२२॥

‘मरुदमे च्छे’ यह विभीषणका आदेश मुनकर वे खरी
जियौं नगरमें बची गयीं । जियौंके पुरीमें प्रवेश कर जानेपर
राक्षसराज विभीषण भीरुमन्मकीके पास आकर विनीतभावसे
बसे हो गये ॥ १२२ ॥

रामोऽपि सह सैन्यन ससुग्रीयः सलङ्गमणः ।
हर्षे छेमे रिपुं हत्वा वृत्रं यज्ञधरो यथा ॥१२३॥
भीरुम भी सैन्य सुग्रीव तथा समस्त सेनाके साथ
शत्रुका वध करके बहुत प्रसन्न थे । ठीक उठी तरह, वैश
वज्रधारी इन्द्र हृष्टपुरको मारकर प्रसन्नवज्र अनुभव करने
लगे थे ॥ १२३ ॥

ततो विमुक्त्या सशरं शरासनं
मोहमुद्रुत्त कवचं स तग्महत् ।
विमुच्य रोप रिपुनिग्रहात् तयो
रामः स सीम्यरश्मुपागच्छेऽरिहा ॥१२४॥
नदनस्तर इन्द्रके विष हुए पतुञ्ज, पात्र और विशाख
कवचको त्यागकर तथा शत्रुका हनन कर देनेके कारण रोपका
भी ठाँइकर शत्रुमूलन भीरुमने चान्तमज्ज धारण कर लिया ॥

द्वादशाधिकशततम सर्ग

विभीषणका राज्याभिषेक और भीरुधुनाथजीका हनुमान्जीक द्वारा सीताका पास संदेश मजना
न राजनार्धं ह्यु दशगन्धर्वादानवा ।
उत्थेरी एन चना कृत हुए भरने-भरने विमनसे पयास्थान
अग्नौ स्त्री रीर्षिमानैस्ते कथयन्तः शुभाः कथाः ॥ १ ॥
लेट गये ॥ १ ॥
इतक गन्धर्व और दानवाका राज-वचनका द्वारा देवकर
राजणस्य पार्श्वे पार रायस्य परामत्रम् ।



महत्स्य महत्स्य सर्गं सङ्गमप्याय च धीर्यगान् ॥ २१ ॥

दुर्बां पराक्रमी विभीषणेने ये एव महत्स्यमङ्गलं माहृत्किञ्च
बलुर्दे वेकर भीरवम और अस्मन्मये मेरु की ॥ २१ ॥

कृतकर्म्यं समुखायै हृद्वा रामो विभीषणम् ।
प्रतिहृदाह तत् सर्वं तस्मैव प्रतिश्राम्यया ॥ २२ ॥

भीरुपुत्रावधीने विभीषणको कृतकर्म्यं एवं लक्ष्मणनोरप
देस उनरी प्रकन्दाके क्रिये ही उन एव माहृत्किञ्च बलुर्भोको
उ क्रिय ॥ २२ ॥

तठः शौचायम धीर प्राञ्जलिं प्रणतं स्थितम् ।
उवाचेव धृषो रामो हनुमन्त उवाह्वमम् ॥ २३ ॥

उवाचत् उहोने ह्यय मोहकर किनीतमारते लड़े हुए
पर्याकर धीर धानर हनुमन्धीते करा— ॥ २३ ॥

हृदापै भीमप्राणपणे काहमीरीये धार्मिकाम्ने पुत्रकण्ठे हाहृत्किञ्चततमः सर्गः ॥ १११ ॥
एव प्रकर भीरुपुत्रावधीने कर्मण्यमप्य अत्रिकम्पके पुत्रकण्ठे एक से काहर्वां एवं पूर हुम् ॥ ११२ ॥

त्रयोदशधिकशततम सर्ग

हनुमान्भीका सीताजीसे बातचीत करके छोटना और उनका संदेश भीरामको सुनाना

एति प्रतिसमादिषो हनुमान् माकथाममज ।
प्रविशेत्त पुरीं लङ्कां पून्यमान्यो निदाशरैः ॥ १ ॥

भगवान् भीषणञ्च पर आरेण पाकर पवनपुत्र
हनुमन्धीने निपाचरैसे सम्मानित हते हुए लङ्कापुरीमें प्रवेश
क्रिय ॥ १ ॥

प्रदिश्य च पुर्वां लङ्कामनुज्ञाप्य विभीषणम् ।
उवस्तस्यम्यनुज्ञातो हनुमान् वृत्स्यतिष्ठाम् ॥ २ ॥

पुरीमें प्रवेश करके उन्होंने विभीषणको आज्ञा मोगी ।
उनकी आज्ञा मिल जानेपर हनुमन्धी भयोक्तादिधाने
गये ॥ २ ॥

सम्प्रदिश्य वयान्याय सीताया विद्वितो हरिः ।
दुर्वर्त्तं सृजया हीना सातङ्गां रोहिणीमिय ॥ ३ ॥

आज्ञाकरादिधाने प्रवेश करके न्यायनुसार उन्होंने
सीताकी संभने आगमनकी सूचना दी । तबकात् निष्क
आर उनम दर्शन क्रिया । ये जान आदिसे हीन होनेके
कारण हुए मरिच दिव्यकी देवी थी और अज्ञा दुर् रोहिणीके
कामन उन पङ्गी को ॥ ३ ॥

वृत्समूनं निपातव्यां राक्षसीभिः परीकृतम् ।
निभूतः प्रणतः प्रह्लाः साऽभिगम्याभिषाया च ॥ ४ ॥

सीताकी धनन्यारण्य हा वृत्त नीचे पकड़िपते सिपी
देवी को । हनुमन्धीने पात्त और किनीतमारते कामने आर
उन्हें प्रभाव क्रिया । प्रणम करके वे पुरकार लड़ हो
पय ॥ ४ ॥

हृदा तमागतं शची हनुमन्त महाबन्धम् ।

अनुनाय्य महाप्राङ्गिम सौम्य विभीषणम् ।

प्रदिश्य मगरीं लङ्कां कौराख मूहि मैथिलीम् ॥ २४ ॥
सौम्य । तुम इन महाराज विभीषणकी आज्ञा से लङ्का-
नगरीमें प्रवेश करके मिथिलेशकुमारी सीतेसे उनका कुपण-
समाचार पूछो ॥ २४ ॥

देवेहो मां च कुशाख सुग्रीव च सखामपम् ।
व्यावृष्य धृवां श्रेष्ठ रावण च इत् एणे ॥ २५ ॥

प्रियमेतदिहाख्यादि बैदेह्यास्त्व हरीम्बर ।
प्रतिगृह्य तु सचेरामुपावर्तिनुमर्हसि ॥ २६ ॥

व्यथ ही उन निदेशपत्रकुमारीसे सुग्रीव और अस्मन्धरित
नेर कुशाख-समाचार निवेदन कर । कथाओंमें श्रेष्ठ हरीम्बर !
तुम बैदेहीको यह प्रिय समाचार सुना दा कि पवन सुद्धमें
मार गया । तबकात् टनका संदेश लेकर श्रेष्ठ आया २५-२६

व्यथ ही उन निदेशपत्रकुमारीसे सुग्रीव और अस्मन्धरित
नेर कुशाख-समाचार निवेदन कर । कथाओंमें श्रेष्ठ हरीम्बर !
तुम बैदेहीको यह प्रिय समाचार सुना दा कि पवन सुद्धमें
मार गया । तबकात् टनका संदेश लेकर श्रेष्ठ आया २५-२६

व्यथ ही उन निदेशपत्रकुमारीसे सुग्रीव और अस्मन्धरित
नेर कुशाख-समाचार निवेदन कर । कथाओंमें श्रेष्ठ हरीम्बर !
तुम बैदेहीको यह प्रिय समाचार सुना दा कि पवन सुद्धमें
मार गया । तबकात् टनका संदेश लेकर श्रेष्ठ आया २५-२६

व्यथ ही उन निदेशपत्रकुमारीसे सुग्रीव और अस्मन्धरित
नेर कुशाख-समाचार निवेदन कर । कथाओंमें श्रेष्ठ हरीम्बर !
तुम बैदेहीको यह प्रिय समाचार सुना दा कि पवन सुद्धमें
मार गया । तबकात् टनका संदेश लेकर श्रेष्ठ आया २५-२६

तूष्णीमास्त तदा हृद्वा स्मृत्या हृदाभधत् तदा ॥ ५ ॥
महाकवी हनुमन्धी मया देस देवी सीता उन्हें परधान-
कर मन्-री-मन प्रकन दुर् किं कुठ कोष न कधी । पुपनाप
देवी रीं ॥ ५ ॥

सौम्य तस्या मुप हृदा हनुमान् प्रथगोचरम् ।
रामस्य धचन सयमाख्यातुमुपपन्नम् ॥ ६ ॥

सीताके गुलपर सौम्यभाव कहेन ही राा पा । उते देव
कर कविभेद हनुमन्ते भीषणकनधीकी करी हुई एवं कठोको
उनते धरना आरम्भ क्रिया— ॥ ६ ॥

देहेहि कुशाखी रामा सहसुग्रीवजन्ममया ।
कुशाख पाह सिदार्यो हतानुरमिषजित् ॥ ७ ॥

निदेशरन्दिनि । भीषणकनधी अस्मन् और सुग्रीवके
व्यथ लङ्काके हैं । अपने पत्रका वच करके लक्ष्मणपर हुए
उन पत्रुविषयी भीषणने आज्ञाकी कुपण पूठी है ॥ ७ ॥

विभीषणसहायेन रामेण हरिभिः सह ।
निहतो रावणो देवि लक्ष्मणेन च धीयवान् ॥ ८ ॥

देवि । विभीषणकी सहायता पाकर बनयो और लक्ष्मण-
नरित भीषणने वसन्किष्कसम्भन रावणको पुद्धमें मार
दाया है ॥ ८ ॥

प्रियमाख्यामि त हेपि भूपथ त्यां सभाजये ।
तय प्रभागात् धमने महान् रामेण सपुणे ॥ ९ ॥

लम्भाप्यं निजय सीत स्वस्य भव गतगता ।
रावणश्च इतो गजुलश्च धंय धर्माहता ॥ १० ॥

पमच बननेरन्धी देवि नीने में आरुध पर प्रिय

स्वार्थ सुप्रता हूँ और अधिकसे-अधिक प्रसन्न देखना चाहता हूँ । मन्त्रक पाठित्वय धर्मके प्रभावसे ही युद्धमें श्रीरामने यह महान् विजय प्राप्त की है । अब आप जित्वा छोड़कर स्वार्थ हो जायें । इच्छाओंका शत्रु खत्म मारा गया और कृष्ण मगधन भीरुमके अधीन हो गयी ॥ ११ ॥

मया ह्यल्पमभित्रेण धृतेन तव निज्ये ।
प्रतिज्ञेया विनिस्तीर्णा वदन्वा सेतुं महोदधी ॥ ११ ॥

‘श्रीरामने आपको यह श्रेय दिया है—देवि । मैंने तुम्हारे उदारके श्रेयसे प्रतिज्ञा की थी उसके श्रेयसे निद्रा त्यागकर अथक प्रयत्न किया और समुद्रमें पुल बौधकर खनन वचके द्वारा उक्त प्रतिज्ञासे पूरा किया ॥ ११ ॥

सन्ध्रमद्य न कर्तव्यो वर्तन्त्या रावणपादये ।

त्रिभीरणविधेय हि कष्टैश्वर्यमिदं कृतम् ॥ १२ ॥

तदाश्वसिहि विज्ञान्ध स्वयुधे परिधर्तसे ।

अप्य चाभ्येति सहस्रस्त्यहर्षांसमुत्सुका ॥ १३ ॥

जब हम अपनेको रावणके धर्ममें वर्तमान समझकर मनभीत न होना क्योंकि कृष्णका हाथ परचरन विभीषणके अधीन कर दिया गया है । अब हम अपने ही धर्ममें हो । ऐसा जानकर निश्चिन्ता होकर धर्में धारण कर । देवि । ये विभीषण भी हर्षसे भ्रष्टकर आपके दण्डनके श्रेयसे उत्कण्ठित हो अभी यहाँ आ रहे हैं ॥ १२ १३ ॥

एवमुक्त्वा तु सा देवी सीता शशिभिर्भासिता ।

प्रहर्षेण्यारुहता सा ध्याहर्तुं न शक्नोति ह ॥ १४ ॥

हनुमान्जीके इस प्रकार कहनेपर ‘अनुमली धीतादेवीको बड़ा हर्ष हुआ । हर्षसे उनका गला भर आया और वे कुछ बोल न सकीं ॥ १४ ॥

ततोऽग्रधीरारिषा सीतामप्रतिज्ज्वलीम् ।

किं त्वं किन्तयस देवि किं च मां नाभिभायसे ॥ १५ ॥

सीताजीको गीन देख करिबर हनुमान्जी बोले—देवि ।

आप क्या घोष रही हैं । मुझसे बोझी क्यों नहीं ॥ १५ ॥

एवमुक्त्वा हनुमता सीता धर्मपथे स्थिता ।

मावधीत् परममीता बाण्यगद्वद्या विरा ॥ १६ ॥

हनुमान्जीके इस प्रकार बोलनेपर ‘वर्षसपणा सीतादेवी भस्मत् प्रसन्न हो आनन्दके भँसू बहाती हुई गदगदबाजीमें बोली— ॥ १६ ॥

प्रियमेतदुपभ्रुस्य भर्तुर्पिञ्जवसन्धितम् ।

प्रहर्षवशमापद्या निर्याप्यासि क्षणस्तरम् ॥ १७ ॥

अपने स्वामीजी विभक्तसे लक्ष्मण खनेवाच्य यह प्रिय संगर तुमझमें मैं अत्यन्त-निर्भर हो गयी थी । इतकिये कुछ बरतक मेरे मुँहसे बोल नहीं निकल सकी है ॥ १७ ॥

नहि पदयामि सहसा किन्तयस्ती युवगम ।

प्यानन्दम भयतां शान्तुं प्राप्यभिलज्ज्वम् ॥ १८ ॥

प्यानर भीर ! ऐसा प्रिय संवाचार सुननेके क्षण में तुम्हें कुछ पुरस्कार देना चाहती हूँ किन्तु बहुत क्षेमनेत्र भी मुझे इसके बोझसे बड़ा बिसासी नहीं देती ॥ १८ ॥ न हि पदयामि तत् सौम्य पृथिव्यामपि धाम्ना ।

सहस्र यतिप्रयासयामे तव वत्साभयेत् सुखम् ॥ १९ ॥

‘सौम्य वातर भीर ! इस भूषणधर्ममें मैं कोई पक्षी कब नहीं देखती । जो इस प्रिय संवाचके मनुष्य हो और जो तुम्हें देखकर मैं संतुष्ट हो सकूँ ॥ १९ ॥

हिरण्य वा सुवर्ष्यं यत्र रत्नानि विविधानि च ।

राज्य वा त्रिषु लोकेषु पतन्नाहसि भाषितम् ॥ २० ॥

छेनाः शौरी नाना प्रकारके रत्न अपना तीनों लोकोंमें खनन भी इस प्रिय संवाचारकी कपकपी नहीं कर सकता ॥ २० ॥

एवमुक्त्वास्तु वैशेधम प्रस्तुवाच भूकगमा ।

प्रयुहीताऽऽसिर्हर्षात् सीतायाः प्रमुखे स्थिता ॥ २१ ॥

बिदेहनन्दिनीके देखे कहनेपर जानकीर हनुमन्को बड़ा हर्ष हुआ । ये सीताजीके खमने हाथ छोड़कर लगे से गये और इस प्रकार बोले— ॥ २१ ॥

भर्तुः प्रियहितं युक्ते भर्तुर्विजयकाम्पि ।

स्त्रिगधमेवविधं यत्पर्यं त्वमेवार्हस्यमिन्विते ॥ २२ ॥

पतिजी विजय चाहनेवाली और पतिके ही प्रिय हर्ष हितमें क्या संकल्प रहनेवाली छती-जन्मी देवि ! आपके ही मुँहसे ऐश स्नेहपूर्वक वचन निकल सकता है (आपके ही वचनसे मैं जब कुछ पा गया) ॥ २२ ॥

तथैतत् यत्नं सौम्ये सारयत् स्त्रिगधमेव च ।

रत्नौघात् विविधायापि वेषराज्यात् विनिष्यते ॥ २३ ॥

‘सौम्ये ! आपका यह वचन खरगमित और स्नेहपूर्ण है, अतः मोक्षि-मोक्षिणी खनयधि और देवताओंके खनने भी बढ़कर है ॥ २३ ॥

अर्घ्यतश्च मया प्राप्तं देवराज्याद्यो गुणाः ।

इत्यशुं पिञ्जयिनं चामं पदयामि सुखितम् ॥ २४ ॥

मैं जब यह देखता हूँ कि श्रीरामकरजी अपने समुद्र वच करके विजयी हो गये और स्वयं सङ्कटाह है, तब मैं सब अनुभव करता हूँ कि मेरे छोरे प्रयाजन सिद्ध हो गये— देवताओंके राज्य आदि सभी उन्मत्त गुणोंसे कुछ परार्थ मुझे मिल गये ॥ २४ ॥

तस्य तत् यत्नं भुत्वा मैथिली जनकामजा ।

ततः शुभतरं बाण्यमुवाच पफनामजम् ॥ २५ ॥

उनकी वात सुनकर मिथिलेशकुमारी जनकीने उन वचनकुम्भसे यह पत्र सुनकर बचन कहा— ॥ २५ ॥

भक्तिव्यक्तसम्पन्नं माधुर्यगुणमृगयम् ।

सुष्ण्या ह्यारुह्या मुक्तं त्वमेवाहसि भाषितम् ॥ २६ ॥

‘वीरवर ! तुम्हारी कधी उपाय सम्भवनेमें सम्पन्न माधुर्य

गुणसे भूति तथा बुद्धिक आठे अत्रों (गुणां) से अस्तकृत है । ऐसी वाणी कवच गुणां वाच सकृत् ॥ २६ ॥

दशाधनीयोऽनिलस्य त्व सुतः परमधार्मिकः ।

परु शौचं धृत सस्वं विद्यमां वाक्यमुत्तमम् ॥ २७ ॥

तेजः क्षमा मृति स्वैर्ये विनीतस्य न सशयः ।

एते चास्य च ग्रहसो गुणास्त्यज्येय शोभना ॥ २८ ॥

गुण शयुदेशताक प्रार्थनीय पुत्र तथा परम धर्मात्मा

है । धारीरिक बस धृत्त, शास्त्रज्ञान, मानसिक बल परकम,

न्यम शक्त तज, क्षमा धर्म मिरता, किनव तथा अन्य

बहुतसे सुन्दर गुण कवच तुम्हें एक खप विद्यमान है,

इनमें छज नहीं है ॥ २७ २८ ॥

मया वाच पुन सीतामसम्भ्रान्तो विनीतवत् ।

प्रवृत्त्याङ्गलिहर्षात् सीतायाः प्रमुञ्चे स्मितः ॥ २९ ॥

तदनन्तर सीताके सम्भ्राने मित किन्ही पकराटनक हाथ

अङ्कुर किनीतभापते सङ्ग हुए इतुमान्की पुनः हर्षयुक्त

उत्तरे केश— ॥ २९ ॥

इमास्तु खस्तु राक्षस्यो यदि त्यमनुमम्यस ।

हनुमिच्छामि ताः सया याभिस्त्वं तज्जिता पुरा ॥ ३० ॥

हेति । यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं इन छम्क

राक्षसोंके अ परहे आपको बहुत इच्छी-धमपत्नी रही है

पर कथना चाक्ष हूँ ॥ ३ ॥

क्षिप्रकर्त्ता पनिर्द्व्यां स्वामशोकयन्त्रिका गताम् ।

घोररूपसमाचाराः क्रूराः क्रूरतरेक्षणाः ॥ ३१ ॥

इह धुता मया द्विय राक्षस्यो विकृतानन्वः ।

मसह्यपदवैपापवैर्यदम्भयो रायणाप्रया ॥ ३२ ॥

आर वैश्वे पतिमगा देवी अशोकान्त्रिकमे बैठकर कस्य

भोग थी थी और ये भयंकर रूप एवं आचरसे मुक्त अत्यन्त

दूर इच्छित्ती विक्रान्तुस्ती मूर राक्षसियों भावसे वागवार

कर करकेन्द्राव जौन्ती फरकारती रहती थी । राक्षसकी

आज्ञासे ये जैथी-जैथी कर्ते आपको सुनाती थीं उन ल्यक

मिने पहाँ रहकर मुना है ॥ ३१ ३२ ॥

विकृता विकृताकाराः मूरा मूरकचक्षुष्याः ।

हृष्यामि विविधघातैर्हनुमतेता सुदाहव्या ॥ ३३ ॥

ये मर-नी-सब विरघाम विकट आकारवासी मर और

अत्यन्त दास्य है । इनक नेत्री और कर्णोमे भी मूरा उपकृती

है । मैं तरर तररक आपनोंहाय इन कषक बच कर बाधना

चाहूँ ॥ ३३ ॥

राक्षस्यो वारुणकथा परमतत् प्रपच्छ मे ।

मुद्रिभि पापिण्यघातेषु विशालेक्षेय वाहुभिः ॥ ३४ ॥

अज्ञाजानुप्रहारेषु वृन्ताना शैव पीडनैः ।

कर्तनैः कर्णान्वासाना केघाना लुब्धनैस्तथा ॥ ३५ ॥

निपात्य हनुमिच्छामि तव विप्रियकरिणीः ।

एव प्रहारैवहुभिः सम्प्रहाय पशास्त्रिभिः ३६ ॥

घातये तीव्ररूपाभिर्भयाभिस्त्व तज्जिता पुरा ।

मरी इच्छ है कि मुझों, अतों, विशाल मुञ्जभ्र-कप्यहों

विपक्षिण्या और मुटनोंकी मारम इन्हें पावत करक इनके दौत

ताङ्क हूँ इनकी नाक और कान कट हूँ तथा इनक खिरक

नास नार्हूँ । यद्यस्त्रिभिः । इस तरह बहुजनसे प्रहारोंहाय इन

मरकष पीटकर मूटापूर्व पातें करनेवाली इन अग्रियकरिणी

राक्षसियोंके पटक-पटककर मार दायूँ । किन किन भयानक

रूपवाली राक्षसियोंन पहले आपको इटि कलायी है उन कषके

में अभी मौतक घाट उतार दूँगा । इसक लिय आप मुझ

केवल धर (आज्ञा) द हूँ ॥ ३४-३६ ॥

इत्युक्त्वा सा हनुमता वृषण्या वीम्वयत्सलम् ॥ ३७ ॥

हनुमन्तमुधानन्द चिन्तयित्वा विमृश्य च ।

इतुमान्कीके ऐस्य करनेपर कषणामय न्यम्भनवासी

वीनयत्सल खेताने मन-ही मन बहुत कुछ खच विचार करक

उत्तरे इस प्रकार कहा— ॥ ३७ ॥

राजसश्रययदयतां कुयतीना पराशया ॥ ३८ ॥

विषयानां च दासीनां का कुप्येद्यं यामरोचतम् ।

भाभ्यवैपन्यदोषेण पुरस्रघृष्टतन च ॥ ३९ ॥

मयैतत् प्राप्यत सर्वे सकृत् क्षणमुम्यत ।

मैव यद् महायाहो द्वैदी ह्योग परा गतिः ॥ ४० ॥

कृतिधेय । ये वचारी राक्षके आभयमें रहनेके कारण पराधीन

थीं । इससेही आज्ञासे ही सब कुछ करती थीं अतः स्वामीकी

आज्ञाका पाठन करनेवाली इन राक्षसोंपर कौन कष करेगा ?

मंग भाभ्य ही अच्छा नहीं था तथा मरे पूर्वकमक तुम्हमें

अभ्या कष देने खने थे इसीसे मुने यह सब कष प्राप्त हुआ

है क्योंकि सभी प्राणी अपने किय हुए दुःखग्राम कर्णोत्र ही

कष भगतें हैं अत महाबाहो । तुम इन्हें मारनेकी बात न

करो । मरे लिये देवघर ही एसा विधान था ॥ ३८-४० ॥

मास्तभ्य तु दगाथागान्मयंसतिदिति मिथितम् ।

दासीना रायपक्याह मययामीह युषना ॥ ४१ ॥

पुस भरने पूनम्भनक्ति दयाक यामने पर खप कुन

निधितकपम भागना ही था इत्यलिय यवचयी राक्षसियोंपर परि

कुछ अरघप हो भी तो उम में धमा करती हूँ क्योंकि इनक

प्रति दयाक उदकने में युवक हो रही हूँ ॥ ४१ ॥

अप्यता गृहसतनह राक्षस्यस्तत्रयन्ति माम् ।

हत तस्मिन् न पुचन्ति तत्रन मादतामयम् ॥ ४२ ॥

तनकुमार । उत उच्छर्भी-आशाम ही व मुझ धमघय

गुणय करनं देव मरणा उत्तमं तज्ज ।

महागान्त्रिकान् लसवान् यो योपुत्र

इनमेंही कस्य पुनना पठन करन करन एतना उदा

(१०६ १०७) कवच (विद्या-तज्ज विधवा) कवच वान इत्य तज्ज

कवच कवच—ने अत बुद्धिक पुन है

कष्टी थीं। सबसे बड़ माय गया है, सबसे ने बेचारी मुझे
कुछ नहीं कहती हैं। इन्होंने ब्रह्म-भक्तना छोड़ दिया है ॥
अथ श्यामसमीपे तु पुराणा धर्मसहितः।
प्रक्षय गीतः स्तोत्रोऽस्ति त नियोध पूर्वगम् ॥ ४३ ॥
शान्तधीरः। इस विषयमें एक पुण्या धर्मसम्पन्न स्त्रीके
हैं किसे किसी भावक निकट एक ठेकने कहा था ॥ ४३ ॥

न परः पापमात्रेणै पर्यां पापकर्मणाम्।
समया रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणा ॥ ४४ ॥
अथ पुरुष दूरेषु सुराई करनेवाले पापियोंके पापकर्मोंमें
नहीं अपनाते हैं—बदलेमें उनका साथ स्वयं भी पापपूर्ण होता
नहीं करना चाहते हैं अथ अपनी प्रतिज्ञा एवं शवाचारकी
रक्षा ही करनी चाहिये क्योंकि साधुपुरुष अपने उत्तम परिषसे
ही विभूषित होते हैं। शवाचार ही उनका भाभूषण है ॥
पापानां या शुभाभां या यथार्हाणामयापि या।
कार्ये कथमप्यमायेव न कश्चापराप्यति ॥ ४५ ॥

अथ पुरुषको चाहिये कि कोई पापी हो या पुण्यात्मा
अथवा वे कथके अथ अपराध करनेवाले ही क्यों न हों उन
सम्बन्ध दया करे क्योंकि ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है किन्ते
कभी अपराध होता ही न हो ॥ ४५ ॥

स्मेकहिंसाविहारानां क्रूराणां पापकर्मणाम्।
कुर्वामपि पापानि नैव कार्यमशौभनम् ॥ ४६ ॥
जो लोगोंने हिंसामें ही समते और सब पापका ही
आचरण करते हैं उन क्रूर स्वभाववाले पापियोंका भी कभी
अपराध नहीं करना चाहिये ॥ ४६ ॥

पपमुक्तस्तु हनुमान् सीताया याक्यकविविदः।
प्रसुवाद्य तताः सीतां रामफलीमनिम्बिताम् ॥ ४७ ॥
सीताकीके एक करनेपर बातचीत करनेमें कुछ हनुमान्
कीने उन स्त्री-छात्री भीरामयानीको इस प्रकार उत्तर दिया—
युष्मा रामस्य भयती धमयन्ती गुणान्विता।
प्रतिसेविदा मां द्वि गमिष्य पद्य राषया ॥ ४८ ॥

इकार्ये भीमहामायने वाक्यमिदमे आदिशब्दे सुदृष्टान्दे क्लेशविशालतमः सर्गः ॥ ११३ ॥
इस प्रकार भीमहामायने आदिशब्दके सुदृष्टान्दे एक ही तरहकी सम पूरा हुआ ॥ ११३ ॥



देवि! आप भीरामकी धर्मपत्नी हैं अथ अपराध ऐसे
सुगुणोंसे सम्पन्न होना उचित ही है। अब आप अपनी ओरसे
मुझ कोई संदेश हैं। मैं भीरामपत्नीके पत्र गऊँगा ॥ ४८ ॥
पपमुक्ता हनुमत्त विवेही जन्मशर्मजा।

साक्षवीव प्रभुमिच्छामि भर्तार भक्तकसकम् ॥ ४९ ॥
हनुमान्कीके एक करनेपर विवेकान्वितनी जनक-
किशोरी बानी— मैं अपने भक्तकसक त्वाकीका दर्शन करने
चाहती हूँ ॥ ४९ ॥

तस्यास्ताव वचनं भुक्त्वा हनुमान् माकतारमजः।
हर्ययन् प्रियंती वाक्यमुवाचत् महामतिः ॥ ५० ॥
सीताकीकी यह बात सुनकर परम बुद्धिमान् पत्नकुमार
हनुमान्की उन विविक्तकुमारीका हर्य बड़ावे हुए इस प्रकार
बात— ॥ ५० ॥

पूजकम्प्रमुञ्च राम द्रक्ष्यस्याद्य सखकमणम्।
खितमित्र हतामित्र शचीषम्प्र सुरेश्वरम् ॥ ५१ ॥
देवि! जैसे शची देवका इन्द्रका दर्शन करती हैं उसी
प्रकार आप पूर्वाचन्द्रकाके आन मनोहर मुक्तबासे उन भीराम
और अक्षयकाके अथ वेसेंगी किन्के मित्र विद्यमान हैं और
शत्रु मारे जा चुके हैं ॥ ५१ ॥

तामेवमुक्त्वा भाजार्त्थी सीतां साक्षाद्विद्य भिषम्।
भाजगाम महातीजा हनुमन् प्रथ राषयः ॥ ५२ ॥
छात्रत् सम्प्रीये भौदि सुष्मिता होनेवाली छिद्रदेवीके
एक करकर महातीकसी हनुमान्की उठ त्वात्पर छोट भावे
जहाँ भीरामपत्नी विद्यमान थे ॥ ५२ ॥

अपदि हरिबरसखो हनुमान्
प्रतिबचन जनकेश्वरात्मजायाः।
कथितमकथयत् पथाक्रमेण
विद्यावरप्रतिमाय राषयस्य ॥ ५३ ॥
वहसे जैसे ही कथित हनुमान्कीने दक्षक इन्द्रके
द्वय ठेकसी भीरामपत्नीके अनकथककिशोरी सीताकीका
दिया हुआ उत्तर क्रमः कर मुनाया ॥ ५३ ॥

इकार्ये भीमहामायने वाक्यमिदमे आदिशब्दे सुदृष्टान्दे क्लेशविशालतमः सर्गः ॥ ११३ ॥
इस प्रकार भीमहामायने आदिशब्दके सुदृष्टान्दे एक ही तरहकी सम पूरा हुआ ॥ ११३ ॥



एहदेशी का है वह वाचने मिली अथवा हीन किया। अथ अपराध एक दूसरे का गण। उस दूसरे रहते ही
धर्म हीन हुए हुए थे। यह दूसरे पहले परा सुदृष्टान्दे वैदिक देहे हुए ठेकने गण्य—अप और द्रुम राजा ही कथके जीव है,
वह अथ दय दोषकी ही शत्रु है; नः द्रुम सब दूसरे शीघ्र मित वा। ठेकने परर किया—वह अथ मरे नियतमानपर
अथ एक अथगत मरी घराके बुद्ध है तन्किने मैं इसे नीचे नहीं मितकरे। यदि मित हूँ तो वयकी हानि होगी। मेले अथ
हीन है गण। नः वाचने अथ का—एक उठ सने हुए ठेकने नीचे मित वा। मैं दुःखही था कर्ण्य। उठके हेतु करनेपर
अथने सब ठेकने कथ दे दिया; परतु ठेकने अथगत हूमी गण कथकर मितनेत वय गण। नः वाचने ठेकने कथ—वह अथ
दुःख मितका वरग था; नः वरताये है। तन्किने नः दूसरे शीघ्र कथेन वा। कथके उठ प्रकार कथगत उथअनपर भी ठेकने
गण अथकी नहीं मितका और न वर वरनागत वय इनेअथ गण कथक उठे दुःखके कथ दे दिया। वर वरथीव कथ है।
(उपपन्नभूषण-विषय)

चतुर्दशाधिकशततमः सर्गः

भीरामका आह्वाने विभीषणका सीताका उनक मयीप लाना और सीताका

प्रियतमक मुखचन्द्रका दग्धन करना

तनुबाध महाप्राणः सोऽभिषाद्य पृथङ्गम ।
 राम कमण्यत्रास च सयधनुष्मताम् ॥ १ ०
 तन्न्तर परम बुद्धिमान् जनरथीर इतुमान्सीने सधृण
 पनुर्वेपेभे भेद्र कमण्यका भीरामका प्रणाम करक करा—॥ १॥
 यत्रिमिताऽपमागन्म कमर्णा या फलाद्वया ।
 ता र्थी शकसतमा द्रुपुमहसि मैथिलीम् ॥ २ ॥
 भान् । किनक शिव इन युद्ध आदि कर्मोकर धार
 उषमा भारम्भ किया गया था, उन राकसका सिषिष्य
 कुमारी शैलदेवीका आप दर्शन ॥ २ ॥
 सा हि शकसमाधिषा याप्यपयाकुन्तज्ञाणा ।
 मयिषी विरूप भुष्या द्रुपुं त्यामभिक्षकृति ॥ ३ ॥
 न धकमे हूरी रहती हैं । उनक नेत्र ओंमुओंस मर
 हुए हैं । आपकी विरूपका समाचार सुनकर वे सिषिष्य
 कुमारी आपका दर्शन करना चाहती हैं ॥ ३ ॥
 पूषकात् प्रत्ययायाहमुका पिभक्षतया तथा ।
 द्रुपुमिच्छामि भवारमिति पयाकुञ्जतया ॥ ४ ॥
 यरही बार मैं आपका संदेश करक आया था तभी
 मैं उनका मेरे ऊपर विस्वात हो गया है कि यह मेरे स्वामीका
 भाष्यकन है । उसी विश्वाससे मुक हो उन्होंने नेत्रोंमें आँसू
 भरकर मुक्तक करा है कि मैं प्राणनाथका दर्शन करना
 चाहती हूँ ॥ ४ ॥
 एमुका इतुमता रामा धमभृता परा ।
 धागच्छत् सहसा ध्यानमद्वाप्यारिन्दुताः ॥ ५ ॥
 म श्रीधर्मनिनिभवस्य जगतीमवलोकयन् ।
 उवाच मयासफाण विभीषणमुपस्थिसम् ॥ ६ ॥
 इतुमान्शक उष्य करनगर पमसमाधोमे भेद्र भीषम
 कन्दरी कश्च प्यानस्य हा गया । उनसे भोले दृषद्वय आसी
 और व मसी मीन तीचकर नुमिषी आर दक्षत हुए पाठ ही
 मर मयक समानस्यम कानिवाय विभीषणम धाम—॥ ६ ॥
 दिव्याङ्गरागां यद्दृष्ट्वा दिव्याभरणभूषिताम् ।
 इह सीता शिताकात्समुपस्थापय मा धिरम् ॥ ७ ॥
 पुम विरहनिन्नी शैलाका मलकसम स्नान करकर
 दिव्य भद्रगण तथा दिव्य आभूषणान विनुरित करक सीम
 मर पाठ म धाम ॥ ७ ॥
 एपमुकस्तु रामस्य ग्यरमाष्या विभीषणा ।
 मयिद्वयान्त-पुरं सीतां स्त्रीभिः स्याभिरवापयत् ॥ ८ ॥
 भीरामक उष्य करनेपर विभषण बड़ी उष्यकीक लय
 भन्त पुगेमें गव और परन आसी जियाध मरकर उन्हीन
 उष्य भयन भयन मर ही ॥ ८ ॥

ततः सीतां महाभागा इयुष्याच विभीषणः ।
 मूर्ध्नि यथाऽस्तिः धीमान् भिनीताः गार्शसध्वरः ॥ ९ ॥
 इसक बाद भीमान् गच्छयान विभीषणने स्वयं ही कर
 महानाम सीताका दग्धन किया और मयकपर भद्रगि योंप
 विनीतमापन करा - ॥ ९ ॥
 दिव्याङ्गरागां यद्दृष्ट्वा दिव्याभरणभूषिता ।
 यानमाराह भद्र त भवा स्या द्रुपुमिच्छति ॥ १० ॥
 विरहयकमुमारी । आप स्नान करक निम्न अद्रुगण
 तथा दिव्य कलाभूषणोंन भूषित हाकर स्वारीपर बैठिये ।
 आपका कस्मान हा । मीपक स्वामी भाषका इतना चाहत
 है ॥ १० ॥
 एषमुका तु यद्दृष्ट्वा प्रत्युष्याच विभीषणम् ।
 भक्त्या द्रुपुमिच्छामि भवार राक्षसेभ्यः ॥ ११ ॥
 उनक एष्य करनेपर वैरहीन विभीषणका उत्तर दिया—
 गच्छयान । मैं किना स्नान किया ही अभी पतिव्रतका दर्शन
 करना चाहती हूँ ॥ ११ ॥
 तस्यास्तद् यत्न भुष्या प्रत्युष्याच विभीषणः ।
 ययाऽऽह रामा भवा त तद् तथा फनुमहसि ॥ १२ ॥
 शैलाकी यह बात सुनकर विभीषण काठ-द्वार । आपक
 पतिव्रत भीषमकन्दरीने भेरी भाषा ही है आपका सेवा ही
 कन्य चादिये ॥ १२ ॥
 तस्य तद् यत्न भुष्या मयिषा पविद्रुता ।
 भक्त्याऽस्याभुता सापरी तथति प्रत्यभारत ॥ १३ ॥
 उनका यह वचन सुनकर पतिमहिम सुजिज्ञ तथा
 पनिका ही देवता मलनेपासी लक्ष-सुषी सिषिष्यकुमारी
 भोतन भवतु अच्छा । करक स्वामीकी भाषा गिरभाव कर
 सी ॥ १३ ॥
 ततः सीतां गिरःश्रान्ता मयुका प्रतिक्रमणा ।
 महाहाभरणायता महाहाभरणधारिणीम् ॥ १४ ॥
 ततश्चात् विरहकुमारिन शिम फान करक मुन्दर
 ग्गार किया तथा यदुमस्य सस्य और आभूषण परनकर व
 सचनेका तयार हो गयी ॥ १४ ॥
 आराव्य शिविका सीता पराप्पाम्यरससुष्याम् ।
 दसाभिषुभिगुतामाजहार विभीषणम् ॥ १५ ॥
 तव विभीषण यदुमस्य सस्योम भवतु दीमिन्नी भीष
 ग्गार शिविकामें सिताका भक्त्या भीषमक पाठ म धाम ।
 उन समय बहुतन निगाकर चारी अगम परकर उनसे गच्छ
 कर रह ग ॥ १५ ॥

सोऽभिगम्य महात्मान् वात्वापि ध्यानमास्थितम् ।
 प्रणतश्च महद्दण्डं प्राप्तां सीतां स्वयंवेद्यत् ॥ १९ ॥
 मगसान् भीषणं ध्यानस्य है यद् अनन्तरं भी विभीषण्य
 उनके पास गये भार उन्हे प्रणाम करके प्रसन्नगर्भक बोले—
 प्रभा! सीतादेवी आ गयी है ॥ १९ ॥
 नामागतानुपभूष्य रक्षोगृहचिरोपिताम् ।
 नय हर्षे च द्वैत्य च राघवः प्राप शत्रुहा ॥ १७ ॥
 अपने बहुत दिनोंकर निरास करनेके बाद भय
 है वह बीच उनके भाषनका सम्बन्ध
 न — भीरुपुत्रापत्नीं च एक ही समय रोप ह्य
 — १७ ॥

तत्रा यातगता सीता सखिमण्डौ विवारयन् ।
 विभीषणाम् वाक्प्रथमदृष्ट्या राघवोऽपि वीत् ॥ १८ ॥
 तबन्तर भीता सहायपर आनी है इ च राघव तर्क
 निकलनेके विचार करके भीरुपुत्रापत्नीके प्रत्यक्ष नहीं हुई ।
 वे विभीषणके इत प्रकर बोले— ॥ १८ ॥

राक्षसाधिपते सौम्य नित्य मद्रिजये रतः ।
 बद्धौ सनिकर्षे मे क्षिप्तं समभिगच्छन्तु ॥ १९ ॥
 यदा मेरी बिकल्पके लिये तब राखनेवाले सौम्य राक्षस-
 गण ! तुम विरहकुम्पितके लिये वे सीता मेरे पास भाई ॥
 तस्य तद् बन्धन भ्रूया राघवस्य विभीषणम् ।
 नृपमुन्स्ताण तत्र करयामास धमयित् ॥ २० ॥
 भीरुपुत्रापत्नीं च राघवः प्राप शत्रुहा ॥ १७ ॥
 भीरुपुत्रापत्नीं च राघवः प्राप शत्रुहा ॥ १७ ॥
 बोले तुम्हें लगेकोई इत्या प्रारम्भ किया ॥ २ ॥
 कम्पुकोर्त्वीयिषस्तत्र ब्रह्मर्ष्यरपाण्यः ।

उन्सापत्यस्तान् पाथान् समन्तात् परिषक्तुः ॥ २१ ॥
 पगड़ी बोधे और अज्ञ परिने हुए बहुतने सिद्धी
 हाथों हाहाही तब बन्दे हुई छड़ी लिये उन बनर
 यदात्मका इत्यं हुए पाये और घूमने लगे ॥ २१ ॥
 ब्रह्मसाधो वासराणा च राक्षसामो च सखशाः ।
 नृपसांस्त्यायमाणांस्तु नृपमुन्स्ताणन्ततः ॥ २२ ॥
 उनके द्वारा दृश्ये जाने हुए रीतों बनर और राखके
 स्मृत्वात् भगवतस्तद् दूर अन्तर लक्ष हो गये ॥ २२ ॥
 हेयामुन्स्तायमाणां निःश्वना सुमहानभूत् ।
 यायुनाद्भुयमानस्य सागरस्तेय निःश्वनः ॥ २३ ॥
 बड़े बायुके पारेह तार उद्विज हुए समुद्रपी गर्भना
 बड़ अपनी है उली पकर वहीमे इत्यं अते हुए उन बनर
 आदिके इतने बरी बड़ा मपी छोप्राह मन् गया ॥ २३ ॥
 उन्सायमार्यास्तन् इन्द्र समन्तात्प्रतसम्भ्रमान् ।
 दाक्षिण्यात्सर्वमार्गोश्च दारयामास राघवः ॥ २४ ॥
 किन्हे इत्या अत्र या उनके मनने बड़ा उद्वेग इत्या
 च तब और वह उद्वेग दूरकर भीरुपुत्रापत्नीने अपनी छह
 उदात्तक अत्र उन इत्येवाकोई उद्गृहक गद्य— ॥ २४ ॥

सरम्भाच्छायसीत् रामश्चतुया मद्बुधिव ।
 विभीषण महापात्र सापालम्भमिद् वचा ॥ २५ ॥
 उत समय भीषण इत्येवात् विगदितोश्चो अत इत
 तब राघव दृष्टि देखे रहे ये माने उन्हें बद्धकर मन्
 कर हाके। उन्होंने परम बुद्धिमान् विभीषणको उखरने
 वेतें हुए छोपपूर्वक करा— ॥ २५ ॥

किमर्थं मामन्तःकृत्य ह्रिद्यतऽयं त्वया जनः ।
 निवर्तयेनमुद्रंग ज्ञतोऽयं सज्जनो मम ॥ २६ ॥
 पुन किस्लिये नय अनादर करके इन सब धर्मोको
 कह दे रहे हैं। एक ही इत उद्वेगजनक कार्यको। यों
 किन्हे लोग है सब मर अप्रथीय कन है ॥ २६ ॥
 न गृहयिष्ये न धर्याणि न प्राकारसिधिकाया ।
 नेहय्य राजसत्कारा वृत्तमावयम क्षियाः ॥ २७ ॥
 अत्र बल (कनात आदि) और बहुरोवागे अदि
 नखुपे लीके लिये परण नहीं हुआ कळी है। इत तब
 कोकोई दूर इत्येके लिये निष्पुत्रपूर्ण म्बहार है, वे भी
 लीके लिये अवयव या पूर्वक काम नहीं देते हैं। पक्षिसे
 प्राप्त होनेवाले अहार तथा नारीके अपने उदाचार—वे ही
 उक्त लिये अहार है ॥ २७ ॥

अप्यस्तेषु न कृष्णेषु न युजेषु स्वयम् ।
 न ऋतौ मो विवाहे वा व्रतान वृष्यते क्षियाः ॥ २८ ॥
 विपतिघर्षणं धारिणिकं या मन्तिक पीडाके भरल्ये-
 पर युद्धने लक्ष्मणने मन्ने अपना विनाशने लीम कील्य
 (या युद्धकी दृष्टिने आना) रोषकी अत नहीं है ॥ २८ ॥
 सैवा विपद्रया चैव कृष्णैश्च च समभिरता ।
 व्रताने मासि दोषोऽस्या मत्समाप दिशेरतः ॥ २९ ॥
 यह लीक इत समय विपत्तिने है। मानसिक अतसे भी
 युक्त है और विनेयता मेरे पास है इस्लिये इहय परने
 किना लके लमने अना दोषमे बान नहीं है ॥ २९ ॥
 विदुष्य विविधा तस्मात् पद्म्यामिनापसप्तु ।
 समीपे मम बवेर्हो पदपत्यते पनीकसाः ॥ ३० ॥
 अत अनन्ती विविध (पक्षी) छोडकर वेदल ही
 मेरे पास भाये और वे सभी बनर उनका इतने करे ॥ ३० ॥
 पयनुकस्तु रामेण सविमर्गो विभीषणा ।
 रामस्योपागतत् सीता सनिकर्षे पिभीतवत् ॥ ३१ ॥
 भीषणके एव करनेपर विभीषण बड़ बिन्दरने पड़ गये
 और किन्तनावाले सीताम उनके समीप ल भाय ॥ ३१ ॥
 कता मन्मथस्तुभीवी हनुमांश्च गृहहम ।
 निशम्य शान्त्य रामस्य बभूवुभ्यदिता भूशाम् ॥ ३२ ॥
 उत समय भीषणकरवीना पूर्वोक्त बन्धन मुनकर
 तस्मै मुभीष तथा रूपिपर हनुमन् तीनों ही अत्यन्त व्यदिता
 ही उठे ॥ ३२ ॥

कतञ्चनिरपक्षश्च इद्वितरस्य दायम् ।

मपीतमिथ सीताया तक्रयन्ति सा राक्षसम् ॥ ३३ ॥
 भीरामरुन्वीची ममंकर चेष्टां मह चक्रित कर र्थी
 श्री कि रे क्लीची ओरसे निरपेक्ष हा गये हैं । इक्षीन्ति
 उन सीताने मह मनुमान क्रिया कि भीरुतापची सीतापर
 मप्रसन्नसे खन पढ़ते हैं ॥ ३३ ॥

कञ्जया त्वयत्कीयन्तीं स्वेपु गात्रेषु मैथिली ।
 विभीरणेनानुगतता भतारं साम्यवसंत ॥ ३४ ॥
 आपेभ्यो घृता यो और पीछे विभीरण । वे कञ्जसे
 अपने अङ्गो ही विकृष्टी ना र्थी थी । इस तरह वे अपने
 पवित्रने खाने उपस्थित हुईं ॥ ३४ ॥

विस्मयाच्च प्रहर्षाच्च स्नेहाच्च पतिव्रता ।
 चरैस्तत मुक्त भर्तुः सौम्य सौम्यतरामना ॥ ३५ ॥
 हापार्ये भीमद्वानाचमे पाक्षीकीये धारिकाम्बे पुराणके चतुर्दशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११४ ॥
 इस प्रकार श्रीकलीकिनिर्मित अर्षरागायण अधिकात्म्यक पुराणके एक ही चौदहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ११४ ॥

पञ्चदशाधिकशततम सर्ग

सीताक चरित्रपर सदेह करके श्रीरामका उन्हें ग्रहण करनेसे इन्कार
 करना और आयत्र जानेके लिये कहना

वां तु पापैस्त्रिंशतां प्रह्ला रामः सस्मेह्य मैथिलीम् ।
 इत्यान्तर्गतं भाव व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ १ ॥
 मिथिकचकुमारी सीताको तिनयपूर्वक अपने समीप लक्ष्मी
 देल भीरामरुन्वीचे अपना हार्दिक अभिप्राय बताना आरम्भ
 किया— ॥ १ ॥
 पर्यासि निजिंता भद्रं शत्रु जित्या रणजिरे ।
 पीकयत् यत्रुण्डय मयेतुपुपादितम् ॥ २ ॥
 मद्रे । समग्रप्रणमं उज्ज्वे परकित करके मैंने दुम्हें
 उठके पंगुखले बुझा किया । पुराणार्थके द्वारा अब कुछ किया
 अब चक्रा या हर लभ मैंने किया ॥ २ ॥
 गताऽस्म्यन्तममपस्य भ्रंशना सम्प्रमाजित्वा ।
 भवमानस्य शत्रुभ्य युवापतिहती मया ॥ ३ ॥
 मय मेर अमर्षभ अन्त हो गया । मुझपर अब कुछ
 कर या उलझ मैंने भावें कर दिया । शत्रुज्ज्वित अरमान
 और शत्रु धनाका एक लय ही नष्ट कर जाऊँ ॥ ३ ॥
 मय म दीरुय इष्टमय म सफलः भ्रमः ।
 मय तर्पतिप्रोऽहं प्रभयाम्यय चारमना ॥ ४ ॥
 मय करने मय परक्रम देल किया । अब मेरा परिभ्रम
 मय हो गया और इस समय प्रसिद्ध पूर्ण करके मैं उलक
 मयत मुझ एवं लक्ष्म्य हो गया ॥ ४ ॥
 या ल्य विरहिता नीता चञ्चलचित्तं रक्षसा ।
 वैषम्यप्राप्तियो दायो मानुषेण मया जितः ॥ ५ ॥
 अब तुम आभयमें अकेली थी उस समय वह चञ्चल
 चित्तवस्था पड़त दुम्हें हर हो गया । यह दोष मेरे ऊपर

सीताभीका मुख भवन्त सौम्यमापते मुक्त या । वे
 पवित्रो ही देवता माननेवाली थी । उन्होंने बड़े विस्मय, हर्ष
 और स्नेहके साथ अपने स्वामीके सौम्य (मनाहर) मुक्त
 दर्शन किया ॥ ३५ ॥

अथ समपनुवमनःकृमं सा
 सुचिरमष्टयसुवीक्ष्य वै प्रियस्य ।
 पवनमुदितपूषाचन्द्रकान्त
 विमलशशाङ्कनिभान्ना क्त्वाऽऽसीत् ॥ ३६ ॥
 उदयनालीन पूर्ण चन्द्रमात्रं मी उज्जित करनेवाक
 प्रियतमके सुन्दर मुखक चिह्नक दर्शनसे वे बहुत दिनासे
 पश्चित थी सीताने श्री भरकर निहाय और अपने मनकी
 पीड़ा बूर की । उस समय उनका मुख प्रसन्नतासे सिद्ध उठा
 और निरल चन्द्रमाके समान शोभा पाने लगा ॥ ३६ ॥

रैवतय प्राप्त हुआ था; किन्तु मैंने मानकद्वय पुराणार्थके
 द्वारा मार्कन कर दिया ॥ ५ ॥
 सम्प्राप्तमयमान यस्तेजसा न प्रमाजति ।
 कस्तस्य पौठपेणार्थो महताप्पल्यघेतसः ॥ ६ ॥
 जो पुरुष प्राप्त हुए अपमानक अपने तब या बलसे
 भवने नहीं कर देता है, उस मन्त्रबुद्धि मानकके गहन
 पुराणार्थसे भी क्या भ्रम हुआ ? ॥ ६ ॥
 अह्म य समुद्रस्य लङ्कापार्यापि मन्त्रम् ।
 सफल तस्य य दक्षय्यमय कर्म हनुमता ॥ ७ ॥
 हनुमानने अब समुद्रको छोपा और उद्घाटा विषय
 किया उनका वह प्रयांकीय कर्म आब सफल हो गया ॥७॥
 युदे विक्रमतमैष हित मन्त्रयतस्तथा ।
 सुमीपस्य ससौम्यस्य सफलोऽय परिभ्रमः ॥ ८ ॥
 सेनाघर्षित सुधीनेने युद्धमें परक्रम दिसाया तथा समय
 समयपर य मुझे हितकर उजाह देते रहें हाकर परिभ्रम
 मी अब सार्थक हो गया ॥ ८ ॥
 विभीषणस्य च तथा सफलोऽय परिभ्रमः ।
 विमुप अत्रत त्यक्त्या यो मां स्वयमुपस्थिता ॥ ९ ॥
 ये विभीषण दुर्गुणोसे मेरे हुए भवने मादक्य परिक्षमा
 करके स्वयं ही मेरे पास उपस्थित हुए थे । अकलकन किया
 हुआ इनका परिभ्रम मी निष्फल नहीं हुआ ? ॥ ९ ॥
 इत्यय यत्रतः भुत्या सीता रामस्य तत्पयः ।
 सुगीबोस्तुल्लतयना पभूयाधुपरिप्लुता ॥ १० ॥
 इस तरह करते हुए भीरामकीची पाठे मुनकर सुगी-

छमान विकसित नेत्रोभासी सीताश्री ओंलोमें आँसू भर
आया ॥ १ ॥

पद्मपत्रस्तां मु रामस्य समीपे हृदयप्रियायम् ।
अनन्यभयाद् राक्षो वभूत् हृदयं त्रिधा ॥ ११ ॥

ये अपने स्वामीश्री हृदयवत्सल्यमायी । उनके प्राणवत्सल्य
उन्हीं अपने समीप देख रहे थे परन्तु स्वल्पमात्रके मन्ते
राम भीरवश्च हृदय उध समय विदीर्ण हो रहा था ॥ ११ ॥

सीतामुत्पलपत्रार्थी नीलकुञ्जितमूर्ध्वंजाम् ।
अप्यद् वै वररिहा मध्ये यत्नररररसात् ॥ १२ ॥

वे काले-काले पुँपपले बालोभासी कमलध्वजेना सुन्दरी
सीतासे नानर और रक्षोश्री मरी समझे पुना इस प्रकार
चरने लगे— ॥ १२ ॥

यत् कर्तव्य मनुष्येभ्य धर्मणां प्रतिमार्जितम् ।
तत् कृत रात्यत्र हस्ता मयेद् मानकाङ्क्षिता ॥ १३ ॥

अपने निरस्कारका बरबा चुकानेके लिये मनुष्यका ज
कर्तव्य है वह सब मैंने अपनी मानरक्षकश्री अभिवादासे
रक्त्तक बच करके पूर्ण किया ॥ १३ ॥

निर्जिता जीवस्योक्तस्य तपसा भाषितप्रमत्ता ।
अगस्त्येन वुराधर्या मुमिता वक्षिणेभ्य दिक् ॥ १४ ॥

जैसे तपस्यासे मासित भक्त फलवाद्ये अथवा तपस्या-
पूर्वक परमात्मसम्पन्न चिन्तन करनेवाले मूर्ति अगस्त्यने
बाबायि और इत्यस्य भक्तने श्रीवक्ष्यतेके लिये दुर्गम हुई
वक्षिण दिशाके लीला या उली प्रकार मैंने रक्त्तके बधने
पकी हुई द्रव्यके लीला है ॥ १४ ॥

विविधभास्तु भर्तुं त वोऽयं एणपरिभ्रमा ।
सुतीर्थः सुहृदा वीर्यान् स्वदर्यं मया कृत्वा ॥ १५ ॥

तुम्हारा कल्याण हो । तुम्हें मात्रम इना कहिये कि
मैंने जो यह सुदृढ परिभ्रम उठाया है तथा इन मित्राक
पराक्रमसे ज इसमें निश्चय पायी है वह सब तुम्हें पानेक
स्विय नहीं किया गया है ॥ १ ॥

रक्षत्य तु मया घृष्टमपवाद् च सत्त्वता ।
प्रक्यातस्यासवस्य न्यङ्ग च परिमार्जितम् ॥ १६ ॥

कदाचारकी रक्ष सब और जैसे हुए अपवादाश्च निवारण
तथा अपने सुविध्यात बंधनर लो हुए कष्टकष्ट परिमार्जन
करनेके लिय ही वह सब मैंने किया है ॥ १६ ॥

प्रातचारिवसंज्ञा मम प्रतिमुखे स्थिता ।
वीणा नयानुरन्ध्रस्य प्रतिफूलासि म दृढा ॥ १७ ॥

तुम्हारे चरित्रमें तरेहका अवसर उपस्थित है । फिर भी
तुम मेरे लक्ष्मी हो । जैसे औंखके रणिकी हीपककी
स्थिति नहीं सुगन्धी उन्ही प्रकार अब तुम तुम्हें अमन्त
भूमिय बन पड़ती हो ॥ १७ ॥

नद् गच्छ स्यानुजानऽथ यथैवं जनकारमज्र ।

पता दश विशेषे भद्रे कायमसि न मे त्यज ॥ १८ ॥

अतः काककुमारी । तुम्हारी जहाँ इच्छा हो जहाँ
बाधो । मैं अपनी ओरसे तुम्हें अनुमति देता हूँ । मरे । वे
रुद्धे दिशाएँ, तुम्हारे लिये खुली हैं । अब तुमसे मेरा कोई
मन्थन नहीं है ॥ १८ ॥

का पुमांस्तु कुण्डे जातः कियं परगुहोषितम् ।
तेजस्वी पुनरावधात् सुहृत्सोमेन जेतस्ता ॥ १९ ॥

जैसे ऐसा कुम्भीन पुत्रा रंगा च ठेकसी संकर मैं
दूखेके भरमें रही हुई लीला केवल इस समस्त कि न
मेरे लय बहुत विनीतक रक्षर चौदार्द स्थापित कर चुकी है
मन्ते भी प्रहय कर लगेगा ॥ १९ ॥

रावणात्परिहिष्यां दद्यां दुष्टं न भुजा ।
कथ त्वां पुनरावधां कुल व्यपविशमहात् ॥ २ ॥

पञ्च तुम्हें अपनी गोबरमें उठाकर ल गया और तुमपर
अपनी वृषि दधि बाध चुका है एही दधमें अपने कुम्भी
महात्, कदात्त दुष्मा मैं फिर तुम्हें जेते प्रहय कर सकता हूँ ॥
यद्यपि निश्चिंता म त्वां सोऽपमहासावित्ते मया ।

यासि मे त्वव्यभिच्छोके यथेष्टं गन्मत्तमिति ॥ २१ ॥

अता कि उदरेभ्यसे मैंने तुम्हें लीला था, वह कि उ
गया—मेरे कुम्भीके फलकका मन्थन हो गया । अब मेरी तुम्हारे
प्रति ममता या आलसि नहीं है अता, तुम जहाँ जाना चाहते
च सकती हो ॥ २१ ॥

त्वय भ्याहृत भद्रे मयैतत् कृतबुद्धिना ।
अक्षयमे वाद्य भरतं कुरु बुद्धिं पथानुगतम् ॥ २२ ॥

मरे । मेरा यह निश्चित विचार है । इसके अनुसर
ही अब मैंने तुम्हारे लक्ष्मीने ये बातें कही हैं । तुम जाओ तो मन्थ
या अक्षयक संक्षयमें तुमपूर्वक रहनेका विचार कर सकती
हो ॥ २२ ॥

राजुष्म वाद्य सुधीय राक्षसे या विभीषणे ।
निबधाय मनः सीते यथा न सुकामात्मन्य ॥ २३ ॥

लक्ष्मी ! तुम्हारी इच्छा हो तो तुम राजुष्म वातरण
सुधीय अथवा राक्षसय विभीषणके पास भी रह सकती हो ।
जहाँ तुम्हें सुख मिले वहाँ अमन्त मन लगाओ ॥ २३ ॥

नहि त्वां रावणा द्यूता विष्णुरूपा ममेतन्नाम् ।
मर्षयत् चिर सीतं सगुहो पर्यवस्थितम् ॥ २४ ॥

हीते ! तुम जैसी विष्णुरूप-लक्ष्मीसे सुशोभित मन्थेय
नदीका अपने भरमें स्थित देखकर रावण चिरकालका तुमसे
दूर रहनेका कष्ट नहीं कर सका होगा ॥ २४ ॥

ततः प्रियार्थंभयणा तत्प्रिय
प्रियातुपशुस्य चिरस्य मातिन्दी ।

मुमाश्च यार्थं दृष्टी तदा धुरां
गजमुह्यत्तभिहृतय चन्दरी ॥ २५ ॥

अं कदा प्रियं वचनं मुननेके ही योग्यं थीं, वे मन्दिनी
 शिव त्रिराजके बाद मिल हुए प्रियतमक मुल्लसे ऐसी अग्रिय

कात मुनकर उच समय हायीकी रूँइसे भावत हुई क्ताके
 समन भौसू बहाने और रने सर्गी ॥ २५ ॥

इसार्थे भोगमायाज वाक्यकीयये भाविकाम्ये सुदक्षणादे पञ्चदशधिकशततम सर्गः ॥ ११५ ॥
 एत प्रकार मंत्रान्तरादिनिर्मित अर्थमायाज अतिकाम्यक सुदक्षणादे पक ली पदार्थों सम पूरा हुआ ॥ ११५ ॥

पोडशाधिकशततम सर्ग

सीताका भीरामको उपालम्भपूर्ण उचर दक्षर अपने सतीत्वकी
 परीक्षा देनेके लिये अग्निमें प्रवेश करना

एवमुना तु बद्धी पक्षप रोमहणम् ॥
 गणपण सरोपण भुत्वा प्रष्पयित्वाभयत् ॥ १ ॥
 भीरुनापबने रणपूर्वकं क्व इष उच्य रोगटे खडे कर
 बनेशकी क्ठार वात क्ठी; तप उसे मुनकर विदेहराजकुमारी
 रणक मनमं बड़ी भयया हुई ॥ १ ॥
 सा तदाभुतपूर्व हि जने महति मैथिली ।
 भुक्त्वा भनुवयो घोर क्ठजयाघनताभयत् ॥ २ ॥
 इतन बड़े कनकशुभ्रयमें अपने स्वामीके मुँहसे ऐसी भयंकर
 धन अ परक कमी क्ठनोंमें नहीं पड़ी थी; मुनकर मिथिलया
 कुमारी क्ठके गड़ गयी ॥ २ ॥
 प्रविशस्वीय गात्रायि स्वानि सा जनकालमजा ।
 गन्धारेस्तैः सदास्वयं सृशामभूण्यपर्वतपत् ॥ ३ ॥
 उन नामाजासे पीड़ित हाकर वे कनककिशोरी अपने ही
 मनोंमें विहीन-खी हाने सर्गी । उनक नेबोंसे भौंठुभौंठु
 मसिख प्रकाह करी हो गया ॥ ३ ॥
 क्ठम वायुपरिक्रिञ्चन प्रमाज्जस्ती स्वमालनम् ।
 रनेगैद्रव्या वाष्वा भर्ताऽरिमिवममयीत् ॥ ४ ॥
 नेबोंके क्ठसे भीसे हुए अपने मुल्लका अंशकसे पोंछती
 हुई वे धीरे धीरे गह्वर वाणीमें पतिरेपसे इत प्रकार
 क्ठके—॥ ४ ॥
 कि मामसहसा वापयमीहण भोगवाक्यम् ।
 क्ठम भावयस धीर प्राकृत प्राकृतामिय ॥ ५ ॥
 धीर । भय ऐसी क्ठार अनुचित, कर्णक और
 क्ठी वात मुल्ल क्ठी मुता रहे हैं । वेसे क्ठी निम्न श्रेणीक
 पुरप निम्नघटिकी ही क्ठीने न करने योग्य वातें भी कर
 वाक्या है उन्ही तरह भय भी मुल्लसे कर रहे हैं ॥ ५ ॥
 न तथासि महायाहा यथा मामवगच्छसि ।
 प्रत्ययं गच्छ म स्पन पारिजत्रैय त दाप ॥ ६ ॥
 मरावाहा । भय मुल्ल भर श्रेणी समसत हैं बंधी में
 नहीं हैं । मुल्लपर विन्नात कीजिये । मैं अपने तदाचरकी ही
 परप लाकर चरती हूँ कि मैं संदेहक योग्य नहीं हूँ ॥ ६ ॥
 तूपस्त्रीजा प्रगारण जति त्व परिशुद्धसि ।
 परिशुद्धैर्ना तदा तु यदि तद्द परीक्षित्य ॥ ७ ॥
 धीर श्रेणीकी क्ठियाय भावयत इत्येव यदि भय

समूची क्ठी-मानियर ही संदेह करत हैं तो यह उचित नहीं है ।
 यदि आपने मुझे अच्छी तरह परख लिया हो तो अपने इस
 संदेहक मनसे निष्काम दीजिये ॥ ७ ॥
 यद्दं गात्रसस्पर्शं गतासि यियश प्रभो ।
 कामकरा न म तत्र शैय तत्रापरत्थयति ॥ ८ ॥
 प्रभो । गणक शरीरसे अं मरे इम शरीरक स्थल हो
 गया है उसमें मेरी विषयता ही कारण है । मैंने स्नेहछासे
 रख नहीं किया था । इन्में मरे तुभाम्यक ही शय है ॥८॥
 मयधीन तु यत् तम्ये हृदय स्वयि यतति ।
 पराधीनेषु गात्रेषु कि करिष्याम्यनीभ्यारि ॥ ९ ॥
 अं मरे मधीन है, यह मय हृदय क्ठम भापमें ही स्थल
 रहता है (उधरप क्ठक्य कर्षे अभिकार नहीं कर सकता),
 परंतु मरे अङ्ग तो पराधीन य । उनका यदि क्ठसे स्पर्श हो
 गया तो मैं विषय अवसा क्ठम कर सकती थी ॥ ९ ॥
 सह सद्युखभाषण ससर्गेण च मानय ।
 यदि तद्दह न विहाता हता तनासि शाश्वतम् ॥ १० ॥
 धूलुवोंके भय देनेबाक प्राणनाय । इम र्ठनोंक परस्पर
 अनुयाग क्ठम साथ-साथ बढ़ा है । इम क्ठम एक साथ रहते
 भाये हैं । इतनेपर भी यदि आपने मुझे अच्छी तरह नहीं
 समझा क्ठ मैं क्ठके लिये मारी गयी ॥ १० ॥
 प्रयितस्त महापीरा हनुमानवल्मेककः ।
 खड्गास्वाह त्वया राजन् कि त्वा न विसर्जिता ॥ ११ ॥
 महायाग । सद्गामें मुझे देखनेके लिये क्ठम आपने
 महापीर इनुमानक मेज या उड़ी क्ठम्य मुल्ल क्ठी नहीं त्याग
 दिया ? ॥ ११ ॥
 प्रत्यक्ष पानरस्यास्य तडापयसममत्तरम् ।
 त्वया सत्यकया धीर त्यक्त स्याज्जीयित मया ॥ १२ ॥
 उल क्ठम पानरशीर इनुमानक मुल्लम आरक हाय
 अपने त्यागकी क्ठम मुनकर तामाम इनक क्षामने ही मैंने
 अपने प्रयोंक परित्याग कर लिया इत्या ॥ १२ ॥
 न वृथा तं भ्रमाऽयं म्यात् सद्य म्यस्य ज्ञयितम् ।
 सुहृदजनपरिक्रुणं न चाय विपन्नस्तय ॥ १३ ॥
 फिर इत प्रकार अपने दोबदध सद्गामें हाथ-हाथ आपक

यह मुझ आदिभक्त व्यर्थ परिभ्रम नहीं करता पशुवा तथा व्यापके
ये मित्र श्रेय भी अक्षरण कष्ट नहीं उठाते ॥ १३ ॥

त्यथा तु नृपशार्ङ्गुल रोपमेवातुपतैतत् ।
लघुमेव मनुष्येण स्त्रीत्वमेव पुरस्कृतम् ॥ १४ ॥

नृपश्रेष्ठ । आपने मोझे मनुष्यकी भौति केवल रोपका
ही अनुकरण करके मेरे दीर्घ-सम्पन्न-विचार छोड़कर केवल
निम्नकामिनी की सिद्धिके स्वभावको ही अपने धामने रक्खा है ॥
अपदेशो मे जनक्यान्तोत्पत्तिर्नृप्यातच्छब्द ।

मम वृत्त च वृत्तच बहु ते न पुरस्कृतम् ॥ १५ ॥

आचारके समझा धामनेवाले देवता । राक्ष कनककी
बहुभूमिमें आर्धित होनेके कारण ही मुझे पानकी कष्टकर
पुत्रता बाता है । वास्तवमें मेरी उत्पत्ति कान्ते नहीं हुई है ।
मं नृपल्लो प्रभृत् हुई हैं । (आचारण मानव-व्यतिरेके विषय
हैं—दिव्य है । उन्हीं उद्भूत मेरा आचार विचार भी अत्यधिक
एवं दिव्य है; मुझमें आदिभक्त बह विद्यमान है परंतु) आपने
मेरी इन विशेषताओंअधिक महत्त्व नहीं दिया—इन सबको
अपने धामने नहीं रक्खा ॥ १५ ॥

न प्रमाणीकृता पाणिचाल्ये मम निपीडिता ।

मम भक्तित्वा शीघ्र च सर्वे स पृष्टता कृतम् ॥ १६ ॥

आस्थाब्रह्मामें भ्रमने मेरा पाणिग्रहण किया है इसकी
भार भी ध्यान नहीं दिया । आपके प्रति मेरे हृदयमें जो
भक्ति है और मुझमें जो शीघ्र है, वह सब आपने पीछे ठके
दिया—एक क्षण ही मुझ दिया? ॥ १६ ॥

इति ह्युपन्ती रुदती धार्यागद्गद्भाविणी ।

उद्यच्च लक्ष्मण सीता वीन भ्यान्वरायणम् ॥ १७ ॥

इतना कदवे-कदवे धीताका गला भर आया । वे टंठी और
भौंल बहाती हुईं दुखी एवं किन्तामन होकर देडे हुए
हृत्सवसे गद्गद बाजीमें बोली— ॥ १७ ॥

त्रितां मे कुच सौमित्रे व्यसमन्वाह्य मेपजम् ।

मिष्यापयवोपहृत्वा ग्राह जीवित्तुमुत्सहे ॥ १८ ॥

भूमिब्रानन्दन । मेरे मित्रे किता वैचार कर हो । मेरे इस
कुक्षीरी यही दवा है । मिष्या कष्टदुःख कष्टद्वित होकर मैं
अश्वित नहीं रह सकती ॥ १८ ॥

ममीतेन गुणैर्भजा स्वराया जनससदि ।

या शुभा मे गतिर्गन्तुं प्रवेक्ष्ये हृद्यपाहमम् ॥ १९ ॥

मेरे स्वामी मेरे गुणोंमें प्रसन्न नहीं हैं । इनाने मेरी
सभामें मरा परित्याग कर दिया है । ऐसी दशामें मेरे मित्रे जो
उत्कृत मार्ग है उदार बानेक सिप मैं भक्तिमें प्रवृत्त
क्योंगी ॥ १९ ॥

परमुकस्तु विद्वह्य लक्ष्मणः परपीरहा ।

अमरवरात्मपत्रा राधय समुद्वेक्षत ॥ २० ॥

विद्वह्य-विद्वह्य एका पक्षेयय उभुपीरगा गहार करने
का उद्भवणन अमरके यधीनत हाकर भीरामचन्द्रकीभी ओर

देखा (उनसे धीताकीका यह अपमान रहा नहीं उठा
या) ॥ २० ॥

स विहाय मनश्छन्द रामस्याकरसङ्कितम् ।

षिता चक्रात् सौमित्रिमते रामस्य वीर्यवान् ॥ २१ ॥

परंतु भीरामके इच्छासे युक्ति होनेवाले उनके हार्दिक
अभिप्रायको अनकर पराक्रमी छम्पणने उनकी सम्मतिसे ही
किता वैचार की ॥ २१ ॥

नहि राम तथा कश्चित् कलकलकयमोपमम् ।

अनुनेतुमयो वक्तुं प्रष्टुं वाप्यशकत् सुहृत् ॥ २२ ॥

उस समय भीरुनायकी प्रसन्नस्थीन छंशरमरी नमरा
के समान लोगोंके मनमें मय उत्पन्न कर रहे थे । उनको
कहाँ भी मित्र उन्हें समझाने उनसे कुछ कहने अथवा उनमें
ओर देखनका साहस न कर सका ॥ २२ ॥

बाधोनुक्त स्थित राम उता कृत्वा प्रवृत्तिजम् ।

उपावर्तत वैश्वही वीर्यमानं हृत्तारामम् ॥ २३ ॥

मन्वान् भीराम सिर छुआये लगे थे । उन्हीं अन्वामें
धीताकीने उनकी परिक्रमा की । इसके बाद वे प्रवृत्ति
अनिके पास गयीं ॥ २३ ॥

प्रथम्य वैयतेन्यस्य ग्राह्येभ्यश्च मैथिली ।

बन्नाड्विपुटा चन्दमुवाचाशिसमीपता ॥ २४ ॥

वहाँ देवताओं तथा ब्राह्मणोंके प्रणाम करके मिथिले-
कुम्हरीने दोनों हाथ छोड़कर अग्निदेवके समीप इस प्रकार
कहा— ॥ २४ ॥

यथा मे हृदय मित्त्वं न्यसर्पति रामबात् ।

तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वता पातु पात्रका ॥ २५ ॥

यदि मेरा हृदय कभी एक क्षणके लिये भी भीरुनाय-
कीके वर न हुआ हो तो सम्पूर्ण ब्रह्मके लक्ष्मी अग्निदेव मेरी
सब ओरसे रक्ष करें ॥ २५ ॥

यथा मां शुद्धचारिणो युषां जानन्ति रामवा ।

तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वता पानु पात्रका ॥ २६ ॥

मेरा चरित्र शुद्ध है फिर भी भीरुनायकी मुझे ब्रह्म
समझ रहे हैं । यदि मैं कर्णया निष्कण्डू हाठों को सम्पूर्ण
ब्रह्मके लक्ष्मी अग्निदेव मेरी सब ओरसे रक्ष करें ॥ २६ ॥

कर्मणा ममता वाचा यथा भक्तिवरायणम् ।

राष्य स्वयधर्मस्य तथा मां पातु पात्रका ॥ २७ ॥

यदि मैंने मन वाणी और क्रियाद्वय कभी कर्म
पनोंके कृता भीरुनायकीका अतिप्रमत्त न किता छे तो
अग्निदेव मेरी रक्षा करें ॥ २७ ॥

आदित्या भगवान् वायुर्विगाधन्त्रस्तपैव च ।

आह्वापि तथा सभ्ये राधिव्य पूषिषी तथा ।

ययाम्यपि विजानन्ति तथा वारिचसमुत्तम् ॥ २८ ॥

यदि भगवान् त्वं वायु दिशाई, अन्नया विन
रत इन्द्र सम्पाई, पूषी देवी तथा अन्य देवता भी मुझे

पुत्र चरितेषु पुत्र बन्तते ही त्व अग्निदेव मेरी सब ओरसे
रख करे ॥ २८ ॥

पद्ममुक्त्वा तु यद्वही परिक्रम्य हुताशनम् ।

विषया ज्यलन वीत निःशङ्कोत्तरामन्य ॥ २९ ॥

ऐस करके विदेहरानकुमारीने अग्निदेवकी परिक्रमा की

और निःशङ्क विचले वे उठ प्रज्ज्वित अग्निमें समा गयी ॥

अन्य सुमहास्तत्र चारुघृष्टसमाफुलः ।

इदं मैथिली वीतां प्रविशन्ती हुताशनम् ॥ ३० ॥

बन्धों और बूझते मरे हुए बरोंके मरान बन-

क्यपने उन वीसिलती मिथिलेशकुमारीकी बन्दी आगमें

पसेब करते देला ॥ ३ ॥

सा तसमवादेभाभा तातकाश्चलभूयसा ।

पपत जलन वीत सर्वलोकस्य सतिथी ॥ ३१ ॥

तयसे हुए नूतन मुक्ताकी-सी अग्निबाकी सीता आगमें

तबकर मुद्र किये गये मुक्ताके आभूषणसे विभूषित थी ।

वे उन बन्धोंके निःशङ्क उनके देखते-देखते उठ नकली आगमें

दूर पड़ी ॥ ३१ ॥

इत्युक्त्वा विदप्रसङ्गां पत्न्यां हृष्यगहनम् ।

सीता सशक्ति रूपामि रूपमवतिनिभा तदा ॥ ३२ ॥

जनेकी बन्दी हुई वेहीक समान अग्निपत्नी विद्याब-

धन्य थीवदेवीसे उस समय सपूर्ण नूतने आगमें गिरते देला ॥

हृष्यपै भीमप्रामायण बास्कीकीसे अदिक्रम्य

एत प्रमर भीवानीकिर्मित अरंगमायण अदिक्रम्यके

इत्युक्त्वा महाभागं प्रविशन्ती हुताशनम् ।

श्रुययो वषगाधया यजे पूर्वाहुतीमिव ॥ ३३ ॥

श्रुतियों, देवताओं और गन्धबनि देला बते यकने

पूर्वाहुतिवश होम होता है, उठी प्रमर महाभाग थीता बन्दी

आगमें प्रवेश कर रही है ॥ ३३ ॥

प्रभुमुक्तुः स्त्रियः सर्वास्ता इष्टा हृष्यगहने ।

पत्न्यां सस्वृता मन्दीनसोर्धारामियाप्यरे ॥ ३४ ॥

ऐसे यकने मन्नोंद्वारा धंकार की हुई यनुवायाकी

आहुति दी जाती है उठी प्रमर दिव्य आभूषणसे विभूषित

छीताको आगमें गिरते देल वहाँ आयी हुई सभी स्त्रियों

कीक उठी ॥ ३४ ॥

इत्युक्त्वा प्रयो लोक्य हृष्यगर्भदानया ।

शार्ता पत्न्यां गिरये त्रिविधाद् देवतामिव ॥ ३५ ॥

छीनों लोकके दिव्य प्राणी श्रुति, देवता, गन्धर्व तथा

दानबाने श्री महाकवी छीताको आगमें गिरते देला मनो

सर्गसे शर देवी शापप्रका होकर नरकमें गिरी हा ॥ ३५ ॥

तस्यामग्निं विद्यास्या तु हाहेति विपुलाः स्तन ।

रक्षसां धानराणा प सम्यभूषाद्गुणायमा ॥ ३६ ॥

उनके अग्निमें प्रवेश करते समय उलट और बनर

कोर करते शाश्वर करने लगे । उनका वह अश्रुत भात-

नाह चारों ओर गूँन उठा ॥ ३६ ॥

सुखकाण्डे षोडशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११६ ॥

एत प्रमर भीवानीकिर्मित अरंगमायण अदिक्रम्यके मुक्तापयने एक सी छत्रद्वारा सम पूरा हुआ ॥ ११६ ॥

सप्तदशाधिकशततम सर्ग

भगवान् धीरामक पास इक्ष्वाओंका आगमन तथा ब्रह्माद्वारा उनकी भगवत्पाका प्रतिपादन एव स्ववन

लने कि दुमन्त रामाः भुवैव यतां गिराः ।

दुषी मुहूर्ते धमतमा याप्यप्याहुन्मन्त्रेचनः ॥ १ ॥

वदन्तः प्रामाया भीयम हाहाकर करनेवाले बनर

और पक्षारी छौं मुनकर मनकीमन बहुत दुली हुए

और भा तैसे अश्रु भरकर रो पड़ितक कुछ साबते रहे ॥

का पक्षयया राजा यमश्च पितृभि सह ।

सहस्राक्षश्च द्वयो घृणश्च जलम्भरा ॥ २ ॥

पक्षययनः धीमान् महादयो एवज्यजः ।

पता सस्य लोहस्य प्रज्ञा प्रज्ञविज्ञा परः ॥ ३ ॥

एत सर्गे समागम्य विमानैः स्यसनिभः ।

भाग्यम् नगरीं ज्ञामभिजमुश्च राधयम् ॥ ४ ॥

इन्ने समय विपद्यक पुष पक्षयब कुदेर स्तिपैसदित

पक्षय दक्षभयके स्थायी वरस नेत्रपायी इत, अकक

परिची बहन विनयशी धीमान् वृषभारज महादय तथा

अश्रुत अश्रुत सप्त प्रवराभासे ४२ अनायी-य तव

देवता सर्वदुस्व विष्णुद्वारा सद्वापुसे भाकर भीरुनाथकीक

पास गये ॥ २-४ ॥

उक्ता सहस्राभरणान् प्रमृष्टा विपुलान् भुञ्जान् ।

भद्रुःखिदशमध्या राधयं प्राञ्जलि स्थितम् ॥ ५ ॥

भगवान् भीयम उनके समन हाथ बड़ लहे थ । वे

भेद देवता आभूषण से भठान अपनी विद्यास नुवाभीक

उत्तरकर उन्त घन्त-॥ ५ ॥

कता सयस्य लाकस्य धेष्टा पानविदां विभुः ।

उपशस फध सतिता पत्न्यां हृष्यगहन ।

कथ वृगाणधष्ठमात्मान मययुक्थस ॥ ६ ॥

भीयम । भर सपूर्ण विधक उत्तरकर, स्त्रियोंमें

भेद भीर व प्रारक है । फिर इत समय आगमें गिरी हुई

छेताके उक्ता कने कर रहे हैं । भर कनका वृषभयने

भेद विष्णु ही हैं । इत वारा कन नहीं कनस रहे हैं ॥ ६ ॥

श्रुतधामा उमुः पूरे यक्ष्य च महापति ।

१ ५० की बनर-उठ पाव ।

व्यापामपि लोकाणामाधिक्यता स्वयंप्रभुः ॥ ७ ॥
 पृथक्प्रभे वस्तुभोगं प्रकृपति च श्रुतवामा नामक वस्तु
 पे ये आप ही हैं। आप तीनों लोकोंके अधिकता स्वयं-
 तु हैं ॥ ७ ॥

ब्रह्माणामप्रभो ब्रह्मः साप्तात्ममपि पञ्चमः ।
 मन्विमो चापि कर्षी ते स्यात्साम्प्रमसी ब्रह्मी ॥ ८ ॥
 ब्रह्मोमें अठहें ब्रह्म और सप्तोमें पाँचहें साम भी आप ही
 हैं। दो अग्निहोत्रमात्र आपक अन हैं और स्वयं तथा अत्रमा
 नेत्र हैं ॥ ८ ॥

अन्तं चादौ च मध्ये च हृदयसे च परतप ।
 उपसप्त च वैदर्ही मानुषा प्राकृतो यथा ॥ ९ ॥
 शत्रुश्रेष्ठ संताप देवस्य देव । शक्रिके अग्निः अन्त
 और मध्यमें भी आप ही किलासी देते हैं। फिर एक साधारण
 मनुष्यकी भांति आप हीकी उभेय कर्ष कर रहे हैं ॥ ९ ॥
 तस्युक्तो साकपालैस्तेः स्वामी लोकस्य राजवः ।
 भवतीत् त्विन्द्राभ्यङ्गान् रामो धर्मभूता वरः ॥ १० ॥

उन लोकपालोंके एक करनेपर धर्ममात्रमें भेद
 अन्तयाय यनुनाय भीगमने उन भेद देखनामें है—॥ ११ ॥
 अहम्मान मानुष मध्ये राम वृशारथमजम् ।
 साऽह यच्च यत्तार्हा भगवास्तद् ब्रवीतु मे ॥ ११ ॥
 वेवाम् । मैं छ अपनेको मनुष्य ब्रह्मपुत्र राम ही
 समस्त हूँ। ममान् । मैं को हूँ और अहो मया हूँ वह
 सब आप ही मुझे बताइये ॥ ११ ॥

इति तुवायं काकुत्स्थ ब्रह्मा ब्रह्मविदां परा ।
 भवतीच्छत्रुषु मे वाप्यं सत्य सत्पराक्रम ॥ १२ ॥
 भीरुनायकीके एक करनेपर ब्रह्मवेदाओंमें भेद ब्रह्मा
 भीने उनसे इस प्रकार कहा—कवपराक्रमी भीरुधीर ।
 आप मेरी कर्षी बात सुनिये ॥ १२ ॥

भवान् नरायणो देवा धीमाभ्यस्तपुधा प्रभुः ।
 एकऽहो वराहस्य भूतभयसपत्नजित् ॥ १३ ॥
 आप एक धारण करनेवाले सर्वभय भीमान् भगवान्
 नायक देव हैं एक राक्षस दूषीपारी बराह हैं तथा
 देवताओंके भूत एवं भागी शत्रुभोग्य जीवनेवाले हैं ॥ १३ ॥
 अहंर ब्रह्म सत्य च मायं चान्तं च राजवः ।
 सांख्यानं ह्य परा धर्मो विष्वक्सनात्तुर्मुखा ॥ १४ ॥

परुणम्न । आप अनिनाथी परब्रह्म हैं। सचिके अग्निः
 मय्य और अन्तमें सत्यरूपसे विद्यमान हैं। आप ही लोकोंके
 परम धर्म हैं। आप ही विष्वक्सेन तथा चार मुखवाली
 भीरु हैं ॥ १४ ॥
 साहभ्यया हारीकटाः पुदगः पुकयात्तमा ।
 भजितः दारुपुत्र विष्णुः कृष्णश्चैव वृहदस्र ॥ १५ ॥

आप ही दारुपुत्र्य दृष्टिगत अन्तमात्रो पुदग और
 पुकजवम हैं। अन्त विष्वक् परात्मि नहीं होत। आप नन्वक

नामक सङ्घ धारण करनेवाले विष्णु एवं महान्भी कृष्ण हैं ।
 सेनानीमामभीष्ट त्वं बुद्धिः सत्त्वं क्षमा क्षमा ।

प्रभवत्साप्तात्म्यं त्वमुपेतो मनुष्यतः ॥ १६ ॥
 आप ही देवसेनापति तथा गौरीके मुष्णिचा अन्त
 नेता हैं। आप ही बुद्धि सत्त्व, क्षमा, इन्द्रकीष्ट तथा
 सृष्टि एवं प्रकल्पके धारण हैं। आप ही उपेन्द्र (काम्य) को
 मनुष्यतः हैं ॥ १६ ॥

ब्रह्मकर्मा महेन्द्रस्त्व पञ्चनाभो रजस्तकत् ।
 शरण्या शरणं च त्वामाहूर्विष्या महर्षया ॥ १७ ॥
 अत्रक्ष भी उग्ररु करनेवाले महेन्द्र और उग्ररु अन्त
 करनेवाले शास्त्ररूप पुमानाम भी अन्त ही हैं। दिव्य
 गार्हर्गिण आपने शरणदाता तथा शरणप्रदसत्त्व कते हैं ॥
 साहस्रश्रेष्ठो वेदारमा शतशीर्षो महर्षभा ।

त्वं त्रयाणां हि लोकानामधिक्यता स्वयंप्रभुः ॥ १८ ॥
 अन्त ही शक्यों शास्त्ररूप शींग तथा शैर्षो विविक्त-
 रूप मत्तकोले मुक्त वेदरूप महाहृदय हैं। आप ही तीनों
 लोकोंके अधिकता और स्वयंप्रभु (परम स्वतन्त्र) हैं ॥ १८ ॥
 सिद्धानामपि साप्तात्मनामभ्यधासि पूर्वजा ।
 त्व यक्षस्त्वं वयकस्यूरस्त्वमोक्षारः फतासरा ॥ १९ ॥

आप सिद्ध और कर्षोंके अभय तथा पूर्वज हैं।
 वय वपद्वार और ओंकार भी आप ही हैं। आप कोले
 भी भेद परमात्मा हैं ॥ १९ ॥

प्रभवं मिधनं चापि नो विदुः को भवानिति ।
 हृदयसं सर्वभूतेषु गोषु च ब्राह्मणेषु च ॥ २० ॥
 आपके अविर्भाव और विरोधावका कोई नहीं अन्त।
 अन्त कौन हैं—इत्यत्र भी किसीको पता नहीं है। समस्त
 प्राणियोंमें गोधर्मों तथा ब्राह्मणोंमें भी आप ही किलासी
 देते हैं ॥ २० ॥

विभु सर्वोऽसु गगनं परितेषु नदीषु च ।
 सहस्रचरणा धीमाश्चतरीर्यः सहस्रबद्ध ॥ २१ ॥
 समस्त शिवाधर्मों आश्रममें परतंत्रों और नरिर्षोंमें
 भी आपकी ही वत्ता है। आपके सहस्रों चरण, सैकड़ों
 मस्तक और सहस्रा नेत्र हैं ॥ २१ ॥

त्व भारपसि भूत्वानि पृथिव्यां सचपर्वतान् ।
 अन्त पृथिव्याः ससिद्धं हृदयसं त्वं मत्तोरग ॥ २२ ॥
 आप ही कर्षुयें प्राणियोंको पृथ्वीके और समस्त पर्वतों-
 के धारण करत हैं। पृथ्वीका अन्त हा करनेपर आप ही
 कर्षक उत्तर महान् सर्व—शमनागके स्वयं किलासी देते हैं ॥
 श्रीस्त्याकान् धारयन् राम वृशगाभ्यवदामयान् ।

अहं त हृदयं राम त्रिधा दृष्टी सूरस्यसी ॥ २३ ॥
 भीराम । आप ही तीनों लोकोंके तथा देवता, कर्षण
 और राजयोगोंके धारण करनेवाले विराट् पुदग नायक हैं।

सक हृदयमे रमण करनेवाला परमात्मन् । मैं त्रधा भाषक
 हूँ और देवी सत्यवी भाषत्री भिदा ॥ २३ ॥
 देवा रोमाणि गात्रेषु द्रक्ष्यन्ति निर्मिता प्रभो ।
 निमगस्त स्सूया पत्रिहममये विवसस्तथा ॥ २४ ॥
 प्रभो । मुझ त्रधाने त्रिधा ही है, वे सद्य देवता
 आपके विपद् शरीरमें रम हैं । आपके नेत्रोंका बंद होना
 एव और सुब्ना ही दिन है ॥ २४ ॥
 संस्कारास्त्यभयन् यथा नैतदस्ति त्वया त्रिधा ।
 अथा सर्वं शरीरं त स्वैर्यं ते वस्तुभस्तत्कम् ॥ २५ ॥
 'वेद आपके संस्कार हैं । आपके किता इव अस्त्य
 मस्तित नहीं है । समूच विश्व आपका शरीर है । पृथ्वी
 आपकी कियता है ॥ २५ ॥
 अग्निः कोपः प्रसादस्त सोमः भ्रूवस्तसकृत्प्रभः ।
 त्वया लोकात्मनः श्रान्ता पुरा स्वैर्विकर्मैस्त्रिभिः ॥ २६ ॥
 'अग्नि आपका कोप है और चन्द्रमा प्रसन्नता है कथ
 लक्ष्मीं धीकस्तत्र चिह्नं धारण करनेवाला भगवान् विष्णु
 आप ही हैं । पूर्वप्रभमें (वामनाकारके समय) आपने ही
 अपने तीन पणोंसे तीनों लोकों का नाम किये थे ॥ २६ ॥
 मोहोन्मथ हृद्यो राजा यन्नि वदत्वा सुवाक्यम् ।
 संश्रयसर्गमिर्वाण विष्णुर्देवा कृष्यः प्रजापतिः ॥ २७ ॥
 'आपने अस्मन्त शयन देवराज बलिष्ठां बौधकर इन्द्र
 को तीनों लोकोंका राजा बनाया था । सीता सखत् अग्नी हैं
 और आप भगवान् विष्णु हैं । आप ही सविद्यमानस्त्वस्म
 मन्तर्न धीकृष्ण एवं प्रजापति हैं ॥ २७ ॥

यथायं रायणस्यह प्रथिद्यो मानुरीं तनुम् ।
 तद्विद् नस्तव्या कायं कृत धमभुतां वर ॥ २८ ॥
 'धर्मात्माओंमें भेद्य रघुवीर । आपने रायणका वच
 करनेके लिये ही इह व्यसने मनुष्यके शरीरमें प्रवेश किया
 था । हमसंगोंका धर्म आपने स्थापन कर दिया ॥ २८ ॥
 मिहृतो राजणो राम प्रहृद्यो विषमाक्रम ।
 अमोघं त्रेव शीर्यं त म तऽमोघाः पदाक्रमः ॥ २९ ॥
 'भीरम । आपके द्वारा रायण मारा गया । सब आप
 प्रसन्नतापूर्वक अपने निम्न धाममें पधारिये । देव । आपका
 वच अमोघ है । आपका पदाक्रम भी अमोघ होनेवाले नहीं हैं ॥
 अमोघं वृषाल राम अमोघस्तथ सस्तथः ।
 अमोघास्ते भविष्यन्ति भक्तिमत्तां मया मुधि ॥ ३० ॥
 भीरम । आपका दर्शन अमोघ है । आपका स्तवन
 भी अमोघ है तथा आपमें भक्ति रखनेवाले मनुष्य भी इह
 नृमण्डलमें अमोघ ही होंगे ॥ ३० ॥
 ये त्या देयं भूष भद्रा पुराण पुढोत्तमम् ।
 प्राप्नुवन्ति तथा कामानिह लोके परत्र च ॥ ३१ ॥
 'आप पुराणपुढोत्तम हैं । विष्णुरूपधारी परमात्मा हैं ।
 जो लोक आपमें भक्ति रखेंगे, वे इह लोक और परलोकमें
 अपने सभी मनोरम प्राप्त कर लेंगे ॥ ३१ ॥
 इममार्यं स्वर्षं विष्पमितिहास पुरातनम् ।
 ये मराः कीरतिप्यवन्ति नास्ति तेषां पदाभवः ॥ ३२ ॥
 यह परम श्रेष्ठ त्रसाध्य कथा हुम्न दिव्य खोज तथा
 पुरातन इतिहास है । जो लोक इतका कीर्तन करेंगे उनका
 कभी पदाभव नहीं होगा ॥ ३२ ॥

इत्थयं श्रीमद्भगवतः वाक्योक्तयः अदिकाण्ये सुदृकाण्ये सप्तदशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११० ॥

इस प्रकार श्रीमद्भगवत्किर्तित अर्चनप्रथम अदिकाण्ये सुदृकाण्ये एक सौ सत्रहवें एवं पूरा हुआ ॥ ११० ॥

अष्टादशाधिकशततम सर्ग

मूर्तिमान् अग्निदेवका सीताको लेकर चितासे प्रकट होना और धीरामको समर्पित करके
 उनकी पवित्रताको प्रमाणित करना तथा धीरामका सीताको सहर्ष स्वीकार करना

पत्न्युवा शुभं धाम्य पितामहसमीरितम् ।
 मनुजवाय वैश्वीमुत्पपात विभायसु ॥ १ ॥
 'अग्नीदेव को हुए इन शुभ वचनोंको सुनकर मूर्तिमान्
 अग्निदेव विदेहनिदनी सीताका (चिताधी मौलि) गढ़ने
 लिये चितासे उतरको उठे ॥ १ ॥
 विपूपाय चितां तां तु वैश्वीं हृष्यवाहणम् ।
 उतस्यी मूर्तिमान्पु शूरीत्या अनकायमजाम् ॥ २ ॥
 उत चिह्नं दिव्यकर इपर-उपर किलरातं हुए दिव्य
 रूपधारी हृष्यवाहन अग्निदेव वैश्वी सीताको छाप लिये तुरंत
 ही उठकर लड़े हा गय ॥ २ ॥

तदवावित्यसकां तत्तत्रानभूयव्याम् ।
 रक्षाम्बरधरा बालां नीलकुञ्जितमूषजाम् ॥ ३ ॥
 अक्षिण्मत्प्राभरणा तथाकामनिश्रिताम् ।
 व्रीं रामाय वैश्वीमडे कृत्या विभायसुः ॥ ४ ॥
 सीताकी प्रातःप्रायसे सुपथी मौलि अरुच-पित कान्तिसे
 प्रकथित हो रही थी । तबपु हुए अनेक आनन्दन उनकी
 योग्य बदा रहे थे । उनका भीमशौर्य व्यक्त रंगधी रणधी काड़ी
 बदर रही थी । किन्तु प्रातःप्राय सुपराज बच सुश्रुति
 हात थे । उनकी अस्त्या नथे थी और उनका द्वारा पारण
 किये गये पूसोंके द्वार कुम्हलये तक नहीं थे । अनिम्य मुन्दरी

छनी छापी खीउत्र अभिनये प्रवेग कृते छम्य जेता रूप और
 नेप या बेते ही रूप-सौन्दर्यते प्रकथित होती हुई उन बेदेही
 को रोदने लकर अभिनेत्रने भीरामस्य समर्पित कर दिया ॥
 अश्वीत्थु तु तदा रामं सप्तरी सोकस्य पाकका ।

एषा तं राम वैदेही पापमस्यां न विधत्ते ॥ १ ॥

उस छम्य कोकसाधी अभिनये भीरामसे कहा— भीराम ।
 यह आपकी परमैवली विदेहराजकुमारी छीता है । इसमें कोई
 पाप या दोष नहीं है ॥ ५ ॥

नेत्र याथा न मनसा मैत्र बुद्धया न चक्षुष्या ।
 सवृत्ता वृत्तशीटीर्यं न ख्यामस्पखरक्षुभा ॥ ६ ॥

उत्तम आचाराधी इस द्रुमस्यस्या छतीने मन चापी
 बुद्धि अथवा नेत्रोंद्वारा भी आपके छिन्ना किसी दूरे पुरुषपर
 भावय न । पिया । इसने क्या आचारापरमल आपस ही
 आपस किया ॥ ६ ॥

रात्रणेनापनीतैया धीर्योत्सिच्छेन रक्षसा ।
 त्वया विरहिता दीन्य विवशा निज्जेमं सती ॥ ७ ॥

मरने बन्ध-पराक्रमर परम रक्षनेवासे रक्षस राजपने
 न्न इसर अपहरण किया या उस समय यह बेचारी
 छती तुले आभयमें अकेली थी—आप इसका पक्ष नहीं थे
 भनः यह कैवला थी (इसका कोई वधा नहीं चला) ॥ ७ ॥

कृष्या चात्पुत्रे गुप्ता स्वधिसा त्पतरापया ।
 रक्षिता राक्षसीभिश्च भेराभिर्षौरवुद्विभिः ॥ ८ ॥

एकपने इसे बंधक अन्तःपुरमें कैद कर लिया । इसपर
 परत बिठा दिया । मरणाक निवारणवाली भीरम रक्षसीयों
 इसकी रक्षवाली करने लगीं । तब भी इसका पित्त भयमें
 ही लगा रहा । यह आपकीको अपना परम अरुभय
 मानती थी ॥ ८ ॥

प्रसोम्यमान्या विविधं तन्यमान्या च मैथिली ।
 नाश्वित्यस्त तद्रक्षसस्यद्रतेनास्तरारमन्त्र ॥ ९ ॥

परतभार वर-उपदेके छेम दिये गये । इस विविधेय
 कुमारीपर बँट करार भी पड़ी; परंतु इसकी अल्पव्याया
 निरुद्ध भयके ही चिन्तनमें लगी रही । इसने उस रक्षसके
 हिसमें कभी एक पार भी नहीं लेया ॥ ९ ॥

यिबुद्धभावां निष्पाया प्रतिवृष्टीष्य मैथिलीम् ।
 न किंचिद्विधातव्या अहम्यद्रापयामि ते ॥ १० ॥

अत इसका मन सर्वथा दुःख है । यह विविधमन्त्रिनी
 कर्षा निष्पन्न है । अतः इसे खरर स्वीकार कर । मैं आपसे
 अज्ञा देखा हूँ आप इससे कभी कोई कठोर वचन नहीं ॥
 ततः प्रसन्नता रामा भुञ्जेय पदतां परत ।

रूपी मुहूर्ते धमत्ता ह्यभ्यादुल्लसत्तनः ॥ ११ ॥

अभिनेत्री यह बात सुनकर बहसमें भेद बमाल्य
 भीरमस्य मन प्रसन्न हो गया । उनका नेत्रोंमें भानन्दक भाव
 उदक भव । वे प्यारी वस्तु विषयमें दूर रहे ॥ ११ ॥

एवमुक्त्वा महातेजा दृष्टिमानुक्लिप्तमः ।
 उवाच भिन्नप्रभेद रामो धमसूतां वर ॥ १२ ॥

वरनन्तर महातेस्वी वैश्वान् महान् पराक्रमी तथा
 परमसौभाग्यमें भेद भीरामने देवशिरामपि अभिनेवते उनको
 पूर्वोक्त वतके उत्तरमें कहा— ॥ १२ ॥

अथस्य चापि जेकेषु स्तिया पावनमर्हति ।
 र्विषाकानोपिता हीय रावणान्तःपुरे शुभा ॥ १३ ॥

मालान् । जेगमें छीताबीची परिवदध विषय
 दिखनेके छिने इनकी यह दृष्टिनिवयक परीक्षा अत्यन्तक भी
 नकीकि शुभकृतता छीताको विषय होकर हीपरिभासक एकके
 अन्तःपुरमें रहना पड़ा है ॥ १३ ॥

यास्त्रिदो वत कामात्ता रामो वृशारप्यतराज ।
 इति वक्ष्यति मां लोको जाल्प्रीमविशोष्य हि ॥ १४ ॥

परि मैं जानननिवनीकी दृष्टिके कियमें परीक्षा न
 कृता तो छेम नहीं करते कि दहरपपुत्र एम वधा ही पूर्व
 और कमी है ॥ १४ ॥

अहम्यदृष्ट्या स्तीतां मञ्चितपरिरक्षिणीम् ।
 अहम्यप्यवगच्छामि मैथिलीं जलकासजाम् ॥ १५ ॥

यह बात मैं भी जानता हूँ कि मिथिलेधनदिनी कनक
 कुमारी खीतकन हृदय छत्रा मुझमें ही बन्ध रहत है । मुझसे
 कभी अज्ञा नहीं होता । वे क्या नेप ही मन रक्षती—मेरी
 रक्षके अनुहार चम्पटी है ॥ १५ ॥

इमामपि विशास्यसीं रक्षितां स्वेन तेजसा ।
 रावणो नातिवर्तेत येद्यमिव महोदधिः ॥ १६ ॥

मुझे पर भी विश्वास है कि जैसे महासागर अपनी छ
 भूमिके नहीं बँधे वद्वय उठी मझर एकल अपने ही
 तेजसे मुश्किल इन विशासकेना छीतपर अम्बरार नहीं
 कर सकता था ॥ १६ ॥

प्रत्यपार्य तु लोकाणां त्रयाणां सत्यसंभवा ।
 उपसे चापि वैदेहीं प्रविशस्वीं वृताशयम् ॥ १७ ॥

प्राप्यति तीनीं अन्तोंके प्राणिकोंके मनमें विश्वास दिखनेके
 छिने एकमात्र लक्षका छत्रा केकर मैने अभिनये प्रवेग कृती
 हुई विदेहराजुमारी छीतके रक्षनेकी चेष्टा नहीं की ॥ १७ ॥

न शका सुबुद्ध्यागमा मनसापि हि मैथिलीम् ।
 प्रधर्षयितुमप्याप्यां वृत्तामप्रियिष्णामिव ॥ १८ ॥

मिथिलेयकुमारी छीता प्रनञ्जित अभिधिलाके छमन
 दुर्भय तथा दूरेके छिने अहम्य है । बुद्धता एकल मनके
 द्वारा भी इनपर अन्त्याचार करनेमें समर्थ नहीं हो सकता था ॥
 नायमहति वैद्वयं रावणान्तःपुरे सती ।

अन्या हि मया सीता भास्करस्य प्रभा यथा ॥ १९ ॥
 ये छी-छपी देवी एकत्रक अन्तःपुरमें रहकर भी
 म्यादुल्लया या परपदमें नहीं पड़ गयी थीं । क्योंकि
 मुझने उन्हीं तरह अभिय है जैसे पूर्वदेवने उनकी परम

विजुषा धिपु लोकेषु मैथिली जनपदमजा ।
न विहातु मया राज्ञ्या क्रीतिरात्मयता यथा ॥ २० ॥

मिथिलेशकुमारी अन्नश्री तीनों क्षेत्रोंमें परम पवित्र
हैं। वेदे मन्तवी पुराण क्रीतिक्रम त्याग नहीं कर सकता उसी
रूप में भी इन्हें नहीं छोड़ सकता ॥ २ ॥

अनर्थं च मया कार्यं सर्वेषां यो यत्रो हितम् ।
क्षिप्रानां व्यफलायागामेयं च यद्वर्ता हितम् ॥ २१ ॥

‘आप सभी व्यक्रम मेरे हितकी ही बात कह रहे हैं
और आपसमेंका मुझपर क्या लोह है अतः आप सभी

इत्यर्थे श्रीमद्रामायण शास्त्रीकृपे आविष्कृत्ये युद्धकाण्डऽष्टादश्याधिकशततमः सर्गः ॥ ११८ ॥

इस प्रकार श्रीमद्भगीरथिनिर्मित अष्टादश्याधिकशततमः युद्धकाण्डमें एक सौ अठारहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ११८ ॥

एकोनविंशत्यधिकशततम सर्ग

महादशवीको आवासे श्रीराम और लक्ष्मणका विमानद्वारा आये हुए राजा दशरथको प्रणाम
करना और दशरथका दोनों पुत्रों तथा सीताको आचम्यक सदैव दे इन्द्रलोकको जाना

एतच्छ्रुत्वा गुप्तं वाप्य राघवेणानुभाषितम् ।

तदा शुभतर वाप्य व्यासहारा महेश्वरः ॥ १ ॥

श्रीरामायणीके कहे हुए इन शुभ वचनोंको सुनकर

श्रीमहादेवकी ओर भी शुभतर बचन कहे— ॥ १ ॥

पुष्करस्य महाबाहो महात्मनाः परतप ।

दिश्या ह्यसमिद्धं कर्म त्वया धर्मयुता वर ॥ २ ॥

‘शुभुओंका छाप देनाबाले, विशाल बड़ासकते

सुगमिहा भवाबाहु कमलमन। आप धर्मात्माओंमें भेद

हैं। आपने राघव-वचन कार्य समझ कर दिया—यह बड़े

वेगवकी बात है ॥ २ ॥

दिश्या सर्वस्य लोकस्य प्रभुत्वं वारुणं तमः ।

यानुत्तं त्वया संक्ये राम रावण्य भयम् ॥ ३ ॥

श्रीराम। राघवनिमित्त मय और तुल खरे क्षेत्रोंके

क्षिने बड़े हुए और अन्धकारके छानन या क्षिने आपने

पुरमें मित्र किया ॥ ३ ॥

अन्धकारस्य भरत वीर कौसल्या च यदासिनीम् ।

केकेयीं च सुमित्रा च हृष्या लक्ष्मणमातरम् ॥ ४ ॥

प्राप्य राज्यमयोध्यायां नन्वयित्वा सुहृत्सन्तम् ।

इत्याकृष्यां कुञ्जं वंश स्यादयित्वा महायशः ॥ ५ ॥

हृष्य तुगामेधन प्राप्य वानुत्तमं यशः ।

प्राज्ञेष्व्या धन दत्त्वा त्रिदिवं गम्मुमहसि ॥ ६ ॥

‘महाकवी वीर। भव शुकी मरतक वीरक वंसाकर,

व्यसिनी कौसल्या केकेयी तथा अन्धकारकी सुमित्राके

मिच्छकर मयोध्याका राज्य पाकर सुहृदोंको अन्धकार देकर,

इत्याकृष्यां कुञ्जं वंश स्थापित करके अधमेध यशक

अनुत्तम कर वरोंमें यशक उपार्जन करके तथा प्राज्ञोंको

देखनाओंके हितकर बचनक मुझे अवश्य पानन करना
चाहिये’ ॥ २१ ॥

इत्येषमुक्त्या विजयी महाबला
प्रशस्यमानः स्वकृतेन कर्मणा ।

समेत्य रामः प्रियया महायशसः

सुख सुकार्हाऽनुवभूव राघवः ॥ २२ ॥

ऐसा कहकर अपने किये हुए पराक्रमसे प्रशंसित
होनेवाले महाबली महायशसी विजयी वीर रघुकुलान्वन
भीरम अपनी प्रिया सीतासे मिले और मिच्छकर बड़े सुखक
अनुभव करने लगे क्योंकि वे सुख योगनेके ही योग्य हैं ॥

इत्यर्थे श्रीमद्रामायण शास्त्रीकृपे आविष्कृत्ये युद्धकाण्डऽष्टादश्याधिकशततमः सर्गः ॥ ११८ ॥

इस प्रकार श्रीमद्भगीरथिनिर्मित अष्टादश्याधिकशततमः युद्धकाण्डमें एक सौ अठारहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ११८ ॥

न देकर आपसे अपने परम धाममें जाना चाहिये ॥ ४-६ ॥

एव राजा दशरथो विमानस्थः पिता तप ।

कक्षरस्य मातुषे लोके गुरुस्तथ महायशसः ॥ ७ ॥

‘कक्षरस्यनुकूलन। देखिये ये आपके पिता राज

दशरथ विमानपर बैठे हुए हैं। मनुष्यकर्मों में ही आपके

महायशसी गुरु थे ॥ ७ ॥

इन्द्रलोक गतः श्रीमास्त्यया पुत्रेण तारितः ।

सहस्रमेव सह भ्रात्रा त्यमेनमभियाव्य ॥ ८ ॥

‘वे श्रीमान् नरेश इन्द्रकोको प्राप्त हुए हैं। अष्ट-जैसे

सुपुत्रने इन्हें तार दिया। आप भर्तृ कर्मणके साथ इन्हें

नमस्कार करें’ ॥ ८ ॥

महादेववचनः श्रुत्वा राघवः सहलक्ष्मणः ।

विमानतिसखरस्वस्य प्रणाममकरोत् पितुः ॥ ९ ॥

‘महादेवकी यह बात सुनकर अन्धकारके भीरुनाथश्रीने

विमानमें उभरकर बैठे हुए अपने पिताकी प्रणाम

किया ॥ ९ ॥

वीर्यमान स्व्या लक्ष्म्या विरजोऽम्बरधारिणम् ।

लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वृक्षं पितरं प्रभुः ॥ १० ॥

‘माई अन्धकारके मगनात् भीरमने पिताको अच्छी

तर देला। वे निर्मल ब्रह्म धारण करके अपनी विषय योगसे

देवीव्यमान थे ॥ १० ॥

हृष्य महाबाऽऽपिष्टो विमानस्थः महीपतिः ।

प्राज्ञैः प्रियतरं हृष्य पुत्र दशरथस्तदा ॥ ११ ॥

विमानपर बैठे हुए महायश दशरथ अपने प्राज्ञोंके भी

प्यारे पुत्र भीरमको देखकर बहुत प्रसन्न हुए ॥ ११ ॥

आरोप्याऽऽ महाबाहुर्धरासनगतः प्रभुः ।

पाहुभ्यां सम्परिव्रज्य तता वाप्य समादृ ॥ १२ ॥

भय भयानर उड ह्यु उन मगगदु नरगन नरे
ने विडाएर दना न मे अर विग और इव प्रभर
था-॥ १२ ॥

न म स्वर्गो पदु मना स्वमानध सुखमे ।

शया गाम विदितस्य स्वय प्रसिध्नामि त ॥ १३ ॥

गाम । मे तुमने नर वदथा है तुमने सिष्य दाए

गोसा मु र तथा नमभोदय प्रात दुभा छमन भी

ममना ॥ १३ ॥

निहतामिप्र हृद्वा समूलमानसम् ।

नामय च प्रतिगर्मात् परा मम ॥ १४ ॥

तुभोदय यष वरक पूवन्नाय हा गष

मधि भी पूी कर छे पर कर

नाग दूर है ॥ १४ ॥

रानि पात्रयानि यदथा पर ।

नय प्रजावनापान स्थानि हृदय मम ॥ १५ ॥

नामम भय रज्ज न । तुई नने भयेक स्थि

न न द द वी द्वाय' रवा भय भी मर एवमे

रेडी नै है । ॥

यो तु हृद्वा पुनानि परिश्रय सनदमयम् ।

भय पुनान् विमुना मिनीहागदिव भास्करा ॥ १६ ॥

मय ननम (१) तुमधन ॥ १६ ॥ और और हृदय

नर मे म न तु न पुनगग ग्य है । ठीक उधे

पर न न ना तुमने निहय मय ही ॥ १६ ॥

कालिाह शया पुन सुपुत्रय महामना ।

भय मदन धममा कदावा प्राप्ताय काग ॥ १७ ॥

रवा' ला म्मावन भान य म विप्र वदन

ननक मदनध रवी वा व ही हो ममे । मला

तुन म न र व र' च । १७ ॥

हसो र विज्ञानमि काग सौम्य सुखय ।

यवर्गे गानलाह विदित पुनयानमम् ॥ १८ ॥

मि म्म वदन रवा म क' न म्म म्म म्म

वि म्म म्म म्म म्म म्म म्म म्म म्म म्म म्म

म' म्म म्म म्म म्म म्म म्म म्म म्म म्म

म' म्म म्म म्म म्म म्म म्म म्म म्म म्म

म' म्म म्म म्म म्म म्म म्म म्म म्म म्म

भनुराजन यलिना पुचिन्व धमशाग्नि ।

इच्छय त्यामह द्रष्टुं भरतन समागतम् ॥ २१ ॥

भरत वहा ही पमहम्य, परिष और वडय है । व

तुमने मया अनुगा एता है । मैं उठके छप तुम्हाय छे

ही सिधन इतना चारता है ॥ २१ ॥

यतुद्वा समा सौम्य पन निपाठितास्त्वया ।

यसत्त सीतिया स्वार्थे मर्प्रिया सद्ममन ॥ २२ ॥

श्लेष्म । तुमने मरी प्रगन्तवाक विपसानन और खेउके

स्वय रदं ह्यु वनेमें शीह पर स्वर्गि विप ॥ २२ ॥

निपुत्रायनवासाऽसि प्रसिद्धा पूरित स्वया ।

रायण च रण हत्या द्यतः परिठारिताः ॥ २३ ॥

भय तुम्हारे क्लमकी भयि पूरी हो गयी । मरी प्रवम

भी तुमने पून कर ही तथा छामनें वरकध मारए

देवनाभोद भी शंभु कर दिष्य ॥ २३ ॥

ह्युन कम यथा न्नाप्य प्रात त दानुमूदन ।

ध्यायुभिः सह राज्यस्था वीषम्यायुरयापुहि ॥ २४ ॥

यतुमूदन । य कनी काम तुम कर चुक । इधे तुम्हारे

एरताय मग प्रात दुभा है । मर तुम भयलो क खप वानन

प्रसिद्धा हो ही । आयु प्रात कर ॥ २४ ॥

इति बुधाय राजान गमः प्राप्तिरप्रपीत् ।

तुम् प्रसाद् धमज पकण्या भरतस्य च ॥ २५ ॥

अर गव इत प्रसार कर चुक वर भीवमकरही ताप

इहएर उग २-१- परम मदापण । आय देवी और

भारत म्मन ही-उन वनोर बुध करे ॥ २५ ॥

यतुया यो त्यजानीति यतुका कर्षयी शया ।

य ताया कर्षयी पाग यतुयो न स्पृशाम् प्रभा ॥ २६ ॥

प्रभा । भागेन व देवसेन वता य वि मे पुनर

म ताया कर्षा है भारता व पर एव पुनर'ए देव

ध शया न च ॥ २६ ॥

तथेति य महागजा गममुक्त्वा ह्यु प्रसिम् ।

मामन च परिश्रय पुनरायमुत्पद्य ॥ २७ ॥

माम म्म म्म म्म म्म म्म म्म म्म म्म

म' म्म म्म म्म म्म म्म म्म म्म म्म

म' म्म म्म म्म म्म म्म म्म म्म म्म

से तुम्हें उक्तम स्वर्ग और महत्त शत शोग ॥ २९ ॥
 रामं शुभ्रं भद्रं ते सुमित्रानम्वर्धन ।
 रामा सर्वस्य लोकस्य हितेष्वभिरतः सन् ॥ ३० ॥
 सुमित्राच्च भग्नन्दः कदादेवाच्च भग्नयः । तुभ्याय कस्याप
 हो । तुम भीयम्भी निपत्तर सेवा करते हो । ये भीयम तथा
 क्त्वाय क्त्वाके कितने उत्तर करते हैं ॥ ३ ॥

एतं संप्रत्यक्षयो लोकाः सिद्धाश्च परमपयः ।
 भविष्यात् महत्तमानमर्षन्ति पुरुषोत्तमम् ॥ ३१ ॥
 ऐका इन्द्रसहित ये तीनों लोक सिद्ध और महर्षि भी
 परमप्रमत्तस्य पुरुषोत्तम रामको प्रणाम करके इनका पूजन
 कर रहे हैं ॥ ३१ ॥

एतत् तदुकमस्यक्तमक्षरं प्रह्लासमितमम् ।
 एवाता हृदयं सौम्यं गुह्यं रामः परतपः ॥ ३२ ॥
 श्वेत्य । एतुमोक्षं क्त्वाय देनेशते ये भीयम देवत्वर्षीके
 हृदय और मन गुह्य तप है । य ही केदोशय प्रतिपादित
 मन्वत्त एवं अकिन्तणी तप है ॥ ३२ ॥

सवत्तधर्माचरणं यदाश्च विपुलं स्वया ।
 एवं शुभ्रं त्वाम्यम वैदेहा सह सीतया ॥ ३३ ॥
 श्रीवैदेहनन्दिनी सीताके साथ शातम्भरसे इनकी सेवा
 करते हुए तुमने कम्पूर्ण कर्माचरण कर और महान् यप
 प्राप्त किया है ॥ ३३ ॥

एत्युक्त्वा सक्रम्य राजा स्तुया ब्रह्मार्जुनि स्विताम् ।
 पुत्रीत्याभाष्य मयुरं दाम्पत्येणामुभाव ह ॥ ३४ ॥
 क्त्वायमे एष क्त्वाय राम दशरथने हाय क्त्वाय
 यदी तुष्ट पुत्रवत् सीताको श्वेती क्त्वाय पुत्रय और भीरे
 भीरे मयुर कर्षीके क्त्वा— ॥ ३४ ॥

कृताभ्यां न तु वैद्वि मन्व्युस्त्यागमिम प्रति ।
 रामनेर्षं विपुल्ययै कृत धि स्वर्षित्तिगिणा ॥ ३५ ॥

हृत्पायै भीनत्रामाषय वास्वीकीये मादिक्रम्य सुब्रह्मण्ये पुरोक्तवैद्विपथिः शततमः सर्गः ॥ ३१९ ॥
 *३ प्रकर श्रीमत्सर्वविद्विर्षित्ति अक्षरामायण अदिक्रम्यके सुब्रह्मण्ये एक ही उन्नीशती सप्त पूरा हुआ ॥ ३१९ ॥

विशत्यधिकशततम सर्ग

भीरानक अनुराधसे इन्द्रका मरे हुए वानरोंको जीवित करना,
 दक्षतात्रोका प्रन्थान और वानरसेनाका विधाम

प्रतिप्रयात् काकुत्स्थ महन्द्रः पाकशासनः ।
 मद्रनाम् परमर्षीत्या राषयं ब्राह्मिणि स्थितम् ॥ १ ॥
 महाराज दशरथके और वानर पाकशासन इन्द्रने भक्त
 क्त्वाय हा हाय क्त्वाय क्त्वाय तुष्ट और पुत्रवत् की क्त्वा— ॥ १ ॥
 क्त्वाय दत्त राम तथासाक नरपथ ।
 मीतिपुत्राः स तत्र स्य मूहि यमनसत्सितम् ॥ २ ॥
 नरपथ भीयम । तुम्हें अ हृदय दपन हुआ वह
 कर्षं नती क्त्वा क्त्वाय और इन तुमपर बहुत प्रकृत है ।

श्रीवैदेहनन्दिनि । तुम्हें इह व्यागको सेकर भीयमपर
 कुलित नहीं होना चाहिये न्योंकि ये तुम्हारे हितैषी हैं और
 अक्षरमें तुम्हारी पथिक्रम प्रकृत करनेके लिये ही इन्होंने ऐसा
 व्यवहार किया है ॥ ३१ ॥

सुबुष्करमितुं पुत्रिं तथ धारिभ्रष्टशम्पम् ।
 कृतं यत् तेऽन्यनारीण्या पत्नो ह्यभिभविष्यति ॥ ३६ ॥
 नेदी । तुमने अपने विधुद धरिभ्रष्टके परिक्रमित करनेके
 लिये जो अनिप्रवैद्यस्य कथ किया है, यह बुरी क्रियाके
 लिये अत्यन्त दुष्कर है । तुम्हारा यह कर्म अन्य नारियोंके
 यथायुक्त तक होगा ॥ ३६ ॥

न त्वं क्रमं समापया भद्रशुभ्रपय प्रति ।
 मन्वदय तु मया याच्यमयं त द्वेषत परम् ॥ ३७ ॥
 पथिसेवाके सम्पन्ममें भजे ही तुम्हें कर्म उपदेश देनेकी
 आवश्यकता न हो किन्तु इतना ही मुझे भवस्य बदा होना
 चाहिये कि ये भीयम ही तुम्हारे कथते यह दक्षता है ॥ ३७ ॥
 इति प्रतिसमादिश्य पुत्रीं सीतां च रामवः ।
 इन्द्रलोक विमानेन ययी वशरयो मृपा ॥ ३८ ॥
 इत प्रकर दत्तों पुत्रीं और सीताको आदेश एवं उपदेश
 देकर खुशंभी राम दशरथ विमानके द्वारा इन्द्रलोकको
 चले गये ॥ ३८ ॥

विमानमास्याय महानुभायः
 भिया च संहृष्टतनुनुपात्तम ।
 धममन्त्र्य पुत्री सह सीतया च
 जगाम वैशप्रथरस्य लोकम् ॥ ३९ ॥
 उपभेद महानुभाव दशरथ अद्भुत शोभते सम्पन्न थे ।
 उक्तक क्षीर हृदये पुष्कित हा रहा था । ये विमानपर बैठकर
 सीतासहित दत्तों पुत्रीसे विदा स इयराज इन्द्रके लोके
 चले गये ॥ ३९ ॥

इहलिये तुम्हारे मनमें अ इच्छा हा वह मुझसे क्त्वा ॥ २ ॥
 एषमुक्तो महेंद्रेण प्रसन्नन महामन्त्र्य ।
 सुमसत्तमना हृष्टा यत्नं प्राह राषयः ॥ ३ ॥
 महत्तना इन्द्रन तत्र तत्र शहर देखी क्त्वा क्त्वा तथा
 भीयुत्तापथीके मनमें पदी प्रकृतता हुई । उन्होंने हर्षे
 भरकर क्त्वा— ॥ ३ ॥
 यदि प्रीति समुत्पन्ना मयि त विपुधम्बर ।
 पश्यामि कुह म सत्य यत्न पदतो पर ॥ ४ ॥

वृत्तार्थमे भेद देवेभ्यः । यदि आप मुसपर प्रसन्न हैं तो मैं आपसे एक प्रार्थना करूँगा । आप मेरी उस प्रार्थनाको लक्ष्य करें ॥ ४ ॥

मम हेतोः पराश्रयत्वा यं गत्वा यमसात्वलम् ।
ते सर्वे जीवितं प्राप्य समुत्थिष्ठन्तु धानराः ॥ ५ ॥

मेरे किं मुझमें पराक्रम करके जब बमखेकको चले गये
इ वं सब बानर नवा भीसन पाकर उठ लगे हों ॥ ५ ॥

मन्वृत विप्रमुक्ता ये पुत्रैर्दारैश्च धानराः ।
तान् प्रीतिमनसाः सर्वान् द्रष्टुमिच्छामि मामद् ॥ ६ ॥

तब ! जो बानर मेरे किं अपने की-मुक्तोंसे वितुङ्ग
गए व उन सबको मैं प्रसन्नचित्त देखना चाहता हूँ ॥ ६ ॥

शिवान्ताश्चापि शूराश्च न मृत्युं गणयन्ति च ।
कृतयन्ता विपश्चाच्च जीवयेत्तान् पुरंदर ॥ ७ ॥

पुर र वं शरणी और शूरवीर से तथा मृत्युको
कुछ भी नहीं गिनत वं । उन्होंने मेरे किंसे बड़ा प्रयत्न किया
है और अपने को काटके गण्यमें चले गये हैं । आप उन सबको
क्षीरित कर दें ॥ ७ ॥

मत्प्रियेष्वभिरुक्ताश्च न मृत्युं गणयन्ति ये ।
एतदाज्ञादात् समेयुस्तं परमंतमहं वृष्ये ॥ ८ ॥

जो बानर उद्य मेरा प्रिय करनेमें लगे रहत ये और
मोक्षको कुछ नहीं समझते वे, वे सब आपकी कृपासे फिर मुझसे
मिथे - वह कर मैं चाहता हूँ ॥ ८ ॥

नीदशो निर्घ्रंजाश्वेय सम्यग्बलपीठपाद् ।
गोलाह्वंसास्तपसाश्च द्रष्टुमिच्छामि मामद् ॥ ९ ॥

जुष्टेको मान देनेबान देवराज ! मैं उन बानर संग्र
और महाभोंको नीरेग, जगहीन और कम-वीरगसे छम्पन
देखना चाहता हूँ ॥ ९ ॥

अच्छासे चापि पुण्याणि मूर्खानि च फलानि च ।
नद्याश्च विप्रसस्तत्र तिष्ठयुषंश्च धानराः ॥ १० ॥

जो बानर किं छम्पनपर रहे वहाँ बसमयमें भी फल-मूख
और पुण्योंमें भरमार रहे तथा निर्मम अज्ञानी नदियों बहती
रहें ॥ १० ॥

भृशं तु पचनं तस्य राघवस्य महाहमनः ।
महद्द्रः प्रयुषाद्यच्च चचनं प्रीतिसमुत्तम ॥ ११ ॥

महात्म्य भीखुनापकीमें वह यत गुनकर महेश्वरने
प्रसन्नप्राई वं उतर दिया - ॥ ११ ॥

महानप परस्तात् यस्तयपादा रघूक्षम ।
द्विमय नाकपूर्व च तस्मात्तद्व भविष्यति ॥ १२ ॥

ज्या ! सुगंधीभूत ! आपने जब पर मोंग है, पर
बहुत बड़ा है तथापि मैंने कभी हा तरकी बत नहीं की है -
इतलिय वह हर भरसव छद्म हय ॥ १२ ॥

समुत्थिष्ठन्तु त सर्वे इत्या यं युधि राक्षसः ।
शूराश्च सह गातुर्धर्मनठाननयाहयः ॥ १३ ॥

जो युद्धमें मारे गये हैं और राक्षसेंने किंके प्रताप तथा
धुनार्थे फट बाकी हैं वे सब बानर मन् और संग्र से
उठें ॥ १३ ॥

नीदशो निर्घ्रंजाश्वेय सम्यग्बलपीठपाद् ।
समुत्थास्यन्ति हरयाः सुप्ता निद्राक्षय यच्छ ॥ १४ ॥

नीद द्यनेपर छेकर उठे हुए मनुष्योंकी मोति वे लगी
बानर नीरेग, जगहीन तथा कम-वीरगसे छम्पन होकर उठ
केटेंगे ॥ १४ ॥

सुहृद्भिर्बान्धवैश्चैव क्षातिभिः स्वकनेन च ।
सर्वे पय समेष्यन्ति सयुक्ताः परया मुवा ॥ १५ ॥

ज्या परमन्त्रसेयुक्त हो अपने दुष्टों, शत्रुओं क्षति-
मात्रों तथा स्वकीसे मिथी ॥ १५ ॥

बकस्ये पुष्परावलाः फलवन्तश्च पादपाः ।
भविष्यन्ति महेष्वासा नद्याश्च सखिभ्ययुताः ॥ १६ ॥

ग्राहपनुर्दं वीर ! वे बानर ज्यों रहेंगे, वहाँ अकममें
भी कुछ फल-पूजसे छय बरेंगे और नदियों कस्ये भी
रहेंगे ॥ १६ ॥

समपौः प्रथमं गात्रैरिवान्तं निर्घ्रंजः सदैः ।
ततः समुत्थिताः सर्वे सुत्पय हरिसत्सम्याः ॥ १७ ॥

इन्के इच प्रथम करनेपर वे सब भेद बानर किंके ल
अह पाके पावसे भरे थे उस छम्प पाकरहित हो गये और
जमी छेकर लगे हुएकी मोति स्वक्ष उठकर बने हो गये ॥

बभूवुर्बानराः सर्वे किं त्येत्सिति विस्मिताः ।
कञ्जस्तस्य परिपूर्णाथं दृष्ट्वा सर्वे सुरोत्तमाः ॥ १८ ॥

भयुधन परमप्रीताः स्तुत्या रामं सकञ्जमयम् ।
गच्छयाम्यध्यामितो राजन् विसर्जय च बानराः ॥ १९ ॥

उठें इच प्रथम क्षीरित होते देख लय बानर भावर्ष-
पक्षित होकर करने लगे कि यह क्या बात हो गयी ? औरम-
पत्रकीको वल्लभमनोप हुआ देख समस्त भेद देखा अकृत
प्रसन्न हो छम्पनरहित भीधमरी लुष्टि करके बोले-ग्यम् ।

अय आप यहोसे अकृपाका पवारें और छम्पन करनेको
निद्रा कर दें ॥ १८ १९ ॥

मैथिलीं सान्त्यधस्वैश्वामनुरका यदास्त्रिणीम् ।
अन्तर भरतं पश्य तच्छयकञ्जं यत्तथाविजम् ॥ २० ॥

जो मिथिलेपुनुमायी यदस्त्रिणी खेला वद्य आपने म्पुण
रक्षी है । इहैं अकृपा कीकिये और भाई मत्व अपने
शंभुसे दीक्षित हो मत कर रहे हैं अत उनसे अत्र
निश्चिय ॥ २० ॥

गान्धर्वं च महात्मानं मानुः सखाः परंतप ।
अभियद्यथ शरमान पीरान् गत्वा महदप ॥ २१ ॥

परंतप ! भार महात्मा गान्धर्वने और छम्पन यात्रामें
भी अत्र मिने अन्ना भिनोद अयमें और पुरास्त्रिकोंके
हर्ष प्रदान करें ॥ २१ ॥

एवमुक्त्वा सहस्राक्षो रामं सौमित्रिणा सह ।
 विमानैः स्यसत्कारिण्यौ ह्यः सुरैः सह ॥ २२ ॥
 भीमम भौर ब्रह्मणके ऐषा कश्चर देवराज इन्द्र एव
 रक्षाम्येकं साय सूर्यस्य तेजस्वी विमानौद्योय वही प्रकृत्यतेके
 एष अपने ब्रह्मणके चले गये ॥ २२ ॥
 धर्मिणाद्य च काकुत्स्थः सर्वोस्तांस्त्रिवशोत्तमान् ।
 ब्रह्मणेन सह भ्रात्रा भासमाहापयत् तदा ॥ २३ ॥
 उन कथत भेट देवताओंको नमस्कर करके भाई ब्रह्मण
 हृत्पायें भीमजामापय बाष्पनीक्षीये आदिप्रकृत्ये पुत्रकाण्डे विंशत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १२ ॥
 इस प्रकार श्रीभ्रातृनिर्मित अष्टावक्रायक अदिब्रह्मणके पुत्रकाण्डे एक ती वीसतौ स्य पूर हुय ॥ १२ ॥

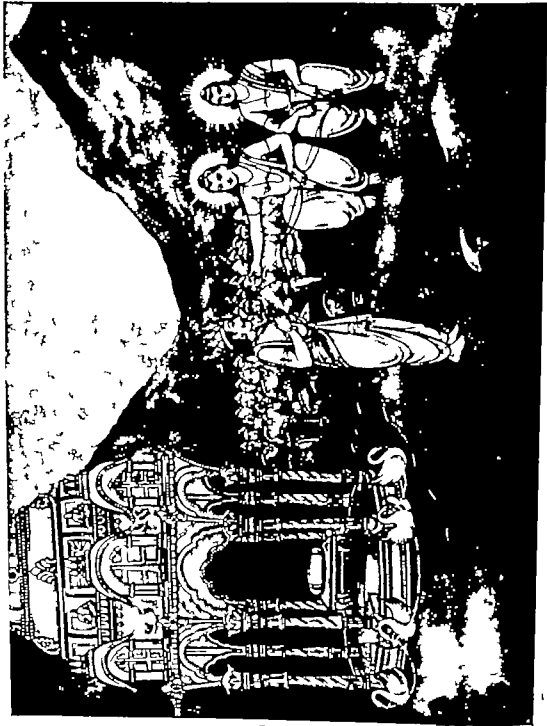
सहित भीरुमने कम्पे विभाम करनेकी आज्ञा थी ॥ २३ ॥
 ततस्तु सा ब्रह्मणरामपाळिता
 महाशमूहप्रजना पशस्विनी ।
 धिया उषलन्ती विरराज सवतो
 निशा प्रणीतेष हि शीतरश्मिना ॥ २४ ॥
 भीरुम भौर ब्रह्मणके द्वारा सुखित तथा हृष्ट-पुत्र
 तेनिहोसे मरी हुई वह यशस्विनी विराज सेना चन्द्रमाकी
 चोदनीसे प्रकशित होनेवाली रात्रिके समान भद्भुत शोभासे
 उजाडित होती हुई विराज रही थी ॥ २४ ॥
 पुत्र ज्ञान अष्ठा क्मता है न कल भौर अभूषणोक्त पारज
 करना ही ॥ १ ॥
 पठत् पश्य पथा क्षिप्र प्रतिगच्छाम तां पुरीम् ।
 अयोध्यां गच्छतो ह्येष पत्न्याः परमदुर्गमाः ॥ ७ ॥
 'अब तो तुम इस कतकी आर भ्यान हो कि हम किस
 तरह बस्ती-से-बस्ती अयोध्यापुरीको छोट करने' क्योंकि वहाँ
 एक पैरुड बाबा करनेवालेके ब्रिये यह मार्ग बहुत ही
 दुर्गम है' ॥ ७ ॥
 एवमुक्तस्तु काकुत्स्थ प्रत्युवाच विभीषणम् ।
 भद्रा त्वां प्रापयिष्यामि तां पुरीं पाथिवात्मज ॥ ८ ॥
 उनके ऐश करनेपर विभीषणने भीरुमपन्नवीर्य इस
 प्रकार उत्तर दिया—'प्राप्तुमार । आप इसके ब्रिये विश्वित
 न हों । मैं एक ही दिनमें आपको उस पुरीमें पहुँचा दूँगा ॥
 पुष्यकं माम भद्र ते विमानं स्यसनिभम् ।
 मम भ्रातुः कुपरस्य रावणन पत्न्यैस्तदा ॥ ९ ॥
 इतं निजित्य सप्राम कावमं दिध्यमुचमम् ।
 त्वर्ष्यं पालितं चर्षं तिष्ठत्यनुजविभ्रम ॥ १० ॥
 आपका कस्यथा हा । मरे यहाँ मरे यह भाई
 कुपरस्य सूर्यस्य तंस्त्री पुष्यस्यमान मोगुर है, जिस
 महाश्वी रवणने कथममं कुपरस्य इएकर तीन स्त्रिया या ।
 अनुज परस्त्री भीरुम । वह इच्छानुकर चलेनावा, दिव्य
 एवं उत्तम विमान मैंने यहाँ भाषीक स्त्रिय रत्न छाड़ा
 है ॥ ९ ॥
 तद्विद् मयसकप्रा पिमानमिह तिष्ठति ।
 यत यास्यसि यानम त्वमयाप्या गतञ्जरा ॥ ११ ॥
 मेक-वश दिव्याप्ये देनेवाया वह दिव्य विमान यहाँ
 विद्यमान है, जिसके द्वारा निश्चित होकर भाव अयोध्यापुरीको
 जा सकेंगे ॥ ११ ॥

एकविंशत्यधिकशततम सर्ग

भीरामका अयोध्या जानेके लिये उद्यत होना और उनकी आज्ञासे विभीषणका पुष्यकविमानको मँगाना
 तां रात्रिमुपितं रामं सुखोदितमरिष्यमम् ।
 ध्यवीत् प्राञ्जलिवाप्य जयं पृष्ट्वा विभीषणः ॥ १ ॥
 उस रात्रिके विभाम करके जब वासुदेवन भीरुम वृद्धे
 दिन कथ-कथ सुखपूर्वक उठे, तब कुशल-प्रकणके पश्चात्
 विभीषणने हाथ जोड़कर कहा— ॥ १ ॥
 आनानि चाङ्गरागानि चक्राण्यभरणानि च ।
 कल्पानि च मास्यानि विभ्यानि विविधानि च ॥ २ ॥
 'पुनश्च । ज्ञानकस्थि कळ, भद्रराग, कल अभूषण,
 कल्प और मोडि-मोडिकी दिव्य मासयें आपकी सेवाने
 उपस्थित हैं ॥ २ ॥
 अष्टाचारविशैता नायाः पद्यमिमेक्षणाः ।
 उपस्थास्त्वां विधिवत् क्षापयिष्यन्ति राजव ॥ ३ ॥
 'पुत्री । मंगलकस्यका बाननेवासी ये कसकनकी
 नारिणी भी सेबाके ब्रिये प्रस्तुत हैं जो आपको विधिपूर्वक
 ज्ञान करदेंगी' ॥ ३ ॥
 एवमुक्तस्तु काकुत्स्थः प्रत्युवाच विभीषणम् ।
 ह्रीन् सुधीयुष्यास्सर्वं ज्ञानिनोपनिमन्त्रय ॥ ४ ॥
 विभरणक एषा करनेपर भीरुमपन्नवीरने उनसे कहा—
 'यि । तुम सुधीय आदि बानरहीसे ज्ञानके स्त्रिय अनुरोध
 कर ॥ ४ ॥
 स तु क्षान्यति धमाम्ना मम हेताः सुखोचितः ।
 सुदुम्यारा महायादुभरतः सत्यसधयः ॥ ५ ॥
 मेरे लिये तो इस क्षय क्षयका आशय होनेवाले धमाम्ना
 महायादु भरत बहुत कष्ट उद रर हैं । वे सुदुमार हैं और
 सुध यनक योग्य हैं ॥ ५ ॥
 तं विना कङ्करीयुष भरतं धमचारिणम् ।
 न म ज्ञानं बद्धु मत्तं चक्राण्यभरणानि च ॥ ६ ॥
 उन पयनपयन इच्छनीकुमार भरतसे मिले बिना न तो

महं तं ययनुमाह्वया परि सारसि मे गुणान् ।
 वस त्ववदिव प्राज्ञ यद्यसि मयि सौहृदम् ॥ १२ ॥
 छद्मस्यन्त सह भ्रात्रा धैरेह्य भायया सह ।
 अर्धितः सद्यकामैस्सर्वं ठठो राम गमिष्यसि ॥ १३ ॥
 भीरव ! परि मुझे आप अपना कृपापात्र समझते हैं,
 मुझमें कुछ गुण देखते या मानते हैं और मेरे प्रति आपका
 छोड़ते हैं ठ ठ भगी भ्राई छद्मस्य तथा पत्नी छैद्याधिक्य रूप
 कुछ दिन यही विराजिये । मैं सम्पूर्ण मनानामिच्छित वस्तुओं
 द्वारा आपका उत्कार करूँगा । मेरे उस उत्कारको ग्रहण कर
 तनत्र पश्चात् भयोप्यास्य पधारियेगा ॥ १२ १३ ॥
 प्रातिपुत्रस्य विहिता ससैन्यः ससुहृद्रजः ।
 सन्धिया । म म तववद् गृह्याय त्व भयोप्यस्यम् ॥ १४ ॥
 गृह्यायन् । म प्रसन्नतापूर्वक आपका उत्कार करना
 चाहता हूँ । म द्वारा प्रस्तुत किये गये उस उत्कारको आप
 सुहृदों तथा सनाभाक साथ ग्रहण करें ॥ १४ ॥
 प्रययाद् बहुमानस्य सौहार्देन च राजस्य ।
 प्रसात्यामि प्रत्याऽह न आख्यायापयामि तं ॥ १५ ॥
 पशुरी । मैं कबल प्रेम, सम्मान और छोड़ते करण
 ही भावसे यह प्रार्थना कर रहा हूँ । आपको प्रसन्न करना
 चाहता हूँ । मैं आपका लेवक हूँ । इच्छिये आपसे किनय
 करता हूँ आपको भ्रष्टा नहीं रँवा हूँ ॥ १५ ॥
 एवमुक्तस्ततः रामः प्रत्युवाच विभीषणम् ।
 रक्षसा बालराजां च सर्वेषामेव शृण्वताम् ॥ १६ ॥
 अब विभीषणने ऐसी बात कही तब भीरव समस्त
 एकछें और जनयक सुनते हुए ही उनसे बोले— ॥ १६ ॥
 पूजितोऽस्मि त्वया वीर साक्षिभ्येन परेण च ।
 स्यात्प्रमत्त च चण्डाभिः सौहार्देन परेण च ॥ १७ ॥
 भीर ! मेरे परम सुहृद् और उत्तम खसिन बनकर तुमने
 सब प्रकारकी बधाओंद्वारा मया सम्मान और पूजन किया
 है ॥ १७ ॥
 न आदर्यतान् कुर्यां स फलन राक्षसोन्धर ।
 त तु मे भ्रातरं द्रष्टुं भरत स्वराज मनः ॥ १८ ॥
 मैं निवर्तयितु याऽसी विप्रकृतमुपागतः ।
 चिरस्ता यावत्तः यद्य वचन न कृत मया ॥ १९ ॥
 पशुसंभर ! तुम्हारी इस बातको मैं निश्चय ही अलीककर
 नहीं कर सकता हूँ । परन्तु इस समय मेरा मन अपने उन
 भाई भ्रातृको देखनेके लिय उठावका ही उठा है । अब मुझे
 श्रेय्य व अनक लिय चिरकृतक आप व और मेरे करणमें
 स्थिर छद्मस्य वाचना करनेपर भी किसी बल मने नहीं
 मन्त्री थी ॥ १८ १९ ॥
 कीसत्यां च सुमित्रां च कर्कश्यां च यशस्विनीम् ।
 शुद्धं च सुहृद् वीर्य वीर्यात्प्राप्यदेः सह ॥ २० ॥
 उनका लिय माता कर्कश सुमित्रा यशस्विनी केनेही,

मित्रवर गुह और नगर एवं जनपदके लोगोंको देखनेके लिये
 भी मुझे बड़ी उत्कण्ठा हो रही है ॥ २ ॥
 अनुजामीहि मां सौम्य पूजितोऽस्मि विभीषण ।
 मस्युर्न कस्यु कर्तव्या सखे त्वा वातुमान्ये ॥ २१ ॥
 शौम्य विभीषण ! अब तो तुम मुझे खनेही ही मसुखि
 रो । मैं तुम्हारेद्वारा बहुत सम्मानित हो चुका हूँ । छे ।
 मेरे इस हठके कारण मुझपर श्रेय न करना । इसके लिये मैं
 तुमसे बार-बार प्रार्थना करता हूँ ॥ २१ ॥
 उपस्थापय मे शीघ्र विमानं रक्षसोन्धर ।
 कृतकार्यस्य मे वासाः कार्यं कथाविह सममताः ॥ २२ ॥
 पशुसंभर ! अब शीघ्र मेरे लिये पुष्पकनिमानको यों
 मँदोओ । अब मेरा यही कार्य उत्कट हो गया, तब यहाँ ठहरना
 मेरे लिये कैसे ठीक हो सकता है । ॥ २२ ॥
 एवमुक्तस्तु रामेण पाक्षसेन्द्रो विभीषणः ।
 विमानं सूर्यसकाशात्प्रजुहाव त्वरास्त्रितः ॥ २३ ॥
 भीरवकन्द्रकीके एक कबनेपर पशुसंभर विभीषणने बड़ी
 उद्यवधिक्य साथ उस सूर्यस्य टेकसी विमानको भ्रष्टान्त
 किया ॥ २३ ॥
 ततः काञ्चनविनाशं वैपूर्यमभिविचिकम् ।
 कृत्यगारैः परिसित सर्वतो रक्षतप्रभम् ॥ २४ ॥
 उस विमानक एक-एक अङ्ग छेनेसे क्या हुआ क
 लिये उसकी विविध शोभा होती थी । उसके भीतर वैपूर्य
 मभि (नीलम) की बेरियों की चर्चों-वहों गुप्त पर बने हुए
 थे और यह सब और चौकीके समान चमकील था ॥ २४ ॥
 पाशुपुराभिः पताकभिर्ध्वजैश्च समककृतम् ।
 शोभितं कञ्चनैर्हर्म्यैर्हमपचाविभूयितैः ॥ २५ ॥
 यह श्वेत-पीत वर्णवाली पताकओं तथा ध्वजोंके अलङ्कृत
 था । उसमें खेनेके कमरोंसे सुशोभित सर्वोन्मी महाभिर्य
 की था उस विमानकी शोभा बढ़ाती थी ॥ २५ ॥
 प्राकीर्णं किपुषीञ्जाङ्गमुत्तममिगवास्तकम् ।
 पशुपजालैः परिसित सर्वतो मयुरस्त्रणम् ॥ २६ ॥
 शय विमान छोटी छोटी पटियोंसे सुक शोभते लुप्त
 था । उसमें मोटी और मजिदोंकी निहकियों बनी थी । ल
 और पटे बने थे लिये मयुर धनि होती रहती थी ॥ २६ ॥
 त मेकविम्वाराकारं निर्मितं विश्वकर्माण्य ।
 पृथङ्निभूमितं हर्म्यैर्नुकारजतशोभितैः ॥ २७ ॥
 यह विश्वकर्माक बनाया हुआ विमान सुन्दर-शोभके
 समय ऊँचा तथा मोठी और चौकीसे सुलभित बने-बने
 कमरोंसे विभूयित था ॥ २७ ॥
 ततः स्फटिकविनाशैर्वैपूर्यैश्च वरासनेः ।
 महाहास्तरजापतैरुपपन्नं महाधनीः ॥ २८ ॥
 उसकी चर्च विविध रङ्गिभिरिये बड़ी हुई थी । उसने



विमान केकर उपस्थित हुए विभीषणसे श्रीराम-जानकोंका सत्कार करनेको काय रहे है

नीलमके बहुनूप्य सिंहासन ये, अिनपर महामुख्यवान् किक्षर
 भित्ते हुए प ॥ १८ ॥

उपस्थितमनचप्य तत् विमान ममोजवम् ।
 निवेद्यित्वा रामाय तस्यौ तत्र विभीषणः ॥ २९ ॥

उत्तम मन्के समान वेग या और उत्तम गति कहीं
 बहती नहीं थी । वह विमान सेवाने उपस्थित हुआ । विभीषण
 भीरुमन्के उसके आनेकी सूचना देकर वहाँ लगे हो गये ॥

इभ्यार्थे श्रीमद्भगवत्प्रे बास्मीकपे आदिकव्ये पुत्रकाण्डे पृथ्विसत्यधिकशततमा सर्गाः ॥ १२१ ॥
 इस प्रकार श्रीमन्मूर्तिनिर्मित अरारामावण अतिशयके सुन्दरकाण्डे एक सौ इस्वीसर्वा समा पूरा हुआ ॥ १२१ ॥

द्वाविंशत्यधिकशततम सर्ग

भीरामकी आज्ञासे विभीषणद्वारा वानरोंका विशेष सत्कार तथा सुग्रीव और विभीषणसहित
 वानरोंको साथ लेकर भीरामका पुष्पकविमानद्वारा अयोध्याको प्रस्थान करना

उपस्थितं तु तं कृत्वा पुष्पकं पुष्पभूषितम् ।
 अबिदूरे स्थितो राममित्युवाच विभीषणः ॥ १ ॥
 पूर्वसे छे हुए पुष्पकविमानको वहाँ उपस्थित करके
 पर ही लगे हुए विभीषणने भीरुमन्के कुछ कहनेका विचार
 किया ॥ १ ॥

स तु बद्धाङ्गलिपुटो विनीतो राक्षसेश्वरः ।
 समधीत् त्वरयोपेतः किं करोमीति राघवम् ॥ २ ॥
 एकद्वय विभीषणने रोतो शप कोइकर बनी विनय
 और उत्तमकीके साथ भीरुपुनापकीसे पूजा—प्रभो ! अब मैं
 क्या उपाय करूँ ? ॥ २ ॥

तमप्रवीणमहातेजा हृदमप्यस्योपरशृण्वता ।
 विनूय राघवो वाक्यमिदं स्नेहपुरम्कृतम् ॥ ३ ॥
 तब मन्केबली भीरुपुनापकीने कुछ खोजकर अत्यन्तके
 फुले हुए यह स्नेहयुक्त वचन कहा— ॥ ३ ॥

हृदप्रपञ्चकर्माणः सर्वे एव बनीकसा ।
 रत्नैर्यैव विविधैः समुत्पन्तां विभीषण ॥ ४ ॥
 कीमतेल । इन छरी वानरोंने मुझने कहा वस्तु एवं
 परिश्रम किया है अतः तुम नाना प्रकारके रत्न और वन
 अदिकके द्वारा इन लकड़ा उधार करो ॥ ४ ॥

सहामीभिस्तुवा लङ्का निर्दिता राक्षसेश्वर ।
 ह्यौ प्रापभय त्यक्त्वा साम्राज्यनिर्वातिभिः ५ ॥
 पाक्षेश्वर । ये भीर वानर संग्रामसे कभी पीछे नहीं
 रहते हैं और वहा हार एवं उल्लासते मने रहते हैं । प्राणोद्य
 म्म कोइकर लड़नेवाले इन वानरोंके शरभोग्ने तुमने लङ्कापर
 निरव फकी है ॥ ५ ॥

त इमे हृदकर्माणः सर्वे एव बनीकसा ।
 धनरत्नमानीक्य कर्मणा सफल कुश ॥ ६ ॥
 एवं वानी वानर इस समय अपना काम पूरा कर चुके हैं
 अतः इन्हें रत्न और धन आदि देकर तुम इनके इस कर्मको
 लक्ष्य करो ॥ ६ ॥

तत् पुष्पकं कामगमं विमान-
 मुपस्थितं मूधरसनिक्काशम् ।

हृद्य तथा विस्मयमाङ्गगाम
 रामः ससौमित्रिकद्वारसस्यः ॥ ३० ॥

फरतके समान ऊँचे और इच्छानुसार चकनेवाले उस
 पुष्पकविमानको उत्तम उपस्थित रत्न वरमपसहित उदारचेता
 भगवान् भीरुमन्के वहा विस्मय हुआ ॥ ३ ॥

पुत्रकाण्डे पृथ्विसत्यधिकशततमा सर्गाः ॥ १२१ ॥

एव सम्मानित्वाद्यैते नन्दमाना यथा त्वया ।
 अबिष्यन्ति हृदहेन निर्भूता हरियुगपाः ॥ ७ ॥
 तुम हृदय होकर जब इनका इस प्रकार सम्मान और
 अभिमान करनेगे तब ये वानरयुगपति बहुत संतुष्ट होंगे ॥ ७ ॥

त्यागिन सप्रहीतार सानुकोशं जितन्द्रियम् ।
 सर्वे त्वामभिगच्छन्ति ततः सन्मोक्षयामि त ॥ ८ ॥
 ऐसे करनेसे सब लोग यह जानेंगे कि किमोक्षत्र उचित
 मन्केपर मनका त्याग एवं दान कर्त हैं यथासमय
 म्यप्यचित रीतिसे धन और रत्न आदिका संग्रह करते रहते हैं
 यथाहैं और कितन्द्रिय हैं इच्छिने तुम्हें ऐसा करनेके लिये
 क्या खा हूँ ॥ ८ ॥

हृदि रतिगुणैः सर्वैरभिहन्तारमाहवे ।
 सेना त्यजति सविद्यं नृपतिं त नरेश्वर ॥ ९ ॥
 नरेश्वर । वो राज सेवकोंमें प्रथम उत्तम करनेवाले वान-
 रमन अदिक सब गुणोंसे परिद होव है उसे पुत्रके भवत्पर
 उद्विग्न हुई सेना कोइकर चक होती है वह समझती है कि
 यह अर्थ ही इमाय बच कर रहा है—इसने मरण-योग्यकर
 या योग-सेमकी चिन्ता इसे किन्तु नहीं है ॥ ९ ॥

एषमुक्तस्तु रामेण वानरास्तान् विभीषणः ।
 रक्षायसंविभागेन स्वानवाग्यपूजयत् ॥ १० ॥
 भीरामके ऐसा करनेपर विभीषणने उन सब वानरोंको
 रत्न और धन देकर समीचा पूजा (उदार) किया ॥ १० ॥

ततस्तप्य पूजितान् हृद्य रक्षायहमित्युत्पान् ।
 आहराह सदा रामस्तद् विमानमनुत्तमम् ॥ ११ ॥
 अनुत्तमशाय दीर्घार्थं लज्जयानां मनम्विनीम् ।
 अहमणन सह भावा विमानन्तन धनुष्पत्वा ॥ १२ ॥
 उन वानरयुगपतियोंके रत्न और धनमें पूजित हुआ रत्न
 उस समय भगवान् भीरुमन्के वहाँ दूर मन्किनी निरहकुमादि-
 को भङ्गने लकर पदास्त्री पनुर्पर मन्कु सम्भवक लय उन
 उत्तम विमानपर अहम्प हुआ ॥ ११ १२ ॥

ततस्तप्य पूजितान् हृद्य रक्षायहमित्युत्पान् ।
 आहराह सदा रामस्तद् विमानमनुत्तमम् ॥ ११ ॥
 अनुत्तमशाय दीर्घार्थं लज्जयानां मनम्विनीम् ।
 अहमणन सह भावा विमानन्तन धनुष्पत्वा ॥ १२ ॥

ततस्तप्य पूजितान् हृद्य रक्षायहमित्युत्पान् ।
 आहराह सदा रामस्तद् विमानमनुत्तमम् ॥ ११ ॥
 अनुत्तमशाय दीर्घार्थं लज्जयानां मनम्विनीम् ।
 अहमणन सह भावा विमानन्तन धनुष्पत्वा ॥ १२ ॥

ततस्तप्य पूजितान् हृद्य रक्षायहमित्युत्पान् ।
 आहराह सदा रामस्तद् विमानमनुत्तमम् ॥ ११ १२ ॥

मञ्जरीत् स विमानस्यः पूजयन् स्वयंयन्तरान् ।
सुप्रीयं च महावीर्यं ककुत्स्थस्यः सखिभीषणम् ॥ १३ ॥

विमानपर बैठकर अन्तः बानरोंक अन्तर करते हुए
उन ककुत्स्थकुकुभूषण भीरुमाने विभीषणसहित महत्प्रयाक्रमी
सुप्रीयसे कहा—॥ १३ ॥

मित्रकार्यं कृतमिन् भवद्विवांतर्यभार ।
मनुजाया मया सर्वे यथेष्ट प्रतिगच्छन् ॥ १४ ॥

बानरप्रह वीर्य ! आपसमेतोंने अपने इस मित्रत्व कार्य
मिथ्याचित रीतिसे ही मन्त्रीमौखि सम्पन्न किया । अब आप
मम अपने-अपने कामोंके खानोंके चले चले ॥ १४ ॥

यत् तु कार्यं वयस्येन शिष्येन च हितेन च ।
ह्यन सुप्रीयं ह्य सर्वे भवताभर्माभीरुष्य ॥ १५ ॥

मम सुप्रीय ! एक हितैषी एवं प्रेमी मित्रको भी काम
करना चाहिये वह सब हमने पूरा-पूरा कर दिसामा क्योंकि
हम मन्त्रीमने करनेवाले हो ॥ १५ ॥

किष्किन्धां प्रति याह्यन्तु स्वस्यैश्वर्यभिरसूतः ।
म्बरान्ये वस लह्यायां मया वचो विभीषण ।
न त्वां धर्ययितुं शक्ताः सेन्द्रा अपि विशोकसाः ॥ १६ ॥

बानरराज ! अब हम अपनी तेजाके साथ हीम ही
किष्किन्धापुरीके चले आये। विभीषण ! हम भी अन्तःमें
मेरे विषे हुए अपने रामपर फिर खो अब इन् प्रभु मन्त्रि
देवता भी हमारा कुछ निगाह नहीं सकते हैं ॥ १६ ॥

अयोध्यां प्रति वास्यामि राजभर्ता पितुर्मम ।
अभ्यनुवातुमिच्छामि सर्वान्नामन्त्र्यामि वा ॥ १७ ॥

अब इस समय मैं अपने पिताकी राजधानी अयोध्याको
आऊँगा । इसके लिये आप सब योग्यसे पूछता हूँ और सबकी
अनुमति चाहता हूँ ॥ १७ ॥

एषमुक्त्वास्तु रामेन हरीन्द्रा हरयस्तथा ।
ऊचुः प्रसन्नयाः सर्वे रत्नसखा सिप्रीयवा ॥ १८ ॥

भीरुमन्त्रराजीके ऐश्वर्य करनेपर सभी बानर-सेनापति तथा
राजस्यार विभीषण आप बेहदकर करने लगे—॥ १८ ॥

अथाध्यां गन्तुमिच्छामः सर्वान् नयतु नो भवान् ।
सुपुत्रा विचरिष्यामो वनास्युपवनामि च ॥ १९ ॥

भगवन् ! हम भी अयोध्यापुरीके चटना चाहते हैं
आप हमें भी अपने साथ के चलिए । वहाँ हम प्रकन्तापूर्वक
बनो और उपकामे विचरेंगे ॥ १९ ॥

ह्यपू स्वामभिषेक्यर्त्तुं कौसल्यामभिवाद्य च ।
अचिरादागमिष्यामः स्वपुत्रान् नृपसत्तम ॥ २० ॥

इसके लिये श्रीमन्नाम्यने कामकीकीये अचिरकालमें
पुत्रकाचने हाकिमत्वभियोग्यतमः सर्गा ॥ १२१ ॥

एत प्रकर श्रीमन्मर्मिर्मर्मित् सर्वरामजनम अचिरकालमें पुत्रकाचने पर से कार्यसर्ग सग पूरा हुआ ॥ १२२ ॥

वृषभेड । एभ्यामिषेकके समय मन्त्रपूत करने लगे
हुए आपके भीविमहारी शोषी करके माता कोइत्याके परलोकमें
महाक कुम्भकर हम हीम अपने पर श्रेष्ठ अर्पण ॥ १ ॥
एवमुक्त्वास्तु धर्मात्मा बानरैः सखिभीषणैः ।
मद्यधीव वानरान् रामाः ससुप्रीयविभीषणान् ॥ २१ ॥

विभीषणसहित बानरोंके इस प्रकार अनुपप करनेपर
भीरुमाने सुप्रीय तथा विभीषणसहित उन बानरोंसे कहा—॥२१॥
प्रियात् प्रियतरं लब्धं यद्दं ससुहृद्वान् ।
सर्वैर्भवंद्विः सहितः प्रीतिं लप्स्ये पुरीं गता ॥ २२ ॥

भिमो ! वह ते मेरे लिये प्रियसे भी प्रिय बात होगी—
परम प्रिय वस्तुका लाभ होगा, यदि मैं आप सभी सुहृदोंके
साथ अयोध्यापुरीको चले आऊँ । इसके द्वारा वही प्रकन्त
प्राप्त होगी ॥ २२ ॥

क्षिप्रमारोहं सुप्रीय विमानं सह वानरैः ।
त्वमप्यारोहं साम्राज्यो राक्षसेन्द्र विभीषण ॥ २३ ॥

सुप्रीय ! हम सब बानरोंके साथ हीम ही इस विमान-
पर चढ़ जाओ । एकदम विभीषण ! हम भी मन्त्रियोंके
साथ विमानपर आरुढ़ हो जाओ ॥ २३ ॥

उतः स पुष्पकं दिव्यं सुप्रीयः सह बानरैः ।
आकरोह मुदा युक्तः साम्राज्यं विभीषणः ॥ २४ ॥

उन बानरोंसहित सुप्रीय और मन्त्रीमौखित विभीषण
वही प्रकन्तवाके साथ उठ दिव्य पुष्पकविमानपर चढ़ गये ॥
तम्बाकडेपु सर्वेषु कौबर परमसत्तमम् ।
राज्येषाम्यनुवातुम्युत्पयात विहायसम् ॥ २५ ॥

उन सबके चढ़ करनेपर कुबेरका वह उच्च अन्न
पुष्पकविमान भीरुनायकीकी आधा पाकर आरुढ़वाके उड़
पला ॥ २५ ॥

अगतेन विमानेन हंसयुक्तेन भासता ।
महत्प्रथमं प्रतीतव्यं बभौ रामा कुम्बरवत् ॥ २६ ॥

अच्छाचने पहुँचे हुए उस हंसयुक्त तक्ष्णी विमानसे
यात्रा करते हुए पुष्पकित एवं प्रकन्तचित भीरुम लक्ष्म
कुबेरके समान योग्य था रहे थे ॥ २६ ॥

ते सर्वे वानरहोत्राश्च राक्षसाश्च महाबलाः ।
यथासक्तमसत्तमार्थं दिव्यं तस्मिन्नुपाविशन् ॥ २७ ॥

वे सब बानर महत् और महाबली राक्षस उठ दिव्य
विमानमें चढ़े मुक्तसे कुम्बर बैठे हुए थे । किसीसे किसीसे
बच नहीं जाना पड़ा था ॥ २७ ॥

त्रयोविंशत्यधिकशततम सर्ग

अयोध्यास्थी यात्रा करते समय श्रीरामक्य सीताजीको मार्गके स्थान दिखाता

सुन्दरकाण्डे तु रामेण तच्च विमानमनुत्तमम् ।
 इत्युक्तं महाशब्दमुत्पत्तात् विहायसम् ॥ १ ॥
 श्रीरामक्ये आशा पकर यह हंसयुक्त उत्तम विमान महान्
 पद पद हुआ भावार्थमें उड़ने लगा ॥ १ ॥
 पदपित्वा लतल्लङ्घुः सर्वतो रघुनन्दनः ।
 प्रवर्षीमैथिलीं सीतां रामः वाशिनिभाननाम् ॥ २ ॥
 उस समय रघुकुम्भानन्दन श्रीरामने सब ओर दृष्टि बाँध-
 कर चक्रवर्त्ते समान मनोहर मुखवासी मिथिलेप्रकुमारपी
 खेले धरा-॥ २ ॥
 कैलासशिखराकारे विकृतशिखरे स्थिताम् ।
 लङ्कामील्ल वैदेहि निर्मितां चिम्बकमणा ॥ ३ ॥
 विदेहराजनन्दिनि ! कैलास-शिलारके समान कुन्वर विकृत
 पर्वतके विहास शृङ्गपर बली हुई विश्वकर्माकी क्वासी अङ्गुली-
 का देखा; कैले कुन्वर दिखायी देती है ॥ ३ ॥
 पञ्चापोधन पश्य मांसदोषितकृत्रमम् ।
 हरीणां रासचाना च सीते विशासन महत् ॥ ४ ॥
 पक्ष इस पुत्रभूमिमें देखो ! यहाँ रक्त और मांसकी
 शिकारी बनी हुई है। सीते ! इस सुन्दरकर्ममें जानरों और राक्षसों-
 का भक्षण छार हुआ है ॥ ४ ॥
 एष इक्षवरा शेते प्रमाथी राससेम्बराः ।
 तत्र हेमार्पिदाप्रसक्तिं निहतो राक्षसो मया ॥ ५ ॥
 विषयव्यवहारे ! यह राक्षसराज राक्षस राक्षसों के रक्त
 का खाता है। वह बड़ा मारी हिंसक था और इसे ब्रह्माग्नीने
 मरदान दे रक्षया या किन्तु दुन्दारे किये मैंने इसका बच कर
 दिया है ॥ ५ ॥
 कुम्भकर्णोऽत्र निहतः प्रहस्तश्च निशाचरः ।
 पूषारराक्षसश्च निहतो धानरेण हनूमता ॥ ६ ॥
 पर्वतर मैंने कुम्भकर्णको मध्य था यही निशाचर प्रहस्त
 मर गया है और इन्हीं समराज्यमें जानरबीर हनुमान्ने
 पूषारका बच किया है ॥ ६ ॥
 विद्युमास्यै इतश्चात्र सुवपन महत्समता ।
 लक्ष्मणनाम्नश्चिच्छात्र राघणित्तिहरो रथं ॥ ७ ॥
 यही प्रामाण्य सुवपने विद्युमास्यको मारा था और इन्हीं
 रथभूमिमें लक्ष्मणने राघवपुत्र इन्द्रकिरण छंदार किया
 था ॥ ७ ॥
 बह्वर्नात्र निहतो विक्रान्त नाम राक्षसाः ।
 विक्रमस्तश्च पुष्पता महापादमहादूरी ॥ ८ ॥
 यहाँ बह्वर्नाके विक्रान्तक राक्षसका बच किया था।
 विक्रान्त और देवता भी कठिन था वह विक्रान्त तथा
 महाका और महत्तर भी यहीं मारे गये ॥ ८ ॥

अकम्प्यनश्च निहतो बलिगोऽप्ये च राक्षसाः ।
 त्रिशिराश्चात्किण्वश्च देवान्तकनरात्मकौ ॥ ९ ॥
 अकम्प्यन तथा वृद्धे बलवान् राक्षस यही मौलिके पाट
 उखरे गये थे। त्रिशिर अतिक्रम्य, देवान्तक और नयन्तक
 भी यहीं मार डाले गये थे ॥ ९ ॥
 युधोष्मत्तश्च मत्तश्च राससप्रवरासुभी ।
 निकुम्भश्चैव कुम्भश्च कुम्भकर्णारमजौ बली ॥ १० ॥
 युधोष्मत्त और मत्त—ये दोनों भेद राक्षस तथा बलवान्
 कुम्भ और निकुम्भ—ये कुम्भकर्णके दोनों पुत्र भी यहीं
 मुखमें प्राप्त हुए ॥ १० ॥
 यथाशुभश्च वृष्णा बहवो राक्षसा इताः ।
 मकरास्तश्च बुधर्षो मया युधि निपातितः ॥ ११ ॥
 यथाशुभ और बहू आदि बहुतसे राक्षस यहीं कर्मके
 प्राप्त कन गये। बुधर्षो वीर मकराशुभके इन्हीं पुत्रकर्ममें मैंने
 मार गिरया था ॥ ११ ॥
 अकम्प्यनश्च निहतः शोषिताक्षश्च धीर्ययान् ।
 यूपाक्षश्च प्रजङ्गद्वश्च निहतौ तु महाहये ॥ १२ ॥
 अकम्प्यन और पराक्रमी शोषिताक्षका भी यहीं कर्म
 समान हुआ था। यूपाक्ष और प्रजङ्ग भी इन्हीं महासमरमें मारे
 गये थे ॥ १२ ॥
 विपुस्त्रिगोऽत्र निहतो राक्षसो भीमदशना ।
 यक्षशत्रुद्वश्च निहतः सुतप्रदश्च महापला ॥ १३ ॥
 त्रिगो और देसनेसे भी मर होता था, वह राक्षस
 विपुस्त्रिग यही मौलिक प्राप्त कन गया। यक्षशत्रु और महापला
 मुत्तकर्म भी यहीं मार गया था ॥ १३ ॥
 सूर्यशत्रुश्च निहतो प्रक्षयासुस्तथापराः ।
 अत्र मन्वोदरी नाम भार्या सं पर्यवेपयत् ॥ १४ ॥
 सफलीया सहस्रेण साप्रेण परिधरिता ।
 सूर्यशत्रु और प्रक्षयासु नामक विषयकोका भी यहीं बच
 किया गया था। यही राक्षसी भाया मन्वोदरीने उसके किये
 विधाय किया था। उस समय वह अपनी हथोरमें भी अधिक
 कैलास सिरी हुई थी ॥ १४ ॥
 पठत् तु वदयत् तीर्थं समुद्रस्य परामन ॥ १५ ॥
 पथ सागरमुत्तीय सा राधिमुरिता वधम् ।
 सुमुत्ति ! यह समुद्रका तीर्थ पिलायी देता है, यहाँ
 समुद्रका पार करके हमकर्ममें वह रात पिलायी थी ॥ १५ ॥
 एष सतुमया पश्य सागरे उदरणाथे ॥ १६ ॥
 तत्र हतोर्विशात्मसि मलसतुः सुदुष्कराः ।
 विशात्मकाने ! तारे पानीके समुद्रमें यह मग बैधपाप
 हुआ पुत्र है जो नभ्युत्क नामक विष्णवात् है। दृष्टि ! तुम्हारे

स्मिन्ने ही वह अकण्ठ दुष्कर सेतु बौधा गमा या ॥ ११३ ॥

पश्य सागरमहोभ्य वैदेहि वक्ष्यात्वयम् ॥ १७ ॥

अपारमिष गर्जन्त शङ्खशुक्तिसमाकुलम् ।

विदेहनन्दिनि । इष अशोक्य वक्ष्याम्य एतद्रूपे दो वेकोः ओ अपार-स्र दिवासी वेता है । शङ्ख और खिपियोसे मय हुमा यह सागर कैसी गर्जना कर रहा है ॥ १७ ॥

हिरण्यनाभ शैलेन्द्र काञ्चन पश्य मैथिलि ॥ १८ ॥
विद्यमार्थं हनुमतो भिस्त्वा सागरमुत्थितम् ।

मिथिलेन्द्रकुमारी । इष सुवर्णमय परैतएव हिरण्यनाभको ना वया ओ हनुमान्कीओ विभ्रम देनेके स्मिन् एतद्रूपी कम्-गर्जना नीरकर ऊपरओ उठ मया था ॥ १८ ॥

एतत्त कञ्ची समुद्रस्य स्कन्धावारनिवेशानम् ॥ १९ ॥
अत्र पूय महादेवः प्रसप्तमकरोव् विमुग् ।

पह एतद्रूपे उतरने ही विशाल टापू है ओो मीने सेना का पहाड बाध्य था । यहाँ पूर्वकालमें अमलान् महादेवने मुक्त-पर कृपा की थी—सेतु बौधनेसे पहलु मेरे द्रव्य स्थापित होकर वे यहाँ विराजमान हुए थे ॥ १९ ॥

एतत् तु दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः ॥ २० ॥
संतुषन्थ इति क्यत्त ब्रैकोक्येन च पूजितम् ।

इष पुण्यस्थळमें विशालकम्प समुद्रका तीर्थ दिवासी वेता है जो सेतुनिर्माणका मूल्यदेष्ट होनेके कारण सेतुबन्ध नामसे विख्यात तथा तीनों ओओशय पूजित होगा ॥ २० ॥

एतत् पवित्र परम महापातकनाशानम् ॥ २१ ॥
अत्र राक्षसराजाऽयमाज्जगाम विभीरणा ।

पह तीर्थ परम पवित्र और महान् पातकोरुप नाश करने वाला होगा । यहाँ ये राक्षसएव विभीरुएव आकर मुक्ते सिद्धे थे ॥ २१ ॥

एया सा दृश्यते सीते किष्किन्धा चित्रकाननम् ॥ २२ ॥
सुमीरस्य पुरी रम्या यत्र बाल्मी मया हतः ।

छेते । यह विषिभ बनप्रान्तसे मुष्मिभा किष्किन्धा दिवासी रानी है ओ बानरएव सुमीरपी मुख्य नगरी है । यहाँ मीने बाल्मीका का किये था ॥ २२ ॥

अथ हनुमुरी सीता किष्किन्धां पालिवास्तिताम् ॥ २३ ॥
अप्रवीन् प्रथित यान्मयं राम प्रणयस्ताप्यसा ।

तदनन्तर बालिवास्तित किष्किन्धापुरीका दर्शन करके सीताने प्रसन्न विद्वत् हा भीरुमने निवर्तूंक कहा—॥ २३ ॥

सुमीरप्रियभावाभिस्तागरमुत्कला नृप ॥ २४ ॥
अपवया वानरत्राजो मीभिः परित्यूता हाहम् ।
गन्तुमिच्छेत्त महावल्गवा रात्रधर्मी त्यया सह ॥ २५ ॥

महापत्र । मैं सुमीरपी ताय भा प्रिय अर्थाओ तय

अन्य वानरस्वरोपी कियोओ तय छेकर म्याके साथ मनी राक्षसी अयोप्यामें चक्का चाहती हूँ ॥ २४ २५ ॥

एवमुक्तोऽथ वैदेह्या राक्षवः प्रत्युयाच ताम् ।
एवमस्तिपति किष्किन्धां प्राप्य संस्थाप्य राक्षवः ॥ २६ ॥

विमान प्रेक्ष्य सुमीर्यं वाक्यमेतदुवाच ह ।

विदेहनन्दिनी सीताके ऐसा कहनेपर श्रीरघुनाथजीने कहा—
ऐसा ही हो । फिर किष्किन्धामें पहुँचनेपर उन्होंने स्थित उद्यम्य और सुधीरपी और देखकर कहा—॥ २६ ॥

दृष्टि वानरशार्ङ्गं सर्धान् वानरपुङ्गवान् ॥ २७ ॥
स्त्रीभिः परिधृत्वाः सर्वे ह्ययोप्यां यान्तु सीत्या ।

तथा त्वमपि सर्वाभिः स्त्रीभिः सह महाबल ॥ २८ ॥
अभित्वरय सुमीर्यं गच्छममः पुत्रगाधिप ।

बानरभेद । तुम समस्त वानरपुत्रपतिओसे करो कि वे सब छोटा अपनी-अपनी कियोओ छाप छेकर सीताके साथ अयोप्या चले तथा महाबली वानरराज सुमीर । तुम भी अपनी सब कियोओ साथ श्रीम वक्षनेओ तैयारी कर बिस्ते हम ल अभंग करी यहाँ पहुँचें ॥ २७-२८ ॥

एवमुक्तस्तु सुमीरो रामेष्वामिततेजसा ॥ २९ ॥
वानराधिपतिः श्रीमांस्तैश्च सत्यैः समावृत्त ।

प्रविद्यमन्तःपुरं शीघ्रं तारामुद्गीक्ष्य सोऽप्रवीत् ॥ ३० ॥

अमित तेजसी श्रीरघुनाथजीके ऐस कहनेपर उन ल वानरोंसे बिरै हुए भीमान् वानरएव सुमीरने श्रीम ही मन्तःपुरमें प्रवेश करके तायसे मँड श्री और इत प्रकर कहा—॥ २९ ॥

स्मिन्ने त्व सह नारीभिर्यानराणां महात्मनाम् ।
राधयेणाम्यनुज्ञाता मैत्रिलीप्रियकाम्यया ॥ ३१ ॥

त्यर त्वमभिगच्छप्रमो पुष्ट पानरपोषिता ।
अयोप्यां व्वायिप्यामः सर्वां वृक्षरपक्षिणा ॥ ३२ ॥

प्रिय । तुम मिथिलेन्द्रकुमारी सीताका प्रिय करनेओ इच्छासे श्रीरघुनाथजीकी आज्ञाके अनुस्सर सभी प्रपन्न-प्राप्य महत्तमा वानरोंकी मित्रोके साथ श्रीम बक्षनेओ तैयारी करो । हमस्येण इन वानर-वसिनयोका साथ सबर पक्षीओ और उँवें

• सीतजीने जा कहा वानरोंकी निःशय सब के बन्देओ इच्छा प्रकट की है हमक जिसे किष्किन्धामें विद्वन्मथ एतत्त मन्थे एक दिन स्थित रहा । ऐसा राजावक निश्चयकरा था है । एतके कन्ठनुस्वार स्थिति दृष्टा पशुजीके किष्किन्धामें तयत्र वक्ष-सीधे बरतत प्रपन्न प्रिय मया था । अमलान् एतने वहाँ स्थित उद्ये दिन महदृष्ट किष्किन्धामें सुवर्णनगर बालिभक्त करतक के वेत कि वराभाटा वानरों अन्वय १ २ ३ ४ ५ ६ ७ ८ ९ १० से बरिता तय है ।

अयोध्यापुरी तथा महाराज दशरथकी धन रणियोध्न दर्शन
करके ॥ ३१ ३२ ॥

सुप्रियस्य वचः श्रुत्वा तारा स्वयंज्ञशोभनम् ।

व्याहृतं जामवीत् स्वयो धानराजा तु योषितः ॥ ३३ ॥

सुप्रियकी यह वच सुनकर सर्वाङ्गसुन्दरी तापने समस्त
कान्त-परिनयोको मुग्धकर कहा— ॥ ३१ ॥

सुमीषेणाभ्यनुज्ञाता गन्तुं सर्वेभ्यः धानरैः ।

मम चापि प्रिय कर्तव्यमयोध्यादर्शनेन च ॥ ३४ ॥

प्रबन्धं शेष रामस्य पीरजानपदैः सह ।

विमूर्तिं शेष सयासां स्त्रीणां वृशारथस्य च ॥ ३५ ॥

धरियो । सुमीषकी आशके अनुसार तुम उन कमा अपने
परिचय-समस्त बानरोंके साथ अयोध्या पकनक स्थिये शीघ्र
देकर हो जाओ । अयोध्याकर दर्शन करके तुमसभ्य मेरा भी
मिल कर फरजी । वहाँ पुरवास्थियो तथा कानपदके कर्मोंके
सब भीषमका अ अपने नगरमें प्रवेश होगा यह उत्सव हमें
देनेके मिश्रेण । हम वहाँ महाराज दशरथकी समस्त रणियो-
क देनकर भी दर्शन करेगी ॥ ३४ ३५ ॥

दशरथं जाम्यनुज्ञातः सखा धानरयोषितः ।

नेपथ्यस्थिधिपूर्वं तु कृत्या चापि प्रदक्षिणम् ॥ ३६ ॥

अयोध्यादेहन् विमानं तत् सीतावृथाकम्पुष्या ।

दशरथी यह आकर पाकर सारी कान्त-परिनयोने शृङ्गार
करके उस विमानकी परिष्कार की और खीटाकीक दर्शनकी
इच्छते वे उठकर चढ़ गयीं ॥ ३६ ॥

वामिः सङ्घोरित्य शीघ्रं विमानं प्रक्ष्य राघवाः ॥ ३७ ॥

शुभ्यमूकसमीपं तु वैदर्ही पुनरग्रवीत् ।

उन एकके साथ विमानकी शीघ्र ही ऊपर उठा देकर
शुभ्यनापकीने शुभ्यमूकके निकट आनेपर पुनः विदेह-
नक्षत्रिये कहा— ॥ ३७ ॥

दृश्यतेऽसौ महान् सीतं सविद्युद्विषं तोषयः ॥ ३८ ॥

शुभ्यमूका गिरिवरः कञ्चनभीतुनिघृतः ।

धरते । वह जो विश्वीकदित नभके समान सुवर्णमय
बहुभूषे पुक भेद एवं महान् पर्वत दिखायी देता है उसका
नाम शुभ्यमूक है ॥ ३८ ॥

अथाहं वानरभ्रेण सुमीषेण समगतः ॥ ३९ ॥

समयश्च कृताः सीतं वधार्थं धाकिनो मया ।

धरते । वहाँ मैं बानरयज सुमीषते मिला था और मित्र्य
करनेके पश्चात् बाकीका बच करनेके स्थिये प्रतिश की
थी ॥ ३९ ॥

एष सा दृश्यत पश्चा नलिनी चित्रकान्तर ॥ ४० ॥

तथा विहितं यत्राह विखलाप सुतु-क्षितः ।

व्यही वह पश्या नामक पुष्करिणी है जो तटवर्ती विचित्र
काननोंसे सुशोभित हो रही है । वहाँ दुम्हार किनासे अत्यन्त
दुखी होकर मैंने विद्वप किया था ॥ ४ ३ ॥

मस्यास्तरीरे मया दृष्टा शशरी धर्मचारिणी ॥ ४१ ॥
अथ योजनवाहुष्य फयन्धो मिहतो मया ।

वृषी पश्याके तटपर मुझे धर्मपयणा शशरीकर दर्शन
हुआ था । इतर वह स्थान है वहाँ एक यजन क्वी मुख
वाले कनक नामक अनुकर मैंने बच किया था ॥ ४१ ३ ॥

दृश्यतेऽसौ जलम्बाने धीमान् सीतं वनस्पतिः ॥ ४२ ॥

जटापुष्यं महातज्जालस्य हेतोर्विलसिति ।

रावणेन हतो यत्र पक्षिणा प्रवरो बली ॥ ४३ ॥

किञ्चलाश्लिनी धीते । कनकानमें वह शोभ्याश्ली
विशाल वृक्ष दिखायी दे रहा है वहाँ बकवान् एवं महातेजकी
पक्षिपत्र अद्यत दुम्हारी रख करनेके कारण रावणके हाथसे
मारे गये थे ॥ ४२ ४३ ॥

खरश्च निहतो यत्र वृणजश्च निपातितः ।

त्रिदिवारश्च महावीर्यो मया धार्यैरजिह्वैः ॥ ४४ ॥

व्यह वह स्थान है वहाँ मेरे खीसे कनेबाधे बाणोंद्वारा
खर मार गया, वृणज बराघायी किया गया और महापुरुषमी
त्रिदिवारके भी मोतके पाट उदार दिया गया ॥ ४४ ॥

पठत् तदाभमपवमसाकं धरपणिनि ।

पर्यशास्त्रं तथा चित्रा दृश्यत शुभवर्चसे ॥ ४५ ॥

यत्र तत्र राक्षसभ्रेण रावणेन हृतं वज्रम् ।

वर्तन्ति । शुभवर्चसे । यह हमजोगेका आभम है
तथा वह विचित्र पर्यशास्त्र दिखायी देती है, वहाँ आकर
राक्षसज रावणने कर्षूक दुम्हाय मरदण किया था ॥ ४५ ३ ॥

एषा गांधावरी रम्या प्रसन्नसज्जिता गुभा ॥ ४६ ॥

मनास्पस्याभमभौष दृश्यत कद्वीवृतः ।

व्यह लच्छ कद्वीवृषिसे सुशोभित मज्जकमयी रमणीय
गांधावरी नदी है तथा वह कद्वी कद्वीते थिय हुआ महर्षि
अगस्त्यका आभम दिखायी देता है ॥ ४६ ३ ॥

धीतद्वीवाभ्रमां ह्येण सुतीक्ष्णस्य महारमनः ॥ ४७ ॥

दृश्यत शेष वैदर्हि शरभहाभ्रमा महान् ।

उपपातः सहस्रास्ता यत्र शम्भुः पुरुरः ॥ ४८ ॥

व्यह मराया सुतीक्ष्णश रीसिमन् अश्रम है और
विदेहनक्षिनि । वह शरभद्र मुनिश्रम महान् अश्रम दिखायी
देता है, वहाँ सहस्रनभषारी पुरुर इन्द्र पवार प ॥ ४७-४८ ॥

अस्मिन् वदा महाकथयो विराधा निहतो मया ।

एत त तापसा इवि दृश्यन्तं अनुमथ्यम् ॥ ४९ ॥

व्यह वह स्थान है वहाँ मैंने विद्याकथय विराधका बच

किन्ना धा। देवि । तनुमप्यमे । ये व तापस विज्ञानी देते हैं
किन्ना धर्षण इमन्मने परं किन्ना या ॥ ४९ ॥

अग्निः कुसुपतिर्यत्र सूर्यवैश्वानरोपमा ।
अत्र सीतं त्वया दृष्टं तापसी धर्मचारिणी ॥ ५० ॥

धरते । इस तापसाधमन ही सूर्य और अग्निने समान
तपस्वी कुसुपति अग्नि मुनि निवास करते हैं । वही धमने
धर्मपत्न्या तपस्विनी मनस्यारेवीश्व धर्मन किन्ना धा ॥ ५१ ॥

मसी सुतनु दौळेन्द्रभिन्नकूटः प्रक्षराते ।
अत्र मां कैकयीपुत्रः प्रसङ्ग्यतिमुममताः ॥ ५१ ॥

भुतनु । यह गिरियात्र चित्रकूट प्रक्षरित हो रहा है ।
वही कैकयीकुमार भरत मुझे प्रसन्न करके जैय देनेके लिये
आये व ॥ ५२ ॥

एषा सा यमुन्य रम्या दृश्यत विषकल्पनम् ।
भरद्वाजाधमा श्रीमान् दृश्यत सौ वैधिमि ॥ ५२ ॥

मिषिषेष्टकुमारी । यह मिषिच कन्नोसे सुषोभित
रमणीय यमुना नदी बिसावी देवी है और यह शोमण्याभी
मरदाबधम दक्षिणेतर हो रहा है ॥ ५२ ॥

इयं च दृश्यत गङ्गा पुष्य विषयगा नदी ।
नान्दाद्रिजगत्पाद्रीणां समपुष्पितकानता ॥ ५३ ॥

यो पुष्पसिद्धि विषयग गङ्गा नदी हील रही हैं किन्के
दृष्टपर नाना प्रकारके फली कलश करते हैं और दिनचन्द्र
पुष्पकमोमें दृष्ट हैं । इनके दृष्टकी कनके इष्ट सुन्दर फूलसे
भरे हुए हैं ॥ ५३ ॥

हृषार्थे श्रीमद्भामाकने वास्वीकीने आदिकाथे पुत्रकान्ते कपोदिशालकिन्नाततना सत्ये ॥ १२३ ॥

इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीयभारतमहाकाव्यके मुद्रणकामे एक ही छैठवीं छान्द पूरा हुआ ॥ १२३ ॥

चतुर्विंशत्यधिकशततम सर्ग

श्रीरामका भरद्वाज आशमपर उतरकर महापिंसे मिलना और उनसे बर पाना

पूर्णे चतुर्विंश बर्षे पञ्चम्यां वसुमणामप्रदा ।
भरद्वाजाधम प्राप्य ययन्त् निपत्ये मुनिम् ॥ १ ॥

श्रीधमपत्रकीने चौदहवीं बर्षे पूव होनेपर पञ्चमी क्षिति
को मरदाब अधमने पहुँचकर मनको बधमें रखते हुए मुनि
को प्रणाम किया ॥ १ ॥

सप्तपुष्पप्रभियापैर्न भरद्वाज तपाधनम् ।
शृण्वारि कथित् भगवन्त् सुभिज्ञानमम पुर ।
कथित् स सुकृता भरता जीवन्त्यपि च मरताः ॥ २ ॥

तपस्वक फले भरद्वाज मुनिसे प्रणाम करके श्रीधमने
उन्ते पूछा—भगवन् । धावने भयान्वापुष्टिक गिरवने भी

भरद्वाजपुरं कैतन् गुणो नव सख्य मम ।
एष सा दृश्यत सीते सरयुर्गुणमखिली ॥ ५४ ॥
एषा सा दृश्यते सीत राजधानी विदुर्मम ।
अयोध्यां कुब वैद्वि प्रनाम पुनपनाम् ॥ ५५ ॥

यह शृङ्गेरपुर है, जहाँ मेरा मित्र गुह रहता है ।
सीत [यह यूपमाख्यसे अखंडत सरयू बिसावी देवी है
किन्के तदपर मेरे पिताकीही राजधानी है । विदेहनपिनि ।
पुत्र कनवासके बाद फिर शृङ्गेर अयोध्याको अपनी ठे ।
इसलिये इस पुरीका प्रनाम करो ॥ ५४-५५ ॥

उत्तस्ते बानराः सर्वे राक्षसाः सखिभीषणा ।
उत्पत्सोत्पत्स्य सद्दृष्टास्तं पुरीं वदशुक्ता ॥ ५६ ॥

उन विद्वेषपवहित वे सब राक्षस और बानर अल्प
इष्टि उत्कृष्टित हो उल्लस-उल्लसकन उस पुरीका धर्षण करने
को ॥ ५६ ॥

उत्तस्तु तां पञ्चपुरद्वार्यामखिलीं
विशालकन्यां गजबालिमिर्बुक्तम् ।
पुरीमपश्यत् द्वृषगाः सपत्न्यताः
पुरीं महेन्द्रस्य पपात्मरक्षतीम् ॥ ५७ ॥

उत्पत्सत् वे बानर और राक्षस श्वेत अशुभिकमने
अखंडत और विशाल मकनसे विम्पित मन्वापुरीको, जो
हाथी-घोड़ोंसे भरी थी और देवकाब इन्द्रकी अमराकरीपुरीके
समान शोभित होती थी, देखने को ॥ ५७ ॥

हृषार्थे श्रीमद्भामाकने वास्वीकीने आदिकाथे पुत्रकान्ते कपोदिशालकिन्नाततना सत्ये ॥ १२३ ॥

कुछ मुना है । वहाँ मुद्रक और कुपस-महृष्ट छो दे न ।
भरत प्रथगाकनने उत्तर करते हैं न । मेरी माताएँ खीन्त
हैं न ॥ २ ॥

पश्यमुकस्तु रामेण भरद्वाजो महामुनिः ।
प्रत्युपास्य रघुधर्मं स्मितपूर्वं प्रदृष्टवत् ॥ ३ ॥

श्रीधमपत्रकीके इत प्रकार पूछनेपर महामुनि मन्वाको
मुकस्तुकर जनरघुधर्म श्रीधमने प्रसन्नपूर्वक कता— ॥ ३ ॥
अप्यवद्यत्सव भरता जटिष्ठस्तथा प्रतीक्षत ।
पातुके त पुररक्षत्य सर्वे च कुशल गृहे ॥ ४ ॥
पपुन्वत् । भरत आरपी धर्मक अधीन हैं । वे सब

इमे आपक आगमनधी प्रीतिश्च करते हैं । आपकी चरण-
पदुच्छ्रयोंको छमने रखकर सरा कार्य करते हैं । आपके
फसर और नगरमें भी सब कुछ है ॥ ४ ॥

त्वां पुण खीरवसन प्रविशन्त महावनम् ।
कीर्तवीथ व्युत्तरान्याद् धमकामं च कवचम् ॥ ५ ॥
प्राप्तिं त्यक्तसत्रस्य पितृनिर्वैशाकारिणम् ।
सर्वभोगीः परित्यक्तं स्वगन्धुतमिवासरम् ॥ ६ ॥
एष तु कवचापूर्वं ममासीत् समिर्तिजय ।
कैकेयीवचने सुकं वान्यमूढफलाशिनम् ॥ ७ ॥

एक सब आप महान् कनकी यात्रा कर रहे थे, उस
समय आपने चौरपक्ष धारण कर रक्खा था और आप
देनें गार्शोक साथ वीरवी केवल आपकी ही थी । आप
एकसे वक्षित किये गये थे और कवच धर्मपावनकी इच्छा
मनमें के सर्वस त्यागकर पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये
देख ही था रहे थे । खरे भोगसि बुर हो स्वर्गसे मूढकर
पिरे हुए देखकर समान बना पड़ते थे । शत्रुनिष्कमी वीर ।
आप कैकेयीके आदेशक पालनमें लक्ष्य हो अगामी फल-मूढका
भ्रमर करते थे, उस समय आपको देखकर मेरे मनमें बड़ी
कनका हुई थी ॥ ५—७ ॥

साम्प्रत तु समुद्यार्थं समिन्नगणवाग्ध्वम् ।
समीक्ष्य विजितारिं च ममाभूत् प्रीतिरुत्तमा ॥ ८ ॥
एतत् इव समय तं वारी स्थिति ही बद्ध गभी है । आप
शत्रुन निश्चय पाकर सङ्गमनद्वय हो मित्रों तथा बन्धुकों
सब खेद रहे हैं । इस समयमें आपको देखकर मुझे बड़ा सुख
मिल्य—मुझे वही प्रसन्नता हुई ॥ ८ ॥

सर्वं च सुखदुःखं ते विदितं मम राघव ।
यत् त्वया विपुत्रं प्राप्तं जतस्थाननिवासिना ॥ ९ ॥
एतुधर । आपने फलज्ञानमें राकर च विपुत्र सुख-दुःख
उठाये हैं वे सब मुझे मात्रम् है ॥ ९ ॥
ब्रह्मपाप्ये नियुक्तस्य रक्षतः सर्वैरुपसजान् ।
राघवनं ह्यत्र भार्या वभूधयमनिन्विता ॥ १० ॥

पहों राकर आप ब्रह्मपापके कर्ममें संलग्न हो समस्त
दुःखी मुनिवोंकी रक्षा करते थे । उस समय एकत्र आपकी इस
छटी-सखी मयाको हर के गया ॥ १ ॥

मारीवर्दानं वैव सितोन्मपतमव च ।
कवचवर्दानं वैव पम्याभिगमनं तथा ॥ ११ ॥
सुप्रीवेशं च तं सस्य पत्र बाजी हतस्त्वया ।
मार्गसं वैव वीर्यद्वयः कर्म धातात्मजस्य च ॥ १२ ॥
विदित्वाप्यां च पदेष्वा नखसेतुपथा कृतः ।
पथा व्यादीपित्वा सञ्च प्रहृष्टहरिपुत्रपैः ॥ १३ ॥

सपुत्रवाग्ध्वामास्य सयत्न सहवाहनः ।
यथा च निहता सख्ये राघवो बलद्विपित ॥ १४ ॥
यथा च निहते तस्मिन् राघवे वेदकण्टके ।
समागमस्य विद्वेशीयथा दृत्तस्य तं वरः ॥ १५ ॥
सर्वं ममैतद् विदितं तपसा धर्मवत्सलः ।

धर्मवत्सल । मानीचक्र कण्टमृगके समयमें दिल्लीमी देना,
छीताचक्र बलपूर्वक भयहरण होना, इनकी खोज करत समय
आपके मार्गमें कनकचक्र मिलना, आपका पम्पासङ्करक सट
पर जाना सुप्रीवक साथ आपकी मैत्रीका होना, आपके हाथसे
वाग्ध्वीका माय जना, छीताकी खोज, पवनपुत्र हनुमन्का
भ्रतसुत कर्म छीवाचक्र पता लगा जानेपर नभके द्वारा छ्युत्रपर
सेतुका निमात्र, हर्ष और उत्साहसे मेरे हुए यानर-सूयपतियों
द्वारा छद्मपुरीका रहन पुत्र, बन्धु, मन्त्री, सेना और सगारिके-
सहित ब्रह्मभिमानी राजका आपके द्वारा मुझमें बंध होना,
उस देखकरक राघवके मेरे जानेपर देखकरकों साथ आपका
समागम होना तथा उनका आपको बर देना—ये सारी बातें
मुझे तपके प्रसन्नसे ज्ञत हैं ॥ ११—१५ ॥

सम्प्रतस्ति च मे शिष्याः प्रभुस्याख्याः पुरीमिता ॥ १६ ॥
बहुमन्यत्र तं वृधि पर शक्यमूर्तां यर ।
अभ्यं प्रतिगृह्णातेमयोभ्या भ्यो गमिष्यसि ॥ १७ ॥

मेरे प्रवृत्ति नामक शिष्य यहाँसे भयोप्यापुरीको ऋते
रखते हैं (अत्र मुझे यहाँका इच्छन्त मात्रम् होता रहता है),
राजपारितोमें भय भीराम । यहाँ मैं भी आपको एक बर देता
हूँ (आपकी जो इच्छा हो उसे भोग ल) । आज मेरा अभ्यं
और आशिष्य-सत्कार प्रदत्त करें । फल अपने भयोप्याको
ब्रह्मेणा ॥ १६ १७ ॥

तस्य तच्छिरसा वाक्यं प्रतिगृह्य नृपामजः ।
पाहमित्येष सहायः भीमान् धरमयाचत ॥ १८ ॥
मुनिके उस बचनको धिरोधार्य करके हर्षसे मेरे हुए
भीमान् राघवकुमार भीरुमने करा—एतद् अन्धा । फिर
उन्होंने उनसे यह वर माँगा— ॥ १८ ॥

अकालफळिने वृक्षाः सर्वे चापि मनुजयाः ।
फलात्म्यमृतगन्धीनि बहुनि विविधानि च ॥ १९ ॥
भक्त्यु मार्गे भगवत्प्रयोच्यां प्रति गच्छतः ।

मगतम् । यहाँसे भयोप्या ऋते समय मार्गके उन वृक्षोंमें
समय न होनेपर भी फल उत्पन्न हो कार्य और वे सब-कुछ
मनुष्यी पात्र उपभोगेवाले हैं । उनमें नाना प्रकारक बहुत-से
अमृतोत्पन्न मुगन्धित फल बना ज्यों ॥ १९ ॥

तथेति च प्रतिज्ञातं धचनात् समन्तरम् ॥ २० ॥
अभवन् पादपास्तत्र जगपापसन्निभाः ।

कई खरस प्रबन्धों तथा समृद्धिवादी सन्तोंको देखते हुए अविभक्त हनुमान्भी तीव्रगतिसे वृत्तकर्म रक्षा कर्षण गये और नन्दियामके समीपकी स्थित हुए वृद्धोंके पास आ पहुँचे । वे वृद्ध देवराज इन्द्रके नन्दनवन और कुम्भके वैभ्रय कन्दके वृद्धोंके समान सुप्रसन्न होते थे ॥ २०-२८ ॥

श्रीभिः सपुत्रैः पौत्रैश्च रममाणैः खलकृत्तैः ।
काशमात्र त्वयोप्यायाकीरकृष्णाजिनाम्बरम् ॥ २९ ॥
दृग्वा भरत दीन वृशमाभ्रमवाचिनम् ।
जित्तिल मरुद्विग्भङ्ग भावद्वयसनकदांतम् ॥ ३० ॥
फलमूलाशिन वान्त तापस धर्मधारिणम् ।
समुन्मनजटाभार वस्त्रकलाजिवास्तसम् ॥ ३१ ॥
नियत भावितारमान धृष्ट्यापिसमतेजसम् ।
पादुक त पुग्मन्वृष्य प्रशासस्त वस्तुधरम् ॥ ३२ ॥

उनका आस पास बहुत-सी कियों अपने उन पुत्रों और पौत्रोंके साथ आ वस्त्राभूषणोंसे सम्मीमाँति सम्बद्ध थे निचरती और उनके पुणोंका चयन करती थी । अयोध्यासे एक कोठरी वृष्टीपर उन्होंने अभयवादी मरुतको देखा, जो पीर-नर और कास मृगचर्म धारण किये बुढ़ी एवं दुर्बल दिखती देत था । उनका किरण ऊँच बढ़ी हुई थी धीरेपर गैर कम गयी थी मरुतके कनकके तुलने उन्हें बहुत ही कृपा कर दिता था कस-मूक ही उनका भोजन था वे इन्द्रियोंका दमन करके तपस्वामें छनो हुए थे और धर्मका आचरण करते थे । किरण बटाका मरुत बहुत ही ऊँचा बिलामी देता था, वस्त्रक और मृगचर्मसे उनका धीरे ढका था । वे बड़ नियमसे रहते थे । उनका मन्त-कर्म श्रद्ध था और वे प्रत्येकके समान तेन्सी सन पढ़त था । खुनापभीषी दानों चरणपादुकाओंको अपने रक्तकर वे पूज्योका शाठन करते थे ॥ २९-३२ ॥

बाहुवन्धस्य स्त्रकस्य चरत्पर सखतो भयात् ।
उपस्थितममार्त्यश्च नृषिभिश्च पुरोहितैः ॥ ३३ ॥
पलमुर्ष्यश्च युक्तैश्च क्षाययास्यारधारिभिः ।
मरुती चारो बर्षोशी प्रकामोश्च सव प्रमरक मस्ते
सुरोहित रसत था । उनके पास मन्त्री पुण्डित और सेनापति भी समगुच्छ हाजर रहते और गैरक कर्म पहत थे । ३३ ॥
महि त राजपुत्र त खीरकृष्णाजिनाम्बरम् ॥ ३४ ॥
परिभारुः प्ययस्वन्ति पीरा धै धमवस्तवाम् ।

भयानक व धनानुषंगी पुरवशी भी उन खीर और कास मृगचर्म धारण करनेवाले राजकुमार मरुतक उठ दृष्टामें लड़कर स्वयं मग भोगनेमें इच्छा नहीं करते थे ॥ ३४ ॥
तं धममिव धमर्तं दृश्यन्धमिवापरम् ॥ ३५ ॥
उपाय प्रात्रनियाम्य हनुमान् मादनामजः ।

मनुष्य देह धारण करके आये हुए वृद्धे धर्मो मति उन धर्मक मरुतके पास पहुँचकर पवनकुमार हनुमान्को हाथ खेड़कर बोले— ॥ ३५ ॥

पस्तत दृष्टकारण्ये य त्व खीरजटाभरम् ॥ ३६ ॥
अनुशोचसि काकुत्स्थ स त्वा कौशाळमत्रवीत् ।
प्रियमाख्यामि ते देव शोक त्यज सुदाहयम् ॥ ३७ ॥
मस्मिन् मुहूर्ते भ्रात्रा त्व रामेण सह सगताः ।

देव । आप दृष्टकारण्यने खीर-वक्र और बड़ा बाल करके रहनेवाले दिन श्रीखुनापभीके किये निरन्तर चिन्तित रहते हैं उन्होंने आपको अपना कुशाळ-समाचार ब्रह्मण्य है और आपका भी पूजा है । मग आप इस अन्त राजप शाकको त्याग दीजिये । मैं आपको बड़ा प्रिय छत्रकार हूँ रहा हूँ । आप श्रीम ही अपने मरुत खीरमते मिलेंगे ॥ निहत्थ रावण रामः प्रतिब्रह्म्य च मैथिलीम् ॥ ३८ ॥
उपयाति सन्मुखार्थः सह मित्रैर्महावल्लभैः ।
लक्ष्मणश्च महातेजा धैवेही च परास्तिनी ।
सतिता समप्रा रामेण मोहेन्नेप शशी यथा ॥ ३९ ॥

ममान् श्रीमण राजपको मारकर मिलिकेपकुम्भरीको बापस के सम्बन्धनेतरप हा अपने महावशी मित्रोंके साथ आ रहे हैं । उनके साथ महातेकरी लक्ष्मण और परास्तिनी भिरेहरककुम्भरी लीया गी हैं । जैसे देवराज इन्द्रके साथ शशी योमा पाती हैं उसी प्रकार श्रीमणके साथ पूर्वमन लीयाथी सुप्रोमित हा रही है ॥ ३८-३९ ॥

एवमुक्त्वा हनुमता भरताः कैकयीसुताः ।
पपात सहसा ह्यो हर्याम्बोहमुपागमन् ॥ ४० ॥

हनुमान्भीके एसा करते ही कैकेयी-कुमार मग लक्ष्मण अन्तद्विभोर हा वृष्ठीपर गिर पड़े और हयसे नृक्षित हो गये ॥ ४ ॥

तयो मुहूर्तवृत्त्याप प्रत्याभवस्य च रामवः ।
हनुमन्तमुधाचद् भरताः प्रियव्यदिनम् ॥ ४१ ॥
भशोकप्रैः प्रीतिमयैः कपिमाळिङ्ग्य सभ्रमात् ।
सियञ्च भरताः श्रीमयन् विपुर्खरभुविम्बुभिः ॥ ४२ ॥

उपरभारु हा पकीक शब्द उन्हें हाथ हुआ और वे उठकर लड़ हा गये । उठ समय खुकुम्भाल्य श्रीमान् भरती मित्र-वादी हनुमान्भीके बड़े वेगसे पकड़कर दानों मुजाभीमें भर किया और शाठ संकीर्ति शून्य परमानन्दकृन्तित विपुळ अमु-फिन्दुभसे वे उन्हें नदकने लगे । फिर इस प्रकार बड़-मं दृवा था मानुष्य था स्वमनुष्यन्यप्रविहागत ।
प्रियाप्यानम्य त सीम्य दक्षामि सुपतः प्रियम् ॥ ४३ ॥
मेघ । तुम मरुत दक्षय हा था मनुष्य, अब मुहूर्त

हय करके यहाँ पधार हा ? छेय्य । तुमने अब यह प्रिय
 संघर्ष सुनाया है, इसके बदल में तुम्हें कौन-सी प्रिय वस्तु प्रदान
 करे ? (मुझ ला कर देखा बहुमुख उपहार नहीं दिखायी
 देता; अब इस प्रिय संघर्षक तुम्हें हा) ॥ ४१ ॥

यथा शतसहस्र च प्रामाण्या च शत परम् ।
 सकुण्डलानां शुभाचार भायाः कन्यास्तु पौडश ॥ ४४ ॥
 हेमपण्या सुन्यासोका शशि सौम्यामन्याः स्त्रियाः ।
 सपाभरणसम्पन्ना सम्पन्ना कुलजातिभिः ॥ ४५ ॥
 (तथापि) मैं तुम्हें इसके सिधे एक लाख गौर,
 सौ उधम गौर तथा उधम आचार-विचारवासी छहस्र कुमारी
 कन्याएँ फली-रूपमें समर्पित करता हूँ । उन कन्याओंके कर्णोंमें
 सुन्दर कुण्डल ब्यामगाये होंगे । उनकी मङ्गल-कान्ति सुवर्णके

समान होगी । उनकी नासिका सुवर्ण, ऊब मन्दिर और मुख
 चन्द्रमाके समान सुन्दर होंगे । वे कुम्भीन होनेके साथ ही
 सब प्रकारके सम्भूषणसे निर्भूषित होंगी ॥ ४४ ५५ ॥

मिशाम्य राममगमन नृपात्मजाः
 क्वपिप्रदीरस्य तन्नादुतोपमम् ।
 महर्षितो रामविद्वस्ययाभयत्
 पुनश्च हपादिवमप्रवीत् यय ॥ ४६ ॥

उन प्रमुख बानर-वीर हनुमान्जीके मुखसे श्रीरामचन्द्र
 जीके आगमनका अद्भुत समाचार सुनकर रामकुमार भरतजी
 श्रीरामके दर्शनकी इच्छासे भयन्त हर्ष हुआ और उस
 इच्छासे ही वे फिर इस प्रकार बोले— ॥ ४६ ॥

इत्यार्षे धीमन्नामायन वाक्मीश्वर्ये व्यादिकाम्ये सुन्दरकाण्डे पद्मविंशत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १२५ ॥

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन करवानायन करिअमक सुन्दरकाण्डमें एक सौ पच्चीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १२५ ॥

पद्मविंशत्यधिकशततम सर्ग

हनुमान्जीका भरतको भीराम, लक्ष्मण और सीताके वनवाससम्बन्धी
 सार वृत्तान्तोंको सुनाना

बहूनि नाम वपाणि गतस्य सुमहद्वनम् ।
 श्रयोम्यर्हं प्रीतिकर मम नाथस्य कीर्तनम् ॥ १ ॥
 परी त्पत्नी श्रीरामका विद्यालय बनने गये बहुत वर्ष बीत
 गये । इतने बरोंके बाद अब मुझ उनके अमन्त्ररूपिणी
 बना सुननेको सिन्धी है ॥ १ ॥

बैठने हुए हनुमान्जीने भीरामका वनवासविवरण खर
 करिअ उनसे कह सुनाया— ॥ ४ ॥

कन्याणी बत गाधेय लीकिकी प्रतिभाति माम् ।
 एति जीयन्तमानन्दो नरं वर्षाद्यद्यपि ॥ २ ॥
 अब यह कन्यावमयी छेकिक गद्यथा मुझे पर्यार्य मन
 पवती है—मनुज यहि सीता रहें तो उसे कभीन-कभी हर्ष
 म्नेर अमन्त्रकी प्राप्ति हावी ही है मझे ही यह लो पर्यो
 धर स ॥ २ ॥

यथा श्रयाजितो रामो मातुर्दुष्टो वरी तथ ।
 यथा च पुत्रशोकैज राजा वृधारयो मृतः ॥ १ ॥
 यथा दूतैस्त्वयमानितस्पूर्वं राजगृहात् प्रभो ।
 स्वयापोर्णां प्रविष्टेज यथा राज्य न खेन्सितम् ॥ ३ ॥
 विश्वकूटगिरिं गत्वा राम्येनामिश्रकशनः ।
 निमन्त्रितस्त्वय्य आता धममाश्रयता सताम् ॥ ७ ॥
 स्थितेज रात्रो बचन यथा राज्य विसर्जितम् ।
 व्यापस्य पातुके पृष्ठा यथासि पुनरागतः ॥ ८ ॥
 सधमेकमहापातो यथायद् विवित तथ ।
 स्वयि प्रतिप्रयात तु यद् भूचं तद्विधाध म ॥ ९ ॥

प्रभो ! महाबाह ! किस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीको वनवास
 दिया गया किंतु तरह आपकी माताको दा वर प्रदान किए
 गये जैसे पुत्रशोकसे राजा वृधारथकी मृत्यु हुई किंतु प्रकार
 भाप राजघरसे पूर्वोक्तप्रणीत ही हुआम गये किंतु तरह
 अमन्त्राणमें प्रवेश करके भावने राज्य खेनेकी इच्छा नहीं की
 और अत्युपयोग धमका आशरण करत हुए विश्वकूट-पर्वतपर
 बचकर अपने धनुमदन मारैअ भावने राज्य खेनेके सिधे

राजस्य हरीत्या च कथमासीत् समागमः ।
 क्वसिन् दृष्ट किमाधित्य लक्ष्मणाख्याहि वृक्षतटा ॥ ३ ॥
 शैल्ये । श्रीरामनाथजीका और बानरोंका यह मेक-मेक
 कर हुआ ! किस देशमें और किस कारणसे उकर हुआ ?
 यह मैं अन्वय करता हूँ । तुम मुझे ठीक-ठीक ब्याख्या ॥
 स पृष्ठा राजपुत्रेज वृक्षां समुपबेदिता ।
 यत्रबभूव तटाः सर्वे रामस्य चरित बने ॥ ४ ॥
 रामकुमार भरतके इस प्रकार पृष्ठनेपर कुशावनर

प्रभो ! महाबाह ! किस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीको वनवास
 दिया गया किंतु तरह आपकी माताको दा वर प्रदान किए
 गये जैसे पुत्रशोकसे राजा वृधारथकी मृत्यु हुई किंतु प्रकार
 भाप राजघरसे पूर्वोक्तप्रणीत ही हुआम गये किंतु तरह
 अमन्त्राणमें प्रवेश करके भावने राज्य खेनेकी इच्छा नहीं की
 और अत्युपयोग धमका आशरण करत हुए विश्वकूट-पर्वतपर
 बचकर अपने धनुमदन मारैअ भावने राज्य खेनेके सिधे



निमित्तक क्रिया, फिर उन्होंने किस प्रकार राव्य दशरथके वनवास पाछन करनेमें इततगुरुके शिव शंकर उन्मत्ते त्याग दिया तथा किस प्रकार अपने बड़े भाई श्री वरुण-प्राणेशके संकर भ्रातृ फिर झोट भ्रातृ—यं तव बाते तौ आपन्ने वयापत् स्पष्टे सिद्धि ही है। मापके झोट अपनेके स्वर से वृष्यन्त पठित हुम्ब, यह क्या रहा हूँ मुझसे मुनिसे—॥ ५-९ ॥

भयघाते स्वयि तद्वा समुद्भास्तन्मृगप्रियञ्जम् ।
पन्थिगमनिवात्यर्थं तद् धन समपघात ॥ १० ॥
तदन्तिमुदित धार सिंहस्यप्रभमृगाकुञ्जम् ।
प्रथियपाथ यिजन स महद् दण्डकावणम् ॥ ११ ॥

आपक झोट भानेवर यह कन सब झरेते भयन्त स्त्री-
ना ही चला । बहोके पद्म-पत्नी मम्से भवत उठे थे, तब उस वनमें उडकर भीरामने विद्याका दण्डकारण्यमें प्रवेश किया, जो निवन था । उस घेर कनका शपिषोंने रौंद बाधा था । उसमें सिंह म्याम और मृग मरे हुए थे ॥ १ ११ ॥

तयां पुरस्ताद् वलघान् गच्छतां गहमं घने ।
विनदन् सुमहानाद् विराधः प्रत्यहवपत ॥ १२ ॥
उस गहन कनमें जाते हुए इन छीनोंके मनो मङ्गल
गर्भना करता हुम्ब बहान् उल्ल विराध रिखायी दिया ॥

समुत्थित्य महानादमूर्ध्वबाहुमधोमुखम् ।
निस्त्रासं प्रक्षिपन्ति स न्यन्तमिव कुञ्जरम् ॥ १३ ॥
ऊपर बौह और नीचे मुँह किसे चिन्महते हुए हाथीके
कमान बर-बरसे गमना करनेवाले उस उल्लमे उन छीनोंके
मारकर गर्भमें बँक दिया ॥ ११ ॥

सद् दृष्ट्या तुष्कर कर्म धातरो रामलक्ष्मणौ ।
सायाहे शरभहृस्य रम्यमग्नममीपतुः ॥ १४ ॥
यह तुष्कर कर्म करके दोनों भाई भीराम और
समय क्षयंभ्रमे घरमङ्ग मुनिके रमणीय आभमपर ज
पहुँच ॥ १२ ॥

गरभद् द्विय प्राप्त रामः सत्यपराक्रमः ।
अभिपाद्य मुनीन् स्ववायनम्यानमुपागमत् ॥ १५ ॥
घरभंग मुनि भीरामके कन्ध लगैसाइक चले गये । तब
कवरपदमें भीराम स्व मुनिपौर प्रणाम करक बनसानने
भ्रय ॥ १५ ॥

पद्मच्छपुष्यरत नाम रामपाद्यमुपागत्य ।
तदा रामस्य सदिष्ट लक्ष्मणा सहसार्थितः ॥ १६ ॥
प्रगृह्य सद् विच्छद् कथनास महापसः ।

कनधानमें आनक बाद शूरजग नामवाकी एक उल्ल
(मनमें क्रमन्ना मङ्ग) भीरामवन्द्यक था । भायी । तब
भीरामने कथनक उध दण्ड देन । भाईर दिया । मराकरी

कमलने कदा उडकर उल्लवार उठायी और उस उल्लके
नाक-कान फट किसे ॥ १६ ॥

समुर्द्धा सहस्रापि रक्षसां भीमकर्मणम् ॥ १७ ॥
हताग्नि वसता तत्र राघवंज महात्मना ।

यहाँ उठते हुए महात्मा भीरुनायकीने मकेते ही
घरपसाकी प्रेयमते भाये हुए मन्मन्त कर्म करनेवाले खेर
हकर उल्लके वच किमा ॥ १७ ॥

एकेन सह सगम्य रामेज रणमूर्धनि ॥ १८ ॥
सहस्रमूर्धभोगेन निशेया राससाः कृता ।

पुझके मुझनेपर एकमात्र भीरामके खय मिहकर ने
कमल उल्ल परभरने ही कमात हो गये ॥ १८ ॥

महाबला महाधीर्यास्तपसो विष्णुकरिणः ॥ १९ ॥
निहत्वा राघवेजाहौ वृषभकारण्यवासिनः ।

पपलामे विष्णु शम्भेवाके उन दण्डकारण्यनिवासी
महानवी और महान्पत्नी उल्लके भीरुनायकीने मुझने
मार बाधा ॥ १९ ॥

राससाश्च विमिषिष्ठाः क्षरन्ति निहतो रणे ॥ २० ॥
वृष्य थाप्रत्ये हस्य विशिरासदन्तत्तरम् ।

‘उस रणभूमिमें वे खेडह हकर उल्ल पीत झले गये,
क्षर मारा गया फिर वृष्यका क्रम तथम हुम्ब । कन्ध
निधिराके भी मौलके पाठ उल्ल दिया गया ॥ २ ॥

ततस्तेनार्थित्वा बाळा राघवं समुपागतम् ॥ २१ ॥
राघव्यानुचरो घोरो मारीचो नाम राससः ।
अभेभयामस वैदेही मृत्वा रक्षमयो मृगा ॥ २२ ॥

यह पटनाते पीडित होकर यह मूर्ख उल्लके कृष्णमें
उल्लके पास गयी । उल्लके करनेसे उल्लके अनुभर मारीच
नामक भयंकर उल्लने रक्षमय मृगका रूप धरन करके
विदेहराजकुमारी छीत्रके कृष्णया ॥ २१ ॥

सा राममप्रथीद् दृष्ट्वा वैदेही पृच्छतामिति ।
अथ मनोहरः कान्त व्यभ्रमो नो भविष्यति ॥ २३ ॥

‘उस मृगके देखकर छीत्रने भीरामते कस—‘भार्यपुत्र ।
इत मृगके पकड़ कीजिये । इसके करनेसे मेरा पर अश्रम
कन्धित्वा एवं मन्दर हो जायगा’ ॥ २३ ॥

ततो रामा धनुष्याणिमृगं तमनुधावति ।
स त उच्यत धायन्त शरप्यानतपयण ॥ २४ ॥

यह भीरामने हाथमें धनुष छेकर उस मृगका पीण
क्रिया और धनुषी हुई गौटाक एक कालसे उन भगते हुए
मृगके मर बाधा ॥ २४ ॥

अथ सौम्य वृत्तरीया मृगं याति तु राघव ।
समये चापि निष्प्रन्त प्रथियगाभम तदा ॥ २५ ॥

सौम्य । अत्र भीष्मनाथनी मृगके पीठे न खे ये और
 अग्रज भी उम्हाका समाचार छेनेक किये पमशास्त्रते बाहर
 निकल गये, तब राजपते उच आभममें प्रवेश किया ॥ २५ ॥
 समाह तरसा सीतां प्रहं खे रोहिणीमिष ।
 अतुष्टम ततो युञ्जे हत्या गृध्र जटायुधम् ॥ २६ ॥
 प्रगृह्य सहसा सीता जगामागु स राजसः ।

उठने बलपूर्वक छीताको पकड़ किया, माना आकाशमें
 मगजने रोहिणीपर आक्रमण किया हो । उच समय उनकी
 उखके किये न्याये हुए अग्रज अतुष्टमके युद्धमें मारकर यह
 पक्ष उख छीताको खप छे नहोते क्यही ही अमृत हो गया ॥
 ततस्त्यद्वृतसक्षरयाः सिन्धु पयतमूर्धनि ॥ २७ ॥
 सीता गृहीत्वा गच्छन्त वानराः पवतोपमाः ।
 वृष्णिषिस्त्रिाक्षरारा रक्षणं राजसभिपम् ॥ २८ ॥

तदनन्तर एक पक्ष-दिल्लरपर उठनेवाले पक्षोंके समान
 ही अमृत एव विद्याक शरीरवाले बानरोंने आश्चर्यचकित हो
 छीताको उकर बाट हुए एकएक रक्षणको देखा ॥ २७-२८ ॥

कदा शीघ्रतर गत्या तद् विमन मनोजवम् ।
 भाक्य सह वैवेद्या पुष्पक स महावला ॥ २९ ॥
 प्रविशश तदा लङ्का रायणो रक्षसेम्बरः ।

जब महाकवी रक्षसराज राजप बड़ी शीघ्रताके साथ
 मनेके समान वेगप्राप्ती पुष्पक विमानके पक्ष न पहुँचा और
 छीताके साथ उकर भाग्य हो उठने लङ्कामें प्रवेश किया ॥
 हां सुवचपरिष्कारे शुभे महति वेदमनि ॥ ३० ॥
 प्रपद्य मैथिलीं वास्यैः सान्त्वयामास रावणः ।

जब महाकवी रक्षसराज राजप बड़ी शीघ्रताके साथ
 मनेके समान वेगप्राप्ती पुष्पक विमानके पक्ष न पहुँचा और
 छीताके साथ उकर भाग्य हो उठने लङ्कामें प्रवेश किया ॥
 हां सुवचपरिष्कारे शुभे महति वेदमनि ॥ ३० ॥
 प्रपद्य मैथिलीं वास्यैः सान्त्वयामास रावणः ।

जब महाकवी रक्षसराज राजप बड़ी शीघ्रताके साथ
 मनेके समान वेगप्राप्ती पुष्पक विमानके पक्ष न पहुँचा और
 छीताके साथ उकर भाग्य हो उठने लङ्कामें प्रवेश किया ॥
 हां सुवचपरिष्कारे शुभे महति वेदमनि ॥ ३० ॥
 प्रपद्य मैथिलीं वास्यैः सान्त्वयामास रावणः ।

जब महाकवी रक्षसराज राजप बड़ी शीघ्रताके साथ
 मनेके समान वेगप्राप्ती पुष्पक विमानके पक्ष न पहुँचा और
 छीताके साथ उकर भाग्य हो उठने लङ्कामें प्रवेश किया ॥
 हां सुवचपरिष्कारे शुभे महति वेदमनि ॥ ३० ॥
 प्रपद्य मैथिलीं वास्यैः सान्त्वयामास रावणः ।

जब महाकवी रक्षसराज राजप बड़ी शीघ्रताके साथ
 मनेके समान वेगप्राप्ती पुष्पक विमानके पक्ष न पहुँचा और
 छीताके साथ उकर भाग्य हो उठने लङ्कामें प्रवेश किया ॥
 हां सुवचपरिष्कारे शुभे महति वेदमनि ॥ ३० ॥
 प्रपद्य मैथिलीं वास्यैः सान्त्वयामास रावणः ।

जब महाकवी रक्षसराज राजप बड़ी शीघ्रताके साथ
 मनेके समान वेगप्राप्ती पुष्पक विमानके पक्ष न पहुँचा और
 छीताके साथ उकर भाग्य हो उठने लङ्कामें प्रवेश किया ॥
 हां सुवचपरिष्कारे शुभे महति वेदमनि ॥ ३० ॥
 प्रपद्य मैथिलीं वास्यैः सान्त्वयामास रावणः ।

जब महाकवी रक्षसराज राजप बड़ी शीघ्रताके साथ
 मनेके समान वेगप्राप्ती पुष्पक विमानके पक्ष न पहुँचा और
 छीताके साथ उकर भाग्य हो उठने लङ्कामें प्रवेश किया ॥
 हां सुवचपरिष्कारे शुभे महति वेदमनि ॥ ३० ॥
 प्रपद्य मैथिलीं वास्यैः सान्त्वयामास रावणः ।

सोच करते हुए गोदावरीतटके पुणित बनप्रसूते विचरने
 लगे ॥ ३४ ॥

भासेवतुर्महारण्ये कषत्र भ्राम राजसम् ।
 ततः कवम्भयसनाद् रामः सत्यपराक्रमा ॥ ३५ ॥
 श्रुप्यमूकगिरिं गत्वा सुप्रीयेण समगताः ।

श्लोक-श्लोकते वे दोनों भाई उच विद्याक बनमें कश्यप
 नामक राक्षसके पास न पहुँचे । तदनन्तर सत्यपराक्रमी रामने
 कश्यपका उदार किया और उखीके कहनेसे वे श्रुप्यमूक पर्वत-
 पर आकर सुप्रीयके भिडे ॥ ३५ ॥

तयोः समगताः पूर्वे प्रीत्या हावो ब्यजावत ॥ ३६ ॥
 भ्रात्रा निरस्ताः हृद्वेन सुप्रीयो वाळिना पुरा ।
 इतरेतरसवावात् प्रगाढः प्रणयस्तपो ॥ ३७ ॥

उन दोनोंमें एक दूसरेके उच्छ्वस्कारसे पहले ही हार्दिक
 मित्रता हो गयी थी । पूर्वकालमें क्रुद्ध हुए बड़े भाई वाळीने
 सुप्रीयको भरसे निकाल दिया था । भीरुम और सुप्रीयने सब
 परस्पर बाँटे हुए, तब उनमें और भी प्रगाढ़ प्रेम हो
 गया ॥ ३६-३७ ॥

रामः स्वयाहुधीर्येण स्वराज्य प्रत्यपावयत् ।
 वालिन समरे हत्या महाकायं महावलम् ॥ ३८ ॥

भीरुमने अपने बाहुकसे अमराज्यमें महाकय महाकवी
 वाळीका वध करके सुप्रीयको उनका राज्य दिख दिया ॥ ३८ ॥
 सुप्रीयः स्थापितो राज्ये सहितः सध्वानरैः ।
 रामाय प्रतिजानीत राजपुत्र्यास्तु मार्गणम् ॥ ३९ ॥

भीरुमने समस्त बानरोंछहित सुप्रीयको अपने राज्यपर
 स्थापित कर दिया और सुप्रीयने भीरुमके समक्ष यह प्रतिज्ञा
 की थी कि मैं राजकुमारी छीताकी खान करूँगा ॥ ३९ ॥

मादिष्टा धानरेन्द्रेण सुप्रीयण महात्मना ।
 दश कोट्यः ध्रुवज्ञाना सर्वा प्रस्थापिता विद्याः ॥ ४० ॥

उदयुधर महाप्य धनराज सुप्रीयने दश करोड़ बानरों
 को छीताका पक्ष अग्रनेकी अज्ञा देकर अमूर्ध विद्याओंमें
 भेजा ॥ ४० ॥

तया नो विप्रकृष्टम्य विन्धे पद्यतसप्तमे ।
 भुश शोकाभितप्तानां महान् कालोऽत्यवर्तत ॥ ४१ ॥

उन्हीं बानरोंमें हमझमा भी ये । निरियत्र किष्पकी
 गुप्तमें प्रवेश कर अनेक क्षण हमारे छोटनेका निम्न समय
 बीत गया । हमने बहुत विस्मय कर दिया । हमारे अत्यन्त
 शोकमें पड़े-पड़े शीर्षनाक व्योम हो गया ॥ ४१ ॥

आता तु गृध्रराजस्य सम्पातिनां भयिवात् ।
 समाप्याति स पस्तर्ता सीता रावणमन्दिर ॥ ४२ ॥
 तदनन्तर अग्रज अतुष्टम एक पराक्रमी भाई निक

गमे, किञ्च नाम वा सम्पत्ति । उन्हेने हने क्ववा कि छेवा
छद्ममे रावणके भक्तने निवाह करती हैं ॥ ४२ ॥

सोऽहं दुःखपरिताना दुःख तन्वातिनां युवम् ।
आत्मवीर्यं समास्तस्य योजननां दात प्लुता ।
तथाहमेकामद्राक्षमशोकबनिका गताम् ॥ ४३ ॥

एव दुःखमें हने हुए अपने माते-कपुमेंके क्वच
निवाह करनेके क्षिमे मैं अपने क्व-परकम्का छाया से छे
शोक समुद्रको बाँध गया और छद्ममे अशोकबनिकाके भीतर
अकम्बे बैठे हुई दीवले मित्र ॥ ४३ ॥

कौशोपकथां मञ्जिनां निरात्मनां वृद्धप्रथाम् ।
तथा समस्य विधिवत् पूषा सर्षमनिन्दित्वाम् ॥ ४४ ॥
अभिज्ञानं मया दत्तं रामनामाहुक्रीपकम् ।
अभिज्ञानं मयि कल्पया चरित्तयोऽहमागतः ॥ ४५ ॥

व एक रथमी खाकी पहने हुए थी । धरिसे मञ्जि
और अनान्दप्रथम बान पकड़ी थी तथा पाटिप्रथमके कल्पने
दृढदूर्बक कमी थी । उनसे मित्रकर मैं उन क्री-वाणी देखी-
से विधिपूर्वक छाया अमाचार पूषा और पहाचनक क्षिमे
श्रीरामनामसे अहित मँगूठी उन्हे दे दी । वाप ही उनकी
अरसे पहाचनके तीव्र चूडामणि क्वच मैं ह्लाह्य होकर
बैठ गया ॥ ४४ ५५ ॥

मया च पुनरागम्य रामस्यापिष्ठाएकमेवम् ।
अभिज्ञानं मया दत्तमर्थिप्यान् स महामणिः ॥ ४६ ॥
अनायास ही म्यान् कर्मे करनेवाके श्रीरामके फस पुनः
बैठकर मैं वर लेकली महामणि प्राचलक कम्मे उन्हे
दे दी ॥ ४६ ॥

धुक्वा तां मैथिलीं रामस्त्वाशाशासे च अकितम् ।
जीकितान्तमनुप्रासा पीत्वासुतमिष्ठातुरः ॥ ४७ ॥
जैसे मारुके निष्ठ पहुँचा हुआ रोगी मरुत पीकर पुनः
बैठवा दे उठी प्रकर छेताक विभोगमें मरणात्म हुए
श्रीरामने उनका श्रम अमाचार पाकर भीति रहनेकी
अथा थी ॥ ४७ ॥

उद्योत्रयिष्यान्नुद्योग दधे उद्युक्थये ममः ।
अिषासुरिष अकन्त खर्वोद्धोकात् विभाससुम् ॥ ४८ ॥
दिर जैसे प्रकनकाममें संवर्तकनामक अभिनेत ठम्ब
अक्रेको मम कर बासनेके क्षिमे उद्यत हो धते हैं उठी
प्रकर अनाक प्रेखरन देते हुए श्रीरामने उद्युपुत्रीके नम
कर बासनेक विचार किया ॥ ४८ ॥

ह्वापै श्रीमद्वाल्मीके वाक्प्रीतिष्वे अदिक्कम् पुत्रकण्ठे पद्विदित्तयकिष्ठाकतमः स्तः ॥ १२६ ॥

इस प्रकर श्रीरामकी प्रीतिगत अर्वाणामय अदिक्कम्के नुदकामने एक ही कम्पेकरी तय दृष्ट हुआ ॥ १२६ ॥

ततः समुद्रमासाप मल्ल सेतुमन्धारयत् ।
अथरत् कपिधीराणां वाहिनीं तम सेतुम् ॥ ४९ ॥
पुष्के वाह समुद्रतटपर अक्कर श्रीरामने तम नामक
बानरसे अथरपर पुष्क वैषवाया और उठ पुष्के बानरकीरीषी
खरी सेना खरके पर च पहुँची ॥ ४९ ॥

प्रहस्तमघधीशीलः कुम्भकर्णो तु राक्षसः ।
अहमजो रावणसुत स्वयं रामस्तु रावणम् ॥ ५० ॥
वहाँ मुझमें नीलने प्रहस्तक, कम्भकने एकपुत्र
इन्द्रकिष्के तथा ठावात् खुकुलनम्बन श्रीरामने कुम्भकर्ण
एवं रावणके मार बाध ॥ ५० ॥

स शक्रेण समानाम्य घमेन वरुणेन च ।
महेश्वरस्वयम्भूत्या तथा वृदारणेन च ॥ ५१ ॥
एतस्मात् श्रीरामनामकी कम्था इन्द्र मम वरवः
महदेवकी ब्रह्मणी तथा महाएव वृदारणसे मित्रे ॥ ५१ ॥
तैश्च वृत्तवतः श्रीमामृविभिश्च सम्प्राप्तैः ।
सुरारिभिश्च क्वकुत्स्थो वरौंस्तेमे परतपः ॥ ५२ ॥

वहाँ पयारे हुए श्रुतिमें तथा देवर्षिमेंने शमुकरी
श्रीमन् खुशीरको बरचन दिया । उनसे श्रीरामने वर प्राप्त
किया ॥ ५२ ॥

स तु वृत्तवतः प्रीत्या वानरैश्च समानतैः ।
पुण्यकेय विमानेन किष्किन्धामभ्युपगामत् ॥ ५३ ॥
वर पाकर प्रकन्तासे मरे हुए श्रीरामचन्द्रकी बानरीके
एव पुष्कविमानद्वारा किष्किन्धा गये ॥ ५३ ॥

ता गङ्गां पुनरासाप वसन्तं मुनिसन्धिषी ।
अथिक्क पुष्ययोगेन श्वो रामं प्रच्युमर्हसि ॥ ५४ ॥
वहाँसे कि गङ्गातटपर अक्कर प्रयागमें मरुदकम्पुनेके
अथिक्क वे उठरे हुए हैं । क्व पुष्य मन्त्रके योगमें आप कि
किष्की विन्-वावाके श्रीरामक हाँन करेये ॥ ५४ ॥

तता स धान्यैर्मजुरैर्हनुमतो
निराम्य ह्यो भरताः कृत्वाकजिः ।
उवाच बाप्यो ममसः प्रहर्षिणी
विरस्य पूर्वाः कस्तु मे ममोरथा ॥ ५५ ॥

इस प्रकर हनुमानकीके मजुर धान्योद्वारा खरी कर्ते
मुनकर मरुती वने प्रकन हुए और हाथ अक्कर ममके
हर्ष प्रधान करनेवाकी बाप्योमें केके—अथ विरसके वर
मेम ममोरथ पूष हुआ ॥ ५५ ॥

सप्तविंशत्यधिकशततम सर्ग

अयाच्यामै भीरामक स्वागतकी वैपारी, भरतके साथ सषका भीरामकी अगवानीके लिये नन्दिग्राममें पहुँचना, थीरामका आगमन, भरत भादिके साथ उनका मिलाप तथा पुष्पकविमानका कुम्भरके पाम मेजना

अथा तु परमानन्द भरतः सत्यविक्रमः ।
इक्ष्वाकुपयामास शत्रुघ्न परधीरहा ॥ १ ॥

परमानन्दमय समन्वार सुनकर शत्रुघीरेंकर सहाय करनेवाले क्षत्रपराक्रमी भरतने शत्रुघ्नका हाथपूर्वक आज्ञा दी—

वैद्यानि च सद्यानि वैत्यानि नगरस्य च ।
सुगन्धमस्यैवादिशैरर्चन्तु पुत्रया नराः ॥ २ ॥

पुत्राद्यादी पुत्रय कुम्भेस्ताओंका तथा नगरक तमी रेस्ताओंका गये-जाक साथ सुगन्धित पुष्योंद्वय पूजन करे ॥ २ ॥

एतः स्तुतिपुराणज्ञाः सर्वे वैवास्किप्रस्तथा ।
सर्वे वादिषकुशला गणिकारौष सर्वेशा ॥ ३ ॥

राजपारास्तथाभात्याः सैभ्याः सेनाङ्गनागणा ।
अथवाय सराज्याः श्रेणीमुक्यास्तथागण्याः ॥ ४ ॥

निर्निर्पयस्तु रामस्य ब्रह्म वाशिनिभ मुक्ताम् ।
पुष्टि और पुरणोंक जनकर सूत समस्त वैवास्कि मोंट) श्रेय बवानेमें कुशल एवं अंगे तमी गणिकार्य, कपिनियों मन्त्रीगण सेनाई ऐनिश्रेणी कियों राजपरा, पिप तथा अथवायी अथके मुनेया अंग भीपमन्त्रजीके बन्धनकर एतन करनेके किये नगले बाहर गये ॥ ११ ४ ॥

एतस्य दशः भ्रुत्वा शत्रुघ्न परधीरहा ॥ ५ ॥

पैरीनेकेसाहकीओद्वयमास भागशाः ।
अनीकुस्त निम्नानि पिपमाणि सम्यग्नि च ॥ ६ ॥

मठकीकी यह बात सुनकर शत्रुघीरेंकर धंहर करनेवाले पुष्पने करे हकर मन्त्रुयोंके अन्ध-अन्ध खेकिर्णों बनाकर श्रेय अज्ञा दी—सुमन्त्र अनीनीची भूमियोंके समस्त न्य हो ॥ ५-६ ॥

अथानि च निरसत्यां नन्दिग्रामाश्रिताः परम् ।
सेशस्तु पृथिवीं कृत्स्नां हिमशीतन धारिणा ॥ ७ ॥

अथवायने नन्दिग्रामकका मार्ग खड कर हो भासपास की तमी नृमिसर कर्तरी तदा ठके अन्ध विद्वन्मय हो ॥ ७ ॥

श्रोऽप्यधिकेऽप्यन्ये स्याः पुष्यैश्च सर्वतः ।
तमुष्मिन्पुष्पाकास्तु रथ्याः पुरवरोचन ॥ ८ ॥

अथवायने इत्थे अंग गलेमें एवं आर अथा और पुष्प

वितेर दें । इस अत्र नगरकी सड़कोंक भगस-काकर्म कुँधी फाकर्ष्ये फल्य दी अर्थ ॥ ८ ॥

शोभयन्तु च वेदमामि सूर्यस्योदयन प्रति ।
अत्रशाममुक्तपुष्यैश्च सुवर्णैः पञ्चघर्णकैः ॥ ९ ॥

अत्र सूर्योदयक अंगे नगरके सब यकानोंके सुनहरी पुष्पाकाकर्म फनीभूत फुल्लोंक मोटे गहनों सूतके कपनस रचित कम्ब आदिके पुष्यों तथा पंचरते अम्बुकार्यसे सजा ॥ ९ ॥

राजमार्गमसन्नाथ किरम्बु शतशो नरा ।
ततस्तकच्छसन भ्रुत्वा शत्रुघ्नस्य मुदाश्रिताः ॥ १० ॥

राजमार्गपर अधिक भीड़ न हो इत्थी अथवाके किये लेकों मनुष्य एवं और अंग अर्थ १) शत्रुघ्नका यह अमरेय सुनकर एवं अंग बड़ी प्रकृतिकके साथ उसके पासनमें अंग गये ॥ १० ॥

पृथिव्यन्तो यिजयः सिंहायर्थायसाधकः ।
अशोक्ये मन्त्रयाकञ्च सुमन्त्राद्यापि निर्ययुः ॥ ११ ॥

मत्सैर्नागसहस्रैश्च सध्वजैः सुविभूषितैः ।
पृथि, कन्ध विभव, सिंहाय, अर्थसाधक, अशोक, मन्त्रयाक और सुमन्त्र—ये आठों मन्त्री अथ और मन्त्रुयों से विभूषित मन्त्राके हाथियोंपर अन्ध कर बने ॥ ११ ॥

अपरे हेमकृताभिः सगजभिः करोणुभिः ॥ १२ ॥

निर्ययुस्तुरगाकृन्ता रथैश्च सुमहारथ्याः ।
पुसरे बहुठसे महारथी वीर सुनहरे रस्तेसे कयी हुई हनिनिनों हाथियों चेतों और रथोंपर अमार होकर निकले १२ ॥

शक्यपिपाशाहृत्पाना सध्वजाना पताकिमाम् ॥ १३ ॥

मुरगार्था सहस्रैश्च सुवैर्मुञ्चतारान्वितैः ।
पुस्त्याना सहस्रैश्च धीराः परिभूता ययुः ॥ १४ ॥

अथवा-पताकाओंसे विभूषित इत्थरों अथके-अन्ध पोहों और पुङ्खतारों तथा हाथोंमें शक्ति श्रुति और पण धारण करनेवाले सखों वैदक योद्धाओंसे भिरे हुए वीर पुष्प भीरम की अगवानीके किये गये ॥ १३ १४ ॥

ततो यान्ताम्पुपाकृत्वा सर्षां द्यारथक्रियः ।
कौसस्यां प्रमुञ्चे हृत्वा सुमिथां चापि निर्ययुः ॥ १५ ॥

कौसल्यां प्रमुञ्चे हृत्वा सुमिथां चापि निर्ययुः ॥ १५ ॥

कौसल्यां सद्यिता सर्षां गन्धिग्राममुपागमन् ॥ १६ ॥

कौसल्यां सद्यिता सर्षां गन्धिग्राममुपागमन् ॥ १६ ॥

भीरमस्य चान्न क्वा हुमा यह विमान प्रात कालक
मोति प्रकशितो हा रहा है । इसका वेग मनक समान
ह विष्य विमान त्रहाब्देभी हृषते कुयेरको प्रात
पा ॥ ३२ ॥

मन् भ्रातरी धीरौ वैशुष्वा सह राघवौ ।
वश महातेजा राक्षसस्य विभीषणः ॥ ३३ ॥
धरुमें विदेहयन्कुमारी लीलाके माय वे दानो रघुवशी
म्यु बैठे है और इसीमें महातेजस्वी सुग्रीव तथा रक्षस
ज भी विरबन्धन हैं ॥ ३३ ॥

हर्षसमुत्भूयो निखनो विषमस्पृशत् ।
तन्मुपपृच्छाना रामोऽयमिति कीर्तिते ॥ ३४ ॥
हनुमान्भीक इतना कहने ही किन्तो, बालको नोबपानो
बूझो—कभी पुरवाशियोंक मुखसे यह बाणी पूट पड़ी—
॥ ३४ ॥ भीरमन्त्रभी आ रहे हैं । उन नगरिकोंक यह
र नर्योंकोकाल गूँब उठा ॥ ३४ ॥

कुञ्जपाश्र्विभ्यस्तोऽप्यस्तीर्ष महीं गताः ।
गुप्त विमानस्य नरा सोमनिवाभ्यरे ॥ ३५ ॥
एक ढग हापी पाँचों और रयौले उतर पड़े तथा
अरु लड़े हो विमानपर विरबमान भीरमन्त्रभीक उठी
(शान्त करने लभ) जैसे ढग आकरयमें प्रकशित होनेवाले
इदकभ दरीन करते हैं ॥ ३५ ॥

त्रिभिर्भरतो भृत्या प्रहृष्यो राक्षयाम्बुज ।
ययैताध्वपापाधिस्ततो राममपूजयत् ॥ ३६ ॥
मरतभी भीरमन्त्रभीकी आर दृष्टि समग्रये हाय जेहकर
है ही गये । उनकर गणै हर्मि पुञ्जकित था । उन्होंने
ले ही अर्घ्य पाष आणिके द्वारा भीरमस्य विधिकर पूजा
ला ॥ ३६ ॥

नसा प्रहृष्य स्वरे विमान भरतामजा ।
राज पुपुदीपाक्षा वज्रपाविरिधामरा ॥ ३७ ॥
विषयभाहाय मनने रचे गये उठ विमानपर बैठ हुए
प्रहृष्य नरोंका ममान् भीरम वज्रपावी देवराज इन्द्रक
भक्त श्रम्य था रहे थे ॥ ३७ ॥

अथ विमानागत भरतो भ्रातरं तदा ।
कथम् प्रजतो राम मन्त्रस्थमिष भास्करम् ॥ ३८ ॥
विपत्तके कन्पी नाममें बैठे हुए माई भीरमपर दृष्टि
वाते है मरते किन्तोमाषत उन्हे उठी तरह प्रणाम किया
कैसे मरके मिस्तरपर उठित भूयैवका विरबन्धन नामस्वर
करे हैं ॥ ३८ ॥

तदा रामाम्बुजाल तद् विमानमनुत्तमम् ।
हमयुक्त महाधरा निपगत मर्दानकम् ॥ ३९ ॥

इनेहीमें भीरमन्त्रभीकी आज्ञा पाकर वह मदान
वेगवाली हंसयुक्त उत्तम विमान धृष्टीपर उतर आया ॥ ३९ ॥
अरोपितो विमान तद् भरता सत्यविक्रमः ।
राममासाद्य मुषित पुनरेवाभ्यवाद्यत् ॥ ४० ॥

ममान् भीरमने सपपराक्ष्मी मरतभीको विमानपर
पदा सिवा और उन्होंने भीरुनापकीके पास पहुँचकर
आनन्दविमोह हो पुन उनक भीचरणोंमें छाड़ा प्रणाम किया ॥
त समुत्थाय कफुस्त्यभिरस्योक्तिपथ गतम् ।
भङ्गे भरतमारोप्य मुषिताः परिप्लवङ्ग ॥ ४१ ॥

शीर्षकालक पश्चात् दृष्टिपथमें आये हुए मरतको उठा
कर भीरुनापकीने अपनी गोदमें बिठा सिवा और यह हृदिके
धय उन्हे हृदयसे छगया ॥ ४१ ॥
ततो छद्ममपमासाद्य वैशुष्वीं च परतपः ।
अथाभ्यवाद्यत् प्रीतो भरतो नाम खागधीत् ॥ ४२ ॥

तस्यश्चात् धनुर्भोका संताप देनेवाले मरतने छद्मकसे
मिस्तरकर—उनकर प्रणाम ग्रहण करके विदेह-राजकुमारी
शीलको यही प्रकृताक धय प्रणाम किया और अपना नाम
भी बताया ॥ ४२ ॥
सुग्रीय कंकधीपुत्रो जाम्बवन्तमयाङ्गवन् ।
मेव च द्विविद् मीळमुपभ सैव सखजे ॥ ४३ ॥
सुपेज च नल सैव गवाक्ष गन्धमाङ्गवन् ।
शरभ पनस सैव परित परिप्लवङ्गे ॥ ४४ ॥

इसक बाद कैकेयीकुमार मरतने सुग्रीव अम्बवान्,
मङ्गल नेन्द्र द्विविद नील, श्याम सुपेज नल गवाक्ष,
गन्धमावन शरभ और पनसका पूषरूपने आशिक्षित किया ॥
ते इत्या मनुष्य रूप बानराः कर्मरुपिणः ।
कुशल पर्यपूच्छस्तं प्रहृष्टा भरत तदा ॥ ४५ ॥

वे इच्छमनुष्य रूप धारण करनेवाले बानर म्बवकूप
धारण करके भरतकीसे मिले और उन लने महान् हर्मिसे
उत्कृष्ट हाकर उस समय मरतकीका कुशल-छायाचार
पूजा ॥ ४५ ॥
अथाप्रधीद् राजपुत्रः सुग्रीय वानरर्षभम् ।
परिप्लवज्य महातेजा भरतो धर्मिणां वरः ॥ ४६ ॥

बनामाआमें श्रेष्ठ महातेजकी राजकुमार मरतने वानर
राज सुग्रीवका हृदयसे आगाकर उनसे पूजा— ॥ ४६ ॥
तमसाक वतुर्णां वै भ्राता सुग्रीव पश्यामः ।
सौहृदाज्जायत मिश्रमपकाराऽऽरिबन्धनम् ॥ ४७ ॥
पुगीव ! तुम हम पारोंके पौत्रों माई हो। स्वोंकि
स्नेहपूर्ण उत्कर्ष करनेसे ही कर भी मित्र दाता है (और
मित्र बनना माई ही होता है) । अगकर करना ही शत्रुका
बन्धन है ॥ ४७ ॥

विभीषण च भरतः सार्वध्याक्यमयाप्रवीत् ।

द्विष्टया स्वया सहोयेन कृत् कर्म सुदुष्करम् ॥ ४८ ॥

इसके बाद मरते विभीषणको खन्तना देते हुए उनसे कहा—एकसयान ! बड़े सौम्यपक्षी बल है कि आपकी शहायता पाकर भीरुपुत्रावधिने अत्यन्त दुष्कर कार्य पूरा किया है ॥ ४८ ॥

शत्रुघ्नश्च तदा राममभिवाद्य सत्कर्मणम् ।

सीतत्याहारणौ वीरो विनयादभ्यवावयत् ॥ ४९ ॥

इसी समय भीरु शत्रुघ्ने भी भीराम और कर्मान्को प्रणाम करके सीताकी बरणोंमें विनयपूर्वक मसक हुकमा ॥

रामा मातरमासाद्य विबुध्यां शोककथितान्म ।

जग्राह प्रणतः पादौ मनो मानुः प्रहर्षयन् ॥ ५० ॥

माला कौटल्या शोकके कारण अत्यन्त दुर्बल और कथित हीन हो गयी थी । उनके पास पहुँचकर भीरामने प्रणत हो उनके दोनों पैर पकड़ लिये और मातृक मनका अत्यन्त हर्ष प्रदान किया ॥ ५ ॥

मभिवाद्य सुमिथां च कैकेयीं च यशस्विनीम् ।

स मातृव्य कृताः स्वयाः पुरोहितमुपागमत् ॥ ५१ ॥

किर सुमिथा और दशमिनी कैकेयीका प्रणम करके उन्होंने सम्पूर्ण माताओंका अभिवादन किया इसके बाद वे राजपुरहित बन्धुकीके पास गये ॥ ५१ ॥

स्वागत ते महाबाहो कौसल्यानन्दबधन ।

इति प्राज्ञसया सर्वे नगरा राममकुर्वन् ॥ ५२ ॥

उस समय अयोध्याके समस्त नागरिक हाथ जोड़कर भीरामकेरुखीसे एक खूब खूब उठ—प्राता कौसल्याका अत्यन्त बढ़ानेके महाबाहु भीराम ! आपका स्वागत है स्वागत है ॥ ५२ ॥

राज्यद्वन्द्विसहस्राणि प्रगृहीद्व्रिणि नगरैः ।

ध्याक्योशानिय पद्मानि वृशं भरताद्रजा ॥ ५३ ॥

मरतेके बड़े नाई भीरामने देखा लिये हुए कमसेक समान मानरिखीके तदभ्य अश्रुमिनीं उनकी ओर उठी हुई हैं ॥ ५३ ॥

पातुके त तु रामस्य गृहीत्या भरतः स्वयम् ।

वरण्याभ्या नरम्द्रस्य पात्रपामास भ्रमसित् ॥ ५४ ॥

अप्रवीद्य तदा राम भरतः स कृत्वाद्रुमिः ।

तदन्तर बर्भञ्ज भरतेने स्वयं ही भीरामकीवे परत पकड़कर मकर उन महाबाहक बरणोंमें पहना ही और हाथ जोड़कर उस समय उनमें कहा— ॥ ५४ ॥

पततु त सक्कन राज्य स्यास न्त्वावित प्रया ॥ ५५ ॥

भय जन्म कृत्पर्यं म सपूतश्च मनारया ।

पन् स्या परयायि राज्ञानमयाभ्यां पुनरागतम् ॥ ५६ ॥

प्रभो ! मेरे पास पराहरके रूपमें रक्तया दुःख आता यह सारा राज्य आप मीने आपके भीरुबलोंमें छेड़ दिया । भाव मरा कम सफल हो गया । मेरा मनोरथ पूरा हुआ : जो अशोकानरेश आप भीरामको पुन अशोकामें छोड़ा हुआ देखा रहा हूँ ॥ ५५ ५६ ॥

अवेस्ततां भवान् कोश कोष्ठगार गृह बधम् ।

भक्तस्तोत्रस्य सर्वे कृत् दशगुण मया ॥ ५७ ॥

आप राज्यका खन्तना : कोठार पर और सेना लक्ष लेख हैं । आपके प्रतापसे ये सारी वस्तुएँ पहलेसे रजुनी हो गयी हैं ॥ ५७ ॥

तथा तुवाण भरत बध्ना त आतुवत्सकम् ।

सुमुमुक्षुवानरा वाप्य राजससञ्च विभीषका ॥ ८१ ॥

आतुवत्सक भरतको इस प्रकार करते देल समस्त जन तथा राजकुल विभीषण नेत्रोंसे आँसु धराने लगे ॥ ५८ ॥

उतः प्रहर्षाद् भरतम्भारोप्य राघवाः ।

ययौ तेन विमानेन ससैन्यो भरतःभ्रमम् ॥ ५९ ॥

इसके पश्चात् भीरुपुत्रावधि मरतेके बड़े हर्ष और स्नेहके साथ गेहमें बैठाकर विमानके द्वारा ही सेनापहित उनके भ्रममपर गये ॥ ५ ॥

भरताभ्रममासाद्य ससैन्या राघवस्तथा ।

महतीप्य विमानाप्राववत्स्ये महीतसे ॥ ६० ॥

मरतेके अश्रममें पहुँचकर सेनापहित भीरुपुत्रावधि विमानसे उतरकर नृत्यपर लड़े हो गये ॥ ६ ॥

अप्रवीत् तु तदा रामस्ताव् किमनमनुत्तमम् ।

वह वैभ्रश्च वृकमनुज्ञानामि गम्यताम् ॥ ६१ ॥

उस समय भीरामने उस उतम विमानसे कहा— विमानराज ! मैं तुम्हें भाव्य देता हूँ यह तुम बलि देकरकर कुन्नेके ही पात पास जाओ और उम्हीकी लारीमें रो ॥ ६१ ॥

उत्प्रे रामाम्यनुज्ञात तव् विमानमनुत्तमम् ।

उत्तरां विशनुद्विष्य जगाम धन्वालयम् ॥ ६२ ॥

भीरामकी आज्ञा पाकर वह परम उत्तम विमान उठरिणाको छस्य करके कुन्नेके स्थानपर चला गया ॥ ६२ ॥

विमान पुष्पकं दिव्य सपृहीत तु ररस्ता ।

भ्रमम् धन्व जगाम् रामवाप्यप्रकोदितम् ॥ ६३ ॥

राघव एकमने जिस दिव्य पुष्पक विमानपर कर्त्तव्य अविचार कर किया था वही अब भीरामकेरुखीकी आज्ञासे परित हो बैठाकर कुन्नेकी शकामें चला गया ॥ ६३ ॥

पुराहितम्यात्मनस्यस्य राघवा

पृहस्यतः शक इवायराधिया ।

निरीक्ष्य पादौ पृथगासत पुमि

सहैय तन्वापयिद्यश भीर्यवान् ॥ ६४ ॥

उत्तमात् पराक्रमी भीरुयुनायकीने अपने सखा पुरोहित
बन्धुपुत्र सुबलक (भयया अपने परम सहायक पुरोहित
बन्धुबीके) उली प्रकार चला छुए, जैसे देवराज इन्द्र

बृहस्पतिबीके परपोंका स्वयं करत हैं । फिर उन्हें एक सुन्दर
पृथक् भासनपर विराजमान करके उनके साथ ही वृन्द
भासनपर व त्वयं भी बैठे ॥ ६४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायण बाह्यमीश्रीये आधिक्ये युद्धकाण्डे अष्टाविंशत्यधिकशततमः सर्गः ॥ १२० ॥

एत प्रश्ना धीमत्कीर्तिर्निर्मित आश्रमस्य अत्रिक्रम्य युद्धकाण्डे एक सौ सत्सिन्धो मम पूरा हुआ ॥ १२० ॥

अष्टाविंशत्यधिकशततम सर्ग

भरतका श्रीरामको राज्य लौटाना, श्रीरामकी नगरयात्रा, राज्याभियेक, वानरोंकी
बिदाई तथा ब्रथका माहात्म्य

विश्वस्यङ्गिमाधाय कैकेयीनन्दबर्धनम् ।
बभौव भक्तो ज्येष्ठ राम सत्यपराक्रमम् ॥ १ ॥
उत्तमात् कैकेयीनन्दन मरुतेन मत्तकर अङ्गि बौधकर
अपने बड़े भाई सत्यपराक्रमी भीमसे कहा— ॥ १ ॥

पूजिता मामिका माता वत्त राज्यमिदं मम ।
तद् वृत्तामि पुनस्तुभ्य यथा त्वमद्वामम ॥ २ ॥
आपने मेरी माताका सम्मान किया और वह राज्य मुझे
दे दिया । जैसे आपने मुझे दिया उसी तरह मैं अब फिर
आपका वापस दे रहा हूँ ॥ २ ॥

पुत्रेक्यकिला न्यस्ता रूपमेव यक्षीयसा ।
किदारवद् शुक्र भार न बोधुमहमुत्सहे ॥ ३ ॥
अस्मत् बन्धान् देव त्विष बन्धनं अकृषा उठता है
उसे कष्ट नहीं उठा सकता उसी तरह मैं भी इस भीरी
नरसे उठानेमें असमर्थ हूँ ॥ ३ ॥

श्रित्बिगेन महत्त निघ्नः सन्तुरिष इरन् ।
पुत्रकन्मिद् मन्ये राज्यकिद्रमसङ्गतम् ॥ ४ ॥
जैसे जङ्गल महान् बगसे टूट या फट हुए बौधका जब
कि उठने अकृषा प्रवर प्रवाह वह रहा ही बौधना अस्मत्
कटित इहा है उली प्रकार राज्यके लुप्त हुए शिद्रक उक
पना मैं अपने किये अस्मत्त मानता हूँ ॥ ४ ॥

पतिं खर इषास्वस्य हसस्वयं च वापसा ।
नाशतुमुत्सहे वीर तव मागमरिवम ॥ ५ ॥
यद्युत्तम वीर । जैसे गरहा पाड़ेकी और कौवा इतकी
कीला अनुत्तम नहीं कर सकता उली तरह मैं आपका मार्ग-
भ—अपनी रक्षककी कौमलक अनुकरण नहीं कर
सकता ॥ ५ ॥

यथा काराफिता वृक्षा जाताभ्यान्निविदते ।
महानपि वुरापहा महास्कन्ध प्रदाक्यान् ॥ ६ ॥
दमित्ये पुणित्य भूत्वा न कर्मानि प्रदायन् ।

तस्य नानुभवेपर्यं यस्य हेतोः स रोपित ॥ ७ ॥
एपोपमा महाबाहो त्वमर्थं वेत्सुमर्हसि ।
यद्यस्मान् मनुजेन्द्र त्वभर्ता भूत्वाम् न दाधिहि ॥ ८ ॥
महाबाहो ! नरेन्द्र ! जैसे परक मीठरक कहींनेमें एक
वृक्ष लगाया गया । वह क्या और कमकर बहुत बड़ा हो
गया । इतना बड़ा कि उसपर चढ़ना कठिन हो रहा था ।
उसका वना बहुत बड़ा और मोटा था तथा उसमें बहुत-सी
शाखाएँ थीं । उस वृक्षमें फूल खो किन्तु वह अपने फल
नहीं दिला करता था । इसी कारणने दूधकर बराधापी हो गया ।
समानेबाहोनेमि निन कर्मक उदोषसे उस वृक्षको उगण्या था
उनका अनुभव न नहीं कर सक । मही उपमा उस वृक्षक
किये ही हो सकती है जिसे प्रबन्धे अपनी रक्षके किये पाक-
पसकर बड़ा किया और बड़े होनेपर वह उनकी रक्षसे मुँह
मढ़ने खो । इस रूपनक त्वपर्यं अत्र समं । यदि महा-
हकर भी आप हम भूत्वाक मरण-यापन नहीं करेंगे तो आप
भी उस निष्कृष्ट वृक्षके समान ही समते जायेंगे ॥ ७-८ ॥

जगद्वाभिविक्रं त्वामनुपश्यतु राजत्र ।
प्रथपन्तमिवादिष्य मन्थाडे वीततजसम् ॥ ९ ॥

यद्युत्तम । अब तो हमारी यही इच्छा है कि जगत्प
त्व अंग आपका रण्यामिके देखें । मन्थाइकक स्वर्गी
मोति आपका तन और प्रणय बढ़ता रहे ॥ ९ ॥

तूर्यसप्ततित्तियैः काश्चिन्पुनरिन्वर्त ।
मन्तुरीर्गतिराधैश्च प्रतियुष्यत्व दाप्य च ॥ १० ॥

आप विचित्र नारोंकी मधुर ध्वनि काशी तथा नूपुरोंकी
दानकर और शीतके मन्दार दम्ब सुनकर मर्षे और जायें ॥
यावदावर्तत चक्र पावती च यस्तुभरा ।
तानत् त्वमिह नमकस्य न्यामित्यमनुकृत्य ॥ ११ ॥

कनक नक्षत्रमण्डक मूत्ता है और कतक यह पृथो
न्यित है तत्कक अत्र इत संकरक त्वामी बने रहे ॥ ११ ॥
भग्नस्य यम भुत्वा रामः परपुरजय ।

तथेति प्रतिग्रमाह नियसादासन गुमे ॥ १२ ॥

भवत्येव यद्वात सुनकर चतुर्नगरीपर विषय पानेना ।
मगवान् भीरामने पश्यास्तु ॥ करकर उते मान खिया भार वे
एक सुन्दर अस्त्रपर विराजमान हुए ॥ १२ ॥

ततः शत्रुपक्षयस्त्रयिपुषाः द्रमभुयधनाः ।
सुखाहस्ताः सुशीघ्राश्च राघव पर्यशरयन् ॥ १३ ॥

किर शत्रुपक्षयोर्भी भागते निपुत्र नार बुधययय किन
हाय इसके और तम चखनेवाने य । उन करने भीषुनापक्षी-
का परे सिध्द ॥ १३ ॥

पूर्वे तु भरत स्नात लक्ष्मणे च महायल ।
सुग्रीव वानरश्चे च राक्षसश्चे विभीषण ॥ १४ ॥

विशाक्षितजटाः स्नातश्चियमात्स्याजुलपनः ।
महाहृद्यसनोपलस्तस्यौ तत्र भिया ज्वलन् ॥ १५ ॥

प्राय भरतने स्नान किया फिर महाबली लक्ष्मणे ।
तपश्चात् वानरयव सुग्रीव और उरुशरव विभीषणने भी
स्नान किया । तदनन्तर क्यथा स्नान करके भीरामने स्नान
किया फिर विचित्र पुष्पमात्र सुन्दर अनुलेपन और बहु
मूस्य पीशाभर भारण करके अभूयवाणी शाभरत प्रकटित
हाते हुए वे शिवास्त्रपर विराजमान हुए ॥ १४ १५ ॥

प्रतिकर्म च रामस्य क्षरयामास्त धीयवान् ।
लक्ष्मणस्य च लक्ष्मीयामिद्व्याकुलसुखदधनः ॥ १६ ॥

इत्याकुलसुखी शीति वदानेयाम शाभशाली परकमी
शेर शत्रुपक्षने भीराम और लक्ष्मणका शरार भारण कल्या ॥

प्रतिकर्म च सीतायाः सवा वशरघसिधिया ।
भारमनेय तदा लक्ष्मणैस्तिस्र्यो मनाहरम् ॥ १७ ॥

उक्त काम राघ वशरघशे सभी मनस्विनी रानिसौने स्वयं
मपने हाथोसे सीताभीका मन्दार शरार किया ॥ १७ ॥

ततो वातरफलीना सर्षोसामेव शाभनम् ।
चक्षार यक्षात् कौस्तुभा महृष्टा पुत्रकस्तथा ॥ १८ ॥

पुत्रतल्लक्ष कौस्तुभने भव्यत हर्ष और उत्तरहृत् साय
बहु यज्ञो कम्हा वानरपनिषोक्त सुन्दर शरार किया ॥ १८ ॥

ततः शत्रुपक्षयस्तु सुमन्त्रो नाम सारथिः ।
याज्जपित्वाभितवद्यम रथं सर्षोहृष्टाभनम् ॥ १९ ॥

लक्ष्मणात् शत्रुपक्षयोर्भी अस्त्रसे स्वयि सुमन्त्रभी एक
कर्षोसुन्दर रथ चोत्तर से भय ॥ १९ ॥

अल्पकामकस्तकाशा विष्ये ह्य्या रथ स्थितम् ।
भरतरोह महाबाहू रामाः परपुरंजयः ॥ २० ॥

अग्नि और सुक कमल देवीप्यग्ना उक्त विषय रथको
नहा रत शत्रुपक्षोपर विषय पानेनाम् महाबाहू भीराम उक्त-
पर भरत हुए ॥ २ ॥

सुग्रीवा हनुमाश्च महेश्वरसहायुती ।
स्नातो विष्यनिर्गामीजम्भतुः शुभकुण्डली ॥ २१ ॥

सुग्रीव और हनुमान्श्री शनो देवयव इन्द्र कमल
कान्तिमान् य । शनोके शनोते सुन्दर कुण्डल छाया पा रह
ये । य शनो ही स्नान करके विषय पानाते निर्गमित हा नगर
श्री भार चले ॥ २१ ॥

सयाभरणयुष्माश्च ययुस्ताः शुभकुण्डलाः ।
सुग्रीयायत्यः सीता च द्रष्टुं नगरमुत्सुकाः ॥ २२ ॥

सुग्रीवश्री पतिपौ और शीतली कमल भाभूयकते
निर्गमित और सुन्दर कुण्डलाते भनूत हा नगर देखनेकी
उत्सुकता मनने शिव कवारिष्यत कस्त्री ॥ २२ ॥

अयाप्यापौ च सखिया राक्षो वशरघस्य च ।
पुपाहितं पुरस्कृत्य मन्त्रयामासुराद्यथ ॥ २३ ॥

अयोप्याते यत्न वशरघक मन्त्री पुरहित वशिष्ठशे
आगे करके भीरामकन्त्रशक रामाभिरक कियसे भयक
निष्कर करने म्ना ॥ २३ ॥

भशाक्रे विजयशेष सिद्धायश्च समाहिताः ।
मन्त्रयन् रामवृद्धयर्थमुत्सव्यर्थे नगरस्य च ॥ २४ ॥

अथात्र विषय और सिद्धार्थ—य तीनों मन्त्री
एकप्रचित हा भीरामकन्त्रशक भन्दुदय तथा नगरकी
समृद्धिक किये परस्पर मन्त्रणा करने म्ना ॥ २४ ॥

सवमवाभिषेकार्ये जयार्हस्य महारमनः ।
कृतमहर्षय रामस्य यत् क्स्मकृष्णवृक्षम् ॥ २५ ॥

उत्राने धेवकौते म्ना—विषयक नाम्ने जो महाभय
भीरामकन्त्रशे हैं उनके अभिषेकारके शिव क-शो भावपरक
कार्य करना है वह सब मन्त्रकृष्णकृतम् सब स्नेम कर ॥ २५ ॥

इति त मन्त्रिणाः सद्ये सविद्यय च पुरोहितः ।
नाराधिप्युस्तूर्णे रामवर्षभमुज्जया ॥ २६ ॥

इय मन्त्र आवेश देकर वे मन्त्री और पुरोहितकी
भीरामकन्त्रशिक वर्धानक श्रिये लक्षात् नगरसे गारर
निष्कते ॥ २६ ॥

हरियुक्त सहकासा रथमिन्द्र इवाभवा ।
प्रययौ रथमास्त्रय रामो नगरमुत्तमम् ॥ २७ ॥

शेने स्वस्त नेत्रघटी इन्द्र हरे रणके यशोते कुत हुए रथ
पर बैठकर माथा करते हैं उली मन्त्र निष्पय भीराम एक
भेद रथपर ब्यक्त हा अपने उक्त नगरकी और चको ॥ २७ ॥

जम्भणो व्यजन तस्य मूर्ध्नि कवीजयस्तदा ॥ २८ ॥
उक्त समय मयने खरिप कान्कर पञ्चमी वनाहार अपने
हाथोसे रक्की थी । शत्रुपक्षने सब क्य रक्का था और

कर्मण उव समय भीरमचन्द्रबीक मलाफपर चैवर हुअ
रहे थे ॥ २८ ॥

इत च घाल्लप्यजन जयूहे परिताः स्थिताः ।
अपर चन्द्रसकप्राया राक्षसाम्बो विभीषणः ॥ २९ ॥

एक अर कर्मण ये और वृषी अर रक्षसराज विभीषण
वद थ । उनौने चन्द्रमाक समान कर्मिमान् वृषप र्वेत
चैर हाथमें च रक्खा था ॥ २९ ॥

श्रुतिसहैस्तदाऽऽकदा वैषीक समरुद्रये ।
सूर्यमामस्य रामस्य शुभ्रुय मधुरव्यनिः ॥ ३० ॥

उव समय व्याकाशमें लई हुए श्रुतियों तथा मकरणों
वदित वृत्तामोंक समुदाय भीरमचन्द्रबीक सकनाथी मधुर
वनि मुन रहे थे ॥ ३० ॥

तदा शत्रुजय नाम कुञ्ज पक्षतोपमम् ।
अदराह महातजाः सुग्रीवः पूषण्यभः ॥ ३१ ॥

तदनन्तर महातकली बानरराज सुग्रीव शत्रुजयनामक
पक्षतकर गकरावर अरुद्र हुए ॥ ३१ ॥

नय मागसहस्राणि ययुरास्थाय बानराः ।
मानुष विग्रह कृत्वा सनाभरणभूयिवा ॥ ३२ ॥

बनरअण नौ इधर हाथिभौर पदकर बाधा कर रहे थे ।
ये उव समय मानकराण धारण किये हुए ये और उव प्रकारके
अभूषणोंसे विभूषित थे ॥ ३२ ॥

शङ्कराभ्रमणवैभवं दुन्दुभीना च निभ्रमनैः ।
प्रयपी पुरुषव्याघ्रसर्तां पुरीं हस्यमालिनीम् ॥ ३३ ॥

पुरुषरिह भीरम शङ्कराणि तथा दुन्दुभियोंक गम्भीर
नरक वध प्राणादनाश्रमोंसे अश्रुत अयोध्यापुरीकी अर
प्रसित हुए ॥ ३३ ॥

वहशुस्त समायास्त राघव सपुरासरम् ।
विराजमान सपुया रथेनतिरथं तथा ॥ ३४ ॥

अध्याप्यवर्षिणेनि अशिरथी भीरुनाथबीक रणर बैठकर
माते देखा । उनका भीषिग्रह विम्बकान्तिसे प्रकप्रित थे
या या और उनक आगे आगे अग्रगनी रैनिशोंका अया
पकरा था ॥ ३४ ॥

व वर्षापित्वा काकुत्स्थ रामस्य प्रसितन्दिताः ।
भनुजसुमंहेरामान आलुभिः परिवारितम् ॥ ३५ ॥

उन सने आगे बढकर भीरुनाथबीक बर्षां दी और
भीरमने भी बरकमें उनका अगिनन्दन किया । फिर वे सब
पुरुषकी मारणोंसे धिरे हुए महसमा भीरमक पीछे-पीछे चलने
लगे ॥ ३५ ॥

भस्मालीप्राश्रयेद्यैव तथा प्रहतिभिवृताः ।
धिया विरहथ रामा नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ॥ ३६ ॥

ये नक्षत्राणि धिरे हुए चन्द्रमा सुधामित होते हैं उठी

प्रकर मन्त्रियों ब्राह्मणों तथा प्रबन्धनोंसे धिरे हुए भीरम
चन्द्रकी भस्मी विम्बकान्तिसे उन्मसित हो रह थे ॥ ३६ ॥

स पुरोगामिभिस्सूर्यैस्तालस्वस्तिकपाणिभिः ।
प्रध्याहरन्निर्मुदितैर्महस्तामि धृतो ययौ ॥ ३७ ॥

सबसे आगे बावेवाल थे । वे मानन्दमन हो तुप्री,
हरताब और स्वस्तिक पक्षत तथा माहृषिक गीत गाते थ ।
उन सबक वध भीरमचन्द्रकी नगरकी अरबदने लगे ॥ ३७ ॥

मस्रत ज्ञातरूप च गावाः कन्याः सहस्रिजाः ।
नरा मोक्कहस्ताश्च रामस्य पुरतो ययुः ॥ ३८ ॥

भीरमचन्द्रकी आगे अश्रुत और मुषणसे पुरुष पात्र
गो ब्राह्मण कन्याएँ तथा हाथमें मिट्टाईं लिये मनेकनेक
मनुष्य चल रहे थे ॥ ३८ ॥

सख्य च रामः सुग्रीघ प्रभाव चान्तिप्रमज्ज ।
धानराणा च तत्कर्म द्वाघचक्षुसेऽथ मन्त्रिण्याम् ॥ ३९ ॥

भीरमचन्द्रकी अयन मन्त्रियोंसे सुग्रीवकी मिषता
इतुमानुषीके प्रभाव तथा अन्य बानरोंक अद्भुत पराक्रमकी
चचा करत च रहे थे ॥ ३९ ॥

भुत्वा च विस्मय उन्मुरयोप्यापुरवासिताः ।
यानरस्या च तत्कम राक्षसामा च तद् वलम् ॥ ४० ॥

विभीषणस्य सयोगमाचक्षुसेऽथ मन्त्रिण्याम् ॥ ४० ॥

बानरोंक पुरुषाथ और उन्मोंक कसकी बातें मुनकर
अभ्याप्याकाशियोंक बड़ा विस्मय हुआ । भीरमने विभीषणसे
सिक्कना प्रका भी अपने मन्त्रियोंके पताका ॥ ४० ॥

धुतिमानेतशाक्याय रामो धानरसंपुतः ।
हृदपुष्टमनाकीणामयोध्यां प्रविश्य सः ॥ ४१ ॥

यह सब कथाकर बानरोंकरित तेकली भीरमने हृदपुष्ट
मनुष्योंसे भरी हुई अयोध्यापुरीमें प्रवेश किया ॥ ४१ ॥

ततो दाम्युकधूमन् पीराः पताकाश्च शूहे सुह ।
एष्याकाशपुषितं रज्यमाससाव पितुगृहम् ॥ ४२ ॥

उव समय पुरवासियोंने अपने-अपने परपर लगी हुई
पताकाएँ उँची कर हा । फिर भीरमचन्द्रकी इत्नाकुर्षी
रजाभोंके उपयोगमें आय हुए पिताके रजनीप मकनमें
गये ॥ ४२ ॥

अथाश्रयीद् रावणुपो भरत धर्मिणा धरम् ।
अय्येपहितया पाद्या मधुर रघुनन्दन ॥ ४३ ॥

पितुभयकामासाध प्रविश्य च महातमनः ।
कीसस्यां च सुमित्रां च कैकयैर्मभिषाद्य च ॥ ४४ ॥

उव समय रघुनन्दनद्वन रावणुमार भीरमने महात्मा
मिताकीक मननमें प्रवेश करक माता कैकया सुमित्रा और

केकेयीके चरणोर्मि मस्तकं दृक्काकर धर्मात्माशोर्मि भ्रेष भरतसे
भर्षयुक्त मधुर कणीमे क्वा—॥ ४१ ८४ ॥

तच्च मद्भयनं भ्रेषं साशोकवृत्तिक महत् ।
मुकायैर्वृषसक्षीर्यं सुमीवाय निवेद्य ॥ ४५ ॥
मत् । मेघ ओ अशोकवृत्तिकसे विरा दुःख सुधुध परं
वेर्वृषं मन्निमोति चरित विद्यास मन्त है वह सुमीवको
वे वा ॥ ४५ ॥

तस्य तद् पचनं भुत्वा भरतः सत्यविक्रमः ।
हस्ते धृहीत्वा सुमीषं प्रविषेता तमाख्यम् ॥ ४६ ॥
उनकी भाशा सुनकर उत्पयपञ्चमी मरुते सुमीवक हाथ
पकड़कर उठ भवनमें प्रवेश किया ॥ ४६ ॥

ततस्त्वैच्छम्वीर्षाच्च पर्यङ्गास्तरजानि च ।
गृहीत्वा विविशुः क्षिप्रं शत्रुघ्नेन प्रबोधिता ॥ ४७ ॥
द्विर शत्रुघ्नकी भीष्मसे भनेभनेक सेवक उसमें लिङ्क
तन्से जन्नेवासे बहुत से दीपक पत्तंग और किछोने उकर
दीप ही गय ॥ ४७ ॥

उवाच च महातेजा सुमीव राघवानुजः ।
अभियेकाय रामस्य वृत्तान्ताहाप्य प्रभो ॥ ४८ ॥
उत्पभात् महातेकसी मरुते सुमीवसे क्वा—प्रभो ।
भगवान् भीरुमकं अभियेकक निमित्त क्क अनेके किये आप
मरने वृत्तोके भाषा दीजिये ॥ ४८ ॥

सौत्वर्णान् वान्मेन्द्राणां वतुर्जां वतुरो घटाम् ।
वृषी क्षिप्रं स सुमीवः सधरत्नविभूषितान् ॥ ४९ ॥
उन सुमीवने उठी कमय चार भ्रेष कनरोके सब प्रकारके
एतेसे विभूषित चार खेनेके पक्षे वेकर क्वा—॥ ४९ ॥

तथा प्रत्यूपसमये वतुर्जां सागरतम्भसाम् ।
पूर्वैर्दृष्टैः प्रतीक्षस्यं तथा कुर्वत धानराः ॥ ५० ॥
धानरो । तुम्भेमा क्क प्रत क्क ही चारों समुद्रोंके
कन्से मरे हुए पक्षोंके साथ उपस्थित रहकर भावस्थक आवेश
की प्रतीक्षा करो ॥ ५० ॥

पञ्चमुक्ता महात्मानो धानरा धारभोपम्याः ।
उत्पनुगगम न्निभ गडडा इव दीपगमाः ॥ ५१ ॥
सुमीवके इत प्रकार आवेश वेनेपर हाथीके समान
निष्ठाकक्षय महात्मनी कनर ओ गडडके समान हीभ्यामी
ये उत्पन्न आकाशमें उड़ पके ॥ ५१ ॥

जाम्बवाच्च हनूमाच्च वेगवर्चां च वानराः ।
श्रुपभक्षेय कक्षशाङ्कजपूर्णनाथयानम् ॥ ५२ ॥
नदीशतानाम पञ्चानां जङ्ग कुम्भैरुपाहरम् ।
कम्पयन्, हनुमान्, केमवर्षी (गन्ध) और शुकम—ये
सभी कनर चार समुद्रोंसे और चौं चै नदिसोंसे मी खेनेक
बहुतसे कम्पा भर जये ॥ ५२ ॥

पूर्वात् समुद्रात् कक्षशा जङ्गपूर्णमथापयत् ॥ ५३ ॥
सुपेणाः मन्वसदगम सवन्तविभूषितम् ।

किनके पास पीछेकी बहुतसी सुन्दर सेना है वे एक
शाही कामवान् उत्पूर्व रत्नेसे विभूषित सुवचन क्क
उकर गये और उसमें पूर्वसमुद्रक क्क भरकर के मने १८
श्रुपभो दक्षिणात्पूर्णे समुद्रात्समनापयत् ॥ ५४ ॥
रत्नकम्पनकर्पूरीः सवृत्त काञ्चन घटम् ।

श्रुपम दक्षिण समुद्रसे क्षीम ही एक खेनेका पक्ष भर
कषय । यह उक्त चन्दन और क्यूरसे उका हुआ था ॥ ५३ ॥
गद्ययः पश्चिमात् तोयमाजहार महापवात् ॥ ५४ ॥
रत्नकुम्भेन महता दीप्त मादतविक्रमः ।

वासुके समान वेगशाही गन्ध एक रत्ननिर्मित विपन्न
कक्षयके द्वारा पश्चिम दिशाके महासागरसे वीरुत क्क भर
कषे ॥ ५४ ॥

उत्तराच्च जल शीघ्रं गड्डानिभविक्कमः ॥ ५५ ॥
आजहार स धर्मात्मानिलाः सर्वगुणान्विताः ।

गड्ग तथा वासुके समान तीव्र गतिसे बन्नेवाक,
धर्मात्मा सर्वगुणसम्पन्न पवनपुत्र हनुमान्की भी उत्तरपूर्व
महासागरसे क्षीम क्क के मने ॥ ५५ ॥

ततस्त्वैर्धानरघोष्टैरनीत प्रेष्य तज्जसम् ॥ ५६ ॥
अभियेकस्य रामस्य शत्रुघ्नः सखिवैः सह ।
पुरोहिताय भेद्याय सुहृद्भ्यश्च म्यवेद्यत् ॥ ५८ ॥

उन भेद्य वानरोंके द्वारा कषय हुए उठ कन्को रेलकर
मन्त्रियसहित शत्रुघ्नेने वह खरा क्क भीपमकीके अभियेकके
किने पुरोहित बलिहारी तथा अन्य सुहृदोंके समर्थि कर
दिया ॥ ५७-५८ ॥

तदा स प्रपद्ये धृजां वसिष्ठो ब्राह्मणैः सह ।
रामं रक्षामये पीठं सतीर्तं सन्पवेशयत् ॥ ५९ ॥

उत्पन्तर ब्राह्मणोंसहित धृजवेद्य बृह बलिहारीने खीर-
सहित भीरुमचक्रवीको रत्नमयी कोष्ठीपर बैठाना ॥ ५९ ॥

वसिष्ठो वामवेद्यश्च आवाकियरय काक्ष्यय ।
कक्ष्यायनः सुपक्षश्च गौतमो विजयसत्या ॥ ६० ॥
अभ्यविश्वरूप्याश्च प्रसन्नेन मुग्गाम्भिला ।
सखिष्ठेन सहस्राक्षं वसुधो वासव यथा ॥ ६१ ॥

उत्पभात् वेसे आठ वतुओंने देकराव इन्क अभियेक
कषय या उठी प्रकार बलिह वामवेद्य ज्कबलि, कक्ष्यय
कक्ष्ययन सुपक्ष, गौतम और विजय—इन आठ मन्त्रिकोंने
सम्प एवं मुग्गाम्भित कन्से द्वारा खीरसहित पुत्रपञ्जर
भीरुमचक्रवीक अभियेक कषय ॥ ६०-६१ ॥

श्रुतिवभिर्ब्राह्मणैः पूर्णं कम्पभिर्मन्त्रिबलिष्ठया ।
यथैर्द्वैवाभ्यविश्वस्त सगम्हाटेः समैर्गमैः ॥ ६२ ॥
सर्वोपधिरसैवापि वैश्वैर्नभसि क्लिष्टैः ।
वतुर्भिर्जोकपाडैश्च सर्वैर्वैद्यैश्च सगताः ॥ ६३ ॥

(किनेके द्वारा कषय । यह कष्टते हैं—) कसे पक्षे
रम्भा मन्त्र आशुचियों रत्ने तथा पूर्वोक्त कन्से श्रुतिव

आसन्नोद्धारः, त्रि वाक् इत्याभ्योद्धारः कल्पभात् मन्त्रियोद्धारः
अभियेक करवात् । इत्येक वाद अन्यान्य योद्धारो और ह्येति
मे हुए भेद व्यक्तमित्येक भी अभियेक अवसर दिया ।
उस समय आश्रयमें खड़े हुए समस्त देवताओं और एकत्र
हुए चारों ओरपायमें भी भगवान् भीरमम अभियेक
किया ॥ ६२-६३ ॥

प्रह्वया विमित्तं पूर्वं किरिटी रक्षशोभितम् ।
अभिरिक्तः पुरा येन मनुन्त वीरततजसम् ॥ ६४ ॥
तस्म्यस्वभावे राजानः क्रमात् यन्नाभिपेक्षितः ।
सभायां हेमफल्गतायां शोभिताया महाभूतेः ॥ ६५ ॥
रत्नैर्नानाविधैर्धनैश्च चित्रितायां सुशोभनेः ।
नान्यरक्षमये पीठं कल्पयित्वा पथाधिधि ॥ ६६ ॥
किरिटीतः ततः पश्चात् बसिष्ठेन महात्मना ।
श्रुत्विभिमभूयैर्धेय समयोक्तयत् राक्षसः ॥ ६७ ॥

उत्तन्त्रं ब्रह्मायुक्ता यन्नाया बुद्ध्या रत्नश्रेष्ठित एव दिव्य
वस्त्रे देवीपमान किरिटी, शिवक द्वारा पश्चे-पश्च मनुष्यका
और त्रि क्रमशः उनके सभी वधवार रत्नश्रेष्ठ मन्त्रियेक
हुआ या भौतिक-भौतिके रत्नोंसे चित्रित, सुवर्णनिर्मित एवं
महान् वैभवसे घोषमयान समामननमें अनेक रत्नोंसे कनी
हुई शोभित विभिन्नैक रत्ना गत्वा । त्रि महात्मा बसिष्ठजीने
मन्य श्रुतिब्रह्मणोंके साथ उस किरिटीसे और अन्यान्य
अन्यरक्षे भी भीरुनायकीका किन्तुपित किया ॥ ६४-६७ ॥

एवं तस्य च अग्राह शश्रुणा पाण्डुर शुभम् ।
एकं च घाल्यज्जलं सुग्रीवो धानरेध्वरः ॥ ६८ ॥
मपरं क्षत्रसंक्षारं राक्षसेन्द्रो विभीषणा ।
उस समय शत्रुपक्षीने उनपर सुन्दर श्वेत रंगका छत्र
छाया । एक ओर यनरराज सुग्रीवने श्वेत वैश्व हाथमें किया
ए वृष्णी और राक्षसराज विभीषनने चन्द्रनके समान
कमरकीय वैश्व संकर बुधना आरम्भ किया ॥ ६८ ॥

सम्यं ज्वलन्तीं वायुया काञ्चनीं शतपुष्कराम् ॥ ६९ ॥
राजपायं वृषीं वायुयुगलसेन प्रचोक्षितः ।
सर्वरक्षसमायुक्तं मणिभिस्त्व विमूयितम् ॥ ७० ॥
मुक्ताहारं नरन्त्राय वृषीं शक्रप्रचोक्षितः ।
उस अवसरपर देवराज इन्द्रजी प्रेरणासे वायुदेवने छै
सुवर्णमय कमरोंसे कनी हुई एक शीतिलती माख और एक
मकरक रत्नोंसे युक्त मणिपोंसे किन्तुपित मुक्ताहार राज
एकचन्द्रकीके भेंट किया ॥ ६९-७० ॥

प्रह्वयुगलान्धर्या मनुनुदधान्तरोमायाः ॥ ७१ ॥
अभियेकं तत्सर्वस्य स्या रामस्य भीमता ।
बुधियन् भीरमक अभियेकक्रममें देवगणर्षं गने
छे और अन्वयार् नृत्य करने लगीं । मगशान् भीरम इत
कल्पनके लया साथ थे ॥ ७१ ॥
भूमिः सस्ययती खैर फलवन्तद्वय पाव्याः ॥ ७२ ॥

गन्धधन्ति च पुष्पाणि यभूत् राघवेस्तस्ये ।
भीरुनायकीके रत्नमणिपोंकेसमके समय पूर्वी खेरीसे
हरी-मरी हा गयी वृक्षोंमें छड़ आ गये और फूलोंमें सुगन्ध
आ गयी ॥ ७२ ॥

सहस्रशतमन्वानां धनुना च गवा तथा ॥ ७३ ॥
वृषीं शतवृषान् पूर्वं द्विजेभ्यो मनुजवधः ।
त्रिशक्तोटीहिरण्यस्य प्राङ्गणेभ्यो वृषीं पुनः ॥ ७४ ॥
नानाभरणवस्त्राणि महाहाणि च राजपा ।
महाराज भीरमने उस समय पहले ब्राह्मणोंके एक ब्रह्म
घोड़े उठनी ही वृष देनेवासी गोरों तथा छै छौं दान किये ।
यही नहीं; भीरुनायकीने छैष करोड़ अश्विर्षीं तथा नाना
मकरके बहुमूल्य आभूषण और बल भी नासणोंके
बोंटे ॥ ७३-७४ ॥

अर्करक्षिमघ्नीकाशा काञ्चनीं मणिविप्रहाम् ॥ ७५ ॥
सुग्रीवाय अर्जं दिव्या प्रायश्चमनुज्रापिप ।
उत्तन्त्रं राजा भीरमने अपने मित्र सुग्रीवके खेनेकी
एक दिव्य माख भेंट की, जो सुवर्णके किरणोंके समान प्रकाशित
हो रही थी । उसमें बहुत-सी मणिपोंका संग्रह था ॥ ७५ ॥
वैश्वर्णमयसिन्धे च चन्द्ररक्षिमविभूयित ॥ ७६ ॥
याकिपुत्राय घृतिममह्मदापाह्मदे वृषीं ।

इसके बाद कैर्षाणी भीरुजीने प्रकन हा बाण्डिपुत्र
अर्जुनके दो भाइय (बागुन्द) भेंट किये, जो नीलमसे
बणित होनेके कारण विचित्र दिखायी देते थे । वे चन्द्रमयी
किरणोंसे विभूयितसे बल पड़ते थे ॥ ७६ ॥
मणिप्रवररुद्रं च मुक्ताहारमनुजमम् ॥ ७७ ॥
सीतायै प्रवृषीं रामदक्षमन्त्ररक्षिसमप्रभम् ।
अरजे बासली किये शुभाभाभरणानि च ॥ ७८ ॥

उत्तम मणिपोंसे युक्त उस परम उत्तम मुक्ताहारके
(जिसे वायुदेवताने भेंट किया था तथा) च चन्द्रमाकी
किरणोंके समान प्रकाशित होता था भीरमचन्द्रकीने सीताकीके
गलेमें बांध दिया । साथ ही उन्हें कभी नैके न होनेवाले दो
दिन्य बल तथा और भी बहुतसे सुन्दर आभूषण अर्पित
किये ॥ ७७-७८ ॥

अश्वेक्षमाणा वैवृही प्रवृषीं वायुसत्त्वे ।
अवमुच्यारमनः कण्ठद्वारं जलकान्दिनी ॥ ७९ ॥
अश्वेक्षत हरीन् सर्धान् भर्तारं च सुप्रसुन्दु ।

विरोहन्दिनी सीताने पतिकी ओर देखकर वायुपुत्र
हनुमान्के कुछ भेंट देनेका विचार किया । वे कनकान्दिनी
अने गलेसे उस मुक्ताहारके निकलकर बारंबार समस्त
बानों तथा पतिकी ओर देखने लगीं ॥ ७९ ॥
तामिहित्वा सस्येक्ष्य वभायं जलकान्मजाम् ॥ ८० ॥
प्रवेहि सुभगे हारं यस्य तुष्टासि भानिनि ।
उनकी उस वेदाके समझकर भीरमचन्द्रकीने बानकीधी

श्री भेर देवदत्त इति—श्रीभय्यच्छक्तिः । मगिनि । इम
क्लिप्त संवत्तु हे, उते यह शर दे दा' ॥ ८ ३ ॥

मथ सा वायुपुत्राय स हात्मसितेक्षणा ॥ ८१ ॥

तेजो धृतिर्यशो वाक्यं सामर्थ्यं दिनयो तथा ।

पौरुष विक्रमो बुद्धिर्बलशक्तौतानि मित्यथा ॥ ८२ ॥

एव कम्परे नेत्रोद्यम्भी माता धीवने वायुपुत्र इनुमान्मे
किनमे ठेक, धृति, मया, शठुता; धक्ति, किन, नीति,
पुत्रार्थ, पराक्रम और उच्चम बुद्धि—ये सर्वगुण क्या
विद्यमान रहते हैं वह सर दे दिया ॥ ८१ ८२ ॥

हनुमांस्तेन हारोप्य द्युगुणे वानरर्षभ ।

चन्द्राशुचयगौरेण इत्येवमेव पयायकम् ॥ ८३ ॥

उच इत्ये श्रीभेद इनुमान् उधी तत्र शोभ्य पाने भ्यो,
जैसे चन्द्रमाश्री किरणोंके समूह—सहा इत्ये चन्द्रशेखरी भय्यते
कर्म परंतु सुप्रामिष्ठ हो या हो ॥ ८३ ॥

सर्वे वानरबुध्याश्च ये ज्ञान्ये धामरोचमा ।

यासोभिर्भूयैश्चैव ययार्हं प्रतिपुञ्जिता ॥ ८४ ॥

इसी प्रकार च प्रधान-मथान एव भेद वानर ये, उन
सबका कर्म और भावपूर्णोद्धार पयायोग्य उत्कृष्ट किंवा
ग्या ॥ ८४ ॥

यिनीपजोऽप्य सुग्रीवो हनुमाञ्चाम्बवासात्था ।

सर्वे धामरमुखाश्च रामेयाङ्घ्रिकर्मणा ॥ ८५ ॥

पयार्हं पूजिताः सर्वे कामै रत्नैश्च पुष्पकैः ।

प्रहृष्टमनसः सर्वे जसुरेव पथागतम् ॥ ८६ ॥

भनायास ही महान् कर्म करनेवाले भीरुमने विद्वीक्य
सुग्रीव, इनुमान् तथा चाम्बवान् आदि सभी भेद वानरश्रीयों
का मनोवाञ्छित बरतुओं एवं प्रकुर रत्नोंद्धार पयायोग्य
उत्कृष्ट किंवा । व सबके-सब प्रसन्नचित होकर जैसे भाव्ये ये,
उसी तत्र अपने-अपने स्थानोंको चले गये ॥ ८५-८६ ॥

ततो द्विविद्वैन्वाम्यां नीक्षय च परंतप ।

सर्वान् क्रममुप्यान् पीडय प्रवृत्तौ बसुधाधिपः ॥ ८७ ॥

उत्पन्नात् शत्रुभ्योश्च संतप्य देनेवाले एव भीरुनायकीने
द्विविद, मैत्र और नीक्षय और देवदत्त उन सबको
मनोबान्धुपूरक गुणोंसे युक्त सब प्रकारके उच्चम रत्न बरति
मैत्र किये ॥ ८७ ॥

द्वया सर्वे महान्मालस्तस्ते वानरर्षभा ।

विद्युत्पा पाधिभ्यन्त्रेण किष्किन्धां ससुपागमन् ॥ ८८ ॥

इत प्रकार महान् भीरुमथ रण्यामिनोक देवदत्त सभी
महामन्त्री भेद वानर महाएव भीरुमसे किंवा जे किष्किन्धाको
चले गये ॥ ८८ ॥

सुग्रीवो वानरश्रेष्ठो द्वया रामाधिपेक्षनम् ।

पूजितश्चैव रामेण किष्किन्धां प्राविशत् पुरीम् ॥ ८९ ॥

वानरश्रेष्ठ सुग्रीवने भी भीरुमके रण्यामिनोकका उत्तम
इत्यन्त उन्से पुत्रि हा किष्किन्धापुरीमें प्रवेश किय ॥ ८९ ॥

किभीपजोऽपि भर्मात्मा सह तैर्नैर्नैर्नैः ।

उत्पन्ना कुक्षभर्न राजा लङ्कां प्रापत्प्रमहावरात् ॥ ९० ॥

महावहाली चर्मात्मा किष्किन्धा मी अपने कुक्षभर्न
भस्या एवम पाकर अपने सभी भेद निधाचरोंके साथ
पुरीको चले गये ॥ ९ ॥

स रण्यमस्त्रिंशं शासबिहृत्परिमेहयथाः ।

राक्षसा परमोदारः शशास परया मुदा ।

उवाच छद्मवच रामो भर्मेहं भर्मेवत्सुखः ॥ ९१ ॥

अपने शत्रुभ्योश्च वच करके परम उत्तर महाकली
भीरुनायकी चले मानन्वसे उत्तम रण्यभ शालन करने भ्ये ।
उन चर्मेवत्सुख भीरुमने चर्मेह उत्कलते क्या— ॥ ९१ ॥

अतिहृ भर्मेह मया सहोमां

गां पूर्वराज्ञाम्पुजिता बलेन ।

तुह्यं मया त्वं पिदभिर्भुंक्त वा

तां वीवराम्ये पुरमुद्रहत् ॥ ९२ ॥

‘चर्मेह उत्कल च पूर्वराज्ञोने चतुर्दशिवी केनेके
एव किष्किन्धा पावन किंवा या, उधी इत मृत्युवत्के एवम
द्वम मरे साथ प्रतिष्ठित होभ्ये । अपने पिता, किष्किन्धा और
प्रक्षिप्तमहोने किष्किन्धावत्को पहले वारण किंवा वा उकीने
मेरे ही समान द्वम मी बुकएव-परपर लिख होकर चल
कये’ ॥ ९२ ॥

सर्वोत्तमन्व पर्यनुगीयमन्त्रो

यथा न सौमित्रिकरीति योगम् ।

नियुज्यमानो मुनि वीवराम्ये

ततोऽप्यपिश्रद् भरतं महात्म ॥ ९३ ॥

परंतु भीरुमपन्नश्रीके एव तत्रसे उमाहाने और निष्क
किष्किन्धावने मी वच सुमित्रिकर उत्कलने उठ परको नहीं
स्वीकार किंवा, एव महात्मा भीरुमने मत्तको मुकएव-पर
ममिषिक किंवा ॥ ९३ ॥

पौत्रद्वीपकाश्चमेधाभ्यां काञ्चोपेयं वासुदत्त ।

अप्यैश्च विष्किन्धैर्नैरप्यदत्त पाधिचाम्बदा ॥ ९४ ॥

एवमुत्तम महाएव भीरुमने अनेक बार पौत्रद्वीप
अस्त्रनेध, काञ्चोप तथा अन्य नाम प्रकारके पौत्रोक्त अनुक्रम
किंवा ॥ ९४ ॥

रण्यं दृष्ट्वासहकापि प्राप्य वर्षाणि राक्षसा ।

शताभ्यमेधाभ्यश्चैव सवृज्जान् भूरिवृत्तिनात् ॥ ९५ ॥

भीरुनायकीने रण्य पाकर सार्वैह सख चर्मेवत्क उत्तम
पावन और सै अस्त्रनेध चर्मेह अनुक्रम किंवा । उन चर्मेह
उत्तम अस्त्र छोड़े गये ये तथा श्रुतिबोध बहुत अधिक
दक्षिणार्धे शीघ्र गयी थी ॥ ९५ ॥

१ कल्पय पदवर्गवहापि रक्षार्थकति च' का
गया है कल्पे पद वस्त्रवर्गके किने वहाँ रहनेके प्यारका वेक
उपलब्ध करिने ।

ब्राह्मणुस्त्रियबाहुः स महाबहाः प्रतापवान् ।
 ब्रह्मण्यनुचरो रामः शाशास पृथिधीमिमाम् ॥ १९ ॥
 उनकी सुबाई पुत्रों तक कंबी थी । उनका कष्टाख
 किच्छ एवं विलुप्त था । वे बड़े प्रतापी नरोध थे । छम्भनको
 लप लकर भीरुमने इस पृथ्वीका शासन किया ॥ १९ ॥
 राघवत्यापि धर्मात्मा प्राप्य राज्यमनुत्तमम् ।
 त्रि वसुधैर्विभूतिः ससुहृद्वातिबन्धया ॥ १७ ॥
 भयोप्याह कथं उत्तम राज्यको पाकर प्रमाणा भीरुमने
 हृदयः कुतुम्भीक्यों तथा मई-बन्धुमोंके साथ अनेक प्रकारके
 पत्र लिपे ॥ १७ ॥
 न पर्यवेष्टम् विभवा न च व्याहकृत भयम् ।
 न व्याधिभय खासीक् रामे राज्यं प्रशासति ॥ १८ ॥
 भीरुमके राज्य शासनकाममें कभी विषयमोंकर विषय
 नहीं कुनाती पकृष था । एवं आदि सुध कनुओंकर मय नहीं
 था और ऐतोंकी भी भाहृदा नहीं थी ॥ १८ ॥
 निर्यस्युरभयहोको नानर्ये कदिधवस्पृहात् ।
 न च स वृथा वाक्याना प्रेतकपौषिणि कुर्वते ॥ १९ ॥
 कल्पं कालमें कभी चोरों वा हुरेयोंका नाम मी नहीं
 कुन करता था । कोंकी मी अनुप्य अनर्यभरी कयोंमें हाय नहीं
 करता था और वृथोंको वाक्योंके अल्पेदि-संस्कार नहीं
 करने पकृते थे ॥ १९ ॥
 सर्वे मुविभमेवासीत् सर्वो धमपरोऽभवत् ।
 राममेधनुपदफतो नाम्यहिंसन परस्परम् ॥ १० ॥
 उन सबका उदा प्रकृष ही रहते थे । सभी परमरायण के
 और भीरुमपर ही शरंवार हदि रहते हुए वे कमी एक
 लुकेका रूप नहीं पकृचाते थे ॥ १ ॥
 व्यसन् वरसहस्राणि तथा पुत्रसहस्रिणः ।
 निरामया विशोकादश्च रामे राज्यं प्रशासति ॥ १० ॥
 भीरुमके राज्य-शासन करते समय जोग कसों कयोंतक
 भीति रहते थे कसों पुत्रोंक अनक हाते थे और उन्हें
 किये ककरका रोम का शोक नहीं होता था ॥ १ ॥
 रामो रामो राम इति प्रजाज्यमभयन् कथाः ।
 राममूर्ते जगदभूद् रामे राज्यं प्रशासति ॥ १० ॥
 भीरुमके रामशासनकाममें प्रकृषकोंके अंदर कबल राम
 एव रामकी ही कथा होती थी । कय काल भीरुममय
 ही था ॥ १ ॥
 किर्यामूयम निर्यफखास्तरयस्तत्र पुष्यितः ।
 कथमवर्गं य पञ्चन्या सुखस्पर्शाश्च माकृता ॥ १० ॥
 भीरुमके रामके वृथोंकी कने उदा मकभूत रहती थी ।
 वे कृष उदा वृथों और कयोंन कदे रहते थे । मय प्रकृषकी
 इच्छा और भाग्यकष्टाक अनुसार ही कर्ना करते थे । कय
 मर गीने कम्भी थी किये उकका स्परी मुलद अन
 पकृष था ॥ १ ॥

ब्राह्मणः क्षत्रिया वैश्याः क्षूद्रा सोभयियजिताः ।
 लक्ष्मणसु प्रवर्तन्ते तुष्टाः स्वैरेष कर्मभिः ॥ १० ॥
 ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और क्षूद्र चारों कयोंके जोग
 जोगकृत होते थे । उनको अपने ही कर्णामयोंकित कर्मोंसे
 उदोप था और सभी उन्हींके पाकाममें जोग रहते थे ॥ १ ॥
 ब्यासन् प्रजा धमपरा रामं शासति मनुताः ।
 सर्वे जस्रसम्पन्नाः सर्वे धर्मपरायणाः ॥ १० ॥
 भीरुमके शासनकाममें सभी प्रज्य धर्ममें उत्तर रहती
 थी । हृद नहीं वेकृषी थी । उन जोग उत्तम कृषोंसे सम्पन्न
 थे और अपने परमेश्वर का भाषण से रहता था ॥ १ ॥
 वृशधर्षसहस्राणि वृशधर्षशतानि च ।
 भ्रातृभिः सहिताः श्रीमान् रामो राज्यमकारयत् ॥ १० ॥
 ब्रह्मयैकहित भीमान् रामने म्यारह हजार कयोंतक राज्य
 किया था ॥ १ ॥
 धर्म्यं वृशसमासुष्यु रार्वा च विज्रपावहम् ।
 आविकाम्पमिर्वं शार्यं पुरा वास्मीकिना कृतम् ॥ १० ॥
 यह श्रमिपाक आविकाम्प समायण है, किये पूर्वकाममें
 महर्षि वास्मीकिने कनाया था । यह धर्म, यद्य तथा आयुकी
 वृद्धि करनेवाला एवं राजमोंको विजय देनेवाला है ॥ १ ॥
 यः श्रयोति सदा जोगके मरः पापात् प्रमुष्यत ।
 पुत्रकामदय पुत्रान् वै धनकामो धनामि च ॥ १० ॥
 लभते मनुजो जोगके श्रुत्या रामाभिषेधनम् ।
 महीं विज्रयते राजा रिपूश्चाप्यधितिष्ठति ॥ १० ॥
 संकरमें जो मानव उदा इकदा भजन करता है, वह
 पापसे मुक्त हो जाता है । भीरुमक रामाभियकके प्रकृषका
 कुनकर मनुप्य इस जगलमें यदि पुत्रका इच्छुक हो तो पुत्र
 और धनका अमिबायी हो तो धन पाता है । राज इस काल-
 का भजन करतेसे पृथ्वीपर विजय पाता और कनुओंकर अपने
 अधीन कर देता है ॥ १ ॥
 राघवेण यथा माता सुमित्रा लक्ष्मणेन च ।
 भरतेन च कैकयी जीवपुत्रास्तथा स्त्रिया ॥ १० ॥
 भविष्यन्ति सदान्ताः पुत्रपौत्रसाम्प्रिताः ।
 जेने माता कौसल्या भीरुमको सुमित्रा लक्ष्मणका और
 ककेयी माताके पाकर जीविन पुत्रोंकी माता कसक्यों उद्ये
 प्रकार संवरकी वृसरी कियों मी इस भागि-कालक पाठ और
 भजनसे जीवित पुत्रोंकी कन्नी उदा आनन्दमन तथा पुत्र
 पौत्रोंसे सम्पन्न होगी ॥ १ ॥
 धुन्या रामायणमिद् वीर्यमायुष्यं विन्दति ॥ १० ॥
 रामस्य विजय जोग सर्वमिदृशकमणः ।
 कसकृतित कर्म करनेवाला भीरुमकी विजय-कथाक
 इस कल्पमें राममन-कालमें कुनकर मनुप्य वीर्यकायक
 मिर रहनेवाली आयु पाता है ॥ १ ॥
 श्रयोति य इह काल्यं पुरा वास्मीकिना कृतम् ॥ १० ॥

भद्रभान्ये जितश्रेष्ठो युर्गाण्यतिरत्नवती ।

पूर्वाश्रमे महर्षि वास्मीकिने कितप्री रत्ना श्री सी,
वही यह आदिश्रम है । ओ श्रेष्ठो वीतर मन्दापूर्वक इसे
सुनता है, यह मने-मने संकटोंसे पर हो जाता है ॥ ११२३ ॥

समागम्य प्रवासान्ते रमन्ते सह वाम्भवी ॥११३॥
शुभ्यन्ति य इव क्वाभ्य पुरा धार्मीकित्य कृतम् ।

तं प्रार्थितान् वरान् सर्वान् प्राप्नुवन्तीह राघवात् ॥११४॥

ओ वाम् पूर्वाश्रमे महर्षि वास्मीकिना निर्मित इव
श्रमको सुनते हैं वे परदेरासे श्रेष्ठकर अपने महर्षि-शुभ्रोंके
साथ मिलते और अमनस्क भ्रमण करते हैं । वे इव
जानते भीरुपुत्रावधीसे समस्त मनोवाञ्छित फलोंको प्राप्त कर
लेते हैं ॥ ११३ ११४ ॥

श्रवणं सुरा सर्वे प्रीयन्ते सम्प्रश्रव्यताम् ।

किनायकादत्र शाभ्यस्ति शूरे तिष्ठति वस्य वै ॥११५॥

इसके भवणसे समस्त देवता आश्चर्यपूर्ण प्रसन्न होते हैं
उपा श्रमके परमे विष्णुकी मह होते हैं उतके ने खरे मह
शान्त हो जाते हैं ॥ ११५ ॥

विश्रयत महर्षी राज्ञा प्रयासी स्वस्तिमान् भवन् ।

स्त्रियो राजसत्त्वाः भ्रुष्या पुत्रान् सुसुरनुत्तमान् ॥११६॥

राज्य इसके भवणसे मूर्खकर्मर विषय पता है ।
परशुमे निवास करनेवाला पुरुष सकुशल रहते और
रत्नसत्त्व किर्णों (ज्ञानक अन्तर खम्ब दिनोंके भीतर)
इसे सुनकर भेद पुरुषोंके कम देती है ॥ ११६ ॥

पूज्यदत्त पठन्नैनमितिहास पुरातनम् ।

सयथापः प्रमुच्येत दीर्घमायुरायानुयास ॥११७॥

ओ इस प्राचीन इतिहासका पूजा और पाठ करण है,
यह सब पापासे मुक्त बना और बड़ी आयु पाता है ॥११७॥
प्रणम्य दिग्गसा तित्य श्रेष्ठेष्य क्षत्रियर्षिजात् ।

पार्थय पुत्रत्वमभ्य भविय्यति न सदायः ॥११८॥

अधिशामे पार्थिव कि प प्रतिदिन मलाक स्रष्टकर प्रणाम
कर कर मादत्रक मुनसे इस प्रथमा भयन करें । इतने उन्हे
प १ १ और पुत्रकी प्राप्ति दाम्नी इगमें संघट नही है ॥११८॥
रामायणमिदं कृन्न् शृण्वताः पठतः सदा ।

प्रीयत सततं राम म हि विष्णु सनातनः ॥११९॥

ओ ज्ञान न गन्तु रामायणका भवत धर्म पाठ करता
है कर मनान विष्णुसम्प भगवान् भीरुम गत प्रसन्न
न १ है ॥ ११ ॥

दुर्धर्य धीमन् रामायण वाचनीयं आदिश्रवणे सुरसम्बन्धेऽर्षिः परमपिस्तातमः सतत ॥ ११८ ॥

तत्र प्रथम ११ ३ ८५ १११ अत्रागतयत भि दाम्बक बुद्धिजनसे पर ता अङ्कुरवर्षी तत्र पूज दुष्प्र ॥ १२८ ॥

मासिदधो महाबाहुर्हरिर्नारायणः प्रभुः ।

साम्नात् रामो रघुभेद्यो देवो ह्यस्यैव उच्यते ॥१२०॥

अथत् आदिदेव महाबाहु पापहारी प्रभु नरपुत्र ही
रघुकुलतिष्ठक भीरुम है तथा मनान् देव ही अस्म
करते हैं ॥ १२ ॥

एवमेतत् पुरापूज्यमाख्यात भद्रमस्तु वा ।

प्रत्याहरत विश्रम्भं बल विश्नोः प्रलभ्यताम् ॥१२१॥

(अलकुल करते हैं-) मोक्षाम् । आपलोकोक करण
हो । यह पूर्वपठित आस्मान ही इस प्रकार रामस्य-कर्मके
स्वमें वर्णित हुआ है । आपलोका पूर्ण विश्वासके साथ इत्थ
पाठ करें । इससे आपके वैष्णव चक्षुई बृद्धि होगी ॥१२१॥
देवास्तु सर्वे सुभ्यस्ति प्रहृष्टास्तुभ्यजान्तु तथा ।

रामायणस्य भवणे तुभ्यस्ति पितरं सदा ॥१२२॥

रामायणको हृदयमें धारण करने और सुननेसे सब देवता
छात्र होते हैं । इसका भवणसे पितरोंको भी सब देवी
मिलती है ॥ १२२ ॥

भक्त्या रामस्य ये चेमां संहितामुपिषा कृताम् ।

ये सिम्बन्तीह च नरास्तेषां वासस्त्रिविधे ॥१२३॥

ओ वाम् श्रीरामचन्द्रजीमें भक्तिप्रभ रत्नकर महर्षि
वास्मीकिनिर्मित इस रामायण-संहिताको धरते हैं अन्त
स्वर्गमें निवास होवे ॥ १२३ ॥

कुटुम्बवृद्धि धनधाम्यवृद्धि

श्रियश्च सुख्याः सुखमुत्तमं च ।

शुक्ला शुभं काम्यमिदं प्रदार्थे

प्राप्नोति सर्षो मुषि पार्थसिद्धिम् ॥१२४॥

इस शुभ और गम्भीर अर्थसे सुख काम्यको सुनकर
मनुष्यके कुटुम्ब और धन धान्यकी बृद्धि होती है । उसे भेद
गुणवासी सुन्दरी किर्णों सुखम होती है तथा इस भूतकर्मर पर
अपने धारे मनोरथोंको प्राप्त कर लेता है ॥ १२४ ॥

भायुध्यमारोग्यकर यद्यस्य

सौभाग्यं बुद्धिकरं शुभं च ।

धातव्यमतमियमं सति

राट्यालमाजम्बकम्बुदिकामः ॥१२५॥

यह वाक्य भायु आरोग्य यद्य तथा प्राधुमममें बढ़ाने
पाया है । यह उद्यम बुद्धि अज्ञ करनेवाला और मन्त्रवादी
है अन्तः समुद्रिणी इच्छा रगनेवाला अशुभरथोंका इस उद्यम
बद्धक इतिहासमें नियमपूर्वक भू प करता चाहिये ॥ १२५ ॥



भगवान् विष्णुक द्वारा मालीका यय

श्रीमद्बाल्मीकीयरामायणम्

उत्तरकाण्डम्

प्रथम सर्ग

भीरामके दरबारमें महर्षियोंका आगमन, उनके साथ उनकी बातचीत तथा भीरामक प्रश्न

प्रारम्भस्य रामस्य राक्षसानां वचने कृते ।
 आह्वयमुर्जुनया सर्वे राक्षस प्रतिनस्वितुम् ॥ १ ॥
 राक्षसेषु संहार करनेके अनन्तर जब भगवान् भीरामने
 मन्त्र राम्य प्राप्त कर लिया, तब सम्पूर्ण ऋषि-महर्षि
 भीरपुनाषकीकर्मभिनन्दन करनेके लिये अयोध्यापुरीमें आये ॥
 कौशिकोऽप्य पवक्रीतो गान्धर्वो गालव्य एव च ।
 कश्यपो मेघातिथेः पुत्रः पूर्वस्यां विशि ये धिताः ॥ २ ॥
 क मुचकतः पूर्वं दिशामे निवाच कृते ई वे कौशिकः
 सकीत गान्धर्व, गालव्य और मेघातिथिके पुत्र कश्यवर्षों
 पवरे ॥ २ ॥
 कस्यप्रेष्यञ्च भगवान् नमुचिः प्रमुचिस्तथा ।
 क्मास्त्योऽपिञ्च भगवान् सुमुचो विमुचस्तथा ॥ ३ ॥
 कश्चमुस्ते सहागस्तथा ये धिता वृष्टिर्णां विशाम् ।
 कस्यप्रेष भगवान् नमुचिः प्रमुचि अगस्त्य भगवान्
 धर्म्ये सुमुच और विमुच—ये कस्य दिशामे रहनेवाले
 महर्षि क्मास्त्यकीके साथ बर्षों आये ॥ ३ ॥
 रूपः कृपयो भीम्याः कौशेयञ्च महानृपिः ॥ ४ ॥
 तेष्वप्याह्वयुः सशिष्या वै ये धिताः पश्चिमा दिशाम् ।
 ये प्रावः पश्चिम दिशाक आश्रय लेकर रहते हैं वे
 राहु कृप योम्य और महर्षि कौशेय भी अपने शिष्योंके
 साथ बर्षों आये ॥ ४ ॥
 वसिष्ठः कश्यपोऽथात्रिर्बिभ्यामिजः सगौतमः ॥ ५ ॥
 क्मन्धिरैरश्वाजस्तेऽपि सत्तर्पयस्तथा ।
 उदीर्ष्यां विशि सतैत नित्यमेव निवासिना ॥ ६ ॥
 रथे तत्र उत्तर दिशाके नित्य-निवासी पण्डित ० कश्यप
 यत्रि विद्यामित्र गौतम क्मन्धिर और मन्धराज—ये सत
 ऋषि जो हमर्षि कहल्यते हैं अन्धेष्वापुरीमें पवरे ॥ ५ ॥
 सगम्यैत महागम्याश्च राक्षसस्य नियेदानम् ।
 विशिष्याः प्रतिहारार्थं कृताङ्गनसमप्रभाः ॥ ७ ॥
 पद्मदाहयिदुष्या नानाशास्त्रविदारदाः ।

ये सभी अग्निके समान तेजस्वी वेद-वेदाङ्गोंके विद्वान्
 तथा नाना प्रकारके शास्त्रोंका विचार करनेमें प्रवीण थे । वे
 महात्मा मुनि भीरपुनाषकीके राममन्त्रके पास पहुँचकर अपने
 आगमनकी सूचना देनेके लिये अयोध्यापुरीमें आये ॥ ७ ॥
 द्वास्थ्यप्रोधाश्च धर्मात्मा भगस्त्यो मुनिसत्तमः ॥ ८ ॥
 नियेषता दाशरथेऽर्च्यो वयमागताः ।
 उस समय धर्मरामयण मुनिभेद अगस्त्यने द्वारपालके
 कहा—तुम दशरथनन्दन भगवान् भीरामको आकर सूचना दो
 कि हम अनेक ऋषि-मुनि आपसे मिलनेके लिये आये हैं ॥ ८ ॥
 प्रतीहारस्ततस्तूष्णमगस्त्यवक्ष्यामि मुतम् ॥ ९ ॥
 समीप राक्षस्यान्द्रु प्रविशेश महात्मनः ।
 नयेद्विस्तम्बः सत्पृष्ठो वृक्षो धैर्यसमन्वितः ॥ १० ॥
 महर्षि अगस्त्यकी आज्ञा पाकर द्वारपाल दूरत महात्मा
 भीरपुनाषकीके समीप गया । वह नीलकण्ठ इषारते वाक्त्रके
 धमस्तनेशाश्रु, सदाचारी चतुर और धैर्यवान् था ॥ ९ ॥
 स राम इदम सहसा पूणक्षम्रसमपुतिम् ।
 भगस्त्य कथयामास सम्प्राप्तमृषिसत्तमम् ॥ ११ ॥
 पूर्वं चन्द्रमाके समान शान्तिमान् भीरमश्च दशन
 करके उसने कहा—प्रभा ! मुनिभेद अगस्त्य अनेक
 ऋषियोंके साथ पवरे हुए हैं ॥ ११ ॥
 अतथा प्रातान् मुनींस्तस्तु बालसूर्येणमप्रभान् ।
 प्रत्युवाच ततो द्वास्थ्य प्रथंशय यथासुखम् ॥ १२ ॥
 प्राण कालके सुर्षकी मूर्ति लिये तेजसे प्रकटित होनेवाले
 उन मुनीभेदोंके पशान्जका समाचार सुनकर भीरामचन्द्रकीने
 द्वारपालके कहा—तुम आकर उन सब ऋषियोंको यहाँ मुक्तपूर्वक
 क आया ॥ १२ ॥
 द्वाप्राप्रातान् मुनींस्तस्तु प्रत्युत्थाय कृताञ्जलिः ।
 पाथाप्यादिभिरानर्थं गा नियेष च सादरम् ॥ १३ ॥
 (आज्ञा पाकर द्वारपाल गया और सबका साथ
 आया ।) उन मुनीभेदोंको उच्यत दत्त भीरमचन्द्रकी हाथ
 आकर लई हाँ गये । फिर पाप भाय आदिक द्वारा उनका
 आहरणपूर्वक पूजन किया । पूजनत पश्च उन सबके लिय एक-
 एक गाय भेंट की ॥ १३ ॥

वसिष्ठमुनि एक अंगसे अन्धेष्वामें रहते हुए भी हमने
 पण्डित महर्षिको कहने का नाम है । कश्यव हमने पण्डित उनका
 कहनेसे था बर्षों की गये है—यह समझना चाहिये ।

रामोऽभिषाद्य प्रयत मासनाम्याविदेश ह ।
तेषु कश्चनस्त्रिवेषु महत्सु च धरेषु च ॥ १४ ॥
कुशात्तर्धानवृत्तेषु मृगधर्मयुतेषु च ।
यथार्थमुपविष्टास्तं मासमेष्ट्युपिपुत्र्याः ॥ १५ ॥

श्रीरामने दृष्टमावते उन एकत्र प्रणाम करके उन्हें बैठनेके स्थि आसन दिये । व आसन खेनेके बने हुए और विधिग आकर-प्रकरनाके थे । दुन्दर होनेके साथ ही वे निष्ठा और विलुप्त भी थे । उनपर कुशके आसन रखकर ऊपरसे मृगधर्म बिछाये गये थे । उन आसनोंपर वे भेद मुनि पर्यायोन्म बैठ गये ॥ १४ १५ ॥

रामेण कुशात् पूषाः सशिष्याः सपुरोगम्नाः ।
महर्षयो वेदविदो रामं वचनमनुवन् ।

तत्र श्रीरामने शिष्यौ और गुरुकनोवहित उन एकत्र कुश-समाचार पूछा । उनके पूछनेपर वे वेदवेद्य महर्षि इस प्रकार बोले— ॥ १५ ॥

कुशात् नो महावाहो सर्वत्र रघुमन्वम ॥ १६ ॥
त्वां तु विष्टया कुशास्त्रिण पश्यामो हतपात्रवन् ।
विष्टया स्वया हतो राजन् रत्नगो श्लोकपात्रजाः ॥ १७ ॥

महाशत्रु रघुमन्वत । हमारे शिष्ये तो सर्वत्र कुश-ही कुशक है । श्रीरामकी बात है कि हम आपको समुद्रक देख रहे हैं और आपके बारे शत्रु गारे बा तुके हैं । यत्न आपने कर्मों खेनेको रकानेबाके राजवत्त बच किया, यह उनके शिष्ये बड़े श्रीरामकी बात है ॥ १६ १७ ॥

गहि भारा स ते राम रायणा पुत्रपौत्रवान् ।
सपत्नुस्त्य सिञ्जेकांस्त्रीन् विजयेया न सद्यथा ॥ १८ ॥

श्रीराम । पुत्र-पौत्रोवहित यका आपके शिष्ये को नार नहीं था । आप पतुप छत्र बड़े हो बर्षे तो टीनों खेनेपर विजय या करते हैं । इतने उद्यम नहीं है ॥ १८ ॥

विष्टया स्वया हतो राम रायणो राक्षसेश्वरः ।
विष्टया विजयिमा स्वया पश्यामो सह सीत्या ॥ १९ ॥

रघुमन्वत राम । आपने राक्षसराज यकपत्र बच कर दिया और धीताके साथ आप विक्रमी-वीरोंको साथ हम समुद्रक देख रहे हैं यह शिष्ये अन्वन्धी बात है ॥ १९ ॥

सङ्गमयेन च धर्मात्मन् भ्रात्रा स्थितिकारिणा ।
मातृभिर्भावसहित पश्यामोऽद्य धय नृप ॥ २० ॥

पार्थाभा नरेण । आपके भाई कश्यप सदा आपके शिष्ये स्नेह देनेवाले हैं । आप इनके, भरत शत्रुघ्नके तथा मद्रदभ्योके साथ अब यहाँ आनन्द निराव रहे हैं और इस रूपसे हमें आपका दर्शन हो रहा है यह हम्यक महाशय्य ॥ २० ॥

विष्टया मद्रस्ता विक्रतो विक्रपाण्यो महादरः ।
अहममम्य कुर्षंगो निहत्वास्ते निराशयराः ॥ २१ ॥

महत्त विक्रत, विक्रपाठ महोरत तथा कुर्षंग अहमम

कैते निष्ठापर अहमममोके हाथसे मारे गये, वह बड़े अहम श्री बात है ॥ २१ ॥

यस्य प्रमाणात् विपुत्र प्रमत्तं मेह विपते ।
विष्टया ते समरे राम कुम्भकर्षो निष्कलितः ॥ २२ ॥

श्रीराम । धरीरक्षी खेचारी और लूकानेकिले कश्च वृत्त कोरे है ही नहीं, उठ कुम्भकर्षको भी शत्रुने कम्पराज में मार लिया, यह हमारे शिष्ये परम खेमन्की बात है ॥ २२ ॥

भिशियास्ततिकपयस्य देवान्तकनरालकौ ।
विष्टया ते निहता राम महावीर्या निशाचराः ॥ २३ ॥

श्रीराम । भिशिया, अतिशय देवान्तक तथा नरालक-ने महापराक्रमी निष्ठापर भी हमारे खेमन्कसे ही अहमके हाथ मारे गये ॥ २३ ॥

कुम्भशैव निकुम्भस्य राक्षसो भीमवर्षागो ।
विष्टया ती निहतौ राम कुम्भकर्षसुतो मूषे ॥ २४ ॥

प्युषीर । खे देखनेमें भी बड़े मर्षकर थे, वे कुम्भकर्षके दोनो पुत्र कुम्भ और निकुम्भ नामक एकत्र भी मन्वत्त युद्धमें मारे गये ॥ २४ ॥

युजोममत्तस्य मत्तस्य काञ्चलकवमोयमौ ।
यक्षकोपस्य बलवान् पूषासो जम राक्षसाः ॥ २५ ॥

अहमममके उंहारकरी बमपक्षी मंति मन्वत्त युजोममत्त और मत्त भी काञ्चके गावमें बडे गये । कश्चर यक्षके और पूषास नामक एकत्र भी बममके अतिमि हो गये ॥ २५ ॥

कुर्वन्तः कर्त्तं घोरमेते राक्षसाक्षयारणाः ।
कन्तकप्रतिमैर्बाणैर्विष्टया विनिहतास्तस्य ॥ २६ ॥

य समस्त निष्ठापर अहमममके परंगत निष्ठा थे । इन्होंने कलमें मर्षकर उंहार मन्वत्त रक्ता या परंगत आपने अहमममस्य धर्षोव्य इन एकको मीतके पाठ उतार दिया यह शिष्ये हाथी बात है ॥ २६ ॥

विष्टया त्व राक्षसेश्व्रेण इन्द्रयुजमुपगता ।
देवतानामबन्धेन विजयं प्राप्तवानसि ॥ २७ ॥

पञ्चशतक राजवरेकाभोके शिष्ये भी अहमम या उतके साथ आप इन्द्रयुद्धमें उतर आपे और विजय भी आपको ही सिधी यह बड़े श्रीरामकी बात है ॥ २७ ॥

सन्धे तस्य न किञ्चित् तु राक्षसस्य पराभवः ।
इन्द्रयुजमनुप्राप्तो विष्टया ते राक्षसिर्हताः ॥ २८ ॥

युद्धमें आपके हाथ खे राजवत्त पराभव (घोर) हुआ यह कोरे बड़ी बात नहीं है परंगत इन्द्रयुद्धमें कलमके हाथ को राजवत्त इन्द्रभिक्षा बच हुआ है, बड़ी खते बहकर आभर्षकी बात है ॥ २८ ॥

विष्टया तस्य महावाहो काञ्चस्येयाभिभावतः ।
मुक्ता सुपरिवोर्वीर प्रातस्य विजयस्तया ॥ २९ ॥

पद्मनाभु वीर ! कबके समान आक्रमण करनेवाले उस
देवसेही राक्षसके नामवाचते मुझ होकर आपने विषय प्राप्त
की, यह महान् खेमात्मकी बात है ॥ २९ ॥

अभिमन्याम ते सर्वे सभुत्येन्द्रजितो यधम् ।

यधभ्याः सर्वभूतानां महामायाधरो युधि ॥ ३० ॥

विशपत्येव चास्माकं त भुत्येन्द्रजितं हतम् ।

एन्द्रकिरकं यधक्यं उमाचारं सुनकरं इमं उयं अयं बहुत

प्रलय हुए हैं और इसके लिये आपका अभिमन्युन करते हैं ।

यह महामायावी राक्षस युद्धमें सभी प्राणियोंक लिये भयान्क

था । यह इन्द्रकिन् भी माय गया, यह सुनकर हमें अधिक

आश्चर्य हुआ है ॥ ३० ॥

एतं पश्यते यः पश्यति राक्षसाः कामकपिजः ॥ ३१ ॥

विद्यथा त्वया हता वीर्य रघूणां कुलवधैर्न ।

पशुकुलकी इदं करनेवाले भीरव ! ये तथा आर भी

बहुतसे इच्छालुकर रूप धारण करनेवाले वीर राक्षस आपके

दृश्य गारे गये, यह सबे आनन्दकी बात है ॥ ३१ ॥

पश्चा पुष्पामिमां वीर्य सौम्यामभयवृक्षिप्याम् ॥ ३२ ॥

विद्यथा पर्वसि काकुत्स्थ उपेगामित्रकदर्शन ।

वीर ! कुत्स्थकसुभूषण ! राघुसुदान भीरव ! आप संवरको

यह प्रश्न पुष्पाम्य लैम्य अभयदान देकर अपनी विषयके

संरण बनारके प्राप्त हो गये हैं—निरन्तर बढ़ रहे हैं, यह

कितने हर्षकी बात है ! ॥ ३२ ॥

मुक्ता तु यधम तेषां मुमीनां भाषितात्ममाम् ॥ ३३ ॥

विज्ञाय परमं गत्या रामा प्राङ्घ्रिप्रधीत् ।

उन पक्षिवाद्या मुनियोंकी यह बात सुनकर भीरवमन्त्रकी

शे बड़ा आश्चर्य हुआ । वे हाथ धोकर पूजने लगे— ३३ ॥

भगवन्ता कुम्भकर्णं राघव्यं च निशपचरम् ॥ ३४ ॥

अतिक्रम्य महावीर्यं किं प्रशासय राघव्यम् ।

पुष्पपाद महर्षिणे ! निशपचर राघव तथा कुम्भकर्ण

एतों ही महान् कब-परकमसे लम्प्य थे । उन दोनोंको कौप-

क्य भय राघवपुत्र इन्द्रकिन्की ही प्रशंसा क्यों करते हैं ! ३४ ॥

महोदर प्रहस्त य विरूपाक्ष य राक्षसम् ॥ ३५ ॥

मघोममती यं दुर्धर्यं देवास्तकनरास्तकी ।

अतिक्रम्य महावीरान् किं प्रशासय राघव्यम् ॥ ३६ ॥

हृषीकेश भीमहाभावने शकसीकीच आशिकाम्ये उत्तरकाण्डे प्रथमाः सर्गाः ॥ १ ॥

एतं प्रश्नं शीतलनीकिनिमित्तं अवरामावणं अदिक्रम्यक उत्तरकाण्डेनं पश्यत स्म पूरं हुम् ॥ १ ॥

महादर प्रहस्त, विरूपाक्ष मत्त, उन्मत्त तथा दुर्धर्य
वीर देवास्तक भीर नरन्तक—इन महान् वीरोंका उल्लङ्घन
करके आपलोग राक्षसकुमार इन्द्रकिन्की ही प्रशंसा क्यों कर
रहे हैं ! ॥ ३५ ३६ ॥

अतिक्रम्यं विशारद घूघ्रासं च निशपचरम् ।

अतिक्रम्य महावीरान् किं प्रशासय राघव्यम् ॥ ३७ ॥

अतिक्रम्य, विशारद तथा निशपचर घूघ्रास—इन महा-

पराक्रमी वीरोंका अतिक्रमण करके आप राघवपुत्र इन्द्रकिन्की

ही प्रशंसा क्यों करते हैं ! ॥ ३७ ॥

कीदृशो वै प्रभाषोऽस्य किं यक्ष काः पराक्रमः ।

केन वा कल्पयेनैव राघवावतिरिच्यते ॥ ३८ ॥

उसका प्रभाव कैसा था ? उसमें कौन-का कब और

पराक्रम था ? अथवा किस कारणसे यह राघवसे भी बढ़कर

सिद्ध होता है ॥ ३८ ॥

शक्यं यदि मया भोर्तुं न खल्व्याहापयामि यः ।

यदि शुद्ध म येवै यधतु भोर्तुमिच्छामि कष्यताम् ॥

यदि यह मेरे सुनने योग्य हो, गोपीब न हो तो मैं

इसे सुनना चाहता हूँ । आपलोग बलानेकी हृषा करें । यह

मेरा निश्च भलुगेन है । मैं आपलोगोंका आशय नहीं दे

रहा हूँ ॥ ३९ ॥

शश्रोऽपि विञ्जितस्तन कथं लम्प्यचरत्त सः ।

कथं य यक्षघान् पुत्रो म पिता तस्य राघव्यः ॥ ४० ॥

उस राघवपुत्रने इन्द्रका भी किस तरह कीत किया !

कैसे बरपन प्राप्त किया ! पुत्र किस प्रकार महाबलवान् हो गया

और उलका सिवा राघव क्यों बैसा बलवान् नहीं हुआ ?

कथं पितृव्याप्यधिक्ये महाहये

शश्रस्व जेता हि कथं स राक्षसः ।

परात्त लम्प्यः कथयस्य मेऽद्य

प्राप्रच्छतव्यास्य मुनीन्द्र सयम् ॥ ४१ ॥

मुनीन्धर ! यह राक्षस इन्द्रकिन् महाधमरने किस तरह

कितने भी अधिक शक्तिशाली एवं इन्द्रपर भी विषय पानेवाला

हो गया ! तथा किस तरह उसने बहुतसे मर प्राप्त कर लिये !

इन सब बातोंका मैं समना चाहता हूँ । इच्छामि कारंकार पूजता

हूँ । आज आप ये सारी बातें मुझे बताइयें ॥ ४१ ॥

द्वितीय सर्ग

महर्षि अगस्त्यक द्वारा पुलस्त्यक गुण और तपसाकर वर्णन तथा

उनसे विभवा मुनिकी उत्पत्तिक कथन

तस्य तद् पश्यत धृत्या राघवस्य महारमना ।

कुम्भपानिमहातया

महर्षि राघुनाथकीरा यह प्रश्न सुनकर महातपस्वी

कुम्भपानि भगवन्ने उनमें इस प्रकार बरा— ॥ १ ॥

पाप्यमसुधुषाच ॥ १ ॥ १ ॥

शुभ्र राम तथा वृषत तस्य तेजोवल महत् ।
जम्बल शत्रुं येनासी म ख वध्या स शत्रुभिः ॥ २ ॥
भीराम । इन्द्रकिन्वु महान् बल और तबके उद्बेहसते
था इच्छत पठित हुमा है उसे बताता है, सुनो । किस बलके
कारण वह तो शत्रुओंको मार गिराता था, परंतु स्वयं किसी
शत्रुके हाथसे मार नहीं आता था उसका परिचय दे
रहा है ॥ २ ॥
तावत् ते रावणस्येद् कुल जग्य ख राघव ।
वरप्रदान ख तथा तस्मै वृषत प्रवीमि ते ॥ ३ ॥
पुनन्दन । इस प्रसृत विरमण वर्षान करनेके लिये
मैं पहले मायको रावणके कुछ, काम तथा वरदान प्राप्ति
मदिका प्रसङ्ग सुनाता है ॥ ३ ॥
पुरा हृत्पुगे राम प्रजापतिसुतः प्रभुः ।
पुस्तस्यो माम द्रव्यार्थिः साक्षादिव पितामहः ॥ ४ ॥
भीराम । प्राचीनकाल—उसपुगासी बात है प्रजापति
ब्रह्माधीक एक प्रभावशाली पुत्र हुए, जो द्रव्यार्थि पुस्तक
नामसे प्रसिद्ध है । वे साक्षात् ब्रह्माधीके स्मान ही तेजस्वी हैं ॥
शत्रुकीर्या गुणास्तस्य धर्मता दक्षिणस्तथा ।
प्रजापतेः पुत्र इति वक्तुं शक्यं हि नामतः ॥ ५ ॥
उनके गुण धर्म और दक्षिण पूय-पूय वर्णन नहीं
किना था सकता । उनका इतना ही परिचय देना फर्माते होगा
कि वे प्रजापतिके पुत्र हैं ॥ ५ ॥
प्रजापतिसुतत्वेन देवानां वरुणो हि सः ।
इहा सर्वस्य लोकस्य गुणैः शुभ्रैर्महामतिः ॥ ६ ॥
प्रजापति ब्रह्माके पुत्र होनेके कारण ही वेकालके
उन्से बहुत प्रेम करते हैं । वे धर्म बुद्धिमान् हैं और अपने
उत्कृष्ट गुणोंके कारण ही उन लोकोंके प्रिय हैं ॥ ६ ॥
स तु धर्मप्रसङ्गेन मेरो पार्श्वे महागिरिः ।
दण्डविष्णुधर्मं गवाप्यवसन्मुनिपुङ्गवः ॥ ७ ॥
एक बार मुनिवर पुत्रवत् धर्मावरणके प्रसङ्गसे महामिनि
मेरुके निकटवर्ती पार्श्वे दण्डविष्णुके आश्रममें गये और वहाँ
गये लगे ॥ ७ ॥
तपस्तेषां स धर्मात्मा स्याप्यापनियतन्निद्रयः ।
गत्वाऽऽश्रमपद् तस्य विष्णु कुर्वन्ति कल्पकरः ॥ ८ ॥
श्रुतिपद्मगकल्पकरा राजर्षितनयाश्च याः ।
कीडन्त्योऽप्सरसहस्रैव त देशानुपपदिर ॥ ९ ॥
उनका मन सदा धर्ममें ही सम्यग् रहता था । वे श्रुति-वो-
को संकल्पमें रक्षत हुए, प्रतिदिन वेदोंका स्वाध्याय करते और
तपस्वतमें लगे रहते थे । परन्तु कुछ कन्यार्ये उनका आश्रममें
आकर उनको तपस्वामें विघ्न डालने लगीं । श्रुतियों नगों
तथा राजर्षि-वो-की कन्यार्ये और जो अप्सरार्ये हैं वे भी प्रया-
सिहा करती हुई उनके आश्रममें और आ जाती थीं ॥ ८ ॥
सर्वानुपगभवस्याद् रम्यत्यात् काननस्य च ।

नित्यशस्तास्तु त वंश गत्वा कीडन्ति कल्पकरः ॥ १० ॥
पार्श्वका वन धर्म शत्रुभोंमें उपक्रममें करनेके लिये
और रमणीय था इसलिये वे कन्यार्ये प्रतिदिन उठ वरुणों
आकर मंति-भोविकी कीडार्ये करती थीं ॥ १ ॥
देशस्य रमणीयत्वात् पुच्छन्त्यो यत्र स द्विजः ।
गायन्त्यो दाप्यन्त्यश्च क्षासकत्वकल्पैव च ॥ ११ ॥
मुनेस्तपस्विनस्तस्य विष्णु शत्रुनिष्पितः ।
वहाँ द्रव्यार्थि पुस्तक रखते थे, वह ज्ञान तो और भी
रमणीय था इसलिये वे छती-छापी कन्यार्ये प्रतिदिन वहाँ
आकर गाती, बजाती तथा नाचती थीं । इस प्रकार उन
तपस्वी मुनिके तपमें विघ्न डाल करती थीं ॥ ११ ॥
अथ बभूव महातेजा भ्याङ्गहार महासुनिः ॥ १२ ॥
या मे वृशानमताच्छत्रं सा गर्भे धारयिष्यति ।
इससे वे महातेजस्वी महासुनि पुच्छल कुछ खा के
गये और बने—कच्छते जो छत्रकी वहाँ मेर इतिवत्
अपेगी, वह निश्चय ही गम धारण कर लेगी ॥ १२ ॥
तास्तु सर्वाः प्रतिभुत्प तस्य शक्यं महात्मनः ॥ १३ ॥
ब्रह्मशापभयाद् भीतास्तं देशं नेपककमुग ।
उन महात्माकी वह बल सुनकर वे उन कन्यार्ये का-
द्यापके भयसे डर गयीं और उन्होंने उठ ज्ञानकर भय
लोक देखा ॥ १३ ॥
दण्डविष्णोस्तु राजर्षेस्तनया न श्रुवोति तत् ॥ १४ ॥
गत्वाऽऽश्रमपद् तत्र विचचार सुनिर्मना ।
परन्तु द्रव्यार्थि दण्डविष्णुकी कन्याने इत क्षणमें ली
सुना था । इसलिये वह वृषते दिन भी वेकालके आकर उन
आश्रममें निचरने लगी ॥ १४ ॥
न प्यपश्यथ सा तत्र काशिवन्मयातां सखीम् ॥ १५ ॥
तस्मिन् कच्छे महातेजाः प्रजापत्यो महावृषिः ।
आभ्यापयकपोद् तत्र तपसा भाविताः सख्यम् ॥ १६ ॥
वहाँ उसने अपनी किसी सखीको आसी हुई नहीं देखा ।
उस समय प्रजापतिके पुत्र महातेजस्वी महर्षि पुच्छल अपनी
तपस्वतके प्रकाशित हो वहाँ मेरुका स्वप्नय कर रहे थे ।
सा तु धेनुभृति भुक्त्वा दद्यात् वै तप्तो निधिम् ।
अभवत् पाण्डुदेहा सा सुम्पक्षितशरीरजा ॥ १७ ॥
उस वैदपनिके सुनकर वह कन्या उसी और लगी
और उसने तपनिधि पुच्छलकीक बर्तन किना । महर्षिकी
इस पड़ते ही उसके शरीरपर पीछपन का गला और गर्भके
स्वप्न प्रकट हो गये ॥ १७ ॥
बभूव च ससुदृश्या दद्यात् तहोपमात्मना ।
इत्मे कित्तिविति ज्ञात्वा पितृगत्वाऽऽश्रमे स्थिता ॥ १८ ॥
भयने शरीरमें वह जोर देलकर वह पक्ष उठी और
वृषते यह क्या हो गया । इस प्रकार निष्ठा करती हुई स्थित
आश्रमपर आकर लड़ी हुई ॥ १८ ॥

ता तु हृदा तथाभूता तुणविभुरधामवीत् ।
 किं त्वमेतस्वसदृशा भारयस्यात्मने घृणु ॥ १९ ॥
 अपनी कन्याको उस मन्वन्तमें देखकर तुणविभुने
 पूछ- तुम्हारे धारीकी ऐसी अवस्था कैसे हुई ? तुम अपने
 परिवारके लिये इनमें शरण कर रही हो । यह तुम्हारे लिये
 कल्याण कल्याण एक अनुचित है ॥ १९ ॥
 सा तु कृत्या ज्वलिं वीना कन्पोषाव तपोधनम् ।
 न जाने कारण सात येन मे रूपमीदृशाम् ॥ ० ॥
 यह नेचारी कन्या हाथ बंधकर उन तपोधन मुनिमें
 बसी-दिशाही ! मैं उस कारणको नहीं समझ पाती भिन्ने
 मय स्य ऐश हो गया है ॥ २ ॥
 किं तु पूर्वं गतात्म्यका महर्षेर्भाषितामनः ।
 पुनस्तपस्याधम विषयमभ्येष्टु स्वसस्त्रीजनम् ॥ २१ ॥
 'अभी धात्री देर पहले मैं पवित्र मन्त्र-करणवाच्ये महर्षि
 पुत्रस्तप्य दिव्य आभनपर अपनी सस्त्रियोंको साधनेके लिये
 भेजती गयी थी ॥ २१ ॥
 म स पद्याम्यह सत्र कायिद्व्यागतौ सखीम ।
 रूपस्य तु विषयास हृदा सासाविहागता ॥ २२ ॥
 यहाँ देखती हूँ ता कोई भी स्त्री उपस्थित नहीं है ।
 जब ही मय रूप पढ़ते निरुद्ध अवस्थामें पहुँच गया हूँ
 तब वह देखकर मैं मन्वन्त हो यहाँ आ गयी हूँ ॥ २२ ॥
 तुणविभुस्तु राजर्षिस्तपसा घोषितप्रभः ।
 प्यान विवेका तच्छायि भयदयद्विक्रमजम् ॥ २३ ॥
 पार्थिव तुणविभु अपनी तपस्थले प्रकाशमान थे ।
 उन्होंने प्यान धन्यकर श्रेष्ठा तब हात हुआ कि यह सब कुछ
 महर्षि पुत्रस्तप्य ही करनेसे हुआ है ॥ २३ ॥
 स तु विद्याय त दाप महर्षेर्भाषितामनः ।
 एहीस्था तनयां गत्वा पुत्रस्तपमिदमप्रवीत् ॥ २४ ॥
 उन पवित्रात्मा महर्षिके उस धारणको जानकर वे अपनी
 पुत्रीको छप लिये पुत्रस्तप्यकीके पास गये और इस प्रकार
 बसे- ॥ २४ ॥
 भगवत्समया म स्य गुणैः स्वरय भूषिताम् ।
 भिक्षा प्रतिगृहायेमां महर्षे स्वयमुघताम् ॥ २५ ॥
 मन्वन् ! मेरी यह कन्या अपने गुणोंसे ही निरुद्ध
 है । महर्षे ! आप इसे स्वयं प्राप्त हुई भिक्षाके रूपमें ग्रहण
 कर लें ॥ २ ॥
 तपस्वरयपुत्रस्तप्य धान्यमाणेन्द्रियस्य त ।
 तुभ्ययपरा नित्य भविष्यति न सदायः ॥ २६ ॥
 'आप तन्वन्ने छोटे रहनेके कारण थक जाते होंगे' अतः
 इत्यर्थे भीमप्रमायव शार्मिणीये भाषिष्यत् उत्तरकाण्डे द्वितीयः सर्गः ॥ २ ॥

यह सदा मय रहकर आपकी नवा गुप्ता दिखा करती इन्में
 स्थय नहीं है ॥ २६ ॥
 स बुधाय तु तत् वाक्य राजर्षि धार्मिक तदा ।
 जिपुत्रुप्रयवीत् कन्यां पाठमिस्तप्य स द्विजः ॥ २७ ॥
 ऐसी बात करते हुए उन भर्मात्मा राजर्षिकों देखकर
 उनको कन्याको ग्रहण करनेकी इच्छासे उन ब्रह्मर्षिन्ने आ-
 ब्रुत मन्था ॥ २७ ॥
 वत्या तु तमया राजा स्वमाधमपद् गता ।
 सापि तत्रावस्तु कन्या तोषयस्ती पतिं गुणैः ॥ २८ ॥
 तब उन महर्षिकों अपनी कन्या देकर राजर्षि तुणविभु
 अपने अभयपर सौं व्यये और वह कन्या अपने गुणोंसे पतिको
 संतुष्ट करती हुई बही खने लगे ॥ २८ ॥
 तस्यास्तु शीलवृत्ताम्या तुषोप मुनिपुङ्गव ।
 प्रीतः स तु महातजा वाचयमेतदुवाच ह ॥ २९ ॥
 उसके पीछे और सदाचारसे वे न्यातकली मुनिवर
 पुत्रस्तप्य बहुत संतुष्ट हुए और प्रकृत्यपूर्वक यों बसे- ॥
 परितुष्टोऽसि सुधोर्णि गुणाना सम्पत्ता मृशाम् ।
 तस्मात् वेनि वदात्म्यय पुत्रमात्मसम तव ॥ ३० ॥
 अभयवेशकस्तार पौत्रस्तप्य इति मिभ्रुतम् ।
 मुन्दरि ! मैं तुम्हारे गुणोंके वैभवसे अत्यन्त प्रसन्न
 हूँ । वेनि ! इच्छिम्मे आच मैं तुम्हें अपने समान पुत्र प्रदान
 करवा हूँ ; न माता और पिता दोनोंके मुझकी प्रतिग्रह वदायेग
 और पौत्रस्तप्य नामसे विख्यात होगा ॥ ३० ॥
 यस्मात् तु विभ्रुतो वेदस्वपेहाप्ययतो मम ॥ ३१ ॥
 तस्मात् स विद्याया न्याम भविष्यति न सदायः ।
 वेनि ! मैं यहाँ वेदका ज्ञानप्राप्य कर रहा था उस
 समय तुमने आकर उसका विद्वेगस्वत भक्षण किया । इच्छिम्मे
 तुम्हारा वह पुत्र विद्याया या विभवन कदायेग' इन्में संशय
 नहीं है ॥ ३१ ॥
 एवमुक्त्वा तु सा दधी प्रहृष्टेनात्तरामना ॥ ३२ ॥
 भविरेवैव काठेनसुत विधावस सुतम् ।
 त्रिपु स्त्रोकेषु विख्यात यशोघमसामन्वितम् ॥ ३३ ॥
 पतिके प्रकृतिके हाकर ऐसी बात करनेपर उस देवीने
 बड़े हर्षके साथ जोड़ ही क्षयमें विभवा नामक पुत्रको जन्म
 दिया । तब यह और भर्मे समान हाकर तीनों सौमें
 विख्यात हुआ ॥ ३२ ३३ ॥
 भुक्तिमान् समदर्शी च प्रत्यचारस्तथा ।
 पितव तपसा युक्तो ह्यमयत् विभवा मुनिः ॥ ३४ ॥
 विभवा मुनि बंदक विद्यान् क्षमदर्शी बल और
 भ्रन्तारकापादन कनेयान तथा पित्र्यक क्षमन् ही तन्वी हुए ॥

तृतीय सर्ग

विभवासे वैश्ववज (कुम्भर) की उत्पत्ति, उनकी तपस्या, वरप्राप्ति तथा लङ्कामें निवास

अथ पुत्रः पुलस्त्यस्य विभवा मुनिपुङ्गवः ।

अग्निरेवैव कालेन पितृय तपसि स्थितः ॥ १ ॥

पुस्त्यस्य पुत्र मुनिवर विभवा बोधे ही सम्यगे पिताकी
मूर्ति तपस्यामें लक्ष्मण हो गय ॥ १ ॥

सत्य गम्भीरवान् वृन्ता स्नाभ्यायनिरुतः शुचिः ।

सद्यभोगेष्वस्तसक्तो नित्य धमपरायणः ॥ २ ॥

वे कत्यवारी शीघ्रवान् कितन्द्रिय स्नाभ्यायनरायण,
बाहर भीतरसे पवित्र सम्पूर्ण भोगोंमें भ्रष्टासक्त तथा तथा ही
धर्ममें तत्पर रहनेवाले थे ॥ २ ॥

ज्ञात्वा तस्य तु सत् सुवर्षं भरद्वाजा महर्षुनिः ।

द्यू विभयस भाषां स्वसुतां देववर्षिणीम् ॥ ३ ॥

विभवाक इस उद्यम आचरणमें अन्तर महासुनि
भरद्वाजने अपनी कन्याका जो देवाज्ञानके समान सुन्दरी थी
उनके साथ विवाह कर दिया ॥ ३ ॥

प्रतिगृह्य तु धर्मेषु भरद्वाजसुता तदा ।

प्रजापतीशिकया बुध्या धर्मेषु ह्यस्य विजिगृह्यन् ॥ ४ ॥

मुदा परमया युक्तो विभवा मुनिपुङ्गवः ।

स तस्यां शीयसत्यधमपत्य परमाहृतम् ॥ ५ ॥

जनयामास धर्मज्ञः सत्यैर्धमसुतैर्षुतम् ।

तस्मिन्नात तु सहासः स पन्थ पितृमहः ॥ ६ ॥

धर्मके शब्द मुनिवर विभवाने बड़ी प्रसन्नताके साथ
बभानुवर महाबन्धी कन्यास्य पालिशयण किया और प्रबन्ध
श्रित-विस्तन करनेवाली बुद्धिके द्वारा छोड़करस्वात्मस्य विचार
करने हुए उन्होंने उसके गर्भमें एक मनुज और पराक्रमी
पुत्र उत्पन्न किया । उसमें सभी ब्राह्मणोक्ति गुण विद्यमान
थे । उसके अन्तमें पितामह पुस्त्य मुनिसे बड़ी प्रसन्नता हुई ॥
हृद्य धैर्यस्फुरती बुद्धि धनाभ्यसो भविष्यति ।
धम चाम्याकरोत् मीतः सार्धं देवार्थिभिस्तदा ॥ ७ ॥

उदाने हिम्य दक्षिणे देवा—इस शब्दमें संवरक

कन्यास्य करनेकी बुद्धि है तथा यह आगे चलकर धनाभ्यस
दम्प' तर उदाने बड़े दक्षिणे भरकर देवार्थियोंके साथ उद्यम
नामकाल-सहस्रर किया ॥ ७ ॥

यस्माद् विभयसासपत्य साहस्यदात् विभवा इय ।

तस्माद् पथराजा नाम भयिष्यत्यथ विभुतः ॥ ८ ॥

न कस्य—प्रीभगस्य यह पुत्र विभवके ही समान
उत्पन्न हुआ है इच्छिष्य यह वैभवा नामसे विख्यात होगा ॥

स तु पथयस्यस्य तपायकगतस्तदा ।

अपथदात्तुविदुष्य महातजा यथानसः ॥ ९ ॥

पुनार वैभवा बर्षा तद्वरतमें रहकर उस समय आहुति
दानमें प्रवृत्त हुई अथवा समान करने लगे और महान्
नस्य लक्ष्य हो गय ॥ ९ ॥

तस्याभमपयस्वस्य बुद्धिर्बोधे महात्मनः ।

वरिष्ये परमं धर्मं धर्मो हि परम गतिः ॥ १ ॥

आभममें रहनेके कारण उन महात्मा वैश्ववजके मनमें
भी यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं उद्यम धर्मका अन्त
करूँ: क्योंकि धर्म ही परमगति है ॥ १ ॥

स तु वर्षसहस्राणि तपस्यात्वा महावतः ।

यन्निवृता निमग्नैर्दशैकैश्चक्र सुमहत्तपः ॥ ११ ॥

यह सांक्र उन्हीं तपस्याका निश्चय करनेके पश्चात्
महान् बनके भीतर छहस्रो बर्षोंके कठोर निवर्गमें वैश्व
वजी मारी तपस्या की ॥ ११ ॥

पूर्वं वर्षसहस्रास्ते त त विधिमकस्यपत् ।

जस्यप्री मादताहारो निराहारस्तथैव च ॥ १२ ॥

एष वर्षसहस्राणि जम्मुस्ताम्येकवर्षयत् ।

वे एक-एक छहस वर्ष पूर्ण होनेपर तपस्याकी नई-नई

विधि ग्रहण करते थे । पहले तो उन्होंने केवल अन्न आहार

किया । तपश्चात् वे हवा पीकर रहने लगे फिर आगे चलकर

उन्होंने उद्यम भी त्याग कर दिया और वे एकदम निराहार

रहने लगे । इस तरह उन्होंने कई छहस वर्षोंकी एक वर्षके

समान विता दिया ॥ १२ ॥

अथ प्रीता महातेजाः सन्दीः सुरगणैः सह ॥ १३ ॥

गत्वा तस्याभमपयं ब्रह्मेयं वाक्यममकीत् ।

तव उनकी तपस्याके प्रत्यक्ष होकर महातेजसी ब्रह्मा

इन्द्र आदि देवताओंके साथ उनके आभमपर पनारे और

इस प्रकार बोधे— ॥ १३ ॥

परितुष्टोऽसि त वत्स कर्मजानेम सुमत ॥ १४ ॥

घर बूणीप्य भद्रं तं वराहस्त्वं महामत ।

उद्यम कृत्य पावन करनेवाले बाल । मैं तुम्हारे इस कर्म

के-तपस्याके बहुत संतुष्ट हूँ । महामते । तुम्हारा महा से । तुम

अरे वर मोंगे क्योंकि वर पानेके योग्य हो ॥ १४ ॥

अथाप्रवीट् वैश्ववणः पितामहमुपकृतम् ॥ १५ ॥

भगवद्भुक्पापान्यपिच्छेयं छोकरक्षणम् ।

यह सुनकर वैश्ववजने अपने निकट लगे हुए शिवमहते

कहा—आमन् । मेरा विचार छोड़के रख करनेका है; अतः

मैं छोड़कर होना चाहय हूँ ॥ १५ ॥

अथाप्रवीट् वैश्ववण परितुष्टन शतता ॥ १६ ॥

प्रजा सुरगणैः सार्धं यावत्सिष्यस्य हृदयत् ।

वैश्ववजने इस बातसे ब्रह्माजीक विचर्य और भी संतुष्ट

हुआ । उन्होंने सगुण देवताओंके साथ प्रसन्नतापूर्वक कथा-

पत्रुत भन्दा ॥ १६ ॥

भद्र यं त्वक्पापानां क्षुत्तुं क्षुत्तुमुपता ॥ १७ ॥

धममपयस्याना च पत् यत् तप चस्तितम् ।

इसके बाद वे फिर बोले—येद्य । मैं शीघे श्लोकपाठकी
 धृष्टि करनेके लिये उठत था । मम, इन्द्र और बरुणका जो
 मर प्रात है, वैद्य ही श्लोकपाठ-पर तुम्हें भी प्रात होगा; अब
 तुमको अभीष्ट है ॥ १७३ ॥

तद् गच्छ वत धर्मज्ञ निधीशत्वमवाप्नुहि ॥ १८ ॥
 शक्रमुपस्यमाना च सतुर्यस्त्वं भविष्यसि ।

धर्मज्ञ । तुम प्रकृतार्थपूर्वक उस परका ग्रहण कर और
 मन्त्र निषिद्धोंके स्वामी बनो । इन्द्र बरुण और यमके साथ
 तुम शीघे श्लोकपाठ करोगे ॥ १८३ ॥

एतच्च पुण्यक नाम विमान सूर्यसनिभम् ॥ १९ ॥
 प्रसिपृक्षीष्व यानार्थं निवृधौ समतां यज ।

एक धूर्तद्वय तेलकी पुण्यकविमान है । इसे अपनी
 कर्पीक लिये ग्रहण कर और देवताओंके समान हो
 जाओ ॥ १९३ ॥

कस्ति तेऽस्तु गमिष्यामः सूर्यं एव यथागतम् ॥ २० ॥
 इतच्छ्रुत्वा वर्षं तात वत्सा तव वरद्वयम् ।

क्या तुम्हारा कल्याण हो । अब हम सब छोटा छोटे
 जाये हैं, जैसे छोटे बच्चोंगे । तुम्हें य दो वर देकर हम अपने
 भी इतकक्य समझते हैं ॥ २० ॥

इत्युक्त्वा स गतो ब्रह्मा स्वस्वानं निवृधौ सव ॥ २१ ॥
 गतेषु ब्रह्मपूर्वेषु देवेष्वथ नभस्तकम् ।

भनेयाः पितर ग्राह प्राद्वक्तिः प्रवतास्रमवान् ॥ २२ ॥
 भयवैश्वानरान्निष्ठा वरमिष्टं पितामहात् ।

एक करकर ब्रह्माधी देवताओंके साथ अपने स्वानको
 चले गये । ब्रह्मा आदि देवताओंके आकाशमें चले जानेपर
 अपने मनका संयममें रखनेवाले बनायाजने विताते हाथ बाँध
 कर रहा—भगवान् । मैंने पितामह ब्रह्माधीसे मनोवाञ्छित
 का प्राप्त किया है ॥ २१ २२३ ॥

नित्यासनं न मे श्वो विद्वं स प्रजापतिः ॥ २३ ॥
 त पश्य भगवन् कच्चिद्विवा स साधु मे प्रभो ।

न च पीडा भवेत् श्व प्राप्तिनो यस्य कस्यचित् ॥ २४ ॥
 परं जन प्रजापतिदेवने मेरे लिये कोई निवास-स्थान
 नहीं क्यथा । भव भगवान् । अब अथ ही मेरे रखनेके योग्य
 किसी ऐसे स्थानकी तलाश कीजिये जो सभी दक्षिणोंसे अच्छा
 हो । प्रभो ! वह स्थान देख होना चाहिये, जहाँ रहनेसे किसी भी
 मन्त्रीको क्षम न हो ॥ २३ २४ ॥

एवमुक्त्वस्तु पुत्रेण विभवा मुनिपुंगवः ।
 वचन ग्राह धर्मज्ञ श्रूयतामिति सचम ॥ २५ ॥

दक्षिणशोवधर्षरि निवृद्धो नाम पयता ।
 तद्योगे तु विशाला सा महेन्द्रस्य पुरी पया ॥ २६ ॥

मझे पुत्रके ऐसा करनेपर मुनिवर विभवा बोले—
 पयत ! वापुर्मोमणे ! मुना—दक्षिण समुद्रके तटपर एक
 निवृद्ध नामक पवन है । उसके विशरपर एक विशाल पुरी है

ज देवराज इन्द्रकी अमरावती पुरीके समान छोटा पत्ती है ॥
 लज्जा नाम पुरी रम्या निर्मिता विदयकमप्या ।

राक्षसानां निषासार्थं यद्येन्द्रस्यामरावती ॥ २७ ॥
 उत्तम नाम लज्जा है । इन्द्रकी अमरावतीके समान उस

रमणीय पुरीका निर्माण विश्वकमनि राक्षसोंके रहनेके लिये
 किया है ॥ २७ ॥

तत्र त्व वस भद्र तं लज्जया न्यथ सशायः ।
 हेमप्राकारपरिखा पन्नशक्रसमावृता ॥ २८ ॥

क्या । तुम्हारा कल्याण हो । तुम निश्चिंदा उस लज्जा-
 पुरीमें ही जाकर रहा । उसकी चहारदीवारी छानेकी कनी हुई
 है । उसके चारों ओर चौकी काइयों सुजी हुई हैं और वह
 अपनेकनेक कर्तों तथा शक्रोंसे सुरक्षित है ॥ २८ ॥

रमणीया पुरी सा हि बभ्रमवैदुष्यतोरणा ।
 राक्षसैः सा परित्यक्ता पुरा विष्णुभयार्द्रितैः ॥ २९ ॥

एक पुरी बड़ी ही रमणीय है । उसके परटक छेदने और
 नीमके बने हुए हैं । पूर्वकालमें मगवान् विष्णुके मयसे
 पीड़ित हुए राक्षसोंने उस पुरीको त्याग दिया था ॥ २९ ॥

शून्या रक्षोगणैः सर्वै रसातलतल गतैः ।
 शून्या सम्प्रसि लज्जा सा प्रभुस्तस्या न विद्यत ॥ ३० ॥

ये समस्त राक्षस रसातलको चले गये थे इतलिये
 लज्जापुरी म्ती हो गयी । इस समय भी लज्जापुरी म्ती ही है,
 उसका कोई स्वामी नहीं है ॥ ३० ॥

स त्व तत्र निषासाय गच्छ पुत्र यथासुखम् ।
 निर्दोषस्तत्र ते वासो न वापस्तत्र कस्यचित् ॥ ३१ ॥

अतः देव ! तुम यहाँ निवास करनेके लिये सुखपूर्वक
 जाओ । यहाँ रहनेमें किसी प्रकारका दण या लटकन नहीं है ।
 यहाँ किसीकी ओरसे कोई विषम-बाधा नहीं आ सकती ॥ ३१ ॥
 एतच्छ्रुत्वा च धमतरा धर्मिष्ठ दचन पितुः ।

निवासयामास तदा लज्जा पर्वतमूर्धनि ॥ ३२ ॥
 अपने पिताके इस धर्मसुख बचनका सुनकर धमतरा

वैभवायने निकट पर्वतक विशरपर कनी हुई लज्जापुरीमें निवास
 किया । ३२ ॥

मैश्रुत्वानां सहस्रैस्तु हृद्रेः प्रमुद्रितैः सदा ।
 भक्षिरेष्वैव कासन संपूर्णा तस्य शासनात् ॥ ३३ ॥

उन्के निवास करनेपर याइ ही दिनोंमें वह पुरी खसों
 हुएपुत्र राक्षसोंसे भर गयी । उनकी आवाजसे वे राक्षस यहाँ
 आकर आनन्दपूर्वक रहने लगे ॥ ३३ ॥

स तु सत्रायसत् प्रीतो धमतरा मैश्रुत्वभः ।
 समुद्रपरिखाया स लज्जायां विभवात्मजः ॥ ३४ ॥

समुद्र विश्वक लिये खार्का नाम देव था उस लज्जा
 नगरीमें विभवाक धमतरा पूत्र वैभवन राक्षसोंक राज्य हो
 बरी प्रवचताके साथ निवास करने लगे ॥ ३४ ॥
 कसक काल तु धमतरा पुण्यकया धनद्वयः ।

भभ्यागच्छद् विगीतात्म्य पितर मातर च हि ॥ ३ ॥

बभामा घनेश्वर सम्य-समयपर पुष्पकविमानकं द्वाप
आकर अपने माता-पितासे मित्र बन्धा करत ये । उनका इवम
बढ़ा ही विनीत था ॥ १५ ॥

स वेधगाभर्वगपौरभिष्टुत-
साध्याप्सरानृत्याविभूषितान्वय ।

इत्यायं श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदिकारण्ये उत्तरकाण्डे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

एत प्रथम श्रीमद्वाल्मीकीयमिदं अष्टादशोऽध्यायः उत्तरकाण्डे तीसरा सर्ग पूरा हुआ ॥ ३ ॥

चतुर्थ सर्ग

राक्षसवंशका वनान—इति, विष्णुकेश और सुकेतकी उत्पत्ति

भुव्वागस्यरित वाक्य रामो विस्वयमानगतः ।

कथमासीत् तु लङ्कायां सन्भवो रक्षसा पुत्र ॥ १ ॥

भगवन्वाक्यीकी कही हुई इस बातको सुनकर श्रीयमचन्द्रकी-
का बड़ा विस्मय हुआ । उन्होंने मन ही-मन सोचा राक्षसकुल-
की उत्पत्ति को सुनकर विभवाते ही माली असी है । यदि
उनसे श्री परशु ब्रह्मापुत्रिं राक्षस करते थे तो उनकी उत्पत्ति
किस प्रकार हुई थी ॥ १ ॥

ततः शिरः कम्पयित्वा जेतास्त्रिसमविग्रहम् ।

तमगस्य मुहुर्बभूव ज्ञयमानाऽप्यभाषत ॥ २ ॥

इस प्रकार आश्चर्य होनेके मन्त्रकर फिर शिवाकर भीयम-
चन्द्रकीने प्रियिष अविशोक समान तेकसी धीरवीरवान
भगवन्वाक्यीकी अंदर कर-बार देला और मुस्कणर पूछा—
भगवन्पूर्वमप्येषा लङ्काऽऽसीत् पिशित्वाशिकम् ।

भुववद् भगवद्वाक्यस्य ज्ञातो मे विस्मयः परा ॥ ३ ॥

भगवन् । कुंभे और राखते परक भी यह ब्रह्मापुत्री
मांसवादी राक्षसोंके अधिकारमें थी यह आपके मुँहसे सुनकर
मुझे बड़ा विस्मय हुआ है ॥ १ ॥

पुनस्तपयथातुज्जला राक्षसा इति नः भुवम् ।

इदानीमन्यथापि सन्भया कीर्तितस्तथा ॥ ४ ॥

हमने तो कही सुन रहा है कि राक्षसोंकी उत्पत्ति पुनस्त-
पकीके कृपसे हुई है किंतु इत समय अपने किन्ही सुनारके
कुसुमे भी राक्षसोंके प्रातुमावकी बात कही है ॥ २ ॥

रावणान् कुम्भकण्ठाद्य प्रहस्ताद् विकटावपि ।

गणस्य च पुत्रभ्यां किं नु त वलवन्तरा ॥ ५ ॥

क्या ये परसेके राक्षस राक्य कुम्भकर्णं प्रहस
निरा राखणपुत्रासे भी बड़कर कथान् थे ? ॥ ॥

क एषा पूषका प्रहान् किन्तम्य च बल्लोक्तः ।

अपराध च कमाप्य विष्णुभ्य द्राविद्या कथम् ॥ ६ ॥

बलन् । उनका पूषक और या और उठ उठकर नक-
गाव्ये पुत्रपरा नाम क्या था / भगवान् विष्णुने उन राक्षसका
भेदना अन्नाप पाकर कित तरह उन्हें सहाय मार भगवन् ॥

गभस्तिभिः सूर्यं इवावाभासयन्

पितुः समीप प्रययौ स विस्मयः ॥ ३ ॥

दंष्ट्रा और गभर्त्रं उनकी स्तुति करते थे । उ
मम्य मकन अप्ठराओंके नृत्यसे सुचामित होता था । प
पति कुंभे अपनी किर्णोंसे प्रकाशित होनेवाके सूर्यकी :
स्य मार प्रकाश बिलोखे हुए अपने पिताके लीप गये ॥

एतद् विस्तरतः सर्वे कथयन्त ममावध ।

कुन्तुहसमिद् मद्य नुव् भातुर्यथा तमा ॥ ७ ॥

विष्णवा महर्षे । ये स्य वात भाप मुने किता
कथये । इनके शिष्य मरे मनमें बड़ा कैरुह है । जैसे सूर्य
अन्धकारको दूर करते हैं, उसी तरह आप मरे इत कैरुह
निवारण कीजिये ॥ ७ ॥

राजकथ्य सचः भुक्त्वा सत्स्वरराजकृत शुभम् ।

अथ विस्वयमानस्तमगस्यः प्राह राजकथम् ॥ ८ ॥

श्रीरघुनाथकीकी हर सुन्दर वाणी परसेत्तरप य-
स्कार और अर्पसेत्तरते अणकृत थी । उसे सुन
भगवन्वाक्यीकी यह सोचकर विस्मय हुआ कि ये सर्वे इत
भी सुनते भगवन्वाकी मोंति पूर रहे हैं । तथाभात् उन
श्रीरामसे कहा— ॥ ८ ॥

प्रजापतिस्तु पुत्रा सुद्धा मयः सखिऽसम्भवा ।

तासा गापायन सस्वानसुखत् पद्यसम्भवा ॥ ९ ॥

भुवन्वदन् । कथसे प्रकट हुए कथसे उत्तम प्रजाप-
नसाकीने पूर्वकथनें सुनगत कथी सुधि करके उत्तरी रथनें
जिये मनेक प्रथमके कथ-कथनोंको उत्पन्न किया ॥ ९ ॥

त सस्या सस्वकर्तार विनीतवदुपस्विता ।

किं कुर्म इति भावन्तः भूतिपयासाभयार्विता ॥ १० ॥

ये चन्तु नूक्त-प्याधके मयसे पीठित हो भव इन सब
करं पंथी बाते करत हुए अपने कन्वहाता मजाकीके पर
विनीतमयसे गये ॥ १ ॥

प्रजापतिस्तु तान् सर्षान् प्रस्थाह प्रहसन्निव ।

अभाप्य धाद्या पत्न्येन रक्षुष्यमिति मानद् ॥ ११ ॥

पूषकोसे मान देनेवाले खुशीर । उन सबको माना देत
प्रजापतिने उन्हें काफीदाय सम्पत्तिक करके दैले हुए-से कथ-
'कथ-कथन' । तुम फलनुक इत कथी रक्षुष्य' ॥ ११ ॥

एताम इति तत्रान्यैयज्ञान इति चापरेः ।

भुक्तिताभुक्तिनकलसतस्तान्नाह मूतकृत ॥ १२ ॥

ये मर चन्तु नूक्त-प्याध म । उनमेंसे कृपने कथ-

इम इव कन्दरी रक्ष करीगे' और दूसरे कहा—यम इसका
रक्षण (पूजन) करीगे, तब उन भूतेश्वरी सुखि करनेवाल
प्रबन्धने उनसे क्या—॥ १२ ॥

रक्षाम इति यैरुक्त राक्षसात्म भवन्तु धा ।

यक्षाम इति यैरुक्त यक्षा पश्य भवन्तु य ॥ १३ ॥

दुर्गमसे किन व्यर्थों रक्ष करनेकी बात कही है, व
एक नामसे प्रसिद्ध हों और किन्हीं यक्ष (पूजन) करना
लक्ष्मण किता है ये क्या यक्ष नामसे ही विख्यात हों (इस प्रकार
वे भी यक्ष और यम—इत दा जटियोंमें विभक्त हो
गए) ॥ १३ ॥

तत्र हेतिः प्रहतिश्च धातरो राक्षसाधिपौ ।

मधुकैभसकचरी यभूयतुररिदमौ ॥ १४ ॥

उन राक्षसोंमें इति और प्रहति नामवाक्य दो मूर्तें य,
व कर्मका राक्षसोंके अधिपति य । यभूयोंका दमन करनेमें
कर्मों से दानों कीर मधु और कैटभक कवन शक्तिवाली ये ॥
प्रहतिर्धौर्मिकस्तत्र तपोयनातस्तत्रा ।

इतिशिरिक्रियायै तु पर यक्षमयाकरोत् ॥ १५ ॥

उन्में प्रहति धमाराभा ग अस्त यह तत्काल कल्पनमें
बकर कल्प्य करने क्या । परतु इतिने विवाहक सिन्धे बड़ा
प्रसन्न किता ॥ १ ॥

स कालभगिनीं कन्यां भया नाम महाभयाम् ।

आयहृदयेषाम्ना जयमघ महामति ॥ १६ ॥

यह अमेय भयानकसे कर्मण और बड़ा दुःखिगान् धा ।
उन्ने लय ही शान्ता करके कलकी कुमारी भगिनी मयाक
धन सिद्ध किया । भया बही भयानक थी ॥ १६ ॥

स तस्या जन्मयामास हेतो राक्षसपुत्राः ।

पुत्र पुत्रक्या श्रेष्ठा विद्युत्कामसि भुतम् ॥ १७ ॥

प्राक्कण्य हेतिने भयाक गर्भसि एक पुत्रका उत्पन्न
किया व विद्युत्काके नामसे प्रसिद्ध था । उसे कम देकर
हेति पुत्रदानोंमें श्रेष्ठ समझा जन्ने क्या ॥ १७ ॥

विद्युत्केदो इतिपुत्रः स दीर्घार्त्समप्रभः ।

प्राक्कण्य महातडास्तायमभ्य इवाम्बुजम् ॥ १८ ॥

हेति-पुत्र विद्युत्का दीर्घिमान् मूर्धके क्मान प्रकथित
ऊपर था । वह महातकली शकक जन्म कमाकधी मूर्ति दिनों-
दिने करने क्या ॥ १८ ॥

स यदा पौत्रक भद्रमनुमाता निशाचरः ।

क्या शारिकियां तस्य कर्तुं व्यसहितः पितः ॥ १९ ॥

निशाचर विद्युत्का जब बंदूकर उत्तम पुत्रकस्याको
प्राप्त हुआ तब उत्तक सिद्ध प्राक्कण्य हेतिने अपने पुत्रका
प्राह कर देनेका निश्चय किता ॥ १ ॥

सभ्यापुहित साऽप्य सभ्यातुस्या प्रभावता ।

परयामास पुत्रार्थं हेतो राक्षसपुत्राणां ॥ २० ॥

यक्ष्याक्रीगामसि हेतिने अपने पुत्रके ल्याइनेके सिन्धे

उन्काकी पुत्रीका, जो प्रभावमें अपनी माता उन्का ही
कमान थी, बरण किया ॥ २ ॥

भवद्दयमथ वृत्तमया परस्मै सति सभ्यया ।

चिन्तयित्वा सुता वृत्ता विद्युत्कशाप राचव ॥ २१ ॥

पुनन्दन ! संभ्याने कक्षा-कन्याका फिन्डे दूसरक लय
व्याह तव अन्तय ही करना पड़गा अतः इसीके लय क्यों न
कर दूँ ? यह विचारकर उन्ने अपनी पुत्री विद्युत्केदोका
भ्याह ही ॥ २१ ॥

सभ्यायास्तनया लभ्या विद्युत्कशा निशाचरः ।

रगत स तथा सार्धं पौत्रोम्या मघघामिष ॥ २२ ॥

उन्काकी उस पुत्रीको पाकर निशाचर विद्युत्केदो उसके
लय उठी तरह रमण करने लगा जैसे बंकराव इन्द्र पुष्पम
पुत्री काकीके लय विशार करते हैं ॥ २२ ॥

केलचिस्वयं कालेन राम साककटपुटा ।

विद्युत्केशाह गभमप्य धनराशिनिवाणवात् ॥ २३ ॥

शौराम ! उन्काकी उस पुत्रीका नाम कलकटपुटा था ।

कुछ कालके पश्चात् उन्ने विद्युत्केदोसे उठी तरह गर्भ धारण
किया जैसे मेघोंकी पट्टि समुद्रसे ऊंच प्रहरण करती है ॥ २३ ॥
तत सा राक्षसी गर्भे यमगभसमप्रभम् ।

प्रसूता मन्वर गत्या गङ्गा गभमिवाग्निजम् ।

समुत्सृज्य तु सा गर्भे विद्युत्कशात्तापिनी ॥ २४ ॥

उत्पन्तर उस यक्षीने मन्दराकम्पर बकर विद्युत्क
कमान कृत्तिमान् बालकको कम विद्या मनो गङ्गाने मन्त्रिक
काह दूए भगवान् धिनक संकलस्य गम (कुम्भर कर्तिकेय)
को उत्पन्न किया हो । उस नभजत शिशुका बही छोड़कर
यह विद्युत्केदोके लय रक्षी-क्रीडाक सिन्धे चली गयी ॥ २४ ॥

रमे तु सार्धं पतिना विसृज्य सुतमात्मजम् ।

उत्सृष्टस्तु तदा गर्भो धनराश्वसमस्रमा ॥ २५ ॥

अपने बेटका मुञ्चकर कलकटपुटा पतिके लय रमण
करने लगी । उन्कर उत्तक छोड़ा हुआ वह गर्भ मघघी
गम्भीर गन्तानके कमान शय्य करने लगत ॥ २५ ॥

तयोत्सृष्टः स तु शिशुः शरत्कृतसममुत्तः ।

निष्पायास्यं स्वय मुष्टिं दरोद् शनकौसादा ॥ २६ ॥

उत्तक शरीरकी कम्पित शरत्कृतक सुवर्षी मूर्ति
उद्गासित होती थी । नाकका छोड़ा हुआ वह शिशु लख ही
अपनी मुष्टि मुँहमें बाँधकर धीरे-धीरे गन ऊपर ॥ २६ ॥

कता वृषभमास्थाय पाशंत्वा सजितः शिषः ।

वायुमागेष गच्छन् वै शुभाश बवितस्समम् ॥ २७ ॥

उस समय भगवान् बंदूकर पाकवीर्यके लय बंधकर
बंदूकर वायुमार्ग (माक्य) में चले गे । उन्होंने उस
पाककक गनेकी आवाज सुनी ॥ २७ ॥

भवद्दयमुमया सार्धं रुदन्त राक्षसामजम् ।

धरुण्यभावात् पाशम्या भवन्मिपुत्सृज्वाः ॥ २८ ॥

भवद्दयमुमया सार्धं रुदन्त राक्षसामजम् ।

धरुण्यभावात् पाशम्या भवन्मिपुत्सृज्वाः ॥ २८ ॥

तं राक्षसात्मजं चक्रे मातुरेव ययःसमम् ।

भुजकर पार्वतीसहित प्रियने उस रोते हुए राक्षसकुमार की ओर देखा । उसकी दमनीय अवस्थापर दृष्टिगत करके माता पार्वतीके हृदयमें कफनाश्र स्फोट उमड़ उठा और उनको प्रणाले त्रिपुरवृन्द भगवान् शिवने उस राक्षसनाटक को उधरी मातृकी अवस्थाके समान ही नीकघन बना दिया। अमर शैव व हृदय महादेवोऽस्तरोऽभ्ययः ॥ २९ ॥ पुरमाकाशान प्रादात् पार्वत्याः प्रियकाम्यया ।

इतना ही नहीं, पार्वतीकी प्रिय करनेकी इच्छाले अभिन्नायी एवं निर्भीकर भगवान् महादेवने उस राक्षसको अमर बनाकर उसके रहनेके लिये एक आकाशचारी नगराक्षर विमान दे दिया ॥ २९ ॥

उभयापि वरा वृषो राक्षसीना नृपात्मजम् ॥ ३० ॥ सद्योपसृग्धर्गाभस्य प्रसूतिः सद्य एव च ।

इत्यार्ये भीमराजस्यने बाद्रीकीयं अरिक्वाम्ये उचरत्कण्ठे चतुर्थे सर्गे ॥ ४ ॥
 इस प्रकार भीमराजसिद्धिर्निर्मितं पार्वतीप्रसव अरिक्वाम्ये उचरत्कण्ठेने चौथे सर्ग पूरा हुआ ॥ ४ ॥

पञ्चम सर्ग

सुकेशके पुत्रं मान्यवान्, सुमाठी और माठीकी सतानोंका वर्णन

सुकेशा धार्मिकं बभूव घरच्छत्रं च राक्षसम् ।
 प्राप्तप्रीताम गन्धर्वो विभवावसुसमभः ॥ १ ॥
 तस्य देववती नाम द्वितीया धीरिषाममजा ।
 त्रिपु स्त्राकेषु विख्याता रूपयौवनदाहिनी ॥ २ ॥
 वां सुकेशाय धर्मात्मा वृषी रक्षाधिपं यथा ।

(अनस्यकी करते हैं—सुनन्दन !) तदनन्तर एक दिन विद्यालयके समान तेकली प्राणी नामक गन्धर्वने राक्षस सुकेशको धर्मात्मा तथा बरप्राप्त वैभक्तके सम्प्रद देल अपनी देववती नामक कन्याका उसके साथ ब्याह कर दिया । वह कन्या बृहती नामके समान दिव्य रूप और यौवनले सुशोभित एवं तीनों लोकमें विख्यात थी । धर्मात्मा मान्यने राक्षसकी मूर्तिमती राक्षसकीके समान देववतीका शय सुकेशके शयमें दे दिया ॥ १२३ ॥

वरदानैश्चैश्वर्ये सा तं प्राप्य पतिं प्रियम् ॥ ३ ॥
 अस्तीवृ वृषवती तुष्टा धन प्राप्येव निधनम् ।

वरदानमें मिळे हुए देववतीके सम्पन्न प्रियतम पतिका चकर देववती बहुत संतुष्ट हुई मानो किसी निर्बलको पनकी राशि सिद्ध गयी हो ॥ १३ ॥

स तस्य सह सयुक्तो रराज रजनीयरा ॥ ४ ॥
 मङ्गलादभिलिङ्गान्ता करेण्येव महागजाः ।

वैते मङ्गल नामक दिवाकते उत्पन्न भेरे मङ्गल गज किष्टी इन्दीके साथ ब्याहण या राज हो उठी तब वह राक्षस गन्धर्वकन्या देववतीके साथ रहकर अधिक गोश्रय पाने लगा।

सद्य एव वयःप्रति मातुरेव वयःसमम् ॥ १

भुजकुमार । तत्परत्वात् पार्वतीकीने भी वह करण कि भावते राक्षसियों जस्वी ही गर्भ धारण करेगी फिर वं उसका प्रथम करेगी और उनका पैदा किया हुआ कलक व बन्दर मातृके ही समान अवस्थाका हो ब्यग ॥ १-१

ततः सुकेशो वरदानार्थिता
 श्रिय प्रभोः प्राप्य हरस्य पार्वताः ।

बचार सर्वत्र महान् महामतिः
 स्वर्गं पुर प्राप्य पुरंदरो वयम् ॥ १

त्रिपुरकेशव वह पुत्र सुकेशके नामसे प्रसिद्ध हुआ वह पहा बुद्धिमान् था । भगवान् शंकरका करण व उसे बड़ा गर्व हुआ और वह उन परमेश्वरके पालसे भ्रम्यति एवं आकाशचारी विमान पाकर देवराज इ भौति धर्म अनाच-गतिसे विचरने लगा ॥ १२ ॥

ततः कच्छे सुकेशस्तु जनयामास राक्षसम् ॥ ५
 नीन् पुत्राखनयामास वेतासिस्मभिस्रहात् ।

सुनन्दन ! तदनन्तर समक मानेकर सुकेशने देवक गर्भसे तीन पुत्र उत्पन्न किये वा तीन मयिनियोंके लोकेकरीये ॥ ५ ॥

माक्ष्यकस्त सुमातिं च मातिं च बहिर्नां वरम् ॥ ६
 श्रील्लिमेवसमन्तपुत्रान् राक्षसान् राक्षसाधिपान् ।

उनके नाम थे—माक्ष्यवान्, सुमाठी और माठी । म कन्यानेमें भेद था । वे तीनों त्रिनेत्रधारी महादेवकीके लोकाधिपानी थे । उन तीनों राक्षसपुत्रोंको देलकर राक्षस सुकेश बड़ा प्रथम हुआ ॥ ६ ॥

त्रयो लोका इवाभ्यपराः स्थितकक्षय इवाश्रया ॥ ७
 त्रयो मन्त्रा इवास्तुमाक्षयो घोरा इवामया ।

वे तीनों लोकोंके समान मुखिर, तीन अभिनीके समान तेकली, तीन मन्त्रों (शक्तियों अथवा वेदों) के समान तथा तीन रोगोंके समान अरुणत भयकर थे ॥ ७ ॥

१ पार्वती वरदानले और दक्षिणलि ।
 २ मङ्गल-शक्ति, अरुण-शक्ति तथा मन्त्र-शक्ति—वे ३ शक्तियों हैं ।
 ३ कथ वसु और साम—वे तीन वेद हैं ।
 ४ यत् त्रिपु और कच्छ—इन्के लक्ष्यसे जन्म होनेके तीन मन्त्रके उल्लेख है ।

अथ सुक्रेवास्य सुतमक्रोधाग्निप्रसमतेजसः ॥ ८ ॥
विबुद्धिममामस्तत्र व्याधयोपेक्षिता इव ।

सुक्रेवाके वे तीनों पुत्र त्रिविध अग्निपौत्रों के समान तेजस्वी
थे । वे वहाँ तखी तरह बढ़ने लगे; जैसे उपेक्षाका दवा न
करतेसे रोग बढ़ते हैं ॥ ८ ॥

वरप्रार्थितं गितुस्त तु ब्राह्मैर्भयैर् तपोपलात् ॥ ९ ॥
तस्मत्तु गता मेव धातरः कृतनिष्कथाः ।

उन्हें जब वर माग्वन हुआ कि हमारे पिताको तपोबलके
द्वय बरदान एवं ऐश्वर्यकी प्राप्ति हुई है; तब वे तीनों माँ
तस्मा करनेका निश्चय करके मेघपर्वतपर चले गये ॥ ९ ॥

प्रगृह्य नियमान् घोषान् राक्षसा नृपसत्तम ॥ १० ॥
विबेदस्त तपो घोरं सूर्यभूतभयावहम् ।

नृपमेव । वे राक्षस वहाँ भयकर नियमोंको ग्रहण करके
कर तस्मा करने लगे । उनकी वर तस्मा समस्त प्राणियोंको
मन देनेवाली थी ॥ १० ॥

सत्यार्षवधामापतेस्तापोभिभुवि दुर्धर्षैः ॥ ११ ॥
सत्यापस्तर्माज्ञोक्तान् सवथासुरमानुषान् ।

उन सखल एवं शम-दम अग्निसे युक्त उनके हाथ,
ब पूरकपर दुर्धर्ष है वे देवताओं; अनुवी और मनुष्यों-
कीव तीनों क्षेत्रोंका संतप्त करने लगे ॥ ११ ॥

ततो विमुञ्चानुर्बन्धो विमालवरमाभिता ॥ १२ ॥
सुक्रेऽशुभान्मन्त्र्य वरदोऽसीत्यभापत ।

उन चार मुखवाले मगधान्, तस्या एक भेद विमानपर
बैठकर वहाँ गये और सुक्रेवाके पुत्रोंको सम्बोधित करके
कहे—यों दुर्धर्ष वर देनेके लिये आया हूँ ॥ १२ ॥

ब्रह्मण्य वरवं ब्राह्म्य सेम्प्रेर्वैवगपैर्दृष्टम् ॥ १३ ॥
ऋषुः प्राञ्जल्यः सर्वे वेपमाला इव हुमा ।

इतर आदि देवताओंसे विरे हुए बरदायक ब्रह्मानीको
अप्य क्लम व उनके-कल बुद्धोंके समान कौपते हुए हाथ
बंदकर बोले— ॥ १३ ॥

तपसाऽऽपथितो वैव यवि नो विधासे वरम् ॥ १४ ॥
मन्त्रेणः शशुहस्तारस्तथैव शिरसीविनः ।

प्रमदित्यो भयामसि परस्परमनुययाः ॥ १५ ॥
वेव । यदि आप हमारी तस्मासे व्यग्रपथित एवं संदुष्ट
होकर इसे वर देना चाहते हैं तो देखी कृपा कीलिये किछे
हमें क्रोह प्रयत्न न कर सक । हम शशुर्गोंका वच करनेमें
अप्य शिरसीकी तथा प्रमदवाणी ही । आप ही हमलोगोंमें
परस्पर प्रम कर रहे ॥ १४ १५ ॥

एवं भविष्यथोयुक्त्या सुक्रेऽतनयात् विभुः ।
य पयौ प्राञ्जल्यः प्रथ्या प्राञ्जल्यवस्तस्य ॥ १६ ॥

वह तुनकर ब्रह्मानीने कहा—जुम ऐसे ही होयोगे ।
सुक्रेवाके पुत्रोंसे देवा कइकर प्राञ्जल्यवस्त ब्रह्मानी प्रसन्नो-
क्ये चले गये ॥ १६ ॥

वर छत्र्या तु त सर्वे राम राभिचरास्तदा ।
सुरासुपन्न प्रयाभन्ते परदास्तुभिर्भया ॥ १७ ॥

भीयम् । वर पाकर वे सब निशाचर उस बरदानसे
अत्यन्त निर्भय हो देवताओं तथा अनुपुंज भी बहुत कष्ट
देने लगे ॥ १७ ॥

तैर्वाभ्यमानास्त्रिदशाः सार्पिसहाः सन्धारणाः ।
शठार नाधिगच्छन्ति निरपस्था यथा नराः ॥ १८ ॥

उनके द्वारा छाये चाते हुए देवता; श्रुति-समुदाय
और चारण नरकमें पड़े हुए मनुष्योंके समान किसीको अपना
रक्षक या सहायक नहीं पाते थे ॥ १८ ॥

अथ ते विश्वकर्माणं शिश्यानां वरमभ्ययम् ।
ऋषुः समेत्य सहाय राक्षसा एषुसत्तम ॥ १९ ॥

एषुप्रशियेभजे । एक दिन शिष्य-धर्मके आताओंमें भेद
अभिनाशी विश्वकर्माके पास आकर वे राक्षस इर्ष और
उत्साहसे भरकर बोले— ॥ १९ ॥

श्वेदस्तेजोपलवतां महतामामतेजसा ।
गृहकता भयानेष देवानां हृदयेऽस्तितम् ॥ २० ॥

अस्माकमपि तावत् स्वं गृह कुट महामते ।
हिमवतनुपाधिस्य मेरुं मन्वृत्तमव वा ॥ २१ ॥
मत्सेध्वरगृहप्रथम गृह नः क्रियतां महत् ।

महामत । ओ भोव, बह और तेजसे सम्पन्न होनेके
कारण महान् हैं उन देवताओंके लिये आप ही अपनी शक्तिये
मन्नाभिच्छत मवनका निर्माण करत हैं; अतः हमारे लिये
भी आप दिग्गज्य, मेरु अथवा मन्वृत्तमव चक्रकर भयान्
शंकरके दिव्य मवनकी मूर्ति एक विद्याका निरादमानका
निर्माण कीलिये ॥ २० २१ ॥

विश्वकर्मा ततस्तेषां राक्षसानां महाभुजा ॥ २२ ॥
निघासं कथयामास शकस्तेषामावकस्मीम् ।

वह तुनकर महाबुद्ध विश्वकर्माने उन राक्षसोंको एक
ऐसे निवाहसानका पत्र बतया जो इन्की अमरपत्नीको
भी लक्षित करनेवाला था ॥ २२ ॥

वक्षिष्यसोवक्षेत्तरे विभूदो नाम पथता ॥ २३ ॥
सुखेव इति धाप्यस्यो शितीयो राक्षसेऽभारः ।

(वे बोले—) पाकमपियो । वक्षिष्य सुत्रके उदर एक
विभूद नामक पर्वत है और वृष्य सुनेव नामसे विख्यात
पौत्र है ॥ २३ ॥

शिलारे तस्य शीकस्य मन्त्रेऽमुद्वसन्निमे ॥ २४ ॥
शकुनेरपि बुष्पापे उद्विच्छिद्यशुनिदिता ।

विद्याव्योजनविस्तीर्णा दत्तयाजनामपता ॥ २५ ॥
सन्वय्यकरसतीता हेमतोरणसंबुवा ।

मया उद्वेति नगरी शम्भरतेन निर्मिता ॥ २६ ॥
उत्त विभूदपर्वतसे महासे शिलारर च हाथ-भय होनेके
कारण मयके समान नीला रिकानी देवा है तथा शिकके चने

अंशके आभय टोंकीने काट दिये गये हैं अतएव जहाँ पक्षियोंके छिपे भी पहुँचना कठिन है, मीने इन्द्रकी अज्ञात लज्जा नामक नगरीका निर्माण किया है। वह तीव्र योजन चौड़ी और लंबे योजन लंबी है। उसके चारों ओर घेनेकी चहार दीवारी है और उसमें खेनेके ही फलक खो हैं ॥ २४-२६ ॥ तस्या घसत बुधयो यूय राक्षसपुंगवाः। भ्रमराकर्षी समासाद्य सेन्द्रा इव द्विवीकसा ॥ २७ ॥ भुवर्ष्य राक्षसशिरोमणिवो ! जैसे इन्द्र आदि देवता अमरावतीपुरीका आभय देकर खते हैं, उन्हीं प्रकार द्रुम म्मा भी उस लज्जापुरीमें आकर निवास क्यो ॥ २७ ॥ लज्जापुरी समासाद्य राक्षसैर्बहुभिर्बुधाः। भयिष्यद्य तुवाधर्षाः शत्रूणां शत्रुसूतनाम ॥ २८ ॥ शत्रुसूतन बीर ! लज्जाके दुर्गका आभय लेकर बहुतसे राक्षसोंके साथ अब द्रुम निवास करोगे उस समय शत्रुओंके छिपे हुएपर विभ्रम पना असक्त कठिन होगा ॥ २८ ॥ विभ्रमकर्मयवः ध्रुव्या तटन्त राक्षसोत्तमाः। सहस्रानुचरा भूत्वा गन्ध्या वामघसन् पुरीम् ॥ २९ ॥ विभ्रमकाष्टी यह बहत सुनकर व भेद्य राक्षस खसो अनुचरोंके साथ उस पुरीमें आकर बस गये ॥ २९ ॥ सहस्राकारपरिकां हैमैर्बुधशतैर्बुधात्। लज्जाम्बाव्य तं ह्यद्य म्यबसन् रजनीधराः ॥ ३० ॥ उन्हीं लार्ड अंशे चहारदीवारी बनी मजबूत कयी थी। सोनेके लेशका महक उस नगरीकी छाया बढ़ा रहे थे। उस लज्जापुरीमें पहुँचकर ये निशाचर बड़े हर्षके लय जहाँ रहने लगे ॥ ३ ॥ पतस्मिन्नेव काले तु यथाश्रम च राक्षय। ममश मम गन्धर्वी यमूय रघुनन्दन ॥ ३१ ॥ तस्याः कन्यात्रय द्वासीवृद्धीभीकीर्तिसममुत्ति। ज्येष्ठक्रमेण सा मया राक्षसाग्रामराक्षसी ॥ ३२ ॥ कन्यास्ता प्रद्वी ह्यद्य पूष्यधम्निभातना। रघुद्वन्द्वन भोगम ! इन्हीं कितों नर्मदा नामकी एक लक्ष्मी थी। उसका तीन कन्याएँ हुए अ ही भी अंशे कीर्ति के समान गाथासम्पन्न थीं। इनकी माता यद्यपि गणधी नहीं थी ता भी उनमें अपनी बचिक अनुचर मुझका उन तीनों राक्षसकीय पुत्रोंके लय अपनी कन्याओंका पद आदि भयम्माके अनुचर विवाह कर दिया। व कन्याएँ बहुत प्रसन्न थीं। उनका सुवर्ण चन्द्रमाके समान मनोहर था ॥ त्रयाणां राक्षसपुत्राणां त्रिका गन्धयकन्यया ॥ ३३ ॥ इत्ता मात्रा महाभाग नक्षत्र भगदपत। माता नमहाने उचयच्छत्रुनी नधर्षमे उन तीना महा

भाग्यवती गन्धर्व-कन्याओंका उन तीना राक्षसोंके हाक दे दिया ॥ ३३ ॥ इतवारस्तु त राम सुकेशतन्वयास्तथा ॥ ३४ ॥ विचिदुः सह भायाभिरप्सरोभिरिकमरा। भीरम ! जैसे देवता भक्त्याभ्येक लय श्रीका करत हैं उन्हीं प्रकार सुकेशके पुत्र विवाहके पश्चात् अपनी उन पत्निक लय रहकर श्रेष्ठिक सुलभ लयभोग करत ह्ये ॥ ३४ ॥ ततो माल्यवता भार्या सुम्बरी नम सुम्बरी ॥ ३५ ॥ स तस्या जनन्यामास यदपत्य निशोष तत्। ज्ञानं माल्यवान् श्रीकीक नाम सुम्बरी था। यह अपने नामके अनुक्रम ही परम सुम्बरी थी। मासवान्ने उन्के गर्भमें किन संतानोंको जन्म दिया उन्हें बता था ई सुनिष। वज्रमुष्टिर्षिकपाप्तो तुमुंकाशेव राक्षस ॥ ३६ ॥ सुतपत्ना यज्ञकोपथ मत्तोमती तथैव च। मन्मथ वामभवत् कन्या सुम्बरी राम सुम्बरी ॥ ३७ ॥ यज्ञमुष्टि विष्णुके राक्षस दुर्मुख, सुतपत्ना, यज्ञकोप मर और उन्कास-ये छत पुत्र थे। भीरम ! इनके अस्तित्व सुम्बरीके गर्भमें भन्नाय नामकाकी एक सुम्बरी कन्या में उत्पन्न हुई थी ॥ ३६ ३७ ॥ सुमाक्षिणोऽपि भार्याऽऽसीत् पूष्यधम्निभाम्बन्। गान्धा केतुमती राम प्राण्येभ्योऽपि गरीयसी ॥ ३८ ॥ सुमाक्षीकी पत्नी भी बड़ी सुन्दरी थी। उन्का मुक्त पूर्व चन्द्रमाके समान मनोहर और नाम केतुमती था। सुमक्षीम यह माणसे भी अधिक मिय थी ॥ ३८ ॥ सुमाक्षी जनन्यामास यदपत्य निशाचरः। केतुमत्या महाराज तन्निबोधानुपूर्वका ॥ ३९ ॥ महायव ! निशाचर सुमाक्षीने केतुमतीके गर्भमें संतानें उत्पन्न की थी उनका भी क्रमशा परिचय दिया अ य रहा है सुनिये ॥ ३९ ॥ महस्ताडकम्पनश्रीय विकटः कालिकमुखाः। पूजाश्राद्धैव दृष्यन्त सुपाद्व्यं महाबला ॥ ४० ॥ सहादिः प्रथमद्वेष्य भासकण्ठ्य राक्षसा। गण्य पुण्यात्कदा शैव कैकेयी य मुषिकिस्ता ॥ ४१ ॥ कुम्भीनीसी च इत्यत सुमालो प्रसवा स्मृत्यः ॥ ४२ ॥ महस्त भस्मन् विकट कालिकमुखा पूष्यः कथा महाकभी सुवर्णरं ख्यादि प्रसन्न तथ यत्त भक्तलय-य सुमाक्षीके पुत्र य अंशे यथा पुण्यात्कदा कैकेयी अंशे कुम्भीनी-य पर पतिव्रत मुसधनयाक्षी उन्की कन्या थी। व लय सुमाक्षीकी संतानें कथकी गयी हैं ॥ ४०-४२ ॥ मातन्तु यमुदा नम गन्धर्वी रूपशक्तिनी। भायात्नीत् पद्मप्राक्षी म्यधी पक्षीपराम्य ॥ ४३ ॥ मायवी की कन्या कन्या बमरा थी अ अपने क-

व जन दरि । व न कल न व अना-नयकि ॥

स्वयं विद्यां एषं सुन्दर ये । बह भेद वक्ष्यन्ति योऽस्मिन्
सुन्दरी यी ॥ १४ ॥

सुमन्तरनुव्रजस्यैः जनयामास पत् प्रभो ।

अपत्य कल्पमानं तु मया त्व शृणु राघव ॥ ४४ ॥

प्रभो ! खुन्दन ! सुमासीकं छाट माई यकीने बसुराक
गमिसे जे संठवि उरान की थी उरका में बर्णन कर रहा
हूँ मैं मुनिये ॥ ४४ ॥

अन्यथा निरुद्धवैष हरः सम्पाठिरेष च ।

एत विधीयणामास्या मालिषास्त निशाचराः ॥ ४५ ॥

अनक अनिक, हर खीर लप्यति—ये चार निशाचर
मथीके ही पुत्र थे; अब इस समय विधीयणक मन्त्री
हैं ॥ ४५ ॥

तस्तु ते राक्षसपुङ्गवास्त्रयो

निशाचरैः पुत्रशतम् सन्तुष्टाः ।

इत्यार्ये श्रीमद्भागवत वाक्यटीकानि जगद्गुरु उच्यन्ते ॥ ५ ॥

इस प्रकार श्रीवल्कीनिर्मित अष्टाध्यायक उत्तरकाण्डे षष्ठो सर्ग पूरा हुआ ॥ ५ ॥

षष्ठ सर्ग

देवताओंका भगवान् शङ्करकी सलाहसे राघवोंक कथक लिये भगवान् विष्णुकी शरणमें जाना
और उनसे आश्रासन पाकर लौटना, राघवोंका तृप्ताभोपर आक्रमण और
भगवान् विष्णुका उनकी सहायताके लिय माना

तप्यमानस इवाह श्रुत्वायम् तपोचनाः ।

अपत्याः शरणं जग्मुर्वैषद्य महश्चरम् ॥ १ ॥

(मार्गीं मागत्य कृते है—खुन्दन !) इन एकजोते
कीजत होते हुए देवता तथा तपोचन श्रुति भयसे अचकुक
हूँ देवतादेव महादेवकी ही शरणमें गये ॥ १ ॥

जगत्पुत्रपुत्रस्तकठारमजमप्यतः कृपिणम् ।

आचारं सन्नमोऽस्मानामाराप्य परमं गुहम् ॥ २ ॥

त समस्य तु क्यमारिं त्रिपुरारिं त्रिव्रजन्मम् ।

कञ्चु प्राञ्जलयो वृथा भयगद्गद्भागिण्य ॥ ३ ॥

ज कलकी वृषि और संहार करनेवाले अन्त्या अन्त्यक
काशी कञ्चु अन्त्यक आचार आराप्य देव और परम
गुह हैं उन सम्पत्तायक त्रिपुराकिनायक चितेकवाणी अन्त्यार
किरक एत आकर थे सब देवताहाथ अब भयसे गद्गद्वाणीमें
रह—॥ १ ३ ॥

तुभ्यं पुत्रं भगवन् पितृमहयरोजितैः ।

प्रक्षय्यन्त प्रजाः सत्वा याप्यन्ते त्रिपुराधिनैः ॥ ४ ॥

मान ! प्रजनाय ! ब्रह्मासीक परदानमें उम्भक हुए
तुम्हारे पुत्र तुम्हेंभीका पीडा देनेवाले सत्वाधिनैक लम्ब
प्रक्षय्य रहा वह पदुवा रह है ॥ ४ ॥

राज्याप्यराज्यानि ह्याभ्यानि कृतानि नः ।

सगाप्य इत्यन् प्रक्षय्यन्त स्वर्गोऽस्ति इत्यन् ॥ ५ ॥

सुरान् सहेन्द्रान्पिनागपत्तान्

यवाधिर् तान् वदुःखीयद्विषिताः ॥ ४६ ॥

मास्यज्ञान् भादि वीनां भेद एख अवन सैकड़ों पुत्रों
तथा अन्यन्व निशाचरोंक साथ रहकर अपने बाहुकसक
अभिमानसे युक्त हो इन्द्र भादि देवताओं, श्रुतियों नागों तथा
पक्षोंक पीना देने लगे ॥ ४६ ॥

जगद्भ्रमन्तोऽनिलयत् वुरासत्

रणेषु सृत्पुमस्तिमानतजसः ।

परप्रदानात्पि गयिता भुवा

कृत्यक्रियाया प्रदायकराः सदा ॥ ४७ ॥

व वायुकी मौति खरे संसारमें बिचरनेवाले थे । बुद्धमें
उन्हें भीलना बहुत ही कठिन था । व सृत्पुके तुम्य उम्भकी
थे । बरदान मिल जानेसे भी उनका पंचक बहुत बढ़ गया
था भला व यकदि क्रियाओंका उदा अस्त विनाश क्रिया
करते थे ॥ ४७ ॥

असन्न शरणं देनं यन्म बो हनारे आभम थे; उन्हें उन

एकजोते निष्कलक नाम नहीं रहते थिये—उम्भक हाथ है ।

देवताओंक लगते इटाकर वे लक्ष्य ही बहों अधिपर अमान

देते हैं और देवताओंकी मौति स्वर्गमें विहार करते हैं ॥ ५ ॥

भई विष्णुएहें कद्रा प्रसाह द्यराउहम् ।

भई यमका पदणभान्नाऽह रतिरप्यहम् ॥ ६ ॥

इति मार्त्ती सुमार्त्ती च माह्यवाशेव राक्षसाः ।

पाथन्त समराज्या ये च तर्पा पुरःसरा ॥ ७ ॥

प्राचीं मुम्भकी और माण्यकान्—य हीनों राजा कहते

हैं—मैं ही विष्णु हूँ मैं ही कद्र हूँ मैं ही बड़ा हूँ तथा मैं

ही द्यराउह इन्द्र यमका, परण पन्द्रमा और तर्प हूँ इस

प्रकार भईकर प्रकट करत हुए वे तनुवीय निगापर तथा

उनक अग्रगामी मैत्रिक हमें पड़ा कर दे रह है ॥ ७ ॥

तन्त्ये द्य भयातानामभयं शानुमहम्नि ।

मर्तिरं पपुरास्त्राय जदि थे द्यकण्टकान् ॥ ८ ॥

श्रेव ! जनक भयमें हम बहुत परणप हुए हैं इत्यस्य
आप हमें भयनाशन दीक्षिय तथा पंड व पाण्य इरक
देवताओंक शिव कण्टक फल हुए उन एकजोते संहार
करिये ॥ ८ ॥
इत्युक्तस्तु सुरैः सर्वैः पयर्षीं भीरुद्विदिताः ।
सुकटा प्रति सायशः श्रद्धं द्यगण्यन् प्रभुः ॥ ९ ॥

समस्त देवताओंके ऐसा करनेपर नीस एवं छोड़ित बन-
वाके ब्याहृष्टपारी मन्थान् दांकर मुकेयके प्रति पनिह्यत
रसनेके करण उनसे इस प्रकार बोले—॥ १॥

मह्यं तान् न हनिष्यामि ममायुष्या हि तेऽसुराः ।

किं तु मन्त्रं प्रदास्यामि या वै तान् निहनिष्यति ॥ १० ॥

वेवगत्र । मैंने सुषण्डके भीवनकी रक्षा की है । वे असुर
मुकेयके ही पुत्र हैं । इसलिये मेरे द्वारा मारे जाने योग्य नहीं
हैं । मन्त मैं तो उनका बच नहीं करूँगा परंतु तुम्हें एक
ऐसे पुराणके पाठ बानेकी समझ दूँगा जो निश्चय ही उन
निष्ठाचरोंका बच करेगा ॥ १ ॥

पलमेय समुद्योगं पुरस्कृत्य महर्षया ।

गच्छस्य दारण्य पिप्पु हनिष्यति स तान् प्रभुः ॥ ११ ॥

देवताओं और महर्षियों । तुम इसी उपायको छानने
रखकर उत्तम भगवान् विष्णुकी दारणमें जाओ । वे प्रभु
अवश्य उनका नाश करेगा ॥ ११ ॥

ततस्तु जयशब्दन प्रतिनम्य महेश्वरम् ।

विष्णोः समीपमाजस्युनिदाश्वरभयार्थिताः ॥ १२ ॥

यह सुनकर सब देवता कम-कमप्रायक दाय महेश्वरका
मन्मिन्दन करके उन निष्ठाचरोंके भयसे पीड़ित हो भगवान्
विष्णुके समीप गये ॥ १२ ॥

शङ्खकधर वेदं प्रणम्य वज्रमात्य च ।

ऊधुः सन्धान्तपद् धारण्यं सुकेशतन्त्यान् प्रति ॥ १३ ॥

शङ्ख चक्र धारण करनेवाले उन नायकपदेवका नमस्कार
करके देवताओंने उनके प्रति बहुत अधिक सम्मानका नाव
प्रकर किन्तु और मुकेयका पुत्रोंके विषयमें बड़ी भयानकके
बाप इस प्रकार कहा—॥ १३ ॥

सुकेशतन्तपैव विभिक्षेतासिनजिभैः ।

आक्रम्य परशमेन स्थानान्यपहृतानि मा ॥ १४ ॥

देव । मुकेयके तीन पुत्र विविध अभियोके दुस्य ठकली
हैं । उन्होंने परशमेके बलसे आक्रमण करके हमारे स्थान हीन
किये हैं ॥ १४ ॥

रुद्रा नाम पुरी दुर्गा त्रिकूटशिखरे स्थिता ।

तत्र स्थिताः प्रधाधन्त सर्वाङ्गान् ज्ञानदावरा ॥ १५ ॥

त्रिकूटपर्वतक शिखरपर जो सद्गद्ग नमवासी दुर्गा
मण्डि है वही रुद्र के निवासर है। सभी देवताओंको क्लेश
पहुँचाने रहते हैं ॥ १५ ॥

स त्वमस्मितावार्थो जहि तान् मनुसूदन ।

दारण्य त्वां यय प्राता गतिर्भव सुरेश्वर ॥ १६ ॥

मनुसूदन । आप हमारा हित करनेके लिये उन
असुरोंका बच करें । देवेश्वर । हम आपकी दारणमें गये हैं ।
अप हमारे आभयकाव हो ॥ १६ ॥

धमदृष्टासकमस्यन् निन्द्य पमाय वै ।

येवभयदोऽस्माकं नाम्नाऽसि भक्त्य विन्य ॥ १७ ॥

‘अपने चक्रसे उनका कमजोरम मन्तक करकर मन
बन्धकक में कर दीजिये । आपके लिये बृहत् कोरे ऐव
नहीं है । यह भयके अलक्षण हमें भयम बन दे
सके ॥ १७ ॥

रासखान् समरे हृषान् सानुबन्धान् मषोऽहम् ।

उदु त्वं नो भयं वृव मीहारमिव भास्करा ॥ १८ ॥

देव । वे राक्षस मरते मतवाले हो रहे हैं । हमें सब
देकर हमसे डूमे नहीं समत हैं मन्तः आप सम्राट्ठाने को-
सम्भियोसहितउनका बच करके हमारे भयको उठी लड़ दूर
कर दीजिये जैसे सूर्यदेव कुहरोको मार कर देते हैं ॥ १८ ॥
इत्येव द्रवतकको येवदेवो जल्पमानः ।

अभय भयदोऽदीणा दृश्या देवानुवाच ॥ १९ ॥

देवताओंके ऐव करनेपर शत्रुओंको मन देनेको
देवाभिवेन भगवान् कान्दैन उन्हें भयम बन देकर
सके—॥ १९ ॥

सुकेश रासस जने ईशान्वरवर्षितम् ।

तांश्यास्य तनयाज्ञाने येयं ज्येष्ठा स मास्यवान् ॥ २० ॥

तानह समतिक्रान्तमपदान् राससाधमाह ।

निहनिष्यामि सङ्क्रयः सुरा भक्त विज्वरा ॥ २१ ॥

देवताओं । मैं सुकेश नामक राक्षसको बन्ता हूँ ।

वह भगवान् शङ्करका वर पाकर अभिमानसे उन्नत हो उठ
है । इसके उन पुत्रोंको भी बन्ता हूँ किन्तु मास्यवान् कसे
बड़ा है । वे नीच राक्षस बनेकी मर्यादाका उल्लङ्घन कर रहे
हैं मन्तः मैं कोपपूर्वक उनका विनाश करूँगा । तुमको
निमित्त हो मन्तः ॥ २०-२१ ॥

इत्युक्त्वस्त सुराः सर्वे विष्णुन् प्रभविष्णुना ।

पयाबाचं पयुर्दृष्ट्वाः प्रदासन्तो जगत्सन्म् ॥ २२ ॥

सब कुछ करनेमें समर्थ भगवान् विष्णुके इस प्रकृत
आधाधन देनेकर देवताओंको बड़ा हय हुआ । वे उन
कान्दैनकी मूरि भूरि प्रार्थना करते हुए अपने-अपने स्थानको
पडे गये ॥ २२ ॥

विशुधानां समुद्योगं मास्यवांसु निदहवरा ।

भुश्या तौ धातरी वीराविद् वक्त्रमज्जवीव ॥ २३ ॥

देवताओंके इस उद्योगका समाचार सुनकर निष्ठाचर
मास्यवान्ने अपने कोभी नीर भावसे इस प्रकार कहा—२३
अमराः श्रुत्वायदवैव सगम्य किञ्च शङ्करम् ।

यस्यदृष्ट्यं परीप्सन्त इत् वक्त्रमज्जवीव ॥ २४ ॥

‘तुमनेमें अमरा है कि देवता और शक्ति मिश्रकर
हमकोका बच करणा चाहते हैं । इसके लिये उन्होंने भयकर
शङ्करके पास आकर यह बात कही ॥ २४ ॥

सुकेशतन्त्या देव परदात्यकोवता ।

बाधन्तऽस्मान् समुद्रस्ता घोररूप्या पवे पवे ॥ २५ ॥

देव । मुकेयका पुत्र आपके बरदानके बलसे उत्तम

येर भविमानसे उन्मत्त हा उठे हैं । वे मयंकर राघव पा-
पापर हृदयमेंसे उठा रहे हैं ॥ २५ ॥

राक्षसैरभिमृताः सो न शक्ताः स प्रजापते ।

स्वेपु सप्रसृज्य सस्यातु भयात् तेषां तुरात्मन्यम् ॥ २६ ॥

‘प्रजनाय । यद्यस्यै पर्यन्ति हाकर इमं उन दुष्टोके
मत्से अपने परंमे नहीं रहने पाते हैं ॥ २६ ॥

उद्वेग्यक हितार्थाय जहि तांश्च निस्त्रोचन ।

राक्षसान् हुंक्रतेनैव दह प्रदहतां धर ॥ २७ ॥

‘निस्त्रोचन । भय हमारे हितके किये उन अनुपैक्ष बध
भीक्ष्मि । दाहमेंमे भेद करदेव । भय अपने हुंकरसे ही
राक्षसोंको ब्रह्मकर मरम कर लीक्ष्मि’ ॥ २७ ॥

इत्येव त्रिदशदत्तो निशाम्यान्भक्तसूदनः ।

विष्टा कर ख पुम्बान इव कचलमप्रवीत् ॥ २८ ॥

‘देवताभोक्त देवा क्रानेपर अन्धकघनु भगवान् शिवने
भस्वीहृदि सूक्ति करनेके किये अपने विर और हाथको दिखाते
हुए इस प्रकार कहा— ॥ २८ ॥

बधण्या मम ते द्वाः सुकेदात्मया रणे ।

मन्त्र तु धः प्रदास्यामि यस्तान् वै निहनिष्यति ॥ २९ ॥

‘देवताभो । सुकेदाक पुत्र रजभूमिमे मेरे हाथसे मरे
जने काय नहीं है, परन्तु मैं उन्हें ऐसे प्रकारक यज्ञ करनेकी
छात्र दूँगा जो निश्चय ही उन सबका वध कर सकेगा ॥ २९ ॥

षोऽसौ चक्रगदापणिः पीतवासा जनार्दनः ।

हरिमोरापण्यः भीमास्धारण्य त प्रपद्यत ॥ ३० ॥

‘जिनके हाथमें चक्र और गदा सुशोभित है, जो पीताम्बर
पहन करते हैं जिन्हें चक्रार्दन और हरि करते हैं तथा जो
भीमान् नारायणके नामसे विख्यात हैं, उनकी मन्थनकी धारण-
में तुम सब लोग आओ ॥ ३० ॥

इयद्व्याप्य त मात्र कामारिमभियाद्य च ।

ध्यायणमाखर्यं ध्याप्य तस्मै सूर्ये न्ययद्वयम् ॥ ३१ ॥

‘मगवान् शत्रुसे यह सबका पाकर उन कामचारक
मण्डरेवभीक्ष्म प्रकाम करके दत्ता नारायणके धाममें जा पहुँचे
और वहाँ उन्होंने उनसे सब बातें बजस्यीं ॥ ३१ ॥

तदा नारायणनोक्त्वा त्रेधा इन्द्रपुत्रेणमा ।

तुरारोऽस्त्वान् हनिष्यामि सुरा भवत निभया ॥ ३२ ॥

‘तब उन नारायणदेवने इन्द्र आदि देवताओंसे कहा—
‘देवता । मैं उन दहजोदियोंका नाश कर दूँगा, अतः तुम
ज्या निर्मय हो जाओ ॥ ३२ ॥

त्रैवानां भयभीतानां हरिणा राजसङ्गभी ।

प्रतिजज्ञात वधाऽऽस्त्राक चिन्मयता परिहृ क्षमम् ॥ ३३ ॥

‘पञ्चदशरामकियो । इस प्रकार भयभीत देवताओंके
कण्ठ भीरुने हमें मारनेकी प्रतिज्ञा की है; अतः अब इस
रिश्तेमें हमसबका किये जो उचित कर्तव्य हो, उन्मत्त विचार
करना चाहिये ॥ ३३ ॥

हिरण्यकशिपोर्मुस्युरम्येषा च सुरद्विपाम् ।

नमुषिः फलनेमिष्य सङ्घयो वीरसत्तमः ॥ ३४ ॥

राधया यक्षुमायी च श्लोकपातोऽथ धार्मिक ।

यमज्जार्जुनो च हार्दिपयः गुम्भश्चैव निगुम्भकः ॥ ३५ ॥

मसुरा ज्ञानशास्त्रिण सत्यवन्तो महायक्ष्मा ।

सर्वे समरमासाद्य न भूयन्तऽपराजिताः ॥ ३६ ॥

‘हिरण्यकशिपु तथा अन्य देवराष्ट्री देवोंकी मृत्यु इन्हीं
विष्णुक हाथसे हुई है । नमुचि ब्रह्मनेमि, वीरधिरामेभि
सङ्घात, नामा प्रथरसी भाषा बाननेवाक्य राधेय, धर्मनिष्ठ
श्लोकपाल यमक-अनुक हार्दिपय गुम्भ और निगुम्भ आदि
महाकवी ऋक्षिदाशी समस्त भसुर और दानव समरभूमिमें
मगवान् विष्णुका सामना करके पराजित न हुए हा पक्ष
नहीं मुना जाता ॥ ३४-३६ ॥

सर्वैः क्रतुशतैरिष्ट सर्वै मायायिदस्ताया ।

सर्वै सभाककुशाब्जः सर्वै शत्रुभयकरा ॥ ३७ ॥

‘उन सभी अनुपति सेइहाँ सब किये थे । वे सबकेसब
माया बनते थे । सभी सगुण भक्षामें मुखाक्ष तथा शत्रुभोक्ति
किये सबके थे ॥ ३७ ॥

नारायणेन निहताः शतदाऽथ सहस्रशः ।

एतज्जात्या तु सर्वेण क्षम कर्तुमिहाद्यथ ।

दुःख नारायण जेतु यो नो हन्तुमिहेच्छति ॥ ३८ ॥

‘ऐसे सेइहाँ और हजार भसुरोंमें नारायणदेवने मौनरु
पाठ उच्चार दिया है । इस पाठमें बानकर हम सबके किये जो
उचित कर्तव्य हो वही करना चाहिये । जो नारायणदेव हमारा
वध करना चाहते हैं, उन्हें भीतना भूयन्त दुष्कर कार्य
है ॥ ३८ ॥

ततः सुमाली माली च भुर्या भाल्यवतो जवः ।

ऊचतुर्भ्रातर ज्येष्ठमदियन्वाद्यिद्य ध्यायम् ॥ ३९ ॥

‘मन्थनकी यह बात सुनकर सुमाली और माली अपने
उन बड़े भाईसे उन्हीं प्रकारक जैसे राजा भद्रिनीकुमार
देवराज इन्से बर्नात्मक कर रहे हा ॥ ३९ ॥

स्यधीत वृत्तमिष्ट च पेश्यये परिपालितम् ।

आयुर्निरामय प्रात्त सुधमः स्थापिताः पथि ॥ ४० ॥

‘वे कसे—राजपराय । हमसमाने स्वाध्याय बान और
यज्ञ किये हैं । देववर्षी रक्षा तथा उदम उदमग भी किया
है । हमें राम-व्यापिने रहित आयु प्राप्त हुई है और हमने
कर्तव्य-व्यापि उच्चम परमकी मन्थना की है ॥ ४० ॥

दयमागमस्ताव्य दारुणैः समवगाह्य च ।

जित्वा द्विधा ह्यप्रतिमासाद्या मृत्युर्यत भयम् ॥ ४१ ॥

‘पाठे नहीं हमने अपने हाथोंक किये देवमनाकी
अगण मनुजमें प्रवेश करके एते-एते शत्रुभ्रातर विजय पायी
है जो वीरकर्म भन्ना कनी नहीं रहते थे अतः हमें मृत्युसे
बह भय नहीं है ॥ ४१ ॥

नमरायणस्य रुद्रस्य शक्रस्यापि यमस्तया ।
 मन्साक प्रमुखे स्थानु सर्वे विभ्यति सर्वथा ॥ ४२ ॥
 नारायण रुद्र इन्द्र तथा यमराज ही नो न हा सन्धी
 स्या इमरे खमने लगे हनेमें इत है ॥ ४२ ॥

विष्णोर्द्वेषस्य न्यस्त्येष फरएण राक्षसेश्वर ।
 दधानामेष द्वापेज विष्णो प्रखलित मनः ॥ ४३ ॥
 राक्षसेश्वर । विष्णुक मनमें भी हमारे प्रति द्वेषम कर
 करण था नहीं है । (क्योंकि हमने उनका कर्म मारण नहीं
 किया है) केवल देवताओंके पुण्यी सानेसे उनका मन
 हमारी आरते फिर गया है ॥ ४३ ॥

नस्मादप्यै सहिता सर्वेऽन्त्योम्यसमावृताः ।
 पदानेष जिघांसामा यम्या द्यौः समुत्पिता ॥ ४४ ॥
 इहल्लिमे हम सब लम्बा एकत्र हा एक दूखेकी रखा करते
 ग्य साथ-साथ चरें और आज ही देवताओंका वध कर
 शान्तकी चेष्टा करें, किन्तु कारण यह उपद्रव लडा हुआ है ॥
 पथ सम्मस्य यस्मिन् सवस्यसमावृताः ।
 उद्योग प्रापयित्वा तु सर्वे मैश्रुतपुत्राणां ॥ ४५ ॥
 युद्धाय निर्ययुः क्रुदा जम्भघृचादया यया ।

एव निश्चय करके उन सभी महाकवी यज्ञकवियाने
 मुद्रके लिये अपने उद्योगकी प्रवृत्ति कर ही और समूची
 संज्ञा साथ उ सम्म एवं रूप आदिभी मोंति कुचित हा वे मुद्रके
 लिये निकृष्ट ॥ ४५ ॥

इति च राम सम्मस्य सर्वोपागेन राक्षसाः ॥ ४६ ॥
 युद्धाय निययुः सर्वे महान्रया महायज्ञाः ।
 भीरण । पूर्वोक्त मन्त्रणा करके उन सभी महाकवी
 विष्णुसम्प राक्षसने पूरी तयारी की और मुद्रक लिये क्रुद
 कर दिया ॥ ४६ ॥

स्यस्तनारारण्यक्षय हयैश्च परिसनिभैः ॥ ४७ ॥
 क्षरणांनिग्याष्टुभ दिगुमारुमुग्रमैः ।
 मकरा फण्डपर्मनिर्विहागवडपमः ॥ ४८ ॥
 सिहद्वयप्रियराहश्च रूमरुद्यमररपि ।
 त्यन्त्या लघुं गता सर्वे यत्नसा बलगतिताः ॥ ४९ ॥
 प्रयाण्य द्रलाक्षय यादु वृषतशत्रयः ।

जाने परम परम रानेयव य ममल देव-
 दही उअरथ लक्ष्मी लक्ष्मी बनें उइ गरु वंश, ऊँ
 दिगुमार म मगर कुभ्र मलय गरुडस्य पक्षी
 छिद्र या भ्रम मृग और नीचमय आदि शान्तोर नगर
 हा गडा उइकर मुद्रक लिये देवदही भार कर लिये ॥
 मद्रुविषयप द्वा यानि मद्रुनवाय्य ॥ ० ॥
 भूत्यान भयद्वीति विमनस्त्रानि सत्रशः ।
 नृाने रहनाम य प्राणी भयय प्रमत्तक्य आदि
 य न म प्रमत्तान् भद्रिद्वि ज्ञाय लनाम भयं लिखक
 द (५) भय भुना हा दुए मन व मन लिख हा उड ॥

रयोत्तमैकद्वामानाः शतशोऽप्य सहस्रशः ॥ ५१ ॥
 मयाता राक्षसास्तूर्णं देवलोका प्रयत्नता ।
 रक्षसामेव मार्गाच्च देवलोकाप्यवक्रमुः ॥ ५२ ॥

उत्तम रयोर बेटे हुए लैकों और हकरी राक्षस
 ही प्रयत्नपूर्वक देवलोकी भी मार करने लगे । उस नरने
 देवता राक्षसके गति ही पुरी उइकर निकल गये ॥ ५१-५२ ॥
 भीमाशैवान्तरिक्षाच्च कालाकृता भयावहा ।

उत्पत्ता राक्षसेन्द्राणामभावाय समुत्पिता ॥ ५३ ॥
 उठ सम कालकी प्रेरणासे पृथ्वी और आकाशमें मनेके
 भयंकर उग्ररथ प्रकट होने लगे, जो राक्षसके विनाशकी
 सूचना दे रहे थे ॥ ५३ ॥

मस्थीनि मघा वधुपुरुषस्य शोषितमेव च ।
 धनां समुद्राद्यात्काष्ठप्रभेजुभ्याम्यथ भूधराः ॥ ५४ ॥
 बारह गरम-गरम रक और हनुमोंकी बर्षा करने लगे,
 उग्र अपनी खेमाका उखलान करके आगे बढ़ गये और
 पत रिकने लगे ॥ ५४ ॥

महृहासान् विमुञ्चन्ता पन्नपन्नसमलम्बाः ।
 वायस्यस्यश्च शिवास्तत्र दारुण भोरवृशताः ॥ ५५ ॥
 मेषक समान गम्भीर बनि करनेवाले प्राणी विभ्र
 अशुभ करने लगे और मयकर दिसाही देनेवाली गीदिकी
 फोर अशानम पीतकर करने लगीं ॥ ५५ ॥

सम्पतस्यय भूयानि ह्ययस्त च यथाक्रमम् ।
 गृध्रश्चक्रं महाबाज प्रजालोऽरिभिर्मुक्तैः ॥ ५६ ॥
 रक्षोणण्यापरिघात् परिभ्रमति कालवत् ।
 पृथ्वी आदि नूत क्रमण गिरत—निधीन होते-से दिसाही
 देने लगे गीषाम शिवा उग्र मुलसे भगकी पक्ष
 उगलत हुआ राक्षसक ऊपर कलक समान मड़यने लगे ॥
 कपाता रकपादाश्च सारिफ्य विद्रुता ययुः ॥ ५७ ॥
 कल्प पादयन्ति तत्रथ विहाका र्ष क्षिपत्पया ।

कूतर उठे और मने उडा उइकर मग कर । और
 वहां पर्व म्र करने लगे । विस्कर्षा भी वहां गुरने लगीं
 तथा हाथी आदि पशु भर्त्सना करने लगे ॥ ५७ ॥
 उत्पात्तास्तान्मन्त्रस्य राक्षसा बलद्विपिताः ॥ ५८ ॥
 पात्स्यथ न निवृत्तस्त सुस्युपाशयपादिशः ।

राक्षस यत्न परमने मतारा हा रहे थे । वे कलके
 पाशमें पश बुद्ध थे । इदलिय उन उग्रताकी मारहना करके
 मुद्रक लिये चले ही गये लगे नहीं ॥ ५८ ॥
 मात्स्ययाश्च सुमात्री च मात्री च सुमहायका ॥ ५९ ॥
 पुपसय राक्षसानां ज्यक्तिव इय पायका ।

मात्स्यगन् मुष्मती और महापती मात्री-य तीनो प्र रक्ति
 भयिक समान वस्ती परीरते लमल राक्षसके भय भये
 पत्र ५ ॥ ५९ ॥
 मात्स्यवत्त तु त सर्वे मात्स्यवत्तमिवावत्तम् ॥ ६० ॥

महानगिरिश्चो चारो अरुते मेरुश्च मेघ उषपर मच्छरी पाप
बख ररे हो ॥ २ ॥

शम्भा इय केदार मशका इय पावकम् ।

यथासूतघट वशा मकरा इय जाल्वनम् ॥ ३ ॥

तथा रक्षोभनुमुखा वज्रात्मिकमनोजया ।

हरि विशालि स शाय खेका इय विपर्यये ॥ ४ ॥

बैते टिड्डीवक पान आदिके सेतोमें, पहिगे आगमें,

इक मारनेबाळी मसिखनीं मधुसे भरे हुए पडेमें और ममर

छुद्रमें पुंघ बते हैं उली प्रकर राखेंके वनुपसे घूटे हुए

बन्न यमु तथा मनके समान वेगवाळें बाल म्हाघान् विष्णुक

धरीमें प्रवेश करके इस प्रकार खीन हो बते ये, जैसे प्रक्य-

काळमें समस्त खेक उर्ध्वमें प्रवेश कर बते हैं ॥ १४ ॥

सन्वनेः सम्पन्नगया गजैश्च गजमूर्धगाः ।

मन्वारोहास्तपाशैश्च पादात्प्रान्धान्मेरुस्थिताः ॥ ५ ॥

रथपर बैठे हुए खेडा रथोच्छ्रित, हृषीकेशर हाथियोंके

घाय, पुत्रकेशर कंधोच्छ्रित तथा वैरक पौत्र-क्यादे ही अकशायमें

खड़े ये ॥ ५ ॥

रक्षसन्ध्या गिरिनिभाः शरैः शकस्यधिष्ठोमरैः ।

निवच्छकास हरिं सन्धुः प्राणायामा इय द्विजम् ॥ ६ ॥

उन एकछपायोंके शरीर परलके समान विशाख ये ।

उन्होंने एक खेरेसे धाकि श्रुति, टोमर और बाणोंकी कर्ण

करके मन्वान् विष्णुका खोंधे भेना बंध कर दिया । ठीक उखी

उरू जैसे प्राणायाम द्विकके आच्छेपे रोक देत हैं ॥ ६ ॥

निशाचरैश्चक्रव्यमनो मीमैरिष महावधिः ।

शार्ङ्गमयस्य तुर्धर्गा राक्षसभ्याऽसृजच्छरान् ॥ ७ ॥

जैसे मच्छरी महाखगरपर प्रहार करे, उखी तख ये

निशाचर अपने अस्त्र-शार्ङ्गोद्यार भीरिपर चोट करते ये ।

उठ सम्य दुख्य देखन म्हाघान् विष्णुने अपने शार्ङ्ग-वनुपको

बाणकर राखेंपर बाण बरखना आरम्भ किया ॥ ७ ॥

शरैः पूर्णापतोस्तूर्धर्वाङ्कलैर्मैत्रेजयैः ।

धिच्छेत् विष्णुर्मिदितैः शतशोऽप्य सहस्राणाम् ॥ ८ ॥

ये बाण वनुपभ्य पूर्वस्मते बाणकर छोड़े गये थे। अतः

बन्नके समान अस्त्र और मन्क समान वेगवान् थे । उन

पैने शार्ङ्गोद्यार म्हाघान् विष्णुने ठेकड़ों और हथों निशाचरों-

के टुकड़े-टुकड़े कर बाळ ॥ ८ ॥

विद्राव्य शरकरेण परै बायुरिवोत्थिष्ठम् ।

पाञ्चजन्यं महाशार्ङ्गं प्रध्वंभी पुरुषोत्तमः ॥ ९ ॥

जैसे हना उमड़ी हुई बरकी एवं बर्णोंके उदा देखी है,

उखी प्रकर अपनी शकवपति राखेंके म्हाघान् पुरुषोत्तम

भीरिने अपने पाञ्चजन्य नामक महान् शार्ङ्गको बखया ॥९॥

सोऽभ्युज्जो हरिणा प्माता सर्वप्रायेण शङ्खपाद् ।

ररास भीमनिद्राद्वलीकामय ध्यययधिव ॥ १० ॥

उन्में प्राणघातित भीरिक द्यार बखया क्या वह ज-

नित शङ्खपात्र मयकर अवाक्ये तीनों खेकोके

करता हुआ-सा गूँबने क्या ॥ १ ॥

शङ्खपात्ररवः सोऽप्य त्रासयामास राक्षसम् ।

मृगपात्र इवारण्ये समवातिव कुञ्जपात्र ॥ ११ ॥

जैसे वनमें दहाववा हुआ खि म्हाघके धाकिने

मन्गीव कर देता है उखी प्रकार उठ शङ्खपात्रकी ध्वनि

समस्त राखेंको मन और भवपरदमें बाळ दिया ॥ ११ ॥

न शैकुटम्भाः सखातु विमवाः कुञ्जपाऽभकम् ।

सम्पन्नेभ्यश्च्युता वीराः शाङ्गराफिततुर्बजाः ॥ १२ ॥

वह शङ्ख ध्वनि सुनकर धाकि और खरखे तीन हुए

पाड़े सुद्रभूमिमें खड़े न ख उके हाथियोंके मर उठर लो

और वीर वैनिक रथोंसे नीचे गिर पड़े ॥ १२ ॥

शाङ्गबापविनिर्मुक्ता वज्रतुल्यानगा शया ।

विदाय तानि रक्षांसि सुपुङ्गा विविशुः सितिमः ॥ १३ ॥

सुन्दर पक्षबाळ उन बाणोंके मुलमाय पन्नके लख

कठार ये । वे शार्ङ्ग वनुपसे घूटकर राखेंको निदीर्घ कले

हुए प्रथीमें पुंघ बते ये ॥ १३ ॥

भिद्यमानाः शरैः सख्ये नारायणकरधुतैः ।

लिपेत् राक्षसा भूमौ वीन्य बखइता इव ॥ १४ ॥

खामभूमिमें म्हाघान् विष्णुके हाथसे घूटे हुए उन

बाणोद्यार किन्न-मिन्न हुए निशाचर बन्नके मारे हुए परलमें

मौति बगछायी होने लगे ॥ १४ ॥

मयानि परगात्रेभ्यो विष्णुचक्रकृत्प्रमि वि ।

असृक् शरमिध धावभिः कर्णोद्यार इक्ष्वाक्याः ॥ १५ ॥

भीरिकके चक्रके अघातसे धनुओंके शरिमें खे लगे

हो गये थे उनसे उखी तख राक्षसी बाप कर रही थी मने

परलमें गेकमिधित बखन्न शयना गिर खा हो ॥ १५ ॥

शङ्खपात्ररवभ्यापि शार्ङ्गबापत्पवस्तया ।

राक्षसालां रथांश्चापि प्रसते वैष्णवो रवाः ॥ १६ ॥

शङ्खपात्रकी ध्वनि शार्ङ्ग वनुपकी टंकर तथा म्हाघ

विष्णुकी गर्कना—इन सबक हुपुंघ नादने राखेंके खेक-

को रवा दिया ॥ १६ ॥

तेषा शिरोधरान् भूवाच्छरध्वजधर्तृषि च ।

रथान् पत्याकास्तूर्णीपधिच्छेत् स हरिः शरैः ॥ १७ ॥

म्हाघान्ने राखेंके कौपले हुए म्हाघको बाणों बखभों

वनुपों रथों पत्याकाओं और उरकतोंको मन्क बाणोंसे कर

बाळ ॥ १७ ॥

सर्पाधिष कर्य घोरा धार्योध्य इव सागापत् ।

पर्यताविष नागोभ्रा भारीष्य इव धाम्बुवान् ॥ १८ ॥

तथा शार्ङ्गविनिर्मुक्ता शारा मयस्यपेरिताः ।

निर्धाक्यतीपवस्तूर्णं शस्तशोऽप्य सहस्राणाम् ॥ १९ ॥

जैसे सूरसे मयकर किरवें छुद्रसे बकके प्रकट परलमें

बह-बहे एवं और मयसे म्हाघकी धारमें प्रकट छेटी हैं उखी

प्रभर भगवान् नारायणके वचने भौर शङ्खचतुरसे छूटे हुए
 धेनुओं और हयगर्भ नाम उत्कल इभर-उपर दौड़ने
 लगे ॥ १८-१९ ॥

शरमेण यथा सिंहाः सिंहेन छिरदा यथा ।
 छिरवन् यथा व्याघ्रा व्याघ्रेण द्वीपिनो यथा ॥ २० ॥
 द्वीपिमथ यथा श्वानः शुन्या माजारको यथा ।
 माजारेषु यथा सपाः सर्पेण च यथास्ययः ॥ २१ ॥
 तथा त राक्षसाः सर्वे विष्णुस्य प्रमथिष्णुना ।
 प्रकृते प्रायिताभ्यान्वे शापिताभ्य महीतले ॥ २२ ॥
 जे धरमसे सिंह सिंहेसे हथी, हाथीय बाघ बाघसे
 चोरे चोरेसे कुत्ते कुत्तेसे क्विन्न क्विन्नसे कौप और कौपसे
 चूरे इभर भगते हैं उठी प्रभर वे सन राक्षस प्रभानरात्री
 मगान् विष्णुकी मार लाकर मगने लगे । उनके मगय हुए
 बहुतसे राक्षस बराग्रापी हो गये ॥ २०-२२ ॥

पक्षसायं सहस्राणि निहत्य मधुसूदनः ।
 धारिज पूरयामास तोयम् सुरराजिष ॥ २३ ॥

छहस्रो राक्षसोंका वध करके भगवान् मधुसूदनने अपने
 पाद पादमन्यत्र उठी तब गम्भीर बनिते पूर्ण किया जैसे
 देवराज इन्द्र नेपक्षे लम्बे भर दते हैं ॥ २३ ॥
 नारायणशराजस्त शङ्खनादसुविह्वलम् ।

पयी लङ्गामभिमुख प्रभस राक्षस बलम् ॥ २४ ॥
 भगवान् नारायणके बाणसे मगनीत और शङ्खनादसे
 लङ्का हुए राक्षस-सेना शङ्खकी और माग लकी ॥ २४ ॥

प्रभस राक्षसबले नारायणशराहत ।
 सुमाथी शरवर्षेण निघघार रणे हरिम् ॥ २५ ॥

नरायणके धक्केसे माहत हुई राक्षससेना सब भगने
 लगी तब सुमाथीने रणभूमिमें बाणोंकी बर्षा करके उन
 धीरिषे भग्ये बवनेसे रोष ॥ २५ ॥

स तु तं हतयामास नीहात् इव भास्करम् ।
 राक्षसाः सत्ससम्पन्नाः पुनर्धैर्यं समाधुः ॥ २६ ॥

जैसे कुहर सूर्यदेवको ठक लया है उठी तब सुमाथीने
 बाणसे मगान् विष्णुको सम्पन्नकित कर दिया । वह दल
 शक्तिशाली राक्षसोंने पुनः धैर्यं भारत किया ॥ २६ ॥

मय सोऽभ्यपतत् योग्यं राक्षसो बलवर्षितः ।
 महानात् प्रकुर्याणो राक्षसाञ्जीपयच्छिब ॥ २७ ॥

उठ बलभिमानी निघाबने बड़े जेठसे गर्कता करके
 राक्षसोंमें नून कर्कश संचार करते हुए-से राक्षसोंके आक्रमण
 किया ॥ २७ ॥

कर्मस्य लम्बाभरणं पुष्यन् करमिष द्विषा ।
 ररास राक्षसा हरात् सतश्चिचोयदो यथा ॥ २८ ॥

जैसे हाथी मूँहको उठाकर दिखता हो उठी तब बरकते
 हुए मन्थल्यसे कुछ हाथको छन उठाकर दिखल हुआ

वह राक्षस विपुलहित शकल लम्बरके समान बड़े हरित गर्कता
 करने लग्य ॥ २८ ॥

सुमालेभदतस्तस्य शिरो ज्यष्ठितकुण्डलम् ।
 चिन्हेयं यन्तुरभ्याभ्य भ्रान्तास्तन्य तु रक्षसाः ॥ २९ ॥

तब भगवान्ने अपने बाणोंद्वारा गन्ते हुए सुमाथीके
 शरपिक्रम कामगते हुए कुण्डलसे मथित मन्त्रक कर
 शक्य । इससे उस राक्षसके बाँहे बेभंगाम छेकर शरीर भौर
 चकर चटने लगे ॥ २९ ॥

तेरद्वैभ्राम्यते भ्राम्यैः सुमाली राक्षसम्बरः ।
 इन्द्रियाश्चैः परिभ्रान्तैर्भूतिहीनो यथा नरः ॥ ३० ॥

उन बाणोंके चकर चटनेसे उनके शय ही राक्षसयन
 सुमाथी मी चकर चटने लग्य । ठीक उठी उधर जैसे
 भक्तिनेत्रिय मनुष्य विषमोंमें मरकनेवाधी इन्द्रियोंके शय-शय
 स्वयं मी मरक्या फिट्या है ॥ ३० ॥

ततो विष्णु महाबाहुं प्रपतन्त रणाञ्जित ।
 हत सुमालेरद्वैभ्य रणे विष्णुरथ प्रति ॥ ३१ ॥

माली कायप्रवृषत् युक्त प्रपुच्छ सशर भनुः ।
 जल बाँहे रणभूमिमें सुमाथीके रथको इभर-उपर छेकर
 मगने लगे तब माथी नामक राक्षसने युद्धके बिच उधत हो
 चनुप छेकर गरकधी भौर भाषा किया । राक्षसोंन दूटते हुए
 महाबाहु विष्णुन आक्रमण किया ॥ ३१-३२ ॥

मालेर्धनुस्ययुता वायाः कर्तृस्वरविभूयिता ॥ ३२ ॥
 विविशुर्हरिमासाद्य क्रौञ्च पन्नरथा इव ।

माथीके चतुरसे छूटे हुए सुवर्णभूषित बाण भगवान्
 विष्णुके शरीरमें उठी तब पुन्ने लगे जैसे पथी क्रौञ्चकैतक
 छिन्नमें प्रवेश करते हैं ॥ ३२-३३ ॥

कर्तमानः शरैः सोऽथ माखिसुकैः सहस्रशः ॥ ३३ ॥
 पुभुने न रणे विष्णुजितेन्द्रिय इवाधिभिः ।

जैसे कितेन्द्रिय पुरुष मानसिक व्यपामोंसे विचस्मित
 नहीं होता, उठी प्रभर रणभूमिमें भगवान् विष्णु माथीके छोड़े
 हुए छहस्रो बाणसे पीड़ित होनेपर मी सुभ्य नहीं
 हुए ॥ ३३-३४ ॥

मथ मौर्षिकान् भुत्या भगवान् भूतभायना ॥ ३४ ॥
 माखिन प्रति वाप्यौघान् ससज्जासिगन्धर्त्त ।

तबनन्तर लङ्का भौर महा शरण करनेवाला भूतभयन
 भगवान् विष्णुने अपने चतुरकी उद्धार करके माथीके ऊपर
 बाण-छत्रोंकी बना मारम्भ कर दी ॥ ३४-३५ ॥

त माखिब्रह्मासाद्य घञ्जविभुत्पभाः शयः ॥ ३५ ॥
 पिपन्ति कथित तस्य नागा इव सुभारसम् ।

बन उभर विषकीक समान प्रकथित होनेवाले वे बाण
 माथीके शरीरमें पुलकर उतक्य रक्य पीने लगे, मन्नेसर्ग अमृत-
 रक्य पन कर रहे हैं ॥ ३५-३६ ॥

माखिन विमुक्त हृत्य शङ्खकामाधर्त्त ॥ ३६ ॥

मात्स्मिन्निवृत्तं वाप वाशिनभाष्यपातयत् ।

मन्तने मास्मिन्ने पीठ दिशानेके स्निग्ध विषय करके पञ्च पत्र और गण पारण करनेवाले मगवान् भीरवने उध राक्षसे मुकुटः नव और बनुरको काटकर बाँहोंको भी मार गिराया ॥ १६३ ॥

विरचस्तु गद्यां शूद्र मास्मी नक्षत्रोत्तमः ॥ १७ ॥
भाष्यस्तुय गदापाणिर्गिर्यभ्राविष केसरी ।

रघुनेर ही जनेर राक्षसघ्नर मास्मी गदा हाथने छत्र कूट पदा माने कोई खिज फर्तके शिलरते छमोग मारकर नीचे आ गया हो ॥ १७ ॥

गद्या गच्छेऽशान्तीशान्तिमिव चास्तका ॥ ३८ ॥
लक्ष्मणद्वन्द्वोऽम्पहतम् कश्चोणेन्द्रो यथाघतम् ।

जैने यमराजने मगवान् शिवपर गदाकर और इन्द्रने पर्वत पर वैत्रका प्रहार किया हो उठी तब मास्मीने पक्षिबन्ध गदाके छत्रमें अपनी गदाहाय गहरी चोट पहुँचायी ॥ ३८ ॥

गद्याभिहतस्तेम मास्मिना गच्छो भूशाम् ॥ ३९ ॥
रण्यात् पराङ्मुख दय हतवान् वेदानुत् ।

मास्मीकी गदामे अस्फुट भावत हुए गदाक बेरनबते म्हाकुल हो उठे । उन्होंने लय युद्धते विमुक्त होकर मगवान विष्णुको भी विमुक्त-गा कर दिया ॥ ३९ ॥

पराङ्मुखो हते दय मास्मिन् गदोने वै ॥ ४० ॥
उद्विष्टमहाभद्राणां रक्षसात्मभिरुत्साम् ।

मास्मीने गदाके छाप ही कर मगवान् विष्णुको भी युद्धते विमुक्त-गा कर दिया तब यहाँ ओर-ओरते गर्भत हुए राक्षसेक मदान् यन्त्र [न उठा ॥ ४ ॥

रक्षसा रुपता यय भ्रुवा हरिहयानुजः ॥ ४१ ॥
तियगाम्प्यय सन्ध्या पक्षीषो भगवान् हरिः ।

पराङ्मुगाऽप्युत्ससर्जं मलेभ्यर्धं जिभासया ॥ ४२ ॥
गर्भत हुए उद्योगेन वह खिन्नार मुनकर इन्द्रके जट्टे भाई भगवान् विष्णु अस्फुट कुपित हो पक्षिबन्धकी पीठपर गिरा हाँस बैठ गया । (इसमें वह राक्षस उन्हें पीलेने छात्र) तब मन्त्री गदाकुर हानर भी भीरवने मास्मीक पक्षकी इच्छान् पञ्जी और मुदकर अन्ना मुशर्यनचक्र प्रथा ॥ ४१ ॥

गदं स्रयमण्ड प्रभास स्वभासा भासयन् नभः ।
वदन्तमर्धनिभं शक्रं मातः गिरमपातयत् ॥ ४३ ॥

गद-इच्छत गमान् उदीप्त हनेगल फलचक्र-वदन्त उध चक्रने अन्ने प्रभान आगायम् अज्ञातित तलं हुए यहाँ मास्मीक मन्त्र-इच्छत काट गिराया ॥ ४३ ॥

गच्छिग ग गच्छम्य घनागच्छ विभीषणम् ।
पगत यथितार्हाणि पुन गदुर्गिण यथा ॥ ४४ ॥

पक्षी चय दुग्ध कच्छपर कक्षीय यह मरहर म ।

पूर्वकामने कटे हुए राहुके शिरकी भोंति एककी कय कच्छ दुग्ध कक्षीपर गिर पका ॥ ४४ ॥

उवा सुरैः सम्महृष्टैः सर्वभ्राण्यसमीरितः ।
सिंहश्वरयो मुक्ता चाधु वेधतिवादिभिः ॥ ४५ ॥

इससे वेधताओंको बड़ी प्रफुल्लता हुई । वे पशु मगवान् कय ! ऐसा करते हुए यारी दाकि छापर ओर-ओरते खिन्नार करने लगे ॥ ४५ ॥

मालिनं निहत हृष्टा सुमाळी मन्व्यबालपि ।
सयन्ती शोकसतती क्लामेय प्रभाषितौ ॥ ४६ ॥

मास्मीको भाव गया वेध सुमास्मी और मन्व्यबाल् दोनों राक्षस शोकसे ब्याकुल हो सेनाखिल जगुकी ओर ही भागे ॥ ४६ ॥

गच्छस्तु सनाभ्यस्ताः सनिवृत्त्य यथा पुरा ।
राक्षसान् प्राक्यामास पक्षघातेन क्वसितः ॥ ४७ ॥

इच्छेतीने गच्छकी पीड़ा कम हो गयी, वे पुनः क्लेश-कर छोड़े और कुपित हो पूर्ववत् अपने पक्षीकी हवासे राक्षसीको सवेदने लगे ॥ ४७ ॥

शक्रकृपास्यकमसा गदासन्निवृत्तोरसा ।
व्यङ्गसम्भविश्रीषा मुसक्रेर्मिषामस्तकाः ॥ ४८ ॥

किन्तु ही राक्षसीके मुसकमक चक्रके प्रहारते कम गने । गदामेंके भाषातेने बनुतीके इच्छासक बुर-बुर हो गये । इच्छे घबसे किन्तोंकी गर्दन उतर गयी । मुसकोंकी मारते बनुतीके मच्छकोंकी प्रविष्यो उड़ गयी ॥ ४८ ॥

केचिन्वैयासिना छिप्रास्तघाम्ये शरत्प्रक्षिताः ।
नियेतुरम्बरात् पूर्वं रक्षसाः सागराम्भसि ॥ ४९ ॥

तबबारक हाथ पक्षनेसे किन्तु ही राक्षस दुच्छे-उच्छे हो गये । बनुतीके बर्षोंसे पीकित हो गुरत ही भाषाघसे छुनके चक्रने गिर पड़े ॥ ४९ ॥

नारपयोऽपीपुयराशनीभि
र्यिदारप्यमास धनुर्विमुक्तैः ।

नक्षत्रान् धृतपिमुक्तकेशान्
यथारानीभिः सतद्विन्महाहाः ॥ ५० ॥

मगवान् विष्णु भी भापने बनुरते घूटे हुए भेद करने और अघनिर्वाहाय राक्षसेक विरोध करने लगे । उन छत्र उन शिषाचर्येक लुप्त हुए केव इयास उड़ रहे थे और पीयापरपारी श्यामसुन्दर भीरवि विष्णुमन्त्रमन्त्रित मदान् मेपक इमान् मुष्मिन्त हाँस वे ॥ ५ ॥

भिन्वस्तपत्र पतमानाम्ब्र
नररप्यस्तपिनीतधयम् ।

यिनिभ्रुवत्यथ भयपरायन्त्र
यत्त ननुमसत्तर पभूय ॥ ५१ ॥

राजोंकी यह क्षीर मन्त्र अस्फुट उन्म 1-की प्रतीति हो रहे थी । यद्यपे उध क उध कट गये थे अत्र राक्षस गिर तब भी

प्रेम वेप बुर हा गया था; अंतें बाहर निकल आयी थी और उनके नेत्र मन्त्रे लज्जल हो रहे थे ॥ ५१ ॥

सिद्धार्धितानामिव कुञ्जराणाम् ।
निशाचराणाम सह कुञ्जराणाम् ।

रथाश्च वेगाश्च सम बभूवुः ।
पुराजसिंहेन विमर्दितानाम् ॥ ५२ ॥
जैसे सिंहोंद्वारा पीड़ित हुए हाथियोंके बीरकर और वेग एक साथ ही प्रकट होते हैं; उन्हीं प्रकार उन पुराणप्रसिद्ध उच्छिस्पर्धारी भीरुविके द्वारा रौंदे गये उन निशाचरवर्गीय यक्षोंके हाहाकार और वेग साथ-साथ प्रकट हो रहे थे ॥

तं चार्यमाणा हरिबाणजातैः ।
खवाणजातानि समुत्सृजन्तः ।
ध्रुवन्ति नक्तचरकालमेघा
वायुप्रपुन्था इव कालमेघाः ॥ ५३ ॥
मगवान् विष्णुके बाणतन्त्रोंसे भाइत हो अपने साथकों-
के परित्याग करके वे निशाचरवर्गीय करते मेघ उन्हीं प्रकार
मने बह रहे थे; जैसे हवाके उड़ाने हुए बर्षाकालीन मेघ
अधरायमें मगते वने जाते हैं ॥ ५३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बाष्पदीप्ये भाविकान्धे उत्तरकाण्डे सप्तमा सर्गः ॥ ७ ॥

सप्त प्रकर श्रीमद्रामायणे अर्षाण्यन्ये अर्षिकान्यके उत्तरकाण्डे सप्तमो सर्ग पूरा हुआ ॥ ७ ॥

अष्टम सर्ग

मत्स्यवान्का युद्ध और पराजय तथा सुमाली आदि सब राक्षसोंका रसातलमें प्रवेश

मगान बल तस्मिन् पद्मनाभेन पृथुतः ।
तपश्च सनिवृत्तोऽथ वंशामृत्यु इत्यार्षाः ॥ १ ॥
(अमृत्युकी करते हैं—सुनयत !) पद्मनाभ भगवान्
मुने सब ममाली हुई राक्षसोंकी सनाको पीठेकी ओरसे
जि भारगम किया तब मात्स्यचन्द्र श्वेत पड़ा; मानो महा-
र भगनी तन्त्रभूतिवक आकर निरूत हो गया हो ॥ १ ॥
रक्तमयता क्रोधाच्छाल्मसीळिर्निशाचरः ।
प्रक्षाममिव प्राह धधन पुदयोत्तमम् ॥ २ ॥
उसके नेत्र झेपते लज्ज हो रहे थे और मुहुट झिंक रहा
। उस निशाचरन पुदयोत्तम भगवान् पद्मनाभसे इत प्रकार
ह— ॥ २ ॥
तपय न जानीय क्षात्रधर्मं पुरातनम् ।
सुखमनसो भीतानस्मान् हसि यथेतर ॥ ३ ॥
धृष्टकथवत् । जन पड़ा है पुरातन क्षात्रधर्मको निकुञ्ज
से जानते ही तभी तो धनाशन मनुष्यकी मूर्खता तुम किन्कर
न युद्धसे किरन हो गया है तथा जो डरकर भागे आ रहे हैं,
उसे इन राक्षसोंकी भी मार रहे हो ॥ ३ ॥
राक्षसुल्लाप पाप यः करति सुरेश्वर ।
स हन्तव्य न गता स्वर्गं क्वपत पुण्यकर्मणाम् ॥ ४ ॥
शुरेश्वर । जो युद्धसे निवृत्त हुए क्षत्रियोंके बचप्य पाप

सकप्रहारैर्विनिकृत्तशीर्षाः ।
सचूर्णितान्नाश्व गदाप्रहारैः ।
मसिप्रहारैर्द्विषिषाभिभ्रमाः ।
पतन्ति शैल्य इव राक्षसेन्द्राः ॥ ५४ ॥
जन्मके प्रहारोंसे राक्षसोंके मस्तक का गये थे गदाओंकी
मारसे उनके शरीर चूर-चूर हो रहे थे तथा तन्त्राचरोंके आपात-
से उनके दो-दो टुकड़े हो गये थे । इत तरह वे राक्षसरज
पर्वतोंके छपन बराबारी हो रहे थे ॥ ५४ ॥
विशम्भमानैर्मपिहारकुण्डलैः ।
निशाचरैर्मल्लबाहकोपमैः ।
निपात्यमानैर्बृहदा निरन्तर
निपात्यमानैरिव शीलपर्वतैः ॥ ५५ ॥
काँटे हुए मणिमय शरों और कुण्डलोंके छाप मारये
जाते हुए नील मेघ-सदृश उन निशाचरोंकी छांटोंसे वह रज-
भूमि पट गयी थी । वहाँ बराबारी हुए वे राक्षस नील-
पर्वतोंके समान बन पड़ते थे । उनसे बर्षाक मृगान इत
तरह आच्छादित हो गया था कि कहीं तिष्ठ रहनेकी भी क्वाह
नहीं दिखानी दंती थी ॥ ५५ ॥

कता है वह पलक इत शरीरका त्याग करके परलोकमें जाने
पर पुण्यकमा पुदयोत्तम मिथनेनाल स्वर्गमें नहीं पाता है ॥ ४ ॥
युद्धअदायथा तऽस्ति शङ्खकगदाधर ।
अह स्थितोऽस्मि पदपामि बल दृश्य यत् त्व ॥ ५ ॥
शङ्ख, बाण और गदा पारण करनेवाला देवता । यदि
दुम्हारे हृदयमें युद्धक होकर है तो मैं लड़ा हूँ । देलता हूँ
तुममें किन्ना बल है ? दिलाओ अपना पराक्रम ॥ ५ ॥
मत्स्ययन्त स्थित इष्य मात्स्ययन्तमिवाचसम् ।
जवाच राक्षसेन्द्र त देवतज्जुजो बली ॥ ६ ॥
मात्स्यचन्द्र पलकके समान भविचक्रमयसे लड़े हुए राक्ष-
रज मत्स्ययन्तोंके देलकर देवतज इन्द्रक छांट मर्द महापसी
भगवान् विष्णुने उल्ले कहा— ॥ ६ ॥
सुव्यसो भयभीताना देवताना वै मयाभयम् ।
राक्षसोऽस्ताद्न दत्त सन्तवृत्तुपात्स्यत ॥ ७ ॥
देवतओंका तुमझेंगोंसे बढ़ा भय उपस्थित हुआ है,
मैंने राक्षसोंके छातरकी प्रतिगा करके उन्हे अभय राज दिया
है; अतः इस समयमें मेरे द्वारा उस प्रतिज्ञाका ही पालन किया
आ रहा है ॥ ७ ॥
प्रायैरपि मिय कर्ये ध्वान्ता हि सदा मया ।
सोऽह दो निहनिष्यामि रसातलगतानपि ॥ ८ ॥

मन्वायो राक्षसान् हन्त्या सुवारीन् देवकपृथक्च ॥
 श्रुतं नारायणं दध शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ २५ ॥
 देवताओंके लिये कपृथक्च उन देवताओंके राक्षसोंका बध
 पङ्कः करूँ गदाधारी भगवान् नारायणदेवके सिवा दूसरा
 कोई नहीं कर सकता ॥ २५ ॥
 भवान् नारायणो देवस्यनुयायुः समातनः ।
 राक्षसान् हन्तुमुत्पन्नो ह्यस्य्याः प्रमुरष्यया ॥ २६ ॥
 भय चर सुबाधारी स्नातन देव भगवान् नारायण
 ही है । भायको कोई परत नहीं कर सकता । भय अग्निवासी
 मयू है और राक्षसोंका बध करनेके लिये इस लोकमें मन्वासीय
 हुए हैं ॥ २६ ॥
 गणधमव्ययस्थानां काष्ठे काष्ठे प्रजाकरः ।
 उत्पद्यते दस्तुधनं शरणागतवसुधम् ॥ २७ ॥
 भाग ही इन प्रजाओंके साथ हैं और शरणागतोंपर दया
 रखते हैं । धन-धन धर्मही व्यवस्थाको नष्ट करनेवाले दस्तु
 पैदा हो जाते हैं, तब-तब उन दस्तुओंका बध करनेके लिये
 भय उम्म-उमनपर मन्वातर भेजे रहते हैं ॥ २७ ॥
 इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बाष्पाकीये अष्टादशोऽध्यायः सर्गः ॥ ८ ॥
 एत प्रश्नर श्रीमद्वाल्मीकिरचिते श्रीरामायण अष्टादशोऽध्याय उत्तरकाण्डे अष्टौ सर्ग पूरा हुए ॥ ८ ॥

एषा मया तव नराधिप राक्षसानां
 मुत्पत्तिरद्य कथिता सकल्य पथाद्यत् ॥
 भूयो निबोध रघुसत्तम रायणस्य
 जगमप्रभायमनुक ससुतस्य सर्वम् ॥ २८ ॥
 नरेन्द्र । इस प्रकार मैंने आपको राक्षसोंकी उत्पत्ति
 यह पूरा प्रसंग ठीक-ठीक सुना दिया । खुशबखशियेमेने । अब
 आप रायण तथा उसके पुत्रोंके जन्म और अनुपम प्रभावका
 अर्थ बर्नन सुनिये ॥ २८ ॥
 चिरात् सुमाती व्यसवत् रसातल
 स राक्षसो विष्णुभयार्दितस्तदा ।
 पुत्रैश्च पौत्रैश्च समन्वितो वशी
 ततस्तु ब्रह्मामयसत् धनेश्वर ॥ २९ ॥
 भगवान् विष्णुके भयसे पीड़ित होकर राक्षस सुमाती
 सुशीर्ष ब्रह्मरुच भगने पुत्र-पौत्रोंके साथ रसातलमें निचरया
 रहा । इसी वीचमें वनाध्यक्ष कुवेरने ब्रह्मका अपना निवास-
 स्थान बनाया ॥ २९ ॥

नवमः सर्गः

रावण आदिका जन्म और उनका तपके लिये गोकुण आभयमें जाना

कथयित् स्वथ कलकस्य सुमाती नाम राक्षसः ।
 रसातलप्रमत्पलोकं सर्वं वै विचकार ह ॥ १ ॥
 गोकुलीमृतसकपादास्तस्यकाश्चानकुप्यकाः ।
 कथा सुहितर युद्ध विद्या पद्यमिष भ्रियम् ॥ २ ॥
 कुत कालके पश्चात् नील मेरुके समान स्वाम वर्णवाक्य
 राक्षस सुमाती जग्ये हुए खेनेके कुचबलोंसे अशक्त हो अपनी
 सुवरी कन्याका जो विना कमकभी कभीके समान धन पकड़ी
 थी, खय हो रहातकसे निकम्ब और धरे मर्त्यलोकमें
 विचरने लगा ॥ १ ॥ २ ॥
 राक्षसेन्द्रः स तु तदा विचरन् वै महीमले ।
 तदुपपद्यत् स गच्छन्त पुण्यकेण धमेश्वरम् ॥ ३ ॥
 पपञ्चत पितर द्रष्टुं पुञ्जस्त्यतनयं विमुमुः ।
 त इष्टुमरसक्याय गच्छन्त पावकोपमम् ॥ ४ ॥
 रसातलं प्रविष्टः सन्मत्पलोक्यात् सपिसस्यः ।
 उष समय भूतस्वर विचरते हुए उस राक्षसपदने
 महीके समान तेकसी तथा देहदुस्य धाम्य धरत करनेवाके
 पेशर कुवेरको देखा अब पुण्यके विमानहाय अपने
 निक पुञ्जसन्मदन विभवाका दर्शन करनेके लिये अब वे थे ।
 उन्हें देखकर वह भगवन्त विस्मित हो मर्त्यलोकसे रखायमें
 प्रविष्ट हुए ॥ १ ॥ ३ ॥ ४ ॥
 इत्यर्षं चिन्तयामास राक्षसाणां महामतिः ॥ ५ ॥

किं कृत्वा भवे इत्येष पथेमहि कथं पथम् ।
 सुमाती बद्धा बुद्धिमान् यः । यद् धेचने स्वयः, क्या
 करनेसे हम राक्षसोंका मम होगा । कसे हमकाय उन्नति
 कर सकेंगे ॥ ५ ॥
 मपाश्रयीत् सुवतीं रक्षः कैकसीं गम नामतः ॥ ६ ॥
 पुत्रिं प्रदानकालोऽप्य पौत्रम व्यतिवर्तते ।
 प्रत्याख्यानाद्य भित्तिस्थं न धरीं प्रतिगृह्यसे ॥ ७ ॥
 देख विचार करनेके उस राक्षसने अपनी पुत्राले, किन्तु
 नाम कैकसी या कजा—धेटी । अब तुम्हारे विवाहके समय
 समय अब गया है। क्योंकि इस समय तुम्हारी सुबावला बीत
 गयी है । तुम कहीं इन्कार न कर दो इसी मयसे भय वर
 तुम्हारा कर्ण नहीं कर रहे हैं ॥ ६-७ ॥
 स्वकृतं च तप सर्वं यत्प्रिया धमेषुदयः ।
 त्व हि सद्यगुणोपस्य भीः साक्षादिव पुत्रिक ॥ ८ ॥
 'पुत्री । तुम्हें विदित बरती प्राप्ति है, इसके लिये हम
 लोगोंने बहुत प्रयत्न किया है। क्योंकि कन्यादानके नियमने
 हम धर्मबुद्धि रखनेवाक हैं । तुम तो साक्षात् तपकीके समान
 कर्तुणधमय हा (भवाः तुम्हारा कर भी वर्षाय तुम्हारे
 योग्य ही होना चाहिये) ॥ ८ ॥
 कन्यापितृत्वं तुम्हं हि सर्वेण मानकाद्विष्णाम् ।
 न ज्ञापते च का कन्यां परपदिष्टि कन्यक ॥ ९ ॥

बेटी । सम्मानकी इच्छा रखनेवाले सभी लोगोंके लिये
कन्याका विवाह इना दुःखकर ही करण होना है क्योंकि यह
पता नहीं चलता कि बौन और कैसा पुरुष कन्याका बरण
करेगा ॥ १ ॥

ममता: कुल पितृकुल यत्र शैव स वीर्यते ।
कुलत्रय सदा कन्या सशये स्थाप्य तिष्ठति ॥ १० ॥

ममताके पिताके और माँ कन्या ही बाली है, उस पहिलेके
कुलको भी कन्या सदा संरक्षणमें बांधे रहती है ॥ १ ॥

सा ख मुनिवर श्रेष्ठं प्रशपति कुलोद्भवम् ।
भद्र विभवस पुत्रि पौत्रस्य वरय खयम् ॥ ११ ॥

(अर्थ: बेटी । तुम प्रशपतिके कुलमें उत्पन्न, भेद गुण
उत्पन्न पुत्रसम्पन्न मुनिवर विभवका स्वयं चक्रवर पतिके
कर्ममें बरण करा और उनकी सेवामें रहे ॥ ११ ॥

ईदृशास्तं भविष्यति पुत्राः पुत्रि न सदाया ।
तज्जसा भास्करसमो तादृशोऽप्यं धनेश्वरः ॥ १२ ॥

पुत्री ! ऐसा करनेसे निःसंदेह दुश्चारे पुत्र भी ऐसे ही
होंगे जैसे ये बनेकर कुत्रे हैं । तुमने जो देखा ही या ने
कैने अपने देखे सर्वके समान उशील हो रहे थे । ॥ १२ ॥

सा तु तद् धनं भुत्वा कन्यका पितृगौरवात् ।
तत्र गत्वा च सा तस्मी विभवा पत्र लप्यते ॥ १३ ॥

पिताकी यह बात सुनकर उनके गौरवका स्थाप्य करनेके
कैकरी उस काननर गयी माँ मुनिवर विभवा तब करते थे ।
बाँही बाहर वह एक बगल लगी हो गयी ॥ १३ ॥

एतस्मिन्मन्त्रे राम पुत्रस्यतनयां शिवा ।
भस्मिहो वापुपातिष्ठन्तुर्ग्यं इव पापका ॥ १४ ॥

श्रीराम ! इसी बीचमें पुत्रसम्पन्न भ्राष्ट्रण विभवा
सपत्न्याका अभिप्रेत करने लगे । वे देखली मुनि उस समय
तीन अभिनयोंके साथ स्वयं भी पदार्थ मयिके समान देखीए
मान हो रहे थे । १४ ॥

अविधिन्य तु ता वेदां दादयां पितृगौरवात् ।
उपसृत्याप्रतस्तस्य वरण्याधोमुखी स्थिता ॥ १५ ॥

पिताके प्रति गौरवबुद्धि होनेके कारण कैकरीने उस
मयंकर शब्दका विचार नहीं किया और निश्चय उनके
बलपूर्वक इति कथने नीचा मुँह किये वह खमने काड़ी
हो गयी ॥ १५ ॥

बिद्धिपत्नी सुभ्रूमिमिहृष्टामप्य भामिनी ।
स तु तां वीक्ष्य सुभ्राणी पूर्णचन्द्रलिभातमम् ॥ १६ ॥

अश्रीवीट परमांवाते दीप्यमान्यं स्वतज्जसा ।
वद भस्मिनि अपने वैरके अंतर्गत बारंवर पत्नीपर
रेखा पाबने लगी । पूर्णचन्द्रका समान मुख तथा मुन्दर
करि-प्रदेयकाशी उस मुन्दरीय च अपने देखे उरसि हो
रही थी, देखकर उन परम उदार महर्षिने पूषा— ॥ १६ ॥

भद्रे कस्यासि पुहित कुतो वा त्वमिहागतः ॥ १७ ॥
किं काय कस्य वा हेतोस्तत्कतो ब्रूहि शोभने ॥ १८ ॥

(अर्थ: तुम किसकी कन्या हो, कहाँसे आई माँकी
मुहसे दुश्चारा क्या काम है अबका किस उद्देश्यके माँ
दुश्चारा माना हुआ है । शोभने । ये सब बातें मुझे ठीक-
ठीक बताओ ॥ १७-१८ ॥

एवमुक्त्वा तु सा कन्या कृतास्त्रादिरपाश्र्वीव ।
स्वस्वप्रभावेन मुने ब्राह्मणमर्हसि मे मतम् ॥ १९ ॥

किं तु मां विद्वि श्रेष्ठ्यं शासन्यात् पितृपताताम् ।
कैकसी नाम नाम्नाहं शेषं त्वं ब्राह्मणमर्हसि ॥ २० ॥

विभवाके इस प्रकार पूजनेपर उस कन्याने हाथ खेचकर
कहा—मुने । आप अपने ही प्रभावसे मेरे मनोभवको उलट
करते हैं किन्तु नक्षत्रों । मेरे मुहसे इतना भवस्य बात है
कि मैं अपने पिताकी बगलसे आपकी सेवामें भागी हूँ और
मेरा नाम कैकरी है । माँकी सब बातें आपको स्वता जान
झेनी चाहिये (मुहसे न कहजनें) ॥ १९ २ ॥

स तु गत्वा मुनिर्घ्यात काक्यमेतदुवाच ह ।
विज्ञात त मया भद्रे कारणं यमनोगतम् ॥ २१ ॥

सुताभिष्ययो मत्तस्तं मत्तमातङ्गनामिनि ।
वारुणायां तु वेद्यायां यस्मात् त्व मासुपकिता ॥ २२ ॥

शृणु तस्मात् सुतान् भद्रे पादशास्त्रनविष्यसि ।
दादयान् दादय्यकारान् दादय्याभिरुक्तप्रियवत् ॥ २३ ॥

प्रसविष्यसि सुभ्राण्यि राक्षसान् क्रूरकर्मांज ।
यह सुनकर मुनिने घोड़ी रेतक ध्यान कथना और
उलके बाद कहा— भद्रे ! तुम्हारे मनका भाव यमस्य हुआ ।
मन्त्रासं गकारबद्धी भोति मन्त्रगतिसे लक्ष्मीकामी सुन्दरी । तुम
मुहसे पुत्र प्राप्त करना चाहती हो । परंतु इस शब्द केकरीने
मेरे पात भावी हो । इच्छिये यह भी सुन लो कि तुम जैसे पुरुषों-
को काम देगी । सुभोषि । दुश्चारे पुत्र मूर लमायका
और दादरेसे भी भयंकर होंगे तथा उनका क्रूरकर्मा उल्लंघनेके
साथ ही प्रेम होगा । तुम कृतापूर्वक कर्म करनेवाले उल्लंघने
ही पैदा करोगे ॥ २१-२३ ॥

स्य तु तद् धनं भुत्वा प्रणिपत्याश्र्वीवृचवाः ॥ २४ ॥
भगवन्महीशशां पुत्रांस्तवतोऽहं श्रेष्ठयादिना ।

नेष्यस्यमि सुदुराचारान् प्रसात् कर्णुमर्हसि ॥ २५ ॥

मुनिभय यह बचन सुनकर कैकरी उनके चरणोंपर गिर
पड़ी और इत प्रभार लक्षी—भगवन् । आप प्रभारकी
महात्म्य हैं । मैं आपसे ऐसे दुर्गुणकी पुत्रोंको पानेकी
अभिलष्यार नहीं रखती; अतः आन मुहस्य रूप
कीकिये ॥ २४ २५ ॥

कन्यया त्वयमुक्तस्तु विभवा मुनिपुत्रया ।
उवाच कैकरी मूषः पूर्णानुरिय राक्षिणीम् ॥ २६ ॥

उव पक्षसन्त्याके इस प्रकार बदनेपर पूर्णचन्द्रकाके

मम मुनिवर् विभवा रोहिणी-वैश्वी मुन्दरी कैक्येति विर
द्रेभे—॥ २६ ॥

रश्मिमो पत्नय सुतो भविष्यति शुभान्ते ।

मम वशानुरूपः स धर्मात्मा च न सशयः ॥ २७ ॥

शुभान्ते । दुःखाय चो सवते श्रेया एव अन्तिम पुत्र

हेमः, वह मेरे प्राणके अनुरूप बर्मात्मा हेमा इतमें संशय
नहीं है ॥ २७ ॥

एवमुक्त्वा तु सा कन्या राम कण्ठन केनचित् ।

अन्यामास वीभत्स रक्षोरूप सुवादणम् ॥ २८ ॥

वृथाप्रीव महावद्रु भीत्यजनकघोषोपमम् ।

साजोष्ठ विधातिमुञ्ज महास्य वीतमपुत्रजम् ॥ २९ ॥

श्रीराम । मुनिके ऐसा करनेपर कैक्येने कुछ बचके

अन्तर अन्तर मचनक और मूर स्वभाववाले एक पक्षको कम

विष, किचके दस मन्त्रक, बड़ी-बड़ी दाढ़ें, तोंके-वैसे मोठ,

संघे पुणार्थ, विद्याक मुञ्ज और चमक्रीठ केन्द्र थे । उरक

धरिन्द्र रंग कोमलेके पहाड़-सैवा काव्य था ॥ २८ २९ ॥

वशिष्ठावाते तत्तत्तस्मिन् सज्यालकषलाः शिवाः ।

कम्पयाश्चापसम्पानि मण्डलानि प्रचक्रमुः ॥ ३० ॥

उरके पैदा होते ही मुँहमें आत्रारोंके और भिजे गौरवियों

और मांसम्भी एम भावि पत्नी शानी और मण्डलकर धूमने क्यो ॥

वर्षों कथिर वृषो मेघाश्च खरनिखनाः ।

प्रकभी न च सूर्यो वै महोरुकाभापत्न्यं भुवि ॥ ३१ ॥

बकम्प जगती सैष वधुर्वाताः सुवादणाः ।

महोभ्याः क्षुभितशैव समुद्रः सरितां पतिः ॥ ३२ ॥

इन्द्रदेव रथिरीषो क्या करते क्यो, मेघ भयंकर स्वरमें

गन्ने क्यो सूर्यकी प्रभा कीकी पड़ गयी धूमिपर उरुकापात

सेने क्या चरती कौप उठी, म्यानक औंभी चकने क्यो तथा

के क्वीके हाप शुम्भ नहीं किया था चक्रवा वह धरिताओं-

क स्वामी समुद्र विधुम्भ हो उठा ॥ ३१ ३२ ॥

अथ नामाकारोत् तस्य पितामहसमः पिता ।

वृथाप्रीवः प्रसूतोऽयं वृथाप्रीयो भविष्यति ॥ ३३ ॥

उत्त समय महाकवीके समान ठेकवी पिता विभवा मुनिने

पुत्रक नाम-करण किया—वह दस कीकारों केकर उरतक

हुभा है । इच्छिमे 'वृथाप्रीव' नामसे प्रसिद्ध हुम ॥ ३३ ॥

तस्य त्वनन्तर जातः कुम्भकर्णो महाबलः ।

प्रमयात् पश्य विपुल प्रमाय मह विघटत ॥ ३४ ॥

उरके बाद महाकवी कुम्भकर्णक कम हुम किचके

एवसे बड़ा धरिन्द्र इत कालमें वृषके क्वीक नहीं है ॥ ३४ ॥

तदा शूर्पाणखा नाम सज्जते विद्वत्प्रान्त्या ।

विभीषणञ्च धर्मात्मा कैकस्याः पञ्चमः सुतः ॥ ३५ ॥

इतके बाद विद्वत्पञ्च मुखकवी एतपत्ता उत्तर हु ॥

उत्तन्तर प्रमाय विभीषणक कम हुभा था कैक्येके

अन्तिम पुत्र थे ॥ ३५ ॥

तस्मिन् जाते महासस्ये पुष्यवर्षे पपात ह ।

नभःस्थाने दुन्दुभयो देवानां प्राणवृक्षाया ।

षाण्य वीधान्तरिक्षे षसायु साधितितत् तदा ॥ ३६ ॥

उत्त महान् सत्वकाली पुत्रका कम होनेपर आकाशसे

पूजोंकी बर्णा हुई और आकाशमें देवोंकी दुन्दुभिनीं बच

उठी । उत समय अन्तरिक्षमें 'षषु-षषु' की धनि हुनायी

बेने क्यो ॥ ३६ ॥

तौ तु तत्र महारण्ये ववृधाते महीजसौ ।

कुम्भकर्णवृथाप्रीवी लोकेद्वेगकरौ तदा ॥ ३७ ॥

कुम्भकर्ण और वृथाप्रीव वे दोनों महाकवी उरक लोकेमें

उद्गर पैदा करनेवाळ थे । वे दोनों ही उर विद्याक बनने

मेंकित होने और कने क्यो ॥ ३७ ॥

कुम्भकर्णः प्रमत्तस्तु महर्षीन् धर्मवत्सलान् ।

वैलोक्ये नित्यासतुयो भक्षयन् विलचार ह ॥ ३८ ॥

कुम्भकण बड़ा ही उन्मत्त निकम्बा । वह भोक्तसे कमी

गुत ही नहीं होता था; अतः तीनों लोकमें भूम-भूमकर

परमात्मा महर्षियोंके काला निर्या था ॥ ३८ ॥

विभीषणस्तु धर्मात्मा नित्य धर्मव्यवस्थितः ।

स्वाध्यापनियताहार उयास विजितेन्द्रिया ॥ ३९ ॥

विभीषण बचनसे ही परमात्मा थे । वे क्या धर्ममें स्थित

रहते, स्वाध्याय करते और नियमित भ्याार करते हुए

इन्द्रियोंके अपने कर्म्ममें रहते थे ॥ ३९ ॥

अथ वैश्रवणो वैभस्तत्र कालेन केनचित् ।

अगता पितरं द्रष्टुं पुष्यकेय धनेश्वरा ॥ ४० ॥

कुछ काळ बीतनेपर धनेके स्वामी वैश्रवण पुष्यकविमान

पर शक्य हो अपने पिताका दर्शन करनेके लिये वहाँ

क्ये ॥ ४० ॥

तं दृष्टुं कैकसी तत्र ज्येष्ठान्तमिष तेजसा ।

मातम्य राक्षसी तत्र वृथाप्रीवमुयाच ह ॥ ४१ ॥

वे अपने ठेकसे प्रकथित हो रहे थे । उन्हें देखकर

एकस-क्या कैक्ये भवने पुत्र वृथाप्रीवके पास आयी और

इत प्रकर बोली— ॥ ४१ ॥

पुत्र वैश्रवण पदय भ्रातरं तज्जसा वृतम् ।

आवृभाषं समे थापि पद्म्यातमान स्वमीवृधाम् ॥ ४२ ॥

येदा । अपने भाई वैश्रवणकी ओर ता देला । वे कैते

ठेकसी धन पढ़ते हैं । भाई होनेके नाते तुम भी इन्हीके

छामन हो । परंतु अपनी भवसा देला, कैकी है । ॥ ४२ ॥

वृथाप्रीव तथा पत्न कुदभ्यामितविद्वान् ।

यथा त्यमपि मे पुत्र भयर्षेभयणोपमः ॥ ४३ ॥

अमित पदात्मी वृथाप्रीव । नरें पंटे । तुम भी देल

कोर यम कर किये वैभयवर्षी ही मंशि तत्र और वैभवते

क्यम हो आभ्ये ॥ ४३ ॥

मातुस्तृष्य वचन भुक्त्वा दशमीवाः प्रतापयान् ।
 समर्पयंतुषुं लेमे प्रतिज्ञां वाकरोत् तदा ॥ ४४ ॥
 माताश्री यह ब्रत सुनकर प्रतापी दशमीवचने अनुपम
 मम्य हुआ । उठने तत्काल प्रतिज्ञा की— ॥ ४४ ॥
 सत्य ते प्रतिज्ञानामि आदतुल्याऽधिकोऽपि वा ।
 भविष्याम्योजसा वैद्य सताप त्यज हृद्गतम् ॥ ४५ ॥
 'हाँ ! तुम अपने हृदयकी चिन्ता छोड़ो । मैं तुमसे
 कभी प्रतिज्ञापूर्वक करता हू कि अपने पराक्रमसे मैं वैभववचने
 छान वा उठते भी बदकर हा चार्कंग' ॥ ४५ ॥
 ततः क्रोधेन तनैव दशमीवाः सहातुजाः ।
 चिकीर्षुर्बुध्नुंकर कर्म तपसे घृतामानसः ॥ ४६ ॥
 प्राप्स्यामि तपसा काममिति हृत्वाभ्यवस्य च ।
 आगच्छन्तमसिद्धयर्थं गोकुलस्याधर्मं शुभम् ॥ ४७ ॥

हृत्वापै श्रीमद्वाल्मीक्ये आधिक्ये उच्यते कर्मः सर्गः ॥ १ ॥
 एत प्रकर श्रीमद्वाल्मीकीय अदिक्यके उच्यते कर्म सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ॥

तदनन्तर उसी क्रोधके आवेशमें ब्रह्मर्षिकृत राक्षसीके
 बुध्नुंकर कर्मकी इच्छा मनमें लेकर खेच— मैं तत्काल ही
 अपना मनोरथ पूर्ण कर धूर्तगः, एत विचरकर उठने मर्म
 तपस्याका ही निश्चय किया और अपनी आर्त-स्थितिसे मिले
 वह गोकुलके पवित्र आश्रमपर गया ॥ ४६ ४७ ॥

ए राक्षसस्ताव सहानुजस्ता
 तपश्चघातुषुंकरप्रतिक्रमः ।
 अतोपयथापि पितामह विभुं
 ददौ स तुष्टया वराहपवहान् ॥ ४८ ॥
 ब्रह्मर्षिकृत उच मर्ककर पराक्रमी उठने अनुपम तत्काल
 मारम्भ की । उच तपस्याका उठने भगवान् ब्रह्मर्षीके
 संशुभ किया और उन्होंने प्रकल होकर उसे विकल दिखनेके
 कारण दिये ॥ ४८ ॥

दशम सर्ग

रावण आदिकी तपसा और वर प्राप्ति

अथाश्रीभुनि रामः कथं ते भ्रतरो घने ।
 कीदृश तु तदा ब्रह्मस्तपस्तेषुर्नैवावधत् ॥ १ ॥
 इत्नी कथ्य सुनकर श्रीरामचन्द्रजीने भगस्व भुनिते
 पूजा— 'ब्रह्मन् ! उन तीनों महाश्री ब्रह्मर्षीने कर्म कि
 मकर और केशी तपस्य की ?' ॥ १ ॥
 भगस्तपस्त्यधवीत् तत्र राम सुप्रसिद्धमामसम् ।
 तास्तान् धर्मविधिसात्र भ्रातरस्ते सम्यविद्वान् ॥ २ ॥
 तत्र भगस्वजीने बाल्यन्त प्रफन्नचित्त्यासे श्रीरामसे
 कहा— 'एतन्वदन् ! उन तीनों ब्रह्मर्षीने बहो तपस्य-तपक
 परमविधियाँ अनुष्ठान किया ॥ २ ॥
 कुम्भकण्ठतो यत्रो नित्य धर्मपथे स्थितः ।
 उताप प्रीत्यकाळं तु पञ्चाम्नीन् परितः स्थितः ॥ ३ ॥
 'कुम्भकर्णं अपनी इन्द्रियोंके संयममें रहकर प्रतिदिन
 धर्मके मार्गमें स्थित हा गर्भिके दिनोंमें अपने चारों ओर
 कम्भ धूपमें बैठकर पञ्चाम्नीय सेवन करते ॥ ३ ॥
 मयाभ्युसिद्धां परीतु वीरासनमसवत ।
 नित्यं च शिरिः काल असमर्प्यप्रतिभया ॥ ४ ॥
 फिर पराभुत्तने मुख मैदानमें वीरसनसे बैठकर मर्षीके
 बरखये हुए कालमें भीगत रहा और आइक दिनोंमें प्रतिदिन
 कर्म भीतर करने ॥ ४ ॥
 पर्यं पचसहस्राणि वरा तस्यापचक्रमुः ।
 धर्मं प्रयतमानस्य सत्यधे निष्ठितस्य च ॥ ५ ॥
 एत प्रकर कर्मागमें स्थित हा धर्मके किय प्रयत्नापीठ
 हुए उच कुम्भकर्णक एत ह्यार पर्यं वीर गये ॥ ५ ॥
 विभीषणस्तु धमात्म्य नित्यं धमपरा युधि ।

पञ्चधर्मसहस्राणि पादेनैकेन तस्मिन्नाह ॥ १ ॥
 विभीषण तो उचते ही धर्ममाये । वे निश्चयमें तपस्य
 एकर ह्यद व्याचार विचारका पावन करते हुए पीच ह्यार
 करोटक एक पेरसे खड़े रहे ॥ १ ॥
 समाप्ये मियमे तस्य ननुतुभ्याप्सयेगणाः ।
 पपात पुण्यकर्म च तुष्टुभ्यापि इक्त्वा ॥ ७ ॥
 'उनका निश्चय समाप्त होनेपर कल्पार्थे बल करने
 कीं । उनके ऊपर आकाशसे कृष्णकी बर्ता हुई और देवताओं
 ने उनकी खुशि की ॥ ७ ॥
 पञ्चधर्मसहस्राणि सूर्यं वैवाण्यकर्तत ।
 तस्मीं चार्थदितोबाहुः स्वाभ्याये घृतामालसः ॥ ८ ॥
 तदनन्तर विभीषणने अपनी दोनों बाँहों और मलक
 ऊपर उठाकर स्वाभ्यायपवण हो पीच ह्यार करोटक सूर्यके
 की भाषणना की ॥ ८ ॥
 एवं विभीषणस्यापि सर्गास्यस्वयं नल्पने ।
 वराधर्मसहस्राणि गतानि मियतारमना ॥ ९ ॥
 'एत प्रकर मनका वचने रसनेपाक विभीषणके भी एत
 ह्यार पर्यं वषे मुखसे बोले, मनी वे सूर्यके नन्दनकर्म
 निश्चय करते हो ॥ ९ ॥
 दशधर्मसहस्रं तु निषहाये वदानना ।
 पूर्णं धर्मसहसे तु शिरिःश्यामी जुहाय सा ॥ १० ॥
 'एतमुल उचने एत ह्यार करोटक कालकर उपपन्न
 किया । मलक सहस्र कर्मके पूर्ण होनेपर वह अपना एक
 मलक चरकर आगमें डम देव वा ॥ १० ॥
 पर्यं पचसहस्राणि नच तस्यापिचक्रमुः ।

शिरांसि नव चाप्यस्य प्रविष्टानि बुद्धयानाम् ॥ ११ ॥
 एव तत्र एक-एक करके उसके नी इन्कर का भीत
 गये और नी मस्तक भी अन्विषेवके मँट हो गये ॥ ११ ॥
 अथ वर्षसहस्रे तु दशमे दशम शिरा ।
 अतुक्कम दशमीये प्राप्तस्तत्र पितामहः ॥ १२ ॥
 एक दशवाँ वर्ष पूरा हुआ और दशमीव अन्तर् दशवाँ
 मस्तक झटनेके उद्यत हुआ। इली समय पितामह ब्रह्माभी
 वहाँ आ पहुँचे ॥ १२ ॥
 पितामहस्तु सुप्रीता सार्धं देवैरुपस्थितः ।
 तत्र तावत् दशमीव प्रीतोऽस्मीत्यभ्यभाषत ॥ १३ ॥
 प्रीतमह ब्रह्मा अत्यन्त प्रसन्न होकर देवताओंके साथ
 वहाँ पहुँचे थे । उन्होंने आते ही कहा—'दशमीव । मैं तुम
 पर बहुत प्रसन्न हूँ ॥ १३ ॥
 शीघ्र वरय धमस्य धरो यस्तेऽभिधाञ्छितः ।
 कं तं काम करोम्यद्य न वृथा ते परिभ्रमः ॥ १४ ॥
 'धर्मस्य । तुम्हारे मनमें किस वरको पानेकी
 इच्छा हो। उसे शीघ्र मँगो। ब्रह्म, आश मैं तुम्हारी किस
 अभिधाञ्छको पूर्ण करूँ । तुम्हारा परिभ्रम व्यर्थ नहीं होना
 चाहिये ॥ १४ ॥
 महाप्रसीत् दशमीवः प्रहृष्टेनाम्बरात्मना ।
 पथस्य शिरसा देव हर्षगद्गदवा गिरा ॥ १५ ॥
 यह सुनकर दशमीवकी अन्तःकरण प्रसन्न हो गयी ।
 उसने मस्तक छुन्नकर मानवान् ब्रह्माके प्रणाम किया और
 हर्ष-गद्गदवाणीमें कहा— ॥ १५ ॥
 भगवन् प्राणिनां किल्य नाम्यत्र मरणात् भयम् ।
 मस्ति मृत्युसमः शत्रुमरत्वमर्हं धृषे ॥ १६ ॥
 'भगवन् । प्राणियोंके लिये मृत्युका विषा और क्लेशका
 उद्यम मन नहीं रहता है अतएव मैं अमर हूना चाहता हूँ ।
 क्योंकि मृत्युका समान दुःख कोई शत्रु नहीं है' ॥ १६ ॥
 एवमुक्त्वाद्वा ब्रह्मा दशमीवमुवाच ह ।
 मस्ति सपरामरत्व ते वरमस्य धृषीष्य मे ॥ १७ ॥
 'उत्तरे देखा करनेपर ब्रह्माजीने दशमीवसे कहा—'तुम्हें
 कौनसा कामना नहीं मिल सकता इसलिये दुःख कोई वर
 मँगो' ॥ १७ ॥
 एवमुक्ते तदा राम ब्रह्मणा लोककतव्या ।
 दशमीव उधाचेरुं कृताञ्जलिप्राप्तः ॥ १८ ॥
 श्रीराम । लोककत ब्रह्माजीके ऐसा करनेपर दशमीवने
 आज अपने हाथ जोड़कर कहा— ॥ १८ ॥
 सुराणामगयज्ञानां वैश्वदानवरसस्ताम् ।
 अथप्योऽहं प्रजाप्यस्य देवताता च शाम्भत ॥ १९ ॥
 'अत्यन्त प्रसन्नते । मैं तबसे नाग यद्य तत्प दानक,
 एक उद्य देवताओंके लिये अथवा हा आऊँ ॥ १९ ॥
 यदि किन्तु ममाभ्येपु प्राणिप्यमरपूजित ।

दण्डमूला द्वि ते मन्ये प्राप्तिनो मानुपावयः ॥ २० ॥
 'देववन्द्य पितामह । अन्य प्राप्तिमेंसे तुझे ठीक भी
 चिन्ता नहीं है । मनुष्य आदि अन्य जीवोंका तो मैं तिनकेके
 समान समझता हूँ ॥ २० ॥
 एवमुक्त्वा धर्मात्मा दशमीवेण रक्षसा ।
 उवाच ध्वज देवः सह देवैः पितामहः ॥ २१ ॥
 'एक दशमीवके देख करनेपर देवताओंकेसिंह मानवान्
 ब्रह्माजीने कहा— ॥ २१ ॥
 भविष्यत्येवमेतत् ते वयो यस्तस्यपुत्र्यम् ।
 एवमुक्त्वा तु त राम दशमीव पितामहः ॥ २२ ॥
 'एकसम्बर । तुम्हारा वह वचन छप होय ।' श्रीराम ।
 दशमीवसे देख करके किन्तुमह फिर बोले— ॥ २२ ॥
 गृणु चापि धरो भूयः प्रीतस्त्वेह नृभ्यो मम ।
 वृत्तानि यानि शीघ्राणि पूर्वमग्री त्ययानय ॥ २३ ॥
 पुनस्तानि भविष्यन्ति तथैव तव राक्षस ।
 वितरामीह तं सौम्य पर चान्य दुरासवम् ॥ २४ ॥
 अन्वत्सत्य रूप न मनसा यत् पयोन्वितम् ।
 'निष्पद्य राक्षस । तुजो—मैं प्रसन्न होकर पुन तुम्हें
 यह छाम वर प्रदान करता हूँ—तुजने पहले अग्निमें अपने
 किन्-किन् मस्तककोका इतन किया है वे छप तुम्हारे लिये फिर
 पूर्ववत् प्रकट हो जायेंगे । सौम्य । इसके सिवा एक और भी
 दुर्लभ वर मैं तुम्हें वहाँ दे रहा हूँ—तुम अपने मनसे जब
 जेव रूप धारण करना चाहोगे, तुम्हारी इच्छाके अनुसार
 उत समय तुम्हारा वैद्य ही रूप हो जायगा' ॥ २३-२४ ॥
 एव पितामहोक्तस्य दशमीवस्य रक्षसा ॥ २५ ॥
 अग्री वृत्तानि शीघ्राणि पुनस्तान्युचितानि वै ।
 'पितामह ब्रह्माके इतना करते ही राक्षस दशमीवके से
 मस्तक, जो पहले आगेमें होम दिय गये थे, फिर नये रूपमें
 प्रकट हो गये ॥ २ - ॥
 एवमुक्त्वा तु त राम दशमीव पितामहः ॥ २६ ॥
 विभीषणप्रयोवाच चाप्य लोकपितामहः ।
 श्रीराम । दशमीवसे पूर्वोक्त वर करके अक्षयिणमह
 ब्रह्माजी विभीषणसे कहा— ॥ २६ ॥
 विभीषण स्वया पांसु धमसहितबुदिना ॥ २७ ॥
 पतिगुणोऽसि धमात्मन् वर परय सुप्रत ।
 ज्ये विभीषण । तुम्हारी बुद्धि उदा धर्ममें लगी पत्ने-
 काभी है अतः मैं तुमसे बहुत उद्यत हूँ । उद्यम ब्रह्म यज्ञ
 करनेवाले धमात्मन् । तुम भी अपनी इच्छा अनुसार वर
 वर मँगो ॥ २७ ॥
 विभीषणस्तु धमात्मा धर्मानं प्राह साञ्जित ॥ २८ ॥
 वृत्तः सवगुणैर्निष्प पन्म रक्षिभियथा ।
 भगवन् कृतदृष्ट्योऽहं यम लोकागुणं स्वयम् ॥ २९ ॥
 प्रीतन यदि, दातव्यो परा म गृणु सुप्रत ।

एव किरणमममसिद्धव चन्द्रमयी मौलि स्या समस्त
 गुणोत्तै समस्त परमात्मा विभीषणने हाप खेदकर कदा—
 पमामन् । यदि स्यात् सङ्कट्य भाप सुष्ठपर प्रसन्न है तो
 मैं हृद्यार्थ हूँ । मुझे कुछ भी पाना होय नहीं रहा । उचम
 प्रसन्नो भार्या करनेवाले पित्रान् । यदि भाप प्रसन्न होकर
 मुझे बर देना ही चाहते हैं तो सुमिने ॥ २८ २९३ ॥

परमापद्रवस्तस्यापि धर्मो मम मस्तिर्भवेत् ॥ ३० ॥
 अतिशक्ति च प्रहसन्न भगवन् प्रतिभातु मे ।

पमामन् । बड़ी-से-बड़ी आपत्तिने पड़नेपर भी मेरी
 बुद्धि धर्ममें ही झकी रहे—उसके विपश्चित न हो और बिना
 छिसे ही मुझे बलाकात्र जान हो खन ॥ ३३ ॥

या या मे जायते बुद्धियैषु देव्याभ्रमेयु ख ॥ ३१ ॥
 सा सा भवतु धर्मिष्ठा त च धर्मो च पालये ।

एव मे परमोद्दारे वरा परमको मत्ता ॥ ३२ ॥
 किस-किस अश्रमक विषयमें मेरा खे-खे विचार हो

पर धर्मके अतृप्त ही हो और उच-उच धर्मक मैं पावन
 करूं यही मेरे हिये उचउच उचम और भाषिष्ठ बरजन
 है ॥ ३१-३२ ॥

नहि धर्माभिरक्षमां लोके किञ्चन दुस्सभम् ।
 पुनः प्रजापतिः प्रीतो विभीषणमुवाच ह ॥ ३३ ॥

ज्योंकि जो धर्ममें अनुरक्त हैं उनके हिये कुछ भी
 दुर्लभ नहीं है वह ह्युनकर प्रकपति ब्रह्म पुनः प्रसन्न हो
 विभीषणके शब्द— ॥ ३३ ॥

धर्मिष्ठस्य यथा वसत तथा धैतव् भविष्यति ।
 यस्मात् राक्षसयोमी त जातव्यामिन्द्रमाराज ॥ ३४ ॥
 नाधर्मो जायते धुञ्जिरमरत्यं वृथामि त ।

सत् । पुन धर्ममें स्थित रहनेवाले हो; अतः जो कुछ
 चाहते हो वह सब पूर्ण होगा । शत्रुनाशन । राक्षस-योनिमें
 उत्तम दाम् भी तुम्हारी बुद्धि भयर्ममें नहीं झकी है । इसलिये
 मैं तुम्हें अमरत्व प्रदान करवा हूँ ॥ ३४ ॥

इत्युक्त्वा कुम्भकण्याय घट वानुमवस्थितम् ॥ ३५ ॥
 प्रजापति सुराः सर्वे वाक्य प्राञ्जल्याऽमुवच ।

विभीषणने एव कृद्वर नव प्रजापती कुम्भकर्षणं च
 वेदेन स्मि उचत हुए, तब सब देवता उनसे हाप खेदकर
 वाच— ॥ ३५ ॥

न तद्यत् कुम्भकणाप प्रज्ञात्म्यो वरस्त्वया ॥ ३६ ॥
 जानीय हि यथा साक्षात्वाससयत्पर तुमति ।

प्रज्ञा । भाप कुम्भकणध बरदान न दीविस; क्योंकि
 भाप जानत हैं कि पर बुद्धि निगणकर स्थित करके कनक
 कणध धार देता है ॥ ३६ ॥

नन्दनऽध्वरमः सप्त महान्द्रानुषण वृ ॥ ३७ ॥
 भवन भविष्य प्रमन्वृयया मानुयस्तथा ।

नन्दन । १०२ नन्दन यन्त्रे क्त भवराधो, देवराज

इन्द्रके वर अनुचरों तथा बहुउ-से श्रुतिमें और मनुष्यों
 भी सा श्रिया है ॥ ३७ ॥

मसम्भवरपूर्वेषु यत् कृत राक्षसेन तु ॥ ३८ ॥
 पद्येष वरस्त्वयः स्यात् भक्षयेत् मुक्तनक्षयम् ।

यहके बर न पानेपर भी इस राक्षसेने जब इस प्रकार
 प्राविशोंके मन्थनक कृतापूर्णे कर्म कर आज है, तब यदि इसे
 बर प्राप्त हो जाय, उच यथामे तो वह तीनों कर्मोंको सब
 क्षय ॥ ३८ ॥

वरव्याजेन मोहोऽस्मै वृष्यतमसिक्तप्रभ ॥ ३९ ॥
 कोषानां सस्ति शैवस्यात् भवेदस्य च सम्प्रति ।

अभिततेकली देव । भाप वरके बहाने इसको मन्थ
 प्रदान कीजिये । इसके समस्त कोषोंका क्षयाप होगा और
 इसका भी छम्मान हो जायगा ॥ ३९ ॥

एवमुक्ता सुरैर्ब्रह्माचित्तयत् पद्मसम्भवः ॥ ४० ॥
 विनित्य चापतद्वेदेऽस्य पार्श्वे वृषी सरस्वती ।

देवताओंके देवा करनेपर कनकयोनि प्रजापतिने कनक
 का सरण किता । उनके चिन्तन करते ही देवी सरस्वती पद्म
 का गयी ॥ ४० ॥

प्राञ्जलिा सा मु दार्शयस्व माह वाक्य सरस्वती ॥ ४१ ॥
 इयमस्त्यागत्या देव कि कार्य करवाञ्चहम् ।

उनके पार्श्वभागमें लक्ष्मी हो सरस्वतीने हाप खेदकर
 कहा—देव । यह मैं अब गयी । मेरे हिये क्या आज है ।
 मैं कौन-का कार्य करूँ ? ॥ ४१ ॥

प्रजापतिस्तु तां प्राप्ता माह वाक्य सरस्वतीम् ॥ ४२ ॥
 यामि त्व यस्तस्यस्य भव पान्देवतेऽस्मिन्न ।

जब प्रकपतिने यहाँ आयी हुई सरस्वतीदेवीसे कहा—
 यामि । तुम राक्षसक कुम्भकर्षणी विहापर विराजमान हो
 देवताओंके अनुकूल शक्तीके रूपमें प्रकट होओ ॥ ४२ ॥
 तयोत्पुनस्या प्रविष्टा सा प्रजापतिरथाञ्जलीत् ॥ ४३ ॥
 कुम्भकर्षणं महापाहां घट वरय यो मता ।

सब प्युतु अन्धों कृद्वर सरस्वती कुम्भकर्षिने मुलने
 समा गयी । इसका बार प्रकपतिने उच राक्षसी कहा—
 प्युताशु कुम्भकण । तुम भी अपने मनक अनुकूल कोरे
 बर माँगो ॥ ४३ ॥

कुम्भकण्यस्तु तद्वाक्यं श्रुत्वा यक्षममप्रचीत् ॥ ४४ ॥
 न्मत्तु कपाप्यनक्यनि द्बन्व्य ममेपित्तम् ।
 पर्यमस्तिपति त वासस्था प्राप्यात् प्रजा सुरीभसमम् ॥ ४५ ॥

उनकी यत् पुनः कुम्भकण शब्द—देवदेव । मैं
 अनेरातेक बर्गेतक क्षता रहे । यही यही इच्छा है । तब
 एवमस्तु (ऐसा ही हा) कृद्वर प्रजापती देवताओंके सब
 पत्र गये ॥ ४४ ॥

वृषी सरस्वती चं व गाशत न जहो पुनः ।
 प्राञ्जण्या सह इपयु गततु च तमस्त्यसम् ॥ ४६ ॥

विमुक्ताऽसौ सरसत्वात्वा सङ्गां च ततो गत ।
 कुम्भकर्णस्तु पुष्पारामा चिन्तयामास युःक्षितः ॥ ४७ ॥
 फिर सरस्वतीदेवीने भी उस एकसको छत्र दिया ।
 ब्रह्माक्षीके छत्र देवताओंके आच्छादने चले जानेपर अब
 एकसकी भी उठक ऊपरसे उठर गयी, तब पुष्पारामा कुम्भकर्ण
 को चंत हुआ और वह तुलसी होकर इस प्रकार चिन्ता
 करने लग्य— ॥ ४७ ४७ ॥

यद्द भ्यामोहितो वैभैरिति मन्ये तद्वागतैः ॥ ४८ ॥
 भयं ! आत्र मरे दुःखसे ऐसी बात क्यों निकल गयी ।
 मैं समझता हूँ ब्रह्माक्षीके छत्र अब हुए देवताओंने ही उस
 समय मुझे मारने बाध दिया था ॥ ४८ ॥
 एष लक्ष्मणराजः सर्वे अतरो वीरतेजसः ।
 दृष्टेष्मत्कवचन गत्या तत्र तं न्यबसन् सुखम् ॥ ४९ ॥
 इस प्रकार वे तीनों तेजस्वी ज्ञाता वर पाकर लक्ष्मणक-
 वचन (कवचके बंधन) में गये और वहाँ सुखपूर्वक रहने लगे ॥ ४९ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायण ब्राह्मीक्षीये अष्टिकाण्डे उत्तरकाण्डे वसतः सर्गः ॥ १ ॥
 इस प्रकार श्रीमहात्मनिर्णीत अष्टरामायण अष्टिकाण्डके उत्तरकाण्डम दसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ॥

एकादश सर्ग

रावणका संदेश सुनकर पिताकी आज्ञासे कुबेरका लङ्काको छोड़कर कैलासपर
 जाना, लङ्कामें रावणका राज्याभिषेक तथा राक्षसोंका निवास

सुमासौ वरसम्भास्तु ज्ञात्वा धैत्यन् निशाचरान् ।
 अतिदुःखं भयं त्यक्त्वा सानुगः सरसतस्तथात् ॥ १ ॥
 एकप मादि निशाचरोंको वर प्राप्त हुआ है वह बनकर
 सुमासी नामक राक्षस अपने अनुचरोंसहित भय छोड़कर
 रसतलमें निकल ॥ १ ॥
 मारीचस्य प्रहस्तस्य विक्रपाक्षो महोदरः ।
 अतिदुःखं सुसरम्भाः सखियास्तस्य रक्षसः ॥ २ ॥
 छत्र ही मारीच, प्रहस्त विरूपाक्ष और महोदर—ये
 सब एकसके चार मन्त्री भी रसतलमें ऊपरको उठ । वे सब
 एक-एक वेगवेगसे मरे हुए थे ॥ २ ॥
 सुमासी सखियैः सार्षे भूत्ये राक्षसपुङ्गवैः ।
 अभिगम्य दशमीव परिष्वस्येद्दशमीव ॥ ३ ॥
 भेद रक्षसोंसे बिग हुआ सुमासी अपने सखियोंके छत्र
 रक्षणीक पास गया और उधे छातीसे लगाकर इस प्रकार
 बोले— ॥ ३ ॥
 विप्रया तं वक्षसः सम्प्राप्तमिच्छित्तोऽप्य मनोरथः ।
 परसं विमुचनभोग्नात्प्रस्थान् वरमुत्तमम् ॥ ४ ॥
 बाल ! बड़े सौभाग्यकी बात है कि तुमने विमुचनभेद
 ब्रह्माक्षीसे उत्तम वर प्राप्त किया जिससे तुम्हें यह चिरञ्जीवी
 चिन्तित महोरथ उपलब्ध हो गया ॥ ४ ॥
 परहृतं च वयं कर्तुं त्यक्त्वा पाथा रसतलम् ।
 वदत नो महाबाहो महद्विष्णुकृतं भयम् ॥ ५ ॥
 महाबाहो ! जिसके करण हम सब एकस कर्तुं छोड़कर
 रसतलमें चले गये व भगवान् विष्णुसे प्राप्त होनेवाला
 समय यह मरने भय दूर हो गया ॥ ५ ॥
 मसकृन् तद्गवाद् भद्राः परित्यज्य क्षमात्तपम् ।
 विदुःसाः सहित्वा सर्वे प्रपिशासा रसतलम् ॥ ६ ॥
 हम सब बग बारबार भगवान् विष्णुके मरने की वृत्ति

होनेके कारण अपना वर छोड़ भय निकले और सब के-सब
 एक साथ ही रसतलमें प्रविष्ट हो गये ॥ ६ ॥
 मङ्गलीया च लङ्केय नगरी राक्षसोपिता ।
 निवेशिता तत्र आत्रा भग्याभ्यसेण धीमता ॥ ७ ॥
 यह लङ्कानगरी जिसमें तुम्हारे बुद्धियान् माई बनारस
 कुबेर निवास करते हैं, हमसंगोंकी है । परह इतने राक्षस
 ही रहा करते थे ॥ ७ ॥
 यत्रि न्ममात्र शाक्यस्यात् सान्ना वामेन वामत्र ।
 तरसा वा महाबाहो प्रयानेनु कृतं भयेत् ॥ ८ ॥
 निष्पाप महाबाहो ! यदि छत्र, दान भयना कर्मयोग-
 के द्वारा भी पुनः लङ्काको वापस किया जा सके तो हमसंगों
 का क्रम बन जाय ॥ ८ ॥
 त्वं च लङ्केद्वरस्ताव अभिव्यसि न सरथा ।
 स्वया राक्षसस्योऽप्य मिमन्नेऽपि धमुवृष्टा ॥ ९ ॥
 यावत् ! तुम्ही लङ्काके स्वामी होओगे इसमें संशय नहीं
 है क्योंकि तुमने इस रक्षसवंशका वर रसतलमें दूना गया
 था उदार किया है ॥ ९ ॥
 सर्वेषां नः प्रमुञ्चैव अभिव्यसि महापल ।
 भयाद्यबीवृ दशमीयो मातामहमुपलक्षितम् ॥ १० ॥
 बिलेशा सुकरस्यकं नर्हस वक्तुमीदृशम् ।
 महाक्षी वीर ! तुम्ही हम सबके साथ होओगे । यह
 सुनकर दशमीने पाठ छोड़ हुए अपने मातृमरुसे कहा—
 जानाबी ! बनारस कुबेर हमसे बड़े मार हैं, अतः उनके
 कर्मभने भयका मुझसे ऐसी बात नहीं करनी चाहिए ॥
 सान्ना हि राक्षसन्त्रेण प्रत्याक्यातो गरीयसा ॥ ११ ॥
 किंवन्महदं तदा रक्षा धात्या तस्य चिकीर्षितम् ।
 उठ भेद रक्षस्यबक द्वारा उन्तभयक ही ऐसा कर
 उत्तर पाकर सुमासी वदत गया कि रावण क्या करना पारया

हे इत्येवै यह रक्षस पुत्र हो गया । फिर कुछ करनेका
 चाहत न कर सका ॥ ११५ ॥

कस्यचित् स्वयं कष्टस्य वसन्त रायव ततः ॥ १२ ॥
 उक्तवन्तं तथा यान्त्यं दशमीय मिश्राश्वराः ।

प्रहस्ताः प्रथित वाक्यमिदमग्रह सकारणम् ॥ १३ ॥
 तदनन्तर कुछ कास भरीत होनेपर अपने स्वान्तर
 निवाह करते हुए दशमीय रावणसे जो दुमाझीको पहल
 पूर्वक उत्तर दे चुका था, मिश्राकर प्रहस्तने कियपूर्वक यह
 अधिकमुक्त बात कही — ॥ १२ १३ ॥

दशमीय महायाहो ग्राहस शकुमीह्वराम् ।
 सौध्राव नास्ति शूराणां शत्रु खेदं यत्रो मम ॥ १४ ॥

महाबाहु दशमीय ! अपने अपने नामसे जो कुछ
 कहा है क्या नहीं कहना चाहिये ? क्योंकि यद्यपि इह उपरके
 सात्वभवाकर निर्वाह होता नहीं देला जाता । अप्य मरी यह
 बात सुनिये ॥ १४ ॥

अदितिश्च त्रिदिव्येषु भगिन्स्यौ संहिते हि ते ।
 भायें परमरूपिभ्यौ कश्यपस्य प्रजापतः ॥ १५ ॥

अदिति और त्रिदि देवों की धर्म हैं । वे देवों ही
 प्रजापति कश्यपकी परम सुन्दरी पत्नियों हैं ॥ १५ ॥

अदितिर्जन्मामास देवास्त्रिभुवनेश्वरान् ।
 त्रिदित्स्वस्वजनयद्दैत्यान् कश्यपस्यसप्तसम्भवान् ॥ १६ ॥

अदितिने देवताओंको जन्म दिया है जो इस जन्म
 त्रिभुवनके स्वामी हैं और त्रिदिने देवोंको उत्पन्न किया है ।
 देवता और देव्य देवों ही महर्षि कश्यपके औरत पुत्र हैं ॥
 दैत्यान्तां किञ्च धर्माच्च पुरेय सकम्पार्षवा ।

सपर्यता मही वीर तेऽभयान् प्रभस्विष्वाभाः ॥ १७ ॥
 धर्माच्च वीर । पहल परत वन और समुद्रोंके रह करी
 पृथी देवोंके ही अधिकारमें थीं । क्योंकि वे नही प्रमा-
 धाधी वे ॥ १७ ॥

निहत्य तास्तु क्षमरे विष्णुना प्रभविष्णुना ।
 नृपालां वशामागीत वैश्वोपयमित्स्मर्ययाम् ॥ १८ ॥

परिहृत सर्वशत्रुमान् मगधान् विष्णुने सुदने देवोंको
 मारकर विजयोधीय यह अक्षय उक्त देवताओंके अधिकारमें
 दे दिया ॥ १८ ॥

नित्यंको भवान्ज करिष्यति विपर्ययम् ।
 सुरासुरैरावरित तत् कुदम्प यत्रो मम ॥ १९ ॥

इस तत्त्वम विपरीत आचरण फलक आप ही नहीं
 करेग । देवताओं और असुरोंने भी पहले इस नीतिके ज्ञान
 किया है अतः आप मरी बात मानें ॥ १९ ॥

एवमुक्तो दशमीवः प्रहृष्टेऽन्तरमना ।
 अस्त्वित्यथा सुदुर्ते यं यादमित्येष सोऽग्रधीत् ॥ २० ॥

प्रहस्तक एव्य करनेपर दशमीवस चित्त प्रसन्न हो गया ।
 उसने जो पक्षीवक क्षय मिश्राकर कहा—पशुव

अप्य (तुम जैय करते हो, वैसा ही करेगा) ॥ २ ॥
 स तु तेनैव हर्षेण तस्मिन्बहनि धीर्यवान् ।

वन गतो दशमीवः सह तैः शकवाक्यैः ॥ २१ ॥
 तदनन्तर उखी दिन उखी हर्षके साथ पराक्रमी दशमीव
 उन मिश्राकरोंको साथ ले उड्डाके निकटवर्ती वनमें गया ।
 त्रिकूटस्थः स तु तथा दशमीवो निहतशरः ।

प्रेषयामास दौत्येन प्रहस्तं वाक्यकोविदम् ॥ २२ ॥
 उठ सम्य त्रिकूट परतपर आकर मिश्राकर दशमीव
 उतर गया और बातचीत करनेमें कुछ प्रहस्तका उठने वृत्त
 कनाकर भेज ॥ २२ ॥

प्रहस्त शीघ्र गच्छ त्वं इति नैर्घृतपुङ्गवम् ।
 यद्यसा मम विद्येतां सोमपूर्वमिदं वचा ॥ २३ ॥

यह बोध—प्रहस्त ! तुम शीघ्र जाओ और मेरे कश्यप
 गुजर बनके स्वामी रक्षकजन कुवेरसे शान्तिपूर्वक कह
 बात करो ॥ २३ ॥

इयं उड्डा पुरी रावण रक्षसजाना महात्मनाम् ।
 स्वयं निर्वदित्य सौम्य नैतत् युक्त तवात्मन ॥ २४ ॥

रावण । यह उड्डापुत्री ज्ञानमना रक्षकोंकी है किमें
 माय निवास कर रहे हैं । सौम्य । निष्पाप कश्यप । न
 आपके किने उचित नहीं है ॥ २४ ॥

तत् भयान् यदि नो ह्यद्य द्वाघवतुलविक्रम ।
 कृत्वा भयेऽमम प्रीतिर्धर्मोऽयानुपाकृता ॥ २५ ॥

अद्वय पराक्रमी बनेश्वर । यदि आप हमें नह उड्डापुत्री कीया
 है तो इसके होने बड़ी प्रसन्नता होगी और आपके द्वारा धर्मक
 पावन हुआ समझा मायगा ॥ २५ ॥

स तु गत्वा पुरीं उड्डां धन्वनेन सुरक्षिताम् ।
 मद्यपीत् परमोवाः विश्वाकासिम् वचा ॥ २६ ॥

तब प्रहस्त कुवेरके द्वारा सुरक्षित उड्डापुत्रीमें गया और
 उन विश्वाकासे बड़ी उदारतापूर्वक वाणीमें बोध— ॥ २६ ॥

प्रेषितोऽहं तव भयना दशमीयेष सुजित ।
 त्वत्समीप महायाहो सर्वशास्त्रमूर्तां वर ॥ २७ ॥

तच्छ्रुयतां महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
 ययनं मम विद्येतां यद् दधीति दशानना ॥ २८ ॥

उत्तम व्रतधर्मात्तन करनेवाले सम्पूर्ण शास्त्रकारियोंमें
 भव सर्वशास्त्रविशारद महाबाहु महाप्राज्ञ बनेश्वर । आपके
 यहाँ दशमीने मुझ आपके पास भेज है । दशगुल एवम
 आपसे जो कुछ करना चाहते हैं वह बता रहा हूँ । आप
 मरी बात सुनिये ॥ २७-२८ ॥

इयं किञ्च पुरी रम्य सुमाक्षिप्तसुखैः पुरा ।
 युक्तपूर्वा विद्याशाला राक्षसीर्भविष्यती ॥ २९ ॥

तत्र विद्याप्यत सोऽयं सामग्रत विभवात्मज ।
 तद्वा दीयता तत पाचतस्तस्य सामता ॥ ३ ॥
 विद्यालयजन्म वैभव । यह रक्षकीव उड्डापुत्री परसे

नानक पराश्रमी मुमाक्षी आदि रक्षकोंके अधिकारमें रही है।
 होने बहुत समयतक इसका उपभोग किया है। अत वे
 शरीर इस समय यह सूचित कर रहे हैं कि 'यह लड़ा
 मन्त्री वस्तु है, उन्हें श्रेय ही न्यय।' तत। घान्तिपूर्वक
 चान्ता करनेवाले दशप्रवीण आप यह पुरी श्रेय दें ॥
 हस्त्यपि सभृत्य वेदा वैश्रयणो वचा।
 स्युषाच प्रहस्त त वाच्य वाच्यपिथा वरः ॥ ३१ ॥
 प्राज्ञके मुखसे यह बात सुनकर बालीका मर्म समझने
 शक्यमें श्रेष्ठ भगवान् वैभवपत्ने प्राज्ञको इस प्रकार उत्तर
 दिया— ॥ ३१ ॥

वृथा ममेव पित्रा तु लङ्का शून्या निशाचरैः।
 नित्यशिता च मे रतो दानमानादिभिर्गुणैः ॥ ३२ ॥
 पक्षः। यह लङ्का पहले निशाचरोंसे सूती थी। उक्त
 समय मिताक्षीने मुझे इसमें रहनेकी आशा दी और मैंने इसमें
 दान, भान आदि गुणोंद्वारा प्रजापतियोंको कथया ॥ ३२ ॥
 ब्रूहि गच्छ दशप्रवीण पुरी राज्य च यम्मम।
 तत्रान्येसमहावाहो भुङ्क्ष्य राज्यमकण्ठकम् ॥ ३३ ॥

वृत्। तुम चकर दशप्रवीण को— भगवाणो। यह
 पुरी तथा यह निष्कण्ठक राज्य को कुछ भी मेरे पास है यह
 न तुम्हारा भी है। तुम इसका उपभोग करो ॥ ३३ ॥
 यथिमक स्वया सार्धं राज्य यथापि म वस्तु।
 पयमुक्त्वा धनाप्यस्तो जगाम पितुरन्तिकम् ॥ ३४ ॥

भोग राज्य तथा खरा बन इससे बँटा हुआ नहीं है।
 ऐक कहकर बनाव्यस्य कुयेर अपने पिता विभवा मुनिके पास
 चले गये ॥ ३४ ॥

यभिषाद्य गुरु प्राह राधपस्य यदीप्सितम्।
 एय त्वत् दशप्रवीणो वृत् प्रेषितवान् मम ॥ ३५ ॥
 दीपता गरी लङ्का पूर्ण रसोगजोपिता।
 मयात्र पवतुषेय तममावक्ष्य सुप्रत ॥ ३६ ॥

वहाँ पिताका प्रणाम करके उन्होंने राधपत्री को हथका
 पी उसे इस प्रकार बताया— तत। आज दशप्रवीणने मेरे
 पास वृत् मेला और कहाया है कि इस लङ्का नगरीमें पहले
 रख रखा करते थे मतः इसे रणकोंका श्रेय दीक्षिये।
 मुन। भर मुने इस विषयमें क्या करना चाहिये बतानेकी
 क्षय करें ॥ ३५ ३६ ॥

प्रकारिस्थयमुक्त्वाऽसौ विभवा मुनिपुङ्गवः।
 माङ्गलि धनत् प्राह शृणु पुत्र वचो मम ॥ ३७ ॥
 उनके एता करनेपर प्रार्थि मुनिवर विभवा हाथ खेद
 कर लगे हुए बनर कुंवरसे बोले—वेदा। मेरी बात सुना ॥
 दशप्रवीणो महाबाहुवचवान् मम सनिधी।
 मया गिरासतथासौत् यमुदाचः सुनुमति ॥ ३८ ॥
 व प्रपन्न मया चोन्दो प्यसले च पुनः पुनः।
 महाबाहु दगमोने मेरे निष्कट भी यह बात करी थी।

इसके क्षिमे मैंने उक्त युद्धिको बहुत पटकपः, डॉट बढा
 और बारबार श्रेयपूर्वक कहा—अरे। ऐसा करनेसे तैय
 पतन हो जायगा? किंतु इसका कुछ फल नहीं हुआ ॥ ३६ ॥
 श्रेयोऽभियुक्त धर्म्यं च शृणु पुत्र वचो मम ॥ ३९ ॥
 परप्रदानसम्मूढो मान्यामान्य सुसुमतिः।
 न वृत्ति मम शापाय प्रकृति दाठणा गतः ॥ ४० ॥

पता। अब इसी मेरे भर्मानुक्त एवं कस्याणकी
 वचनको ध्यान देकर सुनो। राधपत्री बुद्धि बहुत ही सादी
 है। वह वर पाकर मद्यमत् हो उठा है—विशेष सो बैठा
 है। मेरे शापके कारण भी उसकी प्रकृति क्रूर हो गयी है ॥
 तस्मात् गच्छ महाबाहो कैवल्यस धरणीधरम्।
 निवेशय त्रियासार्थं त्यक्त्वा लङ्का सहानुगः ॥ ४१ ॥

पुष्कस्ये महाबाहो। अब तुम अनुचरोरहित लङ्का
 छोड़कर कैवल्य पर्वतपर चल जाओ और अपने रहनेके स्थान
 यहाँ वृक्षा नगर बसाओ ॥ ४१ ॥
 तत्र मन्दाकिनी रम्या नदीनामुत्तमा नदी।
 काञ्चनैः सर्वसकरी पङ्क्तैः सप्ततोयक ॥ ४२ ॥
 कुमुदेवतलेऽप्येय अप्येऽप्येय सुगन्धिभिः।
 पर्वो नित्योमै भ्रेण रणवीम मन्दाकिनी नदी बहती है,
 जिसका बल सूर्यके समान प्रक्षयित होनेवाला सुवर्णमय
 कमलों कुमुदों, डलकों और वृक्षे-वृक्षे सुगन्धित कुमुदोंसे
 आच्छादित है ॥ ४२ ॥

तत्र वेधाः सगन्धर्वाः साप्सरोरगकिन्नराः ॥ ४३ ॥
 विशारदोऽप्यः सतत रमन्ते सर्वशक्तिताः।
 नहि क्षम तदानेन यैर धनत् रक्षसा ॥ ४४ ॥
 आनीये हि यथानेन लब्धा परमको यर ॥ ४५ ॥

उक्त पर्वतपर देवता गन्धर्व, भक्ष्य नाग और किन्नर
 आदि दिव्य प्राणी किन्हीं लम्बासे ही भूमना फिरना अधिक
 प्रिय है। वना खत हुए निरन्तर आनन्दका अनुभव करते
 हैं। बनर। इस रणकोंके साथ तुम्हारा वैर करना उचित नहीं
 है। तुम तो जानते ही हो कि इसने ब्रह्माक्षीसे देव उल्टा कर
 प्राप्त किया है ॥ ४३-४५ ॥

पवमुक्तो शूरीत्या तु तद्वचः पितृमौरवात्।
 सवारपुत्रः सामात्याः सयाहनधनो गतः ॥ ४६ ॥
 मुनिक एव करनेपर कुंवरने पिताका मन रखते हुए
 उनकी बात मान ली और वी पुत्र मन्त्री बहान
 तथा बन हाथ करके वे लङ्कासे कपासत्र गये ॥ ४६ ॥
 प्राहस्तोऽथ दशप्रवीण गत्या यचनमयवीत्।
 प्राहृष्टात्मा महारामान सहामात्य सदानुजम् ॥ ४७ ॥

वदनकर पहल प्रसन्न हाकर मन्त्री और माहणोंक साथ
 पैठे हुए महामना दशप्रवीणक पास आकर बैठा— ॥ ४७ ॥
 शून्या सा गरी लङ्का त्यस्त्वंनां धनदा गतः।
 प्रविश्य तं सहास्रभिः स्वधर्मं तत्र पाठय ॥ ४८ ॥

शून्या सा गरी लङ्का त्यस्त्वंनां धनदा गतः।
 प्रविश्य तं सहास्रभिः स्वधर्मं तत्र पाठय ॥ ४८ ॥

कृष्ण नगरी खासी हो गयी । कुबेर उसे छोड़कर चले गये । मन आज हमसेहीके रूप उठने प्रवेश करके अपने वर्मण पावन कीजिये ॥ ४८ ॥

एषमुक्तो वृशमीधः प्रहस्तेन महारथकः ।

विधेरा नगरीं सङ्गां आतृभिः सवत्सरागैः ॥ ४९ ॥

धन्वन् परिस्पृष्टा मुविभक्तमहापयाम् ।

आबरोह स द्वारिः स्वर्गे देवाधिपो वया ॥ ५० ॥

प्रहसकं ऐव कृद्नेपर महाकम्पे दशमीनेने अपनी सेना,

मनुचर तथा महर्षोत्तरीत कुबेरकाय त्यागी हुई कृष्णपुरीमें

प्रवेश किया । उस नगरीमें सुन्दर विमानपूर्वक बसी-बही

सङ्घके बनी थी । जैसे देवराज इन्द्र स्वर्गके सिंहासनपर आस्य

रूप में उठी प्रभर देवसेही उपजने कृष्णमें पराजय किया ॥

स खाभिविक्ता क्षणवाचरैस्तथा

निवेशापामास पुरीं वधान्तः ।

हृषार्थे श्रीमद्भक्तप्रभे शास्त्रीकीने आदिकामने उचरत्प्रभे एकप्रकः स्तोः ॥ ११ ॥

एत प्रभर श्रीमद्भक्तप्रभे श्रीमद्भक्तप्रभे उचरत्प्रभे आरत्तनीं हर्षं पूरा हृष ॥ ११ ॥

निष्कामपूर्णां च वनूष सा पुरी

निशाचरैर्नीलकण्ठसहकोपमैः ॥ ५१ ॥

उस समय निष्कामपूर्णे दशमुख रावणका एकद्वितीय

किमा । फिर रावणने उस पुरीको कसया । देखते-देखते ऊँची

कृष्णपुरी नीच मेथके छमल वर्णवाले रावणने पूर्ण

भर गयी ॥ ५१ ॥

धनेश्वरस्त्वथ पितृवाक्यगीरका

न्यवेशयकृष्णशिविमिच्छे गिरौ पुरीम् ।

खलकृतेर्भक्तवचरैर्विभूषितां

पुरंवरः स्वरिव यथासरावतीम् ॥ ५२ ॥

फनके स्वामी कुबेरने निशाचरी आकाशके श्वर देख

पन्द्रभके छमल निर्मक क्षतिवाले केवल फलतर छोड-

यासी भेद मन्नीसे विभूषित भक्तपुरी कसयी, ठीक जैसे ही

जैसे देवराज इन्द्रने स्वर्गकेने अमरावती पुरी कसयी थी ॥

द्वादश सर्ग

शूर्यपत्न्या तथा रावण आदि तीनों भाइयोंका विवाह और मेघनादका अन्न

पाहलेन्द्राडभिकस्तु आतृभिः सञ्चितस्तथा ।

जतः प्रदान राक्षस्य भोगिन्याः समस्मिन्वयम् ॥ १ ॥

(भगवत्पत्नी कृतं है—भीराम ।) अपना अग्निदेव

के आनेपर जब राक्षसराज रावण भाइयोंकेकित कृष्णपुरीमें रहने

काय तब उसे अपनी बहिन राक्षसी शूर्यपत्न्याके आहवा

किन्ता हुई ॥ १ ॥

ससार् क्राडकेपाय वानसंभ्राय राक्षसीम् ।

वदौ शूर्यपत्न्यां नाम विपुत्रिह्वाम राक्षसः ॥ २ ॥

उस राक्षसने वानसराज विपुत्रिह्वाम के आहवाकर प्रज

या, अपनी बहन शूर्यपत्न्या आहवा ही ॥ २ ॥

अथ वत्सा स्वयं रक्षो मृगपामटतं च तत् ।

तत्रापश्यत् ततो राम मयं नाम वितेः सुतम् ॥ ३ ॥

कन्यासहायं त इष्टा वृशमीधो निशाचरः ।

अपृच्छत् को भवत्सोको निर्मानुष्यसुरो वने ॥ ४ ॥

अनया मृगशावाह्या किमर्थं सह सिद्धसि ।

भीराम । बहिनका आहवा करके राक्षस रावण एक दिन

स्वयं शिभर लक्ष्मणेके शिष्ये बनमें भूम रहा था । वहाँ उठने

दिदिने पुत्र स्वरूप देखा । उसके खण एक सुन्दरी कन्या

भी थी । उसे देखकर निशाचर वृशमीधने पूछा—अप्य

केने है च मनुष्यो और पशुभासे रहित इस घने वनमें

अनेके भूम रहे हैं ? इस मृगमयी कन्याके साथ अप्य वहाँ

किउ उदेवसे निवात करते हैं ? ॥ ३ ४ ॥

मयस्तथाश्रीवद् राम पृच्छन्तं तं निशाचरम् ॥ ५ ॥

शूर्यपत्नी सर्वमाख्यास्ये यथावृत्तमिव तत्र ।

भीराम । इस प्रकार पूछनेवाले उस निशाचरने मन

बोझ—सुनो मैं अपना खण इच्छन्त हर्षं वक्ष्यामस्ते

क्या रहा ॥ ५ ॥

हेमा श्वमाप्यरक्षसात् सुतपूर्वा यदि त्वय ॥ १ ॥

वैकैर्मम सा वृथा पौष्पेमीव शतक्रतोः ।

तव्यां सकम्पना ह्यास वृशार्पशात्प्यहम् ॥ ७ ॥

सा च वैकतक्ययैव गता वयोव्यनुप्रांश ।

तस्या कृते च हेमायाः सर्वे हेममय पुरम् ॥ ८ ॥

वज्रवैशूर्यविर्षं च मापया निर्मितं मया ।

तत्रहमवसत वीनस्तथा हीताः सुतुःक्षिताः ॥ ९ ॥

याव । हमने पहले कभी सुन्य होगा स्वामी हेमा नामके

प्रथम एक अल्प उखी है । उसे देवताकेने उखी प्रभर

मुसे मर्षित कर दिया था जैसे पुष्पेम वानककी कन्या शशी

वृशराज इन्द्रके ही गयी थी । मैं उखीने अक्षय होकर एक

खस वयोवृत्त उसके साथ रहा ॥ एक दिन वह देवताकेने

कर्मसे स्वर्गकेको पक्षी गयी उसके पौरुष कर्म हीत गये ।

मैंने उस हेमाके शिष्ये न्यावासे एक नगरका निर्माण किया था

को धनुर्वृतः खेनेका का है । हीरे और शीशमके संकेमते

वद निजिन् छोभा वारण करता है । उसीमें मैं अक्षय उसके

विशेषसे अक्षयत हुकी एवं हीन होकर उखत था ॥ १-९ ॥

तस्मात् पुराद् बुद्धितर पृथीत्वा धनमागतः ।

इयं ममाममा राक्षसक्या कुक्षी विषर्षिता ॥ १० ॥

पत्नी नगरी इव कन्याश्चो धाप्ये केशरं नै वनये अना
रुक्म् । वह मेरी पुत्री है, जो हेमाके गर्भमें ही पडी है
(उसके उत्पन्न होकर मेरे हाथ पाकित हो बड़ी हुई है ॥

रिमन्त्या सार्धमस्याः प्रसूतोऽसि मार्गिणुम् ।

पाशित्व तु न्न हि सर्वेषां मानकाङ्क्षियाम् ॥ ११ ॥

या हि मे कुले नित्यं सशय्ये स्थाप्य तिष्ठति ।

वृत्ते खप्ये इत्के नोप्य पतिश्चि लोच्य करेते छिने

बहु । मन्त्री अभिज्ञाया रखनेवाले प्रम्य सभ्ये छिनेके

ने कन्याश्च शिवाश्च वृत्तेके खमने छज्जा पडता है ।

य एषा रो कुलेभ्यो लक्ष्मणे बाले खती है ॥ ११ ॥

इय ममाप्यस्या भार्यायां सम्बन्धुषु ह ॥ १२ ॥

पत्नी प्रथमसद्वत्त तु न्नुभिस्तनुमन्तरा ।

खत । मेरी इस भार्या हेमाके गर्भसे रो पुत्र श्री हुए

किनने प्रथम पुत्रका नाम मायायी खेर वृत्तेका

सुमि है ॥ १२ ॥

त सर्वमाख्यात यायात्तप्येन पृच्छत ॥ १३ ॥

स्मिन्मूर्त्ती कथं खत आग्नीयां को भवानिति ।

खत । छमने पूजा या, इच्छिमे मैंने इस तख अपनी कवी

ते छमने कथार्यकसे बत दी । अब मैं यह खनना खस्ता

कि छम खन हो । यह मुझे किछ तख खत हो

खत ? ॥ १३ ॥

वसुक तु तव रक्षो विनीतमिदमग्रवीत् ॥ १४ ॥

ह वीक्षस्यत्तनयो वृषाभीषड्य नामता ।

निर्विभवसो यस्तु वृत्तीयो ब्रह्मणोऽभवात् ॥ १५ ॥

ममपुरके इव प्रकर खनेपर यखत रापय किन्तीतम्बसे

कन्य—मैं पुच्छकके पुत्र विभवाका बेटा हूँ । मेरा नाम

रापय है । मैं किन विभवा सुनिते उसका हुआ हूँ, जो

खनिते खेखी खेखीमें वेदा हुए हैं ॥ १४ १५ ॥

अमुकस्तदा राम राक्षसेन्द्रेण दानवाः ।

तद्वैस्तनय इत्था मयो ह्यमुयागतः ॥ १६ ॥

एतु बुद्धितरं तस्मै रोक्षयामास तथ वै ।

धीम । राक्षसकाके देख करनेपर दानव मय महर्षि

वेमकाके उत्र पुत्रका परिचय पाकर बहुत प्रखत हुआ खेर

उसके धाप बहो उतने अपनी पुत्रीका विवाह कर देनेकी

छा थी ॥ १६ ॥

करत तु कर तथ्या प्राहयित्वा मयस्तदा ॥ १७ ॥

खरतन् प्राह वैत्यन्द्रो राक्षसन्ममिदं यजः ।

इतं खर वैत्यका मय अपनी बेटीका हाथ राक्षसके

एतने देकर वैत्य हुआ उत्र राक्षसकासे इस प्रकार

कथ—मैं ॥ १७ ॥

एवं महात्मजा राजन् हेमयाप्सरसा धृता ॥ १८ ॥

कन्या मन्दीरि न्याम पत्न्यर्यं प्रतिव्यूहताम् ।

पान्ता । ख मेरी बेटी है, जिसे हेमा अकखने अपने
गर्भमें धारण किया या । इत्था नाम मन्दीरि है । इसे
छम अपनी पत्नीके रूपमें स्वीकर करो ॥ १८ ॥

बाहमिष्येव त राम वृषाभीषोऽप्यभापत ॥ १९ ॥

प्रज्यान्त्य तत्र चैवाग्निमकरोत् पाशिसप्रहम् ।

धीम । तत्र दक्षप्रोबने बहुत अन्ता खरकर मयापुरकी

बात मान थी । फिर बहो उतने अग्निको प्रज्जकित करके

मन्दीरिका पालिप्रण किया ॥ १९ ॥

स हि तस्य मयो राम यायाभिज्ञस्तपोधन्यात् ॥ २० ॥

विदिस्था तेन सा वृत्ता तस्य पैत्यमहं कुष्णम् ।

खुनन्दन । यद्यपि लखेबन विभवासे रापयका जो खू

प्रकृति होनेका धाप मिश्र या, उते मयापुर खनता या

तथापि रापयको ब्रह्माभीके कुच्छ याका समझकर उसने

उसको अपनी कन्या दे दी ॥ २० ॥

अमोघां तस्य शक्तिं च प्रवृत्ती परमानुत्तमम् ॥ २१ ॥

परेण तपसा खम्भा खजिर्वीत्तुमण यया ।

खप ही उच्छ्रय तपसासे प्राप्त हुई एक परम अनुत्त

अमोघ शक्ति श्री प्रदान की, जिसेके द्वारा रापयने कन्याको

पायक किया या ॥ २१ ॥

पथ स कृत्वा वारान वै खड्याया ईश्वरा प्रमुः ॥ २२ ॥

गत्वा तु नगरीं भार्ये आदृभ्यां समुपाहरत् ।

इत प्रकार वारपरिग्रह (विवाह) करके प्रभनकाकी

खड्येकर रापय खड्यापुरीमें गया और अपने दोनों माइनोंक छिने

भी रो भार्याके उनका विवाह कराकर ले गया ॥ २२ ॥

विरोचनस्य वीरिर्षो यज्जगदनेति न्यमतः ॥ २३ ॥

तां भार्यां कुम्भकर्णस्य रापयः समकल्पयत् ।

विरोचनकुमार बलिष्ठी दौहित्रीको, विनका नाम बज्र

ज्वाला था, रापयने कुम्भकर्णकी पत्नी बनाया ॥ २३ ॥

गन्धर्वराजस्य सुता वीक्षूपस्य महत्समन ॥ २४ ॥

सरमां नाम धर्मिणां लेने भार्या विधीयतः ।

गन्धर्वका महारामा दौहित्री कन्या सरमाको जो धर्मके

तकको खननेवाकी थी, विधीयने अपनी पत्नीके रूपमें प्राप्त

किया ॥ २४ ॥

तीरे तु सरसो वै तु सज्जने मानसस्य हि ॥ २५ ॥

सरस्तदा मानस तु यधुष जलवागमे ।

मात्रा तु तस्याः कन्यायाः स्नेहेनाकल्पित यव ॥ २६ ॥

सरो मा बधयस्वेति ततः सा सत्पयाभवत् ।

यह मनसकाकरक तदपर उल्लन हुई थी । जब उल्लका

कम हुआ उत्र तमय वयो वृद्धका भ्यागमन होनेसे मान

खेखर बड़ने लगा । तब उत्र कन्याकी मयाने पुत्रीक नेहने

करपकन्दन करते हुए उत्र खपयने कर—खप मा बधयत

(हे खेखर ! तुम भरने खकम बड़ने न दो) । उतने

भवत्कृतमे 'सः मा' ऐत क्त्वा था। इत्यधिये उठ कन्वाद्य नाम क्त्वा हा गया ॥ २५ २१३ ॥

एव ते कृतवाप धै रमिरे तथ राक्षसा ॥ २७ ॥
 स्वा स्वां भार्यामुपावाप्य गन्धर्वा इय नन्दते ।

इव प्रकर वे धीनों एष्व विद्योहित होकर भयनीभयनी कीझे खय से नन्दनभयने विहार करनेबाके गन्धर्वाके समान क्त्वासे सुखपूर्वक रमय करने क्यो ॥ २७ ॥

ततो मन्दोदरी पुत्र मधनाद्वमजीजनत् ॥ २८ ॥
 स पर इन्द्रसिन्धुम युष्माभिरभिधीयते ।

उदनन्तर कुछ काखके बाए मन्दोदरीने अपने पुत्र मेघनादको कम दिया निरु अपपत्न्य इन्द्रसिन्धुके नामसे पुकरते थे ॥ २८ ॥

आत्मप्रेषण हि पुरा तन रावणस्यनुन्न ॥ २९ ॥
 यदता सुमहान् सुको नामो अलधरोपमः ।

इत्थार्थे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये वायुकाण्डे उत्तरकाण्डे द्वावसः सर्गा ॥ १२ ॥

इस प्रकर श्रीमत्संस्कृतसिद्धि अर्थरामायण अग्निप्रकरणे उत्तरकाण्डे वाह्यार्थे सम् पूठ दुःख ॥ १२ ॥

त्रयोदश सर्ग

रावणद्वारा धनवास गये शयनागारमे कुम्भकर्णका सोना, रावणका बत्थाभार, कुबेरका दूत मेघकर उसे समझाना तथा कुपित हुए रावणका उस दूतको मार डालना

मय नाकेष्वरोत्तुष्टा तय कलन कनसित् ।

निद्रा समभवत् सीमा कुम्भकर्णस्य रूपिणी ॥ १ ॥

(भगवन्तु क्वरते हैं—खुनन्दन !) उदनन्तर कुछ कम सीतेनेपर खकेभर नकाकीकी मेसी हुई निद्रा कैमाई भाविके रूपमे नृसिंहकी होकुम्भकर्णके भीतर तीव्र वेगमे प्रकट हुई ॥ १ ॥

ततो भ्रातरमासीन कुम्भकर्णोऽग्रधीव् पत्न्या ।

निद्रा मां वाभते रावण कारयस्व ममाक्षयम् ॥ २ ॥

उव कुम्भकर्णने पाव ही बैठे हुए अपने माई रावणसे कहा—प्राण । मुझे नींद खा रही है म्हा मरे किये क्षम करनेके योग्य पर वनघ द' ॥ २ ॥

विनिपुकास्ततो राजा सिन्धिनो विष्वकर्मेयत् ।

विन्तीर्षे वासव सिन्धं तदा द्विगुणमायतम् ॥ ३ ॥

वर्दानीय निपाबार्ध कुम्भकर्णस्य षक्तिरे ।

स्फटिकोः पद्मसैकिषोः स्तम्भैः सयज शोभितम् ॥

पर सुनकर एष्वराकने निष्कर्णका समान छुपेष्प सिन्धिव्याघ्रे पर पमानेके किये भ्रम्य रे थी । उन सिन्धिवेने हो येक संघा और एक संकन चौड़ा चिन्ना पर बनाहा दो देलने ही योग्य था । उसने किली प्रकरकी वाबाका अनुभव नहीं होता था । उसने सर्वत्र स्फटिकमणि एवं सुवर्णके धने हुए लग्ने एने थ जो उठ भननकी शोभा बढ़ा रे मे ॥ ३ ॥

वैवूर्यकृतसापान किद्रिणीमारुतं तथा ।

पूर्वकाण्डमे उठ रावणपुत्रने वैव होते ही खेते-खेते मेन समान गम्भीर नाय किन्व था ॥ २१३ ॥

जडीकृता च सा उड्डा तस्य मन्थन राजन् ॥ ३० ॥
 पिता तस्यकपोधाम मेघनात् इति स्वप्नम् ।

खुनन्दन । उठ मेघदुष्क नाखे सपी बड़ा बल सम्भ रह गयी थी इत्यधिये पिता एक्कने तर्प ही उठ नाम मेघनाद रक्त्वा ॥ ३० ॥

सोऽग्रभंत तथा राम रावणान्तपुरे शुभे ॥ ३१ ॥
 रक्ष्यमाण्ये वरक्षीभिःसुखः प्यत्सैरिवात्मजः ।

मात्प्रपित्रोर्महाहर्षे जनयत् रावणारमजः ॥ ३२ ॥
 श्रीराम । उठ सम्य बह रावणकुमार एक्कने उ मन्तःपुरमे माता-पितृको महान् ह्य प्रदान करव दुःख ने नारियेके सुखित हो काइसे व्याख्यात हुई अन्तिके लय बढ़ने क्यो ॥ ३१ ३२ ॥

इत्थार्थे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये वायुकाण्डे उत्तरकाण्डे द्वावसः सर्गा ॥ १२ ॥

इस प्रकर श्रीमत्संस्कृतसिद्धि अर्थरामायण अग्निप्रकरणे उत्तरकाण्डे वाह्यार्थे सम् पूठ दुःख ॥ १२ ॥

वास्तुतोरपविन्यस्त पञ्चस्फटिकवैदिकम् ॥ ५ ॥

उसमें नीकमकी खीदियों की थी । उन और सुष्प शाकरं क्यन्ती गयी थी । उक्त्वा खर फटक हाथी-रुण क्त्वा दुःख था और हीरे तथा स्फटिकमणिकी वेदी एवं पद्म शोभा रे खे मे ॥ ५ ॥

मनोहरं सर्वसुखं अपर्यायस राक्षसः ।

सर्वज सुखदं नित्यं मेरोः पुण्या गुहामिभ ॥ ६ ॥

बह मजन एव प्रकरते सुख एवं मनोहर वा । मेर पुष्पमयी शुष्केके समान सदा सर्वत्र दुल प्रदान करतेक था । यद्यप्येव रावणने कुम्भकर्णके किये ऐव सुन्दर व सुविधाकाक घननापर कनबाबा ॥ ६ ॥

तव निद्रां समाधिपः कुम्भकर्णो महाबलः ।

वहृष्यम्सहस्राणि शयानो न च बुध्यत ॥ ७ ॥

महाबली कुम्भकर्ण उठ करते खकर निद्राके बणीदूत ।

कई हजार बयोंक लड़ा रहा । बग नहीं पाव था ॥ ७ ॥

निद्राभिभूतं तु सदा कुम्भकर्णो वशात्मनः ।

वैवर्षियसहस्रवर्षीन् सज्जये हि सिद्धुरा ॥ ८ ॥

कन कुम्भकर्ण निद्राते अभिभूत होकर खे गया व दम्भुल एव उष्णकृद् ही वैवतामो श्रुतिमें सर्वे की गन्धर्वाके क्त्वाको मरने तथा थीहा देने क्यो ॥ ८ ॥

उपात्यमि विविधाणि तन्वनादीनि यानि च ।

तानि तस्या सुसहस्रो भिन्सि स वशमना ॥ ९ ॥

पक्षमौके नन्दनवन भादि च विधिप्र उद्यान वे, उनमे दधानन भल्म्व कुपित हो उन उक्क्रे उबाइ देवा १ ॥

इव इव श्रीहन् वृक्षान् वायुरिव क्षिपन् ।
 (वज्र इयोस्तुष्टे विष्वस्यति राक्षसाः ॥ १० ॥
 ए राख नरीने हाथीकी भौति श्रीहा करता हुआ उसकी उंभ किन्न-निन्न कर देवा या । इच्छेको वायुकी भौति उला हुमा उलाइ फेकवा या और परकींच इन्द्रके पूटे हुए वज्रकी भौति तोड़-छेड़ बाजवा या ॥ १ ॥

इष्ट तु विज्ञाय वृक्षीष धनेश्वरा ।
 तुरुप धर्मज्ञो वृक्ष सस्त्वय चात्मनः ॥ ११ ॥
 गन्धशालार्थं तु वृक्ष वैभयपक्षदा ।
 समोपयामस्य वृक्षीषिष्य वै हितम् ॥ १२ ॥
 दधमीकके इव निरंकुश कर्वािका धमाचार पाकर बनके । धर्मके कुलेने अपने कुलके अनुरूप भाचार-व्यवहारका र करके उठम भावुप्रेमका परिचय देनेके लिये उछामे वृक्ष मंत्र । उनका उद्देश्य यह था कि मैं वज्रको उसके वै दत्त बलकर राहकर आऊँ ॥ ११ १२ ॥

गत्वा नगरां लङ्गामाससाव् बिभीषणम् ।
 नेकस्तन धर्मेष पृष्टव्यागमन् प्रति ॥ १३ ॥
 नर वृक्ष सङ्गपुरीने जकर परछे विन्नीपमते मिथ्य ।
 देवने धर्मके अनुकर उसका उक्कर किया और उछामे के कारण पूछा ॥ १३ ॥

इ च कुशल राक्षो ज्ञातीना च विभीषणः ।
 गाया वृक्षयामास तमासीन वृक्षान्तरम् ॥ १४ ॥
 छि रन्धु-वान्धवींश्च कुशल-समाचार पृष्ठकर विन्नीपगने ।
 वृक्षकाके जकर राक्षसगने वैठे हुए एवजते मिथ्या ॥ १४ ॥
 इष्टु तत्र राजानं स्वीप्यमान स्वतजसा ।
 पति पावा सम्भूज्य तूर्णां समभिवर्षत ॥ १५ ॥
 एव वज्रप समने अपने तेकसे उरीष्ट हा रहा या उसे एकर वृत्ते भगाएकी क्य हो एव जकर वासीहाय पध उक्कर किया और फिर नर कुष्ठ देवतक बुज्जप लडा ॥ १५ ॥

तत्रोत्तमपयस्य परास्तरणशोभित ।
 पतिष्ठ वृक्षीष वृत्तो याक्यमथाप्रधीत् ॥ १६ ॥
 उरभात् उत्तम निरीनेसे मुजोभित एक भट पलंगपर डे हुए इन्द्रकीकसे उठ वृत्ते इष्ट प्रकर कहा— ॥ १६ ॥
 गजन् पद्मामि त सर्वे भाता तप यवृषधीत् ।
 इयथा सुहृदा पीर वृक्षस्य च कुक्षस्य च ॥ १७ ॥

श्री महाएव । आपके भद्र बनाम्य कुसले भद्रक उठ व इष्ट मेक है वह मान्य पिता देवोंके कुष्ठ तथा पद-पर भुक्त्व ई मैं उमे पूर्वपम भापक ववा रहा हूँ कुनिप— ॥ १७ ॥

साधु पर्याप्तमेतापत् हृत्यभारिपसग्रह ।
 साधु धर्म इयवस्थान किमता यदि शक्यते ॥ १८ ॥
 वृक्षमीव । तुमने मसक के कुष्ठ कुष्ठय किया है, इतना ही बहुत है । अब तो तुम्हें मन्धीमौति क्याचारक संग्रह करना चाहिये । यदि हो सके तो धर्मके मार्गपर स्थित रहो मरी तुम्हारे लिये अच्छा होगा ॥ १८ ॥

इष्ट मे नन्दन भङ्गसुरयो निहताः शुवाः ।
 देवतानां समुपोगस्त्यसो राजन् मया भुत ॥ १९ ॥
 तुमने नन्दनवनके उबाइ दिया—यह मैंने भन्नी ओसों देखा है । तुम्हारे हाथ बहुत-से श्रुतियोंका वध हुआ है, यह भी मरे सुनेनेमें गया है । राजन् । (इसके तंग आकर देवता तुमसे बदख सेना प्यारत हैं) मैंने सुना है कि तुम्हारे मित्र देवतामोंक उद्योग आरम्भ हो गया है ॥ १९ ॥

निराकृत्य यद्गुहास्त्ययाह राक्षसाधिप ।
 सायराधोऽपि यालो हि रक्षितव्यः स्यात्प्रभैः ॥ २० ॥
 प्यारक्यज । तुमने कई बार मया भी तिरस्कार किया है, तथापि यदि राक्षक अपराध कर दे तो भी अपने मनु शान्तकोंके तो उसकी रक्षा ही करनी चाहिये (ईश्वरिय तुम्हें शिष्टकरक उक्कर दे रहा हूँ) ॥ २ ॥

गृह तु शिमफतूष्टं गतो धर्ममुपासितुम् ।
 रौद्र मव समास्थाय निपयो नियतेन्द्रियः ॥ २१ ॥
 मैं शौच-संशुद्धि नियमोंके पावन और इन्द्रियसंयम-पूर्वक शीष्ट कर्वाका आशय उ धर्मका अनुष्ठान करनेके लिये शिमाक्यके एक शिलरपर गया था ॥ २१ ॥

तत्र वृषो मया इष्ट उमया सहितः प्रभुः ।
 सव्य ऋधुमया वैशात् तत्र देव्या निपातितम् ॥ २२ ॥
 का स्वपेति महाराज न स्वल्पमेव हेतुना ।
 रूप चानुपम हृत्वा कद्राणी तत्र तिष्ठति ॥ २३ ॥
 वहाँ मुझ उमावर्धित भगवान् महादेवकीक बर्षान हुआ । महाएव । उठ समय मैंने कज्र यह शानतेके छिप कि देखूँ य क्रौं ई ! देवका देवी पापक्षीपर अपनी कर्मी दृष्टि डाली थी । निभय ही मैंने दूधर किरी हेतुसे (विघ्नरपुक्त भक्तसे) उनकी भद्र नर्हा देला था । उठ बहाम देवी क्रापी अनुपम रूप धारण करके यहाँ लड़ी थी ॥ २२ २३ ॥

दृष्ट्या विष्यप्रभाषण वृग्ध सभ्य ममेक्षणम् ।
 रेणुष्वस्तमिव ज्योतिः विह्वलस्यनुपागतम् ॥ २४ ॥
 देवीक दिव्य प्रभास उठ समय मरी ययी भौल उक गयी और वृष्ठी (ययी भौल) भी पूरक मरी दूर-थी निद्रक परकी हा गयी ॥ २४ ॥

स्तोऽहमन्यद् यिस्तीर्णं गत्वा तस्य गिरजतटम् ।
 तूर्णां पश्यशतान्यथां समभार महाप्रथम् ॥ २ ॥
 शन्कर मैंने पतक दूधर विन्वृत् तटन जकर भाट से बरीक मैंने-वपम उठ महान् प्रथम धारण किया ॥

समाप्ते नियमे तस्मिंस्तत्र दृष्टो महेश्वरः ।
 कृतः प्रीतेन मनसा प्राह वाच्यमिदं प्रभुः ॥ २६ ॥
 'उत्त नियमके समाप्त होनेपर भगवान् महेश्वरदेवने मुझे
 दर्शन दिया और प्रसन्न मानते कहा— ॥ २६ ॥
 प्रीतोऽस्मि तव धर्मज्ञ तपसानेन सुमत ।
 मया चैतत् प्रत धीर्यं स्वया वैष भवदधिप ॥ २७ ॥
 उत्तम प्रकटा पावन करनेवाले धर्मज्ञ बनेश्वर ! मैं
 दुम्हारी इस तपस्यासे बहुत संतुष्ट हूँ । एक तो मैंने इस प्रकट
 भ्रमचरण किया है और दूसरे तुमने ॥ २७ ॥
 वृत्तीयः पुरुषो न्नास्ति यश्चरत् प्रतमीहियाम् ।
 प्रत सुवुष्करं ह्येतन्मयैवोत्पादितं पुत्र ॥ २८ ॥
 धीरव्य कोई ऐसा पुरुष नहीं है जो ऐसे फटोर प्रकट
 पावन कर सके । इस भस्मन्त बुष्कर प्रकट पूर्वजन्ममें मैंने
 ही प्रकट किया था ॥ २८ ॥
 तत्सक्तिर्त्वं मया सीम्य रोचयस्य धनश्वर ।
 तपसा निर्यतस्मैव सखा भव ममजगत् ॥ २९ ॥
 'अतः खेप्य बनेश्वर ! अब तुम मेरे साथ निजतप्य
 सम्पन्न स्थापित करो यह सम्पन्न दुम्हारे पर्वत अना पक्षिपे ।
 मनष ! तुमने अपने तपसे मुझे खीट किया है अतः मंग
 निज बनकर रहो ॥ २९ ॥
 वृष्या दूर्ध्वं प्रभाषेण यच्च सर्व्यं तच्छेक्षणम् ।
 पैशुस्य पर्व्वतस्य हि वृष्या रूपनिरीक्षणम् ॥ ३० ॥
 एकप्रसपिङ्गलीस्येव नाम स्थान्यति शाब्धतम् ।
 एव तन सक्तित्वं च प्राण्यलुब्धां च शङ्करात् ॥ ३१ ॥
 भ्रगतन मया वैष श्रुतस्ते पापनिष्कया ।
 येनी पार्वतीके रूपपर दक्षिण करनेसे देवीक प्रमथसे
 ओ दुम्हारा बानी नेत्र च्छ गया और दूसरा नेत्र भी पिङ्गल-
 वर्णका हो गया इससे उद्य शिर रखनेवाला दुम्हारा 'एकप्र-
 सिङ्गली यह नाम फिरलायी होगी' । इस प्रकार मगवान्
 शङ्करके साथ नैत्री स्थापित करके उनकी आज्ञा लेकर बन
 में चर भोग्य हूँ तब मैंने दुम्हारे पापपूर्ण निम्नयकी बात
 सुनी है ॥ ३१ ॥
 तद्दर्शित्वस्योपाश्रितं कुम्भपुण्यात् ॥ ३२ ॥
 किमप्यत हि यधोपायः सर्गिसङ्घैः सुरैस्तत्र ।
 अतः अब तुम अपने कुम्भके कर्त्तक व्यानेकसे पापकर्मके
 छेम्भसे दूर रह जाओ। क्योंकि श्रुति-गुरुराजदहित देवता
 दुम्हारे वचन उच्यत रह रहे हैं ॥ ३२ ॥
 एवमुक्त्वा द्वाप्रीयाः श्लेषसरत्तासोचना ॥ ३३ ॥
 हस्तान् दस्ताश्च सम्पिप्य वाक्यमस्तदुवाच ह ।

द्वापौर्ध्वे श्रीमद्गणेशाय नमः ॥ ३३ ॥

एत प्रकार श्रीमद्गणेशाय नमः ॥ ३३ ॥

दृष्टके मुँहसे देखी बात हुनकर दृष्टकीन एकने
 श्लेषसे व्यक्त हो गये । वह हाथ मज्जत हुआ रहो
 बोला— ॥ ३३ ॥
 विहात ते मया वृत्त कर्त्तव्यं वत् त्व प्रभाषसं ॥ ३४ ॥
 नैव त्वमसि नैवासी आञ्ज येनसि श्लेषितः ।
 वृत् । तू जो कुछ कर रहा है उक्त अभिमान
 समझ लिया । अब ते न तू श्लेषित रह उक्त है और न
 मयरे ही कियेने तुझे वहाँ मेला है ॥ ३४ ॥
 हित नैव ममैतद्धि ज्ञवीति धनरत्नक ॥ ३५ ॥
 महेश्वरसक्तिर्त्वं तु मूढः भावयते किञ्च ।
 वनप्रकट कुनेने ओ संशय दिया है, वह मेरे
 हितकर नहीं है । यह मूढ मुझे (उपनेक श्लेषे) महारेक
 खप मन्त्री मित्रवाची क्या मुन्दा रहा है ? ॥ ३५ ॥
 नैवेदं क्षमणीय मे प्लेत्तुं भावित त्वय ॥ ३६ ॥
 यत्वेनावमया काञ्चं वृत् त्वय तु मर्कितम् ।
 न हस्तभ्यो गुरुज्यैहो मयापमिति मन्वते ॥ ३७ ॥
 'वृत् । तुने जो बत वहाँ कही है, यह मेरे श्लेष
 करनेसेय नहीं है । कुनेने मेरे कहे मर्क है, अतः उ
 वप करना उचित नहीं है—ऐव सम्पन्नक ही मैंने अब
 उम्हारे क्षमा किया है ॥ ३६ ॥
 तस्य त्रिदार्त्तं भुव्या मे वाच्यमेवा कृञ्च मतिः ।
 श्रीस्तोत्रेकानपि जेष्यामि बाहुवीर्यमुपाश्रितम् ॥ ३८ ॥
 किञ्च इस समय उनकी बात हुनकर मैंने वह मि
 किया है कि मैं अपने बाहुवचन मरोख करके तीनों श्लेष
 शीर्ष्या ॥ ३८ ॥
 एतन्मुहूर्त्तमेवाह तस्यैकस्य तु वै कृते ।
 अनुपे सोकपाञ्चान्त्वा नपिष्यामि धमस्तपम् ॥ ३९ ॥
 'ध्वी मुहूर्त्तमें मैं एकके ही अवग्रहसे उन श्लेषोंके
 को वमश्लेषे पहुँचाऊँगा' ॥ ३९ ॥
 एवमुक्त्वा तु शङ्खेणो वृत्तं बहोम जपितवान् ।
 यवी भक्तयितु ह्यन राक्षसानीं नुरामस्तम् ॥ ४० ॥
 ऐव कर्त्तक कष्टेण एवने उष्णपसे उच वृत्के
 दुम्हारे कर बाक और उधकी व्यथ उम्हने बुगत्ता एक
 जानिके श्लेषे दे ही ॥ ४० ॥
 ततः कृतस्वस्तपयने रथम्वरत्त रावणा ।
 त्रैलोक्यविजयात्प्राप्त्वा यवी यत्र फलश्वरा ॥ ४१ ॥
 उच्यन्त एवम सतिवाचन करके रूपर कर्त्त
 तीनों श्लेषोंपर विजय पानेकी इच्छासे उच खानपर गया
 धनयति कुनेने रहते थे ॥ ४१ ॥

चतुर्दश सर्ग

मन्त्रियोंसहित रावणका यशोपर आक्रमण और उनकी पराजय

उत्त स सचिवैः सार्धं पद्मभिर्मित्यप्यबोधतः ।
 मोक्षोऽप्यहस्ताभ्यां मारीचशुकसारणैः ॥ १ ॥
 पूजाशेषेण च वीरेण नित्यं समरगार्दिना ।
 कृतः सम्प्रपयौ श्रीमान् क्रोधधाम्स्त्रोकान् बृहन्निष ॥ २ ॥
 (भागस्यथी कृते है—एतन्वदन !) तदनन्तर बलके
 अस्मिन्मने सना उन्मत्त रहनेवाला यज्ञ महोदर प्रह्लाद,
 मारीच, शुक, खरण तथा सदा ही मुद्राधी भूमिधाय रत्ननेवाले
 वीर पूजाय—इन छः मन्त्रियोंके साथ लड़ाते प्रसिद्ध हुआ ।
 उस समय ऐसा अन पड़ता था माना अपने शीघ्रते
 पूर्ण अशोक मस्त कर बातेम ॥ १२ ॥
 पुराणि स नदी दीक्षान् वामान्युपवनामि च ।
 मतिक्रम्य मुहूर्तेन कैलास गिरिमागमत् ॥ ३ ॥
 हनुमन्ते नगरो नदियां, वरतो, वनो और उपवनोको
 बंधकर वह दो ही पक्षीमें कैलास परतपर च पहुँचा ॥ १ ॥
 सलिवह गिरौ तस्मिन् राक्षसेन्द्र निशाम्य तु ।
 युद्धसु त कृतोत्साहं पुराग्मानं समन्त्रियम् ॥ ४ ॥
 पक्षा न दोषुः सस्यातु प्रमुञ्च तस्य रक्षसः ।
 पक्षा भ्रातृषु विप्रस्य गता यत्र धनेश्वरः ॥ ५ ॥
 यद्येने नव मुना कि युष्माकां शक्यतां यत्रने मुद्रके
 किय उलझित होकर अपने मन्त्रियोंके साथ कैलास परतपर
 रण बाध है उस वे उस राक्षसके सामने लड़े न हो सके ।
 पर यत्रका भार है देख अनकर यथेष्टम उस स्थानपर
 गये वहाँ बनके स्वामी कुबेर विद्यमान थे ॥ ४५ ॥
 त गाथा सवमाचक्षुभ्रातुस्तस्य विक्षीर्तितम् ।
 भुङ्क्ताय पयुङ्क्ष्य युद्धाय धनत्रं त ॥ ६ ॥
 वहाँ अनर उन्होंने उनके भाइका खण अभिप्राय कह
 सुनाया । उस कुबेरने मुद्रके किये यद्येष्ट आयु वं दी फिर
 त यथ बह हर्षसे भरकर चमकिये ॥ ६ ॥
 तथा बलानां सक्षोभो व्यथयत् इयोद्धवः ।
 तस्य नञ्चुतरात्मस्य दौल सचावलपरिष ॥ ७ ॥
 उस समय पक्षपक्षी सेनाएँ समुद्रक समान धुम्प हा
 उठीं । उनक वेगसे वह परत दिवत—या अन पहा ॥ ७ ॥
 ततो युद्धं समभयद् पक्षराक्षससपुञ्जम् ।
 व्यपितायाभयस्तत्र सचिपा राणसस्य स ॥ ८ ॥
 तदनन्तर यद्ये और यद्येमें पक्षासन युद्ध छिड़ गया ।
 श्री उपनक वे खिच व्यपित हा उठ ॥ ८ ॥
 न ह्यु तावत् सैन्यं द्वाप्रीया निगायत ।
 ह्यन्यत्रान् पशुन् ह्यया स श्वाधादभ्यधापत् ॥ ९ ॥
 अपनी सेनाही देखे दुःख ह्य निगायत द्वाप्रीय वार
 हा ह्यर्यक लिख्य करक उपनक यद्ये और
 देहा ॥ ९ ॥

ये तु तं राक्षसेन्द्रस्य सचिपा मेरुविक्रमा ।
 तेषां सहस्रमेकेके पक्षायां समयोध्यत् ॥ १० ॥
 एष्यपबके च खिच ये, वे बड़े भयकर पराक्रमी थे ।
 उनसे एक-एक खिच ह्यर-ह्यर यद्येसे युद्ध
 करने लगा ॥ १ ॥
 ततो गवाभियुसलैरसिभिः शक्तितोमरे ।
 ह्यमामो द्वाप्रीवस्तस्यैस्य समगाहत् ॥ ११ ॥
 स निरक्षुष्यासयत् तत्र धप्यमामो द्वाशननः ।
 धर्गद्विरिष जीमूषैभारधिरवधत् ॥ १२ ॥
 उस समय यद्य बन्धी भाग रिपनेवाले मयोके समान
 गवाओं, मूखों, शक्यारों एकियों और तोमरोधी वयां
 करने लगे । उनकी चोट ह्यवा हुआ द्वाप्रीव धनुसेनामें
 पुला । वहाँ उसपर इतनी मार पड़ने लगी कि उसे दम
 मालेधी भी डरत नहीं सिंधी । यद्येने उसका बेरा
 रोक दिया ॥ ११-१२ ॥
 न चकार ध्ययां यैध यक्षराक्षै समाहत् ।
 महीधर इवाम्भोदैपावरातसमुक्षितः ॥ १३ ॥
 यद्येके लक्ष्मि माहत् हानेपर भी उद्येने अपने मनमें
 दुःख नहीं माना ठीक उधे तरह, जैसे मेयोहाय बरखपी
 हुई सेकड़ों बलधाययोसे अमिरिक हानेपर भी परत विचलित
 नहीं होता है ॥ ११ ॥
 स महात्मा समुद्यम्य कालद्वयोपमा गदाय ।
 प्रविवेश तथा सैन्यं यक्षान् पमक्षपम् ॥ १४ ॥
 उस महाकाय निगाचरने कासकबके समान भयकर
 गया उठाकर यद्येधी सेनामें प्रवेद्य किय और उन्हें पमक्षक
 पहुँचाना आरम्भ कर दिया ॥ १४ ॥
 स कक्षमिय विक्षीर्णो गुप्तेधनमियाकुलम् ।
 यातमान्तिरिवादीतो यक्षसैन्यं द्वाह तत् ॥ १५ ॥
 पाकुसे प्रबलित हुई अग्निके समान यत्रने दिनकोक
 समान पैसी और ग्य इधनधी मौति भाकुस हुई यद्येधी
 सेनाका सम्पना आरम्भ किय ॥ १५ ॥
 तैस्तु तत्र महामात्यैमहोदरगुक्षविभिः ।
 मय्यावदोयास्त यक्षाः कृत्य वातरियाप्युवा ॥ १६ ॥
 जैसे ह्यवा शरधर्म उड़ा हती है उधे तरह उन
 मयदर और गुक भादि महामन्त्रियोंने वहाँ यद्येध उहार
 कर शक्य । भय व पाही ही लज्यामें बच रहे ॥ १६ ॥
 पयिहत् समग्रहा भन्ता पतिताः समरे क्षिपी ।
 अहह्य दान्तस्तीक्ष्णैरदान् बुगिता रणे ॥ १७ ॥
 फिने ही पय लक्ष्मि आयतने अत्र-भन् हा यद्येके
 धरन समग्रहर्षनं पछापी हा गव । फिने ही लपन्मिमें
 युनि हा मरन तीव लोकोम अट दशाव युव य ॥ १७ ॥

भ्रान्ताभ्याम्योन्मत्तलिङ्गय भ्रष्टराक्षा रणाजिरे ।
 सीदन्ति च तथा यस्ताः फूला इव जलेन ह ॥ १८ ॥
 कोरे एक इर एक-मूलेसे श्लिष्ट गये । उनके भङ्ग राक्ष
 गिर गये और वे सम्पन्नमें उठी तरह धियिष्ठ होकर गिरे
 जैसे क्लेश के गेसे नदीक किनारे टूट पड़ते हैं ॥ १८ ॥
 इतानां गच्छता स्वर्गं युष्मतामथ धायताम् ।
 प्रेक्षतामुपिमहाना न यभूवान्तर त्रिवि ॥ १९ ॥
 भर-भरकर स्वर्गमें जाते भ्रष्टते और दौड़ते हुए बहों-
 की तथा आकाशमें लड़ होकर पुत्र देवनेवाले श्रितिसमूहोंकी
 संख्या इतनी बढ़ गयी थी कि आकाशमें उन सबके सिन्धे
 अण्ड नहीं बैठती थी ॥ १९ ॥
 भर्मास्तु तान् समालक्ष्य यक्षेत्रास्तु महावल्लन ।
 भनाभ्यस्ता महाबाहु प्रेषयामास यज्ञकान् ॥ २० ॥
 महाबाहु पनाभ्यछने उन यक्षोंको मागत देस दूधर
 महाबली पक्षयज्ञोंके पुत्रके सिन्धे मेना ॥ २ ॥
 पतस्निन्मतर राम विस्तीर्णवक्रशाहन ।
 प्रेषितो न्यपतद् यज्ञो नाम्ना सद्योभकष्टक ॥ २१ ॥
 धीरम । इषी बीचमें कुबेरके भैया हुआ संयापकष्टक
 नामक यज्ञ बहों भ्रम पहुँच्यो । उसके क्षय बहुत-सी सेना
 और सवारियों थी ॥ २१ ॥
 सन चक्रेण मारीचो विष्णुमेव रणे हतः ।
 पत्सो भूतले दीक्षात् क्षीणपुण्य इव प्रहा ॥ २२ ॥
 उठने भाते ही मगलान् विष्णुकी मूर्ति चक्रेसे रणभूमिमें
 मारीचपर प्रहार किया । उसके समय होकर वह राक्ष केस्यन-
 से नीचे पृथ्वीपर उठी कर गिर पड़ा जैसे पुण्य क्षीण होने
 पर स्वर्गवासी प्रद बरोंसे भूतस्वर गिर पड़ा हो ॥ २२ ॥
 ससपस्तु मुहूर्तेन स विधम्य निशाचरः ।
 त पररं याधयामास स च भन्मः प्रभुमुपे ॥ २३ ॥
 स पड़ीक पार हाथमें भागेपर निशाचर मारीच विभाम
 करु और भीर उठ यद्येके क्षय पुत्र करने लगा । तब वह
 बध भाग गया हुआ ॥ १ ॥
 ततः काञ्चनविघाह वैदूर्यरजतोहितम् ।
 मयादां प्रतिहातानां त्वारणात्वरमाधिदात् ॥ २४ ॥
 रदनकर राक्षसने कुबेरपुत्रीक परकमें, जिसके प्रत्येक
 अंगमें तुलन रहा हुआ था तथा जो नीलम और चौरिने भी

विभूषित था, प्रवेश किया । वहाँ द्वारपालोंका पत्र कम
 था । वह फटक ही सीमा था । उसके आगे दूधरे लोम न
 था सफ़ते थे ॥ २४ ॥
 त तु राजन् दशमीय प्रविशन्त निशाचरम् ।
 सूर्यभानुरिति ख्यातो द्वारपालो न्यनारवत् ॥ २५ ॥
 म्हाराज श्रीराम । सन निशाचर दशमीय फटकके भीर
 प्रवेश करने लगा, तब सूर्यमनु नामक द्वारपाल
 उठे रोकर ॥ २५ ॥
 स चार्थमाजो यज्ञेण प्रथिवशा निशाचरः ।
 यदा तु यारितो यम न व्यतिष्ठत् स राक्षसः ॥ २६ ॥
 ततस्तोरणमुत्पाद्य तेन यज्ञेण त्वाहितः ।
 उधिर प्रसन्नवन् भाति दौळो भातुक्षयैरिव ॥ २७ ॥
 सन यद्येके रोकरनेर भी वह निशाचर न कष्ट भै
 भीतर प्रविष्ट हो गया तब द्वारपालने फटकमें लो हुए ए
 लमेके उखाड़कर उठे दशमीयके ऊपर वे मार । बस
 घरीसे रक्षकी बात करने करी मन्तो किसी पर्यंत
 रोकरप्रहित कष्ट हात्ता गिर रहा हो ॥ २६ २७ ॥
 स दौलक्षिण्यारभेण तोरणेन समाहृतः ।
 जगाम न क्षतिं धीरो वरदानात् स्वयम्भुवः ॥ २८ ॥
 परंतधिसरके समान प्रतीत होनेवाले उस लमेकी को
 लाकर भी भीर दशमीयकी कोई क्षति नहीं हुई । वह प्रदान
 के वरदानक प्रभावसे उस यद्येके द्वारा मार न कर सका ॥ २८ ॥
 तनेय तोरणेमाद्य पक्षस्तेमभिताडिता ।
 गच्छदपत्त तदा यज्ञो भस्मीकृतवतुस्ताव ॥ २९ ॥
 तब उठने भी बरी लंम उठाकर उसके द्वारा सन
 प्रहार किया इसके यद्यम घरीर चूर-चूर हो गया । फिर उठता
 राक्षस नहीं बिसावी ही ॥ २९ ॥
 ततः प्रदुनुषुः सयै ह्यप्रा रक्षामरकाकमम् ।
 ततो नदीगुहाश्वेय विविशुभयपीडिता ।
 त्यक्तप्रहरणाः भ्रान्ता विपर्यवल्ग्वस्ताव ॥ ३० ॥
 उन राक्षसका यह परक्रम देखकर सभी सन मय गये
 कोई नरियोंमें दूध पड़े और कोई मयसे पीडित हो गुफाओं
 पुत्र गये । सबने अपने हथियार त्याग दिव थ । सभी ब
 गय थ और सबके मुन्धोंकी क्षति थी-भी पड़गयी थी ॥ ३० ॥

इतार्यं श्रीमद्रामायण वाल्मीकीये भारद्वाज्य उपरमण्डल चतुर्त्तमा सर्ग ॥ १४ ॥
 एत प्रथम श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण उपरमण्डल चतुर्त्तमा सर्ग ॥ १४ ॥

पञ्चदश सर्ग

माणिभद्र तथा कुरका पराजय और रत्नगदारा पुष्पक विमानयत्र अपहरण

तनसोदुहय शिवमन्त्रां यशम्रांश्च महप्रशरः ।
 धन्याभ्यस्ता महापदां माणिभद्रमथापरीत् ॥ १ ॥
 म ३४ ५६ (१—५५—६१) पञ्चदश सर्ग ॥

द्वयोपे यद्यनर भवभीता होकर भ्रम रहे हैं । तब अर्धों
 माणिभद्र नामक एक महापक्षने कहा—॥ १ ॥
 राज्य यदि यक्षन्त्र दुरुत्तं पावधतसम् ।

भान्द्राभ्याम्यन्यमालिङ्ग्य च अष्टशस्त्रा रजाजिरे ।
 सीत्स्मिन् च तदा यथा कृत्स्न इव जलेन ह ॥ १८ ॥
 कोर्षे यद्वर एव-वृत्तेसे स्थित गये । उनक अन्न-शस्त्र
 गिर गये और वे अमर-इत्यने तथी तरह शिथिल होकर गिरे
 जैसे कबूतरे केसे नदीके किनारे टूट पड़ते हैं ॥ १८ ॥
 हतानां गच्छन्ता स्वर्गं युष्मत्सामथ भावताम् ।

प्रेक्षतामूर्ध्वनिर्वातां न यमूवास्तर विधि ॥ १९ ॥
 मर-भरकर स्वर्गमें जाते कूटते और दीड़ते हुए यहाँ
 भी तथा आकाशमें लड़के होकर पुन देसनेवाले श्रुतिमूर्खोंकी
 लक्ष्मा इतनी बड़ गयी थी कि आकाशमें उन सबके बिन्धे
 लगाई नहीं भँडवी थी ॥ १९ ॥

भस्मान्नु तान समालक्ष्य यक्षोऽप्रांस्तु महावलान् ।
 धनाभ्यसो महाबाहुः प्रेषयामास यक्षकाम् ॥ २० ॥
 महाबाहु धनाभ्यसने उन यक्षोंका मागत वेक्ष वृत्ते
 महात्मनी बंधवोंको पुनके बिन्धे मेरा ॥ २० ॥

यत्सिन्धुत्सरे राम विस्तीर्णवक्रपाहनः ।
 प्रेषितो न्यपतद् यक्षो माम्ना स्योधकण्ठका ॥ २१ ॥
 भीरव । इती बीचमें कुबेरका नेत्र हुआ लोचकचक्र
 नामक वक्र बहोँ भा पहुँचा । उलके: धन बहुल-थी सेना
 और खारियों थी ॥ २१ ॥

तत्र चक्रेण मारीचो विष्णुनेव रणे हृत् ।
 पतितो मृतले दीप्यात् क्षीणपुण्य इव प्रद्यः ॥ २२ ॥
 उरने आते ही भगवान् विष्णुकी मूर्ति चक्रके रत्नमूर्तिमें
 मारीचपर प्रहार किया । उलके धनक शस्त्र बड़ यक्ष केसास-
 से नीचे पृथ्वीपर उठी तरह गिर पड़ा जैसे पुण्य क्षीण होने-
 पर स्वर्गवासी प्रद बहोँसे भूतभूतपर गिर पड़ा हो ॥ २२ ॥

मत्स्यस्तु मुहूर्तेन च विधम्य निशाचरः ।
 त पर्यं वाधयामास स च भस्माः प्रवृत्तुषे ॥ २३ ॥
 दो पक्षीके बाद हाथमें अपनेपर निशाचर मारीच विधम
 करके लीय और उस यक्षके लक्ष मुन करके लगा । तब बड़
 वक्र माग मरदा हुआ ॥ २३ ॥

तदा काश्चनधिनाई धैर्यूरजतोसितम् ।
 मयायां प्रतिहारणां तोषणान्तरमाविनात् ॥ २४ ॥
 तन्तर राकतने कुबेरपुरीके पारकमें, कितके प्रत्येक
 भद्रमें मुनल बड़ा हुआ था तथा वह मीलम और जौनेने भी

विवृत या प्रवेश किया । वहाँ द्वारपालोंका पहर
 था । वह फटक ही लीया था । उलके अपने वृत्ते
 का कपटे थे ॥ २४ ॥

त तु राजन वृषाधीव प्रविशन्त निशाचरम्
 सूर्यभाजुरिति क्वातो द्वारपालो म्भवारया
 महापत्र भीरव । जब निशाचर वृषाधीव का
 प्रवेश करने लगा: तब सूर्यमण्डल नाम
 उलके रोका ॥ २५ ॥

स पार्यमाणो यज्ञेण प्रविशेश निशा
 चया तु धारितो राम नभस्तिष्ठत् स रा
 ततस्तोरयमुत्पल्य नेम यज्ञेण ता
 दधिर प्रक्षयन् भान्ति शैले धातुम्
 सब यज्ञके रोकनेपर भी वह निशाचर

भीतर प्रविष्ट हो गया तब द्वारपालने फल
 लोकेको उलाड़कर उसे दधमीचके ऊपर
 धारीसे रकभी बाध करने कही
 तेकमिथित चक्रका राजा गिर रहा है
 स दौड़घासिरामेण तोरयन्
 अग्रम न क्षति वीरो धरवानाय्

पवणशस्त्रके कमल प्रतीत ही
 काकर भी वीर वृषाधीचकी कोर्षे धनि
 के बरवानके प्रयाचसे उल यज्ञके इला।
 तमेव तोरजेनाथ परस्पर
 मादध्यत तथा यक्षो भर

तब उरने भी बही लक्ष
 प्रहार किया, इलके फलक धारी
 फलक नहीं खिलायी थी ॥ २
 ततः प्रवृत्तुषु सयें
 लतो मरीचुहादधैव
 स्थकप्रहरणाः धाम्ना
 उल राकतक बड़ पण
 कोरे नदियोंने बूढ़ पड़े भी
 पुन गये । खने अपने ही
 गये थे और लक्षके मुनो

इत्यार्षे श्रीमद्रामायण वाल्मीकीये आदिच्छास्य उत्तराखण्डे चतुर्दश
 सर्ग प्रारंभोऽथ श्रीमदीश्वरिणोऽर्चनं ॥ १ ॥

पञ्चदश सर्ग

माणिभद्र तथा वृषरकी पराजय और रावणद्वारा पुष्पक

तन्मालोत्सव्य विप्रम्लान् यशःश्राव्य महभद्राः । इकार्यं वयस्यर ग
 धनाभ्यसना महापरां माणिभद्रमघाप्रपीत् ॥ १ ॥ माणिभद्र नामक
 भगवान् बदा है—रघुनन्दन । वनापतने देगा शायर्यं जति य

भीषम । तन्मन्त्रं वरमुक्त्वा न एकं बहुतु वही गदा हायमे वी
 और उठे पुष्पाकर कुबेरके मस्तकपर दे मात ॥ १५३ ॥
 एवं स तेनाभिहतो विह्वलः शोणितोसिता ॥ १५४ ॥
 कृष्णमूल इयाशोकं निपापात भनाधिप ।
 इव प्रक्षर उषणद्वार भारत हां वनके स्वामी कुबेर
 रखे नहा उठे और ब्याकुल हां बहते कटे हुए अशोककी
 मूर्ति पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १५३ ॥
 क्वा पद्मादिभिस्त्रय निधिभिः स तदा वृत ॥ १६ ॥
 पद्मोच्छ्वासितस्त्रैस्तु वनमानीय नन्दवन्म ।
 कसभात् पद्म भादि निधियोंक अत्रिडाता देवदण्डोंने
 उन्हें घेरकर उठा लिया और नन्दवनमें से जाकर चेत
 भ्रम्य ॥ १६३ ॥
 निर्वृत्य राक्षसेन्द्रस्त धनव् इष्टमामसा ॥ १७ ॥
 पुण्यक तस्य अघाह विमान उपलक्षयन्म ।
 इव तदा कुबेरद्वे श्वैतश्च रक्षसराज रावण अपने मनमें
 बहुत प्रकृत हुआ और अपनी विषयके चिह्नके रूपमें उठने
 अथ पुण्यकविमान अपने अधिकारमें कर लिया ॥ १६३ ॥
 क्षान्तसम्मसवीत वैभूयमणितोरप्यम् ॥ १८ ॥
 मुद्याश्राष्टप्रतिपद्यन् सर्वकप्रलफळद्रुमम् ।
 ऊ विमानमें खेनेके रूपमें और वैभूयमणिके फटक
 को प । वह सब आरसे माथियोंकी शक्तीसे उका हुआ था ।
 उठे भीतर ऐसे-ऐसे कुछ लगे थे जो सभी श्रुद्धियोंमें फल
 देनेक प ॥ १८३ ॥
 मनोज्ञय कामगम कामरूप विह्वगमम् ॥ १९ ॥
 यथिश्चक्षुननोपान तामकप्रश्नयेद्विकम् ।
 उतरा बेग मनके समान तीव्र था । वह अपने ऊपर बैठे
 हुए कमरोंकी इच्छाके अनुसर सब जगत् या स्रज्जा या तथा
 घटक श्वेत् चारे देख छोड़ा या बहा रूप धारण कर लेता
 था । उस अक्षयचक्रकी विगतमें मलि और मुखमेंकी क्षीरियों
 का तपय हुए खनेकी बेदियों बनी थी ॥ १९ ॥

वैवोपवाह्यमसन्त्यं सदा इष्टिमन्तुलम् ॥ ४० ॥
 यद्वाच्यं भक्तिविश्वं ब्रह्मणा परिनिर्मितम् ।
 वह देवताओंका ही वाहन था और दूटने-दूटनेवाला
 नहीं था । एका देवनेमें सुन्दर और चित्तको प्रकृत करनेवाला
 था । उसके भीतर अनेक प्रकारके आश्चर्यजनक विश्व थे ।
 उसकी दीवारोंपर तरह-तरहके बेल-बूटे बने थे किन्तु उनकी
 निविश्र शोभा हां रही थी । ब्रह्मा (विश्वकर्मा) ने उलका निर्माण
 किया था ॥ ४० ॥
 निर्मित सर्वकर्मैस्तु मनाहरमनुचमम् ॥ ४१ ॥
 न तु शीत न शोष्य च सर्वतुमुल्लव् शुभम् ।
 स तं राजा समराह्य क्षमग क्षीरनिर्जितम् ॥ ४२ ॥
 जित त्रिमुपन मेने वर्षोत्सेकात् सुपुर्मतिः ।
 जित्वा वैभयज्य देयं कैल्यस्तात् समवातरत् ॥ ४३ ॥
 वह सब प्रकारकी मनोवाञ्छित वस्तुओंसे सम्पन्न,
 मनोहर और परम उत्तम था । न अधिक ठंडा था और न
 अधिक गरम । सभी श्रुद्धियोंमें आराम पहुँचानेवाला तथा
 मङ्गलकारी था । अपने पराक्रमसे धीरे हुए उस इच्छानुसार
 चलनेवाले विमानपर आरुढ़ हां अत्यन्त छोटी बुद्धिवाला राजा
 रावण महेश्वरकी अधिकतासे घेरा मानने लगा कि मैंने कौनों
 क्षत्रियोंको धीत किया । इन प्रकार वैभयज्यदेवका पराक्रांत करने
 वह कैलासमें नीचे उतरा ॥ ४१-४३ ॥

स तेजस्ता विपुलमवाप्य त ज्ञय
 प्रत्यापवान् विमलकिरीटहारवान् ।
 रराज वै परमविमानमन्वित्तो
 निशाचराः सवृसि गतो यद्यालसः ॥ ४४ ॥
 निर्मल किरीट और हारस विभूषित वह प्रतापी निशाचर
 अपने तेजसे उत महान् विषयको पाकर उठ उत्तम विमानपर
 आरुढ़ हां जगमण्डपमें प्रस्थित होनेवाले अग्निदेवकी मूर्ति
 शोभा पाने लगत ॥ ४४ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्भागवते वासुदेवीये अष्टादशोऽध्यायः उत्तरकाण्डे षोडशः सर्गः ॥ १५ ॥
 एत इच्छा भीमस्त्रीनिर्मितं अरगामकम् अद्विष्टायक उत्तरकाण्डे षोडशः सर्गः पूरा हुआ ॥ १५ ॥

षोडश सर्ग

नन्दीश्वरका रावणको शाप, भगवान् शङ्करद्वारा रावणका मान भङ्ग
 तथा उनसे चन्द्रहाम नामक सङ्गको प्राप्ति

स जित्वा धनव् राम आनर राक्षसाधिप ।
 महात्मनम्मूर्ति तद् ययी नारयण महत् ॥ १ ॥
 (भागवतकी वृत्त है—) एतुस्तन्मन्त्रं राम ! अपने
 लों कुबेरका शीवकर उपलगाव दधमीर 'उरता' नामक
 मन्त्र काईक इ विनास करने गया जहाँ महात्मन कार्तिकेय
 की उरतेंच हुए थी ॥ १ ॥
 अघारारयद् द्वासीया रीचमं नारयण महत् ॥

गभस्तिजालमधीत द्वितीयमिव भास्करम् ॥ २ ॥
 परों पहुँचकर द्वासीयने दुःखमयी कामिने पुत्र जो
 विनास शरणा (नरकको बंगल) का देना से शिरण
 कर्तव्ये स्तन होनेक कारण दूखे मूर्तिने समान प्रकटित
 हां रता था ॥ २ ॥
 न पयन समापहा कथिद् रम्यधनान्तम् ।
 प्ररत पुण्यक तत्र राम विष्टम्भित तदा ॥ ३ ॥

कञ्च पाप्मणे और नरकमें पढ़ाने, उच समय मेरी बात दुम्हारी समयमें आवेगी ॥ १८ ॥

योहि मोहाद् विपं पीन्था नाथगच्छति दुर्मतिः ।
स तस्य परिणामान्ते ज्ञानीते कर्मणः फलम् ॥ १९ ॥

कञ्च हाटी दुखिताका रूपम श्मेरवय निरकष पीकर मी उसे विप नहीं समयता है उच उकष परिणाम प्राप्त हो जाने पर अपने किये हुए उच कर्मके फलका ज्ञान होता है ॥ १ ॥

द्वेषतानि न नन्दन्ति धमयुक्तन केनचित् ।
यन स्वमीदृश भाष नीतस्तथा न बुद्धयने ॥ २० ॥

दुम्हारे किये स्थापरसे, यह दुम्हारी मानकतेके अनुकर धर्मयुक्त ही क्यों न हा देवता प्रसन्न नहीं होते हैं इच्छिये हम ऐसे क्रूरभावसे प्राप्त हो गये हो परंतु यह बात दुम्हारी क्षमतामें नहीं आती है ॥ २ ॥

मातर पितर विप्रमाधार्थं चायमन्यते ।
स पश्यति फल तस्य प्रतरपञ्चशश गताः ॥ २१ ॥

कञ्च माता पिता ब्राह्मण और आधार्थक अपमान करता है वह समयके वधमें पढ़कर उच पापका फल श्मेरव है ॥ २१ ॥

अमुञ्च हि शरीरे वा न कपोति तपोऽर्जनम् ।
स पश्चात् तन्यते मूढां मृतो गत्वाऽऽरमणो गतिम् ॥ २२ ॥

कञ्च शरीर धर्ममहुर है । इसे पाकर वा तपक उपायन नहीं करता वह मूल मरनेके बाद फिर उसे अपने दुष्कर्मका फल मिळता है पश्चात्प करता है ॥ २२ ॥

धर्माद् राज्य धनं सौख्यमधमाद् बुःकमेव च ।
तस्माद् धर्मसुखार्थाय कृत्वात् पापं विजस्रयेत् ॥ २३ ॥

धर्मसे राज्य धन और सुखकी प्राप्ति होती है । अधर्मसे केवल दुःख ही मंगना पड़ता है अतः सुखके लिये धर्मका व्यवहार करे पापका वर्जना स्थाय दे ॥ २३ ॥

पापम्य हि फलं पुःस्रं तद् भाक्तव्यमिहारमना ।
तस्मात्प्रमापघातार्थं मूढः पापं करिष्यति ॥ २४ ॥

पापका फल केवल दुःख है और उसे स्व ही नहीं मोगना पड़ता है इच्छिये अ मूढ पाप करेगा वह मनो स्वर्ण ही अन्ता बच कर लेगा ॥ २४ ॥

कर्मविप्र हि दुर्बुधेदछन्दो आयत मतिः ।
यादृशं कुरुते कम् तादृशं फलमदनुते ॥ २५ ॥

किसी भी दुर्बुधिये पुनराध (गुण कर्मका अनुग्रह और गुणकीही मग निय किना) स्वेच्छामानसे उचम बुद्धिही प्राप्ति नहीं होगी । वह जेना कर्म करता है जेना ही फल भ्रमण दे ॥ २५ ॥

प्रायं रूप धम पुत्रान् विभ शूरस्वमय च ।
प्राप्नुयन्ति मरा साक निजिन पुण्यकमभिः ॥ २६ ॥

उचरके पुत्रोंके समुक्ति पुत्र रूप बच वेम

वीरता तथा पुत्र अदिकी प्राप्ति पुण्यकर्मोंके अनुग्रहसे ही होती है ॥ २६ ॥

एवं निरयगामी त्व धम्य ते मत्पिचरणी ।
नत्था समभिभाविष्येऽसद्बुद्धेत्पेव निर्वणः ॥ २७ ॥

इसी प्रकार अपने दुष्कर्मोंके कारण दुर्बुधे में नरकमें क्या पड़ेगा क्योंकि दुम्हारी बुद्धि ऐसी पापलक्ष हो रही है । बुद्धिचरियोंसे बात नहीं करना चाहिये वही शार्ङ्गक निरक है अतः मैं भी अब तुमसे कोई बात नहीं करूँगा ॥ २७ ॥

एवमुक्त्वास्तकस्तेन तभ्यामभ्रत्याः समहता ।
मारीचप्रमुखाः सर्वे विमुखा विप्रबुद्धुः ॥ २८ ॥

इसी तरहकी बात उन्होंने रावणके मन्त्रियोंसे भी कही । फिर उनपर शार्ङ्गद्वारा प्रहार किया । इससे अरुत शूकर ने मारीच आदि उन राक्षस बुद्धसे मुँह मोड़कर भ्रमण गर्व ॥ २८ ॥

ततस्तेन व्याप्तवो यक्षेन्नेत्र म्हात्मना ।
गव्याभिहत्ये मूर्ध्नि न च स्थात्वात् प्रकम्पिताः ॥ २९ ॥

तदनन्तर महामना शूकरने अपने ही दाँते उलकके मरुतकर प्रहार किया । उससे आहत होकर भी वह अपने ग्यानसे विचक्षित नहीं हुआ ॥ २९ ॥

ततस्ती राम निष्कन्तो तद्वाप्येव्य महामुचे ।
म विह्वलौ म च भ्रान्तौ तपुभौ यक्षराक्षसौ ॥ ३० ॥

भीराम । तपश्चात् वे दोनों मरु और उलक—शूकर तथा रावण दोनों उच मरुधरमें एक दूसरेपर प्रहार करने लगे परंतु दोनोंमेंसे कोई भी न तो पकड़ता था न पकड़ ही था ॥

आन्वेषमरु तस्मै स मुनेष धन्यस्तथा ।
राक्षसेन्द्रो वाक्येन तपुर्वं प्रत्यचारयत् ॥ ३१ ॥

उच समय शूकरने उकणवर आन्वेषाक्षत्र प्रयोग किया परंतु राक्षसवा उकणने वाक्यप्रकारे द्वारा उनके उच अक्षरोंके ज्ञान कर लिया ॥ ३१ ॥

तपे मायां प्रविष्टोऽसौ राक्षसी राक्षसश्वरा ।
रूपाणा दातसाहस्र विनाशाय चक्षर च ॥ ३२ ॥

तपश्चात् उच राक्षसवाकने उलकी मायाका अभाव किया और शूकरका निनाश करनेके लिये जलती रूप धारण कर लिये ॥ ३२ ॥

व्याप्तो बराहा जीमूतः पर्यतः सागरो हुमः ।
यसो वैत्यलक्ष्मी च सोऽदृश्यत वृशामनः ॥ ३३ ॥

उच काल दशमुल उकण वाप सूभ्र उ मेघ पर्वत उग्र बुध, यउ और शैल तमी रुजोंमें शिलासी बने लगे ॥ ३३ ॥

यह्नि च कगति स्र दृश्यत न स्वती ततः ।
प्रतिपृष्टा ततो राम महत्कृत्वा वृशामनः ॥ ३४ ॥

उचान मूर्ध्नि धनर्व व्याविदृष्य महतीं गदाम् ।
इह प्रसर बह बहुतसे रूप प्रकट करता था । वे रूप ही शिलासी बने थे वह स्वर्ण दृशियकर नहीं होता था ।

क्रमोऽप्यत्र द्रुम परलेख ही मरे आ बुके हा (मरु मरे हुए
 मरनेते क्या काम ?) ॥ २० ॥
 श्चतुर्वीरिण्याप्ये तु वेधे तस्मिन् महात्मनि ।
 देवदुम्भुभयो मनुः पुण्यवृष्टिश्च स्नात्स्वयुता ॥ २१ ॥
 मग्नना भगवान् नन्दीके इत्ना कृते ही देवताओंकी
 बुन्दुमिों पर उनों और आकाशसे पूर्वोंकी क्या होने लगी ॥
 मजिस्तपिन्या स तथा मन्दिषान्य महापथः ।
 पर्यंत तु समासाद्य वाक्यमाह वृशान्तः ॥ २२ ॥
 परतु महाकवी दधानने उर समय नन्दीके उन बकनों
 की बंद परना नहीं की और उर परंतक निरुत्त
 का—॥ २१ ॥
 पुण्यकस्य गतिदिष्ठिमा यत्कृते मम गच्छतः ।
 वमिम शीलमुन्मूल करोमि तय गोपते ॥ २३ ॥
 प्यधुते ! शिषक करण मात्रा कृते समय मरे पुण्यक
 विमनकी गति बक गयी तुम्हारे उर परंतक जो मर मरे
 समने लहा है मैं बइसे उन्हाइ केंछा हूँ ॥ २३ ॥
 चन प्रभायेण भयो नित्य श्रीइति राजपथः ।
 विगतम्य न जालीते भयस्थानमुपस्थितम् ॥ २४ ॥
 किं प्रभायेते शूद्र प्रतिदिन यों राधाकी मोंति श्रीइ
 कइसे ? इन्हे इस जानने मय्य बातक भी पता नहीं है कि
 इनके समस्त मयक स्थान उपस्थित है ॥ २४ ॥
 एवमुन्म्या ततो राम मुजान् विक्षिप्य पथेन ।
 वाच्यमास त शीघ्र स शील समकम्पत ॥ २५ ॥
 भीषम ! ऐस्य कइकर दशमीके परंतक निचके भगने
 मन्त्री मुकार्ये व्यापी और उसे शीघ्र उठा उन्हेका प्रसन्न
 किया । मर परंत दिखने कइ ॥ २५ ॥
 घाल्नात् पथतम्यैय गण्य वेद्यस्य कम्पिताः ।
 च्चाल पावटी ध्यापि तदास्त्रिष्टया महेश्वरम् ॥ २६ ॥
 परंतके दिखनेसे मगान् शूद्रके धारे गय कौप उठे ।
 परंतकी देनी भी बिचलित हा उठों और मगान् शूद्रसे
 निरुत्त गयी ॥ २६ ॥
 कथा राम महादेवो देयातां प्रवरो हरः ।
 पादाङ्गुलैश्च त शील पीडयामास शीलया ॥ २७ ॥
 भीषम ! उर देवताओंमे श्रेष्ठ पापरायी महादेवने उर
 पतको अपने वेरके अंगुलेमे निरुत्तकी ही दया किया ॥
 पीडयाम्नु तत्रस्तस्य शीलस्नभोपमा मुजा ।
 निरिक्ताद्याभावस्तथ सविधास्तस्य रक्षसः ॥ २८ ॥
 फिर हा दशमीकी वे मुकार्ये, जो परंतके लंकोंके समान
 चन पदनी थी उर पहाड़के नीचे दप गयी । मर देव
 यों लहा हुए उर शूद्रक मन्त्री बड़े भावनेमे पद गये ॥
 ररसा तत्र रागाद्य मुजाना पीडयाम् तथा ।
 मुजा विरातः सहना त्रैलोक्यैरेव कम्पितम् ॥ २९ ॥
 उर उरधने रा तथा मन्त्री बंदोंकी पीडाक करण

धर्य बड़े खेरसे निरुत्त—ऐन भयवा आर्त्तनाद किया,
 किस्से लंकों को प्राणी कौप उठे ॥ २९ ॥
 मेनिरे यजमिप्येय तन्वामास्या मुगक्षये ।
 तथा धर्मसु खलिता देया इन्द्रपुरोगमाः ॥ ३० ॥
 उरके मन्त्रियोंने समझा अर प्रसन्नकइ आ गया और
 विनाशकारी वक्रपथ जाने कइ है । उस समय इन्द्र भादि
 देवता मार्गमे बिचलित हा उठे ॥ ३० ॥
 समुद्राद्यापि स्रष्टुम्भाकलिताद्यापि पथता ।
 यथा विद्याधराः सिद्धाः किमेतद्विति चातुयन् ॥ ३१ ॥
 समुद्रोंमे कइर आ गया । परंत दिखने कइे और यक,
 विद्याधर तथा सिद्ध एक घूरेसे घूटने सगे—कइ क्या हो
 गया ? ॥ ३१ ॥
 तोययस्य महादेव मीलकस्यमुमापतिम् ।
 तस्मृते शरण नाम्य पदयामोऽत्र वृशान्तः ॥ ३२ ॥
 उदन्तर दशमीके मन्त्रियोंने उरके कइ—मगान्
 दधाननां अर भाप नीककउ उरकसम महादेवकीं अंशु
 कीकिये । उनके किता वृके किरीधे हम एसा नहीं दखते
 अ यों मगान् शरण दे सके ॥ ३२ ॥
 स्तुतिभिः प्रणतो भूत्या तमेव शरण द्यज ।
 इपालुः शूद्रस्तुषः प्रमात् त विद्याम्यसि ॥ ३३ ॥
 भाप स्तुतियोंकान उन्हे प्रणाम करके उन्हीकी धरकमे
 कइये । मगान् शूद्र बड़े दयालु है । व अंशु शोकर भाप-
 पर इया करीगे ॥ ३३ ॥
 एवमुक्तस्तदामासैस्तुषाय धृगभ्रवज्जम् ।
 नामभिर्विधिभिः स्तोत्रैः प्रणम्य स वृशान्तः ।
 सवत्स्रसहस्रं तु कृतो रक्षसो गतम् ॥ ३४ ॥
 मन्त्रियोंक देसा कइनेपर दशमक रावने मगान्
 धृगभ्रवज्ज प्रणाम करके नाना प्रकारक शानों तथा काम
 बेरके मन्त्रोंकय उरक शवन किया । इर प्रकार शायकी
 पीडासे उठे और स्तुति करते हुए उस रावणके एक हजार
 बर्ष बीत गये ॥ ३४ ॥
 ततः प्रोतो महादेवः शीलामे विष्टिताः प्रभुः ।
 मुकन्था बाम्य मुजान् राम प्राह वाक्य वृशान्तम् ॥ ३५ ॥
 भीषम ! ततमगान् उर परंतक दिखनेपर किये हुए
 मगान् महादेव प्रसन्न हा गये । उन्हेने दशमीकी मुजाओं-
 का उर उरधने मुक्त करक उरके कइ—॥ ३५ ॥
 प्रीतोऽसि तव वीरस्य शार्ङ्गीपाथ वृशान्तः ।
 शीलान्प्रान्तो मु मुकन्थयया राधा मुदाक्याः ॥ ३६ ॥
 यसासखोककप पैतृत् रावित भयमागतम् ।
 तस्मात्स्य राघवो मम माम्ना राजन् भविष्यसि ॥ ३७ ॥
 वृशान्तः ! तुम वीर हा । तुम्हारे परकमम मैं प्रसन्न
 हूँ । तुमने परंतक दख उरके कइर अ भयान्न मयानक
 दप (आर्त्तनाद) किया या उरके मन्त्रीक शरण लंकों

उत्तरे पाठ ही कोरै परंत यः यदौकी कनस्यमी वधी
रमणीय थी । श्रीराम । क्व यह उत्तर चढ़ने लगा तब देखा
हे कि पुष्पक विमानकी गति रुक गयी ॥ २ ॥

विद्युत्स्यं किमिदं कस्मान्नागामत् कामग कृतम् ।
अचिन्तयद् राजसेन्द्रः सचिवीस्त्वैः समावृताः ॥ ४ ॥
किंनिमित्तमिच्छया मे नेदु गच्छति पुष्पकम् ।
पर्यतम्योपरिष्ठस्यं कर्मैद् कस्यसिद् भवेत् ॥ ५ ॥

तब वह उलझाव्रम करने उन मंत्रियोंके साथ मिस्रकर
विचार करने लगा—क्या कारण है कि यह पुष्पक विमान
रुक गया । यह तो स्वामीकी इच्छाके अनुसार चढ़नेवाला
कामा गया है । फिर भागे क्यों नहीं बढ़ता । कौन-सा ऐसा
कारण बन गया जिससे यह पुष्पक विमान मेरी इच्छाके
अनुसार नहीं चल रहा है । सम्भव है इस पर्यंतके ऊपर कोई
ब्रह्मा हा उधीका यह कर्म हो सकता है । ॥ ४ ५ ॥

ततोऽग्रवीत् तन्वा राम मारीचो बुधिकोयिवः ।
नेदु निष्कारणं राजन् पुष्पकं यद्य गच्छति ॥ ६ ॥
श्रीराम । तब बुधिकुच्छक मारीचने कहा—राजन् । यह
पुष्पक विमान जो भागे नहीं बढ़ रहा है, इसमें कुछ-न-कुछ
कारण अवश्य है । अकारण ही ऐसी घटना पड़ित हो गयी
हो यह बात नहीं है ॥ ६ ॥

अथवा पुष्पकमिद् धमद्गन्तान्यथाहृतम् ।
अतो निसम्भ्रमभयद् धन्याभ्यस्तयिताहृतम् ॥ ७ ॥
अथवा यह पुष्पक विमान कुकरके तिर्य वृषेका कारण
नहीं हो सकता इसीलिये उनके बिना यह निरचेष्ट हो
गया है ॥ ७ ॥

इति धान्यान्तरे तस्य कराळाः कृष्णविहस्रः ।
यामनो विकटो मुग्धी मन्वी हस्यमुजो बली ॥ ८ ॥
ततः पार्श्वमुपागम्य भवस्यानुचरोऽग्रवीत् ।
मन्वीभ्ररो वद्यद्योद् राजसेन्द्रमन्त्रिताः ॥ ९ ॥

उनकी इस बातके बीचमें ही भगवान् शङ्करके पार्श्व
मन्वीभर राक्षसके पाठ आ पहुँच आ देहनेमें बड़े विस्वास
थे । उनकी आन्तारिक आत्मे एवं विहस्र बर्षकी थी । वे
नाट करके निश्च इराजाले थे । उनका मन्त्र कुपित और
मुग्धों छोटी छोटी थी । वे बड़े कर्तव्य थे । मन्वीने निराह
हकर उलझाव्रम इरासीकम इस प्रकार कहा— ॥ ८ ९ ॥

नियतस्य ब्रह्मीय दौल श्रीहृदि शंकरः ।
सुपलमगपरासाणां देवगन्धर्वरक्षसाम् ॥ १० ॥
सर्वैरामेय भूतानामगम्यः परतः हृतः ।
ब्रह्मीय । ओट शम्भे । इस परंतपर भगवान् शङ्कर
कीया कर । हे । सर्वो मुख मग यद्य देवता मन्त्री और
राक्षस मन्त्री मन्त्रितोना अन्तः कर्म बंद कर दिया गया है ॥
इति मन्त्रिपथः धृत्या ब्रह्मपाद् वसिष्ठवृक्षदलः ॥ ११ ॥
राजन् तु माघतयनः पुष्पकाद्यपरा सः ।

कोऽयं शङ्कर इत्युक्त्वा दौलमुखमुपागतः ॥ ११
मन्वीकी यह बात सुनकर ब्रह्मीय कुपित हो ठठ
उत्तरे कानोंके कुच्छक दिखने लगे । भौलें ऐसे लम्ब
गयी और वह पुष्पकते उत्तरकर बोझ-भौन है यह शङ्कर
ऐसा कहकर यह पयतके मूकभ्रममें आ गया ॥ ११ १२

सोऽपश्यन्नभिनितं तत्र देवस्यादूरतः स्थितम् ।
धीतं शूलमधप्रम्यं द्वितीयमित् शङ्करम् ॥ १३
वहाँ पहुँचकर उत्तरे देखा, भगवान् शङ्करते खेकी
वृत्पर चमचमाता हुआ शूल हाथमें लिये मन्वी वृत्ते धि
गति करे हैं ॥ ११ ॥

तं दृष्ट्वा धातरमुखमवज्ञाय स राजसदः ।
प्रहासं मुमुक्षे तत्र सतोय इव तोषदा ॥ १४
उनका मुँह बानरके समान था । उनमें देखाकर
निशाचर उनका तिरस्कार करता हुआ सकल जलकरके उ
गम्भीर स्वरमें उवाच मारकर हँसने लगा ॥ १४ ॥

त कुडो भगवान् मन्वी शङ्करस्यापरा तनुः ।
अग्रवीत् तत्र तद् दृष्टो दशाननमुपस्थितम् ॥ १५

यह देख धिबके वृत्ते सकल भगवान् मन्वी कुपित
वहाँ पाठ ही करे हुए निशाचर बरभुक्तते इस प्रकार बोले
पस्यद् धातररूप मामयज्ञाय वृक्षन् ।
अरानीपातसकाशामपहास प्रमुक्तवान् ॥ १६
तस्मान्मद्वीर्यसयुक्ता मद्रूपसमतेजसा ।
अपत्यस्यन्ति धर्भायै हि कुडस्य तय धातरा ॥ १७

ब्रह्मानन । हमने धातररूपमें मुझे देलकर
अनेककाल की है और ब्रह्मपातके समान भयानक अ
क्रिय है । अब हमारे कुच्छक निशाचर करनेक लिय मरे
समान पराक्रम कम और उबले लम्ब धातर उलझ हैं
मलवद्रुपधाः क्रूर ममासम्प्रातरत्सः ।
युद्योगमत्ता यत्नेत्रिकाः दौला इय विसर्पिषा ॥ १८

धूर निशाचर । नल और हँस ही उन बानरोंके
होंगे तथा मनके समान उनका तीव्र वेग होमा । वे कु
लिये उमत्त रहनेजाने और अशिक्षण बन्ध्यायी होंगे
पकले-सिद्धे परतीके समान आन पहुँगे ॥ १८ ॥
ते तद्य प्रचलं वृपमुस्तेषं च पूषन्निधम् ।
अपनेप्यन्ति सम्भूय सहामात्पसुवस्य च ॥ १९

वे एकत्र दोकर मन्त्री और पुत्रौलित हमारे
अभिमानको और विद्यापथाय शनैके गर्वको पूर
कर देंगे ॥ १९ ॥
किं शिवशर्मो मया गन्धं हन्तुं र्वा ह निशाचर ।
म हन्तव्यो हतस्य दि पूवमय स्पृकमभिः ॥
ओ निशाचर । मैं तुम्हें अभी मार डालनेकी
रत्ना है तथापि तुम्हें भासना नहीं है ; क्योंकि अपने कु

बहून्निभोक्त विभित्ते तपस्यामे संख्यन् हा देवाङ्गनाके समान
उरीत हा रही थी ॥ २ ॥

स इष्यु रूपसम्पन्ना कन्यां ता सुमहामिताम् ।
काममोहपरीत्यारमा परमच्छ प्रहसन्निभ ॥ ३ ॥

उत्तम एवं महान् क्लृप्त पाठन करनेवाली तथा स्म-
लेन्कीसि सुगामित उत कन्याको देखकर रावणका विचित्र क्रम
कर्मित मोहके बधीमृत हो गया । उल्लेख महद्वाह्य करते हुए
से पूछा— ॥ ३ ॥

किमिदं वर्तसे भद्रे विरुद्ध यौवनम्य ते ।
नहि युगा तवैतस्य रूपस्यैव प्रतिक्रिया ॥ ४ ॥

भद्रे । इस अपनी इस युवावस्थाके विपरीत यह कैसा
बताव कर रही हो । इसको इस लिये रूपके किये देख
अचरण कदापि उचित नहीं है ॥ ४ ॥

रूप तेऽनुपम भीक्ष कामोत्समाङ्करं मृषाम् ।
न युक्त तपसि स्यात्तुं निर्गतौ ह्येव निर्णया ॥ ५ ॥

मीर । इसको इस रूपकी कभी तुम्हना नहीं है । यह
पुष्पकोके हृदयमें अममनित उन्माद पैदा करनेवाला है । अतः
इसको तपमें संख्यन् होना उचित नहीं है । इसको लिये हमारे
हृदयसे यही निर्णय प्रकट हुआ है ॥ ५ ॥

कन्यासि किमिदं भद्रे कस्य भर्ता धराजने ।
येन सम्मुन्यसे भीरु स करः पुष्यभाग् मुवि ॥ ६ ॥

पूछताः शस मे सर्वे कस्य हेतोः परिभ्रम ।
भद्रे । इस किसकी पुत्री हो । यह कौन-सा मत कर रही
हो । मुनक्ति । इसको पति कौन है । मीर । इसके स्वयं
इसको सम्मुख है । यह मनुष्य इस भूषेकमें महान् पुण्यात्मा
है । मैं को कुछ पूछता हूँ वह एकमुझे बताओ । किस फलके
लिये यह परिभ्रम किया आ रहा है ? ॥ ६ ॥

एवमुक्त्वा तु सा कन्या राघणेन परास्मिन्नी ॥ ७ ॥
अप्रवीट विधिपत् कृत्वा तस्यातिथ्य तपोधना ।

राघवके इस प्रकार पूछनेपर वह कर्णालिनी तपोधना
कन्या उतमत्र विधिवत् आतिथ्य-संस्कार करके बोली— ॥ ७ ॥

कुशाग्रजो नाम पिता प्रह्वर्षितमित्प्रभः ॥ ८ ॥
वृहस्पतिस्तुता धीमान् बुद्ध्या मुष्यो वृहस्पतेः ।

अमितकेश्मी ब्रह्मर्षि भीमान् कुशाग्रज मेरे पिता थे,
जो बृहस्पतिके पुत्र थे और बुद्धिमें भी उन्दीके समान मने
करते थे ॥ ८ ॥

तस्याह कुप्यतो नित्य वेदाभ्यास महात्मना ॥ ९ ॥
सम्भूया वाहमयी कन्या भ्राम्या बन्धवती स्मृता ।

प्रतिदिन वेदाभ्यास करनेवाले उन महात्म्य पितासे
वाहमयी कन्याके रूपमें मेरा प्रादुर्भाव हुआ था । मेरा नाम
बन्धवती है ॥ ९ ॥

तदा देवाः भगवन्धवा यन्परास्तपस्रगमाः ॥ १० ॥
त चापि गत्वा पितरं वरुण रोषयन्ति मे ।

तदा देवाः भगवन्धवा यन्परास्तपस्रगमाः ॥ १० ॥
त चापि गत्वा पितरं वरुण रोषयन्ति मे ।

जब मैं यही हुई, तब देवता, गन्धर्व, यक्ष राक्षस और
नाग भी पिताकीके पास जा-आकर उनसे मुझे माँगने लगे ॥ १० ॥

न च मां स पिता तन्म्यो वृत्तवान् राक्षसेभ्यश्च ॥ ११ ॥
कवणं तद् वदिष्यामि निशामय महाभुज ।

महाभुज राक्षसेभ्यः । पिताजीने उनके हाथमें मुझे नहीं
छोपा । इसका क्या कारण था मैं बता रही हूँ सुनिये ॥ ११ ॥

पितुस्तु मम जामाता विष्णुः किल सुरेश्वरः ॥ १२ ॥
अभिप्रेतकिल्लोकेऽस्तस्मान्नाप्यस्य मे पिता ।

वामुमिच्छति तस्मै तु तच्छ्रुत्वा वक्ष्यर्षितः ॥ १३ ॥
शम्भुर्गौमं ततो राज्ञा वैत्यानां कुपितोऽभयत् ।

तेन राज्ञी शयानो मे पिता पापेन हिंसितः ॥ १४ ॥
पिताजीकी इच्छा थी कि धीनों को कौनसे स्वामी देवकर
भगवान् विष्णु मेरे दामाद हों । इसीलिये वे वृक्ष किस्किके
हाथमें मुझे नहीं देना चाहते थे । उनके इस अभिप्रायको
सुनकर बलाभिमानी दैत्यराज शम्भु उनपर कुपित हो उठा
और उस पापीने राक्षसों सेते समय मेरे पिताजीकी हत्या
कर डाली ॥ १२-१४ ॥

ततो मे जननी वीना तच्छरीरं पितुमम ।
परिष्वज्य महाभागा प्रथिष्ठ हन्मवाहनम् ॥ १५ ॥

वृक्षसे मेरी महाभागा माताको बड़ा दुःख हुआ और
वे पिताजीके शवको हृदयसे बजाकर पिताजी आगमें प्रविष्ट
हो गयी ॥ १५ ॥

ततो मनोरथं सत्य पितुर्गौराषण्यं प्रति ।
करोमीति तमेवाहं हृदयेन सम्मुदहे ॥ १६ ॥

वृक्षसे मैंने प्रसिद्धा कर ली है कि भगवान् नायकगके
प्रति प्रियावीक्ष्य को मनोरथ था उसे मैं सख्य करूँगी ।
इसलिये मैं उन्दीको अपने हृदय-मन्दिरमें धारण करती हूँ ॥

इति प्रतिज्ञामादह्य अरामि विपुलं तपः ।
पठत् ते स्वभाष्यात् मया राक्षसपुङ्गव ॥ १७ ॥

यही प्रतिज्ञा करके मैं यह महान् तप कर रही हूँ ।
राक्षसराज । आपके प्रणके अनुसर यह सब बात मैंने आप
को बता दी ॥ १७ ॥

नारायणो भ्रम पतिर्न स्वम्याः पुरुषोत्तमात् ।
आश्रये नित्यम धोर नारायणपरीप्लव्या ॥ १८ ॥

आश्रयण ही मेरा पति है । उन पुरुषोत्तमने सिद्धा वृक्ष
करके मेरा पति नहीं हो सकता । उन नायकभदेवको प्राप्त
करनेके लिये ही मैंने इन कठोर क्लृप्त आश्रय किया है ॥ १८ ॥

विद्यातस्त्व हि मं राजन् गच्छ दीक्षस्यन्मन्त्र ।
जानामि तपसा सर्वं वैलोकेऽप्ये यदि यतत ॥ १९ ॥

आश्रय । पितृस्यन्मदन । मैंने आपको परधान किया है ।
आप ब्रह्म । विश्वधीने का कार्य भी बलुविमान दे बर सब
मैं तपस्याकर आनधी हूँ ॥ १९ ॥

सोऽप्रयीद् राघवो भूयस्तां कन्या सुमहामिताम् ।

खेकोंके प्राणी उ उठे थे, इतलिये राक्षसज । अत्र द्रुम
एकजके नामसे प्रसिद्ध होअये ॥ १६ १७ ॥

देवता मनुष्य यज्ञा ये खाण्ये जगतीत्ये ।

एवं त्वामभिधास्यसि रावण खेकरावणम् ॥ १८ ॥

देवता मनुष्य कस तथा वृक्षे ओ स्मेग भूतजपर
निवास करते हैं वे सब इस प्रकार समस्त खेकोंको बधनेनासे
द्रुम दण्डीबको रावण कहेंगे ॥ १८ ॥

राक्षस पौलस्त्य विद्वान्ध पया येम त्वमिच्छसि ।

मया वैवाप्यनुवातो रक्षसाधिप गम्यताम् ॥ ३९ ॥
पुष्करकन्दन । अत्र द्रुम किञ्च मासि जना चाहो,
केसलके का सकते हो । राक्षसते । मैं मी दुर्गे अपनी ओरसे
बानेकी आज्ञा देव हैं ब्रह्मे ॥ १९ ॥

एवमुक्तस्तु रुद्रेशः शम्भुना स्वयमब्रवीत् ।

प्रीतो यदि महादेव वर मे देहि यावतः ॥ ४० ॥

भगवान् शङ्करके देव करनेपर रुद्रेश्वर बोला—
महादेव । यदि आप प्रसन्न हैं तो वर शीकिये । मैं आपसे
वरकी माचना करता हूँ ॥ ४० ॥

मवप्यत्व मया प्राप्त देवगन्धर्वदलैः ।

रक्षसैरुद्धारकैर्नागीर्यै चाण्ये बलवचराः ॥ ४१ ॥

मैंने देवता, गन्धर्व, दानव, राक्षस, गुरुराक, नाम
तथा अन्य महाबलवासी प्राणियोंसे अवश्य होनेका वर प्राप्त
किया है ॥ ४१ ॥

मातृपान् न गण्ये देव लक्ष्म्यास्तो मम सम्मताः ।

दीर्घमनुष्य मे प्राप्त प्रह्वणक्षिपुरान्तक ॥ ४२ ॥

पाण्डित्यं चायुषा शौर्यं दक्ष त्व च प्रयच्छ मे ।

देव ! मनुष्योंको तो मैं कुछ मिनता ही नहीं । मेरी
गन्धताके अनुसर ऊनकी शक्ति बहुत बड़ी है । त्रिपुरान्तक !
मुझे ब्रह्मादीके द्वारा दीर्घ आयु भी प्राप्त हुई है । ब्रह्मादीकी
ही हुई आमुक्त किन्ता अंध बध गया है वह भी पूरा-कर
पूरा प्राप्त हो क्य (उठने किन्ही कारणसे कमी न हो) ।
देखी मेरी इच्छा है । इसे आप पूर्ण शीकिये । खय ही अपनी
ओरसे मुझे एक छत्र भी शीकिये ॥ ४२ ॥

हृत्कार्यं श्रीमद्भगवाण्ये वाक्मीश्वर्ये आदिशब्दे उच्यते सतोः ॥ १९ ॥

इत प्रकार श्रीवल्मीकीरचिते अर्षेरावण कविकव्यके चरित्रकव्यके सोलहवें सर्ग पूरा हुआ ॥ १९ ॥

सप्तदश सर्ग

रावणसे तिरस्कृत ब्रह्मर्षि-कन्या वेदबचीका उसे क्षाप देकर अग्निमें प्रवेश करना
और दूसर अममें सीताके रूपमें प्रादुर्भूत होना

अथ राजन् महाबाहुर्षिचरन् पृथिवीतले ।

हिमवद्गणमासाद्य परिव्रज्यम रावणः ॥ १ ॥

(अगस्त्यकी करते हैं—) राजन् ! तपभार महाबाहु
रावण भूतजपर विचरता हुआ हिमालयके कनमें आकर बहाँ
तब और पत्कर कन्दे अत्र ॥ १ ॥

एवमुक्तस्ततस्तेन रावणेन स शङ्करः ॥ ४३ ॥
वदौ कर्तुं महातीत कर्तृहासमिति क्षुम् ।

आयुषधावधौर्षं च वदौ भूतपतिस्तथा ॥ ४४ ॥

रावणके देव करनेपर भूतनाथ भगवान् शङ्करने जो
एक अस्फुट शीतिमान् कर्तृहास नामक कर्तृ शिब ओ
उपकी आयुषा को अंध बंध गया था, उन्को मैं
पूरा कर दिया ॥ ४३ ४४ ॥

वराधोषाव तथा शम्भुर्नाबधेयमिन् त्वम् ।

मबहाव यदि हि ते ममोर्षेष्वात्मशरायः ॥ ४५ ॥

उस सङ्कोके देकर भगवान् शिवने कहा— तुम्हें कमी
इतका तिरस्कार नहीं करना चाहिये । यदि दुःखसे हाथ कमी
इतका तिरस्कार हुआ तो यह फिर मेरे ही पक्ष ओट अनेक
इसमें संशय नहीं है ॥ ४५ ॥

एवं महेश्वरेणैव हृत्नामा स रावणः ।

अभिवाद्य महादेवमादरोहाय पुण्यकम् ॥ ४६ ॥

इस प्रकार भगवान् शङ्करसे नमननाम पाकर रावणने उन्हें
प्रणाम किया । तपभार वह पुण्य किमानपर आरुप हुआ
उन्को महीतकं एम पर्याप्तमत रावणः ।

शत्रियान् सुमहावीर्यान् बाधस्तनस्तजकताः ॥ ४७ ॥

भीरुम । इसके बाद रावण उन्की पृथीपर शिथिलके
छिने भ्रमण करने अत्र । उठने इधर-उधर आकर बहुतसे
महापराकमी क्षत्रियोंको पीड़ा पहुँचायी ॥ ४७ ॥

केचित् तोक्ष्वित्तः शूराः शत्रिया युवयुग्मेभः ।

तच्छससमकुर्वन्तो विमेषुः स्वपरिच्छयाः ॥ ४८ ॥

किन्तने हीतेकली क्षत्रियको बड़े ही क्षयीर और रणेनय
ये रावणकी आज्ञा न माननेके कारण सेना और परिवार
सहित नष्ट हो गये ॥ ४८ ॥

अपरे तुर्ज्वर्यं रक्षो जानन्तः प्राक्षस्तम्मताः ।

किताः स ह्यभयान्त राक्षस बलवर्षितम् ॥ ४९ ॥

वृक्षे क्षत्रियोंने जो बुद्धिमत् माने जाते थे और उस
राक्षसको अनेक समकते थे उस बलमिमानी निष्कारके
खमने अपनी पराजय स्वीकार कर ली ॥ ४९ ॥

हृत्कार्यं श्रीमद्भगवाण्ये वाक्मीश्वर्ये आदिशब्दे उच्यते सतोः ॥ १९ ॥

इत प्रकार श्रीवल्मीकीरचिते अर्षेरावण कविकव्यके चरित्रकव्यके सोलहवें सर्ग पूरा हुआ ॥ १९ ॥

सप्तदश सर्ग

रावणसे तिरस्कृत ब्रह्मर्षि-कन्या वेदबचीका उसे क्षाप देकर अग्निमें प्रवेश करना
और दूसर अममें सीताके रूपमें प्रादुर्भूत होना

अथ राजन् महाबाहुर्षिचरन् पृथिवीतले ।

हिमवद्गणमासाद्य परिव्रज्यम रावणः ॥ १ ॥

(अगस्त्यकी करते हैं—) राजन् ! तपभार महाबाहु
रावण भूतजपर विचरता हुआ हिमालयके कनमें आकर बहाँ
तब और पत्कर कन्दे अत्र ॥ १ ॥

तत्रापश्यत् स वै कन्या कृष्णाक्षित्तमदाश्रयम् ।

अप्येन विधिना वैनां शीघ्रमतीं देवतामिव ॥ २ ॥

बहाँ उठने एक तपस्विनी कृष्णको देखा जो अपने भाई-
में काले रंगका मृगकर्म तथा तिरपर बड़ा भारव किने हुए थी ।



तपस्वि-कन्या वेदवतीक द्वारा रावणक्री भर्त्सना एव अप्रियवेगुप्ती हैयारी

अथ दद्यात् विमान्यप्राप्तुं कन्वर्षदारपीडिता ॥ २० ॥

यह सुनकर उवण कामनापते पीडित हा विमानते उठर गया और उस उत्तम एवं महान् ब्रह्म पासन करनेवाली कथासे फिर बोझ—॥ २ ॥

अथ सिद्धयसि सुभोगि यस्वयस्ते मतिरीहरी ।

दृष्टाना मृगशय्यासि आहते पुण्यस्यया ॥ २१ ॥

‘सुभोगि । द्रम गर्वीकी धान पकड़ी हो उमी तो द्रमारी बुद्धि देखी हो गयी है । मृगशावकसेचने । इस तरह पुण्यका फल दृष्टी किन्तु ही शोभा देता है द्रम-मेथी पुकतीको नहीं ॥ २१ ॥

त्व सर्वगुणसम्पन्ना गार्हसे वक्तुमीहशाम् ।

शैलोक्यसुसूरी भीरु यौयमं तऽतिकर्तते ॥ २२ ॥

‘द्रम तं सर्वगुणसम्पन्न एवं शिखेकीकी अक्षिणीय सुन्दरी हा । द्रमों देखी बात नहीं कहनी चाहिये । भीरु । द्रमारी पत्नी कीती का रही है ॥ २२ ॥

अहं लङ्कापतिर्भद्रे दशमीष इति भुजः ।

तस्यम भव भार्या त्व भुक्त्व भोगान् यथासुखम् ॥ २३ ॥

मद्रे । मैं लङ्काका राजा हूँ । मेरा नाम दशमीन है । द्रम मेरी भार्या हा बच्यो और द्रमपूर्वक उत्तम भोग भोगे ॥ २३ ॥

काञ्च वाचवृत्ती य त्वं विष्णुरित्यभिभाक्से ।

वीर्येण तस्मा वीर्य भोगेण च बडेण च ॥ २४ ॥

च मया नो समो भद्रे य त्व कर्मयतेऽहने ।

‘पहले वह तो बराभा द्रम जिसे विष्णु कही हो वह कौन है ? अहने । मदे । द्रम जिसे चाहती हो वह बक-पदकम तप और भोग-वैभवके द्वारा मरी ध्यानवा नहीं कर सकता ॥ २४ ॥

इत्युक्तवति तसिस्तु येद्वयस्य सावधीत् ॥ २५ ॥

मा मैवमिति सा कन्या तमुयाव निशाचरम् ।

उत्तमे देश कन्दनेर कुमारी वैदवती उव निशाचरसे बोधी—वही, नहीं ऐसा न कहा ॥ २५ ॥

शैलोपयाभियसि विष्णु सर्वलोकात्मवर्द्धतम् ॥ २६ ॥

स्वहृत् रक्षसेन्द्रस्या कोऽपमन्येत बुद्धिमान् ।

‘पाठतपञ्च । भगवान् विष्णु कीनों केभीके अभियसि है । खर संकर उनके चरणीमें मसक हाफर है । द्रमारे सिंहा वृष्या कौन पुत्र्य है, जो बुद्धिमान् होकर भी उनके अशरेकना करेगा ॥ २६ ॥

पपमुक्तस्या तत्र वेदयस्या निशाचरः ॥ २७ ॥

मूर्ध्निषु तदा कन्या कपट्रेण पराधुशत् ।

वैदवतीके पंच कन्दनेर उस राक्षसे अपने हाथसे उस कन्याके चम पकड़ लिया ॥ २७ ॥

ततो यद्वती श्रुत्वा केवान् इस्तेन साभिजन्त् ॥ २८ ॥

अविर्भूत्वा करस्तस्याः कथादिप्राप्तवाक्येत् ।

इससे वैदवतीको बड़ा श्रेय हुआ । उतने अपने हाथसे उन केनोंको काट दिया । उसके हावने लक्ष्मण कानन लक्ष्मण

उत्तमे केनोंका महाकसे भस्म कर दिया ॥ २८ ॥

सा ज्वलन्तीव रोषेण वृहन्तीव निशाचरम् ॥ २९ ॥

उवावाप्ति सम्भाषय मरुत्तय कुलकटा ।

वैदवती रोषसे प्रज्वलित-सी हा उठी । वह का मरनेके किने उतावली हो अग्निकी रूपना करके उस निशाचरका बग कही हुई-सी बोधी—॥ २९ ॥

धर्षित्यास्तवधानार्थं न मे जीवितमिच्छते ॥ ३० ॥

रक्षस्तस्मात् प्रवेक्ष्यामि पश्यतस्ते हृत्वाणम् ।

‘नीच राक्षस । दने मेरा किरलकर किना है, अतः मर इव जीवनको सुरक्षित रखना मुझे अभीष्ट नहीं है । इत्तने तेरे देखते-देखते मैं अग्निमें प्रवेश कर जाऊँगी ॥ ३० ॥

पश्यत् तु धर्षिता आर्धं त्वया पापतमन्ये क्ले ॥ ३१ ॥

तस्मात् तव वधार्थं हि समुत्पश्यसे ह्य पुनः ।

‘द्रम पापाप्ताने इव वनमें भेद्य भस्मन किना है । इत्तने मैं तेरे बचके किने फिर लक्ष्य होऊँगी ॥ ३१ ॥

गहि शक्यः क्षिया हस्तु पुत्रवः पपनिहन्ता ॥ ३२ ॥

शापे त्वयि मयोस्तुते तपसस्य व्यबो भवेत् ।

‘कौ अपनी धारीक शक्तिसे किसी पापकारी पुत्रव बप नहीं कर सकती । यदि मैं द्रोणे शाप हूँ तो मेरी लक्ष्य हीन हो सकती ॥ ३२ ॥

यदि त्यक्ति मया किञ्चित् कृत वत् हृतं तथा ॥ ३३ ॥

तस्मात् त्वयोनिका साध्वी भवेवं धर्मिणा मुख ।

‘यदि मैं कुछ भी लक्ष्मी, वन और भेद्य किने हो तो अनाक कर्ममें मैं छठी-रखी अयोगिनिक कन्याके कर्ममें प्रकृत होऊँ तथा किसी धर्मात्मा विवाही पुत्री बूँ ॥ ३३ ॥

पपमुक्त्वा प्रविद्या सा ज्वलितं आतवेदवत् ॥ ३४ ॥

पपात च विबो विन्वा पुण्यशुद्धिः क्षमलता ।

‘ऐक कपडक वह प्रज्वलित अग्निमें ध्या गयी । उस क्षम उरुके चारों ओर अक्षयसे दिव्य पुण्यकी बर्षा होने लगी ॥ ३४ ॥

पुण्येव समुत्सृज्य पथे पथसमाहता ॥ ३५ ॥

तस्मादपि पुनः प्राप्ता पूर्ववत् तेल रक्षता ।

‘तदनन्तर वृक्षे कर्ममें वह कन्य पुनः एक कपडके मफर हुई । उस क्षम उरुकी शक्ति कपडके लक्ष्मण ही सुनर भी । उस राक्षसे पहलेकी ही शक्ति फिर बहती थी उस कन्याको मात कर किया ॥ ३५ ॥

कन्या क्षमसगर्भार्थं प्रपृष्टा स्वगृहं ययौ ॥ ३६ ॥

प्रपृष्टा रावणस्तुतेर्ता वशीयामास मन्त्रिणे ।

‘क्षमके कीवरी मागके समान सुन्दर कपडककी उव कन्याको भेद्य राजक अपने घर गया । वही उतने मन्त्रीको वह कन्या दिखायी ॥ ३६ ॥

सङ्गमो निरीक्ष्यैव रात्रण वैधमप्रयीत् ॥ ३७ ॥
 युद्धमैवा हि सुभोगी त्ववृषधायैव हृदयते ।
 मन्वी बाहव-वासिष्ठयोके छत्रयोश्चो बाननेवाव्य या । उक्ते
 असे मन्वी तत्र ऐसकर रात्रणसे क्वा—पाक् । यह सुन्दरी
 क्य वरि परमे रही तो आपके बचक ही करण होगी, ऐस
 क्कर देहा ब्या है ॥ ३७ ॥
 एतप्पुत्वार्यये राम ता प्रविशेप रात्रणः ॥ ३८ ॥
 सा वैय सिधिमिमासाद्य यज्ञायतनमभ्यगा ।
 रात्रो हृत्मुखोत्कृष्टा पुनरप्पुस्थिता सती ॥ ३९ ॥
 श्रीराम ! यह सुनकर रात्रणने उसे छत्रमें वैक दिया ।
 क्यबात् वह भूमिसे प्राप्त होकर रात्र अनकके यत्नरूपके
 मन्मथी भूम्यगमें जा पहुँची । वहाँ रात्राक हृत्से मुखभागने
 उस भूम्यगके बोते बानेपर वह लती लखी क्यवा फिर प्रक
 हो गयी ॥ ३८ ३९ ॥
 सैव जनकराजस्य प्रसूता तनया प्रभो ।
 तव भार्या महाबाहो विष्णुस्त्व हि सनातनः ॥ ४० ॥
 प्रभे ! वरी यह वेदवती महारात्र अनककी पुत्रीके रूपमें
 मातृवृत्त हो आपकी पत्नी हुई है । महाबाहो ! आप ही
 क्यजन विष्णु हैं ॥ ४० ॥
 पूर्व मोधहत शत्रुर्ययासी निहतस्तया ।
 इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बाह्मीक्याम् उत्तरकाण्डे त्सादश सर्गः ॥ १० ॥
 इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित अष्टादशस्कन्धे उत्तरकाण्डमें सत्रहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १० ॥

उपाधयित्वा दौलाभस्तय वीर्यममानुषम् ॥ ४१ ॥
 उठ वेदवतीने पहले ही अपने रोपप्रतिष्ठ शत्रुके द्वारा
 आपके उठ पर्यताकर शत्रुको मार बाधा या, जिसे अब अपने
 आक्रमण करके मौतके पाठ उठाया है । प्रभे ! आपका
 पराक्रम अद्वैतिक है ॥ ४१ ॥
 एधमेया महाभागा मर्त्यैरूपत्पत्यते पुनः ।
 क्षेमे हृत्मुखोत्कृष्टे घेष्टामग्निशिक्षोपमा ॥ ४२ ॥
 इस प्रकार यह महाभाग्य देवी विभिन्न कर्तव्योंमें पुनः
 उतनबचक उद्वेपसे मर्त्यलोकेमें अकृतीर्ण जाती रहेगी । यहवेदी
 पर अग्निधियाके समान हृत्से बने गये क्षेत्रमें इत्थ
 अग्निर्मात्र हुआ है ॥ ४२ ॥
 यया वेदवती नाम पूर्वमासीत् हृते युगे ।
 त्रेतायुगमनुप्राप्य यथायं तस्य रत्नसः ॥ ४३ ॥
 उत्पन्ना मैथिलकुले जनकस्य महात्मनः ।
 सीतोत्पन्ना तु सीतेति मानुषैः पुनरुच्यते ॥ ४४ ॥
 यह वेदवती पहले सत्ययुगमें प्रकट हुई थी । फिर त्रेतायुग
 आनेपर उठ रात्र उतनके बचक क्रिय सिधिसम्पत्ती रात्र
 अनकके कुलमें सीतारूपसे अकृतीर्ण हुई । सीता (एक बेटेने
 से भूमिपर बनी हुई देखा) से उत्पन्न होनेके कारण मनुष्य
 इस देवीको सीता कहते हैं ॥ ४३ ४४ ॥

अष्टादश सर्ग

रात्रणद्वारा मरुचकी पराजय तथा इन्द्र आदि देवताओंका मयूर आदि पशियोंको धरदान देना
 प्रविष्टाया हुतात् तु वेदवत्या स रात्रणः ।
 पुनर्क तु समागद्य परिचक्राम मेदिनीम् ॥ १ ॥
 मन्मथकी कृत है—रघुनन्दन । वेदवतीके अग्निमें
 मने कर बानेपर रात्रण पुण्यकविमानपर आकट हो क्षीरर
 न मर प्रयाग करने लगा ॥ १ ॥
 त्वा मरुत् नृपति यजन्त सह क्षियते ।
 दतीरवीजमासाद्य वृद्धा स तु रात्रण ॥ २ ॥
 उरी काशमें उदीरबीज नामक वृक्षमें पहुँचकर रात्रणने
 तत्र रात्र मरुत् देवताओंने आप बैठकर मत कर
 गे ॥ २ ॥
 मरुतो गाम द्रव्यणिं सास्ताद् भ्राता वृद्धस्पतः ।
 यत्रयामाम धर्मसः सर्वैर्देवगणैर्भुतः ॥ ३ ॥
 मरुत्कन काश्यात् वृद्धसन्निभे माई तथा धर्मने ममता
 बनेगा मरुतों तरनें कर्णुं देवताओंने धिरे रहकर बर
 से कर ॥ ३ ॥
 द्वा गाम्बु सद् वसा यत्पानेन बुजयम् ।
 निरग्न्यानि समाविष्टास्तस्य धरणाभीरया ॥ ४ ॥
 इन्द्रके रात्रणने किरण दीक्षा करीम हा गया था

उठ रात्र उतनको वहाँ देखकर उसके आक्रमणमें मयभीत
 हा देवताओंका तिर्यग्योनिमें प्रवेश कर गय ॥ ४ ॥
 इन्द्रो मयूरः सवृषो धमराजस्तु धायसः ।
 कृकल्पसो धनाप्यसो हसद्य धरुणोऽभवत् ॥ ५ ॥
 इन्द्र मोर धर्मरात्र श्रीमा कुनेर गिरगि और बरुण
 हंस हो गये ॥ ५ ॥
 अन्यप्यपि गतप्येय देवप्यग्निपूजित ।
 रात्रणः प्राविशद् यत्र स्वारमय इयानुचि ॥ ६ ॥
 शत्रुघ्नन श्रीराम ! इयै तत्र दूरा दूरे देवता भी जय
 विभिन्न रूपोंमें मिल हा गय तप रात्रणने जग यत्नमद्वयमें
 प्रवेश किया माना वारी अन्विय युत्ता वरी भू गया हा ॥ ६ ॥
 तं च राजानमासाद्य रात्रणो रात्रात्माधिपः ।
 प्राद युज प्रयच्छति निजिनेऽर्त्मानि वा यद् ॥ ७ ॥
 रात्र मन्मथ पात्र पहुँचकर रात्रमन्त्र रात्रणने क्वा—
 भुमने पुत्र पत्र वा करने गय वर दा हि मे पानि
 हा गय ॥ ७ ॥
 ततो मरुत्ता नृपतिः का भयानियुपाय तम् ।

सस्रजको निरीक्ष्यैव रावण सैवमग्रवीत् ॥ ३७ ॥
 बृहन्वीर्यं हि सुभोजी त्वत्पुत्रभाषैव वदत्यते ।

मन्त्री बाहक-पाक्षिभ्रातृके लक्ष्मीको अनेनेवाला था । उसने उसे अच्छी तरह देखकर रावणसे कहा—'शुभम् । यह सुन्दरी कन्या यदि परमे रही तो आपके पक्षी ही कारण होगी; ऐसा कल्प देना शक्य है' ॥ ३७ ॥

पञ्चकुत्सार्णवे राम ता प्रविशेप रावणः ॥ ३८ ॥
 स्य सैव क्षितिमासाद्य यद्वायतनमप्यगा ।

एषो हलमुक्तोक्तया पुनस्पृश्वित्वा सती ॥ ३९ ॥
 भीरवम् । यह सुन्दर रावणने उसे समुद्रमें फेंक दिया । कल्पवृक्ष यह भूमिको प्राप्त होकर रावण बनाकर मन्वन्तवृषके मन्वन्तरी भूमिगतमें था पहुँची । वहाँ रावणके हस्तके मुक्तपागले उस भूमिगतके ओते जानेपर यह छती खम्बी कन्या फिर प्रकट हो गयी ॥ ३८ ३९ ॥

सैव जनकराजस्य प्रसूता तनया प्रभो ।
 त्वय भार्या महाबाहो विष्णुस्थ हि सनातनः ॥ ४० ॥

प्रभो ! वही यह वेदवती मन्वन्तवृष बनाकर पुत्रीके रूपमें प्रादुर्भूत हो आपकी पत्नी हुई है । महाबाहो ! आप ही ज्ञातन विष्णु हैं ॥ ४० ॥

पूर्वं भ्येषदतः शत्रुययासी निहतस्तया ।
 इकार्षे भूमिद्रामाकरो वाक्सीकीय भाविकाण्ये उत्तरकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ १० ॥

इस प्रकार श्रीवामनीकिरीटित अक्षराण्यमया अक्षरिभ्यः उत्तरकाण्डे सप्तमः सर्गः पूरा हुआ ॥ १० ॥

अष्टादश सर्ग

रावणद्वारा मरुचकी पराजय तथा इन्द्र आदि देवताओंका मपूर आदि पशियोंको वरदान देना

प्रविश्यायां इवारा तु वेदपय्या स रावणः ।
 पुष्पकं तु समान्द्र्य परिचक्राम मेदिनीम् ॥ १ ॥

अमृतपयी कहते हैं—'सुन्दर । वेदवतीके अग्निमें प्रवेश कर अनेपर रावण पुष्पकसिमानवर आरुद्र दो पुत्रीपर लक्ष्मण प्रमत्त करने लगा ॥ १ ॥

तस्यो मरुत्त नृपति यजन्त सह व्रियतीः ।
 उशीरवीर्यमासाद्य वृशं म सु रावणः ॥ २ ॥

उसी वाकमें उशीरवीर्य नामक वेशमें पहुँचकर रावणने राजा पाश मरुत्त देवताओंके साथ बैठकर वक्त कर रहे हैं ॥ २ ॥

सवर्तो नाम प्रस्यपिः सप्तमाद् भ्राता यूहस्पतः ।
 पाशपातारम् धर्मैः सद्यैर्पगणीर्षुताः ॥ ३ ॥

उस समय राजा वृहस्पतिके भाई तथा धर्मके ममको वन्दनेवाले नवर्षित संवर्त सण्ण्य देवताओंसे पिरे रहकर वर पत्र रूप में हैं ॥ ३ ॥

एता वंशान्पु सद् वृक्षो यद्वानेन जुहयाम् ।
 नियन्त्यानि समाविष्टास्तस्य धरणभीरवः ॥ ४ ॥

इसकाईके वरदानने क्रिये कीतना कठिन हो गया था

उपाभयित्वा दौलाभस्तय वीर्यममानुपम् ॥ ४१ ॥

यस वेदवतीने पकटे ही अपने रोयमनित शत्रुके द्वारा भायके उस परताकर शत्रुको मार बाध था; किन्तु अब आपने आक्रमण करके मोतके घाट उखर है । प्रभो ! अथवा प्रयत्न अश्लीक है ॥ ४१ ॥

पयमेया महाभागा मत्पूर्वपुत्रस्यते पुनः ।
 क्षेत्रे हस्मुक्तोक्तये वेधामग्निशिखोपमा ॥ ४२ ॥

इस प्रकार यह महाभाग देवी विभिन्न कल्पोंमें पुनः रावणवक्त्रके उद्देश्यसे मत्पूर्वकोमें अवतीर्ण होती रहेगी । मन्वन्तरी पर अग्निशिखाके समान हस्तके ओते गये क्षेत्रमें इच्छा आभिर्मान हुआ है ॥ ४२ ॥

एया वदत्यती नम पूर्वमग्रवीत् कृते युगे ।
 जैतायुगमनुप्राप्य यथार्थं तस्य रक्षसाः ॥ ४३ ॥

उत्पन्ना मेघिलकुले जनकस्य महारथिनः ।
 सीतोत्पन्ना तु सीतिति मानुषैः पुनरुच्यते ॥ ४४ ॥

यह वेदवती पकटे लक्ष्ययुगमें प्रकट हुई थी । फिर त्रेतायुग आनेपर उस राक्षस रावणके पक्षके सिन्धु मिथिसाक्षरी रावण बनाकर कुसुमें वीतारूपसे अकतीर्ण हुई । सीता (इस ओतेनेसे भूमिपर कनी हुई देखा) से उत्पन्न होनेके कारण मनुष्य इस देवीको वीता करते हैं ॥ ४३ ४४ ॥

इकार्षे भूमिद्रामाकरो वाक्सीकीय भाविकाण्ये उत्तरकाण्डे सप्तमः सर्गः ॥ १० ॥
 इस प्रकार श्रीवामनीकिरीटित अक्षराण्यमया अक्षरिभ्यः उत्तरकाण्डे सप्तमः सर्गः पूरा हुआ ॥ १० ॥

उस राक्षस रावणको वहाँ देखकर उठके आक्रमणसे मयभीत हो देवतासंग त्रिर्षगयोगिमें प्रवेश कर गये ॥ ४ ॥

इन्द्रो मयूरः सद्युक्तो धर्मराजस्तु धायसा ।
 वृकलासो धनाप्यसो हसन्न वरुणोऽभयत् ॥ ५ ॥

इन्द्र मोर धर्मराज श्रीमा कुयेर गिरगि और वरुण हंस हो गये ॥ ५ ॥

अभ्येष्वपि वतप्येयं वेपेप्यरिनिपूहम् ।
 रावणः प्राविशद् यथ साग्मेप हवाशुचिः ॥ ६ ॥

शत्रुवदन भीरवम् । इसी तरह वृक्ष वृक्षे देवता भी अब विभिन्न रूपोंमें खित हो गये तब रावणने उग वरुणरूपमें प्रवेश किया मानो कोई अत्यन्त बुद्धा बरों आ गया हो ॥ ६ ॥

तं च राजानमासाद्य रावणो राशसाधिपः ।
 माह मुञ्च प्रपञ्चेति निर्जितोऽसीनि या यद् ॥ ७ ॥

रावण मरुचको पास पहुँचकर रावणराज रावणने कहा— मुझसे मुक्त करो या अनेने मुँग वरुण कह दो कि मैं पराजित हो गया ॥ ७ ॥

तस्यो मरुत्तो नृपतिः को भयानिरयुवाच तम् ।

भवहासततो मुक्त्वा रावणो धाक्यमप्रधीत् ॥ ८ ॥

तत्र राजा मरुत्तने पृथा—आप क्रौन है । उनका प्रथम
दुःखकर रावण हैत पदा और बोध— ॥ ८ ॥

अकुम्हृत्प्रभवेन प्रीत्योऽसि तत्र पार्थिव ।

धनवस्थानुर्गं यो मां तावगच्छसि रावणम् ॥ ९ ॥

‘पृथा’ । म कुबेरका छोटा भाई रावण हैं । फिर भी इस
मुझ नहीं बनते और मुझे देखकर भी तुम्हारे मनमें न तो
क्रोध हुआ न मग ही इतने मैं तुम्हारे ऊपर बहुत
प्रसन्न हूँ ॥ ९ ॥

त्रिषु लोकेषु क्रोऽस्योऽस्ति यो म जानाति मे वसम् ।

अन्तर येन निश्चिप्य विमानमिव्महाह्वतम् ॥ १० ॥

‘पीनों’ अर्थात् तुम्हारे विना वृषभ क्रौन ऐत्र राज होना
मे मेरे बन्धने न जानता हो । मैं वह रावण हूँ जिसने अपने
भाई कुबेरका भीतर यह विमान छिपि लिया है ॥ १ ॥

क्ता मरुत्तः स धूपस्त रावणमथाप्रधीत् ।

धस्यः ससु भवान् येन ज्येष्ठो भ्राता रणे जितः ॥ ११ ॥

तत्र राजा मरुत्तने रावणसे कहा—तुम पत्न हो जिसने
अपने बड़े भाईको रणभूमिमें पराजित कर दिया ॥ ११ ॥

न त्वया सहादा स्वाभ्यस्त्रिषु लोकेषु विद्यते ।

कं त्वं प्रापकेर्धर्मं चरित्वा सस्यवान् परम् ॥ १२ ॥

‘तुम्हारे जेव सहानीय पुत्रप तीनों अर्थात् वृषभ क्रौन
नहीं है । तुमने पूर्वजर्धमें किस द्वारा धर्मका आचरण करके
वर प्राप्त किया है ॥ १२ ॥

धृतपूर्वं हि न मया भायसे साहादा स्वभम् ।

विश्वनाथी न मे जीवन प्रतिपास्यसि दुर्मते ॥ १३ ॥

अथ त्वां मिश्रितैर्वापैः प्रेययासि धमस्तथम् ।

‘तुम स्वयं मे कुछ कह रहे हो ऐसी बात मैंने पहले
कभी नहीं सुनी है । तुम्हें । इस समय कहे या प्यो । मेरे
हाथसे भीजित बन्धन नहीं था उम्हें । आज अपने पौने
बाजोसे मारकर तुम्हें मरनाका पहुँचाने बैठा हूँ ॥ १३ ॥

ततः शारस्तनं शुद्ध सायकान्वा नराधिपः ॥ १४ ॥

ग्याय जिययौ मुञ्चः सवर्तो मार्यामाणोऽथ ।

तदनन्तर एव मरुत्त वनुप-नाल सेकर वह ऐत्रके
काय मुझके जिये निकसे परंतु मरिचें उभरते उनका पला
एक किया ॥ १४ ॥

सोऽप्रवीत् स्नेहसंयुक्त मरुत्त त महावृग्निः ॥ १५ ॥

आतर्ध्वं यत्रि मद्यात्पर्यं सन्नमहातो न ते क्षमा ।

उन महर्षिने महापत्र मरुत्तसे स्नेहपूर्वक कहा—‘पुत्रन् ।
यदि मरी बात सुन्य और उत्तर प्यन देना उचित समझे
ता हुने । तुम्हारे जिये मुझ करता उचित नहीं है ॥ १५ ॥

मादेध्वरमिदं सन्नमसमाप्तं कुर्मं वृहेत् ॥ १६ ॥

वीक्षितस्य कुत्स युञ्ज क्रवित्स्व वीक्षित कुत्सा ।

‘वह मादेध्वर यह आराम किया गया है । यदि पूरा न

हुआ तो तुम्हारे समस्त कुम्हें राग कर लीम । मे
यक्षी वीक्षा से मुझ है उसके जिये मुझका मरुत्त ही
कहाँ है । यक्षीक्षित पुत्रपमें क्रोधके जिये लान ही कहीं
है ॥ १६ ॥

संशयञ्च ज्ये कित्यं राक्षसञ्च सुपुत्र्या ॥ १७ ॥

स निवृत्तो गुरोर्वाक्यत्प्रमदत्तः पृथिवीपतिः ।

विश्वस्य सशार चाप स्वस्थो मल्लमुक्तोऽभवत् ॥ १८ ॥

‘तुम्हें किसकी विषय होगी, इस प्रश्नको सेकर उभ
संशय ही बना रहता है । उभर वह उभय मल्लय दुर्भ
है । अपने आचार्यके इस कथनसे पृथिवीपति मरुत्त
मुझसे निवृत्त हो गये । उन्होंने वनुप-नाल लाना विश्व
भैर स्वस्थामासे वे यक्षके जिये उन्मुक्त हो गये ॥ १७-१८ ॥
ततस्तं मिश्रितं मत्वा घोषयामास वै शुक्रः ।

रावणो जयवीत्युत्सर्षुर्धर्मान्नायं विमुक्तयात् ॥ १९ ॥

तत्र उर्ध्वं पराजित दुष्प्र मानकं शुक्रने मरुत्त
वी कि महापत्र रावणकी विषय हुई और वह बड़े इर्षके लय
उभरकरसे क्षिणात् करने लगा ॥ १९ ॥

तन् भक्षयित्वा तत्रस्थान् महर्षिन् पञ्चमातात् ।

विद्यतो यधिरैस्तेषां पुनः सग्नययौ महीम् ॥ २० ॥

उत्त यत्नमें आकर बैठे हुए महर्षिकों काकर उनके

रकसे पृथः एत हो रावण फिर पृथिवीपर विरुत्तने लगा ॥ २० ॥

रावणे तु गते वेयाः सेनान्नाभ्यै विधौकस्तः ।

ततः स्यां योनिमासाद्य तानि सत्त्वानि बाहुवन् ॥ २१ ॥

एतन्ने पत्ने बानेवर इन्द्रवहित समूर्ध्वं देवता पुनः

अपने स्वकाममें प्रकट हो उन-उन प्राणियोंके (जिनके स्वयं

वे त्वयं प्रकट हुए थे) करान बैठे हुए बोले ॥ २१ ॥

हर्षीत् त्वाप्रवीदिन्द्रो मयूरं भीष्मवर्णिणम् ।

प्रितोऽसि तत्र धर्मञ्च मुञ्जजायि न ते भयम् ॥ २२ ॥

उन्से पहले इन्द्रने हर्षपूर्वक नीचे पंलवाके मेरसे कहा—

‘बर्मन् । मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ । तुम्हें उचित भय नहीं होगा ॥

इत् नेत्रमहकं तु यत् तद् बर्हि भविष्यति ।

धर्ममात्रे मयि मुञ्च प्राण्यसे भीतिव्रक्षणात् ॥ २३ ॥

पयमिन्द्रो वर प्राण्यमयूरस्य हुरेऽवत् ॥ २४ ॥

‘मेरे से वे उन्नत नेत्र हैं इनके लान विश्व तुम्हारी

पौलमें प्रकट होंगे । वह मैं नेत्रवप होकर बर्हि बर्हि, उत

समय तुम्हें बर्हि प्रकटता प्राप्त होगी । वर प्रकटना मेरी

प्राप्तिका उचित कथनेवासी होगी । इत् प्रकार देवराज इन्द्रने

मेरको वरदान दिया ॥ २१-२४ ॥

नीज्जा किम्प पुत्रा यद्वा मयूरानां नराधिप ।

सुराधिपाय् वर प्राण्य गताः सर्वेऽपि बर्हिना ॥ २५ ॥

नरेवर भीषम । इत् वरदानके पहले मेरीके पंल नेत्र

नीय रंगने ही होते थे । नेत्रवपसे उक्त वर प्राप्त वप मयूर

बर्हिने बने गये ॥ २५ ॥

धर्मराजोऽग्रधीव् राम भ्रात्र्यो वापसं प्रति ।
 पक्षित्वास्मि सुमीताः प्रीतस्य वचनं शृणु ॥ २६ ॥
 भीरव ! तदनन्तर बर्मरुजने प्रान्त्राधी छत्रपर बैठे
 हुए झेएते कहा—पक्षी ! मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ । प्रसन्न
 शब्द अब कुछ कहा हूँ मेरे इस वचनको सुनो ॥ २६ ॥
 यथाम्ये विविधै रोमैः पीड्यन्ते प्राणिनो मया ।
 ते न ते प्रभविष्यन्ति मयि प्रीते न सदायः ॥ २७ ॥
 जैसे वृक्षे प्राणियोंको मैं नाना प्रकारके येगोंद्वारा पीडित
 करता हूँ, वे रंग मेरी प्रसन्नताके कारण तुमपर अपना प्रभाव
 नहीं बाध सकेंगे इसमें संशय नहीं है ॥ २७ ॥
 मृत्युतस्ते भय नास्ति वरान् मम विह्वलम् ।
 यावत् त्वां न भविष्यन्ति नरास्तावत् भविष्यन्ति ॥ २८ ॥
 'विह्वलम्' मेरे बरवानते तुम्हें मृत्युका भय नहीं होगा ।
 क्लृप्त मनुष्य भादि प्राणी तुम्हाय बध नहीं करेंगे, तत्कथ
 तुम श्रित रहोगे ॥ २८ ॥
 ये च मद्रिपयस्या वै मानयाः सुधयाद्विताः ।
 त्वयि मुक्ते सुवृत्तास्ते भविष्यन्ति सवान्यथा ॥ २९ ॥
 'ये च मद्रिपयस्या वै मानयाः सुधयाद्विताः'—
 'ये' राम्य—यमलोके स्थित रहकर अब मानव भूलते
 पीड़ित हैं उनके पुत्र आदि इस मृतकपर जब तुम्हें मोक्ष
 करणेंगे, तब वे कन्यु-बाग्यवोंसहित परम वृत्त होंगे ॥ २९ ॥
 बहवस्त्यग्रधीवस्त गङ्गातोयविषारिणम् ।
 भूषणं प्रीतिसयुक्तं यत्रः पञ्चरथम्बर ॥ ३० ॥
 क्लृप्तमात् बहवने गङ्गाधीके अन्तमें विचरनेवाले ईसको
 उल्लेखित करते कहा—'पक्षिणम्' । येरा प्रेमपूर्ण बचन
 सुनो— ॥ २ ॥
 वर्षो मनोरमः सौम्यश्चन्द्रमण्डलसन्निभः ।
 मन्विष्यति तयोद्धमः शुद्धपेलसमप्रभः ॥ ३१ ॥
 इत्वार्ये धीमन्नामायगे वाक्सीधिये भाद्रिकाय्ये उत्तरकाण्डेऽष्टाव्याः सर्गाः ॥ १८ ॥
 इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित अर्बरात्मकः अत्रिकाय्यके उत्तरकाण्डमें अष्टाव्यां सप्त पूरा हुई ॥ १८ ॥

तुम्हारे शरीरका रंग चन्द्रमण्डल तथा शुद्ध पेलके समान
 परम उत्कृष्ट, श्रेष्ठ एवं मनोरम होगा ॥ ३१ ॥
 मच्छरीर समासाद्य कान्तो नित्य भविष्यसि ।
 प्राप्स्यसे चातुर्धां प्रीतिमेतन्मे प्रीतिलक्षणम् ॥ ३२ ॥
 'मेरे आङ्गुल अक्षर भाभम ठेकर तुम सदा श्रित
 मान बने रहोगे और तुम्हें अनुपम प्रसन्नता प्राप्त होगी । यही
 मेरे प्रेमकर परिचायक चिह्न होगा' ॥ ३२ ॥
 हस्तात्वा हि पुरा राम न वर्णः सर्वपाण्डुरम् ।
 पद्मा मीलामसखीताः क्रोडाः श्यामाप्रनिर्मलम् ॥ ३३ ॥
 भीरव ! पूर्वजन्मे हँलोका रंग पूर्ववत् बरेश नहीं था ।
 उनकी पोंकोंका अग्रमग्न नील और दोनों मुखाओंके बीच-
 का भाग नूतन पूर्वावस्थाके अग्रभाग-रूप क्लृप्त एवं श्याम वर्ण
 से मुक्त होता था ॥ ३३ ॥
 अयाग्रधीव् वैभ्रमणः कृकलास गिरी स्थितम् ।
 हैरस्य सग्रप्रयच्छमि वर्णं प्रीतस्तावन्वहम् ॥ ३४ ॥
 तदनन्तर विभवाके पुत्र कुचेरने परंतशिसरपर बैठे हुए
 कृकलास (गिरगिट) से कहा— मैं प्रसन्न होकर तुम्हें सुवर्णके
 समान सुन्दर रंग प्रदान करता हूँ ॥ ३४ ॥
 सद्रम्य च शिरो नित्यं भविष्यति तथाज्ञयम् ।
 एष काञ्चनको वर्णो मत्प्रीत्या ते भविष्यति ॥ ३५ ॥
 तुम्हाय स्थिर सदा ही सुवर्णके समान रंगका एवं अक्षय
 होगा । मेरी प्रसन्नतासे तुम्हाय यह (काञ्चन) रंग सुनहरे
 रंगमें परिवर्तित हो जायगा ॥ ३५ ॥
 एष वृत्त्या धरांस्तेभ्यस्तस्मिन् यद्योस्तये सुराः ।
 निवृत्ते सह राजा ते पुनः स्वभयन गता ॥ ३६ ॥
 इस प्रकार उन्हें उचम कर देकर वे सब देवता यह
 यद्योस्तय धमता होनेपर राज्य मरुतके साथ पुनः अपने भयन-
 सर्गलोकाको पक्ष गये ॥ ३६ ॥

एकोनविंश सर्ग

रावणके द्वारा अनरुण्यका वध तथा उनके द्वारा उसे श्रापकी प्राप्ति

अथ द्वित्या मरुत न प्रययौ गङ्गसाधिपः ।
 नगराणि नरेन्द्राणा युद्धकाङ्क्षी वृष्टाननः ॥ १ ॥
 (भगवन्धी करणं है—'पुनन्दन !) पूर्वांश स्मृते राज्य
 मरुतका जीतनेके पश्चात् मरुतका वधशील अन्वय
 नरेन्द्रोंके नगरोंमें भी युद्धही इच्छासे गया ॥ १ ॥
 समासाद्य तु राजेन्द्रान् महेंद्रधन्वोपमान् ।
 मरुतीव् राससेन्द्रस्तु युयं मे क्षीयतामिति ॥ २ ॥
 विजिताः स्मिन्ति या मृत एव मे हि मुनिभ्याम् ।

अन्यथा कुर्वतामेव मोक्षो नैवोपपद्यते ॥ ३ ॥
 महेंद्र और बरुणके समान पराक्रमी उन महाराजोंके
 पास जाकर यह उल्लस्यत उनमें करता— राजाभा ! तुम
 मेरे साथ युद्ध कर भयना यह कर दा कि हम हार गये ।
 यही मेरा अच्छी तरह किया हुआ निश्चय है । इसका विपरीत
 करनेमें तुम्हें सुरक्षय नहीं मिलेगा ॥ २ ॥
 ततस्त्वभीरवः प्राप्ताः पार्थिषा धमनिभ्ययाः ।
 मन्त्रियस्या तताऽन्योम्य राजानः सुमहावस्यः ॥ ४ ॥

बहवसायके पूर्वभागमें बहमान और कठोर राजा आदिके उदाहरणके लिय बने हुए अक्षय प्रसन्न बचन ६ ६८ पर उल्लेख
 पूर्व और राजा है ।

निर्जिता स्मेत्यमापन्त ज्ञात्वा वरबस रिपोः ।

एव निर्भय, बुद्धिमान् तथा धर्मपूर्ण विचार रखनेवाले बहुतसे महाशय्यी राज बरबस उखाड़ करके राजुद्धी प्रकट्याओ छत्रकर बोधे—पञ्चम्याम् ॥ इमं दुग्मे हार मान लते हैं ॥ पुष्पन्तः सुरयो गाधिर्नायो राजा पुरुरवाः ॥ ५ ॥ एते सर्वेऽह्वन्न्व्यत निर्जिताः स्मेति पार्षियाः ।

पुष्पन्तः सुरयः गाधि गम राज बरबस—इन सभी भूपासोंने अपने-अपने राजपदछाड़के राजपते छत्रने अपनी पदास्य स्वीकार कर ली ॥ ५ ॥

अप्यथोष्पां क्षमासाद्य राजयो राजसाक्षियः ॥ ६ ॥ सुगुप्तान्मन्त्रेष्वेव शक्तेणेषामरावतीम् ।

स तं पुत्रपदार्थं पुरुरवसम वले ॥ ७ ॥

प्राह राजानमासाद्य युञ्ज वेहीति राजणः ।

निर्जितोऽस्मिन्ति वा ब्रुहि स्वमेव मम शासनम् ॥ ८ ॥

इसके बाद राजुद्धीका राजा राज बरबस सुरक्षित ममराजकीकी भोंति महाराज अनरण्यद्वारा पाण्डित अयोध्या पुरीमें आया । वहाँ पुरुरव (राज) केसमान पराक्रमी पुरुष सिंह राज अनरण्यसे मिश्रकर बोधा—पञ्चम् ॥ तुम मुझसे युद्ध करनेका वचन दो क्यथा कह दो कि मैं हार गया । वही मेरा आवेद्य है ॥ ६-८ ॥

अयोध्याधिपतिस्तस्य भूध्वा पाप्यतन्मे कवाः ।

अनरण्यस्तु सङ्गुन्दा राजसत्पद्मयाप्रवीत् ॥ ९ ॥

उस पापानाकी वह बात सुनकर अयोध्यानेरा अनरण्यके बड़ा क्रोध हुआ और वे उस राजुद्धीके बोधे— ॥ वीपते अरण्ययुद्ध तं राजसाधिपते मया । संतिष्ठ क्षिप्रमायत्तो भव सैष भयाम्यहम् ॥ १० ॥ (निशाचरपठ) मैं तुम्हें हन्त्ययुद्धकर भङ्गकर देता हूँ । उहरो वीप युद्धक क्षिप्र तैवार हो जाओ । मैं भी तैवार हो रहा हूँ ॥ १ ॥

अथ पूर्वं भुतायैव निर्जितं सुमहद् वज्रम् ।

निष्क्रमत् तद्वरेन्द्रस्य वर रसोवधोद्यतम् ॥ ११ ॥

राजने राजकनी दिग्निबध्न वात परसेते ही युन राजकी वी इत्थिवे उन्हीने बहुत बड़ी सेना इकट्ठी कर ली थी । नरेश्वरी वह सारी सेना उस समय राजुद्धीके वचने छिने उल्लासित हो नगरसे बाहर निकली ॥ ११ ॥

व्याघ्रानां वृशाहाह्वर याजिनां नियुत तथा ।

रथानां बहुसाहस्र पत्नीनां च मनोत्तम ॥ १२ ॥

महीं सस्य निष्क्रान्त मपश्रतिरथ रथे ।

नरभेद्य भीषम । दत्त ह्यार हाथीमवार, एक साल युद्धकरा, कई हथर रथी और वैरक वैरिण पृथ्वीके आच्छादित करके युद्धके छिवे आगे बढ़े । रथी और वैरिण-सदित सारी सेना एकजत्रने कर पहुँची ॥ १२ ॥

ततः मञ्चत सुमहद् युद्धं युञ्जविशारद ॥ १३ ॥

अनरण्यस्य रूपते राजसेन्द्रस्य ज्ञानुत्तम् ।

युद्धविशारद खुशीर । फिर तो राज अनरण्य और

निशाचर राजकने बड़ा अमुत संग्राम होने लगा ॥ १३ ॥

तद् राजवज्रक प्राप्य वरु तस्य महीपतेः ॥ १४ ॥

प्राणदयत ज्ञा सर्व हर्षं हुतमिवागते ।

उस समय राजकनी सारी सेना राजकनी सेवके सब टकरा छेकर उठी तब नष्ट होने लगी जैसे अग्निमें री हुँ म्बहुति पूर्ण मस हो जाती है ॥ १४ ॥

युष्वा च सुधिर फाल हृत्वा विक्रममुत्तमम् ॥ १५ ॥

मञ्चकन्त तमासाद्य क्षिप्रमेवाचरोषितम् ।

प्राविशत् संकुल वन शालभा इव पावकम् ॥ १६ ॥

उस सेनाने बहुत देरतक युद्ध किया, बड़ा पराक्रम दिखाया परंतु तेकनी राजकन चाममा करके वह बहुत लगी संख्यामें रोष रह गयी और अन्ततोगत्वा जैसे पतिते व्यसने काकर मस हो जाते हैं उसी प्रकार राजकने गांधीमें पड़ी गयी ॥ १५ १६ ॥

सोऽपश्यत् तद्वरेन्द्रस्तु नश्यमान महाबलम् ।

महापर्वव क्षमसाद्य कन्धपगशत तथा ॥ १७ ॥

राजने देखा सेरी विशाल सेना उसी प्रकार सब हाड़ी लकी था रही है, जैसे अग्नि में हुँ तेकनीं नरिर्ते महाछगरके पाठ पहुँचकर उल्लेमें विक्षिप्त हो जाती हैं ॥ १७ ॥ तदा शकधनुष्मर्ष्यं भजुर्विस्मररयन् लपम् ।

अससाद्य नरेन्द्रस्तं राजण क्रोधभूर्चिह्नतः ॥ १८ ॥

उस महाराज अनरण्य क्रोधसे मूर्च्छित हो अपने हन्त भनुपके छानन महान् शयजत्रने टंकरते हुए राजकन छानना करनेके लिये आगे ॥ १८ ॥

अनरण्येन तेऽमात्या मारीचशुक्रसारणा ।

महस्तसहित्य भङ्ग भ्यद्रकन्त मृगा इव ॥ १९ ॥

फिर तो जैसे छिद्रके बेलकर मृगा मग्न होते हैं, उसी प्रकार मारीच शुक्र शरण तथा महस्त—मैं भाँटें राजकनी राजा अनरण्यसे परत होकर मग्न करे हुए ॥ १९ ॥ तदा बाणशालान्यश्री पातयामास भूर्धिति । तस्य राजसरजस्य इक्ष्वाकुवृद्धानप्यना ॥ २० ॥

तपभात् इक्ष्वाकुबंधको आनन्दित करनेवाले राज अनरण्यने राजुद्धीके राजकने मलकर भाट से बाण मरे ॥ तस्य बाणाः पतन्तस्ते क्षमिरे न हतं कश्चित् । धारिधारा इवाभ्रेभ्यः पतन्त्यो गिरिमूर्धिति ॥ २१ ॥

परंतु जैसे बाँधलेते परतविचारकर गीली हुँ बंध-पाएँ तसे छवि नहीं पहुँचाती उसी प्रकार वे करले हुए बाण उठ निशाचरके शरीरपर कड़ी पात न कर लें ॥ २१ ॥ ततो राजसरजसेन हृद्येन नृपतिस्तथा । तसेनाभिहतो मूर्ध्नि स रथास्त्रियपात इ ॥ २२ ॥

इसके बाद राजुद्धीने बुद्धि होकर राजकने मलकर

एक ठमाचा माघ । इच्छे आहत होकर राख रपते नीचे
मिर पड़े ॥ २२ ॥

स राजा पतितो भूमौ विह्वलः प्रविधेष्टितः ।

वज्रदग्ध इयारण्ये साहो निपतितो यथा ॥ २३ ॥

जैसे वनमें वज्रपातसे दग्ध हुआ साहूकर वृष पराधारी
हो जाता है उसी प्रकार राजा अनारण्य व्याकुल हो भूमिपर
मिरे और घर घर काँपने लगे ॥ २३ ॥

तं प्रहस्याप्रवीट् रस इक्ष्वाकु पृथिवीपतिम् ।

किमिदानीं फलं प्राप्तं त्वया मां प्रति युष्यता ॥ २४ ॥

वह देख राजा भोर-भोरते हैं पढ़ा और उन इक्ष्वाकु
वंशी नरेराते बोझ—इस समय मेरे साथ मुझ करके तुमने
क्या फल प्राप्त किया है ? ॥ २४ ॥

बैलोकेये नास्ति यो ह्यर्द्धं मम दद्यात्प्रपाथिप ।

राष्ट्रे प्रसक्तो भोगेषु न शृणोषि वल्लं मम ॥ २५ ॥

नरेवर । तीनों लोकोंमें कोई ऐसा वीर नहीं है, जो
मुझे इन्द्रमुझ दे सके । धन पड़ता है तुमने मोहोंमें अधिक
असक्त रहनेके कारण मेरे बन्ध-परारण्यमें नहीं सुना था ॥
उसीच सुषतो राजा मन्दासुर्बाक्यमप्रधीत् ।

किं शक्यमिह कर्तुं वै कालो हि तुरतिक्रमः ॥ २६ ॥

राजकी प्राणशक्ति क्षीय हो रही थी । उन्होंने इस प्रकार
कहे करनेवाके राजका बचन सुनकर कहा—पक्षस्थाय ।
मम नहीं क्या किया या सकता है । क्योंकि अस्वस्थ उत्कृष्ट
करना असम्भव दुष्कर है ॥ २६ ॥

गद्यः सिद्धितो रक्षस्तवया कामप्रशसिता ।

कथ्येनैव विपद्योऽहं हेतुमूतस्तु मे भवान् ॥ २७ ॥

पण्डित । तू अपने मुँहसे अपनी प्रशंसा कर रहा है
किंतु तूने जो अर्थ मुझे पराहित किया है इच्छे कर ही
कारण है । बालकमें कथने ही मुझे माघ है । तू जो मेरी
मृत्युने निमित्तमात्र बन गया है ॥ २७ ॥

इत्थार्थं श्रीमद्भगवतो वासुदेवो ध्यादिशब्दे उत्तरकाण्डे षष्ठोऽध्यायः समाप्तः ॥ १९ ॥

इस प्रकार श्रीमद्भगवत्सिद्धितो अथराधात्मक अदिशब्दे उत्तरकाण्डे अन्तिमसर्गो एक पूरा हुआ ॥ १९ ॥

विंश सर्ग

नारदकीका रावणको समझाना, उनके कहनेसे रावणका युद्धके लिये यमलोकको

जाना तथा नारदकीका इस युद्धक विषयमें विचार करना

छठो विंशत्ययम् मर्त्यान् पृथिव्यां पक्षसाथिप ।

प्राससात् धमे तस्मिन् नारद मुनिपुङ्गवम् ॥ १ ॥

(भगवत्की कहने हैं—दुन्दत !) इसके बाद
एकप्रकार रावण मनुष्योंको मगधीत करता हुआ पृथीपर
बिचरने लगा । एक दिन पुण्यक विमानसे यात्रा करते समय
राम बादलके बीचमें मुनिभेद देवर्षि नारदकी मिले ॥ १ ॥

तस्याभिवार्त्तं कृत्या ददात्रीषो निशाचरः ।

किं स्थितानीं मया शक्य कर्तुं प्राणपरिह्रये ।

गद्यः विमुक्षी रक्षो युद्धधमालस्थया हतः ॥ २८ ॥

धैरि प्राण आ रहे हैं अत इत समय में क्या कर
सकता हूँ ? निशाचर । मुझे संतोष है कि मैंने मुझसे मुँह नहीं
मोड़ा । मुझ करता हुआ ही मैं तेरे हाथसे माघ गया
हूँ ॥ २८ ॥

इक्ष्वाकुपरिभायित्वाद् यथो वक्ष्यामि पक्षस्त ।

यदि वक्ष यदि हत यदि मे सुकृत तपः ।

यदि युष्ताः प्रजाः सम्यक् तथा सत्य वधोऽस्तु मे ॥ २९ ॥

परद्व राक्षस । तूने अपने व्याजपूर्ण बचनेसे इक्ष्वाकु
कुलका अपमान किया है इसलिये मैं तुझे शाप दूँगा—
तेरे सिधे अमङ्गलक वात कर्तूँगा । यदि मैंने दान, पुण्य,
होम और तप किये हों, यदि मेरे द्वारा बनेके अनुहार प्रस-
क्तोंका तीक्ष्ण पावन हुआ हो तो मेरी वात स्व-
होकर रहे ॥ २९ ॥

उत्पस्यते कुले ह्यसिद्धिश्चाकृणा महात्मनाम् ।

यमो वाशारथिर्नाम स ते प्राप्याद् हरिष्यति ॥ ३० ॥

महात्मा इक्ष्वाकुवंशी नरेणोंके इस बंधमें ही बधरप-
नन्दन भीरम प्रकट होंगे, जो तेरे प्रणोंका अपहरण करेंगे ॥
ततो अलभरोद्गमस्ताडितो देवदुम्भुभिः ।

तस्मिन्नुदाहृते शापे पुण्यपृथिव्यं स्थाप्यतुता ॥ ३१ ॥

राजके इस प्रकार शाप देते ही मेपके समान गम्भीर
स्वर्गमें देवताओंकी दुम्भुमि बच ठठी और आकाशसे पूर्वमेंकी
बर्षा होने लगी ॥ ३१ ॥

ततो स राजा राजेन्द्र गतः स्थान विविष्टपम् ।

स्वर्गते च नृपे तस्मिन् राक्षसः सोऽपचर्षत ॥ ३२ ॥

राजविद्यारं भीरम । तदनन्तर राजा अनारण्य स्वर्गके-
के सिधारे । उनक स्वर्गमेंकी हो जानेपर राक्षस राजक शक्ति
अन्यत्र चला गया ॥ ३२ ॥

ततो स राजा राजेन्द्र गतः स्थान विविष्टपम् ।

स्वर्गते च नृपे तस्मिन् राक्षसः सोऽपचर्षत ॥ ३२ ॥

राजविद्यारं भीरम । तदनन्तर राजा अनारण्य स्वर्गके-
के सिधारे । उनक स्वर्गमेंकी हो जानेपर राक्षस राजक शक्ति
अन्यत्र चला गया ॥ ३२ ॥

इत्थार्थं श्रीमद्भगवतो वासुदेवो ध्यादिशब्दे उत्तरकाण्डे षष्ठोऽध्यायः समाप्तः ॥ १९ ॥

इस प्रकार श्रीमद्भगवत्सिद्धितो अथराधात्मक अदिशब्दे उत्तरकाण्डे अन्तिमसर्गो एक पूरा हुआ ॥ १९ ॥

अप्रवीट् कुण्ड पृष्ठा हेतुमागमनस्य च ॥ २ ॥

निशाचर दशमीवन उनका भविष्यतन करके कुण्ड

समानारथी निष्ठा ही और उनके अगमनका कारण पूछा—

नारदस्तु महानेजा श्रेयविरमितप्रभः ।

अप्रवीणोपपृष्ठस्या रावण पुण्यक न्यस्तम् ॥ ३ ॥

तव बादलोंकी पीठपर लड़ हुए भमित नास्तिकान्

अप्रवीट् कुण्ड पृष्ठा हेतुमागमनस्य च ॥ २ ॥

निशाचर दशमीवन उनका भविष्यतन करके कुण्ड

समानारथी निष्ठा ही और उनके अगमनका कारण पूछा—

नारदस्तु महानेजा श्रेयविरमितप्रभः ।

अप्रवीणोपपृष्ठस्या रावण पुण्यक न्यस्तम् ॥ ३ ॥

तव बादलोंकी पीठपर लड़ हुए भमित नास्तिकान्

महान्बन्धी देवर्षिं नारदं पुण्यं विमानपरं वैठे ह्युप
यचयते कथा—॥ २ ॥

राक्षसाधिपते सौम्य तिष्ठ विभ्रवसः सुत ।
श्रीतोऽस्म्यभिजनोपमं विक्रमैरुत्तिष्ठैस्त्वथ ॥ ४ ॥

‘उत्तमं कुम्भं उत्पन्नं विभक्तनकुमारं राक्षसराजं रावणं ।
श्रेयम् । उद्यतं मे तुम्हारे वदे ह्युप बन्धुविक्रमसे बहुत प्रसन्नः ॥
विष्णुना वैश्वदेवतैश्च गन्धर्वाभिराधर्षयैः ।
स्यात्समं विमर्शैश्च भूषा हि परितोषिता ॥ ५ ॥
देवैश्च विनाशं करनेवाछे अनेक संगम करके मन्वान्
पिष्णुने तथा गन्धर्वा और मागोंको पदबलि करनेलाछ मुझी-
हारा तुमने मुझे समानरूपसे छेदुइ किया है ॥ ५ ॥

किञ्चिद् वक्ष्यामि तावत् तु श्रोतव्यं श्रोष्यसे यदि ।
तन्मे सिगावतस्तात समाधिं श्रवणे कुत ॥ ६ ॥
इस समय यदि तुम सुनोगे तो मैं तुमसे कुछ सुनने
योग्य बात कहूँगा । तात । मेरे सुनते निश्चयी हूँ उस बातको
सुननेके सिन्धे तुम अपने निचछे एकत्र करके ॥ ६ ॥
किमयं वक्ष्यते तात शक्यावप्येन देवतैः ।
इत एव ह्ययं लोकां पद्मं मृत्युञ्जयं गता ॥ ७ ॥
‘तात । तुम देवताओंके शिष्ये भी भवप्य होकर इस
भूस्वकके निराशिकोंका बन्ध करो कर रहे हो ! वहाँके प्राणी
तो मृत्युको अभीन होनेके कारण स्वयं ही मरे हुए हैं फिर
तुम भी इन मरे हुएको क्या मार रहे हो ? ॥ ७ ॥
देवज्ञानवद्वैत्यानां यस्तगन्धर्वरक्षसताम् ।
स्वप्नेन यथा लोकां क्लृप्नुव्यो न मानुषाः ॥ ८ ॥
देवता दानव दस्य यत्त गन्धर्व और राक्षस भी
किस नहीं मार सकत ऐसे विस्मात भीर होकर भी तुम इस
मनुष्यकोकछे कस्य पशुनाभो बर कथयि तुम्हारे योग्य
नहीं है ॥ ८ ॥

मित्य श्रेयसि स्वमूढ महद्भिर्भ्यंसनैर्हृतम् ।
हृष्यात् कस्ताद्या साकं जराभ्यापिशरतैर्युतम् ॥ ९ ॥

‘ये सदा अपने कस्तान-साधनमें मूढ़ हैं वही-वही
शिवशिकोंके बिर हुए हैं और बुढ़ाया तथा सेकड़ों रोमोंसे युक्त
हैं ऐसे झगड़ोंके कई भी भीर पुत्रन करते मार सकता है ॥
तिस्तरनिष्ठोपगमैरज्ज्वलं यत्त कुत्र कः ।
मतिमान् मानुष साके युद्धेन प्रणयी भवेत् ॥ १० ॥
‘यह नाता प्रकारके अन्तर्गामी प्राणियोंके वहाँ कहीं भी
पीड़ित है उक्त मनुष्यकाकमे आकर कौन बुद्धिमान् भीर पुत्रन
सुद्धक हारा मनुष्यका बन्धमें अनुरक्त रोम ? ॥ १ ॥
हृषियमाणं वैवहत ध्रुतिपात्नाज्जरादिभिः ।
विगादशाकसमूहं लोकं स्व क्षपयस्व मा ॥ ११ ॥
‘यह कष्ट त सो ही भूय प्यथ और बरा झड़िते
रंग हो रहा है तथा पिशाच और घाकमें नरकर भयनी
शिको-रुग्णि का रेडा है । रेडर मार हुए इन मर्त्यलाकजा
द्वय विनाश न कर ॥ ११ ॥

पश्य त्ववमहाबाहो राक्षसेश्वर मनुष्यम् ।
मूढमेव विविचार्ये यस्य न क्षयते गतिः ॥ १२ ॥

‘महाबाहु राक्षसराज । देखो तो छी ! मर मनुष्यको
जानघृण्य होनेके कारण मूढ़ होनेपर भी किञ्च तय तम
प्रकारके सुत्र पुत्रवाचोंमें आवक है । इसे इस कालक में
पत्र नहीं है कि कब हुआ और सुक्त अरि मन्मेक
भवकर भायेग ? ॥ १२ ॥
कश्चिद् वादिक्मृत्यायि सेम्बल मुबितैर्ज्ञैः ।
उद्यते चापरैरातैर्धाराभुनक्मन्त्रैः ॥ १३ ॥
‘यहाँ कहीं कुछ मनुष्य तो आनन्दमय होकर गाँवके
और नाच आदिप्र सेवन करते हैं—उनक हारा मन कस्य
हैं तथा कहीं कितने ही ज्येता दुःखसे पीड़ित हो नेत्रोंसे अँध
क्याते हुए रोते रहते हैं ॥ १३ ॥
मातापितृसुतस्नेहभार्याभानुमलोत्तमैः ।
मोक्षितोऽप्य ज्ञानो भवता ज्ञेया स्व नावबुध्यते ॥ १४ ॥
‘माता पिता तथा पुत्रके स्नेहसे और पत्नी तथा स्ने-
के सम्बन्धमें नाना प्रकारके मनस्ये बँधनेके कारण न
मनुष्यकोक मोक्षयत्त हो परमावधि भ्रष्ट हो रहा है । इसे अने
कानननित कथ्याक मनुष्य ही मर्त्य होता है ॥ १४ ॥
तत्किमेव परिहृष्य लोकं मोहनिराकृतम् ।
जित एव स्वया सौम्य मर्त्यलोकेन न सहाया ॥ १५ ॥
‘यह प्रकार के मोह (भ्रजन) के कारण परमपुत्रवर्ग
ते बलिष्ठ हो गया है ऐसे मनुष्य-कोकको कस्य पशु-
दुर्गै क्या मिलेगा । सौम्य । तुमने मनुष्य कोकको ते अँध
किना है इसमें कोई भी संघाय नहीं है ॥ १५ ॥
अवश्यमेभिः सर्वैश्च गन्तव्यं यमसादनम् ।
तथिषुद्धीप्य पीकस्य यम परपुरज्य ॥ १६ ॥
तस्मिञ्चिते जित सर्वे भवत्येव न संशया ।
‘शुद्धनगरीपर विभक्त पानेवाके पुत्ररत्नगन्धन । इन न
मनुष्योंको यमकोकमें अवश्य जाना पड़ता है । अतः यही
शक्ति हो तो तुम यमराजको अपने काममें करो । उन्हें अँध कने-
पर तुम सबका अँध सकते हो इसमें संघाय नहीं है ॥ १६ ॥
एवमुक्तस्तु सखेशो दीप्यमान लतेजसा ॥ १७ ॥
अमशीघारत्वं तत्र सम्प्रहृष्याभिवाद्य च ।
‘नारदजीके ऐसा करनेपर सहापति रावण अपने ठेके
उदीत होनेवासे उक्त देवर्षिके प्रणाम करके हृष्ट हुए
बोध्य— ॥ १७ ॥
महर्षे द्वगगन्धर्वबिहारं समरप्रिय ॥ १८ ॥
अहं समुद्यतो गन्तुं विजयार्थं त्सातसम् ।
‘महर्षे ! आप देवताओं और गन्धर्वोंके लोकेन विगत
करनेवासे हैं । मुझके हृष्ट देवता आपका यतुत ही दिन
है । मैं इन समय दिगिजयके लिये रक्षकमें जानेसे
उद्यत हूँ ॥ १८ ॥

ततो लोकत्रयं जित्वा स्व्यायुः नागान् सुखान् पश्ये ॥ १९ ॥
समुद्रमन्वृतायै च मयिष्यामि रसाच्छयम् ।

किं तीनों ओझोंके जीतकर नागों और देवताओंके
अग्ने वद्यमें करके अमृतकी प्राप्तिके लिये रसमिथि समुद्रका
मन्त्र करूँगा ॥ १९ ॥

भयावधीवृ दशमीय नारदो भगवानुचिः ॥ २० ॥
हं शक्तियशानीं मार्गेण स्वयेहान्येन गम्यते ।

मय कस्तु सुसुगन्धः प्रेतराजपुरं प्रति ॥ २१ ॥
मार्गो गच्छति बुधैर्पं यमस्यामित्रकरान् ।

यह मुनिकर देवमि भगवान् नारदने कहा—अनुसूयन् ।
यदि तुम रखतछको जाना चाहते हो तो इस समय उलका
मार्ग काइकर वृक्षे रातसे कहों आ रहे हो ! बुधैर्पं वीर !
रखतछक यह मार्ग अत्यन्त दुर्गम है और यमराजकी
पुष्टि होकर ही जाया है ॥ २ २१ ॥

स तु शारदमेघधर्षं हास मुफत्वा दशाननः ॥ २२ ॥
उवाच हृतमित्येष क्वचनं चेषमप्रपीत् ।

नारदकीके देख करनेपर दशमुख रावण शरद् श्रुतक
बादकी भीति अपना उन्मत्त हास कियेवा हुमा बोध—
वेधै ! मैंने आपकी बात स्वीकार कर ली ! इसके बाद
उम्ने भी कहा— ॥ २२ ॥

तस्मादेवमर्हं ब्रह्मन् वैश्वतथधोघतः ॥ २३ ॥
गच्छामि दक्षिणामाशा यत्र स्यौत्मजो नृपः ।

ब्रह्मन् ! अब यमराजका वध करनेके लिये उषत शंकर
में उष दक्षिण दिशाको जाता हूँ, वहाँ स्यौत्पुत्र राजा यम निवास
करते हैं ॥ २३ ॥

मया हि भगवन् ब्रह्मेधात् प्रतिज्ञातं रण्यधिमा ॥ २४ ॥
मयज्ञेयामि चतुरो ओकपासानिति प्रभो ।

ममो ! भगवन् ! मैंने मुझकी इच्छासे क्रोपपूर्वक प्रतिज्ञा
की है कि वहाँ ओकपाओंको परास करूँगा ॥ २४ ॥

तद्दिह प्रस्थितोऽहं वै पित्रराजपुरं प्रति ॥ २५ ॥
प्राणिसखलेदाकृता योजयिष्यामि मृत्युना ।

अतः मैं यहाँसे यमपुरीको प्रस्थान कर रहा हूँ । वहाँके
प्राणियोंको मौतका कष्ट देनेवाके स्यौत्पुत्र यमको स्वयं ही मृत्यु
से संतुष्ट कर दूँगा ॥ २५ ॥

पयमुफत्वा दशमीवो मुनिं तमभियाद्य च ॥ २६ ॥
मयवी दक्षिणामाशां प्रविष्टः स ह मन्त्रिभिः ।

इतकार्ये श्रीमद्भगवत्पणे वाक्सीधीये जादिकाण्डे उत्तरकाण्डे विंशः सर्गः ॥ २ ॥
इत ब्रह्मर श्रीमत्सीधिमिर्षित अचरामात्रण इदिअण्यके उताअण्यमे वीतरां सन पून हुम् ॥ २ ॥

एष पृथक् दशमीवने मुनिके प्रणाम किया और
मन्त्रियोंके साथ वह दक्षिण दिशाकी ओर चले गया ॥ २६ ॥
नारदन्तु महातेजा मुहूर्ते ध्यानमास्थितः ॥ २७ ॥
खिन्तयामास विभेन्द्रो विधूम इय पायकः ।

उसके चले जानेपर घूमरहित अमिक समान महातेजकी
विषय नारदकी दो पक्षीक ध्यानमग्न हो इस प्रकार
विचार करने लगे— ॥ २७ ॥

येन लोकात्मया सेन्द्राः क्षिद्यन्त सचराचराः ॥ २८ ॥
हीनो वायुपि धमेण स कालो जेष्यते कथम् ।

आतु हीन होनेपर किनके द्वारा परमपूर्वक इन्द्ररहित
हीनों ओझोंके चराचर प्राणी अक्षयमें डाले जाते—दृष्टित
हाते हैं, वे कालस्वरूप यमराज इस रायजके द्वारा कैसे जीते
जायेंगे ! ॥ २८ ॥

स्वच्छकृतसाक्षी यो द्वितीय इय पायकः ॥ २९ ॥
सम्पत्तवा विषेद्यन्त लोका यस्य महात्मना ।
यस्य क्षिप्य त्रयो लोका विद्रुष्यन्ति भयाविताः ॥ ३० ॥
तं कथं राक्षसेन्द्रोऽसौ स्वयमेव गमिष्यति ।

जो जीवोंके हान और कर्मके छाछी हैं किनके तेज
द्वितीय अमिकके समान है, किन महात्माते वेजना पाकर सम्पूर्ण
जीव नाना प्रकारकी चेष्टाएँ करत हैं किनके अग्ने पीड़ित हो
तीनों ओझोंके प्राणी उन्से दूर भागते हैं, उन्हींके पान यह
राक्षसराज स्वयं ही कते आयागा ! ॥ २९ ३० ॥

यो विधाता च धाता च सुकृत दुष्कृत तथा ॥ ३१ ॥
वैसोप्य विजित येन त फय विजयिष्यते ।

अपर किं तु हृत्स्वैर्व विधान सविधास्यति ॥ ३२ ॥

जो विषेक्षीके धारण-योग्य करनेवाके तथा पुण्य और
पापके फल देनेवाले हैं और जिन्होंने तीनों ओझोंपर विजय
पामी है उन्हीं काइदेवको यह राक्षस कैसे जीतेगा ? क्या ही
सकता धातन है । यह राक्षस काइके अतिरिक्त वृक्षे किंच
लाभनका सम्पादन करके उस काइपर विजय प्राप्त
करेगा ! ॥ ३१-३२ ॥

कौतूहलं समुत्पद्यो पास्यामि यमसादनम् ।
यिमर्षे द्रष्टुममयोर्ममराक्षसयोः स्वयम् ॥ ३३ ॥

अब तो मेरे मनमें बड़ा कौतूहल उत्पन्न हो गया है,
अतः इन यमराज और राक्षसराजका मुझ देनेके लिये मैं
स्वयं भी यमकोइके आऊँगा ॥ ३३ ॥

एकविंश सर्ग

रावणका यमलोकर आक्रमण और उसका द्वारा यमराजके मैनिकोंका महा

एष मयिष्य विभेन्द्रो जगाम सपुत्रिक्रमः ।

(अगस्यधी पदत है—सुखान् !) ऐम विचारकर
हीन यमनराज विभर नारदकी राजगण अत्रमयका
कनाचार कानेक लिय यमराजमें गये ॥ १ ॥

आर्यानुं तद् यथायुक्तं यमस्य सवन् प्रति ॥ १ ॥

अपश्यत् स यम तत्र देवमग्निपुच्छतम् ।
 विधानमनुविद्यन्त प्राणिनो यस्य यादृशम् ॥ २ ॥
 वहाँ अक्षर उन्होंने देखा यमदेवता अधिकांश सध्वीने
 स्पन्दे खमने रखकर बैठे हैं और किय प्राणीका जेहा कर्म दे
 उधीके अनुसार फल देनेकी व्यवस्था कर रहे हैं ॥ २ ॥
 स तु ह्युवा यमः प्राप्त महर्षिं तत्र नारदम् ।
 भ्रमधीत् सुखमासीनमर्ष्यमावेद्य धर्मतः ॥ ३ ॥
 महर्षिं नारदको वहाँ आया देव यमराजने अतिस्पर्शार्थ
 के अनुसार उनके किय अर्ष्यमादि निवेदन करके कहा—॥३॥
 कथित् भ्रमं तु वेद्ययं कथित् भ्रमो न नश्यति ।
 किमागमनकृत्य ते वेद्यगर्भर्वसेवित् ॥ ४ ॥
 देवताओं और गन्धर्वोंसे कथित वेदों ! कुछ तो है
 न ! धर्मका नाम छे नहीं हो रहा है ! आब यहाँ आपके
 गुमागमनका क्या उरोह्य है ? ॥ ४ ॥
 भयधीत् तु तदा वाच्य नारदो भगवानुवि ।
 श्रूयतामभिधाम्यामि विधानं च विधीयताम् ॥ ५ ॥
 एष मान्ता वृषाधीय पितुराद्य निशाचरः ।
 उपयाति यन् नेतु विक्रमेस्त्या सुतुर्भयम् ॥ ६ ॥
 तब भगवान् नारद मुनि बोले—पितुराज ! मुनिने—
 मैं एक अक्षरकाल बात कता रहा हूँ आप इनकर उल्ले
 मकीहरका भी कई उपाय कर हैं । यद्यपि आपके पीछता
 अत्यन्त कठिन है तथापि यह दृगधीवनामक निशाचर अपने
 परकर्मोंद्वारा आपका काम करेके लिये वहाँ आ रहा है ॥
 एतेन करणेनाह त्वरितो आगता प्रभो ।
 वृष्टमहरणस्याद्य त्व किं तु भयिष्यति ॥ ७ ॥
 प्रभो ! इन्ही कारणसे मैं तुरंत वहाँआया हूँ कि आपको
 इस छटुठकी सूचना दे दूँ परंतु आप तो काळदण्डस्वी
 अमुपचर धारण करनेवाले हैं अर्ष्य उष उल्लेखके आक्रमण
 ने क्या हानि होगी ? ॥ ७ ॥
 पतसिधमन्तरे दृगाद्गुमन्तमिषोदितम् ।
 वृष्टगुर्दितमायास्त विमानं तस्य रक्षसा ॥ ८ ॥
 इस प्रकारकी बातें ही ही रही थीं कि उस उल्लेख
 उरित हुए सर्वत्र समान नेकनी विमान दूरने आता
 दिगामी दिया ॥ ८ ॥
 न ददा प्रभया सम्य पुण्यकस्य महाबलः ।
 हृत्वा त्रितिमिरं स्वर्गं समीपमयवर्तत ॥ ९ ॥
 महाकवी धरज पुण्यकवी प्रभाते उस समस्त प्रदेयक
 अथनारद्वत् करत अत्यन्त निश्च आ गया ॥ ९ ॥
 कोऽपश्यत् स महापाटुवृषाधीयस्ततस्ततः ।
 प्रायिनः सुहृत् धैर्य भुञ्जन्वाभ्येय दुष्कृतम् ॥ १० ॥
 महापाटु दृगधीने यमराजने आकर देखा कि यहाँ
 बहुत ग प्राणी भरो भयने पुण्य तथा पापम का भोग
 रहे हैं ॥ १० ॥

अपश्यत् सैनिकाभ्यास्य धमस्यानुश्रैः सह ।
 यमस्य पुरुषैरुपैर्ष्वैरकूपैर्भक्षकैः ॥ ११ ॥
 वृषां वष्यमानाभ्य हिंश्यमानाभ्य वेदिना ।
 क्रेशतश्च महानाद् टीक्ष्णिल्लतत्परान् ॥ १२ ॥
 उल्लेख यमराजके सेवकोंने साथ उनका सैनिकोंके भी
 रहा । उल्लेख दक्षिणे यमपालनाका हृत्प भी आया । फेर स
 पायी उस प्रकृष्टिकाले भयानक यमपुत्र कितने ही प्रायिकोंके
 मारते और क्लेश पढ़ते जाते थे, कितने वे बड़े और-मेरेते
 भीलते और किस्मतों थे ॥ ११ १२ ॥
 कुमिभिर्भक्ष्यमानाभ्य सारमेयैश्च वारुधैः ।
 श्रोत्रायासकरा याचो घृतश्च भयावहा ॥ १३ ॥
 किन्हीको कीड़े खा रहे थे और कितनोंको भयकर कुपे
 नोच रहे थे । वे एक-के-एक दुखी हो-होकर कनोंको पीटा
 देनेवास्त ममानक चित्कार करते थे ॥ १३ ॥
 सत्तार्यमाजान् वैतरणीं बहुधा शोषितोवकम् ।
 बहनुकास्तु च तस्तास्तु तप्यमानान् सुतुर्भुङ्क्ते ॥ १४ ॥
 किन्हीको बरबार रखते मरी हुई वैतरणी नदी पर
 करनेके लिये निकष किना घाटा या और कितनोंको लक्ष्य
 हुई बाह्यकर्मोंपर बार-बार फलकर संतत किना खता था ॥
 मसिपथवने वैव भिद्यमानान्धर्मिकान् ।
 रौरवे शारन्यां च क्षुरपापस्तु वैव हि ॥ १५ ॥
 पानीय यावमानाभ्य रुषितान् भुषितातपि ।
 शबभूतान् कुरान् वीमान् सिवर्णान् मुक्तमूर्धजान् ॥ १६ ॥
 मत्पद्भुधरान् वीमान् कर्ताश्च परिधावत ।
 वृषां राक्षसो भ्रमो शतशोऽद्य सहस्रशः ॥ १७ ॥
 कुछ पापी अतिपत्र-कामने कितने पते लक्ष्यारथी करते
 छामन लील थे विहीन किये जा रहे थे । किन्हीको रौर
 नरकमें डाला खता था । कितनोंको लारे बखते मरी हुई
 नदियोंमें डुबाया खता था और पटुओंको कुपेकी चट्टेपर
 रोड़ना खता था । कई प्राणी मूल और प्लासते तड़प रहे थे
 और कंधेने चक्की चक्की कर रहे थे । कौनों राक्षसोंके लक्ष्य
 कृत्य दिन दुर्भेद, उन्मत्त और धुले बालोंसे पुष्प रिल्लपी
 देते थे । कितने ही प्राणी अपने आँसोंमें ग्रेह और क्षीयक
 लक्ष्यसे दक्षिण तथा कले हरीरसे जाँचें और भग रहे थे ।
 इस तरहके सेकड़ों और हजारों जीवोंका राजने भ्रमों पातना
 भेगते देखा ॥ १-१७ ॥
 कांक्षिषा शूद्रमुण्येषु गीतवादिषमिःस्वने ।
 प्रमोदमायान्द्राहीद् रायथा सुपुत्रैः स्वकैः ॥ १८ ॥
 हकी और राक्षसने देखा कुछ पुत्रात्मा थीं अपने
 पुण्यकर्मोंके प्रयत्नने अन्धे-अन्ध पतोंमें पड़कर लीला और
 बाधोंकी मनाहर जलिते अत्यन्तित हो रहे हैं ॥ १८ ॥
 गोयसं गोमदाताया हन्त वीयाद्यन्तियत् ।
 गृहाभ्य पृददाताया श्वकमकममदानाः ॥ १९ ॥

गंधान करनेवाले गोरसके अन्न देनेवाले अन्नको और
एक प्रयत्न करनेवाले ध्यान एवम्के पाकर अपने छक्कमोक्ष फल
मेंगे रहे हैं ॥ १९ ॥

सुययमभिमुक्ताभिः प्रमदाभिरलङ्कृतान् ।

धार्मिकान्विरास्तत्र वीप्यमानान् स्वस्तेजसा ॥ २० ॥

दूरे भगामा पुत्रय वहाँ सुखय; मणि और मुत्तमकेसे
अच्छ हो यौवनक मदसे मत करनेवाली सुन्दरी क्रियाके
रूप अग्नी भाङ्गकान्तसे प्रकाशित हो रहे हैं ॥ २ ॥

द्वन् स महाबाहू वयसो राक्षसाधिपः ।

काम्यन् भिद्यमानाश्च कामभिदुष्टतैः स्वकैः ॥ २१ ॥

वयसो मोघयामास विक्रमेण वलाद् पृष्ठी ।

प्रणिनो मोक्षितास्तैश्च दशप्रविषेण वलङ्का ॥ २२ ॥

महाबाहु राक्षसका राजने इन सबको देला । देलकर

बलवान् राक्षस ग्नीने अपने पाप-कर्मोंके कारण यन्त्रा
भंगनेवाले प्राणियोंको पराक्रमद्वारा वल्लुके मुक्त कर
दिया ॥ २१ २२ ॥

सुखमापुमुहूर्ते ते ह्यार्कितमभिवृत्तिसम् ।

प्रतपु मुच्यमानेषु राक्षसेन मर्हीषसा ॥ २३ ॥

प्रगाथा सुसमुन्वा राक्षसेन्द्रमभिप्रवन् ।

इसके धात्री देखकर उन परिवर्धकों बड़ा सुख मिला;
जन्के मिथनेही न वा जन्के सम्भवय थी और न उरक
रिसने के कुछ धाक ही सके थे । उध महान् राक्षसके द्वारा
सब कभी प्रत याननामे मुक्त कर दिये गये तब उन प्रतीकी
रहा करनेवाले यमवृत् अत्यन्त कुपित हो राक्षसराजपर
दृष्ट गये ॥ २ ॥

तथा हृद्यदलागञ्ज सयद्विग्न्याः समुत्थिताः ॥ २४ ॥

धमराजस्य याचनां दूरणा स्मरप्रधायताम् ।

द्विर ता समूर्ध्वं निगध्वंरी आरते पाया करनवाल धम-

राजक दुरधीर गदाभोंस मगन् कायरस प्रकट हुआ ॥

तं प्रासैः पवित्रं दृष्टेमुमसौ दक्षितोमरैः ॥ २५ ॥

पुण्यं समचयन्त दूराः गतसहस्रशः ।

तस्यस्यनाभि प्रास्तान् दक्षिणास्तोत्राणि च ॥ २६ ॥

पुण्यकर्म यमज्जुम्ने दीप्य मधुदण्ड इय ।

जो दृग्गा एव के हीं और मुट मान ई उन्ही प्रकर

उक्त विमानपर लक्ष्मों इत्यय गुरधीर यमवृत् बन्द आय

भार प्रकट करीं ही दृष्ट्य मूर्धों गतिमें तथा तमसेद्वारा

उत्तरासन से करने लगे । उन्होंने पुण्यक विमानक भाजन

पुण्य के और वदक हीन ही लेके दाल ॥ २५ २६ ॥

इतिष्ठानभूत तद् विमान पुण्यं मृष ॥ २७ ॥

मन्त्रमान तत्रयामीदृश्य प्रहृतजसा ।

जो भरी अ गानभूत बंद पुण्यविमान उध पुत्रने

गद गद से उरके प्रयागने गदरास्वों ही अण्य

क वदक गद इनकला नगी ॥ २७ ॥

भसक्या सुमहत्पासीद् तस्य सेना महारामन ॥ २८ ॥
दूराप्यामप्रयातूणा सहस्राणि शतानि च ।

महाम्ना यमपै निगाळ सेना अथक्य थी । उसमें लकड़ों-
इसमें दुरधीर आगे बढकर युद्ध करनेवाले थे ॥ २८ ॥

ततो वृक्षैश्च शैलैश्च प्रासादानां शतैस्ताथा ॥ २९ ॥
ततस्ते सचियास्तस्य यथाकाम यथावलम् ।

असुर्यस्य महावीराः स च राजा दुरानन ॥ ३० ॥
यमदूँके आक्रमण करनेपर राक्षस व महावीर मन्त्री

तथा स्वयं राजा दशमी भी हूँ; पवन-दिसते तथा यम-
दूँके लकड़ों प्राणदोंके उलाहकर उनक द्वारा पूरी दक्षि

द्वाराकर इन्डानुसार युद्ध करने लगे ॥ २९-३० ॥

ते तु शोणितद्विग्धाहाः सद्यशस्त्रसमाहृता ।
अमात्या राक्षसेन्द्रस्य चक्रुरायोधन महत् ॥ ३१ ॥

राक्षसके मन्त्रियोंके धरे मज्ज रकसंनहा उठे थे । समूर्ध्व
दक्षोंके आधातसे वे पयस हो चुके थे । द्विर भी उन्होंने

बड़ा भारी युद्ध किया ॥ ३१ ॥

अस्योप्य ते महाभाग जघ्नुः प्रहरयैमुदात्तम् ।
यमस्य च महावाहो रावणस्य च मन्त्रिणः ॥ ३२ ॥

महाबाहु अश्विन ! यमराज तथा राक्षसक वे महामग
मन्त्री एक दूसरेपर नाना प्रकरक अश्व-शस्त्रोंद्वारा बड़े जोरसे

आधात-प्रत्याधात करने लगे ॥ ३२ ॥

अमात्यास्तांस्तु सत्यज्य यमयोधा महाधलाः ।
तमेव चाभ्यधाकन्त दृष्टदर्शदुराननम् ॥ ३३ ॥

तस्यभ्रातृ यमराजके महापत्नी योद्धाभोंने रावणक मन्त्रियों-
को लाहकर उध दशमीने ही ऊपर दृष्टेकी क्या करत हुए

थाया किया ॥ ३३ ॥

तत शोणितद्विग्धाहाः प्रहारैर्जर्जरिष्टाः ।
कुल्लासोक इयामाभि पुण्यं राक्षसाधिपः ॥ ३४ ॥

राक्षसका स्वयं दुरधीर दक्षोंकी मारने करद हो गया ।
यह सुतेसे सपयय हो गया और पुण्यकीमानक ऊपर पूर्य

हुए अशोक इधर समान प्रथीन होने लगे ॥ ३४ ॥

स तु दृष्ट्याश्रामासदृष्टितोमरसायकम् ।
मुसलानि तिलावृक्षान् सुमोघान्प्रयत्नान् पृष्ठी ॥ ३५ ॥

तब बलवान् रावणने अरुन अश्व-यन्त्र यमराजक
दैनिकीर दृष्ट गद प्रात गति तमर यज्ञ दृष्ट्या

पथर भार लूटनी क्या आरम्भ की ॥ ३ ॥

तदृण्या च निस्तारो च गन्नाला ध्यानिगण्यम् ।
यममन्त्रेषु तद् यो पयात् धारणीतम् ॥ ३६ ॥

दृष्ट विमानोंके और मन्त्री वद अत्यन्त धारण
दृष्टि भूतान्तर तब एक यमराजक नीतिपर पढ़न लगी ॥
ताम्लु सवान् विनिभय तद्वदमन्त्राय च ।
जघ्नुस्तु राक्षस पाण्यन्त गतमन्त्रयान् ॥ ३७ ॥
य एतिस्य च दृष्ट दृष्ट्या अश्व-यन्त्र हा गद

सारे अमुषोके विद्युत्सिक्त करके उसके वषा छोड़े हुए दिग्भ्राजक भी निवारण कर एकमात्र उस भयंकर रक्षसको ही मारने लगे ॥ १७ ॥

परिवार्य च त सर्वे शौर्ले मञ्जोत्करा इव ।
भिन्निपातैश्च शूरेश्च निदृष्ट्यात्मपाथयन् ॥ १८ ॥

जैसे शरशोके समूह पर्यन्तपर एक भरोसे कक्षी भगपण्डे मिलते हैं उसी प्रकार रामायणके समस्त वैदिकोंने रामायणको पार्यो भरोसे फेरकर उने भिन्निपातों और शूरोसे छेदना आरम्भ कर दिया । उरको हम छेनेही भी फुरका नहीं थी ॥ विमुक्तकवचः कुन्डः सिकः शोणितयिकषैः ।
ततः स पुष्पकं त्यक्त्वा पृथिव्यामवलिष्ठत ॥ १९ ॥

रामायण कवच फाँट गिर पड़ा । उसके शरीरसे रक्तकी बाण धरने लगी । वह उर रक्तसे नहा उठा और कुण्ठित हो पुष्पकविमान छोड़कर पृथ्वीपर लड़ा हो गया ॥ १ ॥

ततः स कामुकी वायुी समरे श्वमिषर्षत ।
सम्पत्सज्जो मुहुर्तेन कुन्डस्तस्यौ पयाप्तकः ॥ ४० ॥
वहों दो पक्षीके बाद उरने अपने-अपका सैन्यम् ।
फिर लड़ वह वन्यु और बाण हाथमें छे ब* हुए उत्खरने सम्पन्न हो रामायणमें कुण्ठित हुए यमराजके सम्पन्न लड़ा हुआ ॥ ४ ॥

ततः पाशुपत दिव्यमक्षं सधाय कामुके ।
सिष्ट तिष्ठेति तानुक्त्वा तन्वाप व्यफर्षत ॥ ४१ ॥
उरने अपने वन्युपर पाशुपत नामक दिव्य अक्षक संभान किया और उन वैदिकोंसे 'उड़ो-उड़ो' करते हुए उर वन्युको लीला ॥ ४१ ॥

हजारों श्रीमद्वाल्मीकीय भाषिणाके उक्तकाशके पूर्वार्धका सर्गः २१ ॥

इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीय अरंतामयन अदिकम्पके उत्तरार्धमें इतिहास सने पूरा हुआ ॥ २१ ॥

द्वाविंश सर्ग

यमराज और रावणका युद्ध, यमका रावणके बंधके लिये उठाये हुए सारदम्बको मन्नाजीके कहनेसे लौटा लेना, विजयी रावणका यमलोकेसे प्रस्थान

स तस्य तु महाताद धृत्वा वैबलतः प्रभुः ।
शत्रु विजयित मेन स्वयंकर्म्य च सप्तपम् ॥ १ ॥
(भगवत्पक्षी कहते हैं—सुनन्दन ।) रावणक उर महानादक सुनकर धूर्तपुत्र मगान्द वमने कर समस्त किया कि शत्रु विजयी हुआ और मेरी मेरा मारी गया ॥ १ ॥
स हि योधान् हतान् मत्वा श्लोभसरक्तलोचनः ।
अग्रवीर्य स्मरिताः सून रयो मे उपनीयताम् ॥ २ ॥
मेरे कंधा मारे गये—यह जानकर यमराजके नेत्र श्लोभने लगत हा गये और वे उठाएके हाकर खरधिते बाले—
मेरा रूप मे मारो ॥ २ ॥
तस्य सूनसदा दिव्यमुपस्थान्य महारथम् ।

आकर्णात् स विहृष्याथ चापमिन्द्रारिरहणे ।
मुमोच त शत्रु कुन्डस्मिपुरे शकरो क्वा ॥ ४२ ॥

जैसे मगवान् शत्रुने विपुलसुरपर पाशुपतक्षत्र प्रलेप किया था, उसी प्रकार उर इन्द्रोपी उरवने अपने वन्युको अन्तक लीनकर वह बाण छोड़ दिया ॥ ४२ ॥
तस्य रूप शरस्यासीत् सधूमज्वालमण्डकम् ।
एव वृथिष्यतो धर्म शकामेरिष मूर्च्छतः ॥ ४३ ॥

उर समय उसके बाणका रूप धूम और ज्वालमण्डके मण्डकसे युक्त हो भीषण शूद्रमें कंकालको कन्दनेके लिये शरीर और पैरोंके हुए शकामण्डके समान प्रतीत होने लगा ॥
ज्वालामण्डली स तु शरः कम्पाशानुगच्छे रणे ।
मुक्तो गुह्यमान् गुह्याद्यापि भसतुत्वा प्रभावति ॥ ४४ ॥

राममिमें कम्पाशमण्डकेसे फिट हुआ वह बाण वन्युसे झूटे ही हुई और हादियोंको बधला हुआ ठीक लीने आगे बढ़ा और उसके पीछे-पीछे माँझाही चीर-जन्तु फरने लगे ॥ ४४ ॥

त तस्य तेजसा वृग्धा सैन्या वैषलस्य तु ।
रणे तस्मिन् निपतिता मोहेन्द्रा इव केतवा ॥ ४५ ॥

उर मुद्गलसमें यमराजके वे लरे सैनिक पाशुपतके तेजसे बग हो इन्द्रज्वालके समान नीचे गिर पड़े ॥ ४५ ॥
ततस्तु सविधैः सार्धे राक्षसो भीमविक्रमा ।
ननाद् सुमहानाद् कम्पयन्निव मेघिनीम् ॥ ४६ ॥
उरन्दर अपने मन्त्रियोंके साथ वह मगानक वन्युकी एकल पृथ्वीको कम्पित करता हुआ-स वह खेर-खेरसे हिलान करने लगा ॥ ४६ ॥

स्थितः स च महातेजा अम्पारोहत च रथम् ॥ १ ॥
उर उनके खरधिते हाकाउ एक दिव्य एवं निपट्टक रूप बहों उपस्थित कर शिवा और वह खमने किन्तिमाकसे लड़ा हो गया । फिर वे महाप्रेकम्भी वम देवता उर रथपर आनन्द हुए ॥ १ ॥
प्रासमुद्रं हस्ताच्च सूक्ष्मुत्तम्याप्रताः स्थिताः ।
येन ससिन्धुतं सर्वे वैश्लोक्यमिन्द्रमभ्ययम् ॥ ४ ॥
उनके आगे प्रास और मुद्र हाथमें स्थि तच्छाए मूण देवता लड़े थे जो प्रकाशकपले छा करने रखनेवाले इस समस्त विमुचनका संगर करते हैं ॥ ४ ॥
कालवृन्दस्तु पार्वीस्यो मूर्तिमानस्य चाभवत् ।

पमप्रहरणं दिव्यं तेजसा ज्वलन्प्रियात् ॥ ५ ॥

उनके पार्ष्णीमानमें काष्ठरण्य मूर्तिमान् हाकर लड़ा हुआ
वे उनका मुक्क एवं दिव्य आयुष है। वह अपने तेजसे
मन्त्रिके समान प्रकम्बित हो रहा था ॥ ५ ॥

तथा पादवैपु निचिच्छन्नाः कल्पपादाः प्रतिष्ठिताः ।

पादकल्पशोचंकाशा स्थितो मूर्त्तौ मन्दर ॥ ६ ॥

ऊनके दोनों काखमें स्थिररहित कल्पपाद लड़े ये और
मिथ्य स्थान अतिके समान हुआ है। वह मन्दर भी मूर्तिमान्
होकर उपस्थित था ॥ ६ ॥

ततो लोकत्रयं श्रुध्ममकनफत्तं विधौकसः ।

काष्ठं ह्यग्रा तथा मुन्दरं सर्वलोकभयावहम् ॥ ७ ॥

समस्त लोकोंको मय देनेवाले छात्रात् काष्ठको कुपित हुआ
देख लीनों लोकोंमें हस्तक मच गयी। समस्त देवता कौप
से ॥ ७ ॥

ततस्तथोद्यत् स्वस्तलाभ्यान् दक्षिरप्रभान् ।

प्रपद्यौ भीमसनाद्यौ यत्र रक्षापतिः स्थिताः ॥ ८ ॥

वरनन्तर खरपिने मुन्दर कान्तिवाले धाँड़ोंको हाँधा
और वह रथ मयानक आलाभ करता हुआ उस स्थानपर
ब पहुँचा जहाँ राक्षसराज रावण लड़ा था ॥ ८ ॥
मुमुक्षु मय ते तु हया हरिहयोपमाः ।

प्रापन् मनसस्तुल्या पम तत् प्रस्तुतं रणम् ॥ ९ ॥

इन्द्रके घोड़ोंके समान तेजस्वी और मनके समान क्षिप्र-
गयी उन घोड़ोंने समराजका ह्यमरमें उस स्थानपर पहुँचा
विच जहाँ वह युद्ध चल रहा था ॥ ९ ॥

एषु तथैव विहृतं रथं मृत्युसमन्वितम् ।

सखिका राक्षसेन्द्रस्य सहसा विपतुमुद्युः ॥ १० ॥

मृत्युदेवताके साथ उस विकराज रथको आना देख
राक्षसराजे खचित शरल बहते भाग लड़े हुए ॥ १० ॥
सपुंसस्वतया ते हि नष्टसङ्गा भयार्जिताः ।

नेह योद्धुः समर्थोऽस्य हत्युक्त्या प्रययुर्विंशः ॥ ११ ॥

उनकी शक्ति पाड़ी थी। इसलिये वे मयसे पीड़ित हो
भगना होय-इशाव लो बडे और हम यहाँ युद्ध करनेमें समर्थ
नहीं हैं ऐसा कहकर विभिन्न दिशाओंमें भाग गये ॥ ११ ॥
स तु तं तादात् ह्यग्रा रथं लोकभयावहम् ।

मृत्युस्यैव वृत्तमिद्यो न कापि भयमाविशत् ॥ १२ ॥

पाद समस्त संसारको भयभीत करनेवाले बैठे विकराज
रथका देखकर भी हताभीबके मनमें न तो क्षम हुआ और न
मय ही ॥ १२ ॥
स तु रावणमासाद्य ध्वस्तमच्छिन्नोत्तोरान् ।

पमा मर्माणि सन्नुद्धो रावणस्य स्पृहस्त ॥ १३ ॥

सत्यम श्रेयसे मरे हुए समराजने राजपते पाद पहुँच-
कर शक्ति और लोभपूर्ण प्रहार किया तथा रावणके मर्मस्थानों-
का टेर इत्या ॥ १३ ॥

रावणस्तु ततः स्वस्याः शरत्सर्पं मुमोच ह ।

तस्मिन् वैषल्यतरये तोयवर्षमिषाम्युषः ॥ १४ ॥

तब रावणने भी लोभकर समराजके रथपर बामोड़ी
गड़ी छत्र पी, मानो मेघ कच्छकी वर्षा कर रहा हो ॥ १४ ॥
ततो महाशक्तिशतैः पात्यमानैर्महोरसि ।

गदाक्रान्तेषु प्रतिकर्तुं स्व राक्षसः शल्पपीडितः ॥ १५ ॥

तदनन्तर उलकी पिशाच छापीपर छेड़कों महाशक्तियोंकी
मार पड़ने लगी। वह राक्षस शल्पोंके प्रहारसे इतना पीड़ित
हो हुआ था कि समराजसे बदला देनेमें समर्थ न हो
सक ॥ १५ ॥

पथं नाशाप्रहरणैर्मैनामिषकार्पणा ।

सतरात्र कृतः सख्ये विलम्बो विमुखो रिपुः ॥ १६ ॥

इस प्रकार शत्रुसूदन यमने नाना प्रकारके आक्षेपोंका
प्रहार करते हुए रथमूर्तिमें व्याघार करत यहाँतक मुद्ध किया।
इससे उनका शत्रु रावण अपनी सुभ-सुभ लोकर मुद्धते विमुख
हो गया ॥ १६ ॥

तथाऽऽसीत् तुमुल युद्धं यमराक्षसयोश्च यो ।

जयमाकाङ्क्षतोर्वीरं समरेष्यनिवर्तिनोः ॥ १७ ॥

वीर खनन्दन । व यहाँ योद्धा समरमूर्तिसे पीछे
इतनेवाले नहीं थे और दोनों ही अपनी विजय चाहत थे;
इसलिये उन यमराज और राक्षस दोनोंमें उस समय घेर युद्ध
होने लगा ॥ १७ ॥

ततो देवाः सगन्धवाः सिञ्जाश्च परमयया ।

प्रजापतिं पुरस्कृत्य समेतास्तद्रथाजिरे ॥ १८ ॥

तब देवता गन्धवं सिद्ध और महर्षिगण प्रजापतिकी
आगे करके उस समराजमयने एकत्र हुए ॥ १८ ॥
सफर्तं ह्य लोकाणां युष्मत्तोरभयत् तदा ।

राक्षसाणां च मुक्तयस्य प्रेतानामिष्यरभ्य च ॥ १९ ॥

उस समय राक्षसोंके राजा रावण तथा प्रेतपति यमके युद्ध
परायण होनेपर समस्त लोकोंके प्रथयज्ञ समय उपस्थित हुआ-
या जन पड़ा था ॥ १९ ॥

राक्षसेन्दोऽपि दिक्प्रलयं चापमिन्द्राशनिप्रभम् ।

निरन्तरमिवाकाङ्क्षां कुर्वन् दारणांस्तनोऽच्छजत् ॥ २० ॥

राक्षसराज रावण भी इन्द्रकी आनिफ शस्त्र अपने
धनुषको लोचकर बालोंकी यथा करने लगा इतने आशाच
ठगठाठ भर गया—उठने क्षिप्र भी क्षासी बगद नहीं
रह गयी ॥ २० ॥

मृत्युं धनुर्भिर्पिडितौ सुप्तं सतभिरावृषत् ।

यम दातसहस्रेण दीप्तं ममस्यताइयत् ॥ २१ ॥

उसने चार बाण मारकर मृत्युका और शत बालोंसे
यमके शरयिकों भी पीड़ित कर दिया। निरन्तर-इन्द्री सत्य
बाण मारकर यमराजके ममस्थानोंमें गहरी चोट पहुँचायी ॥

ततः कुन्दस्य वदनाद् यमस्य समजापत ।

ज्यास्त्रमासी स्वतिःभासाः सधूमः कोपपाचकाः ॥ २२ ॥
 तत्र वनराजके श्याषी सीमा न ही । उनके मुक्ते वह
 रोप अश्वि वनकर प्रकृत हुआ । वह अथवा व्याघ्र-मात्राप्रसे
 मण्डित, श्याम्नापुने सयुक्त तथा धूमने आच्छन्न दित्वासी
 देवी थी ॥ २२ ॥
 दशाचार्यमयो वृष्ण देवदानवसन्निधी ।
 प्रार्थिणी सुसरभ्यो मृत्युकासी वसुधतुः ॥ २३ ॥
 देवताओं तथा शनशैके छापी पर आश्चर्यकाक पटना
 दण्डकर योगेशाने मरुतुप मृत्यु एवं काञ्चो वडा हर्ष हुआ २३
 सतां स्यात् । कुन्धतरो वैश्वतप्रभायत ।
 मुञ्च मा समरं पावशमीम पापराससम् ॥ २४ ॥
 गन्धान् मृत्युदेवने अयक्त कुपित हाकर वैश्वत समसे
 क्या— अथ मुसे छाडिये—आशा दीकिने में छमरहणने
 इन पापी राक्षसने आशे मारे बाडता ॥ २४ ॥
 नैगा रसा भवेद्यथ मयादा हि निखर्गतः ।
 शिष्यरुग्निना श्रोमान् नमुषिः शम्बरस्तथा ॥ २५ ॥
 निम्बन्दिभ्रमवेतुञ्च वलियैरोत्तमोऽपि यः ।
 दाम्भुङ्गो महाराजा वृजो वापस्तथैव यः ॥ २६ ॥
 राजर्षय द्वात्रिंशो गन्धर्वाः समहोरगाः ।
 भ्रूण्य पधगा वृत्या यन्नाश्च शप्सरोतणा ॥ २७ ॥
 युगान्तापरियमै य पृथिवी समवाणवा ।
 इय मीना महागज संपर्वतसरिषुद्रुमा ॥ २८ ॥
 एते जान्ये य महवो घलयस्यो दुपासदाः ।
 विनिपन्ना मया दृष्टा किमुताय निधात्रता ॥ २९ ॥
 महागज । यह मेरी श्मशानस्थ मर्षीदा है कि मुक्ते
 गिहकर य राउत कीकिन मही य, लच्छा । श्रीमान् शिष्य-
 कणियु नमुषि शम्बर निबन्दि भ्रमवेत् विरोक्ताकुमार
 बलि दाम्भ्यात्मक दत्य महाराज इत्र तथा वानामुठ किने
 ही गणप्रेता राजर्षि मन्धरं बड़े-बड़े नाग श्रुति एवं देव
 यथ भ्रूणप्रभार मनुष्यय युगान्ताकारमें छुद्रों पर्वतों
 मरिताशे और इष्टामरित दृष्यी—य एवं मरे इत्य शयके
 प्राप्त हुए हैं । य तथा धूमने वृष्णराजकाल्पै वृक्षं वीर भी मेरे
 श्रावनिपातोपलक्ष्यु हैं छिद्र यह निघाचर किण निन्सीमें
 २ ॥ २ - २९ ॥
 मुञ्च मा स्तानु धमत्र यापदर्श निहन्म्यहम् ।
 मन् कथिग्रमया दृष्टा वलपात्रपि जीयति ॥ ३० ॥
 ३० ॥ धन मुठ छाड दीजिये । मैं इसे भक्षण मार
 लो । जिने में दृष्टा य, वह वारे बधनान् होनेर भी
 शी ३ ॥ ३० ॥ ३० ॥ ३ ॥
 एवं मम ग राज्यममपादेन निमगना ।
 न तथा ग मया वान् मुह्यतमपि जीयति ॥ ३१ ॥
 ३१ ॥ ३१ ॥ ३१ ॥ ३१ ॥ ३१ ॥ ३१ ॥ ३१ ॥ ३१ ॥ ३१ ॥

अपने बडके प्रकथित करना मात्र नहीं है, अपितु वह
 स्वभावसिद्ध मर्यादा है ॥ ३१ ॥
 तस्यैव वचन भुक्त्वा धर्मराजः प्रतापवान् ।
 मन्वृषी तत्र त मृत्युं स्वं निष्टेन निहन्म्यहम् ॥ ३२ ॥
 मृत्युकी वह बात सुनकर प्रतापी धर्मराजने उसके क्ल-
 ष्म टरने में ही इसे मारे बाडता ॥ ३२ ॥
 ततः सरकनपनाः कुञ्चो वैश्वतः प्रभुः ।
 कण्डवृक्षममोर्षं तु लोकषामास प्राणिना ॥ ३३ ॥
 तदनन्तर कुञ्चके कण्ड ओलें करके लाम्पेयाश्री वैश्वत
 मग्ने अपने अमोष कण्डरूपके हापने उठाया ॥ ३३ ॥
 पश्य पाश्वर्येण निदिताः कण्डपाशाः प्रकिञ्चिताः ।
 पापकप्रशानितकणायो मुञ्चरो मूर्तिमान् स्थिताः ॥ ३४ ॥
 उच कण्डवृक्षक पाश्वर्यमोगमें कण्डपाश प्रकिञ्चित थे और कण
 एवं अश्विमुस्यतेजसी मुहुर भी मूर्तिमान् हाकर स्थित था ॥ ३४ ॥
 वशाशब्दे य प्राणान् प्राणिन्ममपि कथति ।
 कि पुत्र इषुशामास्य पाप्यमानस्य वा पुत्रः ॥ ३५ ॥
 वह कण्डवृक्ष दक्षिमें अनेमात्रसे प्राणिकें प्रार्थना
 अपहरण कर छेदा या । किन्तु किसे उलका स्थै छ कर
 मपना भिन्ने अत्र उलकी मर पड़े उच पुत्रके पाशेरा
 संशर करना उठके जिय कौन बड़ी बात है ॥ ३५ ॥
 न न्नात्मपरिवारस्तु निर्वैदक्षिय राजसम् ।
 तेन स्पृष्टो बलवत्त महाप्रहरणोऽस्तुरत् ॥ ३६ ॥
 न्नात्मभौसे विद्य हुआ वह कण्डवृक्ष उच अक्षरी
 रूप-छ कर देनेक स्थि उचत था । बलवत् अथवा
 हापने शिष्य हुआ वह महान् आशुभ अपने ठेके प्रकथित
 हो उठा ॥ ३६ ॥
 ततो विदुमुद्रुः सप्ये तस्मात् प्रस्ता रणाधिरे ।
 सुराद्य क्षुभिताः सप्ये वृष्ण कण्डोपत्यं यमम् ॥ ३७ ॥
 उठके उठते ही कणवृष्णने लड़े हुए कमल छेदने
 भयभीत हाकर भाग गये । कण्डवृक्ष उठाये यमराज देवरा
 कण्ड देवता भी दुष्प हो उठे ॥ ३७ ॥
 तस्मिन् महर्षेकामे तु यमे वृक्षेन राघवम् ।
 यमं पितामहाः साक्षाद् वृषयित्वेवमग्रवीत् ॥ ३८ ॥
 यमराज उच इजनेते राघवरा प्रसार करना ही चाहते थे
 कि कण्डवृक्ष निगमह बना यदों अ पर्वुके । इतने इज
 देकर इत्र प्रसार क्या— ॥ ३८ ॥
 वैश्वत महायाहो न लक्ष्यमितिक्रम ।
 न दन्तप्रम्यसर्वतत्र वृक्षेनैव निशाचरः ॥ ३९ ॥
 अभिन पराक्रमी महाबाहु वैश्वत । तुम इत कण्डवृक्ष
 हाय निघाचर राघवरा कथ न कर ॥ ३९ ॥
 वरा मनु मपेयस्मै वृक्षत्विकापुद्रव ।
 स स्वया नाम्नाः कथयै यमया स्याद्वन यमः ॥ ४० ॥
 वैश्वतर । मिने इत देवरा मोहरण न मारे वा नग्ने

तदन्तरं वरं राक्षसं रघोत्तमं चन्द्रेणै इच्छते देव्यो
भोर नागोसे सेवित तथा बन्धुके द्वाय सुकृति क्तनिधि
स्मृदने प्रथिप हुमा ॥ ४ ॥

स तु भोगवर्ती गत्वा पुर्वी घासुकुपाकित्वाम् ।

कृत्वा मागान् यदो ह्येषे षयी मथिमयीं पुरीम् ॥ ५ ॥

नागपञ्च शासुकुपाकित्वा पालिष्ठ मेगकती पुरीमे प्रवेद्य
करके उरने नागोको भयने वधमे कर क्त्वा भोर बहोते ह्ये
पूर्वक मथिमयीपुरीको प्रस्थान किना ॥ ५ ॥

निवातकप्रधानतत्र वैत्या लम्प्यवरा धसन् ।

राक्षसस्तन् समामग्य युवाय समुपाह्वयत् ॥ ६ ॥

उत्त पुरीमे निवातकप्रच नामक देत्य रहते थे, किन्तु
नशाहीसे उत्तम वर प्राप्त थे । उक्त राक्षसे वहाँ आकर उन
लम्प्ये युद्धके लिये लम्प्यवरा ॥ ६ ॥

ते तु सर्वे सुविक्रमस्ता वैतेया पक्षशास्त्रिनः ।

नामाप्रहरणान्तरा प्रहृष्टा युयुत्सुर्दश ॥ ७ ॥

ये सब देत्य बड़े पराक्रमी और वधघातकी थे । नामा
प्रहरक अर्थात् घातक धारण कर्त्त वे तथा युद्धके लिये सदा
उत्सहित एवं तन्मत् रहते थे ॥ ७ ॥

शुलीशिक्षां कुखिरीः पक्षिशासिपरम्बधै ।

अप्योस्य विभिदुः कृत्वा राक्षसा दानवान्तरथा ॥ ८ ॥

उनका राक्षसके लक्ष्य युद्ध आरम्भ हो गया । वे राक्षस
और दानव कुम्भिन ही एक वृक्षको धरु, शिष्टक वज्र पक्षि
कृत् और फरतीसे पालक करने लगे ॥ ८ ॥

तेषां तु पुष्यमानानां सत्माः संकसरो गताः ।

न सान्यतरतस्तत्र विजयो वा क्षयोऽपि वा ॥ ९ ॥

उनके युद्ध करते हुए एक वर्षसे अधिक समय अवधि
हो गया; किन्तु उनमेंसे किसी भी पक्षकी विजय वा पराजय
नहीं हुई ॥ ९ ॥

ततः पितृमहस्तत्र वैश्वेक्यगतिरभ्यया ।

अज्ञगाम ह्युत देवो विमानवरमाश्रिताः ॥ १० ॥

तब विद्युत्का आभयभूत अविनाशी पितामह भगवान्
जहा एक उतम विमानपर बैठकर वहाँ क्षीम आश ॥ १ ॥

निवातकप्रधानां तु निवार्यं रणकर्म तत् ।

युद्धः पितृमहा पाप्यमुभावा विवितार्यवत् ॥ ११ ॥

युद्धे पितामहने निवातकप्रचोके उक्त युद्ध-कर्मको रोक
दिवा और उनसे स्पष्ट धर्मोंमें यह बात कही — ॥ ११ ॥

नक्षत्रं रावणो युजे दानयो मेतु सुरासुरैः ।

म भवन्ता क्षयं ननुतमपि मामरत्वात्तयैः ॥ १२ ॥

पितृमहो । तस्मै देवता भोर अक्षर सिद्धकर मी युद्धमें
इत राक्षसको पराजय नहीं कर सकते । इन्हीं तथा समस्त
देवता और दानव एक लक्ष आत्मक कर्त्तों मी वे युद्ध
क्षयोंका क्षय नहीं कर सकते ॥ १२ ॥

राक्षसस्य वसिष्ठस्य च भवति साह रोषते ।

अदिभलाश्च स्वार्था सुहृदां त्वम वहायः ॥ १३ ॥

(युद्ध धर्मोंमें बरदानजनित शक्ति एक ही है)
मुझे तो यह अच्छा लगता है कि तुममेंसे कौनसे लक्ष्य
की मैत्री हो जाय क्योंकि सुहृदोंके साथ अर्थात् (

पदार्थ) एक वृक्षके लिये समान होते हैं—वृक्ष
नहीं रहते हैं । निःसंदेह ऐसी ही बात है ॥ ११ ॥
ततोऽभिन्नासिद्ध सत्यं कृतवांस्तत्र यत्ना ।

निघातकवचैः सार्यं प्रीतिमग्नभक्तत्वा ।

तब वहाँ राक्षसने अग्निको सखी बनाकर निघ
लाय निघता कर ली । इन्हीं उक्तके वही प्रकृत्युर्ग ॥
अर्थितस्तैषधान्यायं सपरस्तरमधोषिता ।

सपुराधिपिर्दिशैरं च प्रियं प्रातो दशानम ॥ १५ ॥

किन्तु निवातकप्रचोके उचित भावर पाकर वह
तक नहीं दिख रहा । उक्त स्थानपर दशानमना अपने
स्थान ही प्रिय भोग प्राप्त हुए ॥ १५ ॥

तथोपभार्यं मायाणां शतमेक समस्तवान् ।

सस्त्रिकेन्द्रपुरात्नेदी भ्रमति सा रसातलम् ॥ १६ ॥

उत्तने निवातकप्रचोके छे प्रकारकी मायामोक्ष रूप
किना । उक्तके बाद वह बन्धुके नगरका पक्ष लम्प्य
रघोत्तममें सब अंदर चले गए ॥ १६ ॥

ततोऽप्रमनगरं त्वम काशकेयौरधिष्ठितम् ।

गत्वा तु कश्चकेयोऽहं हत्वा तत्र बलोकृतान् ॥ १७ ॥

शूर्यपक्ष्याह्य भर्तारमसिन्धु प्रापिकृतम् त्वा ।

इत्याह च दलकस्त च विद्युच्छिह्न बस्त्रोक्तम् ॥ १८ ॥

शिष्टया संकिहन्त च राक्षस समरे त्वा ।

भूमते भूमते यह अज्ञानात्मक नगरमें जा पहुँच
कश्चकेय नामक राजन्य निवास करते थे । कश्चकेय
कल्पान् थे । राक्षसने वहाँ उन सखी संहार करके इतना
क पति उक्तक बलगाठी अपने बहनाई महावकी विद्युच्छिह्न
च उक्त राक्षसको समस्तपक्षमें पाद बना चारता बट लम्प्य
से कृत शस्त्र ॥ १७-१८ ॥

त विक्रित्य सुहृतेन जप्ते वैत्याभ्यतुम्यतम् ॥ १९ ॥

ततः पाण्डुरमेधायां कैश्वरसमिध भास्वरम् ।

पक्षपम्यास्यं विध्यमपक्ष्यान् राक्षसाधिपा ॥ २० ॥

उत्तने पराजय करके राक्षसने हो ही पक्षीमें पार ली देव
का मौलिके पाद उतार दिया । तत्पश्चात् उक्त राक्षसको
पक्षपक्ष सिध्य मकन देला जो श्वेत कश्चकेके समान उन्म
और कैश्वर पर्वतके समान प्रकृत्युत्तम वा ॥ १९ ॥

क्षरन्ती च पक्षस्तत्र सुरभिं गामयसिष्यवाम् ।

पस्यापयोऽभिपिप्यन्वात्क्षीरोबो नाम सागरः ॥ २१ ॥

वही सुभि नामकी गे मी लक्षी मी किन्तुके वनीते हुए
सार रहा था । कश्चके है सुभिने ही वृषकी बाणसे क्षीरका
भण हुआ है ॥ २१ ॥

वर्षां राघवस्तत्र गोबुध्रेन्द्रयदारणिम् ।
 मन्त्राबन्धः प्रभवति शीतरदिमर्निशाकरः ॥ २० ॥
 एकमे महादेवबीके वाहामृत महानृपमभी क्वनी
 सुपिदेवीभ्य दर्शनं क्रिया क्रिप्ते शीतल क्रिपोंयाञ्च निघाकर
 पत्रमका प्राहुर्मात्रं हुभा है (सुरभिमे क्षीरसमुद्र और
 क्षीरमुद्रते पत्रमात्र आधिभाव हुभा है) ॥ २२ ॥
 य समाधित्य बीयस्ति फेत्तपा परमपथा ।
 ममृत यत्र खोरपन्न स्वधा च स्वधभोजिनाम् ॥ २३ ॥
 इन्दी पत्रदेवके उत्पत्तिस्थान क्षीरसमुद्रका आधय
 केर फेन पीनेवाके महर्षि बीयन चरण करते हैं । उध क्षीर
 कस्तुर् ही मुषा तथा स्वधामोक्षी पितरोंकी स्वधा प्रकट हुई
 है ॥ २१ ॥
 यां ह्युपस्ति नरा लोके सुरभि नाम नामतः ।
 मन्त्रिण तु ता कृत्वा रायणः परमाद्भुताम् ।
 प्रविशेद्य महाघोरं गुप्तं यद्विधिवैलैः ॥ २४ ॥
 लोकमें कित्ने सुरभि नामके पुत्ररा जाता है, उन परम
 मनुष्य प्रथमाक्षी परिक्रमा करके रावणने नाना प्रकारकी
 केन्द्रमें सुरक्षित महामर्मकर बरणाक्रममें प्रवेश किया ॥ २४ ॥
 ततो भ्रातृपराताकीर्णं शारदाभ्रनिभं तवा ।
 लिप्यमह्यं बहदो बहजस्य सुहोत्तमम् ॥ २५ ॥
 वहाँ प्रवेश करके उठने बरणाके उत्तम भकाको देला
 जो वरा ही आनन्दमय उत्कृष्टते परिपूर्ण अनेक अक्षयप्रभों
 (कैपूरों) से आसत तथा धातुसम्पन्न बादलोंके समान
 उत्कृष्ट था ॥ २५ ॥
 यथा इत्या तद्यथ्यहान् समरे ठीक ताडितः ।
 पद्मबीजं ततो योधान् राजा शीघ्रं निवेशयताम् ॥ २६ ॥
 पदन्तर बरणाके सेनापतियोंने तन्मन्त्रियोंमें रावणपर
 मार किया । फिर रावणने भी उन स्वको वायव्य करके वहाँके
 पद्मामेि कदा—(द्रुमकाना यथा वरुणने शीघ्र आकर
 मेरी वर बठ फरो—) ॥ २६ ॥
 युवायौ रावणः प्राप्तस्तस्य युयु प्रदीपयताम् ।
 ब्रूवा न भयं तेऽस्ति भिक्षितोऽस्माति साङ्गतिः ॥ २७ ॥
 पाकर । राक्षसराज रावण युद्धके लिये भया है अप
 काकर उठके युद्ध बीजिये अथवा हाथ बाँधकर अपनी
 पापन खीकार प्रीजिये । फिर आपको कोई भय नहीं
 देगा ॥ २७ ॥
 पतंसिघ्रमतेरं हुन्वा बरुणस्य महात्मनः ।
 युवाः पीत्राभ्य निष्प्रभन्तु गीह्य पुष्करं पथ च ॥ २८ ॥
 इसी बीजने सूचना पाकर महात्मा बरुणके पुत्र और
 शीघ्र होकर मेरे हुए निकले । उनके साथ गौ और पुष्कर
 नामक द्वैतपथ भी थे ॥ २८ ॥
 ते तु तत्र गुणोपेता यस्मै परिधृताः स्वकीः ।
 युक्त्वा रथान् क्षमगमानुघङ्गास्करचर्चसाः ॥ २९ ॥

वे सब के-सब सर्वगुणतन्मन तथा उगते हुए सूर्यके
 पुत्र्य उत्कृष्टी थे । इन्धनुवार चलेवाले रथोंपर आरुढ़ हो
 अपनी सेनाओंके चिरकर वे वहाँ युद्धस्थलमें आय ॥ २९ ॥
 ततो युयु समभवत् दारुण्य रोमहृषणम् ।
 सलिलेन्द्रस्य पुत्राणा राघवस्य च धीमताः ॥ ३० ॥
 फिर तो बरुणके पुत्रों और बुद्धिमान् राघवने बड़ा
 भयकर युद्ध छिड़ गया था रोंगटे लड़े कर देनेवाला था ॥
 अमात्यैश्च महावीर्यैश्च द्राघीघस्य रक्षसाः ।
 घातयत् तत् बल सर्वे क्षपेन विनिपातितम् ॥ ३१ ॥
 राक्षस दशग्रीवके महापराक्रमी मन्त्रियोंने एक ही क्षणमें
 बरुणकी धापी सेनाको मार गिराया ॥ ३१ ॥
 समीक्ष्य स्वबलं सख्ये यन्गणस्य सुतासत्या ।
 अर्जिताः शरजालेन निवृत्ता रणक्रमणः ॥ ३२ ॥
 युद्धमें अपनी सेनाकी यह अवस्था देख बरुणके पुत्र
 उध समय बाण-समूहोंसे पीड़ित होनेके कारण कुछ देरके
 लिये युद्ध-क्रमसे हट गये ॥ ३२ ॥
 महीतल्लगतास्ते तु राघव इदं पुष्पके ।
 अक्षयानामाशु विविधैः स्यन्दनैः शीघ्रगामिभिः ॥ ३३ ॥
 मृत्युपर स्थित हाकर उहाँने जब रावणको पुष्पक
 विमानपर बैठा देला; तब वे भी धीमतामी रथोंद्वारा मूर्त ही
 भाषाधमें था पहुँचे ॥ ३३ ॥
 महदासीत् ततस्तेषां मुदुर्यं स्वान्मन्त्रान्य तत् ।
 आकाशयुयु मुमुलु दैवदानययोरिध ॥ ३४ ॥
 भय बराबरका स्थान मित्र आनेसे रावणके लय उनका
 मारी युद्ध छिड़ गया । उनका यह आकाश-युद्ध देव-दानक-
 सेधामके समान भयकर अन पड़ता था ॥ ३४ ॥
 ततस्त्वं रावण्य युयुं शरैः पापकसनिभैः ।
 विमुञ्जीकृत्य सङ्घस्य विनेतुर्विधिधान् रथान् ॥ ३५ ॥
 जब बरुण पुत्रोंने अपने मन्त्रियुग्म तेकनी बाणोंद्वारा
 युद्धस्थलमें रावणको विमुक्त करके बड़े हर्षके साथ माना
 प्रकारक स्वयं महान् सिन्हाद किया ॥ ३५ ॥
 ततो महोदरः क्रुद्धो राजानं वीह्य भयितम् ।
 त्यक्त्वा मृत्युभयं वीरो युवाकाङ्क्षी व्यलोकयत् ॥ ३६ ॥
 राजा रावणको तिरस्कृत हुभा देल महोदरको बड़ा क्रोध
 हुआ । उठने मरुपुत्र भय छोड़कर युद्धकी इच्छासे बरुण
 पुत्रोंकी ओर देला ॥ ३६ ॥
 तम ते बाहुण्या युयुं क्षमगमाः पथमोपमाः ।
 महोदरेण गदया हयास्ये प्रपयुः क्षितिम् ॥ ३७ ॥
 बरुणके छोड़े युद्धमें इच्छते वहाँ करनेवाके से और
 स्वामीकी इच्छाके अनुसार चबूट थे । महोदरने उनपर धातसे
 आघात किया । महाकी चोट लाकर वे छोड़े पथपायी
 हो गये ॥ ३७ ॥
 तेषां यद्व्यसन्तनां इत्या योधान् हयाभ्य तान् ।

मुमोक्षस्तु महानात् विरयान् प्रेक्ष्य तान् स्थितान् ॥ ३८ ॥

बचन पुत्रोंके मोक्षार्थ और शोकोंके कारण उनमें रम हीन हुआ देख महोदर द्रव्य ही चोर-भेरेसे गहना करने लगा ॥

ते तु तया रयाः साध्याः सह सारथिभिर्वरैः ।

महोदरेण निहताः पतिताः पृथिवीतले ॥ ३९ ॥

महोदरकी गदाके अघातसे बचन पुत्रोंके वे रम घोड़ों और भेड़ खरपिंजोसहित चूर-चूर हो पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ ३९ ॥

ते तु स्वपत्न्या रयान् पुत्रा वरुणस्य महात्मनः ।

अक्रारो विधिताः घूराः स्वप्रभावश्च पित्र्यसुः ॥ ४० ॥

महात्मा बचनके व घूरबीर पुत्र उन रथोंको छोड़कर अपने ही प्रभावसे आक्रमणमें लड़े हो गये । उन्हें तनिक भी व्याप नहीं हुई ॥ ४० ॥

धन्यि कृत्वा सज्जानि विनिर्मिथ महोदरम् ।

राज्य समरे कृत्वाः सहिताः समधारयन् ॥ ४१ ॥

उन्होंने बनुरीपर प्रत्यक्षा चढ़ावी और महोदरको अक्ष-विधन करके एक साथ कुपित हो राजघण्टे घेर लिया ॥ ४१ ॥

सायकेभ्यापथिभ्यैवञ्जक्यैः सुवारुचैः ।

वारयन्ति स्य सङ्क्रुदा मेधा इव महागिरिम् ॥ ४२ ॥

हिर वे अत्यन्त कुपित हो किसी महान् पर्वतपर कच्छी पार गिरनेवाले मन्त्रोंके उमान बनुरसे पूर हुए वज्र-द्रव्य मयंकर अस्त्रोंद्वारा राजघण्टा बिर्दोर्ण करने लगे ॥ ४२ ॥

ततः कृत्वा वराधीषः अक्राक्षिरिय मूर्च्छितः ।

शरध्वं महाघोरं तेषां मर्मस्वपातयत् ॥ ४३ ॥

वह देख दृष्टधीष प्रसन्नप्रसन्न अग्निके उमान उनसे प्रकथित हो ठंडा और उन बचन पुत्रोंके मर्मस्थानोंपर महा-भेरे बाजोंकी बर्षा करने लगा ॥ ४३ ॥

मुमक्षानि विचित्राणि ततो भङ्गशक्तानि च ।

पट्टिपार्ष्वैव शक्तीन् शतश्रीर्महतीरपि ॥ ४४ ॥

प्रातपाभास दुष्प्रसंश्लेषानुपरि विहितः ।

पुत्रक विमानपर बड़े हुए उध दुर्भय बीरते उन उनके ऊपर विचित्र मूर्च्छों से कड़ों मस्सों पट्टियों शक्तियों और बड़ी-बड़ी शतश्रींका प्रहार किया ॥ ४४ ॥

अपथिद्वान्तु ते धीरा विनिष्पेतुः पवस्तयः ॥ ४५ ॥

ततस्तेनैव सहसा सीवृषित स्य पवतितः ।

महापङ्कमिवासाद्य कुञ्जराः पथिहायनाः ॥ ४६ ॥

उन अन्न-शक्तीसे पासक हो वे वैदल बीर पुनः मुद्रके सिंघे झगे बड़े परतु वैदल होनेके कारण राजघण्टी उध अन्न-पथि ही उरला संकटमें पड़कर बड़ी मापी भीषणमें कंठि हुए खट बर्क हाथीके उमान कष्ट पने लगे ॥ ४५ ४६ ॥

इत्वार्ये श्रीमद्वाल्मीके वाल्मीकीये वात्सिकायै उक्तवाक्ये त्रयोविधाः सर्गाः ॥ २३ ॥

एत प्रथम श्रीवाल्मीकीयैर्लिखितं चरित्रमयं अस्मिन्मन्त्रे उक्तवाक्ये त्रयोविधाः सर्गाः पूर्णं ॥ २३ ॥

सीद्मानान् सुतान् द्रष्टुं विश्रवन् स महाबलः ।

ननाद् रायणो ह्याग्महात्मभुवो यथा ॥ ४७ ॥

बचनके पुत्रोंके तुली एवं व्याकुल देख महाबली राजन महान् मेघक घटान बड़े हरिते गर्भना करने लगे ॥

ततो रक्षो म्हात्मानान् मुञ्चत्वा हन्ति स्य वादध्वना ।

मानाप्रहरणोपतीर्णारापतैरियाम्बुनः ॥ ४८ ॥

चोर-भेरेने सिद्धान्त करके वह निघाकर पुनः ननु प्रकारके अन्न-शक्तीद्वारा बचन-पुत्रोंको मारने लगा । मने बादक अपनी प्राणवार्तिक बुद्धिसे हथोंको पीड़ित कर एत होत ततस्ते विमुक्ताः सद्ये पतिता धरणीतले ।

रणत् स्वपुरदैः शीघ्रं गृहान्येव प्रवृत्ताः ॥ ४९ ॥

हिर छो वे सभी बचन पुत्र मुद्रसे विमुक्त हो पृथ्वीपर गिर पड़े । तत्पश्चात् उनके सेकड़ोने उन्हें रणभूमिसे हटाकर शीघ्र ही घरोंमें पहुँचा दिया ॥ ४९ ॥

तानग्रयीत् ततो रक्षो घटणाय निषेधत् ॥

राज्यं त्वदधीमग्नी प्रहासो माम् वादधाः ॥ ५० ॥

तदनन्तर उध राजघण्टे बचनके सेकड़ोने कहा—एत बचनसे बादक करो कि वे स्वयं मुद्रके सिंघे चढ़ें । एत बचनके मन्त्री प्रभावसे राजघण्टे कहा— ॥ ५० ॥

गताः कस्तु महाराजो गृहलोकं जसंभरा ।

गान्धर्षे वदथाः श्रोतुं यं स्वमाह्वयसे मुधि ॥ ५१ ॥

राक्षसराज । सिन्धे तुम मुद्रके सिंघे बुझ रहे हो वे कडक स्वामी महाराज बचन संगीत सुननेके लिये अन्नघण्टों गये हुए हैं ॥ ५१ ॥

तत् किं तव यथा वीर परिभ्रम्य गते भूपे ।

ये तु समिहित वीराः कुमारास्ते पपञ्जिता ॥ ५२ ॥

वीर । एत बचनके चले जानेपर यहाँ मुद्रके सिंघे स्वयं परिभ्रम करनेसे तुम्हें क्या लाभ ? उनके जो वीर पुत्र यहाँ मौजूद थे वे ता तुमसे पपञ्ज हो ही गये ॥ ५२ ॥

राक्षसैर्द्रस्तु तच्छ्रुत्वा नाम विधाप्य वातमगः ।

हर्षोदात्तं विमुञ्चन् वै निजघ्नतो वदजातयात् ॥ ५३ ॥

मन्त्रीकी वह बात सुनकर राक्षसराज एतब यहाँ अपने मामकी बरणा करके बड़े हरिते सिद्धान्त करता हुआ बचनघण्टेसे बाहर निकल गया ॥ ५३ ॥

भागतस्तु पथा येन तेनैव विनिवृत्त्य सः ।

सङ्ग्रामभिमुक्तो रक्षो ममस्तस्मातो ययौ ॥ ५४ ॥

वह विश मार्गसे भागा था उसीसे औरकर अन्नघण्टे मार्गसे अन्नाधी और चला दिया ॥ ५४ ॥



रावणद्वारा सुन्दरी कन्याओंका अपहरण

चतुर्विंश सर्ग

रावणद्वारा अपहृत हुई दशवता आदिकी कन्याओं और स्त्रियोंका विलाप एव श्वाप, रावणका रोती हुई 'सूर्यपलाको आश्रासन देना और उसे सगंधे साथ दण्डकारण्यमें भेजना

निर्वर्तमानः सद्यो रावणः स सुरारमयान् ।
 उडे पथि नरेन्द्रविश्वेयदानयकन्यायाः ॥ १ ॥
 धैर्ये सम्यं सुरारमा रावण बडे हरिं मय या । उरुने
 मयमें अनेकानेक नरेणों, श्रुतियों, देवताओं और दानवोंकी
 कन्याओंका अग्रहरण किया ॥ १ ॥
 दशमीया हि यां रक्षः कन्या र्त्नीषाद्य पश्यति ।
 इत्या बभ्रुजन तस्या विमाने ता दरोध सः ॥ ७ ॥
 यद् एष्य भिन्न कन्या अथवा स्त्रीको दर्शनीय रूप
 केरुसे कुछ देखता, उसके रक्षक कपुकोंका तब करके
 उसे विमानपर बिठाकर उड़ लेता था ॥ २ ॥
 एष पद्मकन्यायाश्च राक्षसासुरमातुरीः ।
 पद्मदानयकन्यायाश्च विमाने मोऽप्यरोपयत् ॥ ३ ॥
 इस प्रकार उरुने नागों, एखों, असुरों मनुष्यों, बसों
 और दानवोंकी भी बहुतसी कन्याओंको हरकर विमानपर
 पदा किया ॥ ३ ॥
 एहि सर्वाः सम दुःस्तासुमुमुषुवाप्यज्जलम् ।
 मुप्यमप्यधिंश तत्र शोचन्निभयसम्भयम् ॥ ४ ॥
 उन सबने एक साथ ही दुःखक कारण नेत्रोंसे झोंक
 बहना आरम्भ किया । शोकान्नि और भयसे प्रकट होनेवाले
 उनके माँतुझोंके एक एक बूँद वहाँ आगकी चिंगारीकी
 रूप पड़ी थी ॥ ४ ॥
 एभिः सत्यानपदाभिर्नदीभिरिव सागराः ।
 भापूरित विमान तद् भयशाक्तशियाधुभिः ॥ ५ ॥
 जैसे नदियों सागरको भरती हैं उसी प्रकार उन समस्त
 सुन्दरियोंने मय और घोरने उरुण हुए अमहासकन
 यमझोंसे उठ विमानको भर दिया ॥ ५ ॥
 कागगन्धकन्यायाश्च महर्षितनयाश्च याः ।
 शैशवानयकन्यायाश्च विमाने द्रतशोऽकन्द ॥ ६ ॥
 नाग, एखों महर्षियों देवों और दानवोंके लड़कों
 कन्ये उठ विमानपर रो रही थीं ॥ ६ ॥
 ईष्येदेया सुधायज्ञयः पूजाचन्द्रनिभाननाः ।
 पीनस्तनत्रय मध्य दक्षयेत्सिमप्रभा ॥ ७ ॥
 एषूपरसद्वादः शोषिर्देवैर्मनोदेराः ।
 त्रियः सुराङ्गनाप्रत्या निष्कनकप्रभा ॥ ८ ॥
 उनके हृदय बड़े-बड़े थे । कभी अत्र सुन्दर एवं मन्दार
 थे । उनके सुगंधी घांति पूज्य कन्दमरी छपिछ मन्त्रित
 करती थी । गण्डके तन्माल उरुने हुए थे । शरीरका मन्त्र
 मग हीरेके चक्रेके समान प्राणित हुआ था । निम्न
 रेष रक्ष कर जैसे उन पड़ते थे और उनने काल

उनकी मनोहरता बढ़ रही थी । वे सभी स्त्रियों देवाङ्गनाओंके
 समान चन्दिमती और तनये हुए सुवर्णके समान सुन्दरी
 आभासे उन्मत्तित होती थी ॥ ७-८ ॥
 शोकबुद्धभयप्रसन्न विह्वलाश्च सुमध्यमाः ।
 तपसां निष्वासायातेन सर्वत सम्प्रदीपितम् ॥ ९ ॥
 यस्मिन्शोचन्निभाभाति सनिष्वासासि पुष्पकम् ।
 सुन्दर मध्यमाङ्गली वे सभी सुन्दरियों शोक, दुःख
 और भयसे प्रकट एवं विह्वल थी । उनमें गरम-गरम निष्वासा
 बायुने बह पुष्पक विमान रूप अथवे प्रकटित-ता हो रहा था
 और झिल्ले भीतर अग्निकी स्थापना की गयी हो, उस
 अग्निहोशयके समान रूप पड़ता था ॥ ९ ॥
 दशमीयवदा प्रातास्तास्तु शोकाकुलाः स्त्रियः ॥ १० ॥
 दशमियत्रेणया इयामा मृत्याः सिहवदा इव ।
 दशमीयके वधमें पड़ी हुई वे शोचन्मूक अन्तर्द्वारे
 स्थिते पक्षिमें पड़ी हुई हरिणियोंके समान कुली हो रही थी ।
 उनका मुल और नेत्रोंमें दीनता छा रही थी और उन कन्ये
 अन्तर्द्वारे के बर्णके ध्यामग थी ॥ १० ॥
 काचिच्छिन्नयती तत्र किं नु मा भक्षयिष्यति ॥ ११ ॥
 काचिच्चिन्मयती तत्र किं नु मा भक्षयिष्यति ॥ ११ ॥
 काचिच्चिन्मयती तत्र किं नु मा भक्षयिष्यति ॥ ११ ॥
 कोई शोचनी थी क्या यह एका मुझे का खाया ?
 कोई अत्यन्त दुःखने आने हो इस चिन्तमें पड़ी थी कि
 क्या यह निदानर मुझे मार जानेगा ? ॥ ११ ॥
 इति मातुः पितृन्स्मृत्याभतून् आर्तुस्तथैव च ॥ १२ ॥
 दुःखानोक्तसमाधिषा विवेपुः स्रिताः स्त्रियाः ।
 वे स्त्रियोंमात्रा तथा माँ तथा पतिकी बाह करके दुःख
 शोकमें हुए शरीरों और एक साथ करके कानक विदार करने
 लगती थीं ॥ १२ ॥
 कथं नु खलु मे पुत्रो भयिष्यति मया यिना ॥ १३ ॥
 कथं माता कथं भ्राता निमग्नाः शोकसागरे ।
 श्वप ! मेरे निना मेरा नन्हा-न्हा बेटा कैसे रोएगा ? मेरी
 माँकी क्या दशा होगी और मेरे भाई कितने चिन्तित होने
 देना कहकर वे शोकके सागरमें डूब जाती थीं ॥ १३ ॥
 हा कथं नु करिष्यामि भनुसप्तसावद यिना ॥ १४ ॥
 मृत्या प्रसादयामि त्या नव मां दुःखभातिनीम् ।
 किं नु तद् दुष्पुत्रं क्व पुत्रा देदान्तरे एतम् ॥ १ ॥
 एष स दुर्निम्नाः स्वयाः पतिनाः गात्रसागरः ।
 मत्पत्नियदानीं पश्यामा दुःखम्याम्यान्तमात्मनः ॥ १६ ॥
 हाय ! अपने उन पतिदेवप विदुदकर में क्या करने ?
 (जैसे रङ्गी) । वे मृत्युदेव ! मेरी प्रायना है कि तुम प्रक

हो कामो और मुझ बुद्धिवाको इस शोकसे उठा के पला ।
 हाय । पूर्व-कर्मसे वृत्ते घरीरहाय हमने कौन-सख देखा पाप
 किया या बिबेसे हम धन-श्री सब दु-मते पीड़ित हो शोकके
 छुड़नेसे मिर पड़ी है । निरूप ही इस समय हमे अपने इस
 दुःखका अन्त होया नहीं दिखयी देता ॥ १४-१६ ॥

महो पिबद्धानुप लोका नास्ति अरवधभा परः ।
 यत् सुर्वथा बलघटा भठोरौ रावणेन जः ॥ १७ ॥
 स्युपपोषयत् कच्छे मन्त्रभापीव नृशिता ।

महो ! इस मनुष्यकोकरो विकार है । इससे बढकर
 अरुम दुख्य भरे शोक नहीं होगा' क्योंकि यहाँ इस कम्पान्
 एकजने हमारे सुर्वथ परितोके उठी तरह नष्ट कर दिया
 जैसे सुर्वथ उदय देनेके साथ ही नष्टीको अरुस्य कर
 देते हैं ॥ १७-१८ ॥

महा सुषल्यव रसा कपोयायेतु रज्यते ॥ १८ ॥
 महा सुर्वथमास्याम नात्मन वै जुगुप्सते ।

महो ! यह अरुस्य बध्मान् उषथ बध्म उषथोंमें ही
 भावछ रहता है । अहो ! वह पायी दुःखचारके पपपर कष्ट
 कर भी अपने आपका पिबद्धानता नहीं है ॥ १८-१९ ॥

सर्वथा सहशास्त्रावव् विप्रमोऽस्य दुरात्मनः ॥ १९ ॥
 इद् स्वसहारा कम परवाराभिर्मरानम् ।

इस दुरात्मना पराक्रम इषवी तपस्याके ऊँया अनुस्र
 है परद्र यह पटायी कियोंके साथ शो बहात्पर कर रहा
 है यह दुःखमें इसके साथ क्वापि नहीं है ॥ १९-२० ॥

यस्माद्य परक्यासु रमत राससाधमः ॥ २० ॥
 तस्माद् वै स्त्रीकृतनीव धम प्राप्स्यति दुर्मतिः ।

यह नीच निघानर पटायी कियोंके साथ रमय करता
 है इसलिये स्त्रीके धरय ही इस दुर्विद्वि उल्लफा बध होगा' ॥
 स्त्रीभिर्परतयाभिरेष वाक्येऽन्युशीरित ॥ २१ ॥

ननुर्वुदुभयः कस्याः पुष्पवृष्टि पपात च ।
 उन भेद छठी-जन्मी नारियोंने कब देखी बहों कर दी
 उध सम्य अरुधामों रेकनाभोही दुःखुमिर्वा बध बढी और
 बरों धूमोंकी बना होने बगी ॥ २१-२२ ॥

नाता स्त्रीभिः स तु स्रम हतौजाय निष्प्रभः ॥ २२ ॥
 पतिव्रताभिः साक्षीभिर्भूम्य विमगा इव ।

पतिव्रता स्त्रीकी विषयोंके इस तरह धाप देनेपर राजकी
 छिकि पट गयी वह निस्लेख का हो गया और उधके मनमें
 उदेग का होने स्थत ॥ २२-२३ ॥

पथ विस्विति क्वसो भृष्टवन् राक्षसपुङ्गवः ॥ २३ ॥
 मयिपया पुरो मद्वा पूज्यमानो निगाबधः ।

इस प्रकार उन रा विगत मुनो दुःख राक्षसपुङ्गव एकजने
 निगाबधोंहारा लङ्का हा द्वापुगीमें प्रेषा किया ॥ २३-२४ ॥
 पतमिपयन्तर पाग राजसी कामरुपिणी ॥ २४ ॥
 सदसा पतिना भूमि भगिना राजयस्य सा ।

इवी समय इच्छानुशर रूप बरतन करनेवाली मन्त्र
 राक्षसी दुर्वथना शो उषथकी बहिन थी छत्र समने मन्त्र
 पूष्यपर मिर पड़ी ॥ २४-२५ ॥

तां स्वसार समुत्थाप्य रावणः परिसात्मकम् ॥ २५ ॥
 मद्रवीत् किमिदं भद्रे बन्तुकमम्रासि मां दुष्म ।

रावणने अपनी उध बहिनको उठाकर सन्तना थी शो
 पूषा—भद्रे ! तुम अभी मुझसे शोष्यापूर्वक शोम-श्री का
 क्वाना चाहती थी ! ॥ २५-२६ ॥

सा बाणपरिक्रदाशी रसाशी बाण्यमम्रवीत् ॥ २६ ॥
 क्वासि विधवा राजसखया बलकला बलम् ।

दुर्वथकाके नेधोंमें आँसु भरे से उधकी आँसु उठे-उठे
 का हो गयी थी । वह बोधी—प्राक्न् ! तुम कम्पान् के
 इलीक्षिये न तुमने मुझे कसपूर्वक विधवा बना दिया है ! ॥
 पते राजसखया वीपौव् दैत्या विनिहता रणे ॥ २७ ॥
 काकलेया इति क्याताः सहस्राणि बहुरेशा ।

प्राक्स्वयः । तुमने रज्जूमिमें अपने क्वा-प्राक्स्वसे जेठ
 इकर कसकेन नामक दैत्योंका बध कर दिया है ॥ २७-२८ ॥
 प्राथेभ्योऽपि शरीयान् मे तत्र भठो महाबलः ॥ २८ ॥
 सोऽपि त्वया हतस्तात रिपुणा भ्रातृगम्भिन् ।

शत । उन्हींमें मेरे किये प्रजोते भी बढकर अरुशरीर
 मेरे महाबली पति श्रीभे । तुमने उन्हीं भी मार डाला । इ
 नाममाके भई हो । बालकमें मेरे शत्रु निकसे ॥ २८-२९ ॥
 स्वयासि निहत्य राजन् स्वयमेव हि बन्तुम् ॥ २९ ॥
 राजन् वैषम्यधाष् क भोदयामि स्वकृतकम् ।

प्राक्न् ! जो भई होकर भी तुमने स्वयं ही अपने स्वयं
 मेर (मेरे पतिदेवक) बध कर डाला । अन् तुम्हारे फल
 में वैषम्य धाम्क उपमोम कर्णेगी—विपशा कदमर्कनी ।
 मनु धम स्वया रक्ष्यो सामात्या समरेष्वपि ॥ ३० ॥
 स स्वया निहतो युद्धे स्वयमेव न लज्जते ।

मैषा । तुम मेरे पिताके दुःख हो । मेरे पति तुम्हारे
 कामार ये बना तुम्हें पुत्रमें अपने कामार या क्लेशोंकी भी
 रखा नहीं करती प्वादिने थी ! तुमने स्वयं ही युद्धमें अपने
 कामारक बध किया है ; क्या अब भी तुम्हें लज्जा नहीं
 आती ? ॥ ३०-३१ ॥

एवमुक्त्वा दशरथो भगिन्या क्रोशामात्मया ॥ ३१ ॥
 मद्रवीत् सान्त्वयित्वा तां सामपूषमिर्म् वधा ।

रथी और कोछी हुई बहिनके देख करनेपर दशरथने
 उमे सन्तना इकर समसाते हुए मधुर बानीमें कहा—॥
 अरु बरतन दक्षिणा ले म मेतथ्य स सर्वदा ॥ ३२ ॥
 दानमानसदादेभ्यो वीपविरव्यामि पालता ।

शेटी । अब यना वय दे तुम्हें निश्चि तरह मकाननी
 दाना कादिय । मैं दान मान और अनुग्रहदाय बनारूक
 तुम्हें उदय करूँगा ॥ ३२-३३ ॥

३३

युद्धप्रमत्तो व्यासितो जयाकाङ्क्षी क्षिपञ्चारान् ॥ ३३ ॥
 महाम्नासिपु युष्मन् स्थान् परान् धापि सयुगे ।
 जाम्बवत न जाने स्य प्रहरन् युद्धदुमदः ॥ ३४ ॥
 मीं युद्धे उन्मत्त इा गया या, मेघ चित्त निरुते नही
 या, मुझे केवल विषय पानेकी पुन थी इसलिये लगातार बाण
 चलाया रहा । समराङ्गणमें जूझते समय मुझे अपने-सरायेका
 ज्ञान नहीं रह आता था । मीं खोन्मत्त होकर प्रहार कर रहा
 था, इसलिये 'व्यामाद' को पहचान न सका ॥ ३३ ३४ ॥
 तेनाही निहतः संकपे मया भता तय स्यसः ।
 मस्मिन् काले तु यत् प्राप्तं तत् करिष्यामि ते हितम् ॥ ३५ ॥
 अस्मिन् । यही कारण है किजसे युद्धमें तुम्हारे पति मेरे
 हाथसे मारे गये । अब इस समय आ कर्तव्य प्राप्त है; उसके
 अनुसार मीं सदा तुम्हारे हितका ही साधन करूँगा ॥ ३५ ॥
 अतुरैर्यययुक्तस्य खरस्य यस्य पाद्ययतः ।
 घतुर्यशाणा भ्राता ते सहस्राणां भयिष्यति ॥ ३६ ॥
 प्रभुः प्रयाणे दाने च राक्षसानां महाबलः ।
 भुम देवर्ष्यांशुसी माई खरक पास चबकर रहा । तुम्हाय
 माई महाबली खर बौरह हमार राक्षसोंका अभिपति होगा ।
 पर उन सबका भरो आदेश, मेरेबाण और उन सबका अभय
 पत्र एवं बख देनेमें समर्थ होगा ॥ ३६ ॥
 तत्र मातृप्लसेयस्ते भ्राताय वै खराः प्रभुः ॥ ३७ ॥
 भयिष्यति तवादेशे सन्ना कुयन् निशाचरः ।

हृत्पर्यं श्रीमन्नभ्यायने बाष्पीकीये आदिकाण्डे उत्तरकाण्डे पञ्चविंशः सर्गः ॥ ३४ ॥
 एन प्रकार श्रीमन्नभ्यायने अत्रराजयण अष्टिभूमक उत्तरकाण्डे चोर्विंशो सर्ग पूरा हुआ ॥ ३४ ॥

पञ्चविंश सर्ग

यज्ञोदाग मेघनादकी सफलता, विभीषणका रावणका पर-स्त्री हरणक दाप बताना, कुम्भीनसीका
 आश्वासन दे मधुका साथ ले रावणका दबलोकपर आक्रमण करना

स तु वृत्त्या दशमीयो पन्थ घोर खरस्य तत् ।
 भगिनीं स समाभ्यास्य हृष्टः स्वस्ततोऽभयत् ॥ १ ॥
 खरका रावणकी मयदूर सेना देकर और बहिनका भीरव
 देकर रावण बहुत ही प्रसन्न और स्वस्थचित हो गया ॥ १ ॥
 ततो निरुम्भिना नाम रुद्रोपयनमुत्तमम् ।
 तत् राक्षसग्नौ बभूव्यान् प्रथियन् महातनुः ॥ २ ॥
 तदनंतर बबहान् उद्यमताम रावण लडाके निरुम्भिना
 नामक उद्यम उपवनमें गया । उसके साथ बहुत से तेजक
 भी थे ॥ २ ॥
 तथा यूयतावर्षीं श्रीरघवध्यापनाभितम् ।
 एतां विष्टिन् यत्र त्रिया मग्नेज्यलप्रिय ॥ ३ ॥
 यत्र अग्नी काण्ड परं तत्र अग्निच तमन प्रार्थित
 रा रहा था । उनमें निरुम्भिनामें पदुवार देगा एक
 रा रहा है आ सेना युगम व्याप्त और सुन्दर दशरथों
 के सु-भिन है ॥ ३ ॥

यद् तुम्हाय मौसेय भद्र निशाचर खर वक्रुष्ठ करनेमें
 समर्थ है और आदेशका सदा पालन करता रहेगा ॥ ३३ ॥
 शीघ्र गच्छज्यय धीरो वृण्डकन्तु परिरक्षितुम् ॥ ३८ ॥
 वृणुष्वोऽस्य बलाप्यस्तो भयिष्यति महाबलः ।
 यद् वीर (मयी आरुसे) शीघ्र ही दण्डकारण्यकी रक्षामें
 जानेवाला है' महाबली वृणुय इसका सेनापति होगा ॥ ३८ ॥
 तत्र ते यद्यन दूरः करिष्यति सन्ना खराः ॥ ३९ ॥
 रक्षसा क्षमरूपाणां प्रमुरेय भयिष्यति ।
 वहाँ धरबीर खर सदा तुम्हायी आश्रयका पाछन करेगा
 और इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले राक्षसोंका स्वामी
 होगा ॥ ३९ ॥
 पथमुपस्था दशमीयोः सैन्यमन्यादिदेश ॥ ४० ॥
 सतुर्वृत्ता सहस्राणि रक्षसां वीयशालिनाम् ।
 स ते परिवृतः सर्वै राक्षसीधैरवृशतैः ॥ ४१ ॥
 मागच्छन् खराः शीघ्र वृण्डकान्तुलोभयः ।
 स तत्र कारयामास राभ्य निहतकण्टकम् ।
 सा च शूर्पणखा तत्र स्ववससु वृण्डके वने ॥ ४२ ॥
 ऐसा करकर दशमीयने बौरह हमार परक्रमणाकी
 राक्षसोंकी सेनाका खरक साथ जानेकी आज्ञा दी । उन मयदूर
 राक्षसोंसे विद्य हुआ खर वीम ही दण्डकारण्यमें आया और
 निम्न होकर वहाँका अकण्टक राभ्य भोगने लगा । उसके साथ
 शूर्पणखा भी वहाँ दण्डकवनमें रहने लगी ॥ ४०-४२ ॥

ततः कृष्णाजिनधर कमण्डलुशिक्षाप्यजम् ।
 वृद्धां स्वसुत तम मेघनात् भयापदम् ॥ ४ ॥
 फिर वहाँ उठने अग्ने पुत्र मेघनादको दंगा, आ क्रम
 मृगचर्म पन्ने हुए तथा कमण्डलु शिक्षा और ध्वज धारण
 किये बड़ा मयदूर ध्यान पढ़ता था ॥ ४ ॥
 त समासाय रुद्रोः परिष्यज्याथ पादुभि ।
 अग्रवीत् किमिद् याम् यतस्म द्दृष्टि तस्थन् ॥ ५ ॥
 तत्राथ पाप पदुवृद्धर रुद्रोऽयने अग्नी मुखाभेदात्
 उतहा आविन्न त्रिया और पूजा—'येरा ! पर क्या कर रहे
 हो ? डीङ्गी-ड बगभा' ॥ ५ ॥
 उन्ना स्वग्रथीन् तत्र परमसंगममृच्छय ।
 गायन राक्षसघष्ट टिजघष्टा महातपाः ॥ ६ ॥
 (केसव परने निरमातुकर मौन रहा) उन समय पुण्ड्रिन
 महातन्वी दिग्बध पुनराचार्यने आ पर-संग-रिषी मृच्छि
 न्ये वरा अग्ने के राक्षसिष्टमनी राक्षस बदा—॥ ६ ॥

महामायायि तं राजम्भूयता सर्वमेव तत् ।
 यद्वास्ते स्तस्य पुत्रस्य प्रसास्ते यद्बुधिल्लराः ॥ ७ ॥
 प्यक्त् । मीं स्य वार्ते क्वा रत्ता हूँ प्थान वैक्त्
 मुनिने—भापके पुत्रने बदे विस्तारके साय छत यत्तोक
 भन्नुदान किया है ॥ ७ ॥
 मन्निरोमोऽश्वमेघस्य यज्ञो बहुसुवर्णकः ।
 राजस्यस्यस्तथा यज्ञो गोमेधो वैष्णवस्तथा ॥ ८ ॥
 माहेश्वरे प्रवृत्ते तु यज्ञे पुमिः सुवृत्तमे ।
 वतांस्ते ह्यश्ववान् पुत्राः साम्नात् पणुपतेरिह ॥ ९ ॥
 भन्निरोम भरतमेघ बहुसुवर्णक राक्षस्य गोमेध
 तथा वैष्णव—य वृत्त पुत्र करक बब इत्तने वातर्त माहेश्वर
 पर किन्नर भन्नुदान वृत्तके छियेभयन्त पुत्रर्गरे भारम्भ
 किया तब आपके इस पुत्रको गच्छन् भगवान् पश्यतिते
 बहुतने वर प्राप्त हुए ॥ ८ ॥
 कर्मण म्यम्भन् विष्यमन्तरिक्षन्बर ध्रुवम् ।
 मायां च तामर्नी नाम यथा सप्रयत्ने तमः ॥ १० ॥
 भयय ही इच्छानुकार कर्मनेगम्य एक विष्य आक्षय
 चारी रथ भी प्राप्त हुआ है इच्छे मित्रा कामनी नामकी माया
 उत्तरत हुई है किन्ने अन्धकार उत्तरत किया जाया है ॥ १० ॥
 एतया कित्त मद्रामे मायया राक्षसेश्वर ।
 प्रयुक्तया गतिः शक्या नहि दानु सुपत्सुतैः ॥ ११ ॥
 राक्षसेश्वर । मद्रामने इस मायाका प्रयोग करनेपर देवत्व
 और भन्नुदान भी प्रयोग करनेगामे पुत्रकी गतिविधिना
 क्या नहीं मग्य मन्त्र ॥ ११ ॥
 अक्षयवियुधो पाशंभाप घापि सुदुग्धयम् ।
 भद्रं च यन्मद् राजन्नुपुष्यत्सर्वं रथे ॥ १२ ॥
 एतन् । वापसे मेरे हुए वा अक्षय तरकम अद्वैत
 धनुष तथा रणभूमिमें शत्रुस्य निपटन करनेगय्य प्रथम अक्षय—
 इन गवरी प्राप्ति हुई है ॥ १२ ॥
 एतान् स्वान् पराङ्मुख्य पुत्रन्तऽय द्वाशन ।
 अथ यमसमाप्नो च त्वां विद्वन्मन्त्रिनो हाहम् ॥ १३ ॥
 दगानन । दुग्ताय यद् पुत्र इन कभी मन्त्रान्तरित
 बोका वक्त्र भाव यवरी मन्त्रान्तरित त्रिन् दुग्ता रजतकी
 इच्छामे वर्गे लहा है ॥ १३ ॥
 तताऽप्रीदू वनाप्रीधो म नोभक्तमिह एतम् ।
 पूजिताः शक्या यस्मान् द्रव्यविद्रुपुगेगमाः ॥ १४ ॥
 वर मुनवर दगाप्रीधे वता—भेद्य । तुमने वर अष्टा
 मदी गिता है वनेदि इन कर्मकर्त्री इच्छेज्ञान मेरे शत्रु
 भूत हन् धीं देवताधीन दुग्ता हुआ है ॥ १४ ॥
 पराङ्मुखी एत गति सुवृत्त तत्र स्वययः ।
 भागच्छ वाश्य मन्त्रप्रयाः स्वयं भयन् प्रति ॥ १ ॥
 भान्नु अक्षय । मद्र अष्टा की रिया इतने मन्त्र
 वती है । मन्त्र । भय भाव चला । इच्छामे अने
 १ । १४ ॥ १५ ॥

उतो गत्वा वदामीवाः सपुत्राः सन्निधीयवा ।
 त्रिषोऽवतारयामास सर्वास्तत्र वाष्पनाश्रवाः ॥ ११ ॥
 छन्दन्तर वराप्रीधने अपने पुत्र और निम्नीयके ल
 वाकर पुष्प किमानते उन सब किन्नेको उत्तरत किन्ने रत्त
 से आया था । वे भव मी भोत्तु वताही हुई गहरकर्म
 किन्नाप कर रहे यी ॥ ११ ॥
 छक्षिषो रक्षामृतस्य देवदन्तवरससम् ।
 तस्य तस्य मतिं ज्ञात्वा धर्मात्मा कल्पयामासीत् ॥ १० ॥
 वे उत्तम कर्मको सुषोभित होती थी और देवकर्म
 इनको तथा रक्षकके परकी रत्त थी । उनने एतकी अन्नी
 जानकर धर्मात्मा निम्नीयने कहा— ॥ १० ॥
 ईशदीस्य समाचारैर्योऽर्चयितुं शक्यः ।
 धयं च प्राणिनां ज्ञात्वा स्वमतेन विधेयते ॥ १८ ॥
 प्यक्त् । वे आचरण बरा धन और कुम्भ न
 करनेवाके हैं । इनके द्वारा जो प्राणिनोंको पीडा की जाती है
 उरते बड़ा पाप होता है । इस कर्मको कर्मने हुए
 भाप छायाकारका उत्सृष्टन करके स्वेच्छाकारमें प्रवृत्त
 रहे हैं ॥ १८ ॥
 कर्तीस्ताम धर्मयित्स्वेमास्त्ययाऽऽनीता वराश्रवाः ।
 त्यामतिकर्म्य मनुना राजन् कुम्भीनसी ह्य ॥ १० ॥
 महायत् । इन देवता अस्त्राओंके बन्धु-वाष्पनोंको म
 कर भाव इन्हें हर लये हैं और इपर भावम उत्सृष्टन करके—
 भापके छिपर स्वत रत्तकर मनुने मीतेरी बहिन कुम्भीन
 का अग्रहरण कर किया ॥ १० ॥
 रायणस्त्यग्रहीदू वाक्य माधवाञ्छामि किं किञ्चम् ।
 कोऽय यस्तु त्वयाऽऽप्यतो मधुरित्येत नामतः ॥ १२ ॥
 यत्तव बोधा—यै नहीं समझता कि तुम क्या बर
 हो । किञ्च नाम तुमने मधु बताया है वह कौन है ॥ १२ ॥
 निर्भीयन्तु सद्भ्यो भ्रातरा यान्यमब्रवीत् ।
 श्रूयतामस्य पारव्य कर्मणः फलमागतम् ॥ २१ ॥
 तब विभीषणने अक्षय कुचित होकर भई यत्तव बोधा
 मुनिने आपके इस पापकर्मके वर हमें वहीने अक्षय
 कर्मने प्राप्त हुआ है ॥ २१ ॥
 मत्तामहस्य योऽस्माक ज्येष्ठो धाता तुमसिन्तः ।
 मात्स्ययानिति विक्रयाता पूया प्राप्नो निमप्रयत् ॥ २३ ॥
 पिता ज्येष्ठा जनण्या वा द्वास्ताव यापकाऽभयत् ।
 तस्य कुम्भीनर्नी नाम दुदितुपुत्रिताभवात् ॥ २३ ॥
 मातृप्यतुत्रयाम्मात्वा सा च पत्न्यान्मोदयत् ।
 भयव्यस्माकमपरा धानृणां धमतः स्वता ॥ २४ ॥
 एतार यना गुणाकीका बद् माई कल्पान्तर
 तिप्तात कुदितान् और बद्-नु निगपर है वे ह
 माप कर्मीक लाऊ है । इकी माता वे इच्छामे की
 जाना है । उनकी पुत्री इच्छामे इकी मीमी है । उनकी ३

कुम्भीनक्षी रे । इमारी मीची अनसकी नेरी हनेते ही यह कुम्भी
नक्षी हम सब माह्योकी भक्त बहिन होती है ॥ २२-२४ ॥
सा हता मधुना राजन् राक्षसेन वक्षीयसा ।

पद्मपुत्रे पुत्रे तु मयि चान्तजलेपिते ॥ २५ ॥
कुम्भकर्णो महापुत्र मित्रामनुभवत्यप ।

नित्य राक्षसभेष्टानमात्यानिह सम्मतान् ॥ २६ ॥

पद्मन् । आपका पुत्र मचना यह महर्षि तत्पर हो
गया, मैं तपस्याके क्रिय पानीके भीतर रहने छत्र और
महापद्म । मेरा कुम्भकर्ण भी जब नींदका आनन्द लेने
को उस समय महापद्म राक्षस मधुने यहाँ आकर हमारे
अदरकीन मन्त्रियोंको, सब राक्षसोंमें भेष्ट था, गार डाला और
कुम्भीनक्षीका अपहरण कर लिया ॥ २५ २६ ॥

भर्षिपित्या हता सा तु गुनाप्यन्तगुरे तप ।
भुम्बापि तम्महापुत्र क्षास्त्रमेप हतो न सा ॥ २७ ॥
पक्षावधर्ष्य वातध्या कन्या भर्षे हि भ्रातृभिः ।

महापद्म ! कदापि कुम्भीनक्षी भस्त्रापुरमें मन्त्रीमूर्ति
मुक्ति की तो भी उठने आक्रमण करके बहुर्यक उतकर
अपहरण किया । पीछे इस घटनाको सुनकर भी हमकोपेने
क्या ही थी । मधुका बच नहीं किया क्योंकि जब कन्या
किताके काय हो जब ता उसे किसी योग्य पतिके हाथमें
सौंप देना ही उचित है । हम माह्योका अवश्य बर कार्य
पदक बर देना चाहिये था ॥ २७ ॥

कृतवत् कर्मजो ह्यस्य फल पापस्य तुर्मनेः ॥ २८ ॥
अस्मिन्नयामिसम्प्राप्त लोके विद्वितमस्तु त ।

पद्मार् यहाँत आ कबुर्यक कन्याका अपहरण हुआ है
पर अपकी इस दूषित बुद्धि एवं पापकर्मका फल है, जो
आपका इसी क्षणमें प्राप्त हो गया । वह बात आपको मन्त्री
मूर्ति विदित हो जानी चाहिये ॥ २८ ॥

विभीषणपथः भुम्बा राक्षसेभ्यः स रावणः ॥ २९ ॥

वीररथ्यनामनोभूतक्षत्राभ्या इव सागरः ।

उद्येऽमपीद् वृक्षपीथः हृन्दः सरसस्त्रेयना ॥ ३० ॥

विभीषणकी वह बात सुनकर राक्षसराज रावण अपनी
की हुर्र दुःखगते पीड़ित हो तपे हुए सबकास लज्जके लमल
रूप हो उठा । वह धरते कठने क्या और उसके नेत्र स्या
स गये । पर बोधा— ॥ २९ ३ ॥

कृत्यर्णा म रथः शीघ्र शूराः सञ्जीभयन्तु नः ।

शत्रा मे कुम्भकर्णस्य ये स मुक्या निगावराः ॥ ३१ ॥

बाहनाम्यधिराहन्तु नामाप्रहण्यापुधाः ।

मय त क्षमर हत्या मधु रायणनिर्भयम् ॥ ३२ ॥

सुरस्येक गमिष्यामि युद्धाकम्पही सुहृद्वृत्तः ।

मेरा रथ शीघ्र ही बहकर आकरक लामपीते मुकभित
कर लिया था । मेरे शूरवीर तेनिक रणक्षत्राके क्रिये वैवार
हो कार्य । मैं कुम्भकर्ण तथा अन्य मुकन-मुकन निगावर

नाना प्रकारक अस्त्र-शस्त्रोंसे मुकभित हो लज्जितोंपर बैठे ।
आज रावणका भय न माननेका मधुका लमलज्जमें बच
करके मित्रोंका साथ छोड़े मुकभी इच्छासे देवभक्तकी यात्रा
करेंगा ॥ ३१ ३२ ॥

कम्भीहिणीसहस्राणि ब्रह्म्यायध्याणि रक्षसाम् ॥ ३३ ॥
नानाप्रहरणाभ्याश्च निययुयुज्यकाङ्क्षिणाम् ।

रावणकी आशासे मुकमें उल्लाह रखनेका भेष्ट राक्षसोंकी
पार इकार अशोहिणी सेना नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्र क्रिये
शीघ्र बह्रासे बाहर निकली ॥ ३३ ॥

इन्द्रजित् स्वप्रथः सैम्यात् सैनिकान् परिगृह्यत्वा ॥ ३४ ॥
सगाम रायणो मध्ये कुम्भकर्णश्च पृष्ठतः ।

मन्नाह समस्त सैनिकोंको साथ लेकर सेनाका आगे-आगे
चला । रावण पीछेमें था और कुम्भकर्ण पीछे-पीछे चलने
छत्र ॥ ३४ ॥

विभीषणश्च धमात्मा अशुषां धममाचरन् ॥ ३५ ॥

शोपाः सर्वे महाभागा यधुर्मधुपुरं प्रति ।

विभीषण परमात्मा थे । इच्छिमे वे बह्रामें ही रहकर
धर्मका आचरण करने लगे । शय सभी महामाग निगावर
मधुपुरकी ओर चक दिये ॥ ३५ ॥

खरैरुष्टैर्हयैर्वीतिः शिगुमारैर्महोरतीः ॥ ३६ ॥

राक्षसाः प्रययुः सर्वे कृत्याऽऽकरोन् निरन्तरम् ।

गन्धर्वैश्च शिगुमार (हूँ) और बह-बड़े
नाम अदि शीक्षिमान् बहनोंपर आकर हो सब राक्षस
अपहरणको अवशान्ति करके हुए चले ॥ ३६ ॥

द्वैत्याश्च शतशस्तत्र छतवीराश्च द्वैतैः ॥ ३७ ॥

रायण प्रस्य गच्छन्तमन्यगच्छन् हि पृष्ठतः ।

रावणका देवभक्तपर आक्रमण करने देल सैकड़ों देव
भी उठकर पीछे-पीछे चले किन्तु देवताओंका साथ बर देव
गया था ॥ ३७ ॥

स तु गत्वा मधुपुर प्रयिदय च वृक्षाननः ॥ ३८ ॥

न बहदा मधु तत्र भगिनीं तत्र बह्यान् ।

मधुपुरमें पहुँचकर दयमुल रावणने यहाँ कुम्भीनक्षीको
तो देखा किन्तु मधुका स्थान उठे नहीं हुआ ॥ ३८ ॥

सा च प्रह्लादस्त्रिम्युत्था शिरसा खरणी गता ॥ ३९ ॥

तस्य राक्षसपुत्रस्य प्रन्ता कुम्भीनक्षी तदा ।

उस समय कुम्भीनक्षीने मयमीत हो राय षोड़कर
राक्षसपुत्र परलोपर मलाक रल दिया ॥ ३९ ॥

तां ससुग्यापयामास न मेतत्पयमिति ह्यपन् ॥ ४० ॥

रायणो राक्षसभेष्टः किं ध्यापि करष्याणि ते ।

उस राक्षसपर रावणने कहा— इय मत् फिर उठने

कुम्भीनक्षीका उठाया और कहा— यीं सुग्याप येन-या मित्र

कार्य करूँ ॥ ४ ३ ॥

साधयीत् यदि म राजन् प्रसप्रस्य महापुत्र ॥ ४१ ॥

भर्तार न ममेहाद्य ह्यनुमहसि मान्द ।
 मन्त्रीदश भय किञ्चित् कुम्भस्त्रीणामिहोन्पते ॥ ४२ ॥
 भयानामपि सर्वेषां वैभय्य व्यसन महत् ।

वह बाकी—बूढ़ोंका मान देनेवाले रहस्यवाज ।
 महाबाहो ! यदि आप मुझपर प्रकृत हैं तो आर्य यहाँ मरे
 पक्षिक बच न कीजिये क्योंकि कुम्भपुत्रीके छिये वैभय्यक
 समान वृष्टा होई मय नहीं बतया जाता है । वषट्प ही
 नारीके छिये सक्ते बहाम और सक्ते महान् सक्ते ॥ ४१ ४२ ॥
 स्वयंपाग् भय राजेन्द्र मामपेक्षस्य याचस्त्रीम् ॥ ४३ ॥
 स्वयान्युक महाराज न मेतद्यमिति स्वयम् ।

राजेन्द्र ! आप छयवादी हों—अपनी बात छकी कर ।
 मैं आपसे पक्षिके कीकनकी भील मोंगछी हूँ । आप मुझ बुलिया
 बनिनकी अपर देखिये मुझपर क्य भीकिये । महाराज !
 आपने स्वयं भी मुझे आधावन देते हुए कहा था कि उरो
 म्म । अत अपनी उखी बतकी काम रलिये ॥ ४१ ४२ ॥
 रावत्स्ववशीकृष्ण स्वसार तत्र न्निस्थिताम् ॥ ४४ ॥
 क्वासी तव भर्ता पै मम शीघ्र निवृत्तताम् ।
 सह तेन गमित्यामि सुरलोक जयाय हि ॥ ४५ ॥

वह मुनकर रावत् प्रकृत हा गया । वह बहो कड़ी हुई
 अपनी बनिने कोषा—दुम्हारे पक्षिके करी हैं । उन्हें शीघ्र
 मुझे छीप वा । मैं उन्हें छब केकर देवलोकर विवपके छिये
 चर्कंगा ॥ ४४ ४५ ॥

तथ क्लृप्पसीहावांनिवृत्तोऽसि मधोवधात् ।
 इत्युक्त्वा सा समुत्थाप्य प्रसूत त निशाग्रम् ॥ ४६ ॥
 अग्रवीथ सम्प्रहृष्टेव राजसी सा पतिं धवः ।
 दुम्हारे पक्षिके कृष्णा और खेहाक करज मैंने मधुके
 बचन निवार काइ दिया है । रावत्के देता करनेपर उखस-
 क्क्षा कुम्भपती आस्यत् प्रकृतनी होकर अपने छेये हुए
 पक्षिके पास गयी और उस निशाचरक उठाकर बोसी—४६ ४७
 पर प्रमता वृषामीयो मम आत्म महाबका ॥ ४७ ॥

हृत्पार्ये श्रीमद्रामायणे वावमीश्वर्ये आदिषाम्ये उत्तरकाण्डे पञ्चमिताः सर्गः ॥ १५ ॥
 एत प्रथम श्रीमद्रामायणे अदिषाम्ये उत्तरकाण्डे पञ्चमिताः सर्ग पूरा हुआ ॥ २५ ॥

पहर्विंश सर्ग

रावणका रम्भापर बलात्कार करना और नलकूबरका रावणको भयंकर क्षाप देना

स तु तत्र वृषामीवा सह सैम्येन वीर्यवान् ।
 अस्त प्राप्ते दिक्कुरे नियास समरोधयत् ॥ १ ॥
 वर एवं अलाबलछे पके गये तब परकृपी दण्डीबने
 अपनी सेनाके साथ बैबतरर ही एतमें उठर आना ठीक
 लगा ॥ १ ॥
 उदिते विमले चान्द्रे तुल्यपद्मवर्षसि ।
 अस्तुं ह्यमहत् सैम्यं श्यामप्रहत्पायुधम् ॥ २ ॥

सुरलोकजयाकङ्गी साहाय्ये त्वां वृञ्चोति च ।
 तस्य त्व सहार्थायै सवन्पुर्गच्छ राक्षस ॥ ४८ ॥
 पक्षप्रवर । ये मेरे भाई महामकी वरागीन पवने हैं
 और देवलोकर निवन् पानेकी इच्छा केकर क्यों वा ये
 हैं । इस कार्यके छिये ये आपको भी सहायक बनाता चाहते
 हैं अतः आप अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ इनकी उखसके
 छिये चहिये ॥ ४७-४८ ॥

क्षिम्भस्य भजमानस्य युक्तमर्थाय कल्पितम् ।
 तस्यास्तत् धवन धृत्या तपेत्याह मधुर्वचः ॥ ४९ ॥
 मेरे नाते आपपर इनका स्नेह है आपको अमात्र मान-
 कर ये आपके प्रति अनुराग रखते हैं अतः आपको इनके
 कार्यकी छिदिके छिब अवश्य छावता करनी चाहिये ।
 पत्नीकी यह बात मुनकर मधुने पचासठ' कहकर उखस
 देना स्वीकार कर लिया ॥ ४९ ॥
 वृशं राक्षसमेष्ट ययाम्यायमुपेत्य सः ।
 पूष्यामास धमेज रावण राक्षसाधिपम् ॥ ५० ॥

छि वर व्यापक्षित छिदिके निक्क अकर निक्कर
 धिरोमणि उखसवाज रावत्के मिजा । मिक्कर उठने बनीके
 मनुकर उठक स्वगत-सुकर छिये ॥ ५० ॥
 प्राप्य पूर्वा वृषामीवो मधुवेदमनि धीर्यवान् ।
 तत्र धीकर निद्यामुप्य गमनायोपचक्रमे ॥ ५१ ॥

मधुके मवनमें यदोक्ति आपर-सुकर पाकर परकृपी
 दण्डीब बहो एक रात रहा छि खरे उठकर क्यों जानेके
 उघट हुआ ॥ ५१ ॥
 ततः कैसासमासाद्य शीघ्र वैधवणाजयम् ।
 राक्षसेन्द्रो महेन्द्राभः सेनामुपनिवेशयत् ॥ ५२ ॥

मधुपुरसे पाशा करके महेन्द्रके तुल्य परकृपी उखसवाज
 रावत् कार्यकामउक कुकेके निवास-स्थान देवस्य परतपर वा
 पहुँचा । बहो उठने अपनी सेनाका पदाव बखनेका निक्कर
 किया ॥ ५२ ॥

हृत्पार्ये श्रीमद्रामायणे वावमीश्वर्ये आदिषाम्ये उत्तरकाण्डे पञ्चमिताः सर्गः ॥ १५ ॥
 एत प्रथम श्रीमद्रामायणे अदिषाम्ये उत्तरकाण्डे पञ्चमिताः सर्ग पूरा हुआ ॥ २५ ॥

(उठने बहो ठावनी जाठ ही) छिदः बैबतरके छी
 समान देवत कालिकाके निरिक्क पम्परदेवक उदप दुम्भ और
 माना मन्धरके अन्न चालोसे मुहकित निशाचरोंकी वह निक्क
 देना गय छिद्रामे निमय हा गयी ॥ २ ॥
 एवमस्तु महावीर्यो नियन्त्रः शीघ्रमूर्धनि ।
 स वृशं गुर्पास्तव श्यामप्रादपदोभितम् ॥ ३ ॥
 परत म्हापरकृपी रावण उठ परतके शिवावर उरक

देवदर ऋष्याभी चोदनीसे सुशोभित होनेवाले उस पर्वतके विभिन्न स्थानोंकी (जो सम्पूर्ण क्रमभोगके उपयुक्त थे) नैर्ऋति छटा निहारने लगा ॥ १ ॥

कर्मिकारण्योर्वीतिः कृष्णवपुस्त्रैस्तथा ।

पद्मिनीभिश्च फुल्लभिर्मन्दाकिम्प्या जलैरपि ॥ ४ ॥

घम्यकाशोकपुंमागामम्भारततदभिस्तथा ।

चूतगन्धलोभिश्च प्रियङ्गुः सुर्जुनकेतकी ॥ ७ ॥

तगरंनारिकेलैश्च प्रियालपनसैस्तथा ।

एतैर्मथैश्च तदभिन्नासितसवयनस्थरे ॥ १ ॥

कनी कनेरकेरीसिमान् ज्ञानन घोमा पाठे ये, कनी कदम्ब और बहुज (मोलकिकी) वृक्षोंके समूह अपनी रमणीयता किये रहे थे वही मन्दाकिनीके कल्ले मरी हुई और प्रकृत मयके मल्लहृत् पुष्करिणियों शोभा दे रही थीं, कनी चम्पा मधोक पुंनग (नागकेसर) मन्दार आम पाइर शोष, प्रियङ्गु, अर्जुन फटक तमर, नारियल प्रियास और पनस आदि वृक्ष अपने पुष्प आदिकी शोभासे उस पर्वत शिखरके क्यथात्मका उद्गाहित कर रहे थे ॥ ४-६ ॥

किमरा मदनोतार्ता रक्षा मधुरकण्ठिनः ।

सम सभ्रज्जगुयत्र मनस्तुष्टिविविधधनम् ॥ ७ ॥

मधुर कण्ठवाले परमार्त किये अपनी कामिनीयोंने साथ साथ पुष्प गीत गा रहे थे जो कर्णोंमें पड़कर मनभ्रम मन्त्र-वर्षन करते थे ॥ ७ ॥

पिपाधरा मद्दहीया मद्दरकास्तलोचनाः ।

पारिद्रिः नह स्वप्रज्जाधिरिद्रिज्जुज्जुपुष्प वै ॥ ८ ॥

किन्तु नैत्र-प्रान्त मन्त्रे कुछ सास हा गये थे वे मद्द मग पिपाधर मुषनियोंके साथ ब्रीदा करते और हर्षमय इन थे ॥ ८ ॥

पण्डनामिष सत्वादः शुभ्रुये मधुरस्वराः ।

धन्वरागणमहानां शापता धनदाहये ॥ ९ ॥

वहीमें कुबलके भानमें गयी हुई अन्तराधोक गीतकी मधुर रनि पणनादक समान मुताबी पड़ती थी ॥ ॥

पुण्यराणि मुञ्चन्ते मगाः पयनताहिताः ।

पण्ड न गामयन्तीव मधुमाधवगाधिपन ॥ १० ॥

काल क्रमक मभी पुणीकी मन्त्रमें मुक्त वृक्ष हवाक गेहवार वृत्तकी वरा करते हुए उठ लम्बे परतकी मन्त्रिण्य कर १८ ॥ १ ॥

मधुपुण्यस्य पून गन्धमादाय पुण्डरम ।

मन्त्र पण्डयन क्रमं शापणस्य सुराडन्ति ॥ ११ ॥

शिव कुमुदीक मधुर मन्त्रक तथा पण्डम मिथि मन्त्र मन्त्र के मन्त्र मन्त्र वनी हुई मन्त्रक मधु गान की मन्त्रादादा मन्त्र मन्त्र ॥ ११ ॥

गण्ड पुण्यममृदुष्या मदान्याद् पापागिगिगुणाद् ।

पण्डमारां वज्र्याश्च चन्द्रमगादपनन ॥ १२ ॥

रायणाः स महावीर्यः कामस्य वदामागतः ।

विनिम्बस्य विनिम्बस्य शशिान समयेहात ॥ १३ ॥

वृद्धित्री मीठी वान, भौतिक-भौतिके पुष्पोंकी समृद्धि, शीतल वायुका स्पर्श पर्वतके (रमणीयता आदि) आकर्षक गुण, रक्तोष्ठी मधुवेण और चन्द्रमाक उदय—उद्दीपनके इन सभी उपकरणोंके कारण वह महापराक्रमी रावण क्रमक अपनी हो गया और बारंबार लंबी लौंख लौंखकर चन्द्रमाकी ओर देखने लगा ॥ १२ १३ ॥

पतसिधन्तरे सत्र दिव्याभरणभूयिता ।

सर्वाप्सररोपग रम्भा पूर्णचन्द्रनिभानना ॥ १४ ॥

इसी बीचमें ममदा अन्तराधोकमें भेद सुन्दरी, पूष-चन्द्र सुखी रम्भा दिव्य वस्त्राभूषणोंमें विभूषित हो उस मार्गसे आ निकली ॥ १४ ॥

दिव्यचन्दनलिताङ्गी मन्दारचन्द्रमूषजा ।

दिव्योत्सवकृमारम्भा दिव्यपुष्पविभूयिता ॥ १ ॥

उसका अङ्गोंमें दिव्य चन्दनका अनुलेप रम्भा था और केलापादामें पारिजातके पुष्प गुँथे हुए थे । दिव्य पुष्पोंसे अपना शरार करके वह प्रिय-समागमरूप दिव्य उल्लसके सिंघे आ रही थी ॥ १५ ॥

पद्ममनोहर पीन मेखलादामभूयितम् ।

समुद्रहस्ती जघन गतिप्राभृतमुजमम् ॥ १६ ॥

मन्दार नेत्र तथा काशीकी अङ्कितसे विभूषित पीन जटन-म्यन्त्रों पर उचित उत्तम उपहारक रूपमें धारण किये हुए थी ॥ १६ ॥

एतर्धिनोपकैर्गर्भैः पद्ममुकुतुमाङ्गयैः ।

यभायन्त्यनमंय थीं कान्तिभीपुतिकीर्तिभिः ॥ १७ ॥

उसके कण्ठके आश्रित हरिकण्ठनमें चित्र-रचना की गयी थी । वह एही श्रुतभोंमें होनेवाले गुण पुष्पोंके आर्द्र हारीम विभूषित थी और अपनी असौकरिक कान्ति शोभा सुनि एवं कीर्तिमें मुक्त हा उक्त समय वृद्धी लक्ष्मीके समान बदन पड़ती थी ॥ १७ ॥

नील सतायमेधाध पात्र समयगुणित्वा ।

यस्या यत्र गतिमिध भुयी शापनिम दुमे ॥ १८ ॥

उक्त हा मुग चन्द्रमाक समान मन्दार था और एकी मुन्दर भौंद कमान की दिवायी देती थी । वह लम्बे हल्पर क समान नील रंगकी लक्ष्मीके अपने अनेक दाह हुए थी ॥ १८ ॥

ऊरु कृत्विगयगरी करी गायकजमनी ।

भन्वमधयन गच्छन्ती राशेनापल्लिता ॥ १९ ॥

उपरी ओरकी काण्ड उपाय शरीरकी (इस समान था । एतत्तय एतत्तय एतत्तय (इहमेव एतत्तय एतत्तय) मन्त्र मन्त्र ॥ १ । वह लक्ष्मीके समान लक्ष्मीकी काण्ड एतत्तय उगे दाह बन्द ॥ १९ ॥

ता समुत्थाय गच्छन्तीं कर्मवाणयश गता ।
 करे गृहीत्वा लज्जन्तीं स्वयमानोऽप्यभाषत ॥ २० ॥
 देवते ही वह कमदेवके बालोंका धिक्कर हा गया और
 लड़ा हाकर उठने अन्धज अली हुई रम्भाकर हाय पकड़
 किया । बेधारी अकल अकसे गढ़ गयी परदु वह निधाचर
 मुखकण्ठया हुआ उठे बोझ—॥ २ ॥
 क गच्छसि धरातोहे कां सिद्धि भजने स्वयम् ।
 कस्याभ्युद्यकालोऽय यस्त्वां समुपभोक्ष्यते ॥ २१ ॥
 बराटोहे ! क्यों आ रही हो ? किसकी इच्छा पूर्ण करनेके
 क्रिय स्वय वरु पकी हो ! जिसके मायायका समय आया
 है अ दुम्भार उपगमे करेगा ॥ २१ ॥
 त्वदानतरमरत्याद्य पशोत्पल्लसुगन्धिनः ।
 सुधामृतसस्येष कोऽद्य तृप्ति गमिष्यति ॥ २२ ॥
 इमम और तत्पक्षी सुगन्ध धारण करनेवाले दुम्भारे
 इस मनोहर गुलारविन्दक रस अमृतका भी अमृत है । आज
 इस अमृत रसक आनन्दान करके कौन तृप्त हागा ! ॥ २२ ॥
 स्वणकुम्भनिधौ पीनौ शुभौ भीद निरस्तरी ।
 कस्योर-स्वलमस्यसो वास्यतस्ते कुचाधिभौ ॥ २३ ॥
 भीन ! परस्पर छटे हुए दुम्भारे ये सुवचनय फलकाक
 सद्य सुन्दर पीन उठेन किसके वरु लबोंके अपना स्वर्ण
 प्रदान करने ॥ २३ ॥
 सुवज्रप्रप्रतिम स्वजयमवितं पृथु ।
 अभ्यारोहयति कस्तेऽद्य जघन स्वर्गोहपिणम् ॥ २४ ॥
 कनेके लडियाय विभूयित तथा सुवर्णमय वरुके धमन
 विपुल विस्तारसे मुक्त दुम्भारे पीन बधनलक्षण अ मूर्ति-
 मान् स्वर्ण लज्जानपदधरे आज कौन आरोहण करेगा ! ॥ २४ ॥
 मद्रिदिशः पुमान् कोऽद्य दासो पिण्युरथाधियौ ।
 मामतीत्य हि यद्य त्व यानि भीरु म द्योभनम् ॥ २५ ॥
 इन्द्र उदेंद्र अथवा अरिबन्दीकुमार ही क्यों न हो
 इस समय पीन पुत्रय मुझसे वरकर दे ? भीरु ! तुम मुझे
 छोड़कर अन्धज आ रही हो। यह अच्छा नहीं है ॥ २५ ॥
 विधम त्व पृथुधासि निवातलमिन् शुभम् ।
 व्रैतनयय यः प्रमुक्षीय मन्मथा नय विघ्नते ॥ २६ ॥
 पदुस निरन्धरपी सुन्दरी ! वर सुन्दर प्रिय दे इस-
 पर देन्द्र विधम बना । इस विधुवनरा जो स्वामी दे वर
 मुझम भिन्ननरी—मैं ही मण्डूक ले दान अधिती हू ॥ २६ ॥
 तद्वय प्राज्ञवि प्रदो यावने स्या द्वाकृतः ।
 भनुभता विधाता य प्रदाययस्य भजस्य माम् ॥ ३ ॥
 पीने लोकोक स्वामीरा भी स्वामी तथा विधाता य
 वरदुपर वरन आज इस प्रकार विनीतमयम हाय बड़कर
 तुमन पाषना करवा दे । सुन्दरी ! मुझ स्वीकार कर ॥ २७ ॥
 एवमुत्तरप्रदात् रम्भा धनमात्र एताऽत्रिणि ।
 प्रसीद मादस पशुमीदनां त्वं दि म गुण ॥ ८ ॥

रावयक ऐश करनेपर रम्भा कौंन ठही और हन के
 कर बोली— प्रभो ! प्रसन्न होइये—मुझपर कृपा करके
 आपको ऐसी बात सुँहने नहीं निश्चयनी चाहिये; क्योंकि इ
 मेरे गुरुजन हैं—सिवाक दुत्य हैं ॥ २८ ॥
 अन्वेष्योऽपि स्वया रक्ष्या प्राप्नुया धर्मं वदि ।
 तदमतः स्तुषा नेऽह तत्पमेतद् ब्रवीमि ते ॥ २९ ॥
 यदि वृत्ते कोई पुत्रय मेरा शिररकार करनेपर उक्त
 जो उनसे भी आपके मेरी रख करनी चाहिये । मैं उसे
 आपकी पुत्रयचू हूँ—वह आपसे लकी बात बता रही हूँ ॥
 अयावधीव दशधीवधरणाभोमुकीं स्थितम् ।
 रोमहर्षमनुभ्राता इच्छाम्रेण तां लवा ॥ ३० ॥
 रम्भा अपने चरणोंकी ओर देखती हुई नीचे मुँह कि
 लकी थी । रावजकी इच्छि पड़नेवाकसे मरक करण उठ
 रंगे लड़े हा गये थे । उल समय उठसे रावजने कहा—॥ ३१ ॥
 सुतस्य यदि मे भार्या ततस्वर्ष हि स्तुषा भये ।
 पादमित्येष वा रम्भा प्रह रावणमुत्तरम् ॥ ३२ ॥
 पम्मे ! यदि यह सिद्ध हो जाय कि तुम मेरे बेटेकी ल
 हो लकी मेरी पुत्र-बन्धु हा सकती हा अन्यथा नहीं ! ठ
 रम्भाने बहुत अन्धज करकर रावणको इस प्रकार उल
 दिया—॥ ३२ ॥
 धर्मतस्तं सुतम्याह भार्या रक्तसपुङ्गव ।
 पुत्रं प्रियतरः प्रायैर्जातुर्वैधवणस्य ते ॥ ३३ ॥
 राक्षसीरमेजे ! बर्मेके अनुधार मैं आपके पुत्रके
 ही भार्या हूँ । आपके बड़े भाई कुबेरके पुत्र मुझे प्रकते
 मी पदकर प्रिय हैं ॥ ३३ ॥
 विरयातस्त्रिपु लोकेषु ललकृषर इत्ययम् ।
 धमतो यो भवेत् विप्रः सन्धियो दीर्यतो भवेत् ॥ ३४ ॥
 ये तीनों कोशमें ललकृषर नामसे विख्यात हैं तथा
 वमानुजकी इच्छिने ब्राह्मण और पराक्रमकी इच्छिने क्षत्रिय हैं ॥
 मोधाद्वयद्य भयेद्विन् क्षान्त्या च वसुधाभनम् ।
 तम्यासि कृतसंकेता भोजपाससुतस्य वै ॥ ३५ ॥
 ये क्षत्रिये मणि और धामने वृक्षीने धमन हैं । उनी
 लकृषरकुमार प्रियतम नरद्वारका आज मैंने विन्दके
 क्रिये मन्त दिया है ॥ ३५ ॥
 तमुद्दिश्य तु म सर्वे विभूयधमिद् कृतम् ।
 यथा तस्य नि नाम्यस्य भायो मां प्रति निष्ठिणि ॥ ३६ ॥
 यह गण शत्रार मैंने उन्हीके क्रिये धारण किया है;
 उन उनरा मेरे प्रति अनुवार है उही प्रकार मया भी उन्हीके
 मी प्रगाद प्रम दे वृत्ते क्रियेके प्रति नहीं ॥ ३६ ॥
 तन सन्धेन मा राजन् मोक्षमुमदस्वर्गिदम् ।
 यदि निष्ठिनि धमागमा मां प्रतीक्ष्य समुत्सुकः ॥ ३७ ॥
 अनुभोवा धमन करनेवाक राक्षसक ! इन लवके

दृष्टिं रत्नकर माप इव धमय मुष्टे छोड़ दीक्षिये मे मेरे
पद्मांशु प्रियतम उत्सुक होकर मेरी प्रतीक्षा करते हैं ॥ १६ ॥

तत्र विष्णु तु तन्मोह कर्तुं नाहसि मुञ्च माम् ।
मद्भिराचरित मार्गं गच्छ राक्षसपुत्रय ॥ ३७ ॥

तुम्हारी सेवाक इव धर्ममें आपका परोक्ष विघ्न नहीं
बाधना चाहिये । मुझे छोड़ दीक्षिये । राक्षसराज । आप
उपपन्नोद्धार आचरित धर्मके मार्गपर चक्षिये ॥ ३७ ॥

माननीयो मम त्वं हि पाशुमीया तयासि तं ।
एवमुक्त्वा दशम्रीशः प्रत्युपास्य विनीतबद्ध ॥ ३८ ॥

‘आप मेरे माननीय गुरुजन हैं अतः आपका मेरी रक्षा
करनी चाहिये ।’ यह सुनकर दशम्रीशने उठे नम्रतापूर्वक
उत्तर दिया— ॥ ३८ ॥

स्तुयासि यद्वक्षेत्स्वमेकपालीप्यथ धमः ।
वैष्वोक्तम्वितिरिय सुराणां शाश्वती मता ॥ ३९ ॥

पतिरत्नरसा नास्ति न वैशक्लीपरिमहः ।
पम्मे । तुम अपनेको सब मेरी पुत्रवधू बना रही हो वह
ठीक नहीं जान पड़ता । यह नाश-रिक्ता उन क्षियोंके जिय
कागू होता है, जो किसी एक पुरुषकी पत्नी हो । तुम्हारे
देवत्वकी जो स्थिति ही दृष्टी है । वहाँ सचसे यही नियम
पत्न्य आ रहा है कि अन्धकारको भरे पति नहीं रहता ।
वहाँ और एक क्षीक धर्म विनाश करके नहीं रहता है ।
एवमुक्त्वा स ता रक्षो निवेद्य च शिखरात्ते ॥ ४० ॥
काममोहाभिसरको मधुनापेपचक्रमे ।

ऐसा कहकर उस राक्षसने रम्भाको बन्धुवैक शिष्यपर
बैठा किया और काममोहमें आसक्त हो उसके साथ समागम
किया ॥ ४० ॥

सा विमुक्ता ततो रम्भा दधमात्पविभूयणा ॥ ४१ ॥
गलेन्द्राप्रैरहमथिता नदीयाजुञ्जता गता ।

उसके पुण्याह दृष्टकर गिर गये धारे आभूयन बस
सक्य हो गये । उपमोहक बाद राक्षसने रम्भाको छोड़ दिया ।
उसकी दशा उस नदीके समान हो गयी जिसे किसी गजरक्षने
श्रीश करके मग बाध हो । यह अत्यन्त आकुर हो उठी ॥
सुल्लिख्युञ्जैस्तान्ता करपेपितपल्लवा ॥ ४२ ॥
पयनमपधृतय छटा कुसुमराशिनी ।

वैश्वीक्य दृष्ट धनेवे उसके लुके हुए केव हकामे उड़ने
को—उत्कम गूत्रार विगड़ गया । कर-पल्लव कर्पने लगे ।
य देखी जाती थी—मना पूर्यैते सुशोभित इनेवाम्नी किष्ठी
क्याको हाने लक्ष्मणर किया हो ॥ ४२ ॥

सा वेपमाना छत्रमती भक्ता कण्ठताञ्जलिः ॥ ४३ ॥
मन्त्रवृत्तमासाद्य पाद्योर्निषपात ह ।

छत्रा और धमम कोपठी हुई यह नक्षत्रक पाव गयी
और हाथ बद्धकर उनके वेतैपर गिर पड़ी ॥ ४३ ॥

कन्दरस्यां च तां हृद्वा महामा नक्षत्रवार ॥ ४४ ॥

महाधीतु किमिद् भद्रे पाद्योः पतित्वासि मे ।
रम्भाको इस व्यवस्थामें देखकर महामना नक्षत्रवारे
पूजा— भद्रे । क्या बात है ? तुम इस तरह मेरे वेतैपर क्यों
पड़ गयी ? ॥ ४४ ॥

सा वै निःश्वस्यमाना तु वेपमाना कृताञ्जलिः ॥ ४५ ॥
तस्मै नमो यथातस्वमाख्यातमुपचक्रमे ।

वह धर-धर कोप रही थी । उसने कंधी लोव लीच-
कर हाथ जोड़ लिये और जो कुछ हुआ या वह सब ठीक-
ठीक कहना आरम्भ किया ॥— ४५ ॥

एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥
एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥

एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥
एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥

एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥
एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥

एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥
एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥

एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥
एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥

एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥
एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥

एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥
एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥

एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥
एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥

एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥
एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥

एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥
एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥

एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥
एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥

एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥
एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥

एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥
एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥

एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥
एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥

एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥
एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥

एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥
एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥

एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥
एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥

एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥
एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥

एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥
एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥

एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥
एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥

एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥
एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥

एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥
एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥

एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥
एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥

एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥
एव वैश्वीक्ये भूयैः शिरसि शिरसि ॥ ४६ ॥

मुहुवात् श्लोभन्नरासस्तोर्यं ब्रह्माह पाणिना ।

उच सम्य हो ही पक्षीने रावणधी उच करतको अन्नकर
वैभवापुत्र नखककरके नेत्र श्लोभते व्याड हो गये और उन्हीने
अपने हाथमें मम किमा ॥ ५२३ ॥

पृहीत्वा सखिन्न सर्वमुपस्यूह्य यथाविधि ॥ ५३ ॥

उत्ससर्ज तदा शाप राक्षसेन्द्राय दाहयम् ।

कळ छेकर पहले विधिपूर्वक आचमन करके नेत्र आदि
सारी इन्द्रियोंकर स्वर्ग करकेके अन्तर उन्हीने राक्षसराजको
बड़ा मर्मकर शाप दिया ॥ ५३४ ॥

मकामा तेन यस्मात् स्व वसाद् भद्रे प्रधर्षिता ॥ ५४ ॥

तस्मात् स युक्तीमस्या न्यक्तमासुपधास्यति ।

बे बोले—भद्रे । इन्द्राणी इच्छा न रहनेपर भी रावणने
दुम्भर कलपूर्वक अस्वाचार किना है । अता वह भावने
दुली किन्ही देसी युक्तीसे समागम नहीं कर सकेग्य अ उत
चाहती न ह ॥ ५४३ ॥

यथा ह्यक्षमां क्रमात्तौ धर्षयिष्यति योषितम् ॥ ५५ ॥

मूर्धा तु स्तभ्य तस्य शकलीभविता तदा ।

बदि वह क्रमपीडित छेकर उते न चाहनेवाकी युक्ती-
पर कमात्कर करेग्य तो तत्कळ उतके मस्तकके छत टुकड़े
हो जायेगे ॥ ५५३ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये नाविक्रम्ये उत्तरकाण्डे षड्विंशः सर्गः ॥ १८ ॥

एत प्रकर श्रीमद्वाल्मीकीयैः श्रीरामायणे उत्तरकाण्डे अष्टविंशोऽर्षे पूरु हुम ॥ २१ ॥

सप्तविंश सर्गः

सेनासहित रावणका इन्द्रलाकपर आक्रमण, इन्द्रकी भगवान् विष्णुसे सहायताके लिये प्रार्थना,
भविष्यमें रावण-वधकी प्रतिज्ञा करके विष्णुका इन्द्रको छौटाना, दशरामों और

राक्षसोंका युद्ध तथा बसुके द्वारा सुमाठीका वध

कैलास सङ्घियत्वा तु ससैम्यबलवाहना ।

भ्रातृसात् महातेजा इन्द्रलोकं वृषामना ॥ १ ॥

कैलास परंतको पार करके महातेजस्वी दशमुत्र राज्य

सेना और जगदियोंके साथ इन्द्रलोकमें जा पहुँचा ॥ १ ॥

तस्य राक्षससैम्यस्य समस्त्युपयाम्यता ।

द्वयस्त्रेके पशौ राघ्वो भिद्यमानाण्योपमा ॥ २ ॥

जब आरसे आती हुई राक्षससेनाध श्लोभकर देखलोकने

ऐला जान पड़त था मानो महातागरके मने अनेध राक्ष

प्रच्छ हो रहा हो ॥ २ ॥

धुम्या तु रावणं प्रातमिन्द्राविवित म्यसन्वान् ।

इयानयाप्रधीत् तत्र सघानेय समागतान् ॥ ३ ॥

रावणका आगमन सुनकर इन्द्र अपने आत्मने उठ

गये और अपने पान भावे हुए समस्त देवराजोंमें गछे—

आदियोंका वसून् पद्मान् साध्यांश्च समदृशवान् ।

सद्य भयं युद्धार्थं रावणस्य उपरमना ॥ ४ ॥

तस्मिन्नुवाहते शापे ज्वलिताग्निसमप्रभे ॥ ५१ ॥

देवतुग्नुभयो नेतुः पुष्यवृष्टिश्च क्षाक्युता ।

नखककरके मुखसे प्रज्वलित अग्निके समान रूप कर

देनेवाछे इस शापके निकलते ही देवताओंकी दुन्दुभितों सब

उठी और आकाशसे कूर्मोंकी बर्षा होने लगी ॥ ५३ ॥

पितामहमुखादपैव सर्वे देवाः प्रहर्षिताः ॥ ५४ ॥

आत्मा लोकगतिं सर्वां तस्य मृत्युं च रक्षसाः ।

श्रूययः पितरौष्य प्रीतिमापुरजुत्तमम् ॥ ५८ ॥

ब्रह्मा आदि सभी देवताओंको बड़ा हर्ष हुआ । रावणके

हाथ की गयी लोकाकी खरी दुर्दशाको और उच राक्षसी

मृत्युको भी अन्नकर श्रुतियों तथा पितरोंको बड़ी प्रसन्न

प्राप्त हुई ॥ ५४-८ ॥

धुम्या तु स दशप्रवीचस्तं शाप रोमहर्षणम् ।

गारीषु मैयुनीभाव न्यक्तमासम्परोक्षयत् ॥ ५९ ॥

उच ऐमाद्वकरी शापको सुनकर दशमीने अपनेअ न

पारनेवाकी किन्हीके साथ बसुत्कर करना छोड़ दिया ॥ ५९ ॥

तेन भीताः क्षिपाः प्रीतिमापुः सर्वाः पतिवताः ।

मखकूबरनिर्मुक्तं शाप ध्रुत्वा मनामियम् ॥ ६० ॥

वह किन-किन पतिवता किन्हीको हरकर छे गया था ; उन

लकके मनको नखकूबरका दिया वह शाप बड़ा भिन कम ।

उते सुनकर वे तब-ही-तब बहुत प्रसन्न हुई ॥ ६ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये नाविक्रम्ये उत्तरकाण्डे षड्विंशः सर्गः ॥ १८ ॥

एत प्रकर श्रीमद्वाल्मीकीयैः श्रीरामायणे उत्तरकाण्डे अष्टविंशोऽर्षे पूरु हुम ॥ २१ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये नाविक्रम्ये उत्तरकाण्डे षड्विंशः सर्गः ॥ १८ ॥

एत प्रकर श्रीमद्वाल्मीकीयैः श्रीरामायणे उत्तरकाण्डे अष्टविंशोऽर्षे पूरु हुम ॥ २१ ॥

उन्हीने आदित्यों, बसुओं वनों आर्यों तथा मरुदोंको

भी कहा—धूम ज्वल्लेग्य युष्मदा रावणके साथ युद्ध करनेके

लिये तैयार हो जायेगे ॥ ५ ॥

एवमुक्त्वास्तु पाकेण वेणाः शक्रसमा युधि ।

सनाद्य धूमहासत्या युद्धभवात्समन्विता ॥ ५ ॥

इन्द्रके ऐला अनेपर युद्धमें उन्हीके समान परजम

प्रच्छ करनेवाछे महात्मी देवता कबच आदि वारण करके

युद्धके लिये उत्सुक हो गये ॥ ५ ॥

स तु धीमः परिबस्तो महेश्चो रावण प्रति ।

विष्णोः समीपमागत्य धान्यमेतदुवाच ह ॥ ६ ॥

देवराज इन्द्रको रावणसे मम हो गया था । अता वे

दुली हो भगवान् विष्णुके पास जाये और इत प्रकर बने—

विष्णा कथ करिष्यामि रावणं राक्षस प्रति ।

अदाऽतिवसयद् रक्षा धुदायंभविष्यति ॥ ७ ॥

विष्णुदेव । मैं राक्षस रावणके लिये क्या करूँ । मरी ।

वह अत्यन्त बख्शाभी निशाचर भरे साथ मुझ करनेके
 निय आ रहा है ॥ ७ ॥
 परमप्रानन्द बलवान् न स्वस्वस्येन हेतुना ।
 तत्तु सत्य वचः कार्यं यदुक्तं पद्ययोनिना ॥ ८ ॥
 'वह देख ब्रह्माभीक बरदानके फलम प्रकष हो गया
 है; वृद्धे किसी हेतुसे नहीं । कमल्योनि ब्रह्माभीने जो कर दे
 णि है, उसे क्षय करना हम सब स्त्रेणोंका काम है ॥ ८ ॥
 तत् यथा नमुषिर्बुधो बलिमारकानाम्परी ।
 त्वृषत् समवधम्य मया वग्भास्यया कुद ॥ ९ ॥
 'अत भैमे पदक आपके पबका व्याधय लेकर मैंने
 नमुषि बुधासुद पति नरक और शम्भर आदि भयुरोंका
 रूप कर बाध है, उठी प्रकार इस समय भी इस अतुरका
 मन्त हो जान देला छोड़े उपाय आप ही भीधिये ॥ ९ ॥
 नक्ष्म्यो देयदेशेय त्यहते मधुसूदन ।
 गतिः परायण ग्रापि ब्रैलोक्ये सखराचरे ॥ १० ॥
 'मधुसूदन । आप देवताओं की देवता पर ईश्वर है ।
 इस परापर भियुपनमें आपके किना दूख्य कोई एसा नहीं है
 'हम देवताओंको ख्यात दे वने । आप ही हमारे परम
 भाग्य हैं ॥ १ ॥
 त्वं हि नारायणः श्रीमन् नृपनाभः सनातनः ।
 तयमे स्थापिता लोकाः शक्य्याह सुरेश्वरः ॥ ११ ॥
 'आप पद्मनाभ हैं—आपहीके नामिकमससे जगत्की
 बस्यि हुई है । आप ही सनातनदेव भीमान् नारायण हैं ।
 आपने ही इन तीनों लोकोंको स्थापित किया है और आपने
 ही मुझे देवराज इन्द्र बनाया है ॥ ११ ॥
 तया वृषभिम्य सयं ब्रैलोक्य सखराचरम् ।
 तमस्य भरावन् सयं प्रथियाम्नि सुराक्षरे ॥ १२ ॥
 'भगवान् । आपने ही स्वर्ग-ब्रह्म प्राणियोंकहित इस
 लम्ब विबेधीकी वृष्टि की है और प्रकषकाबने सम्यक् मृत
 भागमें ही प्रवेश करते हैं ॥ १२ ॥
 तदाचक्ष्व यथातस्व देयव्य मम स्वयम् ।
 अस्मिन्नस्तदापस्त्व पोत्स्यसे रावण प्रति ॥ १३ ॥
 'इत्थिय देवदेव । आप ही मुझे कोई देला अभाप
 बराय बरायसे बिस्से मेरी बिबय दा । क्या आप स्वयं पर
 और तस्वर केकर राबनसे मुझ करेंगे ? ॥ १३ ॥
 एयमुक्तः स दाम्नेय वयो नारायणो मनुः ।
 मध्यस्थ परिधामः कतध्याः भूयवां च मे ॥ १४ ॥
 'इसके देला करनेपर भगवान् नारायणसे बने—
 देवराज । मुझे मय नहीं करना चाहिये । मेरी बात सुनना
 न तावन्व दुराग्रमा दाक्यो जेतुं सुरासुरैः ।
 दग्नु ग्रापि समासाद्य परदानमनुजया ॥ १५ ॥
 'एतकी बात तो पर है इस दुराग्रमा राबनको लम्ब
 देवरा और अनुर मिबकर भी न तो मार सकते हैं और न

पया ही कर सकते हैं' क्योंकि बरदान पानेके कारण यर इस
 समय दुर्भय हो गया है ॥ १५ ॥
 सर्वथा तु महत् कर्म करिष्यति यलोक्यतः ।
 राक्षसः पुत्रमहितो वृष्येतन्निस्सर्गतः ॥ १६ ॥
 'अपन पुत्रक साथ आया हुआ यर उलकट बख्शाभी
 राक्षस छय प्रकारसे महान् पराक्रम प्रकष करेगा । वह बर
 मुझे अपनी स्वाभाविक जानदृष्टिसे दिक्कामी दे रही है ॥ १६ ॥
 पत्तु मा त्यमभापिष्टा युष्यस्येति सुरेश्वर ।
 नाह त प्रतियोत्सामि रावण राक्षस युधि ॥ १७ ॥
 'सुरेश्वर । वृषरी बात जो मुझे छानी है इस प्रकार है—
 तुम जो मुझसे कह रहे थे कि 'आप ही उसके साथ मुझ
 कीबिय उलक उलरमें निवेदन है कि मैं इस समय मुझ
 लाममें उक्त राबनका खमना करनेके निये नहीं आऊँगा ॥
 नाहत्वा समरे शशुं पिष्णुः प्रतिनिधयति ।
 तुल्लभवीष फामोऽद्य वरगुतादि राषणात् ॥ १८ ॥
 'जुस विष्णुका यर स्वभाव है कि मैं संवाममें शत्रुका बर
 किये किना पीछ नहीं छोटा परंतु इस समय रावण
 बरदानसे सुरसिन् है, इसलिये उलकी ओरसे मेरी इस निबन्ध
 छम्बिधनी इच्छाकी पूर्ति होनी कठिन है ॥ १८ ॥
 प्रतिजाने च वयेन्द्र त्वस्ममीपे दातव्यतो ।
 अवितासि यथास्याह रक्षसो मृत्युकरणम् ॥ १९ ॥
 'परंतु देवेन्द्र । घटकतो । मैं मुझारे समीप इस बातकी
 प्रथिवा करता हूँ कि समय आनेपर मैं ही इस राक्षकी मृत्युका
 कारण बनूँगा ॥ १९ ॥
 अहमेव निहन्तासि रावण सपुरासरम् ।
 देयता नन्दविष्यामि ज्ञात्या कालमुपागतम् ॥ २० ॥
 'मैं ही राबनको उलके अप्रणयी तैनिशेकहित मार्कण्डेय
 और देवताओंको अहनन्दित करूँगा परंतु यह तभी होगा
 जब मैं जान हूँगा कि इसकी मृत्युका समय आ पहुँचा है ॥
 एतत् ते कथित तस्य देयराज शचीपते ।
 युद्धायन् विगतभासः सुरैः सार्धं महापल ॥ २१ ॥
 'देवराज । य लव बाँटे मैंने तुम्हें ठीक-ठीक बता ही ।
 महाबलकाभी शचीबलम । इस समय तो तुम्हीं देवताओंके
 सहित जाकर उत राक्षके साथ निर्भव हो मुझ करो ॥ २१ ॥
 ततो यद्राः सदादिप्या वसयो मरुतोऽश्विनी ।
 सनडा निययुस्तूर्ण राक्षसानभितः पुरात् ॥ २२ ॥
 'तदनन्तर यद्र आदित्य यद्र मरुद्वय और अश्विनी
 कुमार आदि देवता मुझके निय तयार दाकर दुरंत अमरावकी
 पुरीमे दादर निकले और राबनको लामना करनेके निये
 जागे थे ॥ २२ ॥
 एतस्मिन्मन्तर मादा शुधुय रजनीज्ञये ।
 तस्य रायणसंन्यस्य प्रयुजस्य सप्तमन्त्रः ॥ २३ ॥
 'इसी बीचमें एत वीठवे-वीठवे लव अरेसे मुझके सिधे

उच्यते इदं उच्यते श्रीमहात्मान् श्रीमहात्मान् मुन्यापी देने
 ॥ २३ ॥

ते प्रमुखा महावीर्या अभ्योन्मयमभिधीह्य वै ।
 सामामनेयाभिमुक्ता अभ्ययर्तन्त इष्टवत् ॥ २४ ॥

वे महाप्रज्जमी राक्षसैः केशरी चरितेन पर एक दूरेषु
 और देलते हुए बड़े ही और उल्लाहके सब युद्धके सिन्धे
 ही अंग बढ़ने लगे ॥ २४ ॥

ततो वैकृतसैम्यानां सप्तोभः समजापत ।
 तदक्षय महासैम्य दद्या समरमूर्धनि ॥ २५ ॥

कदनन्तर युद्धके मुहानेपर राक्षसोंकी उध अनन्त एवं
 सिपाह सेनाके देलकर देवताओंकी सेनामें बड़ा छेद
 हुआ ॥ २५ ॥

ततो युद्ध समभवत् देवदानवरससाम् ।
 धोर द्रुमुक्निर्हाय गान्नाप्रहृणोद्यतम् ॥ २६ ॥

फिर तो देवताओंका दानवों और राक्षसोंके साथ भयंकर
 युद्ध किंच गया । मयंकर श्रीमहात्मान् होने लगे और दोनों
 अंशते नाना प्रकारके अस्त्र-शस्त्रोंकी बौछार अग्रग्न्य हो
 गयी ॥ २६ ॥

पृथक्सिधन्तरे शूरा राक्षसा धोरवर्जानाः ।
 युद्धार्थं समवर्तन्त सखिषा राक्षस्य त ॥ २७ ॥

इसी समय राक्षसके मन्त्री धुरवीर राक्षस जो बड़े मयंकर
 रिलानी बैठे प युद्धके सिन्धे अंगे बढ़ आये ॥ २७ ॥

मारीचश्च महस्तब्ध महापासर्वमहोदरौ ।
 भक्त्यन्तो निकुन्मभ्य शुक्रः सारथ्य एव च ॥ २८ ॥

संज्ञादो धूमकेतुश्च महादृष्टो भ्रष्टोदरः ।
 अम्बुमाखी महाहाथो विकृपासश्च राक्षसः ॥ २९ ॥

सुत्तयो पञ्चकोपश्च तुमुको वृषणः क्षणः ।
 भिरारिः करवीरश्चः स्युशानुश्च राक्षसः ॥ ३० ॥

महाकापोऽतिचक्रश्च पृथान्तकस्तन्विकौ ।
 परीः सर्वैः परिवृतो महाधीर्यैर्महायसः ॥ ३१ ॥

रावणस्यार्थका सैम्य सुमाली प्रथिवेश ह ।
 मारीच प्रहृत महापार्वं महादरु भक्त्यन्त निकुन्म
 शुक्र मारुच संज्ञाध धूमकेतु महादंष्ट्र भ्रष्टोदर अम्बुमाखी
 महाहाथ निष्पाद्य सुतन्म पञ्चकोप धुमुत्त वृषण क्षण
 भिरारि करवीरश्च स्युशानु महाप्रभ अतिचक्र देवान्तक
 तथा नरन्तक—इन सभी महापराक्रमी राक्षसोंके धिरे हुए
 महाकबी सुमालीने जो राक्षस्य नाना या देवताओंकी सेनामें
 प्रवेश किया ॥ २८-३१ ॥

स वैकृतगणान् सयान् गान्नाप्रहृणोद्यतम् ।
 व्यर्ष्यसयत् सर्म हुन्दो पापुजलधरागिरि ॥ ३२ ॥

उठने कुपित हो माना प्रहरके विने अन्त शशोद्वय
 समस्त देवताओंको उधे तन्म मार भगया, धिरे बाहु पदर्यों
 का शिप-मित्र कर देती है ॥ ३२ ॥

तत् वैकृतबल राम हृन्ममान निशाचरैः ॥ ३३ ॥
 प्रमुग्ध सर्वतो विग्न्थः सिंहातुष्ठा सुग्रह इव ।

भीराम । निशाचरोंकी मार काकर देवताओंकी मर उध
 सिंहाद्य लदेई गये मृगोंकी भाँति समूर्ण विखरनेमें लग
 पडी ॥ ३३ ॥

वत्सिधन्तरे शूरो यक्षनामप्रमो वसुः ॥ ३४ ॥
 साधिवः कृत्वि विख्यातः प्रथिवेश रणाक्षिरम् ।

इसी समय वसुधामैसे आठवें वसुने कृत्वि नाम
 खनिज है समप्राणमें प्रवेश किया ॥ ३४ ॥

सैम्यैः परिवृत्य इष्टैर्गानाप्रहृणोद्यतैः ॥ ३५ ॥
 ग्रासयन्त्यानुसैम्यानि प्रथिवेश रणाक्षिरम् ।

वे नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंके दुबलित एवं उल्लाह
 ठेगिठेसे धिरे हुए थे । उन्हींने शत्रुसेनाओंको संक्रा करी
 हुए रथभूमिमें पवारण किया ॥ ३५ ॥

क्यावित्यौ महावीर्यौ त्वष्टा पूष्य च तो समम् ॥ ३६ ॥
 निर्मयी सह सैम्येन तथा प्रथिवारतं रथं ।

इनके सिवा अदितिसे हो महाप्रज्जमी पुत्र लक्ष और
 पूषाने अपनी सेनाके साथ एक ही समय युद्धसममें प्रवेश
 किया वे दोनों वीर निर्मय थे ॥ ३६ ॥

तयो युद्ध समभवत् शूराणां सह राक्षसैः ॥ ३७ ॥
 हुन्दाना राक्षसां कीर्ति समरंष्यनिर्वर्तिनाम् ।

फिर तो देवताओंका राक्षसोंके साथ धेर युद्ध होने लगे ।
 युद्धमें पीछे न हटनेवाले राक्षसोंकी बढ़ती हुई कीर्ति देख
 सुनकर देवता उनके प्रति बहुत कुपित थे ॥ ३७ ॥

ततस्ते राक्षसाः सर्वे विदुधान् समरे विलखन् ॥ ३८ ॥
 गान्नाप्रहृणोद्यतैर्विदुः पातसहस्रशः ।

तत्पश्चात् समस्त राक्षस समरभूमिमें लड़े हुए लगे
 देवताओंको नाना प्रकारके धेर अस्त्र-शस्त्रोंके मारने
 लगे ॥ ३८ ॥

देवाश्च राक्षसान् शूराश्च स्थावकपराक्रमान् ॥ ३९ ॥
 समरे विमलोः पाक्षीवपत्नियुयमसयम् ।

इसी तरह देवता भी महान् बल-पराक्रमसे लय्यन धेर
 राक्षसोंको समप्राणमें लय्यनके अस्त्र-शस्त्रोंके मार-भारत
 यमकोट भेजने लगे ॥ ३९ ॥

पृथक्सिधन्तरे राम सुमाली नाम राक्षसः ॥ ४० ॥
 मान्द्राप्रहरीः हुन्दस्तसैम्यं सोऽभ्यवर्तत ।

स वैकृतवसु सर्वे क्षमाप्रहरीः शिरीः ॥ ४१ ॥
 व्यर्ष्यसयत् सहुन्दो पापुजलधरा यथा ।

भीराम । इसी वीरने सुमाली नामक राक्षसे कुपित होकर
 माना प्रकारके शत्रुओंका देवसेनापर आक्रमण किया । उठने
 अत्यन्त क्रोधसे मरकर बादलोंको क्षिप्त-मित्र कर देतेवर्ण
 बापुजल कमान अयने मूर्ति-मूर्तिके ठीले अस्त्र-शस्त्रोंके
 समस्त देवसेनाके क्षिप-भितर कर दिया ॥ ४०-४१ ॥

त महायाणवर्षींश्च शूलपासीः सुदारुणैः ॥ ४० ॥
हृन्मयाताः सुगु सन्धे न व्यतिष्ठन्त सहताः ।

उत्तम महान् बानो और मवकर धुएँ एवं प्राणोंकी
बगिमे मारे अते हुए सभी देवता युद्धक्षेत्रमें संगठित होकर
सबै न रह सक ॥ ४० ॥

तस्ये विद्राव्यमाणेषु देवतेषु सुमाखिमा ॥ ४१ ॥
पशुनामष्टम मुन्यः सावित्रो वै ध्ययन्वितः ।

सधुतः स्वैरधातीकैः प्रहर्स्तं निशाचरम् ॥ ४४ ॥
सुमाक्षीद्वारा देवताओंके मग्य जानेपर आग्यें बसु
छविभमे वहा श्रेष्ठ हुआ । वे अपनी रथसेनाओंके साथ
आए उर प्रहार करनेवाले निशाचरके सामने लड़ हा
गये ॥ ४३ ४४ ॥

क्रियेण महातेजा याग्यामास सयुग ।
उत्तस्तपोमहद् युद्धमभवत्सोमहवणम् ॥ ४५ ॥

सुमाक्षिनो धनोदय समेधेनियतिनो ।
महातन्वी सवित्रेण युद्धम्बलमे अपन पराक्रमद्वारा
सुमाक्षीक आग बदनमे रोक दिया । सुमाक्षी और बसु दोनों
मेंसे कर भी युद्धमे पीछ हटनेवाला नहीं था अत उन दोनों
में महान एवं गोमाहकारी युद्ध छिड़ गया ॥ ४५ ॥

ततस्तस्य महागार्ज्यगुना सुमह्यभना ॥ ४६ ॥
निहत पशुगण्हा हाथेन विनिपातित ।

तानन्तर महातना यमुने अपने विद्यालक्ष्णोंद्वारा सुमन्वीक
की बुल हुए रथका जलम/संताड़ करके कर गिरा दिया ॥ ४६ ॥
हाथानु बन्दुगे तस्य रथ बाणदातेभित्तम् ॥ ४७ ॥

गदा तस्य पशुधातय यस्तुर्जमाद् पाणिन ।
इत्यार्ये धीमतागणय बाधनींश्रिये आदिशब्धे उत्तरकाण्डे सतःशितः सर्गः ॥ १० ॥

इत प्रहार धीमन्नीभिर्मित अन्तःसामयन सविद्यम्बक उत्तरकाण्डेमे सतःशितो का पूरा हुआ ॥ १० ॥

मतः प्रवृत्त वीताप्रां कालद्वन्द्वोपमां गदाम् ॥ ४८ ॥
सर्त मूर्ध्नि पातयामास सावित्रो वै सुमालिनः ।

युद्धम्बलमे लड़कों बाणोंसे छिन्दे हुए सुमाक्षीक रथको
नष्ट करके यमुने उस निशाचरके वषट्क क्रिय करके
समान एक मयंकन गदा हाथमें ली ब्रिजका अग्रमाग मयंकने
समान प्रयत्नित हा रहा था । उसे केकर छविभने सुमाक्षीक
मन्त्रकन द मारा ॥ ४७-४८ ॥

सा तस्योपरि श्लोकाभा पतस्ती धियभी गदा ॥ ४९ ॥
इन्द्रमसुता गजस्ती गिराश्रिय महादाणिः ।

उत्तक उत्तर गिती हुई वह गदा उत्तकके समान लम्बक
उठी, मना इन्द्रक द्वारा छोड़ी गयी विशाल अष्टानि धरी
गदगदाहृत्क साथ छिछीकत्तक धिन्वरपर गिर रही हो ॥ ४९ ॥
तस्य नैपाथिय न शिरो न मांस दृष्टो तदा ॥ ५० ॥

गदया भस्मता नीत निहतस्य रणाश्रिते ।
उत्तकी पाट छगत ही समग्रगर्भमे सुमाक्षीक काम तमाम
ह गया । न तस्की शूरीका फा ल्या न मन्त्रकन और न
करी उत्तका मांस हो दिभायी दिया । यह सब कुछ उर
गनाकी अग्रमे भस्म हो गया ॥ ५० ॥

त दद्रु निहत सस्ये राक्षसाल्ने समन्ततः ॥ १ ॥
व्यग्रवन् सशिता सर्वे श्रोदामाण परस्परम् ।

विद्राव्यमाणा यस्तुना राक्षसा नायतस्यिरे ॥ २ ॥
युद्धमे सुमाक्षीके मारा गया दस य सब राक्षस एक
दूसरेका पुकारन हुए एक एक चारों ओर भाग लड़े हुए ।
यसुके द्वारा लड़े जानेवाले य राक्षस समग्रभूमिमे लड़े न
रह सक ॥ ५१ ५२ ॥

युद्धमे सुमाक्षीके मारा गया दस य सब राक्षस एक
दूसरेका पुकारन हुए एक एक चारों ओर भाग लड़े हुए ।
यसुके द्वारा लड़े जानेवाले य राक्षस समग्रभूमिमे लड़े न
रह सक ॥ ५१ ५२ ॥

युद्धमे सुमाक्षीके मारा गया दस य सब राक्षस एक
दूसरेका पुकारन हुए एक एक चारों ओर भाग लड़े हुए ।
यसुके द्वारा लड़े जानेवाले य राक्षस समग्रभूमिमे लड़े न
रह सक ॥ ५१ ५२ ॥

युद्धमे सुमाक्षीके मारा गया दस य सब राक्षस एक
दूसरेका पुकारन हुए एक एक चारों ओर भाग लड़े हुए ।
यसुके द्वारा लड़े जानेवाले य राक्षस समग्रभूमिमे लड़े न
रह सक ॥ ५१ ५२ ॥

युद्धमे सुमाक्षीके मारा गया दस य सब राक्षस एक
दूसरेका पुकारन हुए एक एक चारों ओर भाग लड़े हुए ।
यसुके द्वारा लड़े जानेवाले य राक्षस समग्रभूमिमे लड़े न
रह सक ॥ ५१ ५२ ॥

अष्टाविंशतः सर्ग

मपनाद और प्रयन्तका युद्ध, पुलोमाका जय तफो अन्यत्र ले जाना, दवगज इत्रका युद्धभूमिमें
पदापण, कर्तों तथा महदृणोंद्वारा गजससेनाका महार और इत्र तथा रावणका युद्ध

सुमाक्षि कत दद्रु यस्तुना भग्ननाहृत्तम् ।
सस्य विद्रुम धारि सशयितार्दित सुरे ॥ १ ॥
स स दृग्गार कुत्न रावणस्य सुतन्ना ।

निरास्य राक्षसान् स्वयान् मयनात् व्यन्वितः ॥ २ ॥
सस्ये मारा गदा यमुने उत्तक गरीकभ भस्म कर दिया
और राक्षसोंके न हाथ में ही सेना मारी ग ॥ १ ॥ ८

यद देव तापना वरगा पुत्र मफात् वृषिण हा समन्त
का और सब देवता ने ताप देके दिये उत्तर गदा
हुआ ॥ १ २ ॥

स सशयिता जेत कसमगन महागया ।
धमिदुद्राव भनो हा यतान्वनिरिय रथान् ॥ ३ ॥

य गगर्गी गी इच्छातुम्बक लक्ष्मेयाय अमितुल्य
श्रीभी रथपर आकर हा यमुने फेरनेवाय प्रत्यक्षि तापनाय
क तमना उर दयानास अर शौग ॥ १ ॥

ततः प्रणिगतस्यस्य विविद्यायुधधारिणः ।
विद्रुमुत्तुना स्वया दृग्गारद्वय द्यता ॥ ४ ॥
तना प्रगार्य भातुष पारण कर्य भस्मी मनामे प्रदेश
करना उस म तादना लक्ष्मी स्य यतनाशुर्भे शिवाभौ
हा अर भाग था ॥ ४ ॥

न यस्तु तदा वशिद् युयुत्सागस्य सममुग ।
यतानाश्रिय शिवास्ततः तापदप्रवीम् सुगवत् ॥ ५ ॥
उम तमय वृत्ती इच्छात् मपनाय लक्ष्मेये कर भी

न यस्तु तदा वशिद् युयुत्सागस्य सममुग ।
यतानाश्रिय शिवास्ततः तापदप्रवीम् सुगवत् ॥ ५ ॥
उम तमय वृत्ती इच्छात् मपनाय लक्ष्मेये कर भी

कदा न हो तदा । तत्र भवतीति ह्ये तत्र स्मृत्य देवताओंको
 पञ्चदशरूप इत्यने तन्मे कथा— ॥ ५ ॥
 न मेतन्म्य न गन्तव्य निर्वर्तय्य रमे सुपुत्रः ।
 एष गच्छति पुत्रो मे युवार्थमपराजितः ॥ ६ ॥
 (देवताओं) । मय म क्यो, युद्ध छोड़कर न चामा और
 रणक्षेत्रमें और आओ । वह मेरा पुत्र कल्प ओ कयी मिलीसे
 पयस्य नहीं हुआ है, युद्धके लिये जा रहा है ॥ ६ ॥
 ततः शक्यसुतो वैशो जयन्त इति विश्रुताः ।
 एषेमाद्भुतकश्येन संघामे सोऽभ्यवर्तत ॥ ७ ॥
 तदनन्तर इन्द्रपुत्र कश्यपके अद्भुत लक्ष्यबटसे युद्ध
 रूपर आरम्भ हो युद्धके लिये आया ॥ ७ ॥
 ततस्तो विश्रुताः सर्वे परिचार्ये शचीसुतम् ।
 गच्छन्त्यस्य सुत युद्धे समासाद्य प्रजघ्निरे ॥ ८ ॥
 फिर तो सब देवता शचीपुत्र कश्यपको पारा मोहन
 शक्य युद्धक्षेत्रमें आये और रावणके पुत्रपर प्रहार करने
 लगे ॥ ८ ॥
 तंवा युद्ध समभवत् सद्यश्च श्वरप्रसाम् ।
 महान्त्रस्य च पुत्रस्य राक्षसेन्द्रसुतस्य च ॥ ९ ॥
 इस समय देवताओंका राक्षसीके साथ और महान्द्रकुमार
 का रावणपुत्रके साथ उनके सम्प्रकाशके अनुकूल युद्ध होने
 लगा ॥ ९ ॥
 ततो मातङ्गिपुत्रस्य गोमुक्षस्य स रावणिः ।
 सारथोः पातयामास शयान् कनकभूपान् ॥ १० ॥
 एकराजकुमार नेकान् कनकान् सारथि मातङ्गिपुत्र गेमुक्ष
 पर सुवभूयित शचीकी बर्षा करने लगा ॥ १० ॥
 शचीसुतश्चापि तथा जयन्तस्तस्य सारथिम् ।
 त चापि रावणिः क्रुद्धः सम्प्रत्यत् प्रथ्यन्विष्यत ॥ ११ ॥
 शचीपुत्र कश्यपने भी मन्थारके सारथिको पकड़ कर
 दिया । तब क्रुपित हुए नेकान्के कश्यपको भी सब भारती
 कृत-विषय कर दिया ॥ ११ ॥
 स हि क्रोधसमाभिष्टो बली विस्कारितेक्षणः ।
 रावणिः शक्यतन्व शारथ्यैर्वाकित् ॥ १२ ॥
 ततः सम्यग्भवेत् भयं हुमा कश्चान मेत्या इन्द्रपुत्र
 कश्यपको आँसे पकड़-पकड़कर बँधने और शचीकी तरफ
 पीड़ित करने लगा ॥ १२ ॥
 ततो मामाप्रहरणाभिष्टतधारान् सहस्रशः ।
 पातयामास समुद्रं सुरसैम्यपु न्यगिः ॥ १३ ॥
 अत्यन्त क्रुपित हुए रावणकुमारने देवताओंकी सेनापर
 भी तीली पारवारके साथ प्रहारके लक्ष्मीं अन्न शक्य करवाये ॥
 दातपनीसुतस्यसासगदासपुत्रस्यभान् ।
 महासि तिरिभृद्वाणि पातयामास रावणिः ॥ १४ ॥
 इन्हने द्रवणी मूलक माल गदा लक्ष और क्योने
 निपटये तथा बड़े-बड़े पर्वत-शिखर भी लम्बने ॥ १४ ॥

ततः प्रमथिता लोकः सज्जो च तमस्तदा ।
 तस्य रावणपुत्रस्य शकुसैम्याणि विभ्रान् ॥ १५ ॥
 शकुसैमाओंके संहारने क्यो हुए रावणकुमारकी लम्बो
 तब समस्त चारों तरफ अन्नकर छा गया क्यो तमस्त
 मथित हो उठे ॥ १५ ॥
 ततस्तद् वैपतयस्य सम्प्रत्यात् त शचीसुतम् ।
 पशुमकरस्यस्यमभयच्छरपीडितम् ॥ १६ ॥
 तब शचीकुमारने चारों ओर लड़ी हुई देवताओंको
 सेना काजोहाय पीड़ित हो अनेक प्रकारने भयस्त हो ली ॥
 नाम्मजानन्त स्याद्योस्य रक्षो वा इक्तापथा ।
 तत्र तत्र विपर्यस्तं समन्तात् परिधावत ॥ १७ ॥
 रावण और देवता आपसमें किसीको पहचान न लें ।
 वे सर्वो-तर्हो निकर हुए चारों ओर पत्थर फटने लगे ॥ १७ ॥
 वैशो वैशान् मिश्रच्युस्ते राक्षसान् राक्षसासृषा ।
 सम्मूहासमसाच्छ्रया ध्यत्रयधपरे तथा ॥ १८ ॥
 अन्धकारमें आच्छादित होकर वे बिलेकारिके लगे
 थे । अतः देवता देवताओंका और रावण रावणको ही मने
 लगे तथा बटुतेरे योद्धा युद्धसे मग लड़े हुए ॥ १८ ॥
 एतस्मिन्पक्षरे धीरः पुत्रोमा नाम वीरबाहू ।
 दैत्यत्रयस्तेन सगृह्य शचीपुत्रोऽपयाहितः ॥ १९ ॥
 इसी वीरने पराक्रमी वीर दैत्यराज पुत्रोमा युद्धमें अन्न
 और शचीपुत्र कश्यपको पकड़कर बर्षोसे बुर हटा मे गया ॥
 सगृह्य तं तु दौहित्र प्रथिष्य सागर तथा ।
 यार्थका स हि तस्यासीत् पुत्रोमा येन सा शची ॥ २० ॥
 वह शचीका पिता और कनकका नाना था अता अने
 दौहित्रको छेकर समुद्रमें डुब गया ॥ २० ॥
 हात्वा प्रजाप नु तथा जपन्तस्याद्य देवताः ।
 भयद्रष्टस्ततः सर्वा भ्यपिताः सम्मनुजुपुः ॥ २१ ॥
 देवताओंको कर कनकके लक्ष्य होनेकी बात मन्थुम हुई
 तब उनकी सारी क्षुपी छिन गयी और वे डुली होकर चली
 और भागने लगे ॥ २१ ॥
 राक्षसिन्धय भद्रुद्धो बलैः परिवृतः शकैः ।
 अभ्यधावत् श्वोस्तान् मुमाद्य च महात्मनम् ॥ २२ ॥
 तब अपनी सेनाओंसे घिरे हुए रावणकुमार नेकान्के
 अत्यन्त क्रुपित हो देवताओंपर बाबा मिया और बड़े करते
 गंभीरा ली ॥ २२ ॥
 इदा प्रजाप पुत्रस्य वैशतेपु च विवृतम् ।
 मत्सि खाह वैशेषो रथः समुपगम्यताम् ॥ २३ ॥
 पुत्र कश्यप हो गया और देवताओंकी सेनामें अन्न
 मन्थ गयी है—यह देवकर देवराज इन्हने मत्सिमें रथा—
 म्पेय रथ छे आओ ॥ २३ ॥
 स तु विष्या महाभीमा सख्य एष महारथः ।
 अर्पयिष्यो मत्सिन्व वात्स्यमातो महात्मवः ॥ २४ ॥

मत्तन्नि एक कम्प-सकता महामयद्गुरु दिव्य एवं विद्यास
 रय अक्षर उपस्थित कर दिया । उसके द्वारा हौक बननेवाला
 वह रय बड़ा ही वेगवाली था ॥ २४ ॥
 एतो मेवा रये तस्मिस्तद्विष्यन्त्यो महाबलाः ।
 सप्रतो वायुघण्टम नेतुः परमनिष्ठनाः ॥ २५ ॥
 तदनन्तर उस रयपर विष्कम्भिते युक्त महाकम्भी मेघ उसके
 भयभ्रममें बाधुते चञ्चल हो बड़े खेर-खारते गम्पना करने
 लगे ॥ २५ ॥
 गन्तायाद्यानि याघान्त गन्धवाञ्छ समहितः ।
 मनुमुभाप्यन्तरःसङ्गा निर्याते शिव्दोम्भरे ॥ २६ ॥
 देवेष्ट इत्युक्ते निष्कम्भ ही नाना प्रकारके बाँधे बन्ध
 उठे गन्धर्व एकत्र हो गये और अन्धकारभोक उन्मूह नृत्य
 करने लगे ॥ २६ ॥
 रुद्रैर्बन्धुभिरावित्पैरश्विम्या समरुद्रौ ।
 वृषा मन्नाप्रहरणैर्निर्पयी शिव्दशाधिपः ॥ २७ ॥
 उन्मत्तत रुद्रों बधुओं, अश्वित्यों अश्विनीकुमारों
 और मन्नाप्रहरणों भिरे हुए वेदराज इन्द्र नाना प्रकारके अन्ध-
 कर्म छाप किये पुरीछे बाहर निकले ॥ २७ ॥
 निर्विच्छतस्तु शक्तस्य परुषः पयसो वधौ ।
 भास्करो निष्प्रभाश्चैव महोत्कम्भ प्रपेदिरे ॥ २८ ॥
 इन्द्रके निष्कम्भके ही प्रसङ्ग बाधु बनने लगे । सुर्गकी
 प्रभा कीकी पड़ गयी और आकाशसे बड़ी-बड़ी उल्काएँ
 गिरने लगी ॥ २८ ॥
 पृथक्किञ्चनन्दे शूरो वृशमीवा प्रतापधान् ।
 आहराह रय दिव्य निर्मित विश्वकर्मया ॥ २९ ॥
 इली चीचने प्रतापी भीरु वृशमीवा भी विश्वकर्मके बन्धने
 हुए दिव्य रयपर सवार हुआ ॥ २९ ॥
 पशौः सुमहाकायैर्बैर्घटं क्षोमहर्षणैः ।
 येषां निष्प्रासवातम प्रवीतमिव सयुगे ॥ ३० ॥
 उस रयमें घेंगटे लड़े कर देनेवाले विशाखकाय छर्ष क्षिपटे
 हुए थे । उनही निष्प्रासवात-बाधुसे वह रय उस युद्धस्थलमें
 अश्विन्व-वन्दन पढ़ता था ॥ ३० ॥
 दैवैर्निशाचरैश्चैव स रया परिवारिता ।
 समपभिसुखा विभ्यो महेश्च सोऽप्यवतत ॥ ३१ ॥
 देवता और निशाचरोंने उस रयको सब ओरसे घेर रक्ता
 था । त्मराजपत्नी और बृहत्त दुग्मा रावणका वह दिव्य रय
 महेश्वरके धमने था पहुँचा ॥ ३१ ॥
 पुत्र व वारयित्वा मु खयमेव व्यक्तमितः ।
 सोऽपि युदाद् विनिष्कम्भ राक्षसिः समुपाविशत् ॥ ३२ ॥
 रावण अपने पुत्रका रोककर स्वर्ग ही युद्धके किये लड़ा
 हुआ । उस रावणपुत्र मेघनाह युद्धस्थलसे निकलकर पुन-
 र्पन करने लपर था बैठा ॥ ३२ ॥
 एतो युद्धं मन्वृष मु सुवृणां राक्षसेः सह ।

शस्त्राणि वर्ततां तेषा मेघामामिष सयुगे ॥ ३३ ॥
 फिर तो देवताओंका राक्षसोंके साथ घेर युद्ध होने लगा ।
 कलकी बना करनेवाले मेघोंके समान देवता युद्धस्थलमें अन्ध-
 कारकी बर्षा करने लगे ॥ ३३ ॥
 कुम्भकर्णस्तु युष्मत्मा मन्नाप्रहरणोद्यतः ।
 नाङ्गायत तदा राजन् युद्ध केन्मभ्यपपद्यत ॥ ३४ ॥
 रावन् ! युष्मत्मा कुम्भकर्ण नाना प्रकारके अन्ध-कार
 किये किसके साथ युद्ध करता था, इच्छा फटा नहीं समता
 था (अर्थात् मतवाला होनेके कारण अपने और पराये सभी
 ऐतिसिकोंके साथ युद्धने लगता था) ॥ ३४ ॥
 वृत्तैः पादैर्मुञ्जैर्हस्तैः शक्तितोमरमुहुरैः ।
 येन तेनैव सहुद्रस्ताडयामास देवताः ॥ ३५ ॥
 वह अस्मन्त कुम्भित हो बाँध कतः युद्ध हाथ, शक्ति,
 तोमर और मुहर आदि सब ही पाला उठिते देवताओंको
 पीटा था ॥ ३५ ॥
 स तु रुद्रैर्महाघोरैः सगम्याप निशाचरः ।
 प्रयुद्धस्तैश्च संग्रामे क्षतः शस्त्रैर्निरन्तरम् ॥ ३६ ॥
 वह निशाचर महाभयङ्कर रुद्रोंके साथ मिङ्गकर घेर
 युद्ध करने लगा । संग्राममें रुद्रोंने अपने अन्ध-कारोंद्वारा उसे
 ऐसा छत-भिद्यत कर दिया था कि उसके शरीरमें बोधी-सी नौ
 बगह बिना धक्के नहीं रह गयी थी ॥ ३६ ॥
 वधौ शस्त्राधिततनुः कुम्भकर्णः क्षरशशुक् ।
 विद्युस्तनितमिर्षोपो धाराघानिष तोयवः ॥ ३७ ॥
 कुम्भकर्णका शरीर शस्त्रोंसे व्याप्त हो लूनकी बात बहा
 रहा था । उस समय वह विन्धी तथा गर्जनासे युद्ध कलकी
 धारा गिरनेवाले मेघके समान बन्द पड़ता था ॥ ३७ ॥
 ततस्तद् राक्षस सैम्यं प्रयुद्ध समरुद्रौः ।
 रये विद्रावितं सयं मन्नाप्रहरणैस्तदा ॥ ३८ ॥
 तदनन्तर घेर युद्धमें लगे हुए उस सारी राक्षसेनाको
 रणभूमिमें नाना प्रकारके अन्ध-कार धारण करनेवाले रुद्रों और
 मन्वृषणोंने मार मगाया ॥ ३८ ॥
 केचिव् विनिहता वृषाद्वेष्यन्ति स महीतसे ।
 बाहनेष्वसत्सञ्च स्थिता पथापरे रणे ॥ ३९ ॥
 किये ही निशाचर मारे गये । किये ही कटकर घट्टी-
 पर खेरने और छटपटाने लगे और बहुतसे राक्षस मायहीन
 हो जानेपर भी उस रणभूमिमें अपने बहनोंपर ही
 बिपटे रहे ॥ ३९ ॥
 रथान् नागान् खरानुघ्नान् पशुग्रांस्तुर्गास्तथा ।
 शिशुमारान् धराहाञ्च पिश्याश्चधन्वन्परि ॥ ४० ॥
 तान् समालिङ्ग्य वाहुभ्या विष्टम्भाः केचिवुत्थिता ।
 देवैस्तु शस्त्रसंभिधा मन्त्रिरे च निद्राधराः ॥ ४१ ॥
 कुछ पशु रथों हाथियों गरहों, खैंटों, लयों सेहों
 विष्टुमारों बघाहों तथा पिशाचमुक्त बाहनोंका सेनी युद्धमेंसे

कदा न हो स्यात् । तत्र मन्वीतं तु एव समदा देवताओंको
पञ्चरत्न इत्यनेन उच्यते ॥ ५ ॥

न मेतन्मयं न गन्तव्यं निर्वर्तय्य एते सुराः ।

एष गच्छति पुत्रो मे युद्धार्थमपराजितः ॥ ६ ॥

देवताओं । मय न करे युद्ध छोड़कर न जाओ और
एतेभ्यो न छोड़ जाओ । यह मेरा पुत्र कन्त से कभी छिड़के
पराजित नहीं हुआ है युद्धके लिये यह रहा है ॥ ६ ॥

तदाः शक्यते दोषो जयन्त इति विद्युतः ।
रथेनासूतकल्पेन भद्राग्ने सोऽप्ययतीत ॥ ७ ॥

तबन्तर इन्द्रपुत्र कन्तदेव अत्युत्त सहायके युक्त
रथपर आरूढ़ हो युद्धके लिये आया ॥ ७ ॥

तन्मते त्रिविधाः सर्वे परिवार्य शशीसुतम् ।

रावणस्य पुत्र युद्धे समासाद्य प्रज्ज्वितः ॥ ८ ॥

किर तो वह देवता शशीपुत्र कन्तको चारों ओरसे
बंदकर युद्धस्थलमें आये और राजनके पुत्रपर प्रहार करने
लगे ॥ ८ ॥

मेवा युद्ध समभवत् सद्यश्च देवराजसाम् ।

महेन्द्रस्य च पुत्रस्य राजसेन्द्रसुतस्य च ॥ ९ ॥

इत समय देवताओंका एकठोक ताप और मरेन्द्रकुमार
का राजपुत्रके साथ उनके कन्त-पराक्रमके अत्युत्त युद्ध होने
लगा ॥ ९ ॥

ततो मातमिपुत्रस्य गोमुक्तस्य च रावणिः ।

सारथेः पातयामास शरान् कमकमूपजान् ॥ १० ॥

रावणकुमार मेघनाद ध्वस्तक खरथि मातमिपुत्र गोमुक्त
पर मुक्कमूर्खित बाणोंकी बर्षा करने लगा ॥ १० ॥

शशीसुतश्चापि तथा जयन्तस्तस्य सारथिम् ।

त चापि रावणिः क्रुध्य स्वमथात् प्रमथिष्यत् ॥ ११ ॥

शशीपुत्र कन्तने भी मेघनादक धरनिधेके धारक कर
दिया । तब क्रुधित हुए मेघनादने कन्तको भी सब ओरसे
छत-सिद्ध कर दिया ॥ ११ ॥

स हि क्रोधसमाविष्टो बली विस्फारितेक्षणः ।

रावणिः पाकृततप्य शरवैरव्याकिरत् ॥ १२ ॥

उत समय क्रोधसे मग हुआ बलवान मेघनाद इन्द्रपुत्र
कन्तको भीमें पड़-पड़कर देखने और बाणोंकी कति
पीड़ित करने लगा ॥ १२ ॥

ततो धनामहरणाम्भित्तभारान् गहज्जराः ।

पातयामास सक्रुशः सुरसैन्येषु रावणिः ॥ १३ ॥

कन्त क्रुधित हुए राजकुमारने देवताओंकी सेनापर
भी तीक्ष्ण धारकाके नाता प्रहारके लक्ष्मी भद्र-राज्य करलये ॥
शतार्थमुसस्यप्रासपादाहपरम्यधान् ।

महान्ति गिरिभृद्भ्राजि पातयामास रावणिः ॥ १४ ॥

इतने धातनी मूळ मात गता कत्र और करत
मिदये तथा बड़े-बड़े पर्वत-शिखर भी बचलये ॥ १४ ॥

ततः प्रमथिता क्रोधाः संजग्धे च तमस्ततः ।

तस्य राजपुत्रस्य शत्रुसैन्यानि निग्नः ॥ १५ ॥

शत्रुसेनाओंके संशयमें तना हुए राजपुत्रसकी तम
उत समय चारों ओर आन्धकार छा गया अतः कन्त ने
मथिये हो उठे ॥ १५ ॥

तमस्तत् दैवतवत् समस्तात् तं शशीसुतम् ।

पद्मकारमम्बस्यमभवच्छरपीडितम् ॥ १६ ॥

तब शशीकुमारक चारों ओर कड़ी हुई देवताओंकी
सेना बाणोंका पीड़ित हो मोक पक्षरने मन्थल से गरी
नाम्पजानत धातोन्य रहो वा दृशतपका ।

तत्र तत्र विपर्यस्तं समस्तात् परिभाक्त ॥ १७ ॥

एकत्र और देवता आपसमें किसीको पहचान न लके
वे कहीं तहाँ मिलने हुए चारों ओर चकर करने लगे ॥ १७ ॥
देवा देवान् निजधनुस्ते राजस्तान् राजसास्तथा ।

सम्भ्रुवास्तमसाच्छ्रुत्वा व्यद्रपश्यन्ते तथा ॥ १८ ॥

अन्धकारसे आच्छ्रित होकर वे विक्रमालि लगे
ये । अतः देवता देवताओंका और एकत्र एकत्रोंके ही मन्
लगे तथा बहुरीसे शोभा सुनने भाग लगे हुए ॥ १८ ॥

पतस्त्रिभ्रतरे वीरः पुल्लोमा नाम धीर्यवान् ।

दैर्येन्द्रस्तेन सशुद्ध शशीपुत्रोऽपयाहितः ॥ १९ ॥

इसी बीचमें पराक्रमी वीर दैवपत्र पुल्लोमा युद्धमें भ्र
और शशीपुत्र कन्तको पक्षरक तहोसे दूर दृष्ट न गता ॥
सशुद्ध त तु वीरिभ्र प्रविष्टः सागर तदा ।

अर्यक स हि तस्यासीत् पुल्लोमा येन स शशी ॥ २० ॥

यह शचीक पिता और कन्तका माना था अतः अर्
दौर्बिधके छेकर समुद्रमें डुब गया ॥ २० ॥

शात्य प्रजाश तु तदा जयन्तस्याद्य देवताः ।

अग्रहृद्यस्ततः सर्वा व्यथिताः समग्रतुहुयुः ॥ २१ ॥

देवताओंको सब कन्तके दायब होनेकी बात मन्थ हुई
तब उनकी खरी सुनी मिल गयी और वे दुःखी होकर चर
ओर भागने लगे ॥ २१ ॥

राजित्स्वप्य सक्रुशो बलैः परिपूता लक्षैः ।

अप्यध्यावत् द्वांस्तान् सुमोघ च महास्तनम् ॥ २२ ॥

छर अपनी सेनाओंसे थिरे हुए राजकुमार मेघनादने
अत्यन्त क्रुधित हो देवताओंस बाबा क्रिया और बड़े बोरत
गर्कता की ॥ २२ ॥

इत्थं प्रजाश पुत्रस्य दैवतेषु च बिभ्रुतम् ।

मातसि साह दृशशो दयाः समुपगीयथाम् ॥ २३ ॥

पुत्र काफला हो गया और देवताओंकी सेनामें मन्थ
मन्थ गयी है—यह देखकर देवराज इतने मातलिये बरा
प्येय रूप से काओ ॥ २३ ॥

स तु विख्या महाभीमाः सज्ज एष महारथः ।

अपिक्वतो मातकिन्व वाह्यमानो महाद्रवः ॥ २४ ॥

मत्तस्मिन्ने एक सभा-सभाया महाभयङ्कर, दिव्य एवं विद्याय
 व्र कम्प उवसित कर दिया । उसके हाथ होंका अपनेबाह्य
 र रय बहा ही वेगवाधी या ॥ २४ ॥

ओ मेमा रये तस्मिन्नाद्विस्थन्तो महाबला ।
 वप्रतो धायुचपला भेदुः परमनिम्बनाः ॥ २५ ॥
 क्वन्तस्तर उठ रवर विवर्धीसे युक्त महाबली मय उसके
 प्रममामने बायुसे बहस हो बड़े अर-ओरसे गर्भना करने
 ओ ॥ २५ ॥

नानायाधानि याचन्त गन्धवाह्य समाहिताः ।
 क्वन्तुन्नाप्सरासङ्गत नियाते त्रिवृदोऽम्बर ॥ २६ ॥
 देवेवर इन्द्रके निकछते ही नाना प्रकारके बाब बब
 उठे, कर्णर् एकप्रम हो गये और अप्सराओंके कन्तु नृत्य
 करने ओ ॥ २६ ॥

द्वैर्बसुभिरादित्यैरश्विन्या समठप्रपौः ।
 वृते मन्वाप्रहृत्पौर्निर्ययी त्रिवृशाधिपः ॥ २७ ॥
 कम्बल च्छों बयुओं, आदित्यों अश्विनीकुमारों
 और मन्वजोंसे थिरे हुए देवराज इन्द्र नाना प्रकारके अस्त्र-
 पत्र लप किये पुरीठ बाहर निकले ॥ २७ ॥

निर्गच्छतस्तु दाक्षस्य पक्षयः पबनो यथौ ।
 भास्करो निष्प्रभञ्जैय महोलकत्रय प्रपेदिरे ॥ २८ ॥
 इन्द्रके निकछते ही प्रच्छन्न बायु बहने छप्री । सूर्यकी
 प्रभा पीकी पक्ष गयी और आकाशसे बड़ी-बड़ी उच्छ्वर्ण
 मिलने लगी ॥ २८ ॥

पञ्चसिन्धुन्वरे शूरो वृशामीयः प्रतापयान् ।
 भास्कराह रथ दिव्य निर्मित शिबकर्मणा ॥ २९ ॥
 इसी पीकने प्रतापी वीर दशमीव भी शिबकर्मके बनाने
 हुए दिव्य रथपर स्वार हुआ ॥ २९ ॥
 पशुगेः सुमहाकषयैर्विहित सोमहयजैः ।
 येषां निष्वासायानन प्रथीममिय सयुगे ॥ ३० ॥

उठ रथमें पैगट लड़े कर देनेवासे विशालकषय सर् खियते
 हुए य । उन ही नि-धाक-बायुने बह रथ उठ युद्धम्यकमें
 क्वन्ति-त्र अन्न पड़ता या ॥ ३० ॥
 वैश्वीर्निगायतेद्वैवैय स रथः परिवारितः ।
 समगभिमुत्पा दिव्यो महेश्च सोऽभ्ययतत ॥ ३१ ॥

रेखा और निगाचयाने उठ रथका तन अरमें पर रक्ता
 था । तमपत्रगनी अर बहस हुआ यक्षयम बह दिव्य रथ
 मोरदक कनन या पड़ना ॥ ३१ ॥
 पुत्र त वारयित्वा तु न्ययमन व्यशम्बितः ।
 सापि युष्माद् विनिप्रभ्य राक्षणिः समुगायित्वात् ॥ ३२ ॥

पराग अपने पुत्रका गुरुकर स्व ही मुदके लिय गया
 हुआ । तब राजपुत्र मन्वा युद्धमत्तने निष्पत्तर पुन-
 वन अपने रथपर आ बठा ॥ ३२ ॥
 तथा युद्ध प्रपूत तु सुराणा राक्षसैः सद ।

दास्याणि कर्षतां सेया मेघान्प्रमिथ सयुगे ॥ ३३ ॥
 फिर ता देवताओंका रक्षकों साथ खेर युद्ध होने लग्य ।
 क्वन्ती बया करनेवासे मेघोंके समान देवता युद्धस्यकमें अस्त्र-
 पत्रोंकी बया करने लगे ॥ ३३ ॥

कुम्भकणस्तु दुष्टात्मा ग्लामाप्रहरणोद्यतः ।
 नाहायत तत्रा राजन् युद्ध केन्द्रम्यपघत ॥ ३४ ॥
 यक्न् । दुष्टरमा कुम्भकर्ण नाना प्रकारके अस्त्र-अस्त्र
 किये किसके साथ युद्ध करता था, इसका पता नहीं लगता
 था (अर्थात् मतवाभ होनेके कारण अपने और पयसे सभी
 देवियोंके साथ युद्धने लगता था) ॥ ३४ ॥

दन्तैः पादौर्मुञ्जैर्हस्तैः क्षत्त्रितोमरमुद्गरैः ।
 येन तेमैष सङ्कुन्दस्ताडयामास देवताः ॥ ३५ ॥
 बह अत्यन्त कुपित हो होंत, अस्त, मुञ्ज हाथ, क्षक्ति,
 ठामर और मुद्गर आदि आ ही पटा उखीसे देवताओंको
 पीटा था ॥ ३५ ॥

स तु द्रुमैर्मेहायोदैः सगम्याद्य निशाचरः ।
 प्रयुद्धस्तैश्च सप्रामे क्षतः शलैर्निरन्तरम् ॥ ३६ ॥
 बह निशाचर महाभयङ्कर च्छोक साथ मिड़कर धर
 युद्ध करने लग्य । संग्राममें च्छोंने अपने अस्त्र-पत्रोंकाहाय उसे
 पैसा छ-विच्छ कर दिया था कि उसके शरीरमें पाड़ी-खी भी
 बगद विना भाषके नहीं रह गयी थी ॥ ३६ ॥

यमी दास्याधिततनुः कुम्भकण्यः क्षत्रक्षृक् ।
 विद्युस्तनितनिर्घोषो धारायानिष तोयक् ॥ ३७ ॥
 कुम्भकण्य शरीर शक्नोंसे म्वात हो लूनभी पाय बहा
 रहा था । उस समय बह निष्क्रीय तथा गर्भनासे युद्ध ककभी
 पाय गियनवासे मेपके समान अन्न पड़ता था ॥ ३७ ॥

तस्तद् राक्षस सैर्व प्रयुद्ध समग्रप्रपौः ।
 रणे विप्राविर्न सयै नानाप्रहरणस्तदा ॥ ३८ ॥
 तदनन्तर धार युद्धमें लगी हुई उस खरी एकजनेनाओ
 रजभूमिमें नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्र धारण करनेवासे च्छों और
 मरुत्तोंने मार मगाया ॥ ३८ ॥

केचिद् विमिहताः वृत्ताद्व्यथन्ति स महीतस ।
 बाहनेप्ययसत्तदत्र स्थिता पयापर रणे ॥ ३९ ॥
 क्विने ही निगाधर मार गय । क्विने ही कटकर धरती-
 पर लटने और छटपटने लगे और बहुत-से राजत प्राणहीन
 हो अपनेर भी उठ रजभूमिमें अपने बाहनीर ही
 थिरेर र ॥ ३९ ॥

रथान् नागान् स्वरानुष्ठान् पशून्सुवर्गास्तथा ।
 शिगुमारान् पगदांश्च पिनाययदन्वपि ॥ ४० ॥
 तान् समान्निष्ठय पादुभ्यां विरध्याः बन्दिदुगियत्वा ।
 देवंस्तु तस्त्रमभिप्रा मन्धिरं च निगाधरा ॥ ४१ ॥
 कुछ राज्य रथों शपियों गरहों ऊँठों लनों पड़ों
 विद्युन्वटे बगते तथा निगाधपुत्र बालोंके शनो युद्धमेंले

पञ्चक वनते शिवे ह्यु निम्बे हो गने ये । कितने ही
ज्येष्ठे मूर्च्छित होकर पड़े ये मूर्च्छा बुर होनेपर उठे; किंतु
देवताओंके शस्त्रोंके शिक्र-मिश्र हा मोतके मुक्तमें चले
गये ॥ ४ ४१ ॥

शिवकर्म इवाभाति सर्वेषां रणसम्भूयः ।
निहत्याना प्रसुताना राक्षसाणां महीतले ॥ ४२ ॥
माग्रेण राम षोडश भरतीपर पड़े हुए उन समस्त राक्षसों
का इस तरह मुक्तमें माया बना जवू-वा आश्चर्यजनक बन
पड़ता था ॥ ४२ ॥

शोषितोष्णनिष्पन्दा कणकपुत्रसमकुसुय ।
प्रवृत्ता सयुगमुक्ते राक्षस्राक्षस्ये मदी ॥ ४३ ॥

मुक्तके मुशनेपर जलकी नदी वह बधी कितने भीतर
अनेक प्रकारके राक्षस प्राहोका भ्रम उत्पन्न करते थे । उस
नदीके तटपर चारों ओर गीच और झील का गने थे ॥ ४३ ॥
पतस्मिन्पन्दा कुसुमो वृषाप्रियः प्रथापथम् ।
निरीक्ष्य तु बल सर्वैश्चैवैरिनिपाठितम् ॥ ४४ ॥

हीन बीजमें प्रथापी बसप्रोबने का देना कि देवताओंने
इसके समस्त शैलियोंको मार विनाया है तब उसके श्रेयकी
शीमान रही ॥ ४४ ॥
स त प्रतिविगाहाणु प्रवृद्ध सैम्यसागम् ।
त्रिदशान् समरे निघ्नश्चाक्रमेशाम्यकर्त ॥ ४५ ॥

इत्यार्ये श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिपुराणे उत्तरकाण्डेऽष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिदेवोंने भर्षराजका अतिराम्यक उत्तरकाण्डमें अष्टदशवें अंग पूरा हुआ ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंश सर्गः

रावणका देवसेनाका बीचसे होकर निकलना, देवताओंका उसे पैदा करनेके लिये प्रयत्न, मेघनात्का
मायाद्वारा इन्द्रकी बंदी बनाना तथा विजयी होकर सेनासहित लङ्काको छोड़ना

ततस्तस्मिन् सञ्जात सर्वे ते वृषराक्षसाः ।
अयुद्धयन्त बलागमणाः सुव्यन्ताः परस्परम् ॥ १ ॥
जब सब ओर भन्वकार छा गया तब बजते उभयत
हुए वे समस्त देवता और राक्षस एक दूसरेको मारते हुए
परस्पर युद्ध करने लगे ॥ १ ॥

ततस्तु दैवसन्ध्यं राक्षसानां वृहद् वरुम् ।
वर्णाश ख्यपित युद्धे शेष नील यमस्ययम् ॥ २ ॥
उस समय देवताओंकी सेनाने राक्षसोंके विघात सेन्-
सम्भूत केवच इतना दिस्ता युद्धभूमिमें लड़ा रहने दिया ।
शेष तब राक्षसों पयस्येक पहुँचा दिया ॥ २ ॥
तस्मिन्नु तामसं युद्धं सर्वे त दैवगणैःसाः ।
अप्याम्य नाम्यजानन्त युष्पमानाः परस्परम् ॥ ३ ॥

उस कामस युद्धमें समस्त देवता और राक्षस परस्पर
मुग्त हुए एक दूसरेका पहचान नहीं पात थे ॥ ३ ॥
इन्द्रश्च रावणदक्षिण रावणिश्च महाबलः ।

वह धनुषके समान दृढक पैसी हुई देवताओंमें युद्ध
गया और समराङ्गणमें देवताओंको मारता एवं बरावाली कर
हुमा दुरंत ही इन्द्रके सामने था पहुँचा ॥ ४५ ॥

ततः शक्रे महाभाप विस्फर्य सुमहात्मनम् ।
यस्य विस्फरतिशैवेः स्तम्भति स्म विशो वृष ॥ ४६ ॥

उस इन्द्रने धेर-धेरसे टङ्कार करनेवाके अपने कितना
बनुपके लीका । उसकी टङ्कार धनिते रखे विघार्य प्रति
धनित हो उठी ॥ ४६ ॥

तद् विकृष्य महाभापस्मिन्ने रावणमूर्धनि ।
पतस्थामास स शरान् पावकादित्यवर्षसा ॥ ४७ ॥

उस विघात बनपके लीचकर इन्द्रने रावणके मस्तक
अग्नि और स्वर्गके समान सेकसी क्षण मारे ॥ ४७ ॥

तथैव च महाबाहुर्वृषाभीमे निघ्नकरः ।
शक क्रमुकविभ्रष्टैः शारवैरैवाकिलम् ॥ ४८ ॥

इसी प्रकार महाबाहु निघाकर बसप्रोबने की अपने
बनुपसे घूटे हुए बाणोंकी बलिते इन्द्रको बक दिया ॥ ४८ ॥
प्रयुष्पतोरय तयोर्बाणवर्षैः समन्ततः ।
मघ्नापत तथा किञ्चित् सर्वे हि तमसा वृत्तम् ॥ ४९ ॥

व दोनों धर युद्धमें उत्तर हो जब बाणोंकी वृष्टि करने
लगे उस समय जब धेर सब कुछ भन्वकारसे व्यापारित
हो गया । किन्तीके किन्ती भी बरदकी पहचान नहीं हो
पती थी ॥ ४९ ॥

तस्मिन्समोच्चलवृते मोहमीयुर्न ते ज्ञया ॥ ४ ॥
इन्द्र राजन और राजपुत्र महकनी मेघनात्—की
हीन ही उस भन्वकारका समराङ्गणमें मोहित नहीं हुए थे।
स तु ह्युद्य वल सर्वे रावणो निहतं क्षणात् ।
अभ्रधमस्यगमत् सीम महान्द्य च मुक्तवान् ॥ ५ ॥

रावणने देला मेरी धरी सेना क्षणमें ही मरी गयी; जब
उसके मनमें बड़ा श्रेय हुआ और उधने बड़ी मरी
गईना थी ॥ ५ ॥

मोघात् सत च युष्पयः सम्भ्रतस्यमुवाच ह ।
परसैन्यस्य मध्येन यावत्सो नपत्स माम् ॥ ६ ॥
उस युद्धमें निघाचरने रणपर बैठे हुए अपने खरकिते
अबपूर्वक कहा—सुत । धनुषोंकी इस सेनाका बर्तक
मत्त है बरौतक तुम इस सेनाके मध्य भागसे होकर मुझे
से पकड़ ॥ ६ ॥
अपीतान् त्रिदशान् सयान् विजयैः समत स्वयम् ।

मान्वाश्रमहासारेणैवामि यमसादनम् ॥ ७ ॥
 'भास मे स्वर्गं मन्यते पराक्रमहायाना प्रकरके शब्दोऽपि
 महान् पापपादिकं वृष्टिं करके इन सब देवताओंका यम
 लोक पहुँचा दूँगा ॥ ७ ॥
 धर्मिन्द्र धधिप्यामि धनम् वरुण यमम् ।
 त्रिदशान् विनिहस्यान् स्वयस्थास्याम्यथोपनि ॥ ८ ॥
 'मैं इन्द्र, कुबेर, वरुण और यमका भी यम करूँगा ।
 उन देवताओंका धीम ही उधार करने स्वर्गं सबके ऊपर
 सिद्ध होऊँगा ॥ ८ ॥
 विपातो मैव कर्तव्या शीघ्रं बाहय मे रघम् ।
 क्षिप्रस्तु त्वां प्रवीन्यद्य वावदन्त मयस्य माम् ॥ ९ ॥
 'तुम्हीं निवार नहीं करना चाहिये । शीघ्र मेरे रथको
 ले चको । मैं तुमसे दाँवार करता हूँ देवताओंकी सेनाका
 क्षतिक भन्त है, बर्होतक मुझे अभी ले चलो ॥ ९ ॥
 मय स मन्दनोद्देशो यत्र यतायधे धयम् ।
 नय मामद्य तत्र त्वमुद्यो यत्र पथतः ॥ १० ॥
 'यत्र नन्दनकनक प्रदेश है जहाँ इस समय हम दोनों
 सेवर हैं । यहीसे देवताओंकी सेनाका भारम्भ होता है ।
 मय तुम मुझे उस स्थानतक ले चको, जहाँ उद्याचल है
 (नन्दनकसे उद्याचलतक देवताओंकी सेना फेरी हुई है) ॥
 तद्य तद् वचन धुस्थासुरगाम् स मनोजवाम् ।
 मादिदशाद्य शत्रुणां मध्येनैव स सारथिः ॥ ११ ॥
 यवनकी यह बात सुनकर सारथिने मनके लजान
 केमन्त्री बाँधोको राजुकेनाके बीचसे हॉक दिया ॥ ११ ॥
 तस्य सं निधाय ज्ञात्या शत्रोरे हेयेभ्वरस्तदा ।
 रथस्य समरन्त्यस्तान् देवान् धान्यमयाप्रवीत् ॥ १२ ॥
 यवनके इस निधायको खनकर समरभूमिमें रथपर बैठे
 हुए देवराज इन्द्रने उन देवताओंसे करा— ॥ १२ ॥
 सुरागृण्युत मद्राप्यं यत् तावन्मम रोचते ।
 जीवन्त्येव दशप्रीवाः साधु रक्षो निवृह्यताम् ॥ १३ ॥
 देवराज ! मरी बात सुना । मुझे तो यही अच्छा लगता
 है कि इन निधायकर दशप्रीवको धीवित भवन्त्यामें ही मन्त्री
 योति केर कर लिया जाय ॥ १३ ॥
 एष ह्यनिपसः सैम्ये रथेन पवनौजसा ।
 गमिष्यति प्रहृष्टार्मिन् समुद्र इय पर्याणि ॥ १४ ॥
 'यह भयानक बलशाली यवन बापुके लजान वेगधारी
 रथक द्वारा इन सेनाके बीचमें दाँवर उठी तरफ तीव्रगतिमें
 झटके बगेज जमे पूर्विकाके दिन उतास तरफ़ोंम पुनः समुद्र
 बन्ता है ॥ १४ ॥
 नद्य ह्यनु दाक्याऽद्य वरदानान् मुनिभयम् ।
 नद् प्रदीप्यामद् यदा यदा भयत सयुगे ॥ १५ ॥
 'यह भास माय मरी यह लजना कदाकि द्रव्यादीक
 वातनक प्रथम पुनः निर्मल हा पचा है । इसदिने हम

भोग इस राक्षसको पकड़कर बँद कर लेंगे । तुमकोय मुझमें
 इस बातक लिय पूरा प्रयत्न करो ॥ १५ ॥
 यथा वली निरुद्धे च यैलोक्य मुज्यते मया ।
 एवमेतस्य पापस्य निरोधो मम रोचते ॥ १६ ॥
 'जैसे राधा बलिके बाँध लिये खनेपर ही मैं तीनों लोकमें
 राक्षस उपभोग कर रहा हूँ, उसी प्रकार इस पापी निधानर
 को बँदी बना लिया जाय, यही मुझे अच्छा लगता है ॥ १६ ॥
 ततोऽस्य देशामास्याय शक्रा सत्यस्य रायणम् ।
 भयुष्यत महाराज राष्ट्रसाक्षासयन् रणे ॥ १७ ॥
 महायव भीमम् । देख कर इन्द्रने यवनके लय
 मुद्र करना छाड़ दिया और वृषी भद्र काकर समराङ्गमें
 रथोंको मगधीत करते हुए वे उनके लय मुद्र करने लगे ॥
 उत्तरेण दशप्रीवाः प्रविधेशानियतका ।
 दक्षिणेन तु पाश्वेन प्रविधेशा शतक्रतुः ॥ १८ ॥
 मुद्रते पीठे न इदनेत्राले यवने उत्तरकी ओरसे देव
 सेनामें प्रवेद्य किमा और देवराज इन्द्रने दक्षिणकी ओरसे
 राक्षसेनामें ॥ १८ ॥
 ततः स योजनशत प्रविष्टो राक्षसाधिपः ।
 देवतानां पक्ष सर्वे शरशयैरघाकिरत् ॥ १९ ॥
 देवताओंकी सेना पार ली क्रेशक पक्षी हुई थी ।
 राक्षसराज यवने उसके भीतर घुसकर लम्बी देवसेनाको
 बाँधोकी बगति टक लिया ॥ १९ ॥
 ततः शत्रोरे निरीत्याद्य प्रणष्टं तु स्वर्कं बलम् ।
 न्ययर्तयद्समन्तान्तः समाप्तस्य दशाननम् ॥ २० ॥
 अपनी विद्यासे सेनाको नष्ट होली देख इन्द्रने किना किसी
 पराहृदके दशमुल यवनका सामना किया और उसे चारों
 ओरसे घेरकर मुद्रते विमुल कर दिया ॥ २० ॥
 पतस्मिन्नन्तरे नापरे मुञ्चो दामयराक्षसीः ।
 हा हताः स इति प्रमत्त दृष्ट्वा शक्रेण रायणम् ॥ २१ ॥
 इसी समय यवनका इन्द्रके संग्रहमें कँठा हुआ देव
 बानको तथा राक्षसीने हाथ । हम मारे गये' ऐसा करकर
 बड़ करते भावनाद किया ॥ २१ ॥
 ततो ग्य समाम्नाय रायणिः श्रेष्ठमूर्च्छितः ।
 तान् संम्यमतिस्ममुञ्चः प्रदियत् सुदारुणम् ॥ २२ ॥
 तब राक्षस पुत्र मयना' श्रेष्ठमें अपचनका दा गया
 और यवन देकर भयानक बुजिन हा उमन राजुकी मरकर
 मनामें प्रवेद्य दिया ॥ २२ ॥
 तां प्रविष्य मद्रामायां प्राप्तां पनुपन पुरा ।
 प्रविष्यश सुसुरगंधस्तन् सत्य समभिद्रयन् ॥ २३ ॥
 पुरातनमें पदार्थि मद्रादकरीम उताहा क लजानकी
 मद्रामाया प्राण हुई थी उनमें प्रवेश करके उनमें अपने
 दिन दिन और भयानक वापुसक राजुकेनामें घुसकर उसे
 मद्रादना भरकर दिया ॥ २३ ॥

स सर्वा देवतास्त्यक्त्या शत्रुमेवाम्बुधापत ।
 महेन्द्रश्च महागजा न्यपश्यच्च सुतं रियोः ॥ २४ ॥
 य इव देवताभ्योश्च षोडश इन्द्रपर ही द्रुत पदा
 परं महादेवस्य इन्द्र अपने हाजुके उठ पुत्रका देल न लके।
 विमुक्तकवचस्तत्र यध्यमानोऽपि रावणिः ।
 त्रिभुवोः सुमहावीर्यैर्न खड्गश्च स किञ्चन ॥ २५ ॥
 महापुरुषमी देवताभ्योश्च मार जानेसे यधि बहो रावण-
 कुमारका कवच नष्ट हो गया था तथापि उधने अपने मनमें
 तनिक मी भय नहीं किया ॥ २५ ॥
 स मातङ्गि समायास्तं ताडयित्वा शरोत्तमैः ।
 महेन्द्र वाणधरोप भूय पथाम्भ्याकिरत् ॥ २६ ॥
 उधने अपने कामने व्यते हुए मातङ्गिको उत्तम बाणोंसे
 धमक करके लावण्योही शरीर काटकर पुन देवराज इन्द्रको
 मी टक दिया ॥ २६ ॥
 क्तस्यकन्या रथ शक्रो विससर्बे च सारथिम् ।
 परापत समाकृञ्च मुग्धाभास रावणिम् ॥ २७ ॥
 तत्र इन्द्रे रथको षोडश करयिको विहा कर दिया
 और परापत हाथीपर ब्रह्मसू हो वे रावणकुमारको षोडश
 करने लगे ॥ २७ ॥
 स तत्र मायाबलघातददयोऽघातारिणःग ।
 इन्द्र मायापरिहितव हस्ता स प्राद्वक्ष्यन्तः ॥ २८ ॥
 मेघनाद अपनी मायाके कारण बहुत प्रसन्न हो रहा था ।
 वह अदरन होकर अश्रुधरोने विचरने लगा और इन्द्रको
 मायासे म्याकुल करके बाणोंद्वारा उमरन आक्रमण किया ॥
 स त यदा परिभ्रान्तमिन्द्रं जडेऽथ रावणिः ।
 तदैनं मायया बध्नुष्या स्वस्मैमभितोऽनघत् ॥ २९ ॥
 रावणकुमारको जब अन्धरी तरह मारूय हो गया कि
 इन्द्र बहुत बड़ गये हैं तब उन्हों मायासे बाँधकर अपनी
 सेनामें ले आया ॥ २९ ॥
 स तु हृष्टो बध्नात् तेन नीयमान महारथात् ।
 महेन्द्रममराः सर्वे किं पु स्यादित्यथिस्तपत् ॥ ३० ॥
 महेन्द्रको उठ महात्मसे मेघनादद्वारा बध्नुष्य कर
 कादे लते देल सब देवता यह सोचने लगे कि भय
 क्या हाय ! ॥ ३ ॥
 इदयन न स मायायी दाबद्धिस्त समितिःप्रप ।
 पिपावातपि यमग्न्या मायावापहतां पलात् ॥ ३१ ॥
 यह सुदृशिकी मायायी रावण स्वयं तो दिव्यायी देवा
 नहीं इवीविये इन्द्रपर विरप जानेमें सडन दुःख है । यधि
 देवराज इन्द्र उधरी मायाका घात करनेकी विद्या जानने हैं
 तथापि इत रावणने मायाद्वारा बध्नुष्य इनम अदरन
 किया है ॥ ३१ ॥
 पतसिभ्रान्तः कृन्त्याः सर्वे सुरगणास्ततः ।
 रावण विमुन्नीहृत्श्च शरपर्यैग्याकिरत् ॥ ३२ ॥

ऐसा सोचते हुए वे सब देवता उठ उमरन देखते मर
 गये और रणको मुझसे विमुक्त करके उमरन बाणोंसे लगी
 लगाते लगे ॥ ३२ ॥

रावणस्तु समासाद्य आदित्याश्च यक्षलक्षा ।
 न शशाक स संप्रामे योद्धुं राजुभिरर्षिताः ॥ ३३ ॥
 रावण आदित्यों और बहुभ्योश्च समना पद जानेक
 मुझसे उनके सम्मुख उठर न एका क्योकि राजुभीने उसे
 बहुत पीड़ित कर दिया था ॥ ३३ ॥
 स त हृष्टो परिस्मृत्य प्रहारिर्जर्जरिहृतम् ।
 रावणिः पितरं युदेऽवर्जानस्योऽवर्जयित् ॥ ३४ ॥
 मेघनादने देवा पिताका शरीर बाणोंके प्रशस्ते बर्क
 हा गया है और वे मुझमें उदाह दिखायी देते हैं । तब वह
 अदरन एकर ही रावणसे इत प्रश्नर कोल— ॥ ३४ ॥
 अगच्छ तात गच्छस्यो रणकर्म निवृत्ततम् ।
 कित नो विदित तेऽस्तु स्वस्वो भव गतस्वराः ॥ ३५ ॥
 पितृभी ! कते आइये । भय हाम्भेग पर नहीं । युद्ध
 बंद कर दिया अब । हमारी शक्ति हो गयी ; क्या भय
 स्वहा ; निश्चित एवं प्रसन्न हो जाइये ॥ ३५ ॥
 भय हि सुरसैम्यस्य वैश्वेकस्यस्य च पा प्रभुः ।
 स गृहीत्यो देयवलात् भग्नवर्पाः सुराः कृत्वाः ॥ ३६ ॥
 ये जो देवताभ्योश्च सेना तथा पीमें कोनेके ल्यायी
 इन्द्र हैं इन्हें मैं देवसेनाके बीचसे कैद कर बना हूँ । देव
 करके मैंने देवताभ्योश्च बर्धन पूर कर दिया है ॥ ३६ ॥
 पर्येष्टं भुङ्क्त्व होकांतीन् निगृह्यारतिमोज्ज्वा ।
 वृथा किं ते भ्रमेणैव युद्धमथ तु निष्फळम् ॥ ३७ ॥
 अथ अपने हाजुको बध्नुष्य करके बन्धनतुकर
 दीनों कोनेकर उमरन भोगिये । यहाँ व्यर्थ भय करनेसे व्यर्थको
 क्या काम है ! अब युद्धसे भेद प्रकोल नहीं है ॥ ३७ ॥
 ततस्ते देवतगणा निवृत्ता रणकर्मणः ।
 तच्छ्रुत्या रावण्येयैश्च दास्यन्तिनाः सुरा गताः ॥ ३८ ॥
 मेघनादकी यह बात सुनकर सब देवता मुझसे निवृत्त
 हो गये और इन्द्रको उमरन छोड़े विना ही लौट गये ॥ ३८ ॥
 अथ रणविगता स वत्तमीजा
 स्त्रियशरिणुः प्रथितो निशाधरेन्द्रः ।
 प्यस्तुतवन्नमोऽहताः प्रिय तत्
 समनुनिशम्य जगत् सैव स्तुतम् ॥ ३९ ॥
 अपने मुझसे उठ प्रिय बन्धनका आनन्दपूर्ण तुमका
 महात् बन्धनायी देवद्री तथा सुधिक्यात राक्षस्यत्र रावण
 मुझसे निवृत्त हो गया और अपने बेटेने कोल— ॥ ३९ ॥
 अतिबलमहतीः पराक्रमैश्च
 मम कुन्ध्याविवर्धनः प्रभा ।
 यद्यमनुत्सयपदस्यवाच धि
 त्रिद्वान्निद्रिद्वान्नाभ निर्रिक्ता ॥ ४ ॥

स्वमप्यथासी पुत्र । अग्ने आस्त ब्रह्मे अनुस्य पराक्रम
प्रष्ट करके आब हुमने ओ इन अनुपम ब्रह्मप्राप्ती देवराज
इन्द्रको भीठा और देवताओंको भी परास किया है इसके
पर निश्चय हो गया कि तुम मेरे कुछ और वंधके यश और
सम्मानकी हृदि करनेवाले हो ॥ ४ ॥

नय रथमधिगोप्य यासर्वं नगर

मितो यज्ञ सेनया वृत्तस्त्वम् ।

महामपि तव पृष्ठतो ह्युत्

सह सधिवैरनुयामि हृत्पद्य ॥ ४१ ॥

येद्य । इन्द्रको रथपर बैठाकर तुम सेनाके साथ यशसि

हृत्पार्थे श्रीमद्भागवतो वाक्यमिदं आदिशब्दे उत्तरकाण्डे प्रथमत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवतसिद्धिद्वय अथरात्मयग आदिशब्दके उत्तरकाण्डके अन्तीसवें सर्ग पूरा हुआ ॥ २९ ॥

त्रिंशः सर्ग

ब्रह्माजीका इन्द्रजित्को धरदान देकर इन्द्रको उसकी कैदसे छुड़ाना और उनके पूर्वकृत
पापकर्मको याद दिलाकर उनसे संप्लाथ यज्ञका अनुष्ठान करनेके लिये
कहना, तम यज्ञका पूर्ण करके इन्द्रका स्वर्गलोकमें जाना

जिते महेश्चेऽतिवले राक्षस्य सुतेन वै ।
प्रजापतिं पुरस्त्वत्य पयुर्ब्रह्मा सुरास्तथा ॥ १ ॥

एकपुत्र मेघनाथ जब आस्त ब्रह्मप्राप्ती इन्द्रको नीत
कर अपने नगरमें ले गया तब समूर्ण देवता प्रजापति ब्रह्माकी
से भरो करके ब्रह्ममें पहुँचे ॥ १ ॥

तव राक्षसमासाद्य पुत्रज्ञादभिराहृतम् ।
स्वकीदृ गगने तिष्ठन् सामपूर्वं प्रजापतिः ॥ २ ॥

ब्रह्माकी आकाशमें लगे-लगे ही पुत्रों और प्रजापतिके
सब बैठे हुए राक्षसके निष्टर का उसे क्रोधक बानीमें समझाते
हूए बोले— ॥ २ ॥

वत्स राक्षस तुषोऽसि पुत्रस्य तव सपुत्रे ।
महोऽस्य विक्रमोऽपि तव तुल्योऽपि कोऽपि वा ॥ ३ ॥

कस राक्षस । तुममें तुम्हारे पुत्रकी बीरता बलकर मैं
बहुत संतुष्ट हुआ हूँ । अरे ! इच्छम तयार पराक्रम तुम्हारे
जान वा तुमसे भी बलकर है ॥ ३ ॥

जित हि भयत्स सर्वं त्रैलोक्य स्येन तजसा ।
हृद्य प्रतिष्ठा सप्तस्य प्रीतोऽसि ससुनस्य ते ॥ ४ ॥

तुमने अतन ठेकसे समस्त त्रैलोक्यपर विजय पायी है
और अपनी प्रतिष्ठा सज्ज कर ली है । इसलिये पुत्रवशित
तुममें मैं बहुत प्रसन्न हूँ ॥ ४ ॥

अथ च पुत्राऽतिवलस्तव राघव धीपयान् ।
जगतीन्द्रजित्तिल्येव परिष्यातो भविष्यति ॥ ५ ॥

एकपुत्र । तुम्हारा यह पुत्र अतिउपम ब्रह्मप्राप्ती और
समूर्ण है । अतःसे यह संसारमें इन्द्रजित्के नामसे विद्वान
होगे ॥ ५ ॥

बहुपुत्रीका बन्धे । मैं भी अपने मन्त्रियोंके साथ भीम ही
प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारे पीछे-पीछे आ रहा हूँ ॥ ८१ ॥

अथ स वरुधुतः सधाहन
स्त्रिंशदपतिं परिपृष्ट राघविणः ।

समघनमभिगम्य धीर्यवान्
कृतसमयान् विससर्ज राक्षसान् ॥ ४२ ॥

पिताकी यह आज्ञा पाकर पराक्रमी राघवकुमार मेघनाथ
देवराजका साथ ले सेना और सवारियोंसहित अपने निवास-
स्थानमें छेड़ा । यहाँ पहुँचकर उठने युद्धमें माग सेनेवाले
निशाचरोंको निरा कर दिया ॥ ४२ ॥

इस प्रकार उत्तरकाण्डके अन्तीसवें सर्ग पूरा हुआ ॥ २९ ॥

बलयान् युज्यंयद्येष भविष्यत्येय राक्षसाः ।
य समाभिम्य ते राजन् स्यापितास्त्रिंशदा यदो ॥ ६ ॥

राजन् । यह राक्षस बड़ा बलयान् और युज्यं होना,
किंतु आभय लेकर तुमने समस्त देवताओंको अपने अधीन
कर किया ॥ ६ ॥

समुष्पतां महापादो महेश्चः पाकशासनः ।
किं वास्य भोजनार्थाय प्रयच्छन्तु त्रिविक्रतः ॥ ७ ॥

आहावो ! अब तुम पाकशासन इन्द्रका छोड़ दो और
बताओ इन्हें छोड़नेके बरकेमें देवता तुम्हें क्या हूँ ॥ ७ ॥
अथाग्रधीन्महातेजा इन्द्रजित् समित्तिजया ।
अमरत्वमह देव भूषे यद्येय मुच्यते ॥ ८ ॥

तव युद्धविजयी महातेजसी इन्द्रजित्ने स्वयं ही कहा—
देव । यदि इन्द्रका छोड़ना है तो मैं इसके बरकेमें अमरत्व
सना चाहता हूँ ॥ ८ ॥

ततोऽग्रधीन्महातेजा मेघनात् प्रजापतिः ।
नास्ति सर्वामरत्व हि कस्यचिद्य प्राणिनो मुचि ॥ ९ ॥

पश्चिण्णत्पुत्रयो या भूतानां वा महौजसाम् ।

यह सुनकर महानेजसी प्रजापति ब्रह्माकीने मेघनाथसे
कहा—पुत्र । इस भूलपर पक्षियों चत्वार्यों तथा मनु-
संजसी मनुष्य आदि प्राणियोंमेंसे कहीं भी प्राणी नहींया अमर
मही हो सकता ॥ ९ ॥

धुम्या पितामहेनोक्तमिन्द्रजित्पुत्रमुष्णम्ययम् ॥ १० ॥
अथाग्रधीत् स तत्रस्य मघनादो महाबलः ।

मघनात् ब्रह्माकीकी बरी हुई पर बात सुनकर इन्द्रजित्की
महाबली मेघनाथने बड़ी लगे हुए अविनाशी ब्रह्माकी
से कहा— ॥ १० ॥

भूयता या भवेत् सिद्धिः शतक्रतुविमोक्षये ॥ ११ ॥
 ममेष्ट वित्यशो हृष्येन्मन्त्रैः सम्पूज्य पावकम् ।
 संप्राममफर्तुं च शत्रुनिर्जयकाङ्क्षिणः ॥ १२ ॥
 भव्ययुगे रथो महासुचिष्ठेत् तु विभावसोः ।
 तस्त्वस्यामरता स्यान्मे एष मे निश्चितो धरः ॥ १३ ॥

मगन् । (यदि सर्वथा अमरत्व प्राप्त होना असम्भव है) तब इन्द्रका छोड़नेके सम्बन्धमें जो मेरी बूखी चर्च है— जो बूखी सिद्धि प्राप्त करना मुझे अभीष्ट है, उसे सुनिये । मेरे विषयमें यह शत्रुके शिबे नियम हो जाय कि जब मैं शत्रुपर विजय पानेकी इच्छाते संप्राममें उतरना चाहूँ और मगन्मुक्त इच्छाकी आशुषिसे अनिदेवकी पूजा करूँ, तब समय अनिदेवे मेरे शिबे एक ऐसा रथ प्रकट हो जायगा जसे जो घोड़ोंसे कुता-कुताया तैयार हो और उधर चलत मैं बैठा रहूँ तब तक मुझे कोई भी मार न सके यही मेरा निश्चित धर है ॥ ११-१३ ॥

तस्मिन् पद्यस्तमाते च जप्यहोम विभावसौ ।
 युष्येय देव संप्रामे तदा मे स्याद् विनाशनम् ॥ १४ ॥
 यदि पुरके निमित्त किये जानेवाले जप और होमको पूर्ण किये बिना ही मैं सम्राज्यमें मुक्त करने लूँ तभी मेरा विनाश है ॥ १४ ॥

सर्वो हि तपसा देव भूयोऽमरतां पुमान् ।
 विक्रमेण मया स्वेतदमर्त्तव प्रवर्तितम् ॥ १५ ॥
 देव । सब लोग तपस्या करके अमरत्व प्राप्त करते हैं परंतु मैंने पत्न्याद्वारा इस अमरत्वका वरण किया है ॥ १५ ॥
 पचमस्त्विति त चाह पाक्य देवः पितामहः ।
 मुकदभ्येन्द्रजिता शत्रो गताद्य विदिव सुराः ॥ १६ ॥

यह सुनाकर मगान् प्रजापतिने कहा—(पचमस्तु (देव ही हो) । इसके बाद इन्द्रकित्ने इन्द्रको मुक्त कर दिया और उस देवता उन्हें तप कर स्वर्गलोकको चले गये ॥ पतसिध्दन्तर राम कीना अष्टामरमुक्ति । इन्द्रजितापरीतात्म ध्यानतत्परतां गताः ॥ १७ ॥
 भीषण । उस समय इन्द्रका देवोक्ति तेज मद्य हा गया था । मैं तुम्हीं ही विनाशमें डूबकर अपनी पराजयका कारण लेखने लगे ॥ १७ ॥

न तु इन्द्रा तपामूर्त्तं प्राण् देवाः पितामहः ।
 शतक्रता किमु पुत्रा क्वरति सा सुमुष्टुष्टम् ॥ १८ ॥
 भगवान् प्रजापतिने डाँही इस अवस्थाका लक्ष्य किया और कहा—(उत्कण्ठ । यदि आज तुम्हें इस अमानते शत्रु और पुत्रों का हरा दे ता बताओ पूर्वजायमें तुमने क्या भारी दुःखमें क्यों किया था ? ॥ १८ ॥

अमरत्वं मया पुत्र्या प्रजाः वृष्टानया प्रभा ।
 पक्षपणाः समाभागा पक्षरूपाश्च स्वराः ॥ १९ ॥
 प्रभ । देवराज । परम मैंने अपनी बुद्धिमत्ति

प्रजाओंको उत्पन्न किया था उन तककी अक्षय्यता, मन्त्र रूप और अवस्था सभी बातें एक-दूसरी ही ॥ १९ ॥
 तासां नास्ति विदोषो हि वर्धामे क्षत्र्येऽपि वा ।
 ततोऽहमेकाग्रमनास्तथा प्रजाः समन्वितवम् ॥ २० ॥

उनके रूप और रंग आदिमें परस्पर कोई निम्नत्व नहीं थी । उस मैं एकप्रमत्त होकर उन प्रजाओंके विषयमें विशेषता करनेके शिबे कुछ विचार करने लगा ॥ १९ ॥
 सोऽह तासां विदोषार्थां क्षियमेकां विलिम्बे ।
 यद् यद् प्रजाया प्रत्यङ्ग विशिष्टं तत् तदुत्पद्युत्तम् ॥ २१ ॥
 विचारके पश्चात् उन सब प्रजाओंकी श्रेयसे विचार प्रवाहो प्रस्तुत करनेके शिबे मैंने एक नारीकी तृष्टि की । प्रजाओंके प्रत्येक भागमें जो-जो बहुत विशिष्टता—सर्वस्व ऐश्वर्य था, उसे मैंने उनके भागोंमें प्रकट किया ॥ २१ ॥

ततो मया रूपगुणैरहस्या स्त्री विलिम्बित ।
 हस्त नामेष्ट वैकृत्यं हृष्य तन्मभ्य भवेत् ॥ २२ ॥
 यस्या न विद्यते हृष्यं तेनार्हस्येति विभुज ।
 अहस्येत्येव च मया नम्या नाम प्रकीर्तितम् ॥ २३ ॥

उन अक्षय्य रूप-गुणोंसे उपकथित कित नारीका मेरे द्वारा निर्माण हुआ था, उसका नाम हुआ अहस्या । इस अक्षय्यमें एक करते हैं कुम्भिकाका उल्टे जो निम्नत्व प्रकट होती है उसका नाम हृष्य है । कित नारीमें हृष्य (निम्नत्व रूप) न हो, वह अहस्या कहलती है इतनेमें वह नवनिर्मित नारी अहस्या नामसे विख्यात हुई । मैंने ही उसका नाम अहस्या रख दिया था ॥ २२ २३ ॥

निर्मितायां च देवेन्द्र तस्यां नार्थां सुतन्मभ ।
 भविष्यतीति कर्मैया मत विन्ता ततोऽभवत् ॥ २४ ॥

देवेन्द्र । सुरभेद । जब उस नारीका निर्माण हो गया उस मेरे मनमें यह विन्ता हुई कि यह किलकी कनी होगी ॥ तब तु शत्रु तदा नारीं जानीके मनस्ता प्रभो । स्यात्पाथिकतया पक्षी मयैवेति पुत्रवत् ॥ २५ ॥

प्रभे । पुरंदर । देवेन्द्र । उन दिनों द्रुम अपने खान और पक्षी भेदकाके कारण मेरे अनुमतिके बिना ही मन्त्र-मन वह उमरने लगे थे कि वह मेरी ही कनी होगी ॥ २५ ॥
 सा मया स्यात्पुत्र्या तु गीतमस्य महात्मनः ।
 न्यस्ता यहनि परीणि तत्र निर्घातिता च ह ॥ २६ ॥

मैंने पुरंदरके रूपमें अर्द्धि तैतमके हाथमें उत कन्याका गार दिया । वह बहुत कर्त्तव्य उनके यहाँ रही । कित तैतम ने उमे मुझे श्रेय दिया ॥ २६ ॥

ततस्तस्य परिधाय महास्त्रीयं महामुनः ।
 प्राण्वा तपसि सिद्धिं च पत्न्यर्थं स्वर्गिस्तदा ॥ २७ ॥
 महामुनि तैतमक उत महान् श्रेय (सिद्धि-सर्वम्) तथा तपस्वितारथक सिद्धिका अन्तर मैंने वह कन्या पुनः उन्हींका पत्नीकरणमें दे दी ॥ २७ ॥

स तथा सद् धमात्मा रमते स महासुनि ।
 ब्रह्मचिरादा देवान्सु गौतमे वृषया तथा ॥ २८ ॥
 परमात्मा महासुनि गौतम उठके अथ सुलपूर्वकं रत्ने
 को । ब्रह्म अरहन्ता गौतमको दे दी गयो, तब देवता
 निराध हो गये ॥ २८ ॥
 त्वं कुपस्त्विवह कामारमा गत्वा तस्याभ्रम मुनेः ।
 वपसां तवां तां र्त्नीं वीतामग्निशिखामिव ॥ २९ ॥
 मुनिने तो अंधकरी सीमा न रही । तुम्हारा भ्रम क्रमके
 मर्दान हो चुका था । इसलिये तुमने मुनिके आभ्रमपर अंध
 अग्निशिखाके समान प्रकथित होनेवासी उध दिव्य सुन्दरीको
 देखा ॥ २९ ॥
 सा त्वया धर्षिता शाक कामार्तेन समस्युता ।
 वपस्त्वं स तदा तेन ब्रह्मणे परमर्षिणा ॥ ३० ॥
 'अन्ध' । तुमने कुपित और क्रमसे पीड़ित होकर उठके
 अंध अंधकार किया । उस अंध उनमर्षिने अपने आभ्रममें
 दुर्भे रेल किया ॥ ३० ॥
 तदाः कुप्येन तेनासि शातः परमतेजसा ।
 पयोसि येन देवेन्द्र वृषपभगाधिपययम् ॥ ३१ ॥
 'देवेन्द्र' । इससे उन परम वैश्वी मर्षिके बड़ा श्रेय
 हुआ और उन्होंने दुर्भे शाप दे दिया । उली शापके कारण
 अन्धके इस विपरीत वशमें आना पड़ा है—शुभ्रक बदी
 करना पड़ा है ॥ ३१ ॥
 पश्यन्म धर्षिता पत्नी त्वया वासव निर्भयात् ।
 तस्मिन् त्व समरे शाक दानुहस्त गमिष्यसि ॥ ३२ ॥
 उन्होंने शाप देते हुए कहा—'वासव' । शाक । तुमने
 निर्भय होकर मेरी पत्नीके साथ बधालकर किया है इसलिये
 तुम दुर्भे अंधकरी शुकके हाथमें पड़ आओगे ॥ ३२ ॥
 मया तु भावो दुर्भेये धम्सवयेह प्रवर्तितः ।
 मनुष्यस्य लोकेषु भविष्यति न सहायः ॥ ३३ ॥
 'दुर्भेये' । तुम-भेते राबके योगसे मनुष्यकाकमें भी
 वह अरण्य प्रकथित हो अंधा, जिसका तुमने स्वयं पर्व
 सृजित किया है इसमें शक्य नहीं है ॥ ३३ ॥
 तत्रार्थं तस्य यः कृता त्वद्व्यर्थं निपतित्यति ।
 न च ते स्वयं रम्येन भविष्यति न सहायः ॥ ३४ ॥
 'रम्येन' । तुमने पापाचार करणा उध पुनःपुन उध पाप-
 का भाषा भया पड़ेगा और आभा तुमपर पड़ेगा। क्योंकि
 इसके प्रवर्तक तुम्हीं हो । निःसंदेह तुम्हारा यह स्थान स्थिर
 नहीं होगा ॥ ३४ ॥
 यच्च यच्च सुरेन्द्र स्याद् द्रव्यस न भविष्यति ।
 एष दायो मया मुक्त इत्यसौ त्या तद्द्रव्यीत् ॥ ३५ ॥
 'यच्च यच्च' । देवराजके पदपर प्रतिष्ठित इमय वह नहीं
 फिर नहीं रहेगा । यह शाप मैंने इच्छामात्रक लिये दे दिया
 है । पर कत मुनिने तुमसे कही थी ॥ ३५ ॥

ता तु भार्या सुनिर्भर्त्य्य सोऽग्रवीत् सुमहात्पता ।
 युर्विनीत विनिष्वस्त ममाभ्रमसमीपता ॥ ३६ ॥
 रूपपौवनसम्यग्वा पस्मात् त्वमन्यस्थिता ।
 तस्माद् रूपवती लोके न त्वमेका भविष्यति ॥ ३७ ॥
 फिर उन महात्पत्नी मुनिने अपनी उध पत्नीको भी
 मन्दीमोति बोट-का-अरकर कहा—'दुष्टे' । तु मरे आभ्रमके
 पास ही अदृश्य होकर रह और अपने रूप-सौन्दर्यसे प्रद हो
 जा । रूप और मौनसे सम्पन्न होकर मर्वादाने स्थित नहीं
 रह सकी है इसलिये अब लोकमें तु अकेली ही रूपवती नहीं
 रहेगी (बहुत-ही रूपवती किमें उत्पन्न हो जायगी) ॥ ३६ ३७ ॥
 रूप च ते प्रजा सर्वा गमिष्यति न सहायः ।
 यत् त्वेक सम्यग्धित्व विभ्रमोऽद्यमुपस्थितः ॥ ३८ ॥
 'विभ्र' एक रूप-सौन्दर्यको लेकर इसके मनमें वह क्रम-
 विभ्र उत्पन्न हुआ था तब उध रूप-सौन्दर्यको समस्त प्रजाके
 प्रात कर लेंगी' इसमें संशय नहीं है' ॥ ३८ ॥
 तदाप्रवृत्ति भूयिष्ठं प्रजा रूपसमन्विता ।
 सा तं प्रसाध्यामास महर्षिं गौतम तवा ॥ ३९ ॥
 अज्ञानाद् धर्षिता विप्र त्वरूपेण विविक्रसा ।
 न कामचक्राद् विप्रं प्रसात् कर्तुमर्हसि ॥ ४० ॥
 'अग्नीसे अधिकशय प्रथ रूपवती होने लगी । महस्याने
 उध समय विनीत-नचनीद्वारा महर्षि गौतमको प्रसन्न किया
 और कहा—'विप्रवर' । तबमें । देवराजके आपका ही रूप
 कारण करके मुझे कलंकित किया है । मैं उसे पहचान न सकी
 थी । अतः अनजानमें मुझसे यह अपराध हुआ है स्वेच्छा
 पारक्य नहीं । इसलिये आपका मुझपर कृपा करनी
 चाहिये' ॥ ३९ ४० ॥
 महस्यया त्वेवमुक्तः प्रत्युधाच स गौतमः ।
 उत्पत्स्यति महातेजा इक्ष्वाकूणां महारथः ॥ ४१ ॥
 रामो नाम श्रुतो लोके यन चाप्युपयास्यति ।
 ब्राह्मणार्थं महाबाहुर्विष्णुर्नानुपविप्रहः ॥ ४२ ॥
 त ब्रह्मसि पदा भग्ने क्तः पूता भविष्यति ।
 स हि पावयितुं शकस्यया यत् दुष्कृत कृतम् ॥ ४३ ॥
 महस्याके ऐश करनेपर गौतमने उत्तर दिया—'मद्र' ।
 इक्ष्वाकुवंशमें एक महातेजसी महारथी वीरका अन्तार
 होगा जो संकरमें भीरुमके नामसे विख्यात हीगे । महात्पु
 भीरुमके रूपमें छात्राद् मगवान् विष्णु ही मनुष्य-वादी कारण
 करके प्रकट होंगे । वे ब्राह्मण (विश्वामिष आदि) के कर्पसे
 लोकोत्तममें पधारंगे । वह तुम उनका दर्शन करोगी तब पतिव्र
 हो आओगी । तुमने जो पाप किया है उठके तुम्हें वे ही
 पतिव्र कर सकते हैं ॥ ४१-४३ ॥
 त्वयातिष्ठ्य च कृत्वा वै मत्समीप गमिष्यसि ।
 धस्यसि त्वं मया सार्धं तदा हि धरषणिं ॥ ४४ ॥

‘वसविनि । उनका भाविष्-उत्तर करते हुए मेरे पास
 आ जाओगी और फिर मेरे ही साथ रहने को चाहेगी ॥ ४४ ॥
 पशुमुपस्था स विप्रार्पितमगम स्वमाभ्रमम् ।
 तपश्चकार सुमहत् सा पत्नी ब्रह्मवादिना ॥ ४५ ॥
 ‘ऐस कहकर ब्रह्मर्षि गौतम अपने आभ्रमके भीतर आ
 गये और उन ब्रह्मवादी मुनिजी पत्नी वह अश्रुवा बड़ी भारी
 लपसा करने लगी ॥ ४५ ॥
 शापोत्सर्गादि तस्यैर्धु मुनेः सधमुपस्थितम् ।
 तत् स्मर त्व महाबाहो दुष्कृत यत् त्वया कृतम् ॥ ४६ ॥
 महाबाहो ! उन महर्षि गौतमके शाप देनेसे ही तुमपर
 वह खप संकट उपस्थित हुआ है । अतः तुमने जो वाप
 किया था उरफे वाद करो ॥ ४६ ॥
 तेम त्वं ग्रहण शोभोर्पातो नाप्येन वासव ।
 शीघ्रं वै यज यज्ञ त्व वैष्णवं सुसमाहितम् ॥ ४७ ॥
 वासव ! उठ शापके ही कारण तुम शत्रुजी केरने परे
 हो दुखे किसी कारणसे नहीं । अतः अब एकप्रार्थित हो
 शीघ्र ही वैष्णव-यज्ञ अनुष्ठान करो ॥ ४७ ॥
 पाषितस्तेन पञ्चन वाससे त्रिविध ततः ।
 पुत्रश्च तत्र देवेन्द्र न वितथे महारणे ॥ ४८ ॥
 पीताः सनिहितश्चैव आर्यकेण महोदधौ ।
 वेवेन्द्र ! उस यज्ञसे पवित्र होकर तुम पुनः सर्वलोक
 प्राप्त कर सोगे । तुम्हाए पुत्र कल्पत उस महाक्षरमें भय
 नहीं गमा है । उतन्न नामा पुष्पमा उते महाक्षरमें सं गमा
 है । इस समय वह उरके पास है ॥ ४८ ॥
 पतञ्जुत्वा महेन्द्रस्तु यक्षमिद्रा च वैष्णवम् ॥ ४९ ॥
 पुनक्तिविभ्राक्रमद्वन्धशासव्य वैश्वराट् ।
 ह्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिशब्दे उत्तरकाण्डे क्तिता सर्गः ॥ १ ॥
 इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीयपरामर्श अर्थात्परामर्श अर्थात्परामर्श उत्तरकाण्डमें तीसरा सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ॥

ब्रह्मवादी वह बात सुनकर देवराज इन्द्रने वैष्णव-यज्ञ
 अनुष्ठान किया । वह यज्ञ पूरा करके देवराज स्वर्गलोकमें लगे
 और वहाँ देवराज्यका शासन करने लगे ॥ ४९ ॥
 पतञ्जिप्रजितो नाम बल यत् कीर्तितं मया ॥ ५० ॥
 निखिलस्तेन देवेन्द्रः प्राप्नोऽप्ये तु किं पुत्रः ।
 पुनश्चन । यह है इन्द्रमिच्छी मेकारका कल, किल्ल
 मैंने आपसे बर्षन किया है । उछने देवराज इन्द्रको भी वीर
 किये था फिर दुखे प्रायियोंकी तो निखत ही कथ की ५ ॥
 आश्चर्यमिति रामश्च कर्मकश्चाश्वतीत् तस्य ॥ ५१ ॥
 भगस्यपचर्चनं धृत्या धानप राक्षसस्तत्ता ।
 अगस्यपीवी वह बात सुनकर भीरम और कल्प
 उत्तरक वाक उठे—‘आश्चर्य है ।’ साथ ही कर्त्तों को
 राक्षसोंको भी इस बातसे बड़ा विचल हुआ ॥ ५१ ॥
 विभीषणस्तु रामस्य पार्श्वस्थो वाक्यमब्रवीत् ॥ ५२ ॥
 आश्चर्यं स्मारितोऽस्म्यप्यत् यत् तत् वद पुण्यकम् ।
 उस समय भीरमके वक्त्रमें बैठे हुए विभीषणने कस-
 मैंने पूर्वकल्पमें जो आश्चर्यकी बातें देखी थीं उनका कल्प
 महर्षिने फारज दिख दिया है ॥ ५२ ॥
 भगस्य स्वप्रवीट् रामः सत्पतेत्तच्छ्रुत् व मे ॥ ५३ ॥
 पच राम सप्तवृभूतो रावणो लोककण्ठकः ।
 सपुत्रो येन सगामे जिता शक्रा सुरेश्वरः ॥ ५४ ॥
 तव भीरमचन्द्रजीने अगस्त्यकीसे कहा—‘आश्वती कल
 कथ है । मैंने भी विभीषणके मुँहसे यह बात सुनी थी ।’ फिर
 अगस्त्यकी बोले—‘भीरम । इस प्रकार पुत्रकीत यज्ञ
 कर्ममें काटके किये कल्पकल्प था किन्तु देवराज इन्द्रको
 भी संगाममें जीत लिया था ॥ ५३-५४ ॥

एकत्रिंश सर्ग

रावणका माहिष्मतीपुरीमें जाना और वहाँके राजा अर्जुनको न पाकर मन्त्रियोंसहित उसका
 विष्मगिरिके समीप नर्मदामें नहाकर भगवान् शिवकी आराधना करना
 ततो रामो महातेजा विस्मयात् पुनरेव हि ।
 उवाच प्रपतो वाक्यमगस्त्यमुपि सत्तमम् ॥ १ ॥
 तदनन्तर महातेजस्वी भीरमने मुनिभेद अगस्त्यका प्रशाम
 करके पुनः विस्मयपूर्वक पूछा— ॥ १ ॥
 भगवन् राक्षसः कृतो यद्यप्रवृत्ति मन्त्रिनीम् ।
 पर्यट्ट किं तदा लोकाः शून्या भ्यसन् द्विमोक्षम् ॥ २ ॥
 ‘भगवन् ! द्विमोक्ष । अब कू निघाचर राजव प्रथीपर
 विस्म करता हूँ रहा था उठ समय क्या फरोंके समी लोका
 शून्य-सन्धी मुँहसे छ्य ही थे ? ॥ २ ॥
 राजा वा राजमात्रो या किं तदा नात्र कश्चन ।
 चर्चव यत्र न प्रातो रावणो राक्षसश्चर ॥ ३ ॥
 क्या उन दिनों वहाँ कोई भी शक्ति लेख मय
 क्षत्रियेतर राज अधिक कल्पान् नहीं था किन्तु इस मूलक
 पक्षेकर राक्षसक यज्ञको पराजित वा अयमजित होया
 नहीं पका ॥ ३ ॥
 उताहो हतवीर्यास्ते बभूवुः पृथिवीसिता ।
 बहिष्कृत्य वपुल्लैश्च सहसो निर्रिता नृपाः ॥ ४ ॥
 मयका उठ समयके समी राजा पराक्रमद्वय तथा कल-
 कानसे हीन थे किन्तु कारण उन बहुलक्यक भेद नरपक्षों
 राजसे परात होना पका ॥ ४ ॥
 रावणस्य चत्वा धृत्या भगस्यो भगवाहृदि ।
 उवाच रामं प्रहसन् पितामह इवश्वरम् ॥ ५ ॥

श्रीरामचन्द्रभीष्मी यह बात सुनकर भगवान् आसुष्यमुनि
ठठाकर हंस पक्षे और जैसे ब्रह्मानी महादेवभीसे कोई बात
कहते हैं, इसी तरह वे श्रीरामचन्द्रभीसे बोले—॥ ५ ॥

इत्येष बाधमानस्तु पार्थिवान् पार्थिवसर्पम् ।

अथार रावणो राम पृथिवीं पृथिवीपते ॥ ६ ॥

पृथ्वीनाथ ! म्यालक्षिणेभ्ये ! श्रीराम ! इसी प्रकार
एक रावणभीसे उतावा और प्रपन्न करता हुआ रावण इस
पृथ्वीपर निखरने लग्य ॥ ६ ॥

ऊसे माहिष्मती नाम पुत्री स्वर्गपुरीम्भाम् ।

सम्प्राप्तो यत्र सानिष्य सदासीवृ वसुरेतसः ॥ ७ ॥

भूमते-भूमते यह स्वर्गपुरी भमराक्षीके समान सुषाम्नि
छनेकली माहिष्मती नामक नारीमें अब पहुँचा, यहाँ अग्निदेव
कथ विषयन करते थे ॥ ७ ॥

तुल्य मासीन्पुस्तस्य प्रभावावृ वसुरेतसः ।

भर्तुषो नाम यथासिः शारकुण्डेवायः सदा ॥ ८ ॥

एन अग्निदेवके प्रभावसे यहाँ अग्निके ही समान देवकी
मनु नामक रावण रावण करता था, जिसके रावणभ्रममें
कुण्डराणसे कुछ अग्निकुण्डमें छा अग्निदेवता निवास
करते थे ॥ ८ ॥

तमेव विषस सोऽथ ईहयाधिपतिवस्ती ।

भर्तुषो ममदा रन्तुं गतः स्त्रीभिः सहोत्थरः ॥ ९ ॥

जिस दिन रावण यहाँ पहुँचा, उसी दिन बधवान्
रैक्यत्र रावण भर्तुन अपनी कियोंके साथ नगँदा नदीमें कल-
कीदा करनेक छिये क्य गला था ॥ ९ ॥

तमेव विषस सोऽथ रायणस्तत्र आगताः ।

रावणो राक्षसेन्द्रस्तु तस्यामात्यानपृच्छत ॥ १० ॥

उसी दिन रावण माहिष्मतीपुरीमें आया। यहाँ अक्षर
राक्षस रावणने रावण मन्त्रिसे पूछा—॥ १ ॥
अतुल्य वृपतिः शीघ्र सस्यगकाव्याहमहद्य ।

एवञ्चोऽहमनुप्राप्तो युक्तेषुनुसरेण व ॥ ११ ॥

अग्निसे [अग्नी और टीक-टीक क्लामा रावण मनु
यहाँ ११ में रावण हूँ और तुम्हारे महापक्षे युद्ध करनेक
सिधे श्या हूँ ॥ ११ ॥

ममापमानमप्यपे युष्माभिः सनिवेद्यताम् ।

इत्येवं रावणतोत्रावन्तऽमात्याः सुविपश्चितः ॥ १२ ॥

अनुपम रायणसपतिमसानिष्य महीपतः ।
पुनरुक्त्य परके ही अक्षर उन्हें मेरे आगमनकी सूचना
दे दो। रावणके ऐल करनेपर रावणके विश्वान् मन्त्रियोंने
एकत्रावक बताया कि हमारे महापक्ष इस समय रावणानीमें
नहीं है ॥ १२ ॥

युष्मा विषयसः पुत्रः पीतणामाहुज गतम् ॥ १३ ॥

अपराध्यागता विष्य हिमवत्सनिभ गिरिम् ।

पुरवर्तियेकं मुगसे राव भर्तुनक बाहर जानेकी बात
श रा १२ १३—

सुनकर विमपात्र पुत्र रावण यहाँसे इतर हिमालयके समान
विशाल विन्ध्यगिरिपर आया ॥ १२ ॥

स तमज्रमियाविषमुद्भ्रान्तमिय मेविनीम् ॥ १४ ॥

अपद्रव्य रावणो विन्ध्यमासिस्तमितिवाम्बरम् ।

सहस्रशिखरोपेत सिहाप्युरितकन्दरम् ॥ १५ ॥

यह इतना ऊँचा था कि उसका शिखर बादलोंमें समाया
हुआ था मन पड़ता था तथा यह पर्यंत पृथ्वी कोचकर ऊपर
को ठठा हुआ-सा प्रतीत होता था। विन्ध्यके समानपृथ्वी
शिखर अक्षयमें रेखा सौंन्ते-से अब पड़ते थे। रावणने
उस महा उँचको देखा। वह अपने हाथों श्रद्धोंसे सुषोभित
हो रहा था और उसकी कन्दराओंमें सिंह निवास करते
थे ॥ १४ १५ ॥

प्रपातपतितैः द्रुतैः सादृष्टहासमिवास्त्रुभिः ।

द्वेषवृत्तबगन्धर्वैः साप्सरोगिः सकिनरैः ॥ १६ ॥

सखीभिः स्त्रीभामानैश्च स्वर्गभूत महोच्छ्रयम् ।

उसके सगंध शिखरके छत्रसे जो शीतल कक्षी बावर्ण
गिर रही थी, उनके हाथ यह पर्यंत अदृष्ट करता-सा प्रतीत
होता था। देवता, दानव गन्धर्व और किन्नर अपनी-अपनी
जिनों और अस्त्राओंके साथ यहाँ स्त्रीका कर रहे थे। वह
आत्मस ऊँचा पर्यंत अपनी सुरम्प मुग्धासे स्वर्गके समान
सुषोभित हो रहा था ॥ १६ ॥

मदीभिः स्यात्प्रामाभिः स्फटिकप्रतिभ श्रद्धम् ॥ १७ ॥

फयाभिः श्रद्धाभिः श्रद्धाभिरलन्तमिय विष्टितम् ।

उत्तरमन्त द्रीवन्त हिमयस्तनिर्भ गिरिम् ॥ १८ ॥

स्फटिकके समान निर्भ कक्षक सात बहानेकसी नदियों-
के धारय यह किन्ध्यगिरि बहस शिवावाले फनोंसे उपलब्ध
रोपनामें समान स्थित था। अधिक ऊँचाईके कारण यह
ऊर्ध्वकक्षके शला हा मन पड़ता था। हिमालयके समान
शिवाक एवं विलूत विन्ध्यगिरि बहुद-श्री गुफाओंसे युक्त
दिलायी देता था ॥ १७-१८ ॥

पश्यमानस्तनो विन्ध्य रायणो नमदा ययी ।

खसोपलज्जका पुष्पां पश्चिमोद्भिगामिनीम् ॥ १९ ॥

महिषैः सुमरः सिद्धैः शार्दूलवर्गजोत्तमैः ।

उष्णाभिततैस्त्वपितैः सस्राभितजलाशायाम् ॥ २० ॥

किन्ध्याकक्षी शोभाको देखता हुआ रावण पुण्यतस्मिन्
मनदा नदीके तटपर गया। अन्तमें शिलाखण्डोंसे युक्त बहस
कक प्रकाशित हो रहा था। वह नदी पश्चिम समुद्रकी ओर
बही जा रही थी। भूपते से हुए प्यासे मैले, दिग्ग सिद्ध
प्यात्र वीर और गण्डम उरक ज्वालापथ विपुत्र कर
रहे थे ॥ १९ २० ॥

अथयाचः सक्षरगणैः सहस्रजलपुष्पकुटीः ।

सारमन्त्र सदा मर्तैः कृज्जितैः सुममापृताम् ॥ २१ ॥

अथ मन्त्राद्येकं कन्दर करनेवाले यकनाक बालकव,

इह कम्पुक्कुट और छरव आदि कल्पकी नर्मदाकी कव
रधिपर छा रहे थे ॥ २१ ॥

पुच्छद्रुमच्छोत्संतां चक्रवाक्युगस्तनीम् ।
बिस्तीर्णपुष्पिमश्रोणीं हसावसिस्तुमेकाग्रम् ॥ २२ ॥
पुष्परेणनुकिसार्द्धीं जलपेनममर्लांशुक्लाम् ।
जलवगाहसुस्पदां पुच्छोत्पलद्रुमेक्षणाम् ॥ २३ ॥
पुष्पकम्बवदग्रशु नर्मदां चरितां वराम् ।

इयमिष्य वरा नारीमवगाह्य वृषगन्तः ॥ २४ ॥
स कस्याः पुष्पिमे रम्ये नामामुनिनिवेदिते ।

धपोपविष्टः सचिवैः सार्धं राक्षसपुङ्गवः ॥ २५ ॥

परिच्छाओंमें भेद नर्मदा परम सुन्दरी प्रियतम नारीके
सम्बन्ध प्रतीत होती थी । सिधे हुए घटवर्ती हुए म्फो उनके
आभूषण थे । चक्रवाकके बोड़े उनके दोनों सार्धोत्र जान थे
रहे थे । उँये और विस्तृत पुष्पि निरामके समान जान
पड़ते थे । इलेकी परिच्छ मोठिमीकी कती हुई मेलाका (करवनी)
के समान शोभा दे रही थी । पुष्पोंके परमा ही अङ्गराग बन-
कर उनके अङ्ग-अङ्गमें अनुष्ठित हो रहे थे । कल्प उरुमक
फेन ही उसकी स्वच्छ श्वेत छाड़ीका अग्र दे रहा था । कर्मों
गोटा अग्रमा ही उरुका मुखर संस्कार था और सिधे हुए
कर्म ही उनके सुन्दर नेत्र जान पड़ते थे । एकत्रियेममि
ब्रह्मसुख रावयने वीम ही पुष्पकविमलसे उठकर नर्मदाके
कर्मों हुक्की अग्रमी और बाहर निकलकर वह नामा मुनिसेते
सेमित उनके रमणीय तटपर अपने मन्त्रियोंके साथ
बैठा ॥ २१-२५ ॥

प्रक्याय नर्मदा सोऽथ गच्छेयमिति राक्षसः ।
नर्मदावर्षाम् हर्षनातवान् स वृषातमः ॥ २६ ॥

ये क्षात्र गङ्गा है ऐस कबकर वृषातम रावयने
नर्मदाकी प्रथका थी और उनके वरानते हर्षका अनुभव
किया ॥ २६ ॥

सवाद्य सचिवांस्तत्र सस्त्रीसं शुकसारणी ।
एव रक्षिससहस्रेण जगत् कृत्येव चक्रञ्जणम् ॥ २७ ॥
तीक्ष्णतापकरः सूर्यो नभसो मध्यमास्तिका ।

सिद्ध वहाँ उनके हुए छरव तथा अन्य मन्त्रियोंके
कीर्त्युत्सव था—ये सूर्यदेव अपनी छाँसों फिरजोते क्युँ
कालके मने काञ्चनमन बनाकर प्रत्यक्ष आप देते हुए इस
समय अङ्गराके मध्यमगमें विराज रहे हैं ॥ २७ ॥

मामासीनं विदित्वैव धन्त्रापति विवाकरः ॥ २८ ॥
नर्मदाजलशतित्तु सुगन्धिः भ्रमनाशनः ।
मन्त्रयादृशिको ह्येव वात्यसी सुसमाहितः ॥ २९ ॥

सिद्ध मुने वहाँ बैठा जानकर ही धन्त्राके समान छीटक
हा गय है । मेरे ही मने वायु मी नर्मदाके कर्मों छीटक,
सुगन्धित और भ्रमनाशक होकर वही तावपन्तीके साथ मन्त्र
गतिसे वह रही है ॥ २८-२९ ॥

इय वापि सरिच्छ्रेया नर्मदा नर्मदाकिनी ।
नक्षत्रीविहगोर्मिः सभयेवाङ्गना रिक्ता ॥ ३० ॥

परिच्छाओंमें भेद यह नर्मदा मी कीवरात एवं प्रीतिसे
बदा रही है । इसकी कर्मोंमें मातृ, मत्स्य और कर्मों के
रहे हैं और यह मयमीत नारीके सम्बन्ध कित है ॥ ३० ॥

तत्रकन्तः सताः शक्यैर्नृपैस्त्रिसमैर्युधिः ।
बन्धनस्य रसेनेव तथिरेव समुक्तिता ॥ ३१ ॥

‘‘द्रुमश्रेण मुदलशब्दे इन्द्रद्रुम पराक्रमी मनेच्छेय
अन्न-शर्मासे प्यपक कर दिने गने हो और रक्षते इस प्रकार
नहा उठे हो कि द्रुमारे अङ्गोंमें अङ्गकर्मरत रक्षण के-क
अग्र हुआ जान पड़ता है ॥ ३१ ॥

ते पूयमवगाहर्षं नर्मदां शर्मदां शुभाम् ।
सार्धैर्मिममुखा मत्ता गङ्गासिन्धु महात्पजा ॥ ३२ ॥

‘‘अथा द्रुम एकके-एक द्रुम देवेवासी इत मन्त्रकर्मिनी
नर्मदा नारीमें स्नात करे । ठीक उँये उँये जैसे शर्मदा
आदि महान् विष्णव मन्त्राके होकर गङ्गामें अन्वहन करते
हैं ॥ ३२ ॥

अस्यां कृत्वा महातर्पां पाप्मनो विप्रमोक्यथ ।
अहमप्यथ पुष्पिने पारविन्दुसमग्रमे ॥ ३३ ॥

पुण्योपहार शक्यैः करिष्यामि कर्पाणिः ।
इस महानारीमें स्नात करके द्रुम प्य-शायते मुक्त थे
काभोगे । मैं मी अन्न शरत्पुत्रके कर्ममाकी मीति उरुमक
नर्मदा-उत्तर धीरे-धीरे बटवर्तवारी मन्त्राकेकीके पूज्य
उपहार समर्पित करेगा ॥ ३३ ॥

रावणैवैसमुक्तास्तु प्रवृत्तस्तुक्तराजा ॥ ३४ ॥
समहोदरपूजासा नर्मदां विजगादिते ।

रावणके ऐस करनेपर महता हुए, करव म्फोर और
पूजाके नर्मदामें स्नात किया ॥ ३४ ॥

रक्षसोन्मग्नसौख्यैस्तु क्षोभित्वा नर्मदा क्वी ॥ ३५ ॥
वामनाङ्गनापद्याधौगङ्गा इव महागङ्गी ।

पञ्चसप्तदशी सेनाके हाथियोंने नर्मदा नारीमें उत्तर
उठके कर्मों मन्त्र बाध्य मने कामम अङ्गन, पर आदि
बड़े-बड़े विष्णवोंने गङ्गाकीके कर्मों विष्णव कर उरुम
हो ॥ ३५ ॥

उतस्तौ राक्षसाः आत्वा नर्मदायां महाबद्धाः ॥ ३६ ॥
सर्षीर्यं पुष्पण्याङ्गुर्ध्वर्यं राक्षसस्य तु ।

उतस्तौ वे महाकर्म पञ्च गङ्गामें स्नात करके वर
आये और रावणके शिष्यकर्मके सिधे हुए हुयने को ॥ ३६ ॥
नर्मदापुष्पिने हुये शुभाभसहस्रप्रमे ॥ ३७ ॥
राक्षसीस्तु मुहूर्तेन कृताः पुष्पमयो गिरिः ।

श्वेत नारसीके समान हुए एवं मनोरम नर्मदा-मुष्पिनर
उन एकतीने हो ही बर्षामें पूज्यका पहाड़-सैर डेर अग्र
किया ॥ ३७ ॥

पुष्पोपहृतेष्वेव रावणो राक्षसेश्वरः ॥ ३८ ॥
 अश्वतीर्णं नदीं ज्ञातुं गङ्गामिष महागमः ॥
 एष प्रकरं पुष्पोक्ष संवय हो अनेपर राक्षसराज रावण
 तसं स्नान करनेके लिये नर्मदा नदीमें उतरा मानो कोई
 महान् गन्धर्व गङ्गामें अथवाहन करनेके लिये पुछा हो ॥ ३८ ॥
 तत्र ज्ञात्वा च विधिवच्छप्या अप्यमनुत्तमम् ॥ ३९ ॥
 नर्मदासन्निभत् तस्मात्तुत्तार स रावणः ॥
 वहाँ विधिपूर्वक स्नान करके रावणने परम उत्तम कनौप
 मन्त्र का किया ॥ इसके बाद वह नर्मदाके अन्तरी बहर
 निकल ॥ ३९ ॥
 उतः शिवाभरं त्यक्त्वा शुद्धवस्त्रसमाधृतः ॥ ४० ॥
 रावण प्राञ्जलिं यास्तमम्ययुः सधरास्तसाः ॥
 तदतीवशामापद्य मूर्तिमत्स इवाचछाः ॥ ४१ ॥
 फिर भीगे कपड़ेको उतारकर उछने इकेत कल धारण
 किया ॥ इसके बाद वह हाथ बाँड़े महादेवकी पीठके लिये
 गया ॥ उध समक और एक राक्षस मौ उलके पीछे हो लिये,
 कन्धे मूर्तिमान् पवत उतशी गलिके अभीन हो लिये चले
 गए हैं ॥ ४ ४१ ॥
 ह्यार्धे श्रीमद्गामाये वाष्नीक्षीये अदिकाण्डे उत्तरकाण्डे एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥
 एत प्रकरं श्रीमद्वेदिकीर्तिर्द्विजं अर्वाग्यायण अतिश्रम्यके उत्तरकाण्डेने हकीसर्गं सर्गं पूरा हुआ ॥ ३१ ॥

यत्र यत्र च याति स्म रावणो राक्षसेश्वरः ॥
 जाम्बूगन्धमयं लिङ्गं तत्र तत्र स्म नीयते ॥ ४२ ॥
 पाक्षराज रावण वहाँ-वहाँ भी जाता था, वहाँ-वहाँ एक
 मुक्कर्मय शिवलिङ्ग अपने हाथ लिये जाता था ॥ ४२ ॥
 वालुकावेदिमण्ये तु तद्विङ्गं स्थाप्य रावणः ॥
 अर्ध्यामास गन्धैश्च पुष्पैश्चासूतगन्धिभिः ॥ ४३ ॥
 रावणने बावकी वेदीपर उठ शिवलिङ्गको स्थापित कर
 दिया और अन्धन तथा अमृतके समान सुगन्धवाके पुष्पोंसे
 उल्लस पूजन किया ॥ ४३ ॥
 ततः सतामार्तिहर पर वरं
 धरम्यं चन्द्रमयूक्षभूषणम् ॥
 समर्पयित्वा स निशाचरो जगौ
 प्रसार्य हस्तान् प्रपन्नतः खाद्यतः ॥ ४४ ॥
 जो अपने अन्धरमें चन्द्रकिरणोंको अमृष्णरूपसे धारण
 करते हैं अयुक्तोंकी पीड़ा हर लेते हैं तथा मत्तोंको
 मनोवाञ्छित वर प्रदान करते हैं उन भेद एवं उल्लस देवता
 भगवान् शङ्करका मन्त्रीमूर्ति पूजन करके वह निशाचर उनके
 सामने गये और हाथ पैदाकर गान्धे गया ॥ ४४ ॥

द्वात्रिंश सर्ग

अर्जुनकी सुजाओंसे नर्मदाके प्रवाहका अवरोध होना, रावणके पुष्पोपहारका वह जाना, फिर रावण
 जादि निशाचरोंका अर्जुनके साथ युद्ध तथा अर्जुनका रावणको कैद करके अपने नगरमें ले आना
 नर्मदापुत्रिणे यत्र राक्षसेन्द्रः स वारुणः ॥
 पुष्पोपहारं कुरुते तस्माद् देवायवृत्तः ॥ १ ॥
 कुरुनो जयतां श्रेष्ठे मादिपत्याः पतिः प्रभुः ॥
 श्रेष्ठत सह नारीभिर्नर्मदातोयमाश्रितः ॥ २ ॥
 नर्मदाके तटपर वहाँ नृत् राक्षसराज रावण महादेवकी
 को पूनीध उपहार अर्पित कर रहा था उध स्नानसे पोड़ी
 द्वारा विष्णुकी बीरोंमें श्रेष्ठ मादिपत्नीपुरीका शक्तिप्रदवी रावण
 अर्जुन अपनी स्त्रियोंके लिये नर्मदाके कन्धे उतरकर शीजा
 कर रहा था ॥ १ २ ॥
 क्वमा मध्यगता राज्ञा वराज च तदाहुतः ॥
 वरजुर्मां सहस्रस्य मध्यम्य इयं कुञ्जरः ॥ ३ ॥
 उन सुन्दरिणीके बीचमें विरजमान रावण अर्जुन तदसीं
 विनिर्घोके मध्यभागमें स्थित हुए गजराके समान शोभा
 रावण था ॥ ३ ॥
 विज्रासुः स तु पाहुर्मां सहस्रस्योत्तमं वनम् ॥
 वराज नमशावगं पाहुभिर्बहुभिधृतः ॥ ४ ॥
 अर्जुनक इकर मुझमें था ॥ उनके उत्तम वनका बॉचने
 के लिये उम्मे उन बहुसंख्याक मुशाभीजाण नर्मदाक वेगका
 रावण था ॥ ४ ॥

कतपीर्यमुञ्जासकं तज्जलं प्राप्य निर्मलम् ॥
 कूल्योपहारं कुर्याप्य प्रतिश्रोतः प्रधासति ॥ ५ ॥
 कूल्यीर्यं पुत्रं अर्जुनकी मुञ्जभोजाण रोष हुआ नर्मदाका
 वह निर्मल कल तटपर पूजा करते हुए रावणके पाठक पहुँच
 गया और उठी ओर उलकी गतिसे बहने गया ॥ ५ ॥
 समीननक्षत्राक्षरः सपुष्पकुशासस्तारः ॥
 स नमश्चात्मसो वेगा प्राष्टकाल इयाचमी ॥ ६ ॥
 नर्मदाके अन्धक वह वेग मध्य नक्षत्र, मगर, पूल और
 कुशाकारके लिय बहने गया ॥ उसमें बरगोरामके समान बाध
 था गयी ॥ ६ ॥
 स वेगः कतपीर्येण सग्रेपित इयाम्भनः ॥
 पुष्पोपहारं सक्रम्य रावणस्य आदारः ॥ ७ ॥
 अन्धक वह वेग, लिये माना कर्तवीर्य अर्जुनने ही वेग
 हो रावणके समस्त पुष्पोपहारको म्हा स गया ॥ ७ ॥
 रावणके उधममात समुत्सृज्य निघम तदा ॥
 समदा पश्यते कान्तां प्रतिपुलां यथा प्रियाम् ॥ ८ ॥
 रावणका वह पूजन कन्धे निघम अन्धी भाषा ही
 ममात हुआ था उनी दशमें उने ठाँवपर वह प्रतिपुल हुई

तस्य मार्गं समाह्वयं किन्चिदुक्तं यथैव पर्वतः ।
 स्थितो किञ्चिद्वाक्यम्यः प्रहस्तो मुसल्युधः ॥ ४२ ॥
 उच्यते उच्यते मूक्युधो प्रहस्तो चो किन्चिन्निरिक्तं स्मृतं
 अत्रिच्यते वा, उच्यते मार्गं रोक्कुर लक्षा हो गया । ठीक उठी
 तरह बैठे पूर्वप्रथमं विन्यासकने सूर्यदेवता मर्गं रोक्क
 किया वा ॥ ४२ ॥
 ततोऽस्य मुसलं भोरं लोहवर्धं मवोद्धतः ।
 प्रहस्ताः प्रेयसन् हुन्दो ररास च धयन्तका ॥ ४३ ॥
 मस्ये उच्यते हुप प्रहस्तो कुपितो हे अङ्गुलपर अङ्गितो
 म्हा हुध्या एक मन्कर मूक्युध वक्ष्यते और ब्रह्मके स्मृतं
 भीषण गर्भना श्री ॥ ४३ ॥
 तस्यामे मुसलस्याग्निरोक्कुरीडसमिभः ।
 प्रहस्तकरमुकस्य बभूव प्रहृष्टचित्त ॥ ४४ ॥
 प्रहस्तके हाथसे, हुटे हुप उच्यते मूक्युध अप्रभ्रमते
 अयोक्क-पुत्रके स्मृतं अङ्क गली भाग प्रहृष्ट हो गयी जो
 बन्धनी हुई-सी बान पड़ती थी ॥ ४४ ॥
 व्याधायमार्गं मुसलं कार्त्तवीर्यस्तद्वाङ्मनः ।
 त्रिपुर्यं ब्रह्मयामास गन्ध्या गतविह्वला ॥ ४५ ॥
 किन्तु कार्त्तवीर्यं अर्जुनको हलसे तमिक्त नी म्य नहीं
 हुआ । उच्यते मफनी और वेगपूर्वक भावसे हुप उच्यते मूक्युधके
 गया मारकर पूर्वतः निष्कृष्ट कर दिया ॥ ४५ ॥
 ततस्तमभिदुग्धा च सगवो हैहवाधिपः ।
 आमपायो गर्वा गुर्वा पञ्चबाहुपातोक्कुर्याम् ॥ ४६ ॥
 पतस्यत् गन्धारी हैहवराज किसे पाँच ली मुक्युधके-
 से उठाकर पञ्चबाहु कता वा उच्यते मारी गन्धो पुमता हुआ
 प्रहस्तकी ओर दौड़ा ॥ ४६ ॥
 ततो हतोऽतिवेगेन प्रहस्तो गन्ध्या तथा ।
 निपपात स्थितः दौखो पक्षिवसहतो यथा ॥ ४७ ॥
 उच्यते गन्धसे अत्यन्त वेगपूर्वक भावत होकर प्रहस्त
 तत्काल पूर्वीपर गिर पड़ा मामो ओर पर्वत ब्रह्मचारी इन्द्रके
 ब्रह्म आगत पाकर वह गया हो ॥ ४७ ॥
 प्रहस्त पतितं ह्युप मारीचशुकसारणात् ।
 समदोद्वरपूत्रात्म मपच्छा रण्यसिपात् ॥ ४८ ॥
 प्रहस्तकी पधराणी हुकुर देवत मारीच हुकुर, वारुण
 मरीचर और पूत्रात् साराङ्गणसे भाग पड़े हुप ॥ ४८ ॥
 अयच्छान्तेष्वमात्येषु प्रहस्तं च निपातितं ।
 तवणोऽभ्यप्रपत् तूर्णमर्जुन नृपसत्तमम् ॥ ४९ ॥
 प्रहस्तके मरिचे और अमाल्योके मग अनेक उच्यते
 सुपनेष्ट अर्जुनपर तस्यात्क बला किया ॥ ४९ ॥
 सहस्रबाहोस्तद् युयुं विशावृषाहाय वाक्पथम् ।
 नृपपातसयास्तत्र अहर्ष्य रोमहर्षणम् ॥ ५० ॥
 गिर से हुकर मुक्युधको लानेवा और नीच मुक्युधको
 बाधे निष्पातयामे वहाँ मन्कर हुकुर आराम हो गया अ
 तोगे लड़े कर देनामा वा ॥ ॥

सागराविव संसृज्यौ ब्रह्मसूत्राविविविवौ ।
 तेजोयुक्ताविविविविवी प्रहृष्टचित्तविविवी ॥ ५१ ॥
 बसोद्धतौ यथा मर्गौ वासितार्थे यथा हुपौ ।
 मेधाधिव विमर्दन्तौ सिंहाविव बभोःकन्दौ ॥ ५२ ॥
 कद्रकल्लविव हुन्दौ ली तथा राससमर्जुनौ ।
 परस्पर गर्वां ह्युध ताडयाम्तसतुर्वाभम् ॥ ५३ ॥
 विमुग्ध हुप रो अर्जुनो किन्त्री क्व रिक्क एषी लै
 ऐसे दो पर्वतों दो वेकनी आरिलों दो बाहक अन्तिके
 बन्धे उच्यते हुप रो गन्धारी अम-वत्क-वन्धनी गन्धे
 किये अनेकबाधे दो लौं, ओर-ओरसे गन्धेबाधे दो मेकै
 उच्यते ब्रह्मचारी दो सिहों तथा ओरसे मेरे हुप वह और
 अन्धेवेके स्मृतं वे रावण और अर्जुन गन्ध केकर एक
 धुरेपर गहरी ओरें करन अने ॥ ५१-५३ ॥
 वज्रप्रहारान्मन्त्रस्य यथा धोरत् विवेधिते ।
 गवाप्रहारान्तौ तत्र सेहते मरुत्सतौ ॥ ५४ ॥
 जैसे पूर्वप्रथमं पर्वतोंके ब्रह्मके मन्कर अन्धके ठरे के
 उठी प्रकार वे अर्जुन और रावण वहाँ गन्धकोके प्रहार अन्
 करते थे ॥ ५४ ॥
 यथाशक्तिवेद्यस्तु जायतेऽय प्रतिभुतिः ।
 तथा तयोर्गवापोवैर्दिशाः सर्वाः प्रतिभुता ॥ ५५ ॥
 जैसे निष्कृष्टकी कद्रकसे अर्जुन विहार प्रतिभन्ति हो
 उठती हैं उठी प्रकार उन दोनों की-की गन्धकोके आगतोंसे
 लभी विहारें गँवने लगी ॥ ५५ ॥
 अर्जुनस्य गन्ध्या सा तु पत्न्यमात्रादितोरसि ।
 ब्रह्मन्मन्त्रमन्त्राके विधुत्सौत्तमनी यथा ॥ ५६ ॥
 जैसे निष्कृष्टी अमककर अन्धको सुनहरे रंगसे हुकुर कर
 देती है उठी प्रकार रावणकी अतीपर गिरगी कष्टी हुई
 अर्जुनकी गन्ध उच्यते ब्रह्मलक्षणे हुपर्वकी-सी प्रमत्ते पूर्व
 कर देती थी ॥ ५६ ॥
 तथैव रावणेन्यपि पत्न्यमात्रा मुहुर्मुहुः ।
 अर्जुनोरसि मिर्माति गवोस्तेज महागिरौ ॥ ५७ ॥
 उठी प्रकार रावणके हाथ भी अर्जुनकी अतीपर वरंकर
 गिरगी कष्टी हुई गन्ध किये मन्त्र पर्वतपर गिरनेवाली
 उच्यते स्मृतं प्रकथित हो उठती थी ॥ ५७ ॥
 नार्जुनः सेव्यमापाति न राससगणोद्वरः ।
 सममासीत् तयोर्पुंयं यथा पूर्वं ब्रह्मिन्द्रयोः ॥ ५८ ॥
 उच्यते मन्त्र न दो अर्जुन ब्रह्मता वा और न राससगणों
 रावण उच्यते ही । पूर्वप्रथमं परस्पर अनेकबाधे हुकुर और
 ब्रह्मिन्द्रो मीति उन दोनोंका हुकुर एक उच्यते अन्धं पड़त था
 अर्जुनिय अर्जुनयुग्मत् वृत्तामैरिव हुकुरी ।
 परस्पर विनिजालौ मरुत्सससत्तमौ ॥ ५९ ॥
 जैसे लौह अनेके लौहोंके और हाथी अनेके दंतोंके
 अग्रभागसे परस्पर प्रहार करते हैं उठी प्रकार वे नरेण और



नेपापरराज एक दूधेपर गणाओंसे खोट करते थे ॥ ५९ ॥
 प्रथोऽर्जुनेन हृद्येन सर्वप्रायेण सा गदा ।
 कर्तनयोरस्तरे मुक्ता रावणस्य महोरसि ॥ ६० ॥
 'इसी शीशमे अर्जुनन कुपित होकर रावणके विषयक बधः
 स्वप्नर दोनों कनोंके बीचमें अपनी पूरी शक्तिसे गदाका
 प्यार किया ॥ ६ ॥
 बर्दानकृतप्राये सा गदा रावणोरसि ।
 बुधैलेय यथाधेग द्विधामृतापतत् स्तिती ॥ ६१ ॥
 'परंतु रावण तो बरके प्रभुवत्से मुपहित था; अतः
 एवमथी छातीपर वेगपूर्वक खोट करके भी वह गदा किसी
 दुर्बल गदाकी मीसि उसके बधकी टक्करते का टूट होकर
 पृथीपर गिर पड़ी ॥ ६१ ॥
 स त्वर्जुनप्रयुक्तेन गदापातेन गवप्यः ।
 अयासपव धनुमार्म निपसाद् च निपमन् ॥ ६२ ॥
 'शरापि अर्जुनकी चबकी हुई गदाके आघातसे पीड़ित
 ए रावण एक बनुप पीछे हट गया और आर्तनाद करता
 हुआ बैठ गया ॥ ६२ ॥
 स विस्मय तत्रालक्ष्य दशमीध ततोऽर्जुनः ।
 सहस्रात्स्य अमाह गदात्मानिप पन्नगम् ॥ ६३ ॥
 'दशमीबधे व्याकुल होल अर्जुनने सहसा उछलकर उसे
 पकड़ लिया; मानो गबड़ने जपदा मारकर किसी सर्पको भर
 दसदा हा ॥ ६३ ॥
 स तु बाहुसहस्रण बलप्रवृ गृह्य दशानमम् ।
 बन्ध यक्षयान् राजा बलि करायणो यथा ॥ ६४ ॥
 'जैसे पूर्वजन्ममें मगवान् मायकने बलिके बंधा था;
 उन्ही तरह स्वयान् राजा अर्जुनने दशाननको बलपूर्वक पकड़
 कर अपने हस्तर हाथोंके हाथ उसे मजबूत रस्सोंके बंध
 दिया ॥ ६४ ॥
 बध्यमान दशमीये सिद्धधारणवेधताः ।
 सार्पसि वादिताः पुष्यैः किरन्त्यजुनमूधमि ॥ ६५ ॥
 'राजीबधे बंधे अनेपर सिद्ध चारज और देवता
 पायस । पायाय । बहते हुए अर्जुनक मिरपर पूर्योधी
 बना करते छते ॥ ६५ ॥
 प्याया मृगमिषादाय मृगपाडिय कुञ्जरम् ।
 ररास देहया राजा हयाप्रमुत्पगमुदुः ॥ ६६ ॥
 'जैसे प्याय किसी दिरलाक हवाक सता दे अथवा सिंह
 हाथीक भर हवाता दे उन्ही प्रकार रावणको अपने बधमें
 करके देहपण अर्जुन हाँसिरिरेसे मयक कमान पारवार
 मर्मा करते बना ॥ ६६ ॥

प्रहस्तम्बु समाम्बस्तो हृद्वा यद् दशाननम् ।
 सहसा राससः हृद्यो ह्यभियुद्राव देहयम् ॥ ६७ ॥
 'इसके बाद प्रहस्तने होमा कंधाका । दशमुख रावणको
 नंगा हुआ देन वह राक्षस महा कुपित हा देहपयबध
 ओर दौड़ा ॥ ६७ ॥
 मत्त-शरणा येगस्तु तेषामापकता वधी ।
 उद्भूत ब्यतपापाये पयोदानामिथाम्बुधी ॥ ६८ ॥
 'जैसे बगाम्ब आनेपर समुद्रमें बरब्योका धेग बद् ब्यता
 दे उन्ही प्रकार बहो आमाम्ब क्यते हुए उन निरापयकोका
 भग बड़ा हुआ प्रतीत होता था ॥ ६८ ॥
 मुञ्जमुञ्चेति भायन्तस्तिष्ठसिष्ठेति चासकृत् ।
 मुससामि च क्षामानि सौत्ससज तद्वा रये ॥ ६९ ॥
 'ज्योहो, ज्योहो, उहरो, उहरो ऐसा बरबार क्यते हुए
 राक्षस अर्जुनकी ओर दौड़े । उस समय प्रहस्तने रणभूमिमें
 अर्जुनपर मूस और घुसके प्रहार किय ॥ ६९ ॥
 अघातात्पेध ताम्यानु असम्भ्रान्तस्तदाजुना ।
 आयुधाम्यमरादीणां अमाहारिनिपूना ॥ ७० ॥
 'परन्तु अर्जुनका उस समय बकपट्ट नहीं हुई । उस
 समुद्रन बीरने प्रहस आदि दशप्रोधी निघाचोंके छोड़े हुए
 उन अर्जुन अपने शरीरक आनेसे प्रहस ही पकड़ लिया ॥
 ततस्तेरिय रक्षासि बुधरे प्रयरायुधैः ।
 भिस्था विद्राघयामास पायुरम्बुधराश्वि ॥ ७१ ॥
 'हिर उन्ही बुधरे एवं भेद आयुधोंसे उन सर राक्षसोंको
 पायस करक उन्ही तरह मग लिया; जैसे हवा बादलोंका
 छिन्न-मिन्न करके उड़ा ल ब्यती दे ॥ ७१ ॥
 राक्षसाप्रासयामास कर्तवीयाजुनस्तदा ।
 रावण गृह्य नगर प्रविषेदा सुहृद्वृत्तः ॥ ७२ ॥
 उस समय कर्तवीय अर्जुनने समस्त राक्षसोंका मयभीत
 कर लिया और रावणका मरुत बद् अपने मुहरोके ध्यय
 नगरमें आया ॥ ७२ ॥
 न वीयमाणः कुसुमाक्षतात्करं
 द्विजः सपौरः पुरुङ्गतसनिभः ।
 तत्राऽर्जुनः स्यां प्रयिवदा तां पुरीं
 पलि निरुदयेय सहस्रलायनः ॥ ७३ ॥
 'नगरके निकट अनेक मासगो और पुरफालिनीने अपने
 इन्द्रमुख बन्धी नगेगण पूर्य और अशुभोधी बर्गो की और
 लक्ष नैजपाती इन्द्र बीम बलिक बंदी बनकर ल गये थे;
 उन्ही प्रकार उस राजा अर्जुनने बंध हुए रावणका हाथ बंधकर
 अपनी पुरीमें प्रबध किया ॥ ७३ ॥

हृषीकेशे धीमहाप्रथम वाक्यीयंये आदिषाम्ये उत्तरकाण्डे श्रावितः समाः ॥ ६२ ॥

एष प्रकर बर्तमानेति विदित्वा अत्रापयन अत्रापके अत्रापके बर्तमाना मग पूरा हुआ ॥ ७० ॥

कमनीय भक्तिवाची प्रेक्षणीकी भक्ति नर्मदाकी ओर देखने
छग्र ॥ ८ ॥

पश्चिमेन तु तं ह्यु सागरोद्गारसन्निभम् ।

वर्धन्तमम्भसो वेग पूर्वाभासां प्रविश्य तु ॥ ९ ॥

पश्चिमसे आते और पूर्व दिशामें प्रवेश करके बहते हुए
रूपसे उस वेगघे उठने देखा । वह ऐस बन पड़्य था
इतने समुद्रमें ज्वार बढ़ गया हो ॥ ९ ॥

ततोऽनुवृध्मान्तशाकुर्नाम्भभावं परमे स्थिताम् ।

निर्विक्रवाङ्गन्महासामपद्मवत् रावणो मन्वीम् ॥ १० ॥

उसके तटवर्ती हृष्टोपर रहनेवासे पक्षियोंमें कोई पक्षपट्ट
नहीं थी । वह मन्वी अपनी परम उच्च स्वामिक स्थितिमें
स्थित थी—उत्पन्न वह पक्षे ही-जैव स्वच्छ एवं निर्मल
दिल्लीकी देता था । उसमें बर्णाभङ्गिक बादके समान जो
मङ्गिला आदि विकार होते थे, उनका उस समान उर्वया
अभाव था । रावणने उस नदीकी विक्रयान्न हरकवाची
नारीके समान देखा ॥ १ ॥

सम्प्रेतरकराङ्गुल्या द्वाशब्दास्यो वशान्नः ।

वेगप्रमथमन्वेष्टु सोऽविशङ्कुकसारणी ॥ ११ ॥

उसके मुलसे एक शब्द भी नहीं निकल । उठने मैन-
कधी रहके छिये किना बासे ही दक्षिने हाथकी आङ्गुलीसे
उंकेतनात्र करके बादके करणका पत्ता समझनेके निमित्त हाक
और धरलको आदेश दिया ॥ ११ ॥

तो तु रावणसंनिधौ भ्रातरी शुक्रसारणी ।

व्योमान्तरगती यीरी प्रथिती पश्चिमानुसौ ॥ १२ ॥

पञ्चगच्च आदेश पाकर दोनों बीर भ्राता हाक और धरल
अङ्गुलमागति पश्चिम दिशाकी ओर प्रस्थित हुए ॥ १२ ॥

वर्धयोऽन्नमात्रं तु गत्या तौ रजनीवरी ।

पदपेठा पुटपं तोये व्रीहवत् सद्योपरितम् ॥ १३ ॥

जैसे आधा जोहन खनेपर ही उन दोनों निशापंनि
एक पुत्रपत्र क्षियोंके साथ कर्मों श्रीबा करते देखा ॥ १३ ॥

पृहस्तान्नप्रतीकृत्वा तोयप्याकुलमूर्धजम् ।

मद्वरान्मनपन मद्ग्याकुलजेतसम् ॥ १४ ॥

उतथा शीर विपन्न सद्युष्टके समान उंचा था ।
उसके वेग रूपसे ओतप्रेत हो रहे थे । नेत्रग्रन्थमें मदकी
लानी दिल्लीकी दे रही थी और बिच भी मदसे व्याकुल बन
पड़ता था ॥ १४ ॥

मदीं बाहुसहस्रेण रन्ध्रान्तमग्निमद्गन् ।

गिरि पाद्मसहस्रेण रन्ध्रान्तमिग्नि मदीनीम् ॥ १५ ॥

बाह्यसुमरन बीर अपनी मदस मुञ्जभोंने नदीका वेगघे
उठकर लहसो चरनेसे गूनीश) घामे रत्ननेवासे परतके समान
रामा गया था ॥ १५ ॥

वाग्धनां धरन्तरीणां महद्व्रण समापृतम् ।

समशान्तं करज्ज्वां महद्व्रणाय पुत्ररम् ॥ १६ ॥

नवी अकलाकी उदरमें सुन्दरिमें उसे धरे हुए है
बन पड़ती थी मानो लहसो महद्व्रण हविमिमेंने किसी न
रुक्को धर रक्ता हो ॥ १६ ॥

तमदुत्तर ह्यु राक्षसी शुक्रसारणी ।

सनिष्ठासुपायस्य रावण तमयोऽनुः ॥ १७ ॥

उस परम अद्भुत इन्द्रको देखकर एक हाक
धरल लैत श्रिये और रावणके पक्ष बाकर बोधे— ॥ १७ ॥

वृहत्सालप्रतीकृशाः कोऽप्यसौ राक्षसेव ।

नमंशुं रोधवत् उदध्वा व्रीहवत्पति योक्तिः ॥ १८ ॥

‘पक्षस्यय । महति योकी ही दूरपर कोई लक्षण
समान विधाककम पुत्र है जो बाँधकी तरह नर्महाके ऊपर
रोधकर क्षियोंके साथ श्रीबा कर रहा है ॥ १८ ॥

तेन बाहुसहस्रेण सनिकयज्ज्वा नदी ।

सागरोद्गारसकाशानुद्गारान् एजते मुहुः ॥ १९ ॥

‘उसकी लक्ष मुञ्जभोंने नदीका वह एक गया
इवीक्षिये यह बारबार समुद्रके ज्वारकी भाँति कर्मके उतर
धरि कर रही है ॥ १९ ॥

इत्येव भाग्यमापी तौ निशम्य शुक्रसारणी ।

रावणोऽनुं इत्युक्त्वा स पयो मुञ्जस्रसः ॥ २० ॥

‘इस प्रकार बहते हुए हाक और धरलकी बर्तें उन
रावण बोध उठा—‘वही मञ्जु है’ ऐसा कहकर वह पुत्र
जन्मसे उठी और चम दिया ॥ २ ॥

मनुनाभिमुखे तस्मिन् रावणे राक्षसाभिधे ।

वर्ध प्रधाति पवनः सनात्वा सरजस्तपः ॥ २१ ॥

‘पक्षस्यय रावण का मनुनाभि ओर चम ठप
और मारी कोबाइके साथ बापु प्रपञ्च वेगसे कर्मों का ॥ २१ ॥

सद्युदेव एतो रायः सरलपूवतो भनैः ॥ २२ ॥

महोद्दमहापादर्वपूजाशुक्रसारणीः ॥ २३ ॥

सपूतो राक्षसेन्द्रस्तु तत्रागात् पत्र चार्जुनः ।

बाइभोंने रक्षितनुजोंकी बर्ता करके एक बार ही
कोरस गईना की । इधर राक्षसरावण रावण महार, म्हापण
पूजाशुक्र हाक और धरलको साथ के उत सामग्री ओर का
बर्तें मञ्जु श्रीबा कर रहा था ॥ २२ ॥

मन्वीणैय कलेन स तदा राक्षसो बन्धो ॥ २३ ॥

त नर्मदाङ्गुं भीमस्तज्जगामाङ्गनमः ।

‘घरल का कोयलके समान घाल यह बकबाइ ल
पाड़ी ही देरमें नर्महाके उत मंजुकर क्यउरके पक्ष
पट्टेका ॥ २३ ॥

स तत्र स्त्रीपरिवृतं पास्तिलाभिरिय द्विपम् ॥ २४ ॥

नरुर्त्तं पदपन राजा राक्षसामां तदाङ्गुनम् ।

‘मन्वी पट्टेबाइर राक्षसोंके साथ रावणने मेपुनकी इका
धामी हविमिमेंने धरे हुए मन्वाइके मन्वाइ सुन्दरी क्षियों
परिवेदिन महापत्र मञ्जुनका देना ॥ २४ ॥

स योषात् एकनयनो राक्षसेन्द्रो पञ्चोदतः ॥ २५ ॥
 (येषामनुग्रहमात्यानाह गम्भीरया गिरा ।
 उते देवसे ही रावणके नेत्र रोपते बाल हो गये । अपने
 मन्के धर्महते उद्वेग हुए राक्षसपत्नने अर्जुनके मन्त्रियोंसे
 आभीर बाणीमें इस प्रकार कहा— ॥ २५ ॥
 ममात्याः क्षिप्रमाश्रयात् द्वैहयस्य नृपस्य वै ॥ २६ ॥
 युदार्यं समनुप्राप्तो रावणो नम गमताः ।
 'मन्त्रियो ! हम द्वैहयपत्नसे अस्ती बाहर करो कि
 एवम हमसे युद्ध करनेके लिये आना है' ॥ २६ ॥
 रावणस्य वचः श्रुत्वा मन्त्रिणोऽप्यार्जुनस्य वै ॥ २७ ॥
 वचस्युः सायुधास्तं च रावणं धाक्यमनुवन् ।
 'रावणकी बात सुनकर अर्जुनके वे मन्त्री हथियार लेकर
 कहे हो गये और रावणसे इस प्रकार बोधे— ॥ २७ ॥
 युद्धस्य कस्यो विहाताः साधु भो साधु रावण ॥ २८ ॥
 पा हीर्षं क्षीणत वैव योवृत्रमुत्सहसे ध्रुपम् ।
 'बाहू रे रावण ! बाहू ! हमें युद्धके अन्तकरक अन्धा
 बल है । हमारे महाराज जब मदमत्त होकर क्षिप्रों कीचमें
 श्रीबाहू कर रहे हैं, ऐसे समयमें हम उनके साथ युद्ध करनेके
 लिये उत्सहित हो रहे हो ॥ २८ ॥
 क्षीणमसगतं यद् त्व योवृत्रमुत्सहसे ध्रुपम् ॥ २९ ॥
 वासिष्ठमभ्यर्च्य मत्त शर्मूलं ह्य कृच्छरम् ।
 'बैसे कोई भ्याम क्रमबासनाले वासिष्ठ इयिनियोंके बीचमें
 कहे हुए रावणपत्नसे वृक्षना पाहता हो उरी प्रकार हम क्षियों
 के सम्य श्रीबा-विक्रममें उत्कर हुए रावण अर्जुनके साथ युद्ध
 करनेका हीचका दिका रहे हो ॥ २९ ॥
 समसत्तय वृषादीय चम्पतां रजनी त्वया ।
 युद्ध भया तु यथासि अस्तमत्त वमरेऽर्जुनम् ॥ ३० ॥
 'एव ! वृषादीय ! यदि हमारे हृदयमें युद्धके लिये
 उत्सह है, तो एतमर क्या करो और आकषी एतमें परी
 उरये । फिर एक खैरे हम रावण अर्जुनको समराहणमें
 उपस्थित देखो ॥ ३० ॥
 यदि वापि त्वया तुर्म युद्धतुण्यासमाहृत ।
 निपात्यासान रणे युद्धमर्जुनिगोपयाससि ॥ ३१ ॥
 'युद्धकी तुणासे फिरे हुए राक्षसराज ! यदि हमें उरने
 के लिये बड़ी अस्ती स्मरी हो तो पहले रणभूमिमें हम लकड़ों
 मार निपाओ । उसके बाद महाराज अर्जुनके साथ युद्ध करने
 पस्योगे' ॥ ३१ ॥
 तवस्ते रावणामात्यैरमात्यास्ते ध्रुपस्य तु ।
 धरिवाभ्यापि तं युद्धे भक्तिताद्य सुमुक्षितौ ॥ ३२ ॥
 'पर सुनकर रावणके मूर्ख मन्त्री युद्धलक्षणमें अर्जुनके
 अमात्योंको मार-मारकर मारने लगे ॥ ३२ ॥
 तयो हृष्टद्वयराग्नौ नर्मदातीरगो धमी ।
 अर्जुनस्यानुयायाणां रावणस्य च मन्त्रिणाम् ॥ ३३ ॥

इस्ते अर्जुनके अनुयायियों तथा रावणके मन्त्रियोंकर
 नर्मदाके तटपर बड़ा क्रेशल होन लगत ॥ ३३ ॥
 इधुभिःसोमरैः प्रासैत्रिशृत्तैर्ध्वजकर्षणैः ।
 सरायुष्यामर्षयन्तः समस्ताद् समभिद्रुताः ॥ ३४ ॥
 अर्जुनके बोझा बाणों, छेगयों, मार्शों, शिखों और वज्र
 कर्षण नामक धातुओंवाय पातों मोरसे धारा करके रावण-
 वरित समस्त राक्षसोंको धामल करने लगे ॥ ३४ ॥
 द्वैहयाधिपयोधानां वेग आसीत् सुदारुणः ।
 सन्मन्मीममकरसमुद्रस्येव निःस्वनाः ॥ ३५ ॥
 द्वैहयपत्नके बोझाभोंकर वेग नाशों मल्लों और मगदों-
 वरित समुद्रकी भीषण गर्जनाके समान अत्यन्त मयकर बान
 पड़वा पा ॥ ३५ ॥
 रावणस्य तु तेऽमात्याः प्रहस्तान्कसारण्याः ।
 कर्षयन्वीर्यबलं हृष्टा निहन्ति स्म स्वतेजसा ॥ ३६ ॥
 'रावणके वे मन्त्री प्रहस्त, वक्र और खरण आदि कुशिल
 हो अपने यन्त्र-पराक्रमसे कर्षयन् अर्जुनकी सेनाका खार
 करने लगे ॥ ३६ ॥
 अर्जुनस्य तु तत्कर्म रावणस्य समन्त्रिणः ।
 श्रीहमन्नाय कथितं पुत्रपैर्भयपिच्छितैः ॥ ३७ ॥
 'एव अर्जुनके सेवकोंने मन्के निहल होकर श्रीहामों को
 हुए अर्जुनसे मन्त्रीवरित रावणके उठ कर कर्मका समाचर
 सुनाया ॥ ३७ ॥
 श्रुत्वा न मेतद्यपिमिति क्षीयान स त्वार्जुनः ।
 वचतार जम्हाद् तस्माद् गङ्गास्रोपादिवाङ्मना ॥ ३८ ॥
 'सुनकर अर्जुनने अपनी क्षियोंसे कहा— 'हम सब क्रमा
 बरना मत ।' फिर उन सबके साथ वह नर्मदाके बस्ते उरी
 तट पर बाहर निकल, बैसे कोई दियाभ (इयिनियोंके साथ)
 गङ्गाकीके बस्ते बाहर निकल्य हो ॥ ३८ ॥
 क्रोधवृत्तितमेजन्तु स त्वार्जुनपापकः ।
 प्रजग्यात् महाघोरो युगान्त इव पापका ॥ ३९ ॥
 उसके नेत्र रोपते राक्षसके हो गये । वह अर्जुनकी
 अन्तः प्रकयकरक महामर्यकर पापककी मति प्रकथित
 हो उठा ॥ ३९ ॥
 स त्वर्षतमदाय परहम्माह्वो गन्तम् ।
 अभिद्रुताव रक्षांसि तर्मासीव विपाकम् ॥ ४० ॥
 'सुन्दर सेनेका बाहुव धारण करनेवाले और अर्जुनने
 दूरत ही गया उठा भी और उन राक्षसोंपर आक्रमण किया,
 मानों त्वरेव अन्धकार-समुद्रपर दूट पड़े ही ॥ ४० ॥
 बाहुविलेपकरण्यां समुपस्य महागन्तम् ।
 गाहृद् वेगमास्याय अघपातैय सोऽजुना ॥ ४१ ॥
 'वे युद्धओंवाय पुमणी बड़ी थी उठ विहाल गदाको
 ऊपर उठाकर गाहृदके समान तीन वेगव अघपय ने रावण
 अर्जुन तकाल ही उन निपावटोंपर दूट पड़ा ॥ ४१ ॥

तस्य मार्गं समाह्वय्य किन्प्योऽर्कस्यैव पर्वतः ।
स्फिचो किन्ध्व इयाकम्प्यः प्रहस्तो मुसस्यधुधः ॥ ४२ ॥
एव समव गूळधारी प्रह्ला ओ विन्ध-गिरिके समान
भविष्य या उक्त्वा मार्गं रोक्त्वा लका हा गया । ठीक उठी
तरह जैसे पूर्वकामने विन्ध्याकन्दे सूर्यदेवका मार्ग रोक्
किया था ॥ ४२ ॥

ततोऽस्य मुससु धोर छोहबर्द्ध मदीन्द्रवः ।
प्रहस्तः प्रयथन् हुन्दो ररत्त अ यधन्तकः ॥ ४३ ॥
परसे उरह्व हुए प्रहस्तने कुपित हो अकुनपर छोड़ेते
मन्त्र हुमा एक मन्त्र मूळ कक्षम और कक्षके समान
मीथक गयेना की ॥ ४३ ॥

तस्यामे मुसस्यस्फिरशोकपीडितंभिः ।
प्रहस्तकरमुसस्य इमूढ प्रहृष्टिषः ॥ ४४ ॥
प्रहस्तके हाथसे छूटे हुए उस मूळके अपमानमें
अशोक पुष्पके समान लक्ष गन्धी आग प्रकट हो गन्धी को
सम्झती हुई-सी बन पड़ती थी ॥ ४४ ॥

माधाधमाल मुसलं कर्तवीर्यंस्तबाहुमः ।
सिपुष्य वञ्चयामास गद्या गतविह्वलः ॥ ४५ ॥
किन्तु कर्तवीर्य अर्जुनके इसके तनिक भी मय नहीं
हुमा । उसने अपनी ओर वेगपूर्वक भाते हुए उस मूळके
गदा मारकर पूर्ववः किष्क कर दिया ॥ ४५ ॥

ततस्तमभिदुप्राध सगदो हैहयाधिपः ।
धामयापो गदां गुपी पञ्चबाहुनातोऽभ्युपाम् ॥ ४६ ॥
तस्यभात् गद्यधारी हैहयराज किते पीय को मुक्कभों-
से उठाकर कक्षका बादा था; उस मारी गदाके दुमावा दुमा
प्रह्लाकी ओर दीका ॥ ४६ ॥

ततो हतोऽतिवेगेन प्रहस्तो गद्या तदा ।
निपपात स्थित दीओ यजिवप्रहतो यथा ॥ ४७ ॥
उस गद्यसे अत्यन्त वेगपूर्वक झड़त होकर प्रह्ला
तत्काल धृवीपर गिर पड़ा मानो कहीं पर्वत बज्रधारी इन्द्रके
बज्रधय भापात पाकर वह गया हो ॥ ४७ ॥

प्रहस्त पतित दृष्ट्वा मारीचशुद्धसारणाः ।
समहोदरपुञ्जाक्षा मपद्युषा रणाजिपात् ॥ ४८ ॥
प्रहस्तको पराधारी हुम्न देस मारीच शुद्ध सारण;
महोदर और पुञ्जात क्यगद्वरने माग लगे हुए ॥ ४८ ॥
मयबज्रनखमाम्यपु प्रहस्त य निपातित ।

रायणोऽम्ब्रपवत् सूक्ष्मप्रभुम वृपसत्समम् ॥ ४९ ॥
प्रहस्तके गिरने और अमालोंके मग करनेन रायणने
सुरभेट अङ्गुनर तालाब बाधा क्रिय ॥ ४९ ॥
सदश्रबाहालन्त् सुय विशाद्याहाद्य दारुणम् ।
नृपराक्षमपालत्र ध्यग्ध रामदधणम् ॥ ५० ॥

गिर त इमार मुञ्जभोंगके नरनाथ भार बीड मुञ्जभों
गक निष्ठाकरनामें पदी मर्षकर मुद्र आराम हो गया ऊ
गेदर लड़ कर देनाम्य था ॥ ॥

सागरविष सद्भुधौ बहूमूल्याविकचकौ ।
तेजोयुक्ताविषावित्यौ प्रहृष्टहस्तविकचकौ ॥ ५१ ॥
बम्बेखटी यथा नगौ वासिस्तार्थे यथा कुनी ।
मेधाविष विन्ध्यास्यौ सिंहाविष बम्बेककौ ॥ ५२ ॥
उद्वस्त्रस्यविष कुन्दौ ती त्वा रासस्यस्युर्गौ ।

परस्पर गदां पृष्ट ताडनामासतुर्वाम् ॥ ५३ ॥
सिन्धुधु हुए दो छुद्रों; किन्धी बड़ शिक रही है
ऐसे दो फलों, दो तेकसी आरिखों, दो बारक मन्थिन
बम्बे उम्पत हुए दो गकसों, काम-बलनवाली कर्ण
धिमे क्कनेबाळ दो लोंदों; खेर-खेरते गकनेबाते दो मेळ
उद्वस्त्र बध्यामी दो सिंहां तथा खेवते मरे हुए खर मे
अकदेवके समान है रायण और अर्जुन गदा डेकर ए
दूरीपर गदारी चोटें करने लगे ॥ ५१-५३ ॥

वञ्चप्रहारानवद्य यथा खेरान् विवेहिरे ।
गद्याप्रहारोऽस्ती तत्र सेहते नरराक्षसौ ॥ ५४ ॥
जैसे पूर्वकामने फलोंने बज्रके मन्त्र आधारी लगे थे
उसी प्रकार वे अर्जुन और रायण वहाँ गयाओंके प्रहार कर
करते थे ॥ ५४ ॥

यथाशान्तिवेभ्यस्तु ज्ञाप्येऽद्य प्रसिधुतिः ।
तथा तपोर्गदापोऽर्थाः सर्वाः प्रतिभुताः ॥ ५५ ॥
जैसे विक्रमीकी कक्षसे कम्प्ये शिषाएँ प्रतिभूतिय हैं
उठती हैं उसी प्रकार उन दोनों कीरोपी गयाओंके आधरों
कमी शिषाएँ लूँके लगी ॥ ५५ ॥

अर्जुनस्य गदा सा तु पश्यमानाद्विदोरसि ।
वञ्चान्मर्म नभञ्जके विधुस्तीवामनी यथा ॥ ५६ ॥
जैसे विक्रमी चमककर अञ्जकको सुन्दरे रामे कुक क
देती है उसी प्रकार रायणकी कालीपर गिरावी लगी हु
अर्जुनकी गदा उतके बहासकको सुवर्षकी-सी पगले हु
कर देती थी ॥ ५६ ॥

तथैव रायणेनापि पात्यमाना मुहुर्मुहुः ।
अर्जुनोरसि निर्भासि गवोदेकेव महागिरौ ॥ ५७ ॥
उसी प्रकार रायणके हाग भी अर्जुनकी कालीपर बरक
गिरापी लगी हुई गदा किन्धी महान् फलेंपर गिरनेवाले
उरुधके समान प्रकटित हो उठती थी ॥ ५७ ॥

नामुना जेदमापाति न राक्षसगण्यस्यर ।
सममासीत् तथार्जुनं यथा पूर्वं बर्जस्ययोः ॥ ५८ ॥
उठ समान न दो अर्जुन बकला था और न राजमालोंक
राज रायण ही । पूर्वकामने परस्पर अर्जुनबाते इक अ
बकिधी भोंति उन दोनोंक मुद्र एक समान बन पड़ल था
अट्टेरीय वृषायुष्यन दस्तामरीय बुञ्जरी ।
परम्परे यिनिज्जली नरराक्षसस्यत्तमी ॥ ५९ ॥

जैसे लौह अपने लींगोंस और हाथी अपने हाँठों
अभमामने परस्पर प्रहार करते हैं उसी प्रकार वे नरेश भी

निशाचरयश्च एक दूखेपर गदाभौसे चोट करते थे ॥ ५९ ॥
 छत्रेऽर्जुनेन हृदयेन सर्वप्रपणेन सा गदा ।
 सर्गपोरन्तरे मुक्त्य राक्षसस्य महोरसि ॥ ६० ॥
 'एही बीचमें भर्जुनेने कुण्ठित होकर राक्षसके विशाल बध
 रूबरु होने लानेके बीचमें अपनी पूरी शक्तिसे गदाका
 प्रहार किया ॥ ६ ॥
 बरदानकृतप्राप्ते सा गदा राक्षपोरसि ।
 पुनरेव यथावेग द्विभामृतापतत् स्तिरौ ॥ ६१ ॥
 'परंतु राक्षस तो बरके प्रभावसे झुकित या अतः
 एकपक्षी झटीपर वेगपूर्वक चोट करके भी वह गदा किसी
 दुर्बल पक्षी मॉडि उसके पक्षी उड़करे या टूट होकर
 पक्षीपर गिर पड़ी ॥ ६१ ॥
 स स्फुरन्प्रयुक्तेन गदाप्रातेन गवणः ।
 भ्यासार्पवृ धनुर्मान् निरस्ताद् च निघ्नन् ॥ ६२ ॥
 'यथापि भर्जुनकी बलभी हुई गदाके आघातसे पीड़ित
 हो यन्त्र एक बज्रप पीछे हट गया और आर्तनाद करवा
 हुआ बैठ गया ॥ ६२ ॥
 स विह्वल तदाकक्ष्य दशमीय ततोऽर्जुनः ।
 सारसोत्पस्य जग्राह गदास्मानिष पन्नगम् ॥ ६३ ॥
 'यथापिबल ब्याकुल देल भर्जुनने छह उलझकर उसे
 पकड़ लिया मानो गरुड़ने लपटा मारकर किसी सर्पके भर
 बरवा हो ॥ ६३ ॥
 स तु बाहुसहस्रेण वक्ष्यत् शूद्रा दशानमम् ।
 बन्धन वक्ष्यान् राज्ञा बन्धि नारायणो यथा ॥ ६४ ॥
 'जैसे पूर्वजन्मे मगवान् नारायणने बन्धिके बाँधा था
 उही तरह बलवान् राजा भर्जुनने दशानमको बन्धपूर्वक पकड़
 कर अपने हथर हाथोंके हाथ उसे मन्वृत् रस्सीसे बाँध
 दिया ॥ ६४ ॥
 बध्यममं दशमीये सिद्धचारणदेवताः ।
 साप्त्वीति यादिनाः पुष्यैः किरन्म्यजुनमूर्धनि ॥ ६५ ॥
 'रक्षणीवके बाँधे जानेपर सिद्ध चारण और देवता
 प्यायथ । शापाथ । करते हुए भर्जुनके गिरपर पूज्यकी
 बर्ण करते ह्ये ॥ ६५ ॥
 प्यामो मृगमिषक्षाय मृगराक्षिय कुञ्जरम् ।
 ररास ईहयो राज्ञा हर्षान्मुदयन्मुहुः ॥ ६६ ॥
 'जैसे प्याम किसी शिरण्य बसोष कता है अथवा सिंह
 हाथीके भर बहाता है उही प्रकार राक्षसके अपने बधमें
 करके देहपण्य भर्जुन हर्षाशिरकसे मेघक उमान बार्भार
 गर्वना करते ह्ये ॥ ६६ ॥

प्रहस्तन्तु समान्वसतो हृद्ग पय दधाममम् ।
 सहसा राक्षसः हृद्गो ह्यभिवुद्राव ईहयम् ॥ ६७ ॥
 'इसके बाद प्रहस्तने ह्ये संभ्रम । दशमुख राक्षसके
 बंधा हुआ देल वह राक्षस महल कुण्ठित हा देहपण्यकी
 ओर दौड़ा ॥ ६७ ॥
 नक्त्यराणां वेगस्तु तेषामापततां यभी ।
 सद्गत अस्तपापाये पयोदानामिषाम्भुधी ॥ ६८ ॥
 'जैसे बर्षाकाल आनेपर समुद्रमें बरझोका जग बह आता
 है, उही प्रकार बर्षों आक्रमण करते हुए उन निशाचरोंका
 वेग बढ़ा हुआ प्रतीत होता था ॥ ६८ ॥
 मुञ्चमुञ्चेति भापन्तस्तिष्ठतिष्ठेति चासहृत् ।
 मुसळानि च झूलानि सौत्ससञ्च तथा रणे ॥ ६९ ॥
 'छेड़ो, छेड़ो, उड़ो, उड़ो' ऐसा बर्भार करते हुए
 राक्षस भर्जुनकी ओर दौड़े । उस समय प्रहस्तने रथमूमिमें
 भर्जुनपर मूख और झुके प्रहार किये ॥ ६९ ॥
 भ्यास्तम्येषु तन्म्याशु मसम्भ्रान्तस्तयाशुनः ।
 आयुधाम्यमरातीणां जग्राहारिनिपूवनः ॥ ७० ॥
 'परंतु मन्वृत्के उस समय पबराइट नहीं हुई । उस
 शत्रुदलन बीरने प्रहस्य अग्नि बंधनेकी निशाचरोंके जोड़े हुए
 उन मन्वृत्के अपने शरीरक आनेसे पहले ही पकड़ लिया।
 ततस्तेरेष रक्षांसि दुर्धरो प्रथरायुधैः ।
 भित्त्या विद्रावयामास पायुरम्बुधरान्विष ॥ ७१ ॥
 फिर उठी दुर्धर एवं भेद्र आयुधोंसे उन सभ राक्षसोंके
 पायक करके उही तरह मग दिया, जैसे हवा बाल्लोंके
 छिन्न भिन्न करके उड़ा म जाती है ॥ ७१ ॥
 राक्षसास्त्रासयामास कर्तवीर्यार्जुनस्तदा ।
 राक्षस शूद्रा नगर प्रयिवेश सुहृत्पुहृतः ॥ ७२ ॥
 'उस समय कर्तवीर्य भर्जुनने समस्त राक्षसोंका मगपीठ
 कर दिया और राक्षसोंके छकर बर अपने मुहुरोंके छय
 मगरमें आया ॥ ७२ ॥
 स कीर्यमाणः कुसुमाक्षतोत्कर्ण
 द्विंशो सर्परीः पुरुहूतसनिभः ।
 ततोऽर्जुनः स्वां प्रथियश सां पुरीं
 वन्धि निगृह्येन सहस्रत्सेवनः ॥ ७३ ॥
 'नगरक निष्कृत जानेपर श्रापणी और पुरासिधोंने अपने
 इन्द्रदस्य देवकी नरधरप पूजा और मधुपोंकी बजा थी और
 छहस नेत्रभाटी इन्द्र जैसे बन्धिके बंधी बनाकर स गये थे,
 उही प्रकार उस राक्षस भर्जुनने बंधे हुए राक्षसका लाय कैकर
 अपनी पुरीमें प्रवेद्य किया ॥ ७३ ॥

हृत्पार्थे श्रीमद्भागवते द्वाविंशोऽध्याये आदिपञ्चमे उत्तरकाण्डे द्वाविंशः सर्गः ॥ ६२ ॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवतपुराणके उत्तरकाण्डके द्वाविंशो सर्ग पूरा हुआ ॥ ३० ॥

त्रयस्त्रिंश सर्ग

पुलस्त्यवीका रावणको अर्जुनकी कैदसे छुटकारा दिलाना

रावणग्रहणं तत् तु वायुग्रहणस्तनिभम् ।
 ततः पुलस्त्याः द्युभ्रातृ कथितं विधि देवतैः ॥ १ ॥
 एषको पश्य केना वायुको पश्यनेके समान वा ।
 वीर-वीर बहू वात स्वर्गि देवताओंके मुक्तसे पुष्टस्वधीने
 सुनी ॥ १ ॥
 तदा पुत्रहृत्स्मेहात् कम्पमानो महाभूतिः ।
 माहिष्मतीपतिं ब्रह्ममाजगाम महासृष्टिम् ॥ २ ॥
 यद्यपि वे महर्षि महान् वैश्वाम्नी ये तो भी संज्ञानके
 प्रति होनेबाड़े रनेहके करण कृपापरक हो गये और माहिष्मती-
 नरोपसे मित्रनेके सिन्धे भूतस्वर चके अन्ते ॥ २ ॥
 स वायुमार्गमास्थाय वायुतुल्यगतिर्द्विजः ।
 पुरीं माहिष्मतीं प्रप्तो मत्तःसम्पातविक्रमः ॥ ३ ॥
 उनका वेग वायुके समान था और गति मनके समान।
 वे ब्रह्मर्षि वायुपयश्च आभय के माहिष्मतीपुरीमें आ पहुँचे ॥
 साऽमरावतिसिंहकराया हृद्यपुत्रजम्बूद्वयम् ।
 प्रसिवेशे पुरीं प्रह्लाद इन्द्रस्येवामरावतीम् ॥ ४ ॥
 जैसे ब्रह्माधी इन्द्रकी अमरावतीपुरीमें प्रवेश करते हैं
 उही प्रकार पुष्टस्वधीने हृद्य पुत्र मनुष्योंसे नहीं हुए और
 अमरावतीके समान शोभासे अत्यन्त माहिष्मती नगरीमें प्रवेश
 किया ॥ ४ ॥
 पाञ्चभारमिवाहितं निष्कण्ठ सुसुहृदाम् ।
 ततस्ते प्रत्याभिज्ञाय अर्जुनाय न्यबोधयन् ॥ ५ ॥
 आकाशसे उतरते उमक वे देवोंसे चक्रकर भावे हुए
 स्वर्गके समान अन्त पड़ते थे । अत्यन्त तेजके कारण उनकी
 अंध देखना बहुत ही कठिन थान पड़ता था । अर्जुनके
 सेवकोंने उन्हें पहचानकर राधा अर्जुनको उनके द्युमातामनी
 सूचना दी ॥ ५ ॥
 पुष्टस्त्य इति विज्ञाय घवमासीहयाधिप ।
 धिरस्यङ्गिमाभाय प्रसुप्तश्चक्षुः सपथिनम् ॥ ६ ॥
 सेवकोंके कहनेसे जब हैरतपकसे वह पता चला कि
 पुष्टस्वधी पवारे हैं तब वे सितपर अङ्गिक बोधे उन तपस्वी
 सुनिधी अज्ञानीके सिन्धे आगे बढ़ अन्ते ॥ ६ ॥
 पुरोक्षितोऽस्य शूद्रार्घ्यं मनुष्यं सपथे च ।
 पुरस्तात् प्रययी राधाः शक्रस्येव हृदस्पतिः ॥ ७ ॥
 राधा अर्जुनके पुरोक्षित अर्घ्य और मनुष्यके आदि
 केकर उनके अन्ते-आगे चके, माने इन्द्रके आगे हृदस्पति
 चल रहे हैं ॥ ७ ॥
 तत्सामुद्रिमापात्समुद्रमिष भास्करम् ।
 अर्जुना दृश्य सप्रभ्रवा बभूवोन् इवम्बरम् ॥ ८ ॥
 वहाँ आते हुए वे महर्षि ठहरित होते हुए स्वर्गके समान

तेजस्वी दिसानी देते थे । उन्हें देखकर राधा अर्जुन बलिष्ठ
 रह गया । उन्हे उन ब्रह्मर्षिके चरनोंमें उठी तब अम्बररत्नके
 प्रणाम किया जैसे इन्द्र ब्रह्माधीके आगे मस्तक हलते हैं ॥
 स तस्य मनुष्यं गां पाद्यमर्घ्यं निवेशे च ।
 पुष्टस्त्यमाह राजेन्द्रो हर्षगद्गदवा मिरा ॥ ९ ॥
 ब्रह्मर्षिके पाद्य, अर्घ्य मनुष्यके और गौ समर्पित करने-
 यकथिराज अर्जुनने हर्षगद्गद वालीमें पुष्टस्वधीसे कहा—॥९॥
 अथैवममरावत्या तुल्या माहिष्मती कृतम् ।
 अथाह तु द्विजेन्द्र त्वा यस्मात् पश्यामि सुहृदाम् ॥ १० ॥
 द्विजेन्द्र ! आपका दर्शन परम शुभम् है तथापि अन्त में
 आपके दर्शनका शुक ठठा रहा है । इस प्रकार श्रीपञ्चभार
 अपने इस माहिष्मतीपुरीको अमरावतीपुरीके उन्मत्त गौर-
 शाकिनी बना दिया ॥ ९ ॥
 अथ मे कुशाब्ध देव अथ मे कुशाब्ध ब्रह्मम् ।
 अथ मे सफलं जन्म अथ मे सफलं तपः ॥ ११ ॥
 यत् ते देवगणैर्वन्द्यो कन्देऽहं करणौ तव ।
 इदं राज्यमिमे पुत्रा इमे वारा इमे जपम् ।
 प्रह्लात् किं कुर्मो किं कार्यमाहाययतु मो भवान् ॥ १२ ॥
 देव ! आज मैं आपके देववन्द्य चरनोंकी कल्पना कर
 रहा हूँ अत आज ही मैं वास्तवमें उकुशाब्ध हूँ । आज मेरा
 जन्म निरिष्य पूज हो गया । आज ही मेरा जन्म उन्मत्त हुआ
 और तपस्या भी सार्थक हो गयी । प्रह्लात् ! यह राजा वे
 श्री-पुत्र और हम सब जेना आपके ही हैं । आप अन्त
 बीक्ष्ये । हम आपकी क्या सेवा करें ? ॥ ११ १२ ॥
 त धर्मोऽग्निपु पुत्रेऽपि शिव पूषा च पार्ष्णिभम् ।
 पुष्टस्त्योपाद्य राज्ञान वैहयाणा तपार्जुनम् ॥ १३ ॥
 तब पुष्टस्वधी हैरतपक अर्जुनके चरन, अग्नि और पुर्ण-
 च कुशाब्ध-समाचार पूछकर उन्हे इस प्रकार बोले—॥ १३ ॥
 तपोऽग्निपुत्रजपार्जुन पूर्णचन्द्रनिभानम् ।
 अर्जुनं ते बलं यम वृहतीवस्तस्या जितम् ॥ १४ ॥
 पूर्ण चन्द्रमाके समान मनोरमुकवाके क्रावन्मननरोक्ष ।
 द्वन्द्वारे कच्छी श्रीं दृक्त्वा नहीं है क्योंकि द्वन्द्वने रक्षणीको
 भीत किया ॥ १४ ॥
 अथात् पश्येपतिष्ठतां निष्कण्ठी सागरानिधौ ।
 सोऽयं नृप त्वया बद्धो दौत्रो मे रणभुजयः ॥ १५ ॥
 क्लिष्टके मन्ते उग्र और वायु भी बहलका क्रोधकर
 सेकामे उपलब्ध होते हैं, तब मेरे रणभुजय योवको द्वन्द्वने
 संभाममें बाँध किया ॥ १५ ॥
 पुत्रकथ्य पश्या पीत ज्वम विद्यावितं त्वया ।
 मर्द्याक्याय् वाच्यमनोऽथ मुञ्च दास्य ब्रह्मणम् ॥ १६ ॥

येषां करके तुम मेरे इस बानेका यह भी गय और
 जैन आने नामक विद्वान् पीठ लिया । बल ! अब मेरे
 करनेसे तुम बखाननको छोड़ दो । यह तुमसे मेरी याचना
 है ॥ १६ ॥

पुत्रस्तथायां प्रपुत्रोश्चे न किञ्चन बन्धोऽर्जुनः ।
 मुमोक्ष वै पार्थिवेन्द्रो राक्षसेन्द्र प्रहृष्टयत् ॥ १७ ॥

पुत्रस्तथायां इव आकाशे शिरोधार्यं करक अर्जुनेने इसके
 निरपीठ छोड़े बात नहीं करी । उस राजाशिराबने वही प्रधानदा-
 के खय राक्षसराज रावणका कल्पनसे मुक्त कर दिया ॥ १७ ॥

स त प्रमुक्ष्य विद्वद्वारिभर्जुनः

प्रपुत्र्य विद्वान्भरणस्रगम्बरैः ।

महिंसक सख्यमुपेत्य सामिक

प्रणम्य स ब्रह्मसुत गृह ययौ ॥ १८ ॥

उस देवतोही राक्षसको बन्धनमुक्त करके अर्जुनेने विद्वान्
 भर्जुनस्य मातृ और वल्लिसे उसका पूजा किया और अग्निको
 लक्ष्मी बनाकर उसके साथ ऐसी मित्रताका सम्बन्ध स्थापित
 किया किन्तु हाथ फिरकी दिशा न हो (अर्थात् उन दोनोंने
 पर प्रविशती कि इमलाग अपनी मैत्री का उपयोग दूखे प्राणियों
 की दिखाने नहीं करेगी) । इसके बाद ब्रह्मपुत्र पुत्रस्तथायांको
 प्रणाम करके राजा अर्जुन अपने घरको लौट गया ॥ १८ ॥

पुत्रस्तथायां च स्वपत्नो राक्षसेन्द्रः प्रतपयाम् ।
 परिप्लवका कृतातिष्यो लखमानो विनिर्मितः ॥ १९ ॥

इस प्रकार अर्जुनहाथ आतिथ्य-सत्कार करके लौटें गये

हृत्पार्यं श्रीमद्रामायणे वाष्पतीश्रिये आदिश्राम्ये उत्तरकाण्डे प्रथमः सर्गः ॥ १३ ॥

इस प्रकार श्रीमद्भगीवतपुराण अष्टाध्यायके उत्तरकाण्डके उत्तरप्रथमे तैत्तिरीयैः सर्ग पूरा हुआ ॥ १३ ॥

चतुर्दश सर्ग

वालीके द्वारा रावणका परामर्श तथा रावणका उन्हें अपना मित्र बनाना

अर्जुनेन विमुक्तस्तु रावणो राक्षसाधिपः ।

अक्षरं पूषिर्षी सवामिनिरिविष्णस्तथा कृतः ॥ १ ॥

अर्जुनसे पुत्रकाय पाकर राक्षसराज रावण निर्वेदरहित

हो पुन खरी पूषीपर विचरन करने लगा ॥ १ ॥

राक्षस वा मनुष्य वा शृणुते य वस्त्रधिकम् ।

रावणस्त समासाय युद्धे ह्यवति वर्तितः ॥ २ ॥

रावण हो वा मनुष्य किन्तु भी वह वस्त्रसे बड़ा-बड़ा

मुनय वा उथीके पत पशुबन्धर अभिमानी रावण उसे युद्धके

लिये लक्ष्यकरता था ॥ २ ॥

कदाचित् किपिकुम्भो नगरीं पालिपालिताम् ।

गत्याऽऽह्वयति युद्धाय पालिन इममालिन्म् ॥ ३ ॥

कनकम् एक दिन वह पालीहाथ पालित किपिकुम्भापुरी

से बाहर मुनकमकाशीवालीका युद्धके लिये लक्ष्यकरने

लगा ॥ ३ ॥

प्रवापी राघवराज रावणको पुत्रस्तथायांने हृदयसे ध्यात किया,
 परन्तु वह परमपथ करन स्मित ही रहा ॥ १९ ॥

पितामहसुतश्चापि पुत्रस्तयो मुनिपुङ्गवः ।

मोक्षयित्वा दशग्रीष्व ब्रह्मलोक जगाम ह ॥ २० ॥

दशग्रीष्वको बुद्धाकर ब्रह्मलोकके पुत्र मुनिवर पुत्रस्तथायां

पुन ब्रह्मलोकका शते गये ॥ २ ॥

एष स रावणः प्राप्तः कीलपीपाठ प्रथयन्म् ।

पुत्रस्तथायांश्चापि पुनर्मुक्तो महाबलः ॥ २१ ॥

इस प्रकार रावणको अर्जुनकी अर्जुनक हाथसे पराजित

होना पड़ा था और फिर पुत्रस्तथायांके करनेसे उस महाबली

राक्षसको मुक्तकरा गया था ॥ २१ ॥

एवं यस्मिन्पो वलिनः पत्ति राघवकल्पन ।

मायका हि परे कथयौ य इच्छेच्छ्रेयं कारतनः ॥ २२ ॥

रघुकल्पनन्दन ! इस प्रकार अर्जुनसे यक्षवा-से ब्रह्मवा-
 नीर पड़े हुए हैं अतः जो अपना कल्याण चाहे उसे दुनरेको

अत्रोचना नहीं करनी चाहिये ॥ २२ ॥

ततः स राजा पिशित्यशानार्त्ता

सहस्रनाहोदयसन्मय मीचीम् ।

पुनर्नृपाणां कर्तनं चक्रर

चक्रर स्वर्गो पूषिर्षी च वृषात् ॥ २३ ॥

स्वर्गनाहोदय मीची पाकर राक्षसका राजा रावण पुन

पुनर्नृपाणां कर्तनं चक्रर स्वर्गो पूषिर्षी च वृषात् ॥ २३ ॥

पुनर्नृपाणां कर्तनं चक्रर स्वर्गो पूषिर्षी च वृषात् ॥ २३ ॥

पुनर्नृपाणां कर्तनं चक्रर स्वर्गो पूषिर्षी च वृषात् ॥ २३ ॥

पुनर्नृपाणां कर्तनं चक्रर स्वर्गो पूषिर्षी च वृषात् ॥ २३ ॥

पुनर्नृपाणां कर्तनं चक्रर स्वर्गो पूषिर्षी च वृषात् ॥ २३ ॥

पुनर्नृपाणां कर्तनं चक्रर स्वर्गो पूषिर्षी च वृषात् ॥ २३ ॥

पुनर्नृपाणां कर्तनं चक्रर स्वर्गो पूषिर्षी च वृषात् ॥ २३ ॥

पुनर्नृपाणां कर्तनं चक्रर स्वर्गो पूषिर्षी च वृषात् ॥ २३ ॥

पुनर्नृपाणां कर्तनं चक्रर स्वर्गो पूषिर्षी च वृषात् ॥ २३ ॥

पुनर्नृपाणां कर्तनं चक्रर स्वर्गो पूषिर्षी च वृषात् ॥ २३ ॥

पुनर्नृपाणां कर्तनं चक्रर स्वर्गो पूषिर्षी च वृषात् ॥ २३ ॥

पुनर्नृपाणां कर्तनं चक्रर स्वर्गो पूषिर्षी च वृषात् ॥ २३ ॥

पुनर्नृपाणां कर्तनं चक्रर स्वर्गो पूषिर्षी च वृषात् ॥ २३ ॥

पुनर्नृपाणां कर्तनं चक्रर स्वर्गो पूषिर्षी च वृषात् ॥ २३ ॥

पुनर्नृपाणां कर्तनं चक्रर स्वर्गो पूषिर्षी च वृषात् ॥ २३ ॥

पुनर्नृपाणां कर्तनं चक्रर स्वर्गो पूषिर्षी च वृषात् ॥ २३ ॥

पुनर्नृपाणां कर्तनं चक्रर स्वर्गो पूषिर्षी च वृषात् ॥ २३ ॥

पुनर्नृपाणां कर्तनं चक्रर स्वर्गो पूषिर्षी च वृषात् ॥ २३ ॥

पुनर्नृपाणां कर्तनं चक्रर स्वर्गो पूषिर्षी च वृषात् ॥ २३ ॥

पुनर्नृपाणां कर्तनं चक्रर स्वर्गो पूषिर्षी च वृषात् ॥ २३ ॥

पुनर्नृपाणां कर्तनं चक्रर स्वर्गो पूषिर्षी च वृषात् ॥ २३ ॥

पुनर्नृपाणां कर्तनं चक्रर स्वर्गो पूषिर्षी च वृषात् ॥ २३ ॥

पुनर्नृपाणां कर्तनं चक्रर स्वर्गो पूषिर्षी च वृषात् ॥ २३ ॥

एतानस्त्रिभयान् पश्य प एने शङ्खपाप्पुरा ।
 युवार्थिनामिमे गच्छन् यानराधिपतेजसा ॥ ७ ॥
 पाप्मन् । बेसिये य जो शङ्खके समान उच्छ्वस इन्द्रियों
 के ठेर सग रहे हैं, ये वासीके ताप मुझकी इच्छासे भाग
 हुए आप-जैसे बीरोंके ही हैं । बनरगम वासीके ठेरसे ही
 इन सबका अन्त हुआ है ॥ ७ ॥
 यद्वाभूत्तरसाः पीतस्त्वया राक्षस राक्षस ।
 तद्वा यास्त्रिणमासाद्य तन्मृत तव जीवितम् ॥ ८ ॥
 पाक्षस राक्षस । यदि आपने अमृतपत्र रस पी लिया हो
 तो भी अब आप वासीसे टकरा लेंगे, तब वही आपके जीवन-
 का अन्तिम क्षण होगा ॥ ८ ॥
 पश्येदूर्ध्वं जगच्चित्रमिमं विभवसः सुत ।
 इत् मुहूर्ते विष्टस्य तुर्ध्वं ते भविष्यति ॥ ९ ॥
 विभवाकुमार । वासी उभयों आशयोंके मन्थार हैं ।
 आप इस समय इनका दर्शन करेंगे । केवल इष्टी मुहूर्तके
 ऊनकी प्रतिकल्पके किये ठहरिये फिर तो आपके किये जीवन
 दुर्धम हो क्षयण ॥ ९ ॥
 अथवा त्वरसे मर्तुं गच्छ दक्षिणसागरम् ।
 वाञ्छितं द्रक्ष्यसे तत्र भूमिष्ठमिव पावकम् ॥ १० ॥
 अथवा यदि आपके मनके किये बहुत बन्दी बनी हो
 तो दक्षिण समुद्रके तटपर चले जाइये । वहाँ आपके पृथ्वीपर
 स्थित हुए अनिदेवके समान वासीका दर्शन होगा ॥ १० ॥
 स तु तारं विनिर्भर्त्स्य राक्षसो ज्योकरावणः ।
 पुष्पकं तत् समारुह्य प्रययौ दक्षिण्वायवम् ॥ ११ ॥
 तब ज्योकराका रुजानबाहे रजवनने तारको भ्रम-हुए चकर
 पुष्पकमिमानपर आरुढ़ हो दक्षिण समुद्रकी ओर प्रस्थान
 किया ॥ ११ ॥
 तत्र हेमनिरिप्रक्य तदप्यार्कनिभाननम् ।
 रावणो वास्त्रिण इधु सध्वोपासक्तत्परम् ॥ १२ ॥
 वहाँ रावणने सुवर्णनिरिके समान ज्योके वासीको पंथो
 पारुन करते हुए देखा । उनका मुख प्रभावशक्तके सूर्यकी
 भाँति अथव प्रभासे उदासिष्ठ हो रहा था ॥ १२ ॥
 पुष्पकात्पवस्रभाय रावणोऽक्षानसनिभः ।
 प्रहर्तुं वाञ्छितं सूर्यं निःशङ्कपद्ममजसत् ॥ १३ ॥
 उन्हें देखकर वासीके समान भाव रावण पुष्पकसे
 उतर पड़ा और वासीके पकड़नेके किये बन्दी-बन्दी उनकी
 ओर बढ़ने लगा । उत समय वह अपने पैरोंकी अग्रत नहीं
 होने देखा था ॥ १३ ॥
 यच्छ्रय्या तदा द्रष्टो वास्त्रिणापि स रावणः ।
 पापाभिप्रायकं इधु चकार न तु सम्भ्रमम् ॥ १४ ॥
 देखनेके वासीने भी रावणका देख लिया किन्तु वे
 उठके पापपूर्ण अभिप्रायको अन्तर भी पकड़ये नहीं ॥ १४ ॥
 शशमाकस्य सिंहो वा पथगं गच्छो यथा ।

न चिन्तयति त वासी रावण पापनिश्चयम् ॥ १५ ॥
 जैसे सिंह सरगेशको और गच्छ सर्वको देखकर भी
 उलझी परना नहीं करता, उन्ही प्रकार वासीने कल्पपूर्व निश्चय
 रखनेवाले रावणको देखकर भी चिन्ता नहीं की ॥ १५ ॥
 शिशुसामाणमायास्त रावण पापकोतसम् ।
 कसायसम्भिन कृत्वा गमिष्ये त्रीन् महाबन्धनम् ॥ १६ ॥
 उन्होंने यह निश्चय कर लिया था कि अब पाकसा यन्त्र
 मुझे पकड़नेकी इच्छासे निष्कट आयेगा तब मैं इसे फँसने
 दवाकर अटका दूँगा और इसे किये-रिये रोग तीन महाबन्धन-
 पर भी हो आऊँगा ॥ १६ ॥
 प्रक्षयन्त्यरिं ममाहस्य कंसवृक्षराम्बरम् ।
 सम्बभान वृशाधीश गच्छस्येव पक्वाम् ॥ १७ ॥
 इसकी शोष हाथ-पैर और कण सिद्धसे होंगे । अब
 मेरी बौद्धने दवा होगा और उत दवामें जेग मेरी शत्रुको
 गच्छके पंजरे बन्ने हुए सर्वके समान अटके देखेंगे ॥ १७ ॥
 इत्येव मतिमास्त्रय पत्नी मौनमुपस्थितः ।
 जपन् वै नैगमान् मन्त्रांस्तस्यौ परतराद्रिव ॥ १८ ॥
 ऐसा निश्चय करके वासी मौन ही रहे और वैदिक मन्त्रोंका
 जप करते हुए गिरियाव सुमेरुकी भाँति लड़े रहे ॥ १८ ॥
 तायन्तोष्य जिघृक्षन्तौ हरियाससफरिणी ।
 प्रयत्नन्तौ तत् कर्म ईशतुर्बन्धुर्जितौ ॥ १९ ॥
 इस प्रकार बन्नेके अभिमानसे भी हुए वे बनरगम और
 रजस्रज्य होनेकी एक वृत्तको पकड़ना चाहते थे । दोनों ही
 इसके किये प्रयत्नशील थे और दोनों ही वह काम बनानेकी
 यत्नमें लगे थे ॥ १९ ॥
 हस्तामार्तुं तु तं मत्वा पावशाब्देन रावणम् ।
 पराङ्मुखोऽपि जप्राह वासी सर्पनिबाण्डजः ॥ २० ॥
 रावणके पैरोंकी इच्छा-की अग्रतसे वासी पर उमर लगे
 कि अब रावण हाथ बन्धकर मुझे पकड़ना चाहता है । फिर
 तो वृत्ती और मुँह किये हानेपर भी वासीने उसे उन्ही लक्ष्य
 लक्ष्य पकड़ लिया जैसे गच्छ सर्वको देखने लेता है ॥ २० ॥
 प्रहर्तुकाम त दृष्ट्वा रक्षसामीश्वर हरिः ।
 जमुत्पपात वेगेन कृत्वा कसायसम्भिनम् ॥ २१ ॥
 पकड़नेकी इच्छाबाहे उत रजस्रज्यको वासीने लक्ष्य ही
 पकड़कर अपनी फँसने अटका किया और बड़े वेगसे वे
 आकाशमें उड़के ॥ २१ ॥
 त य पीडयमान तु चितुस्त नसौर्मुहुः ।
 अहार रावण धात्री पक्वस्तोषर्त्तं यथा ॥ २२ ॥
 रावण अपने नल्लोसे बारंबार वासीको कष्टदेता और
 पीडा देता था तो भी जैसे शत्रु बाणधोके उड़ा से लक्ष्य
 है उन्ही प्रकार वासी रावणको बरानमें दवाये किये फिरो
 थे ॥ २२ ॥
 अथ ते राक्षसामात्प्या द्विपमाये वृक्षानमे ।

मुमोक्षयिष्यो वासि रघमाणा अभिद्रुताः ॥ २३ ॥
 इव प्रकर यवके इर शिष्ये शनैर उरुक् भ्रष्टी उषे
 बाधीते धुङ्गानिके शिष्ये क्रोधात्कुरु करते हुए उनके पीछे-पीछे
 रोहते रहे ॥ २३ ॥
 मन्वीयमानसौर्वाली आशतेऽम्बरमध्याग ॥
 मन्वीयमानो मेघीधैरम्बरस्य इवांशुमान् ॥ २४ ॥
 पीछे-पीछे उरुष चम्पते ये और आगे-आगे बाधी । इस
 मन्वामने वे आकाशके मध्यभागमें पहुँचकर मेघमूर्होसे
 मङ्गल हुए आकाशकर्त्री भङ्गमाभी सूर्यके उमान शोभा
 पते वे ॥ २४ ॥
 तेऽशक्नुवन्तः सम्प्राप्तुं पाञ्चिन राक्षसोत्तमाः ॥
 तस्य बाहूऽदवेगोल परिभ्राम्ता इवस्थिताः ॥ २५ ॥
 वे भेद्य राक्षस बहुत प्रयत्न करनेपर भी बाधीके पाठक
 न पहुँच सके । उनकी मुखाओं और बाँधोंके वेगसे उत्पन्न
 हुई बमुक्त दवेहोते यककर वे लड़े हो गये ॥ २५ ॥
 पाञ्चिमार्गात्पाञ्चमन् पर्वतेऽपि गच्छताः ॥
 किं पुनर्जीवमपेप्सुर्षिञ्चद् वै मांसघोषितम् ॥ २६ ॥
 बाधीके मार्गसे उड़ते हुए बड़े-बड़े पर्वत भी हट आते
 थे कि रक्त-संशयन शरीर धारण करनेवाला और जीवनकी
 रक्षा करनेवाला प्राणी उनके मार्गसे हट गया इसके शिष्ये तो
 धन्य ही क्या है ॥ २६ ॥
 आक्षिण्यजम्प्राप्तान् वानरोन्द्रो महाशयः ॥
 क्रमशः सागरान् सर्षान् सध्याकाशमधन्वत् ॥ २७ ॥
 किन्ती बरमे बाधी समुद्रोंक पहुँचते थे, उठनी बरमें
 शीतलनी पक्षियोंके समूह भी नहीं पहुँच पाते थे । उन महा-
 शयश्री वानरवाकने क्रमशः तभी समुद्रोंके तटपर पहुँचकर
 संघ-बन्धन किया ॥ २७ ॥
 सम्पूर्यमानो पातस्तु खचरैः खचरोत्तमः ॥
 पश्चिमं सागर बाधी आजगाम सरायणः ॥ २८ ॥
 समुद्रोंकी यात्रा करते हुए आकाशजारिकोंमें भेद्य बाधी-
 की तभी सेचर प्राणी पूजा एवं प्रशंसा करते थे । वे रायणध
 काचमें दबाये हुए पश्चिम समुद्रके तटपर आये ॥ २८ ॥
 तस्मिन् सध्यामुपासित्वा आत्वा जपत्वा च धारतः ॥
 उत्तर सागरं प्रायाद् वहमानो दशाननम् ॥ २९ ॥
 वहाँ स्थान संश्लेषण और जप करके वे वानरश्री
 दशाननको शिष्ये-शिष्ये उत्तर समुद्रके तटपर आ पहुँचे ॥ २९ ॥
 बहुयांजनसाहस्र वहमानो महाहरिः ॥
 बापुवध मनोवध जगाम सह दानुषा ॥ ३० ॥
 शत्रु और मनके उमान बैराग्यसे वे महावानर बाधी कई
 व्यस शोकवध रायणको बोधते रहे । फिर अपने उरु शत्रुके
 व्यस ही वे उत्तर समुद्रके किनारे गये ॥ ३० ॥
 उत्तरे सागरे सध्यामुपासित्वा दशाननम् ॥
 वहमानोऽगमद् बाधी पूर्वं वै स महोदधिम् ॥ ३१ ॥

उत्तरसागरके तटपर संश्लेषणा करके दशाननक
 मार बहन करते हुए बाधी पूर्वं विशाली महासागरके
 किनारे गये ॥ २९ ॥
 तथापि सध्यामन्वाश्या घासत्रिःस हरीम्बरा ।
 किंकिन्ध्यामभितो गृह्य रावण पुनरागमत् ॥ ३२ ॥
 वहाँ भी संश्लेषणा सम्यक् करके वे इन्द्रपुत्र वानरवा
 बाधी दशमुख रायणको बगलमें दबाये फिर किंकिन्ध्यापुरीके
 निम्न आये ॥ २९ ॥
 वसुधैवपि समुद्रेषु सध्यामन्वाश्या धारतः ॥
 रावणोऽहहनभ्राम्तः किंकिन्धोपधमऽपतत् ॥ ३३ ॥
 इस तरह चारों समुद्रोंमें संश्लेषणाका कार्य पूरा करके
 रायणको दानिके कारण यक हुए वानरवाक बाधी किंकिन्ध्याके
 उपवनमें आ पहुँचे ॥ ३३ ॥
 राष्य तु मुमोषाय स्वकृशात् कपिसत्तमः ॥
 कुतस्त्वमिति खोवाच प्रहसन् रावण मुहुः ॥ ३४ ॥
 वहाँ आकर उन कपिभेद्यने रायणको अपनी कर्लसे छोड़
 दिया और बारंबार ईच्छते हुए पूछा—क्यों भी तुम कहते
 भये हो ? ॥ ३४ ॥
 यिस्य तु महद् घत्वा भ्रमलोलनिरीक्षणः ॥
 राक्षसेन्द्रो हरीन्द्रं तमिद् पधममप्रवीत् ॥ ३५ ॥
 रायणकी कर्लसे भ्रमके कारण चञ्चल हो रही थी ।
 बाधीके इस अद्भुत पराक्रमको देखकर उसे महान् आश्चर्य
 हुआ और उस राक्षसवाकने उन वानरवाकसे इस प्रकार कहा—
 वानरोन्द्र महेश्मरभ राक्षसेन्द्रोऽसि रायणः ॥
 सुर्येप्सुरिह सम्प्रातः स आयासादितस्त्वया ॥ ३६ ॥
 भरोन्द्रके समान पराक्रमी वानरोन्द्र । मैं राक्षसेन्द्र रायण
 हूँ और मुझ करनेकी इच्छासे वहाँ आया था, तो वह मुझ
 को आपसे मित्र ही गया ॥ ३६ ॥
 अहो यत्तमहो धीयमहो गाम्भीर्यमेव च ।
 येमाह पशुपद् गृह्य आमितकस्तुर्येऽप्ययान् ॥ ३७ ॥
 अह ! आपमें अद्भुत बल है अद्भुत पराक्रम है और
 अद्वयबलक गम्भीरता है । मैंने मुझ पक्षकी तरह पकड़
 कर चारों समुद्रोंपर घुमाया है ॥ ३७ ॥
 पथमभ्रान्तवद् वीर दक्षिणेत्य च धारतः ॥
 मां वीरोऽहमातस्तु कोऽप्यो धीरो भविष्यति ॥ ३८ ॥
 वानरश्री । तुम्हारे विना बृहत् ब्रह्म देवा धरतीर
 देश ओ मुझे इस प्रकार किन्ना पके-भविष्यति शीघ्रतापूर्वक
 हो सके ॥ ३८ ॥
 जयाणामेव भूतार्था गतिरेया तुयङ्गम ।
 मनोऽनिलस्तुपर्णाणा तथ यात्र न संशयाः ॥ ३९ ॥
 (वानरवाक) ऐसी गति तो मूल बापु और गरुड—इन
 तीन भूतोंकी ही मुनी गयी है । निःसंशय इस अन्तमें वीर्य
 आप भी वैसे हीन वेगतास है ॥ ३९ ॥

सोऽह इदमस्तुम्यमिच्छामि हरिपुङ्गव ।
 स्वया सह विग सख्य सुखिगघ पावकप्रदा ॥ ४० ॥
 क्विमेह ! मैंने आपका बख देस लिया । अब मैं
 मन्त्रिन्ने खकी बनाकर आपके साथ छात्रके लिये स्नेहपूर्ण
 मित्रता कर केना चाहता हूँ ॥ ४ ॥
 वारा पुत्राः पुरं राष्ट्रं भोगाच्छ्रवन्भोजनम् ।
 सर्वमेवायिभक्त मी भयिष्यति हरीश्वर ॥ ४१ ॥
 पानरराज ! श्री पुत्र नाम्ग राज् भोग बख और
 भोजन—इन सभी बस्तुओंपर हम दोनोंका शाश्वत अभिपार
 हय ॥ ४१ ॥
 तदा प्रज्वालित्वाग्निं तावुभौ हरिराससौ ।
 भ्रातृत्वमुपसंगम्यौ परिष्वज्य परस्परम् ॥ ४२ ॥
 तब पानरराज और राक्षसराज दोनोंने मन्त्रि प्रणखित
 करके एक दूसरेके हृदयके अगाकर आपसमें भईपारेका
 एम्बक अङ्क ॥ ४२ ॥
 मयोम्य सन्वितकरी ततस्तौ हरिराससौ ।
 किञ्चिन्मां विशानुहृष्टौ सिद्धौ गिरिशुहामिव ॥ ४३ ॥
 इत्थार्थे श्रीमद्वाल्मीकीये आदिकाण्डे उत्तरकाण्डे षड्विंशः सर्गः ॥ १४ ॥
 इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीयने श्रीरामराज अरिभक्तके उत्तरकाण्डने षोडशो सर्ग पूर हुय ॥ १४ ॥

फिर वे दोनों वानर और राक्षस एक दूसरेका हाथ लम्बे
 बड़ी प्रसन्नताके साथ किञ्चिन्भापुरीके भीतर गये मन्त्रे से
 छिपि कियी गुफामें प्रवेश कर रहे हों ॥ ४१ ॥
 स तत्र मासमुपिताः सुमीव ह्य राजका ।
 भमात्परागतैर्नितशैलोलोकयोत्सावन्वर्षिभिः ॥ ४४ ॥
 राजका वहाँ सुमीवके तरह सम्मानित हो महीनेभर या
 फिर तीनों अश्वमेधे उखाड़ केकेकी इच्छा रखनेवाले उनके
 मन्त्री आकर उसे सिन्हा ले गये ॥ ४४ ॥
 परमेतत् पुरा पूर्णं चाङ्गिता रावणा प्रभो ।
 धर्मितश्च घृतश्यापि भ्राता पायकसन्निधौ ॥ ४५ ॥
 प्रभो ! इस प्रकार मैं बटना पहले प्रति हो चुकी है ।
 बाकीने राजकाके इराया और फिर मन्त्रिके समीप उसे अन्न
 भाई बना लिया ॥ ४५ ॥
 यत्नमप्रतिमं राम वालिनोऽभयवृत्तमम् ।
 सोऽपि स्वया विनिर्मुक्तः ह्यहमो बह्विना यथा ॥ ४६ ॥
 श्रीराम ! बाकीमें बहुत अधिक और अनुपम लयक
 परंतु आपने उसको भी अपनी बाचाभितसे उठी तरह रख
 कर बाका जैसे अग पतिभेके अन्न देती है ॥ ४६ ॥

षष्ठत्रिंश सर्ग

हनुमान्जीकी उत्पत्ति, शैलवावस्वामें इनका धर्म, राहु और ऐरावतपर आक्रमण, इन्द्रके वज्रसे
 इनकी मूर्छा, वायुके कोपसे ससारके प्राणियोंको कष्ट और उन्हें प्रसन्न करनेके
 लिये देवताओंमदिस ब्रह्माजीका उनके पास जाना
 अपृच्छत् तदा रामो दक्षिणारामस्य मुनिम् ।
 माङ्गल्यिर्नियोजयेत् इदमाह यत्रोऽधवत् ॥ १ ॥
 तब मन्त्रात् श्रीरामने राम बोझकर दक्षिण दिशामें
 निरगत करनेवाले अगल्य मुनिसे निवर्णके कर अर्पयुक्त
 पठ करी— ॥ १ ॥
 अनुसं यत्नमेतद् वै धास्त्रिने रावणस्य च ।
 न त्यजाम्यां हनुमता सर्गं स्थिति मतिर्मम ॥ २ ॥
 पार्ष्णे ! इत्थमे संदेह नहीं कि बाकी और राजकाके इस
 बखकी कदा तुम्हना मही थी; परंतु मंग पेख विचार दे कि
 इन दोनोंका बख मी हनुमान्जीके यत्नकी बराबरी नहीं कर
 सक्य या ॥ २ ॥
 शीघ्रं ब्राह्म्यं पशु धैर्यं प्राङ्गत मयसाधनम् ।
 विप्रमस्य प्रभाषय्य हनुमति हृताश्रयाः ॥ ३ ॥
 एरता दधना बल धैर्यं बुद्धिमत्ता नीति पराक्रम
 और प्रभाव—इन सभी लक्षणोंने हनुमान्जीन भीतर कर
 कर रक्खा है ॥ ३ ॥
 हृद्रेय नागर धीह्य नादृती कपियादिर्नाम् ।
 सत्याभ्याम्य मदापाहुर्यौज्यमर्तं गत प्युताः ॥ ४ ॥

अनुद्रको देखते ही वानर-सेना पचप ठठी दे—ज
 देख के महाबाहु और उनके धैर्य बंधाकर एक ही कर्मानमें
 वे मान्क अनुद्रको जीप गये ॥ ४ ॥
 धर्मपिरता पूर्णं कङ्कं रावणास्तापुर त्वा ।
 हया सम्भाषिता चापि सीता ह्यम्भासिता तथा ॥ ५ ॥
 फिर कङ्कपुरीके आधिदैविक रूपके पराश कर राजकाके
 मन्त्र-पुरासे गये धीकाकेसे मिले, उनसे बतकीत श्री अरे
 उन्हें धैर्य बंधाया ॥ ५ ॥
 सेनामया मग्निस्तुताः किङ्करा रावणारामका ।
 पते हनुमता तत्र परकेन विनिपासिता ॥ ६ ॥
 अर्थात् अशोकवनमें इन्होंने लगेले ही राजकाके सेना
 पतिथी मन्त्रिजुमारों किङ्को तथा राजपुत्र अन्धके मर
 गिया ॥ ६ ॥
 मूयो परभाद् विमुक्तेन भयपयिया दशममम् ।
 लम्बा भस्मीहृता येन पायकमेय मन्दिनी ॥ ७ ॥
 फिर वे मेघनादके नागदासे बंधे और स्वयं ही उड़क
 रा गये । तबभात् इन्होंने राजकाके बार्धसाप किया । जैसे अन्न-

धनञ्जी आगने यद् गौरी वृषी बभूवसी धी उधी प्रध्वर
 बह्नुपुषीञ्च बभूवकर मस कर दिवा ॥ ७ ॥
 न चक्षस्य न शक्रस्य न बिष्णोर्विचपस्य च ।
 कर्मणि तानि भूयन्ते यानि मुने हनुमतः ॥ ८ ॥
 धुवन्ते हनुमान्शीके ओ पराक्रम देसे गये हैं, जैसे
 भीतरपूर्व कर्म न हो कष्टके, न इन्द्रक न भगवान् विद्युके
 और न वरुणके ही मुने अन्ते हैं ॥ ८ ॥
 पशस्य बाहुवीर्येण लङ्का सीता च लक्ष्मण ।
 प्राप्ता मया स्वप्नैव राज्य मित्राणि दाधवा ॥ ९ ॥
 'गुप्ती' । मैंने तो इन्हेंकि बाहु-बलसे विष्णोरणके लिये
 बह्नु-समुपेण विष्णु, अयोप्यात्र राज्य तथा सीता स्वप्न,
 मित्र और वन्युक्तोंका प्राप्त किया है ॥ ९ ॥
 हनुमान् यदि मे न स्याद् धातुराधिपतेः सखा ।
 प्रवृत्तिमपि कोषेषु ज्ञानकन्याः शक्तिमान् भवेत् ॥ १० ॥
 यदि मुझे धानरराज सुधीके सखा हनुमान् न मिलते
 तो कन्यका फल समानेमें भी कौन समर्थ हो सकता था ॥
 किमर्थ वाली सैतेन सुप्रीयमियकाम्यया ।
 का वैरे समुत्पन्ने न कुण्ठो धीठभो यथा ॥ ११ ॥
 किन्तु समन बाधी और सुधीके विशेष दुष्मा उक्त समय
 दुर्भक्ता पिब करनेके लिये इन्होंने जैसे दावानक वृक्षको ब्रह्म
 रोक है उधी प्रध्वर वालीको क्यों नहीं मस कर बल ॥
 य समाने नहीं आता ॥ ११ ॥
 यदि धेवितवान् मन्ये हनुमान्तरमनो बलम् ।
 यद् दृष्टवाञ्छीबिदेष ह्यिदमन्त धानराधिपम् ॥ १२ ॥
 मैं तो ऐसा मानता हूँ कि उक्त समय हनुमान्शीके
 मनो बलका फल ही नहीं था । इसीसे ये अपने प्राणोंसे भी
 पिब धानरराज सुधीको कष्ट उठाते देखते रहे ॥ १२ ॥
 एतस्मै भगवन् सर्वे हनुमति महामुने ।
 विस्तरेण यथावत्स कथयामरपूजित ॥ १३ ॥
 देवकन्य महामुने । भगवान् । आप हनुमान्शीके विवर-
 ने में सब बातें यथार्थरूपसे विस्तारपूर्वक बताइये ॥ १३ ॥
 राघवस्य यथा भुत्वा हेतुतुक्तसूत्रिस्ततः ।
 हनुमता समस्त तमिद् वयनमग्रचीत् ॥ १४ ॥
 भीरमचक्रशीके मे कुटिकुक्त वचन सुनकर महर्षि
 मगलशी हनुमान्शीके सामने ही उनसे इस प्रध्वर बोले—॥
 सत्यमेतद् द्रष्टुमेष्ट यद् प्रवीणि हनुमति ।
 न बन्ते विद्यतं तुस्यो न गतौ न मती परः ॥ १५ ॥
 न बन्ते विद्यतं तुस्यो न गतौ न मती परः ॥ १५ ॥
 पशुकुलीक भीरम । हनुमान्शीके विषयमें आप जो
 कुछ करते हैं यह सब सत्य ही है । बस, बुद्धि और गरिमें
 इनको क्याही करनेकन्य बलका कोई नहीं है ॥ १५ ॥
 समोपशापैः शापस्तु वृत्तोऽस्य मुनिभिः पुरा ।
 न वक्ता हि बस सर्वे बली सन्तरिमद्वन् ॥ १६ ॥
 'धनुमन्त एतन्वन् । किन्तु शाप कभी व्यर्थ नहीं

जाता ऐसे मुनिमें पूर्वकाहमें इन्हें यह भाप दे दिया था
 कि कष्ट खनेपर भी इनका अपने पूरे बलका फल नहीं रहेगा ॥
 यान्येऽप्येतेन यत् कर्म कृत राम महायत्न ।
 तत्र घणायितु शक्यमिति बाल्यतयास्यत ॥ १७ ॥
 महाबली भीरम । इन्होंने बचपनेमें भी जो महान्
 कर्म किया था उसका बचन नहीं किया था मन्त्रा । उन
 निनों में बाल्यमापसे—अन्यानकी तरह रहते थे ॥ १७ ॥
 यदि यास्ति त्यभिप्रायः सद्योऽनु तव राघव ।
 समाभाष मतिं राम निशामय यन्माम्यहम् ॥ १८ ॥
 एतन्वन् । यदि हनुमान्शीका शक्ति मुनेके लिये
 भाग्यी शक्ति इच्छा हो तो निचको एकाम करके मुनिये ।
 मैं सारी बातें बता रहा हूँ ॥ १८ ॥
 सूर्यदत्तवरस्पर्णः सुमेरुनाम पर्यत ।
 यत्र राज्य प्रशास्यस्य केसरी नाम वै पिता ॥ १९ ॥
 भगवान् सूर्यके बरहमते विश्व स्वल्प सुवचनम
 हा गया है देख एक मुनेक नामसे प्रसिद्ध पर्यत है जो
 हनुमान्शीक पिता कसरी राज्य करते हैं ॥ १९ ॥
 तस्य भार्या वभूवेषा भङ्गनेति परिभुत्वा ।
 सनयामास तस्यां वै बायुरात्मजमुत्तमम् ॥ २० ॥
 उनकी भङ्गना नामसे विष्णुवत् भिन्वता कनी थी ।
 उसके गर्भसे बायुदेवने एक उत्तम पुत्रको जन्य दिया ॥ २० ॥
 शास्त्रिश्चकनिभाभास प्राच्येनैव तदाङ्गना ।
 पञ्चम्याहर्तुक्वमा वै निष्कान्ता गहने धरा ॥ २१ ॥
 भङ्गानने षप इनको कम दिया, उस समन इन्की अङ्ग
 कान्ति काहमें पैदा होनेका बलके आश्रमागी भौति विंगल
 बर्षी थी । एक दिन माता भङ्गना फल अपनेक लिय
 आश्रमसे निकली और गहन वनमें बसी गयी ॥ २१ ॥
 एष मातृर्वियोगाच्च भुषया च मृदावर्जितः ।
 ददौ दिशुरस्यैर्ये शिनुः दारयमे यथा ॥ २२ ॥
 उक्त समय मातासे शिशु अपने और भूलसे अस्वत्
 पीडित इनके कारण शिशु हनुमान् उधी तरह खेर खेरने रने
 सगे, जैसे पृथ्वीमें हरकहोंके वनक भीतर कुमार कामिनेय
 रोव थे ॥ २२ ॥
 तत्रोद्यन्त विषस्वन्त जपापुण्योत्करोपमम् ।
 वृक्षं पञ्चलोभाच्च हान्यपात रतिं प्रति ॥ ३ ॥
 'वृत्तेहीमें इन्हें अष्टमुमक समन अक्ष रंगवासे सूत्रैव
 उदित होते दिखायी दिय । हनुमान्शीके उन्हे कोई फल
 समझा और ये उक्त फलके सामने सूर्यकी ओर उद्यत ॥ २३ ॥
 वासमर्कभिसुको धालो वासका इप मूर्तिमान् ।
 प्रहीतुक्वामो वाळार्क इपान्ऽन्वरमप्यगा ॥ २४ ॥
 पाठमर्षी और मुँह किये मूर्तिमान् वासमर्कके समान
 बालक हनुमान् पाठमर्षीके पकड़नेकी इच्छामें आश्रममें उद्यत
 पसे वा रहे ॥ २४ ॥

पठसिन् द्रव्यमाने तु शिशुभाधे हनुमति ।
 वेद्यदानवपक्षाणा विस्मयः सुमहात्मभूत् ॥ २५ ॥
 श्रीयथावस्थामे हनुमान् क्व इव तद्व उड्ड रहे ये,
 उड्ड सम्य उड्डे देलकर देवनाभौ शान्तौ तद्य नदीको बडा
 विस्रव ह्वम् ॥ २५ ॥
 नाप्येव पंगशान् वायुर्गुरुहो न मनस्ताया ।
 यथाय वायुपुत्रस्तु क्रमतेऽन्वरसुचमम् ॥ २६ ॥
 वे छेजने छने—यह वायुभ पुत्र किं प्रकर उँवे
 भाक्यमो वेगपूर्वक उड्ड रहा है ऐसा वेग न तो वायुमें है,
 न गरुडमें है और न मनमें ही है ॥ २६ ॥
 यदि तावच्छिशोरस्य ईड्यो गतिविक्रमः ।
 पीयन यक्षमासाद्य कर्षं येगो भविष्यति ॥ २७ ॥
 यदि बाल्यावस्थामे ही इव शिशुभ देव वेग और
 परक्रम है तो पीयनक कस पाकर इत्यत्र वेग कैश्च होग्य ॥
 तमनुस्यूयत वायु द्रव्यमत् पुत्रमारमना ।
 सूर्यवाहमयात् रक्षस्तुपात्तयपीतमः ॥ २८ ॥
 अपने पुत्रभ सूर्यो और षते देल उसे शरके मन्ते
 बलानेके लिये उड्ड सम्य वायुदेव भी बर्षके ठेरकी मौति
 शीतल होकर उरके पीठ-पीठे चकने छने ॥ २८ ॥
 बहुपोजनसाहस्रं ब्रह्मन्नेव गतोऽन्वरम् ।
 पितृर्ब्रह्माच्च बाल्याच्च भास्कररम्याद्यमागतः ॥ २९ ॥
 वृत् प्रकर बालक हनुमान् अपने और पिताके बन्ते
 कई उड्ड भावन ब्रह्मरूपके आँते बन्ते गये और सूर्यदेवके
 समीप पहुँच गये ॥ २९ ॥
 शिशुरेव तन्त्रोपच इति मत्वा विधाकरः ।
 कार्यं आसिन् समायत्तमित्येव न ददाह साः ॥ ३० ॥
 भूयदेवने वह छेजकर कि भगी यह बालक है इसे
 गुण-व्ययक ज्ञत नहीं है और इसके अर्पण देव-ग्रामोभ्य भी
 बहुत-सा मन्वी करवे है—इन्हें ज्ञानया नहीं ॥ ३० ॥
 यमय विधसं ह्येव प्रहीतुं भास्कर प्लुता ।
 तमेव विधसं राष्ट्रिर्गुणसति विधाकरम् ॥ ३१ ॥
 किंत दिन हनुमान्की सूर्यदेवके पकड़नेके लिये उड्डे
 ये उठी दिन रात सूर्यदेवपर मंत्र ब्रह्माना पारहा या ॥ ३१ ॥
 म्नेन च परामुघो राष्ट्रः सूर्यरूपोपरि ।
 मपन्नन्तस्तत्काल्ये राष्ट्रमन्त्रार्कमर्शनः ॥ ३२ ॥
 हनुमान्कीने सूर्यके रथके ऊपर मन्त्रों क्व रातुभ
 तर्प किया तत्र पन्त्रमा और सूर्यभ मर्शन करनेवाक्य रातु
 मन्थीत हा बहोसे मग कडा हुआ ॥ ३२ ॥
 इन्द्रस्य भजन गत्वा सरोयः सिद्धिक्वसुता ।
 मपवीद् भुवुदि कृवा दृषं द्यगजैर्नृतम् ॥ ३३ ॥
 सिद्धिक्वा वह पुत्र रोयसे मरकर इन्द्रके मन्त्रमें गय
 और देवकाउँसे सिंहे हुए इन्द्रके अगने मोहें द्यो करके
 नोच—॥ ३३ ॥

भुमुसापत्यं क्त्वा चन्द्रार्कौ मम कसव ।
 किमिद् तन् तव्या दृत्तमन्यस्य बलवृत्तम् ॥ ३४ ॥
 म्भू और वृत्तासुरक वच करनेवाके गणव । मन्त्रे
 चन्द्रमा और सूर्यके मुसे अपनी भूक वृत् करनेके लकने
 क्त्वाये दिया याः किं उच आपने उँवे वृत्के इकने कर
 दिया है । ऐसा क्यों हुआ ? ॥ ३४ ॥
 मघार्हं पर्वकण्ठे तु त्रिपृष्ठः सूर्यममलः ।
 मयान्यो राष्ट्रारासाद्य जग्राह सहासा रविम् ॥ ३५ ॥
 मात्र पर्व (अमलास्या) के समय मैं सूर्यदेवके मत्
 करनेकी इच्छसे गया या । इतनेहीमें वृत्के रातुने मन्त्र
 शर्य सूर्यके पकड़ किया ॥ ३५ ॥
 स राहोर्बचन भुक्त्वा वासयः सम्भ्रमाश्रितः ।
 उत्पपात्तसत हित्वा उड्डहृत्काश्र्मर्कौ कबम् ॥ ३६ ॥
 रातुकी यह बात सुनकर देवराज इन्द्र भक्य गये और
 छेनेकी मन्त्र परने अपना सिंहावन छोड़कर उठ लगे हुए ।
 ततः कैलासकूटम सतुर्यस्त मन्त्राबम् ।
 शृङ्गारधारिण्यं प्राद्यु सूर्येर्भय्याहृतासिन्म ॥ ३७ ॥
 इन्द्रः करीन्द्रमातद्य राष्ट्रं कृत्वा पुरासुरम् ।
 प्रायात् पशभबन्त सूर्यः सहानेन हनुमता ॥ ३८ ॥
 फिर कैलास-शिखरके समान उड्डकः पर होल्लि
 विभूषित, मरके बाय बहानेवाले, मौलि-मौलिके शृङ्गके
 पुत्र रातु ही उँवे और सुवर्णमयी पन्थके मारक्य बहल
 करनेवाके गकराव देवराजक आक्य हो देवराज इन्द्र रातुके
 अगे करके उच ज्ञानपर गये क्यों हनुमान्कीके लय सूर्यके
 नियकमान ये ॥ ३७-३८ ॥
 मघातिरमसेनागाह राष्ट्रकस्तुज्य वासवम् ।
 म्नेन च स वै इष्टः प्रधाव्यौल्लूकहतम् ॥ ३९ ॥
 म्भूर रातु इन्द्रके छोड़कर बड़े कैलसे भाये क्व गय ।
 इसी समय फलत-शिखरके समान भाकरवाके रोडते हुए
 रातुके हनुमान्कीने देसा ॥ ३९ ॥
 ततः सूर्यं समुस्तुज्य राष्ट्रं पत्तमवेक्ष्य च ।
 उत्पपात्त पुसर्षोमं प्रहीतुं सिद्धिक्वसुतम् ॥ ४० ॥
 तत्र रातुके ही पकके क्त्वाये देलकर कसक हनुमन्
 सूर्यदेवके ओड उठ सिद्धिक्वपुत्रके ही पकड़नेके लिये पुत्र
 भाक्यमो उड्डे ॥ ४० ॥
 उत्सृज्यार्कमिमं राम प्रधावन्तं द्रव्यहमम् ।
 मनेर्द्वयं पराश्रुतो मुक्करोयः पराश्रुतः ॥ ४१ ॥
 श्रीयम । सूर्यके छोड़कर अपनी ओर बाबा करनेवाके
 इन बातर हनुमान्को देलते ही रातु कित्वा मुलमान ही रोत
 या पीठेकी ओर मुडकर माह ॥ ४१ ॥
 इन्द्रमारोसमानस्तु षाठारं सिद्धिक्वसुतम् ।
 इन्द्र इन्द्रेति सभासात्तुसुसुसुभारत् ॥ ४२ ॥
 उड्ड समय सिद्धिक्वपुत्र रातु अपने फलक इन्द्रके ही

अग्नी रथके स्थिते कथयतु वा मयके मारे बारंबार वन्द्य ।
 इन्द्र ! की पुष्कर मचान स्मर ॥ ४२ ॥
 राहोर्षिकशामानस्य प्रागोवाक्यसिद्धिस्तु खरम् ।
 भुवनेन्द्रोवाच मा मैषीरहमेतं निपूय्ये ॥ ४३ ॥
 वृक्षेभ्यो ह्युप राघुके खरको चो परमेष्ठ्य परधाना बुवा
 वा, सुनकर इन्द्र भोले—इत्ये मत् । मै इत् आक्रमणभयभी
 मत् इत्येव ॥ ४३ ॥
 पेटावतं ततो ह्यग्रा महत्तद्विद्विमस्यपि ।
 फल त हस्तिराजानमभिदुप्राय मावसिः ॥ ४४ ॥
 पालश्यात् वेगलको बेलकर इन्होंने उते मी एक
 निद्रास फल समझा और उस गङ्गाबन्धो पकड़नेके स्थिते ये
 उन्नी और बोड़े ॥ ४४ ॥
 तपस्य धावतो रूपमैरथतजिपूक्षया ।
 मुहूर्तमभयत् घोरमिन्द्राम्भोरिव भास्वरम् ॥ ४५ ॥
 पेटावतको पकड़नेकी इच्छासे दौड़ते हुए इन्द्रमन्त्रीका
 स हा पकीके स्थिते इन्द्र और अग्निके समान प्रकाशमान एवं
 मकर हो गया ॥ ४५ ॥
 पथमाधायमान तु गतिमुन्मत्तः शचीपतिः ।
 हस्तगतावतिमुक्तेन कुलिशेनाभ्याताडयत् ॥ ४६ ॥
 व्याकृत् इन्द्रमन्त्रो रेडकर शचीपति इन्द्रको अधिक
 श्रेष्ठ नहीं हुआ । फिर मी इस प्रकार बाधा करते हुए इन
 व्याकृत् बानरपर उन्नीने अपने हाथसे दूटे हुए बन्धके द्वारा
 मार किया ॥ ४६ ॥
 ततो गिरौ पपातैव इन्द्रवज्राभिताडितः ।
 पथमाजस्य वैतस्य वामा हनुग्भज्यत ॥ ४७ ॥
 इन्द्रके बन्धकी चोट काक ये एक पहाड़पर गिरे । वहाँ
 गिरत समय इनकी बायीं दुड़ी टूट गयी ॥ ४७ ॥
 तस्मिन्नु पतिते चापि वज्रात्तडनविह्वलः ।
 बुधोद्येन्द्राय पवनाः प्रज्जालामहिताय सः ॥ ४८ ॥
 व्याकृत्के आधासे व्याकृत्स रेडकर इनके गिरते ही वायुदेव
 इन्द्रपर कुपित हो उठे । उनका यह श्रेष्ठ प्रबन्धनोंके स्थिते
 अधिकतर हुआ ॥ ४८ ॥
 प्रथार स तु सपृष्टा प्रज्जान्मन्वरांतः प्रमुः ।
 गुहां प्रविष्टः स्वसुत शिशुमादाय मावसः ॥ ४९ ॥
 पथमर्ष्यासी म्बरतेने समस्त प्रज्जके मीतर रहकर मी
 वहाँ अपनी गति समेट ली—घात आदिके रूपमें संभार रोफ
 दिया और अपने शिशुपुत्र इन्द्रमन्त्रोके डेकर वे परतकी गुहामें
 घुस गये ॥ ४९ ॥
 विमूत्रादायमान् इन्द्राय प्रज्जाना परमार्तिहृत् ।
 शरोध सस्रमूतानि यथा वर्षाणि वासवः ॥ ५० ॥
 जैसे इन्द्र वहाँ रोफ देते हैं उथी प्रकार वे वायुदेव
 प्रबन्धनोंके महाघण और मूत्रघणको रोफकर उन्हीं वही पीटा

देने लगे । उन्हींने समूह मूत्रोंके प्राण-संचारकर अकरोच कर
 दिया ॥ ५० ॥
 वायुप्रकोपात् मृतानि निरुच्छवासानि सर्वतः ।
 सधिभिर्भिषगमनैश्च कष्टमृतानि जह्मिरे ॥ ५१ ॥
 वायुके प्रकोपसे समस्त प्राणियोंकी शक्ति बंद होने लगी ।
 उनके सभी अङ्गोंके खेड़ टूटने लगे और वे एक-के-सब काठके
 समान वेष्टाएँ हो गये ॥ ५१ ॥
 निःस्वाभ्यायवयट्कार निष्किर्य धर्मवर्जितम् ।
 वायुप्रकोपात् त्रैलोक्य निरयस्यमिवाभवत् ॥ ५२ ॥
 'श्रीनोंके लोभमें न कहीं वेदोका स्वाभ्याय होता था और
 न मर । खरे धर्म-धर्म बंद हो गये । त्रिभुवनके प्राणी ऐसे
 काट पाने लगे, मानो मरकमें गिर गये हों ॥ ५२ ॥
 ततः प्रजाः सगन्धर्वाः सर्वेवायुरमातुषाः ।
 प्रजापति समाधावन् दुःखिताश्च सुलेच्छया ॥ ५३ ॥
 पथ गन्धर्व, देवता अयुर और मनुष्य आदि सभी
 प्रज्ज स्थित हो मुस्र पानेकी इच्छासे प्रजापति ब्रह्मादीके पथ
 दोड़ी गयी ॥ ५३ ॥
 उन्मत्तः प्राङ्मुखो देवा महोदरनिभोदरा ।
 त्वया तु भगवन् सृष्टाः प्रजा न्याय चतुर्विधाः ॥ ५४ ॥
 त्वया वृत्तोऽयमस्मात्कमायुषा पवना पतिः ।
 सोऽस्मान्प्राप्येभ्यो मृत्वा कस्मादेवोऽय सत्तम ॥ ५५ ॥
 शरोध दुःखं जनयन्नताःपुर इव क्षियाः ।
 उक्त समय देवताओंके पेट इस तरह फूट गये थे, मानो
 उन्हीं महोदरका रोमा हो गया हो । उन्हींने हारा खेड़कर
 कहा—भगवन् ! स्वामिन् ! आपने पार प्रफरकी प्रबन्धनोंकी
 सृष्टि की है । आपने हम सबको हमारी आयुके अधिपतिके
 रूपमें वायुदेवको अर्पित किया है । वायुशिरोमणे ! ये पवन-
 देव हमारे प्राणोंके ईश्वर हैं तो मी क्या करण है कि आज
 इन्होंने अन्तःपुरमें क्षिप्रकी मौलि हमारे शरीरके मीतर अपने
 संस्पर्शको रोक दिया है और इस प्रकार ये हमारे स्थिते दुःख
 काक हो गये हैं ॥ ५४ ५५ ॥
 तस्मात् त्वां शरणं प्रसा वायुनोपहृता वयम् ॥ ५६ ॥
 वायुशरोधश्च दुःखमिच्छ मो नुद दुःखहन् ।
 वायुसे पीड़ित इन्द्र आज हमसेग भयभी शरणमें
 आये हैं । दुःखहारी प्रबन्धते ! आप हमसे इस वायुशरोधके
 दुःखको वूर कीजिये ॥ ५६ ॥
 पतत् प्रजानां भुव्या तु प्रजानाययः प्रजापतिः ॥ ५७ ॥
 कारणादिति कोपत्वासी प्रजाः पुनरभायत ।
 प्रबन्धनोंकी यह बात सुनकर उनका पाक और रक्त
 ब्रह्मादीने कहा—इसमें कुछ कारण है ऐसा कहकर ये
 प्रबन्धनोंसे फिर बांधे— ॥ ५७ ॥
 यस्मिन् कारणे वायुमुन्मत्तं च शराध च ॥ ५८ ॥
 प्रजाः शूण्यस्तु सर्वे आतप्यं चात्मनाः क्षमम् ।

प्रथमोऽपि क्लिप्तकारणोऽस्मिन् वायुदेवतान् ब्रह्म और
 अग्नी गतिश्च अक्षरोश्च क्रिया है; उठे कताला हूँ सुना । वह
 क्षरण्यद्वारे सुनने योग्य और उचित है ॥ ५८३ ॥
 पुत्रस्तस्यामरेशोम इन्द्रेणाद्य निपाठितः ॥ ५९ ॥
 राहोर्व्यंघनमास्थाय ततः स कुपितोऽनिलाः ।

‘ भाव देवताय इन्द्रने राहुकी बात सुनकर वायुके पुत्रको
 मार निपाठा है इक्षिक्ये वे कुपित हो उठे ॥ ५९३ ॥
 अशरीरः शरीरेषु वायुश्चरति पालयन् ॥ ६० ॥
 शरीरं हि विना धार्युं समता धाति वादभिः ।

‘ वायुदेव स्वयं शरीर धारण न करके समस्त शरीरोंमें
 उनकी रखा करते हुए निकरते हैं । वायुके बिना वह शरीर
 सन्ने काटके समान हो जाता है ॥ ६० ॥

वायुः प्राणः सुखं धार्युर्धामुः सार्धमिदं जगत् ॥ ६१ ॥
 धार्युना सम्परित्यक्तं न सुखं विभक्तं जगत् ।

‘ वायु ही सबका प्राण है । वायु ही सुख है और वायु ही
 पर छत्रण जगत् है । वायुसे परित्यक्त होकर जगत् कभी सुख
 नहीं पा सकता ॥ ६१ ॥

अथैष च परित्यक्तं धार्युना जगत्प्राण्य ॥ ६२ ॥
 अथैष तं निरुच्छवासाः काष्ठकुण्डपोपमाः स्थिताः ।

‘ वायु ही अन्तर्धी वायु है । इस समान वायुने संवारके
 प्राणियोंको त्याग दिया है इक्षिक्ये वे छत्रके-छत्र निष्पात
 होकर अत और दीवारके समान हो गये हैं ॥ ६२ ॥
 तद् यामस्तत्र यथास्तं मारुतो रक्षप्रदो हि वा ।

‘ वायुके भीमरूपमापने वाक्यी-शिवे वाक्त्रिकाम्ने उत्तर-प्रश्ने पञ्चमिस्त सर्गा ॥ ६५ ॥

इत प्रश्न श्रीमत्वाग्निनिर्मित अर्धपञ्चम्यम् अदिक्ष्मन्के उत्तरप्रश्नने परिसर्वा सर्ग पूरा हुआ ॥ ६५ ॥



पटत्रिंश सर्ग

प्रक्षा आदि देवताओंका हनुमान्कीका जीवित करके नाना प्रकारके वरदान देना और वायुका उन्हें
 लेकर अञ्जनाक परजाना, श्रृपियोंके हापसे हनुमान्कीको अपने बलकीविस्तृति, भीरामका
 जगत्स्य आदि श्रृपियोंसे अपन यज्ञमें पधारनेके छिय प्रस्ताव करके उन्हें विदा देना

ततः पितामह दृष्ट्वा वायुः पुत्रपथार्थितः ।
 निगुर्तं तं समानाय उक्तस्वी धानुरप्रताः ॥ १ ॥
 पुत्रव मां जाने वायुदेवता बहुत कुली व । ब्रह्मा
 श्रीमत्पत्न्यर व तस विगुसा शिवे हुए ही उनक आगे
 गढ़ हो गय ॥ १ ॥

धन्वन्तरिस्मार्त्तिकाक तपनीयविभूषणाः ।
 पादपाम्पयतद् वायुनिरुपगमाय यथम ॥ २ ॥
 उनक जानने कुण्डल दिस रहे व मापपर मुहुट और
 कण्डमें हार शोभा द रहे व और वे कानेक आभूषणोंसे
 विभूषित व । वायुदेवता तीन कर उपमान करत ब्रह्माश्रीके
 चरणोंमें गिर पड़ ॥ २ ॥

त तु यद्विद्वान्तं सम्पाभरण्यतमिना ।

मा विन्दता गमिष्याम ममसाधावितेः सुखा ॥ ११ ॥
 ‘ उदिति-पुत्रो । अतः अब होने उस ज्ञानपर जन्म
 प्राणिये ज्यों हम छत्रको पीड़ा देनेवाले वायुदेव छिने देते
 हैं । कहीं ऐसा न हो कि उन्हें प्रकृत छिने किना हम छत्र
 विनाश हो जगत् ॥ ६१ ॥

ततः प्रजाभिः सहितः प्रजापतिः
 सवेवगन्धर्वमुजङ्गगुह्यकैः ।
 अगाम तत्रास्थति पत्र म्मरता
 सुतं सुरेन्द्राभिहृत प्रगृह्य सः ॥ १४ ॥

‘ स्वतन्त्रर वंशता गन्धर्व नाम और गुह्यक श्रृपि
 प्रकृतोंको साथ से प्रजापति ब्रह्माश्री उस खानपर गये
 ज्यों वायुदेव इन्द्रहाथ मारे गये अपने पुत्रको केनर देते
 हुए वे ॥ ६४ ॥

तत्रोऽर्कवैश्वानरकाञ्जगमभ
 सुतं तदोत्पङ्गगत सदागतः ।
 यदुर्मुक्तो धीक्ष्य कृपामपाकरोत्
 सवेवगन्धर्वश्चपियस्तपसतैः ॥ १५ ॥

‘ तत्र-म्यात् यदुर्मुक्त ब्रह्माश्रीने देवताओं गन्धर्वों
 श्रृपियों तथा कर्षोंके साथ वहाँ पहुँचकर वायुदेवताकी येदने
 छेये हुए उनके पुत्रको देला किन्तुकी आश्रयित तृप्त श्रृपि
 और यज्ञके समान प्रकथित हो रही थी । उधरही बैठी रक्षा
 देसकर ब्रह्माश्रीको उछार बड़ी दया करी ॥ ६५ ॥

‘ पत्न्यम्यात् यदुर्मुक्त ब्रह्माश्रीने देवताओं गन्धर्वों

श्रृपियों तथा कर्षोंके साथ वहाँ पहुँचकर वायुदेवताकी येदने

छेये हुए उनके पुत्रको देला किन्तुकी आश्रयित तृप्त श्रृपि

और यज्ञके समान प्रकथित हो रही थी । उधरही बैठी रक्षा

देसकर ब्रह्माश्रीको उछार बड़ी दया करी ॥ ६५ ॥

वायुमुत्थाप्य हस्तेन शिशु त परिसृष्टवान् ॥ ३ ॥
 वेदेण्य ब्रह्माश्रीने अपने छत्रे फेंके हुए और आभरण
 भूषित हापसे वायुदेवताको उठाकर लड़ा किन्तु तथा उनक
 उठ शिशुपर भी हाप पठा ॥ ३ ॥

शृप्यमात्रस्ततः सोऽथ सलील पद्यजगममा ।
 अलसिकं यथा सम्य पुनर्जीवितमातयान् ॥ ४ ॥
 जेने पानीसे तीव्र देनेपर तुलसी हुई रोती ही रोती
 खली है उठी प्रश्नर कमत्रयोमि ब्रह्माश्रीने हावना श्रीम
 शूरक सर्ग्य पावे ही शिशु हनुमान् पुन जीवित हो गये ॥
 म्पण्यप्रत्नमिमं शृप्य प्राणा गन्धयदा मुदा ।
 क्वचान् स्यभूतसु खनिरुद्धं यथा पुरा ॥ ५ ॥

‘ हनुमान्की जीवित हुआ देखे ज्ञानके प्राप्तसम्प गये

बाह्य बायुदेव समस्त प्राणियोंके भीतर अवस्थित हुए प्राण
 आदिका पूर्वापत् प्रसन्नतापूर्वक संवार करने लगे ॥ ५ ॥
 मन्वरोद्भाद् विनिर्मुक्तास्ताः प्रजा मुक्ताऽभवन् ।
 शीतवाताविनिमुक्ताः पश्चिम्य इव भ्राम्बुजाः ॥ ६ ॥
 वायुके अवरोधसे छूटकर धारी प्रजा प्रसन्न हो गयी ।
 ठीक ठीकी तरह, जैसे हिमयुक्त वायुके आघातसे मुक्त होकर
 लड़े हुए कमलोंसे मुक्त पुष्करिणियों द्वाराभित होने
 लगी हैं ॥ ६ ॥

छत्त्रियुग्मक्रिककुट्टत् त्रिधामा त्रिवशासितः ।
 उवाच द्ययात् प्रज्ञा मास्तप्रियकाम्यया ॥ ७ ॥
 उपान्तर तीन युग्मोंसे सम्पन्न, प्रधानत तीन मूर्तित् कारण
 करनेवाला, विश्वकस्मी घरमें रहनेवाला तथा तीन दशौंमंसे
 मुक्त देवताओंद्वारा पूषित ब्रह्माक्षी बायुदेवताका प्रिय करने
 की इच्छासे देवगणोंसे बाटे— ॥ ७ ॥

मा महेश्वराम्बिवरुणा महेश्वरभनेश्वराः ।
 अन्त्यमपि धा सर्वे वक्ष्यामि भूषता वितम् ॥ ८ ॥
 पश्च अग्नि ब्रह्म, महादेव और कुबेर आदि
 देवताओं । मद्यपि आप सब भोग करनेसे हैं तथापि मैं आप
 लोगोंके हितकी खरी यातें बताऊँगा दुनिये ॥ ८ ॥
 एतेन शिगुन्य कर्ष्यं कर्तव्यं वो भविष्यति ।
 तद् वक्ष्यं चरन् सर्वे मास्ततस्यास्य मुद्यते ॥ ९ ॥
 यह बाणकक द्वारा भविष्यमें आपद्योंके बहुतसे
 भय विद्य होने अतः बायुदेवताकी प्रसन्नताके लिये आप
 सब भोग इसे कर दें ॥ ९ ॥

कः सहस्रनयनः प्रीतियुक्तः शुभानना ।
 उद्येशपमर्षी माल्ममुत्सेष्येद् वक्षोऽब्रवीत् ॥ १० ॥
 उन सुन्दर मुखवाले सहस्र नेत्रधारी इन्द्रने सिद्ध
 रत्नयुक्तके गर्भमें बड़ी प्रसन्नताके साथ कमलोंकी माया पहना
 की और वह बात कही— ॥ १ ॥
 मत्करोत्युष्टयज्जण हनुस्तस्य यथा हतः ।
 गाम्भवं कपिशार्दूल्यो भविता हनुमान्प्रिति ॥ ११ ॥
 जैसे हाथसे छूटे हुए बज्रके द्वारा इस बालककी हत
 (दुड़ी) टूट गयी थी इतकिये इस कृतिभेदका नाम
 हनुमान् होगा ॥ ११ ॥

काम्यमप्य प्रज्ञास्यामि परम वरमनुत्तमम् ।
 इत्तममृति वक्ष्यम्य ममापद्यो भविष्यति ॥ १२ ॥
 जबके लिय मैं इस वृक्ष अद्भुत कर यह देता हूँ

१ तीन युग्मोंके आत्में वहाँ के प्रभारके ऐतवसे है ।
 २ वहाँ वहाँ वक्ष्य वो प्राण जैत नेतव्य—ने ही का प्रभारके
 देवर्त है ।
 ३ बज्र किणु और पित्त—ने ही तीन मूर्तियों है ।
 ४ बज्र पीतव्य तथा शीतल—ने ही देवताओंकी तीन
 कावर्त है ।

कि आबते यह मेरे बज्रके द्वारा भी नहीं मार जा सकगा ॥
 मार्तण्डमन्वद्यवीत् तत्र भगवास्तिसिरापहाः ।
 तजसोऽस्य मदीयस्य द्वामि शक्तिर्का कल्पाम् ॥ १३ ॥

इसके बाद वहाँ अन्धकारनाशक भगवान् सुर्गने कहा—
 मैं इसे अपने तेजस्व शक्तों भाग देता हूँ ॥ १३ ॥
 यद्वा च शास्त्राण्यध्येतु शक्तिरस्य भविष्यति ।
 तदास्य शास्त्रं दास्यामि येन पाप्मी भविष्यति ।
 न चास्य भविता कश्चिद् सद्यशाः शास्त्रदक्षिणे ॥ १४ ॥
 इसके लिय सब इतमें शास्त्राध्ययन करनेकी शक्ति आ
 लबगी तब मैं ही इसे शास्त्रोंके ज्ञान प्रदान करूँगा किन्तु
 यह अच्छा वका होगा । शास्त्रज्ञानमें कोई भी इसकी छानता
 करनेकाधन हागा ॥ १४ ॥

चरुजज्ञं पर प्राज्ञाशाम्य मृत्युर्भविष्यति ।
 वर्षायुतशतेनापि मत्याशापुत्रकावपि ॥ १५ ॥
 तस्यश्चात् ब्रह्मणे पर देते हुए कहा—यस्य अस्त
 वगोंकी आयु है आनेपर भी मेरे पाप और बड़से इस बाणक
 की मृत्यु नहीं होगी ॥ १५ ॥

यमो दग्धश्चक्षुष्यमरोगस्य च वृत्तयान् ।
 धर द्वामि ससुप्त भविष्याद् च सयुगे ॥ १६ ॥
 गद्वेयं मामिका नैन सयुगेपु भविष्यति ।
 इत्येव भक्तवः प्राह तदा श्रेयसिपिङ्गला ॥ १७ ॥
 फिर यमने कर दिया—‘यह मेरे इच्छसे अवश्य और
 नीरोग होगा ।’ तदनन्तर विगल्बकर्षकी एक भौलवासे कुबेरने
 कहा—‘मैं संतुष्ट होकर यह पर देता हूँ कि युद्धमें कभी इसे
 विपाद न होगा तथा गयी यह गदा संग्राममें इसका बल न
 कर सकेगी’ ॥ १६ १७ ॥

मत्तो महायुधानां च मद्यध्योऽय भविष्यति ।
 इत्येव शास्त्रेणापि दक्षोऽस्य परमो धर्मः ॥ १८ ॥
 इसके बाद भगवान् दाँकरने यह उत्तर कर दिया कि
 ‘यह मेरे और मेरे आयुषोंके द्वारा भी अवश्य होगा’ ॥ १८ ॥
 विश्वकम्मा च हृष्टेन बालसुषोपम शिगुन्य ।
 शिखिना प्रवर्तः प्राज्ञाद् धर्मस्य महामति ॥ १९ ॥
 विशिष्योमें भय परम बुद्धिमान् विश्वकमाने बालसुषके
 समान अरुण कानितवाले उस शिगुन्य देसकर उसे इस प्रकार
 कर दिया— ॥ १९ ॥

मत्पुत्रानि च शास्त्राणि यानि विष्यति क्षानि च ।
 शैरवध्यात्यमापचच्चिरजीवी भविष्यति ॥ २० ॥
 जैसे बनाये हुए किन्ते लिये बल शस्त्र हैं उनसे
 अवश्य होकर यह बाणक चिरजीवी होगा ॥ २ ॥
 दीर्घायुश्च महारामा च प्रज्ञा त प्रायधीद् पत्न्या ।
 सचैवा प्रह्लादपुत्रानामप्ययाऽय भविष्यति ॥ २१ ॥
 अन्तमें ब्रह्माजीने उस बातकी छान करक कहा—
 ‘यह दीर्घायु महारामा तथा एक प्रभारक प्रह्लादकोसे अवश्य
 होगा ॥ २१ ॥

ततः सुराणां तु धरैर्द्वयं हाममलकृतम् ।
 चतुर्मुक्तस्तुष्टममा बासुमाह जगद्गुरुः ॥ २२ ॥
 तत्रभात् इतुमान्भीमे इह प्रभर देवताभोके वपेते
 अप्कृत देख नार मुक्तोशमे क्यद्गुरु ब्रह्माभीदा मन प्रकभ
 हा गया और वे वायुदेवते बाजे— ॥ २२ ॥
 अमित्राणां भयकरा मित्राणामभयकरः ।
 अमेया भविता पुत्रस्तव मास्त मास्तिः ॥ २३ ॥
 आस्त । तुम्हाय बर पुत्र मास्ति धनुषोके छिंदे
 भयकर और मित्रोके छिंदे अमयदता होगा । मुझमें कोई
 भी इने ज्येठ न सकेगा ॥ २३ ॥
 कामरूपः कामदारी कामगः मूयता परा ।
 भयत्यध्याहसगतिः कीर्तिर्मांश्च भविष्यति ॥ २४ ॥
 यह इच्छानुसार रूप धारण कर सकेगा और आरंभ
 का सकेगा । इसकी गति इसकी इच्छाके अनुसार ही न
 मन्द होगी तथा बर करी भी रुक नहीं सकेगी । यह करिभेद
 बढ़ा यशस्वी होगा ॥ २४ ॥
 राशनास्तादनाधीनि रामप्रीतिकराणि च ।
 रोमहृषकराण्येव कृता क्रमाणि सयुगे ॥ २५ ॥
 यह पुत्रसम्भवे राजपद लक्ष्य और मगवान् भीषम
 चन्द्रबीधे प्रथमतः सत्यादन करनेबास अनेक अवसुत
 एवं रामाश्चन्द्री कर्म करेगा ॥ २५ ॥
 पथमुक्त्वा तमामस्य मास्त स्वमरेः सह ।
 यथागत पथुः सर्वे पितामहपुरोगमाः ॥ २६ ॥
 इह प्रभर इतुमान्भीमे पर देकर बायुदेवताकी अनुमति
 सं प्रसा आदि सब देवता कसे आये वे ज्ञसी तरह अपने
 अपने स्थानके चल गये ॥ २६ ॥
 साऽपि गन्धर्वा पुत्रं प्रमुञ्च गृहमामयत् ।
 अद्भुतायास्तमाप्याय परवृत्तं शिथिलगतः ॥ २७ ॥
 कल्पयादत बासु भी पुत्रका लक्ष्य अद्भुताक पर अये
 और उस देवताभोके दिसे हुए बरवानकी बात क्यार
 चय गये ॥ २७ ॥
 प्राप्य राम यगनप धरदानप्रलाम्बितः ।
 जयनामनि स्तुयेन सोम्यी पूज इवाणया ॥ २८ ॥
 भीषम । इह प्रभर ये इतुमान्भी बहुतने का पाकर
 बरवानभवन शक्तिसे सम्पन्न हो गये और भवन भीतर
 विषमम भनुयम वेगने पूज हा मरे हुए मन्तागरके समान
 हममा पान लगे ॥ २८ ॥
 तरसा पूयमाणोऽपि तदा पामगपुत्रतः ।
 आधमपु महर्षीणामपराप्यति मिभयः ॥ २९ ॥
 उन दिनी पत्ने भरे हुए प कावशियमपि इतुमान्
 मिभय हा महर्षीके अधभोमे अकार उपद्रव दिया
 बन प ॥ २ ॥
 द्युग्भाङ्गाप्यग्निदायाणि परकस्तानां च सद्यवान् ।

भद्रविकिञ्चयिष्वस्तान् सशान्तात्मा करंस्वकम् ॥ ३० ॥
 ये शान्तचित्त महात्माओके बन्धुपकोपी पत्र अ
 ब्रह्मते अग्निहासके साधनभूत सुक् सुता भादिभे लेख ब्रह्म
 और देर के देर रमे गये वरद्वारा नीर काइ देते व ॥ ३ ॥
 एवविधानि कमापि प्रावतत महाकलाः ।
 सर्वेषां धर्माङ्गानामप्यः शम्भुना कृतः ॥ ३१ ॥
 जानन्त श्रुपयः सर्वे सहस्रे तस्य शक्तिः ।
 महाबली पवनकुमार इह तरहे उपद्रवपूर्ण अर्ध करने
 लगे । कल्पानुसारी मगवान् ब्रह्मने इन्हे सब प्रभरके ल
 रणहोते अवश्य कर दिया है—यह बात सभी श्रुति करने
 ये अन् इतकी शक्ति विषय हो वे इनके लरे भरण
 पुत्रप्य ए सते ये ॥ ३१ ॥
 तथा केसरिणा ख्येव वायुना सोऽङ्गनीसुतः ॥ ३२ ॥
 प्रतिविष्टोऽपि मयात्वा लङ्घयत्येव बालक ।
 ययपि वेष्टी तथा बायुदेवदने भी इन अङ्गनीकुमारके
 बरंभार मना किया तो भी वे बानरबीर मर्माकाश उतहन
 कर ही देते थे ॥ ३२ ॥
 ततो महपयः कृत्या सुस्यङ्गिरसवशात् ॥ ३३ ॥
 दोपुरेणं रघुधेष्ठ गतिरुत्पातिसम्पन्नः ।
 इसने भगु और अङ्गिरके बंधने उत्पन्न हुए मर्मा
 कुक्ति हा उठे । सुभेठ । उन्होंने अपने हृदयमें अग्नि
 लेह प दुःखका स्थान न देकर इन्हे श्राप देते हुए क्य
 वाधसे यह सतामिष्य बलमस्तान् मूयङ्गम ॥ ३४ ॥
 तत् क्षीमकलं यथासि नास्माकं शापमोहित ।
 यदा तं स्मार्यत कीर्तिस्तदा तं धपते बलम् ॥ ३५ ॥
 बानरबीर । तुम जिस बलका आशय सकर हमने क्य
 रहे हो उते हमारे श्रापसे मोहित होकर तुम दोषकास्तक
 भूक रहोगे—तुम्हें अपने बलका पदा ही नही चलता । ब
 कोई तुम्हें दुःखी कीर्तिका सत्य रिक्ता देगा तभी तुम्हारा
 बल होगा ॥ ३४ ३५ ॥
 ततस्तु हततज्जजा महर्षिवचनीजस्ता ।
 एषोऽऽधमाणि ताप्यय नृदुर्भाव गतोऽप्यरत् ॥ ३६ ॥
 इन प्रभर महर्षीके इन बंधनके प्रभरसे इनका वेग
 और अत्र पट गया । फिर ये उगदा अधभोमे धनुस मरुति
 होकर विचरने लगे ॥ ३६ ॥
 अथर्षैरजस्ता नाम पात्सिन्धुधीययाः पिता ।
 सद्यथानपराजार्त्तं तजस्ता इय भास्करा ॥ ३७ ॥
 बाबी और सुधीषक स्थिरा नाम शूद्रपत्न्य या । वे
 र्षके समान लक्ष्मी तथा समस्त बानरीके उद्ये थे ॥ ३७ ॥
 स तु राज्यं विभू कृत्या बानरणां महोद्वरा ।
 ततस्त्वपराजया नाम पामधमेष याञ्जिता ॥ ३८ ॥
 वे बानरपत्र शूद्रपत्न्य गिरजासुतक बानरीक शूद्रा
 कायन करर अनेके बालकम (गानु) का मात हुए ॥

तस्मिन्सामिने चाय मन्त्रिमन्त्रप्रद्योतैः ।
 पित्र्ये पदे कृतो वास्य सुप्रीवो घालितः पदे ॥ १९ ॥
 उनका देहावधन हा जानेपर मन्त्रवेद्या मन्त्रमनि पिताके
 खानपर वाधीको राब और पासीक खानपर सुप्रीवकी सुवराब
 काय ॥ १ ॥
 सुप्रीवण सम स्वस्य अष्टौघ छिन्तयित्तम् ।
 स्वस्यस्य सख्यमभयवृत्तिल्लत्याग्निना यया ॥ २० ॥
 वीने मन्त्रिके चाय वासुकी स्वामाविक मित्रता है, उन्ही
 पन्तर सुप्रीवके चाय वासीक यचनते ही सम्भवाय था ।
 उन दोनोमें फरपर किसी प्रकारका मेदभाव नहीं था । उनमें
 भद्र प्रम था ॥ ५ ॥
 एष शापवशादेव न वेद् वलमात्मनः ।
 घालिसुप्रीवयोर्देव यया वाम ससुरिपत्तम् ॥ २१ ॥
 न ह्यय राम सुप्रीयो भ्राम्यमाणाऽपि घालिता ।
 देव सामाति न ह्येव वलमात्मनि मादति ॥ २२ ॥
 भीयम् । तिर क्व वासी और सुप्रीवो हर उठ सका
 हुआ उस समय ये इतुमादकी शापवश ही अपने बकको
 न बन सके । देव । वासीके भयले मरक्यते रहनेपर भी न
 वे इन सुप्रीवको इनक बकका स्मरण हुआ और न स्वयं ये
 पनकुमार ही अपने बककर पता पा सके ॥ २१ २२ ॥
 श्रुतिशापाद्दत्तबलस्तत्रैव कपिसत्तमः ।
 सिंहा कुञ्जरयोः वा आस्थितः सहितो रभ्ये ॥ २३ ॥
 सुप्रीवके ऊपर सब वह श्रुति आयी थी उन दिनो
 श्रुतिके शापके कारण इनको अपने बककर ज्ञान भूल गया
 था इसलिये वेने कोई सिंह हाथीके हाथ भवबद होकर
 पुनःप लडा रहे, उन्ही प्रकार ये वासी और सुप्रीवके मुदमें
 पुनःप लडे लडे तमाधा देलते रहे कुछ कर न सके ॥
 पराक्रमोत्साहमलिप्रहाय
 लौदीक्ष्यमासुर्यमयानयैश्च ।
 गाम्भीर्याद्युपसुयीर्यैर्यैः
 इनुमता क्रोऽप्यधिकोऽस्ति लोके ॥ २४ ॥
 स्वार्थे ऐश कौन रे जो पराक्रम उखाड बुद्धि प्रताप
 सुवीर्या, मधुरता नीक्षि-श्रीतिके बिदेक, गम्भीरता
 पदुष्या उचम बल और वैरमें इनुमादकीये पङ्कर हा ॥ २४ ॥
 मसी पुनर्घ्याकरणं प्रहीष्यन्
 सूर्योन्मुखा प्रपट्टमनाः कपीन्द्रः ।
 उद्यद्विरेरन्मगिरि जगाम
 प्रम्य महत्कारयनप्रमेय ॥ २५ ॥
 ये असीम हाकिशापी कपिभेद इनुमाद व्याकरणज अभ्यपन
 करनेके लिये पङ्कणै पृष्ठनेकी इच्छाने सूर्यकी ओर मुँह रल
 कर मान् प्रम्य पारब किसे उनके आगे-आगे उद्यवाबक्ये
 म्प्रावरनक बाते ये ॥ २५ ॥
 सख्यवृत्त्यर्यपन् महार्थ
 ससप्रह सिवृत्त्यति ये कपीन्द्रः ।

नक्षत्र्य कश्चित् सद्यशोऽस्ति शास्त्रे
 धराण्डे छात्रगतौ तथैव ॥ २६ ॥
 इन्होंने सूत्र, वृत्ति, वार्तिक महामाध्य और सप्रह—इन
 सबका अच्छी तरह अभ्यपन किया है । अभ्यास शास्त्रोंके
 ज्ञान तथा छन्द शास्त्रक अभ्यपनमें भी इनकी समानता करने
 वाल्य तुम्हा कोई विद्वान् नहीं है ॥ २६ ॥
 सयासु रिधासु तपोविधाने
 प्रसर्चनेऽय हि गुदं सुगणाम् ।
 सोऽयं भवस्याकरणाद्यैश्च
 ब्रह्मा भविष्यत्यपि ते प्रसादात् ॥ २७ ॥
 सम्पूर्ण विद्याओंके ज्ञान तथा तपस्याक अनुष्ठानमें ये
 देवगुरु बृहस्पतिकी क्यारी करते हैं । नव व्याकरणोंके
 सिद्धांतका ज्ञाननेवाले ये इनुमादकी आपकी हवासे साक्षात्
 ब्रह्माके समान भादरवीब होंगे ॥ २७ ॥
 प्रहीषिषिस्तोरिच सागरस्य
 लोकान् विधमोरिय पावकस्य ।
 लोकभ्रयेष्वेव यथान्तकस्य
 इनुमताः स्यास्यति कः पुरस्तात् ॥ २८ ॥
 प्रकयकसमें वृत्तका अभ्यासजि करनेके लिये सूत्रिके
 भीतर प्रवेश करनेकी इच्छावाले महासागर सम्पूर्ण लोकोंको
 दख कर शम्भेन लिये उधन हुए संवर्तक शक्ति तथा लोक-
 खंडारके लिये उठे हुए कसके समान प्रभाववासी इन
 इनुमादकीके खमने बौन उहर सकेगा ॥ २८ ॥
 पदेऽ चाम्ये वा महाकपीन्द्रा
 सुप्रीमैस्त्वितिवाः सतीलाः ।
 सतात्कारेयलसः सरम्भा
 सख्यकरणात् राम सुरैर्हि स्या ॥ २९ ॥
 भीयम् । बालकमें ये तथा इन्होंने समान दृष्टे-दृष्टे जो
 सुप्रीव मन्द दिविद गीक तर गारय (अद्भुद) नल
 तथा रम्भ आदि महाकपीन्द्र हैं इन सबकी सुधि देवताओंने
 आपकी वहास्ताके लिये ही की है ॥ २९ ॥
 राजो गगानो गयया सुपुष्टो
 मन्दः प्रभो ज्योतिमुजो मलयः ।
 पते च श्रुताः साह यानरेन्द्रे
 सख्यकरणात् राम सुरैर्हि स्या ॥ ३० ॥
 भीयम् । गय गवाय गयय सुरैर् मन्द प्रम
 ज्योतिमुज और मलय— इन सब बानरेभ्ये तथा रीठोकी सुधि
 देवताओंने अपने खद्यतक लिय ही की है ॥ ३० ॥
 तद्वत् कथित स्वयं यस्मा स्व परिपृच्छति ।
 इनुमता घालभाय फर्नेतत् कथित मया ॥ ३१ ॥
 खनुमन्त । आपने मुझमें आ कुछ पूजा या पर कर
 मीने कर मुनाया । इनुमादकीकी वाक्यबलाउ इस बरिबवा
 भी बर्न कर दिया ॥ ३१ ॥

अस्वागम्यस्य कथित गमाः सीमित्रिरेव च ।
 विस्मय परम अम्बुवांशरा राहासीः सह ॥ ५२ ॥
 अगत्यभीका यह कथन सुनकर भीरव और अस्मत्त बड़े
 विस्मित हुए । बानरो और एकलोक भी वहा आसर्प
 हुआ ॥ ५२ ॥
 अगम्यस्यप्राचीद् राम सर्वमेतच्छ्रुत स्वया ।
 इष्टः सम्भाषितश्चासि राम गच्छामहे वयम् ॥ ५३ ॥
 तत्पश्चात् अगम्यभीने श्रीरामचन्द्रजीसे श्रुत—प्राणियों
 के हृदयमें रमय करनेवासे श्रीराम । आप यह चारा प्रसन्न
 सुन चुके । हमलोगोंने आपका दर्शन और आपके साथ
 कताव्य कर लिया । इच्छिये अब हम क्या रहे हैं ॥ ५३ ॥
 भुवैतद् राभवो याक्यमगम्यस्योपदेष्टुः ।
 प्राञ्जलिः प्रणतश्चापि महर्षिर्मनुमप्रचीत् ॥ ५४ ॥
 उम तेजस्वी अगम्यभीजी यह बात सुनकर भीष्मनायकीने
 हाथ जोड़ विनयपूर्वक उन महर्षिसे इस प्रकार कहा—॥ ५४ ॥
 अथ मे देवतास्तुष्टाः पितरः प्रपितामहा ।
 युष्माक वृक्षान्देव नित्य तुष्टा सवायवाः ॥ ५५ ॥
 भुञ्जीमः । अब मुझपर देवता पितर और पितामह
 आदि विदगस्थते संतुष्ट हैं । वन्तु-वन्तुवोंवहित हमलोगोंको
 तो आप-वने महात्माओंके दर्शनमें ही उदा संतुष्ट है ॥ ५५ ॥
 विद्याय तु ममैतदि पद् पद्म्यागतस्पृहा ।
 तद् भयङ्गिर्मम हृते कर्तव्यमनुकम्पया ॥ ५६ ॥
 धरे मनमें एक इच्छाका उदय हुआ है अतः मैं यह
 सूचित करने योग्य बात आजकी सेवामें निवेदन कर रहा हूँ ।
 मुझपर अनुग्रह करके आपलोगोंको मेरे उक्त अभीष्ट कार्यअ
 पूरा करना होगा ॥ ५६ ॥
 पीरजानपदान् स्थाप्य त्यक्त्येष्वहमागतः ।
 कन्दनह करिष्यामि प्रभावाद् भवता स्वताम् ॥ ५७ ॥
 इन्पायें श्रीमद्भारमदने वाल्मीकीये आदिश्रम्ये उक्तकरके पर्यप्रैः स्तोः ॥ ५७ ॥
 एत प्रकर भीकलक्ष्मीनिर्मित अक्षरानामक अक्षरप्रभे उक्तकर्ते उक्त
 पूरा हुआ ॥ ५७ ॥

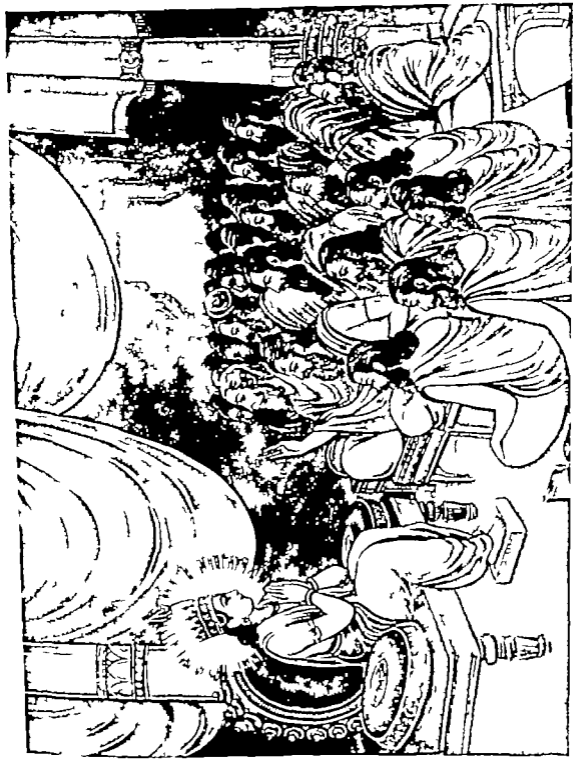
मेरी इच्छा है कि पुरवादी और देवाशक्तिको मे
 अपने कार्यमें लगकर मैं आप क्युवचोके प्रमासे स्वे
 अनुष्ठान करूँ ॥ ५७ ॥
 सत्सया मम यज्ञेषु भवन्तो नित्यमेव तु ।
 भविष्यथ महावीर्या ममानुग्रहकाङ्क्षिणः ॥ ५८ ॥
 धरे उन यज्ञोंमें आप महान् शक्तिशाली महात्मा मु
 अनुग्रह करनेके लिये नित्य तदस्य बने रहें ॥ ५८ ॥
 अहं युष्मान् समाहित्य तपोनिर्धूतकल्मषान् ।
 मनुगृहीतः पितृभिर्भविष्यामि सुनिर्भूतः ॥ ५९ ॥
 आप तपस्थाने निष्ठाप हो चुके हैं । मे अस्मत्तो
 अभय डेकर क्या संतुष्ट एवं पितरोंसे अनुप्राणित संतुष्ट ।
 तवागस्तप्यमनिश भयङ्गिगिह सगमैः ।
 अगस्त्यापास्तु तच्छ्रुत्या श्रवण्यः सशितप्रताः ॥ ६० ॥
 एवमस्तिष्ठति त प्रोच्य प्रयातुमुपकम्पुः ।
 पृथ-आरम्भके समय सब लोग एकत्र होकर निर
 बहो अठे रहे । श्रीरामचन्द्रजीका यह कथन सुनकर क
 अक्षर पावन करनेवासे अगस्त्य आदि महर्षि उनसे पृथ
 (देखा ही होगा) करके वहाँसे अनेक उद्यत हुए ॥ ६० ॥
 एवमुक्त्वा गताः सर्वे श्रुतयस्ते पद्यात्मन् ॥ ६१ ॥
 रामवच्य समेषां चिन्तयामास विस्मितः ।
 इत प्रकर बातचीत करके सब श्रुति लैते अठे थे,
 चले गये । इतर श्रीरामचन्द्रजी विस्मित होकर उन्हीं को
 विचार करते रहे ॥ ६१ ॥
 ततोऽस्तं आस्करे पाते विशुज्य नृपयामरन् ॥ ६२ ॥
 संख्यामुवास्य विधिवत् तदा नरबरोत्तमा ।
 प्रहृष्टायां रक्षन्त्यां तु सोऽस्तःपुरवरोऽभवत् ॥ ६३ ॥
 वनन्तर सर्वांस होनेपर राजाओं और बानरोंको
 करके नरेशोंमें भेद श्रीरामचन्द्रजीने विधिपूर्वक संश्लेष
 की और रत्त होनेपर वे अन्तपुरमें पनारे ॥ ६२-६३ ॥
 इन्पायें श्रीमद्भारमदने वाल्मीकीये आदिश्रम्ये उक्तकरके पर्यप्रैः स्तोः ॥ ६३ ॥
 एत प्रकर भीकलक्ष्मीनिर्मित अक्षरानामक अक्षरप्रभे उक्तकर्ते उक्त
 पूरा हुआ ॥ ६३ ॥

मसत्रिंश सर्ग

श्रीरामका समासदोक साथ राजमभामें बैठना

अभिविष्ट तु पद्मपुत्रस्य धर्मं विदितारामनि ।
 स्वतीला या निगा पूषा पीरताया ह्यवाधनी ॥ १ ॥
 कृत्वापुत्रकृत्य आरमहानी भीरमपन्-दीका धर्मरूढ
 गायामरक इ। जनर पुरवनिषो ग हर्ष वदानेवासी उनकी
 परभी गति स्थित हुई ॥ १ ॥
 तस्या रक्षन्त्यां प्युष्टाया प्रातनुपतिराधकाः ।
 यन्निवृत्त मनुगानिष्टम सीम्या नृपतिपदमणि ॥ २ ॥
 वह गी पीरनेर उर तय हुआ तब प्रातःरात
 मापत्र भीरमध उपदेष्टे लैम वहीजन रामदत्तमें
 उन्नीत हुए ॥ २ ॥

ते एकाकण्ठिनाः सर्वे विचित्र इव निश्चिताः ।
 तुष्टुष्टुनृपति धीरं यथावत् सम्यहर्षिणः ॥ ३ ॥
 उनके कण्ठ बड़े गुर्र थे । वे संश्रुती कलामें किममें
 क्लान सुविधिग थे । उन्होंने बड़े हर्षमें मरकर बयापक
 पीर नरेश भीष्मनायकीका लक्षण आराम किया ॥ ३ ॥
 धीर सौम्य प्रतुष्यन्व बौसदायातीतिवर्धन ।
 जगदि स्वयं स्वपिति स्वयि सुप्तं नराधिप ॥ ४ ॥
 धीरसौम्यजीका अन्तर्गत बानेवाक सौम्य स्वयं
 भीरुनीर । अर आगिप । महापत्र । आरने त्व रदने



विभिन्न दिशाओंस आये हुए स्वामि-मुनिपंडारा भगवान् श्रीकामलन्द्रका अभिनन्दन

तो स्यात्कान् ही क्षेपारोऽयम् (आत्मसुहृद्वर्गे उठकर भगवानुग्रह
में नहीं आ सके) ॥ ४ ॥

विषमस्तो यथा विष्णो रूप सौवाभिवभोरिव ।

बुद्ध्या यद्भस्वनेस्तुत्याः प्रजापतिसप्तो ह्यसि ॥ ५ ॥

भाषणा पराक्रम भगवान् विष्णुके समान तथा रूप
अभिनीकुमारोंके समान है । बुद्धिमें आप वररूपिकके द्रव्य हैं
और प्रजा-वान्तमें कछात् प्रजापतिकके वर ॥ ५ ॥

समा ते पृथिवीतुल्या तेजसा भास्करोपमः ।

वपस्त वायुना तुल्यो धाम्नीयमुवधेरिव ॥ ६ ॥

भाषणी बना दूमीके समान और तन मन्वान् मास्करके
समान है । बेग वायुक तुल्य और गग्नेरवा समुद्रके वर ॥ ६ ॥

अपकम्प्यो यथा म्पानुञ्ज त्रे स्त्रीभ्यस्त्वमीहशाम् ।

नदरा पायिषाः पूर्वं भविताते नराधिप ॥ ७ ॥

नदरेवर । आप मग्यात् शंकरके समान मुद्रमें अविचर
हैं । आपकी स्त्री सौम्यता पत्रमामें ही पानी खती है । आपके
कमन राश न पहले थे और न मविष्यमें होंगे ॥ ७ ॥

यथा स्वमनि दुधर्षो भमनित्या प्रजाहितः ।

न त्वां महाति कीर्तिष्य सृष्टमीह्य पुरुषप्रभ ॥ ८ ॥

पुरुषोत्तम । आपके परात् करना कठिन ही नहीं,
असम्भव है । आप स्या भस्ममें कम्पन रहते हुए प्रकृके हित
राजनमें तत्पर रहते हैं अतः कीर्ति और सखी आपमें कभी
नहीं पाइती हैं ॥ ८ ॥

भीर्य धमस्य काकुत्स्थस्यपि सित्त्वं प्रतिष्ठितौ ।

एताभ्यामाह्य मधुरा पविभिः पविर्कीर्तितौ ॥ ९ ॥

प्राकृत्यकुलनदा । एर्ष्य और धम आपमें सित्त्व
पविभि हैं । कभीकालोंमें वे तथा और भी बहुत-सी मधुपुर
रुनिषा मुनावी ॥ ॥

मृदाद्य मस्त रंदि ध्वयोर्धयन्ति स्त राष्यम् ।

स्तुतिभिः स्तुयमानाभिः प्रत्यधुव्यत राष्यः ॥ १० ॥

मृा भी चिन्त स्तुतिबोग्य भीरुनाथकीको जगते रहे ।
एन मरत मुना की स्त्री हुई स्तुतिबोगे द्वारा भगवान् भीरम
कर १ ॥

य तद्विहाय शयन पात्नुराज्यादभ्यस्तुतम् ।

उत्कर्षा मातायनात्प्रतिनाशयणे यथा ॥ ११ ॥

य पादाभि धमजन जागवन कतव्यकाम उठते है,
ता प्रत्य व ११ ११ विज्ञान व ११ है शम्भुका उद्धार
उठते ॥ ११ ॥

तमुत्थित मत्तममा प्रह्य प्राश्रय्या वरा ।

वर्द्धन भाजनः नृक्षीर्यतन्मुः सदृशः ॥ १२ ॥

वर्द्धनके लक्षण यह ही नदरा मरुत सित्पत्के
एव वर उठाने लक्ष्ये वा सिद्ध उरुता मत्तमें उरुता
है ॥ १२ ॥

कृतोक्ता शुचिर्मृत्या काले द्रुतद्रुतादानः ।

देवागार अगामानु पुण्यमिष्ट्याकुसेधितम् ॥ १३ ॥

स्नान आदि करके द्रुत ही उठोंने क्षमपर अनिमि
आहुति दी और भीम ही इस्वाकुभित्तिबोग मेवित पवित्र
देवमन्दिरमें व पधारे ॥ १३ ॥

तत्र द्यान् पितृन् धिप्रानर्षयित्या यथाविधि ।

वाष्पद्रवज्ञान्तरं रामो निर्जंगम जनैर्दृतः ॥ १४ ॥

वहाँ देवताओं, पितरों और प्राणियोंका विधिबद्ध पूजन
करके वे मनेक कर्मचारियोंका साथ वाहरभी क्यभीमें भाये ॥
उपतस्थुमहात्मानो मन्त्रिणः सपुरोहिता ।

धनिष्ठप्रमुक्ताः सर्वे दीप्यमाह्य इवाग्राय ॥ १५ ॥

इसी समय प्रमथित अग्निके समान तेजस्वी पलित् अग्नि
सभी महात्मा कत्री और पुण्डित वहाँ उपस्थित हुए ॥ १५ ॥
क्षप्रियाह्य महात्मानो माताजनपदेभ्यराः ।

यामन्योपाधिश्च पादपै शमस्त्रेय यथाभरा ॥ १६ ॥

तत्पश्चात् अनेकनेक अनपत्तोंके स्थानी महामतस्वी क्षप्रि
भीरमनन्दकीके पास उठी तब आरर बैठे, जैसे इन्द्रके
समीप देवताका आकर देठा करते हैं ॥ १६ ॥

भरतो सृष्टमण्ड्याय दातुञ्जय महावदता ।

उपासाक्षमिरे ह्यद्य यदाश्रय इपाश्रयम् ॥ १७ ॥

महापराधी भरत, हरमण और शत्रुघ्न—ये तीनों माई
बड़े हर्षके साथ उठी तब भगवान् भीरमकी सेवामें उपस्थित
रहते थे, जैसे तीनों बंद बन्धु हैं ॥ १७ ॥

याताः प्राञ्जलयो मृत्या पित्राय मुदितामगाः ।

मुदिता नाम पादपस्या पात्पा समुपाविशान् ॥ १८ ॥

इही समय मुक्ति मायों प्रसिद्ध बहुतसे मेरु भी
किन्के सुभार प्रकृततापलीरदही भी शप ऊद्भवभारतमें
भाये और भीरुनाथकीके पास बत् गये । १८ ॥

यानराद्य मदार्याया जिगति कामरुपिणः ।

सुप्रीयममुक्ता राममुपासन्त मदोजनः ॥ १९ ॥

हिर मदारुक्रमी मताकभी तथा इष्टानुभव रूप बाल
करनेवाल मुदीर और वीच यनर भगवान् भीरमपर क्षपीन
अकर बैठे ॥ १९ ॥

विधीयन्तश्च रत्तोभिश्चतुर्भिः परिपालितः ।

उपासत महात्मान धननामिय शुश्रूषः ॥ २० ॥

आने कर एवम मन्त्रियम विर हुए विधीय भी
उठी प्रहार मदाना भीरमकी मरने उरुकिता हुए १९
मुररगता पत्नी कुमारी गरमें उरुकिता है ॥ २० ॥
तथा निगमशृङ्गाया कुर्वाता य य मातगाः ।

१ द्वाय वरा १२० मत्तममा प्रह्य प्राश्रय्या वरा
वर्द्धन भाजनः नृक्षीर्यतन्मुः सदृशः ॥ १२ ॥
वर्द्धनके लक्षण यह ही नदरा मरुत सित्पत्के
एव वर उठाने लक्ष्ये वा सिद्ध उरुता मत्तमें उरुता
है ॥ १२ ॥

शिरसा कथ्य राजानमुपासन्ते विवक्षणा ॥ २१ ॥
 च कथा शास्त्रज्ञानमे वनेन्दे और कुम्भीन ये, ये चतुर
 मनुष्य भी महाप्राज्ञ मरुत कृष्णकर प्रणाम करके वहाँ
 बैठ गये ॥ २१ ॥

तथा परिचूतो राजा भीमन्निर्भ्रंषिभिर्वरैः ।
 राजभिश्च महाधीर्यैर्यौनरैश्च सत्यासुतैः ॥ २२ ॥
 इस प्रकार बहुत-से भेड़ एवं देकवी महर्षि, महा
 पराक्रमी राजा, बानर और राक्षसोंसे घिरे राजसभामें बैठे हुए
 भीरुनायकी बढ़ी शोभा पा रहे थे ॥ २२ ॥

हृत्पापैर्धर्मद्वामात्रण वाकनीकौसे आदिकावले उत्तरकाण्डे सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ १७ ॥

इस प्रकार श्रीवाल्मीकिप्रियंठि अर्षदमामत्रण अत्रिप्रवचने उत्तरकाण्डमें तीतीसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १७ ॥

अष्टत्रिंश सर्ग

श्रीरामके द्वारा राजा जनक, युधाजित, प्रतदन तथा अन्य नरेशोंकी विदार्थ

एवमास्तं महाबाहुरहस्यहनि रामवः ।
 प्रशसत् सर्वकर्म्याणि पौरजालपुत्रु च ॥ १ ॥
 महाबाहु भीरुनायकी इसी प्रकार प्रतिदिन राक्षसगणों
 बैठकर पुरवासिणी और जनपदवासियोंके खरे कर्मोंकी
 देखभाल करते हुए शासनका कर्म चलाते थे ॥ १ ॥
 ततः कठिण्याहःसु वैवहं मिथिस्ताधिपम् ।
 रामवः प्राञ्जसिर्मुत्वा पाक्यमंततुवाष ॥ २ ॥
 तबन्तर कुछ दिन बीतनेपर भीरामचन्द्रधीने मिथिअ-
 नरेश विदेहराज जनकजीसे हाथ छोड़कर यह बात कही—॥
 भवाद् हि गतिरप्यग्रा भयता पाक्षिता वषम् ।
 भवतस्तेजसोमेण रापणो गिरहो मया ॥ ३ ॥
 महाप्राज्ञ । आप ही हमारे सुखिर आश्रय हैं । आपने
 सदा हमअभंगोंका समर्थन पालन किया है । आपके ही कहे
 हुए तेकसे मैंने राजसभ्य बच किया है ॥ ३ ॥
 इत्याहूणां च सर्वेषां मैथिस्रना च सर्वेशः ।
 यत्तुसा प्रीतयो राजन् सम्बन्धकपुरोगम्याः ॥ ४ ॥
 पाक । समस्त इत्याहुयकी और मैथिल नरेशोंमें
 आपतके सम्बन्धके कारण सब प्रकारसे जो प्रेम बढ़ा है
 उतकी कही तुझका नहीं है ॥ ४ ॥
 तद् भवान् लपुर घातु रक्षाप्यापय पार्थिव ।
 भरतश्च सहायार्थं पृष्ठतद्वा नुयास्यति ॥ ५ ॥
 पृष्ठीनाय । अब आप हमारे द्वारा मैंट किये गये ये
 रत्न लेकर अपनी राजधानीको पधारें । भरत (तथा उनके साथ
 साथ धनुष भी) आपकी सहाय्यके लिये आपके पीछे-पीछे
 चारंगे ॥ ५ ॥

यथा देवेभ्यरो निरवमृषिभिः समुपास्यते ।
 अधिकस्तेन रूपेण सहस्राहाद् विरोचते ॥ २३ ॥
 जैसे देवराज इन्द्र सदा ऋषियोंसे सेवित होते हैं, उन्हीं
 तरह महर्षि-मण्डलीसे घिरे हुए भीरामचन्द्रजी उत कम
 लक्षसम्पन्न इन्द्रसे भी अधिक शोभा पा रहे थे ॥ २३ ॥
 तेया समुपविष्टायां तास्ता सुमधुरा कथमः ।
 कथ्यन्ते धर्मसमुत्तराः पुराणधर्महात्मभिः ॥ २४ ॥
 जब सब धर्म यथास्थान बैठ गये, तब उपनयेच
 महारत्ना धर्म भिन्न-भिन्न धर्म-कथार्य करने लगे ॥ २४ ॥

स तथेति ततः कृत्वा रामस्य वाक्यमब्रवीत् ।
 प्रीतोऽस्मि भयता राजन् क्षणिन मन्येन च ॥ १ ॥
 तब जनकजी 'बहुत अच्छा' कहकर भीरामचन्द्रजीसे
 बोले—'पाक ! मैं आपके दरान तथा स्वाभाविकर सम्बन्धसे
 बहुत प्रसन्न हूँ ॥ १ ॥
 पाण्येतामि तु रक्षानि मर्त्यं संभितानि वै ।
 तुहिमे तस्यार्थं राजन् सर्वाभ्येष क्वामि वै ॥ ७ ॥
 'आपने मेरे लिये जो रत्न एकत्र किये हैं, वह सब मैं
 अपनी छीट आदि पुत्रियोंको देता हूँ ? ॥ ७ ॥
 एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थ जनको हृद्यमानसः ।
 मययी मिथिष्ठां श्रीमास्तमनुष्याय राघवम् ॥ ८ ॥
 भीरामचन्द्रजीसे देख कहकर भीमान् राजा जनक प्रसन्न
 चित हो भीरामकी अनुमति के मिथिष्ठापुरीको कब दिने ॥
 ततः प्रयाते जनके केकय मातुस प्रभुम् ।
 राघवः प्राञ्जसिर्मुत्वा विनयाद् वाक्यमब्रवीत् ॥ ९ ॥
 जनकजीके लिये जानेके पश्चात् भीरुनायकीने हाथ
 छोड़कर अपने मामा केरुम-नरेश युधाजितसे जो बड़े सम्प-
 द्धाधी ये विनयपूर्वक कहा—॥ ९ ॥
 इदं राज्यमहं वीव भरतश्च ससहस्रणा ।
 अयत्तस्त्व हि मो राजन् गतिश्च पुत्रवर्षभ ॥ १ ॥
 पाक ! पुत्रपत्नर ! यह राज्य मैं भरत
 और धनुष—सब आपका अभीन हूँ । आप ही हमारे
 आश्रय हैं ॥ १ ॥
 राजा हि ब्रह्म सत्त्व स्वर्गसुपयास्यति ।
 तस्माद् रामममपैव रोचते तव पार्थिव ॥ ११ ॥

• इस सर्गके सब कुछ प्रतीनों प्रथितरूपसे बीच सर्ग और जनक होते हैं किन्तु वाक्य और लघुकी कवचित्त तथा एक-
 के इतरेतीमें मनकच दृष्टित बयिन है । इस टीकाके लक्ष्य भी जगत्की ही हैं । बहुत सखे परके लक्ष्य ही जनककी
 रिता होनेच दर्शन व्य गय है ; अतः वही इन लक्ष्यके लक्ष्य मान्य होता है । इतीने ये सर्ग वहाँ नहीं भिने पने है ।

महायज्ञ के रूपयज्ञ हृद है । वे आपके द्विये बहुत चिन्तित होंगे । इनस्त्रिये पूषीनाथ । आपका आश ही बना मुने मन्त्रा बान पढ़ता है ॥ ११ ॥

सम्पन्नेतानुयायेण पृष्ठतोऽनुगमिष्यते ।

धनमावाय बहुल रत्नानि विविधानि ॥ १२ ॥

आप बहुत-सा धन तथा नाना प्रकारके रत्न लेकर

पहारें । मार्गमें छायाताक स्थिये सम्पन्न आपके साथ जायेंगे ॥

युवाश्रितुं तु तथेयमाह गमन प्रति राघव ।

एवानि च धन सौध स्वप्येवाज्ञाप्यमस्तिपति ॥ १३ ॥

तब युवाश्रितने 'तथास्तु' कहकर भीरुनाथकी भीषी घट

मान थी और कहा—'पुन्यदन । ये रत्न और धन सब

दुःखरे ही पास मन्त्ररूपमें रहें ॥ १३ ॥

प्रदक्षिण्य च राजान कृत्या केकयपर्यनः ।

रमण्य च हृत पूर्वमभिषाद्य प्रदक्षिण्यम् ॥ १४ ॥

फिर पहले भीरुनाथकीने प्रणामरूपक अपने मामाकी

परिक्रमा की, इसके बाद ककयकुक्षी की धूमि करनेवाला राक-

डम्बर युवाश्रितने भी राका भीरुनाथकी प्रदक्षिणा की ॥ १४ ॥

सम्पन्नेन महायज्ञ प्रयाताः केकयेऽथ्वरः ।

इतेऽसुरे यथा क्षुभे सिष्णुना सख यासवः ॥ १५ ॥

इसके बाद केकयराजने सम्पन्नकीके साथ उठी तरह

अने शेषके प्रस्थान किया, जैसे दूतासुरके मारे अपनेपर

इसने भाग्यन् सिष्णुके साथ अमरावतीकी यात्रा की थी ॥

त विपुत्र्य ततो रामो वयस्यमकुतोभयम् ।

मन्त्रं कश्चापति परिष्वज्येद्मग्रधीत् ॥ १६ ॥

मामाका बिना करके रघुनाथजीने किसीसे भी भय न

माननेवाले अपने मित्र काशियाव प्रवर्तनको हृदयसे सगहर

कण—॥ १६ ॥

बहिता भयता प्रीतिर्दशित सौहृद परम् ।

उद्योगस्य स्वया राजन् भरतत हृतः सह ॥ १७ ॥

'एवम् । आपने रावणाश्रितके कार्यमें भरतके साथ

पूरा उद्योग किया है और एसा करके अपने महान् प्रेम तथा

परम शौर्यरत्न परिचय किया है ॥ १७ ॥

तद् भयानक काशय पुर्वी घागणसी प्रज ।

रमणीया स्वया गुमां सुप्रान्वरतीं सुतोरणाम् ॥ १८ ॥

'काशियाव । अब आप मुन्दर परकोटों तथा मन्डोर

छात्रकीने सुगन्धित और अने ही द्वारा सुगन्धित रमणीय पुर्वी

काशयकीय पधारिये ॥ १८ ॥

एतावदुक्त्वा चारुपाय काकुत्स्थः परमात्मनात् ।

एवमस्य धमात्मा निरन्तरमुनोगतम् ॥ १९ ॥

एसा कहकर यमात्मा भीरुमने पुनः अपने उच्च

आत्मन उत्तर प्रारनको छात्रके सगा उनका गद्य

अतिरन्त किया ॥ १९ ॥

विश्रमधामास तथा कीमन्त्याप्रीतियधमः ।

राघयेण कृतानुदा काशयो ह्यकुतोभयः ॥ २० ॥

इस प्रकार कौस्तुभका आनन्द बढ़ानेवाले भीरुमने उस समय काशियावका बिदा किया । भीरुनाथकी भी मनुमति

पाकर उनसे बिदा छ निर्मय काशियाव तदाद्य परात्मकीपुत्री

भोर बल दिये ॥ २० ॥

विस्त्र्य त कश्चापति त्रिशत पृथिवीपतीन् ॥ २१ ॥

प्रहसन् राघवो धाक्यमुधाच मधुपसरम् ।

काशियानका बिदा करक भीरुनाथकी ईच्छते हुए अन्य

हीन छी भूषणमें मधुप यात्रीमें बांधे—॥ २१ ॥

भयता प्रीतिरथ्यमा सज्जसा परिरक्षिता ॥ २२ ॥

धमस्य नियतो मित्य सत्य च भयता सदा ।

'मारे ऊपर माफ्येगोंका अविश्वल प्रेम है, विश्वी

रक्ष आने अपने ही तेजने की है । आनन्दगोंमें कस्य और

भने निवन्तुपने निव निरन्तर निरास करते हैं ॥ २२ ॥

युष्माक चानुभायेण तेजसा च महात्मनाम् ॥ २३ ॥

हतो दुःखरता दुबुद्धी राघवो राक्षसाभयम् ।

आप महापुरुषोंके प्रभाव और तेजने ही मेरेहाय

दुर्बुद्धि युक्तता राक्षसाभय राघव मारा गया है ॥ २३ ॥

हेतुमायमर्ह तत्र भयता तेजसा हतः ॥ २४ ॥

राघवः सगण्यो युधे सपुष्पामात्यघान्धयः ।

मैं तो उधक बचने निमित्तमात्र बना हूँ । बाह्यभमें तो

आपकागोंके तेजने ही पुत्र मन्त्री पन्थु-बान्धव तथा सेवक-

गोंके सहित उद्योग मुझमें माय गया है ॥ २४ ॥

भवन्तस्य समानीता भरतेम महत्समम् ॥ २५ ॥

श्रुत्या जनकराजस्य काननात् तमया हताम् ।

अनसे अनद्वयबन्धनीनी कीनाके अहरणका समान्यार

मुनकर महात्मा भरतेने आपकीगोंका यहाँ बुझया था ॥

उद्युक्ताना च सर्वेया पाथियाना महागमनाम् ॥ २६ ॥

कान्तेऽप्यतीतः सुमहान् गमन रोधयाम्यतः ।

आप सभी महात्मा भूवास राक्षसपर अत्यन्त करनेके

स्विय उद्योगकीय य । तर्कने आश्रयक यहाँ आन्यकीय

बहुत समय स्थनीत हो गया है । अतः अब मुझे आन्यकीय

का अपने नगरको छोट जाना ही ठकित बान पढ़ता है ॥

प्रत्ययुष्मन् च राजान्म ह्येण महता वृत्ता ॥ २७ ॥

दिष्टया स्य त्रिजयी राम स्वराज्येऽपि प्रसिद्धितः ।

इत्यर राघवकीने अत्यन्त हर्षमें मरकर कहा— भीरुम ।

आन त्रिजयी हुए और अपने राघवर भी प्रसिद्धि हो गय,

यह यह श्रेष्ठगणकी बात है ॥ २७ ॥

दिष्टया प्रत्याहता स्तीता दिष्टया शत्रुः पराजितः ॥ २८ ॥

एव नः परम काम एता नः प्रीतिरुत्तमा ।

यत् त्वां विजयित राम पदपामो दत्तदात्रयम् ॥ २९ ॥

हमारे सौभाग्यसे ही आप धीरान्न खीय ज्ये और
 उस प्रकृत शत्रुको पराज कर दिना । श्रीराम ! नही हमारा
 सबसे बड़ा मनोरथ है और यही हमारे लिये सबसे बड़कर
 प्रसन्नताकी बात है कि आज हमजग आपका बिकसी दख
 रहे हैं तथा आपकी शत्रु-मण्डली मारी अब खुशी है ॥२८ १९॥
 पठत् स्वय्युपपन्न ए वयसांस्त्व प्रदाससे ।
 प्रदासाहं न जानीमा प्रदासां वक्तुमीहशीम् ॥ ३० ॥
 प्राञ्जनीय भीरुम । आप ज हमसेमोक्षी प्रणवा कर
 रहे हैं वह आपकीके योग्य है । हम देखी प्रणवा करनेकी
 कस्य नहीं भयते हैं ॥ १ ॥
 वसपृष्ठप्रयोगमिष्यामो हृदिस्त्रानाः सदा भवान् ।
 यतामह महापाशा प्रीत्याप्र महता वृता ॥ ३१ ॥
 भवद्य तं महाराज प्रीतिरस्मासु नित्यदा ।

बाहमिरथेय राजानो ह्येव परमाश्रितः ॥ ३१ ॥
 'अब हम मात्र चाहते हैं । अपनी पुरीको जमे ।
 बिल प्रकृत आप छदा हमारे हृदयमें निराश्रित रहते हैं
 उठी प्रकृत है महापाश । जिसमें हमसेजग आपके प्रति प्रभे
 मुक्त रहकर आपके हृदयमें बसे रहे देखी प्रीति ज्ये
 हमपर सदा कनी रखनी चाहिये ।' तब श्रीरामनाथकी हकी
 मरे हुए उन राजाकोसे कहा—'अनख देख ही शत्रु' ॥३१ ३१॥
 कञ्चुः शशङ्कयः सर्वे राक्षस गमनोत्सुका ।
 पूरित्यास्ते च रामेण जम्मुर्वेदान् लक्षान् लक्षान् ॥ ३२ ॥
 तत्पश्चात् जानेके लिये उत्सुक हो सबने हाथ जोड़कर
 श्रीरामनाथकीसे कहा—'मगान् । अब हम सब रहे हैं ।'
 इस तरह श्रीरामसे सम्मानित होवे तब राजा अपने-अपने देव
 को बलि गये ॥ ३१ ॥

हृत्पार्थे श्रीमद्रामात्मन वास्मीकीये वासिकान्ये उत्तरकाण्डे अष्टादशः सर्गः ॥ ३८ ॥
 एत एकर श्रीमद्वैदिकनिर्मित भवराामायण श्रीरामके उत्तरकाण्डमें अष्टादशवां छय हुआ हुआ ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंश सर्ग

राजाओंका श्रीरामके लिय मेट देना और श्रीरामका बह सब लेफ्टर अपने मित्रों, वानरों,
 रीछों और राक्षसोंका घाँट देना तथा वानर आदिका वहाँ सुसपूर्वक रहना

ते प्रयाता महात्मानः पार्थिवास्ते महप्रवत् ।
 गजवाजिसहस्रीषीः कल्पयन्तो यस्तुभराम् ॥ १ ॥
 अपोष्यते प्रसिद्ध हो वे महामना भूषाक हरसों हापी
 षोड तथा वैदल-समुहोसे पृथ्वीको कम्पित करते हुए-ने हरी
 पूर्वक आगे बढ़ने लगे ॥ १ ॥
 मत्स्रीहिन्या हि तत्रासन् राघवायै ससुयताः ।
 भरतस्यानयानकमः महप्रयसपाहताः ॥ २ ॥
 मरनरी आकने भीरुमकरशीची उदापठके लिये वहाँ
 कई अश्वीरित्री सगर्ह पुदके लिय उषव हाकर मारी थी । उन
 सबसे ऐतिह और यानि हर्ष एवं उखारते मरे हुए थे ॥२॥
 ऊयुन्त च मदीपाला यलक्षपसमगिरिता ।
 न राम-रायण युद्ध पश्यामः पुरतः स्थितम् ॥ ३ ॥
 वे सभी भूषण बचके फर्हमें मरकर आकमें इस तरह
 की बातें करने लगे—'हमयोगोंने पुदमें भीरुम और राक्ष
 को आमने-सामने गढ़ा नहीं रैगा ॥ ३ ॥
 भरतन एव पद्यात् समानीता निरपकम् ।
 हता हि राष्ट्रमाः क्षिप्रं पार्थिवं स्युन वरदायः ॥ ४ ॥
 भरतेने (पदम छ गूफना नहीं ही) पीठ युद्ध मयात
 हो जानेर हमे स्वर्ष ही बुज निरा । यदि सब राजा गप हाह लो
 उनके हाथ लाने राजको हा मगर बहुत कपी हा गया हाह
 इनके मरण नही है ॥ ४ ॥
 रामस्य पादुपीपेल रजिता म्ममणय ए ।
 एत एत समुद्रस्य सुधम रिगतयराः ॥ ५ ॥

भीरुम और कल्पके बाहुकसे मुच्छि एवं निम्न
 हा हमजग समुद्रके उष पार सुसपूर्वक युद्ध कर लगे
 थे ॥ ५ ॥
 पलाभान्यान्व्य राजाना कथास्तत्र सहस्रदाः ।
 कथयन्ता स्वराज्यानि जम्मुर्वेषममिषिता ॥ ६ ॥
 वे तथा और भी बहुतसी बातें करते हुए वे लक्षों
 मरेह कई हर्षक हाथ अपने-अपने राज्यको गये ॥ ६ ॥
 स्थानि राज्यानि मुक्यानि च्छानि मुक्षितानि च ।
 समुद्रघनधन्यानि पूर्णानि यस्तुमन्ति च ॥ ७ ॥
 पद्यापुराणि तं गत्वा रत्नानि विधिभाष्यथ ।
 रामस्य मियकमामपुपहारं शृषा वतुः ॥ ८ ॥
 यम्भान् यानानि रत्नाभिहस्तान्मह मदानकदात् ।
 यम्भान्ति च मुदयानि दिव्याण्याभरण्यानि च ॥ ९ ॥
 मथिमुत्तमपातासु दास्या रूपसमगिरिता ।
 यज्ञापिकं च विविध रणोस्तु विविधान् वदन् ॥ १० ॥
 उनके अपने-अपने प्रकृत राज्य सम्पत्तिहापी तुल और
 आनन्दके परिपूर्ण बन-आकसे कण्ठ तथा रत्न आरिते मी
 पूरे थे । उन रणोंतथा नगरोंमें बाकर उन मरगोंने भीरुम
 कर्तवीर्य दिख करनेकी इच्छासे नाना प्रकारके रत्न और
 उपहार भेजे । षोड सगर्हों रत्न मगन हापी, उतन
 यम्भन दिव्य आभूषण मणि मत्सी मूले तथाही लक्षि
 नाना प्रकारकी बचरिषों और मर्हें तथा तरह-तरहके बहुतनी
 एव मेट दिव ॥ ७-१० ॥

मरतो लक्ष्मणादस्यैव दामुष्णश्च महापलः ।
 आश्रयं त्वानि रत्नानि स्थां पुरीं पुनरागताः ॥ ११ ॥
 अश्रय्य च पुरीं रम्यामयोध्या पुरुषयभ्याः ।
 त्वानि रत्नानि त्रिधाणि रामाय समुपाययन् ॥ १२ ॥

महाश्वी मरुत, लक्ष्मण और दामुष्ण उन रत्नोंको लेकर पुनः अपनी पुरीमें छोट आये । उत्तरीय पुरी अयोध्यामें आकर उन रत्नों पुनरागम कर चुकनेमें ये त्रिभिन्न रत्न भीरवको समर्पित कर दिये ॥ ११ १२ ॥

प्रतिपूर्य च तद् सर्वं रामः प्रीतिसमन्वितः ।
 सुप्रीयाय ददौ राज्ञे महात्मा कृतकर्मणे ॥ १३ ॥
 विभीशणाय च ददौ तथाम्येभ्योऽपि राघवः ।
 पक्षसभ्याः कपिवम्बश्च वैश्वंती जयमातायान् ॥ १४ ॥

उन लक्ष्मण प्रदत्त करके महात्मा भीरवने वही प्रसन्नता के साथ उरघरी बानरवाकसुप्रीय और विभीशणाच तथा अन्य पक्ष और बानरीय भी शौट दिया कर्णिक उहीने भिरे एकर स्मरान् भीरवने युद्धमें विजय प्राप्त की थी ॥ ११ १४ ॥

त सर्वे रामश्चानि रत्नानि कपिवरुहसा ।
 त्रिपिभिधारयामासुर्मुञ्जेषु च महायन्त्राः ॥ १५ ॥
 उन सभी महाश्वी बानरों और राक्षसेन भीरवपत्रुहीके दिये हुए वे उन अपने मलक और मुञ्जामें धारण कर लिये ॥ १५ ॥

हनूमन् च नृपतिरिद्व्याकूष्णां महारथाः ।
 अद्भ्य च महाबाहुमद्भुमानोप्य धीययान् ॥ १६ ॥
 रामा कमलपद्मास्तं सुप्रीयमिन्द्रमथरीत् ।
 अद्भुम्न सुपुषोऽप्य मन्त्री धान्यनिलाम्भजः ॥ १७ ॥

सुप्रीयमन्त्रिन युक्तो मम क्षापि दित रताः ।
 अथ विविधा पूजा रक्षसृत ये हरीभ्यार ॥ १८ ॥
 कलभान् इरागुनरेष महारथस्त्री महारथी कमलपदन भी अपने महाबाहु हनुमान् और अद्भुतका गन्धर्वों वि । इरमुप्रीयने इन प्रकार कहा— सुप्रीय ! अद्भुत तुम्हारे सुपुत्र हैं और वनभुम्भ हनुमान् कन्धी । बानरवाक । व रत्नों मेरे लिये कन्धीय भी काम दत्त व और उदा मेरे दित-अपणमें लो रत्त व । इतलिये और विप्रात तुम्हारे नाते व मेरी भलेसे विविध अन्त्यभार एवं भेद पानेके कर्म हैं १६-१८

एतुष्काश्च ध्यपमुष्पाद्वाद्भूयणानि महायन्त्राः ।
 स वषण्य महाशानि तान्दद्भुतदन्मनाः ॥ १९ ॥
 एतं बरुवर महाशान्नी भीरवने अपने शरीरने बहुमूल्य अद्भुत यन्त्राए उद्दे अद्भुत तथा हनुमानक अद्भुतने बीच दिये ॥ १९ ॥

अभाय्य च महाशयान् राघ ॥ यूपयभान् ।
 बन्धु बन्धु कमन्वियु बुभुम्भं गन्धपादनम् ॥ २० ॥
 सुपुत्रे पत्रम आर ईश्वं द्विविन्मय च ।

जाम्यवन्तं गवाशं च विन्तं घृष्ममेव च ॥ २१ ॥
 दक्षीमुखं प्रजङ्घ च सनाद् च महापलम् ।
 व्रीमुखं दधिमुक्तमिद्रजानु च घृषपम् ॥ २२ ॥
 मधुर इत्यस्यया यासा नेत्राम्यमापिबक्षिष ।
 सुहृदो मे भयन्तश्च शरीर धातरस्तथा ॥ २३ ॥
 युष्माभिरदृष्टुतन्माह व्यसनाद् काननौकसः ।
 धर्म्यो राजा च सुप्रीयो भयङ्गिः सुहृदां वरैः ॥ २४ ॥

इसके बाद भीरवनापचीने महापलस्त्री बानरवृष्णकीर्णों-नीक, मस, कलपी, कुमुद, गन्धपादन सुरीय, प्लस, भीर मेन्द, द्विविद, काम्बान गवाश विन्त घृष्म, दक्षीमुख, प्रजङ्घ, महाशनी क्नाद, दरीमुल दधिमुल और यूपन इत्यन्वुतको बुध्दकर उनकी अर रत्नों नेत्रोंने इत प्रकार बेला मानो ये उद्दे नेत्रपुटोंवाय थी रहे हों । उद्देने म्नेद युक्त मधुर बारीमें उनमे कहा - बानरवीर ! अन्त्य मेरे सुहृद् तपीर और माई हैं । आने ही मुझे गन्धस उपाय है । आर असे भेद सुहृदोंको पाकर राजा सुप्रीय बन्धु हैं ॥ २ -२४ ॥

एवमुपेत्या ददौ तेभ्यो भूयणानि यथाहसः ।
 पञ्चाणि च महाहाणि मम्भज च मरयभा ॥ २५ ॥
 एतं बरुवर नरभेदं यनापचीने उद्दे यथायोग्यम्भुयय और बहुमूल्य हीरे दिय तथा उनका अङ्कित द्विया ॥ २५ ॥

त पियन्तः सुगांधीनि मधूनि मधुपिहन्ताः ।
 मांस्त्वानि च सुमृष्टानि मूलाणि च पत्तानि च ॥ २६ ॥
 मधुके समन्त विन्त वनशमे वे पानर बहों सुगन्धिपत मधु पीने राक्षसक बस्तुभोंका उरमग करत और स्वादिष्ट फल मूल खात व ॥ २६ ॥

एव तेया निवमत्तां माम्ः माद्रा ययी तदा ।
 सुहृतमिय त सर्वे रामभक्त्या च मनिर ॥ २७ ॥
 इत प्रकार निगत करत हुए उन बन्धुपंचा बहों एक मीनेम अधिक समय दीन गया परंतु भीरवनापचीक प्रति मन्तिके कारण उद्दे पर समय एक सुहृदोंके समान ही बन्धु पदा ॥ २७ ॥

रामोऽपि रम सैः स्तार्यं चानरैः कामकृपिभिः ।
 राक्षसेभ्य मातरीषैश्चरैश्चैव महाबर्धैः ॥ २८ ॥
 भीरव भी इष्पातुकर रूपपाल कनेगाय उन बन्धुपे भारतगन्धी कर्णने तथा महाश्वी गीर्णक श्य व इ अन्त्यने कन्त विपने व ॥ २८ ॥

एव तथा यथा गामा द्वितीयं निगिनः सुवाम् ।
 पानराश्यां प्रहृष्टानां राक्षसाना च मयया ॥ २९ ॥
 इष्पातुत्तगर इत्य परां प्रीतिमुपासकाम् ।
 रामस्य प्रीतिवत्तयाः पत्रमन्त्रया सुवर्णं ययी ॥ ३० ॥

इत तरह उनका चिन्तित हनुवर हृष्य मन्त्रि भी हुए

पूर्वक वीत गवा । इत्थाकुबन्धी नरेपोन्धी उच सुख्य एवमानी के प्रेमपूर्वक सखरसे उनका वह छम्प सुखपूर्वक के
 मे वे बानर और राखत बड़े हर्ष और प्रसते रहते थे । श्रीराम खा था । २९ १० ॥

इत्थार्थे श्रीमद्वाल्मीकीयै वाचिष्वाग्ने उत्तरकाण्डे पृथ्वीतन्त्रवार्तिताः सर्गाः ॥ ३९ ॥
 एष प्रथम श्रीमद्वाल्मीकीयै वाचिष्वाग्ने उत्तरकाण्डे कन्तास्मिन्तर्नां सर्गं पूरा बुध्य ॥ ३९ ॥

चत्वारिंश सर्ग

बानरों, रीछों और राक्षसोंकी विदाई

तथा सा तेषां वसतामृसावानरससाम् ।
 राघवस्तु महातजाग सुग्रीवमिवमप्रवीत् ॥ १ ॥
 इस तरह बहों सुखपूर्वक निवास करते हुए रीछों, बानरों और एखसोंसे सुग्रीवचंद्र उपोषित करके महादेवकी भीरुपुत्रावधीने इष्ट प्रकार कहा— ॥ १ ॥
 गम्यता सौम्य किष्किन्धा तुराधर्षोसुरासुरैः ।
 पालयस्व महामात्यै राज्यं निहतकण्ठकम् ॥ २ ॥
 श्रेयम् । सब तुम देवताओं तथा असुरोंके किये भी दुर्बल किष्किन्धापुरीके आभे और वहाँ मण्डिबोंके खप रह कर बरने निष्कण्ठक राज्यम् पावन करो ॥ २ ॥
 ब्रह्म च महाबाहो प्रीत्या परमया युतः ।
 पदय त्वं हनुमन्त च गल च सुमहापलम् ॥ ३ ॥
 सुयोग श्यपुर धीर तार च यन्निर्ना धरम् ।
 पुमुद वैव कुधर्व नील वैय महापलम् ॥ ४ ॥
 धीर शतपलिं धीव मैत्रुं द्विद्विदमेव च ।
 गर्जं गवाहर्षं गवयं गार्भं च महाबलम् ॥ ५ ॥
 श्वस्तराज च दुर्धरं जाम्बवन्त महापलम् ।
 पदय प्रीतिममायुतो गन्धमादनमेव च ॥ ६ ॥
 महाबाहो । ब्रह्म और हनुमान्चंद्र भी तुम ब्रह्मन्त प्रेमपूर्वक दक्षिने देवना । महाबली गल भवने एवग्रवीर गुणेश बन्धनोमें भेद तार कुर्षां धीर पुमुद महाबली नील, धीर पुग्रह्नि मैत्रुं द्विद्विद गव गवाध गवय महाबली धरम् महान् बल पराक्रमे पुक्त दुर्बल धीर श्वस्तराज आम्बवान् तथा गन्धमादनर भी तुम प्रेमपूर्वक दक्षि देवना ॥ १-६ ॥
 श्रुधर्मं च सुनिभान्तं श्वधर्मं च सुपाटयम् ।
 केनचित् शरभं शुभ्रं दानुधूतं मदायनम् ॥ ७ ॥
 परम पराक्रमी श्वराम बानर तुगाटम् बकरी धरम्, शुभ्र तथा महाबली शंगवृह्णा भी प्रेमपूर्वक दक्षि देवना ॥ ये ये म सुमहागमानो मर्षेणै त्वज्जीविताः । पदय त्व प्रीतिगममुक्ता मा धीरान् विप्रियं दृष्या ॥ ८ ॥ इतके शिष्य किन् किन् महागन्धी बानरोंने मेरे किये अपने कानोंकी बजी तथा ही थी उन कषर तुम प्रेमपूर्वक देवना । बभी उनका भण्डि न बरना ॥ ८ ॥ एषमुक्त्वा च सुधीयमानिद्वयं च पुनः पुनः । शिभीग्नमुवाचपय रामा मधुरया गिरा ॥ ९ ॥

ऐसा कह कर श्रीरामने सुग्रीवको बार्बत हुक्से बन्ध और फिर मधुर वाणीमें विभीषणसे कहा— ॥ १ ॥
 कुर्षां प्रतापि धर्मेण धर्मबन्धस्य मतो मम ।
 पुरस्य राक्षसानां च भ्रातृर्धैरवजस्य च ॥ १ ॥
 पक्षस्वाम् । तुम धर्मपूर्वक बन्धापा धरन करो । इन्हे धर्मत गन्ता हूँ । तुम्हारे गमके छेना, ठक एखत एव तुम्हारे माई कुनेर भी इन्हे धर्मत ही समझते हैं ॥ १ ॥ मा च बुद्धिमधर्मे त्व कुर्षां राजन् कर्येवम् । बुद्धिमन्तो हि रामान्ने मुबमदन्ति मेविनीम् ॥ ११ ॥ पावन् । तुम किये तरह भी अर्धर्मे मन न करना । किन्धी बुद्धि ठीक है वे रामा निरचय ही दीर्घकालक एवै का राज्मेते हैं ॥ ११ ॥
 मह च नित्ययो राजन् सुग्रीवसहितस्यवा ।
 स्मर्तव्याः परया प्रीत्या गच्छ त्व किनातज्वरा ॥ १२ ॥
 पावन् । तुम सुग्रीवकडिद गुणे करा वाद रत्नम् । अन निरिषत्त दोहर प्रसन्नपूरुषक यहाँसे आओ ॥ १२ ॥ रामस्य भापितं भुव्या श्वस्तराजराक्षसाम् । साधुसाधिविति काकुत्स्थ महाबाहुः पुनः पुनः ॥ १३ ॥ श्रीरामकान्धैष वद भाग्य सुनकर रीछों वाणीमें एखसोंने 'पश्य-बन्ध' कह कर उनकी बार्बत प्रार्थन थी ॥ तय बुद्धिमहाबाहो दीर्यमद्भुतमय च । माधुर्ये परम राम स्वयम्भोरिष निरयदा ॥ १४ ॥ ये बोले— 'महाबाहु भीरम । स्वयम्भु महाधीके छम्प भावके स्वभावमें एका परम मधुरता रहती है । अन्धी बुद्धि और पराक्रम अनुभूत हैं ॥ १४ ॥
 वयामत्र प्रुक्कणानां बानराणां च रक्षसाम् ।
 हनुमान् प्रमत्तो भूया राघव धान्यमप्रवीत् ॥ १५ ॥
 बन्ध और राखत बय ऐख वह रहे य उठी छम्प हनुमान्की निरन्न दोहर भीरुपुत्रावधीने बोले— ॥ १५ ॥ स्नेहो म परमो वर्जस्वयदि लिष्टु निरयदा । भलिद्य नित्यता धीर भावो माग्यम गच्छतु ॥ १६ ॥ महापत्र । मानके प्रति मेरा महान् स्नेह तथा का रहे । धीर । अन्धे ही मरी निरसन्न भण्डि १६ । अन्धे निर और बही मरा अन्धकि अनुपण न हो ॥ १६ ॥ यापय गामकया धीर अरिष्यति मर्दातय ।

ध्वजच्छरीरे यस्यास्तु प्राणा मम न सदाप ॥ १७ ॥
 धीर भीषम । इत् पृथ्वीपर ब्रह्मत्क रामकथा प्रवक्ष्यते
 रते, तवत्क नि संवेह मेरे प्राण इत् धारीरमे ही बसे रते ॥
 यस्वैतच्छरित दिव्य कथा ते रघुमन्वन् ।
 तम्मामप्सरसो राम भाषयेयुर्नरवर्षभ ॥ १८ ॥
 पृथुक्कृष्णान्नरभष्टभीषम। आपन्न ज्ञे यह दिव्य वरिण
 और कथा है इसे अन्वयार्थे मुझे गाकर सुनाया करे ॥ १८ ॥
 तप्युत्साहं ततो धीर तत्र चर्योमुत्त प्रभो ।
 उत्कण्ठया हा हरिष्यामि मेघश्लेषामियाजिलः ॥ १९ ॥
 धीर प्रभो । आगेके उक्त वरिणामृतश्रे सुनकर मैं अपनी
 उत्कण्ठान्ने उठी तब वृत्त करूंगा, जैसे वायु चपलश्री
 पक्षिभ उड़ाकर वृत्त ले जाती है ॥ १९ ॥
 एष सुवाण रामस्तु हनूमत्वं परासनात् ।
 उत्थाय सस्रजे स्नेहात् वाक्यमेतदुवाच ह ॥ २० ॥
 हनुमान्श्रीके ऐसा करनेपर श्रीरघुनाथश्रीने भेद विहित
 से उठकर उन्हें हृदयसे छत्र छिया और स्नेहपूर्वक इस प्रकार
 आ-॥ २ ॥
 एवमेतत् कपिभ्रेष्ठ भविता नम्र सदाय ।
 वरिष्यति कथा पावनेया शोके च मामिच्छ ॥ २१ ॥
 तावत् ते भविता कीर्तिः शरिरेऽप्यसबस्तथा ।
 श्लेषहि वापरस्थास्पन्ति तावत् स्थास्पन्ति मे कथाः ॥
 कपिभ्रेष्ठ । ऐसा ही होगा, इसमें संशय नहीं है। संशयमें
 मेरी कथा बहुतक प्रभावित होगी तबतक दुम्हारी कीर्ति
 अमित होगी और दुम्हारे शरीरमें प्राण भी रहेंगे ही।
 बहुतक ये श्लेष बने रहेंगे तबतक मेरी कथाएँ भी स्थिर
 रहेंगी ॥ २१ २२ ॥
 एकैकस्योपकारस्य प्राणग्रह् वाम्यामि ते कथे ।
 शपस्येहोपकारार्था भवाम् श्रुणिनो वयम् ॥ २३ ॥
 कथे । दुम्हने जो उपकार किये हैं उनमेंसे एक-एकके
 श्लेष में अपने प्राण निहाकर कर सकता हूँ। दुम्हारे शप
 उपकारोंके श्लेषों में श्रुणी ही यह जाऊँगा ॥ २३ ॥
 मन्त्रे कीर्णतां पातु यत् स्वयोपहत कथे ।
 क्ता प्रयुपकारात्पामापस्थायाति पात्रताम् ॥ २४ ॥
 कपिभ्रेष्ठ । मैं तो यही चाहता हूँ कि दुम्हने जो-जो
 उपकार किये हैं वे सब मेरे शरीरमें ही पच जायें। उनका
 बदला बुझनेका मुझे कभी अवसर न मिले; क्योंकि पुरुषमें
 उपकार्य बदला जानेकी योग्यता आपत्तिप्रदमें ही जाती है
 (मैं नहीं चाहता कि दुम्ह भी संकटमें पड़ो और मैं दुम्हारे
 उपकारका बदला बुझऊँ) ॥ २४ ॥
 हृत्वायं श्रीमन्नामाम्नां बाष्पनीश्रीये जादिशाम्ये उत्तरकाण्डे चत्वारिंशत् सर्गाः ॥ ४ ॥

ततोऽस्य हारं चन्द्राभ मुच्य कण्ठत् स पावकः ।
 वैकुण्ठतरु कण्ठे ववन्ध च हनूमतः ॥ २५ ॥
 इतना करकर भीरुनाथश्रीने अपने कण्ठसे एक चन्द्रमा-
 के समान उज्ज्वल हार निकाल्य; जिसके मध्यभागमें वैकुण्ठ
 मणि थी। उसे उन्होंने हनुमान्श्रीके गलेमें बाँध दिया ॥ २५ ॥
 तेनोरसि निवसेन हारेण महता कपि ।
 रराज हेमशैलेन्द्रान्द्रोपाक्रान्तमस्तकः ॥ २६ ॥
 वक्ष्यस्यते एते हुए उस विशाल हारसे हनुमान्श्री उठी
 तब सुषोभित हुए; जैसे सुवर्णमय गिरिराज मुनेदके शिखर
 पर चन्द्रमाक उदय हुआ हो ॥ २६ ॥
 भुत्वा तु राघवस्यैतदुत्थायोत्थाय वातरा ।
 प्रणम्य शिरसा पादौ किर्त्तयुस्ते महावला ॥ २७ ॥
 श्रीरघुनाथश्रीके ये विदार्थके शम्भु सुनकर वे महाकभी
 बानर एक-एक करके उठे और उनके चरणोंमें शिर झुकाकर
 प्रणाम करके बहोते पक्ष दिये ॥ २७ ॥
 सुभीषः स च रामेण निरस्तरमुरोगतः ।
 विभीषणश्च धर्मोऽप्या सर्वे ते पाप्यविक्रवाः ॥ २८ ॥
 सुभीष और बामरा विभीषण भीरामके हृदयसे उमा
 गये और उनका गद्गद व्याभिन करके विदा हुए। उस समय
 वे सब के-सब नेत्रोंसे आँसु बहाते हुए भीरामके माथी किरहते
 व्यथित हो उठे थे ॥ २८ ॥
 सर्वे च ते बाप्यकलाः साधुनेषा विचेतसः ।
 सम्भूदा इव दुःखेन त्यजन्तो राघव तदा ॥ २९ ॥
 भीरामके छोड़कर बाते समय वे सभी यु-वकसे किर्त्तव्य-
 वियुक्त तथा अचेत-ये हो रहे थे। किन्तीके गलेसे अग्राज मही
 निकलती थी और सभीके नेत्रोंसे आसु सर रहे थे ॥ २९ ॥
 हतप्रसादास्तेनैव राघवेण महत्तमम् ।
 अगुः स्य स्व गृह सर्पे देही देहमिव त्यजन् ॥ ३० ॥
 महाराम भीरुनाथश्रीके इस प्रकार कथा एव प्रसन्नता-
 पूर्वक विश्व देनेपर वे सब बानर विषय हो उठी प्रकर अपने-
 अपने परका गये जैसे बीषारामा निवचतापूर्वक शरीर छोड़कर
 परलोकको अता है ॥ ३० ॥
 ततस्तु ते राक्षसशुद्धाघानरा
 प्रणम्य राम रघुशशवचनम् ।
 वियोगजाधुमप्रतिपूणशोचनाः
 प्रतिप्रयातास्तु पथानियासिनः ॥ ३१ ॥
 वे राक्षस, वीर और बानर खुशचर्चर्चन भीरामको प्रणाम
 करके नेत्रोंमें विषागक आँसु सिय अपने-अपने निरासम्पन्नको
 छोड़ गये ॥ ३१ ॥

एकचत्वारिंशः सर्ग

कुबेरके मेरे हुए पुष्पकविमानका जाना और भीरामसे पूजित एवं अनुगृहीत होकर बरहम हो जाना, भरतके द्वारा भीरामराज्यके विलक्षण प्रभावका वर्णन

विद्युत्स्य च महाबाहुर्ध्वंसवानररासस्ताम् ।
 ध्यायिभिः सहितो रामः प्रमुमोक्ष सुखं सुखी ॥ १ ॥
 रीतौ, बानरों और राक्षसोंको विहा करके माइनोंवहित
 मुक्तस्वरूप महाबाहु भीराम सुख और आनन्दपूर्वक वहाँ
 रहने लगे ॥ १ ॥
 अथापरारुहसमये ध्यायिभि सह राघवः ।
 शुभाश्व मधुरां वापीमन्तरिक्षागमहाप्रभुः ॥ २ ॥
 एक दिन भरपट्टकाकामे (दोपहरके बाद) अपने
 माइनोंके साथ बैठे हुए महाप्रभु भीरामनाथजीने आकाशमें
 वह मधुर वाणी सुनी— ॥ २ ॥
 सौम्य राम निरीक्षत् सौम्येन कर्मणेन माम् ।
 कुबेरभक्त्यात् प्रसन्नं त्विदं मां पुष्पकं प्रभो ॥ ३ ॥
 शैश्व भीराम ! आप मेरी ओर प्रकृततापूर्ण मुझसे
 इक्षिपत् करनेकी इया करे । प्रभो ! आपका विहित होना
 पादिने कि मैं कुबेरके भक्तसे छोटा हुआ पुष्पकविमान हूँ ॥
 तव शासनमाहाय गतोऽस्मि भङ्गन प्रसि ।
 तपस्वार्तुं नरभेष्ट स च मां प्रत्यभाषत् ॥ ४ ॥
 नरभेष्ट ! आपकी श्मशान गानकर मैं कुबेरकी सेनाके
 किने उनके भक्तमें गया था; परंतु उन्होंने मुझसे कहा— ॥
 निश्चितस्त्वं नरेन्द्रेण राघवेण महात्मना ।
 निहत्य पुंथि दुर्धरेण राघवं राक्षसेश्वरम् ॥ ५ ॥
 “विमान ! महात्मा महापुरुष भीरामने मुझमें दुर्धरे
 एकलोक राघवके मारकर दुर्धरे कीता है ॥ ५ ॥
 ममापि परमा मीलिर्हिते तस्मिन् दुर्धराम्नि ।
 राघवे सगणे चैव स्वपुत्रे सहबान्धवे ॥ ६ ॥
 पुत्रों बन्धु-बन्धुओं तथा सेवकगणोंवहित उस दुर्धराम
 राघवके मारे जानेसे मुझे भी बड़ी प्रकृतता हुई है ॥ ६ ॥
 स त्वं रामेण कृद्वायां निश्चितः परमारमना ।
 बह सौम्य तमेव त्वमहमज्ञापयामि ते ॥ ७ ॥
 शैश्व ! इस तरह परमात्मा भीरामने कृद्वायमें राघवके
 लख-लख दुर्धरोंमें भी कीत किया है अतः मैं आज वेता हूँ
 तुम उन्हेंकी कथायें खो ॥ ७ ॥
 परमो ह्येव म क्वामो पत्न्य राघवमन्वुमम् ।
 यद्वेद्यैकस्य सपान गच्छस्य विगतज्वरः ॥ ८ ॥
 पतुकुम्भमें आनन्दित करनेके लिये भीराम कम्पूमें कान्हाके
 भक्षण है । तुम उनकी कथायें भ्रम भाओ—यह मेरी
 कर्ते बड़ी कान्हा है । इसविधे तुम निश्चिन्त होकर
 काम्य ॥ ८ ॥
 सोऽहं शासनमाहाय धनदस्य महाप्रमना ।

रक्षसकषयामनुमातो निर्बिद्युः प्रतीच्छ माम् ॥ ९ ॥
 ‘इस प्रकार मैं महात्मा कुबेरकी श्मशान लकर ही अपने
 पाठ भाया हूँ अतः आज मुझे निष्काह होकर भ्रम हूँ ॥ ९ ॥
 अपुष्प्यः सर्वभूतानां सर्वेषां धनदात्मना ।
 अराम्यहं प्रभावेण तवाद्यां परिपाछमन् ॥ १ ॥
 मैं सभी प्राणियोंके किने भक्षे हूँ और कुबेरकी श्मशानके
 अतुल्य मैं आपके आदेशका पावन करता हुआ अपने
 प्रभावसे तमका छोड़के विचरन करनेगा ॥ १ ॥
 एवमुक्तस्तथा रामः पुष्पकेण महात्मना ।
 तवाच पुष्पक इमा विमान पुनरागतम् ॥ ११ ॥
 पुष्पकके देख करनेपर महाबाबी भीरामने उठ विमानके
 पुनः आया देख उससे कहा— ॥ ११ ॥
 पद्येवं स्वागतं तेऽस्तु विमानवर पुष्पक ।
 आनुकम्प्यात् भनेशस्य वृत्तदोषो न मो भवेत् ॥ १२ ॥
 ‘विमानराघव पुष्पक ! यदि ऐसी बात है तो मैं तुम्हारा
 स्वागत करता हूँ । कुबेरकी अनुकम्पता होनेसे हमें मर्कट-
 मजूका दोष नहीं लगेगा ॥ १२ ॥
 सादृशेय तथा पुण्यैर्धृष्टेयैश्च सुगन्धिभिः ।
 पूजयित्वा महाबाहु राघवः पुष्पकं तथा ॥ १३ ॥
 ऐस करकर महाबाहु भीरामने जना पूज्य हुए और
 फलन आदिके द्वारा पुष्पकका पूजन किया ॥ १३ ॥
 गन्धतमिमिति सोवाच अश्वच्छ त्वं कर्ते ववा ।
 सिद्धानां च गतौ सौम्य मा विमानेन योजय ॥ १४ ॥
 प्रसिद्धतम्य ते मा भूत् पद्येय गच्छतो विशां ।
 और कहा— मय तुम जाओ । वर मैं करण करने ल
 ग्य जाना । श्मशानमें रहना और अपनेको मरे किनेसे दुखी
 न होने देना (मैं यथासमय तुम्हारा उपवेशन करता रहूँगा) ।
 श्लेषशस्ते कम्प्यै विद्याओंमें जाते समय तुम्हारी किनेसे उबर
 न हो अपथा तुम्हारी गति करी प्रतिहत न हो ॥ १४ ॥
 एवमस्तिष्ठति रामेण पूजयित्वा विशिञ्चितम् ॥ १५ ॥
 अभिमेतां विशा तस्मात् प्रयात् तत् पुष्पक तथा ।
 पुष्पकने प्यरमस्तु करकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर
 ली । इस प्रकार भीरामने तलक पूजन करके वर उठे जानेकी
 आज्ञा दे ली तब वह पुष्पक बहोते अपनी मनीष विद्याके
 लख गया ॥ १५ ॥
 पयमन्तार्हिते तस्मिन् पुष्पके सुहृत्पामनि ॥ १६ ॥
 भरता प्राञ्जलिर्वाचयन्नुवाच रघुनन्दनम् ।
 इस प्रकार पुष्पकने पुष्पकविमानके अहस्य हो जानेपर
 भरतजीने हाथ जोड़कर भीरामनाथजीसे कहा— ॥ १६ ॥

विदुषारमनि हृदयस्ते ऋषि धीर प्रशासति ॥ १७ ॥
ममानुयापि सस्त्वानि ध्याहृतानि मुद्गुर्मुद्गुः ।

धीरवर ! आप देवत्वम् हैं । इच्छिये आपके शास्त्र-
ग्रन्थे मनुष्येतर प्राणी भी बार-बार मनुष्योंके समान सम्भाषण
करते देखे जाते हैं । १७३ ॥

मनामपञ्च मर्त्यानां साप्तो मासो गतो ह्ययम् ॥ १८ ॥

जीर्णानामपि सत्वानां सृष्ट्युर्नायाति राघव ।

मरोगप्रसवा गर्भो यपुष्मन्तो हि मानवाः ॥ १९ ॥

आपके राक्षस अतिरिक्त हुए एक मासके अधिक
ही गये; तबसे सभी ज्ये नीरोग दिवसोंमें देते हैं । बड़े
प्रतिशोधके पास भी मृत्यु नहीं करती है । जिनको बिना क्य
करे प्रसव करती है । सभी मनुष्योंके शरीर हुए पुष्ट दिवसों
देते हैं ॥ १८ १९ ॥

एवंभाम्यधिको राज्ञश्चनरय पुरदासिनः ।

इत्थर्षे श्रीमत्प्रामाण्ये वाक्कीर्तये आधिक्यम् उत्तरकाण्डे पृथक्त्वारिंशः सर्गः ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीमत्प्रामाण्ये अर्थात्प्रामाण्ये अतिरिक्त उत्तरकाण्डे इच्छानिमित्तो सर्ग पूरा हुआ ॥ ५१ ॥

द्विचत्वारिंशः सर्गः

अशोकवनिकामे श्रीराम और सीताका विहार, गर्भिणी सीताका तपोवन देखनेकी इच्छा
प्रकट करना और श्रीरामका इसके लिये स्वीकृति देना

स विच्युय उतो रामः पुण्यकं हेमभूमितम् ।

प्रतिवेश महाबाहुरशोकवनिकां तदा ॥ १ ॥

मुकुर्वन्वित पुण्यक विमानको बिदा करके महाबाहु

श्रीरामने अशोक-वनिक (अन्तःपुरके विहार योग्य उपवन)

में प्रवेश किया ॥ १ ॥

कन्दमगुडवृक्षैश्च तुङ्गकाशेयकैरपि ।

वृषदाहयनेभ्योपि समन्तादुपशोभिताम् ॥ २ ॥

कन्दः अगुड आम तुङ्गः (नारियल) काशेयक

(रजकन्द) तथा वृषदाह-वन सब अरसे उषधी योग्य

बढ़ा रहे थे ॥ २ ॥

वप्यशोकपुनागमधूकपनसासुनै ।

शोभितां पारिजातैश्च विधूमज्ज्वरुनप्रभैः ॥ ३ ॥

वप्या अशोक पुनाग महुआ कटरुन, अस्मन् तथा

पुष्पवैत अग्निके समान प्रकटित होनेवाले पारिजातसे बढ़

करिये हुए शोभित थी ॥ ३ ॥

साधनीपान्दुर्नैर्नदी सप्तपणातिमुककैः ।

मन्दारकदलीगुल्मसुताज्जालसमावृताम् ॥ ४ ॥

वप्य अरुण अर्जुन गाणकेरु उडुवन अतिमुककः

मन्दार कदली तथा गुल्मों और सजाभाऊ कन्दू उठते सब

बढ़े गये थे ॥ ४ ॥

प्रियङ्गुभिः कदम्पथ तथा च पञ्चुर्हरपि ।

जम्बुविन्दैर्मक्षैव कान्दिदारैश्च शोभिताम् ॥ ५ ॥

पत्रले वर्णति पञ्चम्यः पातयन्नमृत पयः ॥ २० ॥

पञ्चम्यः पुरवाधिमो बहः इर्ष छा रहा है । मेघ

अमृतके समान जल गिरते हुए समथर गया करते हैं ॥ २० ॥

वाताभ्यापि प्रधास्येते स्पशंयुक्ताः सुखाः शिवाः ।

ईदृशो नखिर राजा भयंक्रिति मेध्वरः ॥ २१ ॥

कचयन्ति पुरे राजन् पीरजानपदास्तथा ।

एषा ऐसी नखी है कि इसका स्वर्ण घीठक एवं सुन्द

अन पड़ता है । राजन् ! नगर और जनपद सब इस पुरीमें

करते हैं कि हमारे स्थिये निरकच्छक ऐसे ही प्रमादशाधी

राज्य हैं ॥ २१ ॥

एता वाचः सुमधुरा भरतेन समीरिताः ।

भ्रुव्या रामो मुदा युक्तो बभूव मूपसत्तमः ॥ २२ ॥

मलकी बरी हुई ये सुमधुर बातें सुनकर नृपभेद

श्रीरामचन्द्रजी बड़े प्रसन्न हुए ॥ २२ ॥

प्रियङ्गु पृथिव्यम्, बहुल अस्मन्, अमार और

श्रेयिष्ठ आदि इस उठ उपवनको सुशोभित करते थे ॥ ५ ॥

सयदा कुसुमै रम्यैः फलयङ्गिर्नरोत्तमैः ।

विष्णुगन्धरसोपतैस्तदुणाहूरपहृष्यैः ॥ ६ ॥

उद्य पूज और फल देनेवाले रमणीय मनोरम, दिव्य

रस और गन्धसे युक्त तथा नूतन अहुर-पत्रवोले बहूत

बृक्ष भी उठ अशोक-वनिककी शोभ बढ़ा रहे थे ॥ ६ ॥

तथैव तठभिर्विन्ध्यैः शिखिभिः परिकल्पितैः ।

चारुपल्लवपुष्पाद्यैर्ममममस्तकुक्षैः ॥ ७ ॥

बृक्ष समानकी कक्षमें कुशास माखिबोहाय तैयार किये

गये दिव्य बृक्ष, जिनमें मनोहर पत्र तथा पुष्प शोभ्य पाते

ये और जिनके ऊपर मत्तबाह अमर छा रहे थे उठ उपवन

की भी वृद्धि कर रहे थे ॥ ७ ॥

कान्तिलैर्मुद्गुत्तरीभ्यः मानाश्वीभ्यः पदिरभिः ।

शोभितां तन्तान्त्रिभ्यः शूलपृष्ठापतसर्षपैः ॥ ८ ॥

शोभित, मृत्पत्र आदि रंग-विरंगे शेरुको पक्षी उठ

करिये तथा व अशोककी शक्तिवोले अमरभागर देट

कर बरो विविध सुगन्धकी वृद्धि कर रहे थे ॥ ८ ॥

दानवुष्मभिः कश्चित् कश्चिद्विशिन्धोपमाः ।

श्रीत्याञ्जननिभाभ्याम्ये भान्ति तत्र म्य पादपाः ॥ ९ ॥

कई बृक्ष सुगन्ध समान चीन कई अग्नि-दिनाक

समान उगान और कई नील अमरके समान रूपमें थे,

एकचत्वारिंशः सर्ग

कुबेरके भेजे हुए पुष्पकविमानका आना और श्रीरामसे पूजित एवं अनुगृहीत होकर बरहम ही जाना, भरतके द्वारा श्रीरामराज्यके विलक्षण प्रभावका वर्णन

विद्युन्वय च महाबाहुर्भूतस्थालरपास्तमान् ।
 आदभिः सहितो रामः प्रमुमोत् सुखं सुखी ॥ १ ॥
 रीतौ, बानरो और एषसेको विवा करके मङ्गलविहित
 सुखलक्षण महाबाहु भीरम सुख और आनन्दपूर्वक वहाँ
 रहने लगे ॥ १ ॥
 अथापरास्तमये आदभि सह राघवः ।
 गुभाय मधुरा वापीमन्तारिज्ञामहामधुः ॥ २ ॥
 एक दिन अमरकण्ठमन्त्रे (राघवके बाद) अपने
 माइसोके हाथ बैठे हुए महामधु भीरुनाथजीने आकाशसे
 बह मधुर बाणी सुनी— ॥ २ ॥
 सौम्य राम निरीक्षस्व सौम्येन वक्ष्मेन माम् ।
 कुबेरभवन्वत् प्राप्त विद्वि मां पुष्पकं प्रभो ॥ ३ ॥
 श्रेय्य भीरम । आप मेरी ओर प्रकृततापूर्ण मुखसे
 दृष्टिपत करनेकी इया करे । प्रभो ! आपको विहित होना
 जासिये कि मैं कुबेरके भनरसे भेदा हुआ पुष्पकविमान हूँ ॥
 तव शासनमाहाय गतोऽस्मि भवर्षं प्रति ।
 वपस्थार्तुं मरुभेष्ट स च मां प्रत्यभाषत ॥ ४ ॥
 आरभेष्ट । आपकी आज्ञा मानकर मैं कुबेरकी सेवाके
 लिये उनके भनरमें गया था। परंतु उन्होंने मुझसे कहा—
 निर्जितस्वर्षं नरेण्येष राघवेण महत्प्रमत्ता ।
 निहत्य युधि दुर्धरं राघवं राक्षसेश्वरम् ॥ ५ ॥
 'विमान । महात्मा महावत भीरमने मुझमें दुर्धरं
 एतज्जव राघवको मरकर दुर्धरं किया है ॥ ५ ॥
 ममापि परमा प्रीतिर्हृते तस्मिन् दुरात्मनि ।
 राघवे सगण्ये वैय सपुत्रे सदृष्टान्श्रये ॥ ६ ॥
 'पुत्रों, बन्धु-बापनों तथा सेवकगणोंसहित उठ हुएस्व
 राघवके मारे जानेसे मुझ भी बड़ी प्रकृतता हुई है ॥ ६ ॥
 स त्व रामेण सङ्घार्या निर्जितः परमात्मना ।
 यद् सौम्य तमेय त्वमहमाज्ञापयामि त ॥ ७ ॥
 'श्रेय्य । इस तरह परमात्मा भीरमने सट्टामें राघवके
 लक्ष्मण-व-रामके भी शीत किया है अतः मैं आज्ञा देता हूँ
 तुम उनकी भी कर्तव्यमें रहो ॥ ७ ॥
 परमा ह्येव न क्षमा यत् त्व राघवमन्दनम् ।
 सदृष्टोऽस्म्य सपान गच्छन्व विगतज्यवाः ॥ ८ ॥
 'एतदुक्तो आनन्दित करनेके लिये भीरम कर्णवर्णनके
 अधभ है। तुम उनकी कर्तव्यमें काम आओ—बह मेरी
 कर्तव्य बड़ी काम्य है । इतकिय तुम निरिच्छत होकर
 जाओ ॥ ८ ॥
 साह्यं गामनमाशय धनद्वय महाप्रमत्तः ।

त्वत्सङ्घारामनुमातो निर्विहाहुः प्रसीच्छ माम् ॥ ९ ॥
 'इस प्रकार मैं महात्मा कुबेरकी आज्ञा पाकर ही अपने
 पाप भोग हूँ अतः आप मुझे निःशङ्क होकर प्रहम करें ॥ ९ ॥
 अपुष्या सर्वभूतानां सर्वेषां जन्मात्मना ।
 आराम्यह प्रभायेण तवासां परिपास्तयन् ॥ १० ॥
 मैं सभी प्राणियोंके लिये भजे हूँ और कुबेरकी आज्ञाके
 अनुसार मैं आपके आदेशानुसार पावन करता हुआ अपने
 प्रभवसे समस्त लोकोंमें विचरण करूँगा ॥ १० ॥
 एवमुक्तस्तादा रामः पुष्पकेण महत्बलाः ।
 उवाच पुष्पक इमा विमान पुनरागतम् ॥ ११ ॥
 पुष्पकके ऐश्वर्य केनेपर महाकबी भीरमने उठ विमानसे
 पुनः अया देव उठसे कहा— ॥ ११ ॥
 यद्येष स्वागतं तेऽस्तु विमानवर पुष्पक ।
 आनुकूल्यात् धनेशस्य वृत्तदोषो न मो भवेत् ॥ १२ ॥
 विमानराज पुष्पक । यदि ऐसी बात है तो मैं तुम्हारा
 स्वागत करता हूँ । कुबेरकी अनुकूलता होनेसे हमें मर्कट-
 मङ्गला शेष नहीं होगा ॥ १२ ॥
 साक्षैद्येय तथा पुष्पैर्धूपैश्चैव सुगन्धिभिः ।
 पूजयित्वा महाबाहु रामहः पुष्पक त्वा ॥ १३ ॥
 ऐश्वर्य करकर महाबाहु भीरमने लावा, धूप, इप और
 चन्द आदिके द्वारा पुष्पकका पूजन किया ॥ १३ ॥
 गन्पतामिति बोवाच आगच्छ त्व करे बवा ।
 सिद्धानां च गतौ सौम्य मा विपादेन योजय ॥ १४ ॥
 प्रसिद्धतत्त्व ते मा मूत् यद्येष्टं गच्छतो विद्या ।
 और कहा—'अब तुम जाओ । जब मैं सारण करूँ तो
 आ जाना । आकाशमें रहना और अपनेको मेरे विद्योसे सुखी
 न होने देना (मैं यथासमय तुम्हारा उपयोग करता हूँगा) ।
 श्रेय्यसे कर्णवर्ण विद्याओंमें जाते समय तुम्हारी कर्तव्यमें उबर
 न हो अपवा तुम्हारी गति कही प्रतिदत्त न हो ॥ १४ ॥
 एवमस्त्विति रामेण पूजयित्वा विसर्जितम् ॥ १५ ॥
 अभिमता विना तस्मात् प्रायात् तत् पुष्पकं त्वा ।
 पुष्पकने 'एवमस्तु' करकर उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर
 ली । इस प्रकार भीरमने उठवा पूजन करके जब उठे जानेसे
 आज्ञा दे दी, तब वह पुष्पक बहोसे अपनी अग्नि शिखर
 चय गया ॥ १५ ॥
 एवमस्तादृशं तस्मिन् पुष्पके सुदृष्टव्यमिति ॥ १६ ॥
 भरता प्राञ्चन्निषाक्यमुवाच रघुनन्दनम् ।
 इत प्रकार पुष्पकमव पुष्पकविमानक आगम हो जानेपर
 भरतजीने हाथ जोड़कर भीरुनाथजीसे कहा— ॥ १६ ॥

विदुषामनि हृदयन्ते ऋषि धीम प्रशासति ॥ १७ ॥
प्रमानुशयि मन्त्रवानि व्याहृतानि मुहुर्मुहुः ।

धीरवर । आर देवस्वरूप हैं । इच्छेच्छिये भाषक शासन
शब्दमें मनुष्येतर प्राणी भी शरंभार मनुष्योंके समान सम्भाषण
करते देख सकते हैं । १७३ ॥

मनामपञ्च मय्याना साभो मासो गतो ह्ययम् ॥ १८ ॥
शैलनामपि सखानां मृत्युनायाति राघव ।

साभो मासो गतो ह्ययम् ॥ १८ ॥
शैलनामपि सखानां मृत्युनायाति राघव ।

शैलनामपि सखानां मृत्युनायाति राघव ।

शैलनामपि सखानां मृत्युनायाति राघव ।

काले यपति पञ्चन्या पातयन्नमृत पय ॥ २० ॥
पञ्चन्या । पुरवामिषोमे बड़ा ११ छा रहा है । मेघ
अमृतन समान ऋषि मियत हुए समपपर बना करते हैं ॥ २० ॥

पाताभ्यापि प्रयान्येते स्पर्शसुखाः सुखाः शिवाः ।
ईदृशो नखिर राजा भयद्रिति नरेभ्यरा ॥ २१ ॥
कथयन्ति पुरे राजन् पीरजानपदान्तया ।

ईदृशो नखिर राजा भयद्रिति नरेभ्यरा ॥ २१ ॥
कथयन्ति पुरे राजन् पीरजानपदान्तया ।

पदा पापः सुमपुरा भग्नत समीरिता ।
धृत्वा रामो मुदा सुखो बभूव नृपसत्तमा ॥ २२ ॥
मलयकी कही हुई ये सुमपुर कालें सुनकर उपभेद

धीयमचन्द्रबी बड़े प्रच्छन्न हुए ॥ २२ ॥
धीयमचन्द्रबी बड़े प्रच्छन्न हुए ॥ २२ ॥

द्विचत्वारिंशः सर्गः

अशाकवनिकामे श्रीराम और सीताका विहार, गर्भिणी सीताका तपावन देखनेकी इच्छा
प्रकट करना और श्रीरामका इसके लिये स्वीकृति देना

स विद्युन्व ततो रामः पुण्यक हेमभूषितम् ।

प्रविष्ट्वा मदापाहुरशोकवनिका तदा ॥ १ ॥
दुर्गमं पुरं पुण्यक विमानको विदा करते मदापाह
रुं प्रकमे मदापाहुरशोक (अन्तःपुरके विहार नाम उपवन)
में गया किया ॥ १ ॥

अन्तःपुरेण चतुर्भुजः सुहृत्कण्ठेयकैरपि ।

समन्तात्पुषपोभिताम् ॥ २ ॥
करन भगुन, आम, दुष्ट (नाशिक) अत्येक
(एककन) तथा देवराज-वन तब भोरसे उलकी छोमा
दा रहे ॥ २ ॥

अन्तःपुरेण चतुर्भुजः सुहृत्कण्ठेयकैरपि ।

समन्तात्पुषपोभिताम् ॥ २ ॥
करन भगुन, आम, दुष्ट (नाशिक) अत्येक
(एककन) तथा देवराज-वन तब भोरसे उलकी छोमा
दा रहे ॥ २ ॥

अन्तःपुरेण चतुर्भुजः सुहृत्कण्ठेयकैरपि ।

समन्तात्पुषपोभिताम् ॥ २ ॥
करन भगुन, आम, दुष्ट (नाशिक) अत्येक
(एककन) तथा देवराज-वन तब भोरसे उलकी छोमा
दा रहे ॥ २ ॥

प्रियङ्गु पृषिकदन्ध, बड़क, अमृत, अमार और
कोविदार आदि वृक्ष उठ उपवनमें मुशामित करते थे ॥ ५ ॥
सपदा पुंसुमं रम्यैः फल्गुवृक्षमनोरमैः ।

दिव्यगन्धर्वसोपतैस्तदपाहुरपल्लवैः ॥ ६ ॥
सदा पूम और फल देनेवाले रमणीय मदारम दिव्य
रुठ और फलमें सुष्ठ तथा नृतन अहुर-वनमेंसे अमृत
वृक्ष भी उठ अमृत-वनिकाकी शोभा बढ़ा रहे थे ॥ ६ ॥

तथैव तन्भिर्दिग्भिः पितृदिग्भिः परिवन्दिभिः ।
घाटपल्लवपुष्पाह्वयैस्तत्तदधमरमसुन्दरैः ॥ ७ ॥
वृक्ष कमानेकी कथने गुणक माणिक्येण्डाव वैदार विद
ल्ले निम्न वृक्ष बिनमें मदार पत्ता तथा पुष्प लम्ब लगे
थे और निम्न ऊपर मन्त्राव प्रमर छा रहे थे, तब वन
की भी वृद्धि कर रहे थे ॥ ७ ॥

काञ्चिन्मृद्वरामैश्च मानवर्षैश्च पतिभिः ।
गोभितां गणपतिभ्यां पुनःपुनःपुनः ॥ ८ ॥
कविन मन्त्राव अर्क (कवि) के होते हैं त
परिवारी काल प त अमृत-वनमें

पर बर्षे विविध सुन्दर वृक्ष होते हैं ॥ ८ ॥
गानपुष्पभिर्भावा बनिगु वृक्षिभ्यः ॥ ९ ॥
मीनप्रवृत्तभावाभ्यां भानिभ्यः ॥ १० ॥
करी वृक्ष सुन्दर वृक्ष के वृक्ष-वन
कन उपवन की वृक्ष-वन

गानपुष्पभिर्भावा बनिगु वृक्षिभ्यः ॥ ९ ॥
मीनप्रवृत्तभावाभ्यां भानिभ्यः ॥ १० ॥
करी वृक्ष सुन्दर वृक्ष के वृक्ष-वन
कन उपवन की वृक्ष-वन

करी वृक्ष सुन्दर वृक्ष के वृक्ष-वन
कन उपवन की वृक्ष-वन

वा लक्ष्मिं सुधांमिह इत्थं उत उपवनकी घोमा वदाते मे ॥१॥
 सुरभीणि च पुष्पाणि माल्यानि विविधानि च ।
 वीर्यिक्रम विविधाकराः पूर्वाः परमधारिणा ॥ १० ॥
 वहाँ अनेक प्रकारके सुगन्धित पुष्प और गुच्छ इष्टि
 गेयर होत थे । उत्तम ऊँठे भरी हुईं मौलि-मौलिकी
 वादिवीं देखी जाती थीं ॥ १ ॥
 माणिस्यहृतसोपाणाः स्मृत्तिक्रमस्तदकुट्टिमाः ।
 फुल्लतपधोत्पलवन्ध्याश्च वाकोपशोभिताः ॥ ११ ॥
 किन्में माणिस्यरी छिदीयों बनी थीं । छिदीयोंके चार
 कुछ दूतक असके भीतरकी भूमि स्मृत्तिक मणिते बँधी हुईं
 थी । उन वादिवीयोंके भीतर सिद्ध हुए क्रमस और कुमुदोंके
 समूह घोमा पाते थे चक्रवाक भी उनही घोमा वदा रहे थे ॥
 बाल्यहृद्युक्तसुपुत्रा हंससारसप्रविताः ।
 ठरुभिः पुष्पशयनैस्तीरक्षीरुपशोभिताः ॥ १२ ॥
 परीं और छते वहाँ मीनी बोकी बोक रहे थे । इँठों
 और छरल्लोंके ककरय नूँब रहे थे । फूँसेसे चित्तबरे दिखानी
 देनेबाळ लटकतीं हृद्य ठरुँ घोमासम्पन्न बना रहे थे ॥१२॥
 प्राकारैरिर्विधाकारैः शोभिताश्च शिखराढ्यैः ।
 तत्रैव च पनोद्देहो वैभूयमपिसन्निभैः ॥ १३ ॥
 शाङ्गसैः परमोपेतां पुष्पितद्रुमकञ्चनानाम् ।
 वे मौलि-मौलिके परछेयों और शिखरोंसे भी सुशोभित
 थीं । वही बनयान्तमें नीलमके छमान रंगवासी हरी-हरी पत्तें
 उत काटिकर्या गृह्यार कर रही थीं । वहाँके वृक्षोंके समुदाय
 फूँतोंके मरले सदा हुआ था ॥ १३ ॥
 तत्र सार्धंजाताना वृक्षाणां पुष्पाभित्नाम् ॥ १४ ॥
 प्रस्तार पुष्पापला कभस्त्यापगण्ठेरिय ।
 वहाँ मनो परस्पर होइ अग्यार मिले हुए पुष्परासी
 वृक्षोंके लड़े हुए फूँतोंमें जाने-जाने प्रस्तर गच्छे तरह चित्त-
 बरे दिखानी देते थे जैन ताठोंके समुदायसे अर्धकुल
 भाधय ॥ १४ ॥
 मूर्ध्नं हि यद्येद्रम्य घ्रातं क्षीरपर्यं पया ॥ १५ ॥
 तथाभूर्ध्नं हि रामस्य काननं स्निघेणाम् ।
 येने इत्थं मन्त्र और ब्रह्माणीय बनाया हुआ कुपेर
 का पचरय बन सुभभित होता है उसी प्रकार सुन्दर भानों
 से विभूषित भीरामस वद भीडा-कानन धाम्य था रहा था ॥
 ब्रह्मगनपुत्रापना सत्याग्रहसम्यापुताम् ॥ १६ ॥
 धनापचनिकां व्रीणां प्रविश्य च्युमन्त्रतः ।
 ध्यारन च गुभाकार पुष्पमन्त्रभूषित ॥ १७ ॥
 बुधास्तत्पार्श्वस्थीत्ये रामः सनिरगात् ॥ १८ ॥
 वहाँ अनेक ढेंगे घात बने थे बिन्द और चेटनेके
 िक बहुतने अन्त लकव गव था । वर काटिका अनेक
 क्यमन्त्रोंके लकव गिगाती दृष्टी थी । उन समुद्रिगात्रिणी
 धाटके बनिघामे प्राय वरके समुद्रकन्दन भीराम पुष्पमन्त्रो

विभूषित एक सुन्दर भासनपर बने, किलर कल्ल
 निष्ठा था ॥ १९ १० ॥
 सीतामादाय हस्तेन मधु मीरयकं शुभि ॥ १८ ॥
 पायवामास काकुत्स्थः दाक्षीमिष पुत्रदत्त ।
 येते देवराज इत्थं वासीको वृषाकन करते हैं जो
 प्रभर ककुत्स्थकुमुदमूलन भीरामने अपने हात्के पत्रिष के
 मधु छेकर सीताकीके निबध्या ॥ १८ ॥
 मांसाणि च सुमुद्यानि पक्वानि विविधानि च ॥ १९ ॥
 रामस्याभ्ययहारार्थं किकरास्तुण्णमाहरत् ।
 सेवकान् भीरामके मोहनके किमे वहाँ दूरंत ही राके
 चित मेम्य पनार्थ (मौलि मौलिकी रखें) तथा नान
 प्रभरके फय के माने ॥ १ ॥
 उपानुस्यञ्च राजान मृत्युगीतविशारदाः ॥ २ ॥
 अक्सपेरगसघाञ्च किंनरीपरिवारिणः ।
 उस समय राजा रामके समीप दत्य और गीतों ककने
 नियुक्त अन्वयों और नाग-कन्याएँ किकरियोंके साथ कि
 कर दत्य करते थीं ॥ २ ॥
 वृक्षिणा रूपयत्यञ्च विप्र्यर्षा पालवनां गता ॥ २१ ॥
 उपानुस्यन्त काकुत्स्थं मृत्युगीतविशारदाः ।
 नाचने-गनेमें कुशास और बजुर बहुत-सी स्पर्शों किनें
 मनुष्यनश्चित मदके बधीमृत हो भीरामचन्द्रकीके निबध
 अन्ती दत्य-कक्या प्रदर्शन करते थीं ॥ २१ ॥
 मनोऽभिरामा रामास्ता रामो रमन्वर्ता वरः ॥ २२ ॥
 रमयामास धमामा नित्य परमभूस्त्रिणः ।
 वृष्टोंके मनका रमानेवाले पुढगोंमें श्रेष्ठ बनाराम भीराम
 का उत्तम बन्नाभूतोंसे भूषितहुँ उन मनोऽभिराम रमन्वर्तों
 को उपहार अग्नि देकर समुद्र लवते थे ॥ २२ ॥
 स तथा सीतया साधमासीनो विरराज ह ॥ २३ ॥
 मन्त्राध्याया ह्यासीन्ने पसिष्ठ इव तेजसा ।
 उत समय मगवान् भीराम सीतादेवीके साथ शिरान्तपर
 किराबगान हो अपने तेजने अचरकरीके साथ बैठे हुए
 बलिष्ठीने छमान घाम्य पाते थे ॥ २३ ॥
 पय रामो मुदा युक्तः सीतां सुस्तुष्टुशोभयाम् ॥ २४ ॥
 रमयामास वैश्रीमत्प्यहनि ह्यवत् ।
 यो भीराम प्रतिदिन देवकक छमान आनन्दित वर
 देवकक्यक छमान गुन्गी विदेहनदेवी कीकाके साथ रमा
 करत था ॥ २४ ॥
 तथा तपोर्विरताः स्त्रीपरापप्रयासिणम् ॥ २५ ॥
 धम्यप्रममन्त्रुभ-काल्यः दीनिग भागान् सदा ।
 मामपार्श्विधिपान् भागार्जलः निगिरागामः ॥ २६ ॥
 इन प्रकार भीराम और सुगन्धकी विरराजकक धि
 कर ॥ २६ ॥ इनदेहीमें राज भाग प्रमन्न कदेवकक विर
 सुगन्ध सुन्दर समय २५ ॥ २६ ॥ मांनि मौलिके अनेक

उपमेगं कृते हुप उन रावदम्पतिश्च वह शिधिरकाञ्च
 येन गवा ॥ २५-२६ ॥

पूर्वाह्ने धमकप्रयाणि कृत्या धर्मेषु धमवित् ।

येन विवस्रभागार्थमगतपुरुरातोऽभवत् ॥ २७ ॥

बर्मह भीरम दिनके पूर्वभागमे धमके अनुधार धार्मिक
 इत्य कृते ये और शप आधे दिन अन्त पुरमे रहते ये ॥
 सीतापि देवकप्रयाणि कृत्या वीत्राहिक्रानि धे ।

श्वभूषामकरोत् पूजा सधासामविदोऽस्तः ॥ २८ ॥

सीतायी भी पूजाहकाभमे देवपूजन आदि करके उप
 श्रमुश्रेष्ठी समानरूपसे सेवा-पूजा करती थी ॥ २८ ॥

मम्पाच्यत् ततो रामं विचित्राभरणाम्यरा ।

विविधेषु सहस्रास्तमुपविष्टं यथा शची ॥ २९ ॥

तस्यश्वात् विचित्र वक्राभूपणोसे विभूषित हो भीरामचन्द्र
 वीके पाठ चली जाती थी । ठीक उठी तब बेश स्वर्गमें शची
 वस्त्राश्च इत्यश्री सेवाने उपस्थित होती हैं ॥ २९ ॥

दृष्टु ता राधयाः पर्वा कल्याणेल समम्बिद्यम् ।

श्रममगुल सेमे साधुसाधिविति प्राप्रवीत् ॥ ३० ॥

इसी दिनी भीरामचन्द्रकीने अपनी पत्नीअ गमके
 गमन्य चिकले युक्त देसकर अनुपम हर्ष प्राप्त किया और
 भा—प्राप्त मष्ठा, बहुत मष्ठा ॥ ३ ॥

पञ्चशेष वरारोहां सीता सुरसुखेपमाम् ।

मम्पनाभो वैदेहि त्यय्यय समुपस्थित ॥ ३१ ॥

विचित्रप्रसि वरारोहे कर्मः किं क्रियतां तव ।

दिर के देवकस्याके समान सुन्दरी सीतासे बोले—
 वीदेहलभिमि । तुम्हारे गमसे पुत्र प्राप्त होनेका यह समय
 इत्यार्य भीमद्रामाण्ये वात्सीकीये मादिक्रम्ये उत्तरकाण्डे त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

इस प्रकार भीमन्मर्षिनिर्मित श्वररामायण अष्टादशस्कं उत्तरकाण्डमे वषष्ठीसर्वां समा पूष हुप ॥ ४२ ॥

उपस्थित है । वरारोहे । पताभो, तुम्हारी क्या इच्छा है ?
 मैं तुम्हारा बनेन का मनारय पूर्ण करूँ ॥ ३१ ॥

सिन्त कृत्वा तु वैदेही राम वाक्यमयाप्रयीत् ॥ ३२ ॥

तपोयनानि पुण्यानि ब्रह्ममिच्छामि राधय ।

गङ्गातीरोपयिष्यानामृपीणासुप्रवेक्षसाम् ॥ ३३ ॥

फल्गुमूलप्रदिगा देय पादमूलेषु घर्षितुम् ।

एव मे परमा कर्मो यन्मूलफलभोजिनाम् ॥ ३४ ॥

अप्येकरात्रिं च्चक्रुस्स्य निषसेय तपोवमे ।

इष्टपर सीताकीने सुशकरकर भीरामचन्द्रकीसे क्या—
 म्पुनन्दन । मेरी इच्छा एक बार उन पवित्र तपोवनोको
 देखनेकी हो रही है । देव । गङ्गातटपर रहकर फल्गु-मूल
 खानेवाले को उग्र वेदकी महर्षि हैं, उनके समीप (कुछ
 दिन) रहना चाहती हूँ । श्रद्धाश्रय । फल्गु-मूल आहार
 करनेवाले महात्माओंके उपेक्षनमें एक रात निवास करूँ, यही
 मेरी इस समय सपने बड़ी अभिप्राया है ॥ ३२-३४ ॥

तथेति च प्रतिज्ञात रामेणाङ्घ्रिचर्मण्य ।

विक्रम्या भव वैदेहि श्यो गमिष्यस्वसंशयम् ॥ ३५ ॥

अनायास ही महान् कर्म करनेवाले भीरामने सीताकी
 इस इच्छाको पूरा करनेकी प्रतिज्ञा की और कहा—विदेह
 नन्मिनि । निमित्त रहे । कर्म ही यहाँ काभोगी, इसमें संशय
 नहीं है ॥ ३५ ॥

एयमुपस्था तु कक्रुस्सो मैथिलीं जनकामदाम् ।

मभ्यकक्ष्मात्तर रामो निशगाम सुहृद्व्यूता ॥ ३६ ॥

मिथिलेश्वकुमापी बनकीसे एता ककर ककुत्सकुङ्क-

मन्दन भीराम अपने मित्रोंके साथ बीचन लक्ष्मणमें बने गये ॥

त्रिचत्वारिंश सर्ग

भन्का पुरवामिषोके मुन्वसे सीताक विषयमें सुनी हुई अशुभ चर्चासे भीरामका अवगत कराना

उप्रायविष्ट राजानमुपासन्ते विचक्षणपाः ।

कथना यष्टुकापार्जा हास्यकाराः समस्तता ॥ १ ॥

यहाँ वेत्रे हुए महाप्राय भीरामके पास अनेक प्रकारकी
 कथाएँ करनेमें बुद्धय हास्यविनेर करनेवाले कला उप भेरेते
 कथन देने से ॥ १ ॥

विजया मयुमत्तश्च कवदयपो मङ्गलः कुल ।

सुगमिः कालिया भद्रो दन्तयकत्रः सुमागध ॥ २ ॥

उन लणभीक नाम इस प्रकार हैं—विजय मयुमत्त,
 कालय मङ्गल कुल सुगमि, कामिय भद्र दन्तयकत्र और
 सुमन्त्र ॥ २ ॥

एव कथा वदुथिधाः परिहाससमन्वियता ।

कथयन्ति सा संहृष्टा राधयस्य महात्मना ॥ ३ ॥

देवद लोग बह इरसे मरकर मरता भीरुनायकीक

तामने अनेक प्रकारकी हास्य-विनोदपूर्ण कथाएँ बहा करते व ॥

ततः कथाया कस्यांदिद् राधयः समभायत ।

काः कथा मगरं भद्र यतगत विषयेषु च ॥ ४ ॥

इसी समय किसी कथाके प्रसङ्गमें भीरुनायकीने पूजा—
 मद्र । आनन्दन मगर और राधयमें किंच बातकी चर्चा किय
 रूपसे होती है ॥ ४ ॥

मामाभितानि काम्याहुः पौरजानपदा जनाः ।

किं च सीतां समाभितय भरत किं च मङ्गमणम् ॥ ५ ॥

किं नु शत्रुजमुहिरय कथयीं किं नु मातरम् ।

पलप्यता च राजानो यन राज्ये प्रज्जनि च ॥ ६ ॥

पनार और जनपदसेना मर हीनाइ मरते कथय
 के तथा शत्रुज और माता देवकीके विषयमें क्या क्या बने
 करत हैं ? कर्कट उद्य यदि आपन विचरन हीन हो ता के
 अपने राज्यमें तथा पनमें (अति दुर्घिक आशयमें) ॥ ६ ॥

निष्ठाके विन्व क्व वाते हे—सर्वत्र उन्नीची सुराघोर्षी चर्वा होती हे ॥ ५६ ॥

एयमुक्ते तु रामेण भद्रः प्राङ्मिरमधीत् ।

स्थिताः शुभाः कथा राजन् धर्तस्ते पुरवासिणाम् ॥ ७ ॥

श्रीरामचरणीके ऐसा करनेपर मद्र हाथ खेचकर बोस-प्राहायक । आकडक पुरवासिणीने आपणे केकर सदा अन्धी ही चर्वाये चळती हे ॥ ७ ॥

अमु तु विजयं सौम्य वशामीववभाजितम् ।

भूयिष्ठ स्वपुरे पीरैः कथ्यन्ते पुरुपर्यभ ॥ ८ ॥

सौम्य । पुरुपर्यभ । वशामीव-वशसम-ची च्वा आपणी विन्व हे उठको केकर प्रगसे तव संग अधिक वाते विन्व करते हे ॥ ८ ॥

एषमुत्सु भद्रेण राववो वाक्यमद्रधीत् ।

कथयस्य पथातन्त्रं सर्वं निरवधोपतः ॥ ९ ॥

शुभाशुभानि वाक्यानि कान्याहुः पुरवासिनः ।

भुत्यशानी शुभं कुर्यां न कुर्यामशुभानि च ॥ १० ॥

मद्रके ऐसा करनेपर श्रीपुत्रापरणीने कहा—पुरवासी मेरे विषयमें शौन-शौन-सी छुम या अछुम वाते करते हे, उन सवक वपार्यरुसे पूर्वातः कथाओ । इह सम्यक उनकी छुम वाते सुनकर किन्हे हे छुम मानते हे उनका ये आचरण करेगा और अछुम वाते सुनकर किन्हे हे अछुम समझते हे, उन कुर्यांको त्याग दूंगा ॥ १० ॥

कथयस्य च विद्याम्भो निर्भयं किंवातज्वरः ।

कथयन्ति पथा पीराः पापा जनपदेषु च ॥ ११ ॥

जुम विभक्त और निभक्त होकर बेलरके कथे । पुरवासी और जनपदके स्वयं मेरे विषयमें किस प्रकार अछुम चर्चाये करते हे ॥ ११ ॥

राघवेषैश्शुक्रस्तु भद्रः सुदुश्चिर यथा ।

प्रत्युवाच महाबाहुं प्रज्जलिः सुसमाहित ॥ १२ ॥

श्रीपुत्रापरणीके देख करनेपर मद्रने हाथ खेचकर एकामन्त्रित हो उन महाबाहु श्रीरामसे यह परम सुन्दर वात करी—॥ १२ ॥

शुशु राजन् यथा पीराः कथयन्ति शुभाशुभम् ।

वक्ष्यतपणरण्यास्तु वनपूयनेषु च ॥ १३ ॥

राजन् । मुनिव पुरवासी मनुष्य योगदोष । वाक्चरमे तद्वीरर तथा वन और उपवनमें भी आपणक निरकमें किं प्रसार छुम और अछुम वाते करते हे । यह क्या रहा हे । ॥ १३ ॥

तुष्करं हनयान् रामः समुद्रं सतुष्कपलम् ।

अधुना पूयर्षः कश्चिद् दूषेगपि वनाजकः ॥ १४ ॥

ये वदन हे भगवाने समुद्र पर तुष्कर वीरर तुष्कर कम किता हे । एय कर्म हा परमेक किंमे वक्ष्यामी और वनवाते भी मरी तुना हाय ॥ १४ ॥

हाकार्ये श्रीमद्वाल्मीक्य वाल्मीकीय अदिकावते अकारणके त्रिचर्वाणिताः सर्गाः ॥ १३ ॥
हम प्रकर श्रीरामकी-... अकारणके अदिकावते तैतयसर्वा तप दूरा हुय ॥ १३ ॥

राघवाच्च सुराघोर्षो हतः सबलवाहकः ।

वलनगव्य यथा नीत्वा भूसात्म्य सह राक्षसीः ॥ १५ ॥

श्रीरामद्राय दुर्धर्य राघव सेना और लक्ष्मिणीके माय गया तथा रक्षसीतक्षित रीठ और वानर भी वधमें लक्ष्मि गये ॥ १५ ॥

हत्या च राघवं लक्ष्म्ये सीतामाहृत्य राघवः ।

अमर्ये पृष्ठतः कृत्वा लक्ष्म्ये पुनरात्मन् ॥ १६ ॥

परत एक वात लटकती हे, मुझमें राघवसे मृत श्रीपुत्रापरणी सीताका अपने घर लक्ष्म्ये । उनके मन सीताके चरित्रको केकर देख ना अमर्ये नहीं हुआ ॥ १६ ॥

कीददा हृष्ये तस्य सीतासम्भोगञ्च सुकम् ।

अहमापेय्ये तु पुरा राघवेन वसन्ततम् ॥ १७ ॥

कहूमपि पुरा सीतासम्भोगकथनिका गताम् ।

रक्षसां वशमापण्य कथ रामो न कुक्ष्यति ॥ १८ ॥

अस्माकमपि वारेषु साहसीय भविष्यति ।

पथा हि कुठते राजा प्रजासम्पन्नवर्तते ॥ १९ ॥

उन्हेके हृदयमें छेद-सम्भोगकथित सुख देव काट होगा । पहले राघवने लक्ष्म्यके सीताको गोदमें उठाकर उन अपहरण किया था फिर वह उन्हे कहूमें भी ले गया को कौं उनने मृतपुरके श्रीवा-कनन अशोकनिशामे रक्ष्य इह प्रकर रक्षसीके वधमें होकर वे बहुत दिगंतक यहीं तं भी भीयम उनसे पूजा कौं नहीं करते हे । अब हमसेकौं भी क्षियोंकी देखी वाते खनी पहेंगी क्योकि राघव लेव करत हे, प्रथम भी उन्हीका अनुकरण करने लगी हे ॥ १७-१९ ॥

एवं बहुविध्वा वाचो वदन्ति पुरवासिनः ।

नगरेषु च सर्वेषु राजन् जनपदेषु च ॥ २० ॥

पञ्चन । इत प्रकार सरे नगर और जनपदमें पुरवासी

मनुष्य बहुल-ही वाते करते हे ॥ २० ॥

तन्मैत्र भाषित भुत्वा राघवा परमातृवत् ।

उवाच सुहृद् सार्वाम् कथमेतत् वदन्तु माम् ॥ २१ ॥

मद्रकी यह वात सुनकर श्रीपुत्रापरणीने अत्यन्त पीडित होकर समस्त सुहृदसे पूछा—आपखेग भी मुझे कथे, यह कर्तव्य नीक हे ॥ २१ ॥

सर्वे तु शिरसा भूमावभियाय प्रवक्ष्य च ।

प्रत्यूचू राघवं क्षीतमवमेतान सतायः ॥ २२ ॥

तव लने परतीपर मलक देकर श्रीरामचरणीके प्रकाम करके क्षीतवाच्यं वाणीने वश—प्रमे । मद्रका यह कथन टीक हे इतमें तनिक भी संशय नहीं हे ॥ २२ ॥

भुत्वा तु वाक्यं कश्चिद्वाक्यः सपेया समुदीरितम् ।

विसजयामास तदा पयस्याम्बुसुत्तमा ॥ २३ ॥

तवक मुझने यह वात सुनकर वसुदेवने भीयमने तवक उन तव मुहनीका बिहा कर दिया ॥ २३ ॥

अतः तव मुहनीका बिहा कर दिया ॥ २३ ॥

अतः तव मुहनीका बिहा कर दिया ॥ २३ ॥

अतः तव मुहनीका बिहा कर दिया ॥ २३ ॥

अतः तव मुहनीका बिहा कर दिया ॥ २३ ॥

अतः तव मुहनीका बिहा कर दिया ॥ २३ ॥

अतः तव मुहनीका बिहा कर दिया ॥ २३ ॥

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः

श्रीरामके पुलानेसे सब भाइयोंका उनके पास आना

विसृज्य तु सुहृद्वर्गं सुखया निश्चित्य राधयम् ।
समीपं द्वायस्मन्मासीत्तमिदं पचनमप्रययौत् ॥ १ ॥
मित्रमण्डलीको विद्या करके भीरुपुत्रायथीने बुद्धिसे विचार
कर मना करीम्य निश्चित किन्ना और निकरवर्ती द्वारपालने
एव प्रकर कहा—॥ १ ॥

श्रीप्रमात्स्य सौमित्रि लक्ष्मण्य शुभलक्षणम् ।
मरतं च महाभाग शत्रुघ्नमपराजितम् ॥ २ ॥
शुभ खबर शीघ्र ही महाभाग भयत सुमित्राकुमार शुभ
वचन श्रवण तथा अपरमित्र वीर शत्रुघ्नक भी यहाँ बुद्ध
व्यञ्ज ॥ २ ॥

रामस्य वचन श्रुत्वा द्वायस्यो मूर्च्छित्वाङ्गलिः ।
लक्ष्मणस्य गृहं गत्या प्रविशे शानिवाविरितः ॥ ३ ॥
श्रीरामचन्द्रकीच बर आदेश सुनकर द्वारपालने मन्दाकर्म
मन्त्रिक शौचकर उन्हें प्रणाम किया और लक्ष्मणक घर खबर
बोड बोड उठक भीतर प्रवेश किया ॥ २ ॥

उवाच सुमहात्मानं पथयित्वा कृताञ्जलिः ।
मृष्टुमिच्छति राज्ञा त्वा गम्यतां तत्र मा चिरम् ॥ ४ ॥
उवाच सुमहात्मानं पथयित्वा कृताञ्जलिः ।
मृष्टुमिच्छति राज्ञा त्वा गम्यतां तत्र मा चिरम् ॥ ४ ॥

शौ शय बोड मय ब्यकार कजे हुए उठने महात्मा
लक्ष्मणक कहा—कुमार । महाराज आपस मिथना पारते
हैं । मय शीघ्र पक्षिये विशम्भ न कीजिये ॥ ४ ॥
पादमित्येष सौमित्रि कृत्वा राधयशासनम् ।
यादयद् रथमारुह्य राधयस्य निघदानम् ॥ ५ ॥
तत्र सुमित्राकुमार तरमणने बहुत अच्छा खबर
श्रीरामचन्द्रको आदेशसे शिरोधार्य किया और लक्ष्मणक रथ-
पर बैठकर वे भीरुपुत्रायकी महसूरी और शीघ्रगतिसे पस ॥

प्रयागत लक्ष्मण इषू त्वास्यो भरतमग्नितकात् ।
उवाच भरतं तत्र यर्षयित्वा कृताञ्जलिः ॥ ६ ॥
विनयायनतो भूया राजा त्वा द्रष्टुमिच्छति ।
लक्ष्मणको जाते देख द्वारपाल मरतने पाठ गया और
उन्हें हाथ बाँड वहाँ अथ ब्यकार करक विनीतभावसे बचा-
प्रसे । महाराज अपनेसे मिथना पारते हैं ॥ ६ ॥
भरतस्तु त्वया भुव्या द्वाय्याद् रामसमीरितम् ॥ ७ ॥
उत्तरापासनात् पूर्णं पदभ्यामथ महायत्नः ।
भीरुमते मेत्रे हुए द्वारपालने सुसने वर पाठ सुनकर
महावकी मरत तुरत अपने भाऊने उठ खड हुए और
ही पस दिय ॥ ७ ॥

इदा प्रयासं भरत स्वत्मानाः कृताञ्जलिः ॥ ८ ॥
शत्रुघ्नभयत गत्या तत्रा वास्यमुपाय द ।
पराय हो रथ द्वारपाल बड़ी उत्तमवर्तीक लक्ष्मणपुत्र
क मानने गया और हाथ बाँडकर बगाने—॥ ८ ॥
परायणस्तु त्वपुष्टं राजा त्वा द्रष्टुमिच्छति ॥ ९ ॥

गतो हि लक्ष्मणः पूर्वं भरतश्च महाययौत् ।
रघुभेद । भावये, कक्षिये राध भीरम आपको देखना
पारते हैं । श्रीलक्ष्मणकी और महाययौत् मरतनी परह ही
अ चुके हैं ॥ १ ॥

श्रुत्या तु पचन तस्य शत्रुघ्नः परमासनात् ॥ १० ॥
शिरसा बन्ध धरणीं प्रययौ यत्र राधयः ।
द्वारपालकी पाठ सुनकर शत्रुघ्न अपने उत्तम आछनसे
उठे और बलीपर माथा टककर मन-ही मन भीरुमकी बन्दना
करके दूरत जनक निवासस्थानकी ओर चर दिय ॥ १० ॥
द्वायस्यस्यागम्य रामाय सर्षामेव कृताञ्जलिः ॥ ११ ॥
निवृत्त्यामास तथा भावुं स्यात् स्वमुपस्थितान् ।

द्वारणसने खबर भीरुमसे हाथ बाँडकर निवेदन किया
कि प्रभो । आपने समी भयें द्वारपर उपस्थित हैं ॥ ११ ॥
कुमारानागतान्पुत्र्या चिन्ताप्याकुलितेन्द्रियः ॥ १२ ॥
अयाङ्गुलो दीनमना द्वायस्य वचनमप्रययौत् ।
प्रवेशय कुमारान्स्व मत्समीपं त्यगन्वितः ॥ १३ ॥
पतेषु जीवित मरामेते प्राणाः प्रिया मम ।

कुमारोंका आगमन सुनकर चिन्तासे व्याकुल इन्द्रियवाक्य
भीरुमने तीचे मुक्त किसे कुन्नी मनने द्वारपालको आदेश
किया—जुम तीनों राजकुमारोंको जल्दी मरे पास न आया ।
मेव जीवन इन्हींपर अवलम्बित है । व मरे प्यार प्राणस्वरूप
हैं ॥ १२-१३ ॥

आयसास्तु नरेन्द्रेण कुमारः शुष्कपाससः ॥ १४ ॥
प्रदाः प्राञ्जलयो भूया विधिमुत्त ममाहिताः ।
महापत्नी आका पाकर न ह्येत यज्ञधारी कुमार मिर
घुसने हाथ बाँडे एकाग्रचित्त हो मचनके भीतर गय ॥ १४ ॥
ते तु इषू मुग सस्य सप्रद गानिं यथा ॥ १ ॥
संख्यागतमियादित्य प्रभवा परिचक्षितम् ।

उन्होंने भीरुमका मुक्त इव तरह उगात देखा माना
बन्धुमन्तर प्रद मग गया हो । यह संख्यागतक सूर्य । भौति
प्रमाण्य हो रहा पा ॥ १५ ॥
यात्पपूर्णे च नयने इषू रामस्य धीमताः ।
तत्राशार्भ यथा परं मुख पीडय च तस्य न ॥ १६ ॥
उन्होंने पारवार देगा बुद्धिमान् भीरुमने जानों नेपने
बौन्द मर भाव य और उनक सुगरीयकी लम्भा छिन
गनी थी ॥ १६ ॥

ततोऽभियाप्य त्यग्ना पादौ रामस्य मूर्धभि ।
तस्युः समाहिता सर्षे रामस्यभूषयययत् ॥ १७ ॥
तत्रमथ तत्र तिं भावनेन तुगत भीरुमक चरते
मन्त्रक रूपकर प्रणाम किया । फिर ती लक्ष्मणक चरते

समाहित्यसे होकर पढ़ गये । उठ समय श्रीराम औंसू बहा
रहें य ॥ १७ ॥

तान् परिष्यज्य बाहुभ्यामुत्पाप्य च महाबला ।
भासनेन्यासतेत्युक्त्वा ततो वाक्य जगात् ॥ १८ ॥

महाबली खुनाबसीने दोनों भुजाओंसे उठाकर उन सबका
आङ्गिकन किया और कहा—'तब अऊनोर बैठो ।' अब वे
बैठ गये तब उन्होंने फिर कहा—॥ १८ ॥

भयतो मम स्वयंस्व भवतो जीवित मम ।

भयदुभिश्च कृत गज्य पाळयामि नरेश्वराः ॥ १९ ॥

पुत्रकुमारो । तुमझेंगे मेरे स्वयं हो । तुम्हीं मेरे जीवन
हो और तुम्हारे प्राय क्षमादित इस राज्यका मैं पाळन
करता हूँ ॥ १९ ॥

इत्यर्थे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीय आदि काव्ये उत्तरकाण्डे षष्ठ्याध्यायस्य सर्गाः ॥ ४४ ॥

एव प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीय आदि काव्ये उत्तरकाण्डे षष्ठ्याध्यायस्य सर्गाः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशः सर्गः

भीरामका भाइयोंके समक्ष सर्वश्र फले हुए लोकापवादकी चर्चा करके सीताको
बनमें छोड़ जानेके लिये लक्ष्मणका आदेश देना

राग समुपविष्टानां सर्वेषां दीनचेतसाम् ।

उवाच वाक्य कुरुस्त्वो मुखेन परिशुष्यता ॥ १ ॥

इत प्रकार सब भाई जुझी मनसे वहाँ बैठे हुए थे ।

उठ समय भीरामने मुखे मुखसे उनके धामने यह बात कही—

सर्वे शान्त भर्त्रं वो मा कुक्ष्य मनोऽप्यथा ।

पौगवा मम सीताया पादशी वर्तते कथा ॥ २ ॥

अधुमो । तुम्हारा कर्मान हो । तुम सब क्षमा मेरी बात

सुना । मनमें इतर-उत्तर न से जाओ । पुरवाशियोंके यहाँ

मेरे और सीताके विषयमें केशी चर्चा बह रही है उसीको बता

रहा हूँ ॥ २ ॥

पौरापयात्रा सुमहांस्ताया जनपदस्य च ।

घतंते मयि बीभारसा सा मे ममोणि कस्तति ॥ ३ ॥

इस समय पुरवाशियों और जनपदके लोगोंने सीताके

छत्र-धर्म मारना भयवार देना हुआ है । मेरे प्रति भी उनका

बड़ा पुनराह्वं भय है । उन लक्ष्मी यह पुत्रा मेरे मर्मलक्ष्मणे

विधीर्भिये देयी है ॥ ३ ॥

अहं किञ्च कुलं जात इक्ष्वाकूप्यं महात्मनाम् ।

स्तिष्ठति साकुलं जाता जनकाना महात्मनाम् ॥ ४ ॥

मैं इक्ष्वाकुवंशी महात्मा नरेणोंके कुलमें उत्पन्न हुआ

हूँ । सीताने भी महात्मा जनकोंके उत्पन्न कुलमें जन्म किया

है ॥ ४ ॥

जागतिस त्व यथा सोम्य दृश्यके विव्रान घने ।

गदयन्म हता सीता म च विष्वंसितो मया ॥ ५ ॥

श्रीम्य लक्ष्मण । तुम हो वह जानते ही हा कि किंच प्रकार

भवगतः कृतशास्त्रार्थो बुद्ध्या च परिनिष्ठितः ।
सम्भूय च मर्द्योऽयमन्वेष्टयो नरेश्वराः ॥ २० ॥

नरेश्वरो । तुम सभी शास्त्रोंके ज्ञाता और उनमें रहने

कराईयका पाळन करनेवाले हो । तुम्हारी बुद्धि भी परिसर

है । इस समय मैं च कार्य तुम्हारे सामने उपस्थित करनेका

हूँ उतका तुम लक्ष्मणे मिलकर सम्पादन करने

चाहिने ॥ २ ॥

तथा यद्वति कुरुस्त्व्ये भयधत्तपरायणाः ।

उद्विन्नमनसा सर्वे किं नु राज्ञाभिधास्यति ॥ २१ ॥

भीरामन्त्र-श्रीक देना करनेपर सभी भाई चौकने हो

गये । तबका चित्त उद्विन्न हो गया और सभी खेपने धे-

न जाने महाराज हमसे क्या कहेंगे ? ॥ २१ ॥

राज्य निर्यम दण्डकारण्यसे उन्हें हरकर से गया था और मैं

उसका विन्त भी कर आया ॥ ५ ॥

तत्र मे बुद्धिदण्डका जनकस्य सुतां प्रति ।

अज्ञोपितामिसां सीतामालयेव कथं पुरीम् ॥ १ ॥

उसके बाद अज्ञानों ही जनकीके विषयमें मेरे अज्ञान

में यह विचार उत्पन्न हुआ था कि इनके इतने दिनेलक और

रह लेनेपर भी मैं इन्हें राजधानीमें बैठे से च लक्ष्मण ॥ १ ॥

प्रत्ययार्थं तताः सीता विवेश ज्वलनं तदा ।

प्रत्यक्ष तव सौमित्रे देवानां हृदयवाहन ॥ ७ ॥

अपार्पा मैथिलीमहाह वायुष्माकशशोचर ।

अन्नादित्यो च दंसेते सुराणां संनिधी पुरा ॥ ८ ॥

श्रुपीणां तेष सर्वेषामपार्पां जनकसमजाम् ।

सुमित्राकुमार । उठ समय अपनी पतिव्रताध विधा

दिआनेके लिये सीताने तुम्हारे सामने ही अग्निमें प्रवेश किया

था और देवताओंके समक्ष स्वयं अग्निदेवने उन्हें निरो

काला था । भास्त्रवाची वायु चन्द्रमा और सूर्य भी वहाँ

देवताओं तथा समस्त श्रुतियोंके समीप जनकनिन्दियोंके निन्द्य

भेषित किया था ॥ ७ ८ ॥

एवं शुकसमाधारा देवनाभर्धसंनिधी ॥ १ ॥

लक्ष्मीदे मेहेष्ट्रेण मम हस्तं निवेदितम् ।

एत प्रकार विशुद्ध भाषारवासी सीताका देवताओं के

गन्धर्वाके समीप वाद्यवा देवताक इतने लक्ष्मीदे मेहे

मेरे हाथमें लाँगा था ॥ १ ॥

अन्तरामा च मे वसि सीतां शुद्धा पशदिकनीम् ॥ १० ॥

अन्तरामा च मे वसि सीतां शुद्धा पशदिकनीम् ॥ १० ॥

मे घृहीत्वा वैवेहीमयोप्यामहमागतः ।
मेरी भन्तपत्न्या भी यशस्विनी सीताको बुद्ध समझती है ।
शिक्षे मेँ इन विवेहनन्दिनीको साथ लेकर अयोध्या गया
॥ १२ ॥

यं तु मे महान् वाद् शोकश्च हृदि वर्तते ॥ ११ ॥
रोपवाहः सुमहास्तथा जनपदस्य च ।
अपद्रु अथ यद् महान् अपवाद देवने छगा है ।
रवासिर्भौ रजनपदक शोगोमे मेरी बन्दी निन्दा हो रही है ।
उठके क्रिद मेरे हृत्पमे बड़ा शोक है ॥ ११ ॥

मकीर्तिर्यस्य गीयेल लोके भूतस्य करघषित् ॥ १२ ॥
यत्स्येवाधर्माहोक्रान् पावच्छ्रम्यः प्रकीर्त्यते ।
कित किन्ती भी प्राणीभी अपकीर्ति ओकेमे लक्ष्मी पत्न्या
अप्रिय वन जाती है वह अपम ओके (नरकी) मेँ गिर
है कर्तक

तत्रैतां विजने देवो विचृम्य रघुमन्वन ॥ १८ ॥
शीघ्रभागच्छ स्त्रीमित्र कुटुम्ब घबलन मम ।
न चास्मि प्रसिद्धकथ्यः सीता प्रति कथयन ॥ १९ ॥
रघुमन्वन । उस माभ्रमेके निष्कृति निर्भन बनमेँ द्रुम
सीताको छोड़कर शीघ्र शैत आभो । सुमित्रानन्दन । मेरी इस
भाऊका पालन करो । सीताक विषयमेँ मुझसे किसी तरह कोई
दूसरी बात द्रुममेँ नहीं करनी चाहिये ॥ १८ १९ ॥

तस्मात् त्व गच्छ स्त्रीमित्रेनात्र कथया विचारणा ।
अमीविहिं परा महा त्वयैवत् प्रथियारित ॥ २० ॥
श्रुस्थिरे सम्मथ । अब द्रुम आओ । इस विषयमेँ कोई
शेष विचार न करो । यदि मर इस निश्चयमेँ द्रुमने किसी
प्रकारकी अड़बटन दाम्भी तो मुझे महान् श्च होय ॥ २ ॥

शापिता हि मया यूय पाद्भ्याम् आवितेन च ।
ये मां वाक्यात्तरे जूयुरनुमेतुं कथयन ॥ २१ ॥
अहिता नाम ते नित्य मद्भीष्टविधातनात् ।
वै द्रुममेँ अपने परजो और जीवनकी रापय विस्मृता हूँ
मेरे निर्भयके विरुद्ध कुछ न करो । जो मेरे इस कथनके बीच-
मेँ झूठकर किसी प्रकार मुझसे अतुनय-स्विय करनेके लिये
कुछ कहेंगे वे मेरे अभीष्ट कथनेँ कथा जाननेक कारण
छाके लिये मेरे शत्रु होंगे ॥ २१ ॥

मासयन्तु भवन्तो मा यदि मच्छसमे स्थिता ॥ २२ ॥
इताऽद्य नीयतां सीता कुटुम्ब घबलन मम ।
अपि द्रुमश्च मेरा सम्मन करते हा और मरी अक्षमे
रदना चाहते हो तो अब सीताको यहाँसे बनमेँ ले जाओ । मरी
इस आकाफा पालन करो ॥ २२ ॥

पूर्वसुहोऽऽस्यत्प्रया गच्छतीरेऽऽसायमान् ॥ २३ ॥
पद्वेपमिति तस्याश्च कथमः सधस्यतामयम् ।
पक्षिताने पहले मुझसे कहा था कि मैं गङ्गाउपर अरिवाँ-
के आभ्रम देवना जाहती हूँ अतः उनकी यह इच्छा भी पूर्ण
की जाय ॥ २३ ॥

एवमुक्त्वा तु कपटुम्बो याप्यण पितितेक्षण ॥ २४ ॥
सधियेश स धर्मोत्सा भ्रातृभिः परिवारितः ।
शोकसयिम्नहृदयो निदाभ्यास यथा द्विपः ॥ २ ॥
इस प्रकार करते-करते भीरुपुनादकीक दाना नत्र
औनुभौते मर गये । फिर वे बर्माका भीयम अपने म्मइयाक
साथ मरछमे बने गये । उस समय उनका हृदय शारस
म्यानुक या और वे हाथीक समान लंघी सौंथ लीच रहे
ये ॥ २४ २५ ॥

॥ १२ ॥
प्रधंता
न उचम
॥ १४ ॥
पसे अपने
र सीताको
॥ १५ ॥
मू।
समुद्रमे गिर
ना पड़ा हा
॥ १६ ॥

॥ १७ ॥
॥ १८ ॥
॥ १९ ॥
॥ २० ॥

इत्यादि भीमश्रामावने वास्वीधीय आदिकाव्ये उत्तरकर्ण्डे पञ्चवत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

एव प्रथम श्रीमद्गीतौर्निर्मिते अर्धशतमाने अदिकाव्यक उत्तरकर्ण्डे फेरीसर्गो समा पूरा हुआ ॥ ८ ॥

पटुचत्वारिंश सर्ग

लक्ष्मणकथं सीताको रथपर पिठाकर उन्हे धनमें छाड़नेके लिये ले

आना और गङ्गाजीक तटपर पहुँचना

तथा रजन्या प्युष्टायां लक्ष्मणो वीनघेतन ।
 सुमग्नमग्रधीव् वाक्य सुखंम परिशुष्यता ॥ १ ॥
 उदनस्वर बर रात बीती और अवेर हुआ तब लक्ष्मणने
 मन हीमन दुखी हो मुखे मुकुसुं सुमग्नसं कथा— ॥ १ ॥
 सारथे सुरगाग्शीमात्र् योजयन्व रथोत्तम ।
 स्वास्तार्णे रामश्चनात् सीतायाश्चासन शुभम् ॥ २ ॥
 सीता हि राजश्चलादाधर्मं पुण्यकर्मणाम् ।
 मया मेया महर्षिणा शीघ्रमानीयतां रथः ॥ ३ ॥
 सारथे । एक उत्तम रथमें शीघ्रगन्त्री घोड़ोंको खडो और
 उत रथमें सीताजीके लिये सुन्दर आसन बिठा दो । मैं
 महाराजकी आज्ञासे सीतादेवीको पुण्यकर्म महर्षियोंके आश्रमपर
 पहुँचा दूँगा । ठुम शीघ्र रथ स आश्र ॥ २ ३ ॥
 सुमग्नस्तु तथेभ्युक्स्या युक्त परमबाजिभिः ।
 रथ सुनश्चिरप्रप्य स्वास्तीर्णे सुकशप्यया ॥ ४ ॥
 तब सुमग्न बहुत अच्छा कइकर दूरत ही उत्तम घोड़ों-
 में जुता हुआ एक सुन्दर रथ स अथे भिन्नर सुकद धार्यासे
 युक्त सुन्दर बिजावन बिठा हुआ था ॥ ४ ॥
 भार्नीयावाद्य स्त्रीमिन्नि मित्राणां मानबर्धनम् ।
 रथाऽयं समनुप्राप्तो यत्कार्ये क्रियतां प्रभो ॥ ५ ॥
 उम काकर के मित्रोंका मान बढ़ानेवाले सुमित्राकुमारसं
 कथ— प्रभो ! यह रथ आ गया । अब आ कुछ करना हा
 कीजिये ॥ ५ ॥
 पथमुक्तः सुमग्रेण राजपदमनि लक्ष्मणः ।
 प्रविश्य स्त्रीनामासाद्य व्याजहार सररंभः ॥ ६ ॥
 सुमग्नर एक कनेवर नरभय सरमण रामरहस्ये गये
 और सीताजीक पाग उपर बाम — ॥ ६ ॥
 मया तिन्यप सुपतिपर वै याजित प्रभुः ।
 नृपतम य प्रतिगलमान्तश्चाधम प्रति ॥ ७ ॥
 भैरि । आने मगगवा मुनियारु भागमौर अनेक
 लिय पर गाया था और महाराजने आरतोंआश्रमपर पहुँचान-
 क लिय प्रीत्य की थी ॥ ७ ॥
 गङ्गातीर मया दधि शरीणामाभ्रमात्पुमान् ।
 द्वाप गन्तु मु विददि शाराजान् पापिष्यम्यनः ॥ ८ ॥
 महारथ मुनिभित्तुष्ट भवनया भविष्यति ।
 भ्रि । विरहेनि । उम पावनिक भुसुवर में यइही
 आता । सीप ही गन्ताएर श्रिं गौर सुन्दर भागमौरक
 थ ता अरे भवन मुनिभगवित गनमें पहुँचऊँगा ॥ ८ ॥
 पथमुक्ता मु विदही लक्ष्मणन मन्तामन ॥ ९ ॥
 मप्रदमन्तु एम गमन याव्यगगयन् ।

महामा लक्ष्मणके ऐसा कनेवर विरहेनरिनी कौन
 अनुपम हर्ष प्राप्त हुआ । वे लक्ष्मणके तैयार हा गयी ॥ १ ॥
 वासांसि च महाहर्षिण रक्षामि विविधानि च ॥ १० ॥
 गृहीत्वा तानि धैवेही गममात्योपबद्धमे ।
 इमामि मुनिपत्नीनां वास्याम्याभरच्छप्यइम् ॥ ११ ॥
 पत्नीणि च महाहर्षिणि धन्यनि विविधानि च ।
 बहुतस बर और नाना प्रकारके रत्न लेकर बेरेही लै
 वनकी यात्राक लिये उद्यत हो गयीं और लक्ष्मणके कर्म-
 लक्ष बहुतस बर आभूषण और नाना प्रकारके रत्न
 में मुनिपत्नियोंको भूरी ॥ १ ११ ॥
 सौमित्रिस्तु तथेभ्युक्त्वा रथमारोप्य मैथिलीम् ॥ १२ ॥
 प्रययौ शीघ्रतुरगं रामस्याहामनुकारम् ।
 लक्ष्मणने बहुत अच्छा कइकर मिथिलेयकुमारी कीउ
 रथपर चढ़ाया और शीघ्रगतावधीकी आज्ञाक धनमें ल
 हुए उत तेज घोड़ावाले रथपर चढ़कर वे वनकी ओर
 दिये ॥ १२ ॥
 भगवधीष तथा सीता लक्ष्मणं लक्ष्मिवधनम् ॥ १३ ॥
 अनुभाणि बहुन्येय पदयामि रघुनन्दन ।
 गयन म स्फुरत्यद्य गात्रोत्कम्पञ्ज जायत ॥ १४ ॥
 उत सम्य हीताने लक्ष्मणीदर्शन लक्ष्मणते कथ प्युक्त
 सुख बहुतने अपचकुन दिलायी देते हैं । आज मेरी र
 और फइखी है और मेरे शरीरमें कंप हा रहा है ॥ १३ ॥
 हृदय धैव सीमित्रे भवमम्यमिय ससये ।
 सौस्तुक्य परम धारि मपूतिञ्च परा मम ॥ १५ ॥
 मुमित्राकुमार ! मैं अपने हृदयको असल-क देत
 हूँ । मनमें बड़ी उरकणा हो रही है और मेरी अरु
 पथभङ्गको पहुँची हुई है ॥ १५ ॥
 दृश्यामय च पश्यामि पृथिवीं पृथुलोचन ।
 अपि स्वस्ति भवेत् तस्य आशुस्ते स्रावृक्षसम ॥ १६ ॥
 विशयस्वजन सरमन । मुझे पृथ्वी सृती-सी ही दित
 देती है । आवृक्षस । दुमारे मर कुशलमें रहे ॥ १६ ॥
 भ्यभूणा धैव म धीर स्यासासमविनेरता ।
 पुर जनस्य धैव पुदार्व प्राणिनामपि ॥ १७ ॥
 धीर । मेरी नय लक्ष्मणें समान रूपमें लक्ष्मण रहे । य
 और जनरमें भी लमका प्राणी उद्युक्त रहे ॥ १७ ॥
 इत्यप्रतिवृत्ता सीता दयता भव्यवाचन ।
 लक्ष्मणाथे ततः श्रुत्या निरामा पथ्य मैथिलीम् ॥ १८ ॥
 निवसिष्यप्र दीदृष्टा हृदयन विपुष्यता ।
 एता इदी ही कने दाम उइवर देत प्रभे क

श्री । सगारी शान मुनश्चर सधमने विर हृदाश्चर उर्ध्वे प्रनाम
त्रिय और उरगे प्रकन ह मुहामि दुए हदपने कश—
कषक इत्यान ह' ॥ १८३ ॥

ततो याममुपागत्य गोमतीतीर आश्रमे ॥ १९ ॥
प्रभात पुनरुन्वाय सौमित्रिः सुप्तप्रयीत् ।

तन्मन्तर गजनीक तदपर पर्व्वचकर एक आश्रमे उन
कने रात विनाथी । त्रि मात काय उरकर मुमिनाकुमारने
नरपिने कश— ॥ १ २ ॥

योऽप्यस्य न्य शाश्रमघ भागीरथीजलम् ॥ २० ॥
निगसा धारयिष्यामि प्रियम्बक इबीजमा ।

कप्ये । बन्दी रय हटा । आश में भागीरथीक कषत्रे
उपी प्रसर त्रिपर चारन कर्णा' बैन मगवान् दाहरने मने
डेभन ठने म्नाकर चारय किया पा' ॥ २ ३ ॥

साऽभ्यान् विधारयिष्या मुरुपे युक्तान् मनेज्जयान् ॥ २१ ॥
व्याहस्वर्णि वैश्वर्हा सुतः प्राङ्गलिप्रधीत् ।

मरदिने मनक समन वेगपार्थ चारो कषत्रे त्रयाश्चर
रपे गेता और विनेदनकिनी सीयने हाप उरकर कश—
त्रि । रदन अरुण हारदे ॥ २१३ ॥

मा मु मुनस्य वक्षनाक्षरगेह श्यासमम् ॥ २२ ॥
माला नाभिमित्रिणा सार्धे सुमग्नस्य च धीमता ।
मासमाद् विगान्ताधी गङ्गा पापयिनाशिनीम् ॥ २३ ॥

मनक हरेने दबी भीता रन उभन रय' सवार दुए ।
ने प्रसर मुमिनाकुमार सन्नन और बुद्धिजन मुम्बक
राय विरुष्यकला सीतादेवी गान्ताशिनी गङ्गाक तदपर का
पर्व्वे ॥ २ २३ ॥

मयाचन्द्रिक्स गम्या भागीरथ्या जगतावम् ।
निर्विष्य लक्ष्मणा दीना प्रसन्नाद् महात्मना ॥ २४ ॥

दगहनक समर कर्णापीवी कषपापनक पर्व्वचकर
मन्तर रन । अर हसन दुए दुम्बी ह' उष्यरने दूट-दूट
र दे ह' । ॥ १ ॥

सीता तु परमायता ह्युः सन्मणमानुवम् ।
रेकार वास्य धमना किमिद् कथत पिषा ॥ २५ ॥
अप्रीमासाद्य चिराभिमित्रिणं मम ।
दपद्यत् किमय मा विरादुषामि लक्ष्मण ॥ २६ ॥

सन्मण उरुम अदुर हन धमना सीता अयल
विनेन ह उता बन्दी -अप्रमन । दर का । दुम टन कने
ह' उरकर तदपर अरुण ह' सी विरुष्यकी अमिन्ता

पूर्व हुई है । हव हदि कय्य दुम उरर दुम दुम्बी कर्ण
करत हो । ॥ २५ २६ ॥
मित्य स्य गामपादयोषु बर्तसं पुण्यप्रभ ।
कषिद् विनाष्टरत्नेन द्विगप्र शोकमागतः ॥ २७ ॥

(पुत्रप्रसर । भीरुमक वास ठा दुन क्पा ही राते ह ।
क्या ग दिन तक टनर विदुह ननेक फारन दुम इतने
काधकुर हा म्ये हो ? ॥ २७ ॥

ममापि द्विपितो रामो जीवित्तादपि लक्ष्मण ।
न चाहमय गोश्रामि मैव स्य चान्निशो भव ॥ २८ ॥
कषमय । भीयम ठा मुहु भी भमने प्रगणे बदकर
मिप है परतु में ता इव प्रधार का नही कर ग' ह । दुम
ऐसे नागन न बना ॥ २८ ॥

हारयस्य च मा गङ्गां द्वापयस्य च तापमान् ।
ततो मुनिष्यो वासांसि श्राम्याभ्याभग्नानि च ॥ २९ ॥
मुने गङ्गाक टन गर न चर और सन्वी मुनिषीक
दरान करत । मै उरे पर और म्भूयग दूंगे ॥ ॥

तत कृत्वा महर्षीणा यथाहमभिधादमम् ।
तत्र शंका निगामुष्य शाम्यामन्ता पुरीं पुन ॥ ३० ॥
नयभात् नन मन्विषीका यथादय अमिगान कर
बर्ण एक गत उरकर हम पुन अरुणपुरी और
पर्व्वी ॥ ३ ॥

ममापि पद्यशस्तं सिंहास्य कृशोदरम् ।
श्याल द्वि मनो द्रष्टु गम मयता परम् ॥ ३१ ॥
मय मन भी विरुष्य गान कषमण हृश उरर और
कषयन मयन नैप्रताप अंगमका क मनस रानेन कने
सत्ते भेद है कनेक निव उररग ह' ग' है ॥ ३१ ॥

गम्यास्तद् वचन धुन्वा प्रसृज्य मपने शुभ ।
नायिकनाङ्कयामास लक्ष्मणः परपीरहा ।
इय च सञ्जा मोक्षेति श्लाघाः प्राङ्गुल्योऽङ्गवन ॥ ३२ ॥
श्रीगरीश पर बचन मुनर उरुगरीता ग'त कनकान
कामान अमी दनी मुम्ब धीने वंठ ही और नरेके
कुल्या । उन म्भूयने हाप उरकर कश—(२२) । रदनर
तदर है ॥ ३२ ॥

निर्गुल्लक्ष्मणा गङ्गा तुभा श्वरमुवागच्छत् ।
गङ्गां सवारयामास लक्ष्मणस्तां समागत ॥ ३३ ॥
सन्नन सगरीश पर काने निव उररग म्य
उन मुन्दर सीरकर बैठ और बर्ण म्भूयनेक हाप उरराने
सीताक सगरीश उरर पर वनेका ॥ ३३ ॥

सप्तचत्वारिंश मर्ग

सुमणसा सीताजीको नावसे गङ्गाजीके उस पार पहुँचाकर नव दुःखसे उन्हें उनका त्यागो जानेकी बात बताना

अथ नाव सुविस्तीर्णा मीपक्षी राघवानुक्त्वा ।
 भारगद समायुक्तां पुर्यमारोप्य मीधिलीम् ॥ १ ॥
 मम्मार्दोषे वर नाव बिलूत और मुक्कित थी ।
 लम्बने उगपर परल मीताधीको चढ़ाया फिर स्वयं चढ़े ॥
 सुमर्त्र मीध सन्त्य स्वीयतामिति लक्ष्मणा ।
 उवाच नाकसततः प्रयाहीति च भायिकम् ॥ २ ॥
 उद्दोने रणमदित मुम्बन्ध बही ठहरके किये कर दिया
 और नावम सतत और नाविकम करा—(अर्थ) ॥ २ ॥
 लम्बनीयमुपायस्य भागीरथ्याः स लक्ष्मणा ।
 उवाच मीधिलीं धान्यं प्राञ्जलिवापसद्युतः ॥ ३ ॥
 लम्बने भागीरथीके उस तटपर पहुँचकर करमन्त्र
 नत्रामे आयु धर आय और उद्दोने मिधिमघकुम्भी धीवासे
 राघु कहकर कहा— ॥ ३ ॥
 ह्यत म महच्छर्म्यं यस्मादायेष भीमता ।
 धम्मिप्रिमिल धैर्यदि न्नाकस्य घसनीहृता ॥ ४ ॥
 विद्वन्नि । मेरे हृदयमें लगे पड़ा बौद्धपरी लटक
 रहा है । भाव गुनायकोने मुक्तिमात्र शस्त्र थी मुझ पर
 काम भाव है बिना काय साकमे मेरी बही निन्द्य होगी ॥
 धया नि मरण मन्त्र मृगयुया पापर भयत् ।
 न स्वास्मिप्रीटा ज्ञाप्ये निषान्द्या स्नाकनिन्दित ॥ १ ॥
 इन दोनमें से मुझ मृ युक्त लम्बन यन्त्रका घाम हथी
 भाग्य मरी लम्बन मृगु ही हो जाये ता वह धर निभ परल
 न यन्त्रात्क ही । परन्तु इन स्नाकनिन्दित ज्ञाप्ये मुझ लम्बना
 ॥ १ ॥ ॥
 प्रसीद् च म म पाप अनुमति नाभन ।
 इत्यद्रिहृता भूमौ निषागत च मक्षमया ॥ ६ ॥
 लम्बने । अत प्रलम्ब हो । मुझ कई काय न के लम्ब
 करके राघु के हृद लम्बन दुर्धीर निर पड़ ॥ ६ ॥
 लम्बने प्राञ्जलि दृष्ट्वा जगदस्य मृगयुमायसतः ।
 मीधिलीं भूनामिदम स्मरण वाक्यमववात् ॥ ७ ॥
 लम्बना राघु कहकर कहा है और अपनी मृगु पर
 है पर लक्ष्मण मिधि मृगुनी लोच भयान उदित
 लक्ष्मण और लम्बना काय ॥ ७ ॥
 विमिद कारणद्वयमि कृति लक्ष्मण लक्ष्मणा ।
 परन्तमि श्री म न लक्ष्मणमि क्षम महीगत ॥ ८ ॥
 लक्ष्मण ! पर लक्ष्मण का है । मे कुल म न लक्ष्मण
 है । लक्ष्मण । लक्ष्मण कुल म न लक्ष्मण
 लक्ष्मण लक्ष्मण लक्ष्मण ॥ ८ ॥
 लक्ष्मण लक्ष्मण लक्ष्मण लक्ष्मण ॥

एव ज्ञयाः सजिषी मङ्गमहमावाप्यामि ते ॥ ९ ॥
 श्री महापद्मधी धापच विहाकर पृथ्वी के कि कल
 हृद इतना लक्ष्मण हा रहा है वह मेरे निकट लक्ष्मण कल
 मैं इनके किये हृदये आका देती हूँ ॥ ९ ॥
 वैदेहा शोचमानस्तु लक्ष्मणो वीरचतन ।
 अवाङ्मुखो वाप्यालो वाक्पमेतदुवाच ह ॥ १० ॥
 विवेकनिन्दनीके इत प्रकार प्रेरित करनेपर लक्ष्मण बुली
 मन्ते नीचे हूँ किये मन्त्राङ्क कष्टदाय इत प्रकार किये—
 श्रुत्वा परिपक्षो मध्ये ह्यपवाद् मुहातनम् ।
 पुरे जतपदे धीय रयत्कृते जलकात्मजे ॥ ११ ॥
 रामः सततहृदयो मा निषेध गृहं गत ।
 न्नकामिनि । मगर और लक्ष्मणमें आयेके निषेधने से
 अल्पत भयंकर अपवाह देखा हुआ है, उसे राजलक्ष्मण में मुझ
 भीखुनाभयभीत हृदय लक्ष्मण हो उठा और ये मुझसे लक्ष्मण
 काकर महत्तममें पत्र गये ॥ ११ ॥
 न सानि यद्यभीयानि मया देवि त्वामत ॥ १२ ॥
 यानि वाया हृदि स्पस्तान्यमपानुष्ठुत कृतः ।
 देवि । राघु भीरामने किन अपवाहपत्नीको सुग न
 लक्ष्मणनेक करण अपने हृदयमें रत्न सिधा है, उद्दोने मैं
 आपके लक्ष्मणने क्या नदी लक्ष्मण । इतीलिये येने उनकी पत्नी
 छाड़ दी है ॥ १२ ॥
 सा स्य त्यक्ता भूपतिव्य किद्वेषा मम सजिषी ॥ १३ ॥
 पीतायपावृथीतन प्राहा देवि न तऽप्यथा ।
 माधमान्तपु च मया त्यक्तव्या ग्य भविष्यसि ॥ १४ ॥
 रामः दासलमाहाय तथैव किल वीहृदम् ।
 अत मे कामने निशेध मित्र हा बुली है त भी महापद्म
 न लक्ष्मणराघुम हरार आरक्ष त्याग दिया है । देवि । अत
 कई और काय न लक्ष्मण । अब महापद्मकी आल मानार
 तथा अपनी थी लक्ष्मण ही इच्छा लक्ष्मण मेरे अभयमके लक्ष्मण
 लक्ष्मण आरक्ष बही लक्ष्मण ॥ १३ ॥ ॥
 लक्ष्मणप्रादुर्धीरिण प्रस्यवींवां तपायनम् ॥ १४ ॥
 सुम्य च समर्थाय च मा विगाद् ज्ञयाः पुम ।
 लक्ष्मण ! पर लक्ष्मण महापद्मके लक्ष्मण लक्ष्मण लक्ष्मण
 एवं समर्थाय लक्ष्मण । अत लक्ष्मण ॥ १४ ॥
 रामा द्वाप्यपरीव विभुमै मुनिभुवः ॥ १५ ॥
 लक्ष्मण लक्ष्मण विभु पान्थीवि सुमानवाम ।
 यद्विद्यावापुतागम्य सुम्यमस्य मन्त्रमनः ।
 यद्विद्यावापुतागम्य सुम्यमस्य मन्त्रमनः ॥ १६ ॥
 लक्ष्मण लक्ष्मण लक्ष्मण लक्ष्मण लक्ष्मण

ब्रह्मर्षिं मुनिवरं वास्मीकिं रक्षते ह्ये, भाप उन्हीं महात्माके
चरबोकी छायाका आभय छ नहीं सुखपूर्वक रहें । अनन्तरमये ।
आप नहीं उपशान्तपवन और एकत्र हो निवास करें ॥१६१७॥
पतिमहात्म्यामास्थाय राम कृत्या सदा हृदि ।

हृत्पार्षे भीमत्रामाघने वास्मीकीये आश्रिकाम्ये उत्तरकाण्डे म्पञ्चत्वारिंशः सर्गः ॥ १७ ॥

इस प्रकार भीमद्वीपनिर्मित अक्षरामायण अष्टिकांशक उत्तरकाण्डे सैतनीसर्वो सप्त पूजा हुआ ॥ १७ ॥

अष्टचत्वारिंशः सर्ग

सीताका दुःखपूर्ण वचन, भीरामक लिये उनका सदेश, लक्ष्मणका जाना और सीताका रोना

लक्ष्मणस्य वचनः श्रुत्वा वाक्यं जनकात्मजा ।
एव कियान्मामागम्य धैरेवही निपपाठ ह ॥ १ ॥
लक्ष्मणकी वचन श्रुत करन सुनकर जनककीछोटी
सीताका वधा हुआ हुआ । वे भूकित होकर शूचीपर गिर
पड़ी ॥ १ ॥

सा मुहुरतमियासका वाप्यपयाकुष्ठेक्षण ।
लक्ष्मण क्षीनया वाचा उवाच जनकात्मजा ॥ २ ॥
वो पड़ीतक उन्हें शोष नहीं हुआ । उनके नेत्रोसे
भौंमुझोकी अबस भाव बहती रही । फिर हाथमें आनेपर
जनककीछोटी सीन वाणीमें लक्ष्मणसे बोली— ॥ २ ॥

मामिकेय तनुनुं सृष्टा दुःख्या लक्ष्मण ।
धात्रा पत्यास्तया मेऽद्य पुञ्जमूर्तिः प्रवृष्टयत ॥ ३ ॥
लक्ष्मण । निश्चय ही निपटाने मेरे शरीरका केवल तुःल
मनेके लिये ही रचा है । इसीलिये आज सारे दुःखोंका सूर्य
मूर्तिमय होकर मुझे दर्शन दे रहा है ॥ ३ ॥

किं तु पापं कृतं पूर्वं को या सारैर्बियोजित ।
याद शुद्धसमाधारा त्वया नृपतिमा सती ॥ ४ ॥
मेने पूर्वकर्ममें कौन-सा एक पाप किया था भयका
किन्तु वीठे बिछाड़ करया था जो शुद्ध आचरणवासी
हनेपर भी महाशक्तने मुझे त्याग दिया है ॥ ४ ॥

पुण्ड्रमाधमे यास रामपादाशुवर्तिनी ।
मनुदुःखापि सामिन्ने दुःखे च परिपतिमी ॥ ५ ॥
‘पुमिप्रानन्दन । परमे मीने बनकातेके दुःखमें पड़कर
मैं उने लड़कर भीरामके चरणोंका अनुसरण करत हुए
आधममें रहना पसंद किया था ॥ ५ ॥

सा कथं हाधम सौम्यं कस्यापि विजनीहता ।
आप्याप्यापि च कस्याह दुःखं तुल्यपरायणा ॥ ६ ॥
‘चिन्तु श्रेयम् । अब मैं अपनी शिवकर्मों परित हा कित
कर आधममें निवास करूँगी ? और दुःखमें पड़नेपर कितने
बचना हुआ नहीं है ॥ ६ ॥

भयस्ते परमं देवि तथा कृत्या भयिष्यति ॥ १८ ॥
देवि । आप सदा भीरुपुनायकीये हृदयमें रखकर पाति
लक्षका अवलम्बन करें । ऐसा करनेसे आपका परम कल्याण
होगा? ॥ १८ ॥

किं तु वक्ष्यामि मुनिषु कर्म चासत्कृतं प्रभो ।
कस्मिन् वा कल्पे त्वका रामयेण महात्मना ॥ ७ ॥
‘प्रभो । यदि मुनिजन मुझमें पूछेंगे कि महात्मा भीरुपुनाय
कीने किस कालपर तुम्हें त्याग दिया है तो मैं उन्हें
अपना कौन-सा भयानक कथऊँगी ॥ ७ ॥

न लक्ष्ययैव सीमिने जीवितं जाह्यीजल ।
त्यजेय राजवशस्तु भतुर्मे परिहास्यत ॥ ८ ॥
‘भूमिषाकुमार । मैं अपने जीवनका अभी गङ्गाकीके
बन्धमें बिलम्बन कर देती हूँ । इस समय देख अभी नहीं
कर सऊँगी; क्योंकि देख करनेसे मेरे पतिदेवका यक्षयण नष्ट
हा बयगा ॥ ८ ॥

यथाहं कुञ्च सीमिन्नेत्यज्य मां दुःखभागिनीम् ।
निन्देते म्पीयता राज्ञः शृणु खैरं पशो मम ॥ ९ ॥
‘किन्तु मुमिप्रानन्दन । तुम तो वही करो जैही महाशक्तने
तुम्हें आजा ही है । तुम मुझ दुःखियाको नहीं छोड़कर
महाशक्तकी आज्ञाके पालनमें ही स्थिर रहो और मेरी यह
बात सुनो— ॥ ९ ॥

श्वश्रूयामविशोपेण प्राञ्जसिप्रमहृष्य च ।
शिरसा यन्त्र चरणौ कुञ्चलं प्रुहि पार्थिवम् ॥ १० ॥
‘मेरी सब शत्रुओंका समानरूपमें हाथ खड़ाकर मेरी
भरने उन्के चरणोंमें प्रणाम करना । लय ही महाशक्तके
भी चरणोंमें मलक मवाचर मेरी भरनेसे उनकी कुञ्चल पूछना।

निरन्ताभिन्तो नृपाः सत्यासामेयं लक्ष्मण ।
यत्कप्यथापि नृपतिर्धर्मेषु सुखमाहित ॥ ११ ॥
‘लक्ष्मण । तुम अन्तःपुरकी सभी कन्नीया कियोंका
मेरी भरने प्रणाम करते मेरा समान्तर उन्हें मुना बना तथा
अ सदा कर्म-यत्नक लिये लक्ष्मण रहन हैं उन महाशक्तने
मैं मय या संदेश मुना रैना ॥ ११ ॥

आत्मानि च यथा नृप्या मीना लखन गवय ।
भक्षया च परया युक्ता हित्वा च तप जित्यन्ताः ॥ १२ ॥
‘आत्मानि च यथा नृप्या मीना लखन गवय ।
भक्षया च परया युक्ता हित्वा च तप जित्यन्ताः ॥ १२ ॥

पुनन्त । बाह्यमे वे अप्र जानवे ही हैं कि शीघ्र
प्रवृत्ति है । सर्वदा ही आपके हितमें कल्प रहती है और
आपके प्रति परम प्रेममयि रचनेवाली है ॥ १२ ॥

अहं त्यक्त्वा च मं धीर अप्रशोभीठणा ज्ञमे ।
परा मे पात्रनीयं स्यात्पयात् सन्मुखितः ॥ १३ ॥
मया च परिहृतस्य स्य हि मे परमा गतिः ।

धीर । आपने अपव्ययते बरकर ही मुझे त्यागा है अतः
ममामे अपकी च निन्ना हो रही है अथवा मेरे कारण से
माया प्रेम रहा है उसे दूर करना मेरा भी कर्तव्य है
योंकि मर परम आभय आप ही हैं ॥ १३ ॥

पक्षस्यभ्रंशं नृपतिर्धर्मण सुसमाहितः ॥ १४ ॥

पया भ्रातृषु यतैयास्तथा पौरैषु नित्यदा ।

परमो ह्येव धमस्त तस्मात् कीर्तिरनुत्तमा ॥ १५ ॥

भ्रमण । तुम मशरुसमे कसना कि आप धर्मके
परी त्यागधर्मोंमें रहकर पुरस्कारिके रूप में ही कर्तव्य
करें जैसा अपने भाइयोंमें साप करते हैं । यही आपका
परम धर्म है और इसीमें आपका परम उत्तम यशस्वी प्रति
दा मकनी है ॥ १४ १५ ॥

यन्तु पौरजन राजन धर्मेण स्वमयाप्नुयात् ।

अत तु मानुषोयामि स्वारीण नरपथ ॥ १६ ॥

राजन । पुरस्कारिके प्रति भयानुसूय अचरण करनेसे
क पुत्र प्राप्त होगा वही आपके लिये उत्तम धर्म और कीर्ति
है । पुत्रप्राप्त । मुग भजन शरीरके किये कुछ भी किया
नहीं है ॥ १६ ॥

यगापयाद् पौराणा तथैव रघुमन्दन ।

पतिर्हि दयता माया पतिवन्तुः पतिगुरुः ॥ १७ ॥

प्राणस्य प्रिय मसाद् भगुः कार्यं विगारतः ।

पुनन्त । प्रिय तर पुरस्कारिके अर्थान्ते बचकर
रदा का मरु उभी तरह आर रहे । श्रीके लिये तो पति ही
दरगाह पति ही बन्तु है और पति ही गुरु है । इमलिये उगे
प्राणोंकी वाग्ने मसाद् भी विगारकमें पतिना प्रिय करना
करिये ॥ १७ ॥

इति मध्वयजुषाद् गमा घनरथा मम स्वप्रादा ॥ १८ ॥

निरीक्ष्य माय यच्छत्पमृषुवृजतिपतिर्निम् ।

मरी अ म लगी कने तुम भीरुतापणैम बनना और
आज तुम । मम स्वप्रादा । मैं इन समय शत्रुगणका
उत्पन्न परर मरी ही हो चुकी हूँ ॥ १८ ॥

परां वृत्तान्तं श्रीशाय लम्पणाः कीमचयन ॥ १९ ॥

शिक्षाया पय भवतीं व्याख्युः अ गणाक ह ।

कान्त इमं पर बर तर मममा । मम बरत तुमी

हो गया । उन्होंने परलीपर माया टेकर प्रणाम किया । उगे
धम्य उनके मुलसे कोई भी बात नहीं निकल सकी ॥ १९ ॥
प्रवृत्तिषु च तां हत्वा दग्धमेव महात्मन ॥ २० ॥
ध्यात्वा मुहुर्त्तं तामाह किं मां बह्वपसि शोभते ।

उन्होंने ओर-ओरसे घेने हुए ही सीता माताकी परिक्रमा
की और दो पहीतक धोच विचारकर उनसे क्या-क्यामे ।
माय बर मुसमे क्या कर रही हैं ॥ २ ॥

दृष्टपूर्वे म ते रूपं पावौ दष्टौ तत्कालये ॥ २१ ॥

कथमत्र हि पश्यामि रामेण रहिता यम ।

निश्चाय पतिक्ते । मैंने पहले भी आपका रूपं रूप
कभी नहीं देखा है । केवल आपके चरणोंके ही दशन किये
हैं । फिर आद्ययहों कनेके मीतर भीरामकदबीकी अनुसन्धि-
में मैं आपकी ओर कैसे देख सकता हूँ ॥ २१ ॥

शयुवस्था तां ममच्छत्य पुनर्नायमुपलब्धत् ॥ २२ ॥

मादरोह पुनर्नाय भायिक धाम्यशोदपत् ।

बह कहरक उन्होंने सीताकीसे पुनः प्रणाम किया और
किर वे नाभपर चढ़ गये । नाभपर चढ़कर उन्होंने मस्त्रधरो
उसे चम्बनेकी आज्ञा दी ॥ २२ ॥

म गत्या शोचत तीर्त्तं शोकभारसमन्विताः ॥ २३ ॥

सम्भूद् इव दुःखेण रथमभ्यादहद् द्रुतम् ।

शोकके भारसे दवे हुए बसस्य गद्गाकीके उल्टी कर
पहुँचकर दुःखके कारण अथेव से हो गये और उली अस्था
में कलीसे रथपर चढ़ गये ॥ २३ ॥

मुहुर्मुहुः पराहृत्य द्रष्टुं सीतामन्त्रयकम् ॥ २४ ॥

शेष्टतां परतीरस्थां लक्ष्मणाः प्रथय्यथय ।

सीता गद्गाकीके बूले उतर पर मनायकी तर उली हुई
बलीपर श्रेष्ठ रही थी । सतमन चार-चार मुँह पुन्धर उनकी
भार देलत हुए पस दिपे ॥ २४ ॥

दूरस्थं स्वमासोपय लक्ष्मणं च मुहुर्मुहुः ।

निरीक्ष्यमाणा लृष्टिम्ना सीता शोकः समाविशत् ॥ २५ ॥

रथ और सतमन क्रमशः दूर हो गये । सीता उनकी
ओर चार-चार देखकर उद्विग्न हो उठी । उनके अदृश्य होने
ही उनपर गदय धोच छा गया ॥ २५ ॥

सा दुःखभाग्यतया यदास्मिन्नी

यथाधम माधमपदयतीं मती ।

दराद् सा पदिषान्द्रित यन

मलाभ्यमं दुरावपरायणा सती ॥ २६ ॥

अब उन्हें बड़े भी आत्मा रथक मरी दिनाकी शिप ।

आज यद्यपि पारत करनेवाली के पात्रिनी मरी सीता दुःखसे
उली म्माने दबकर शिवात्मने हो म्पूरीके बन्धनमें म्पूरी
हुए उगे कनेके ओर चलय गये लगी ॥ २६ ॥



जानकीजीको घोर वनमें छोड़कर लक्ष्मण लौट रहे हैं

एकोनपञ्चाश सर्ग

मुनिकुमारोंसे समाचार पाकर वात्मीकिका सीताके पास आ उन्हें सान्त्वना देना और आश्रममें लिबा ले जाना

सीतां तु र्वर्ती बद्धा ते तत्र मुनिवारकः ।

माश्रयन् यत्र भगवात्प्रस्ते वात्मीकिकतप्रचीः ॥ १ ॥

वहाँ सीता रो रही थी, वहाँसे पांशी ही दूरपर श्रुतियोंके कुछ बाधक थे । वे उन्हें रोते देख अपने आश्रमकी ओर दौड़े, वहाँ उग्र तपस्वामें मन खमानेवाले भगवान् वात्मीकि मुनि निरुत्थान थे ॥ १ ॥

भविष्यत् मुनेः पादौ मुनिपुत्रा महर्षये ।

सर्वे निवन्द्यामास्तुस्तस्यास्तु कवितलनम् ॥ २ ॥

उन एक मुनिकुमारोंने महर्षिके चरणोंमें अभिवादन करने उनसे सीताकीके रोनेका समाचार सुनाया ॥ २ ॥

यद्बद्धपूर्णा भगवन् कस्याप्येषा महारमणः ।

पत्नी भीरिय सस्मोहाद् विद्वीति विद्वतानना ॥ ३ ॥

वे बोले—भगवन् । गाताउपर किन्हीं महात्मा नरेशकी पत्नी हैं, जो लम्बत उरनीके समान खान पकती हैं । इन्होंने इन्सेमोंने पहले कभी नहीं देखा था । वे मोहके कारण किङ्कणुल होकर रो रही हैं ॥ ३ ॥

भगवन् साधु पश्येत्स्व देवतामिव छाकप्युत्थम् ।

नयास्तु तीरे भगवन् परस्त्री कापि पुःखितम् ॥ ४ ॥

‘भगवन् । आप स्वयं लम्बकर अच्छी तरह देख लें । वे आश्रमसे उठती हुई किसी देवीसी किन्तु सीता देवी हैं । प्रभो ! पाशवीके तटपर जो वे कोई भेद मुन्द्री की बैठी हैं, बहुत दूरी हैं ॥ ४ ॥

व्यस्माभिः प्रकविता वदं शोकपरायणा ।

जगतां तुःकशोकाम्पामेका हीना जनायवत् ॥ ५ ॥

‘हमने अपनी बौक्तों देखा है वे बड़े शेर-शेरसे ऐसी हैं और गहरे शोकमें डूबी हुई हैं । वे दुःख और शोक मेंमनेके पोष्य नहीं हैं । अकेली हैं, हीन हैं और अनाथकी तरह किञ्चन रही हैं ॥ ५ ॥

न ह्येनं मानुषी विद्याः सत्त्वित्यास्याः प्रयुज्यताम् ।

आश्रमस्थाविवृते च त्वामिषं शरणं गता ॥ ६ ॥

‘इसारी समझने से मानवी की नहीं है । आपके लम्बकर करना चाहिये । इस आश्रमसे थोड़ी ही दूरपर होनेके कारण वे वास्तवमें आपकी शरणमें आयी हैं ॥ ६ ॥

व्यश्वरमिच्छतं साध्वी भगवत्प्राप्तुमर्हसि ।

तर्पां तु यत्नं धृत्वा पुद्ग्या निभिव्य धर्मयिषु ॥ ७ ॥

तपसा लम्बकमुत्थानं प्राप्तवद् यत्र मैथिली ।

‘भगवन् । वे साध्वी देवी अपने सिधे कोई लम्बक हैं दूरी हैं । अब आप इनकी रक्षा करें । उन मुनिकुमारोंकी यह बात सुनकर परमेश महर्षिने बुद्धिसे निमित्त करके अच्छी बातको ध्यान लिबा क्योंकि उन्हें तपस्याका दिव्य दक्षि प्राप्त थी । खनकर वे उस खानपर दौड़े हुए आये, वहाँ मिथिलेश-कुमारी सीता विपक्कमान थी ॥ ७ ॥

त प्रयान्तमभिप्रेत्य शिष्या ह्येनं महामतिम् ॥ ८ ॥

तं तु देशमभिप्रेत्य किञ्चित् पद्भ्या महामतिः ।

अर्धमाश्रय्य रुचिरं शङ्खवीतीरमागम् ।

वृष्यं रामवस्थेयां सीतां पत्नीमन्वयवत् ॥ ९ ॥

उन परम बुद्धिमान् महर्षिके वृते देख उनके शिष्य भी उनके साथ हो सिये । कुछ पैदल लम्बकर वे महामति महर्षि सुन्दर अर्ध सिधे गाताउवर्ती उस खानपर आये । वहाँ आकर उन्होंने भीरुपुनापत्नीके प्रिय पत्नी सीताको अनाथकी सी ब्रह्ममें देखा ॥ ९ ॥

तां सीता शोकभागतां वात्मीकिमुनिपुत्रया ।

उवाच मधुरां वार्ष्णां ह्लावयन्निधं तैः ॥ १० ॥

छोठके मारसे पीड़ित हुई सीताको अपने वेकसे आह्लादित-की करते हुए मुनिवर वात्मीकि मधुर वाणीमें बोले— ॥ १० ॥

स्तुपां वृशारथस्य त्व रामस्य महिषी प्रिया ।

जनकस्य सुता राहः स्वागतं ते पतिप्रते ॥ ११ ॥

पतिप्रते ! तुम राह वृशारथकी पुत्रवधू महारथ भीरमकी प्यारी पटरानी और मिथिलाके राह जनककी पुत्री हो । तुम्हारा स्वागत है ॥ ११ ॥

आयागती चासि विद्याता मया धर्मसमाधिना ।

कारणं यैव सर्वं मे हृद्येनोपलक्षितम् ॥ १२ ॥

‘अब तुम यहाँ आ रही थी, तभी अपनी बर्तुत्माधिके हाथ मुझे इतक फटा छत्र गया था । तुम्हारे परित्यागता को खर कारण है उसे मैंने अपने मनसे ही ध्यान किया है ॥

तत्र यैव महाभागे विदितं मम तस्यतः ।

अयं च विदितं मया वैशोपये यच्च पतते ॥ १३ ॥

‘महाभागे ! तुम्हारा खर वृत्तान्त मैंने ठीक ठीक ध्यान लिबा है । त्रिलोकमें जो कुछ हो रहा है वह सब मुझ विदित है ॥ १३ ॥

अपार्पां वेधि सीता ते तपासम्पद्य मनुष्या ।

विक्रम्या भय वैद्वि साग्रत मयि पतसे ॥ १४ ॥

अपार्पां वेधि सीता ते तपासम्पद्य मनुष्या । विक्रम्या भय वैद्वि साग्रत मयि पतसे ॥ १४ ॥

श्वेते । मैं तपस्वाहार प्राप्त हुई दिग्मन्त्रिसे कन्ता हूँ
कि तूम निष्पाप हो । अतः विदेहनन्दिनि । अन् निभन्त हो
जाये । इस समय तूम मेरे पास हो ॥ १४ ॥

आश्रमस्थाविवृते मे तापस्यस्तपसि स्थिता ।
तास्ता वत्से यथा वत्स पात्रयिष्मन्ति नित्यशः ॥ १५ ॥

वेदी । मेरे आश्रमके पास ही कुछ तापसी किशोरों रहती
हैं, जो तपस्वामे संकल्प हैं । वे अपनी बन्धिका समान क्या
तुम्हारा पकन करेगी ॥ १५ ॥

इदमर्थ्यं प्रतीच्छत् त्वं विक्रमभा विगतम्बर ।
यथा स्वपृष्ठमभ्येत्य विपार्यं वैव मा कृपया ॥ १६ ॥

यह मेरा दिया हुआ अर्थ्यं ग्रहण करो और निम्नित
एवं निर्मय हो जाओ । अपने ही करने का गभी हो ऐस
समझकर विपार न करो ॥ १६ ॥

श्रुत्वा तु भारितं सीता मुनेः परममद्भुतम् ।
शिरसा बन्ध्य चरणी तपोत्याह हताञ्जलि ॥ १७ ॥

महर्षिच मह उच्यन्त अद्भुत म्बरण मुनकर सीताने
उनके करणोंमे मन्त्रक स्रक्कर प्रणाम किया और हाथ जोड़
कर कहा—'जो आर्य' ॥ १७ ॥

त प्रपातं मुनिं सीता प्राञ्जलिः पृष्ठतोऽम्बगात् ।
त हृद्या मुनिमायास्त दैवेद्या मुनिपत्नयः ।
उपाङ्गमुमुंवा युत्वा यत्न वेदमह्वन् ॥ १८ ॥

तब मुनि भागे-आगे चले और सीता हम छोड़े उनके
पीछे हो सी । विदेहनन्दिनीके साथ महर्षिके आते देख
मुनि-पत्नियों उनके पास आयीं और बड़ी प्रकृतिके साथ
इस प्रकार बोली— ॥ १८ ॥

हृत्पापैर् श्रीमद्रामायणे वास्मीकीये आदिकाण्ये उत्तरकाण्डे एकोनशततः सर्गाः ॥ १९ ॥

इस प्रकर श्रीवाल्मीकिनिर्मित अर्धरामायणः अदिकाण्यके उत्तरकाण्डमे उत्तरकर्त्तव्यं सप्त पृष्ठं ॥ ४ ॥



पञ्चाश सर्ग

लक्ष्मण और सुमन्त्रकी बातचीत

हृद्या तु मीथिलीं सीतामाश्रम सप्तमेशिताम् ।
संतापमगद् घोरा लक्ष्मणो श्रीमन्वेतसः ॥ १ ॥

मिथिलेवाङ्गुलीं सीताया मुनिके आश्रममे प्रवेशो हो
गया वह देखकर लक्ष्मण मन-ही-मन बहुत दुःखी हुए । उन्हें
पेर संताप हुआ ॥ १ ॥

ममवीच महात्मजा सुमन्त्र मन्त्रसागधिम् ।
सीतासतापजं दुःखं पश्य रामस्य सागधे ॥ २ ॥

उस समय महादेवकी महामय सम्पत्ताने लक्षण देनेवाले
कारण सुमन्त्रने बोले—'मन् । देतो ता नदी भीष्मयो

सागतं ते मुनिश्रेष्ठ विरस्यागमनं च ते ।
अभिवाद्यामस्तथा सर्वा उरुपता किं च कुर्महे ॥ १९ ॥

मुनिश्रेष्ठ ! आपका स्वागत है । बहुत दिनोंके बाद क्यों
आपका शुभमगमन हुआ है । हम सभी आत्मा ममिगत
करती हैं । बताइये, हम आपकी क्या सेवा करें ॥ १९ ॥

तस्मां तद् वचनं श्रुत्वा वास्मीकिरिवमन्त्रवीर्य ।
सीतेय समनुमस्ता पत्नी रामस्य भीमता ॥ २० ॥

उनका वह वचन सुनकर वास्मीकिनी बोले—'मे क्या
हुसिमार् । यथा भीष्मकी बर्मेपत्नी छेदा यहाँ आती हैं ॥
स्तुया वृशरघस्यैया जलकस्य सुता सती ।
स्वाया पतिता त्यक्ता परिपत्स्या मया सदा ॥ २१ ॥

श्वेती सीता राक्ष बृशरघसी पुत्रवत् और जनककी पुत्री
हैं । निष्पाप होनेपर भी पतिने इनका परित्याग कर दिया है ।
अतः मुझे ही इनका सदा स्मरण-याजन करना है ॥ २१ ॥

इमां भयत्याः पश्यन्तु स्नेहेन परमेय हि ।
गौरचाम्मम याक्याच पूज्या वोऽस्तु विरोधता ॥ २२ ॥

अतः आप सब कोम इनपर भयान्त स्नेह-रहित रहें ।
मेरे कहनेसे तथा अपने ही गौरवसे भी मैं आत्मी विरोध
आकरणीमा ॥ २२ ॥

सुहृत्सुहृत्सु वैदेहीं परिवाप महायशसा ।
स्वमाश्रमं शिष्यवृताः पुनरायाम्महातपा ॥ २३ ॥

इस प्रकार कर-बार सीताकीको मुनिपत्नियोंके हाथमें
गोंपकर महातपसी एवं महातपसी वास्मीकिनी शिष्योंके साथ
फिर करने आश्रमपर छोट आये ॥ २३ ॥

इस प्रकर श्रीमद्वाल्मीकीय आदिकाण्ये उत्तरकाण्डे एकोनशततः सर्गाः ॥ १९ ॥

इस प्रकर श्रीवाल्मीकिनिर्मित अर्धरामायणः अदिकाण्यके उत्तरकाण्डमे उत्तरकर्त्तव्यं सप्त पृष्ठं ॥ ४ ॥

अभीमे शीतलीके विदेहनन्दिन संतापक च म्मेन्द्र पद
रहा है ॥ २ ॥

ततो बुभुत्तर किं तु राघवस्य भविष्यति ।
पत्नीं शुञ्जसमाचारो विरुज्य जनकरामजात् ॥ ३ ॥

ममा भीरुनायकीच इच्छे वक्कर दुःख क्या होगा
कि उन्हें अपनी पतिव्रत आत्माकी बर्मेपत्नी जनकशिष्यो
सीताया परित्याग करना पड़ा ॥ ३ ॥

व्यस्य वैशाह मस्ये राघवस्य यिनाभयम् ।
वैदेह्या सागधे नित्यं वैधं हि सुरतिरामम् ॥ ४ ॥

प्यारय । खुनायकीच सीताच जो वह नित्य विदेह

प्रस ह्यम् हे, इसमें मैं देवको ही क्षरण मानता हूँ क्योंकि देवका विधान दुर्मेहप होय है ॥ ४ ॥

यो हि वेवान् सगम्भार्वात्मसुरान् सह राक्षसैः ।

निहम्यात् राक्षसः ह्यन्धः स वैष पर्युपासते ॥ ५ ॥

जो भीरुपुनायकी कुपित होनेपर दंभताओं, गन्धर्वों तथा राक्षसोंके प्रति मनुष्योंकी ही संहार कर सकते हैं; वे ही देवकी उपासना कर रहे हैं (उसका निवारण नहीं कर पा रहे हैं) ॥

पुत्र यमाः पितुर्घातयात् वृक्षके विजने धने ।

उचित्या सव् वर्षाणि पञ्च वैष महावने ॥ ६ ॥

जहाँ भीरामचन्द्रकी ओर पिताके करनेसे चौदह वर्षोंतक विघ्नक एवं निर्धन दण्डकवनेमें रहना पड़ा है ॥ ६ ॥

एतो बुभुक्षतर भूयाः सीताया विप्रयासनम् ।

पौराणा वचनं ध्रुत्वा नृशास प्रतिभाति मे ॥ ७ ॥

जब उससे भी बड़कर बुद्धकी बात यह हुई कि उन्हें श्रेष्ठकी ओर निर्वासित करना पड़ा। परन्तु पुराणियोंकी बात सुनकर ऐसा कर बैठना मुझे अत्यन्त निर्वक्तव्य कर्म जान पड़ा है ॥ ७ ॥

यो नु धर्माश्रयः सतः कामप्यस्मिन् यशोहने ।

मैथिलीं समनुप्राप्तः पौरैर्होतार्ययात्रिभिः ॥ ८ ॥

सूत ! सीताकी विषयमें अन्यायपूर्ण बात करनेवाले इन पुराणियोंके कारण ऐसे कीर्तिनाशक कर्मों में प्रवृत्त होकर भीरामचन्द्रकी ओर किस धर्मरक्षित्री उपासना कर लिया है ! ॥

एषा वाधो बहुविधाः क्षुत्या चक्ष्मणभायिता ।

सुमन्त्रः भद्रया प्राज्ञो याक्यमेतदुपाच ह ॥ ९ ॥

क्ष्मणकी कही हुई इन अनेक प्रकारकी बातोंको सुनकर सुमित्रानन्दन इसप्रकारके ये वचन कहे— ॥ ९ ॥

न सत्यापस्तब्धया कायः सीमिन्ने मैथिलीं प्रति ।

दण्डमेतत् पुरा विप्रैः पितुस्ते लक्ष्मणप्रदा ॥ १० ॥

'सुमित्रानन्दन ! मिथिलाकुमारी सीताके विषयमें आपका कथन नहीं होना चाहिये। क्ष्मण ! यह बात ब्राह्मणोंके कारणसे मिथिलाकी सामने ही जान ली थी ॥ १ ॥

मन्त्रिप्यति बह्वं रामो बुभुक्षप्रापो विसीक्यभाक् ।

प्रपश्यते च महाबाहुर्विप्रयोगं प्रियैर्दुतम् ॥ ११ ॥

उन दिनों बुर्खाकीने कहा था कि भीराम मिश्रय ही अधिक दुःख उठावेंगे। प्रायः उनका शीघ्र किन जायगा। महाबाहु भीरामको शीघ्र ही अपने मित्रकोंसे विचित्र प्राप्त होमग ॥ तब वैष मैथिलीं वैष दाबुप्रभरती तथा।

स त्पञ्चिप्यति धर्मात्मा काकेन महता महान् ॥ १२ ॥

धूमिकाकुमार ! धर्मात्मा महापुरुष भीराम शीघ्रकाठ

भीतसे-भीतसे तुमको, मिथिलेशकुमारीको तथा भरत और शत्रुघ्नको भी त्याग देंगे ॥ १२ ॥

इत्वं त्वयि न यत्कस्य सीमिन्ने भरतेऽपि वा ।

राधा यो व्याहृत वाक्यं दुर्घासा यदुपाच ह ॥ १३ ॥

'बुधासने जो बात कही थी; उसे महापुरुष ब्रह्मरूपने तुमसे शत्रुघ्नसे और भरतसे भी करनेकी मनाही कर ली थी ॥ महाजनसमीपे च मम वैष नरर्षभ ।

श्रुपिणा व्याहृतं वाक्यं घसिष्ठस्य च सनिभौ ॥ १४ ॥

नरभेद ! बुधासनुनिने बहुत बड़े वनसमुदायके समीप मेरे समक्ष तथा महर्षि वसिष्ठके निकट यह बात कही थी ॥

श्रुपेस्तु वचनं ध्रुत्वा मामाह पुदपयभः ।

सूत न क्वचिद्वैष ते यत्कस्य जनसनिभौ ॥ १५ ॥

'बुधासा मुनिकी यह बात सुनकर पुदपयवर ब्रह्मरूपने मुझसे कहा था कि भूत ! तुम्हें वृक्षोंके समने इस तरहकी बात नहीं करनी चाहिये' ॥ १५ ॥

तस्याह लोकपाण्डस्य वाक्यं तत्सुसमाहित ।

नैव जात्बन्धुत् कुर्पोमिति मे श्रीम्य द्शनम् ॥ १६ ॥

श्रीम्य ! उन श्लोकपाण्ड ब्रह्मरूपके उस वाक्यको मैं सुना न करूँ यह मेरा संकल्प है। इसके सिन्धे मैं सदा वाक्यान्तर रहा हूँ ॥ १६ ॥

सर्वैरैष न यत्कस्य मया सीम्य तवाप्रतः ।

यदि ते अशयो भद्रा भूयता रघुनन्दन ॥ १७ ॥

श्रीम्य रघुनन्दन ! वचपि यह बात मुझे अशयो समने सर्वज्ञ ही नहीं करनी चाहिये, तथापि यदि आपके मनमें यह सुननेके सिन्धे भद्रा (उल्लुका) हो तो मुझसे ॥ १७ ॥

यद्यप्यह नरेन्द्रेण रहस्यं भाषितं पुरा ।

तथाऽनुवाहरिप्यामि वैष हि सुरतिकमम् ॥ १८ ॥

येनेवमीदृशा प्रात बुभुक्षं शोकसमन्वितम् ।

न त्वया भरतस्यामे शत्रुघ्नस्यापि सनिभौ ॥ १९ ॥

'वचपि पूर्वकालमें महापुरुषने इस रहस्यका वृक्षोंपर प्रकट न करनेके सिन्धे आदेश दिया था, तथापि आज मैं यह बात कहूँगा। देवके विधानको खोपना बहुत कठिन है किन्तु यह बुद्ध और शोक प्रसन्न हुआ है। मेना ! तुम्हें भी भरत और शत्रुघ्नके सामने यह बात नहीं करनी चाहिये' ॥ १८ १९ ॥

तच्छ्रुत्वा भाषित तस्य गम्भीरार्थपद् महत् ।

तर्ष्यं श्रूयति सीमिन्निः सूत त वाक्यमप्रवीत् ॥ २० ॥

सुमन्त्रका यह गम्भीर भाषण सुनकर सुमिधाकुमार क्रमवचने कहा—'सुमन्त्रकी ! वह तभी बात हो उसे आप बतलव चाहिये' ॥ २ ॥

इत्यर्थे श्रीमद्भगवत वाक्यमीदं भाषिकण्डे उत्तरकाण्डे पञ्चाशः सर्गः ॥ ५ ॥

इत प्रकार श्रीकृष्णकीर्तिर्हित नरनरमन्त्र मन्त्रिभ्योके उत्तरकाण्डे पञ्चाशोः सर्ग पूरा हुआ ॥ ५ ॥

एकपञ्चाश सर्ग

मार्गमें सुमन्त्रका दुर्वासाके हाथसे मुनी हुई मृगुश्चपिके श्रापकी कथा कहकर तथा भविष्यमें होनेवाली कुछ बातें बताकर दुस्ती लक्ष्मणको शान्त करना

तथा सद्योदितः सुतो लक्ष्मणेन महत्प्रमत्ता ।

तद् वाक्यमनुविषा प्रोक्तं व्याहर्तुमुपबन्धकम् ॥ १ ॥

उक्त महात्मा स्वमन्त्रकी प्रेरणासे सुमन्त्रकी दुर्वासाकी कथा कहकर तथा उन्हें सुनाने लगे— ॥ १ ॥

पुत्र नाम्ना हि दुर्वासा बन्धेः पुत्रो महायुधि ।

वसिष्ठस्याश्रमे पुण्ये वार्षिच्यं सयुवाच ह ॥ २ ॥

लक्ष्मण । परलेश्वरी बात है अतिके पुत्र महायुधि दुर्वासा वसिष्ठकी पवित्र आश्रमपर रहकर वार्षिके बार महीने निकल रहे थे ॥ २ ॥

तस्माद्भयं महानेजाः पिता ते सुमहापथाः ।

पुराहित महात्मारं विद्वद्भुरगमत् स्वयम् ॥ ३ ॥

एक दिन आपके महातेज्स्वी और महान् यशस्वी पिता उक्त आश्रमपर अपने पुरोहित महात्मा वसिष्ठकी कथा बर्णन करनेके लिये स्वयं ही गये ॥ ३ ॥

स बहू सूर्यसकृदा पञ्चसप्तमिष तजसा ।

उपविष्टं वसिष्ठस्य सत्यपादौ महामुनिम् ॥ ४ ॥

वहाँ उन्होंने वसिष्ठकी वामभागमें बैठे हुए एक महा-मुनीको देखा कि अपने तेजसे मानो सूर्यके ध्यान देखीप्यमान हो रहे थे ॥ ४ ॥

तौ मुनी तापसघोष्ठी विभीतो ह्यभ्यवाचयत् ।

स ताम्या पूजितो राजा स्वागतेनास्मिन् व ॥ ५ ॥

पाद्येन फलमूलेषु उवाच मुनिभिः सह ।

एक रात्रिमें उन दोनों तापसघोष्ठी महर्षियोंका किन्तुपूर्वक अभिवादन किया । उन दोनों भी स्वागतपूर्वक अत्यन्त बेकर दास्य एवं फल-मूल समर्पित करके राजका उत्तर किया । फिर वे वहाँ मुनिश्रेयके साथ बैठे ॥ ५ ॥

तयां तपोपविष्टानां तास्तथा सुमन्त्रुराः कथाः ॥ ६ ॥

पद्मपुः परमर्षीणां मध्यादित्यगतेऽहनि ।

वहाँ बैठे हुए महर्षियोंकी श्रेण्डरके समय उत्प-उत्पत्ती सम्पन्न मन्त्र कथार्ये हुई ॥ ६ ॥

ततः कथायां कस्याश्चित् प्राकृतिः प्रसहो मृपाः ॥ ७ ॥

उवाच तं महत्प्रमानमत्राः पुत्र तपोभनम् ।

तदनन्तर किसी कथाके प्रसङ्गमें महाराजके हाथ जोड़कर अतिके उपेक्षन पुत्र महात्मा दुर्वासाकी किन्तुपूर्वक पूजा— ॥ ७ ॥

भगवत् किप्रमायेन मम बंधो भविष्यति ॥ ८ ॥

किमायुञ्ज हि मे रामा पुत्राद्यान्मे किमनुपुप ।

‘‘मगतन् । मेरा बंध कितने समकल फल्ये । मेरे रामकी कितनी भावु होगी तथा अन्य एक पुत्रोंकी भी अत्यु कितनी होगी ॥ ८ ॥

रामस्य च सुतायेऽस्युस्तेवामासुः किंवत् भवेत् ॥ ९ ॥

कश्मयथा भगवन् ब्रूहि वरास्वाप्त्य गति मम ।

भीरामके यह पुत्र होंगे उनकी भावु कितनी होगी । मगतन् । भाव इच्छानुसार मेरे वंशकी स्थिति बताइये ॥ ९ ॥

तच्छ्रुत्वा व्याहर्तुं वाप्य रात्रौ वदाराधस्य तु ॥ १० ॥

दुर्वासाः सुमहातेजा व्याहर्तुमुपबन्धकम् ।

रात्रि बराधरात्र मह बचन सुनकर महातेजस्वी दुर्वासा मुनि बने लगे— ॥ १० ॥

मृगु राजन् पुरा वृच तथा देवास्तुरे पुषि ॥ ११ ॥

वैत्याः सुरैर्भैरव्यमाना मृगुपर्णा सम्प्रभिता ।

तथा वृचाभयास्तत्र स्वयस्तम्भभयास्तदा ॥ १२ ॥

‘‘मृगन् । मुनिये प्राचीन कल्पकी बात है एक बार देवास्तुर-संग्राममें देवताओंसे पीड़ित हुए देवोंने अर्षि मृगुकी फलीकी शरण ली । मृगुफलीने उक्त उमंग देवोंको अपने बिना और वे उनके व्यभ्रमपर निर्भय होकर रहने लगे ॥ ११ ॥

तथा परिपूषीतांस्ताम् बहू कृन्वाः सुरेभ्यरा ।

कन्येव शितधारयेय मृगुपर्ण्याः शिरोऽहहत् ॥ १३ ॥

‘‘मृगुफलीने देवोंको आत्मन दिया है, यह देखकर कुपित हुए देवोंके मगलान् विष्णुने लीकी धारवाच कन्ये उनका शिर काट किया ॥ १३ ॥

ततस्तां मिहतां बहू पत्नीं मृगुकुम्भेऽहह ।

शशाप सहसा कृन्वा विष्णुं रिपुकुम्भार्जवम् ॥ १४ ॥

फलीकी फलीका बच हुआ देव मार्गकंधके प्रसक्त मृगुकीने असा कुपित हो धनुकुम्भनाशन मगलान् विष्णुके श्राप दिया ॥ १४ ॥

पश्चाद्वचभ्यां मे पत्नीमवधीः श्रेष्ठमूर्च्छिता ।

तस्मात् त्वं मानुषे श्लोके जनिष्यसि जगत्सत् ॥ १५ ॥

तत्र पत्नीविषयो त्वं प्राप्स्यसे बहुवर्षिकम् ।

‘‘कन्येव । मेरी फली बचके श्रेष्ठ मूर्च्छिता । परंतु अपने श्रेष्ठसे मूर्च्छित होकर उतका बच किया है इच्छिमे अन्तरे मनुष्यश्रेष्ठके कर्म श्रेष्ठा पड़ेगा और वहाँ बहुत वर्षोंक अन्तरे फली-विषयोत्र का उदना पड़ेगा ॥ १५ ॥

शापाभिहतचेतास्तु स्वात्मना भावितोऽभवत् ॥ १६ ॥
मर्चयामास तं देव स्रुगुः शापेन पीडितः ।

“परतु इह प्रकार घाप देकर उनके चित्तमें बड़ा
पराध्याप हुआ । उनकी अन्तरात्माने भगवान्से उस घापको
स्वीकार करनेके लिये उन्होंने भी आराधना करनेको प्रेरित किया ।
इस तरह घापकी निष्कलताके भक्ते पीडित हुए स्रुगुने
वफ़्फ़ावत आराधना विष्णुकी आराधना की ॥ १६ ॥
तपसाऽऽभितो वेचो ह्यप्रवीह भक्तवत्सलः ॥ १७ ॥
सोकाना समिपार्यो तु त घाप शुद्धमुकवान् ।

“तस्माद्वाप उनके आराधना करनेपर भक्तवत्सल
भगवान् विष्णुने संतुष्ट होकर कहा—“अहो ! सम्पूर्ण कलक
दिन करनेके लिये मैं उस घापको ग्रहण कर लेंगा” ॥ १७ ॥
इति शतो महातेजा स्रुगुष्य पूर्वस्नमनि ॥ १८ ॥
इहमतो हि पुत्रत्व तव पार्ष्णिबससम ।
एव ह्यभिधिव्यातस्त्रिषु लोकेषु मानव ॥ १९ ॥

“इस तरह पूर्वस्नमने (विष्णु-नामवाची बामन भगवान्
के स्नन) महातन्त्री भगवान् विष्णुको स्रुगु श्रुतिका घाप
कर डुब्य था । दूखको मान देनेवाले उपभेद । वे ही इस
मूकभक्त भगवान् कीर्त्तनेमें राम-नामसे विख्यात व्यापके
पुत्र हुए हैं ॥ १८ १९ ॥

तत् फल प्राप्तये चापि स्रुगुशापहत महत् ।
भयापयायाः पती रामो दीर्घकाळ भविष्यति ॥ २० ॥
“स्रुगुके शापसे होनेवाला फली-विशोकसम जो महान्
फल है वह उन्हें भवस्य प्राप्त होगा । भीयम दीर्घकालक
भयोंका उपाहोकर रहेंगे ॥ २ ॥

सुखिनश्च समृद्धाश्च भविष्यन्त्यस्य धेऽनुगाः ।
दन्तर्वसहस्राणि वृक्षाधर्पशतानि च ॥ २१ ॥
एता राज्यमुपासित्वा प्रह्लादोक्त गमिष्यति ।

“उनके अनुवाची भी बहुत सुनी और धन-धान्यसे
लगा होंगे । भीयम स्यात् हथियार बरौतक राज्य करके
सन्तमें प्रह्लादके (वैकुण्ठ या खडक-नाम) को पधारंगे ॥
समृद्धाश्च भवन्तीश्च इद्म परमदुर्जयाः ॥ २२ ॥
राजवर्गाश्च बहुधा बहुन् सस्यापयिष्यति ।
सौ पुत्रौ तु भविष्येत सीतायां राघवस्य तु ॥ २३ ॥
“परम दुर्बल और भीयम समृद्धिवादी भक्तवत्सल-सहस्र
वर्षपर अनुग्रह करके बहुतसे राजराजोंकी स्थापना करेंगे ।

इयार्थे धीमन्नामापने वाक्सीकीय आदिवाक्ये उत्तरकाण्डे एकपञ्चाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

एव प्रकार श्रीवल्कीनिर्मित अक्षयमयक उत्तरकाण्डे एकपञ्चाशः सर्ग पूरा हुआ ॥ ५१ ॥

भीरुनायकीके शीताके गर्भसे हो पुत्र प्राप्त होंगे ॥ २२ २३ ॥
सु सर्वमसिद्ध राहो वषास्याह गतागतम् ।
यावयाय सुमहातेजास्तूष्णीमासीन्महासुनिः ॥ २४ ॥

“वे सब बर्ते कहकर उन महातेजसी महासुनिने राजघ-
के नियममें भूत और भविष्यकी सारी बातें कक्षी । इसके
बाद वे चुप हो गये ॥ २४ ॥

तूर्ष्णीमूते तत्र तस्मिन् राजा वशरथो मुनौ ।
अभिवाद्य महात्मानौ पुनरायात् पुत्रोत्तमम् ॥ २५ ॥

“उन दुर्बल सुनिके चुप हो जानेपर महापण दशरथ भी
दोनों महात्माओंको प्रणाम करके फिर अपने उत्तम नगरमें
शेद गये ॥ २५ ॥

एतत् यत्रो मया तत्र मुनिना ध्यातत पुरा ।
भुत इति च निश्चितं नाम्नाया तत् भविष्यति ॥ २६ ॥

“इस प्रकार पूर्वस्नमने दुर्बल सुनिकी कही हुई वे सब
बातें मैंने बर्ते सुनी और अपने हृदयमें धारण कर ली (उन्हें
किश्कीर प्रकट नहीं किया) । वे बातें अकल्प नहीं होंगी ॥ २६ ॥

सीतायाश्च ततः पुत्रावभियेक्ष्यति राघवः ।
अन्यत्र न त्वयोभ्यायां सुमेस्तु यत्नं यथा ॥ २७ ॥

“कैसे दुर्बल सुनिकर वचन है, उसके अनुसर
भीरुनायकी शीताके दोनों पुत्रोंका अभ्येक्षिते बाहर अभियेक्ष
करेंगे अभ्येक्षामें नहीं ॥ २७ ॥

एव गते न सताप कर्तुमर्हसि राघव ।
सीतार्ये राघवार्ये वा हृदो भय नरोत्तम ॥ २८ ॥

“नरभेद खूनखून । विधाताए ऐसा ही विधान होनेके
कारण आपको शीता तथा खूननायकीके लिये संक्षय नहीं
करना चाहिये । व्याप धैर्य धारण करें” ॥ २८ ॥

भुत्वा तु ध्यातत धारणं सूत्रम्य परमाद्भुतम् ।
महर्षमनुल लेभे साधु साञ्चिति वामवीत् ॥ २९ ॥

“सूत प्रमन्त्रके मुलसे यह अत्यन्त अद्भुत बात
सुनकर अस्मन्त्रको अनुग्रह धर्प प्राप्त हुआ । वे शक—“बहुत
ठीक बहुत ठीक” ॥ २९ ॥

ततः सध्वतारेय सूत्रलक्षणयोः पथि ।
अस्तमर्के गते पास केरिन्या तावयोगतु ॥ ३० ॥

“मार्गमें सुमन्त्र और अस्तमन्त्र इस प्रकारकी बातें कर ही
रहे थे कि सूर्य अस्तावतको बधे गये । तब उन दोनोंने
केरिनी मदीक तस्पर रात वितायी ॥ ३ ॥

द्विपञ्चाश सर्ग

अयोध्याक राजभवनमें पहुँचकर लक्ष्मणका दुस्ती श्रीरामसे मिलना और उन्हें सान्त्वना देना

एष तां रजनीमुष्य केशिण्यां रघुनन्दनः ।
प्रभाते पुनरुत्थाय लक्ष्मणः प्रययौ तदा ॥ १ ॥

केशिणीके वटापर वह यह किताकर खुनन्दा लक्ष्मण
प्रातःपश्चात् उठे और फिर वहाँसे आगे बढ़े ॥ १ ॥

ततोऽर्धविघसे प्राप्ते प्रविशेश महागन्धः ।
अथास्यां रत्नसम्पूर्णा हृष्टपुष्टजमावृताम् ॥ २ ॥

होकर अर्ध-होठे उनके उस विद्यालयमें रत्न बनसे
लक्ष्मण तथा हृष्ट-पुष्ट मनुष्योंसे भरी हुई अनायासपुर्वीमें
प्रवेश किया ॥ २ ॥

सौमित्रिस्तु पर क्षीणं जगाम सुमहामतिः ।
रामपादौ समासाद्य पक्ष्यामि किमह गतः ॥ ३ ॥

वहाँ पहुँचकर परम बुद्धिमान् सौमित्रिजगामको बड़ा दुःख
हुआ । वे खेचन क्यो— मैं श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंके समीप
बाहर क्या आईया ॥ ३ ॥

तस्यैय क्षिप्तयानस्य भवन शशिसन्निभम् ।
रामस्य परमोदार पुरस्सहत् समहृष्यत ॥ ४ ॥

वे इस प्रकार खेच-निवार कर ही रहे थे कि चन्द्रमाके
समान उज्ज्वल श्रीरामचन्द्र विद्यालय रावणवन समने
दिलानी दिवा ॥ ४ ॥

राघस्तु भवनद्वारि साऽवतीर्य करोत्तमः ।
अशाङ्गुल्लो दीनमनाः प्रथिवेशानिवारितः ॥ ५ ॥

राघवचन्द्र द्वारपर खड़े उतरकर वे नरभेद समझ
नीचे गल किये दुःखी मनमें शेषेन्द्र-लोक भीतर चले गये ॥
स हृद्वा राघव दीनमासीन परमासने ।
नेत्राभ्यामभ्युपजाय्यां वृद्धाग्रजमग्रता ॥ ६ ॥

जग्राह चरणी तस्य लक्ष्मणो दीनघेतनः ।
जयाच्च क्षीनया पात्रा माञ्जलिः सुसमाहिता ॥ ७ ॥

उन्होंने देखा भीरुनाथकी दुस्ती होकर एक किंदावनपर
बैठे हैं और उनके दोनों नेत्र भौंपुआँसि मारे हैं । इस अकस्मा-
में बड़े आर्षभ लक्ष्मणने देखा दुःखी मनमें दरमनघन उनका दोनों
पैर पकड़ किये और हाथ छोड़ बिचम्र प्रकाम करके वे
दीन पादोंमें किये— ॥ ६ ॥

अथस्याया पुनरुत्थय पितृन्व्य जनकानमग्राम् ।
गङ्गातीरं पपादिष्टे पावनीकराग्रम हृषे ॥ ८ ॥

तत्र तां च द्रुभाजाराधामात्र पश्यामिनीम् ।
पुनरुत्थागता धीर पादमूढमुपावितुम् ॥ ९ ॥

तीर महापत्रकी अज्ञा शिरोवर्ष करके मैं उन ग्राम

आचारवादी मद्यमिनी जनककिशोरी खेतको पञ्चमपर
वासीकिके ग्राम आगमके समीप निर्दिष्ट लक्ष्मणमें खेचकर
पुनः स्त्रापके भीचरणोंकी सेवाके लिये वहाँ छोड़ गया ॥ १ ॥

मा शुचः पुरुषस्याथ कासस्य गतिरीदृश्वी ।
त्वद्विधा यदि शोचन्ति बुद्धिमत्तो मनस्विनः ॥ १० ॥

‘पुरुषसिद्धि । आप शोक न करें । कासही ऐसी ही गति
है । आप-जैसे बुद्धिमान् और मनस्वी मनुष्य शोक नहीं
करते हैं ॥ १ ॥

स्वर्णे क्षयान्ता निचयया पतनात्तां समुच्छ्रया ।
संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्त च जीवितम् ॥ ११ ॥

व्यंगारमें कितने संभव हैं उन सबका अन्त निश्चय है-
उत्थानका अन्त पतन है, संयोगका अन्त विरोग है और
जीवनका अन्त मरण है ॥ ११ ॥

तरमात् पुत्रेषु वारेषु मित्रेषु च धनेषु च ।
पातिप्रसङ्गः कर्तव्यो विप्रयोगो हि तैर्धुर्वमः ॥ १२ ॥

अतः स्त्री, पुत्र मित्र और धनमें विप्रय अन्तक नहीं
करनी चाहिये क्योंकि उनसे विप्रयोग होना निश्चित है ॥ १२ ॥

शकम्भवमारमनाऽऽरमान विनेतुं मलसा ममः ।
लोकान् सर्वान्वा काकुन्त्य किं पुना शोकमतत्पना ॥ १३ ॥

कुकुरस्यकुम्भयूय । आप आत्मसे अहमको मन्ते
मनको तथा कुम्भ सोखेंगे भी संकत रलनेमें कम है । फिर
आपने शोकको आश्रममें रलना आपके लिये अनेक बड़ी कठोर है
नेहरोसु विमुह्यन्ति स्वद्विधा पुरुषपर्वभा ।
अपयादा च किल ते पुनरेष्यति रामव ॥ १४ ॥

अप-जैसे भेद पुरुष इस तरहके प्रसङ्ग आनेपर मोहित
नहीं होते । खुनखन । यदि आप दुःखी रहेंगे तो वह अन्तर
आपके ऊपर फिर आ जयगा ॥ १४ ॥

पार्थे मीधिली त्यक्ता अपवादाभयान्वय ।
सोऽपवादः पुरे गजन् भयिष्यति स सदाया ॥ १५ ॥

नरकर । किल अपवादके ममसे आपने मिषियेपुष्प-
वा त्याग किया है नि-संदेह वह अपवाद इस मयमें फिर
दने अयोगा (अप कहेंगे कि कृत्तके परमें रही हुई अन्त
त्याग करके वे रज दिन उल्लोरी किन्तासे दुःखी रहते हैं) ॥
स त्व पुरुषाणां मूल धैर्येण सुसमाहिता ।
त्वज्जया दुर्वला बुद्धि संताप मा कुटप्य ह ॥ १६ ॥

अतः पुरुषादि । आप वैरसे विचरो दक्षम करते
इस दुर्वल शक-बुद्धिवा त्याग करें—संकत म हों ॥ १६ ॥

अतः पुरुषादि । आप वैरसे विचरो दक्षम करते
इस दुर्वल शक-बुद्धिवा त्याग करें—संकत म हों ॥ १६ ॥



जानकीजाक्य यनमें छोटकर ठाँट हुए लख्मणकर भागमसे में

एयमुक्त्वा स कश्चिदस्वो लक्ष्मणेन महात्मना ।
 उवाच परया प्रीत्या सौमित्रि मित्रपत्सङ्ग ॥ १७ ॥
 महात्मा लक्ष्मणके इत् प्रकार क्कनेपर मित्रवत्सङ्ग
 श्रीरघुनाथधीने बड़ी प्रसन्नलक्षके स्वयं उन सुमित्राकुमार
 वे क्य—॥ १७ ॥
 एषमेतन्नरभ्येष्ट यथा वक्षसि लक्ष्मण ।
 परितोषञ्च मे धीर मम कर्ष्यानुशासने ॥ १८ ॥
 नरभ्येष्ट धीर लक्ष्मण । तुम मेला कहते हो, ठीक ऐसी
 हृत्कार्ये भीमत्रामायय बाष्पीधीये आदिनाम्ये उत्तरकाण्डे त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥ ५२ ॥
 इस प्रकार भीमत्रामायय अदिनाम्ये उत्तरकाण्डे त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

ही बात है । तुमने मेरे आवेशात्र पावन किया, इसके मुझे बड़ा
 संतोष है ॥ १८ ॥
 मिवृत्तिज्ञागता सौम्य सतापञ्च निराकृत ।
 भवत्वापयै सुखचिरैरनुनीतोऽस्मि लक्ष्मण ॥ १९ ॥
 श्वेय्य लक्ष्मण । अब मैं तुम्हसे निवृत्त हो गया ।
 संतापञ्च मैंने हृदयसे निकल दिया और तुम्हारे सुन्दर बन्धनों
 से मुझे बड़ी शान्ति मिथी है ॥ १९ ॥
 हृत्कार्ये भीमत्रामायय बाष्पीधीये आदिनाम्ये उत्तरकाण्डे त्रिपञ्चाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपञ्चाशः सर्गः

श्रीरामका कार्यार्थी पुरुषोंकी उपेक्षासे राजा नृगको मिलनेवाली शापकी कथा
 सुनाकर लक्ष्मणको दस्त्रभालके लिये आदेश देना

स्रमणस्य तु त्व् वाक्य निशाम्य परमाद्भुतम् ।
 सुधीतश्चाभयद् रामो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ १ ॥
 लक्ष्मणके उठ अत्यन्त अद्भुत वचनको सुनकर भीराम
 फटके बड़े पक्षक हुए और इस प्रकार बोले—॥ १ ॥
 तुलभस्वीदशो यन्पुरस्मिन् काले विशेषतः ।
 यादशास्व महाबुद्धिमम सौम्य मनोऽनुग ॥ २ ॥
 श्वेय्य । तुम बड़े बुद्धिमान् हो । जैसे तुम मेरे मनका
 अनुसर करनेवाले हो ऐस भूई विशेषत इत समय सिन्धु
 कर्त्तन है ॥ २ ॥
 एष मे हृदये किञ्चिद् धर्तते शुभलक्षणम् ।
 र्त्तनशामय स भुत्वा पुराप्य धचन मम ॥ ३ ॥
 शुभलक्षण लक्ष्मण । अब मेरे मनमें जो बात है उसे
 सुने और सुनकर बोल ही करो ॥ ३ ॥
 कथया दिष्टयाः सौम्य कार्ये दीरज्जलस्य च ।
 कथुवाप्यस्य सौमित्रे तस्मे मर्माणि हन्तति ॥ ४ ॥
 श्वेय्य । सुमित्राकुमार । मुझे पुराकितोंका क्रम किये
 किन्ना पार दिन भीत बुके हैं यह बात मेरे मर्मलक्षके विरुद्ध
 पर रही है ॥ ४ ॥
 माह्वयन्ता मन्त्रतयाः पुरोधा मन्त्रिणस्तथा ।
 कथयार्थिनाथ पुरुषाः क्रियो या पुरुषपथ ॥ ५ ॥
 पुराणकार । तुम प्रथम पुरोहित और मन्त्रियोंका
 बुझाओ । किन् पुरुषों अपका क्रियोंको कई क्रम हो उनको
 उरन्वित कर ॥ ५ ॥
 वीरकथयामि या राजा न करोति दिने दिने ।
 संभुन भरक धार पतितो नाथ संतापः ॥ ६ ॥
 यह राज्य प्रतिदिन पुराकितोंके कर्त्त मरी करण क

निस्त्रेह सव ओरसे निरिच्छद अतएव बापुसंचारसे रहित
 भेर नरकमें पड़ता है ॥ ६ ॥
 भूयते हि पुरा राजा नृगो नाम महायशा ।
 यम्बु पृथिवीपालो ब्रह्मण्याः सत्यवाक् शुचिः ॥ ७ ॥
 सुना जाता है परछ इस पृथीपर नृगनामसे प्रसिद्ध एक
 महायशस्वी राजा राज्य करते थे । वे भूपाल बड़े ब्राह्मण
 भक्त सत्यवादी तथा आचार-विचारसे पवित्र थे ॥ ७ ॥
 स कदाचिद् गर्वां कोटी सषत्सा स्यणभूयिताः ।
 मुद्देवो भूमिदेधम्यः पुष्करेषु ददौ मृगः ॥ ८ ॥
 उन् मरवेवने किसी समय पुष्कर तीर्थमें अन्ध ब्राह्मणों-
 को मुकपति मूयित तथा दण्डोंसे युक्त एक करोड़ गौरों
 दान की ॥ ८ ॥
 तता सद्वाद् गता धेनुः सत्यस्ता स्पर्शित्वनघ ।
 प्राप्नोन्स्याहिताग्नेस्तु द्रिद्रम्योन्मथयतिमा ॥ ९ ॥
 निष्पाप ब्रह्मण । उठ समय दूरसे गौओंके खप-खप
 एक दष्टि उन्मथुसिसे धीबन निवार करनेपासे पक्ष अग्नि
 दग्नी ब्राह्मणकी सङ्घेदहित गाप बर्हो बली गयी और राजने
 संकल्प करके उने किसी ब्राह्मणको दे दिया ॥ ९ ॥
 स नष्टां गां क्षुधातो वै मन्त्रिपस्तात्र तप ह ।
 मापदपत् सर्वराष्ट्रेषु मयासरगपान् यदहन् ॥ १० ॥
 यह वचन ब्राह्मण भूयसे पीदित हो उठ लदेयी हुई
 गापको बहुत बरोतक करे राज्योंमें बर्हो-बर्हो हूँदता किया
 परंतु वह उसे मरी रिखापी दी ॥ १० ॥
 ततः जनस्रल गतया जीव्ययन्तां निगमयाम् ।
 दददो ता स्त्रिपां धनु प्रादपस्य निगानि ॥ ११ ॥
 अन्तमें एक दिन ब्रह्मण पदुंकर उठने भस्मी गप

एक प्राणके परने देखी । वह नीरोग और हृद्युद्ध थी; किंतु उद्यम कष्टा बहुत बड़ा हो गया था ॥ ११ ॥

अथ तां जामघेयेम स्वकेनोवाच ब्राह्मणः ।
अथाच्छ शबलेर्येषं सा तु शुभाशुभौ । स्वस्म ॥ १२ ॥

प्राणपने अपने रखे हुए शबला नामसे उद्यमो पुत्र्य—शबले । आम्हो । आम्हो । गोने उद्यमके पुत्रा ॥ १२ ॥

तस्य तं स्वस्माहाय भूधार्तस्य द्विजस्य वै ।
अथगात् पूठतः सा गौर्गच्छन्त पादशोपमम् ॥ १३ ॥

मूलसे पीकित हुए उद्यम प्राणपके उद्यमपरिक्लिप्त स्वरूपे पहचानकर वह गौ आगे-आगे चले हुए उद्यम अग्निपुत्रस्य देवली प्राणपके पीके हो थी ॥ १३ ॥

योऽपि पाच्छयते विप्रः सोऽपि गामवगात्पुत्रम् ।
गत्वा च तस्यैव चरे मम गौरिति सत्वरम् ॥ १४ ॥
स्पर्शिता राजसिंहेन मम वृत्ता सुगेव ह ।

ज्यो प्राणप उन दिनों उद्यम पाछन करता था; वह भी दूरत उद्यम गामक पीके करता हुआ गया और जाकर उन प्राणपके शब्द—प्राणप । वह गौ मेरी है । मुझे राजश्योंमें भेज दगने इसे राजमें लिया है ॥ १४ ॥

उपोऽर्थाच्छयोर्वावो महालासीच् विपश्चितोः ॥ १५ ॥
विचम्यतौ ततोऽप्योम्यं वाचरमभिशममता ।

किर तो उन बानों विद्वान् प्राणपोंमें उद्यम गौके लेकर महान् विचार कड़ा हो गया । वे दोनों परस्पर कड़वे-सगड़वे हुए उन बानी नरुद्यम गौके पाछ गये ॥ १५ ॥

तौ राजभयमद्वारि न प्रातौ सुगद्यासनम् ॥ १६ ॥
बाहोरात्राभ्यनेकप्रति बसन्तौ कोष्मनीयतुः ।

पहलौ राजभयनक दरकात्तर जाकर वे कई दिनोंतक टिके रहे परंतु उन्हें राजभय भयन नहीं प्राप्त हुआ (वे उनसे मिले ही नहीं) । इच्छे उन दोनोंको बड़ा श्रेय हुआ ॥ १६ ॥

ऊचतुश्च महात्मानो साधुभौ द्विजसत्तमौ ॥ १७ ॥
हृदयी परमसत्तमौ वाप्य चोपभिसहितम् ।

वे दोनों अथ महात्मा प्राणप अत्यन्त उद्यम और कुपित हो गच्छने ध्याप देते हुए वह धेर वाचन बोले— ॥ १७ ॥
अर्थिनां कार्यनिश्चयार्थं यथास्व नैदि बर्त्तन्तम् ॥ १८ ॥
अहदप्यः सचमृतानां हृदयगतो भविष्यति ।
बहुवर्षसहस्राणि बहुवर्षशतानि च ॥ १९ ॥
अन्ते त्वं हृदयमीमूतो बीषोऽकण्ठं निषत्स्यसि ।

‘वाचन् । अपने विचारका निर्णय करनेकी इच्छासे मैंने हुए प्राणी पुत्रगौके कार्यकी चिकित्से किये हुए उन्हें धर्म नहीं देते हो इच्छिये हुए उद्यम प्राणपोंसे द्विजपर अपनेका गिरहित हो बामंगे और छसों वर्षोंके दोषोपाध्यक गौमें निष्कृष्ट होकर ही पड़े रहोगे ॥ १८ १९ ॥

उत्पत्स्यते हि लोकेऽस्मिन् पशूनां कीर्तिवर्धना ॥ २० ॥
धासुदेव इति ज्योतिषिण्युः पुत्र्यविप्रतः ।
स तं मोक्षयिता शापात् राजसत्तमाच् भविष्यति ॥ २१ ॥
कृता च तेन कालेन निष्कृतिस्ते भविष्यति ।
भारतवतरणार्थं हि मरुत्परायणपुत्रौ ॥ २२ ॥
उत्पत्स्येते महावीर्यौ कठौ युग उपस्थिते ।

‘अथ यदुच्छ्रयी कीर्तिं बद्धनेवाद्ये वासुदेवनामते विष्णुः भगवान् विष्णु पुत्र्यकस्ये इह कर्मन्ते अक्षरं अंगे; उद्यम वे ही दुग्धौ इत धापसे पुत्राङ्गो; इच्छिये इत उद्यम वे हुए निष्कृष्ट हो ही बामंगे, किन्तु भीकृष्णावतरके उद्यमों ही दुग्धाय उदार होगा । अग्निपुत्र उपस्थित होनेसे कुछ ही वर्ष महापरायणी नर और नापरायण दोनों इत दुग्धीक मर उद्यमोंके किये अकलीन होंगे ॥ २ २—२९ ॥

एव तौ शापमुत्सृज्य ब्राह्मणी विपत्तञ्जनी ॥ २३ ॥
तां गां हि पुर्वक्षां पशूनां पदतुर्जाह्वयाय वै ।

‘इह प्रकार धाप देकर वे दोनों प्राणप गालत हो गये । उन्होंने वह बुरी और दुर्बली गाय कियी प्राणपको दे दी २३ ॥
एव स राजा तं शापमुपसृज्य क्लृप्ताकथम् ॥ २४ ॥
कार्याधिमां विमर्शं हि राजां बोलाय कल्पते ।

‘इह प्रकार राजा उद्यम अत्यन्त शयन धापक उद्यम कर रहे हैं । अथ; कार्याधीं पुत्रयोश्च विचार यदि निर्णीत बने तो वह राजाओंके किये महान् श्रेयकी प्राप्ति करनेका होता है ॥ २४ ॥

उच्छ्रियं वर्णानं महामभिकर्तव्यु कार्ष्णिना ॥ २५ ॥
सुकृतस्य हि कार्यस्य फलं नालेति पार्ष्णिना ।
तस्मात् गच्छ प्रतीक्षस्व सौमित्रे कार्यवाहकम् ॥ २६ ॥

कृता कार्याधीं मनुष्य कीज मेरे कर्मने उपस्थित हों । महापरायणक पुत्र्यकको फल क्या राजाको नहीं सिद्ध है । अक्षर प्राप्त होता है । कृता सुमित्रानन्व । तुम कर्मके राजापर प्रतीक्ष करो कि कीज कार्याधीं पुत्र्यक का फल है ॥ २५ २६ ॥

हृत्कार्ये श्रीमद्वाल्मीके वाक्मनीकीने आदिवाक्ये उद्यमकापके विपत्तकाः कर्माः ॥ ५३ ॥
इत प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीने कर्मात्मक अदिवाक्यके उद्यमकापके विपत्तकाः कर्माः ॥ ५३ ॥

चतु पञ्चाश सर्ग

राजा नृगका एक सुन्दर गहड़ा बनवाकर अपने पुत्रको राज्य दे ख्य
उसमें प्रवेश करके शाप भोगना

रामस्य भाषित भूस्था सख्यया परमार्यवित् ।
 उपाय प्राञ्जलिभाष्य रामय वीरतेजसम् ॥ १ ॥
 भीरुमन्त्र बह भाषण सुनकर परमार्यविषा सख्यया दोनों
 हाथ जोड़कर उड़ीत वेदवाक्ये श्रीपुनायकीसे बोले— ॥ १ ॥
 अत्यापराधे वाकुस्थ्य द्विजाम्या शाप ईदृशाः ।
 महान् नृगस्य राजर्वैर्यमदृश इषापरः ॥ २ ॥
 'कुरासकुम्भरत्न । उन दोनों ब्राह्मणों ने जोड़ेसे ही
 अत्यापरा उर्ध्वी दुग्धे द्वितीय समदृग्बके समान पैद्य
 म्दान् शाप दे दिया ॥ २ ॥
 पुत्र्या तु पापस्युक्तमारमान पुदयर्धम् ।
 किमुशाप नृगो राजा द्विजौ श्लेषसमन्वितौ ॥ ३ ॥
 'पुत्रप्रसक्त ! अपनेकी शापकपी पापसे संयुक्त हुआ
 सुनकर राजा दुग्धे उन कबी ब्राह्मणोंसे क्या करा ?' ॥ ३ ॥
 सख्ययैर्यमुक्तस्तु रामय पुनर्यपीत् ।
 शृणु सौम्य यथा पूर्णं स राजा शापविस्तृतः ॥ ४ ॥
 सख्ययैरे इत प्रघ्नर पूज्येन भीरुपुनायकी किर योक्त—
 प्लेन ! पूर्वकाममें शापप्रसक्त होकर राजा दुग्धे जो कुछ करा
 उसे बतला हूँ सुनो ॥ ४ ॥
 अथाप्यनि गतौ यिमौ द्विजौ स नृपस्तदा ।
 अदृष्ट मन्त्रिण्य सयान् मैगमन्त्सुगोभन्मा ॥ ५ ॥
 तानुवाच नृगो राजा सबाह्व प्रहृतीलया ।
 तुक्तेन सुसमाविष्टा श्रूयता मे समाहिताः ॥ ६ ॥
 'कब राजा दुग्धे ने पता लगा कि वे दोनों ब्राह्मण
 पक्ष लये और कही राखेंमें होंगे, तब उन्होंने मन्त्रियोंको,
 कर्मज्ञ पुराणियोंको पुरोहितोंको तथा कर्मज्ञ प्रहृतिवोंको भी
 बुलाकर बुलासे पीड़ित होकर कहा—'आपकोएक एकपक्ष
 शाप मेरी बात सुनो— ॥ ५ ॥
 अतः पयतश्चैव मम कृत्या महद्बभूवम् ।
 यतौ किमुवच भद्रौ चापुभूतापतिन्वितौ ॥ ७ ॥
 आरद और परत—मे दोनों कल्याणकरी और अमित्र
 देवर्षि मेरे पास आये थे । वे दोनों ब्राह्मणोंके लिये हुए शाप-
 की वचन कथन करने म्दान् भय दे वाकुके समान तीव्र गतिसे
 ब्राह्मणोंको चले गये ॥ ७ ॥
 कुमारोऽयं वसुनाम स खेहाधाधिरिच्छताम् ।
 अश्रय यत्तु सुखसर्वो जियता निदियभिमम ॥ ८ ॥
 'ये जो वसु नामक राजकुमार हैं इन्हें इस समयपर
 अमित्रिक कर दिया अब और बारीगर मेरे लिये एक ऐसा
 दण्ड तैयार करें जिसका लय सुनकर हा ॥ ८ ॥
 पत्राद संक्षिप्यामि दाप प्राज्ञानिगदुतम् ।
 एवमन्त्रः श्वभ तु दिमप्यमपर तथा ॥ ९ ॥

भीष्मन् तु सुखस्पर्शमेक कुर्वन्तु दिदियता ।
 'ब्राह्मणके मुझसे निकले हुए उस शापको वही राजा
 में विचारका । एक गड्ढा ऐसा होना चाहिये, जो जबकि कब
 कर निवारण करनेवाला हो । वृक्ष्य लक्ष्मि बंधनेवाला हो
 और दिवसी लगे तीव्र एक ऐसा गड्ढा तैयार करें जो गर्मी-
 का निवारण कर और बिदका सर्वो सुखदायक हो ॥ ९ ॥
 फलवन्तस्य ये वृक्षाः पुष्पवरायस्य वा सताः ॥ १० ॥
 विनेप्यन्ता वृक्षिधाप्रक्षयाफलकस्य सुमिमाः ।
 क्रियता रमणीय व श्वभ्राण्या सर्वतोदिशम् ॥ ११ ॥
 सुखमय ससिप्यामि दापत्कालस्य पथप ।
 पुष्पाणि च सुगन्धीनि क्रियन्ता तेषु निरयदाः ॥ १२ ॥
 परिवार्य यथा मे स्युरध्वर्धं योजनं तथा ।
 'ये फल देनेवाले वृक्ष हैं और फूल देनेवाली वृक्षाएँ हैं
 उन्हें उन गड्ढोंमें लगाया जाय । पनी ठाकानाल मनेक प्रकारके
 वृक्षोंका वही आरोग्य किया जाय । उन गड्ढोंके चारों ओर
 वेद वेद यामन (ठ-ठ-कोठ) की भूमि फैरकर लूब रमणीय
 बना दी जाय । अन्तक शापका छम्य कीयेगा तत्कर्म में वही
 सुखपूर्वक रहूँगा । उन गड्ढोंमें प्रतिदिन सुगन्धित पुष्प संक्षिप्य
 किये जायें ॥ १०-१२ ॥
 एव कृत्या विधान स सनिपद्य वसु तदा ॥ १३ ॥
 धर्मनित्याः प्रजाः पुत्र इत्प्रभवेण पाल्य ।
 'ऐसी व्यवस्था करके राजकुमार वसुको राजसिंहासनपर
 विठाकर राजाने उठ समय उनसे कहा—'सौदा ! तुम प्रति-
 दिन धर्मपथपर रहकर अधिद-धर्मके अनुसर प्रजाप
 पावन करो ॥ १३ ॥
 प्रत्यहं ते तथा शापो द्विजाम्या सपि पाठितः ॥ १४ ॥
 नरभ्रष्ट सरोशाम्यामपराधऽपि तादृश ।
 'दोनों ब्राह्मणों ने सुनकर जिस प्रकार शापदायक प्रहार
 किया है, वह तुम्हारी ओम्शोक समाने है । नरभ्रष्ट । वेने
 पापोंसे अपराधपर भी यह होकर उन्होंने मुझे शाप दे दिया है ॥
 मा वृथाम्यनुसमाप मन्वृत हि नरयभ ॥ १५ ॥
 एतावता कुन्ताः पुत्र येनाग्निं व्यसनीकृताः ।
 पुरुषधर ! तुम मेरे लिये संतान न करो । बरा ।
 जिसे मुझे श्वकी बनाया—संक्षेपमें हाथा दे अन्ना बिना
 हुआ वह प्राचीन कर्म ही अनुत्तम-प्रतिवृत्त कर देनेमें लयमें
 हाजा है ॥ १५ ॥
 मातप्यान्वय प्राण्यति गन्तव्याम्येय गच्छति ॥ १६ ॥
 सप्याम्याम्यव लभत नृनगानि च सुनानि च ।
 पूर्वं ज्ञान्यन्तर एवम मा विनाद कुदप्य ॥ १७ ॥

‘अस्य । पूर्वकर्मणे किये गये कर्मके अनुसार मनुष्य
उन्हीं बन्धनोंको पाठ है, किन्तु पापका वह अधिकारी है ।
उन्हीं खानोंपर अन्न है, उन्हीं खाना उसके किये अनिवार्य
है तथा उन्हीं दुःखों और सुखोंको उपभोग करता है, जो
उत्पत्तिके निमित्त हैं। अथा द्रुम विधाद म करो’ ॥१९१०॥

एवमुक्त्वा नृपस्तात्र सुत राजा महाप्रथमा ।

श्वश्रु जगाम सुकृतं वासाय पुरुषर्षभ ॥ १८ ॥

भारभेऽ । अपने पुत्रसे देख कहकर महाप्रथमा नरपाश

हृत्पार्ये श्रीमद्वाल्मीके वाल्मीकीये आदिवाक्ये उत्तरवाक्ये चतुःपञ्चाशत् सर्गः ॥ ५७ ॥

इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीयनिर्मित अर्वांगमयम् आदिवाक्यके उत्तरवाक्यमें चौदहवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ५७ ॥



पक्षपञ्चाश सर्ग

राजा निमि और वसिष्ठका एक दूसरेके क्षापसे वैदित्याग

प्य ते नृगशापस्य विहसरोऽभिहितो मया ।

पचक्षि ब्रह्मणे ब्रह्मा मृगुण्येवापरं कथाम् ॥ १ ॥

(श्रीपदमे क्वा—) ‘अस्मत् । इस तरह मैंने ब्रह्मणसे राजा

रुद्रके शापका मसह विश्वासेपूर्वक बताया है। यदि सुननेकी

इच्छा हो तो वृत्तवी कथा भी सुनो’ ॥ १ ॥

एवमुक्त्वस्तु रामेभ्य सौमित्रिः पुनरब्रवीत् ।

वसिष्ठस्यैवमूलात् कथामां नास्ति मे श्रुय ॥ २ ॥

श्रीपदमे ऐसा ब्रह्मणसे सुमित्रकुमार फिर बोले—

परेष्वर । इन आश्चर्यजनक कथाओंके सुननेसे मुझे कभी

शुक्ति नहीं होती है ॥ २ ॥

कश्मणेनैवमुक्त्वस्तु राम इस्वाकुलम्वृत्तः ।

कथां परमभूमिष्ठां ब्याहृतमुपब्रवीत्मे ॥ ३ ॥

अस्मत्के इस प्रकार ब्रह्मणसे इत्यादि कुलान्वत श्रीपदमे

पुनः उत्तम ब्रह्मसे मुक्त कथा कहनी आरम्भ की—॥ ३ ॥

आधीवृ राजा विमिर्नाम इस्वाकुलां महाप्रथमाम् ।

पुत्रो ब्राह्मणेनो वीर्ये धर्मे च परित्यजितः ॥ ४ ॥

कुमित्रान्वत । महाप्रथमा इस्वाकुलपुत्रोंमें निमि नामक

एक राजा हो गये हैं जो इस्वाकुलके चारदशके पुत्र थे । वे

पराक्रम और धर्ममें पूजका स्थिर रहनेवाले थे ॥ ४ ॥

स राजा वीर्यसम्पन्ना पुत्र देवपुरोपमम् ।

निषेधायामास तदा अस्यासौ गौतमस्य सु ॥ ५ ॥

राजा नृगने अपने रहनेके छिने दुन्दर बंगसे ठेकर छिने से
गङ्गामें प्रवेश किया ॥ १८ ॥

एव प्रविश्येव नृपस्तत्पार्श्वे

श्वश्रुं महाद्रुमविमूर्धितम् ॥ १ ॥

सम्प्राव्याम्रास तदा महात्मन

शापद्विजाभ्यां हि ब्रह्मा विमुक्तम् ॥ २ ॥

इस तरह उस रत्नविभूषित महान् गर्तमें प्रवेश करने

उस समय महारामा राज्य रागने जासपोंका उपहृष्टकिये से

उस शापके भोगना आरम्भ किया ॥ २ ॥

‘उत पचाक्रमस्यश्च गरोशने उत विनो गौतमश्वश्रुने

निष्क वेवपुरीके छन्द एक नगर कहाया ॥ ५ ॥

पुरस्य सुकृतं नाम वैश्वयन्तमिति श्रुतम् ।

निवेशं यत्र राजर्षिर्निमिरिस्वाकुलम् ॥ ६ ॥

महाप्रथमी राजर्षि निमिने किंस नगरमें अपना निवास

स्थान बनाया उसका सुन्दर नाम रक्ता गया वैश्वयन्त । इस

नामसे उस नगरकी प्रसिद्धि हुई (वैश्वयन्त इत्येके प्रत्यय

नम वैश्वयन्त है उद्येकी कम्पलाते निमिके नगरका भी नाम

नाम रक्ता गया य) ॥ ६ ॥

तदा बुध्निः ससुतपन्ना निवेश्य सुमहापुरम् ।

पश्येय वीर्यसम्पन्न पितुः प्रह्लादवधुं मया ॥ ७ ॥

‘उत महान् नगरको बचकर राजके मनमें वह निवास

उत्तर हुआ कि मैं पिताके हृदयकी आज्ञासे प्रयत्न करने

छिने एक ऐसे बन्धक मनुष्यान कर्तुं जो वीर्यसम्पन्न का

रहनेवाला हो ॥ ७ ॥

तदा पितरग्रामस्य इस्वाकुः हि मनोः सुतम् ।

वसिष्ठं वरयामास पूर्वं ब्रह्मर्षिसत्तमम् ॥ ८ ॥

अन्वसर्त्त स राजर्षिर्निमिरिस्वाकुलम्वृत्तः ।

अत्रिमहिरस वैव मृगु वैव तपोनिधिम् ॥ ९ ॥

‘अन्वसर्त्त इस्वाकुलम्वृत्त राजर्षि निमिने अपने पि

तमपुत्र इस्वाकुसे पूछकर अपना यह करनेके छिने लक्ष

पक्षके ब्रह्मर्षिधिरोमणि वसिष्ठजीका बचन किया । उनके ब

अभि आश्रित तथा तपोनिधि मृगुको भी आश्रितकर निवास

• श्रीमद्वाल्मीके (लक्ष्मण कण्ठ ६ । ४) में विष्णुपुत्र
(४ । २ । ११) में तथा महाभाग (बतुकावचन २ । ५)
में इस्वाकुलके ही पुत्र कथाने गये हैं । इनमें प्रथम वे—विष्णु
निमि और वसिष्ठ । इस इच्छिते निमि शिषि द्रुम निष्क होने हैं ;
पश्येय वती इत्ये इत्ये चारवती कथना गया है । लक्ष्मण है पुत्र-
निषेधके कारण वे हीन प्रयत्न बने गये हैं और बरला-कण्ठसे
चारवती ही हो ।

तमुवाच वसिष्ठस्तु निमिं राजर्षिसत्तमम् ।
बृहोऽहं पूयमिच्छेयं कस्तत्र प्रसिदास्य ॥ १ ॥
‘उत समय महर्षि वसिष्ठने राजर्षिमें भेद निमिसे क्वा
वैश्वयन्त इत्येने एक बन्धके छिने पढ़केने ही भेद बचन
सिद्धा है अथा वह बन्ध कस्तक समझा म हो क्वय तप
द्रुम मेरे आश्रितकी प्रतीक्षा करो’ ॥ १ ॥

बन्धुत्वं महाविभो गौतमः प्रत्यपूरयत् ।
 वसिष्ठोऽपि महातेजा इन्द्रयज्ञमायाकरोत् ॥ ११ ॥
 बलिद्विधीके बने बानेके बाहू महान् ब्राह्मण महर्षि गौतमने
 व्याकर उनके ब्रह्मण्य पूर कर दिया । उपर महातेजसी
 बलिद्वी ही इन्द्रक नह पूर करने को ॥ ११ ॥
 निमित्तु राजा विप्रांस्तान् समीचीय भवन्निप ।
 मयब्रह्मिभक्त्यार्ष्ये सपुरस्य समीपतः ।
 पञ्चवर्षसहस्राणि राजा क्षीणामयाकरोत् ॥ १२ ॥
 चरेकर राजा निमित्ते उन ब्राह्मणोंको बुझकर हिमालयके
 पास अपने नगरके निकट ही पञ्च आरम्भ कर दिया राय
 निमित्ते पाँच हजार वर्षोंके किये बरषी दीख की ॥ १२ ॥
 इन्द्रयज्ञावसाने तु वसिष्ठो भगवान्नुपि ।
 सहायमागतो राज्ञो हौत्र कर्तुमनिश्चितः ॥ १३ ॥
 कृन्तव्यमायापश्यत् गौतमेनाभिपूरितम् ।
 उपर इन्द्र-यज्ञकी समाप्ति होनेपर अनिन्य मगलान्
 बलिद्वी अपि राजा निमित्के पास होयुक्त करनेके किये अये ।
 वहाँ आकर उन्होंने देखा कि ओ समय प्रतीक्षाके किये दिया
 था, उसे गौतमने व्याकर पूर कर दिया ॥ १३ ॥
 कोषेण महातापियो वसिष्ठो ब्रह्मणः सुताः ॥ १४ ॥
 स राज्ञो वृष्टीनाकञ्चनी मुहूर्ते समुपाविशत् ।
 वसिष्ठोऽपि राजर्षिर्निद्रापापहृत्तो मुधाम् ॥ १५ ॥
 यह देख ब्रह्मकुमार बलिद्वी महान् क्रोधसे भर गये और
 एगसे मित्रनेके किये हो पड़ी वहाँ बैठे रहे । परंतु उर
 दिन एवर्षि निमि अत्यन्त निद्राके बधीभूत हो छो गये थे ॥
 एतो मस्युर्वसिष्ठस्य प्रातुपासीभ्रमात्मनः ।
 मन्थनेन राजस्यैर्ष्याहर्तुमुपचक्रमे ॥ १६ ॥
 पाय मिठे नहीं, इस कारण महात्मा बलिद्वी मुनिओ
 का क्रोध हुआ । वे राजर्षीओ कस्य करके बोझने को—॥

यस्मात् त्वममथ घृतवान् मामवहाय पार्थिव ।
 चेतनेन विनाभूतो देहस्ते पार्थिवैष्यति ॥ १७ ॥
 'मूयात् निमे ! तुमने मेरी अन्वहेचना करके वृत्ते पुरोहित-
 का वरप कर लिया है। इसलिये तुम्हारा यह शरीर अचेतन
 होकर मित ब्यवगा' ॥ १७ ॥
 तथा प्रयुक्तो राजा तु भुत्वा शापमुदाहृतम् ।
 ब्रह्मयोनिमयोवाच स राजा क्रोधमुत्थितः ॥ १८ ॥
 एतन्मत्तर राजाधी नीर सुधी । ये उनके लिये हुए
 शापकी वश हुनकर क्रोधसे मुक्ति हो गये और ब्रह्मयोनि
 बलिद्वीसे बोले—॥ १८ ॥
 अज्ञानताः श्यामस्य क्रोधेन कस्तुपीकृतः ।
 उक्तवान् मम शापानि यमवृषडमिवापरम् ॥ १९ ॥
 'मुझे आपके अज्ञानकी वश मास्य नहीं थी, इसलिये
 खे रहा था । परंतु आपने क्रोधसे कृतपित होकर मेरे अन्तर
 वृत्ते यमवृषकी मूर्ति शापानिभ्य महार किया है ॥ १९ ॥
 तस्मात् तथापि ब्रह्मर्षे चेतनेन विम्वकृतः ।
 देहः स सुखितप्रक्यो भविष्यति न संदायाः ॥ २० ॥
 'ब्रह्म ! ब्रह्मर्षे ! निरन्तन क्रोधसे युक्त जो आपका
 शरीर है वह भी अचेतन होकर मित ब्यवगा—इसमें संदाय
 नहीं है' ॥ २० ॥

इति रोपवशाद्गुभौ तन्वमी
 मस्योर्ध्वं शापितौ घृष्टजिह्वेन्द्री ।
 सहसैव वसूषतुर्विविही
 तनुष्याधिगतप्रभायवन्ती ॥ २१ ॥
 इस प्रकार उर समय रोपके बधीभूत हुए वे दोनों
 वृषेक और जिह्वेक परस्पर घात दे एवज विवेह हो गये ।
 उन दोनोंके प्रभाव ब्रह्माधीके समान थे' ॥ २१ ॥

इत्यार्ये श्रीमद्ब्रह्मायने वाक्मीकीये ऋषिऋष्ये उत्तरकाण्डे पञ्चपञ्चाशः सर्गः ॥ ५५ ॥
 इस प्रकार श्रीमद्ब्रह्मायने ऋषिऋष्ये उत्तरकाण्डे पञ्चपञ्चाशः सर्ग पूर हुआ ॥ ५५ ॥

पट्टपञ्चाश सर्ग

ब्रह्माधीके कहनेसे वसिष्ठका वरुणके वीर्यमें आवेष्ट, वरुणका उर्बशीके समीप एक कुम्भमें
 अपने वीर्यका आधान तथा मित्रके शापसे उर्बशीका भूतलमें राजा
 पुरुरवाक पास रहकर पुत्र उत्पन्न करना

रामस्य भाक्ति भुत्वा लक्ष्मणाः परवीरहा ।
 उवाच प्राज्ञसिभूत्या राघवं क्षीणतेजसम् ॥ १ ॥
 श्रीरामचन्द्रकीके मुकसे कही गयी यह कथा सुनकर
 धनुषीरष्य शंभर करनेवाले कस्यन उठीत देवका श्रीरामनाथ
 कीसे राय बोहकर बोले—॥ १ ॥
 निश्चिन्त्य देही कज्जुरस्य कथं ती द्विजपार्थिवी ।
 पुनर्वैदेम सयोगं जम्भतुर्वैयसमती ॥ २ ॥

'कज्जुरसुकुम्भस्य । वे ब्रह्मर्षि और वे मूयात् दोनों
 देवताओंके भी सम्माननाथ थे । उन्होंने अपने शरीरोंका
 त्याग करके फिर नूतन शरीर कैसे ग्रहण किया !' ॥ १ ॥
 कस्यमणोनेयमुक्तस्तु राम इत्याहुनम्युन ।
 प्रत्युवाच महातेजा कस्यमणं पुरुरवभवा ॥ ३ ॥
 कस्यमणके इत प्रकार पूछनेपर इत्याहुनम्युन मया
 देवकी पुरुरवपर भीरमने उनसे इत प्रकार कहा—॥ ३ ॥

ती परम्परदापंत वेहमुत्सृज्य धार्मिकी ।
 अमृतां नृपशिर्ष्या वायुमूली तपोधनी ॥ ४ ॥
 'मुमिशानन्दन । एक वृक्षके श्रपते देह त्याग करके
 तपस्वके बनी ये बर्माणा उर्बायि और ब्रह्मर्षि वायुस्य
 हो गये ॥ ४ ॥
 अशरीरः शरीरस्य हृतेऽस्यस्य महामुनिः ।
 पसिष्ठन्तु महातेजा जगाम पितृपन्तिकम् ॥ ५ ॥
 'महादेवकी महामुनि पसिष्ठ शरीरधरित हो जानेपर वृक्षे
 शरीरकी प्राक्षिक क्रिये अपने पिता ब्रह्माश्रिके पास गये ॥ ५ ॥
 सोऽभिवाद्य ततः पादौ देवदेवस्य धर्मवित् ।
 पितामहमयोवाच वायुमूत इत् वचः ॥ ६ ॥
 'धर्मके ज्ञाता वायुस्य बलिष्ठकी देवाभिवेद्य ब्रह्माश्रिके
 परजोमें प्रणाम करके उन पितामहसे इत प्रश्न करा— ॥ ६ ॥
 भगवन् निमिशापेन विदेहत्वमुपागमम् ।
 देवदेव महादेव वायुमूतोऽहमप्यज ॥ ७ ॥
 ब्रह्माप्यज्ज्वाहसे प्रकृत रूप देवाभिवेद्य महादेव ।
 मग्नन् । मैं यथा निमित्ते श्रपते देहहीन हो गया हूँ । अतः
 वायुस्यमे रह रहा हूँ ॥ ७ ॥
 सर्वेषां देहहीनानां महद् दुःखं भविष्यति ।
 सुप्यन्ते सवकर्मणि हीनदहस्य वै प्रभो ॥ ८ ॥
 देहस्यप्यस्य सङ्गणे प्रसात् कर्तुमर्हसि ।
 'प्रभो ! कमल देहहीनोकां महाद् दुःख होता है और
 होता रहेग स्त्रोकि देहहीन प्राणिके सभी कर्म उत हो अते
 हैं । अतः वृक्षे शरीरकी प्राक्षिके क्रिये आप मुझपर इया
 कर ॥ ८ ॥
 तमुवाच तयो प्रह्ला स्यभूरमितप्रभः ॥ ९ ॥
 मित्रावदणज तेज आविद्य त्व महापदाः ।
 अयानिजस्वर्भ भवित्य तत्रापि द्विजसत्तम ।
 धर्मेण महता युक्तः पुण्येऽप्यसि मे पशाम् ॥ १० ॥
 'तब अभित देवकी स्वयम् ब्रह्माने उनने करा—
 पाहायदासी किबभेद्य । तुम मित्र और बचपके साथे हुए
 तेज (वीप) में प्रविष्ट हो आलो । वहाँ अपनेपर भी तुम
 अपोनिब कस्से ही उत्पन्न होयेगे और महान् बस्सि युक्त हो
 पुत्रकन्ते मेरे बचमें आ आधने (मेरे पुत्र होनेके कारण
 तुम्हें पूर्ववत् बचपदिश पर प्राप्त होग्य ।) ॥ ९ ॥
 एवमुक्तस्तु देवेन अभिवाद्य प्रदक्षिणम् ।
 कृत्या पितामह त्वां प्रययौ वदणाच्छयम् ॥ ११ ॥
 'ब्रह्माश्रिके ऐसा करनेपर उनके परजोमें प्रणाम तथा
 उनकी परिक्रमा करके वायुस्य बलिष्ठकी बचपकोकरो चके
 गये ॥ ११ ॥
 तमेव काल मित्राऽपि वदणत्वमकारयत् ।
 शीरोवेन सहायता पूज्यमानः सुरेश्वरः ॥ १२ ॥
 'उन्हीं दिनों मित्रदेवता भी बचपके अधिकारका पावन

कर रहे थे । वे बचपके साथ रहकर कमल देवेकोहाय युक्ति
 होते थे ॥ १२ ॥
 एतस्मिन्नेव काले तु उर्वशी परमाप्सवाः ।
 यदृच्छया तमुद्देशमागता सखिभिर्बुध ॥ १३ ॥
 'इसी समय अन्धराजोमें मेह उर्बशी सखिजोसे निरी हुई
 अकसात् उत खानपर आ गयी ॥ १३ ॥
 तां दृष्ट्वा रूपसम्पन्नां श्रीदार्ष्ट्यां वदन्तस्ये ।
 तदाविद्यात् परो ह्यौ बह्व्यं कोर्वाशीकृते ॥ १४ ॥
 'उत परम सुन्दरी अन्धराजो खीरसागतमें नरती मेह
 कन्धरीदा करती देल बचपके मनमें उर्बशीके छिने अकल
 उच्छात प्रकृत हुया ॥ १४ ॥
 स तां पद्मपद्मदार्ष्ट्यां पूर्णकम्पनिभालम्बम् ।
 वरुणो वरुणामास मैथुनात्पाप्सरोवरात् ॥ १५ ॥
 'उन्हींने प्रकृत कलकके समान नेत्र और पूर्ण कम्पके
 समान मनोहर मुखवासी उत सुन्दरी अन्धराजो कम्पकके छिने
 आगन्धित किया ॥ १५ ॥
 प्रत्युपाच ततः सा तु वरुण प्राङ्गकि स्थित ।
 मित्रेणाह वृष्य सासात् पूर्वमेव सुरेश्वर ॥ १६ ॥
 'तब उर्बशीने हाथ खोजकर बचपके करा—सुरेश्वर !
 छत्र मित्रदेवताने परसे ही मेरा बचप कर किया है ॥ १६ ॥
 वरुणस्यप्रवीड् व्याक्य कन्वर्षारपीडितः ।
 इत् तेजा समुत्सृज्ये कुम्भेऽस्मिन् देवनिर्मित ॥ १७ ॥
 एवमुत्सृज्य सुभोगि त्वप्यह वरुणकिनि ।
 कृतकमो भविष्यामि यदि नेच्छसि सङ्गमम् ॥ १८ ॥
 'यह सुनकर बचपके कामदेवके बापसे पीडित होकर
 करा—सुन्दर रूप रगतासी सुभोगि । यदि तुम मुझसे
 समागम करना नहीं चाहती तो मैं तुम्हारे कक्षीय इत देव-
 निर्मित कुम्भमें अपना यह वीर्य छोड़ दूँगा और इस प्रश्न
 छोड़कर ही लज्जामनोरय हो जाऊँगा ॥ १७-१८ ॥
 तस्य तच्छेकनायस्य वरुणस्य सुभाषितम् ।
 उर्बशी परममीता क्षुब्धा वाक्यमुवाच ह ॥ १९ ॥
 'अपनाप बचपका यह मनोहर बचन सुनकर उर्बशीको
 बड़ी प्रसन्नता हुई और वह बोली ॥ १९ ॥
 काममेतत् भवत्सेवं हृद्यं मे त्वयि स्थितम् ।
 भावस्याप्यधिकं तुम्य वेदो मित्रस्य तु प्रभो ॥ २० ॥
 'प्रभो ! आपकी इच्छाके अनुसार ऐसा ही हो । मेरा
 हृदय विरोधता मानने अनुसार है और आपका कष्टरता मैं
 मुझमें अधिक है । इसछिने आप मेरे उद्देशके उत कुम्भमें
 वीर्यजाम कीजिये । इस शरीरपर छे इत समय मित्रक
 अधिकार हो चुका है ॥ २० ॥
 उर्वश्या एवमुक्तस्तु देतस्मात्सहस्रतम् ।
 ज्वलद्ग्निसमप्रकर्षं तस्मिन् कुम्भे न्यवाद्यजत् ॥ २१ ॥
 'उर्बशीके ऐसा करनेपर बचपने प्रकृतिय अग्निके लम्प

मन्त्रधामन भवने अत्यन्त अद्भुत वेद (वीर्य) को उस
कुम्भमें बांध दिया ॥ २१ ॥

उर्वशी तथा मत् तत्र मित्रो वै यत्र वेद्यता ।

ता तु मित्रा सुसहज्य उर्वशीमिदमप्रधीत् ॥ २२ ॥

‘पवनन्तर उर्वशी उस स्थानपर गयी जहाँ मित्रदेवत्व
विद्यमान थे । उस समय मित्र अत्यन्त कुपित हो उस
उर्वशीसे इस प्रकार बोले— ॥ २२ ॥

मयाभिमुखिता पूर्वं कस्यात् त्वमवसर्जिता ।

पतिमन्य वृतयती किमर्थं दुष्पचारिणि ॥ २३ ॥

‘बुधचारिणि ! पहले मैंने तुझे समामनके स्थिमे आमन्त्रित
किया था कि तू किसिन्हे देने मेरा त्याग किया और क्यों
वृत्ते पतिभ्रम कर रही ! ॥ २३ ॥

स्मेन दुष्कृतेन त्व मत्क्रीधकस्तुपीकृता ।

मनुष्यलोकमास्थाय कथित् काल निवस्यसि ॥ २४ ॥

‘अग्ने इस पापके कारण मेरे श्रोत्रसे कृत्रित हो दू कुष्ठ
प्रकृत मनुष्यलोकमें जाकर निवास करेगी ॥ २४ ॥

बुधस्य पुत्रो राजर्षिः काशिराजः पुरुरथा ।

तमन्यागच्छ तुर्वरे स ते भर्ता भविष्यति ॥ २५ ॥

‘तुर्वरे ! बुधके पुत्र राजर्षि पुरुरथा, जो कथितेयके
पण्य हैं, उनके पास चली जा वे ही तेरे पति होंगे ॥ २५ ॥

तदा सा शापश्रोतेन पुरुरवसमन्यगात् ।

इत्थार्थे श्रीमद्रामायणे वाक्यीश्वर्ये आदिशब्दो उत्तरकाण्डे पदपञ्चाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

इस प्रकार श्रीमद्भागवतमिर्मित अक्षरानुक्रमेण अदिकाशब्द उत्तरकाण्डे उपन्यासो सप्त पूट इत्यं ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशः सर्गः

वसिष्ठका नूतन शरीर-धारण और निमिका प्राणियोंके नयनोंमें निवास

तां धृत्वा त्रिभ्यस्तकटा कथामद्भुतदृष्टानाम् ।

सकमणः परमधीतो राघवं वाचयमब्रवीत् ॥ १ ॥

उस दिव्य एवं अद्भुत कथाको सुनकर सकमणको बड़ी
प्रसन्न हुए । वे भीरुनायकीसे बोले— ॥ १ ॥

निमित्ततद्गो क्वकुरस्य कथं तौ द्विजपार्षिणी ।

पुनर्देव संयोग जन्मतुर्वैषम्यमती ॥ २ ॥

‘अद्भुत ! वे ब्रह्मर्षि बलिष्ठ तथा राजर्षि निमि का
वैशद्यार्थेहाय भी सम्मानित थे अपने-अपने शरीरको छोड़कर
तू नूतन शरीरसे किसे प्रकट कपुष्ट हुए ! ॥ २ ॥

तस्य तद् भावित भुक्त्वा नाम सत्यपराक्रमः ।

तां कथा कथयामास वसिष्ठस्य महात्मनः ॥ ३ ॥

उत्तम पर प्रकट सुनकर अत्यपराक्रमी भीरुवने महात्मा
वसिष्ठसे शरीर-मदने का मन्त्र रत्ननेवासी उस कथाको पुनः
बतला आरम्भ किया— ॥ ३ ॥

या स कुम्भा रघुधृष्ट तजःपूर्वो महात्मनोः ।

तस्मिन्नामोपौ विप्रौ सम्भूतावृषिसत्तमी ॥ ४ ॥

प्रसिद्धाने पुरुरथ बुधस्यात्मजमौगक्षम् ॥ २६ ॥

‘तब वह शाप-श्रोते वृत्तित हो प्रसिद्धनपुर (प्रयाग-
झरनी) में बुधके और पुत्र पुरुरथाने पास गयी ॥ २६ ॥

तस्य जज्ञे ततः श्रीमानायुः पुत्रो महापथकः ।

नहुषो यस्य पुत्रस्तु बभूवेन्द्रसमपुत्रिः ॥ २७ ॥

पुरुरथके उर्वशीके गर्भसे श्रीमान् आयु नामक महापथकी
पुत्र हुआ, जिसके पुत्र इन्द्रस्य तेजस्वी महापथक नहुष थे ॥

बभूवमुत्सृज्य वृषाय आग्नेऽद्य विविधेश्वरे ।

घात धर्षसहस्राणि येनेन्द्रत्वं प्रसाधितम् ॥ २८ ॥

‘वृषासुरपर ब्रह्मका महार करके जब देवपथक इन्द्र ब्रह्म
इत्याके मन्त्रसे तुली हो टिप गये थे, तब नहुषने ही एक
काष्ठ कर्षोत्क ‘इन्द्र’ पदपर प्रतिष्ठित हो विश्वेश्वरीके राज्याका
शासन किया था ॥ २८ ॥

सा तेन शापेन जगाम भूमि

तदोर्वशी चाकृती सुनेजा ।

वाह्नि ययौण्ययसद्य सुधुः

शापस्ययाविन्द्रसद्यो पर्यौ च ॥ २९ ॥

‘मन्त्रर दौत और सुन्दर नेत्रवाली उर्वशी मित्रके दिने
हुए उस शापसे भूलकर चली गयी । वहाँ वह सुन्दरी बहुत
कर्षोत्क रही । किन्तु शापका क्षय होनेपर इन्द्रसमामे चली
गयी ॥ २९ ॥

‘मन्त्रर दौत और सुन्दर नेत्रवाली उर्वशी मित्रके दिने
हुए उस शापसे भूलकर चली गयी । वहाँ वह सुन्दरी बहुत
कर्षोत्क रही । किन्तु शापका क्षय होनेपर इन्द्रसमामे चली
गयी ॥ २९ ॥

पशुभेष्ट ! महाम्ना मित्र और धरणदेवताके तब (वीर्य)

से युक्त जो वह प्रसिद्ध कुम्भ था, उससे दो तेजस्वी आसन
प्रकट हुए । वे दोनों ही श्रुतिमें भद्र थे ॥ ४ ॥

पूर्व समभवत् तत्र अगस्त्यो भगपानृषिः ।

नाह सुतस्तथेयुरक्त्वा मित्र तस्मात्पात्रमत् ॥ ५ ॥

‘पहले उस पटसे महर्षि भगवान् अगस्त्य उत्पन्न हुए
और मित्रसे यह कहकर कि मैं अपना पुत्र नहीं हूँ बरहि
अन्यत्र चले गये ॥ ५ ॥

तस्मिन्नेव तस्य मित्रस्य उच्यत्याः पूयमादितम् ।

तस्मिन् समभवत् कुम्भे तत्तजो यत्र पादणम् ॥ ६ ॥

‘वह मित्रका तब था जो उर्वशीके निमित्तसे पहले ही
उस कुम्भमें स्थापित किया गया था । तबभात् उस कुम्भमें
ब्रह्मदेवताका तब भी ठहिरकित हो गया था ॥ ६ ॥

कस्यचित् त्वय क्वचस्य मित्रावप्यसम्भवाः ।

वसिष्ठस्तदेजसा युक्तो जमे इक्ष्वाकुदैयतम् ॥ ७ ॥

‘तबभात् कुष्ठ काठके बाह मित्रावरणके उस कीर्ति

तेकली बसिबुनिब प्राबुर्न डुमा । ओ इत्याकुकुके
रेका (गुब या पुरोहित) हुए ॥ ७ ॥

तमिक्वाकुर्महातेजा आतमाभमिभित्तम् ।

वमे पुरोभस सौम्य बहास्यास्य हित्यय ना ॥ ८ ॥

सौम्य छमय । महातेजवी राब इत्याकुने उनके वहाँ
छम्य प्रहय करते ही उन अनिग्य मुनि बसिबका हमारे इस

कुके हितके छिमे पुरोहितके परपर बरय कर किना ॥ ८ ॥

पर्व त्वपूर्वदेहस्य षसिष्ठस्य महारमना ।

कथितो निर्गामः सौम्य निमोः शूपा यथाभवत् ॥ ९ ॥

सौम्य । इत प्रभर नूनन धरीरसे पुछ बसिबमुनिधी
उरपिब प्रभर बय्याय गना । बम निमिब नैता इचय्य
हे बह सुगो ॥ ९ ॥

इमा विवेह राजानमुचयः सर्व एव ते ।

त च ते यावपामासुर्वकवीर्ता मभीपिजा ॥ १० ॥

पञ्च निमिके देहसे पूषक् हुआ देस उन सभी मनीधी
श्रुतिसेनै स्वर्ग ही बरकी बीब प्रहय करते उस बरकी पूष
किना ॥ १ ॥

त च देह भरेन्द्रस्य एतस्मि स द्विजोत्तमा ।

गन्धैमौल्यैश्च बलीश्च यौरसुत्यसमन्विताः ॥ ११ ॥

उन भेद ब्रह्मिसेने पुरासिसे और सेबसेके साथ ए
कर एव पुष्य और कर्णोवसित एव निमिके उच धरीरको
देहके कदाह आसिसे सुरबित रकषा ॥ ११ ॥

ततो यजे समारो तु सृष्ट्यावेहमब्रवीत् ।

आनयिष्यामि ते वेतस्तुष्टोऽस्मि तव पाथिय ॥ १२ ॥

एतनस्तर अब पञ्च समस हुआ तब वहाँ सृष्टने कस-
प्यकन् । (राबके धरीरके भमिमकी धीबान् ।) मैं इस-
पर बहुत संशु हूँ अठा बसि इस प्यारो ते इप्यारे धीव-
केरुपको मैं पुना इस धरीरसे ब वृष्य ॥ १२ ॥

सुप्रितास्य सृष्टः सर्वे निमेष्वेतस्तवाब्रुवन् ।

एर एरय राजर्षे क ते वेतो निरूप्यताम् ॥ १३ ॥

प्युके साथ ही बम्य एव देवघर्षेने भी कनक प्रछ
होकर निमिके बीबामसे कदा—प्यार्ने । बर भेजे । इप्यारे
धीव-नैरुपको कर्णो कापित किना बव ॥ १३ ॥

एवमुक्त्वा सुरैः सर्वैर्निमेष्वेतस्तावाम्रवीत् ।

मेधेषु सर्वमृतानां वसेयं सुरसत्तमाः ॥ १४ ॥

छमस देवताओंके देव कनेर निमिके धीबामसे
उत छम्य उमसे कदा—भुरजेड । मैं छमस प्राथिके नेत्रो
में निगत करना प्यारता हूँ ॥ १४ ॥

बाहमित्येव विबुधा निमेष्वेतस्तवाब्रुवन् ।

मेधेषु सर्वमृतानां वायुमृतानिष्यसि ॥ १५ ॥

एव देवघर्षेने निमिके धीबामसे कदा—प्युत अक-
इम वायुरूप होकर छमस प्राथिके नेत्रोमें निरुते
रगेमे ॥ १५ ॥

एतच्छेव निमिष्यसि बहूपि पृथिवीपते ।

वायुमृतेन घरता विभामार्यं मुहुर्मुहुः ॥ १६ ॥

“पृथ्वीनाय । वायुरूपसे निरुते हुए आपके छमके
ओ पञ्चक होमि, उच्छ निबरण करके विभाम्य पनेके छिमे
प्राथिके नेत्र बरबार बर हो बव्य भरीगे ॥ १६ ॥

एवमुक्त्या तु विबुधा सर्वे जन्मुर्यथात्मम् ।

श्रुपयोऽपि महात्मानो निमेष्वैव सम्महरन् ॥ १७ ॥

अपि तत्र निक्षिप्य मथन बहुरोजस्य ।

ऐस्य क्वकर एव देवता सेते मने ने, सैते पके जो
किर महारुमा श्रुतिसेने निमिके धरीरको पकवा और उरर
अरुपि रक्कर उते बहुरूपक मयना आरम्भ किना ॥ १७ ॥

मन्त्रदोमैर्माहात्मनाः पुत्रहेतोर्मितस्त ॥ १८ ॥

अरुप्यो मथ्यमानाया मातुर्भूतो महातजः ।

मथनामिपिरित्पाहुर्जनानाकोऽभवत् ॥ १९ ॥

यस्माद् विवेदात्त सम्भूतो विवेहस्तु ता स्मृतः ।

एव विवेहारावब्र बलका पूर्वकोऽभवत् ।

मिपिर्नाम महातेजास्तोत्रार्थं मैथिलोऽभवत् ॥ २० ॥

पूर्वक मन्त्रोच्चारणपूर्वक होम करते हुए उन मन्त्रकर्मो-
ने अब निमिके पुत्रकी उरपिके छिमे अरुपिअन्य आरम्भ
किना, एव उच मथ्यनसे महातपसी मिपि उतरा हुए । इत
अनुशुत कनकन हेतु होनेके कारण वे कनक क्वकने तथा
विवेह (धीव उचित धरीर) से प्रकट होनेके कारण उन्हें
विवेह भी कहा गया । इत प्रभर पहले विवेहएव कनकन
नाम महातेजसी मिपि हुआ, किसे वह कनकना मैथिल
कहयना ॥ १८-२० ॥

इति सर्वमथोपेतो यथा

कथित सम्भवक्यारण्यं तु सौम्य ।

सृष्टुह्यवशापय दिवस्य

दिवशापयस्य यन्मृत नृपस्य ॥ २१ ॥

छेन्य कनक । राबघर्षेने भेद निमिके धारते ब्रह्म
बसिबका और ब्राह्मन बसिबके साथसे राब निमिब ओ
अनुशुत कनक भटित हुआ, उच्छा एव करय मैंने इन्हें क
हुनाया ॥ २१ ॥

इत्यर्च्य श्रीमद्भागवतने वाक्यीकीवे आधिकार्ये उररक्यने स्थापकताः सर्वाः ॥ ५० ॥

इत प्रभर श्रीमत्कल्मीकीनिर्मित अर्चतापत्र अरुपिक्यके उररक्यने स्थापनर्ता सम पूरा हुआ ॥ ५० ॥

अष्टपञ्चाशः सर्गः

ययातिको द्रुक्राचार्यका श्राप

यव वृषति रामे तु लक्ष्मणः परवीरहा ।
 प्रत्युवाच महात्मान् ज्वलन्तमिष तेजसा ॥ १ ॥
 भीरुमके देवा करनेपर शत्रुवीरोंका शंर करनेबाध
 कर्मजने तेबते प्रबन्धित होते हुए-से महात्मा भीरुमके
 शत्रुवेषित करते इष्ट प्रकार कहा— ॥ १ ॥
 महद्गुणमाभार्य विदेहस्य पुरातनम् ।
 निर्भूत राजशाबूळ पसिष्टस्य मुनेभ्य ह ॥ २ ॥
 न्यपमेष्ट ! राज विदेह (निमि) तथा बलिष्ठ मुनिभ्य
 पुण्ड्र ह्यन्त अत्यन्त अद्भुत और आश्चर्यजनक है ॥ २ ॥
 निमिस्तु क्षत्रियः शूरो विद्येपेयः च वीरिष्ठः ।
 न क्षम कृतवान् राजा पसिष्टस्य महारमना ॥ ३ ॥
 परंतु राज निमि क्षत्रिय, धूरवीर और विद्येपय परब्रह्मी
 पंड्र सिने हुए ये अतः उन्होंने महात्मा बलिष्ठके प्रति
 वक्षित कर्ताव नहीं किया ॥ ३ ॥
 एवमुक्तस्तु तेनार्य रामः क्षत्रियपुङ्गवः ।
 उवाच लक्ष्मण बाक्य सर्वशास्त्रविचारकम् ॥ ४ ॥
 रामो रमयतां श्रेष्ठो ज्ञातव दीनतेजसम् ।
 बदमणके इष्ट तरह करनेपर वृषोंके मनकोरमाने (प्रसन्न
 करने) बाक्यमें अष्ट क्षत्रियशिरोमणि भीरुमने सपूर्ण शाक्योंके
 शत्रु और उदीष्ट देवकी भ्राता कर्मणसे कहा— ॥ ४ ॥
 न सर्वत्र क्षमा वीर पुत्रेषु प्रवृत्तये ॥ ५ ॥
 सीमिन्ने दुस्सहो योगो यया क्षात्रो ययासिन्व ।
 सस्यगुणं पुरस्कृत्य तस्मिन्पोष समाहितः ॥ ६ ॥
 वीर मुनिभक्तुभार ! सभी पुत्रोंमें वैश्व क्षमा नहीं
 रिकारी होती, वैश्वी राज यथासिने वी । राज यथासिने
 लक्ष्मणके अनुकूल मार्गका आश्रय लक्ष्मण देवके क्षमा
 कर किया था । वह प्रसंग कदाच ह एकप्रतिपक्ष होकर
 मुने ॥ ५ ॥
 नहुपस्य सुतो राजा ययातिः पीरपर्यन ।
 तस्य भायाद्वय सौम्य रूपजाप्रतिम मुनि ॥ ७ ॥
 नहुप ! नहुपके पुत्र राज ययाति पुरा सिद्धे, प्रबन्धक-
 वी शक्ति करनेवाले थे । उनका दो पतिवों वी किन्तके रूपकी
 इष्ट प्रकृत्य करी दुःखना नहीं थी ॥ ७ ॥
 एष तु तस्य राजर्षेर्नाहुपस्य पुरस्कृता ।
 शर्मिष्ठा नाम वैतथी दुहिता वृषपर्यणः ॥ ८ ॥
 नहुपानन्द राजर्षि ययातिवै एक पत्नीका नाम शर्मिष्ठा
 था वह राजके श्राप बहुत ही सम्मानित थी । शर्मिष्ठा वैश्य
 कुम्भी कन्या और वृषवर्षकी पुत्री थी ॥ ८ ॥
 कन्या दानसा पत्नी ययातेः पुत्रययम् ।
 न तु सा द्यिता राजो देवयानी सुमथयमा ॥ ९ ॥

तयोः पुत्री तु सम्भूती रूपवस्ती समाहिती ।
 शर्मिष्ठाजन्तवत् पूर्व देवयानी यदु तदा ॥ १० ॥
 पुत्रययम् । उनकी वृषी पत्नी द्रुक्राचार्यकी पुत्री देवयानी
 थी । देवयानी सुन्दरी होनेपर भी राजको अधिक प्रिय नहीं
 थी । उन दोनोंके ही पुत्र बड़े रूपवान् हुए । शर्मिष्ठाने वृषको
 कन्य दिना और देवयानीने यदुको । ये दोनों बाळक अपने
 निचको एकरम रखनेवाले थे ॥ १० ॥
 पूरस्तु द्यितो राजो गुणैर्मावृच्छतेन च ।
 ततो द्रुक्रासमाधिष्ठो ययुर्मातरमप्रपीत् ॥ ११ ॥
 अपनी माताके प्रेममुक्त व्यवहारसे और अपने गुणोंसे
 पूर राजको अधिक प्रिय था । इच्छे यदुके मनमें बड़ा दुःख
 हुआ । ये मातासे बोले— ॥ ११ ॥
 भार्गवस्य कुले जाता देवस्याक्षिप्रकर्मणः ।
 सहसे ह्यत द्रुक्रामवमानं च दुःसहम् ॥ १२ ॥
 क्या ! तुम अनायास हीमहान् कर्म करनेवाले देवस्यस्य
 द्रुक्राचार्यके कुलमें उत्पन्न हुई हो तो भी क्यों हार्दिक दुःख
 और दुःख अकर्मण लखी हो ॥ १२ ॥
 शार्पा च सहितौ वैषि प्रथिशाव द्रुताशनम् ।
 राजा तु प्रजातां सार्धं वैश्यपुत्रया वदुःसपाः ॥ १३ ॥
 अतः वेनि ! हम दोनों एक साथ ही शर्मिष्ठके साथ अनायास रात्रिबैठक
 करते रहे ॥ १३ ॥
 यदि वा सहनीय ते मामनुवाहामहसि ।
 क्षम त्वं न क्षमिष्येऽहं मरिष्यामि न सशपाः ॥ १४ ॥
 यदि तुम्हें यह सब कुछ सहन करता है तो मुझे ही
 प्राणत्यागकी आज्ञा दे दो । तुम्हीं छोड़ो । मैं नहीं सहूँगा । मैं
 निश्चिदेह मर जाऊँगा ॥ १४ ॥
 पुत्रस्य भावित क्षुत्वा परमार्थस्य रोदतः ।
 देवयानी तु सजुन्वा सस्मार पितरं तदा ॥ १५ ॥
 अत्यन्त अर्त होकर रोते हुए अपने पुत्र यदुकी यह
 बात सुनकर देवयानीको बड़ा शोक हुआ और उन्होंने वरमन्न
 अपने पिता द्रुक्राचार्यकीक क्षमण किया ॥ १५ ॥
 हस्तिं तद्भिक्षाय दुहितुभागवस्तदा ।
 भागतस्त्वरितं तत्र देवयानी स यत्र सा ॥ १६ ॥
 द्रुक्राचार्य अपनी पुत्रीकी उस पैदाको बन्दकर तत्काल
 उध खानपर आ पहुँचे, वहाँ देवयानी विद्यमान थी ॥ १६ ॥
 ह्यु वापकृतिस्या ताममहृष्टामचेतनाम् ।
 पिता दुहितरं बाक्य किमेतदिति चाप्रवीत् ॥ १७ ॥
 वैद्यके कामल अग्रस्य और अनेक-ही देखकर
 स्थाने पृष्ठ—कले ! यह क्या बात है ? ॥ १७ ॥

पुच्छन्तमसकृत् त वै भार्गव वीरतेजसम् ।
 देवयानी तु सङ्गुन्ना पिपत् वाक्यमवधीत् ॥ १८ ॥
 महामर्त्ति विप तीक्ष्णमपो वा मुनिचक्षम् ।
 भङ्गविष्ये प्रवेक्ष्ये वा न तु शास्त्र्यामि जीवितुम् ॥ १९ ॥
 शरीरं तेकवाले किं स्यान्मनः शुद्धचरं च वारंवार
 इह प्रकर पूजने स्ये, तत्र देवयानीने अत्यन्त कुपित होकर
 उनसे कहा—मुनिभेद ! मैं प्रवृत्तित भस्ति या अगण्य अस्-
 में प्रवेश कर पाऊँगी अथवा विप का खेंगी किंतु इह प्रकर
 अपमानित होकर क्षीण नही रह सकूँगी ॥ १८ १९ ॥
 न मां त्यमवजानीये कुञ्चितामयमानीताम् ।
 वृक्षव्यापयया प्रह्लादिछपन्ते वृक्षजीविना ॥ २० ॥
 'व्यापये पया नही है कि मैं यहाँ किन्ती दुखी और
 अपमानित हूँ । वृक्ष । वृक्षके प्रति अवबेक्षना होनेसे उसके
 माभित फूलों और पत्तियों ही तोड़ा और मड़ किया जाता है
 (इसी तरह आपके प्रति राजकी अवबेक्षना होनेसे ही मेरा
 नहीं अपमान हो रहा है) ॥ २ ॥
 अयस्यवा च राजर्षिः परिभूय च भागव ।
 मप्यवज्ञां प्रपुङ्कते हि न च मा बहु मप्यते ॥ २१ ॥
 म्पुन्यन । राजर्षि मयाति आपके प्रति कनावरका
 मात्र रत्ननेके कारण मेरी भी अवबेक्षना करते हैं और मुझे
 अधिक आदर गरी देते हैं ॥ २१ ॥
 इत्यार्ये श्रीमद्भक्तसिद्धिचरणे वाक्कीर्ण्ये उच्यते ॥ ५८ ॥
 इत प्रकर श्रीमद्भक्तसिद्धिचरणे अर्चिष्यके उत्तराध्याये म्पुन्यते ॥ ५८ ॥

तस्यस्तत् क्वचन भुक्तं कोरेममिपरीकृत ।
 व्याहृत्तुमुपशकाम भार्गवो ननुपात्रमम् ॥ २ ॥
 देवयानीकी यह बात सुनकर म्पुन्यन इत्यर्थके
 वदा श्रेय हुआ और उन्होंने ननुपुत्र स्वार्थिके अन्त करते
 इह प्रकर करना आरम्भ किया— ॥ २१ ॥
 यस्मात्प्रामवजानीये नाहुप तत्र तुपात्रमम् ।
 क्यसा जरया जीर्णः शैथिल्यमुप्यास्मसि ॥ २३ ॥
 'नाहुपकुमार । तुम कुपमा होनेके कारण मेरी अवबेक्षना
 करते हो इतलिये तुम्हारी म्पुन्यना क्य-वीप इहके अन्त है
 क्यवी—तुम सर्वथा शिथिल हो जाओगे ॥ २३ ॥
 पयमुक्त्या पुष्टितर समाम्भास्य स भार्गव ।
 पुनर्जागाम प्रह्लादिर्भवर्त्त स्वं महापयम् ॥ २४ ॥
 पयसे ऐल करकर पुष्टीके आभाजन के म्पुन्यनकी
 प्रह्लादि उक्तार्थ पुनः अपने करके चले गये ॥ २४ ॥
 स पयमुक्त्या शिशुपुङ्गवात्पया
 सुतां समाम्भास्य वादेवयानीम् ।
 पुनर्ययौ स्वर्षसमानतेजा
 दस्या च शाप ननुपात्रमम् ॥ २५ ॥
 पूर्वके समान तेजस्वी तथा ब्राह्मणशिशुपुङ्गवोंमें अ
 ग्ग्य उक्तार्थ देवयानीके आभाजन के ननुपुत्र म्पुन्यने
 ऐल करकर उन्हें पूर्वोक्त शाप के फिर चले गये ॥ २५ ॥

एकनेपष्टितम मर्ग

मयातिका अपने पुत्र पूरुको अपना मुदापा देकर बदलेमें उसका यौवन लेना और भोगोंसे
 वृत्त होकर पुनः दीर्घकालक बाद उसे उसका यौवन लौटा देना, पूरुका अपने
 पिताकी गरीपर अभिषेक तथा यदुको द्राप

भुक्त्या द्वाशनसं मुन्द्य तदाद्यो ननुपात्रमम् ।
 जरां परमिकां प्राप्य पशुं ययनमप्रयीत् ॥ १ ॥
 पुत्रप्रापके कुम्भित होनेका समाचार सुनकर ननुपकुमार
 पयानिो वदा दुःख हुआ । उन्हें ऐसी वृद्धावस्था प्राप्त हुई
 को वृद्धकी बयानीसे कस्यी अ सक्षी थी । उस निश्चय
 अणव्यक्तो पाकर उन्नते यदुसे कहा— ॥ १ ॥
 यदो त्यमसि धमनां मर्त्ये प्रतिगृह्यताम् ।
 अदा परमिका पुत्र भोगी रक्ष्ये महापयम् ॥ २ ॥
 पय । तुम बर्मेके जाया हो । मेरे महापयणी पुत्र ।
 तुम मेरे लिये दूतके योगीने संजाहित करनेके क्य इत क्य
 बनायो न हो । मैं भोगेद्राप मम करूँगा—अस्ती
 भोगिण्यक इच्छातो पूत्र करूँगा ॥ २ ॥
 न तावत् एतद्व्यामि विगपपु मरपभ ।
 अनुभूय तत्र यम तत्र मान्यामप्यद जगम् ॥ ३ ॥

नरभेद । मर्त्यक मैं विगपभेदसे दस नहीं हुआ
 है । इच्छानुसार विगपमुलक अनुभव करके फिर अस्ती
 इच्छाका मैं तुमसे के हूँगा ॥ ३ ॥
 यदुस्तद्वयन भुक्त्या म्पुन्यपाच मरपमम् ।
 पुत्रस्त दयितः पूरु प्रतिगृह्यतु वै जगम् ॥ ४ ॥
 उनकी यह बात सुनकर यदुने नरभेद स्वार्थिके उक्त
 रिया— आपके हाथसे भेदे पूर ही इत इच्छास्वको बन
 करे ॥ ४ ॥
 बदिप्युतोऽहमर्त्येषु संनिकर्षाद्य पाथिच ।
 प्रतिगृह्यतु वै राजन् धीः सदास्मासि भाजमम् ॥ ५ ॥
 पृथ्वीद्राप । मुझे तो आपने बनते तथा पाठपुत्र बन
 पार पानेके अधिकारने ही बदिप कर दिया है; अतः लिये
 आप बैठकर आप भोजन करने दें ऊनी होनेसे मुझमें
 मदन कीजिये ॥ ५ ॥

तस्य तद् वधनं भुम्पा राजा पूरुमपावधीत् ।
 इयं जरा महाबाहो मर्त्यं प्रतिगृह्णाताम् ॥ ६ ॥
 बहुभी यह बाठ मुनकर राजाने पूरते करा—महाबाहो ।
 मेरी मुल-मुक्तिभाके किये तुम इस इदावसाके प्रण
 कर ॥ ६ ॥
 बहुपेयैवमुक्स्तु पूरु प्राङ्गलिगधवीत् ।
 धर्म्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि शासनेऽस्मि तय स्थितः ॥
 नहुष पुत्र ब्यातिके ऐख ऋनेपर पूर हाय गेदकर
 रणे—स्त्रियाँ ॥ आपकी सेवाका भवसर पाकर मैं अन्य हो
 गया । पर भायका मेरे ऊपर महान् अनुग्रह है । भायकी
 मन्त्रका पावन करनेके किये मैं हर उरखते तैयार हूँ ॥ ७ ॥
 प्रोषयनमाहाय माहुष परया मुवा ।
 मध्यमस्तुल लेभे जरा सत्त्वमयश्च ताम् ॥ ८ ॥
 पूरुष यह सौकारसत्त्व बचन मुनकर नहुषकुमार
 ब्यातिके बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्हें अत्युपम हर्ष प्राप्त हुआ
 और उन्होंने अपनी इदावसा पूरके धरीरमे संचारित
 कर ही ॥ ८ ॥
 ततः स राजा तदुपः प्राप्य यजान् सहस्रजरा ।
 बहुवर्षसहस्राणि पाळयामास मेदिनीम् ॥ ९ ॥
 तदनन्तर तदुप हुए राजा ब्यातिके सहस्रों बर्षोंका
 अनुग्रह करते हुए कई इस्कर बर्षोंतक इस वृषीका पावन
 किया ॥ ९ ॥
 स्य दीर्घस्य कद्रुलस्य राजा पूरुमपावधीत् ।
 धानपस्व जरां पुत्र न्यास निर्वातयस्व मे ॥ १० ॥
 इतके बाद दीर्घका स्वर्ण होनेपर राजाने पूरते क्वा-
 केन । तुम्हारे पाठ बगैरके रूपमें रक्ती हुई मेरी इदावसा-
 के मुझे श्रेय हो ॥ १० ॥
 न्यासभूता मया पुत्र स्वयि सत्त्वमिता जरा ।
 तस्मात् प्रतिगृहीष्यामि ता जरा मा प्यथा कृत्या ॥ ११ ॥
 पुत्र । मैंने इदावसाके भरहरके रूपमें ही तुम्हारे
 धरीरमें संचारित किया था । इतकिये उसे बावत सं रूंगा ।
 तुम अपने मनमें बुद्ध न मान्य ॥ ११ ॥
 पीतघास्मि महाबाहो शासनस्य प्रतिग्रहात् ।
 त्वां धाहमभियेष्यामि पीतियुक्तो नराधिपम् ॥ १२ ॥
 महाबाहो । तुमने मेरी आका मन थी इन्हे मुझे बड़ी
 प्रसन्नता हुई । अब मैं बड़े प्रेमसे राजाके परपर मुद्रस्य
 मन्त्रिक कहूँगा ॥ १२ ॥
 एवमुक्त्वा सुत पूरु ब्यातिकनद्रुपात्मज ।
 देवपानीमुत सुखो राजा वाप्यमुपाय ॥ १३ ॥
 अपने पुत्र पूरुके ऐख करकर नहुषकुमार राजा ब्याति
 देवपानीके देवसे कृपित होकर बाँसे— ॥ १३ ॥
 राजसत्त्व मया जातः क्षत्ररूपो दुरासन् ।
 प्रतिहसि ममाद्यं स्य प्रज्ञार्थे विपस्ते भय ॥ १४ ॥

पयो ! मैंने बुद्धय धर्मिके रूपमें तुम जैसे राक्षसके
 रूप दिया । तुमने मेरी आका रूप उच्छेदन किया है अन-
 तुम अपनी संज्ञाओंके राज्याधिकारी बनानेके विरयमें निकल
 मनोरथ हा बन्ध ॥ १४ ॥
 पितर गुरुभूत मा यस्मात् त्वमथमप्यसे ।
 राक्षसान् पातुधानांस्थ जनयिष्यसि शरणात् ॥ १ ॥
 मैं किता हूँ गुरु हूँ फिर भी तुम मया अपमान करत
 हो । इसलिये मयकर राक्षसों और वातुधानोंका तुम रूप
 दोगे ॥ १५ ॥
 न तु सोमकुण्डोत्पन्ने यद्यो स्यास्पति दुमनः ।
 यथाऽपि भयतस्तुल्यो दुर्धिनीतो भविष्यति ॥ १६ ॥
 तुम्हारी बुद्धि बहुत लोटी है । अतः तुम्हारी संज्ञा
 केमकुण्डमें उत्पन्न ब्यापरम्यमें राक्षस रूपसे प्रतिदित नही
 हाथी । तुम्हारी संज्ञि भी तुम्हारे ही समान उद्वेग हन्धि ॥
 तमेवमुक्त्वा राजर्षिं पूरु राज्यविषयानम् ।
 अभियेकेण सभ्युज्य भाङ्गं प्रधिपेदा ह ॥ १७ ॥
 यद्युते ऐख करकर राजर्षि ब्यातिके रास्यकी बुद्धि करने
 बाँसे पूरुके अभियेकेके द्वारा सम्मनित करके बानप्रस्थ आश्रम
 में प्रवेश किया ॥ १७ ॥
 ततः कालेन महता विप्रास्तमुपर्जाम्भवात् ।
 निविर्षं स गतो राजा यपातिर्नद्रुपात्मजा ॥ १८ ॥
 तदनन्तर दीर्घकाके पश्चात् प्रारम्भ-योगका क्षय होनेपर
 नहुषपुत्र राजा ब्यातिके धरीरके त्याग दिया और स्वर्ग्येकेके
 प्रसन्न किया ॥ १८ ॥
 पूरुकाकार तद् राज्य भर्मेज महता दृतः ।
 प्रतिष्ठाने पुराके ब्राह्मिण्ये महापदा ॥ १९ ॥
 उसके बाद महापदकी पूरुने महान् बर्मेजे सपुत्र हा
 ब्राह्मिण्येकेके श्रेष्ठ राजधानी प्रतिष्ठानपुरमें रहकर उस राज्यका
 पावन किया ॥ १९ ॥
 यदुस्तु अन्वयामास यानुधानान् सहस्रानाः ।
 पुरे क्रीञ्चयेने दुर्गे राजपदापहिच्छ्रुत् ॥ २० ॥
 राजकुलमें बहिष्कृत बटुने नगरमें तथा दुर्गमें क्रीञ्चनमें
 गहसों वातुधानोंका रूप दिया ॥ २० ॥
 एष दुरामसा मुचं शापोत्सर्गो यपातिन्व ।
 धारितः भ्रष्टधर्मेण य निमिञ्चस्त्रमे न य ॥ २१ ॥
 तुम्हारापाके किये हुए इस शापके उद्यय ब्यातिके धर्मिक
 बर्मेके अनुकर बान कर लिये । परतु राजा निमिने बहिष्
 चीन शापको नही खत किया ॥ २१ ॥
 यत्तत्ते सत्यमाप्यात् दान सयकारिणाम् ।
 अनुवतामहं क्षेम्य कोपो न स्याद् यथा सृगं ॥ २२ ॥
 क्षेम्य ! पर क्षरा प्रसंग मैंने तुम्हें मुना दिया ।
 क्षेम्य इत्येव पावन करनेबाँसे तपुबर्षीकी दृष्टि
 (विचार) का ही हम अनुकरण करत है किये राज

प्रक्षिप्त सर्ग २

कुत्तके प्रति श्रीरामका न्याय, उसकी इच्छाके अनुसार उसे मारनेवाले ब्राह्मणको मठाधीश बना देना और कुत्तक मठाधीश होनेका दोष बताना

धृत्या रामस्य वचन लक्ष्मणस्वरितस्तथा ।

श्रानमाह्वय मतिमान् राघवाय न्यवेद्यत् ॥ १ ॥

भीरामक प्र वचन सुनकर बुद्धिमान् सरमणने तत्काल

उस कुत्तक बुद्धबा और भीरामको उसके जानेकी सूचना की ॥

हृद्य समगत श्रान रामो वचनमप्रवीत् ।

विपक्षितार्थ मे ब्रूहि सारमेय म ते भयम् ॥ २ ॥

वहाँ आये हुए कुत्तकी और देलकर भीरामने कहा—

भारमेय । तुम्हें जो कुछ कहना है उसे मेरे सामने करो ।

वहाँ तुम्हें कोई भय नहीं है ॥ २ ॥

ध्यापद्यत तत्रस्य राम श्या भिषमस्तका ।

तथा हृद्य स राजाम नारमेयोऽप्रयीत् यथा ॥ ३ ॥

कुत्तक मठाके फट गया था । उसने राघवमामें

बैठे हुए महायन भीरामकी ओर देखा और देलकर इस

प्रश्न कहा— ॥ ३ ॥

रासेय कता भूतानां राजा शैव विनायकः ।

राजा सुतपु जागति राजा पालयति प्रजाः ॥ ४ ॥

गण्डा ही रामस प्रायिकाका उपायक और नायक है ।

राघव उसके लने रहनेपर भी ब्रह्मज्ञा है और प्रजाभोच पावन

करता है ॥ ४ ॥

नीत्या सुनीत्या राजा धर्म रक्षति रक्षिता ।

यदा न पालयत् राजा क्षिप्र मद्यन्ति वै प्रजाः ॥ ५ ॥

ध्याय मरणा रक्षक है । वह उसम नीतिप्र प्रयोग करके

नरकी रक्षा करता है । यदि राघव पालन न करे तो समस्त

प्रजाएँ ही मर जा सकती हैं ॥ ५ ॥

राजा कता च गाना न मयस्य जगतः पिता ।

राजा काला युग शैव राजा मयमिद् जगत् ॥ ६ ॥

राजा कता राघव रक्षक और राज समूर्ण समर्थक

रिधि है । राघव का नाम और युग है तथा राजा पर समूर्ण

पाल्य है ॥ ६ ॥

धारणाद् धर्ममि पाहुभूमि विभूताः प्रजाः ।

यस्माद् धारयन् सर्वे प्रजास्यै नरयगार्थरम् ॥ ७ ॥

जम कायूत बगुना पालन करता है इक्षिकिये उरुका

नम धर्म है । धर्मने ही समस्त प्रजाके कारण कर रक्षता है ;

कोई नही पालन करनेके लिये पालनकी आवश्यकता है ॥

धारणाद् विद्विषां शैव धर्मोत्साहप्रपन् प्रजाः ।

तस्माद् धारयन्मिगुणं स धम इति निश्चयाः ॥ ८ ॥

ध्याय भयने २ (पक्ष भी पालन करता है) (अपघ

वर दुपेक भी मरानेके लिये करता है) तथा वह धर्मके

द्वारा प्रजा प्रकाशना है ॥ ८ ॥

को कारण कहा गया है और कारण ही धर्म है वह वास्तव

विद्यन्त है ॥ ८ ॥

एव राजन् परो धर्मः फलवान् प्रेत्य राघव ।

नहि धर्मोद् भवेत् किञ्चिद् गुप्तापमिति मे मति ॥ ९ ॥

एतुनन्त । वह प्रजापावनरूप परम धर्म राघवके पर

स्वधर्म उरुम फल देनेवाला होता है । मेरा तो पर ही

विश्वास है कि धर्मसे कुछ भी गुप्त नहीं है ॥ ९ ॥

याम न्या सत्वा पूजा व्यवहारोयु कार्त्तवम् ।

एव राम परो धर्मो रक्षणात् प्रेत्य खेद न ॥ १० ॥

‘श्रीराम ! धन, दया, सत्यकर्मोंका सम्मान और स्वस्व

में संरक्षा वह परम धर्म है । प्रजाकोकी रक्षा देनेके

उत्तर धर्म हरकोई और परस्वधर्म ही सुख देनेवाला होता है ॥

एव प्रमाथ प्रमाणप्रामासि राघव सुप्रत ।

विदितदधैव ते धमः सङ्घिण्यरितस्तु वै ॥ ११ ॥

उरुम मतका पावन करनेवाले एतुनन्त । अत उरुम

प्रमाणोंके भी प्रमाण हैं । एतुनन्तोंके विषय धर्मका अर्थपल

किया है, वह आपके समीचीन विदित ही है ॥ ११ ॥

धमणा स्व परं धाम गुणानां सावरोपमः ।

सद्धान्धय मया राजानुसुखस्त्रं राजसत्तम ॥ १२ ॥

‘धामन् । अत धर्मोंके परम धाम और गुणोंके समान हैं ।

दुपमत् । मैंने अज्ञानका ही आपके सामने धर्मकी व्याख्या

की है ॥ १२ ॥

प्रसादयामि शिरसा न स्व क्रोद्धमिहार्त्तसि ।

‘गुण’ स वचन धृत्वा राघवो बान्धवमप्रवीत् ॥ १३ ॥

इधने किये मैं आपसे वारणोंमें प्रसन्न रहकर बना

सादता और अर्थम प्रसन्न होनेके किये प्रार्थना करता हूँ ।

आप वहाँ सुप्रत वृत्तित म ही ॥ कुत्तकी वह वन सुनार

भी एतुनाथी बान्धव— ॥ १३ ॥

किं त कथं करोम्यप प्रदि विष्णुध मा विरम् ।

रामस्य वचन धृत्वा मोरमयाऽप्रपामिद् ॥ १४ ॥

धृत्प निर्भय दाहर बलाभा । अत्र मी तुमराय धैर्य

कार्य सिद्ध करें । अतना काम बचनेमें विचार न करो ।

भीरमकी पर कत सुनार कुछ बला— ॥ १४ ॥

धर्मेण राष्ट्रं विन्दत धर्मोपायानुपालयत् ।

धमात्प्रवृत्ततां याति राजा स्वयभवायदा ॥ १५ ॥

इद विज्ञाय यत् शृणु भूयतां मम राघव ।

एतुनन्त । राघव धर्मों ही राम प्रसन्न को और धर्मों

ही निरन्तर उरुका पावन कर । धर्मों ही राजा स्वयं प्रसन्न

दनेतना और स्वका भय दूर करनेवाला होता है ।

येषु जानकर आप मेरा जो कार्य है, उसे सुनिये ॥ १५३ ॥
 भिक्षुः सवार्थसिद्धयश्च ब्राह्मणावसथे घसन् ॥ १६ ॥
 तेन वृत्ताः प्रहारो मे निष्कर्मणमनागतः ।
 'प्रभो ! स्वार्थसिद्ध नामते प्रसिद्ध एक भिक्षु है, जो
 ब्राह्मणोंके घरमें रहा करता है । उसने अब ब्रह्मकारण मुझपर
 प्रहार किया है । मैंने उसका धर्म अपराध नहीं किया था' ॥
 पठन्मुक्त्वा तु रामेण ब्राह्मणः सम्प्रेषितस्तथा ॥ १७ ॥
 ध्वनीतश्च छिजन्तान सत्यसिन्धायकरोविदुः ।
 कुत्सेही यह बात सुनकर भीरुमने उत्तर देकर एक द्वारपाठ
 भेष और उस स्वार्थसिद्ध नामक विद्वान् भिक्षु ब्राह्मणको
 बुझाया ॥ १५३ ॥
 मया छिजन्तस्तत्र रामं दृष्ट्वा महाश्रुतिः ॥ १८ ॥
 किं ते कार्यं मया राम तद् प्रदि त्व ममानघ ।
 भीरुमको देलकर उस महातेजस्वी भेष ब्राह्मणने पूछा—
 'मिनाप खुनन्दन । मुझे आपको क्या काम है ?' ॥ १८ ॥
 एवमुक्तस्तु विप्रेण रामां ज्वननमग्रवीत् ॥ १९ ॥
 त्वया वृत्ताः प्रहारोऽप्य सारमेयस्य वै द्विज ।
 किं त्वयापठत विप्र दृष्टेनानभिहतो यतः ॥ २० ॥
 ब्राह्मणके इस प्रकार बुझनेपर भीरुम बोले—'जसन् !
 अपने इस कुत्सेके किरार था यह प्रहार किया है उसका क्या
 भरण है । किरार । इतने भावका क्या अपराध किया था,
 किन्के कारण अपने इसे डंका मारा है ॥ १९-२० ॥
 श्लेषः प्राणहरा दानुः श्लेषो मित्रमुक्तो रिपुः ।
 श्लेषो ब्राह्मिन्महाशीकृष्णः सर्वे श्लेषोऽप्यकर्तृति ॥ २१ ॥
 श्लेष प्राणहारी दानु है । श्लेषक मित्रवर्जित दानु कहावा
 फल है । श्लेष अत्यन्त शीली तम्पार है तथा श्लेष खीरे
 जलपौषध शींच ठेका है ॥ २१ ॥
 तपन् यश्चते वीर्य यथा दान प्रयच्छति ।
 श्लेषम सूर्य हरति तस्मात् श्लेष विशर्मयेत् ॥ २२ ॥
 मनुष्य को तप करता यह करता और दान देता है
 उन तकने पुण्यको वह श्लेषक हाथ नष्ट कर देता है । इच्छिमे
 यथा स्वाग देना कादिये ॥ २२ ॥
 इन्द्रियाणा प्रवृत्ताना ह्यानामिष धावताम् ।
 कुर्वीत पूस्या सारथ्य सङ्घेयेन्द्रियगोचरम् ॥ २३ ॥
 'गुरु बाहोंकी तरह किरबोंकी आर दौड़नेवासी इन्द्रियों
 को उन किरबोंकी आरने दबकर वेदपूर्वक उन्हें निकलजमें
 फल ॥ २३ ॥
 मनसा कम्पया याथा यन्मुपा व समाचरेत् ।
 श्रेया साकन्य चरतो न द्वेषि न च स्निह्यत ॥ २४ ॥

मनुष्यको आदिमें कि वह अपने पाप किरनेबासे छेमें-
 की मन, बाणी, किया और इच्छाए मन्थई ही करे । किर
 से रूप न रक्के । ऐसा करनेसे वह पापसे भित नहीं होता ॥
 न तत् कुपावृत्तिस्तीक्ष्णा सर्पो वा ध्याहृतः पदा ।
 बरिरीयो नित्यसंक्रुद्धो यथाऽऽरमा तुरनुष्ठिता ॥ २५ ॥
 'अपना बुद्ध मन को अनिष्ट वा अनर्थ कर सकता है,
 पैर हीली तम्पार पैरोंतके कुपन्य दुभा छई अपना सदा
 श्लेषसे मरा रहनेबाधा दानु भी नहीं कर सकता ॥ २५ ॥
 धिनीतधिनयस्यापि प्रकृतिर्न विधीयते ।
 प्रकृति गृहमानस्य मिश्रयेन वृत्तिर्धुवा ॥ २६ ॥
 किसि किरबकी विद्या मिथी हो, उसकी भी प्रकृति नवी
 नहीं बनती है । कोरे अपनी बुद्ध प्रकृतिको किरना ही क्यों म
 ठिगाने, उसके कियमें उसकी बुद्धता निश्चय ही फल हो
 जाती है' ॥ २६ ॥
 एवमुक्त्वा स विप्रो वै रामेणप्रक्षिप्यकर्मण ।
 द्विजः सर्वार्थसिद्धस्तु अग्रवीत् रामसनिधी ॥ २७ ॥
 कसेयष्टित कर्म करनेबासे भीरुमक देला करनेपर
 सर्वार्थसिद्ध नामक ब्राह्मणने उनके निकट इस प्रकार कहा—॥
 मया वृत्तप्रहारोऽप्य प्रोद्यनानिषेष्टतसा ।
 भिक्षार्थमटमानेन काळे विगतभैक्षके ॥ २८ ॥
 रक्ष्याप्यितस्तपय श्वा वै गच्छ गच्छेति भाषितः ।
 मय सर्वेरेण गच्छस्तु रक्ष्यान्ते पियम स्थितः ॥ २९ ॥
 'प्रभो ! मेरा मन श्लेषसे भर गया था इच्छिमे मैंने
 इसे डंके मारा है । मिश्रक समन शीत पुका था, तथापि
 भूले रहनेके कारण मिश्रा गौंगनेके लिय मैं द्वार द्वार बूम
 रहा था । यह कुत्ता शीथ गलेमें लड़ा था । मैंने बार-बार
 कहा—'गुरु राखेते इत बाभा, इत बाभा' फिर यह अपनी मौबने
 बल और सङ्कके शीथमें बेरने लड़ा हा गया ॥ २८-२९ ॥
 श्लेषन शुभयापियस्ततो दृष्टोऽप्य गणव ।
 प्रहारो राजप्रवेशेन्द्र शशधि मामपराधिनम् ॥ ३० ॥
 त्वया दास्तस्य राजेन्द्र शक्ति म परकाऽप्यम् ।
 मैं भूला ल था ही श्लेष यह भया । राजपियम
 खुनन्दन ! उस श्लेषसे ही प्रेषित दृष्टर मैंने इसके किरार
 डंका मार लिया । मैं अपराधी हूँ । आप मुझे दण्ड हीकिये ।
 राजेन्द्र ! आपसे दण्ड मिल करनेपर मुझे जरकमें पड़नेका जर
 नहीं रहेगा' ॥ ३० ॥
 मय रामेण सम्पूषाः सय एष सभासदा ॥ ३१ ॥
 कि कायमस्य वै प्रत दृष्टो वै कोऽप्य वास्यताम् ।
 सम्यक्प्रणिहिते दृष्टे प्रजा भवति रक्षित ॥ ३२ ॥
 तव भीरुमने सभी समाचरेते पूजा— भारवगक्या
 इसक किये क्या करना कादिये ? हमे श्वेन या दण्ड दिया
 काय ? क्योंकि मस्तीमोनि दण्डका प्रयोग होनेपर सब
 मुरखिन रहनी है ॥ ३१-३२ ॥

१. जो किरने किर जान को किर किरममें दानु किर हा
 वर किरमुप दानु है । श्लेष अपने किरमोंका लपानेमें लपारक
 ना किरक किरा है । इच्छिमे इमे किरमुप कहा गया है ।

वगधी मौलि हमे मी होय न प्राप्त हो ॥ २९ ॥
 इति कथयति रामे खम्बुतुल्याग्नेन
 प्रभिरक्षतरत्वार ब्योम यत्ते तद्वामिम् ।
 अरुणकिरणरक्षा विग वधौ दैव पूर्वा
 कुसुमरसबिमुक्त पक्षमागुण्डितेष ॥ २३ ॥
 इत्यर्थे श्रीमद्वाल्मीके वाल्मीकीये अग्निहोत्रे अक्षररूपे एतेष्वक्षरानाम् सौं ॥ ५९ ॥
 एत प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीयैर्निर्मित अक्षररूपेण अक्षररूपेण उच्यते सौं ॥ ५९ ॥

चन्द्रमाके समान मनोहर मुक्ताबास श्रीराम ख एव
 प्रकार कथा कर रहे थे, उठ समय आकाशमें ध-ही-एक छोरे
 रह गये । पूर्व दिशा अरुण किरणोंसे उज्वल हो जल दिशाकी
 देने लगी मनो कुसुमरगमें रंगे हुए अरुण बल्लेसे उरने
 अपने अङ्गोको ढक दिया हो ॥ २३ ॥

प्रक्षिप्त सर्ग १४

धीरामके द्वारपर कार्यार्थी कुत्तेका आगमन और भीरामका उसे दरवारमें लानेका आदेश

कतः प्रभाते विमले हृत्वा पौषाक्षिर्नि क्रियाम् ।
 धर्मोचनगतो राजा रामो राजीवकोवला ॥ १ ॥
 राजधर्मोन्मेषेक्षन् वै प्राङ्मुखैर्नैगमैः सह ।
 पुरोधसा यसिष्टेन ऋषिणा कथ्ययेन च ॥ २ ॥
 तरनन्तर निर्मळ प्रमत्तकायमे पूर्वाङ्घ्रिकोपिठ सथा
 कन्दन आदि निल कर्म करके कमलनयन राज भीराम राज-
 धर्मोका फलन (प्रशासनोंके नियन्त्रण नियन्त्रण) करनेके
 सिन्धे वेदवेद्य ज्ञानको पुरोहित बलिष्ठ तथा कस्यप मुनिके
 साथ राजधर्ममें उपस्थित हो बर्म (मध्य) के आसनपर
 विराजमान हुए ॥ १ २ ॥
 मन्त्रिभिरभ्यवहारैस्तयास्यैर्धर्मपाठके
 नीतिशैरथ सस्यैश्च राजभिः सा सभा वृता ॥ ३ ॥
 वह सभा अतद्वारका कन रक्षनेवाले मन्त्रियों धर्म-
 शास्त्रोंका पाठ करनेवाले विद्वानों नीतिज्ञों राजधर्मों तथा
 अन्य समासहसि भरी हुई थी ॥ ३ ॥
 सभा यथा मह्येन्द्रस्य वमस्य बरुणस्य च ।
 पुण्ये राजसिंहस्य रामस्याक्षिपकम्पया ॥ ४ ॥
 अनायास ही महान् कर्म करनेवाले राजर्षि भीरामकी
 यह सभा इन्द्र वम और बरुणकी सभाके समान छोभा
 पाठी थी ॥ ४ ॥
 अथ रामोऽप्यधीत् तत्र सङ्गम्य शुभलक्षणम् ।
 निर्गच्छ त्व महाबाहो सुमित्राङ्गवधर्षण ॥ ५ ॥
 कथयार्थिमञ्च सौमित्रे भ्याहर्तुं त्वमुपाक्रम ।
 वहाँ बैठे हुए महान् भीरामने शुभलक्षणसम्पन्न
 से कहा—'सत्त सुमित्राञ्च मानन्व क्वानेवाके महाबाहु
 धीर । तुम बाहर निकले और देखा कि कौन-कौन-से कार्यार्थी
 उपस्थित हैं । सुमित्राङ्गुमार । तुम उन कार्यार्थियोंको बाटो-
 धरिते बुझना अरुम्ह करे' ॥ ५ ॥
 रामस्य भाषितं श्रुत्वा सङ्गमजः शुभलक्षणजः ॥ ६ ॥
 द्वारद्वन्द्वमुपागम्य कथयिष्याद्वाह्वयत् क्षणम् ।
 न कश्चिद्प्रवीत् तत्र मम कार्यमिहाद्य वै ॥ ७ ॥

भीरामचन्द्रकीका वह आदेश सुनकर शुभलक्षण सम्पन्ने
 द्वारद्वारपर भाकर खर्ब ही कार्यार्थियोंको पुकता परत कर
 भी वहाँ पर न कर सका कि मुझे क्यों क्यों कार्य है ॥ ६-७ ॥
 माधयो व्याधयद्द्वैय रामे राज्य प्रशासति ।
 पक्षसत्या यसुमती स्वर्वाधिपसमन्विता ॥ ८ ॥
 भीरामके राज्य-शासन करते समय न तो कहीं कियेसे
 शारीरिक रोग होते थे और न मानसिक चिन्ताएँ ही काली
 थी । पृथ्वीपर सब प्रकारकी ओपधियों (अथ फल अर्थ)
 उत्पन्न होती थी और पक्षी हुई सेती शोभ पाठी थी ॥ ८ ॥
 न बाओ छियते तत्र न युषा न च मध्यमः ।
 धर्मेण शासितं सर्वं न च बाधा विधीयते ॥ ९ ॥
 भीरामके राज्यमें न तो बाधकी मारु होती थी न
 युतकी और न मध्यम अथवाके पुत्रकी ही । सबका धर्म-
 पूर्ण शासन होता था । कियेके खामने कभी कोई बाधा नहीं
 होती थी ॥ ९ ॥
 कथयते न च कार्यार्थी रामे राज्य प्रशासति ।
 सङ्गम्य प्राङ्मुखैस्त्वा रामायैव न्यवेद्यत् ॥ १० ॥
 भीरामके राज्य-शासनकार्यमें कभी कोई कार्यार्थी (अर्थिकों
 केकर आनेबाधा पुत्रय) दिखायी नहीं देता था । सत्तके
 साथ जोकर भीरामचन्द्रकीको राज्यको ऐसी स्थिति बरुण
 अथ रामः प्रसन्नारामा सौमित्रिमिदमब्रवीत् ।
 मूय पय तु गच्छ त्व कार्यिणा प्रविचारय ॥ ११ ॥
 तरनन्तर प्रसन्नचित्त हुए भीरामने सुमित्राङ्गुमारसे पुनः
 एत प्रकार कहा—'सम्पया । तुम फिर जाओ और कार्यार्थी
 पुत्रोंको पता लगाओ ॥ ११ ॥
 सत्यकप्रवीतया नीत्या मधर्मो विद्यते कश्चित् ।
 तस्मात् राजभयात् सर्वे रक्षन्तीह परस्परम् ॥ १२ ॥
 भूमिमें मौलि उक्तम नीतिक प्रयोग करनेसे राज्यमें कहीं
 अधर्म नहीं रह जाता है । अतः सभी लोग राजके अपने सौं
 एक दूसरेकी रक्षा करते हैं ॥ १२ ॥

इस प्रसिद्धिमें वहाँ हीन एवं और निकले है, किन्तु उरहन-रक्षणकोभी व्याख्या न निकलेसे तर्क प्रक्षिप्त नाराज
 है । इनमेंसे दो सन बन्देयों होनेके कारण वहाँ अक्षररूपेण लिखे जा रहे है ।

वाप्या इय मया मुक्ता दह रक्षन्ति मे प्रजा ।
 तथापि त्य महाबाहो प्रजा रक्षन्त्य तत्परः ॥ १३ ॥
 अथपि राजर्ष्याचार्यो मरे छोड़े हुए बालोंके धमन वहाँ
 प्रशंसी रखा करते हैं तथापि महाबाहो ! तुम स्वयं भी तत्पर
 उत्तर प्रबाका पावन किया करा ॥ १३ ॥
 एषमुक्तस्तु सीमिधिर्निजगाम नृपालयात् ।
 नृपालयत् शारदेरो वै भवान् द्रव्यव्यम्पितम् ॥ १५ ॥
 तमश्च वीक्ष्यमाणश्च विभोशन्तु मुहुमुहुः ।
 इष्टुय लक्ष्मणमन वै सपप्रच्छन्नय वीर्यायान् ॥ १६ ॥
 श्रीरामके देख करनेपर मुमिश्रासुमार ब्रह्मण राजमनके
 शर निम्ले । बाहर अकर उठेने देला, इतर एक कुशा
 लहा दे ओ उठेकी अर देलाता हुआ बाहर भूँक खा
 है । उसे इत प्रकर देखकर पराक्रमी लक्ष्मणने उठते
 पूछा— १५-१६ ॥
 किं तं कार्यं महाभाग ब्रूहि विद्वान्भ्रमानसः ।
 लक्ष्मणस्य यथाः भ्रुव्या सागरमयोऽभ्यभापत ॥ १६ ॥
 महाभग ! तुम निम्न होकर बताओ, दुःखस्य क्या
 काम है ? लक्ष्मणक यह बचन सुनकर कुछने कहा— १६ ॥
 सर्वभूतधारय्याय रामायार्द्धिप्रकर्मणः ।
 मध्याभयशत्रोश्च तस्मै यच्च समुत्सहे ॥ १७ ॥
 जो लक्ष्मण भूयोको शरण देनेका और क्येशरित कर्म
 करनेवाले हैं, जो मयक अवशोपर भी अमय रहे ई उन
 मन्वान् श्रीरामक समक्ष ही मैं अपना काम बता चला हूँ ॥
 एतच्छ्रुत्वा च क्वचन सारमेयस्य लक्ष्मणः ।
 रापपाय तत्राख्यातु प्रविशेशाह्वय शुभम् ॥ १८ ॥
 कुछेच यह कवन सुनकर लक्ष्मणने श्रीरुनापकीक
 रकी गचना देनेक क्रिय मुन्दर राजमनमें प्रवेश किया ॥
 निर्वच रामस्य पुनर्गिर्ज्ञगाम नृपालयात् ।
 कष्टस्य यदि तं किञ्चित् तस्य ब्रूहि सुपाय वै ॥ १९ ॥
 श्रीरामक उत्तरी बात बताकर लक्ष्मण पुनः राजमनके
 पर निकल आवे और उठते पाल— यदि दुःखे कुछ
 भन्ना है तो बचकर राजते ही करो ॥ १९ ॥
 लक्ष्मणस्य यथाः भ्रुव्या सारमयोऽभ्यभापत ।
 इतरागार सुपागारे षिञ्जप्रदमस्तु वै तथा ॥ २० ॥
 यदिः एतच्छ्रुत्स्वैव सूर्यो वायुश्च तिष्ठति ।
 अत्र याम्नास्तु साग्निभे योगीनामधमा धयम् ॥ २१ ॥
 लक्ष्मणकी यह बात सुनकर कुछ बतल— मुमिश्रा
 नवन ! देनाकनमें राजमनमें तथा ब्राह्मणके वरोंमें अग्नि,

इन्द्र, सूर्य और वायुदेवता मदा स्थित रहते हैं अत इम
 मधमयोगिक जीव स्वेच्छासे वहाँ जानेके योग्य नहीं हैं ॥
 प्रयेष्टुं मात्र दास्यामि धर्मो विप्रहयान् नृपः ।
 सत्यवायी रणपट्टः सर्वसत्त्वहित मनुः ॥ २२ ॥
 मैं इत राजमनमें प्रवेश नहीं कर सकूँगा क्योंकि
 राज भीरम धर्मके मूर्तिमान् स्वप हैं । वे स्वभावी, धाम-
 कुशल और लक्ष प्राणियोंके हितमें तत्पर रहनेवाले हैं ॥ २२ ॥
 पाहुण्यस्य पद् घेत्ति नीतिकता स राघवः ।
 सर्वस्य सत्यवर्शी च रामो रमयता धरः ॥ २३ ॥
 वै संधि-विप्रद आत्ति एहो गुणोके प्रयोगके अवशोको
 जानते हैं । श्रीरुनापकी न्याय करनेबास हैं । वे सर्वह और
 सर्वदर्शी हैं । श्रीराम वृष्टोंके मनको रमानेवाले पुरुषोंमें
 श्रेष्ठ हैं ॥ २३ ॥
 स स मः स च सूर्युश्च स यमो धनवस्तया ।
 यदिः एतकनुद्वैव सूर्यो वै वरुणस्तथा ॥ २४ ॥
 वे ही ब्रह्मण हैं वे ही सूर्य हैं वे ही यम कुबेर,
 अग्नि इन्द्र सूर्य और वरुण हैं ॥ २४ ॥
 तस्य त्व ब्रूहि सीमिध्रे प्रजापालः स राघव ।
 भनास्तस्तु सीमिध्रे प्रयेष्टु नेच्छयाम्यहम् ॥ २५ ॥
 मुमिश्रानन्दन ! श्रीरुनापकी प्रसंगक है । आप
 उनसे कहिये । मैं उनकी आज्ञा प्राप्त किये किना इत भ्रममें
 प्रवेश करना नहीं चाहता ॥ २५ ॥
 आनुदास्यामहाभागः प्रविशेश महापुतिः ।
 नृपालय प्रविश्याय लक्ष्मणो यापयमप्रवीत् ॥ २६ ॥
 यह सुनकर महादेवकी महाभाग ब्रह्मणने स्वावश राज-
 मनमें प्रवेश करने कहा— ॥ २६ ॥
 ब्रूयता मम विभाप्य कौमल्याकनुवर्धन ।
 यन्मयोक्त महाबाहो तय दासनज विभो ॥ २७ ॥
 लक्ष्मणक आनन्द बदानेवाट महापुति श्रीरुनापकी ।
 मेरा यह निवेदन सुनिये । आपने जो आदेश दिया था उसके
 अनुसार मैंने बाहर आकर कर्षार्थीको पुछा ॥ २७ ॥
 अथा धी ते तिष्ठते द्वाग्नि कर्षार्थी समुपागतः ।
 लक्ष्मणस्य यथाः भ्रुव्या रामो यञ्चनमप्रवीत् ।
 सप्रयेदाय वै क्षिप्रं कर्षार्थी योऽत्र तिष्ठति ॥ २८ ॥
 कुछ समय आपके इतर एक कुशा लहा दे जो
 कर्षार्थी होकर आता है । लक्ष्मणकी यह बात सुनकर श्रीरामने
 कहा— यहाँ जो भी कर्षार्थी होकर लहा दे उसे शीघ्र इन
 समयके भीतर से आओ ॥ २८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायण बाकीपीये अत्रिकाण्डे उत्तरकाण्डे प्रथितः सर्गः १ ॥
 इम उत्तर श्रीरामनीकिसिद्धि अत्रिकाण्डे उत्तरकाण्डे प्रथितः सर्गः १ पूरा हुआ ॥

प्रक्षिप्त सर्ग २

कुत्तक प्रति श्रीगणका न्याय, उसकी इच्छाके अनुसार उसे मारनेवाले ब्राह्मणको मठाधीश बना देना और कुत्तका मठाधीश होनेका दाव बताना

धुव्या रामस्य यवन लक्ष्मणस्वरितस्तदा ।

भ्यानमाह्वय मतिमान् राघवाय न्यषदयत् ॥ १ ॥

भीगमना यह बचन सुनकर बुद्धिमान् सम्भगने उत्ताप

यग कुत्तक बुक्या और भीगमना उतक भानेकी सूचना थी॥

दुःख समागत भ्यान रामो यषममप्रधीत् ।

विवक्षितार्थे म नृदि सारमय म त भयम् ॥ २ ॥

परी भये हुए कुत्तकी और देलकर भीगमने कहा—

भगवन् । तुम्हें जो कुछ कहना है उसे मेरे सामने कहो ।

यदा तुम्हें कोई भय नहीं है ॥ २ ॥

भयापदयन् सप्रस्य राम भ्या भिषममस्तकम् ।

तदा दृष्ट्वा स राजान् सारमयाऽप्रधीत् यथा ॥ ३ ॥

तूना मन्त्रक पट गया था । उन्हने यक्षभयमें

रत हुए महामन्त्र भीगमना भर गेला और देलकर इस

प्रकार कहा— ॥ ३ ॥

सर्वत्र यथा भूताना राजा च य विनायकः ।

राजा सुमयु जाणति राजा पालयति प्रजा ॥ ४ ॥

गण ही तमना प्रविशोना उतरदक और नायक है ।

गण लक्ष्मण गन रहनेपर भी राजा है और प्रजाभोगा यक्षन

करना है ॥ ४ ॥

नीत्या सुगीतया राजा धर्मं रक्षति रक्षितः ।

यदा न पालयत् राजा निम नान्यन्ति विप्रजाः ॥ ५ ॥

गण भोगा यक्ष है । यह उतम नीत्या प्रयोग कर

लक्ष्मण गन करे है । यदि राजा पालन न करे तो लक्ष्मण

प्रजा ही नष्ट हो जाये ॥ ५ ॥

राजा यथा न्य गाणा न्य स्वस्य जगन् पिता ।

राजा कात्या युग यत्र राजा न्ययमिन् जगन् ॥ ६ ॥

गण का राजा यक्ष और गण लक्ष्मण का गण

पिता है । गण कात्या और युग है तथा राजा यह गण्य

जगन् है ॥ ६ ॥

धातपान् धर्मस पाशुभ्योऽपि शिष्याः प्रजाः ।

यस्मान् धातय इव प्रजावर्गं स्वराजवरम् ॥ ७ ॥

य जो गण्य गण्य पाशु यक्ष है इति उव उगना

जगन् है । य जो ही गण्य प्रजाके राजा कर रहना है ;

को ही गण्य गण्य (गण्य विनायक) अकार है ।

धातपान् शिष्याः धर्मस पाशुभ्योऽपि शिष्याः ।

तस्मान् धातपान् धर्मस पाशुभ्योऽपि शिष्याः ॥ ८ ॥

गण्य गण्य गण्य गण्य गण्य गण्य गण्य गण्य

गण्य गण्य गण्य गण्य गण्य गण्य गण्य गण्य

को कारण कहा गया है और धारण ही धर्म है पर लक्ष्मण

सिद्धान्त है ॥ ८ ॥

एव राजन् परो धर्मः फलवान् प्रेत्य राषम् ।

नदि धर्माद् भवेत् किंचिद् दुष्पामिति मे मतिः ॥ ९ ॥

अनुन्दन । यह प्रजागण्य परम धर्म यक्षों के

स्वर्गमें उतम फल देनेवाला होता है । मेरा तो यह ही

विश्वास है कि धर्मसे कुछ भी दुर्भाग नहीं है ॥ ९ ॥

दान दया सत्ता पूजा न्ययशोरेषु धार्जवम् ।

एव राम परो धर्मो रक्षणाय प्रेत्य बह्व ॥ १० ॥

भीगम । दान दया कर्तुकींशो लक्ष्मण और लक्ष्मण

में करछता यह परम धर्म है । प्रजाकोशी रखते होनेवाले

उत्तम धर्म इत्येक और परलोकमें भी गुण देनेवाला होता है ॥

स्यं प्रमाण प्रमाणानामसि राघव सुमत ।

विविदितदीय ते धमा सन्निवाचरितस्तु वै ॥ ११ ॥

उतम प्रमाण यक्ष करनेवाले अनुन्दन । आप लक्ष्मण

प्रमाणोंके भी प्रमाण हैं । कर्तुकींशो दित धर्मोंके आकर

दिया है यह आपका मन्त्रीभक्ति विदित ही है ॥ ११ ॥

धमणां स्य पर धाम गुणानां सागरोपमा ।

अज्ञानाद्य मया राजन्मुक्तस्यं राजसत्तम ॥ १२ ॥

यक्ष । अथ धर्मोंके परम धाम और गुणोंके सागर हैं ।

यक्ष । मैंने अज्ञानवश ही आपके सामने धर्मोंके गुण

की है ॥ १२ ॥

प्रमादयामि निरसा म स्व प्रोद्धमिदार्यमि ।

गुणं न यद्यत् धुव्या राघवो बान्धवमप्रधीत् ॥ १३ ॥

इतक नियम में आकर यक्षोंमें अज्ञान लक्ष्मण का

पादा और भयान प्रणय होनेके सिधे प्रार्थना करण हैं ।

अथ परी सुमन्य वृत्ति न ही । कुत्तकी यह राज सुनकर

भीगुनायी कह— ॥ १३ ॥

वि न कर्षे कराम्ययं प्रदि विद्वन्ध मा विरम् ।

रामस्य यवन धुव्या न्यामया प्रथारिदम् ॥ १४ ॥

युग निभय दारक बाध । मात्र मैं तुम्हारा कीन

धर्म सिद्ध है । अज्ञान धर्म में निकल न था ।

भीगम की यह राज सुनकर कुछ कहा— ॥ १४ ॥

धर्मो राष्ट्रं सिद्धं धर्मोपापात्पान् ।

धमात्पान्धर्मो यानि राजा न्ययभवावहः ॥ १५ ॥

इति शिष्य वत् पूय भूयतां मय राषम् ।

युग । मैं गण्य धर्म ही गण्य गण्य है और लक्ष्मण

देनेवाला है लक्ष्मण उव हुए करनेवाला गण्य है ।

ऐसा जानकर आप मेरा जो कार्य है, उसे सुनिये ॥ १५३ ॥
 भिक्षुः सर्वाथसिद्धयश्च प्राज्ञाप्यायसत्ये यस्तु ॥ १६ ॥
 तत्र दत्तः प्रहारो मे निष्कारण्यमनागतः ।

प्रभो ! सर्वाथसिद्ध नामसे प्रसिद्ध एक भिक्षु है, जो
 आज्ञाओंके फलमें रहा करता है । उसने आज्ञा अकारण मुझपर
 प्रहार किया है । मैंने उसका कोई अपराध नहीं किया था ॥
 एतच्छ्रुत्वा तु रामेण ब्राह्मणः सम्प्रेषितस्तदा ॥ १७ ॥
 अनीलं च द्विजस्तेन सर्वसिद्धार्यकरोविदुः ।

कुचेकी यह बात सुनकर भीरुमने तरझल एक झारपाठ
 भेज और उस सर्वाथसिद्ध नामक विद्वान् भिक्षु आज्ञाओंके
 पुष्पाया ॥ १७ ॥

मय द्विजवरस्तात्र रामं ददुः महाधुतिः ॥ १८ ॥
 कि ते कार्यं मया गम तद् ब्रुहि त्वं ममामय ।

श्रीरामको देखकर उस महातेजस्वी श्रेष्ठ ब्राह्मणने पूछा—
 निष्णय खुन्दन । मुझसे आपको क्या काम है ? ॥ १८ ॥
 पयमुक्तस्तु विभ्रेण रामा वचनममब्रवीत् ॥ १९ ॥
 स्वया दत्तः प्रहारोऽयं सारमेयस्य मे द्विज ।
 कि त्वापकृत विप्र दण्डेनाभिहतो यतः ॥ २० ॥

ब्राह्मणके इस प्रश्नर पूछनेपर भीरुम बोले—ब्रह्मन् ।
 अपने इस कुचेके शिरार का यह प्रहार किया है उसका क्या
 कारण है । निम्नर । इसने आपका क्या अपराध किया था,
 किन्के कारण आपने इसे डंडा मारा है ! ॥ १९-२० ॥

श्लोभः प्राणहरा दानुः श्लोभो मित्रमुक्तो रिपुः ।
 श्लोभो ह्यसिमहातीक्ष्णं सर्वं श्लोभोऽपकारति ॥ २१ ॥
 श्लोभः प्राणहारी धनुः । श्लोभको मित्रमुक्त धनुः बताया
 गया है । ऊँच अस्मत्त तीक्ष्ण तस्मारा है तथा श्लोभ छारे
 कर्णुश्लोभ कोच लेता है ॥ २१ ॥

तपते यज्ञत शैव यच्च दानं प्रयच्छति ।
 श्लोभेन सर्वं हरति तस्मात् श्लोभं विसर्जयेत् ॥ २२ ॥
 धनुष्य श्लो तप करता यज्ञ करता और दान देता है,
 उन श्लोके पुण्यको हर श्लोभके द्वारा नष्ट कर देता है । इसलिये
 श्लोभको त्याग देना चाहिये ॥ २२ ॥

इन्द्रियाणां प्रमुष्टानां हयानामिव धावताम् ।
 कुर्यान् धृत्या सारथ्यं सङ्घट्टयेन्द्रियगोचरम् ॥ २३ ॥
 'गुह' कोड़ोंकी तरह किरकोधी और दौड़नेवाली इन्द्रियों
 को उन मित्रकोधी बदलने ददाकर धैर्यपूर्वक उन्हें नियन्त्रणमें
 लाने ॥ २३ ॥

मनसा कर्मणा धान्वा धनुष्या च समाचरेत् ।
 धनो श्लोभस्य धरतो न श्रेष्ठि न च लिप्यत ॥ २४ ॥

१. जो बदलते मिल नाम को किन्तु धरियनमें धनु सिद्ध हो
 पर विक्रमुष्ण धनु है । अथ बदने कीदृश्यांश्च तानामेव सारथ-
 का कर्मणः कर्मणः । इसीलिये इनके नियन्त्रण करना गया है

पानुष्यको चाहिये कि वह अपने पात निचरनेवाले लक्ष्यों
 की मन, बाणी किया और दृष्टिद्वारा मन्वाई ही करे । किन्ती
 से हेव न रहते । ऐसा करनेसे वह आपने भित नहीं होता ॥
 न तद् कुर्यात्सिद्धिस्तृष्णाः सर्पो वा व्याहताः पदा ।
 अरियो नित्यसन्तुष्टो यथाऽऽरामा दुरनुष्ठिताः ॥ २५ ॥

'अपना कुछ मन जो अनिष्ट वा अनर्थ कर उठता है,
 बंध तीक्ष्ण तस्मारा पैरोतके कुचक्य हुआ लं भयवा तथा
 श्लोभसे मग रहनेवाला धनु भी नहीं कर उठता ॥ २५ ॥
 धिमीतविनयस्यापि प्रकृतिर्न विधीयते ।
 प्रकृतिं गृहमाणस्य निश्चयेन कृतिर्भूया ॥ २६ ॥

किसी विनयकी शिष्ट मिथी हो, उसकी भी प्रकृति नयी
 नहीं बनती है । कोई अपनी कुछ प्रकृतिको किठना ही क्यों न
 लियाय, उसके कार्यमें उसकी बुद्ध्या निश्चय ही पकड़ हो
 जाती है ॥ २६ ॥

पयमुक्तः स विप्रो वै रामेण्यद्विष्टकर्मण्य ।
 द्विजः सर्वाथसिद्धस्तु मद्यधीद् रामसनिधौ ॥ २७ ॥
 केशरहित कर्म करनेवाले श्रीरामके ऐसा करनेपर
 सर्वाथसिद्ध नामक ब्राह्मणने उनके निकट इस प्रश्नर कहा—॥
 मया दत्तप्रहारोऽयं श्लोभेनयिष्टचेतसा ।
 भिस्तार्थमदमाणेन काल विगतभैक्षके ॥ २८ ॥

रथ्यास्थितस्त्वय श्वा वै गच्छ गच्छेति भाषिताः ।
 मय स्वैरेण गच्छंस्तु रथ्यान्ते पिपम स्थिताः ॥ २९ ॥
 प्रभो ! मेरा मन श्लोभसे भर गया था, इच्छिये मैंने
 इसे डंडेसे मारा है । मिश्रक्य समय भीत पुत्र था, तथापि
 भूले रहनेके कारण मिश्रा गौंगनेके लिये मैं द्वार द्वार घूम
 रहा था । यह कुण्ड्य बीच रास्तेमें लड़ा था । मैंने बार-बार
 कहा—'तुम रास्तेसे दृढ श्वाभो इत् श्वाभो' फिर यह अपनी मोहते
 बस और सड़के बीचमें बेहंगे लड़ा हा गया ॥ २८-२९ ॥

श्लोभेन शुभयाविष्टस्ततो दत्तोऽस्य गणव ।
 प्रहारो गजराजेश्च शाधि मामपरारिणम् ॥ ३० ॥
 स्वया दत्तस्य राजेश्च शाधि मे नरकाद्रयम् ।
 र्मे भूला तो था ही श्लोभ चद भाया । रामविद्यक
 एतुन्दन । उस श्लोभसे ही प्रेरित होकर मैंने इसके शिरपर
 डंडा मार दिया । मैं अपराधी हूँ । आप मुझे दण्ड दीजिये ।
 रामेश्च । आपसे दण्ड मिल जानेपर मुझे नरकमें पड़नेका डर
 नहीं रहेगा ॥ ३० ॥

मय रामेण सन्मुष्टां सय पय सभासद् ॥ ३१ ॥
 किं कर्ममस्य वै प्रत दण्डो वै कोऽस्य पापताम् ।
 सत्यकप्रणिहिते दण्डे प्रजा भयति रक्षिता ॥ ३२ ॥
 तत्र भीरुमने लक्ष्मी लभारंसेते पूछा—'अपराधक बताया
 इतने लिये क्या करना चाहिये ? इन्ने श्लोभ का दण्ड दिया
 क्या ? क्योंकि मसीमानि दण्डक प्रयोग होनेपर प्रजा
 सुरक्षित रहती है ॥ ३१-३२ ॥

सुश्याङ्गिरसकुस्तथा पसिष्ठञ्च सकाश्यप ।
 धर्मपाठकमुत्पाञ्च सविधा मैगमास्तथा ॥ ३३ ॥
 एते चाप्य स यद्ब्रह्म पमिष्ठतास्तत्र सगता ।
 भवभ्यो ब्राह्मणो ह्यप्यैरिति चास्त्रविद्यो विदुः ॥ ३४ ॥
 श्रुयते राघव स्वयं रामभ्रमेषु सिद्धिता ।

उष समामे पशु भाङ्गिरस कुस्त वसिष्ठ और अरवप
 भद्रि मुनि ये । धर्मपाठकोन पाठ करनेवाले मुख्य-मुख्य
 विद्वान् उपस्थित थे । मन्त्री और महात्मन मौद्गल्य थे—ये तथा
 और बहुत-से पण्डित वहाँ एकत्र हुए थे । राघवगोकं बान
 में परिनिष्ठित थे अभी विद्वान् भीरपुत्रापथीसहोमे—भ्रमणन् ।
 ब्राह्मण ह्यब्रह्मण भवन्त्य है, उसे शारीरिक दृष्ट नहीं सिन्हा
 चाशिय, यही छान्दस शास्त्रकोका मत है ॥ ३३ ३४ ॥

अथ ते मुमयाः सर्वे राममेवाह्वयस्तथा ॥ ३५ ॥
 राज्ञा शास्ता हि सर्वस्य त्व विशेषेण राघव ।
 त्रैलोक्यस्य भयाश्रयस्ता देवो विष्णुः सनातना ॥ ३६ ॥
 त्वन्तर धे उष मुनि उष समय भीरपमे ही सेने—
 प्युनन्दम । राघव एकत्र शासक होता है । विशेषतः आप
 को तीनो लोकपर शासन करनेवाले शास्त्र ज्ञानवान् देवता
 भ्रमणान् विष्णु है ॥ ३५ ३६ ॥

एवमुक्ते तु तैः सर्वैः श्वा वै धत्तममत्रवीत् ।
 यदि तुष्टोऽसि मे राम यदि देवो वरो मम ॥ ३७ ॥
 उन सबके ऐसा करनेपर कुचा बन्स्य— भीरप । यदि
 आप मुझपर उद्वृष्ट हैं यदि आपका मुझे इच्छातुच्छ पर देना
 है तो मेरी बात सुनिये ॥ ३७ ॥

प्रतिज्ञात स्वया धीर किं करोमीति विभुतम् ।
 प्रयच्छत ब्राह्मणस्यास्य कौशलपत्यं नराधिप ॥ ३८ ॥
 कचञ्जर महाराज कौशलपत्य प्रवीयताम् ।
 भीर नरेभर । आपने प्रतिज्ञापूर्वक पूछा है कि मैं क्याकर
 कोन-का कार्य सिद्ध करूँ । इस प्रकार आप मेरी इच्छा पूर्ण
 करनेका प्रतिशब्द हा चुके हैं । अतः मैं कहता हूँ कि इस
 ब्राह्मणका कुम्भपति (महन्त) बना बीजिष । महाराज । इसे
 कचञ्जरमें एक मठका आधिपत्य (बर्तौकी महन्थी) प्रदान
 कर लीजिये ॥ ३८ ॥

पतञ्जल्या तु रामेण कौशलपत्योऽभिषेचिता ॥ ३९ ॥
 प्रययौ ब्राह्मणा ह्यष्टौ गजस्तकचन स्रोऽर्पिताः ।
 यह मुनहर भीरपमे उषस्य कुम्भपतिर पत्पर अभिरिक
 कर दिया । इस प्रकार पुत्रि दुभा वह ब्राह्मण हाथीकी पीठ
 पर बैठकर बह इसके साथ बर्तिस पचा गया ॥ ३९ ॥
 अथ त रामसविधाः स्तयमाना पयाऽऽमुपन् ॥ ४० ॥
 पराण्य दृष्ट पनस्य नाप शापा महापुत ।

तव भीरगपत्तञ्चीक मन्त्री मुरझये हुए रूप—
 प्पहातेभन्नी महाराज । वह ता इमे कर दिया गया है शाप का
 दण्ड नहीं ॥ ४० ॥

एवमुक्तस्तु सविधै रामो ब्रह्मममत्रवीत् ॥ ४१ ॥
 न पूय गतितस्वहाः श्वा वै जलानि कारवम् ।
 मन्त्रिकोंके ऐसा करनेपर भीरपमे कहा—किन्तु कर्म
 न्ना परिणाम होता है अथवा उठते हीकभी सेठी गति छेद
 है इच्छा तब दुमलमेग नहीं बनते । ब्राह्मणको मठाधीक
 पर क्यों दिया गया ? इच्छा कारण यह कुचा बन
 है ॥ ४१ ॥

अथ पूष्टस्तु रामेण सारमेयोऽब्रवीद्विभम् ॥ ४२ ॥
 मह कुम्भपतिस्तत्र भास शिष्टाङ्गमोज्जवा ।
 देवशिञ्जलिपूजायां वासीवास्तेषु राघव ॥ ४३ ॥
 सविभागी शुभरतिवैद्यद्रूपस्य रक्षिता ।
 विनीता शीलसमृद्धाः सर्वसत्त्वहिते रताः ॥ ४४ ॥
 तपश्चाद् भीरपके पूछनेपर कुचेने इस प्रकार कस—
 प्युनन्दम । मैं पहले कर्मके कचञ्जरके मठमें कुञ्जी
 (मठाधीश) था । वहाँ बठशिष्ट भयानक मेहनत करके
 देवता और ब्राह्मणोंकी पूजामें ऊपर रहके शास्त्र-शक्तिसे
 उनका न्यायोक्ति भग्न बॉट देता शुभ कर्ममें मनुष्य
 रहता देवकर्मपिची रखा करता तथा किन्य और बीजो
 सम्पन्न होकर छान्दस प्रायिकोंके हित-साधनमें तन्मन रह
 था ॥ ४२-४४ ॥

सोऽहं प्रात इमा शोरामबस्वामभर्मा गतिम् ।
 एवं क्लेषान्पितो विप्रस्त्यकधर्माहिते रता ॥ ४५ ॥
 कुष्ठो नृशला पदप मयिर्ब्राह्मण्यधर्मिकः ।
 कुस्त्रनि पातपत्यव सत सत च राघव ॥ ४६ ॥
 जो भी मुझ वह पोर भवता एवं धर्म गति प्राप्त
 हुई । किन्तु वो ऐसा कोपी है धर्मको कोइ पुत्र है कुष्ठो
 अहितमें सम्य हुआ है तथा श्लेष करनेवाला मूढ करने
 मूर्ख और अजर्मी है वह ब्राह्मण तो मठाधीश शस्त्र अपने
 साथ ही ऊपर और नीचेकी छत-सात पीदिकोंकी भी नारको
 गियकर ही रोग ॥ ४५ ४६ ॥

तस्माद् सर्वास्वयम्बासु कौशलपत्यं न कारयेत् ।
 यमिच्छेत्तत्रकं मेतुं सपुत्रपशुबान्धवम् ॥ ४७ ॥
 वैश्वधियुद्धित कुर्याद् गाणु च ब्रह्मणेपु च ।
 इगच्छेदे किछी भी दशामे मठाधीशका पर नहीं प्रप
 करना चाहिये । किसे पुत्र पशु और बन्धु-सम्बन्धकी
 मरुमें गिर देनेकी इच्छा हो उसे देवताओं गैमों और
 ब्राह्मणोंका भविष्यता बना है ॥ ४७ ॥

ब्राह्मर्षी देयताद्रुष्यं स्त्रीणा वासधर्मं च यत् ॥ ४८ ॥
 वत्तं हरति वा भूय इष्टैः सह विनदपति ।
 अ ब्राह्मणना देवताका चियोंका और बातकोच बन
 हर मेता है तथा अ भन्नी बान की हुई लग्नपिछे नि
 वास मे सेना है वह इच्छाकोदति मह हा कथ है ॥ ४८ ॥
 ब्राह्मणद्रुष्यमावृत्त दवानां धैव राघव ॥ ४९ ॥

सद्यः पतति घोरे वै नरकेऽधीचिसङ्घके ।

पुनन्दन । ओ हासणो और देवताओंका इन्म हृष्य
केला है, वह हीम ही अभीचि नामक घेर नरकमें गिर
जाय है ॥ ४९३ ॥

मनसापि हि देवस्य प्रह्लादस्य च हरेत्सु य ॥ ५० ॥

निरपाधिरय सैव पतत्येष नराधम ।

वह देवता और ब्राह्मणकी सम्पत्तिके हर लेनेका विचार
भी मनमें करता है, वह नराधम निम्न ही एक नरकमें गिर
नरकमें गिरता रहता है ॥ ५० ॥

तच्छूरा वचन रामो विसर्पोत्कृद्गुणोचनः ॥ ५१ ॥

इत्थार्थे श्रीमद्भागवत वाक्योक्तिषु आदिशब्देषु उत्तरशब्देषु प्रसिद्धः सर्गः ॥ २ ॥

इस शब्द श्रीमद्गीतादिप्रसिद्ध भर्गरामायण आदिशब्दोंके उत्तरशब्दोंमें प्रसिद्ध सग २ पूरा हुआ ॥

पष्ठितम सर्ग

भीरामके दरबारमें च्यवन आदि ऋषियोंका शुभागमन, भीरामके द्वारा उनका सत्कार करके

उनका अभीष्ट कार्यका पूर्ण करनेकी प्रतिज्ञा तथा ऋषियोंद्वारा उनकी प्रार्थना

तयो सद्यत्तोरेय रामकृष्णमणयोस्तदा ।

वासस्तिकी निशा प्राप्ता म शीत्या न च घमना ॥ १ ॥

भीराम और सख्खण परस्पर इस प्रकार कथा-बाता करते
हुए प्रसिद्धि प्राप्तका उनके कार्यों को करते थे । एक समय
बन्तशुद्धी यह आयी जो न अधिक सर्वा अपनेबाकी थी
और न गर्मी ॥ १ ॥

तदा प्रभाते विमलं कृतपूर्वाह्निकक्रियः ।

अधिशङ्खम काकुत्स्थो वरानं वीरकार्यवित् ॥ २ ॥

वह रात बीतनेपर अब निर्मल प्रभातका आया, तब
पुरस्कारके कर्णोंका जननेवाले श्रीवसुनायकी पूर्वकालके
निष्कर्ष—संन्या-बन्दन आदिते निहत्त हा बाहर निकलकर
प्रशस्तोंके दक्षिणमें खड़े ॥ २ ॥

तदा सुमन्त्रस्वागम्य राघव बाण्यमग्रवीत् ।

एत प्रतिहृता राजन् शारि तिष्ठन्ति तापसाः ॥ ३ ॥

भार्गव च्यवन सैव पुरस्ठस्य महर्षयः ।

एत तं महाराज घोषयन्ति कृतवपराः ॥ ४ ॥

उन्नी समय सुमन्त्रने आकर भीरामकेबसीते वहा—
‘यन्त । वे तबकी महर्षि पयुपुत्र ब्यवन मुनिको आगे करके
हारार लड़ है । हारवासीने इनका भीतर आना ठेक किया
है । महाराज ! इन्हे आरके दर्शनकी बन्दी लगी हुई है और
वे अपने भगवन्की शून्ता देनेके लिये हमे नाराज प्रेरित
करने हैं ॥ १ ४ ॥

भीरामाया नरव्याघ्र यमुनातीरवासिनः ।

तस्य तद् घयनं भुव्या रामः प्रोवाय धमनिव् ॥ ५ ॥

मयेरपन्ता महाभागो भार्गवप्रमुखा ऋजाः ।

पुरस्तरि । ये तव मर्षि यमुनातटस्य निगत वरतं है

श्याप्यगच्छन्महातेजा यत एवागतस्तदा ।

कुचेका यह बचन सुनकर भीरामचन्द्रकी नेत्र आभयसे
लिख उठे और वह महातेजसी कुच्छ भी विचरते आया था,
उपर ही चला गया ॥ ५१३ ॥

मनसी पूर्वमात्वा स आत्मिभोऽपकृगितः ।

यागपस्या महाभागः प्राय शोपविवेश ह ॥ ५२ ॥
वह पूर्वकर्ममें बड़ा मनानी था परंतु इस कर्ममें यह
कुचेकी योगिने उदयन होनेके कारण कृगित हो गया था ।
उत महाभाग कुचेने शरीरमें आकर प्रायोपवेशन कर लिया
(मन्त्र-जल लक्ष्मण अपने प्राण त्याग दिये) ॥ ५२ ॥

इत्थार्थे श्रीमद्भागवत वाक्योक्तिषु आदिशब्देषु उत्तरशब्देषु प्रसिद्धः सर्गः ॥ २ ॥

इस शब्द श्रीमद्गीतादिप्रसिद्ध भर्गरामायण आदिशब्दोंके उत्तरशब्दोंमें प्रसिद्ध सग २ पूरा हुआ ॥

और आपसे बिद्यो प्रेम रखते हैं । सुमन्त्रकी यह बात सुनकर
बसंत भीरामने कहा—‘सु । मर्षि ब्यवन आदि सभी
महाभाग ब्रह्मर्षियोंके भीतर बुद्धया ब्यय ॥ ५३ ॥

राहन्त्याया पुरस्ठस्य द्वाग्भ्यो मूढा कृताञ्जलिः ॥ ६ ॥

प्रवेशयामास तदा तापसानं सुदुरासदान् ।

राजकी यह आशा शिरोधार्य करके हारपालने मन्त्रकर
दनों हाथ बांध लिये और उन मन्त्रय बुद्धय तेजसी तापसे
का वह राहमनके भीतर से भाया ॥ ६ ॥

शत समधिकं तत्र दीप्यमानं स्वतंजसा ॥ ७ ॥

प्रविष्ट राजभवनं तापमानां महारमनाम् ।

त द्विजा पूणकलशैः सवतीर्षाम्युसार्ष्टतैः ॥ ८ ॥

सूहीत्या फल्गुमूळ च रामस्याग्नाह्वनं यद् ।

उन तबकी महाराजोंकी संन्या लीने अधिक थी । ब
रक-के-तब इनने ठेकते प्रकाशित हो रहे थे । उन लक्ष्मने
राहमनमें प्रवेश किया और समस्त तीर्थोंके लक्ष्मने भरे हुए
बर्दोंके ताप बहुतने कम-जून लकर भीरामचन्द्रकीको भेंट
किया ॥ ७-८ ॥

प्रतिपृष्टा तु तत् सस्यै राम प्रीतिपुरस्कृतः ॥ ९ ॥

सीर्षोद्भक्ति सयाणि कल्पानि विधिधानि च ।

उयाच च महापाद्मः सयानेयं महामुनीन् ॥ १० ॥

महापाद्म भीरामने बड़ी प्रकृतताप लक्ष्य कर काय
उपहार—वे छोरे तीर्थलक्ष और नाना प्रकारके फल लकर उन
की महामुनीको वहा— ॥ ९ ॥

इमाम्यासममुत्पानि यथाहमुपदिश्यन्ताम् ।

रामस्य भावितं भुव्या सय पय महर्षयः ॥ ११ ॥

पूनीषु रक्षितार्यासु निवेदुः कश्चनीषु त ।

याहात्माश्रे । ये उक्तोत्तम आत्मन प्रस्तुतः । आपन्नोप
ययाद्योप इव आत्मनोर वैठ शय्ये । भीयमन्नन्तरीयं यह
बन्धनं नूनकर वै तन्मी महर्षि रक्षिर श्रेष्ठाने सम्पन्नं नून
सुतर्जमव आत्मनोर वैठे ॥ ११३ ॥

उपविद्यादूर्ध्वीस्तत्र दृष्ट्वा परपुरस्कष्या ।
प्रयत्ना प्राञ्जलिमूल्या राक्षयो यापयममन्वीत् ॥ १२ ॥
उन महर्षियोंको वहाँ आत्मनोर विराजमान देव धनु
नगीपर विबन्धन पानेवाले श्रीरघुनाथजीने हाथ छोड़ संकटभाष-
से कहा— ॥ १२ ॥

किमागमनकार्यं वा किं करोमि सन्निहितः ।
माहात्म्योऽहं महर्षीणां सर्वकामफलं मुञ्चाम् ॥ १३ ॥
महर्षियो । किं कामसे वहाँ आपन्मेंका दुःखगमन
हुआ है । मैं एकप्रसिद्ध हाकर आपकी क्या सेवा करूँ ? यह
सेवा आपकी आज्ञा पानेके योग्य है । आदेश मिलनेपर मैं
बड़े झुलसे आया तभी इच्छामेंको पूर्ण कर सकूँगा ॥ १३ ॥
इदं तन्मयं च सफलं जीवितं च ह्यपि स्थितम् ।
सर्वमेतद् द्विजार्थं मे सत्यमेतद् ब्रवीमि यः ॥ १४ ॥

यह हाथ पश्य, इत दुःखकालमें विराजमान यह
जीवात्मा तथा यह मेरा हाथ बैयन प्राणियोंकी सेवाके लिये
ही है, मैं आपके सम्मुख वह तभी बात कहूँ ॥ १४ ॥
तस्य तद् पश्यन् भुत्वा साञ्जुष्यते महाममूत् ।
श्रीपीणामुपगतपसा यमुत्तरीरवासिमाम् ॥ १५ ॥

इत्याशं श्रीमद्ब्रह्मसूत्रे वाक्यतोषीये ऋषिब्रह्मणे उच्यते— सर्गाः ॥ १ ॥
इस प्रकार श्रीब्रह्मसूत्रमें लिखित उच्यते— ऋषिब्रह्मणे उच्यते— सर्गाः ॥ १ ॥

भीरघुनाथजीके ये वचन सुनकर उन कृष्णादीर-निष्ठा
उप उपस्थी महर्षियोंने उच्छ्वसते उन्हें छत्रुवार विष्णु ॥ १५ ॥
ऊचुश्चैव महात्मानो हर्षेण महत्त वृत्तः ।
उपपन्नं नरभ्रेष्ठ तथैव मुनि नाभयता ॥ १६ ॥

जिन्हें वे महत्ता बड़े हर्षके साथ बोले— जगन्नेह ! त
भूमण्डलमें ऐसी बातें मानने ही योग्य हैं । हूँके लिये उच्य-
से इस तरहकी बात नहीं निकलती ॥ १६ ॥

बहवः पार्ष्णिवा राजानमतिशयान् महाबलान् ।
कार्यस्य गौरव्यं मत्वा प्रतिष्ठां तान्यरोपयन् ॥ १७ ॥
पावन् । (म बहुतसे महाबली गजाओंके फल ली
परंतु उन्होंने स्वर्गके गौरवको समझकर उसे सुननेके लक्ष्य
करके) ऐसी प्रतिष्ठा करनेकी कवि नहीं दिखायी ॥ १७ ॥

त्वया पुनर्मोक्षणगौरवादिप
हृत्य प्रतिष्ठां जगन्नेष्य क्वरवन् ॥
उत्तमं कर्ता ह्यसि नात्र सहायो
महाभयान् प्रातुर्धुर्ध्वीस्त्वमर्हसि ॥ १८ ॥

परंतु आपने हमारे मानका कारण बने किना ही फल
कामोंके प्रति आदरका भाव होनेसे हमारा काम करनेकी
प्रतिष्ठा कर जाती है; इसलिये आप अत्यन्त लक्ष्य कर
करके इसमें संशय नहीं है । आप ही महान् भक्तोंके लिये
को क्या लक्ष्येंगे ॥ १८ ॥

इत्याशं श्रीमद्ब्रह्मसूत्रे वाक्यतोषीये ऋषिब्रह्मणे उच्यते— सर्गाः ॥ १ ॥
इस प्रकार श्रीब्रह्मसूत्रमें लिखित उच्यते— ऋषिब्रह्मणे उच्यते— सर्गाः ॥ १ ॥

एकषष्टितम सर्ग

श्रुपिपौक्यं मधुका प्राप्तं हुए वर तथा लवणासुरके वल और अत्याचारका वर्जन करके उत्तरे
प्राप्त होनेवाले भयको दूर करनेके लिये श्रीरघुनाथजीसे प्रार्थना करना

तुवक्षिरेवमृषिभिः काकुत्स्थो यापयममन्वीत् ।
किं कार्यं भूतं मुनयो भयं तावपैतु पा ॥ १ ॥
इत प्रकार कहते हुए श्रुपिपौसे प्रेरित हो श्रीरघुनाथजी
ने कहा— ऋषियों । बताइये आपका कौन सा कार्य मुझे
दिखाना है । आपन्मेंका भय तो अभी दूर हो जाना
चाहिये ॥ १ ॥
तथा ह्यपि काकुत्स्थे भार्गवो यापयममन्वीत् ।
भयाना शृणु यममूलं देवास्य च नरेभ्यः ॥ २ ॥

भीरघुनाथजीके देखे कहनेपर मधुपुत्र ध्वनन बोले—
ऋषेभ्यः । कृपे देवदर और हमकोधोर अब मैं प्राप्त हुआ
है उक्त मूल कारण क्या है मुझमें ॥ २ ॥
पूर्वं ह्यतपुना राजान् वैतपः सुमहामतिः ।
गणानामुपोऽभयस्यथा मधुनाम महासुरः ॥ ३ ॥
पावन् । परते लवणुगमे एक बड़ा बुद्धिमान् देव था ।

यह श्लेषका श्लेष पुत्र था । उक्त महान् मनुष्य का
था मधु ॥ १ ॥

प्रहस्यन्व्यस्य दारस्यस्य बुद्ध्या च परिनिष्ठितः ।
सुरैश्च परमोदारैः प्रीतिस्तस्यातुसाभवत् ॥ ४ ॥
यह बड़ा ही ब्राह्मण मनु और धारणाशक्त था ।
उत्तरी बुद्धि युक्तिर थी । अत्यन्त उदार लक्षणोंके देवताओं
के साथ भी उत्तरी देखी गदरी मित्रता थी किन्तु भी
तुक्त नहीं थी ॥ ४ ॥

स मधुर्यपसङ्गमो धर्मं च सुसमाहितः ।
बहुमानाद्य दग्नेषु दत्तस्तस्यातुतो वरः ॥ ५ ॥
अपु एक-विक्रमसे सङ्गम था और एकप्रकारे ही
वर्गके अनुष्ठानमें लगा रहता था । उक्त मन्नाद-मित्री
बड़ी भाषण थी थी किन्तु उन्होंने उसे मधुपुत्र
प्रदान किया था ॥ ५ ॥

एव शूलाद् विनिष्कृत्य महावीर्यं महाप्रभम् ।
 वही महात्मा सुमीतो वाक्य चैतनुयाच ह ॥ ६ ॥
 महामना म्हाबान् शिवने भवन्त प्रसन्न हो भवने हस्ते
 एक चमन्मात्र हुभा परम शक्तिघाथी एक प्रकृ करके उठे
 मनुष्ये दिया और पर बात करी— ॥ ६ ॥
 त्वयापमत्तुनो धर्मो मत्प्रसादकरः कृतः ।
 प्रिया परमया युको वृत्त्यायुधमुत्तमम् ॥ ७ ॥
 'युधने मुझे प्रसन्न करनेका बह बड़ा अनुपम धर्म
 किता है; मतः मैं अत्यन्त प्रसन्न होकर तुम्हें पर उत्तम
 अयुध प्रदान करता हूँ ॥ ७ ॥
 यावत् सुहृद्व्य विप्रैश्च न विरुध्येमहासुर ।
 तापच्छूल तयोर्धं न्यावन्मया मादामेव्यति ॥ ८ ॥
 महान् असुर । जबतक तुम जादुओं और देवताओंसे
 विरोध नहीं करते, तभीतक पर शूल तुम्हारे पास रहेगा,
 भयना बरहस्य हा अयण ॥ ८ ॥
 पञ्च त्वामभियुञ्जीत युद्धाय विगतज्वरः ।
 त शूले भस्मसात्कृत्या पुनरेव्यति ते कर्म ॥ ९ ॥
 'जो पुत्र नि शूल होकर तुम्हारे खमने पुदके खिने
 मयना उठे भस्म करके पर शूल पुनः तुम्हारे हाथमें ब्रैट
 मयण ॥ ९ ॥
 परं शूलाद् ध्वं लब्ध्या भूय एव महासुरः ।
 भविष्य म्हादेय पापयमेतदुवाच ह ॥ १० ॥
 म्हात्मान् ब्रह्मसे ऐला कर पाकर बह महान् असुर म्हादेव-
 कीसे प्रणाम करके फिर इस प्रकार बोला— ॥ १० ॥
 भगवन् मम पंचाम्य शूलमेतदनुत्तमम् ।
 मयत् तु सतत देय सुखायाम्नीयरो हसि ॥ ११ ॥
 'भगवन् । देवाधिदेव । आप समस्त देवताओंके स्वामी
 हैं म्हाः आपने प्रार्थना है कि परम उत्तम शूल मेरे बंधनोंके
 लय भी लदा रहे ॥ ११ ॥
 तं सुवाच मधु वैद्यः सर्वभूतपतिः दिवः ।
 प्रयुयाच महादेवो नैनदेव भविष्यति ॥ १२ ॥
 'एही बात करनेवाक उठ मधुमे खमल प्राणियोंके
 भविष्यति म्हात्मान् देवता भगवान् शिवने इस प्रकार बला—
 'ऐला तो मदी हो मरगा ॥ १२ ॥
 मा भूत् विरज्या पाणी मयप्रसादात्तुभा ।
 भयतः पुत्रमेक तु शूदमेतद् भविष्यति ॥ १३ ॥
 परंतु मुझे प्रसन्न जानकर तुम्हारे मुग्धने जो तुम जानी
 निष्कमी है पर भी निष्कम न हो इनलिये मैं पर देता हूँ
 कि तुम्हारे एक पुत्रके पास पर शूल रहेगा ॥ १३ ॥
 पणत कल्पः शूलोऽयं भविष्यति क्षुत्तम्य त ।
 पणतः स्वभूतानां शूलस्तथा भविष्यति ॥ १४ ॥
 ब' रूप कर्तक तुम्हारे पुत्र हाथमें मोहर रहेगा
 तबतक बह कल्प प्राणियोंके लिये भयान बना रहेगा ॥ १४ ॥

य मधुर्वर कृष्णा देवात् सुमहवद्भुतम् ।
 भयन सोऽसुरभेष्टः कारयामास सुप्रभम् ॥ १५ ॥
 म्हादेवकीसे इस प्रकार अत्यन्त भद्भुत कर पाकर
 असुरभेष्ट मधुने एक सुन्दर मयन तैयार कराया, जो अत्यन्त
 गीतिमान् था ॥ १५ ॥
 तस्य पत्नी महाभाग प्रिया कुम्भीकसीति या ।
 विश्वाधसोरपत्य साप्यन्तल्या महाप्रभा ॥ १६ ॥
 उसकी प्रिय पत्नी महामाग कुम्भीकसी थी, जो विश्वाधसु
 की खान थी । उसका कर्म अन्तःके गर्भसे हुआ था ।
 कुम्भीकसी वही अन्तिमती थी ॥ १६ ॥
 तस्याः पुत्रो महावीर्यो लयणो नाम वारुणः ।
 पादव्यात्प्रसूति तुष्टात्मा पापाम्येयं समाचरत् ॥ १७ ॥
 'उसका पुत्र महत्प्रकामी लयण है जिसका स्वभाव बड़ा
 मयकर है । बह दुष्टता बचनसे ही केवल पापाचारमें
 प्रवृत्त रहा है ॥ १७ ॥
 तं पुत्रं बुर्बिनीत तु द्यूतं श्रेष्ठसमन्वितः ।
 मधुः स शोकमापेत् न शैव किञ्चिदप्रवीत् ॥ १८ ॥
 अपने पुत्रको उदण्ड हुआ देल मधु श्रेष्ठसे बसता
 रहता था । उठे श्रेष्ठी दुष्टता देखकर बड़ा शोक हुआ,
 तथापि बह इसने कुछ नहीं बोध्य ॥ १८ ॥
 स विहाय इमं शोकं प्रविष्टो यत्नजालयम् ।
 शूलं निषेदय लवणे पर तस्मै न्यपेदयत् ॥ १९ ॥
 'अन्तमें बह इत देवका छाड़कर लुट्टमें रहनेके लिये
 खस गया । बसते खस उठने पर शूल लवणको दे दिया
 और उठे परदानकी बात भी बला गी ॥ १९ ॥
 स प्रभायण शूलस्य क्षीराभ्येन्यत्नस्तथा ।
 संत्यपयति स्त्रेकांजीन् विदायेण घ तापसान् ॥ २० ॥
 'अब बह दुष्ट उठ शूलके प्रभावसे तथा अपनी मुल्लाके
 खरन तीनों स्त्रेकोंको विज्ञेन तपस्वी मुनियोंको पदा क्षाप
 दे रहा है ॥ २० ॥
 पणप्रभायो स्थण शूलं वीय तथापिधम् ।
 शून्या प्रमाणं वरकुण्डल्य स्व ति नः परमा गतिः ॥ २१ ॥
 'उठ मयनामुका ऐला प्रभाव है और उठक पास देगा
 शक्तिघाथी शूल भी है । लुनन्दन । यह तब मुनका यथन्तित
 कार्य करनेमें आज ही प्रमाण है और भाव ही हमारी परम
 गति है ॥ २१ ॥
 पद्यं पाथिया राम भयार्त्तश्रुतिभिः पुत्र ।
 अथय पाथिता वीर प्राणात् न थ विग्रह ॥ २२ ॥
 भीराम । अन्तमें परने मयण दीकित हुए श्रुति अन्तः
 शूलाकेर पण कर्तक भयवरी निहा मौन कुके
 है परंतु वीर लुने । अन्तःके लिये शूल नती मिय ॥

ते पर्य राघवं भुत्वा हतं सबलवाहनम् ।
 आतार बिभ्रधे तप्त नाभ्य मुषि तराधिपम् ।
 तत् परिश्रुतामिच्छामो लब्धत्वात् भयपीडितान् ॥ २३ ॥
 पद्य । हमने सुना है कि आपने सेना और सवारियों-
 सहित राघवका संहार कर डाला है इसलिये हम आपकी ओ
 अपनी रक्षा करनेमें समर्थ समझते हैं, भूलकर वृद्धे किसी
 राघवके नहीं। अतः हमारी इच्छा है कि आप हमसे पीडित
 हुए महर्षियोंकी लज्जासुरते रक्षा करें ॥ २३ ॥

हजारों श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये अदिकाभ्ये उत्तरकाण्डे पृथ्वरहितमः सर्गः ॥ २३ ॥
 इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीये श्रीरामायणे उत्तरकाण्डमें एकसठवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ २३ ॥

द्विषष्टितम सर्ग

श्रीरामका श्रुतियोंसे लज्जासुरके आहार बिहारके विषयमें पूछना और शत्रुघ्नकी
 रुचि जानकर उन्हें लक्ष्मण-वधके कार्यमें नियुक्त करना

तयोक्ते तानुपीन रामः प्रत्युवाच कृताञ्जलिः ।
 किमाहारः किमाचारो लज्जणः क्व च वर्तते ॥ १ ॥
 श्रुतियोंके इस प्रकार कहनेपर श्रीरामकाश्रुतियोंने उनसे
 हाथ बढ़कर पूछा—लज्जासुर क्या खाता है? उतकभान्ना
 क्याकार केसा है—उदने-उदनेका डंग क्या है? और वह क्यों
 खाता है? ॥ २ ॥
 राघवका वधः श्रुत्वा श्रुतयः सद्यं पथ ते ।
 तन्मे निवेद्यपामासुर्लज्जणो पृथुधे यथा ॥ २ ॥
 श्रीरघुनाथकी श्री यह बात सुनकर उन सभी श्रुतियोंने
 किस तरहके आहार-व्यवहारसे लज्जासुर पका पा, वह सब
 कह सुनाया ॥ २ ॥
 अहारः सर्वसंरथानि विशोषण च तापसाः ।
 आचारो रौद्रव्य नित्यं वासो मधुवनं तथा ॥ ३ ॥
 वे बोले—प्रभो! उतकभान्ना तो घनी प्राणी हैं
 परंतु विशेषतः वह तपस्वी मुनिकोंके खाता है। उनके आहार
 व्यवहारसे बड़ी कृता और भ्रान्तका है और वह तथा
 मधुवनमें निवास करता है ॥ ३ ॥
 इत्या बहुसहस्रानि सिंहभ्यामृग्गाण्डजात् ।
 मनुष्यांश्चैव कुठलं मित्यमाहारमाह्निकम् ॥ ४ ॥
 वह प्रतिदिन कई लाख सिंह व्याम गृग ज्यों और
 मनुष्योंके मांसकर का खाता है ॥ ४ ॥
 ततोऽन्तर्याणि सारथानि खादते च महाबलः ।
 संहारे क्षामनुप्रान्ते व्यादित्यस्य इवास्तका ॥ ५ ॥
 अंतर्हाराक्ष्य आनेपर मैं ही बाकर लड़े हुए बसयके
 समान वह महाबली अमर वृद्धे वृद्धे बीबींध भी खाता
 पछा है ॥ ५ ॥
 तच्छ्रुत्वा राघवो वाक्यमुवाच स महासुवीन ।
 घातयिष्यामि तद् रसो व्यपगच्छतु वो भयम् ॥ ६ ॥

इति राम निवेदित तु ते
 भयर्जं करणमुत्थित च सत् ।
 विनिवारयितु भवान् क्षमः
 कुठ त काममहीनविक्रम ॥ २४ ॥
 पृथ्वरहितमसे सम्पन्न श्रीराम । इस प्रकार हमने जानने
 के मध्य करण उपस्थित हो गया है वह हमने आपके ज्ञान
 निवेदन कर दिया। आप इसे पूर करनेमें समर्थ हैं, अतः
 हमारी यह अगिच्छा पूर्ण करें ॥ २४ ॥

उतक यह कथन सुनकर श्रीरघुनाथकीने उन महामुनियों
 से कहा—महर्षियों! मैं उतक उतकको मरवा डारूँगा।
 आपकापैकर मय वृ हो जाना चाहिये ॥ ६ ॥
 प्रतिज्ञाय तथा तेषां मुनीनामुप्रतंजसाम् ।
 स भ्रातृन् सहितान् सर्वांनुयाच रघुमन्वना ॥ ७ ॥
 इस प्रकार उन उतक उतककी मुनियोंके समक्ष प्रतिज्ञा करके
 रघुकुलमन्त्र श्रीरामने वहाँ एकत्र हुए अपने लव महर्षी
 से पूछा— ७ ॥
 को हस्ता लवर्षं वीरः कस्यांशाः स विधीयत्वम् ।
 भरतस्य महाबाहोः शत्रुघ्नस्य च धीमता ॥ ८ ॥
 पशुभो! लज्जाके कौन वीर मरेगा? उसे किसके
 हिलेमें रक्ता वध-महाबाहु मरनेके मा बुद्धिमान् शत्रुघ्नके ॥
 राघवके मनुकुलस्तु भरतो वाक्यमब्रवीत् ।
 महमेन वधिष्यामि मर्मांशः स विधीयत्वम् ॥ ९ ॥
 रघुनाथकीके इस प्रकार पूछनेपर मरनेकी बोले—प्रभो!
 मैं इस लज्जाका वध करूँगा। इसे मेरे हिलेमें रक्ता वध ॥
 भरतस्य वधः भुत्वा धैर्यशौर्यसमन्वितम् ।
 सक्षमनायकस्तस्यै हित्वा सौवर्षमासनम् ॥ १० ॥
 शत्रुघ्नस्यवधवीक् वाक्यप्रथितस्य तराधिपम् ।
 कृतकर्मा महाबाहुर्मध्यमो रघुमन्वना ॥ ११ ॥
 भरतकीके वे पीरता और वीरतापूर्ण शत्रु घ्नकर
 शत्रुघ्नकी सेनेका निहतन डोड़कर लड़े हो गये और महाबाहु
 श्रीरामको प्रणाम करके बोले—रघुमन्त्र । महाबाहु मरने
 मेरा ही बहुत से करने कर चुके हैं ॥ ११ ॥
 आर्येण हि पुरा श्रुत्या त्वयोप्या परिपासिता ।
 सताप हृदयं कृत्वा धैर्यम्यातामनं प्रति ॥ १२ ॥
 पहले जब महाबाहुपुत्री आपसे कृती हो गयी थी उत
 लज्जा आपके आतामन-नास्तक हृदयमें अकल्प संताप

द्विे इतोने अयम्प्रापुवीक्ष पाञ्चन क्रिया या ॥ १२ ॥
 दुःखानि च बहुतीह अनुभूतानि पापिषि ।
 शयानो दुःखदाय्यास्तु मन्दिप्रामे महापदाः ॥ १३ ॥
 पञ्चमूखाशानो मूत्रा जटी वीरधरस्तथा ।
 पृथ्वीनाथ । महापशुली मरुते नन्दिग्रामे कुःखर
 शयानो भेदे हुए परबे बहुतसे कुःख भोगे हैं । ये पञ्च-
 नूख खाकर रहते थे और शिरपर क्या बदाये थीर बल धारण
 करते थे ॥ ११२ ॥
 म्नुमूषेष्टा दुःखमेव राक्षसम्भूतः ॥ १४ ॥
 प्रेषे मयि स्थिते राजन् न मूयः क्लेशमाप्नुयात् ।
 प्पाहाय । ऐसे-ऐसे कुःख भोगकर ये खड्गकन्दन
 म्पु इस छेकक रहते हुए अब फिर अधिक क्लेश न
 आयें ॥ ११४ ॥
 तथा वृषति शत्रुघ्ने राक्षसः पुनरप्रवीत् ॥ १५ ॥
 एव भवतु काकुत्स्थ क्रियता मम शासनम् ।
 पाये त्वामभियेक्ष्यामि मभोस्तु नगरे शुभे ॥ १६ ॥
 एतुनके ऐख करनेर भीखुनायथी फिर बडे-
 काकुत्स्थ । तुम नेता कहते हो वैद्य ही हा । तुम्हीं मेरे इस
 कर्मका पावन करो । मैं तुम्हें मनुके सुन्दर नगरमें राखके
 पन मभियेक करूँगा ॥ १५-१६ ॥
 निवृत्त महाबाहो भरत यद्यचेक्षसे ।
 शुम्भं हतविद्यम् समयाद्य निवेशने ॥ १७ ॥
 प्पाहाय । यदि तुम मरुतके कथा देना ठीक नहीं
 लगने हा इतक नहीं खते हो । तुम धरवीर हो अन्न-विषा
 हापसे भीमद्वामाये बाहसीकीये अहिकाम्ये उत्तरकाण्डे त्रिपष्टितम- सर्गः ॥ १२ ॥
 स उत्तर श्रीवल्किर्निर्मित उत्तरकाण्डम अहिकाम्यक उत्तरकाण्डमे कतल्यो समा पूरा हुआ ॥ १२ ॥

के हाथ हा तथा तुममें नूतन नगर निमाण करनेकी
 शक्ति है ॥ १७ ॥
 नगर यमुनाशुष्ट तथा जमपदास्तुभान् ।
 यो हि बरा समुत्पात्य पापिष्वस्य निषेधने ॥ १८ ॥
 न विभते नृपं तत्र मरक स हि गच्छति ।
 तुम यमुनाकीक ठपर सुन्दर नगर बख बकते हो और
 उत्कलेष्म बनदोकी स्थानना कर सकते हो । जो किसी राक्ष
 के बराका उच्छेद करके उसकी राक्षानीमें घूसे राखके
 स्थापित नहीं करता वह नरकमें पड़ता है ॥ १८ ॥
 स तत्र हत्या मधुसूत लक्षण पापनिष्कयम् ॥ १९ ॥
 राज्य प्रशाधि धर्मेण बाप्य मे यद्यचेक्षसे ।
 उत्तर स न वक्तव्य शूरा वाक्यान्तरे मम ॥ २० ॥
 वालेन पूर्वजम्याहा कर्तव्या नाथ सहायः ।
 अभियेक च काकुत्स्थ प्रतीच्छल्य ममोद्यतम् ।
 वसिष्ठमनुकैर्विषेधि धिमाश्रपुररहृतम् ॥ २१ ॥
 अतः तुम मनुके पुत्र पापात्मा लक्षणसुरक मारकर धम
 पूर्वक बहोके राक्षक शासन कर । धरवीर । यदि तुम मेरी
 बात मानने योग्य समझो तो मैं जो कुछ कहता हूँ उसे सुन-
 काय धीकार करो । बीचमें बात काटकर कोई उत्तर तुम्हें
 नहीं देना चाहिये । बाककके अन्तस ही अपने बहोकी
 आशाका पावन करना चाहिये । शत्रुना । कथि आदि मुख्य-
 मुख्य मासत्र विधि और मन्त्रोच्चारणके साथ तुम्हारा अभियेक
 करेगे । मेरी आशासे प्राप्त हुए इस अभियेकके तुम
 स्वीकार करो ॥ १९-२१ ॥
 उत्तरकाण्डे त्रिपष्टितम- सर्गः ॥ १२ ॥

त्रिपष्टितम सर्ग

श्रीरामदारा शत्रुघ्नका राक्ष्यामिपक तथा उन्हें लवणासुरक शूलसे बधनेके उपायका प्रतिपादन
 एवमुक्तस्तु रामेण परां वीजानुपागमत् ।
 शत्रुघ्न वीयसन्मथो मम् मम्मुभाष ह ॥ १ ॥
 शीयमन्त्रकीके देखा करनेपर बख-बिजन्ते सम्म
 एतुन बह बहित हुए और धरि धरि बोके— ॥ १ ॥
 ममै विर काकुत्स्थ अस्मिन्नर्थे नरोत्तर ।
 क्य त्रिपुम्बु ज्येष्ठपु कनीयानभिनिययते ॥ २ ॥
 काकुत्स्थकुम्भरन नरेभ । इस अभियेकके स्वीकार
 करनेके हा तुम अथम जान पड़ता है । मया बडे भारकीके
 पर हुए हाउका अभियेक कैसे किया जा सकता है ? ॥२॥
 मवय करवीय च शासन पुरकर्णम् ॥ ३ ॥
 लपारी पुरधर । महाभाग । मानकी आकाका पावन
 हा तुम मरस करने ही चाहिये । आपका शासन कित्थक
 निवे ही सुर्बहु है ॥ ३ ॥

लवणासुरक शूलसे बधनेके उपायका प्रतिपादन
 त्वक्तो मया भुत वीर भुतिभ्यश्च मया भुतम् ।
 मोत्तर हि मया वाक्य मध्यमे प्रतिज्ञानति ॥ ४ ॥
 धीर । मैंने आन्ते तथा वेनबाकीके भी यह बात सुनी
 है । बाककमें मसक मैदाक प्रतिज्ञा कर देनेपर तुमने कुछ
 नहीं बोचना चाहिये था ॥ ४ ॥
 व्याहृतं दुषयो धान् हस्त्यासि खड्ग मूषे ।
 तस्वीच मे दुदुल्लस्य दुर्गतिः पुठपर्वम् ॥ ५ ॥
 मेरे मुँहसे य बडे ही अनुचित शपथ निकल गये कि
 मैं खड्गका मार्ग्या । पुकलेष्म । ठप अनुचित कपनका ही
 परिग्राम है कि मेरी इसप्रकार दुर्गति हा रही है (तुमने बहोके
 हाते हुए अभियेक इना पड़ता है) ॥ ५ ॥
 उत्तर तदि वक्तव्य ज्येष्ठजाभिहित पुनः ।
 मधमसहित वीच परलाकविषयितम् ॥ ६ ॥
 बडे भारक केकनेर इस फिर कुछ उत्तर नहीं देना

वाश्रिये या' (मर्षात् मेया मरतने च व छत्राद्ये मारनेष्व
निर्णय कर हिमा तत्र मुने उद्यमे दक्षक नही देना वाश्रिये
य) परद्रु मैने इश नियमकर उरुह्वन किया, इलीखिये अपने
देख (उरुह्वानिद्विपदक) आवेद्य दे दिया । ओ स्त्रीकर
कर सेनेपर भरे खिये अर्धममुक्त होनेके कारण परछेकने
छात्रमे मी वक्षित करनेवाला है । तथापि आपकी भाव्य मेरे
स्त्रिय पुत्ररूप हे मत मुने इसके स्त्रीकर करना ही
पड़ेगा ॥ ९ ॥

सोऽहं द्वितीयं काकुत्स्थ न वक्ष्यामीति चोत्तरम् ।
मा द्वितीयेन वृष्टो वै निपतेऽस्मयि मानव् ॥ ७ ॥
काकुत्स्थ ! अब आपकी ओ भाषा हो चुकी, उसके
विक्रम मैं वृष्ट करे उचर नहीं दूँगा । मानव ! कहीं ऐसा
न हा कि वृष्ट करे उचर देनेपर मुझे इसके भी कठोर दण्ड
मंगना पड़े ॥ ७ ॥

कामकाये ह्यह राजस्तवास्मि पुरुपर्यभ ।
अधर्मं जहि काकुत्स्थ मस्त्वते रघुमन्वन् ॥ ८ ॥
रावन् ! पुरुषवत्तर खलुमन् । मैं आपकी इच्छाक
अनुसार ही कार्य करूँगा । किंतु इसमें मेरे खिये व अधर्म
प्राप्त होता हो उलका नाश आप करे ॥ ८ ॥

एवमुक्ते तु शूरेण शत्रुभ्येन महात्मना ।
उवाच रामः सङ्क्षो भरत उद्धमप तथा ॥ ९ ॥
शरीर म्हात्मा शत्रुभ्येके एक करनेपर भीरुमन्वन्वही
बड़े प्रसन्न हुए और मरठ तथा सम्पन्न आदिसे बोले—॥९॥

सम्भारानभिप्रेकस्य आनयत्वं समाहितम् ।
अथैव पुत्रव्याप्तमभिप्रेक्यामि राघवम् ॥ १० ॥

‘तुम सब भाग्य बड़ी खबरानीके साथ उरुह्वानियेककी
खामती बुराकर छ आओ । मैं अभी खकुञ्जवन्त पुत्रपति
शत्रुभ्येका अभिप्रेक करूँगा ॥ १ ॥

पुरोधस ए काकुत्स्थ नैगमानुत्विजस्ताथा ।
मन्त्रिष्वप्यथैव ताम् सर्वानानयष्व ममाह्वया ॥ ११ ॥

‘अनुत्थ ! मेरी भाषासे पुरोधित वैदिक विद्वानों
श्रुतिमें तथा छमदा मन्त्रियोंके इत्य आओ’ ॥ ११ ॥

राजः शासनमाहाय तथाकुर्वमहारथा ।
अभिप्रेकसमारम्भं पुरस्त्वस्य पुरोधसम् ॥ १२ ॥
प्रविद्या राजभवनं राजानो ज्ञाप्यास्तथा ।

मदावज्ञी भाषा पाकर महारथी भरत और सम्पन्न
आदिसे वैद्य ही किया । वे पुरोधितकी ओ भागे करके अभिप्रेक-
की खामती साथ खिये उरुह्वानने भाये । उनके साथ ही
बहुत से राघव और शत्रुघ्न भी बहो आ पहुँचे ॥ १२ ॥

ततोऽभिप्रेको ववृषे शत्रुभ्यस्य महात्मना ॥ १३ ॥
सम्प्राह्वयकरा श्रीमान् राघवस्य पुरस्य च ।

तरन्तर महात्मा शत्रुभ्येके वैभववाली अभिप्रेक आरम्भ

हुमा ओ भीरुपुतासनी तथा समस्त पुरवाशिर्भेके हर्षके
कदानेवाणा या ॥ १३ ॥

अभिप्रेकस्तु काकुत्स्थो बभौ वादित्यसनिभा ॥ १४ ॥
अभिप्रेकाः पुरा स्वन्वः सेन्द्रीरिच विव्रीकसैः ।

बैसे पूर्वकालमें इन्द्र आदि देवताओंने स्वन्वका देवसेना-
पठिके परपर अभिप्रेक किया या उली तरह भीरुम आदिने
बहो शत्रुभ्येका राघवके परपर अभिप्रेक किया । इस प्रकार
अभिप्रेक होकर शत्रुभ्येके हर्षके समान सुप्रोमित हुए १४ ॥

अभिप्रेके तु शत्रुभ्ये रामेष्वाह्वियकर्मणा ॥ १५ ॥
पौराः प्रमुदित्वाश्वासन् प्राज्ञाणाञ्च ववृषुस्तथा ।

केशेदारदित कर्म करनेवाले भीरुमके द्वारा वच शत्रुभ्येका
राम्याभियेक हुआ तब उर नगरके निवासियों और बहुसंख्य
राजपथोंके बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ १५ ॥

कौसल्या च सुमित्रा च महत्स केकयी तथा ॥ १६ ॥
बहुस्तथा राजभवने याश्चाम्या राज्यापिता ।

इस समय कौसल्या सुमित्रा और केकेयी तथा राज-
मन्त्री अन्य राजमन्त्रियोंमें मिश्रकर महत्कर्म सम्पन्न
किया ॥ १६ ॥

शुष्यपञ्च महात्मानो यमुनातीरवासिना ॥ १७ ॥
हत छयजमारांस्तुः शत्रुभ्यस्याभियेकतात् ।

शत्रुभ्येका उरुह्वानियेक होनेसे यमुनातीरनिवासी
महात्मा श्रुतियोंके यह निश्चय हो गया कि अब छत्रवृद्ध
मार गया ॥ १७ ॥

ततोऽभिप्रेक शत्रुभ्यमहमारोप्य राघवः ।
उवाच मधुरां वार्ष्णीं तेजस्तस्याभिपूरयम् ॥ १८ ॥

अभिप्रेकेके पश्चात् शत्रुभ्येके रोदमें विडाकर श्रीशत्रुभ्ये-
कीने उनका तेज बढ़ते हुए मधुर वार्ष्णीमें कहा—॥१८॥

अथ शारस्वमोषस्ते दिव्यः परपुरजयः ।
अनेन खपव सीम्य हस्तासि रघुमन्वन् ॥ १९ ॥

रघुमन्वन् । छीम्य शत्रुभ्ये । मैं दुम्ने वह दिव्य अमोष
बाण दे रहा हूँ । तुम इसके द्वारा छत्रवृद्धके अन्वय मर
जाओगे ॥ १९ ॥

सुष्टः शारोऽय काकुत्स्थ यदा शोथे महापथे ।
खयमूरकितो दिव्यो यं नापश्यत् सुरासुराः ॥ २० ॥

अदृश्यः सर्वभूतानां तेजस्य हि शारोचमा ।
सुष्टः क्रोधाभिमुखेन विग्नशार्यं बुरात्मनोः ॥ २१ ॥

मधुकैटभयोर्वीरं विद्याते सर्वरक्षस्यम् ।
शत्रुक्षमम सोकाह्वीसी वामेन हतौ पुषि ॥ २२ ॥

ती हत्या अगभोगार्थे कैटभं तु मधुं तथा ।
अनेन शारमुत्प्रेम ततो खेकर्वंश्चकार सः ॥ २३ ॥

‘काकुत्स्थ ! निम्नके प्रभवकालमें वह निम्नसे ही परलित
न होनेवाले अकन्धा एवं दिव्य रूपधारी मधुवान्, विष्णु मन्त्र
एकत्रर्षके कर्मों धरन करते थे उर छत्रवृद्ध उन्हें देवता और

मरुतं नहीं देल पाते ये । व सम्पूर्ण भूतोंके लिये अरुण
 है । और । उधी समय उन मगवान् नापयकने ही कुपित ही
 इत्यथ मधु और कैटभके विनाश तथा समस्त राक्षसोंके शंहर
 के लिये इह दिग्भ, उत्तम एवं अयोध बाणधी सुधि श्री थी ।
 उन समय वे दोनों लक्ष्मणकी सुधि करना चाहते थे और मधु,
 कैटभ तथा अन्य सब राक्षस उद्यममें विघ्न उपस्थित कर रहे
 थे । अतः मगवान्ने इही बाणसे मधु और कैटभ दोनोंको
 पुनर्मथ्य था । इस मुख्य बाणसे मधु और कैटभ दोनोंको
 मरकर मगवान्ने श्रीलोकके कर्मसूत्र-भोगकी धिक्रिके लिये
 तिग्मिन् शरीरकी रचना की ॥ २ - २१ ॥

शय मया शरः पूर्वं राक्षणस्य धधार्थिन्म ।
 मुक्तं शत्रुञ्च मृतानाम महान् ह्रासो भवेदिति ॥ २४ ॥
 शत्रुञ्च । पहले मैंने राणाका बध करनेके लिये मी इस
 शरप्र प्रयोग नहीं किया था । क्योंकि इसके द्वारा बहुतसे
 धनिके नष्ट हो जानेकी अपेक्षा थी ॥ २४ ॥

वह तस्य महच्छूल इयम्यकेण महात्मना ।
 इह शत्रुविनाशाय मधोरायुधमुत्तमम् ॥ २५ ॥
 म् शूलिसिप्य भवने पूज्यमान पुनः पुनः ।
 दिशो सबा समामाप्त प्राप्नोत्याहारमुत्तमम् ॥ २६ ॥
 शरके पास था महात्मा महादेवकी प्र शत्रुविनाशके
 लिये दिया हुआ मधुप्रद विष्णु उत्तम एवं महान् शूल है
 शरप्र पर प्रतिदिन बारबार पूजन करता है और उसे महत्तम
 पुनःपुनः रणकर समस्त दिशाओंमें व्यवहार करने लिये
 उत्तम आगरका शंहर करता है ॥ २५ २६ ॥

हृषीकेशे श्रीमहाभारते बाष्पनीकीये भाविकार्य्य उत्तरकाण्डे चतुःपष्टितमः सर्गः ॥ ११ ॥
 एव शरश्च श्रीमन्मैत्रिकीर्तिर्निर्मितं सर्वराज्यवध करिष्याम्यह उत्तरकाण्डे चतुःपष्टितमः सर्गः ॥ ११ ॥

पदा तु युद्धमाकाङ्क्षन् कश्चिद्वन समाह्वयेत् ।
 तदा शूलं गृहीत्वा तु भस्म रसा करोति हि ॥ २७ ॥
 श्वर शेर युद्धकी इच्छा रखकर उसे लसकारता है,
 तब वह राक्षस उद्यमको रोक करने विपरीत मस कर
 देता है ॥ २७ ॥

स ह्य पुरुषशार्दूल तमायुधविनाशकृतम् ।
 अप्रविष्टं पुर पूर्वं द्वारि तिष्ठ चूतायुधम् ॥ २८ ॥
 'पुरुषसिंह । जिस समय वह शूल उसके पास न हो और
 वह नगरमें मी न पहुँच सके है, उधी समय परबसे ही
 नगरके द्वारपर बाहर अन्न-शाल बाण लिये ठहरी प्रतीक्षामें
 बट रही ॥ २८ ॥

अप्रविष्टं च भयनं युद्धाय पुरुषयभ ।
 आह्वयेथा महाबाहो ततो हस्तासि राक्षसम् ॥ २९ ॥
 'महाबाहु पुरुषात्तम । यदि उस राक्षसका महत्तम पुत्र
 से पहले ही तुम युद्धके लिये लड़करगये तब भवस्य उसका
 बध कर सकेगे ॥ २९ ॥

अभ्यया क्रियमाणे तु शयभ्यः स भविष्यति ।
 यदि स्वये कृत्य वीर विप्रशत्रुमुपपान्यति ॥ ३० ॥
 येता न करनेपर वह भवस्य ही शयगा । वीर । यदि
 तुमने ऐसा किया तो उस राक्षसना विनाश शरपर ही रहेगा ॥
 एतत् से सर्वमाप्यात शूलस्य च विषयदा ।
 श्रीमता शितिकण्ठस्य हृत्स्य दि दुरतिक्रामम् ॥ ३१ ॥
 'इव प्रकार मैंने तुम्हें उस शूलसे बचनेका उपाय तथा अन्य
 सब आवश्यक बातें बता दी क्योंकि श्रीमान् मगवान् कीर्ष-
 कण्ठक विनाशको पकड़ना बड़ा कठिन काम है ॥ ३१ ॥

उत्तरकाण्डे चतुःपष्टितमः सर्गः ॥ ११ ॥
 एव शरश्च श्रीमन्मैत्रिकीर्तिर्निर्मितं सर्वराज्यवध करिष्याम्यह उत्तरकाण्डे चतुःपष्टितमः सर्गः ॥ ११ ॥

चतुःपष्टितमः सर्गः

भारामकी आज्ञाक अनुसार शत्रुपन्नका सेनाको आग भेजकर एक
 मासक पश्चात् स्वयं भी प्रस्थान करना

एतन्मुपया य काकुत्स्थ प्रदास्य च पुनः पुनः ।
 पुनरप्यार पाप्यमुपाय रघुमन्दा ॥ १ ॥
 शत्रुपन्नका इम प्रकार समझकर और उनकी बारबार
 प्रोत्साहन करके लड़कामन्त श्रीपुनः पर बात करी—॥
 एतन्मुपयाय चत्वारि पुरुषयभ ।
 एतान् द्व सहस्र च गच्छानां दातनुत्तमम् ॥ २ ॥
 एतान्पुनःपुनः न्यासायप्यापाभिता ।
 अनुगच्छन्तु शत्रुस्य तथ्य मदनतका ॥ ३ ॥
 पुनःपुनः । व बार बार यह ही हस्त रूप से
 लक्ष्मण और रामने तर-तरके समानकी बुद्धिमें समानेताप
 निन्दन विषयके श्लोकायक बहुतसे शय हस्तारे शय

शयगे । शय ही मनरुद्धने लिये नट और ननद भी
 रहे ॥ १ ॥
 द्विरभ्यस्य सुयुगम्य नियुत पुरुषयभ ।
 आयाय गच्छ शत्रुञ्च पयातधनयानम् ॥ ४ ॥
 पुनःपुनः शत्रुञ्च । तुम दो शय शत्रुपन्नका
 शय । इत तरह पयात धन और शारीरों करने लय
 रणा ॥ ४ ॥
 बल च सुभूत वीर हृष्टुश्चमनुजतम् ।
 सम्भायासगमनत रत्रयस्य मरात्तम् ॥ ५ ॥
 इव मनाश भनीमैत्रीभरा-पन्न विदागपरी । य ही
 तय उद्यममें दूज हंशु और उरुपन्नक रित रर मरुद

के अर्धन खनेवाली है । नरभेद । इसे मधुर मान्यते और
 धन देकर प्रसन्न रहना ॥ ५ ॥

महायास्तत्र तिष्ठति न क्षारा न च बालधवा ।
 सुभीतो मृत्युवर्गस्तु यत्र तिष्ठति रामश्च ॥ ६ ॥

मृत्युवर्ग / अत्यन्त प्रसन्न रहने लगे सेवक-समूह
 (सेनिक) जहाँ (जिस संकेतकाक्रमे) जाके होते या स्वयं
 वंते हैं; वहाँ म सा धन टिक पाता है न ही ठहर सकती है
 और न मर-बन्धु ही जाके हो सकते हैं (अतः उन स्थानों
 परा उद्गृह्य रचना प्राप्ति) ॥ ६ ॥

अतो हृदयजगद्धीर्षो प्रस्थाप्य महतीं वसुम् ।
 एक पक्ष धनुष्याधिर्गच्छ त्व मनुजो वनम् ॥ ७ ॥
 यथा स्वा न प्रज्ञानप्रति गच्छन्तं सुखच्छास्त्रियम् ।
 स्वयंपस्तु मयोः पुत्रस्ताथा गच्छेत्तद्विद्वितम् ॥ ८ ॥

इत्यपि हृदय-पुत्र मनुष्योऽसि कश्चिदिदं पुरुषवर्ध ।
 सेना के भागे मेककर तुम पीछेसे जाके ही केवल वतुण हाथमें
 केकर मनुष्यको जाना और इस तरह अज्ञा करके कितने
 मनुष्य स्वयंको बर संवेद न हो कि तुम पुत्रकी इच्छते
 नहीं था रहे हो । तुम्हारे गति-विधिअ तसे पता नहीं
 जायिये ॥ ७-८ ॥

न तस्य मृत्युरस्योऽस्ति कश्चिदिदं पुरुषवर्ध ।
 वरानं योऽभिगच्छेत्त स यथो स्वयणेन हि ॥ ९ ॥

पुत्रप्रेतम । मीने को बताना है उसके सिवा उलकी
 मृत्युका वृत्त कोई उपाय नहीं है क्योंकि जो भी वृत्तहित
 स्वयंमुरके इदियमने आ जाव है वह अत्यन्त उसके द्वारा
 मर जाता है ॥ ९ ॥

स भीष्म अयपातं तु बर्षायात्र उपागते ।
 हर्म्यास्त्य रुक्मण सीम्य स हि काश्लेऽस्य पुमतेः ॥ १० ॥

श्वेयम् । जब भीष्म शूद्र निकर जाय और बर्षाकाय आ
 जाव तब धर्म्य तुम सज्यामुरका बच फलना क्योंकि तब
 मुजुदि रखलके नायात्र बरी कम है ॥ १ ॥

महर्षीस्तु पुरस्त्वस्य प्रयागु तत्र सैनिकः ।
 यथा भीष्मायशोपेण तरेयुर्गार्वाग्रसुम् ॥ ११ ॥

पुनरि सेनिक महर्षीको भगो करके पहिले जाना
 करें किन्ने भीष्म शूद्र बीरते बीरते वे गार्वाकी पार कर
 जब ॥ ११ ॥

तत्र स्थाप्य पठ सूर्यं जदीतीर समादिता ।
 अग्रता धनुषा सार्धं गच्छ तत्र लघुविक्रम ॥ १२ ॥

वीमरकाकी बीर । फिर लयी सेनाको वहीं गद्वाकीके

हाथमें धीमहात्मने वास्वीकीके अतिहाय्ये उत्तरकायके मनुष्यहितमः सर्गः ॥ १३ ॥
 इस प्रकार श्रीरामकीकर्मिनिर्दिष्ट अर्षात्मवण जदी-ग्रामके उत्तरकायमें श्रीसर्गों का पूरा हुआ ॥ १४ ॥

उपर ठहरकर तुम धनुषमात्र केकर पूरी खबानीके सब
 अक्षेमें ही भागे जाना ॥ १२ ॥

एवमुक्तस्तु रामेण शत्रुणस्त्वन महाबल्वन ।
 सेनामुखाय सन्मानीय ततो बाल्ययमुवाच ह ॥ १३ ॥

धीरमन्त्रकीके ऐसा कहीपर शत्रुजन्मीने अपने प्रथम
 सेनापतियोंको बुकना और इस प्रकार कहा— ॥ १३ ॥

एते को गवित्य वासा यत्र तत्र निवस्यथ ।
 स्वातन्त्र्यं ध्यायितोद्येन यथा बाधा न कस्यचित् ॥ १४ ॥

येको मतमें ज्यों-ज्यों वेग जानना है; उन पक्षोंअ
 निवस कर सिवा गया है । तुम्हें वहीं निवास करना होगा ।
 ज्यों ही ठहर, विरोधमाकको मनसे निकर दो; किन्ने किन्ने-
 को क्य न पहुँचे ॥ १४ ॥

तथा तांस्तु सन्मनाप्य प्रस्थाप्य च महाबलम् ।
 कौसल्यां च सुमित्रां च कैकेयीं बाल्यवात्बत् ॥ १५ ॥

इस प्रकार उन सेनापतियोंको आवा दे मन्त्री निवस
 सेनाको भागे मेककर शत्रुजन्ने कौस्त्या सुमित्रा तथा कैकेयी-
 को प्रथम भिजा ॥ १५ ॥

रामं प्रक्षिप्पीकृत्य शिरसाभिमनय्य च ।
 रुक्मण्य भारत लौच प्रणिपत्य हृत्वाश्रिमि ॥ १६ ॥

उपभात् श्रीरामकी परिक्रमा करके उनके कर्णोंमें महाक
 छकपा । फिर हाथ जोड़कर मरग और कस्यकी भी
 बनना की ॥ १६ ॥

पुरोहित वसिष्ठ च शत्रुणाः प्रपत्तरमबन्त ।
 रामेण बाल्यजुवातः शत्रुणाः शत्रुतापनः ।

प्रक्षिप्यमयो कृत्या निर्दोषाम महावसः ॥ १७ ॥

तदनन्तर मनको संयममें रक्कर शत्रुजन्ने पुरोहित
 वसिष्ठको ममस्कर किया । फिर श्रीरामकी आवा से उनकी
 परिक्रमा करके शत्रुओंको उपाय देनेवाले महाककी शत्रुजन्
 अनोप्यासे निकले ॥ १७ ॥

प्रस्थाप्य सेनामथ सोऽप्रतस्तत्रा
 गजेन्द्रवात्रिमहरीपसकुन्ताम् ।

उवास मासं तु शरेन्द्रपादसंत
 न्तपय प्रयातो रघुशशवर्धनः ॥ १८ ॥

गकराको और भेद अर्धके सुवामते मरी हुई निवस
 सेनाको अने मेककर उद्यर्धकी वृद्धि करनेवाले शत्रुज एक
 माऊक महायत्र भीष्मके पठ ही रहे । उनके शर उदने
 बहोसे प्रसन्न भिजा ॥ १८ ॥

पञ्चपठितम सर्ग

महर्षिं वात्मीकिका शत्रुघ्नको मुदासपुत्र कन्धमापपादकी कथा सुनाना

कथाय च बल सर्वे मासमात्रेयिताः पथि ।
 एक एवानु शत्रुघ्नो जगाम त्यरित तदा ॥ १ ॥
 मन्वी सेनाञ्च भागे मेघकुर मयोप्यामे एक माह खनेकं
 मन्वद् धनुज अकेके ही वहीसे मधुकनके मार्गफ प्रस्थित
 हुए । ये वही तेवीके छाप भागे बन्दने छने ॥ १ ॥
 विपन्नमन्तरे शूर उष्य राघवसम्बन्तः ।
 कर्त्तव्येराधम पुष्यमगच्छद् वासमुत्तमम् ॥ २ ॥
 खुकुब्धो भानन्दित करनेवाले शूरवीर शत्रुघ्न रास्तेमें
 रो उठ कियाकर टीसरे दिन महर्षि वात्मीकिके पवित्र आश्रम-
 पर च पहुँचे । वह लक्ष्मि उठम बाहखान या ॥ २ ॥
 सःप्रियाया महात्मान वात्मीकिं मुनिसत्तमम् ।
 कृताङ्गिरसो मूत्वा वाक्यमेतदुवाच ह ॥ ३ ॥
 वही ठन्नेने हाथ खोज मुनिभेद महात्मा वात्मीकिके
 प्रथम करके वह बात कही— ॥ २ ॥
 मयक्व वस्तुमिच्छामि गुरोः कृत्यादिहागतः ।
 त्वाः प्रभाते गमिष्यामि प्रतीर्षां वाहर्णां विशम् ॥ ४ ॥
 महान् । मैं अपने बड़े माई श्रीरघुनाथजीके कर्मसे
 इस लक्ष हूँ । आज रातमें वहाँ उपजना चाहता हूँ और
 सब कहेकर लक्ष्येबाहुर पामित पवित्र दिशाके चला जाऊँगा ॥
 शत्रुघ्नस्य षष्ठाः भुत्वा प्रहस्य मुनिपुङ्गवः ।
 प्रत्युवाच महात्मान स्वागत ते महायशः ॥ ५ ॥
 शत्रुघ्नकी यह बात सुनकर मुनिवर वात्मीकिने उन
 शब्दको हँसते हुए उत्तर दिया—महायशस्वी वीर ! तुम्हारा
 लक्ष्य है ॥ ५ ॥
 लयाग्रममिच्छ सौम्य राघवाणां कुलस्य वै ।
 व्यस्रमं पाद्यमर्घ्यं च निर्दिशद्वाः प्रतीच्छ मे ॥ ६ ॥
 शौम्य । वह आश्रम रघुवंशीयोंके छिमे अपना ही पर
 है । हम निच्छा हूँकर मेरी खेरले माछन, पाद्य और अर्घ्य
 लीमत करो ॥ ६ ॥
 प्रतिशूटा तथा पूजां फलमूळ च भोजनम् ।
 मत्समामा क्यकुत्स्यस्त्वसि च परमां गता ॥ ७ ॥
 तब वह उत्तर प्रहण करके शत्रुघ्नेने फल-मूळच भोजन
 किया । इत्से ठन्ने वही मुनि हुई ॥ ७ ॥
 स मुन्या फलमूळ च महर्षिं तमुवाच ह ।
 पूजां यच्चविभूतीय कस्याभ्रमसमीपतः ॥ ८ ॥
 फल-मूळ लाकर वे महर्षिसे बोले—मुने । इस अश्रमके
 निच्छ को वह प्रतीक्षितलका यज्ञ-सम्बन्ध (यूप आदि उप-
 करण) दिखानी देता है किस्का है—किस यज्ञमान नरेखने
 वहाँ बड़ किया या ? ॥ ८ ॥
 तन्वत्स्य भागित भुज्या वात्मीकियाप्यमप्रधीत् ।
 शत्रुघ्न शृणु पस्य चमूपायतनं पुरा ॥ ९ ॥

उनका यह प्रश्न सुनकर वात्मीकिने कहा—शत्रुघ्न ।
 पूर्वकछने किस यज्ञमान नरेखका वह परमम्बप रहा है, उसे
 बताया हूँ, सुनो ॥ ९ ॥
 युष्माक पूर्वको राजा सुवासस्तस्य भूपतेः ।
 पुत्रो वीरसहो नाम वीर्यवानतिधार्मिकः ॥ १० ॥
 तुम्हारे पूर्वक राघव सुवास इस भूमम्बकके स्वामी हो गये
 हैं । उन भूपालके वीरसह (मित्रसह) नामक एक पुत्र
 हुआ, जो बड़ा पराक्रमी और अत्यन्त धर्मात्मा था ॥ १० ॥
 स वाल एव सौवासो मृगयामुपचक्रमे ।
 चञ्चूर्ममाण वृधो स शूरो रक्तसद्ययम् ॥ ११ ॥
 सुवासका वह शूरवीर पुत्र वात्मानसामें ही एक दिन
 शिकार लेखनेके छिमे कन्नेमे गया । वहाँ उठने से राक्षस देखे,
 जो एक और बारबार बिचर रहे थे ॥ ११ ॥
 प्रावृळरूपिणौ घोरी मृगान् वहुसहस्रशाम् ।
 भक्तमाप्यावसतुष्टौ पर्याप्तिं नैव जन्मनुः ॥ १२ ॥
 'य दोनो घोर राक्षस बापका रूप धारण करके कई
 हजार मृगोंको मारकर खा गये । फिर भी खँड नहीं हुए ।
 उनके पेठ नहीं मरे ॥ १२ ॥
 स तु वी राक्षसौ वद्म मिर्गं च यत्त वृत्तम् ।
 श्लेषेन महतायिषो जघामैक मतेपुणा ॥ १३ ॥
 वीरसहने उन दोनों राक्षसोंको देखा । साथ ही उनके
 हाथ मृगमत्स्य किये गये उठ कनकी अवसापर दृष्टिपात
 किया । इत्से यं महान् श्लेषसे मर गये और उनमेंसे एकको
 विशाङ्क बाणसे मार डाला ॥ १३ ॥
 विनिपात्य तमेक तु सौवासः पुरुषप्रभः ।
 बिम्बरो विगतामर्षो हतं रक्तो ह्युर्द्विस्त ॥ १४ ॥
 एकको बरधापी करके वे पुरुषप्रवर खेदाय निम्बित
 हो गये । उनका भ्रमण जाता था और वे उठ मरे हुए
 राक्षसके देखने छने ॥ १४ ॥
 निरीक्षमाण त वद्म सहाय तस्य रक्षसः ।
 सतापमक्रोद् घोरो सौवास खेद्मप्रधीत् ॥ १५ ॥
 'उठ राक्षसके मरे हुए लक्ष्मीको जब वीरसह देख रहे थे
 उठ छाप उनकी और दृष्टिपात करके उठ बूरे राक्षसने मन
 ही-मन घोर संक्षय किया और वीरसहसे इस प्रकार कहा—
 यस्मान्परराघ त सहाय मम जनिवान् ।
 तस्मात्तवापि पापिष्ठ प्रदास्यामि प्रतिश्रियाम् ॥ १६ ॥
 'महाशयपी मरेख । तुने मेरे निरपराध लक्ष्मीको मार डाला
 है, इत्सिमे मैं तुसने भी इत्ना बरमा हूँगा ॥ १६ ॥
 पद्यमुपस्था तु तद् रक्तसत्रियान्तरधीयत ।
 कालपयापयोगेन राजा मित्रसहोऽभयत् ॥ १७ ॥
 देखा करकर वह राक्षस वही भक्तवान हो गया और

दीर्घकर्मके पश्चात् सुदासकुमार मित्रवह बयोष्मके राजा
हो गये ॥ १७ ॥

राजापि यजते यज्ञमस्याधमसमीपतः ।
अश्वमेध महायज्ञ त वसिष्ठोऽप्यपाठयत् ॥ १८ ॥

ठन्ही राज मित्रवहने इस अधमके समीप अश्वमेध
नामक महायज्ञ अनुष्ठान किया । महर्षि वसिष्ठ अपने तपो
बलसे उस यज्ञमें राजा करते थे ॥ १८ ॥

तत्र यज्ञे महानासीत् पशुपत्यग्न्यायुतः ।
समूहः परया लक्ष्म्या वैश्वयज्ञसमोऽभवत् ॥ १९ ॥

अनका वह महान यज्ञ बहुत वर्षोंतक यहाँ बसता रहा ।
वह सारी धन-सम्पत्तिसे सम्पन्न यज्ञ वैश्वनाभोंके यज्ञकी समानता
करता था ॥ १९ ॥

अघाघसाने यज्ञस्य पूर्ववैरमनुसरन् ।
वसिष्ठकृपया राजात्मसिद्धिं होवाच रक्षसाः ॥ २० ॥

उस यज्ञकी समाप्ति होनेपर पहलेके वैरध्व धरल करके-
नाथा वह राक्षस वसिष्ठकीका रूप धारण करके राजाके पास
आया और इस प्रकार बोले— ॥ २ ॥

यद्य यज्ञावसानान्तं सामिय भोजन मम ।
धीयतामतिशीघ्रं धै नाथ क्षयां विचारथा ॥ २१ ॥

यजन् । आज यज्ञकी समाप्ति किम है अत आज
मुझ तुम धीम ही मांसयुक्त भोजन दो । इस विषयमें छोड़े
अन्यथा विचार नहीं करना चाहिये ॥ २१ ॥

तच्छ्रुत्वा ध्याह्वानं दान्त्य रक्षसा प्रह्वरुपिणा ।
सुशान् स्वस्वारकुशास्त्रानुयाच पृथिवीपतिः ॥ २२ ॥

आज्ञापनपरायी राक्षसी करी हुई बात सुनकर गन्धने
रोंके बनानेमें कुशल स्वेष्टवोमें कहा— ॥ २२ ॥

ददिव्य सामिर्यं न्वाद् पया भयति भोजनम् ।
तया कुष्ठत क्षीम ये परितुष्यन् पया गुदः ॥ २३ ॥

तुमराग आज धीम ही मांसयुक्त ददिव्य तैयार करो
और उने देना बनाओ जिससे न्वादिश भोजन हो सकतया मेरे
गुदनेव जन्ने संतुष्ट हो सकें ॥ २३ ॥

नामनाहू पार्थिवेन्द्रस्य मृतं सम्भ्रान्तमानसः ।
तद्य स्यः पुमान्न रक्षुष्यमयाक्राण्ड ॥ २४ ॥

महापराधी इस अधमके मुझसे ही प्येष्टमेके मनमें पकी
पराजित देना हो गयी (वह होनेसे अग आज गुदकी
अभय भजनेमें यह प्रष्टव दोगे) । यह बात फिर उस राक्षस-
ने ही मरुदेवा देना किया ॥ २४ ॥

न मानुषमग्रे माम् पार्थिवाय स्प्येदयत् ।
इदं न्वाद् ददिव्य न्य सामिर्यं नाशमाष्टसम् ॥ २५ ॥

उ ने मानुषों का मर्त मारत राजा का दे दिया और
कहा— यह मांसयुक्त अन्न एक ददिव्य तथा है । यह बड़ा
ही मांसयुक्त है ॥ २५ ॥

न भोजनं परिहाव पत्न्या स्वाधमुपायत् ॥

मद्वयमया नरभ्रेष्ठ सामिर्यं रक्षसा हृतम् ॥ २६ ॥
नरभ्रेष्ठ । अपनी पत्नी उनी मरुदेवीके लक्ष एक
मित्रवहने राक्षसके लिये हुए उस मांसयुक्त भोजनको वसिष्ठको
धमने रक्षसा ॥ २६ ॥

आस्था तदामिर्यं विप्रो मानुष भोजनं गतम् ।
क्षोभेन महताविष्टो ध्याह्वान्तुमुपयत्नम् ॥ २७ ॥

‘वाचीमें मानव-मर्त परेख गया है, वह अनकर ठहरने
वसिष्ठ महान् भोजने मर गये और इस प्रकार बोले— ॥ २७ ॥
यस्मात् त्व भोजन राजन् भूमैतत् शतुमिच्छसि ।

तस्माद् भोजनमेतत् ते भविष्यति न संशयः ॥ २८ ॥
यजन् । तुम मुझे देना भोजन देना चाहते हो, इसलिये
यही तुम्हारा भोजन होगा; इसमें संशय नहीं है (यहाँसे तुम
मनुष्यमयी उत्पन्न हो जाओगे) ॥ २८ ॥

तदा ह्यवस्तु सौदासस्तोयं क्षमाह पापिन्व ।
वसिष्ठं शप्नुमारेमे भार्या यौनमचारयत् ॥ २९ ॥

यह सुनकर खैरातने भी क्रुशित हो हायमें बस के लिये
और वसिष्ठ मुनिको शाप देना आरम्भ किया । उत्पन्न उनकी
पत्नीने उन्हें एक बिया ॥ २९ ॥

राजन् प्रमुप्येतोऽस्माकं वसिष्ठो भगवान्मुनिः ।
प्रतिदाप्यु न शकस्य देवतुह्य पुरोधसम् ॥ ३० ॥

हे वसिष्ठ—यजन् । ममान् वसिष्ठ मुनि हम लक्ष
लानी हैं; अतः आप अपने देवतुह्य पुरोहितको बरभेमें शाप
नहीं दे सकते ॥ ३ ॥

ततः श्लोभमयं तोय तेजोयज्ञसाम्पितम् ।
स्यसर्मयत धर्मोत्सा तताः पादौ सिषेव च ॥ ३१ ॥

तब धर्मोत्सा यजने तेज और ससे सम्पन्न उस श्लोभ
मय अन्नको नीचे डाल दिया । उसके अपने बनें पैरोंकी ही
धीन किया ॥ ३१ ॥

तेनास्य राक्षसी पादौ तदा कस्मात्पता गती ।
तथाप्रभृति राजासी सीदासाः सुमहायशाः ॥ ३२ ॥

कस्मात्पादः सप्तृषाः व्यातधीव तथा सुपा ।
देख करनेसे राजाके दोनों पैर ललाक फिफकी हो
गय । वहीसे महायशस्वी राजा खैरात कस्मात्पाद (पितृवरी
पैरबान) हो गये और उकी नामसे उनकी कल्पना हुई ॥ ३२ ॥

स राजा मृत पत्न्या धै प्रथियत्स मुहुर्मुहुः ।
पुनरवसिष्ठ प्रोधास्य यजुर्त्तं प्रह्वरुपिणा ॥ ३३ ॥

पारनन्तर पत्नीवदित राजाने बारंबार प्रणाम करके फिर
वसिष्ठको कहा— प्रह्वरों । अश्वमेध रूप धारण करके जिसने
मुझे देना भोजन देनेके लिये प्रवृत्त किया था ॥ ३३ ॥

तच्छ्रुत्वा पार्थिवेन्द्रस्य मृतसा विह्वल च तत् ।
पुनः प्रापाद्य राजान वसिष्ठः पुनरयभम् ॥ ३४ ॥

राक्षसिगत्र मित्रवहरी वह था सुनकर और उने

एकस्यै च्युत्त न्यनकर बलिने पुनः उन नभेड नरीधसे
भा—॥ १४ ॥

मया रोपपरीतेम यद्विद् व्याहृत वषा ।

कैतच्छक्यं दृष्या कर्तुं प्रवृत्स्यामि च त परम् ॥ १५ ॥

एषान । मैने रोपसे मरकर ओ बात च्छ बी है इसे
भा नो किया च छका परं इ इसे चूनेके सिने मैं
इसे एक पर हुँगा ॥ १५ ॥

अस्से द्वावशाषर्षाणि शापस्यान्तो भविष्यति ।

मां प्रसादाच्च राजेन्द्र भरति न स्मरिष्यसि ॥ १६ ॥

एकेन्द्र । वह नर इत प्रकर है—वह शाप बारह वर्षों
क लेगा । उसके बाद इवच भन्त हो अयगा । मेरी इपसे
इसे दोहो हुरी बातका स्मरण नहीं रहगा ॥ १६ ॥

एव स राजा त शापमुपमुन्यारिच्छन् ।

इत्यार्ये श्रीमद्रामायणे वासुदेवायै वासुदेवायै उत्तरकाण्डे पटपठितमः सर्गः ॥ १५ ॥

इत प्रकर श्रीमदनीकिनेर्मिष्ठ वर्णपरमवच अत्रिकाण्यक उत्तरकाण्डे वैष्ठर्षो समा पूरा हुअ ॥ १५ ॥

पटपठितमः सर्ग

सीताके दो पुत्रोंका अन्म, वात्मीकिद्वारा उनकी रक्षाकी व्यवस्था और इस ममाचारसे

प्रसन्न हुए छत्रुघ्नका बहोसे प्रत्यान करके यमुनावटपर पहुँचना

पानेव पत्रि शत्रुघ्नः पर्णेशाखां समाधिशात् ।

तस्मै पत्रि सीतापि प्रदत्ता शारकद्वयम् ॥ १ ॥

कि एतको शत्रुघ्ने पवशाखसे प्रवेष्ट किया था,

औ एतसे सीताबीने हा पुत्रोंको कनम दिया ॥ १ ॥

उत्तरकाण्डसमये वालका मुनिद्वाराचः ।

अन्तोके प्रियमावच्छुः सीतायाः प्रसव शुभम् ॥ २ ॥

उपनन्दर अर्षीपतेके समप कुछ मुनिकुमारोंने वात्मीकि

कीसे एत आकर उन्हे सीताबीके प्रसव होनेका धम एवं

दिन ज्वाकार मुनया—॥ २ ॥

यथावत् रामपत्नी सा प्रसूता शारकद्वयम् ।

एते रक्षां महावेजः कुब मूतविनाशिनीम् ॥ ३ ॥

अनन्तर । श्रीरामचन्द्रकीकी बर्नफलीने दो पुत्रोंका

कन दिया है अतः महावेजली महर्षे । आप उनकी रक्षा

करनीके रक्षा निशुच करनेवाली रख करें ॥ ३ ॥

तयां च्छ बचनं भुक्त्वा महर्षि सन्मुपागमत् ।

वासुदेन्द्रपतीकाशी देवपुत्री महौघ्नी ॥ ४ ॥

अ कुमारोंने वह बात सुनकर महर्षि उत स्थानपर गये ।

औके दो दोनों पुत्र वात्कन्दर्माक समन सुन्दर तथा देव

कुमारोंके समन महतेकली थे ॥ ४ ॥

जगाम तत्र ह्यधरमा वृन्द च कुमारकौ ।

मृगर्षी वाकरोत्ताभ्यां रक्षा रक्षोविश्वदिनीम् ॥ ५ ॥

वासुदेकीने परमविश्व होकर स्वदिनापरसे प्रवेष्ट किया

औ अ एते कुमारोंको रक्षा तथा उनके सिने भूते और

प्रतिलेने पुन्य रज्य प्रजाश्रीनाम्यपालयत् ॥ १७ ॥

इत प्रकर उत शत्रुघ्नन रखने बार वर्षोंक उत

शापको भोगकर पुन अपना राज्य पावा और प्रथमकोष

निरन्तर पावन किया ॥ १७ ॥

तस्य कस्मात्पत्न्यस्य पक्षस्यापयतम शुभम् ।

आश्रमस्य समीपेऽस्य यग्नो वृषच्छसि राघव ॥ १८ ॥

पशुनन्दन । उन्ही पावा कस्मात्पत्न्यक यत्कय पर मुन्दर

न्यतन मेरे इत आश्रमके समीप दिसावी देता है किन्के नियमों

द्रम पूर रहे थे ॥ १८ ॥

तस्य तां पार्थिवेन्द्रस्य कर्णा भुक्त्वा सुदादणाम् ।

विशेषा पर्णाशलायां महर्षिमभिवाद्य च ॥ १९ ॥

महापद मिश्रछत्री उत अत्यन्त दादण कवाके सुनकर

शत्रुघ्नेने महर्षिको प्रणाम करके पवशाखसे प्रवेष्ट किया ॥ १९ ॥

एतलेंच निनाद्य करनेवाली रक्षाकी व्यवस्था की ॥ ५ ॥

कुत्रामुष्टिसुपादाय छष चैव तु स द्विजः ।

वासुदेकि प्रददौ ताभ्यां रक्षां भूतविनाशिनीम् ॥ ६ ॥

महर्षि वात्मीकिने एक कुशाभोक्ष मुद्रा और उनके

कद केकन उनके हाथ उन दोनों वात्कीकी भूत-बाबाका

निराकरण करनेके सिने रख-निषिद्ध उपदेश दिया—॥ ६ ॥

यस्तयो पूर्वजो ज्ञाता स कुशीमण्डसत्कृतिः ।

निर्माजनीपस्तु तदा कुदा इत्यस्य नाम तत् ॥ ७ ॥

यथापये भयेत् ताम्या ह्येत ससमाहितः ।

निर्माजनीयो धुब्बाभिर्छपेति च स न्यमतः ॥ ८ ॥

इहा शिष्योके पारिने कि इन दन्ते वात्कीने ओ पहले

उतस हुमा है उतका मत्रोहाय संस्कार किए हुए इस

कुशीले मार्जन करे । ऐस्य करनेपर उत वात्कना नाम

भुक्त्वा इम्य और उनमें ओ हाथ है उतका सभसे मार्जन

करे । इस्से उतका नाम 'सक' हाय ॥ ७-८ ॥

एव कुशाखवी नाम्न्य ताडुभौ यमजातकम् ।

मत्कृत्वाभ्यां च मामभ्या पयतिपुत्री भविष्यतः ॥ ९ ॥

इत प्रकर सुदने उतस हुए ये दोनों वात्क क्रमण

कुश और कद नाम प्राप्त करेंगे और मेरे हाथ निषिद्ध सिने

गये इन्ही नामोंसे भूत-बाबासे विपन्न होंगे ॥ ९ ॥

तां रक्षां जघृक्षुस्तां च मुनिदस्तात् समादिता ।

अनुपेक्ष्य ततो रक्षां तपोविगतकस्मना ॥ १० ॥

वर सुनकर निष्पय इया सिनेने एकामविश्व हा मुनिके

एतस्ये रक्षके साधनमृत उत कुशोन्ने से विद्या और उनके
इय उत दानो बाहुभेका मार्गेन एतं संरक्ष्य किञ्च ॥ १ ॥

तथा हा क्रियमाणं च बुद्धाभिर्गोत्रनाम च ।
सर्करीतं च रामस्य स्त्रीतायाः प्रसवी शुभ्री ॥ ११ ॥
अर्थरतने तु शत्रुणाः शुभाश सुमहत् प्रियम् ।
पर्वाशाळां ततो गत्या मातर्विप्लेति धामवीर्य ॥ १२ ॥

अब बुद्धा विद्वो इव प्रकार एव करने क्वी उष समय
अपी एतस्मे भीयम और छीताके नाम गोत्रके उच्चारणकी
अनि शत्रुपक्षके क्रान्तोमें पड़ी । सब ही उन्हें छीताके दो
सुन्दर पुत्र होनेका संवाद प्राप्त हुआ । उन वे छीताकी ही पर्ये
शास्त्रमें गये और बोले—माताकी । यह बड़े वैभवकी
रात है ॥ ११ १२ ॥

तथा तस्य प्रहृष्टस्य शत्रुपक्षस्य महात्मनः ।
अर्वाता वार्षिकी रात्रिः आययी ससुविक्रमा ॥ १३ ॥
महात्मा शत्रुपक्ष उष समय इतने प्रसन्न थे कि उनकी
यह कर्त्तासिद्धि साधनकी रात रात-धी-रातने भीत गयी ॥
प्रभाते सुमहावीर्यः कृत्वा पौर्वाहिकीं क्रियाम् ।
सुनि प्राङ्गिरामस्य घयौ पद्भ्यामुक्ताः पुनः ॥ १४ ॥

इसपर श्रीमद्वाल्मीकीय वाल्मीकीय उक्तकाव्ये पश्यन्तिमाः सर्गः ॥ १६ ॥
इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीय वाल्मीकीय उक्तकाव्यमें उपर्युक्तो संन पूरा हुआ ॥ १६ ॥

तस्ये होनेपर पूर्वाह्नकालका कर्म उष्णा-कालन अर्थात्
करके महापराक्रमी शत्रुपक्ष शय अथ मुनिसे विद्या से पक्षि
विद्याकी और पक्ष दिसे ॥ १४ ॥

स गत्या यमुन्मतीर सप्तरात्रोपिताः पयि ।
अपीणां पुण्यकीर्तिनामाश्रमे वासमभ्ययात् ॥ १५ ॥
मार्गमें जात रात कियकर वे यमुना-तटपर आ पहुँचे
और वहाँ पुण्यकीर्ति महापिबोके आश्रममें रहने लगे ॥ १५ ॥
स तत्र मुनिभिः सार्धं भार्गवप्रमुल्लोर्षुपः ।
कथाभिरभिरूपामिर्वास सक्ते महापशाः ॥ १६ ॥
महापशाही राजा शत्रुपक्षने वहाँ अवन आदि मुनिबोके साथ
सुन्दर कथा-वातांशका अन्वेषण करते हुए निराश किया ॥
स काञ्चनाचैर्मुनिभिः समेतं

रघुप्रवीरो रक्षार्त्तां तदानीम् ।
कथाप्रकारैर्बहुभिर्महात्मा
विरामयामास नरेन्द्रसुनुः ॥ १७ ॥
इत प्रकार रघुकुलके प्रमुख वीर महात्मा राजकुमार
शत्रुपक्ष वहाँ एकत्र हुए अवन आदि मुनिबोके साथ नाना
प्रकारकी कथाएँ सुनते हुए उन दिनों यमुनातटपर एक
किताने लगे ॥ १७ ॥

सप्तषष्टितमं सर्गं

अवन मुनिका शत्रुपक्षको लवणासुरके शूलकी शक्तिका परिचय देते हुए
राजा मा-भाताके बंधका प्रसंग सुनाना

अथ राम्या प्रवृत्तायां शत्रुको सुगुणन्दनम् ।
पप्रच्छ अवन किं कथयस्य यथावकम् ॥ १ ॥
शूलस्य च बलं ब्रह्मम् च पूर्वं विप्रश्रित्याः ।
अमेत शूलमुष्येन दग्धपुत्रमुपागाताः ॥ २ ॥
एक दिन रातके समय शत्रुपक्षने सुगुणन्दन ब्रह्मर्षि अवनसे
पूछा—असन् । क्यागान्धर्वने किना बल है । उसके अपने
किन्ती शक्ति है । उत उतम शूलके द्वारा ठठने इन्द्र-कुक्षमें
आये हुए किन-किन योद्धाओंका बध किया है । ॥ १ ॥ २ ॥
तस्य तत्त्वज्ञानं भ्रुत्वा शत्रुपक्षस्य महात्मनः ।
प्रत्युपाब महारतेजादध्ययनयो रघुपत्न्यनम् ॥ ३ ॥

महात्मा शत्रुपक्षकी यह बचन सुनकर महादेवकी
अवनने उन रघुकुलन्दन राजकुमारने पूछा— ॥ १ ॥
असन्व्येपानि कर्माणि धान्यस्य रघुपत्न्यन ।
इवायुर्वांशप्रभय यद् वृत्तं तत्तत्पुण्य मे ॥ ४ ॥
सुगुणन्दन । इत लवणासुरके कर्म बर्णन है । उनसे
एक ऐसे कर्माँ बर्णन किया गया है जो इत्याकुर्वाणी राजा
स्यपायके उत्तर श्रित हुआ था । हम उसे मेरे मुँहसे
सुनो ॥ ४ ॥

अयोध्यायां पुरा राजा युवनाश्वसुतो बली ।
मांभाता इति विख्यातस्त्रियु कोकेतु धीर्यवान् ॥ ५ ॥
पूर्वकालकी रात है अयोध्यापुरीमें युवनाश्वके पुत्र राजा
युवनाश्व राज्य करते थे । वे बड़े बलवान् पराक्रमी तथा
छीने कोकेतमें विख्यात थे ॥ ५ ॥
स कृत्वा पृथिवीं हरस्तां शाचने पृथिवीपतिः ।
सुरसोकमित्ये जेतुमद्योगप्रकरोत्सुपा ॥ ६ ॥
उन पृथिवीपति नरेयाने छरी पृथ्वीको अपने अधिपक्षमें
करके वहाँसे देवलोकर विजय पानेका उद्योग आरम्भ
किया ॥ ६ ॥

इन्द्रस्य च भयं तीव्रं सुरार्त्तां च महारामम् ।
मांभातरीः कृतोद्योगे देवलोकास्त्रिषीषया ॥ ७ ॥
एका मांभाताने बध देवलोकर विजय पानेकी इच्छासे
उद्योग आरम्भ किया तब इन्द्र तथा महात्मनी देवलोको
रका मय हुआ ॥ ७ ॥
अभासनेन शक्तस्य राज्यार्थेन च पार्थिवः ।
बन्धयामास सुरगणैः प्रतिबन्धयरोहत ॥ ८ ॥
मैं इन्द्रका अथा किन्तु और अन्धका आधा राजा

सक मूलमहाका राम हो देवताभोंसे बन्दित होकर रहूँगा' एही प्रतिज्ञा करके वे स्वर्गलोकपर भा चढ़े ॥ ८ ॥
 तस्य पापमभिप्राय विदित्वा पाकशासनः ।
 सप्तसप्तपूर्वमिदं वाक्यमुवाच भुवनाभ्यजम् ॥ ९ ॥
 उनके लोटे अभिप्रायको जानकर पाकशासन इन्द्र उन बुझाव पुत्र मान्धाताके पास गये और उन्हें धान्तिपूर्वक समझाते हुए इस प्रकार बोल— ॥ ९ ॥
 राजा त्व मानुषे कोके न सावत् पुरुषवर्षभ ।
 भक्ष्या पृथिवीं यस्या द्युगज्ययमिहच्छसि ॥ १० ॥
 पुरुषप्रवर । अभी तुम सारे मत्स्यकोके भी राजा नहीं हो । धृती पृथ्वीको बगमं किये बिना ही देवताभोंको राज्य देने केना चाहते हो ॥ १ ॥
 यदि पीर समप्रा त मेदिनी मिखिला वशे ।
 इवपस्य कुक्ष्येह सभृत्यबलवाहनः ॥ ११ ॥
 और । यदि सारी पृथ्वी तुम्हारे बगमं हो आप छे तुम सेवक, सेनाओं और सकारियोंवहित यहाँ देखसकछ राज्य करना ॥ ११ ॥
 एतन्मव तुवाण त माधाता यास्यमग्रवीत् ।
 क मे शक प्रतिहन शासन पृथिवीतसे ॥ १२ ॥
 देखीबानं करते हुए इन्द्रसे मान्धाताने पूछा—देवरान । कपारे ल लही इस पृथ्वीपर चढ़ीं मरे आदेशकी अवरोधना करी ॥ १२ ॥
 गुवाच सहस्रासौ लवणो नाम राक्षसः ।
 मपुत्रो मपुत्र न तेऽऽज्ञां कुक्षंऽनघ ॥ १३ ॥
 ल इन्ने कहा— निष्पय नरेण । मपुत्रनमे मपुत्रा इत बरजापुर रहता है । वह तुम्हारी आज्ञा नहीं मानता ॥
 तप्युया विप्रिय घोर सहस्राभेण भावितम् ।
 मीरिताऽपाङ्कमुणो राजा व्याहर्तुं न शक्यत ह ॥ १४ ॥
 इन्द्रकी बरी हुईं यह घोर अभिय शत मुनय्य राज्य कष्टकरा मुन सज्जसे हक गया । वे कुछ बल न करे ॥ १४ ॥
 म्पन्त्य तु सहस्राक्ष प्रापात् किंचिद्व्याहमुक्तः ।
 पुनश्चागमच्छ्रीमामिम लोकं नरेभ्यरा ॥ १५ ॥
 त नरेण इन्ने विला म मुद कृत्वाय बहामे वन दिप भेरे पुन इत मार्गच्छसे ही भा पहुँचे ॥ १ ॥
 न ह्यया हृदयऽमर्षं सभृत्यवन्प्राहमः ।
 सप्रयाम मधाः पुत्र वना कतुमर्दिम् ॥ १६ ॥
 उन न करने हृदयमे भयन भर किया । फिर वे उतु रण —बना मपुत्र पुत्रको बगमं करनेके किये मेरक सेना की लक्ष्मिर्नित उठकी धारपतीके तभीय अये ॥ १६ ॥
 न चक्षुमाना मयण पुत्राय पुत्रवर्षभ ।
 एतन्मपामाम सवर्णा मयणस्य नः ॥ १७ ॥

उन पुरुषप्रवर नरेणने मुदकी इच्छासे लवणके पाठ अपना वृत्त मेम् ॥ १० ॥
 स गत्या विप्रियाप्याह यद्वनि मपुनः सुतम् ।
 वहातमेव त वृत्त भक्षयामास राक्षसः ॥ १८ ॥
 वृत्तने बर्षोष्यकर मपुके पुत्रको बटुतसे कटुबन मुनाये । इत तय कटोर बर्षो करते हुए उत वृत्तको यह राक्षस दुरंत ला गया ॥ १८ ॥
 विरायमाणे वृते तु राजा क्रोधसतमन्वितः ।
 मय्यामास तद् रक्षः शरपृष्टया समन्ततः ॥ १९ ॥
 एव वृत्तके लोटेनेम विजम्ब हुआ; लव राजा बड़े मुद हुए और बालोंकी बर्षा करके उत राक्षसको लव आरमे पीड़ित करने लगे ॥ १९ ॥
 ततः प्रहन्य तद् रक्षः शूल जमाह पाजिता ।
 यथाप सानुपभस्य मुमोषायुधमुचमम् ॥ २० ॥
 तब समयासुने हँकर हायसे बट हुए उठाया और सेवकोंवहित राज्य मान्धाताका वष करनेके स्थि उन उक्तम अक्षको उनके ऊपर छोड़ दिया ॥ २ ॥
 तच्छूळ क्षीप्यमान तु ममृत्यवसयाहनम् ।
 भस्तीहत्या सुर्व मूयो लक्षणस्यागमत् करम् ॥ २१ ॥
 वह चमचमता हुआ शूल सेवक, सेना और नगरिकों वहित राजा मान्धाताको भस्म करके फिर लक्ष्मणापुरके हायमे भा गया ॥ २१ ॥
 पय स राजा सुमहान् हतः स्वयश्वहनः ।
 गूलस्य तु बल सौम्य मप्रमेयमनुत्तमम् ॥ २२ ॥
 इस प्रकार सारी सेना और नगरिकोंने लव महाबाह मान्धाता मारे गये । लोम् । उन शूलकी वानि अक्षम और नवसे बड़ी-बड़ी है ॥ २२ ॥
 म्वा प्रभात तु मयण यधिप्यनि न सहायः ।
 मयुहीतायुध रिम भूयो दि विजयस्तय ॥ २३ ॥
 राजन् । कस लरे बरतक बट राक्षन उत भयबध न ले, तबक ही घोष्य करनेपर तुम नि मरेद उतरा वष कर लथो और इत प्रकार निष्पय ही तुम्हारी विजय होगी ॥ २३ ॥
 लोकावां म्पस्ति म्यं स्यात् वृत्त कमणि य तपया ।
 पतन् तु त मयमाण्यात म्यपस्य दुरागमन ॥ २४ ॥
 शूलस्य व यल चारमममेय करणभ ।
 विनाशकैव माधातुपाननामूष पापिय ॥ २५ ॥
 तुम्हारे हाथ पर कन लग्न होनेपर कम्प लकीश बन्धन होगा । नरेण । इत तरह मीने तुम्हें दुःखाना कराका म्वा वष बट निष्पय और उतक शूलकी भी पर लव अन्नेय म्पिका परिभव दे दिया । लोकेनय । इन्द्रक प्रत्यम लये लवक हाथ लव मान्धाताका विनाश हुआ था ॥ २५ ॥
 लं म्वा प्रभात सवष महात्मन्
 यधिप्यम म्प तु मधाता म ।

शूल विना निर्गतमामिगणै
 मुखो मयस्ते भविता नरेन्द्र ॥ २९ ॥
 महात्मन् । क्व खरे बभूव ह्यस्मि विना ही
 हापर्यौ श्रीमहात्मायो वासमीभ्यो धीदिकाभ्यो उतरकाभ्यो सप्तसहितसः सर्गः ॥ ३० ॥
 एत प्रकार श्रीमद्गीतानिर्दिष्ट अर्चनानुष्ठान अधिकाभ्यो उतरकाभ्यो सरसर्गो सा पूरा हुन ॥ ६० ॥

मालम्ब समग्र करनेके लिये निकसेग, तमी द्रुम उरका बभू
 कर बाबोमे इतमे संघष नहीं है । नरेन्द्र । मयस्स तुम्हारी
 विना होयै ॥ २९ ॥

अष्टपष्टितम सर्ग

लवणासुरका आहारके लिये निकलना, शत्रुघ्नका मधुपुरीके द्वारपर डट जाना
 और लौटे हुए लवणासुरके साथ उनकी रोपभरी मातृपीठ

कर्ण कययतां तर्पा जयं चाकाङ्क्षता शुभम् ।
 स्पतीना रजनी शीर्षं दानुघ्नस्य महात्मना ॥ १ ॥
 इत प्रकार कर्ण चले और शुभ विषयकी अकाङ्क्षा
 रखत हुए उन मुनिपौत्री पार्श्वं मुनवे-मुनवे महात्मा दानुघ्नकी
 वह पत बात-की-बातमें पीठ गयी ॥ १ ॥
 तत्र प्रभाते विमले वसिन् कसलं स राक्षसः ।
 निर्गतन्तु पुराद् सीधे भक्ष्याहात्प्रज्वलितः ॥ २ ॥
 उरन्तर निर्गत प्रभातकाळ होनेपर मयस्य पदार्थ एवं
 भास्वक संवहरी इच्छामे प्रेरित हो वह भीर राक्षस अपने
 नासके बाहर निकला ॥ २ ॥
 एतस्मिन्प्रन्तरे पीठ शत्रुघ्नो यमुनां नदीम् ।
 तीन्या मधुपुराद्वारि धनुष्यागिरतिष्ठत ॥ ३ ॥
 इसी बीचमें भीर दानुघ्न यमुना नदीके पार करके हाथमें
 बनुष लिये मधुपुरीके द्वारपर लड़े हो गये ॥ ३ ॥
 ततोऽर्धदिवस प्राप्ते कूरकमा स रक्षसः ।
 आगच्छत् बहुसाहस्य प्राणिनां भास्वुग्रहन् ॥ ४ ॥
 तबरात मयाह होनेपर वह कूरकमा राक्षस इज्यो
 प्राणियोंका खाता लिये वहाँ आया ॥ ४ ॥
 तत्र ददन् दानुघ्नं श्वित द्वारि पूषापुत्रम् ।
 तमुयाय ततो वहाः किमनन करिष्यसि ॥ ५ ॥
 इहदाना नदन्नाणि साधुधाना नराधम ।
 भक्षितानि मया गेयान् कालेनानुगता एसि ॥ ६ ॥
 उन समय उधने दानुघ्नको मयस्य द्वार पर लड़ा
 देना । देनाकर वह राक्षस उनसे कण—मपधम । इत
 हाथिकरत नू मरा क्या कर मया । तेरे जैसे इज्यो अन्न-राक्ष
 पायी मनुष्योंको मैं करूँकर ला मुहा हूँ । अन परता दे
 काय तेरे निरर नाच रहा है ॥ ५ ॥
 आगतान्नायस्वमधुषी ममाय पुत्रगाम ।
 न्यप प्रशिष्टाऽथ मुग क्यमामाय दुर्मते ॥ ७ ॥
 पुत्रगाम । अत्रा वर मेग अतर भी पूरा मरी है ।
 दुर्मते । नू लान ही मेरे दुर्मते मेग भा पदा ॥ ७ ॥
 तस्यप भागमाणस्य दमनभ मुहुमुहुः ।
 दानुघ्नो पीयगमन्ना रायाद्भ्ययथावृत्तम् ॥ ८ ॥

वह राक्षस इत प्रकारकी बातें कहता हुआ कर्णपर हँस
 रहा था । यह देख पताकमी दानुघ्नके नेत्रोंसे रोपके क्षरण मय-
 फल होने लगा ॥ ८ ॥
 तस्य रोपाभिमूतस्य दानुघ्नस्य महात्मना ।
 तजोमया मरीच्यस्तु सर्वागात्रैर्विनिष्पत्तम् ॥ ९ ॥
 रोपके बशीमूत हुए महामनस्य दानुघ्नके सभी भाँसे
 देखोमयी किरणें छिड़कने लगीं ॥ ९ ॥
 उवाच च ह्यसहस्रैः दानुघ्नः स निशाचरम् ।
 योद्युमिच्छामि युयुत्से द्रुमयुयं त्वया सह ॥ १० ॥
 तब समय मयस्य कुपित हुए दानुघ्न उच निशाचरके
 बोले—युयुत्से । मैं तेरे साथ इन्द्रयुद्ध करना चाहता हूँ ॥
 पुत्रो वशात्पस्याह भ्राता रामस्य भीमता ।
 दानुघ्नो नाम दानुघ्नो यथाकाङ्क्षी तवामतः ॥ ११ ॥
 मैं महात्मा इतरपत्र पुत्र और परम बुद्धिम्बू एव
 भीमका मारी हूँ । मेघ नाम दानुघ्न है और मैं क्रमसे पी
 दानुघ्न (शत्रुघ्नका पक्ष करनेवाला) ही हूँ । इत समय
 वेद बभू करनेके लिय वहाँ आया हूँ ॥ ११ ॥
 तस्य मे युद्धकामस्य द्रुमयुयं प्रतीयक्षम् ।
 रात्रुस्य सर्वभूतानां न मे जीवन् रामिष्यसि ॥ १२ ॥
 मैं युद्ध करना चाहता हूँ । इसलिये नू मुझे इन्द्रयुद्ध
 भरकर दे । तू समूह प्राणियोंका शत्रु है । इसलिये अन्न मेरे
 हाथसे भीवित बचकर नहीं जा सकेगा ॥ १२ ॥
 तस्मिन्सथा ह्युयाणे तु राक्षसाः प्रहसन्निव ।
 मयुयाय नरभेष्टं दिष्टया प्रातोऽसि युर्मते ॥ १३ ॥
 उनके ऐसा करनेपर वह राक्षस कम मरभेष्ट दानुघ्नके
 ईशता दुष्प-का बोला—युर्मते । लोभायकी बात है कि मय
 नू लान ही मुझे मिस गया ॥ १३ ॥
 मम मादप्यसुधाता राक्षणो नाम राक्षसः ।
 हतो रामेण युयुत्से स्त्रीहतोः पुत्रगाम ॥ १४ ॥
 प्लाठी बुद्धिवाक मरधम । यत्र नामक राक्षस मेरी
 मेली हाँसताका भरे था लिये तेरे मारे हमने एक लिये
 लिये मार शब्द ॥ १४ ॥
 तस्य सप मया क्षान्तं हाथणस्य कुसहायम् ।

भवत्वा पुरतः कृत्या मया घृय विशेषतः ॥ १५ ॥
पठना ही नहीं; उन्होंने रावणके कुछका वंशार कर
रिया; तथापि मैंने वह सब कुछ सब किया। तुमसबोंके
रूप भी गयी अवशेषकाको सामने रखकर—प्रत्यक्ष देखकर
भी तुम सबके प्रति मैंने विशेषरूपसे क्षमाभावका परिचय
रिया ॥ १५ ॥

निश्चयान् हि त सर्वे परिमृतास्तुभ्य मया ।
मृताभ्य भविव्याह्य यूय च पुरुषाधमाः ॥ १६ ॥
जो नयापम मृतकाको मेरा सम्मान करनेके लिये अये
वे, उन सबके मैंने तिनकोके समान कुछ समझकर तिरस्कार
रिना और मार बाध। जो भविव्याह्ये भायेंगे, उनही भी यही
रख हागी और बतमानकाको अपनेवाले वृक्ष जैसे नयापम भी
मेरे हाथसे मरे हुए ही हैं ॥ १६ ॥

तथा त युद्धकामस्य युद्ध वास्थामि तुमते ।
तिष्ठ त्वं च सुहृत्तं तु यावदायुधमानये ॥ १७ ॥
कुम्भी । इसे युद्धकी इच्छा है न । मैं अभी तुसे युद्धका
कारण हूँ। तू सो यही उतर जा। तबतक मैं भी अपना
सम से आया हूँ ॥ १७ ॥

उत्सिक्त यावदा तुभ्य सञ्जये यावदायुधम् ।
तुभ्यथापु शत्रुणाः क मे जीयन् गमिष्यसि ॥ १८ ॥

इत्थार्ये श्रीमन्नारायण वास्नीकीये आदिकाण्ये उत्तरकाण्डोपपठितमः सर्गः ॥ १८ ॥
इस प्रकार श्रीनारायणकी अदिकाण्यके उत्तरकाण्डके अठारहवें सर्ग पूरा हुआ ॥ १८ ॥

एकोनसप्ततितम सर्ग

शत्रुघ्न और लवणासुरका युद्ध तथा लवणाका वध

तुभ्यथा भवित तस्य शत्रुघ्नस्य महात्मनः ।
शत्रुघ्नोऽप्यद्य सीय तिष्ठ तिष्ठति चावधीत् ॥ १ ॥
परमना शत्रुघ्नका वह भाग्य सुनकर लवणासुरको बड़ा
दुःख और दुःख—‘अरे ! लड़ा रहे लड़ा रहे’ ॥ १ ॥
पापा पाणि स निष्पिप्य वृन्तान् कटकटाव्य स ।
मरणा रघुनायुल्लमाहपासास चासहत् ॥ २ ॥
वह हाथ-पर-हाथ लगाए और दौट करकटाव्य हुआ
शत्रुघ्नके सिद्ध शत्रुघ्नको बार्धरा हलधरने बग ॥ २ ॥
तुभ्यथा तथा वास्य स्यस्य धोरदशनम् ।
शत्रुघ्ना देवशत्रुघ्न इत् यत्रनमप्रपीत् ॥ ३ ॥
भारकर दिक्की देनेकाक हलकाको इस प्रकार बन्दे देल
शत्रुघ्नके नाथ करनेकाके शत्रुघ्नने वह बात कही—॥ ३ ॥
शत्रुघ्न न तथा ज्ञाना यदाप्ये निर्मितास्तवया ।
तद्वप बाणाभिहता मज्ज स्य यमसादनम् ॥ ४ ॥
‘कहा । जब तूने दूको दीपेका कटाजा दिया था उत
कर शत्रुघ्नका क्या नहीं हुआ था । भग-अब मेरे इन
बन्धोंके बन्दे काकर तू दीपे यमकाकी घर स ॥ ४ ॥

‘मेरे बन्धके लिये जैसे क्षमाका होना मुझ अमीर है
जैसे अश्वको परसे मुसजित कर तू’ फिर युद्धका अवसर दूँगा’
वह सुनकर शत्रुघ्न पुरत योष उठे—‘अब तू मरे हाथसे जीवित
बचकर कहाँ बचया ? ॥ १८ ॥

स्वयमेवागत शत्रुर्न मोक्षय्यः पृत्तारमना ।
यो हि विह्वलयथा युद्ध्या प्रसर शत्रये विरोत् ।
स हतो मन्त्रबुद्धिः स्याद् यथा क्षयुरपस्तथा ॥ १९ ॥

‘किसी भी बुद्धिमान पुरुषको अपने सामने आये हुए
शत्रुको छोड़ना नहीं चाहिये । जो अपनी पवराही हुई बुद्धिक
कारण शत्रुको निगत करनेका अवसर दे देता है वह मन्त्रबुद्धि
पुरुष कायरके समान मारा जाता है ॥ १९ ॥

तस्मात् सुहृद्यं कुरु जीवलोकं
शौचैः शितैस्स्यां विधिधैतयामि ।
यमस्य रोहाभिमुष्ण हि पाप
रिपुं विह्लोकस्य च रापयस्य ॥ २० ॥

‘भला राक्षस ! अब तू इस जीव-जगत्को अच्छी तरह
देख ले । मैं तला मन्त्रके लिये पाषोदारा द्वारा पापीका अभी
यमराजके परभी मर भेजना हूँ; क्योंकि तू तीनों आर्षोंका
तथा भीरुतापकीका भी शत्रु है’ ॥ २० ॥

शत्रुघ्नोऽप्यद्य सीय तिष्ठ तिष्ठति चावधीत् ॥ १ ॥
पदयन्तु विषय विद्वांसतिग्निदशा इव रापणम् ॥ ५ ॥

‘शत्रुघ्न ! जैसे ईश्वरभेने यजनका पयकारी हुआ
देला था उभी तरह विद्वांस माणव और श्रुति भाव उन
भूमिमें रोहादारा मारे गये वृक्ष कुपकारी उधरना भी दने ॥
स्वयि मद्वाणानिदग्ध पतितऽद्य निगायर ।
पुरे जनपद् स्यापि इममय भविष्यति ॥ ६ ॥
‘निगायर । आज मेरे राजम राज्य पर सब तू पार्ले
पर फिर बचप उत कमय इत नगर और जनरमें भी
लवणा कस्तप ही हाथ ॥ ६ ॥
अद्य मद्बाहुनिष्पयन्तः दारा यजनिभाननः ।
प्रयक्ष्यत त इद्वय पद्यमगुन्याकज ॥ ७ ॥
‘अब मेरी मुखाभेने दूटा हुआ पत्रक समान मुझ
बाणा बन्द डी तरह ठेकी लाठीमें पन रूपका जैसे पूर्वकी
विरल कमलकेगामे प्रसिद्ध हो जाती है ॥ ७ ॥
यपमुक्तो मदापूरुसं मवचनः बाधमापटनः ।
शत्रुघ्नारसि गिराय स च त गतपाटितनम् ॥ ८ ॥

शत्रुपत्रे एषा कश्चेनर ध्वज श्रेयसे मूर्च्छित-वा हो गवा
 और एक महान् वृष सेकर उरने शत्रुपत्रे छात्रीपर दे माप
 परंत्त शत्रुपने उसके सेकड़ों टुकड़े कर दिये ॥ ८ ॥
 तद् दृष्ट्वा विफळ कर्म राक्षसः पुनरेव सु ।
 पादपान् सुबहन् गृह्य शत्रुपान्पायाञ्जद्व यत्नी ॥ ९ ॥
 वह बार लाली गया देख उर बह्मान् एखने पुनः
 बहुद-से वृष से-स्कर शत्रुपत्रर नशये ॥ ९ ॥
 शत्रुपन्नापि तंजली वृक्षानापततो बहूम् ।
 त्रिभिश्चतुर्भिरेकैक विच्छेद् नतपर्यभिः ॥ १० ॥
 परंत्त शत्रुप भी बड़े ठेकली ये । उन्हीं अपने ऊपर
 आते हुए उन बहुसंख्यक इलोंमेंसे प्रत्येकको छकी हुई गोंठ
 वाले तीन-तीन या चार-चार बाण मारकर फट बाध ॥ १० ॥
 ततो बाणमय पर्ये व्यसृजद् पक्षसोपरि ।
 शत्रुपनो धीयसंग्रहो विन्यये न स राक्षसः ॥ ११ ॥
 फिर पक्ष्मी शत्रुपने उर राक्षस बाणोंकी हाड़ी समा
 री किंत्त वह निश्चाय इतने व्यभिध या विचञ्चितनहीं हुआ।
 ततः प्रहस्य लवणो वृक्षमुद्यम्य धीर्यवान् ।
 शिरस्यभ्यहनच्छूम् अस्ताङ्गः स मुमोह वै ॥ १२ ॥
 तब बाण-विक्रमवासी सबने हँकर एक वृष उठावा
 और उसे धारवीर गमुत्रके शिरपर दे माप । उसकी चोट
 लाकर शत्रुपक धरे अङ्ग धिधिक हो गये और उन्हें मूर्छा
 भ्य गयी ॥ १२ ॥
 तस्मिन् निपतिते धीरे हाहाकरो महान्मूत् ।
 श्रुयीणा वृषसघानां गन्धवाप्सरसां सथा ॥ १३ ॥
 और शत्रुपक गिरते ही श्रुयीसी देवमूर्त्तों, गन्धवाँ और
 भयवर्धनों महान् हाहाकार मच गया ॥ १३ ॥
 तमयमाय तु हत शत्रुप मुवि पातितम् ।
 रघो स्रग्धातरमपि न विधेत् स्वमात्ययम् ॥ १४ ॥
 मापि द्वाय प्रज्जग्राह तं दृष्ट्वा मुवि पातितम् ।
 तता हत इति धात्या तान्-भहान् समुदावहत् ॥ १५ ॥
 शत्रुपकी भाँति भूमिपर गिरा देवा सबने समझाये मरगय
 इमनिप भयकर मित्रनेर भी वह राघव अपने पारने नहीं
 गया और न द्वाय ही न आया । उन्हें परागावी हुम्ब देवा
 बर्षला मय हुआ समस्तकर ही वह अपनी उन भोजनगामवी
 धं पकन करने लगा ॥ १४-१५ ॥
 मुहृत्तान्मन्धममन्नु पुनस्तप्यी घृतामुष ।
 शत्रुपना धीं पुन्र्वागि श्रुतिभिः समप्रपूजितः ॥ १६ ॥
 हा ही पदोंमें शत्रुपको हत्य आ गया । वे भय शय
 र उर और कि नगरद्वारपर लड़ हा गये । उन गमव
 श्रुतिने उमकी भूरि भूरि पाठ्य थी ॥ १६ ॥
 तथा दिव्यममापे न जग्राह दारमुत्तमम् ।
 ज्वमन्त नज्जना धार पूरयन्त दिवा वृत् ॥ १७ ॥
 तन्नाश शत्रुपने उन दिव्य अमय और उत्तम दान

को हापमें किया, जो अपने घोर ठेकते प्रभक्षित हो रहें
 दिशाओंमें स्वास-ख हो रहा था ॥ १० ॥
 बह्मानन वज्रधेग मेरुमन्दरसनिभम् ।
 नत पर्यसु सर्वेषु सयुगेष्वपराजितम् ॥ १८ ॥
 उसका मुल और वेग बलके समान था । वह मेरु और
 मन्दराचलके समान भारी था । उसकी गोंठ छकी हुई थी
 तथा वह किसी भी युद्धमें पराजित होनेवाला नहीं था ॥ १८ ॥
 असूकचन्दनदिग्भाङ्ग चारुपत्र पतन्निभम् ।
 शमवेन्द्रावच्छेन्द्राणामसुराणां च दाहजम् ॥ १९ ॥
 उसका हाथ अङ्ग रत्नरूपी चन्दनसे चर्चित था । वंश
 बड़े सुन्दर थे । वह बाण शानवपक्ष्मी पर्यतएवों पर्ये म्मुयोंके
 छिपे बड़ा मन्कर था ॥ १९ ॥
 त दीप्तमिव काष्ठाग्नि युगान्ते समुपस्थित ।
 दृष्ट्वा सर्वाणि मृतानि परिवासमुपागमत् ॥ २० ॥
 वह प्रभयभङ्ग उपस्थित होनेपर प्रवृत्तित हुई काष्ठाग्निके
 समान उरित हो रहा था । उसे देखकर समस्त प्राणी बल हो
 गये ॥ २० ॥
 सर्वेबासुरगन्धर्वे मुनिभिः साप्सरोगणम् ।
 जगदि सर्षमलस्य पितामहमुपस्थितम् ॥ २१ ॥
 देवता असुर, गन्धर्व मुनि और अस्वभोजक वय
 वय ब्राह्मण अत्यन्त ही ब्रह्मादीके पास पहुँचा ॥ २१ ॥
 उयाच देवदेवेता यरद् प्रपितामहम् ।
 देवानां भयसम्मोहो लोकाना सक्षय प्रति ॥ २२ ॥
 कात्के उन सभी प्राणियोंके बर देनेबाध देवदेवैश्च
 प्रपितामह ब्रह्मादीके कहा—भगवन् । समस्त सर्वोंके स्वार
 की सम्माननासे देवप्रभोजक भी मय और मोह छा गया है ॥
 कश्चित्तोक्तस्यो देव सम्प्रसतो धा युगक्षयः ।
 मेददां दृष्ट्वाप्ये च न भुत प्रपितामह ॥ २३ ॥
 देव । कहीं कोंको संसार तो नहीं होगा अपना प्रभय
 क्षय तो नहीं आ पहुँचा है ? प्रपितामह । संसारकी ऐसी
 भरथा म तो पहले कभी देखी गयी थी और म मुननेमें ही
 भापी थी ॥ २३ ॥
 तयां तद् यवन भुत्वा प्रथा सोऽपितामहा ।
 भयकररामयावष्ट द्वात्प्रमभयंकरा ॥ २४ ॥
 उनकी यह बात सुनकर देवताभोजक मय दूर करनेवाले
 लक्ष्मिधर ज्ञानने प्रसूत मयका कारण बताते हुए कहा ॥
 उयाच मभुरां यार्थी श्रुणुष्य सद्य इयता ।
 यथाय स्यजन्मार्जा शरा शत्रुपधोरिता ॥ २५ ॥
 नजना तस्य सम्मुदा सर्वे सा सुरसत्तमाः ।
 न मपुर धानीमे रोय—अमृत् देवत्वमे ! मेरी बात
 सुने । आज शत्रुपने पुत्ररूपमें सगुणपुत्रका वध करनेके
 निवृत्त बाण हापमें किया है उसीके ठेकने हम सब का
 भाँति हा रहे हैं । न मेरे देवता भी उन्हींके परगणें हुए
 हैं ॥ २५ ॥

एष पूर्वस्य देवस्य लोककतुः सनातनः ॥ २६ ॥
शरस्तेषोमयो वत्सा येन वै भयमागतम् ।

पुत्रो । य इत्थेमेव धनात्न बाण आधिपुत्रप स्वे-
भ्यां भावान् विष्णुका है । किस्ते दुर्गे म्म प्राप्त हुआ
है ॥ २६ ॥

एष वै कैटभस्यार्थे मधुनद्य महाशरः ॥ २७ ॥
सृष्टे महात्मना तेन वधार्थे वैत्पयोस्तयो ।

परमात्मा श्रीहरिने मधु और कैटभ—इन दोनों देवोंका
वध करनेके लिये इस महान् बाणकी सृष्टि की थी ॥ २७ ॥

एष एव प्रजापति विष्णुस्तेजोमयं शरम् ॥ २८ ॥
एषा एव तनुः पूर्वा विष्णोस्तस्य महात्मनः ।

एकमात्र मावान् विष्णु ही इस देवोमेव बाणको धरते
हैं क्योंकि यह बाण अर्थात् परमात्मा विष्णुकी ही प्राचीन
मूर्ति है ॥ २८ ॥

इतो गच्छत पश्यन् वध्यमान महात्मनः ॥ २९ ॥
रामानुजेन वीरेण रुचण राससोत्तमम् ।

यस इमधम्य वरिष्ठे बाभो और श्रीरामचन्द्रकी छोटे
भ्रां भ्रातृमन्त्री वीर शत्रुघ्नेके हाथसे रक्ष्यप्रवर कनकासुरको
वध होय देखो ॥ २९ ॥

तस्य त इयदेवस्य निशम्य यत्न सुराः ॥ ३० ॥
मात्रमुर्वत्र युध्येत शत्रुघ्नश्चवणाश्रुभौ ।

देवादिदेव ब्रह्मादीक यह वचन सुनकर देवताधेग
उन स्थानपर आये, यहाँ शत्रुघ्नी और कनकासुर दोनोंका
धुं हो रहा था ॥ ३० ॥

त शर विष्यस्तकशरा शत्रुघ्नकलपरितम् ॥ ३१ ॥
इदमुः सर्वभूतानि युगात्मानिमिधोरिष्यतम् ।

शत्रुघ्नीके हाथ हाथमें लिये गये उस दिग्म बाणको
वही प्रलिनोने देखा । वह प्रक्यकाकके अग्निके समान
प्रकथित हो रहा था ॥ ३१ ॥

स्यधमापुठ इदुा द्वैर्हि रघुनन्दना ॥ ३२ ॥
सिंहपाद मृदा कृत्या दवर्षा सवर्षा पुना ।

आधरको देवताओंसे मया हुआ देव रघुकुम्भन
शत्रुघ्नेने वही शरसे विनाश करके कनकासुरकी ओर
देखा ॥ ३२ ॥

स्यदुपाय पुनस्तेन शत्रुघ्नेन महात्मनः ॥ ३३ ॥
सवर्षाः शोधसमुको युद्धाय समुपस्थितः ।

मात्रम्य शत्रुघ्ने पुनः सवर्षादेव कनकासुर शोधते
हाथमें श्रीमहामायने बाहनीकीये आदिकाधे उलरकाधे एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥ ३ ॥

भर गया और फिर मुद्रके लिये उनके सामने मया ॥ ३३ ॥
भाकर्णात् स विरुप्याय तद् धनुर्धर्मिणां वरः ॥ ३४ ॥
स मुमोष महायाप लवणस्य महोरसि ।

तव धनुर्धरमें भेद शत्रुघ्नीने अपने धनुषको कान्तक
कीचकर उस महाबाणको कनकासुरके विद्याल बन्धः कनका
पत्तना ॥ ३३ ॥

उरस्तस्य विद्वार्याशु प्रविवेश रसातलम् ॥ ३५ ॥
गत्या रसातल विष्या शरो विबुधपूजिता ।
पुनरेवागमत् तूर्णमिदवाकुकुम्भनन्दनम् ॥ ३६ ॥

यह देवपूजित दिग्म बाण दूरत ही उस रक्षकके हृदयको
विदीर्ष करके रसातलमें घुस गया तथा रसातलमें बाकर यह
फिर तलका ही इत्थकुकुम्भनन्दन शत्रुघ्नीने पाव भ
गया ॥ ३५ ॥

शत्रुघ्नशरनिर्मिषो रुचणः स निशप्रचरः ।
पपाव सहसा भूमौ वज्राहत इषाघलाः ॥ ३७ ॥

शत्रुघ्नीके बाणसे विदीर्ष होकर निशाचर रुचण बरके
मार हुए परतके समान उरका पृथ्वीपर गिर पड़ा ॥ ३७ ॥

तच्च शूल महाद् विष्य हते रुचणपाक्षसे ।
पश्यतां सर्वदेवानां रुद्रस्य वशमम्बगात् ॥ ३८ ॥

कनकासुरके मारे जाते ही वह दिग्म एव महान् शूल उ
देवताओंके देखते-देखते भावान् बरके पाव भ गया ॥ ३८ ॥

एकेपुपातेन भय निपात्य
ओकत्रयस्यास्य रघुमधीन ।
विलिर्वाभायुत्तमघापयाण

स्तमः प्रयुधेय सहस्ररश्मिः ॥ ३९ ॥
इत प्रकार उत्तम धनुष-बाण धारण करनेवाले रघुकुलके
प्रमुख वीर शत्रुघ्न एक ही बाणके प्रहारसे तीनों शोधके म
को नष्ट करके उठी प्रचर सुखभित हुए शैते विभुवनका
अन्धकार दूर करके लक्ष किरणधारी सूर्येव प्रकाशित हो
उठते हैं ॥ ३९ ॥

ततो हि देवा ऋषिपथगाश्च
प्रपूजिरे ह्यप्सरसाश्च सभाः ।
निष्टया जयो वाशरधेरयात्

स्त्यन्त्याभय सप इय प्रशास्तः ॥ ४० ॥
श्रीमायकी बात है कि इतरथनन्दन शत्रुघ्नेने भ
ओकर विष्णु प्राप्त की और तर्कि समान सारासुर म
गया' देव बरकर देवता ऋषि, नाग और समान अन्धकार
उत समय शत्रुघ्नीकी भूरी-भूरी प्रगण करने लगे ॥ ४० ॥

श्रीमायकी बात है कि इतरथनन्दन शत्रुघ्नेने भ
ओकर विष्णु प्राप्त की और तर्कि समान सारासुर म
गया' देव बरकर देवता ऋषि, नाग और समान अन्धकार
उत समय शत्रुघ्नीकी भूरी-भूरी प्रगण करने लगे ॥ ४० ॥

श्रीमायकी बात है कि इतरथनन्दन शत्रुघ्नेने भ
ओकर विष्णु प्राप्त की और तर्कि समान सारासुर म
गया' देव बरकर देवता ऋषि, नाग और समान अन्धकार
उत समय शत्रुघ्नीकी भूरी-भूरी प्रगण करने लगे ॥ ४० ॥

श्रीमायकी बात है कि इतरथनन्दन शत्रुघ्नेने भ
ओकर विष्णु प्राप्त की और तर्कि समान सारासुर म
गया' देव बरकर देवता ऋषि, नाग और समान अन्धकार
उत समय शत्रुघ्नीकी भूरी-भूरी प्रगण करने लगे ॥ ४० ॥

श्रीमायकी बात है कि इतरथनन्दन शत्रुघ्नेने भ
ओकर विष्णु प्राप्त की और तर्कि समान सारासुर म
गया' देव बरकर देवता ऋषि, नाग और समान अन्धकार
उत समय शत्रुघ्नीकी भूरी-भूरी प्रगण करने लगे ॥ ४० ॥

श्रीमायकी बात है कि इतरथनन्दन शत्रुघ्नेने भ
ओकर विष्णु प्राप्त की और तर्कि समान सारासुर म
गया' देव बरकर देवता ऋषि, नाग और समान अन्धकार
उत समय शत्रुघ्नीकी भूरी-भूरी प्रगण करने लगे ॥ ४० ॥

सप्ततितम सर्ग

देषताओंसे वरदान पा शत्रुघ्नका मधुरापुरीको बसाकर बारहवें वर्षमें वहाँसे

श्रीरामके पास जानेका विचार करना

हते तु लक्षणे देवा सेन्द्राः सामिपुरोगमाः ।

कञ्चुः सुमधुरा यार्थी शत्रुघ्न शत्रुघ्नानम् ॥ १ ॥

अनन्तरके मारे जानेपर इन्द्र और अग्नि आदि देवता
आकर शत्रुघ्नको संज्ञाप देनेवाले शत्रुघ्नसे अत्यन्त मधुर
बाणीमें बोले— ॥ १ ॥

विष्ट्या ते विजयो वरस विष्ट्या लक्षणास्तदा ।

उतः पुरुषदायूसु धर धरस्य सुमत ॥ २ ॥

वत्स ! खेमापत्नी बात है कि तुम्हें विष्णु प्राप्त हुई
और कनकसुर मारा गया । उतस वरता पावन करनेवाले
पुरुषसिंह ! तुम वर माँगो ॥ २ ॥

वरदास्तु महाबाहो सूर्य एव समगताः ।

विजयाकस्त्रिणस्तुभ्यममोर्षं दशमं हि वा ॥ ३ ॥

महाबाहो ! हम सब श्रेय तुम्हें वर देनेके लिये वहाँ
आये हैं । हम तुम्हारी विष्णु आहते थे । हमारा दर्शन
अम्य है (अतएव तुम कोई वर माँगो) ॥ ३ ॥

देषानां भारितं भ्रुव्या शूरो मूर्ध्नि कृताङ्गलिः ।

प्रत्युधाद्य महाबाहुः शत्रुघ्नः प्रयतासमान् ॥ ४ ॥

देवताओंका यह बन्ध मुनकर मान्ये वशमें रखनेवाले
शरीर महाबाहु शत्रुघ्न मलकर अङ्गलि बौंच इस
प्रकार बोले— ॥ ४ ॥

इय मधुपुरी रम्या मधुरा देवनिर्मिता ।

निवेश प्राप्नुयाच्छीम्रमय मेऽस्तु धरः परः ॥ ५ ॥

देवताओं ! यह देवनिर्मित रमणीय मधुपुरी शीम्र ही
मनोहर राजधानीके रूपमें बस काम । वही मेरे लिये श्रेय
कर दे ॥ ५ ॥

न ह्याः प्रीतिमनसो बाह्मिन्येव वापथम् ।

ययिष्यति पुरी रम्या शूरसम्भ्र म सदाया ॥ ६ ॥

तब देवताओंने उन शत्रुघ्नसन्तान शत्रुघ्नसे प्रसन्न होकर
बना— बहुत अच्छा देख ही हा । वह रमणीय पुरी निःसंदेह
ए-शीमें ही सैनाने उपम हा अयागी ॥ ६ ॥

न तथास्तथा महात्मानो दिग्माकङ्कुस्तदा ।

शत्रुघ्नाऽपि महागजास्तौ स्वर्गं समुपागतम् ॥ ७ ॥

ऐसा कहकर महात्माणी देवता उत समव आनेवा
गब । मगतकयी शत्रुघ्नने भी गजाकने अदनी उत सेनाको
बुनबाध ॥ ७ ॥

सा गता गीघ्रमागच्छच्छ्रुत्या शत्रुघ्नगतसमम् ।

निश्चान य शत्रुघ्ना धाययेन समारभत् ॥ ८ ॥

शत्रुघ्नकी आदेश परर वह सेना शीम्र कयी अयी ।
शत्रुघ्नने भावबलसे उन पुरीध बलाना आरम्भ किया ॥

शत्रुघ्न विष्णुसकप्रसो वर्षे द्वावशामे शुभे ।

निषिद्यः शूरसेनात्ता विरयञ्चाङ्कुरोभया ॥ ९ ॥

जैसे बारहवें वर्षतक वह पुरी तथा वह शूरसेन
पूजकसे कत गया । क्यों कयी किन्तीसे भय नहीं वा । वह
देव विष्णु सुख सुविधाओंसे लम्बत था ॥ ९ ॥

क्षेत्राणि सस्ययुक्तानि काळे वर्धसि प्रासदाः ।

शरोगवीरपुरुषा शत्रुघ्नमुज्ज्वलिता ॥ १० ॥

वहाँके लेत लेतीसे हरे मेरे हो गये । इन्द्र वहाँ लम्बत
करा करते लगे । शत्रुघ्नकीके बाहुबलसे मुञ्चिल मधुपुरी
मीरोग तथा वीर पुरुषोंसे भरी थी ॥ १० ॥

अर्धचन्द्रप्रतीकाशा यमुनातीरशोभितः ।

शोभिता गृहमुखीय्य चरकरावजबीधिकैः ।

त्वाद्गुणैर्ष्यसमायुक्ता नान्यथाविजयशोभितः ॥ ११ ॥

वह पुरी यमुनाके तटपर अर्धचन्द्राकार बनी थी अर
अनेकनेक सुन्दर घरों, खोहरों, बागों तथा गमिनोंसे
सुशोभित होती थी । उजमें चारों बकोंके बगे निवाल करते थे
तथा नान्य प्रकारके वासिभ्य-अवलय ठकरी शोमा बवाते थे ॥

एव तेन पुरा शुभ्र लवणत हृत महत् ।

वच्छेभयति शत्रुघ्नो नानावर्णपशोभिताम् ॥ १२ ॥

पूर्वकालमें छव्याहनेके दिन विद्यालयोंका निर्माण कर
था, उनमें लकड़ी काकर उन्हें नाना प्रकारके चिनोंसे
सुशोभित करके शत्रुघ्नकी उनकी शोभा बढ़ाने को ॥ १२ ॥

अधरामैश्च विहारैश्च शोभमानां समच्छता ।

शोभितां शोभनीयैश्च तथाप्यैर्ष्यमातुषैः ॥ १३ ॥

अनेकनेक ठपान और विहारलक लव अरसे उत
पुरीके सुशोभित करते थे । देवताओं और मनुष्योंसे लम्बत
रखनेवाले अम्य शोभनीय परावर्ष भी उत नारीकी शोभा-
बुद्धि करते थे ॥ १३ ॥

ता पुरीं विष्णुसंक्रशा नान्यपन्मोपशोभिताम् ।

नान्यदेशान्गैश्चापि यणिगिभरुपशोभिताम् ॥ १४ ॥

नाना प्रकारकी अत्र विष्णु योग्य बस्तुओंसे सुशोभित वह
विष्णु पुरी अनेकनेक देशोंसे आने हुए बसिनोंसे शोभा
वा ली थी ॥ १४ ॥

तां समुद्रा समुद्रार्थः शत्रुघ्ने भरतातुजा ।

निरीक्ष्य परममीताः परं ह्यमुपागतम् ॥ १५ ॥

जमे पूजा लक्ष्मिशाकिनी देव लक्ष्मनदेवय हुए
मरतातुज शत्रुघ्न आयेत प्रसन्न हो वह हर्षका अतुम
करने लगे ॥ १५ ॥

तस्य सुदिः समुत्पन्ना नियदप मधुरं पुरीम् ।

रामपत्नी निरीक्षत्तं वर्षे द्वावदा अगत ॥ १६ ॥

मधुरपुरीको बहादुर उनके मनमें यह विचार उत्पन्न हुआ कि अयोध्यासे आये बारहवाँ वर्ष हो गया अब मुझे यहाँ बहादुर श्रीरामचन्द्रजीके चरणारविन्दोंका दर्शन करना चाहिये ॥ १६ ॥

ततः स ताममरपुरोपमा पुरीं
निवेद्य वै विधिधनानभिससृताम् ।

इत्थार्थे श्रीमद्रामायणे वाचमोक्षीये आदिकव्ये उत्तरकाण्डे सप्ततितमः सर्गः १० ॥

इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीके चरणारविन्दोंके दर्शनकरके उत्तरकाण्डमें सत्तरवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ १० ॥

एकसप्ततितम सर्ग

शत्रुघ्नका थोड़ेसे सैनिकोंके साथ अयोध्याको प्रस्थान, मार्गमें वाल्मीकिके आश्रममें

रामचरितका गान सुनकर उन सबका आश्चर्यचकित होना

उद्ये द्वावशमे वर्षे शत्रुघ्नो रामपाशिताम् ।

अयोध्या स्वकमे गन्तुमस्यभूय बह्वनुगम् ॥ १ ॥

उत्तमर बारहवें वर्षमें थोड़ेसे सबके और सैनिकोंके

सब से शत्रुघ्नने श्रीरामपाशित अयोध्याको अनेक

निकर किया ॥ १ ॥

उद्ये मन्त्रिपुरोगांश्च वलमुक्थान् निवर्त्य च ।

अयम ह्ययमुक्थेन रथानां च शतैश्च सः ॥ २ ॥

इसमें अनेक मुख्य-मुख्य मन्त्रियों तथा सेनापतियोंके

सैनिक—पुरीकी रक्षाके लिये वही छोड़कर वे अन्धे-अन्धे

बैठे-बैठे ही रथ लाय के अयोध्याकी ओर चले गये ॥ २ ॥

स गत्वा गणितान् वासान् सप्तदशैरघुनन्दना ।

कस्मिन्मन्त्रममात्स्य धार्सं धक्के महापराः ॥ ३ ॥

महापदवी शत्रुघ्ननन्दन शत्रुघ्न यत्रा करनेके पश्चात्

मार्गमें एक-एक परिगणित स्यानोंपर पड़ाव डालते हुए

कस्मिन्के मुनिके आश्रमपर आ पहुँचे और उद्येमें वही बहरे ॥

साम्भिव्याय ततः पादौ वास्मीके पुरुपर्यभः ।

एषामथ्य तथादिष्य जग्राह मुनिहस्ताः ॥ ४ ॥

उन पुरुषपर एषीरने वास्मीकिन्हीके कर्जोंमें प्रथम

धरके उनके हाथसे पाद और बाध्वं आदि आदिभ्य-सत्कारकी

कस्मिं प्राय की ॥ ४ ॥

शत्रुघ्नाः सुमधुराः कथास्तत्र सहास्रशः ।

कथ्यमग्रस स मुनिः शत्रुघ्नाय महात्मने ॥ ५ ॥

यहाँ मार्गमें वास्मीकिने महात्मा शत्रुघ्नको सुनानेके लिये

कैशिकी मंत्रियों सहकों सुमधुर कथाएँ कही ॥ ५ ॥

बयाथ च मुनिर्वाच्य लवणम्य तथाभित्तम् ।

सुपुष्कर इव कर्म लवण निष्कता त्वया ॥ ६ ॥

किर वे लवणबन्धके विषयमें बोले—सम्भवाद्भरके मारकर

मुझे अस्मत् सुष्कर कर्म किया है ॥ ६ ॥

यद्वः पार्ष्णिवाः सौम्य इत्यः स्वकथाहम् ।

लवणेन महाप्राज्ञं युष्यमात्स्य महाबलाः ॥ ७ ॥

मयाभिपो रघुपतिपाद्दर्शने

वधे मतिं रघुकुलवशायर्षना ॥ १७ ॥

इस प्रकार नाना प्रकारके मनुष्योंसे भरी हुई उद्ये देव

पुरीके समान मनोहर मधुरपुरीको बहादुर शत्रुघ्नाकी बुद्धि

करनेवाले यत्रा शत्रुघ्नने श्रीरघुनाथजीके चरणोंके दर्शनका

विचार किया ॥ १७ ॥

शौच्य ! महाबाहो ! सम्भवाद्भरके खय युद्ध करके बहुत

से महाबली मूषक सेना और स्वारिबैलसहित मारे गये हैं ॥

स त्वया सिद्धतः पापो ह्यीत्यथा पुरुपर्यभः ।

जगतश्च भय तत्र प्रशान्त तव तेजसा ॥ ८ ॥

पुरुषभेद ! वही पापी लवणाद्भर तुम्हारे द्वारा अनात्मत

ही मार डाल गया । उसके कारण जगत्में जो भय छा गया

था, वह तुम्हारे तेजसे शांत हो गया ॥ ८ ॥

रायमभ्य धधो घोरो यत्नेन महता हृतः ।

इव च सुमहत्कम त्वया हृतमपस्तः ॥ ९ ॥

वायुकाय घोर बल महान् प्रयत्नसे किया गया था परंतु

वह महान् कर्म तुमने किना बलके ही सिद्ध कर दिया ॥ ९ ॥

प्रीतिश्चास्मिन् परा जाता देवाना लवणे हते ।

भूतानां चैव सर्वेषां जगतश्च प्रिय हृतम् ॥ १० ॥

सम्भवाद्भरके मारे जानेसे देवताओंके वही प्रसन्नता हुई

है । तुमने समस्त प्राणियों और खरें जन्तुका प्रिय कर्म

किया है ॥ १० ॥

तव युद्ध मया इष्ट यथावत् पुरुपर्यभः ।

सभार्या वासवस्याय उपविष्टेन राघव ॥ ११ ॥

अरभइ ! मैं इन्द्रकी समाने बैठा था । जब वह

विमानाद्भर तथा युद्ध देखनेके लिये आयी तब वहाँ बैठे

बैठे मैंने भी तुम्हारे और लवणके युद्धको अक्षीर्षित देखा था ॥

ममापि परमा प्रीतिर्बुद्धिं शत्रुघ्न वसंतः ।

उपाग्रास्यामि ते मुनिं स्नेहस्वीया परा गतिः ॥ १२ ॥

शत्रुघ्न ! मेरे हृदयमें भी तुम्हारे लिये बड़ा प्रेम है ।

अतः मैं तुम्हारा मत्तक सँभूंगा । यही स्नेहकी पराकाया है ॥

इत्युक्त्या मुनिं शत्रुघ्नमुपाग्राय महामतिः ।

व्यसिध्यमकर्णेत् तस्य ये च तस्य पत्यानुगाः ॥ १३ ॥

ऐस्य ब्रह्मकर परम बुद्धिमान् वास्मीकिने शत्रुघ्नका

मत्तक सँभू और उनका तथा उनके साथियोंका व्यसिध्य

कर दिया ॥ १३ ॥

स मुक्तयान् मरुभेद्यो गीतमाधुर्यमुत्तमम् ।
 सुधाय रामचरित तस्मिन् काले यथाक्रमम् ॥ १४ ॥
 मरुभेद्यं धनुष्पते योक्तुं किमा और उस समय भीराम
 धनुष्पतेके चरित्रका क्रमशः वर्णन हुआ: जो गीतकी मधुकाके
 चरण बहा ही मिय एवं उत्तम गुण पकता था ॥ १४ ॥
 तन्त्रीलयसमायुक्त त्रिस्रान्तररूपस्थितम् ।
 सस्कृत सङ्गणोपग समलालसमन्वितम् ॥ १५ ॥
 सुधाय रामचरित तस्मिन् काले पुत्र कृतम् ।

उठ बैरामने उन्हें जो रामचरित सुननेको सिखा वह
 पहले ही कामकाज कर लिखा गया था । वह कामकाज
 भीनाकी क्यने साथ ही रहा था । इरम, कण्ठ और मूर्धा—
 इन तीन स्थानोंमें मन्द्र, मध्यम और तार स्वरके मेवसे
 उच्चारित हो रहा था । संस्कृत भाषामें निर्मित होकर व्याकरण
 एवं काव्य और संगीत-शास्त्रके छत्रोंसे उन्मत्त था और
 गन्धर्वित ताकके साथ गाया गया था ॥ १५ ॥
 ताप्यस्यराणि सत्यानि यथावृत्तानि पूर्वैराः ॥ १६ ॥
 भुवा पुत्रप्रावृत्तौ विसृज्यो धाप्यलावना ।

उठ कामकाज सभी मरु एवं वाक्य लयी धरनाका प्रति-
 पादन करते थे और पहले जो वृत्तान्त पठित हो चुके थे
 उनका पचास परिष्कार कर रहे थे । वह अनुष्ठुत कामकाज
 मुनिकर पुरुषसिंह धनुष्पत्त मूर्च्छित-से हो गये । उनका नेत्रोंसे
 आँसुओंकी धारा बहने लगी ॥ १६ ॥
 स मुहूर्तमियासक्तो विमिश्रम्य मुहुर्मुहुः ॥ १७ ॥
 तस्मिन् गीते यथावृत्तं वतमानमिवाश्रुणात् ।

वे जो पक्षीक अनेक-तने होकर बार-बार सभी वींठ लीं-कते
 रह । उठ गुनने उन्हींके लींठी हुई बातोंका वर्तमानकी मौलि
 मुना ॥ १७ ॥
 पदावुगाद्य ये गद्यस्ता भुवा गीतिसम्पदम् ॥ १८ ॥
 मवाटमुजाद्य दीनाद्य व्याभयमिति धानुष्पत्त ।
 ह्यार्यो धीमत्परामायणे वास्मीकीक व्याहिकार्ये उत्तरकाण्डे पञ्चमसप्तितमः सर्गः ॥ १ ॥
 इत तत्रा श्रीवाल्मीकिर्मूर्ति स्वर्गात्मन स्मिन्कामके उत्तरकाण्डे इन्द्रकाण्डे तत्र पूरा हुम् ॥ ७१ ॥

द्विमततितम सर्ग

वाल्मीकिजीसे विदा ल धनुष्पत्तजीका प्रयाप्यामें जाकर श्रीराम आदिसे मिलना और
 सात दिनोंतक वहाँ रहकर पुन मधुपुरीका प्रस्थान करना

त दायात मरुभ्याम् मित्रा काम्यागमत् तदा ।
 विस्तयातमनवार्थ रामगीतमनुत्तमम् ॥ १ ॥
 १. समय पुत्राणि धनुष्पत्त उठ उत्तम भीरामचरित्र-
 काव्यकी पद-द निदानमें अनेक प्रकारकी बातें छेपन रहे ।
 इन्विप यारों उन्हें बहुत रोरनक मीद नदी भापी ॥ १ ॥
 तस्य दाप्यं मुमपुर तन्त्रीलयसमन्वितम् ।
 धुव्या रात्रिजगामानु धनुष्पत्तय मदागमनः ॥ २ ॥

उस धनुष्पत्तके जो साथी थे वे भी उस गीत-सम्पत्तके
 मुनिकर हीन और नरमकाक हो पाके—(यह तो बड़े आश्च-
 र्यी बात है) ॥ १८ ॥

परस्पर व ये तत्र सैनिक्या सम्भवानि ॥ १९ ॥
 किमिदं क्व च वर्तामाः किमेतत् स्वप्नदर्शनम् ।
 मर्थो यो नः पुरा वदन्नामाधमपते पुनः ॥ २० ॥
 धनुष्पत्त के सैनिक बरों मौजूद थे, वे परस्पर छदने
 छने—(यह क्या बात है ! हमसंग क्यों हैं ! यह क्यों लगन
 तो नहीं देख रहे हैं । किन बातोंको हम पहले देख चुके हैं,
 उन्हींको इस आभासपर क्यों-क्यों-स्यों सुन रहे हैं ॥ १९ ॥
 श्रुणुमाः किमिदं स्वप्ने गीतव-धनमुत्तमम् ।
 विसृज्य ते पर गत्या धनुष्पत्तमिदमनुत्तमम् ॥ २१ ॥

क्या इस उत्तम गीतकाजको हमसंगे लगनेमें सुन रहे हैं !
 फिर अत्यन्त विसयमें पड़कर वे धनुष्पत्तके बाके—॥२१॥
 साधु पृच्छ नरुभेद्यं वास्मीकिं मुनिपुत्रायम् ।
 धनुष्पत्तस्त्वग्रथीत् सयान् कौतूहलसमन्वितान् ॥ २२ ॥
 सैनिकरनमसोऽस्माकं परिप्रष्टुमिहेच्छामः ।
 व्याभययानि वदुसीह भयस्यन्याभमे मुनेः ॥ २३ ॥
 'नरुभेद्यं' भाप इस विषयमें मुनिकर वास्मीकिजीके
 मजीमूर्ति पूछें । धनुष्पत्तके कौतूहलमें भरे हुए उन सब
 सैनिकोंके कह—(मुनिके इस आभासमें देखी अनेक आश्चर्य-
 काज फटनाएँ होती रहती हैं । उाक निम्नमें उन्से कुछ
 पूछ-वाक करना हमारे लिये उचित नहीं है ॥ २२ ॥
 न तु कौतूहलस्यं पुत्रकमन्वेष्टुं त महांमुनिम् ।
 एव तद् वाक्यमुक्त्वा तु सैनिकान् रघुमन्दाग ।
 मभिवाद्य महर्षि त स्य निपेश ययौ तदा ॥ २४ ॥
 कौतूहलका महामुनि वास्मीकिसे इन बातोंके निम्नमें
 जानना या पूछना उचित न हागत । अपने सैनिकोंसे देख
 करकर रघुकुम्भकर धनुष्पत्त महर्षिके प्रणाम करते अपने
 लमें लय गये ॥ २४ ॥

ह्यार्यो धीमत्परामायणे वास्मीकीक व्याहिकार्ये उत्तरकाण्डे पञ्चमसप्तितमः सर्गः ॥ १ ॥
 इत तत्रा श्रीवाल्मीकिर्मूर्ति स्वर्गात्मन स्मिन्कामके उत्तरकाण्डे इन्द्रकाण्डे तत्र पूरा हुम् ॥ ७१ ॥

भीनाके लयक साथ उन रामचरित-गुनना मुमपुर रात्र
 मुनिकर महात्मा धनुष्पत्तकी हीन बात बहुत अच्छी हीन लगी ॥
 तस्या रजम्वां रघुसायां प्रत्या वीबासिकप्रमाम् ।
 इवायं प्राश्रमियास्य धनुष्पत्ता मुनिपुत्रायम् ॥ १ ॥
 १. य व रात्र भीना और प्राश्रमस भाषा उठ पूर्वके
 वास्मीकिन निरुत्तम काक धनुष्पत्तके हाथ अंदर उठित
 वास्मीकिने कहा—॥ १ ॥

भगवन् द्रष्टुमिच्छामि राघव रघुमन्वन् ।
 त्वयानुवागुमिच्छामि सहैभिः सशितप्रवैः ॥ ४ ॥
 भगवन् । अब मैं रघुकुलमन्वन श्रीरघुनामधीश दर्शन
 करना चाहता हूँ । भगवः यदि आपकी आज्ञा हो तो कडोर
 मन्वन करनेवाक इन साधियोंके साथ मेरी अन्येष्वा
 बनेशो इच्छा है ॥ ४ ॥
 एवेषवादिन त तु शत्रुघ्न शत्रुघ्नम् ।
 वात्सीकिःसम्परिप्लव्य विससज्जं स राघवम् ॥ ५ ॥
 इस तरहकी बात करते हुए रघुकुलमूपण शत्रुघ्न
 शत्रुघ्नके वात्सीकिनीने हृदयसे जग्रा सिमा और बानेकी आशा
 है ॥ ५ ॥
 साधिकाद्य मुनिश्रेष्ठं रघुमाकृष्टा सुप्रभम् ।
 कथायामगमन्त् सूर्जे राघवोत्सुकदर्शनाः ॥ ६ ॥
 शत्रुघ्न श्रीरघुनामधीके दर्शनके लिये उत्कण्ठित वे
 एल्लेने मुनिश्रेष्ठ वात्सीकिने प्रणाम करके वे एक सुन्दर
 रथिमान् रथपर आरूढ़ हा द्वरंठ अयोध्याकी ओर पक
 रिने ॥ ६ ॥
 स प्रतिशः पुरीं रम्यां श्रीमानिह्याकुलम्बुना ।
 प्रविशेत् महाबाहुयज्ञ रामो महापुटिः ॥ ७ ॥
 रथकुकुब्धं आनन्दित करनेवाले महाबाहु भीमान्
 शत्रुघ्न जन्मन अयोध्यापुरीमें प्रवेश करक लीधे उत्तरकाण्डकमें
 ले श्रीं आतेकस्वी भीराम विरजमान थे ॥ ७ ॥
 स रथ मन्त्रिमण्यस्य पूर्णचन्द्रनिभात्मन् ।
 पश्यन्मरमण्यस्य सहस्रनयन यथा ॥ ८ ॥
 साधिकाद्य महात्मान् ज्येष्ठममिय तजसा ।
 रघव प्राञ्जलिभूत्वा रामं सत्यपराक्रमम् ॥ ९ ॥
 लीने धरुनेत्रवापी इन्द्र देवताओंके बीचमें बैठते हैं
 ली प्रकर पूर्णचन्द्रमाके समान मनोहर मुसुकाके भगवान्
 भीरय मन्त्रियोंके मण्यमागमें विरजमान थे । शत्रुघ्ने अपने
 लेने प्रणवकित होनेवाक सत्यपराक्रमी महात्मा भीरामके
 लेना प्रणाम किया और हाथ झेड़कर कहा— ॥ ८ ९ ॥
 पदाङ्गन महाराज सत्यं तद् दृष्टवानहम् ।
 इत्-स सखणः पापः पुरा स्वाम्य निधेशिता ॥ १० ॥
 महाराज । आपने मुक्त शिव कामके लिये आशा की
 ली पर म्म में कर आशा है । पापी कण्व मया गया और
 उन्ही पुरी भी बस गयी ॥ १ ॥
 प्रादुरागतानि वरानि त्या विना रघुनाम्बन् ।
 भाससहस्रमह वस्तुं त्यया विरहिता नृप ॥ ११ ॥
 पशुनन । भारका दर्शन लिये विना ये बारह वर्षों ली
 ली प्रकर कीन गय किन्तु नरेवर । अब और अधिक काम
 लक म्मने हुए हनेन प्रसन्नने लारन नहीं है ॥ ११ ॥
 स न प्रसादं कञ्जुत्स्य सुदृश्यामितदिवसम् ।
 मायुदीमा यथा वस्ता न चिर प्रवसाप्यहम् ॥ १२ ॥

‘अमित पराक्रमी कञ्जुत्स । बैसे छोटा बच्चा अपनी
 माँसे अलग नहीं रह सकता उन्ही प्रकार मैं विरजकक
 आपसे दूर नहीं रह सकूँगा । इसलिये आप मुझसे कृपा
 करें’ ॥ १२ ॥
 पद्य हुवाण शत्रुघ्न परिप्लव्येवमप्रधीत् ।
 मा वियाद् कृथाः शूर वैतत् क्षत्रियश्रेष्ठितम् ॥ १३ ॥
 ऐसी बातें करते हुए शत्रुघ्नके हृदयसे सगणकर भीराम
 कन्दरीने कहा—पूखीर । विपद न करो । इस तरह कातर
 होना क्षत्रियकित वेदा नहीं है ॥ १३ ॥
 नावसीदन्ति राजानो विप्रवासपु राघव ।
 प्रजा च परिपाल्या हि क्षात्रधर्मेण राघव ॥ १४ ॥
 पशुकुलमूण । राजाके प्रवेशमें रानेपर भी तुली
 नहीं होते हैं । रघुवीर । राघवके क्षत्रिय धर्मके अनुसर प्रजा
 ल्कीमौलिये शासन करना चाहिये ॥ १४ ॥
 काले काले तु मा वीर अयोध्यामयलोकितुम् ।
 भ्रगच्छ स्व नरश्रेष्ठ गन्तासि च पुरं तव ॥ १५ ॥
 नरश्रेष्ठ वीर । समय समयपर मुझसे मिलनेके लिये
 अयोध्या आया करो और फिर अपनी पुरीके श्ये ब्या
 कर ॥ १५ ॥
 ममापि त्व सुदयिता प्रापैरपि न सदायः ।
 नवद्वय करणीय च राज्यस्य परिपालनम् ॥ १६ ॥
 निःसंदेह तुम मुझे भी प्राणोंसे बड़कर प्रिय हो । परंतु
 शक्यका पावन करना भी ली आवश्यक कर्तव्य है ॥ १६ ॥
 तस्मात् त्व वस काकुत्स्य सतरात्र मया सह ।
 ऊर्ध्वं गन्तामि मधुरां सन्तुत्ययलयाहना ॥ १७ ॥
 भगवः कञ्जुत्स । ममी सात दिन ली तुम मेर साथ
 रहो । उसके बाद सेषक तेना और (कारियोंके लय मधुरपुरी-
 का पस जाना’ ॥ १७ ॥
 रामस्यैतद् यद्यः भुम्वा धमयुक्त मनोऽनुगम् ।
 शत्रुघ्नो दीनया याथा यादमित्यद्य चाप्रधीत् ॥ १८ ॥
 भीरामकन्दरीकी पर बात धर्मयुक्त होनेके लय ही मनके
 अनुकूल थी । इसे सुनकर शत्रुघ्नने भीरामविशेगः मयध
 दीन कपीहाय कहा—‘मेरी प्रभुकी आज्ञा ॥ १८ ॥
 सतरात्र च कञ्जुत्सो राघवस्य यथाप्रया ।
 उप्य तत्र महेष्यामो गमनायापचक्रम् ॥ १९ ॥
 श्रीरघुनामधीकी आज्ञास लात दिन अयोध्यामें टरकर
 महापदुर्ष कञ्जुत्सयुक्तभूय शत्रुघ्न बहोसे बानेका तेषार
 हा गय ॥ १९ ॥
 ध्यमस्य तु महात्मान् राम सत्यपराक्रमम् ।
 भरत एहमण र्थय महात्पुमुपाहृत् ॥ २० ॥
 सत्यपराक्रमी महात्मा भीराम मलय और लामनेने विग
 न शत्रुघ्न एक विशाल रथन आरूढ़ हुए ॥ २ ॥
 दूरं पद्भ्यामनुगता लक्ष्मणेन महात्मन् ।

भरतेन च दानुष्णो जगामाशु पुरीं तथा ॥ २१ ॥
 महात्मा धर्मज्ञ और भरत वैद्य ही उन्हें पहुँचानेके
 हृत्पादों श्रीमद्गामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये उत्तरकाण्डे त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥
 इस अधर श्रीमद्वाल्मीकीयसिद्धि अर्थरत्नस्य आदिकाव्यके उत्तरकाण्डके महारत्ने सप्त पूरु ह्युक्त्वा ॥ ७२ ॥

किये बहुत बुरतक पीछे-पीछे गये । कल्पमात्र कल्पन रूप
 हाथ धीम ही अपनी राजधानीकी ओर चक दिने ॥ २१ ॥

त्रिसप्ततितमः सर्ग

एक ब्राह्मणकर्म अपने मरे हुए पारुष्कको राजद्वारपर लाना तथा राजाको
 ही दोषी बताकर विलाप करना

प्रस्थाप्य तु स दानुष्ण आशुष्म्या सह रामबा ।
 प्रमुमोत् सुखी राज्य धर्मेण परिपालयन् ॥ १ ॥
 कल्पको मधुर मेघकर भगवान् भीरव मख और
 करमण दोनों आइयेके साथ बर्षपूर्वक राज्यका पालन करते
 हुए वह सुख और मानससे रहने लगे ॥ १ ॥
 तत्र कतिपयाहाःसु बृद्धो ज्ञानपयो द्विजा ।
 मृत वाक्मुपादाय राजहागमुपागमत् ॥ २ ॥
 तदनन्तर कुछ दिनोंके बाद उस जनपदके भीतर रहने-
 वाला एक बूढ़ा ब्राह्मण अपने मरे हुए वाक्कर्म का लेशकर
 राजद्वारपर आया ॥ २ ॥
 रघुन् बहुविधा वाद्य स्नेहदुःखसमम्भिता ।
 भसटत् पुत्रपुत्रेति पात्र्यमेतपुयाद्य ह ॥ ३ ॥
 वह स्नेह और दुःखसे भाङ्गुल हो माना प्रकरकी वस्तु
 बरतत हुआ था रहा था और बार-बार भेटा । बेटा । की
 पुत्रर मन्तात हुआ इस प्रकार विचार करता था— ॥ ३ ॥
 पि तु म दुष्कृतं कम पुरा संहातरे ह्यतम् ।
 यद्द पुत्रमप्य तु पदयामि निधन गतम् ॥ ४ ॥
 हाय ! मैंने दुर्भाग्यमें बौन-सा देख पाया किया था
 ब्रिजत कारण आज इन आत्मासे मैं अपने हककोते बेदेकी
 मृत्यु देना रहा हूँ ॥ ४ ॥
 भयानप्रीयत वाक् पञ्चपरमहङ्गकम् ।
 भङ्गात् वरत्तमायन् मम दुःखाय पुत्रक ॥ ५ ॥
 हेरा ! अभी तो तू वाक्क था । ब्रह्म भी नहीं होने
 पाया था । परत वाक् हकार दिन ७ (तरह बर्ष इस महीने
 बीन दिन) की ली भरला थी । तो भी तू मुझे सुख देने
 न फिर भ्रमणमें ही वाक्के गन्धमें क्या गया ॥ ५ ॥
 अन्त्याभिनिधन शमित्यामि न स्वपया ।
 भय न जननी रीप तप दाप्य पुत्रक ॥ ६ ॥
 तल ! तू इतनेमें मैं और ली मन्ता—दोनों कोई ही
 निजमें मर जाँगा हममें काय नहीं दे ॥ ६ ॥

न स्रारम्यनूत ह्युक्त न च हिंसा स्रारम्यहम् ।
 सर्वेषां प्राणिनां पाप न स्रारमि कदाचन ॥ ७ ॥
 मुझे याद नहीं पड़ता कि कभी मैंने हठ रूप में
 निकाली हो । किसीकी हिंसा की हो अथवा समस्त प्राणियोंमें-
 से किसीकी भी कभी कष्ट पहुँचाया हो ॥ ७ ॥
 केनाद्य दुष्कृतनाय वाळ एव ममारमजा ।
 महत्त्वा पितृकषयापि गतो वैभ्रस्यतहायम् ॥ ८ ॥
 फिर आज किस पापसे मेरा यह पैदा सिद्धुर्मा भिने
 किना इस वाक्यान्तरमें ही भयवशसे भर चला गया ॥ ८ ॥
 मेद्वद्य ह्यपूर्व मे भुत या घोरवर्जनम् ।
 मृत्युग्रासकालानां रामस्य त्रिपये ह्ययम् ॥ ९ ॥
 भीरवचन्द्रकीके राममें तो ब्रह्मम-मृत्युकी ऐसी भयंकर
 पटना न पड़े कभी देखी गयी थी और न मुनेमें ही
 आयी थी ॥ ९ ॥
 रामस्य दुष्कृतं किञ्चिन्महद्वस्ति न सदायः ।
 यथा हि विरयम्यानां पात्रानां मृत्युगगतः ॥ १० ॥
 निरसरेह भीरवना ही भयं महान् दुष्कर्म है किन्तु
 इनके राममें रहनेवाले वाक्कोकी मृत्यु होने लगी ॥ १० ॥
 नहम्यभियम्यानां वाक्कानां मृत्युतो भयम् ।
 स राज्ञीवपस्येन वाक् मृत्युयत् गतम् ॥ ११ ॥
 राजद्वारि मरिच्यामि पम्प्या साधमनायद्यत् ।
 प्रह्लादस्यां तत्रा राम सनुपेत्य सुग्री भञ्ज ॥ १२ ॥
 दुःख राममें रहनेवाला वाक्कोकी मृत्युसे मय नहीं है
 आज राम् । मृत्युके बचने पने हुए इस वाक्कर्म की
 कर दो नहीं तो मैं अपनी लीके काय इस राजद्वारपर
 की मौजि पाव दे दूँगा । भीरव । फिर प्रह्लादका पाप
 तुम मुझी देना ॥ ११ १२ ॥
 भ्रातृभिः सदित्ता राजन् दीपमायुगयाक्यसि ।
 उपिता म्य सुग्री राज्य तयाग्निन शुभदायत् ॥ १३ ॥
 महाबन्धी नेरा । हमद्वारे राममें बड़े सुगते रहें
 हमदिये हम अपने मरवोंके काय दीर्घजीवी दोधने ॥ १३ ॥
 इदं तु पतिर्न तस्मान् तप राम यत् स्पिगान् ।
 वाक्यम्य यामायायाः शान्त नि नदि न सुगम् ॥ १४ ॥
 भीरव । तुम्हारे अभीन रहनेवाला हमस-

१ भरत राजकुं वर कर्म है इनमें वर कर्म
 २ अर्थ : कर्म करने के लिये प्रकृतिकर्मात् कर्मदुःखी
 ३ वर विपत्त नने व ल कर्म(व-व) वाक्क वाक्य नाना व है ।

बलक-मरणस्वी दुःख सह्य आ पदा है, किसी हम स्वयं
मी बालके अर्चना हो गये हैं अतः दुःखारे इत राक्षसे हमें
बलक-य भी मूल नहीं मिला ॥ १४ ॥

सम्प्रत्ययायो विषय इक्ष्वाकुणां महात्मनाम् ।

पारं त्वयमिहासाद्य बालान्तकरज ध्रुवम् ॥ १५ ॥

प्रायसा इक्ष्वाकुवंशी नरेद्योत्र यह राजन् भव भद्राय हो
गया है । श्रीरामका स्वामीके रूपमें पाकर यहाँ बलकवंशी मृत्यु
पच्छ है ॥ १५ ॥

एकमेवैर्विपद्यते प्रजा ह्यविधिपालिताः ।

मसदपुच्छे हि मृपताकाले म्रियते जनः ॥ १६ ॥

एकके दोपते सब प्रकृष्य विधिवत् पावन नहीं होता,
वही प्रकृष्यको देखी निपक्षिद्योत्र धामना करना पड़ता है ।
एकके दुःखचारी होनेपर ही प्रकृष्य अकाक-मृत्यु होती है ॥

कन् वा पुरेष्वयुक्तानि जन्य जनपदेषु च ।

कुर्वते न च रसास्ति तदा कालकृत भयम् ॥ १७ ॥

हृषार्थं भीममाम्बवने वाक्सीकीये आदिश्राम्ये उत्तरकाण्डे त्रिस्तसकितमः सर्गः ॥ ७३ ॥
इस प्रकार श्रीरामकीकिर्तिर्निर्दिष्ट अर्धराममण आदिश्राम्ये उत्तरकाण्डमें विह्वलरत्नं सर्वं पूरा हुआ ॥ ७३ ॥

चतु सप्ततितम सर्ग

नारदकीका श्रीरामसे एक तपस्वी क्षुद्रक अधर्माचरणको प्राणन-बालककी मृत्युमें कारण बताना

तथा तु कटज तप्य द्विजस्य परिवेषनम् ।

शुभाय रामयः सर्वे दुःखयोक्तसमन्वितम् ॥ १ ॥

महाएव भीरुमने उठ ब्राह्मणचक्र इत तरह तु क और
छेकते मरत हुआ वह शाय कचन-कन्दन मुना ॥ १ ॥

स दुःखेन च सततो मन्त्रिणस्तनुपाह्वयत् ।

बसिष्ठ धामदेव च भ्रातृभ्य सह नैगमान् ॥ २ ॥

इच्छे मे दुःखते संवत हो उठे । उन्होंने अपने मन्त्रियों
को बुझवा तथा बसिष्ठ और कामदेवको एवं महाकालकित
प्रभे मरगोको भी आमन्त्रित किया ॥ २ ॥

कथं द्विजा दसिप्येन सार्धमप्यौ प्रवेदिताः ।

एवान् देवसकाना वर्षस्वेति ततोऽहुवन् ॥ ३ ॥

तबतकर बसिष्ठकीके साथ अठ ब्राह्मणोंने रामकाममें
प्रवेश किया और उन देवद्वयसे नरेन्द्रते कहा—प्रायतन ।
अन्धी बन हो ॥ ३ ॥

मार्कण्डेयोऽथ मीरस्यो यामह्वयन् ब्रह्मयपः ।

अस्व्यापयोऽथ साबालिर्नित्तमो नारदस्तथा ॥ ४ ॥

उन आठोंके नाम इस प्रकार हैं—मार्कण्डेय मीरस्य
ब्रह्मदेव ब्रह्मर कस्त्यापन ब्रह्मलि, नैरतम तथा नारद ॥
एते द्विजप्रभाः सर्वे व्यसनेपूपवेदिताः ।

महर्षिन् समनुपगतमभिधाद्य कृताबालि ॥ ५ ॥

इन सब भेद प्राणजोको उक्त आठोंपर बैठाया गया ।
वहाँ पड़े हुए उन महर्षियोंको मीरनुवापकीने हाथ जोड़कर

‘भयना नमयें तथा कनपदोंमें रहनेवाले छेग कन
अनुचित कर्म—पापाचार करते हैं और यहाँ राक्षसी कोई
स्वभसा नहीं होती, उन्हें अनुचित कर्मसे रोकनेके छिये कर्म
उपाय नहीं किया जाता, तभी देवकी प्रभामें व्यस्य-मृत्युअ
भव प्राप्त होता है ॥ १७ ॥

सुभ्यक राजद्वेषो हि भविष्यति न सशयः ।

पुरे जनपदे वापि तथा बालयधो ह्ययम् ॥ १८ ॥

‘अतः वह स्पष्ट है कि नगर वा राज्यमें कहीं राजते ही
कोई अपराध हुआ होगा। तभी इत तरह बालककी मृत्यु हुई
है, इयमें कोई शक्य नहीं है’ ॥ १८ ॥

एवं बहुविधैर्वाक्यैरुपपद्य मनुसुंहुः ।

राजानं दुःखस्ततः सुतं तमुपगृहति ॥ १९ ॥

इस तरह अनेक प्रकारके वाक्योंसे उठने बारबार राजके
छामने अम्ना दुःख निवेदन किया और बारबार छोड़ते संवत
होकर वह अपने भरे हुए पुत्रको उठा-उठाकर हृदयसे
अपय उठा ॥ १९ ॥

त्रिस्तसकितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

इस प्रकार श्रीरामकीकिर्तिर्निर्दिष्ट अर्धराममण आदिश्राम्ये उत्तरकाण्डमें विह्वलरत्नं सर्वं पूरा हुआ ॥ ७३ ॥

प्रणम किया और वे स्वयं भी अपने खानपर बैठ गये ॥ ५ ॥

मन्त्रिणो नैगमावसैव यद्यार्हमनुकूलतः ।

तेषां समुपबिधाया सर्वेषां वीरतेजसाम् ॥ ६ ॥

राषयाः स्वमावाप्ये द्विजोऽपमुपगोभते ।

फिर मन्त्री और महाकनोंके साथ यथायोग्य पिशाचारक
उन्होंने निर्वाह किया । उहीत तेजवाले वे सब लग कर तथा
खान बैठ गये, तब भीरुनाथकीने उनसे सब बातें बतायीं
और कहा—‘यह ब्राह्मण राजद्वारपर बरता दिव्ये पड़ा है’ ॥
तस्य तद् धचन भुत्वा राज्ञो वीरस्य नारदा ॥ ७ ॥
प्रत्युपास्य शुभं धाक्यमृषीणां समिधौ स्वयम् ।

ब्राह्मणके हुक्मसे गुली हुए उन महाब्राह्मण यह वचन
शुनकर अन्य सब ऋषियोंके समीप स्वयं नारदकीने यह धाम
बात कही— ॥ ७ ॥

शुषु राजन् यथाकाले प्राप्ते बालस्य सक्षयः ॥ ८ ॥

भुत्वा कर्तव्यतां राजन् कुटप्य रघुनन्दन ।

राजन् । किं कारणसे इत बातकी अस्म-मृत्यु हुई
है वह बतता हूँ, मुनिये । रघुकुलमन्त्रन नरेय । मेरी बात
शुनकर को उचित कर्तव्य हो उठकर पावन कीजिये ॥ ८ ॥

पुरा हृतपुगे राजन् ब्राह्मणा ये तपस्विनः ॥ ९ ॥

अब्राह्मणस्तदा राजन् न तपस्वी कथयन् ।

एवम् । परसे कल्पयुगमें केवल ब्राह्मण ही तपस्वी हुआ

भाषितं दक्षिणं भ्रुवा पुष्पकस्य नराधिपः ।
 अभिवाच महर्षिन् स विमान सोऽप्यरोहत ॥ ८ ॥
 पुष्पकस्मिन्महा बह मनोर बभूव सुनकर वे महायव
 श्रीयम महर्षिणोऽथे प्रथम करके उच विमानवर आरुय हुए ॥
 भजुर्गृहीत्या लुपी च कर्हं च दक्षिणप्रभम् ।
 निक्षिप्य क्षमरे वैती सीमिभिन्नरत्नधुभी ॥ ९ ॥
 उन्नेने बनुप, बाजोते मरे हुए वो तरकठ और एक
 भमचमयी हुई तन्कार हायमे से ही और कल्पन तथा भरत—
 इन दोनों भाइयोंसे नगरकी रक्षामें नियुक्त करके बहोते
 प्रस्थान किया ॥ ९ ॥
 प्रायात् प्रतीनीं हृदि विक्षिप्यश्च ततस्ततः ।
 उत्तरामगमपक्षीमान् विश्व हिमवतश्चतुर्भ्यः ॥ १० ॥
 श्रीमान् राम पहले वो इतर-उत्तर कोकते हुए पश्चिम
 दिशाकी ओर गये । फिर हिमालयसे भी हुई उत्तर दिशामें
 वा पहुँचे ॥ १ ॥
 अग्रहयमानस्तत्रापि स्वल्पमप्यथ जुषुस्तम् ।
 पूर्धामपि विश्व सर्धामयापक्ष्यच्चराधिपः ॥ ११ ॥
 जब उन दोनों दिशाओंमें कहीं थोड़ा-सा भी दुष्कर्म नहीं
 मिलामी दिशा, तब नरेश्वर श्रीरामने समूची पूर्व दिशाका भी
 निरीक्षण किया ॥ ११ ॥
 पविशुत्समाचारामादर्शकसमिर्लाम् ।
 पुष्पकस्यो महापातुस्तत्रापक्ष्यच्चराधिपः ॥ १२ ॥
 पुष्पकर बैठे हुए महापातु राम भीरामने यहाँ भी कुछ
 सवाचारका पावन होश देला । वह दिशा भी सर्वपके समान
 निर्मल दिखानी थी ॥ १२ ॥
 वक्षिष्या विश्वमाकाशम् ततो राजपितृवन्दनः ।
 शीघ्रलङ्घोत्तरे पार्श्वे दूर्धर्षं सुमहत्स्वरः ॥ १३ ॥
 तब वाक्पतिवन्दन रतुनापकी दक्षिण दिशाकी ओर गये ।
 बहो शोक पूर्वपके उठर मागमें उन्ही एक महान् सरोवर
 मिलामी दिया ॥ १३ ॥
 भस्मिन् सरसि तप्यन्त तापस सुमहत्तपः ।
 दूर्धर्षं राघवः श्रीमौस्तम्भमात्मधोमुखात् ॥ १४ ॥
 उच सरोवरके तटपर एक तपस्वी बड़ी मापी तपस्या कर
 हरपार्ये श्रीमज्जामयसे वाक्मीकीसे वाक्पिकायो
 इस प्रश्न श्रीमत्समीक्षितमिर्लित अर्पतगतव अदिशयके उतरकषणमें पक्ष्यचरजो उरं पूरा हुए ॥ १४ ॥

रहा या । वह नीचेको मुक्त किये कटका हुआ वा । पुष्प-
 मन्दन भीरामने उसे देला ॥ १४ ॥
 राघवस्तमुपागम्य तप्यन्त तप उत्तमम् ।
 उवाच स नृपो वाक्पयं धन्वस्त्यमसि सुमत ॥ १५ ॥
 कस्यां योग्या तपोवृद्ध वर्तसे दक्षिणम् ।
 कौतूहलस्तत्त्या पूष्प्यमि रामो वाहारपिडोहम् ॥ १६ ॥
 देलाकर रामा भीरुपुत्रपकी उम तपस्या करते हुए उन
 तपस्वीके पास आये और बोले—उत्तम व्रतका फलम कसे
 वाटे तापस । तुम धन्य हो । तपस्यामें बड़े-बड़े हुए कल्पों
 पुत्रप । तुम किस ऋषिमें उत्तम हुए हो । मैं कल्पकाल
 राम तुम्हारा परिचय जाननेके कौतूहलसे य बात पूछ रहा हूँ ।
 कोऽप्ये मनीषितस्तुभ्य स्वर्गोत्सामोऽपरऽप्यथ ।
 वराभयो वदथे त्व तपस्यामैः सुतुङ्गवत् ॥ १७ ॥
 तुम्हारे किस वस्तुको पतनेकी इच्छा है । तपस्या
 उद्गुप्त हुए इष्टवैक्यसे बरके रूपमें तुम क्या पाना करते हो—
 स्वर्ग वा वृष्टी कोई वस्तु । कौन वा ऐश्वर्य पदार्थ है किन्तु
 किये तुम ऐसी कठोर तपस्या करते हो जो वृष्टीके भी
 सुष्कर है ॥ १७ ॥
 यमाभिस्य तपस्तत धोतुमिच्छामि तापस ।
 प्राहास्यो वासि भद्र तं क्षत्रियो वासि तुर्जवा ।
 वैद्यस्तृतीयो यर्षो वा शूद्रो वा सत्यवत्पुत्र भव ॥ १८ ॥
 शापस । किस वस्तुके किये तुम तपस्यामें काम हुए है
 उसे मैं सुनना चाहता हूँ । इसके सिवा यह भी कहने कि
 तुम ब्राह्मण हो वा कुर्षम क्षत्रिय । तीसरे कर्णके केवल से
 अथवा शूद्र । तुम्हारा भजन हो । ठीक-ठीक कहना ॥ १८ ॥
 इत्येवमुक्ताः स नराधिपेन
 भवाक्षिशरा वाहारयाप तस्मै ।
 उवाच ज्योति सुपपुङ्गवस्य
 यत्कारणं वैद्य तपःप्रयत्नः ॥ १९ ॥
 महाराज भीरामके इस प्रकार पूछनेपर नीचे लिख किये
 कटके हुए उच तपस्वीने उन सुपुत्रेश्वर बहुरथनवन्दन श्रीरामके
 आदनी क्षत्रिका परिचय दिया और किस उद्देशसे उन्ने
 तपस्याके किये प्रस्ताव किया था वह भी बताया ॥ १९ ॥
 उत्तरकषणके पक्ष्यचरितमः सर्गः ॥ २० ॥
 उत्तरकषणमें पक्ष्यचरजो उरं पूरा हुए ॥ २० ॥

षट्सप्ततितम सर्गः

श्रीरामके द्वारा शम्भुकका वध, देवताओंद्वारा उनकी प्रार्थना, अगस्त्याश्रमपर महर्षि
 अगस्त्यके द्वारा उनका सत्कार और उनके किये बामुपश-दान

तस्य तद् वचन भ्रुवा रामस्याक्षिप्रकमजः ।
 भवाक्षिशरास्तयामृतो वाक्पयमेतपुयात् ॥ १ ॥
 कषेणारहित कर्म करनेवाले महापान् उमक भद्र वचन
 सुनकर नीचे महाक किये सत्यक हुआ वह तथाकथित उत्तरे
 इस प्रकार बोला— ॥ १ ॥
 शम्भुयोग्यां प्रजातोऽसि तप उर्यं समास्मिता ।

शत्रु वपुली अम्बुक्ते भीरामकी बालचीव



देवत्व प्राप्ये राम सद्यरीरो महायशः ॥ २ ॥
 आशशाली भीराम ! मैं धृष्टोनिनें उत्पन्न हुआ हूँ
 और खड़े खड़े कर्मों के अक्षर देवत्व प्राप्त करना चाहता हूँ ।
 इक्ष्मिणे ऐश उग्र तप कर रहा हूँ ॥ २ ॥
 न मिष्याह वने राम देवलोकनिगीपया ।
 दूद मां विधि काकुत्स्थ शम्भूक नाम नामता ॥ ३ ॥
 शम्भूककुलपुत्र भीराम ! मैं दूद नहीं बोख्या । देव-
 लोक पर विषय पानेकी इच्छासे ही तपस्यामें आया हूँ । आप
 दूदें दूद उमसिने । मेरा नाम शम्भूक है ॥ ३ ॥
 आपतस्तस्य दूदस्य बहू सुकधिरप्रभम् ।
 निष्कण्य क्रोश्यात् विमल निरक्षिच्छेत् राघवा ॥ ४ ॥
 वह इस प्रकार कर ही रहा था कि श्रीरामकेन्द्रेणैम्यान-
 से पानजगती हुई तन्मार लीन थी और उठीसे उसका स्त्रि-
 ष्यर किया ॥ ४ ॥
 कसिन्धुद्रे इते देवाः सेन्द्राः साग्निपुरोगमा ।
 सायुसाभिति काकुत्स्थ ते पाशासुमुहूर्तम् ॥ ५ ॥
 उग्र दूदका वध होते ही इन्द्र और अग्निशक्ति सम्पूर्ण
 देवता आहुत ठीक बहुत ठीक करकर मगवान् भीष्मकी
 कारवार प्रदंडा करने लगे ॥ ५ ॥
 पुष्पहृदिर्महत्यासीत् विद्यानां सुसुगन्धिनाम् ।
 पुण्यां वायुमुक्तानां सर्वताः प्रपयात ह ॥ ६ ॥
 उग्र समस्तके ऊपर सब आरते वायुदेवताद्वारा मिलेरे
 से दिव्य एवं परम सुगन्धित पुष्पोंकी बड़ी भारी वर्षा होने
 लगी ॥ ६ ॥
 सुमीश्वरान्वनं रामं देवाः सत्यपराक्रमम् ।
 सुप्रार्थमिदं देव सुकृत ते महामतं ॥ ७ ॥
 वे सब देवता आत्यन्त प्रसन्न होकर सत्यपराक्रमी भीराम-
 से बोले— देव ! महामते ! आपने वह देवताओंका ही कार्य
 उत्पन्न किया है ॥ ७ ॥
 पूराण च वर सौम्य यं त्वमिच्छस्यरिद्धम् ।
 कार्पाशो महि दूद्रेऽप्य त्यक्तते रघुनन्दन ॥ ८ ॥
 आपुमोंका दमन करनेवाले रघुनन्दनको सौम्य भीराम !
 आरते इस उत्तमसे ही वर दूद तपरीर लगभकेने नहीं था
 का है । अतः आप को वर चाहें मोंग हैं ॥ ८ ॥
 दण्डनां मारितं भुत्वा रामा सत्यपराक्रमा ।
 उवाच प्राज्ञलिवापयं सहस्राक्षं पुरवरम् ॥ ९ ॥
 देवताओंका यह बचन सुनकर सत्यपराक्रमी भीरामने
 दण्डों काप को दूदनेत्रवादी देवराज इन्द्रसे कहा— ॥ ९ ॥
 यदि देवा प्रसन्ना मे द्विजपुत्रः स जीयतु ।
 विरागु वरमेत म इस्तिर परम मम ॥ १० ॥
 यदि देवराज मुझपर प्रसन्न हैं तो वह ब्राह्मणपुत्र कीर्ति
 तो आप । वही मेरे लिये अपने उत्तम और अभीष्ट वर है ।
 देवराजने मेरे लिये — . . .

ममापचाराद् बालोऽसौ ब्राह्मणस्यैकपुत्रकः ।
 अप्राप्तकालः कश्चेन नीतो वैयस्वतस्तपम् ॥ ११ ॥
 मेरे ही किन्ही अपराधसे ब्राह्मणका वह एकलौटा बालक
 अशमनमें ही काकके गालमें बसा गया है ॥ ११ ॥
 त जीयत भद्र यो नामृत कर्तुमर्हय ।
 द्विजस्य संभ्रुतोऽप्यो मे जीवयिष्यामि ते सुतम् ॥ १२ ॥
 मैंने ब्राह्मणके समने यह प्रतिज्ञा की है कि मैं आपके
 पुत्रको जीवित कर दूँगा । अतः आभलागौत्र कल्याण हो ।
 आप उग्र ब्राह्मण-बालकको जीवित कर दें । मेरी बातको खड़ी
 न करें ॥ १२ ॥
 राघवस्य तु तद् पापयं भुत्वा विबुधसत्तमाः ।
 प्रप्युधु राघव प्रीता देवाः प्रीतिसमस्यितम् ॥ १३ ॥
 भीष्मपुत्राकीर्ति वह बातसुनकर वे विबुधविभोमणि देवता
 उनसे प्रसन्नतापूर्वक बोले— ॥ १३ ॥
 निर्वृतो भव काकुत्स्थ स्योऽस्मिन्महनि बालकः ।
 जीवित प्राप्तवान् भूया समेतस्त्रापि वन्धुभिः ॥ १४ ॥
 शम्भूककुलसम्पुत्र ! आप शंभू हैं । वह बालक आस
 स्त्रि जीवित हो गया और अपने माई-वन्धुओंसे सब मिला ॥
 यस्मिन् मुहूर्ते काकुत्स्थ दूद्रेऽप्य विनिपातितः ।
 तस्मिन् मुहूर्ते बालोऽसौ जीवेन समयुज्यत ॥ १५ ॥
 शम्भूकस्य ! आपने वित मुहूर्तमें इस दूदको बरादायी
 किया है, उठी मुहूर्तमें वह बालक जी उठा है ॥ १५ ॥
 खस्ति प्राप्नुहि भद्र ते सायु याम नरपथ ।
 अगस्त्यस्याभमपद् द्रष्टुमिच्छाम राघव ॥ १६ ॥
 तन्व वीक्षा समाता सि प्रह्वयैः सुमहायुतेः ।
 शशश हि गत वर्णं अशशय्यां समासतः ॥ १७ ॥
 नरभेद ! आपका कल्याण हो । भद्र हो । अब हम
 अगस्त्याभमको भी रहे हैं । खुनन्दन ! हम महर्षिअगस्त्यका
 वचन करना चाहते हैं । उन्हें बहोटा लिये पूरे बारह वर्ष
 शीत चुके हैं । अब उन महादेवकी वरसिंधी वह बहोतपन
 लक्ष्मी प्रदयी वीक्षा समाता हुए हैं ॥ १६ १७ ॥
 काकुत्स्थ तद् गमिष्यामो मुनिं सभितान्दितुम् ।
 त्वं चापि गच्छ भद्रं तं द्रष्टुं तन्मृत्सत्तमम् ॥ १८ ॥
 खुनन्दन ! इक्ष्मिणे हमलोग उन महर्षिअ भिमिन्दन
 करनेके लिये जायेंगे । आपका कल्याण हो । आप भी उन
 मुनिभेदका दर्शन करनेके लिये ब्रह्मिण ॥ १८ ॥
 स तथेति प्रतिज्ञाय देवानां रघुनन्दनः ।
 आदरोह विमान त पुष्पकं हेममूषितम् ॥ १९ ॥
 तब बहुत अष्टा नरकर रघुनन्दन भीष्म
 देवताओंके लामने बहों बनेकी प्रतिज्ञा करके उग्र मुपनभूयिन
 पुष्पकविमानपर चढ़े ॥ १९ ॥
 ततो दद्याः प्रयातास्त विमानैर्द्रुपिसरिः ।
 तयोऽप्यनङ्गामाभं तन्भयानस्तपायतम् ॥ २० ॥

तत्रात् वेदवत् बहुसंख्यक विमानोपर आरुह्य हे बहोति
प्रस्थित इव । किं भीषम मी उरुहीके लय धीप्रज्ञापूर्वक कुम्भक
शुभिके उपोदनको चरु दिने ॥ २ ॥

ब्रह्म तु देवान् सप्रसादानगस्त्यस्तपसां निधिः ।
अर्चयामास धर्मात्मा सर्वोत्तानविशेषतः ॥ २१ ॥
देवग्रामोर्भे भावा देस तपन्याधी निधि परमात्मा अगस्त्यने
उन लक्ष्मी समानरूपते पूषा श्री ॥ २१ ॥

प्रतिपृच्छ ततः पूजां सत्पूज्य च महानुनिम् ।
जन्मुन्त भिक्षुशा इषा नाकपृष्ठं सहातुगा ॥ २२ ॥
उनकी पूषा प्रहण करके उन महानुनिष्ठा अभिमान्दन
कर वे सब देवता अनुचरतेरहित बड़े इतके लय स्वर्गको बसे
गये ॥ २२ ॥

गठपु ठेपु काकुत्स्थाः पुण्याकरद्वन्द्वश्च ।
ततोऽभिधाव्यामास भगस्त्यमृषिसत्तमम् ॥ २३ ॥
उनके पहले खनेपर धीरुपुनाथश्रीने पुण्याकरविमानते उल्ल
कर मुनिभेद व्यासवका प्रथम किया ॥ २३ ॥

सोऽभिधाव महत्मान ज्येष्ठतमिष तेजसा ।
अतिथ्य परमं प्राप्य निपस्तात् नराधिपः ॥ २४ ॥
अपने तेजसे प्रत्यक्षितसे होनेवाले महात्मा भगस्त्यकर
अभिभावक करके उनसे उच्चम आतिथ्य पाकर नरेन्द्र भीरम
मास्नपर बैठे ॥ २४ ॥

तमुपास महतेजसा कुम्भयोर्भिर्हातपाः ।
स्वागर्तं तं नरभेद्य विच्छया प्रातोऽसि राघव ॥ २५ ॥
उस समय महातेजस्वी महातपस्वी कुम्भक मुनिने कहा—
नरभेद्य रघुनन्दन । आपका स्वागत है । आप नहीं पधारो
यह मेरे लिये बड़े सेभाम्यधी बात है ॥ २५ ॥

सर्वं मं वक्ष्यमते नाम गुणैर्बहुभिर्दत्तमैः ।
मतिथिः पूजनीयश्च मम राख्य इदि स्थिता ॥ २६ ॥
अस्तप्य भीरम । बहुत से उच्चम गुणोंके कतय आपके
लिने मेरे हृदयमें बड़ा सम्मान है । आप मेरे आदरणीय
अतिथि हैं और तथा मेरे मनमें बसे रहते हैं ॥ २६ ॥

सुरा हि कथयन्ति त्वामगर्तं शूद्रधातिनम् ।
ब्राह्मण्यम् तु धर्मैव त्वया जीयापितः सुरता ॥ २७ ॥
देवताभोग करते ये किं आप अशमप्यन्यशूद्रका बप
करके आ रहे हैं तथा चर्मेके बन्ने आपने ब्राह्मणके उल्ल मेरे
हुए पुत्रको भीषित कर दिया है ॥ २७ ॥

उप्यतां श्रेष्ठ रजनीं स्रक्वरो मम राघव ।
प्रभाते पुण्यकेच त्व गन्तसि पुरमेव हि ॥ २८ ॥
एव हि नारायणः श्रीमास्त्वयि सर्वे प्रतिष्ठितम् ।
स्य प्रभुः सर्वदेवानां पुरयस्त्वं सजानता ॥ २९ ॥

रघुनन्दन । आज रातको आप मेरे ही पाठ इस अभ्य
में निवास कीजिये । कम खरेरे पुण्यविमानहाय अपने मगर
को बांधेव । आप काकात् भीमात् नारायण हैं । तय कान्

आपने ही प्रतिष्ठित है और आप ही समस्त देवताओंके
स्वामी तथा तनाउन पुरुष हैं ॥ २८ २९ ॥

इत् चाभग्न्य सौम्य निर्मितं विज्वकर्तया ।
दिव्यं दिव्येभ्य धपुया श्रीप्यमान न्वतेजसा ॥ ३० ॥
शैम्य । यह विज्वकर्मका बनाया हुआ दिव्य अभूय
है जो अपने दिव्य रूप और तेजसे प्रकाशित हो रहा है ॥
प्रतिपृच्छीष्य क्यकुत्स्थ मत्प्रिय कुत्र राघव ।
व्यास्य हि पुत्र्यानि सुमहात् फलमुच्यते ॥ ३१ ॥

कुत्स्थकुम्भयुग रघुनन्दन । आप इसे श्रीलिने और
मेरा प्रिय श्रीभियो क्योकि किसीकी टी हुई बलका पुत्रा दान
कर देनेसे महान् फलकी प्राप्ति कतायी जाती है ॥ ३१ ॥
भरप्ये हि भयाभ्याका फलार्था महातमपि ।
स्य हि शकस्तारयितुं सेन्द्रानपि दिवौकसा ॥ ३२ ॥
तस्मात् प्रयास्ये विधिधत् तत् प्रतीच्छ नराधिप ।

इत् अभूयपको नाराज करनेमें केवल रूप ही समर्थ
है तथा बड़े-से-बड़े फलोकी प्राप्ति करनेकी शक्ति भी आपने ही
है । आप इन्द्र आदि देवताओंको भी तानेमें समर्थ हैं ।
इच्छिये नरेन्द्र । यह भूयण मी मैं आपको ही रूंगा । आप
इसे विधिपूर्वक प्रहण करें ॥ ३२ ॥

अयोबाष महत्मानमिच्छाकूप्यां महारथा ॥ ३३ ॥
रामो मतिमतां श्रेष्ठः सत्रधर्ममनुसरन् ।
प्रतिप्रहोऽय भगवन् ब्राह्मणस्याविर्गहितः ॥ ३४ ॥

तत्र बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ और इच्छाकुम्भके महारथी भी
भीरमने अतिवचनका विशार करते हुए बहो महत्त्व
अगत्यधीसे कहा— भगवन् । वान सेनेका काम तो
केवल ब्राह्मणके लिये ही निन्दित नहीं है ॥ ३३ ३४ ॥
सत्रियेण कथ विप्र प्रतिप्राह्यं भवन् तता ।
प्रतिप्रहो हि विभेन्द्र सत्रियाणां सुगर्हितः ॥ ३५ ॥
ब्राह्मणेन विनोयेण वृत्त तत् वक्तुमर्हसि ।

विभेन्द्र । ब्रह्मियोंके लिये तो प्रतिप्रह स्वीकार करना
अत्यन्त निन्दित बताया गया है । किन्तु ब्रह्मण्य प्रतिप्रह—विनोयक
अस्मनश्च दिया हुआ दान कैसे क उच्छता है । यह बतानेकी
छप्य कर ॥ ३५ ॥

पवमुक्तस्तु रामेण प्रत्युपास यद्दानुयिः ॥ ३६ ॥
व्यसन् हृतपुगे राम ब्रह्मभूते पुरायुगे ।
अपार्थिवा प्रजाः सत्ताः सुराणां तु शतशतान् ॥ ३७ ॥

भीरमके इस प्रकार वृद्धनेपर स्वर्ग अगस्त्यने उल्ल
दिया —रघुनन्दन । पहले ब्राह्मणरूप तयपुरागमें लयी प्रब
दिना पचाके ही श्री आगे चक्रकर इन्द्र देवताओंके राब
बनाये गये ॥ ३६ ३७ ॥

ताः प्रजा देवदेवार्थं राजार्थं समुपादधन् ।
सुराणां स्थापितो राजा त्वया हेय हातकस्तुः ॥ ३८ ॥
मयच्छमस्तु लोकेवा पार्थिव नरपुङ्गवम् ।

यस्यै पूजा प्रयुज्याता घृतपापाश्वरेमदि ॥ ३९ ॥
 एव खरी प्रजापे देवदेवेभ्यः ब्रह्माक्षीके पाठ राजस्य सिय
 गीं और शर्मै—देव । माने इन्द्राक्ष इक्ष्वाकुके एराक
 परपर स्थापित किया है । इति तरह हमारे सिये भी किमी भेद
 पुरपुरो यक्ष बना कीसिये किसकी पूजा करक हम पापरहित
 ए इव भूलक्षपर विचरें ॥ ३८ ३९ ॥
 न यत्सामा धिना राज्ञा पय नो निक्षया परः ।
 ततो ब्रह्मा सुरभृष्टो लोकपालान् सवाम्भयान् ॥ ४० ॥
 समारूपायवीत् सर्वोस्तेजोभागान् प्रयच्छत ।
 तत्र द्युत्पन्नैकपाद्याः सपैर् भागान् स्वतेजसः ॥ ४१ ॥
 'हम बिना राजाक नही खोंगी । यह हमाप उठम निक्षय
 है ।' तब सुरभेद ब्रह्माने इन्द्रोहित समस्त अक्षयभैषो सुभ
 कर क्यो—'तुम उन ब्रह्मा अपने तेकका एक-एक भाग दो ।'
 उन समस्त लोकपालोंने अपने-अपने तेकका भाग अर्पित
 किया ॥ ४० ४१ ॥
 मधुपय ततो ब्रह्मा यतो जातः क्षुपो नृपः ।
 त ब्रह्मा लोकपालान् समांशैः समपोजयत् ॥ ४२ ॥
 'उठी समय ब्रह्माक्षीके छीक भाषी, किससे क्षुप मामक
 पय उठम हुआ । ब्रह्माक्षीने उन राजाके अक्षयभैषके दिव
 हुए तेकके उन सभी मागोंसे संशुक कर दिया ॥ ४२ ॥
 तत्र द्यूरी क्षुपं त्वासा प्रजानामीश्वरं क्षुपम् ।
 तत्रैत्र्यं च भागं महिमाश्रापयन्नुपः ॥ ४३ ॥
 'अपभार उठोंने क्षुपको ही उन प्रब्रह्मोंके सिये उनके
 अक्षयभैषके रूपमें अर्पित किया । क्षुपने वहाँ राजा होकर
 इन्द्रके सिय हुए तेककागसे पूनीअ प्राप्त किया ॥ ४३ ॥
 पारम्प तु भागं ययुः पुष्यति पार्षिषः ।
 अशरय तु भागेन वित्तपार्था द्यूरी तदा ॥ ४४ ॥
 पस्तुषाम्योऽभयद् भागस्तत्र क्षालिस्त स प्रजाः ।
 नरयत्र तेजोभगसे वे भूपाठ प्रब्रह्मं धरीरका योग
 हृष्यपैर् अमिहामयने बाक्षीकीये आदिकार्ये उत्तरकाण्डे सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७९ ॥
 हम प्रभर श्रीवन्द्यैर्निर्मित अष्टामायक अदिष्टायके उत्तरकाण्डे सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

करने लगे । कुबेरक उक्तमागम उठनि उठें बनपतिही
 भागा प्रदान की तथा उनमें अ यमराजम तेककाग था,
 उससे वे प्रब्रह्मोंको अपराध करनेपर रण्ड हेते थे ॥ ४० ॥
 तत्रैत्र्येण नरभेष्ट भागं द्युत्पन्नम् ॥ ४५ ॥
 प्रतिगृह्णीष्व भद्रं त तारणार्थं मम प्रभो ।
 नरभेष्ट द्युत्पन्नम् । आप भी राजा होनेके कारण सभी
 लोकपालोंके तेकके अर्पण हैं । अतः प्रभ । इन्द्र-राक्षसी
 तेककागके द्वारा आप मरे उद्धारक सिये यह आभूषण ग्रहण
 कीसिये । आपका मन्त्र हो ॥ ४५ ॥
 तद् रामः प्रतिब्रह्माह मुनस्तस्य महात्मनः ॥ ४६ ॥
 विष्यमाभरणं चित्रं प्रदीप्तमित्य भास्करम् ।
 प्रतिगृह्णा तता रामस्तदाभरणमुत्तमम् ॥ ४७ ॥
 आगम तस्य क्षीतस्य प्रष्टुमैशोपबन्धने ।
 तत्र मगत्रान् भीरुम उन महात्मा मुनिकदिदे हुए उस सुपके
 अमन हीसिमान दिम्प, विचित्र एवं उत्तम आभूषणको
 ग्रहण करके उठकी उपलब्धिक विषयमें पूछन लगे—४६ ४७ ॥
 मस्यद्रुतमिदं विष्य ययुवा युक्तमद्रुतम् ॥ ४८ ॥
 कथं या भयत्प्र प्राप्तं कुता या कन याऽऽहृतम् ।
 कीर्तुहस्तवया ब्रह्मन् पूष्यमि त्वां महायशः ॥ ४९ ॥
 व्याख्याणा बहूनां हि निधिः परमका भयान् ।
 महायशसी मुने ! यह अत्यन्त अद्भुत तथा स्विय
 आकारसे युक्त आभूषण आपको कैसे प्राप्त हुआ भयता इस
 चीन करसि ल आया । ब्रह्मन् । मैं कीर्तुहस्तव य वहाँ आपसे
 पूछ रहा हूँ क्योंकि आप बहुत-से आचरनपौत्री उत्तम
 निधि हैं ॥ ४८ ४९ ॥
 एय प्रपति कञ्जुरस्यो मुनिर्यापयमथाप्रवीत् ॥ ५० ॥
 गृणु राम यथावृत्तं पुरा त्रैतयुगं युगम् ॥ ५१ ॥
 'ककुत्सपुत्रभूषण भीरुमक इत प्रभर पूछनेपर मुनिनर
 अनात्मने क्यो— भीरुम! पूर्ण त्रैतयुगिक भेतायुगमें ब्रह्म
 ब्रह्मण पठित हुआ था या उमे कता हूँ मुनिन' ॥ ५० ५१ ॥
 उत्तरकाण्डे सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

सप्तसप्ततितम सर्ग

महर्षि अगस्त्यका एक श्वर्गीय पुरुषक शकभक्षणका प्रमग मुनाना

पुरा त्रैतायुगं राम बभूव बहुविस्तरम् ।
 सप्तमस्यै योजनगतं विमृगं पक्षियजितम् ॥ १ ॥
 (अस्त्यजी बरत है—) भीरुम । प्राचीनकालके
 भेतायुगकी बत है एक बहुत ही विस्तृत बन था अ क्वारी
 धर से यजनगत ईश्वर हुआ था परंतु उन बनमें न छो
 र्नी १७ या और न पक्षी ही ॥ १ ॥
 तस्मिन् निमानुराडरण्यं बुपाणस्तप उत्तमम् ।
 अष्टमाश्विनसु सीम्य तद्वत्पयमुपागमम् ॥ २ ॥

क्षेप्य । उन निम्न बनमें उषम ताम्य बरनेके सिये
 पूम धूमकर उपयुक्त न्यानवा पना क्यनेके निमित्त मैं
 बरत गया ॥ २ ॥
 तस्य रूपमरभ्यस्य मिदंष्टु न दग्गाव द ।
 पल्लमूलेः मुक्तामार्द्वद्विकरीष्य पापय ॥ ३ ॥
 उन बनका मरकट चिन्ता मुनदायी था यह बचनेमें मैं
 अक्षयर्षी हूँ । मुनद आदिह कम मूक तथा भेद कर-रंगके
 इष्ट उठकी छाया बदात ॥ ३ ॥

तस्यारण्यस्य मध्ये तु सरो योजनमायतम् ।
हसकरण्डवाकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ॥ ४ ॥

उस कानके मध्यभागमें एक खोबर था, जिसकी ध्वजा
चोड़ाई एक-एक वाहनकी थी। उसमें इस और कारणवश
आदि कल्पकी कैद हुए थे और चक्रवाकीके छोड़े उसकी
शोभा बढ़ाते थे ॥ ४ ॥

पद्योत्पलसमाकीर्णं समतिव्रजस्तदीवलम् ।
तद्वाच्यपरिमिवात्यर्थं सुखात्वादमनुचमम् ॥ ५ ॥

उसमें कमल और उत्पल का रहे थे। सेवारण्य कड़ी
नाम भी नहीं था। वह परम उत्तम खोबर अत्यन्त आश्चर्य-
मय-वश जान पड़ता था। उत्पल कल पीनेमें अत्यन्त सुख
एवं स्वादिष्ट था ॥ ५ ॥

भरजस्क तद्वसोम्य श्रीमत्पक्षिगणानुचमम् ।
तस्मिन् सरासमीपे तु महवद्भुतमाभ्रमम् ॥ ६ ॥
पुराण पुण्यमत्यर्थं तपस्विजनवर्जितम् ।

उसमें कौचक नहीं था वह सर्पया निर्मल था। उसे
कोई पार नहीं कर सकता था। उसके भीतर सुन्दर कभी
कल्पक कर रहे थे। उस खोबरके पास ही एक विद्यालय
अद्भुत एवं अत्यन्त पवित्र पुण्या आश्रम था जिसमें एक
भी तपस्वी नहीं था ॥ ६ ॥

तद्वाहमवस रात्रि मैवाशीं पुरुपर्यभ ॥ ७ ॥
प्रभाते कल्पमुत्थाय सरस्तानुपचक्रमे ।

पुरुपरवर । केठकी रातमें मैं उस आश्रमके भीतर
एक रात रहा और प्रतःकाल खोबर उठकर जान आदिके
छिन्दे उस खोबरके तटपर जाने लग् ॥ ७ ॥

मथापश्य शन तत्र सुपुष्टपरजः कबित् ॥ ८ ॥
तिष्ठन्तं परया लक्ष्म्या तस्मिन्तोयाशये मृप ।

उसी समय मुझ वहाँ एक शयन दिखायी दिया जो सु-
पुष्ट होनेके साथ ही अत्यन्त निमल था। उसमें कड़ी कोई
मस्जिदा नहीं थी। नरेन्द्र । वह शयन उस कल्पशयनके तटपर
बड़ी शोभासे सम्पन्न होकर पड़ा था ॥ ८ ॥

तमर्थं चिन्तयानोऽहं मुहूर्तं तत्र राघव ॥ ९ ॥
विष्टितोऽस्मि सरस्तीरे किं किञ्चिच्छांतिप्रभो ।

प्रभो । खुनन्दन । मैं उस शयनके चिन्तनमें यह सोचता
हुमा कि यह क्या है ? वहाँ दो पक्षी एक उस वाक्यके
छिन्दारे बैठा रहा ॥ ९ ॥

मथापश्यं मुहूर्तात् तु विष्यमनुतपर्वानिमम् ॥ १० ॥
विमान परमोवार हंसपुच्छं मनोजघम् ।

अत्यर्थं क्षमिणं तत्र विमाने रघुनन्दनम् ॥ ११ ॥
उपास्तेऽप्यरसां वीर सङ्घान् विष्यन्मृगयम् ।

दो पक्षी बैठते ही मैंने वहाँ एक दिव्य अद्भुत अत्यन्त
उत्तम हंसपुच्छ और उनके समान वैष्णवी विमान उतरकर
देला । खुनन्दन । उस विमानपर एक स्वर्गवासी देवता बैठे

थे, जो अत्यन्त रूपवान् थे। वीर । वहाँ उनकी सेवामें लक्ष्मी
अप्यरएँ बैठी थी, जो दिव्य भाभूपणोंसे विभूषित थी ॥

गायन्ति काञ्चिद् रम्याणि धावयन्ति तच्छपराः ॥ १२ ॥
मुदङ्करीणापणवान् नृग्यन्ति च तथापराः ।

अपराङ्मन्त्ररम्याभैर्ह्रमन्मन्त्रैर्महाधनेः ॥ १३ ॥
धोषुपुर्ववदन तस्य पुष्करीकनिमेषणाः ।

उगमसे कुछ मनोहर गीत गाय रही थी वृक्षी मुख
बीजा और पत्र आदि शब्द बजा रही थी। अन्य बहुत ही
अप्यरएँ नृत्य करती थी तथा प्रकृत कल्प-वृक्षसे नेत्रोंकी

अन्ध किन्ती ही अप्यरएँ सुवर्णमय वृक्षसे विभूषित एवं
चन्द्रमाकी किरणोंके समान उन्मय्य बहुमूल्य चरित होकर उन
स्वर्गवासी देवताके मुखपर हवा कर रही थी ॥ १२ १३ ॥

ततः सिंहासन हित्या मेढकूटमिवांशुमान् ॥ १४ ॥
पश्यतो मे क्वा राम विमानाव्यवहृत् ॥

त शर्षं भक्षयामास च स्वर्गी रघुनन्दनम् ॥ १५ ॥
रघुनन्दनन श्रीराम । तदनन्तर जैसे अंग्रमाक्षी वृक्ष मे-
पर्यन्तके शिखरको छोड़कर नीचे उतरते हैं उसी प्रकार उन

स्वर्गवासी पुत्रपते विमानसे उतरकर मेरे देवतै-वेलाते उस
शयन भक्षण किया ॥ १४ १५ ॥

ततो भुक्त्वा यथाकाम मांसं चतु सुपीवरम् ।
भवतीर्यं सरा स्वर्गी सत्प्रपुष्टमुपचक्रमे ॥ १६ ॥

इच्छानुकर उस सुपुष्ट एवं प्रपुष्ट मांससे खाकर वे
स्वर्गमें देवता खोबरमें उठे और हाथ-मुँह जोते लगे ॥ १६ ॥

उपसृष्टस्य यथाम्नाय च स्वर्गी रघुनन्दन ।
भारोत्सुमुपचक्राम विमानवरमुत्तमम् ॥ १७ ॥

रघुनन्दन । यथोचित ठीससे कुछ-आश्चर्य करके
वे स्वर्गवासी पुत्रपते उस उत्तम एवं श्रेष्ठ विमानपर चढ़नेको
उपगत हुए ॥ १७ ॥

तमहं देवसकाशामारोहस्तमुवीक्ष्य वै ।
मथाहमनुर्वं चाप्य तमेव पुरुपर्यभ ॥ १८ ॥

पुरुषोत्तम । उन देवत्वस्य पुत्रपक्ष विमानपर चढ़ते देव
मैंने उन्से यह बात पूछी— ॥ १८ ॥

कं भवान् देवसकाश आहारक विगर्हिता ।
त्वयेर्षु मुन्यते सौम्य किमर्थं ककुमर्हसि ॥ १९ ॥

श्रीमन् । ईशोपम पुरुष । आप शौन हैं और किसछिन्दे
ऐसा पूषित आहार प्रश्न करते हैं ? यह बलात्केल कर करें ॥

कस्य स्वादीच्छतो भाव आहारो देवसमन्तः ।
अकार्यं वतैते सौम्य भोक्तुमिच्छामि तत्पता ।

आहमौपयिक मन्थे तत्र भक्षयमिमं शयम् ॥ २० ॥
देवदत्त तेजसी पुरुष । ऐल दिव्य लक्ष्य और ऐला
पूषित आहार किसका हो सकता है । श्रेम्य । अर्थमें वे दोनों

॥ २० ॥

॥ २१ ॥

अकर्त्तव्यं वातं हि अतः मे इत्थं यथार्थं रहस्यं मुनना
 कथं हि कर्त्तव्यं मे इह शक्यं व्यपके योग्यं व्यहारं नदी
 भवति ॥ २ ॥

इत्येवमुक्त्वा स गच्छेत् नद्यम्
 कौतूहलात् सन्तुतया गिरा च ।

इत्यार्षे श्रीमन्नारायणे वास्तुशिल्पी आदिशिल्पि उतरकाण्डे अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

स प्रकरं श्रीमन्नरीचिर्निर्मितं श्रुत्वाप्रामाण्यं अविश्वाम्यके उतरकाण्डे अष्टसप्ततितमः सर्गः पूरा हुम् ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितम सर्ग

राजा श्वेतक्रा भगस्त्वजीको अपने लिये घृणित आहारकी प्रासिका कारण बताते हुए प्रज्ञाजीके
 साथ हुए अपनी घातार्थी उपस्थित करना और उन्हें दिव्य आयुष्मणका
 दान दे मूल प्यासक फलसे मुक्त होना

भुत्वा तु भाणितं वाक्यं मम राम शुभाक्षरम् ।
 महसि प्रसूवाशब्दे स खर्गी रघुमन्वन ॥ १ ॥
 (असत्यवी धरते है—) रघुकुम्भमन्वन राम ।
 मेरी स्त्री हुई धूम भस्मसे उक्त बात सुनकर उन खर्गीय
 पुत्रने शय्य शोभकर इह प्रकार उधर दिशा—॥ १ ॥
 यथा ब्रह्मन् पुरा वृत्तं ममैतत् सुकृतुम्भयोः ।
 मगलिकमधीर्यं च यथा पृच्छसि मां द्विज ॥ २ ॥
 ब्रह्मन् । आप बी कुछ पूछ रहे हैं, वह मेरे सुकृत
 इत्यत्र अन्वयनीय कारण, जो पूर्वकर्ममें पठित हो चुका है,
 श्रीं श्याम कला है, मुनिये ॥ २ ॥
 पुरा वैश्वदेवो राजा पिता मम महायशसा ।
 सुशेव इति विश्वाम्यतस्मिन् लोकेषु वीर्यवान् ॥ ३ ॥
 पूर्वकर्ममें मेरे महायशस्वी पिता विश्वाम्ने देशके राजा
 थे । उनका नाम सुशेव था । वे तीनो लोकोंमें विश्वाम्यत
 यशस्वी थे ॥ ३ ॥
 तथा पुत्रद्वयं ब्रह्मन् द्वाभ्यां स्त्रीभ्यामजायत ।
 अथ श्वेत इति क्यातां यकीयात् सुरयोऽभवत् ॥ ४ ॥
 ब्रह्मन् । उनके दो पत्नियों थीं, जिनके गर्भसे उन्हें दो
 पुत्र प्राप्त हुए । उनमें श्वेत मैं था । मेरी श्वेतके नामसे
 पहिले हुई और मेरे छोटे भाईका नाम सुरय था ॥ ४ ॥
 तथा वितरि स्वयंति वीरा मामभ्यपेक्षयत् ।
 तथाहं इत्थान् राज्यं धर्म्यं च सुसमाहितः ॥ ५ ॥
 शिष्टके स्वामीकेसे चले जानेपर पुराशिल्पीने स्वयंके
 पक्षमें मेरा अभियेक कर दिया । वहाँ परम शासकान् रहकर
 मैंने धर्मके अनुकूल राज्यका पालन किया ॥ ५ ॥
 यत् सर्वसहस्राणि समतीतानि सुव्रत ।
 राज्यं कारयतो ब्रह्मन् मजा धर्मैव ददात् ॥ ६ ॥
 ठहम ब्रह्मन् पालन करनेवाले ब्रह्मर्षे । इस तरह धर्म-
 पूर्वक मन्त्रकी रक्षा तथा राज्यका शासन करते हुए मैंने एक
 लक्ष वर्षों जीत गये ॥ ६ ॥

भुत्वा च वाक्यं मम सर्वमेतत्
 सर्वं तथा वाक्यं यममेति ॥ २१ ॥
 नरेवर । अब चौदहव्याध मैंने मधुर वाणीमें उन खर्गीय
 पुत्रपते इह प्रकर पूजा, तब मेरी बातें सुनकर उन्होंने यह
 सब कुछ मेरे सामने बताया ॥ २१ ॥

सोऽहं निमित्तं कस्मिंश्चिद् विव्रतायुर्द्विजोत्तम ।
 कालधर्मं हृदि न्यस्य ततो वनमुपागमम् ॥ ७ ॥
 शिविभोध । एक समय मुझे किसी निमित्तसे अपनी व्यप-
 क्षण पना आ गया और मैंने मृत्यु तिथिके हृदयमें रक्तकर
 बहोते वनको प्रस्थान किया ॥ ७ ॥
 सोऽहं वनमिद् दुर्गं मृगपक्षिविचरितम् ।
 तपस्वतुं प्रविष्टोऽसि समीपे सरसां शुभे ॥ ८ ॥
 'ठव समय मैं इसी दुर्गमें वनमें आया, जिसमें न पशु
 हैं न पक्षी । वनमें प्रवेश करने में इसी श्रेयस्के सुन्दर तटके
 निकट तपस्या करनेके लिये बैठा ॥ ८ ॥
 अतस्त्वं सुरय राज्ञे अभिपिच्य महोपतिम् ।
 इत् सत्त्वं समाप्ताय तपस्वतं मया धिरम् ॥ ९ ॥
 व्याभ्यन्तर अपने भाई राजा सुरयका अभियेक करके इह
 श्रेयस्के समीप आकर मैंने वीर्यशक्तक तपस्या की ॥ ९ ॥
 सोऽहं वर्षसहस्राणि तपस्वीणि महत्तपने ।
 तत्त्वा सुदुष्करं यस्ते ब्रह्मलोकमनुत्तमम् ॥ १० ॥
 इस विद्याका बनने तीन हजार वर्षोंके अत्यन्त दुष्कर
 तपस्या करके मैं परम उत्तम ब्रह्मलोकको प्राप्त हुआ ॥ १० ॥
 तस्येमे स्वर्गं मृतस्य क्षुत्पिपासे द्विजोत्तम ।
 वाचेते परमोदार ततोऽहं व्यथितेन्द्रिया ॥ ११ ॥
 शिविभोध । परम उदार महर्षे । ब्रह्मलोकमें पहुँच जाने-
 पर भी मुझे मूल और प्यास बढ़ा कर देते हैं । उच्छे मेरी
 शरी इन्द्रियों व्यथित हो उठती हैं ॥ ११ ॥
 गन्धा विभुवनधोष्ठं पितामहमुधाच ह ।
 भयबन् ब्रह्मलोकोऽयं क्षुत्पिपासासिचरितः ॥ १२ ॥
 कस्याय कर्मणः पाका क्षुत्पिपासास्तुगो ह्यहम् ।
 आहारः कथं मे देयं तमं ब्रूहि पितामह ॥ १३ ॥
 एक दिन मैंने विष्णुकीके भेट देकरा मानवान् ब्रह्मलोकके
 कथा—मानवान् । यह ब्रह्मलोक तो मूल-प्यासके फलसे रक्षित
 है किन्तु वहाँ भी क्षुत्पिपासाका कथं मेरा पीडा नहीं

घोड़ता है । वह मेरे किंवदन्तीपरिणाम है । देव । किताब । मेरा आहार क्या है । वह मुझे बताइये ॥ १२ १३ ॥

वितामहस्तु मामाह तयादात् सुवैपज ।
स्वाहूनि स्थानि मांसानि तानि भक्षय नित्यशः ॥ १४ ॥

‘वह सुनकर प्रभाषी मुझसे बोले—‘सुदेवन्पत्न । तुम मांसभोजनसे शिथल अपने ही शरीरका सुस्वाद्यु भांश प्रतिदिन खाता करो’ नहीं तुम्हारा आहार है ॥ १४ ॥

स्वशरीर स्वया पुष्टं कुर्वता तप उच्यते ॥ १५ ॥
अनुसं रोहते ह्येत न कदाचिम्महाभते ॥ १५ ॥

‘स्वैत । तुमने उच्यत तप करते हुए केवल अपने शरीर का ही पोषण किया है । महाभते । दानरूपी बीज बोये बिना कभी कुछ भी नहीं ब्रम्हा—‘कोई भी मोक्ष-पदार्थ उपलब्ध नहीं होता है ॥ १५ ॥

वृष न तेऽस्ति स्रष्टमोऽपि तप एव निनेवसे ।
तेन सर्वगतो वास्य वाप्यसे क्षुत्पिपासया ॥ १६ ॥

‘तुमने वेकलाओं पिठरीं एवं अतिविधिके किन्हे कभी कुछ बोका-खा भी दान किया हो ऐसा नहीं दिखायी देता । तुम केवल तपस्या करते थे । वसः । इसीकिन्हे ब्रह्मकेरुमें आकर भी मूक-प्यासे पीकित हो रहे हो ॥ १६ ॥

स त्व सुपुत्रमाहारैः स्वशरीरमनुत्तमम् ।
भक्षयित्वाऽमृततरुं तेन वृत्तिर्मिष्यति ॥ १७ ॥

नाना प्रकारके अहारोंसे मन्दीर्गति पोषित हुआ तुम्हारा पस उच्यत शरीर अमृततरुसे मुक्त होकर और उलका भक्षण करनेसे तुम्हारी शुद्धा पिपासा निवारण हो जायगा ॥ १७ ॥

यथा तु तद्वत् इत्येव मरुत्स्यः स महाहृषिः ।
आगमिष्यति दुर्धर्षस्तदा कृष्णवृ पिभोर्दृश्यते ॥ १८ ॥

स्वैत । जब उच्यत कर्मसे दुर्धर्ष स्वर्गि अमरस्य पपारो, तब तुम इस काले सुदृश्य पा जाओगे ॥ १८ ॥

स हि तारयितुं सौम्य द्राक्षः सुरगणानपि ।
किं पुनस्त्वां महाबाहो क्षुत्पिपासावशा वातम् ॥ १९ ॥

‘सौम्य । महाबाहो ! ये वेतलाओंका भी उद्धार करनेसे क्षम्य हैं । किं मूक-प्यासेकें कारणसे पके हुए दम-बैसे पुरषको संक्यते बुझाना उमके किन्हे क्वैन नहीं बात है ॥ १९ ॥

सोऽहं भगवतः क्षुत्वा वैषवेषय मिश्रयम् ।
आदात् गर्हितं कुर्मि स्वशरीरं द्विजोत्तम ॥ २० ॥

दिक्रमेण । देवादिदेव मन्वान् ब्रह्मका वह निम्न ह्यमर मैं अपने शरीरका ही पृथित आहार ग्रहण करते आया ।

बहुम् पर्यगणान् ब्रह्मन् मुष्यमात्मनिर्व मया ।
क्षय ज्ञाप्येति ब्रह्मर्षे दसिभ्यापि ममोत्तमा ॥ २१ ॥

‘ब्रह्मन् । ब्रह्मर्षे । बहुत वर्षोंसे मेरे हृत्प उपमंगमें अपने हृत्पार्थे श्रीमद्भगवान्के वाक्कीर्तये अविद्याके कलकलकेऽस्तकृतितया । सर्गः ॥ ७८ ॥

जनेवर भी वह शरीर नष्ट नहीं होता है और मुझे पूर्ण रूति प्राप्त होती है ॥ २१ ॥

तस्य मे हृत्कृष्णतस्य कृष्णवृत्ताद् विनेहय ।
अभ्येया न शक्तिर्वां कुम्भयोनिसृते द्विजम् ॥ २२ ॥

‘मुने । इस प्रकार मैं संक्यते पका हूँ । मात मेरे इति-पत्तमे आ गये हैं । इससे मेरे क्यसे मेरा उद्धार कीन्हे । अथ ब्रह्मर्षि कुम्भबन्धे सिवा वृष्टींही इस निकन कर्ममें पूर्ण नहीं हो सक्यते (इसकिन्हे प्राण अक्षय कुम्भयोनि भगवत्त ही हैं) ॥ २२ ॥

इदमाभरणं सौम्य तारणार्थं द्विजोत्तम ।
प्रतिपूह्यिष्ये भद्रं ते प्रसाद्य कर्तुमर्हसि ॥ २३ ॥

‘सौम्य । विप्रवर । आपका कल्याण हो । मात मेरे उद्धार करनेके किन्हे मेरे इस आभूषणका दान ग्रहण करें और आपका कृपासाधक मुझे प्राप्त हो ॥ २३ ॥

एवं तावत्सुवर्णं च भूत यद्वाग्नि च द्विज ।
भक्षय भोज्यं च ब्रह्मर्षे नृदत्तमाभरणानि च ॥ २४ ॥

‘ब्रह्मन् । ब्रह्मर्षे । पर दिव्य आभूषण सुवर्ण वन वस्त्रः मयः भोज्य तथा अन्य माना प्रकारके आभरण भी देता है ॥ २४ ॥

सर्वान् क्षमाम् प्रपच्छमि भोगांश्च मुनिपुङ्गव ।
तारणे भगवद् महा प्रसाद्य कर्तुमर्हसि ॥ २५ ॥

‘मुनिभेद । इस आभूषणके द्वारा मैं समस्त क्षमामें (मनोकाञ्छित पदार्थों) और भोगोंके भी वे रहा हूँ ।

मन्वान् । अथ मेरे उद्धारके किन्हे तुम्हारा कृपा करो ॥ २५ ॥
तस्याह स्वर्गिणो धारण्यं क्षुत्वा तुम्हसमम्भितम् ।
तारणायोपजमाह तदाभरणमुत्तमम् ॥ २६ ॥

स्वर्गिण राधा वनेतकी वह दुःखमयी बात सुनकर मैंने उनका उद्धार करनेके किन्हे वह उच्यत आभूषण के किना ।

मया प्रतिपूह्यते तु तस्मिन्नाभरणे शुभे ।
मातुषा पूर्वके वेदो राजर्षेर्विलम्बता ह ॥ २७ ॥

‘जो ही मैंने उच्यत अहभूषणका दान ग्रहण किया त्यों ही राजर्षि स्वैतका वह पूर्वशरीर (शय) अक्षय हो गया ।

प्रपद्ये तु शरिरेऽप्यौ राजर्षिः परया मुक्ता ।
दसः मनुषित्ये राजा सगमा भिविधं सुखम् ॥ २८ ॥

‘उच्यत शरीरके अक्षय हो जानेपर राजर्षि स्वैत परमानन्दसे दस हो प्रसन्नतापूर्वक सुखमम ब्रह्मकेरुका चले गये ॥ २८ ॥

तेमेव शक्रमुष्येन विष्यमाभरणं मम ।
तस्मिन्निमित्ते काकुत्स्थ वृत्तमहृत्पुत्रोत्तमम् ॥ २९ ॥

‘काकुत्स्थ । उन इन्द्रदत्त केकली राधा वनेत उच्यत मूक-प्यासेके निवारणकर पूर्वोक्त निमित्तसे वह अमृत विलापी देनेवाका दिव्य आभूषण मुझे देना था ॥ २९ ॥

एकोनाशीतितम सर्ग

इक्ष्वाकुपुत्र राजा दण्डका राज्य

सुदृढवर्म धान्य भुवनागस्त्यस्य राजवतः ।
 गोरक्षद विद्यायाच्छैव भूयः प्रभुं प्रथक्कमे ॥ १ ॥
 मयत्पथीष्य वह भक्तवत् भव्युत वचन मुनकर भी
 सुनवर्षके मनमें उनके प्रति विशेष गौरवका उदय हुआ
 और उन्होंने विस्मित होकर पुनः उनसे पूछना आरम्भ
 किया—॥ १ ॥
 मयत्पथीष्य वन भोर तपस्तप्यति यत्र सः ।
 ऐषो वैदर्भके राजा कथ तद्भुगद्विजम् ॥ २ ॥
 मयत्पथीष्य । वह भक्तवत् वन, किसमें विदर्भदेशक राजा
 और भोर तपस्या करते थे, पद्य पक्षियोंसे खींच क्यों हो गया
 था ॥ २ ॥
 त्वं वनं स कथ राजा शून्य मनुजवर्जितम् ।
 तस्मिन् प्रविष्टः स भोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ३ ॥
 वे विदर्भराज उठ खड़े निश्चय वनमें तपस्या करनेके लिये
 क्यों गये । वह मैं यथार्थस्वये सुनना चाहता हूँ ॥ ३ ॥
 रामस्य कथन श्रुत्वा कौतूहलसमन्वितम् ।
 प्राक्य परमवैश्वली वक्तुमेषोपपन्नम् ॥ ४ ॥
 श्रीरामा श्रीहरश्च्युक्त वचन मुनकर वे परम वैश्वली
 स्त्रीं पुनः इत प्रश्न करने लगे—॥ ४ ॥
 पुत्र इत्युपो राम मनुर्वैश्वधरः प्रभुः ।
 तस्य पुत्रो महानासीविश्वकाः कुलमन्वतः ॥ ५ ॥
 श्रीराम । पूर्वकाण्डके सत्ययुगकी बात है, दण्डकारी राजा
 मनु इस मन्वन्तर शासन करते थे । उनके एक भेष्ट पुत्र
 हुआ जिसका नाम इक्ष्वाकु था । एककुमार इक्ष्वाकु अपने
 कुलसे सम्भ्रित करनेवाले थे ॥ ५ ॥
 त पुत्र पूर्वक राज्यं निक्षिप्य मुनि पुत्रायम् ।
 पूषिण्या राजवशार्ता भय कर्तुर्युयाव तम् ॥ ६ ॥
 अपने उन भेष्ट एवं भूर्जन पुत्रके भूयण्डसके राज्य
 पर त्यागि करके मनुने उनसे कहा— देता । तुम मन्वन्तर
 एकसंज्ञेरी सही कर ॥ ६ ॥
 तत्रैव च प्रतिवर्ततं पित्रुः पुत्रेण राघव ।
 ततः परमसंतुष्टो मनुः पुत्रसुपाथ ह ॥ ७ ॥
 मनुमन्वन् । पुत्र इक्ष्वाकुने पिताके धमने देख ही
 करनेकी प्रसिद्धा थी । इससे मनु बहुत संतुष्ट हुए और अपने
 पुत्रने सेठे—॥ ७ ॥
 प्रीतोऽपि परमादार कता वासि न सशपा ।
 दण्डक च प्रजा रक्ष मा च दण्डमकारणे ॥ ८ ॥
 मन्वन्तर उत्तर पुत्र । मैं तुमपर बहुत प्रसन्न हूँ । तुम
 परमसंतुष्टी सही करोगे इसमें संशय नहीं है । तुम दण्डके
 लिये दुष्टोंका दमन करते हुए प्रजाकी रक्षा कर परंतु

बिना अंगराजके ही किसीको दण्ड न देना ॥ ८ ॥
 अपराधिषु यो दण्डः पात्यते मानयतु वै ।
 स दण्डो विधिबन्धुक्तः स्वर्गो नयति पार्थिवम् ॥ ९ ॥
 “अपराधी मनुष्योंपर जो दण्डका प्रयोग किया जाता है,
 वह विधिपूर्वक किया हुआ दण्ड राजाको स्वर्गलोकमें पहुँचा
 देता है ॥ ९ ॥
 तस्यैव दण्डे महाबाहो पलायान् भय पुत्रक ।
 धर्मो हि परमो लोके क्षुर्यतस्ते भविष्यति ॥ १० ॥
 वृत्तल्लिमे महाबाहु पुत्र । तुम दण्डका अनुचित प्रयोग
 करनेके लिये प्रयत्नशील रहना । ऐसा करनेसे दुर्गम संशयमें
 परम धर्मकी प्राप्ति होगी ॥ १ ॥
 इति स बहु सविद्य मनुः पुत्रं समाधिना ।
 जगाम त्रिदिव इषो ब्रह्मलोकं समातमम् ॥ ११ ॥
 “इत प्रकार पुत्रके बहुत-सा संदेश दे मनु समाधि ब्रह्म-
 कर बड़े इतके धर स्वर्गके—समातन ब्रह्मलोकके लक्ष्ये गये ॥
 प्रयाते त्रिदिव तस्मिन्निद्याकुर्मितप्रभः ।
 जनयिष्ये कथ पुमानिति विन्तापरोऽभवत् ॥ १२ ॥
 “उनके ब्रह्मलोकवर्ती हो जानेपर अमित वैश्वली राजा
 इक्ष्वाकु इस विन्तापने पड़े कि मैं किस प्रकार पुत्रोंके
 उत्पन्न करूँ ॥ १२ ॥
 कमभिर्वैश्वकपौत्र तैस्तैमनुसुतस्तदा ।
 जनयामास धमरामा शत वैश्वसुतोपमान ॥ १३ ॥
 “तब वह राजा और तपस्यारूप विविध क्रमोंद्वारा ब्रह्मलोक
 मनुपुत्रने छे पुत्र उत्पन्न किये, जो वैश्वसुतोंके धमन वैश्वली
 थे ॥ १३ ॥
 तोपामवरजस्तात सद्योपां रघुमन्दन ।
 मूढकाकृतविषयश्च न द्रुभूपति पूर्वसाग्न ॥ १४ ॥
 स्वात रघुमन्दन । उनमें जो सबसे छोटा पुत्र था, वह
 मूढ़ और विद्याविहीन था इसलिये अपने बड़े भाईवोभी सेवा
 नहीं करता था ॥ १४ ॥
 नाम तस्य च दण्डति पिता चक्रेऽरपमेघसः ।
 अचर्यं दण्डपतनं शारीरस्य भविष्यति ॥ १५ ॥
 “इसके शरीरपर अचर्य दण्डपात होगा, ऐसा खेचकर
 पिताने उक्त मन्वन्त्रुक्ति पुत्रका नाम दण्ड रत्न दिया ॥ १५ ॥
 अपदयमानस्त वैर्षा घोर पुत्रस्य राघव ।
 क्षिप्यदीपसरोर्मध्ये राज्यं प्राशारिदम् ॥ १६ ॥
 भीराम । रघुमन्दन नेरा । उक्त पुत्रके दोष दृष्टा
 कोई मयंकर देश न देखकर राजाके उसे क्षिप्य और दीपक
 पर्यंतक बीचका राज्य दे दि ॥ १६ ॥
 स दण्डस्तथ राजाभूत् तस्य पथराधिना ।

पुर आपतिमं राम म्यवेशयन्नुत्तमम् ॥ १७ ॥
 श्रीराम । पर्वतके उठ रमणीय कटाप्रस्थमें दण्ड राध
 हुआ । उठने अपने खनेके छिमे एक बहुत ही अनुपम और
 उत्तम नगर बसाया ॥ १७ ॥

पुरस्य चाकरोत्प्रथम मधुमस्तमिति प्रभो ।
 पुरोहितं दृशमस्य वरयामास सुवतम् ॥ १८ ॥
 प्रभो ! उठने उस मगरुज नाम रखा मधुमस्त और
 उत्तम व्रतज्ञ पावन करनेवाले हुएवाच्यके अपना पुरोहित
 बनाया ॥ १८ ॥

एव स राजा तद् राज्यमकरोत् सपुरोहिता ।
 महाहमनुजाकीर्णं देवराजो यथा विधि ॥ १९ ॥
 इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बाष्पीक्षीये ऋषिऋष्ये उत्तरकाण्डे पृथ्वीजोतीवितमा सर्गः ॥ ७९ ॥
 इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीय महारामायण ऋषिऋष्यके उत्तरकाण्डमें अठसीवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७९ ॥

अशीतितमः सर्ग

राजा दण्डका भार्गव-कन्याके साथ पलात्कार

पतदाख्याय रामाय महर्षिः कुम्भसम्भवः ।
 अस्यामेवापरं वाक्य कथायामुपश्रुत्ते ॥ १ ॥
 महर्षि कुम्भब श्रीरामसे इतनी कथा कहकर फिर इतनीका
 अन्विति अंध इस तरह करने लगे— ॥ १ ॥
 एतां स वण्डः कथकुत्स्य बहुयर्पगजासुतम् ।
 अकरोत् तत्र दान्तात्मा राज्य मिहत्कण्टकम् ॥ २ ॥
 अकृतस्य । तबनगर राजा दण्डने भन और इन्द्रियोंके
 कर्मसे रसकर बहुत बर्षोंतक वहाँ अकण्टक राज्य किया ॥ २ ॥
 अथ काले तु कर्मिभिरा राजा भार्गवमाश्रमम् ।
 रामपीथमुपश्रुत्वा मरुचौ मसि मनोरमे ॥ ३ ॥
 पलात्कात् किन्ती समन राजा मनोरम वैत्रभारते हुएका
 कर्णके रमणीय आश्रमपर आया ॥ ३ ॥
 तत्र भार्गवकन्यां स रूपेणाप्रतिमां मुवि ।
 विचरन्ती कनोहेरेण वृन्दोऽपश्यन्नुत्तमाम् ॥ ४ ॥
 वहाँ श्रुतकर्णके श्रीरामके सुन्दरी कन्या किण्ठके रूपकी
 इस मूलरूप की दृष्टि नही थी बनप्रान्तमें विचर रही थी ।
 दण्डने उसे देखा ॥ ४ ॥
 स दृष्ट्वा वा सुपुत्रेणा अन्वहारपीडिता ।
 मभित्तम्य सुसुविनां कन्यां वचनममवीत् ॥ ५ ॥
 उसे देखते ही वह अत्यन्त जोड़ी दुःखिबाध राध करम
 देवके बर्षोंसे पीडित हो पाष बाकर उस बरी हुई कन्यासे
 बोध— ॥ ५ ॥
 कुतस्त्वमसि सुभोग्यि कस्य वासि सुता सुमे ।
 पीडितोऽहमनङ्गणं पृच्छामि त्वां शुभाशने ॥ ६ ॥
 सुभोग्यि । तम कहते आधी हो अत्यन्त शुभे । तम
 किण्ठो पुत्री हो । शुभानने । मैं आनन्दबोध पीडित हूँ । इतकिये
 दृश्याय परिषय पूछ्या हूँ ॥ ६ ॥

इस प्रकार स्वर्गमें देवराजकी मूर्ति भूजकर एव
 दण्डने पुरोहितके साथ रहकर दण्ड-पुत्र मनुष्योंसे भरे हुए उस
 राज्यका पावन अग्रम्भ किया ॥ १९ ॥

ततः स राजा मनुजैन्द्रपुत्रः
 सार्धं च तेनोदात्तसा तवात्मीम् ।

अकार राज्यं सुमहात्ममहात्मा
 शान्ते विधीयोदानसा समेता ॥ २० ॥

उस समय वह महामनस्वी महापद्मकुमार तथा शान्त
 राध दण्ड श्रुतवाच्यके साथ रहकर अपने राज्यका उर्वी एव
 पावन करने लगा जैसे स्वर्गमें देवराज इन्द्र देवगुरु बृहस्पतिके
 साथ रहकर अपने राज्यका पालन करते हैं ॥ २ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बाष्पीक्षीये ऋषिऋष्ये उत्तरकाण्डे पृथ्वीजोतीवितमा सर्गः ॥ ७९ ॥

इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीय महारामायण ऋषिऋष्यके उत्तरकाण्डमें अठसीवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ७९ ॥

तस्य त्वेव मुद्यानस्य मोहोन्मत्तस्य कामिनः ।
 भार्गवी प्रत्युवाचोद्वे बन्धः सानुनय त्विदम् ॥ ७ ॥
 मोहसे उन्मत्त होकर वह कामी राजा जब इस प्रकार
 पूछने लगा, तब भृगुकन्याने विनम्रपूर्वक उसे इस प्रकार उत्तर
 दिया— ॥ ७ ॥

भार्गवस्य सुतां विधिं देवस्यार्द्रिहृत्कमेजा ।
 अरुजां क्रम राजेन्द्र ज्येष्ठामाश्रमवासिनीम् ॥ ८ ॥
 राजेन्द्र । इममें बात होना चाहिये कि मैं पुण्यकी
 श्रुतदेवताकी स्नेह पुत्री हूँ । मेरा नाम अरुजा है । मैं इस
 आश्रममें निवास करती हूँ ॥ ८ ॥

मा मां स्पृष्ट्वा बलात् राजान् कन्या पितृवशा ह्वयम् ।
 गुदां पितरमे राजेन्द्र त्वं च शिष्यो महात्मनः ॥ ९ ॥
 राजान् । कर्णके मेरा स्पर्श मैं करे । मैं शिष्यके अर्थमें
 खनेवाली कुमारी कन्या हूँ । राजेन्द्र । मेरे पिता तुम्हारे पुत्र
 हैं और तम उन महात्माके शिष्य हो ॥ ९ ॥

असन्नं सुमहत्तु ह्वयः स ते दद्यात्महातमः ।
 यवि दान्त्वमस्या कर्षं धर्मद्वेषेण सत्पया ॥ १० ॥
 अरपत्न नरभेष्ट पितर मे महापुत्रिम् ।
 अन्यथा तु फल तुभ्य भवेत्तु धोराभिर्संहितम् ॥ ११ ॥
 नरभेष्ट । वे महापत्नी हैं । यदि कुपित हो कर्षं तो
 इममें कड़ी मारि विपत्तिमें डाल सकते हैं । यदि दृष्टते इममें
 दूषण ही क्रम लेना हो (अर्थात् यदि तम मुझे अपनी मर्णा
 बनाना चाहते हो) तो बर्षोंका जोध कर्मगति पसकर मेरे
 महादेवकी कियते मुक्तके भोग लो । अन्यथा इममें अपने
 स्नेहका कारण बड़ा ममानक फल भोगना पड़ेगा ॥ १०-११ ॥
 अधोपेन हि पिता मेऽसौ वैभोऽन्यमपि निर्दिष्टेत् ।
 वास्यते जानवघातं तव मा याचितः पित्र ॥ १२ ॥

अरे विवा भवती क्वाभितसे क्षरी त्रिकोणीको मी दग्ध
कर सन्ने हैं अतः मुम्बर अज्ञोबाहू नरेण । इम बहुरकार
न बणे । इत्यारे वाचना करनेपर विवाही मुने भवत्स तुम्हारे
इसमें लौं दैने ॥ १२ ॥

एव हुवाणामरक्षां दृष्ट्वा कामवशं गतः ।
अप्युवाच मद्रात्मजः शिरस्याधाय चाक्षलिम् ॥ १३ ॥

जब अरब्य ऐसी पातें कह रही थी उस समय क्रमक
मौन हुए बहजन महामत्त हाकर दोनों हाथ शिरपर जोड़
लिये और इस प्रकार उत्तर दिया— ॥ १३ ॥

प्रसाद् कुत सुस्मोपि न कालं हेतुमहन्मि ।
त्वन्मते हि मम प्राणा विदीयन्ते धरातले ॥ १४ ॥

‘सुस्मो’ । हुवा करो । समय न विताओ । बरणने ।
तुम्हारे लिये मेरे प्राण निकले जा रहे हैं ॥ १४ ॥

त्वां प्राप्य तु बभोधेवापि पापवापि सुप्तादणम् ।
पठं भञ्जस्य मां भीरु भञ्जमान सुविह्वलम् ॥ १५ ॥

‘सुप्ते’ प्राप्त कर लेनेपर मेरा बच हो जाय भयवा मुने
हृषार्थे भीमद्रामापणे वाक्सीक्रीये जादिअभ्ये उत्तरकाण्डेऽष्टाशित्तमः सर्गः ॥ ८ ॥
इस प्रकार वीरकामीकेनिर्मित अर्चनामात्रम अदिप्रत्यये उत्तरकाण्डे अस्सीवां सप्त द्वादश ॥ ८ ॥

एकाशीतितम सर्ग

शुक्रके शापसे सपरिवार राजा दण्ड और उनके राज्यका नाश

स मुहूर्तादुपभुज्य वैश्वरिन्निशममः ।
समस्यै शिष्यवृत्तः क्षुधासैः सन्वयतत ॥ १ ॥

उस वही बाद किने शिष्यके मुँहसे अरबाक ऊपर किये
ले बपाधरणी बाज मुनपर अमिततेबली देवर्षि शुक्र भूख
ले दीर्घ हो शिष्योंसे किये हुए अपने माभमका खेद आये ॥

साऽपदयश्चजा दीना रजस्ता समभिप्लुताम् ।
न्यायस्मामिय ग्रहप्रसर्गां प्रत्युपे न विराजतीम् ॥ २ ॥

अपने देखा अरबा कुन्ती रोकर रो रही है । उसके
पतिन बूख सिपटी हुई है तथा वह प्रातःकाल चतुष्पथ
काम्यपी होम्येहिम पौर्नीके समान मुषोमित नहीं हो रही है ॥

तस्य तस्य समभयस्य क्षुधातस्य विदोषतः ।
निरुद्विग्न लोकार्जाणिर्गार्वाञ्छैतदुपाय ह ॥ ३ ॥

उसके साथ बड़ गया और वे तीनों लोकोको हथ से करते
हुर अपने शिष्योने इस प्रकार बने— ॥ ३ ॥

पश्यन् विपरीताय दृष्ट्वाभ्यावित्रितात्मनः ।
विनित्तं धारसकृपां मुञ्चाद्भ्रिन्निग्यामिय ॥ ४ ॥

देखे शापविस्तृत आचरण करनेवाला अरानी राजा
राज्य बुनिया हुए मरी अरेम अदि शिलाने समान बैठी
पर निरति मत हापी है ॥ ४ ॥

अस्मत् दाबण दुःख प्राप्त हो तो भी कोई चिन्ता नहीं है ।
भीर । मैं तुम्हारा भक्त हूँ । अस्मत् व्याकुल हुए मुझ अपने
सेबकको स्वीकार करो ॥ १५ ॥

एवमुक्त्वा तु तां कन्यां दोष्यां प्राप्य यत्नाद् पत्नी ।
विस्फुरन्ती यथाकामं मैथुनयोपचक्रमे ॥ १६ ॥

ऐसा करकर उस बलवान् नरेचने उस मातृक कन्याका
बलपूर्वक दोनों मुखाभोंमें भर लिया । वह उसकी पकड़ते
घूरनेके लिये छटपटाने लगी तो भी उसने अपनी इच्छाके
अनुसार उसके साथ सम्भोग किया । १६ ॥

तमनयं महाधोरं दृष्ट्वाः कृत्या सुप्तादणम् ।
नगरं प्रयाषावाप्तुं मधुमन्तमनुत्तमम् ॥ १७ ॥

‘वह अस्मत् दाबण एव महामयकर अनर्प करके दण्ड
द्वरंत ही अपने उत्तम नगर मधुमन्तके पला गया ॥ १७ ॥

अरजापि दृष्ट्वां चैव अग्रमन्यायिकुरतः ।
प्रतीक्षते सुसप्तस्ता पितर देवसनिभम् ॥ १८ ॥

अरबा भी मयभीत हो राठी हुई आभमके पास ही
अपने देवदुस्य तिलके अपनेकी राह देखने लगी ॥ १८ ॥

क्षयोऽस्य दुर्मतेः प्राप्तः सानुगस्य सुरात्मनः ।
ए प्रदीप्तां वृतादास्य शिष्यां वै स्पष्टमहति ॥ ५ ॥

लेबकोरित इस दुर्बुद्धि एवं दुःखमा राजका विनाशका
समय आ गया है जो प्रसन्नित अग्रणी दरबती हुई ब्यादा
को गते सगना चाहता है ॥ ५ ॥

यस्मात् स वृत्तवान् पापमीदृशा धारसदितम् ।
तस्मात् प्राप्यति दुर्मतेः फलं पापस्य कमथम् ॥ ६ ॥

उस दुर्बुद्धिने जब ऐसा पर पाप किया है तब इमे उन
पापकर्मका फल अन्वय प्राप्त होगा ॥ ६ ॥

सप्तप्रेषेण राजासौ सपुत्रबाल्यादनः ।
पापकर्मसमाधारे पथ प्राप्यति दुर्मति ॥ ७ ॥

पापकर्मका आचरण करनेवाला वह दुर्बुद्धि नरेच सप्त
उतके भीतर ही पुत्र सेना और तवागिकोरित मर हा
जायगा ॥ ७ ॥

ममन्ताद् योजनदानं नियमं श्याम्य दुर्मतेः ।
धक्ष्यत पातुपर्येण मरणा पापनाशन ॥ ८ ॥

पातद निरकारने इत राक्षक गावध का तब अरेने
तो फलम लंका-चौरा है देवदण्ड इन्द्र मरी पूतरी बर्ग
करके नष्ट कर दगे ॥ ८ ॥

सर्वसत्वानि यानीह स्वावराणि चरामि च ।
 महता पांसुयर्षेण पित्र्य सर्वतोऽग्रमम् ॥ ९ ॥
 'यहाँ ये सब प्रकारके स्थावर-जड़म चीज निबाध करते हैं, इस भूखड़ी माटी बपति सब अंदर विहीन हो बायगे ॥९॥
 वृष्टस्य विषयो यावत् तावत् सर्वं समुच्छ्रयम् ।
 पांसुवपमिबाह्वस्य सप्तपत्र भविष्यति ॥ १० ॥
 'वृष्ट' कह्ये वृष्टय रास्य है 'वृष्ट'कके समस्त चरणपर पानी छूट उठकके केवल भूखिणी बर्ना पाकर मरभ्य हो जायेंगे ॥ १ ॥
 इत्युक्त्वा क्रोभताम्रास्तसमाभमनिवासिनम् ।
 जन जनपदान्तपु स्त्रीयतामिति आश्रयीत् ॥ ११ ॥
 'ऐस कहकर श्रेयसे अन्न भोजन किये शुकने उठ अग्रम में निबाध करनेबासे अगेयें कथा—'वृष्टके राजकी सीमाके अन्तमें अगे देव है उनमें आकर निबाध करो ॥ ११ ॥
 भुत्वा तृशानसो वाक्य सोऽऽभमावसयो जनः ।
 निष्कान्तो विषयात् तस्मात् स्थान चकोऽप बाह्यतः ॥ १२ ॥
 'शुकचार्यकी यह बात सुनकर आभमनाथी मनुष्य उठ राज्यसे निकल गये और सीमसे बाहर आकर निबाध करने लगे ॥ १२ ॥
 स तपोस्तया मुनिजनमरजामिदमग्रधीत् ।
 इहैव पस मुर्मधे आभमे सुसमाहिता ॥ १३ ॥
 'आभमनाथी मुनिगोसे देही बात कहकर शुकने भरखसे कथा—'कौटी बुद्धिवासी अग्रधी । तू यहीं इस आभममें लक्ष्मी परमात्मके ध्यानमें एकत्र करके रह ॥ १३ ॥
 इदं याजनपर्यन्त सरः सुदुर्गिप्रभम् ।
 भरजे विज्यरा मुकुक्ष्य कालव्याघ्र प्रतीक्ष्यताम् ॥ १४ ॥
 'भरजे । यह अ एक शान्त पैदा हुआ सुन्दर लक्षण है इसका तू निश्चिन्त होकर उपभोग कर और अपने अग्रराज की निशुधिके लिये यहाँ तपकी प्रतीक्षा करती रह ॥ १४ ॥
 त्यक्समीप च ये सस्या वासमेप्यगितां निशाम् ।
 अग्रध्याः पांसुयर्षेण त भविष्यति शिष्यात् ॥ १५ ॥
 'अ श्रीव उन शिष्योंमें तुम्हारे समीप रहेंगे वे कमी भी पूनकी बगिने मारे नहीं जायेंगे—उठा बने रहेंगे ॥ १५ ॥
 भुत्वा निषोग प्रह्वयैः सारजा भागवी तदा ।
 ह्यार्थे श्रीमद्भामाचमे वास्मीकीये आदिश्रम्ये ॥ १६ ॥
 'इत प्रकार श्रीकल्कीनिर्मित अर्वांगण्यज अदिश्रम्यके उतरअध्यामें इत्यस्तीनां सग पूा हुम् ॥ १६ ॥

तथेति पितरं प्राह भार्गव भृशपुःक्षित्वा ॥ १९ ॥
 नसर्पिश्च यद् आदेशे सुनकर यह मनुकन्मा भरख मत्स्यतः कुक्षित होनेपर भी अपने पिता भागवके श्रेणी—
 'बहुत अच्छा' ॥ १९ ॥
 इत्युक्त्वा भार्गवो वासमन्यत्र समकारयत् ।
 तद्य राज्य नरेन्द्रस्य समुत्पबलवाहनम् ॥ १७ ॥
 सताहात् भस्मासात् भूत पथोक ब्रह्मवादिभ्य ।
 'ऐस कहकर शुकने वृते राज्यमें आकर निबाध किया तथा उन ब्रह्मनाथीके कफानुखर राज्य ब्रह्मनाथ वरुण्य सेकक सेना और सवारियोंछहित छत दिनमें मस हो गया ॥ १७ ॥
 तस्यासौ वृष्टविषयो विम्परीवल्लयोरुप ॥ १८ ॥
 'शतो ब्रह्मर्षिणा तन वैभयं सहिते हते ।
 ततः प्रसृति काकुत्स्थस्य वृष्टकारण्यमुच्यते ॥ १९ ॥
 'मरेक । किन्व और वीषस्त्रीरिगे मध्यमागमें वृष्टय राज्य पा । काकुत्स्थ । धर्मयुग कृतयुगमें धर्मविपन्न अकरण करनेपर उन ब्रह्मर्षिने राज्य और उनके देशको शाप र रिका । तमीसे वह भूमाग वृष्टकारण्य कहकता है ॥ १८ १९ ॥
 तपस्विनः सिद्धय द्यात्र जनस्थानमतोऽभवत् ।
 पतत् ते सर्वमाख्यात यन्मां पृच्छसि राषव ॥ २० ॥
 'इ च स्थानपर तपसीस्त्रिमा आकर बस गये इसलिये इतना नाम बनकान हो गया । रघुनन्दन । अपने बितके विषयमें शुकसे पूछा या यह सब मैंने कह सुनाया ॥ २ ॥
 सप्यमुपासितु वीर समयो ह्यतिवर्तते ।
 पदं महर्षया सर्वे पूर्ववृत्तभाः समस्तका ॥ २१ ॥
 'कृतोदका भरभ्याग्न आदित्य पर्युपासते ।
 वीर । अब सर्वोपासनाका समय पीता च रहा है ।
 पुरादि । सब और ये सब महर्षि ज्ञान कर बुझके बार भरे हुए पड़े सेकर सर्वदेवकी उपासना कर रहे हैं ॥ २१ ॥
 स तैर्ग्राह्यममम्यस्ते सहितैर्ग्राह्यिचमैः ।
 एथिरस्तगतो राम गच्छेद्वक्नुमुपम्यूषा ॥ २२ ॥
 'भीरव । वे सर्व बहों एकत्र हुए उन उक्त ब्रह्मदेवोंमें ह्यए पड़े गये माक्षजमशोक सुनकर और उठी रूपमें पूछ पाकर अज्ञाचक्रमें जाके गये । अब ह्यव भी जायें और आभमन एक ज्ञान आदि करें ॥ २२ ॥
 उत्तरकाण्डे एकशीतितमा सर्गाः ॥ ८१ ॥
 इत प्रकार श्रीकल्कीनिर्मित अर्वांगण्यज अदिश्रम्यके उतरअध्यामें इत्यस्तीनां सग पूा हुम् ॥ ८१ ॥

द्वयशीतितम सर्ग

भारामका अग्रस्य आभमसे अयाप्यापुरीका लौटना

अपेवगमनाप्राय रामः सध्यामुपासितुम् ।
 अरात्रमम् सरः पुण्यमन्तरागण्यमयितुम् ॥ १ ॥
 श्रीका यह आदेश पाकर भीरमपट्टकी लक्ष्मणना

करके लिये अन्तउभेस मेंलि उठ परित्र नउपरके तट पर गय ॥ १ ॥
 तत्राद्वक्नुमुपम्यूष्य संश्यामन्यास्य पथिमाम् ।

मग्नमं प्राविशत् रामः कुम्भभयोनेर्महात्मना ॥ २ ॥
 वहाँ मग्नमन और तारकाकषी संजोपाटना करके
 भीष्मने पुन महात्मा कुम्भकके मग्नमने प्रवेश किया ॥
 तस्यागास्त्यो बह्वुभुय कन्वमूख तथौपधम् ।
 दम्प्यादीनि पवित्राणि भोजनार्थमकल्पयत् ॥ ३ ॥
 अगस्त्यजीने उनके माकनेके सिधे अनेक गुणैति मुक्त
 कृत् मूष अणवनाथ निवारण करनेबासी दिव्य आंषणि
 क्विन्न भव आदि बस्तुएँ अर्पित की ॥ ३ ॥
 स भुक्तवान् भरभेष्टस्तत्पञ्चममृतोपमम् ।
 पीतञ्च परितुष्टञ्च ता रात्रिं समुपाविशत् ॥ ४ ॥
 नरभेष्ट भीरम वह अमृतद्रव्य स्वादिष्ट भोजन करके
 परम दम और पक्षन हुए और वह रात्रि उहाँने बड़े संतोषसे
 बिठकी ॥ ४ ॥
 प्रभाते काल्यमुत्थाय कृत्वाऽऽह्निकमरिदमः ।
 श्रुतिं समुपब्रजधम गमनाय रत्नसमः ॥ ५ ॥
 तैरे उठकर धनुश्रीका दम करनेबासे रत्नकुम्भरूप
 भीरम नित्यधम करके वहाँसे जानेकी इच्छासे महर्षिके
 पात ग ॥ ५ ॥
 अभियाघाद्यवीर्य रामो महर्षिं कुम्भसम्भयम् ।
 स्यात्पृच्छ त्वां पुरीं गन्तुं मामनुज्ञातुमहसि ॥ ६ ॥
 वहाँ महर्षि कुम्भबध प्रणाम करके भीरामने कहा—
 पारै ! अब मैं अपनी पुरीको जानेके सिधे आपके अग्रा
 पारव हूँ । इपथ मुझे आज्ञा प्रदान कर ॥ ६ ॥
 धन्याऽस्म्यनुग्रहीतोऽसि दर्शनेन महात्मनः ।
 प्रष्टुं सैवागमिष्यामि पायनार्थमिहारमनः ॥ ७ ॥
 आप महात्माके दर्शनसे मैं बन्ध और अनुग्रहीत हुआ ।
 अब अपने आपसे पवित्र करनेके सिधे फिर कभी आपके
 दर्शनकी इच्छासे यहाँ अग्रगण ॥ ७ ॥
 तथा बद्धिं काकुरस्थे वाक्यमद्भुतदर्शनम् ।
 बवाच परमप्रीतो धमनेत्रस्तपोधन ॥ ८ ॥
 भीरमकृत्भीके इत प्रकार अद्भुत वचन करनेपर
 बमरतु दर्शन अगस्त्यकी बड़े प्रलभ हुए और उनसे बाजे—
 मत्पद्भुतमिदं वान्य तव राम शुभाक्षरम् ।
 पाकनः सद्यभूताना त्वमेव रघुनन्दन ॥ ९ ॥
 भीरम ! आपके ये सुन्दर वचन बड़े अद्भुत हैं ।
 एतन्वन । तमस्त प्राणिबोधे पवित्र करनेबासे तो आप
 ही हैं ॥ ९ ॥
 मुहूर्तमपि राम त्वां वेऽनुपदयन्ति केचन ।
 पवित्राः स्वगभूताश्च पूज्यास्तं त्रिविधधरेः ॥ १० ॥
 भीरम ! जो कोई एक मुहूर्तक सिधे भी अग्नय दर्शन
 पा जाने हैं ५ पवित्र स्वर्गके अभिष्यरी तथा ईश्वरभ्येने
 सिधे नी पूजनीय हो जाने हैं ॥ १० ॥
 य ए त्वां धारयन्तुभिः पदपन्ति प्राणिना मुधि ।

हृत्पस्ते यमवृद्धेन सद्यो निरयगामिनः ॥ ११ ॥
 एव भूत्स्वर आ पापी व्यापको मूर हस्ति देवते हैं ।
 वे बमरावके दण्डसे पीटे व्याकर तलक नरकमें गिरते हैं ॥
 ईदृशस्त्व रघुभेष्ट पावनः सर्वदेहिनाम् ।
 मुनि त्वां कथयन्तो हि सिद्धिमेष्यन्ति राघव ॥ १२ ॥
 पशुभेष्ट । ऐसे महात्मनशासी आप समस्त दृष्टपारिवीको
 पवित्र करनेबासे हैं । रघुनन्दन । पूषीपर आ तमे आपकी
 कथाएँ करते हैं वे सिद्धि प्राप्त कर सेंते हैं ॥ १२ ॥
 त्वं गच्छद्विष्टमप्यप्यः पश्यानमकुतोभयम् ।
 प्रशयिषि रान्य धर्मेण गतिर्हि जगतो भवान् ॥ १३ ॥
 आप निश्चित होकर कुशलपूर्वक पचारिये । आपके
 मार्गमें कहींसे कोई भय न रहे । आप धर्मपूर्वक राक्षस
 शासन करें क्योंकि आप ही संसारके परम भाग्य हैं ॥
 एवमुक्तस्तु मुनिना प्राञ्जलिः प्रमहो मृपः ।
 भस्यवाप्यत प्राञ्जस्तमुषिं सत्यशीलिनम् ॥ १४ ॥
 मुनिके ऐसा करनेपर बुद्धिमान् राज्ञ भीरामने मुझसे
 ऊपर उठा हाथ जोड़कर उन सत्यशील महर्षिके प्रणाम किया ॥
 अभिवाद्य श्रुतिभेष्ट तांश्च सर्वास्तपोधानान् ।
 अभ्यारोहत् तत्पुत्रमः पुष्यकं हेमभूषितम् ॥ १५ ॥
 इत प्रकार मुनिवर अगस्त्य तथा भस्य सत्र लोचन
 श्रुतिबोध भी यथोचित अभिवादन कर वे बिना किसी
 स्वगतके उस मुनैर्भूषित पुष्यक विमानपर चढ़ गये ॥ १५ ॥
 त प्रयान्त मुनिगणा आशीर्वादैः समस्ततः ।
 अयुज्यन् महेश्मद्राभ सहस्राक्षमिधामराः ॥ १६ ॥
 जैसे देवता स्वसनेत्रवारी इन्दी भी पूजा करते हैं उसी
 प्रकार करते समय उन महेश्मद्राभ लेकवी भीरामको श्रुति
 समूहोंने सब भांसे आशीर्वाद दिया ॥ १६ ॥
 कस्त्यः स दृष्टो रामः पुष्यके हेमभूषित ।
 शशी मेघसमीपस्थो यथा जलधरागमे ॥ १७ ॥
 उस सुवर्णभूषित पुष्यकविमानपर अग्रधान स्थित हुए
 भीराम सर्वाकारमें मेघोंके समीपवर्ती अश्रमाक समान दिक्तापी
 देते थे ॥ १७ ॥
 ततोऽधविद्यसे प्राप्ते पूज्यमानस्तवस्ततः ।
 भयोष्पां प्राप्य काकुरम्यो मध्यकसामशतगत् ॥ १८ ॥
 तदनन्तर बगद-बगद सम्मान पाते हुए वे भीरपुत्रापी
 मरवाकके समय अयोष्पांमें पहुँचकर मध्यम कथा (वीचकी
 कथा) में उठे ॥ १८ ॥
 ततो विद्युज्य रुधिरं पुष्यक कामगामिनम् ।
 विसर्जयित्वा गच्छेति स्वस्ति वेऽस्मिन्नि म प्रभुः ॥ १९ ॥
 कल्पभ्रातृ इष्टानुत्तर यत्नेनाम उठ सुन्दर पुत्रक
 विमानको बरी छोड़कर भगवान्ने उठने बरा— अब तुम
 आओ । तुम्हात बन्धन हो ॥ १९ ॥
 ब्रह्मास्तरम्यिन सिमं द्रा स्य रामोऽप्रार्थ्य दयः ।

अहमण भरतं वैव गत्या तौ अजुयिकमौ ।
 ममामगमनमाख्याय शाखापयत मा खिरम् ॥ २० ॥
 फिर भीरामने कपोदीके भीतर लगे हुए द्वारणजसे
 हृत्पापे श्रीमत्सामायने वास्मीकीये आदिवाप्ये उतरकरके हृत्पत्नीकितमा सर्गाः ॥ ८२ ॥
 इस प्रकार श्रीवाल्मीकीविरचित अष्टाध्यायक अष्टाध्यायने बजातीये सर्ग पूरा हुआ ॥ ८२ ॥

श्रीमत्सामायने—इस अभी तककी श्रीमत्पराक्रमी मत
 और अहमणके मेरे आनेकी सूचना दो और उन्हें कही
 मुख्य भागो ॥ २ ॥

त्र्यशीतितम सर्ग

भरतक कहनेसे श्रीरामका राजस्य यज्ञ करनेके विचारसे निवृत्त होना

तच्छ्रुत्या भक्तिं तस्य रामस्याभिलष्यकर्मणः ।
 द्यान्त्या कुमारावाहय्य राघवाय न्यवेदयत् ॥ १ ॥
 केशरक्षित कर्म करनेवाले श्रीरामका यह कथन सुनकर
 द्वारणजने कुमार मल और अहमणको बुझाकर भीरसुनायकी
 की सेवामें उपस्थित कर दिया ॥ १ ॥
 दृष्टुं तु राघवः प्रतापुमौ भरतलक्ष्मणौ ।
 परिश्रय्य ततो रामो वाक्यमेतदुवाच ह ॥ २ ॥
 मल और अहमणको आवा देव खुदकुर्तितक भीरामने
 उन्हें हृदयसे क्या किया और यह कथ कही—॥ १ ॥
 कृत मया यथा तर्ष्यं द्विजध्वर्यमनुत्तमम् ।
 धर्मसेतुमया मूयः कर्तुमिच्छामि राघवी ॥ ३ ॥
 पशुपती राजकुमारों । मैंने ब्राह्मणका यह परम उत्तम
 कार्य यथावत् रूपसे सिद्ध कर दिया । अब मैं पुनः राजधर्मकी
 पथ सीमात्म राक्षस्य पञ्च भनुष्ठान करना चाहता हूँ ॥
 अस्तपञ्चादपयस्यैव धर्मसेतुर्मझे मम ।
 धर्मप्रयत्न वैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥ ४ ॥
 मेरी रायमें धर्मसेतु (राक्षस) अथवा एवं अभिनायी
 फल देनेवाला है तथा वह धर्मका योग्य एवं समस्त पापोंका
 नाश करनेवाला है ॥ ४ ॥
 युवाभ्याममाममूलाभ्या राजसूयमनुत्तमम् ।
 सद्यितो यष्टुमिच्छामि तत्र धर्मसु शाश्वतः ॥ ५ ॥
 धूम धर्मों मेरे आत्मा ही हो मलः मेरी इच्छा द्वारण
 जय इत उचम राजसूय पञ्च भनुष्ठान करनेकी है; क्योंकि
 उर्गमें राजका शाश्वत धर्म प्रतिष्ठित है ॥ ५ ॥
 इष्टुं तु राजसूयेन सिक्वा शत्रुनिवर्तणः ।
 सुदुर्तन सुयथेन तदुत्पत्तमुपागमत् ॥ ६ ॥
 शत्रुओंका संहार करनेवाले मिश्रवेकाने उत्तम अश्रुति-
 से पुष्ट राजसूय नामक श्रेष्ठ पञ्चाध परमात्मका ब्रह्म करके
 ब्रह्मका पर प्राप्त किया था ॥ ६ ॥
 सोमश्च राजसूयेन इष्टुं धर्मेण धर्मकित् ।
 प्रातश्च सर्वभूतेषु कीर्तिं स्थान च शाश्वतम् ॥ ७ ॥
 धर्मों को सोमके रक्ताने धर्मपूर्वक राजसूय पञ्च भनुष्ठान करके
 धर्मों को ज्ञानमें कीर्ति तथा शाश्वत स्थानको प्राप्त कर लिया ॥ ७ ॥
 अकिञ्चहि यच्छ्रेयश्चिरस्तां तमया सह ।

हित चायतियुक्त च प्रयती वत्तमर्हया ॥ ८ ॥
 इसलिये आपके दिन मेरे साथ बैठकर इसलिये वह
 विचार करो कि हमारे लिये कौन-सा कर्म श्रेष्ठ और परलभके
 कल्याणकारी होगा तथा संवत् विच हंकर द्रुम सेतो इत
 निषयमें मुझे उच्य हो ॥ ८ ॥
 अस्यां तु राघवस्यैतद् वाक्यं वाक्यविशारदः ।
 भरतः प्राञ्जलिमूत्वा पाप्ममेतदुवाच ह ॥ ९ ॥
 भीरसुनायकीके ये बचन सुनकर वाक्यविशारद भरतने
 हाथ जोड़कर यह बात कही—॥ ९ ॥
 त्वयि धर्मं परा साधो त्वयि सवा वसुंधरा ।
 प्रतिष्ठिता महाबाहो पशाम्नामितविधम् ॥ १० ॥
 सधो । अमित पराक्रमी महाबाहो । आपमें उत्तम धर्म
 प्रतिष्ठित है । यह कही पृथ्वी भी आपपर ही अन्वयित है तथा
 आपमें ही बराबरी प्रतिष्ठा है ॥ १० ॥
 महापौराण्य सर्वे त्वां प्रजापतिमिवामरा ।
 निरीक्षन्ते महारामान् लोकमन्त्र यथा ययम् ॥ ११ ॥
 वेकामेग जैसे प्रजापति ब्राह्मणों ही महात्म्य एवं
 ज्ञानका समस्त है । उसी प्रकार हमलोग और समस्त भूतक
 आपको ही महापुरुष तथा समस्त लोकोंका स्वामी मानते हैं—
 उसी दृष्टिसे आपको देखते हैं ॥ ११ ॥
 पुत्राश्च पित्रवत् राजन् पश्यन्ति त्वां महाबल ।
 पृथिव्या गतिमूतोऽसि प्राणितामपि राघव ॥ १२ ॥
 भाकर । महाबली यशुनन्व । पुत्र जैसे पिताको देखते
 हैं उसी प्रकार आपके प्रति हम राजभोगका मन्त्र है । अथ
 ही समस्त पृथ्वी और सम्पूर्ण प्राणियोंके भी आपमें हैं ॥ १२ ॥
 स त्वमेवविधिं यज्ञमहाहतासि कथं मृप ।
 पृथिव्यां राजवदानां विनायो यत्र दृश्यते ॥ १३ ॥
 परेपर । फिर अथ ऐसा ब्रह्म कते कर सकते हैं किन्तों
 भूतकके समस्त उक्तधर्मोंका किनाश विनाश देता है ॥ १३ ॥
 पृथिव्यां ये च पुत्राय राजन् पौरुषम्यगता ।
 सर्वेषां भविता तत्र सप्तया सर्वश्रेयसा ॥ १४ ॥
 पाकर । पृथ्वीपर जो पुत्रवर्षी पुत्र है उन लभ
 लभके रूपसे उक्त धर्मों संहार ही ब्रह्मण ॥ १४ ॥
 सर्वे पुत्रवर्षीयक गुणैरनुत्तमिकम् ।

पृथिवीं माहसे हन्तुं यशो हि तव वर्तते ॥ १५ ॥
 पुत्रासि । अत्रुष पराक्रमी वीर । आपके सन्तुष्टोंके
 प्रसव स्रव बगल आपके बधर्म है । आपके क्रिये इस भूतल
 के निघटिषोंका विनाश करना उचित न होगा ॥ १५ ॥
 भरतस्य तु तव याक्यं श्रुत्वामृतमप यथा ।
 मर्षमनुस्रुत्ते रामः सत्यपराक्रमः ॥ १६ ॥
 भरतस्य यह अमृतमप्य यचन सुनकर छत्रपराक्रमी श्रीराम-
 षो अनुस्रुत्ते मर्षं प्राप्त हुआ ॥ १६ ॥
 तथाच यं श्रुत्वा पाप्य कैकेय्यान्पुत्रधनम् ।
 मीठासि परितुष्टोऽसि तथाच यचनेऽमथ ॥ १७ ॥
 उन्होंने कैकेयीन्पुत्र भरतसे यह श्रुत बात कही—
 कीचर मत । आब हमारी बात सुनकर मैं बहुत प्रसन्न
 एवं संतुष्ट हुआ हूँ ॥ १७ ॥
 एष यचनमहर्षीव स्वया धमसमागतम् ।
 म्नाहत् पुरुरथ्याम्र पृथिव्याः परिपालनम् ॥ १८ ॥
 इसपरों श्रीमद्रामायणे बाष्पीक्षीये भाविकाण्ये उत्तरकाण्डे स्वयोजिततमः सर्गः ॥ ८३ ॥
 इस प्रकार श्रीवल्मीकिनिर्मित अष्टादशमोऽध्याय उत्तरकाण्डे शिरोसीत्तं सम् पूरा हुआ ॥ ८३ ॥

पुत्रासि । हमारे मुन्ने निष्ठा हुआ यह उगार एवं
 धर्मसंगत बचन सारी पृथ्वीकी रक्षा करनेवाला है ॥ १८ ॥
 एष्यदस्मद्भिमायात् राजसूयात् क्षत्रुसमात् ।
 मिषवर्षामि धर्मज्ञ तव सुम्याहतेम च ॥ १९ ॥
 धर्मज्ञ । मेरे हृदयमें राजसूयवहना सफल उठ रहा
 या किन्तु आब हमारे इस सुन्दर आत्मको सुनकर मैं उठ
 उठम यज्ञकी अहंसे अपने मनमें हृदाय डेला हूँ ॥ १९ ॥
 लोकपीडाकर काम न फलप्य विघ्नस्यै ।
 पाखर्नां तु श्रुत्वा वान्य प्राज्ञं लक्ष्मणपुत्रम् ।
 तस्माच्छ्रुत्वापि त याक्यं स्तापु युक्तं महाबल ॥ २० ॥
 क्षमणके बड़े भारी । बुद्धिमान् पुरुषोंका ऐसा कर्म
 नहीं करना चाहिये जो उन्पूँर्ण जात्रोंको पीड़ा देनेवाला हो ।
 बात झोकी कही हुई बात भी यदि अच्छी हो तो उसे प्रदण
 करना ही उचित है; अतः महाबली वीर । मैंने हमारी उसम
 एवं मुक्तिफल बातको यह प्पानसे सुना है ॥ २० ॥
 इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बाष्पीक्षीये भाविकाण्ये उत्तरकाण्डे स्वयोजिततमः सर्गः ॥ ८३ ॥
 इस प्रकार श्रीवल्मीकिनिर्मित अष्टादशमोऽध्याय उत्तरकाण्डे शिरोसीत्तं सम् पूरा हुआ ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमः सर्गः

उत्तमणका मध्यमथ यज्ञका प्रस्ताव करते हुए इन्द्र और ब्रह्मासुरकी कथा सुनाना, ब्रह्मासुरकी तपस्सा और इन्द्रका भगवान् विष्णुसे उसके बधक लिये अनुरोध

कपालवति रामे तु भरत च महात्मनि ।
 उत्तमोऽप्य श्रुत्वा पात्स्यमुवाच रघुन्पुत्रम् ॥ १ ॥
 धीमते और महात्मा मन्त्रके इस प्रकार वातपीठ करने
 पर उत्तमने रघुकुम्भदान श्रीरामसे यह श्रुत बात कही—॥
 मध्यमथा महापुत्रः पावनः सयपाप्मनाम् ।
 पावनस्तव बुधयो गोचतां रघुन्पुत्रम् ॥ २ ॥
 पपुनम्न । अथमेव नामक महान् यत्त समस्त पापोंको
 हार करनेवाला परमपुत्र और पुण्ड्र है । अतः इसका
 अमुष्म मान परंद करे ॥ २ ॥
 भूय हि पुत्रपूँर्ण पास्ये सुमहात्मनि ।
 म्नाहत्पुत्रावृत्तः शमो ह्यमभन पापितः ॥ ३ ॥
 म्नाहत्पुत्रा इन्द्र विरवने यह म्पचीन बृहान्त सुननेमें
 म्नाह कि इन्द्रको जब म्नाहत्पुत्र छोड़ी थी तब के अथमेव
 म्नाह अमुष्मन करक ही पतिव हुए थे ॥ ३ ॥
 पुत्र इन्द्र महापुत्रो ब्रह्मासुरसमागमे ।
 ब्रह्मा नाम महान्तीन्द्र वृत्तयो लोकसम्मत ॥ ४ ॥
 महापुत्रो । परनेकी बात है जब देवता और अमुष्म
 म्नाह निघट्टर करने थे उन शिरो ब्रह्मनामे प्रतिष्ठ एक
 पुत्र बना अमुष्म रखवा था । लक्ष्मणे उठका बड़ा भार
 य ॥ ४ ॥
 गिरिस्थो पावनदातमुच्छ्रित्प्रियुण तदा ।

अनुरागेण लोकाग्नीन् स्नेहान्पदयति मर्यतः ॥ ५ ॥
 यह ही बालक जोड़ा और तीन ही यज्ञ अँथा था ।
 वह छिनों जोड़ोंको भागीय समस्तपर प्यार करता था और
 लक्ष्म स्नेहमयी दृष्टिसे देखता था ॥ ५ ॥
 धमउच्च हृतसस्य सुपुण्या च परिनिष्ठितः ।
 शशाच पृथिवीं स्पर्शतां धर्मेषु सुसमाहितः ॥ ६ ॥
 उठे धर्मका मध्यमं शान था । यह हृतत और सिद्ध
 था तथा पूर्णतः शाश्वत रहकर पन-प्य-पम मरी-ग्री पृथ्वीका
 धर्मपूँर्ण शासन करता था ॥ ६ ॥
 तस्मिन् प्रजासति तदा सयकामपुत्रा मरी ।
 रत्नवन्ति प्रसूतानि मूयानि च फलानि च ॥ ७ ॥
 उठके शासनकालमें पृथ्वी समूह जागनाभी से देनेवाली
 थी । यहाँ फल पूर और मूल सभी तरह होत थे ॥ ७ ॥
 बहुदयपुण्या पृथिवी सुसम्पन्ना महात्मना ।
 स राज्य लाहना मुच्छोके स्पर्शतामहूतत्मानम् ॥ ८ ॥
 महात्मा ब्रह्मासुरक यगने पर म्पि विना उठे-प ही
 म्नाह उठान्त करती तथा पन पाप्यममरीभी म्नाह रहती
 थी । इस प्रकार वह अमुष्म समुद्रियापी एवं अमुष्म यग
 का उपभोग करता था ॥ ८ ॥
 तस्य बुद्धिः सन्नुपन्ना तया बुध्यामनुत्तमम् ।
 तपो हि पापं श्रेयः सगमादमितरत् सुत्तम् ॥ ९ ॥

एक समम वृत्रासुरके मगमें मर विचार उत्पन्न हुआ कि मैं परम उच्चम तप करने क्योंकि तप ही परम कल्याणकर्म ध्यान है। हुआ धारा मुक्त तो मोहमात्र ही है ॥ १ ॥
 स निक्षिप्य सुत ज्येष्ठ वीरियु मधुरेण्वरम् ।
 तप उग्र समाधिष्ठत् तपयन् सर्वविपताः ॥ १० ॥

उत्तरे अपने ज्येष्ठ पुत्र मधुरेश्वरका उग्र बना पुराणिकी को सोप दिया और तपपूर्ण देवताओंको तप देता हुआ वह कनेर तपस्थ करने लगा ॥ १ ॥

तपस्तप्यति वृत्रे तु वासवाः परमार्तबत् ।
 विष्णु समुपसक्तस्य वापयमेतद्युवाच ह ॥ ११ ॥

वृत्रासुरके तपस्यामें क्या कनेर इन्द्र बड़े बुझीये होकर भगवान् विष्णुके पास गये और इस प्रकार बोले— ॥ ११ ॥
 तपस्यता महाबाहो ह्येकस्य सर्वे विनिर्जिताः ।
 बलवान् स हि धामाम्नामैत शक्यमि ध्यासिष्ठुम् ॥ १२ ॥

महाबाहो ! तपस्या करते हुए वृत्रासुरने समस्त लोक जीत लिये । वह धर्मसेना असुर बन्धवान् हो गया है। अतः अब उत्तर मैं दायन नहीं कर सक्या ॥ ११ ॥
 पदासौ तप शक्तिष्ठेव् भूष एव सुरेण्वर ।

पादछाका धरिण्यन्ति तावत्स्य यद्यानुगाः ॥ १३ ॥
 सुरेश्वर ! यदि वह फिर इसी प्रकार तपस्या करता रहा तो बलक थ हीनों धाक रहेंगे, तत्काल हम सब देवताओंको उलके अधीन रहना पड़ेगा ॥ ११ ॥

त सैनं परमोद्धारमुपेक्षसि महाबाह ।
 इत्यार्षे श्रीमद्भामात्मने वासुकीकीये काविकाम्ये उत्तरप्रच्छे चतुर्विंशतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥
 इस प्रकार श्रीमद्भामात्मनिर्दिष्ट अर्चारात्मपण अशिक्षामके उत्तरप्रच्छेमें चौदसवाँ सर्ग पूरा हुआ ॥ ८८ ॥

पञ्चाशीतितम सर्ग

भगवान् विष्णुके तेजका इन्द्र और ब्रह्म आदिमें प्रवेश, इन्द्रके वधसे वृत्रासुरका वध तथा महाहत्याप्रसन्न इन्द्रका अभिक्रमण प्रवेशमें जाना

लक्ष्मणस्य तु गह वाक्यं श्रुत्वा राजुनिर्बन्धः ।
 वृत्रघातमदोषेण कथयेत्याह सुमत ॥ १ ॥
 उग्रबाहका वह कल सुनकर अतुल्यका उधार करनेवाले भीरुमकरकीने कहा— उच्चम अतका पावन करनेवाले सुमित्राकुम्भर ! वृत्रासुरके वधकी पूरी कथा कह सुनाना ॥
 राष्येवैषमुकस्तु सुमित्रानमद्वर्धनः ।
 भूष एव कर्षा विरथा कथयामास सुमतः ॥ २ ॥
 भीरुमकरकीके इस प्रकार आदेश देनेपर उच्चम अतके पावन सुमित्रानमद्वन उग्रमाने पुन उष दिव्य कवाच्ये सुनाना आरम्भ किया— ॥ २ ॥

क्षण हि न भवेत् भूषः कृत्ये त्वयि सुरेण्वर ॥ १४ ॥
 “महाबाही देवेश्वर ! उष परम उदार अनुभवी मन उच्छेद कर रहे हैं (इलीयिमे वह शक्तिशाली श्रेष्ठ का पा है)। यदि आप कुदित हो जावें तो वह अपमर में बँकित नहीं रह सक्या ॥ १४ ॥

यदा हि प्रीतिसयोम त्वया विष्णो समागतः ।
 तदाप्रसृति ह्येकानां त्वयात्पमुपलम्भयाम् ॥ १५ ॥

“विष्णो ! अरुते आपका शत्रु उच्छेद प्रेम हो गया है। अभीते उच्छे सम्पूर्ण अशुभ आधिपत्य प्राप्त कर लिये है ॥
 स त्व मसाद् लोकाणां कुडम्भ सुसमाहितः ।
 त्वत्कृतेन हि सर्वे स्यात् मशान्तमरुतं सगम् ॥ १६ ॥

“अतः आप मन्त्री तरह ध्यान देकर सम्पूर्ण लोकोंपर कृपा कीजिये । आपके कृपा करनेसे ही सब अरुत हस्त एवं नरिणा हो सक्या है ॥ १६ ॥

इमे हि सर्वे विष्णो त्वानिरीक्षन्त विधीकसाः ।
 वृत्रघातन महता तर्पा साह्य कुडम्भ ह ॥ १७ ॥

विष्णो ! वेधन देवता आपकी श्रेर देत रहे हैं। वृत्रासुरका वध एक महीन कार्य है। उसे करके आप उन देवताओंका उपहार कीजिये ॥ १७ ॥

त्वया हि नित्ययाः सार्धं कृतमेतं महात्मन्धम् ।
 मसहामिदृमण्येपामातीनां शक्तिर्भवान् ॥ १८ ॥

मया ! अणने उदा ही इन महात्मा देवताओंकी उपायता ही है। वह असुर दूरीके लिये अरुत है अतः आप इन नियमित देवताओंके अग्रभयता हां ॥ १८ ॥

मया ! अणने उदा ही इन महात्मा देवताओंकी उपायता ही है। वह असुर दूरीके लिये अरुत है अतः आप इन नियमित देवताओंके अग्रभयता हां ॥ १८ ॥

मया ! अणने उदा ही इन महात्मा देवताओंकी उपायता ही है। वह असुर दूरीके लिये अरुत है अतः आप इन नियमित देवताओंके अग्रभयता हां ॥ १८ ॥

सहस्राक्षधयः श्रुत्वा सवेपा च विधीकसाम् ।
 विष्णुर्देवानुवाचेव सर्वाभिम्यपुरोगमात् ॥ ३ ॥

मग्ने ! लक्षनेनवाशी इन्द्र तथा तपपूर्ण देवताओंके वह प्राणना ह्युत्तर भगवान् विष्णुने इन्द्र आदि उन देवताओंके से इस प्रकार कहा— ॥ ३ ॥

पूर्वं सोऽह्वयसोऽस्मि वृत्रस्येह महात्मनः ।
 तन युष्मत्प्रियार्थं हि नाह हस्मि महासुरम् ॥ ४ ॥

देवताओं ! दुश्चारी इस प्राणनाके परसेने ही मैं म्हात्मना वृत्रासुरके स्नेह-वचनमें रैषा हुआ हूँ । इतलिये दुश्चारा मित्र करनेके उद्देश्वरती मैं उस महात्न असुरका वध नहीं करूँगा ॥

१ मधुरेश्वरका बड़े निकरकरने मधुर नामक उदा शिष्य है। उच्चमनिकेभीमिकावने मधुर कलाओंका ईश्वर शिष्य है तथा उच्चमम-पुत्रकनेने मधुर-लोक नामका उदा कला यस्ता कालीका साथी शिष्य है।

प्रवक्ष्य करणीय च भयतां सुखमुत्तमम् ।
 तस्मिन्नुपापमप्याप्त्ये सहस्राक्षो वधिष्यति ॥ ५ ॥
 (परंतु तुम सबके उत्तम सुखकी व्यवस्था करना मेरा
 मतवचन फलस्व है इतलिये मैं ऐसा उपाय बताऊँगा,
 जिससे देवराज इन्द्र उत्तम बच कर सकेंगे ॥ ५ ॥
 ब्रह्माभूर्तं करिष्यामि आत्मानं सुखसप्तमम् ।
 तत्र बृह सहस्राक्षो वधिष्यति न सशायः ॥ ६ ॥
 (सुरभेदगण ! मैं अपने स्वरूपभूत तेजस्वी हीन भागीमें
 निमग्न करूँगा, जिससे इन्द्र निर्लंबदेह हुआसुरका बच कर
 सकेंगे ॥ ६ ॥
 पक्षांशो वासव यातु द्वितीयो वज्रमेव तु ।
 दुर्कियो भूतज पातु तथा वृत्र हनिष्यति ॥ ७ ॥
 (मेरे तेजका एक अंश इन्द्रमें प्रवेश करे; वृष्य ब्रह्ममें
 मग्न हो बच और तीव्र भूतजको पक्ष्य जग, ७ तत्र इन्द्र
 हुआसुरका बच कर सकेंगे ॥ ७ ॥
 तप्य हुषति वृष्यो वेद्या धाप्यमघामुवन ।
 परमेष्ठ्य सवेहो यथा वृत्ति वैस्पहन् ॥ ८ ॥
 मत्र तऽस्तु गमिष्यामो वृत्रासुरवधैरिषिम् ।
 मन्त्र परमोदार वासव स्वैन तेजसा ॥ ९ ॥
 (वेदधर मन्त्रान् विष्णुके ऐसा कहनेपर देवता बोले—
 'वेदमिषाण ! आप जो कहते हैं ठीक ऐसी ही बात है,
 इससे तबेह नहीं। आपका कल्याण हो। हमझेंगे वृत्रासुरके
 बधमें इच्छा मनमें छिपे रहते और चामेंगे। परम उत्तर
 मंत्रों ! आप अपने तेजके द्वारा देवराज इन्द्रको अनुग्रहित करें ॥
 ९ ॥ तत्र सर्वे महात्मानः सहस्राक्षपुरोगमाः ।
 शरत्पुत्रापात्रमन् यत्र वृत्रो महासुरः ॥ १० ॥
 (वृष्य इन्द्र आदि सभी महात्मन्सी देवता उस कर्ममें
 जो यहाँ महान् असुर वृत्र तपस्या करता था ॥ १ ॥
 तऽपस्वस्तेजसा भूत तप्यन्तमसुरोत्तमम् ।
 विस्मयित्वा लोकाकीन् किन्वृत्तमिबाम्बरम् ॥ ११ ॥
 (असुरों देवता, असुरभेद वृत्रासुर अपने तेजसे सब ओर
 भात हो या है और ऐसी तपस्या कर रहा है। मानो उसके
 द्वारा कहीं लोकोको ही ध्वंसा और आकाशको भी ध्वंस
 कर बैठेगा ॥ ११ ॥
 वृष्य यासुरभेष्टं वृत्वासासमुपागमम् ।
 करमेन वधिष्यामि कर्ष्यं न स्यात् पराजयः ॥ १२ ॥
 (इस असुरभेद वृत्रको देवता ही देवताओंका पक्ष्य गये
 और लीचने लगे—'हम कैसे इतका बच करेंगे ? और किंतु
 उसके हमारी पराजय नहीं होने पायेगी ? ॥ १२ ॥
 * इतकके पक्ष्य उत्तमके लीचने हुए महात्मन्सी विष्णुके
 समकक्ष इस पुरुषकी तका करनेके लिये तका इनके पराजयकी
 शोचने लगे। मारी बरीरका कारण करनेकी इति होनेके लिये
 कल्याणके तेजके तीव्र अंतर्ध्व भूतकर करना जगल्लभ्य वा;
 रहस्ये शय इत्य ।

तेषा चिन्तयतां तत्र सहस्राक्षः पुरवरा ।
 वर्षं प्रपृच्छ पाणिभ्यां प्राहिणोवृ बृत्रमूर्धनि ॥ १३ ॥
 (वे लोग बहों इस प्रकार खंड ही रहे थे कि क्लेशनेत्र
 भारी इन्द्रने दोनों हाथोंसे ब्रह्म उठाकर उसे हुआसुरके
 मस्तकपर दे माय ॥ १३ ॥
 कपराग्निनेत्र घोरेण शीतेनेत्र महाशिपि ।
 पतता वृत्रधिरसा जगत् प्रासमुपागमत् ॥ १४ ॥
 (इन्द्रका वह ब्रह्म प्रक्ष्यकरकी अग्निके समान मसंकर
 और शीतमान् था। उसके बड़ी मारी छपटें उठ रही थीं।
 उसकी चोटसे कटकर बच हुआसुरका मस्तक गिरा तब धार
 संसार मन्नीत हो उठा ॥ १४ ॥
 अस्तम्भाभ्य वृष्य तस्य वृत्रस्य त्रिभुधाधिप ।
 चिन्तयानो जगामानु लोकास्यान्त महायशाः ॥ १५ ॥
 (निरपराध वृत्रासुरका बच करना उचित नहीं था; अतः
 उसके कारण महायशस्वी देवराज इन्द्र बहुत चिन्तित हुए
 और द्रुत ही एक लोकोके अन्तमें लोकांको फलिते परकी
 अन्वकारमय प्रवेशमें चले गये ॥ १५ ॥
 तमिन्द्रं ब्रह्महत्याऽऽद्यु गच्छन्तमनुगच्छति ।
 अगतवास्य गात्रेषु तमिन्द्रं दुःस्वप्नादिशात् ॥ १६ ॥
 (अनेके समय ब्रह्महत्या तत्पक्ष उनके पीछे चला गयी
 और उनके माँोंपर दृष्ट पड़ी। इसके इन्द्रके मनमें बड़ा
 दुःख हुआ ॥ १६ ॥
 हतारयाः प्रणयेन्द्रा वेषाः सान्निपुरोगमाः ।
 विष्णुं त्रिभुवनेशान् मुहुर्मुहुर्पूजयन् ॥ १७ ॥
 (देवताओंका धनु माय गया। इसलिये अग्नि आदि
 सब देवता त्रिभुवनके स्थानी मन्त्रान् विष्णुकी बारबार स्तुति
 पूजा करने लगे। परंतु उनके इन्द्र अदृश्य हो गये थे (इसके
 कारण उन्हें बड़ा दुःख हो रहा था) ॥ १७ ॥
 त्व गतिः परमेशान् पूर्वजो जगत पिता ।
 रक्षार्थं सर्वमूर्तानां विष्णुत्पुत्रपुत्रजमियान् ॥ १८ ॥
 (देवता बोले—) 'परमेश ! आप ही आत्क अदृश्य
 और अग्नि पिता हैं। आपने सम्पूर्ण प्राणिनोंकी रक्षाके लिये
 विष्णुका पालन किया है ॥ १८ ॥
 हतभार्यं त्वया वृत्रो ब्रह्महत्या च वासपम् ।
 बाधते सुरशार्दूल मोक्षं तस्य विनिर्दिश ॥ १९ ॥
 (आपने ही इत हुआसुरका बच किया है। परंतु ब्रह्म
 हत्या इन्द्रको कब दे रही है; अतः सुरभेद ! आप उनके
 उद्धारका कोई उपाय बताइये ॥ १९ ॥
 तेषां तद् वचन भ्रुत्वा देवानां विष्णुत्पुत्रधीत् ।
 मातेव यक्षतां शक्रा पात्रधिष्यामि वज्रिणाम् ॥ २० ॥
 (देवताओंकी यह बात सुनकर मन्त्रान् विष्णु बोले—
 'इन्द्र मेरा ही पक्ष करे। मैं तम ब्रह्मचारी देवराज इन्द्रको
 पक्षि कर दूँगा ॥ २ ॥

पुण्येन हयमेघेन मामिष्टा पाकशासनः ।
 पुनरेष्यति देवानामिन्द्रत्वमकुतोभयः ॥ २१ ॥
 'पवित्र भयमेघ यज्ञके द्यौः शुभ बहू-युक्तयौ भारवना
 करके पाकशासन इन्द्र पुनः देवेश परको प्राप्त कर क्यो मोर
 फिर उन्हें किसीसे भय नहीं रहेगा' ॥ २१ ॥

इत्याहं श्रीमद्भारवणे वास्नीकिये वासिकाम्ने उत्तरकाण्डे षडशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥
 इस प्रकार श्रीमद्भारवणे वास्नीकिये वासिकाम्ने उत्तरकाण्डे षडशीतितमं सर्गं पूरा हुआ ॥ ८५ ॥

षडशीतितम सर्ग

इन्द्रके बिना जगतमें अज्ञान्ति तथा अश्वमेधके अनुष्ठानसे इन्द्रका ब्रह्महत्यासे मुक्त होना
 उदा वृत्रवर्ष सर्वमकिलेन स लक्ष्मणः ।
 कपयित्वा गरद्येष्टः कथाशेष प्रचक्रमे ॥ १ ॥
 उक्त समय वृत्रासुरके बचकी पूरी कथा सुनाकर नरभेद
 कर्मजने शेष कथाके इस प्रकार कहना आरम्भ किया— ॥ १ ॥
 ततो हते महावीर्ये वृत्रे देवभयकरे ।
 द्यह्यहत्यापृतः धाम्ना सर्वां छेमे न वृत्रहा ॥ २ ॥
 देवताओंको भय देनेवाले महाशक्तिशाली वृत्रासुरके मरे
 जानेपर ब्रह्महत्यासे घिरे हुए इन्द्रनाथके इन्द्रको बहुत बुरा
 होच नहीं हुआ ॥ २ ॥

सोऽन्तमाश्रित्य लोकाणां नष्टसद्यो विभ्येत नः ।
 कष्ट तत्रायद्यत् कश्चिद् देष्टमल ह्योरगा ॥ ३ ॥
 लोकोंश्री अस्मिन् सीमाया अस्मिन् के वे लोके उमान
 मरते हुए कुछ कष्टकर नहीं भयेत और संकल्प्य होकर
 पड़े रहे ॥ ३ ॥

अथ नष्टे सहस्राक्षे तद्विद्वमभवत्प्रजात् ।
 भूमिश्च चस्तसकृदाया निःस्नेहा धुम्पकमना ॥ ४ ॥
 निःस्नेहसस्ते सर्वे तु ह्यवाम् सारितस्तया ।
 संस्तेभ्यश्चैव सस्यान्ममावृष्टिछोऽभयत् ॥ ५ ॥
 इन्द्रके अहस्य हा जानेसे तारा उतर ध्याकुल हो
 उठा । बरती उठाइ-सी हो गयी । इसकी अद्वैता नष्ट हो
 गयी और बत सूख गये । समस्त सर्व और सत्त्विकोंमें क-
 सेवका अन्ध हो गया और सर्वां म होनेसे सब जीवोंमें बड़ी
 पचराहट फैल गयी ॥ ४-५ ॥

हीयमाप्य तु लोकेऽस्मिन् सम्प्राप्तममसः सुराः ।
 यदुक्तं विष्णुना पूर्वं त यज्ञ समुपात्तयत् ॥ ६ ॥
 समस्त लोक क्षीय होने लगे । इससे देवताओंके हृदयमें
 आकुलता का गयी और उन्होंने उली बचका करन किया
 किसे पहले भगवान् विष्णुने बताया था ॥ ६ ॥
 ततः सर्वे सुरगणाः सोपाभ्यायाः नृद्विधिम् ।
 त देवा समुपात्तमुर्ष्येन्द्रो भयमोहिता ॥ ७ ॥
 अतन्तर बृहस्पतिभेदे साथ वे नृद्विधिसहित सब
 देवता उस स्थानपर गये जहाँ इन्द्र मरते मोहित होकर छिपे
 हुए थे ॥ ७ ॥

एव सविद्य तां वार्षीं देवतां वासुलोपमात् ।
 अगाम विष्णुर्वेद्याः स्तूपमालम्बिबिह्वम् ॥ २२ ॥
 देवताओंके समझ अमृतमयी वाणीद्वारा उक्त थी
 होकर देवेशर म्भावान् विष्णु अपनी स्तुति सुनते हुए न
 कामको पत्ने गये ॥ २२ ॥

उत्तरकाण्डे षडशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

ते तु वृत्रा सहस्राक्षमालम्ब ब्रह्महत्याया ।
 त पुरस्तस्थ देवेशमन्वमेध प्रचक्रिरे ॥ ८ ॥
 वे इन्द्रको ब्रह्महत्यासे आनेहित देव उन्हीं देवेश
 मयो करके भरवमच यह करने लगे ॥ ८ ॥
 ततोऽन्वमेधः सुमहात् महेश्मस्य महात्मनः ।
 वपुते द्यह्यहत्यायाः पावस्यर्ष्यं नरेन्दर ॥ ९ ॥
 औरकर / फिर तो महात्मन्सी महेश्मक वह म्वात् अ-
 मेध नष्ट आरम्भ हो गया । उक्तका उद्देश्य था ब्रह्महत्या
 निवृत्ति करके इन्द्रको पवित्र बनाया ॥ ९ ॥

ततो पक्षे समाते तु ब्रह्महत्या महात्मनः ।
 अभिगम्यावधीत् वाचय क मे स्वानं विज्वलमय ॥ १० ॥
 अतन्तर वह वह यह समस्त हुआ तब ब्रह्महत्या
 महात्मन्सी देवताओंके मित्र बनकर पूजा—घीरे लिये कर्षी
 खान बनाओगे ॥ १० ॥

ते ताम्बुसुखतो देवास्तुहाः प्रीतिसमन्विताः ।
 वतुर्था विभज्जात्मानमात्मनोश्च पुरासपे ॥ ११ ॥
 यह सुनकर उद्विष्ट एवं प्रसन्न हुए देवताओंमें लगे
 पक्षा— पुर्व्वं शक्तिवाली ब्रह्महत्या / ११ अपने आपको लय
 ही बार बारोंमें विभक्त कर दे' ॥ ११ ॥

देवाना भापित भुत्वा ब्रह्महत्या महात्मनम् ।
 सर्व्वी स्थानमन्यत्र वरयामास पुर्व्वसा ॥ १२ ॥
 महात्मन्सी देवताओंको मरू कपन सुनकर महेश्मक
 शरीरमें बु-बर्षक निवास करनेवाली ब्रह्महत्याने अपना पार
 म्यग कर दिया और इन्द्रके शरीरसे अन्वज करनेके लिये
 स्थान मँगवा ॥ १२ ॥

एकेनाशेन वरस्यामि पूर्णोवाप्तु नदीषु वै ।
 यतुरो धार्पिकयन् मासात् त्वर्षणी कामपारिणी ॥ १३ ॥
 (यह बोधी—) यी अपने एक मंससे वरके वर
 महीनोत्क कलसे मरी हुई नदियोंमें निवास करेगी । उक्त
 समय मैं दण्डासुर विचरनेवाली और बृहस्पतेके बर्षक हवन
 करनेवाली होऊँगी ॥ १३ ॥
 मूम्यामह सर्वाकासमेकेनाशेन सर्व्वदा ।
 पत्तिप्यामि न सन्नेहः सत्यमेतत् भयीमि वा ॥ १४ ॥

‘‘सूते ज्ञाने मे सदा एव समय भूमिपर निवार करेगै; इमें संरह रही है; यह मैं आपकेसेते सची बात ब्यती हूँ॥ यऽपमराश्वतीयो मे स्त्रीषु यौधनशालिषु । विरात्र र्वर्षूणासु वसिष्ठ्ये दर्वघातिनी ॥ १५ ॥

‘‘और मेरा जो यह सीस्य मंडा है; इसके साथ मैं युवा सस्ये सुखेमित होनेवाली गर्वाकी क्षिपोंमें प्रतिग्रह धिन एतक निवार करेगो और उनके दर्पको नष्ट करती रहूंगी॥ इत्यो ब्राह्मणान् ये तु मृगापूयमभूषकान् । वीक्षन्तुष्येन भगवन् सध्वयिष्ये सुरपभा ॥ १६ ॥

‘‘सुरभेष्टाल् । जो छूट बोलकर किमीको कलकित नहीं करते; ऐसे ब्राह्मणोंका जो खेग बध करते हैं; उनपर मैं अपने चौबे जगने आक्रमण करेगी’’ ॥ १६ ॥

‘‘यूषुस्त्यां ततो देवा यथा यदसि तुर्यसे । तथा भक्तु तत् सत्यं साधयन्व यथीप्सितम् ॥ १७ ॥

‘‘एव देवतायेंने उससे करा—‘‘तुमसे । तू सेवा करती है वह एक बेल ही हा । आओ भजना अभीष्ट छापन कर ॥ काः प्रत्याप्तिक्रत देवाः सहस्रासं यत्रन्दि । विराट् पूतपाप्मा च यासयः समपद्यत ॥ १८ ॥

‘‘एव देवतायेंने बड़ी प्रलभताके साथ सहस्रछेपन इन्द्र ह्यार्ये क्षीमब्राह्मणो ब्राह्मीक्षीय भाविकाम्ये उत्तरकाण्डे पञ्चाशीतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥

‘‘एत प्रकर भीरुस्त्रीभिर्मिर्मित् अत्रज्जामयन् मदिकाम्ये उत्तरकाण्डे द्वियाशीर्त्तौ सप्त पूत हुक् ॥ ८९ ॥

की बन्दना की । इन्द्र निमित्त, निष्पाप एवं विद्युत् हो गये ॥ प्रशान्त च जगत् सर्वं सहस्रासे प्रतिष्ठिते । यद्य चाद्भुतसकाशा तथा शम्भोऽप्यपूजयत् ॥ १९ ॥

इन्द्रके अपने पदपर प्रतिष्ठित होते ही सम्पूर्ण जगत्में शान्ति छा गयी । उस समय इन्द्रने उस अद्भुत शक्तिवाली यक्षी भूरी भूरी प्रार्थना की ॥ १९ ॥

ईहसो ह्यभ्यमेधम्य प्रभाषो रघुकन्ध्व । यजस्व सुमहाभाग हयमेधेन पार्थिव ॥ २० ॥

रघुनन्दन ! अभयेश यशका देख ही प्रभय है । अतः महाभाग ! पृथ्वीनाथ ! अथ अभयेश यशके द्वारा यजन् कीजिये’ ॥ २० ॥

इति लक्ष्मणयाष्यमुत्तम मूपतिरहीय मनोहर महात्मा । परितोषमयाप हृदयेताः स निशम्येन्द्रसमात्तयिक्रमौजा ॥ २१ ॥

असमयके उस उत्तम और अत्यन्त मनोहर बचनको सुनकर महात्मा राज्ञ भीरामचन्द्रकी, जो इन्द्रके समान पराक्रमी और बलशाली थे मन्-ही-मन बड़े प्रलभ एवं संतुष्ट हुए ॥ २१ ॥

इति लक्ष्मणयाष्यमुत्तम मूपतिरहीय मनोहर महात्मा । परितोषमयाप हृदयेताः स निशम्येन्द्रसमात्तयिक्रमौजा ॥ २१ ॥

असमयके उस उत्तम और अत्यन्त मनोहर बचनको सुनकर महात्मा राज्ञ भीरामचन्द्रकी, जो इन्द्रके समान पराक्रमी और बलशाली थे मन्-ही-मन बड़े प्रलभ एवं संतुष्ट हुए ॥ २१ ॥

सप्ताशीतितम सर्ग

भीरामका लक्ष्मणको राजा इलकी कथा सुनाना—इलको एक-एक मास तक स्त्रीत्व और पुरुषत्वकी प्राप्ति

‘‘सूत्या लक्ष्मणेनेत्र धातयं धातययिधारदा । स्युर्बाव महातेजाः प्रहसन् रात्रयो यजः ॥ १ ॥

‘‘ब्रह्मणकी कही हुई यह बात सुनकर बातचीतकी कथामें निरुप मन्त्रोक्तकी भीरुनाथकी ईसते हुए बोले— ॥ १ ॥

‘‘एकमेव नरभ्रष्ट यथा यदसि लक्ष्मण । ब्रह्मणमरोपेय वासिमेषफलं च पत् ॥ २ ॥

‘‘नरभेष्ट ब्रह्मण । ब्रह्मणको सारा प्रथम और अभयेश सस्य जो एक प्रुमने सेवा बताया है; वह एक ठली कर्मने ठीक है ॥ २ ॥

‘‘सूयते हि पुरा सौम्य कर्ममस्य प्रजापतेः । पुत्रो वाङ्गीश्वरः श्रीमास्त्रिये नाम सुधार्मिकः ॥ ३ ॥

‘‘सौम्य । मुना जाता है कि पूर्वकथमें प्रकथति कर्मके पुत्र भीमन् इस वाङ्गीश्वरके राजा थे । वे बड़े बर्मात्मा मरते थे ॥ ३ ॥

‘‘स राजा पुषिर्त्तौ सर्वां वरो कृत्वा महायशः । राज्यं तैव नरव्याघ्र पुत्रवत् प्यपास्तयत् ॥ ४ ॥

‘‘पुरापति । वे महाबलकी मूलाक सारी पृथ्वीको बचमें

करके अपने राज्यकी प्रकथ पुत्रकी मौति पाछन करते थे ॥ सुरैश्च परमोदारैर्द्वैतेष्व महाधनैः । नागरास्रसगम्भैर्षषैश्च सुमहात्मभिः ॥ ५ ॥

‘‘पूज्यते नित्यशः सौम्य भपार्ते रघुनाथ्वन । भविष्यच्च प्रयो लोक्यः सरोपस्य महारमणः ॥ ६ ॥

‘‘सौम्य । रघुनन्दन । परम उदार देवता; महाधनी रीत्य तथा नाग रक्षत गम्भर्भ और महामनस्वी नर—ये सब मयमीव होकर लदा राजा इलकी शक्ति-युक्त करते थे तथा उन महात्मना मरनेके बच हो जानेपर हीनों कोशके प्राणी मयसे बच उठते थे ॥ ५ ॥

‘‘स राजा तादृशोऽप्यासीध धर्मं वीर्यं च मिष्ठितः । सुवृष्या च परमोदारो बाङ्गीकेयो महायशः ॥ ७ ॥

‘‘ऐसे प्रभावशाली होनेपर भी बाङ्गीके यो महायशः महाशली परम उदार राजा इल कर्म और पराक्रमसे इतनापूर्वक भित रहते थे और उनकी बुद्धि भी फिर थी ॥ ७ ॥

‘‘स प्रज्जके महाबाहुर्मुंगया रुषिरे वने । शैवे मगौरमे मासे ससृत्पचरुवाहना ॥ ८ ॥

तपस्त च तपस्तीप्रमम्भोमध्ये पुरासदम् ।
यशस्कर कामकर ठारुण्ये पर्यवस्थितम् ॥ १० ॥

ये कहके भीतर तीव्र तपस्यामें संसप्त थे । उन्हें परामृत करना किसीके किये भी असम्भव कठिन था । वे पशुसी, पूर्णराम और तद्वन-शरणागते सिद्ध थे ॥ १ ॥

स तं अज्ञाशयं सर्वे क्षोभयामास विक्रान्ता ।
सह तैः पूर्वपुत्रयैः स्त्रीमूत्रै रपुत्रम्वन ॥ ११ ॥

अपुन्यन । उन्हें देखकर इन्हां चकित हो उठी और धो पड़े पुत्र्य थी, उन किन्नोरके खप कम्मसे उठकर उठने सारे ब्रह्मण्यके शुभ्य कर दिया ॥ ११ ॥

शुभस्तु तां समीप्यैव क्रमबाणयश गतः ।
मोपलेभे तदात्मान स सबाह तदात्मनि ॥ १२ ॥

इसपर दृष्टि पड़ते ही शुभ क्रमदेवके बाणोका निधान्य बन गये । उन्हें अपने वन-मनकी शुभ न रही और वे उस समय कम्मसे विचलित हो उठे ॥ १२ ॥

इहां गिरीश्रमाप्यस्तु वैश्वेक्यादभिकां शुभाम् ।
चित्तं समम्यतिप्रमत्तं च म्रिय देवताभिका ॥ १३ ॥

इसके निबोधने सभसे अधिक सुन्दरी थी । उसे देखते हुए शुभय मन उठके आसक्त हो गया और वे खेचने सने यह कौन-सी स्त्री है धो देवाङ्गनामोसे भी बदकर स्पष्टती है ॥ १३ ॥

न देवीपु न नागीपु गायत्रीप्यस्तरमस्तु च ।
दृष्टपूर्वा मया कायिद् रूपेणामन क्षोभिता ॥ १४ ॥

न देवनितामोमें न नागपुत्रोमें न भद्रुपत्री किन्नोरों और न अप्सराओंमें ही मैंने पहल कमी क्यो देखे मन्नेर कम्मसे शुद्धोभित होनेवासी स्त्री देखी है ॥ १४ ॥

सहशीय मम भवेत् यदि नाप्यपरिग्रहः ।
इति बुद्धिं समास्थाय अस्मात् कृणुपागमत् ॥ १५ ॥

यदि यह वृत्तके ध्याही न गयी हो तो सर्वथा मेरी पत्नी बनने योग्य है । ऐसा विचार के कम्मसे निकलकर किनारे बने ॥ १५ ॥

आभय समुपागम्य ततस्ताः प्रमदाक्षमाः ।
शप्यापयत धमात्मा तादृशैव च क्याम्बिरे ॥ १६ ॥

द्विद ब्रह्मममें पहुँचकर उन धर्मात्माने पूर्वोक सभी सुन्दरियोंको आबाब देकर बुझना और उन सने आकर उन्हें प्रणाम किया ॥ १६ ॥

स ता पप्रच्छ धमात्मा कस्याग लोकसुन्दरी ।
किमर्थमागता सैव सत्रमात्प्यात मा यिरम् ॥ १७ ॥

इन्हां धीमदात्माय बापसीवीचे आदिशयके कथरकरके उदासीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीपरामर्शमे अदिशयके उदाहरणके अन्तर्गत सर्ग दृष्ट हुम् ॥ ८८ ॥

एव वर्मात्मा बुधने उन सब किन्नोरों पूजा-यह श्लोक-
सुन्दरी गारी किसकी पत्नी है और किसकिये यहाँ आयी है ।
ये सब बातें तुम हीमें सुने बताओ ॥ १७ ॥

शुभ तु तस्य तद् वाक्य मपुर मधुयसरम् ।
श्रुत्वा स्त्रियश्च ताः सबां ऊचुमंपुरया गिरा ॥ १८ ॥

शुभके मुखसे निकल्य हुआ वह शुभवचन मपुर पण्यकी से मुक्त तथा मीठा था । उसे सुनकर उन सब किन्नोरों मपुर बापीमें कहा— ॥ १८ ॥

अस्याकमेया सुभोणी प्रमुत्वे वर्तते सत्रा ।
मपतिः काननाम्तेषु सहासामिभारयसी ॥ १९ ॥

ब्रह्मन् । यह सुन्दरी हमारी सहायकी स्वामिनी है । इसका कोई पति नहीं है । वह हम श्लोकोंके खप अपनी इच्छाके अनुसार बनप्रान्तमें विचरती रहती है ॥ १९ ॥

तद् वाच्यमाभ्यकपुं तासां स्त्रीणां निदाम्य च ।
विद्यामासर्वतीं पुष्पामाकर्षयत स द्विजा ॥ २० ॥

उन किन्नोरों वचन सब प्रकारसे सुन्य ब । उसे सुनकर ब्राह्मण बुधने पुष्पामनी आकर्षणी विद्याका भावर्तनी (सारा) किया ॥ २० ॥

सोऽर्थे विदित्वा सकल तस्य राज्ञो यथा तथा ।
सर्वा एव स्त्रियस्ताश्च बभ्राणे मुनिपुङ्गवः ॥ २१ ॥

उस राजक किन्नोरों सारी बातें बयार्यरपसे क्लतकर मुनिवर बुधने उन सभी किन्नोरोंके कहा— ॥ २१ ॥

अत्र किपुत्रवीर्मुत्या शैखरोद्यसि कस्यच ।
म्ययासस्तु गिरावसिष्ठाशीप्रमेव विधीयताम् ॥ २२ ॥

तुम सब श्लोक किपुत्रवी (किन्नरी) होकर पकके किनारे रहोगी । इस परैतपर हीन ही अपने किये निवारण बनाने को ॥ २२ ॥

मूळपत्रफलैः सर्वां वर्तयिष्यथ तित्यथा ।
स्त्रियः किपुत्रयाद्याम भर्तुन् समुपलप्स्यथ ॥ २३ ॥

एव और फल-मूलेसे ही तुम सबका सदा जीवन-निर्वाह करना होगा । आगे बचकर तुम सभी किन्नोरों किपुत्रय मन्त्र पतिव्रतोके मात करोगी ॥ २३ ॥

ता भुक्त्या खोमपुत्रम्य स्त्रियः किपुत्रवीकृत्या ।
उपासांवाकिरे शैल बभ्रुस्ता बहुलस्तवा ॥ २४ ॥

किपुत्रवी नामसे प्रसिद्ध हुए वे किन्नोरों खोमपुत्र बुधकी उपर्युक्त बात सुनकर उस परैतपर रहने लगीं । उन किन्नोरों सर्वथा बहुत अधिक थी ॥ २४ ॥



रामा इलका चन्द्रपुत्र युधक माथ संवाद

एकोनवतितमः सर्गः

पुत्र और इलाका समागम तथा पुरुरवाकी उत्पत्ति

भुवः किंपुत्रोत्पत्तिं रुद्रमणो भरतस्तथा ।
 यथाव्यभिक्तिं च ब्रूतामुभी राम जनेश्वरम् ॥ १ ॥
 किंपुत्रवत्पत्तिश्च उत्पत्तिश्च यह प्रसंगं मुनकर कर्मण और
 मत्त दानेने महाशय भीरमसे क्वा-पह तो बड़े आश्चर्यकी
 क्वा है ॥ १ ॥
 अथ रामः कथामेता भूय एव महाशयः ।
 कथयामास धर्मात्मा प्रजापतिसुतस्य वै ॥ २ ॥
 रुद्रनक्षर महाशयसी धर्मात्मा श्रीरामने प्रब्रपति कर्मके
 पुत्र इक्ष्वाकी इव कथाको किं इव प्रकार क्वाना आरम्भ
 किं-॥ २ ॥
 सर्वास्तत्र विहृता बद्धा किञ्चितीर्षुपिसत्तमः ।
 क्वात्त कृपसम्पन्ना तां सिद्धय प्रहसन्निव ॥ ३ ॥
 वे एव किञ्चिरीयो पर्वतके किञ्चिरी चक्षी गर्भी । वह देख
 पुनिनेइ बुधने उच क्वपत्ती क्षीसे ईखते हुए-से क्वा-॥ १ ॥
 सोमस्यैह सुव्यथितः सुतः सुदुस्मिरानने ।
 भङ्गल मां वारोहे भक्त्या सिङ्घेन क्वभुया ॥ ४ ॥
 "सुमुक्ति । मैं सोमदेवताका परम प्रिय पुत्र हूँ । कर्णयोहे ।
 मुझे क्वभुया और स्नेहमयी दृष्टिसे देखकर अपनाओ ॥ ४ ॥
 तस्य तद् घञ्जन भुवः शून्ये सञ्जनवर्जिते ।
 इक्षु सुदुस्मिराक्य प्रत्युवाच महाप्रभम् ॥ ५ ॥
 प्सकनोसे र्शित उच सुने खानमें बुधकी यह बात सुन-
 कर इक्षु उन परम सुन्दर महादेवकी बुधसे इव प्रकार
 बोली-॥ ५ ॥
 अहं क्वमचरी सोम्य त्वास्मि यथावर्तिनी ।
 प्रव्यथि मां सोमसुत पर्येच्छसि तथा कुच ॥ ६ ॥
 सोम्य खेयकुमार । मैं अपनी इच्छाके अनुसार किचरने
 वाली (लक्ष्मण) हूँ किंतु यह समय आपकी आज्ञाके बर्बन
 हो रही हूँ अतः मुझे उचित सेवाके लिये आदेश दीजिये
 और वैधी आपकी इच्छा हो, वैद्य भीजिये ॥ ६ ॥
 तस्यास्तद्भुतप्रकृत्यं भुत्वा हर्षमुपागतः ।
 स वै क्वामी सह तथा देमं क्वम्रमसः सुता ॥ ७ ॥
 प्रव्यथा यह भूत्सुत बचन सुनकर कामासक सोमपुत्रको
 बड़ा हर्ष हुआ । वे उसके साथ रमण करने लगे ॥ ७ ॥
 बुधश्च माधवो मासस्तप्रमिर्ला रथिचाननाम् ।
 गतो रमयतोऽप्यथै ह्यनबत् तस्य क्वमिनः ॥ ८ ॥
 मनेदर बुधवाकी इत्यके साथ अतिशय रमण करनेवाले
 कामासक बुधका वैशाख मस एक कनके समान बिल गया ॥
 अथ मास तु सम्पूर्णं पूर्णेशुसददानतः ।
 प्रजापतिसुतः श्रीमाश्वान प्रत्युबुध्यत ॥ ९ ॥
 एक मास पूर्ण होनेपर पूर्व क्वम्रमाके क्वमन मनेदर

मुलवासे प्रब्रपति पुत्र भीमान् इक्षु अपनी शून्यापर
 बग उठे ॥ ९ ॥
 सोऽप्यप्यत् सोमज तत्र तपन्तं मलिच्छशये ।
 ऊर्ध्ववाहु निरालम्ब त राखा प्रत्यभापत ॥ १० ॥
 "उर्ध्वोने वेका" सोमपुत्र बुध वहाँ क्वमशयमें तप कर
 रहे हैं । उनकी मुम्बई ऊपरको उठी हुई हैं और वे निष्पाव
 कहे हैं । उस समय राजने बुधसे पूछा-॥ १ ॥
 भगवन् पर्वतं दुर्गं प्रविष्टोऽस्मि स्त्रहानुगः ।
 न च पश्यामि तत् सौम्य कनु से मामक्य गताम् ॥ ११ ॥
 "भगवन् । मैं अपने सेकनोके साथ दुर्गम पर्वतपर आ गया
 या परतु वहाँ मुझे अपनी वह सेना नहीं दिखायी देती है ।
 पता नहीं, वे मेरे सनिक कहाँ चले गये ?" ॥ ११ ॥
 तच्छुत्वा तस्य राजर्षेणैतस्य भाषितम् ।
 प्रत्युवाच शुभं वाक्यं सान्त्वयन् परया गिरा ॥ १२ ॥
 पार्थिव इक्षुकी श्रीरु-प्रातिभियक र्गुति नष्ट हो गयी
 थी । उनकी बात सुनकर बुध उचम बगीछाप उर्ध्वे सन्तना
 देते हुए यह छाम बचन बोले-॥ १२ ॥
 अहमवर्षेण महता मृत्यास्ते विनिपातित्यः ।
 स्य आभमपदे सुतो घातवर्षभयावितः ॥ १३ ॥
 राजन् । आपके धारे सेकन भोखेकी भारी कपति मारे
 गये । आप भी आँधी-पानीके समयसे पीड़ित हो इव आभममें
 अक्षर खे गये ॥ १३ ॥
 समाश्वसिद्धिं भद्रं ते निर्मयो दिगत्-वरः ।
 फलमूखशानो धीर नियसेह यथासुजम् ॥ १४ ॥
 धीर । अह आप पर्ये धारण करें । आपका क्वरुण
 हो । आप निमय और निम्बित हाकर फल-मूखका आहार
 करते हुए वहाँ मुलपूर्वक निवात भीजिये ॥ १४ ॥
 स राजा तन थापयेन प्रत्याभ्यस्तो महामतिः ।
 प्रत्युवाच ततो थापय्य क्षीनो मृत्युञ्जन्सयात् ॥ १५ ॥
 बुधके इव बचनसे परम बुद्धिमान् राज इक्षुके बड़ा
 आश्वासन सिद्ध परतु अपने सेकनोके नष्ट होनेसे वे बहुत
 दुःखी थे इतलिये उनसे इव प्रकार बोल-॥ १५ ॥
 स्वक्याम्यह स्वकं राज्यं माहं मृत्योर्विनाहृतः ।
 वर्तयेय ह्यन प्रहान् समनुशासुमहसि ॥ १६ ॥
 प्रहान् । मैं सेकनोसे र्शित हा जानेर भी राज्यक
 परिशाग गयी कर्हेण । अह क्षमर भी मुसध वहाँ नहीं था
 क्वयगा" अतः मुझे जानेकी आशा दीजिये ॥ १६ ॥
 सुतो धमपये प्रहान् ज्येष्ठो मम महापदातः ।
 दाधिगुनुरिति द्यातः स म राज्यं प्रपश्यत ॥ १७ ॥
 प्रहान् । मेरे धमनराज "वेद्य पुत्र बड़े पशुकी हैं ।



राजा इलक्ष चन्द्रपुत्र शुभक साय संवाद

विपयमे देव्य क्रोह ब्रवाय श्रीशिवे, शिवसे इतच्छ कल्याण हा ॥
तया सवयत्तामेय द्विजैः सह महात्मभिः ॥
कर्दमस्तु महातेजास्ताम्राधममुपागामत् ॥ ८ ॥

वे एव इव प्रकार वातचीत कर ही रह ये कि महात्मा
शिवोंके साथ महातेजस्वी प्रजापति करम भी उठ आभयपर
आ पहुँचे ॥ ८ ॥

पुत्रस्यश्च ऋतुभ्येव वयट्कारस्तथैव च ॥
श्वेदारुश्च महातेजास्ताम्राधममुपागामत् ॥ ९ ॥

श्वय ही पुत्रस्त्य, ऋतु वयट्कार तथा महातेजस्वी ओंकार
भी उठ आभयपर पपारे ॥ ९ ॥

ते सूर्ये हृष्टमनसाः परस्परस्मामगमे ॥
दितैरिषो वाह्निपते पृथग्याषयाभ्ययाप्तुयन् ॥ १० ॥

परस्पर मिलनेपर वे सभी महर्षि प्रसन्नचित्त हो वाह्निकर्दमके
श्वनी राजा इक्ष्वाकू दित चारहे हुए मिन मिन प्रफरकी
राय देने लगे ॥ १ ॥

कर्मस्त्ववधीन् पाप्म्य सुतार्य परम हितम् ॥
द्विजाः शृणुत मद्राक्ष्य यच्छ्रेयाः पापियम्यदि ॥ ११ ॥

एव कर्मसे पुत्रके सिधे अक्षय्य दितकर बात करी—
आप्तो ॥ आश्लेषो मेरी बात सुनें, अब इस राजाकू सिधे
कर्मपरफरिणी होगी ॥ ११ ॥

माय्य वदयामि भैरव्यमन्तरा यूपभयसम् ॥
नाभमेधाम् परो यज्ञः प्रियश्चैव महात्मना ॥ १२ ॥

मैं मगवान्, शङ्करके शिवा बूले किसीको ऐसा नहीं
देखता, जो इत डेगधी दबा कर सके तथा अश्वमेध यज्ञसे
बदकर बूक कर देता वह नहीं है अब महात्मा महादेवकीबो
सिध हो ॥ १२ ॥

तस्मात्पञ्चामहे सर्वे पापियायै तुरासवम् ॥
कर्मेनैयमुत्तमस्तु सय एय द्विजगमा ॥ १३ ॥

राक्षसन्ति स्म त यम रुद्रम्याग्धिन प्रति ॥
यमः एव सर्वलोक राजा इक्ष्वाकू दित चरिप उठ मुच्छर यम
का स्तुष्टान करे ॥ कर्दमके देव्य कर्दमेर उन सभी भेठ
इच्छान भतवान् कर्दमी आतपनाके सिधे उठ यमका
स्तुष्टान ही अच्छा लगता ॥ १३ ॥

मयत्तम्य तु राजर्षिः निष्पद्यः परपुरजया ॥ १४ ॥
मदत्त इति शिबयातस्त यम स्तुत्पादरत्न ॥

महादेव सिध तया शत्रुनगरीर शिवर जानेगाम
दुर्द्वन्द्व चर्चि मरुत्से उठ यमका आटकन किया ॥ १४ ॥
तथा यथा महात्मान्मातु सुधाधमस्ममीयताः ॥ १५ ॥
रुद्रश्च परम सायमाह्वयाम महापता ॥

द्विजो बुधो अश्वमेधे निवृत्त पर मदान् पर कान्त्य
दुष्म तथा उन्ने महात्मनी रुद्रश्च ददा मत्तं मत्त
दुष्म ॥ १५ ॥

अथ यम समान तु प्रीत परमया मुदा ॥ १६ ॥

उमापतिर्द्विजान् स्ववानुयाय इत्सलधि ॥
श्वर समत शनेपर परमानन्दसे परिपूषचिच हुए
भगवान् उमापतिने इक्ष्वाकू पाठ ही उन एव प्राप्तगोत
करा— ॥ १६ ॥

प्रीतोऽस्मि हयमघेन भक्त्या च द्विजसत्तमाः ॥ १७ ॥
अम्य वाह्निपतेदशैव किं करोमि प्रिय गुभम् ॥

शिवकेपणाल ॥ मैं तुम्हारी मक्ति तथा इत अश्वमेध
यज्ञके अतुष्टानसे बहुत प्रसन्न हूँ ॥ बलाभा, मैं वाह्निपतेके
इक्ष्वाकू कौन-का घुम एवं मिय कार्य करूँ ? ॥ १७ ॥

तथा यवृत्ति देवसे द्विजास्तु सुसमाहिता ॥ १८ ॥
प्रसाद्यन्ति देवेण यथा म्यात् पुण्यस्त्रियम् ॥

देवेश्वर शिवके ऐसा कर्दनेपर वे सब म प्रसन्न एकामप्रचित्त
ही उन देवाधिदेवका इत कष्ट प्रसन्न करनेकी चेष्टा करने
लगे शिवसे नारी इसा सदाक शिवे पुत्र्य इत रो पाय १८ ॥
ततः प्रीतो महादेय पुण्यस्य दृष्टी पुना ॥ १९ ॥
इत्यायै सुमहातेजा द्या अन्तर्धीयत ॥

एव प्रसन्न हुए महातेजस्वी महादेवकीने इसाप्र सदाक
शिवे पुत्र्यस्य प्रदान कर दिया और ऐसा करप ये बड़ी
अन्तर्धान हा गये ॥ १९ ॥

निवृत्ते हयमधे च गते चाद्गाम १० ॥
यथागत द्विजाः सर्वे तेऽगच्छन्तु द्वापिर्दानिनः ॥

अश्वमेध यत समाप्त शनेपर अब महात्मी दर्शन देकर
अदरप हो गये, तब वे सब दीरदर्शी प्राप्तग भेने भाव ये
बेते श्रोत गये ॥ २ ॥

राज्ञा तु वाह्निमुत्सृज्य मण्डेनो हनुत्तमम् ॥ २१ ॥
निषदायामास पुत्र प्रतिष्ठान वत्सकरम् ॥

यस्य इन्द्रे वाह्निर्क दशक दशक मण्डरमणे (सन्त
पमुनाक संगमरु निवृत्त) एक परम उद्यम एवं बगणी मगर
कनाया शिवरा नाम या प्रतिष्ठानपुर ॥ २१ ॥

दावापिमुञ्च्य राजर्षिवाह्नि परपुरजया ॥ २२ ॥
प्रतिष्ठान इक्ष्वा राजा प्रजापतिमुत्ता परती ॥

शत्रुनगरीर शिवर जानेगाम चर्चि शिवकेदुन वाह्नि
देवका साथ प्रदान किया और चर्चिने क यम पुत्र दत्त
राजा इत प्रतिष्ठानपुरके शानक हुए ॥ २२ ॥

म चरन् प्राप्तपौद्गावमित्या प्रायमनुत्तमम् ॥ २३ ॥
एतां पुत्रया राजा प्रतिष्ठानमयामवान् ॥

अमय अनेपर शानक इत शरीर शानक परम उद्यम
मण्डरकथ मत्त हुए और इत्या पुत्र राजा पुत्रकान्
प्रतिष्ठानपुरका साथ मत्त किया ॥ २३ ॥

इत्या श्वमेधस्य प्रभायः पुण्यभा ॥
श्रियुक्त पाप्म्य सन् यथाव्यदनि दुन्दभम् ॥ ४ ॥

प्रसन्न हुए शने पर ॥ शर्वमेधः सन्त
मत्त हा दत्तकालक इत गये ॥

तन्मनाम घटावित्नु है । त्वमै वहाँ बाहर तनत्र अभिके
करैय तमी मे मेरा रज्य प्ररग करै ॥ १७ ॥

नहि शास्त्राम्यह द्वित्वा भूयद्वारान् सुखान्वितान् ।

प्रतिघटा महातेजा किञ्चिद्व्यग्रुम यथा ॥ १८ ॥

व्याहातेक्यी मुने । वेधमें का मेरे सेवक और श्री, पुत्र
भरि परिवारके भोग सुखसे रह रहे हैं उन सबका छोड़कर
मैं यहाँ नहीं ठहर सकूँगा । अतः मुझसे देखी कोरें अग्रुम
यात माप न करै, किछी स्वकर्मों सिद्धकर मुझे यहाँ
दुःखपूर्वक रहनेके जिमे निबध होना पड़े ॥ १८ ॥

तथा ह्यपति राजेन्द्रे युधः परममहूतम् ।

सात्स्वपूर्वमघोबाघ वासस्त इह रोञ्छताम् ॥ १९ ॥

म सतापस्त्वया काया कर्ममेव महापथ ।

सपत्सरोपितस्येह काययिष्यामि त दितम् ॥ २० ॥

वाकेन्द्र इच्छे ऐश्व कहेनेर बुधने तन्ने सम्पत्ता देते
हुए असत्य अद्वुत वात करी—वाक् । हुमप्रकृत्यापूर्वक
वहाँ रहना स्वीकर करो । कर्मके महाबली पुत्र । दुर्मे
छेप्य नहीं करना चाहिये । जब हुम एक बयतक वहाँ निवाच
कर भोगे तब मैं दुम्हारा शिव साधन करूँगा ॥ १९ ९ ॥
तस्य तद् व्यसन भुक्त्वा बुभुस्याह्निपुष्कमन्नः ।

वासाय विद्वन् बुद्धिं यदुक्तं श्रद्धावादिता ॥ २१ ॥

पुष्यकर्मा बुधक बह बचन सुनकर तन त्रसवारी

महात्माके कवनानुसार राखने वहाँ रहनेका निश्चय विश्वा ॥

हृषार्थे श्रीमद्भागवते वास्मीकीये आदिप्रथमे

इत प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीयमहाभारत आदिकथके उत्तरप्रथमे नवतीर्थां तस्य पूत हुज ॥ ८९ ॥

मास स ली तथा भूत्वा रमयत्सनिश सदा ।

मास पुदयभाषेन धर्मबुद्धिं चकार सा ॥ २२ ॥

वे एक मासक की शेरक निरतर बुधके सप रज्य
करते और फिर एक मासक पुदय हाकर धमानुष्ठानमें ल
कगते थे ॥ २२ ॥

ततः सा नद्यमे मासि इष्ट्य सोमसुखत् सुतम् ।

जनयामास सुधाणी पुकरयसमूर्जितम् ॥ २३ ॥

शदनन्तर नबें मासमें सुखरी इच्छने छेमपुत्र बुधके एक
पुत्रको कम्म दिया जो बड़ा ही शैखी और कवान् वा ।
उत्का नाम था पुस्तरवा ॥ २३ ॥

आठमासे तु सुखोपी पितुरस्ते न्यवेशयत् ।

बुधस्य समयजे च इत्वा पुत्र महाबलम् ॥ २४ ॥

उधके उच महाबली पुत्रकी महकमति बुधके ही छान
वी । बह कम्म सेवे ही उपनयनके योग्य भवत्याक वाक्य के
गम्य इतकिने सुन्दरी इच्छने उसे शिवाके छानमें लै
दिया ॥ २४ ॥

बुभस्तु पुदपीमृत स वै सपत्सरोत्तरम् ।

कथाभी रमयामास धर्मयुक्ताभिरत्नमवान् ॥ २५ ॥

वर्ष पूय होनेमें कितने मास होय थे, उतने लकलक
कर-कर राधा पुदय होते थे, तब-तब ममके कथमें रहनेवाकै
बुध धर्मयुक्त कथाभोग्यउत उमेका मनोरञ्जन करते थे ॥ २५ ॥

उत्तरप्रथमे एकोनवर्षित्यमा सती ॥ ८९ ॥

उत्तरप्रथमे उत्तरप्रथमे नवतीर्थां तस्य पूत हुज ॥ ८९ ॥

नवतितम सर्ग

अश्वमेधक अनुष्ठानसे इलाको पुरुषत्वकी प्राप्ति

तपोकथति रामे तु तस्य जन्म तदद्भुतम् ।

उवाच सङ्गमणो भूयो भरतश्च महत्प्रथाः ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजी जब पुस्तरवाक कम्मकी अद्वुत कथा कह

गये तब सङ्गमण तथा म्हात्माजी मरतने पुनः पूछा—॥ १ ॥

इला छा सामपुत्रस्य सबात्सरमघोषिता ।

अकरोत् किं नरमेष्ट तत्त्वं शशिसुमर्हसि ॥ २ ॥

नरमेष्ट । छेमपुत्र बुधके यहाँ एक कर्मक निवाच

करनेके पम्हात् इच्छने क्या किया, पर ठीक-ठीक बतानेकी

हजा करै ॥ २ ॥

तपोस्तद् वापनमपुष्यं निशाम्य परिपूच्छतोः ।

रामः पुनकबलत्तमां प्रहापतिस्तुते कथाम् ॥ ३ ॥

प्रश्न करते समय उन दोनों महावीरों बाणोंमें बड़ा

मापुष्य था । उसे सुनकर श्रीरामने प्रहापतिपुत्र इच्छने विक्रयमें

फिर इव प्रकर कथा आरम्भ की—॥ ३ ॥

पुदयस्य गते शूरे बुधः परमबुद्धिमान् ।

सयते परमादात्मानुहाय महाप्रथाः ॥ ४ ॥

शूरीर इव जब एक मरतके जिने पुदयमाकके श्रष्ट

हुए तब परम बुद्धिमान् महापदस्त्री बुधने परम उदार

मरतमा एकतकै बुझाया ॥ ४ ॥

कथनं सुयुषुषं च मुनि वारिहमेमिगम् ।

प्रमोदन मोदकर ततो बुधोस्तस्य मुनिम् ॥ ५ ॥

पुत्रपुत्र कथन मुनि अखिनेमि प्रमोदन मादकर और

बुधोत्ता मुनिके भी आनन्दित किया ॥ ५ ॥

पश्यन् सर्वांश्च समामीय वाक्यमस्तत्त्वदर्शनम् ।

उवाच सर्वांश्च सुहृदो धैर्येण सुसमाहितान् ॥ ६ ॥

इन लकलक बुधकर बलपीतकी कथा जाननेवाले तब-

वर्षां बुधने धैर्यसे एकत्रअधिच रहनेवाकै इन सभी उद्बुधके

कथा—॥ ६ ॥

मर्षं राजा मद्रावाङ्ग कर्ममस्य इला सुतः ।

आनीतेषां यथाभूतं धेयो ह्यथ विधीयताम् ॥ ७ ॥

वे महाबाहु राजा इव प्रहापति कर्मके पुत्र हैं । इनकी

केरी किति है, इसे आप लज कोय जानते हैं । अला इव

दान्तयश्च महाबाहो प्रवर्तन्तां समन्ततः ॥ १६ ॥
 शतशोऽपि भ्रमन्नाः क्रतुमुष्पमनुत्तमम् ।
 मनुमूय महातय नैमिषे रघुमन्वन ॥ १७ ॥
 भ्रातृशत्रु खनुमन्वन ! यहाँ यज्ञश्री निर्दिष्ट-समाप्तिके
 बिन्दे कात्र शान्ति-विधान प्रारम्भ कर हो । नैमिषारण्यमें
 एकद्वौ धर्मक पुरुष उच परम उत्तम और भेद महापुरुषो
 देवकर इत्यर्थ हो ॥ १६ १७ ॥
 तुष्टः पुष्टश्च सर्वोऽस्ती मानितश्च यथाविधि ।
 प्रतियास्यति धर्मज्ञ शीघ्रमामन्व्यतां जना ॥ १८ ॥
 धर्मज्ञ इत्यन्त ! शीघ्र जेकोको अमन्वित करो और जे
 भोग भाँसे वे सब विधिपूर्वक तुष्ट, पुष्ट एवं सम्मानित
 होकर बैठें ॥ १८ ॥
 शत वाहसहस्राणा तण्डुलानां सपुष्पताम् ।
 मयुत तिलमुद्रम्य प्रयात्वाग्ने महावळ ॥ १९ ॥
 ययक्ष्णा कुशित्यानां मागार्णा लवणस्य च ।
 भ्रातृश्री मुमिशक्रुमार । जसौं शोह कोनेबाके पय
 लहे कोनेबाके पावक छेकर और दस हजार पय छिन्न, मूँग,
 पना कुस्थी, उडद और नमकके शोह छेकर आगे धर्म ॥
 अतोऽनुकर्य स्नेह च गन्ध सक्षिप्तमेव च ॥ २० ॥
 सुषमकोट्यो यद्गुह्य हिरण्यस्य शतोत्तरा ।
 यमत्वे भरतः कृत्या गच्छत्यग्ने समाधिना ॥ २१ ॥
 धूलिके अनुस्य भी तेक, दूध, दही तथा किना पिसे
 हुए कपन और किना पिसे हुए मुगनिजत पदार्थ भी मेरे
 बने चाहिये । भरत जे कराइसे भी अधिक छोने-झौंसीके
 तिके लव रकर पहले ही भाँसे और बड़ी सावधानीके साथ
 पय करे ॥ २ - २१ ॥
 अन्तरापणबीष्यश्च सर्वे च नटनर्तका ।
 सदा नार्यश्च यद्गयो नित्यं यौधनशास्त्रिनः ॥ २२ ॥
 मार्गमें आवरणक वस्तुओंके ऋषि-विक्रमके बिन्दे बगह
 बगर सब भी लगनी चाहिये अतः इतके प्रवर्तक बसिक्
 एवं स्वरक्षीभग भी बाजा करे । समस्त मर और
 नर्तक भी सब । बहुत-से लोइये तथा सदा पुजावस्थाये
 हृषार्थे श्रीमद्रामायणे बाष्मी-श्रीये आदिब्राह्मणे

सुशोभित होनेबाकी कियों भी यात्रा करे ॥ २२ ॥
 भरतेन तु सर्वे ते यान्तु सैन्यानि खाप्रतः ।
 नैगमान् चालवृक्षाश्च त्रिशास्त्राश्च सुसमाहितान् ॥ २३ ॥
 कर्मास्तिकवान् पर्यकिताः कोशाप्यज्ञाश्च नैगमान् ।
 मम मातृसत्या सर्वोः कुमारान्ताःपुराणि च ॥ २४ ॥
 काञ्चीनां मम पर्ली च वीक्षायां शास्त्र कमणि ।
 मप्रतो भरतः कृत्या गच्छत्यग्ने महापदाः ॥ २५ ॥
 भरतके साथ आगे-आगे सेनाएँ भी भाँसे । महापदासी
 भरत शास्त्रवेत्ता विद्वानों, शास्त्री इत्यौ एकदम निचपास
 शास्त्रों, क्रम करनेबाक नौकरों, यदुक्तों, कोशाप्यज्ञों, वैदिकों,
 मेरी सब माताओं, कुमारोंके अन्त-पुरों (भरत आदिकी
 कियों) मेरी पत्नीश्री सुवणमयी प्रतिमा तथा यज्ञ-कर्मकी
 शीशके अन्तर आसनोंके आगे करके पहले ही यात्रा करे ॥
 उपकृपाया महाहास्य पार्थिवानां महौजसाम् ।
 सानुगाना नरभेद्यो व्याक्षिप्त महावळा ॥ २६ ॥
 मन्त्रपानानि यस्यापि मनुयानां महात्मनाम् ।
 तत्पश्चात् महाकर्म नरभेद श्रीरामने सेवकसहित महा
 वेत्तसी नरेशोंके उदरनेके बिन्दे यद्गुह्यस्य दसस्यत फाने
 (जेमे आदि ब्रह्मने) के बिन्दे आदेश पिया तथा सबको
 सहित उन महात्मा नरेशोंके बिन्दे मन्त्र पान एवं दस आदि
 श्री भी ब्यवस्था फरान् ॥ २६ ॥
 भरता स तदा यातः शत्रुघ्नसहितस्तदा ॥ २७ ॥
 यानराश्च महात्मानः सुप्रीवसहितस्तदा ।
 विप्राणां प्रयराः सर्वे सङ्कुञ्च परिषयण्यम् ॥ २८ ॥
 खनन्तर शत्रुघ्नसहित भरतने नैमिषारण्यक प्रस्थान
 किया । उठ समय यहाँ सुधीयसहित महात्मा बनर बितने भी
 भेद शास्त्र यहाँ उपस्थित थे, उन सबन रवाई परछेक
 काम करते थे ॥ २७ २८ ॥
 विभीषणश्च रक्षोभि स्त्रीभिश्च यद्गुभिपृतः ।
 श्रुषीयानुप्रतपस्तां पूजां क्षत्रे महारमन्ताम् ॥ २९ ॥
 कियों तथा बहुत-से राजजोक साथ विभीषण उग्र तन्मी
 महारमा मुनियोंके स्वागत-करारकर काम संभलत थे ॥ २९ ॥

उत्तरकाण्डे पञ्चमतितमः सर्गः ॥ ११ ॥
 एत प्रथम श्रीमन्मूर्तिनिर्मितं चरितं जगत्सु अदिब्राह्मणे उत्तरकाण्डे इत्यनेनर्तौ स्मः पूरा कृत्य ॥ ११ ॥

द्विनवतितम सर्ग

भीरामके अश्वमेध-यज्ञमें दान-मानकी विद्वेषता

तन् सयमकिलेमानु प्रम्याप्य भरताप्रजा ।
 दय शप्तस्यसम्पन्न इष्णस्यार मुमोष ह ॥ १ ॥
 इत प्रकार सब क्षाममी पूर्वरूपसे भेदकर भरतके बड़े
 मर्दे भीरामने उक्त स्थानसे लम्ब तथा इष्णकार मृगके
 वनन बाके रंगयने एक छोड़ेक छाहा ॥ १ ॥
 श्रुतिविधिभ्रमण्य साधमदय यदितिपुम्य च ।

उतोऽप्यगच्छत् क्रावुलम्यः सह सैन्येन नैमिषम् ॥ २ ॥
 श्रुतिश्रीसहित करमन्त्र उठ अश्वमेध यज्ञके लिय निपुक्त
 करके भीरुनाथकी सेनाक साथ नैमिषारण्यक गये ॥ २ ॥
 यथापाठ महापादुद्वृष्टा परममद्भुतम् ।
 महर्षमनुज लेने भीमानिति य साऽप्यर्षी ॥ ३ ॥
 यहाँ बने हुए अत्यन्त अद्भुत पठ-मन्त्रको देवकर

त्रिनवतितमः सर्ग

भीरामके मङ्गमें महर्षिं वात्सीकिका आगमन और उनका रामायण
गानक लिये कृष्ण और लक्ष्मी आदेश

वर्तमाने तपामूले यद्ये च परमावृमुते ।
सशिष्य भ्रजगामाशु वात्सीकिर्मगवानृषिः ॥ १ ॥

इत प्रकार वह व्यस्त भव्यत यह सब वात्स्य दुभा,
उठ समन भगवान् वात्सीकि मुनि अपने शिष्योंके साथ उसमें
श्रेष्ठपूर्वक पचारे ॥ १ ॥

स बहू दिव्यसकलां पल्लमवृमुतवशानम् ।
एकस्य श्रुतिवाहाना चकार उटखाशुभान् ॥ २ ॥

उन्होंने उस दिव्य एवं अद्भुत पल्लम दर्शन किया और
श्रुतिबोधके लिये वे बड़े बने थे, उनके पास ही उन्होंने अपने
लिये ही सुन्दर पर्यायार्थ कनवायी ॥ २ ॥

एकदांश्च बहून् पूर्णान् फलमूलांश्च बोभक्तम् ।
वात्सीकिवाटे दक्षिणे स्थापयन्नविवृता ॥ ३ ॥

वात्सीकिवाटेके सुन्दर दक्षिणेकें समीप अन्न आदिसे भरे
पूरे बहूउत्से उटके लक्ष्मी कर दिये गये थे । अथ ही अन्ते-
कण्डे फल और मूला भी रख दिये गये थे ॥ ३ ॥

एसीत् सुपूजितो राज्ञा मुनिभिश्च महात्मभिः ।
वात्सीकिः सुमहातोश्चा न्यबसत् परमारमवान् ॥ ४ ॥

राज्य भीराम तथा बहुसंख्यक महात्मा मुनियोंद्वारा
कर्ममूर्तिपुत्रि एवं सम्मानित हो महातोक्ष्मी आत्मखनी
वात्सीकि मुनिने बड़े हुकसे वहाँ निवास किया ॥ ४ ॥

स शिष्यावप्रवीचूषुषौ युवां गत्या समहितौ ।
इत्सु रामायणं काव्यं गायतां परया मुवा ॥ ५ ॥

उन्होंने अपने कृष्ण-पुत्र को शिष्योंके कहा—'द्वय दोनों
मैंने एकाग्रचित्त हो सब अक्षर पूज करके बड़े आनन्दके
साथ लक्ष्मी रामायण-काव्यका गान करो ॥ ५ ॥

श्रुतिवातेषु पुत्र्येषु ब्राह्मण्यसधेषु च ।
एषाम्नु राजमार्गेषु पार्यिवाणा गृहेषु च ॥ ६ ॥

'श्रुतिबोध और ब्राह्मणोंके पवित्र स्थानोंपर, श्रुतिबोधके,
एकपत्न्योपर तथा राजाओंके वात्सल्यानोंमें भी इस काव्यका
गान करना ॥ ६ ॥

रामस्य भवन्नादि चक्र कर्म च कुर्वते ।
श्रुतिव्यामप्रतक्षीय तत्र गेय विदेरतः ॥ ७ ॥

'भीराम-वत्सकीका अर्थ यह बना है इतके दरबारके
बनों वात्सकयोग यह अर्थ कर रहे हैं, वहाँ तथा श्रुतिबोधके
अन्ते भी इस काव्यका विशेषरूपसे गान करना चाहिये ॥ ७ ॥

इमानि च फलमम्यत्र स्वादुनि विविधानि च ।
ज्जालानि पर्यवामेषु मान्वादावाप्य गायताम् ॥ ८ ॥

'यहाँ पर्यन्तके शिष्योंपर नाना प्रकारके स्वरिष एवं

मीठे फल अने हैं, (मूल अन्तेपर) उनका स्वाद ले-लेकर
इस काव्यका गान करते रहना ॥ ८ ॥

न यास्यथाः अम वात्सी भक्षयित्वा फलाम्यथ ।
मूत्रानि च सुमधुरानि न रागात् परिहास्यथा ॥ ९ ॥

'बन्धे । यहाँके सुमधुर फल-पूर्वोक्त मक्षण करनेसे न
तो दुर्गमें कभी पकनट होगी और न दुर्गारे गलेकी मधुरता
ही नष्ट होने पर्यन्त ॥ ९ ॥

यदि शम्भ्याप्येद् रामः भवन्नाय महीपतिः ।
श्रुतीनामुपविष्टानां यथायोगं प्रयतताम् ॥ १० ॥

'अदि महाराज भीराम द्वय दोनोंको गान सुननेके लिये
बुझवें तो द्वय उनसे तथा वहाँ बैठे हुए श्रुति-मुनिबोधके ब्या-
योग विनमूर्त्त कर्त्तव्य करना ॥ १० ॥

विचसे विधातिः सर्गा गेया मधुरया गिरा ।
प्रमापैर्बुभिसन्न यथोद्दिष्टं मया पुत्र ॥ ११ ॥

'मैंने पहले मित्र-मित्र संख्यावाक्य कथनसे मुक्त रामायण
काव्यके लक्षणोंका विवरण तुम्हें उपदेश दिया है, उचितके
अनुसार प्रतिदिन बीस-बीस श्लोक मधुर स्वरसे गान करना ॥

जोभक्षायि न कर्त्तव्यः व्यस्योऽपि धनवाच्यया ।
किं धनेनभ्रमस्थानां फलमूलादिनां सदा ॥ १२ ॥

'धनकी इच्छासे घोड़ा-सा भी धेय न करना, आभ्रममें
एकर फल-मूला भोजन करनेवाले वनवासियोंको धनसे
क्या अर्थ ? ॥ १२ ॥

यदि पूष्येत्सु न कञ्चुत्सो युवां कस्येति वारकौ ।
वात्सीकेनच शिष्यो द्वौ वृत्तमेव नराधिपम् ॥ १३ ॥

'अदि भीरुनायकी पूर्ण—'बन्धे । द्वय दोनों किटक
पुत्र ह ।' तो द्वय दोनों महापुरुषे अपना ही कर देना कि
द्वय दोनों मारें महर्षि वात्सीकिके शिष्य हैं ॥ १३ ॥

इमास्तस्त्रीः सुमधुराः स्थान वापूर्यन्दानम् ।
मूर्च्छयित्वा सुमधुरा गायतां विगतन्त्यरी ॥ १४ ॥

'ये बीणाके तात तार हैं । इनसे बड़ी मधुर आवाज
निकलती है । इनमें अर्ध स्त्रीका प्रदर्शन करनेवाले वे स्थान
बने हैं । इनके स्वरोंसे संकट करके—'मिथ्याकर सुमधुर
स्वरमें द्वय दोनों मारें काव्यका गान करो और लक्ष्मी
निश्चित रहे ॥ १४ ॥

आदिप्रभृति गर्व स्याद्य वापयज्ञाय पार्यिपम् ।
वित्त हि सत्यभूयानां राजा भवति धमतः ॥ १५ ॥

'आत्मसे ही इस वाच्यका गान करना चाहिये । द्वय
लोग देल छोड़ें बर्तन न करना जिससे राजका अग्रमन हो।
क्योंकि राजा धर्मकी दृष्टिसे लक्ष्मी प्राप्तिपोंका विना होता है ॥

महाबाहु भीरुमन्त्रे अनुपम प्रसन्नता प्राप्त हुई और वे बोले—
 'बहुत सुन्दर है' ॥ ३ ॥

नैमिषे वसतस्तस्य सर्वं एव मयाधिपाः ।
 अग्निस्फुरणपहारोऽथ तान् रामः प्रत्यपूजयत् ॥ ४ ॥
 नमित्पारम्परे निवास करते समय भीरुमन्त्रधीके परम
 भूतपूजके धर्मि मरेण मौक्तिके-मौक्तिके उपहार से आये और
 भीरुमन्त्रधीने उन सबका स्वागत-स्कार किया ॥ ४ ॥
 भद्रप्रदानादिवरजामि सर्वोपकरणानि च ।
 भरतः सहस्राशुभ्रजो नियुक्तो राजपूजने ॥ ५ ॥
 उन्हें अन्न, पान सब तथा अन्य सब आवश्यक सामान
 दिये गये । धनुषसहित मत्त उन राजाओंके स्वागत-स्कारमें
 नियुक्त किये गये थे ॥ ५ ॥

यामराज्य महाप्रानः सुग्रीवसहितास्तत्रा ।
 परियेष्य च विप्राणां प्रयताः सन्प्रसन्नितरे ॥ ६ ॥
 सुग्रीवसहित महामन्त्री बानर परम पवित्र एवं संस्त
 चित्त हो उठ सम्ये वहाँ प्राणतोंके भोजन परोखते थे ॥ ६ ॥

विभीषणश्च रक्षोभिर्बहुभिः सुसमाहितः ।
 श्रुत्वाणामुग्रतपसां किंकरः समपद्यत ॥ ७ ॥
 बहुदूरि यक्षोंसे किरें हुए विभीषण अत्यन्त साधवान
 रहकर उग्र तपस्वी श्रुतियोंके सेवाधर्ममें संलग्न थे ॥ ७ ॥

उपकृत्या महाहास्य पार्ष्णिपानां महाप्रानाम् ।
 सानुगात्ता नरभेष्टो ध्यायित्तेया महाबलाः ॥ ८ ॥
 महाबली नरभेष्ट भीरुमन्त्रे सेवकसहित महामन्त्री
 भूषाओंके उदररुक्त किये बहुमूल्य वासस्थान (बोमें) दिये ॥

एव सुविदितो यज्ञो ह्यश्वमेधो ह्ययर्णत ।
 सङ्गमयेन सुगुप्ता सा ह्यवर्षा प्रयतत ॥ ९ ॥
 इस प्रकार सुन्दर बंगसे अश्वमेध यज्ञ का कार्य प्रारम्भ
 हुआ और समस्त संरक्षकमें रहकर पाँचके भूतपूजके
 प्रमत्त का कार्य भी मन्त्रीमौक्तिके लग्न हो गया ॥ ९ ॥

इत्थं राजसिंहस्य यज्ञमयत्सुसमम् ।
 नाभ्यः शब्दाऽभयत् तत्र ह्ययमथ महाप्रानः ॥ १० ॥
 छत्रतो दृदि दृष्टानि पापत् सुव्यन्ति पापधराः ।
 तावत् क्षयाणि क्षान्ति मनुमुन्ये महाप्रानः ॥ ११ ॥
 विविधानि च गीहानि न्याञ्जवानि तथैव च ।

राजाओंमें सिंहके समान परकामी महामान भीरुमन्त्रधी
 का वह भद्र यह इन प्रकार उत्तम विधिमें होने लगा । उक्त
 अथम यज्ञमें केवल एक ही बाल सब ओर मुनापी पड़ती
 थी—बलाह पापक संतुष्ट न हो तबका उनही इच्छाके
 अनुसर सब वस्तुएं विच्छेदा इनके सिवा दूसरी बल
 नहीं मुन्दरी देती थी । इन प्रकार महामान भीरुमन्त्र धेष्ट
 करने नन्त प्रसन्न हुए बने हुए गाव पत्तय और

इत्थं च भीमप्रानकने वाक्सीधीये आदिपद्ये

एव इत्थं भीमप्रानकने वाक्सीधीये आदिपद्ये रत्नरत्नमे वन्दरतो सग पूज हुम् ॥ १२ ॥

साण्डव आदि तबतक निरन्तर दिये जाते थे अन्तक नि
 पनेवाके पूर्वतः संतुष्ट होकर कष्ट न कर दें ॥ १२ ॥
 न निःसृत भयस्थोऽङ्गाव् वचन यावत्परिणाम् ॥ १३ ॥
 तत्रव् यानररक्षोभिर्वृत्तमेवाभ्यहृत्कृत ।

कबतक याचकोंके मनकी बात खेठसे बाहर नहीं निकलने
 पाती थी तबतक ही राक्षस और वानर उन्हें अपनी भाषी
 बस्तुएँ दे देते थे । वह बात अपने बेली ॥ १३ ॥
 न कश्चिन्मस्मिन्ने वापि कीनोऽप्यप्यथा कृता ॥ १४ ॥
 तस्मिन् पञ्चवरे राजो ह्यप्युपजगत्पूते ।

राजा भीरुमन्त्रे उक्त भेष्ट यज्ञमें ह्य-पुत्र मनुष्य मरे हुए
 थे, वहाँ कोई भी मस्मिन् हीन भयवा दुर्बल नहीं दिलायी
 देता था ॥ १४ ॥

ये च तत्र महात्मानो मुक्तयश्चिरजीविनाः ॥ १५ ॥
 गाक्षरस्त्यहया यज्ञं दानौषसमसङ्कृतम् ।

उक्त यज्ञमें च चिरजीवी महामान्य मुनि पवारे थे, उन्हें
 ऐसे किसी भी महत्त क्षरण नहीं था, किन्तु वे दानकी ऐसी
 भूम थीं थे । वह सब दानराशिसे पूर्वतः अर्पण दिलायी
 देता था ॥ १५ ॥

याः कृत्स्नान् सुवर्षेण सुवर्षेण कथं क्व सा ॥ १६ ॥
 यिचार्योऽसभते विर्त्तं रत्नार्थी रत्नमेव च ।

किन्ते सुवर्षकी आदस्वकृता थी वह सुवर्षे पद था
 इन जादनेवाकेको पन सिद्धा या और रत्नकी इच्छावाकेको
 एन ॥ १६ ॥

हिरण्यानां सुवर्षानां रत्नान्प्रमथ याससाम् ॥ १७ ॥
 अग्निशः क्षीयमानान् राशिः समुपहृदयते ।
 वहाँ निरन्तर दिये जानेवाले बौद्ध, खेने, रत्न और
 बर्तोंके डेर को दिलायी देते थे ॥ १७ ॥

न शक्यं न सोमस्य यमस्य यदुजस्य च ॥ १८ ॥
 इदतो ह्यपूर्वो न पयमूषुस्तपोधनाः ।

वहाँ अथ हुए तपसी मुनि करते थे कि ऐश सब वे
 परम कभी इन्द्र, यज्ञमा यम और बरुणके वहाँ भी नहीं
 देता गया ॥ १८ ॥

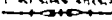
सद्यश्च पानरास्तस्युः सयग्रीव य राजसताः ॥ १९ ॥
 पासोऽभ्यन्तकर्मिभ्यः पूषदस्ता वदुश्चाम् ।

बानर और राक्षस तब ही वहीमें देनेकी क्षमती कि
 लड़ करते थे और बानर इन तथा अग्रधी इच्छा रखनेवाले
 पाषण्डोंके अधिक-से-अधिक देते थे ॥ १९ ॥

इदतो राजसिंहस्य यज्ञः सपगुणाभ्यिता ।
 सवरासरमयोऽन्नाय पतत न च दीवत ॥ २० ॥

राजसिंह भगवान् भीरुमन्त्रे देख सगुणकर्मण सब एक
 करने भी अधिक काकाक पसता रहा । उतमें कभी किसी
 काशी कमी नहीं हुई ॥ २० ॥

उत्तराद्यथैः शिवकर्मिभ्यः मार्गः ॥ २१ ॥



त्रिनवतितमः सर्ग

श्रीरामके यज्ञमें महर्षिं बाल्मीकिका आगमन और उनका रामायण गानके लिये कृश और लवको आदेश

वर्तमाने तयानूत पद्ये च परमावृत्तुने ।
सशिष्य स्रजगामाद्यु वाल्मीकिर्भगवानुचिः ॥ १ ॥

इस प्रकार वह अत्यन्त अद्भुत यज्ञ सब खाख हुआ,
जस समय मगानान् बाल्मीकि मुनि अपने शिष्योंके साथ उठमें
ऐम्हत्पूर्वक पपारे ॥ १ ॥

स इत्थं दिव्यसकाशा यज्ञमवृत्तुतदर्शनम् ।
एकस्य श्रुतिपाहाना सक्कर उटजावृत्तुभान् ॥ २ ॥

उन्होंने उस दिव्य एवं अद्भुत यज्ञका दर्शन किया और
श्रुतियोंके स्त्रिय को बाड़े बने थे, उनके पास ही उन्होंने अपने
हिमे भी सुन्दर पर्यायार्थ कनवायी ॥ २ ॥

शकृत्प्रभं वदन् पूर्णान् फलमूलाश्च शोभमान् ।
वाल्मीकिवाटं रुचिरे स्वापयस्रविबूरतः ॥ ३ ॥

बाल्मीकिजीके सुन्दर बाड़ेके समीप जस आरिसे भरे
पूरे बबुतसे रुकड़े लड़े कर दिये गये थे । छप ही अण्डे-
मण्डे फल और मूल भी रख दिये गये थे ॥ ३ ॥

व्यसितो सुपूषितो राज्ञा मुनिभिश्च महात्मभिः ।
वाल्मीकिः सुमहातेजा न्यवसत् परमारमयान् ॥ ४ ॥

राज्य भीराम तथा बहुरसम्पन्न महात्मा मुनियोग्य
मन्त्रैर्भोजिते पूषित एवं सम्मानित हो महातेजसी आत्मरुनी
बाल्मीकि मुनिने बड़े मुलसे वहाँ निवास किया ॥ ४ ॥

स शिष्यायप्रवीणेषुषुष्टौ पुयां गत्वा समहितौ ।
इत्सु रामायणं काव्य गायतां परया मुदा ॥ ५ ॥

उन्होंने अपने इष्ट-पुत्र को शिष्योंके करा—जुम दोनों
सर्ग एकाग्रचित्त हो लव और लुम फिरकर बड़े आत्मरुके
सप समूह रामायण-काव्यका गान कर ॥ ५ ॥

श्रुतिपात्रेषु पुराणेषु प्राथम्यात्सुखेषु च ।
रथ्यसु राममार्गेषु पार्थिवानां शृष्टेषु च ॥ ६ ॥

श्रुतियों और प्रासनोंके पवित्र ज्ञानोपर, गस्तियोंमें
एकज्योर तथा राजाओंके बाह्यजनोंमें भी इस काव्यका
गान करना ॥ ६ ॥

रामस्य भवनद्वारि यय काम स्य युयुनि ।
श्रुतिज्ञामप्रतद्यैय तत्र गेय विनेरत ॥ ७ ॥

भीरामकदरुधीका जो घर बना है उसके दरवाजेपर
वहाँ ज्ञानप्रयोग यथाव कर रहे हैं वहाँ तथा श्रुतिरथोंके
आगे ही इस काव्यका शिष्यरुपसे गान करना पदिये ॥ ७ ॥

इमानि च पलाभ्यन्त स्यादनि विधिधानि च ।
जायानि पयतामसु भाष्वापाभ्यश्च गायताम् ॥ ८ ॥

यहाँ कराक दिनगेर नाम प्रकारके स्थानि एवं

भीठे फल लगे हैं; (मूल जगनेपर) उनका स्वर से-सेकर
इस काव्यका गान करते रहना ॥ ८ ॥

न यास्यथा भ्रम वत्सी भद्रायित्या फलाम्यय ।
मूलानि च सुमृशानि न रागात् परिहास्ययः ॥ ९ ॥

जबको ! यहाँके सुमधुर फल-मूलोंका मक्षण करनेसे न
तो दुर्गमें कभी यज्ञवट हाथी और न दुर्गारे गलेही मधुरता
ही नष्ट होने पायेगी ॥ ९ ॥

यदि शम्भ्रापयेद् रामः भवनाय महीपतिः ।
श्रुतीप्यामुपविष्टानां यथायोगं प्रयतताम् ॥ १० ॥

यदि महाराज श्रीराम दुम दोनोंको गान सुननेके लिये
बुझवें तो दुम उनके तथा वहाँ बैठे हुए श्रुति-मुनियोंसे यथा
योग्य तिनपूर्वक बर्तन करना ॥ १० ॥

दिवसे विदातिः सर्गा गेया मधुरया गिर ।
प्रमायैबहुभित्तान यथोद्दिष्टं मया पुत्र ॥ ११ ॥

यदि पहले भिन्न-भिन्न संस्थाबासे श्लोकसे मुक्त रामायण
काव्यके लोभा मित तरह दुर्गमें उपदेश दिया है, उद्येके
अनुसार प्रतिदिन बीस-बीस श्लोकका मधुर स्वरसे गान करना ॥

लोभाभापि न कतव्याः व्यस्योऽपि धनपात्रयया ।
कि धनेनाभयस्थानां पलमूलादानां सदा ॥ १२ ॥

धनही श्रद्धासे छोड़ा-जा भी धेन म करना; आभयमें
रकर फल-मूल धेनक करनेबासे कनवातियोंको बनसे
क्या जम ॥ १२ ॥

यदि पूच्छेत् स काकुत्स्थो मुषा कस्येति शारदा ।
वाल्मीकेरथ शिष्यौ ही भूतमेय मराधियम् ॥ १३ ॥

यदि श्रीरघुनाथजी पूछें—जबको ! तुम दोनों किन
पुत्र हो ? तो तुम दोनों महाराजसे इतना ही बर देना कि
दुम दोनों भाई महर्षि बाल्मीकिसे शिष्य हैं ॥ १३ ॥

इमास्तत्रीः सुमपुत्राः स्यान् पापूयनगमम् ।
मूच्छयित्या सुमपुत्र गायता विगतस्यरी ॥ १४ ॥

ये बीनाके कात कर हैं । इनमें बड़ी मधुर भाव
निष्करी है । इतने सूर्य सूर्यका प्रगान करनेकाय वे ज्ञान
बने हैं । इनके सूर्यको शंका करने—जिन्कर सुमपुत्र
स्वरसे तुम दती भाई काव्यका गान कर और नईया
निश्चय रहे ॥ १४ ॥

आदिप्रभृति गय स्यात्त पात्रबाय पात्राधयम् ।
वित्त हि ससमृधना राज्ञ भवति धमना ॥ १५ ॥

आतममें ही इस काव्यका गान करना पदिये । तुम-
सम ऐक्य करे बर्तन न करना । वित्त रामका भगमन है
वर्तक राजा कभी ही दृष्टिमें लाने प्रतिक्रिया विना लाने ॥

तद् युवा इष्टमनसो भवः प्रभाते समाहितौ ।
 गापत मयुर गेय तन्त्रीलयसमन्वितम् ॥ १६ ॥
 'भतपत्र इम दासो मारं प्रसन्न और एकप्रचित्र होकर
 कउ खेरेमे ही बीजाके समपर मयुर खरसे रामायण-ग्रन्
 भारम्भ कर श' ॥ १६ ॥

इति सविष्टप पट्टशो मुनिः प्रावेतसस्तदा ।
 वाल्मीकिः परमोद्धारस्सूष्णीमास्तीग्महामुनिः ॥ १७ ॥
 इत तद्व बहूत कुष्ठ भवेद्य देकर बरगके पुत्र परम
 उगार महामुनि वाल्मीकि पुत्र हो गये ॥ १७ ॥

सविष्टो मुनिना तेन सावुभी मैथिलीसुतौ ।
 तथैव करवाषति निर्जम्मुत्तरिन्मी ॥ १८ ॥
 इत्यापं श्रीमद्भागवते वाल्मीकीये वासिष्ठाभ्ये
 इत इतर श्रीमद्वाल्मीकिनिर्मिते ज्ञपयामयत्र अदिष्ठाभ्ये

मुनिके इत प्रकर आदेश देनेपर सिषिष्टेष्टकुमारौ
 हीताके वे दोनों धनुर्वदन पुत्र लडुत भग्ना, इन देस ही
 करंगे' यह कहकर वहाँसे चक्र रिये ॥ १८ ॥

वामसुतां ती इद्व्ये कुमारौ
 निवेष्ट्य याणीमुपिभाषितां त्वा ।
 ससुस्तुतौ ती सुखमुपपुनर्निवां
 पयान्बिनी भार्यापीठिसहिताम् ॥ १९ ॥

इष्टकार्यकी कनारी हुई गीतिवर्दिताके पारण करनेके
 अग्निनीकुमारोंकी भोंति श्रुतिकी करी हुई उठ मद्मुव
 बापीके इतरमे पारण करके वे दोनों कुमार मन-ही मन
 उल्लसित हो वहाँ रहकर मुससे रहे ॥ १९ ॥
 उचरच्छात्रे विनवतितमः सर्ग ॥ १३ ॥
 उचरच्छात्रे विरानकर्ता सम पूर हुम् ॥ १३ ॥

चतुर्नवतितम सर्ग

लव-कुन्दद्वारा रामायण-कल्पका गान तथा भीरामका उसे भरी समामें सुनना

तौ रज्ज्यां प्रभातायां स्नातौ द्रुतद्रुताश्रमी ।
 यथोक्तमूयिणा पूर्यं सय्यं तत्रोपगायताम् ॥ १ ॥
 रात बीतनेपर जब धरेप हुआ तब स्नान-रूप्याके पश्चात्
 समिधा-दासका कार्य पूरा करके वे दोनों मारं श्रुतिके कथाये
 अनुकर बढी शर्णके रामायणका गान करने लगे ॥ १ ॥

तांसं शुभाज कपुत्रस्यः पूषापाययिनिर्मितम् ।
 अपूर्वा पाठ्यज्ञातिं च रोपन समलहृत्वाम् ॥ २ ॥
 भीरुनाथकीमे भी वर गन सुना आ पूर्ववर्ती आचार्यों
 के बजाय हुए नियमोंके अनुकूल या । संदीपकी विशेषज्ञों-
 से पुन स्वयंके अध्ययनकी अपूर्व दीली थी ॥ २ ॥

प्रमानंयद्भुभिषदां तन्त्रीलयतमन्विताम् ।
 पाल्मया राघव्यं धुम्या कौतूहलपरोऽभयत् ॥ ३ ॥
 बरभान्य प्रमाणों—अनिपरिच्छेदक खननभूत हुत
 मय्य और विरचयन—इन दोनोंकी अश्रुतियों भयना समीप
 मगोक भन्की सिद्धिने विष बने हुए ग्यानामे वैषा अदेर
 बीजानी तयम भिन्ना हुआ उन दोनों बाल्यकी बर मयुर
 गन मुा कर भीगमनादृष्टी बदा बीतुरम हुआ ॥ ३ ॥

यत्र कमान्तर राजा सम्राट्प मदासुनीन् ।
 पारिग्याध नप्य्याप्रः पण्डितान् निगमास्तथा ॥ ४ ॥
 योगविज्ञाना-शक्तिः य गृह्यात्तः विज्ञातयः ।
 मय्या मस्तननाध उगुवान् विज्ञातयमान् ॥ ५ ॥
 मन्त्राणांका गान्ध्यान् निगमाध विरचतः ।
 पान्तरात्ममागमांरदम्प तु परिनिष्ठितान् ॥ ६ ॥
 बाल्याग्रांताः पान्ताभ्यान्विष य परं गतान् ।
 निगमस्तद्विदुधः तस्य क्यपरिग्यादान् ॥ ७ ॥
 भयान्तानिर्दिष्टवाध निगमाभ्यान्ग्याततः ।

सिन्धेपर बड़े-बड़े मुनियों, राज्यों वेदवेद्या पंडितों,
 योगविकों वैद्याकरणों, बड़े-बड़े ब्राह्मणों, स्वयं और स्वयंके
 शशाओं, गीत सुननेके शिष्ये उल्लुख दिनों, समुद्रिक स्वयं
 तथा संदीप-विद्याके ज्ञानकारों विशेषतः निगमागमके विद्वानों,
 अपना पुराणविद्यो मित्र मित्र स्वयंके बरणों, उनके पुत्र
 ल्यु मय्यें तथा उनके स्वयंकोका काम करनेवाले परिद्वों,
 वैदिक स्वयंके परिनिष्ठित विद्वानों, स्वयंकी इतर, दीपं अदि
 माशाओंके विशेषज्ञों, अवेदिय विद्याके पारंगत पण्डितों, कर्म-
 अण्डितों कार्यकुशल पुत्रों, विभिन्न भयगमों और पेश
 तथा अंतोको समनेकास पुत्रों एवं खरे महाबलोंके
 बुद्धता ॥ ४-७ ॥

देतूपचारुगानान् देतुकांश्च बहुधुतान् ॥ ८ ॥
 छन्दोविद्गुः पुराणज्ञान् वैदिकान् विज्ञसत्तमान् ।
 विज्ञानान् पृथक्स्वज्ञान् गीतनृत्यविगारवान् ॥ ९ ॥
 द्वाग्ज्ञान् मीतिमिपुणान् पद्मान्ताद्यप्रयाधकान् ।
 एतान् स्वयान् समामीय गातारौ समयायत् ॥ १० ॥

इतना ही नहीं, वरके प्रयोगमें निपुण वैद्याविकों मुक्ति
 गारी एवं बहुत विद्वानों, छन्दों पुराणों और वेदोंके इतर
 दिव्ययों विज्ञानको ज्ञानकारों धर्मशास्त्रके अनुकूल
 शयनकर शाशुओं दयान एवं बह्यन्तक विद्वानों, नृत्य
 और गीतमे प्रवीण पुत्रों विभिन्न शास्त्रोंके ज्ञानों की
 निपुण पुत्रों तथा वेदान्तके अध्ययने प्रयाति करनेवाले
 ज्ञानेकाभवा भी वहाँ बुद्धताया । इन तथा उचर करके
 भयान् भीगमन रामायण-ग्रन्थ करनेका उन दोनों स्वयंके
 ५ स्वयंके बुद्धकर विद्याया ॥ ८-१ ॥
 तयां संपदतां तत्र भागुणां दयवधतम् ।
 तयं प्रयत्नकुम्भ तानुभी मुनिदास्वी ॥ ११ ॥

उमरुद्वीमे भोताओन्न हर्षे बदानेवाकी वाते होने स्त्री ।
 उकी उमरु दोनो मुनिकुमारोंने गना आरम्भ किया ॥ ११ ॥
 एता प्रवृत्तं मधुर गान्धर्वमतिमानुपमम् ।
 न च हर्षि ययुः सर्वे भोतारो रोषसम्पदा ॥ १२ ॥
 फिर वो मधुर संगीतश्च वार वेंभ गया । बड़ा अलौकिक
 गन था । रोष बस्तुकी विशेषताओंके कारण सभी भोता मुग्ध
 होकर सुनने लगे । किसीको तृप्ति नहीं होती थी ॥ १२ ॥
 ह्यमुनिनाणाः सर्वे पार्थिवाम्ब महौजसाः ।
 विरक्त इष चक्षुर्भिः पश्यन्ति स्य मुहुर्मुहुः ॥ १३ ॥
 मुनिवृत्तोंके धनुषाय और महापुरुषोंकी भूषाक सभी
 अन्तर्मुख होकर उन दोनोंकी ओर बारंबार इस तरह देख
 रहे थे, मानो उनकी रूपमापुत्रीक नेत्रोंसे ही रहे ॥ १३ ॥
 ऊयुः परस्पर चेर्षुं सख एष समाहिताः ।
 उनीपमस्य साहचर्यविम्बाद् विम्बमिवोत्प्लवितौ ॥ १४ ॥
 वे सब एकाम्रचित्त हो परस्पर इस प्रकार करने लगे—वन
 दोनों कुमारोंकी आकृति श्रीरामचन्द्रजीसे विद्वुक्त सिम्बी
 कृष्ण है । ये विम्बसे प्रकट हुए प्रतिविम्बके समान
 बन पड़ते हैं ॥ १४ ॥
 ऋटिलौ यदि न स्यातां न वदकलधरो यदि ।
 विरोप नाभिगच्छस्यो गायतो राष्यस्य च ॥ १५ ॥
 यदि इनके स्मरण बड़ा न होती और ये बस्तुक न
 पढ़ने होते तो हमें भीरामचन्द्रजीमें तथा गान करनेवाले इन
 दोनों कुमरोंमें कोई अन्तर नहीं दिखायी देता ॥ १५ ॥
 एष प्रभापमाणेषु पौरजानपवेषु च ।
 प्रवृत्तमाहितः पूर्वसर्गं नारदवृत्तितम् ॥ १६ ॥
 नगर और जनपदमें निवास करनेवाले मनुष्य सब इस
 प्रकार बातें कर रहे थे उन्हीं समय नारदजीके हाथ प्रकटित
 मयम सर्ग—मूक-पामयगच्छ आरम्भसे ही गान आरम्भ हुआ।
 एतः प्रवृत्ति सर्गाच्च यावद् विशात्यगायताम् ।
 उद्योऽपराहस्यमेव राघवः समभाषत ॥ १७ ॥
 सुन्या विराटिसर्गास्तस्मिन् आतर आद्यवत्सला ।
 मयमस्य साहस्राणि सुपर्यस्य महात्मनोः ॥ १८ ॥
 प्रपच्छ शीघ्र काङ्क्षस्य पश्यव्यभिचारहितम् ।
 वारंसे सेकर शीघ्र उद्योतकका उद्योने गान किया ।
 लयभार्य भयपराहस्य सम्य हो गया । उद्योती देखते शीघ्र उद्यो
 का गान सुनकर आद्यवत्सल औरसुनापक्षीने भाई भरतसे
 कस—काङ्क्षस्य । इस इन दोनों महात्मा बाबूको अन्तर
 एकर सर्व-मुद्राएँ पुरस्कारके रूपमें दीप प्रदान करे । इसके
 सिवा यदि और किसी बस्तुके लिये इनकी इच्छा हो तो उसे
 ही दीप ही दे दो ॥ १७-१८ ॥
 वरी स शीघ्रं काङ्क्षस्य पामयार्थं पृथक् पृथक् ॥ १९ ॥
 शीघ्रमान सुपर्यं तु नारदहीता कुन्तीलयी ।
 कथा पाकर भरत शीघ्र ही उन दोनों बालकोंको भङ्गा

अङ्गा सर्व-मुद्राएँ देने लगे किन्तु उस लिये जाते हुए सुवर्ष
 को कुछ और करने नहीं प्रहण किया ॥ १७ ॥
 ऊधतुश्च महारामानी किममेमेति विस्मितौ ॥ २० ॥
 यन्मेम फलमूटेन मिरती यनवासिनी ।
 सुवर्षेन विरप्येन किं करिष्यायहे घने ॥ २१ ॥
 वे दोनों महात्मनसी वन्द्य विस्मित होकर बोले—इस
 धनकी क्या आलस्यकथा है । हम वनवासी हैं । बंगली फल-
 मूठसे जीवन-निर्वाह करते हैं । घेला-चौड़ी वनमें छे बाकर
 क्या करेंगे ? ॥ १९-२१ ॥
 तथा तयोः प्रभुपतोः कौतूहलसमभिधताः ।
 भोतारद्वौ च रामम्ब सर्व एष सुविस्मिताः ॥ २२ ॥
 उनके ऐसा करनेपर सब भोताओंके मनमें बड़ा क्रोध
 हुआ । भोता और भीराम सभी आश्चर्यचकित हो गये ॥
 सत्य वैवागर्म रामः काव्यस्य भोतुमुस्तुकाः ।
 पप्रच्छ तौ महातेजास्तापुभौ मुनिवारदौ ॥ २३ ॥
 तब भीरामचन्द्रजी यह सुननेके लिये उत्सुक हुए कि
 इस काव्यकी उपलब्धि कर्तोंसे हुई है । फिर उन महातेजसी
 सुनापक्षीने दोनों मुनिकुमारोंसे पूछा— ॥ २३ ॥
 किमस्तपामिद् काव्य का प्रतिष्ठा महारमम् ।
 कर्ता काव्यस्य महतः क्वासी मुनिपुङ्गव ॥ २४ ॥
 पर महाकाव्यकी रचनेक-संख्या किन्ती है ? इतने
 रचयिता महात्मा कविच आवाकसान कौन-सा है ? इस
 महान् काव्यके कर्ता कौन सुनीधर हैं और वे कर्तों हैं ? ॥ २४ ॥
 पृच्छन्त राषर्षं वाक्यमूक्तमुन्निवारकी ।
 वासीकिर्भगवान् कर्ता सम्प्रतो यज्ञसविधम् ।
 येनेद् चरित मुग्धमरोप सम्प्रवृत्तितम् ॥ २५ ॥
 इस प्रकार पूछते हुए भीसुनापक्षीसे वे दोनों मुनिकुमार
 बोले—पाहाय । जिस काव्यके हाथ आपके इस समूह
 चरित्रक प्रदर्शन कया गया है, उद्यो रचयिता महात्मा
 वासीकि हैं और वे इस यज्ञसममें पत्नार हुए हैं ॥ २५ ॥
 स्तनिबद्ध हि द्योकोकामां पशुर्पिशात्सहस्रकम् ।
 उपाक्यामशतै र्वैय भागवेण तपसिना ॥ २६ ॥
 उन तपसी कविके बनाये हुए इस महान्काव्यमें चौबीस
 हजार श्लोक और एक ही उपाक्याम हैं ॥ २६ ॥
 यदिप्रभृति वै राजन् पञ्चसर्गाद्यतानि च ।
 काव्यानि पट्टकतानीह मोक्षपाणि महारमम् ॥ २७ ॥
 पावन् । उन महारामने आदिसे सेकर अष्टादश पाँच
 ही सर्ग तथा छे काव्योंक निर्माण किया है । इनके सिवा
 उद्योने उद्योतककी भी रचना की है ॥ २७ ॥
 कृतानि गुदपासाकामृगिणा परित तय ।
 प्रतिष्ठा जीयित यावत् तावत् सपस्य पतत ॥ २८ ॥
 हमारे गुद महर्षि वासीकिने ही उन सबका निर्माण
 किया है । उद्योने अन्तर चरित्रको महाभागका रूप दिया

हे । इहमे अपके बीवनतककी सारी बातें आ गयी हैं ॥२८॥
 यदि बुद्धि कृत्य राजभ्रूषणाय महारथ ।
 कर्मास्तरे क्षणीभूतस्तच्छुभ्युत्प सहाजुजा ॥ २९ ॥
 महारथी नेत्र । यदि आपने इसे सुननेका विचार किया
 हो तो बच-कर्मसे अवकाश मिष्टनेपर इसके किन्हे निश्चित सम्य
 निकामिन्हे और अपने भाइयोंके साथ बैठकर इसे नियमित
 रूपसे सुनिये ॥ २९ ॥

बाह्यमित्यग्रधीव् रामसौ शानुशान्य राधबम् ।
 प्रहृषी जगमहुः स्थान यत्रास्ते मुनिपुङ्गवः ॥ ३० ॥
 तब श्रीरामचन्द्रजीने कहा—बहुत अच्छा । हम इस
 क्षणको सुनंगे । तत्पश्चात् श्रीस्थानापचीकी आज्ञा से दोनों
 भाई कुश और बच प्रकृततापूर्ण उठ स्थानपर गये, जहाँ
 मुनिवर बास्कीकिन्ही ठहरे हुए थे ॥ ३ ॥

इत्थार्थे श्रीमद्रामाचमे बास्कीकीय आधिकार्ये उत्तरकाचमे चतुर्बवतितमः सर्गः ॥ १४ ॥
 इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित अर्चाराजाने आदिकाचमे उत्तरकाचमे चौदहवें सर्ग पूरा हुआ ॥ १४ ॥

पञ्चनवतितम सर्ग

श्रीरामका सीतासे उनकी शुद्धता प्रमाणित करनेके लिये क्षपथ करानेका विचार
 रामो बहुम्वहान्येय तद् गीत परम शुभम् ।
 शुभान् मुनिभिः सार्धं पार्थिवैः सह यानरी ॥ १ ॥
 इस प्रकार श्रीरुनापची श्रुतियों, राक्षसों और बानरोंके
 साथ कई दिनोंतक बर उचम यमायन-गमन करने परे ॥ १ ॥
 तस्मिन् गीते तु विज्ञाय सीतापुत्री कुशौलपी ।
 तस्याः परिपन्नो मध्ये रामो पञ्चनमप्रधीत् ॥ २ ॥
 वृत्तान्मुद्रसमा गारलाह्वयात्ममनीषया ।
 मद् यथा भूत गच्छत्यमितो भगवतोऽस्तिके ॥ ३ ॥
 उत कथासे ही उन्हें यह मायूम हुआ कि कुश और
 सब दोनों कुमार सीताके ही सुपुत्र हैं । यह जानकर तन्मके
 शीर्षमे देते हुए श्रीरामचन्द्रजीने छद्म अस्धार-विचारबाले
 वृत्तोंमें बुद्ध्या और अपनी बुद्धिने विचारकर कहा—शुभ
 बग बहोमे भगवान् बास्कीकिन्हीके पत्र पत्रों और उनसे
 मय यह वरिष्ठ कहा ॥ २ ॥

यदि शुनसमागारा यदि या पीतकस्मया ।
 करान्पिदात्मन मुद्रिन्मुमाम्य महाभुनिम् ॥ ४ ॥
 यदि सीताका वरिष्ठ शुद्ध है और यदि उनमें किसी
 तरहका पाप नहीं है तो वे भगव महाभुनिगी अनुपम । ७ वर्षों
 आकर अन्तवृत्तपने अपनी शुद्धता प्रमाणित करे ॥ ४ ॥
 छन्द सुनध विज्ञाय स्त्रीतायाद्य मनोगतम् ।
 प्रणय शानुशामायामनाः गमत्त म स्फु ॥ ५ ॥
 गुम इस विचारे यहाँ तककी तथा सीता भी
 हर्दिक अभिप्राय जानकर हीम सुत सुनता बर कि बर
 ने परी आकर अपनी दुःखिता विज्ञान विज्ञान पादपी है ॥

रामोऽपि मुनिभिः सार्धं पार्थिवैश्च महात्मभिः ।
 श्रुत्वा तद् गीतिमापुर्व कर्मशास्त्रमुपजागम् ॥ ११ ॥
 श्रीरामचन्द्रजी भी महारथा मुनियों और राक्षसोंके साथ
 उठ मधुर धंरीतको सुनकर कर्मशास्त्र (ब्रह्मशास्त्र) में गले
 गये ॥ ११ ॥

शुभाय तच्छाललयोपपन्न
 सर्गाश्वितं सुखराधाश्वयुक्तम् ।
 तन्शील्यप्यक्षुनयोग्युक्तं
 कुशौलवान्यां परिगीपमानम् ॥ १२ ॥
 इस प्रकार प्रथम दिन कतिपय सोचि मुक्त सुन्दर लर
 एवं मधुर शब्दोंसे पूर्व, ठाल और अन्यसे सम्पन्न तथा सीता
 के कर्मकी स्पष्टतासे मुक्त बर काव्यगत, किसे कुश और
 अपने ग्यथा वा, श्रीयम्ने मुता ॥ १२ ॥

इत्थार्थे श्रीमद्रामाचमे बास्कीकीय आधिकार्ये उत्तरकाचमे चतुर्बवतितमः सर्गः ॥ १४ ॥
 इस प्रकार श्रीवाल्मीकिनिर्मित अर्चाराजाने आदिकाचमे उत्तरकाचमे चौदहवें सर्ग पूरा हुआ ॥ १४ ॥

श्वः प्रभाते तु शम्यथ मैथिली जनकात्मजा ।
 करोतु परिपमम्ये शोभनार्थं ममैव च ॥ १ ॥
 एक खरें मिथिलेशकुमारी जानकी भी तन्ममें भावें
 और मेरा कर्तव्य पूरा करनेके लिये क्षपथ करे ॥ १ ॥
 श्रुत्वा तु राधकस्यैतद् पथः परममद्भुतम् ।
 वृत्ताः सन्प्रययुर्बाहं यद्य वै मुनिपुङ्गवः ॥ ७ ॥
 श्रीरुनापचीका यह अस्वन्त अद्भुत बचन सुनकर वृत्
 उठ बाड़ेने गये जहाँ मुनिवर बास्कीकि विराजमान थे ॥ ७ ॥
 तं प्रवक्ष्य महारथान् ज्येष्ठन्तमस्मिन्नभम् ।
 ऊचुस्ते रामयाक्यानि मृदुनि मधुराणि च ॥ ८ ॥
 महारथ बास्कीकि अस्मिन् ऐकसी व और अपने ऐकसे
 अग्निसे तमान प्रवक्षित हो रहे थे । उन वृत्तोंने उन्हें प्रथम
 करके श्रीरामचन्द्रजीके बचन मधुर एवं शोभन शब्दोंमें बर
 सुनाये ॥ ८ ॥

तेषां तद् भारित भुग्या रामस्य च मनोगतम् ।
 विज्ञाय शुभदातया मुनियाम्यमयाग्रधीत् ॥ ९ ॥
 उन वृत्तोंकी यह बात सुनकर और श्रीरामके हार्दिक
 अभिप्रायों का मनसुकर वे मरतेकस्की मुनि इस प्रकार बोले—
 एवं भयतु भद्रं या यथा क्षुति राधया ।
 तथा कर्तव्यत सीता दीपत हि पतिः त्रिधाः ॥ १० ॥
 ऐसा ही हृद्य शुभयोगोरा मन्त्र हो । श्रीरुनापची
 ७ भावा दी है सीता बरी करणी; क्योकि पति कीके लिये
 देपना है ॥ १ ॥
 तथाका मुनिता सर्वे राजदृता मदीजमम् ।

प्रत्येस्य राघव सर्वं मुनिवाक्यं यथापिरे ॥ ११ ॥
मुनिर्के ऐव कश्चिदपरं के सव राघवत महादेवस्त्री भी
एतुनायस्त्रीके पाव लीट भाये । उन्हेने मुनिस्त्री वही हुई छपी
रुते श्रो-स्त्री-स्त्री कर मुनामी ॥ ११ ॥

एता प्रहृष्टाः कश्चुरस्यः भुक्त्या वाक्यं महात्मनः ।
शर्पास्तात्र समेतांश्च राक्षसैराम्यभायत ॥ १२ ॥
महाम्ना वास्मीक्षीं शते सुनकर भीरुनायस्त्रीका वही
प्रकृत्या हुई और उन्हेने वहाँ आय हुए श्रुतिमी तथा
यस्त्रीके करा— ॥ १२ ॥

मगवन्तः सशिव्या वै सानुगाश्च नराधिपाः ।
पद्मस्तु सीताशपथं यस्मैवान्योऽपि क्वङ्कते ॥ १३ ॥
‘भाय सव पुम्पराव मुनि शिष्योवहित समाने पपारै ।
सेवकोवहित राक्षसो ग भी उपस्थित हों तथा वृषरा भी को
कोई शीताश्री शपथ सुनना चाहता ह, वर वा भाय । इस
प्रकार सव लोग एकत्र हाकर शीताश्री शपथ-मरण देवें ॥ १३ ॥
कथं तद् वचनं भुक्त्वा राघवस्य महात्मना ।
सर्वेणामुदिमुक्याता साधुवाद्यो महानुभूत् ॥ १४ ॥
महात्मा राघवेन्द्रश्च वर वचनं सुनकर समस्त महर्षिपौ-

हृत्पारै श्रीमद्रामायणे वास्मीक्षीये आदिश्राम्ये उत्तरप्रश्ने षडवतितमः सर्गः ॥ १५ ॥

इस प्रकार श्रीवास्मीक्षीनिर्मिते आदिश्राम्यके उत्तरप्रश्ने षण्णवतितमे सर्गे पूरा हुआ ॥ १५ ॥

षण्णवतितम सर्ग

महर्षिं वास्मीक्षिद्वारा सीताश्री श्रुद्धवाका समर्थन

तस्यां एक्ष्यां प्युप्रायां यदृषाट गतो मुप ।
श्रीर्षिन् सवान महादेवाः श्राष्ट्रापयसि राघवः ॥ १ ॥
एत वीथी लवेष्ट हुआ और महादेवस्त्री राज भीरम
प्रशस्ती बरवाकामे पवारि । उठ समय उन्हेने समस्त श्रुतिपौ-
को बुझता ॥ १ ॥
वसिष्ठो यामदेवश्च जावाकिरथ कश्चयप ।
विश्वामित्रो वीरतमा युवासाश्च महासपाः ॥ २ ॥
पुत्रस्त्योऽपि तथा शक्तिभार्गवश्चैव यामनः ।
मार्कण्डेयश्च दीपायुर्मैत्रिल्यश्च महायशाः ॥ ३ ॥
गणश्च प्यत्रकश्चैव शतामन्श्च धमपित् ।
भरद्वाजश्च तजस्वी बलिपुत्रश्च सुप्रभः ॥ ४ ॥
नारदः पयतश्चैव गीतमश्च महापत्ताः ।
कल्प्यायनः सुयशश्च षण्णस्त्यस्यपसां निधिः ॥ ५ ॥
एत वाम्य च बरयो मुनयः सन्निवृत्तताः ।
श्रीरुद्रसप्तमविष्टाः सव एव समागताः ॥ ६ ॥
वसिष्ठ वामदेव आशक्ति वारपय विधमिन् शीर्षतमा,
महावन्शी युवाश्च पुत्रस्त्य हाँक मार्ग व यामन शीर्षकीकी
मार्कण्डेय महायशशी मोहस्य गर्ग प्यन धर्म शतमन्त्र
देवकी मत्ताश्च अधिनपुत्र सुप्रभः नारदः पर्यंत महापशली

के मुखसे महान् साधुवाक्य भी प्यनि गूँध उठी ॥ १४ ॥
राक्षसान् महात्मानं प्रशंसन्ति स राघवम् ।
उपपन्नं भरश्रेष्ठ स्वयमेव मुधि मायतः ॥ १५ ॥
राक्षसो ग भी महात्मा एतुनायस्त्रीकी प्रपंश करते हुए
बोले—‘नरश्रेष्ठ । इस पृथ्वीपर सभी उचम बातें केवल आपमें
ही समझ हैं, वृषरे किधीने नहीं ॥ १५ ॥
एव विनिश्चयं ह्यस्या श्योभूत् इति राघवः ।
विसर्जयामास तदा सप्तोऽस्यमष्टपुत्रान् ॥ १६ ॥
इस प्रकार वृषरे दिन छीतासे शपथ केनेका निश्चय करके
शत्रुहृत्न भीरमने उठ समय सबको किदा कर किना ॥ १६ ॥
इति सप्तविधार्थं राजसिंहः
श्योभूते शपथस्य निश्चयम् ।
विसर्जयं मुनीन् नृपांश्च सर्वांन्
स महात्मा महतो महानुभावाः ॥ १७ ॥
इस प्रकार वृषरे दिन छीते छीतासे शपथ केनेका निश्चय
करके महानुभाव महात्मा राजसिंह श्रीरामने उन सव मुनिपौ
और नरेशोको अपने अपने कानपर जानेकी अनुमति
दे ली ॥ १७ ॥

गीतम, कत्वापन, पुत्र और उपोनिधि अगस्त—ये तथा
वृषरे कठोर शपथ पावन करनेवाले सभी बहुसंख्यक महर्षि
श्रीरुद्रकथन वहाँ एकत्र हुए ॥ २—६ ॥
राक्षसाश्च महावीया यानराश्च महापलाः ।
सर्व एव समाजग्मुमहात्मानः कुत्तुहलात् ॥ ७ ॥
महापद्मनी राघव और महावशी यानर—ये सभी महा
मना श्रीरुद्रकथन वहाँ भाये ॥ ७ ॥
ह्यत्रिया ये च श्राद्धाश्च वैद्याश्चैव सहस्रदाः ।
शागवैरागताश्चैव ब्राह्मणाः सन्निवृत्तताः ॥ ८ ॥
मान् देशोते पपारे हुए तीरुन वनवागी ब्राह्मण क्षत्रिय,
ब्रह्म और हृद सखोकी संख्यामें वहाँ उपस्थित हुए ॥ ८ ॥
ज्ञाननिष्ठा व्रतनिष्ठा योगनिष्ठास्तयापरे ।
स्तिताशपथपीडार्थं सर्व एव समागताः ॥ ९ ॥
श्रीताश्रीका शपथ-मरण देवनेके विदे जननिष्ठ, कर्मनिष्ठ
और योगनिष्ठ सभी तरहक लोग पपार ५ ॥ ९ ॥
तदा समागतं नयमदमभूत्तमिन्द्रायस्वम् ।
भुक्त्वा मुनिररररुण ससीतः समुपागामत् ॥ १० ॥
राघवमामे एकत्र हुए सब लोग कपारकी भौति निश्चय

शेकर बैठे हैं—यह सुनकर मुनिवर वाल्मीकी धीरधीके धाम
 केकर दूरत वहाँ अपने ॥ १ ॥
 तस्युपि पृष्ठतः सीता अम्बगण्डपाङ्गमुत्सी।
 कृत्याङ्गलिर्बाष्पकस्य कृत्या राम मनोगतम् ॥ ११ ॥
 मूर्ध्निपि पीठे धीता स्तिर हृत्पाये लम्बीया रही थीं। उनके
 दोनों हाथ जुड़े थे और नेत्रोंसे आँसू सर रहे थे। वे अपने
 हृदयमन्थिरते बैठे हुए श्रीरामको चिन्तन कर रही थीं ॥११॥
 यां द्रष्टुं भुक्तिमात्यास्तीं ब्रह्माण्डमनुगामिनीम्।
 वाल्मीकीः पृष्ठतः सीतां साधुपादो महात्मभूत् ॥ १२ ॥
 वाल्मीकीके पीठे-पीठे माती हुईं सीता ब्रह्मात्मिका अनु
 सरण करनेवाली भुक्तिके ध्यान कर पड़ती थीं। उन्हें देखकर
 वहाँ धर्म-धनकी भारी आवाज गूँज उठी ॥ १२ ॥
 ततो हस्तद्वयान्वाप्यः सर्वपापमेधमाश्रयी।
 दुःखजन्मविश्रांतेन शोकेनाकुण्डितात्मनाम् ॥ १३ ॥
 उस समय समय वहाँके हृदय दुःख देनेवाले महान्
 खेदके आकुल था। उन सबको देखकर उन अंगे आत हो
 गया ॥ १३ ॥
 साधु रामेति केचित् तु साधु सीतेति चापरे।
 उभावेव च तत्राप्ये प्रसक्ताः सम्मञ्जस्तुभुः ॥ १४ ॥
 कोई कहते थे—श्रीराम। तुम धर्म हो।' वृत्ते करते
 थे—वेति धीते। तुम धर्म हो' तथा वहाँ कुछ अन्ध हर्षक
 भी देते थे जो धीता और राम दोनोंके उक्तसरते लघुनाह
 दे रहे थे ॥ १४ ॥
 ततो मध्ये जगौघन्य प्रविश्य मुनिपुङ्गवः।
 संनिवसहस्यो वाल्मीकिरिति होषाच्च रामधम् ॥ १५ ॥
 तब उस जनमुदाहके बीचमें धीतसहित प्रवेश करके
 मुनिवर वाल्मीकी श्रीरघुनाथजीके इस प्रकार बोले—॥१५॥
 इयं वाचारेये सीता सुमता धर्मवार्तिणी।
 अपवादात् परित्यक्ता ममाभ्रमसमीपता ॥ १६ ॥
 हृदयबन्धन। यह धीता तपनप्रवृत्त पावन करनेवाली
 और धर्मपत्न्या है। आपने अज्ञानकारणसे डरकर इसे भ्रं
 भाभमके समीप त्याग दिया था ॥ १६ ॥
 अज्ञानपादाद्भीतस्य तव राम महामत।
 प्रत्यय वास्यते सीता रामतुङ्गातुमदधि ॥ १७ ॥
 मन्दन् ब्रजवारी श्रीराम। अज्ञानकारणसे डरे हुए आपके
 धीता अपनी मुदतका विधात विधायेगी। इसके किये आप
 इसे भ्रजा हैं ॥ १७ ॥
 इमौ तु सामकीपुत्राश्रयी च धमजगतकौ।
 सुती तवैव दुर्धर्या सत्यमेतत् प्रथमि ते ॥ १८ ॥
 इत्यापै श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाण्डे उत्तरकाण्डे एकादशोऽध्याये ॥ १६ ॥

ये दोनों कुमार कुछ और जन बन्धीके गर्भसे जुड़े
 पैदा हुए हैं। प आपके ही पुत्र हैं और आपके ही अन्य
 दुर्धर्य वीर हैं, यह मैं आपके लकी बल बजा रहा हूँ ॥१८॥
 प्रवेत्सोऽहं वशमा पुत्रो राक्षसकृत।
 न सराम्यसूत वाक्पमिमौ तु सव पुत्रकौ ॥ १९ ॥
 पयुक्तमन्दन। मैं प्रवेत्ता (वचन) का हलकों पु
 हूँ। मरे मूर्खते कभी बहुत बात निकली हो, इसकी बात उसे
 नहीं है। मैं सत्य कहता हूँ ये दोनों आपके ही पुत्र हैं ॥१९॥
 बहुवर्षसहस्राणि तपस्वर्या मया कृता।
 गोपास्नीर्या फलतस्या पुष्टेय यदि मैथिली ॥ २० ॥
 मैंने कई हजार वर्षोंतक मारी तपस्या की है। यदि
 मिथिलेशकुमारी धीतामें कोई दोष हो तो मुझे उस तपस्या
 फल न मिले ॥ २० ॥
 मनसा कर्मैवा पाषा भूतपूर्वं न कश्चिदपम्।
 तस्याह फलमस्तानि वपाया मैथिली यदि ॥ २१ ॥
 मैंने मन, वाणी और क्रियाद्वारा भी पहले कभी कोई
 पाप नहीं किया है। यदि मिथिलेशकुमारी धीता निष्पप हो
 लगी मुझे अपने उस पापद्वय पुण्यकर्मका फल प्राप्त हो ॥२१॥
 सर्वं पञ्चसु भूतेषु मनापष्टेषु राक्षस।
 विविक्स्य सीता शुद्धेति जग्राह वनमिधरे ॥ २२ ॥
 पशुनन्दन। मैंने अपनी पत्नी इन्द्रियों और मन-भुक्ति
 के द्वारा धीतकी मुदतका मन्त्रीगोति निभय करके ही इसे
 अपने धीतमने किया था। यह मुझे बंगमने एक करनेके लय
 मिली थी ॥ २२ ॥
 इयं शुद्धसमाचार्य अपाया पतिवेदत।
 अज्ञानपादाद्भीतस्य प्रत्यय तव वास्यति ॥ २३ ॥
 इसका आपस्य लर्षया धृष्ट है। फल इसे हूँ भी नहीं
 धर है तथा यह पतिके ही देकता मानती है। अतः अज्ञान-
 कारणसे डरे हुए आपके अपनी मुदतका निरवाह विधायेगी ॥
 तस्मादियं नरचरालम्ब शुद्धभावा
 विभ्येन दृष्टिक्रियेव मया प्रविष्टा।
 अज्ञानपादात्कलुषीकृतत्वंतसा पा
 त्यक्ता त्वया प्रियतमा विवितापि शुद्धा ॥ २४ ॥
 पञ्चकुमार। मैंने विभ्य दृष्टिसे यह जन किया था कि
 धीतका भाव और विचार परम पवित्र है इसलिये यह मेरे
 भाभमने प्रवेश पा लगी है। आपके भी यह प्रवेत्सो अतिक
 प्यारी है और आप यह भी समते हैं कि धीत लर्षया
 धृष्ट है तथापि अज्ञानकारणसे कलुषान्जित होकर अपने
 इसका त्याग किया है ॥ २४ ॥

इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीय श्रीरामायणे उत्तरकाण्डे एकादशोऽध्याये ॥ १६ ॥
 इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीय श्रीरामायणे उत्तरकाण्डे एकादशोऽध्याये ॥ १६ ॥

सप्तमवर्तितम सर्ग

सीताका शपथ-ग्रहण और रसातलमें प्रवेश

वास्मीकिमैत्रमुक्तस्तु राघवः प्रत्यभाषत ।
 प्राञ्जलिर्जगतो मध्ये हृद्गु तां धरुवर्णिनीम् ॥ १ ॥
 महर्षि वास्मीकिके देवा कश्चनेपर भीरुनायकी मुखरी
 शैवदेवीश्री शंकर एक बार इष्टि आम्बर उठ अनधुदायक
 देव हाथ जोड़कर बोले— ॥ १ ॥
 एकमेलमहाभाग यथा वदसि धर्मयित् ।
 प्रत्ययस्तु मम प्राञ्जल्य वाक्पौरुषस्त्वमैः ॥ २ ॥
 'महाभाग ! आप धर्मके कृता हैं। सीताके सम्बन्धमें
 आप क्या कह रहे हैं वह सब ठीक है। मझन् ! आपके
 इन निर्दोष बचनोंसे मुझे अनकान्दिनीश्री हृदयतापर पूरा
 विश्वास हो गया है ॥ २ ॥
 प्रत्ययश्च पुरा वृत्तो वैवेद्याः सुरसन्निधौ ।
 शपथश्च कृतस्तत्र तेन वेद्यम प्रथदिशत् ॥ ३ ॥
 'एक बार पहले भी देवताओंके समीप विदेहकुमारीश्री
 हृदयतापर विश्वास मुझे प्राप्त हो चुका है। उस समय शैवने
 अपनी धूम्रिके सिन्धे शपथ की थी जिसके कारण मैंने इन्हें
 अपने मन्त्रमें स्थान दिया ॥ ३ ॥
 श्लोकप्रवाचो वरुवाच येन त्यक्त्वा हि मैथिली ।
 सप श्लोकभयात् प्रहृष्टमपापेत्पथिभ्रान्तया ।
 परित्यक्त्वा मया सीता तद् भवान् क्षन्तुमर्हसि ॥ ४ ॥
 पंडित भागे कश्चन फिर वदे शेरक श्लोकप्रवाच उठा
 जिसने विश्वास होकर मुझे मिरिलेशकुमारीश्च स्थान करना पड़ा।
 मझन् ! यह कहते हुए श्री कि सीता धर्मका निष्पाप हैं
 मैंने केवल उमाबके मन्त्रसे इन्हें छोड़ दिया था' अत आन
 मेरे इस अग्रपत्रके उमा करें ॥ ४ ॥
 जानामि येमी पुत्री म धमजाती कुशीलयौ ।
 गुण्यायां जगतो मध्ये मैथिल्यां प्रीतिरस्तु मे ॥ ५ ॥
 'मैं यह भी जानता हूँ कि वे बुढ़ने उत्पन्न हुए कुमार
 कुप और ह्व मेरे ही पुत्र हैं तथापि अनधुदायमें हृदय
 प्रयत्न होकर ही मिथिलेशकुमारीमें मेरा प्रेम हो सका है ॥
 अभिप्राय तु शिक्षाय रामस्य सुरसत्तमाः ।
 सीतायाः शपथे तस्मिन् महेन्द्राद्या महीजसा ॥ ६ ॥
 पितामह पुरुच्छक्त्य सर्व एव समागताः ।
 भीरुपक्ष्णश्रीक अभिप्रायको अनकर सीताके शपथक
 समय महेन्द्र आदि सभी मुख्य मुख्य भ्रातेस्त्री देवता
 पितामह ब्रह्मादीशे भागे करके बर्षों आ गये ॥ ६ ॥
 व्यदिया घसयो दग्ना विदेषेद्या मदृशणाः ॥ ७ ॥
 साप्याश्च देयाः सर्वे से सर्वे च परमरया ।
 गमाः सुपणाः सिद्धाश्च ते सर्वे हृदयमानमाः ॥ ८ ॥
 सीताशपथसम्भ्रान्त्याः सर्व एव समागताः ।

आदित्य वसु इन्द्र विरबेदेव, मरुद्वज, समस्त स्याम्
 देव, सभी महर्षि, नाम गरुड और ख्यून विद्यारण्य प्रसन्न
 चित हो सीताश्रीके शपथ-ग्रहणको देखनेके सिन्धे पनराये हुए
 से बर्षों आ पहुँचे ॥ ७-८ ॥
 हृद्गु देवानूर्वाश्रियै राघवः पुनरग्रयित् ॥ ९ ॥
 प्रत्ययो मे सुरभ्येष्ट नृपिवाप्यैरकल्मषैः ।
 शुद्धायां जगतो मध्ये वैवेद्या प्रीतिरस्तु मे ॥ १० ॥
 देवताओं तथा नृपियोंको उपस्थित देख भीरुनायकी
 फिर वास्मीकि—सुरभेदगण ! यद्यपि मुझे महर्षि वास्मीकिके
 निर्दोष बचनोंसे ही पूरा विश्वास हो गया है, तथापि अन
 उमाबके बीच विदेहकुमारीश्री विद्युदत्ता प्रमासित हो कश्चनेपर
 मुझे अधिक प्रसन्नता होगी ॥ ९ ॥
 ततो वायुः शुभः पुण्यो विष्यगन्धो मनोरमः ।
 त जनौच सुरभ्यो ह्लादयामास सर्वतः ॥ ११ ॥
 तदनन्तर विष्य सुगन्धसे परिपूर्ण मनको मनान्द देनेवाला
 परम पवित्र एवं शुभकारक सुभेद वायुदेव मन्त्रगणिते
 प्रवर्षित हा सब ओरसे बर्षोंके अनधुदायको आह्लाद प्रदान
 करने लगे ॥ ११ ॥
 तद्भुतमिवाचिन्त्य निरेक्षन्त समाहिताः ।
 मानयाः सधराष्ट्रेभ्यः पूर्वं हस्तयो यथा ॥ १२ ॥
 समस्त राश्रिते भाये हुए मनुष्योंने एकाग्रचित्त हो
 प्राचीन कालके सत्ययुगकी भाँति यह अद्भुत और अचिन्त्य
 ही घटना अपनी भाँलों देखी ॥ १२ ॥
 सर्वान् समागतान् हृद्गु सीता काश्यायासिनी ।
 मधयोत् प्राञ्जलिर्वाप्यमयोदष्टिरयाद्युक्ती ॥ १३ ॥
 उठ समय सीताश्री वर्णमणिपोंके अनुरूप गेहआ कन्न
 कारण किये हुए थीं। तबसे उपस्थित जानकर वे हाथ बँधे,
 इष्टि और मुलम नीचे किये बानी— ॥ १३ ॥
 पथाह राघवादन्य मनसापि न विस्तये ।
 तथा मे माधवी देवी विवर दानुमर्दति ॥ १४ ॥
 'मैं भीरुनायकके दिवा वृद्धे किन्ही पुत्रया (स्वर्ण
 तो पूर रहा) मनसे चिन्तन भी नहीं करती यदि यह स्वय
 दे तो भगवती दृषीदेवी मुझे अपनी गर्दनमें स्थान दें ॥ १४ ॥
 मनसा कमण्या याया यथा गर्भं समग्रया ।
 तथा मे माधवी देवी विषय दानुमर्दति ॥ १५ ॥
 'यदि मैं मन यानी और क्रियाके द्वारा कश्च भीरुनायकी
 ही आशयना करती हूँ तो भगवती दृषीदेवी मुझ अस्त्री यह
 में स्थान दें ॥ १५ ॥
 यथैतन् वन्यमुक्तं मे यन्नि रामान् परं न च ।
 तथा मे माधवी देवी विवर दानुमर्दति ॥ १६ ॥

‘धातान् भीरामको षोडशर मँ वृक्षे चित्ती पुत्रयको महीं
छन्दती। मेरी कही हुई यह बात यदि सत्य हो तो भगवती
पृथ्वीदेवी मुझे अपनी गोदमें खान है’ ॥ १६ ॥

तथा शयस्या वैशेष्ठां मावुपसीत तवसुतम् ।

भूतस्मत्पुत्रिणम् दिव्यं सिंहासनमनुत्तमम् ॥ १७ ॥

विश्वकुमारी कीटाक इस प्रकार शय्य करते ही भूतस्मते
एक मन्दसुत सिंहासन प्रकट हुआ जो बड़ा ही सुन्दर और
दिव्य था ॥ १७ ॥

धियमाप्य चिरोभिस्तु शरीरमित्यिक्रमैः ।

दिव्य दिव्येन वपुया विधरत्सविन्पुत्रितैः ॥ १८ ॥

दिव्य रत्नोंसे विन्दित महासूक्तकी नागोंने दिव्य रूप
धारण करके उस दिव्य सिंहासनमें अपने शिरपर बैठकर
रक्षता था ॥ १८ ॥

वसिस्तु धरणी देवी वाङ्मूर्त्यां शुद्ध मैथिलीम् ।

स्वागतेनभिनन्द्यैतामसने चोपवेशायत् ॥ १९ ॥

सिंहासनके शय्य ही पृथ्वीकी अधिष्ठात्री देवी भी दिव्य
रूपमें प्रकट हुईं । उन्होंने मिथिलाप्रदेशकी कीटाको अपनी
दर्शनी मुखाभासे गोदमें उठा किया और स्वागतपूर्वक उनका
अभिन्दन करने लगे उस सिंहासनपर किटा गया ॥ १९ ॥

सम्भरनगता बहू प्रविशन्ती रसातलम् ।

पुष्पवृष्टिगविच्छिन्ना दिव्या सीतामबाकिरत् ॥ २० ॥

सिंहासनपर बैठकर जब कीटादेवी रसातलमें प्रवेश करने
लगी उस समय देवताओंने उनकी ओर देखा । फिर तो
आकाशसे उनके ऊपर दिव्य पुष्पोंकी झारात बरसने लगी।
सायुष्कारण सुमहान् देवाना सहस्रोत्थिता ।
सायुसाभित्ति वै सीते यस्यास्ते द्वाभ्यमीदृशम् ॥ २१ ॥

इसपक्षे श्रीमद्वाल्मीके वाक्कीर्तने आदिशब्दो
इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकिनिर्मित अर्चनानाम आदिशब्दोके
उत्तरकाण्डे उत्पन्नचित्तमा सर्गा ॥ १७ ॥
उत्तरकाण्डे सतमनेर्त्तौ सर्वं पूजं हुज ॥ ७ ॥

देवताओंके मुँसे लखा ‘स्य-स्य’ का मन्द सुत्र
प्रकट हुआ । वे कहने लगे—‘स्यते । तुम स्य हो, स्य
हो । तुमारा शीक-समाय इतना सुन्दर और ऐश पवित्र है’
पर्व बहुविधा वाजो अन्तरिक्षगताः सुराः ।
भ्यास्तद्दुर्हृष्टमनसो बहू सीताप्रवेशनम् ॥ २२ ॥

सिंहासन रसातलमें प्रवेश देवताका आकाशमें जाड़े हुए
देवता प्रकल्पित हो इस तरहकी बहुत-सी बातें कहने लगे ।
पक्षपादगताद्यापि मुनयः सर्व एव ते ।
राजानस्य नरक्यास्य सिद्धाधामनोपदेशिरे ॥ २३ ॥

ब्रह्मण्डलमें पक्षी हुए सभी मुनि और नरकेच नरके
भी आश्चर्यसे भर गये ॥ २३ ॥
अन्तरिक्षे च भूमौ च सर्वे स्थावरजङ्गमः ।
सूनयास्य महाकायाः पाताले पञ्चगाधिपः ॥ २४ ॥

अन्तरिक्षमें और भूतस्मर सभी चरकर प्राणी तथा
पातालमें विशालकाय दानव और नागराज भी आश्चर्यचकित
हो उठे ॥ २४ ॥
केचित् विनेतुः सद्गताः केचित् ध्यानपरवशतः ।
केचित् राम निरीक्षन्ते केचित् सीतामबलता ॥ २५ ॥

कोई दर्शनार्थ करने लगे, कोई ध्यानमग्न हो गये, कोई
श्रीरामकी ओर देखने लगे और कोई इनके-कन्धे-से देख
सिद्धकी ओर निहारने लगे ॥ २५ ॥
सीताप्रवेशनं बहू तेषामासीत् समानाम् ।
तन्मुहूर्तमिवात्यर्थं सम सम्मोहितं जगत् ॥ २६ ॥

सिंहासन मूलमें प्रवेश देवताका सर्वां भाये हुए एक ही
हर्ष शोक आदिमें डूब गये । हा पक्षी तक आकाश तथा
वनसमुदाय अत्यन्त मोहाच्छन्न हो गया ॥ २६ ॥

अष्टनवतितम सर्ग

सीताक लिय भीरामका खेद, प्रह्लादीका उन्हें समझाना और उत्तरकाण्डका
श्रेय अथ सुननेके लिये प्रगित करना

रसातल प्रविष्टयां वैशेष्ठां सर्वेश्वरतः ।

शुक्रशुः सायुसाधीति मुनया रामसन्निधौ ॥ १ ॥

विश्वकुमारी कीटाके रसातलमें प्रवेश कर जानेपर भीराम
के समीप बैठे हुए सम्पूर्ण वायव्यतया श्रुति-श्रुति करने लगे—
‘स्यते सीत । तुम स्य हो’ ॥ १ ॥

वृक्षकण्टमयद्यस्य बाणस्याकुसितक्षणः ।

स्वाफिशारा शीतमना रामो ह्यासीत् सुदुःखितः ॥ २ ॥

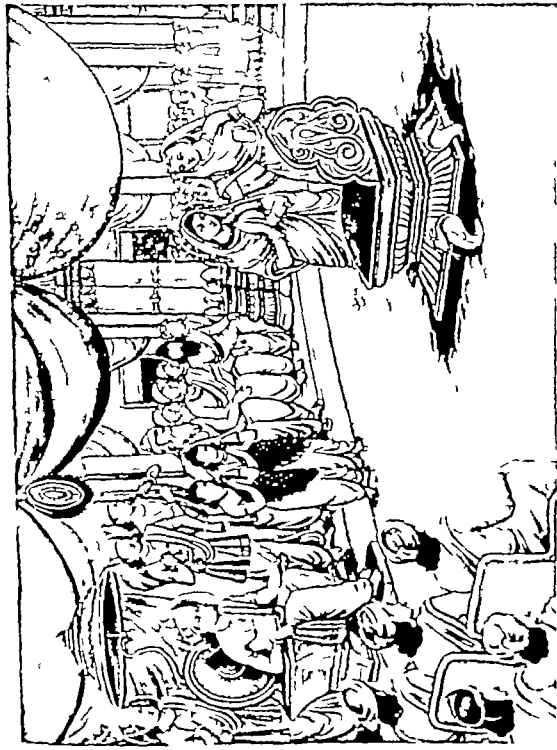
किंतु स्वयं महात्मान् भीराम बहुत दुःखी हुए । उनका
मन उदात्त हो गया और वे गून्के वस्त्रोंका लहाप लिये
जाड़े हा शिर छत्रके नेत्रोंसे आँसू बराने लगे ॥ २ ॥

स कृत्वाशिरं कञ्च बहुशो बाणमुत्सृजत् ।

अधशोकसमाविष्टो रामो वक्षसमप्रसीत् ॥ ३ ॥

बहुत बेरतक रोकर बारंबार आँसू बहाते हुए शोक
और शोकसे युक्त हो भीरामकन्ध ही इस प्रकार बोले—॥३॥
अमृतपूर्वै वाक् मे ममा मय्युनिनेच्छति ।
पश्यता मे यथा गच्छ सीता भीरिव रूपिणी ॥ ४ ॥

आज मेरा मन अमृतपूर्वै शोकमें डूबना पाहता है
क्योंकि इस समय मेरी अर्थोक्त छत्रनेसे मुनिनेती अर्थोके
उत्तर सीता अदृश्य हो गयी ॥ ४ ॥
सायुर्दानं पुरा सीता सद्गुं पारे महोदधः ।



निवामिता श्रीवातसीजीर्ण भूतल-मयशक लिय त्रयारी

सख्यपि मयाऽऽनीता किं पुनर्वसुधातलात् ॥ ५ ॥
 पृथ्वी पार खेद्य समुद्रे उरु पार कङ्कामे अरु मेरी
 भौंसते ओतक हुई थी । किंतु कब मैं वसोंते मी उरों खेद्य
 क्या, तब पृथ्वीके मीतरसे के आता कौन बड़ी बाटहे ? ॥५॥
 वसुधे देखि भवति सीता निर्यात्पतां मम ।
 वसुधे देखि भवति सीता निर्यात्पतां मम ॥ ६ ॥
 (जो कहकर वे पृथ्वीसे बोले—) पृथ्वीसे मगवति
 कङ्कामे । मुझ सीताके खेद्य दो अन्धकार में अपना श्रेष
 रिबाईगा । मेरा प्रभाव केसा है । यह दुःख जनती हा ॥६॥
 कर्म स्वभूमैवैव त्व त्वत्सकाशात् तु मैथिली ।
 कर्मता फलसहस्तेन जनकेनोद्यता पुरा ॥ ७ ॥
 (वेमि । ताकावमें दुग्धी मेरी खाई हो । राख कनक हाथ
 में फल जिसे दुग्धीको बोल रहे ये जिसे दुग्धारे मीतरसे
 खेद्यक प्राबुमांन हुआ ॥ ७ ॥
 कर्मनिर्वात्यतां सीता विधर वा प्रयच्छमे ।
 पावसे नत्कपूठे वा वसेयं सहितस्तथा ॥ ८ ॥
 (अतः वा तो दुःख सीताके खेद्य हो भयवा मेरे जिसे
 भी भानी गेहमें कनक दो क्योंकि पाताक हो वा स्वर्ग, मैं
 खेद्यके छप ही रहूँगा ॥ ८ ॥
 अन्त्य त्वं हि तां सीतां मघोऽह मैथिलीकृते ।
 न मे वास्यसि चेत् सीतां पथाक्यां महीतसे ॥ ९ ॥
 सपर्यत्यन्ता कृत्स्नां विधमिष्यामि ते स्थितिम् ।
 मगधमिष्याम्यह भूमि सर्धमापो भवत्स्वह ॥ १० ॥
 दुःख मेरी सीताके कामे । मैं मिथिलेशदुःखमारोके जिसे
 मकलाक (बेमुच) हो गया हूँ । यदि इस पृथ्वीपर दुःख उखी
 रूपमें खेताके मुसे खेद्य नहीं होगी तो मैं पर्वत और वन-
 वरित दुग्धारी स्थितिके नह करूँगा । खारी भूमिक विनाश कर
 बाँदूँगा । फिर मझे ही सबकुछ सम्भय ही हा जब ? ॥९ ॥
 एव ह्युवाणे कङ्काम्ये क्रोधशोकसमन्विते ।
 ब्रह्मा सुरमणौ साधमुवाच रघुमन्वजम् ॥ ११ ॥
 मीरकुवाणी कब श्रेष और शाकसे मुक हा इत प्रकर
 की बतें करने कमे टऽ देवताभौंसहित ब्रह्माक्षीने उन रघुकु-
 म्भन मीरकसे कहा— ॥ ११ ॥
 राम राम न सताप कर्तुमर्हसि सुद्यत ।
 स्मर त्व पूर्वंक भावं मन्त्र वासिष्ठकर्मत ॥ १२ ॥
 उरुम ब्रह्मका पावन करनेबाबे भीरम । आप मनमें
 संशय न कर । धनुमन्त । अपने पूर्वंक स्वस्वका सारण करे ॥
 न कालु त्वां महाबाहो स्मारयेयमनुत्तमम् ।
 इम सुष्ठु त्वुर्ध्वं स्मर त्व जगम धैष्णयम् ॥ १३ ॥
 भ्रष्टाचार । मैं आपके आपके परम उरुम
 सस्वका सारण नहीं रिक्त रहा हूँ । दुर्ध्वं वीर । केवल यह
 अनुशेष कर रहा हूँ कि इस समय आप प्यानके हाथ अपने
 वैश्व सस्वका सारण करे ॥ १३ ॥

सीता हि विमला साध्वी तद्य पूर्वपरायणा ।
 नागलोकं सुख प्रायात् त्वदाभयतपोवजात् ॥ १४ ॥
 साध्वी धीता खर्षा शुभ है । वे परसेते ही आपके ही
 परायण खरी है । आपका आभय केसा ही उनका उपेक्ष
 है । उसके द्वारा वे सुखपूर्वक नागलोकक बहाने आपके परम
 काममें पजी गयी है ॥ १४ ॥
 स्वर्गं ते सगमो भूयो भविष्यति न सदाया ।
 मस्यास्तु परिपश्यन्त्येव यद्दधीमि निबोध तत् ॥ १५ ॥
 अब पुनः साकेतकाममें अपकी उनसे में देगी; इसमें
 संशय नहीं है । अब इस सभामें मैं आपसे बड़े कुछ कहता
 हूँ उरुम प्यान हीकिये ॥ १५ ॥
 एतदेव हि काव्यं ते काव्यानामुत्तमं श्रुतम् ।
 सर्वं विस्तारतो राम व्याख्यास्यसि न सदाया ॥ १६ ॥
 आपके परिपश्ये सस्वका रखनेवाक यह कर्म्य जिसे
 आपने सुना है, एव काव्यों उरुम है । भीरम । यह आपके
 बारे कौन-कुछका विस्तारसे जान कपूठेय इसमें संदेह नहीं
 है ॥ १६ ॥
 जगमप्रसूति ते वीर सुखदुःखोपसेवनम् ।
 भविष्यदुत्तरं चेह सर्वं वास्मीकित्य कृतम् ॥ १७ ॥
 (वीर । आभिर्माकभसे ही जो आपके द्वारा सुख दुःखों-
 का (स्वेच्छासे) सेकन हुआ है, सस्वक तथा खेताके
 अन्तर्धान होनेके बाद जो भविष्यमें होनेबाकी बातें हैं, उनका
 भी महर्षि वास्मीकिने इसमें पूर्णरूपसे वर्णन कर दिया है ॥१७॥
 आधिकार्यमिह राम त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
 नह्यन्तोऽर्हति काव्यानां परतोभाष राध्याहते ॥ १८ ॥
 भीरम । यह आधिकार्य है । इस समूच काव्यकी
 आचार्यिका आप ही हैं—आपके ही जीवनवृत्तकके
 केकर इस काव्यकी रचना हुई है । रघुकुखरीशोभा बतानेबाबे
 आपके सिवा वृत्तक कर्ष ऐषा बहाली पुरण नहीं है, जो
 काव्योंका नायक होनेका अधिकारी हो ॥ १८ ॥
 श्रुतं ते पूर्वमेतदि मया सर्वं सुरैः सह ।
 विष्यमनुत्तरक्य य सत्यवाक्यमनावृत्तम् ॥ १९ ॥
 केसाओंके त्व मैंने पहले अपने सम्न्वित इस समूर्ण
 काव्यका भक्षण किया है । यह दिव्य और अद्भुत है । इसमें
 कोई भी बात छिपायी नहीं गयी है । इसमें कही गयी
 खरी बातें सत्य हैं ॥ १९ ॥
 स त्व पुढ्यदागृह धर्मेण सुसमाहित ।
 शेष भविष्यं कपूठक्य काव्यं रामापथं शृणु ॥ २० ॥
 पुढ्यदि रघुमन्दन । आप धर्मपूर्वक एकप्रतिबन्ध हो
 भविष्यकी घटनाओंसे मुक्त शेष रामावण काव्यका भी सुन
 लीकिये ॥ २० ॥
 उत्तर नाम काव्यस्य शेषमत्र महायत्ना ।
 तपूठक्य महातज श्रुतिभिः साधमुत्तमम् ॥ २१ ॥

महाकशली एष गहात्कली भीराम । इव क्षम्यके
मन्त्रिम मागक्ष नाम उच्छ्रयश्च ॥ २१ ॥

न क्लृप्तयेन कश्चुरस्य भोतप्यमिन्मुत्तमम् ।
परमश्रुपिप्पा धीग स्वयैय एतुनन्दन ॥ २२ ॥

‘कश्चुरस्यभीरु एतुनन्दन । आप धर्मात्कश्चुराश्चर्ये ॥
अथ परमे आपन्ने ही यह उचम क्षम्य मुनना प्यहिनं दूमे
क्षे नहीं ॥ २२ ॥

एताश्चतुष्टया पच्यन प्रह्ला विमुचनेश्वर ।
अगाम त्रिविध वेषां श्रेयैः सह सत्ताप्यधैः ॥ २३ ॥

इतना कश्चुर तीनो श्रेयोके स्वामी प्रह्लाभी देवताओं
एव उनके क्यु-नाशकोंके छाप अपने श्रेयोके बसे गये ॥

ये च तत्र महात्मान श्रापयो ब्राह्मणैः ।
प्रह्लापा समनुकृता म्यबतन्त महीअसः ॥ २४ ॥

उत्तर भोतुमनसो भविष्य यश्च राधवे ।
वहो को प्रह्लासात्मने रनेनाम महादेवकी म्दरमा श्रुपि
विचमन मे वे प्रह्लाभीकी आज्ञा पाकर मावी बुझातीसे
पुत्र उच्छ्रयश्चर्यो मुननेकी इच्छासे छोट आपे (उनके छाप
प्रह्लाकोके नहीं गये) ॥ २४ ॥

इत्वार्ये धीमध्वान्मायणे वास्मीक्षीये आक्षिप्यये उच्छ्रयश्चरेऽशनवतिपमः सर्गा ॥ १८ ॥
इस प्रश्न धीमध्वान्मायणे अक्षिप्यये उच्छ्रयश्चरेऽशनवतिपमः अक्षिप्यये उच्छ्रयश्चरेऽशनवतिपमः सर्गा ॥ १८ ॥

ततो रामः शुभा धार्पा वैश्वेक्ष्य भाषित्तम् ॥ २५ ॥
श्रुत्या परमतेजस्वी वास्मीक्षिमिदमब्रवीत् ।

तत्रभाद् देवाभिवेक्ष प्रह्लाभीकी करी हुई उच ।
वाष्पिके याद करके परम तेजस्वी भीरामजीने महर्षि वास्मी
इव प्रश्नर कहा— ॥ २५ ॥

भगवाम्भोतुमनस श्रापयो ब्राह्मणैः ।
भविष्यदुत्तरं यम भ्योमूते सग्नवर्ततम् ।

‘मगवन् । वे प्रह्लाकोके निवाली महर्षि मेरे म
वरिषेति युक्त उच्छ्रयश्चर्यक शेष अंश मुनना कहते ॥
अथः कश्चुरेसे ही उचका गान आरम्भ हो
बाहिनं ॥ २६ ॥

एव विनिश्चय कृत्वा सग्नप्रवृत्ता कुशीलवौ ॥ २७ ॥
ए उनीर्षं विदुष्याथ पर्णेशात्ममुपगामत् ।
तस्मैव शोचतः सीता सा व्यतीता च शार्धरी ॥ २८ ॥

ऐसा निश्चय करके भीरुनाशकीने अनशमुदायको वि
कर दिया और कुछ तथा स्वको छाप लेकर वे अपनी प
शास्त्रमें आये । वहाँ सीताका ही किन्तम करते-करते उर्
यत स्मरित की ॥ २७-२८ ॥

एकोनशततम सर्ग

मीताके रमातल प्रवेशके पश्चात् धीरामकी जीवनधर्षा, रामराज्यकी स्मिति
तथा माताओंके परलोक-गमन आदिका वर्णन

रजन्या तु प्रधातायां समानीय महासुमीम् ।

गीयतामविशदाश्रम्या रामः पुषाशुवाच ॥ १ ॥

राज कीनेकर अब शरेय हुआ, तब भीरामकन्त्रकीने
बढ़-बढ़ मुनिकोश बुझाकर अपने बनों पुँकोते कहा—‘अब
गुम नि-गह्न होकर आप रामराज्य गान आरम्भ करो ॥ १ ॥

ततः समुपविशुषु महर्षिषु महारमसु ।
भविष्यदुत्तरं पश्य जगत्सुमी पुनीत्ययी ॥ २ ॥

महात्मा महर्षिकोके वषात्मान येत जानेकर कुछ और
करने भगवान् महर्षि जीवनसे क्लृप्त्य रत्नवाणे उत्तर
बादका अ उम महाशायक एक अंग था गन आरम्भ
किया ॥ २ ॥

प्रविश्यां तु सीतायां मूलान् मत्पसव्यदा ।
तस्याप्यमानं पश्यस्य रागा परममुदमया ॥ ३ ॥

इस अस्त्री मत्पसव्य शर्ये से अपने श्रेयकोके रत्नवा
में प्रवेश कर जानेकर उम कन्ने अंगमें भगवान् भीरामका
मन १ १ १ १ १ १ ॥ ३ ॥

अपश्यमाश्रयिदानीं मन श्रुत्यमिदं जगन् ।
दाशत्रु परमायमा न तान्ति मनगतामसु ॥ ४ ॥

विदेदकुमारीका न देखनेसे उन्हें पर तप उखर स
अन पड़ने सम्य । शोचते स्वमित होनेके कारण उनके मन
शापित नहीं मिली ॥ ४ ॥

विरुज्य पार्थिवान् सञ्चानुसयामररासत्तान् ।
जनेय विपमुत्पयानो विरुपुष्ये विरुज्य च ॥ ५ ॥

एव समाप्य यद्य तु विधिरेत् न तु रापका ।
तताधिरुज्यत्पन् स रान् रामो राजीयलोचन ॥ ६ ॥
इदि एतश्च यथा सीतामपोष्यां प्रविशदा ह ।

तदनन्तर भीरुनाशकीने तब रामकोके श्रेयोके
पदप और राजकोश अनशमुदायकोतथा मुक्य-मुक्य श्रमको
का भी मन देकर विशा किया । इस प्रश्न विधिरेत् न तु रापका
भगवत करके क्लृप्तमन भीरामने उचको विशा करनेके पश्चात्
अग समय सीताका मन ही-मन मारक करत हुए अक्षयमें
प्रवेश किया ॥ ५-६ ॥

इत्ययमा मत्पतिः पुत्रव्ययमम्यितः ॥ ७ ॥

इ सीतायाः परां भायां यत्र न श्रुतमन्दः ।
यद्ये यजे न पश्यत्ये जाननी कश्चार्थभयम् ॥ ८ ॥

— वन पूरा करके श्रुतमन्द नश भीराम अपने बनों

पुत्रीके खप रहने छो। उन्होंने खीताके खिवा वृषी किये
खीसे खिवाह नही किया । प्रत्येक वरुने ख-ख धर्मपत्नीकी
खानककता खेटी, भीरखुनापखी खीताकी खर्षमनी प्रथिमा
कनका खिया करते थे ॥ ७-८ ॥

वराखर्षसहस्राणि याजिमेधानथाकरोत् ।
वाजपेयान् वशमुणास्तथा बहुसुवर्षकम् ॥ ९ ॥

उन्होंने इस हथर कर्षोतक यज्ञ किये । किये ही अम्-
मेय बर्षों और उनसे देखुने वाभ्येय यज्ञोन्न अनुष्ठान किया,
किन्ने अर्षक्य खर्षमुणाओंकी देखिआएँ ही गयी थी ॥ ९ ॥

अग्निषोमातिरात्राभ्यां गोसवैश्च महाधमैः ।
इति क्षत्रभिरस्यैश्च स भीमानात्तदक्षिणैः ॥ १० ॥

भीयान् यन्ने पर्वात दक्षिणाभिते पुक्त अग्निषोम
अधियात्र गोस्र तथा अम्न बर्षे-बर्षे बर्षोन्न अनुष्ठान किया,
किन्ने अजर कनराशि कर्ष की गयी ॥ १ ॥

पथं स कक्षा सुमहान् राज्यस्यस्य महायमनः ।
धर्मं प्रयत्नमात्मस्य ध्यतीयात् राघवस्य च ॥ ११ ॥

इस प्रकार राघव करते हुए महात्मा मन्वान् भीरखुनाप
कीध बहुत बड़ा समय कर्षपावनके प्रयत्नमें ही खीता ॥११॥

शुश्रूषानररक्षांसि स्थिता रामस्य द्वास्तने ।
अनुवृत्ति राजानो ह्यहस्यहनि राघवम् ॥ १२ ॥

हीक कानर और राक्षस भी भीरामकी आकाके अर्षीत
रहते थे । मृत्युखकके उन्नी राघव प्रतिदिन भीरखुनापकीको
पछन रकते थे ॥ १२ ॥

काले वर्ति पर्षान्या सुभिर्षं विमला विशा ।
हृष्टपुत्रकनाकीर्षं पुर जनपदाक्षय ॥ १३ ॥

भीरामके राज्यमें मेघ समयपर कर्षा करते थे । सहा
सुखक ही रहता था—कभी अक्षय नहीं पड़ता था । सगुर्ष
विशारद पछन दिक्षाभी खेपी था तथा नगर और क्षापर हृष्ट
पुत्र मनुष्योंसे मरे रहते थे ॥ १३ ॥

माकाळेविपते कक्षिण्य व्याधिः प्राधिना तथा ।
मास्यो विपद्यते कक्षिण्यं नामे राज्य प्रशासति ॥ १४ ॥

भीरामके राज्यशासन करते समय कियेकी अन्ध-मृत्यु
हृषारद भीराममासके वाक्कीकीने वाक्कीकीने

इस प्रकार भीरामकीनिर्मित कर्षराग्यवम अदिअग्नेके

नही होती थी । प्रथियोका कोई रंग नहीं ख्याता था और
अजारमें कोई उपद्रव कड़ा नहीं होता था ॥ १४ ॥

अथ वीर्यस्य काकलस्य राममाता यशस्विनी ।
पुत्रपौत्रैः परिपुत्र्य काकलधर्ममुपागमत् ॥ १५ ॥

इसके बाद वीर्यकाकल व्यतीत होनेपर पुत्र पौत्रोंसे विधि
हुई परम यशस्विनी भीराममाता औरक्या काकलधर्म (मृत्यु)
को प्राप्त हुई ॥ १५ ॥

अग्निषोमा सुमित्रा च कैकेयी च यशस्विनी ।
धर्मं कृत्वा बहुविधं त्रिविधे पर्यवस्थिता ॥ १६ ॥

सर्षा प्रमुद्रिताः खर्षे राजा वराखयेन च ।
समागता महाभागाः सर्षधर्मं च खेभिरे ॥ १७ ॥

सुमित्रा और यशस्विनी कक्षीने भी उन्होंने पयक
अनुष्ठान किया । ये उन्नी उन्नीयों कीकनकधर्मने नाना प्रकारके
धर्मक अनुष्ठान करके अन्धमें खकैतपासना प्राप्त हुई और
कक्षी प्रखनलके क्षाप बर्षों राघव द्धारयते मिली । उन महा
भाग उन्नीयोंको ख बर्षोन्न पूरापूरा कक्ष प्राप्त हुआ १६ १७

खर्षा रामो महादानं काले काले प्रयच्छति ।
मातृवामविशोषेण ब्राह्मणेषु तपस्विषु ॥ १८ ॥

भीरखुनापकी उन्न समयपर अपनी सखी माताओंके
निमित्त किना कियी मेरमाकके लपसी ब्राह्मणोंको बर्षे-बर्षे दान
दिया करते थे ॥ १८ ॥

विश्याधि ब्राह्मणानि यज्ञान् परमपुस्तान् ।
अक्षररामो धर्मात्मा पितृन् दैवान् क्षिर्षयन् ॥ १९ ॥

धर्मात्मा भीराम भादमें उपकोनी उन्नमोत्तम बसुर्द
ब्राह्मणोंको देते तथा पितरों और देवताओंको संदृष्ट करनेके
क्षिने बर्षे-बर्षे हुक्षर यज्ञों (विश्वात्मकपितृयज्ञों) का अनुष्ठान
करते थे ॥ १९ ॥

एव वरसहस्राणि बहुस्यथ ययुः सुखम् ।
पौर्षर्षुविधं धर्मं कर्षयानस्य सर्षया ॥ २० ॥

इस प्रकार यज्ञोंके द्वारा खर्षरा विविध यज्ञोंका पालन
करते हुए भीरखुनापकीके कर्षे हथर कर्षे मृत्युपूर्वक वीत
गये ॥ २ ॥

उत्तरकाण्डे एकौत्तमस्य सर्गः ॥ १९ ॥
उत्तरकाण्डे निम्नानवर्षे समा पूरा हुआ ॥ ॥

शततम सर्ग

केकपदेक्षसे ब्राह्मणिं गार्ग्यका मेट लेकर आना और उनके संदेखके अनुसार भीरामकी आक्षासे

हुमारोसहित भरतका गन्धर्षदक्षपर ब्राह्मण्य करनेके लिय प्रस्थान

कलायित् त्वय काकलस्य युधायित् केकयो नृप ।
सगुर्षं प्रेरयामास राघवाय महारमने ॥ १ ॥

पुरोहित अमित तेकक्षी ब्राह्मणिं गार्ग्यमे च अत्रिपटे पुत्र
ये महात्मा भीरखुनापकीके पाठ मंत्र ॥ १३ ॥

मायमहिरस्तः पुत्रं ब्राह्मण्यिममितप्रभम् ।
कुल कक्षके पथात् केकपदेक्षके राजा युधायित्ने अपने

वरा ब्राह्मणसहस्राणि प्रीतिवानमनुत्तमम् ॥ २ ॥
कम्बखानि च रत्नानि चिप्रयत्नमयोत्तमम् ।

रामाय प्रददौ रामा नुभाभ्याभरणानि च ॥ ३ ॥

उनके साथ भीयमब्रह्मरूपी परम उचम प्रेमोपहारके रूपमें
 अर्पण करनेके लिये उन्होंने बर हथार छोड़ बहुतसे कम्बल
 (कम्बल और धातु आदि), नाना प्रकारके रत्न, विभिन्न
 विभिन्न सुन्दर बस्त्र तथा मन्मेर आभूषण भी दिये थे ॥ ३ ॥
 श्रुत्वा तु रामो धीमान् महर्षिं गार्ग्यमागतम् ।
 मातुल्यस्याश्वपत्निः प्रहितं तन्महाधामम् ॥ ४ ॥
 प्रत्युद्गम्य च काकुत्स्थः श्रेयशमात्रसदानुजः ।
 गार्ग्यं सम्पूजयामास यथा शक्नो वृहस्पतिम् ॥ ५ ॥

परम बुद्धिमान् भीमान् राघवेन्द्रेण च सुना किं मामा
 अभ्यति-पुत्र मुपाश्रितके मेरे हुए महर्षि गार्ग्य बहुतसुख
 मेंट-खामती सिन्धे अयोध्यामें पधार रहे हैं, तब उन्होंने
 महापौरके साथ एक कोठ आगे बढ़कर उनकी अगलाती की
 और बेमे इन्द्र वृहस्पतिकी पूजा करते हैं, उसी प्रकार महर्षि
 गार्ग्य पूजन (स्नान-स्पर्श) किया ॥ ४-५ ॥

तथा सम्पूज्य तस्यै तद् धन प्रतिपद्य च ।
 पूद्वा प्रतिपद् सर्वं बुद्धाल मातुल्यस्य च ॥ ६ ॥
 उपविष्टं महाभाग रामं प्रष्टु प्रसन्नमे ।

इत प्रकार महर्षि का आदर स्पर्श करके उठ बनको
 प्रार्थन करनेके पश्चात् उन्होंने उनका तथा मामाके परब साथ
 बुद्धाल-समाचार पूछा । फिर जब वे महाभाग महर्षि सुन्दर
 आचरण विगममान हो गये तब भीयमने उनसे इत प्रकार
 पूछना आरम्भ किया— ॥ ६ ॥

किमाद् मातुल्यो याप्य पदर्थं भगवान्निद्र ॥ ७ ॥
 प्राप्तो वास्यैर्दिर्धष्ट साह्यादिय वृहस्पतिः ।

कर्मों । मरे मामाने क्या संदेश दिया है जिसके लिये
 काकुत्स्थ वृहस्पतिने कमान वास्यैसाधर्मों में आप वृहस्पति
 महर्षिने यहाँ पधारनेका कष्ट किया है ॥ ७ ॥

रामस्य भागिन श्रुत्वा महर्षिः क्षयपिस्तरम् ॥ ८ ॥
 पन्दुमहूतमयागं राघवायोपचक्रमे ।

भीगमका पर प्रसन्न सुनकर महर्षिने उनसे अद्भुत
 वाय विचारका पत्रन आरम्भ किया— ॥ ८ ॥

मातुल्यस्य महायादा वाक्यमाट करणमः ॥ ९ ॥
 मुधाजित् धीनिर्मुक्त भूयता यद्दि राघवत ।

महाका ! अत्रक मामा नरअध मुपाश्रितके अ प्रम
 पूर्वक अत्रक दिया है उमे यदि इतिरर जान पद तो
 मुनिव ॥ ९ ॥

अप गन्धः शिष्यः पदमूलापगाभितः ॥ १० ॥
 तिष्ठात्प्रभयत पादौ दन परमगाभतः ।

उहीन कहा है कि बर का कर्म मूर्खोंम मुठेभित
 गन्धः शिष्य नगीरे इन्होंने तटीर बना हुआ है कदा
 सुन्दर घटेत है ॥ १० ॥

न च शरणि गन्धरा न्यापुधा मुत्सकाविदाः ॥ ११ ॥

शीलूपस्य सुतय धीर सिद्धः कोठयो महाबलः ।

धीर सुन्दरन । गन्धर्वराज ककुत्स्थकी संतानें धीन अने
 महाबली गन्धर्वों को सुदक्षी कर्ममें कुशल और अन्न-शक्ति
 सम्पन्न हैं उत वेधायी रक्षा करते हैं ॥ ११ ॥

तान् विनिर्जित्य काकुत्स्थरा धर्मन्मगं शुभम् ॥ १२ ॥
 निवेशय महाबाहो स्ये पुरे सुसमाहिते ।

अभ्यस्य न गतिस्त्रप वंशः परमशोभता ।
 रोचतां ते महाबाहो नाह त्वामहित धत्ते ॥ १३ ॥

काकुत्स्थ । महाबाहो ! आप उन गन्धर्वोंको शूल
 बहों सुन्दर गन्धर्वनगर बरखये । अपने सिद्ध उचम लक्ष्मणों
 सम्पन्न हो नगरीय निर्माण भीजिय । वह देश बहुत सुख
 है । वहाँ वृक्षे किरीकी गति नहीं है । आप उते अने
 अधिकारमें सेना स्वीकर करें । मैं आपको ऐसी उल्लेख न
 देता हूँ अधिकारक हो ॥ १२ १३ ॥

तच्छ्रुत्वा राघवा प्रीतो महर्षिर्मातुल्यस्य च ।
 उवाच बाह्मिन्येव मरत धाम्बवैशत ॥ १४ ॥

महर्षि औरमामात्र वह कथन सुनकर भीष्मनाथकी
 बड़ी प्रसन्नता हुई । उन्होंने 'बहुत अच्छा' कहकर मरत
 और देखा ॥ १४ ॥

सोऽप्रवीत् राघवः प्रीतः साहसिप्रप्रहो शिखम् ।
 इमी कुमारी त देशं प्रहर्षे विचारिष्यता ॥ १५ ॥

भरतस्यामञ्जरी धीरी तदा पुष्कळ पत्र च ।
 मातुलेन सुगुती तु धर्मण सुसमाहितौ ॥ १६ ॥

तदनन्तर भीयमनेन्द्रे उन प्रहर्षिते प्रसन्नवर्णक का
 ओहकर कहा— कर्मों । वे दोनों कुमार तब और पुष्कळ
 को मरतके धीर पुत्र हैं उत वेधमें विचरेंगे और मामा
 सुखिन रहकर परमपूर्वक एकप्रपिच हा उत वेधका धार
 करेंगे ॥ १५ १६ ॥

भरतं श्यामत कृत्वा कुमारी स्वस्मानुगी ।
 निहारय गन्धर्वसुतान् त्रै पुरं विभजिष्यतः ॥ १७ ॥

ये दोनों कुमार मरतकी आगे करके सेना और सेवकोंके
 साथ वहाँ बढेंगे तथा उन गन्धर्वपुत्रोंका संहर करके अन्न-
 अन्न का नगर बनायेंगे ॥ १७ ॥

नियदय न पुरवरे आगञ्जौ सनियदय च ।
 आगमिष्यति म भूयाः सख्यशामतिधामिकः ॥ १८ ॥

उन दानों में पुर नगरीको अन्नकर उनमें अपने दोनों
 पुत्रोंका स्थापित करके अत्यन्त परमात्मा प्रसन्न फिर मरे पात्र
 श्रेष्ठ आयेंगे ॥ १८ ॥

प्रायागमः सुमुक्त्वा तु भरत स्वस्मानुगम् ।
 आजापयामास तदा कुमारीं स्वभ्यवधयत् ॥ १९ ॥

प्रहर्षिते पत्र रहकर भीष्मनाथकीने भरणका वहाँ
 नगरे लय जननी भक्षा ही और दानों कुमारीका परने
 ही यथाभितर कर दिया ॥ १९ ॥

त्रेषु च सौम्येन पुरस्कृत्याङ्गिरःसुतम् ।
 एता सह सौम्येन कुमारभ्या यिनिर्ययी ॥ २० ॥
 तस्यैवात् सौम्य नक्षत्र (मृगशिरा) में अङ्गिराके पुत्र
 र्ति गर्व्यको भोगे करके सेना और कुमारोंके साथ मरते
 ॥ २ ॥
 । सेना शक्रयुकोच नगरान्धिर्यावध ।
 प्रवालुगता दूरं दुराभ्यां सुरैरपि ॥ २१ ॥
 इन्द्रहाप प्रेरित हुई देवसेनाके समान यह सेना मगरसे
 र निकली । मगान् श्रीमान् भी दूरतक उठके साथ-साथ
 ॥ यह देवताओंके किये भी दुःखम थी ॥ २१ ॥
 साशिमन्त्र ये सत्या रक्षांसि सुमहात्मि च ।
 नुक्तमूर्ध्नि भरत रुचिरम्य पिपासया ॥ २२ ॥
 मन्त्राहारी बन्दु और बड़े-बड़े राक्षस मुझमें रक्त
 हृष्यायै श्रीमद्रामाक्ये वाक्मीकीये जादिकाम्ये चत्तरकाण्डे शततमः सर्गः ॥ १ ॥
 इस प्रकार श्रीमद्रामचरितमिर्मित अर्धप्रमाणम अधिकाम्यके उत्तरकाण्डमें सौर्वी सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ॥

पानकी इच्छासे मरतक पीछे-पीछे गये ॥ २२ ॥
 मृतप्रामाण्य बहवो मांसभक्षाः सुदारुणाः ।
 गन्धपुत्रमांसाणि भोक्तुक्ामाः सहस्राशः ॥ २३ ॥
 अत्यन्त भयंकर कई हजार मांसभक्षी भूतसमूह गन्धर्व
 पुत्रोंका मांस कानेके किये उठ सेनाके साथ-साथ गये ॥ २३ ॥
 सिंहव्याघ्रपराहाणां क्षेत्राणां च पक्षिणाम् ।
 बहूनि वै सहस्राणि सेनाया यपुरप्रता ॥ २४ ॥
 सिंह, बाघ, सुअर और आकाशचारी पक्षी कई हजार
 की संख्यामें सेनाके आगे-आगे चले ॥ २४ ॥
 अथपद्मासमुपिता पथि सेना निरामया ।
 ह्यपुपुत्रप्रताकीर्षी केकय्य समुपागमत् ॥ २५ ॥
 मार्गमें डेढ़ महीने क्लिाकर ह्य-पुत्र मनुष्योंसे मरी हुई
 यह सेना कुशव्यूहके केकय्यदेशमें था पहुँची ॥ २५ ॥

एकधिकशततम सर्ग

भरतका गन्धर्वोंपर आक्रमण और उनका संहार करके वहाँ दो सुन्दर नगर बसाकर
 अपने दोनों पुत्रोंको सौंपना और फिर अयोध्याको लौट आना

हृष्या सेन्यपतिं प्रातं भरतं केकयाधिपः ।
 आश्रित्वा गाम्यसहितं परा प्रीतिमुपागमत् ॥ १ ॥
 केकय्यराज बुधाकित्ने अब सुना कि महर्षि गाम्यके साथ
 र्भ मरत सेनापति होकर आ रहे हैं, तब उन्हें बड़ी प्रसन्नता
 हुई ॥ १ ॥
 उ मिययौ जनौघेन महत्या केकयाधिपः ।
 परमाण्डेऽभिषेकप्रथम गन्धर्वान् क्रमरूपिणः ॥ २ ॥
 वे केकय्यनेरा मारी अत्यन्तदुःखके साथ निकले और
 मरते मिच्छर बड़ी उदात्तकीके साथ इच्छानुत्तर रूप बाराण
 प्रदेवाके गन्धर्वोंके देशकी ओर चले ॥ २ ॥
 भरतक्य पुष्पाञ्जिब समेतौ समुपिक्त्रमैः ।
 गन्धर्वसगरा प्रातौ सद्यकौ सपदानुगौ ॥ ३ ॥
 भरत और पुष्पाञ्जि दोनोंने मिच्छर बड़ी शीघ्रगतिसे
 सेना और लवारियोंके साथ गन्धर्वोंकी राजधानीपर पावा
 किया ॥ ३ ॥
 पुष्पा तु भरत प्रात गन्धर्व्यांस्ते समगतता ।
 पौष्टुकामा महावीर्यां व्यनक्ष्स्ते समन्ततः ॥ ४ ॥
 भरतका आगमन सुनकर वे महापराक्रमी गन्धर्व पुत्रकी
 इच्छासे एकत्र हो तब आर ओर-ओरसे गर्जना करने लगे ॥ ४ ॥
 एता समभयदुःख तुमुक्त सामहर्षणम् ।
 ससरात्र महाभीम न क्षाम्यतरयोऽयया ॥ ५ ॥
 फिर हा हत्नों ओरकी सेनाओंमें बड़ा भयंकर और रोमटे
 करके कर देनेवाला पुत्र किड़ गया । वह महाभयंकर अंशम

क्यातात छत्र पततक पलया यथा परतु दोनोंमेंसे किसी भी
 एक पक्षकी निम्न नहीं हुई ॥ ५ ॥
 काङ्क्षशक्तिधनुर्मोहा नद्या शोणितसङ्घरा ।
 नुकलेब्रह्मादिभ्यः प्रवृत्ताः सवतोदिशम् ॥ ६ ॥
 पारों आर कृताकी नदियों का बर्षा । तन्मातु शक्ति
 और वजुष उठ नदीमें विकरनेवाले प्रादोंके समान आन पकटे
 थे उनकी पारामें मनुष्योंकी सभ्यें यह छाती थी ॥ ६ ॥
 ततो रामानुजः हुन्द्रः काङ्क्षाम्पात्र सुदारुणम् ।
 सवर्तं श्रम भरतो गन्धर्वेष्वभ्यधोदपत् ॥ ७ ॥
 तब रामानुज मरतने कुपित होकर गन्धर्वोंपर आसरेबस्ताके
 अत्यन्त भयंकर मन्त्रका जो संवर्त नामसे प्रसिद्ध है प्रयोग
 किया ॥ ७ ॥
 ते यद्वाः कानपाशेन संश्रितेन विदारिता ।
 क्षयेनाभिहतास्तेन निह्वाः कोभ्यो महानमना ॥ ८ ॥
 इस प्रकार महात्मा मरतने क्षत्रभरमें तीन करोड़ गन्धर्वों
 का संहार कर डाला । वे गन्धर्व अत्यन्तसे बड़ हो संकटाँध्र
 से बिलीर्ष कर डाले गये ॥ ८ ॥
 तद् युद्धं तादृश घोर न स्मरन्ति त्रियीकला ।
 त्रिपयान्तरमात्रेण तादृशानां महात्मनाम् ॥ ९ ॥
 इतेषु तेषु सर्वेषु भरतः केकयीस्तुन ।
 नियशायामास तत्रा समुद्ये द्वे पुणेत्तम् ॥ १० ॥
 ऐल भयंकर पुत्र देवताओंने भी कभी देखा हो यह
 उन्हें बार नदी आता था । पसक मरते मरते वेते पराक्रमी

महामनसी तमस गन्धर्वाश्च संशर हो जनेपर केकेमीकुमार भरतने उव छय वहाँ हो धनुर्विद्याकी सुन्दर नगर कथने ॥११ ॥

तहाँ लक्षशिल्पियां हु पुष्कल पुष्कलवत ।

गन्धर्वदेशो ऋषिरे गान्धारविषये च सा ॥ ११ ॥

म्लान्धर गन्धर्वदेशमें लक्षशिल्प नामकी कसी कलाकर उसमें उन्होंने लक्षशिल्प राख बनाया और गान्धारदेशमें पुष्कलवत नाम बधाकर उक्त राख पुष्कलको छाप दिया ॥ ११ ॥

धन्वन्तरीप्रसन्नकीर्णं कान्तनैरुपशोभिते ।

अन्योन्यसम्पर्कत स्वर्गया गुणवित्तरौ ॥ १२ ॥

वे शनों नगर धन धान् प्रयं रत्नसमृद्धिसे भरे थे । अनेकानेक कान्तन उनकी शोभा बढ़ाते थे । गुणवित्तारकी दृष्टिसे वे मानो परस्पर होइ लगाकर सम्पर्कपूर्वक आगे बढ़ रहे थे ॥ १२ ॥

उमे सुवसिष्ठप्रभये स्पृहाहरेरकिंचिदपैः ।

उद्यानयानसम्पूर्णे सुविभक्तान्तरापणे ॥ १३ ॥

शनों नगरोंकी शोभा परम मनोहर थी । इन्हीं खान्तीका स्पृहाहर (व्यापार) निष्कपट झूठ एवं छल था । शनों ही नगर उद्यता (बाग-बाड़ीकी) तथा नाना प्रकारकी स्मारिकासे भरे पूरे थे । उनके मीकर अम्बु-अम्बुकी नाकर थे ॥ १३ ॥ धर्म पुरचरे रम्ये वित्तरैरुपशोभिते ।

गृहसुखीः सुवसिष्ठैर्विमानैर्बहुभिर्भुङ्क्ते ॥ १४ ॥

शनों भेष्ट पुरोकी रमणीयता देखते ही बनती थी ।

इत्थार्ये श्रीमद्रामायण वाक्यकीकीर्णं वाकिकाम्ये

एत प्रकार श्रीमन्वाल्मीकीर्णित जर्णप्रमाणक अर्थिकामने

अनेक पैसे वित्तुत पदार्थ उनकी शोभा बढ़ाते थे कि माम अभीतक नहीं किना गया है । सुन्दर भेष्ट यह उ बहुत से छतमदले मकान वहाँकी श्रीवृद्धि कर रहे थे ॥ ११ ॥ शोभिते शोभनीयैश्च देवापतनवित्तारैः ।

तस्मैस्तमावैस्तिन्त्रकैश्चकुलेरुपशोभिते ॥ १५ ॥

अनेकानेक शोभासम्पन्न देवमन्दिरों तथा लक्ष लक्ष तिकक और मौखलिरी आदिके दृष्टिसे भी उन शनों नगरों शोभा एवं रमणीयता बढ़ गयी थी ॥ १५ ॥ निबेद्यम पञ्चभिर्वयैर्भरतो रायवस्तुभः ।

पुनरायानमहाबाहुरयोध्यां केन्द्रीसुतः ॥ १६ ॥

पौत्र यशसे उन राजधानियोंको अन्धी तरह आर करके श्रीरामक छोटे भाई केकेमीकुमार महाबाहु मस्त कि अन्योन्यामें झोट मये ॥ १६ ॥

शोऽभिवाद्य महायमान साक्षमन्मैमिषापरम् ।

रायव भरता श्रीमान् दद्यान्ममिव घासका ॥ १७ ॥

वहाँ पहुँचकर श्रीमान् भरतने द्वितीय धर्मेशके उन महात्मा श्रीपुनाधर्मीको उखी तरह प्रणाम किना जैसे इ ब्रह्माणीको प्रणाम करते हैं ॥ १७ ॥

शासस च यथापूर्वं गन्धर्व्यधमुत्तमम् ।

शिवेशर्न च इहास्य भुत्वा मीतोऽस्य राधधः ॥ १८ ॥

तत्पश्चात् उन्होंने गन्धर्वोंके वन और उत देशको भय तक आबाद करनेका बधाकत समाचार कर सुनाया । इन श्रीपुनाधर्मी उनपर बहुत प्रसन्न हुए ॥ १८ ॥

उत्तरकाण्डे एकादशस्कन्धतमः सर्गः ॥ १ ॥

उत्तरकाण्डने एक ही एकां सर्व पूरा हुआ ॥ १ ॥

द्विपदिकशततम सर्ग

श्रीरामकी आज्ञासे भरत और लक्ष्मणद्वारा कुमार अज्रद और चन्द्रकेतुकी कारुण्य देशके विभिन्न राज्योंपर नियुक्ति

तच्छ्रुत्वा हयमायेयं राजयो आरुभिः सह ।

वापय चाद्रुतसकाश भानुन् मोघाद्य रायधः ॥ १ ॥

मरतके दुईसे गन्धर्वदेशका समाचार सुनकर मध्यपौरवित श्रीरामपत्नीकी बड़ी प्रसन्नता हुई । तत्पश्चात् श्रीरामकेन्द्र अपने मन्त्रीसे यह अद्रुत बचन बोले— ॥ १ ॥

इमी कुम्भारी सौमित्रे तव धर्मविशास्यौ ।

मङ्गलद्वयशकं तुभ्य राज्याथै ददामि क्वयौ ॥ २ ॥

सुमित्रानाम्दम् । दुम्बारे में शनों कुमार अज्रद और चन्द्रकेतु धर्मके शता हैं । इममें राज्योंके राजके जिसे उपमुक्त दत्ता और पणकम है ॥ २ ॥

इमी राज्येऽभिवेक्ष्यामि वंशः साधु विधीयथा ।

रमणीया ह्यस्तज्जापो रमतां पत्र भन्वित्री ॥ ३ ॥

अतः मैं इसका भी राज्याधिक करूँगा । तुम इनके

जिसे किसी मन्त्रे देशका पुनाल करो जो रमणीय होनेके साथ ही किन शाबाओंसे रहित हो और ज्यों वे शनों पनुर्बर कीर आनन्दपूर्वक रह लें ॥ १ ॥

म राजां पत्र पीडा स्यात्वाभमाणां विनाशनम् ।

स देशो ह्यपतां सौम्य तापराभ्यामोषे यथा ॥ ४ ॥

सौम्य (ऐल देश देखो जहाँ निरात करनेसे दुलने शाबाओंको पीडा ना उठेय न हा आभयकेका भी नाश न करना पड़े और हमकायोंके विहीन दृष्टिमें अन्तर्पण भी न करना पड़े ॥ ४ ॥

उद्योक्तवति रामे तु भरतः प्रत्युवाच ह ।

अये कारुण्यो देशो रमणीया निरामया ॥ ५ ॥

श्रीरामपत्नीके देना करनेपर भरतने उत्तर दिया—

मार्गं । पर आरुपय नामक देव बड़ा सुन्दर है । वहाँ किसी प्रकारकी राग-आभिधा मय नहीं है ॥ ५ ॥

निर्घृप्ततां तत्र पुरमङ्गदस्य महात्मनः ।

बन्धुधत्ता सुरचिर चन्द्रकाण्ठ निरामयम् ॥ ६ ॥

वहाँ महात्मा बन्धुधत्ते के सिधे नमी राजधानी बसायी है तथा चन्द्रकण्ठ (या चन्द्रकाण्ठ) के रहनेके स्थिय चन्द्रकाण्ठ नामक नगरका निर्माण करवाया था, जो सुन्दर और आरुपयवर्णक है ॥ ६ ॥

एव वापय भरनेनोक्तं प्रतिजगद्वाह राघव ।

तं च हृत्वा यशो वृशामङ्गदस्य न्यवेशयत् ॥ ७ ॥

भरनेकी वही हृत् इत बातका भीखुनायकीने स्वीकार किया और आरुपय देवालय बनाने अभिकारमें एक मङ्गदको बहाँका राजा बना दिया ॥ ७ ॥

मङ्गदीया पुरी रम्याप्यङ्गदस्य निवेशिता ।

रमणीया सुगुह्य च रामेष्वाङ्घ्रिकमणा ॥ ८ ॥

अङ्घ्रिकरहित कर्मे करतबास मनाजान् भीउमने मङ्गदके सिधे (मङ्गदीया) नामक रमणीय पुरी बसायी, जो परम सुन्दर होनेके साथ ही सब आरामे सुखिन भी थी ॥ ८ ॥

चन्द्रकाण्ठश्च मस्लस्य मस्लमूर्ध्नां नियदिता ।

चन्द्रकाण्ठस्य विज्याता विख्या स्वगपुरी यथा ॥ ९ ॥

चन्द्रकण्ठ अपने आरामे मस्लक समान हृत् पुष्ट था; उनके स्थिय मस्ल वर्णमें (चन्द्रकाण्ठ) नामक विख्यात विषय पुरी बसायी गयी जो स्वर्गकी समतलकी नगरीके समान सुन्दर थी ॥ ९ ॥

कदा रामो परा प्रीतिं लक्ष्मणो भरतस्तथा ।

ययुषुषुः सुराभया अभिषेकं च यच्छिरे ॥ १० ॥

इसमें भीगम लक्ष्मण और भरत हीनोंको वही प्रकृतता हुई । उन सभी रगनुर्भय दीयने स्वयं उन कुमारोंको भाष्यके किया ॥ १० ॥

अभिषिष्य कुमारीं द्वी प्रस्ताप्य सुधमाहिती ।

मङ्गदं पश्चिमा भूमिं चन्द्रकण्ठसुमुदङ्गुलम् ॥ ११ ॥

एकामभित्तं त ग लक्ष्मण रहनेबास उन हीनों कुमारी-को भाष्यके करके मङ्गदका पश्चिम तथा चन्द्रकण्ठको उत्तर दिशामें मङ्गद गथा ॥ ११ ॥

मङ्गदं व्यापि लौमिषिलक्ष्मणोऽनुजगाम ह ।

हृत्पापे धीमदात्मयय पास्मीरूपे आदिवाप्य

एत प्रश्न भीरुलोकान्तरित अत्रान्तपण अत्रिकल्पके उत्तरकाण्ड पर की मार्ग मग पूरा हुआ ॥ १२ ॥

चन्द्रकेतोस्तु भरतः पाणिप्राहो यमुष ह ॥ १२ ॥

मङ्गदक साथ था स्वयं मुनिवाकुमार सन्मग गये और चन्द्रकण्ठक दशापक या पार्श्वक भरतभी हुए ॥ १२ ॥

लक्ष्मणस्त्वङ्घ्रिवाया सधत्स्मरमघोषिता ।

पुरे स्थितं दुर्गाधरं अयोध्यां पुनरगमत् ॥ १३ ॥

लक्ष्मण मङ्गदीया पुरीमें एक वर्षतक रहे और उनका दुर्गाधर पुत्र मङ्गद जब दक्षतपूर्वक राज्य हँमासने छग्य तब वे पुन अयोध्याका सौद भाये ॥ १३ ॥

भरतोऽपि तथैषोप्य सयत्स्मरतोऽधिकम् ।

अयोध्या पुनरागत्य रामपादाशुपास्त सः ॥ १४ ॥

इसी प्रकार भरत भी चन्द्रकाण्ठा नगरीमें एक वर्षके कुछ अधिक कासतक ठहरे रहे और चन्द्रकेतुका राज्य जब हूँ हो गया, तब वे पुन अयोध्यामें आकर भीरामचन्द्रकीके चरणोंकी सेवा करने लगे ॥ १४ ॥

उभौ लौमिषिभरसौ रामपादाशुस्रतौ ।

काल गतमपि स्नेहाद्य जनात्ऽतिपामिषी ॥ १५ ॥

लक्ष्मण और भरत दोनोंका भीरामचन्द्रकीके चरणोंमें अनन्य अनुयाग था । दोनों ही अत्यन्त प्रार्थना थे । भीराम की सेवामें रहन उन्हें बहुत समय बीत गया, परंतु स्नेहाधिक्यके कारण उनका कुछ भी खत न हुआ ॥ १५ ॥

एव यत्सहस्राणि दद्या तेषा ययुस्तथा ।

धर्मं प्रयत्नमानानां पौरुषार्थेषु क्षियन्त ॥ १६ ॥

य हीनों मार्ग पुराणियोंके कार्यमें सदा सञ्चल रहते और ब्रह्मचर्यक नियम प्रयत्नशील रहा करते थे । इत प्रकार उनके हल हथार वर्ष बीत गये ॥ १६ ॥

विद्वस्य वाक् परिपूजमानसा

धिया कृत्वा धमपुरे च सम्विधा ।

अथः समिज्जाहृतिप्रीतिनेजसा

दृतागमय साधुमहाधर अथः ॥ १७ ॥

धम लक्ष्मणके न्यानभूत अयोध्यापुरीमें वैम लक्ष्मण आरर रहते हुए वे हीनों भाई यथागमय भूम-क्षिप्र प्रकशी देल मान करत थे । उनका छोटे मनारथ पूरा हो गये थे तथा वे महाप्रभेमें आहुति पात्र प्रयत्निल हुए हीत सबकी गृहगत आश्वनीय भीग दक्षिण गामक विषिय अन्तर्को समान प्राणित होने में ॥ १७ ॥

उत्तरकाण्ड इ-विस्मयलक्ष्मणः सर्गः ॥ १ ॥ १ ॥

एत प्रश्न भीरुलोकान्तरित अत्रान्तपण अत्रिकल्पके उत्तरकाण्ड पर की मार्ग मग पूरा हुआ ॥ १ ॥ २ ॥

त्र्यधिकशततमः सर्गः

धारागमक यदा कालका आगमन आर एक कठोर जतक साथ उनका वाताक जिय उत्त हाना

चन्द्रयिन् स्वयं दाम्ना रामे धमरर जियन ।

काण्डकायनरुपय राजहारासुपागमत् ॥ १ ॥

दरभरर कुट समर और हीत जानेवर अब कि मानाज

भीगम धमपुरे अत्रिकाण्ड उत्तरकाण्ड पर कर रहे थे

लक्ष्मणका तस्मिन् स्वने राजभरनक रम भाषा ॥ १ ॥

साऽप्रयत्नलक्ष्मण वाक्यं धृतिमन्तःसम्बिनम् ।

मां निवृत्तप रामाय सम्प्राप्त कायागौरव्यात् ॥ २ ॥

उत्तरे द्वारपर खड्ग हुए, धैर्यवान् एवं यशस्वी स्वामने
कहा—मैं एक भारी कायसे आया हूँ । तुम श्रीगमनलक्ष्मीने
मेरे स्वागतकी सूचना ॥ २ ॥

वृत्तो हासियरम्याह महर्षेरमितौजसः ।
राम विद्वन्मुखायातः कथयेण हि महाबल ॥ ३ ॥
महाकवी लक्ष्मण । मैं अग्नि देवकी धर्म्य अनिबन्धन
हूँ और एक आश्चर्यक कथनका श्रीगमनलक्ष्मीने निकले
आया हूँ ॥ ३ ॥

तप्य तद् धनन भुम्भा सौमित्रिस्त्रयाम्पिनः ।
व्यवहृत रामाय तापस त समागतम् ॥ ४ ॥
उसकी वह बात सुनकर मुनिबाबुमारलक्ष्मीने बड़ी ठठा
वर्षक साथ हीतर खरक श्रीगमनलक्ष्मीसे उस हास्यके मत-
मन्की सूचना ही— ॥ ४ ॥

जयल रात्रपमेण इभां छात्री महापुते ।
वृत्तम्भा द्रुपुमायातस्तपसा भाहकरमभः ॥ ५ ॥
महातपस्वी महापति । आप अपने रात्रपमेके प्रमात्रने
इसके अंदर परदेकर ही विवर्ती ही । एक महर्षि वृत्तके
रूपने आपन मित्रने आया है । वे उससाजित तपके वर्णके
स्वयन प्रकथित हो रहे हैं ॥ ५ ॥

तद् वाक्य लक्ष्मणोक्त वैशुम्भा राम उवाच ह ।
प्रवृत्तया मुनिस्तत् महाज्ञास्तस्य वाक्यपूच्छ ॥ ६ ॥
छान्डी कही हुआ वह बात सुनकर श्रीगमने कहा—
प्यत । उन महातपस्वी मुनिक हीतर त आया था कि
उसने स्वामीके उद्देश अन्तर आने हैं ॥ ६ ॥

स मित्रिन्मु सधैर्युभयत्र प्राथंयत्त त मुनिम् ।
न्यन्त्यमय तत्राभिः प्रवृत्तमिवांगुभिरा ॥ ७ ॥
उसका आया करकर मुनिबाबुमार उन मुनिका हीतर
अ आये । वे तत्रन प्रवृत्तित होते और अपनी प्रकर किरकोडे
हाथ करत हुएने अज्ञ पढ़त थे ॥ ७ ॥

साऽभिगमस्य रघुभ्रष्ट दीप्यमान स्वतेजसा ।
श्रुतिर्मनुष्या वाचा धमस्वत्प्याह राघवम् ॥ ८ ॥
आने उत्रन हीतिनात् रघुभ्रष्टिस्व श्रीगमके पास
पहुँचकर श्रुतिने उतने मधुर बाणीमें कहा—रघुभ्रष्टन ।
वाक्य अन्वय है ॥ ८ ॥

तर्ष्य रामा महातेजाः पूजामर्षपुरोगमात् ।
बहो कुण्डलमयद्य प्रपुनौ योपचमसे ॥ ९ ॥
महतपस्वी श्रीगमने ऊँहे पाठ-कार्य्य आदि पूजनी-
कार समर्पण किया और आपस्यवसे उनका कुण्डल-
पूजना आरंभ किया ॥ ९ ॥

पूषभ कुण्डल तन रामेण पद्मना क ।
धामने वाञ्छने दिश्ये निरमात् महाबहा ॥ १० ॥

श्रीगमके पठनेपर बन्धुभोंमें श्रेष्ठ महापशुकी पुनि
पनाचार बहादुर दिश्य मुकुरमय आननर नि
तमुपाय ततो राम आगत ते महान्त ।
प्रापयाम्यथ वाक्यानि यतो वृत्तन्यपमाया ॥ ११ ॥
तान्तर श्रीगमने उतने कहा—महान्ते । बन्धु
स्वागत है । आप धिनके वृत्त होकर क्यों पधारे हैं उतने
छिन्ध मुनाइये ॥ ११ ॥

षोडितो राजसिंहत मुनिवाक्यमभास ।
उच्छे होतत् प्रपकस्य हित वै यद्यक्षणे ॥ १२ ॥

गर्भित श्रीगमक हाग इस प्रकार प्रीति होकर
कथ—आदि आन हमारे हितपर हवि रक्षने हो क्यों हवे
आप दो ही आदमी रहें बनी इत बातका फलना अन्वये
य श्रुणोति निरीक्षत् यास यद्यो भवितात् ॥
भयद् वै मुनिमुप्यस्य यन्न यद्यक्षस ॥ १३ ॥

परि आप मुनिभद्र अनिबन्धने बचनर पदने
आपके यह भी धीरेण करना हाग कि वह कई लुप्य
दमोकी बाधकीत वृत्त त अयना हमे अज्ञान करते रहें
वह आर (श्रीगम) का बन्ध होगा ॥ १३ ॥

तपोति च प्रतिशय रामो लक्ष्मणमवधिवत् ।
ठारि विष्ट महापादो प्रतिहार दिग्मद्वे ॥ १४ ॥
श्रीगमने 'तपालु' ब्रह्मर इस बातके किन्ध हीरे
और लक्ष्मणने कहा—महाबाह ! इतपयको निरुक्त
मोर स्वयं लक्ष्मीर लड़ हाकर पग हो ॥ १४ ॥

स मे वप्य लतु भयेद् वाच इन्द्रसमीरितम् ।
श्रुयेमस च सौमित्रे पण्येद् वा श्रुयाद्यथ ॥ १५ ॥
मुनिबानन्दन । वह श्रुति और मेरी—दोनोंकी बही
बात सुन समा या बात करते हमें देख लय वह मेरे
माय बचनग ॥ १५ ॥

ततो निशिष्य कपुत्रयो लक्ष्मण्य ठारि समग्रम् ।
तमुवाच मुने वाक्य कथयस्वति राघवः ॥ १६ ॥
तत् ते सर्वांगित वाक्य येन वासि समारिठ ।
कथयन्वाविष्टाहस्य ममापि हवि वर्तते ॥ १७ ॥

इस प्रकार अपनी बात प्रार्थन करनेवासे लक्ष्मणक बर
पर तेजस करने श्रीगमनापकीने अज्ञात मरति अ
मुने । अब आप नित्राह होकर वह बात कहिये किने
आपके अभीष्ट है अयना किने करनेके लिये ही अज्ञ
मेरे लये हैं ॥ १६ ॥ इतपने भी उसे मुनेके
उत्तरवा है ॥ १७ ॥

चतुरधिकशततम सर्ग

कालका श्रीरामचन्द्रजीको अज्ञात्रीका संदेश सुनाना और श्रीरामका उसे स्वीकार करना

शुभ्य राजन् महासत्त्व यद्यमहमागतः ।

विश्वमेवेन वेदेन प्रेषितोऽस्मि महाबल ॥ १ ॥

महाकवी महान् उत्कृष्टाधी महाराज ! पितामह भगवान्
असने किस उद्देशके मुझे यहाँ भेजा है और किसके किये मैं
यहाँ आया हूँ वह सब बताया हूँ सुनिये ॥ १ ॥

तवार्थं पूर्वके भाये पुत्रः परपुरजय ।
मत्प्राप्तमभाविता वीर कालः सर्वसमाहृष ॥ २ ॥

पुत्र-नगरीपर विजय पानेवाला वीर ! पूर्वजन्माने भयात्
दिरम्प्यार्थकी उत्पत्तिके समय मैं मान्यताय आपने उत्पन्न
हुआ था, इसलिये आपका पुत्र हूँ । मुझे सर्वसंसारधरी काल
करते हैं ॥ २ ॥

पितामहम्भ भगवानाह स्वेकपतिः प्रभुः ।
समपस्ते ह्यः सौम्य खोकान् सस्परिचरितुम् ॥ ३ ॥

अज्ञानप प्रभु भगवान् पितामहने कहा है कि सौम्य !
आपने अज्ञानके रखके किये जो प्रसिद्धा की थी, वह पूरी हो
गयी ॥ ३ ॥

संसिप्य हि पुरा लोकान् मापया स्वयमेव हि ।
महायैव शायानोऽन्तु मां स्व पूषमर्जीजनः ॥ ४ ॥

पूर्वककर्मके फलका स्वेच्छेको मायाके द्वारा स्वयं ही अपने-
में लाने करके आपने महाब्रह्मके जन्ममें शक्ति किया था ।
किर इस धृष्टिके प्रारम्भमें सबके फल मुझे उत्पन्न किया ॥ ४ ॥

भोगकस्त ततो मागमन्तमुदकेऽपाम् ।
मापया जनयित्वा त्वं द्वी श सत्प्री महाबली ॥ ५ ॥

मनुष्य व जैटम लैष यपोरस्थिचयीर्भूता ।
इयं परतच्छम्याषा मेदिनी आभयत् तदा ॥ ६ ॥

बलके बाप किताब कम और धरिसे मुझ एवं बलके
एकन करनेवाले 'अनन्त' संकट नागके मायाद्वारा प्रकट
करके आपने ही महाबली कीर्तिके रूप दिया किन्तु नाम
का मनु और कर्म' इन्हींके बलि-संपूर्णसे भरी हुई यह
परतच्छम्याषा श्रुतिया तत्काल प्रकट हुई जो 'मेदिनी'
करवायी ॥ ५ ॥

परो दिव्योऽर्कसद्यो लभ्यामुत्पाद्य मामपि ।
मात्राप्य स्वया कर्म मयि कर्म मियदितम् ॥ ७ ॥

आपकी मामिले सर्व-तुल्य तैबली दिव्य कर्मक प्रकट
हुआ किन्तु आपने मुझको भी उत्पन्न किया और प्रकटी
धृष्टि रखनेका साथ कार्यभार मुझपर ही रत्न दिया ॥ ७ ॥

सोऽह सम्पत्तभारो हि त्यामुपाय्य जगत्पतिम् ।
रक्षां विधत्स्व भूतपु मम तज्जह्यो भयान् ॥ ८ ॥

जब मुझपर यह भार रत्न दिया गया तब मैंने अपने
कापीरको उपजना करके शर्पना की—भयने ! आप

सम्पूर्ण भूतोंमें रहकर उनकी रक्षा कीलिये कौनके आप ही
मुझे तैब (अन और क्रिया शक्ति) प्रदान करनेवाला है ॥ ८ ॥

ततस्त्वमसि दुर्धर्षात् तस्मात् भावात् सनातनात् ।
रक्षां विधास्वन् भूताना विष्णुस्वमुपजमियान् ९ ॥

तब आप मेरा अनुग्रह स्वीकार करके प्राणियोंकी रक्षाके
किये अपरिमय अनादन पुरुषरूपके ब्रह्मात्मक विष्णुके रूपमें
प्रकट हुए ॥ ९ ॥

अदित्या धीर्ययान् पुत्रो भ्रातृणां धीयवधमः ।
समुत्पन्नेषु कृत्येषु तेषां साहाय्य कल्पसे ॥ १० ॥

किर आपने ही अदितिके गर्भसे परम पराक्रमी ब्रामन-
रूपमें अश्वत्थार किया । तबने आप अपने भ्राते इन्द्रादि देवताओं
की शक्ति बढ़ाने और आनन्दश्रेय्य पहुँचानेपर उनकी रक्षाके
किये उद्यत रहते हैं ॥ १० ॥

स त्वमुज्जाम्यमानाद्य प्रथम्यु अगता धर ।
रायपत्य घषाकह्वरी मातृपेषु मनोऽपुषा ॥ ११ ॥

अप्राधीश्वर ! अब युवकके द्वारा प्रथमका विनाश होने
लगा, उस समय आपने उस निष्ठाकरका वध करनेकी इच्छासे
मनुष्य-शरीरमें अस्वत्थार सेनेका निश्चय किया ॥ ११ ॥

दशपर्यसदस्त्राणि दशपर्यशताणि च ।
कृत्या वासस्य नियमं स्वयमेवात्मना पुरा ॥ १२ ॥

और स्वयं ही आर्य इन्द्रादि कर्तव्य मन्त्रके नियमके
करनेकी अपेक्षि निश्चित की थी ॥ १२ ॥

स त्व मनोमया पुत्रः पूर्णासुर्मातृपेयिह ।
कालोऽप ते परभोष्ठ समीपमुपयतिमुम् ॥ १३ ॥

नारदोऽह । आप मनुष्य-रूपमें अपने संकल्पसे ही निश्चिते
पुत्ररूपमें प्रकट हुए हैं । इस अकालमें आपने अपनी जिनने
समय तककी अप्पु निश्चित की थी, वह पूरी हो गयी अतः
अब आपके किये यह हमकोप्रति कर्णीय आनेका समय है ॥

यदि भूयो महाराज प्रथा इच्छस्तुपासितुम् ।
पस वा वीर भद्र ते पवमाह पितामहः ॥ १४ ॥

अप वा विजिगीषा तं सुरसाक्षय राघव ।
सन्धया विष्णुया देवा भवन्तु दिगतज्वराः ॥ १५ ॥

वीर महापुत्र ! यदि और अधिक कालतक यहाँ रहकर
प्रथमकीक पाठन करनेकी इच्छा हो तो आप यह तक
हैं । आर्यका कर्मका ही । खुद-नरन । अपेक्षा करि परमशाम-
में पधारनेका विचार हो तो अवश्य आर्य । आप विष्णुदेवके
स्वभावमें प्रतिष्ठित होनेपर कर्णमें देवता उनाय एवं निश्चित
हा कार्य—एक निश्चयने क्या है ? ॥ १४ १५ ॥

भूम्या पितामहेत्येक वाक्यं कालसमीरितम् ।
राघवा महसन् वाक्य सर्वसदात्मप्रार्थित् ॥ १६ ॥

कायके मुखसे करे गये पितामह ब्रह्माके सीरहाके मुनकर
 भीरुनायकी हँसते हुए उध सर्वसंहारी ब्रह्मते बोले—॥१६॥
 भुत्वा मे देवदेवस्य थाप्य परममद्भुतम् ।
 प्रीतिर्हि महती जाता तवागमनसम्भवा ॥ १७ ॥
 पञ्च । देवाभिदेव ब्रह्मासीका यह परम अद्भुत वचन
 मुननेको मित्र इतलिये दुम्हारे आनेसे मुझे बड़ी प्रसन्नता
 हुई है ॥ १७ ॥
 प्रयाणामपि लोकाणां कार्यार्थं मम सम्भवः ।
 भद्रं तेऽस्तु रामिष्यामि यत् पथाहमारागतः ॥ १८ ॥
 श्रीनो लोकांके प्रयोक्तासी सिद्धिके लिये ही मेरा यह
 इत्थार्थे श्रीमद्ब्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाण्डे
 इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकिरामायणे अदिकाण्डके

अन्तार हुआ था, वह उद्देश्य अब पूरा हो गया इतलिये
 दुम्हारा सम्भव हो' अब मैं बर्षोंसे आया था वहीं बर्षों
 हुएतो इसलिये सम्प्रप्तो न मे तत्र विचारणा ।
 मया हि सर्वकृत्येषु देवाना पशवर्तिनः ।
 स्थातर्ष्य सर्वसंहार यथा ब्रह्म पितामहः ॥ १९ ॥
 पञ्च । मैंने मनने दुम्हारा चिन्तन किया था । उल्लेख
 अनुत्तर तुम यहाँ आये हो अतः इस विषयको लेकर मेरे
 मनमें कोई विचार नहीं है । सर्वसंहारकारी पञ्च । मुझे उल्लेख
 कर्योमें क्या देवताओंका वधकर्त्ता होकर ही रहना चाहिये
 देगा कि पितामहका कथन है ॥ १९ ॥
 उत्तरकाण्डे ऋषिभिक्षातमः सर्गः ॥ १ ॥
 उत्तरकाण्डे एक ही कारकी सम् पूरा हुआ ॥ १ ॥

पञ्चाधिकशततम सर्ग

दुर्वासाके शापके भयसे लक्ष्मणका नियम भङ्ग करके श्रीरामके पास इनके आगमनका
 समाचार देनेके लिये जाना, श्रीरामका दुर्वासा मुनिको भोजन कराना
 और उनके चले जानेपर लक्ष्मणके लिये चिन्तित हाना

तथा तयोः सखतोरुर्वासा भगवानुचिः ।
 रामस्य दुर्वासाक्याह्नी राजद्वारमुपागमत् ॥ १ ॥
 इन दोनोंमें इस प्रकार बातचीत हो ही रही थी कि महर्षि
 दुर्वासा राजद्वारपर आ पहुँचे । वे भीरुमन्त्रब्रह्मसे मिलना
 चाहते थे ॥ १ ॥
 सोऽभिगम्य नु सीमित्रिमुवाच ऋषिसत्तमः ।
 राम दुर्वाय मे दीप्तं पुरा मेऽर्घ्योऽतिथतत ॥ २ ॥
 इन मुनिभेदेने मुमित्राकुमार कर्मणके पाठ पढ़कर
 कहा—'तुम शीम ही मुझे भीरुमन्त्रब्रह्मसे मित्र हो । उनसे
 मिले किना मेरा एक काम विगड़ रहा है' ॥ २ ॥
 मुनेस्तु भाषित भुत्वा लक्ष्मणः परवीरहा ।
 अभिवाद्य महात्मान वाच्यमेतदुवाच ह ॥ ३ ॥
 मुनिकी वह बात सुनकर राजुसीयेष पहार करनेका
 समझने उन महात्माका प्रणाम करते यह बात करी—॥३॥
 कि कर्ये मूर्ध्निभगवन् को द्रव्य किं करोम्यहम् ।
 प्यथा हि राघवो मन्त्रम् मुहूर्ते परिणाल्यताम् ॥ ४ ॥
 मगान् । बराहप अग्रा कौन-का नाम है । क्या
 प्रयत्न है । और मैं आपकी कौन-सी सेवा करूँ । प्रसन् ।
 इस समय भीरुनायकी वृत्ते कर्येमें संकल्प है अतः दो
 पदौतक उनकी प्रीति कीजिये ॥ ४ ॥
 तच्छ्रुत्वा प्राणिनादृमा प्रोषणं कर्तुमीरुत ।
 उपाय लक्ष्मण थाप्य सिद्धद्विज यशुरा ॥ ५ ॥
 यह सुनकर मुनिभेद दुर्वासा उगो तमना उठ और
 लक्ष्मणकी भर इन प्रकार दारने गये माना अपनी नेत्राभिनव
 करे भय कर दारने । काय ही उनमें इस प्रकार दार—॥५॥

अस्मिन् इत्ये मां सौमित्रे रामाय प्रतिश्रय ।
 अस्मिन् इत्ये मा सौमित्रे न निवेद्यसे यदि ।
 विषय स्वां पुर सैव शपिष्ये राघव तथा ॥ ६ ॥
 भरत सैव सौमित्रे मुष्पाकं या च सततिः ।
 न हि शक्याम्यह भूयो मन्यु धारयितु इदि ॥ ७ ॥
 'मुमित्राकुमार ! इसी क्षण भीरुमन्त्रे मेरे आगमनकी
 पकना हो । यदि अभी-अभी उनसे मेरे आगमनका उपाय
 नहीं निवेदन करोगे तो मैं इस राजको, नगरको तुमको
 भीरुमन्त्रे मरतको और तुमकोगोत्री को शपति है उठमे
 भी शप दे दूँगा । मैं पुनः इस श्रेयको अपने हृदयमें दार
 नहीं कर सकूँगा' ॥ ६-७ ॥
 तच्छ्रुत्वा धोरसकाश थाप्य तस्य महात्मनः ।
 चिन्तयामास मनसा तस्य थाप्यस्य निश्रयम् ॥ ८ ॥
 उन महात्माका यह धोर वचन सुनकर लक्ष्मणने उनको
 पाकीसे वा निश्चय प्रकट हो रहा था, उत्तर मन ही मन
 विचार किया ॥ ८ ॥
 परस्य मरज मेऽस्तु मा भूत् सखिनाशनम् ।
 इति मुद्धया विनिश्चिष्य राघवाय स्वयंवर्यत् ॥ ९ ॥
 भयेसे मेरी ही मृत्यु हो यह अच्छा है कि उल्लेख
 किनाश नहीं होना चाहिये अपनी बुद्धिद्वारा देना निश्चय
 करने लक्ष्मणने भीरुनायकीके दुर्वासाके आगमनका उपाय
 निवेदन किया ॥ ९ ॥
 लक्ष्मणस्य यद्यः श्रुत्या रामः कार्त्तं शिष्यस्य च ।
 निरन्त्यस्यगितो राजा भयेः पुत्रं ददा ह ॥ १० ॥
 लक्ष्मणकी बात सुनकर राजा भीरुमन्त्र का उपाय विचार करे

द्वन्द्वं ही निरुद्धे और अत्रिपुत्र बुर्बाखने मिले ॥ १ ॥
 सोऽभिगच्छ महात्मान् स्वल्पश्रमिष तेजसा ।
 किं क्षयमिति कथुरस्त्यः कृताङ्गलिङ्गभारत ॥ ११ ॥
 अपने तेजसे प्रकलितसे हेते हुए महात्मा बुर्बाकाके
 प्रथम करके भीरुनायकीने हाथ छोड़कर पूछा—भार्ये !
 मेरे किये क्या बाध्य है ? ॥ ११ ॥
 तद् वाक्य राघवपाकं ध्रुव्या मुनिवरः प्रमुः ।
 प्रत्याह राम बुर्बासाः श्रूयतां धर्मवत्सर ॥ १२ ॥
 भीरुनायकीकी कही हुई उस वाक्य सुनकर प्रसन्न-
 धारी मुनिवर बुवाख उनते बोले—धर्मवत्सर ॥ मुनिव ॥ १२ ॥
 मद्य वर्षसहस्राण्य समातिमम राघव ।
 सोऽहं भोजनमिच्छामि यथासिद्धं तयामघ ॥ १३ ॥
 'मिष्याप खनुन्दन । मैंने एक हजार वर्षोंतक उपवास
 किया । अब मेरे उस प्रवृत्ती समाप्तिघ्न विन है इच्छिये इत
 कम्य मानके यहाँ जो भी भोजन तैयार हो, उसे मैं प्रश्न
 करना चाहता हूँ ॥ १३ ॥
 तच्छ्रुत्वा धयम राजा राघवः प्रीतमानसः ।
 भोजनं मुनिमुखाय यथासिद्धमुपाहरत् ॥ १४ ॥
 यह सुनकर राजा भीरुनायकी मत्त ही-मत्त बड़े प्रसन्न
 हुए और उन्होंने उन मुनिभेदको तैयार भोजन परोका ॥ १४ ॥
 स तु मुपत्या मुनिभेदस्तद्भक्ष्यमुतोपमम् ।

साधु ऋमेति सम्भाष्य स्वमाद्यममुपागमत् ॥ १५ ॥
 वह अन्वृत्तक ध्यान मन प्रश्न करके बुवाख मुनि वृत्त
 हुए और भीरुनायकीको साधुवाद दे अपने आभयपर चले
 आये ॥ १५ ॥
 तस्मिन् गते मुनिवरे स्वाभयं लक्ष्मणाग्रजः ।
 स्वस्त्युत्प कालयाक्यानि ततो बु-खमुपागमत् ॥ १६ ॥
 मुनिवर बुवाकाके अपने आभयमद्य चले जानेपर लक्ष्मण-
 के वह माई भीयम जासके पक्षनोंअ सरण करके दुन्नी
 हो गये ॥ १६ ॥
 दुःखेन च सुसततः स्मृत्या तद्घोरवृक्षानम् ।
 मयाह्युक्तो वीनमना ध्याहर्तुं म गशाक ह ॥ १७ ॥
 सर्वकर मारी अन्वृत्तिकाक हरयको इच्छियेने लक्ष्मणाके
 कालके उस वचनपर विचार करके भीयमक मनमें कदाहु ल
 हुआ । तनका मुँह नीचघे छाक गया और वे कुछ बरक न
 छेके ॥ १७ ॥
 ततो बुद्ध्या विभिक्षित्य कालयाक्यानि राघव ।
 नैतद्वस्तीति निश्चित्य तृप्तीमासीन्महायणा ॥ १८ ॥
 तयभात् करक वचनोंपर बुद्धिपूर्वक सोच-विचार
 करके मयायशस्वी भीरुनायकी इत निश्चयपर पहुँचे कि
 'अब यह सब कुछ भी न रहेगा ।' ऐसा सोचकर वे पुन
 हो रहे ॥ १८ ॥

इत्यार्ये श्रीमन्नानायके वाक्यकीकिये आदिहाथे उत्तरकाण्डे पद्मधिकशततमः सर्गः ॥ १ ५ ॥
 इस प्रकार श्रीमन्मूर्तिनिर्मित अक्षरानायक धर्मिकार्यके उत्तरकाण्डमें एक सौ पैंचवाँ सम् पूरा हुआ ॥ १ ५ ॥

पद्मधिकशततम सर्ग

श्रीरामके त्याग देनेपर लक्ष्मणका शरीर स्वर्गगमन

मयाह्युक्तमयो वीन ह्यु सोममिच्छात्पुत्रम् ।
 राघव लक्ष्मणो वाक्य इदो मधुरममवीत् ॥ १ ॥
 भीयमचन्द्रकी राहुमत्त कन्दमाके लयान हीन हो गये
 वे उन्हें शिर छुटाने लेद करते देख लक्ष्मणने बड़े हर्षके
 लक्ष मधुर वाक्यमें कहा— ॥ १ ॥
 न सताप महायाहो मर्त्यं कर्तुमर्हसि ।
 पूवमिमाणबद्धा हि कालस्य गतिरीहदी ॥ २ ॥
 'महाबाह ! आपको मरे क्षिप संताप नहीं करना चाहिये'
 क्योंकि पूवकर्मके कर्मोके देवी हुई बाककी गति एही ही है ॥
 अबि मा सौम्य विरुग्ध प्रतिष्ठां परिपास्य ।
 हीनप्रतिष्ठाः कालस्य प्रपान्ति नरक मरा ॥ ३ ॥
 'सौम्य ! आप निश्चित हाकर मेरा बर कर जाऊँ और
 देखा करके अपनी प्रतिष्ठाका पावन कर । बाहुस्य !
 प्रतिष्ठा मद्य करनेवाक मनुष्य नरकमें पड़ते हैं ॥ ३ ॥
 यदि प्रतिमदाराज यद्यनुमाद्यता मयि ।
 अदि मां निर्बिदाहस्त्य धर्मं वधय राघव ॥ ४ ॥

महायाह । यदि आपका मुहारर प्रेम है और यदि आप
 मुझे कल्पयात्र समस्त हैं तो निन्दा हाकर मुझे प्राणदण्ड दें ।
 खनुन्दन । आप अपने बर्मेकी इच्छि करें ॥ ४ ॥
 लक्ष्मणने तपोकस्तु राम मद्यलितेन्द्रिया ।
 मन्त्रिणाः समुपानीय तपैष च पुरोधमम् ॥ ५ ॥
 मन्त्रिणीक तवापुत्र तेषां मध्ये स राघवा ।
 दुर्यासोऽभिगम सैष प्रतिष्ठां तापसस्य च ॥ ६ ॥
 धननके देखा करनेन भीयमरी इन्द्रियों ब्रह्म हा
 ठडी—वे पैसि विचिन्तितसे हा गये और मन्त्रियों तथा
 पुरोहितकीके बुवाकर उन सदाक बीजमें वह लया वृत्तगत
 बताने लगे । भीरुनायकीने बुर्बाकाके अगमन और लक्ष्म-
 णवारी ब्रह्मक समक ही हुई प्रतीहारी बत भी बन्धी ॥
 तच्छ्रुत्वा मन्त्रिणा सर्वे सोपाध्याया समासत ।
 पतिष्ठन्तु महातजा यापयन्तदुपाय ह ॥ ७ ॥
 यह सुनकर सब मन्त्री और उपाध्याय पुनवार ४८ छ

आत्मके मुसुते क्से गये भिगामह त्रशाके संवेद्यको मुनकर
धीरुनापयी हँते हुए उच सर्वसंहायी आत्मके बोधे—॥१६॥

धुन्वा मे देवदेवस्य वाक्य परममनुत्तमम् ।
प्रीतिर्हि महती जाता तयागमनसम्भवा ॥ १७ ॥

आत्म । देवापिदेव त्रशाबीध यह परम अद्भुत वचन
मुनकेने सिद्ध इच्छिने दुम्हारे आनेसे मुझे बड़ी प्रसन्नता
हुई है ॥ १७ ॥

अयाणामपि लोकाणा कर्याद्ये मम सम्भवा ।

भद्रं मेऽस्तु यमिष्यामि यत् एवाहमागतः ॥ १८ ॥

प्रीनों लोकोंके प्रयोजनकी सिद्धिके लिये ही मेरा यह
हृत्पापें श्रीमद्वाल्मीकीय वाक्यकीधरे वाक्यकाधरे
इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीय अर्चरामायण अदिग्रन्थके

अन्तार हुआ था वह उद्वेग अब पूरा हो गया इच्छिने
दुम्हाप कस्यप्य हो अय में आते आया था बड़ी बर्षस्य ।
हृद्रतो ह्यसि सस्यमातो न मे तत्र विचारणा ।
मया हि सर्वघृस्त्येषु येयाना वधार्थित्तिन ।
म्यातप्य सर्वसंहार यथा ह्याह पितृमहः ॥ १९ ॥

आत्म । मैंने मनसे दुम्हारा चिन्तन किया था । उच्छिने
अनुत्तर हम यहाँ आने हो अता इस कियको संकर मेरे
मनमें कोई विकार नहीं है । सर्वसंहारकारी फलः । मुझे लगे
अधोमें क्या देवताओंका बधवर्ती होकर ही रहना पड़िये,
जैसा कि पितामहका कथन है ॥ १९ ॥

उत्तरकाधरे अतुरधिक्याततमा सर्गः ॥ १ ४ ॥

उत्तरकाधरे एक ही आर्वा सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ४ ॥

पञ्चाधिकशततम सर्ग

दुर्वासाके छापके भयसे लक्ष्मणका नियम भङ्ग करके श्रीरामके पास इनके आगमनका
समाचार देनेके लिये जाना, श्रीरामका दुर्वासा मुनिको भोजन कराना
और उनका चले जानेपर लक्ष्मणके लिये चिन्तित इना

तथा तयोः सप्तद्वयोर्दुर्वासा भगवानुपि ।
रामस्य वर्धनाकाङ्क्षी राजद्वारमुपागतम् ॥ १ ॥
इन दोनोंने इस प्रकार बातचीत हो ही रही थी कि महर्षि
दुर्वाच राजद्वारपर आ पहुँचे । वे भीयमचन्द्रधीते सिद्धना
पाहते थे ॥ १ ॥

सोऽभिगम्य तु सौमिभिमुवाच आविस्वतमा ।

राम वर्धाय मे शीघ्रं पुरा मेऽर्घ्योऽतिवर्तते ॥ २ ॥

उन मुनिभेदने सुमित्राकुमार लक्ष्मणके पास आकर
कहा—युम शीम ही मुझे भीयमचन्द्रधीते सिद्धना दो । उनसे
मिसे किना मेरा एक काम निम्न रहा है ॥ २ ॥

मुनेस्तु भाषितं भुत्वा लक्ष्मणः परवीरहा ।

अभिवाच महारामाय वाक्यमेतदुवाच ॥ ३ ॥

मुनिश्री यह कल मुनकर राधुवीरिभ्य संहर करनेवाले
लक्ष्मणने उन महारामको प्रणाम करके यह बात कही—॥३॥

कि कार्यं ब्रूहि भगवन् को ध्यायं कि करोम्यहम् ।

व्यग्रो हि राधको प्रह्वन् मुहूर्ते परिपाह्यताम् ॥ ४ ॥

मगतम् । ब्रह्मणे व्यापक कोन-स्य क्रम है । क्या
प्रवाकन है । उदर में अन्नकी कोन-ही सेवा करे । ब्रह्मन् ।
इस समय भीरुपुत्रावधी तूरे कार्यमें संलग्न हैं; अता दो
पहीतक उनकी प्रतीक्षा कीजिये ॥ ४ ॥

तच्छ्रुत्वा आदिशार्कूला कोषेन कस्तुरीकृतः ।

ब्रह्मण लक्ष्मण वाक्य निर्वृहधिप्य कस्तुर्या ॥ ५ ॥

वह मुनकर मुनिभेद दुर्वासा केते उमत्तमा ठठे और
लक्ष्मणकी ओर इत प्रकार देखने लगे मानो अन्धकी नेचापिते
ऊँई मस कर लगे । धय ही उनते इत प्रकार बोधे—॥५॥

अस्मिन् क्षणे मां सौमित्रे रामाय प्रतिवेद्य ।
अस्मिन् क्षणे मा सौमित्रे न निवेद्यसे यदि ।
वियय त्वा पुरं वैव शयिष्ये राधय तथा ॥ १ ॥
भरत वैव सौमित्रे पुष्पाक पा च सततिः ।
न हि शक्याम्यह भूयो मस्यु धारयितु इति ॥ ७ ॥

सुमित्राकुमार । इस क्षण श्रीरामको मेरे अग्रमनकी
धरणा हो । यदि अपनी-अपनी उनते मेरे अग्रमनका लक्षण
गर्ही निवेदन करेगे तो मैं इस राधको, मारकी दुम्हारे
भीयमको, भरतको और दुम्हारेभी की ओ संतति है; उच्छिने
भी धाय दे दूँगा । मैं पुना इत क्षेपको अपने इरवने बरच
नहीं कर लूँगा ॥ १ ॥ ७ ॥

तच्छ्रुत्वा भोरलक्षणा वाक्यं तस्य महारमना ।

चिन्तयामास मनसा तस्य वाक्यस्य निश्चयम् ॥ ८ ॥

उन महारामका यह शेर वचन सुनकर लक्ष्मणने उनको
बधीते को निश्चय प्रकट हो रहा था; उसका मन-ही मन
बिन्दर किया ॥ ८ ॥

एकस्य मरण मेऽस्तु मा भूत् सर्वविनाशानम ।

इति बुध्यया विनिश्चिष्य राधवाय स्पष्टव्यत् ॥ ९ ॥

अकेल मेरी ही मृत्यु हो यह बन्का है किन्तु उनका
बिनाश नहीं होना चाहिये अपनी बुद्धिवाय देना निश्चय
करके लक्ष्मणने भीरुनापधीते दुर्वासाके अग्रमनका समाकर
निवेदन किया ॥ ९ ॥

लक्ष्मणस्य वाचः श्रुत्वा रामः काळं विद्युत्प य ।

निश्च्यत्यस्वरितो राजा अग्नेः पुषं वदर्श ॥ १० ॥

लक्ष्मणकी बात सुनकर राजा श्रीराम काळको विद्य करके

इतं ही निकले और अथियुत्र बुवाणामे मिय ॥ १ ॥
 सोऽभिगच्छ महात्मान ज्येष्ठन्तमिय तेजसा ।
 किं कार्यमिति काकुत्स्थः कृत्वाऽऽतिरभागत ॥ ११ ॥
 अपने तेके प्रशस्तितसे हते हुए महारणा बुवाणामे
 प्रथम करके भीरुनायकीने हाथ बँडकर पूछा—पारपे ।
 नर किन क्या भासा है ? ॥ ११ ॥
 तद् वाक्य राघवंषोक्तं श्रुत्वा मुनिवर प्रभु ।
 प्रत्याह राम बुवासाः श्रूयतां धर्मवत्सल ॥ १० ॥
 भीरुनायकीनी कही हुए उस बातका मुनिकर प्रशस्त-
 एमी मुनिवर बुवासा उनसे बाधे—‘धर्मवत्सल । मुनिव ॥ १० ॥
 अथ वपसहस्रस्य समातिमम राघव ।
 सोऽहं भासन्नमिच्छामि यथासिद्धं तथानव ॥ १३ ॥
 ‘मिणाप खुनन्दन । मीने एक हजार बर्गोत्तक उपवास
 किया । आब मेरे उस ब्रह्मी समातिभक्त दिन है इसस्थिे इस
 समय आरके यहाँ अब मी माऊन तैयार हा उसे मी प्ररण
 करना चाहता हूँ ॥ १३ ॥
 तच्छ्रुत्वा वचन राजा रामवः प्रीतमानसः ।
 भोजनं मुनिमुत्पाय यथासिद्धमुपाहरम् ॥ १४ ॥
 पर मुनिकर राजा भीरुनायकी गन-की-भन बड़े प्रसन्न
 हुए और उन्होंने उन मुनिभेदको तैयार माऊन परोका ॥ १४ ॥
 स तु मुपन्ना मुनिभेदस्तद्वक्ष्यमनुतोपमम् ।

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बाष्पदीर्घे आदिवाक्ये उत्तरकाण्डे पञ्चदशोऽध्यायः सर्गः ॥ १५ ॥
 एष प्रथमः श्रीवृत्तान्तिकिरिति अत्र रामायण अतिक्रम्यक उत्तरकाण्डे पञ्च सो पंचमोऽस्य पूज्य ॥ १५ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः सर्गः

श्रीरामक त्याग दनेपर लक्ष्मणका मधारीर स्वर्गगमन

अथाब्रुवन्मयो वीन हृद्वा सोममियान्दुक्तम् ।
 पापवं सक्षमणो वाक्य इत्ये मधुरमप्रवीत् ॥ १ ॥
 भीष्मचन्द्रकी सङ्गुमत्ता पञ्चमाके समान वीन हा गय
 ये उन्हे तिर छुट्टये ले- करते देका सक्षमणने वदे हयके
 देव मधुर बाजीमें ब्रता—॥ १ ॥
 न सत्याय महापाहो मरुर्थं कनुमर्हसि ।
 पूत्रनिमाण्यदा हि कान्तस्य गतिरीहवी ॥ २ ॥
 ‘महापाह । आरका मरे त्रियभूतान मदी करना वादिप’
 क्येके पूत्रकमक क्येने बची हुई काककी गति एही ही है ॥
 यदि मा सौम्य विद्वम्ब प्रतिष्ठा परिपालय ।
 दीनप्रतिष्ठाः काकुत्स्थ प्रयासि नरकः नराः ॥ ३ ॥
 ‘स्येव । आर निश्चित हाकर मय बच कर जानें और
 देका करके मरनी प्रतिष्ठाका पालन करें । काकुत्स्थ ।
 प्रतिष्ठा मय करनेकाय मनुष्य मरकने पढ़ते हैं ॥ ३ ॥
 यदि मी प्रतिमहागज वचनुमाहता मधि ।
 यदि मां निर्पित्तहृत्स्वं धर्मं वधय राघव ॥ ४ ॥

साधु भामति सम्भाष्य स्वमाधममुपागमत् ॥ १५ ॥
 वह अमृतक समान अन्न प्ररण करक दुःख- मुनि वृत्त
 हुए और भीरुनायकीने सधुवाच व अपने आभयपर चले
 आये ॥ १५ ॥
 तस्मिन् गते मुनिवरे स्वाधम मदमणाप्रज ।
 तस्मृत्य काल्प्याभ्यासि ततो दुःखमुपागमत् ॥ १६ ॥
 मुनिवर बुवाणाक अपने आभयका च- आनपर सक्षमण
 के वह मर्द भीराम कालके वचनोद्य लक्षण परके दुःखी
 हा गये ॥ १६ ॥
 दुःखम च सुमत्ततः स्मृत्या तद्घोरवदानम् ।
 अथाब्रुवो वीनमना ध्यादसु न शशाक ह ॥ १७ ॥
 मर्दकर भाभी भ्रष्टावियोगक हयका दृश्यमें स्मनेकाक
 कालक उस वचनपर विचार करक भीरामक मनमें बड़ा दुःख
 हुआ । उनका मुँह नीचये छूक गया और व कुछ बोल न
 सके ॥ १७ ॥
 ततो बुद्ध्या त्रिभिर्यत्कालयाभ्यासि राघव ।
 नितदस्मीति निश्चित्य लृण्णीमास्तीमहायशा ॥ १८ ॥
 हयभावा कालक वचनोपर बुद्धिपूर्वक सच विचार
 करक महाभयस्थी भीरुनायकी इस निश्चयपर पहुँचे कि
 ‘अब यह सब कुछ भी न रहेगा ।’ एका आषकर मे खुन
 हो रहे ॥ १८ ॥

इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बाष्पदीर्घे आदिवाक्ये उत्तरकाण्डे पञ्चदशोऽध्यायः सर्गः ॥ १५ ॥
 एष प्रथमः श्रीवृत्तान्तिकिरिति अत्र रामायण अतिक्रम्यक उत्तरकाण्डे पञ्च सो पंचमोऽस्य पूज्य ॥ १५ ॥

पर मुनिकर उन लकी और :

गये (कोरें कुछ बाध न सक) । एक महातेजस्वी वलिहारीने
बह बल करी—॥ ७ ॥

दृष्टमेतन्महाबाहो क्षयं ते रोमहर्षणम् ।
कश्मणेन वियोगश्च तव राम महत्प्रशमः ॥ ८ ॥

महाबाहो ! महाबाहूजी श्रीराम ! इत छम्प को रंगटे
कड़े कर देनेवाक्य विद्वत् विनाश अपनेवाक्य है (दुश्मने छाप
ही बहुतसे प्राणियोंको जो साकेत-गमन होनेवाला है) और
कश्मणक छाप को वियोग हो रहा है यह सब मैंने अपनेक-
हाथ पहचाने ही देख किया है ॥ ८ ॥

स्पृष्टैव बलवान् कश्चे मा प्रतिष्ठां वृथा कृपाः ।
प्रतिष्ठायां हि गद्यायां धर्मो हि विस्मयं प्रसेत् ॥ ९ ॥

काम बढ़ा प्रसन्न है । तुम कश्मणक परित्याग कर दो ।
प्रतिष्ठा हठी म करो; क्योंकि प्रतिष्ठाके नष्ट होनेपर धर्मक
छेप हो जायगा ॥ ९ ॥

ततो धर्मे विनष्टे तु शैलेभ्यः सञ्चरावहम् ।
सन्नेहर्विगम सन्ने विनश्येत् तु न सशया ॥ १० ॥

धर्मक छेप होनेपर चतुर्चर प्राणियों देशताओं तथा
श्रुतिकोसहित छापी विच्छेदी नष्ट हो जायगी । इसमें संशय
नहीं है ॥ १० ॥

स त्वं पुरुषगर्भसु शैलेभ्यस्त्यागिष्यासि ॥ ११ ॥

अतः पुत्रसिंह ! तुम शिशुकाकी रक्षार दक्षि रक्षते
तुष्ट कश्मणको त्याग दो और उनके विना अब धर्मपूर्वक
सिंह रक्षक सम्पूर्ण कामको लक्ष्य एवं सुखी बनाओ ॥

तेषां तत् समयेत्याग वाक्यं धर्मार्थसंक्षिप्तम् ।
श्रुत्वा परिप्लो मध्ये रामो कश्मणमप्रवीत् ॥ १२ ॥

जहाँ एकत्र हुए मन्त्री पुरोहित आदि एक उमाठोंकी
उठ तमाके बीच बसिष्ठ कुनिकी करी हुई वह बल गुनकर
श्रीरामने कश्मणसे कहा—॥ १२ ॥

हृत्पर्यं श्रीमद्रामायणे वाक्योक्तिषु धृतिशक्त्यै उदरकण्ठे पत्रिभ्रातृभ्याः सार्धं ॥ १ ॥
इत प्रथम श्रीमद्रामायणनिर्मितं अरुणप्रथम अधिष्ठानके उदरकण्ठे एक ही उर्मा सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ॥

सप्ताधिकशततम सर्ग

वसिष्ठजीक कहनेसे श्रीरामका पुरवासियोंको अपने साथ ले जानेका विचार
तथा हृष्ट और लजका राज्याभिषेक करना

विश्रुत्य कश्मण रामो दुःखशोकसमन्विता ।
पुरोधसं भगिन्प्रथम निगमांशेवमप्रवीत् ॥ १ ॥

कश्मणका त्याग करके श्रीराम तुल्ल शोकमें मग्न हो गये
तथा पुरोहित मन्त्री और महाकर्मसे इत प्रथम बोले—॥ १ ॥
अप राज्याऽभिषेक्यामि भरतं धर्मयत्समम् ।
अयोध्यायाः पतिं वीर ततो वास्याम्यह वगम् ॥ २ ॥

आज मैं अयोध्याके राज्यपर धर्मयत्सक वीर मार

विसर्ज्ये ह्यां सौमित्रे मा भूत् धर्मविपर्यया ।
त्यागो यद्यो वा विहितः साधुना ह्यभय समम् ॥ १३ ॥

धूमिप्रानन्दन ! मैं दुश्मारा परित्याग करता हूँ, किसी
धर्मक छेप न हो । साधु पुरुषोंक त्याग किया अब अस्प
वच—बोनों समान ही हूँ ॥ १३ ॥

रामेण भाषिते वाक्ये दाय्यव्याकुलितेन्द्रिया ।
कश्मणस्त्यरित प्रायात् स्वगृह न विवेश ह ॥ १४ ॥

श्रीरामके इतना कहते ही उदरकण्ठे नेत्रोंमें आँसू म
आये । वे दूरत वहाँसे चक दिये । अपने घर तक नहीं
गये ॥ १४ ॥

स गत्या सारयूतीरमुपस्पृश्य कृताञ्जलिः ।
निपृष्ट्य सर्वज्ञोतासि निध्यास म मुमोक्ष ह ॥ १५ ॥

सरयूके किनारे जाकर उन्होंने आचमन किया और हाथ
छेक सम्पूर्ण इन्द्रियोंक बसमें करके प्रायवापुको रोफ
किया ॥ १५ ॥

मतिःश्वसन्त युक्तं त सदाकाः साप्सरोगजाः ।
देवाः सविगणाः सर्वे पुष्पैरभ्यकिरंस्तदा ॥ १६ ॥

कश्मणने बागयुक्त होकर आस केना बंद कर दिया है—
बह देख इन्द्र आदि एक देवता श्रुति और अस्पपर्यं उठ
छम्प उनपर पूजोंकी वर्षा करने लगी ॥ १६ ॥

अहदय सर्वमनुजैः सशरीर महाबलम् ।
प्रगृह्य सक्रम्य शक्रसिद्धि सयिवेश ह ॥ १७ ॥

महाबली सक्रम्य अपने शरीरके छाप ही छाप मनुष्योंकी
दक्षिसे आकाश हो गये । उठ समय देवराज इन्द्र उन्हें छाप
छेकर स्वर्गमें चले गये ॥ १७ ॥

ततो विष्णोश्चतुर्भांगमागतं सुरसत्तमाः ।
हृष्टाः प्रमुदिताः सर्वे पूजयन्ति स राघवम् ॥ १८ ॥

मगवान् विष्णुके चतुर्प अंग कश्मणक आया देख लगी
देवता इषते मर गये और उन अपने प्रकृत्यपूर्वक कश्मणकी
पूज की ॥ १८ ॥

इत प्रथम श्रीमद्रामायणनिर्मितं अरुणप्रथम अधिष्ठानके उदरकण्ठे एक ही उर्मा सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ॥

अतश्च राज्ञेके परपर अधिदेक कर्षेण । उसके बरद काको
चक्रण कर्षेण ॥ २ ॥

प्रवेशयत् सम्भारान् म्य भूत् काल्हात्ययो यथा ।
अपीयाह गमिष्यामि कश्मणन गतां गतिम् ॥ ३ ॥

श्रीराम ही एक सामग्री हृष्टाकर के आगे । अब अधिक
छम्प नहीं थीक्या चाहिये । मैं आज ही कश्मणके पत्रक
अनुसरण करूँगा ॥ ३ ॥

तन्मूर्त्त्या राघवेभोक्तं सवाः प्रकृतयो मृदाम् ।
 मूर्त्तिभिः प्रपत्ता मूर्त्तौ गतसत्त्वा इयामग्रम् ॥ ४ ॥
 श्रीरामचन्द्रकीर्त्तनी यह वाट मुनकर प्रबन्धकारके समी स्वाम्
 कर्त्तपरमाया टेकर पद गने और प्राणहीनने हो गने ॥४॥
 प्रपत्ता विरहोऽमूर्त्तमूर्त्त्या राघवभाषिणम् ।
 राघव विगर्हयामास घबल वेदमप्रधीत् ॥ ५ ॥
 श्रीरघुनाथकीर्त्तनी यह वाट मुनकर भरतका तो होय ही
 बर गम् । वे गम्भीर निन्दा करने छे और इन प्रकार
 बने—॥ ५ ॥
 सत्येन्द्रहं शपे राज्य स्वर्गभोगेन चैव हि ।
 न कामये यथा राज्यत्वा विना रघुनन्दनम् ॥ ६ ॥
 वाचन् । रघुनन्दन । मैं स्वयंकी शपथ लाकर कहता
 हूँ कि आपके बिना मुझे राज्य नहीं चाहिये, स्वर्गका भोग भी
 नहीं चाहिये ॥ ६ ॥
 इमौ कुशीलस्थौ राज्ञश्चभिरिष्यत् वराधिप ।
 कोशलेषु कुशं धीरमुत्तरेषु तथा सधम् ॥ ७ ॥
 वाचन् । नरेन्द्र । आप इन कुश और कश्मीरराज्याधिक
 कीजिये । दक्षिण कोशलेमें कुशको और उत्तर कोशलेमें कश्
 मीरको राज्य बनाइये ॥ ७ ॥
 रघुप्रभ्य च गच्छन्तु वृतास्त्वरितबिभ्रमाः ।
 इदं गमन्मत्स्यार्कं दीपमाकाश्यातु मा शिरम् ॥ ८ ॥
 जब अपनेबाले वृत्त वीर ही रघुप्रभके पास भी जायें
 और उन्हें हमकोगोपी इस महाबाहादुर बुजानत मुनाबैं । इतमें
 निम्न नहीं रोना चाहिये ॥ ८ ॥
 तन्मूर्त्त्या भरतेभोक्तं हृष्टं व्यापि ह्यपोमुक्त्वा न ।
 पौरव्यं तुन्मत्तं सततान् वसिष्ठो वाक्यमप्रधीत् ॥ ९ ॥
 मरतीका बरत मुनकर तथा पुरवासियोंको नीचे मुक्त किये
 हुक्को केश हृष्ट नैत्र महर्षि वसिष्ठने कहा—॥ ९ ॥
 वस्तु राम इयाः पश्य धर्मिणं प्रकृतीर्गताः ।
 आपैर्गार्भीक्षित कार्ये मा वीर्यां विप्रियं कृथाग ॥ १० ॥
 वस्तु श्रीराम ! वृत्तपर पड़े हुए इन प्रकृतियोंकी ओर
 देखो । इनका अभिप्राय जानकर इसीके अनुसार कार्य करो।
 इनकी इच्छाके विपरीत करने इन पैकारोंका दिल न
 दुकाओ ॥ १० ॥
 वसिष्ठस्य तु वाक्येन उत्थाप्य प्रकृतीजनम् ।
 किं करोमीति कश्चिद्व्यङ्गः सार्धान् घबनमप्रधीत् ॥ ११ ॥
 वसिष्ठके कहनेसे श्रीरघुनाथकीने प्रकृतियोंका उत्थापना
 और कस्से पूछा—यही आपसेगोता कौन-का कार्य कि
 करे ॥ ११ ॥
 ततः सत्याः प्रकृतयो यम वचनमनुयन् ।
 गच्छन्तमनुगच्छन्ता एव राम वसिष्ठसि ॥ १२ ॥
 तब प्रकृतिके समी कश्च श्रीरामसे बोले—रघुनन्दन !

आप जहाँ भी जायेंगे, आपके पीछे-पीछे हम भी वही
 जायेंगे ॥ १२ ॥
 पौरैषु यदि ते प्रीतिर्विधिं स्नेहो ह्यनुत्तमः ।
 सपुत्रद्वाराः काकुत्स्थस्य सम गच्छन्म सत्ययमम् ॥ १३ ॥
 काकुत्स्थ । यदि पुरवासियोंपर आपका प्रेम है, यदि
 हमपर आपका परम उत्तम स्नेह है तो हमें साथ चकनेकी आज्ञा
 दीजिये । हम अपने ही-पुत्रोंपरित आपका साथ ही स्वर्ग
 पर अपनेको उठत हैं ॥ १३ ॥
 तपोधन वा दुर्गं वा नदीमम्भोनिधिं तथा ।
 वयं ते यदि न स्थान्याः सर्वाभ्यो नय इच्छर ॥ १४ ॥
 भ्रामिन् । आप तपोधनमें या किसी दुर्गमें ज्ञानमें
 अपना नदी या समुद्रमें—जहाँ जहाँ भी जायें, हम सबको साथ
 ले चलें । यदि आप हमें स्वर्गा देने योग्य नहीं मानते हैं तो
 ऐसा ही करें ॥ १४ ॥
 यथा नः परमा प्रीतिरेव नः परमो वरः ।
 छद्मसा नः सदा प्रीतिस्तथायानुगमने मृप ॥ १५ ॥
 यही हमारे ऊपर आपकी सपने वही कृपा हाथी और
 यही हमारे लिये आपका परम उत्तम वर होना । आपके पीछे
 कस्मेंसे ही हमें सदा शार्ङ्ग प्रसन्न होयें ॥ १५ ॥
 पौराणा वदन्ति च बाह्मिण्येव सोऽप्रधीत् ।
 स्वकृतान्त वाच्यवेद्य तस्मिन्वहनि राघवः ॥ १६ ॥
 कोशलेषु कुशं धीरमुत्तरेषु तथा सधम् ।
 अभिरिष्यत् महात्मासुतुभौ रामः कुशीलस्थौ ॥ १७ ॥
 अभिरिष्यत् सुतायै प्रतिष्ठाप्य पुरे ततः ।
 परिष्वज्य महाबाहुर्मूर्त्त्युपामास्य स्वासहत् ॥ १८ ॥
 पुरवासियोंकी हृष्ट मति देख श्रीरामने ध्यायतु' करकर
 उनकी इच्छाका अनुमोदन किया और अपने कर्त्तव्यका निश्चय
 करके श्रीरघुनाथकीने उठी दिन दक्षिण कोशलेके राज्यपर
 वीर कुशाग्र और उत्तर कोशलेके राक्षसशासनपर सबको
 अभिरिष्य कर दिया । अभिरिष्य हुए अपने उन दोनों
 महात्मन्की पुत्र कुश और कश्मीरके गेटने किताकर उनका गठ
 आछिन्न करके महाबाहु श्रीरामने बारंबार उन दोनोंके मस्तक
 हँसि फिर उन्हें अपनी-अपनी राजधानीमें भेज दिया १६-१८
 रथानां तु स्रहस्त्राणि मागानामनुतामि च ।
 वृत्तापुतामि च्चाधानामेकैकस्य भर्तृ दृष्टौ ॥ १९ ॥
 उन्होंने अपने एक एक पुत्रको कई हथियार रख रख
 हथियार हाथी और एक साथ छोड़े लिये ॥ १९ ॥
 यदुपकी यदुपनौ हृष्टपुत्रजन्तवृत्तौ ।
 स्य पुरे प्रेययामास आतरी ना कुशीलस्थौ ॥ २० ॥
 दोनों माह कुश और कश्मि प्रपुर रख और अपने अपने
 हाथी वे हृष्ट-पुत्र मनुष्योंसे लिये रहने लगे । उन दोनोंको
 श्रीरामने उनकी शस्त्रानिधिमें भेज दिया ॥ २० ॥
 अभिरिष्यत् ततो धीरो प्रस्थाप्य स्वपुर तथा ।

इन्द्रभियेक सुतपोद्वयो राक्षसमन्दन ।
तथानुगमने राजन् बिद्धि मां हृत्निश्चयम् ॥ १४ ॥

एकुम्भनरन। मैं अपने दोनों पुत्रों का सम्भारिक करके
रुम्भ हूँ। यन्। आप मुझे भी अपने छत्र चक्रेक हृद
निश्चयके पुत्र समझें ॥ १४ ॥

न चान्यद्वा घत्तम्पमतो वीर न शासकम् ।
विहस्यमानमिच्छामि मद्रिघेन विशेषतः ॥ १५ ॥

वीर। याव इसके विपरीत आप मुझे और कुछ न
कहिये। क्योंकि उग्रसे बंदकर भरे सिये दूखत हूँ। दण्ड न
है। मैं नहीं चाहता कि किसीके विशेषत मुझ-सेके सेवक-
के हाथ आपकी आज्ञाक उलटान हो' ॥ १५ ॥

तस्य तां सुप्रिमह्वीवा विद्याय रघुनम्भनः ।
बाधमित्येष शत्रुश्च रामो बाधयमुवाच ॥ १६ ॥

शत्रुपक्ष यह हृद विचार बनकर श्रीरघुनाथजीने उनसे
कहा—'बहुत अच्छा' ॥ १६ ॥

तस्य वाक्यस्य वाक्यान्ते धामयः कामरूपिणः ।
शुभराक्षससहाय्य समापेतुरनेकशः ॥ १७ ॥

उनकी यह बात समाप्त होते ही इच्छानुसार कम बाण
भ्रमेशके वानर, रीठ और एकजेंके शत्रुशय बहुत बड़ी
शंकासे बरों आ पहुँचे ॥ १७ ॥

सुग्रीव तं पुच्छन्त्य सद्य एव समागताः ।
त राम प्रष्टुमन्वशा म्बगायामिमुञ्जं स्थितम् ॥ १८ ॥

अनेक-वाक्य करनेके लिये उद्यत हुए श्रीरामके दशान-
की इच्छा समझ लिये वे सभी वानर सुग्रीवके आगे करके
बर्षों पहले वे ॥ १८ ॥

दशपुत्रा मूर्धिरसुता गन्धर्वाणां सुतास्तथा ।
रामस्य विदित्वा तं स्वयं एव समागताः ॥ १९ ॥

वे राममभियाद्योः स्वयं वानरराक्षसाः ।
उनमेंसे कितने ही देवताओंके पुत्र थे, कितने ही
सुरिकेंके बाणक थे और कितने ही गन्धर्वाके उल्लस हुए
थे। श्रीरघुनाथजीके स्त्रीकासंबन्धका समय बनकर वे सब-
के सब बरों आये थे। उक्त सभी वानर और राक्षस श्रीरामको
मन्य करके बोले— ॥ १९ ॥

तथानुगमने राजन् सख्याताः स्म समागताः ॥ २० ॥
परि राम विनासाभिगच्छेत्स्थ पुरुयोत्तम ।
यमन्वदमिवाद्यस्य स्वया स्म विनिपातितः ॥ २१ ॥

यन्। हम भी आपके हाथ चक्रेक निरपय लेकर
बर्षों आये हैं। पुरुयत्तम श्रीराम। यदि आप हमें हाथ लिये

बिना ही चले जायेंगे तो हम यह समझेंगे कि आपने ममदण्ड
उठाकर हमें मार लिया है' ॥ २० ॥ २१ ॥

पत्तस्मिन्मन्तरे राम सुग्रीवोऽपि महावसः ।
प्रणम्य विधियद् वीर विज्ञापयितुमुद्यतः ॥ २२ ॥

इसी बीचमें महावसकी सुग्रीव भी वीर श्रीरामका विधि
पूर्वक प्रणाम करके अपना अभिप्राय निवेदन करनेके लिये
उद्यत हो बोले— ॥ २२ ॥

अभिविध्याद्बद्धं वीरमागतोऽस्मि नरेश्वर ।
तथानुगमने राजन् बिद्धि मां हृत्निश्चयम् ॥ २३ ॥

नरेश्वर। मैं वीर अज्ञातका सम्भारिक करके आया हूँ।
आप समझ लें कि मेरा भी आपके छत्र चक्रेक हृद
निश्चय है' ॥ २३ ॥

तस्य तद् घबन भुत्वा रामो रमयतां वरः ।
धानरेन्द्रमयोवाच मैत्र तस्यानुश्रितयन् ॥ २४ ॥

उनकी यह बात सुनकर मनको रमानेवाले पुरुयोंमें श्रेष्ठ
श्रीरामने वानरराज सुग्रीवकी मित्रताका विचार करके उनसे
कहा— ॥ २४ ॥

सखे शृणुष्व सुग्रीव न स्वप्नाह विनाहृतः ।
गच्छेय देवलोके वा परम वा पद महत् ॥ २५ ॥

कले सुग्रीव। मेरी बात सुनो। मैं तुम्हारे बिना देव-
लोकमें और महान् परमपर वा परमधाममें भी नहीं जा
सकता' ॥ २५ ॥

तेनैयमुक्तं कापुत्रस्यो वाडमित्प्रमयीत् स्वयन् ।
विभीषणमयोवाच राक्षसेन्द्र महावसः ॥ २६ ॥

पुत्रके वानरों और राक्षसोंकी भी बात सुनकर महा-
वसकी श्रीरघुनाथकी 'बहुत अच्छा' करकर मुस्कुराये और
राक्षसराज विभीषणसे बोले— ॥ २६ ॥

यायत् प्रजा धरिष्वस्ति तायत् स्वयै विभीषण ।
राक्षसेन्द्र महाधीय लक्ष्म्याः स्य धरिष्वस्ति ॥ २७ ॥

महावसकी राक्षसराज विभीषण। जबतक उत्तरकी
प्रथा बँधन भारत करेगी, तबतक तुम भी ब्रह्ममें रहकर
अपने शरीरको भारत करोगे ॥ २७ ॥

यायच्छास्त्रं स्वयं यायत् विद्वति मेदिनी ।
यायद्य मन्त्राया लोके तायद् राज्यं तथामिह ॥ २८ ॥

जबतक शास्त्रमा और सूर्य रहेंगे जबतक पृथ्वी रहेगी
और जबतक उत्तरमें मेरी कथा प्रचलित रहेगी तबतक इन
मूत्रकर तुम्हारा राज्य बना रहेगा' ॥ २८ ॥

शासितञ्च सखित्वेन कार्यं ते मम शासनम् ।
 प्रज्ञा सरस धर्मो नोत्तर यक्षुमर्हसि ॥ २९ ॥
 मीने मित्रभावे ये यत्नं तुमसे क्रीं हैं । तुम्हें मेरी
 आज्ञा का पालन करना चाहिये । तुम धर्मपूर्वक प्रज्ञा भी रख
 करो । इस समय मैंने जो कुछ कहा है, तुम्हें उसका प्रति-
 बन्ध नहीं करना चाहिये ॥ २९ ॥
 किंवाप्यव् वक्षुमिच्छामि राक्षसेन्द्र महाबल ।
 आराध्य जगत्पामिन्व्याकुकुब्जद्वैतम् ॥ ३० ॥
 आराध्यनीयमनिश देवैरपि सयासथैः ।

‘महाबली उल्लस्य । इसके विना मैं तुमसे एक रात
 और करना चाहता हूँ । हमारे इन्हाकुकुब्जे देवता हैं
 मगवान् अन्नाय (भीषेय्यायी मगवान् विष्णु) । इन्द्र
 यदि देवता भी उनकी निरन्तर आराधना करते रहते हैं ।
 तुम भी सदा उनकी पूजा करते रहना’ ॥ ३० ॥
 तथेति प्रतिजग्राह रामवाच्यं विभीषण ॥ ३१ ॥
 राजा राक्षसमुक्त्यामां राभ्यापामनुस्मरन् ।

उल्लस्य विभीषणे भीष्मनायकीं भी इव आज्ञाको
 अपने हृदयमें धारण किया और ‘बहुत अच्छा’ कहकर
 उसका पालन स्वीकार किया ॥ ३१ ॥
 तमयमुफत्या काकुब्जस्थे हनुमस्तमयाप्रवर्तत् ॥ ३२ ॥
 जीवित हस्तपुम्निस्त्वं मा प्रतिज्ञां दृष्या हृष्याः ।

विभीषणने ऐसा कहकर भीष्मनायकीं हनुमान्कीसे
 राम— तुमने भीष्मकाक कथित करनेका निश्चय किया
 है । अपनी इस प्रतिज्ञाका बन्धन न करो ॥ ३२ ॥

मत्कथाः प्रचरिष्यन्ति यावत्सोके हरीभ्यम् ॥ ३३ ॥
 तावद् वमस्य सुधीतो मद्द्व्याकथमनुपालयन् ।
 एरीश्वर । बहुतक संसारमें मेरी कथाओंका प्रचार रहे

तत्तक तुम भी मेरी आज्ञा का पालन करते हुए प्रकृत-
 पूर्वक बिचरते रहो’ ॥ ३३ ॥

पयमुकस्तु हनुमान् राघवेण महात्मना ॥ ३४ ॥
 वाच्यं विज्ञापयामास पर हर्षमवाप च ।

महात्मा भीष्मनायकीके ऐसा करनेपर हनुमान्कीसे
 कहा हर्ष हुआ और वे इस प्रकार बोले— ॥ ३४ ॥

यावत् तव कथा सोके विचरिष्यति पावनी ॥ ३५ ॥
 तावत् स्वास्यामि मेविष्मया तयाङ्गामनुपालयन् ।

‘मगवान् । छत्रमें बहुतक आपकी पावन कथाका
 प्रचार रहेगा, तबतक आपके आदेशका पालन करत हुआ मैं
 इस पृथ्वीपर ही रहूँगा’ ॥ ३५ ॥

जाम्बवन्त तपोकर्या तु ह्यत्र ब्रह्मसुत तया ॥ ३६ ॥
 मैत्र्यं च द्विविधं सैव पञ्च जाम्बवन्त सह ।

यावत् कलिञ्च सम्प्रातस्तावद्वीपत सर्वथा ॥ ३७ ॥

इसके बाद मगवान्ने ब्रह्माकीके पुत्र कृते जाम्बवन्
 तथा मैत्र और द्विविधसे भी कहा—‘जाम्बवान्तरित तुम
 पाँचों व्यक्ति (जाम्बवान् विभीषण हनुमान्, मैत्र और
 द्विविध) तबतक जीवित रहो, अतक कि प्रथम एवं कस्मिन्पु
 न आ जाय’ (इनमेंसे हनुमान् और विभीषण तो प्रथमप्र-
 क्त रहनेवाले हैं और शेष तीन व्यक्ति कलि और क्षत्रकी
 क्षितिमें भीष्मकाकारके समय मारे गये या मरगये) ॥ ३६ ३७ ॥
 तामेवमुक्त्वा काकुब्जस्था सर्वास्तानुसयातरान् ।

उवाच यत्तं गच्छत्वं मया सार्धं यद्योचितम् ॥ ३८ ॥

उन सबसे देता कहकर भीष्मनायकीने शेष सभी तीनों
 और मनमेंसे कहा—‘बहुत अच्छा तुमकाओंकी बातें मुझे
 स्वीकार हैं । तुम सब अपने कर्मानुसार मेरे साथ
 चलो’ ॥ ३८ ॥

इत्थार्थे धीमद्रामायणे वात्मीकीये आदिकाण्य उत्तरकाण्डेऽष्टाधिकशततमः सर्गः ॥ १ ४ ३

एत प्रार भीरत्मीर्निर्मित अत्रामयण अत्रिकाण्ड उत्तरकाण्डमें एक ती अर्जुनो समा पूत हुआ ॥ १ ८ ॥



नवाधिकशततम सर्ग

परमभाम जानक लिय निकल हुए धीरामके साथ समस्त अयाच्यावामियोंका प्रस्थान

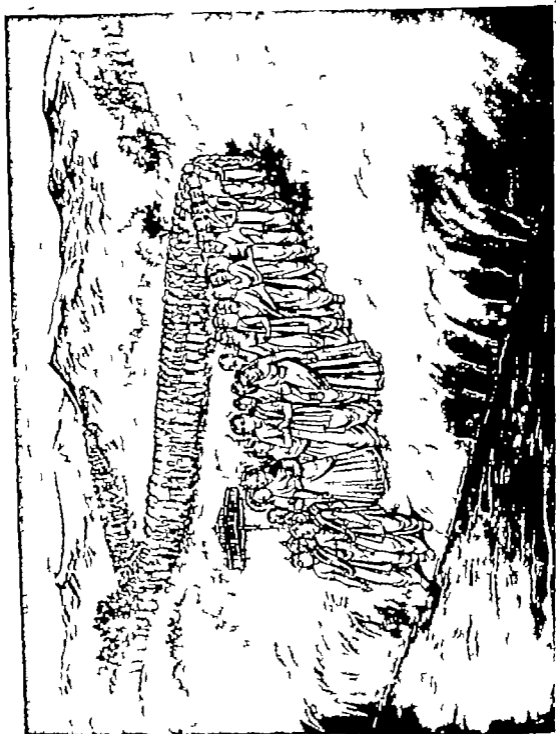
प्रभाताया तु त्रयसो वृषुयन्ता मयायनाः ।

रामः कमलपत्रासः पुराधसमयाप्रवीत् ॥ १ ॥

तरन्तर एव नीनेर च तरेण दुभ्य तव त्रिगण

बस-लक्ष्मणने महापद्मी कमलपत्रन भीमकन्यारणी पुणरित
 मे-क-— ॥ १ ॥

अग्निहात्र ब्रह्मन्मन् दीप्यमानं सह द्विजैः ।



वाञ्छयेयातपत्रं च शोभमानं महापापे ॥ २ ॥

मेरे अग्निहोत्रकी प्रवृत्ति भग्न ब्राह्मणोंके साथ भागे
भग्नो बने । महाप्रयागके पथपर इत नात्राके सम्य मेरे बाज-
सेन यवक्ष सुन्दर छत्र भी चढना चाहिये ॥ २ ॥

तद्यो वसिष्ठस्तेजसी सर्वे निरवशेषतः ।

सक्यर बिभिवद् धर्मं महाप्रस्थानिकं विधिम् ॥ ३ ॥

उनके इत प्रकार करनेपर तेजसी बलिष्ठ मुनिने महा
प्रस्थानिकके विधे उचित समस्त धार्मिक क्रियाओंका विधि
पूर्वक पूर्णतः अनुष्ठान किया ॥ ३ ॥

ततः सूक्तमांबरधरो ब्रह्ममावर्तयन् परम् ।

कुशान् शूदीत्वा पाणिभ्यां सरपू प्रपयायय ॥ ४ ॥

फिर मगवान् भीराम सूक्त ब्रह्म ब्राह्मण किये दोनों
हाथोंमें कुश लेकर परब्रह्मके प्रतिपादक वेद-मन्त्रोंका उच्चारण
करते हुए सरपुनरीके तटपर चले ॥ ४ ॥

सुपाहुरन् क्वचित् किंचिन्निद्रोद्यो निःसुखः पथि ।

निर्भागम गृह्णात् तस्माद् दीप्यमानो यथाशुभम् ॥ ५ ॥

इत समय वे बेदपाठके सिवा कहीं कहींसे और कोई
बात नहीं करते थे । बन्देके अतिरिक्त उनमें कोई वृत्ती
पेद्य नहीं दिखायी देती थी तथा वे औकिक सुखपर परित्याग
करके देखीयमान सूर्यकी भाँति प्रकाशित होते हुए परसे
निकर वे और तन्त्रव्य पथपर बढ़ रहे थे ॥ ५ ॥

रामस्य दक्षिणे पार्श्वे सरपथा भीरुपाश्रिता ।

सन्धेऽपि च मही देवी व्यनस्तायस्तयाप्रता ॥ ६ ॥

मगवान् भीरामके दाहिने पार्श्वमें कम्बु हाथमें स्थिते
भीरुकी उपस्थित थी । कामभागमें मूदेवी विराजमान थी तथा
भाग्य भागे उनकी स्वभाव (संहर)-शक्ति बल रही थी ॥

राग मानाविधाभ्यापि धनुरायसमुत्तमम् ।

तथायुधाश्च त सर्वे ययुः पुरुषदिप्रदाः ॥ ७ ॥

माना प्रहरके पात्र विद्यास एवं उत्तम धनुष तथा
शूर दूतरे अन्य शस्त्र—तभी पुरुष शरीर ब्राह्मण करके
मगवान्के साथ गए ॥ ७ ॥

यद्वा ब्राह्मणरूपेण गायत्री स्वपत्निसी ।

भानाराण्यं परब्रह्मण्यं सर्वे राममनुप्रताः ॥ ८ ॥

करी देर ब्राह्मणका रूप धारण करके चल रहे थे ।
मही तथा बन्देककी रूपसे दत्त भीमार और बरद्वार
की अन्तर्गत भीरामका अनुष्ठान करने में ॥ ८ ॥

श्रूययश्च महारामानः सर्वे एव महीसुराः ।

अन्धगच्छन् महारामान् सर्गाद्द्वारमपावृतम् ॥ ९ ॥

महाराम श्रुति तथा समस्त ब्राह्मण भी ब्रह्मलोकके कुले
हुए ब्रह्मलोक परमात्मा भीरामके पीछे-पीछे गये ॥ ९ ॥

तं वास्तमनुगाच्छन्ति ब्रह्मापुरचराः स्त्रियाः ।

ससूत्रवाल्मीकीकाः सर्वपर्वरक्तिकराः ॥ १० ॥

वन्तापुरकी स्त्रियों भी बावकों, इदों दाखियों, गोंदों
और सेबकोंके साथ निकरकर सरपुतटकी ओर चले हुए
भीरामके पीछे-पीछे च रही थीं ॥ १ ॥

सातपुरच्छ भरतः शत्रुघ्नसहितो ययौ ।

राम गतिमुपागम्य साग्निहोत्रमनुप्रताः ॥ ११ ॥

भरत और शत्रुघ्न वन्तापुरकी स्त्रियोंके साथ अपने
आभवलक्ष्य भगवान् भीरामके, जो अग्निहोत्रके साथ चले
थे, पीछे-पीछे गये ॥ ११ ॥

ते च सर्वे महारामानः सामिहोत्रा समागताः ।

सपुत्रवाराः काकुत्स्थमनुजग्मुमहामतिम् ॥ १२ ॥

वे सब महारामानी भेद पुरुष एवं ब्राह्मण अग्निहोत्रकी
अग्नि तथा स्त्री-पुत्रोंके साथ इत महापापमें सम्मिश्रित होपरम
बुद्धिमान् भीरुनायकीका अनुगमन कर रहे थे ॥ १२ ॥

मन्त्रिणो श्रुत्यपगाश्च सपुत्रपुत्राण्यथाः ।

सर्वे सहानुगा राममन्धगच्छन् प्रहृष्टयत् ॥ १३ ॥

समस्त मन्त्री और मन्त्रियों भी अपने पुत्रों, पुत्रियों,
बाबुओं तथा अनुचरोंसहित सर्वपूर्वक भीरामके पीछे-पीछे चले
थे ॥ १३ ॥

ततः सर्वाः प्रहृतयो हृष्टपुत्रजापृताः ।

गच्छन्तमनुगाच्छन्ति राघव गुणरञ्जिताः ॥ १४ ॥

ततः सग्रीपुमानसन्त स्वपत्तिपुत्रान्यथाः ।

राघवस्यानुगाः सर्वे हृष्टा विगतकल्मसाः ॥ १५ ॥

हर पुत्र मनुष्योंमें मेरे हुए समस्त ब्राह्मण भीरुनायकी
के गुणोंपर मुन्न था इत्यदि ब ही पुरुष पत्नीकी तथा
बन्धु बन्धुवैदितेन उन महापापमें भीरामके अनुगामी हुए ।
उन लोके हृष्टमें प्रकला ॥ और वे सभी पापों रहित
थे ॥ १४ १५ ॥

आता प्रमुदिता सर्वे हृष्टपुत्राश्च वातरा ।

एवं विद्विषामाः सर्वे महापापान् ॥ १६ ॥

सम्पूर्णं ह्यप्युपुष्यं तान्तरागं भी स्नानं करके बड़ी प्रसन्नता-
के साथ किष्किरिचौ मारते हुए भगवान् भीरामके साथ था
रहे थे, वह साथ सधराय ही भीरामका भक्त था ॥ १६ ॥

न तत्र कश्चिद् वीनो वा वीहिदितो वापि युःकित्ता।
इदं समुदितं सर्वं बभूव परमाद्भुतम् ॥ १७ ॥

उनमें कोई भी ऐसा नहीं था, जो वीन-बुली बजवा
कमिठ हो। नहीं एकत्र हुए सब जेगोंके हृदयमें महान् हर्ष
का रहा था और इस प्रकार वह जनसमुदाय अत्यन्त आश्चर्य-
जनक बन पड़ता था ॥ १७ ॥

प्रपुष्पमोऽथ निर्याप्तं राम आनपद्यो जनः।
याः प्रासा सोऽपि हृष्ट्यै स्वर्गापातुण्यतो जनः ॥ १८ ॥

जनपदके जेगोंमेंसे जो भीरामकी यात्रा देखनेके लिये
आये थे, वे भी यह सब उमारेह देखते ही मनपदके साथ
परमभाम आनेको तैयार हो गये ॥ १८ ॥

श्रुत्वापानरररररसि जगाम पुरयासितः।
भागच्छन् परया भक्त्या पृष्टतः सुसमाहितः ॥ १९ ॥

रीक, बागर, एक्स और पुरवासी मनुष्य बड़ी मरिठके

हृत्कार्ये श्रीमद्वाल्मीके वाक्यमीक्ये अक्षरकथने कथाधिकशततमा सर्गाः ॥ १ ९ ॥

इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीरचित अर्धउपमय अक्षरकथने अक्षरकथने एक ठी नहीं सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ९ ॥

दशाधिकशततमः सर्ग

भाइर्योसहित भीरामका विष्णुस्वरूपमें प्रवेश तथा साथ आये हुए
सब लोगोंको स्नानक-लोककी प्राप्ति

अप्यर्धयोऽनं गत्वा नदीं पद्माग्न्युक्ताभिताम्।
सरयू पुष्यसखिन्नां स्वर्शं रघुनन्दनम् ॥ १ ॥

अयोध्याके डेढ़ योजन दूर जाकर रघुकुलनन्दन भगवान्
भीरामने पश्चिमामिमुक्त हो निष्क मास हुई पुष्पसमिष्ठा
सरयूक रचन किया ॥ १ ॥

तां नदीमाहुन्साधतीं सर्वत्रानुसरन् सुधा।
भागताः सप्रसा रामस्त देशं रघुनन्दनम् ॥ २ ॥

तानुनदीमें सब ओर भँवरें उठ रही थीं। वहाँ सब ओर
बस स्थिर रघुनन्दन राजा भीराम प्रयागनोंके साथ एक
उत्तम स्नानपर आये ॥ २ ॥

अथ तस्मिन् मुहूर्ते तु प्रज्ञा लोकापितामहः।

साथ भीरामकक्षेत्रीके पीछे-पीछे एकप्रपिच हाकर बड़े आ
रहे थे ॥ १९ ॥

यानि भूतानि नगरेऽप्यस्तर्धानगतानि च।
राधयं तान्यनुययुः स्वर्गाय समुपस्थितम् ॥ २० ॥

अयोध्यानगरमें जो अदृश्य प्राणी रहते थे, वे भी लोके-
नाम आनेके लिये उठत हुए, भीरुनायकीके पीछे-पीछे पक
दिये ॥ २ ॥

यानि पदपण्डित कश्चिदस्य स्वावराणि शरणि च।
सर्वाणि रामगमने मनुजम्मूर्तिं ताम्यपि ॥ २१ ॥

बराबर प्राणियोंमेंसे जो-जो भीरुनायकीको आते देखते
थे, वे सभी उठ कात्रामें उनके पीछे-पीछे चक देते थे ॥ २१ ॥

नोऽच्छास्वत्तद्वयोप्यायां सुसूक्ष्ममपि हृदयते।
तिर्यग्योनिगताभ्यै सर्वै राममनुमता ॥ २२ ॥

उठ सम्प उध अयोध्यामें जौं जेनेबाक्य कोई जेदे-से-
जेय प्राणी भी रह गया हो, ऐसा नहीं देखा गया था।
तिर्यग्योनिके समस्त जीव भी भीराममें भक्तिभावकरकर उनके

पीछे-पीछे चके जा रहे थे ॥ २२ ॥

हृत्कार्ये श्रीमद्वाल्मीके वाक्यमीक्ये अक्षरकथने कथाधिकशततमा सर्गाः ॥ १ ९ ॥

इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीरचित अर्धउपमय अक्षरकथने अक्षरकथने एक ठी नहीं सर्ग पूरा हुआ ॥ १ ९ ॥

सर्वैः परिवृत्तो देवैर्ऋषिभिश्च महत्प्रमभिः ॥ ३ ॥
व्यापयौ पञ्च काकुत्स्थः स्वर्गाय समुपस्थिता।

विमानशतकोटीभिर्विष्वाभिरभिसचूतः ॥ ४ ॥
उसी क्षण लोकवितामह प्रजापति सम्पूर्ण देवताओं तथा

महात्मा ऋषि-मुनिमोंसे घिरे हुए उठ स्नानपर जा पहुँचे
जहाँ भीरुनायकी परमभाम पचारनेके लिये उतकित थे।
उनके साथ करोड़ों दिव्य विमान घोमा जा रहे थे ॥ १ ४ ॥

विष्पतेजोऽहूर्तं ज्योम ज्योतिर्नूतमनुत्तमम्।
स्वयप्रभैः स्वतेजोभिः स्वर्गिभिः पुष्यकर्मभिः ॥ ५ ॥

स्वय आकाशमण्डल दिव्य तेजसे ज्योत हो अत्यन्त उत्तम
ज्योतिर्मय हो रहा था। पुष्यकर्म करनेवाके स्वर्गाधी स्वर्ग

प्रकथितं ह्यनेनाद्ये भवन्ते तेभ्यो उच्यते स्नानं च उन्नाच्छिदं कर
रे रे ॥ ५ ॥

पुण्या वाया घनुब्रौध गन्धयन्त सुकप्रज्ञाः ।

पपात् पुण्यवृष्टिश्च देवैर्मुक्ता महीषधत् ॥ ६ ॥

परम पवित्र, सुगन्धित पर्यं सुखयस्मिन्नि हवा बध्ने
करी । देवताभ्योऽपि मितये गये यस्मिन्नि दिव्य पुण्योकी मारी
करी होने लगी ॥ ६ ॥

तस्मिन्स्पर्शतैः क्षीर्णे गन्धर्वाप्सरसकुले ।

सरयूसल्लिख राम पद्भ्यां समुपचक्रमे ॥ ७ ॥

उस समय लेकड़ों प्रकारके बाजे बहने लगे और गन्धर्बों
तथा अप्सराओंसे बहोंका स्नान भर गया । इतनेमें ही भी-
रामकरकी सरयूके किन्नेमें प्रवेश करनेके लिये दोनों पैरोंसे
झरो बहने लगे ॥ ७ ॥

एताः पितामहो घार्णां त्यन्तरिक्षाद्भागवत ।

भागच्छ विष्णोभद्र ते विष्टया प्रातोऽसि राधय ॥ ८ ॥

एत ब्रह्मर्षी आकाशसे ही बोके—भीविष्णुस्वस्य रघु
नन्दन । आइये आपका कल्याण हो । इमार बड़ा लौमान्य
है, जो आप अपने परमधामके पधार रहे हैं ॥ ८ ॥

आवृभिः सह देवानैः प्रविशस्य स्विकां तनुम् ।

यामिच्छसि महाबाहोता तनु प्रविश स्विकाम् ॥ ९ ॥

महाबाहो ! आप देवदुष्य तेकवी मार्योके साथ अपने
स्वपमृत कोरुमें प्रवेश करें । आप बिभस्वरुमें प्रवेश करना
चाहें अपने उसी स्वरुमें प्रवेश करें ॥ ९ ॥

वैष्णवीं तां महातेजो यद्वाऽऽकारं सत्पातयम् ।

स्व हि श्लोकमतिर्द्वे न त्वां वेष्टियत् प्रजानते ॥ १० ॥

श्रुते मार्यां विगाहाहर्षीं तत्र पूवपरिमहाम् ।

त्वामधिस्य मदद् भूतमस्य च आजर तथा ।

यामिच्छसि महातेजस्तां तनु प्रविश स्वयम् ॥ ११ ॥

महातेजस्वी परमेधर ! आपकी इच्छा हो तो चतुर्भुज
विष्णुकरमें ही प्रवेश करें अथवा अपने ललाटन आवाधमय
अध्वन्य ब्रह्मकरमें ही विराजमान हो । देव ! आप ही
तन्मूर्त्त कोरुमें आराम हैं । आरवी पुरातन वाली परमाया
(इन्द्रिनी शक्ति)-स्वरुप को विगाहकोरुना योगदेवी हैं
उनका छोड़कर दूसरे कोई आरध पधार्यरुपसे नहीं जानत
हैं क्योंकि आप अचिन्त्य, अविनाशी तथा अजर अमरि

भवत्याभेति ररित परमस हैं, अतः महातेजस्वी राधवेन्द्र !
आप किसमें चाहें, अपने उसी स्वरुपमें प्रवेश करें (प्रतिवित
हो) ॥ ११ ॥

पितामहस्य च भुश्या विनिश्चित्य महामतिः ।

विशेषा वैष्णव तेजः सशरीरः सहानुजा ॥ १२ ॥

पितामह ब्रह्मर्षीकी यह बात सुनकर परम बुद्धिमान्
शोषुनापकीने कुछ निश्चय करके मार्योके साथ शरीरसहित
अपने वैष्णव तेजमें प्रवेश किया ॥ १२ ॥

ततो विष्णुमय देव पूजयन्ति स्म देवताः ।

स्थाप्या मयद्गणाद्यैश्च सेन्द्राः साद्रिपुरोगमा ॥ १३ ॥

किर तो इन्द्र और अग्नि आदि सब देवता, स्वयं तथा
मयद्गण भी विष्णुस्वरुपमें स्थित हुए भगवान् भीरमकी पूजा
(स्तुति-प्रशंसा) करने लगे ॥ १३ ॥

ये च विष्ण्वा श्रुविगणा गन्धर्वाप्सरसश्च याः ।

सुपर्णानागयज्ञाश्च वैश्वानरास्रसा ॥ १४ ॥

तदनन्तर को दिव्य श्रुति, गन्धर्ब अन्धरा गण्ड, नाग
यक्ष देव्य, हानक और यक्ष ये, वे भी महावान्छ गुणगान
करने लगे ॥ १४ ॥

सर्वे पुत्र प्रमुदित सुमन्मपूष्यमनोरथम् ।

साञ्जुसाधिवति तैर्देवैस्त्रिविध गतक्रममयम् ॥ १५ ॥

(ये बाले—) प्रमो ! यहाँ आपन पदापन करनेसे
देवलोकाधिकोंका यह खर उमुराप सत्कर्मदेव्य होनेके
कारण हुए-पुत्र एव आनन्दमय हो गया है । सबके पाप-नाप
मर हो गये हैं । प्रमो ! आपका इमार इतना : सापुवाद है ।
ऐस उन देवताओंने कहा ॥ १५ ॥

अथ विष्णुमहातेज्याः पित्रमदमुयाय ह ।

एयां लोकं अनीधानां दानुमहसि सुप्रथ ॥ १६ ॥

तयस्मात् विष्णुकरमें विराजमान महा-ब्रह्मी भीराम
ब्रह्मर्षीसे बोले—उत्तम व्रतका पासन करनेगठ विप्रमह ।
इत तन्मूर्त्त बनतमुदायका भी आप उत्तम लोक प्रदान करें ॥
इसे हि सर्वे स्नेहागमामनुयाता यान्ति-मः ।

भक्ता हि भजित्वापाद्य स्वनाम्मानश्च मरुत् ॥ १७ ॥

एव सब लोग स्नेहयय मेरे लिये आये हैं । वे सब-क नर
कपली और मेरे भक्त हैं । इतनी मेरे लिये भन्ते लोकिक
मुनीका परित्याग कर दिया है अतः वे सब मेरे अनुग्रह
पाय हैं ॥ १७ ॥

तच्छ्रुत्वा विष्णुयस्य प्रह्ला लोकेऽगुरुः प्रभुः ।
 लोकेऽन्यत् सत्त्वानकान् नामयास्यन्तीमे समागताः ॥ १८ ॥
 भ्रातृन् विष्णुश्च यद् वचनं सुनकर लोकेऽगुरु मगवान्
 प्रह्लासी लोके—भ्रातृन् । यहाँ आये हुए ये सब लोग
 'सत्त्वानक' नामक लोकमें आयेगे ॥ १८ ॥
 यच्च तिर्यग्मात किञ्चित् स्थानमनुचिन्तयत् ।
 प्राजांस्यप्यस्ति भक्त्या तत् सत्त्वानेषु नियम्यति ॥ १९ ॥
 सर्वैर्भ्रातृगुणैर्युक्ते प्रह्लास्त्रोक्तानन्तरे ।

पशु-पक्षि-मोक्षी योनिमें पढ़े हुए चीबोंमेंसे भी जो कोई
 भयपक्ष ही भक्तिभावसे चिन्तन करता हुआ प्राणोंका परिचारा
 करेगा वह भी संशयक-लोकमें ही निवास करेगा । यह
 स्थानक-लोक ब्रह्मलोकके ही निकट है (लोके-भ्रामकर ही
 मह है) । वह ब्रह्मक उत्प-सकम्पल आदि सभी उत्तम
 गुणोंसे युक्त है । उन्हींमें से आपके मकम्पल निवास करेगे १९ ॥
 धामराज्य स्थितं योनिस्तृसाद्यैव तथा ययुः ॥ २० ॥
 येभ्यो विनिर्गताः सर्वे सुरेभ्यः सुरसम्भवाः ।
 तेषु प्रविविदो यैव सुग्रीयः सूर्यमण्डलम् ॥ २१ ॥
 पश्यतां सर्वैर्देवानां स्वाम् पितृन् प्रतिपेक्षिरे ।

जिन बानरों और रीतोंकी देवताओंसे उत्पत्ति हुई भी
 वे अभी अपनी यनिमें ही निरु गये—जिन जिन देवताओंसे
 प्रकट हुए ये उन्हींमें प्रविष्ट हो गये । सुग्रीवने सूर्यमण्डलमें
 प्रवेश किया । इसी प्रकार अन्य बानर भी सब देवताओंके
 देवताके स्थान अपने-अपने पिताके स्वरूपसे प्राप्त हो
 गये ॥ २ २१ ॥

तथा ह्रुवति दशशं गाप्रतारमुपागताः ॥ २२ ॥
 मंजिं सग्यू सये हृषपूणाभुविहृषाः ।
 देवेश्वर प्रह्लासीने यह मंगानक-लोकमें ही प्राप्ति की
 खेल्ता की तब धरयूके मंगानक-लोक आये हुए उन सब

हृषार्ये श्रीमद्वाल्मीक्ये वाक्मीकीये भक्तिभावसे उत्तरकाण्डे हृषाभिः प्रकृतमा सर्गः ॥ ११ ॥

इस प्रकार श्रीमद्वाल्मीकीय श्रीरामायणम् अदिभयके उत्तरकाण्डमें एक सौ पत्तों तक पूरा हुआ ॥ ११ ॥

लोगोंने भानन्दके आँसू बहात हुए धरयूके लक्ष्मी हुबकी
 छाया भी ॥ २२ ॥
 मन्वगाद्यान्पु यो यो वै प्राजांस्यकत्वा प्रह्लासकत् ॥ २३ ॥
 मानुष देहधुरसृज्य विमान सोऽन्वराहत ।
 चिन्ते-चिन्ते लक्ष्मी गंठा लगया, बही-बही बड़े हर्षके
 साथ प्राणी और मनुष्य-धारीको त्यागकर विमानपर आ
 बैठा ॥ २३ ॥

तिर्यग्योनिगतानां च शतानि सूर्युज्जम् ॥ २४ ॥
 सन्प्राप्य विविध जग्मुः प्रभासुरवपुषि तु ।
 दिव्या दिव्यान यपुषा देवा वीता इयभभवत् ॥ २५ ॥
 पशु-पक्षीकी योनिमें पढ़े हुए रीतों प्राणी धरयूके लक्ष्मी
 गंठा लगाकर तेजसी धारी बनकर करके दिव्यलोकमें आ
 पहुँचे । वे दिव्य धारी बनकर करके दिव्य भवस्थानमें स्थित हो
 देवताओंके समान वीतिमान् हो गये ॥ २४ २५ ॥
 गत्या तु सूर्युतोय स्थानराणि चराणि च ।
 प्राप्य सत्तोपविष्टैर्द्वं दशलोकमुपागमन् ॥ २६ ॥

स्वावर और अज्ञम सभी तरहके प्राणी धरयूके लक्ष्मी
 प्रवेश करके उत लक्ष्मी अपने धारीको धरयूके लक्ष्मी
 आ पहुँचे ॥ २६ ॥

तस्मिन् येऽपि समापन्ना ऋषयश्चानतरासताः ।
 तेषुपि स्वर्गं प्रविद्यितुर्वैशान् मिश्रित्य चाम्भसि ॥ २७ ॥
 उत कम्य लो लोई भी रीक बानर या राजत वहाँ आ
 गये, वे सभी अपने धारीको धरयूके लक्ष्मी बानर मंगानक
 पशुधाममें आ पहुँचे ॥ २७ ॥

ततः समागतान् सर्वान् स्वप्य लोकेऽगुरुर्विधि ।
 हृषैः प्रमुवितैर्वैशाम विविध मदत् ॥ २८ ॥
 इस प्रकार वहाँ आये हुए सब प्राणियोंको स्थानक-लोकमें
 में स्थान देकर लोकेऽगुरु महाश्री हृष और भानन्दसे भरे
 हुए देवताओंके साथ अपने महान् धाममें लक्ष्मी गये ॥ २८ ॥

एकादशाधिकशततम सर्ग

रामायण काव्यका उपनिहार और इच्छकी महिमा

पलावत्तदारयाग भ्रातृन् महप्रजितम् ।
 रामायणमिति ल्यात मुत्प्य वाक्मीकिना कृतम् ॥ १ ॥
 (बुध और एव बरत १—) मरुर्ग वाक्मीकिशय

निर्मित यह रामायण नामक श्रेष्ठ भास्मान उत्तरकाण्डकवित
 इतना ही है । महाश्रीने भी इसका आधार किया है ॥ १ ॥
 ततः प्रतिष्ठितो विष्णुः स्वर्गलोके यया पुषा ।

येन व्यातमिद् सर्वं त्रैलोक्य सचराचरम् ॥ २ ॥

इत प्रथम भगवान् श्रीराम पहलकी ही भौति अपने निष्कृन्तन फलभामने प्रतिष्ठित हुए । उनके द्वारा चराचर प्राणियोंकरित यह समस्त त्रिलोकी व्यात है ॥ २ ॥

उत्प्रेक्ष्याः सगन्धर्षाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।

निम्न शृण्वन्ति सहास्राः काश्य रामायण त्रिभिः ॥ ३ ॥

उन गगनाङ्के पावन चरित्रसे युक्त हनेक कारण देवताः फलर्ष सिद्ध और महर्षि वहा प्रसन्नतापुत्रक देवस्यक्रमे इत एगान्नक्षत्रस्य भवण करते हैं ॥ ३ ॥

इदमाख्यातमायुष्य सौभाग्य पापनाशनम् ।

रामायण वेदसम भाष्येषु आशयेद् बुधः ॥ ४ ॥

एह प्रकृतकाव्य आयु तथा सौभाग्यक बढ़ता और पापोंघ्न नाश करता है । रामायण बरके समान है । निहान् पुत्रपत्ने भ्रातृभे इते पदकर मुमाना चारिषि ॥ ४ ॥

अपुत्रो सभते पुत्रमद्यतो लभत धनम् ।

सर्वपापैः प्रमुच्येत पादमप्यस्य यं पठेत् ॥ ५ ॥

इतके पाठसे पुत्रहीनका पुत्र और धनहीनको धन मिलता है । जो प्रतिदिन इतके पढाकरके एक बारपढा भी पाठ करता है वह सब पापोंसे मुक्तभय पा जाता है ॥ ५ ॥

पापान्यपि च यं कुर्याद्दृष्ट्यहनि मामयः ।

पठन्त्येकमपि प्लवकं पापात् न परिमुच्यत ॥ ६ ॥

ए मनुष्य प्रतिदिन पाठ करता है वह भी यदि इतके एक प्लवकका भी नित्य पाठ करे ता वह सभी पापनाशित मुक्त हो जाता है ॥ ६ ॥

पाषाणस्य च दातव्यं यस्तु धनुर्दिग्गणकम् ।

बाणकं परितुष्टं तु तुष्टा स्युः सखद्यताः ॥ ७ ॥

इतकी कथा मुनादेशय बाणकको बन्न गो और मुत्रककी रक्षिता देती करिय । बाणकके छंटाए जानेपर सभी देवता छंटाए हो खते हैं ॥ ७ ॥

पठन्त्याप्यानमायुष्यं पठन् रामायण नरः ।

सपुत्रीया लाकऽस्मिन् प्रप्य सप्त महीयते ॥ ८ ॥

वह रामायण काव्यक प्रकृतकाव्य सपुत्री बुद्धि करने जाता है । जो मनुष्य प्रतिदिन इतका पाठ करता है उसे इस काव्यके पुत्र देवकी प्राप्ति होती है और सप्तपुत्र पत्न्या फलकने भी उबका बहा सम्मान होता है ॥ ८ ॥

रामायण गोविसर्गे मप्याह्ये वा समाहित ।

सायान्ने वापराह्ये च वाचयन नाचसीदति ॥ ९ ॥

जो प्रतिदिन एकप्रश्निक हो प्रातःभाह मप्याह अन्त्यह अथवा सायंकालमें रामायणका पाठ करता है उसे कभी बर्से दुःख नहीं होता है ॥ ९ ॥

अयोध्यापि पुरी गम्या शूच्या दयगणान् बहून् ।

श्रुयभ प्राप्य राजान् निघासमुपयान्यति ॥ १० ॥

(श्रीसुनायकीके परमभाम पचारनेके पद्मान्) रमणीय अयोध्यापुरी भी बहुत बर्तोक मूनी पढ़ी लेगी । फिर राव्य श्रुयभके समय पर आवाद होगी ॥ १० ॥

पठन्त्याप्यानमायुष्यं समविष्य सहोत्तरम् ।

इतवान् प्रचेतसा पुत्रस्तत् प्रहाप्यममम्यत ॥ ११ ॥

प्रचताके पुत्र महर्षि कास्मीकिधीने मन्धमेय यत्की समातिके शक्ये कथा एवं उत्तरकाण्डकरित रामायण नामक इत ऐतिहासिक काव्यका निमण किया है । प्रमाथीने भी इतका अनुमोदन किया था ॥ ११ ॥

अधमेधसहस्रस्य धातुपेयायुतस्य च ।

लभते ध्यय्याद्य सगम्यैकस्य मानयः ॥ १२ ॥

इत काव्यके एक सर्वाका भरण करनेमात्रम ही मनुष्य एक हजार अधमेध और दस हजार आदय बर्तोंका फल पा जाता है ॥ १२ ॥

प्रयागार्दीनि तीर्थानि शङ्गाया सरितस्तथा ।

मैमियादीन्यरण्यानि कुरुभेप्रादिकान्यपि ॥ १३ ॥

गतानि तम स्तोकेऽस्मिन् येन रामायण भुजम् ।

त्रिजन इत एकमें रामायणकी कथा मुन की, उठने मान्य प्रयाग आदि तीर्थों गङ्गा आदि पर्वत नदियों मैमिया-रव्य आदि नदों और कुरुक्षत्र आदि पुण्यधर्मोंरी यात्रा पूरी कर ली ॥ १३ ॥

हेमभार कुरुक्षत्रे प्रसूत भानौ प्रपच्छति ॥ १४ ॥

यद्य रामायणं छाकं शृणोति मरणाशुभी ।

वा मृष्यवचने समय कुरुक्षत्रमें एक भार मुत्रका दान करता है और जो जोकमें प्रतिदिन रामायण सुनता है वे दोनों समान पुण्यक भोगी होंगे ॥ १४ ॥

सम्यक्धृतासमायुक्ता शृणुत राघवो कथाम् ॥ १५ ॥

सत्यपावात् प्रमुच्येत त्रिणुसाकं च शच्छति ।

का ठसम भद्राये लम्बन हा श्रीरघुनाथशैवी कथा मुनता
 हे का मर पाप्मे दुष्टदात्रा और विष्णुकरने काठा हे १५४
 आदिश्रयमिद त्पार्य पुरा वाल्मीकिना कृतम् ॥ १६ ॥
 याऽऽटपोनि सदा भक्त्या स गच्छेद् वैष्णवीं तनुम् ।

अ पूर्णवने वास्मीकिशरा निमित्त इत आर्यरामायण
 अतिशयनाश मदा भक्तिभावसे भजन करता है; वह भक्तान्
 विष्णुका वाक्य प्राप्त कर लेता है ॥ १६३ ॥

पुत्रदागच्छ धर्मस्त सगन्द् सततिस्तया ॥ १७ ॥
 सत्यमनद् विदित्या तु भोक्तव्य निपतामभिः ।

गायत्र्याथ स्वरूप तद् रामायणमनुत्तमम् ॥ १८ ॥

इसके भक्तों ने श्री पुत्रोद्दे प्राप्ति इतीदे धन और संतति
 बढ़ती है । हमें पूजना छन कनशास्त्र मन्त्रों बचने रखते हुए
 इतका भजन करना चाहिये । यह परम उत्तम रामायणकाम्य
 लक्ष्मीका वाक्य है ॥ १७ १ ॥

य पञ्चगुणुपाश्रित्य खरित राघवस्य ह ।
 भक्त्या सिक्कल्पये भूया दीपमापुत्पानुपाद् ॥ १९ ॥

अ दुष्ट प्रतिदिन भक्तिभावसे श्रीरघुनाथशैवीके इत
 परिपाश मुनता का पढ़ना है वह निम्न हाथर शीर्ष अंगु
 लन कर पाए है ॥ १ ॥

विस्तपद् राघवमिय धय प्राप्नु य इच्छति ।
 धायपदिद्वान्मन्त्रे प्राद्वनम्यो दिन दिन ॥ २० ॥

अ वाक्कल्पिता इत्या रमण दे उम मिय निवारा
 श्रीरघुनाथकी का निमित्त करना चाहिये । मन्त्रोंकी प्रतिदिन
 वह कल्पना कर लेना चाहिये ॥ ॥

यसिद्द्दुष्कृतान् खरित वाक्कल्पे पश्य ।

इसमें वाक्कल्पनायण कल्पनाकी विदित्यसे इतका कष्ट दुष्कृतान्प्रियकृतान्म मया ॥ १११ ॥

१० कथा श्रीरघुनाथकी इति अत्रात्मकान् अतिशयसे उपास्यसे १६ ॥ अत्रात्की का पूरा हुआ ॥ १ ॥

सोऽसुप्तये विष्णुलाक गच्छत्येष न सदा
 को इत श्रीरघुनाथ-परिब्रज पाठ पूर्ण कर
 प्राप्त होनेपर भगवान् विष्णुके ही वाक्यसे अ
 वयप नही है ॥ २१ ॥

पिता पितामहस्तस्य तस्य प्रफिल्लमह
 सत्पिता तपिता धैव विष्णु याम्ति न सदा
 इतना ही नहीं, उसके पिता, पितामह, प्रपि
 प्रपितामह तथा उनके भी पिता भगवान् विष्णु
 सेते हैं, इतने अवयप नही है ॥ २२ ॥

खतुवर्गमद् नित्य खरित राघवस्य ।
 तस्माद् यत्नयता नित्य भोक्तव्य परमं सदा

भीयपःश्रवा यह खरित सदा कर्म, अर्थ
 मोक्ष पाते पुत्रप्राप्तिका देनेवाला है । इतकि
 यमपूर्वक निरन्तर इत उच्च वाक्यका अ
 चाहिये ॥ २३ ॥

ऽऽप्यन् रामायण भक्त्या याः पाद् पद्मवत्
 स याति ब्रह्मणा म्यात ब्रह्मण्य पूजयते सद्

अ रामायणकाम्यके लोकेके एक खल या
 भक्तिभावसे भजन करता है वह ब्रह्मशैवीके धाममें।
 का उनका द्वारा पूर्ण होता है ॥ २४ ॥

पश्यन्तद् पुरापूजाभाव्यात भद्रमस्तु य
 प्रजाद्वरत विद्यथ्य यम विष्णो प्रपथनाम
 इत प्रकार इत पूजान् अभावना अत्यन्त
 पू क पाठ करे । अत्रका वाक्य हो और भग
 वन्की कर हा ॥ २५ ॥

